कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-१)

अहंकार में तीनों गये धन, वैभव और वंश, देखो इनका हाल रावण, दुर्योधन और कंस।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री परमानन्द चंचलानी
स्वर्णकला प्रिंटर्स अँन्ड अॅडव्हर्टायजर्स, २४८/३, रास्ता पेठ, पुणे - २

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* सहयोगी :- श्री विजय श्रीनिवास अगरवाल

* कृतिकार :- **श्री महेन्द्रकुमार अनन्तराम पाटोदिया**

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन **नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट**
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

किसी को कुछ दोगे तो रामराज्य है और किसी से कुछ मांगोगे तो महाभारत है।

* मूल्य - आपका सक्रिय पठन

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

मानव जीवन का दूसरा नाम संघर्ष है।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री सिद्धार्थ सराफ
सराफ कोर्ट, यशवंत स्टेडियम के सामने, धन्तोली,
नागपूर-४४००१२ फोन नं. २५६११३८

६) श्री किशोरीलाल पाटोदिया
लायस इस्टेट, सी विंग, फ्लॅट नं. ३००३/३००४
दोस्ती एकर्स के पास, वडाला (पू) मुंबई- ४०००३६
फोन नं. २३६३००३२, २३६१८८२१ मो. ९८२१७१८३७४

७) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

८) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

९) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

१०) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

११) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१२) श्री राधेश्याम गोयल
गोयल डिपार्टमेंटल स्टोअर्स, ५००, नारायण पेठ,
पत्र्या मारूती चौक, पूना-४११०३०
फोन नं. ऑ.२४४५६७०८

१३) श्री विजय अग्रवाल
दि स्पेअर हाऊस, खामकर हाऊस,
माफको यार्ड, पूनित चेम्बर्स के बाजू में, वाशी,
नवी मुंबई-४००७०५ फोन नं. २७६८६६६३

१४) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१५) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

१६) श्री सर्वेश गर्ग
ई-९७, साकेत, इन्दौर

१७) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल, ३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल

नदी अपनी मर्यादा छोडती है तो बाढ आती है, सागर अपनी मर्यादा छोडता है तो चक्रवर्ती तूफान आते हैं और मानव अपनी मर्यादा छोडता है तो ऐसा महाभारत होता है कि सब कुछ विनष्ट हो जाता है।

कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-१)

आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं, द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम्।
लीलागोग्रहणं रणे विरहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं, पश्चाद् भीष्मसुयोधनादिहननं चैतन्महाभारतम्॥

* विषय उपक्रम *

१)	आदौ पूज्यो विनायक: (श्री गणेश)	४ से ७
२)	माता-पिता	८ से १५
३)	कृतिकार की कलम से	१६ से १७
४)	भूमिका	१८ से २४
५)	जिनकी मधुर स्मृति में	२५ से २६
६)	प्रारम्भिक पूर्व प्रकरण	२७ से ४१
७)	आदि पर्व	४२ से ५३१
८)	सभा पर्व	५३२ से ६३०
९)	वन पर्व	६३१ से ७३६

कहीं दिन दहाडे आदमी करता है आदमी का शिकार,
व्यवस्था और सरकार बन गई पूरा का पूरा बाजार।
आदमी हो गया लाचार, कहीं बह रहा किसी का खून तो कहीं रोटी नहीं एक जून,
कहीं असहायता की चुनौती दे रहा आतंकवाद, तो कहीं द्रौपदी का चीर हरण हो रहा है आज,
कहीं हो रहा है राम-रावण का संग्राम, तो कहीं हो रहा है महाभारत खुले आम,
हालात से इतना कभी हैरान न था, इतना बेबस तो इन्सान कभी न था।

आदौ पूज्यो विनायक: (श्री गणेश)

मानव जीवन का परम चरम लक्ष्य देवत्व की प्राप्ति है और असुर भाव उसमें प्रबल विघ्न है। भगवान गणेश्वर विघ्नेश्वर अर्थात विघ्न को हरने वाले ईश्वर हैं। उनकी कृपा दृष्टि होने से विघ्न में आनेवाले पर्वत भी अपने आप धराशायी होकर बिखर जाते हैं। अतएव साधना या उपासना अथवा किसी भी धार्मिक तथा मांगलिक कार्यक्रम के आरम्भ में श्री गणेश का स्तवन, पूजन किये बिना सिद्धि प्राप्त होना सम्भव नहीं है। हमारी भारतीय परम्परानुसार समस्त कार्यों के आरम्भ में श्रीगणेश का स्मरण, स्तवन और पूजन आदि का विधान है इसलिये किसी भी कार्य का शुभारम्भ श्री गणेश पूजा एवं नामोच्चारण से किया जाता है। आदौ पूज्यो विनायक: इस उक्ति के अनुसार श्री गणेशजी की अग्रपूजा सर्वत्र सुप्रसिद्ध और प्रचलित है।

गणपति सर्वरूप है। गणेश शब्द का अर्थ है जो समस्त जीव, जाति गणों के ईश्वर हैं। गणानां जीव-जाति नां य ईश: स गणेश: शास्त्रों में जिस प्रकार एक ही ब्रह्म परमात्मा के ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों रूपों में कहे गये हैं उसी तरह गणेश को ब्रह्मा का विग्रह कहा गया है। जिस प्रकार एक ब्रह्म के होते हुये भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अपनी अपनी भिन्न विशेषतायें हैं उसी प्रकार गणेशजी की भी हैं। समस्त देवताओं में गणेश ही ऐसे देवता हैं जिनका समस्त शुभ कार्यों के प्रारम्भ में सर्वप्रथम पूजन किया जाता है।

ऋगवेद में कहा गया है न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे अर्थात हे गणेश आपके बिना कोई कार्य प्रारम्भ नहीं होता। गणेशजी सत्व, रज, तम तीनों गुणों के ईश है। गुणों का ईश ही प्राण स्वरूप ॐ है। ॐ में गणेश की मूर्ति सदा स्थित रहती है। इसलिये ॐ को गणेश की साक्षात मूर्ति मानकर वेदों को पढनेवाले सर्वप्रथम ॐ का उच्चारण करते हैं। ॐ का उच्चारण ही गणेश का ही नामोच्चारण करना है। गणेश के नाम से ही हृदय में एक स्थूलकाय तेजोदीप्त, वक्रतुण्ड, महाप्राण देवता की जो ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप है ऐसी मूर्ति की कल्पना उभरती है। इनकी चार भुजाओं में चार आयुध धारण, पाश, अंकुश, वरहस्त तथा अभय हस्त वक्रतुण्ड जो अपनी सूंड दांयी ओर करके सिद्धि विनायक बने हैं। बडे बडे सूर्पाकार कान हाथी की तरह, यज्ञोपवीत तथा मस्तिष्क पर चन्द्रमा धारण किये सुन्दर गणनायक का श्रद्धापूर्वक मन से ध्यान करने से ही ज्ञान, सौभाग्य व शान्ति स्वत: प्राप्त हो जाती है। अपने कानों से केवल शुद्ध पवित्र वार्ता को सुन शेष अज्ञान अपवित्रता से मिश्रित वार्ता को दूर से ही हटा दें जिससे हमारे हृदय में अयोग्य विचार ही न पनपें। दूषित विचारों को इस प्रकार छांट दें जिस प्रकार सूप अनाज से निरर्थक कणों को छांट देता है। गणेश जी की सूंड हमें वाम मार्ग का सहारा लेने से रोकने की शिक्षा देती है और सदा शुभ एवं परहित के कार्यों को करने की प्रेरणा देती है तथा उनका छोटा सा मुख कम और मधुर बोलने के पथ का ज्ञान कराता है कि सदा ज्ञानवाले शब्द ही मुख से निकले। गणेशजी का चतुर्भुज स्वरूप इस बात की प्रेरणा देता है गणेश जल तत्व के अधिपति हैं। जल के गुण हैं शब्द, रस, रूप, स्पर्श। सृष्टि भी चार प्रकार की होती है स्वेदज, अंडज, उद्भिज तथा जरायुज। पुरुषार्थ भी चार प्रकार के होते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनके चतुर्भुज स्वरूप से यही शिक्षा प्राप्त होती है कि मर्यादा में रहकर शिक्षा जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पथपर कर्म करते हुये अग्रसर हो। गणेशजी के चार आयुध हैं। गणेशजी पाश के द्वारा भक्तों के पापों का शमन करते हैं। वर हस्त मुद्रा से भक्तों की कामना पूर्ति व अभय हस्त से उनके सम्पूर्ण जीवन को भयरहित कर रक्षा करते हैं। दूर्वा गणेशजी को अत्यन्त प्रिय है। गणेशजी को दूर्वा अर्पण करके तथा मोदक का भोग लगाने से दिनों दिन आपकी प्रगति दूनी चौगुनी होगी, उन्नति के रास्ते में कोई बाधा नहीं टकरायेगी न ही ये गणपति बप्पा आपसे कभी रूठेंगे।

गजानन को ज्योतिष शास्त्रों में बुद्ध ग्रह से सम्बद्ध किया है। इनकी उपासना नवग्रहों की शान्तिकारक व व्यक्ति के सांसारिक, आध्यात्मिक दोनों तरह के लाभ के प्रदायक है। अथर्वशीर्ष में इन्हे सूर्य और चन्द्रमा के रूप में भी सम्बोधित किया है। सूर्य से अधिक तेजस्वी प्रथम वंदन देव हैं। इनकी रश्मि चन्द्रमा के समान शीतल होने से, इनकी शान्तिपूर्ण प्रकृति का गुण चन्द्रमा द्वारा ग्रहण करके अपनी स्थापना करने से वक्रतुंड में चन्द्रमा भी समाहित है। पृथ्वीपुत्र मंगल में उत्साह का सृजन एक दंत द्वारा ही

किया है। बुद्धि, विवेक के देवता होने से बुध ग्रह के अधिपति तो ये हैं, जगत का मंगल करने, साधक को निर्विघ्नता पूर्ण कार्य स्थिति प्रदान करने, विघ्नराज होने से बृहस्पति भी इनसे तुष्ट रहते हैं। धन, पुत्र, ऐश्वर्य इन सबके स्वामी गणेश हैं जबकि इन क्षेत्रों के ग्रह शुक्र हैं। शुक्र में शक्ति के संचालक आदि देव है। धातुओं व न्याय के देव सदा कष्ट व विघ्न से साधक की रक्षा करते हैं इसलिये शनि ग्रह से इनका सीधा सम्बन्ध है।

गणेशजी के जन्म में भी दो शरीर का मिलाप (पुरुष व हाथी) है इसी प्रकार राहु केतु की स्थिति में भी यही स्थिति विपरीत अवस्था में है। अर्थात गणपति में दो शरीर व राहु केतु के एक शरीर के दो हिस्से हैं इसलिये ये भी गणपति से सन्तुष्ट है। गणेशजी की स्तुति, पूजा, जप, पाठ से ग्रहों की शान्ति स्वमेव हो जाती है। किसी भी ग्रह की पीडा में यदि कोई उपाय नहीं होता हो तो गणेशजी के शरणापन्न होने से समस्या का हल निकल जाता है। विघ्न, आलस्य, रोग निवृति एवं सन्तान अर्थ, विद्या, बुद्धि, विवेक, यश, प्रसिद्धि, सिद्धि की उपलब्धि के लिये विनायक पूजा से सहज ही उपलब्धि हो जाती है चाहे वह आपके भाग्य में नहीं भी लिखी हो।

व्यावसायिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों ने भारत के प्रभाव को पश्चिमी और दक्षिण पूर्वी एशिया में विस्तार दिया है। फलस्वरूप भगवान गणेश जैसे देवता उन हिन्दु देवताओं में से एक हैं जो विदेशों में भिन्न-भिन्न स्वरूपों में पूजे जाते हैं। भारत से बाहर गये कारोबारी व्यापारी भगवान गणेश को भी अपने साथ वहां ले गये। १०वीं सदी के दौरान गणेशजी इस वर्ग के प्रमुख हिन्दु देवता बन गये। हिन्दुओं ने माले और आर्कि पिलागो की तरफ पलायन किया तो वे अपनी संस्कृति भगवान गणेश सहित अपने साथ ले गये। इन दोनों स्थानों पर बडी संख्या में गणेश की मूर्ति पाई जाती है। जावा, बाली तथा बोर्नियो की हिन्दु कलाओं में भगवान गणेश के विभिन्न स्वरूपों के दर्शन होते हैं। हिन्दु संस्कृति के दक्षिण पूर्वी एशिया में फैलने के कारण भगवान गणेश को बर्मा, कम्बोडिया और थाईलैन्ड में परिवर्तित स्वरूपों में स्थापित किया गया। थाईलैन्ड, कम्बोडिया और वियतनाम के चाम्स में गणेश को कठिनाइयों को दूर करने वाला देवता माना जाता है। बौद्ध धर्म के माननेवाले वर्तमान के थाईलैन्ड में भी भगवान गणेश विघ्नों को दूर करनेवाले तथा सफलता के देवता माने जाते हैं।

इस्लाम के आगमन से पहिले अफगानिस्तान के भारत के साथ करीबी सांस्कृतिक रिश्ते थे। यहां भी हिन्दु और बौद्ध धर्म के देवी देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा रखी जाती थी। ५ वी से ७ वी सदी की कुछ कलाकृतियों से यह पता चलता है कि भगवान गणेश को इस क्षेत्र में भी पूजा जाता है। नेपाल में भगवान गणेश को हेरम्बा नाम से पूजा जाता हैं। हेरम्बा के पांच सिर है और वे शेर पर सवारी करते हैं। भगवान गणेश को तिब्बत में कई स्वरूपों में दिखाया गया है।

शिव की पूजा के साथ द्रविडों का अधिक पुराना और निकट का सम्बन्ध है जबकि उत्तर भारत में मुख्य रूप से शिव और उमा की ही पूजा प्रचलित है। तब दक्षिण में शिव के पूरे परिवार की पूजा का बडा ही व्यापक प्रचार है और शिव तथा उमा के साथ वहां कार्तिकेय और गणेश की पूजा भी बडे ही उत्साह से की जाती है। उत्तर भारत में कार्तिकेय की मूर्ति विजयदशमी के अवसर पर दुर्गा के साथ बनाई जाती है और गणेश अक्सर अपने पुत्रों शुभ और लाभ के बीच दूकानों पर विराजते है। दक्षिण के मन्दिरों में दोनों भाइयों की बडी बडी मूर्तियां देखने में आती है जिनकी बनावट से वीर स्वरूप झलकता है। दक्षिण में कार्तिकेय, कुमार, षडानन, स्कन्द के अलावा मुरुगन तथा सुब्रमण्यम् नाम से खूब प्रचलित हैं।

गणेश जी विघ्नेश रूप में जाने जाते हैं। मनुष्य की देह पर हाथी का मस्तक लगाये हुये उनका भयावह रूप है वैसे ही लोग उन्हे डर कर ही पूजते हैं। जब बौद्ध धर्म की महायान शाखा का जन्म हुआ ये विघ्नेश ज्यों के त्यों उसमें आ विराजे और प्रत्येक अनुष्ठान के आरम्भ में उनकी प्रसन्नता के लिये पूजा की जाने लगी किन्तु धीरे धीरे ब्राह्मणों ने उन्हे विघ्न हर बना डाला और विघ्न हर रूप में ही वे हमारे पौराणिक धर्म के साथ रहे हैं। गणेश की कल्पना शुद्ध भारतीय ही होगी क्योंकि आर्य जिस देश से यहां आये थे उस देश में तो हाथी होते ही नहीं थे। गणेश की ॐ मयी व्याख्या सातवीं सदी में ज्ञानेश्वर जी ने की। दक्षिण भारत के लोग गणेश जी को अविवाहित और ब्रह्मचारी ही समझते हैं। गणेश आर्येतर देवता हैं।

यजुर्वेद में महामन्त्र है गणान गणपति हवामहे, प्रियाणन्त्वा प्रियपति हवामहे, निर्धानात्वा निधिपति हवामहें बसोमम्। आहम

जानि गर्भधमात्वमं जासि गर्भधम्। गणेश जी की कल्पना भी बीज रूप में वेद में विद्यमान है किन्तु इस मन्त्र में अश्वमेघ के अश्व को गणपति कहा गया है। वेदों में तो गणेशजी हमको मिले नहीं परन्तु पुराणों में उनकी सर्वत्र चर्चा है। तन्त्रों में ऐसे ऐसे विग्रह देखने को मिले हैं। पुराणों की रचना गुप्तकाल के लगभग मानी जाती है। कुछ तन्त्र ग्रन्थ अथवा तन्त्र ग्रन्थों का कुछ अंश भी लगभग उतना ही पुराना है। बुद्धदेव के समय गणपति देव सूची में थे या नहीं यह कहना कठिन है। तीर्थंकर महावीर का भी प्राय: वही समय ५-७ वी सदी का था उन्होने भी कहीं गणेश का नाम नहीं लिया है। प्रश्न यह है कि श्रुतिकाल के पीछे और पुराण निर्माण काल के पहिले गणेशजी कहां से आकर देव श्रेणीमें सम्मिलित हुये ? आर्य लोग गणेशजी का अस्तित्व नहीं जानते थे, जब वे पूर्व की ओर बढे तो उनका अनार्यों से सम्पर्क बढा और बहुत से अनार्य आर्य बस्तियों में बस गये। विजित पर तो संस्कृति और आचार विचार पर अनार्य प्रभाव पड कर रहा, विद्वानों के विरोध करते रहने पर भी निम्न कोटि के लोगों ने कुछ नये देवी देवियों को अपनाया, ऐसे देव-देवी असभ्य जंगली लोगों में सर्वत्र पूज्य हो गये। इनकी आकृति पशु पक्षियों के समान होती है या प्रेम पिशाच जैसे मुंह और दांत होते है। आज भी बहुत से गांवों में ऐसे ग्रामदेवों की मिट्टी या लकडी की मूर्तियां दीख पडती है, जो प्राय: सभी क्रूरकर्मा होते है। भांति भांति की पूजा करके इनको शान्त किया जाता है। अपने अनार्य पडोसियों से आर्यों ने नाग, गधे पर सवारी करनेवाली शीतला और कुत्ते पर चढ़नेवाला भैरव, मूषक वाहन हस्तिमुख विनायक को भी लिया। विनायक विघ्नहर्ता थे, अच्छे कार्यों में भी बाधा डालते थे इसलिये प्रत्येक शुभ कर्म के आरम्भ में उनको मनाना पडता है। जब आर्यों ने उन्हे ग्रहण किया उनका रूप बदलने लगा और वे विघ्नेश से विघ्नहर बन गये। जब देव हो गये तब उनकी पूजा होने लगी, पूजा पद्धति बनी, ढूंढ ढांढकर दो एक वेद मन्त्र भी उनको दिये गये और उनके नाम पर उपनिषदों की भी रचना की गई। धीरे धीरे वे बौद्ध धर्म में भी प्रवेश पा गये और उसी के साथ भारत से बाहर भी पहुंचे जहां उनके अत्यन्त विचित्र ध्यान धर्म प्रचलित हो गये। भारत में तो वे घर घर पूजित हैं ही। गणपति कोई विरूप देवता थे, उन्हे इस देश की जनता पूजती थी। आर्यों ने या तो इन देवता का प्रताप देखकर अथवा इनके भक्तों को प्रसन्न करने के लिये इन्हे स्वीकार कर लिया। अनेक अनार्य देवताओं को आर्य लोग स्वीकार नहीं कर सके। आस पास के चतुर्दिक प्रचलित प्रभाव को रोक रखना असम्भव है। प्राचीन आर्यगण भी समझ सके कि गणचित्त को प्रसन्न किये बिना इस देश में वास करना कठिन है इसलिये सब यज्ञों में पहले गणदेवता गणपति की पूजा की व्यवस्था की गई।

गणेशजी को बुद्धि और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है इसी वजह से भारतीय संस्कृति में भी गणेश जी का विशेष महत्व है उनको विघ्नहर्ता और रिद्धि सिद्धि का प्रतीक स्वरूप भी माना गया है। गणेशजी ने महर्षि व्यास के महाभारत ग्रन्थ को लिखने के लिये उनका साथ दिया। श्रीगणेश जी के उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक धारणा है कि वे भगवान शंकर के प्रथम गण थे इसलिये इन्हे गणनायक, गणेश या गणपति के नाम से सम्बोधित करते हैं।

विद्वानों के अनुसार गणेश की कल्पना रात्रि देवता, गज आकृति के आधार पर भी विचार प्रकट किये हैं जो प्रारम्भ में इनका स्वरूप पशु के समान रहा होगा और बाद में आगे चलकर इन्हे देवता के रूप में सम्मान मिला। सिन्धुघाटी की सभ्यता के अनुसार खुदाई में जो अवशेष और मोहरें मिले हैं उनमें से अनेक पशुओं के अलावा हाथी का चित्र मिला। इसको ही प्रतीक मानकर विद्वानों ने गणेश का स्वरूप एवं मुद्राओं में हाथी के चित्र होने में गणेश पूजा की भावना जागृत हुई होगी।

गणेश पुराण में श्री गणेश जी के अनेक अवतारों के बारे में बताया गया है। सतयुग में कश्यप पुत्र विनायक का सिंह पर सवार होकर देवांतक नरान्तक का वध किया। द्वापर युग में गजानन सिन्दूर का वध किया। त्रेता युग में मयूरेश्वर के रूप में अवतरित होकर सिन्धु का नाश किया। कलियुग में धूमकेतु के अवतार लेकर म्लेच्छों को नष्ट किया। गणेश के विभिन्न अवतारों वाली ये सभी कथायें उनके शौर्य को प्रकट करती है जो आजकल समाप्त होते जा रही है। वैसे गणेश प्रतिमा पर चढाये जानेवाला सिन्दूर भी उनके बहादुरी का प्रतीक माना जाता है क्योंकि उन्होने सिन्दूर नाम के राक्षस का वध किया। सम्भव है सिन्दूर लेपन की परम्परा के पीछे यह कथा रही हो।

भगवान गणेश को अहंकार, स्वार्थपरता और घमंड का नाशकर्ता माना जाता है। अलग अलग नामों में गणेश की विभिन्न शक्तियों और स्वरूपों के दर्शन होते हैं। जब गणेश को विनायक कहा जाता है तो इसका अभिप्राय होता है कि गणेश सभी दु:खों व कष्टों को हरनेवाले है। गणेश का एक अन्य प्रचलित नाम विघ्नेश्वर है, विघ्नेश्वर जो धन, ज्ञान, स्वास्थ्य, सौन्दर्य की हर कला से अपने आपको परिपूर्ण बनाता है और इसके लिये वह हर रूकावट को दूर करने की कोशिश करता है इसलिये भारतीय परम्परा में गणेशजी प्रथम वन्दनीय है।

लगभग सभी देवताओं के पूजन में गणेश को प्रथम स्थान दिया गया है। बिना गणेश पूजन किये कोई शुभ कार्य आरम्भ नहीं किया जाता। इसका मुख्य कारण है गणेश का विघ्न विनायक। गणेश के अनेक नाम पढने और सुनने को मिलते है जो या तो उनकी किसी विशेषता को दर्शाता है या उनका सम्बन्ध किसी घटना से है। गजानन, गणपति, गणनायक, विघ्नहर्ता, गणेश्वर, रिद्धि-सिद्धी स्वामी, लम्बोदर, शर्प कर्ण, एकदंत, मोदक प्रिय आदि अनेक नाम इनके उल्लेखनीय है। प्रचलित कथाओं के अनुसार वेदों को भी लिखने वाले गणेश ही थे। प्रत्येक कार्यों में विघ्नों की सम्भावनायें रहती ही है। गणेश उन विघ्नों को नष्ट करके साधक को सफलता की ओर ले जानेवाले हैं इसलिये उनका प्रथम पूजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त गणेश सम्पूर्ण विद्या तथा कलाओं के स्वामी भी है। इससे जीवन को बुद्धि सम्पन्न और कला सौन्दर्य से युक्त रखने के लिये भी गणेश पूजन किया जाता है। इस जाग्रत देव से सभी धर्मों के लोगों को मन्नत मांगते देखा जाता है।

उत्सव शब्द हमारी परम्परा में पता नहीं कब आया पर इसके उच्चारण के साथ सबसे पहले जो चित्र उभरता है वह गणेशोत्सव का ही होता है। लोकल ट्रेन, बसों, मोटर कारों के बीच दौडती जिन्दगी में शायद सकून की तलाश है। गणेश उत्सव या फिर हरपल तनाव भरे जीवन में शुभता की एक दस्तक है। मां की तरह हमेशा हमें गोद में दुलारनेवाली मिट्टी के प्रति अपनी श्रद्धा को जब हम एक प्रतिमा के रूप में सिर पर उठाते हैं तब वह प्रतिमा गणेश की ही होती है। हर व्यक्ति के दिल में शुभता का जो उजाला फैलता है उसे सिर्फ गणेश उत्सव ही कहा जा सकता है। भागमभाग भरे इस जीवन में एक भूख श्रद्धा की, संस्कृति की, अपनेपन की और बिखरते रिश्तों में खंडित होते सपनों की निरन्तर जागती ही रहती है। गणेश जी विभिन्न कलाओं के देवता हैं तो दूसरी ओर गणतन्त्र के प्रतीक भी।

विश्व में सर्वाधिक त्यौहार भारत में मनाये जाते हैं। भारतीय त्यौहर सिर्फ धार्मिक प्रयोजन से ही नहीं मनाये जाते बल्कि इसके पीछे मानवता, प्रेम व सौहार्द्र की भावना छिपी होती है। त्यौहारों के निमित्त हम भारतीय संस्कृति, सभ्यता व हमारे संस्कारों का निर्वाह करते हैं। त्यौहारों की व्यवस्था भारतीय जीवन में इसलिये की गई कि लोग इसके माध्यम से एक साथ मिलकर एकता से हो तथा आपसी वैमनस्य मिटाकर एकसाथ आकर संग्रहित हो, मिल जुलकर सौहार्द्रपूर्ण तरीके से उस आयोजन को पूर्ण करे। त्यौहार हमें आपस में बाधंने का काम करते हैं। यह हमारे धर्म की रक्षा तो करते ही हैं साथ ही मानवता का सन्देश भी देते हैं।

भारतीय त्यौहारों की इसी श्रृंखला में श्री गणेशोत्सव पर्व भी एक है। वैसे तो यह पर्व सम्पूर्ण भारतवासी पूरी श्रद्धा के साथ मनाते हैं लेकिन महाराष्ट्र में इसका प्रचलन बडी ही धूमधाम से है। भगवान गणेश सम्पूर्ण महाराष्ट्र के आराध्य माने जाते हैं। जिस तरह भारत के सभी राज्यों में दीपावली का महत्व है वही महत्व महाराष्ट्र में गणेशोत्सव का है। सार्वजनिक गणेशोत्सव का शुभारम्भ महान स्वतन्त्रता सैनानी व क्रान्तिकारी बाल गंगाधर तिलक ने किया था इसके पीछे जनसमुदाय को एक छत्र के नीचे लाकर एकता का उद्देश्य था। वह समय अंग्रेजी शासन काल का था। अंग्रेजों के अत्याचार चरम सीमा पर थे। कोई किसी में मिल नहीं सकता था क्योंकि अंग्रेजों को डर था कि भारतीय क्रान्तिकारी एकजुट हैं और अंग्रेजी शासन के खिलाफ षडयन्त्र तैयार करेंगे। इसी में बाल गंगाधर तिलक ने एक मार्ग निकाला और सार्वजनिक गणेशोत्सव परम्परा शुरु की। तिलक के इस प्रयास का अंग्रेज भी विरोध नहीं कर सके। लोकमान्य तिलक ने घर घर में पूजे जानेवाले गणेश को सार्वजनिक रूप देते हुये उन्हे जन जन का, गण का गणतान्त्रिक देवता बनाया।

माता-पिता

माता ममता मूर्ति की, पंच पुजारी प्राण, माता की आशीष ही पुत्रों का कल्याण।

माता-पिता की छाया में ही जीवन संवरता है। माता-पिता जो नि:स्वार्थ भावना की मूर्ति हैं, वे संतान को ममता, त्याग, परोपकार, स्नेह, जीवन जीने की कला सिखाते हैं। माता और पिता इन दो स्तंभों पर भारतीय संस्कृति मजबूती से स्थिर है। माता-पिता भारतीय संस्कृति के दो ध्रुव हैं। मां शब्द ही इस जगत का सबसे सुंदर शब्द है। इसमें क्या नहीं है ? वात्सल्य, माया, अपनापन, स्नेह, आकाश के समान विशाल मन, सागर समान अंत:करण इन सबका संगम ही है मां के लिए न जाने कितना लिखा होगा। लेकिन मां के मन की विशालता, अंत:करण की करूणा मापना आसान नहीं है।

परमेश्वर की निश्छल भक्तिका अर्थ ही मां है। ईश्वर का रूप कैसा है, यह मां का रूप देखकर जाना जा सकता है। ईश्वर के असंख्य रूप मां की आँखों में झलकते हैं। संतान अगर मां की आँखों के तारे होते हैं, तो मां भी उनकी प्रेरणा रहती है। कुपुत्र अनेक जन्मते हैं, पर कुमाता मिलना मुश्किल है।

वेद वाक्य के अनुसार प्रथम नमस्कार मां को करना चाहिए। सारे जग की सर्वसंपन्न, सर्वमांगल्य, सारी शुचिता फीकी पड़ जाती है मां की महत्ता के सामने सारे संसार का प्रेम मां रूपी शब्द में व्यक्त कर सकते हैं। जन्म जात दृष्टिहीन संतान को भी मां उतनी ही ममता से बड़ा करती है। दृष्टिहीन संतान अपनी दृष्टिहीनता से ज्यादा इस बात पर अपनी दुर्दशा व्यक्त करता है कि उसका लालन-पोषण करनेवाली मां कैसी है, वह देख नहीं सकता, व्यक्त कर नहीं सकता। मां को देखने के लिए भी दृष्टि चाहिए होती है। आँखें होते हुए भी मां को न देख सकने वाले बहुतायत में होते हैं। ईश्वर का दिव्य स्वरूप एक बार देख सकते हैं। मगर मां के विशाल मन की थाह लेने के लिए बड़ी दिव्य दृष्टि लगती है। मां यानी ईश्वर द्वारा मानव को दिया हुआ अनमोल उपहार।

दूसरा नमस्कार यानी पितृदेव पिता सही अर्थों में भाग्य-विधाता रहता है। जीवन को योग्य दिशा दिखलाने वाला महत्वपूर्ण कार्य वह सतत करता है। विशेषता यह कि पिता पर कविताएं कम ही लिखी गई। कारण कुछ भी रहे हों, मगर कविता की चौखट में पितृकर्तव्य अधूरे ही रहे। कभी गंभीर, कभी हँसमुख, मन ही मन स्थिति को समझकर पारिवारिक संकटों से जूझने वाले पिता क्या और कितना सहन करते होंगे। कल्पना करना मुश्किल है।

मां बनना अपने आप में अनूठा अनुभव है। यह एहसास स्त्री के व्यक्तित्व को गरिमा और सम्पूर्णता देता है। दुनिया में यही एकमात्र ऐसा रिश्ता है, जिसमें कहीं कोई स्वार्थ की गंध नहीं होती। बस होती है प्यार और ममता की सुवासित छांव।

मां बनने की प्रक्रिया की शुरूआत से ही स्त्री-जीवन में बहुत से परिवर्तन आहिस्ता-आहिस्ता आने शुरू हो जाते हैं। ये परिवर्तन मानसिक और शारीरिक दोनों तरह के होते हैं। संतानोत्पत्ति के बाद उसके लालन-पालन की एक बेहद महत्वपूर्ण जिम्मेदारी उस पर आ जाती है। ऐसे में यदि पति और परिवार की भूमिका स्त्री के प्रति सकारात्मक और सहयोगपूर्ण हो, तो मां की भूमिका उसके लिए निभाना सहज हो जाता है।

जमाना गुजर गया लड़ते-झगड़ते। कल छोटे हैं, इसलिए ख्याल नहीं आता। किसी को किसी ने झांक कर देखने की कोशिश भी नहीं कि कितनी नफरत भरती जा रही है उनकी आंखों में। लड़ते रहे और बच्चों से कहते रहे। तुम लोग क्या सुन रहे हो। जाकर पढ़ो कमरे में। एक दिन नहीं दो दिन नहीं बल्कि हर रोज का यही सिलसिला रहा। वक्त गुजरता गया और एक वक्त वो आया जब उम्र ढलने लगी। बच्चे बड़े होते-होते बहुत समझदार बन गये, मगर वो आक्रोश की नफरत कम न हुई।

आज जब एक मुकाम पर पहुंच गये, तो ऐसे पड़ाव में मां-बाप ये उम्मीद करते हैं कि उनके बच्चे उन्हें इज्जत दें। उनकी कद्र करें, उनके साथ प्यार और अपनेपन से पेश आएं तो कल की यादें। उनका अतीत कभी इस बात को स्वीकार नहीं कर पाता और

एक बच्चा हमेशा अपने माता-पिता से नफरत ही करता रहता है।

एक बच्चा न तो सिर्फ मां को न सिर्फ पिता को बल्कि माता-पिता दोनों को ही पाना चाहता है। उसकी रगों में दोनों का ही लहू दौड़ता है, वो एक नहीं बल्कि दोनों का ही अंश होता है। माता-पिता के आपसी मतभेद में उसका दिमाग न मां की तरफ झुक पाता है न पिता की तरफ।

वो बीच में घुटता रहता है। मां-बाप के बीच तनाव की बातें जितना एक दूसरे को चोट करती हैं, उससे भी कहीं ज्यादा वे बच्चों के दिल पर प्रहार करती है और वो हमेशा से टूटता-फूटता रहता है। कभी सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता उसके व्यक्तित्व का।

कभी-कभी ही ऐसा होता है कि परिस्थितियां किसी को महान चिंतक या विचारक बना देती है, मगर सामान्यत: बच्चे इन बातों का शिकार होकर कभी उन्नति नहीं कर पाते।

अगर आपके साथ कुछ परिस्थितियां ऐसी हैं तो अपने बच्चे का भविष्य मत उजाड़िए। आपस में प्यार बांट कर दें बच्चों को सही मानसिकता और उज्ज्वल भविष्य।

माता और पिता दोनों में सन्तान के प्रति पिता की अपेक्षा माता का प्रेम अधिक होता है। पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, किन्तु माता प्राय: कुमाता नहीं होतीं।

विधाता ने मातृ हृदय कैसा विचित्र बनाया है। उसमें कितने भावों का समावेश है। माता अपने पुत्र के लिये कितनी चिन्तित रहती है। मातृ हृदय में करुणा स्त्रोत उमड़ता रहता है। वह प्रेम से पूर्ण, दया से प्लावित और सेवा से सराबोर होता है। विधाता ने कोमल-से कोमल भावों का सम्पुट देकर मातृहृदय का निर्माण किया है। सन्तान के प्रति माता के हृदय में कितना ममत्व होता है। यह सृष्टि प्रसार के लिये प्रजापति की कैसी अनुपम कारीगरी है। सन्ध्या वन्दन करने की भाँति सन्तान सृजन और पुत्र-पालन भी कर्तव्य होता है, बलात्कार माताओं के सिर मढ़ा गया। किन्तु विधाता ने ममता का ऐसा एक सूत्र निर्माण कर दिया है कि जिसमें आबद्ध होकर पशु-पक्षी, स्थावर जंगल अपनी संतानों को प्राण से भी बढ़कर प्यार करते हैं। गर्भ धारण के कष्ट, प्रसव की असह्य वेदना, लालन-पालन का चिरकालीन दु:ख इन सबको माँ बड़ी प्रसन्नता से सहन करती है और प्रत्येक क्षण ध्यान रखती है कि मेरी सन्तान को दु:ख न हो। माता जब विवश हो जाती है, जब उसे संसार में कुछ भी नहीं सूझता, तब वह हृदय पर पत्थर रखकर अपनी सन्तान का परित्याग करती है, मानों उसने अपने हृदय को निकाल कर फेंक दिया हो। अब भी देखा गया है कि हमारी बहुत-सी विधवा या कुमारी बहिनें जब किसी दुष्ट पुरुष के बहकाने से या किसी अन्य कारण से पथभ्रष्ट हो जाती हैं तो शक्ति भर वे अपने कर्म को गोप्य रखती हैं, किन्तु सन्तान का मुख देखकर वे कितनी दुखी, कितनी लज्जित और कितनी विवश हो जाती हैं।

मां जन्म और जीवन के बीच में है। मां रचती है रची नहीं जाती। मां वात्सल्य का विग्रह है, ममता का मर्म है। गूंगे की मिठास जैसी अपरिभाषित अव्यक्त अनुभूति है मां। मां एक ऐसा शब्द जिसे बोलते लिखते, पढते सुनते या सोचते ही एक ममतामयी चेहरा आंखों केसामने आ जाता है और मन श्रद्धा सम्मान व करुणा से भर जाता है। बचपन के चित्र अनायास ही आंखों के पटल पर आ जाते हैं। बचपन में जब बालक नन्हे नन्हे पैरों से दौडकर भागता था और गिर पडता था तो मां उसे गोद में उठा लेती थी कि कहीं उसके लाल को लगी तो नहीं। गिरने से होनेवाली पीडा कैसी भी हो मां की गोद में जाते ही मां के ममत्व भरे स्पर्श से कहां चली जाती पता भी नहीं चला। बालक मां के सीने से लगकर मां के मातृत्व में लिपट कर चैन से सो जाता है। मां बालक का पूरा संसार, दृष्टि बरगद का घना पेड जिसकी शीतलता भरी छांव में मस्त होकर खिलखिलाता रहता है। धूप उसे छू भी नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता और ठंड उसके पास नहीं आती। जब भी बालक की आंख खुलती है मां सामने होती है। जब भी वह सोता है तो मां की ममता भरी गोद होती है, मातृत्व से भरा सीना होता है। जब प्यास लगती है तो शीतल जलाधार बन जाती है, भूख लगती है तो मातृत्व की दुग्ध धार बन भूख मिटाती है। बालक के रोनेपर नेह भरे स्पर्श से चुप करा कर मुस्कान

बिखेर देती है। पल पल साथ रहकर पहले बालक को सुलाती है फिर खुद सोती है। कभी कभी तो बालक सो जाता है और घंटो बैठी निहारती रहती है, सिर सहलाकर दुलार करती है। मां के सिवा बालक कुछ भी नहीं जानता। उसका तो पूरा संसार ही मां है। बालक जैसे जैसे बडा होता है मां के मातृत्व भरे सीने और मां की ममतामयी गोद से दूर होते जाता है फिर भी चोट लगे या बीमार पडे तो सबसे ज्यादा दु:खी मां ही होती है। बालक मां का सान्निध्य पाकर अपने कष्ट अपनी चोट भूल जाता है। चोट उसे लगती है और पीडा मां महसूस करती है। आंसू भी मां की आंख से निकलते हैं। बालक के अच्छे होने के लिये मां ही प्रार्थना करती है। कई देवी-देवताओं को मनाती है। मां भगवान से कहती है उसकी सारी तकलीफें उसे दे दे पर उसके सन्तान को अच्छा कर दे। कितना विशाल हृदय है मां का जहां केवल निश्चल प्यार है, ममता है, दुलार है।

आज महानगरों में मां के पर्याय बदलते जा रहे हैं। कामकाजी महिलायें अपने बच्चों की परवरिश के लिये अधिक समय नहीं देती। इनके बच्चे आया, नौकर या दूरदर्शन के सान्निध्य में ज्यादा समय गुजारते हैं। इसके फल स्वरूप यही होता है कि बच्चे में आया, नौकर या दूरदर्शन से प्राप्त ही संस्कार निर्माण होते हैं। इनके संसर्ग से बच्चों में कई बुरी आदतों का समावेश होने लगता है और जब मां बाप को मालूम पडता है तब तक काफी देर हो चुकी होती है तो फिर माता-पिता के पास सिर पीटने, पछताने के सिवा चारा ही नहीं रह जाता। आज वही ममतामयी बदल गई, निष्ठुर हो गई। अब मां अपने बच्चे को अपने स्तन का दूध नहीं पिलाती इसलिये कि उसकी सुन्दरता, उसका यौवन ढल न जाये। जो मां बालक के हित के लिये अपने प्राणों की परवाह नहीं करती थी वहीं मां आज अपनी सुन्दरता कम न हो जाये, आकर्षण कम न हो जाये इसलिये अपने बालक को स्वयं के स्तन के दूध से वंचित कर डिब्बे का बन्द दूध पिलाकर उसे खोखला बनाने के लिये विवश हो रही है। जब मां बालक को अंगूली पकडकर चलना सिखाती है तो वही बालक बडा होकर जीवन के संघर्षों से लडना सीखता था पर आज उसका बेटा किसी आया या किसी और के भरोसे पल रहा है तो फिर उसमें क्या संस्कार आयेंगे ? असभ्य बातें और गाली गलौज ही सीखेगा बालक। यह तो मां ही है जो बालक को सुशिक्षित, संस्कार दे सकती है।

प्रेम, सौम्यता, संस्कारों की जननी, मृदुता, वात्सल्य का भंडार, दया की मूर्ति, सहृदयता करुणा और ममता का साक्षात स्वरूप मां जिसके लिये विश्व की तमाम भाषाओं में जिसके गीत काव्य रचे गये हैं वह हम सबके घर में है। श्रीराम जिनके चरणों में झुकते थे, जो सागर से भी गम्भीर हिमालय से भी ऊंची, आसमान से भी अधिक असीम वह मां हम सबके घर में है। भगवान महावीर ने जिन्दगी की पहली प्रतिज्ञा जिसके लिये की थी वही मां ही तो थी। मां तो घर घर की शोभा और घर का आभूषण है इसीसे तो परिवार में स्नेह का झरना बहते रहता है। मां से सरलता है, मधुरता है, मिठास है अपनापन है और उदारता है। मां घर का प्राण है। संस्कारी घरों की शोभा है जो सहनशीलता, क्षमा और विशालता तथा शालीनता का पाठ पढानेवाली शिक्षक है। सारे सुख-दु:ख समेटनेवाली, महिमामयी है। तेज बहती पवित्र गंगा सी अदम्य साहस की हिमशिखर है मां धीरज ढाढस बंधानेवाली साकाररूप। युगों युगों से अपना उन्नत शीश उठाये करुणामयी सुखों का कल कल बहता झरना है मां। अमृत दायिनी ममता की मूरत, सूर्य की प्रथम किरण है मां। समृद्ध शालिनी, अगहन में सोना उगलते कृषि सी, उत्साही, प्रफुल्लिता अन्नपूर्णा है मां। मां निरूपमा है जिसके समान कोई उपमा भी नहीं ठहर सकती। शरद के चन्द्र के समान उज्ज्वल शुभ चांदनी सी बिखेरी मां। मां तुम ही सीता, सावित्री, द्रौपदी उर्मिला भी हो। तुम्ही चिर सती साध्वी तुम्हे किसी अग्निपरीक्षा की आवश्यकता भी नहीं। तुम त्याग की बेमिसाल मूर्त हो। सागर से गहरी, आकाश से भी विशाल हृदयवाली सृष्टि की आदि नारी, ऐश्वर्यवान, शक्तिदायिनी, तम की ज्योति आभा हो तुम्ही लक्ष्मी, सरस्वती पार्वती हो। तुम्हे पूजने पूजा अर्चना नैवेद्य की आवश्यकता नहीं है। हे ज्योति स्वरूपा आलोकमयी तुम्हारा ऋण कभी न चुका पायेगा यह मनुष्य।

कितनी शिकायतें, शिकवे, गिले, ठंडी सांसे और सिसकियां कर्णों में ध्वनि प्रसारित हुई। विधना भी सबके दुखडे सुन सुन

हैरान हुये। अपनी नासमझी को पहचाने। मानव जगत की अनगिनत समस्याओं को कौन सुलझाये यह सोच कर परेशान हो सोच में पडे ईश्वर एकाएक चिल्ला उठे प्रभु मिल गया मिल गया समाधान और सृजन किया इस जमीं पर मां का। मां को जो प्यार करे वे लोग निराले ही होते हैं। जिसे मां का आशीर्वाद मिले वे किस्मतवाले होते हैं। चाहे जीवन भर लाख पूजा कर लेना, हजारो तीर्थ कर लेना, पर जो माता-पिता की नहीं सुनेगा उसकी कोई नहीं सुनता। जो माता पिता को ठुकराता है वह दर दर मारा फिरता है। इस इन्सान को जिस माता पिता ने जन्म दिया है आज वह उसी को भूल गया है। जिस माता ने उसे पाल पोस कर बडा किया है उसी माता से वह आज रूठा हुआ है। मां ने उसके लिये कितनी तकलीफें सही, कितने कष्ट उठाये, नौ महिने गर्भ में लेकर पाला फिर भी वह उसे भूल गया है। याद करो अपने उस बचपन को फिर भी आज वह अपनी मां को भूल गया है। तुम्हे सूखे में सुलाने पर भी वह कभी सोयी नहीं थी। रात रात भर तुम्हारे लिये जाग रही थी। जब तब भी तू बीमार हुआ उसकी आंखे रोई थी। खुद न खाकर भी तुमे ही खिलाया था और स्वयं भूखी रही। जब जब तू रोया पलने में लोरी दे देकर थपकी दे देकर गले से लगाकर तुझे चुप कराया और सुलाया। अंगूली पकडकर तुझे चलना सिखाया। माता के उन सभी उपकारों के क्या उस ऋण को चुका पायेगा ? क्या मां को धन देकर खरीद लेगा ? आज के हे स्वार्थी इन्सान पहचान अपनी मां की महानता को जिसने तुझे बनाया। माता तेरी अंगूली पकडकर तुझे पाठशाला में छोडने जाती थी। देवगुरु से वंदना कर तुझे सब कुछ सिखाती थी। पाठशाला में धर्म सिखाया, धर्म के विचारों का ज्ञान कराया और बडा होकर तू धन वाला बना और यही किया कि मां बाप को तूने घर से निकाला। यही बदला चुकाया अपने मां बाप के एहसानों का। भूल गया अपने मां बाप को। याद रख तू भी इन मखमल के गद्दों पर सो नहीं पायेगा। मां बाप की दुर्आशिषें न लगे नहीं तो तेरी सात पीढ़ियों तक सत्यानाश कर देगी। मत सता उन्हे। ये तो मां बाप ही हैं जो सन्तान के नालायक निकल जाने पर भी वे कभी भी हृदय से उसे आशीर्वाद ही देंगे नहीं तो उनको सताने पर उनके मुंह से निकली दुर्आशिषें लुहार की धौंकनी के हवा के समान तुझे फूंक देगी।

जब जब तू मलमूत्र से लिप्त हो गया तब तब तुझे धोया। उस नरक से भी कभी नफरत नहीं की। तेरी खुशी में हरदम हंसती रहती थी और तेरे गमों में सबसे पहले दु:खी होने वालों में से थी। सो तू आज उसे ही भूल गया और अपनी मां से रूठ गया। उस मां की मेहनत का ऋणी भी नहीं मान रहा है अपने को वाह रे स्वार्थी अभिमानी। क्या अपने आप से बना तूं ?

शादी होते ही बेटा मां को भूल जाता है। घरवाली की बात सुनकर मां बाप से अलग हो जाता है। यह मान बैठता है कि मां अपनी पत्नी को परेशान कर रही है पर वह यह नहीं समझने को तैयार कि पत्नी भी तो एक दिन किसी बहू की सास होगी। जहर को घोलोगे तो जहर ही बनेगा, कांटा बोओगे तो कांटा ही उगेगा। दुनिया में सब कुछ मिल जाये पर मां की ममता नहीं मिलेगी। बुढापे में माता-पिता का सब सपना टूट जाता है जब औलाद दौलत के संग संग माता पिता का भी बंटवारा हो जाता है। जब कभी ऐसा बंटवारा हो जाता है एक पुत्र बंटवारे में मां को ले जाये और दूसरा पुत्र पिता को। एक होते हुये भी पराये हो गये और दोनों बिछुड कर आंसू बहाते है तो फिर ऐसे पुत्रों के तो दुर्दिन ही आते हैं। जो बबूल बोयेगा वो आम कहां से पायेगा ? जिन बेटों के जन्म पर मां-बाप ने खुशियां मनाई, मिठाइयां बांटी वही बेटे आज जवान होकर मां-बाप को बांट रहे हैं कैसी विडम्बना है, करूणा है ? बचपन में गोद में रखनेवाली मां को उसके बुढापे में दगा देनेवाला कभी मत बनना।

माता-पिता अस्वस्थ हो जाये पर पुत्र को उनसे मिलने का उनके पास बैठने का समय नहीं, अपना व्यापार व्यवसाय छोडकर उनसे मिलने का कोई धर्म ही नहीं रहा पर वो ही अगर सास श्वसुर की तबियत बिगडने का समाचार मालूम हुआ नहीं कि पहुंचे हवाई यात्रा से हाल जानने। वे तो इतने निकट लगने लगे और जिसने तुम्हे यह दुनिया दिखाई उसे दुत्कारने लगे, उनका तिरस्कार करने लगे। शरम करो ओ मां के सपूतों समय रहते अपनी मां को पहचानो अपने स्वार्थों के खातिर मत भूलो अपनी मां को। एक बाप अपने बेटे को उपहार में गाडी भेंट करता है और वही बेटा अपने माता-पिता को भोजन की एक थाली तक नहीं देता है। इतना होनेपर

भी मां-बाप तो कभी खफा नहीं होते, जुबां से कभी भी बद्दुआ नहीं देते। माता के आंसू तो सच्चे मोती हैं, माता तो ममता की ज्योति है। उनके दिल को ठेस लगाकर तू जीवनभर सम्भल नहीं पायेगा मत भूलो मां-बाप के उपकारों को।

मां की गोद में सभी बेटे यूं ही देखते देखते बडे हो जाते हैं पर वे सभी बेटे अपने मां बाप को अपने ही घर में नहीं रख पाते है। वे तो ऐसे कपूत होते हैं जिन्हे नरक में भी ठौर नहीं मिलेगी। मां का जो भी अनादर करेगा भगवान भी उसको कभी माफ नहीं करेगा। मां-बाप का जो आशीर्वाद पायेगा वह सीधे स्वर्ग में जायेगा। माता-पिता के जीवित रहते कभी हाल नहीं पूछते और मरणोपरान्त उनके लिये शोक सभा करते हैं, अखबारों में अपना नाम छपाते हैं, दीप जलाया, धूप जलाया लोगों के सामने आंसूओं का सागर बहाते हैं, माता-पिता के चित्रपर हार अर्पण करते हैं। पर ये मगर के से आंसू जो भी देखता है वह इन्हे अच्छे से पहचानता है कि तुम अपने माता-पिता के लिये कितने व्यग्र हो और शोकातुर हो। यह तो सब दिखाने के लिये है।

जीवन में चाहे जितना पूजा पाठ कर लेना, व्याख्यान सुन लेना, चाहे जितना धर्म दान सेवा कर लेना पर जो मां की ममता नहीं पाई तो वह प्रभु को भी नहीं पा सकेगा। चाहे जितनी बडी तपस्या कर लेना चाहे जिस शिखर को छू लेना पर मां के प्यार के समान सभी नगण्य हैं तुच्छ हैं।

बचपन में पैदा होनेपर सबसे पहला शब्द मां ही तू बोला था तब मां का मन भी एक मोरनी समान डोला था। तेरे पीछे पीछे वो इतनी पागल बनी थी वो ही ममता की छांव का बादल थी। ऐसी माता को तू आज अपने स्वार्थवश भूल जाने को तैयार हो रहा है। ऐसी ममता का फर्ज तो निभा। जन्नत है मां के ही चरणों में, यह समझ लेगा तो और कहीं नहीं भटकेगा और उसे वहीं पायेगा।

चाहे लाखों करोडों कमा लेगा जिसने माता का मन नहीं जीता उसका जीना तो धिक्कार है। अरे ओ पागल अपने धन पर इतना मत इतरा तेरे ये गाडी बंगले यहीं धरे रह जायेंगे। माता पिता की दुआयें ले लो तो तुम्हारा जीवन सुखदायी होगा। जिन्होने अपने मां-बाप की दुआयें नहीं ली वे तो हरदम पछताते हैं, नरकगामी होते हैं। सदा मां बाप के साथ रहना। मां-बाप तुम्हारे साथ है तो तुम्हारी पहचान है, इज्जत है, तुम्हारा मान है, सम्मान है नहीं तो यह जग तुम्हे पछाड देगा। इस दुनिया में जग जाहिर है कि मां बेटे के रिश्ते की यही एक अमर कहानी है। मां ने बेटे को जन्म दिया और बाप ने बेटे को अपना सब कुछ किया पर बेटे ने उनका क्या बदला दिया है पता नहीं उनको किसके भरोसे छोड दिया। बस उनको तो अब एक उनका ही भरोसा है जिसने सब को जन्म दिया है। जिसने अपने माता पिता को दुख दिया वो कहां से सुख पायेगा ? जिसने मां बाप को ठुकराया एक दिन उनकी भी सन्तान जब उसे वैसे ही ठुकरायेगी क्योंकि वह तुम्हे देखकर ही तो तुम्हारे आचरण सीखता है। जैसे करेगा वैसा ही भरेगा। तेरी करनी तू ही सहेगा। अभी समय रहते जागो और चले जाओ अपने माता-पिता की शरण में। सद्बुद्धि दे तुम्हे प्रभु जय कार करो अपने अपने मां बाप की। मत भूलो कभी भी अपने माता पिता को। सदैव याद रखो उनके कभी न भूलने वाले एहसानों को। आज तुम जो कुछ भी हो उस मां की बदौलत हो जिसने तुझे जन्म दिया।

जीवन के अन्धेरे पथ में सूरज बनकर रोशनी करने वाले पुत्र अपने मां-बाप की जिन्दगी में अपने स्वार्थों के लिये कभी अन्धकार मत फैला देना।

जब प्रेम को साकार होने का मन हुआ तो मां का सर्जन हुआ। संसार की सबसे बडी दारुणता बिना मां का घर और घर बिना मां। सीखना मां पिता का महत्व राम, श्रवण और कृष्ण से। पत्नी अपनी मन पसन्द से मिल सकती है पर अच्छी मां तो बडे ही पुण्यों से मिल पाती है। पसन्द से मिलनेवाली पत्नी के लिये कभी भी पुण्यों से मिली हुई मां को मत ठुकरा देना। जब तुमने धरतीपर पहला श्वास लिया था, पहली बार रोया था तब तेरे माता-पिता तेरे पास थे और अब तेरे माता-पिता जब अन्तिम श्वास लें तब तुम उनके पास रहना। किसी भी दिन यदि तुम्हारे कारण मां-बाप को रोना पडे और उनकी आंखों में आंसू आ जाये तो याद रखना उस दिन तुम्हारे किये कराये सारे धर्म कर्म बेकार हो उनके आँसूओं में बह जायेंगे।

HHH(१२)HHH

जिस मां-बाप ने तुझे बोलना सिखाया था वही तू बडा होकर मां-बाप को चुप रहना सिखा रहा है। बेटा यदि तेरे प्रेम की प्यास रखता है तो फिर तेरे बूढे मां-बाप तेरे प्रेम की आस क्यों नहीं रखे ? मां-बाप को वृद्धाश्रम में रखनेवाले युवक सोच उन्होने कभी तुझे अनाथाश्रम में नहीं रखा कहीं उनकी इस भूल की सजा तो नहीं दे रहा है ? बचपन में जिसने तुम्हे पाला उनके बुढापे में यदि तुमने उनको नहीं सम्भाला तो याद रखना कि तुम्हारे भाग्य में भडकेगी ज्वाला। मां-बाप की सच्ची विरासत पैसा और सम्पत्ति नहीं है प्रामाणिकता और पवित्रता है। जिस घर का नाम मातृ छाया और पितृछाया हो पर मां-बाप की परछाई भी उसमें न पडे तो वह घर पत्नी छाया है। मां और क्षमा दोनों समान होते हैं क्योंकि वे दोनों ही माफ करने में नेक होते हैं। जो मस्ती आंखों में है मदिरालय में नहीं है, अमीरी दिल की कोई महालय में नहीं, शीतलता पाने के लिये कहां भटक रहा हे मानव वह तो मां की गोद में है हिमालय पर नहीं। तुम दो किलो वजन नहीं उठा सकते मां को सताने से पहिले सोचो उसने नौ महिने गर्भ में तुम्हे कैसे पाला होगा ? संसार में मां का कोई विकल्प नहीं है। मां के कदमों तले ही जन्नत है। मां को इतना ही पूछ लिया कैसी हो तुम मां तो उसे मिल गया सब कुछ।

मां जिसकी कोई सीमा नहीं, असीम है वह है मां। जिसके प्रेम को कभी पतझड स्पर्श न कर सके उसका नाम है मां। प्रभु को पाने की पहली सीढी है मां। जो कोई तलहटी की अवहेलना करे और शिखर पाने की कामना करे, कभी सम्भव नहीं। श्रवण ने अपने मां-बाप को कन्धों पर ढोकर सब तीर्थों की यात्रा करायी। श्रीराम जिनके वचन से वनवास गये उसका नाम है मां। मां पूर्ण शब्द है, ग्रन्थ है, महाविद्यालय है, मंत्र बीज है। हर सर्जनता का आधार मां है। मन्त्र-तन्त्र था यन्त्र की सफलता की नींव है मां। धरती से भी अधिक सहनशीलता प्रदर्शित करती है मां। मां को जाननेवाला महात्मा है, वही परमात्मा को भी जान लेता है। मां शब्द का वर्णन अक्षरों से करना सम्भव नहीं है। श्रद्धा स्पद मां को नमन करें इसमें कोई विवादास्पद नहीं है। मां की गरिमा में प्रयास कर उसे गौण रखना हास्यास्पद ही है।

मां ममता की मानसरोवर हिमगिरी सा विश्वास है। मां श्रद्धा की आदि शक्ति, काबा है कैलास है।
पूछो मेरे दिल से आती है मन की खुशबू, मां के उस पावन आंचल में है मेरे बचपन की खुशबू।

माता-पिता के चरणों में ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड होता है। गणेशजी की सीख को आत्मसात करते हुये अपने माता-पिता की सदैव सेवा करनी चाहिये। हर हाल में माता-पिता को साथ रख उनका ध्यान रखना चाहिये। आजकल धीरे-धीरे पाश्चात्य संस्कृति के रंग मे रंगे युवक माता-पिता वृद्ध हुये कि उन्हे वृद्धाश्रम दिखाते हैं। शादी के पहले तक माता-पिता की अत्यन्त आवश्यकता होती है पर पत्नी आने के पश्चात और फिर बच्चों के साथ मां-बाप की उपेक्षा होने लगती है ऐसे में वृद्ध मां-बाप किसके भरोसे रहेंगे ? जो बच्चे अपने सामने आपका जैसा व्यवहार दादा दादी के साथ देखेंगे वैसा ही वे आपके प्रति भी करेंगे। जिन माता-पिता ने हमें अनेक कष्ट सहन कर पाला पोसा और बडा किया है हमें उनका तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिये। माता-पिता का साथ किस्मतवालों के सिर पर ही होता है। अपने उन परिचितों से मिलकर जानें जिनके माता पिता नहीं है इससे उनकी जरूरत का एहसास मालूम पडेगा।

श्रेष्ठता व सफलता की चाहत हर मानव का स्वभाव है और इसी कारण मानव को ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति कहा गया है पर जीवन में सफलता की बुलन्दियों को छूने के पीछे माता-पिता का कितना योगदान रहता है ? उसकी इस इमारत की नींव उसके माता-पिता के खून पसीने से लथपथ उनके अथक परिश्रम के पत्थरों पर टिकी हुई है। सही अर्थ में माता-पिता ही सन्तान के उज्ज्वल भविष्य की मजबूत बुनियाद होते हैं। उनकी सहनशीलता, लगन, त्याग, लक्ष्य और समाज में प्रतिष्ठित होने की चाहत ही दृढ़ नींव के पाषाण खंड हैं जो सदियों तक इमारत की मजबूती को कायम रख पाते हैं। उनकी समाज के प्रति निष्ठा तथा अपनी संस्कृति व संस्कारों के प्रति समर्पण के आधार पर ही सन्तान का चरित्र निर्मित होता है। उन्नति के शिखर पर पहुंचना,

अपने इतिहास की स्वयं रचना करना और समाज में प्रशंसा व प्रतिष्ठा का पात्र बनना कोई आसान काम नहीं है इसके पीछे छिपा है माता पिता की कठिन तपस्या, धैर्य, एकाग्रता का राज जिसके बल पर व्यक्ति तप कर खरा स्वर्ण बन पाता है। जब सन्तान सफलता के उच्च शिखर पर पहुंच कर इतिहास रचती है और आनेवाली पीढ़ी उसे अपना पथ प्रदर्शक मानकर पूजती है तो ऐसे में जो आत्म सन्तोष, प्रसन्नता, गर्व व शान्ति की अनुभूति माता-पिता को होती है, वह अकल्पनीय है। वे उनमें अपना उज्ज्वल भविष्य देखते हैं। परन्तु आज का कुछ नया धनाढ्य वर्ग, राजनेता व उच्च अधिकारियों की सन्तानों में अनुशासन हीनता, उच्छृंखलता व संस्कारहीनता बढती जा रही है। जिन अभिभावकों के पास अतुल धन व संसाधन हैं, उनके पास सन्तान को देने के लिये समय नहीं है। केवल संसाधन उपलब्ध कराकर सन्तोष कर लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि व्यक्ति की उन्नति विरासत में मिले धन से नहीं होती, अपने परिश्रम के बल पर होती है। यदि वे अपनी सन्तान को धन, सुख-सुविधायें उपलब्ध करा देंगे तो उसे परिश्रम व संघर्ष से वंचित रखेंगे। जिसमें स्वाभाविक विकास अवरुद्ध होगा। उन्हे बिना परिश्रम से मिले धन का मूल्य समझ में नहीं आयेगा। उन्हे यह भी पता नहीं होता कि पैसा कमाने के लिये कितना परिश्रम और प्रयास करने पडते हैं। व्यक्ति प्राय: अपनी कमाई का ही सदुपयोग कर पाता है। अत: हम माता पिता का कर्तव्य है कि वह अपनी सन्तान को वाजिब धन व सुख-सुविधा ही उपलब्ध कराये। माता का हृदय सागर होता है। जितनी सन्तान गोद में आये, वात्सल्य वारि किसी के लिये कम नहीं होता है। समुद्र की गहराई तो एक बार नापी जा सकती है लेकिन आजतक ऐसा कोई पैमाना नहीं बना है जो मां के दिल की गहराई को नाप सके। कभी भी अपने मां-बाप को दिल से न निकालें जिन्होने आपको आज कुछ बनने के लिये प्रेरित किया है।

हमारे अनेक जन्मों के सम्बन्ध हमें किसी मां के गर्भ में ले जाते हैं और यह सम्बन्ध मानव निर्मित नहीं, ईश्वर द्वारा बनाया हुआ सम्बन्ध है अत: यह ब्रह्म सम्बन्ध है। दुर्भाग्य है कि आज माता-पिता के खून व दिलों के रिश्तों का कत्ल हो रहा है। मां माने ममता, प्रेम, करुणा व वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मां यानी समर्पण व संघर्ष का पर्याय, गौतम, कपिल, कणाद, पाणिनि, पतंजलि, स्वामी विवेकानन्द व महर्षि दयानन्द आदि ऋषि मुनियों व भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाष व बिस्मिल आदि क्रांतिवीरों की जननी मां। कितना सहज पर आश्चर्यजनक है यह कि हर मां अपनी कल्पनाओं के उस भ्रूणीय शिशु, किशोर और वयस्क से पहिले से ही प्रेम करने लगती है, जो निर्माण कोशिकाओं के समूह से बाहर निकलने को प्रतीक्षा कर रहा होता है। प्रतीक्षा के इन पलों के दौरान जिस तरह एक स्थान पर पहली बार मिले दो अपरिचित व्यक्ति एक-दूसरे की भाषा समझने लगते हैं उसी तरह मां और बच्चे के बीच भी अमुक समझ विकसित हो जाती है। वह अपने बच्चे की प्रत्येक अभिलाषा को भी समझने लगती है। जब वह अपने बच्चे को जन्म देने का निर्णय लेती है तो वह पलछिन अद्‌भुत होता है। वह अपने ही अंश को अपने शरीर से बाहर की दुनिया में हमेशा के लिये भेजने का निर्णय भी लेती है। यही कारण है कि जन्म के बाद भी उसे अपने बच्चे से मनौभौतिक एवं भावनात्मक एकता कायम करने के लिये अलग प्रयास नहीं करना पडता। यह मजबूत भावनात्मक बन्धन जीवन पर्यन्त उपस्थित होता है क्योंकि इसकी जडे जितनी चेतन में होती है उतनी ही अचेतन में मातृत्व प्रेम की यह स्थिति दुनिया की सबसे प्राकृतिक अवस्था है जो सबसे अधिक रहस्यमयी और सांसारिक है। यदि इसके तत्वों का विश्लेषण करें तो वहां मापने योग्य कुछ भी नहीं है। इसकी सीमायें मानवीय बुद्धि से परे है जिनकी गणना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि मानवीय अस्तित्व के हृदय में निवास करनेवाली प्रेम की सबसे शुद्ध और स्थायी अवस्था है जिसमें प्रेम मां आनेवाले जीव को सबसे अधिक दैवीय ढंग से प्रेम करती है, न केवल उस वक्त जब वह राहत का घेरा उसके चारों ओर बना देती है और उसकी सभी इच्छाओं का अनुमान लगा देती है लेकिन तब भी जब वह उसे सर्वोच्च माप दंडों तक पहुंचने के लिये उसका हाथ थाम लेती है और उसकी सर्वश्रेष्ठता पर सन्तुष्ट होती है। जीवन की हर परिस्थिति में एक सच्चे मित्र की और मार्गदर्शक की भांति वह अपने शरीर के अंश का साथ देती है। जब भारी और अचानक आयी आपत्तियां मनुष्य को घेर लेती है, जब समृद्धि का स्थान

दुर्भाग्य ले लेता है। जब सुख में साथ देनेवाले मित्र साथ छोड देते है और दु:ख अपना घेरा चारों ओर बना देता है तब अकेली मां इन विपरीत परिस्थितियों में प्रोत्साहन का माध्यम बनती है।

अपनी शिक्षाओं के कारण लगातार डटे रहकर दु:खों के काले बादलों का हटाने व हृदय को शान्ति का मार्ग मिलने तक वह सहायक होती है। मां का प्रेम ही बुरे से बुरे वक्त में सहायता देने के लिये बच्चे को खोजता हुआ चला जाता है चाहे वह सबसे ऊंचा पर्वत शिखर ही क्यों न हो अगर बच्चा समुद्र की गहराईयों में डूब जाये तो केवल मां के आंसू ही उस बच्चे तक पहुंच सकते हैं। अगर बच्चे की आत्मा और शरीर शापित हो जाये तो केवल मां की प्रार्थना ही उसे पूर्णता दे सकती है। प्रेम की यह अवस्था उस स्थिति में भी अनवरत बरकरार रहती है। जब बालक जिद्दी, कृतघ्न, चिडचिडा या बुरा हो लेकिन मां को ऐसे में भी इस बात का सतत एहसास रहता है कि उसने एक इन्सान को जन्म दिया है जो उसकी दृष्टि से दयालु, विनम्र, बहादुर और बुद्धिमान है। मन ही मन वह सोचती है दोनों चाहे दुनिया के किसी कोने में रहें लेकिन प्रेम की यह अवस्था उनकी निकटता को बनाये रखे। उसका हृदय बच्चे के लिये एक पाठशाला है जहां एक शिक्षक की तरह अनुशासन और पालना देनेवाली मां का एक स्पर्श तक शब्दों की दुनिया के परे होता है। जो बालक को एक सुरक्षित आवरण प्रदान करता है। उसे संसार में अपने महत्व की अनुभूति होती है। उसके शब्द, स्पर्श और प्रेम मिलकर एक ऐसे घेरे का निर्माण करते हैं जहां वह स्वयं को प्रसन्न, तनाव रहित और भाग्यशाली अनुभव करता है। इतना कुछ देने की यह अद्‌भुत क्षमता मां प्राकृतिक विशेषता है जो मातृत्व पूर्वाभास से जुडी है। मातृत्व पूर्वाभास में उपस्थित शक्ति मां को अपने बच्चे की अनकही पीडाओं और तकलीफों का आभास करवाती है। चाहे वह स्वयं खतरे का अनुभव कर पाये या उससे निपटने के लिये प्रभावी कदम उठा पाये, मां को उसकी विपत्तियों का आभास हो जाता है। वास्तव में मानव के मस्तिष्क और आत्मा में संवाद के कई माध्यम होते हैं जिन्हे वैज्ञानिक शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता और ये क्षमतायें मां और बच्चे में नैसर्गिक रूप से होती है। जहां भयानक मुसीबतों में बच्चे को बचाने की अद्वितीय शक्तियां मां के पास होती है। किसी बीमार या अक्षम बच्चे की देखभाल अपने जीवन के अन्त तक करना या उसके जीवन के लिये अपनी जिन्दगी का बलिदान देना ऐसी ही विलक्षण शक्तियों का उदाहरण है। मातृत्व के ये अनूठे गुण जीवन की हर परिस्थिति और सभी अर्थों में प्रभावित करते हैं।

स्वयं भूखी रहकर बच्चों को खिलानेवाली मां खुद अशिक्षित होकर भी बच्चे को दुनिया की शीर्ष ऊंचाईयों पर देखने का सपना सजोये रहती है। अपने अंश से भ्रूण का उत्पन्न करनेवाली व अपने खून से बालक का पोषण करनेवाली मां तथा जन्म से पूर्व कोख में तथा आजीवन अपने दिल में बच्चे को रखनेवाली मां। मां के जन्म देने के बाद दुनिया के दूसरे सारे रिश्ते व सम्बन्ध शुभ होते हैं। अत: सम्बन्धों में सबसे प्रथम सम्बन्ध मां का ही होता है। यह मां का सम्बन्ध अनायास ही नहीं हो जाता।

माता-पिता-की गोद सागरों को अपने में समेटे हुये है पर छलकती कभी नहीं। जगत में मां से आदरणीय अधिक कोई नहीं है। स्वयं नारायण भी मानव रूप में जन्म लें तो मां की झिडकियां खाकर अपने आपको धन्य समझेंगे। बच्चे के लिये मां की गोद आवश्यक है जैसे पौधे के लिये भूमि आवश्यक है।

मां निरादर, अपमान, जली-कुटी, घुडकी, झिडकी सब कुछ औलाद के लिये सह लेती है। मातृप्रेम ही एक ऐसी शक्ति है जो भाई बहनों को एकत्र करती है। मां के चरणों में स्वर्ग है।

सब शापों का प्रतिकार सम्भव है परन्तु माता को सताये जानेपर माता के मुख से निकली दुर्आशीष का कोई शाप नहीं है।

माँ को अपने बच्चे की एक-एक पीडा का दर्द होता है। माता पिता के अन्तरमन को पढने में भले-भले विनयवान पुत्र भी नहीं पढ पाये।

पिता की पहचान को पुष्ट करने की अधिकारिणी माता होती है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कृतिकार की कलम से

रामकथा रामायण महाग्रन्थ का विमोचन १६ फरवरी २००८ को आचार्य किशोरजी व्यास के करकमलों द्वारा हुआ। जनसाधारण द्वारा इस ग्रन्थ को बहुत अच्छा प्रतिसाद मिला। मेरे मन में महाभारत ग्रन्थ लिखने के बारे में प्रेरणा हुई।

इस महाभारत ग्रन्थ को मैंने अपने शब्दों में ढालने का प्रयत्न किया है। इसके संवाद जैसे जीवंत रूप में प्रत्यक्ष बोले जा रहे हैं, पात्रों के मुख से निस्पृत हो रहे हैं। मैंने इसे वांङ्मय ग्रन्थ बनाने का प्रयास किया है। जैसे आप कोई जीवन्त प्रत्यक्ष दृश्य देख सुन रहे हैं। यह सब उच्च राजपरिवार, उच्च अधिकार और उच्च धन की कहानी है। यह कहानी आपके साथ आपके परिवार की भी हो सकती है। यह एक पारिवारिक ग्रन्थ है जो आपको परिवार में किस तरह रहना चाहिये सिखाता है। लोगों का अन्धविश्वास है कि इस ग्रन्थ को घर में नहीं रखना चाहिये। इसके घर में रखने से घर अशान्त व कलह का घर बन जाता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। केवल ग्रन्थ रख देने से घर में कोई अशान्ति नहीं होती है और न ही रामायण और गीता रख देने मात्र भर से सुख, शान्ति, सन्तोष हो जाता है। ये सब तो मनुष्य के अपने कर्म और आचरण पर निर्भर करते हैं। यह ग्रन्थ तो गार्हस्थ धर्म निभाना सिखाता है। यह बडा ही उत्तम और पवित्र ग्रन्थ है बस जरूरत है इसे जानने और समझने की। इस पर आचरण करने की। यह ग्रन्थ आपको अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करना सिखाता है। धर्म मार्ग पर प्रसरत होने की शिक्षा देता है। सत्य की असत्य पर विजय किस प्रकार होती है। श्री, यश किस तरह प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थ मैंने वेदव्यास की महाभारत (गीता प्रेस गोरखपुर) द्रौपदी (प्रतिभा राय), नरेन्द्र कोहली, सम्वाद नरेन्द्र शर्मा, सुदर्शन सिंह चक्र (पार्थ सारथी), शिवाजी साम्वत (मृत्युंजय), ब्रह्मचारी (महात्मा कर्ण), द्रौपदी (चित्रा चतुर्वेदी), बलदेव राज चोपडा का धारावाहिक महाभारत इत्यादि के संदर्भों से लिखा है। ये सब मेरे लिये यह ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखने में प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। आपके जीवन की हर समस्या का समाधान इस ग्रन्थ में पाया जा सकता है। मैंने इस ग्रन्थ में महामना विद्वान विदुर की नीतियों का स्थान स्थान पर सूक्तियों के रूप में उल्लेख किया है और रेखांकित किया है जो अपने आचरण में लाने के लिये सर्वोपयोगी होगी।

महाभारत एक दर्शन शास्त्र है जिसे आप दार्शनिक बनकर प्रत्यक्ष रूप में इसकी घटनाओं को जीवन्त रूप में देख सकते हैं। मैंने इसमें समाज, परिवार, धर्म, प्रेम, क्रोध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, राक्षस, दानव, मित्रता और विवाह, पत्नी, धर्मपत्नी, उपपत्नी, सहचरी, अप्सरा, प्रेयसी, रमणी, वेश्या और रखेल को परिभाषित किया है। इसमें कानीन सन्तान, औरस सन्तान, अयोनिज सन्तानें, नाजायज सन्तानें, वैधानिक सन्तान, क्षेत्रज्ञ सन्तान का विस्तृत वर्णन किया है। यह दर्शाने का प्रयत्न किया है मनुष्य के जीवन मूल्य क्या हैं ? रिश्ते-नाते सम्बन्ध कहां तक हैं ? और विपरीत परिस्थितियों में मनुष्य का धर्म क्या हो जाता है ? वह कितना अपने परिवेश में रह सकता है ? धन भोग, विषय लालसा किस हद तक अनिवार्य है और किसी सीमा से परे पतन है। परिवार का दायित्व किस दिशा में है। प्राकृतिक नियम क्या है और सामाजिक व्यवस्था क्या है ? इन सब घटनाओं के योग से और लिखे हुये सम्वादों से एक रंग मंच नाटिका भी प्रस्तुत की जा सकती है। मैंने प्रत्येक पात्र के मनोभावों को दर्शाने का भी प्रयत्न किया है कि वे किन किन परिस्थितियों में क्या क्या सोचते है ?

ज्ञान के लिये ग्रन्थों की कमी है क्या ? यह विशाल विश्व तो ग्रन्थागार है। विश्वमय की इस सृष्टि के जीवाणुओं से लेकर ग्रह

नक्षत्रों तक सब उसके एक-एक ग्रन्थ है। इस पृथ्वी के धूलि कणों के साथ पल पल की अनुभूति उस ग्रन्थ के पन्ने हैं। जीवन की हर अनुभूति अध्ययन की वस्तु है। असंख्य शास्त्रकार, पंडित, कवि, ऋषि-मुनि, मनीषी आज तक इस रहस्य को उन्मोचित नहीं कर पाये। ईश्वर ने हम सबको किसी न किसी विशिष्ट उद्देश्य से इस संसार में भेजा है। जीवन की अनेक घटनायें प्रतीक्षा से है वे ही स्वयं के जीवन का श्रेष्ठतम अध्ययन है और उसीसे योग्यता प्राप्त होगी।

इस नीति शास्त्र में सदाचार, धर्म, सुख-दु:ख प्राप्ति के साधन, त्याज्य और ग्राह्य गुणों तथा कर्मों का निर्णय, त्याग की महिमा, मित्र और शत्रु के लक्षण आदि का विशेष वर्णन किया है तथा राजधर्म का भी निरूपण किया गया है। मानव जीवन की सुख शान्ति में नित्य ही जिन अनदेखे शत्रुओं का आक्रमण होता है और जिन्होने समस्त प्राणीमात्र की शान्ति भंग कर रखी है उनसे समाज का बचाव तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक निर्दिष्ट धर्म नीति और उसके आधार भूत सिद्धान्तों को नहीं समझा जाये। इस महाग्रन्थ की नीतियों और सिद्धान्तों पर चलनेवाला प्राणी जीवन के किसी भी क्षेत्र में, संघर्ष में सहज ही असफलता प्राप्त नहीं कर सकता। यदि आप जीवन में सच्चे सुख का आनन्द उठाना चाहते हैं तो यह महाभारत का महाग्रन्थ हर बालक, वृद्ध, नर-नारी, शासक, प्रजा अमीर गरीब, हर वर्ग के लिये उपयोगी व अमूल्य है। महाभारत में पांडव-कौरवों का युद्ध दो अलग-अलग विचार धाराओं का युद्ध है। महाभारत का युद्ध तख्तों ताज के लिये हुआ था। इस ग्रन्थ में मानवता के शाश्वत प्रश्नों के उत्तर का साक्षात्कार होता है। मानव सभ्यता तथा संस्कृति सम्पूर्ण जाति स्मृति समकालीन इतिहास में आबद्ध है।

यह कृति एक अद्‌भुत प्रामाणिक ग्रन्थ आपके जीवन के लिये समस्याओं के लिये सार्थक साबित होगी। यह ग्रन्थ मेरे परम मित्र बाबूलाल के माता-पिता श्री द्वारकाप्रसादजी अगरवाल व शकुंतला भाभी, हमारे न्यास के विश्वस्त स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तमजी मक्खनलालजी बगडिया, हमारे न्यास की प्रबन्धन समिति के सदस्य श्री सूरजमलजी अग्रवाल व हमारे परम प्रिय मित्र श्री अशोकजी सिंहल की धर्मपत्नी हमारी राधा भाभी, हमारे समाज के आजीवन विश्वस्त श्री कपूरचंदजी चंटूलाल अगरवाल इन सबकी पुण्य स्मृति में समर्पित है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

लहरों से डर कर, नौका पार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।
नन्ही चींटी जब, दाना लेकर चलती है, चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास, रगों में साहस भरता है, चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना, न अखरता है।
आखिर उसकी मेहनत, बेकार नहीं होती, कोशिश करनेवालों की, हार नहीं होती।
डुबकियां सिंधु में, गोताखोर लगाता है, जा-जाकर खाली हाथ, लौट आता है।
मिलते न सहज ही मोती, गहरे पानी में, बढ़ता दूगना उत्साह, इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली, हर बार नहीं होती, कोशिश करने वालों की, हार नहीं होती।
असफलता एक चुनौती है- स्वीकार करो, क्या कमी रह गई देखो और, सुधार करो।
जब तक न सफल हो, नींद चैन की त्यागो तुम, संघर्षों का मैदान छोड, मत भागो तुम।
कुछ किए बिना ही, जयजयकार नहीं होती, कोशिश करनेवालों की, हार नहीं होती।

भूमिका

वह दवाई किस काम की जिससे रोग बढे, वह आहार किस काम का जिससे भूख बढे,
वह पानी किस काम का जिससे प्यास बढे, वह धर्म किस काम का जिससे अधर्म बढे।

महाभारत में कर्म को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। कहते हैं लक्ष्मी कर्मठ पुरुष के पीछे-पीछे चलती है और आलसी व्यक्ति के आगे आगे भागती है। उद्यमशीलता ही हमें जीवन में आगे बढ़ाती है।

महाभारत वाङ्मय शास्त्र है इसे पंचम वेद की संज्ञा प्राप्त है। यह एक सच्चा और वृहत इतिहास है। इसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, आचार, अध्यात्म आदि सभी विषयों का विशद एवं मार्मिक निरूपण किया गया है। महाभारत भारतीय ज्ञान व संस्कृति का विश्व कोष है। इसमें सभी विषयों की चर्चा की गई है। जिस विषय की चर्चा या प्रसंग इसमें नही है वह विश्व में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगा। श्रीमद् भगवत गीता यह अमूल्य राष्ट्रीय ग्रन्थ भी महाभारत के महासागर की ही देन है। इसमें १ लाख श्लोक हैं। यह सत साहस्त्री संहिता के नाम से भी जाना जाता है। यह ग्रन्थ सूक्ष्म अर्थ और न्यायसे परिपूर्ण है। वेदार्थ से विभूषित और आख्यानों में श्रेष्ठ है। इसमें भरतवंश का सम्पूर्ण इतिहास है। वेदव्यास जी की यह पुण्यमयी पापनाशिनी वेदमयी संहिता है। इसमें सम्पूर्ण इतिहास और श्रुतियों का वर्णन है। तपस्या और ब्रह्मचर्य की शक्ति से वेदों का विभाजन कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। यह एक श्रेष्ठ काव्य है जिसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय है। इसकी शब्दावली भी शुभ है। इसमें देवताओं तथा मनुष्य की मर्यादाओं का भी स्पष्ट वर्णन है। इसमें वेदांग सहित उपनिषद, वेदों का क्रिया विस्तार, इतिहास पुराण, भूत, भविष्य और वर्तमान के वृत्तान्त, बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि के भाव अभाव का निर्णय, आश्रम और वर्णों का धर्म, पुराणों का सार, तपस्या ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा और युगों का वर्णन उनका परिमाण, चारों वेद (ऋक, साम, यर्जु व अथर्व) अध्यात्म, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपत धर्म, देवता तथा मनुष्य की उत्पत्ति, पवित्र तीर्थ, पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन, समुद्र पूर्व कल्प, दिव्य नगर, युद्ध कौशल, विविध भाषा, विविध जाति, लोक व्यवहार और सबमें व्याप्त परमात्मा का वर्णन किया गया है।

यह महाभारत ज्ञान रूप, अंजन की सलाई से अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुये लोगों की आंखे खोलनेवाला है। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों का निरूपण है जिसने लोगों का अज्ञानान्धकार नष्ट किया है। मनुष्यों की बुद्धि रुप कुमुदों को विकसित किया है। इस इतिहास रूप दीपक ने संसार के तहखाने को प्रकाशमय बनाया है।

इस ग्रन्थ में भरतवंश का, कुरुवंश का विस्तार, गान्धारी की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुन्ती का धैर्य, अर्जुन का शौर्य, कर्ण की दानशूरता, धर्म राज युधिष्ठिर का धर्म पालन, दुर्योधनादि की दुष्टता की चरम सीमा और पांडवों की सत्यता का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में भगवान श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा प्रकट होती है। यह महाभारत ग्रन्थ कल्पवृक्ष समस्त कवियों के लिये आश्रय स्थान है इसी के आधार पर सभी के काव्यों का समय-समय पर निर्माण हुआ है। इसमें देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवता आदि के परम पवित्र कर्मों का उल्लेख किया गया है।

इसमें सनातन पुरुष परात्पर प्रभु भगवान श्रीकृष्ण का स्थान-स्थान पर कीर्तन और वर्णन किया गया है। वे ही सत्य, ऋत, परम पवित्र और मंगलमय हैं। वे ही अविनाशी, अविचल, अखंड ज्ञान स्वरूप पर ब्रह्म हैं। बुद्धिवान उन्ही की लीलाओं का गायन और स्मरण करते हैं। वे सत् और असत् दोनों है तथा दोनों से परे हैं। जगत की सारी क्रियायें उन्ही से होती हैं। जो कुछ पंच भौतिक, आध्यात्मिक अथवा प्रकृति का मूलभूत निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप है वह सब उन्हीं का स्वरूप है। सन्यासी ध्यान के

द्वारा उन्ही का चिन्तन कर मुक्त होते हैं। यह ग्रन्थ उन्ही के चरित्र से पूर्ण है। महाभारत ग्रन्थ का शरीर है सत्य और अमृत। महत्ता और भगवत्ता के कारण ही इसे महाभारत कहा जाता है। इस ग्रन्थ में भाव शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। महाभारत ग्रन्थ का अध्ययन करते समय भाव शुद्ध रखना चाहिये। इसका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

इस ग्रंथ में राग, द्वेष, लोभ, मत्सर, कपट, स्वार्थ, त्याग, धर्माचरण, नीति अनेक विविध विषयों का उल्लेख किया गया है। महाभारत सिर्फ कुरुक्षेत्र का ही युद्ध नहीं है बल्कि यह हर व्यक्ति के जीवन के संघर्ष की कथा है। सत्य-असत्य, प्रकाश-अन्धकार, भावना-कर्तव्य अटल प्रतिज्ञा इन सबसे उत्पन्न कथा है। मानव के जुडने की, सम्बन्ध विच्छेद होने की, परस्पर एक दूसरे में उलझने की, जीवन जीने की और स्वयं के भविष्य निर्माण की कथा है।

यह कथा है भारतीय संस्कृति की, उतार-चढ़ाव की, अन्धेरे में उजालों से जूझनेवालों की। बनते बिगडते रिश्तों की कहानी। हरेक युग के सत्य को वर्तमान असत्य से जूझना पडता है।

हस्तिनापुर चन्द्रवंश के प्रताप से जगमगा रहा है। दरबार में स्वयं इतिहास सांस रोके खडा है जो हस्तिनापुर को उसका युवराज देनेवाला है। यह है महाभारत का अनलिखा पहला पन्ना।

जगत कर्म का क्षेत्र है। यहां कर्म की खेती होती है। जो जैसा बोता है वैसा ही पाता है। यहां हर्ष भी मिलता है और विषाद भी। इस कर्मक्षेत्र में कहीं शान्ति है तो कहीं संघर्ष, कहीं जीवन है तो कहीं मृत्यु।

धर्म के तो सभी अंगों का इसमें वर्णन है। वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, आपद धर्म, दान धर्म, श्राद्ध धर्म, स्त्री धर्म, मोक्ष धर्म आदि का विशद वर्णन किया गया है। यह विश्व साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें ज्ञान, कर्म, भक्ति का एक ही स्थान पर सुन्दर विवेचन किया गया है। ऐसा अन्यत्र शायद ही कहीं मिले। यह अठाराह पुराण, सारे स्मृति ग्रन्थ, व्याकरण, ज्योतिष, छन्दशास्त्र, शिक्षा, कल्प एवं निरुक्त इन छ: अंगों सहित चारों वेद ये सब मिलकर भी इस महाभारत ग्रन्थ की समता नहीं कर सकते। अर्थात वेद वेदांग, महापुराणों एवं धर्म शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अकेले महाभारत के अध्ययन से प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नों की खान कही गई है उसी तरह महाभारत ग्रन्थ भी उपदेशों के रत्नों की खान है।

एकाग्र मन से महाभारत इतिहास का पठन करनेवाला मोक्षरूप परम सिद्धि को नि:सन्देह प्राप्त करता है। महाभारत ग्रन्थ की महिमा स्वयं वेदव्यास ने गायी है। उसका मनोयोगपूर्वक जितना भी पठन पाठन होगा उतना ही जगत का कल्याण होगा। महाभारत के पढने सुनने का अधिकार हर मनुष्य मात्र को है। कोई भी किसी समुदाय, वर्ण, जाति का हो वह महाभारत का अध्ययन, उसके उपदेशों को ग्रहण कर अपना कल्याण कर सकता है। महाभारत की रचना का प्रधान उद्देश्य व्यासजी ने यही रखा है कि स्त्रियां, शूद्र, पतित सभी जिन्हे शास्त्र ने पढने की आज्ञा नहीं दी है वे सभी लोग कहीं भी वेदों के ज्ञान से वंचित नहीं रह जाये। अकेले महाभारत पढ़ लेने से ही वेदों का, पुराणों का एवं धर्म शास्त्रों का सभी का ज्ञान हो सकता है। महाभारत में जो कुछ भी कहा गया है उसका आधार तो हमारे सर्वमान्य वेद और स्मृतियां ही है।

महाभारत एक उच्च कोटि का काव्य है और सच्चा इतिहास है। यह कोई कल्पित अथवा अतिरंजित उपन्यास नहीं है। महाभारत में एक लाख श्लोक संख्या हैं विद्या बुद्धि के भंडार स्वयं श्रीगणेशजी ने इसे लिखा था जो पूरे तीन वर्षों तक लिखा गया। द्वापर में भगवान बादरायण श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास ज्ञानावतार रूप से अवतरित हुये। जब युग के परिवर्तन विशेष की आवश्यकता होती है तब विशिष्ट विभूति अवतार ग्रहण करती है। वेद की ऋचायें अनन्त हैं वेद कोई पुस्तक नहीं है न ही उसकी कोई संख्या है। कर्मकांड महान है, ज्ञान कांड अथाह सागर है। शास्त्र असंख्य है पर विद्या का न तो कोई पारावार है और न ही कोई उसका अन्त। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं। फिर जीवों का कल्याण किस तरह हो ? कलिकाल में जीवों की आयु अल्प है और

बुद्धि क्षुद्र है। इसीलिये भगवान प्रत्येक द्वापर के अन्त में व्यास रूप से प्रकट होते हैं। वे ही वेदों की मर्यादा स्थापित करते हैं। पुराणों का संकलन करते हैं। इतिहास क्रम बद्ध करते है और लोगों को सुख प्राप्ति के लिये भगवान के चरित्रों का गान करते हैं। वेदों का अत्यन्त संक्षिप्त सार संग्रह करते हैं।

भगवान का चरित्र अचिन्त्य है। उसका गान मानव बुद्धि नहीं कर सकती। अत: स्वयं ही भगवान ऋषि रूप से अपनी लीलाओं का प्राकट्य अपने आप ही करते हैं। जिससे दु:ख शोक में पडे हुये प्राणी भगवान के चरित्रों को गा गा कर इस अपार भवसागर को सुगमता से पार कर सकते हैं। इतिहास मर्त्यशील प्राणियों का कभी नहीं होता। जिनके द्वारा भगवत लीला का स्मरण हो वे ही इतिहास के यथार्थ वास्तव पात्र होते हैं। यह पात्र दिव्य चरित्र के होते हैं। महाभारत के पढने से चरित्र ज्ञान या स्वर्ग की प्राप्ति ही नहीं होती बल्कि मोक्ष भी मिलता है। यह अपने आप में एक यथार्थ सत्य है।

प्रारब्ध तो कोई मिटा नहीं सकता। इससे दैव इच्छा ही प्रधान है। मनुष्य जो कुछ करना चाहता है वह उसके अधीन नहीं है और जिसे नहीं करना चाहता उसे प्रारब्धवश अवश्य करना पडता है। यही बात सम्पूर्ण महाभारत में कही गई है।

महाभारत के महानायक युग पुरुष श्रीकृष्ण हैं। वे ही महाभारत के एक प्रमुख सूत्रधार हैं। इन्हें महाभारत में से निकाल देने पर हम महाभारत की कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्पूर्ण महाभारत में ऐसा सर्वगुण सम्पन्न पात्र ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। वासुदेव कृष्ण की प्रतिभा सर्वोतमुखी थी। वे अपने समान स्वयं ही थे। उनकी कुलीनता, शालीनता, सच्चरित्रता, उदारता, महानता, सहृदयता, विशालता, धीरता, धर्म परायणता, उचितज्ञाता वर्णनीय है। यदि महाभारत न हुआ होता तो सभी क्षत्रिय नरकगामी होते इसीलिये श्रीकृष्ण ने महाभारत करवाया। लाखों करोडों अरबों क्षत्रियों को स्वर्ग प्राप्ति हुई। महाभारत में जो कहानी है योजना और रणनीति है वैसा कहीं और मिलना मुश्किल है। इसमें रिश्तों को जिस खूबसूरती से प्रस्तुत किया है वह लाजवाब है।

कृष्ण गोपेश्वर, नारायण, गोपाल, रणछोड, छलिया, रसिया योगेश्वर इत्यादि अनेक नामों से जाने गये। ये नाम इस बात के प्रतीक हैं कि कृष्ण किस तरह समाज के हर वर्ग में रचे बसे हैं। ईश्वर की पदवी पर बैठे होने के बाद भी कृष्ण तक सबकी पहुंच है। भारतीय संस्कृति और साहित्य में प्रतीकों की अहम् भूमिका है। कृष्ण भी बंटे हुये समाज में बदलाव और समरसता के प्रतीक हैं। उन्होने उस समाज में आंखे खोली जब निरंकुश शक्ति के नशे में चूर सत्ता मानव से दानव बन बैठी। उस समय के समाज में कृष्ण ने संवेदना, प्रतिक्रिया और विरोध के प्राण फूंके। महाभारत का युद्ध तो लगातार चलनेवाली लडाई का चरम था। हर युग का समाज हमारे सामने कुछ न कुछ सवाल करता है कृष्ण ने सभी समय के प्रश्नों का उत्तर दिया और सबके तारणहार बने। कृष्ण समर्थ में सामर्थ्य है, ज्ञानी में ज्ञान, सुन्दर में सुन्दरता तथा गम्भीर में गांभीर्य हैं। वे सभी जीवों की जीवन ऊर्जा हैं। भारत के पौराणिक इतिहास में ऐसा पात्र जो समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित और आकर्षित करता है। रसिकों के लिये रसिक शिरोमणि हैं। राजनीतियों के लिये वे कुशल कूटनीतिज्ञ और सफल शासक हैं। यौद्धाओं के लिये वे शूरवीर और चतुर सेनापति हैं। कलाकारों के लिये वे कला सम्राट हैं। ६४ विद्याओं के प्रखर विद्वान। युद्धजीवियों के लिये वे चिन्तक और दार्शनिक हैं। सन्तो के लिये निस्पृह और योगेश्वर हैं तथा जनसाधारण के लिये वे भगवान हैं। वे केवल महापुरुष ही नहीं पूर्ण पुरुष भी हैं। सागर अपने में असीम और अनन्त होता है पर श्रीकृष्ण तो स्वयं विविधताओं का सागर हैं। कृष्ण वास्तव में अद्वितीय हैं। वे महामानव है, ईश्वर के पूर्ण अवतार और इसीलिये वे पूरे संसार के लिये अनुकरणीय और वन्दनीय हैं।

श्रीकृष्ण ने आर्य जीवन का सर्वांगीण विकास किया है। राजनीति और धर्म, अध्यात्म और समाज विज्ञान सभी क्षेत्रों का विशेषज्ञ। महाभारत आर्य जाति के पतन का युग कहा जाता है। उस समय भारतवर्ष में सभी छोटे बडे राज्यों का कोई संगठन नहीं था। कोई एक चक्रवर्ती सम्राट के न होने से कई राजा अत्याचारी और उच्छृंखल हो गये थे। मगध का जरासंध, चेदि नरेश

शिशुपाल, मथुरा का कंस और हस्तिनापुर साम्राज्य के कौरव सभी दुष्ट, विलासी और दुराचारी हो गये थे। श्रीकृष्ण ने अपने अद्भुत राजनीतिक चातुर्य से इन सभी राजाओं का मूलोच्छेदन कराया और युधिष्ठिर का एक छत्र राज्य स्थापित कराया। श्रीकृष्ण ने न केवल भारत राष्ट्र की अखंडता की ही रक्षा की बल्कि उन्होने गिरे हुये पतित भारतीय समाज का भी उद्बोधन दिया। उस समय स्त्रियों और शूद्रों की अत्यधिक दयनीय अवगति थी। स्त्रियों और शूद्रों का मोक्ष में अधिकार नहीं माना जाता था। वर्ण व्यवस्था गुण कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ और जन्म से मानी जाती थी। ब्राह्मणों ने अपनी वृत्ति छोडकर शस्त्र उठा लिये थे। लोगों का अत्यधिक पतन होने लगा था। धर्म अन्याय का पक्ष लेने लग गया था। उस समय विद्या, बुद्धि और धर्म भीरूता लुप्त होने के कगार पर थी। जिस समय समाज का इस प्रकार का अत्यधिक पतन होने लगा तब श्रीकृष्ण ने बिगुल बजाकर समाज को जागृत किया और गीता का सन्देश दिया और कर्म को जन्म से श्रेष्ठ बनाया। श्रीकृष्ण की उदारता और सदाशयता सदैव ही ग्राह्य है।

असम्भव का नाम ही गोविन्द है। वह तो प्रेम का अथाह सागर है। एक साथ इतने लोगों से प्रेम करने की क्षमता और किसमें है? वह एक व्यक्ति से प्रेम करता है तो किसी और के प्रेम का अंश उसे नहीं देता। वह उसी का भाग होता है। उसके पास प्रेम का अभाव नहीं होता। उसका तो कोई शत्रु है नहीं वह तो सभी से प्रेम करता है। कृष्ण में प्रज्ञा है, शौर्य है। दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ शक्तिशाली और कर्मवीर हैं। वे नीलकमल के समान सुन्दर हैं, निर्मल हैं। आर्त का अभिष्ट करनेवाले, स्नेह का प्रतिदान देनेवाले, एक हाथ से ग्रहण करते हैं तो सहस्त्रों हाथों से देते हैं। विशाल हृदय तथा महान हैं। वे अद्वितीय वीर हैं। परमपुरुष हैं। नारी हृदय को जीतने की कला में पारंगत हैं। प्रजापालक हैं, धर्मज्ञ हैं द्वारकाधीश हैं। वे सभी श्रेष्ठ गुणों के अधिकारी हैं।

द्रौपदी महाभारत की नायिका महाभारती ही नहीं बल्कि भारतीय जीवन तथा संस्कृति का एक अत्यन्त विलक्षण और महत्वपूर्ण चरित्र है। कृष्ण समर्पित तथा पांचो पांडवों की पत्नी के रूप में उसका जीवन अनेक दिशाओं में विभक्त है फिर भी उसका व्यक्तित्व कहीं बंटता नहीं, टूटता नहीं। वह एक ऐसी इकाई के रूप में निरन्तर जीती है जो तत्कालीन घटनाचक्र को अनेक विशिष्ट आयाम देने में समर्थ रही है। नारी मन की वास्तविक पीडा, सुख-दु:ख और व्यक्तिगत अर्न्त सम्बन्धों की जटिलता को गहराई से पकडे हुये है। धर्म रक्षा और दुष्ट दलन के लिये सदा से ही नारी को माध्यम होना पडा। द्रौपदी दुर्गा स्वरूप है। हर युग युग में नारी ही सृष्टि और उसके विनाश का कारण बनी है। द्रौपदी अनेक नामों की संज्ञा से जुडी इसे पांचाली, याज्ञसेनी, महाभारती, नील तृष्णा, अपरिचिता, नयनतारा, द्रुपद सुता, अग्नि तनया, कृष्णा इत्यादि नामों से सम्बोधित किया गया है। विपरीत परिस्थितियों से गुजरती हुई द्रौपदी की विचित्र त्रासदी थी कि एक पति का वरण करने पर भी उसे पांचो पांडवों की पत्नी बनने को बाध्य होना पडा। यही उसकी मूल व्यथा का कारण था। द्रौपदी के रूप में उत्सर्ग शीला नारी के वर्चस्व को अत्यन्त उदात्त रूप से जाना गया है। द्रौपदी की छवि आलोकमयी और दिव्य है। द्रौपदी का चरित्र महाशक्ति मती, तेजस्विनी रूप में उभरा। यह एक ऐसी विलक्षण अद्वितीय नारी है जिसने हर प्रकार के अत्याचार, अन्याय और अपमान सहे हैं फिर भी वे न झुकी और न ही टूटी। द्रुपद सुता में वह तेज था कि वह का पुरुषों में भी वीरता के प्राण फूंक दे। पांडवों में सतत पुरुषार्थ और पुरुषत्व बना रहा तो सिर्फ द्रौपदी की प्रेरणा से ही। बहुत कुछ छिन्न-भिन्न हो गया समाज, राज्य, व्यवस्था, मर्यादायें आदि सब महाभारत के प्रबल झंझावत में उखडकर टूट गये किन्तु द्रौपदी का मनोबल नहीं टूटा। ओज और स्वाभिमान की मानिनि ने अपने पांचो पुत्रों को आहुति की बलि चढा दी और फिर भी हुंकारती रही। भारतीय इतिहास में एक से एक तेजस्विनी नारियां हुई परन्तु द्रौपदी के चरित्र के सामने सभी नगण्य हैं।

विभिन्न संकटों, अन्यायों एवं अत्याचारों के मध्य खडी रही द्रुपद सुता उसकी अनोखी त्रासदी पांचो पांडवों की पत्नी। हृदय से उसने अर्जुन का वरण किया किन्तु पांचो पतियों का पंचग्रास कंठ में इस प्रकार अटका कि जिसे वह न निगल सकी और

न उगल सकी। यही उसकी मूल व्यथा का कारण था। इसके लिये उसे जब तब भी अपशब्द सुनने पडे और लांछन भी सहने पडे। विचित्र मर्यादाओं और नियमों का पालन करना पडा उसे। अद्‌भुत दाम्पत्य जीवन का निर्वाह उसे करना पडा।

द्रौपदी एक लपलपाती ज्वाला भी है और आँसुओं की माया। जिसमें प्रतिशोध की कठोरता भी है और करुणा का अस्त्र निर्झर भी। एक तरफ उसमें सांसारिक वस्तुओं व सुख पाने का, भोग भोगने का प्रबल आग्रह है तो दूसरी और भगवद् श्रीकृष्ण चरणों में सर्वस्व समर्पण भी। द्रौपदी भोग व योग की सन्धि पर खडी है। वह वीर क्षत्राणी माता है तथा पंच कन्या में उसका नाम अग्रणी है। वह महासती है, द्रौपदी ने देवी, मां, पत्नी, प्रेमिका, सखी, महारानी, दासी, आराधिका, भक्त सभी की भूमिका बडी बखूबी से निभाई है। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति दे पाना स्वाभाविक रूप से जटिल है। बडे बडे महारथियों ने षडयन्त्रों और कुचक्रोंसे हर सम्भव प्रयास किया द्रुपद नंदिनी को झुकाने का किन्तु वह अकेले खडी ही अन्याय विरुद्ध अन्त तक लडती रही पर वह झुकी नहीं। इसीलिये वह महाभारती कहलाई। महाभारत तो रत्नाकर, सिन्धु है जिसमें असंख्य रत्न भरे पडे हैं कोई उसमें आकंठ डूब जाये तो भी उबरने का मन नहीं होता।

आज भी न्याय हेतु गुहार कर रही नारी समाज जिसकी पुकार रह रहकर कानों में गूंज उठती है। नारी की पीडा शाश्वत है। नारी की व्यथा अनन्त है। आज भी कितनी निर्दोष कन्यायें उत्पीडन सह रही हैं और न सह पाने की स्थिति में अपना उत्पीडन कर रही हैं। द्रुपदनंदिनी भी टूट सकती थी, झंझाओं से दबकर कुचली जा सकती थी। कितनी ही कन्याओं ने धर्म के नाम पर अपमान व कष्ट का हलाहल पान कर लिया। क्या हुआ अम्बिका और अम्बालिका के साथ ? अनजाने में अन्धत्व को ब्याही जानेवाली गान्धारी ने क्यों सदा के लिये अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली। द्रौपदी भी तो इसी प्रकार की निराशा से टूट सकती थी। किन्तु अद्‌भुत था द्रुपदसुता का आत्मबल। जितना उस पर अत्याचार हुआ, उतनी ही वह भभक भभककर ज्वाला बनती गई और साहस का एक बेमिसाल उदाहरण दे गई। जितनी बार उसे कुचला गया उतनी ही बार वह एक क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फुफकार उठी। वह याज्ञसेनी थी। यज्ञकुण्ड से जन्म हुआ था उसका। अन्याय के प्रतिकार हेतु असत ज्वाला बनी। आजीवन अन्याय, अपमान तथा पीडा का हलाहल पीकर द्रुपद नंदिनी का वर्ण कृष्णवर्ण हो गया और वह कृष्णा हो गयी कृष्ण की अनन्य सखी, बहिन पर न वह झुकी और न टूटी। वह अडिग खडी रही। द्रुपद सुता वह उत्पीडित नारी है जिसे मनुष्य नहीं वस्तु समझा गया। पण्य समझा गया उसे विद्वान तथा धर्मात्माओं की सभा में दांव पर लगाया गया। द्रौपदी विदुषी थी, ज्ञान पिपासु, अनेक शास्त्रों में दक्ष। गणित, संगीत, चित्रकला, पाकशास्त्र, पुष्पसज्जा, अतिथि सत्कार आदि कई विद्याओं में निपुण थी।

सभी गुणों ने कर्ण में समावेश कर रखा था। उनके समान का एक गुण में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। धर्मपरायणता में धर्मराज युधिष्ठिर, शूरवीरता में अर्जुन, नीति में विदुर किन्तु ये सब गुण कर्ण में विद्यमान थे। समस्त गुणों का एक ही स्थान पर समावेश महात्मा कर्ण के ही जीवन में पाया जाता है। वे तो सभी गुणों के अद्वितीय भंडार थे। शूरवीरता, शालीनता, दानशूर, उत्साही और निर्भीक ये सभी उनके पास होकर भी भाग्य ने कभी उनका साथ नहीं दिया। कर्ण भाग्य का मारा था। परिस्थितियों ने उस सूर्यपुत्र के गुणों को चमकने नहीं दिया। शुरुआत से ही भाग्य उसके अनुकूल नहीं रहा। राजपुत्र होकर भी वह सूत पुत्र ही कहलाया। चक्रवर्ती पद का अधिकारी होकर भी दूसरों के आश्रय से ही रहना पडा। आश्रयदाता भी ऐसा दुष्ट नीच प्रवृति का पुरुष मिला जिसने अपने उपकारों के ऋणों से इतना लाद कर दबा दिया जिससे विवश होकर उन्हे उसका यह उचित अनुचित कर्म को समर्थन देना पडता था। वह अपनी शूरवीरता भी हृदय से खोलकर लोगों के समक्ष नहीं रख सका क्योंकि देवता से लेकर मनुष्य तक सभी उसके प्रतिकूल थे। संसार की पूरी शक्ति उसके विरुद्ध थी। तीनो लोकों में उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचे गये फिर भी उस वीर को धर्म युद्ध में कोई जीत नहीं पाया। वह अधर्मपूर्वक हराकर मारा गया।

HHH(२२)HHH

महात्मा कर्ण के सामने कितने ही बडे बडे प्रलोभन भी आये परन्तु उस वीर ने कभी रंचमात्र भी उन्हे प्राप्त करने की इच्छा नहीं की। उसने अपने आश्रयदाता मित्र दुर्योधन के साथ कभी स्वप्न में भी विश्वासघात नहीं किया। उसके समस्त जीवन में एक ही बार अनुचित और अव्यावहारिक घटना हुई कि भरी सभा में द्रौपदी के चीर हरण के समय द्रौपदी को कुछ अनुचित निन्दनीय शब्द सिर्फ दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये उच्चारण कर दिये वह भी दुर्योधन की कृतज्ञता के बोझ से दबे होने के कारण जो उसे जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में झुलसता रहे। अपने इस हृदय के पश्चाताप को रो-रोकर एकान्त में भगवान वासुदेव कृष्ण के सामने प्रकट भी किया है। कर्ण की महानता इससे प्रकट होती है जब कृष्ण सन्धि प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास गये और सन्धि प्रस्ताव असफल हुआ तो लौटते समय कर्ण उनको पहुंचाने के लिये रथ में कृष्ण के साथ हस्तिनापुर के बाहर दूर तक आया था। उस समय कृष्ण ने कर्ण को हर प्रकार का प्रलोभन देकर रहस्योद्घाटन कर दिया कि कर्ण तू नहीं जानता कि तू ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र है तथा पांडवों की तरफ हो जाने से तुझे पांडवों का राज्य सिंहासन प्राप्त होगा। तू पांडवों से सन्धि कर ले। समस्त भूमंडल का राजा तू बनेगा। इतने सारे प्रलोभन पाकर भी कर्ण विचलित नहीं हुआ।

उस समय कर्ण श्रीकृष्ण से बोले मधुसूदन त्रैलोकी का राज्य पा जाने पर भी मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड सकता भले ही मेरी अधोगति हो जाये। मधुसूदन मैं कुन्ती पुत्र हूं यह बात भूल कर भी कभी युधिष्ठिर को मत बताना। महात्मा युधिष्ठिर सत्य प्रतिज्ञ और धर्मात्मा है, उन्हे जब यह पता चलेगा कि मैं उनका ज्येष्ठ भ्राता हूं तो वे समस्त पृथ्वी का राज्य त्याग कर मुझे दे देंगे जो मैं नहीं चाहता क्योंकि दुर्योधन बडा ही नीच प्रवृति का व्यक्ति है उसे पूरा राज्य ही चाहिये। धर्मराज युधिष्ठिर ही समुद्र पर्यन्त सार्वभौम पृथ्वी के एक छत्र चक्रवर्ती सम्राट होने योग्य हैं। इन शब्दों में कर्ण का कितना ममत्व है, कितनी श्रद्धा है, कितने उच्च विचार और उच्चाकांक्षा है। यही उसका महान व्यक्तित्व दर्शाता है। कर्ण के साथ यही हुआ कि पुरुषार्थ पर कभी कभी प्रारब्ध हावी हो जाता है।

राजनेताओं की स्तुति में जुड़े हुए बुद्धजीवी हाथ, सत्ता एवं राजकृपा के अभिलाषी बिके हुए लेखक और विद्वान, आए दिन समाज में होने वाली दमन की घटनाएं, बलात्कार, छल तथा अपहरण, अपने ही कुल-संयोजन में किसी गांधी या जयप्रकाश नारायण का टुकुर-टुकुर देखते रहना, किसी सरल-मन साधु-स्वभाव ज्ञानी की अवश मन:स्थिति और धीमे-धीमे महानाश का संयोजन यही सब है वर्तमान।

सदियों पूर्व के कालखंड का एक वर्तमान भी यही कुछ था। महाभारत में वर्णित वह कालखंड ऐसी ही स्थितियों और चरित्रों से भरा पड़ा है। अंतर इतना ही है कि सत्य के उस शाश्वत मानव इतिहास को हमने केवल पूजा की वस्तु बनाकर छोड़ दिया है, बजाय इसके कि उससे कुछ समझते और इस वर्तमान की रचना न होने देते। पर ऐसा नहीं हो पाया। जो कुछ हुआ, वह मात्र मूल्यों के विश्रृंखलन की वही स्थिति है, जिसने एक बार महाभारत के महानाश का आयोजन किया था। तब के महाभारत और आज के महाभारत में अंतर मात्र इतना है कि तब कृष्ण थे और आज कृष्ण की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। तब अर्जुन थे, जिनकी गांडीव की टंकार अधर्म को मौत का संदेश सुनाती थी। पर आज खोज करनी होगी किसी अर्जुन की और यह संदेहास्पद है कि कहीं अर्जुन मौजूद होंगे।

व्यासकृत महाभारत के वे सभी सत्य वर्तमान से जुड़े हुए हैं, जिसे हम भोग रहे हैं। हमारे बीच कर्ण भी है, जो समाज से अपना वांछित अधिकार पाने के लिए छटपटा रहा है और वह व्यवस्था भी है, जो कर्ण जैसे किसी योग्य एवं क्षमता-संपन्न व्यक्ति को कुंठाग्रस्त करके उसे नाश के आयोजन का मोहरा बना सकती है। कहा जाता है कि जो कुछ इस विश्व में है, वह महाभारत में मौजूद है। जो उसमें नहीं है, वह विश्व में कहीं नहीं है। जितना सत्य यह सूक्ति वाक्य है, उतना ही सत्य यह भी

है कि अधिकतर भारतीयों ने महाभारत के इस सत्य को जानते हुए भी न तो उसे पढ़ा है, न ही पढ़ने का प्रयत्न किया है। इसे विडंबना ही कहा जाना चाहिए कि विश्व भर में श्रेष्ठ कहे गए और स्वीकारे जाने वाले इस महाग्रंथ से वे ही लोग दूर हैं, जिनकी यह थाती है। जो कुछ प्रचलित है, वह महाभारत न होकर महाभारत कथा की दंत कथाएं हैं।

महाभारत के सभी पात्रों में वर्तमान का वह मनुष्य विद्यमान है, जो हर कालखंड में लिप्सा, घृणा, स्वार्थ, संवेदना, ममता, क्रोध, षडयंत्र, लोभ आदि से सराबोर रहा है, जो मनुष्य की मूल वृत्तियां है और जिनसे वह आसानी से विलग नहीं रह पाता। मूल्यों के बिखराव में समाज, धर्म तथा नियमों की कैसी और किस तरह अवहेलना उन्हीं लोगों के हाथों होने लगती है, जिनकी पीढ़ियों ने कभी व्यवस्था दी थी, महाभारत के पात्र इस बात के प्रमाण हैं। तब का महाभारत हमें वर्तमान के उन सत्यों से प्रत्यक्ष जोड़ देता है, जो हमारे समाज एवं राष्ट्र में उपस्थित हैं।

महाभारत के पात्रों का बहुमुखी मानवीय स्वरूप अनायास ही हमें अपनी समूची संवेदनशीलता के साथ उनसे जोड़ देता है। महाभारतकालीन असाधारण व्यक्तियों की अनेक बार साधारण भाव से होने वाली प्रतिक्रियाएं और उन प्रतिक्रियाओं से उनका संचालन, वर्तमान संसार में उन व्यक्ति-चरित्रों की ओर हमारी विश्लेषक दृष्टि अचानक घूमा देता है, जिन्हें हम स्वयं देखा या भोग रहे होते हैं। बहुगुणी भीष्म के उस दुविधाग्रस्त मानवीय रूप की व्याख्या संपूर्ण सहजता के साथ हमें वर्तमान के उन राजनीतिक-सामाजिक संदर्भों से जोड़ देती है, जिन्हें अनेक बार हमें दर्शक भाव से देखना पड़ता है या कठपुतली की तरह उनके संकेतों को सहने-झेलने और तदनुसार कर्मरत रहने को बाध्य होना पड़ता है। पांडवों की तरह पूरे-अधूरे मनुष्यों को भी आज के चल रहे महाभारत में हम देख सकते हैं तथा अपूर्णों में संपूर्ण मनुष्य को सहज भाव से खोजने लग जाते हैं। और हम फिर उन पंचतत्वों से उन्हें गढ़ने लगते हैं, उस संपूर्ण आदमी को, जिसकी तलाश आज के महाभारत संग्राम को है। समाज के टूटते मूल्यों अथवा मूल्यहीनता की वीभत्सता उस काल में ही नहीं थी, वह आज के संदर्भ से भी जुड़ी है। वे घटनाएं, जो मूल महाभारत पढ़ते हुए या कहानियों में कहते-सुनते हुए अनोखी-सी लगती हैं, आज हम अपने आस-पास अत्यंत स्वाभाविक, सहज, वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से अभिव्यक्त होते देख सकते हैं। वे इतनी मुखर तथा साकार हैं कि न तो उन्हें अस्वीकारा जा सकता है, न ही उनके शाश्वत सत्य से इनकार किया जा सकता है। तब के महाभारत के समय का मानवीय गुण-दोषों का वह समग्र संसार आज भी विद्यमान है, जो कभी राष्ट्र, समाज और व्यवस्था के महानाश का भावी सर्जक रहा है।

तेरी बिगडी हुई बात सम्भल जायेगी हर आह मधुर गीतों में ढल जायेगी,
हिम्मत से काम ले मुसाफिर, तेरे हाथों ही तेरी तकदीर बदल जायेगी।

घटना को बदल देना आपके हाथ में नहीं है, पर परिस्थिति से समझौता करना आपके हाथ में है।

मौत कायरों से झगडती है और बहादुरों को गले लगाती है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

जिनकी मधुर स्मृति में

* सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहां, जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?
* यादों की धुंध में तेरी परछाई सी लगती है, सन्नाटे में गूंजती हुई कोई शहनाई सी लगती है।
  आप करीब हो तो अपनापन है वर्ना सीने में सांसे भी पराई सी लगती है।
* हर शाम हम एक जाम उठा लेते हैं और तेरी याद से खुद को बहला लेते है।
* तुम आये जिन्दगी में बरसात की तरह, चल दिये जैसे खुली रात की तरह,
  बातें अधूरी ही रही और बिछुडना पडा हमें, ये भी इत्तिफाक था मुलाकात की तरह,
  शहनाई के सुरों में था मातम का शोर, सपने तो आये नींद में बारात की तरह।
* हम भी तो बेसब्र हैं कि कुछ जिन्दगी मिले, अहद किया था साथ रहने का अब क्यों बदले हालात की तरह।
* चलो दो कदम तो यूं पा जायें मंजिल, रहे चांद तारों में सजी सदा तेरी महफिल,
  हो नहीं सकता कभी कोई इनके मुकाबिल, मिले इनको दो जहां की नियामत।
* न पूछो इन ताज तख्तों से और उन बेशकीमती पाषाणों से,
  मैं तो बस अब एक हवा हूं पूछना है मेरा पता तो पूछो इन झूमते नाचते दरख्तों से।
* तेरी खुशी का आज इतना भी खयाल है, लेते नहीं सांस भी अपनी खुशी से
  समझेगा तब कहीं जाकर वो समुद्र दु:ख हमारा, अश्कों की मिसाल दें उस बहती नदी से।
* वह मुसीबत में होगा उस पर एतबार करो, जो कोई हाथ बढा दे तो न इन्कार करो,
  रूक जाओ जरा ठहरो यह कौन जो सदा दे रहा, जो भी मिले ले लो, हर चीज खुदा ही देता है।
* यहां पर लफ्जों के मायने हजार होते हैं, इन लफ्जों की कारीगरी में मत एतबार करना,
  तुम्हारे ना रहने पर हर लम्हा उदास रहता है, और साथ रहते हो तो कुछ कुछ खास होता है।
* आंसुओं का गम वो है जो दुनिया को दिखा न सकूं, और अगर गिर जाये जमीं पर तो उठा भी न सकूं,
  ये मेरे गम का फसाना है रहेगा लबों पर, तेरी रूदाद नहीं है कि सुना भी नहीं सकूं।
* वे ही चिराग बेमौत मरते हैं जो हवाओं से सांठ गांठ करते हैं,
  मुश्किलों से जो हंसकर गुजरते हैं बुलन्दियों को वे ही तो पार करते हैं।
  हैं कामयाब वो ही लोग जो ख्वाबों में भी नये-नये हसीन रंग भरते हैं,
  वो जानते ही नहीं भावनायें क्या हैं जो तितलियों के भी पैर कतरते हैं।
* जिन्दगी चीज क्या है कब समझ में आता है, जिन्दगी के अलावा सब कुछ समझ में आता है,
  जिन्दगी बीतने के कगार पर जब होती है, जिन्दगी क्या चीज है तब समझ में आता है।
* भगवान ना करे आपको कोई गम मिले, खुशियां और हंसी हरदम मिलें,
  गम जब चले आपकी ओर तो खुदा करे रास्ते में हम मिलें।
* कभी कभी दिल उदास हो जाता है आंखों को जब अहसास होता है,
  झलकते हैं मेरी आंखों से आंसू जब तुम्हारे दूर होने का अहसास होता है।

* जिन्दगी में हमेशा हंसते रहो, हंसना जिन्दगी की जरूरत है।
जिन्दगी जियो तो इसी अन्दाज में कि मुझे देखकर सबको लगे जिन्दगी कितनी खूबसूरत है।

* यादें रह जाती है और दिन गुजर जाते हैं देखते देखते बाग उजड जाते हैं,
वक्त के हाथ का खिलौना है इन्सान, जीवनभर देनेवाले कुछ क्षणों में बिछड जाते हैं।

* उडते हुये परिन्दों के हवा में घर नहीं होते, रास्ते के मुसाफिर दोस्त तो हो सकते हैं पर हमसफर नहीं होते।

* जुबान खामोश होकर आंखे नम होगी, यहां एक दास्ताने जिन्दगी होगी,
भरने को तो हर जख्म भर जायेंगे पर कैसे भरेगी वो जगह जहां तुम्हारी कमी होगी।

* करनी है खुदा से गुजारिश आपके प्यार के सिवा कोई बन्दगी ना मिले,
हर जन्म में मिले प्यार आपका या फिर कोई जिन्दगी ही ना मिले।

* जिन्दगी दर्द की किताब लगे, उम्र भूला हुआ बेहिसाब लगे,
भूलना खुद को भी अगर चाहूं, इसमें भी वक्त बेहिसाब लगे।

* आंखों में कुछ सपने भरे हैं पूरा करना हैं उन्हे, विश्वास है खुद पर मुझे मिल जायेगी मेरी मंजिल मुझे।

* पास अब अश्कों की दौलत भी नहीं रही, गम का भरमाया लुटे मुद्दत हो गई।

* जिन्दगी का सफर एक ऐसा सफर है जिसमें होता नहीं है किसी का घर,
आज है जो जहां कल न होगा वह वहां, अगले पल की नहीं है कुछ खबर।

* जाने क्यों याद आ जाते हो, दर्द में गीत जो ढल जाते हैं,
रंग और कल्म भी भूल जाता हूं जब तस्वीर आपकी बनाता हूं।

* एक मुस्कान की ताकत बडी है जिन्दगी की नींव उस पर ही खडी है।

* न जाने आज यह खयाल आया ढूंढ रहे हैं हम जीवन का साथ,
आप से ही आबाद थी जिन्दगी हमारी, चली गई रोशनी इस घर की आपके साथ।

* हमसे दूर जाओगे कैसे, दिल से कैसे भूला पाओगे, हम वो हैं जो आपकी सांसों में रहते हैं, सांसों को कैसे रोक पाओगे।

* याद करते है यारों को, यादों से दिल भर आता है,
कभी साथ जिया करते थे, उन पलों की याद आती है, तब मिलने को दिल तरस जाता है।

* इक ख्वाब के जो आंख भिगाने के लिये है, इक याद के सीने मे चुभोने के लिये है
इक जख्म के सब जख्म भूला डाले हैं जिसने, इक गम के जो हम उम्र बिलोने के लिये है
एक रूह के सोना है मगर मैल भरी भी, एक आग इसी मैल को धोने के लिये है
दिल को तो बहुत पहले से धडका सा लगा था, पाना तेरा शायद तुझे खोने के लिये है
किश्ती का ये हिचकौला, ये मल्लाह का चक्कर, किश्ती को नहीं, मुझको डुबोने के लिये है।

* गुजरे हुये कल की याद आती है, कुछ लम्हों से आंख भर आती है
वो सुबह हसीन वो शाम सुहानी हो जाती है, जब आप जैसे दोस्तों की याद आती है
ये लम्हें ये पल हम बरसों याद करेंगे, ये मौसम गुजर गये तो हम फरियाद करेंगे।

प्रारम्भिक पूर्व प्रकरण

१) ग्रन्थ की महिमा व उपक्रम २८

२) देवता, दानव आदिका मनुष्योंके रूपमें अंशावतार ३०

३) सृष्टि की उत्पति (सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति) ३१

४) सर्पों की व गरुड के जन्म की कथा तथा समुद्र मंथन का वृत्तान्त ३३

५) शेष नाग को ब्रह्मा से वर प्राप्ति और सर्पों का आख्यान ३५

६) जरात्कारू ऋषि व आस्तीक मुनि का आख्यान ३७

७) राजा परीक्षित की मृत्यु और जनमेजय का सर्प यज्ञ ३९

बोलो वही जिसके नीचे हस्ताक्षर कर सको और सोचो वही जो बेहिचक बोल सको।

कमजोर नींव पर कभी भी मजबूत इमारत नहीं खडी हो सकती।

वर्तमान अतीत का आलोचक है व भविष्य का संचालक।

इच्छाओं की पूर्ति करके नहीं, बल्कि इच्छाओं को मर्यादित रखकर ही सुखी हुआ जा सकता है।

१) ग्रन्थ की महिमा व उपक्रम

सूत लोभ हर्षण के पुत्र उग्रश्रवा श्रेष्ठ पौराणिक थे। एक बार नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनकादिक ऋषि १२ वर्ष का सत्संग सत्र कर रहे थे। उग्रश्रवा उन ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों के पास आये तब उन तपस्वियों ने देखा उग्रश्रवा हमारे पास आये हैं तो उनसे विचित्र विचित्र कथायें सुनाने के लिये आग्रह किया और हाथ जोडकर प्रणाम कर और उनका स्वागत कर तपस्या सम्बन्धी कुशल प्रश्न किये। जब सभी ऋषि मुनि अपने अपने आसन ग्रहण कर बैठे तब ऋषियों ने कहा सूतनन्दन इस समय आप कहां से आ रहे हैं? उग्रश्रवा ने कहा मैं परीक्षित पुत्र राजर्षि जनमेंजय के सर्प सत्र में गया हुआ था वहां श्री वैशम्पायन से कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा रचित महाभारत ग्रन्थ की अनेकों पवित्र और कल्याणकारी कथायें सुनी। तत्पश्चात बहुत से तीर्थों और आश्रमों में भ्रमण करता हुआ समन्तपंचक क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में आया जहां पहले कौरव और पांडवों का महान युद्ध हुआ था। वहीं पर महाराज संवरण के पुत्र कुरु ने महान तपस्या की थी। अब वहीं से मैं आप लोगों के पास आया हूं। आप सभी चिरायु और ब्रह्मनिष्ठ हैं। आप सभी का ब्रह्म तेज सूर्य और अग्नि के समान है। आप लोग स्नानादि, जप, यज्ञ, हवन आदि से निवृत्त होकर अपने आसन पर बैठे हैं अब कृपा करके बतलाइये कि मैं आप लोगों को कौनसी कथा सुनाऊं तब उन सभी परमऋषियों ने कहा सूतनन्दन महर्षि व्यास ने जिस ग्रन्थ महाभारत की रचना की है जो सूक्ष्म अर्थ और न्याय से परिपूर्ण है, जो वेदार्थ से विभूषित और आख्यानों में सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें भरतवंश का सम्पूर्ण इतिहास है। जो सर्वथा शास्त्र सम्मत है और जिसे श्री व्यासजी की आज्ञा से वैशम्पायन ने राजा जनमेजय को सुनाया वही पुण्यमयी पापनाशिनी और वेदमयी संहिता को हम लोग सुनने के इच्छुक हैं।

तब सूतजी ने कहना प्रारम्भ किया ऋषियों भगवान श्रीकृष्ण ही सबके आदि हैं। वे ही अन्तर्यामी, सर्वेश्वर, समस्त यज्ञों के भोक्ता, सबके द्वारा प्रशस्ति, परम सत्य, ओंकार स्वरूप ब्रह्म, इस कथा के महानायक हैं। वे ही सनातन व्यक्त अव्यक्त रूप में हैं। वे ही सत् भी हैं और असत भी और दोनोंसे परे हैं। वे ही विराट विश्व भी हैं। उन्होने ही स्थूल और सूक्ष्म दोनों की सृष्टि की है। वे ही सबके जीवन दाता, सर्वश्रेष्ठ और अविनाशी हैं। वे ही मंगलकारी, कल्याणकारी, मंगल स्वरूप, सर्वव्यापक सभी के वांछनीय, निष्पाप और परम पवित्र हैं। उन्ही चराचरपति, हृषिकेश मनोहर नयनोंवालों को नमस्कार करते हुये सर्वलोक पूजित अद्‌भुत कर्मा श्री महर्षि व्यासजी की पवित्र कृति महाभारत की कथा सुनाता हूं। पृथ्वी में अनेकों प्रतिभाशाली विद्वानों ने इस इतिहास का पहले वर्णन किया हैं, अब भी करते हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। यह परम ज्ञान स्वरूप ग्रन्थ तीनों लोकों में प्रतिष्ठित है। कहां संक्षेप से तो कहीं विस्तार से। इस ग्रन्थ की शब्दावली शुभ है इसमें अनेकों छन्द है तथा देवता और मनुष्यों की मर्यादा का इसमें स्पष्ट वर्णन है।

जिस समय यह जगत ज्ञान और प्रकाश से रहित था तथा चारों ओर से अन्ध:कार से परिपूर्ण था उस समय जल में एक बहुत बडा अंडा उत्पन्न हुआ और वही समस्त प्रजा की उत्पत्ति का कारण बना। यह अंडा बडा ही दिव्य ज्योतिर्मय हिरण्यगर्भ था। श्रुति पुराण उसमें सत्य सनातन, ज्योतिर्मय ब्रह्म का निरुपण करती है। वह ब्रह्म अलौकिक, अचिन्त्य, सर्वज्ञ, सर्वत्र सम अव्यक्त, कारण स्वरूप था सत और असत् दोनों भी इसी अन्डे से लोक पितामह प्रजापति ब्रह्मा प्रकट हुये। तद्‌नन्तर दक्ष प्रचेता आदि उनके पुत्र, सप्त ऋषि और चौदह मनु उत्पन्न हुये। इस सृष्टि क्रम विस्तार में विश्वेदेवा, १२ आदित्य, ८ वसु, २ अश्विनीकुमार, १० साध्य गण, यक्ष, भूत पिशाच, गुह्यक, पितर, राजर्षि, जल भूलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशायें, सम्वन्तर ऋतु मास, पक्ष, दिन-रात, चर-अचर सभी प्राणी उस अन्डे से उत्पन्न हुये। यह चराचर जगत प्रलय के समय जिससे उत्पन्न होता है उसी परमात्मा में लीन हो जाता है। इस प्रकार यह कालचक्र जिससे स्थायी पदार्थों की सृष्टि और संहार होता है अनादि और अनन्त रूप से सर्वदा चलते रहता है। ३३ आदि देवता हुये उनमें १२ आदित्य विवस्वान के पुत्र दिवा, बृहधानु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, सर्द, भानु, आशावह, रवि और मनु। मनु के दो पुत्र हुये देवभ्राट और सुभ्राट। सुभ्राट

से दश ज्योति, शत ज्योति और सहस्त्रज्योति ये तीनों ही प्रजावान और विद्वान थे। दश ज्योति के दस हजार, शतज्योति के एक लाख तथा सहस्त्र ज्योति के दस लाख पुत्र उत्पन्न हुये। इन्ही से कुरु, यदु, पुरु, भरत ययाति और इच्छवाकु आदि राजर्षियों के वंश चले। इसी तरह यही सृष्टि की परम्परा रही है।

कृष्ण द्वैपायन व्यास ने लोक, भूत भविष्य वर्तमान के रहस्य, कर्म उपासना ज्ञानमय वेद, अभ्यासयुक्त योग, धर्म, अर्थ और काम सारे शास्त्र तथा लोक व्यवहार को पूर्ण रूप से जाननेवाले इस ग्रन्थ में व्याख्या के द्वारा सम्पूर्ण इतिहास और सारी श्रुतियों का वर्णन कर दिया है। व्यासजी ने इस महान ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया है। विद्वान लोग ज्ञान को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाशित करते हैं। व्यासजी ने तपस्या के और ब्रह्मचर्य के प्रभाव से वेदों का विभाजन कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। स्वयं ब्रह्मा प्रसन्न हो लोकहित के लिये व्यास के पास आये। तब व्यासजी ने बडी प्रसन्नता से ब्रह्मा से कहा मैंने एक श्रेष्ठ काव्य की रचना की है इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदांग सहित उपनिषद, वेदों की क्रिया विस्तार, इतिहास, पुराण, भूत-भविष्य तथा वर्तमान के वृत्तान्त, बुढापा, मृत्यु यौवन, भय व्याधि आदि के भाव अभाव, निर्णय, आश्रम और वर्ण धर्म, पुराणों का सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, सूर्य चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र तारे, काल, युगों का वर्णन उनका परिमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, अध्यात्म, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, सभी ६४ कलायें, पाशुपत धर्म, देवता और मनुष्यों की उत्पत्ति, पवित्र तीर्थों, पवित्र स्थान, अभियान्त्रिकी, विज्ञान, देश, नदी, पर्वत, वन, समुद्र, पूर्व कल्प, दिव्य लोकों, युद्ध कौशल, स्थापत्य कला, माया, विविध जाति और लोक व्यवहार, मर्यादायें और सब में व्याप्त परमात्मा आदि विविध विषयों का निरुपण किया है परन्तु इस महान ग्रन्थ को पृथ्वी पर लिखनेवाला कोई नहीं मिला है यही मेरी मुख्य चिन्ता का कारण है। तब ब्रह्माजी बोले महर्षि आप तत्वज्ञान सम्पन्न है। आप जन्म से ही अपनी वाणी से सत्य और वेदार्थ कथन ही करते है। आप अपने इस महान ग्रन्थ को लिखने के अनुरूप कार्य के लिये गणेशजी को स्मरण कीजिये। यह कहकर ब्रह्माजी तो अपने लोक को चले गये। अब व्यासजी ने गणेशजी का स्मरण कर उनका आह्वान किया। गणेशजी प्रकट हुये तब व्यासजी ने उनसे प्रार्थना की भगवान मैंने मन ही मन में महाभारत ग्रन्थ काव्य की रचना की है। मैं बोलता जाऊं और आप लिखते जाये। तब गणेशजी बोले व्यास यदि लिखते वक्त मेरी कलम एक क्षण के लिये भी न रूके तो मैं तुम्हारे ग्रन्थ को लिखने का कार्य कर सकता हूं। तब व्यासजी ने कहा ठीक है महाराज पर आप बिना कुछ सोचे समझे न लिखें। गणेशजी ने तथास्तु कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। अब गणेशजी ने ग्रन्थ लिखने का प्रक्रम शुरु किया। व्यासजी श्लोक बोलते थे और गणेशजी उसका अर्थ कर सतत लिखते। जब तक गणेश जी श्लोक का अर्थ लिखते, व्याख्या करते तब तक व्यासजी उसी क्षण दूसरे श्लोक की रचना कर डालते थे। इस इतिहास स्वरूप दीपक ने संसार के तहखाने को उजाले से भर दिया है। यह ग्रन्थ कल्पवृक्ष समस्त कवियों के लिये आश्रय स्थान है। इसी के आधार पर सब अपना अपना काव्य निर्माण करते हैं। यह कथा बडी ही पवित्र है इसमें पांडवों का यश गाया गया है। सर्प सत्र के समय जनमेजय द्वारा यज्ञ किये जानेपर वेदव्यासजी को यह बात मालूम हुई कि जनमेजय सर्प यज्ञ में दीक्षित हो गये हैं तब वे वहां पर आये थे। वे महान ब्रह्मर्षि, त्रिकालदर्शी, सत्यव्रत, सगुण-निर्गुण के तत्वज्ञ, परम पवित्र एवं महान दार्शनिक थे। उन्ही के कृपा प्रसाद से पान्डु, धृतराष्ट्र और विदुर का जन्म हुआ था। उन्होने अपने शिष्यों के साथ जनमेजय के यज्ञ मन्डप में प्रवेश किया तो उन्हे देखते ही राजर्षि जनमेजय सभी ऋषि मुनियों के साथ स्वागत के लिये उठकर खडे हुये और सादर शिष्टाचारपूर्वक उन्हे यज्ञमंडप में ले आये। उन्हे स्वर्ण आसन ग्रहण करा विधिपूवर्क पूजा की। अपने वंश प्रवर्तक को पाद्य, अर्घ्य कर जनमेजय बडे ही प्रसन्न हुये। सभी ने भगवान व्यास की पूजा की। कुशल क्षेम पूछी। यथायोग्य सबका सत्कार किया। तब जनमेजय ने करबद्ध प्रार्थना की और पूछा भगवान आपने कौरवों और पांडवों को प्रत्यक्ष रूप में देखा है मैं आपसे उनका चरित्र वृत्तान्त सुनना चाहता हूं। मेरे पितामह वे तो सभी बडे ही धर्मात्मा थे फिर उस परिवार में

उन लोगों में अनबन होने का ऐसा क्या कारण हुआ। उस घोर संग्राम महाभारत होने की नौबत क्यों आ पडी ? जिसके कारण बहुत सारे प्राणियों का विध्वंस हुआ। आप कृपा करके मुझे पूरा विवरण सुनाये। जनमेजय की यह बात सुनकर महर्षि वेदव्यास ने पास में बैठे हुये अपने शिष्य वैशम्पायन से कहा वैशम्पायन कौरव और पांडवों में जिस प्रकार पारिवारिक फूट पडी, कलह हुआ वह सब मैंने तुम्हे विस्तार से सुनाया था अब वही बात उनके वंशज जनमेजय को तुम विस्तार से सुना दो। अपने पूज्य गुरुदेव की आज्ञा मानकर वैशम्पायन जी ने जनमेजय को कौरव वंश का इतिहास सुनाना आरम्भ किया। सूतजी बोले -- कथा जो मैंने उनके मुख से सुनी आपको सुना रहा हूं।

सूतजी ने कहा भगवान व्यास द्वारा निर्मित यह महाभारत ग्रन्थ एक इतिहास है जो बडा ही विस्तृत है। यह पवित्र और उत्तम पुराण वेदतुल्य है, सुनने योग्य, कथाओं में सर्वोत्तम है। सभी ने इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है।

इस इतिहास ग्रन्थ में अर्थ और काम की प्राप्ति के धर्मानुकूल उपाय बतलाये गये है यही धर्म शास्त्र, अर्थ शास्त्र और मोक्ष शास्त्र सभी कुछ है। श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास प्रतिदिन प्रात:काल उठकर स्नान सन्ध्या आदि से निवृत हो इसकी रचना करते थे यह ग्रन्थ तीन वर्षों में पूरा हुआ। सभी बातों का निराकरण और निरुपण इस ग्रन्थ में है वही सर्वत्र है और जो इसमें नहीं है वह और कहीं नहीं है।

द्वापर युग में जमदग्नि सुत परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया था। क्षत्रियों का संहार हो जानेपर क्षत्रियों की वंश रक्षा, तपस्वी त्यागी, संयमी ब्राह्मणों के द्वारा हुई। क्षत्रियों के धर्मपूर्वक प्रजा पालन करने से ब्राह्मणादि तथा सभी वर्ण के लोग सुखी हो गये। सभी लोग अपने वर्ण और आश्रम आदि के अधिकारानुसार अपना-अपना काम करते थे। सब जगह सुख-शान्ति थी। कोई भी धर्म हानि नहीं था। सतयुग की यही स्थिति थी।

द्वापर के अन्तकाल में समय बदला क्षत्रियों से राक्षस उत्पन्न होने लगे उसी समय देवताओं ने देवासुर संग्राम में दैत्यों को हराया था और ऐश्वर्य से च्युत कर दिया। ये राक्षस सिर्फ मनुष्यों से ही नहीं बल्कि बैलों, घोडों, गधों, ऊंटों, भैसों और मृगों से भी पैदा हो गये। पृथ्वी उन आततायियों के भार से त्रस्त हो गई। दैत्य और दानव मदोन्मत तथा उच्छृंखल राजाओं के रूप में उत्पन्न हो गये और प्रजा को सताने लगे। उनकी उच्छृंखलता से पीडित और उद्विग्न होकर पृथ्वी गौ रूप धारण कर ब्रह्माजी की शरण में गयी। प्रजापति ब्रह्मा ने शरणागत पृथ्वी को आश्वस्त किया और कहा देवी तू जिस कार्य के लिये यहां आई है उसके लिये मैं सब देवताओं को नियुक्त करूंगा। पृथ्वी अपने लोक में लौट गयी। इन्द्र ने भगवान नारायण से सब देवताओं के साथ मिलकर उनकी पूजा उपासना की और प्रार्थना कर कहा हे जगतपते आप पृथ्वी का यह भार उतारने में समर्थ हैं इसलिये आप पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करें। भगवन ने तथास्तु कहकर स्वीकार किया। तदनन्तर सभी देवताओं को भगवान ने ब्रह्मा ने और इन्द्र ने आज्ञा दी कि मैं अब पृथ्वी लोक पर अवतार धारण करूंगा। तुम लोग भी पृथ्वी का भार उतारने के लिये अपने अपने अंशों से पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करो। इसके बाद गन्धर्वो और अप्सराओं को बुलाकर यही बात कही। सभी देवताओं, अप्सराओं, गन्धर्वों ने हितकारी और प्रयोजनाकुल वचन स्वीकार किये। अब सभी देवता प्रजा कल्याण हेतु और राक्षसों के विनाश के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण होने लगे।

२) देवता, दानव आदिका मनुष्योंके रूपमें अंशावतार

वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय। अब मैं यह वर्णन करता हूं कि किन-किन देवता और दानवोंने किन-किन मनुष्योंके रूपमें जन्म लिया था। दानवराज विप्रचित्ति जरासन्ध और हिरण्यकशिपु शिशुपाल हुआ था। संह्लाद शल्य और अनुह्लाद धृष्टकेतु हुआ था। शिबि दैत्य द्रुम राजाके रूपमें और वाष्कल भगदत्त हुआ था। कालनेमि दैत्यने ही कंसका रूप धारण किया था।

भरद्वाज मुनिके यहाँ बृहस्पतिजीके अंशसे द्रोणाचार्य अवतीर्ण हुये थे। वे श्रेष्ठ धनुर्धर, उत्तम शास्त्रवेत्ता और परम तेजस्वी थे।

उनके यहां महादेव, यम, काल और क्रोधके सम्मिलित अंशसे भयंकर अश्वत्थामाका जन्म हुआ था। वसिष्ठ ऋषिके शाप और इन्द्रकी आज्ञासे आठों वसु राजर्षि शान्तनुके द्वारा गङ्गाके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनमें सबसे छोटे भीष्म थे। वे कौरवोंके रक्षक, वेदवेत्ता ज्ञानी और श्रेष्ठ वक्ता थे। उन्होंने भगवान् परशुरामसे युद्ध किया था। रुद्रके एक गणने कृपाचार्यके रूपमें अवतार लिया था। द्वापर युगके अंशसे शकुनिका जन्म हुआ था। मरुद्गणके अंशसे वीरवर सत्यवादी सात्यकि, राजर्षि द्रुपद, कृतवर्मा और विराटका जन्म हुआ था। अरिष्टाका पुत्र हंस नामक गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके रूपमें पैदा हुआ था और उसका छोटा भाई पाण्डुके रूपमें। सूर्यके पुत्र यमराज ही विदुरके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुरुकुल कलंक दुरात्मा दुर्योधन कलियुगके अंशसे उत्पन्न हुआ था। उसने आपसमें वैरकी आग सुलगाकर पृथ्वीको भस्म किया। पुलस्त्यवंशके राक्षसोंने दुर्योधनके सौ भाइयोंके रूपमें जन्म लिया था। धृतराष्ट्रका वह पुत्र, जिसका नाम युयुत्सु था, वैश्याके गर्भसे उत्पन्न एवं इनसे अलग था। युधिष्ठिर धर्मके, भीमसेन वायुके, अर्जुन इन्द्रके तथा नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारोंके अंशसे उत्पन्न हुए थे। चन्द्रमाका पुत्र वर्चा अभिमन्यु हुआ था। वर्चाके जन्मके समय चन्द्रमाने देवताओंसे कहा था, मैं अपने प्राणप्यारे पुत्रको नहीं भेजना चाहता। फिरभी इस कामसे पीछे हटना उचित नहीं जान पड़ता। असुरोंका वध करना भी तो अपना ही काम है। इसलिये वर्चा मनुष्य बनेगा तो सही, परन्तु वहाँ अधिक दिनोंतक नहीं रहेगा। इन्द्रके अंशसे नरावतार अर्जुन होगा, जो नारायणावतार श्रीकृष्णसे मित्रता करेगा। मेरा पुत्र अर्जुनका ही पुत्र होगा। नर-नारायणकी उपस्थिति न रहनेपर मेरा पुत्र चक्रव्यूहका भेदन करेगा और घमासान युद्ध करके बड़े-बड़े महारथियोंको चकित कर देगा। दिनभर युद्ध करनेके बाद सायंकालमें वह मुझसे आ मिलेगा। इसकी पत्नीसे पुत्र परीक्षित होगा, वहीं कुरुकुलका वंशधर होगा। सभी देवताओंने चन्द्रमाकी इस उक्तिका अनुमोदन किया। जनमेजय। वही आपके दादा अभिमन्यु थे। अग्निके अंशसे धृष्टद्युम्न और एक राक्षसके अंशसे शिखण्डीका जन्म हुआ था। विश्वेदेवगण द्रौपदीके पाँचों पुत्र प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतसेनके रूपमें पैदा हुए थे।

कर्ण सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था। देवाधिदेव सनातन पुरुष नारायणभगवान्के अंशसे वासुदेव श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए। महाबली बलदेवजी शेषके अंश थे। सनत्कुमारजी प्रद्युम्न हुए। यदुवंशमें और भी बहुत-से देवता मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्द्रके आज्ञानुसार अप्सराओंके अंशसे सोलह हजार स्त्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीके रूपमें लक्ष्मीजी और द्रुपदके यहाँ यज्ञकुण्डसे द्रौपदीके रूपमें इन्द्राणी उत्पन्न हुई थीं। कुन्ती और माद्रीके रूपमें सिद्धि और धृति का जन्म हुआ था। वे ही पाण्डवोंकी माता हुई। मतिका जन्म राजा सुबलकी पुत्री गान्धारीके रूपमें हुआ था। इस प्रकार देवता, असुर, गन्धर्व, अप्सरा और राक्षस अपने-अपने अंशसे मनुष्यके रूपमें उत्पन्न हुए थे।

३) सृष्टि की उत्पति (सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति)

वैशम्पायन बोले जनमेजय ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलत्स्य, पुलहः और भृगु कृत हुये। मरीचि के पुत्र कश्यप और कश्यप से ही सारी प्रजा की उत्पति हुई। दक्ष प्रजापति से तेरह कन्यायें अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनिता, कपिला, मुनि और कद्रु, मन इनसे उत्पन्न पुत्र और पौत्रों की संख्या अनन्त है। अदिति के १२ पुत्र आदित्य, धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टी और विष्णु हुये। विष्णु सबसे छोटे पर गुणों में सबसे बडे थे। दिति का पुत्र हिरण्य कश्यपु हुआ उसके ५ पुत्र थे प्रल्हाद, संहलाद, अनुहाद, शिबि और बाष्कल। प्रह्लाद के तीन पुत्र हुये विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ। विरोचन से बलि और बलि का पुत्र हुआ बाणासुर। बाणासुर भगवान शंकर का अन्यन्य भक्त और सेवक हुआ। वही महाकाल के नाम से जाना गया। दनु के ४० पुत्रों में विप्रचिति सबसे बडा, यशस्वी और राजा था। दानवों के वंश में दानवों की संख्या असंख्य हुई। सिंहिका से राहू जो सूर्य और चन्द्रमा को ग्रहस्ता है जिससे ग्रहण होता है। क्रोधा से सुचन्द्र, चन्द्रहस्ता और चन्द्र प्रमर्दन आदि पुत्र पौत्र हुये। क्रोधवश नाम का एक गण भी हुआ। दयानु से

४ पुत्र विक्षट, बल, वीर और वृत्तासुर। काला से विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता, क्रोध शत्रु और कालकेय नाम के प्रसिद्ध असुर हुये।

भृगु ऋषि से असुरों के पुरोहित शुक्राचार्य हुये। इनके चारों पुत्र में त्वष्टाधर और अत्रि प्रधान थे जो असुरों का यज्ञ याग कराया करते थे इस तरह असुर और देवताओं की उत्पति पुराणों के वर्णन के अनुसार है। इनके पुत्र और पौत्रों की गणना अधिक सम्भव नही है। विनिता से तार्क्ष्य, अरिष्टनेमी, गरुड, अरुण, आरूणि और वारुणि ये सब वैनतेय कहलाते है। शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक भुजंगम, कूर्म, कुलिक आदि सर्प ये सब कद्रु के पुत्र हैं। भीमसेन, उग्रसेन, सूपर्ण, नारद आदि सोलह देवगन्धर्व कश्यप की पत्नी मुनि के पुत्र हैं।

ये सभी बडे ही कीर्तिवान, बलवान और जितेन्द्रिय हैं। प्राधा नाम की दक्ष कन्या से अनवद्या, मनुवंशा आदि कन्यायें हुई और सिद्ध, पूर्ण, बर्हि आदि देव गन्धर्व उत्पन्न हुये। प्राधा से अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु सूरता, सूरजा, सुप्रिया आदि अप्सरायें और अति बाहु, हाहा, हुहु और तुम्बरू गन्धर्व हुये। कपिला से गौ, ब्राह्मण गन्धर्व और अप्सराओं की उत्पति हुई। इनमें सर्प, सुपर्ण, रुद्र, मरुत और गौ ब्राह्मण आदि सभी की उत्पति हुई।

ब्रह्मा के अन्य पुत्र स्थाणु उससे परम तेजस्वी ११ पुत्र हुये मृगव्याध, सर्प, निर्वृति, अजैकपाद, अर्हिर्बुध्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भव ये ही ११ रुद्र कहलाते हैं। अंगिरा के तीन पुत्र हुये बृहस्पति, उत्थथ और संवर्त। अत्रि के बहुत से पुत्र हुये जैसे चन्द्रमा, दुर्वासा, दत्तात्रेय, पुलत्स्य के राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हुये। पुलह के शलभ, सिंह, किम्पुरुष, व्याघ्र और इहामृग (भेडिया) इत्यादि। क्रतु के बाल खिल्य ६० हजार पुत्र हुये। ब्रह्मा के दांये अंगूठे से दक्ष और बाँये से दक्ष की पत्नी का जन्म हुआ। दक्ष की पत्नी से ५० कन्यायें उत्पन्न हुई। पुत्रों का नाश हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने कन्याओं का विवाह इस शर्त पर किया कि उनके पहले पुत्र उन्हे मिल जाये। १० कन्याओं का विवाह धर्म से, सताइस का चन्द्रमा से और १३ का कश्यप से किया। धर्म की दस पत्नियां कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति २७ नक्षत्र ही चन्द्रमा की पत्नियां है इनमें रोहिणी प्रधान है। ये सब समय की सूचना देती हैं।

ब्रह्मा के पुत्र मनु, मनु से प्रजापति और प्रजापति से आठ वसु धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास (द्यो)। धर और ध्रुव की मां का नाम धूम्रा, मनस्विनी से सोम, रता से अह, श्वसा से अनिल, शाण्डिली से अनल, प्रभाता से प्रत्युष और प्रभास की उत्पति हुई। धर वसु से प्रविण और हुतहत्यवह तथा ध्रुव से काल पुत्र की उत्पति हुई। सोम के चर्चा, चर्चा के शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र उत्पन्न हुये। अह के ४ पुत्र ज्योति, शम, शान्त और मुनि अनल के कुमार। कृतिकाओं ने इनका मातृत्व स्वीकार किया था इसलिये इन्हे कार्तिकेय भी कहा गया है। इनके तीन पुत्र हुये शाख, विशाख और नैगमय। अनिल की पत्नी शिवा से मनोजव और अविज्ञातगति नाम के दो पुत्र हुये। प्रत्यूष के पुत्र हुये देवल ऋषि। देवल ऋषि के दो पुत्र क्षमावान और मनीषी बृहस्पति की बहन ब्रह्मवादिनी और योगिनी थी वही प्रभास की पत्नी हुई। उन्होने ही देवताओं के आभूषण और विमानों का निर्माण किया। मनुष्य भी उन्ही के कला कौशल के आधार पर अपनी जीविका चलाता है। धर्म ब्रह्मा के दाहिने स्तन से प्रकट हुये। उनके तीन पुत्र शम, काम और हर्ष उनकी पत्नियां क्रमश: प्राप्ति, रति और नन्दा। सूर्य की पत्नी संज्ञा जो घोडी (वडवा) वन गई थी उसी से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार ३३ आदि देवता जिसमें १२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु हुये जिससे सृष्टि भरती गई। इसके अलावा इनके गण भी है जैसे रुद्रगण, साध्यगण, मरुदगण, वसुगण, भार्गवगण और विश्वेदेवगण। गरुड, अरुण और बृहस्पति की गणना आदित्यों में की जाती है। इन सब देवगणों का कीर्तन भजन करने से सर्व पाप नाश हो जाते हैं।

महर्षि भृगु ब्रह्मा के हृदय से प्रकट हुये। भृगु के च्यवन नामक पुत्र हुये। उनकी पत्नी का नाम आरुणी, उनके पुत्र और्व मुनि हुये। और्व को ऋचीक और ऋचिक के जमदाग्नि हुये। जमदाग्नि से परशुरामजी जो गुणों में बडे क्रोधी और महान थे। वे शास्त्र

कुशल और शस्त्र कुशल दोनों में ही पारंगत थे। उन्होने ही क्षत्रिय कुल का २१ बार संहार किया। भृगु के पुत्र हुये धाता और विधाता। लक्ष्मी इन्ही की बहिन है। शुक्राचार्य की पुत्री वरुण को व्याही गई। वरुण के पुत्र हुआ बल और पुत्री सुरा। सुरा से अधर्म की उत्पति हुई जो समस्त प्राणियों के नाश का कारण है अधर्म की पत्नी निर्ऋति उससे तीन बडे ही भयंकर पुत्र उत्पन्न हुये, भय, महाभय और मृत्यु। मृत्यु के कोई पत्नी या पुत्र नहीं है। ताम्रा के ५ कन्याये हुई, काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री और शुकी। काकी से उल्लु, श्वेनी से बाज, भासी से कुत्ते और गीध, धृतराष्ट्री से हंस एवं चक्रवाक और शुकी से तोते आदि का जन्म हुआ। क्रोधा से ९ कन्याओं की उत्पत्ति हुई, मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सुरसा। मृगी से मृग, मृगमन्दा से रीछ, भालू और सुभर, भद्रमना से ऐरावत, हाथी, हरी से घोडे, वानर एवं गौ के समान पूंछवाले अन्य पशु हुये। शार्दूली से सिंह, बाघ और गेंडे हुये। मातंगी से सब प्रकार के हाथी, श्वेता से श्वेत दिग्गज हुये। सुरभि से रोहिणी, गन्धर्वी, विमला और अनला नाम की ४ कन्यायें हुई। रोहिणी से गाय, बैल, गन्धर्वी से घोडे, अनला से खजूर, ताल, हिन्ताल, ताली, र्जूरिका, सुपारी और नारियल इत्यादि के वृक्ष उत्पन्न हुये। अनला की पुत्री शुकी ही तोतों की जननी हुई। सुरसा से कंक पक्षी और विभिन्न नागों की उत्पति हुई। अरुण की पत्नी श्येनी से सम्पाति और जटायु नाम के गीध हुये। कद्रु से सर्पों की उत्पति हुई। इस प्रकार मुख्य-मुख्य प्राणियों की उत्पति बता दी है।

४) सर्पों की व गरुड के जन्म की कथा तथा समुद्र मंथन का वृत्तान्त

मरीचिनन्दन कश्यप का दक्ष प्रजापति की १३ कन्याओं से विवाह हुआ जिनमें से दो कन्यायें विनिता और कद्रू थी। महर्षि कश्यप ने प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नियों को इच्छानुसार वर मांगने को कहा। कद्रू ने वर मांगा मेरे १ हजार तेजस्वी नागपुत्र हो। विनिता बोली तेज, शरीर और बलवान पर कद्रू के पुत्रों से श्रेष्ठ मुझे केवल दो ही पुत्र प्राप्त हों कश्यपजी ने तथास्तु कह कर वरदान दे दिया। समय आने पर कद्रू ने एक हजार तथा विनिता ने दो अंडे दिये। पांच सौ वर्ष पूरे होने पर कद्रू के उन अंडों से हजार पुत्र निकल आये परन्तु विनिता के अंडों से बच्चे नहीं निकले। विनिता ने सौतकी डाह से अपने हाथों एक अंडा फोडकर देखा। उस अन्डे का शिशु अभी तक पूरी तरह से विकसित नहीं हुआ था। वह आधे शरीर से तो पुष्ट हो गया था परन्तु उसका नीचे का आधा शरीर कच्चा था जिससे वह लूला हो गया। नवजात शिशु ने क्रोधित हो अपनी माता को शाप दिया माता तूने लोभवश मेरे अधूरे शरीर को गर्भ से बाहर निकाल लिया है इसलिये तू अपनी उसी सौत की पांच सौ वर्षतक दासी बनकर रहेगी अब यदि मेरी तरह तूने दूसरे अंडे को फोडकर उसके बालक को अंगहीन तथा विकृत नहीं किया तो वही बालक मेरा भाई तुझे इस शाप से मुक्त करा पायेगा। इसलिये वह दूसरा बालक बलवान, हृष्ट पुष्ट तथा स्वस्थ हो तो धैर्य के साथ पांच सौ वर्ष तक और प्रतीक्षा कर इस प्रकार अपनी माता को शाप देकर वह बालक तो आकाश में उड गया और सूर्य के रथ का सारथि बन गया। प्रात:कालीन सूर्य की लालिमा उसी की झलक है। उस बालक का नाम अरुण हुआ।

एक बार कद्रू और विनिता दोनों बहिने साथ-साथ घूम रही थी वहां पास ही में उन्हें क्षीरसागर के मन्थन में से निकला हुआ उच्चश्रवा नाम का घोडा दिखाई दिया। वह अश्व समस्त अश्वों में श्रेष्ठ, बलवान, विजयी, सुन्दर, अजर दिव्य एवं शुभ लक्षणों से युक्त था।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय एक बार सभी देवता इकट्ठा हो अमृत प्राप्ति के लिये विचार करने लगे तब भगवान नारायण ने देवताओं से कहा देवता और असुर दोनों मिलकर समुद्र मन्थन का उद्योग करें जिसके फल स्वरूप अमृत की प्राप्ति होगी। तब भगवान नारायण ने कच्छप रूप धारण कर आधार बन मेरू पर्वत को मथनी बना अपनी पीठ पर धारण किया तथा वासुकि नाग को नेति बनाया और देवता तथा असुर मिलकर क्षीरसागर का मंथन करने लगे। देवता लोग वासुकि की पूंछ की तरफ थे और सारे असुर मुंह की तरफ। इस प्रकार उन्होने समुद्र को मथना आरम्भ किया तो समुद्र से भिन्न-भिन्न रत्न निकलने लगे। उस समय अगणित

किरणोंवाला शीतल प्रकाश से युक्त श्वेत वर्ण की आभावाला चन्द्रमा प्रकट हुआ। तत्पश्चात भगवती लक्ष्मी और वारुणि (सुरादेवी) निकली। उसी समय समुद्र से उच्चश्रवा नाम का अश्व भी निकला। दिव्य किरणों से उज्ज्वल कौस्तुभ मणि तथा वांछित फल देनेवाला कल्पवृक्ष और कामधेनु गाय निकली। हलाहल विष उत्पन्न हुआ। विष तो महादेव शंकर ने पी लिया वे विष पीने से नील कंठ कहलाये फिर अमृत कलश लिये दिव्य शरीर धारी धन्वन्तरी प्रकट हुये। फिर ऐरावत हाथी निकला। अमृत और लक्ष्मी के लिये देवताओं और असुरों में बडा बैर विरोध होने लगा। उसी समय भगवान विष्णु मोहिनी स्त्री का रूप धारण कर असुरों के पास आये। उन मूर्ख असुरों ने माया को न जानकर उस मोहिनी स्वरूप को अमृत का पात्र दे दिया। मोहिनी ने वह अमृत देवताओं को पिला दिया जिससे वे अमर हो गये और असुर अमृत से वंचित रह गये। असुरों और देवताओं में देवासुर संग्राम हुआ। देवताओं की जीत हुई। देवताओं ने और इन्द्र ने वह बचा हुआ अमृत कलश ले उसे सुरक्षित स्थान पर रख दिया। यही समुद्र मंथन और अमृत प्राप्ति की कथा है।

उस उच्चश्रवा घोडे को देखकर कद्रू ने विनिता से कहा बताओ यह घोडा किस रंग का है ? विनिता बोली यह अश्व श्वेत वर्ण का है। तब कद्रू बोली यह घोडा सफेद रंग का है परन्तु इसकी पूंछ काली है। विनिता बोली नहीं यह असम्भव है। दोनों में शर्त लग गई थी यदि कद्रू की बात ठीक है तो विनिता उसकी दासी बन के रहेगी और विनिता की बात ठीक निकली तो कद्रू उसकी दासी बनके रहेगी। कद्रू ने विनिता को धोखा देने के लिये अपने हजार पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र ही काले बाल (नाग) बनकर उच्चश्रवा अश्व की पूंछ को लिपट जाओ जिससे वह काली पूंछ दिखाई पडे और मुझे विनिता की दासी नहीं बनना पडे। कुछ सर्पों ने तो ऐसा किया पर कुछ सर्पों ने अपनी माता की यह आज्ञा नहीं मानी। जिन सर्पों ने यह आज्ञा नहीं मानी उनको कद्रू ने श्राप दिया कि तुम लोग जनमेजय के सर्प यज्ञ में अग्नि में जलकर भस्म हो जाओगे।

कद्रू ने अपने पुत्रों को ही ऐसा शाप दे दिया। यह सुनकर देवता और ब्रह्मा अत्यधिक आनंदित हुये कारण उन दिनों पराक्रमी और विषैले सर्प बहुत प्रबल हो गये थे। वे सबको बडी पीडा पहुंचाने लगे। प्रजा की दृष्टि से यह उचित ही हुआ। जो लोग दूसरे जीवों का अहित करते हैं उसे विधाता की ओर से दंड मिल जाता है।

दूसरे दिन प्रात: होते ही विनिता और कद्रू उस उच्चश्रवा घोडे को देखने निकली। कुछ काले रंग के सर्प उच्चश्रवा घोडे की पूंछ से बाल बनकर लिपटे हुये थे जिससे वह काली पूंछ जान पडने लगी। विनिता ने देखा घोडे का पूरा शरीर तो चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल और धवल है परन्तु पूंछ काली है। यह देखकर विनिता ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और कद्रू ने उसे अपनी दासी बना लिया। समय पूरा होनेपर विनिता के दूसरे अंडे से दूसरा पुत्र बाहर निकल आया जिसके तेज से सभी दिशायें प्रकाशित हो गई। उसकी शक्ति, गति, दीप्ति और बुद्धि विलक्षण थी। नेत्र बिजली के समान पीले और शरीर अग्नि के समान तेजस्वी था। इस बालक का नाम गरुड हुआ। यह जन्मते ही आकाश में ऊपर उड गया और दूर से ऐसा लग रहा था जैसे बडवानल ही हो। पक्षिराज गरुड नागों के नाशक, आसुरों के शत्रु और देवताओं के हितैषी हुये। देवताओं और ऋषियों ने गरुड की स्तुति की।

गरुड अपनी माता की आज्ञा से सर्पों को अपनी पीठपर बिठाकर सब जगह भ्रमण कराते थे। एक दिन सर्पों ने कहा गरुड तुम तो आकाश में बहुत ऊंचे ऊंचे उडते हो हमें भी किसी रमणीक द्वीप में, श्वेत द्वीप में विहार के लिये ले चलो। सर्पों की यह आज्ञा सुनकर गरुड चिन्ता में पड गये और अपनी माता विनिता से पूछा कि मुझे सर्पों की आज्ञा क्यों पालन करनी चाहिये ? तब विनिता बोली पुत्र। इन सर्पों की माता कद्रू के छल से मैं बाजी हार गई और अपनी इस सौत कद्रू की दासी हो गई। इससे माता के दु:ख से गरुड भी बहुत दु:खी हुये और उन्होने सर्पों से कहा सर्पगण बताओ मैं तुम्हारा क्या अभीष्ट करूं, तुम्हारा कौनसा उपकार कर दूं जिससे मैं और मेरी माता दासत्व से मुक्त हो जाये। सर्पों ने कहा गरुड तुम अपने पराक्रम से हमारे लिये अमृत ला दोगे तो हम तुम्हे और तुम्हारी माता को दासत्व से मुक्त कर देंगे।

इन्द्र और सभी देवता स्वर्गलोक में अमृत कलश की बडी सावधानी से रक्षा कर रहे थे गरुड ने अमृत प्राप्ति के लिये बडी सावधानी से वहां प्रवेश किया। वहां पर सुदर्शन चक्र घूम कर उस अमृत कलश की रक्षा कर रहा था। गरुड अपने शरीर को छोटा कर उस चक्र के आरों के बीच घुसकर अमृतपात्र को अपने डैनो में लेकर उड चले। उन्होने स्वयं अमृत नहीं पिया और आकाश में उड चले। आकाश में उन्हे भगवान विष्णु के दर्शन हुये। भगवान ने देखा गरुड को अमृत पीने का लोभ नहीं है तो उस पर प्रसन्न हो बोले गरुड मैं तुम्हे वर देना चाहता हूं जो चाहे सो मांग लो। तब गरुड ने कहा भगवान आप तो सर्वान्तर्यामी हैं मुझे अपना दास बना लें और मैं अमृत पिये बिना ही अजर अमर हो जाऊं। तब भगवान विष्णु ने तथास्तु कह दिया और बोले आज से तुम मेरे वाहन हो जाओ। वहां से अमृत लेकर गरुड ने आगे की यात्रा की।

इन्द्र ने गरुड को अमृत ले जाते देख लिया। इन्द्र क्रोध में भर गया और अपना वज्र गरुड पर चलाया। गरुड वज्र से आहत हो गया। गरुड बोले इन्द्र जिन दधीचि ऋषि की हड्डी से यह वज्र बनाया है उनके सम्मान के लिये मैं अपना एक पंख छोडता हूं तुम उसका भी अन्त नहीं पा सकोगे। तुम्हारे इस वज्राघात से मुझे तनिक भी पीडा नहीं हुई है। गरुड ने अपने पंख गिरा दिया। तब से गरुड का नाम सुपर्ण हुआ। इन्द्र चकित हो गरुड से बोले धन्य हो पक्षिराज, तुममें कितना बल है ? मैं तुम्हे अपना मित्र बनाना चाहता हूं। गरुड बोले आपकी इच्छानुसार हमारी मित्रता रहे। मैं अपने मुख से अपने बल का कैसे बखान कर सकता हूं? स्वयं के मुख से अपने गुणों का बखान, प्रशंसा सत्पुरुषों की दृष्टि में अच्छी नहीं होती है। फिर भी आप जब मुझे अपना मित्र मानकर पूछ रहे हैं तो आपसे बताता हूं। ये पर्वत, वन, समुद्र और पृथ्वी इन सारों को अपने एक पंख पर उठाकर बिना परिश्रम कहीं भी उड सकता हूं। इन्द्र बोले आप जो कहते हैं वह सत्य हैं। अब हमारी तुम्हारी मित्रता हुई। यदि आपको अमृत की आवश्यकता न हो तो यह मुझे दे दें। आप जिन्हे ले जाकर ये देनेवाले है वे हमें बहुत दु:ख और कष्ट देंगे। गरुड बोले देवराज अमृत ले जाने का मेरा एक विशेष प्रयोजन है। मैं इसे किसे पिलाना नहीं चाहता। मैं इसे जहां भी रखूं वहीं से आप इसे उठा ले जाइये। इन्द्र प्रसन्न होकर गरुड से बोले अपना कोई अभिष्ट वर मांग लो। गरुड को उस समय सर्पों की दुष्टता और उनकी माता के साथ किया गया छल याद आ गया। गरुड बोले हे इन्द्र यदि तुम प्रसन्न हो तो और मुझे वर देना चाहते हो तो ये बलवान सर्प ही मेरा आहार हो तब देवराज इन्द्र ने कहा तथास्तु।

इन्द्र से विदा होकर गरुड सर्पों के स्थान पर आये और सर्पों से कहा यह लो मैं अमृत ले आया हूं और अब मुझे और मेरी मां विनिता को तुम्हारे दासत्व से मुक्त करो। इसे तुम स्नान कर पवित्र हो तभी इसे पीओ। सर्पों ने स्वीकार किया और बोले इसे कुशों पर रख दो। सर्पगण प्रसन्नता से अमृत पीने की उत्सुकता में स्नान करने गये। तब पीछे से आकर इन्द्र अमृत कलश उठाकर स्वर्ग ले गये। स्नानादि से लौटकर सर्पों ने देखा कि अमृत पात्र उस स्थान पर नहीं है। सर्पों ने समझ लिया कि हमने गरुड की माता विनिता के साथ जो छल कपट किया था उसी का यह फल है। जिस जगह कुशों पर अमृत कलश रखा था हो सकता है वहां पर कुछ अमृत का अंश गिरा हो यह समझ कर सर्पों ने कुशों को चाटना शुरू किया। ऐसा करने से कुशों की नुकीली तेज धार से सर्पों की जीभ कट गई। अब गरुड सर्पों के दासत्व से मुक्त होकर अपनी माता के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

५) शेष नाग को ब्रह्मा से वर प्राप्ति और सर्पों का आख्यान

सर्पों में एक शेष नाग भी हुये जिन्होने अपनी माता कद्रू और अन्य कई सर्पों और नागों का साथ नहीं दिया और तपस्या की। शेष नाग केवल हवा पीकर रहते और व्रत का पालन करते। शेष नाग संयम से गन्धमादन, बद्रिकाश्रम, गोकर्ण और हिमालय आदि की तराई में एकान्तवास करते और पवित्र तीर्थों तथा पवित्र धामों की यात्रा करते थे। शेषनाग की सच्ची तपस्या और धैर्य देखकर ब्रह्मा प्रसन्न हो शेष से बोले। तुम यह घोर तपस्या क्यों कर रहे हो ? शेष नाग बोले हे ब्रह्मन मेरे सब भाई मूर्ख है। मैं उनके साथ नहीं रहना चाहता। वे एक दूसरे के शत्रु समान हो रहे है। वे विनिता और उसके पुत्र गरुड तथा अरुण से द्वेष करते

हैं। इसलिये मैं उनसे उबकर तपस्या करने लग गया। ब्रह्मा बोले शेष मैं तुम्हारे भाइयों की यह करतूत अच्छी तरह जानता हूं। अपनी माता की आज्ञा का उल्लंघन करने से वे सब के सब बडी विपत्ति में पड गये है। अब तुम उनकी चिन्ता छोडकर मुझसे जो चाहो वर मांग लो। तुम्हारी बुद्धि धर्म में अटल है इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूं। शेषनाग बोले पितामह मैं यहीं चाहता हूं कि मेरी बुद्धि, धर्म, तपस्या और शान्ति में सदा संलग्न रहे। ब्रह्मा बोले मैं तुम्हारे संयम से प्रसन्न हूं। यह सारी पृथ्वी, पर्वत, बन, सागर, ग्राम और नगर सहित हिलती डुलती रहती है तुम इसे अपने शीर्ष पर धारण करो जिससे यह अचल हो जाये। तब शेष बोले आप प्रजा के स्वामी और समर्थ हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। आप इस पृथ्वी को मेरे शीर्ष पर रख दीजिये। ब्रह्मा बोले पृथ्वी तुम्हें मार्ग देगी। तुम इसके भीतर प्रवेश कर जाओ। तब शेष ने ब्रह्मा की आज्ञा मानकर भू-विवर में प्रवेश कर समुद्र से घिरी पूरी पृथ्वी को अपने सिर पर धारण कर लिया तभी से पृथ्वी शेष पर स्थित है। शेष सहस्त्रों फणों वाला नाग है जिसने इस सारे भूमंडल को अपने सिर पर एक दाने के समान उठा रखा है।

माता कद्रु का शाप सुनकर वासुकि नाग बडी चिन्ता में रहने लगा और सोचने लगा कि इस शाप का प्रतिकार क्या ? उसने सभी सर्पों को इकट्ठा कर उनके साथ सोच विचार विमर्श कर बोला हमें अपनी माता के दिये हुये शाप के निवारण के बारे में कोई उपाय करना चाहिये। सब शापों का प्रतिकार सम्भव है परन्तु माता के शाप का कोई प्रतिकार नहीं होता। कोई विपत्ति आने से पहिले ही हमें शीघ्र कोई उपाय कर लेना चाहिये। तब उनमें से कुछ नागों ने सोच विचार कर कहा हम जनमेजय के सर्प यज्ञ सत्र में ब्राह्मण बन कर भिक्षा में मांगे कि तुम यह यज्ञ मत करो। कुछ ने कहा हम उसके मन्त्री बन उसे सलाह दें कि वह यह यज्ञ ही नहीं करे तो कुछ ने कहा उनके पुरोहित को ही डंक मार दे और उनकी मृत्यु कर दे जिससे अपने आप यज्ञ बन्द हो जायेगा। उसमें कुछ धर्मात्मा और दयालु नाग बोले नहीं इससे तो हमें ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा। यह तो हमारे लिये मूर्खता पूर्ण और अशुभ है। विपत्ति के समय धर्म से ही रक्षा हो सकती है। अधर्म का सहारा लेने से तो सारे जगत के विनाश का कारण बन जाता है। कुछ नाग बोले हम बादल बनकर यज्ञ की अग्नि ही बुझा दें तो कुछेक बोले क्यों नहीं हम यज्ञ की सामग्री ही चुरा ले जायें। कुछ लोग बोले हम वहां आये हुये सभी को डस डाले। सब सर्पों ने अपनी सम्मति देकर वासुकि से बोले अब वासुकि तुम्हे जो अच्छा लगे सो करो। वासुकि ने कहा मुझे तो तुम्हारे ये सब विचार कोई ठीक नहीं लगे इसलिये हम सब चलकर अपने पिता महात्मा कश्यप से ही विचार विमर्श कर उनकी आज्ञानुसार ही काम करे। जिसमें हमारा हित हो वही करेंगे। तुम सबमें से सबसे ज्येष्ठ हूं इसलिये कोई भी भलाई बुराई मेरा ही उत्तरदायित्व है इसी कारण मैं बहुत चिंतित हो रहा हूं।

उन सब नागों में एक एलापत्र नाम का नाग था उसने सब की सम्मति सुनकर कहा मेरी समझ में उस यज्ञ का रूक जाना या जनमेजय का मान जाना कदाचित सम्भव न हो। अपने भाग्य के अपराध को अपने भाग्य पर ही छोड देना चाहिये। दूसरों के आश्रय में जाने से कोई काम नहीं होगा। जिस समय माता कद्रू ने हमें शाप दिया था उस समय मैं डर कर माता कद्रू की गोदी में ही छिप गया था। वह क्रूर शाप सुनकर देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा था कि भगवान कठोर हृदया कद्रू को छोडकर ऐसी कौनसी स्त्री होगी जो अपनी ही सन्तान को शाप दे ? आपने भी तो उसके शाप का अनुमोदन किया, निषेध नहीं किया इसका क्या कारण है ? तब ब्रह्मा बोले देवताओं इस समय इस सृष्टि में सर्प बहुत बढ गये है ये बडे ही क्रोधी, भयानक और विषैले है। इनका शमन करने के लिये मैंने कद्रू को रोका नहीं। कद्रू के इस शाप से क्रूर, पापी और जहरीले सर्पों का ही नाश होगा। धर्मात्मा सर्प सुरक्षित रहेंगे। यायावर वंश में जरात्कारु नाम के एक ऋषि होंगे उनके पुत्र का नाम होगा आस्तीक। वे ही जनमेजय का सर्प यज्ञ बन्द करा सकेंगे। जरात्कारु ऋषि की पत्नी भी जरात्कारु नाम की ही होगी। वह सर्पराज वासुकि की बहिन होगी। उसके गर्भ से आस्तीक मुनि का जन्म होगा। सो हे सर्पराज वासुकि मेरे विचार से तो आप आपकी बहिन जरात्कारु का विवाह जरात्कारु ऋषि से कर जिससे उसके पुत्र होने से वह

हमारी जाति की रक्षा करे। यह उपाय ब्रह्मा जी ने जब देवताओं से कहीं तब मैंने सुनी थी इस प्रकार एलापत्र नाग वासुकि से बोला मुझे तो इस विपत्ति का यहीं बात ठीक लगता है ऐलापत्र नाग की बात सुनकर सभी सर्पों ने प्रसन्न चित्त हो कहा ठीक है। तब वासुकि ने सर्पों को जरात्कारु ऋषि की खोज में लगा दिया।

६) जरात्कारू ऋषि व आस्तीक मुनि का आख्यान

राजा परीक्षित के राज्यकाल में जरात्कारु नाम के ऋषि बहुत दिन तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर तपस्या में रत थे। वे विवाह नहीं करना चाहते थे। वे जप, तप, स्वाध्याय करते हुये निर्भय हो पृथ्वीपर विचरण करते थे। जरात्कारु ऋषि का नियम था कि वे जहां भी सायंकल हो जाता था वहीं ठहर जाते थे। एक दिन यात्रा करते हुये जरात्कारु ऋषि ने देखा कि कुछ पितर लोग एक खस के तिनके को पकड कर और नीचे की ओर मुंह करके एक गड्ढे में लटक रहे हैं। उस तिनके की जड को भी एक चूहा धीरे-धीरे कुतर रहा है। पितृगण निराहार और दुर्बल थे तथा दु:खी थे। जरात्कारु ऋषि ने उनके पास जाकर पूछा आप लोग कौन हैं और आप जिस तिनके का सहारा लेकर लटक रहे हैं उसे तो एक चूहा कुतरते जा रहा है तब आप लोग इस तरह लटके हुये नीचे की ओर गड्ढे में गिर पडेंगे। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ? मैं अपनी तपस्या के फल का चतुर्थांश या आधा भाग भी तपस्या का समर्पण करने को तैयार हूं। तब पितर लोग बोले ऋषिवर आप ब्रह्मचारी है और हमारी रक्षा भी करना चाहते हैं। हमारी विपत्ति तपस्या के बल पर नहीं टल सकती। वंश परम्परा के नाश के कारण हम इस घोर नरक में पड रहे हैं। हम सभी यायावर वंश के हैं। वंश परम्परा क्षीण होने से हम पुण्य लोकों में नीचे गिर गये है। हमारे वंश में अब एक ही व्यक्ति रह गया है वह भी नहीं के बराबर है। हमारे अभाग्य से वह तपस्वी हो गया है उसका नाम जरात्कारु है। वह वेद वेदांगों का विद्वान, पारखी तो है ही, संयमी, उदार और व्रतशील भी है। उसने तपस्या के लोभ से हमें संकट में डाल दिया है। उसके कोई भाई बन्धु अथवा पत्नी पुत्र कोई भी नहीं है। जिससे पितरों का श्राद्ध तर्पण हो सके। इसी कारण से हम उसके पितर होकर अतृप्त हो इस तरह इस गड्ढे में लटक रहे हैं। यदि वह आपको कहीं मिल जाये तो उससे कहना हे जरात्कारु तुम्हारे पितर नीचे की ओर मुंह करके गड्ढे में लटक रहे हैं और बहुत कष्ट पा रहे हैं। अत: तुम विवाह करके सन्तान उत्पन्न करो कारण कि हमें हमारे वंश में वहीं एक वंशधर बचा है। हमारी वंश परम्परा की आगे की जडे कटी हुई है। ये जडे काटनेवाला चूहा महाबली काल है। यह एक दिन उस जरात्कारु को भी नष्ट कर देगा तब हम सब लोगों की विपत्ति और बढ जायेगी। आप कौन हैं और हमारी सेवा क्यों करना चाहते हैं ? हमारे लिये आप इस तरह शोक कर हम पर अपनी तपस्या का फल देकर कृपा क्यों करना चाहते है ?

पितरों की बात सुनकर जरात्कारू को बडा शोक हुआ और वे अपने पितरों से बोले आप लोग ही मेरे पिता, पितामह और पितृगण है। मैं ही आप लोगों का अपराधी जरात्कारू हूं। आप लोग मुझे मेरे अपराधों के लिये जो दंड देना चाहे वे दें। तब पितरों ने कहा पुत्र यह हमारे लिये बडे सौभाग्य की बात है तुम संयोग से यहां आ गये हो पर यह बताओ तुमने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया? जरात्कारु बोले हे पितृगण मैंने चाहा मैं अखंड ब्रह्मचर्य का व्रत कर स्वर्ग प्राप्त करूं इसलिये मैंने विवाह न करने का दृढ़ निश्चय किया था। परन्तु अब आप लोगों को इस प्रकार लटकते देकर मैंने अपना यह निश्चय बदल लिया है। अब मैं आप लोगों के लिये नि:सन्देह विवाह करूंगा। यदि मुझे भिक्षा की तरह अपने ही नाम की कन्या मिल जाये और उसके भरण-पोषण का भी दायित्व मेरा नहीं होगा तो मैं उस कन्या से विवाह कर लूंगा। अब आप लोग चिन्ता न करें आपके कल्याण हेतु मुझसे पुत्र होगा जिससे आप लोग परलोक में सुखी रहेंगे।

जरात्कारू अपने पितरों से इस प्रकार कहकर पृथ्वीपर विचरने लगे। परन्तु उन्हे बूढा समझकर कोई अपनी कन्या अर्पण नहीं करता था। दूसरे उनकी शर्त के अनुरूप कोई कन्या मिलती भी नहीं थी। वे पितरों के हित साधने के लिये वन में बार बार इस तरह का उच्चारण करते फिरते मैं सबसे कन्या की याचना करता हूं। यहां जो भी चर अचर अथवा गुप्त रूप से प्रकट प्राणी हो

वो सभी सुन ले मैं अपने पितरों का दु:ख सन्ताप मिटाने के प्रयत्न में जिस कन्या का नाम मेरे नाम का हो, जो भिक्षा की तरह मुझे दी जाये और जिसके भरण-पोषण का भार मुझपर न हो वो मुझे ऐसी कन्या प्रदान करें। वासुकि नाग को जब यह मालूम पडा तो उन्होने अपनी बहिन जरात्कारू को ऋषि जरात्कारू को भिक्षा रूप में सौंप दी। जरात्कारू ऋषि ने वासुकि से पूछा इसका नाम क्या है और साथ ही यह भी कहा इसका भरण-पोषण मैं नहीं करूंगा।

वासुकि नाग बोले हे तपस्वी इस कन्या का नाम जरात्कारू है, यह मेरी बहिन है। इसका भरण-पोषण करने का दायित्व मेरा होगा। जरात्कारू ऋषि बोले ठीक है इसके अलावा यह कभी मेरा अप्रिय कार्य न करे नहीं तो मैं इसका त्याग कर दूंगा। जब नागराज वासुकि ने ऋषि जरात्कारू की सब शर्तें मान ली तब वे वासुकि के घर गये वहां विधिपूर्वक विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। जरात्कारु ऋषि अपनी पत्नी जरात्कारू नागकन्या के साथ वासुकि नाग के भवन में रहने लगे। नागकन्या जरात्कारू सावधानी से जरात्कारू ऋषि की सेवा सुश्रूषा करने लगी। समय पर उसे गर्भ रह गया और वह धीरे-धीरे बढने लगा।

एक दिन की बात है जरात्कारु ऋषि खिन्न मन से अपनी पत्नी की गोद में सिर रखकर सोये हुये थे। सूर्य भी अस्त होने जा रहा था। ऋषिपत्नि ने सोचा ऋषि को जगाना धर्म के अनुकूल होगा या नहीं। कहीं जगाने या न जगाने से तो मैं कहीं अपराधिनी नहीं बन जाऊं ? जगा देने पर ऋषि के कोप का भय है और न जगाने पर धर्म का लोप। अन्त में जरात्कारू ने यह निश्चय किया कि भले ही ऋषि भय करे पर धर्म का लोप न हो। ऋषि पत्नी ने बडी ही मधुरवाणी बोलकर ऋषि को उठा दिया और बोली सूर्यास्त हो रहा है, सन्ध्या का समय हो गया है। ऋषि जरात्कारू जाग उठे और क्रोधित हो बोले हे सर्पिणि तूने मेरा अपमान किया है इसलिये अब मैं तेरे पास नही रहूंगा। जहां से आया हूं वहीं चला जाऊंगा। यह निश्चय जानो जब तक मैं सोता रहता हूं तब तक सूर्य अस्त हो ही नहीं सकता है। मेरे लिये इस अपमान के स्थान पर रहना अच्छा नहीं है। तब ऋषि पत्नी जरात्कारू ने कहा महात्मन मैंने अपमान करने के लिये आपको नहीं जगाया है। मेरी दृष्टि में धर्म का लोप न हो इसलिये आपको जगाया था। जरात्कारु ऋषि बोले मैंने जो कह दिया सो कह दिया वह झूठ नहीं हो सकता। मेरे जाने के बाद तुम तुम्हारे भाई को बता देना कि मैं चला गया। मेरे जाने के बाद तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। ऋषि पत्नी जरात्कारू शोकग्रस्त हो आंखों में आंसू भर बोली मुझ निरपराध का त्याग मत कीजिये मैं धर्मपर अटल रह कर आपके प्रिय हित में संलग्न रहती हूं। मेरे भाई ने किसी प्रयोजन से आपके साथ मेरा विवाह किया था अभी वह पूरा नहीं हुआ है। हमारे जातिभाई बन्धु-बान्धव माता कद्रू के शाप से ग्रस्त हैं। आपसे एक सन्तान उत्पन्न होने की आवश्यकता है उसी से हमारी जाति का कल्याण होगा इसलिये आपका और मेरा संयोग विफल नहीं होना चाहिये। पत्नी की बात सुनकर जरात्कारू ऋषि बोले तुम्हारे पेट में अग्नि के समान तेजस्वी गर्भ है। वह बहुत बडा विद्वान और धर्मात्मा ऋषि होगा, यह कहकर जरात्कारु ऋषि तो चले गये।

ऋषि पत्नी जरात्कारू अपने भाई वासुकि के पास गई और सब हाल कह सुनाया तब यह अप्रिय घटना सुनकर वासुकि बोला बहिन जिस उद्देश्य से तुम्हारा विवाह उनके साथ किया था वह तो रह ही गया। यदि उनके द्वारा तुम्हारे गर्भ से कोई पुत्र हो जाता तो समस्त नाग जाति का कल्याण हो जाता। वह पुत्र अवश्य ही जनमेजय के सर्प यज्ञ से हमारी रक्षा करता तब ऋषि पत्नी जरात्कारू ने अपने भाई वासुकि को ढाढस बंधाते हुये कहा ऋषि ने जाते हुये मुझे बताया नागकन्ये अपने प्रयोजन सिद्धि के सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं करना। तुम्हारे गर्भ से अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसलिये अब आप किसी प्रकार का दु:ख मत करो। समय आनेपर वासुकि की बहिन जरात्कारू के गर्भ से एक दिव्य कुमार का जन्म हुआ। उसके जन्म से मातृवंश और पितृवंश दोनों का भय जाता रहा। कुमार के बडे होनेपर उसने च्यवन मुनि से वेदों का सांगोपांग अध्ययन किया। यह ब्रह्मचारी बालक बचपन से ही बडा बुद्धिमान और सात्विक था। जब वह गर्भ में था तभी जरात्कारू ऋषि ने उसके सम्बन्ध में अस्ति अर्थात है शब्द का उच्चारण किया था इसलिये उसका नाम आस्तिक हुआ। वह बालक नागराज वासुकि के घर में

रहकर बढने लगा और नागों को हर्षित करने लगा।

७) राजा परीक्षित की मृत्यु और जनमेजय का सर्प यज्ञ

उग्रश्रवा सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों को बताया कि जनमेजय के पिता राजा परीक्षित बडे ही धर्मनिष्ठ उदार प्रजा पालक थे। वे धर्मानुसार अपने कर्तव्य पालन में संलग्न हो चारों वर्णों की प्रजा की उदार प्रजा पालक थे। उन्होने धर्मानुसार अपने कर्तव्य पालन में संलग्न हो चारों वर्णों की प्रजा की रक्षा की। वे अद्वितीय पराक्रमी वीर थे और सारे भूमंडल की रक्षा करते थे। वे किसी से भी कोई प्रकार का द्वेषभाव नहीं रखते थे। वे सबके प्रति समभाव दृष्टि रखते थे। उनके राज्य में चारों वर्ण के लोग अपने अपने कर्म में लगे रहते थे। विधवा, अनाथ, अपाहिज, गरीब इन सबके भरण-पोषण का भार उनपर था। वे बडे ही श्रीमान और सत्यवादी गुणों वाले थे। उन्होने कुलगुरु कृपाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। श्रीकृष्ण का उनके पिता अभिमन्यु से बडा प्रेम था। कुरुवंश के परिक्षीण होते होते उनका जन्म हुआ इसलिये उनका नाम परीक्षित हुआ। वे राजधर्म और अर्थशास्त्र में बडे ही निपुण व कुशल थे। वे बुद्धिमान, धर्म सेवी, जितेन्द्रिय और नीति निपुण राजा थे। उन्होने साठ वर्ष तक प्रजा पालन किया। उनकी मृत्यु के पश्चात यह राज्य जनमेजय को प्राप्त हुआ। महाराज परीक्षित अपने दादा पांडु की भांति ही शिकार प्रेमी थे। एक दिन वे शिकार खेलने वन में गये हुये थे। वे एक हरिण को मारने उसके पीछे भाग रहे थे। वे अकेले ही पैदल चलते बहुत दूर तक वन में उसके पीछे भागे परन्तु उसको पा नहीं सके वे थक हार गये और उन्हे बडे जोरों से प्यास लगी। उन्होने पानी ढूंढते ढूंढते वे एक मुनि शमीक के आश्रय में आये। वे मौनी मुनि थे। परीक्षित ने उनसे जल मांगा पर शमीक मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया। भूख प्यास से पीडित राजा अत्यन्त क्रोधित हुये और मुनि को कुछ न बोलते देखकर यह समझकर यह मुनि तपस्या में लीन होने का ढोंग कर रहा है इसलिये उसके तिरस्कार हेतु पास ही में मरा पडा सर्प अपने धनुष की नौंक से उठाकर उस ऋषि के गले में डाल दिया। शमीक ऋषि ने राजा के इस कृत्य पर भला बुरा कुछ भी नहीं कहा और वे चुपचाप शान्त भाव से बैठे रहे। राजा अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आये।

वहीं पर पास ही में शमीक ऋषि के पुत्र श्रृंगी नदी किनारे अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। श्रृंगी ऋषि बडे ही तेजस्वी और प्रभावशाली पुत्र थे, उनके किसी मित्र ने उन्हे यह सूचना दी कि राजा परीक्षित ने उनके पिता के गले में मरा सांप डाल दिया है। श्रृंगी ऋषि ने अपने पिता के आश्रम में आकर यह देखा तो वे क्रोध से आग बबूला हो गये और पास ही नदी से हाथ में जल लेकर राजा परीक्षित को शाप दिया **जिस किसी ने मेरे निरपराध पिता के गले में यह मरा सांप डाला है उस दुष्ट को तक्षक नाग अपने विष से सातवें दिन डसकर मार डालेगा।** लोग मेरी तपस्या का बल देखें। इस प्रकार श्रृंगी ऋषि ने शाप देकर अपने पिता शमीक मुनि के पास जाकर सारी घटना कह सुनायी। शमीक मुनि यह सब सुनकर अपने पुत्र श्रृंगी से बोले पुत्र तुमने यह अच्छा नहीं किया। तथा अपने शिष्य गौरमुख को परीक्षित के पास यह सन्देश देकर भेजा कि राजन मेरे पुत्र ने आपके उस कृत्य के लिये आपको शाप दे दिया है। इसलिये आज के सातवें दिन तक्षक तुम्हे डसेगा आप इसका अपना उपाय कर लें।

सातवें दिन जब तक्षक राजा परीक्षित को डसने जा रहा था तब रास्ते में उसे काश्यप नामक ब्राह्मण मौरेना में मिले। तक्षक ने ब्राह्मण से पूछा आप किस ओर जा रहे हैं ? कश्यप ने कहा जहां आज राजा परीक्षित को तक्षक डसने जा रहा है मैं वहीं जा रहा हूं। मैं उन्हे तुरन्त जीवित कर दूंगा। मेरे वहां पहुंचने पर तो तक्षक उन्हे अपने विष से जला ही नहीं सकेगा। तब तक्षक बोला मैं ही तक्षक नाग हूं। मेरे डसने के बाद उस राजा को क्यों जीवित रखना चाहते हो ? मुनि अब आप मेरे इस प्रभाव को देखें। मेरे डसने के पश्चात आप उसे जीवित नहीं कर पायेंगे। यह कहकर तक्षक ने पास ही के एक वृक्ष को डस लिया। तक्षक के विष की प्रभाव से तत्क्षण वह वृक्ष जलकर खाक हो गया। कश्यप ब्राह्मण ने अपनी विद्या बल से मन्त्र अभिषिक्त जल छिडककर फिर से वृक्ष को हराभरा कर दिया। तब तक्षक ने ब्राह्मण को धन का प्रलोभन देकर कहा हे ब्राह्मण देवता तुम उस राजा को क्यों जीवित

करना चाहते हो। कश्यप ब्राह्मण बोला इससे मुझे राजा से बहुत सारा धन मिलेगा। तक्षक बोला जितना धन तुम चाहो मुझसे ले लो और यहीं से वापिस लौट जाओ। तक्षक के ऐसा कहने पर काश्यप ब्राह्मण मुंह मांगा धन लेकर उसी स्थान से वापिस लौट गया। फिर वहां से तक्षक छल करके परीक्षित के महल में प्रवेश कर राजा परीक्षित को डस लिया। राजा परीक्षित की मृत्यु हो गयी। तदनन्तर उनके पुत्र जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ।

अपने पिता की मृत्यु से जनमेजय को बडा दु:ख हुआ। वे दु:ख, शोक और क्रोध में भर गये और बोले जिस तक्षक के काटने से मेरे पिता की मृत्यु हुई है उस दुरात्मा तक्षक का बदला लेने का संकल्प करता हूं। अब राजा जनमेजय ने पुरोहित और ऋत्विजों को बुलाकर उनसे पूछा कि दुरात्मा तक्षक ने मेरे पिता की जिस प्रकार हत्या की है अब आप लोग कोई ऐसा उपाय बताये जिससे मैं उस क्रूर कर्मा सर्प को धधकती आग में जला डालूं। तब उन ऋत्विजों ने कहा राजन आप एक महायज्ञ का अनुष्ठान करें और हमें उस यज्ञ की विधि मालूम है। राजा जनमेजय ने उन ब्राह्मण पुरोहितों से कहा मैं वह यज्ञ अवश्य करूंगा आप उसे कराने की तैयारी करें। तब वेदज्ञ ब्राह्मणों ने शास्त्रविधिनुसार यज्ञ की तैयारी की और राजा जनमेजय यज्ञ के लिये दीक्षित हुये।

ऋत्विजों ने यज्ञ कराना आरम्भ किया। धूएं के कारण ऋत्विजों की आंखे लाल लाल हो गई। वे काले वस्त्र पहनकर मन्त्रोचारण कर हवन कर रहे थे। अब सभी सर्प तडफते, पुकारते, उछलते, लम्बी-लम्बी सांस लेते, पूंछ और फनों से एक-दूसरे में लिपटे आ आकर यज्ञ की आग में गिरने लगे। सभी तरह के सर्प सफेद, काले, नीले, पीले, बच्चे बूढे सर्प कोई योजन भर लम्बे तो कोई कोई गाय के कान बराबर लम्बे सर्प यज्ञकुंड में आहूति बनने लगे। उस सर्प यज्ञ में च्यवन वंशी चंड भार्गव होता, कौत्स मुनि उदगाता, जैमिनी ब्रह्मा तथा शार्ङगरव और पिंगल अर्ध्वयु थे। अपने पुत्रों और शिष्यों सहित ऋषि व्यास, उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु, असित, देवल और ऋषि वहां उपस्थित थे। नाम ले लेकर बडे बडे सर्पों की आहूति उस अग्निकुंड में दी जाने लगी। सर्पों के जलने से उनकी चर्बी और मेद से तीखी दुर्गन्ध चारों ओर फैल गयी तथा सर्पों की चिल्लाहट से आकाश गूंज उठा। यह सुन देखकर भयभीत हो तक्षक देवराज इन्द्र के पास गया और पूरा वृतान्त कह सुनाया कि देवराज मैं अपराधी हूं आपकी शरण में आया हूं। आप मेरी रक्षा करे तब इन्द्र ने उसे अभय दिया और बोले तुम्हें सर्प यज्ञ से कोई भय नहीं है। सर्प यज्ञ में बहुत से सर्प गिरकर जल कर मरने लगे तो वासुकि को बडा कष्ट हुआ उसने अपनी बहिन जरात्कारू से कहा देखो सभी सर्प इस यज्ञ में आहूति बन जलकर मर रहे हैं। मुझे लगता है मैं भी अप विवश होकर इस यज्ञ की धधकती अग्नि में जल जाऊंगा। सर्पों के मारने के उद्देश्य से ही जनमेजय ने यह यज्ञ किया है। ब्रह्मा ने कहा था तुम्हारा पुत्र आस्तीक इस सर्प यज्ञ को बन्द कराने में समर्थ होगा। वह बालक होनेपर भी श्रेष्ठ वेद वेत्ता और वृद्धों का माननीय है। तुम उससे कहकर हम लोगों की रक्षा करो। तब जरात्कारू ऋषि पत्नी ने नागों की सब बात अपने पुत्र आस्तीक से कही। आस्तीक ने माता की आज्ञा मानकर वासुकि से कहा नागराज आप मन में शान्ति धारण करें। मैं उस शाप से आप लोगों को मुक्त कर दूंगा। मैं राजा जनमेजय को अपनी शुभ वाणी से कहकर उसे प्रसन्न कर यह सर्प यज्ञ बन्द करा दूंगा। वह मेरी बात सुनकर यह यज्ञ बन्द कर देगा।

मामाजी मेरी बात पर विश्वास करें। वासुकि को इस प्रकार कहकर आस्तीक सर्पों को मुक्त करने जनमेजय की यज्ञशाला की ओर चल पडे। आस्तीक यज्ञ मंडप में जाकर यजमान जनमेजय, ऋत्विज, सभी सभासदों तथा अग्नि की स्तुति करने लगे। आस्तीक द्वारा की गई स्तुति प्रार्थना से सभी अति प्रसन्न हुये तब जनमेजय बोले यद्यपि ये मुनि बालक है फिर भी बातें अनुभवी वृद्धों के समान कर रहा है। मैं इससे प्रसन्न हो इसे वर देना चाहता हूं।

जनमेजय ने अपने यज्ञ के ऋत्विजों से कहा तक्षक अभी तक नहीं आया मेरा यज्ञ कर्म समाप्त हो और तक्षक यहाँ आजाये यहीं तो मेरा यज्ञ का उद्देश्य है। ऋत्विजों ने कहा अग्निदेव कह रहे हैं कि भयभीत होकर इन्द्र की शरण में गया है और इन्द्र ने उसे अभय दे दिया है। तब जनमेजय दु:खी होकर बोले आप लोगे कोई ऐसे मन्त्र का उच्चारण करें कि इन्द्र के साथ तक्षक भी

आकर इस यज्ञकुंड की अग्नि में भस्म हो जाये। जनमेजय की बात सुनकर होता ने तक्षक के नाम की आहूति दी। उसी समय आकाश से इन्द्र और तक्षक इन्द्रासन सहित अग्निकुंड के समीप जाने लगे। तब वहां बैठे ऋत्विजों ने कहा आप जैसा चाह रहे है राजन वैसा हो रहा है पर आपने अभी तक आस्तीक मुनि को वर नहीं दिया। यज्ञ दीक्षित यजमान ने जो कुछ किसी से कहा है वह यज्ञ समाप्ति के पहिले उसे दें। तब जनमेजय आस्तिक मुनि से बोले ब्राह्मणकुमार मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम जैसे सत्पात्र को तुम जो चाहो वर मांग लो। आस्तीक ने यह देखकर की तक्षक अग्निकुंड में गिरनेवाला ही है अवसर से लाभ उठाकर बोला राजन मुझे यह वर दें कि इसी समय से आपका यह यज्ञ बन्द हो जाये और इसमें गिरते हुये सर्प बच जायें।

आस्तीक की इस बात पर अप्रसन्न हो जनमेजय बोले समर्थ ब्राह्मण तुम मुझसे सोना, चांदी, जवाहरात, धन, गौ दूसरी वस्तुयें इच्छानुसार मांग लो पर यह यज्ञ बन्द कराने का वर मत मांगो। आस्तीक ने कहा राजन मुझे सोना, चांदी, धन, गौ अथवा कोई भी वस्तु की चाहत नहीं है। ब्रह्मा की बनायी हुई इस सृष्टि में नाग और सर्प जाति का विध्वंस श्रेयस्कर नहीं है। इनकी भी सृष्टि को आवश्यकता है इसलिये इस जाति का लोप न होने पाये तथा अपने मातृकुल के कल्याण के लिये भी मैं आपके इस यज्ञ को बन्द कराने का अनुरोध करता हूं। जनमेजय ने बार बार अपनी ही बात दुहरायी परन्तु आस्तीक मुनि ने दूसरा कोई वर मांगना स्वीकार नहीं किया। तब सभी वैदज्ञ ऋत्वेज ब्राह्मणों ने जनमेजय से कहा यह ब्राह्मणकुमार जो कुछ मांगता है वह उसे मिलना चाहिये। तब ऋत्विजों के आग्रह से जनमेजय ने कहा आस्तीक की इच्छा पूर्ण हो और अब यह यज्ञ समाप्त करो। जनमेजय की यह बात सुनकर सभी आस्तीक सहित प्रसन्न हुये। जनमेजय ने सभी ऋत्विजों को बहुत सा धन दान दिया। जनमेजय ने यज्ञान्त अवभृत स्नान कर आस्तीक मुनि का खूब आदर सत्कार किया और उन्हे सब प्रकार से प्रसन्न कर विदा किया तथा आस्तीक मुनि से बोले अब आप मेरे अश्वमेघ यज्ञ में अवश्य पधारियेगा।

आस्तीक ने प्रसन्नता से तथास्तु कह अपने मामा वासुकि के पास आये और अपनी माता जरात्कारू तथा सभी सर्पों और नागों को यह वृतान्त सुनाया। सभी सर्प और नाग सुनकर बडे प्रसन्न हुये। वासुकि आस्तीक से बोले बेटा तुमने हम लोगों की जाति की रक्षा की हम प्रसन्न हो तुम्हें वर देते है। तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर मांग लो। तुमने हमें मौत के मुंह से निकाला है। तब आस्तीक मुनि बोले मैं आप लोगों से यह वर मांगता हूं कि जो कोई भी सायंकाल और प्रात:काल इस धर्ममय आख्यान का पठन, श्रवण करेगा उसे सर्पों और नागों से किसी प्रकार का भय न हो। यह सुनकर सभी सर्प बहुत प्रसन्न हुये और बोले तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा। धार्मिक शिरोमणि आस्तीक ऋषि ने इस प्रकार सर्प यज्ञ से सर्पों का उद्धार किया। शरीर का प्रारब्ध पूरा होनेपर पुत्र पौत्रादि सबको छोडकर आस्तीक स्वर्ग चले गये।

स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल बनाना, जीवन जीने की एक कला है।

क्रोध का कारण साधारण होता है, मगर परिणाम असाधारण होता है।

अगर मनुष्य अपनी आँखे बन्द कर लेगा तो, अन्धकार के सिवाय कुछ भी नहीं दिखेगा।

* * * * *

आदि पर्व

१) श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे
वैशम्पायनजीका कथा प्रारम्भ करना ४६

२) कुरुवंश की उत्पत्ति व धर्मक्षेत्र,
कुरुक्षेत्र की महिमा ४६

३) चन्द्रवंश और राजा ययाति की वृतान्त ४७

४) भरत-पुरु-कुरु वंश का वर्णन ५५

५) दुष्यन्त और शकुन्तला चरित्र ५७

६) कुरु वंश महाराज शान्तनु और गंगा ६३

७) युवराज देवव्रत ७३

८) शान्तनु और सत्यवती ८०

९) देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा ९५

१०) शान्तनु का राजदरबार १०५

११) सत्यवती और शान्तनु का दाम्पत्य जीवन १०७

१२) कृपाचार्य की कुलगुरु पद पर नियुक्ति ११३

१३) विचित्रांगद और विचित्रवीर्य की उत्पत्ति ११४

१४) महाराजा शान्तनु की मनोदशा ११६

१५) शान्तनु की मृत्यु १२३

१६) चित्रांगद का सम्राट पद पर राज्याभिषेक १२६

१७) विचित्रांगद को वीरगति प्राप्त व
माता सत्यवती का भीष्म को बुलाना १२८
१८) काशी नरेश की अपनी तीन कन्याओं का स्वयंवर
(अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका) १३२
१९) अम्बा का भीष्म को श्राप व विचित्रवीर्य की मृत्यु १३६
२०) सत्यवती का अतीत और वेदव्यास की उत्पत्ति १४९
२१) नियोग से धृतराष्ट्र, पान्डु व विदुर का जन्म १५९
२२) यमराज (धर्मराज) को मांडव्य ऋषि का श्राप १६७
२३) पांडु को हस्तिनापुर राज्य का राज्याभिषेक १६७
२४) पांडु की दिग्विजय और धृतराष्ट्र आदि का विवाह १७१
२५) धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जन्म १८२
२६) पांडु का दिग्विजय कर हस्तिनापुर लौटना १८३
२७) पान्डु का कुन्ती और माद्री के साथ वन विहार और
किन्दम ऋषि का श्राप १८७
२८) कुन्ती का अतीत, कर्ण की उत्पत्ति १९९
२९) पांडवों की उत्पत्ति और पांडु का परलोक गमन २०५
३०) सत्यवती का तपोवनगमन के लिये प्रस्थान २१५
३१) पांडु पुत्रों व धृतराष्ट्र पुत्रों का बाल्यकाल २१८
३२) दुर्योधन का भीम को भोजन में विष पान कराना २३६
३३) द्रोणाचार्य का वृतान्त और अश्वत्थामा का जन्म २५०

३४) द्रोणाचार्य का हस्तिनापुर में आगमन और
कौरवों के गुरु होना २५१
३५) कौरव राजकुमारों की शिक्षा और परीक्षा २६५
३६) एक लव्य की गुरु भक्ति २७६
३७) कर्ण का परशुराम जी से शस्त्र विद्या ग्रहण करना २७९
३८) राजकुमारों के अस्त्र कौशल का रंगशाला में प्रदर्शन २९०
३९) दुर्योधन द्वारा कर्ण को अंग देश का राजा बनाना २९९
४०) पांचाल नरेश द्रुपद का पराभव ३११
४१) युधिष्ठिर का युवराज पद पर अभिषेक ३१६
४२) पांडवों की दिग्विजय यात्रा ३३३
४३) रूक्मिणि विवाह ३४३
४४) पांडवों की दिग्विजय ३४४
४५) धृतराष्ट्र की चिन्ता और कर्णिक की कूटनीति की मन्त्रणा ३४६
४६) पांडवों को वारणावत जाने का आदेश ३५०
४७) वारणावत में लाक्षागृह का षडयन्त्र और विदुर का गुप्त सन्देश ३६०
४८) वारणावत में पांडवों का लाक्षागृह में रहना और
आग लगाकर भाग निकलना ३६९
४९) पांडवों की मृत्यु पर धृतराष्ट्र और भीष्म का शोक ३७८
५०) हिडिम्बासुर का वध ३८४
५१) हिडिम्बा का भीम से विवाह और घटोत्कच की उत्पत्ति ३८८
५२) एक चक्र नगरी में पांडव और ब्राह्मण परिवार पर दया ३९१

५३) बकासुर का वध ३९६
५४) द्रौपदी का जन्म प्रसंग ३९९
५५) पांडवों की पांचाल यात्रा और चित्ररथ गन्धर्व की पराजय ४०३
५६) ब्रह्म तेज की महिमा ४०८
५७) कल्माषपाद की कथा ४०९
५८) पांडवों का धौम्य मुनि को पुरोहित बना वरण करना ४१०
५९) द्रौपदी स्वयंवर ४१०
६०) द्रौपदी का पांचो पांडवों से विवाह ४२२
६१) पांडवों का काम्पिल्य से हस्तिनापुर लौटना ४४४
६२) पांडुओं का द्रौपदीसहित हस्तिनापुर लौटना ४५९
६३) हस्तिनापुर का बंटवारा और
पांडवों का खांडव प्रस्थ को प्रस्थान ४६६
६४) युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ पर राज्याभिषेक ४८०
६५) खांडव वन को इन्द्रप्रस्थ बनाकर
पांडवों की अपने राज्य की स्थापना ४८३
६६) द्रौपदी का दाम्पत्य जीवन, नियम और
नारद का इन्द्रप्रस्थ में आगमन ४९१
६७) अर्जुन का बनवास और
उलूपी तथा चित्रांगदा के साथ विवाह ४९६
६८) अर्जुन का सुभद्रा हरण ५०५
६९) खांडव वन का दाह ५२७

१) श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनजीका कथा प्रारम्भ करना

शौनकजीने कहा- सूतनन्दन। महाभारतकी कथा बड़ी ही पवित्र है। इसमें पाण्डवोंका यश गाया गया है। सर्प-सत्रके अन्तमें जनमेजय की प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायनने वैशम्पायनजीको यह आज्ञा दी थी कि तुम वह कथा इन्हें सुनाओ अब मैं वही कथा सुनाना चाहता हूँ। वह कथा भगवान् व्यासके मन:सागरसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वरत्नमयी है।

उग्रश्रवाजीने कहा- शौनकजी। भगवान् वेदव्यासके द्वारा निर्मित महाभारत आख्यान मैं आपको प्रारम्भसे ही सुनाऊँगा। उसका वर्णन करनेमें मुझे भी बड़ा आनन्द होता है। जब भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनको यह बात बालूम हुई कि जनमेजय सर्प-यज्ञमें दीक्षित हो गये हैं, तब वे वहाँ आये। भगवान् व्यासका जन्म शक्ति-पुत्र पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाकी रेतीमें हुआ था। वे ही पाण्डवोंके पितामह थे। वे जन्मते ही स्वेच्छासे बड़े हो गये और उन्होने साङ्गोपाङ्ग वेद तथा इतिहासोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसे कोई तपस्या, वेदाध्ययन, व्रत, उपवास, स्वाभाविक शक्ति और विचारसे नहीं प्राप्त कर सकता। उन्होंने ही एक वेदको चार भागोंमें विभक्त कर दिया। वे महान् ब्रह्मर्षि, त्रिकालदर्शी, सत्यव्रत, परम पवित्र एवं सगुण-निर्गुण स्वरूपके तत्वज्ञ थे। उन्हींके कृपा-प्रसादसे पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरका जन्म हुआ था।

वैशम्पायनजीने कहा- मैं संकल्प, विचार और समाधिके द्वारा गुरुदेवको नमस्कार करता हूँ तथा सभी ब्राह्मण और विद्वानोंका सम्मान करके परम ज्ञानी भगवान् व्यासका मत सुनाता हूँ। भगवान् व्यासके द्वारा निर्मित यह इतिहास बड़ा ही पवित्र और विस्तृत है। उन्होंने पुण्यात्मा पाण्डवोंकी यह कथा एक लाख श्लोकोंमें कहीं है। इसके वक्ता और श्रोता ब्रह्मलोकमें जाकर देवताओंके समकक्ष हो जाते हैं। यह पवित्र और उत्तम पुराण वेद-तुल्य है, सुननेयोग्य कथाओंमें सर्वोत्तम है और बड़े-बड़े ऋषियोंने इसकी प्रशंसा की है। इस इतिहास-ग्रन्थमें अर्थ और कामकी प्राप्तिके धर्मानुकूल उपाय बतलाये गये हैं तथा इससे मोक्षतत्त्वको पहचाननेवाली बुद्धि भी प्राप्त हो जाती है। इसके श्रवण, कीर्तनसे मनुष्य सारे पापोंसे छूट जाता है। इस इतिहासका नाम जय है। संसारपर परम विजय अर्थात् कल्याण प्राप्त करनेके इच्छुकोंको इसका श्रवण करना चाहिये। यह धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्र सब कुछ है। जो इसका श्रवण-वर्णन करते हैं, उनके पुत्र सेवक और सेवक स्वामिभक्त हो जाते हैं। जो इसका श्रवण करते हैं उनके वाचिक, मानसिक और शारीरिक पाप नष्ट हो जाते हैं। इसमें भरतवंशियोंके महान् जन्मका कीर्तन है, इसलिये इसको महाभारत कहते हैं। जो इस नामका व्युत्पत्तियुक्त अर्थ जानता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन प्रतिदिन प्रात:काल उठकर स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त हो इसकी रचना करते थे, इस प्रकार तीन वर्षमें यह पूरा हुआ था। इसलिये ब्राह्मणोंको भी नियममें स्थित होकर ही इस कथाका श्रवण-वर्णन करना चाहिये। जैसे समुद्र और सुमेरु रत्नोंकी खान हैं, वैसे ही यह ग्रन्थ कथाओंका मूल उद्गम है। इसके दानसे सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो बात इस ग्रन्थमें है, वही सर्वत्र है। जो इसमें नहीं है, वह और कहीं नहीं है।

२) कुरुवंश की उत्पत्ति व धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र की महिमा

वैशम्पायन जनमेजय से बोले जनमेजय तपती के कारण पान्डु पुत्र तपती नन्दन के नाम से भी सम्बोधित होते थे। आकाश में सर्वश्रेष्ठ ज्योति है भगवान सूर्य और इनकी प्रभा सभी लोकों में व्याप्त है। इनकी एक पुत्री का नाम था तपती वह भी सूर्य समान ज्योतिर्मयी थी। वह सावित्री की छोटी बहिन थी। अपनी तपस्या के कारण तीनों लोकों में तपती नाम से विख्यात हुई। वैसी रूपवती कन्या देवता, असुर, अप्सरा, यक्ष आदि किसी में भी नहीं थी। उन दिनों उनके समान योग्य कोई भी पुरुष नहीं था। जिसके साथ भगवान सूर्य उसका विवाह करे। इसलिये सूर्य सदा इसके विवाह के लिये चिंतित रहते थे।

उन्ही दिनों पुरु वंश के राजा ऋक्ष के पुत्र संवरण बडे ही बलवान एवं सूर्य भक्त थे। वे प्रतिदिन सूर्य की पूजा उपासना किया करते थे। सूर्य के मन में उनकी नियम, उपवास, तपस्या से सन्तुष्ट होकर यह बात आने लगी कि ये मेरी पुत्री के लिये उपयुक्त

वर होगा। संवरण पृथ्वी में बडे ही पूज्य और कीर्तिवान थे।

एक दिन संवरण घोडे पर सवार होकर पर्वत की तराइयों और जंगल में शिकार खेलने गये। भूख-प्यास से व्याकुल होकर राजा जंगल में विचर रहे थे, उस समय उनकी दृष्टि एक सुन्दर कन्या पर पडी। वे उसके रूप पर मोहित हो गये। उन्हे ऐसा लग रहा था कि मानो सूर्य की प्रभा ही पृथ्वी पर उतर आयी हो वे उसे एक टक देखने लगे और मन ही मन सोचने लगे कि ऐसा सुन्दर रूप तो मैंने जीवन में पहली बार देखा है। राजा की आंखे और मन उसमें गड गये। वे अपने आप में इस तरह खो गये कि सब कुछ भूलकर जैसे संज्ञाहीन हो गये। वे इसी धुन में रह गये कि ब्रह्मा ने पूरी त्रिलोकी के रूप सौन्दर्य को इस मधुर मूर्ति में ही जैसे भर दिया हो। उन्होने उस कन्या के पास जाकर कहा सुन्दरी तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो, तुम्हारा क्या नाम है ? और इस निर्जन वन में अकेली क्यों विचर रही हो ? तुम्हारे इस शरीर की अपुनम छवि से सब कुछ आलोकित हो रहा है, चमक रहा है। पुरी त्रिलोकी में तुम्हारे समान कोई अन्य सुन्दरी नहीं होगी। तुम्हारे लिये मेरा मन अत्यन्त चंचल और लालायित हो रहा है। तब तपती राजा संवरण से अपनी मधुरवाणी में बोली राजन आप जैसे सत्पुरुष को इस तरह व्याकुल नहीं होना चाहिये। तब संवरण बोले सुन्दरी अब मेरा जीवन और प्राण तुम्हारे हाथ में है। मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। तुम मेरे साथ गान्धर्व विवाह कर मुझे स्वीकार करो। मुझे जीवन दान दो तब तपती ने कहा राजन मैं स्वयं अपने विषय में स्वतन्त्र नहीं हूं। यदि आप वास्तव में मुझसे प्रेम करने लगे हैं चाहने लगे हैं तो मेरे पिता से इस बारे में बात करें। आप जैसे कुलीन, भक्त वत्सल और विश्व विश्रुत राजा को पतिरूप से स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप नम्रता, नियम और तपस्या के द्वारा मेरे पिता को प्रसन्न कर मुझे मांग लीजिये। मैं भगवान सूर्य की पुत्री और विश्ववन्द्या सावित्री की छोटी बहिन हूं।

अब संवरण भगवान सूर्य की कठिन आराधना करने लगे। महर्षि वशिष्ठ अपने इस यजमान से प्रसन्न होकर सूर्य के पास तपती की याचना के लिये गये। महर्षि वशिष्ठ ने प्रणामपूर्वक सूर्य से कहां भगवान मैं राजा संवरण के लिये आपकी पुत्री तपती की याचना करने आपके पास आया हूं। आप उनके उज्ज्वल यश, धार्मिकता व नीतिज्ञता से तो भली भांति परिचित है। भगवान सूर्य ने महर्षि वशिष्ठ की प्रार्थना सुनकर उन्ही के साथ सर्वांगसुन्दरी पुत्री को संवरण के लिये भेज दी। इस प्रकार भगवान सूर्य की आराधना और अपने पुरोहित वशिष्ठ की शक्ति से राजा संवरण ने तपती से विधिपूर्वक विवाह किया। संवरण राज दम्पति ने सहस्त्रों वर्षतक सुख भोग किया। यही सूर्य कन्या तपती पूर्व पुरुष राजा संवरण की पत्नी तथा इसी के गर्भ से राजा कुरु का जन्म हुआ जिससे पुरु वंश कुरुवंश जाना गया। जिस क्षेत्र में महाराज कुरु ने तपस्या की थी वह क्षेत्र धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र नाम से जाना गया और कौरव भी तपतीनन्दन से सम्बोधित होने लगे।

३) चन्द्रवंश और राजा ययाति की वृतान्त

वैशम्पायन कहते है जनमेजय ब्रह्मा से उत्पन्न दक्ष प्रजापति ही प्राचेतस दक्ष कहलाये। उन्होने ही सारी प्रजा को उत्पन्न किया। उन्होने अपनी पत्नी वीरणी से एक हजार पुत्र उत्पन्न किये जिन्हें नारद ऋषि ने मोक्ष ज्ञान का उपदेश कर विरक्त बना दिया। उनके ५० कन्यायें हुई उसमें से १३ तो उन्होने कश्यप को दी कश्यप की पत्नी अदिति से इन्द्र और विवस्वान इत्यादि पुत्र हुये। विवस्वान के ज्येष्ठ पुत्र मनु और सबसे छोटे यमराज हुये। मनु बडे ही धर्मात्मा हुये और उन्ही से मानव जाति की उत्पत्ति हुई और पूरा सूर्य वंश मनुवंश के नाम से हुआ। सभी वर्ण के लोग मानव कहलाते हैं। मनु के दस पुत्र हुये वेन, घृष्णु, नरिष्यन्त, माभाग, इक्ष्वाकु, कारुष, शर्याति, इला कन्या, पृषघ्र और नाभागारिष्ट। मनु के अन्य ५० पुत्र थे वे आपस के द्वेष कलह से विनष्ट हो गये। इला से पुरुरवा पुत्र उत्पन्न हुआ। इला पुरुरवा की माता और पिता दोनों भी थे। पुरुरवापृथ्वी पर १३ द्वीपों का शासक हुआ था। अपने बल शक्ति से उसने ब्राह्मणों का बहुत सा धन, रत्न छीन लिये। सनत कुमारों ने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं माना। ऋषियों ने क्रोधित होकर उसे शाप दे दिया जिससे उसका विनष्ट हो गया। पुरुरवा स्वर्ग से तीन

प्रकार की अग्नि और उर्वशी अप्सरा को ले आया था। उर्वशी के गर्भ से आयु, धीमान, अम्रावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु नाम के ६ पुत्र हुये। आयु की पत्नी स्वर्भानिवी के गर्भ से ५ पुत्र हुये नहुष, वृद्धशर्मा, रजि गय और अनेना। आयु के पुत्र नहुष बडे ही कुशल और वीर थे। धर्मानुसार उन्होने अपने राज्य का शासन किया। उनके राज्य में सभी सुखी थे और चोर लूटेरों का भी भय नहीं था। पर अभिमानवश उन्होने ब्राह्मणों और ऋषियों से अपनी पालकी उठवाई और कहा इसे इन्द्राणी शचि के पास अति शीघ्र सर्प सर्प कहकर ले चलो। ऋषियों में दुर्वासा ने इसे श्राप दे दिया कि जा तू सर्प बन जा और नहुष सर्प योनि में चले गये। नहुष अपने बल विक्रम से देवताओं को भी पराजित कर इन्द्र पद पर आसीन हुये थे। नहुष के ६ पुत्र हुये यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव। यति योग साधना करके ब्रह्मलीन हो गये इसलिये नहुष के दूसरे पुत्र ययाति ही राजा हुये। उन्होने बहुत से यज्ञ याज्ञ किये तथा देवताओं और पितरों को उपासना से प्रसन्न कर प्रजा का पालन किया। उनकी दो पत्नियां थी देवयानी दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पुत्री और शमिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री। देवयानी से दो पुत्र हुये यदु और तुर्वसु तथा शमिष्ठा से तीन पुत्र हुये द्रुहु, अनु और पुरु। जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा मुझे ब्राह्मण ऋषि शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से ययाति ने कैसे विवाह किया यह वृतान्त बतायें। तब वैशम्पायनजी ने जनमेजय से कहा सुनो एक बार त्रिलोकी पर विजय पाने के लिये देवासुर संग्राम हुआ। उस समय देवताओं ने अपनी विजय के लिये अंगीरस पुत्र बृहस्पति को और असुरों ने भार्गव पुत्र शुक्राचार्य को अपना पुरोहित स्वीकार किया। इन दोनों ऋषियों में परस्पर बडी ही प्रतिस्पर्धा थी। जब देवताओं ने संग्राम में असुरों को मार डाला तब शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से फिर से जीवित कर दिया पर देव गुरु बृहस्पति को यह विद्या नहीं आती थी। इसलिये वे मरे हुये देवों को जीवित नहीं कर पाते थे। इससे देवताओं को बडा दुःख हुआ। तब देवताओं ने बृहस्पति पुत्र कच के पास जाकर प्रार्थना की शुक्राचार्य के पास जाकर संजीवनी विद्या प्राप्त करें इसके लिये हम लोग यज्ञ में आपको भी भाग देंगे। शुक्राचार्य दैत्यराज वृषपर्वा के साथ रहते थे। देवताओं की प्रार्थना सुनकर कच शुक्राचार्य के पास गया और अपना परिचय देकर उनसे निवेदन किया कि आप मुझे शिष्य रूप में ग्रहण करे शुक्राचार्य ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और कहा तुम्हारा स्वागत है और मैं समझता हूं कि यह बृहस्पति का ही स्वागत है।

कच ने शुक्राचार्य के आदेशानुसार १००० वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। वह अपने गुरुदेव व गुरुपुत्री देवयानी को भी प्रसन्न रखता था। जब दानवों, दैत्यों को यह बात मालूम हुई कि देवगुरु बृहस्पति का पुत्र उनके गुरु शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीख रहा है तो उन्होने द्वेष से कच को मार डाला और उसके टुकडे टुकडे कर भेडियों को खिला दिया। देवयानी मन ही मन कच को चाहने लगी। देवयानी ने जब देखा कच अभी तक नहीं आया है तब उसने अपने पिता शुक्राचार्य से कहा आपने अग्निहोत्र कर लिया, सूर्यास्त हो चुका किन्तु कच अभी तक गौचारण करके नहीं लौटा है। लगता है किसी ने उसको मार डाला हो ? अपनी आतुरता दिखा कर वह बोली उसका पता लगायें। तब शुक्राचार्य ने कहा तू इतनी चिंतित किसलिये हो रही है ? शुक्राचार्य ने ध्यान लगाकर देखा और पूरा वृतान्त जान लिया। तब शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से कच का आह्वान किया आओ बेटा कच। कच का एक एक अंग भेडियों का पेट फाडकर बाहर निकल आया और शुक्राचार्य ने उसे जोडकर जीवित कर दिया। कच ने देवयानी को यह पूरा वृतान्त सुनाया। फिर असुरों ने अगली बार एक अलग युक्ति की। उन्होने कच को काट काटकर अग्नि में जला दिया तथा उसकी शरीर की राख को वारुणी में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने फिर अपने पिताजी से असुरों के इस कृत्य की शिकायत की तब शुक्राचार्य बोले ये असुर उसे बार बार मार डालते हैं। देवयानी के हठ करने पर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या के प्रभाव से कच को फिर पुकारा तब कच ने भयभीत होकर पेट के भीतर से ही अपनी स्थिति प्रकट की तब शुक्राचार्य ने कहा पुत्र देवयानी तुमसे प्रसन्न है। तुम मेरी संजीवनी विद्या ग्रहण करो और मेरा पेट फाडकर निकल आओ और इसी विद्या से मुझे जीवित कर देना। कच ने वैसा ही किया। कच बोला मैं आपका कृतज्ञ हूं। जो वेद स्वरूप उत्तम

ज्ञानदाता गुरु का आदर नहीं करता वह कलंकित होकर नरकगामी होता है। आपने मेरे जीवन की रक्षा की है इसलिये आप मेरे माता-पिता समान है। शुक्राचार्य को भी मन में बडा क्षोभ हुआ कि शराब पीने से मेरे विवेक का ही नाश हो गया और मैं ब्राह्मण कुमार कच को ही वारुणी के साथ पी गया। तब शुक्राचार्य ने ब्राह्मणों और ऋषियों के लिये यह धर्म मर्यादा निश्चित कर घोषणा करी कि **आज से कोई ब्राह्मण मद्यपान करेगा तो वह धर्म भ्रष्ट माना जायेगा और उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा। इस लोक में तो वह कलंकित और निंदित होगा ही, उसका परलोक भी बिगड जायेगा।** कच ने सहस्त्र वर्ष तक संजीवनी विद्या प्राप्त की तब शुक्राचार्य ने उन्हे स्वर्ग लौटने की आज्ञा दी।

जब कच वहां से लौटने लगा तब देवयानी ने कच से कहा ऋषिकुमार तुम सदाचार, कुलीनता, विद्या, तपस्या और इन्द्रियजीत हो, आदर्श व्यक्ति हो। अब तुम स्नातक हो चुके हो। मैं मन ही मन तुम्हें चाहती हूं और तुमसे प्रेम करती हूं, मैं तुम्हारी दासी हूं। अब विधिपूर्वक तुम मेरे साथ विवाह करो। तब कच ने कहा तुम गुरु पुत्री हो और मैं शिष्य हूं। मैंने तो तुम्हे सदा ही बहिन ही माना है इसलिये यह असम्भव है। तुम मेरे लिये पूजनीया हो। मैं तुम्हारे स्नेहपूर्ण वात्सल्य की छाया में रहा मुझे अब घर लौट जाने की अनुमति और आशीर्वाद दो। कभी भी पवित्र भाव से मेरा स्मरण करते रहना। तब देवयानी बोली मैंने तुमसे प्रेम भिक्षा मांगी है और यदि तुम धर्म और काम की सिद्धि के लिये मुझे अस्वीकार कर दोगे तो तुम्हारी प्राप्त की हुई संजीवनी विद्या नष्ट हो जायेगी। इस तरह यह विद्या नष्ट हो जाने का शाप देवयानी ने कच को दिया।

तब कच बोला मैंने तो ऋषि धर्म के अनुसार ही बात कही है और मैं इस शाप के योग्य भी नहीं हूं अब मैं भी तुम्हे शाप देता हूं कि **जाओ तुम्हारी कामना कभी पूर्ण नहीं होगी। कोई भी ब्राह्मण कुमार तुमसे पाणिग्रहण नहीं करेगा।** मेरी विद्या सिद्ध नहीं होगी कोई बात नही पर मैं जिसे सिखाऊंगा उसकी विद्या अवश्य सफल होगी क्योंकि तुम्हारी मांग मुझसे अनुचित है और ऐसा कहकर कच तो स्वर्ग को लौट गया। देवताओं ने कच को यज्ञ का भाग देना स्वीकार किया और यशस्वी होने का वर दिया।

वैशम्पायन जनमेजय से कह रहे हैं कि कच संजीवनी विद्या सीख कर आया इससे देवताओं को बडी प्रसन्नता हुई। देवताओं ने कच से वह विद्या सीख ली। अब देवताओं ने इन्द्र से आग्रह कर दैत्यों पर आक्रमण कर दिया।

एक बार एक बन में बहुत सी स्त्रियां इकट्ठी हो रही थी। वहां पर कुछ कन्यायें एक जल सरोवर में जल क्रीडायें कर रही थी। वहीं किनारे पर उन कन्याओं के वस्त्र रखे हुये थे वे हवा के झौंके से आपस में उडकर मिल गये। कन्यायें जब स्नान कर बाहर निकली तो असुर वृषपर्वा की पुत्री शमिष्ठा ने भूल से गुरु पुत्री देवयानी के वस्त्र पहन लिये। देवयानी और शमिष्ठा में आपस में गहरी मैत्री थी। शमिष्ठा को मालूम नहीं था कि वस्त्र एक दूसरे के आपस में मिल गये है और बदल गये हैं। बस इसी बात को लेकर दोनों में परस्पर कलह शुरू हो गया। देवयानी कहने लगी एक तो तू असुर कन्या है फिर तूने मेरे वस्त्र पहनने की जुरत कैसे की। तू तो आचार भ्रष्ट है, हम ब्राह्मण है। शमिष्ठा बोली वाह रे वाह अपने को बढी श्रेष्ठ समझती है पर तेरे पिता तो मेरे पिता के सेवक है जो उनकी आज्ञानुसार चलते हैं। दिनभर मेरे पिता की स्तुति करते हैं और तेरा इतना अहंकार तब देवयानी यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गई। दुर्बुद्धि शमिष्ठा ने गुस्से में आकर उसे समीप ही एक कुएं में ढकेल दिया और उसे मरी जानकर अपने नगर में लौट गई।

उसी समय राजा ययाति शिकार कर थककर अपनी प्यास बुझाने के लिये उस कुएंपर पहुंचे उन्होने कुएं में झांका और देखा एक कन्या कुएं में गिरी हुई है। तब राजा ययाति ने पूछा सुन्दरी तुम कौन हो और कुएं में कैसी गिरी हो देवयानी ने उत्तर दिय मैं महर्षि शुक्राचार्य की पुत्री हूं। अब कृपया कर आप मुझे बाहर निकालें आप एक कुलीन, शान्त स्वभाववाले बलशाली और महान पुरुष हो आपके लिये यह उचित कर्तव्य होगा। राजा ययाति ने उसे ब्राह्मण कन्या जान उसका दाहिना हाथ पकडकर कुये से बाहर निकाला। देवयानी अपने नगर में आकर व्याकुल होकर अपने पितासे कहने लगी अब आप वृषपर्वा के पास नहीं जाये और देवयानी से पूरा वृत्तान्त सुना तब वे अपनी पुत्री देवयानी से बोले बेटी सभी को अपने कर्मों का एक न एक दिन अपने कर्मों

के फलस्वरूप सुख-दु:ख भोगना पडता है। लगता है कि तुमने भी कभी कोई अनुचित कर्म किया हो जिसका यह प्रायश्चित हो तब देवयानी बोली यह प्रायश्चित हो या न हो पर वृषपर्वा पुत्री शमिष्ठा आंखे लाल लाल करके बडे ही रूखे स्वर में बोली कि तुमारे पिता तो हमारे ब्राह्मण भाट हैं, दिनरात हमारी स्तुति करते हैं हमसे दान व प्रतिग्रह लेते हैं। क्या उसका इस प्रकार कहना ठीक है ? यदि ऐसा ही है तो मैं अभी शमिष्ठा से क्षमा मांग लेती हूं। शुक्राचार्य बोले पुत्री तू कोई भाट या भिखमंगे या दान लेनेवाले की पुत्री नहीं है। तू तो ब्राह्मण कन्या है और जिसकी सभी लोग वन्दना स्तुति करते हैं। यह बात वृषपर्वा इन्द्र और राजा ययाति भली-भांति जानते हैं, ब्राह्मणत्व ही मेरा ऐश्वर्य और बल है। भूलोक और स्वर्ग में जो कुछ भी है उन सबका मैं स्वामी हूं और प्रजाहित के लिये इसका उपयोग करता हूं। शुक्राचार्य ने समझाया जो अपनी निन्दा सह लेता है वह पूरी त्रिलोकी पर विजय प्राप्त कर लेता है। जिसने अपने क्रोध को वश में कर लिया, वहीं क्षमा से क्रोध का शमन कर लेता है। वही श्रेष्ठ पुरुष समझने योग्य है जो दूसरों को सताने पर भी दु:खी नहीं होता वह सब पुरुषार्थों का भाजन होता है। मूर्ख बच्चे तो आपस में इसी तरह बैर विरोध करते रहते हैं। समझदार व्यक्ति को कभी भी ऐसा नहीं करना चाहिये। देवयानी ने कहा पिताश्री मैं धर्म-अधर्म का अन्तर समझती हूं। क्षमा और निन्दा की सबलता और निर्बलता भी मुझे ज्ञात है। पर अपना हित चाहनेवाले गुरु को शिष्य की धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिये और उसे उचित दंड देना चाहिये इसलिये इन क्षुद्र विचारवालों के साथ मैं अब नहीं रहना चाहती। जो किसी के सदाचार और कुलीनता की निन्दा करते हैं। वहीं रहना चाहिये जो सदाचारी हो और कुलीनता से आचरण करे।

देवयानी की बात सुनकर शुक्राचार्य वृषपर्वा की सभा में जाकर वृषपर्वा से क्रोधपूर्वक बोले राजन जो अधर्म करते हैं और फल नहीं भोगता तो अधर्म धीरे धीरे उसकी जडें काट देता है। तुम असुरों ने बृहस्पति पुत्र कच की अधर्म से हत्या की और दूसरी मेरी पुत्री के भी वध का प्रयत्न किया इसलिये अब मैं तुम असुरों के साथ नहीं रह सकता और मैं तुम लोगों का त्याग कर रहा हूं। तुम अपने अपराधों को न रोककर उनकी उपेक्षा कर रहे हो। तब वृषपर्वा बोले गुरुवर हमने तो कभी आपको झूठा या अधार्मिक समझा ही नहीं। आप में तो सत्य और धर्म, प्रतिष्ठित है। यदि आप ही हमें छोडकर चले गये तो हम नाश को प्राप्त होंगे। आपके अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है। शुक्राचार्य ने कहा तुम कहीं भी जाओ लेकिन मैं अपनी पुत्री का तिरस्कार सहन नहीं कर सकता यदि तुम अपना भला चाहते हो तो पहिले उसे प्रसन्न करो और उससे क्षमा मांगो। वृषपर्वा देवयानी के पास जाकर बोले देवी मैं तुम्हें मुंह मांगी वस्तु प्रदान कर दूंगा तुम प्रसन्न हो जाओ।

देवयानी बोली आपकी पुत्री शमिष्ठा मेरी दासी बनकर १००० वर्ष तक मेरी सेवा करे। जहां जहां मैं जाऊं वह साथ साथ मेरा अनुगमन करे। वृषपर्वा ने देवयानी की यह शर्त सहर्ष स्वीकार की और शमिष्ठा को यह सन्देश दिया कि कल्याणी अपनी जाति के हित के लिये इसे स्वीकार करो क्योंकि शुक्राचार्य हम सबको छोडकर जाना चाहते हैं। अब तू चलकर देवयानी की इच्छा पूर्ण कर। शमिष्ठा ने इसे स्वीकार कर लिया। शमिष्ठा दासी के रूप में देवयानी के साथ साथ रहने लगी और देवयानी से कहा मैं यहां भी तथा तुम्हारी ससुराल में भी तुम्हारी सेवा करूंगी। यह सुनकर देवयानी प्रसन्न हो गई।

एक दिन की बात है देवयानी अपनी दासियों और शमिष्ठा सहित उस वन में क्रीडा करने के लिये गई थी कि उसी समय नहुष पुत्र ययाति भी उधर से ही आ निकले। देवयानी और शमिष्ठा को देखकर जिज्ञासावश पूछ लिया आप दोनों कौन है ? तब देवयानी ने उत्तर दिया मैं दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री हूं और ये मेरी दासी दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शमिष्ठा है। देवयानी का मन राजा ययाति पर आ गया और वह राजा से बोली मुझे स्मरण है आपने मेरे प्राण बचाये अब आप मुझे स्वीकार कर लें। मैं आपको अपने स्वामी के रूप में वरण करती हूं। आपका कल्याण हो। तब राजा ययाति ने कहा ठीक है देवयानी पर मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं। तुम्हारे पिता ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय हूं वे तुम्हारा विवाह क्षत्रिय के साथ नहीं करेंगे। देवयानी ने कहा राजन आपसे पहले मेरा हाथ किसी ने नहीं पकडा था इसलिये मैंने अपनी इच्छा से आपको अपने स्वामी रूप में वरण किया है दूसरा

पुरुष मुझे कैसे स्पर्श कर सकता है ? और मेरे पिता भी इसमें कैसे आपत्ति कर सकते हैं। राजा ययाति ने कहा कल्याणी जब तक तुम्हारे पिता स्वयं तुम्हे मेरे हाथों में नहीं सौंप देते तब तक मैं तुम्हे कैसे स्वीकार कर सकता हूं।

तब देवयानी ने सब बात अपने पिता को बतायी। शुक्राचार्य राजा ययाति के पास आये। ययाति ने उठकर उन्हे प्रणाम किया तब देवयानी ने कहा पिताश्री ये नहुषनन्दन राजा ययाति हैं। जब मैं कुएं में गिरी थी तभी इन्होने ही मेरा हाथ पकड कर मुझे निकाला था। अब मेरा अनुरोध है कि आप इनका मेरे साथ मेरा विवाह कर दे। मैं इनके अतिरिक्त और किसी को वरण नहीं करूंगी। शुक्राचार्य ययाति से बोले मेरी पुत्री ने तुम्हे पतिरूप से वरण किया है और मैं कन्यादान कर देता हूं तुम इसे पटरानी के रूप में ग्रहण करो। ययाति ने कहा ब्रह्मन मैं क्षत्रिय हूं। ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह करने से मुझे वर्ण संकरता का महान दोष लगेगा। शुक्राचार्य बोले राजन तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो तुम यह सम्बन्ध स्वीकार करो, मैं तुम्हारे सब पाप नष्ट कर दूंगा तुम मेरी पुत्री को स्वीकार कर धर्म का पालन करो और सुख भोगो। वृषपर्वा पुत्री शमिष्ठा भी देवयानी के साथ जायेगी पर तुम उसका शैया पर कभी भोग मत करना। तदनन्तर शास्त्र विधि से ययाति से देवयानी का पाणिग्रहण किया और शमिष्ठा दासी बनकर देवयानी के साथ ययाति की राजधानी में गयी।

ययाति की राजधानी इन्द्रपुरी के समान थी। वहां पहुंच कर देवयानी को उन्होने अन्त:पुर में रख दिया। राजोचित भोग भोगते हुये कई वर्ष बीत गये। समय आने पर देवयानी को गर्भ रहा और पुत्र उत्पन्न किया। राजा को अपनी वाटिका में एकान्त पाकर शमिष्ठा अनुनय विनय से राजा ययाति से बोली। आप मेरा रुप कुल शील जानते हो इस समय मैं ऋतुमति हूं आप मुझे भी सन्तति दान करे। राजा ययाति ने शमिष्ठा के कहने का औचित्य जानकर उसकी प्रार्थना पूर्ण की।

समय से रानी देवयानी से राजा को दो पुत्र प्राप्त हुये यदु और तुर्वसु, शमिष्ठा से तीन पुत्र हुये द्रुहु, अनु और पुरु। एक दिन देवयानी ने राजवाटिका में शमिष्ठा के तीन पुत्रों को खेलते हुये देख लिया वे राजा से पूछ बैठी कि ये देवताओं के समान दिखनेवाले ये सुन्दर सुकुमार किसके हैं ? इनका सौन्दर्य तो आप से मिलता है फिर देवयानी ने उन बच्चों से पूछा तुम लोगों के नाम क्या है ? किस वंश के हो ? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं तब बच्चों ने अंगुलियों के संकेत से कहा शमिष्ठा हमारी मां है और बच्चे बडे प्रेम से दौडकर राजा के गले लग गये। उस समय देवयानी राजा के साथ थी इसलिये राजा ने उन्हे गोद में नहीं लिया। वे उदास होकर रोते रोते शमिष्ठा के पास चले गये। उन बच्चों को देखकर राजा कुछ झेप से गये और लज्जित हो गये। देवयानी सारा रहस्य समझ गयी।

देवयानी ने शमिष्ठा के पास जाकर कहा कि तू तो मेरी दासी है फिर तूने तो मेरा अप्रिय किया है। तेरा आसुरी स्वभाव अभी तक मिटा नहीं है। न ही तुझे मुझसे कोई डर लगता है ? तब शमिष्ठा बोली मैंने राजर्षि ययाति के साथ धर्म और न्यायानुसार ही समागम किया है फिर इसमें डर की क्या बात है। मैंने भी तुम्हारे साथ-साथ उन्हे अपना पति मान लिया था। ये राजर्षि तो तुम्हारी अपेक्षा भी मेरे अधिक प्रिय हैं। देवयानी क्रोधित होकर बोली राजन अब मैं यहा तुम्हारे साथ नहीं रहूंगी तुमने मेरा अप्रिय किया है वह आंखों में आंसू भर कर अपने पिता शुक्राचार्य के घर चली गयी। ययाति दु:खी हुये और भयभीत भी। वे भी उसके पीछे पीछे चलकर उसे समझाते बुझाते रहे पर उसने राजा की बात न मानी और सुनी। दोनों भी चलकर शुक्राचार्य के पास पहुंचे।

देवयानी ने जाकर शुक्राचार्य को प्रणाम किया और बोली पिताजी धर्म को अधर्म ने जीत लिया नीचा ही ऊंचा चढ गया। शमिष्ठा अब मुझसे आगे बढ गई। उसके महाराज ययाति से तीन पुत्र हुये हैं। यह धर्मज्ञ होकर भी इन्होने धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया है। आप इस पर गौर कर दें। शुक्राचार्य ने पूरी स्थिति जान ली और कहा राजन तुमने जान-बूझकर धर्ममर्यादा का उल्लंघन किया है इसलिये मैं तुम्हे श्राप देता हूं कि तुम वृद्ध हो जाओ तब राजा ययाति बोले गुरुवर मैं अभी आपकी पुत्री देवयानी के संग से तृप्त नहीं हुआ हूं इसलिये मुझपर कृपा करे ताकि मैं बूढा न हो जाऊं। शुक्राचार्य बोले मेरा श्राप अन्यथा तो नहीं हो सकता पर इतना कर

सकता हूं कि तुम अपना यह बुढापा किसी दूसरे से उसका यौवन लेकर अपना बुढापा देकर बदल सकते हो। ययाति बोले ब्रह्मन आप ही कोई ऐसी आज्ञा करें जो कोई भी मेरा पुत्र मुझे अपनी जवानी देकर मेरा बुढापा ले लेगा वही राज्य का अधिकारी, पुण्य तथा यश का भागी होगा। वही राजा आयुष्मान हो और मेरे वंश का वंशधर हो। शुक्राचार्य ने कहा ऐसा ही होगा।

राजा अपनी राजधानी लौट आये अपने पुत्र यदु को बुलाकर उससे बोले पुत्र अब मैं बूढा हो गया हूं पर मैं अभी तक अपनी जवानी के भोगों से तृप्त नहीं हूं। तुम मेरा बुढापा लेकर अपनी जवानी मुझको दे दो। एक हजार वर्ष पूरा होनेपर मैं तुम्हारी यह जवानी वापिस तुम्हे लौटा दूंगा तब यदु ने कहा पिताजी बुढापे में तो अनेकों दोष होते है। उस अवस्था में तो खाना पीना भी ठीक से नहीं होता है, शक्ति नहीं रहती, शरीर ढीला पड जाता है। आनन्द नहीं रहता है। युवतियां पास आने पर तिरस्कार करती है इसलिये मैं आपका बुढापा स्वीकार नहीं कर सकता तब ययाति यदु से बोले यदि तुम मुझे अपनी जवानी नहीं दे सकते तो तुम्हारी सन्तान राज्य का अधिकारी नहीं होगी इसी तरह देवयानी के दूसरे पुत्र पुर्वसु को बुलाया और कहा परन्तु उसने भी बुढापा लेने से इन्कार कर दिया तब ययाति ने उसे शाप दे दिया कि तेरा वंश भी नहीं चलेगा, तू अभक्ष्य भोगी होगा दुराचारी और वर्णसंकट म्लेछों का राजा होगा। फिर राजा ने शमिष्ठा के पुत्र द्रुहु को बुलाया और उसे भी अपने प्रस्ताव की बात कही तब द्रुहु ने कहा बूढे व्यक्ति को हाथी, घोडे, रथ इत्यादि तथा युवतियों के साथ का भी तो सुख नहीं मिलता है इसलिये मैं बुढापा चाहता। ययाति ने उससे कहा तुझे ऐसे स्थान में रहना पडेगा जहां से रथ, घोडे, हाथी की तो बात ही क्या वहां तो बैल, बकरी और गधे भी नहीं जा पायेंगे, केवल नाव से जाना होगा और न ही तुझे कोई राज्य मिलेगा लोग तुझे भोज भोज कहेंगे तेरे वंश की भी यही गति होगी। फिर अपने दूसरे पुत्र अनु को बुलाया उसने भी अस्वीकार कर दिया तब ययाति ने उसे भी श्राप दे दिया कि तू मेरी बात सुनने को तैयार नहीं है इसलिये तेरी सन्तान जवानी में ही मर जायेगी और तुझे अग्निहोत्र करने का अधिकार नहीं होगा और तू शूद्र हो जायेगा।

इन पुत्रों को श्राप देकर और राजा ययाति ने अपने पुत्रों की ओर से निराश होकर अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु को बुलाया और कहा पुत्र मैं शुक्राचार्य के शाप से बूढा हो गया हूं और मैं अभी जवानी से तृप्त भी नहीं हुआ हूं। तुम मेरे प्यारे पुत्र हो। तुम मेरा बुढापा लेकर अपनी युवावस्था मुझे दे दो। एक हजार वर्षतक विषय भोग करने के बाद मैं तुमसे अपना बुढापा वापिस ले लूंगा। तुम्हें मेरा राज्य प्राप्त होगा। पुरु ने बडी प्रसन्नता से ययाति की आज्ञा स्वीकार की तब ययाति ने उसे आशीर्वाद दिया और बोले पुत्र मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हारी प्रजा तुमसे सदा सुखी व सन्तुष्ट रहेगी और ऐसा कह कर अपना बुढापा पुरु को देकर उसकी जवानी से अपना बुढापा बदल लिया।

नहुष नन्दन राजा ययाति अपने पुत्र पुरु का बुढापा लेकर प्रेम, उत्साह और इच्छानुसार समयानुकूल भोग भोगने लगे पर उन्होने धर्म का उल्लंघन नहीं किया। उन्होने यज्ञों में देवताओं को, श्राद्ध में पितरों को, दान-मान तथा दीन जनों को, ब्राह्मणों को, अतिथियों को खान-पान आदि से सन्तुष्ट किया। वैश्यों और शूद्रों को सद्व्यवहार से सन्तुष्ट किया। चोर, डाकू, लूटेरों को यथेष्ट दंड देते थे। सारी प्रजा राजा ययाति से प्रसन्न थी। वे इन्द्र के समान प्रजा का पालन करते थे। ययाति ने मनुष्य लोक के सारे भोग भोगे इसके अलावा उन्होने नन्दनवन, अलकापुरी और सुमेरू पर्वत पर रहकर वहां के भोग भोगे। ययाति ने जब देखा यह सब करते हुए १००० वर्ष व्यतीत हो गये हैं तब अपने पुत्र पुरु को बुलाकर कहा पुत्र मैंने अपनी इच्छानुसार तुम्हारी जवानी से उत्साह से अपने प्रिय विषयों को भोग लिया है। अब मुझे लगने लग गया है कि विषयों की कामना उनके भोगने से शान्त नहीं होती जैसे आग में कितना भी घी डालो वह अत्यधिक बढती ही जाती है। इस पृथ्वी पर जितना अन्न, धन, सोना, पशु और स्त्रियां है वे भी एक कामी पुरुष की कामना को पूर्ण करने में असमर्थ है इसीलिये सुख उनकी प्राप्ति में नहीं उनके त्याग से होता है। दुर्बुद्धि लोग तृष्णा का त्याग नहीं कर पाते। बूढे होने पर भी तृष्णा और आशा कभी बूढी नहीं होती। यह एक प्राणान्तक रोग है। इसको छोडने पर ही सुख प्राप्त होता है। विषयों को भोगते भोगते १००० वर्ष पूरे हो गये फिर भी मेरी तृष्णा शान्त नहीं हो

रही है और दिनों दिन बढती ही जा रही है। अब मैं इस युवावस्था को त्याग ब्रह्म में अपना मन लगाऊंगा तथा भूख प्यास आदि द्वन्दो से निवृत्त होकर वन में विचरण करूंगा मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं पुत्र। अब तुम अपनी जवानी वापिस ले लो और यह राज्य ग्रहण करो। पुरु ने अपना यौवन वापिस ले लिया और ययाति ने अपना बुढापा। तब ययाति ने प्रजा से सबसे कहा मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को राज्य नहीं दे सकता कारण उसने मेरी आज्ञा की अवहेलना की। जो अपने पिता की आज्ञा नहीं मानता वह सत्पुरुषों की दृष्टि में पुत्र नहीं है। जो माता-पिता की आज्ञा माने, उनका हित करे और उन्हे सुख पहुंचाये वो ही पुत्र मानने योग्य है। सिर्फ पुरू ने ही मेरी आज्ञा मानी, मेरा हित किया, सम्मान किया इसलिये मेरा उत्तराधिकारी पुरु है। यदु के नाना शुक्राचार्य ने ही मुझे यह वर दिया है। इसलिये मेरा सारी प्रजा से अनुरोध है कि पुरु को धर्मत: राजा स्वीकार करे। प्रजा ने सन्तुष्ट होकर पुरु का राज्याभिषेक किया और राजा ययाति वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा ग्रहण कर तपस्वियों के साथ वन चले गये। अब यदु राज्य हीन हो गया। पुर्वसु भवनों को, द्रुहु से भोजों की और अनु से म्लेच्छों की तथा यदु से यदुवंशियों की उत्पत्ति हुई। जनमेजय पुरु से ही प्रसिद्ध पुरु वंश चला जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ।

राजा ययाति वन में कन्द मूल फल का आहार करने लगे उन्होने अपने मन पर और क्रोध पर विजय प्राप्त की। वे प्रतिदिन देवताओं और पितरों का तर्पण करते, अग्निहोत्र करते, अतिथियों को भोजन कराकर यज्ञ अवशिष्ट से अपनी भूख मिटाते। वाणी और मन को अधीन कर निराहार रह कर सिर्फ जल के आधार पर तीस वर्षोंतक जीवन निर्वाह किया। एक वर्ष तक सिर्फ वायु पीकर ही रहे। एक वर्ष तक पंचाग्नि सेवन की। छै मास तक एक पैर पर खडे रहकर तपस्या करें उनका यह पवित्र यश तीनों लोकों में फैल गया। फिर शरीर त्यागने पर उन्हे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। जनमेजय यह है राजा ययाति का पृथ्वीलोक पर पुण्य चरित्र।

वैशम्पायन ने जनमेजय को कहा राजा ययाति स्वर्ग में बडे आनन्दपूर्वक रहने लगे। वहां पर इन्द्र, साध्य देव, मरुतगण, वसु आदि सभी उनका बडा ही मान सम्मान करते थे। इस प्रकार स्वर्ग में रहते ययाति को कई हजार वर्ष बीत गये तो इन्द्र ने ययाति से एक बार पूछा राजन जिस समय आपने पुत्र पुरु को जवानी लौटा दी और उसने आपसे अपना बुढापा ले लिया तथा उसका आपके राज्यपर राज्याभिषेक कर दिया था उस समय आपने पुरु को क्या उपदेश दिया था वह मुझे सुनाओ। तब राजा ययाति इन्द्र से बोले मैंने पुरु को गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश का राजा बना दिया और कहा सीमान्त प्रदेशों का भोग तुम्हारे भाई करेंगे। मैंने उसे जो उपदेश दिया उसे इन्द्र तुम सुनो। क्रोधियों से क्षमाशील व्यक्ति श्रेष्ठ है और असहिष्णु से सहिष्णु श्रेष्ठ है। मनुष्येतर जातियों से मनुष्य और मूर्खों से विद्वान श्रेष्ठ है। किसी के सताये जाने पर भी प्रतिशोध के लिये उसको नहीं सताये क्योंकि दु:खी प्राणी का शोक ही सतानेवाले का नाश कर देता है। मर्मभेदी व कठोर वाणी कभी मुंह से नहीं निकालनी चाहिये। अनुचित उपायों से भी शत्रु को कभी भी अपने वश में नहीं करना चाहिये। जिससे किसी को कष्ट होता हो ऐसी बात तो पापी लोग ही बोलते है। जो अपनी कठोर वाणी और मर्मस्पर्शी बातों के कांटा जैसा वैसे लगता है। ऐसा पुरुष को देखना भी पाप है वह तो अपनी कर्कश वाणी के रूप में एक पिशाच ढो रहा है। मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिये कि सत्पुरुष सामने से तो सत्कार करे और पीठ पीछे भी तुम्हारी रक्षा करे। दुष्ट यदि कभी कोई कडवी बात कह दे तो भी उसे सहन करना चाहिये तथा सदाचार के सहारे सत्पुरुषों के व्यवहार को ही ग्रहण करे। वाणी भी बाण सृष्टि होती है और जिसपर इसकी बौछारें पडती है वह रात-दिन चिंतित हो जाता है इसलिये कभी भी कर्कश वाणी का प्रयोग नहीं करें। त्रिलोकी में सबसे बडी सम्पत्ति यही है कि सभी प्राणियों के प्रति दया और मैत्री का भाव हो। यथाशक्ति सबको कुछ दें और मधुरवाणी से सभी का सम्मान सत्कार करें। संक्षेप में यही है कि कठोर वाणी न बोले सर्वदा मधुर वाणी बोले, सम्मान करे और दान दे, कभी किसी से कुछ मांगे नहीं। यही सर्वश्रेष्ठ व्यवहार व नीति का मार्ग है।

ययाति की बात सुनकर इन्द्र बोले नहुषनन्दन आपने गृहस्थाश्रम धर्म का पूरा पूरा पालन कर वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया था और आपने तपस्या की वह तपस्या किसके समान थी। ययाति ने इन्द्र को उत्तर दिया देवराज मनुष्यों में, गन्धर्वों में और

महर्षियों में मेरे समान तपस्वी मुझे कोई नहीं मिला। इन्द्र बोले ययाति तुमने अपने समान किसी भी बडे छोटे का प्रभाव न जानकर सबका तिरस्कार किया है और अपनी करनी अपने ही मुख से बखान रहे हो इसलिये तुम्हारा पुण्यक्षीण हो गया है। अब तुम स्वर्ग में नहीं रह सकते। यहां के सुख भोगों की भी सीमा है। अब यहां से जाओ और पृथ्वी पर गिर पडो। तब ययाति ने कहा यदि मैंने सबका अपमान कर दिया और मेरा पुण्यक्षीण हो गया तो मैं सन्तो के बीच ही गिरूं।

इस तरह ययाति पवित्र लोकों से च्युत होकर इन सन्तों के बीच गिरे जहां पर अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिबि नाम के तपस्वी तपस्या कर रहे थे। तब अष्टक ने उसे गिरते देख कर कहा युवक दु:खी और दीन पुरुषों के लिये सन्त ही परम आश्रय है अब तुम अपनी व्यथा सुनाओ।

ययाति ने कहा मैं समस्त प्राणियों का तिरस्कार करने के कारण स्वर्ग से च्युत हो रहा हूं। अभिमान नरक का मूल कारण है। कभी भी सत्पुरुों को दुष्टों का आचरण नहीं करना चाहिये। जो धन धान्य की चिन्ता छोडकर अपनी आत्मा का हित साधन करता है वही समझदार ज्ञानी है। धनपाकर कभी गर्व नहीं करना चाहिये और विद्वान होकर अहंकार नहीं करना चाहिये। अपने विचार और पुरुषार्थ की अपेक्षा दैव की गति बलवान है। दुख से कभी जले नहीं और सुख से कभी फूले नहीं दोनों अवस्था में समान रहें। अष्टक मैं इस समय मोहित नहीं हूं न ही मेरे मन में कोई ईर्ष्या या जलन है। मैं विधाता के विधान के विपरीत नहीं जा सकता ऐसा मानकर सन्तुष्ट रहता हूं। मैं सुख दु:ख दोनों की अनित्यता जानता हूं। फिर मुझे दु:ख कैसा, क्या करके सुखी रहूं इन झंझटों से उन्मुक्त रहता हूं, इसलिये दु:ख मेरे पास फटकते नहीं। मुझ में अभिमान था।

अष्टक सन्त ने ययाति से पूछा आप तो अनेक लोक भोग चुके हैं आप प्रधानत: कौनसे लोकों में रहे ? ययाति ने कहा मैं पहले पृथ्वी का सार्वभौम राजा था। मैं एक हजार वर्ष तक महत् लोकों में रहा फिर एक हजार वर्ष तक इन्द्रपुरी में रहा तदनन्तर प्रजापति लोक में भी १००० वर्ष तक रहा। मैंने नन्दनवन में स्वर्गीय भोगों को भोगते हुये लाखों वर्ष तक निवास किया। वहां पर मैं सुखों में आसक्त हो गया और पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर आ रहा हूं। जैसे धन का नाश होने पर सारे सम्बन्धी साथ छोड देते हैं वैसे ही मेरे पुण्य क्षीण हो जाने पर इन्द्रादि देवताओं ने मेरा परित्याग कर दिया। तब अष्टक ने फिर से ययाति से पूछा राजन वे कौन से अनुष्ठान है जिनसे मनुष्य को श्रेष्ठ व उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है तथा वे लोक तप से प्राप्त होते है या ज्ञान से ? ययाति ने अष्टक को उत्तर दिया सन्तों स्वर्ग के सात द्वार हैं दान, तप, शम, दम, लज्जा, सरलता और दया। अभिमान अहंकार करने से तपस्या क्षीण हो जाती है। जो अपनी विद्वता के अहंकार से और दूसरों के यश को मिटाना चाहते हैं उन्हे उत्तम लोकों की प्राप्ति नहीं होती। उनकी विद्या भी मोक्षदान में समर्थ नहीं होती। अभय प्राप्त करने के चार साधन हैं अग्निहोत्र, मौन, वेदाध्यन और यज्ञ। यदि अनुचित रीति अहंकार से इनका अनुष्ठान होता है तो ये भय देनेवाले हो जाते हैं। सम्मानित होने पर सुखी नहीं माने और अपमानित होने पर दु:ख नहीं माने। सत्पुरुष की पूजा जगत में की जाती हैं। दुष्टों से शिष्ट बुद्धि की अपेक्षा सर्वथा निरर्थक है। अहंकार का त्याग ही श्रेयस्कर है। अष्टक ने पूछा राजन ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इनमें से किन धर्मों का पालन करने से मृत्यु के बाद सुखी होते हैं ? ययाति ने कहा जो ब्रह्मचारी गुरु आज्ञानुसार अध्ययन करता है, जो गुरु आचार्य से पहिले जागता है उठता है और गुरु के सोने के बाद सोता है, जिसका स्वभाव मधुर है, जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, धर्मशाली सदा सावधान रहनेवाला, प्रमादों से रहित है ऐसे लोगों को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है। जो पुरुष धर्मानुकुल धन प्राप्त कर यज्ञ करता है, अतिथियों की सेवा करता है, किसी की वस्तु बिना उसके दिये नहीं लेता है अर्थात चोरी नहीं करता है वही सच्चागृहस्थ है। जो पुरुषार्थ करता है और अपनी जीविका चलाता है पापों में लिप्त नहीं है, दूसरों को कुछ न कुछ देते रहता है तथा किसी को भी कष्ट नहीं पहुंचाता है ऐसा वानप्रस्थी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति किसी कला कौशल, भाषण, चिकित्सा कारीगरी आदि से अपना जीवन यापन नहीं करता, समस्त सद्गुणों से युक्त है, जितेन्द्रिय और असंग है, किसी के घर नहीं रहता, बहुत अधिक नहीं विचरता, अनेक देशों में अकेले ही

नम्रता के साथ परिव्राजक है वही सच्चा सन्यासी है। इन्द्र के वरदान से मुझे आप जैसे सत्पुरुषों का समागम हुआ। अब शीघ्र ही मैं पृथ्वी पर गिरनेवाला हूं। अष्टक बोले महात्मन स्वर्ग में मुझे जितने लोक प्राप्त होने वाले हैं, अन्तरिक्ष या सुमेरू पर्वत के शिखरों पर जहां भी पुण्यकर्मों के फल स्वरूप मुझे जाना है उन सबको मैं आपको अर्पित करता हूं ताकि आपका अध:पतन न हो। ययाति बोले मैं ब्राह्मण तो हूं नहीं इसलिये मैं आपसे यह दान नहीं ले सकता। इस प्रकार के दान तो मैंने भी बहुत किये है। तब प्रतर्दन सन्त ने कहा मुझे भी अन्तरिक्ष अथवा स्वर्गलोक में जिन जिन लोकों की प्राप्ति होगी वे सब मैं आपको देता हूं ताकि आप कहीं गिरे नहीं और स्वर्ग में जाये। ययाति बोले कोई भी राजा अपने समकक्ष व्यक्ति से दान नहीं लेता। यह तो अधम कार्य है। अब तक किसी भी श्रेष्ठ क्षत्रिय ने ऐसा कर्म नहीं किया है फिर मैं इसे कैसे कर सकता हूं।

वसुमन सन्त बोले राजन मैं अपने सभी लोक तुम्हें अर्पण करता हूं आप यदि इसे दान समझते हैं और लेना नहीं चाहते हैं, हिचकते हैं तो एक तिनके को देकर यह सब खरीद लीजिये। ययाति बोले यह खरीदी विक्री व्यवहार तो सर्वथा मिथ्या है और मैंने कभी भी मिथ्याचार नहीं किया है। कोई भी सत्पुरुष ऐसा कर्म नहीं करते फिर मैं क्यों करूं ?

शिबि ने कहा महाराज मैं औशीनर शिबि हूं यदि आप क्रय विक्रय नहीं करते तो मेरे पुण्यों का फल स्वीकार कर लें। मैं इन्हे उपहार स्वरूप आपको भेंट करता हूं। यदि आप न भी लेंगे तो मैं भी इन्हे स्वीकार नहीं करूंगा तब ययाति ने कहा आप बडे ही प्रभावशाली है पर मैं किसी दूसरे के पुण्य फल का उपभोग नहीं कर सकता।

अष्टक बोले महाराज यदि आप किसी एक के पुण्य लोक नहीं लेते तो सभी के स्वीकार कर लीजिये। हम अपना सारा पुण्य फल देकर नरक जाने को भी तैयार हैं। ययाति बोले तुम लोग मेरे स्वरूप के अनुरूप ही प्रयत्न करो। सत्पुरुष तो सत्य के ही पक्षधर होते है। मैंने जो कभी नहीं किया वह अब कैसे कर सकता हूं। अष्टक बोले ये आकाश में सोने के पांच रथ दिखाई दे रहे हैं क्या इन्ही के द्वारा पुण्यलोकों की यात्रा होती है ? ययाति ने कहा हां, ये सुनहरे रथ तुम लोगों को पुण्य लोकों में ले जायेंगे। अष्टक बोले राजन आप ही इन रथों द्वारा स्वर्ग की यात्रा करें, समय पर हम लोग भी आ जायेंगे। ययाति ने कहा हम सभी ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली इसीलिये साथ चलें वह सामने स्वर्ग का प्रशस्त पथ दिखाई पड रहा है।

अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिबि सन्तों का प्रतिग्रह अस्वीकार करके ययाति भी फिर से स्वर्ग के अधिकारी हो गये। वे सभी रथों पर सवार होकर स्वर्ग के लिये चल पडे। उस समय उनके धार्मिक तेज से स्वर्ग और आकाश प्रकाशित हो गये। शिबि का रथ आगे बढते देखकर अष्टक ने कहा राजन इन्द्र मेरा प्रिय मित्र है। मैं समझता था कि मैं ही सबसे पहले इन्द्र के पास पहुंचूंगा पर शिबि का रथ आगे जा रहा है। ययाति बोले शिबि ने अपना सर्वस्व सत्पात्रों को दिया था। दान, तपस्या, धर्म, श्री, प्रथा, सौम्यता, सेवा करने की अभिलाषा ये सभी गुण शिबि में विद्यमान है। इतना होने पर भी उसमें अभिमान लेश मात्र भी नहीं है। इसी में वह सबके आगे जा रहा है इस तरह बातचीत करते हुये सब स्वर्ग में चले गये। यही राजा ययाति का पूर्ण वृतान्त है।

४) भरत-पुरु-कुरु वंश का वर्णन

यह महाभारत कथा वेद व्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन द्वारा रचित उनके शिष्य वैशम्पायन द्वारा परीक्षित सुत जनमेजय को सुनायी गयी। उसी समय यह कथा सूत रोमहर्षण पुत्र उग्रश्रवा द्वारा सुनी गई और यही कथा उग्रश्रवाजी ने नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों के आग्रह से उन्हें सुनायी।

जनमेजय ने पूछा मैं पुरु वंश के सभी यशस्वी राजाओं की वंशावली के बारे में जानना चाहता हूँ कि इस वंश में शील, शक्ति अथवा सन्तानहीन कोई राजा नहीं हुआ है। तब वैशम्पायन ने पुरु वंश का वर्णन विस्तार से किया। विवस्वान आदित्य से मनु तथा मनु से इला, इला से पुरुरवा नामक पुत्र हुआ। पुरुरवा से आयु और आयु से नहुष और नहुष से महाराज ययाति का जन्म हुआ। ययाति की दो पत्नियां थी। देवयानि शुक्राचार्य की कन्या जिससे दो पुत्र हुये यदु और तुर्वसु तथा शमिष्ठा दैत्यराज

वृषपर्वा की पुत्री जिससे तीन पुत्र हुये द्रहु, अनु और पुरु। महाराज यदु से यादव वंश चला सौर पुरु से दौरव पुरु से प्रचिन्वान, उससे संयाति, अहंयाति का जन्म हुआ। अहंयाति की पत्नी भानुमति से सार्वभौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सार्वभौम से जयत्सेन की उत्पति हुई। जयत्सेन से आवाचीन पुत्र हुआ, आवाचीन से अरिह, अरिह से महाभौम, महाभौम से अयुतनायी, अयुतनायी से अक्रोधन। अक्रोधन की पत्नी थी करम्भा इसने देवातिथि पुत्र को उत्पन्न किया। देवातिथि से अरिह और अरिह की पत्नी सुदेवा से ऋक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ।

ऋक्ष की ज्वाला नामक पत्नी से मतिसार का जन्म हुआ उसने सरस्वती तट पर बारह वर्ष तक यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर सरस्वती ने मतिसार से विवाह कर लिया मतिसार से तंसु हुआ तंसु से ईलिन हुआ। ईलिन की पत्नी रथन्तरी से दुष्यन्त आदि अन्य ४ पुत्र हुये। ईलिन और रथन्तरी ही महाराज दुष्यन्त के माता-पिता थे। महाराज दुष्यन्त की पत्नी शकुन्तला से भरत। भरत की पत्नी सुनन्दा से नौ पुत्र उत्पन्न हुये भुमन्यु आदि। इस वंश की परम्परा भरत वंश से जानी गई। भरत ने पुरुओं मे से भरद्वाज मन्यु को अपना उत्तराधिकारी बनाया जिससे पुरु वंश का विस्तार हुआ। भरद्वाज मन्यु से सुहोत्र। सुहोत्र से सुवर्णा नामक पत्नी से हस्ती का जन्म हुआ जिन्होने ही हस्तिनापुर बसाया। हस्ती के पुत्र हुये विकुंठन और विकुंठन से अजमीढ। अजमीढ की विभिन्न पत्नियों से १२४ पुत्र हुये। सभी विभिन्न वंशों के प्रवर्तक हुये इनमें भरत वंश का प्रवर्तक हुये संवरण जिनकी शादी सूर्य पुत्री तपती से हुई। तपती के गर्भ से कुरु का जन्म हुआ। कुरु ने जिस तपस्थली पर तप किया था वह धर्मक्षेत्र आज कुरुक्षेत्र नाम से जाना जाता है। कुरु से विदूरथ, विदूरथ से अनश्वा, अनश्वा से प्रतिश्रवा तथा प्रतिश्रवा से महाराज प्रतीप हुये। प्रतीप की पत्नी सुनन्दा के गर्भ से तीन पुत्र हुये देवापि, शान्तनु और वाहलीक। देवापि तो बचपन से ही तपस्या करने चले गये। शान्तनु राजा हुये। वे जिस किसी भी वृद्ध का स्पर्श कर देते थे वह युवा और सुखी हो जाता था। जिस समय महाराज प्रतीप शान्त हो रहे थे उनका यह वंश शान्त हो रहा था ऐसे समय में सन्तान होने के कारण उसका नाम शान्तनु हुआ। शान्तनु से गंगा पत्नी से देवव्रत का जन्म हुआ। वे जगत में भीष्म के नाम से जाने गये। भीष्म ने अपने पिता शान्तनु की प्रसन्नता के लिये निषाद दास राज की कन्या सत्यवती से महाराज शान्तनु का विवाह करा दिया और स्वयं आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सत्यवती के गर्भ से विचित्र वीर्य और चित्रांगद दो पुत्र हुये। चित्रांगद बचपन में ही गन्धर्वों के द्वारा युद्ध में मारा गया। विचित्र वीर्य राजा हुआ उसकी पत्नियां थी अम्बिका और अम्बालिका। विचित्र वीर्य निसन्तान ही क्षय रोग से ग्रसित होकर मर गया।

अब दुष्यन्त भरतवंश खत्म होने की कगार पर था। यही सोच कर सत्यवती ने अपने पुत्र महर्षि वेद व्यास (श्रीकृष्ण द्वैपायन) का स्मरण कर दुष्यन्त वंश उच्छेद होने से बचे यह कह कर वंश रक्षा के लिये कहा। वेदव्यासजी ने माता की आज्ञा स्वीकार कर अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पांडु और दासी से विदुर को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र से गन्धारी का विवाह हुआ उससे १०० पुत्र हुये जिसमें दुर्योधन, दु:शासन, विकर्ण और चित्रसेन प्रधान थे। पांडु की पत्नी कुन्ती से युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन हुये। पांडु की दूसरी पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव हुये। द्रुपदराज द्रुपद की पुत्री द्रौपदी इन पाचों पांडवों की पत्नी बनी। द्रौपदी के गर्भ से पांचों पांडवों का एक-एक पुत्र क्रमश: प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्त, शतानीक और श्रुतकर्मा हुये जिन्हे अश्वत्थामा ने भूल से पांडव समझ कर मार दिया। युधिष्ठिर की एक और पत्नी देविका से यौधेय नामक पुत्र हुआ। भीमसेन ने काशीराज की कन्या वलन्धरा से विवाह किया था उससे सर्वंग नाम का पुत्र हुआ। अर्जुन का विवाह श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा से हुआ। सुभद्रा से अभिमन्यु पुत्र हुआ। यह बडा ही गुणवान और भगवान श्रीकृष्ण का प्रीति पात्र भगिना था। नकुल की पत्नी करेणुमती से निरमित्र और सहदेव की पत्नी विजया के गर्भ से सुहोत्र का जन्म हुआ। भीमसेन का इससे पहिले हिडिम्ब राक्षस की बहन हिडिम्बा से घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। घटोत्कच से बबरीक का जन्म हुआ। इस प्रकार पांडवों के ११ पुत्र हुये फिर भी वंश का विस्तार अभिमन्यु से ही हुआ। इसके अतिरिक्त अर्जुन के दो पुत्र और हुए। उलूपी से इडावान और

चित्रागंदा से ब्रभुवाहन। ये दोनों अपनी-अपनी माता के साथ नाना के घर में ही रहे और उन्हीं के वंश के उत्तराधिकारी रहे। अभिमन्यु का विवाह विराट राजा की कन्या उत्तरा से हुआ जिससे परीक्षित हुआ। कुरुवंश के परिक्षीण होने पर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से बचाये जाने पर वह परीक्षित नाम से हुआ। परीक्षित की पत्नी इरावती से आप जनमेजय पुत्र हैं। जनमेजय की पत्नी बहुष्टमा से दो पुत्र हुये शतानीक और शंकुकर्ण। शतानीक के पुत्र हुआ अश्वमेघदत्त इस प्रकार आपका वंश चला जो मैंने तुम्हे विस्तार से सुनाया।

५) दुष्यन्त और शकुन्तला चरित्र

पूर्व काल में विश्वामित्र मुनि जो एक क्षत्रिय थे, गुरु वशिष्ठ के साथ प्रतिस्पर्धा से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्षत्रिय बल से तपोबल कहीं अधिक श्रेष्ठ है। उन्होंने निरन्तर तपोरत रहकर ६०००० वर्ष तक कठोर तपस्या की। उन्होंने अस्त्र शस्त्रों का त्याग कर दिया। क्रोध व आवेश का परित्याग कर दिया। उनके इस कठोर तप को देखकर सुराधिपति इन्द्र भयभीत हुआ। इन्द्रासन डोलने लगा। इन्द्र ने मुनि का तप भंग करने उर्वशी, ऋतुश्री आदि अप्सराओं को भेजा लेकिन वे सब निष्फल होकर लौट आई। तब इन्द्रने अपनी चहेती अप्सरा मेनका को भेजा और साथ में कामदेव व उसकी सेना को। बसन्त ऋतु में कामदेव अपनी काम सेनाको लेकर वहां पहुंचा जहां मुनि विश्वामित्र तपस्या में लीन थे। मेनका भी मुनि को अपने हावभावों से लुभाने के लिये वहां आई और तरह-तरह के नृत्यों से, भंगिमा से मुनि की तपस्या भंग करने लगी।

इन्ही विघ्नों से मुनि की तपस्या भंग हुई, मुनि की समाधि टूटी और सामने देखा मेनका को। मेनका का रूप लावण्य व तरूणी अवस्था देखकर मुनि विचलित हो गये और अपने आपमें खो गये। इस परम रुप सुन्दरी पर मुनि इतने मोहित हो गये कि उनका क्रोध जाता रहा और मेनका से अपने आश्रम में रहने का प्रस्ताव कर बैठे। अप्सरा मेनका ने मुनि के साथ रहने की स्वीकृति दी। अब मुनि विश्वामित्र आनन्दपूर्वक मेनका के साथ रहने लगे और उसके साथ यथोचित विहार भोग करने लगे। मुनि का विवेक खो गया और मुनि योगी से भोगी बन गये।

कालान्तर में मुनि का मेनका के साथ सहवास होने पर एक पुत्री रत्न का जन्म हुआ। जब पुत्री का जन्म हुआ तो मुनि को होशो हवाश आया कि मैं तो माया के वशीभूत हो मुनि योगी व्रत से भ्रष्ट हो गया। मुझसे बडा अनर्थ हो गया, ऐसा मन में विचार कर मुनि मेनका से बोले देवि मैं तो अपनी साधना के लिये गृहस्थ का त्याग कर वन में जा रहा हूं और अब तुम ही इस कन्या का पालन पोषण करो और इसे सम्भालो, यह कहकर मुनि विश्वामित्र उसी क्षण गृह आश्रम छोड वन को प्रस्थान कर गये।

इन्द्र ने भी देखा अभी तक मेनका भूलोक से वापिस नहीं लौटी है उसने मेनका को तुरन्त लौटने के लिये सन्देश भेजा। मेनका अपनी इकलौती नवजात बालिका को वहीं आश्रम के पास जंगल में छोड़कर सुरलोक चली आयी। अकेली बालिका जंगल में जोरों से क्रन्दन कर रही थी। थोडे ही समय बाद कुलपति ऋषि कण्व जब उस पथ से गुजर रहे थे, तब उस निसहाय अकेली बालिका का रुदन उनके कानों में पड़ा। ऋषि वहां पर रुके और देखा एक सुन्दर सी नवजात कन्या रूदन कर रही है। उन्हे लगा कि उसके माता-पिता ने इसका त्याग कर दिया है। वे उस बालिका को उठाकर अपने आश्रम (गढ़वाल जिला में कोटद्वार में मालिनी नदी के तीर पर बना हुआ है) में ले आये और पालन-पोषण करने लगे। वह बालिका अत्यन्त ही सुन्दर और गौर वर्ण थी, मुनि के आश्रम में पलने लगी। कण्व मुनिने भी उसे अपनी पालित पुत्री मान कर उसका लालन-पालन किया और उसका नाम शकुन्तला रखा। यह शकुन्त (पक्षियों) द्वारा रक्षा की गयी इसलिये कण्व मुनि ने इसका नाम शकुन्तला रखा। शकुन्तला कालान्तर में मुनि द्वारा शिक्षित हुई और उनके संरक्षण में बड़ी होने लगी।

समय की गति के साथ शकुन्तला बडी होने लगी। शैशव काल शकुन्तला का महर्षि कण्व के आश्रम में बीता, लालन-पालन हुआ। महर्षि कण्व ने शिक्षा दीक्षा दी। शकुन्तला अपने यौवन की चरम सीमा पर पहुँची वह अत्यन्त लावण्य रूप, मोहक,

आकर्षक, ओज और कान्ति से पूर्ण थी। आश्रम में अपनी सखियों के साथ विहार करती थी। मृग शावकों के साथ खेलती थी। दिनचर्या में नित्य आश्रम की बगिया के पेड पौधों को पानी देना, उनकी देख-रेख करना। पशु-पक्षियों को आहार व चुग्गा देना, उनके साथ क्रीडा करते रहना यह उसकी दिनचर्या थी।

ईलिन पुत्र महाराज दुष्यन्त पुरुवंश के प्रवर्तक थे। परम प्रतापी समुद्र से घिरे बहुत से प्रदेश और म्लेच्छों के देश सभी उनके अधीन थे। वह अपनी प्रजा का पालन-पोषण बडी योग्यता से करते थे। खेती और खदानों के लिये कोई प्रयत्न नहीं करना पडता था। उनके राज्य में कोई पाप और अधर्म नहीं होता था। धर्म और अर्थ स्वत: ही प्राप्त थे। चोरों का, रोगों का, भूख प्यास का बिल्कुल भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्मों में रत रहकर सन्तुष्ट थे और राजाश्रय में निर्भय होकर रहते थे। वृष्टि समय पर होती थी। उपज खेती अच्छी और सरस होती थी। पृथ्वी सब प्रकार के रत्न और पशुधन से परिपूर्ण थी। ब्राह्मण स्वाध्यायी और कर्मनिष्ठ थे, छल कपट और पाखण्ड रहित थे।

दुष्यन्त स्वयं में एक बलवान युवक शक्तिशाली, गदा युद्ध में प्रक्षेप, विक्षेप, परिक्षेप और अभिक्षेप चारों प्रकार की विद्याओं में निपुण था। अश्वरोहण और गजरोहण में उसको चुनौती देनेवाला कोई नहीं था। सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान अक्षोभ्य और पृथ्वी के समान क्षमाशील था। प्रजा प्रेम से उसका सम्मान करती थी और वह धर्म बुद्धि से सबका शासन करता था।

एक बार हस्तिनापुर नरेश चक्रवर्ती सम्राट महाराज दुष्यन्त वन में हिंसक पशुओं का आखेट करने गये और वे किसी गहन वन में पहुंच गये। वन में गर्मी से प्यास से व्याकुल हो रहे थे। पानी की खोज में पूछते पूछते एक मनोहर उपवन में पहुंचे। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह ऋषि कण्व का आश्रम है। यह उपवन बडा ही सुन्दर था। वहां के वृक्ष खिले हुये पुष्पों से लदे हुये थे। दुर्वादल से पृथ्वी हरी-भरी आच्छादित हो रही थी। सुन्दर-सुन्दर पक्षी मधुर स्वरों में चहक रहे थे। कहीं कोकिलें कुहू-कुहू तो कहीं भौरों की गुंजार हो रही थी। उस आश्रम में स्थान-स्थान पर अग्निहोत्र की ज्वालायें प्रज्वलित हो रही थी। यज्ञशाला, पुष्पों और जलाशयों के कारण आश्रम की अद्भुत शोभा हो रही थी। अनेकों ऋषि मुनि आसन लगाये ध्यान मग्न थे। ब्राह्मण देवताओं की पूजा कर रहे थे। दुष्यन्त के नेत्र और मन वन की छटा देखकर तृप्त नहीं हो रहे थे।

राजा दुष्यन्त मुनि कण्व का दर्शन करना चाहते थे। शिष्यों से ज्ञात हुआ कि महर्षि इस समय ग्रह शान्ति करने सोमतीर्थ गये है और कुछ दिनों बाद ही लौटेंगे। राजाने आश्रम को सूना देखकर उच्च स्वर में पुकारकर कहा यहाँ कौन है ? दुष्यन्त की आवाज सुनकर एक लक्ष्मी के समान सुन्दर कन्या तपस्विनी के वेश में आश्रम से निकली और उसने दुष्यन्त को देखकर कहा- आपका मुनि कण्व के आश्रम में स्वागत है। अतिथि सत्कार किया। महाराज दुष्यन्त को पानी पिलाया, अघ्य, पाद्य और आसन दिया। तथा कन्द मूल फल अर्पित कर राजा का आतिथ्य किया। आदर सत्कार करने के पश्चात कुशलता और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा और पूछा कि मैं आपकी क्या सेवा करूं। राजा दुष्यन्त ने उस सर्वांग सुन्दरी, मधुर भाषिणी कन्या को देखा और देखकर राजा दुष्यन्त का मन विचलित हुआ। इतनी सुन्दर कन्या, रूप लावण्य में तेज व आकर्षक, भरी जवानी और अनुपम रूप देखकर राजाने शकुन्तला का परिचय जानना चाहा। राजा उसपर मोहित हो गया। बार-बार राजा के मन में आया कि मेरा मन इस कन्या पर क्यों आकर्षित हो रहा है ? यह तो ब्राह्मण ऋषि कन्या है और मैं क्षत्रिय हूं। मुझसे मन से यह कैसा अधर्म हो रहा है ? बार-बार फिर भी राजा का मन नहीं मान रहा था कि यह ब्राह्मण कन्या है। बार-बार दिल से यही सदा उठती थी कि यह ब्राह्मण कन्या नहीं हो सकती। हो-न-हो ये कोई क्षत्रिय कन्या ही हो।

दुष्यन्त ने शकुन्तला का परिचय जानना चाहा और पूछा- भद्रे। तुम कौन हो ? तुम्हारे पिता कौन है और किसलिये यहां रह रही हो। तुमने मेरा मन मोहित कर लिया इसलिये मैं यह सब जानना चाहता हूँ। तब शकुन्तला ने अपने मधुर वाणी से कहा- मैं महर्षि कण्व की पुत्री हूं। राजा दुष्यन्त ने कहा कि कल्याणी, विश्व वन्ध्य महर्षि कण्व तो अखण्ड आजन्म ब्रह्मचारी हैं। धर्म

भले ही अपने स्थान से डिग जाये परन्तु वे ऐसे नहीं है, ऐसी दशा में तुम उनकी पुत्री कैसे हो सकती हो ? तब शकुन्तला ने बताया- राजन, जिस समय राजर्षि विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे उस समय इन्द्रने उनके तप में विघ्न डालने के लिये मेनका अप्सरा को भेजा। उन्हीं दोनों के संयोग से मेरा जन्म हुआ। माता-पिता मुझे अकेला छोडकर चले गये। तब शकुन्तो (पक्षियों) ने सिंह, व्याघ्र हिंसक पशुओं और जंतुओं से मेरी रक्षा की इसलिये मेरा नाम शकुन्तला पडा। महर्षि कण्व वहाँ से उठाकर मुझे अपने आश्रम में ले आये और मेरा लालन-पालन किया। शरीर का जन्म देनेवाला, प्राणों का रक्षक-पोषक और अन्नदाता ये तीनों को ही पिता की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार महर्षि कण्व को मैं पिता मानती हूं।

अब राजा को धैर्य प्राप्त हुआ। शकुन्तला को भी महाराज दुष्यन्त का परिचय प्राप्त हुआ। यह भूमण्डल नरेश, गौर वर्ण, सुडौल, अत्यन्त बलशाली, सर्वथा योग्य, सभी गुणों से परिपूर्ण शकुन्तला का भी मन राजा दुष्यन्त की ओर आकर्षित हुआ।

दुष्यन्त ने कहा कल्याणी, जैसा तुम कह रही हो वैसा तुम ब्राह्मण कन्या नहीं हो। क्षत्रिय राजकन्या हो। मेरा मन तुमपर आकर्षित हो रहा है। तुम सब प्रकार मेरे योग्य हो इसलिये तुम मेरी पत्नी बन जाओ मैं तुम्हें अपनी महारानी बनाना चाहता हूँ। तुम राजरानी बनोगी, तुम मेरे साथ गन्धर्व विवाह पाणिग्रहण कर लो। राजाओं के लिये गन्धर्व विवाह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मेरा यह प्रस्ताव तुम स्वीकार करो। तब शकुन्तला ने कहा- राजन, यह तो ठीक है, मैं भी तुम्हें मन से चाहती हूं पर यह निर्णय लेने के लिये मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। मेरे पालक महर्षि कण्व इस समय बाहर गये हुये है और उनके आने पर ही उनसे अनुमति प्राप्त होने पर ऐसा हो सकता है।

तब महाराज दुष्यन्त ने शकुन्तला को समझाया और अपनी बाहों में भरकर बोले- शकुन्तले, मैं तो अधीर हो रहा हूँ और मैं अब अधिक समय तक इन्तजार नहीं कर सकता इसलिये मेरे साथ गन्धर्व विवाह कर लो। मैं चाहता हूं कि तुम मुझे स्वयं वरण कर लो। मनुष्य स्वयं ही अपना हितैषी है। तुम धर्म के अनुसार स्वयं ही मुझे अपना दान कर लो। मुझे निश्चित है कि महर्षि को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी बल्कि वे मुझे तुम्हारे पति रूप में पाकर आनन्दित होंगे।

शकुन्तला ने कहा- राजन, यदि आप इसे धर्म पथ समझते हैं और मुझे स्वयं अपने को दान करने का अधिकार है तो साथ में मैं यह प्रतिज्ञा भी आपसे चाहती हूं कि आज के बाद मेरा पुत्र ही इस भू-मण्डल का सम्राट होगा और मेरे जीवनकाल में ही उसे युवराज बनायेंगे तो मैं आपको स्वीकार कर सकती हूं। दुष्यन्त ने बिना कुछ सोचे समझे ही प्रतिज्ञा कर ली और गान्धर्व विधि से शकुन्तला से पाणिग्रहण कर लिया। दुष्यन्त शकुन्तला के साथ महर्षि कण्व के आश्रम में रहने लगे। शकुन्तला का महाराज दुष्यन्त के साथ दिन-प्रतिदिन सहवास और समागम होने लगा।

इसी बीच एक दिन ऋषि दुर्वासा महर्षि कण्व को मिलने उनके आश्रम में आये और देखा शकुन्तला तो अपने प्रेम अल्हाद में महाराज दुष्यन्त के साथ व्यस्त है और अतिथि दुर्वासा की उपेक्षा हो रही है। कोई तरह का अतिथि सत्कार नहीं है। महर्षि कण्व वहां नहीं थे। अपनी उपेक्षा जानकर ऋषि दुर्वासा क्रोध से भरकर दुष्यन्त और शकुन्तला को शाप देकर वहां से चले गये। दुष्यन्त को शाप दिया कि राजन, यह सब जो कुछ तू कर रहा है वह कालान्तर में सब विस्मृत हो जायेगा और शकुन्तला तू तेरे पेमी के वियोग में तडफती रहेगी, तुझे यह प्राप्त नहीं होगा।

कुछ समय महाराज दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ महर्षि कण्व के आश्रम में बीत जाने के पश्चात एक दिन हस्तिनापुर से समाचार आया कि हस्तिनापुर नरेश दुष्यन्त को आवश्यक कार्य के लिये शीघ्रातिशीघ्र हस्तिनापुर लौटना चाहिये। तब महाराजा दुष्यन्त ने शकुन्तला जो गर्भवती हो चुकी थी समझाया कि मुझे कुछ आवश्यक कार्य से हस्तिनापुर लौटना पडेगा और मैं तुम्हे थोडे ही दिनों में अपनी चतुरंगिणी सेना भेजकर तुम्हें और तुम्हारी सन्तान को राजमहल में बुला लूंगा। शकुन्तला यह सुनकर अत्यन्त खिन्न उदास मन हुई। प्रेम के स्मृति की लिये अपने हाथ की अंगूठी जो दुष्यन्त नाम से अंकित थी शकुन्तला के हाथ

की अंगुली में पहना दी। अब महाराज दुष्यन्त वहां से अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आये।

कुछ दिनों पश्चात महर्षि कण्व अपने आश्रम में लौटे पर शकुन्तला लज्जावश उनके पास नहीं गयी। महर्षि वे अपनी दिव्य दृष्टि और तपोबल से सब कुछ जान लिया। शकुन्तला का विवाह महाराज दुष्यन्त से हुआ यह जानकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुये। यह भी जान लिया कि शकुन्तला की कोख में महाराज दुष्यन्त से उत्पन्न सन्तान पल रही है। शकुन्तला गर्भवती है।

महर्षि ने कहा- तुमने मुझसे पूछे बिना एकान्त में जो काम कर लिया है वह सर्वथा धर्म विरूद्ध नहीं है। क्षत्रियों के लिये गन्धर्व विवाह शास्त्र सम्मत है। दुष्यन्त एक धर्मात्मा, उदार एवं श्रेष्ठ पुरुष है। उसको संयोग से बडा बलवान पुत्र उत्पन्न होगा और वह सारे भूमंडल का चक्रवर्ती सम्राट होगा। महर्षि कण्व ने दुष्यन्त को वर दिया कि उसकी बुद्धि धर्म में बद्ध रहे और राज्य अविचल रहे।

समय पर आश्रम में शकुन्तला के गर्भ से एक हृष्टपुष्ट स्वस्थ पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि ने उस शिशु का लालन-पोषण किया। वह बालक बचपन से ही बडा बलिष्ठ था। विधिपूर्वक उसके जात कर्म आदि संस्कार किये गये। उस शिशु के दांत स्वच्छ, सफेद, शुभ्र, चमकीले और बडे ही नुकीले थे, कन्धे सिंह के समान थे, दोनों हाथों में चक्र का चिन्ह था। सिर बडा और ललाट ऊंचा था। वह छ: वर्ष की अवस्था में ही सिंह शावकों के साथ खेलता था। निर्भीक बालक था। सिंह, बाघ, शूकर हाथियों जैसे हिंसक पशुओं को आश्रम के वृक्षों से बांध देता था, कभी उन पर चढ़ जाता था, कभी डांट देता था तथा कभी उनके साथ दौडता, अनेक प्रकार की क्रीडायें करता था। उसके द्वारा समस्त हिंसक जन्तुओं का दमन होते देखकर महर्षि ने उसका नाम सर्वदमन रख दिया। वह बडा ही विक्रमी, ओजस्वी और बलवान था। बालक के अलौकिक कर्म देखकर महर्षि कण्व ने शकुन्तला से कहा अब यह युवराज होने योग्य हो गया है। मुनिने उसे सब भांति योग्य बनाया। यहां शकुन्तला दिन-प्रतिदिन चिंतित रहने लगी कि महाराज दुष्यन्त ने उसे बुलाने के लिये अभी तक राज महल से कोई दूत या चतुरंगिणी सेना नहीं भेजी इसका क्या कारण है। बहुत लम्बा समय बीत गया है। लडकी को अपने ससुराल गृह में ही रहना चाहिये। शादी के पश्चात पितृगृह में लड़की कब तक रह सकती है ?

अब महर्षि ने अपने आश्रम में शिष्यों को बुलाकर कहा कि तुम शकुन्तला को अपने पुत्र सर्वदमन सहित उसके पति घर पहुंचा आओ। कन्या का बहुत दिनों तक पिता गृह में रहना धर्मानुकूल नहीं है यह कीर्ति चरित्र और धर्म का घातक है। महर्षि कण्व की आज्ञा से शिष्यगण शकुन्तला और सर्वदमन को लेकर हस्तिनापुर की यात्रा के लिये आश्रम से विदा हुये।

रास्ते मे गंगा पार करने के लिये नाव में बैठते समय शकुन्तला की अंगुली से दुष्यन्त नाम अंकित मुद्रिका पानी में गिर गई जो किसी धीवर (केवट) के हाथ लगी।

जब राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम से लौट रहे थे। उसी समय घुड़सवारी करते समय एक दुर्घटना से गिर पडे और उनकी महर्षि के आश्रम की सर्व घटना विस्मृत हो गई कि उन्होंने कभी शतुन्तला से गन्धर्व विवाह किया था।

शकुन्तला अपने पुत्र सर्वदमन के साथ सूचना और स्वीकृति के बाद महाराज दुष्यन्त की राजसभा में पहुंची। शकुन्तला ने सम्मानपूर्वक निवेदन किया कि राजन मैं आपकी पत्नी शकुन्तला और यह आपका पुत्र है। अब अपने पुत्र को स्वीकार कर इसे युवराज बनाये। इस देवतुल्य कुमार के सम्बन्ध में आपने जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करे। तब राजा दुष्यन्त बोले अरी तापसी तुम कौन हो, मैं तुम्हें नहीं जानता, तुम अपने आप को कैसे मेरी पत्नी कह रही हो। यह मेरा पुत्र कैसे है ? मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं है। तेरे साथ धर्म अर्थ और काम का मेरा कभी भी कोई सम्बन्ध नहीं हुआ है। यह मिथ्या भाषण किसलिये कर रही हो ?

दुष्यन्त की बात सुनकर शकुन्तला सुध-बुध खोकर निश्चल भाव से खम्भे की तरह खडी रही। उसकी आंखे लाल हो गई और होठ फडकने लगे और वह वक्र दृष्टि से दुष्यन्त की ओर देखने लगी तथा दु:ख और क्रोध से भर कर बोली महाराज आप जान बूझकर ऐसी बातें कर रहे हैं कि आपको यह सब प्रकरण घटना याद नहीं है। ऐसी बाते तो निम्न श्रेणी के, नीच लोग ही कहते

हैं। आप जानते है कि झूठ क्या है और सच क्या है ? आपका हृदय तो और कुछ कह रहा है और आप कुछ और कह रहे है। ऐसा कह कर आप बहुत बडा पाप कर रहे हैं। आप कहीं ऐसा समझते हो कि उस समय मैं अकेला था और जो कुछ मैंने किया उसका कोई साक्षात गवाह नहीं है इसलिये कोई भी इसे नहीं जानता तो यह आपकी सरासर भूल है। वह ईश्वर सब कुछ देखता है, वह सबके पाप पुण्यों को जानता है। मुझे कोई नहीं देख रहा है ऐसा समझना घोर अज्ञान है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, यम, ये दिन रात, सन्ध्या, धर्म, वृक्ष लताएं, ग्रह नक्षत्र, पशु-पक्षी ये सभी मनुष्य के शुभ-अशुभ कर्मों को जानते है। जिस किसी पर ईश्वर सन्तुष्ट नहीं है यम उसके पापों का दंड अवश्य देते हैं। जो स्वयं अपनी आत्मा का तिरस्कार कर कुछ का कुछ कर लेता है तो देवता भी उसकी सहायता को नहीं आते है। मैं आपके पास आयी हूं, मुझ पतिव्रता का तिरस्कार कर आप सुखी नहीं रह सकेंगे। विश्वास दिलाने के लिये निशानी के बतौर पर आपकी दी हुई यह अंगूठी आपके नाम से अंकित है, शकुन्तला ने उसे दिखाने के लिये अंगुली में से निकालना चाहा तो अंगूठी अंगुली में नहीं थी यह देखकर शकुन्तला चिंतित हो गई।

राजन आपका पुत्र स्वयं आपके सामने खडा है और प्रेमभरी दृष्टि से देख रहा है और आपकी गोद में बैठने को उत्सुक है, उसे स्वीकार करें। चीटियां भी अपने अन्डों का पालन करती है उन्हे फोडती नहीं है। पुत्र को हृदय से लगाने पर जैसा सुख होता है वैसा सुकोमल वस्त्र, पत्नी अथवा जल के स्पर्श से नहीं होता। राजन मैंने इस पुत्र को तीन वर्ष तक अपने गर्भ में धारण किया है। पिता का जीवन और आगे की वंश परम्परा पुत्र के अधीन है।

दुष्यन्त ने कहा मुझे नहीं मालूम कि मैंने तुमसे कोई पुत्र उत्पन्न किया है। स्त्रियाँ तो अपने स्वार्थ के लिये प्राय: झूठ बोलती है इसलिये तुम्हारी इस बात पर कैसे विश्वास किया जाये। कहां महर्षि विश्वामित्र और अप्सरा मेनका और कहां तेरी जैसी साधारण सी स्त्री। इतने थोडे दिनों में भला यह बालक इतना बडा वृक्ष के समान कैसे हो सकता है ? तू अब यहां से चली जा। तब शकुन्तला ने कहा- राजन, कपट मत करो। सत्य सहस्त्र अश्वमेघ यज्ञों से भी श्रेष्ठ है। सारे वेदों का अध्ययन कर लें, सभी तीर्थों का स्नान कर लें तो भी सत्य की समानता नहीं कर सकता। झूठ से बढकर निन्दनीय कुछ नहीं है। सत्य स्वयं परब्रह्म परमात्मा है। सत्य ही सर्वश्रेष्ठ प्रतिज्ञा है। तुम स्वार्थ के लिये अपनी प्रतिज्ञा मत भंग करो। सत्य सर्वदा तुम्हारे साथ रहे। यदि झूठ से ही तुम्हारा प्रेम है और मेरी बात पर तुम्हे विश्वास नहीं हो रहा है तो मैं स्वयं ही यहां से चली जाऊंगी। मैं भी झूठे के साथ रहना नहीं चाहती। राजन तुम इस पुत्र को अपनाओ या नहीं, मेरा यह पुत्र ही सारे भूमंडल का राज्य करेगा इसमें जरा भी संशय नहीं है। यह कहकर शकुन्तला वहां से अपने पुत्र को लेकर वन में चली गई।

उसी समय राज दरबार में राजा के कोतवाल किसी चोर को पकड चोरी के अभियोग में लाये आरोपी के पास से महाराज दुष्यन्त की शकुन्तला को दी हुई वह अंगूठी दुष्यन्त नाम से अंकित बरामद हुई। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उसने किसी केवट मछुआरे के घर से चुराई थी। कोतवालों ने उस मछुआरे को बुलाया तो पता लगा कि एक दिन पहले ही गंगा पार करते समय किसी सुन्दरी की अंगुली से गिर कर यह अंगूठी उसे प्राप्त हुई। अब राजा दुष्यन्त को कुछ-कुछ याद आया। उसी समय ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य और मन्त्रियों सहित बैठे हुये दुष्यन्त के समक्ष आकाशवाणी हुई, माता तो केवल धौंकनी के समान होती है। पुत्र पिता का ही होता है। पिता ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। तुम पुत्र का पालन-पोषण करो। यह तुम्हारा ही पुत्र है। शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है इसका अपमान मत करो। अपना औरस पुत्र पिता को यमराज की फांस से भी छुडाने में समर्थ होता है। तुमने ही इस बालक का गर्भाधान किया है। शकुन्तला की बात सर्वथा सत्य है। राजन तुम्हारे भरण-पोषण के कारण इसका नाम भरत होगा। आकाशवाणी सुनकर दुष्यन्त आनंद से भर गये।

उन्होने पुरोहित और मन्त्रियों से कहा आप लोगों ने भी देवताओं की आकाशवाणी सुनी। मैं भी ठीक-ठीक यही जानता हूं और

समझता हूँ कि यह मेरा पुत्र और पत्नी है। यदि मैं केवल शकुन्तला के कहने भर से ही इसे स्वीकार कर लेता तो सारी प्रजा इस पर सन्देह करती और इसका कलंक नहीं छूट पाता। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने शकुन्तला के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया।

अब महाराज दुष्यन्त ने अपने मन्त्रियों और सेनापति को आज्ञा दी कि शकुन्तला और उसके पुत्र भरत को ढूंढकर बडे सम्मानपूर्वक राजसदन में ले आओ। सेवकों उन्हें वन से ढूंढकर दुष्यन्त के महल में ले आये।

अब महाराजा दुष्यन्त ने बच्चे को स्वीकार किया और उनका संस्कार कराया। दुष्यन्त ने अपने पुत्र को चूमकर छातीसे लगाया। चारों ओर आनन्द की नदी उमडी, जय-जयकार होने लगा। दुष्यन्त ने धर्मानुसार अपनी पत्नी का सत्कार किया और कहा देवि मैंने तुम्हारे साथ जो सम्बन्ध किया था वह किसी को मालूम नहीं था। लोग समझते है कि मैंने मोहित होकर तुम्हारी बात स्वीकार कर ली है। प्रजा जन मेरे पुत्र के युवराज होने से भी आपत्ति करते। मैंने तुम्हे अत्यन्त ही कठोर वाणी कह दी जिससे तुमने क्रोधित वश मुझसे जो अप्रिय वाणी कह दी उसका मुझे लेशमात्र भर भी विचार नहीं है। हम एक दूसरे के प्रिय पति-पत्नी हैं इस तरह कहकर राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का वस्त्र, भोजन, आभूषणों से सत्कार कर सन्तुष्ट किया। समय पर भरत का युवराज पद पर अभिषेक हुआ।

महाराज दुष्यन्त कुछ काल पश्चात वृद्ध अवस्था आ जाने पर वानप्रस्थ धर्म में चले गये और पुत्र भरत का राज्याभिषेक कर दिया। दूर-दूर तक भरत का शासन चक्र प्रसिद्ध हुआ। उसने राजाओं को जीत कर अपने वशवर्ती बना लिया और वेद सन्त सम्मत धर्म का पालन कर अनुत्तम यश लाभ उठाया। यह सारे भूमंडल का एक छत्र चक्रवर्ती सार्वभौम सम्राट था। उसने इन्द्र के समान अनेकों अश्वमेघ यज्ञ किये। यह देश आर्याव्रत के नाम से जाना जाता था, इसे अजानाभ खंड कहते थे। भरत से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पडा और वे ही भरत वंश के प्रवर्तक हुये। उनके वंश में अनेकों ब्रह्मज्ञानी और राजर्षि हुये। इसी वंश से कुरु, पुरु वंश का इतिहास बना। भरत के राज्य का विस्तार हिमगिरि से लेकर सागर के छोर कुमारी अन्तरिप तक का था। एक विशाल साम्राज्य का चक्रवर्ती सम्राट भरत। काशी नरेश की बहन सुनन्दा महाराज भरत की पटमहिषी थी और उसके नौ पुत्र हुये। नौ पुत्रों का भाग्यशाली पिता महाराज भरत हस्तिनापुर नरेश हुये।

हस्तिनापुर नरेश दिग्विजयी सम्राट चक्रवर्ती महाराज भरत ने अपने राज्य शासनकाल में सुव्यवस्था करी और इसी में बढ़ाई है कि उन्होंने अपने राजदरबार की मिट्टी में प्रजातन्त्र का पहला बीज डाला और जन्म और कर्म के बीच एक रेखा डालकर यह कहा कि जीवन का अर्थ जन्म नहीं कर्म है। क्योंकि कुरुक्षेत्र वास्तव में धर्मक्षेत्र है।

एक दिन राजा भरत अपनी राजसभा में बैठे थे तब प्रधानमन्त्री ने कहा- हे राजन, अब वो समय आ गया है अब आप अपना युवराज नियुक्त कर दें। राजा भरत ने कहा मैं अपना निर्णय विचारकर घोषित करूंगा। युद्ध से लौटने के पश्चात् वे महर्षि कण्व के दर्शन करने के लिये चल पडे और अपनी माता को सूचित किया। महर्षि कण्व के पास जाकर भरत ने आशीर्वाद मांगा। महर्षि कण्व अपने तपोबल से भरत के आने का प्रयोजन जानकर पूछे भरत, अब तुम वह पूछो जो तुम जानने आये हो। भरत ने कहा- ऋषिवर, मेरी समस्या यह है कि मैं नौ पुत्रों का पिता हूं मुझे यह समझ में नहीं आता कि मैं युवराज किसे बनाऊं।

तब महर्षि बोले- इस प्रश्न का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर विजय पानेवाले भरत ने अभी तक स्वयं पर विजय प्राप्त नहीं की और यदि तुम स्वयं पर विजय नहीं पाओगे तो तुम कभी न्याय भी नहीं कर सकोगे। इसलिये जाओ और पहले स्वयं पर विजय पाओ तब तुम्हे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। चिरंजीवी भव।

भरत अपनी राजसभा में आता है और महामन्त्री को आदेश करता है कि मेरा यह फरमान पढ़कर प्रजा को सुनाओ। महामन्त्री भरी सभा में पढ़ता है मैं दुष्यन्त पुत्र भरत सबसे पहले अपने सूरमाओं के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने हस्तिनापुर को आर्यव्रत की अन्तिम रेखाओं तक पहुंचा दिया और मैं आभारी हूं हस्तिनापुर की प्रजा का जिसने आशीर्वाद के साथ-साथ

मुझे अपने सपूत दिये। जिनमें से कुछ हमारे साथ लौट नहीं पाये। मैं उनके माता-पिता को शत्शत कोटि प्रणाम करता हूँ और आज इस राज सिंहासन से यह घोषणा करता हूं कि राजा अपने देश ओर देश के जनसमुदाय से बडा नहीं होता। राजा के केवल तीन कर्तव्य होते हैं। देश और जन समुदाय को न्याय देना, उनकी रक्षा करना और किसी ऐसे व्यक्ति को युवराज नियुक्त करना, जो देश और प्रजा को न्याय भी दे सके और उनकी रक्षा भी कर सकें। मुझे खेद है कि मैं अपने किसी भी पुत्र में यह गुण और योग्यता नहीं पाता। इसलिये मैं भरद्वाज मन्यु को अपना पुत्र मानकर उसे युवराज नियुक्त करता हूं।

यह घोषणा कर भरत ने राजसभा बरखास्त की और अपने महल में चला गया। वहाँ उसे उसकी माता शकुन्तला मिली जो काफी चिन्तित थी। भरत ने पूछा- माता आप आज बहुत चिंतित है। माता शकुन्तला ने कहा- पुत्र, रिश्ते-नातों के इतिहास में तुम पहले पिता हो जिसने अपने पुत्र का अधिकार किसी और को दे दिया है। तुम कैसे पिता हो पुत्र ? तब भरत बोले- मैं एक ऐसा पिता हूं माते जो केवल पिता ही नहीं बल्कि एक राजा भी है। पुत्र फिर भी पुत्र होता है। ममता ने आपको विवश कर दिया है। मैं राजा हूं, न्याय ने मुझे जकड रखा है। मेरा परिवार बहुत बडा है माते। अब मैं जिसे युवराज नियुक्त करने जा रहा हूं वो भी तो मेरा ही पुत्र है। वो भी मेरी प्रजा में से एक है। सारा जन-समुदाय मेरा परिवार है। यदि मैं अपने पुत्र को युवराज घोषित कर दूं तो यह राज्य और प्रजा दोनों के साथ अन्याय होगा। राजमाता, आपको तो गर्व होना चाहिये कि आपके पुत्र ने यह न्याय किया है।

परन्तु भरत की राजनीति से धरती पर लोकतंत्र का यह अंकुर फूटा था वह कुछ पीढ़ियों बाद प्रतीप पुत्र हस्तिनापुर नरेश शान्तनु के शासनकाल में मुरझा गया। जब जन्म को कर्म से बडा मान दिया गया, वर्तमान को एक अनजाने भविष्य के दांव पर लगा दिया गया। वास्तव मेंउसी दिन महाभारत के लिये कुरुक्षेत्र तैयार हो गया। उसकी रणभूमि भी सजने लगी थी। इस तरह महाराजा शान्तनु की कहानी शुरु होती है।

६) कुरु वंश महाराज शान्तनु और गंगा

प्रतीप पुत्र महाराज शान्तनु हस्तिनापुर नरेश हुये और राज्य भार यथा शक्ति सम्भाला। राजा शान्तनु बडे ही मेधावी, धर्मात्मा और सत्य निष्ठ थे। बडे-बडे देवर्षि और राजर्षि उनका सत्कार सम्मान करते थे। इन्द्रिय दमन, दान, क्षमा, ज्ञान, संकोच, धैर्य और तेज उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। वे धर्म नीति तथा अर्थ नीति में निपुण थे। वे केवल भरत वंश के ही नहीं पूरी प्रजा के संरक्षक थे। उनके चरित्र में काम और अर्थ से बढ़कर धर्म ही है इससे प्रजा का शोक, भय, चिन्ता और बाधायें मिट गई। उनके तेजस्वी शासन से प्रभावित होकर दूसरे सामन्त राजा भी यज्ञ दान आदि में तत्पर रहते थे। वर्णाश्रम धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। हस्तिनापुर उनकी राजधानी थी वहीं से वे पूरी पृथ्वी का शासन करते थे। उनके राज्य काल में पशु सूकर, हरिण और पक्षियों तक को कोई नहीं मार सकता था, सबको अभय प्राप्त था। उनके राज्य में ब्राह्मणों, पुरोहितों को प्रधानता थी। महाराज शान्तनु बडी विनय सहित राग द्वेष रहित होकर प्रजा का शासन पालन करते थे। देवता, ऋषि, पितरों के यज्ञ के लिये यज्ञशाला में उद्योग चलते रहते थे। शान्तनु दु:खी, अनाथ, सभी प्राणियों की रक्षा करते थे। प्रजा की वाणी सत्य के आश्रित थी। सभी लोग दान देने के लिये उत्साहित रहते थे। राजा ने ३६ वर्ष की अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत निभाते हुये वनवासी जैसा जीवन व्यतीत किया।

एक दिन महापराक्रमी शान्तनु महाराज हिंसक पशुओं का आखेट करने वन में गये। शिकार खेलते-खेलते वे गंगा तट पर जा पहुंचे। गंगा किनारे वन में कितने ही पशु-पक्षी सुख से आनन्द से विचरण कर रहे थे। रथ के घोडों की टाप की आवाज सुनकर हिंसक प्राणी सभी वन में अपनी जान बचाने के लिये इधर-उधर भागने लगे। गंगा तीट पर आये महाराज शान्तनु यह सब कुछ बडे आनन्दपूर्वक़ देख रहे थे उसी समय महाराज शान्तनु ने गंगा नदी में एक अलग प्रकार की हलचल होती देखी। महाराज ने

देखा गंगा नदी की लहरों में से एक श्वेत अम्बर सी अनुपम सौन्दर्य वाली तरुणी निकलकर आ रही है। उन्होंने उस परम सुन्दरी को देखा जो दूसरी लक्ष्मी समान जान पडती थी। उसका रूप वैभव देखकर शान्तनु उस पर मुग्ध मोहित हो गये, विस्मित हो गये। सारे शरीर में रोमांच हो आया, कम्पन होने लगा और उसे इस प्रकार देखने लगे मानो नेत्रों से पी जायेंगे। उस दिव्य नारी को देखकर महाराज का मन विचलित हो गया। वह दिव्य नारी गंगा में से निकलकर किनारे पर आई। महाराज रथ को दूर खडा कर उसके पास इसी अवस्था में चलकर गये। दोनों की आपस में नजरे टकराई और शर्मसार हुई। उस दिव्य स्त्री के मन में महाराज के प्रति प्रेम उमडा।

महाराज शान्तनु ने अपना परिचय दिया। देवि मैं हस्तिनापुर नरेश शान्तनु हूं और उस स्त्री से उसका परिचय पूछा। तब उस देवी ने कहा मैं साक्षात गंगा हूँ। यह सुनकर महाराज अवाक रह गये और बोले देवि मैं यहां शिकार करने आया था परन्तु तुम्हारे इस अनुपम सौंदर्य को देखकर मेरा ही शिकार हो गया और यह कह कर उस देवी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। गंगा बोली महाराज इस तरह अपनी सुध-बुध खो देना योग्य नहीं है। आपको सावधान रहना चाहिये। प्रजा के हित के लिये व राज्य की बागडोर सम्भालने के लिये राजा को सदैव सतर्क रहना चाहिये, यह कह कर महाराज को राजा के कर्तव्य की याद दिलाई।

गंगा की यह वार्ता सुनकर महाराज अतिशय आनंदित हुये पर उसके रूप सौन्दर्य से इतने मोहित हो गये कि वे कोई स्पष्टीकरण नहीं दे पाये और थोडी देर सोच कर बोले देवि मैं तो राह भटक गया हूं पर हस्तिनापुर की प्रजा को उसका शासक लौटाना अब सिर्फ केवल तुम्हारे ही हाथ में है। महाराज के इस तरह कहने पर गंगा शर्म से गड गयी और पूरी बात का अर्थ न समझकर गंगा बोली महाराज यह मेरे हाथ में कैसे है ? महाराज शान्तनु बोले अब तुम्हारी हां या ना पर निर्भर है, मैं तो तुम्हे देखकर शिकार हो चुका हूं। अब तुम मुझे पति रूप में स्वीकार कर मेरी भार्या बन जाओ, तुम हस्तिनापुर की महारानी होगी। गंगा बोली महाराज प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के लिये योग्य समय होता है। आपके इस प्रश्न का उत्तर कल इसी समय इसी जगह दूंगी और यह कह कर गंगा वहां से नदी की बहती लहरों में चली गई। जिस दिशा में गंगा गई महाराज शान्तनु मन्त्र मुग्ध होकर एक टक उधर देखते रहे और उस दिन स्वयं किसी के शिकार हो महाराज अपने महल में लौट आये। राज महल में पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो गया था। आकाश में तारे चमकने लगे।

सायंकाल ढल गया रात्रि आ गई। मन्द-मन्द ठंडी हवा बह रही थी मन को प्रसन्न करनेवाला शान्त मनोहर वातावरण तारों भरी चांदनी रात का इतना सुन्दर सौन्दर्य प्रकृति का पर महाराज शान्तनु पर इसका कोई प्रभाव नहीं। शान्तनु तो कल की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब सुबह हो, कब सूर्य उदय हो और गंगा तट पर जाकर गंगा से मिलूं। गंगा के अपूर्व सौन्दर्य ने शान्तनु को घायल कर दिया। बार-बार गंगा की बातों का स्मरण करते रहे। पूरी रात्रि अस्वस्थ मन से जागते करवट बदल-बदल कर बिताई।

दूसरे दिन बडी ही आतुरता से महाराज शान्तनु उसी स्थानपर गये जहां कल गंगा से मिले थे और गंगा के आने की प्रतीक्षा करने लगे। थोडी ही देर में गंगा की लहरों से निकल कर गंगा वहां पर आई। महाराज को अपने प्रश्न का उत्तर पाने की शीघ्रता थी। डर था कहीं कल की तरह ही गंगा अचानक चली न जाये इसलिये अधिक विलम्ब न कर महाराज ने पूछा गंगा आपको मेरी प्रतीक्षा तो नहीं करनी पडी। गंगा ने उत्तर दिया महाराज किसी भी काम के लिये धैर्य तो रखना ही पडता है इसलिये इसकी प्रतीक्षा भी अनिवार्य है। तब महाराज शान्तनु ने फिर वही प्रस्ताव रखा कि मेरे साथ शादी कर हस्तिनापुर की महारानी बनने के लिये स्वीकृति दो। महाराज शान्तनु के प्रस्ताव से गंगा आश्चर्य चकित हो शान्तनु की तरफ देखने लगी और विचार कर बोली महाराज मुझे यह प्रस्ताव मंजूर है पर इसके लिये एक शर्त है जिसके लिये आपसे वचन चाहिये। गंगा को शान्तनु से कौनसा वचन चाहिये था राज्य का, सम्पति का या अन्य और कोई ? गंगा के रूप सौन्दर्य से घायल महाराज शान्तनु ने किसी प्रकार की

सम्भावनाओं का विचार न करते हुये शीघ्रता से पूछ बैठे क्या चाहिये बोलो ? मैं तुम्हारी हर शर्त मंजूर करता हूँ और पूरी करूंगा। सत्ता, सम्पति के मोह से दूर गंगा की शर्त अलग थी। गंगा ने कहा महाराज मुझे आपकी रानी बनना स्वीकार हैं। पर मेरी यह शर्त है कि मैं आपके जीवन काल में अच्छा या बुरा जो कुछ करूं आप मुझे ऐसा करने से रोकेंगे नहीं और न ही उसके बारे में कुछ पूछेंगे और न ही मुझे कुछ कहेंगे। विवाह के पश्चात जब तक आप मेरी यह शर्त पूरी करेंगे तब तक मैं आपके पास रहूंगी और जिस दिन आप मेरे कोई भी कृत्य को रोकेंगे या उसके बारे में कुछ कहेंगे उसी दिन मैं आपके प्रश्न का योग्य उत्तर देकर आपको सदा के लिये छोडकर चली जाऊंगी। गंगा की यह शर्त, गंगा के साथ सहवास के लोभ के लिये, राजा ने बिना इसके परिणाम विचारे, न आगे-पीछे का कुछ विचार कर स्वीकार कर ली। राजा ने भी इसके बारे में गंगा से कुछ पूछताछ नहीं करी। गंगा को बडी प्रसन्नता हुई। यहीं से महाभारत का बीजारोपण हुआ। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये ही महाराज शान्तनु की सार असार विवेक बुद्धि निष्प्रभ हो गई। शान्तनु महाराज को यह विचार करना चाहिये था कि गंगा को दिया वचन वो निभा पायेंगे क्या ? इस प्रकार का वचन देकर क्या व्यक्तिगत या राज शासन की दृष्टि से क्या अडचनें जीवन में आ सकती है और वे क्या इसे पूरा कर पायेंगे ? इन सब बातों को शान्तनु को विचार करना चाहिये था पर शान्तनु ने अपने अज्ञात भविष्य को अपना वर्तमान सौंप कर दांव पर लगा दिया। ज्ञानी लोग, धर्म विशेषज्ञ इसे नियति का खेल कहते हैं। शान्तनु के वचनों से प्रसन्न हो गंगा ने महाराज शान्तनु के गले में वरमाला डाल दी और अपना पति स्वीकार कर उनसे पाणिग्रहण कर लिया।

गंगा शान्तनु के जीवन में आयी। शान्तनु गंगा के शील सदाचार रूप, सौन्दर्य उदारता आदि सद्गुणों और सेवा से आनंदित हुये। वे गंगा के साथ इस प्रकार आसक्त हो गये कि पूर्ण रूप से अपने कर्तव्य का भान ही भूल गये। रात दिन का भी कुछ पता नहीं रहता था। पूरे समय गंगा के साथ सहवास, उसी के साथ रमण करना, उसके रूप का वर्णन करते थकते नहीं थे। एक दिन वे गंगा से बोले देवि मैं तो जीवनभर क्षत्रिय ही रहा सिर्फ तलवार, बाण भालों से ही युद्ध भूमि में खेलता रहा और सिर्फ यही भाषा जानता रहा। मुझे श्रृंगार की भाषा नहीं आती। मुझे लगता है कि जीवन में मैं कभी कवि क्यों नहीं बना। यदि मैं कवि होता तो गंगा तेरी आँखों और होठों की भाषा समझ सकता और शब्दों में ढाल कर कविता में सुनाता। तुम्हारे इस मोहक रूप का वर्णन करता। इसके लिये शब्द भी अपर्याप्त रहते। पर हाय रे इन्सान की मजबूरियाँ पास रहकर भी इतनी दूरियां। इस प्रकार गंगा की बार-बार तारीफ स्तुति कर शान्तनु गंगा को नित्य प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता रहा।

गंगा, शान्तनु महाराज की पत्नी, हस्तिनापुर की महारानी को कुरु कुल के वैभवशाली इतिहास का ज्ञान था, वह बडी ही समझदार और विद्वान थी। उसे लगा आर्य पुत्र शान्तनु उसमें आसक्त हो आकंठ उसमें डूब गये है तो वह महाराज से बोली, महाराज हस्तिनापुर की प्रजा कहेगी कि गंगा ने हस्तिनापुर नरेश को हर लिया है हस्तिनापुर नरेश खो गया है। ऐसा दोष प्रजा आप पर लगायेगी इसलिये महाराज मैं आपको राज्यभार शासन सम्भालने का स्मरण कराती हूँ। पर गंगा के प्रेम में आकंठ डूबे शान्तनु पर गंगा के कहने का कोई असर नहीं हुआ।

शान्तनु ने कहा गंगा हमें इन झील सी गहरी आंखों में डूबना अच्छा लगता है और मैं इससे बाहर भी निकलना नहीं चाहता। मुझे मत उबारो। महाराज शान्तनु को गंगा के साथ रमण विहार करते हुये कितने ही दिन बीत गये और राज काज की भी सुध न रही।

महाराज के इस प्रकार राज दरबार में अनुपस्थित रहने के कारण महासेनापति और महामन्त्री के बीच चर्चा का विषय बन गया। महासेनापति बोले, मन्त्रीवर पिछले कई महिनों से महाराज के दर्शन नहीं हुये। मैं राज्य का सेनापति हूँ इसलिये राजा के लिये चिन्ता करना आवश्यक है। महाराज को उनके कर्तव्य की याद कराना सेनापति का कर्तव्य है। राजा से रिक्त सिंहासन सुरक्षित नहीं होता है। महामन्त्री सेनापति के मत से सहमत नहीं थे वे बोले आपके जैसा सेनापति महाराज के पास हो तो राज्य के लिये चिन्ता करने का कोई कारण ही नहीं बनता फिर हस्तिनापुर राज्य की सीमा चारों ओर से सुरक्षित है। महाराज ने आप

जैसे विश्वासु सेवक पर अपने पूरे राज्य का भार सौंपकर कुछ दिन के लिये व्यक्तिगत सुख का विचार कर इसमें कोई गलत नहीं किया है। महामन्त्री के इस प्रकार बार-बार समझाने पर भी सेनापति पर कोई खास प्रभाव नहीं पडा और वे कहते रहे कि राजा का प्रजा के लिये कुछ भी कर्तव्य और दायित्व होता है उसे उन्हें पूरा करना चाहिये। महाराज को अब अपने वैवाहिक जीवन के रस से बाहर निकलना चाहिये। इस तरह भोग विलास में कितने दिन डूबे रहेंगे ? ऐसे कितने दिन तक राज सिंहासन रिक्त रहेगा ? इस तरह महा सेनापति बार-बार कितने ही प्रश्न उठाने लगे।

महामन्त्री महासेनापति की इस गैर समझदारी को लक्ष्य करके बोले, सेनापति महाराज स्वयं ही इस आनन्द सागर से बाहर निकलेंगे और राज्य कारभार सम्भालेंगे। शासन को फिर से राजा प्राप्त होगा। वो दिन जल्दी ही आये ऐसी प्रार्थना ईश्वर से करें। इतना कहने पर भी सेनापति का भ्रम नहीं मिटा और वैसे ही स्थिर रहा। महामन्त्री सेनापति से फिर बोले सेनापति जी जब तक महाराज स्वयं वैवाहिक जीवन का आनन्द क्या है यह न जान लें तब तक वो प्रजा को इस आनन्द का उपभोग कैसे करने देंगे? गृहस्थ धर्म क्या होता है जब तक महाराज यह न जान लें तब प्रजा को यह धर्म निभाने में क्या अडचन विघ्न बाधा आती है, उन्हे कैसे मालूम होगा ? किसी भी वैवाहिक सुख का परम उच्च क्षण व रस सन्तान प्राप्ति ही एक मात्र लक्ष्य है। एक बार महाराज को यह अनुभव आजायेगा तो वे स्वयं ही इससे बाहर निकल कर राज्य भार सम्हालने लग जायेंगे। यह क्षण शीघ्र ही महाराज के जीवन काल में आनेवाला है।

थोडे ही समय में महारानी गंगा को प्रसव वेदना शुरू होने लगी। उस दिन शुभ समय में प्रात: एक दासी दौडती हुई महाराज शान्तनु के राज प्रसाद में गई और शुभ समाचार सुनाकर बोली महारानी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया है और महाराज का अभिनन्दन किया। वास्तव में महाराज को नवजात बालक को देखने की तीव्र इच्छा थी पर राजवैद्य की आज्ञा थी कोई भी इस समय महारानी व नव शिशु राजकुमार के पास न आये। इसलिये महाराज शान्तनु ने उस दासी से ही बालक के बारे में पूछताछ की। बालक कैसा दिखता है। दासी ने बताया महाराज राजकुमार की आंखे हूबहू चन्द्रवंशी राजाओं के समान ही है। दूध में थोडी सी गुलाल मिलानेपर दूध का जैसा रंग हो जाता है वैसा ही गुलाबी रंग का चेहरा है।

दासी से अपने बालक का हाल जानकर महाराज अत्यधिक प्रसन्न हो गये और दासी को पुरस्कार बतौर अपने कंठ का मोतियों का हार निकाल कर दिया। दासी ने बालक का जैसा वर्णन किया उस बालक के कल्पना चित्र में आनन्द लेते हुये महाराज खो गये और प्रसाद के गवाक्ष में आकर खिडकी से देखने लगे। पीछे एक सुरम्य नदी बह रही है। बडा ही मनोहर सुहावना दृश्य है। महाराज अपने कल्पना विलास में खोये हुये थे कि अचानक देखा और विस्मय से भर गये। नियति को यह कल्पना विलास मान्य नहीं था। सामने के उस विस्तृत मैदान में गंगा उस नवजात शिशु को नदी की ओर जाती हुई दिखी। सम्भ्रान्त होकर महाराज भी यह देखकर कि यह गंगा है और उसके हाथ में वह नवजात शिशु है, जो वस्त्र में लिपटा हुआ है उसे वह क्यों और कहां ले जा रही है यह सोच कर महाराज भी दौड कर उसके पीछे गये। जब तक महाराज गंगा के पास पहुंचे, गंगा ने वह नव जात बालक नदी में डुबा दिया। महाराज शान्तनु उदास होकर स्तम्भित होकर वहीं खडे रह गये उनको लगा कि गंगा से पूछे उसने यह क्या कृत्य किया है पर उसी क्षण महाराज को अपना दिया हुआ वचन याद आया कि मैं जीवन काल में तुमसे कभी तुम्हारे कृत्यों के बारे में कोई पूछताछ प्रश्न नहीं करूंगा। वचन देकर उसे भंग करना यह चन्द्रवंश के घराने की शोभा नहीं है। यही सोचकर महाराज मौन रहे।

स्वयं मां ने पहले पुत्र को जन्म लेते ही पानी में बहा दिया। शान्तनु तो केवल एक पिता ही है जो वचनबद्ध थे और कुछ नहीं कर सके। गंगा उनके मौन को मुस्कान की चुनौती देती चली गई।

महाराज मौन रहकर कुछ न बोलते हुये राजमहल में आ गये। पहले बालक की मृत्यु के शोक से बाहर निकलने के लिये

महाराज ने फिर से अपने को राज काज में व्यस्त किया जिससे हो गई घटना विस्मृत हो जाये और फिर से वैवाहिक जीवन का आनन्द मिले।

कुछ समय बीत जाने पर प्रकृति नियमानुसार गंगा ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया और कुछ ही क्षण बाद गंगा फिर से महल से निकल कर नदी तक गई इतनी ही उम्र उस बालक की भी थी, उस बालक को भी नदी के प्रवाह में अर्पण कर दिया। तब भी महाराज हतप्रभ हो गये। महाराज को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करना चाहिये। वे गंगा से यह भी पूछ नहीं सकते थे कि वह ऐसा क्यों कर रही है ? किसको अपनी व्यथा सुनाये यह भी समझ में नहीं आ रहा था।

आंखे देखे मौन मुख सहा कहा नहीं जाये, लेख विधाता का लिखा कौन किसे समझाये।

ऐसी विषम परिस्थिति में राजगुरु मुनि शरद्वान योग्य मार्गदर्शन करेंगे। वही इस समय सही आधार दे सकेंगे ऐसा सोच कर महाराज शान्तनु राजगुरु के पास गये।

राजगुरु बोले, महाराज शान्तनु, इतनी रात गई और इस समय आप। शान्तनु बोले, राजगुरु मैं ऐसे अन्धकार के दल-दल में फंस गया हूँ कि दिन और रात का अन्तर ही भूल गया हूँ। दिन भी रात जैसे काले ही लगते है। राजगुरु बोले महाराज यदि मनुष्य अपनी आंखे बन्द कर ले तो उसे अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई भी नहीं देगा महाराज इसलिये आंखे खोलिये और देखिये। सूर्य अपने समय के अनुसार उदय भी होता है और अस्त भी होता है। चन्द्रमा वैसे ही निकलता है और अपने शीतल प्रकाश की वर्षा करता है। प्रकाश तो आत्मा है महाराज और आत्मा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं। महाराज बोले, राजगुरु फिर यह प्रकाश मुझे क्यों नहीं दिखाई देता ? राजगुरु शरद्वान ने कहा, सम्भवत: आप उसको देखने का प्रयत्न नहीं करते हैं महाराज हो सकता है यह अन्धकार आपकी कोई समस्या हो और समस्यायें तो जूझने के लिये ही होती है और आप जूझना नहीं चाहते हो। महाराज शान्तनु बोले, यही तो कठिनाई है राजगुरु कि मैं चाह कर भी समस्या से जूझ नहीं सकता, मजबूरी है मेरी। राजगुरु बोले ऐसी क्या समस्या है महाराज। शान्तनु ने कहा महारानी मेरे दो पुत्रों की हत्या कर चुकी है और मैं देखते रहने के सिवा कुछ नहीं कर सका क्योंकि मैं वचनबद्ध हूं। राजगुरु बोले, महाराज आप वचनबद्ध हैं कि महारानी आपके पुत्रों की हत्या करती जाये और आप चुप रहें। आप तो हस्तिनापुर नरेश हैं आपको ऐसे वचन देने का अधिकार ही नहीं था। जो वचन न्याय के आडे आ जाये वो वचन नहीं श्राप है महाराज। शान्तनु बोले हां राजगुरु मैं वही श्राप तो जी रहा हूं। राजगुरु बोले, महाराज यदि आप इसे जीना कहते है तो फिर मरना किसे कहेंगे राजन ? क्योंकि जो राजा अपने पुत्रों के जीवन की रक्षा नहीं कर सकता वो अपनी प्रजा की क्या रक्षा करेगा ? मैं प्रार्थना करूंगा भगवान हस्तिनापुर को आपकी दुर्बलताओं से बचाये। क्या यह अन्याय आपको दिखाई नहीं दिया राजन ? शान्तनु बोले, वह शान्तनु जो हस्तिनापुर का राजा है उसे अन्याय दिखाई दे रहा है फिर भी राजगुरु। राजगुरु बोले, तो फिर नरेश इस अन्याय को रोकते क्यों नहीं ? शान्तनु बोले, क्योंकि वह शान्तनु जो एक व्यक्ति है वह राजा का हाथ पकड लेता है। राजगुरु बोले, महाराज राजा तो राजा ही होता है, व्यक्ति बनने का उसे कोई अधिकार ही नहीं। आपका जीवन जन समुदाय के लिये है ऐसा वचन देकर आपने राज धर्म भंग किया है। शान्तनु बोले, मैं तो आपके पास सहायता मांगने के लिये आया था राजगुरु। शरद्वान बोले, महाराज राजा कुछ मांगता हुआ अच्छा नहीं लगता। शान्तनु बोले तो फिर मैं क्या करूं राजगुरु। राजगुरु बोले, राजन आप अपने इस वचन को अग्नि में जला डालिये। यही आपका भाग्य भी है और यही आपका प्रायश्चित भी। लांछन और व्यंगों के बाणों की मार सहिये और स्वयं अपनी सहायता करके अग्नि के सागर से बाहर निकल आइये। आपकी इसी दुर्बलता से शक्ति का कोई न कोई अंकुर अवश्य फूटेगा। कल प्रजा आपसे इन प्रश्नों का उत्तर पूछेगी तो आप क्या जवाब देंगे महाराज ? राजगुरु के इतना समझाने पर भी महाराज शान्तनु को गंगा से कुछ पूछने को उचित नहीं लगा कारण पूछने पर उसी क्षण गंगा महाराज को छोडकर चली जायेगी तथा गंगा के साथ सहवास का आनन्द नहीं भोग पायेंगे इसकी जानकारी

महाराज को थी। महाराज वचनबद्ध भी थे और वचन देकर न निभाना चन्द्रवंश के खून में नहीं है। इसलिये अब महाराज के लिये खुले नेत्रों से अपने पुत्रों को जल समाधि देते देखने के सिवा और कुछ विकल्प ही नहीं रहा।

एक के पीछे एक यह गंगा के जघन्य कर्मों की चर्चा सब जगह हो रही थी। हस्तिनापुर वासियों में राजघराने के नवजात पुत्रों को पानी में डुबो कर हत्या कर देने की चर्चा फैलते देर नहीं लगी। हर तरफ इसी एक विषय की चर्चा हो रही थी। लोग महारजा के तीन पुत्रों की हत्या देख चुके थे। ऐसी विलक्षण जघन्य घटना देख सुनकर लोग चुप कैसे बैठते और बोलने लगे कैसी माता है यह ? मां तो स्वयं ममता की गंगा होती है। बच्चे अकेले कोई महारानी के ही थोडे है ? महाराज उसे रोकते क्यों नहीं है ? यह तो कोई विलक्षण माता ही है। यदि गंगा के यह कृत्य इसी प्रकार होते रहे और महाराज मौन बने रहे तो महाराज के हाथ से वंश की रेखाये ही जाती रहेगी। सबको यही डर था कि महाराज के चौथी सन्तान पैदा होनेवाली है और कही उसका भी यही हाल न हो ?

शान्तनु महाराज प्रजा वर्ग में चल रही चर्चा सुन रहे थे। महाराज चिंतित मन से अपने राज प्रसाद में परेशानी से इधर-उधर टहल रहे थे इतने में देखा महारानी ने चौथे पुत्र को जन्म दिया और उसे भी लेकर उसी तरह गंगा ने नदी में डुबो दिया और उसकी हत्या हो गयी। महाराज शान्तनु रोष में भरे उसके पीछे-पीछे गये पर वे कुछ नहीं कर सके। हाय रे नियति का खेल।

महाराज शान्तनु अपने राजमहल में लौटे तो देखा सिर झुकाये हाथ जोडे महामन्त्री खडा है। महाराज ने पूछा इस समय महामन्त्री। मन्त्री बोला, मैं आपके चौथे राजकुमार की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आया हूं महाराज। शान्तनु बोले, मन्त्री प्रवर आप भूल से हत्या को मृत्यु कह रहे है। महामन्त्री बोले, राजन यदि यह हत्याएं है तो महाराज फिर न्यायमूर्ति अधिराज महाराज ने अब तक अपराधी को मृत्युदंड क्यों नहीं दिया ? अपराधी को मृत्युदंड न मिलना ही यह सिद्ध करता है कि यह हत्या नहीं मृत्यु है। शान्तनु बोले, क्या आप इस व्यंग को उचित समझते है महामन्त्री ? महामन्त्री बोले तो फिर महाराज आप महारानी से यह पूछते क्यों नहीं है ? यह कौन है महाराज जिसे आपने हमारी महारानी बना दिया है ? जिसमें स्त्री के तीन गुणों में से एक गुण भी नहीं है महाराज। स्त्री में तीन गुण होते है चेतना, प्रेरणा और उत्साह। इसमें न तो कोई चेतना है, न प्रेरणा और न ही कोई उत्साह। यदि आप पति के नाते नहीं पूछ पाते है तो राजा के नाते ही पूछिये। राज्य को एक युवराज देने का भी कर्तव्य आपका ही है महाराज। शान्तनु बोले, यदि मैं यह पूछ सकता महामन्त्री तो आपको आज इस वक्त मेरे चौथे पुत्र की हत्या पर शोक प्रकट करने नहीं आना पडता और सबसे दु:ख की बात तो यह है कि यदि मेरा पांचवा पुत्र हुआ तो उसका भाग्य भी हमारा दुभार्ग्य ही होगा। यह कह कर महाराज शान्तनु अन्त:पुर में चले गये।

वचन दिया सोचा नहीं होगा क्या परिणाम, सोच समझकर कीजिये जीवन में हर काम।

गंगा इस तरह अपने ७ पुत्रों को एक-एक करके अपने ही जल में समाधि दिला चुकी। महाराज शान्तनु एक विवश मछली की तरह तडफ रहे थे क्योंकि उनके गले में उनके ही वचन का कांटा फंसा हुआ था। वो केवल रो सकते थे पर गंगा से कुछ पूछ नहीं सकते थे, विवश थे। महाराज हतप्रभ होकर अपने सात पुत्रों की हत्या देखते रहे और मन में विचार करने लगे मैंने ऐसा वचन कैसे दे दिया, क्यों दे दिया। बार-बार तरह-तरह के विचार मन में उद्विग्न होने लगे। इस तरह विचार करते-करते महाराज ने मन में यह निश्चय कर लिया अब इसके आगे अपने पुत्रों की हत्या नहीं होने दूंगा। उनके जीवन की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है आखिर में वह दिन भी आ गया। हस्तिनापुर के भावी युवराज का जीवन बचाने के लिये आवश्यकता पडने पर गंगा को छोडना पडा तो छोड दुंगा ऐसा कठोर निश्चय मन में कर लिया।

अब वह समय भी आ गया। गंगा ने आठवां पुत्र उत्पन्न किया। बच्चे के रोने की आवाज सुनी महाराज शान्तनु ने। सात पुत्रों की गंगा ने जो गति दी उसे भी यही गति देने गंगा की धारा में डाल देने के विचार से गंगा उसी तरह से हंस रही थी और वह उसे लेकर गंगा तीर की ओर बढ़ रही थी उसी समय शान्तनु उसके पीछे-पीछे चलने लगे। जैसे ही गंगा उस आठवें पुत्र को पानी

में छोडने के लिये तैयार हुई महाराज ने अडा लिया और पुत्र को डुबोने से रोक लिया और बोले, अरी तू यह कैसी मां है जो जन्म देते ही अपने बच्चों की हत्या कर देती है ? नहीं नहीं नहीं अब मुझसे यह सहन नहीं हो रहा है। मैं इसे मरने नहीं दूंगा गंगे। तू कौन है ? किसकी पुत्री है ? जो इन पुत्रों को मार डाल रही है, पुत्र घातनि ? यह तू महापाप कर रही है। तब गंगा बोली आपने वचन दिया था महाराज अब आज आपने यह वचन भंग कर दिया है। शान्तनु बोले जिसने तुम्हे वचन दिया था वो एक चन्द्रवंशी राजा था और जो तुम्हे रोक रहा है महारानी वो एक पिता है। तुम एक-एक करके मेरे सात पुत्रों की हत्या कर चुकी हो अब मैं इस आठवें पुत्र को नहीं मरने दूंगा। बोलो तुम ऐसा क्यों कर रही हो ? मां होकर अपने ही बच्चों की हत्या ? तुम कैसी मां हो ? गंगा बोली महाराज मैंने इन बच्चों की हत्या नहीं की है महाराज। मैंने तो इन्हें एक श्राप से मुक्त किया है महाराज। शाप महाराज शाप। मैं स्वर्ग की रहनेवाली ब्रह्म कन्या इस धरती पर आपके साथ एक श्राप ही तो जी रही हूं और आप भी मेरे साथ एक श्राप जी रहे है महाराज। शान्तनु बोले देवि कैसा श्राप ? किसका श्राप ? गंगा बोली मेरे पिता ब्रह्मा का श्राप। शान्तनु बोले देवी मुझे यह सब विस्तार से बताओ।

तब गंगा ने विस्तार से पूरी कथा सुनायी महाराज यह पूर्व जन्म की कथा है। आप पहले इक्ष्वाकु वंश के महाभिष नाम के सार्वभौम राजा थे, सैकडों महासूय यज्ञ आपने कर इन्द्र को प्रसन्न किया था। उनके कृपा प्रसाद से आपको स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई और इन्द्र से भी आपकी मित्रता हो गई। आप बडे ही सत्य निष्ठ और पराक्रमी राजा थे। एक दिन ब्रह्मा के सम्मान में इन्द्र ने स्वर्गलोक में ब्रह्म सभा बुलाई। उसमें बहुत से देवता और राजर्षि भी थे। उस सभा में महाराज आप भी आये थे। उस समय इन्द्र की सभा में देवांगनाओं व अप्सराओं का नृत्य चल रहा था। थोडे ही समय में आमंत्रित व्यक्तियों से राज दरबार भर गया और ब्रह्मा के आगमन की प्रतीक्षा हो रही थी। मैं भी अपने पिता ब्रह्मा के साथ उस देव सभा में आई थी। सबका मान वन्दन स्वीकार कर ब्रह्मा अपने आसन पर स्थित हुये और सभा शुरू हुई। विलम्ब होने के कारण मैं अपने पिता ब्रह्मा का अभिवादन करना भूल गई और महाराज मैंने आपको देखा और देखते ही रह गई। तेज हवा के झौंके से मेरे शरीर पर का सफेद वस्त्र भी सरक गया और आप भी मुझे एक टक निशंक देखते रहे। सभी ने यह दृश्य देखकर अपनी नजरें नीचे झुका ली पर महाराज आप मर्यादा का भान भूलकर मेरी ओर ही देखते ही रहे। यह मेरे पिता ब्रह्मा ने देख लिया और कुपित होकर दंड स्वरूप यह श्राप दिया कि महाभिष तुम मृत्यु लोक में जाओ और जन्म लो और यह गंगा मृत्युलोक में तुम्हारी पत्नी बनेगी। वैसे ही महाभिष तुम्हे अप्रिय लगनेवाले कृत्य करेगी जिससे तुम उस पर क्रोध करोगे तभी वह भी श्राप मुक्त होकर स्वर्ग लोक में आयेगी और उसके बाद ही तुम भी श्राप मुक्त होकर पृथ्वी पर अपना जीवन व्यतीत कर देव लोक में आओगे। इस तरह का श्राप देकर ब्रह्मा ने वह देव सभा विसर्जन कर दी। यह है हमारे पूर्व जन्म की कथा महाराज। इसी शाप से आप यहां पृथ्वी पर हैं मैं आपके साथ शाप ही जी रही हूं। आपने आज अपना वचन तोडा है तो मैं आज उस श्राप से मुक्त हो गई हूं और इस मुक्ति का अर्थ यह कि मेरे को अब आपको छोड कर जाने का समय आ गया है। शान्तनु बोले परन्तु वे मेरे सातों पुत्र भी क्या देवताओं की चौसर की गोटियां थे ? तब गंगा बोली हां महाराज मन मैला मत कीजिये आर्य पुत्र। यह आपके आठों पुत्र अष्ट वसु है जिन्हे मुनि वशिष्ठ ने इस धरती पर जन्म लेने का श्राप दिया था। उनका यह दु:ख मुझसे देखा नहीं गया था तो मैंने उन्हे वचन दे दिया कि मैं उन्हे अपनी कोख से जन्म दूंगी और जन्म देने के बाद उन्हें मृत्युलोक से मुक्ति दिलाऊंगी। परन्तु लगता है कि आठवां पुत्र उस श्राप की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुंचा है। इसे अभी वो श्राप जीना बाकी है। शान्तनु बोले देवि मुझे इन अष्ट वसुओं की भी कथा बताओ महर्षि वशिष्ठ ने इन्हे धरती पर जन्म लेने का शाप क्यों दिया ? तब गंगा ने उन अष्ट वसुओं की कथा बताना शुरू किया।

गंगा बोली, महाराज एक बार यह अष्ट वसु देव लोक से प्रकृति के सौन्दर्य से भरपूर मेरू प्रदेश के वन में अपनी प्रेयसियों

सहित वन विहार का आनन्द लेने वहां पर रमण करने आये। प्रतिदिन अनुसार जल क्रीडा कर अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन कर मधुपान कर उन्मत हो गये तथा अपनी प्रेयसियों को लेकर अलग-अलग वन विहार में गये और रति क्रीडा व श्रृंगार क्रियाओं का आनन्द उठाने लगे। उसी समय द्यू नामक का वसु मद्यपान करने से अत्यधिक उन्मत्त हो गया और अपनी प्रेयसी सहित कुंज विहार के लिये महर्षि वशिष्ठ के आश्रम के पास आ गये। ये विश्वविख्यात महर्षि वशिष्ठ वरुण के पुत्र हैं। मेरू पर्वत के पास ही उनका बडा पवित्र सुन्दर और सुखकर आश्रम है। वे वही तपस्या करते हैं। कामधेनु पुत्री नंदिनी उन्हे यज्ञ के लिये हविष्य देने के लिये वहीं रहती है। एक दूसरे के सानिध्य में सुख आनन्द ले रहे थे उसी समय द्यू वसु की प्रेयसी की दृष्टि महर्षि वशिष्ठ की कामधेनु गाय पर पडी और द्यू वसु से बोली यह सवत्स कामधेनु मुझे मिल जाये तो कितना अच्छा होगा ? रति क्रीडा में उन्मत द्यू अत्यधिक कामातुर था। महर्षि वशिष्ठ ने प्रदीर्घ तपस्या के पश्चात देवताओं से यह कामधेनु गाय प्राप्त की है यह अब वे वापिस कैसे लौटायेंगे ? इस तरह कहकर द्यू अपनी प्रेयसी को अपनी ओर अधिक आकर्षण करने लगा पर उसकी उस प्रेयसी ने द्यू की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और बोली द्यू यह कामधेनु गाय मैं मनुष्य लोक में मेरी सखी राजकन्या जीववती को उपहार देना चाहती हूं और बोली प्रियतम मुझे येन केन प्रकारेण यह कामधेनु लाकर दो। द्यू बोला यदि कोई मनुष्य इसका दूध पी ले तो वह दस हजार वर्ष तक जीवित और जवान रहेगा। सौन्दर्य से परिपूर्ण अपनी प्रियतमा की इस मांग को कामातुर द्यू ने बिना सोचे समझे स्वीकार कर लिया। काम क्रीडा से निवृत्त हो द्यू ने अपने बन्धु बान्धव सहित कामधेनु गाय का हरण कर ले जाने की योजना बनाई और उस गाय को वशिष्ठ के आश्रम से चुरा कर ले गये। द्यू को इस बात का ध्यान ही नहीं रहा कि ऋषि बडे तपस्वी है और वे हमें शाप देकर देव योनि से च्युत कर सकते हैं।

महर्षि वशिष्ठ आश्रम में नित्य कर्म निपटाकर नियमित प्रमाण से आश्रम के चारों तरफ का चक्कर लगा रहे थे उस समय गौशाला में कामधेनु वत्स सहित दिखाई नहीं पडी तो महर्षि ने अपने शिष्यों से पूछताछ की और चारों ओर उस गाय को ढूंढने का आदेश दिया। परन्तु शिष्यों को वह गाय कहीं नहीं मिली। अचानक कामधेनु के गायब हो जाने से वशिष्ठ अस्वस्थ हो गये। उन्होंने ध्यान लगाना शुरू किया और मन को एकाग्र कर तपोबल से सारी घटना जान ली। उनके ज्ञान चक्षु से पूरी घटना अष्ट वसु का वन विहार, द्यू की प्रेयसी में कामासक्त हो द्यू की काम विह्वलता, तथा उसी अवस्था में अपनी प्रेयसी को दिया हुआ वचन और अपने भाईयों सहित कामधेनु की चोरी यह सब प्रकरण जान लिया।

देवलोक के अष्ट वसुओं से महर्षि वशिष्ठ का यह घोर महाअपराध बन गया इससे महर्षि वशिष्ठ ने अत्यन्त क्रोधित होकर उन अष्ट वसुओं को श्राप दिया। देवलोक प्राप्त हुये अष्ट वसुओं तुम्हे धिक्कार है। तुमने अत्यन्त निन्दनीय कृत्य किया है, तुमने अपने मोह पर नियन्त्रण नहीं रखा। तुम्हे देवलोक को सभी प्रकार के सुख और इष्ट भोग उपलब्ध थे। फिर भी तुमने चोरी जैसा हीन नीच कृत्य किया है। इसलिये अब तुमने देव लोक में रहने की पात्रता नष्ट कर दी है। इसलिये मैं तुम्हे शाप देता हूं कि जाकर मनुष्य लोक में मनुष्य योनि में जन्म लो। महर्षि वशिष्ठ का शाप सुनकर सभी अष्ट वसु दु:खी और चिंतित हुये कि हमारे हाथ से कितना बडा अनर्थ हो गया और अब उसका दंड भोगना पडेगा यह जानकर वे अस्वस्थ हो गये।

अपनी गलतियों का प्रायश्चित करने वे सभी वसु कामधेनु गाय सहित महर्षि वशिष्ठ के पास उनके आश्रम पर गये। सभी की गर्दन शर्म से झुकी हुई थी और महर्षि से क्षमायाचना के लिये प्रार्थना की और बोले महर्षि आप अपने इस शाप का पुन: विचार करे। हमें इतना कठोर दंड न दे। तब महर्षि बोले, इस पूरे प्रकरण का सूत्रधार द्यू वसु है इसलिये उसको तो पृथ्वी पर जन्म लेकर आयुष भर रहना पडेगा। बाकी अन्य सात वसु पृथ्वी पर जन्म लेंगे और एक वर्ष की अवधि में ही मेरे शाप से मुक्त हो जायेंगे। वसु द्यु अपनी प्रेयसी के साथ स्त्री सुख भोगते हुये ही इसने यह उसकी प्रेरणा से बाध्य होकर यह कृत्य किया है सो इसे मनुष्य योनि में जन्म लेकर पृथ्वी पर रहना पडेगा और यह वहां पर स्त्री सुख से वंचित रहेगा। इसके कोई सन्तान भी नहीं होगी। इसने चौर्य कर्म किया है और

अपना कर्म भोगने के लिये इसे बहुत दिनों तक मर्त्यलोक में रहना पडेगा। इतना सुनकर सब वसुओं को बहुत बुरा लगा और महर्षि से प्रार्थना की कि द्यू के प्रति महर्षि इतने कठोर न बने। तब महर्षि वशिष्ठ बोले मेरा यह श्राप तो अन्यथा नहीं हो सकता परन्तु यह द्यू वसु अपने पिता की प्रसन्नता के लिये जीवन का सुख त्याग करेगा। यह धर्म शास्त्रों में पारंगत होगा, वीर, शूर और कीर्तिमान होगा। सब लोग इसका नाम आदर व सम्मानपूर्वक लेंगे। इस तरह महर्षि ने आशीर्वाद दिया। तब अष्ट वसु यह श्राप स्वीकार कर मुनि वशिष्ठ को नमस्कार कर उनकी आज्ञा पाकर वहां से चले।

उसी समय मैं वहां से अपने निवास स्थान पर जा रही थी तो रास्ते में मुझे ये सब अष्ट वसु मिले। मेरे से इनकी करुण दशा देखी नहीं गई। ये सब अष्ट वसु तेज हीन, निस्तेज हो रहे थे। अष्ट वसुओं को मुझे भी ब्रह्मा से पृथ्वी लोक में जाने का श्राप मिला है यह जानकर वे मुझसे बोले, मृत्यु लोक की स्त्री के गर्भ से जन्म लेने से तो बेहतर है कि देवलोक की कन्या गंगा के गर्भ से जन्म लेना श्रेयस्कर है। तभी सब बसु मुझसे बोले, महर्षि वशिष्ठ के शाप अनुसार हमें एक वर्ष के अन्दर ही मुक्ति मिल जायेगी इसलिये आप हमें अपने गर्भ में धारण करे और जैसे ही हम मृत्युलोक में उत्पन्न हो तभी हमें पानी में डुबो दे। इसलिये उनकी विनती को मान देकर मैंने ऐसे कठोर, निन्दनीय कृत्य को वसुओं के कल्याण के लिये स्वीकार किया। वसुओं ने मुझे यह भी बताया यह महाभिष राजा यानि कि तुम चन्द्रवंश में पुण्यवान प्रतापी राजा प्रतीप के यहां शान्तनु नाम से जन्म लोगे।

अष्ट वसुओं ने बताया शान्तनु के जन्म से पहिले ही महाराज प्रतीप से मिलो और उनके पुत्र से विवाह करने का वचन लो। इस तरह एक दिन पुरु वंश के महाराजा प्रतीप अपनी पत्नी के साथ गंगा द्वार (हरिद्वार) में तपस्या कर रहे थे और मैं मनोहर मूर्त रूप धारण कर उनके पास गयी। महाराज प्रतीप से बातचीत होने पर निर्णय हुआ कि वे राजा प्रतीप के भावी पुत्र की पत्नी बने। गंगा ने प्रतीप की बात स्वीकार कर ली। राजा प्रतीप ने अपनी पत्नी सहित पुत्र प्राप्ति के लिये बडी तपस्या की। कालान्तर में वृद्धावस्था में उनके यहां महाभिष ने पुत्र रूप में जन्म लिया और उस पुत्र का नाम शान्तनु हुआ। जब शान्तनु जवान हुये तब पिता ने उनसे कहा, तुम्हारे पास कभी एक दिव्य स्त्री पुत्र की अभिलाषा से आयेगी तो तुम बिना किसी पूछताछ के, बिना कुछ कहे उसे वरण कर लेना और अपनी भार्या स्वीकार कर लेना। इस तरह यह कहकर महाराज प्रतीप आपको अपने राज्य की राजगद्दी सौंप कर स्वयं वन में चले गये।

तब गंगा उन अष्ट वसुओं से बोली मेरे मन में एक शंका है कि कभी शान्तनु ने कहा कि मुझे वंशधर एक पुत्र चाहिये तो फिर ऐसे में क्या? तब अष्ट वसु बोले गंगा द्यू को जो श्राप मिला है कि वह मनुष्य लोक में ही रहेगा वह सर्व विद्याओं में पारंगत होगा उसे ही शान्तनु के लिये योग्य पुत्र सौंप देना। शान्तनु महाराज यह कथा बडे ही ध्यान और चित्त से सुन रहे थे। तब गंगा ने कहा महाराज यह आपका पुत्र प्रत्यक्ष में वसु है, यह कीर्तिवान होगा, यशस्वी होगा, कुरु वंश की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। अच्छा आर्य पुत्र अब मुझे जाने की आज्ञा दो। तब शान्तनु ने कहा गंगा मेरे पुत्र को तो मुझे देती जाओ। गंगा बोली महाराज अभी इसका समय नहीं आया है। इसे मैं अपने साथ ले जा रही हूँ। समय आने पर मैं इसे लौटा दूंगी। मैंने इसका नाम देव व्रत रखा है आर्य पुत्र, परन्तु आगे चलकर धरती और आकाश के बीच न जाने इसका नाम क्या हो जाये ? यह कहकर गंगा वहां से अपने पुत्र को अपने साथ लेकर चली गई।

गंगा के जाने के पश्चात शान्तनु का जीवन अर्थहीन हो गया, उसकी दिशायें खो गई। पानी चला गया, खाली गागर रह गये और रह गई दर्शनों की प्यास। जब ये प्यास बहुत व्याकुल करने लगती, सताने लगती तो शान्तनु अपने जी को बहलाने पास के नदी तट पर चले जाते और अपनी यादों में गंगा की लहरों में अपनी गंगा को खोजने लगते।

जीवन को समझा रहा है जिया हुआ इतिहास, जब तक तन में श्वास है तब तक मन में आस।

गंगा अपने पुत्र को लेकर चली गई। शान्तनु रथ के पास आये और सारथी से बोले, चलो सारथी। सारथी ने कहा- किस

दिशा में ले चलूं महाराज। शान्तनु बोले, जहाँ तुम्हारा दिल चाहें। रथ बीहड़ वन में से चला। रास्ते में एक पेड़ के नीचे दो नवजात शिशुओं की रोने की आवाज सुनकर शान्तनु ने सारथी से रथ रोकने को कहा। रथ से उतरकर उन शिशुओं के पास गये और देखा उनके पास यह मृगछाला और कमण्डल। शान्तनु बोले- यह तो किसी ऋषिवंश के अंकुर लगते है सारथी। सारथी बोला- महाराज ऋषि उन्हें यहाँ क्यों छोड जायेंगे। शान्तनु बोले- सारथी, हम और तुम तो एक साधारण व्यक्ति है और कोई साधारण व्यक्ति ऋषियों के कार्य को क्या समझेगा ? उनकी कृपा की भाषा का अर्थ क्या जानेगा ? शान्तनु ने बालकों को गोद में उठा लिया और बोले, यह ऋषि की कृपा ही है इसलिये मैं इस बालक को कृपा ही पुकारूंगा। सारथी बोला- इस दूसरे नवजात शिशु ऋषिपुत्री को क्या कहेंगे महाराज ? शान्तनु बोले- यदि भाई कृपा है तो बहन कृपी ही हो सकती है। दोनों बालकों को लेकर शान्तनु अपने राजगुरु शरद्वान मुनि के पास आये।

राजगुरु बोले- आईये राजन। शान्तनु ने उत्तर दिया राजगुरु इनके विषय में कुछ नहीं पुछेंगे। राजगुरु बोले- पूछने तो राजन स्वयं तुम आये हो मैं तो बताने के लिये हूं। शान्तनु ने कहा- जीवन की ये दो कोपलें मुझे वन में पडी मिली। इनके सिरहाने कमण्डल था और नीचे मृगछाला। वहां आस-पास कोई भी नहीं था राजगुरु, इसलिये इन अनाथों को मैंने अपनी शरण में ले लिया। राजगुरु बोले- राजन, नाथ के होते कोई अनाथ कैसे हो सकता है ? भगवान किसके हाथ को अपना हाथ बना लेते है कोई नहीं जानता। भगवान किसकी आँखोंसे किसको देख लेते है पता नहीं वे कब किसके पैरोंसे चलकर किसके पास जाते है यह केवल वहीं जानते है तो आप यही समझिये राजन इन बालकों को भगवान ने आपकी आंखों से देखा है और स्वयं आपके पैरों से चलकर इनके पास गये है और आपकी हाथों से उठाकर इन्हें अपनी गोद में रख लिया है। आप इन्हें महादेव का प्रसाद मानें और अपने सुने सन्तान रहित जीवन का मन बहलायें। शान्तनु बोले- मेरे जीवन को सन्तान रहित मत कहिये राजगुरु। आप तो जानते है कि गंगा मुझे मेरे अपने आठवे पुत्र को लौटाने का वचन देकर गई है। मैं अपने उसी पुत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं इन बालकों के साथ न्याय नहीं कर पाऊंगा। राजा हूँ इसलिये जानबूझकर इनके साथ अन्याय भी तो नहीं कर सकता। यह किसी ऋषि की धरोहर है इन्हें आप ही सम्भालिये और सहेजिए। इनकी देख-रेख कर इनकी परवरिश करें क्योंकि मेरा जीवन तो गंगा तट से राजमहल तक आने-जाने में ही बीत रहा है।

यही दोनों बालक-बालिका आगे चलकर कृपाचार्य और कृपी (गौतमी) हुये। कृपाचार्य तो कौरवों के कुल पुरोहित हुये और कृपी गुरु द्रोणाचार्य की पत्नी हुई। जिससे अश्वत्थामा पुत्र उत्पन्न हुआ।

जनमेजय ने पूछा मुझे कृपाचार्य के जन्म के बारे में बतायें। तब वैशम्पायन मुनि बोले- जनमेजय। महर्षि गौतम और अहिल्या के पुत्र शरद्वान मुनि हुये जो बाणों के साथ ही पैदा हुये। वे पुरु वंश के राजगुरु थे। उनका मन धनुर्वेद में जितना लगता था उतना वेदाभ्यास में नहीं। उन्होंने तपस्यापूर्वक सारे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये और सर्व शस्त्र संचालन विद्या प्राप्त की। शरद्वान की घोर तपस्या और धनुर्विद्या में निपुणता देखकर इन्द्र बहुत भयभीत हुआ। उन्होंने शरद्वान की तपस्या में विघ्न डालने के लिये जानपदी नाम की देवकन्या अप्सरा को उनके पास भेद दिया। वह शरद्वान मुनि के आश्रम में जाकर तरह-तरह के हावभाव से उन्हें रिझाने लगी। उस सुन्दरी को देखकर शरद्वान मुनि पर कामज्वर छा गया और पूरा शरीर कांपने लगा। काम विह्वल हो जाने पर उनके हाथ से धनुष बाण गिर गया। वे बडे ही विवेकी और तपस्या के पक्षपाती थे इसलिये वे अपने को धैर्य से रोके रहे लेकिन काम के सामने कौन टिक सकता है। उनके मन में विकार हो चुका था इसलिये उनके अनजाने में ही वीर्यपात हो गया। धनुष बाण, मृगचर्म और आश्रम तथा देवकन्या जानपदी को वही छोडकर वे तुरन्त वहां से चल दिये। उनका वह वीर्य वहाँ पर सरकंडों पर गिरा था इसलिये वह दो भागों में बंट गया। उससे एक बालक और एक कन्या की उत्पत्ति हुई। संयोगवश राजर्षि शान्तनु वहां से निकल रहे थे उनकी दृष्टि इन रोते हुये बालकों पर पडी और उन्हें अपने साथ उठा ले गये और राजगुरु शरद्वान

मुनि को सौंप दिये। जनमेजय यहीं कृपाचार्य और कृपी की जन्म की कथा है।

प्रत्यक्ष वसु पुत्र रूप में प्राप्त हुआ यह जान कर महाराज को आनन्द और प्रसन्नता हुई पर अब गंगा फिर कब लौटेगी। अपने पुत्र से फिर कब भेंट होगी, इन सब बातों की अनिश्चितता से शान्तनु उदास और उद्विग्न हो गये और समय की प्रतीक्षा करने लगे। अपने आपको व्यस्त रखने के लिये फिर से राज्य कारभार देखने लगे।

इसी तरह आने-जाने और विरह की अग्नि में जलने और गंगा की प्रतीक्षा में १६ वर्ष बीत गये।

इस तरह शान्तनु और गंगा का यह प्रकरण इतिहास बना।

७) युवराज देवव्रत

वैशम्पायन कहते है जनमेजय गंगा के जाने के बाद इस तरह महाराज शान्तनु का उदास जीवन १६ वर्ष पार कर चुका। समय बीतता गया। एक दिन राजा शान्तनु गंगा नदी के तट पर जा रहे थे उन्होंने देखा गंगा में बहुत थोडा जल रह गया है। वे बडे विस्मित और चिंतित हुये कि आज गंगा अपनी कल-कल करती धारा से बह क्यों नहीं रही है ? एकदम शान्त और स्तब्ध है। महाराज शान्तनु के मन में अपनी प्रिय पत्नी गंगा और पुत्र देवव्रत की याद सता रही थी मन व्याकुल हो रहा था। मन को शान्ति प्राप्त हो इसलिये रथ से उतर कर गंगा तट पर विचर रहे थे। मन में सोच रहे थे मेरा पुत्र बडा हो गया होगा कैसा दिखता होगा। मेरी उससे कब भेंट होगी ? क्या गंगा मुझे फिर मिलेगी ? इस तरह मन में अनेकों प्रश्न उठ रहे थे। सामने देखा किसी ने अपने बाणों से गंगा नदी के प्रचंड वेग को रोक दिया है और उस पानी को रोक कर बाणों का बांध बना दिया है। यह दृश्य देखकर महाराज को आश्चर्य हुआ कि यह शर सन्धान करनेवाला कौन व्यक्ति है जिसने यह कृत्य किया है। इस तरह का शर सन्धान करने वाला कोई साधारण नहीं है अत्यन्त कुशल व निपुण ही होगा। इस शर संधान से बांधा हुआ बांध तोडने के लिये जैसे ही शान्तनु ने अपना बाण निकाल कर तोडना चाहा वहां पर गंगा प्रकट हो गई।

१६ वर्ष के बाद अचानक गंगा को अपने सामने देखकर महाराज शान्तनु को अत्यधिक आनन्द हुआ। उनका उदासीन म्लान मुख खिल उठा। इतने वर्षों के बाद विरह अग्नि में तडफते शान्तनु ने अपनी पत्नी गंगा जो अकस्मात प्रकट हो गई उससे अपने गृह वापिस लौटने की विनती की और बोले हे देवि, तुम्हारे बिना मेरा यह जीवन बिना आत्मा का शरीर है, निश्चेष्ट है, वीरान है। एकाकी उदास जीवन में रंग भरने के लिये देवी तू राजमहल में चल। इस तरह शान्तनु ने गंगा से मनपूर्वक विनती करी पर गंगा अपने निश्चय पर दृढ़ और अटल रही। इससे महाराज अत्यन्त दु:खी हुये। तब गंगा बोली, महाराज उदास मत होइये। बहता हुआ पानी कभी लौटा है आर्य पुत्र जो मैं लौट आऊंगी। अतीत कभी वर्तमान नहीं बन सकता। मैं आपका अतीत हूं और आपका भविष्य आपको लौटाने आयी हूं। शान्तनु बोले- तुम्हारे बिना मेरा कोई भविष्य नहीं है। गंगा बोली- वास्तव में भविष्य अतीत की कोख से जन्म लेता है।

मैं आज आपको आपका भविष्यकाल सौंपने आई हूं। महाराज ने देखा एक बडा ही मनस्वी, होनहार, सुन्दर, विशालकाय कुमार दिव्यों अस्त्रों का अभ्यास कर रहा है और उसने अपने बाणों के प्रभाव से गंगा की धारा रोक रखी है। उस कुमार का यह अलौकिक कर्म देखकर महाराज अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने अपने पुत्र को पैदा होने के समय ही देखा था इसलिये उसे पहचान नहीं सके। उस कुमार ने राजर्षि शान्तनु को मोहित कर दिया। मां मां कहकर वह बालक पुकार रहा था, उसकी आवाज सुनकर गंगा बोली महाराज देखो यह जो दौडकर आ रहा है यही आपका पुत्र देवव्रत आपका भविष्य काल है। महाराज अपने उत्साही, तेजस्वी पुत्र को देखते रहे। गंगा ने अपने पुत्र के किये हुये कर्तव्य के बारे में पुत्र को बताया। महाराज ने तेरे इस पराक्रम को देखा है। ये तेरे पिता शान्तनु है। पिता शब्द सुनकर वह कुमार महाराज की ओर विस्फारित नेत्रों से देखने लगा।

महाराज शान्तनु अपने पुत्र की ओर देखकर विचार करने लगे कि मुझे आशा थी कि मेरे पुत्र और पत्नी मुझे फिर से मिलेंगे,

इसी विश्वास पर, आशा पर मैं जीवित रह सका। पुत्र प्राप्ति व उससे भेंट होगी इसी आशा ने मुझे धैर्य रखना सिखाया और इस धैर्य रखने का अर्थ है कि सात पुत्रों की मृत्यु के पश्चात आठवां पुत्र जो सोलह वर्ष बाद मिला, इस तरह विचार कर ही रहे थे महाराज कि देवव्रत ने आशीर्वाद के लिये अपने पिता के चरणों का स्पर्श किया। महाराज ने देवव्रत को आशीर्वाद देकर उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। उसके राजशाही रूप को देखकर महाराज ने उससे पूछा बालक तुम्हारा नाम क्या है ? अपना परिचय दो। तब गंगा पुत्र ने कहा माता ने मेरा नाम देवव्रत रखा है। अपने पुत्र का सूर्य समान तेजस्वी रूप व नाम सुनकर महाराज को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और बोले बालक तूने यह धनुर्विद्या कहां सीखी है, इसका अभ्यास कहां किया है ? तब देवव्रत बोले पिताश्री यह विद्या मैंने गुरु महर्षि भार्गव से प्राप्त की है। शान्तनु और कुछ पूछते इसके पहिले ही गंगा बोली- मुझे भरतवंशियों की परम्परा का ज्ञान है। वो जन्म में नहीं कर्म में विश्वास रखते है। वे जन्म भोगी नहीं कर्मयोगी होते है। हस्तिनापुर की राजगद्दी पर कर्म का ही अधिकार चला आ रहा है आर्यपुत्र।

महाराज आज तक हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर जन्म से अधिक कर्तृत्व पर अधिक महत्व दिया गया है और मैंने भी भरतवंश की यही परम्परा देखी है इसकी मुझे जानकारी है इसलिये मैंने आपके इस पुत्र को यह युवराज होगा, आपके वंश को जन्म भोगी नहीं, स्वकर्म पर, अपनी स्वयं की सामर्थ्य पर आगे बढाये इसलिये इसे कर्मयोगी बनाया है। इसको एक आदर्श व्यक्ति बनाऊं यह मेरी इच्छा थी और वह मेरी इच्छा देवव्रत ने पूर्ण करी।

अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम विद्यायें देवव्रत ने ग्रहण की है। मुनि वशिष्ठ ने इसे वेद वेदांगों की शिक्षा दी है। भार्गव मुनि ने उत्कृष्ट धनुर्धारी बनाने के लिये अस्त्र विद्या में धनुर्विद्या सिखाई है। मुनि भार्गव ने मुझे बताया धनुर्विद्या में इसके समान विश्व में कोई अन्य धनुर्धारी नहीं होगा जो इसका सामना कर सके। रणक्षेत्र में यह इन्द्र के समान तेज पराक्रमी है। शुक्रचार्यों को जिन शास्त्रों का ज्ञान है उन सबकी जानकारी इसको है। अंगिरा ऋषि के पुत्र गुरु बृहस्पति को जो दिव्य अस्त्र शस्त्रों का ज्ञान है वह इसे बृहस्पति से प्राप्त हुआ है। अन्य सब अस्त्र शस्त्रों की संचालन विद्या इसने गुरु परशुराम से अर्जित की है। ऐसे यह युद्ध विशारद कौशल में रण निपुण है।

राज धर्म और अर्थ शास्त्र का कुशल ज्ञाता है। राजन यह शूरवीर श्रेष्ठ धनुर्धारी, सर्व शास्त्र में पारंगत आपका यह पुत्र देवव्रत युवराज के लिये योग्य हो गया है यह जानकर तुम्हारे अधीन करने इसे लेकर मैं यहां आयी हूँ। अब इसे अपने साथ ले जाओ और हस्तिनापुर साम्राज्य को उसका युवराज दो। पुत्र तुम अपने पिता महाराज के साथ हस्तिनापुर जाओ जहां इतिहास तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

इस तरह कहकर गंगा ने अपने पुत्र देवव्रत को शान्तनु महाराज के साथ जाने की आज्ञा दी। तब शान्तनु बोले देवि अपने पुत्र को इतना निपुण बना दिया अब इसकी उज्ज्वल मान, यश कीर्ति देखने को वापिस मेरे साथ राजमहल में चले चल। देवव्रत ने भी अपनी मां को साथ चलने का आग्रह किया। तब गंगा बोली- वृक्ष की छाया वृक्ष से बंधी होती है वह चाहकर भी यात्री के साथ आगे नहीं जा सकती। तुम्हारे लिये मैं भी एक ऐसी ही छाया हूं जो समय से बंधी हुई है।

तब गंगा बोली महाराज आपका और मेरा साथ इतना ही और यहां तक ही था। यही तो नियति का खेल है कि जीव मिलते हैं और बिछुडते हैं। गंगा देवव्रत से बोली पुत्र हम सब काल के नियन्त्रण से बन्धे हैं। तुम्हारे पिताश्री का साथ व तुझे युवराज पद के योग्य बनाने तक का समय मेरा भूतकाल है। मेरा यह वर्तमान अब उससे नहीं जुडा है। पुत्र तेरा वर्तमान और भविष्य अब हस्तिनापुर ही है। हस्तिनापुर के राज वंश को शोभा दे ऐसा पराक्रम कर दिखाना जिससे दिन प्रतिदिन तेरी उज्ज्वल कीर्ति होगी। सदा निष्ठापूर्वक पितृ सेवा करते रहना। मेरा आशीर्वाद सदा तेरे साथ रहेगा। जब भी कोई समस्या में उलझ जाये मन विचलित हो और कोई ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाये तो मुझे स्मरण कर लेना, मैं तेरी सभी ऐसी समस्याओं के निदान के लिये प्रेरणा

देती रहूंगी ऐसा कहकर गंगा वहां से पुत्र को प्यार कर अन्तर्धान हो गई।

आस कह रही श्वास से धीरज धरना सीख, मांगे बिन मोती मिले, मांगे मिले न भीख।

अपनी माता का वक्तव्य सुनकर देवव्रत का सुकुमार चेहरा उदास खिन्न हो गया। महाराज देवव्रत के मन के भाव समझ गये। देवव्रत बोले- मैं अपने अधूरेपन पर उदास हूं पिताश्री। मुझे माता मिली उस समय पिता नहीं मिले और अब पिता मिले तो माता चली गयी। मेरे नसीब में माता-पिता दोनों का प्यार एक साथ नहीं लिखा है। मेरा नसीब ही अपूर्ण है। देवव्रत ने अपनी व्यथा अपने पिताश्री शान्तनु को बतायी। उसके इस दु:ख पूर्ण स्वर से शान्तनु महाराज अपना दु:ख भूल गये और बोले बालक तेरी माता ने तुझे योग्य बनाने में कोई कसर नहीं छोडी। माता की जगह पिता कभी भी नहीं ले सकता है फिर भी पुत्र मैं तुम्हे मां और पिता दोनों का प्रेम देने का अवश्य प्रयत्न करूंगा।

अपने पिता से आश्वस्त शब्दों से देवव्रत को सन्तोष हुआ और गंगा नदी को अपनी माता जानकर प्रणाम कर शान्तनु महाराज के साथ रथ के पास पहुंचे। शान्तनु देवव्रत को बोले कुमार इस रथ के सारथी को प्रणाम करो वत्स। यह हमारा सारथी ही नहीं हमारा मित्र भी है। सारथी को नमस्कार कर देवव्रत महाराज से बोले- सारथी का मित्र होना आवश्यक है। महाराज रथ के सारथी को सारथ्य करने का ज्ञान, योग्य विचार ध्येय, दिशा यह सदा ध्यान रखना चाहिये इसलिये दोनों एक दूसरे के पूरक होने से मित्र है तभी ही सफल सारथ्य हो सकता है। देवव्रत के इस प्रकार कहने से सारथी पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पडा और उसने राजकुमार देवव्रत की जय-जय कार करी। तब देवव्रत बोले आपको जय-जय कार करना ही है तो हस्तिनापुर की करो कारण कोई भी राजा या राजकुमार अपने राज्य से कभी श्रेष्ठ और बडा नहीं होता है। महाराज शान्तनु और सारथी देवव्रत की यह बात सुनकर मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे और एक दूसरे से बोले हस्तिनापुर साम्राज्य का रथ आगे ले जाने के लिये देवव्रत स्वरूप योग्य व्यक्ति हस्तिनापुर साम्राज्य को मिल गया है।

गुरु वशिष्ठ का शिष्य ही यह बात कह सकता है। गंगा नदी का तीर पीछे छूट गया। मन्द-मन्द शीतल हवा बह रही थी। रास्ते के वृक्ष पेड पौधे अपने युवराज को देखकर खिल उठे वे अपनी प्रसन्नता दिखा रहे थे। रथ हस्तिनापुर की ओर बढ़ रहा था। हस्तिनापुर को अपना युवराज मिलने का समय आ गया यह बात नगर में चारों तरफ फैल गई। हस्तिनापुर में एक उत्सव जैसा मनाया जाने लगा। पूरे नगर को सजाया गया। राजमहल के द्वार पर तोरण इत्यादि बांधे गये। सब जगह उत्साह का वातावरण बना। चारों ओर ढोल नगाडे बाजे बजने लगे। सभी प्रजाजन अपने युवराज राजकुमार को देखने के लिये उत्सुक थे। महाराज के रथ के आने के मार्ग में दोनों तरफ से प्रजा की भीड जुटी हुई थी। कई-कई अपने घरों की खिडकियों व गवाक्षों से यह दृश्य देख रहे थे। कई राजमहल के राजपथ पर राजकुमार को देखने के लिये खडे थे। उसी समय दूर से महाराज का रथ धूल उडाता आता हुआ दिखा तभी सभी ने महाराज की जय हो, राजकुमार विजयी हो ऐसी जय-जय कार शुरू की। महाराज शान्तनु और कुमार देवव्रत ने सभी प्रजा का प्रसन्न मुद्रा से अभिवादन स्वीकार किया और राजमहल में पहुँचे। राजसभा में सभी महाराज का स्वागत करने के लिये खडे थे। राजसभा में उपस्थित सभी ऋषि गणों, मुनियों और आचार्यों को देवव्रत ने वन्दन किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। शान्तनु महाराज विश्रांति के लिये अपने राज कक्ष में चले गये।

महाराज शान्तनु अपने पुत्र का नम्र स्वभाव जानकर और उसकी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर बोले, पुत्र तेरा वाक्चातुर्य, निपुणता देख कर लगता है तेरी माता ने तुम्हें सभी विद्याओं में पारंगत व अधिष्ठाता बनाकर ही मुझे सौंपा है। देवव्रत बोले पिताश्री मैं सर्व विद्या का कोई अधिष्ठाता नहीं हूं इन सब विद्याओं का अधिष्ठाता तो परम ईश्वर है। मैं तो यह विद्या की देवी के आशीर्वाद, प्रसाद से ही ये विद्यायें सीख सका। शान्तनु बोले, जो विद्यायें व ज्ञान तुम्हें मिला है उसमें की कुछ मुझे भी दो। देवव्रत बोले महाराज सर्वप्रथम मनुष्य को विद्या सीखनी चाहिये। विद्या प्राप्त हो जाने से विनय, नम्रता स्वत: प्राप्त हो जाती है इससे पात्रता, योग्यता सिद्ध

होती है। पात्रता, योग्यता प्राप्त होने पर धन और अधिकार की प्राप्ति हो जाती है। धन प्राप्त हो जाने से धर्म का आचरण होने लगता है। धर्माचरण होने से मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है और सुख की प्राप्ति होती है। धर्माचारण विषय की वार्ता सुनकर शान्तनु अपने पुत्र पर प्रसन्न हुये और बोले पुत्र बडे ही सुन्दर विचार है। वशिष्ठ के पास तुमने और क्या सीखा है ? तब देवव्रत बोले पिताश्री ब्रह्मर्षि ने मुझे कर्म और ज्ञान का विषय पढ़ाया और हंस पक्षी के पंख की उपमा कर्म और ज्ञान को दी। हंस का एक पंख ज्ञान है और दूसरा पंख कर्म है। हंस अपने दो पंखों के सहारे ही उड सकता है। एक कर्म और दूसरा ज्ञान। यदि उसके पास एक ही पंख हो तो उसका अकेला पंख व्यर्थ है। हंस उसके सहारे उडान नहीं भर सकता। ज्ञान और कर्म का योग होने से मनुष्य सफलता की उडान भर सकता है। ज्ञान को कर्म का योग मिला तो ही ज्ञान का उपयोग हो सकता है अन्यथा तो ज्ञान बेकार हो जायेगा और उसी प्रकार बिना विचार किया हुआ कर्म भी फलदायक नहीं होगा। इसलिये यह अवस्था उस हंस पक्षी के समान होगी जैसे एक पंख का हंस कभी उड नहीं सकता। उडान भरने के लिये दोनों पंखों की आवश्कता है उसी प्रकार मनुष्य जीवन में भी दोनो पंखों ज्ञान और कर्म की आवश्यकता है। यह उपदेश मुझे ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने दिया।

ज्ञान से विचार कर किया कर्म कभी अधूरा नहीं छोडना चाहिये नहीं तो अधूरे कार्य विनष्ट का कारण बन सकता है यह ज्ञान मुझे ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पति ने दिया। कार्य का आरम्भ शुभ है या अशुभ यह शुक्राचार्य की नीति से कार्य के परिणाम से, फल श्रुति पर ही निर्भर करता है। तब पुत्र के सर्वज्ञान को देखकर शान्तनु महाराज ने जाना पुत्र अत्यन्त तपाया हुआ खोट रहित स्वर्ण है तब पुत्र से फिर पूछा पुत्र तुमने परम प्रतापी गुरु परशुराम के पास से क्या सीखा। तब देवव्रत बोले पिताश्री गुरुवर परशुराम ने अस्त्र-शस्त्र विद्या के साथ-साथ पिता की आज्ञा पालन करना पुत्र का यह प्रथम और श्रेष्ठ कर्तव्य है, आनन्द प्राप्ति का यही एक सच्चा वास्तविक मार्ग है, ऐसा उन्होंने सिखाया। शान्तनु ने पुछा पुत्र गुरु परशुराम ने माता के विषय में कौनसी शिक्षा दी ? तब देवव्रत बोले शिक्षक से आचार्य का अधिकार दस गुना है। आचार्य से सौ गुना अधिकार पिता का है और इन सबसे भी हजार गुना अपनी संस्कृति में माता का स्थान सर्वोच्च है। पुत्र सदाचारी और दुराचारी जैसा भी हो फिर भी माता उस पर स्नेह प्रेम की वर्षा करती है। गर्भ में धारण करने से लेकर युवा होने तक और बाद में तक भी उसकी देखरेख चिन्ता करती रहती है भले ही इसके लिये उसको कितने ही महान भयंकर कष्ट उठाने पडते हो। शान्तनु बोले पुत्र वास्तव में एकदम सही है कि माता का दर्जा परमेश्वर के समान है, इसके अलावा दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। जिस ईश्वर को अपने बाल बच्चों की देखरेख की चिन्ता रहती है वैसी ही चिन्ता देखरेख अपने बच्चों के लिये माता करती है। परमेश्वर की दृष्टि से उसके सभी प्राणी समान है। उसी तरह माता के लिये भी सभी पुत्र समान है और वह कभी भी अपने पुत्रों के साथ अन्याय नहीं करती। पुत्र सुपुत्र या कुपुत्र हो सकता है पर माता सदा सुमाता ही रहेगी कभी भी कुमाता नहीं होगी। माता का अर्थ है मूर्तिमन्त पृथ्वी समान जिसने पूरे विश्व को अपने ऊपर धारण कर रखा है। अब महाराज शान्तनु बोले पुत्र तुम तो देवलोक में रहे हो, तुम्हे देवलोक का भी ज्ञान है। देवलोक में मनोरंजन कैसे करते हैं ? तब देवव्रत बोले पिताश्री मनोरंजन के लिये वहां भी शतरंज का खेल है। वहां की गोटियां यहां के मनुष्य लोक के समान नहीं है। पृथ्वी लोक के मनुष्य देवलोक की शतरंज के मोहरे है और पासे हाथ से नहीं फेंकते। समय की चाल से वक्त पासे फेंकता है तभी वहां की गोटियों की चाल खेली जाती है और मोहरे पिटते हैं। मेरा पुत्र केवल शस्त्र विद्या में ही निपुण नहीं है इसे सब विषयों का ज्ञान है इसके ज्ञान की परख महाराज शान्तनु ने क्षण भर में ही कर ली और इसकी वास्तविकता जानकर महाराज को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

पिताश्री शान्तनु और कुछ पूछते इतने में ही एक घोडों का व्यापारी महाराज व राजकुमार की जय-जय कार करता हुआ राज सेवक के साथ महाराज के पास आया। महाराज ने उससे पूछताछ की। वह एक अद्‌भुत श्रेष्ठ घोडा महाराज के लिये लेकर आया तब महाराज ने पूछा क्या सिर्फ एक ही घोडा लेकर आये हो ? तब व्यापारी बोला महाराज यह एक ही घोडा लाखों घोडों

से भी सर्वश्रेष्ठ है। यह घोडा भगवान सूर्य के रथ में जोडने योग्य है। जिस सूर्य के रथ को सात घोडे जोडकर चलाया जाता है वहां यह एक ही घोडा जोडकर सूर्य रथ चलाने में समर्थ है। इतना शक्तिशाली है। महाराज ने कहा व्यापारी तुम बहुत चतुर हो, हमें तुम्हारा घोडा दिखलाओ। व्यापारी तुम्हारी यह बात सच हुई तो मैं तुम्हें वैश्य से क्षत्रिय बना दूंगा और पचास गांव का राजा। आओ पुत्र तुम्हे तो हमारी घुड़शाला का तो कोई घोडा पसन्द नहीं।

राज प्रासाद के बाहर घोडा खडा था। महाराज के साथ बाकी अन्य राजदरबारी भी घोडा देखने के लिये बाहर मैदान में आये। देवव्रत भी महल में जाकर सशस्त्र तैयार होकर सबके साथ मैदान में घोडा देखने के लिये आया। देवव्रत को सशस्त्र सज्ज देख कर महाराज ने इसका कारण पूछा तब देवव्रत बोले महाराज क्षत्रिय वेशभूषा व पोशाक से आवश्यक शस्त्र धारण करना होता है। शस्त्र के बिना क्षत्रिय अपूर्ण, अधूरा व एकाकी है।

महाराज शान्तनु ने प्रत्यक्ष रूप में घोडे को सब प्रकार से देखा व पसन्द आया तब व्यापारी घोडे की अधिक प्रशंसा करते हुये बोला महाराज अब तक पूरे भारतवर्ष में मैं यह घोडा सभी राज सभा में लेकर गया पर आज तक कोई भी इसकी घुडसवारी नहीं कर सका, न ही इसपर कोई काठी चढ़ा पाया महाराज। और न ही इसे अपने नियन्त्रण में ला सका, ऐसा यह एक अद्वितीय घोडा है। महाराज ने व्यापारी का कहना शान्त चित्त से सुना और बोले- व्यापारियों को अभिमान शोभा नहीं देता। अपने घुडसवार सेवकों को आज्ञा दी कि इस घोडे की घुडसवारी करो। अनेक सेवकों ने इस पर घुडसवारी करने का प्रयत्न किया पर किसीसे भी वह घोडा काबू में नहीं आ सका और न ही उस पर कोई चढ़कर घुडसवारी कर सका। अश्वरोहण विद्या में निपुण सभी सेवक उस घोडे को काबू करने में असमर्थ रहे। घोडे ने सभी सेवकों को जिसने भी प्रयत्न किया दुलती मारकर जमीन पर फेंक दिया। घोड़ों के व्यापारियों ने कहा- मैंने तो पहिले ही कहा था महाराज घोडा बडा प्रलयंकारी है। अन्त में महाराज शान्तनु स्वयं घोडे को नियन्त्रण में करने और घुडसवारी करने हेतु तैयार हुये तो पुत्र देवव्रत ने यह जवाबदारी स्वयं अपने कन्धों पर उठाई। तब महाराज बोले- पुत्र तुम अपने आपको जोखिम में मत डालो। देवव्रत बोले- महाराज कुमार तो जोखिम में पडने के लिये जन्म लेते है। आज्ञा हो तो थोडी देर घोडे को घुमा लाऊं। कई देर तक वे घोडे का निरीक्षण, परीक्षण करते रहे फिर घोडे के पास जाकर रश्मि लगाम हाथ में लेकर एक चक्कर घुमाकर अपने स्थान पर लाकर फिर ऐड लगाकर दूसरे स्थानपर खडा कर उस पर सवार होकर दौडाने लगे और महाराज से बोले महाराज घोडा अपनी ही परछाई से डर गया। सभी देवव्रत का यह कृत्य आश्चर्य चकित हो देखने लगे और राजकुमार की जय-जय कार करने लगे। राजकुमार का घोडे का इस तरह सूक्ष्म निरीक्षण सबको आश्चर्य चकित कर दिया। महाराज की आज्ञा लेकर राजकुमार देवव्रत घोडे को दौडाने नगर के बाहर दूर तक ले गये और हस्तिनापुर की सीमा के पास तक पहुंच गये।

सीमा की दिशा की ओर दौड लगा रहे राजकुमार देवव्रत को कोई ससज्ज सेना हस्तिनापुर की ओर आती हुई दिखाई दी। भली भांति देवव्रत ने देखा शाल्व कुमार अपनी सेना सहित हस्तिनापुर पर चढ़ाई करने के लिये आ रहा है। देवव्रत ने धनुष पर बाण चढ़ाया और शाल्व के रथ के घोडे के सामने जमीन पर छोड दिया और शाल्व कुमार को आगे बढने से रोक कर गरजकर बोले। यह हस्तिनापुर की सीमा है इसकी जानकारी कराने के लिये यह बाण छोडा है, इस सीमा के भीतर प्रवेश मत करना। जितनी जल्दी सम्भव हो अपनी सेना सहित लौट जाओ।

देवव्रत की गर्जना सुनकर शाल्व कुमार ने हाथ उठाकर अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोका और देखा एक बालक अकेला ही धनुष बाण धारण कर उसके सामने खडा ललकार रहा है। उसको बालक जानकर ठीक से समझा दे ऐसा मन में विचार कर शाल्व कुमार बोला, बालक घर जाओ, घर के लोग तुम्हारा इन्तजार करते होंगे। हम लोग यहां पर हस्तिनापुर को जीतने के उद्देश्य से आये है। हमारे साथ युद्ध करने में तू हमें जीत नहीं पायेगा और नाहक जख्मी हो जायेगा। मैं शाल्व नरेश हूँ और ऐसा कह कर

अपनी सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

यह देखकर देवव्रत फिर से एक बार बोले, शाल्व नरेश मैं हस्तिनापुर महाराज शान्तनु का पुत्र देवव्रत आपको सावधान करने का प्रयत्न कर रहा हूं इसलिये आपको समझाया है पर शाल्व कुमार आपने मेरी बात को दुर्लक्ष्य कर अपनी सेना को आगे बढ़ आक्रमण करने की आज्ञा दी है। आपके सामने यह बालक महा शक्तिशाली देवव्रत खडा है इसकी अभी तक आपको कोई कल्पना नहीं आई है। उसको छोटा बालक समझ कर सेना ने देवव्रत की दिशा में कूच किया।

देवव्रत ने देखा शत्रु अपनी ही चाल से आगे बढते आ रहा है तब क्षणार्ध में ही देवव्रत ने धनुष पर बाण चढाया और क्षितिज भेदने वाले बाणों की बौछार कर दी। देवव्रत ने पहिला ही बाण अभिमंत्रित कर शाल्व कुमार पर छोडा जिससे प्रचंड आंधी और हवा उठी बादल और तूफान जोरों से उठा। पूरे वातावरण में अन्धकार छा गया। इस हवा और बादलों के वेग से शाल्व की सेना छिन्न-भिन्न होकर बिखर गई। तब देवव्रत ने दूसरा बाण छोडा जिससे अग्नि प्रकट हुई और शाल्व नरेश के पीछे लग गई। भीषण अग्नि से संरक्षण कैसे किया जावे यह सैनिकों को इसकी जानकारी नहीं थी। चिल्लाते चीखते, आग से जलते जूझते सैनिक इधर-उधर दौड रहे थे। इस तरह शाल्व की पूरी सेना अस्त व्यस्त हो गई।

तभी देवव्रत ने तीसरा बाण छोडा जिससे जोरों की मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। आग, पानी और मूसलाधार वर्षा से इन सब उत्पातों से शाल्व राज का उन्मत्त अहंकार नष्ट हो गया और सैनिक जान बचाकर भागने लगे। अपनी हार स्वीकार करने के सिवाय शाल्व के पास दूसरा कोई विकल्प ही नहीं था। शाल्व राज ने अपने को पराजित मान लिया।

शत्रु धराशायी हुये। गंगा पुत्र का यह पहला ही संग्राम था।

देवव्रत ने अपने राज्य के शत्रु के आक्रमण का बडा ही धैर्य और हिम्मत से सामना कर पहिले ही युद्ध में उसे अकेले ही अपनी सामर्थ्य से पराजित कर शाल्व राज को धूल चटाई और बन्दी बना लिया। शाल्व नरेश का अहंकार सूखी लकडी की तरह जला। विजयी मुद्रा में देवव्रत शाल्व कुमार को बन्दी बना राज महल की और चला इस तरह इस प्रचंड धनुर्धारी की कारकीर्ति का इतिहास शुरू हुआ।

शाम ढल गई, सूर्यास्त हो गया, घुडसवारी के लिये गया हुआ देवव्रत अभी तक लौटा नहीं। विलम्ब हो रही थी इससे महाराज शान्तनु चिन्ताग्रस्त थे तथा मन में शंका कुशंकाओं का दौर चलने लगा। महाराज ने महामन्त्री को आज्ञा दी कि महामन्त्री राजकुमार देवव्रत को गये काफी समय बीत चुका है। राजकुमार को अभी तक तो आ जाना चाहिये था पर वह अभी तक लौटा नहीं है। उसे ढूंढने के लिये इसी समय घुड़सवार सैनिक भेजो तथा मेरा रथ तैयार करो मैं राजकुमार को ढूंढने जाऊंगा। महामन्त्री महाराजा शान्तनु के चेहरे पर चिन्ताओं की रेखायें पढ़कर महाराज की आज्ञानुसार निकल ही रहा था इतने में ही दूर से कुमार देवव्रत आते हुये दिखाई दिया। महामन्त्री बोले महाराज देखो राजकुमार देवव्रत आ रहे है।

शान्तनु महाराज ने दूर से देखा सूर्य अस्ताचल को जा रहे है। पक्षियों की उडान से आसमान भर गया, उसी समय वह सर्वश्रेष्ठ घोडे को दौड़ाते हुये ठप-ठप की चाल से आता हुआ दिखाई दिया। शान्तनु पुत्र देवव्रत हस्तिनापुर अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से अपने पिताश्री की ओर देख रहा था। घोडा महाराज शान्तनु के पास आकर रूका। चपलता से घोडे से उतर कर पिताश्री को प्रणाम किया और बोले पिताश्री यह घोडा बडा ही सुलक्षणी है, श्रेष्ठ है और मुझे अत्यन्त प्रिय है। तब महाराज शान्तनु बोले पुत्र आपको आने में इतना विलम्ब क्यों हुआ ? मैं तुम्हारे लिये कब से चिंतित हूं।

देवव्रत अपने पीछे दृष्टि डालकर महाराज से बोले पिताश्री वास्तव में तो मैं बहुत पहले ही आ गया होता पर रास्ते में शाल्व की सेना ने हस्तिनापुर पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया तब शाल्वकुमार और उसकी सेना को पराजित करना आवश्यक था। महाराज को सुनकर आश्चर्य हुआ शाल्व सेना इसका क्या अर्थ तब देवव्रत ने बन्दी बनाकर अपने साथ लाये शाल्वकुमार

को महाराज के सामने खडा कर दिया। तब देवव्रत महाराज शान्तनु से बोले महाराज आपके शत्रु शाल्वकुमार को पराजित कर बन्दी बनाकर आपके पास ले आया हूं। अब इसके आगे क्या करना है इसका निर्णय आप स्वयं करे।

शान्तनु महाराज का संकेत पाकर महामन्त्री ने महाराज की आज्ञा जान कर राज बन्दी कुमार शाल्व को कारागार गृह में रखा। महाराज शान्तनु अपने पुत्र का यह पहिला ही सफल कृत्य देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये और स्नेह से अपने पुत्र के कन्धे पर हाथ रखा। दोनों भी उस समय शाम हो जाने पर राजमहल में विश्राम के लिये अपने-अपने कक्ष में गये।

दूसरे दिन राज दरबार में कुमार देवव्रत के कारनामों की जोर शोर से चर्चा हो रही थी। हस्तिनापुर पर आक्रमण करनेवाले शाल्व कुमार को उसके अपराध का कौनसा दंड दिया जाये इस विषय पर गहन चर्चा हो रही थी। उसी समय महाराज शान्तनु के राजदरबार में आगमन की सूचना राज सेवक ने दी। सभी दरबारियों ने खडे होकर महाराज शान्तनु तथा उनके साथ राजकुमार देवव्रत का अभिवादन किया और महाराज शान्तनु ने सिंहासन ग्रहण किया। शान्तनु ने मन्त्री को आज्ञा दी कि अभियोग के लिये शाल्वकुमार को राजदरबार में पेश किया जाये।

अहंकाररहित, शर्मसार बन्दी बनाया गया शाल्वकुमार राजदरबार में हाजिर किया गया। महाराज ने अपने उपस्थित राजदरबारियों से पूछा, मान्यवरों शाल्वकुमार ने हस्तिनापुर की सीमा का उल्लंघन कर राज्य पर आक्रमण करने का घोर अपराध किया है, नीतिनुसार इस अपराध के लिये शाल्व कुमार को कौनसा दंड दिया जाये। राजदरबार में सभी के मतानुसार महामन्त्री बोले महाराज शाल्व नरेश हमारे राज्य के शत्रु है और शत्रु राजा ने हस्तिनापुर पर आक्रमण किया है। न्याय नीति अनुसार इस अपराध के लिये उसे मृत्युदंड देना चाहिये। महामन्त्री की यह राय सुनकर पूरी राज सभा स्तब्ध हो गई। शाल्वकुमार की दृष्टि नीचे की ओर हो गई। महाराज कुछ विचार कर अपना निर्णय देने के लिये तैयार हुये इतने में ही कुमार देवव्रत अपने आसन से उठकर बोल पडे महाराज यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं कुछ कहना चाहता हूं। तब महाराज शान्तनु बोले अवश्य कुमार आज्ञा है।

सभी राजदरबारियों को उत्सुकता लग रही थी कि देवव्रत महाराज शान्तनु से क्या बोलेंगे। देवव्रत बोले आदरणीय महाराज पिताश्री व सभी मान्यवरों। शत्रु को मृत्यु दंड देने से केवल शत्रु ही नष्ट होता है शत्रुता की मृत्यु नहीं होती है और शत्रुता से जीवनभर दिन-प्रतिदिन शत्रु बढ़ते रहेंगे। शत्रुता का समूल नष्ट करने के लिये शत्रु को पराभूत करने के लिये, उस पर विजय प्राप्त करना हो तथा शत्रुता का नाश करने वैर भाव समाप्त हो इसके लिये शत्रु से भी मित्रता का हाथ आगे बढ़ाना चाहिये। अपने भारत वर्ष को एक आदर्श राष्ट्र बनाने की आपकी आकांक्षा हो तो उसके लिये सर्व प्रथम सद्भाव, मित्रता की नींव खडी करनी चाहिये। शत्रु को क्षमा दान देने से मित्रता की नींव मजबूत खडी होती है इससे शान्त, प्रगतिशील व उज्ज्वल भविष्य का निर्माण सम्भव है। इस मित्रता की शुरुआत आरम्भ कर आप अन्य राज्यों के सामने यह आदर्श प्रस्तुत कर सकते है। इसलिये मैं महाराज से विनती करता हूं कि शाल्व कुमार को अपराध के बदले दंड न देते हुये क्षमा दान किया जाये। सिर्फ क्षमा ही नहीं उन्हे बन्दी से मुक्त कर आदरपूर्वक शाल्व देश लौटने की अनुमति दी जाये।

देवव्रत का बोलना सुनकर पूरा राजदरबार आश्चर्य चकित हो गया तथा महाराज शान्तनु को भी अपने पुत्र से यह नयी न्याय प्रणाली सुनकर मन अभिमान से भर गया। महाराज ने कहा- शाल्वकुमार को शाल्व लौटने की आज्ञा दी जाती है। महाराज ने शाल्व कुमार को बन्दी बनाया था उससे मुक्त किया तथा आदरपूर्वक शाल्व देश लौट जाने की अनुमति प्रदान की। शाल्वकुमार को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि मैं मृत्यु के इतने समीप पहुंच कर सही सलामत इतनी शीघ्रता से छूट गया यह जो कुछ हुआ वास्तव में यह महान आश्चर्यजनक ही है। यह जो कुछ हुआ वह शाल्व कुमार को कभी कल्पना और इसकी अपेक्षा भी नहीं थी। इस घटना से शाल्व कुमार और भी अधिक लज्जित हो गये।

शाल्वकुमार ने महाराज शान्तनु का आभार माना और देवव्रत की ओर कृतज्ञता से देखकर राजदरबार से निकल गये।

हस्तिनापुर नगर में देवव्रत की इस अनूठे न्याय पद्धति की चर्चा जोरों से फैल गई। सभी नगरवासी राज प्रासाद के बाहर एकत्रित हो राजकुमार देवव्रत की जय-जय कार करने लगे। यह जय-जयकार सुनकर महाराज शान्तनु आनंदित हो गये, कृतकृत्य हो गये और बडी शीघ्रता से अपनी प्रजा को सम्बोधन कर बोले, हस्तिनापुर वासियों अब से राजकुमार देवव्रत की जय-जयकार न कर युवराज देवव्रत की जय-जयकार करें। मैं आज से कुमार देवव्रत को हस्तिनापुर का युवराज घोषित करता हूं।

महाराज के इस प्रकार बोलने पर लोगों में अत्यधिक आनन्द व्याप्त हुआ। कितने ही वर्षों बाद हस्तिनापुर को एक योग्य युवराज प्राप्त हुआ। सभी जगह युवराज देवव्रत की जय-जय कार होने लगी। प्रजाजनों की खुशी में शामिल हो इसे उत्सव मनाकर शान्तनु महाराज बोले, प्रजाजनों देवव्रत का पिता होने का मुझे आज गर्व है। इसका युवराज होने का हस्तिनापुर को गर्व होगा। आज मैंने उसे युवराज होने की घोषणा कर दी है। यह भविष्य में भी अपने अधिकारों की सुरक्षा योग्य रीति, नीति से निभायेंगे इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। महाराज का कथन सुनकर पूरी प्रजा आनन्द से प्रसन्नता से भर गई। तब देवव्रत को हस्तिनापुर का युवराज पद पर आसीन होने का समारोह विधिपूर्वक उत्साह और प्रसन्नता से सम्पन्न हुआ।

देवव्रत युवराज हो गया। शान्तनु एक बहुत बडे उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये कारण राजा या युवराज लोक प्रतिनिधि होता है। उनका प्रजा का कल्याण करना पहला व आवश्यक कर्तव्य है। शान्तनु महाराज ने अपने पश्चात प्रजा की देख-रेख व चिन्ता करनेवाला योग्य युवराज प्रजा को दिया। वशिष्ठ, भार्गव का यह शिष्य अपनी कुशाग्र बुद्धि, विचारपूर्वक प्रजा का हित कैसे करना, राज-काज चलाना, अपने पिताश्री शान्तनु से सीख रहा था। महाराज शान्तनु भी अपने पुत्र की दिनों-दिन बढ़ती प्रगति को देखकर मन में सन्तोष प्राप्त कर रहे थे और कितने ही वर्षों के बाद महाराज अब सुख का अनुभव कर रहे थे। इसी तरह सुख खुशी में दिन बीतते गये और ४ वर्ष के राजकाल दौरान में ही देवव्रत तरुण हो गया। अब देवव्रत २० वर्ष का हो गया, बालक से युवा हो गया। तरुण अवस्था में पदार्पण करते ही उस युवक के चेहरे पर तेज झलकने लगा तथा राजाओं के समान तेजस्वी हो गया। समय मानों पंख लगाकर उडने लगा। देखते-देखते ही देवव्रत जवान हो गया।

८) शान्तनु और सत्यवती

वैशम्पायन कहते है जनमेजय अपने राज दरबार के काम-काज देखते हुये कुछ समय निकालकर एक दिन राजर्षि महाराज शान्तनु ने अपने पुत्र के साथ शिकार खेलने की इच्छा की। सारथी को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। दोनों पिता पुत्र अलग-अलग रथ पर सवार होकर आखेट के लिये निकल पडे। थोडी ही देर में रथ अति वेग से दौडने लगे और देखते-देखते ही महाराज शान्तनु का रथ वन की ओर बडे जोर से दौडने लगा। राजर्षि शान्तनु यमुना तट पर वन में मृगया के लिये विचरण कर रहे थे। उन्हें दूर से बहुत सुन्दर उत्तम सुगन्ध आती हुई मालूम हुई पर वह कहां से आ रही है उसी ओर अपने रथ को बढ़ाने की आज्ञा दी।

एक मृग के पीछे भागते हुये रथ में से महाराज को एक अत्यन्त सुन्दर रूपमयी लावण्य व तरुण अवस्था में जवानी से भरपूर सुन्दरी मत्स्यगन्धा निषादों की देवांगना के समान तरुण कन्या नदी किनारे बैठी हुई दिखाई दी। उसकी तीखी सुन्दर आंखों को देख महाराज स्वयं शिकार हो गये। कामज्वर चढ गया। इस कन्या के रूप पर मोहित होकर महाराज रथ से उतरकर अपनी सर्व मान-सम्मान प्रतिष्ठा भूलकर, अपने युवा पुत्र के बारे में कोई तरह का विचार नहीं करते हुये उस युवती के पास पहुंचे और उससे पूछा- कल्याणी, तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो और किस उद्देश्य से यहाँ किसकी प्रतीक्षा कर रही हो। क्या नाम है तुम्हारा। उस युवती ने उत्तर दिया, मैं निषाद कन्या दासराज नाविक जो मल्लाहों का प्रमुख, निषादों का स्वामी है उसकी कन्या सत्यवती हूं तथा मेरे पिता की आज्ञा से धमार्थ ही यात्रियों को यमुना पार कराती हूं, उनकी ही प्रतीक्षा करती हूं। उसके सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य और सुगन्ध से मोहित होकर राजर्षि शान्तनु ने कामज्वर से पीडित व विह्वल हो उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा। शान्तनु उत्तर सुनकर बहुत मुग्ध हो गये और बोले, क्या देवि हमें भी यमुना पार कराओगी। तब सत्यवती बोली- अवश्य, क्यों नहीं। महाराज सत्यवती की

ओर एक टक देखते रह गये। सत्यवती की आंखें लज्जा से नीचे गड गई। आईये बैठिये और महाराज शान्तनु को नाव में बैठा कर नाव खेने लगी। सत्यवती नाव के डांडे लेकर नाव खे रही है और शान्तनु नाव में बैठे-बैठे उसके रूप लावण्य को देख-देख काम विह्वल हो रहे है और विचारों में खोये बैठे है। थोडी ही देर में नाव खेते-खेते यमुना का दूसरा तट आ गया। सत्यवती ने महाराज से कहा चलिये नदी का पार तट आ गया। शान्तनु बोले- मेरा तट तो अभी नहीं आया है। सम्भवत: मेरा तट तो उस पार है। वापिस अब उस पार ले चलो। सत्यवती फिर से नाव को खेने लगी और उसी ओर नाव को ले चली और पूछा आप कौन है और आप को जाना कहां है। तब महाराज शान्तनु बोले मैं हस्तिनापुर नरेश शान्तनु हूं और मृगया करने आया था पर रास्ता भूल गया हूं और स्वयं शिकार हो गया हूं ऐसा लगता है और जाना कहां है यह भी नहीं जानता। भाग्य मुझे अब कहां किस ओर ले जायेगा ? इसलिये कहीं भी ले चलो। सत्यवती बोली- आश्चर्य है। आपको यह भी मालूम नहीं की आपको जाना कहां है, शान्तनु बोले- आश्चर्य मत करो सत्यवती। मेरी यह यात्रा तो तब समाप्त होगी जब मैं तुमसे वो बात कहने का साहस कर सकूंगा। जिसे कहने के लिये मैंने यह यात्रा आरम्भ की थी। सत्यवती मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं पर कहने का साहस नहीं कर पा रहा हूं। सत्यवती ने कहा तो महाराज ऐसी कौनसी बात है जो आप कहना चाहते है पर कहने का साहस नहीं कर पा रहे है। राजाओं का साहस तो कम नहीं होता है। कह डालिये अपने मन की। शान्तनु बोले, सम्भवत: साहस शब्द के चुनाव में मुझसे भूल हो गई है। यह शब्द उचित नहीं है। परन्तु मैं उचित शब्द ढूंढ नहीं पाया। इसलिये तुम तब तक नांव खेती रहो।

मैं साहस इकट्ठा कर रहा हूं और नदी के उस किनारे पर पहुंचने पर अपने मन की बात कहूंगा। सत्यवती भी शान्तनु की बात का अभिप्राय समझ गई थी और मन से शान्तनु को चाहने लगी। नाव खेते-खेते नदी का दूसरा किनारा भी आ गया। सत्यवती बोली- महाराज किनारा आ गया। उचित शब्द मिले अब तो आपने वो जो बात आप कहना चाहते हो साहस जुटा लिया होगा। महाराज शान्तनु बोले उचित शब्द उसी तट पर मिलेंगे अभी नाव को फिर उस पार ले चलो। सत्यवती बोली- महाराज यह क्या ? मैंने आपको पहले ही पहचान लिया था। आप राजा है और राजाओं को इस प्रकार दिशा भ्रम हो जाना अच्छा नहीं होता है। तब शान्तनु बोले, तब तो तुम यह भी समझ गयी होंगी मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं। सत्यवती बोली- मैं सुने बिना क्यों कुछ समझूं महाराज। शान्तनु बोले- सत्यवती तुम्हारे सौन्दर्य और उसकी सुगन्ध ने मेरा मन मोह लिया है। सत्यवती मैं तुम्हे चाहता हूं। मैं तुम्हारे रूप लावण्य पर मोहित हूं तथा मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं और तुम्हे हस्तिनापुर की महारानी बनाना चाहता हूं। क्या तुम भी मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार करती हो ? सत्यवती ने महाराज की यह बात सुन कर आंखे नीची कर ली और बोली इसके निर्णय में मैं स्वतन्त्र नहीं हूं इसका निर्णय तो मेरे पिता दासराज ही करेंगे। इसके लिये तो आपको मेरे पिता से ही मांगनी करनी पडेगी। मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं या नहीं इसका उत्तर तो मेरे पिता ही देंगे। शान्तनु बोले पर तुम्हारे हृदय की बात जाने बिना मैं तुम्हारे पिता के पास तुम्हे मांगने के लिये नहीं जा सकता सत्यवती। सत्यवती बोली- मेरे हृदय की बात तो अब तक आपके हृदय को जान लेनी चाहिये थी महाराज। यह कह कर सत्यवती नाव को किनारे लगा कर अपने घर की ओर चली गई। महाराज शान्तनु भी उसके पीछे-पीछे उसके घर पर गये।

देवव्रत अपने शिबिर में मृगया कर लौए आयें और चिंतित होकर बार-बार शान्तनु के बारे में पूछताछ कर रहे थे। मन्त्रियों ने कहा शिकार खेलते समय महाराज को वक्त का ध्यान नहीं रहता।

शान्तनु दास राज केपास आये। सत्यवती घर की चिक की ओट से देख रही है। इतना बडा राजा अपने घर आया जानकर दासराज आश्चर्य चकित हो गया और महाराज का उत्साह से योग्य आदर आतिथ्य स्वागत किया और बोला- आईये बैठिये आसन ग्रहण करें। अतिथि का स्वागत है। वह अस्त्र-शस्त्र से तो आप कोई राजा लगते है। तब घबडाकर महाराज के आने का प्रयोजन पूछा। शान्तनु बोले दासराज, मैं भरतवंशी हस्तिनापुर नरेश शान्तनु हूं। दासराज बोले- मेरा अहोभाग्य की आप यहाँ

पधारे महाराज। इस कृपा का कारण। शान्तनु बोले- मैं मृगया करने हेतु वन में आया था और रास्ता भटक गया हूं। मैं आपसे कुछ माँगने आया हूं। दासराज बोले- मैं हस्तिनापुर नरेश को दे ही क्या सकता हूं। शान्तनु बोले- हर व्यक्ति कुछ देने योग्य होता है दासराज और हर व्यक्ति कुछ न कुछ माँगना चाहता है। दासराज बोले- मेरे पास वैसी कोई वस्तु नहीं है जो महाराज को अर्पण कर सकूं। शान्तनु बोले यदि आप देना न चाहें तो और बात है पर मैं जो आपसे माँगने आया हूं वह त्रैलोक्य में आपके सिवाय किसी और के पास नहीं है। दासराज बोले- नरेश मैं समझा नहीं ऐसी कौनसी वस्तु हो सकती है। महाराज शान्तनु बोले मैं तो सुगन्ध की बात कर रहा हूं जिसके आगे कस्तूरी भी अपना सिर झुका लेती है। दासराज बोले- क्या आप वहीं कह रहे है महाराज जो मैं समझ रहा हूं। शान्तनु बोले यदि आप वही समझ रहे है जो मैंने कहा तो मैं वही कह रहा हूं। दासराज बोले- यह बात तो पहेलियों में नहीं हो सकती है महाराज। मुझे गौरव का अवसर प्रदान कीजिये ताकि मेरी इस कुटिया की दीवार भी सुनें की हस्तिनापुर नरेश क्या माँगने आये है ?

शान्तनु बोले- मैं तो मांग कर गौरव का अनुभव कर रहा हूं दासराज। मेरे हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर मेरे बायें हाथ वाला स्थान रिक्त है इसीलिये मैं उसी स्थान के लिये तुम्हारी पुत्री सत्यवती का हाथ तुमसे आमंत्रित करने आया हूं। सुनकर दासराज को आश्चर्य हुआ उसी क्षण मन में विचार आया कि इस कन्या की कुंडली का तो राजयोग है और वैसे ही इसे मांगने एक सार्वभौम राजा आया है। कितने दिनों से मैं इस दिन का इन्तजार कर रहा था। दासराज महाराज शान्तनु से बोले महाराज मैं तो धन्य हो गया जो आप मेरी इस पर्णकुटी में पधारे है। इस दास पर बडी कृपा की है। यह तो मेरी पुत्री के लिये बडे सौभाग्य की बात है महाराज। पर यह भी सत्य है कि नरेश सत्यवती के लिये मैं कबसे आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। शान्तनु बोले- मेरी प्रतीक्षा। दासराज बोले- जी महाराज, आपकी प्रतीक्षा। सत्यवती की कुंडली कहती है उसे राज्य करना है और भारतवंश में आपके सिवा ऐसा राजा ही कौन है ? आकाश में चन्द्रदेव और धरती पर आप। शान्तनु बोले- अर्थात् आपने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया।

सत्यवती भी यह दृश्य घर में चिक की ओट से देख रही थी और सब कुछ सुन रही थी। मन ही मन प्रसन्न हो रही थी कि मैं इस नरेश की महारानी बन जाऊं। दास राज बोले- महाराज आपने मेरी पुत्री का हाथ मांगा इससे श्रेष्ठ सद्भाग्य क्या हो सकता है इस प्रकार शान्तनु महाराज के शब्दों का गौरव किया। ऐसा कौन सा अभागा पिता होगा जो अपनी पुत्री के लिये आपका हाथ स्वीकार नहीं करें परन्तु एक अड़चन है। तब शान्तनु बोले- दासराज क्षत्रियों के पास परन्तु नाम का कोई शब्द नहीं होता। क्या सत्यवती के लिये हस्तिनापुर का राज्य और वैभव भी कम पड गया है। दास राज बोले महाराज यह बात नहीं है। आपको मैंने सत्यवती की कुंडली की बात तो बता दी पर मेरे हृदय की कुंडली भी तो कुछ कह रही है महाराज। शान्तनु बोले- क्या कहती है आपके हृदय की कुंडली ? दासराज बोले- मेरा मन कहता है जिस प्रकार सत्यवती को महारानी पद प्राप्त होगा उसी प्रकार उसके ही पुत्र को हस्तिनापुर का युवराज बनाया जाये उसकी सन्तान राज्य करे। उसे ही हस्तिनापुर का राज सिंहासन प्राप्त हो ऐसी शर्त बतायी तो फिर यह प्रस्ताव आपका स्वीकृत हो सकता है। सत्यवती से आपके विवाह के रास्ते में यही एक अडचन है।

दासराज की यह शर्त सुनकर महाराज को धक्का लगा। महाराज सोचने को विवश हुये कि दीर्घकाल की प्रतीक्षा के बाद वापिस लौटा योग्य पराक्रमी पुत्र व अपनी योग्यता से उसे युवराज पद मिलना, हस्तिनापुर वासियों का उस पर अटूट श्रद्धा व विश्वास, इन सब बातों का विचार कर कि कैसे उसको दिया हुआ युवराज पद का अधिकार यह सब खोने के लिये शान्तनु जरा भी तैयार नहीं थे यह सब सोचकर शान्तनु दास राज से बोले, मैं गंगा पुत्र देवव्रत को युवराज घोषित कर चुका हूं। दास राज बोले- पता है महाराज, यदि पता न होता तो यह प्रतिबन्ध ही क्यों लगाता ? शान्तनु बोले- यह तो कोई प्रतिबन्ध नहीं हुआ दासराज। जरा विचार तो कीजिये आप कह क्या रहे है ?

दास राज एक बार तुम मुझे नदी का प्रवाह रोक देने को कहो, तो वह मैं रोक सकता हूं, वायु की दिशा बदल सकता हूँ, आकाश

में नक्षत्रों और ग्रहों का मार्ग उलट-पुलट कर मार्ग बदल दूं, पहाडियों का मुँह फेर दूं। अग्नि से कहूं अग्नि चूल्हे में जले पर आपके घर में न लगे। मेरे पराक्रम और शौर्य से असम्भव घटना भी सम्भव में बदल सकता हूं परन्तु अपने निजी स्वार्थ के लिये अपने गंगा पुत्र देवव्रत के युवराज पद का अधिकार छीन कर दूसरे को दे देना मुझे योग्य नहीं लगता और मुझे स्वीकार नहीं है। मैं उसके साथ अन्याय तो नहीं कर सकता। क्या इसलिये कि काम देव ने मुझे घायल कर दिया। आप कोई प्रतिबन्ध जैसा प्रतिबन्ध लगाये दासराज। मैं भरतवंशी हूं, देवव्रत के विषय में वचन बद्ध हूं। वचन देकर तोडने का अधिकार मेरे रक्त में नहीं है। दासराज बोले- आप वो सब कुछ करने को तैयार है महाराज जो मैं नहीं चाहता और जो मैं चाहता हूं वहीं आप करने को तैयार नहीं है। मैं हस्तिनापुर नरेश से क्षमा चाहता हूं। आप सत्यवती की भाग्य रेखा को बदलना चाहते हैं जो मुझे स्वीकार नहीं। यदि उसकी सन्तान को राज्य करना है तो उसकी सन्तान ही राज्य करेगी। सत्यवती की भाग्य रेखा उसकी सन्तान को राज्य करवाने वाले राजा को खुद ही यहां बांध लायेगी। शान्तनु बोले- वह राजा ही क्या जो अपने वचन की डोरी के सिवाय दूसरी डोरी बांध ले। आप वो कह रहे है जो मुझसे नहीं हो सकता इसलिये अब सत्यवती के लिये आप किसी और राजा की ही प्रतीक्षा करे क्योंकि भरतवंश का शान्तनु किसी एक का अधिकार छिनकर दूसरे को सौंपने का अन्याय नहीं कर सकता दासराज। यह कह कर शान्तनु वहां से निकल गये। यद्यपि शान्तनु उस समय काम से अत्यन्त पीडित थे फिर भी उन्होंने दासराज की शर्त स्वीकार नहीं की। वे कामवश अचेतन से हो रहे थे और सत्यवती का चिन्तन करते हुये अपने शिबिर की ओर चले गये।

नहीं नहीं होगा नहीं यह भीषण अन्याय, नीति-प्रीति संघर्ष में प्राण भले ही जाय।

महाराज के इस प्रकार कह कर निकल जाने से सत्यवती भी मन ही मन व्यथित हुई और उद्विग्न मन से कुछ बोल नहीं पायी। अपनी पुत्री को इस प्रकार चिंतित और उदास देखकर उसकी मनस्थिति समझकर दास राज अपनी पुत्री को समझाते हुये बोले- पुत्री निश्चित हो। झूठ केवल मनुष्य बोलता है परन्तु जैसे नदी का पानी झूठ नहीं बोलता, जैसे नांव की पाल से वायु झूठ नहीं बोलती। उसी प्रकार भाग्य की रेखा भी कभी झूठ नहीं बोलती। तुम्हारी भाग्यरेखा चन्द्रवंशी हस्तिनापुर नरेश को बांध कर यहां अवश्य लायेगी। प्रकृति, पशु-पक्षी ये सभी कभी भी असत्य भाषण नहीं करते। एक मनुष्य ही है जो असत्य के मार्ग पर चलता है। सत्यवती तेरे भाग्य में चन्द्रवंश का ही कोई हस्तिनापुर नरेश का योग लिखा है और तू महारानी बनेगी यह मुझे पूर्ण विश्वास है इसलिये पुत्री तू धैर्य रख देर हो चुकी है जाओ और अब सो जाओ।

शिकार को गये बहुत समय बीत गया, महाराज अभी तक शिबिर में लौटे नहीं इस प्रकार अपने पिता के लिये देवव्रत अत्यधिक चिंतित हो रहे थे। महामन्त्री को रथ तैयार करने की आज्ञा दी और स्वयं महाराज को ढूंढने के लिये जाने को तैयार थे। मन्त्री बोले आप चिन्ता न करे युवराज। यदि कोई अनहोनी हुई होती तो सारथी अवश्य आया होता। इतने में ही दूर से महाराज शान्तनु का रथ आता हुआ दिखाई दिया।

महाराज उद्विग्न मन से शिबिर में आ गये। देवव्रत बोले कहां चले गये थे पिता महाराज, हम सब आपके लियेबहुत चिंतित हो रहे थे महाराज ? शान्तनु ने कहा, मार्ग नहीं मिल रहा था पुत्र और यह कह सबकी उपेक्षा कर महाराज शिबिर में अपने कक्ष में चले गये। देवव्रत महामन्त्री से बोले क्यों मन्त्रीवर आपको महाराज कुछ चिंतित नहीं लग रहे। मन्त्री ने कहा राजा को तो अनेक चिन्तायें होती है युवराज।

देवव्रत महाराज शान्तनु के पास आये और देखा महाराज अपने शिबिर कक्ष में खिन्न मन से उदासी व संज्ञा हीन लेटे हुये है मन में बारम्बार सत्यवती का ही चिन्तन चल रहा है। देवव्रत ने पूछा आज्ञा हो तो हम कल सुबह ही हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान कर जाये। शान्तनु बोले अभी नहीं, कल नहीं। देवव्रत ने कहा जो आज्ञा पिता महाराज।

सत्यवती के चिन्तन में डूबे हुये महाराज दिन-प्रतिदिन सूर्योदय होते ही रथ पर सवार होकर यमुना तट पर चले जाते और

सत्यवती की प्रतीक्षा करते तथा पेड की एक ओट में खडे होकर सत्यवती की ओर निहारते रहते और सूर्यास्त होने पर जब सत्यवती अपने घर लौट जाती तो महाराज भी अपने शिबिर में लौट आते। कामज्वर ने महाराज को अत्यन्त विह्वल और पीडित कर दिया और कुछ दिनों तक महाराज की यही दिनचर्या बनी रही।

यहां पर देवव्रत को महाराज का यह उपेक्षा का व्यवहार अत्यन्त ही पीडा देने लगा और वह सोचने पर विवश हो गया। देवव्रत की आंखों के सामने उसका शैशव घूमने लगा। पिता का यह कैसा व्यवहार है। कैसे पिता हैं शान्तनु ? पिता से माता अलग हो गई। इस विलगाव से दोनों में से किसको कितनी पीडा हुई यह देवव्रत नहीं जानते पर स्वयं वे अपनी पीडा को नहीं भूल पाये। प्रत्येक बालक के माता-पिता दोनों होते है उनके माता-पिता होकर भी नहीं के समान थे। देवव्रत के लिये न मां सहज थी और न पिता। मां चाहती थी कि देवव्रत अपने पिता के पास रहकर गुरुकुल के योग्य उसका लालन-पोषण हो और पिता कुछ इतने उदभ्रान्त रहने लगे कि उनको कुछ ध्यान ही नहीं था कि उनके एक पुत्र भी है। देवव्रत का शैशव, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, तरुणावस्था ये सब विभिन्न ऋषियों के आश्रमों में उनके कठोर अनुशासन में बीते किन्तु देवव्रत माता-पिता के स्नेह से वंचित रहे। तभी से देवव्रत के मन में अनेकों विचार घर कर गये। परिवार, समाज और संसार को लेकर अनेक प्रश्न निर्माण हो गये। परिवार क्या है ? पति-पत्नी का सम्बन्ध परस्पर आकर्षण का विषय है एक-दूसरे को सम्मान व स्वतन्त्रता देने में है या अपने सुख के लिये किसी एक को अपनी इच्छाओं का दास बनाने में है। परिवार का आधार क्या है ? स्त्री-पुरुष विवाह क्यों करते है ? अपनी पूर्ति करने के लिये या अपने दूसरे साथी के अभावों को दूर करने के लिये या परस्पर एक दूजे का सहारा बन अपनी-अपनी अपूर्णता को पूर्णता करने के लिये ? वात्सल्य क्या है ? व्यक्ति सन्तान अपने सुख के लिये चाहता है ? क्या सन्तान वह खिलौना है जिसे बालक कभी अपने खेलने के लिये मांगता है ? माता-पिता स्वयं को नहीं तपाते, वे तपते है तो अपने अभावों और कष्टों से तपते है। खिलौना टूट जाये तो बच्चा इसलिये नहीं रोता खिलौने को टूटकर कष्ट हुआ होगा। वह तो इसलिये रोता है कि जिससे खेलकर उसे सुख मिलता था वह आधार ही नष्ट हो गया। इन्ही विचारों ने मन में प्रश्नों की झडी लगा दी।

माता के द्वारा पिता को सौंप दिये जाने पश्चात से राजा अब उनकी ओर कुछ उन्मुख हुये थे। देवव्रत को लगने लगा था कि पिता के वात्सल्य के कुछ छींटे उन पर पडने लगे है। गृहस्थी के सुख की कुछ कल्पनायें उनके मन में भी जागी। परिजनों के सम्बन्धों को सामाजिक आवश्यकता और कर्तव्य से हट कर भावनात्मक स्तर पर वे देखने लगे पर ऐसे समय में पिता की ओर से यह उपेक्षा। देवव्रत का मन क्षुब्ध होकर बार-बार धिक्कार करने लगा कि वे किसीसे भी कोई अपेक्षा करते ही क्यों है ? वे अपने मन की सम्पूर्णता क्यों नहीं खोजते ? अपेक्षायें ही तो अन्ततः निराशा को जन्म देती है और निराशा दुःख का कारण बनती है। जीवन मात्र एक कठोर कर्तव्य है जिसका निर्वाह करना ही पडता है। यह स्नेह, प्यार, वात्सल्य ये सब तो समयानुसार ओढे गये छल-छदम् मात्र है जो दूसरों को धोखा देते है और स्वयं अपने लिये भी छलों का महल खडा कर लेते है। पिता अपनी पत्नी के मोह पाश में बन्धे थे इससे अपने होठ बन्द किये बैठे रहे और माता ने एक के पश्चात एक-एक कर सात पुत्रों को गंगा में बहा दिया। पिता के मन में यदि पुत्रों के प्रति वात्सल्य होता तो वे मां का हाथ नहीं पकड लेते ? हां जब मेरी बारी आई तो उन्होंने मां का हाथ पकडा भी था पर पत्नी से दूर होने का उन्हे इतना शोक हुआ कि उनका एक पुत्र अभी जीवित है, जिस पुत्र के जीवन की रक्षा के लिये पत्नी की इच्छा के प्रतिकूल चले है उसी पुत्र को आज भूल बैठे। उन्होंने कभी यह भी सोचा कि देवव्रत जीवित भी है या पत्नी के वियोग में ही पगला रहे हैं ?

देवव्रत का धारा प्रवाह चिन्तन रुका और लगा कहीं पिता अस्वस्थ तो नहीं है। स्थितियां बदलते ही सारे निष्कर्ष भी बदल जाते है। यदि राजा इस समय अस्वस्थ हैं तो फिर वह कैसे भी किसी की उपेक्षा कर सकता है। रोगी के लिये सामाजिक व्यवहार आवश्यक नहीं होता है। शिष्टाचार के नियम उस समय उसके लिये नहीं होते है। औपचारिकता की

आशा उस समय करना व्यर्थ है।

पिता के अस्वस्थ होने पर, क्षुब्ध होने पर, उन्मत होने पर देवव्रत पिता के लिये विचलित हो उठते हैं उन्हे चैन नहीं आता। देवव्रत अपने को समझा नहीं पा रहे थे कि यह पिता का उन्माद है या प्रमाद ? देवव्रत स्वयं में सहज नहीं हो पा रहे थे। उनके भीतर के द्वन्द और असमंजस उन्हे कुछ स्पष्ट निर्णय नहीं करने दे रहे थे वे निष्क्रिय से खडे रहे। महाराज शान्तनु के शिबिर कक्ष के बाहर और अन्दर मौन का तनाव अधिक कठोरता से व्याप्त था। द्वार पाल ने बताया महाराज अस्वस्थ है। देवव्रत ने कहा क्या राज वैद्य को बुलाया गया है। मन्त्री ने कहा नहीं क्यों ? चक्रवर्ती ने आदेश नहीं दिया। यह सोचकर देवव्रत को अपने पिता से मिलकर उनका साक्षात्कार करना आवश्यक हो गया।

देवव्रत महाराज के कक्ष में आये और देखा पिता थके हुये से असहाय रोगी के समान नहीं लेटे है वे अपने पलंग पर करवट के बल अप्रत्याशित ढंग से लेटे हुये है। देवव्रत को लगा पिता कितने कष्ट में है। हस्तिनापुर नरेश पुरु राज वीर वर शान्तनु अपने कक्ष में अकेले पडे असहाय से हुये अन्त:करण से मन ही मन रो रहे हैं। मनुष्य जो चाहे भी हो बलवान, ज्ञानी, चक्रवर्ती आखिर मनुष्य ही तो है। मनुष्य शरीर और मन के नियमों का दास है, उसकी संसार के सुख-दु:ख से निवृति हो ही नहीं सकती तो फिर वह जीवन में सुख-दु:ख मानता ही किसलिये है ? यह जो कुछ हो रहा है उसे प्रकृति के नियमों के अधीन हो रहा है ऐसा क्यों नहीं जानता ? इस तरह अब हाथ पैर झटकने से क्या उपयोग ? मनुष्य क्यों जाता है लोभ और लाभ की ओर ? क्या पाता है वह उनमें ? शान्तनु स्वयं अपनी इच्छासे सुख पाने के लिये मृगया करने गये थे और क्या सुख मिला उन्हे ? अब यहां पडे हुये आहत मृग के समान हाथ पैर पटक रहे हैं ? कहीं आखेट में कोई गहरा घाव तो नहीं लग गया ? पिता महाराज शारीरिक पीडा होने से रोने वालों में से तो नहीं है ? कक्ष में देखा एक सेवक उनके पद चाप कर रहा है। देवव्रत ने उसे हटा कर स्वयं पद चाप सेवा करने लगे। सहसा शान्तनु ने करवट बदली। उन्होने अपने सारे शरीर को अकडाया और हाल पूछने आये देवव्रत को देखा और बोले पुत्र तुम। लोकाचार की बाध्यता से अपनी हथेली देवव्रत के सिरपर रख दी। देवव्रत ने अपने पिताश्री को चिंतित देखा। पिता के चेहरे पर पीडा के तनाव की स्पष्ट रेखायें उभर रही थी। एक लम्बे प्रवास के बाद पुत्र को देखकर महाराज की आंखों में वात्सल्य तो क्या एक हल्का सा औपचारिक हास्य भी नहीं आया। विचित्र भाव थे पिता की भंगिमा का। देवव्रत को लगा पीडा में तडफता हुआ मनुष्य दूसरों की भावना का क्या सम्मान कर पायेगा ? देवव्रत ने पहले ही अपने मन को समझा लिया था कि वे किसी से कोई अपेक्षा नहीं करेंगे। देवव्रत ने पूछा पिताश्री आप अस्वस्थ है? शान्तनु ने स्थिर दृष्टि से पुत्र की ओर देखा फिर जैसे सायास अस्त-व्यस्त हो उठ बैठे और बोले नहीं पुत्र अस्वस्थ नहीं हूं। देवव्रत बोले- मैं महाराज हजारों बाणों के घाव सहन कर सकता हूं परन्तु आपके इस मौन का घाव मुझसे सहन नहीं होता। मुझे तो बताइये क्या बात है। कौनसी ऐसी बात है जो आपको पीडा दे रही है, ऐसा क्या हो गया है जिससे आप इतने दु:खी है। शान्तनु बोले- कौनसी बात ? देवव्रत बोले पिताश्री वही बात जिस मौन ने आपको मौन की मरू भूमि का पति बना दिया है। शान्तनु बोले कोई बात ही नहीं पुत्र तो बताऊं क्या। देवव्रत बोले- यदि राज्य की किसी प्रकार की चिन्ता हो तो युवराज होने के नाते मुझे इसका ज्ञान होना आवश्यक है। शान्तनु ने कहा अवश्य पुत्र किन्तु राजा भी अपनी सारी चिन्तायें भी किसी को नहीं बता सकता पुत्र। देवव्रत बोले महाराज क्या पिता भी अपनी सारी चिन्ताये पुत्र को नहीं बता सकता। शान्तनु बोले- पुत्र जाओ बहुत देर हो चुकी है विश्राम करो।

देवव्रत ने कहा पिताजी आप उद्भ्रान्त लग रहे है और चिंतित है। शान्तनु बोले- पुत्र मुझे रोग नहीं क्षोभ है। मेरी चिन्ताओं का समाधान किसी राज वैद्य के पास भी नहीं है। देवव्रत को लगा जब चिन्ताओं को दूर नहीं कर सकते तो फिर यह साम्राज्य किस काम का।

शान्तनु को लगा देवव्रत क्षत्रिय राजकुमारों के समान नहीं बनवासी वैरागियों के समान बातें करने लगता है। वनवासियों

ऋषियों के सान्निध्य में बिताया गया इसका प्रारम्भिक जीवन इसे राजपुत्रों की मानसिकता नहीं दे पाया। शान्तनु बोले- चक्रवर्ती सम्राटों को ही तो चिन्तायें होती है पुत्र। सन्यासियों और ऋषि-मुनियों के पास तो होता ही क्या है जिसकी वे चिन्ता करे। देवव्रत सोचने लगे यदि साम्राज्यों के साथ चिन्तायें जुडी है तो इतनी ललक से व्यक्ति साम्राज्य स्थापित करने के लिये किसलिये लपकता है ? क्या मनुष्य अपना स्वार्थ नहीं जानता ? उसे क्या ग्रहण करना है और क्या त्याज्य है। यदि साम्राज्य ही चिन्ताओं का घर है तो उसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

शान्तनु अपनी चिन्ता में गहरे उतरते गये और सोचने लगे गंगा ने मेरे सात पुत्रों को जीवन मुक्त कर दिया। पिता जब भी इस घटना की ओर संकेत करते तो देवव्रत समझ नहीं पाते कि उनके मन में पत्नी की स्मृति जागी है या पुत्रों की। सात पुत्रों को जीवन मुक्त करने के लिये जो भाव पिता के मन में आने चाहिये थे उसका लेशमात्र भी प्रदर्शन नहीं दिख रहा था। कदाचित अपनी पत्नी के रूप की स्मृति उन्हे मुग्ध कर रही हो। सन्तान को जीवन मुक्त करनेवाली उस पत्नी से अब भी उन्हे वितृष्णा नहीं हुई। सन्तान भी तो उन्हे प्यारी लगी होगी तभी तो उन्होने पत्नी को रूष्ट कर दिया। सन्तान और पत्नी में वे किसी एक को नहीं बल्कि दोनों को ही चाहते थे। यदि दोनों में से किसी एक को चुनना हो तो वे किसे चुनेंगे देवव्रत अपने को समझा नहीं पा रहे थे।

देवव्रत ने कहा- पिताश्री पृथ्वी के सभी राजा आपके वशवर्ती है। आप सब प्रकार से कुशल व योग्य हैं फिर आप दु:खी होकर निरन्तर क्या सोचते हैं। आप इतने चिंतित हैं कि न तो आप मुझसे कोई बात करते है न ही घोडे पर सवार होकर बाहर निकलते है। आपका चेहरा फीका और पीला, म्लान हो गया है। आप अपना रोग बताये मैं उसका प्रतीकार कर उपचार करूंगा।

शान्तनु ने कहा हां पुत्र चिंतित ही तो हूं मै। तुम मेरे एक मात्र पुत्र हो और मुझे बार-बार लगता है कि एक पुत्र का पिता पुत्र हीन व्यक्ति से भी अधिक दु:खी होता है। इस महान कुल में एक मात्र तुम्ही मेरे वंश धर हो। सदा सर्वदा सशस्त्र रहकर वीरता के कार्य में तत्पर रहते हो। जगत में निरन्तर ही लोग मर मिटते रहते है बस यही देखकर मैं सदा चिंतित रहता हूं। भगवान न करे तुम पर की ऐसी कोई विपत्ति आ जाये जो हमारे वंश का ही नाश कर दे। आकाश में गरुड श्येन तथा अन्य हिंसक पक्षी है। धरती पर स्थान-स्थान पर पहेलिये के जाल बिछे है। पक्षी कभी भी लक्षित बाण या लक्ष्य भ्रष्ट शस्त्र का निशाना हो सकता है। आशंकाओं के कारण उस व्यक्ति की क्या दशा होगी जिसके प्राण उसमें अटके हो ? तुम मेरे एक मात्र पुत्र हो देवव्रत। मेरे प्राण तुम में बसते है। तुम एक क्षण के लिये भी मुझसे विलग होते हो तो मेरी आत्मा व्याकुल हो उठती है। तुम शस्त्रधारी हो पुत्र। सदैव युद्ध के लिये सन्नद्ध रहते हो। पर कुशल से कुशल योद्धा भी किसी न किसी दिन युद्ध में वीर गति को प्राप्त हो जाता है। यदि किसी दिन तुम्हे वीरगति मिल गई तो मेरा क्या होगा पुत्र ? हस्तिनापुर के साम्राज्य का क्या होगा पुत्र ? हमारे वंश का क्या होगा पुत्र ? मेरी सद्गति किस भांति होगी ?

देवव्रत सोचने लगे क्या पिता मेरे विवाह करने के प्रस्ताव के बारे में सोच रहे है ? क्या वंश वृद्धि के नाम पर पिता उनको गृहस्थी की बेडियों में जकडना चाहते है ? देवव्रत ने अपने शैशव में अपने माता-पिता के सम्बन्ध में गृहस्थी के विषय में जो कुछ जाना समझा, देखा सुना उससे उनके मन में गृहस्थी के लिये कोई आकर्षण ही नहीं रहा। नारी का आकर्षक से भी आकर्षक रूप देवव्रत के मन में कही तृष्णा नहीं जगा सका। आज तक किसी नारी का रूप उनकी आंखों में नहीं उतरा। उनके मन में बार-बार यही प्रश्न उठता कि मनुष्य विवाह करता ही क्यों है ? शरीर सुख के लिये, वंश वृद्धि के लिये, समाज या राष्ट्र के लिये ?

शान्तनु फिर बोले पुत्र तुम मेरे अकेले पुत्र हो तुम सैकडों पुत्रों से भी श्रेष्ठ हो। गंगा के जाने के बाद मैंने दूसरा विवाह नहीं किया और मैं व्यर्थ में बहुत से विवाह भी नहीं करना चाहता और आज भी नहीं करना चाहता। फिर भी वंश परम्परा के लिये चिन्ता तो रहती ही है। आप यह भी जानते हो कि आपकी मां गंगा तो कोई वापिस लौटने वाली नहीं है। पर एक पुत्र बस। जिसका पुत्र होता ही नहीं उसे कुछ छिनने का भय नहीं रहता पर जिसका एक ही पुत्र हो वह सदा उसके लिये चिंतित ही रहता है। महाराज

ने थोडे शब्दों में अपनी इच्छा देवव्रत को व्यक्त कर दी पर सत्यवती और दासराज के प्रकरण के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

देवव्रत पिता से सहमत नहीं हो पा रहे थे। पिता को अपनी चिन्ता है या पुत्र की। उनकी यह चिन्ता अपने लिये है या पुत्र के लिये। उन्हे अपने पुत्र के लिये साम्राज्य चाहिये या अपने साम्राज्य के लिये पुत्र ? अपना वंश वे क्यों चलाना चाहते हैं ? अपनी सद्‌गति के लिये ? पिता ने कभी यह चिन्ता तो नहीं करी कि कभी उनका देहान्त हो गया तो उनके पुत्र का संरक्षक कौन होगा ? यदि राज्य ही नष्ट हो गया तो पुत्र के उपभोग के लिये सम्पत्ति कहां से आयेगी ? जब वे स्वयं ही नहीं रहेंगे तो वंश का उन्हे करना ही क्या है ? जब कभी पुत्र ही नहीं रहेगा तो साम्राज्य किसके लिये चाहिये उन्हें ? देवव्रत कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

देवव्रत बोले आप मेरे विषय में कोई चिन्ता न करें पिता महाराज। इस पृथ्वी पर अभी ऐसा पुरुष पैदा नहीं हुआ है जिसके हाथों मुझे वीरगति प्राप्त हो और न ही कोई मेरा सामना करने में समर्थ होगा। शान्तनु का स्वर उत्साह शून्य था वे बोले एक पिता का हृदय सिर्फ इस बात से तो सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मेरे मन में जब भी यह सम्भावना अंकुरित होने लगती है कि नश्वर प्राणी के शरीर का नाश होना ही है, कहीं मेरा एक मात्र पुत्र असमय ही काल कवलित न हो जाये तो मेरा हृदय फटने लगता है। इकलौती सन्तान के पिता की मन:स्थिति तुम क्या समझोगे पुत्र ?

देवव्रत बोले आप विश्राम करें पिताश्री। मृगया की थकान दूर हो जाने पर आपका मन स्थिर हो जायेगा। शरीर की अत्यधिक थकान से कभी-कभी मन अनावश्यक रूप से आशंका ग्रस्त हो जाता है और यह कहकर देवव्रत अपने कक्ष में आ गये और चिन्तन करने लगे।

देवव्रत अपने महल में लौट आये, पर उनका मन पिता के प्रासाद में ही रह गया। पिता क्या सचमुच इस बात से भयभीत हैं कि उनका एक ही पुत्र है, और वह किसी दिन युद्ध में वीरगति पा जायेगा ? जिनके दो पुत्र होते हैं; क्या उन्हें यह चिन्ता नहीं सताती ? दो पुत्र भी तो युद्ध में वीरगति पा सकते हैं। दो ही क्यों, युद्ध में तो सैकड़ों-हजारों व्यक्ति वीरगति पा सकते हैं। किसी राजा के सौ पुत्र भी होंगे, तो युद्ध में सारे के सारे मारे जायेंगे। वंश का वंश ही नष्ट हो जायेगा। युद्ध ही क्यों, बिना युद्ध के भी- सगर के पुत्र कपिल मुनि के एक शाप से ही भस्म हो गये थे। पुत्रों की संख्या कितनी हो कि व्यक्ति निश्चिन्त हो सके कि उसका वंश नष्ट नहीं होगा ?

देवव्रत मन-ही-मन हँस पड़े। पुत्रों की संख्या का क्या है स्वयं चक्रवर्ती शान्तनु के आठ पुत्रों ने जन्म लिया था। क्या हुआ उनका?

पर व्यक्ति अपनी वंश-परम्परा को बनाये ही क्यों रखना चाहता है ? जब देवव्रत इस संसार में नहीं रहेंगे तो इससे उन्हें क्या अन्तर पड़ेगा कि संसार में कोई ऐसा व्यक्ति है या नहीं, जो स्वयं को उनका वंशज मानता है ? यह धन-सम्पत्ति, सुख-भोग सारा कुछ तो शरीर के लिए ही है। जब शरीर ही नहीं रहेगा।

देवव्रत को लगा, वे अपने मस्तिष्क में सदा घुमड़नेवाले प्रश्नों के चक्रव्यूह में फँसते जा रहे हैं। व्यक्ति का जीवन क्या है ? व्यक्ति जीवित क्यों रहना चाहता है ? क्यों डरता है वह मृत्यु से ?

पुत्र के रूप में मनुष्य अपने ही जीवन का विकास करता है। वृद्धावस्था में जब वह दुर्बल और असहाय हो जाता है तो वह देखता है कि युवा पुत्र उसकी सेवा कर रहे हैं। उसकी रक्षा कर रहे हैं। उसकी सम्पत्ति की रक्षा कर रहे हैं और यदि वह निर्धन है, तो उसका भरण-पोषण कर रहे हैं। तो अपनी सुख-सुविधा के लिए ही तो पुत्र चाहता है वह। यदि उसके कुटुम्ब या समाज के लोग वृद्धावस्था में भी उसकी देखभाल की सम्यक् व्यवस्था कर दें, तो भी वह अपने वंश को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इतना ही प्रयत्नशील होगा क्या ? देवव्रत के मन में कई तर्क और अनेक उदाहरण सिर उठा रहे थे स्वयं देवव्रत की माता ने एक-एक कर अपने सात पुत्रों को गंगा को समर्पित किया था। उन्होंने तो वंश की वृद्धि की चिन्ता नहीं की थी देवव्रत स्वयं अपने मन को टटोलते हैं तो उन्हें अपने वंश के लिए कोई व्यग्रता दिखाई नहीं पड़ती। संन्यासियों को अपने वंश को अमर

बनाने की चिन्ता नहीं होती, राजाओं को होती है। संसार से विदा होते हुए अपना राजपाट छोड़कर जाने का दुख सह्य नहीं होता राजाओं को। स्वयं तो काल से लड़ नहीं सकते, तो यह मार्ग ढूँढ़ा है उन्होंने। इतना सन्तोष तो रहे कि धन-सम्पत्ति अपने पुत्र के हाथों में छोड़कर आये हैं। शायद इसीलिए देवव्रत को अपने वंश की चिन्ता नहीं है, शान्तनु को है। तो क्या शान्तनु राजा हैं और देवव्रत संन्यासी ? देवव्रत का मन हुआ कि जोर से हँस पड़ें।

पर सहसा ही देवव्रत का मन दूसरी ओर चल निकला। देवव्रत और शान्तनु के वंश में तो न कोई भेद है, न विरोध। देवव्रत की वंश-परम्परा भी तो चक्रवर्ती शान्तनु की ही वंश-परम्परा है। तो फिर वंश की रक्षा के लिए पिता देवव्रत का विवाह करने की सोच रहे हैं क्या?

देवव्रत विचित्र मन:स्थिति में पड़ गये थे। अपने विवाह के नाम से ही उनके सामने एक विराट् प्रश्न-चिन्ह आ खड़ा होता था। पिता ने ठीक कहा था कि जब माँ उन्हें छोड़कर चली गयी थी तो उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था। पर दूसरा विवाह क्यों नहीं किया था? इसलिए कि वे अपनी स्थिति से सन्तुष्ट थे या शायद माँ के साथ सम्बन्धों के कारण ही। अपनी पत्नी के प्रति आसक्ति के कारण या अपनी पत्नी के प्रति वितृष्णा के कारण ?

उनके पिता ने माँ को गंगा-तट पर देखा था और तत्काल मुग्ध हो उठे थे। उनके विषय में पिता ने कोई खोज, कोई पूछ-पड़ताल नहीं की थी। वह कौन थी ? किसकी बेटी थी ? कहाँ रहती थी ? उसके सम्बन्धी और अभिभावक कौन थे ? कहाँ थे? उसके साथ विवाह के लिये किसकी अनुमति की आवश्यकता थी ? पिता ने कुछ नहीं पूछा था कुछ जानना नहीं चाहा था ? रक्त की शुद्धता के लिए दृढ़ आग्रही आर्यों के इस सम्राट ने माँ के कुल-गोत्र को जानने का तनिक भी तो प्रयत्न नहीं किया था। आर्य लोग नारी को स्वतंन्त्र नहीं मानते। मनु स्मृति कहती हैं कि नारी अपने पिता, पति अथवा पुत्र के अधीन होती है; किन्तु सम्राट् शान्तनु ने तो कभी जानना नहीं चाहा कि वे किसके अधीन थीं। माँ के सौन्दर्य को देखकर पिता इतने अभिभूत हो गये थे कि उन्होंने उनसे तत्काल विवाह कर लिया था।

पर यह दैहिक आकर्षण गृहस्थी का आधार नहीं बन सका। देवव्रत के मन को यह प्रश्न निरन्तर परशु की धार के समान काटता रहता है। क्या मात्र दैहिक आकर्षण गृहस्थी का आधार बन सकता है ? पर उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देता। प्रत्येक स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की ओर देह के सौन्दर्य को देखकर ही तो आकृष्ट होते हैं। पिता भी हुए थे। पर कहाँ चली गृहस्थी ? क्या साथ रहना और सन्तानें उत्पन्न करना गृहस्थी है ? शारीरिक आकर्षण में एक-दूसरे के साथ बँधे रहना और चाहकर भी सम्बन्ध-विच्छेद न कर पाना तो यातना है। देवव्रत को सदा लगता है कि यह शारीरिक सौन्दर्य तो फन्दा है बहेलिये का जाल। भोला पक्षी दाना चुगने के लिए आता है और जाल का पता उसे तब चलता है, जब वह उड़ने में असमर्थ हो चुका होता है। दुख का आवरण कितना मोहक बनाया है प्रकृति ने।

देवव्रत की आँखों के सम्मुख कोई सुन्दर नारी-वदन आता है, तो उनका विवेक जैसे कशाघात करने लगता है-सावधान। सावधान। सुन्दर नारी-वदन ही क्यों, देवव्रत को इस संसार की प्रत्येक आकर्षक वस्तु एक चेतावनी-जैसी लगती है।

कहते हैं कि माँ ने अपनी सात सन्तानों को एक-एक कर गंगा नदी को समर्पित कर दिया था। पिता उन्हें रोक नहीं पाये थे। सन्तान के मोह में, माँ की मनमानी को रोकने का प्रयत्न करते, तो उन्हें भय था कि माँ उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर, उन्हें छोड़कर चली जाती। सन्तान का मोह। ओह। देवव्रत के लिए यह भी सुनी-सुनायी बात ही है। माँ के मन में कभी उनके लिए मोह नहीं जागा। गयी तो गयी। देवव्रत ने उन्हें फिर कभी नहीं देखा। माँ के मन में मोह नाम का कोई भाव ही नहीं था शायद। नारी-मन की तनिक-सी ममता कहीं माँ को छू गयी होती, तो वे इस प्रकार जन्म दे-देकर अपने सात पुत्रों को गंगा नदी को समर्पित कर देतीं ? जिसके मन में सात पुत्रों के लिए मोह नहीं जागा, वे देवव्रत के प्रति ही क्यों अनुरक्त होती। माँ के मन में पति के प्रति ही

कौन-सा अनुराग था ? जिसके साथ इतने वर्षों तक पत्नी के रूप में रहीं, जिसकी आठ-आठ सन्तानों को जन्म दिया, उसकी किसी इच्छा का रत्ती-भर सम्मान नहीं था उनके मन में। वे तो जैसे पति से लड़कर अलग होने का बहाना खोज रही थी। अपनी सन्तानों को एक-एक कर जीवनमुक्त करके अपने पति के मर्म को आहत करने का प्रयत्न कर रही थी।

जाने कैसी नारी थी वह। जाने किस बाध्यता में उसने चक्रवर्ती शान्तनु से विवाह किया था, जाने किस मजबूरी में आठ-आठ सन्तानों को जन्म दिया था।

और पिता। पिता के साथ रहते हुए भी आज तक देवव्रत ने पिता के व्यवहार में अपने प्रति मोह का कभी कोई प्रमाण नहीं पाया। यदि सचमुच वे अपने एकमात्र पुत्र के सुरक्षित जीवन के लिए इतने ही आशंकित थे तो उन्हें नव-प्रसूता कुक्कुटी के समान अपने बच्चे पर पंखों को फैलाये, गर्दन अकड़ाये कुट-कुट करते हुए सशंक दृष्टि से इधर-उधर देखते हुए, पुत्र की रक्षा करनी चाहिए थी। और वे हैं कि उन्हें कभी पुत्र का ध्यान ही नहीं रहा हाँ। देवव्रत को बताया गया है कि उनके जन्म के पश्चात् जब माँ ने उन्हें भी गंगा नदी को सौंपना चाहा तो पिता ने माँ की बाँह थाम ली थी। माँ ने चुपचाप देवव्रत को पिता की गोद में डाल दिया और स्वयं घर छोड़कर चली गयी। इस प्रसंग को लेकर, देवव्रत के मन में बहुत बार ऊहापोह होता है, तो उन्हें लगता है कि शायद माँ ने इस घर को कभी अपना घर ही नहीं माना। तभी तो इस प्रकार छोड़कर जा सकी। नहीं तो अपना घर ऐसे छोड़ा जाता है क्या ?

देवव्रत सोचते हैं तो अपने माता-पिता, दोनों को ही अद्‌भुत पाते हैं। पिता नारी-सौन्दर्य के मोह में बँधे, अपनी सन्तानों को मृत्यु की गोद में जाते देखते रहे- कुछ नहीं बोले। उनके लिए जीवन का एकमात्र सत्य, नारी-देह का आकर्षण ही है क्या ? देवव्रत जानते हैं कि कुछ जीव ऐसे होते हैं, जिनके नर अपनी सन्तानों की हत्या कर देते हैं, पर तब उनकी मादा, उन नरों से अपनी सन्तान की रक्षा के लिए संघर्ष करती हैं। मादाओं में केवल सर्पिणी ही अपनी सन्तानों को खा जाती है।

पर माँ सर्पिणी नहीं थी। कैसी होगी देवव्रत की माँ ?

कहते हैं कि माँ में देव-जाति का सौन्दर्य अपूर्व रूप में विद्यमान था। अलौकिक सौन्दर्य। तभी तो पिता अपने मोह और विवेक का सन्तुलन बनाये नहीं रख सके। लोगों का तो कहना है कि वे शरीरधारिणी गंगा थी, जो वसुओं को शापमुक्त करने आयी थी। शायद ऐसा ही हो। यदि माँ ने अपनी पहली सन्तान को गंगा में डुबोकर, अपने भी प्राण दे दिये होते, तो सारी किंवदन्तियों के बावजूद यही मानते कि उनकी माँ, पिता के साथ रहकर प्रसन्न नहीं थी। इसलिए शायद वे नहीं चाहती थी कि उनकी सन्तान सम्राट् शान्तनु के महल में पले। किन्तु वे तो अपनी सन्तानों को जल-समाधि भी देती रहीं और चक्रवर्ती के साथ पत्नीवत् रहती भी रही।

शायद किंवदन्तियों में ही कोई सच्चाई हो कि वे स्वयं देवी गंगा थी और किसी शापवश या किसी कर्तव्यवश भूलोक पर आयी थी। नहीं तो मानवीय वृत्तियों को जीतना सहज है क्या। मानव-जाति की आज तक की सारी साधना क्या है- मानवीय सीमाओं का अतिक्रमण ही तो। आज तक न काम को जीत पायी मानव जाति और न वात्सल्य को। पर माँ वात्सल्य की इतनी घोर उपेक्षा।

देवव्रत तो इस भौतिक समाज और मानवीय ज्ञान एवं तर्क की परिधि के भीतर सोचते हैं। और जब वे सोचते हैं तो उनका मन कभी विषाद से फटने लगता है, कभी आश्चर्य से।

यह ठीक है कि माता-पिता ही सन्तान को जन्म देते हैं; पर सन्तान क्या उनकी ऐसी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, जिसे वे लोग जब चाहे नष्ट कर दें ? क्या माँ को यह अधिकार था कि वे अपनी सन्तानों को इस प्रकार जीवन-मुक्त कर देती ? यह जीवन किसकी सम्पत्ति है ? कौन इसे उत्पन्न करता है ? और किसे इसको नष्ट करने का अधिकार है ? क्या सन्तति का जन्म प्रकृति का विधान नहीं है ? क्या स्त्री-पुरुष उस विधान के उपकरण मात्र नहीं है ? प्रकृति स्त्री-पुरुष के माध्यम से अपनी सृष्टि को आगे चलाती है;

तो जीवन किसी स्त्री अथवा पुरुष की सम्पत्ति कैसे है ? सन्तान-अपनी ही सही-पर क्या माता-पिता को इतना अधिकार दिया जा सकता है कि वे उसे जीवन-मुक्त कर दें ? और सामाजिक विधान क्या है ? समाज चुपचाप कैसे देखता रहा कि चक्रवर्ती शान्तनु के पुत्र एक-एक कर जीवन-मुक्त किये जा रहे हैं ? और शासन-तन्त्र ? शासन का विधान ? क्या यह कृत्य निरीह हत्या की परिधि में नहीं आता ? पर जब स्वयं चक्रवर्ती ही चुप रहें, जिनकी सन्तानें थी- तो कोई और कैसे बोलता? सम्राट् के अतिरिक्त शासन-तन्त्र है ही कहाँ ? पिता और सम्राट दोनों ही चुप थे।

कैसा दाम्पत्य जीवन रहा होगा, उनके माता-पिता का ? पिता, अपनी सन्तान को जीवन-मुक्त करनेवाली के रूप के मोह-जाल में फँसे मानसिक दास के समान, या किसी वनस्पति के समान, अपने हृदय को वाणी दिये बिना, उस स्त्री के साथ रहने का सुख और कष्ट भोगते रहे। नारी-सुख। देवव्रत के मन में वितृष्णा जागती है।

और माँ किस बाध्यता में रहती रहीं, पिता के साथ ? हाँ। बाध्यता ही तो रही होगी। नहीं तो क्यों नहीं वे सम्राट् को पति के रूप में अंगीकार कर, इस घर को अपना घर मान, अपनी गृहस्थी बसा, सुखपूर्वक स्थायी रूप से रह सकी यहाँ ? क्यों बार-बार सम्बन्ध-विच्छेद का बहाना ढूँढ़ती रही। सम्राट् के मर्म पर ऐसे क्रूर आघात करती रही ? और अन्ततः अवसर मिलते ही चली भी गयी।

पिता जितने ही दुर्बल दिखायी देते हैं, माँ उतनी ही दृढ़, कठोर, अटल।

एक ही तथ्य के कितने भिन्न और विरोधी रूप हो सकते हैं। देवव्रत मुस्कराये दिव्य आकार दिया जाये, तो यही घटना उनकी माँ को कितना गौरव प्रदान करती है; स्वयं देवी गंगा, वसुओं को शाप-मुक्त करने के लिए, नारी-देह धारण कर पृथ्वी पर आयीं और अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के विरुद्ध, एक साधारण मनुष्य की पत्नी बनकर, उसकी सन्तानों को जन्म देती रही- उस मनुष्य की सन्तानों को, जिससे उनको कोई लगाव नहीं था। कर्तव्य समझकर, अपनी इच्छा के विरुद्ध।

पर यदि वे स्वयं देवी गंगा ही थी तो अपने दिव्य शरीर के साथ तो मानव की पत्नी बन, उसकी सन्तानों को जन्म देने नहीं आयी होंगी। मानवती के रूप में कहीं तो जन्म लिया होगा- पर कहाँ ? उनके माता-पिता का किसी को पता नहीं। उनके जन्म, शैशव, उनके सम्बन्धियों की कोई सूचना नहीं। वे चक्रवर्ती को गंगातट पर मिल गयी थीं- उनका कोई मायका नहीं, देवव्रत की ननिहाल नहीं और फिर वे गयीं कहाँ ?

वे मानवी थी या देवी-देवव्रत नहीं जानते, पर पिता के विषय में वे बहुधा सोचते हैं- पिता का जीवन कैसा रहा होगा ? पहले क्षण से ही उन्होंने पत्नी के रूप-सौन्दर्य के सम्मुख दासत्व स्वीकार कर लिया था। शरीर का साहचर्य तो रहा होगा, पर क्या कभी मन का साहचर्य भी उन्हें मिला ? यदि पत्नी अपनी इच्छा का तनिक भी विरोध होने पर घर छोड़ जाने को तैयार बैठी हो तो कैसा दाम्पत्य-जीवन होगा ? जहाँ पति, पत्नी की ओर या तो लोभ की दृष्टि से देखे या भय से-वह परिवार होगा क्या ?

सुख क्या होता है ? सुख का स्वरूप क्या है ? वही, जिससे वंचित होने से पिता डरते रहे ? क्या सुख पाया पिता ने ? जब तक साथ रहे, त्रस्त होकर रहे। साथ भी रहे और तृषित भी रहें। जिस सुख के मोह से पिता, माँ को अपने घर लाये थे- वह सुख बड़ा था, या उनके रुष्ट होने का, त्याग कर चली जाने का आतंक ? माँ ने निकट रहकर, पिता के मन में जिस कामना को बार-बार जगाया होगा- पिता उस कामना की यातना से अधिक तड़पे होंगे या सहवास के सुख से अधिक सुखी हुए होंगे ?

पिता के लिए देवव्रत के मन में कभी करुणा उभरती है, कभी दया। लोग कहते हैं कि सम्राट् शान्तनु ने अपनी पत्नी के चले जाने के बाद स्त्री-सुख सर्वथा त्याग दिया। वे इस ओर से वीतराग होकर, देवव्रत को प्राप्त करने तक, पितावत् प्रजा का पालन करते रहे। सम्राट् शान्तनु के राज्य में कोई अन्याय नहीं था, अत्याचार नहीं था, स्वार्थ और दमन नहीं था। ठीक कहते हैं लोग। पर देवव्रत को लगता है कि आज भी पिता उसकी कामना में तड़प रहे हैं, जिसके मन में उनके लिए कभी कोई आकर्षण नहीं रहा।

संयम में शान्ति होती है, सन्तुलन होता है; किन्तु पिता तो माँ के चले जाने के बाद से भयंकर रूप से अशान्त रहे। उन्होंने

आठ पुत्रों में से बचे हुए, अपने एकमात्र पुत्र की कभी सुध नहीं ली। देवव्रत को उन्होंने जन्म के बाद से कभी नहीं देखा। कभी देखने की कामना नहीं की। देवव्रत वसिष्ठ के आश्रम में रहे, परशुराम के आश्रम में रहे, बृहस्पति के पास रहे, शुक्राचार्य के निकट रहे। आर्य और देव ऋषियों के आश्रमों में अनेक वर्ष बिताये देवव्रत ने। माता का उन्हें पता नहीं था, पिता उनकी ओर से सर्वथा उदासीन थे। तो क्या करते देवव्रत हस्तिनापुर लौटकर। क्या कहें देवव्रत- पिता के मन में माँ के लिए प्रेम था या आसक्ति थी। माँ के आचरण ने उनके मन में वितृष्णा जगायी थी या यह मात्र प्रतिक्रिया थी उस आसक्ति की ?

इतने दीर्घ काल तक पिता को याद नहीं आया कि उनका केवल एक पुत्र है। आज अचानक क्या हो गया कि वे अपने एकमात्र पुत्र के जीवन और अपनी वंश-परम्परा के लिए चिन्तित हो उठे हैं। देवव्रत के मन में प्रश्नों का एक भरा पूरा झंझावत उठ खड़ा हुआ।

देवव्रत ने वृद्ध अमात्य को अपने कक्ष में बुलाया और पूछा क्या आपको मालूम है महाराज स्वस्थ नहीं है। अमात्य बोले हां युवराज मुझे मालूम है देवव्रत बोले तो फिर उनके उपचार की व्यवस्था क्यों नहीं की गई ? राज वैद्य को क्यों नहीं बुलाया ? अमात्य ने कहा यह तो उनके वश का नहीं है और न ही राज वैद्य कुछ कर सकता है और न ही अब यह आपके हाथ में है। महाराज काम ज्वर से पीडित है इसलिये राज वैद्य भी कुछ नहीं कर सकता। यह सुनकर देवव्रत के मन में जैसे बहुत कुछ उलझ गया और साथ ही बहुत कुछ सुलझ भी गया।

दिन बीतते गये परन्तु शान्तनु महाराज की मनोदशा मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया। देवव्रत की अस्वस्थता और चिन्तन अधिकाधिक सोचने पर विवश होने लगा। एक दिन महाराज जैसे ही सन्ध्या समय यमुना तट से वापिस लौटे और अपने कक्ष में आये कि देवव्रत ने महाराज के सारथी को अपने कक्ष में बुलाया और महाराज के विषय में पूछताछ शुरू की।

महाराज का सारथी देवव्रत के शिबिर में उनके कक्ष में आया। देवव्रत बोले आओ सारथी। मैं पिता महाराज के लिये बहुत चिंतित हूं। आप उनके मित्र भी हैं और सारथी भी। यह प्रतिदिन सूर्योदय होते ही आप महाराज को कहां ले जाते हो ? सारथी ने उत्तर दिया जहां ले जाने की आज्ञा मिलती है युवराज। देवव्रत बोले कहां ले जाने की आज्ञा देते हैं महाराज ? सारथी बोला- जहां उनका जाने का जी करता है। सारथी ने इस तरह गोलमाल उत्तर देकर देवव्रत के प्रश्नों का टालमटोल करने का प्रयत्न किया। तब देवव्रत ने यह विचार कर सारथी से कहा सारथी आपकी निष्ठा महाराज के प्रति आदरणीय है परन्तु लगता है आप राजा भक्त है, राज्य भक्त या देश भक्त नहीं है। इस समय पिता महाराज का मन भटका हुआ है इससे हस्तिनापुर का अहित होना सम्भव है। इसलिये मेरा यह जानना आवश्यक है कि प्रतिदिन महाराज सूर्योदय के बाद कहां जाते है और क्या करते है ? यह प्रश्न मैं नहीं कर रहा हूँ। आपसे यह प्रश्न हस्तिनापुर कर रहा है और इस प्रश्न का उत्तर देना हस्तिनापुर की निष्ठा के प्रति आपका कर्तव्य है। तब सारथी बोला- युवराज क्षमा चाहता हूं पर मैं महाराज के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहता। देवव्रत बोले परन्तु आप तो महाराज के सुख-चैन के साथ विश्वासघात कर रहे हैं और आप हस्तिनापुर के साथ विश्वासघात कर रहे हैं और आप भरत तथा भरत वंश के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। निष्ठा की परिभाषा जो आपने सोच रखी है वो वास्तव में निष्ठा है ही नहीं बल्कि अनिष्ठा है।

तब सारथी युवराज देवव्रत के प्रश्नों का उत्तर देने को विवश हो गया और बोला महाराज प्रतिदिन यमुना तट पर जाते हैं और किसी पेड की ओट में खडे होकर निषाद दास राज की पुत्री सत्यवती को देखते रहते हैं दिन भर युवराज। देवव्रत बोले- क्या महाराज कभी सत्यवती से मिले ? सारथी ने कहा जी युवराज। देवव्रत ने फिर पूछा क्या दासराज से मिले। सारथी बोला जी युवराज। देवव्रत के मन में अब पूरी स्थिति स्पष्ट हो गई। गंगा पुत्र देवव्रत ने अपनी अलौकिक बुद्धि से सब कुछ सोच-विचार लिया और वृद्ध मन्त्री तथा सारथी से पूछकर ठीक-ठीक सब कारण जान लिया तथा निषाद राज दासराज की शर्त जान ली। यह सब सुनकर देवव्रत के मन में विचार आया कि आज पर्यन्त मैंने पिताश्री की सेवा बडी निष्ठा और लगन से की है। अब मेरे लिये

परीक्षा की घडी आ गई है। पिता की प्रसन्नता के लिये अपनी खुशियों का त्याग करने का समय आ गया है। देवव्रत के मन में यह सब कुछ सोच समझ कर फिर से विचार उठने लगे कि देवव्रत उनकी एक मात्र अकेली सन्तान है और इस लम्बी अवधि में पिता का न तो काम शान्त हुआ और न ही वे उसका शमन कर पाये। मेरी मां गंगा को भी देखकर पिताश्री की यही अवस्था हुई होगी। तभी तो उन्होंने उसका परिचय जानना आवश्यक नहीं समझा और उसकी प्रत्येक शर्त स्वीकार कर ली। पिता जब भी कामज्वर से पीडित होते है तो उसके ताप से सबसे पहले उनका विवेक पक्षाघात से शिथिल पड जाता है। कौन है वह स्त्री जिसने पिता के सोये हुये कामज्वर को फिर से जगा दिया ? पिताश्री ने तो मुझे इसके बारे में कुछ भी तो नहीं बताया ? कौन पिता अपने वयस्क पुत्र के सामने खुलकर अपने नये विवाह की इच्छा प्रकट करेगा ? यही तो चक्रवर्ती का द्वन्द है युवराज वे इस कन्या के बिना जी नहीं सकेंगे और उससे विवाह वे कर नहीं सकते।

देवव्रत मन्त्री से बोले अमात्य महाराज विवाह क्यों नहीं कर पायेंगे ? देवव्रत ने सहज भाव से कहा। क्या सिर्फ इसलिये कि उनका एक वयस्क पुत्र है। पहले भी तो प्रौढ राजाओं के नये विवाह होते आये है। मन्त्री बोले पर उसके लिये किसी न किसी को मूल्य भी चुकाना पडता है युवराज। आप ही के वंश में महाराज ययाति ने फिर से युवावस्था की कामना की थी और अपने ही पुत्र से उसके यौवन से अपनी वृद्धावस्था बदल ली थी। मन्त्री बोले, युवराज यमुना तट पर दासराज की पुत्री सत्यवती अत्यन्त रूपवती है और चक्रवर्ती ने उसको देखते ही उस पर मुग्ध होकर उसके पिता के सम्मुख उससे पाणिग्रहण का प्रस्ताव रखा था किन्तु दासराज की शर्त महाराज को स्वीकार नहीं थी उसे सुनकर वे चुपचाप वहां से लौट आये। देवव्रत बोले ऐसी भी क्या शर्त है मन्त्री प्रवर। मन्त्री बोले- ऐसे अवसरों पर एक ही शर्त होती है युवराज। नयी रानी के पुत्र को राज्याधिकार और पहले पुत्र का अधिकार च्युत होना इसलिये यह सब कुछ अब आपके हाथ में है युवराज।

यह सब सुनकर देवव्रत समझ नहीं पा रहे है क्या देवव्रत अपने अधिकारों से उदासीन हो जाये ? जो बात पिताश्री अपने मुख से नहीं कह पा रहे वो क्या उसे अपने मन्त्री द्वारा कहला रहे हैं ? क्या पिता की यही इच्छा है ? यदि यह पिता की इच्छा है तो यह एक कामासक्त और उन्मत्त व्यक्ति की इच्छा है। आसक्ति की स्थिति में विवेक कभी भी स्थिर नहीं रहता। पिताश्री की यह इच्छा उचित नही हैं वे जानते हैं इसीलिये वे सीधे देवव्रत से कुछ कह नहीं सके। पर उनकी यह अनुचित इच्छा भी किसी प्रकार सम्भव हो जाये तभी तो उन्होंने इसी बहाने दूसरे पुत्र होने की इच्छा व्यक्त की थी।

सोच-विचारों के सन्तुलन में देवव्रत के मन में कभी-कभी घृणा का भी उत्स फूटने लगा। तो यह है पिता का वास्तविक स्वरूप। कामासक्ति का वेग इतना अबूझ और प्रहारक है कि एक पिता अपने पुत्र से किस प्रकार झूठ बोलता है, किस प्रकार के बहाने बनाता है। पिता यह नहीं कह सकता कि अपनी पहली पत्नी से अलग होकर संयम का जो काम रहित जीवन उन्होंने बिताया वह तो मात्र एक विवशता थी। पुरुष की समस्त आसक्ति नारी में है और जिस दिन वह नारी उसे छोड जाती है उस दिन यह सारी सृष्टि उसके लिये निर्जीव संज्ञाहीन उदास प्रपंच हो जाती है और फिर कोई नारी उसके जीवन सम्मुख आ खडी होती है तो उस दिन से फिर सृष्टि मोहिनी रूप धारण कर हंसने लगती है। लगता है पिता ने अपने पिछले अनुभवों से कुछ नहीं सीखा। वे समझ नहीं सके यह आकर्षण है प्रेम नहीं। यह विवेक की हत्या है यह मोहासक्ति का जाल है जिसमें वे फंसते जा रहे है। मां गंगा ने भी तो इसी आसक्ति के मूल्य स्वरूप में पिता को अपनी इच्छा का दास बनाया था। मां के चली जाने के बाद भी पिता ने यह नहीं सोचा कि उन्हे दासता से मुक्ति मिल गई है। वे पुन: नयी स्वामिनी की खोज में शुरू हो गये। अब उन्हे मिली है दासराज कन्या जो मूल्य रूप में मेरे पिता से उनकी अगली पीढ़ी की भी दासता मांग रही है। चक्रवर्ती शान्तनु अपने पुत्र से कह रहे हैं कि वे दूसरा पुत्र पाना चाहते है। वे उनसे उनका पैतृक अधिकार छीनना चाहते है वह भी पुत्र प्रेम के नाम पर। वे क्या करे अपने ऐसे पिता के लिये ? द्वन्द पर द्वन्द देवव्रत के मन में उठ रहे हैं। किस द्विविधा में फंसा दिया है मुझे ? पिता कामासक्त हो

रहे हैं और विवाह करना चाहते है तो करें। राज्य भी किसी और को देना चाहते हैं तो दे मुझे तो इसमें न कोई आसक्ति है और न ही कोई आपत्ति। देवव्रत किसी की इच्छा के मार्ग में विघ्न नहीं बनना चाहते। देवव्रत को तो किसी का राज्य भी नहीं चाहिये पर पाये हुये अधिकार की बात देवव्रत के मन में अधिक खटकती है। वे हस्तिनापुर के न्याय सिद्ध युवराज हैं, प्रजा उन्हे चाहती है। यदि देवव्रत से कोई उनकी व्यक्तिगत वस्तु मांगता तो वे उन्हे दान करने में रंच मात्र भी कष्ट नहीं होता। किसी दीन हीन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये त्याग करने में कुछ बुराई नहीं है किन्तु किसी की अनुचित असामयिक इच्छा व मांग के लिये अपना न्यायोचित अधिकार छोडना भी न्याय संगत और धर्म संगत नहीं है।

जब मां गंगा ने एक-एक करके अपने सात पुत्रों को जीवन मुक्त किया था तो पिता अपनी कामासक्ति के कारण अपने और अपनी सन्तानों के अधिकार के विषय में कुछ नहीं कह सके। आज फिर वे अपनी कामासक्ति से धर्म संगत न्यायोचित अधिकार की बात नहीं सोच पा रहे है। अभी तक तो पिता ने देवव्रत को अपना अधिकार त्यागने के लिये नहीं कहा है पर वे चाहे तो उन्हे पदच्युत भी कर सकते हैं। वे कही अप्रत्यक्ष रूप से बाध्य तो नहीं कर रहे है कि देवव्रत अपना अधिकार त्याग दे, वह अपना शासनाधिकार छोड दे। आज यदि देवव्रत अपना अधिकार नहीं छोडते हैं तो आने वाली हर पीढ़ी उन्हे पितृ द्रोही के रूप में धिक्कारेगी कि वे अपने पिता के सुख के लिये राज सुख नहीं त्याग सके। फिर मन में विचार आया कि यह राज सुख भले होता क्या है ? पिता शान्तनु चक्रवर्ती सम्राट है और राज्य में उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई एक तिनका भी नहीं हिलता फिर क्या वे सुखी हैं ? आज चक्रवर्ती सम्राट एक सामान्य युवती का अनुग्रह पाने के लिये हाथ पैर पटक रहा है, मन मसोस रहा है तो फिर कहां है राज सुख ? और यदि राज्य पाकर ही कोई सुखी हुआ है तो वे फिर जिस सुख के लिये आज इतने आतुर हो रहे हैं वह भी कोई सुख है क्या ? ऐसा ही सुख पाने के लिये पिताश्री पहले भी तडफे होंगे पर कोई सुख उन्हें मिला क्या ? पिछले अनेक वर्षों से वे उस सुख से वंचित हो तडफते हुये देवव्रत ने देखा है। कैसी बुद्धि हो गयी है महाराज की ? मनुष्य भी अपनी आकांक्षा की तीव्रता में भूल जाता है कि उसका हित किसमें है ? वह यह नहीं जान पाता कि जिस इच्छा की पूर्ति के लिये वह सिर झुकाये वनैले सूअर के समान दौड लगाते रहता है उस इच्छा की पूर्ति उसे कितना सुख देगी और कितना दु:ख ?

यदि शान्तनु इतना बडा यह कुरु साम्राज्य पाकर भी सुखी नहीं है तो फिर देवव्रत को ही इस राज्य से क्या मिल जायेगा ? मन में विचार उठा, नहीं चाहिये देवव्रत को यह राज्य। पिता जिसे चाहे वे उसे दे दे। इस छोटे से राज्य के लिये देवव्रत पितृ द्रोही नहीं कहलायेंगे।

ठीक है देवव्रत को राज्य का मोह नहीं है। वे बिना राज्य के भी सन्तुष्ट रह सकते हैं। वे अपनी इच्छा से अपना अधिकार छोड सकते है। व्यक्ति रूप से इनके इस त्याग को सराहा भी जायेगा किन्तु व्यक्ति का आदर्श समाज के आदर्शों से भिन्न होगा क्या? अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करना सामाजिक धर्म है या अधिकारों को त्यागना धर्म है ? हस्तिनापुर का साम्राज्य महाराज शान्तनु की अपनी कोई ऐसी निजी सम्पत्ति तो है नहीं कि वे इसे जिसे चाहे उसे दे दे। अगर इस प्रकार का अपहरण कर जो व्यक्ति कल हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर बैठेगा वह समाज के अधिकारों की क्या चिन्ता करेगा ? वह प्रजा के साथ कौनसा न्याय करेगा ? देवव्रत का क्षात्र धर्म आज क्या कहता है ? यदि कोई उनके राज्य का अपहरण कर रहा हो तो क्या वे अपना अधिकार छोड देंगे ? क्या इस प्रकार कहीं कोई समाज, देश और राष्ट्र चलते है क्या ? सन्यासियों की तो त्याग वृत्ति है जो इस सृष्टि के क्रम को चलाये नहीं रख सकती। क्षात्र धर्म ही समाज के पालने में है और अन्याय के प्रतिकार में है, अपहरणकर्ता का विरोध करने में है। इस तरह विचारों का ऊहा पोह बढता ही गया। कौन कर रहा है अपहरण ? अपहरण ही तो है भले सेना लेकर राज्य पर आक्रमण नहीं किया गया हो पर एक वचन की आड में तो उसका राज्य छीना जा सकता है।

देवव्रत को लगने लगा उनके मन में उस अज्ञात युवती और उसके पिता दासराज के विरुद्ध मन में कलुषिता घर कर रही है और

आक्रोश संचित हो रहा है वे अंजाने में ही उन्हें अपना शत्रु समझने लगे है। वे उस युवती को जानते तक नहीं न ही वह युवती उन्हे जानती है फिर उसके विरुद्ध अपने मन में यह प्रतिहिंसा का भाव क्यों ? जो अपने मन में होता है वही सारे संसार में भासित होने लगता है। यह मन ही तो संसार है अन्यथा तो संसार मिथ्या है। यदि वे अपने मन में हिंसा पालेंगे तो उन्हें सब अपने विरुद्ध हिंसा ही दिखाई देगी। उस युवती का उनसे क्या विरोध ? वो तो चक्रवर्ती से एक अनुचित मांग की पूर्ति का मूल्य मांग रही है। राजाओं के इस प्रकार के अनमेल विवाहों के पहले अपनी सन्तानों के लिये राज्याकांक्षा तो प्रत्येक पिता करता ही है। पुराना इतिहास कहता है कि कैकय राज ने भी कैकयी के कन्या दान से पूर्व चक्रवर्ती नरेश दशरथ से यही शर्त रखी थी पर वो और बात है कि राम ने न कभी भरत को अपने से अलग समझा या विरोधी समझा और न ही भरत ने नाना को उसकी इच्छानुसार कुछ भी नहीं दिया।

अब रही अधिकारों की रक्षा की बात। समाज, देश और राष्ट्र भले ही अपने अधिकारों के लिये लडे पर देवव्रत तो अपना अधिकार छोड सकते है। वे उस राज्याधिकार के लिये क्यों अपने कुल में कलह करें ? वो अधिकार जो किसी को सुखी नहीं कर सका, क्या करेंगे वे ऐसे अधिकार को लेकर ? देवव्रत तो सुख की खोज कर रहे हैं शान्ति पा रहे हैं। शायद वे राज्य को छोडकर ही अधिक सुखी हो सकेंगे। पिताश्री को दासराज की पुत्री सत्यवती प्राप्त होगी। दास राज को अपने दौहित्र के लिये राज्य प्राप्त होगा। दोनों सुखी होंगे। देवव्रत के मन में राज्य की कोई कामना नहीं रही।

देवव्रत के मन में आया क्या वे पिता को सुखी करना चाह रहे हैं ? दास राज उसकी पुत्री और उसके दौहित्र को सुखी देखना चाह रहे हैं। तो फिर यह सुख है क्या ? एक वृद्ध की एक तरुणी युवती के लिये विवेक शून्य आसक्ति किसे सुख देनेवाली है। ऐसा बेमेल दाम्पत्य जीवन पिता को कितना काम सुख दे पायेगा और कितनी काम यातना देगा ? पिता के मन में उस कन्या के प्रति आसक्ति उनका प्रेम नहीं है बल्कि दैहिक आकर्षण है। सुख यदि कहीं मिलता है तो केवल प्रेम में ही मिलता है। प्रेम भी वह जिसमें प्रतिदान की कामना ही न हो, केवल दान ही दान हो। कौन समझाये पिता को ? पिता इस प्रकार के प्रेम के न तो परिभाषित है और न ही परिचित। वे पुन: एक बार फिर से काम यातना में तडफने की व्यवस्था कर रहे हैं। और वह युवती भी क्या सुख पायेगी महाराज से ? केवट की कन्या राजप्रासाद में आ गई तो अपनी हीन भावना से ही मर जायेगी नहीं तो दूसरों को मारने का प्रबन्ध करेगी। राजप्रसादों के तौर तरीके व राज घराने की संस्कृति को वो क्या जानेगी ? लोगों की दृष्टि और वाणी उसका परिहास करेगी इससे वह अपनी प्रतिहिंसा का बल निर्बलों पर प्रकट करेगी और उसके सामने सबसे निर्बल होंगे राजा शान्तनु। वे चाहकर भी कुछ न कर पायेंगे। वह स्वयं भी पीडा पायेगी और उन्हें भी पीडित करेगी।

चक्रवर्ती का विवेक इस समय संज्ञा शून्य है, अचेत है वे स्वयं भी नहीं जानते कि उनका सुख किस बात में है। अबोध बालक या उन्मादी व्यक्ति की इच्छायें कभी पूरी नहीं होने देनी चाहिये। दास राज कन्या तो मात्र प्रतिशोध ही लेगी। उसे महाराज से क्या सुख मिलेगा ? यदि सचमुच देवव्रत अपने पिता को सुखी देखना चाहता है तो उन्हे पिता को इस कन्या के मोह जाल से अवगत करा उन्हे मुक्त करना चाहिये। यह कन्या तो आगे चलकर उनकी यातना बन जायेगी। बालक अग्नि को पकडना चाहे तो क्या उसकी यह इच्छा पूरी की जाती है ? इस समय देवव्रत ही अपने पिता को इस भावी आपत्ति से बचा सकते है वे चाहे तो अपना राज्याधिकार त्यागना अस्वीकार कर दे तो पिता न तो उस कन्या को पा सकेंगे न और न ही काम यातना भोगेंगे ?

किन्तु फिर उनकी अन्तर आत्मा ने उन्हे झिझकोरा। बहुत चतुर समझता है अपने आपको। कुतर्कों से अतर्कों से तू पिता को पराजित करना चाहता है और स्वयं राज सुख भोगने की चाहना कर रहा है। राज्याधिकार छोडना नहीं चाहता और वंश वृद्धि के नाम पर अपना विवाह करेगा। स्पष्ट क्यों नहीं कहता तुझे राज्य भी चाहिये और स्त्री सुख भी। इन्ही सब विचारों को जान-समझ कर देवव्रत ने अपना सिर पकड लिया और आकाश की ओर देख कर सोचने लगा क्या इच्छा है नियति तेरी ?

अब सब कुछ सोच-विचार कर देवव्रत ने मन्त्री को आज्ञा दी मेरा रथ तैयार किया जाये। प्रात: ही अमात्य व अश्वारोही

सैनिकों तथा रथों के साथ देवव्रत ने यमुना तट की ओर प्रस्थान किया। सैनिक यद्यपि सशस्त्र थे फिर भी वे युद्ध वेश में न होकर मांगलिक वेश में थे जैसे किसी समारोह में जा रहे हो। सबसे आगे वाले रथपर युवराज देवव्रत विराजमान हुये। दूसरा रथ सेनापति का तथा तीसरा रथ अमात्य व महामन्त्री का था। चौथा रथ सब सुविधा सम्पन्न और सब प्रकार से अलंकृत व सज्ज था अपनी नयी हस्तिनापुर की महारानी के लिये। यह रथ खाली था उसमें दो परिचारिकायें दासियां महारानी की सेवा के लिये थी। देवव्रत ने अपने काफिले को प्रयाण का संकेत दिया। हस्तिनापुर नगर गंगा के तट पर था पर मुख्यत: गंगा और यमुना के दो आब के बीच बसा हुआ था। गंगा के दोनों तटों पर आर्यों के प्रमुख नगर बसे हुये थे। लोगों की परिवहन व्यवस्था भी गंगा के जल पर निर्भर करती थी। यमुना तट पर लोगों का परिवहन अधिक नहीं था। अरण्य प्रदेश अधिक था। यदा कदा यमुना में चलनेवाली नौकाओं द्वारा वहां के केवटों की विभिन्न जातियां अपनी जीवितता प्राप्त करती थी। यमुना में मछलियां पकडने व नौकायें चलाने का अधिकांश कार्य ये केवट जातियां ही करती थी। मध्याह्न के आसपास युवराज देवव्रत का रथ यमुना तट पर अपने लावा लश्कर के साथ जा पहुंचा। यह सब देख कर वहां के ग्रामवासी स्त्री-पुरुष चौंक उठे और वे घबरा कर ग्राम की ओर भाग गये। देवव्रत ने सेनापति को आज्ञा दी कि ग्रामवासियों को अभय दो।

तब सेनापति ने उच्च स्वर में घोषणा की ग्राम प्रमुख, पंचगण तथा साधारण ग्रामवासी सभी जान लें यह कोई सैनिक अभियान नहीं है जिससे किसी को किसी तरह की हानि की आशंका हो। कुरुओं के युवराज देवव्रत अपने कार्य से आपके प्रमुख दासराज से मिलने आये हैं इसलिये सारी प्रजा अभय रहे। प्रजा निर्द्वन्द भाव से अपने कार्य में रत रहे। अब देवव्रत दास राज की कुटीर के सामने आकर खडे हो गये।

९) देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय अब वह कथा सुनो किस प्रकार देवव्रत ने दासराज से भीष्म प्रतिज्ञा की और इसके बाद देवव्रत भीष्म नाम से पुकारे जाने लगे। अब देवव्रत बडे बूढ़े क्षत्रियों को लेकर दासराज के निवासस्थान पर गये। दासराज अपनी कुटिया में विश्राम कर रहे थे। दासराज के एक सेवक ने दासराज को सूचना दी कि गंगा पुत्र युवराज देवव्रत पधारे हैं। उसी समय दासराज उठकर गंगापुत्र से बोले विराजिये युवराज। देवव्रत का मन:पूर्वक स्वागत किया और बोले इतनी रात गयी और आप यहां।

देवव्रत बोले- दासराज को गंगापुत्र देवव्रत का प्रणाम। दासराज बोले युवराज यह जो आपकी कृपा का चांद निकला वह इस घर की रात दिन में बदल गई परन्तु युवराज ने सूर्योदय की प्रतीक्षा क्यों नहीं की ? देवव्रत बोले- मैं हस्तिनापुर राज्य के सूर्य की ओर से चिंतित होकर आपकी सेवा में आया हूं दासराज। आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि यहां और हमारे पडाव के बीच हमारे पिता महाराज कहां खो गये ? दासराज बोले- आप विराजिये तो युवराज। देवव्रत बोले- यह बैठने का समय नहीं है दासराज। कृपया आप मुझे मेरे पिता महाराज के विषय में कुछ बताये। मैं आपके पास एक विशेष प्रयोजन से उपस्थित हुआ हूं आशा है आप मुझे निराश तो नहीं करेंगे। दासराज बोले- कुमार महाराज मेरी पुत्री सत्यवती से विवाह करना चाहते हैं। देवव्रत बोले- दासराज मैं भी आपसे अपने पिता चक्रवर्ती सम्राट शान्तनु की महारानी बनाने के लिये आपसे आपकी पुत्री देवी सत्यवती की याचना करने आया हूं। दासराज बोले- पुत्री है तो उसके लिये याचक भी आयेंगे ही। वैसे मेरा यह सौभाग्य है कि याचना एक अत्यन्त सम्मानित कुल की ओर से आयी है। देवव्रत चुपचाप दासराज की ओर देखते रहे।

दासराज बोले- युवराज यदि मैं कन्यादान नहीं करूं तो याचना का स्वरूप क्या होगा अपहरण ही तो। देवव्रत बोले- दासराज यदि अपहरण ही करना होता तो इतनी याचना के लिये आने की आवश्यकता ही नहीं थी। राजा शान्तनु या देवव्रत के संकेत भर से कन्या का अपहरण हो जाता किन्तु आर्यों की मर्यादा उसकी अनुमति नहीं देती। देवव्रत ने फिर कहा, नहीं

अपहरण कभी नहीं होगा पर आप ऐसे क्यों सोचते है दासराज। दासराज बोले- युवराज मैं अपनी स्थिति बहुत अच्छी तरह समझता हूं। सत्यवती मेरी कन्या है पर उसकी रक्षा का मेरे पास कोई साधन नहीं है। आप सब समर्थ है। आपके पास सैनिक है, शासन तन्त्र है आप या राजा शान्तनु उसका हरण करना चाहे तो मैं कैसे रोक पाऊंगा।

देवव्रत मुस्कुराये और बोले- दासराज आप आश्वस्त रहें। कोई आपकी कन्या का अपहरण नहीं करेगा। आपकी कन्या का हरण क्षत्रिय धर्म के अनुकूल नहीं है। कन्या तभी हमारे साथ जायेगी जब आप अपनी इच्छा से मेरे पिता की भार्या के रूप में उसका कन्यादान करेंगे। दासराज बोले यदि मैं स्वेच्छा से कन्या का दान न करूं तो क्या आप लौट जायेंगे ? देवव्रत बोले नहीं दासराज मैं जानता हूं कि आप हमारी यह याचना अस्वीकार नहीं करेंगे। देवव्रत ने दासराज को देखा इस बार दासराज उन्हे प्रौढ़ वय का व्यक्ति बडा ही शालीन, दृढ़ और व्यावहारिक लगा। उसके पास अनेक लोग उससे कहीं अधिक समर्थ, बुद्धिमान, चतुर, ज्ञानी, धनवान, सत्तावान और शक्तिशाली आते होंगे। उन सबके साथ व्यवहार ने उसे सिखाया है कि किस प्रकार समर्थ लोगों को अप्रसन्न किये बिना अपनी बात पर दृढ़ रहना और अपने स्वाभिमान की रक्षा करनी।

निषादराज ने देवव्रत का बडा स्वागत सत्कार किया और सब लोगों के सामने कहा भरतवंश शिरोमणे। राजर्षि शान्तनु की वंश रक्षा के लिये आप अकेले ही पर्याप्त हैं। फिर भी ऐसा वांछनीय सम्बन्ध टूट जाने पर स्वयं इन्द्र को भी पश्चाताप करना पडेगा। यह कन्या किसी श्रेष्ठ राजा की पुत्री है जो आप लोगों के समान ही है। उन्होंने मेरे पास बार-बार सन्देश भेजा है कि सत्यवती का विवाह महाराज शान्तनु से ही करना। देवर्षि असित भी इसको पाने के इच्छुक थे पर मैंने उन्हें भी मना कर दिया। मैं पालन-पोषण करनेवाला होने से इस कन्या का पिता हूं। यह विवाह सम्बन्ध बडा ही अमेल है एक तो महाराज सत्यवती की उम्र के अनुकूल नहीं है दूसरा हमारा घराना इतना सम्पन्न और आपके अनुकूल नहीं है। यह स्थिति सामान्य नहीं है। एक ओर कुरु पति है और दूसरी ओर यह केवट। वर और कन्या के वय में भी अन्तर असाधारण है। फिर वर का पिता कन्या के पिता से याचना नहीं कर रहा है वरन वर का पुत्र कन्या के पिता से याचना कर रहा है। देवव्रत बोले इससे क्या अन्तर पडेगा दासराज ? दासराज बोले जब पिता अपने पुत्र के लिये कन्या की याचना करे तो कन्या के पिता को उसके भविष्य की चिन्ता नहीं होती। पिता अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुत्र को ही देगा पर युवराज वर्तमान स्थिति में मुझे अपनी पुत्री के भविष्य की चिन्ता तो करनी ही होगी क्योंकि पुत्र की सम्पत्ति कभी पिता के पास लौट जाये इसका तो कोई विधान नहीं है। देवव्रत बोले दासराज इसकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं पडेगी। बताओ फिर इस प्रस्ताव में क्या रुकावट है ? क्या पिता महाराज का हृदय और हस्तिनापुर का राज्य आपकी पुत्री सत्यवती के लिये छोटा दिखाई दे रहा है ? दासराज बोले यह क्या कह दिया गंगा पुत्र ? दासराज बोले युवराज सत्यवती के भाग्य की रेखा कहती है कि उसका पुत्र हस्तिनापुर का राज करेगा और वही एक वचन महाराज ने नहीं दिया। देवव्रत बोले वे यह वचन तुम्हे दे ही नहीं सकते दासराज। दासराज बोले देवव्रत मैं कुछ समझा नहीं। देवव्रत बोले दासराज इन्हें यह वचन देने का अधिकार ही नहीं था। दासराज बोले- क्या राजा को यह वचन देने का अधिकार नहीं कि उनके बाद राजा कौन बनेगा ?

देवव्रत बोले- अधिकार है परन्तु पिता महाराज अपने उस अधिकार का प्रयोग कर चुके हैं। कोई राजा एक वस्तु या पदवी को दो व्यक्तियों को तो नहीं दे सकते दासराज। आपने पिता महाराज के धर्म संकट को समझने का ही प्रयत्न नहीं किया। दासराज बोले तो आप ही इसे समझा दीजिये। देवव्रत बोले हस्तिनापुर का राज्य सिंहासन वो मुझे दे चुके है। वो राज सिंहासन उनके बाद मेरा होनेवाला है और मेरे होते हुये वह राज सिंहासन किसी और को दे देवें तो यह मेरे साथ घोर अन्याय हो जायेगा, जो कि महाराज के लिये असम्भव है। हां यदि मैं चाहूं तो यह राज सिंहासन किसी को भी दे सकता हूं।

दासराज बोले- इस विवाह सम्बन्ध में मैं एक ही दोष देखता हूं कि सत्यवती का शत्रु बडा ही प्रबल होगा युवराज। जिसके आप शत्रु हो जायेंगे वह चाहे गन्धर्व हो या असुर जीवित नहीं रह सकेगा यही सोचकर मैंने अपनी कन्या आपके पिता को नहीं

दी। दासराज बोले- युवराज किस मुख से कहूं मैं संकोच से गडा जा रहा हूं। कहीं ऐसा न हो कि अपने हित की रक्षा करने के प्रयत्न में मैं किसी और के प्रति अन्याय कर बैठूं। किसी और के प्रति जो न दुष्ट है, न अन्यायी और न ही मेरा शत्रु है। अपना हित करने में किसी दूसरे का अहित तो नहीं करना चाहिये न युवराज। न्याय संगत व्यवहार की मांग में किसी का भी अहित नहीं होता। देवव्रत बोले- नि:संकोच स्पष्ट कहो दासराज। दासराज बोले- युवराज राजा शान्तनु किसी भी रूप में मेरी पुत्री सत्यवती के लिये उपयुक्त नहीं है। उनकी उपयुक्तता सिर्फ इसी बात पर है कि वे देश के राजा है और सत्यवती यह सोच कर ही उनकी भार्या बनेगी वह महारानी बनेगी और उसकी दरिद्रावस्था समाप्त होगी और उसका पुत्र यमुना में नौका खेनेवाला केवट न होकर हस्तिनापुर का राजा होगा, परन्तु हस्तिनापुर के राज्य का युवराज विद्यमान है, वह बुद्धिमान, योद्धा, शक्तिशाली और लोकप्रिय है। अपने पिता के पश्चात वह राज्य, धन, सम्पत्ति, कुलगौत्र सबका एक मात्र स्वामी होगा। ऐसे में मेरी पुत्री और उसकी सन्तानों का भविष्य क्या होगा युवराज ? दासी पुत्र का जीवन बीताने से केवट बने रहना क्या बुरा है ? देवव्रत पूरी दृढ़ता से बोले नहीं वे दासी पुत्र नहीं होंगे। वे तो जो आप चाहो वे ही होंगे। दासराज बोले- मैं तो केवल इतना ही चाहता हूं कि जब मैं अपनी कन्या का हाथ चक्रवती सम्राट के हाथ में दे रहा हूं तो वह महाराज की रानी बन कर रहे और उसकी सन्तान राजा की सन्तान बनकर राज करे। देवव्रत बोले ऐसा ही होगा दासराज। दासराज बोले इसका प्रमाण? देवव्रत बोले आप क्या प्रमाण चाहते हैं। दासराज बोले- सत्यवती का ज्येष्ठ पुत्र ही हस्तिनापुर का युवराज हो। देवव्रत बोले- स्वीकार है ऐसा ही होगा।

दासराज बोला आप समझ रहे है न युवराज मैं क्या मांग रहा हूं ? देवव्रत मुस्करा रहे थे। आप युवराज नहीं रहेंगे। महाराज के पश्चात उनका यह राज्य आपको नहीं मिलेगा। आप एक साधारण जन होंगे। कुरु वंश का यह विशाल साम्राज्य आपका नहीं होगा। देवव्रत को लगा वे दासराज की कुटिया में नहीं बैठे है किसी खुले स्थान में आ बैठे है जहां कोई सीमा नहीं है, बन्धन नहीं है, स्वार्थ नहीं है, अर्जन नहीं है। यहां पृथ्वी का कोई आकर्षण नहीं है, वायु का दबाव नहीं है, न मन में किसी चीज के ग्रहण का लोभ नहीं है। मन से अन्तरात्मा की आवाज निकली, एक नारी मूर्ति मन से उभरी जो देवव्रत के सम्पूर्ण अस्तित्व में समा गई। देवव्रत तू बच गया, तू सभी प्रपंचों से छूट गया। तु सुखी हो जायेगा पुत्र। ग्रहण में केवल दु:ख है। पुत्र मैं तो तुझे इस मोह चक्र से तभी मुक्त कर देती जब तेरा जन्म हुआ पर तेरे पिता ने मेरी इच्छा पूरी नहीं होने दी। अन्तरात्मा से यह उनकी मां की आवाज थी। दासराज को लगा शायद देवव्रत समझ नहीं पाये कि वे क्या छोड रहे है। देवव्रत का चेहरा अधिक से अधिक शान्त होते गया और वे अधिक से अधिक मन से प्रसन्न होते गये। दासराज अन्त में बोले युवराज मैं इसका कैसे विश्वास करूं। देवव्रत बोले मैं आपको वचन दे रहा हूं। दासराज बोले कुरुश्रेष्ठ मेरे पास सिवाय आपका वचन मान लेने के सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं है। देवव्रत ऊंचे स्वर में बोले कुरुवंशियों का वचन ही प्रमाण होता है। ऐसा यदि नहीं होता तो चक्रवर्ती स्वयं आपको वचन देकर आपकी कन्या को ले जा सकते थे तब देवव्रत को यहां आने की आवश्यकता ही नहीं थी। पर महाराज ने ऐसा नहीं किया।

दासराज ने कहा शान्त हो युवराज। इतने आवेश में न आवे। दासराज ने अपना जीवन कुरु वंशियों में नहीं बिताया जिनका वचन ही प्रमाण है। वह तो आठों पहर उन लोगों में रहता है जिनका वचन केवल पाखंड है, वचन को सत्य मान लेने का मुझे अभ्यास नहीं है युवराज। वैसे भी आप एक असहाय निर्बल वृद्ध की आशंकाओं का बुरा न माने जहां ममता होती है, और जहां आशंका होती है वहां सन्देह भी होता है। देवव्रत बोले- दासराज आशंकाओं को किसी का विश्वास कर आश्वस्त भी होना चाहिये। गंगानन्दन देवव्रत ने निषादराज की बात सुनकर क्षत्रियों के समाज में अपने पिता का मनोरथ पूर्ण होने के लिये प्रतिज्ञा की निषाद राज मैं शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि **हस्तिनापुर का राज सिंहासन देवी सत्यवती और महाराज के ज्येष्ठ पुत्र ही इसके उत्तराधिकारी होंगे।**

दासराज बोले आप धन्य है गंगापुत्र। आपके चरणों की धूलि पाकर मेरा घर भी धन्य हो गया। धन्य है वो देश जिसमें आप

जैसा महापुरुष और पुत्र जन्मा। अपने पिता की प्रसन्नता का मूल्य अपने भाग्य से चुकाना हर किसी के वश की बात नहीं।

देवव्रत बोले नहीं नहीं दासराज नहीं। जो कुछ यह हो रहा है वह भाग्य रेखा के अनुसार ही हो रहा है। यदि हस्तिनापुर की राजगद्दी मेरे भाग्य में होती तो फिर देवी सत्यवती की भाग्य रेखा उसका विरोध नहीं करती। भाग्य रेखायें कभी एक दूसरे को नहीं काटती दासराज। इसलिये मैं देवी सत्यवती की रेखा को प्रणाम करता हूं और यदि आज्ञा दे तो मैं उन्हें अपने साथ लेता जाऊं। दास राज ने कहा आश्वस्त हुआ देवव्रत परन्तु। देवव्रत ने कहा अब कौनसा परन्तु बाकी रह गया है दासराज जिसने सर्प के समान अपना फन निकाल दिया। यह व्यवहार कुशल, व्यवहार सिद्ध केवट अपने तर्कों से अब किस प्रपंच की रचना कर रहा है, अब कौनसा जाल बुन रहा है ? दासराज बोले जिस प्रकार महाराज को आपकी तरफ से वचन देने का कोई अधिकार नहीं था उसी प्रकार आपको भी अपने वंशज की ओर से वचन देने का अधिकार नहीं है। पुत्र के स्थान पर उसका पिता वचन नहीं दे सकता क्योंकि हो सकता है कि पुत्र पिता द्वारा दिये गये वचनों की रक्षा न करे इसीलिये शायद चक्रवर्ती ने आपके स्थान पर वचन नहीं दिया। तो यदि कभी आपकी सन्तान हस्तिनापुर के साम्राज्य के राज सिंहासन के अधिकार का प्रश्न उठाये तो इसका परिणाम क्या होगा गंगा पुत्र ?

आप भी अपने भावी सन्तान के स्थान पर स्वयं वचन देना उचित नहीं मानेंगे यह कहकर दास राज कुछ क्षणों तक मौन हो गया। देवव्रत उसके मौन से उसका मन्तव्य पढने का प्रयत्न करने लगे। देवव्रत दासराज का आशय समझ गए। दासराज फिर बोले आप सत्यवती के पुत्र के लिये अपना राज्याधिकार छोड रहे है। मैं आपका विश्वास कर सकता हूं पर कल आप विवाह करेंगे आपके पुत्र होंगे, बडे होने पर सम्भवत: वे आपसे सहमत न हो और वे अपना अधिकार मांगे। वे आपसे कह सकते है आपको अपना राज्याधिकार, अपने जीवन का सुख और भोग छोडने का पूरा अधिकार है परन्तु आपको क्या अधिकार है कि आप चक्रवर्ती शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र की ज्येष्ठतम सन्तान से हस्तिनापुर के राज्य का उत्तराधिकार छीन कर किसी और को वचन देने का ? आप अपने पुत्र के स्थान पर यह वचन कैसे दे रहे है कि वह अपने उचित, नैतिक, पारम्परिक और वैधानिक अधिकारों की मांग नहीं करेगा ?

देवव्रत बोले- दासराज आपकी यह आशंका आधारहीन नहीं है इसलिये इस अज का मुंह भी अभी सिल देता हूं। अवश्य ही मैं अपनी सन्तान की ओर से कोई वचन देने का अधिकारी नहीं हूं लेकिन मैं सन्तान हीन रहने का तो अधिकारी हूं दासराज। देवव्रत जैसी कठोर प्रतिज्ञा अभूतपूर्व है और आगे भी शायद ही कोई ऐसी प्रतिज्ञा करे। दासराज बोले युवराज आपने सत्यवती के लिये जो प्रतिज्ञा की है वह आपके अनुरूप ही है इस बारे में अब मुझे कोई जरा भी सन्देह नहीं रहा पर आपकी सन्तान सत्यवती के पुत्र से राज्य छीन सकता है। देवव्रत ने निषादराज दास राज का आशय समझ लिया और मन ही मन विचार करने लगे, अपने मन के कल्पना लोक में खो गये। पिता मैंने आपको काम सुख के अभाव में पीडित देखा, आपको काम यातना में तडफते देखा। आपके सारे जीवन को कामासक्ति की याचना में असन्तुलित होते देखा। यह काम सुख नहीं है बल्कि सुख का एक प्रपंच है। यह तो मृगतृष्णा है। प्राणी उसकी कामना में कष्ट पाता है, अपने विवेक का वध कर क्षणिक सुख भोगता है और फिर उस भोग के मूल्य दु:ख को सहन करता है तथा पुन: उस सुख की कामना में तडफता है। आपने मुझे इस दुश्चक्र से मुक्त कर दिया। शायद स्वयं मैं अपने बल पर काम के यह दुष्कर बन्धन नहीं तोड पाता, सन्तान और पत्नी के मोह पाश कर्म बन्धन में बंध जाता और इस दुश्चक्र से नहीं निकल पाता। मैं आपको प्रणाम करता हूं।

देवव्रत की आंखों में शून्य के स्थान पर चेतना लौटी उनके मुख मंडल पर सहज मुस्कान आयी और उल्लसित होकर बोले दासराज मेरा आपको यह वचन है कि मेरा कोई भी पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र और कोई भी, कभी भी आपसे, मुझसे और आपकी पुत्री की सन्तान से अपने पैतृक राज्याधिकारों की मांग नहीं करेगा। मैंने अपने पिता के राज्य का परित्याग तो पहले ही कर दिया है।

अब सन्तान के लिये **मैं प्रतिज्ञा करता हूं इसलिये आज मैं गंगा पुत्र देवव्रत यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी दिशाओं, धरती, आकाश और इन सभी नक्षत्रों, जल, वायुओं, अग्नि और सभी ऋषि, देवगण इन सबको साक्षी मानकर मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा और जीवन भर विवाह नहीं करूंगा। वंश हीन ही जीऊंगा और वंशहीन ही मरूंगा। यह मेरी अखंड दृढ़ प्रतिज्ञा है।** ऐसी दुष्कर भीष्म प्रतिज्ञा सुनकर धरती डोलने लगी, आकाश में बिजली चमकने लगी, जोरों से अन्धड चलने लगा। आकाश से देवता पुष्प वृष्टि करने लगे। आकाशवाणी हुई कि आज तक ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा किसी ने नहीं करी और न ही भविष्य में होगी। धन्य हो कुमार अब से तुम्हारा नाम भीष्म होगा। देवव्रत की कठोर प्रतिज्ञा का इस प्रकार प्रकृति ने अभिनंदन किया।

चन्द्र टरे, सूर्य टरे, डिगे अडिग हिमवन्त, देवव्रत का भीष्मव्रत रहे अखंड अनन्त।

सब ऋषि मुनि देवता कहने लगे यह सचमुच भीष्म है। पिताश्री को दु:ख की खाई से बाहर निकालने के लिये देवव्रत ने ऐसी कठोर दृढ़ प्रतिज्ञा करी जो भीष्म प्रतिज्ञा के नाम से जानी गयी और इसीसे देवव्रत का परिचय भीष्म नाम से हो गया। महामन्त्री बोल उठे गांगेय यह आपने क्या किया ? देवव्रत के होठों पर मुस्कान थी और बोले अमात्य किसी न किसी को तो दासराज की शर्त का मूल्य चुकाना था। अब मेरे जीवन में न तो यम फांस है और न ही काम पाश। मेरे मन में न कोई स्त्री की कामना है, न सम्पत्ति की और न ही अधिकारों की। देवव्रत अब उदास नहीं थे, उनके चेहरे पर न कोई पश्चाताप था, न द्वन्द का अन्धकार और आभास। उनके चेहरे पर सफलता और मुक्ति का उल्लास था।

दासराज ने हाथ जोडे उनका स्वर भर्रा आया और बोले युवराज आप कोई मानव नहीं है आप तो देवता है। आप तो सचमुच पवित्र गंगा के पुत्र है आप धन्य है। मैं ही ऐसा चांडाल हूँ जिसने आप जैसे देव पुरुष से आपके जीवन का सम्पूर्ण सुख चैन छीन लिया ? देवव्रत ने दासराज को सान्त्वना दी और बोले मोह त्यागिये और अपनी पुत्री और मेरी मां सत्यवती को अब विदा कीजिये।

देवव्रत ने यह दुष्कर कठोर प्रतिज्ञा अपनी सद्बुद्धि से की या अपने पिता के प्रेम वश होकर की इसका निर्णय तो आगे चलकर आनेवाला काल ही बतायेगा परन्तु पिता को दु:ख के गर्त से निकालना सर्वप्रथम अपने हाथ में है यह समझ कर ही यह भीष्म प्रतिज्ञा करी। कुछ ही क्षणों और काल में देवव्रत ने देखते-देखते इस महत्वपूर्ण घटना से इतिहास को एक नया मोड दे दिया, इतिहास की धारा ही बदल दी। इससे पहले भीष्म के पूर्वज महाराज ययाति के पुत्र पुरू ने अपनी सामर्थ्य से अपने यौवन का त्याग कर अपने पिता की वृद्धावस्था को स्वीकार किया और अपना यौवन पिता को दिया। देवव्रत ने तो अपने त्याग का एक नया आदर्श सबके सामने रखा देखते-देखते देवव्रत अब भीष्म बन गये। उस महापुरुष को तो काल भी प्रणाम करता है जिसने सारे ब्रह्माण्ड को हिला दिया।

सत्यवती को उसकी सखियां लेकर बाहर आई तो देवव्रत ने पहली बार उसे देखा। देवव्रत को विश्वास ही नहीं हुआ कि दासराज की कुटीर में इतनी सुन्दर रूपवती अनमोल रत्न जैसी कन्या रहती है। यह दासराज की ऐसी रूपमयी पुत्री ? न तो इसका वर्ण और रूप दासराज जैसा। सत्यवती सचमुच असाधारण सुन्दरी थी। वह केवट कन्या तो लग ही नहीं रही थी। बस ऐसा ही लग रहा था कोई राजकुमारी नाटक में केवट कन्या का अभिनय कर रही हो। उसकी वय पच्चीस वर्षों की रही होगी। सामान्यत: निषादों के घरों में इस उम्र के पडाव तक कोई कन्याये अविवाहित नहीं रहती। इसलिये हो सकता है दासराज को सत्यवती के लिये उपयुक्त वर न मिला हो या उसने किसी विशेष प्रकार के वर पाने की चाहत कर रखी हो। देवव्रत ने दास राज से प्रश्न कर ही लिया क्या यह आपकी पुत्री है दासराज ? दासराज ने कहा इसका पिता होने का गौरव है मुझे। युवराज पर मैं इसका जनक नहीं हूँ। मछलियों को पकडने गये केवटों ने इसे भी यमुना की जलधारा में बहते पाया। इसका रंग और रूप बताता है कि यह किसी तेजस्वी क्षत्रिय की राजकन्या है।

सत्यवती अपनी सखियों से विदा लेकर अपने पिता के पास आयी। दासराज ने अपनी बाहों में पुत्री को भर कर कहा बेटी मैं आजीवन तुझे अपने घर में रख नहीं सकता। बेटी तो किसी और की अमानत होती है उसे विदा तो करना ही पडता है। तुझे किसी क्षत्रिय या राजकुमार के साथ जाना ही था। स्वेच्छासे न भेजता तो कोई न कोई तुम्हे बलात् ले जाता। इस सौदे में तेरे सुख के लिये जो मैं अधिक से अधिक मांग कर सकता था वो मैंने मांग लिया। अब तू जा अपने पति के घर सुखी रहे। हमारा तेरा सम्बन्ध यहीं तक था। दासराज ने सत्यवती को रथ पर चढाते समय उसके कान में कहा भीष्म से सदा सावधान रहना वही आगे चलकर तुम्हारा सबसे बडा शत्रु हो सकता है। यह कह कर दासराज ने सत्यवती के जीवन में कलह के बीज बो दिये। महत्वाकांक्षाओं का सागर खडा कर दिया। इस सीख ने परिवार के महाभारत को जन्म दे दिया। वाह रे पिता कोई तो पुत्री को विदा करते समय पति, सास-श्वसुर की परिवार जनों की सेवा करने का पाठ पढाता है और यहां अशिक्षित दास राज अपनी पुत्री सत्यवती के भाग्य को अपनी महत्वाकांक्षाओं से प्रकृति के नियम विरुद्ध चलाना चाहता है। सत्यवती का घर बसाने के बजाय उसका अहित हो रहा है उसकी गृहस्थी उजड रही है।

सत्यवती ने एक बार आंख उठाकर भरपूर दृष्टि से अपने बाबा दासराज को देखा और धीरे-धीरे चलती हुई रथ के पास तक आयी। दासियों ने सहारा देकर रथ पर चढाया। देवव्रत ने दासराज को हाथ जोडकर प्रणाम किया और सारथी को रथ हांकने का प्रयाण करने का संकेत दिया। रथ चल पडा।

रथ चलता गया शिबिर की ओर यमुना का तट छोडकर कच्चे मार्ग से होकर राजमार्ग पर सरपट दौडने लगा और इधर देवव्रत के मन में विचारों का पुलिन्दा उठता ही गया। देवव्रत के मन में प्रसन्नता और उल्लास का भाव जगा हुआ था। कोई असाधारण मूल्य चुकाकर कुछ असम्भव उपलब्ध कर लेने का मन में भाव था। देवव्रत ने आज अपने सारे भौतिक सुखों को तिलांजली देकर पिता के इस रिक्त जीवन खंड में उनकी मनोकामना को पूरा किया। शायद देवव्रत का यह त्याग अपने पूर्वज पुरू से भी बडा त्याग था। पुरु का त्याग तो अपने पिता ययाति के लिये एक निश्चित अवधि काल के लिये था पुरु के मन में यौवन के सुखों की आकांक्षा नहीं रही होगी किन्तु देवव्रत ने तो अपना यौवन रखकर उसके सुख त्याग दिये। पुरु ने बदले में राज्य का अनाधिकारी होते हुये भी पिता का राज्य पाया जबकि देवव्रत ने अधिकारी होते हुये भी अपने राज्य का त्याग कर दिया। देवव्रत अपने सारे बन्धन तोड कर उनसे मुक्त हुआ। देवव्रत को सुख का प्रपंच अब कभी वंचित नहीं कर पायेगा। वे मुक्ति के आनन्द की अवस्था में विचरण करने लगे।

क्या दासराज अपनी पुत्री को चक्रवर्ती महाराज की पत्नी बनाकर प्रसन्न नहीं है ? एक पिता की इससे अधिक और क्या कामना हो सकती है ? एक केवट कन्या राजरानी बन गई। कुरु राज्य के भावी शासकों की राजमाता बन गई। हां पर समवयस्क, समविचार, समव्यवहार जीवन साथी का धरातल तो उसे नहीं मिला, उसे वो सुख नहीं मिलेगा जो उसके लिये आवश्यक है। उसने केवल पाया ही नही, खोया भी बहुत कुछ है। पूर्व में राम चरित्र में दशरथ और कैकयी का भी वय में इतना ही अन्तर रहा है और विचारों में समानता न होने से असन्तुलन का दु:ख उठाना पडा। क्या कुरु वंश के महलों में भी इस तरह वृद्ध राजा शान्तनु की पत्नी की कथा दुहरायी जायेगी। क्या शान्तनु की पत्नी सत्यवती भी ईर्ष्या और कुंठा से मन की आग की जलन में अपने को झौंकती रहेगी और महाराज को प्रताडित करती रहेगी ? देवव्रत ने स्वयं ही अपने को प्रतिवाद किया कि कैकयी राम को बनवास ही तो देगी, यहां तो मैं पहले से ही स्वयं को वनवासित जैसा कर चुका हूं। फिर मन में विचार आया कभी सत्यवती के मन की ओर से अपने को देख कि उसने अपने लिये कैसे वर, प्रेमी, पति का मनोचित्र बनाया होगा और अवश्य ही उसका वह मनोचित्र महलों में सोने के पलंग पर पडे कामातुर वृद्ध राजा का तो नहीं हो सकता। आसक्ति के कारण अनेक लोगों की इच्छाओं और कामनाओं का दमन करना पडता है।

भौतिक सुख ही जीवन का अन्तिम सुख नहीं है। देवव्रत ने मान लिया कि सुख धन में नहीं है, राज्य वैभव और अधिकार में नहीं है इसलिये उन्होंने राज्य का त्याग कर दिया। पर देवव्रत ने या महाराज ने यह कैसे सोच लिया कि सत्यवती का सुख धन में है, केवल इसलिये कि सत्यवती एक निर्धन की कन्या है। ऐसा क्यों नहीं समझते कि केवट के घर से राजमहल में लाकर उन्होंने सत्यवती के वे सारे सुख चैन छीन लिये जो उसे उस केवट की कुटिया में उपलब्ध थे। राजमहल में जिन सुखों की वे कल्पना कर रहे है सम्भव है कि सत्यवती के लिये वे सुख सुख न हो।

सारे शास्त्र कहते है कि माता-पिता की इच्छा का पालन, उनकी इच्छा की पूर्ति मानव का पहला धर्म है। आज देवव्रत ने अपने जीवन का सर्वस्व देकर अपने पिता के लिये उनके जीवन का सबसे बडा सुख खरीद लिया है। श्रवणकुमार भी अपने माता-पिता की इच्छा पूर्ति के कारण ही अमर हो गया। राम भी इसी प्रकार अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिये राजपाट त्याग कर वन चले गये और अपने यौवन का सर्वश्रेष्ठ काल, राजमहलों में नहीं बल्कि भयंकर वनों में बिताया और देवव्रत ने भी यही किया है।

भीष्म के मन में द्वन्दों का भरमार उठ खडा हुआ। क्या देवव्रत ने भौतिक कष्टों से बचने के लिये भौतिक सुखों को त्यागा है या पिता की कामना पूर्ति के लिये अपने सुखों को तिलांजलि देकर स्वयं को जीवन के प्रत्येक सुख से वंचित किया है। यदि धन, सत्ता, नारी से प्राप्त सुखों में सार नहीं है तो उन्होंने कोई त्याग नहीं किया, जो श्रेयस्कर था वही किया पर यदि पिता की कामना का संयोग सामने खडा नहीं होता तो क्या देवव्रत इन सुखों को असार मानकर त्याग देते ? और यदि ये सुख असार है तो फिर वे पिता के लिये उन सुखों को क्यों जुटा रहे हैं ? क्यों नहीं उन सुखों की असारता पिता को समझाते ? क्यों उनके सामने यह प्रलोभन रख रहे ? क्यों उन्हें उन सुखों की ओर प्रवृत्त कर रहे हैं ? क्या पुत्र के रूप में वे अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं ? सहसा देवव्रत का मन इन प्रश्नों व उत्तरों पर अटक गया। देवव्रत को लगा वे कर्तव्य का पालन ही कर रहे है। पिता की आज्ञा का पालन तो अधम पुत्र भी करता है वे तो पिता की इच्छा का पालन करते हैं यही उनका धर्म था।

पिता भी तो मनुष्य है उसमें भी मानवीय दुर्बलताये हैं। उसकी बुद्धि भी उसे धोखा दे सकती है फिर उसकी ही इच्छायें, कामनायें, निर्णय क्यों सत्य है ? पिता और पुत्र की इच्छायें दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की इच्छायें होने के कारण समान रूप से महत्वपूर्ण है फिर पिता की इच्छा पूर्ति ही क्यों धर्म है ? देवव्रत के चिन्तन और कर्म के धरातल अलग-अलग हैं। गुरुकुल में पढे शास्त्र, गुरुजनों के उपदेश और नीतियां बडे अच्छे से देवव्रत के हृदय में उतरी हुई हैं। कर्म करने की बारी आती है वे शास्त्रों के नियमों को धर्म मानते है पर चिन्तन के क्षणों में उनका मन उन नियमों के विरुद्ध उठ खडा हो अनेक प्रश्न करने लगता है। उनका व्यवहार शास्त्र के धर्म को नहीं छोडता और मन प्रश्नों से मुक्त नहीं होता।

पिता की एक अनुचित इच्छा की पूर्ति उनका धर्म क्यों है ? सत्यवती को उसकी इच्छा जाने बिना शान्तनु की पत्नी बनने के लिये देवव्रत को सौंप देने का दासराज को क्या अधिकार था ? धर्म क्या है ? अधिकार क्या है ? स्थापित अधिकार को चुप चाप मान लेना धर्म है या अधिकार के औचित्य का प्रश्न उठाना धर्म है ? धर्म की गति अति सूक्ष्म है तो फिर वे क्या कर रहे हैं ?

सत्यवती ने पहली बार दृष्टि उठा कर देवव्रत को देखने का प्रयत्न किया कि यह कौन पुरुष है जो अपने जीवन का मूल्य देकर अपने वृद्ध पिता का सुख खरीदकर ले जा रहा है। सत्यवती मन ही मन विचार कर रही है कि बाबा दासराज ने विदा होने से पहले कहा था पुत्री नींव तो मैंने डाल दी है पर उस पर महल खडा करने का काम तो यथा समय पर तेरा ही है। स्वयं अपने आप पर भरोसा रखना और किसी पर पूरा भरोसा भी मत करना। संसार में न सज्जनों का अभाव है, न दुष्टों का। न जाने देवव्रत ने किस सुख के प्रलोभन में ऐसे त्याग की प्रतिज्ञाये की ? बस तुम अपने अधिकार को मत छोडना। मछलियों के बीच रहते-रहते उसके अंगों से भी मछली की गन्ध आने लगी, वह स्वयं अपने आपको मत्स्य गन्धा मानने लगी। बाबा ने धमार्थ नाव पट पार कराने का काम सौंपा। सत्यवती अपने अतीत को याद कर रही थी और रथ शिबिर की ओर बढते जा रहा था।

सत्यवती ने कहा रथ रुकवाओ पुत्र कुछ समय के लिये। तब देवव्रत बोले अवश्य माते। सारथी रथ रोको। क्या बात है देवि ? सत्यवती बोली हस्तिनापुर पहुंचने के बाद मैं तुम्हारी मां हो जाऊंगी बाद में वो करना सम्भव नहीं होगा जो मैं करना चाहती हूं। मां तो आप अब भी है परन्तु वो कौनसा ऐसा कार्य है जो मां बनने के पश्चात आपके लिये सम्भव नहीं होगा देवव्रत बोले। सत्यवती ने कहा मैं तुम्हारे चरण स्पर्श करना चाहती हूं। देवव्रत बोल उठे, नहीं माते। मां पुत्र के चरण छुये यह तो अनर्थ हो गया होता। आपका यह पुत्र आपके रथ और मनोरथ दोनों का सारथी है। सत्यवती बोली, अब तुम जैसे पुत्र कभी पैदा नहीं होंगे कभी नहीं।

दासियों ने कहा स्वामिनी रथ रुक गया है थोडा विश्राम कर लें। सेवकों ने एक घने वृक्ष की छाया में बैठने के लिये आसन लगा दिया और पीने के लिये जल और खाने के लिये फल भेंट कर दिये। देवव्रत के मुख से अपने लिये माता का सम्बोधन की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। युवराज देवव्रत वय की दृष्टि से सत्यवती से बडे थे पर सम्बन्ध की दृष्टि से सत्यवती देवव्रत के पिता की पत्नी होने जा रही है तो देवव्रत पुत्र ही होगा। सत्यवती एक साधारण निषाद कन्या ही तो थी। उसे राज प्रसादों के आचार-विचार अभी तक कहां मालूम थे। शिष्ट लोगों की शालीनता का कहां ज्ञान था। उनकी संस्कृति से पूर्णतया अनभिज्ञ थी। सत्यवती ने अपने जीवन में पाठशाला या गुरुकुल कभी देखा भी नहीं था। न ही उसकी भाषा में शालीनता थी। कुरु राज्य के युवराज देवव्रत की राजसी वेशभूषा, राजसी व्यवहार, राजसी वैभव को देख कर सत्यवती फिर सोचने को मजबूर हो जाती है। देवव्रत अब युवराज कहां रहे ? यह रथ, यह किरीट, ये आभूषण, ये राजसी वेष और यह राजसी ठाठ-बाट यह सब तो अब सत्यवती की भावी सन्तान का है। देवव्रत तो मात्र इसे ढो ही रहे है जब तक सत्यवती की सन्तान जन्म नहीं लेती।

थोडी देर विश्राम कर यात्रा पुन: आरम्भ हुई। रथ हस्तिनापुर की ओर बढते चला जा रहा था। सत्यवती का ध्यान सहसा बहिर्मुखी हुआ। हस्तिनापुर का नगर द्वार दिखाई पडने लगा। सत्यवती बोली लग रहा है हस्तिनापुर आ गया। सत्यवती का मन अपने मन के अतीत के विस्तार को समेटने में लग गया। इस समय वर्तमान बहुत महत्वपूर्ण था। दास राज का अपनी पोष्य पुत्री को क्षत्रिय राजा से ब्याहने का स्वप्न पूरा होने जा रहा है लेकिन सत्यवती के लिये तो वर्तमान का प्रत्येक क्षण एक चुनौती था। प्रत्येक निमिष उसकी परीक्षा ले रहा था। जाने कैसी कैसी अपेक्षायें थी उसे। जाने कुरुकुल की महारानी बनकर क्या क्या करेगी। देवव्रत उसका एक बहुत बडा मूल्य देकर उसको लाये थे।

शान्तनु अपने महल में अपने कक्ष में चिंतित हैं कि देवव्रत बिना बताये कहां चला गया और अभी तक लौटा नहीं है। सबसे पूछ-ताछ की और कहा यह तो बडे ही आश्चर्य की बात है युवराज है कहां ? किसको कुछ पता ही नहीं है ? इससे पहले तो देवव्रत ने ऐसा कभी नहीं किया।

सहसा रथ आकर रूक गया। द्वार के सैनिकों ने झुककर प्रणाम किया। सैनिक अपने युवराज को देखकर कितने प्रसन्न थे। लोगों के मन में कितना स्नेह था देवव्रत के प्रति। देवव्रत ने आकर हाथ जोडकर निवेदन किया माता पधारे यह आपका राजमहल है और यह आपके महाराज का कक्ष। अब सब कुछ देवव्रत पर ही निर्भर है। सत्यवती का मन कह रहा था वही उसका सबसे बडा सहायक भी हो सकता और वही सबसे बडा विरोधी। वह देवव्रत की विरोधी बनकर आई उसके प्रत्येक अधिकार और सुख-सुविधा से वंचित करने।

देवव्रत सत्यवती को महाराज के कक्ष में ले आया और बोला देखिये महाराज। माता सत्यवती पधारिये महाराज के कक्ष में। सत्यवती को अपने कक्ष में देखकर सहसा महाराज शान्तनु चौंके। देवव्रत बोले- आप अकारण ही संकोच कर रहे थे महाराज। आपको मेरी ओर से दासराज को वचन देने का पूरा अधिकार था कि सत्यवती का ज्येष्ठ पुत्र राज्य करेगा। शान्तनु बोले परन्तु पुत्र। देवव्रत बोले मैं हस्तिनापुर के राज सिंहासन का पुत्र नहीं हूं, आपका पुत्र हूं महाराज। आपके सुख की सेवा करना मेरा परम कर्तव्य है और इसीलिये इस कर्तव्य के पालन करने के लिये मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली है। शान्तनु बोले-

नहीं, नहीं पुत्र। इतनी भयंकर प्रतिज्ञा भीषण प्रतिज्ञा। नहीं देवव्रत, नहीं देवव्रत। देवव्रत बोले भूल जायें पिताश्री, भूल जायें। शान्तनु बोले- कैसे भूल जाऊं पुत्र कि तुमने मेरे सुखों के लिये अपने जीवन के सारे सर्वस्व सुखों का त्याग कर दिया। देवव्रत बोले परन्तु पिता महाराज आपके आनन्द में ही तो मेरे जीवन के सारे सुख है। शान्तनु बोले, परन्तु मैं यह कैसे भूल सकता हूं कि राजगद्दी के विषय में भरत वंश के शकुन्तला पुत्र महाराज भरत से ही यह परम्परा मिली है कि राजगद्दी का अधिकार जन्म से नहीं कर्म से है। परन्तु जो अभी तक जन्मा ही नहीं है उसका कर्म क्या ? देवव्रत बोले, परन्तु राजा का एक कर्तव्य यह भी है महाराज कि वह अपनी प्रजा के अधिकारों की रक्षा करें।

शान्तनु बोले, राजा का यह कर्तव्य तो अवश्य है परन्तु, पुत्र मैंने अपने कौन से अधिकार की रक्षा नहीं की? देवव्रत बोले मेरे पिताश्री आप मेरे ही अधिकार की रक्षा नहीं कर रहे हैं ? शान्तनु बोले, यह क्या कह रहे हो तुम पुत्र ? देवव्रत ने कहा पिता महाराज आप मेरे वचन देने के अधिकार की ही रक्षा नहीं कर रहे है। शान्तनु बोले पुत्र तुमने तो मुझे निरूत्तर कर दिया अब इसके आगे अब मैं क्या कहूँ। तुमने तो वो किया है जिसे सारा संसार याद करेगा। इसके लिये तुम्हारा पिता तुम्हें आशीर्वाद देता है कि **सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति के चौराहे पर खडा यह शान्तनु तुम्हे यह वरदान देता है कि जब तक तुम स्वयं इच्छा नहीं करोगे तब तक तुम इस लोक को नहीं त्यागोगे। पुत्र तुम्हारा यह भीष्म नाम अमर होगा। जब तुम चाहोगे जीओगे और मृत्यु भी तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हारे पास नहीं आयेगी। यह तुम्हें मेरा इच्छा मृत्यु वरदान है।** मै तुम्हें प्रकृति के नियमों से तो मुक्त नहीं कर सकता पुत्र किन्तु तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा से स्वेच्छा मुक्ति का वरदान दे रहा हूं। बन्धन तुम्हारा अपना है मेरी ओर से कोई बाध्यता नहीं है। देवव्रत बोले माते, पिताश्री को समझाइये कि मेरे साथ चाहे न्याय हुआ हो या अन्याय वो स्वयं मैंने ही किया है इसके लिये आप मन में ग्लानि मत करिये। सत्यवती बोली, देवव्रत को हम आज से भीष्म कहेंगे आर्य पुत्र। शान्तनु बोले, हम ही नहीं पूरी त्रिलोकी भी उसे भीष्म के नाम से पुकारेगा और भीष्म के नाम से ही जानेगा। भीष्म का यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु मन ही मन बहुत प्रसन्न हुये।

शान्तनु बडी कठिनाई से बोले, गांगेय जो प्रतिज्ञा तुमने की है वह कठिन ही नहीं असाधारण और असम्भव प्रतिज्ञा है वत्स। तुमने भीषण कर्म किया है। तुम जैसे पुरुष को मैं तो क्या कोई भी तुम्हे क्या दे सकता है पुत्र। मुझे लगता है कि तुम्हारा जन्म किसी से कुछ लेने के लिये हुआ ही नहीं है। तुम आजीवन देते रहोगे। लोक याचक होंगे और तुम दाता होगे। जीवन तुमको कभी कुछ नहीं देगा, तुमसे पायेगा ही पायेगा। मैंने तुम्हे कभी पहचाना ही नहीं पुत्र। आज तुम्हारे व्यक्तित्व का एक स्फुलिंग देखा है। भीष्म बोले मैंने तो मात्र एक पुत्र का धर्म निभाया है महाराज। शान्तनु बोले तुमसा पुत्र पाने की कामना प्रत्येक पिता करेगा। तुमसा पुत्र पाकर पिता पुत्र पर ही गर्व करने योग्य रह जाता है, स्वयं अपने आप पर गर्व करने का साहस वह नहीं कर पायेगा। पुत्र यह मेरी कामना थी याचना नहीं और कामना एक व्यक्तिगत विषय है वह जब तक सामाजिक विषय नहीं बनती और जब तक वह कर्म में परिणत न हो जाये। कर्म पर समाज का नियन्त्रण है, कामना पर नहीं पुत्र। कामना की कोई सीमा नहीं है इसलिये उस पर कोई बन्धन नहीं है किन्तु कर्म के साथ ऐसा नहीं है। मैंने अपने कर्मों के माध्यम से नहीं तुम्हारे कर्म के माध्यम से स्वयं को जाना है। मुझे लगता है मेरे अन्दर एक अन्धी कामना है जो जाग्रत विवेक से बन्धी है। वह कामना सामाजिक या मानवीय नहीं है वह तो केवल एक शुद्ध पशु जगत की कामना है। उसकी कोई सीमा नहीं, मर्यादा नहीं। उसके लिये कोई समाज नहीं, बन्धन नहीं लेकिन मेरा विवेक जाग्रत है वह सामाजिक भी है और मानवीय भी। वह मर्यादा भी जानता है और इस अन्धी कामना को भी पहचानता है। मेरे विवेक ने मुझे पग-पग पर अपनी मर्यादायें समझायी। मुझे चाहे कितनी ही पीडा रही हो, मैंने गंगा को उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी भी अपने सुख के लिये बाध्य नहीं किया और न ही कभी रोका। मेरी सामर्थ्य राजा के होते हुये भी सत्यवती को कभी बलात प्राप्त करना नहीं चाहा। अधिकार होने पर भी मैंने तुम्हे वंचित कर सत्यवती को प्राप्त नहीं

किया पुत्र। आज तुम्हारे दान ने तुम्हे ऊंचा उठा दिया है वत्स। याचक होने के कारण मैं पिता के स्तर से नीचे आ गया हूं। इसलिये सम धरातल पर ही तुमसे यह सब कह पा रहा हूं। कर्म के धरातल पर मैंने कुछ भी कलुषित कृत्य नहीं किया। विवेक की मर्यादा में आबद्ध मैंने अपने कर्म को कभी कलंकित नहीं किया। पर तुम्हारे इस कर्म फल से मैं पुन: कर्म बंधन में बन्ध रहा हूं। काम सदा से ही विवेक के लिये मादक है। जब तक काम का आधिपत्य है, विवेक निश्चेष्ट रहता है। जब काम का ज्वर उतर जाता है तो विवेक बताता है कि यह व्यवहार, कामना, यह चिन्तन सब जैसे उन्मत के स्वप्न है। मैंने कभी नही माना कि काम जीवन का श्रेय है। काम मेरी दुर्बलता है, बाध्यता है। मेरा विवेक आज भी मुझे सावधान कर रहा है परन्तु तुम्हारे कर्म फल को ग्रहण करने का लोभ मैं संवर नहीं कर पा रहा हूं। उसे स्वीकार कर रहा हूं। कर्म तुम्हारा है, स्वीकृति मेरी है। यह तो नहीं कह सकता कि यह कर्म बन्धन कितना तुम्हे बांधेगा और कितना मुझे।

भीष्म बोले महाराज मैंने तो स्वयं को कर्म बन्धनों से मुक्त होने के लिये यह सब किया है। अब मैं न तो विवाह करूंगा, न पत्नी होगी और न ही सन्तति। इससे तो कर्म का मार्ग बन्द हो गया फिर कैसा बन्धन ? शान्तनु बोले उसका विचार करने का समय अभी नहीं आया है पुत्र। मेरी इच्छा है कि तुमने मुक्त होने के लिये कर्म किया है तो तुम्हें मुक्ति मिले। कर्म का फल मेरी इच्छा के अधीन नहीं है, सृष्टि के नियमों से मिलता है।

भीष्म यह कितना श्रेष्ठ नाम उसके कर्तृत्व का गौरव बढ़ानेवाला और उसके साथ जुडा अनेकों उत्तरदायित्व के प्रकरण ये सब तो अब आगे आनेवाला समय ही बतायेगा। वर्तमान में तो भीष्म की यह आजीवन ब्रह्मचर्य की भीषण प्रतिज्ञा उसके व्यक्तित्व को अन्दर-बाहर से प्रकाशित कर रही है। दासराज ने इसका गौरव किया, पिता शान्तनु से इच्छा मृत्यु का वरदान, भीष्म प्रतिज्ञा इन सबका विचार कर भीष्म के मन में अपनी माता गंगा का मत जानने की उत्कंठा हुई। वे गंगा तीर पर गये और गंगा जाकर गंगा को प्रणाम किया। देखते-देखते ही लहरों में से निकल कर गंगा वहां प्रकट हो गई। भीष्म के चिन्तन का प्रवाह चल रहा था। गंगा को देखते ही भीष्म ने गंगा को प्रणाम कर बोले प्रणाम माते। गंगा ने भी आयुष्मान भव होने का आशीर्वाद दिया।

भीष्म बोले, आपका स्मरण हो आया माते। आपसे बात करने को जी चाहा। गंगा बोली कहो वत्स। भीष्म ने कहा, मैंने जो कुछ किया वह ठीक किया ना माते ? गंगा ने कहा तुम अधर्म तो कर ही नहीं सकते पुत्र। तुम्हारा जन्म ही हुआ है इस धरती पर धर्म का नाम बढाने के लिये। प्रतिज्ञा शब्द को वास्तविक अर्थ देकर तुमने कृतार्थ किया है पुत्र। जो तुमने किया है वो एक साधारण मानव या देव नहीं कर सकता पुत्र। मैं तुम्हारी मां हूं पुत्र। ऐसे निस्वार्थ परोपकारी पुत्र की माता होने का मुझे गर्व है मैं तुम्हे पाकर धन्य हो गई। भीष्म बोले, माते आपका आशीर्वाद चाहिये। गंगा बोली मेरा आशीर्वाद तो सदा ही तुम्हारे साथ है पुत्र, परन्तु तुमने जो किया वह करना भी चाहिये था। भीष्म बोले, तो फिर अब मेरे लिये क्या आदेश है माते ? गंगा बोली तुम आदेशों से ऊपर हो। तुम उनमें से नहीं हो जो कर्तव्यों का पालन कर लेने के लिये जन्म लेते है। तुम तो वो हो पुत्र जो धर्म का पालन करने के लिये ही जन्म लेते है। तुम्हारा कल्याण हो यह कह कर गंगा वहां से अन्तर्ध्यान हो गई। भीष्म ने उन्हे प्रणाम किया। बार-बार माता के शब्दों का स्मरण करते हुये भीष्म राजमहल में लौट आये।

राजमहल में सत्यवती और शान्तनु अपने कक्ष के गवाक्ष में खडे है। सत्यवती चांद की ओर देख रही है तथा मन से खिन्न महसूस कर रही है। राजा अपनी नव वधू के पास खडे हाथ से उसके कन्धे को स्पर्श कर रहे हैं। सत्यवती को राजा के हाथ का स्पर्श कठोर लगा जैसे कोई बिच्छू शरीर को डंक मार रहा हो। सत्यवती के मन में आया कि राजा का हाथ झटक दे। शान्तनु ने पूछा प्रिये ये चांदनी रात, ये चन्द्रमा को क्या देख रही हो ? सत्यवती बोली, क्षमा मांग रही हूं। मैं अपने आपको अपराधी मान रही हूं आर्य। मेरा सौन्दर्य ही तो आपके जीवन का ग्रहण बन गया आर्य। न मैं सुन्दर होती और न ही भीष्म के साथ इतना बडा अन्याय होता। यह सब मेरे कारण हुआ महाराज। शान्तनु महाराज तो यह सब भूलकर अपनी पत्नी के साथ प्रेमालाप करने के

इच्छुक हो रहे थे पर सत्यवती तो कुछ और ही सोच रही थी। बार-बार सत्यवती का मन भीष्म के लिये कचौट रहा था। शान्तनु बोले एक ही बात और विचार को बार-बार स्मरण करने से जीवन जीना असम्भव हो जाता है सत्या। इस विचार को मन से निकाल दो। यदि मनुष्य यह सब सोचने लग जाये तो जीवन जीना असम्भव हो जायेगा। सत्यवती बोली परन्तु सत्य तो यही है महाराज। शान्तनु बोले, नहीं यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि यह सब भाग्य रेखाओं का जाल है। मनुष्य मछली की तरह उनमें फंसते जाता है और विवश हो जाता है। यदि वो उनमें फंसना नहीं चाहता तो भी यह उसके वश में नहीं है। मुझे याद आता है जब गंगा ने मेरे इस आठवें पुत्र को गंगा में बहाना चाहा तो मैं चुप न रह सका। दिया हुआ वचन तोड कर कारण पूछ ही लिया। तब गंगा ने कहा था कि मेरे आठों पुत्र वसु थे पर यह आठवाँ पुत्र जिसे शापवश इसे पृथ्वीपर जन्म लेना पडा परन्तु लगता है इस आठवें वसु का श्राप अभी पूरा नहीं हुआ है नहीं तो आप यह दिया हुआ वचन नहीं तोडते। यह कहने का तात्पर्य यह है कि देवी भीष्म की भाग्य रेखा तो हम दोनों से बहुत पहले से खींची चली आ रही है। हम तो सिर्फ एक निमित्त मात्र है। यदि हम नहीं भी होते तो भी भीष्म की अपनी भाग्य रेखा को तो दूसरे छोर तक जाना ही है। यदि हम एक-दूसरे से न भी मिले होते तो भी यह होना ही था। भीष्म की भाग्य रेखा अपने मिलन, हमारे इस प्रेम की रेखा के पहले ही लिखी जा चुकी है। यह सब जो कुछ हो रहा है ये सब भाग्य के अधीन हो रहा है। शान्तनु ने जो कुछ कहा वह सब सत्यवती को मान्य नहीं हुआ। सत्यवती बोली क्या आपकी अन्तरात्मा इसे मानती है आर्यपुत्र। मैंने काल का क्या बिगाडा था जिसने मुझे कटार बनाकर भीष्म की इस इच्छा के लिये उतार दिया। मेरे हाथ से ही भीष्म के साथ घोर अन्याय हुआ। शान्तनु बोले, देवि तुम यह क्यों नहीं सोचती कि हमें भीष्म जैसा तेजस्वी, महान, शूर-वीर गंगा पुत्र मिला। ऐसे पुत्र की माता होने का तुम्हे गौरव और अभिमान होना चाहिये। आप अन्यथा और कोई विचार न करे।

सत्यवती बोली परन्तु यह भीष्म का दुर्भाग्य ही है जिसे सत्यवती जैसी माता मिली जो अत्यन्त ही निष्ठुर, कठोर, स्वार्थी और दुष्ट है। यह सुनकर शान्तनु थोडे अस्वस्थ हो गये और बोले नहीं देवी ऐसा मत कहो। अपने स्वार्थ के लिये भीष्म और हस्तिनापुर पर अन्याय हुआ ऐसा कहकर पुराने जख्मों को ताजा मत करो। इस प्रकार उसके माता-पिता का अपमान तो मत करो। सत्यवती बोली, तो क्या यह न कहकर मैं उसका मान करती रहूँ। शान्तनु बोले, देवि यदि कोई दोषी है तो मैं हूं क्योंकि जब उसने प्रतिज्ञा की थी उस समय तुम उसकी मां नहीं थी परन्तु मैं तब भी उसका पिता था और पिता होकर पुत्र को अनुचित कार्य व घटना को रोक देना मेरा कर्तव्य ही था। पर मैं ऐसा कर नहीं सका कारण समय ने ऐसा करने का अवसर ही प्रदान नहीं किया। जिस समय भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की मुझे मालूम भी नहीं था और न मैं वहां उपस्थित था। फिर भी जो कुछ हुआ उस कारण के लिये कोई भी उत्तरदायी नहीं है और आप तो इसमें दोषी है ही नहीं। यह सब जो कुछ हुआ वह भाग्य और समय की देन है।

शादी के पश्चात अपनी नववधू के साथ महाराज आमोद-प्रमोद और भोग विलास में रत रहना चाहते थे। पर सत्यवती की बढती हुई अधिकारों की महत्वाकांक्षाये धीरे-धीरे उनके दाम्पत्य जीवन में ग्रहण लगाने लगी, विष घोलने लगी। जीवन में माधुर्यरस के बदले खट्टास आने लगा। मत मतान्तर बढने लगे। सत्यवती के मन में भीष्म के जीवन की सार सर्व की आहूति लगी उसके लिये वो अपने को उत्तरदायी मानने लगी। अब भीष्म उसके मन का शूल बन गया।

१०) शान्तनु का राजदरबार

समय बीतते गया। शान्तनु महाराज और सत्यवती का यह दु:ख व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं रहा। इस दु:ख का सम्बन्ध हस्तिनापुर राज्य से जुड गया। कारण भीष्म की इस प्रतिज्ञा से हस्तिनापुर को प्राप्त हुआ युवराज छीन लिया गया। यह प्रतिज्ञा अभी तक हस्तिनापुर निवासियों को मालूम नहीं थी। पर राजदरबार में युवराज होते हुये प्रतिदिन हस्तिनापुर के युवराज का सिंहासन रिक्त हो गया। लोगों के मन में अनेक प्रश्न उठने लगे। देवव्रत के होते हुये युवराज आसन रिक्त क्यों है ? देवी

सत्यवती के साथ विवाह होने के पश्चात क्या महाराज का मन या विचार बदल गया है ? अगर ऐसा है तो महाराज का इस तरह करना कहां तक उचित है ? अपने युवराज के विषय में हस्तिनापुर की प्रजा को उनकी शंका और कुशंका के लिये महाराज से सही-सही उत्तर चाहिये थे इसके लिये एक विशेष राजसभा का आयोजन किया गया।

अपने वर्तमान के लिये हस्तिनापुर का पक्ष शिराओं में बंटने लग गया। दूसरे दिन राज दरबार लगा। राजदरबार में सभी राजदरबारी, सर्व सभासद उपस्थित थे। इतने में ही महाराज ने अपने पुत्र भीष्म सहित राज दरबार में प्रवेश किया। सभी ने उठकर महाराज की मान वन्दना स्वागत किया। आसन ग्रहण कर महाराज ने सभी को बैठने का संकेत किया और राजगुरु से पूछा कोई विशेष आपत्ति राजगुरु? इस विशेष राज सभा बुलाने का प्रयोजन ?

राजगुरु शरद्वान ने खडे होकर पूछा युवराज का स्थान रिक्त क्यों है राजन ? मन्त्री बोले, यह स्थान उस समय तक रिक्त रहेगा जब तक कि रानी सत्यवती किसी कुमार को जन्म नहीं दे दे। राजगुरु ने पूछा यह वचन किसने दिया है महामन्त्री? मन्त्री बोले, महाराज के सिवा यह वचन कौन दे सकता है राजगुरु ? राजगुरु बोले, महाराज को यह अधिकार किसने दिया है महामन्त्री? मन्त्री बोले, महाराज को यह अधिकार देनेवाला कौन हो सकता है राजगुरु ? राजा के पास तो सर्व अधिकार है ही। अब राजगुरु तमक गये और बोले क्यों क्या हस्तिनापुर का साम्राज्य व इसकी भूमि क्या महाराज की है ? राजन क्या तुम भूल गये कि तुम विधि पति नहीं प्रतिनिधि हो। विधिपति तो एक ईश्वर ही है इसलिये यह निर्णय लेने का तुम्हे अधिकार ही नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूं कि महाराज ने युवराज देवव्रत में क्या खोट पाया जो महाराज हस्तिनापुर को नया युवराज देने का निर्णय कर बैठे। यदि महाराज ने युवराज देवव्रत में कोई अवगुण देखा भी है तो महाराज ने उस नये युवराज में ऐसा कौनसा गुण देख लिया जो अभी तक जन्मा ही नहीं और न अभी तक गर्भ में ही आया ? महामन्त्री बोले, क्या प्रजा को राजा से यह प्रश्न करने का अधिकार है राजगुरु ? राजगुरु बोले प्रजा को राजा से कोई भी प्रश्न पूछने का अधिकार है महामन्त्री। राजा सिर्फ लोक प्रतिनिधि होता है। नया पैदा होनेवाला कुमार भविष्य में युवराज होने योग्य है या नहीं, प्रजा उसे स्वीकार करेगी या नहीं ? बिना प्रजा का मत जाने महाराज का यह निर्णय सांगोपांग व उचित नहीं है। क्या महाराज शान्तनु यह नहीं जानते कि हस्तिनापुर साम्राज्य महाराज का व्यक्तिगत नहीं बल्कि प्रजा की धरोहर है। इस प्रकार राजगुरु ने एक के पीछे एक प्रश्नों की झडी लगा दी। शान्तनु महाराज प्रश्नों को सुनकर कोई उत्तर नहीं दे सके और लज्जा से सिर नीचे किये बैठे रहे।

राजगुरु के कोई भी प्रश्नों का उत्तर देने पिताश्री असमर्थ हैं यह जानकर भीष्म उठ खडे हुये और बोले, यदि आज्ञा हो तो ज्ञानमूर्ति, राजगुरु के प्रश्नों का उत्तर मैं दूं महाराज। राजगुरु बोले, मुझे उत्तर नहीं न्याय चाहिये युवराज। देवव्रत बोले, आप समय की बात न करें राजगुरु, क्योंकि समय केवल साक्षी होता है। कर्म की बात करें क्योंकि कर्म स्वयं हमारे अपने होते है और अपने-अपने कर्मों के लिये हम स्वयं उत्तरदायी होते है, क्या यह सत्य नहीं है राजगुरु ? राजगुरु बोले- सत्य तो यही है युवराज। देवव्रत बोले, तो फिर आप मेरे कर्मों के लिये पिता महाराज को उत्तरदायी कैसे मान सकते है राजगुरु ? महाराज ने तो महारानी सत्यवती या दासराज को कोई वचन ही नहीं दिया राजगुरु। हां यदि वे मुझे अपने कर्तव्य पालन करने से रोक देते तो भी वे ही अन्यायी ही कहे जाते। उन्होंने तो दासराज से यह कहकर कि मुझे वे युवराज घोषित कर चुके है और उन्होंने तो अपने कर्तव्य का पालन कर दिया। महाराज ने तो दासराज से यह भी कहा था कि उन्हे तो निर्णय बदलने का अधिकार ही नहीं है। दासराज को तो यह वचन मैंने दिया था राजगुरु कि महारानी सत्यवती का ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का युवराज होगा और राज्य करेगा। यह वचन देकर मैंने अपने कर्तव्य का पालन ही किया है। राजगुरु बोले, परन्तु तुमने ऐसा क्यों किया युवराज ? भीष्म बोले, मैंने यह इसलिये किया कि कोई दुःखी राजा प्रजा को क्या सुखी कर पायेगा राजगुरु। राजगुरु बोले, तो फिर इसका दायित्व किस पर होगा कि महारानी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाला कुमार इस सिंहासन के योग्य ही होगा ? देवव्रत बोले, यह तो हस्तिनापुर की भाग्यरेखा देखकर आप ही बतला सकते है राजगुरु। परन्तु यदि भीष्म के वचन का कोई मूल्य है तो मैं प्रतिज्ञा कर

के कहता हूं **मैं हस्तिनापुर को आज यह वचन देता हूँ कि जो कोई भी इस हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर विराजमान होगा उसमें यह गंगा पुत्र अपने पिता की छवि देखेगा और आजीवन उसकी सेवा करेगा। आजीवन हस्तिनापुर की निष्ठा से बन्धा रहेगा।** राजगुरु व सभी प्रजा जन भीष्म की यह प्रतिज्ञा सुनकर आश्चर्य चकित हो भीष्म भीष्म कहकर पुकारने लगे। राजा या राज्य की अभिलाषा न करते हुये सिर्फ राज्य की सेवा करने का व्रत भीष्म ने लिया। यह प्रतिज्ञा भी कोई साधारण प्रतिज्ञा नहीं थी अर्थात भीष्म अब एक और वचन बद्ध हो गये। भीष्म के कृत से शान्तनु और प्रभावित होते गये तथा हस्तिनापुर की दृष्टि में भीष्म का गौरव और बढ गया।

कर्तव्य पालन के लिये ही तेरा जन्म हुआ इस प्रकार गंगा का बोलना बार-बार भीष्म को स्मरण करा रहा था। भीष्म के लिये वर्तमान में कर्तव्य अपनी माता-पिता की सेवा करना, उनको सुखी करना यही था जो उन्होंने किया और आगे भी वही कर रहे थे। उन्होंने जो त्याग किया वे अपने माता-पिता को सुख पहुंचाने के लिये किया अपने लिये नहीं। उनके सुख में ही अपना सुख खोज रहे थे। उनके सुख को ही अपना सुख मान रहे थे परन्तु सब कुछ अपने मन के जैसा चाहने जैसा नहीं होता है। पिता चिन्ता ग्रस्त है यह देखकर जानकर भीष्म स्वयं चिंतित हो गये।

भीष्म ने अपने पिताश्री को उनकी चिन्ता का कारण पूछा। जैसे गुनहगार अपना गुनाह स्वीकार कर लेता है वैसे ही अपने को दोषी सभी घटनाओं का दोषी मान कर शान्तनु ने भीष्म से कहा पुत्र मुझे सुख मिले इसलिये तुमने अपने सुखों को दु:खों की खाई में ढकेल दिया। सब प्रकार से तू योग्य युवराज है यह जान कर भी तेरा अधिकार छीनकर अब तक न जन्मे हुये पुत्र को दे दिया जो युवराज पद के लिये योग्य है या नहीं इसका भी कोई विचार नहीं किया। कुरु वंश की परम्परा का मान नहीं रखकर यह निर्णय कर मैंने भरतवंश का घोर अपमान किया है पुत्र। इस प्रकार अपने दोषों को बखान कर शान्तनु चुप हो गये और आत्म ग्लानि से भर गये। अपने पिता को दु:खी देखकर भीष्म सहन नहीं कर सके और पिताश्री किसी तरह इस दु:ख और चिन्ता से मुक्त हो इसके लिये भीष्म अपने पिता को समझा कर बोले यदि प्रतिज्ञा करने का आदेश आप स्वयं मुझे देते तो आप इसके लिये उत्तरदायी होते परन्तु यह प्रतिज्ञा तो मैंने स्वयं करी है इसके लिये भविष्य में इसके होनेवाले परिणामों का उत्तरदायी तो मैं हूं। इसके लिये आप क्यों चिंतित है और उदास है ? इससे दु:ख मानने का तो कोई कारण ही नहीं है ? हमेशा पिता ही पुत्र के भले के लिये विचार करे और उसके लिये अपना कर्तव्य निभाये ऐसा क्यों ? सिर्फ पिता की ही जवाबदारी है क्या ? पुत्र का अपने पिता के लिये कोई कर्तव्य नहीं है क्या ? मैंने तो अपने कर्तव्य का पालन किया है पिताश्री। मैंने तो पिता की इच्छा का सम्मान करने के लिये हस्तिनापुर राज सिंहासन का त्याग किया है सिर्फ। इतना स्पष्टीकरण देने के बाद भी शान्तनु के मन को सन्तोष नहीं हुआ। हो गये प्रकरण का पूरा दोष अपने को देते हुये क्षोभ से भरे शान्तनु फिर बोले यदि भावी युवराज राज सिंहासन के योग्य नहीं हुआ तो राज्य की स्थिति क्या होगी पुत्र ?

तब भीष्म फिर बोले, **जीवनभर हस्तिनापुर के राज सिंहासन और कुरु वंश की सेवा करता रहूंगा इतना ही नहीं यह राज सिंहासन निर्भिक होने तक, सब प्रकार से सुरक्षित कर जब तक मेरी सेवा की आवश्यकता कुरु वंश की पीढी के राजाओं को रहेगी और राज्य सर्व प्रकार से सुरक्षित है इसप्रकार का भरोसा विश्वास होनेपर ही इच्छा मृत्यु का वरण करूंगा। इस मृत्युलोक में इस राज्य की अविरत सेवा करता रहूंगा महाराज।** इस प्रकार का वचन भीष्म ने महाराज शान्तनु को दिया।

११) सत्यवती और शान्तनु का दाम्पत्य जीवन

शान्तनु सत्यवती को अपनी पत्नी बनाकर उसके साथ रमण करने लगे। सत्यवती का मन कुंठाओं से भरा हुआ था। वह राजमहल और राजाओं के तौर तरीकों से अनभिज्ञ थी। शान्तनु अपनी पत्नी सत्यवती से बोले मैं कैसा अभागा हूं ? मेरी कामना और कर्म में सन्तुलन नहीं है। मेरी कामना का अतिरेक इतना प्रचंड है कि उसका कोई तर्क और विवेक नहीं रह जाता और मेरा

कर्म बहुत भावुक, न्यायी और तर्कशील है। तुम मेरी जीवन संगिनी हो पर मेरे दुर्भाग्य को समझ नहीं पा रही हो ? जिस स्त्री की मैंने अपनी पहली पत्नी के रूप में आकांक्षा की वह मुझे मिली तो सही परन्तु उससे दाम्पत्य सुख नहीं मिला। अब दूसरी पत्नी जिसकी मैंने आकांक्षा की वह भी मिल गयी किन्तु उसे मैं दाम्पत्य सुख नहीं दे पा रहा हूं। सत्यवती अचकचा कर बोली ऐसा क्यों कहते है महाराज ? शान्तनु बोले- तुम नहीं समझती हो सत्या। हमारे वय का जो अन्तर है यद्यपि काम इच्छा मुझ में अब भी कोई कम नहीं है। तुम्हें देखकर मैं विह्वल भी हो जाता हूं। तुम्हें पाकर मैं प्रसन्न भी बहुत हूं। किन्तु मैं यह नहीं भूल सकता कि उम्र में मैं तुमसे बहुत बडा हूं तुम्हारी इस जवानी के सामने मैं प्राय: वृद्ध हूं। मेरा विवेक नहीं कहता कि मैं तुम्हारे लिये उपयुक्त वर हूं और मेरे लिये तुम उपयुक्त पत्नी हो। यह तो मेरा पुरुष तुम्हारे स्त्री के प्रति सौन्दर्य से आसक्ति मात्र है। पति-पत्नी स्त्री-पुरुष ही नहीं होते वे तो उससे भी बहुत कुछ अधिक होते है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध तो अल्पकालीन है। पति-पत्नी का सम्बन्ध दीर्घकालीन होता है। पति-पत्नी सम्बन्ध में अनेक समझौते करने पडते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं होता। यदि कोई समझौता होता भी है तो दाम्पत्य सम्बन्धों की दृष्टि से होता है। यह सब मैं उस समय भी जानता था जिस समय मैंने तुम्हारे पिता से तुम्हारी याचना की थी। इसीलिये मैंने तुम्हारे पिता की कोई शर्ते नहीं मानी। शर्ते अनुचित थी क्योंकि मेरी याचना ही अनुचित थी। मेरी इच्छा अनुचित थी पर उस पर मेरा कोई वश नहीं था किन्तु कर्म पर मेरा वश था इसलिये मैंने कोई भी मेरा कर्म अनुचित नहीं होने दिया। भीष्म ने मेरी इच्छा देखी और उसे प्रतिज्ञा कर पूरी की। जो कुछ उसने किया वह उसीके योग्य है। मैं यह भी नहीं जानता कि उसने जो कुछ किया वह हमारे लिये हितकर भी है या नहीं। हमारे लिये अर्थात मेरे लिये, भीष्म के लिये और तुम्हारे लिये। कई बार लगता है मुझे प्रकृति ने मनुष्य को पूर्ण बनाया है पर उसका नाश आवश्यक है अन्यथा तो वह अनश्वर हो जायेगा और उसके नाश के लिये प्रकृति ने मनुष्य में किसी न किसी एक अविवेकी इच्छा को स्थापित कर दिया है ताकि अपने नाश का दायित्व भी मनुष्य के अपने सिर पर ही रहे। मनुष्य के मन में जब इच्छाये जन्म लेती है तो वह यह नहीं जानता कि वे उसके लिये हितकर भी है कि नहीं। प्रकृति मनुष्य की सभी इच्छाओं को कभी पूरा नहीं करती। तब मनुष्य प्रकृति से रूष्ट होकर स्वयं कर्म करने को बाध्य होता है। कर्म का फल प्रकृति के अधीन नहीं है वह उसे रोक नहीं सकती तब अतीत का दायित्व भी मनुष्य के अपने कन्धों पर ही होता है। सत्यवती शान्तनु की बात का ठीक-ठीक से अभिप्राय नहीं समझ पायी। वे उसके वास्तविक और नैसर्गिक रूप में सत्यवती को उन्होंने उसके रूप पर आसक्त होकर चाहा था केवल बस रूप देखकर। उसे उन्होंने जीवन संगिनी के रूप में नहीं वस्तुत: उसे एक वस्तु के रूप में चाहा केवल भोग विलास के लिये।

इस वय में पुरुष धर्मपत्नी या जीवन संगिनी को पाने के लिये विवाह नहीं करता है अमुक्त काम के लिये। उसे पत्नी नहीं चाहिये उसे तो रमणी चाहिये जिससे वह जिन्दगी में रमण कर सके। रमणी में रूप का होना ही पर्याप्त है, अन्य गुणों की अपेक्षा नहीं की जाती।

सत्यवती के शरीर को यात्रा ने थका दिया था और मस्तिष्क को राजा की इन बातों ने। शान्तनु राजा नहीं उसके पति भी थे। शान्तनु ने सत्यवती को अपनी बाहों में भर लिया। शान्तनु सो रहे थे पर सत्यवती को बहुत देर तक नींद नहीं आ रही थी। थोडी देर पहले तक यह पुरुष उसके लिये अपरिचित था एक राजा, कुरुकुल का सम्राट। उससे बहुत धनी, सत्ता सम्पन्न विद्वान और महान। सत्यवती उसके सामने कुछ भी नहीं एक निर्धन केवट पुत्री जो कोई न विशेष शिक्षित, न ही राज परिवार के तौर तरीकों को, विधि-विधान को जाननेवाली पर इस सम्राट के भीतर बैठे पुरुष ने सत्यवती के नारी सौन्दर्य के सम्मुख अपने घुटने टेक दिये और अब सत्यवती शान्तनु के समान हो गयी उससे अधिक शक्तिशालिनी हो गई, शेरनी बन गई। सत्यवती के पास रूप और यौवन था शान्तनु उसके पीछे दुम हिला रहा था। पूर्णचन्द्र को देखकर सागर भी विह्वल हो उठता है। उसकी भी उत्ताल तरंगे चन्द्रमा को छूने को ऊंचाई पर उछलती है। बार-बार उच्चकती है उन लहरों पर भी काम ज्वर चढता है वैसे ही सत्यवती को देखकर शान्तनु भी

कामवश हो कामज्वर से प्रभावित होते हैं। शान्तनु कामज्वर के इतने अधीन हो सत्यवती के चरणों में सिर रख इतना दुर्बल हो जाता है कि उसकी आंख के संकेत पर पालतू कुत्तेकी तरह दुम दबाकर दौडता फिरता है और सत्यवती को अपनी शक्ति का आभास हो गया कि शान्तनु अब पूरी तरह से उसके शिकंजे में, बस में है और उससे जो चाहे अपना हित करवा सकती है।

सत्यवती उस रात अपने अतीत और चिन्तन में खो गई। तो क्या शान्तनु की रानी बनना उसके लिये हितकर था ? एक समवयस्क संबुद्धि और सजातीय वर उसके हित में नहीं था ? शायद नहीं बाबा दासराज के समान ही सत्यवती के मन में भी कहीं गहरे वैभव और सत्ता की भूख थी। प्रकृति ने उसे वही दिया जो सत्यवती ने चाहा था। कुछ पाने के लिये कुछ खोना भी पडता है, उसका मूल्य भी चुकाना पडता है। सत्यवती ने सुख-सुविधाओं के लिये अपने प्यार का मोल चुकाया है। प्रकृति ने उसकी इच्छा पूरी की या उसका हित साधा है। क्या उसकी इच्छा पूरी हुई या प्रकृति की ? सत्यवती कुछ भी समझ नहीं पा रही थी और द्वन्दों में खो गई।

कालान्तर में सत्यवती गर्भवती हो गई और उसने महाराज से पूछा हमारी सन्तानों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा कौन देगा महाराज? जिस तीव्रता से सत्यवती ने अपने आपको अपने नये वातावरण में ढाल लिया वास्तव में अद्‌भुत ही था। कोई ऐसा सत्यवती की वेशभूषा और रहन-सहन देख कर कोई विश्वास भी नहीं करेगा कि सत्यवती का जन्म राज परिवार में नहीं हुआ और उसका पालन-पोषण एक मछुवारे के घर में हुआ था। शान्तनु ने भीष्म से कहा था एक पुत्र का पिता सन्तानहीन व्यक्ति जैसा ही होता है। शान्तनु का मन भीष्म के आभार में इतना विगलित हो गया। शान्तनु अभी दूसरी सन्तान का मुख देखने की सम्भावना की विह्वल अवस्था से उभर नहीं पाये और सत्यवती अभी से उनकी शिक्षा दीक्षा तक पहुंच गयी।

सत्यवती बोली मेरी सन्तान शिक्षा ग्रहण करने ऋषि-मुनियों के आश्रमों में नहीं जायेगी। शान्तनु बोले क्या कह रही हो सत्यवती ? क्षत्रिय राजकुमार वनों में जाकर ऋषियों के शिष्यत्व में उनके ही आश्रम में रहकर विद्या ग्रहण करते है यही परिपाटी शुरू से चलती आ रही है महारानी।

सत्यवती कुछ उग्रता से बोली परिपाटी विधाता का कोई अन्तिम विधान तो नहीं है। परिपाटी को स्वीकार या अस्वीकार भी तो किया जा सकता है। उस विधान में संशोधन भी तो हो सकता है। हम नयी परिपाटी का निर्माण भी कर सकते हैं। यदि राजकुमार आश्रम तक जा सकता है तो फिर गुरु राजमहल तक क्यों नहीं आ सकता। मेरी सन्तान शिक्षा के लिये आश्रम में नहीं जायेगी। सफल और सुखी दाम्पत्य जीवन की सबसे बडी शर्त होती है कि पति और पत्नी दोनों एक-दूसरे की अपेक्षाओं को पूर्ण करे। सुखी दाम्पत्य जीवन प्यार और संवेदनाओं पर आधारित होता है। एक सफल जीवन साथी वही है जो अपने जीवन साथी की भावनाओं का सम्मान करे उसका ख्याल रखे, उसके प्रति उदासीनता न दिखाये और अपने प्यार से उसके जीवन में खुशियां ही खुशियां भर दे। लेकिन सत्यवती ने यह सब कुछ नहीं किया उल्टे सब कुछ इसके विपरीत ही आचरण किये। सत्यवती की दिनचर्या इतनी व्यस्त हो गई कि वह इन सबका महत्व ही भूल गई। पति-पत्नी के बीच प्राय: संवाद शून्यता की स्थिति देखने को मिली और दोनों के बीच की दूरियां बढती ही गई। विवाह के प्रारम्भ के दिनों में जो खुशी हर्षोल्लास पति-पत्नी दोनों के बीच था वह विवाह के कुछ समय पश्चात वह आकर्षण समाप्त होने लगा। धीरे-धीरे वह खुशी उदासीनता में परिणित होने लगी। वे गृहस्थ जीवन जी नहीं रहे बल्कि मात्र बोझ ढो रहे है। वैसे तो पति-पत्नी दोनों गृहस्थी की गाडी के दो पहिये होते हैं पर नारी तो गृहस्थी की रीढ है और अपने गृहस्थ जीवन में इस नीरसता को आने से बचा सकती है। लेकिन सत्यवती ने ऐसा नहीं किया। घर की जिम्मेदारियां निभाना पत्नी का कर्तव्य होता है पर इनसे घिर कर पति को दोषी ठहराया गया। सत्यवती अपने दोनों बच्चों के प्यार में इतनी मशगूल हो गई उनकी चाहत में वे शान्तनु की जरूरतों के प्रति लापरवाह होती गई उन्हें नजर अन्दाज कर गई।

नारी मन कहीं पिता को समर्थन देकर और पति का उल्लंघन कर तुष्टि पाता है। पति ही उसका निकटतम मित्र होता है और

वही उसका घोरतम शत्रु। पति विजयनी नारी ही तो सारे स्वयं को नियमों से मुक्त कर लेती है। यही गंगा ने किया था और यही अब सत्यवती भी कर रही है। शान्तनु के लिये अब विचित्र स्थिति हो गई। शान्तनु सोच रहे है सत्यवती की सन्तान उनकी भी तो सन्तान है। जैसे गंगा की प्रत्येक सन्तान उनकी सन्तान थी पर गंगा ने भी अपनी सन्तानों पर सर्वाधिकार की घोषणा की थी और अब यह सत्यवती भी वही कर रही है। शान्तनु के हाथों में केवल दायित्व का बन्धन रह गया।

शान्तनु बोले, देवी ठीक है तुम्हारे पुत्रों की शिक्षा दीक्षा राजप्रसाद में ही होगी। भीष्म को अब शासन तो करना नहीं है वह गुरुकार्य स्वयं ही करे। वह शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा देने में समर्थ है।

सत्यवती कुंठा से भरी हुई थी चिढ़कर बोली क्यों भीष्म क्यों ? भीष्म राजकुमार है राजगुरु नहीं। उसमें गुरु की क्षमता और योग्यता कहां है ?

शान्तनु का स्वर स्वप्निल हो गया और बोले भीष्म में विश्वगुरु होने की योग्यता नहीं है। यह तुम क्या कह रही हो ? जो व्यक्ति अपना और अपनी अगली पीढियों का समग्र लौकिक सुख किसी एक व्यक्ति के सुख के लिये इतनी सरलता से त्याग सकता है उससे बडा अनासक्त और कौन होगा ? अनासक्ति गुरु का पहला गुण है। शान्तनु ने कुछ रोष और कुछ दु:ख के साथ सत्यवती की ओर देखा। जब उन्होंने इस निषाद कन्या से विवाह किया था तो उन्होंने सोचा भी नहीं था कि इसके मुख में कभी जिव्हा भी होगी। शताब्दियों के अनुभवों, चिन्तनों से प्रयोग के पश्चात ही ऋषि-मुनियों ने मिलकर कुछ परिपाटियां स्थापित की थी लेकिन आज कुछ ही क्षणों में सत्यवती उसे मिटाने चली, बदलने चली। वह अपने आपको समझने लगी कि राजप्रसाद में उसके चरण पडते ही वह सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे अधिक एक ही तो समझदार है। अज्ञान ही तो अहंकार को स्फीत करता है। सत्यवती बोली मैं अपने पुत्र का हित और अहित अच्छी तरह समझती हूं महाराज। सत्यवती अपनी जडता को अपनी बुद्धिमता समझती है। इन दिनों महाराज सत्यवती को बहुत अच्छी तरह पहचान गये।

इन दिनों उन्हे गंगा की बहुत अधिक याद आ रही थी। गंगा के छोड जाने के पश्चात शान्तनु भीतर से बहुत दीन हो गये थे ऊपर से दिखाने के लिये वे चाहे कितने ही कठोर बन रहे हो। मन इतना उद्विग्न रहता था कि सत्यवती का रोष क्या उसकी हल्की सी उपेक्षा भी उन्हे विचलित कर देती थी। वे जानते थे सत्यवती के रूष्ट होने पर उनकी शान्ति नष्ट हो जायेगी। वे जब तक सत्यवती को मना नहीं लेते थे तब तक महाराज को चैन नहीं आता था और न ही सहज हो पाते थे। सत्यवती के विवेक पर उन्हे तनिक भी भरोसा नहीं था। वह अपने सीमित स्वार्थों में ही प्रसन्न रहती थी। पर अब जैसी भी है आखिर है उनकी पत्नी, उसे वे त्याग भी तो नहीं सकते। और अब तो उसके गर्भ में उनकी अपनी सन्तान भी तो पल रही है।

सन्तान सम्बन्धी विवाद के कारण ही तो गंगा उनको छोड गयी और अब फिर सन्तान के विषय में ही विवाद। प्रश्न था कि अब उसकी शिक्षा का। शान्तनु ने सत्यवती को समझाना चाहा आश्रम में गुरु ही स्वामी होता है, पालक होता है, आश्रयदाता और अभिभावक होता है। गुरु का विवेक और शिष्य के प्रति स्नेह सब कुछ सचेत होता है। आश्रम में शिष्य गुरु के सानिध्य में रहकर इन सारे भावों को ग्रहण कर सकता है।

सत्यवती ने कहा महाराज शिष्य को ज्ञान ग्रहण करना है या गुरु के भावों को ? शास्त्रों से बुद्धि जागती है, ज्ञानवर्धन होता है तो वह राजप्रासाद में भी हो सकता है जरूरी नहीं कि वह आश्रमों में ही हो। शस्त्रों के संचालन का अभ्यास राजकुमार वन के वृक्षों की छाया में करे या राज उद्यान में इससे कोई अन्तर नहीं पडता। मैं चाहती हूँ कि गुरु से ज्ञान ग्रहण करते समय मेरा यह पुत्र न भूले कि वह प्रजा का स्वामी है और गुरु तो शिक्षा देनेवाला वेतन भोगी एक राज कर्मचारी है। मेरे लिये तो यह महत्वपूर्ण है कि मेरे पुत्र में शौर्य बढता है या नहीं। उसका शस्त्र ज्ञान बढना चाहिये वह अपने शत्रुओं का दमन करने में सफल हो यही उसकी शिक्षा की अनिवार्यता है।

शान्तनु बोले सत्यवती ज्ञान, बल, बुद्धिवीरता ये सभी यदि सात्विकता से ग्रहण किये जायें तो मनुष्य उदात्तता की ओर बढता

है और देवत्व को प्राप्त करता है और अगर ये ही गुण यदि निकृष्ट भावों से ग्रहण किये जाये तो मनुष्य का अहंकार स्फीत होता है और उसका पशुत्व जागता है। विद्या और ज्ञान, कला और कौशल, चिन्तन और मनन, शस्त्र और शास्त्र ये सब हमारे ऋषियों ने मनुष्य को देवता बनाने के लिये रचे हैं। जो गुरु राज प्रसाद में कर्मचारी के रूप में तुम्हारे पुत्र की शिक्षा-दीक्षा करेगा उसके भीतर गुरुत्व के स्थान पर क्षुद्रत्व जागेगा। आठों पहर अर्जन की प्रवृत्ति में रत रहेगा। वह अपनी विद्या, ज्ञान, कला, कौशल और बुद्धि का व्यवसाय ही करेगा। अपने ज्ञान और क्षमताओं का मुक्त हस्त से दान नहीं कर पायेगा। वह अपने शिष्य को जो कुछ देगा वह उत्कोच ही होगा और जो कुछ अपने पास रख लेगा वह उसका व्यवहार व्यवसाय कौशल रण नीति होगी। ऐसे गुरु अपने शिष्यों का विकास कभी नहीं करेंगे। वह राजमहल का अधीनस्थ कर्मचारी होगा। वह न्याय, अन्याय, विवेक-अविवेक से, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म का भेद नहीं कर पायेगा। वह स्वार्थ नीति से परिचालित होगा और अनिष्टकारी भी हो सकता है। राजा को ऋषि-बुद्धि से परिचालित होना चाहिये। जो ऋषि राजाओं के आदेशों की परिधि में घिर कर चिन्तन करता है वह तो ज्ञान की नहीं पाखंडों की ही वृद्धि करता है।

भीष्म कोई राजकर्मचारी भी नहीं है स्वामी होगा। उसके पास राजकुमार का अधिकार भी होगा और गुरु का भी।

सत्यवती का स्वर आदेशात्मक हो गया। नहीं भीष्म नहीं। मैं यह कभी नहीं भूल सकती कि मेरे ही कारण भीष्म अपने जीवन से वंचित हुआ है और न ही वह इसे भूल पायेगा। दोनों तरफ प्रतिशोध की भावना ही बनी रहेगी। इस वंचना के कारण वह मेरे पुत्र को योग्य होने से वंचित करे इस सम्भावना को मैं कभी भी जन्मने नहीं दूंगी। अवाक हो शान्तनु सत्यवती की ओर देखते रह गये। आखिर वह चाहती क्या है ? शान्तनु बोले तुम्हे अपने पुत्र के सन्दर्भ में भीष्म से किस प्रकार के अनिष्ट की आशंका है देवि स्पष्ट कहो ? भीष्म कोई प्रतिशोध ले ऐसा व्यक्ति नहीं है तुम उसे आज तक पहचान नहीं पायी।

सत्यवती बोली, अपना दाना छीननेवाले को तो चींटी भी काट लेती है फिर भीष्म तो मनुष्य है सत्यवती स्थिर वाणी में बोली। एक मछली के बोझ के पीछे मैंने मछुवारों को हत्याये करते देखा है।

शान्तनु तनिक रोषपूर्वक बोले, देवि तुमने आज तक मछुवारे ही देखे हैं क्षत्रिय राजकुमार नहीं। जो निर्बलों की रक्षा के लिये अपने प्राण तक दे देते हैं। तुम तो हीन कोटि के मनुष्यों के बीच पली हो इसका अर्थ यह नहीं है कि सृष्टि में उत्कृष्ट कोटि के श्रेणी के लोगों का अभाव है। सत्यवती तडफ कर बोली, हां हम निर्धन है इसलिये हम हीन ही सही। शान्तनु बोले, निर्धन हीन नहीं होते। निर्धन तो ऋषि मुनि तपस्वी भी हैं। मैं तो जीवन मूल्यों की बात कर रहा हूँ। मानव के रूप में व्यक्ति धन से हीन या श्रेष्ठ नहीं होता। व्यक्ति श्रेष्ठ होता है अपने आचरण से। भीष्म का आचरण देखो। कुरु साम्राज्य उसके लिये अब कोई अर्थ नहीं रखता। जीवन के सुख-भोग उसके लिये कोई महत्व नहीं रखते और तुम्हारा विचार है कि वह तुम्हारे पुत्र से, अपने ही भाई से प्रतिशोध लेगा।

सत्यवती स्पष्ट शब्दों में बोली, देखिये महाराज आप कुछ भी कहे इस विषय में मैं अपनी बुद्धि पर ही विश्वास करूंगी। अपनी सन्तान के जीवन और भविष्य के विषय में निर्णय करने का अधिकार मैं अपने पास ही रखूंगी और मेरा स्पष्ट निर्णय है कि मैं अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व भीष्म पर नहीं छोडना चाहती। जीवन के सुख-भोग उसके लिये कोई मूल्य नहीं रखते जिससे मेरी सन्तान को सर्वाधिक अनिष्ट होने की आशंका है। उसे मैं अपनी सन्तान का गुरु नियुक्त नहीं कर सकती।

शान्तनु ने क्रोध भरी दृष्टि से सत्यवती को देखा और बोले तेरी ही इच्छा पूर्ण होगी सत्यवती। मैं समझ लूंगा कि तेरे पुत्र के भाग्य में कोई अच्छा गुरु नहीं था। मैं तुमसे विवाद नहीं करना चाहता। निर्णय तुम्हारा ही मान्य होगा।

शान्तनु बोले भीष्म मनुष्य नहीं देवता है। यह मेरा पुत्र है। मेरे मन में उसका सम्मान किसी महापुरुष से कम नहीं है। यदि कहीं वह तुम्हारे पुत्रों का गुरु बन जाता तो उनमें भी देवत्व जगा देता। वह धर्म का आधार है। भीष्म से दूर कर अपने पुत्रों को वंचित करोगी। भीष्म का तो अब बिगडने का रह ही क्या गया ? उसको तो अब संसार से पाना ही पाना है। उसने तो सब कुछ त्याग कर ही दिया है उसे तो अब कुछ पाना ही पाना है। वह तो संसार से कुछ भी ग्रहण करेगा ही नहीं।

सत्यवती बोली यदि मैं आपकी बात मान भी लूं कि भीष्म मेरे पुत्रों से प्रतिशोध नहीं लेगा और उनकी रक्षा करेगा। यदि यह भी विश्वास कर लू कि भीष्म देवता है त्याग, दया, ममता और क्षमा की मूर्ति है और मेरे पुत्र उसके सान्निध्य में रहकर वैसे ही हो जायेंगे फिर भी मैं अपने पुत्रों को उसकी छाया से भी दूर रखना चाहूंगी। मैं अपने पुत्रों को भीष्म जैसा त्यागी या सन्यासी नहीं बनाना चाहती। मैं चाहूंगी मेरे पुत्र राजकुमार बने कोई सन्यासी नहीं। वे अपने अधिकार त्यागने के बजाय अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करे। यह संसार जूझकर मरनेवाले लोगों का क्षेत्र है। मैं भीष्म जैसे का-पुरुष को अपने पुत्रों का गुरु भूलकर भी नियुक्त नहीं करूंगी।

शान्तनु बोले मैंने तो सुना था कि स्त्री, दया, माया, ममता, करूणा और उदारता की मूर्ति होती है। सत्यवती बोली मैं न तो वैसी नारी हूं और न ही कोई ऐसा आदर्श पालने की मेरी इच्छा है जिसमें बांधकर मुझे मूर्ख बनाया जा सके। आप यह भी जानते होंगे कि नारी वासना भी है और माया भी, उसमें इच्छायें भी होती है। वह पृथ्वी के तत्वों से बनी है इसलिये उसमें भोग और भोग के अधिकार की लालसा होती है। वह पृथ्वी के समान प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार पा जाना चाहती है। मुझे धन, वैभव, सत्ता सबकी माया व्याप्त है। मैं कुरुकुल की महारानी हूं और हस्तिनापुर के सम्राट की मां के रूप में राजमाता। निवृत्ति, अध्यात्म, त्याग, बलिदान की बातें मुझे कोई अच्छी नहीं लगती और मैं चाहूंगी मेरी सन्तानें भी मेरी जैसी हो।

शान्तनु ये सब सुनकर अवाक रह गये, जिस स्पष्ट रूप से सत्यवती को अपने रूप में प्रकट किया। शान्तनु बोले तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण होगी देवि। तुम्हारे पुत्रों की शिक्षा का दायित्व भीष्म पर नहीं होगा न ही तुम्हारे पुत्र ऋषि कुल या गुरुओं के आश्रम में भी जायेंगे। तुम्हारी सन्तान की शिक्षा दीक्षा राजमहलों में ही होगी। सत्यवती बोली तो उनका गुरु कौन होगा ?

शान्तनु बोले- कोई असाधारण मनीषी राजाश्रित कोई ब्राह्मण ही उनके आचार्य का कार्यभार सम्भालेगा। सत्यवती बोली ठीक है महाराज मैं भी नहीं चाहती कि मेरी सन्तान को ऋषियों और गुरुओं का अधिक प्रभाव पडे। मैं सोचती हूँ कि यदि भीष्म का भी बचपन आश्रमों और गुरुओं में न बीता होता तो वह सांसारिक सुखों का इस प्रकार त्याग नहीं करता। इसी कारण से मैं नहीं चाहती कि वह मेरे पुत्रों के अधिक सम्पर्क में आये। शान्तनु उठकर अपने कक्ष में चले गये और चिन्तन करने लगे। भीष्म वंचित हुआ और शान्तनु की कामना पूर्ण हुई किन्तु दोनों में सुखी कौन हुआ ? भीष्म या शान्तनु। कामना सुख का नहीं छलना और यातना का दूसरा नाम है। शान्तनु ने क्या चाहा था और क्या पाया ? शान्तनु ने देवव्रत को पाना चाहा तो गंगा छोड गयी। कैसी होती है नारी ? वह अपना हित अहित अपना स्वार्थ तक नहीं समझती। शान्तनु समझाना भी चाहे तो भी समझने को तैयार नहीं है। शान्तनु अपने घर में आग मांग कर ले आये और अपने ही घर की नींव में रख दिया ताकि उनका ही घर जलने लगा। मुसाफिर गया था खुशियों का सौदा करने और गम खरीद ले आया। आज यदि शान्तनु चाहे तो भी वे सत्यवती को त्याग नहीं पायेंगे। सत्यवती के रूष्ट मात्र होने के भय से तो वे ऐसे विचलित हो जाते है कि जब तक उसे मना न लें तब तक उनकी व्याकुलता उनका पीछा नहीं छोडती। उनकी यह मूर्ख आसक्ति न जाने आगे क्या-क्या रंग दिखायेगी ?

भीष्म के सामने एक विराट शून्य आ खडा हुआ। उपलब्धियों से व्यक्ति कहीं भराव का अनुभव करता है रिक्ति का नहीं। उपलब्धि और शून्य कभी साथ-साथ नहीं चलते। भीष्म चिन्तन करते हैं त्याग से आदमी ऊंचा उठता है। भीष्म व्यक्ति के रूप में पूज्य हो गये। उन्होंने काल की इकाइयों को बौना कर दिया। अब भीष्म के सामने एक लम्बी आयु पडी है पर क्या करना है उन्हें इस आयु का ? किसलिये चाहिये भीष्म को लम्बी आयु ? किसलिये सौ शरद जीने की कामना करे ? भोग के लिये या ग्रहण के लिये ? विस्तार के लिये ? रक्षण के लिये या त्याग के लिये ? दान के लिये या आत्मविकास के लिये ? भीष्म के मन में अब कोई भोग का आकर्षण नहीं है। भोगों का चरम परम सुख तो नारी है जिसे उन्होंने त्याग दिया है। अब जीवन में धन-वैभव, भूमि, राजप्रासाद, सम्पत्ति कोई महत्व नहीं रखता है। माया जाल सिमट गया था। जब यह राज्य ही उसका नहीं है। वे

प्रजा के युवराज भी नहीं रहे। अब उनका कोई अधिकार भी नहीं है तो किसी बात का दायित्व भी उनका नहीं है। किसका न्याय भी नहीं करना है और न ही किसी का पालन करना किसी की रक्षा भी नहीं करनी है। भीष्म के कोई सन्तान भी नहीं होगी कोई परम्परा भी नहीं होगी और न ही पुनर्जन्म। तो फिर भीष्म के लिये क्या करना है ? इस शरीर और जीवन को रखने की कोई सार्थकता नहीं। क्या भीष्म का धर्म अन्य व्यक्तियों से भिन्न है ? सबके लिये अपने-अपने धर्म है। राजा शान्तनु निषाद कन्या में आसक्त हुये और अपने धर्मानुसार उन्होंने उससे विवाह कर लिया। वंश को चलाये रखने, राज्य को अक्षुण बनाये रखने उन्होंने सन्तान प्राप्ति के लिये अपना धर्म निभाया। सत्यवती के पिता दासराज ने कन्या दान से पूर्व अपनी पुत्री और उसकी सन्तान के अधिकारों की रक्षा की व्यवस्था की। फिर भीष्म का धर्म था कि वे भी अपने अधिकारों की रक्षा नही करते। उनका धर्म त्याग क्यों रहा ? पुत्र के रूप में उनका धर्म था त्याग और व्यक्ति के रूप में उनका धर्म था अपने अधिकारों की रक्षा ? विपन्नता से तुलना किये बिना सम्पन्नता का कोई महत्व नहीं है। सत्यवती को पाकर पिता प्रसन्न है, अपनी भावी सन्तान के लिये राज्यका आश्वासन पाकर माता सत्यवती प्रसन्न है। भीष्म की इच्छा हुई चल कर माता सत्यवती से मिल आवे और सत्यवती से मिलने राजमहल में चला गया। लेकिन दासियां भीष्म को सत्यवती के कक्ष में नहीं ले गई और उन्हें एक सुसज्जित प्रतीक्षा कक्ष में बिठा दिया। थोडी देर पश्चात एक दासी लौट कर आयी और बोली राजकुमार महारानी इस समय अस्वस्थ हैं और आपसे भेंट करने में असमर्थ है। महारानी अस्वस्थ है और मुझे सूचित तक नहीं किया गया। माता यहां नहीं आ सकती तो मैं स्वयं उसके पास चलकर भेंट कर आता हूं।

भीष्म ने पूछा क्या राजवैद्य बुलाया था ? प्रतिहारी ने कहा नहीं। भीष्म ने कहा मैं फिर किसी समय आ जाऊंगा।

१२) कृपाचार्य की कुलगुरु पद पर नियुक्ति

शान्तनु चिन्ताग्रस्त, उदासीन व मौन रहने लगे। भीष्म ने उन्हे बार-बार समझाया लेकिन वो उन्हे इस निराशा से बाहर निकालने में असमर्थ रहे। भीष्म के समझाने का शान्तनु पर कोई प्रभाव नहीं पडा। उनका मन भटका हुआ था। भीष्म ने समझाया इसमें आपका तो कोई दोष है ही नहीं और राजा को तो सदा आनंदित, उत्साहित रहना चाहिये इसी से राज्य ठीक तरह से सुचारू रूप से चलता है। महाराज का इस तरह सदा उदासीन रहना प्रजाजनों को अच्छा नहीं लगता था पर वे क्या कर सकते थे।

राजगुरु ने अपने पद से त्याग, इस्तीफा, राजीनामा देने का निर्णय लिया और अवकाश प्राप्त कर सेवा निवृत्त होने के लिये महाराज शान्तनु से मिलना आवश्यक था। पद छोडने से पहले वे महाराज शान्तनु से मिलना चाहते थे पर शान्तनु अपनी उदास व खिन्न प्रवृत्ति से बाहर निकलने को तैयार ही नहीं थे। अन्त में अवसर देख कर राजगुरु अपना पद छोडने से पहिले भीष्म को मिलने के लिये भीष्म के राजमहल में गये और नमस्कार किया। प्रत्यक्ष राजगुरु को अपने महल में आया देखकर भीष्म ने राजगुरु को नमस्कार किया और बोले आपने यहां आने का कष्ट किया मुझे ही अपने पास बुला लिया होता। भीष्म की विनय वृति और निस्वार्थ त्याग से प्रभावित हो राजगुरु बोले मुझे आपसे मिलने के लिये आने में न किसी तरह का संकोच है और न ही कोई कष्ट हुआ और आने का प्रयोजन बताया। राजगुरु के साथ में शरद्वान पुत्र कृपाचार्य राजगुरु के शिष्य भी थे। राजगुरु ने कृपाचार्य का परिचय कराया और अपने पद त्यागने के विषय में सूचित किया। राजगुरु के पद छोडने का सुनकर भीष्म को अत्यन्त बुरा लगा क्योंकि कितनी ही बार भीष्म जब कोई समस्या में उलझ जाते तो वे चिंतित होकर राजगुरु के पास ही आते थे और राजगुरु उनकी समस्याओं का समाधान कर देते थे जिससे भीष्म का मन सदा ही हल्का हो जाता था। भीष्म को राजगुरु से समय-समय पर योग्य मार्गदर्शन मिलता रहा अब इस कमी को कौन पूरा करेगा ? इस तरह के प्रश्न बार-बार भीष्म के मन में उठने लगे। परन्तु राजगुरु ने सन्तोष व्यक्त करते हुये कहा मेरे साथ शरद्वान ऋषि के पुत्र और मेरे शिष्य कृपाचार्य मेरे साथ

आये हैं। मेरे रिक्त पद स्थान पर आप विश्वासपूर्वक कृपाचार्य की नियुक्ति कर सकते हैं जिससे आपको राजगुरु पद की कमी महसूस नहीं होगी। इन्हें कुलगुरु पद प्रदान करें इस तरह की अपनी इच्छा राजगुरु ने व्यक्त की। ये शान्तनु महाराज के परिचित तथा ज्ञान के अखंड दीप हैं इन्हें ठीक से सम्भालने की व अपने साथ रहने का उत्तरदायित्व सम्भाले। वास्तव में इस ज्ञानदीप को सम्भालने की या संरक्षण प्रदान करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। भीष्म ने न कुछ बोलते हुये राजगुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर स्वीकार किया और उसी समय से कृपाचार्य को अपना मित्र बना लिया। कृपाचार्य ने बताया उनकी एक छोटी बहिन कृपी (गौतमी) है जो श्रेष्ठ धनुर्धारी भरद्वाज पुत्र आचार्य द्रोणाचार्य को ब्याही गयी। द्रोणाचार्य अब कुरुकुल के रिश्तेदार हो गये। भीष्म को अपने बचपन के दिन याद आ गये और गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखने की इच्छा व्यक्त की। सदा ही ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य का सान्निध्य मिलेगा यह भीष्म का सद्भाग्य होगा ऐसा जान मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

राजगुरु कृपाचार्य से बोले राजकुमार भीष्म को आशीर्वाद दें। भीष्म की विनम्रता वृति देखकर कृपाचार्य भावुक हो गये और बोले यह तो स्वयं आशीर्वाद की ज्वलंत मूर्ति तेजस्वी, पुण्य पुरुष ही हैं मैं इन्हें क्या आशीर्वाद प्रदान करूं ? तब भीष्म बोले मैं तथा राजगुरु भी पिताश्री की मानसिक दशा ठीक नहीं कर पाये। मैं महाराज को इस अप्रसन्नता से उभार कर हस्तिनापुरवासियों को सदा पीडित करनेवाली परिस्थिति से मुक्त कर सकूं उन्हें प्रसन्न कर सकूं ऐसा आशीर्वाद दें तब कृपाचार्य भी बोले तथास्तु।

१३) विचित्रांगद और विचित्रवीर्य की उत्पत्ति

समय बीतता गया इसी बीच महारानी सत्यवती ने दो पुत्रों को जन्म दिया बडे का नाम हुआ विचित्रांगद और दूसरे का विचित्रवीर्य। पर महाराज शान्तनु के मन में बार-बार यही उठ रहा था कि मैंने अपने पुत्र भीष्म के साथ अन्याय किया है जिससे वे नये पुत्र प्राप्ति की प्रेम की खुशियां आनन्द नहीं मना सके। महाराज शान्तनु इसके लिये स्वयं को ही दोषी मान रहे थे। महाराज शान्तनु और सत्यवती दोनों भी भीष्म के साथ हुआ अन्याय याद कर कर मन से व्यथित हो रहे थे बार-बार दोनों भी भाग्य रेखा का खेल समझकर उदासीन हो आयु व्यतीत कर रहे थे। अपने पुत्र को इच्छा मृत्यु वरदान देनेवाले शान्तनु अपनी मृत्यु का इन्तजार कर रहे थे। भीष्म ने भी महाराज शान्तनु को कितनी ही बार समझाया।

वैशम्पायन कहते है, जनमेजय दोनों ही पुत्र विचित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों ही बडे होनहार और पराक्रमी थे। दोनों ने भी अभी युवावस्था में प्रवेश किया ही।

सन्ध्या समय शान्तनु राजमहल में लौटे और सत्यवती के कक्ष में उसका स्वास्थ्य जानने हेतु गये। शान्तनु सत्यवती से बोले मैं आज बहुत थक गया हूँ भीष्म मेरा सारा काम काज सम्भाल लिया करता था पर आजकल वह तो एक प्रकार से वैरागी सन्यासी ही हो गया। दिन भर अध्ययन, चिन्तन, मनन में ही लगा रहता है वैसे उसका इसमें दोष भी क्या है। जब मैंने ही उसका युवराजत्व छीन लिया, अब उसे कौरवों का राजा तो बनना नहीं है, प्रजा का कोई पालन नहीं करना है तो वह यह सब कार्य क्यों करें ? तब सत्यवती एकदम तमक कर बोली, मुझे यह सब बार-बार क्यों सुनाते है ? उसने प्रतिज्ञा और वचन स्वयं किये है उसे तो किसी ने कुछ करने को बाध्य किया नहीं था। मैं आपका सब अभिप्राय समझती हूँ। यदि आप कहीं यह समझते हो कि मैं यह सब सुनकर दया से विगलत होकर उसे अपने वचनों और प्रतिज्ञा से मुक्त कर दूंगी तो यह आपकी समझ गलत और भूल है आर्य। मैं कोई इतनी कोमल हृदया नारी नहीं हूं। शान्तनु बोले, तुम्हे ऐसी ही परिस्थितियों से परे रखने तुमसे वह दूर रहता है और सब कुछ भूलने के लिये ही चिन्तन, मनन में लगा रहता है। सत्यवती का स्वर दृढ़ हो गया और बोली कोई नहीं लगा रहता है चिन्तन और मनन में और न ही वह मुझसे दूर रहता है वह तो मुझे मिलने यहां पर आज ही आया था पर मैं उससे जान बूझकर नहीं मिली और भविष्य में भी उससे नहीं मिलना चाहती। आप अपने भीष्म को सूचित कर दे कि वह मेरे महल में न आया करे। मुझे उससे मिलने का कोई शौक नहीं है। शान्तनु सत्यवती से बोले क्या मैं पूछ सकता हूँ कि भीष्म में उसका दोष क्या है? सत्यवती बोली महाराज दोष हो या ना

हो इससे विवाद खडा करने की बात ही क्या है ? मैं उससे नहीं मिलना चाहती यह मेरी मर्जी है। हां अब मेरे पुत्र चित्रांगद का युवराज्याभिषेक कर देना चाहिये क्योंकि अब वह १० वर्ष का हो चुका है। और हस्तिनापुर की पूरी प्रजा भीष्म सहित यह जान ले कि हस्तिनापुर का भावी युवराज कौन है। शान्तनु बोले तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा देवि।

शान्तनु ने राजसभा आयोजित की। किसी चर ने आकर सूचना दि कि राजकुमार भीष्म ने गंगा तट पर एक कुटीर का निर्माण कराया है और अपना अधिकांश समय वहीं व्यतीत करते हैं। शान्तनु चिंतित हुये क्या भीष्म वानप्रस्थ स्वीकार कर चुका ? क्या वह जीवन के भोगों से विमुख हो गया ? अतीत तो चाहकर भी कभी नहीं लौटता। वर्तमान के द्वार बन्द हो गये तो फिर भविष्य की ओर ही देखना पडता है। जो सुनता है वह भीष्म की सराहना और प्रशंसा ही करता है। उसकी महानता का ही बखान करते है। पर शान्तनु का मन शान्तनु को बार-बार धिक्कार रहा है जिस देवव्रत को पालपोस कर इतना बडा बनाया उसी के साथ यह अन्याय हो रहा है। वे मन्त्री बोला, राजन राजा के हित में ही सबका हित है और राजा के अहित में ही सबका अहित है। इस समय भीष्म का वानप्रस्थी हो जाना न शान्तनु के लिये शुभ है और न ही हस्तिनापुर की प्रजा के लिये और न ही सत्यवती और उनकी सन्तानों के लिये शुभ है। हस्तिनापुर को अभी भीष्म की आवश्यकता है। संसार में स्थिर तो कुछ भी नहीं है। धनुष से छूटा बाण कभी वापिस तूणीर में लौटा है ? नदी का आगे बढ़ा जल कभी वापिस बहा है ? शान्तनु न उससे कह सकते कि फिर से युवराज बन जाये और न ही उसका विवाह कर सकते। और सत्यवती यह सब मानने को तैयार होगी क्या? और स्वयं भीष्म भी शायद नहीं मानेगा ? मन्त्री बोला महाराज आपका स्वास्थ्य ? शान्तनु बोले मन्त्री अभी राज काज सम्भालने की स्थिरता अस्त होते जा रही है।

महाराज आज असमय ही सत्यवती के कक्ष में गये और सत्यवती से बाते करने लगे। सत्यवती ने कहा क्या मन्त्री विष्णुदत्त ने आपको आज की घटना की शिकायत नहीं की ? महाराज बोले नहीं ? तो सत्यवती ने फिर महाराज को बताना शुरु किया।

आज युवराज विचित्रांगद नगर भ्रमण के लिये गया था। युवराज शब्द के सम्बोधन से वह बार-बार यह याद दिलाती रहती है कि अब युवराज भीष्म नहीं विचित्रांगद है। राज वाटिका के बाहर जाकर सारथी ने रथ रोक दिया। युवराज के कारण पूछने पर सारथी ने बताया कि यह राजोद्यान है। भीतर पदाति ही जाना पडता है रथ का मार्ग नहीं है तब युवराज विचित्रांगद ने कहा कि राजोद्यान उनकी निजी सम्पत्ति है और यदि वे रथ सहित भीतर प्रवेश करना चाहे तो सारथी का कर्तव्य है कि उनकी आज्ञा मानना किन्तु उस सारथी ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया। उसे इस अपराध के लिये विचित्रागंद ने कौडे से पीटा। शान्तनु को लगा कौडा सारथी की पीठ पर नहीं पडा उसकी अपनी पीठ पर पडा। शान्तनु युवराज के इस प्रकार के व्यवहार से मन ही मन अत्यन्त दु:खी हुये उन्हें हस्तिनापुर का राज सिंहासन डोलते नजर आने लगा। ये सारथी, परिचायक तथा राजप्रासाद के अन्य राजकर्मचारी सभी वय में उससे बहुत बडे और काफी पुराने हैं। वे राजपरिवार की मर्यादायें जानते हैं, अपना विधि-विधान भली-भांति समझते हैं वे अपनी दायित्व की परम्परा और अधिकारों से भी कोई अनभिज्ञ नहीं हैं। वे राज पुत्र को अपनी मर्यादा से शिक्षा से परिचित कराये ? उनसे अनुगृहित होने के स्थान पर उन्हें दंडित करना कोई शील शिष्टाचार उस युवराज के योग्य भी नहीं है। क्या सिखाया है अध्यापकों ने और आचार्यों ने इनको जो सत्यवती द्वारा नियुक्त किये गये है। सत्यवती बोली, महाराज आगे कुछ होता इससे पहले ही आपका बूढ़ा मन्त्री विष्णुदत्त वहीं आ पहुंचा और सारथी को प्रताडित करने के स्थान पर वह युवराज को ही समझाने लगा कि सारथी ठीक ही कर रहा है। राजोद्यान के भीतर रथ ले जाने का नियम और आज्ञा नहीं है। महाराज शान्तनु भी रथ से उतर कर यहां से वाटिका भ्रमण के लिये पैदल ही जाते हैं। मन्त्री के इस प्रकार कहने पर युवराज चित्रांगद को क्रोध तो बहुत आया पर पुराने मन्त्री की वृद्धावस्था का विचार कर उस पर कौडे का प्रहार नहीं किया सिर्फ अपने नन्हे से हाथ का एक चांटा उसके गाल पर रसीद कर दिया और ये कह कर वह वहां से वापिस लौट आया कि वह इसके लिये मन्त्री और सारथी के विरुद्ध अभियोग प्रस्तुत करेंगे। महाराज ने मन में सोचा कि यदि इन तीनों में अपराधी कोई है तो चित्रागंद

है, दंड तो उसे मिलना चाहिये। यह बालक युवराज होने से अपने आप इतना मदान्ध हो गया कि अपने अधिकारों की सीमा को ही लांघ गया। कल जब यह मदान्ध राजकुमार राजा के रूप में हस्तिनापुर के सिंहासन पर आरूढ़ होगा तो इसका अहंकार आज की तुलना में कहीं अधिक स्फीत होगा। सत्यवती ने कहा क्या विष्णुदत्त ने आपको इस बारे में कोई चर्चा नहीं की। शान्तनु बोले नहीं अभी तक तो नहीं। पर तुम्हे चित्रांगद को समझाना चाहिये कि युवराज की भी कोई मर्यादा होती है। अब सत्यवती अवाक हो गई और आंखे फाडकर क्रोधभरी आंखों से शान्तनु को देखती रही। यह सब देख सुनकर शान्तनु सत्यवती के कक्ष से बाहर निकल गये। महाराज ने भीष्म को सारथी भेजकर अपने कक्ष में बुलाया।

महाराज का सारथी अश्वसेन रथ लेकर गंगा तट पर भीष्म की कुटिया पर आया और भीष्म को देखकर हाथ जोड कर प्रणाम किया। भीष्म ने भी उसका स्वागत कर कहा कैसे आना हुआ अश्वसेन ? महाराज स्वस्थ व प्रसन्न तो है ना ?

अश्वसेन बोला- मैं आपके लिये रथ लेकर आया हूँ। महाराज ने आपको स्मरण किया है। यह सुनकर भीष्म का मन बुझ सा गया फिर ये रथ, सारथी, नगर, राजमहल राजा और अधिकार वे उस संसार में वापिस लौटना नहीं चाहते जिसका उन्होंने त्याग कर दिया लेकिन अब फिर पिता की आज्ञा। निर्णय उन्होंने कुछ ही क्षणों में कर लिया। पिताश्री ने बुलाया है तो जाना चाहिये। अपने मन की शान्ति से पिता का सुख सदा ही बडा है और वे उठकर सारथी के साथ शान्तनु के राजप्रसाद में चले गये।

१४) महाराजा शान्तनु की मनोदशा

शान्तनु ने भीष्म का स्वागत करते हुये कहा आओ पुत्र तुमसे मिलने के लिये भी अब तुम्हे विशेष रूप से बुलाना पड़ता है। वे अब पिता को क्या बताये ? क्या पिता नहीं जानते कि माता सत्यवती के निकट जाते ही भीष्म को आभास होने लगता है उनकी वहां पर उपस्थिति पसन्द नहीं की जाती है और भीष्म को अपनी उपेक्षा अवज्ञा नहीं सुहाती। वे अपनी माता सत्यवती और पिताश्री के बीच नहीं आना चाहते। वे नहीं चाहते उनके कारण पिता और माता के बीच किसी तरह के सम्बन्धों में दरार पड़ जाये या कहासुनी हो जाये। या ऐसा कुछ सहना पड जाये जो उनके लिये दु:खद हो और उनका दाम्पत्य जीवन गृहस्थ कोई कष्ट झेले। वह विघ्नरहित हो तो सदा सर्वदा सुख और आनन्द ही है। भीष्म इन सभी कारणों से परिवार से तथा राज समाज से कटा-कटा रहने लगे।

भीष्म अच्छी तरह जानते हैं कि यह सत्य नहीं है। पिता ने अपना जीवन अपने लिए जिया है। वे भीष्म के जनक हैं और उन्होंने उन्हें माता गंगा के हाथों जीवन-मुक्त होने से बचाया अवश्य है; किन्तु उसके बाद से उनके जीवन में, भीष्म के लिए कोई भी स्थान नहीं रहा है पर भीष्म अपना सारा जीवन उनके लिए बिता रहे हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए, उनकी सुख-सुविधा के लिए।

जाने क्यों आज तक भीष्म के मन में अपने पिता के विरुद्ध कोई भी स्थायी विरोध नहीं जन्मा। उनके मन में पिता के प्रति अनुराग है या दया। उन्हें लगता है कि उनके पिता का जीवन भाग्य के हाथों का खिलौना रहा है। शान्तनु राजा होकर भी कभी सुखी नहीं हुए। अपनी क्षमताओं ने उन्हें कोई सुख नहीं दिया। उनकी उपलब्धियाँ उनके लिए क्लेशकारी ही हुईं। इस वृद्धावस्था में सत्यवती जैसी असाधारण सुन्दरी को पत्नी के रूप में पाकर भी, उससे जो सुख उन्हें मिला है, वह इस विवाह से प्राप्त असुविधाओं और झंझटों के सामने बहुत छोटा है। उन्हें इस वार्द्धव्य में दो-दो पुत्र मिले; पर वे पुत्र उनके लिए चिन्ता के ही विषय हो गये हैं, हर्ष और उल्लास के नहीं।

मैंने सोचा, आप अपने राज-काज में व्यस्त होंगे। अन्त में भीष्म बोले, मेरी मन:स्थिति भी इधर बहुत बदली है। मुझे एकान्त कुछ अधिक ही प्रिय लगने लगा है। तपस्वियों, मुनियों और मनीषियों से वार्तालाप अधिक सुखद लगता है।

मुझे कुछ ऐसी सूचनाएँ मिली हैं पुत्र। शान्तनु बोले, इनसे मुझे प्रसन्नता भी होनी चाहिए थी।

भीष्म ने पिता की ओर देखा- क्या कहना चाह रहे हैं पिता ? उन्हें क्यों प्रसन्नता होनी चाहिए थी ?

पहली बात तो यह है कि तुमने मेरी इच्छा के अनुकूल मेरे विवाह में सहयोग ही नहीं किया, नयी गृहस्थी दी और स्वयं मेरे मार्ग में से कुछ इस प्रकार हट गये कि न मेरे मन में तुम्हें लेकर कोई दायित्व जागे, न अपराध-बोध। दूसरे, तुम अपने आध्यात्मिक उत्थान की ओर बढ़ रहे हो, अधिक समर्थ बन रहे हो।

कैसे पिताजी ? भीष्म पूछे बिना नहीं रह सके।

ग्रहण से त्याग बड़ा होता है पुत्र। शान्तनु बोले, ग्रहण करनेवाले से त्याग करनेवाला अधिक समर्थ है। इस वय में तुम सेनाएँ लेकर दिग्विजय कर रहे होते, तो भी तुम समर्थ माने जाते; किन्तु अपनी शूरवीरता, अपने शस्त्र-ज्ञान और अपने युद्ध-कौशल को पूर्णत: विस्मृत कर, अपने समस्त रजस-तत्त्वों का दमन कर- अपने जिस व्यक्तित्व का विकास तुम कर रहे हो, वह अधिक समर्थ व्यक्ति का रूप है। पर पुत्र।

शान्तनु रुक गये। भीष्म उन्हें देखते रहे- क्या है पिता के मन में ? पता नहीं पिता के मन में भाव स्पष्ट नहीं थे, या वे उपयुक्त शब्दों की प्रतीक्षा में थे।

मैंने तुमसे कहा था कि अकेले पुत्र का पिता नि:सन्तान व्यक्ति से भी अधिक दुखी होता है। कुछ क्षणों के बाद शान्तनु बोले, अब तुम्हारे अतिरिक्त मेरे दो पुत्र और हैं। यदि सच-सच कहूँ, तो अब मैं अनुभव कर रहा हूँ कि तुम अकेले थे तो मैं न केवल पुत्रवान था, वरन् सौ पुत्रोंवाले पिता के समान पुत्रवान था। चित्रांगद और विचित्रवीर्य को मैंने पाया तो है पुत्र। पर तुम्हें खोकर ही।

ऐसा क्यों कहते हैं पिताजी। भीष्म बोले, मैं जीवित हूँ। आपके पास हूँ। आप आदेश करें।

नहीं। तुम्हें आदेश नहीं दूँगा। शान्तनु बोले, मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारे और मेरे बीच चित्रांगद और विचित्रवीर्य खड़े हैं। मैं तुम तक पहुँचना चाहूँ तो मुझे उन दोनों को बीच में से हटाना होगा।

नहीं। पिताजी। उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

वह मुझ पर छोड़ दो। शान्तनु बोले, मैं तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हारे बदले मैंने दो पुत्र पाये हैं। और वे दोनों पुत्र ऐसे हैं कि जिन्हें पाकर पिता नि:सन्तान हो जाता है।

भीष्म कुछ नहीं बोले। चुपचाप पिता की ओर देखते रहे।

तुमने भी सुना ही होगा। शान्तनु पुन: बोले, चित्रांगद अत्यन्त उद्दण्ड और क्रोधी किशोर के रूप में प्रसिद्धि पा रहा है। किसी का भी अपमान कर देना, या किसी को भी पीड़ित या प्रताड़ित करना, उसके लिए सहज सामान्य है। अभी चौदह वर्षों का हुआ है और धनुष-बाण हाथ में लिये युद्ध-आह्वान उच्चरित करता फिरता है। तुम योद्धा हो पुत्र। किन्तु तुमने लोगों को युद्ध के लिए उकसाया नहीं। तुम युद्ध-प्रिय नहीं थे। वह योद्धा भी नहीं है और युद्ध नहीं, क्रूरता और हिंसा उसका व्यवसाय हो गया है। मैं अनवरत रूप से इस आशंका के दंश को अपने हृदय में अनुभव कर रहा रहूँ कि किसी दिन वह द्वन्द्व-युद्ध में मारा जायेगा।

भीष्म का मन उमड़ आया कि पिता को सान्त्वना दें। भला पुत्र की मृत्यु की आशंका से भयभीत और दुखी पिता से बढ़कर भी कोई पीड़ित हो सकता है। किन्तु वे रुक गये। कुछ सोचते रहे और फिर बोले, पिताजी। माता सत्यवती के साथ विवाह से पूर्व, आप इसी प्रकार की आशंका मेरे लिए पाल रहे थे। ऐसा क्यों है कि हस्तिनापुर के कुरु-सम्राट् चक्रवर्ती राजा शान्तनु सदा अपने पुत्रों की भावी मृत्यु की आशंका से पीड़ित रहते हैं। कहीं ऐसा न हो कि आप अपनी इन आशंकाओं को मानसिक रोग बना लें।

शान्तनु कुछ संकुचित हुए; पर फिर सायास मुस्कराये, ऐसा नहीं है पुत्र। आज मुझे सच बोलने दो। तुम्हारे विषय में मेरी आशंका वास्तविक नहीं थी- उसका प्रयोजन मात्र इतना था कि मुझे सत्यवती से विवाह करने का एक व्यावहारिक आधार मिल सके। किन्तु चित्रांगद के विषय में यह पूर्णत: सत्य है। जिस प्रकार वह अपनी क्षमता और दूसरे की शक्ति का मूल्यांकन किये बिना जिस-तिस से उलझता फिरता है, उसका परिणाम कभी भी शुभ नहीं हो सकता। वह किसी भी दिन।

ऐसा नहीं होगा पिताजी। भीष्म बीच में बोले, और यदि ऐसा होगा भी तो क्षत्रियों के लिए वीरगति पाना सौभाग्य का लक्षण माना गया है। यह वीरगति नहीं होगी। शान्तनु दुखी स्वर में बोले, न्याय के पक्ष में अत्याचार का दमन करते हुए युद्ध में वीरगति पाना गौरव का ही लक्षण है; किन्तु व्यर्थ रक्तपात करते हुए अपने अपराधों के दण्डस्वरूप प्राण गँवाना, दस्यु की मृत्यु है। मुझे इसी का भय है भीष्म। शान्तनु रुके नहीं, और दूसरा है विचित्रवीर्य। वह बारह वर्षों का हुआ है, और कामुकता की ओर उसके चरण जिस गति से बढ़ रहे हैं, वह भयंकर है।

आप उन्हें रोकते क्यों नहीं ? रोक नहीं सकता पुत्र। भीष्म ने चकित दृष्टि से पिता को देखा।

उन्हें रोकने का मुझे अधिकार नहीं है। क्यों ? भीष्म के स्वर में हल्का-सा आवेश था, पर क्यों ?

शान्तनु असहाय भाव से हँसे, यह भी मेरे साथ नियति का परिहास है पुत्र। गंगा के पुत्र भी गंगा के ही रहे; सिवाय तुम्हारे उनमें से कोई भी शान्तनु का पुत्र न हो पाया। वही स्थिति अब सत्यवती के पुत्रों की है। वे सत्यवती के ही पुत्र हैं, शान्तनु के नहीं। उनके प्रति शान्तनु के सैकड़ों दायित्व और कर्तव्य हैं, पर उसे अधिकार एक भी नहीं है।

आप क्या कह रहे हैं पिताजी ? यह सब भीष्म के लिए इतना आकस्मिक था कि वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि वे क्या कहें।

यही सत्य है पुत्र। शान्तनु बोले, मैं उन दोनों में से किसी को भी अनुशासित करने का प्रयत्न करूँ तो सत्यवती उनके आड़े आ जाती है। वह तुरन्त मुझे समझाने लगती है कि वे राजकुमार हैं, उनका इस प्रकार दमन नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार उनका तेज नष्ट हो जायेगा। चित्रांगद को कुछ कहूँ तो वह मुझे समझाने लगती है कि वह युवराज है। युवराज का अहंकार तो पुष्ट होना ही चाहिए। उनके मन में यह दृढ़-बद्ध धारणा होनी ही चाहिए कि वह अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। उसको अधिकार है कि वह किसी को भी दण्डित करे, अपमानित करे। मैं यदि उसे समझाऊँ कि राजकुमार या युवराज की भी कोई मर्यादा होती है, तो वह इस प्रकार तड़पने लगती है, जैसे मैं चित्रांगद का युवराजत्व छीन रहा हूँ।

उनको क्या आप पर विश्वास नहीं है ?

तनिक भी नहीं। उसे यह कहने में भी संकोच नहीं है कि वह मेरे किसी वचन का विश्वास नहीं करती। मैं आश्वासन के रूप में, समझाने के लिए जो कुछ कहता हूँ, उसे वह मेरा पाखण्ड मानती है। इसलिए मैं जितना ही अपना स्नेह जताता हूँ, जितना ही अधिक उसे विश्वास दिलाता हूँ, वह उतनी ही प्रचण्ड हो जाती है। शान्तनु अत्यन्त हताश स्वर में बोले, उस समय वह जो कुछ मेरे विषय में कहती है, वह यदि कोई सुन ले, तो वह सहज रूप में यही विश्वास करेगा कि मुझ जैसा कोई पापी नहीं है, और उस जैसी दु:खिनी नारी इस सारी सृष्टि में नहीं है।

शान्तनु जितना खुलते जा रहे थे, भीष्म का असमंजस उतना ही बढ़ता जा रहा था। कहाँ वे समझते थे कि उनके पिता-सरीखा कोई सुखी नहीं है और कहाँ पिता तो मानो हृदय में ज्वालामुखी छिपाये फिर रहे थे। उनके लिए भी अब यह सब असह्य हो गया था, तभी तो वे पुत्र के सम्मुख इस प्रकार खुल पड़े थे।

क्या उन्हें कुछ भी समझाया नहीं जा सकता ? अन्तत: भीष्म ने पूछा।

मैं जितना अधिक समझाने का प्रयत्न करता हूँ, वह मुझसे उतनी ही रुष्ट होती जाती है। उसके मन में मेरे प्रति दृढ़-बद्ध धारणाएं हैं कि मैं झूठा हूँ, पाखण्डी हूँ, कामुक और अत्याचारी हूँ। मैं अपनी मधुर वाणी से उसका सर्वस्व हरणकर उसे गलियों की भिखारिणी बना देना चाहता हूँ। जब मैं अपने प्रेम और अपनी सद्भावना के प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ तो वह हँसकर मुझे टाल देती है, तुम शब्दों से मेरी भावना को झुठला नहीं सकते। तुम्हारे तर्क कुछ भी प्रमाणित करें, पर सत्य क्या है ?

भीष्म पिता की ओर देख रहे थे। क्या चक्रवर्ती शान्तनु इतने असहाय हो गये हैं ?

तुम्हें विचित्र लगेगा वत्स। यदि मैं तुम्हें बताऊँ कि मैं उससे किस सीमा तक डरने लगा हूँ। शान्तनु बोले, मैं यह मानने लगा

हूँ कि वह निर्धन परिवार से राजमहल में आयी है, इसलिए निर्धनता का प्रेत उसका पीछा नहीं छोड़ रहा। पुन: अपनी पहली स्थिति में लौट जाने का भय उसे इतना सताने लगा है कि वह सहज नहीं रह पाती। तनिक-सी बात में उसे लगने लगता है कि मैं उससे मुक्त होने का बहाना ढूँढ़ रहा हूँ। उसके मन से यह बात जाती ही नहीं कि मैं अन्तत: कोई-न-कोई षड्यन्त्र रचकर उसके पुत्र के हाथों से अधिकार छीन लूँगा। वह स्पष्ट शब्दों में, अभिद्या में कहती है कि वह निर्धन परिवार की बेटी है, उसकी पीठ पर कोई राजपरिवार नहीं है, इसलिए मैं उस पर अत्याचार कर रहा हूँ। वह तो यहाँ तक कहती है कि मैं इतना अहंकारी तथा कामुक हूँ कि कोई भी स्त्री मेरे साथ रह ही नहीं सकती। गंगा को भी मैंने ही घर से निकाल दिया था और उसके विषय में एक झूठी कथा प्रचलित कर दी थी कि वह मुझे छोड़ गयी है।

पिताजी। हाँ भीष्म। शान्तनु बोले, उसे यदि बिलख-बिलखकर यह सब कहते हुए सुनो, तो तुम भी विश्वास कर लोगे कि तुम्हारा पिता उतना ही दुष्ट है, जितना वह कह रही है।

इतनी अमानवीय है वह ?

रुग्ण है। उसके मनोविकारों ने उसके चिन्तन को विकृत कर दिया है। कुछ बद्धमूल धारणाओं के कारण, उसकी दृष्टि बदल गयी है। अब जिस विकृत दृष्टि से वह जीवन को देखती है- उसके लिए प्रमाण जुटाने कठिन नहीं हैं। रस्सी पड़ी हो तो भी मनोविकारों या दृष्टिदोष के कारण वह साँप ही दिखाई देगी।

पर मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा। भीष्म कुछ सोचते हुए बोले, किसी और ने भी कभी इस प्रकार चर्चा नहीं की।

नहीं। किसी तीसरे के सामने उसका कभी ऐसा व्यवहार नहीं होता। शान्तनु का स्वर धीमा पड़ गया, जैसे अपने-आपसे बातें कर रहे हों, मैं ही उसका सबसे अधिक आत्मीय हूँ। मैं ही सबसे अधिक प्रेम देता हूँ उसे। और वह मेरे ही प्रति इतनी क्रूर है। मुझ पर ही उसका सबसे अधिक अविश्वास है। तंग आकर कई बार सोच चुका हूँ कि उसे त्याग दूँ, या स्वयं ही कहीं चला जाऊँ? भीष्म ने चौंककर पिता की ओर देखा।

पर वह भी तो कर नहीं पाता मैं। वह बोले, अभी तो कभी कुछ अनुचित किया नहीं मैंने, तो वह इतने आरोप लगाती है मुझ पर। यदि उसे त्याग दिया, या स्वयं कहीं चला गया, तो क्या कुछ नहीं कहेगी वह। हस्तिनापुर की वीथियों और पथों पर वह मुझे अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी सिद्ध करती फिरेगी- और कौन विश्वास नहीं करेगा उसका ? प्रजा कहेगी, शान्तनु है ही ऐसा। उसने पहले गंगा को भी त्याग दिया था। उसे रोते-चिल्लाते देखकर, मेरी प्रजा मुझे उसी दृष्टि से देखेगी, जिस दृष्टि से आज मुझे चित्रांगद और विचित्रवीर्य देखते हैं।

भीष्म ने पूछा कुछ नहीं; किन्तु इतना जानने को वे अत्यन्त उत्सुक थे कि चित्रांगद और विचित्रवीर्य अपनी माता के व्यवहार के विषय में क्या सोचते हैं।

जब वह अपनी आशंकाओं से दुखी होकर, रोती-चिल्लाती है और मुझ पर अनेक प्रकार के आरोप लगाती है, शान्तनु स्वयं ही बोले, तो मेरे वे दोनों पुत्र शब्दों में तो कुछ नहीं कहते; किन्तु उनकी जो आँखें मेरी ओर उठती हैं, वे बहुत कुछ कह जाती हैं। वे मुझसे पूछती हैं कि आखिर उनकी माँ को परेशान क्यों करता हूँ ? और मेरी इच्छा होती है कि या तो अपना सिर प्रासाद की दीवारों से दे मारूँ या अपने बाल नोच लूँ। शान्तनु चुप हो गये।

भीष्म तो जैसे पिता का इतना दुख सुनकर अवाक् ही रह गये थे। वे क्या कहते। एक ओर भीष्म का मन जैसे कह रहा था, नारी का मोह ऐसा ही होता है। पिता ने अपने पहले अनुभव से कुछ नहीं सीखा, तो यह तो होना ही था। पर दूसरी ओर भीतर-ही-भीतर उनका अपना मन ही उन्हें धिक्कारने लगा था- तू तो आज तक समझे बैठा था कि तूने पिता को सुखी करने के लिए इतना बड़ा त्याग किया है। तेरा अहंकार स्फीत होकर आकाश को छूने लगा था कि आज तक अपने पिता को सुखी करनेवाला, तेरे जैसा कोई सुपुत्र

ही पैदा नहीं हुआ है। पर क्या सुख दिया तूने पिता को ? उनके जीवन को तूने नरक बना दिया है। उन्होंने सत्यवती को चाहा था किन्तु तुझसे कुछ माँगा तो नहीं था। तुझसे माँगा इसलिए नहीं था, क्योंकि उसके अनौचित्य को उनका विवेक देख रहा था- तूने उसके अनौचित्य को नहीं देखा; और सत्यवती को लाकर उनके सम्मुख खड़ा कर दिया। कैसा पापी है तू।

आप अपने अपयश के भय से इस यातना को कब तक ढोयेंगे पिताजी ? भीष्म को यह कहने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ा।

अपयश की ही बात होती, तो शायद मैं किसी और ढंग से सोचता, शान्तनु बोले, वस्तुत: सत्यवती से अलग होकर शायद मैं तो मुक्त हो जाऊँगा, किन्तु वैसी स्थिति में चित्रांगद और विचित्रवीर्य पूर्णत: उसके अधिकार में होंगे। उनके विषय में सारे निर्णय वह करेगी। वे पूर्णत: उसके संरक्षण में होंगे। उसकी इच्छा के अनुसार उन्हें जीवन व्यतीत करना होगा। और जैसे भी हैं, वे मेरे पुत्र हैं वत्स। शान्तनु की आँखें भर आयीं, मैं उन्हें पूर्णत: उस स्त्री के भरोसे कैसे छोड़ दूँ, जो इतने मनोविकारों से ग्रस्त है। वह उनका भी जीवन नरक बना सकती है और अपने असन्तुलित क्षणों में उनके लिए वही निर्णय ले सकती है, जो गंगा ने अपने पुत्रों के विषय में लिया था। उन्होंने रुककर भीष्म की ओर देखा, और भी एक बात है भीष्म। क्या पिताजी ?

वह स्वस्थ होती। ठीक ढंग से सोच-समझ सकती। और उसका व्यवहार दूषित होता तो कदाचित् मैं कब से उसका त्याग कर चुका होता। पर वह रुग्ण है। उसकी चिन्तन-प्रक्रिया विकृत है। वह ठीक से सोच नहीं पाती है। उसका त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ पुत्र। रोगी की सेवा की जाती है, उसे त्यागा नहीं जाता। उसे त्याग देने पर उसे जो शारीरिक और मानसिक कष्ट होगा, उसके लिए मैं स्वयं को कैसे क्षमा कर पाऊँगा।

तो मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है पिताजी ?

नहीं। कोई मार्ग नहीं है। शान्तनु बोले, प्रकृति सर्वोच्च न्यायाधीश है; और न्याय करनेवाला कठोर भी होता है वत्स। प्रत्येक व्यक्ति अपने पाप को भोगता ही है। मैं भी अपने पाप को ही भोग रहा हूँ।

भीष्म के मन में फिर वैसी ही टीस उठी, जैसे सत्यवती को देखकर लौटे हुए पीड़ित पिता को देखकर उनके मन में उठी थी। उनका मन तड़प उठा; क्या करें भीष्म ? उन्होंने पिता के सुख के लिए सबकुछ त्यागा था। पिता सुखी रहें, इसलिए उन्होंने स्वयं को पिता से दूर कर लिया था और पिता यह सब भोगते रहे।

क्या मैं कुछ भी नहीं कर सकता पिताजी ?

क्यों नहीं कर सकते ? शान्तनु के स्वर में कुछ उत्साह जागा, तुम कुछ करो, इसके लिए ही तुम्हें बुलाया है।

आदेश दें पिताजी। पितृवत् प्रजा का पालन करने के लिए कुछ उदार होना पड़ता है पुत्र। उसके सुख-दु:ख में उसके साथ चलना पड़ता है। समृद्धि के समय उससे कर उगाहा जाता है तो विपत्ति के समय उस पर व्यय भी किया जाता है। वैसे भी राजा का धन अपने भोग के लिए कम, प्रजा के सुख के लिए अधिक होता है पुत्र।

भीष्म कुछ नहीं बोले। वे इस भूमिका के पश्चात् आनेवाले मुख्य वक्तव्य को सुनने को उत्सुक थे।

भीष्म। सत्यवती को मेरी उदारता प्रिय नहीं है। शान्तनु बोले, प्रजा के लिए व्यय करने का मेरा प्रत्येक प्रस्ताव उसको पीड़ित करने लगता है। वह यह मान लेती है कि हस्तिनापुर के राजकोष में जो कुछ है, वह उसके पुत्रों की सम्पत्ति है। यदि उस सम्पत्ति से मैं उनके लिए प्रासाद बनवाता हूँ, दास-दासियों का क्रय करता हूँ, भोजों का आयोजन करता हूँ, मणि-माणिक्य खरीदता हूँ- सत्यवती और उसके पुत्रों के लिए भोग-विलास की सामग्री उपलब्ध कराता हूँ, तो उसकी दृष्टि से मैं उचित ही करता हूँ। मुझे यही करना चाहिए। यह मेरा दायित्व ही नहीं, धर्म भी है। किन्तु, यदि मैं प्रजा के सुख के लिए, एक छोटी-सी राशि भी व्यय करता हूँ, तो वह यह सोचकर अत्यन्त व्याकुल हो जाती है कि मैं उसके पुत्रों की सम्पत्ति का अपव्यय ही नहीं कर रहा, जान-बूझकर उसके पुत्रों के मार्ग में कंटक बोने का षड्यन्त्र कर रहा हूँ। वह मान लेती है कि मैं अपने जीवन में सारा राजकोष लुटा दूँगा

और जब मैं मरूँगा तो उसके और उसके पुत्रों के लिए कुछ भी बचा नहीं रहेगा और वे कंगालों की भाँति गलियों और पथों पर मारे-मारे फिरेंगे, या उसके अपने सम्बन्धियों के समान गंगा के किसी घाट पर मछलियाँ पकड़-पकड़कर अपना जीवन-यापन करेंगे। इस कल्पना को वह इतना घनीभूत कर लेती है कि वह उसके लिए जीवन का सबसे बड़ा सत्य हो जाता है; और वह उस सम्भावित काल्पनिक स्थिति से बचने के लिए, वर्तमान में मुझसे वास्तविक युद्ध छेड़ देती है।

क्या ? भीष्म के मुख से अनायास ही निकल गया।

हाँ। पुत्र। शान्तनु बोले, ये मेरे निजी जीवन के कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जिनकी मैं किसी के सामने चर्चा भी नहीं कर सकता। किसी से बाँटकर अपना बोझ हल्का नहीं कर सकता। अपनी और अपने वंश की अपयश से रक्षा करने के लिए, मैं प्रत्येक क्षण उससे डरता रहता हूँ। चक्रवर्ती शान्तनु अपनी पत्नी के भय से पीला पड़ जाता है कि कहीं वह अपने कुल में चली आयी पूज्य-पूजन की परम्परा को खण्डित न कर दे, कहीं वह किसी आदरणीय का अपमान न कर दे, कहीं वह अपने सार्वजनिक प्रलाप से इस भरत वंश की कीर्ति को कलुषित न कर दे।

भीष्म चुपचाप अपने पिता की ओर देखते रहे।

इस भरत वंश का भविष्य मुझे बहुत उज्ज्वल नहीं दीखता वत्स। मैं जीवित रहते, अपनी प्रजा का समुचित पालन नहीं कर सकता और मेरे पश्चात् चित्रांगद और विचित्रवीर्य अपनी इस माँ की सहायता से हस्तिनापुर को नाश के मार्ग पर ही ले जायेंगे। स्वयं भी नष्ट हो जायेंगे, और प्रजा का भी विनाश करेंगे।

भीष्म के मन में उत्सुकता फन काढ़कर खड़ी हो गयी; क्या चाहते हैं पिता ? इस पूर्व पीठिका का उत्तर खण्ड ?

इस राज्य को नष्ट होने से बचाने के लिए, भरत वंश की ख्याति की रक्षा के लिए, हमें कुछ करना होगा पुत्र। शान्तनु बोले- अन्यथा। भीष्म का मन कह रहा था, या तो ऐसा कुछ होगा नहीं। सम्भव है कि यह पिता के वृद्ध और दुर्बल स्नायु-तन्त्र की आशंकाओं की ही माया हो या यदि ऐसा ही कुछ हो गया। कुरु-साम्राज्य ध्वस्त हो ही गया। इस साम्राज्य का नाम बदल गया। शान्तनु के बाद हस्तिनापुर के सिंहासन पर कोई तो दूसरा पुरुष बैठेगा ही, यदि वह पुरुष कुरु-कुल का अंश न हुआ तो क्या अन्तर आ जायेगा। धरती तो यही रहेगी, प्रजा भी यही रहेगी ईश्वर की सृष्टि में क्या परिवर्तन हो जायेगा ?

पर यह सब वह अपने पिता से नहीं कह सकते थे। पिता राजा थे, और राजाओं के समान सोचते थे। भीष्म के समान तटस्थ होकर वे अपने राज्य के विषय में कैसे सोचते ?

आपकी क्या इच्छा है पिताजी ?

पुत्र। इच्छा होते हुए भी मैं तुम्हें युवराज नहीं बना सकता। यह जानते हुए भी कि कुरु साम्राज्य की रक्षा करने, उसे शक्तिशाली और समृद्ध बनाने, भरत वंश की कीर्ति को बढ़ाने में एकमात्र तुम ही समर्थ हो- मैं राज्य तुम्हें नहीं सौंप सकता।

मुझे कुरु साम्राज्य नहीं चाहिए पिताजी। मुझे राज्य नहीं चाहिए।

जानता हूँ पुत्र। तुम्हें कुछ नहीं चाहिए। शान्तनु बोले, पर यह भी तो जानता हूँ कि आज कुरु वंश और कुरु साम्राज्य को तुम्हारी आवश्यकता है। उन्होंने अपनी दृष्टि को पूरी तन्मयता से भीष्म के चेहरे पर टिका दिया, तुम युवा हो, शक्तिशाली हो, समर्थ हो, शस्त्रविद्या और रणनति में दक्ष हो, सैनिकों, सेनापतियों और कुरु प्रमुखों के प्रिय हो तुम बलात् यह राज्य हस्तगत कर लो पुत्र।

पिताजी। प्रस्ताव की अप्रत्याशितता से जैसे भीष्म बौखला उठे, आप क्या कह रहे हैं पिताजी। यह सम्भव नहीं है।

तो कुरु साम्राज्य का अक्षुण्ण रहना भी सम्भव नहीं है।

भीष्म कुछ शान्त हुए, मैंने प्रतिज्ञापूर्वक राज्य त्यागा है। अब उसके लिए मैं बल-प्रयोग करूँ ? जिन कारणों से मैं प्रजा का प्रिय हूँ, उन कारणों का आधार नष्ट कर दूँ। अपनी जिस प्रतिज्ञा पर मैं गर्व करता हूँ उसे स्वयं भंग कर दूँ। यह असम्भव है पिताजी।

यदि मैं ऐसी आज्ञा दूँ तो ? आपकी आज्ञा धर्म-विरुद्ध होगी।

तुम अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ोगे, चाहे तुम्हारे पिता टूट जायें।

भीष्म ने पिता को देखा। कुछ देर जैसे साहस संचित किया और बोले, प्रतिज्ञा तोड़ी तो न केवल भीष्म टूटेगा, वरन् भरत वंश का कीर्ति-कलश भी टूटकर गिर जायेगा। आप मुझे इसके लिए बाध्य न करें। वे उठ खड़े हुए, मुझे खेद है कि मैं आज्ञाकारी पुत्र होने का यश अक्षुण्ण नहीं रख सका।

पिता को प्रणाम कर भीष्म द्वार की ओर चल पड़े। शान्तनु अपने स्थान पर बैठे, भीष्म को जाते हुए देखते रहे, जैसे कुरु साम्राज्य के उत्कर्ष को राजप्रासाद से दूर होते हुए देख रहे हों।

सत्यवती ने पूछा भीष्म आपके पास क्यों आया था ? बहुत प्रयत्न करने पर भी शान्तनु सत्यवती को नहीं समझा सके कि भीष्म के प्रति इस प्रकार का द्वेष सत्यवती के लिये लाभदायक नहीं है। भीष्म का तो अब कुछ बिगडने वाला नहीं है। महाराज ने कहा मैंने बुलाया था उसे। शान्तनु बोले, क्योंकि वो मेरा पुत्र है। वे राजा भी हैं एक पिता भी हैं। सत्यवती नहीं चाहती थी कि शान्तनु भीष्म से मिले। यहां पर शान्तनु न राजा है और न पिता पर यहां वे एक पति भी है और पति-पत्नी का सम्बन्ध अपने ही नियमों से परिचालित होता है। राजा भयभीत थे कि सत्यवती अपना सन्तुलन न खो बैठे। कहीं कोई कुहराम न मचा दे। उनका पारिवारिक झगडा खुल कर सामने ना आ जाये राजा-रानी का पारस्परिक विरोध, भीष्म के प्रति सत्यवती की दुर्भावनायें सब कुछ आम हो जायेगा, प्रकाशित हो जायेगा और हस्तिनापुर के घर-घर में इसकी चर्चा होने लगेगी। आगे चलकर यह पारिवारिक कलह कभी राजनीतिक कलह का कारण न बन जाये। शान्तनु सत्यवती से झूठ बोलकर इसका उत्तर भी टाल सकते थे पर राजा का व्रत सत्य बोलने का ही था। शान्तनु प्राय: झूठ नहीं बोलते थे। महाराज बोले सत्यवती मेरा बुढापा अपनी शक्ति दिखा रहा है। मैं भयभीत रहने लगा हूं। असुरक्षा का भाव जाग रहा है। अन्धेरे बढते ही जा रहे हैं। मैं अपने आपको अस्वस्थ महसूस करने लगा हूं। शान्तनु टूटते जा रहा है। मैं दिन प्रतिदिन अक्षम होते जा रहा हूं। मेरी मानसिक और शारीरिक शक्तियां क्षीण हो चली है। सत्यवती बोली तो राजवैद्य को बुलाना चाहिये था। इसमें भीष्म क्या कर सकता है ? शान्तनु की स्थिति देखकर सत्यवती सहम उठी और पहली बार सत्यवती के मन में आया राजा स्वस्थ नहीं लग रहे है उन्हें कुछ हो न जाये। राजा को मृत्यु का आभास होने लग गया। सत्यवती डगमगाने लगी। शान्तनु सोचने लगे कहीं सत्यवती के मन में यह तो नहीं कि कुरुकुल पर, कुरु साम्राज्य पर अपना पूर्णाधिकार चाहती हो और जो कुछ भी शान्तनु के पास है वह सभी उसका हो जाये। क्या वह चाहती है कि शान्तनु का किसी के साथ कोई सम्बन्ध न रहे, कोई सम्पर्क न रहे, उनपर किसी अन्य का कोई अधिकार नहीं रहे। उनपर एकाधिकार सत्यवती का ही रहे। वे सत्यवती की सत्ता के उपकरण मात्र रहे। जो कुछ भी राजा करे वे सत्यवती से पूछ-पूछकर ही करे। शान्तनु बोले तब सुनो सत्यवती जब मैं अपने शरीर को असमर्थ होता देखता हूं, शक्ति को क्षीण होता हुआ पाता हूं तो मैं भयभीत हो जाता हूँ मुझे लगता है कि मेरी आयु अब शेष नहीं रही है। मैं अधिक समय तक अब जीवित नहीं रह पाऊंगा। मुझे मेरी कोई चिन्ता नहीं है। मैंने जीवन में बहुत कुछ पाया है और बहुत कुछ खोया है। तुम्हारी भी चिन्ता नहीं है मुझे। तुम पर्याप्त समर्थ हो निर्भिक हो किन्तु चिन्ता है मुझे अपने इन दो पुत्रों की विचित्रांगद और विचित्रवीर्य की। सत्यवती बोली इसकी चिन्ता क्यों है ? विचित्रांगद सिंहासीन होगा और हम सब का पालन करेगा। शान्तनु बोले, देवि यही तो चिन्ता है मुझे यदि राजपुत्र समर्थ हो तो वह राजा, सम्राट, चक्रवर्ती बन जाता है परन्तु यदि राजपुत्र समर्थ नहीं हुआ तो उसका जीवित रहना भी कठिन हो जाता है। सिर्फ पडोसी राजा ही नहीं उसके अपने अमात्य, सेनापति, सैनिक, जनप्रमुख दुर्बल राजा सभी उसके शत्रु बन जाते है और उसकी हत्या कांड की साजिश रचते है। सत्यवती बोली नहीं महाराज ऐसा नहीं हो सकता।

शान्तनु बोले, सत्यवती तुम्हारे ना कर देने से तो प्रकृति का सत्य नहीं बदल जाता। मेरे जीतेजी मुझे अपने इन पुत्रों का समर्थ

होने तक इनकी व्यवस्था इनकी रक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक है। सत्यवती की आंखों में अधिक अविश्वास और विरोध था जो शान्तनु को तोड देने के लिये पर्याप्त था। शान्तनु का सारा उत्साह विलुप्त होते जा रहा। सत्यवती फिर से पूछ बैठी कैसा प्रबन्ध करना चाह रहे आप ? शान्तनु फूट पडे और बोले यदि मैं न भी रहूँ तो कोई ऐसा हो जो बाहरी और भीतरी विरोधों से, षडयन्त्रों से और आक्रमणों से मेरे इन पुत्रों की रक्षा करता रहे और वह है भीष्म। अब सत्यवती उन्मुक्त हो गयी। शेरनी बन गई और बोली भरत वंश का चक्रवर्ती सम्राट अपनी पत्नी को दिये गये वचनों को भूल रहा है, जान-बूझकर उन वचनों को वापिस लौटा रहा है। अब सत्य, धर्म और न्याय नहीं रहा है। शान्तनु मृत्यु शैया पर है आखिरी सांसे गिन रहा है। दीपक की लौ बुझने को टिम-टिमा रही है। शान्तनु अब धैर्य नहीं रख सके और कुछ उग्र हो बोले कि देवी पहली बात तो यह है कि मैंने तुम्हे कोई वचन ही नहीं दिया है और न ही कोई वरदान।

सत्यवती क्रुद्ध नागिन की तरह फुफकार कर बोली झूठ बोल रहे हो। सब कुछ ना-मंजूर कर दो। यह भी कह दो कि मैंने तुमसे विवाह ही नहीं किया। तुम तो यह भी कह सकते हो विचित्रांगद और विचित्रवीर्य तुम्हारे पुत्र भी नहीं है। शान्तनु का संयम टूटने लगा और बोले देवि जो भी प्रतिज्ञाये की है वे सब भीष्म ने की है और वह आज भी उन पर अटल है तथा भविष्य में बन्धा रहेगा।

सत्यवती बोली हां वह भी अटल है और तुम भी अटल हो तुम्हारे जैसा धूर्त तो मैंने देखा ही नहीं। पर वह किसी भी दशा में फिर से युवराज नहीं बनेगा। सिर्फ वह मेरे पुत्रों का अभिभावक हो सकता है। वह राजा नहीं होगा और न ही प्रजा पर शासन करने का अधिकारी होगा। मेरा पुत्र ही राजसिंहासन पर बैठेगा। अच्छी तरह आप सुन लें और जान लें। शान्तनु बोले देवि न तो मैं तुम्हारे पुत्रों को राज्य से वंचित कर रहा हूँ और न ही भीष्म कोई उनका राज्य लेना चाहता है। मैं तो उस बेचारे पर अतिरिक्त बोझा डाल रहा हूँ कि मेरे पश्चात तुम लोग, तुम और तुम्हारे ये पुत्र सुखी और सुरक्षित रह सको। लगता है विधाता की इच्छा अनुकूल नहीं है। मेरी मृत्यु के पश्चात भी यदि तुमने भीष्म से शत्रुता निभायी तो अपने तथा अपने पुत्रों और हस्तिनापुर राज्य के विनाश के लिये तुम स्वयं उत्तरदायी होगी केवल तुम।

१५) शान्तनु की मृत्यु

भीष्म शान्तनु के पास से लौटकर गंगा तट पर अपनी कुटीर में आये और फिर चिन्तन में लग गये कि उन्होंने अपने जीवन का सारा सुख त्याग कर पिता की मनोकामना पूरी की पर यह चरम सुख इस परम दु:ख और यातना में बदल गया। वे जितना सोचते जा रहे थे उनके मन में समस्याये शनै: शनै: बढ़ती जा रही थी। राजा शान्तनु ने सत्यवती को देखा था तो उनका मन उसे पाने के लिये तडप उठा, बेचैन हुआ। भीष्म ने तो यही सोचा था कि माता सत्यवती को पाकर पिता परम सुखी होंगे पर परिणाम यह नहीं निकला। मनुष्य की इच्छा ही सत्य नहीं होती है। इच्छा तो उसे धोखा दे जाती है। पिता को तडफते देख कर ही देवव्रत ने सोचा था किसी भी प्रकार उनकी इच्छा पूरी कर दे उस समय देवव्रत ने यह क्यों विचार नहीं किया कि ये धर्म संगत नहीं है। धर्म संगत तो प्रकृति का व्यवहार है। सृष्टि की इच्छा है मनुष्य तो स्वार्थी है। संकीर्ण बुद्धि से अपने सुख-दु:ख की ही बात सोचता है। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष का आकर्षण सृजन के लिये बनाया है। सत्यवती के पिता ने लोभ वश अर्थ को महत्व दिया जब कि राजा शान्तनु ने काम को और देवव्रत ने प्रकृति पर अपनी इच्छा आरोपित की पर अब भीष्म को लग रहा है कि तीनों की बुद्धि ने उन सब के साथ छल किया है। आज फिर से पिता कह रहे है राज्याधिकार छीन लो। राज्याधिकार और सन्तान मोह में लिप्त उनको किस अनुचित काम में प्रेरित कर रही है ? वे चाहते है कि फिर से कुरु साम्राज्य भीष्म को अर्पित कर दे। कभी उन्होंने धर्म और न्याय की दृष्टि से देखा है कि उनके इस कृत्य का परिणाम क्या होगा ? कही ऐसा तो न हो पिता की इच्छा पूरी करने के लिये एक नया और बडा नरक पैदा कर दे। कुरुवंश में जन्म लेकर क्या उन्हें राज्य का लोभ है ? क्या वे अपनी प्रतिज्ञा को भंग करे ? दिये हुए वचन से मुकर जाये ? क्या वे अपने पिता की यातना को दूर कर पायेंगे ? क्या वे अपने

पिता को सुखी कर पायेंगे ? इन सभी द्वन्दों में उलझा भीष्म फिर सोच रहा है कि यह पिता का स्वार्थ नहीं बोल रहा है, उनकी आसक्ति चाहे बोल रही हो पर वे तो प्रजा के हित के लिये कर रहे है और भीष्म तो केवल अपनी कीर्ति, ख्याति, चरित्र की बात ही सोच रहे है तो फिर क्या भीष्म पिता की आज्ञा का पालन करे, उनकी इच्छा पूरी करे ?

तत्काल भीष्म की अन्तरात्मा से एक नारी मूर्ति उभरी। वह थी उसकी मां गंगा वे मात्र उसके शब्दों को समझ रहे थे कि पुत्र अपनी सोयी हुई प्राकृतिक दुर्बलताओं को मत जगने दे। पिता की इच्छा और आज्ञा की ओट में भी नहीं। सहसा भीष्म चौंक उठे क्या उनका लोभ पिता की इच्छा की ओट लेकर कुछ अनर्थ करने जा रहा था या प्रजापालन बडा धर्म है या प्रतिज्ञा पालन।

धर्म और न्याय से पूर्ण शासन कर सामान्य प्रजाजन का हित करना उनका धर्म है या अपने चरित्र का उत्थान और विकास। व्यक्ति अपने लिये प्रतिबद्ध है या सृष्टि के लिये। स्वार्थ तो स्वार्थ ही है चाहे भौतिक सुख की दृष्टि से हो या परमार्थिक दृष्टि से। भीष्म अब इन द्वन्दों में उलझ गया। मन कहने लगा कि वे राज्याधिकार पाने के लिये प्रजापालन का बहाना ढूंढ रहे है। वे कैसे यह नहीं सोच सकते जब कल चित्रांगद राज्य काज सम्भालेगा तो वह उनसे श्रेष्ठतर राजा नहीं हो सकेगा ? इच्छा पिता की हो या भीष्म की इच्छा तो इच्छा ही है व्यक्ति की। सत्य तो यह है कि भीष्म भी नहीं जानता कि कौनसी इच्छा उसके हित में है और उसके लिये शुभ क्या है ? भीष्म निर्णय नहीं कर पा रहे कि सत्य क्या है? और धर्म क्या है ? भीष्म का दायित्व क्या है ? निर्णय कदाचित उनके हाथ में ही नहीं है। जो नियति से होगा वही होगा।

चक्रवर्ती शान्तनु के कक्ष में आज राजदरबारियों की भीड लगी हुई है महाराज अपने पलंग पर लेटे हैं। सत्यवती सिर के पास खडी है। वृद्ध मन्त्री और राज पुरोहित सामने खडे है। विचित्रवीर्य और विचित्रांगद कुछ हठकर कक्ष में बैठे हैं। राज वैद्यों का दल अपने सहकर्मियों के साथ उपस्थित है। वहीं पर दास दासियां हाथ बांधे आदेशों की प्रतीक्षा में खडे है। शान्तनु ने आंखे खोलकर देखा। भीष्म को वहां न पाकर उनकी आंखों का शून्य गहराता जा रहा था। भिष्माचार्य ने एक नयी औषधि का रसायन तैयार कर महाराज को इसे पीने का आग्रह किया कि इससे तत्काल आप स्फूर्ति का अनुभव करेंगे। शान्तनु के मुख से धीरे-धीरे शब्द निकले देवव्रत को बुलाओ। अब मुझे इस आखिरी वक्त में औषधि की आवश्यकता नहीं है। सत्यवती फिर से वही सोचने लगी कि देवव्रत को बुला रहे है इस अन्तिम समय में फिर से राज्याधिकार देवव्रत को न थमा दे और एक बार कहीं कुछ ऐसा हो गया तो कुरु प्रमुख किसी भी स्थिति में चित्रांगद को राज सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करेंगे। शान्तनु पुन: बोले, अब देवव्रत को बुलाओ। सत्यवती इस साजिश में थी कि देवव्रत अब यहां न पहुंच पाये।

सन्देशवाहक भीष्म के शिबिर में गया और बोला महाराज अत्यधिक अस्वस्थ है और आपको स्मरण कर रहे हैं। भीष्म तुरन्त तैयार होकर राजप्रासाद में आये।

शान्तनु को लगने लगा अब उनमें बोलने की शक्ति नहीं रही या शायद बोलने की इच्छा ही समाप्त हो गई पर वे पूर्णतया होशों हवाश में थे। वे सब कुछ देख और समझ रहे थे। उनके सोचने की क्षमता अभी समाप्त नहीं हुई थी। वे यह नहीं जानते थे कि उनकी आयु की कुछ ही घडियां शेष रह गई है। उन्होंने अपने जीवन के दायित्व भी तो पूरे नहीं किये है। सत्यवती अभी ४० वर्ष की तो हुई है। उसके सामने पहाड सा जीवन पडा है। दो पुत्र हैं कैसा सम्भाल पायेगी उन्हें ? ये सारे लोग इस समय उनके बहुत आत्मीय होकर खडे है वे ही शान्तनु की आंखे मूंदते ही भेडिये से बन खाने लगेंगे। राज्य का लोभ तो ऐसा ही है जो मनुष्य में सोये पशु को जगा देता है। जब शान्तनु नहीं रहेंगे तो यह कुटम्बी और सहयोगी जन ही सत्यवती के जीवन के रक्त पिपासु हो जायेंगे। सत्यवती का अपहरण भी तो हो सकता है। सत्यवती तो अब भी रूप यौवन में सुन्दर ही है उसे प्राप्त कर कोई भी राजा अपना सौभाग्य मानेगा।

क्या शान्तनु को आज सत्यवती का मोह फिर से जाग उठा। क्या वे चाहेंगे कि उन्हें फिर से जीवन मिले और सत्यवती के

साथ भोग करे ? सारा जीवन ही ऐसा है। इच्छाओं, आकांक्षाओं और कामनाओं के बवन्डर में फंसा जीवन। किसी न किसी लक्ष्य के लिये संघर्ष। पता नहीं किसकी प्रतीक्षा। कितना छोटा क्षण। मन बहुत हठी होता है पर विवेक उसे समझा नहीं पाता उसकी चाहत को। बस मांगते ही रहता है। मन में बस इसी बात की चिन्ता आडे आ रही है कि वे अपनी पत्नी सत्यवती को दो पुत्रों, राज्य को छोडे जा रहे है लेकिन प्रकृति उन्हें यह समझा रही है कि यह सब उनका है ही नहीं तभी तो सब कुछ यहीं छोडना पडता है। शान्तनु फिर धीरे से बुद-बुदाये देवव्रत अभी तक नहीं पहुंचा। इतने में देवव्रत आ गया और पिता की छाती से लग गया। शान्तनु देवव्रत से इतना ही कह पाये तुम इनका लालन-पालन-पोषण करना, दोनों बालक अबोध है और सत्यवती नासमझ। तुम अपना धर्म..... और शान्तनु होठ हिलाकर ही रह गये। कोई सार्थक शब्द नहीं निकले तथा कोई उनका अर्थ भी नहीं समझ पाया और शान्तनु के नेत्र मूंद गये। अन्त में महाराजा के दु:खों की छाया सम्पूर्ण राजप्रासाद में छा गई।

शान्तनु ने अत्यन्त दु:खी व निराश मन:स्थिति में कुछ बोलने में असमर्थ अपने पुत्र विचित्रांगद और विचित्रवीर्य को भीष्म के संरक्षण में सौंपकर सत्यवती को आखिरी नमस्कार कर इस जग से अलविदा किया। पिता का साया भीष्म के सिर से उठ गया और कन्धों पर राज्य के साथ भाईयों के संरक्षण का भी उत्तरदायित्व आ गया।

शान्तनु की मृत्यु से सत्यवती का हृदय कांप उठा। राजा कहीं भीष्म को कुछ कहते-कहते स्वर्ग सिधार गये। कहीं भीष्म यह घोषणा कर दे कि चक्रवर्ती उसे ही राज्य दे गये हैं तो चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों मिल कर भी भीष्म का कुछ नहीं कर पायेंगे। सभी तो भीष्म के ही सहायक होंगे मन्त्री, राजपुरोहित कुरु जन प्रमुख कोई भी तो उसका नहीं है। बलिष्ठ का विरोध बहुत मुश्किल होता है यदि भीष्म ने यह राज्य हस्तगत कर लिया तो ? वचन तलवारों की धार तो नहीं काट सकता। सत्यवती सोचती है भीष्म द्वारा राज्याधिकार हस्तगत करना अन्याय है या भीष्म से उसका युवराजत्व छिनना ? वह तो इतना ही जानती थी कि उसने राजा से एक व्यवहार, सौदा किया था भले ही वह व्यवहार न्याय था या अन्याय। वह तो मात्र एक समझौता था। यह सब सोच-सोचकर सत्यवती को चक्कर आने लगे। भीष्म तत्काल आगे बढ़कर माता सत्यवती को पकड न लेते तो वह भूमि पर गिर जाती। भीष्म ने कहा माता इस समय आप धैर्य रखें। आपका कष्ट कम करने के लिये भीष्म से जो भी हो सकेगा वह करेगा।

सहसा विचित्रांगद उठकर आगे आया और सत्यवती को भीष्म के हाथों से पकड कर थाम लिया तथा बोला आप कष्ट ना करे। पिता नहीं रहे तो क्या पर मैं अभी हूं और अपनी मां की भली भांति देखभाल कर लूंगा। इसके लिये आपकी आवश्यकता नहीं होगी। भीष्म अपने अपमान की घूंट पीकर धीरे से बोले चित्रांगद मैं भूल ही गया था कि अब तुम बडे हो गये हो। भीष्म की इच्छा हुई कि तत्काल कक्ष छोडकर निकल जाये पर लोक लाज से ध्यान आया कि पिता का देहान्त अभी-अभी ही हुआ है। शोक का समय है। भीष्म का इसप्रकार यहां से चले जाना अनेक प्रकार की समस्याओं और उलझनों को जन्म दे सकता है।

सत्यवती ने देखा असहाय अवस्था में उसके पुत्र चित्रांगद ने उसे उबार लिया। सिंह का शिशु भी सिंह की क्षमताओं से युक्त होता है। इसी क्षण से चित्रांगद हस्तिनापुर का सम्राट है। अब सत्यवती को लगने लगा वह शान्तनु की मृत्यु से अनाथ नहीं हुई। इतने वर्षों से दाम्पत्य जीवन के पश्चात भी वह कभी चक्रवर्ती की ओर से आश्वस्त नहीं थी। शान्तनु उसे कभी भी पूर्ण सुरक्षा का भाव नहीं दे पाये। हस्तिनापुर का शासन, धन, सम्पत्ति, सत्ता, सेना सब कुछ तो उसी का है इसी क्षण से। माता का तो कोई त्याग भी नहीं होता और न ही उसे कोई अपदस्थ कर सकता है। वह अपने अधिकारों से राज-परिवार पर अपना नियन्त्रण स्थापित करेगी। चक्रवर्ती के साथ विवाह तो यह लक्ष्य था। अब जाकर कहीं वह लक्ष्य पर पहुंची है। उसका लक्ष्य था राजमाता बनना। सत्यवती अपने अधिकार मद से तन गयी और महामन्त्री तथा आचार्य को आज्ञा दी कि महाराज की अन्त्येष्टि की व्यवस्था की जाये। सत्यवती के लिये अब भीष्म का कोई अस्तित्व नहीं था। भीष्म अपने आपको अपमानित महसूस कर गंगा तट पर अपने कुटीर में लौट गये।

१६) चित्रांगद का सम्राट पद पर राज्याभिषेक

जन्म-मृत्यु के चक्कर में काल सबको ठहरा लेता है पर स्वयं कहीं भी नहीं रुकता। समय बीतते जाता है और सभी नियति के अधीन है। इससे हठकर कोई कुछ कर भी तो नहीं सकते। सत्यवती पर वैधव्य का पहाड टूट पडा। राज्य भार का कार्य आगे चालू रखना आवश्यक था। माता सत्यवती के साथ विचार विमर्श कर कुरुवंश का हित समझ कर भीष्म ने माता सत्यवती की आज्ञा का पालन कर अपने छोटे भाई चित्रांगद को हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर सम्राट पद पर स्वस्तिवाचन कर राज्याभिषेक किया। चित्रांगद अपने पराक्रम से सभी आस पडौस के राजाओं के साथ युद्ध करने लगा। वह किसी मनुष्य को अपने समान नहीं समझता था। वह उद्दण्ड और अहंकारी था।

भीष्म चित्रांगद का राज्याभिषेक कर गंगा तट पर अपने कुटीर में लौट आया। भीष्म का मन अब मुक्त होकर विचार क्षेत्र में विचरण करने लगा। राजा के पास तो सब कुछ होता है पर शान्ति नहीं होती। वह अपनी विस्तार सीमा के लिये युद्ध करता है आखेट करता है, द्यूत खेलता है, विवाह करता है इत्यादि और एक तपस्वी होता है कि उसके पास कुछ न होते हुये भी उसे भूमि के अधिकार की इच्छा नहीं होती, वन में रहते हुये भी उसे आखेट की कामना नहीं रहती। धन का पूर्ण अभाव होने पर भी वह द्यूत की ओर कभी अग्रसर नहीं होता। स्त्री विहीन होते हुये भी वह कभी स्त्री की कामना नहीं करता और जिसके पास कुछ नहीं है उसे अपना अभाव पीडा नहीं पहुचाता और जिसके पास सब कुछ है वह और अधिक पाने की लालसा करता है ऐसा क्यों ? क्या प्राप्ति की सम्भावनायें होने पर धन का मन का लोभ और अधिक बढ़ जाता है ?

भीष्म चिन्तन कर रहे थे कि इतने में ही हस्तिनापुर के कुरु साम्राज्य के महामन्त्री विष्णुदत्त उनकी कुटिया में आये। भीष्म ने उठकर उनका स्वागत किया और बैठने का आसन दिया और भीष्म ने पूछा क्या बात है काका आज कुछ व्यथित उदासीन दिखाई दे रहे हो ? किसी प्रकार का कष्ट है ? मन्त्री प्रवर बोले हां राजकुमार हस्तिनापुर में तो अब कष्ट ही कष्ट है। भीष्म बोले यदि हस्तिनापुर का महामन्त्री ही कष्ट में है तो फिर साधारण जन की क्या स्थिति होगी ?

महामन्त्री बोले राजकुमार आपने भविष्य का ठीक अनुमान लगाया। हस्तिनापुर की राज सभा में बैठकर अपमानित होने से तो अच्छा है कि व्यक्ति वन में चला जाये या तपस्या करने हिमालय में चला जाये। अब हस्तिनापुर की राजसभा में स्थान पाना कोई सम्मान का प्रतीक नहीं रहा। किसी वयोवृद्ध मन्त्री, किसी तपस्वी ब्राह्मण, किसी विद्वान, शुभ-चिन्तक, किसी वीर योद्धा को अपशब्द कह देना किसी का भी राजसभा में खडे-खडे पानी उतार देना नये सम्राट के लिये तनिक भी लज्जास्पदक नहीं है। महाराज की निष्ठा केवल अब दूसरों का अपमान करने में है। ऐसा राजा हस्तिनापुर के सिंहासन पर आज तक कभी बैठा नहीं जिसने प्रत्येक सभासद का अपमान कर दिया हो। राजपुरोहित भी हस्तिनापुर छोडने की बात सोच रहे हैं।

भीष्म सुनकर हतप्रभ रह गये। पिछले कुछ दिनों से कोई न कोई आते-जाते उनके कानों में कोई न कोई नयी बात कह जाता। हस्तिनापुर में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है। भरत वंश का राजा शील, शिष्टाचार को तिलांजलि दे देगा यह भीष्म ने कभी नहीं सोचा था। भीष्म बोले मन्त्री प्रवर क्या राजमाता सत्यवती का भी कोई नियन्त्रण नहीं है ? मन्त्री बोले राजमाता स्वयं चाहती है कि सम्राट का व्यवहार सम्राटों के अनुकूल होना चाहिये। भीष्म बोले मन्त्रीजी शील सदा ही सम्राटों का आभूषण रहा है और चिन्तन सदा ही कर्म से ऊंचा है। ऋषियों के सम्मुख राजाओं के सिर सदा से ही झुके है। मन्त्री ने कहा क्षमा करे राजकुमार महाराज चित्रांगद के मन में किसी के प्रति कोई सम्मान नहीं है। वे विद्या, ज्ञान, तपस्या, चरित्र, शूरता, स्वाभिमान, स्वामीभक्ति किसी भी गुण को नमस्य नहीं मानते है। हस्तिनापुर अब गुणियों का केन्द्र नहीं रहा। यह तो उद्धतता का साम्राज्य हो गया है।

भीष्म बोले सम्राट का राज्य है, उनकी सभा है, उनकी इच्छा है जिस प्रकार चाहे राज्य चलावे, जिस प्रकार चाहे वे अपने सहयोगियों से व्यवहार करे। इस विषय में मुझे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? मन्त्री विष्णुदत्त बोले इसलिये तो मैं कह

रहा था कि आपने बहुत उपयुक्त निर्णय लिया, भूल तो हमसे हुई। आखिर हम ही राजधानी और राजसभा से चिपके बैठे रहे। मुझे तो आपसे पहले ही इसे छोडकर वानप्रस्थी हो जाना चाहिये था। भीष्म बोले तो फिर मन्त्री वर सम्राट को मन्त्रणा कौन देगा? मन्त्री बोले जिसका राज्य है वही चलाये, जैसे मन में आये वैसा चलाये। मेरी ही मन्त्रणा किस लिये आवश्यक है ? क्या यह सत्य नहीं है राजकुमार की अपने छोटे भाई चित्रांगद के एक वाक्य में अनादर और अपमान का भाव देखकर आप सब कुछ झटक कर यहां आ बैठे है ? हम तो वहां प्रतिदिन अपमान के जहर की घूंट पीते है और फिर भी आप चाहते है कि हस्तिनापुर के राज्य को सुचारू रूप से चलाये रखने के लिये हम सम्राट चित्रांगद की राजसभा में जी हजूरी करते रहे ? क्या कुरुओं के इस राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आपका कोई कर्तव्य या उत्तरदायित्व नहीं है राजकुमार ?

भीष्म मुस्कुराते हुये बोले विष्णु काका मैंने चक्रवर्ती शान्तनु को संसार से विदा होते हुये देखा है। मनुष्य जब चलता है तो उसका सब कुछ यहीं पडा रह जाता है। मनुष्य को यह समझ लेना चाहिये कि यह राज्य किसी का नहीं है। भीष्म कह रहे हैं कि उनका धर्म क्या है ? माता सत्यवती और उनके पुत्रों का पालन पोषण ? कुरु वंश के राज्य की रक्षा, समृद्धि, विस्तार, हस्तिनापुर की प्रजा का पालन ? यह सब तो संसार की ओर करने वाली प्रवृति है और भीष्म ने तो स्वयं इन सबसे मुक्त होने की प्रतिज्ञायें कर रखी है फिर भीष्म का धर्म क्या है ?

मन्त्री बोले राजकुमार मैं तुम्हें हस्तिनापुर के बारे में दो प्रमुख सूचनाये बताना चाहता हूं। पहली तो साम्राज्य की सीमाओं से लगे राज्यों में से एक राज्य भी ऐसा नहीं है जो हस्तिनापुर को अपना मित्र समझता हो। इसके पीछे सम्राट चित्रांगद का स्वभाव ही कारण है। वे प्राय: मृगया पर जाते हैं और पडोसी राज्यों की सीमा का अतिक्रमण कर आते हैं। जब उधर से उनका प्रतिवाद होता है तो उनकी अवमानना करते हैं और उन्हें रण के लिये आमन्त्रित कर लेते हैं। क्षत्रिय राजाओं के अतिरिक्त सभी तो, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर राक्षस ये सभी राज्य हस्तिनापुर के विरुद्ध संगठित हो रहे हैं।

भीष्म ने पूछा क्या राजमाता इससे अवगत है ? मन्त्री बोले, वे माता है कोई राजनीतिज्ञ नहीं है। वे मातृत्व गौरव को सहज रूप में स्वीकार करती है कि हस्तिनापुर के सम्राट सदा से ही दिग्विजय करते आये हैं। वर्तमान सम्राट कोई नई बात तो नहीं कर रहा है। युद्ध और मृगया तो क्षत्रियों के व्यसन रहे हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि व्यसन व्यक्ति के पतन और हनन का कारण भी बन सकता है। मुझे आशंका ही नहीं लगता है कुछ ही दिनों में यह तथ्य प्रमाणित होने जा रहा है। दूसरी सूचना यह है कि कुछ कुरु प्रमुख आपसे मिलने की तैयारी कर रहे है। आपको यह सूचित करने कि सम्राट चित्रांगद को सहन करना कठिन होते जा रहा है। यदि आप हस्तिनापुर को भीतरी कलह से बचाना चाहते है तो कृपया राज्य का नियन्त्रण अपने हाथों में ले। कहीं ऐसा न हो कि भरतवंश यहीं समाप्त हो जाये और कोई अन्य कुरु प्रमुख इस राज्य को हस्तगत कर नया राजवंश स्थापित कर बैठे। राजकुमार मैं आपको अवगत करा देना चाहता हूं कि हस्तिनापुर की सेनाये गन्धर्वराज चित्रांगद की सेना से पिछले ३ सालों से लगातार युद्ध कर रही है। हस्तिनापुर की सेनायें इतनी सक्षम नहीं है कि गन्धर्व सेनाओं को पराजित कर अपनी सीमाओं से उसे खदेड दे और अपने सम्राट चित्रांगद में इतनी समझ नहीं है कि वे गन्धर्वराज से कोई सन्धि कर ले। मैं चाहता हूं कि राजकुमार इन सभी समस्याओं पर विचार करे ताकि कल आपको यह न लगे कि हस्तिनापुर के किसी भी हितैषी ने आपको यह सब नहीं बताया। अब महामन्त्री हाथ जोड उठ खडे हो गये और चलने को तैयार हुये।

अब मन्त्री के जाते ही भीष्म फिर विचारों के पुलिन्दे में घिर गये। आज तक वे अपने धर्म का पालन करते आये थे। प्राण छोडते समय भी राजा ने उन्हें धर्म पालने का ही निर्देश किया था पर क्या है भीष्म का धर्म ? हस्तिनापुर के पडौसी राज्य संगठित हो रहे हैं। राजसभा के कुरु प्रमुख सम्राट को छोडने की तैयारियां कर रहे है। गन्धर्वराज चित्रांगद सम्राट चित्रांगद से युद्ध करने के लिये तैयार है। गन्धर्वराज मात्र शस्त्र संचालन का ही ज्ञाता नहीं है वह तो दिव्यास्त्रों का भी ज्ञाता है। वह रण कुशल और दल योद्धा भी है। वह

युद्ध कला का विद्वान, सिद्ध गत योद्धा है जब कि हस्तिनापुर का सम्राट तो सिर्फ पशुओं का आखेट करना ही जानता है, युद्ध का भी कोई अनुभव नहीं है। जिस सम्राट से किसी को प्रेम नहीं मिला हो उसके लिये कौन अपने प्राण गंवायेगा? तो फिर भीष्म का यह धर्म नहीं है कि अपने छोटे भाई की रक्षा करे और गन्धर्वराज का वध करे और कुरु राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखे ? लेकिन भीष्म ने तो राज्य त्याग किया है तो क्या वे फिर से राजनीति में लिप्त हो जाये? युद्ध करना क्या राज्य कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं है ? कल उन पर यह आरोप भी लग सकता है कि भीष्म अपनी प्रतिज्ञा तोड रहे है। और यह कलंक भीष्म सहन नहीं कर पायेंगे। तभी अन्तरात्मा से एक अट्टहास गूंजा यह अट्टहास माता गंगा का ही था। वह कहने लगी गांगेय यह मन तो मृगतृष्णा ही है। इसके तो कोटि-कोटि रूप है इसके हर रूप को पहचान। मत पड इन फन्दों में। भीष्म का अन्तर्मन शान्त हुआ।

१७) विचित्रांगद को वीरगति प्राप्त व माता सत्यवती का भीष्म को बुलाना

सम्राट चित्रांगद तथा गन्धर्वराज चित्रांगद दोनों के बीच कुरुक्षेत्र में घमासान युद्ध हुआ। सरस्वती नदी के तट पर तीन वर्ष तक कुरुओं और गन्धर्वों के बीच युद्ध चलता रहा। चित्रांगद बहुत दिनों तक हस्तिनापुर का राज्य नहीं कर सका। गन्धर्वराज चित्रांगद के द्वारा सम्राट चित्रांगद को वीर गति प्राप्त हुई। सन्देश वाहक के द्वारा सत्यवती को चित्रांगद की मृत्यु का समाचार मिला। अत्यन्त शोक का समय उपस्थित हुआ। अब वही हुआ जिसकी सत्यवती को आशंका थी। विधाता के साथ तो उसकी कोई शत्रुता नहीं है जिसने उसका पति छीन लिया। पुत्र भी छीन लिया। सत्यवती के मुख से रूदन का चीत्कार फूटने लगा।

अब सत्यवती के पास रह गया १२ वर्ष का निरीहकुमार विचित्रवीर्य। चित्रांगद जितना उग्र था विचित्रवीर्य उतना ही उत्साह शून्य। उसका पूरा समय तो दासियों के साथ हास परिहास मनोरंजन में ही कटता था।

इतने में ही महामन्त्री विष्णुदत्त और आचार्य वसुभूति राजमाता के दर्शनों के लिये महल में आये। महामन्त्री ने प्रणाम किया। आचार्य बोले राजमाता अत्यन्त शोक का समय है किन्तु दैव वश संकट काल उपस्थित हो गया है। हस्तिनापुर की सेना सम्राट के रहते कुरुक्षेत्र में गन्धर्वराज को रोक नहीं पायी वह पराजित सेना कोई भी सम्राट की अनुपस्थिति में अब गन्धर्वराज को नहीं रोक पायेगी। यदि गन्धर्वराज हस्तिनापुर पर चढ़ आया तो हमारे पास ऐसा कोई उपाय नहीं है कि हम उसका सामना कर सके। प्रत्येक राजा राज्य का लोलुप होता है, वह अपने राज्य के विस्तार का इच्छुक होता है। राज्य की रक्षा करना हमारा पहला कर्तव्य है। सिर्फ हस्तिनापुर को गन्धर्वराज से ही डर नहीं है बल्कि पांचालों और मत्स्य प्रदेश के भी शस्त्र चमकते हुये दिख रहे है। राज्य सैनिक दृष्टि से यदि दुर्बल हो जाये तो चारों ओर के राजाओं की सेना उसे घेर लेती है।

अब सत्यवती ने शोक भूलकर महामन्त्री से पूछा इसे रोकने का अब क्या उपाय है? महामन्त्री बोला, इसके लिये चल कर भीष्म को आमन्त्रण करना चाहिये। इस समय कुरु वंश और हस्तिनापुर राज्य दोनों ही इतने असुरक्षित और असहाय हो रहे है कि उनके भविष्य को लेकर हम सब चिंतित है। भीष्म को राज्य का मोह नहीं है। माता और भाई की रक्षा और पालन का दायित्व तो उन्हें निभाना चाहिये। कुरु वंश और हस्तिनापुर राज्य की रक्षा उनका सर्वप्रथम धर्म बनता है। यदि भीष्म हस्तिनापुर आ जायें तो हस्तिनापुर की सेना गन्धर्वराज को पराजित करने में समर्थ हो जायेगी। यदि भीष्म कुरु सेना का संचालन स्वीकार कर लें तो गन्धर्वों की ही नहीं बल्कि पांचालों और मत्स्यों की भी सम्मिलत सेना को एक ही बार में धराशायी कर देने में समर्थ होंगे। गन्धर्वराज अपनी राजधानी में लौटता ही दिखाई देगा और पांचाल नरेश तथा मत्स्य नरेश अपनी राजधानी से बाहर निकलने का भी साहस नहीं करेंगे।

सत्यवती को लगा भीष्म इतना समर्थ और शक्तिशाली है फिर भी वह अपनी इच्छा से इतनी दूर जा बैठा है। भीष्म तो उसका शत्रु है और यह महामन्त्री उसे लाकर हस्तिनापुर में बसाना चाहता है। महामन्त्री बोले राजमाता विलम्ब होने से शत्रुओं का आत्मबल बढेगा नहीं तो राज्य की सीमायें बहुत ही संकुचित होती जायेगी। संकुचित सीमायें किसी भी राज्य के लिये श्रेयस्कर

नहीं होती है राजामता। सत्यवती बोली, क्या बुलाने से भीष्म आ जायेगा ? महामन्त्री बोले, आप आदेश तो करें प्रयत्न कर देखना चाहिये। महारानी सत्यवती बोली, तो जाइये महामन्त्री और कहिये मैंने भीष्म को बुलाया है और सत्यवती सोचने लगी कहीं भीष्म को बुलाकर सत्यवती ने कोई भूल तो नहीं की। कही यह निर्णय उसके लिये ही कहीं घातक नहीं होगा?

महामन्त्री और आचार्य वसुभूति भीष्म को बुलाने चले गये। सत्यवती सोचती है भीष्म अब इसके इंगितों पर नाचता रहे। निश्चित रूप से भीष्म के हस्तिनापुर में प्रवेश करते ही राज्य के सारे के सारे अधिकार उसे सौंपने पडेंगे। उससे हस्तिनापुर तो सबल होगा और कुरु वंश निर्वीय होने से बच जायेगा पर स्वयं उसका और विचित्रवीर्य का भविष्य क्या होगा ?

भीष्म ने आकर सत्यवती को प्रणाम किया और बोले माते आपने मुझे स्मरण किया है ? राजा शान्तनु की मृत्यु के पश्चात हस्तिनापुर छोडनेवाले भीष्म को भी सत्यवती ने देखा था और आज चित्रांगद की मृत्यु पर लौट आने वाले भीष्म को वह देख रही है। जो भीष्म हस्तिनापुर से गया था वह राजकुमार था, कृत संकल्प, कर्म में समर्थ, संघर्षशील और जो भीष्म आज हस्तिनापुर लौटा है वह एक सन्यासी, उदासीन, कृशकाय, स्वप्नि आंखों वाला। शायद सत्यवती राजकुमार भीष्म से सशंकित थी पर इस सन्यासी से क्या आशंका और कैसा भय ? यह तो वही त्यागी देवव्रत है जिसने अपना राजपाट, सुख-वैभव जीवन के सभी आकर्षणों का समर्पण कर दिया था। सत्यवती बोली भीष्म अब तुम्हारा भाई चित्रांगद नहीं रहा। तुम क्या अभी भी क्रोधित हो। भीष्म बोले कैसा क्रोध माता ? सत्यवती बोली यदि तुम क्रोधित या हमसे नाराज नहीं थे तो फिर मुझे और अपने छोटे भाईयों को इस प्रकार असहाय क्यों छोड दिया ? चित्रांगद तीन वर्षों तक गन्धर्वों से लडता रहा फिर तुम उसकी सहायता के लिये क्यों नहीं आये ? चित्रांगद की मृत्यु का समाचार सुनकर भी तुमने हमारी सुध क्यों नहीं ली ? अब भी बुलाने पर ही आये हो। शोक और मृत्यु के अवसर पर कोई किसी को निमन्त्रित थोडे ही करता है ?

भीष्म को यह समय उपालम्भ देने का नहीं लगा। पिता की मृत्यु के पश्चात माता और छोटे भाइयों को सम्भालना भीष्म का धर्म था किन्तु वे हस्तिनापुर छोडकर चले गये थे अपमानित होकर। चित्रांगद ने ही तो उनको अपमानित किया था। भीष्म सब कुछ सुनकर चुप ही रह गये। कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। माता की आज्ञा से भीष्म ने अपने छोटे भाई चित्रांगद की अन्त्येष्टि क्रिया की।

कक्ष में विचित्रवीर्य ने प्रवेश किया। भीष्म ने देखा अब विचित्रवीर्य कुछ बडा हो गया है। वह कुछ स्वस्थ भी नहीं लग रहा था। मद्य और विलास के प्रभाव में था कही अधिक पी ली हो वह झूमता हुआ सा आया था कक्ष में। माता ने आदेश दिया बडे भाई को प्रणाम करो। विचित्रवीर्य ने माता के आदेश के कारण अनबूझे ढंग से हाथ जोड भीष्म का अभिवादन कर दिया। सत्यवती ने कठोर स्वर में कहा यह नहीं। साष्टांग दंडवत करो। विचित्रवीर्य आंखे झपकाकर भीष्म के सम्मुख लेट गया। सत्यवती भीष्म से बोली, भीष्म तुम तो अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हो इसलिये तुम तो सिंहासन पर आरूढ़ होंगे नहीं। अब रह गया विचित्रवीर्य भरत वंश का एक मात्र उत्तराधिकारी। भीष्मबोले, मैं वचन देता हूँ कि हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर विचित्रवीर्य और उसकी सन्ताने आगे की पीढ़ियां ही कुरु प्रदेश पर शासन करेगी। अब सत्यवती आश्वस्त हुई और बोली तुम धन्य हो भीष्म।

भीष्म ने विचित्रवीर्य को निर्लज्ज स्थिति में देखा जो काफी आपत्ति जनक थी। भीष्म को देखकर विचित्रवीर्य की आंखों से कोई संकोच प्रकट नहीं हुआ और न ही उसने दृष्टि बदली और न आंखे ही झुकाई। उसकी आंखों में उदंडता और क्रोध एक साथ प्रकट हुआ और वह भीष्म से बोला क्यों आये हो तुम यहां ? जानते नहीं हो कि कुरु राजाओं के राजप्रसादों में कर्मचारी लोग बिना अनुमति के कहीं आ जा नहीं सकते। भीष्म को लगा विचित्रवीर्य ने अभी तक उन्हें पहचाना नहीं है। उसके निकट चारों ओर बैठी नग्न स्त्रियां जैसे घबरा कर उठ खडी हो भाग गई। भीष्म ने कहा तुम लोग यहां से जाओ। विचित्रवीर्य बोला तुम कौन होते हो उन्हें भेजनेवाले ? वे सब मेरे आदेश से आयी है और मेरे ही आदेश से जायेगी। भीष्म बोले, क्या सुरा ने तुम्हे

इतना बेसुध कर दिया विचित्रवीर्य ? भीष्म सोचने लगे यदि आज भी वे विचित्रवीर्य की इस प्रकार की दशा देख कर उदासीन बने रहे तो यह किशोर मदिरा राक्षसी के हाथों मारा जायेगा और फिर माता सत्यवती आँखों में अश्रु भर उन्हे उपालम्भ देगी। भीष्म का एक जोरदार तमाचा विचित्रवीर्य के गाल पर पडा और बोले क्या ये युवराज के लक्षण हैं ? तुम तो कुरुवंश के गौरव को कलंक लगानेवाले और वे उसे घसीटते हुये माता सत्यवती के कक्ष में ले गये।

भीष्म ने विचित्रवीर्य के लिये शिकायत की माता यह सुरा से मदहोश निर्लज्ज, निर्वस्त्र, दासियों और गणिकाओं के मध्य बैठा विहार व विलास कर रहा था। मुझे देखकर भी संकोच या इसने कोई लज्जा नहीं की और मैंने सावेश में आकर इसे एक चांटा मार दिया है। अब सत्यवती को विचित्रवीर्य की रक्षा करनी है। केवल शत्रुओं से ही नहीं रोग, शोक और विलास से भी। सत्यवती भीष्म से बोली, बैठो पुत्र भीष्म विचित्रवीर्य की स्थिति मेरे लिये कई दिनों से चिन्ता का विषय बनी हुई है। मैं चाह रही थी कि तुमसे इस विषय में परामर्श करू, लेकिन तुमने स्वयं ही आज उस समस्या का साक्षात्कार कर लिया है।

भीष्म सत्यवती से बोले माता यह सब तो कुरुकुल का संस्कार नहीं है यह सब कब और कैसे हुआ माता ?

सत्यवती साहस बटोर कर बोली पुत्र मुझे लगता है कि यह मेरा ही पाप है। जब तुम्हारे पिता ने इन बच्चों को ऋषि कुल में भेजना चाहा था तब मैंने ही उनका विरोध किया था। चित्रांगद में अत्यधिक अहंकार पैदा हो गया और विचित्रवीर्य में विलास की अग्नि प्रचंड होती रही और मैं देख कर भी उपेक्षा करती रही। मैं वैभव तथा अधिकारों के वशीभूत रहते हुये इन्हें संयम और विनय के महत्व को नहीं समझा सकी। अब तुम्हे ही बडे भाई का दायित्व भी निभाना होगा। मैं यह भी नहीं कह सकती कि इसे भोगों से विरत और उपराम कर दो। भोग तो क्षत्रियों का श्रृंगार है वही कही मेरे पुत्र का काल न बने। कोई ऐसा मार्ग निकालो जिससे इसका नियमन हो सके ? भीष्म बोले, पुरुष के विलास का नियमन उनकी पत्नी करती है। गणिकायें नियमन का नहीं पतन का साधन होती है पत्नी का धर्म भी उसका पति ही है और भोग भी। वह न अपने धर्म का नाश देख सकती है और न अपने भोग का क्षय। धर्म और भोग दोनों चाहिये तो रास्ता एक मात्र विवाह ही है। सत्यवती बोली तो विचित्रवीर्य का विवाह करवादो। भीष्म बोले, हां यह भी एक मार्ग है किन्तु विचित्रवीर्य क्या विवाह योग्य है ? सत्यवती बोली नहीं वह तो अभी १५ वर्ष का ही है। भीष्म बोले अभी तो उसके शारीरिक और मानसिक विकास का समय है। हमारा यह प्रयत्न होना चाहिये कि वह अभी दस वर्ष संयम और अनुशासन का जीवन व्यतीत करे। सत्यवती बोली क्या यह सम्भव होगा ? पर क्या विचित्रवीर्य संयम कर पायेगा ? भीष्म ने कहा हमें प्रयत्न कर के तो देखना चाहिये। सत्यवती बोली पुत्र अवश्य करो और भगवान करे तुम इसमें सफल हो जाओ। अब इस छोटे भाई का दायित्व तुम पर ही है। उसके शिक्षण और अनुशासन के बारे में सोचो। उचित समय पर उसके विवाह का निर्णय करो और यदि ठीक समझो तो यथाशीघ्र उसका राज्याभिषेक कर दो जिससे वह जिम्मेदार बन अपने पैरों पर खडा हो सके। मुझसे अब न तो अपने पुत्र का क्षय देखा जाता है, न कुरु वंश का नाश और न ही हस्तिनापुर के राज्य का पतन। भीष्म बोले आप चिंतित न हो माते। अभी आगे ऐसा कुछ नहीं होगा।

भीष्म को अपने दायित्व के बोझ का अनुभव था और अपने संकल्प पर पूरा भरोसा था और कर्म पर विश्वास। माते आप निश्चिन्त रहे। तब भीष्म ने माता सत्यवती की आज्ञा मानकर हस्तिनापुर को फिर से उसका उत्तराधिकारी मिले इसलिये विचित्रवीर्य का हस्तिनापुर सिंहासन पर आरूढ़ कर राज्याभिषेक कर दिया।

अब भीष्म के हस्तिनापुर में आ जाने से केवल गन्धर्वों, पांचालों और मत्स्य राजाओं के उपद्रव ही शान्त नहीं हो गये वरन् हस्तिनापुर में प्रतिदिन उठनेवाले बवंडर और सभी संशय भी शान्त हो गये। अब कुरु प्रमुख ने भी नये राजवंशों की स्थापना के सपने देखने बन्द कर दिये। वैसे १८ वर्षों से भीष्म अपने वचन को निभा रहा है। एक क्षण भी भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा की अवहेलना नहीं की। वह धीर गम्भीर और शान्त है। उसने सत्यवती को भी कभी धोखा नहीं दिया। सत्यवती सोचती है कि काश मैं इसका विश्वास पहले कर पाती।

अपने आवास पर पहुंचकर भीष्म ने आचार्य को बुलाया और पूछा अपने शिष्य की प्रगति के विषय में आपका क्या विचार है। आचार्य ने पूछा मैं आपका मतलब नहीं समझा राजकुमार। भीष्म बोले इससे ऐसी कौनसी बात है जिसे आप समझ नहीं पा रहे है आचार्य। आप विचित्रवीर्य के आचार्य हैं और मैं उसका बडा भाई अभिभावक हूं। मैं जानना चाहता हूं उसकी शिक्षा दीक्षा के बारे में, उसके शास्त्र ज्ञान के बारे में। शस्त्र विद्या उसने कहां तक सीखी है ? उसका चरित्र संयम और अनुशासन वह कितना आत्मसात कर पाया है ? उसका धर्म बोध और दायित्व बोध कितना विकसित हुआ है? शासन तन्त्र का ज्ञान कितना पाया है? वह भावी शासक है इस कुरु प्रदेश का। उसको जन्म तो उसके माता-पिता ने दे दिया है पर अब उसे राजा के योग्य बनाना तो आपका काम है।

आचार्य बोले राजकुमार विचित्रवीर्य भी यह समझता है कि आगे चलकर उसे हस्तिनापुर का शासक बनना है। उसके मस्तिष्क में दायित्व से पहले अधिकार भरा है। अर्जन से पूर्व भोग है। भीष्म बोले, आचार्य क्या आपको नहीं लगता कि यह उसका उचित विकास नहीं हुआ है। आपको तो उसका अनुशासन करना चाहिये था। आचार्य बोले लेकिन मुझे उसका अधिकार कहां दिया गया था ? विचित्रवीर्य को यह बोध अधिक है कि वे युवराज हैं, राजकुमार हैं और हस्तिनापुर का भावी सम्राट भी है। उसका व्यवहार कभी भी मेरे प्रति शिष्योचित नहीं रहा। उसने तो स्वयं को मेरा अन्नदाता अधिक समझा और शिष्य कम। भीष्म बोले, क्या आपने कभी उसके व्यवहार की सूचना उसके अभिभावकों को दी। आचार्य बोले शान्तनु स्वर्गवासी हो गये और आप हस्तिनापुर छोड कर चले गये। सम्राट चित्रांगद और राजमाता यह मानते थे कि राजकुमारों का अनुशासन, उनका नियन्त्रण या उनकी इच्छाओं का नियमन उनके तेज को क्षीण करता है। अत: राजकुमारों के आचार्य को भी एक क्षण भी यह नहीं भूलना चाहिये कि वे राजकुमार है और उनका आचार्य एक निर्धन ब्राह्मण। भीष्म बोले, पर आचार्य यह असामायिक भोग विलास। इस उम्र में सुरा का अबाध पान यह सब तो राजमाता ने कभी न चाहा। आचार्य बोले राजकुमार परिणाम इच्छा के अनुसार नहीं कर्म के अनुकूल होता है। सम्राट चित्रांगद और राजमाता सत्यवती ने विचित्रवीर्य को मेरे अनुशासन में ही बंधने दिया तो उसका परिणाम यह हुआ कि वह उनके अनुशासन में भी नहीं बन्धा। विचित्रवीर्य राजमाता के हाथोंसे पहिले निकला है मेरे हाथों से तो बहुत बाद में निकला है। जिस समाज में अध्यापक, आचार्य और गुरु का सम्मान अभिभावक ही नहीं करेगा तो उसकी सन्तान को ऐसा ही दुर्दिन देखना पडता है। भीष्म बोले हमें तो अब विचित्रवीर्य को सीधी राह पर लाना है। मुझे इसमें आपका सहयोग चाहिये। आचार्य बोले, यद्यपि बहुत विलम्ब हो चुका है पर हम प्रयत्न तो कर ही सकते है। आप गुरु के महत्व की प्रतिष्ठा करें तो उसके अनुशासन और अधिकार की भी प्रतिष्ठा हो जायेगी।

राजवैद्य ने विचित्रवीर्य की नाडी देखी और माता सत्यवती को एकान्त में बुलाकर बोला राजमाता युवराज ने बहुत छोटे वय से ही सुरा और सुन्दरी का आस्वादन आरम्भ कर दिया और वह भी बहुत अधिक मात्रा में। यदि उनका यह अभ्यास सर्वथा बन्द नहीं हुआ तो युवराज के जीवन की रक्षा असम्भव है।

सत्यवती सोचने लगी जब समय था तो दोनों पुत्र उसके नियन्त्रण में थे जब वे बालक थे और उन्हें समझाया जा सकता था तब तो स्वयं मैंने उन्हें भोग की ओर प्रेरित किया। तब तो मैं चाहती थी कि भीष्म से छीना गया राज वैभव मेरे पुत्र भोगे क्योंकि वे राजपुत्र है। उनका जीवन तो भोग के लिये है। संयम का पाठ तो उसे पढ़ाया जाता है जिसके पास भोगने के लिये कुछ भी न हो। समृद्धि उसके अपने पुत्र के लिये ही विष हो गयी। सत्यवती भीष्म से बोली विचित्रवीर्य की स्थिति शोचनीय है। क्या उसके जीवन की रक्षा हो पायेगी ? भीष्म बोले यदि विचित्रवीर्य संयम से रहे तो अभी भी कुछ नहीं बिगडा है। संयम कोई असम्भव शर्त तो नहीं है।

वैद्य तो रोगी को आश्वासन देते ही रहता है। कोई भी वैद्य कभी भी नहीं कहेगा कि अब रोगी को जीवन की आशा नहीं है। यदि विचित्रवीर्य सचमुच ही मृत्यु के कगार पर पहुंच ही गया है तो उसका भविष्य क्या है ? फिर एक संयमी जीवन जिसमें न विवाह है,

न पत्नी और न सन्तान। भीष्म को लगा यदि कहीं विचित्रवीर्य को विधाता ने दीर्घ जीवन नहीं दिया और वह भरतवंश को उत्तराधिकारी न दे सका तो कहीं यह दायित्व फिर से भीष्म पर न आ पडे। कहीं विवाह से पूर्व ही विचित्रवीर्य का देहान्त नहीं हो जाये। भोग की असन्तुलित मात्रा ही विचित्रवीर्य का रोग है। भोग को सन्तुलित करने के लिये ही तो मानव समाज ने विवाह की प्रथा की है। सत्यवती बोली भीष्म पर विचित्रवीर्य की उम्र अभी विवाह योग्य भी तो नहीं है। भीष्म बोले माता उसकी उम्र तो रति प्रसंग के योग्य नहीं है न ही सुरा पान के योग्य है। सत्यवती को शान्तनु ने समझाया था ऋषिकुल राजकुमारों को तपाने वाली वो भट्टी है जिसमें राजकुमार पूरी तरह तपाये जाते है लेकिन उस समय सत्यवती ने राजा की बात अनदेखी कर दी थी। भीष्म विचित्र वीर्य के लिये कोई उपयुक्त राजकुमारी का चयन करो जिसकी वृति राजसिक नहीं सात्विक हो।

भीष्म ने दूसरे राज्यों में विचित्रवीर्य के लिये उपयुक्त राजकुमारी देखने को चर भेजे। वे विभिन्न राज्यों से लौटकर जो सन्देश लाये वे निराशाजनक ही नहीं बल्कि कुरुवंश के लिये अत्यधिक अपमान जनक भी थे। कई राजपरिवारों ने केवल नकारात्मक उत्तर भेजा था। कईयों ने तो यह कह दिया था कि विचित्रवीर्य अभी विवाह के योग्य नहीं है तो कईयों ने उसके स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता व्यक्त की। कईयों ने कह दिया कुरुवंश का अब सम्मान ही क्या रह गया है। बूढा राजा तो मर चुका। क्षत्रिय राजकुमार भीष्म सन्यास धारण कर चुका। विचित्रवीर्य में तो निषाद रक्त है। वह तो निर्बल रोगी है ऐसे राजकुमार को कौन अपनी पुत्री देगा। कुछ राजाओं ने तो कुरुराज्य और कुरु वंश के बारे में अनेक तरह की भविष्यवाणी भी कर डाली।

कई कहने लगे या तो विचित्रवीर्य स्वयं ही मर जायेगा या कोई दासी ही उसका गला घोंट देगी या फिर कोई शक्तिशाली राजा उसका वध कर देगा। भीष्म बस सत्यवती से यही कहते रहे कि अभी तक कुरुवंश की वधू बनने योग्य कोई उपयुक्त कन्या नहीं मिली।

१८) काशी नरेश की अपनी तीन कन्याओं का स्वयंवर (अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका)

एक दूत काशी होकर लौटा। उसने सूचना दी काशीराज की विवाह योग्य तीन कन्याये हैं अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका। काशीराज तीनों कन्याओं का स्वयंवर कर रहे हैं। उसने उन्होंने देश-विदेश के राजाओं और राजकुमारों को आमन्त्रित किया है। राजकुमारियां अपने वर चुनने के लिये पूर्णत: स्वतन्त्र है। उनका अपना निर्णय काशीराज नरेश को मान्य होगा। विचित्रवीर्य अभी तक जवान नहीं हुये थे। वे भीष्म की आज्ञानुसार अपने पैतृक राज्य का शासन करने लगे। भीष्म ने देखा विचित्रवीर्य अब यौवन में प्रवेश कर चुका है तब उन्होंने उसका विचार किया। उन्हीं दिनों यह समाचार विदित हुआ कि काशी नरेश अपनी तीन कन्याओं का स्वयंवर कर रहा है। देवी सत्यवती को भी विचित्रवीर्य की शादी की चिन्ता हो रही थी। विचित्रवीर्य का विवाह होने से कुरुवंश की बेल आगे बढने लगेगी। भीष्म सत्यवती से बोले काशी नरेश ने हस्तिनापुर को अभी तक निमन्त्रण नहीं भेजा है। निमन्त्रण मिलने पर मैं विचित्रवीर्य को अवश्य काशी ले जाऊंगा। हस्तिनापुर और काशी राज्य के पुराने सम्बन्ध रहे है। काशीराज की बहन सुनन्दा चक्रवर्ती महाराज भरत की पट्टरानी रही है। इस रिश्ते का विचार कर हस्तिनापुर को विवाह का निमन्त्रण अवश्य मिलना चाहिये। इसका भीष्म को पूर्ण रूप से विश्वास था पर बीच में थोडी सी रिश्ते में कटुता आ गई। एक बार काशी नरेश ने अपनी बहिन के सम्बन्ध के लिये देवव्रत के साथ शान्तनु महाराज से बात चलाई थी पर शान्तनु ने इस रिश्ते को स्वीकार नहीं किया था। उसी बात को अपमान मानकर काशी नरेश शायद हस्तिनापुर को निमन्त्रण नहीं दे इस तरह की सूचना महामन्त्री ने दी। यह बात पूरे हस्तिनापुर में फैल गई। इस बात से प्रजाजनों को अपने राजा का घोर अपमान हुआ ऐसा लगने लगा। इस अपमान जनक कारण से प्रजा जन इतने क्रोधित हो गये उससे कही अधिक बुरा भीष्म को अपमान लगा और दु:खी हुये।

सन्ताप से भरा भीष्म अपनी माता के महल में आया और माता सत्यवती को प्रणाम कर बोला। कुरुवंश के साथ मित्रता कर काशीराज को स्वत: अपने आपको धन्य समझना चाहिये। अम्बा, अम्बिका, और अम्बालिका अपनी ये तीनों कन्याओं को

कुरुवंश में देकर सम्मान से अपने ऋण से पहिले की तरह सम्बन्ध दृढ़ करने का अवसर आया है परन्तु काशी नरेश ने हस्तिनापुर नरेश को निमन्त्रण भी नहीं भेजा। यह कुरु वंश का घोर अपमान है, मैं इसे सहन नहीं कर सकता। भीष्म इस सन्ताप से लाल हो अत्यन्त क्रोधित होकर गरज कर सत्यवती से बोले, क्या समझता है काशी नरेश अपने आपको ? सत्यवती भीष्म को शान्त करने के लिये बोली, क्या पुत्र भारत में केवल तीन ही कन्या है क्या ? फिर यदि काशी नरेश ने हमे स्वयंवर का निमन्त्रण नहीं भेजा तो इसमें अपमान समझने का क्या कारण है ? भीष्म बोले माता यदि काशी नरेश ने जो अपमान हस्तिनापुर का किया है वह सहन कर लिया गया तो चक्रवर्ती राज्य की तलवार कुंठित हो जायगी। उसकी तेज धार लुप्त हो गयी ऐसा ही अर्थ निकलेगा और लोग उससे भयभीत होना बन्द कर देंगे। अब तीनों काशी नरेश की कन्याओं को जीतकर मैं उन्हें यहां लाऊंगा और अब समय आ गया है पूरा भारतवर्ष यह जान ले कि हस्तिनापुर के सिंहासन पर चक्रवर्ती धर्म ध्वज रक्षक शान्तनु पुत्र महाराज विचित्रवीर्य आसीन हैं। माता विचित्रवीर्य अस्वस्थ होने के कारण वे काशी तक की यात्रा करने में समर्थ नहीं है आप मुझे आज्ञा व आशीर्वाद दें कि मैं विचित्रवीर्य का प्रतिनिधि बनकर तीनों कन्याओं को जीत कर हस्तिनापुर ले आऊं ऐसा मैंने निश्चय किया है। भीष्म ने अपने मन की बात कही और माता सत्यवती ने यह करने के लिये भीष्म को आज्ञा दी।

काशी नरेश की राजसभा में स्वयंवर के लिये विभिन्न देशों के राजे-महाराजे, राजकुमार आये थे। प्रतिहारियों ने राजदरबार में काशी नरेश की तीनों कन्याओं के आगमन की सूचना दी। कन्याओंने वर माला हाथ में लेकर मंडप में प्रवेश किया। भीष्म भी हस्तिनापुर का प्रतिनिधित्व करने वहां स्वयंवर में अपने सारथी वीर सेन सहित काशी पहुंचे। भीष्म सोचने लगे क्षत्रिय राजा तो कन्याओं का हरण करते हैं अपने विवाह के लिये पर भीष्म ने तो अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर रखी है। कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका हरण तो अपहरण होगा। इससे पहले कन्या अपनी इच्छा से अपने लिये किसी वर का चुनाव करे भीष्म को इन कन्याओं का हरण कर लेना चाहिये। क्या यह धर्म संगत होगा ? क्षत्रिय द्वारा युद्ध निमन्त्रण देकर, शस्त्र बल से, सार्वजनिक रूप से कन्या का हरण अधर्म कैसे हो सकता है ? युद्ध ही तो क्षत्रिय का धर्म है और युद्ध में कुछ भी विजय किया जा सकता है, धरती, गौधन, सम्पत्ति और नारी। युद्ध में वीरतापूर्वक किया गया प्रत्येक कृत्य धर्म है। फिर कन्या तो दान की वस्तु है। किसी की इच्छाओं का क्या विचार करना। जब भीष्म ने अपने पिता के लिये दासराज से सत्यवती को प्राप्त किया था तो उन्होंने सत्यवती की इच्छा जानने की कोई चिन्ता नहीं की। जब भीष्म ने राज्य त्यागने की प्रतिज्ञा की तो उन्होंने कोई कुरु प्रदेश की प्रजा की इच्छा की चिन्ता नहीं की थी और जब अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की थी उस सयम कुरु वंश के भविष्य की कोई चिन्ता नहीं की तो फिर अब वे काशीराज की कन्याओं की इच्छा की चिन्ता क्यों करें ? वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे बस यही उनका धर्म है।

भीष्म स्वयंवर स्थल पर पहुंचे। विभिन्न वेशभूषाओं में सजे विभिन्न आकृतियों के राजा और राजकुमार वहां पर उपस्थित थे। वे सभी भीष्म को चुभती हुई दृष्टि से देख रहे थे। उद्घोषक ने स्वयंवर के आरम्भ होने की घोषणा की परिचायक ने सौभ राजा शाल्व का परिचय दिया तथा भीष्म का परिचय दिया। शान्तनु पुत्र हस्तिनापुर राजकुमार भीष्म पधारे हैं और उनके लिये व्यवस्था की सभी राजे महाराजे, युवक राजकुमार भीष्म के पास आकर भीष्म का नाम सुनकर और उसकी सामर्थ्य जानकर आपस में चर्चा करने लगे और हंसी करते हुये बोलने लगे यह बूढा जिसने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की थी वही आज इन कन्याओं के रूप पर मोहित होकर प्रतिज्ञा भंग कर लज्जा छोडकर यहाँ आया है। इधर महाराज शान्तनु स्वर्गवासी हुये, रानी सत्यवती ने अपने हाथों की चूड़िया तोडी और यहां भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा तोडी। कैसा निर्लज्ज है ? यह यहां किसलिये आया है ? हमने तो सुना था भीष्म ने सन्यास ले लिया है। ढोंगी सन्यासी। कैसे स्वयंवर में बिना बुलाये घुस आया? कैसी घोर प्रतिज्ञा? इस प्रौढ अवस्था में अपने को तरुण सिद्ध करने आया है। बाल सफेद हो गये हैं और चेहरे पर झुर्रियां पडी है। इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रकार के कटाक्ष भीष्म पर करने लगे। <u>आकर्षण नारी के रूप में नहीं दुर्बलता पुरुष के हृदय में होती है</u>।

भीष्म ने तीनों राजकुमारियों को देखा। स्वयंवर के समय जब राजाओं का परिचय दिया जाने लगा तो सुन्दरी कन्यायें भीष्म को बूढ़ा समझकर, घबराकर आगे बढ़ गई।

यह सब देखकर भीष्म को रोष आया और द्वार के पास जाकर खडे हुये। स्वयंवर का मंडप अब रणक्षेत्र में परिणित होने लगा। भीष्म ने अपना स्वर ऊंचा किया और घोषणा करते हुये कहा- काशीराज, काशीराज परिवार और सभी उपस्थित राजागण सुन ले मैं गंगा पुत्र भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये क्षत्रिय समाज के सम्मुख काशी नरेश की इन राजकुमारियों का हरण कर रहा हूं। आप सभी वीर है शस्त्रधारी हैं और योद्धा हैं। मेरे साथ युद्ध करने और मुझे इसके लिये रोकने के लिये आप स्वतंत्र हैं। मैं क्षत्रिय धर्म के अनुसार इन्हे ले जा रहा हूं। भीष्म ने अपना विशाल धनुष उठाया और कहा राजकन्याओं मन्डप से बाहर चलो।

मेरा रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भीष्म बोले राजाओं यह आठ प्रकार का विवाह शास्त्र सम्मत होता है। १) कोई भी पिता वर के गुण देखकर अपनी पुत्री को अलंकृत कर उसे सौंप दे वह ब्रह्मविधि विवाह है। २) आर्यमत आर्षविधि विवाह जो दो गायों का दान कर कन्या दान कर दे। ३) आसुरी विवाह जो कोई भी कन्या के पिता को उसका मूल्य देकर कन्या विकत लेकर विवाह कर ले। ४) राक्षसी विवाह- जो कोई अपनी ताकत के जोर से कन्या को लेकर चला जाय। ५) कन्या की सम्मति से विवाह कर ले उसे गन्धर्व विवाह कहते हैं। ६) मादक द्रव्य, नशा करा कर कन्या को बिना होशो हवास के ले जाये उसे पिशाच विवाह कहते है। जादू टोना तन्त्र कर कन्या को बहला फुसला कर ले जाये उसे पिशाच विवाह कहते हैं। ७) प्रजापत्य विधि दोनों ने धर्म आचरण का पालन कर विवाह करे। ८) दैव विधि- यज्ञ में दक्षिणा रूप में पुरोहित को कन्या दान मिले उसे दैव विधि विवाह कहते है। लेकिन क्षत्रियों में कन्या का विवाह स्वयंवर विधि से होना सर्वसम्मत है। पर स्वयंवर में आये हुये सभी मान्यवरों को परास्त कर कन्याओं का हरण कर उनके साथ विवाह करना यह क्षत्रिय दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है अत: यह धर्मानुकूल है ऐसा धर्म के ज्ञाता लोग कहते हैं। यह शास्त्र सम्मत है। इसलिये मैं इन तीनों कन्याओं का धर्म संगत उनका हरण कर आप सब को चुनौती देकर ले जा रहा हूं। भीष्म ने अपने धनुष के बाण से सब राजाओं के छत्रों को खंडित कर उडा कर काशी नरेश के कदमों तले डाल दिया और बोले आप में से किसी की युद्ध करने की सामर्थ्य हो तो मुझे रोक ले। इस तरह बोलकर भीष्मने उन तीनों कन्याओं को रथ में बैठाकर वीर सेन सारथी को आज्ञा दी कि सारथी रथ चलाओ। अम्बा को बहुत सन्देह था कि पिता या किसी की भी सेना यदि तैयार होकर लडने भी आये तो क्या भीष्म जैसे योद्धा का सामना कर पायेगी ? सब के सब राजा क्रोध से तिलमिला उठ खडे हुये। भीष्म ने पुन: सम्बोधित किया राजकन्याओं अब तक यह राज समाज भली भांति सोच ले कि उन्हे मुझसे युद्ध करना है या नहीं मैं यहीं खडा हूं।

भीष्म की इस बात से चिढ़कर सभी राजा क्रोधित हो भीष्म पर टूट पड़े। बडा ही रोमान्चकारी युद्ध हुआ। बाणों की वर्षा होने लगी। परन्तु भीष्म ने अकेले ही सब बाणों को निष्फल कर काट डाला। सभी राजाओं ने बाणों की बौछार से भीष्म को रोकना चाहा परन्तु भीष्म के सामने किसी की भी एक न चली। भीष्म ने उस युद्ध स्थली में सहस्त्रों धनुष, बाण और सिर काट डाले। भीष्म का अलौकिक और अपूर्व हस्त लाघव तथा शक्ति देखकर शत्रु पक्ष भी उसकी प्रशंसा करने लगे। बडी कन्या अम्बा का सौभ शाल्व नरेश के साथ प्रेम प्रसंग चल रहा था। वह मन से शाल्व नरेश का वरण करना चाहती थी। भीष्म ने सबको पराजित कर सारथी से रथ को हस्तिनापुर की ओर चलने की आज्ञा दी।

पीछे से सैनिक अभियान के साथ सौभ शाल्व नरेश भीष्म भीष्म कहकर पुकार रहा था। यह आवाज सुनकर भीष्म ने रथ मुडाया और देखा शाल्व अपनी सेना सहित युद्ध के लिये आया है और ललकार रहा है। शाल्व बोले हे भीष्म, तू काशी नरेश दरबार में लोगों को माया दिखाकर उनकी कन्याओं को उठा लाया है और लोगों को भ्रमित कर दिया है। तू सच्चा वीर और योद्धा नहीं है। यदि तू अपने आपको वीर समझता है तो मुझसे युद्ध कर। तब भीष्म बोले, शाल्व राज मेरी तुमसे कोई शत्रुता नहीं

है। मैं निरीह हत्यायें नहीं करता शाल्व। मैंने तुम्हे एक बार प्राणदान दिया था और मैं उस दान दिये जीवन को युद्ध कर वापिस लेना नहीं चाहता। इसलिये युद्ध करने की मेरी इच्छा नहीं है जाओ वापिस लौट जाओ और व्यर्थ में अपने प्राण मत गंवाओ। परन्तु शाल्व को अपनी भुजाओं पर, वीरता पर दृढ़ विश्वास था तब उचककर भीष्म से बोले या तो मुझसे युद्ध कर या क्षमा याचना कर हस्तिनापुर लौट जा। भीष्म ने फिर से एक बार शाल्व राज को समझाने का प्रयत्न किया पर इसके उत्तेर में शाल्वराज ने भीष्म पर एक बाण से प्रहार किया जिससे भीष्म की एक भुजा पर घाव हो गया। फिर भी भीष्म ने उस घाव के लिये शाल्व राज को क्षमा करते हुये लौट जाने को कहा तो भी शाल्व राज नहीं माना तब भीष्म ने अपने धनुष बाण से शाल्वराज पर बाणों की बौछार ही कर दी। भीष्म की बाण वर्षा से शाल्व राज क्षणभर में ही रथ से नीचे धरती पर गिर पडे। रथ का पहिया टूट गया। घोडा मर गया। सारथी मर गया और पूरी सेना तितर बितर होकर भाग गई। भीष्म ने अपने बाणों के लाघव से शाल्व राज को बाणों के जाल में ऐसा बन्दी बना दिया कि वह उस जाल में हिल डुल भी नहीं सकता था। शाल्व का धनुष बाण भी तोड दिया दौडते-दौडते शाल्व का छत्र भी जमीन पर गिर गया और कुचला डाला गया। भीष्म बोले, शाल्व नरेश मेरे पास अभी भी बाणों की कोई कमी नहीं है। परन्तु एक बार जिसको जीवन दान दिया है उसका जीवन प्राण वापिस लेना मेरी इच्छा नहीं है और उसके लिये तू मुझे मजबूर मत कर और वापिस लौट जा और शाल्व को उसी दारुण अवस्था में छोडकर सारथी को रथ हस्तिनापुर ले चलने की आज्ञा दी। काशी की तीनों कुमारियां भीष्म का यह शौर्य देख रही थी। अम्बा भीष्म के इस रण कौशल पर मन ही मन मुग्ध हो रही थी। भीष्म स्वयं जख्मी न होते हुये तीनों कन्याओं को अपने भाई विचित्रवीर्य की पत्नी बनाने के लिये हस्तिनापुर लौट आये।

विवाह एक सम्मान जनक प्रथा है जिसमें एक नये परिवार के साथ सम्बन्ध जुडता है। पिता कन्यादान करता है और साथ ही अपनी क्षमता भर उपहार स्वरूप अपनी कन्या को दहेज भी देता है। दहेज जितना अधिक होगा, ससुराल में कन्या का सम्मान भी उतना ही अधिक होता है। उसका प्रभाव होता है। कन्या ससुराल में जाकर वहां की सारी सम्पत्ति की स्वामिनी बन जाती है तथा पितृ कुल से भी तो कुछ न कुछ योगदान होता ही है। पिता की मृत्यु के पश्चात उसकी सारी सम्पत्ति पुत्रों को उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हो जाती है तथा विवाह के बाद भाई अपनी बहन को कुछ नहीं देंगे इसलिये पिता अपनी पुत्री को घर से विदा करते समय अपनी सम्पत्ति में से उसका अंश उसे दे देता है। इसलिये यह दहेज प्रथा निकली।

अम्बा सोच रही है कि रानी यह कहकर तो प्रसव इन्कार नहीं कर सकती कि वह रानी है। वह भी सामान्य नारी के समान ही सन्तान को जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है, अम्बा का लगाव शाल्व की ओर था। शाल्व बहुत वीरता से लडा था। उसका तेज दर्शनीय था। उसकी एक-एक उक्ति, एक-एक क्रिया, एक-एक भंगिमा के साथ अम्बा के मन में ज्वार उठता था। नारी को तो अपने महत्व का आभास ही तब होता है जब पुरुष उसके लिये अपने प्राणों का दांव लगा देता है। अम्बा शाल्व पर मुग्ध होती रही पर शाल्व हारता रहा।

हस्तिनापुर राजमहल के द्वार पर आकर रथ रूका वहां पर आकर उनका भव्य स्वागत किया गया। भीष्म तीनों कुमारियों को अन्त:पुर में ले आये और माता सत्यवती को प्रणाम कर बोले माता अभिनन्दन हो यह तीनों काशी नरेश की सुन्दर राजकुमारियां अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका है। अम्बा इनमें सबसे ज्येष्ठ है। अम्बिका मध्य में अम्बालिका सबसे छोटी है तब तीनों राजकुमारियों ने सत्यवती को राजमाता का सम्बोधन कर प्रणाम किया। सत्यवती बोली तुम सिर्फ माता कहो राजमाता नहीं और तीनों को अपने गले लगाया। प्रतिहारी को आज्ञा दी राजकुमारियों को अपने-अपने कक्ष में ले जाओ और उन्हे वहां विश्राम करने की व्यवस्था करो। यात्रा से आयी है थक गई होगी। कुरु कन्याओं ने उनकी आरती उतारी। सैनिकों ने उनकी अगवानी की। सत्यवती के चेहरे की प्रफुल्लता बता रही थी कि उन्हे काशीराज की कन्याये पसन्द आ गई सत्यवती

बोली भीष्म विचित्रवीर्य के लिये तो एक अम्बालिका ही पर्याप्त थी, तुम तो तीनों का हरण कर लाये। भीष्म बोले एक रानी तो किसी भी राजा के लिये पर्याप्त नहीं हुई माता फिर विचित्रवीर्य तो नारी सौन्दर्य का उपासक और गुण ग्राहक है। सत्यवती बोली अम्बा का वय तो विचित्रवीर्य से बहुत अधिक है।

अम्बा धर्मज्ञ भीष्म, अमात्य, वेद पारंगत ब्राह्मणों, श्रेष्ठजनों के सामने बोली राजमाता मैं गंगा पुत्र भीष्म के काशी आने के पहले ही सौभ शाल्व नरेश को मन ही मन चाह रही थी और पति मान कर उसका वरण कर चुकी परन्तु भीष्म के पराक्रम के सामने और भय से मैं कुछ भी बोल नहीं सकी। स्वयंवर में भीष्म ने अगर मेरा हरण नहीं किया होता तो मैं शाल्वकुमार को ही वरण करती। इस सूचना के पश्चात् तुमको जो अच्छा लगे वही करो।

भीष्म के मन में क्षोभ उठा। जब शाल्व मुझसे युद्ध कर रहा था और अपने प्राणों पर खेल रहा था तब तुम चुप चाप क्यों रही? उसी समय तुम क्यों नहीं बोली ? मैं उसी क्षण तुम्हे शाल्व को समर्पित कर देता तब भीष्म बोले माता यदि यह बात है तब राजकुमारी अम्बा का विवाह विचित्रवीर्य के साथ नहीं हो सकता है। अम्बा को अब आदरपूर्वक हस्तिनापुर की सेना के संरक्षण में शाल्व राज के पास भेजने की व्यवस्था करनी चाहिये। भीष्म ने ब्राह्मणों और माता सत्यवती के साथ विचार किया और अम्बा को उसकी इच्छानुसार जाने की अनुमति प्रदान करी। सभी भीष्म के मत से सहमत हुये। सत्यवती ने भी भीष्म को अपनी सम्मति दी। जो कन्या मन ही मन किसी अन्य पुरुष का वरण कर चुकी है वह एक प्रकार से उस पुरुष की विवाहिता ही मानी जाती है अत: किसी अन्य पुरुष से उसका विवाह नीति और न्याय संगत नहीं है और वैसे भी यदि अम्बा का विवाह विचित्रवीर्य के साथ न भी हो तो विचित्रवीर्य के लिये दो रानियां पर्याप्त थी। राजवैद्य वहां पर उपस्थित थे वे बोले मैं तो सम्राट को एक पत्नी का सहवास भी जोखिम मानता हूं। सत्यवती नें कहा अपहृत की हुई राजकुमारियों की अपनी कोई इच्छा नहीं होती है। भीष्म बोले मैं अम्बा के जाने की उपयुक्त व्यवस्था कर देता हूं। भीष्म ने कहा राजकुमारी विद्वान ब्राह्मणों का मत है। यदि तुम सौभराज शाल्व कुमार की अनुरागिनी हो तो तुम्हारा विवाह सम्राट विचित्रवीर्य के साथ नहीं हो सकता। अत: हस्तिनापुर का राजकुल तुम पर से अपने स्वामित्व का अधिकार और प्रतिबन्ध नियन्त्रण हटा रहा है और अब तुम कहीं भी अपनी इच्छानुसार जाने को स्वतन्त्र हो।

भीष्म का इसप्रकार का अलग ही व्यक्तित्व व रूप देखकर अम्बा आश्चर्यचकित हो गई। शाल्वकुमार के पास मानपूर्वक जाने का यह योग भीष्म के कारण ही प्राप्त हुआ यह जानकर अम्बा के मन में भीष्म के प्रति अत्यधिक आदर व आकर्षण बढ गया। वह भीष्म की वीरता पर मुग्ध थी।

अम्बिका और अम्बालिका का बडा ही धूमधाम से विचित्रवीर्य के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। भीष्म इस विवाह के विभिन्न कार्यों में पूरे व्यस्त थे। पूरा दायित्व भीष्म पर ही था। विचित्रवीर्य अपनी दोनों रानियों के साथ दिन प्रतिदिन रमण करने लगा। इधर राज्य का कारभार भीष्म विचित्रवीर्य के प्रतिनिधि बनकर देखने लगे और विचित्रवीर्य अधिकाधिक अपनी उन दोनों रानियों के साथ आकंठ भोगविलास में डूबने लगा। विवाह के पश्चात विचित्रवीर्य यौवन के उन्माद में उन्मुक्त होकर कामासक्त हो गया। उसकी दोनों पत्नियां भी बडे प्रेम से उसकी सेवा करने लगी। सात वर्ष तक सतत विषय सेवन करते रहने से भरी जवानी में विचित्रवीर्य को क्षय व तपेदिक, राज्यक्षमा रोगों ने घेर लिया।

१९) अम्बा का भीष्म को श्राप व विचित्रवीर्य की मृत्यु

विचित्रवीर्य अब राजकाज पर इतना सम्भाल नहीं रखता था। दिन में भी यौवन का उपभोग और मदिरा का बेसुमार पान करते रहता था। द्यूत क्रीडा मनोरंजन या सारे दिन भोग विलास में डूबे रहनेवाला विचित्रवीर्य धीरे-धीरे असाधारण नाइलाज से रोगग्रस्त होते गया। एक दिन प्रात: सोकर जागा तो हल्का सा ज्वर लगा। शरीर बहुत ही दुर्बल और सिर का भारीपन बढने

लगा। दोनों पत्नियों ने स्मरण कराया महाराज उठिये राजसभा में जाने में विलम्ब हो रहा है। विचित्रवीर्य बोला मैं आज राजसभा में नही जाऊंगा मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। माता सत्यवती भी चिंतित हो कक्ष में दौडती हुई आ गई देखा विचित्रवीर्य बुरी तरह से सांस लेने में हांफ रहा है तथा बुरी तरह से खांस रहा था। विचित्रवीर्य के सिर पर हाथ फेरा और परिचारिका को आज्ञा दी कि वह राजवैद्य को बुला लाये।

राजवैद्य ने आकर विचित्रवीर्य की नाडी का परीक्षण किया। सम्राट की आंखे, जिव्हा तथा त्वचा का परीक्षण किया और बोले सम्राट को इस समय विश्राम की आवश्यकता है तथा माता सत्यवती से एकान्त में बोले। राजमाता सम्राट की कामेच्छा असाधारण रूप से प्रबल है। शरीर दुर्बल कृशकाय है और आपने उन्हे एक ही नहीं दो-दो सुन्दरी पत्नियां उपलब्ध करा दी है। मुझे सम्राट में क्षय रोग के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था कि सम्राट को स्त्री प्रसंग से दूर रखे। सम्राट के विवाह से पूर्व ही मैंने महाराज कुमार भीष्म से निवेदन किया था सम्राट के स्वास्थ्य के लिये एक पत्नी भी जोखिम ही है। फिर आपने तो उसे दो-दो रानियां दे रखी है। रानियों को सम्राट से दूर ही रखें ताकि सम्राट व्यर्थ ही कामोत्तेजना के कारण अपने स्वास्थ्य का और क्षय न करे।

माता सत्यवती रथारूढ़ होकर महाराज कुमार भीष्म के पास आयी और देखा भीष्म के पास एक लम्बी ऊंची गौर वर्ण नारी, काली-काली आंखे, लम्बे-लम्बे बाल वाली आकर्षक नारी अम्बा खडी है। पर यह यहां क्या कर रही है। इसे तो सौभ शाल्वकुमार के पास भेज दिया था। सत्यवती ने आश्चर्य प्रकट कर कहा राजकुमारी तुम। भीष्म यह यहां। तब राजकुमारी बोली हां राजमाता मुझे हस्तिनापुर नरेश से न्याय चाहिये। मैं हस्तिनापुर नरेश की सेना के संरक्षण में सौभ शाल्व के पास गयी थी। रणभूमि में भीष्म से उसकी दारुण पराजय हुई उसे अपना अपमान मानकर उसने मुझे यह कह कर स्वीकार नहीं किया कि तुम तो भीष्म द्वारा अपहरण की हुई हो। तुम पर तो उसका अधिकार है। तुम्हें तो मेरे पास जैसे दान दिया हो ऐसे भेजा है। इसलिये मैं यह दान स्वीकार नहीं कर सकता और मुझे अंगीकार न कर मुझे वापिस लौटा दिया है और मेरा अपमान किया है। यह मेरा अपमान गंगा पुत्र भीष्म के कारण हुआ है। यदि गंगा पुत्र भीष्म मुझे शाल्व के पास इस तरह नहीं भेजते तो मेरा अपमान नहीं होता। अब क्षत्रिय धर्म पालन करने के लिये न्याय से आप गंगा पुत्र भीष्म को मुझे अपनी धर्म पत्नी स्वीकार कर मेरे साथ विवाह करने की आज्ञा दे। शाल्व कहता है वह क्षत्रिय राजा है यदि वह मुझे युद्ध में जीत लेता तो ठीक था पर वह भीष्म का यह दिया हुआ दान नहीं ले सकता। जिस क्षण भीष्म ने मुझे स्वयंवर मंडप में मेरी बाहें पकडकर अपने रथ में बैठाया उसी क्षण से मैं स्वयंवर में जीती हुई भीष्म की वीर्यशुल्का धर्मत: पत्नी हो गई और उसे अब धर्मज्ञ सौभराज शाल्व अपनी पत्नी के रूप में मुझे कैसे स्वीकार कर सकता है ? अब मैं सम्राट शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र की भार्या हूं और मुझे मेरा अधिकार मिलना ही चाहिये।

तब महाराज विचित्रवीर्य बोले देवि यह सत्य नहीं है। भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रतिज्ञा कर रखी है। उन्होंने तो तुम्हारा हरण मेरे लिये किया था। तुमने तो स्वयं कहा था कि तुम्हारा प्रेम प्रकरण शाल्व राज सौभ के साथ था और तुमने तो मन से शाल्व राज सौभ का वरण कर रखा है। अन्यथा तो तुम्हारा विवाह मुझसे हो जाता और तुम कुरु साम्राज्य की महारानी बन जाती। काशी की राजकुमारी इस समय अत्यन्त उद्वेलित स्थिति में थी। वह दुखी थी। अम्बा भीष्म से बोली यदि तुम क्षत्रिय हो तो मैं भी क्षत्रिय कन्या हूँ। यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हो तो मैं भी अपना संकल्प पूरा करके रहूंगी।

भीष्म बोले सुनो राजकुमारी तुम्हारे दुर्भाग्य पर मुझे दु:ख है किन्तु तुम्हारा अपराधी मैं नहीं हूं। तुम्हारे अपहरण में कही अधर्म नहीं हुआ है और तुमने स्वयं ही शाल्व के प्रति अनुराग प्रकट करके कोई अन्याय नहीं किया और शाल्व का भी तुम्हे स्वीकार न करने का कारण भी कोई धर्म विरुद्ध नहीं है।

अम्बा बोली सबने अपने-अपने धर्म का निर्वाह किया है तो फिर यह अधर्म कैसे बन गया ? मेरे पिता के घर से स्वयंवर में

मेरा हरण हुआ इसलिये लौटकर अब मैं पितृगृह नहीं जा सकती। जो मुझे हर कर लाया वह मुझे ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि वह ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा में बन्धा है और जो मुझसे प्रेम करता था, विवाह करना चाहता था वह मुझे इसलिये स्वीकार नहीं कर रहा है क्योंकि वह मुझे युद्ध में नहीं जीत सका, मेरा हरण नहीं कर सका। जब सभी ने धर्मोचित पालन किया है तथा किसी ने भी अधर्म नहीं किया, किसी ने भी पाप या जानबूझ कर कुछ भी नहीं किया किसी ने अन्याय नहीं किया तो फिर यह सारी की सारी यातनायें मुझे ही क्यों झेलनी पड रही है ?

भीष्म ने कहा देवि इसमें किसी का भी कुछ दोष नहीं है। यही तो दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होती है। कभी-कभी जीवन में परिस्थितियों के ऐसे विचित्र समीकरण बन जाते हैं कि व्यक्ति कष्ट ही पाता है और इसके लिये किसी भी व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। तुम भी अब ऐसी ही स्थिति में खडी हो। किन्तु ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जिसका हल धैर्य और विवेक से नहीं निकलता हो। समय की प्रतीक्षा करनी पडती है। अम्बा बोली मुझे अब न तो पितृ कुल में वापिस लौटना है और न ही उस निर्वीय विचित्रवीर्य से विवाह करना है और न ही सौभ शाल्व नरेश के पास जाना है। मुझे तो कुरुकुल में अपना उचित उपयुक्त धर्मानुकूल स्थान ही चाहिये। नहीं तो मैं अपने इस अपमानित जीवन के प्रतिकार स्वरूप कोई भयंकर कृत्य कर डालूंगी यह कहकर उसने भीष्म की ओर देखा। मेरी इच्छा वरमाला भीष्म के गले में डालने की है। भीष्म उठ खडे हुये और बोले महाराज यह सम्भव नहीं हो सकता अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कर भीष्म ने अम्बा के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। भीष्म के इस प्रकार स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देने से राजकुमारी अम्बा अत्यन्त क्रोधित हो गई और बोली गंगा पुत्र भीष्म तुम अपनी प्रतिज्ञा की आड में एक स्त्री के सुख को जिन्दगी भर के लिये नष्ट कर रहे हो। भूलना मत एक पैरों तले कुचली नागिन, घायल शेरनी व अपमानित नारी अपना प्रतिशोध लेती है और ये जब क्रोधित हो जाती है तो इनसे कोई बच नहीं पाया है। वे अपने अपमान का बदला अवश्य लेकर रहती है। मेरा यह अपमान आपने जो किया है मैं इसे जिन्दगी भर नहीं भूल पाऊंगी चाहे मुझे कितने ही जन्म लेने पडे परन्तु तुम्हारी मृत्यु का कारण मैं ही बनूंगी और तुम्हारे उस वंश का सम्पूर्ण नाश कर दूंगी। स्त्रीत्व का अपमान हुई अम्बा यह कहकर तुरन्त हस्तिनापुर से बाहर अन्यत्र चली गई।

वेदशास्त्र, राजनीति, धनुर्विद्या के ज्ञानी, विद्वान गंगा पुत्र भीष्म ने अम्बा के इस कठोर श्राप को स्वीकार किया और बोले यदि विधाता का यही विधान है तो ठीक है। मैं नहीं जानता था कि दुर्बलता का एक क्षण इस प्रकार हमारे विनाश की घडी भी ला सकता है। परेशानी में ही तो व्यक्ति अपने आत्मीयजनों का स्मरण करता है, करुणा के क्षण में या अपनी असहायता के क्षणों में। इच्छाओं को मनवाने के लिये संघर्ष की क्षमता होती है। जो कुछ तुमने पाया है वह प्राथमिक है और जो कुछ तुमने खोया है वह आनुषंगिक है। मनुष्य की मूल आवश्यकता वह है जो तुमने खोया है और जो तुमने पाया है वह तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, वह तो तुम्हारे अहम् की पुष्टि है, प्रदर्शन है।

प्रात: ही भीष्म से मिलने राज वैद्य आये और बोले महाराज कुमार सम्राट इस समय अत्यधिक रूग्ण है। वे रोगी के समान हमारे नियन्त्रण में नहीं है। हमारी इच्छा उनपर आरोपित नहीं होती। उनकी अपनी इच्छा ही सर्वोपरि है। कोई पथ्य वे स्वीकार कर नहीं पाते। विधाता ने यह उनका जो शरीर बनाया है वह बहुत समर्थ नहीं है बेचारा असहाय है, पराधीन जो ठहरा। विधाता ने शरीर की आवश्यकताओं को अभिव्यक्ति देने के लिये चंचलमन उनके साथ लगा दिया है और मन तो स्वेच्छाचारी है। वह शरीर की आवश्यकताओं को समझने में मनमानी करता है परिणाम यह है कि उससे शरीर कष्ट पाता है। भोग की इच्छा शरीर की भी है और मन की भी किन्तु भोग का कर्म शरीर स्वीकार कर नहीं पा रहा है। भीष्म बोले यह सब गुत्थियां भरी बातें क्यों बता रहे है जो कुछ कहना है स्पष्ट कहो। राजवैद्य बोले धैर्य रखें कुमार। भोग की जितनी आवश्यकता शरीर को हो उतना भोग पाकर शरीर प्रसन्न होता है पर मन अपनी स्वेच्छारिता नहीं छोडता क्योंकि उसे भुगतना कुछ नहीं पडता। वह तो स्वामी है, दास तो

शरीर है। स्वामी की इच्छा पूरी करने के लिये श्रम दास को ही करना पडता है और स्वामी को अपने पास के सुख-दु:ख की चिन्ता नहीं करनी पडती। जितना भोग शरीर पर किया जायेगा वह भोग नहीं शरीर को क्षय ही करेगा। अब समय आ गया है कि सम्राट के शरीर और रोग की स्थिति अच्छी तरह से समझ लें। महाराज का शरीर दिनों-दिन क्षय की ओर अग्रसर हो रहा है पर उनका मन भोग में अत्याधिक लिप्त होते जा रहा है। वैद्य का धर्म रोग का निदान करना है और उसका उपयुक्त इलाज करना है। सम्राटों पर नियन्त्रण करना वैद्य का कर्म नहीं है यह तो सम्राट के आत्मीय जनों का उत्तरदायित्व है। मैं तो अब आपको यह सूचना देने आया हूं कि सम्राट का रोग बढते जा रहा है और हमारी पहुंच से बाहर जा रहा है। उन्हें सम्भालना कठिन हो रहा है। यदि आप उन्हे नियन्त्रण में कर लेंगे तो हमारा आज भी विश्वास है कि हम उनके रोग पर नियन्त्रण कर पायेंगे। कभी-कभी वैद्य का धर्म रोगी के पास नहीं रोगी के स्वजनों के पास भी होता है। बात चिन्ताजनक स्थिति में पहुंचती जा रही है। भीष्म बोले क्या आपने यह स्थिति राजमाता को बतायी। राजवैद्य बोले कुमार, वैद्य कभी भी स्पष्ट नहीं बोल सकता। भय रहता है कि उसको आत्मीय जन ठीक स्थिति सुनकर स्वयं कही रुग्ण न हो जाये। स्वयं सम्राट और राजमाता को रोग की स्थिति स्पष्ट और ठीक-ठीक नहीं बताई जा सकती। पर आपको सूचित कर रहा हूं कि महाराज राज्यक्षमा व तपेदिक रोग से अत्यधिक ग्रसित हो चुके हैं। कभी-कभी भीष्म सोचते हैं कि भगवान ने ऐसा संसार क्यों बनाया उसका क्या बिगड गया जिसमें सर्वदा दु:ख, पीडा, अभाव, वंचना, घृणा, द्वेष और विरोध है। प्रत्येक व्यक्ति दु:खी है और सबसे बडी चीज तो यह है कि जिसे वह अपना सुख मानता है वही उसको दु:ख देता है।

क्या प्रत्येक व्यक्ति अपने ही पाप को नहीं भुगत रहा ? कोई अपनी चतुराई से भुगत रहा है तो कोई अपनी मूर्खता से, कोई अपनी व्यवहारिकता से तो कोई अपने सिद्धान्तों से। इस समय तो विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य की चिन्ता करनी है और किस तरह माता सत्यवती को सूचित किया जाये।

इतने में ही महा अथर्वण जाबालि ऋषि के आश्रम के दो शिष्य भीष्म के पास पहुंचे और सूचना दी कि आपके गुरु महा भार्गव परशुराम आज से तीसरे दिन कुरुक्षेत्र में पवित्र सरस्वती नदी के तट पर जाबालि ऋषि के आश्रम में पदार्पण करेंगे और उन्होंने आपसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की है। वे हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं करना चाहते इसलिये उनकी इच्छा है कि आप कुरुक्षेत्र में पधारने का कष्ट करे।

भीष्म के लिये यह सूचना आकस्मिक थी। भीष्म बोले, मैं अवश्य उनके दर्शनों के लिये आऊंगा। मेरे लिये यह सौभाग्य होता कि गुरुदेव हस्तिनापुर में आते। शिष्यों ने कहा आपका यह निमन्त्रण गुरुदेव तक पहुंचाने की स्थिति में हम नहीं है।

भीष्म ने सत्यवती को अपने गुरु परशुराम के निमन्त्रण की सचूना दी और कहा माते मैं कल ही कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान करना चाहूंगा। शायद मुझे वहां पर दो-तीन दिन लग सकते है तब तक आप विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य का पूरी तरह से ध्यान रखें कारण उसका स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं है। राजवैद्य का कहना है सम्राट उनके नियन्त्रण में नहीं है और न ही औषधि भी कुछ सकारात्मक नतीजे दे रही है। यदि अब स्थिति नहीं बदली तो सम्राट का स्वास्थ्य चिन्ताजनक होते जायेगा। सत्यवती बोली, भीष्म। परशुराम और महर्षि अथर्वण जाबालि दोनों भी महान वैद्य हैं वे औषधियों और मन्त्र बल से मृत व्यक्ति में भी प्राणों का संचार कर सकते हैं। यदि यह सत्य है तो मैं भी तुम्हारे साथ कुरुक्षेत्र चलना चाहूंगी और उनके दर्शन कर विचित्रवीर्य के लिये जीवन दान की याचना करूंगी। अब राजवैद्य की औषधि कोई उपचार नहीं कर पा रही है। अवश्य ही राजवैद्य के ज्ञान में कहीं कोई कमी रह गई है। या तो वे ठीक से विचित्रवीर्य के रोग का निदान नहीं कर पा रहे है या फिर उसके लिये कोई उचित औषधि तैयार नहीं कर पा रहे है। भीष्म ने कहा माता न तो राजवैद्य के ज्ञान में कोई न्यूनता है और न ही कोई औषधि का अभाव है। कोई रोगी रोग की अवस्था में यदि सात्विक नियमों का व जीवन का पालन नहीं करेगा तो कोई भी वैद्य उसके लिये क्या कर

सकेगा ? भीष्म ने कहा माता जैसी आपकी इच्छा आप भी चलिये।

भीष्म हस्तिनापुर से चले थे तो ऐसा नहीं लग रहा था कि कोई शिष्य अपने गुरु से मिलने जा रहा है। यह तो अपने पूरे लावा लश्कर राज परिवार के साथ की यात्रा थी। राजमाता सत्यवती, राज पुरोहित वसुभूति तथा महामन्त्री विष्णुदत्त भी साथ में थे। साथ में, रथ उनके पीछे सेवक, सैनिकों और सामग्री से भरे हुये छकडे। राजमाता सत्यवती को विचित्रवीर्य की भी चिन्ता साल रही थी। उनका वश चलता तो वे अपने साथ पुत्र और पुत्र वधुओं को भी साथ ले जाती किन्तु राजवैद्य ने इसकी अनुमति नहीं दी। राजवैद्य का कहना था कि यात्रा सम्राट के लिये कष्ट प्रद होगी और स्वास्थ्य के लिये ठीक भी नहीं है। जब विचित्रवीर्य साथ नहीं चल सकता तो फिर अम्बिका, अम्बालिका भी साथ जाकर क्या करेगी। पुत्र को पीछे अकेले छोडकर जाने से पहले राजमाता ने उनकी देखभाल सेवा सुश्रूषा तथा औषध सेवन इत्यादि का पर्याप्त प्रबन्ध किया। वैद्य, दास-दासियों, परिचायकों को अनेक निर्देश दिये। भीष्म कहीं अकेले जाते तो वे कब जाते और कब लौट आते किसी को भी पता नहीं चलता।

अत्यन्त दु:खी और पीडित होकर अम्बा हस्तिनापुर त्याग कर वह भी शैखावत्य ऋषि के आश्रम आ गई। शैखावत्य ऋषि के शिष्य महापुरुष राजा होत्रवाहन काशी नरेश के श्वसुर और अम्बा के नाना थे।

गुरु परशुराम बडे ही कठोर अनुशासन के प्रतिष्ठाता थे। उनके लिये कोई भूल छोटी और कोई भूल बडी नहीं होती थी। प्रत्येक भूल मात्र एक भूल ही होती है। वे किसी भी भूल को क्षमा नहीं करते थे। एक बार किसी एक शिष्य द्वारा अपनी भूल क्षमा याचना पर उन्होंने कहा था, तुम परशुराम के शिष्य हो। अपनी भूल के लिये क्षमा नहीं दंड मांगना सीखो। न्याय और सत्य का सिद्धान्त यह कहता है कि यदि हम सकारात्मक कार्य के लिये पुरस्कार पाते हैं तो अपने नकारात्मक कार्य के लिये दंड की भी अपेक्षा करनी चाहिये। फल तो प्रत्येक कर्म का मिलेगा। प्रकृति के नियम सार्वभौमिक है वे आंशिक सत्य नहीं होते है। तुम एक की अपेक्षा तो करते हो पर दूसरा नहीं चाहते हो। परशुराम के शिष्यों को सत्यवादी होने के नाते सत्य का सामना भी करना चाहिये। गुरु का अनुशासन कठोर था पर स्वयं में गुरु कठोर नहीं थे। अनुशासन में वे कठोर हो जाया करते थे किन्तु उनके मन में बहुत स्नेह था अपने शिष्यों के प्रति।

जब भीष्म ने गुरु आश्रम अध्ययन कर छोडा तो विदाई के समय कितने स्नेह से गुरु माता ने कहा था पुत्र तुम्हारा एक घर तो वह है, जहां तुमने जन्म लिया है और दूसरा घर यह है जहां तुम्हारी शिक्षा दीक्षा हुई है। जैसे हस्तिनापुर का आकर्षण तुम्हे है वैसे ही इस आश्रम को भी याद करना।

धर्म क्षेत्र में सरस्वती नदी के दिखते ही भीष्म अपने सुख संसार से बाहर आये। अब वे गुरु परशुराम के आश्रम के शिष्य नहीं रहे। वे अब वयस्क हो गये है। प्रौढता की ओर बढ़ रहे हैं। वे राजा तो नहीं है फिर भी कुरु साम्राज्य के कर्ता धर्ता वे ही हैं। आज वे गुरु से मिलने आये हैं। रथ रुके और प्रहरी आगे बढ़े। एक प्रहरी बोला पधारिये। गुरुदेव आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भीष्म, सत्यवती, विष्णुदत्त और वसुभूति आगे बढ़े। भीष्म ने अपने गुरु को देखा अब गुरु प्रौढ वय पार कर वार्द्धक्य की ओर बढ रहे थे। केश और दाढी श्वेत हो चुके थे। उनका गौर वर्ण ताम्रवर्णी हो गया था। वे पूर्णत: स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। भीष्म ने उनके चरणों में प्रणाम किया। परशुराम ने आशीर्वाद दिया प्रसन्न रहो वत्स। भीष्म बोले आपकी कृपा है गुरुवर।

परशुराम बोले- वत्स तुम्हारे यश के साम्राज्य का डंका तो चारों ओर बज रहा है। अब तुम देवव्रत से भीष्म हो गये हो। तुमने राज्य छोडा, पत्नी और सन्तान का मोह छोडा। सारे सुखों का त्याग कर दिया। पुत्र जैसे भोजन में से नमक और मीठा निकाल दें तो भोजन स्वाद हीन हो जाता है वैसे ही जीवन में से धन और नारी का मोह छोड दिया जाये तो जीवन के शेष मोह अपने आप ही समाप्त हो जाते है। भीष्म बोले सारे राग-द्वेष, जीवन के सारे भोग और स्वाद मैंने बलात दबा रखे हैं। मुक्त तो मैं अभी तक किसी से भी नहीं हो पाया हूं। तनिक सा अवसर मिलते ही सब अपना सिर उठा लेते है।

परशुराम बोले कोई बात नहीं। अभी इसके लिये बहुत समय है तुम्हारे पास। धर्म पर दृढ़ रहना। भीष्म बोले आप आदेश करें गुरुदेव। गुरु ने सत्यवती को ओर देख कर पूछा क्या ये तुम्हारी माता सत्यवती है ? भीष्म बोले हां गुरुदेव ये मेरी माता है। ये आचार्य वसुभूति है और ये कुरु राज्य के महामन्त्री आर्य विष्णुदत्त हैं। सत्यवती का मन हुआ कि वे गुरु से तत्काल अपने पुत्र विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य के बारे में वार्ता करे और हो सके तो वे कोई औषध दे दें। सत्यवती बोली महर्षि मैं एक निवेदन करना चाहती हूं। परशुराम बोले- तुम्हारी व्यथा भी सुनूंगा राजमाता। किन्तु इस समय तुम लोग थके हुये आये हो। जाओ विश्राम करो। सन्ध्या समय फिर भेंट करेंगे।

सन्ध्या समय सूचना मिलने पर भीष्म सभा मंडप में आये। गुरु ने कहा आओ। देवव्रत भीष्म यहां बैठो। भीष्म बैठ गये। सत्यवती, विष्णुदत्त और वसुभूति को भी बैठने के लिये सम्मानित आसन दिये गये।

तब गुरु परशुराम ने पास बैठे शैखावत्य ऋषि का परिचय कराया और राजा होत्रवाहन का भी जो काशी नरेश के श्वसुर और अम्बा के नाना। अब अम्बा के नाना का गुरु परशुराम और शैखावत्य ऋषि के साथ यहां होने का क्या औचित्य है ? ऐसा भीष्म के मन में बवण्डर उठा।

गुरु अब क्या आदेश देंगे ? गुरु का सारा जीवन धर्ममय है उनका चिन्तन, उनका कर्म, उनका जीवन सब कुछ धर्म के निमित्त है तो फिर वे कभी धर्म विरुद्ध आदेश नहीं दे सकते। गुरुवर का यहां उपस्थित होना आकस्मिक है या इसका भी कोई सम्बन्ध अम्बा से है। गुरु परशुराम बोले देवव्रत तुम्हारा यश तुम्हारे त्याग पर आधारित है। यद्यपि संसार में असंख्य लोग बिना राज्य और बिना नारी के अपना जीवन व्यतीत करते हैं फिर भी वे महान नहीं कहलाते है किन्तु तुमने जिस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक सहज उपलब्ध भोगों को त्याग दिया है वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। क्या तुमने कभी सोचा कि व्यक्ति प्रतिज्ञा क्यों करता है ? तुमने तो प्रतिज्ञा इसलिये की थी कि तुम्हारे पिता की आकांक्षापूर्ति के मार्ग में जो बाधा है वह हट जाये। जी गुरुदेव भीष्म बोले। गुरु परशुराम बोले- अर्थात दूसरों के सुख के लिये, उनके हित के लिये। उसमें तुम्हारा तो अपना निजी कोई स्वार्थ था ही नहीं।

भीष्म बोले गुरुदेव मैं धर्म की ओर अग्रसर होना चाह रहा था। भोग धर्म का विरोधी है। मुझे अपनी इस प्रतिज्ञा से भोगों से दूर रहने का अवसर मिल गया। गुरु बोले भीष्म धर्म तो दूसरे के हित में ही है उसके कारण संसार के जिन भोगों का तुमने त्याग किया उन्हें भी तुमने तुम्हारा हित ही माना। तुम्हे अपना कष्ट भी अपना धर्म ही प्रतीत हुआ। जिसे सारा संसार वंचित होना कहता है उसे भी तुमने उपलब्धि ही माना। गुरु बोले, तो भीष्म इतना तो निश्चित है कि तुमने अपने जीवन में धर्म के इस तत्व को तो ग्रहण किया ही है कि सांसारिक दृष्टि से परहित करते हुये तुम अपना स्वार्थ नहीं देखोगे। गुरु ने शिबिर के पृष्ठभाग से आती हुई अम्बा का स्वागत किया और बोले आओ बेटी।

भीष्म ने मन में सोचा ओह तो यह भी यहीं है। अब उन्हे और अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं हुई। सारी स्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो चुकी। यह सारा प्रकरण इसी का है। यह अपने नाना होत्रवाहन के पास गयी होगी और उसने शैखावत्य ऋषि के साथ भीष्म से अपनी बात मनवाने का एक मात्र मार्ग देखा होगा कि गुरु परशुराम मुझे आदेश करे। आते ही अम्बा ने सब लोगों को नमस्कार किया और नतमस्तक होकर बैठ गयी।

परशुराम ने कहा वत्स भीष्म प्रत्येक कन्या के पिता की इच्छा होती है वह अपनी पुत्री के लिये उपयुक्त वर खोजकर अपनी कन्या उसे सौंप दे। अम्बा के पिता काशी नरेश ने भी यही कामना की थी, तब तुमने स्वयम्वर मंडप में से उसका हरण किया तो फिर तुमने उसके साथ विवाह क्यों नहीं किया। क्या अडचन थी तुम्हे ? भीष्म बोले ब्रह्मचर्य के पालन की अपनी प्रतिज्ञा के कारण। परशुराम बोले- मान लो कि तुम्हे देखकर अम्बा तुम पर मोहित मुग्ध हो गयी हो। उसकी हार्दिक इच्छा हो कि तुम उससे विवाह कर लो। मनुष्य की यह दुर्बलता है कि वह सांसारिक तथ्यों और घटनाओं को भी अपनी इच्छाओं में रंग कर देखता है।

तटस्थ व्यक्ति के लिये यह दृष्टि दूषित हो सकती है किन्तु उस व्यक्ति का सत्य वही होता है। ऐसी स्थिति से यदि अम्बा ने यही समझा हो कि तुम उससे विवाह करने के लिये ही उसका हरण कर रहे हो तो तुम उसे क्या कहोगे ? भीष्म बोले यह उसका दृष्टिदोष। गुरु बोले, तो फिर तुम्हारे लिये क्या यह उचित नहीं था कि उसके दृष्टि दोष का परिमार्जन करते ? भीष्म बोले- गुरुदेव स्वयंवर की उत्तेजना में सम्भवत: मेरे मन में यह बात नहीं आयी। हो सकता है यह मेरी मानवीय दुर्बलता रही हो। गुरु परशुराम बोले, मानवीय दुर्बलताये तो प्रत्येक मनुष्य में है पुत्र किन्तु तुम्हारी इस नगण्य सी चूक से इस निर्दोष कन्या का जीवन नष्ट होने जा रहा है। शाल्व ने तो इसे ग्रहण नहीं किया क्योंकि हरण के क्षण से वह इसे तुम्हारी ही पत्नी मानता है।

भीष्म बोले- गुरुदेव मैंने तो तीन कन्याओं का हरण किया है। दो का विवाह मेरे छोटे भाई विचित्रवीर्य के साथ हो गया है। यदि हरण के क्षण से देवी अम्बा मेरी पत्नी है तो अम्बिका और अम्बालिका का हस्तिनापुर के सम्राट के साथ विवाह भी अवैधानिक है। परशुराम बोले- पुत्र मैं क्या कहूं यह तो शाल्वकुमार की मान्यता है। भीष्म बोले तो गुरुदेव किसी और की मान्यता मेरा बन्धन कैसे हो सकती है? तब गुरु परशुराम बोले- भीष्म तुमने इसका हरण किया और इसलिये शाल्व ने इसे अस्वीकार किया। तुम दोनों की इस कन्दुकक्रीडा में अम्बा का जीवन नष्ट हो रहा है। इसलिये इस अत्याचार की अनुमति मैं अपने शिष्य को नहीं दे सकता। इसलिये तुम्हे इसे ग्रहण करना ही होगा। भीष्म बोले तो फिर आपने यही बात शाल्व से क्यों नहीं की। गुरु बोले, राजकुमारी अम्बा की ऐसी ही इच्छा थी। भीष्म बोले क्यों ? गुरुदेव। जब राजकुमारी ने अपनी इच्छा से शाल्व का वरण करना चाहा तो अब वे क्यों चाहती है कि आप मुझे ही आदेश करें ? यदि अम्बा ने सौभ राज के वरण की बात सबके सामने नहीं कही होती तो उसका विवाह हस्तिनापुर सम्राट विचित्रवीर्य के साथ हो चुका होता। तब कहीं यह समस्या भी नहीं आती। राजकुमारी अपनी वर्तमान स्थिति को मेरी और शाल्व की कन्दुक क्रीडा के कारण नहीं बल्कि अपने द्वन्दों और हृदय के लोभ की स्थिति के कारण पहुंची है। वह निर्णय नहीं कर पायी शाल्व या विचित्रवीर्य। वह यह भली-भांति जानती थी। एक निष्ठा के अभाव का परिणाम यही हो सकता था गुरुदेव। परशुराम बोले वत्स वह विचित्रवीर्य को नहीं तुम्हे अपने पति के रूप में पाना चाहती है। भीष्म बोले, गुरुवर यह तो इस जीवन में सम्भव नहीं है।

परशुराम बोले, किन्तु यह अन्याय होगा भीष्म। भीष्म क्या तुम नहीं जान रहे हो कि तुम्हारी प्रतिज्ञा अपने लक्ष्य से भटक गई है। जिस प्रतिज्ञा का लक्ष्य पर हित था वह अब परपीडन करने लगी है। अब तो तुम्हारी प्रतिज्ञा का लक्ष्य भी पूरा हो गया। सत्यवती का पुत्र हस्तिनापुर के सिंहासन पर आसीन है और उसका विवाह भी हो चुका। अब उसकी सन्तान भी होगी और कुरुवंश का राज्य भी सम्भाल लेगी। अब यदि अम्बा का जीवन नष्ट होने से बचाने के लिये विवाह कर लेते हो तो किसी का अपकार भी नहीं होगा, उपकार अवश्य होगा।

सत्यवती मन ही मन विचार करने लगी। नहीं ऋषिवर। ऐसा अनर्थ मत करें। यह अम्बा कोई राजकुमारी नहीं विषैली नागिन है पता नहीं कब डस लेगी ? कही भीष्म ने इसे स्वीकार कर लिया तो और इसने यदि भीष्म को अपना पति बना लिया तो उसे यह हस्तिनापुर का सम्राट अवश्य बनाकर ही मानेगी। अम्बा के साथ शायद अन्याय न हो पर सत्यवती का तो सर्वनाश कर ही देगी गुरुवर। प्रतिद्वन्दी पक्ष भीष्म और अम्बा नहीं है यह तो सत्यवती और अम्बा है और सत्ता है भीष्म। जो भी स्त्री भीष्म को प्राप्त करेगी वह हस्तिनापुर की सारी सत्ता को हस्तगत करेगी। सत्यवती ने भीष्म को पुत्र रूप में प्राप्त किया है और अम्बा उसे पति रूप में प्राप्त करना चाहती है। पुरुष पर उसकी मां से अधिक अधिकार उसकी पत्नी का होता है। मां बनकर स्त्री प्रतिद्वन्दता में सदा से हारी है। यह बात सत्यवती भली-भांति जानती है। अम्बा के अधिकारों की रक्षा अवश्य करें ऋषिवर किन्तु मुझे वंचित करके नहीं। मेरे अधिकारों को मुझसे न छीने। सत्यवती को लगा अभी तो भीष्म ही गुरुवर की बातों से सहमत नहीं है फिर गुरु से यह सब क्यों बताये ?

परशुराम बोले, पुत्र पिता ने तो तुम्हे आज्ञा भी नहीं दी थी सिर्फ उनकी इच्छा मात्र जानकर तुमने अपने जीवन के सभी भौतिक सुखों को त्याग दिया। गुरु का अधिकार पिता से कहीं अधिक होता है पुत्र और मैं तुम्हे यदि यह आज्ञा दूं की अम्बा को ग्रहण करो तथा गृहस्थी के सुख भोग करो और अम्बा को सुखी बनाओ। भीष्म बोले, क्या यह आपका आदेश है गुरुवर ? और यदि मैं इस आदेश का पालन करने में स्वयं को असमर्थ पाऊं तो ?

गुरु परशुराम बोले, कुरुकुल के राजकुमारों से यह तो कभी अपेक्षित नहीं है कि वे गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करे। फिर भी यदि तुम मर्यादा का उल्लंघन करोगे तो फिर मुझे भी शस्त्र बल की सहायता लेनी होगी। क्या तुम गुरु से युद्ध करोगे ?

भीष्म को गुरु की इस प्रतिक्रिया पर धक्का लगा। उन्हे अपने गुरु से यह अपेक्षा नहीं थी कि वे इस सीमा तक उन पर दबाव का प्रयोग करेंगे। यदि वे गुरु से युद्ध करेंगे तो यह अपने आप में कोई कम कलंक नहीं है और यदि एक वृद्ध ब्राह्मण से पराजित हो गये तो क्षत्रिय समाज में मुंह नहीं दिखा सकेंगे और यदि कही विजय प्राप्त कर ली तथा गुरु को पराजित कर दिया और कहीं इस हठी गुरु का वध करना पडा तो गुरु हत्या या ब्रह्म हत्या का दोष लग जायेगा। कैसे संकट में डाल दिया गुरु ने ?

भीष्म बोले, यदि मुझे कुछ कहने की अनुमति हो तो मैं कुछ तर्क करू। गुरु से तर्क करने का अपराध क्षमा करें ऋषिवर। परशुराम बोले, मेरी अनुमति है भीष्म तुम्हे। तर्क में तो कोई दोष नहीं है पर कुतर्क मत करना। परशुराम एक बार कभी क्रुद्ध हो जाये तो फिर वे किसी की भी नहीं सुनते है।

भीष्म बोले- गुरुवर धर्म ने क्षत्रिय को शस्त्र धारण करने की अनुमति क्यों दी ?

परशुराम बोले- न्याय के लिये। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये शस्त्र धारण करना दस्यु वृत्ति है। शस्त्र धारण किया जाता है सामान्य जन के हित के लिये, दलित और दमित प्रजा के उद्धार के लिये। भीष्म बोले, गुरुदेव अपनी इच्छा बलात् किसी दूसरे पर आरोपित करने के लिये तो नहीं ना। परशुराम बोले, नहीं वह तो आततायी का काम है। धर्म उसकी अनुमति नहीं देता। भीष्म बोले, तो गुरुदेव फिर आप अपनी और राजकुमारी अम्बा की इच्छा मुझ पर आरोपित करने के लिये शस्त्र बल क्यों इस्तेमाल कर रहे हो ? यह सुनकर परशुराम निरुत्तर हो गये। भीष्म ने कहा काशी की राजकन्या से मेरा विवाह करानेके लिये धनुष उठाना कौनसा धर्म है ? गुरुदेव बोले, नारी के सम्मान की रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है भीष्म। एक अबला राज कन्या नगर-नगर न्याय के लिये भटक रही है और दो शस्त्रधारी योद्धा उसका अपमान कर रहे हैं। उन्हें न्याय को स्वीकार करने के लिये बाध्य करने हेतु अथवा उन्हें अपराध का दंड देने हेतु मुझे शस्त्र उठाना पड रहा है। इसमें मेरी कोई इच्छा नहीं है। इच्छा केवल सर्वनियन्ता की है और यही इच्छा धर्म कहलाती है। या तो तुम अब अम्बा को पत्नी रूप में स्वीकार करो अथवा अपने प्राण देकर अपने अपराध का प्रायश्चित करो।

भीष्म बडे ही शान्त स्वर में बोले- क्षत्रिय युद्ध दान से कभी मुंह नहीं मोडता आव्हान चाहे गुरु ने ही किया हो पर पहले युद्ध की अनिवार्यता से तो सहमत हों। यदि आपकी आज्ञा का पालन करूं तो मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कैसे होगी ? गुरु बोले, यह तो तुम्हे अम्बा का हरण करने से पहले सोचना चाहिये था। एक प्रतिज्ञा तुमने की है तो एक प्रतिज्ञा मैंने भी की है कि असहायों की सहायता करना। तुम राजकुमार हो इसलिये तुम्हे किसी अबला के साथ दुर्व्यवहार करने का अधिकार तो नहीं दिया जा सकता। समाज के उच्च वर्ग के लोगों से पहले से ही मैं बहुत पीडित हूं। तुम पर तो विशेष दायित्व है कि तुम निर्बल और असहाय लोगों की सहायता करो। तुम नारी की मर्यादा की रक्षा न करो यह मैं कदाचित सम्भव नहीं होने दूंगा। जिसका कोई रक्षक नहीं उनका रक्षक मैं हूं। भीष्म बोले- नारी की मर्यादा की रक्षा के आपके आदेश का पालन होगा गुरुवर। काशी की यह राजकन्या कुरुकन्या के रूप में हस्तिनापुर में आश्रय पा सकती है। इतने में ही अम्बा बोल उठी मुझे नहीं चाहिये। मुझे आश्रय का कोई अभाव नहीं है। नाना होत्रवाहन बोले, कतई यह न समझा जाये कि अम्बा सर्वथा अनाथ है और उसे कोई आश्रय की आवश्यकता है। वह

चाहे तो अपने पिता के घर लौट सकती है। मेरे पास रह सकती है। शैखावत्य ऋषि के आश्रम में ठहर सकती है। अब तो प्रश्न उसके जीवन की सार्थकता और सम्मान का है। पिता अथवा अपने नाना के घर जीवन यापन करने में किसी युवती के जीवन की सार्थकता नहीं है। उसे अपना मन भावन पति मिले ताकि उसका यौवन सार्थक हो और सन्तति के रूप में उसके जीवन का विकास हो। क्या कुरु राजकुमार उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं ? यदि नहीं है तो अम्बा का जीवन नष्ट करने के अपराधी हैं। इसके लिये उन्हें दंडित करना चाहिये।

भीष्म बोले- मैं अपनी प्रतिज्ञा के कारण असमर्थ हूं गुरुदेव, किन्तु मैं दोषी नहीं हूं और मैं साथ ही गुरु हत्या का अपराध नहीं करना चाहता। इतने में जाबालि ऋषि बोले, क्या युद्ध करना अनिवार्य है। अगर भीष्म दोषी ही है तो क्या भीष्म का वध करने से अन्याय का प्रतिकार हो जायेगा ? परशुराम बोले- और कोई विकल्प भी तो नहीं है। जाबालि बोले क्या इससे राजकन्या की मनोकामना पूर्ण हो जायेगी ? परशुराम सोचने लगे वे क्या न्याय के लिये भीष्म का वध कर रहे हैं या अपने सिद्धान्तों में बंध कर अम्बा की कामना पूर्ति के साधन बन रहे हैं ?

सहसा राजमाता सत्यवती बोली, ऋषिवर मैं तो एक अनाथ सामाजिक स्त्री हूँ कि मैं इतना आश्वासन दे सकती हूँ कि अम्बा का जीवन व्यर्थ नहीं जायेगा। मैं उसके लिये सास बनने को भी तैयार हूं और मां भी। वह चाहे तो विचित्रवीर्य से विवाह कर मेरी पुत्रवधू बन जाये, हस्तिनापुर की साम्राज्ञी या चाहे तो मेरी पुत्री बन जाये, वह इन दोनों में से कुछ भी स्वीकार ले। वह अनाथ नहीं होगी लेकिन वह तो विवाह का हठ ठाने हस्तिनापुर को ध्वस्त करनेवाली कृत्या है और आप न्याय की आस्था के लिये अपनी सांसारिक अव्यावहारिकता में नारी मन को समझे बिना उसके उपकरण बन रहे हैं। वह तो भीष्म की कामानुरागिनी है और इससे कम में तो वह कोई समझौता करेगी नहीं। वह न्याय के लिये नहीं वासना के लिये हठ कर रही है गुरुदेव। मैं तो आपसे विचित्रवीर्य का जीवन मांगने आयी थी और आप तो मुझसे मेरे भीष्म को भी छीन रहे हैं।

अब परशुराम को पूरी बात समझ में आ गई। वे अवाक से रह गये कुछ शिथिल पडे तभी भीष्म बोले, गुरुवर मैं राजकुमारी का अपराधी नहीं हूं। उसने तो स्वयं अपने मुख से शाल्व के प्रति अनुराग और वरण की बात कही। वह स्वयं अपना प्राप्य छोडकर हस्तिनापुर से चली गयी थी। तब अम्बा बोली, ऋषिवर मुझे भी दुर्बलता के एक क्षण का क्षमादान मिले। दुर्बलता के उस क्षण में मैं भीष्म प्रतिज्ञा को लौह प्राचीर मानकर विचित्रवीर्य से बचने के लिये शाल्व कुमार के पास चली गयी थी किन्तु शाल्व की अस्वीकृति से मेरे सम्मुख अपनी स्थिति ने कृपा कामना दोनों को स्पष्ट कर दिया। तब महामन्त्री विष्णुदत्त गुरु से आज्ञा लेकर बोले हस्तिनापुर का साम्राज्य और कुरुवंश तो महाराज कुमार भीष्म के बाहुबल पर ही टिका है। इस समस्त प्रदेश के लोगों की धर्म के प्रति आस्था भी शान्तनु पुत्र भीष्म के आधार पर ही टिकी है। हे महाभार्गव यद्यपि भीष्म के विवाह से सबसे अधिक प्रसन्नता व्यक्तिगत रूप से मुझे ही होगी किन्तु यदि भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा तोड दी तो आर्यावर्त का सामान्य जन किसके वचन पर विश्वास करेगा ? यदि अपनी प्रतिज्ञा पर टिके रहने के लिये भीष्म आप जैसे धर्म धुरन्धर से दंडित होंगे तो प्रजाजन की धर्म में आस्था की रक्षा कौन करेगा ?

परशुराम अब तक तो द्विविधा ग्रस्त थे अब चिन्ताग्रस्त हो गये, वे अम्बा से बोले , राजकुमारी क्या चाहिये तुम्हे लोक धर्म, लोकहित और मर्यादा की रक्षा करते हुये अपने जीवन का सम्मानजनक समाधान या भीष्म।

अम्बा निर्द्वन्द शब्द में बोली भीष्म। भीष्म मेरा है। हस्तिनापुर का राज्य भी मेरा है। इससे कम मुझे कुछ भी स्वीकार नहीं है। भीष्म बोले, गुरुवर इस जन्म में तो यह सम्भव नहीं है।

अम्बा की आंखों में से आंसू ढलने लगे और बोली तो फिर मेरे लिये तुम्हे दूसरा जन्म लेना पडेगा। तुम्हारा यह जीवन या तो मेरा होकर रहेगा या समाप्त होगा।

अब परशुराम ने अन्तस्थ में जान लिया यह तो धर्म याचना नहीं काम याचना है। परशुराम ने तो असहाय जन को न्याय दिलाने की प्रतिज्ञा की थी न कि कामनाओं के ज्वार में भटकते लोगों की इच्छाओं की पूर्ति के लिये शस्त्र उठाना। परशुराम बोले, मैं यह नहीं कर सकता। अम्बा तुम अब अपना प्रयत्न किसी और माध्यम से करो। मैं अब तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। परशुराम आज एक महा अपराध से बच गया।

अब अम्बा क्रोधित हो भीष्म से बोली। **भीष्म मैं अपना जीवन तपस्या में दग्ध कर दूंगी ताकि तुम्हारा यह जीवन जो मेरा नहीं हो सका, नष्ट हो जाये। मरूंगी भी तो यह कामना लेकर कि अगले जन्म में मैं तुम्हारे इस शरीर को नष्ट कर दूं। हमारे मिलन में विघ्न यह तुम्हारा शरीर जितना जल्दी विलीन हो जाये उतना ही अच्छा।** न्याय मांगने से नहीं मिलता उसे तो प्राप्त करना पडता है और यह कह कर अम्बा अपने नाना के साथ वहां से चली गयी। भीष्म अम्बा के लिये स्वयं को दोषी नहीं मानते।

अब भीष्म को याद आया पिता ने कहा था ग्रहण ही नहीं त्याग भी एक कर्म होता है उस कर्म का भी फल होता है। वह कर्म भी व्यक्ति को बांधता है। भीष्म ने अपने लिये तो कुछ नहीं चाहा था। उन्होंने तो मात्र पिता के प्रति अपना धर्म निभाया। पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिये जिसे माता बनाकर लाये उस सत्यवती की इच्छा का मान करना और माता सत्यवती की इच्छा पूरी करते-करते वे अम्बा की इच्छा के जाल में कैसे फंस गये? यद्यपि उन्होने अम्बा की इच्छा की पूर्ति नहीं की तो भी वे उसके जाल के बन्धन में न चाहते हुये भी उलझ गये। मनुष्य करना क्या चाहता है और हो जाता है कुछ और ही। यह है सब नियति चक्र।

कुरुक्षेत्र से हस्तिनापुर लौटते समय सत्यवती के मन में विचार उठे। वह गुरु परशुराम से अपने पुत्र विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य के लिये कोई औषधि या मन्त्र मांगने गई थी पर वह तो इसके बारे में उन महाचार्यों से जिक्र भी नहीं कर पायी और वह तो भीष्म के जीवन की रक्षा परशुराम से मांगकर आयी। भीष्म के वध से तो अम्बा के जीवन की समस्या का समाधान नहीं हो सकता था। वह तो भीष्म को प्राप्त करना चाह रही थीं। और यदि अम्बा भीष्म को अपना पति प्राप्त कर लेती तो उसके जरिये वह हस्तिनापुर का राज्य भी प्राप्त करना चाहती। जब निषाद कन्या सत्यवती अब तक राज्य के लोभ का संवरण नहीं कर सकी तो अम्बा तो राज कन्या है वो क्या राज्याधिकार प्राप्त किये बिना मान जाती ? पर भीष्म ने तो प्रतिज्ञा की है। पुरुष की प्रतिज्ञा का क्या अर्थ। नारी ही तो उससे प्रतिज्ञायें करवाती है और वो ही उससे तुडवाती है। सत्यवती माता बनकर ही तो भीष्म से ऐसी प्रतिज्ञायें करवा सकी तो क्या अम्बा पत्नी बनकर उसकी प्रतिज्ञायें नहीं तुडवा सकती ? पुरुष नारी के आगे अपने घुटने टेक देता है। भीष्म चाहे नारी की शक्ति को नहीं पहचानता हो पर सत्यवती तो नारी को जानती है। पुरुष के जीवन में नारी मादक द्रव्य के समान होती है तब उसका पुरुष और संकल्प क्या करेगा और उस समय यदि नारी का उस पर कोई असर नहीं पडे तो उसे निर्जीव निर्वीर्य ही समझना चाहिये। आरम्भ में नारी से उसका प्रतिरोध कुछ दिन बना भी रहे तो क्या नारी तो दीमक के समान उसकी जडों में जाकर उसको पूरी तरह से खोखला कर देती है और पुरुष को पता भी नहीं चलता कि उसका क्षय हो चुका है। उसको तो बोध तभी होता है जब उसकी जडे पूर्णतया नष्ट हो चुकी होती है और वह धराशायी हो जाता है। शान्तनु में क्या आत्मबल नहीं था ? क्या विवेक नहीं था ? या संकल्पवान नहीं था ? किन्तु सत्यवती के सामने शान्तनु की एक न चली सत्यवती क्या नहीं जानती थी कि शान्तनु क्या चाहता है? सत्यवती के सामने शान्तनु का कोई वश नहीं चलता था। पुरुष स्वयं को कितना ही शक्तिशाली संकल्पवान, दृढ़ प्रतिज्ञ माने। यह सब तभी तक है जब तक नारी उस पर विजय करने के अभियान पर नहीं निकलती। भीष्म को अम्बा से अलग कर क्या सत्यवती ने भीष्म की नहीं अपनी और विचित्रवीर्य की रक्षा की।

अम्बा कहां गई ? वो कब और किस प्रकार भीष्म से अपने अपमान का बदला लेगी ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर आनेवाला

समय ही देगा। भीष्म ने तो भविष्य में होनेवाली घटनाओं का विचार छोडकर वर्तमान का विचार करना आवश्यक समझा। वर्तमान का अर्थ है भीष्म की दृष्टि से हस्तिनापुर साम्राज्य के बारे में विचार।

अत्यधिक भोग विलास के कारण विचित्रवीर्य राज्यक्षमा रोग से ग्रसित हो गया और विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य की प्रकृति चिन्ताजनक हो गई। विचित्रवीर्य मुंह से रक्त वमन करने लगा। विचित्रवीर्य के स्वास्थ्य की स्थिति डांवाडोल होने लगी जानकर माता सत्यवती दौडती हुई विचित्रवीर्य के कक्ष में पहुंची और देखा विचित्रवीर्य लेटे हुये हैं। उसे घेर कर राजवैद्य और उनका सहयोगी दल खडा है। अम्बिका और अम्बालिका भी काष्ठ प्रतिमाओं के समान विषाद में डुबी खडी अपने रुग्ण पति की ओर निहार रही हैं। गुमसुम, भावहीन, निष्प्राण वातावरण। दीपक की लौ बुझने के लिये टिम टिमा रही थी। विचित्रवीर्य का शरीर पीला पडा हुआ है और बहुत ही दुर्बल लग रहा था। राजवैद्य ने कहा हम हमारी तरफ से पूरा प्रयत्न कर रहे है पर हमें अधिक आशा नहीं है। अब आगे विधाता की इच्छा राजमाता।

अब राजवैद्य पीछे हट गये। सेवक ने चादर से सम्राट का मुंह ढाप दिया। विचित्रवीर्य ने आखिरी सांस ली और जग से चल बसा। सभी उपस्थित जन भूमि पर आकर बैठ गये। अनेक लोग कक्ष में प्रवेश कर गये मन्त्री सभासद, कुरु प्रमुख, पुरोहित, ब्राह्मण और भीष्म। राजवैद्य बोले राजमाता अब सम्राट नहीं रहे। विचित्रवीर्य का शव अन्तिम स्नान के लिये ले जाया गया। जिस-जिस को भी विचित्रवीर्य के निधन की सूचना मिल रही थी वो राजमहल में आ रहा था। महाराज कुमार भीष्म ने निवेदन किया राजमाता दिवंगत सम्राट को अन्तिम आशीर्वाद देने के लिये चले। कर्तव्य कठोर भीष्म ने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य की अन्त्येष्टि की।

धर्मात्मा भीष्म को इससे बडी ठेस पहुंची। सभी अम्बालिका, अम्बिका, माता सत्यवती, भीष्म शोक मग्न हो गये एक बार फिर हस्तिनापुर संकट की घडी में आ गया।

भीष्म की ब्रह्मचर्य पद की प्रतिज्ञा, सत्यवती के पति शान्तनु की मृत्यु उसके दोनों पुत्रों का काल क्षय, हस्तिनापुर का रिक्त सिंहासन बार-बार सत्यवती को याद आ रहा था और उसे असहाय बना रहा था। इसको आधार देनेवाला उसे एक ही आशा की किरण दिखाई दे रही थी, अब उसके सामने भीष्म था।

भीष्म बोले- माता धैर्य रखें। उसकी इच्छा के सामने हम कर ही क्या सकते हैं। भीष्म बोले माता मैं हूं, आप हैं और विचित्रवीर्य की ये दो रानियां अम्बिका और अम्बालिका इस दु:ख में हम एक दूसरे को सहारा देंगे।

यह सब राजमाता सत्यवती की राज्य लिप्सा का परिणाम सामने है। उन्हे शान्तनु से विवाह करना था तो कर लेती नहीं करना था तो नहीं करती पर भीष्म से ही क्यों प्रतिज्ञा करवाई ? और एक भीष्म है कि संसार में सबको वे ही पत्नियां उपलब्ध करा रहे हैं। अपने पिता सम्राट शान्तनु के लिये भी वे ही पत्नी सत्यवती को लेकर आये फिर अपने छोटे भाई सम्राट विचित्रवीर्य के लिये अम्बिका और अम्बालिका को। समय रहते अपना विवाह कर लिया होता तो उनकी अपनी सन्ताने होती और न ही उन्हे किसी के लिये पत्नी जुटाने के उद्योग करने पडते। भीष्म ने कभी अपने लिये पत्नी पाने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया। जीवन हमारे तुम्हारे किसी के भी वश में नहीं है। जो कुछ घटित होना है वह होगा ही। समय ही सब कुछ करवाता है।

सत्यवती बहुत देर तक सोच रही थी किन्तु निश्चय नहीं कर पा रही थी की भीष्म को किन शब्दों से कहे पर कहना भी जरूरी था। कहीं ऐसा न हो कि वह कहे नहीं और भीष्म और कोई निर्णय कर बैठे। वह भीष्म से बोली भीष्म क्या अब कुरुओं का सिंहासन खाली रहेगा? भरत वंश का तो अन्त हो गया। भीष्म सोच रहे है क्या है माता के मन में ? वे क्या चाहती हैं ? भीष्म बोले मैंने राजसभा बुलायी है। कुरु प्रमुखों तथा भरतवंशी राजाओं के सम्मुख इस समस्या को रखूंगा। सम्राट शान्तनु के वंश में तो अब कोई उत्तराधिकारी शेष रहा नहीं अब वे क्या निर्णय करेंगे। सत्यवती बोली पुत्र और तुम। तुम क्या सम्राट शान्तनु के पुत्र नहीं हो। भीष्म को इसी बात का तो भय था कि इस समय शान्तनु के एक मात्र पुत्र होने से उनके सामने यह समस्या आयेगी। भीष्म बोले, माता

सम्राट शान्तनु का वंशज तो मैं हूं पर फिर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा के कारण धर्मत: राज्य का अधिकारी नहीं हूं। सत्यवती बोली, पुत्र क्या भरतवंश नष्ट हो जाये ? कुरुओं का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाये। मेरा मन टूट कर टूक टूक हो जाये? भीष्म बोले माता व्यक्ति, वंश राज्य बडा है पर सत्य पर चलना ही धर्म है। मैं सत्य छोड नहीं सकता और अपनी प्रतिज्ञा तोड नहीं सकता। व्यक्ति वंश या राज्य का स्वार्थ देखा जाये तो संसार में न सत्य रहेगा और न ही धर्म। सत्यवती बोली, यह तो कोई धर्म नहीं कि तुम्हारे सामने तुम्हारे देखते-देखते तुम्हारे पिता का साम्राज्य नष्ट हो जाये और तुम खडे देखते रह जाओ। तुम्हारे ऐसे जीवन से क्या लाभ? भीष्म अपना जीवन परिवार के स्वार्थ के धरातल पर नहीं सत्य के धरातल पर जीता है माता। सत्यवती बोली पुत्र सत्य। सत्य मात्र एक प्रतिज्ञा के पालन में नहीं होता है पर तुम्हे याद है न कि एक वचन तुमने मुझे भी दिया है कि हस्तिनापुर पर विचित्रवीर्य के वंशज ही राज्य करेंगे। भीष्म बोले माता किन्तु विचित्रवीर्य ने तो पीछे अपना कोई वंशज छोडा ही नहीं।

सत्यवती बोली, दो-दो रानियां छोड गया है जो युवा, सुन्दर, सृजन की क्षमता करनेवाली। यदि तुम चाहो तो वे अब भी हस्तिनापुर के राज सिंहासन को उत्तराधिकारी दे सकती है। मैं चाहती हूं कि भीष्म तुम उन्हे ग्रहण करो और उनके साथ विवाह करो। मैं आज तुम्हें अपनी सब प्रतिज्ञाओं से मुक्त करती हूं। अपने पिता को पिंडदान करनेवाली, वंश की कीर्ति बढ़ानेवाली कुरुवंश की बेल को सिंचित करने का उत्तर दायित्व स्वीकार कर। मेरा पुत्र तेरा ही तो भाई था और छोटी उम्र में निपुत मर गया। अपना यह वंश खंडित न हो इसके लिये तू उनसे सन्तान पैदा कर। ऐसा करने में कोई अधर्म भी नहीं है। धर्म शास्त्र सम्मत तू उनके साथ विवाह कर। उत्तम सन्तान उत्पन्न कर गृहस्थ धर्म का पालन कर क्षत्रिय धर्म की रक्षा कर। वंश विच्छेद हो गया तो पितरों का तर्पण करनेवाला भी कोई नहीं होगा और इससे वे हीन गति को प्राप्त होंगे। इसके बारे में सोच। तेरी प्रतिज्ञा तो हस्तिनापुर के सिंहासन के लिये थी। तेरी प्रतिज्ञा के कारण हस्तिनापुर के कल्याण के लिये थी पर आज हस्तिनापुर तेरी प्रतिज्ञा के कारण विनष्ट होने के कगार पर खडा है फिर ऐसी प्रतिज्ञा से क्या लाभ ? तूने अपने पिता को वचन दिया था जब तक जीवित रहेगा कुरुवंश की व हस्तिनापुर की निष्ठा से सेवा करते रहेगा लेकिन अब तेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा ? अब मेरी इच्छा ही नहीं यह माता कि आज्ञा है इसे मेरा आदेश मानकर जैसे मैंने कहा है वैसे कर। आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा तुमने मेरे लिये की थी उस प्रतिज्ञा से स्वयं मैं ही तुम्हे मुक्त कर रही हूं। तुम काशी नरेश की पुत्र कामिनी कन्याओं द्वारा सन्तान उत्पन्न कर वंश की रक्षा करो। अम्बिका, अम्बालिका यह विचित्रवीर्य का ही क्षेत्र है उनके क्षेत्र से उत्पन्न सन्ताने विचित्रवीर्य की ही मानी जायेगी। तुम स्वयं राज सिंहासन ग्रहण करो और प्रजा का पालन करो। सभी सगे सम्बन्धियों ने भी यहीं प्रेरणा दी।

भीष्म अवाक से खडे माता को देखते रह गये। नारी समय पडने पर किस तरह अपना रूप बदल लेती है। इस समय सत्यवती उन्हें शान्तनु की पत्नी नहीं लग रही थी न ही कुरु साम्राज्य की राजमाता, वह तो एक साधारण सी नारी जिसकी इच्छायें और कामनायें केवल अपना लक्ष्य देख रही। उसे न तो धर्म की चिन्ता है और न सत्य की ही। न किसी आदर्शों की और न सिद्धान्तों की और न ही कोई सदाचरण की। वह तो केवल अपने स्वार्थ के वशीभूत हो अपनी कामना व इच्छा को ही जानती है। सृष्टि के अन्य किसी विधि विधान या अन्य कोई तत्व का उसे बोध नहीं है। उसे दूसरों से क्या करना है। भीष्म सोचने लगे जो अपनी सुविधाओं के नियमों का निर्माण करता है और इच्छापूर्ति के लिये, आवश्यकता पडने पर उनको तोड देता है या बदल देता है वह न तो उसके लिये सृष्टि के शाश्वत नियमों का कोई अस्तित्व है और न ही उनके उल्लंघन से होने वाले अनर्थ का ज्ञान। भीष्म सोचते है क्या उनको यह माता की आज्ञा माननी चाहिये ? भीष्म अपनी ही दो प्रतिज्ञाओं में बन्धे खडे हैं।

भीष्म बोले, माता आपने प्रतिज्ञा से मुक्त कर दिया है फिर भी क्षत्रिय की प्रतिज्ञा उसका प्राण होती है। जब प्रतिज्ञा ही भंग हो गयी तो प्राण भी नहीं बचते। मैंने जो प्रतिज्ञायें की है वो कैसे किस प्रकार कौनसी परिस्थिति में की है इसकी पूरी जानकारी आपको है। आपके कारण वे सब प्रतिज्ञायें मुझे करनी पडी। उन प्रतिज्ञा सम्बन्धी मैं फिर से एक बार प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि

चाहे त्रिलोकी का राज्य, ब्रह्मा का पद और इनसे भी बढ़कर मोक्ष का परित्याग कर दूं परन्तु सत्य कभी नहीं छोडूंगा। पृथ्वी अपनी गन्ध छोड दे, जल सरसता छोड दे, अग्नि अपना तेज छोड दे, वायु स्पर्श छोड दे, सूर्यप्रकाश छोड दे, आकाश शब्द छोड सकता है, चन्द्रमा अपनी शीतलता त्याग दे, इन्द्र अपना बलविक्रम और राज्य का त्याग कर दे, स्वयं धर्मराज अपना धर्म छोड दे, देव अपना स्वामित्व छोड दे पर भीष्म अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर अटल रहेगा। वह इसे छोडने का संकल्प भी नहीं कर सकता।

माता यह सम्भव नहीं भीष्म करे व्रत त्याग, चाहें शीतल सूर्य हो, बरसें शशि से आग।

पर कुरु कुल का विनाश भी न हो और अक्षुण्ण बना रहे उसका मार्ग आपको सुझाता हूं। जब परशुराम ने पृथ्वी क्षत्रिय विहीन कर दी तब सर्व क्षत्राणियों ने मिलकर अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की। उनका वह बोलना धर्म संगत था। उन्होंने सन्तान प्राप्ति की इच्छा की तब वेदों ने आपदकालीन धर्म की व्याख्या कर मार्ग बताया। भीष्म बोले- माता धर्मत: ऐसी परिस्थिति में नियोग से सन्तान उत्पत्ति का विधान है। आप किसी गुणी विद्वान और सदाचारी ब्राह्मण को सन्तानोत्पत्ति के लिये नियुक्त कर दे। वह विचित्रवीर्य के क्षेत्र से उसके उत्तराधिकारी संतान को उत्पन्न करे। सत्यवती ने भीष्म की और देखा और कहा मैं यदि तुम्हे ही इसके लिये नियुक्त कर दूं तो ? भीष्म बोले माता मानवीय दुर्बलतायें तो मुझ में भी है और अभी वे पूर्णत: मरी नहीं है। यदि आप ऐसा कुछ करेगी तो वे विचित्रवीर्य की नहीं भीष्म की सन्ताने कहलायेगी। हमें ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिये कि शासनाधिकार विचित्रवीर्य की ही सन्तान करे और मैं भी मेरे सत्य से स्खलित न होऊं। नियोग के लिये पुरुष का अज्ञात होना जरूरी है, और आगे चलकर वह उस नारी के सम्पर्क में फिर से नहीं आये। उसके मन में किसी प्रकार का राग या उस नारी के प्रति आसक्ति नहीं हो केवल धर्म ही हो। इसके विरूद्ध जो कुछ भी होगा वह धर्म नहीं होगा माते।

अब भीष्म की भीषण प्रतिज्ञा की पुनरावृत्ति सुन कर सत्यवती समझ गई कि भीष्म अपने निश्चय पर अटल है। सत्यवती के मन में द्वन्द्व जागा। सत्यवती ने भी कोई कम त्याग नहीं किया है। जीवन में कम संघर्ष नहीं किया है और न ही कुछ कम सहा है। शान्तनु का वंश न चले तो न चले। सत्यवती का ही वंश चले। अगर किसी ब्राह्मण को ही नियोग के लिये नियुक्त करना है तो फिर अपने पुत्र कृष्ण द्वैपायन को ही क्यों न नियुक्त करे ?

वह कृष्ण द्वैपायन को जीवन का सुख नहीं दे सकी तो उसके वंशजों को साम्राज्य सौंप कर उसकी क्षतिपूर्ति तो करे। भीष्म के मन की अन्तरात्मा में माता गंगा का स्वर गूंज रहा था। यह सब मृग मरीचिका है भीष्म। किसी भी कुतर्क में बन्ध कर इस दौड में सम्मिलित मत हो जाना। भीष्म बोले, माता <u>धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म होती है</u>। सत्यवती का ध्यान धर्म की गति पर नही, कामना के तीव्र वेग में बह रहा था। सत्यवती बोली, भीष्म यदि तुम नियोग नहीं करोगे तो जो पुरुष मैं नियुक्त करूंगी उसे स्वीकार करना पडेगा, उसके लिये तुम कोई आपत्ति नहीं करोगे। भीष्म बोले अवश्य माता। सत्यवती फिर बोली यदि कुरु प्रमुखों ने विरोध किया, भरत वंशी राजाओं ने कोई विरोध किया, अस्वीकार किया, पुरोहितों ने कोई आपत्ति की, मन्त्रियों ने कोई विघ्न खडे किये तो भी तुम मेरा समर्थन करोगे। भीष्म बोला, मैं आपके साथ हूं माता पर वह पुरुष है कौन ? सत्यवती फिर सोचने लगी मैं अपने पुत्र कृष्ण द्वैपायन के बारे में भीष्म को बताऊं या नहीं। उसे कुछ बुरा तो नहीं लगेगा। क्या वह मेरा अतीत जान कर कही मुझसे घृणा तो नहीं करने लगेगा। क्या वह कृष्ण द्वैपायन को अपना भाई स्वीकार कर लेगा। सत्यवती ने विचार कर कहा भीष्म इसके लिये मैं नियुक्त करती हूं मेरे पुत्र और तुम्हारे भाई ऋषि कृष्ण द्वैपायन को जो आज वेदव्यास के नाम से जाना जाता है। वेदव्यास पराशर पुत्र वेदव्यास। भीष्म कुछ अचकचाये और बोले वे आपके पुत्र और मेरे भाई मैं कुछ समझा नहीं माते यह सब और फिर क्या वे इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लेंगे ? उन्हे कोई आपत्ति तो नहीं होगी। सत्यवती बोली, हां पुत्र वे इसे स्वीकार कर लेंगे। उन्हे मेरा आदेश मानना ही पडेगा। जाओ उन्हे कहो कि मैंने उन्हें याद किया है और बुलाया है।

वे इस समय यमुना के उस पार एक द्वीप में महर्षि पराशर के आश्रम में रहते है। मैं तुम्हे मेरा एक गोपनीय रहस्य, अपना अतीत बताती हूं। तुम्हारी दृष्टि में कही मेरा सम्मान तो कम नहीं होगा पुत्र। भीष्म उस पराशर पुत्र की मां मैं ही हूं और कृष्ण द्वैपायन व्यास मेरा ही कानीन पुत्र है। मेरे अतीत के बारे में सुनो।

२०) सत्यवती का अतीत और वेदव्यास की उत्पत्ति

यमुना को पार करने के लिए दिन-भर यात्री लोग आया-जाया करते। निषादों की असंख्य नौकाएँ दिन-भर नदी में चलती ही रहती थीं। पर बाबा ने सत्यवती को यात्रियों की वैसी किसी नाव पर नियुक्त नहीं किया था, जो शुल्क लेकर यात्रियों को नदी पार कराती थीं। ऐसी किसी नाव पर अपनी असाधारण सुन्दरी, युवती पुत्री को नियुक्त करना दासराज को अच्छा नहीं लगा था। उन नौकाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग आते थे। साधारण यात्रियों के साथ धनी व्यापारी भी आते थे। देश-विदेश घूमे हुए लोग भी होते थे। उनके पास धन का आकर्षण था, चतुराई-भरी बातों का माया-जाल था। सत्यवती अभी नादान थी। जीवन तथा लोगों को अच्छी तरह समझती नहीं थी। ऐसे ही किसी प्रलोभन के भ्रमजाल में फँस जायेगी तो जाल में फँसी मछली का-सा कष्ट पायेगी।

दासराज ने अपनी प्रिय पुत्री को धर्मार्थ नौका पर नियुक्त किया था। यमुना के तट पर अनेक ऋषियों के आश्रम थे। तपस्वियों की तपोभूमियाँ थीं। साधु-संन्यासी, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधक आते-जाते ही रहते थे। उनसे नदी पार कराने का क्या शुल्क लेना। उनके पास शुल्क देने के लिए होता भी क्या था। वन के कंदमूल-फल। उनसे अधिक तो स्वयं निषादों के पास ही बहुत कुछ था। उन तपस्वियों को धर्मार्थ नौका पर ही नदी पार करायी जाती थी। उसी धर्मार्थ नौका पर नियुक्ति की थी दासराज ने सत्यवती की। तपस्वी नारी-सौन्दर्य से उदासीन थे। धर्म का धर्म रहेगा और युवती सत्यवती पुरुष की दृष्टि से सुरक्षित भी रहेगी।

उसी नौका पर एक दिन वशिष्ठ पौत्र शक्ति पुत्र ऋषि पराशर आये थे। जब आये थे तो बहुत आत्मलीन थे, जैसे किसी गहरी समस्या में डूबे हुए हों। अपने परिवेश से असम्पृक्त। जैसे ब्रह्माण्ड उनके पिण्ड से बाहर नहीं, उनके भीतर ही हो। नौका में बैठते हुए उन्होंने यह भी नहीं देखा कि नाव में कोई और है या नहीं, या नौका को चला कौन रहा है। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि नौका चलेगी भी या नहीं, और चलेगी तो कब चलेगी।

जब काफी समय बीत गया, दूसरा कोई यात्री भी नहीं आया; और पराशर कुछ बोले भी नहीं तो सत्यवती को सबकुछ बड़ा अटपटा-सा लगने लगा। यमुना के एकान्त घाट पर लगी हुई नौका और उसमें बैठे हुए पराशर और सत्यवती। सत्यवती अपने नारीत्व अथवा यौवन के प्रति कभी इतनी सजग नहीं हुई थी।

इस अटपटी अवस्था से मुक्त कैसे हो ? दूसरा यात्री जाने कब आये ? आये न आये। आखिर वह कब तक इस युवक तपस्वी के साथ, इस एकान्त स्थान में नौका पर बैठी रहेगी ठीक है, तपस्वी उसे कुछ कह नहीं रहा। वह तो उसकी ओर देख भी नहीं रहा। पर सत्यवती का मन उसका बोध क्यों न सत्यवती उसे दूसरे किनारे पर छोड़ आये ? दूसरे यात्रियों का होना क्यों आवश्यक है ? यात्रियों की संख्या का तो कोई नियम नहीं है।

सत्यवती ने चप्पू सँभाल लिये।

नाव चली तो पराशर का ध्यान जैसे कुछ बँटा। उनकी उचटती हुई दृष्टि सत्यवती पर भी पड़ी और फिर जैसे फिसलती हुई आगे बढ़कर यमुना के जल पर टिक गयी। दृष्टि टिकी तो जैसे उसे कुछ याद आया। उसके मार्ग में एक नारी-बदन आया था। तपस्वी की दृष्टि प्राकृतिक सौन्दर्य में लुब्ध न रहकर वापस नारी-सौन्दर्य पर लौट आयी। इस बार पराशर की जो दृष्टि सत्यवती की ओर लौटी थी, वह निर्वैयक्तिक नहीं थी, वह असावधान भी नहीं थी, वह मूक भी नहीं थी वह एक पुरुष की दृष्टि थी, जो नारी के सौन्दर्य के भाव से दीप्त थी। दृष्टि आकर सत्यवती की आँखों पर टिकी। सत्यवती की आँखें झुक गयीं। वह एकाग्र

होकर यमुना के जल को ताक रही थी, पर इस तथ्य के प्रति पूरी तरह सचेत थी कि युवक तपस्वी की दृष्टि ने अब संकोच छोड़ दिया है। वह ढीठ हो गयी है। पराशर की दृष्टि सत्यवती की पलकों पर से जैसे फिसल कर गिरी और उसका आवरण क्षत हो गया। इस आवरण के भीतर सिमटे तरल पदार्थ को अब मर्यादित रखना कठिन था। वह सत्यवती के पूरे चेहरे पर फैल गया। वह सत्यवती की ग्रीवा से होता हुआ उसके कन्धों पर थोड़ी देर टिका और फिर उसके सारे शरीर पर फैल गया। पराशर की दृष्टि जेसे देखती नहीं थी, छूती थी। वह जहाँ से होकर बढ़ती थी, जैसे रोम-रोम को सहला जाती थी। सत्यवती का शरीर थर-थर काँप रहा था। उसकी समझ में एकदम नहीं आ रहा था, कि उसका मन इतना घबरा क्यों रहा है। वह पहली बार नाव नहीं चला रही थी, न पहली बार कोई युवा पुरुष उसकी नाव में बैठा था। उसे किस बात की व्याकुलता थी ? युवा तपस्वी की दृष्टि में प्रशंसा थी और वह प्रशंसा सत्यवती के शरीर को जितना पिघला रही थी, उसका मन उतना ही घबरा रहा था। वह लगातार अपने मन से पूछ रही थी कि यह सब क्या था ? पर मन था कि कोई उत्तर ही नहीं दे रहा था।

तुम बहुत सुन्दर हो सुनयने। तपस्वी पहली बार बोला।

मेरा नाम सत्यवती है तपस्वी। सत्यवती समझ नहीं पा रही थी कि तपस्वी उसका नाम बिना पूछे क्यों उसे अपनी इच्छा से सुनयने कह रहा है।

तुम बहुत ही सुन्दर हो सत्यवती। इस बार तपस्वी निस्संकोच बोला, तुम्हारे नयन, तुम्हारे अधर, तुम्हारी ग्रीवा, तुम्हारी आकृति, तुम्हारा अंग-संचालन ओह सत्यवती। तुम नहीं जानतीं कि तुमने मेरे मन को किस प्रकार मथकर रख दिया है।

सत्यवती लगातार अपने-आपने पूछ रही थी कि वह इतना डर क्यों रही है ? अपने रूप की प्रशंसा सबको अच्छी लगती है, और फिर वह भी नारी तपस्वी उसके रूप की प्रशंसा कर रहा था और वह इस प्रकार भयभीत हो रही थी, जैसे सामने कोई भयंकर संकट आ खडा हुआ हो। उसके रूप की प्रशंसा करता तपस्वी कितना कमनीय लग रहा था और उसका मन जैसे मुष्टि प्रहार कर-करके उसे कह रहा था, सत्यवती। सावधान। सावधान सत्यवती।

सहसा सत्यवती सचेत हुई। उसके हाथ काँप रहे थे। उसके चप्पू सीधे नहीं पड़ रहे थे। नाव डोल रही हो, तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह अपने मार्ग से भटक गयी थी। यह यमुना का कोई और क्षेत्र था एक छोटा-सा द्वीप निकट था द्वीप में कमल-ही-कमल खिले हुए थे। सत्यवती को लगा, उसके मन में भी कमल-बन खिल आया है; किन्तु साथ ही उसके माथे पर पसीना भी उग आया था, जैसे कमल-दलों पर ओस की बूँदें आ टिकी हों।

तपस्वी अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ, संयम असम्भव हो गया है देवसुन्दरी। तुम अप्सरा होते हुए निषाद-कन्या का वेश बनाये क्यों बैठी हो। तपस्वी ने उसकी ओर पग बढ़ाया।

नाव डगमगा गयी। सत्यवती ने उसे द्वीप के साथ टिका दिया। उसके मुँह से जैसे अनायास ही निकल गया, मैं निषाद-कन्या ही हूँ तपस्वी। मत्स्य-गन्धा हूँ मैं। मेरे शरीर से मत्स्य की गन्ध आती है।

तपस्वी खुलकर हँस पड़ा और उसने जैसे स्वत:चालित ढंग से सत्यवती की बाँह पकड़कर उसे उठाया, मछलियों के बीच रहकर, मत्स्य-गन्धा हो गयी हो; पर हो तुम काम-ध्वज की मीन। मेरे साथ आओ। इस कमल-वन में विहार करो और तुम पद्म-गन्धा हो जाओगी।

सत्यवती जैसे तपस्वी द्वारा सम्मोहित हो गयी थी। उसने अपनी बाँह छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया पर उसका विवेक जैसे हाथ में कशा लिये लगातार उसे पीट रहा था, यह ठीक नहीं सत्यवती। यह ठीक नहीं है। सँभल जा। तू जानती भी है, तेरे माता-पिता क्या कहेंगे। तेरा समाज क्या कहेगा। तेरा यह शरीर तेरा अपना नहीं है। इस पर तेरे समाज का अधिकार है। उससे पूछे बिना न तू इससे सुख उठा सकती है, न किसी को इससे सुख दे सकती है। पर शरीर था कि विवेक की बात पर कान ही नहीं धर रहा

था। उसका रोम-रोम शिकायत कर रहा था कि तपस्वी ने उसकी बाँह ही क्यों थाम रखी है, वह उसके शरीर को क्यों नहीं थामता। क्रमश: शरीर के उद्‌घोष में विवेक का स्वर कहाँ डूब गया, उसे पता भी नहीं लगा।

दोनों द्वीप पर आये और बिना किसी योजना के अनायास ही एक-दूसरे की इच्छाओं को समझते चले गये। तपस्वी इस समय तनिक भी आत्मलीन नहीं था। उसका रोम-रोम सत्यवती की ओर उन्मुख ही नहीं था, लोलुप याचक के समान एकाग्र हुआ उसकी ओर निहार रहा था सत्यवती को लग रहा था, जैसे वह मत्स्य गन्धा नहीं, मत्स्य-कन्या है। यह सरोवर ही उसका आवास है। चारों ओर खिले कमल उसके सहचर हैं। वे दोनों दो तितलियों के समान आगे-पीछे उड़ रहे थे, जो कभी किसी फूल की पंखुड़ी पर जा बैठती हैं, कभी किसी अधखिली कली पर।

सत्यवती को लग रहा था, उसके रोम-रोम में जैसे कमल-गन्ध समा गयी है, उसके श्वास जैसे कमल-गन्ध से महक रहे हैं और उसके हृदय का ज्वार, सागर की किसी भी उत्ताल-लहर से कम ऊंचा नहीं था।

कमल सरोवर वाले यमुना के द्वीप से लौटकर सत्यवती घर आयी तो अम्मा ने हल्के से पूछा था, क्या बात है सत्या। आज बहुत देर कर दी।

सत्यवती क्या कहती उसे तो ध्यान ही नहीं था कि वह कहाँ गयी, किस समय गयी, किस समय लौटी। उसे तो अपने चारों ओर कमल-वन खिले हुए दिखायी पड़ रहे थे और उसकी नासिका में जैसे कमल-गन्ध स्थायी रूप से जम गयी थी। उसे स्वयं अपने आपसे अब भी मत्स्य-गन्ध नहीं, कमल-गन्ध आ रही थी। वह पद्मगन्धा थी। और इसका ध्यान आते ही भय से जैसे अपने भीतर सिमट गयी। अम्मा ने भी यह पद्म-गन्ध सूँघ ली तो ?

हाँ माँ। देर हो गयी।

वह भीतर चली गयी। माँ भी अपने कामों में लग गयी। दो-एक बार किसी न किसी कारण से माँ ने पुकारकर उसे बाहर आने के लिए कहा भी, तो वह टाल गयी, बहुत थक गयी हूँ माँ।

माँ ने फिर नहीं पुकारा और सत्यवती अपने में डूबती चली गयी।

आज जैसे सारा संसार ही बदल गया था उसके लिए। संसार इतना मादक है, यह उसने इससे पहले कभी नहीं जाना था। सुख मन में है, शरीर में है या बाहर संसार में है ? उसने कभी सोचा था यह। आज मन में जाने कैसा उल्लास था, शरीर का रोम-रोम पुलक से भर गया था। संसार के अनेक रहस्य अनायास ही उसके सामने खुल गये थे और जाने क्यों संसार और भी रहस्यपूर्ण हो गया था। भीतर जैसे एक चिंगारी-सी फूटी और अग्नि को पाने की व्याकुलता में प्राण अधीर हो उठे थे।

किन्तु मादकता की इस घनी परत के नीचे कहीं बाबा का ध्यान भी सुगबुगा रहा था यदि बाबा को इस बात की सूचना हो गयी तो ? बाबा उसके इस सम्बन्ध को किस दृष्टि से देखेंगे ? प्रसन्न होंगे ? दु:खी होंगे ? या कुछ भी नहीं कहेंगे ?

प्रसन्न कैसे होंगे ? अपनी पुत्री के किसी पुरुष से विवाह पूर्व सम्बन्धों को जानकर कोई पिता कभी प्रसन्न हुआ है कि बाबा होंगे। निषादों में तो आये दिन कोई-न-कोई ऐसा ही झगड़ा-टण्टा खड़ा होता ही रहता है। जब कभी किसी कन्या के इस प्रकार के सम्बन्ध का पता बाबा को लगा, बाबा ने बहुत निर्मम होकर उसे दंडित किया है। और अब अपनी ही पुत्री।

और फिर एक निषाद-कन्या के एक निषाद-पुत्र से सम्बन्ध की बात कुछ भिन्न भी है। उनका तत्काल विवाह हो सकता है। उनके विवाह में न माता-पिता को विशेष आपत्ति होती है, और न निषाद समाज को। किन्तु सत्यवती की बात और है। बाबा की दृढ़ धारणा है कि वह राज-कन्या है। किसी क्षत्रिय राजा की पुत्री। उसका विवाह, बाबा निषाद समाज में नहीं करना चाहेंगे। वे उसके लिए किसी क्षत्रिय राजकुमार का स्वप्न देख रहे हैं पर वह तपस्वी निषाद नहीं है, तो क्षत्रिय राजकुमार भी नहीं है। बाबा किसी भी रूप में इस विवाह के लिए तैयार नहीं होंगे। जीवन की कोई सुख-सुविधा नहीं है, उस तपस्वी के पास। होने की कोई

सम्भावना भी नहीं है।

उसके मन ने करवट बदली। बाबा को बताना बहुत आवश्यक है क्या ? कल भी वह अपनी नौका लेकर तपस्वी के पास चली जाये और लौटकर न आये तो ? वे, वहीं, उस द्वीप पर अपने लिए एक कुटिया बना सकते हैं। उनके खाने के लिए वन में बहुत फल है; पीने के लिए यमुना का जल है; क्रीड़ा के लिए वह कमल-सरोवर है।

उसका तन जैसे पुलक उठा।

पर कैसा हठी था मन। उसका सुख, मन से देखा ही नहीं जा रहा था। तत्काल मन ने एक दूसरी ही युक्ति सामने ला रखी। नाव खेना केवल सत्यवती को ही तो नहीं आता। सारे निषाद यही काम करते हैं। सत्यवती तो केवल यात्रियों को यमुना के आर-पार, लाने-ले जाने की ही अभ्यस्त है, निषाद युवक तो अपनी नौकाओं में बहुत दूर-दूर की यात्राएँ करते हैं। वह द्वीप उनकी पहुँच से बाहर नहीं है। सत्यवती और तपस्वी कितने दिन छिपे रह सकते हैं, उनकी आँखों से। वे सायास या संयोग से, किसी भी दिन उस द्वीप पर भी पहुँच सकते हैं। नहीं। सत्यवती अपनी दुर्गति नहीं करवाना चाहती। वह अपने बाबा के मुख से अपने लिए वही दण्ड उच्चरित होते नहीं सुनना चाहती, जो ऐसी स्थिति में अन्य निषाद कन्याओं के लिए होता है।

प्रात: सत्यवती कुछ जल्दी ही तैयार हो गयी। वह जब बड़े उत्साह में गुनगुनाती घर से बाहर निकली तो अम्मा ने पीछे से टोका, अरी इतनी मग्न हुई-सी कहाँ चली जा रही है, इतनी सुबह को ?

सत्यवती चौंकी। बिना कुछ बताये ही अम्मा बहुत कुछ समझ रही हैं। वे जानती हैं कि वह मग्न है। सत्यवती ने मन को चेताया, सावधान रहना। भोली नहीं है अम्मा हमारी। आकाश पर उड़ते पक्षी को पहचानने वाला धोखा खा भी जाये, पर अम्मा तो निषाद-पुत्री भी हैं और निषाद-पत्नी भी। निषाद पुरुष तो केवल नाव चलाता है, या जाल फैलाता है। वह शरीर से बलिष्ठ हो सकता है, पर जल के भीतर की थाह तो निषाद स्त्रियाँ ही पा सकती हैं। वे नाव में बैठी हुई जल की ऊपरी थिरकन को देखकर बता सकती हैं कि उसके भीतर कौन-सी मछलियाँ हैं और कितनी संख्या में हैं। निषाद पुरुष जाल फेंकने से पहले अपनी स्त्री की ओर अवश्य देखता है। संकेत मिलता है तो जाल उछाल देता है, नहीं तो जाल उसके हाथ में ही सिमटा रहता है। जिनकी आँखें, जल की अथाह गहराई में सबकुछ देख लेती हैं, उन निषाद स्त्रियों की मुखिया- अम्मा- अपनी बेटी के चेहरे को देख यह नहीं जान पायेंगी कि उसके मन में क्या है ? चेहरे से मन की दूरी ही कितनी है ? और सत्यवती का मन उतना गहरा भी तो नहीं है, जितना कि यमुना का जल। अम्मा से कुछ छिपाकर रखना कठिन ही होगा।

अपनी नौका पर जा रही हूँ अम्मा। सत्यवती ने सहज होने का प्रयत्न किया।

वह बाहर आ गई थी और नहीं चाहती थी कि लौटकर अम्मा के सामने पड़े। ऐसा न हो कि अम्मा उसके चेहरे से कुछ और भी जान लें। दो-चार फेरे अधिक लगा लेगी तो कौन बदले में राज्य पा जायेगी ? अम्मा ने पीछे से कहा, धर्मार्थ नौका पर इतनी सुबह जाने का कोई धर्म नहीं है। वहाँ कौन बैठा तेरी बाट जोह रहा है।

जाने कोई दुखिया रात से ही अटका हो कि सुबह हो तो उस पार जाये। सत्यवती स्वयं हैरान थी कि वह क्या कह गयी।

पर अम्मा इस सरलता से माननेवाली थीं क्या, पथिक है या चकवा।

वे बोलीं, कि रात-भर चकवी से विलग हो रोता रहा हो।

सत्यवती का मन कह रहा था, वह चकवा ही है अम्मा। रात-भर बापुरे की आँख नहीं लगी होगी। पर उसके विवेक ने जैसे जिह्वा को-सी दिया, चुप रह दुष्टा। तू तो सत्यानाश कराकर रहेगी।

सत्यवती कुछ नहीं बोली, तो अम्मा ही बोली, तेरे यात्री तो तापस-तपस्वी होते हैं। वे प्रात: अपनी पूजा-उपासना में लगे होंगे। इस ब्रह्म मुहूर्त में नदी पार करने को उत्सुक तो कोई तपोभ्रष्ट योगी ही होगा।

सत्यवती का मन नाच-नाचकर कह रहा था, अम्मा। जाने वह कैसा योगी है, पर मैं उसी की जोगन हूँ। तू मुझे रोककर अपने तप से भ्रष्ट मत कर।

पर सत्यवती को रुकना पड़ा। न रुकती और अम्मा हट पकड़ जातीं तो संकट और भी बढ़ जाता। पर यह रुकना कितना तड़पा गया था सत्यवती को। जितनी देर घर में रही, जाल में फँसी मछली के समान तड़पती रही। घर से जब चली तो ऐसे चली, जैसे धनुष से बाण छूटा हो। एक बार मन में आया भी कि वह तो ऐसे भागी जा रही है, जैसे सचमुच तपस्वी सारी रात वहीं बैठा रहा हो। जाने वह कहाँ होगा। जाने उसका स्थान कहाँ है। कहीं है भी या रमता जोगी।

पर उसने अपनी आशंकाओं को हठपूर्वक झटक दिया और जैसे उनसे खेल-सा करती हुई बोली, हाँ। हाँ। मेरे तपस्वी का स्थान यमुना के तट पर मेरी नौका के पास है। वह तपस्या कर रहा होगा, मेरे दर्शनों के लिए।

पर उसका परिहास चल नहीं पाया। जाने अचानक क्या हुआ हृदय धक्-सा रह गया। वह तपस्वी है ऋषि पराशर। तपस्वी को कोई मोह-ममता नहीं होती। किसी भी क्षण मन में समा गया कि यह सब मोह-माया है, तो सारे बन्धन तोड़कर चल देगा योगी। संसार के सारे सुख-वैभव को ठुकराकर तपस्या करनेवाले तपस्वी को सत्यवती का रूप बाँध लेगा क्या ? उसका तपस्वी साधारण संन्यासी नहीं है कि गृहस्थी से परेशान होकर, केश बढ़ा, आँखें मूँदकर बैठ गया हो। वह ऋषि पराशर है।

आशा-निराशा के बीच ऊब-चूब करती सत्यवती, यमुना-तट पर अपनी नौका के पास पहुँची थी और देखकर अवाक् खड़ी रह गयी थी- तपस्वी उसकी नौका में समाधि लगाये बैठा था।

सत्यवती का मन हुआ, दौड़कर जाये और अपने तापस के गले में बाँहें डाल दे। पर आसपास अनेक निषाद स्त्री-पुरुष थे। वैसे भी सत्यवती का मन तो बौराया हुआ था। उसकी मानकर चलती तो सब मटियामेट हो जाता।

उसने बहुत धीरे से नाव में पैर रखा ताकि न नाव डोले, न तपस्वी का ध्यान भंग हो। बिना शब्द किये, उसने चप्पू उठा लिये और नाव को खिसकाया। नाव डोली तो तपस्वी ने आँखें खोल दीं और उसके अधरों पर एक अलौकिक मुस्कान आ विराजी।

बड़े कच्चे साधक हो। सत्यवती वक्रता से मुस्करायी, इतनी-सी बात से समाधि भंग हो गयी।

तपस्या के वरदान-सी तुम आयीं तो समाधि का सुख चाहिए किसीको वह मुस्कराया।

यह क्यों नहीं कहते कि बगुले के समान आँखें मूँदने का नाटक कर, मछली के आने की राह देख रहे थे। मछली दिखी तो उचक ली। अब ध्यान कर करना ही क्या है। जाने कौन-सी ऊर्जा उसे इतना वाचाल बना रही थी।

तपस्वी। तुम्हें मेरी बात बुरी तो नहीं लगी ?

बुरी क्यों लगेगी ?

समाज में तुम्हारी प्रतिष्ठा है और मैं।

तुम कवयित्री हो पद्मगन्धा। तुम्हारे मुख से प्रकृति का संगीत झरता है। तपस्वी ने उसे मुग्ध दृष्टि से देखा, तुम अपना महत्व नहीं जानतीं। कैसे जानोगी। तुम्हारे पास अपनी दृष्टि है, मेरी नहीं। मैंने आज तक केवल अपनी माँ का सौन्दर्य ही देखा था और उसी पर मुग्ध था।

तुम्हारी माँ बहुत सुन्दर है ? सत्यवती ने उसे टोक दिया, कहाँ रहती हैं तुम्हारी अम्मा ?

मेरी माँ तो सब जगह रहती है।

सब जगह ?

हाँ। सब जगह। मैं तो माता प्रकृति की बात कर रहा हूँ। तपस्वी की आँखों का मुग्ध भाव क्रमश: उसके चेहरे पर संचित होता जा रहा था, मैने आज तक प्रकृति से सुन्दर कुछ भी नहीं देखा था। पर कल तुम्हें देखा, तो लगा, प्रकृति का सारा सौन्दर्य तुममें

केन्द्रीभूत हो गया है। पद्मगन्धे। तभी मेरी समझ में आया कि माँ की आवश्यकता पुरुष को तभी तक होती है, जब तक वह अबोध होता है। बोध होने पर उसे माँ की नहीं, प्रिया की आवश्यकता होती है, जिससे वह अपने वयस्क प्रेम की प्रतिध्वनि पा सके।

तपस्वी। तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ रही।

शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक नहीं प्रिये। मेरे मन का अर्थ तुम समझ रही हो। तपस्वी मुस्कराया, वयस्क होने पर पुरुष समझता है कि माँ प्रकृति का सारा सौन्दर्य नारी में संचित होता है; और नारी सौन्दर्य का केन्द्रीभूत स्वरूप तुम हो पद्मगन्धे।

नौका फिर उसी द्वीप में आ लगी थी। तपस्वी ने उसका हाथ पकड़कर उसे नौका से उतारा। पर आज सत्यवती का मन उल्लसित होते हुए भी आशंकित था। वह सरोवरों में कमल-दलों के बीच, तपस्वी के साथ मत्स्य-कन्या के समान तैरना नहीं चाहती थी। वह उद्यानों में दो तितलियों के समान पुष्प-पराग का पान करते हुए उड़ना नहीं चाहती थी। वह आज एकान्त वृक्ष की छाया में तपस्वी के पास बैठकर शान्ति से कुछ गम्भीर बातें करना चाहती थी। जाने एक ही दिन में वह इतनी प्रौढ़ कैसे हो गयी थी।

तपस्वी। तुम्हें यह तो नहीं लगता कि मैं तुम्हारी तपस्या के मार्ग में विघ्न बनकर आयी हूँ ? वह अत्यन्त गम्भीर थी।

तपस्वी ने दोनों हाथों से उसके कन्धे थाम लिये, पद्मगन्धे। तुम मेरी तपस्या की बाधा नहीं, तपस्या की परिणति हो।

सत्यवती नहीं समझ पायी कि वह उसकी प्रशंसा कर रहा है या नहीं।

आज तुम कुछ न भी कहो, वह बोली, पर कल तुम्हें लगने लगे कि मेरे कारण तुम तपोभ्रष्ट हो गये हो। तुम्हें मुझसे वितृष्णा हो जाये तो मैं कहीं की नहीं रहूँगी।

तपस्वी मुस्कराया, चिन्ता मत करो प्रिये। तुमने हमारे उन महान् तपस्वियों के विषय में नहीं सुना, जो गृहस्थ हैं। अपनी पत्नी और सन्तान के साथ रहकर साधना करते हैं। तपस्वी ने सत्यवती को अपनी बाँहों में ले लिया। क्या तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी ?

सत्यवती क्या कहती। वह स्वयं नहीं जानती थी कि उनके भाग्य में क्या है। वह अम्मा और बाबा पर इतनी आश्रित थी कि स्वयं स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय करने की बात वह सोच ही नहीं सकती थी। बाबा इस विवाह के लिए तैयार होंगे क्या ?

और तपस्वी अपनी मौज में कहता जा रहा था, हम हिमालय की तलहटी में किसी ऐसे स्थान पर एक कुटिया बनायेंगे, जहाँ पास ही कोई स्वच्छ नदी बहती हो। हो सकता है कि मैं एकान्त साधना न कर कोई आश्रम स्थापित करूँ। शिष्यों की कोई कमी नहीं होगी। मैं शिष्यों को पढ़ाऊंगा। साधना कर अपना आध्यात्मिक अनुभव बढ़ाऊंगा और तुम गृहस्थी के छोटे-बड़े काम सँभालना। शेष समय में तुम भी अध्ययन करना। तुम्हारी बुद्धि तीक्ष्ण है। अधिक समय नहीं लगेगा। बहुत जल्दी विदुषी हो जाओगी। मैं तुम्हारे चेहरे से पढ़ सकता हूँ, तुम असाधारण महत्त्व की नारी हो। नौका खेने के लिए भगवान् ने तुम्हें यह रूप नहीं दिया है।

एक ओर तपस्वी था, दूसरी ओर बाबा। जाने वे क्या कहें। यदि वे न मानें तो ? सत्यवती के पास तो कोई विकल्प नहीं है। शायद तपस्वी के पास हो।

और यदि बाबा हमारे विवाह के लिए न माने तो ? अन्ततः उसके मुख से निकल ही गया।

तो हम गान्धर्व विवाह कर लेंगे। तपस्वी तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

वह क्या होता है। सत्यवती ने पूछा। तपस्वी ने शान्त दृष्टि से उसे देखा, तुम क्या चाहती हो पद्मगन्धे ?

अपने बाबा का आशीर्वाद।

और यदि वह न मिला तो ?

तो, तो। सत्यवती कुछ कह नहीं पायी।

प्रिये। तपस्वी का स्वर और भी मधुर हो गया, वयस्क हो जाने पर जैसे पुरुष को माता की नहीं, पत्नी की आवश्कता होती है, वैसे ही वयस्क होने पर स्त्री को पिता की नहीं, पति की आवश्यकता होती है।

मैं जानती हूँ तपस्वी। सत्यवती बोली, किन्तु बाबा से पूछे बिना नहीं।

तपस्वी कुछ देर मौन रहा, जैसे किसी द्वन्द्व में उलझ गया हो। फिर धीरे-से बोला, तो कमलनयने। अपने बाबा से पूछ लो कि वे कन्यादान करेंगे या नहीं। या कहो तो मैं उनसे तुम्हारी याचना करूँ ?

नहीं। सत्यवती बोली, मैं ही पूछूँगी।

तपस्वी मौन रहा। कुछ नहीं बोला, उसकी आँखों से झरते अनुराग के सोते सूख गये थे। वहाँ चिन्ता की कंटीली झाड़ियाँ उग आयी थीं।

मैं चलूँ ? सत्यवती ने पूछा।

जाओ। तपस्वी के स्वर में हल्की-सी थरथराहट थी, मैंने इसी द्वीप का बन्दी होने का निर्णय किया है। मैं यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। यहाँ अपनी कुटिया बनाऊंगा। यदि तुम्हारे बाबा ने मेरे साथ विवाह की स्वीकृति दे दी तो यहाँ हमारी गृहस्थी बसेगी; अन्यथा यह मेरी साधना-भूमि हो जाएगी।

सत्यवती ने कुछ नहीं कहा। उसका मन रोने-रोने को हो रहा था। तपस्वी के मुख की ओर देखने का उसका साहस नहीं हो रहा था। वह जानती थी, यदि अब भी तपस्वी उसे थाम लेता और कहता, सत्यवती। तुम मेरी हो। तो शायद सत्यवती घर भी न लौट पाती। किन्तु उसका विवेक उसे लगातार चौकस कर रहा था, सत्यवती। उठ। चल। इससे पहले कि तपस्वी फूट पड़े, तू चल पड़। नहीं तो बहुत देर हो जायेगी।

सन्ध्या समय सत्यवती को एकदम अनमनी देखकर बाबा ने पूछा था, क्या बात है सत्या। इतनी उदास क्यों हो ?

कुछ नहीं बाबा। यूँ ही सोच रही थी।

ओह-हो। अब हमारी बिटिया सोचने भी लगी है। बाबा हँसे थे, क्या सोच रही हो सत्या ?

यमुना-तट पर इतने तपस्वी रहते हैं। वे लोग अपना सबकुछ छोड़कर अपने-आपको तपा रहे हैं। और दूसरी ओर हम लोग हैं, जो दिन भर-सूर्योदय से सूर्यास्त तक नौका चलाना, यमुना में जाल डालना, मछली पकड़ना, उसे सँभालना और फिर हाट में जाकर बेचना हम एक दूसरे प्रकार से अपने-आपको तपा रहे हैं।

बाबा ने चकित होकर उसे देखा, तो सचमुच सत्या बड़ी हो गयी है। वह तो बड़ी-बड़ी बातें सोचने लगी है। पर तू यह सब क्यों सोचती है सत्या ?

मुस्कराने के लिए सत्यवती को प्रयत्न करना पड़ा, बाबा। जान-बूझकर नहीं सोचती। जैसे किसी भी हलचल से नदी में लहरें उठती हैं, वैसे ही किसी भी दृश्य या ध्वनि से मेरे मन में विचार उठते हैं। सोचती हूँ कौन अधिक सुखी है- दिन-भर मरते-खपते हमारे केवट-मछुए या सबकुछ त्याग, वनों में जा बैठे ये तापस-संन्यासी।

बाबा स्पष्ट रूप से चिन्तित हो उठे थे, बेटी। न मैं बहुत बुद्धिमान हूँ, न विद्वान् और न चिन्तक। मैंने तो जो सीखा है, अपने जीवन से सीखा है। तुमने अपनी तुलना संन्यासियों से की है; किन्तु मैंने आज तक अपनी तुलना राजाओं और राज-परिवारों से की है। बाबा ने स्नेह-भरी एक दृष्टि सत्यवती पर डाली, सुखी तो केवल राज-परिवार है। उसके पास सबकुछ है; धन-सम्पत्ति, अधिकार-सेवक, सैनिक-शस्त्र सबकुछ। हम, वह सब प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। तपस्वी तो वे लोग हैं बेटी। जो उपलब्धियों से निराश हो चुके हैं। उन्होंने सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न ही छोड़ दिया है। उन्होंने शस्त्र डाल दिये हैं; संघर्ष त्याग दिया है; महासमर से मुख मोड़ लिया है। वे लोग जीवन से हार चुके हैं पुत्री।

पर सत्यवती को तो अपना तपस्वी कभी भी हारा हुआ, उदास, परेशान, हताश नहीं लगा था। जब पहली बार उसकी नाव में आकर बैठा था तो बड़ा आत्मलीन-सा था। कितना शान्त और आश्वस्त। उसके पश्चात् जब वह सत्यवती पर मुग्ध हुआ तो उसके नयनों का उल्लास तो कोई सीमा ही नहीं जानता था। उसे सत्यवती हताश और निराश कैसे मान ले। निराश तो वह तब हुआ था, जब सत्यवती ने कहा था कि शायद बाबा विवाह के लिए न मानें।

बाबा। बाबा ने उसकी ओर देखा, क्या बात है बेटी ?

कहीं ऐसा तो नहीं कि हम उसके पीछे पड़े हैं, जो हमें नहीं मिल सकता और इसीलिए हम सुखी नहीं हैं।

बाबा हँस पड़े, और तपस्वी सत्य को जान गये हैं कि हमें सुख नहीं मिल सकता, इसलिए उनके पास धन का सुख चाहे न हो, सन्तोष का सुख तो है।

हाँ बाबा।

बाबा गम्भीर हो गये, तू जब नौका चलाती है तो तेरे शरीर को श्रम करना पड़ता है न।

हाँ बाबा। तू उसे सुख मानती है या दुख ?

वह तो मेरा सहज धर्म है बाबा। न सुख, न दुख।

उस समय तेरी नाव किसी नौका के आगे होती है, किसी के पीछे।

हाँ बाबा।

पर फिर भी आगे-पीछे किसी समय तू नदी पार कर ही जायेगी। हाँ।

और यदि तू नाव चलाये ही नहीं। इसी किनारे बैठी रहे तो तू सुखी होगी या दुखी ? दुखी हूँगी बाबा।

क्यों बेटी ? क्योंकि एक तो मेरा शरीर अपना श्रम-धर्म नहीं निभायेगा तो आलसी होकर जुड़ता जायेगा और दूसरे मैं कभी नदी पार नहीं कर पाऊँगी।

ठीक है बेटी। बाबा बोले, राजा लोग वे हैं, जो नदी के पार पहुँच गये हैं। हम वे लोग हैं, जो आगे-पीछे अपनी नौकाएँ चला रहे हैं। तपस्वी वे हैं, जो नदी के इस ओर, यह मानकर बैठ गये हैं कि हम नदी के पार पहुँच ही नहीं सकते।

सत्यवती कई क्षणों तक चुपचाप बाबा को देखती रही, फिर जैसे साहस जुटाकर बोली, एक बात पूछूँ बाबा।

पूछ बेटी। आप बुरा तो नहीं मानेंगे ?

तू इतनी बुरी बात पूछनेवाली है क्या ?

नहीं बेटी। तू पूछ। क्या पूछती है।

बाबा। नौकाओं की दौड़ में चाहे कोई जीते या हारे; प्रत्येक नाविक हाँफ जाता है। पर किनारे पर खड़ा दर्शक किसी भी जीत-हार में नहीं है, इसलिए प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न है। सांसारिक जीव क्या नौका-दौड़ का प्रतिस्पर्धी और तपस्वी किनारे पर खड़ा दर्शक नहीं हैं ?

साधारण गृहस्थ दौड़ का प्रतिस्पर्धी नहीं होता बेटी। वह तो चल रहा होता है। वह केवल अपना धर्म निभा रहा है, इसलिए दुखी नहीं है। बाबा ने कहा, मैं अपना धर्म निभा रहा हूँ, तू अपना निभा। निश्चित रूप से तू राजकन्या है सत्यवती। तू किसी राजा को ही प्राप्त करेगी। मैं पहुँचूँ-न-पहुँचूँ- तू नदी के पार पहुँचेगी; तू राज-वधू होगी पुत्री। यदि किसी संन्यासी को ही सौंपना होता, तो मैं कब से तेरा कन्यादान कर चुका होता बेटी।

मैं अपनी बात नहीं कह रही बाबा। सत्यवती ने कुछ अतिरिक्त प्रयत्न के साथ कहा।

तू अपनी बात नहीं कह रही, पर मैं तेरी बात कह रहा हूँ। बाबा मुस्कराये, तू राज-कन्या है। तेरा धर्म त्याग में नहीं, ग्रहण में

है। मछली पानी में ही जीवित रहती है सत्यवती। हवा में आते ही उसके प्राण निकल जाते हैं- हवा कितनी भी सुखद क्यों न हो। तू त्यागमय जीवन में जीवित नहीं रह पायेगी। बाबा उठकर बाहर जाने को तैयार हुए, पर द्वार के बाहर जाते-जाते वे फिर लौट आये, और तू इतना सोचा मत कर बेटी। अभी सोचने का वय नहीं है तेरा। सोचने का काम तू मुझ पर और अपनी अम्मा पर छोड़ दे।

बाबा चले गये और सत्यवती सोचती ही रह गयी; क्या बाबा उसके विषय में सबकुछ जानते हैं ? यदि जानते हैं तो इतने शान्त कैसे हैं ? और नहीं जानते तो इतना सटीक कैसे बोल गये, जैसे सारी बात उसी के विवाह को लेकर चल रही हो।

बाबा कहते हैं कि वह राजकन्या है- वे उसका विवाह किसी राजकुमार से ही करेंगे तब कैसा होगा जीवन सत्यवती का ? दास-दासियाँ, हाथी-घोड़े, रहने के लिए प्रासाद, यात्रा के लिए रथ और साथ चलने के लिए अंग-रक्षक सत्यवती की कल्पना में सबकुछ बहुत सजीव हो उठता है; पर जैसे ही अपनी कल्पना में वह राजकुमार की छवि आँकने का प्रयत्न करती है, तपस्वी पराशर की आकृति आकर उसकी कल्पना के सारे चित्रों को वैसे ही ढँक लेती है, जैसे इन्द्रधनुष आकर सारे आकाश पर आरोपित हो जाता है।

सत्यवती के कण्ठ से एक गहरा उसास फूटा, कहीं मेरा तपस्वी ही कोई राजकुमार होता।

अगले दिन से सत्यवती का नाव चलाना दूभर हो गया। वह नाव में बैठती तो उसे लगता कि उसकी नाव तपस्वी के टापू की ओर भागती जा रही है। हर समय उसके चप्पू अपनी नाव को उस टापू से दूर ठेलते रहते और सारे प्रयत्नों के बाद भी नौका उसी टापू की ओर बढ़ जाती। अन्तत: हारकर सत्यवती नाव को किनारे से लगाकर अपना सिर पकड़, रेत पर बैठ जाती जाने नाव में ही कोई हठी प्रेत आ बैठा था, जो उसे किसी दूसरी दिशा में चलने ही नहीं देता था, या सत्यवती का अपना ही दिशा-ज्ञान खो गया था। या कभी-कभी उसे लगने लगता था कि उसकी नाव में दो लम्बी रस्सियाँ बँधी हुई हैं। एक का सिरा टापू में बैठे तपस्वी के हाथ में है और दूसरी का सिरा हाथ में पकड़े, बाबा अपने स्थान पर खड़े हैं। जैसे ही सत्यवती नौका में बैठती है, दोनों अपनी-अपनी रस्सियाँ खींचने लगते हैं। उसी क्षण से सत्यवती का मन काँपने लगता है। तपस्वी युवक है, बलवान है। बाबा बूढ़े हैं, निर्बल हैं। कहीं तपस्वी जीत ही न जाये। तपस्वी को पाकर सत्यवती प्रसन्न होगी; किन्तु अपने बाबा को पराजित देखकर उसका मन टूट जायेगा।

अन्तत: उसे अपने-आपको साधना ही पड़ा : वह तपस्वी के पास नहीं जायेगी। वह तपस्वी से नहीं मिलेगी। किन्तु उसे लगा, उसका तन और मन दोनों ही रुग्ण होते चले जा रहे हैं। तपस्वी के पास वह जायेगी नहीं और अन्यत्र कहीं जाने का उसका मन ही नहीं होता था। जीवन का रस जैसे सूख गया था।

अम्मा ने एक दिन गहरी दृष्टि से उसे देखा, क्या हुआ है तुझे ?

कुछ भी तो नहीं अम्मा।

तो होंठ क्यों सूख रहे हैं तेरे ? चेहरा क्यों पीला पड़ गया है ?

नहीं तो। ऐसा तो कुछ नहीं है।

अम्मा चुपचाप उसे देखती रहीं और फिर उन्होंने बाबा को भी पुकार लिया।

बाबा आये तो अम्मा बोली, देख रहे हो अपनी लाड़ली को ? क्यों सूखती जा रही है यह ?

द्वन्द्व है इसके मन में। बाबा बहुत शान्त स्वर में बोले, तपस्वी या राजकुमार ?

अम्मा की दृष्टि और भी तीखी हो गयी, पुरुष-संग किया है तूने ?

सत्यवती क्या कहती। न स्वीकार कर सकती थी, न अस्वीकार। उसने चुपचाप सिर झुका दिया।

कौन है वह ? अम्मा की आँखें लाल होने लगीं।

पर बाबा ने अद्‌भुत धैर्य का प्रमाण दिया। उन्होंने अम्मा के कन्धे पर हाथ रखा, शान्त रहो सत्या की माँ। बेटी है हमारी। शत्रु नहीं है।

काम तो उसने शत्रु का-सा ही किया है। अम्मा शान्त नहीं हुईं, इसे तो चीरकर यमुना में डाल दो। मच्छ खा जायें इसे।

नहीं। बाबा की शान्ति तनिक भी भंग नहीं हुई, इसने बेटी का धर्म निभाया है। हमें माता-पिता का धर्म निभाना है।

क्या कहना चाहते हो ?

बाबा अपने गहरे स्वर में बोले, एक तपस्वी में अनुरक्त हुई थी सत्या। मुझसे इसने संकेतों में पूछा और मैंने अपना निर्णय संकेतों में दे दिया। तब से सत्या एक बार भी नहीं मिली उस तपस्वी से। बाबा की आँखों में स्नेह उमड़ आया, इसने लाज रख ली मेरी। अब मुझे इसकी लाज रखनी है।

कानीन सन्तान को जन्म देकर यह तुम्हारी लाज रख रही है ? अम्मा सन्तुष्ट नहीं थीं।

नहीं। बाबा बोले, तपस्वी तो कानीन सन्तान में भी अधर्म नहीं देखता। न ही वह गान्धर्व-विवाह को धर्म-विरूद्ध मानता। पर अब क्षत्रिय राजा कानीन सन्तान के पक्ष में नहीं हैं। यदि सत्या का विवाह किसी राजकुमार से करना है तो इस तथ्य को अब छिपाना होगा। सत्या तपस्वी की भार्या नहीं बनेगी, कन्या ही रहेगी। यह सबकुछ मानकर क्या सत्या ने मेरी लाज नहीं रखी ?

अम्मा कुछ नहीं बोली; पर उनके हाव-भाव बता रहे थे कि वे बाबा से सहमत नहीं है।

बाद की सारी व्यवस्था बाबा ने स्वयं ही कर दी थी। प्रसव के बहुत पहले से ही वह अपने ग्राम से हट गयी थी। प्रसव तपस्वी के उसी टापू में हुआ था और सत्यवती ने अपने हाथों से वह बालक अपने तपस्वी, ऋषि पराशर को सौंपा कर कहा, इसका ध्यान रखना।

तपस्वी के मुखड़े पर अब वह बावरापन दिखायी नहीं देता था, न सत्यवती का सान्निध्य उसे उन्मादी बनाता था। इस अवधि में जहाँ इधर सत्यवती ने अपने-आपको साध लिया था, उधर तपस्वी ने भी स्वयं को कस लिया लगता था।

तपस्वी ने बड़ी स्निग्ध मुस्कान बिखेरी थी शिशु पर, निश्चित रहो। तुम नहीं मिलीं तो अब मेरा सबकुछ यही है- कृष्ण द्वैपायन।

सत्यवती ने एक दृष्टि बालक पर डाली; उसकी सोयी-सोयी गम्भीर-सी आँखें। उसका वह श्यामल वर्ण। हलके अरुण होंठ और आकर्षक मुस्कान। फिर तपस्वी की ओर देखा, इसे कानीन सन्तान मानकर धिक्कारोगे तो नहीं ?

तपस्वी मुस्कराया, जैसे सत्यवती ने कोई पागलपन की बात कही हो, सृजन पुण्य है देवि। सृष्टि का लक्ष्य ही सृजन है। सृजन में सहायक होकर हम सृष्टा की आज्ञा का पालन करते हैं। धरती में से जब भी कोई पौधा जन्म लेता है, तो क्या हमने कभी सोचा कि इसके जन्म के पूर्व सामाजिक विधि-विधान का पालन किया गया अथवा नहीं। हम प्रत्येक पौधे का स्वागत करते हैं; क्योंकि वह सृष्टा की मुस्कान है। और यह तो मानव-सन्तान है। पराशर ने स्नेह से शिशु के माथे पर हाथ रखा।

तो हमारा समाज उसे क्यों बुरा मानता है ? सत्यवती पूछे बिना नहीं रह सकी।

तपस्वी की मुस्कान को परे धकेल, आवेश की आभा झलकी, प्रभु की धरती को क्षत्रिय राजा न केवल आपस में बाँट लेना चाहते हैं, वरन् अनन्त काल तक उसे अपनी सम्पत्ति बनाये रखना चाहते हैं। जब तक धरती रहेगी, तब तक वे जीवित रह नहीं सकते, इसलिए उसे अपने उत्तराधिकारियों को सौंपने से पहले प्रमाणित कर लेना चाहते हैं कि उत्तराधिकारी उनका वैध आत्मज ही है, औरस सन्तान। पराशर की मुस्कान ने उनके आवेश को जीत लिया, तपस्वी के पास क्या है देवि। जिसे सौंपने के लिए वह प्रकृति की प्रक्रिया में अपना विधान अड़ाये। सृष्टि प्रकृति का विधान है, मनुष्य का विधान तो उसका अहंकार है।

सत्यवती चुपचाप खड़ी अपने तपस्वी को देखती रही; कैसा महान है यह तपस्वी। संकीर्णता और संकुचितता का नाम भी नहीं। उदार जैसे कि आकाश।

बड़ी देर के बाद इतना ही पूछ पायी, मुझसे रुष्ट तो नहीं हो ?

तपस्वी फिर मुस्कराया, तुम मिलतीं तो गृहस्थी बसती। न मिलीं तो साधना विकसी। तपस्वी के लिए तो सब ओर उपलब्धि ही है। वंचना कहीं नहीं है।

जाने क्यों सत्यवती के कानों में देवव्रत का सम्बोधन माता, माता बार-बार गूँजता ही चला गया। उसकी आँखों की पुतलियों से एक सद्य:जात बालक जैसे चिपक गया था। नन्हा-सा बालक था- आँखें बड़ी-बड़ी, जैसे किसी मद में डूबी हुई हों। होंठ कोमल और सुन्दर आकार के थे, पर वह किसी गम्भीर वयस्क के समान उन्हें बन्द किये हुए था। साँवला रंग था। नन्हे-से शिशु के समान न तो उसके चेहरे पर दिव्य मुस्कान थी और न वह किसी शारीरिक या मानसिक पीड़ा से रो रहा था वह शान्त भी नहीं था वह तो जैसे किसी गहन चिन्तन में डूबा हुआ था।

पर सत्यवती का चिन्तन एक ही स्थान नहीं रह सका। उसके अपने ही मन में एक विरोधी स्वर उठा- वह यह क्यों मानती है कि उसकी इच्छा होने पर भी प्रकृति ने उसे पराशर से नहीं मिलाया। बाबा से बात कर, उसकी अपनी इच्छा ही तो शिथिल हो गयी थी। उसने बाबा की इच्छा के साथ अपनी इच्छा का तादात्म्य कर दिया था। बाबा मानते थे कि धन के अभाव में तपस्वी के साथ उसका जीवन सुखद नहीं होगा। सम्भव है कि ऐसा ही होता। यदि सत्यवती और पराशर का विवाह हो जाता और कालान्तर में धन के अभाव में उसे कोई असुविधा होती तो उसका सारा रोष अपने तपस्वी पर ही बरसता। तब यदि उनमें झगड़ा होता। दोनों का साथ रहना यातनापूर्ण हो जाता। तो क्या उसके स्थान पर प्रकृति ने ठीक निर्णय नहीं किया ? उसका प्रिय उसे नहीं मिला, किन्तु उसका प्रिय, अप्रिय तो कभी नहीं होगा।

सत्यवती का हृदय उमड़ा। मन में आया कि तत्काल राजा को बता दे, कि उसका एक कानीन पुत्र भी है- कृष्ण द्वैपायन। वहाँ, यमुना के उस द्वीप पर, तपस्वी की कुटिया में पल रहा है। राजा उसका मस्तक सूँघकर उसे अपना पुत्र स्वीकार कर लें। आखिर वह उन्हीं के क्षेत्र से उत्पन्न सन्तान है; फिर वह शान्तनु का पुत्र क्यों नहीं हो सकता।

पर जैसे उसी क्षण उसके विवेक ने उसे फटकारा, सत्यवती। पागल मत बन। तू राजा के औरस पुत्र, कुरुवंश के युवराज, भीष्म को अपना पुत्र नहीं मान पायी, तो राजा तेरे कृष्ण द्वैपायन को कैसे अपना पुत्र स्वीकार कर लेगा। कहीं यह न हो कि राजा कुपित हो जाये; और तेरी इस अजन्मी सन्तान को भी अपनी सन्तान न माने। ऐसा न हो कि अपनी पहली सन्तान को राज-वैभव दिलाने के प्रयत्न में वह अपनी दूसरी, इस अजन्मी सन्तान को भी वंचित कर दें तपस्वी ने कहा था, क्षत्रिय राजा कानीन सन्तान को सम्मानजनक नहीं मानते। बाबा ने भी संकेत किया था कि वह राजप्रासाद में अपनी कानीन सन्तान की चर्चा न करे। यदि कहीं राजा को सन्देह हो गया और सन्देह उसे हो सकता है। राजा लोग इस विषय में तनिक भी उदार नहीं हैं। ईर्ष्या उनका सर्वप्रथम गुण है उसे सन्देह हो गया, तो वह यही मानेगा कि सत्यवती की इस अजन्मी सन्तान का पिता भी वही तपस्वी है।

२१) नियोग से धृतराष्ट्र, पान्डु व विदुर का जन्म

भीष्म को अपनी प्रतिज्ञापर अटल देखकर सत्यवती ने भीष्म को महर्षि वेद व्यास को बुलाने के लिये भेज दिया। भीष्म महर्षि वेदव्यास के आश्रम में आये। वेदव्यास ने आओ गंगा पुत्र कहकर स्वागत किया और उन्होंने अपने जन्म की कथा विस्तार से भीष्म को सुनायी। वे बोले सत्यवती मेरी माता है और इस कारण से मैंने उन्हें कहा था कि जब कोई भी संकट की घडी उपस्थित हो तो मुझे स्मरण कर लेना। आज हस्तिनापुर के सामने जो समस्या खडी है वह मैं अन्तर्मन से जानता हूं। अब मैं माता सत्यवती के पास चलने को तैयार हूं यह कहकर महर्षि व्यास भीष्म के साथ हस्तिनापुर के राजमहल में आये।

हस्तिनापुर पहुंचने पर महामुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने सत्यवती के कक्ष में प्रवेश किया। सत्यवती की आंखे उत्सुकता, लालसा और ममता लिये बडी ही व्यग्रता से वेद व्यास की प्रतीक्षा कर रही थी। माता ने अपने पुत्र का यथोचित स्वागत सत्कार किया। वेदव्यास श्याम वर्ण का एक लम्बा चौडा शरीर, पिंगल वर्ण, जटाये लम्बी-लम्बी, दाढी मूछे, श्वेत केश, वल्कल वस्त्रधारी प्रौढ़ सन्यासी, रूक्ष केश सत्यवती का अपना कानीन पुत्र। सत्यवती ने कहा महामुनि आसन ग्रहण करें। व्यास बैठ गये। क्या कभी महर्षि पराशर आपके पिता ने मेरे बारे में कुछ बताया ? व्यास बोले हाँ मैं जानता हूं कि आप मेरी माता है। इसीलिये आपका सन्देश पाते ही मैं तत्काल चला आया। पिता चाहते थे यह तथ्य गोपनीय ही रहे तो अच्छा होगा। क्या पुत्र तुमने मुझे कभी स्मरण भी किया ? व्यास बोले, शैशव में मैं तुम्हे बहुत याद करता था। जब दूसरे बालकों को अपनी माताओं से मिलते देखता था उसके पश्चात तो मैं माता प्रकृति को पहचानने लगा। उसी में पला और बडा हुआ। माता सत्यवती बोली, तब तो पुत्र तुमने मुझे बहुत कोसा होगा कि कैसी कठोर निर्दयी मां है जो तुम्हे त्याग कर चली गयी। मैंने तुम्हे वंचित किया इसलिये मुझे भला बुरा भी कहा होगा। व्यास बोले, नहीं मां कभी नहीं आपने तो मेरी हर आवश्यकता पूरी की फिर कैसी वंचना ? कितने दिन हस्तिनापुर में ठहरोगे पुत्र ? व्यास बोले, अकस्मात चला आया हूं। इसलिये अधिक समय नहीं रूक पाऊंगा। सन्यासी को वैसे भी सांसारिक भोगों के स्थान से दूर ही रहना चाहिये और राजप्रसाद तो भोग के केन्द्र ही है। यह स्थान मेरे लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। सत्यवती बोली राजप्रसादों में क्या दोष होता है पुत्र ? व्यास बोले, दोष तो किसी भी वस्तु या स्थान में नहीं होता है माते। किन्तु प्रत्येक वस्तु और स्थान का अपना-अपना गुण और महत्व होता है। यहां रह कर मैं अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं हो पाऊंगा माते। व्यक्ति को अपना लक्ष्य निर्धारित करना पडता है अपनी प्रकृति के अनुसार। उसी के अनुरूप कोई गणिका में अनुरक्त होता तो कोई मन्दिर के द्वार की ओर अग्रसर होता है। माता अपना अभिप्राय और प्रयोजन कहो ?

माता सत्यवती बोली पुत्र चित्रांगद तो पहले ही चल बसा और अब तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य भी नहीं रहा। भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के कारण राज्य ग्रहण नहीं करेगा और न ही विवाह को स्वीकार करता है। शान्तनु के वंश का कोई उत्तराधिकारी नहीं है और न ही कोई हस्तिनापुर का राजा। मेरी इच्छा है कि विचित्रवीर्य के क्षेत्र (उसकी रानियों से) नियोग कर सन्तान उत्पन्न करने के लिये मैं तुम्हे नियुक्त करूं। कुरु वंश में हस्तिनापुर के सिंहासन को उसका उत्तराधिकारी देने का उत्तरदायित्व अब तुम्हारा है। मेरी दोनों पुत्र वधुयें अत्यन्त सुन्दर और युवा भी है। वेदव्यास बोले, माते इन गुणों का मेरे लिये कोई उपयोग नहीं है ये गुण तो केवल मन के काम को उद्वेलित और आकर्षित करने के लिये होते हैं। मेरे मन में तो अब काम नहीं धर्म है। धर्म न तो नारी के रूप और यौवन से संचालित होता है और न ही आकर्षित। मैं इस वंश और राज्य को इस विकट स्थिति से बाहर निकालने में मैं धर्म सम्मत सहायता करूंगा। पर सत्यवती को लगा पुत्र नारी सौन्दर्य की अवहेलना कर रहा है और व्यास की ऐसी बातों पर सत्यवती को शोक हुआ कि कैसा उदासीन पुत्र है। व्यास बोले, मां बडी रानी अभी तक शोक से बाहर नहीं हुई है वह एक वर्ष तक संयम करे साधना कर पवित्र हो धर्मपूर्वक आचरण करे तो नियोग सन्तान का उद्योग करे। सत्यवती बोली, नहीं पुत्र हमारे पास इतना समय नहीं है। हम प्रतिक्षा नहीं कर सकते क्योंकि सिंहासन कोई दीर्घकाल तक रिक्त नहीं रह सकता पुत्र।

तब व्यास बोले, ठीक है माते। बडी रानी जब ऋतु स्नान कर ले तो मुझे सूचित करें। वे काम इच्छा से नहीं धर्मत: सन्तान इच्छा से अपने कक्ष में मेरी प्रतिक्षा करे। भरतवंश अब निर्वंश नहीं होगा। मेरा जीवन तो तपस्या और धर्म के लिये ही है माते। राग और आसक्ति के लिये तो उसमें कोई स्थान ही नहीं है। सत्यवती बोली, क्या पुत्र तुमने शादी कर ली ? व्यास बोले, हां माते। महर्षि जाबालि की पुत्री वाटिका से। मेरी पत्नी है और छोटा पुत्र शुक। सत्यवती मन से सोच रही है कैसी लीला है विधाता की। मेरे जिन पुत्रों को भोग उपलब्ध था तो उनको आयु नहीं दी और जिसे आयु दी उसके जीवन में भोग के लिये कोई कामना और अवकाश नहीं।

अम्बिका का रूप अमूल्य निधि है। उसके रूप का इन्द्रजाल किसी भी पुरुष का मोहक बन्धन बना सकता है। माता सत्यवती के

पास भी तो एक मोहक रूप ही तो था जिसने पहले शान्तनु के मन को सम्मोहित किया। इसी कारण से तो शान्तनु का विवेक दग्ध हुआ। फिर इसी से राजा की धर्म बुद्धि, दायित्व बोध वात्सल्य जैसे सभी सो गये। जाग्रत रहा तो सिर्फ सत्यवती का रूप सौन्दर्य और यही तो सब अनर्थों का जड बना। सृष्टि में भी कितने सारे सुख हैं। इन सुखों का सृजन इसलिये तो नहीं हुआ कि मनुष्य इन सबसे उदासीन रहे। निराशा तो जीवन में कई बार आती है। कौनसा ऐसा मनुष्य है संसार में जिसके जीवन में कभी उदासीनता या निराशा नहीं हुई हो। पर समय के साथ निराशा से बाहर भी निकलता है मनुष्य। रिक्त जीवन जीने से क्या लाभ ?

अम्बिका को लगा यह जीवन जीने योग्य नहीं है जिसकी कामनाओं को पूरा करने के लिये दूसरों की इच्छाओं का विरोध और दमन करना पडता है। क्या सुख ही सुख जीवन में आज तक किसे मिला है ? विचित्रवीर्य काम सम्बन्धों के लिये सर्वथा अनुपयुक्त था, जर्जर शरीर, मानसिक रोगों से ग्रस्त। क्या रह गया उसके जीवन में। पर राजमाता सत्यवती अपने पुत्र को विवाहित देखना चाहती थी। वे अपने पौत्र का मुंह देखना चाहती थी पर साम्राज्यों के अधिपति तो कामुक और बिलासी ही होते है। विचित्रवीर्य को भोग का अधिकार बहुत जल्दी हो गया था इसी में अम्बिका को लगने लग गया था कि हस्तिनापुर में कुछ भी नहीं है यह तो राजमाता सत्यवती की महत्वाकांक्षाओं का एक तन्त्र है, जाल है, क्रीडा है। सब लोग उनकी इच्छाओं की कठपुतलियां है यहां तक कुमार भीष्म भी। माता सत्यवती में अधिकार और स्वामित्व का भाव बहुत अधिक है। विचित्रवीर्य का कुछ समय में देहान्त हो गया और अम्बिका ने फिर से अपने जीवन की ओर से अपनी आंखे मूंद ली कि अब जीवन में रह ही क्या गया ? न कोई आशा, न भोग, न त्याग, न वैभव, न विपदा। जीवन तो जैसे किसी अन्धी गली तक जाकर रूक गया। पर समय और नियति को यह स्वीकार नहीं था। वह क्या इसे ऐसे ही छोड देते। क्या राजमाता अम्बिका को ऐसे ही थोडे छोड देती। राजमाता ने अम्बिका को जीवन की ओर आकृष्ट करना चाहा।

राजमाता ने अम्बिका को समझाया कि वह अभी युवती है उसके सामने पहाड जैसा एक लम्बा जीवन पडा है जीने के लिये और जीने का कोई उपक्रम कोई गति विधि, कोई आशा और अपेक्षा तो कोई आस्था कुछ तो चाहिये ही। कुछ तो ऐसा हो जिसके आस-पास अपनी आन्तरिक ऊर्जा की अभिव्यक्ति हो। पर अम्बिका का मन भी जैसे अन्धकार से चिपट कर रह गया हो। उसे लगने लगा कि अन्धकार ही उसका जीवन है। वह अपने मन की काली और अन्धेरी गुफा में ही भटकती रहती थी। उसके साथ सम्राट विचित्रवीर्य की काम चेष्टायें, सम्राट की मृत्यु, हस्तिनापुर की अनिश्चितता इत्यादि मन में घर करे हुये की। उसने कभी सोचा ही नहीं कि इन नकारात्मक विचारों के अलावा भी एक भरा पूरा संसार है। सूर्यास्त के बाद फिर से सूर्य उदय होता है, अन्ध:कार के पश्चात फिर प्रकाश आता है। पतझड के पश्चात बसन्त आता है। उसमें इसके आगे जीवन जाना ही नहीं। प्रकृति स्थिर नहीं परिवर्तनशील है। समय कभी रूकता नहीं आगे बढ़ते ही चलता है।

माता सत्यवती ने एक दिन अपने लिये एक पौत्र की कामना प्रकट की। माता सत्यवती को तो पुत्रों के लिये राज्य चाहिये था, राज्य को उत्तराधिकारी चाहिये था और उत्तराधिकारी उत्पन्न करने के लिये राजकुमारियां चाहिये थी। राजकुमारियों के हरण के लिये भीष्म जैसा शेर चाहिये था। भीष्म को अपने जाल में फंसाये रखने के लिये वचन व प्रतिज्ञायें चाहिये थी। राज माता ने कभी यह नहीं सोचा कि संसार में कुछ लोग ऐसे भी तो होते है जिनको इन सब में कोई रूचि नहीं होती। कोई रस नहीं होता और न ही किसी पदार्थ को वे चाहते। ये सब सुख तो भोगे थे विचित्रवीर्य ने फिर क्या मिला उसे ? उपहार में क्षयरोग और मृत्यु। प्रत्येक व्यक्ति को विधाता के द्वारा बनाये गये नियत नियमों से ही अपना जीवन जीना पडता है अपनी इच्छा से नहीं। पुत्र और पौत्रों से क्या होनेवाला है ? राजमाता ने अम्बिका से पुत्र के बारे में चर्चा करी पर अम्बिका ने उनकी बात को रत्तीभर भी ग्रहण नहीं किया। माता बोली जीवन जीने के लिये एक खिलौना तो चाहिये तुझे। अम्बिका को न तो कोई सन्तान की इच्छा थी और न ही उसकी कोई सम्भावना। राजमाता बोली क्या तुम्हे पुत्र की इच्छा नहीं होती। क्या तुम्हे पुत्र नहीं चाहिये ? तुम्हारे भीतर

क्या सृजन की क्षमता नहीं है ? क्या तुम अपने आपको नारी नहीं मानती हो ? अब अम्बिका राजमाता के प्रश्नों का उत्तर नहीं भी देती तो क्या राजमाता उसका पिंड छोड देती ? इसलिये उसका बोलना आवश्यक हो गया।

अम्बिका बोली किसी को भी सन्तान की इच्छा क्यों होती है ? गर्भ में सन्तान का पोषण करो फिर प्रसव, फिर उसकी शिक्षा दीक्षा और फिर भविष्य में उसके किसी अनिष्ट की आशंका। इन सबका विचार कर क्यों चाहते है लोग सन्तान ? क्या सुख है उसका ? सत्यवती को अम्बिका की यह तर्क अच्छी नहीं लगी। उसने कहा सन्तान की इच्छा तो सबको होती है। प्रकृति ने वात्सल्य का भाव प्रत्येक व्यक्ति में प्रतिष्ठित किया है। कोई जीव सृष्टि की सृजन इच्छा का विरोध तो नहीं कर सकता कोई बीज क्यों रोपता है पौधा उगाने के लिये ही तो। क्या सुख मिलता है उस पौधे से ? फल की प्राप्ति होती है। अब तुम नियोग से सन्तति उत्पन्न करो। अम्बिका बोली नहीं। मैं कोई आपके गौशाला की गाय नहीं हूं और न ही आपके लिये पौत्र उत्पन्न करने का कोई यन्त्र। सत्यवती अधिकार से बोली, सन्तान उत्पन्न करने से कोई नारी गाय नहीं बन जाती और न ही कोई यन्त्र। सृजन ता नारी का धर्म है। कौन सी ऐसी नारी है जो सम्भव होनेपर सन्तान को जन्म नहीं देती। सत्यवती बोली अम्बिका कोई अपरिचित ुरुष तुम्हारे पास नहीं आयेंगे, तुम्हारे अपने बडे ज्येष्ठ ही तुम्हारे पास आयेंगे पर सत्यवती ने नामका स्पष्टीकरण नहीं किया। सत्यवती यह क हकर चली गयी पर उसने अम्बिका की प्रतिक्रिया को नहीं देखा।□अम्बिका सोचने लगी राजमाता ने तो उसकी कोई रजामन्दी नहीं ली है न्होंने निश्चय ही नियोग सन्तान के लिये योग्य पुरुष भी नियुक्त कर दिया है। अम्बिका विचार करने लगी उसका प्रतिरोध तो चल नहीं पा ेगा। यहां तो यह सम्भव ही नहीं है कि राजमाता एक निर्णय कर ले और वह कार्यान्वित न हो। अब राजमाता की गोद में एक पा त्र तो डालना ही पडेगा चाहे हंसकर या चाहे रोकर। राजमाता की इच्छा अब हस्तिनापुर के राजसिंहासन के उत्तराधिकारी को जन्म देकर ही रहेगी। वह ज्येष्ठ के अर्थ के पर्याय को भीष्म समझ बैठी। उसकी आंखों के सामने भीष्म की छवि आ गयी। ैसा तेजस्वी रूप, बडी-बडी आंखे, निर्मल और पारदर्शी। स्नेह उडेलनेवाला, रक्षा का आश्वासन, सिंह समान, निर्भिक, दयालु भी त्यागी, सिर पर न पिता, न पितामह न कोई बडा यहां तक स्वयं की माता भी नहीं जो मानी हुई माता है वह तो बच्चों के समान मचल-मचलकर एडिया रगड-रगड कर अपनी बात मनवाती है। गम्भीर है, विचारशील, धर्मज्ञ, प्रौढ। क्या नारी अपने पति के रूप में अपने से बडी अवस्थावाले पुरुष को इसलिये नहीं चाहती कि उसे किशोर रूप वय का व्यक्ति अच्छा लगता है। उदासीन पुरुष को आकृष्ट करने में नारी अपनी सफलता मानती है और उदासीन नारी को पुरुष कभी नहीं चाहता।

इतने में ही कक्ष में आकर अम्बिका की दासी मर्यादा ने प्रवेश किया और बोली स्वामिनी वे नियुक्त पुरुष आ गये है और यह कह कर त्वरित गति से कक्ष से बाहर चली गयी।

अम्बिका ने अपना मस्तक उठाकर देखा उसके सम्मुख एक लम्बी काया, काला वर्ण सिर पर जटाये पुरुष खडा था। वह बोला अम्बिका तुम्हारा ज्येष्ठ वेदव्यास राजमाता सत्यवती का कानीन पुत्र। अब तुम नियोग के लिये प्रस्तुत हो जाओ। अम्बिका उसे देखकर भयभीत हो गई और आंखे मूंद ली।

व्यास कक्ष में से निकलकर बाहर आये। सत्यवती ने पूछा क्या अम्बिका ने तुम्हारा स्वागत किया। व्यास बोले, नहीं माता। वह किसी के स्वागत के लिये तो तैयार थी पर किसी अप्रत्याशित व्यक्ति को देखकर वितृष्णा से भर उठी और उसने अपनी आंखे बन्द कर ली। सत्यवती बोली, फिर तुम्हारे प्रयोजन में तो कोई बाधा नहीं हुई। व्यास ने कहा, तुम्हे पौत्र तो प्राप्त होगा। मुझे भय है कि तुम्हारा यह पौत्र कही जन्म से दृष्टिहीन नहीं हो। फिर माता सत्यवती ने विषय बदलकर पूछा, व्यास तुम्हे भीष्म कैसा लगा ? तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया ? कहीं तुम्हे वह अपना विरोधी तो नहीं मानता ? व्यास बोले, भीष्म का व्यवहार बहुत ही सौहार्द्रपूर्ण और अत्यन्त आत्मीय है। हममें आपस में कैसा विरोध ? न ही हम में कोई किसी तरह की प्रतिस्पर्धा है। हम तो एक दूसरे को कुछ दे ही सकते हैं। एक दूसरे को वंचित करने का भाव हमारे मन में नहीं है। कृष्ण द्वैपायन मेरे मन में पिछले

कई वर्षों से कुछ प्रश्न उथल पुथल मचा रहे हैं और मैं स्वयं कोई उनका समाधान ढूंढ नहीं पायी और न ही वे प्रश्न किसी और से पूछ पायी। चित्रांगद और विचित्रवीर्य तो अपनी अबोधावस्था में ही चल बसे और मेरा कोई अपना था ही नहीं जिससे मैं पूछ पाती। व्यास मुस्कुराकर बोले, माता ऐसे कौन से वे प्रश्न है जो तुम किसी से पूछ ना पाई? सत्यवती बोली, पता नहीं क्यों मेरी भावना भीष्म के प्रति शत्रुता की हो गई ? क्या यह तिरोहित हो पायेगी ? व्यास बोले, भीष्म तो कभी तुम्हारा शत्रु था ही नहीं यह तो तुम्हारी संकीर्ण सोच ही तुम्हे विवश कर रही थी। सत्यवती बोली, फिर उसने नियोग करने से क्यों अस्वीकार किया। व्यास ने कहा, माता अपनी आशंकाओं को संसार भर पर आरोपित कर उन्हे सत्य मानलेती हो। क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करना चाहते थे। तुम में उच्च कुल के संस्कारों ने जन्म नहीं लिया माते इसीलिये तुम उसे अपना शत्रु मान रही हो। अपनी हानि-लाभ से शत्रुता या मित्रता को नापना स्वार्थ जन्म वृत्ति है। मित्रता भावना से होती है कर्म से नहीं और नीति सदा ही शत्रुता और मित्रता से निरपेक्ष होती है। भीष्म कभी भी तुम्हारे शत्रु नहीं रहे है मां। सत्यवती बोली, पर मुझे ऐसा क्यों लग रहा है? व्यास बोले, क्योंकि तुम उसकी शत्रु हो, शत्रुता तुमने अपने मन में पाल रखी है। तुम कोई राज घराने या राज कुल से तो आई नहीं हो। तुम एक मछुवारे खानदान निषादकुल में पनपी हो जहां उच्च भावनाओं व संस्कारों का तुम में अभाव रहा है इसीसे तुम भीष्म को अपना शत्रु मान रही हो। तुम राजमाता होने के राजमद से दूसरों पर बलात् अपनी इच्छायें लादना चाहती हो। क्या तुमने अम्बिका और अम्बालिका से नियोग सन्तानें उत्पन्न करने की सहमति ली थी ?

सत्यवती की आंखों में क्षोभ हुआ क्योंकि यह सब उसका अपना पुत्र कह रहा था जिसपर उसका सबसे अधिक विश्वास था। व्यास बोले, शत्रुता का विष तुम्हारे मन में है इसीलिये उसका कष्ट तुम पा रही हो। भीष्म के मन में तुम्हारे प्रति कभी शत्रुता का विष प्रतिबिम्बित हुआ नहीं इसलिये भीष्म तुम्हारा कभी शत्रु नहीं बना और न ही उसने तुमसे शत्रुता पालने का कोई कष्ट उठाया। तुम यह समझती रही कि तुमने भीष्म का राज्य छीना। तुम्हारे मन में अपराध बोध था पर भीष्म तो यह नहीं मानते कि तुमने उनका राज्य छीना वे तो यही कहते हैं कि उन्होंने स्वत: ही अपने राज्याधिकार का त्याग किया है। भीष्म का विचार है कि ग्रहण और त्याग किसी की बाध्यता से नहीं अपनी इच्छा से ही किया जाता है। सत्यवती बोली, पुत्र ग्रहण का नाम सुख है और त्याग का नाम दु:ख। अर्जन से लोग सुखी होते है और विसर्जन से दु:खी। व्यास बोले, सुख, धन, सत्ता, शक्ति में नहीं है। सत्यवती बोली, तो फिर लोग धन, सत्ता और शान्ति क्यों चाहते हैं ? व्यास बोले, माता यह एक मद है। यह सुख नहीं है ये तो सब सुख मिलने के उपकरण मात्र हैं। इससे कभी शान्ति नहीं मिलती। इससे तो अवसान की आशंका का भय है और भय से पीडा है। सत्यवती बोली, पर यह सब तो सुख के लिये छोडा भी तो नहीं जा सकता। व्यास ने कहा कोई मद सरलता से नहीं छूट पाता। यदि यह बन्धन इतनी सुविधा से तोडा जा सकता तो फिर प्रत्येक व्यक्ति तोड देता। तो फिर पुत्र तुम्ही बताओ मेरे पौत्र प्रपौत्र, उनका संरक्षण, उनका राज्य, वैभव, धन, सत्ता किसको सौंप दूं। व्यास बोले भीष्म को। सत्यवती बोली यदि यह सब भीष्म को ही सौंपना होता तो फिर उससे छीनती ही क्यों ? व्यास बोले- मां अभी तुम्हारे मोह के बन्धन टूटने का समय नहीं आया है थोडी और वंचित हो लो, थोडी और यातनायें सह लो फिर समय तुम्हे सब कुछ सिखा जायेगा। वृद्ध जीव कभी सुखी नहीं हो सकता। जब तक तुम स्वयं अपने बन्धनों का कारण नहीं जानोगी तब तक अपने दु:खों का कारण दूसरों को मानती रहोगी। न ही तुम उनसे छूटने का प्रयास कर रही हो तब तक भीष्म तुम्हे अपना शत्रु ही दिखाई देगा और तुम कभी सुखी नहीं हो सकोगी। सत्यवती बोली- छोडो इन सबको और अब अम्बालिका को नियोग सन्तान का दान दो वत्स।

सत्यवती ने अम्बालिका को बुला लिया। सत्यवती के व्यवहार में न स्नेह था। यह तो शुद्ध शासक का व्यवहार था आदेशात्मक। आदेश का विरोध होनेपर दंडित होने की चेतावनी से युक्त। सत्यवती ने कहा सुनो राजवधू मेरे पास न तो अब अधिक समय है और न ही धैर्य। हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठाने के लिये, शान्तनु का वंश चलाने के लिये मुझे एक पौत्र

की आवश्यकता है और तुमसे मुझे यह पौत्र चाहिये। नियोग से पौत्र का जन्म होगा और नियोग पुरुष मेरे द्वारा नियुक्त होगा। अम्बालिका किसी की शक्ति और अधिकार का विरोध करने की आदी नहीं थी। सत्यवती तो राजमाता उसकी सास, अपने अधिकारों का भरपूर प्रयोग करनेवाली। वह अपने अधिकारों और व्यवहार से, अपनी महत्वाकांक्षाओं का पोषण कर अमानवीय होते जा रही थी। अम्बालिका की अनिष्टा स्पष्ट थी पर विरोध की क्षमता नहीं थी। विवशता के आगे कुछ नहीं कर पायी। सत्यवती ने कहा सुन अम्बालिके मैं तुम्हे किसी भ्रम में नहीं रखना चाहती। मैंने अपने कानीन पुत्र महामुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास को नियोग पुरुष नियुक्त किया है। ऋतु स्नान के पश्चात अपने शयन कक्ष में उसकी प्रतीक्षा करना और जब वह आये तो प्रसन्न वदन उसका स्वागत करना। धर्मत: उससे सन्तान की याचना करना। उसकी किसी भी तरह की उपेक्षा या अपमान मत करना। पर अम्बालिका जैसी भीत नारी का मन समझ नहीं पा रहा। वह तो भयभीत हो गई। वह भय से तुरंत ही ऋतुमति हो उठी। अम्बालिका के ऋतुकाल की पुष्टि होते ही सत्यवती ने वेदव्यास को उसके कक्ष में भेज दिया।

निशिथ काल में अम्बालिका अपने कक्ष में आ गई आशंकित मन से और भय से अनिवार्य कष्ट के रूप में नियुक्त पुरुष की प्रतीक्षा कर रही थी। अम्बालिका ने मन को मना लिया था, परिस्थितियों से समझौता कर लिया था चाहे बलात भ्रम वश ही हो। वह यथार्थ का साक्षात्कार करने को प्रस्तुत थी पर साहस से नहीं, स्वेच्छा से नहीं सिर्फ भय मात्र से। यह तो ईश्वर की सृष्टि है और वह उसकी इच्छा से चलती है उसमें दूसरा कोई क्या कर सकता है।

चारों ओर भयावह नीरवता थी। तभी कक्ष के द्वार पर नियुक्त पुरुष प्रकट हुआ। उसे देखकर भय के मारे वह चीत्कार उठी और खून सुखकर श्वेत हो गया। शरीर पान्डु रंग (पीला) पड गया और अचेत होकर गिर पडी। व्यास ने नियोग प्रक्रिया की।

समय पाकर दोनों राजवधुओं ने एक-एक पुत्र प्रसव किये। अम्बिका का पुत्र जन्म से दृष्टिहीन हुआ और अम्बालिका का पुत्र अस्वस्थ, दुर्बल और पीले रंग का पांडुरोग से ग्रसित हुआ। यह सब देख सुनकर सत्यवती की आशाओं पर पानी फिर गया। राजवैद्य ने बताया कि यह अम्बालिका का बालक पूर्ण स्वस्थ नहीं है इसके शरीर में रक्त की कमी है इसके लिये इसके सम्पूर्ण अंगों का ठीक से विकास नहीं हुआ है और न ही शरीर में इतनी क्षमता है कि वह लम्बी आयु प्राप्त कर सके। सत्यवती को लगने लगा बडा तो जन्मान्ध है। राज ज्योतिषी ने बताया यह पूरे राष्ट्र को धारण करनेवाला होगा, बलशाली हृष्टपुष्ट है तो सत्यवती ने उसका नाम धृतराष्ट्र रखा और अम्बालिका का पुत्र पान्डु रोग से ग्रसित होने से उसका नाम पांडु रख दिया। सत्यवती को लगा दोनों भी इस योग्य नहीं है कि युवराज बनाया जा सके। अब तो कुरुवंश और कुरु साम्राज्य की आज भी वही स्थिति है जो इन दोनों के जन्म के पूर्व थी। दो-दो पौत्र होते हुये भी हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठाने योग्य कोई भी नहीं है पर अभी भी सत्यवती की महत्वकांक्षा मरी नहीं है। पौत्र तो सत्यवती को चाहिये ही। पहला जन्मान्ध है तो क्या हुआ। अम्बिका अब उसी तरह नियोग से दूसरा प्रसव करे। एक प्रसव के बाद नारी कोई मर तो नहीं जाती है, न ही वह वन्ध्या हो जाती है। नारी तो उर्वरा भूमि है उसमें प्रजजन शक्ति है वह तो सृजन की प्रतीक है तो अम्बिका को दूसरा गर्भ धारण करना पडेगा। यह तो कोई ईश्वर का विधान या नियम तो है नहीं कि यदि पहली सन्तान दृष्टिहीन हो तो अन्य सभी सन्तानें वैसी ही होगी। तत्काल गर्भाधान सम्भव नहीं था सत्यवती को दूसरा प्रसव कराने के लिये एक साल की प्रतीक्षा करनी है।

अब सत्यवती जैसे पागल हो गई। राजमाता का क्रोध अब अम्बिका की ओर मुडा और बोली यह अभागिनी चाहती ही नहीं कि मुझे कोई स्वस्थ और समर्थ पौत्र प्राप्त हो। इसी ने रो-रोकर अपनी आंखे फोड ली और गर्भ धारण के समय आंखे मूंद ली परिणाम स्वरूप इस अभागन ने नेत्रहीन बालक को जन्म दिया। राजमाता का क्रोध बढता ही गया। अभागिनी ने यह भी नहीं सोचा कि यदि मेरा पौत्र है तो उसका भी तो पुत्र है, आगे चलकर यह भी तो राजमाता बनेगी। सत्यवती की डांट फटकार प्रलाप में बदलती चली गयी। यदि यह अभागिनी न होती तो फिर विधवा जीवन का शाप क्यों जीती। आते ही इस दुष्टा ने अपने पति को मार दिया और अब अपने पुत्र के साथ अन्याय.....। अब माता सत्यवती का क्रोध भीष्म पर बरसा एक यह भीष्म है कि

ऐसी अभागी राजकुमारियों का अपहरण कर लाया जो एक तो पहले ही राजमहल से भाग गयी और दूसरी दो वैधव्य भोग रही है। क्या उसे और कोई राजकुमारी मिली ही नहीं ? सत्यवती ने बारी-बारी से एक-एक को कोसना शुरू किया और सबकी गणना अपने शत्रुओं में करने लगी। जब सब को कोस चुकी सबपर बरस चुकी तो दहाड मार कर रोने बैठ गई।

सभी राजमाता को चकित होकर उसका यह नाटक देख रहे थे। सत्यवती एक ही समय में इतनी समर्थ, अधिकार युक्त, नियन्ता तो दूसरी ओर दीन असहाय और आर्त। जो क्रुद्ध होकर सबसे लड रही थी वह अब इतनी अनाथ के समान रो रही है। वाणी पर किसी तरह का संयम नहीं अत्यन्त क्रूर, कठोर, प्रहारक व्यंग शब्द। राजमाता के लिये किसी का सम्मान, सौहार्द्र, उपकार का कोई महत्व नहीं सिर्फ उसकी महत्वकांक्षा और स्वार्थ।

अम्बिका बोल उठी राजमाता इसमें मेरा क्या दोष है ? तो सत्यवती बोली तो फिर किसका दोष है तुम्हारा नहीं तो ? तुम दोनों बहनें जैसे कुरुकुल की शत्रु आयी हो। तुम दोनों ने जान-बूझकर सायास अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा की है और इस प्रकार की सन्तानें उत्पन्न की है जिससे मेरा प्रयोजन पूरा न हो सके। जाने किस धातु मिट्टी की बनी हो। तुम दोनों न तो अपना लाभ समझती हो और न ही अपना स्वार्थ। तुम तो यह समझती हो कि इसमें केवल मेरा ही स्वार्थ है। पता नहीं मुझसे क्या शत्रुता है तुम्हे ? मैंने सब कुछ आज तक तुम्हारी इच्छानुसार किया फिर भी मुझे तुम लोगों ने कभी सन्तोष नहीं दिया। तुमने पंगु और रुग्ण सन्ताने उत्पन्न करी। तुम्हे अपने लिये स्वस्थ बालकों को जन्म देना चाहिये था। अब मुझे तुमसे एक और स्वस्थ पौत्र चाहिये।

अब राजमाता ने दूसरे नियोग का आदेश दिया। यह अम्बिका की इच्छा तो नहीं है। उसपर किसी और की इच्छा आरोपित की जा रही है और वह कब तक दूसरों की इच्छायें पूरी करती रहेगी ? पहली बार के लिये तो अम्बिका ने स्वयं को समझा लिया था कि कुरुकुल की आवश्यकता सचमुच इतनी महत्वपूर्ण है कि यदि अम्बिका की इच्छा का दमन भी हो रहा है तो कोई बात नहीं। एक राजवंश को चालू रखने के लिये अम्बिका इतना कष्ट तो उठाने के लिये बाध्य थी पर अब तो कोई ऐसी विवशता तो नहीं थी। अम्बिका समझती है कि राजवंश की इस आवश्यकता का तो कोई अन्त नहीं और न ही राजमाता की महत्वकांक्षाओं का किन्तु यह राजवंश तो आज भी याचक बनकर वहीं का वहीं खडा है और पता नहीं कब तक खडा ही रहेगा ? तृष्णा किसी भी समस्या का समाधान नहीं होती है। वह तो भ्रम है स्वयं को धोखा देना है, मनुष्य को नचाने का उपक्रम है।

अम्बिका ने मन से निश्चय कर लिया अब नियोग में सहयोग नहीं देना है। उसे कोई और सन्तान नहीं चाहिये। अब इससे बचने के लिये कोई युक्ति खोजनी होगी। कोई न कोई कर्म करना पडेगा। राजमाता के प्रत्येक आदेश पर वह आंखें मूंद लेती है। चुपचाप बैठे रहने से तो वह समर्थ और सक्षम नहीं बन पायेगी। राजमाता से टकराये बिना तो कुछ हो नहीं सकता। उससे बचने का तो हर सम्भव प्रयास करना ही पडेगा। इस बार वह कर्म की तरफ से आंखे खुली रखेगी और राजमाता की आदेश की ओर से कान बन्द कर लेगी। उसने इस सन्दर्भ में अम्बालिका से परामर्श किया कि वह एक पुत्र नियोग से प्राप्त करने के लिये तैयार हो जाए और उस नियुक्त पुरुष के पास चली जाए। पांडु को जन्म देने के पश्चात तो उसका मन और स्नायु तन्त्र इतना दुर्बल हो गया कि वह किसी भी प्रकार का अतिरिक्त बोझ नहीं सह सकती। तभी दोनों के मन में आया कि अपनी विश्वासपात्र प्रिय दासी मर्यादा को नियोग के लिये नियुक्त पुरुष के पास भेज दें। अम्बिका मर्यादा को अपने पास बुलाकर बोली सुन राजमाता को हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठाने के लिये एक समर्थ पौत्र की आवश्यकता है। मुझे अब फिर प्रसव होने की रंचमात्र भी इच्छा नहीं है वेदव्यास तपस्वी और महामुनि है वह राजमाता सत्यवती का कानीन पुत्र है। यह सुनकर दासी मर्यादा चौंकी। अम्बिका बोली इस बार मर्यादा मेरे स्थान पर वेदव्यास के पास तुम चली जाओ। थोडी देर नीरवता रही। मर्यादा बोली, क्या यह तथ्य गोपनीय रह जायेगा ? अम्बिका बोली, जब घटना घट ही जायेगी तो फिर इस गोपनीयता की आवश्यकता नहीं रह जायगी। तुम अपने यौवन, सौन्दर्य और सेवा से महामुनि को प्रसन्न करो। माता सत्यवती यह भी जान ले उनके पौत्र की माता दासी मर्यादा है। इस बात का विश्वास रखो तुम्हारा और तुम्हारी सन्तान का कोई अहित नहीं होगा। क्योंकि वेदव्यास की

सन्तान और उसकी माता की रक्षा राजमाता कोई भी मूल्यपर करेगी। मर्यादा राजी भी हो गई और सहमत भी। मर्यादा प्रसन्न मन से खुशी-खुशी कक्ष में जाकर बैठ गई। वेदव्यास कक्ष में आये उसे इस बार अवगुंठन के पर्दे में देख नहीं सके। मर्यादा की आंखों में इस बार स्वागत था। किसी भी प्रकार का निषेध या वितृष्णा नहीं थी अवगुंठन हटा आपके अनुग्रह के लिये तैयार हूं। वेदव्यास बोले कौन हो तुम ? मैं मर्यादा हूं। मैं राजकुल की एक दीनहीन दासी हूँ। मेरे भाग्य में न गृहस्थी है न पति और न कोई सन्तान। मेरे जीवन का भी कोई अवलम्ब नहीं है। यदि आपकी अनुकम्पा हो जाये तो मैं आपसे एक पुत्र की कामना करती हूं। व्यास सोचे मर्यादा स्वेच्छा से एक पुत्र की कामना कर रही है। वे उसकी कोई याचना अस्वीकार नहीं कर सके। वे दरिद्रता का उपहास नहीं करेंगे। वेदव्यास बोले, मैं तुम्हे नियोग सन्तान का दान दूंगा। तुम पुत्रवती बन जाओगी। तुम्हारा पुत्र अब मेरे सम्बन्ध के कारण धृतराष्ट्र और पांडु का भाई होगा। राजकुमारों के भाई की माता होने के कारण तुम अब दासी नहीं रहोगी और उन्होंने प्रक्रिया कर मर्यादा को नियोग सन्तान दान दिया।

सत्यवती को यह प्रकरण मालूम पडा वह अत्यन्त चिंतित और व्याकुल हुई। मैं कैसे भी इस वंश और राज्य को समाप्त नहीं होने दूंगी।

व्यास बोले, माता ईश्वर की इच्छा तुम्हारी इच्छा से बडी है। तुमने तो हर सम्भव प्रयत्न करके देख लिया। तुम्हारे तीन पौत्र है। सत्यवती बोली तीन नहीं दो सिर्फ। सत्यवती तीसरे को अपना पौत्र मानने को प्रस्तुत नहीं है। मर्यादा तो दासी है और वह विचित्रवीर्य का क्षेत्र भी नहीं है। उसका पुत्र न तो राजपुत्र हो सकता है और न ही मेरा पौत्र। व्यास बोले, माता आप यह कह सकती है लेकिन मेरे लिये तो तीनों भी मेरे पुत्र है और उनमें कोई अन्तर नहीं है जिसे चाहो युवराज बना लो क्योंकि राज्य संचालन का काम वैसे भी भीष्म ही करते रहेंगे, क्योंकि हस्तिनापुर की निष्ठा से बन्धे है और उनकी प्रतिज्ञा भी है। पर लगता है तुम मुझसे सहमत नहीं हो माते। सत्यवती बोली, तुम तो ऋषि कुल में पले सन्यासी। तुम दासी और महारानी में क्या अन्तर है नहीं जानते? व्यास बोले, सारे भेद सिर्फ आभास मात्र है पर मूल स्थिति में कोई अन्तर नहीं है। सभी स्थिति विश्वनियन्ता के ही रूप हैं। सत्यवती बोली, हां यही बात मैंने भीष्म में भी देखी उसके लिये ग्रहण और त्याग में कोई अन्तर नहीं है, मित्र और शत्रु को भी पहचानता नहीं है इसीलिये मैंने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को ऋषि कुलों में नहीं जाने दिया। व्यास बोले, यदि वे ऋषि कुलों में शिक्षा ले लेते उनका यह असामायिक निधन न हुआ होता। वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर जीवन जीना सीखते। स्वयं भी सुखी रहते और तुम्हे भी सुख देते। उनकी मृत्यु के लिये तुम पूरी तरह से उत्तरदायी हो। सत्यवती बोली, मैंने तो उनको सुख भोगने के लिये राजप्रासाद में रखा था। व्यास ने समझाया, माते सुख और भोग दो अलग-अलग स्थितियां है। सुख एक मानसिक स्थिति है जो भोग के अभाव में भी सम्भव है और भोग तो दु:ख का द्वार है। भोग ने कभी किसी को सुखी नहीं किया। सत्यवती बोली, जो कुछ भी हो दासी मर्यादा का पुत्र न कभी राजकुमार हो सकता है और न ही सिंहासन के लिये युवराज। तुम्हारा पुत्र होने से उसे कोई कष्ट नहीं होगा और मर्यादा भी अब दासी नहीं रहेगी पर वह रानी भी नहीं होगी और न ही वे मेरी पुत्रवधू का दर्जा प्राप्त करेगी। व्यास बोले, जैसी तुम्हारी इच्छा। माता तुमने तीन बार प्रयत्न करके देख लिया किन्तु तुम्हे अपने मनोकुल पौत्र तो प्राप्त नहीं हुआ। अब भी नियति का संकेत समझ जाओ और धैर्य धारण कर लो। कहीं ऐसा न हो कि तुम अपने दर्प में अपने लिये कोई और नयी समस्या उत्पन्न कर लो। जो बहुत वेग से दौडता है वह बहुत शीघ्र गिर भी जाता है। यह कहकर वेदव्यास तो वहां से चले गये। अब सत्यवती ने विचार किया कि युवराज बनाने का निर्णय भीष्म पर छोडना होगा।

दासी मर्यादा ने महर्षि का मन से दिल प्रसन्न कर उसे जीत लिया था उसके महर्षि से अत्यन्त बुद्धिमान ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम विदुर रखा। वेदव्यास बोले, यह विदुर बडा ही धर्मात्मा व ज्ञानी है जिसका नाम पूरा विश्व आदर से लेगा। यह वही धर्मराज यमपुरी का स्वामी है जो मांडव्य ऋषि के श्राप से इस धरा पर शूद्रकुल में जन्म लेकर आया है। जनमेजय ऋषि वैशम्पायन से बोले, ये मांडव्य ऋषि कौन थे और इन्होंने धर्मराज (यमराज) को श्राप क्यों दिया तब वैशम्पायन ने मांडव्य ऋषि के श्राप की कथा कही।

२२) यमराज (धर्मराज) को मांडव्य ऋषि का श्राप

वैशम्पायनजीने कहा- जनमेजय। बहुत दिनोंकी बात है, माण्डव्य नामके एक यशस्वी ब्राह्मण थे। वे बड़े धैर्यवान्, धर्मज्ञ, तपस्वी एवं सत्यनिष्ठ थे। वे अपने आश्रमके दरवाजेपर वृक्षके नीचे हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करते थे। उन्होंने मौनव्रत ले रक्खा था। बहुत दिनोंके बाद एक दिन कुछ लुटेरे लूटका माल लेकर वहाँ आये। बहुत-से राजा के सैनिक उनका पीछा कर रहे थे, इसलिये उन्होंने माण्डव्यके आश्रममें लूटका सारा धन रख दिया और वहीं छिप गये। सैनिकोंने आकर माण्डव्यसे पूछा कि लुटेरे किधरसे भागे ? शीघ्र बतलाइये, हम उनका पीछा करें। माण्डव्यने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजकर्मचारियोंने उनके आश्रमकी तलाशी ली, उसमें धन और चोर दोनों मिल गये। सैनिकोंने माण्डव्य मुनि और लुटेरों को पकड़कर राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने विचार करके सबको फाँसीपर चढ़ानेका दण्ड दिया। माण्डव्य मुनि शूलीपर चढ़ा दिये गये। बहुत दिन बीत जानेपर भी बिना कुछ खाये-पिये वे शूलीपर बैठे रहे, उनकी मृत्यु नहीं हुई। उन्होंने अपने प्राण छोड़े नहीं, वहीं बहुत-से ऋषियोंको निमन्त्रित किया। ऋषियोंने रात्रिके समय पक्षियोंके रूपमें आकर दु:ख प्रकट किया और पूछा कि आपने क्या अपराध किया था। माण्डव्यने कहा- मैं किसे दोषी बनाऊँ ? यह मेरे ही अपराधका फल है।

पहरेदारोंने देखा कि ऋषिको शूलीपर चढ़ाये बहुत दिन हो गये, परन्तु ये मरे नहीं। उन्होंने जाकर अपने राजासे निवेदन किया। राजाने माण्डव्य मुनिके पास आकर प्रार्थना की कि मैंने अज्ञानवश आपका बड़ा अपराध किया। आप मुझे क्षमा कीजिये, मुझपर प्रसन्न होइये। माण्डव्यने राजापर कृपा की, उन्हें क्षमा कर दिया। वे शूलीपरसे उतारे गये। जब बहुत उपाय करनेपर भी शूल उनके शरीरसे नहीं निकल सका, तब वह काट दिया गया। गड़े हुए शूलके साथ ही उन्होंने तपस्या की और दुर्लभ लोक प्राप्त किये। तबसे उनका नाम अणीमाण्डव्य पड़ गया। महर्षि माण्डव्यने धर्मराजकी सभामें जाकर पूछा कि मैंने अनजानमें ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसका यह फल मिला ? मेरी तपस्याका बल देखो। धर्मराजने कहा, आपने एक छोटे-से पतंगेकी पूँछमें सींक गड़ा दी थी। उसीका यह फल है। जैसे थोड़ेसे दानका अनेक गुना फल मिलता है, वैसे ही थोड़ेसे अधर्मका भी कई गुना फल मिलता है। अणीमाण्डव्यने पूछा कि ऐसा मैंने कब किया था ? धर्मराजने कहा, बचपनमें। इसपर अणीमाण्डव्य बोले, बालक बारह वर्षकी अवस्थातक जो कुछ करता है, उससे उसे अधर्म नहीं होता; क्योंकि उसे धर्म-अधर्मका ज्ञान नहीं रहता। तुमने छोटे अपराधका बड़ा दण्ड दिया है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि समस्त प्राणियोंके वधकी अपेक्षा ब्राह्मणका वध बड़ा है। इसलिये तुम्हें शूद्रयोनिमें जन्म लेकर मनुष्य बनना पड़ेगा। आज मैं संसारमें कर्मफलकी मर्यादा स्थापित करता हूँ। चौदह वर्षकी अवस्थातक किये कर्मोंका पाप नहीं लगेगा, उसके बाद किये कर्मोंका फल अवश्य मिलेगा।

इसी अपराधके कारण माण्डव्यने शाप दिया और धर्मराज शूद्रयोनिमें विदुरके रूपमें उत्पन्न हुए। वे धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रमें बड़े निपुण थे। क्रोध और लोभ तो उन्हें छू तक नहीं गया था। वे बड़े दूरदर्शी, शान्तिके पक्षपाती और समस्त कुरुवंशके हितैषी थे।

२३) पांडु को हस्तिनापुर राज्य का राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय धृतराष्ट्र, पान्डु और विदुर के जन्म से कुरुक्षेत्र कुरुजांगल प्रदेश व कुरुवंश तीनों की ही बडी उन्नति हुई। उस समय कृषि अच्छी होने लगी, उपज बढ़ी। समय पर वर्षा होती थी। धन-धान्य प्रचुर मात्रा में था। वृक्षों में बहुत से फल आने लगे। पशु-पक्षी भी चहकते रहते थे तथा सुखी थे। कोई अकाल नहीं था। नगर के व्यापारी, कला-कौशल, कारीगर और विद्वानों की संख्या भी अत्यधिक थी। सन्त सुखी थे। कोई चोर डाकू नहीं थे। पापियों का अभाव हो गया। सारे देश में ही सत्युग जैसा बोल बाला हो गया। न कोई कंजूस था और न ही कोई अकालीन मृत्यु को प्राप्त होता था। ब्राह्मणों के घरों में उत्सव होते रहते थे। भीष्म बड़े ही यत्न से धर्म की रक्षा करते थे। उन दिनों सर्वत्र धर्म का शासन था। धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर के कार्यों की प्रशंसा हो रही थी। भीष्म बडी सावधानी से इन बालकों की रक्षा करते थे। इन बालकों के समयोचित सभी

संस्कार हुये। तीनों बालकों ने अपने-अपने अधिकारानुसार अस्त्र संचालन, शास्त्र ज्ञान सम्पादन किया। सबने अश्वरोहण, गज शिक्षा और नीतिशास्त्र का अध्ययन किया। इतिहास पुराण तथा अन्य सभी विषयों का ज्ञान किया। सभी विषयों पर उनका निश्चित मत था। मनुष्यों में पृथ्वीपर सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर पांडु थे और सबसे अधिक बलवान शक्तिशाली धृतराष्ट्र। विदुर के समान धर्मज्ञ और धर्मपरायण तीनों लोकों में कोई न था। लोग यही कहते थे कि वीर क्षत्राणी माताओं में काशी नरेश की कन्याये, देशों में कुरु जांगल, धर्मज्ञों में भीष्म और नगरों में हस्तिनापुर सर्वश्रेष्ठ हैं।

अब धृतराष्ट्र १२ वर्ष का हो गया। पान्डु ११ वर्ष और विदुर १० वर्ष के बालक थे। धृतराष्ट्र में दर्प आ गया। कुरुओं के राजवंश में जन्मने से सब कुछ सहज प्राप्त है। करना कुछ भी नहीं चाहता और करता भी कुछ नहीं था। धीरे-धीरे वह अहंकारी हो गया। माता सत्यवती की तरह स्वार्थी और महत्वकांक्षी हो गया। वह क्रुद्ध होकर आक्रामक हो गया। पांडु मन का सरल था। आत्म पीडन जानता था। धृतराष्ट्र धूर्त था। पांडु को जो मन में था वही जिव्हा पर था और वही उसके व्यवहार में था। धृतराष्ट्र वाणी और व्यवहार का बहुत मीठा पर मन में बहुत कटुता। भाग्य ने उसे वंचित किया है तो वह भी दूसरों को वंचित करने में तनिक भी संकुचित नहीं होता। विदुर किताबों का पंडित वह अपने तात श्री भीष्म से प्रश्न करते रहता था जैसे धर्म क्या है ? धर्म की गति कौनसी ? नीति क्या कहती है ? सृष्टि का स्वरूप कैसा है ? ईश्वर का स्वरूप क्या ? समाज क्यों ? राज्य की आवश्यकता किसलिये ? राजा का क्या कर्तव्य ? इत्यादि-इत्यादि।

कृपाचार्य इन तीनों से बडा है। पिता शान्तनु कृप और इसकी बहन कृपी को वन से लेकर आये थे। यह ऋषि शरद्वान की सन्ताने है। राजाश्रित होकर इनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा राजवंश में भीष्म की देखरेख में ही हुई थी। शरद्वान ऋषि ने कृप को धनुर्विद्या का अभ्यास करा दिया था। अब कृपाचार्य पांडु को भी शस्त्राभ्यास कराते थे। कृप और कृपी दोनों वयस्क हो गये। उनके विवाह की चिन्ता। विवाह की चिन्ता अब पांडु, धृतराष्ट्र व विदुर की भी। भीष्म मन ही मन सोचते है क्या सोचता है मनुष्य और क्या हो जाता है। वे तो गृहस्थी के जंजाल में पडना नहीं चाहते, इससे वे अपने आपको मुक्त रखना चाहते थे और देखो प्रकृति ने कितनी बडी गृहस्थी उनके चारों ओर खडी कर दी माता सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिका, मर्यादा, धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर, कृपाचार्य, कृपी। इतना बडा कुटुम्ब तो धन सम्पत्ति, दास-दासियां, आचार्य, सैनिक, गौशाला, गजशाला, अश्वशाला ये सब भी तो चाहिये। यह सब भीष्म का तो नहीं है। भीष्म तो इन सबका मात्र संरक्षक है। पर यह सब किसका है? फिर भीष्म ही इन सबके लिये क्यों चिंतित है ?

वेद व्यास ने कहा था कि सृष्टि में तो सारे जीव समान है सिर्फ भेद है हमारे मन से। प्रकृति ने तो सबको समान अधिकार दिये है। सब अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार कर्म करते हैं और भोगते हैं। सूर्य किसी जाति, वर्ण, लिंग का भेद कर प्रकाश नहीं देता। मां गंगा किसीसे यह नहीं पूछती कि वह कौन है, किस जाति का है ? सबको अपना जल प्रदान करती है। वायु किसी को भी स्पर्श से वंचित नहीं करता। द्वैपायन व्यास के मन में भी धृतराष्ट्र, पांडु व विदुर में कोई अन्तर नहीं है। प्रकृति ने तो किसी को दास अथवा स्वामी नहीं बनाया। यह तो सिर्फ हमारा सामाजिक विधान है। सत्यवती को तो समाज में रहना था। इसलिये वह अपने कानीन पुत्र व्यास को वन में छोडकर चली आयी थी। कभी फिर पलटकर भी उसे नहीं देखा और न ही कोई खोज खबर ली। न ही कभी उसके रोग शोक को जानने का प्रयत्न किया। न ही कभी किसी को इसके बारे में जानकारी थी। यह जाति, वर्ण और कुलभेद ये सब तो संकुचित और संकीर्ण सोच का परिणाम है। मनुष्य ये विभाजन तो अपनी सीमा और अक्षमता के कारण करता है। आकाश और सागर तो कभी अपना विभाजन नहीं करते। यह तो मनुष्य ही एक ऐसा है जो धरती को वो भी बाँटे रहता है, आकाश और सागर का भी। कुरुकुल भी जितनी धरती अपने आधिपत्य में है उसी को अपनी मानता है और उसके बाहर की धरती को परायी समझता है। भीष्म ये सब कुछ सोचते हैं पर उस पर अमल नहीं कर सकते क्योंकि वे विभिन्न

वर्गों में विभाजित मानव समाज में रहते है। उनको उसी के अनुसार चलना पडता है। उनके सामने प्रश्न यह है कि कुरु साम्राज्य का अगला अधिकारी अब कौन ? धृतराष्ट्र कुल परम्परा की दृष्टि से सबसे बडा है। शासन का अधिकार तो उसी का है किन्तु वह जन्मान्ध है उसने तो संसार को देखा ही नहीं। वह कैसे राज काज चला सकेगा ? फिर राज उसको सौंपने का अर्थ ? प्रकृति ने जीवन का सुख और अधिकार छीन लिया धृतराष्ट्र से। अब पांडु और विदुर ही धृतराष्ट्र की दो आंखे है। भीष्म प्रजा की दृष्टिकोण से सोचते है कि प्रजा ने क्या अपराध किया है जिन्हे एक जन्मान्ध अयोग्य राजा दिया जाये ? जो स्वयं न देख सके, न जान सके और स्वयं भी कोई निर्णय न ले सके तो फिर प्रजा समाज क्यों वंचित हो ? शासन का अधिकार राज वैभव के भोग के लिये नहीं होता वह तो प्रजा पालन के लिये है। यदि अक्षम व्यक्ति राजा बन जाये तो वह प्रजा के साथ अन्याय ही करेगा। धृतराष्ट्र नेत्रहीन है पांडु अस्वस्थ है और विदुर दासी पुत्र। विदुर को न तो कुरुओं की राजसभा स्वीकार करेगी और न ही राजमाता सत्यवती। तो कोई विकल्प ही नहीं बचा अब तो पांडु को ही युवराज बनाना चाहिये। इतिहास का भी कैसा पृष्ठ है कि एक पूरे राज्य को योग्य और समर्थ राजा भी नहीं मिल रहा है। क्या यही भविष्य है प्रजा का ?

भीष्म के संरक्षण में ये बालक से युवा बन गये। इनकी शिक्षा का समय आने पर इन तीनों को भीष्म मृगया के लिये वन में ले गये वहां पर इन्हे धनुर्विद्या, गदाप्रहार, गदा युद्ध, तलवारबाजी इत्यादि में निपुण बनाया, वैसे ही इन्हे युद्ध शास्त्र, नीतिशास्त्र में पारंगत बनाया। भीष्म के मार्गदर्शन में इन्होंने वेदाभ्यास किया और विद्वान बन गये। उनकी शिक्षा-दीक्षा राजमहल में न होकर वन में गुरुकुल में हुई। तब से भीष्म भीष्माचार्य जानने लगे। कठिन जीवन की कुछ असुविधायें झेलने के अभ्यस्त बनाये गये। विदुर को मृगया कर्म अकारण हिंसा लगा। उसे अच्छा नहीं लगा। यह तो निरीह पशुओं का शस्त्र बल से अकारण उनका वध था। इसे यह क्षत्रियों की क्रीडा कोई सम्मानजनक नहीं लगी। विदुर इससे सहमत नहीं थे। पशुओं और पक्षियों के वध में कौनसा शास्त्राभ्यास ? दम्भ भरा असत्य जीवन जीने से अच्छा है कि व्यक्ति स्वच्छ और सत्य जीवन व्यतीत करे चाहे वह असुविधापूर्ण ही हो। क्षत्रियें का संकल्प हिंसा नहीं है उसका संकल्प है न्याय। धृतराष्ट्र में मत्सर है, पाखंड है। सरल प्रकृति का नहीं है। विदुर अन्याय, हिंसा और क्रूरता को रोकने में असमर्थ होते तो वे उनमें सहयोग भी नहीं देते। विदुर को लगा भीष्म तो पितामह की तृष्णाओं के वाहक है। उन्हे तो राजमाता की प्रत्येक उचित अनुचित आज्ञा का समर्थन करना होता है। विदुर को लग रहा है वे कही धृतराष्ट्र के पापों के भी वाहक नहीं बन जाये। पान्डु को धृतराष्ट्र के साथ समझौता करके ही चलना पडता था। जो उनका ही था वह भी पांडु उनको देते रहे। बाहर का संसार धृतराष्ट्र के लिये अन्धकारमय था। एक बार व्यक्ति किसी भ्रम को सत्य मान ले तो उसके लिये उसे प्रमाण और तर्क मिलते ही चले जाते है। धृतराष्ट्र अम्बिका से बोला, मैं सम्राट विचित्रवीर्य का ज्येष्ठ पुत्र हुं और युवराज बनने का अधिकार केवल मेरा है। अम्बिका बोली सम्राट शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र भीष्म ने तो कभी नहीं कहा कि कुरु साम्राज्य उनका है जो वस्तुत: है और तुम अब से ही यह कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, उन्होंने तो प्रतिज्ञा की थी कि वे राज्य नहीं करेंगे पर मैंने तो ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं करी थी। अम्बिका ने कहा तेरे लिये प्रकृति ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि तू राज्य नहीं कर सकता। क्योंकि तू नेत्रहीन होने से नेत्रों की ज्योति नहीं है ईश्वर इच्छा से। धृतराष्ट्र बोले, मेरे नेत्रों की ज्योति कोई ईश्वर ने नहीं छीनी है यह तो तेरी वजह से है। मुझे पितामही सत्यवती ने सबकुछ बता दिया है कि तुम तो चाहती ही नहीं थी कि मेरा जन्म हो। तुमने तो भूखी प्यासी रहकर और कष्ट सह-सह कर मुझे गर्भ में ही अन्धा कर दिया। तुम तो मुझे मार देना ही चाहती थी। किन्तु ईश्वर की इच्छा यह नहीं थी। तुम्हारे तो सभी प्रयत्नों के बावजूद भी मैं जीवित रह गया और अब भीष्म के प्रयत्नों के पश्चात भी मैं पांडु को राज्य नहीं करने दूंगा और हस्तिनापुर पर राज्य करूंगा। इससे मुझे कोई रोक नहीं पायेगा। अम्बिका को लगा यह तो मेरा पुत्र नहीं बल्कि अपनी पितामही का पौत्र अधिक है जो तातश्री भीष्म को भी गलत समझने लग गया। धृतराष्ट्र बोले पितामही का पौत्र होना तुम्हारा पुत्र होने से अधिक

गौरवपूर्ण है। वह निषाद कन्या होकर भी आज राजमाता बनी हुई है जबकि तुम राजकन्या होकर भी एक बन्दिनी दासी के समान हो। उल्टा मुझे तो यह खेद है कि मैं तुम्हारा पुत्र क्यों हुआ ? अम्बिका मन ही मन विचार करने लगी क्या वास्तव में सत्यवती की उपलब्धि मुझसे बडी है ? जिस प्रकार दूसरों को वंचित कर सत्यवती निषाद कन्या से राजमाता बनी क्या यह मार्ग उचित है? पर अम्बिका ने निश्चय किया नहीं वह उस मार्ग पर नहीं जायेगी। वह जीवन अपने ही विचारों से जियेगी।

योग्य समय आनेपर तीनों को लेकर भीष्म माता सत्यवती के पास आये माता सत्यवती तीनों को देखकर आनन्द से भर गई। तीनों ने माता सत्यवती को प्रणाम किया और चरण स्पर्श किया। भीष्माचार्य ने परिचय देना आरम्भ किया यह सूर्य के समान तेजस्वी धृतराष्ट्र है। चन्द्रमा से भी शीतल सुन्दर पांडु है और ज्ञान बुद्धि का भंडार यह विदुर है। तीनों ने माता अम्बिका और अम्बालिका का आशीर्वाद लेकर अपने-अपने आसन ग्रहण किये। ज्ञानी समझदार विदुर पांडु और धृतराष्ट्र के समीप न बैठकर अपने लिये समीप के आसन पर अगली पंक्ति में जाकर बैठ गये। विदुर को यह समझ थी कि वह राजपुत्र नहीं दासीपुत्र है। सत्यवती भीष्म से बोली, मैं इन तीनों की कार्यकीर्ति कला जानने को बहुत उत्सुक हूं। तू इनके बारे में बता। भीष्म बोले माता अपने बाल्यकाल में मैंने अपने गुरु परशुराम से जो कुछ सीखा वह सब ज्ञान पांडु को प्राप्त है। भारत वर्ष भर में पांडु के समान एक भी धनुर्धारी योद्धा नहीं है। सत्यवती ने अपनी मन्द मुस्कुरान से अपनी सम्मति प्रदर्शित की। भीष्म बोले, माता गुरु वशिष्ठ और देवगुरु बृहस्पति से जो शिक्षा मैंने राजनीति व धर्म सिद्धान्त के लिये पायी वो सब महात्मा विदुर को ज्ञात है इसलिये विदुर का कीर्तिध्वज सदा ऊंचा रहेगा व उसका नाम सारा संसार सदा आदर से लेगा। अब माता सत्यवती का ध्यान अपने नेत्रहीन पौत्र धृतराष्ट्र की तरफ गया और अधीर मन से भीष्म को पूछी पुत्र तूने मुझे धृतराष्ट्र के बारे में तो कुछ भी नहीं बताया। तब भीष्म बोले, माता धृतराष्ट्र कुरूवंश का ज्येष्ठ पुत्र है उसमें दस हजार हाथियों के समान बल है, पराक्रमी है। इसकी भुजाओं में कठोर से कठोर पत्थर तोड देने की सामर्थ्य है। पांडु और विदुर के समान ज्ञानी है। पांडु और विदुर दोनों ही धृतराष्ट्र की दो आंखे है इसलिये मैं निश्चितता से कह सकता हूं कि अब हस्तिनापुर का सम्राट धृतराष्ट्र को बनाने का समय आ गया है। सत्यवती ने इसके लिये अपनी सम्मति प्रदर्शित कर भीष्म को यह करने की आज्ञा दी। पर उसी समय विदुर अपने सिंहासन से उठ खडे हुये और आज्ञा प्राप्त कर अपना निवेदन प्रस्तुत किया और बोले, तात श्री आपने ही मुझे राजनीति की शिक्षा दी है। मैं आपके सामने कहने की धृष्टता करता हूं इसलिये क्षमा करे। नीतिशास्त्रानुसार कोई एक व्यक्ति अंगहीन हो, परिपूर्ण पुरुष न हो तो वह राज्य के सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता। ज्येष्ठ भ्राता महाराज धृतराष्ट्र दृष्टिहीन हैं इसलिये पांडु ही राज्य के योग्य उत्तराधिकारी है ऐसी मेरी सम्मति है। विदुर के ऐसा कहनेपर तभी पांडु बोल उठे नहीं यह सम्भव नहीं हो सकता। ज्येष्ठ बन्धु धृतराष्ट्र के होते मैं राज्य सिंहासन स्वीकार करने योग्य नहीं हूं। तब स्मित होकर धृतराष्ट्र बोले, जो मनुष्य स्वयं देख नहीं सकता दूसरों की सहायता की जिसे आवश्यकता है ऐसा व्यक्ति क्या राज्य भार सम्भाल पायेगा ? विदुर जो कह रहा है वह योग्य और उचित ही है। तातश्री मेरी विनती है कि राज सिंहासन पर पांडु को बिठाया जाये। धृतराष्ट्र का यह निस्वार्थ प्रेम और राज्य के लिये उदासीन आस्था देख कर सभा में शान्ति छा गई और यह सब देख कर सत्यवती कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थी। उसने भीष्म से उसके मन की भाव जानने चाहे कि इसमें उसकी क्या सम्मति है। तब भीष्म बोले, मेरी निष्ठा व लक्ष्य कुरु वंश के प्रति समर्पित है। हस्तिनापुर की सेवा करना और उसके राज सिंहासन की रक्षा करना आज भी यह मेरा कर्तव्य है, उत्तरदायित्व है परन्तु इस राज सिंहासन पर किसको बिठाना यह निर्णय पूरी तरह से आपका है। भीष्म की इन सारी परिस्थितियों का कहना विचार कर सत्यवती ने भीष्म को आदेश दिया कि राजसिंहासन पर पांडु का राज्याभिषेक करे। विदुर की न्याय नीति से पांडु का राज्याभिषेक समारोह हुआ। सबने देखा धृतराष्ट्र का निस्पृह परम्परा से किया हुआ त्याग।

२४) पांडु की दिग्विजय और धृतराष्ट्र आदि का विवाह

पांडु हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। पांडु के राज्याभिषेक होने से हस्तिनापुर की प्रजा आनन्द से भर गई। पांडु ने अपने शौर्य और पराक्रम से हस्तिनापुर की सीमाओं का विस्तार आरम्भ किया और थोडे ही दिनों में पांडु की कीर्ति पूरे भारत में फैल गयी। फिर से कुरु वंश सर्वश्रेष्ठ अतुलनीय जानने लगा। अब भीष्म पांडु के चक्रवर्ती सम्राट होने का स्वप्न देखने लगे। राजा पांडु ने भीष्म आदि बडे भाई धृतराष्ट्र श्रेष्ठ कुरुवंशियों को प्रणाम कर चतुरंगिणी सेना लेकर दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ की। ब्राह्मणों ने मंगल पाठ व स्वस्तिवाचन किया और आशीर्वाद दिये। पांडु ने सबसे पहिले दशार्ण नरेश पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की। इसके बाद मगध देश विदेह, विदर्भ इत्यादि पर चढ़ाई कर वहां के राजाओं को परास्त किया इसके बाद काशी, शुम्भ, पौन्ड्र आदि देशों पर विजय का पताका फहराया। अनेक राजा पांडु से युद्ध में परास्त हुये। सबने पराजित होकर पांडु को सम्राट स्वीकार कर लिया। हर देश से उपहार में बहुत सा खजाना, मणि माणिक्य, मुक्ता इत्यादि प्रबाल, सोना, चांदी घोडे रथ वाहन आदि भेंट में लेकर हस्तिनापुर लौट आये। पांडु ने सारा धन भीष्म और पितामही सत्यवती को अर्पण किया। माता सत्यवती के आनन्द की सीमा नहीं रही।

भीष्म के मन में आया कि पांडु का राज्याभिषेक कर उनका दायित्व समाप्त हो गया और अब वे इच्छा से शान्त और एकान्त जीवन जीने में स्वतन्त्र है। क्या भीष्म का दायित्व समाप्त हो गया ? क्या वे हस्तिनापुर छोड कर जा सकते है ? क्या अपनी प्रतिज्ञा से हस्तिनापुर में रहना आवश्यक नहीं है ? क्या माता सत्यवती को दिये वचन पूरे कर लिये ? क्या कुरुकुल सुरक्षित हो गया ? यह तो मात्र उनकी अपनी इच्छाओं की मृगतृष्णा है। वे माता सत्यवती के पास गये और बोले माता पांडु का राज्याभिषेक हो चुका और विचित्रवीर्य का पुत्र सम्राट रूप में हस्तिनापुर राज सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो चुका। अब यदि आप अनुमति दे तो हस्तिनापुर छोडकर गंगा.....

सत्यवती भीष्म का संकेत समझ गयी और बोली, तुम अब सन्यास लेना चाहते हो पुत्र। क्या हस्तिनापुर वासी सभी सुखी हो गये? सन्यास तो तुम कब का ले चुके हो। कोई कसर बाकी रखी भी नहीं है। राजमहल में रहकर भी भूमि पर ही शयन करते हो। न ही कोई तुम समारोह या मनोरंजन में आसक्त होते हो। तुम सम्राटों के नियन्ता होकर भी अंश भर राज्याधिकार का उपयोग नहीं करते हो। न तो तुम्हे राज्य का लोभ है और न ही वैभव का मद। यह तो सन्यासी से भी अधिक ही है। भीष्म बोले यह सन्यास कहां है माता ? मेरे चारों ओर तो सांसारिक प्रपंच है। मानव निर्मित नगर में व्यक्ति ईश्वर की विराटता को विस्मृत कर देता है। लगता है मेरे इस प्रस्ताव से आप सहमत नहीं है माता। सत्यवती बोली, किन्तु पुत्र धृतराष्ट्र जन्मांध है। विदुर पोथी पंडित है। एक पांडु ही है जो एक हवा के झौंके से भी बीमार हो जाता है। मैंने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को भी गद्दी पर बैठते देखा परन्तु क्या हुआ ? एक को शत्रु खा गया तो दूसरे को रोग लील गया। अब तो बडी कठिनाई से इस पांडु को पाया है। क्या तुम समझते हो कि यह इतना समर्थ हो गया कि यह द्वेषी राजाओं से लड पायेगा ? क्या यह कुरु राजाओं की कूट नीति की चाल समझ लेगा ? क्या वह रोगों के आक्रमणों को ध्वस्त कर पायेगा ? यह अभी तक तो तरुण ही है। इसका अभी तक विवाह भी नहीं हुआ है। उसे युद्ध का भी कोई अनुभव नहीं है। नादान है। आपत्ति विपदा में तुम्हारे सिवा उसका कौन है सिर पर ? एक माता जो वृद्धावस्था के द्वार खडी असहाय अभागन। भीष्म बोले, इन सब का मोह देखते हुये मेरी मुक्ति का समय नहीं आया है। सत्यवती बोली, यही तो मैं कह रही हूं पुत्र जरा सोचो और समझो।

भीष्म उठकर वहां से अपने प्रासाद में आ गये और विचार करने लगे कि यह संसार तो चक्र है और यह चलता ही रहेगा। यह सम्भव ही नहीं है कि इस व्यूह से निकला जा सके। पांडु का विवाह हो फिर उसके सन्तान हो। शान्तनु का वंश भी अजस्त्र धारा के समान चलना चहिये तब कही जाकर भीष्म का दायित्व पूरा हो। इतने में ही महारानी अम्बिका भीष्म के कक्ष में पधारी और

प्रणाम किया। अम्बिका बोली, आज पहली बार आपके प्रासाद में आने का सौभाग्य किसी विशेष प्रयोजन से प्राप्त हुआ।

वह बोली, तातश्री आज तक अपनी निजी समस्याओं को मैंने स्वयं ही सुलझाने का प्रयत्न किया किन्तु अब मेरे वश में नहीं है। धृतराष्ट्र मेरा पुत्र अवश्य है लेकिन अब वह मेरे वश में, नियन्त्रण में नहीं रहा है। इसलिये जो उसके मन में आता है बोल जाता है और अपनी स्वेच्छा से करता है। उसने अपनी स्वयं की धारणायें बना ली है और उसी के अनुसार आचरण भी करता है। वह कहता है कि मैं भीष्म नहीं हूं मैं धृतराष्ट्र हूं। मैंने कोई राज्य और नारी का त्याग नहीं किया है। भीष्म ने मेरा राज्य छीन कर पांडु को दे दिया है अब यदि मेरा विवाह नहीं होगा तो मैं कोई चुपचाप शान्ति से नहीं बैठने वाला।

भीष्म के कानों में सर्वथा कुछ अनपेक्षित और अकल्पनीय प्रवेश कर गया। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि कुरुकुल का कोई इस अवस्था का बालक इस प्रकार बात करेगा। पर लगता है यह सब समय का परिवर्तन है। अपने समय से समय पर्याप्त आगे चला गया है। अब तो भीष्म जैसे पुत्र भी नहीं होते जो अपने जीवन को माता-पिता की सम्पत्ति समझते हो। अब तो धृतराष्ट्र जैसे ही पुत्र होते हैं जो अपने माता-पिता को निजी सम्पत्ति समझते है। भीष्म परिस्थिति को तो परिवर्तित कर नहीं सकेंगे। धृतराष्ट्र भी इसी परिवार में रहेगा और भीष्म भी। अब भीष्म को अपनी अगली पीढ़ियों के अन्याय भी देखने पडेंगे और चुप भी रहना पडेगा। भीष्म बोले, तो अम्बिका उसे विवाह से कौन रोक रहा है ? अम्बिका बोली, रोक तो कोई भी नहीं रहा है किन्तु वह यह जानता है कि किसी भी स्वयंवर में कोई भी राजकुमारी उसका वरण नहीं करेगी। कोई भी पिता अपनी कन्या का विवाह किसी जन्मान्ध के साथ नहीं करेगा। किसी भी कन्या का हरण करने में वह असमर्थ है। इसलिये उसे भय है कि वह अविवाहित ही रह जायेगा। जब वह स्वयं में असमर्थ है तो उसके लिये विवाह की व्यवस्था किसी को तो करनी ही पडेगी और तातश्री वह आपके सिवा और कौन करेगा ? तातश्री पहले आप एक वृद्ध पिता के लिये युवती पत्नी लाये उसके लिये जो मूल्य आपको चुकाना पडा उसके पश्चात अपने भाई के लिये पत्नियां जुटाने का उद्योग करना पडा उसका मूल्य हमें चुकाना पडा उसे आप भली भांति जानते है। इस बार एक जन्मान्ध विकृत मस्तिष्क राजकुमार के लिये पत्नी जुटाने की समस्या है। मैं चाहती हूं कि इस बार उसका मूल्य न आपको चुकाना पडे और न ही उस कन्या को। तातश्री कृपया किसी कन्या का हरण कर उसे लाकर धृतराष्ट्र को मत सौंप देना। यह मेरी आपसे विशेष प्रार्थना है और यह कह कर अम्बिका की आंखों से आंसू टपक पडे।

भीष्म बोले मैं तुम्हारी समस्या समझ गया हूं। धृतराष्ट्र को भीष्म की तरह विरक्त नहीं होना है उसे संसार के भोग चाहिये। पर राज्य भोग नहीं है राज्य जुटाना धर्म नहीं है। राज्य एक दायित्व है वह उसी को सौंपा जा सकता है जिसमें उसको सम्भालने की क्षमता हो। राज्य पर सबसे पहला अधिकार प्रजा का होता है। यह कहना तो बडा कठिन है कि धृतराष्ट्र के विवाह का मूल्य किसी को भी नहीं चुकाना पडेगा किन्तु प्रयत्न यही किया जायेगा कि वह मूल्य कम में कम हो। अब धृतराष्ट्र पांडु और विदुर किसी के लिये भी पत्नी उपलब्ध कराने के लिये किसी कन्या का हरण नहीं होगा। अम्बिका चली गयी।

भीष्म पुन: चिन्तन में लग गये। ये सब लडके अब बडे हो गये है। एक नयी पीढ़ी, विवाह तो इन सबका करना ही है। कृप और कृपी की भी चिन्ता है। कदाचित भरद्वाज नन्दन द्रोण से कृपी का विवाह हो सकता है। पर भरद्वाज और द्रोण दोनों का पांचालों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पांचाल और कुरु सदा से ही परस्पर प्रतिस्पर्धा में रहे है। यह प्रतिस्पर्धा अनेक बार विरोध और शत्रुता में परिणित हुई है।

पांडु के विवाह के योग्य राज परिवारों की विवाह योग्य कन्याओं की सूचना भीष्म को मिली थी। गान्धार नरेश सुबल की कन्या गान्धारी। कुन्ति भोज की पोषिता पुत्री पृथा और महाराज शल्य भद्र नरेश की छोटी बहिन माद्री उन्हे अपने वंश के अनुकूल लगी। राजा देवक की दासी कन्या पारसंवी दासी पुत्री थी। यदि राजा देवक स्वीकार कर लें तो वह विदुर के लिये उपयुक्त हो सकती है।

सत्यवती को कुरु कुल की चिन्ता अधिक हो रही थी। राज्य को युवराज प्राप्त हो इसलिये उसे कुमारों का विवाह होना अति शीघ्र आवश्यक था। उसने अपनी यह समस्या भीष्म को बोल कर बताई। भीष्म बोले माता ज्येष्ठ पुत्र होने से सर्वप्रथम धृतराष्ट्र का विवाह होना आवश्यक है जो अपनी पत्नी की सहायता से मन की आँखों से यह संसार देख पायेगा। उसके लिये गांधार नरेश की पुत्री गान्धारी मुझे सर्व दृष्टि से धृतराष्ट्र के लिये योग्य लगती है। तब सत्यवती बोली पुत्र फिर तुम स्वयं गान्धार देश जाकर धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी के साथ निश्चित कर आओ।

माता सत्यवती की आज्ञा धारण कर भीष्माचार्य अपने कुरु मन्त्री कर्णिक सहित गान्धार के लिये रवाना हो गये। गान्धार नरेश सुबल अपने पुत्र के साथ अपने राजप्रासाद में द्यूत क्रीडा कर रहे थे। शकुनि पासें फेंकने में अत्यन्त पारंगत था। भीष्म का आगमन सुनकर गान्धार नरेश ने भीष्म का स्वागत किया और गंगा पुत्र भीष्म के आने का कारण पूछा। भीष्म बोले, गान्धार नरेश मैं कुरुवंश के राजकुमार धृतराष्ट्र के लिये आपकी राजकन्या गान्धारी का हाथ मांगने आया हूं। गान्धार नरेश यह जानकर आनंदित हुये कि कुरुवंश से हमारा सम्बन्ध जुडेगा।

गांधार के राजप्रासाद के एक एकान्त कक्ष में गान्धारराज सुबल, भीष्म राजकुमार शकुनि और हस्तिनापुर के मन्त्री कर्णिक परस्पर विचार विमर्श कर रहे थे। सुबल ने कहा स्वेच्छा से तो कोई भी पिता अपनी कन्या का विवाह किसी जन्मान्ध राजकुमार से कैसे कर देगा ? मैं समझ नहीं सकता कि आप यह अकल्पनीय प्रस्ताव कैसे लेकर आये। आपने हमें किस योग्य समझा। मन्त्री कर्णिक बोले, गान्धारराज राजवंश क्या अपनी सन्तानों का विवाह व्यक्तिगत सुख-दु:ख के लिये थोडे ही करते है? उसमें कही व्यक्तिगत लाभ हानि भी नहीं देखी जाती।

आप जानते है कि राजपरिवारों के सम्बन्ध तो राजनीति से परिचालित होते है। गान्धार के चारों ओर से आपको अपने पडोसी राज्यों केआक्रमण का भय है। तो फिर हस्तिनापुर आपसे मित्रता का हाथ बढा रहा है। आपकी पुत्री गान्धारी हस्तिनापुर के वैभव में हर सुख पायेगी। वह भरतवंश, पुरुवंश ययाति और शान्तनु वंश की रानी होगी। दास-दासियों, हाथी-घोडे, रथ और प्रासाद, उद्यान, स्वर्ण मणि माणिक्यों के बीच होगी। सुबल बोले, क्या ये सब नारी के लिये पति का अभाव दूर कर देंगे। कर्णिक बोले, महाराज धृतराष्ट्र देखने में सुदर्शन राजकुमार है। सिर्फ आंखे न होने से तो कोई पुरुष नपुंसक नहीं हो जाता। धृतराष्ट्र स्वयं नहीं देख सकता तो उसके लिये देखने वाले और बहुत सारे लोग है। एक बार जीवन में द्यूत खेलकर ही देख लीजिये कि आपका पासा किस ओर पडता है ? तो फिर मैं क्या आपकी सहमति मान लूं। सुबल बोले, महामन्त्री आप बडे चतुर हो आपके स्वामी को आप जैसा मन्त्री प्रवर मिला।

पर आप धृतराष्ट्र के लिये गान्धारी को क्यों मांग रहे है। परन्तु गंगा पुत्र, राजकुमार धृतराष्ट्र आयु में भी बडे हैं और दृष्टिहीन है। मेरी कन्या का जीवन भर साथ निभना मुश्किल होगा। शकुनि बोला आप गान्धारी को पांडु के लिये क्यों नहीं मांगते आप मेरी बहिन गान्धारी को चन्द्रवंश कुल में हस्तिनापुर ले जाने के इच्छुक है तो ऐसा क्यों नहीं करते। गान्धारी पीछे पर्दे से निकलकर बोली, पिताश्री बीच में बोलने से मुझे क्षमा करे। पति चुनने का मेरा अपना अधिकार है। यह मेरा अधिकार मुझे मिलना चाहिये। गंगा पुत्र भीष्म ने कुरु राजकुमार धृतराष्ट्र के लिये मुझे चुना है यह मेरा सौभाग्य है। उन्होंने कोई मेरे सौन्दर्य पर रीझ कर मेरा चुनाव नहीं किया है। मैं धृतराष्ट्र के जीवन में सम्पूर्ण रूप से समा जाऊंगी इसी विश्वास पर उन्होंने मेरा चयन किया है। गंगा पुत्र व मेरे पिताश्री मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि यह रिश्ता मुझे स्वीकार है और मेरे पति धृतराष्ट्र का दुख अपना दुख मानकर मैं भी अन्धकार के सागर में डूब रही हूं क्योंकि इस प्रकाश का अब मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं है।

गान्धारी ने भीष्म के सामने ही अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। गान्धारी सुबल की पुत्री सब लक्षणों से सम्पन्न है और उसने भगवान शंकर की आराधना से सौ पुत्रों की प्राप्ति का वरदान भी प्राप्त कर लिया था। जब गान्धारी को यह बात मालूम हुई कि

मेरे भावी पति नेत्रहीन है तब उसने भी एक वस्त्र की कई तह करके अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। पतिव्रता गान्धारी का यह निश्चय था कि मैं भी अपने पति के अनुकूल ही रहूंगी।

मुझे यह आशीर्वाद दें। पिताश्री गान्धार नरेश ने अपनी पुत्री को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात गान्धारी आशीर्वाद के लिये भीष्म के पास गयी। तब भीष्म बोले, गान्धारी तेरी प्रतिज्ञा हर आशीर्वाद से श्रेष्ठ है इसलिये तुझे आज इतना ही आशीर्वाद देता हूँ कि अखंड सौभाग्यवती हो।

सुबल बोले, मैंने निश्चय कर लिया है। मैं आपके प्रस्ताव से सहमत हूं। विवाह गान्धार में नहीं हस्तिनापुर में हो। गान्धारी के साथ उसका भाई शकुनि उसे कल प्रात: हस्तिनापुर पहुंचा देगा।

धृतराष्ट्र के लिये योग्य पत्नी का चुनाव कर भीष्म हस्तिनापुर में आये और सत्यवती को पूरा वृत्तान्त सुनाया।

शकुनि रथ से हस्तिनापुर में उतरा। राजकुल के अनेक लोग उनका स्वागत करने के लिये नगर द्वार पर उपस्थित थे। भीष्म आगे बढे और बोले स्वागत गन्धार कुमार हस्तिनापुर में फिर उन्होंने शकुनि का परिचय माता सत्यवती से कराया। शकुनि ने आगे बढकर सत्यवती के चरण स्पर्श किये। अब शकुनि ने अवलम्बन देकर गान्धारी को रथ से नीचे उतारा। सत्यवती ने गान्धारी को अपनी भुजाओं में भर लिया। गान्धारी ने राजमाता सत्यवती को प्रणाम किया। सत्यवती ने पूछा, यह आँखों पर पट्टी किसलिये है गान्धार कुमारी ? गान्धारी ने बताया आर्ये पितामही जिसका पति प्रज्ञा चक्षु हो उसकी पत्नी को अपने धर्म नेत्रों का उपयोग करने का अधिकार नहीं है। मैं तो यह समझी थी तुम धृतराष्ट्र का सहारा बनोगी और धृतराष्ट्र तुम्हारी ही आंखों से देखेगा। गान्धारी ने स्थिर वाणी में कहा कोई भी पतिव्रता नारी किसी भी क्षेत्र में अपने पति से स्पर्धा नहीं करती। गान्धारी ने हस्तिनापुर में प्रवेश करने से पहिले ही आंखों पर पट्टी बांध ली। उसने अभी तक कौरवों का वैभव भी नहीं देखा और न ही राजमाता सत्यवती के अधिकारों का रूप। न अभी तक भीष्म की गरिमा को जाना है। सत्यवती को गान्धारी से डर लगने लगा कि वह ज्येष्ठा है कही यह बखेडा लेकर न बैठ जाये कि राज्य धृतराष्ट्र का है या पांडु का। कहीं गान्धारी को अन्धा पति मिलने का प्रतिवाद तो नहीं। कहीं कुरुवंश की कोई अवहेलना तो नहीं ? कुरुकुल की परम्परा बढानेवाली उज्ज्वल करनेवाली गन्धारी धृतराष्ट्र को पत्नि रूप में प्राप्त हुई और सत्यवती को आनन्द हुआ। बडी धूमधाम से धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी से हुआ। गान्धारी अपने चरित्र और सद्गुणों से अपने पति और कुरु परिवार को प्रसन्न रखने लगी।

विवाह के पश्चात धृतराष्ट्र और गान्धारी को मिलने के लिये एकान्त मिला। तो धृतराष्ट्र बोला, तुम बहुत प्रिय भाषिणी हो गांधार राजनन्दिनी। किन्तु तुमने तो बडा त्याग किया एक उस पुरुष के लिये जिसे तुमने कभी देखा नहीं, कोई वार्तालाप भी नहीं किया। गान्धारी बोली, यह त्याग नहीं है यह तो स्वीकार है आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, कैसा स्वीकार ? गान्धारी बोली, आपके व्यक्तित्व का, आपकी शक्ति का और सीमाओं का। धृतराष्ट्र बोला, धीरे-धीरे बोलो गान्धारी कोई सुन लेगा। तुम नहीं जानती इस सारे हस्तिनापुर में मैं अकेला हूं। पितामही सत्यवती, पितृव्य भीष्म, पांडु, विदुर यहां तक कि मेरी माता अम्बिका भी ये सब मेरे विरुद्ध और पांडु के पक्ष में है। मन्त्रिगण, कुरु प्रमुख, सैनिक सब के सब उनके आदेशों में है और मैं एकदम अकेला हूं। गान्धारी बोली, आर्य पुत्र अब आप अकेले नहीं है मैं जो आपके साथ हूं। मेरे साथ मेरा भाई शकुनि है। मेरे पिता गान्धार नरेश सुबल है। हम सब आपके हैं फिर अब आप अकेले कहां है ? धृतराष्ट्र बोला यह सब तो मैंने सोचा ही नहीं था ओह मेरी प्रियतमा तुम तो मेरी पत्नी ही नहीं शक्ति भी हो। गान्धारी बोली, आर्य पुत्र यह राज्य आपका है और आपका ही रहेगा। धृतराष्ट्र बोला, पितृव्य भीष्म तथा पितामही सत्यवती ने निर्णय लिया है कि जन्मान्ध राजकुमार सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता। गान्धारी बोली, उनका निर्णय ठीक है फिर भी सिंहासन का अधिकार उसी का है इसका अर्थ यह है कि उसके स्थान पर जो कोई भी सिंहासन पर बैठ रहा है वह ज्येष्ठ राजकुमार के निमित प्रतिनिधित्व कर शासन कार्य चला रहा है। राज्य ज्येष्ठ राजकुमार का ही रहेगा। जिस दिन ज्येष्ठ राजकुमार का पुत्र जन्म ले

लेगा उसे ही हस्तिनापुर का युवराज घोषित किया जायेगा। यह वचन मैं आपको देती हूं कि पांडु का पुत्र जन्म ले उससे पहले मैं आपके पुत्र का प्रसव करूंगी। धृतराष्ट्र को लगा यह उसकी पत्नी ही नहीं वह तो उसकी भाग्य लक्ष्मी है। धृतराष्ट्र को तो कभी नहीं लगा कि उसका उत्तराधिकारी कभी हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर बैठ पायेगा।

यदुवंशी शूरसेन और मरिषा की पुत्री पृथा नाम की बडी ही सुन्दर कन्या थी वसुदेव जी इसके भाई थे। शूरसेन ने अपनी इस पुत्री को अपनी बुआ के लडके कुन्तिभोज जिसके कोई सन्तान नहीं थी उसे दत्तक (गोद) दे दिया। यह कुन्तिभोज की धर्म पुत्री पृथा कुन्ती नाम से जानने लगी। कुन्ती बडी ही सात्विक, सुन्दरी और गुणवती थी। कई राजाओं ने इसे कुन्तिभोज से मांगा था इसलिये कुन्तिभोज ने इसके स्वयंवर का आयोजन किया। कुन्ती के स्वयंवर के लिये निमन्त्रण हस्तिनापुर के राजकुमारों के लिये भी आया। धृतराष्ट्र का विवाह हो चुका। विदुर दासी पुत्र है केवल पांडु ही स्वयंवर में सम्मिलत हो सकता है। स्वयंवर में कोई किसी तरह का परीक्षण नहीं है। पांडु देखने सुनने में भी बुरा नहीं है। हस्तिनापुर का सम्राट है भरतवंशी राजाओं का स्वामी है। पांडु को वहां कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। स्वयंवर मंडप में प्रत्याशित कन्या किसी को भी स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। स्वयंवर में तो पान्डु को स्वयं ही जाना है। विदुर के लिये पारसंवी को प्राप्त करना भीष्म का ही काम है।

कुन्ती धीरे-धीरे चलती हुई स्वयंवर मंडप में आई साथ में दासियां और चारण चल रहे थे। कुन्तिभोज आये हुये सब राजाओं का व उनके कुल का परिचय दे रहे थे। कुन्ती की चर्चा आर्यावर्त के अनेक राजप्रासादों में हो रही थी। चलते-चलते वह एक से दूसरे राजा के पास पहुंच जाती थी। अब कुन्ति भोज परिचय दे रहे थे हस्तिनापुर के सम्राट पांडु का। उनके कुल का यशोगान कर रहे थे भरत, पुरु ययाति और शान्तनु, भीष्म इस कुल के विषय में कुन्ती ने बहुत कुछ सुन रखा था एक विस्तृक्त और शक्तिशाली साम्राज्य था। इसके अधीन अनेक मांडलिक राजा थे। धर्म, धन तथा वीरता के लिये प्रसिद्ध था। कुन्ती ने दृष्टि उठाकर पांडु की ओर देखा। पांडु के चेहरे पर तरुणाई फूट रही थी। नयन नक्श आकर्षक थे। कुन्ती ने वरमाला पांडु के गले में पहना दी। अंतत: उनके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह हुआ।

हस्तिनापुर आने से पहले कुंती ने मथुरा और भोजपुर का ही वैभव देखा था। यादवों का वैभव भी कुछ कम नहीं था किन्तु हस्तिनापुर को देखने के पश्चात कुन्ती को लगा कि वैभव क्या होता है ? ऊंट जब तक पहाड के नीचे नहीं आता तब तक उसे वास्तविक ऊंचाई का ज्ञान नहीं होता। भोजपुर का राज्य हस्तिनापुर के राज्य से बहुत छोटा था।

विवाह की प्रथम रात्रि में ही पांडु कुन्ती के पास आया और कहा मुझे तो आज अभी इसी वक्त दिग्विजय यात्रा के लिये जाना है कारण सीमा विस्तार ही मेरा लक्ष्य है और इसके लिये शुभ मुहूर्त अभी है अत: क्षत्राणी की तरह मुझे विदा करो। कुन्ती अपना मन मसोस कर रह गई। आंखों में आंसू भर महाराज पांडु को दिग्विजय के लिये विदा किया। अंतत: मन्त्री, ब्राह्मण, ऋषि मुनि और चतुरंगिणी सेना के साथ पांडु दिग्विजय के लिये निकल पडा। कुन्ती मन ही मन पति के विरुद्ध आक्रोश संचित करती रही पर फिर मन मार के रह गई। कुन्ती अकेली सारी रात सोचती रही उसका आगे का भविष्य क्या होगा ? जीवन का स्वरूप क्या होगा? कुन्ती के सब सपने सम्राट ने एक ही झटके में ध्वस्त कर दिये। पांडु को नारी के आकर्षण का तो इतना अधिक लोभ है और क्षमता सर्वथा शून्य। वह कामना और क्षमता के इस असन्तुलन से स्त्री प्रसंग से दूर ही रहता। पांडु अब कहीं अपमान से आहत न हो भरतवंश के नये कीर्तिमान स्थापित करने चल पडा। पांडु दिग्विजय के बहाने एक लम्बे समय तक हस्तिनापुर से बाहर रहेगा।

सत्यवती ने भीष्म से कहा पांडु यह क्या कर रहा है ? कल ही विवाह से नवोढ़ा वधू को लेकर आया है और आज ही दिग्विजय के लिये निकल गया। भीष्म बोले, मैं क्या जानूं माते फिर भी नारी पुरुष से अपने प्रेम का कुछ भी मूल्य मांग सकती है। भीष्म बोले, इस वंश में वीर कर्म के लिये आगे बढते हुये युवकों को न तो हतोत्साहित किया जाता है और न ही उसे

कायरता सिखाई जाती है।

जब कुरुवंश का सम्राट दिग्विजय के लिये प्रस्थान करता है तो उसकी वीरता की अग्नि को प्रज्वलित ही किया जाता है उसे बुझाने की परम्परा नहीं रही है। युद्ध अथवा सैनिक अभियानों में सम्राट का आदेश ही अन्तिम होता है जो सबको मान्य होता है।

भीष्म पांडु के पास आये और बोले पुत्र तुम दिग्विजय के लिये जा रहे हो। पान्डु बोले हां तात कुरु जांगल प्रदेश के आसपास के राजा बहुत उपद्रवी हो गये हैं उन्हे अनुशासित करना है। भीष्म बोले, तुम्हारा कल ही तो विवाह हुआ है। पांडु बोले, तात यदि राज धर्म विलास से पराजित हो जायेगा तो प्रजा का पालन किस प्रकार होगा ? भीष्म ने कहा पुत्र कुरूवंश सन्तान के अभाव से पीडित है इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम्हारी अधिक सन्ताने हो इसके लिये तुम एक और विवाह कर लो। पांडु ने मुग्ध दृष्टि से भीष्म को देखा।

गान्धारी धृतराष्ट्र से बोली मैंने सुना है पांडु अपनी नववधू कुन्ती को छोडकर सैनिक अभियान में निकल पडे हैं। पांडु दिग्विजय के लिये जाना चाहता है, तो पीछे से राजकाज आपको सम्भालना चाहिये। धृतराष्ट्र बोले, गान्धारी यदि राजकाज मैं सम्भाल सकता तो सिंहासन पर पांडु क्यों बैठता? शकुनि भी अच्छी तरह जानता है कि मुझे राजा क्यों नहीं बनाया गया। गान्धारी बोली, कोई बात नहीं आपको स्थायी रूपसे राज्य नहीं दिया गया लेकिन अस्थायी रूप से तो जब तक पांडु हस्तिनापुर से बाहर है मन्त्रियों और आपके शालिग्राम बहनोई शकुनि की सहायता से तो आप राजकाज सम्भाल ही सकते हैं। पितृव्य भीष्म तो अब वृद्ध होते जा रहे है उन्हे राज काज से मुक्त किया जाना चाहिये। यदि अभी से आप थोडा-थोडा राजकार्य नहीं करेंगे तो जब पूरा भार आ पडेगा तब आप कैसे कर पायेंगे। शकुनि कहता है कि राज्य के वास्तविक स्वामी तो आप ही हैं आपकी सहायता करने के लिये ही यह भार पांडु को सौंपा गया है और जब पांडु हस्तिनापुर में उपलब्ध नहीं है तो शासन की बागडोर किसी अन्य को सौंपने के बजाय आप स्वयं सम्भाले। आप अपनी सुविधानुसार अपने स्वयं के पक्ष के कुछ मन्त्री भी नियुक्त कर लें ताकि जब हमारा अपना पुत्र राज्यभार सम्भालने योग्य हो जाये तो वे मन्त्री हमारे पक्ष में रहें। शकुनि को आप राजपरिषद में शामिल क्यों नहीं कर लेते? अब धृतराष्ट्र को गान्धारी स्वप्न दिखा रही है कि ये धन, सम्पत्ति, राजसेना, राजप्रासाद सम्पदा दासदासियां ये सब उसके हैं और उसका पुत्र राजा होगा लेकिन परिवार का पूरा अधिकार तो पितामही सत्यवती और पितृव्य भीष्म के हाथ में है। क्या वे ऐसा सम्भव होने देंगे ? वे तो यही कहेंगे कि धृतराष्ट्र का राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। राज्यपर तो प्रजा का अधिकार है। प्रजा का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि राज्य को एक सुयोग्य राजा मिले जो धर्मत: उसका पालन कर सके और मैं तो जन्मान्ध व्यक्ति हूं तो प्रजा मुझे कैसे स्वीकार करेगी यही कहेगी गान्धारी जो अपना ही पालन नहीं कर सकता वो प्रजा का क्या पालन करेगा ? गान्धारी उग्रता से बोली, नहीं मैं आपसे सहमत नहीं हूं। यह राज्य पितृव्य भीष्म का नहीं ये तो आपके पिता सम्राट विचित्रवीर्य का है। शकुनि कहता है कि राज्य ऐसे ही मिलता नहीं है उसे तो छीनना पडता है, प्राप्त करना पडता है। धृतराष्ट्र बोले, उद्यम का आधार अधिकार होता है और मेरा तो अधिकार ही नहीं है। सफलता सम्पूर्ण अधिकारों की कसौटी है। शकुनि तो अधिकार विहीन उद्यम में विश्वास करता है। सफल होने पर अधिकार स्वत: आ जाते है। शकुनि कोई राजनीतिज्ञ है या विधान निर्माता ? गान्धारी बोली, आर्य शकुनि कहता है प्रत्येक राजनीतिज्ञ विधान निर्माता होता है और प्रत्येक शास्त्र निर्माता कहीं न कहीं राजनीति के खेल खेलता है। गान्धारी बोली, शकुनि कहता है यदि जीजाश्री ऋषियों और धर्म की नीतिपर चलते रहे तो राज्य उन्हे प्राप्त नहीं हो सकता और यदि राज्य ही चाहिये तो नीति और धर्म का आग्रह छोडना पडेगा। धृतराष्ट्र बोले, देखो गान्धारी शकुनि तो राज्य हडपने की बात करता है लेकिन नीति कहती है कि धर्म का आश्रय छोडने से अन्याय का जन्म होता है और अन्याय से विनाश की प्रक्रिया शुरु हो जाती है और क्षय होने लगता है। गान्धारी ने अब बात को बदल दिया और बोली, पांडु क्या अपनी नवविवाहित को छोडकर अब भी दिग्विजय के लिये जा रहे हैं तो फिर किसलिये

विवाह किया ? धृतराष्ट्र बोले, यह तो क्षत्रिय धर्म है। तब गान्धारी हंस कर बोली, तुम पुरुषों में तो सब स्थानों पर बीच में धर्म और कर्तव्य आडे आ जाता है। अब कुन्ती से पांडु को युवराज नहीं प्राप्त हो सकता। हमारा पुत्र पांडु के पुत्र होने से पहले जन्म लेगा और वह युवराज बनेगा। धृतराष्ट्र के मन में अब धीरे-धीरे शकुनि की राजनीति घर करने लगी।

पान्डु दिग्विजय करने के लिये निकल पडा। दिग्विजय करते-करते पांडु मद्र देश की सीमाओं से जा टकराया। मद्र देश के राजा शाल्व की बहिन अत्यन्त सुन्दरी, रूपमयी युवती माद्री युद्ध में रथ का संचालन कर रही थी। मद्र नरेश शल्य ने पांडु से दोस्ती का हाथ बढाया और इस युद्ध की विजय के उपहार स्वरूप अपनी बहिन माद्री को पांडु के साथ ब्याह दी। सम्मान तो अपने प्रेम और विश्वास पर निर्भर है और उसे स्त्री अपने गुणों से अर्जित करती है। सामाजिक समस्याओं का समाधान तर्क से होता है। मद्र नरेश ने पांडु से पूछा, इस दूसरे विवाह से महारानी कुन्ती को तो कोई आपत्ति नहीं होगी ? पांडु बोले, यह तो कुन्ती से ही पूछना पडेगा इसे वह कैसे स्वीकारेगी लेकिन मद्र नरेश आपका यह दिया हुआ उपहार अत्यन्त अद्वितीय है और इसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। विवाह के पश्चात वधुयें कभी अपने पितृकुल में नहीं लौटती। शल्य ने प्रसन्नचित्त हो अपनी यशस्विनी एवं साध्वी बहिन माद्री पांडु को ब्याह दी। उसके साथ विधिपूर्वक विवाह करके पांडु हस्तिनापुर लौटे।

भीष्म ने राजा देवक की दासी पुत्री पारंसवी जो अत्यन्त सुन्दरी युवती है मांगकर परम ज्ञानी विदुर के साथ उसका विवाह कर दिया।

कुन्ती ने जब सुना पांडु ने दिग्विजय यात्रा में मद्र देश को जीत कर वहां की राजकुमारी माद्री से एक और विवाह कर लिया है। एक और विवाह करने के लिये पांडु को पितृव्य भीष्म ने ही उसे उकसाया है। इससे कुन्ती के मन को बडी ठेस पहुंची। कुन्ती का मन रोने को हो रहा था।

कुन्ती मन ही मन अनेक प्रश्नों का समाधान ढूंढ रही है और मन में विचार कर रही है। क्या अब कुन्ती के लिये कोई आशा नहीं रही ? पांडु उसके पास कभी लौटकर आयेगा ? वह पांडु को समझायेगी। वह उससे प्रसन्न है या अप्रसन्न। पत्नी को अकारण त्यागने का तो कोई सामाजिक विधान नहीं है। सहसा कुन्ती का आक्रोश भीष्म की ओर मुडा। बडा ही निस्पृह त्यागी महात्मा बना हुआ है। जो पति पत्नी को किसी सन्धि तक पहुंचने का अवसर ही नहीं देता और अपने आपको धर्मनिष्ठ कहता है। स्वयं तो विवाह करता नहीं किन्तु दूसरों के लिये पत्नियां जुटाते फिरता है जाने इसमें उसे क्या सन्तोष प्रात होता है। इससे कहीं वह अपने मन की सन्तोष की क्षतिपूर्ति तो नहीं करता। अपने लिये पत्नी का अभाव खलता होगा तो अन्य किसी के लिये पत्नी का प्रबन्ध कर सन्तोष पाता होगा। कभी उसने स्त्री की ओर से भी सोचा है। सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिका और माद्री क्या सोचती है ये सब इसके लिये। वे तो इसे शापित ही करती होगी। कौन आयी है यहां पर अपनी इच्छा से ? कैसा धर्मात्मा है यह? केवल अपनी जिद्दपर अडे रहना तो धर्म नहीं हो सकता। एक बार भी तो उसने नहीं पूछा क्या कुन्ती तुम्हे पांडु से कोई तकलीफ है या पान्डु को तुमसे कोई परेशानी है ? क्या तुम्हे पांडु अच्छा नहीं लगा ? या पांडु के मन को तुम नहीं भायी तो क्यों? और उठकर चल दिया पांडु को समझाने अन्य दूसरे विवाह की आवश्यकता समझाने। पांडु को तत्काल दूसरी पत्नी किसलिये चाहिये थी ? भीष्म ने दाम्पत्य जीवन में स्थिरता लाने के लिये पांडु को समझाना क्यों नही आवश्यक समझा ? यदि आज कुन्ती भीष्म से कहे कि उसे पांडु प्रिय नहीं है तो क्या भीष्म उसके लिये दूसरे पति का प्रबन्ध कर देंगे ? कुन्ती इन्ही ऊहापोह के विचारों में उलझी रही और उसे लगा यह समाज मात्र पुरुषों का है। यहां पर पुरुषों का ही आधिपत्य है उसीकी सुविधाओं के विकल्प ही जुटाये जायेंगे। उसी के अहंकार की पुष्टि होगी। नारी तो निर्जीव पदार्थ है। यह पुरुष तो एक नये खिलौने के समान दूसरी पत्नी ले आयेगा। कितनी असहाय महसूस कर रही है कुन्ती अपने आपको। कदाचित स्त्री जननी बनकर ही पुरुष पर अपना पूर्ण अधिकार कर सकती है। कुन्ती को लगा वह अपने भाग्य को कितना भी दोष दे लेकिन वह पांडु को क्षमा नहीं कर सकती।

अब कुन्ती अपने आपसे समझौता कर रही है। भाग्य ने उसके लिये कोई विकल्प नहीं छोडा है। उसे पांडु के दर्प, अहंकार

और उपेक्षा को ही नहीं उसकी प्रताडना को भी मौन मूक सम्मति से सहना पडेगा। यदि माद्री ही पांडु की प्रिया है तो उसे भी स्वीकारना पडेगा। उसे इस अधिकार को भी मान्यता देनी पडेगी। उसे तो अपनी शक्ति किसी भी प्रकार बनाये रखना है। उसे अब समर्थ बनना होगा। वह पांडु को त्याग तो नहीं सकती। उसके विरुद्ध भी नहीं जा सकती। उसको पुत्र पांडु से ही प्राप्त होंगे और अधिकार भी पांडु से ही मिलेंगे।

यह कहां कि बात है कि आधी रात को उठकर चल दिया। दूसरे की भावनाओं का उसे रत्तीभर भी सम्मान नहीं। कुन्ती क्या बात करने योग्य भी नहीं रही ? पांडु तो पांडु लो अब माद्री और आ गई। उसे भी तो मालूम था कि पांडु की एक पत्नी पहिले से ही है जिसे वह पहली रात ही कामक्रीडा से वंचित कर अतृप्त छोड आया। क्या बाध्यता थी उसकी कि वह पांडु से ही विवाह करे ? सब कहते है जब वह इतनी ही सुन्दर है, सृष्टा ने उसे यौवन और रूप भरपूर दिया है तो संसार में पुरुषों का क्या अभाव है? क्या उसे और कोई राजा या राजकुमार या सम्राट नहीं मिल सकता था ? पांडु की ही दूसरी पत्नी बनना क्या इतना ही सम्मानजनक और आवश्यक था ? क्या वह किसी और राजा की पट्टमहिषी बनना स्वीकार करना नहीं चाहती थी? कुन्ती का मन माद्री को पांडु से अधिक दोषी ठहरा रहा था। यदि नारी ही दूसरी नारी पर अत्याचार न करना चाहे तो पुरुष क्या कर सकता है पर जाने क्यों नारी ही नारी की दुश्मन है।

पांडु दिग्विजय करके हस्तिनापुर लौटा चारों ओर पांडु की जयजयकार हुई साथ में माद्री भी नई दुल्हन बनकर आयी। कुन्ती ने राजमहल के द्वार पर आकर पांडु का स्वागत किया। पांडु ने कुन्ती को बताया ये माद्री है मद्र देश की राजकुमारी मेरी नयी छोटी पत्नी। कुन्ती ने अब अपने मन से समझौता कर माद्री को अपनी छोटी बहिन मानकर सहर्ष उसका स्वागत किया और माद्री से कहा हस्तिनापुर में माद्री तुम्हारा स्वागत है और उसे लेकर अन्त:पुर में राजमाता सत्यवती तथा माता अम्बालिका से मिलाने के लिये ले गई। माता सत्यवती ने और भीष्म ने आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात कुन्ती ने उसे उसके कक्ष में भेज दिया।

पांडु एक रात्रि भी माद्री के साथ व्यतीत नहीं कर पाया और रात को ही उठकर दिग्विजय के लिये चल पडा। यह सुन देखकर भीष्म और सत्यवती अत्यन्त हताश लग रहे थे। माद्री का भी आकर्षण पांडु को रोक नहीं पाया। भीष्म और राजमाता सत्यवती गहन चिन्ता में डूबे हुये है और अम्बालिका से पूछा क्या पांडु ने तुम्हे कुछ बताया है। अम्बालिका बोली, कुछ भी तो नहीं। पांडु से मैं जब भी बात करती हूं तो वह मुझसे दूर भागने का कोई न कोई बहाना ढूंढने लगता है, कुदेरती हूं तो दार्शनिकता की बातें करता है। तर्क करती हूं तो खीझ कर चला जाता है। सत्यवती बोली पांडु पहले तो कभी ऐसा नहीं था। वह तो सदा ही आज्ञामयी पुत्र और विनीत रहा है। पांडु की शालीनता में तो कभी किसी ने सन्देह नहीं किया। सत्यवती रोष से बोली, भीष्म कहीं तुम्हारी ही तो छाया उसपर नहीं पडी ? तुम्हे भी तो नारी का आकर्षण नहीं व्यापता और पांडु को भी। दो-दो सुन्दरी युवती पत्नियों को छोडकर दिग्विजय के लिये भागा फिरता है। वे भी इसे बान्ध नहीं पायी। भीष्म सोचने लगा कही पांडु कोभी कामसुख काम यातना तो नहीं लग रहा। कहीं नारी का उसे आकर्षण नहीं होता तो वह कुन्ती के स्वयंवर में क्यों जाता ? माद्री के साथ विवाह करने के लिये क्यों सहमत हुआ ? कुछ तो बात अवश्य है कि यह नारी सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट भी होता है उसकी ओर बढता है किन्तु उसके निकट जाकर पलटकर भागता है। क्या पहली ही रात उसकी पत्नी से अनबन हो जाती है और पुन: वह उसके निकट नहीं जाता। क्या यहीं उसका दर्प आडे आता है ? वह दिग्विजय के लिये किसलिये इतना उत्सुक हो रहा है ? हमारी सीमाओं पर भी कोई आक्रमण नहीं है और न ही कोई सम्राट युद्ध के लिये ललकार रहा है जो दो-दो नवाढा रूपमती पत्नियों को छोडकर इस आतुरता से जा रहा है। तर्क पद्धति किसी नियम से नहीं मात्र अपने स्वार्थ अथवा सुविधा से परिचालित होती है। सत्यवती अधिकार पाकर समर्थ होने पर नारी का दमन चक्र नारी के विरुद्ध ही तीव्र गतिसे चलने लगता है। सत्यवती भीष्म से बोली, भीष्म यदि पांडु कुछ नहीं बताता तो कुन्ती और माद्री से ही पूछा जाये कि क्या बात है? इन दोनों के आने के

बाद से ही पांडु शान्ति से हस्तिनापुर में नहीं रह रहा। तभी माता अम्बालिका बोली तातश्री मेरा एक निवेदन है मैं कामना करती हूँ कि मेरा पुत्र दिग्विजय होकर लौटे और अपनी रानियों के साथ सुखी जीवन व्यतीत करे और प्रजा का धर्मत: पालन करे। किन्तु तात कृपया उसके लिये और रानियों की व्यवस्था मत करना। सत्यवती भीष्म से पहिले ही बोल उठी इसकी तो न जाने बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। हस्तिनापुर के लिये युवराज तो चाहिये ही। अम्बालिका बोली, इसकी चिन्ता मत करे राजमाता। युवराज तो आपको गान्धारी से प्राप्त हो जायेगा। माता संसार में कोई सिंहासन रिक्त नहीं रहता। प्रत्येक सिंहासन अपना उत्तराधिकारी स्वयं ढूंढ लेता है। सत्यवती आंखे तरेरकर अम्बालिका की ओर देखती रही और बोली भीष्म जिसे देखो वही अपने आपको बुद्धिमान समझता है जैसे साम्राज्यों का नीति संचालन उसी की बुद्धि से होता है।

गान्धारी और धृतराष्ट्र अपने कक्ष में लेटे-लेटे वार्तालाप कर रहे थे। गान्धारी बोली, आपने सुना पांडु आज फिर दिग्विजय के लिये निकल पडा। नये-नये राज्य विजय करेंगे और आपके लिये कुरु साम्राज्य का विस्तार करेंगे, धन सम्पत्ति अर्जन करेंगे। धृतराष्ट्र बोला तो फिर वे सब क्या तुम्हे मिलेंगे ? गान्धारी बोली, नहीं मुझे नहीं चाहिये। वे तो सब कुछ कुन्ती और माद्री को सौंप देंगे। माद्री और कुन्ती के पास तो वे एक रात से दूसरी बार गये भी नहीं और गान्धारी हंसने लगी। धृतराष्ट्र बोला मुझे पांडु का व्यवहार समझ में नहीं आया मैंने तो सुना है कुन्ती और माद्री दोनों ही अद्वितीय सुन्दर और आकर्षक युवतियां है। जिस किसी ने भी उनको देखा है उसीने उनकी प्रशंसा की है। गान्धारी बोली, तो फिर तुम्हे भी ऐसी चाहिए क्या ? तुम्हे वैसी स्त्री खोजने और प्राप्त करने में कोई रोक तो नहीं रहा है ? गान्धारी फिर बोली, मैं यह नहीं मान सकती कि पांडु को वीरता का मद चढा है। यह दिग्विजय पांडु के लिये एक बहाना है। कुन्ती के साथ एक रात्रि बिता कर भागने लगे तो मैंने समझ लिया कि शायद कुन्ती के साथ बनी नहीं होगी किन्तु आज फिर माद्री के साथ भी रातभर बिता न सके, यह किसी शंका को प्रश्रय करता है।

धृतराष्ट्र बोले, हो सकता है माद्री भी मन को रूचिकर नहीं लगी होगी। गान्धारी बोली, मत अपने दिल को झूठी दिलासा दो। यदि प्रथम रात्रि को पुरुष पुन: अपनी पत्नी के निकट नहीं जाना चाहता तो उसका अर्थ है कि वह अपनी पत्नी को मुंह दिखाने योग्य नहीं है और वह अपनी पत्नी से शर्म महसूस करने लगता है। धृतराष्ट्र बोले, तो गान्धारी तुम्हारा अभिप्राय क्या है? क्या पांडु काम उत्तेजना में असमर्थ है। गान्धारी बोली, मुझे तो ऐसा ही लगता है कि पांडु स्त्री प्रसंग के योग्य नहीं है। एक योद्धा पुरुष होते हुये भी मुझे तो अक्षम लगता है। मैं तो इतना ही जानती हूं कि पुरुष यदि पराजित हो जाये तो वह नारी की आँखों में देख नहीं सकता और लज्जा से आंखे झुका लेता है। धृतराष्ट्र बोला, असम्भव है। ऐसा तो किसी ने नहीं कहा। गान्धारी बोली, वैद्यक परीक्षण कराना चाहिये। इस तथ्य को क्या पांडु अपने मुख से स्वीकार करेंगे ? पांडु क्या कोई भी स्वीकार नहीं करेगा। धृतराष्ट्र बोले तो क्या कुन्ती और माद्री ऐसा कहती है ? गान्धारी बोली, भले ही मेरी बात को आप परिहास में उडा ले आपके भाई के लिये पर मेरा अनुमान शत्प्रतिशत सत्य है। अब पांडु का उत्तराधिकारी जन्म नहीं लेगा और हस्तिनापुर को उससे उसका युवराज नहीं मिलेगा। यह सत्य है। मुझे शकुनि बता रहा था।

धृतराष्ट्र के मन में उल्लास का भाव जागा वह जन्मान्ध हुआ तो क्या हुआ वह पांडु की तरह निर्वीय तो नहीं है। पांडु सम्राट हो गया तो क्या लेकिन वह पूर्ण पुरुष तक नहीं है। वह भले ही रणक्षेत्र में शत्रु की सेना का सामना कर ले किन्तु अपनी पत्नी को मुंह भी नहीं दिखा सकता। यदि यह सत्य है कि पांडु सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता तो धृतराष्ट्र तो उससे कहीं अधिक समर्थ है सन्तान उत्पन्न करने में। धृतराष्ट्र तो इतना कामी है इतनी सन्तानें उत्पन्न करेगा कि भविष्य में कुरुवंश को कोई युवराज की कमी ही नहीं रहेगी और कुरुवंश उसी के नाम से जाना जायेगा। गान्धारी बोली, आर्यपुत्र अब समय आ रहा है कि हस्तिनापुर के सिंहासन पर सम्राट पांडु का पुत्र नहीं हमारा ही पुत्र आसीन होगा। पर मात्र ये आशायें और स्वप्न ही थे। भाग्य और नियति का खेल कुछ और ही था।

माद्री कुंती से मिलने कुन्ती के कक्ष में आयी। जिस किसी ने भी माद्री को देखा था उसे एक असाधारण सुन्दरी बताया था। वह तो नारी सौन्दर्य की परिकाष्ठा थी। उसके नयन नक्श देखकर पुरुष मदहोश हो जाये इतनी सुन्दर। वह आकर्षक थी। निर्मम से निर्मम पुरुष के वह मन को लुभाने में समर्थ थी। उसके सामने कोई उदासीन रह ही नहीं पाता। अब कुन्ती के मन में पांडु का उसके पास लौटने की कोई आशा नहीं थी। कुन्ती को लगा यदि की पांडु का मन माद्री से उब गया तो उसका क्या वह तो तीसरा विवाह कर लेगा। जब दूसरा करने पर किसीने नहीं पूछा तो तीसरा करने पर कौन रोकेगा ?

पता नहीं माद्री कुन्ती के पास क्या कहने आयी है। कुन्ती ने माद्री को देखा वह तो अस्त-व्यस्त सी लग रही थी पूर्णत: ध्वस्थ। कुन्ती ने माद्री का स्वागत किया और बोली, आओ बैठो माद्री। कुन्ती ने माद्री को गले लगाया। माद्री के धैर्य का बांध टूट गया और वह कुन्ती के कन्धे पर अपना कन्धा रखकर फफक-फफक कर रोने लगी। कुन्ति ने पूछा माद्री क्या बात है? माद्री बोली कोई मेरा दोष तो बताये कि मेरा दोष क्या है ? कुन्ती सोचने लगी क्या पांडु ने उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया क्या? जब कभी भी कोई नारी पांडु की पत्नी बनकर शय्या पर पांडु के पास आती है तभी पांडु ऐसा व्यवहार करता है क्या ? तब कुन्तीने माद्री से कहा, मुझे तुम विस्तार से बताओ तुम्हारे साथ क्या हुआ। तब माद्री ने कुन्ती को हस्तिनापुर में स्वागत से लेकर पांडु से मिलन का पूरा वृत्तान्त सुनाया। अब कुन्ती को लगा यह तो वही हुआ जो कुन्ति के साथ हुआ। क्या माद्री तुम्हे अपने विवाह से पहले मेरे विषय में मालूम था कि पांडु विवाहित है तो फिर तुमने उसके साथ विवाह करने की स्वीकृति क्यों दी? माद्री बोली, दीदी बहुपत्नीत्व तो राजघरानों की प्रथा है। कुन्ती बोली, किन्तु तुम्हे यह तो पूछना चाहिये था कि पहली पत्नी होते हुये वह दूसरा विवाह क्यों करना चाहता है। माद्री बोली, पूछना तो चाहिये था पर मेरे भैया ने शायद नहीं पूछा। सम्बन्ध करने की दृष्टि से हस्तिनापुर का राज परिवार पर्याप्त कुलीन है। कुन्ती नहीं जानती कि पांडु ने उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया और माद्री भी नहीं जानती। कुलीन राजकुमारियां पाकर राजा लोग उनसे विवाह के लिये लालायित हो उठते है। कारण तो पांडु ही जानता है, वही बता सकता है उसने ऐसा क्यों किया ?

कुन्ती ने माद्री की कल्पना, दूसरों का अधिकार छीननेवाली एक दुष्ट स्त्री के रूप में की थी; किन्तु वह कुलीन राजकुमारी तो स्वयं ही इतनी दुखी है। उसकी कुलीनता के पास तो अपना ही कोई अधिकार नहीं है, वह दूसरों का अधिकार क्या छीनेगी। पोषिता राजकुमारी कुन्ती ने कम-से-कम आर्य राजकुमारियों के समान स्वयंवर में स्वेच्छा से पाण्डु का वरण किया था। उस दुखी स्त्री माद्री से उसका क्या विरोध। वे दोनों ही परिस्थितियोंकी दुष्टता से पीडित है, दोनों ही असहाय हैं, दोनों को ही किसी की सहायता चाहिए। उन दोनों में परस्पर विरोध न होकर, सहयोग होना चाहिए। वंचित जन यदि परस्पर ही वैर-विरोध रखेंगे, तो उनकी सहायता कौन करेगा। कदाचित परस्पर सहयोग से वे कभी अपना अधिकार प्राप्त कर सके।

दीदी। वे ऐसा क्यों कर रहे हैं ? माद्री ने पुन: पूछा, दासियों ने मुझे बताया, कि वे दिग्विजय के लिए जा रहे हैं।

कुन्ती बोली, सुनो माद्री- मैं भी नहीं जानती कि हमें किस अपराध के लिए दण्डित किया जा रहा है। किन्तु अपने स्तर पर मैंने निश्चय किया है कि मैं अपने पति के इस व्यवहार के विरुद्ध गुहार करने पितृव्य अथवा पितामही के पास नहीं जाऊँगी। मैंने तो इसकी चर्चा माता अम्बालिका से भी नहीं की है; और न ही करूँगी। यह सारा व्यवहार पति-पत्नी के बीच की बात है। अत: उसकी चर्चा भी हमारे मध्य ही रहेगी। यदि तुम भी मुझसे सहमत हो, तो तुम भी यही करो। इन बातों की चर्चा किसी से मत करो। किसी से अपने पति की शिकायत मत करो। अवसर आने पर हम उससे ही पूछेंगी, कि इस व्यवहार का क्या अर्थ है। हमारा ऐसा कौन-सा दोष है, जिसके कारण हमें इस प्रकार तिरस्कृत और अपमानित किया जा रहा है। मुझसे सहमत हो ?

माद्री बोली, हाँ दीदी। मैं आपके साथ हूँ। जैसा आप कहेंगी, मैं वैसा ही करूँगी।

कुन्ती बोली, सचमुच तुम बहुत सुन्दर हो, बहुत सुन्दर हैं तुम्हारे नयन। पांडु तो अभागा है, जो इन नयनों की भी उपेक्षा करके

चला गया। वह क्रोध नहीं दया का पात्र है।

माद्री बोली, मैंने सोचा था मेरा पति छीननेवाली तुम ही हो। जब वे अर्द्धरात्रि में ही मेरी शैया से उठकर चले गये, तो मैंने सोचा कि शायद वे सीधे तुम्हारे कक्ष में ही आये होंगे। पर जब मुझे मालूम हुआ कि वे दिग्विजय के लिए जा रहे हैं और वे तुम्हारे कक्ष में नहीं आते, तब मैंने तुमसे मिलने का निर्णय किया।

कुन्ती बोली, हम एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं एक-दूसरे के साथ है। जीवन में जो कुछ मिलेगा दोनों को एकसाथ मिलेगा। एक-दूसरी को वंचित कर, हमें कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। माद्री सन्तुष्ट होकर वहाँ से चली गयी।

भीष्म फिर से अपने कर्तव्यों व कृत्यों की समीक्षा करने लगे। यदि एक वंश निर्वंश भी हो गया तो सृष्टि की क्या हानि हो जायेगी? क्यों माता सत्यवती उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर सब समय हाय-हाय मचाये रखती है ? उसके मन में कौन सी आशंकाये है जो उन्हे शान्ति से नहीं बैठने देती ? और वे सतत निष्क्रिय भीष्म को नहीं होने देती। भीष्म वचनों और संकल्पों में बंधे पडे है। क्या उनका सारा जीवन द्वन्दों, विरोधों, अनिर्णयों का उलझा हुआ जाल होगा। माता सत्यवती चाहती थी कि पांडु दो चार वर्ष सुख से अपनी पत्नियों के साथ रहे। माता सत्यवती पौत्र का मुख देखना चाहती थी तो सिंहासन को राज्य का उत्तराधिकारी मिले फिर भले ही पांडु दिग्विजय हेतु जायें। वे पांडु को समझाने पांडु के पास आये और पांडु से बोले वत्स तुम तो युद्ध के लिये पूर्णत: सन्नद्ध हो क्या बात है। पांडु ने कहा तातश्री भारत खंड के राजा यह समझने लग गये हैं कि अब कुरुवंश में अब कोई योद्धा ही नहीं रहा। आप तो वृद्ध है और युद्ध से विरत हो चुके हैं। धृतराष्ट्र तो जन्मान्ध है और मुझे तो वे रोगी, भीरू कायर समझते हैं। मैं उन सबको यह दिखा देना चाहता हूं कि कुरु सम्राटों की सामर्थ्य तनिक भी कम नहीं हुई है। भीष्म को लगा पांडु जो कुछ कह रहा है उसमें कोई खास तथ्य नहीं है यह सब तो उसके ही मन के भ्रम पाल रहा है। भीष्म बोले, क्या किसी ने हमारी सीमाओं पर आक्रमण कर दिया है क्या? क्या तुम्हे किसी राज ज्योतिषी ने बताया है क्या कि दिग्विजय के लिये यही एक मात्र शुभ समय है ? पांडु बोले, नहीं तात और न ही मैंने किसी ज्योतिषी से परामर्श किया है। भीष्म बोले, पुत्र नीति कहती है तुम्हे ज्ञात होना चाहिये कि अपनी निश्चित योजना के बिना राजा तब लडता है जब शत्रु एकाएक उस पर आक्रमण कर देता है। तब उसे त्वरित गति से युद्ध में उतरना पडता है। यदि राजा अपनी योजनानुसार दिग्विजय के लिये निकलता है तो उसे अपने अमात्यों, महारथियों, सभी प्रमुखों, ज्योतिषाचार्यों, कुल वृद्धों तथा कोषाध्यक्ष इन सभी से परामर्श कर पूरी तैयारी के पश्चात ही दिग्विजय के लिये निकलना चाहिये। पांडु ने कहा मैंने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया। न ही मैंने उसकी कभी आवश्यकता समझी। आप यह न समझे कि मैंने किसी की उपेक्षा की है या मैं किसी की अवमानना करना चाहता हूं। मैं तो यह समझता हूँ कि मुझे सम्राट के समान ही आत्मनिर्भर होना चाहिये। भीष्म बोले, तुम्हारी यह प्रवृत्ति हिंस्र प्रवृत्ति है। स्वयं को समर्थ पाकर मनुष्य में पौरुष जन्मता है और असहाय पाकर हिंसा। पांडु बोले, मेरे मन में इस समय विध्वंस का तांडव जाग रहा है।

भीष्म को लगा इस असन्तुलन मन:स्थिति में पांडु का युद्ध क्षेत्र में जाना कदापि भी उचित नहीं है। भीष्म जानते हैं पांडु बहुत स्वस्थ नहीं है उसका स्नायु तन्त्र दुर्बल है। उसमें सहन क्षमता बहुत कम है। आवेश उसे बहुत जल्दी आ जाता है। भीष्म बोले, तुम्हे नहीं लग रहा है कि तुम्हारा नया नया विवाह हुआ है। अपनी दो-दो नव वधुओं के साथ समय न बिताकर इस प्रकार अनिश्चित काल के लिये दिग्विजय के लिये निकल जाना ठीक नहीं है। नारी का सामीप्य किसी पुरुष के मन में आसक्ति, आकर्षण जगाता है। पांडु बोले, लेकिन उनका सामीप्य मेरे मन में तो हिंसा जगाता है। मुझे लगता है कि उनके पास अधिक संग रहा तो मेरा नियन्त्रण खो दूंगा और कोई न कोई अनर्थ हो जायेगा।

अम्बालिका अपनी पुत्र वधू कुन्ती से मिलने उसके कक्ष में आई। अम्बालिका कुन्ती से बोली, कैसी हो कुन्ती ? अपने पति के युद्धों और विजयों के समाचार तो तुम्हे विदित ही होंगे। कुन्ती अब इसका क्या उत्तर दे उसे तो आज तक लगा ही नहीं कि

उसका एक पति है जो युद्ध कर रहा है वह जीत रहा है या हार रहा है। ये सारे समाचार, प्रश्न, समस्यायें, आशंकायें उसके लिये अर्थहीन हैं। उसके मन में तो और ही प्रश्न खडे हैं। वह अपने आप से पूछती है क्या देखा था उसने पांडु में ? क्या जानती थी वह पांडु के विषय में ? जो सीधे जाकर वरमाला पांडु को वरण कर दी। कुन्ती तो अपने आपको इस हस्तिनापुर के कारागार की बन्दिनी मान रही थी। उसका अपराध क्या है ? अम्बालिका कुन्ती से बोली, तुम मुझसे डरो नहीं पुत्री और न ही मुझे पराया जानो। मैं पांडु की मां अवश्य हूं पर तुम्हारे लिये सास नहीं मैं तो तुम्हारी माँ हूं। मैं तुम्हारे साथ अपने पुत्र के दुर्व्यवहार के कारण दु:खी हूं पुत्री। वह तुम्हे और माद्री को ब्याह कर लाया और बन्दिनी बना कर छोड गया। अपनी नववधुओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार उचित नहीं। मैं तो यह जानने आई थी पुत्री कि तुम लोगों के बीच कोई किसी तरह का मन मुटाव तो नहीं हुआ। कुन्ती इस बार बोली, नहीं माता हमारा किसीसे भी कोई मनमुटाव नहीं है। अम्बालिका ने पुछा, क्या वह कभी तुम्हारे निकट आया ? कुन्ती बोली, हां निकट आते-आते दूर चला गया। अम्बालिका बोली, पांडु दिग्विजय कर कुरुवंश को लक्ष्मी से पूरित करेगा, माता सत्यवती हर्षित हो जायेगी। भीष्म उस पर गर्व करेंगे। प्रजाजनों में उसकी जय-जयकार होगी किन्तु पुत्री तुम दोनों की दोनों कंगाल रह जाओगी। कुरुकुल की रानियों का भाग्य यही रहा है। हस्तिनापुर का इतिहास अपने आपको दुहरायेगा। यदि तुम्हारे साथ कभी कोई दु:ख असह्य हो जाये तो मुझे स्मरण कर लेना। मेरे पास तुम्हे देने को तो कुछ नहीं है फिर भी तुम्हारा दुख बांट सकूं। यह कहकर अम्बालिका वहां से चली गयी। बस कुन्ती तो इतना ही समझ पाई कि उसकी सास भी यहां सुखी नहीं है। शायद भौतिक सुखों का अभाव तो उन्हें नहीं हो। कुन्ती को अपनी सास का दु:ख अपने दु:खों से बडा लगा। कुन्ती असहाय है। कुन्ती का भाई वसुदेव और भाभी देवकी वे दोनों दुष्ट कंस के कारागार में है और फिर एक के पश्चात एक उनकी सन्तान का निरीह वध। जीवन बहुत कठोर है कुन्ती के लिये।

२५) धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जन्म

वैशम्पायनजीने कहा- एक बार महर्षि व्यास हस्तिनापुरमें गान्धारीके पास आये। गान्धारीने सेवा-शुश्रूषा करके उन्हें बहुत ही सन्तुष्ट किया। तब उन्होंने उससे वर माँगने को कहा। गान्धारीने अपने पतिके समान ही बलवान सौ पुत्र होनेका वर माँगा। इससे समयपर उसके गर्भ रहा और वह दो वर्षतक पेटमें ही रुका रहा। इस बीचमें कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। स्त्री-स्वभाववश गान्धारी घबरा गयी और अपने पति धृतराष्ट्रसे छिपाकर इसने गर्भ गिरा दिया। इसके पेटसे लोहेके गोलेके समान एक मांस-पिण्ड निकला। दो वर्ष पेटमें रहनेके बाद भी उसका यह कड़ापन देखकर गान्धारीने उसे फेंक देनेका विचार किया। भगवान् व्यास अपनी योगदृष्टिसे यह सब जानकर झटपट उसके पास पहुँचे और बोले, अरी सुबल पुत्री। तू यह क्या करने जा रही है ? गान्धारीने महर्षि व्याससे सारी बात सच-सच कह दी। उसने कहा, भगवन्। आपके आशीर्वादसे गर्भ तो मुझे पहले रहा, परन्तु सन्तान कुन्तीको ही पहले हुई। दो वर्ष पेटमें रहनेके बाद भी सौ पुत्रोंके बदले यह मांस-पिण्ड पैदा हुआ है। यह क्या बात है ? व्यासजीने कहा, गान्धारी। मेरा वर सत्य होगा। मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती, क्योंकि मैंने कभी हँसीमें भी झूठ नहीं कहा है। अब तुम शीघ्र ही सौ कुण्ड बनवाकर उन्हें घी से भर दो और सुरक्षित स्थानमें उनकी रक्षाका विशेष प्रबन्ध कर दो तथा इस मांसपिण्डपर ठंडा जल छिड़को। जल छिड़कनेपर उस पिण्डके सौ टुकड़े हो गये। प्रत्येक टुकड़ा अँगूठेके पोरुएके समान था। उनमें एक टुकड़ा सौसे अधिक भी था। व्यासजीके आज्ञानुसार जब सब टुकड़े कुण्डोंमें रख दिये गये, तब उन्होंने कहा कि इन्हें दो वर्षके बाद खोलना। इतना कहकर वे तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये। समय आनेपर उन्हीं मांस-पिण्डोमेंसे पहले दुर्योधन और पीछे गान्धारीके अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। यह बात कही जा चुकी है कि दुर्योधनका जन्म होनेके पहले ही युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। जिस दिन दुर्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन परम पराक्रमी भीमसेनका भी जन्म हुआ था।

दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा। उसका शब्द सुनकर गधे, गीदड़, गिद्ध और कौए भी चिल्लाने लगे, आँधी चलने

लगी, कई स्थानोंमें आग लग गयी। इन उपद्रवोंसे भयभीत होकर धृतराष्ट्रने ब्राह्मण, भीष्म, विदुर आदि सगे-सम्बन्धियों तथा कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुषोंको बुलवाया और कहा, हमारे वंशमें पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ज्येष्ठ राजकुमार हैं। उन्हें तो उनके गुणोंके कारण ही राज्य मिलेगा, इस सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं कहना है। युधिष्ठिरके बाद मेरे इस पुत्रको राज्य मिलेगा या नहीं, यह बात आप लोग जाने। अभी उनकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि मांसभोजी जन्तु गीदड़ आदि चिल्लाने लगे। इन अमङ्गलसूचक अपशकुनोंको देखकर ब्राह्मणोंके साथ विदुरजीने कहा, राजन्। आपके इस ज्येष्ठ पुत्रके जन्मके समय जैसे अशुभ लक्षण प्रकट हो रहे हैं, उनसे तो मालूम होता है कि आपका यह पुत्र कुलका नाश करनेवाला होगा। इसलिये इसे त्याग देनेमें ही शान्ति है। इसका पालन करनेपर दु:ख उठाना पड़ेगा। यदि आप अपने कुलका कल्याण चाहते हैं तो सौमें एक कम ही सही, ऐसा समझकर इसे त्याग दीजिये और अपने कुल तथा सारे जगत्का मङ्गल कीजिये। सबके समझाने-बुझानेपर भी पुत्रस्नेहवश राजा धृतराष्ट्र दुर्योधनको नहीं त्याग सके। उन एक-सौ-एक टुकड़ोंसे सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। जिन दिनों गान्धारी गर्भवती थी और धृतराष्ट्रकी सेवा करनेमें असमर्थ थी, उन दिनों एक वैश्य कन्या उनकी सेवामें रहती थी और उसके गर्भसे उसी साल धृतराष्ट्रके युयुत्सु नामका पुत्र हुआ था। वह बड़ा यशस्वी और विचारशील था।

जनमेजय। धृतराष्ट्रके पुत्रोंके नाम क्रमश: ये हैं- दुर्योधन सबसे बड़ा था और उससे छोटा था युयुत्सु। तदनन्तर, दु:शासन, दुस्सह, दुश्शल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्द्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, आयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनुदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सद:सुवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, कथन, कुण्डी, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरस्क, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरजा। कन्याका नाम दुश्शला था। ये सभी बड़े शूरवीर, युद्धकुशल तथा शास्त्रोंके विद्वान थे। धृतराष्ट्रने समयपर योग्य कन्याओंके साथ सबका विवाह किया। दुश्शला का विवाह समय आनेपर राजा भृहदाश्व के पुत्र जयद्रथके साथ हुआ।

२६) पांडु का दिग्विजय कर हस्तिनापुर लौटना

कुन्ती ने सुना कि सम्राट के दिग्विजय कर हस्तिनापुर लौट आने पर उनका अत्यन्त भव्य स्वागत हुआ। विजय में अपार धन, राशि पराजित राजाओं के सैनिकों का विशाल समूह उनके साथ आया। इससे कौरवों की सेना और सशक्त और समर्थ हो गई। नगर में अनेक तरह के उत्सव मनाये गये।

कुन्ती को सूचना आई कि महाराज पांडु महारानी कुन्ती के कक्ष में आ रहे हैं। सूचना मात्र से ही कुन्ती के मन में पांडु के प्रति जन्मा क्रोध, आक्रोश, विरोध, उपालम्भ सब कुछ शान्त हुये। वह पांडु से उसके पूर्व व्यवहार के बारे में कुछ नहीं पूछेंगी। वह नहीं जानना चाहती कि पांडु ने पहले उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ? जो बीत गया सो बीत गया। होगी उसकी कोई बाध्यता। एक बार पांडु आ जाये कुन्ती उसका अपनी खुली बाहों से स्वागत करेगी। कुन्ती का बहुत ही बडा उदार हृदय है। सम्राट बहुत दिनों के बाद राजधानी में लौटा था वह विजयी होकर आया था। पांडु ने कुन्ती के कक्ष में प्रवेश किया। कुन्ती को लगा पांडु सचमुच ही आकर्षक है। तेजस्वी विशाल आंखे। प्रसन्न मुख मुद्रा गौर वर्ण, राजसी अधिकार वैभव का झिलमिलाता प्रकाश। पांडु ने कुन्ती को अपनी यात्रा का वृतान्त सुनाया पर कुन्ती की उसमें कोई रुचि नहीं थी। पांडु बोला, कुन्ती वीर पुरुष का जीवन भी एक बडी विकट समस्या

है और धीरे-धीरे वह कुन्ती को अपनी आगोश में बैठा आलिंगन करने लगा। पांडु की इतनी शीघ्र उत्तेजना कुन्ती समझ नहीं पायी। पांडु हांफने लग गया। श्वास प्रक्रिया भी आहत हुई जैसे उसके हृदय में असह्य पीडा होने लगी।

कुन्ती यह सब देखकर अवाक सी बैठी रह गई। ऐसी ही पीडा पांडु को तब भी हुई थी जब वह पहली बार कुन्ती के पास आया था और फिर रात के समय उत्तेजना के बीच ही उसे छोड भाग गया था। कुन्ती ने सोचा क्या कामोत्तेजना से पांडु की यह दशा हो जाती ? क्या इसीलिये अपनी दो-दो नवोढाओं को छोडकर दूसरे देशों में जाकर योद्धा बनने का प्रयत्न करता है। कामशैया पर विजय न पाकर अपनी पराजय को वह युद्ध क्षेत्र की विजय से ढकना चाहता है। थोडी ही देर में पांडु की श्वास प्रक्रिया सन्तुलित हुई और चलने के लिये उठ खडा हुआ। कुन्ती ने पूछा कहां जा रहे हो इस समय। पांडु बोला, हां मुझे याद आ गया विदुर का विवाह है और मुझे इसके लिये तैयारियां करनी है। कुन्ती देखती रह गई और पांडु कक्ष से निकल गया।

भीष्म ने राजा देवक की दासी पुत्री पारसंवी जो अत्यन्त सुन्दरी युवती है मांग कर परम ज्ञानी विदुर के साथ विवाह कर दिया। पारसंवी विवाह के पश्चात पहली बार अपने पति विदुर के साथ नतमस्तक होकर बैठी थी। वह जानती थी कि उसके पति बहुत विद्वान, गम्भीर, धार्मिक, सदाचारी, सज्जन और ज्ञानी है।

विदुर बोले, मैंने कोई शस्त्र संचालन विद्या नहीं सीखी न मैंने कभी युद्ध किया और न ही करने की इच्छा है। मैं शान्ति प्रिय व्यक्ति हूं तथा सृष्टि के सारे जीवों के लिये शान्ति की कामना करता हूं। मैंने सदा यही जाननेका प्रयत्न किया है युद्ध क्या है ? युद्ध के कारण क्या है ? युद्ध का स्वरूप क्या है ? युद्ध के परिणाम क्या है ? युद्ध से समझौता कैसे हो ? पारसंवी बोली, मैं जानती हूं मेरा पति औरों से भिन्न है। जो यथार्थ को स्वीकार करता है। सुख तो भौतिक परिस्थितियों मे नहीं मानसिक अनुकूलता में है। विदुर बोले, देवि मैं रिश्ते में धृतराष्ट्र और पांडु का भाई अवश्य हूं पर कुरुकुल का धन मेरा नहीं है। मेरे लिये तो यह पराया धन ही है और न ही मेरे मन में उसके लिये कोई लालसा है। पराया धन अधिकृत कर कोई सुखी नहीं हो सकता उससे मानसिक शान्ति भी प्राप्त नहीं होती। ऋषि सब कुछ त्याग कर भी सुखी रहते हैं और राजा सब कुछ पाकर भी तडफते रहते हैं। इसलिये जिसका देय हो वह उसे दे देना ही हितकर है। यदि न्यायपूर्ण देय दे दिया जाये तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों सुखी होते है। संसार में सारे झगडे, मतभेद और युद्ध केवल इसलिये होते हैं कि न्यायपूर्ण देय, अधिकार दिया नहीं जाता। या तो लोग दूसरों का धन और अधिकार हडप कर बैठे हैं या करने के फेर में हैं। मेरी बडे दिनों से इच्छा है कि धृतराष्ट्र भी यह स्वीकार कर लें कि यह राज्य अब उसका नहीं है पांडु का है तो वे दोनों सुखी रहेंगे और कुरुकुल में शान्ति बनी रहेगी। किन्तु धृतराष्ट्र यथार्थ को स्वीकार करना ही नहीं चाहता है और न ही परायी सम्पत्ति से अपना मोह हटा पा रहा है। दिनों दिन अपनी महत्वाकांक्षाये बढा रहा है। उसके सारे यह प्रयत्न किसी दिन कुरुकुल के लिये दुर्दिन लायेंगे। धृतराष्ट्र असम्भव को सम्भव करने का प्रयत्न करते रहता है। वह राज्य चाहता है लेकिन प्रजा पालन का दायित्व ग्रहण करना नहीं चाहता पर राजवैभव और राजसत्ता के अधिकार भोगना चाहता है। वह अबाध भोग का इच्छुक है। भोग की इस इच्छा ने उसे इतना स्वार्थी बना दिया कि वह किसी का भी किसी सीमा, स्तर तक अनिष्ट कर सकता है। वह पांडु को बार-बार उकसाकर किसी न किसी बहाने से हस्तिनापुर से दूर रखना चाहता है, भ्रमण के बहाने, युद्ध के बहाने, आखेट के निमित्त, स्वयंवर के लिये ताकि पांडु का राज्य वह भोग करता रहे। उसका परामर्शदाता है उसी का साला गान्धार कुमार शकुनि जो धूर्त, लम्पट और विलासी वह किसी दिन इस कुरुकुल का नाश लाकर रहेगा। पारसंवी ने पूछा, क्या ज्येष्ठ पांडु इन सबसे अनभिज्ञ अबोध हैं ? विदुर बोले, नहीं। मैंने तो कई बार उसे समझाने का प्रयत्न भी किया है किन्तु न जाने अपनी किस दुर्बलता से वह बार-बार धृतराष्ट्र की बातों में आ जाता है। पारसंवी को लगा विदुर कहीं परिवार की उलझनों और समस्याओं से किसी असुविधा में न आ जाये। वह अपने पति को चिंतित पा रही है। वह बोली, आर्यपुत्र आपको इस बारे में कोई भय तो नहीं लगता ? विदुर बोले, किस बात का ? पारसंवी बोली, कहीं धृतराष्ट्र और शकुनि आपका कोई अनिष्ट कर दे। यह सुनकर विदुर हंस

पडे। विदुर की हंसी में निर्भिकता थी, आत्मविश्वास था वे बोले, निम्नकोटि के लोग अपनी आजीविका के लिये भयभीत रहते हैं। मध्यम कोटि के लोग मृत्यु से भयभीत रहते है और उत्तम कोटि के लोग अपने अपयश से। मुझे तो किसी से भी भय नहीं है और मुझे क्यों भयभीत होना चाहिये ? विदुर बोले, छोडो इन सब विषयों को। जिस व्यक्ति को तुमने पति रूप में पाया है वह रसिक कम और नीतिज्ञ अधिक है प्रिये। पारसंवी बोली, मुझे दासी पुत्री जानकर कहीं आपके मान-सम्मान में ठेस तो नहीं लगी है ना क्योंकि, यह तथ्य समाज में आपके निरादर का कारण बन सकता है क्या ? विदुर बोले, देवि दुराचारी चाहे कितने ही ऊंचे वंश का हो वह सदा निरादर ही पाता है और सदाचार से रहनेवाला व्यक्ति सदा ही आदर पायेगा। आदर कोई न धन से मिलता है, न ज्ञान से, न यश से, न ऊंचे कुल से। आदर सिर्फ उसके अपने आचरण से मिलता है इसलिये मैं सदा अपने आचरण की शुद्धता के पक्ष में रहा हूं। यदि आचरण शुद्ध रहे तो भय का कोई कारण ही उपस्थित नहीं होता। प्रिये अपना वंश कोई मैंने स्वयं नहीं चुना वह तो इस स्वार्थी समाज की व्यवस्था है यदि इसीसे किसी को लज्जित होना है तो स्वयं समाज लज्जित होगा प्रिये तुम भी स्वयं को हीन समझने की भूल मत करना। हमारे राजघराने में बहुत सारे उच्च वंशीय कुलीन राजकुमार हैं उन सबके आचरण बखानने योग्य नहीं है अच्छा है कि हम लोग वैसे कुलीन नहीं है।

दूसरे दिन दिग्विजय का वृतान्त सुनाने पांडु महाराज राजसभा में आये। वहां पर भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर सभी थे तभी महामन्त्री विदुर ने प्रस्ताव रखा कि राजा सदा ही प्रजा के हित का ध्यान रखता है। उसके लिये कुछ न कुछ करते रहता है। प्रजा भी अपने राजा से प्रेम, अपाट आदर मान-सम्मान करती है। प्रजा अपने राजा को विश्रान्ति मिले ऐसा उपहार देना चाहती है। पांडु बोले, यदि प्रजा आनंदित हो तो राजा को एक प्रकार का विश्राम ही होता है। पर भीष्म का मत इससे अलग था। वे बोले राजा को भी सामान्य प्रजा की तरह विश्राम की आवश्यकता होती है। इतना महान विजय करने से राजा थक जाता है इसका असर उसके स्वाास्थ्य पर पडता है इसलिये महाराज व महारानी को विश्राम के लिये विश्राम वाटिका में दूर कहीं चले जाना चाहिये। राज्य का कारभार उस समय के लिये धृतराष्ट्र पांडु का प्रतिनिधि बनकर विदुर की सहायता से देखभाल कर पायेंगे। पान्डु बोले, यदि मैं विश्रान्ति के लिये गया तो धृतराष्ट्र भी मेरे साथ ही चलेंगे। तब धृतराष्ट्र अपने अन्धत्व को याद कर बोले मेरा वहां क्या काम है मैं छाया की तरह हस्तिनापुर में रहकर उसकी रक्षा करता रहूंगा। यह कहकर धृतराष्ट्र ने पांडु के साथ जाने कि सहमति अस्वीकार कर दी।

भीष्म ने पांडु महाराज के लिये वन में विश्राम वाटिका तैयार करने का आदेश दिया और पांडु से बिना विलम्ब किये विश्राम के लिये जाने का आग्रह किया। पांडु भी भीष्म की आज्ञा मानकर वन में आखेट के लिये जाने की तैयारिया करने लगे। परन्तु जाने के पहिले अपना राजमुकुट उतारकर अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र के मस्तक पर रखा और बोले जब तक मैं हस्तिनापुर वापिस नहीं लौटू आप अपने को सम्राट मानकर सभी धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करें। पांडु महाराज की इच्छा को सम्मति देकर स्वत: भीष्म ने वह राजमुकुट धृतराष्ट्र को पहना दिया। इससे धृतराष्ट्र की राज्याधिकार की सोयी हुई इच्छा फिर से जागृत हो गई। राजमुकुट धारण करने के पश्चात धृतराष्ट्र अपने को हस्तिनापुर का सम्राट समझने लगा। वह यह नहीं समझ रहा है कि यह राज्य पांडु का है और वह तो केवल कुछ समय के लिये उसका प्रतिनिधि है। किसी भी प्रकरण घटना का परिणाम वर्तमान में तर्क नहीं किया जा सकता प्रत्यक्ष में तो इसका परिणाम जानने के लिये भविष्य की प्रतीक्षा करनी पडेगी।

सभी विदुर के विवाह में व्यस्त थे। सभी सेवक गण पांडु को ढूंढने में लग गये। मालूम पडा कि महाराज वन में विश्राम के लिये, आखेट करने जा रहे हैं। मृगया तो राजाओं का शौक है। कुन्ती के मन में आया अपना सिर राजप्रासाद की किसी दीवार से दे मारे। न जाने कैसा पति मिला है कि अकस्मात ही उसे छोड कर चला जाता है। कुन्ती का क्या दोष है ? जब कुन्ती के साथ ऐसा हुआ तो कुन्ती अनुमान लगाती रही कि शायद माद्री के आ जाने से ऐसा हुआ हो। उसकी कुन्ती में रुचि न रही हो किन्तु वह तो माद्री को भी छोडकर दिग्विजय करने निकल गया और अब यह आखेट का शौक पूरा करने वन विहार जा रहा है।

कुन्ती कहती है जीवन जीने का तो अधिकार उसे भी है और जीवन में ऐसा बहुत कुछ है जो अपने आप नहीं मिलता वह तो उद्यम करके ही प्राप्त करना पडता है। इतने में ही माद्री फिर कुन्ती के पास आ गई। माद्री के मुख को देखकर लग रहा था कि वह बहुत रोई हुयी है और बहुत भ्रमित है। कुन्ती बोली, आओ माद्री। माद्री बोली, दीदी वे क्या यहां नहीं आये। कुन्ती बोली, मैं उन्हें इतनी प्रिय नहीं हूं जो आखेट करने मेरे पास आयेंगे। माद्री बोली, दिग्विजय के लम्बे अन्तराल के बाद दो दिन पहले मेरे पास आये थे और पिछली बार की तरह उत्तेजित कर मुझे बीच ही में छोडकर चले गये और कहने लगे विदुर का विवाह है और उसमें उन्हे काम है। पता नहीं मुझे इस प्रकार से अपमानित करने का उनका क्या औचित्य था। कुन्ती यह सुनकर अपनी पीडा भूल गयी और माद्री से बोली, बैठ जाओ और मन को तनिक शान्त करो। जो तुम्हारे साथ हुआ वही मेरे साथ हुआ है। हम दोनों समान रूप से वंचित हुई है। कुन्ती बोली, माद्री तुम जानती हो जिस राज समाज में हमारा पालन-पोषण हुआ है उसमें इस प्रकार नारी का अपमान पुरुष ही कर सकता है। वह हमें अपमानित, तिरस्कार कर किसी अन्य स्त्री से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, विवाह कर सकता है। हमने ही तो उसके कंठ में जयमाला डाली है, अब हमारे लिये और क्या विकल्प है ? उसकी प्रिया बनकर रहें या तिरस्कृत हो कर रहें, परित्यक्ता बनकर रहें या विधवा होकर पर हम रहेंगी तो उसीकी। हमें अपनी परिस्थितियों से समझौता करना सीखना होगा।

पांडु को खोज निकालने में उन्हें श्रम नहीं लगा। वे दोनों की दोनों अश्वशाला में जा पहुंची। पांडु अश्वशाला में आखेट के लिये अश्वों का चयन कर रहा था। अपनी दोनों पत्नियों को वहां पर आकस्मिक रूप से देख कर ठिठक गया और बोला क्या है? तुम दोनों यहां क्यों आयी हो ? कुन्ती बोली, आर्य चलकर हम एकान्त में बात करे। पांडु ने भी यह स्वीकार किया। पांडु उन्हे अपने रथ में बिठाकर राजप्रासाद में ले आया। यह पहिला ही अवसर था कि पांडु अपनी दोनों पत्नियों का एक साथ सामना कर रहा था। कुन्ती ने कहा, हमने सुना है कि कल आप वन में आखेट के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। पांडु बोला, हां सभी आर्य सम्राट अपने विश्राम, विनोद, मनोरंजन के लिये आखेट करने जाते हैं। कुन्ती बोली, क्या वे कभी अपनी पत्नी का भी आखेट के लिये सामना करते हैं ? या सदा ही उसके सामने पीठ दिखा कर भाग जाते है। बार-बार आप हमें अपनी वीरता और क्षत्रियता का झांसा मत दो। हम जानती है आपके पौरुष को ? कब तक इस प्रकार हमसे छिपते फिरोगे ? कब तक हस्तिनापुर से दूर भागते रहोगे ? किसी भी प्रकार से आपका अनादार करना हमारा अभिष्ट नहीं है। शान्त हो आर्य पुत्र। हम चाहती है कि हम तीनों परस्पर अपनी समस्या को समझें और उसका समाधान निकाले। पांडु बोले क्या समस्या है ? कुन्ती बोली, समस्या तो एक ही है कि आप कभी तो दिग्विजय के लिये निकल पडते है, कभी आखेट के लिये। हमें तो आपकी संगति लाभ का अवसर ही नहीं मिलता। आपका यह क्रम तो इसी प्रकार चलते रहेगा। आप कुरुकुल के चक्रवर्ती सम्राट है। आपकी व्यस्ततायें तो कोई कम नहीं होगी ऐसे में हमारी तृष्णा शान्त नहीं होती इसलिये आखेट में हम दोनों आपके साथ वनविहार करने चलेगी।

अब पांडु जरा तमक कर बोला वहां स्त्रियों का क्या काम है ? तुम्हे न तो शस्त्र चलाना आता है न तुम में हिंसक पशुओं का सामना करने का साहस है। वहां क्या तुम मेरा आखेट करने साथ चल रही हो। नहीं नहीं तुम्हारे साथ चलने से मुझे असुविधा होगी। मैं आखेट करूंगा या तुम लोगों को हिंसक पशुओं से बचाऊंगा। सुन्दरियों को साथ लेकर आखेट मुझसे नहीं होता है। कुन्ती बोली, हां सुन्दरियों को शयन शैया पर कामोत्तेजना कर छोड भाग जाने का कर्म आपको करना आता है। आर्य पुत्र यदि आप हम दो युवतियों का हिंस्र पशुओं से रक्षण नहीं कर सकते तो आपका आखेट पाखंड है। अपने शस्त्रों को फेंक डालिये। यदि राजमहल में आप साथ नहीं रह सकते तो हम वन में आपके साथ रहेगी। यह हमारा अन्तिम निर्णय है। पांडु को लगा अब और कोई विकल्प नहीं है। अब बे मन से ही सही पांडु ने साथ चलने की अनुमति दी और कहा मैं आखेट के लिये जा रहा हूं तुम्हारे कोई आमोद-प्रमोद के लिये नहीं। वहां पर मेरे आखेट में कोई बाधा नहीं पडनी चाहिये।

२७) पान्डु का कुन्ती और माद्री के साथ वन विहार और किन्दम ऋषि का श्राप

पांडु वन में मृगया के लिये जाने के लिये उत्सुक था उससे अधिक उत्सुक उसे भेजने के लिये धृतराष्ट्र था। धृतराष्ट्र ने प्रसन्नता से उसके प्रयाण के लिये व्यवस्था करा दी और उसके साथ अनेक दास-दासियां सेवक भी अपनी ओर से भेज दिये। धृतराष्ट्र पांडु के लिये इतनी सुविधाओं का प्रबन्ध करा देना चाहता था कि पांडु को हस्तिनापुर के राजप्रासाद का अभाव न खटके। धृतराष्ट्र सदा से ही यह चाह रहा था कि पांडु हस्तिनापुर से दूर ही दूर रहे ताकि धृतराष्ट्र को पर्याप्त स्वतन्त्रता और स्वाधीनता मिले। धृतराष्ट्र शासकीय ही नहीं पारिवारिक विषयों में भी माता सत्यवती या भीष्म की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही निर्णय ले लेता था और आदेश क्रियान्वित कर देता था। इतना समर्थ हो गया था उसका दर्प। हर काम में गान्धारी और शकुनि की मन्त्रणा सर्वोपरि थी। पहले धृतराष्ट्र स्वयं को असहाय मानता था अब वही अधिकार प्राप्त कर अधिकारों के पोषण से दिनों दिन उसकी लालसा बढने लगी। धृतराष्ट्र के मन में कदाचित अपने जन्मान्ध होने का खेद प्रबलतर होता जा रहा था और सत्ता प्राप्ति की इच्छा प्रबल तम शक्तिशाली होती जा रही थी। कभी-कभी तो भीष्म भी सोचने को विवश हो जाते यह इतना विकलांग और अक्षम होते हुये भी सत्ता के पीछे क्यों भाग रहा है ? जो सब तरह से समर्थ हैं, वास्तव में अधिकारी हैं सत्ता उन्हे क्यों इतनी आवश्यक नहीं लगती। क्या सत्ता का इच्छुक वही है जो उसका दुरुपयोग करना जानता है। सारे दुर्गुण क्यों सत्ता के आसपास ही मंडराते रहते हैं ? साधुवृत्ति के लोग क्यों सत्ता से दूर ही रहना चाहते हैं ? इत्यादि इत्यादि। पांडु अपनी दोनों रानियों को लेकर वन विहार हेतु चला गया। मनुष्य के विवेक को भ्रमित करने के लिये कितने आकर्षक, मोहक सुन्दर कामिनी का शरीर, प्रिय पुत्र का मोह, स्वर्ण राज सिंहासन का मोह इत्यादि।

सत्यवती भीष्म से बोली, पांडु चला गया है वन में अपनी दोनों पत्नियों को लेकर और यहां छोड गये है इस नराधम धृतराष्ट्र और उस दुर्बुधि शकुनि को। शकुनि के आसपास सिवाय जुआरियों और शराबियों के कौन है ? जब लम्पटता, व्याभि चार, सुरापान और द्यूत ये चारों एक साथ इकट्ठा हो जाये तो कौनसा अनर्थ होने से बच जायेगा। यही तो सब हीन वृत्तियों को गौरवान्वित करते हैं। ये तो कोई आततायी गुंडे होते जा रहे हैं ? जो अपराध कर रहे हैं वे ही न्याय कर्ता के आसन पर आसीन हो रहे हैं तो फिर अपराधियों को दंड कौन करेगा ? और जब दुष्ट, शराबी और व्यभिचारी लोगों के हाथों में ही सत्ता आजायेगी तो कौनसा दुराचार होने से बाकी रह जायेगा। हत्याये होने लगेगी, बलात्कार होंगे। जब ऐसे निर्लज्ज पापी शायद होंगे तो प्रजा न्याय मांगने कहां जायेगी ? भीष्म सत्यवती से बोले इतनी चिंतित मत हो माता। अभी आपका भीष्म इतना असमर्थ नहीं है। सत्यवती बोली, अब धृतराष्ट्र मेरे हाथों से निकल गया है। लगता है कि वह अब तुम्हारे हाथों से भी निकल गया है। अब तुम्हारे हाथ में भी कोई अधिकार नियन्त्रण नहीं रहे। वह अब तुम्हे पूछता तक नहीं। सत्यवती बोली, यदि ऐसा ही हो रहा हो तो शकुनि को गान्धार भेज दो और धृतराष्ट्र को भी एक चांटा मार कर समझा दो और जिन दासियों के साथ उसने अत्याचार किया है उनका न्याय करो।

भीष्म सोचते खडे रह गये क्या ऐसा सम्भव हो सकता है कि राजा धृतराष्ट्र को दंडित किया जा सकता है ? क्या उसे सताच्युत किया जा सकता है ? सत्यवती तो कुछ भी कह गई। सत्यवती बोली, भीष्म मुझे एक दिन तो ऐसा बता दो कि कभी धृतराष्ट्र ने झूठ नहीं बोला हो। किसी को भी झूठे वचन और आश्वासन देते रहता है। इसीलिये कह रही हूं कि पांडु को शीघ्र बुलालो। कुन्ती जैसी समझदार पत्नी और माद्री जैसी रूपवती सौन्दर्य सम्पन्न पत्नी पांडु के साथ विश्रांति काल व्यतीत करने के लिये पांडु के साथ गई हैं। संसार सुख भोगने के लिये पांडु के लिये उचित समय था पर भाग्य ने तो कुछ अलग ही खेल खेला।

पांडु वन में पहुंच कर बिना कुछ कहे ही आखेट के लिये जंगल में निकल गया। माद्री अपनी दमित वाणी से बोली, पता नहीं किस बात को लिये हरदम खीझे ही रहते हैं। विवाह को अभी बहुत कोई समय भी नहीं हुआ है ये इस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं। हम वन विहार के लिये आये हैं न कोई तपस्वी के आश्रम में या कोई मौन साधना करने। कुन्ती बोली, माद्री मैं तुम्हारी पीडा समझ सकती हूं। मैं भी उसी स्थिति में जी रही हूँ। कुछ धैर्य से काम लो। उन्हें समझने का प्रयत्न करो। उनकी भी

विवशता को देखो। माद्री बोली, दीदी क्या तुम को उनपर तनिक भी क्रोध नहीं आता। कैसी नारी हो तुम। यह सब माद्री की अपनी पराधीनता, अपनी समर्थता और बाध्यता। हमें अपना जीवन उनके साथ ही व्यतीत करना है। यह तो हमारी अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है कि इसे हम कितने सरल, सहज सुचारू ढंग से जी सकते हैं। सायंकाल हुआ पांडु शिबिर में आया। उसे देखकर माद्री पुन: भडक उठी और कहने लगी यह वन विहार है या कारागार। हमें लाकर यहां पटक दिया और स्वयं फिर कहीं भाग गये। पांडु बोला, यह मृगया है कोई वन विहार नहीं। कुन्ती बोली, हम तो आपकी संगति के चाव से यहां आई हैं। यदि यहां भी हमें आपका सान्निध्य नहीं मिला तो हमें मृगया में कोई रूचि नहीं है। पांडु बोला, यदि तुम्हे मृगया रूचि कर न लगे तो वापिस हस्तिनापुर को लौट जाओ। शाम को तुम लोग भोजन कर लेना। मेरी भोजन पर प्रतीक्षा मत करना।

माद्री और कुन्ती दोनों ने पांडु को जाते हुये देखा और अवाक सी रह गई। यह तो हमारा अपमान करने के लिये हमें साथ लाया है। वह तो शायद स्वयं को अपमान से बचाने के लिये हमसे दूर भाग रहा है। जीवन समाप्त कर देने से तो जीवन अपने अनुकूल जीना बेहत्तर है और इसे अपने अनुकूल बनाने के लिये जीवन में सहन भी बहुत कुछ करना पडता है। जीवन बहुत विराट है और उसके असंख्य पक्ष है। उसमें सब कुछ व्यक्ति के अनुकूल नहीं होता है। उसका स्वाभिमान और सम्मान शाश्वत नहीं है, अक्षत करने के लिये उसका प्रयत्न अनवरत उद्यम, अपराजेय आस्था अविचलित बुद्धि और विवेक का होना अत्यन्त आवश्यक है। कई बार तुम्हारा देय तुम्हे नहीं देता। अनेक बार तुम्हे तुम्हारा प्राप्य नहीं मिलता और अनेक बार सब कुछ होते हुये भी तुम्हे लगता है तुम्हे उससे वंचित कर दिया गया है।

महाराज पांडु अपनी पत्नियों के साथ वन विहार के लिये हस्तिनापुर से वन में आये थे। दिन-प्रतिदिन पांडु वन में हिसंक पशुओं की आखेट के लिये जाते थे।

यहाँ हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र राजसिंहासन पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गया और गान्धारी के पास जाकर बोला, गान्धारी देखो यह राजमुकुट। तब गान्धारी ने कहा- यह राजमुकुट आपका नहीं है यह तो पांडु का है उतारकर पांडु को देना पडेगा। आप देख नहीं पाते आप इस मुकुट का क्या करेंगे लाओ उसे उतार दूँ। तब धृतराष्ट्र बोले, इसे उतारो मत गान्धारी। यह स्वप्न जब तक चल रहा है चलने दो। पांडु को तो अभी लौटने में विलम्ब है।

एक दिन पांडु ने अपनी पत्नी माद्री को अश्वारोहण की दौड के लिये उकसाया और जीत-हार की बाजी लगाली। वे जंगल के समीप में ही ऋषि किन्दम के आश्रम में आये। किन्दम ऋषि ने हस्तिनापुर नरेश पांडु का किन्दम के आश्रम में स्वागत है राजन ऐसा कहकर स्वागत किया। कुन्ती, माद्री और पांडु तीनों भी ऋषि किन्दम के साथ बैठकर दिन-प्रतिदिन सत्संग करते थे, जीवन विषयक चर्चा में लगे रहते थे। माद्री कुन्ती से बोली, दीदी आज हमारे साथ आप भी चौसर खेलो। कुन्ती ने कहा, न जाने क्यों चौसर के खेल में इन पासों में मुझे बुरे भविष्य के लक्षण दिखायी देते हैं। आर्य के पराजय में आखिर में भी हमारी ही पराजय है।

शकुनि हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के कक्ष में आता है। धृतराष्ट्र अनुमान कर लेता है आओ शकुनि। शकुनि बोला, तो आप पदआहट भी पहचान लेते हैं ? तो फिर क्या हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र आप भविष्य की भी चाल पहचान लेते हो। धृतराष्ट्र बोले, मेरा भविष्य तो दिन-रात मेरे साथ ही रहता है शकुनि। जो भी बीतता है वह पांडु के राज्य का दिन ही बीतता है। शकुनि बोला, पांडु के लौटते ही आपका शीश राजमुकुट के बिना उदास दिखायी देने लगेगा। तब धृतराष्ट्र बोले, यह मुकुट तो स्वयं तातश्री मेरे सिर पर रखना चाहते थे पर विदुर ने अपने नियमों का ग्रन्थ खोल लिया और इन्हीं अपनी आँखों के कारण से मेरी पराजय हो गयी। अब मैंने अपने भाग्य से मेल करना सीख लिया। शकुनि बोले, यहीं तो आपने एक बडी भूल की है महाराज। मेल तो सदा बराबर वालों में ही होता है। धृतराष्ट्र बोले, तो मैं क्या करूं शकुनि ? शकुनि बोले, अब आप अवसर की प्रतीक्षा कीजिये। पता नहीं जीवन में कौन सा मोड कब कहाँ आयेगा, किसीको भी मालूम नहीं। भाग्यरेखा तो बाण की नोक से भी खींची जाती है आपने जो दाँव खेले थे।

किन्दम ऋषि सत्संग में अपने आश्रम में पांडु, माद्री और कुन्ती को जीवन की परिभाषा समझाते हैं कि जीवन जल भी है और तृष्णा भी है। हे चन्द्रभूषण, यह जीवन तो दो तटों के बीच बहती नदी है। सत्पुरुष तो वह है जो सत-असत् को ज्ञान की छलनी में छाँटने के बाद अलग-अलग कर देता है जैसे हंस दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। महाव्रती महात्मा गंगापुत्र भीष्म के शिष्य को कुछ बताने की आवश्यकता नहीं। राजवंशीय की भारतीय परम्परा आपकी धरोहर है राजन। इसलिये जीवन किसी सरोवर से निकालकर वापस उस सरोवर में डालने के लिये नहीं होता है। जब तक हाथ में जल आये तो निकालना चाहिये और उस हाथ के बोझ को, ऋण को उतारने का प्रयत्न क्यों नहीं करना चाहिए ?

मृत्युलोक से आने से पहले मनुष्य को तीन ऋण उतारने पडते हैं। पुरुष को यह तीनों ऋण उतारे बिना नहीं जाना चाहिए। यदि यह तीनों ऋण नहीं उतारे तो जीवन अपमानित होता है। पांडु ने पूछा, ऋषिवर यदि यह किसी के भाग्य में नहीं लिखा हो तो ? तब ऋषि बोले, कर्मरेखा को भाग्यरेखा से टकराना चाहिये ऐसा नहीं है कि कभी मनुष्य की भाग्यरेखा ही बदली न हों। इन ऋणोंको उतारने के लिये यदि भाग्यरेखा बदलनी भी पडे तो भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि यह इन रेखाओं में तीन ऋण है, १) देवऋण, २) ऋषिऋण, ३) पितृऋण। देवऋण ब्रह्मा का है। यह दान देने से चुकाया जाता है। ऋषिऋण व आचार्य ऋण यह ज्ञान प्राप्त करने से व बाँटने से चुकाया जाता है। यह ऋषिऋण ब्रह्मा और विष्णु का है। पितृऋण यह भगवान शंकर का है। यह योग्य सन्तानें उत्पन्न कर चुकाया जाता है। इस ऋण के अधिष्ठाता भगवान शंकर है। तब कुन्ती ने पूछा, पुरुष की सहधर्मिणी नारी का क्या कर्तव्य है ? महर्षि किन्दम बोले, नारी अर्थात चेतना, प्रेरणा और उत्साह है। वह तो बृहद आत्मा और आश्रय है देवि। पुत्र रूप में पुरुष को जीवन जीने का पाठ सिखाता है। जहाँ स्त्री का सम्मान होता है वहाँ देवताओं का वास होता है। जो नारी का अनादर करे वह तो मनुष्य ही नहीं। नारी की रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य है। अच्छा राजन अब चलें। किन्दम ऋषि ने कुन्ती और माद्री को पुत्रवती भव होने का आशीर्वाद दिया।

शकुनि फिर धृतराष्ट्र के राजमहल के कक्ष में आ गये। धृतराष्ट्र बोले, क्या बात है भ्राताश्री तुम्हारी चाल कह रही है कि तुम बहुत आनन्द में हो। शकुनि बोले, आनन्द की ही तो बात है महाराज। आपके अनुज..... तब धृतराष्ट्र बोले क्या हो गया है मेरे अनुज को। शकुनि बोले, हुआ तो कुछ भी नहीं पर लक्षण कह रहे हैं गये थे तो वह वन में राग-रंग के लिये और रम गये सत्संग में। राजभवन से तपोवन तक की लम्बी यात्रा कर दी है आपके प्रिय अनुज ने। धृतराष्ट्र बोले, राजभवन से तपोवन में कितने ही भरतवंशी राजा जा चुके हैं शकुनि। सत्संग में जाना भी तो सत्पुरुष की शोभा है भ्राताश्री। शकुनि बोला, यहाँ आपकी यह बात सुननेवाला मेरे सिवा और कोई नहीं है जीजाश्री। धृतराष्ट्र बोले, मैं वही तो कह रहा हूँ। स्वयं शान्तनु महाराज के ज्येष्ठ भ्राता ने सन्यास ले लिया। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो महाराज शान्तनु को यह राजमुकुट मिला ही नहीं होता। शकुनि ने कहा- राजमुकुट अब तो वहीं है जहाँ इसे होना चाहिये था। मैं तो यह चाहता हूं कि पांडु तपोवन में रहें और आप राजभवन में। धृतराष्ट्र ने कहा नहीं नहीं यह मुकुट तो अनुज पांडु का है। शकुनि बोले, जीजाश्री यह मुकुट तो पांडु का है ही नहीं। इसे तो कपटी विदुर ने अपने शब्दों के जाल से आपके सिर से उतारकर उसके सिर पर रख दिया है। तब धृतराष्ट्र बोले, यह नेत्रहीन धृतराष्ट्र विदुर की नहीं विधाता की रचना है। शकुनि बोले- यह सब मत कहो जीजाश्री। मैं इस छल कपट के लिये उस दासीपुत्र विदुर को कभी क्षमा नहीं करूंगा। धृतराष्ट्र बोले, यदि अवस्था से युद्ध करने की शक्ति नहीं हो तो उनसे सन्धि कर लेने में ही भलाई है। पांडु का यही उपकार क्या कम है जो उसने मुझे राजसिंहासन पर बिठाकर सबसे पहिले यही आदेश दिया कि मुझे महाराज धृतराष्ट्र कहें। इसके पहले तो किसी राजा ने ऐसा आदेश नहीं दिया। शकुनि बोले- पर आपकी तरह राजभवन में बैठे-बैठे किसी राजा ने अपना राजमुकुट भी तो नहीं खोया था महाराज। उसका उपकार समझना तो आपका अपमान है। धृतराष्ट्र बोले- नहीं नहीं अनुज की ओर से तुम मेरे मन को मैला करने का प्रयास मत करो। भगवान उसे लम्बी आयु दे। मैं तो नेत्रहीन हूं नहीं तो मैंने कब का ही सन्यास ले लिया होता। शकुनि बोले,

यदि आप नेत्रहीन नहीं होते तो आप सन्यासी नहीं आज आप हस्तिनापुर के नरेश होते जीजाश्री।

माद्री और कुन्ती किन्दम ऋषि के आश्रम में गयी। वहाँ ऋषि पत्नी से मिली। किन्दम ऋषि कहीं बाहर गये थे तब ऋषि पत्नीने दोनों का स्वागत किया। माद्री ने कुन्ती का परिचय करवाया कि यह मेरी दीदी कुन्ती है और ऋषि किन्दम से मिलने आयी है। ऋषिपत्नी बोली, ऋषि अभी आते ही होंगे। ऋषि पिछले रास्ते से आयेंगे लगता है माद्री ने छोटा मार्ग खोज ही निकाला। मनुष्य के जीवन में मार्ग छोटा करना कोई अच्छी बात नहीं है। सदा सीधा मार्ग ही ठीक रहता है। कुन्ती बोली, क्या आप क्यारीमें फूल उगा रही हैं। ऋषिपत्नी बोली, नहीं तो मैं तो उसे निहार रही हूं। देखो, नारी के कितने रूप है। धरती के गर्भ से सृष्टि जन्मती है और फूल से सुगन्ध। पृथ्वी के मूल रूप में तो नारी ही है और पुरुष का पितृऋण भी तो नारी ही चुकाती है। सन्तान का होना नारी की शोभा है। पृथ्वी सब जीवों की जननी जन्मभूमि है। मैं जब यह सोचने लग जाती हूं तब मैं उदास हो जाती हूं कि मैंने अभी तक पृथ्वी का ऋण नहीं चुकाया है। इतने में किन्दम ऋषि आ गये। पांडु की दोनों पत्नियों ने ऋषिवर के चरण स्पर्श किये और ऋषिने पुत्रवती भव का आशीर्वाद दिया और कहा पांडु पुत्रों के तेज से हस्तिनापुर जगमगा जाये और उन्हें बताओ ऋषियों के इतिहास के साथ-साथ वे आशीर्वाद पायें।

दे आशिश ऋषिदेव तुम्हे सदा वरदान, गोद भरे जुग जुग जीवे भाग्यवान सन्तान।

ऋषि किन्दम ने प्रसन्न होकर कुन्ती और माद्री को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया। अब इन दोनों रानियों को पुत्रवती तो होना ही है। ऋषि किन्दम का आशीर्वाद महाभारत की यात्रा का अजीब मोड है। रानीको ये आशीर्वाद भी देते है कि ये माँ बनकर पृथ्वीऋण से मुक्त हो जायें पर उनकी कुटिया मेंस्वयं उन्होंने पृथ्वी का ऋण नहीं चुकाया है। दोनों रानियाँ ऋषि के आशीर्वाद से धन्य हो गयी।

किन्दम बोले, सम्राट पांडु आप सुखी तो हैं ? पांडु को लगा कि ऋषि ने उसके घाव को छील लिया अब उसके लिए स्वयं को सँभालना कठिन हो गया। ऋषि किन्दम मुस्कराकर पूछे क्या मृगया में सुख नहीं है ? पांडु अवरुद्ध कण्ठ से बोले, ऋषिवर मैं मृगया के लिए नहीं आया था। मैं तो अपनी यातना को भूलने के लिए आया था। अपने आपसे भागकर आया था। आखेट तो एक बहाना मात्र है। ऋषि बोले- मेरी कुटिया में एकान्त में आओ। ऋषि के पीछे-पीछे पांडु उनकी कुटिया में गया। यह समय मेरी एकान्त साधना का है इस कुटिया में कोई नहीं आयेगा। तुम्हारा रहस्य रहस्य ही रहेगा अपनी व्यथा सुनाओ। पांडु बोले, अब रहस्य को रहस्य रखने की इच्छा नहीं है ऋषिवर। मैं और घुट नहीं सकता। अपने यथार्थ को स्वीकार करना चाहता हूँ।

ऋषि किन्दम बोले, प्रकृति से बलात् कुछ छीनने का दर्प त्याग दो पुत्र। प्रकृति के अनुकूल बनो। उसकी शरण में जाओ। वह बहुत उदार है। किन्तु उससे बलात् कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न अत्यन्त विनाशकारी है और तुम भौतिक सिद्धियों के लिए आध्यात्मिक साधनों का प्रयोग करना चाहते हो। यह बहुत बड़ी भूल है। जो आत्मा जन्म नहीं लेना चाहती उसे क्यों तुम कष्ट देना चाहते हो। आध्यात्मिक साधना बन्धनों से मुक्ति के लिए है और अधिक बन्धनों की याचना के लिए नहीं। माँगना है तो ईश्वर से यह माँगो कि वह तुम्हें इस कामना-पाश से मुक्त करे; उससे यह प्रार्थना मत करो कि तुम्हारी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति करे। पांडु ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन वह ऋषि के उत्तर से न सहमत था न सन्तुष्ट। पांडु ने कहा मैं प्रकृति के अनुकूल कैसे हो सकता हूँ। उसने तो मुझे उन क्षमताओं से वंचित किया, जो कीट-पतंग तक को भी उपलब्ध है। मेरे लिए तो प्रकृति ने उन सुखों को वर्जित कर दिया है, जो प्रत्येक जीव का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

ऋषि बोले, जीवों के जन्म-सिद्ध अधिकार किसने निश्चित किये है वत्स ? वानर में वे क्षमताएँ नहीं होंगी, जो नर में हैं- यह निर्णय किसका है।

पांडु बोले, प्रकृति ने। ऋषिवर बोले, तुममें कौन-सी क्षमता होगी और कौनसी नहीं। इसका निश्चय कौन करेगा ? पांडु बोले, -

प्रकृति। तो ऋषि बोले- अब यह समझो। प्रकृति ने निश्चय किया है कि तुम्हें काम-क्षमता नहीं दी जायेगी; मात्र उसकी इच्छा ही प्राप्त होगी। अब तुम चाहो तो प्रकृति से शत्रुता पालो, या युद्ध करो। उससे बलात् क्षमताएँ प्राप्त करने के प्रयत्न में अपनी सुख-शान्ति का त्याग करो; क्षोभ और असंतोष के रोगी बनकर, अन्तत: विक्षिप्तता को प्राप्त करोगे और चाहो तो उसके अनुकूल बनो, उसकी शरण में जाओ। उससे प्रार्थना करो कि उसने जो क्षमता तुम्हें नहीं दी उसकी कामना से भी तुम्हें मुक्त करे। यदि तुम काम को जीत लोगे वत्स तो आत्मजयी कहलाओगे। सम्भव है कि जिसे तुम प्रकृति की वंचना समझते हो, वह तुम्हारे लिए प्रकृति का वरदान सिद्ध हो। ऋषि मुस्कराये और बोले, यदि मनुष्य तुम्हें वंचित करे, तो उसे अपने अनुकूल बनाओ। प्रकृति वंचित करे तो उसके अनुकूल बनो। वंचक को अनुकूल करने के लिए भौतिक साधन है, पर प्रकृति के अनुकूल हो जाने का नाम ही आध्यात्मिक साधना है। ऋषिवर के साथ वार्ता कर पांडु के मन में अनेक तथ्य स्पष्ट हुये पर पांडु को प्रसन्नता नहीं हुई।

पांडु ने पुछा ऋषिवर मुझे इस कष्ट से कैसे मुक्ति मिल सकती है ? ऋषि किन्दम बोले, काल के द्वारा ही। पांडु चौंक उठे। क्या कामसुख की इच्छा इतना बड़ा अपराध है जिसका दण्ड मृत्यु ही है। मुनिवर ने कहा, मैं न तो अपराध की बात कर रहा हूँ और न ही कोई दण्ड विधान की राजन। मैं तो केवल इतना ही बता रहा हूँ कि कामना दु:ख का द्वार है और दु:ख का अन्त मृत्यु से ही होता है। सुख आत्म क्षय का तीव्रगामी माध्यम है। जिसे हम सुख कहते है वह जीवनी शक्ति का त्वरित क्षय है। सुख की कामना ही दु:ख का कारण होती है। दु:ख से छूटना हो तो कामना का त्याग करना होगा। शान्ति का भी एक ही मार्ग है कामना का त्याग। सुख आर दु:ख दोनों भी एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। दोनों की जननी कामना है और दोनों का परिणाम मानसिक अशान्ति है और यदि शान्ति चाहते हो तो दु:ख के साथ सुख को भी छोडो। कामना का त्याग करो। त्याग में शान्ति है, आनन्द है। कामना दु:ख है, वासना है, यातना है। कामवासना ही मृत्यु है। काम में प्रवृत होंगे तो काल तुम्हे ग्रस लेगा।

परन्तु किन्दम ऋषि का आशीर्वाद इन रानियों की कहानी का अन्त नहीं है। वे ऋषि किन्दम का आशीर्वाद लिये हस्तिनापुर जाएंगी अब उनसे माता सत्यवती की जुदाई झेली नहीं जा रही है। राजमाता सत्यवती ने भीष्म को बुलाया। भीष्म माता सत्यवती के पास आकर प्रणाम कर बोले, माते आपने मुझे बुलाया है। सत्यवती बोली- हां पुत्र। यह बताने के लिये बुलाया है कि पांडु ने अब बहुत विश्राम कर लिया है। मुझे लग रहा है उन्हें वापस बुला लेना चाहिये। जाकर धृतराष्ट्र से कहो पांडु को वापस बुला ले।

राजमहल के अन्त:पुर में गान्धारी और धृतराष्ट्र बैठे थे। गान्धारी बोली, माताश्री का आदेश आये इससे पहले पांडु को बुला लीजिये आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, गान्धारी क्या तुम नहीं चाहती कि प्रिय पांडु की थकान ठीक से उतरे। गान्धारी बोली, उसकी थकान तो यहाँ भी तो उतर सकती है। मुझे उनका वहाँ रहना कोई उचित नहीं दिखाई दे रहा है। मैं डरती हूं की कहीं आपको इस राजमुकुट की आदत नहीं पड़ जाय। धृतराष्ट्र बोले, गान्धारी तुम। गान्धारी बोली, मैंने देखने को मना किया है पर सोच तो सकती हूँ और सोचने को न तो आपने त्यागा है। धृतराष्ट्र बोले, क्या भ्राता शकुनि की बात भूल गई हो कि यह राजमुकुट अब मेरे शीश पर ही शोभा देता है। गान्धारी बोली- महाराज बहुत सी बातें भूलने योग्य ही होती है। तभी कक्ष में भीष्म आये। धृतराष्ट्र बोले, तातश्री। भीष्म बोले- आयुष्यमान भव पुत्र और गान्धारी को बोले- सौभाग्यवती भव। गान्धारी बोली, पधारिये तातश्री। भीष्म बोले- इस समय तो मैं माता सत्यवती का दूत हूँ गान्धारी। माताश्री ने यह सन्देश भेजा है कि पांडु को विश्राम वाटिका से शीघ्र बुला लिया जाय। धृतराष्ट्र बोले, यह सन्देश है या आदेश तातश्री। भीष्म बोले- बडोंके तो सन्देश भी आदेश ही होते है महाराज। पांडु को बुलवा लीजिये यह कहकर भीष्म चले गये।

अश्वारोहण दौड़ कर पांडु अपने शिबिर में आ गये। उस समय पांडु भोजन कर रहा था और उसी समय हस्तिनापुर से बुलावा आया। कुन्ती बोली- हस्तिनापुर का बुलावा आ जाने पर आर्यपुत्र का आनन्द तो देखिये। माद्री बोली- क्या अब चलना

होगा। कुन्ती बोली- यदि यह दादीमाँ का आदेश न होता तो हम अवश्य रूक जाते माद्री। जी को वश में करना सीखो, मन को बहकने मत दो। माद्री बोली- ईश्वर ने जीवन तो जीने को दिया है दीदी। कुन्ती बोली- पर जीने के भी तो कुछ नियम होते हैं। पर एक नियम तो यह भी है कि दादीमाँ का आदेश मिलते ही हमें लौटने की यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिये। इतने में ही जंगल में एक बाघ के दहाड़ने की आवाज माद्री को सुनाई पड़ी। माद्री ने पांडु को उसका आखेट करने के लिये उकसाया। पांडु अकेला ही धनुष्य बाण धारण कर सुनसान भयानक रात्रि के समय जंगल में निकल पड़ा। कुन्ती बोली- महाराज आप भोजन तो करके जाइये। पांडु बोला आकर खा लूँगा और बिना भोजन किये ही जंगल में बाघ की ओर निकल पडा। बाघ कहीं जंगल में जाकर छिप गया। पांडु को किसी पेड के पीछे से आहट सुनायी दे रही थी। तब पांडु ने यह बाघ है उसकी चाप समझकर शब्दभेदी बाण उस दिशा में चला दिया। जिससे वह बाण जाकर मृग युगल को लगा। यह मृग युगल किन्दम ऋषि मृग के वेश में तथा ऋषि पत्नी मृगी के वेश में सम्भोग कर रहे थे। वे सदा ही यह लज्जास्पदक कार्य मनुष्य रूप में न कर मृग-मृगी का रूप धारण कर सम्भोग करते थे। बाण लगते ही एक भयंकर चीत्कार हुयी। पांडु ने उसके पास जाकर देखा कि यह तो ऋषि किन्दम अपनी पत्नी के साथ समागम मुद्रा में बैठे थे और ऋषि पत्नी बाण लगते ही परलोक सिधार गयी थी। पांडु ने जाकर क्षमा-याचना की कि ऋषिवर मुझे नहीं मालूम था। यह अपराध तो मुझसे भूल से बन गया। मैंने मृग समझकर शब्दभेदी बाण चला दिया ऋषिवर। क्षमा करें ऋषिवर। ऋषि किन्दम बोले- जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं उसे तो बाण चलाने का अधिकार भी नहीं है राजन। राजन अत्यन्त कामी, क्रोधी, बुद्धिहीन और पापी मनुष्य भी ऐसा क्रूर कर्म नहीं करते। आपके लिये तो यही उचित है कि आप पापी और क्रूरकर्म मनुष्यों को दण्ड दे। मुझ निरपराध को मारकर आपको क्या लाभ मिला ? मैं तपस्वी मुनि हूँ। मुझे मारने पर आपको ब्रह्महत्या लग सकती है। आपने जिस अवस्था में मुझे मारा है वह सर्वथा मारने के अनुपयुक्त है। आपने मेरी वंशरेखा मिटा दी है। अब मैं तुम्हे श्राप देता हूँ कि राजन् तुम्हें इसका दण्ड मिलना ही चाहिये। **जिस क्षण तुम स्त्री से संसर्ग कर रहे होगे वही क्षण तुम्हारा अन्तिम क्षण होगा। तुम स्त्री प्रसंग नहीं कर पाओगे और न ही सन्तति उत्पन्न कर पाओगे।** पांडु ने ऋषिवर से बडी अनुनय-विनय की पर ऋषि ने अपना श्राप वापस नहीं लिया और यह कहकर किन्दम ऋषिने उसी समय अपने प्राण त्याग दिये। पांडु को ब्रह्म हत्याका पाप लग गया।

माद्री और कुन्ती बडी बेचैन हो रही थी कि इतनी रात हो गयी है फिर भी अभी तक आर्यपुत्र क्यों नहीं आये ? अवश्य कोई अनर्थ हो गया होगा। तभी माद्री ने देखा, पांडु बडे ही उदास और खिन्न मन से शिबिर में लौट रहे हैं। कुन्ती बोली- आर्यपुत्र। क्या हो गया, इतनी देर। कहाँ गये थे। पांडु बोला- सुख की खोज में। कुन्ती ने पूछा- क्या सुख मिल गया। पांडु ने उत्तर दिया, कह तो नहीं सकता किन्तु ज्ञान मिला। सुख की कामना ही एक मृगतृष्णा है, यही दु:ख का प्रवेशद्वार है।

पांडु बोले- घोर अनर्थ हो गया रानी। मैंने तो बाघ की आवाज पर शब्दभेदी बाण चलाया था पर जब वहाँ जाकर देखा तो वह बाण ऋषि और ऋषि पत्नी पर चल गया। पर सच है मैंने उनपर बाण नहीं चलाया कुन्ती। कुन्ती बोली, मैं जानती हूँ आर्यपुत्र। हस्तिनापुर के सम्राट का बाण भला किसी ऋषि की ओर कैसे जा सकता है ? पांडु बोले- परन्तु घटना तो घट गयी और मेरे माथे पर एक ऋषि की हत्या का कलंक तो लग ही गया है कुन्ती। माद्री बोली- इस घटना से आपका क्या सम्बन्ध आर्यपुत्र। हत्यारी तो मैं हूँ जिसने आपको बाघ को मारने के लिये उकसाया। आप तो भोजन कर रहे थे। पांडु बोले, नहीं माद्री यह कर्म तो मेरा है। मुझे ही इसका प्रायश्चित करना होगा। मैं समाज का ऋणी हो गया और अब यह ऋण मुझे ही उतारना है। माद्री बोली- तो हम दोनों मिलकर इस ऋण को उतारेंगे। इसी बीच कुन्ती बोल उठी- माद्री मुझे तुमसे यह आशा नहीं थी। मैंने तो तुम्हें बराबर का भागीदार बना लिया था। अब मुझे तो तुम लोगों ने अपने से अलग कर दिया। पांडु बोला- ऐसा मत कहो कुन्ती। तुम तो हमारी शक्ति हो, साहस हो और पहचान हो।

पांडु ने कहा, अब मैं प्रायश्चित के लिये गृहस्थ आश्रम को त्यागकर सन्यास ग्रहण करूँगा। पांडु आतुर होकर कहने लगे, बडे-बडे कुलीन भी अपने अन्त:करण पर वश नहीं होने से काम के जाल में फंस जाते है और स्वयं अपनी दुर्गति कर लेते हैं। मैं कुलीन और विचारशील होते हुये भी मेरी बुद्धि फिर गई। अब मैं इस कामबन्धन का त्याग कर मोक्ष का निश्चय करूँगा। सन्यास का जीवन निर्वाह करूँगा।

एक-एक वृक्ष के नीचे एक-एक दिन अकेला विचरूंगा और मौनी सन्यासी होकर आश्रमों में भिक्षा मांगकर निर्वाह करूंगा। मेरा शरीर मिट्टी से लथपथ होगा और खंडहर ही मेरा घर होगा। प्रिय और अप्रिय की भावना छोडकर मैं शोक और हर्ष से ऊपर उठ जाऊंगा। निन्दा और स्तुति मेरे लिये समान होगी। आशीर्वाद, नमस्कार, सुख-दु:ख और परिग्रह रहित होकर न किसी पर क्रोध करूँगा और सर्वदा प्रसन्न रहकर सबका भला करूंगा। चर-अचर किसी भी प्राणी को नहीं सताऊंगा। सभी प्राणियों में मेरी दृष्टि सन्तान सम होगी। कुछ मिला तो खा लूंगा नहीं तो उपवास कर लूंगा। लाभ और अलाभ में मेरी दृष्टि समान होगी। मैं न जीने का प्रयत्न करूंगा और न ही मरने का। न जीवन से प्रेम होगा और न मुत्यु से द्वेष। जीवित अवस्था में जितने भी कर्म किये जाते हैं उन सबका त्याग करूंगा क्योंकि ये सब काल से सीमित है। कर्म से प्राप्त होनेवाले अनित्य फल नहीं चाहूंगा और सारे पापों से छूट जाऊंगा, अविद्या के जाल को नष्ट कर डालूंगा। प्रकृति और प्राकृत पदार्थों की अधीनता से दूर जाऊंगा और वायु की तरह सर्वत्र विचरूंगा। जो मनुष्य सत्कार या तिरस्कार से प्रभावित होकर कामनायें करने लगता है और उन्ही के अनुसार प्रयास करने लगता है वह तो कुत्तों के मार्ग पर चलता है। ऐसे में कुन्ती तुम और माद्री हस्तिनापुर लौट जाओ वहां पर राजमाता सत्यवती, तातश्री भीष्म, विदुर, ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र, राज पुरोहित, ब्राह्मण, महात्मा, सगे-सम्बन्धी, पुरवारी और मेरे आश्रित इन सबसे कहना की पांडु ने सन्यास ग्रहण कर लिया है।

कुन्ती को लगा, सन्यास के बहाने तो कहीं यह उन दोनों से भाग तो नहीं रहा। कुन्ती बोली, यदि सन्यास ही लेना था तो फिर गृहस्थी क्यों बसायी ? आपने अपनी पत्नियों के बारे में क्या सोचा है ? उनके लिये आपने क्या व्यवस्था की है ? पांडु बोला, सन्यासी के तो पत्नी, पिता नहीं, सन्तान नहीं। अब मैं अपनी पत्नियों से भी सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ। मैं सुख खोज रहा हूं। न किसी शरीर का सुख पर आत्मा का सुख ही सही। कुन्ती बोली, आर्यपुत्र यदि आत्मा का सुख नहीं मिला तो क्या करोगे, तब कहाँ जाओगे ? कहाँ रहोगे? पांडु बोला, पर्वत पर और वनों पर जहाँ भी मन रम जायें। कुन्ती ने पूछा- फिर मैं और माद्री कहाँ जाये ? पांडु बोला- पितृकुल में लौटना चाहो तो वहां पर चली जाओ। कुन्ती बोली, विवाह के पश्चात कोई भी आर्य नारी अपने पितृकुल में नहीं लौटती और पति से विलग होकर तो कभी नहीं। पतिद्वारा त्याग किये जाने पर सीता प्रसव के लिये भी अपने पितृगृह में नहीं गई। पांडु बोला- तो फिर हस्तिनापुर में चली जाओ। कुन्ती बोली- हस्तिनापुर में हमारे सारे सम्बन्ध आपके द्वारा है। आप क्या समझते है, आपके बिना हमें हस्तिनापुर में सम्मान मिलेगा, हम तो किसी भी परिस्थिति में आपके साथ रहेंगी फिर आप सन्यास क्यों लेना चाहते हो ? अभी तो आपकी उम्र भी सन्यास आश्रम धारण करने योग्य नहीं हुई। अभी तो पितृव्य भीष्म ने भी सन्यास नहीं लिया। पांडु बोले, मेरे जनक वेदव्यास तो अपने शैशव से ही सन्यासी है। कुन्ती बोली, वे राजपुत्र नहीं ऋषिपुत्र हैं आर्य। ऋषि जीवन का अलग से भोग नहीं, लेकिन क्षत्रिय जीवन तो भोग को मान्यता देता है और आप अभी भोगों से तृप्त नहीं हुये है। पांडु बोले, देवि। मैं कोई भोग से तृप्त होकर सन्यास नहीं ले रहा। गृहस्थ जीवन मेरे लिये कष्टप्रद हो रहा है।

कुन्ती अबकी बार आवेश में बोली लेकिन क्यों ? भोग अभी तक आरम्भ भी नहीं हुये और आप अभी से सन्यास की बात सोच रहे है ? गृहस्थ जीवन तो अंकुरित भी नहीं हुआ और आपके लिये कष्टप्रद हो रहा है। क्या हमारे व्यवहार में कोई कमी है ? हमारे भाव में कोई अभाव है ? हमारे व्यक्तित्व में किसी प्रकार की कमी है ? या हमने किसी भी प्रकार से आपको वंचित किया है ? पांडु बोला, नहीं कुन्ती तुम दोनों में कोई दोष नहीं है। दोष तो मुझ में है कि मैं पिता नहीं बन सकता। कुन्ती बोली- यह

आप कैसे जानते है ? पांडु ने स्वीकार किया और कहा मैं पूर्ण पति नहीं हूं। रति सुख का आकर्षण मुझे नहीं है। यह मेरे लिये यमपाश है। मुझे यह कष्ट सताता रहता है मैं इससे मुक्ति चाहता हूं। इस कष्ट को मैं और नहीं सह सकता। इसलिये मेरे सामने एक ही विकल्प है सन्यास। सन्यासी के लिये न पिता होना आवश्यक है और न पति होना। कुन्ती ने पूछा- क्या ये सब आपको विवाह के पूर्व आभास नहीं था ? पांडु बोला, मेरे मन में कभी इसकी कल्पना भी नहीं थी। कुन्ती बोली, आर्यपुत्र मैं आपकी वेदना समझ गई परन्तु किसी भी परिस्थिति में आपका यह निर्णय मुझे मान्य नहीं। क्योंकि दम्पति में से एक कोई भी रोगी हो जाये तो दूसरा उसका त्याग तो नहीं कर देता। पांडु बोला, देवि मैं रोगी नहीं हूं, मैं तो सम्पूर्ण विकलांग इन्सान हूं। कुन्ती बोली- युद्ध में वीर पति का कोई अंग भंग हो जाता है तो कोई पत्नी उसे त्याग तो नहीं देती, बल्कि उसकी वीरता पर गर्व करती है और जीवनभर उसे सहती है। पांडु बोला, लेकिन मैं पति होने योग्य नहीं हूं। कुन्ती बोली- लेकिन हमें इससे कोई शिकायत नहीं है। यौन सुख का हमें लोभ नहीं है। हमारे लिये सिर्फ वही एक जीवन का पर्याय नहीं है। आप यही मान कर चलिये हम आपकी पत्नी नहीं आपकी आश्रिता हैं। आप द्वारा संरक्षिता हैं। आपकी आश्रिता होकर रहना चाहती हैं। हम आपसे पृथक रहकर हस्तिनापुर में नहीं रहना चाहती। अपने पति के साथ रति सुख कामक्रीडा विहीन ही जीवन जीना किसी और की दया और करुणा पर जीने से कही अधिक श्रेयस्कर है। सन्यासी तो वह होता है जो या तो भोगों से तृप्त हो चुका हो या विरक्त हो चुका हो। पर आप न तो तृप्त है और न ही विरक्त। आप मात्र असफल है। आप क्षत्रिय है। आपकी आस्था पलायन में नहीं उद्योग में होनी चाहिये। आपको सफलता के लिये पुरुषार्थ, उद्योग, उद्यम करना चाहिये। आपको सन्यासी नहीं तपस्वी बनना चाहिये। अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिये तपस्या करनी चाहिये जब तक आपको फल प्राप्ति न हो।

यदि आपने एक बार सन्यास ग्रहण कर लिया तो उसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि आपने परिवार, समाज, अपना राज्य, अधिकार सब से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है और यदि आप सन्यास से कभी वापस लौटकर भी आना चाहेंगे तो अपना राज्य पुन: प्राप्त करना चाहेंगे तो भी वो आपको प्राप्त नहीं होगा। आप उसके अधिकारी भी नहीं होंगे। कभी यदि ईश्वर कृपा से किसी उपाय या चमत्कार से आपके पुत्र हो जाय तो भी हस्तिनापुर का राज्य आपके पुत्र को प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि आप तो राज्य का त्याग कर चुके होंगे। धृतराष्ट्र जन्मांध हैं, लेकिन उन्होंने कोई सन्यास ग्रहण किया नहीं है। वे उस समय भी राज्य के नरेश होंगे और यदि उनके कोई पुत्र हुआ तो राज्य का वास्तविक अधिकारी हस्तिनापुर का सम्राट वही होगा। आपका पुत्र नहीं और न ही और कोई वारिस। इसलिये इन सब बातों का विचार कर देख लीजिये इसलिये कहती हूं कि अभी सन्यास के बारे में कोई बात मत कीजिये, अपने अधिकारों को मत त्यागिये।

पांडु को अब लगा- हां कुन्ती ठीक कहती है उसने तो इन सब बातों का विचार किया ही नहीं। राम चौदह वर्ष बनवास में रहा किन्तु अयोध्या के शासन का उसका अधिकार बना रहा और बनवास से लौटने पर उनका राज्याभिषेक हुआ। पांडु ने सोचा- तपस्वियों ने भी तो असम्भव लक्ष्य प्राप्त किये है। प्रयत्न से, तपस्या से, किसी की कृपा से जीवन के अभाव दूर हो सकते है। बहुत सम्भव है कि ऋषियों की संगति से, महापुरुष की दया से, कोई उपचार से उसके शरीर और आत्मा में कोई ऐसी ऊर्जा का संचार हो सके कि उसका असामर्थ्य दूर हो जाये। वह फिर से पति बन सके, पिता बन सके और कभी यदि ऐसा हो गया तो सन्यासी वापिस लौट कर गृहस्थाश्रम में तो नहीं आ सकता। सन्यासी का जीवन भी तो तपस्या का ही जीवन है फिर तपस्या ही नहीं क्यों ?

कुन्ती और माद्री ने अपने पति की बात सुनकर उनके सन्यास का निश्चय जानकर कहा- आर्यपुत्र। सन्यास आश्रम के अतिरिक्त आप हमारे साथ रहकर वन में महान तपस्या कर सकते हैं। स्वर्ग में भी हम आपके साथ चलना चाहेंगी और वहां भी आपको हमारी आवश्यकता होगी और वहां आप ही हमारे पति होंगे। अब हम दोनों अपने काम जन्य सुख को त्याग स्वर्ग में भी आपको प्राप्त करने के लिये आपके साथ महान तपस्या करेंगी। यदि आप हमें छोड जायेंगे और साथ नहीं ले जायेंगे तो अवश्य

ही हम अपने प्राणों का त्याग कर देंगी।

अपनी पत्नियों का दृढ़ निश्चय मानकर पांडु ने कहा, धर्मानुसार जो निश्चय किया है वह अच्छी बात है। अब मैं सन्यास नहीं लेकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर तपस्या करूंगा। विषय सुख और इन्द्रियों की कामोत्तेजना का त्याग करूंगा। तामसी भोजन का त्याग करूंगा जिससे कामोत्तेजना न हो। सात्विक आहार ग्रहण करूंगा जैसे कन्द मूल, फल, दूध इत्यादि। वल्कल पहनूंगा और घोर तपस्या करता हुआ दुर्गम स्थलों में विचरूंगा। दोनों समय स्नान, सन्ध्या और अग्निहोत्र यज्ञ करूंगा। जटाये बढा लूंगा और मृगछाला ओढे रहूंगा। भूख-प्यास के अधीन नहीं होऊंगा, न ही गर्मी, सर्दी, आंधी, वर्षा का मुझपर कोई असर होगा। दुश्चर तपस्या से शरीर को सुखा डालूंगा। एकान्त में रहकर परमात्मा का चिन्तन करूंगा। फल, फूल और जल से पितरों का तर्पण करूंगा तथा देवताओं को प्रसन्न करूंगा। महात्माओं और ऋषियों के दर्शन करूंगा। किसी भी वनवासीयों का किसी भी प्रकार अहित और अप्रिय नहीं करूंगा। इसप्रकार वानप्रस्थ की कठोर से कठोर विधि का मृत्यु पर्यन्त पालन करूंगा।

माद्री को कुन्ती का पांडु को सन्यास से विरक्त कर तपस्या के लिये प्रोत्साहित करना कुछ अच्छा नहीं लगा। माद्री उग्र थी, तेजस्विनी थी। माद्री कुन्ती से बोली, दीदी यह तुमने क्या किया ? यह कैसा निर्णय लिया तुमने मेरी ओर से भी उन्हे वचन दिया ? क्या हमने पांडु से इसलिये विवाह किया कि हम राजभोग छोडकर वनों-पर्वतों में तपस्वियों की भांति जीवन व्यतीत करे? कुन्ती बोली- विवाह तो इसलिये नहीं किया था लेकिन अब विवाह हो चुका और हम विवश हैं। माद्री बोली, लेकिन मैं यह कहूं कि हमारे विवाह के धर्मसम्मत अपेक्षाओं पर पांडु पूरा खरा नहीं उतरता है। इसलिये मैं इस विवाह को धर्मसम्मत नहीं मानती। मैं तपस्विनी बनकर जीवन नहीं जीना चाहती। मैं रति विहिन, काम विहिन गार्हस्थ जीवन की इच्छुक नहीं हूं। मैं पुंसत्वहीन पति के साथ रहना भी नहीं चाहती। मैं तो ऐसे पति का त्याग भी कर सकती हूं। कुन्ती बोली, ऐसा नहीं हो सकता। क्या पत्नी ने कभी पति का त्याग किया है ? माद्री बोली, उसने क्या अभी हमें खडे-खडे हमारा त्याग नहीं कर दिया था ? पुरुष जो चाहे कर सकता है पर स्त्री को पुंसत्वहीन पति को त्यागने का अधिकार नहीं ? यह कहां का न्याय है कि पुरुष चाहे तो नारी का सत्कार करे, चाहे तो तिरस्कार। नारी को सब कुछ वैसा ही स्वीकार करना पडता है जैसे पुरुष चाहता है। जैसे नारी का तो अपना कुछ अस्तित्व होता ही नहीं, न इच्छा, न विचार। नारी क्या मनुष्य नहीं है। कोई जड़ पदार्थ है ? मैं किसी अन्य पुरुष से विवाह क्यों नहीं कर सकती ?

कुन्ती ने माद्री को समझाया और बोली, धैर्य धारण करो माद्री ऐसा नहीं होता है। आर्येतर जातियों में तो अन्य पति की बात सुनी है पर आर्यों में अभी तक यह प्रथा नहीं है। माद्री बोली, तो फिर क्या स्त्री का कोई अधिकार नहीं है। नारी कोई पुरुष की सम्पत्ति तो नहीं है। किन्तु यह तो अन्याय है। नारी को पशु के समान समझना और बन्दी बनाना। कुन्ती बोली, माद्री भावनात्मक बनो और पांडु की परिस्थिति समझो जिन परिस्थितियों में यह सब हो रहा है।

माद्री का ध्यान कुन्ती की ओर गया। एक वह भी तो है जो कौरवों की साम्राज्ञी बनकर आयी थी। उसने भी तो वहीं सब कुछ भोगा और सहा है। कुन्ती को तो पति ही चाहिये जैसा भी हो। माद्री कुन्ती के साथ चली आयी थी पर अभी तक उसका मन निर्णय को स्वीकार नहीं कर पा रहा था और न ही किसी तरह की व्यवस्था को। उसकी कोई ऐसी महत्वाकांक्षा तो नहीं है न त्याग की, न तपस्या की और न ही भोगशून्य जीवन की। उसके लिये तो भोग और जीवन पर्याय है। जिस क्षण से जीवन का भोग निषिद्ध हो गया उसी क्षण से जीवन थम गया। जीवन का समाप्त हो जाना तो माद्री की समझ में आता है पर चलते जीवन का रूक जाना उसकी समझ के बाहर है।

राजमहल के अन्त:पुर में प्रतिहारी ने आकर धृतराष्ट्र को सूचना दी कि महाराज पांडु वनविहार से लौटने के पश्चात् सीधे आपसे ही मिलने आ रहे है। धृतराष्ट्र बोले- क्या उनका वन-विहार इतनी जल्दी समाप्त हो गया ? वो दादीमाँ के पास जाने के

बजाय सीधे मेरे पास क्यों आना चाह रहे हैं ? क्या गान्धारी उन्हें यह सन्देह है कि मैं उनका यह राजमुकुट नहीं लौटाऊंगा ? गान्धारी बोली- ऐसा क्यों सोचते है आर्यपुत्र। राजा का तो पहला कर्तव्य अपने राज्य की ओर होता है। इसलिये आप उनका स्वागत कीजिये आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले- गान्धारी स्वागत तो करना ही पडेगा और आशीर्वाद भी दूँगा। इतने में पांडु उनके कक्ष में आ गये। धृतराष्ट्र बोले- वीर पांडु कैसा रहा तुम्हारा वनविहार अनुज। पांडु बोले- बडा अनर्थ हो गया भ्राताश्री। यह सुनकर गान्धारी चौंकी और बोली क्या हुआ ? तब पांडु ने बताया मेरे हाथ से एक ऋषि की हत्या हो गयी। गान्धारी ने पूछा- हत्या या दुर्घटना। हत्या तो तुम कर नहीं सकते और दुर्घटना तुम्हारे वश में नहीं है। धृतराष्ट्र बोले- इन सब प्रश्नों का उत्तर तो विदुर से पूछो। लो यह अपना मुकुट सम्भालो और राजसभा में चलो। वहीं तातश्री भीष्म भी होंगे। गान्धारी बोली- यह कोई प्रश्न ही नहीं तो उत्तर कैसा आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले- अवश्य। इन सब प्रश्नोंका उत्तर तो राजसभा में ही होगा। धृतराष्ट्र और पांडु वहां से उठकर राजसभा में चले गये। राजसभा में विदुर और भीष्म भी उपस्थित थे। पांडु सिंहासन पर आसीन हुये तब विदुर उठा और बोला- भले ही आप कुछ भी कहिये परन्तु मृत्यु तो हुई है और वह भी पांडु महाराज के बाण से। धृतराष्ट्र बोले- यह मृत्यु तो है पर हत्या नहीं। पांडु ने जान-बूझकर कुछ नहीं किया है और यह पाप नहीं है और यदि यह पाप नहीं है तो दण्ड किसलिये। विदुर बोले- यह दुर्घटना हुई इसलिये यह प्रायश्चित करना आवश्यक है। यदि यह हत्या होती तो न्यायानुसार महाराज पांडु को अपने आपको दण्ड देना पड़ता। पांडु बोले- मैं विदुर से सहमत हूँ और हस्तिनापुर नरेश होने के नाते मैं प्रायश्चित करने के लिये वनवास ले लूं और प्रजा के सामने एक दृष्टान्त रखूं।

भीष्म बोले- इस दुर्घटना के साक्षी केवल आप ही है महाराज। यदि आप चाहते तो उसे छिपा भी सकते थे पर आपने ऐसा नहीं किया। अब आप ही न्याय है और न्यायाधीश है। यदि आप न्याय नहीं करेंगे तो प्रजा कभी आपका आदर नहीं करेगी। इसलिए कुरु इतिहास सदा आपके इस निर्णय पर गौरव करता रहेगा महाराज। पांडु ने उसी समय राजपाट त्याग दिया और बोले- अब मेरे स्थान पर मेरे बड़े भ्राता धृतराष्ट्र राज्य सम्भालेंगे। धृतराष्ट्र ने अपनी सहमति प्रदान की और बोले, ईश्वर की यदि यही इच्छा है तो यही सही। पांडु ने राज्य त्याग दिया और धृतराष्ट्र से बोले- आप मेरे पिता समान हैं। अब से मैं राज्यका भार आपको सौंपता हूँ। राजमुकुट उतारकर धृतराष्ट्र के सिर पर रख दिया और आशीर्वाद के लिये प्रणाम किया।

माता सत्यवती ने भीष्म को अपने कक्ष में बुलाया और बोली- यह मैं क्या सुन रहीं हूँ गंगापुत्र। पांडु तपोवन जा रहा है और तुमने उसे रोकने के लिये कुछ नहीं कहां ? भीष्म बोले- यह सत्य है माते। पर यह सम्राट का अपना निर्णय है मैं इसमें क्या कर सकता हूँ। कहना मेरा कर्तव्य नहीं है माते। सत्यवती बोली- पर इस दुर्घटना के लिये पांडु का कोई दोष भी तो नहीं है फिर भी तपस्या करने जा रहा है। भीष्म बोले- यह सम्राट का अपना निर्णय है। सत्यवती बोली- पर मैं तुम्हारा निर्णय जानना चाहती हूँ। भीष्म बोले- मैं नरेश के निर्णय से बन्धा हुआ हूँ माते। सत्यवती बोली- यदि बन्धे हुये नहीं होते तो तुम्हारा निर्णय क्या होता ? भीष्म बोले- माता, ममता को इतना निर्बल तो नहीं होना चाहिए। पांडु को यह निर्णय लेने पर आपको प्रसन्न होना चाहिए और गर्व करना चाहिए कि पांडु ने कर्म से न्याय को बड़ा माना और उसने वहीं किया। पांडु ने व्यक्तिगत विचार न कर राजा के कर्तव्य की दृष्टि से, बुद्धि और न्याय की दृष्टि से विचार कर राजाने भरतवंश की परम्परा को उज्ज्वल रखने के लिये कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखा। उसे आशीर्वाद दो। सत्यवती बोली- मैं तो बहुत दिन पहले ही अपने सारे आशीर्वाद तुम्हे दे चुकी हूँ गंगापुत्र।

पांडु ने अन्त:पुर में जाकर राजसी वेश व आभूषणों का त्याग कर सन्यासी वेश धारण कर लिया। पांडु को देखकर कुन्ती और माद्री ने भी पांडु के अनुरूप वेश और वस्त्र धारण कर लिये। कुन्ती और माद्री भी साथ जाने के लिये तैयार हो गयी। पांडु बोले- कुन्ती समझो बनवास में तुम मेरे साथ आना चाहोगी तुम बडी हो और माद्री को भी समझाओ। कुन्ती बोली- इसमें क्या समझना है अब क्या समझाना है आर्य पुत्र। पांडु बोले- समझना तो यह है कि कुन्ती ऋषि की हत्या मेरे हाथों हुयी है और प्रायश्चित भी

मुझे ही करना होगा। राजमहल के सुख-साधन छोडकर तुम मेरे साथ वन में क्यों जा रही हो। कुन्ती बोली- जनकपुत्री सीता रामके साथ वन क्यों गयी थी आर्यपुत्र ? हम दोनों आपकी अर्धांगिनियाँ है। हमारे बिना आप न तो कोई यज्ञ कर सकते हैं और न ही कोई प्रायश्चित। क्या इस अपराध को आप अपना मान सकते हैं ? क्या आपको याद नहीं मन्त्रों की धारा में अग्निदेवता को साक्षी मानकर हमने प्रतिज्ञा नहीं की कि सुख-दु:ख में हम साथ रहेंगे। अब ऐसा क्यों सोचते है ? हमारा साथ कोई सात समुद्रों की सीमा तक ही नहीं है। माद्री आग्रह कर के बोली- कुछ भी हो हम तो आपके साथ चलेंगे आर्यपुत्र। कुन्ती बोली- आप हमारे बिना अधूरे हैं आर्यपुत्र। आपका प्रायश्चित हमारे बिना अधूरा है। न तो श्रीराम का बनवास सीता के बिना हो सकता था और न ही आपका हमारे दोनों के बिना। पांडु बोला- ठीक है। चलो चलें। इस प्रकार अपनी पत्नियों से कहकर पांडु ने अपने राजसी वैभव, मणि माणिक्य, आभूषण, कुन्डल, बहुमूल्य रन्तों का त्याग ब्राह्मणों और याजकों को दान दिये, काम और विषय सुख छोडकर अपनी पत्नियों सहित पांडु वनवास को चले। तीनों भी चलकर राजमहल के अन्त:पुर में राजमाता सत्यवती और माता अम्बालिका से मिलने आये। वहाँ जाकर प्रणाम किया और बोले- प्रणाम दादीमाँ। आशीर्वाद दीजिये मेरी तपस्या सफल हो। पर सत्यवती बोली- माता तो होती ही है आशीर्वाद देने के लिये। परन्तु पुत्र उसकी ममता का क्या होगा ? पांडु बोले- यह तो उसकी ममता का वरदान है जिसने मुझे न्याय करने के लिये प्रेरित किया। पर तुम तो जानते नहीं हो पुत्र इन दोनों को साथ में क्यों लेकर जा रहे हो ? मैं महाराज कुन्तीभोज और मद्र नरेश को क्या कहूंगी। जिन्हे हम इतने चाव से ब्याह कर लाये थे उन्हें वन में भेज दिया। माता अम्बालिका ने उनकी ओर देखा- विधवा माँ कैसे जियेगी। पांडु बोले- जैसे मैं आपसे और माते से बिछुड़कर जिऊंगा। अम्बालिका धैर्य धारण नहीं कर सकीं और जोर-जोरसे रोने लगी। कुन्ती बोली- आर्यपुत्र तो हमें साथ ले जा ही नहीं रहे थे माता। हम दोनों तो उनकी अर्धांगिनियाँ है और हमारे बिना उनका रहना भी सम्भव ही नहीं है। माता सत्यवती बोली- ठीक है जाओ पुत्र। भगवान करे एक दिन फिर लौटकर अपना मुँह दिखलाना। माता से आशीर्वाद लेकर सब राजमहल के बाहर चले। वहाँ प्रजा ने रोक लिया कि हम अपने महाराज को जाने ही नहीं देंगे। तब पांडु बोले हमें वन में जाना ही होगा अपने पाप के प्रायश्चित के लिये। उसी समय तातश्री भीष्म रथ लेकर वहाँ पर आये। पांडु ने प्रणाम किया और पूछा- तातश्री यह रथ। इसकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी। भीष्म बोले- तुम्हारे लिये नहीं थी कुन्ती और माद्री के लिये तो है। यह उन्हे वन तक छोडकर आयेगा। भीष्म ने आशीर्वाद दिया- आयुष्मान भव, सौभाग्यवती भव।

सुख-दु:ख में समदर्शी, रहे जीवन वहीं महान, राजभवन हो या वनगमन दोनों एक समान

राजसभा में दिन-प्रतिदिन शकुनि का हस्तक्षेप सबको साल रहा था। अम्बिका अम्बालिका से बोली, यह धृतराष्ट्र का साला शकुनि बडा ही धूर्त है। यह ग्रहण के समान धृतराष्ट्र को निगलते जा रहा है। उससे धृतराष्ट्र की वक्रता बढ़ती जा रही है और धृतराष्ट्र कालिमा में लिप्त होते जा रहा है। शकुनि द्यूतक्रीडा को हस्तिनापुर में लोकप्रिय बनाते जा रहा है। कुलीन परिवारों का शौक बनते जा रहा है। वे अपने मित्रों और अभ्यागतों को द्यूतक्रीडा के लिये आमंत्रित करते हैं। पिता, पुत्र और भाई-भाई से यह सब परस्पर अपने मनोरंजन के क्षणों में द्यूतक्रीडा से मन बहलाते हैं। अब से राजसभा में विद्वानों से अधिक जुआरियों, शराबियों का सम्मान होगा। दुराचार व्यभिचार से भले लोगों का चरित्र लांछित होने लगेगा। व्यभिचार, मद्यपान, दुर्वृति और गुन्डागर्दी यह सब कुछ अब द्यूत के माध्यम से हस्तिनापुर में प्रवेश कर रहे है। क्योंकि शकुनि महारानी गान्धारी का भाई है उसे यह सब बहुत प्रिय है, वह तो दुष्टता की पूर्ण मूर्ति है और इन सबका प्रवर्तक।

राजसभा से विदुर थका हुआ घर लौटा पास में पारंसवी आकर बैठ गयी और बोली, आज आप बडे ही श्रमक्लान्त दिखायी पड रहे हो ? विदुर ने कहा, स्वयं धृतराष्ट्र, उनका मुंहचढ़ा साला शकुनि, इनके मित्र जिस प्रकार की लम्पट, नीतिविहीन बातें करते है उनसे मेरा दम घुटने लग गया। राज्यसभा में न प्रजापालन की चर्चा होती है, न सत्य की, न ही कोई दर्शन व न्याय की,

और न हीं मानव हित की। यह सभा तो मन दुर्वृतों का जमावडा हो गई। इच्छा होती है सबको छोडछाड कर अन्य कहीं चला जाऊं।

पारसंवी बोली- आर्यपुत्र आजकल राजनीति सब जगह दुर्वृति की पर्याय हो गई है। अब पितृव्य भीष्म उन्हें रोकते क्यों नहीं? विदुर बोले, शुरु शुरु में तो शकुनि को पितृव्य भीष्म ने एक-दो बार टोका किन्तु राजा धृतराष्ट्र को वह अच्छा नहीं लगा। इसलिये पितृव्य भीष्म ने राजसभा में प्राय: आना ही बन्द कर दिया। या तो वे वहाँ उपस्थित नहीं होते या फिर बेमन उदासीन की भांति बैठे रहते है। पारंसवी बोली, लेकिन आप तो अपनी नीति का त्याग मत करिये। विदुर बोला, मेरा भी मन अब राजसभा में जाने का नहीं होता है पर मुझे तुम्हारी मन्त्रणा न्यायसंगत धर्म प्रेरित लगी कि मेरा क्षात्र धर्म यहीं होगा कि नीति का रणक्षेत्र नहीं छोडूं।

अपने अनुज पांडु का जाना और तपस्या में लग जाने का निश्चय सुनकर धृतराष्ट्र का मन बडा ही दु:खी हुआ। वे अपने भाई की चिन्ता में मग्न रहने लगे इतने में ही कक्ष में शकुनि का प्रवेश होता है। धृतराष्ट्र बोले, आईये गान्धार राजकुमार। शकुनि बोला, पर आज हस्तिनापुर नरेश उदास क्यों है ? धृतराष्ट्र बोले, मेरे अनुज पांडु के वनवास ने मुझे दु:खी कर दिया है। शकुनि बोले, जीजाश्री यहीं तो वह अवसर है जिसकी प्रतीक्षा थी। अब यह राजमुकुट इस सिर से कभी नहीं उतरेगा। आप के साथ यह जो अन्याय हुआ है। बडे-बूढ़ों ने ठीक ही कहा है भगवान के घर देर है पर अंधेर नहीं। बधाई हो महाराज धृतराष्ट्र हस्तिनापुर नरेश। राजगद्दी पर अब आप और वनवास यात्रा पर पांडु।

पांडु और उनकी पत्नियाँ वन में प्रायश्चित करने के लिये आ गयी। ऋषि मंडली ने पांडु को प्रायश्चित यज्ञ करवाया। वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत होते हुये नागशत पर्वत, चैत्ररथ पर्वत, ये कालकूट पर्वत होते हुये हिमालय तथा गन्धमादन पर्वत पहुंचे। बडे-बडे सिद्ध ऋषिमुनियों ने उनके प्रायश्चित के लिये यज्ञयाग कराये थे। वे इन्द्रद्युम्न सरोवर के आगे हंसकूट शिखर को पार कर शतश्रृंग पर्वत पर पहुंचे और तपस्या करने लगे। महात्मा पांडु सब ऋषियों की तन-मन से अहंकार रहित हो सेवा करते। इस प्रकार पांडु की तपस्या हो रही थी। वसुधारा से यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। पांडु ने पर्याप्त दान-दक्षिणा दी और अब ऋषिगण ब्रह्मलोक की ओर जाने लगे। पांडु भी उनके पीछे-पीछे जाने लगा। तब ऋषियों ने पूछा, पांडु तुम कहां जा रहे हो ? और हमारे पीछे-पीछे क्यों चले आ रहे हो ? पांडु बोले, मैं भी आपके साथ ब्रह्मलोक को जाना चाहता हूं। ऋषिगण बोले, आप ब्रह्मलोक में नहीं जा सकते, क्योंकि आप सन्तानहीन हो, अन्यायी हो और आप पर पितृऋण शेष है। इसलिये आप ब्रह्मलोक नहीं जा सकते। यह सुनकर पांडु चिन्तित हो गये और अपने शिबिर में लौट आये। कुन्ती ने पांडु को चिंतित देखा और कारण जानना चाहा। पांडु को बार-बार किन्दम ऋषि के श्राप का स्मरण हो रहा था। इस श्राप के कारण पांडु का कहीं भी मन एकाग्र नहीं हो रहा था। युवराज के लिये सन्तान प्राप्ति की चिंता भी बार-बार सता रहीं थी और पांडु की मनदशा अस्वस्थ बना रही थी।

कुन्ती ने पुछा- आर्यपुत्र आप किस विचार में हो जो आप कुन्ती और माद्री से छिपा रहे हो। पांडु बोला, कुन्ती यह विचार एक नरक है। एक दहकता हुआ भभकता हुआ नरक। जिसमें मेरे जीवन का एक-एक क्षण जल रहा है। कुन्ती बोली, मैं आपकी अर्धांगिनी हूं आर्यपुत्र। पांडु बोले, अब तुम दोनों भी मेरे वचन को पूरा नहीं कर सकते। मुझे किन्दम ऋषि का श्राप है कि मुझे वंशहीन बाप बनने का पाप सहन करना होगा और वंशहीन मरने का। पितृऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि मुझे पुत्र प्राप्ति हो। मेरी अभिलाषा है बिना सन्तान के मरने पर स्वर्ग प्राप्ति भी नहीं हो सकती और पितृऋण शेष रहेगा। इसलिये पुत्र होना जरूरी है। कुछ भी करो पुत्र उत्पन्न हो। तब कुन्ती बोली- हाँ महाराज एक उपाय है। बचपन में दुर्वासा ऋषि ने मुझे एक वशीकरण मन्त्र दिया था जिससे मैं किसी भी देवता का आह्वान कर पुत्रप्राप्ति कर सकती हूँ और कुन्ती ने अपनी अतीत की कहानी पांडु को सुनायी। पांडु बोला तो देवि शीघ्रातिशीघ्र उस मन्त्र का उपयोग करो।

२८) कुन्ती का अतीत, कर्ण की उत्पत्ति

सभी आर्य नरपति वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले होते थे। गौ, ब्राह्मण और साधु-सन्तों में श्रद्धा रखते थे। लोगों में धर्म के प्रति आस्तिक भाव थे, ऋषि-मुनियों की सर्वत्र धाक थी। घर-घर अतिथि सेवा होती थी, सभी वर्णाश्रमी अतिथि की ईश्वर-बुद्धि से पूजा करते थे। जिस घर में अतिथि नहीं आते थे, जिस गृहस्थ के यहाँ अतिथि सेवा नहीं होती थी, लोग उस घर को श्मशान के तुल्य मानते थे। महाराज कुन्तिभोज के यहाँ भी बहुत से ऋषि, मुनि, स्नातक, ब्राह्मण आते थे और उनका समुचित आतिथ्य सत्कार किया जाता था। महाराज ने इस परम पुनीत कार्य के लिये अपनी पालित पुत्री कुन्ती को नियुक्त कर रखा था। क्योंकि कुन्ती का स्वभाव बडा ही सरल था, उसकी वाणी में स्वाभाविक मधुरता थी, आतिथ्य सेवा में उसकी बाल्यकाल से ही बड़ी रुचि थी। दूसरे के दुख को देखकर वह दुखी होती। वह दूसरों के दुख दूर करने में अपने शरीर के सुख की भी परवाह न करती। उसे सबकी सेवा करने में स्वत: ही बड़ा आनन्द आता था।

महाराज इसकी अतिथि सेवा की ऐसी रुचि देखकर बड़े प्रसन्न होते। उन्होंने अतिथियों की सेवा का समस्त भार इसलिये अपनी प्यारी पुत्री के ऊपर छोड़ दिया कि इससे इसे भी प्रसन्नता होगी और अतिथियों का भी इच्छानुकूल सत्कार हो सकेगा। साधु महात्माओं के आशीर्वाद से मेरी पुत्री का अभ्युदय होगा और उसकी समस्त मनोकामनायें पूर्ण होंगी।

दैवयोग से एक समय चातुर्मास्य के पूर्व ही महाक्रोधी महर्षि दुर्वासा महाराज कुन्तिभोज के राजमहल में आये। महर्षि दुर्वासा को देखकर महाराज प्रसन्न भी हुए और डरे। प्रसन्न तो इसलिये हुए कि इतने बड़े महर्षि के आतिथ्य का देव-दुर्लभ सुयोग हमें प्राप्त हुआ। डरे इसलिये कि ये महर्षि मूर्तिमान् क्रोधी हैं, पता नहीं, किस बात पर क्रुद्ध हो जायँ और उनके फलस्वरूप न जाने कैसा भारी शाप दे डालें। महर्षि ने महाराज कुन्तिभोज का आतिथ्य स्वीकार किया और विश्राम करने के अनन्तर स्वस्थ होकर बोले- महाराज। मेरी इच्छा है कि अगला एक वर्ष मैं आपके ही यहाँ व्यतीत करूँ। इसमें आपकी क्या सम्मति है ?

महाराज बड़े असमंजस में पड़े। उनके यहाँ सामग्री की तो कुछ कमी थी ही नहीं। इतने बड़े महात्मा हमारे यहाँ एक वर्ष निवास करें इससे बढ़कर हमारा और सौभाग्य हो ही क्या सकता है, किन्तु इनके अनुरूप सेवा नहीं हुई, तनिक-सा भी प्रमाद हो गया तो सब करा कराया व्यर्थ हो जायगा, न जाने कौन-सा दारुण शाप दे डालें। फिर भी मना नहीं कर सकते थे। दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधे हुए बड़े विनीत भाव से महाराज बोले- प्रभो। मेरा बड़ा सौभाग्य है। मेरे ऊपर भगवान् की परम कृपा है, जो आप जैसे महर्षि मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे। भगवन्। मेरा परिवार, मेरा राज्यकोष, मेरा सर्वस्व आपका ही है, मैं आपका किमर हूँ, मैं हर प्रकार से आपकी सेवा करूँगा।

महर्षि ने सम्मति सूचक सिर हिलाया और एक स्थान पर आसन जमा दिया। महाराज अन्त:पुर में गये। उन्होंने सजल नेत्रों से अपनी पुत्री कुन्ती को बुलाया और बोले- बेटी। आज तेरी कठिन परीक्षा का समय है। महर्षि दुर्वासा यहाँ एक वर्ष रहना चाहते हैं, उनकी सेवा का भार मैं तेरे ही ऊपर छोड़ता हूँ। मुझे आशा है, तू उसे बड़ी सावधानी से करेगी।

कुन्ती ने अत्यन्त ही कातर स्वर में कहा- पिताजी। आप इतने अधीर मत हो। यह तो मेरा परम सौभाग्य है। मैं आपकी इच्छा के अनुकूल ही महर्षि की सेवा करूँगी। सेवा में अणुमात्र भी त्रुटि नहीं होगी।

महाराज कुन्तिभोज ने कहा- बेटी। मुझे विश्वास है, तू प्राणपण से महर्षि की सेवा करेगी, किन्तु तुझे उनके स्वभाव का पता नहीं। वे बड़े क्रोधी ऋषि हैं। क्रोधी क्या, मूर्तिमान क्रोध ही हैं। तनिक-सी त्रुटि पर वे ऐसा दारुण शाप देते हैं कि सर्वनाश की सम्भावना बनी ही रहती है। उन्हें प्रसन्न होते बहुत कम लोगों ने देखा है। वे शाप देने में ही प्रसिद्ध हैं। इसलिये देवता, यक्ष, दानव, किन्नर, गन्धर्व, मनुष्य सभी उनके नाम से ही डरते रहते हैं।

कुन्ती ने कहा- पिताजी। आप चिन्ता न करें। मैं हर प्रकार से ऋषि को प्रसन्न रखूँगी। आप इस विषय में निश्चिन्त होकर मुझे उनकी सेवा में नियुक्त कर दीजिये। महाराज कुन्तिभोज अपनी पुत्री को लेकर महर्षि दुर्वासा के समीप गये। पुत्री को ऋषि के चरणों में डालकर नेत्रों में जल भरकर कहा- प्रभो। यह मेरी अत्यन्त ही प्यारी एकमात्र पुत्री है। यह राजमहलों में बड़े प्यार से पली है, यह स्वभाव से ही सुकुमारी है। मैं इसे आपकी सेवा में नियुक्त करता हूँ। दीनबन्धो। मेरी बच्ची अबोध है। इसे अभी ज्ञान नहीं। सेवा में इससे जो त्रुटियाँ हो जायँ उसे आप अपने दयालु स्वभाव से सदा क्षमा करते रहें।

ऋषि ने सम्मति सूचक संकेत किया। कुन्ती तन-मन से महर्षि की सेवा में जुट गयी। ऋषि को निवास क्या करना था, उन्हें तो कुन्ती के धैर्य की परीक्षा करनी थी। आगामी विपत्ति से बचाने के लिये उसे कष्ट सहिष्णु बनाना था। भरत वंश को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उन्हें तो उपाय रचना था। वे भाँति-भाँति से कुन्ती की परीक्षा लेने लगे। कभी प्रात:काल ही कहते मुझे भूख लगी है, गरमागरम भोजन दो। कुन्ती तत्क्षण तैयार करके देती। कभी कह जाते, मैं अभी नदी से स्नान करके आता हूँ, आते ही मुझे गरम भोजन मिलना चाहिए। कुन्ती भोजन बनाकर प्रतीक्षा करती, वे तीसरे पहर तक नहीं आते। जब कुन्ती निराश होकर चौका उठा देती तो उसी समय आकर कहते- मुझे अभी गरमागरम भोजन दो। कुन्ती तो सदा सचेष्ट रहती, वह उसी क्षण रसोई बनाकर उन्हें भोजन कराती। कभी आधी रात में ही उठकर चल देते। कभी दिन भर नहीं आते। कभी झूठ-मूठ में ही अच्छे पदार्थों में दोष लगाते। इस प्रकार भाँति-भाँति से वे कुन्ती के धैर्य को देखने लगे। किन्तु कुन्ती न तो कभी आलस्य करती, न किसी काम में कभी प्रमाद ही करती वे जब भी, जिस समय भी, जो भी सेवा करने को कहते, उसी समय उसे सावधानी के साथ करती। ऐसी सेवा से पत्थर भी पिघल सकता है, फिर दुर्वासा तो ऋषि ही थे। वे प्रसन्न हुए। संसार में एक अघटित घटना घटी। दुर्वासा की प्रसन्नता बहुत कम देखी गयी है, वे वाक् वज्र छोड़ने में ही शूरवीर हैं, किन्तु कुन्ती ने अपने कौशल से, अपनी निष्कपट सरल सेवा से ऋषि को परास्त किया। त्रिकालज्ञ ऋषि ने कुन्ती के प्रारब्ध के विषय में विचार किया। उन्हें पता चल गया कि इसके भावी पति सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ होंगे। उनके सन्तान न होगी तो भरतवंश का ही नाश हो जायगा। माताओं के लिये पुत्र के मुख दर्शन के समान संसार में और कोई भी सर्वोत्तम सुख नहीं। इसलिये भावी विपत्ति का विचार करके ऋषि ने कुन्ती के कल्याण की बात सोची। उन्होंने कुन्ती से कहा- वरंब्रू हि। मैं तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई मनोनुकूल वर माँग लो। कुन्ती ने कहा- प्रभो। आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हैं और मेरे पिता मुझ पर प्रसन्न हैं, इससे बढ़कर और वर क्या होगा। आपकी कृपा बनी रहे यही सबसे बड़ा वर है। दुर्वासा के बार-बार कहने पर जब कुन्ती ने कोई वर न माँगा, तब उन्होंने स्वयं ही कुन्ती को बुलाकर कहा- बेटी, मैं अब जाना चाहता हूँ। देखो, यह अथर्व-वेद का मन्त्र है। जब तुम्हें आवश्यकता हो और सन्तान की कामना हो तब इस मन्त्र से तुम जिस देवता का आह्वान करोगी, इस मन्त्र के प्रभाव से वही देवता आकर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेगा और तुम्हारा गर्भ स्थापित करेगा। उसी के प्रसाद से तुम्हें पुत्र प्राप्त हो सकेगा।

ऋषि ने विधिपूर्वक कुन्ती को स्नान कराके मन्त्र प्रदान किया और वे इच्छानुसार चले गये। कुन्ती बड़े कुतूहल के वश होकर उस मन्त्र के सम्बन्ध में सोचती रही।

जन्म और मृत्यु का झंझट जीव के साथ तब तक लगा रहता है जब तक उसका मोक्ष नहीं होता। जीव कभी उच्च योनि में जाता है, कभी नीच योनि में। गुण भी बन्धन का कारण है दुर्गुण भी, धर्म भी बन्धन है अधर्म भी। धर्म का बन्धन सुवर्ण की जञ्जीर है, अधर्म के बन्धन को मोह पाश कह सकते हैं। यह मृत्यु का बन्धन तो श्रीकृष्ण चरणों में जाने पर ही खुल सकता है। ऋषि, देवता, मनुष्य सभी बंधन में हैं। सभी काम क्रोध के अधीन हैं। जिसने काम क्रोध जीत लिया, जिसका मोह ममत्व मिट गया उसीका मोक्ष है, नहीं तो देवता भी बन्धन में हैं। उन्हें भी मान-अपमान, अपने पराये का बन्धन है। वे भी सुख में सुखी

और दु:ख में दुखी होते गये हैं। भगवान् ही कृपा करके जिसके बन्धन को काटना चाहें वही इस चौरासी के चक्कर से छूट सकता है, नहीं तो बड़ी कठिन श्रृफ्ला है। बड़ा दुरूह बन्धन है।

कुमारी कुन्ती को महर्षि दुर्वासा का वशीकरण मन्त्र मिल गया। उसके मन में विचारों का बवण्डर उत्पन्न हो गया। महर्षि ने मन्त्र दिया है, क्या सत्य होगा ? देवलोक से देवता कैसे आते होंगे ? उनका स्वरूप कैसा होता होगा ? उनसे बातें कैसे की जाती हैं ? गर्भ क्या है, शिशु कैसे पैदा होता है ? ऐसे अनेकों विचार उसके मन में उठने लगे। उसके लिये यह मन्त्र एक अद्भुत वस्तु थी। दिन रात्रि वह इसी के सम्बन्ध में सोचती रहती। एक दिन उसने ऋतु-स्नान किया। उसके मस्तिष्क में वे ही मन्त्र की बातें घूम रही थीं। रह-रहकर उसे मन्त्र के सत्य होने के सम्बन्ध में सन्देह होने लगा। सहसा उसके अङ्गों में एक प्रकार की अकड़न-सी पैदा हुई। शरीर में स्वत: ही रोमाञ्च-से होने लगे।

भगवान अंशुमाली मानों कुन्ती की मनोवृत्ति पर हँस रहे थे। सहसा कुन्ती की दृष्टि चराचर जगत् के स्वामी भगवान् सूर्यदेव पर पड़ी। उसने निश्चय किया; आज मैं इस मन्त्र की सत्यता के विषय में अवश्य ही परीक्षा करूँगी। आसन मारकर बैठ गयी। भगावन् का स्मरण करके उसने तीन बार आचमन किया और ऋषि ने जिस प्रकार मन्त्र बताया था उसी विधि के अनुसार उसने सूर्यदेव का ध्यान करके भगवान् सविता का आह्वान किया क्षण भर में ही परमकान्ति युक्त पुरुष रूप में भगवान् हिरण्यगर्भ उसके सामने खड़े हुए दृष्टिगोचर हुए। अपने सामने सहसा सूर्य-नारायण को देखकर सरला कन्या सकपका गई। वह सहसा आसन से उठ खड़ी हुई, उसकी आँखों के सामने चकाचौंध हो गया। भगवान् भुवन भास्कर के तेज को सहन न करके उसने दोनों हाथों से अपनी दोनों आँखें मींच लीं। भगवान् सूर्यदेव खड़े ही रहे।

थोड़ी देर में उसने साहस कर आँखें खोलीं और अत्यन्त लजाती हुई भर्राई हुई वाणी में धीरे-धीरे बोली- प्रभो। मेरे अपराध को क्षमा करें। नाथ। मेरा भाव दूषित नहीं था। मैंने केवल मन्त्र की परीक्षा के ही निमित्त आपका आह्वान किया था। अज्ञानवश जो मैंने अपनी बाल सुलभ चञ्चलता के कारण आपका जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें और आप अपने यथेच्छ स्थान को लौट जायें। मेरे मन में कोई बुरा भाव नहीं था।

मुस्कराते हुए भगवान् सूर्य ने कहा- मैं जानता हूँ तुम्हारा भाव शुद्ध था। तुमने किसी बुरे भाव से मुझे नहीं बुलाया। मुझे यह भी पता है कि तुमने कुतूहल वश बाल सुलभ चपलता के ही कारण ऐसा किया है, किन्तु मेरा आना तो व्यर्थ न होगा।

कुन्ती बोली- हे जगत्पते। हे सविता। हे त्रिलोकेश। यह आप क्या कह रहे हैं ? भगवन्। मैं अभी कुमारी हूँ। मेरे अपराध को क्षमा कीजिये। मेरे धर्म की रक्षा कीजिये। मुझे अधर्म से बचाइये। यह कहते-कहते कुन्ती बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और रोने लगी।

भगवान् सूर्यदेव ने कहा- देवि। मैं लौट सकता हूँ, किन्तु इसमें तुम्हारा कल्याण नहीं। एक तो यह मन्त्र अमोघ है, मेरे लौटने से यह व्यर्थ हो जायगा। दूसरे यह मेरा बड़ा भारी अपमान भी है। इस समय यदि तुम मेरे प्रस्ताव को स्वीकार न करोगी तो मैं दुर्वासा को और तुम्हे शाप दूँगा। अज्ञान में ही सही, तुमने मुझे बुलाया तो है। तुम सामने देखो, आकाश में विमानों पर चढ़े देवता मुझे देखकर हँस रहे हैं। अब यदि मैं यहाँ से ऐसे ही अकृतकार्य लौट जाऊंगा तो वे मेरे ऊपर और भी हँसेंगे। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम स्वयं देवताओं को देख सकोगी। यह कहकर भगवान् सूर्य ने कुन्ती को दिव्य दृष्टि दी। कुन्ती ने सचमुच देवताओं को अन्तरिक्ष में हँसते हुए देखा।

कुन्ती अब बड़े असमञ्जस में पड़ी। रह-रह उसे अपने अज्ञान पर पश्चात्ताप हो रहा था। व्यर्थ में मैंने ऋषि के मन्त्र पर अविश्वास किया। मुझे अभी से उसकी परीक्षा की क्या जरूरत थी। उसने अत्यन्त ही दीनता से कहा- हे सर्वलोक को आलोक प्रदान करनेवाले देवाधिदेव। आप धर्म के साक्षी हैं। समस्त धर्म कार्य आपके ही साक्षित्व में प्राणी करते हैं। मैं अभी कन्या हूं

फिर आपके इस अधर्म पूर्ण प्रस्ताव को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ।

भगवान भुवन भास्कर बोले- देवि। तुम विश्वास रखो, मेरे प्रसाद से तुम्हारा कौमार्यपन दूषित न होगा। मेरे आशीर्वाद से तुम्हें कुछ भी दोष न लगेगा। तुम निर्भय होकर मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करो। अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।

कुन्ती ने सोचा- मेरे कारण पिता का सर्वनाश हो सकता है। भगवान् दुर्वासा का भी अनिष्ट होगा। ये सूर्य चराचर के स्वामी हैं, न जाने क्या करें। वह विवश थी, लाचार थी। वह उठकर अपनी शैय्या पर चली गई। भगवान् सूर्य देव ने उसके शरीर का स्पर्श किया। वह अचेत हो गई, भगवान् सूर्य के तेज को वह सह नहीं सकी। भगवान दिवाकर ने अपने तेज से कुमारी कुन्ती के योगयुक्त होकर उसमें गर्भाधान किया। सूर्य भगवान ने उसका कुमारीपन नष्ट नहीं किया। कुन्ती फिर ज्यों-की-त्यों कन्या हो गई। कुन्ती को गर्भ धारण कराके भगवान् सूर्य अपने लोक चले गये।

यथा समय गर्भ के लक्षण कुन्ती के शरीर में प्रकट होने लगे। उसे माता-पिता के सामने जाने में बड़ी लज्जा लगने लगी। उसकी एक अत्यन्त ही विश्वासपात्र धाय थी। उससे उसने सब बातें कह दीं और यह भी प्रतिज्ञा करा ली, कि वह किसी से भी इस बात को न कहे। धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा। अब कुन्ती ने बाहर निकलना एकदम बन्द कर दिया। वह माता के महलों में भी अब न जाती। उसकी धाय ने हर तरह से उसकी सेवा की। गर्भोपयोगी जो भी वस्तुएँ आवश्यक थीं, वे उसने जुटा दीं। ठीक समय पर बिल्कुल एकान्त में रात्रि के समय कुन्ती ने एक पुत्र रत्न को प्रसव किया। वह कुमार अद्वितीय रूप लावण्य युक्त था। भगवान् भुवन भास्कर का जैसा स्वरूप था, जिस रूप से वे कुन्ती के अन्त:पुर में पधारे थे, वह बालक ठीक उनके ही प्रतिरूप था। एक अपूर्व कान्ति से उसका शरीर चमक रहा था। उसकी अवर्णनीय आभा थी। उसके शरीर पर स्वाभाविक ही कवच था, वह कानों में दिव्य कुण्डल और दिव्य कवच पहिने ही पैदा हुआ था। ऐसे रूप लावण्य युक्त तेजस्वी पुत्र को देखकर कुन्ती का हृदय बाँसों उछलने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई हे कुन्ती, तेरा यह पुत्र महादानी, शूरवीर, श्रेष्ठ धनुर्धारी योद्धा होगा और जगत में यह कर्ण नाम से जाना जायेगा।

उसके हृदय में मातृत्व प्रेम छा गया। वह अनिमेष दृष्टि से उस अलौकिक कुमार के अद्भुत आनन को निहारने लगी। उसे पता ही न रहा वह कुमारी है और कुमारी के पुत्र होना संसार में महान कलम की बात है। पुत्र स्नेह ने उसे ऐसा अचेत बना दिया कि वह अपने आपे को भूल गई।

कुछ क्षण के पश्चात् उसे शरीर की सुधि-बुधि आई। अपनी परिस्थिति का ध्यान हुआ। पास में बैठी हुई धाय से उसने क्षीण स्वर में वेदना के साथ कहा- धाय माँ। अब क्या हो ? अब हमारा क्या कर्तव्य है ?

धाय ने कहा- राजकुमारी। घबड़ाओ नहीं, मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। तुम चिन्ता छोड़ दो। मङ्गलमय भगवान् सब मङ्गल ही करेंगे। इस बात को कोई जान न सकेगा। तुम्हारे आदेश के अनुसार सब सामान ठीक हैं।

कुन्ती ने बड़े दु:ख के साथ एक आह भरी और फिर वह बेहोश हो गई। बच्चा धीरे-धीरे रुदन कर रहा था। संसार गाढ़ निद्रा में सो रहा था।

संसार अन्धा है। मनुष्य को परचर्चा, पर निन्दा करने में अत्यन्त ही सुख मिलता है। परचर्चा हमें मिश्री से भी अधिक मीठी और नवनीत से भी अधिक स्निग्ध प्रतीत होती है। तभी तो जिनसे अपना कोई प्रयोजन नहीं, उनके विषय में बातें करते-करते हम विश्राम नहीं लेते। विशेष कर बुराई में तो हमें मधु से भी अधिक मिठास आती है। सभी कामों में अच्छाई और बुराई दोनों का समावेश रहता है। गुण दोष समान भाव से सबमें सन्निहित हैं। बहुत-से पापों से हम लोकापवाद के भय से बच जाते हैं और बहुत-से पाप हमें लोकापवाद के भय से करने पड़ते हैं। यदि संसार इतना परापवाद प्रिय न हो, यदि अच्छे कामों की प्रशंसा और बुरे कामों की निंदा होना बन्द हो जाय तो समाज की श्रृंफ्ला ही टूट जाय। इसीलिये हम समाज में रहकर कभी अपने मन

की बात को भी नहीं कर सकते और जिसे करना नहीं चाहते वह भी करनी पड़ती है।

धीरे-धीरे रात्रि और भयानक हो गई। वर्षा की ऋतु थी। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की चमक से हृदय दहल जाता था। छोटी-छोटी बूंदे पड़ रही थीं। कुन्ती ने अपने हृदय को कड़ा किया। वह शिशु को लेकर उठ खड़ी हुई। धाय ने कहा- राजकुमारी। मैंने एक अत्यन्त ही योग्य कारीगर से एक काष्ठ मंजूषा पेटी बनवाई है। इस नवजात शिशु को इसमें रखकर इसके भाग्य पर छोड़ दो, जहाँ का प्रारब्ध होगा, वहाँ यह बालक स्वत: ही पहुँच जायगा। तुम्हारे भाग्य में इसका सुख नहीं बदा है। यद्यपि तुम निरपराध हो, तुम्हारा चरित्र शुद्ध है, तुम्हारा कन्यापन नष्ट नहीं हुआ, फिर भी समाज तुम्हारे इस कार्य को सहन नहीं कर सकता। देवि। विलम्ब न करो। मन की मलीनता को मेट दो। तुम मोह के वशीभूत मत हो। पालनकर्ता सब के प्रभु हैं। भाग्य जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है। तुम्हारा यह पुत्र जहाँ भी रहेगा यशस्वी होगा। इसे तुम भाग्य के भरोसे छोड़ दो। यह साधारण मनुष्य की सन्तान नहीं है। तीनों लोकों के स्वामी भगवान् भुवन भास्कर क्या इसकी कुछ भी चिन्ता न करेंगे ?

यह कहते-कहते धाय ने एक बहुत ही सुन्दर मंजूषा कुन्ती के सामने रखी। बाहर श्रावण भादों की वर्षा हो रही थी, भीतर कुन्ती के नेत्रों से निरन्तर अश्रु वर्षा हो रही थी। बिलखते हुए कुन्ती ने उस मंजूषा केा देखा। वह एक अत्यन्त सुन्दर मूल्यवान लकड़ी की बनाई गयी थी। वह नौका के आकार की बनाई गई थी कि कितनी भी आँधी तूफान आवे वह किसी प्रकार भी जल में डूब नहीं सकती थी। उसमें इस प्रकार की जालियाँ लगाई गई थीं कि वायु का सञ्चार तो उसमें यथेष्ठ हो, किन्तु जल का एक बिन्दु भी उसके भीतर न जा सके। उसमें कहीं से भी पानी प्रवेश करने की सम्भावना नहीं थी। वह बच्चे के शरीर की अपेक्षा कुछ अधिक लम्बी थी। उसका आकार मछली के समान था। इधर-उधर उसमें पफभी थे जो पानी को चीर सकें और आँधी तूफान में उलट न सके। उस सुन्दर पिटारी को देखकर कुन्ती रो पड़ी। अत्यन्त मुलायम बहुत ही सुकोमल मखमल की गद्दी कुन्ती ने उसमें बिछाई। चारों ओर मनोहर मुलायम तकिये उसने उसमें रखे। बच्चे को उसमें लिटाया और धाय के सिर पर रखकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर घोर निशीथ के समय घनघोर घटाओं के बीच महान अन्धकार में वह अन्त:पुर से बाहर हुई। नगर से थोड़ी दूर एक छोटी-सी अश्व नदी थी। धाय के साथ कुन्ती उस नदी के किनारे पहुँच गई। वहाँ जाकर धाय ने उस मंजूषा को रख दिया। माता ने देखा- उसका नवजात शिशु गहरी नींद में सो रहा है। माता का हृदय विदीर्ण होने लगा, उसने पिटारी में से बालक को फिर एक बार निकाला। स्तनों में स्वत: ही दूध की धारा बह रही थी। माता ने बच्चे को हृदय से चिपटा लिया। बच्चा माता के स्तन-पान करने लगा। उसने खूब भर पेट दूध पिया। यही उसका माता के स्तनों का अन्तिम पयपान था कुन्ती का हृदय फटा जा रहा था। लोक लज्जा के भय से अपने हृदय के टुकड़े को सदा के लिये परित्याग कर रही थी। उसने बच्चे को फिर से पिटारी में सुला दिया। मंजूषा के ऊपर मङ्गलमय स्वस्तिक के चिन्ह बनाये। दुर्वा, अक्षत, दधि, कुंकुम आदि मङ्गल वस्तुएँ उसमें रख दीं। नदी का जल वेग से बह रहा था, कुन्ती के अश्रु प्रवाह के जल ने उसे और भी वेगवाला बना दिया था, जल के भीतर घुसकर काँपते हुए हाँथों से माँ ने उस मंजूषा को जल में रख दिया और रोती-रोती बोली- बेटा। जाओ, मुझ अभागिन के पुण्य क्षीण हो गये हैं। हाय। तुमने ऐसी राक्षसी माँ के गर्भ से क्यों जन्म लिया जो तुम्हें अपने हाथों जान-बूझकर काल के गाल में फेंक रही है। उस भाग्यवती स्त्री का कल सुप्रभात होगा, जिसकी कोख को तुम हरी-भरी करोगे। सचमुच वह भाग्यवती नारी होगी जो तुम्हें पुत्र कहकर पालन करेगी। तुम्हारे पिता भगवान् भुवन भास्कर तुम्हारा मङ्गल करे। समस्त दिशायें तुम्हारी रक्षा करें। जल के अधिष्ठातृ देव भगवान वरुण तुम्हें सब प्रकार के समटों से बचावें। जाओ बेटा। जाओ। मेरे लाड़िले लाल। किसी बड़भागिनी माँ को पुत्रवती बनाओ, किसी भाग्यवान पुरुष के हर्ष को बढ़ाओ। यह कहते-कहते माता ने उस मंजूषा को छोड़ दिया। जल के प्रवाह में वह सुन्दर हलकी सन्दूकची बहने लगी। जब तक वह मंजूषा दीखती रही तब तक धाय और कुन्ती वहीं बैठी रहीं। तभी एक आकाशवाणी हुयी, कुन्ती तेरा यह पुत्र बडा ही शूरवीर, श्रेष्ठ धनुर्धारी और महादानी होगा और संसार में यह कर्ण नाम से जाना जायेगा। कुन्ती का मन तो उस मंजूषा के साथ नदी की लहरों में आगे बहा जा रहा था।

भाग्य जिसकी रक्षा करता है वह अरक्षित भी रक्षित है, परन्तु भाग्य का मारा अच्छी तरह रक्षित होने पर भी विनष्ट हो जाता है अत: जङ्गल में छोड़ा हुआ असहाय भी प्राण धारण करता है, घर पर अच्छी तरह पाला-पोसा नहीं जी सकता।

मनुष्य पैदा होने के साथ ही अपने भोग साथ लेकर आता है। यह बात अक्षरश: सत्य है अन्न के दाने पर, जल के कण-कण पर मुहर छाप लगी है। जिस वस्तु पर जिसका नाम लिखा है, वह उसे अवश्य प्राप्त होगी और जो जिसकी नहीं है, जिसके भाग्य में वह नहीं लिखी है, वह उसे प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकती। पुरुष के भाग्य को कोई जान नहीं सकता इसीलिये हम प्रयत्न करते रहते हैं। यदि मनुष्य को भाग्य का पता लग जाय तो वह प्रयत्न ही क्यों करे ? यह जगत् में मेरा-तेरा, हाय-हाय, लूट-मार, लड़ाई-झगड़ा क्यों हो ? संसार के समस्त प्रयत्न भाग्य के अज्ञान के ही कारण हो रहे हैं। जिन ऋषियों को सूक्ष्मज्ञान के द्वारा भाग्य के रहस्य का पता चल गया है जिन्हें पता चल गया है कि यह शरीर दैववश है, जब तक चलना होगा अवश्य चलेगा, जो भोग प्राप्त होने होंगे वे अवश्य होंगे। वे कोई इच्छा से कर्म नहीं करते, वे प्रारब्ध कर्मों के भरोसे निश्चेष्ट बैठे रहते हैं। चिन्ता और विस्मय यह अज्ञान के कार्य हैं। जो प्राप्त होना है अवश्य प्राप्त होगा। इसीलिये किसी वस्तु के मिलने पर हम विस्मय क्यों करें ? जो नहीं प्राप्त होना है, लाख प्रयत्न करने पर भी न प्राप्त होगा, उसकी चिन्ता निरर्थक है, भाग्य सबको घुमा रहा है और मतिमन्द पुरुष संसारी व्यापारों में चिन्ता विस्मय करके व्यर्थ ही दुख मोल ले रहा है।

कुन्ती अपने लाड़िले लाल को, अपने हृदय के टुकड़े को अपने आँखों के तारे को, अपने प्यारे नवजात सुकुमार शिशु को नदी में छोड़कर लौट आई। वह छोटी नदी थी, उसका नाम अश्व था। बालक उस नदी में बहने लगा। वायु अनुकूल थी दैव की गति जानी नहीं जाती। वह नदी महानदी चंबल में जाकर मिलती है, अब शिशु की पिटारी बहती-बहती चम्बल नदी में आ गई। इटावे के पास चम्बल नदी आकर यमुना में मिलती है, अत: चम्बल के प्रवाह के साथ वह भी यमुना में आ गई और वह भी प्रयाग की ओर बढ़ी। तीर्थराज प्रयाग में आकर यमुना गङ्गा में मिल जाती हैं, अत: अब वह मंजूषा शिशु को लेकर काशी की ओर बहने लगी। उसके साथ न कोई मल्लाह था, न पथ-प्रदर्शक व्यक्ति। भाग्य उसे स्वयं ही बहाकर ले जा रहा था। काशीपुरी, पाटलिपुत्र (पटना) आदि राज्यों की सीमा को पार करती हुई गङ्गा के प्रवाह के साथ वह मंजूषा बिना किसी रुकावट के आगे बढ़ी चली जा रही थी। आगे चलकर वह अङ्ग देश की सीमा में पहुँची। अब मानों उसकी यात्रा समाप्त होगी। दैवयोग से उसी समय चम्बा नगरी के राजा अधिरथ जो कि धृतराष्ट्र के सारथी थे सेवानिवृत्त हो गये अपनी पत्नी राधा और अपने सेवकों के सहित गङ्गा स्नान करने आये। उन्होंने दूर से एक सुन्दर-सी पेटी को जाह्नवी की हिलोरों के साथ क्रीड़ा करते देखा। अन्त में उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी- सामने यह जो मंजूषा बहती जा रही है उसे पकड़कर लाओ, देखें इसमें क्या चीज है ?

आज्ञा पाते ही कुछ मल्लाह नौका लेकर गये और झट से उसे पकड़ लाये और राजा अधिरथ को लाकर उसे दिया। अधिरथ ने उसे देखा। उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उसमें एक नवजात सुकुमार शिशु था। वह बाल सूर्य की भाँति उस मंजूषा को आलोकित कर रहा था। बालक के भोले-भाले सुन्दर स्वरूप को देखकर राजा अवाक् रह गया और बड़ी देर तक उसके अद्भुत आनन को निहारता रहा। स्वाभाविक-कवच कुण्डल धारण किये उस अलौकिक बालक ने राजा पर जादू-सा कर दिया। अधिरथ अनपत्य था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने अपनी पत्नी राधा को उस बच्चे को दिया। ऐसे देवतुल्य बालक को पाकर राधा का रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा। राधा के अब तक कोई सन्तान नहीं थी। मातृ-सुख से वह अब तक वञ्चित ही थी। उस अनुपम शिशु को देखकर उसका मातृभाव उमड़ आया और स्वत: ही उसके स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। राधा ने झट से अपना स्तन बालक के मुख में दे दिया। बालक दो दिन का भूखा था। स्तन पाते ही झट से वह दूध पीने लगा। माता निहाल हो गयी। अधिरथ ने सहस्त्रों गौओं का दान दिया, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया। चारों ओर तुरही, नगाड़ा, भेरी बजने लगी। समस्त नगर में आनन्द छा गया। सर्वत्र उत्सव की धूम मच गयी। अधिरथ ने उसे अपना सगा पुत्र समझा। राधा उसे अपने उदरजात पुत्र की ही

भाँति पालन करने लगी और उसका नाम राधेय रखा।

वह जन्म से ही वसु-सुवर्ण के कुंडलों के सहित उत्पन्न हुआ था, अत: माता-पिता और ब्राह्मणों ने उसका नाम वसुषेण रखा। धीरे-धीरे बालक बढ़ने लगा और अपनी तोतली बोली से माता-पिता को सुखी करने लगा। भाग्यवान जहाँ जाते हैं वहाँ अभ्युदय ही होता है। अब तक राजा अधिरथ अनपत्य थे, उनके भी सन्तान नहीं थी। कर्ण के आते ही उनके और भी कई पुत्र हुए। अङ्ग देश में सर्वत्र मङ्गल छा गया। कर्ण के शरीर में जो दिव्य कवच और दिव्य कुण्डल थे वे अलौकिक, अमृतमय थे। ये कुण्डल भगवान सूर्य को अपनी माता अदिति से मिले थे। सूर्यदेव ने पुत्र-स्नेहवश वे अपनी चीजें कर्ण को गर्भ ही में प्रदान की थीं। कर्ण उन्हें पहिने ही पैदा हुए थे। उनमें से सदा अमृत टपकता रहता था। जब तक कवच-कुण्डल उनके शरीर पर बने रहते, संसार में उन्हें कोई मार नहीं सकता था और न पराजित ही कर सकता था। उन दोनों वस्तुओं से कर्ण की अद्भुत शोभा थी।

जब कर्ण कुछ बड़े हुए तो महाराज अधिरथ को उनकी शिक्षा की चिन्ता हुई। अङ्गदेश कुरु जाङ्गल देश के आधीन था। महाराज धृतराष्ट्र से अधिरथ की मैत्री थी, अत: उन्होंने अपनी पत्नी से सम्मति करके कर्ण को अस्त्र विद्या सीखने के लिये हस्तिनापुर में भेज दिया। हस्तिनापुर के समीप जहाँ बहुत से राजकुमार अस्त्र-विद्या सीखते थे, कर्ण भी वहाँ अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास करने लगा। वह स्वभाव से ही शूरवीर था, उसकी बुद्धि विलक्षण थी। उसका वर्ण गौर था, छाती चौड़ी थी, आँखे विशाल थीं, चाल में मस्ती थी। उसके कन्धे सिंह की तरह भरे हुए थे, वह रूप लावण्य में देवताओं के तुल्य था। गुणों में भी उसके समान कोई नहीं था। वह सच्चरित्र, दानी, ब्राह्मणभक्त और सूर्य का उपासक था। यह सब होने पर भी दैव उसके प्रतिकूल था, उसके गुणों के प्रकट होने का स्थान उपयुक्त नहीं मिला। दैव की गति को कौन अन्यथा करने में समर्थ हो सकता है ? और वह हस्तिनापुर में सूतपुत्र के नाम से जाना गया। इसतरह कर्ण का जन्म हुआ।

२९) पांडवों की उत्पत्ति और पांडु का परलोक गमन

वैशम्पायन कहते हैं जन्मेजय तुमने धृतराष्ट्र पुत्रों की उत्पत्ति के बारे में जाना अब पांडु के पुत्रों के जन्म की कथा सुनो। पांडु को पुत्र होने की मन से बडी लालसा थी पर बार-बार उसके मन में किन्दम ऋषि के श्राप का स्मरण आ रहा था कि वह स्त्री सहवास नहीं कर सकेगा और इस कारण से सन्तान भी उत्पन्न नहीं कर सकेगा। वो मन ही मन दु:खी रहने लगा तब कुन्ती ने पुत्र प्राप्ति का देव प्रदत्त पुत्र प्राप्त होने के अपने अतीत के बारे में बताया।

पान्डु शतश्रृंग पर्वत पर वन के आश्रम में रहता था और वहां के कुलपति, ऋषियों से कई विषयों पर वार्ता, चर्चा करता रहता है तथा अपनी ही शंकाओं, प्रश्नों का समाधान करता रहता था। उस आश्रम में उसने सामूहिकता का पाठ सीखा। वह सोच रहा था कि इस आश्रम में निजता या व्यक्तिगत तो कुछ होता ही नहीं। अपने पराये के भाव भी अंकुरित नहीं होते थे तभी वहां पर कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं थे। यहां पर निजत्व का सम्पूर्ण विसर्जन था और आत्मीयता का इतना विशाल विस्तार।

वह आया था यहां पर साधना करने, तपस्या करने पर पांडु यह भूल नहीं पाया कि वह हस्तिनापुर का सम्राट है। ऋषियों ने समझाया भी था कि जिसे वह त्याग समझ रहा है वह तो वस्तुत: अधिक ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त करने की इच्छा है। वह अपने को साधारण नहीं कर पा रहा था इसमें एक प्रकार का अहं ही स्फीत हो रहा था कि मैं कितना महान और असाधारण होते हुये भी साधारण बनने का प्रयत्न कर रहा हूं। पांडु कुलपति के पास आया और बोला मुझे ऐसा लगता है कि मैंने कुछ त्यागा नहीं है न ही राज्य और न ही उसका मोह। दिग्विजय को ही कुरुकुल की कीर्ति में विस्तार समझता रहा। मृगया को व्यक्तिगत शौर्य प्रमाणित करता रहा और अब भी मेरे मन में पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा जागी हुई है। मैं पुत्र क्यों चाह रहा हूं पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये या कदाचित हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर अपनी मृत्यु पश्चात अधिकार बनाये रखने। ऋषि ने पूछा सिर्फ पुत्र की ही इच्छा है स्त्री सुख की नहीं। पांडु बोला- मुझे औरस पुत्र की कामना है। ऋषिवर बोले- पांडु शब्द बदल देने से भाव

और तथ्य नहीं बदल जाया करते राजन। सत्य तो यह है कि अभी भी नारी का आकर्षण तुम्हारे मन से गया नहीं है। तुम राजदर्प त्यागो। प्रकृति के विरुद्ध मन का युद्ध तुम्हारे लिये स्पृहणीय नहीं है संयम से रहो और साधना करो। प्रकृति तुम्हे वह शक्ति प्रदान जो प्रत्येक पुरुष में विद्यमान है तब तुम्हे शायद स्त्री सुख भी प्राप्त हो।

पांडु कुछ देर सोचते रहे और ऋषि से बोले, ऋषिवर क्या कोई ऐसी तपस्या नहीं बता सकते, कोई आध्यात्मिक साधना, कोई मन्त्र या कोई यज्ञ, कोई ऐसी विधि जिससे चाहे अल्पकाल के लिये ही मेरा पौरुष समर्थ हो जाये और मैं सन्तान उत्पन्न कर सकूं। ऋषि बोले- तुम अभी तक अपना दर्प त्याग नहीं सके। प्रकृति से बलात कुछ भी छीनने का प्रयत्न मत करो। अब पांडु तो याचक था उसे तो सत्य भी वही चाहिये जो उसकी कामना के अनुकूल पडे। पांडु का मन कहता था तपस्या के लिये शतश्रृंग के आश्रम में आने की क्या आवश्यकता थी। वह अब भी हस्तिनापुर लौट जाये। पांडु ने अपनी समस्याओं पर पुन: विचार करना आरम्भ किया। उसने यह निश्चय करना चाहिये कि वह अब भी गृहस्थ है या गृहस्थाश्रम त्यागकर वानप्रस्थ स्वीकार कर लिया। यदि वह गृहस्थाश्रम त्याग चुका तो उसे हस्तिनापुर के राज्य तथा उत्तराधिकारों की चिन्ता छोड देनी चाहिये। उसे स्त्री सुख और पुत्र की इच्छा त्यागकर आध्यात्मिक साधना में लीन हो जाना चाहिये और यदि संसार की इच्छा मन में है जैसे स्त्री सुख की कामना, हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन की कामना, पुत्र-पौत्रों की कामना तो उसे हस्तिनापुर लौट जाना चाहिये। सत्य का अर्थ स्वीकार करने का अर्थ अपनी सीमाओं का स्वीकार करना है उसकी सीमा है कामेच्छा जो वह त्याग नहीं सकता। राज वैभव छोडना नहीं चाहता, वह तपस्या भोग के लिये चाहता है त्याग के लिये नहीं।

तब पान्डु ने कुन्ती से कहा यदि दुर्वासा द्वारा दिये गये वशीकरण मन्त्र में कोई शक्ति है तो देवी तुम उस मन्त्र से धर्मराज का आह्वान करो।

आश्रम में कुन्ती पांडु के पास आकर बैठी। पांडु बोला- कुन्ती ईश्वर ने तो केवल स्त्री-पुरुष को बनाया है और यह बनाने में उसका लक्ष्य है सृष्टि। समाज और समाज धर्म तो मनुष्य के अपने अनुभव अपनी सुविधा के लिये मनुष्य द्वारा बनाये गये हैं। नारी पुरुष सम्बन्ध विभिन्न समाजों में अनेक प्रकार से नियंत्रित होते हैं। पहले तो कानीन पुत्र भी समाज में अमान्य था पर ऋषिगण तो उसे अब भी धर्म सम्मत ही मानते हैं। नारी का सन्तान उत्पन्न करना धर्म है। पुत्र पुत्र ही है चाहे वह कानीन हो या क्षेत्रज्ञ या औरस। यह भेदभाव कर देना तो पुत्रों का षडयन्त्र है। कुन्ती ने पूछा क्या तुम्हे मेरे अतीत का कानीन पुत्र मान्य होगा। पांडु बोला नहीं देवि। एक व्यक्ति को जब उसका अपना मन ही छलने लगे तो उसका विवेक उसे कब तक स्थिर रख पायेगा। सूचना देकर कोई अनिष्ट नहीं करता। अकस्मात ही वज्रपात होता है।

कुन्ती ने वन में एक वृक्ष के नीचे धर्मराज का ध्यान किया और उस मन्त्र से धर्मराज का आह्वान किया थोडी देर में धर्मराज प्रकट हुये और बोले कुन्ती बोलो क्या चाहती हो ? तुम्हें क्या वर दूँ। कुन्ती ने मुस्कराकर कहा मुझे तुम्हारे जैसा पुत्र चाहिये। तब योगमूर्ति धारी धर्मराज से कुन्ती को एक पुत्र की प्राप्ति हुई। वह समय शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि ज्येष्ठा नक्षत्र अश्विनी शुक्ल, अभिजित मुहूर्त था, सूर्य उस समय तुला राशि पर था। कुन्ती ने पुत्र को जाकर पांडु को दिया उसी समय आकाशवाणी हुई कुन्ती यह बालक धर्मात्मा मनुष्यों में श्रेष्ठ होगा। यह सत्यवादी एवं सच्चा वीर होगा। सारी पृथ्वी का शासन करेगा और यह सदा ही युद्ध और धर्म में स्थिर रहेगा इसलिये इसका नाम युधिष्ठिर होगा। यह तीनों लोकों में बडा यशस्वी होगा।

पांडु से युधिष्ठिर पुत्र प्राप्त हुआ यह सन्देश हस्तिनापुर पहुंचा और पितृव्य भीष्म ने यह शुभ समाचार धृतराष्ट्र और गान्धारी को सुनाया। सुनकर दोनों के मन में बडी ही चिन्ता हुई कि उनके अपने पुत्र होने से पहले पांडु को पुत्र हो गया अब तो राज्य का कुरुकुल का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर ही उत्तराधिकारी होगा। धृतराष्ट्र ने कहा बडे हर्ष की बात है पांडु को हमारी ओर से बधाई का सन्देश हैं।

इधर हस्तिनापुर में गान्धारी मन में कुछ सोच ईर्ष्या से अपने ही गर्भ पर अपने ही हाथों से प्रहार कर बैठी ताकि गर्भ नष्ट हो। ईर्ष्या तो यही थी कि उससे पहले कुन्ती को पुत्र प्राप्त हो गया। सच है देखो विधाता ने नारी में कितनी ईर्ष्या, कुंठन और जलन भरी है कि एक नारी दूसरी नारी का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकती।

कृष्ण द्वैपायन व्यास गान्धारी के रोग के उपचार के लिये आये और बोले- रोगी अपने रोग को साध नहीं सकता किन्तु उसे साधने की क्षमता उसके अपने भीतर ही होती है। औषध उस क्षमता को प्रेरित और पुष्ट करती है। किन्तु यदि रोगी में वह क्षमता न हो तो औषध भी कुछ नहीं कर सकती। माता गान्धारी अब ठीक है। गर्भ सही सलामत है। सत्यवती ने पूछा गान्धारी ने ऐसा क्यों किया। व्यास बोले- कोई भी व्यक्ति आत्महत्या क्यों करता है ? सत्यवती बोली- क्योंकि वह अत्यन्त दु:खी होता है और उसके दु:ख का कोई निवारण नहीं होता है तभी पुत्र व्यास बोले- नहीं माता। दु:ख का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। भौतिक परिस्थितियों में तो केवल सुविधा और असुविधा ही है। कभी भी भौतिक असुविधाओं का अति हो सकता है तो उसका अर्थ जीवन अन्त कर देना नहीं होता। मनुष्य भूखा प्यासा रहकर जीता है, अपमानित होकर भी जीवित रहता है, धनरहित, शोषित, पीडित, रोगी और दास बनकर भी जीवन से निराश नहीं होता है। दु:ख का अस्तित्व व्यक्ति के मानसिक रोग के रूप में उभरता है और वह अपने रोग के साकार को दैत्य रूप में जितना बढा लेता है स्वयं उसे असाध्य मानकर हार बैठता है तभी यह होता है। गान्धारी को भय हो गया उसका पुत्र राज्य सिंहासन का अधिकारी नहीं होगा और वह राजमाता नहीं बन पायेगी। इन्ही परिस्थितियों की सम्भावनाओं ने इसे यह करने को प्रेरित किया। अभी तक धृतराष्ट्र और गान्धारी मन से यह तथ्य स्वीकार नहीं कर पाये कि हस्तिनापुर का राज्य उनका नहीं पांडु का है। वो तो यही मान कर चल रहे हैं कि यदि राज्य धृतराष्ट्र को नहीं मिला तो धृतराष्ट्र के पुत्र को ही मिलेगा। धृतराष्ट्र के पुत्र का जन्म कौरववंश के लिये स्थिति सुखकर नहीं लायेगा। गान्धारी पुत्र को जन्म नहीं देगी द्वेष को जन्म देगी और अन्तत: इससे नाश होगा, महानाश कुरुकुल का देखो समय की गति कैसे-कैसे सोचे हुये भविष्य की चाल बदल देता है ? भीष्म ने सोचा कि युधिष्ठिर के जन्म के साथ कुरुकुल का नया सूर्य उदय हुआ।

यहां वन में पांडु युधिष्ठर को अंगुली पकडकर चलना सीखा रहा था। पांडु जानता था कि जो खडा होता है वह चलने भी लग जाता है पांडु एक-एक पग पीछे हट रहा है और युधिष्ठिर अपने जीवन के पडाव के एक-एक पग धर-धर कर आगे बढ रहा है। युधिष्ठिर अपने जीवन के पथ पर डग भर रहा है पर एक बार भी डगमगाया नहीं और न ही लडखडाया क्योंकि उसका नाम ही स्थिर था। कितना आत्मविश्वास था युधिष्ठिर को। युधिष्ठिर के जीवन का युद्ध न्याय के क्षेत्र में होगा वह कभी भी अन्याय के मार्ग पर नहीं जायेगा।

पांडु को पुत्र सुख का आभास होने लगा, इतना विस्तृत सुख जो उससे अकेले सम्भाले भी नहीं सम्भलता। उसे इस सुख को किसी के साथ बांट लेना है। इस सुख की पहिली अधिकारिणी माता कुन्ती है जिसने इसकी प्राप्ति में सबसे अधिक कष्ट सहा है। कुन्ती तो आश्रम वासियों के साथ श्रम में व्यस्त थी पर पांडु अपनी रोगग्रस्त क्षमता से कभी श्रम का अंग नहीं बन पाया। पांडु सदा से ही सौन्दर्य का उपासक रहा पर सौन्दर्य की कभी पूजा नहीं कर पाया। माद्री भी कभी भी आश्रम में उपासना या श्रम का अंग नहीं बन पायी। माद्री का मन कभी भी आश्रम की गतिविधि में नहीं रमता था। माद्री को राजमद का रोग था। अध्यात्म माद्री को एक दस्यु के रूप में लगने लगा कहीं उसके सुखी जीवन का सर्वस्व हरण कर लेगा और जीवन के सारे सुख भोगों की सारी सम्भावनायें भी समाप्त हो जायेगी। पांडु और युधिष्ठिर पिता और पुत्र दो पीढियाँ। सृष्टि चक्र की दो कडियां। नयी पीढ़ी का एक पग आगे बढना आवश्यक है और पुरानी पीढ़ी को एक पग पीछे हटना। नयी पीढ़ी पूरी तरह सावधान होकर अपने दृढ पैरों में चलकर नये युग का निर्माण करती है इसके लिये आवश्यक है पुरानी पीढ़ी अनिवार्यता से पीछे हट जाये उसके मार्ग से हट जाये और उसे आगे की ओर बढने दे।

पांडु बोला- माद्री यहा की जलवायु बडी ही अच्छी है लोग भी बहुत अच्छे है, सात्विक विचारवाले, उदार लोग। माद्री बोली- पर आर्यपुत्र यहां राजपुत्रों के योग्य वैभव नहीं है। यहां पल कर तो बच्चा एक साधारण आश्रमवासी, वनवासी या ग्रामवासी ही बनेगा। मयूरों के मध्य पलकर गरुड भी पेड की ऊंचाई तक ही उडेगा। यहां तो आपके पुत्र भी तपस्वियों की भांति बन जायेंगे। उनके लिये तो वन के कन्दमूल ही भोजन होगा। वे नारी श्रृंगार को भी समझ नहीं पायेंगे और न ही उसके प्रसाधन को। वे नारी आकर्षण से भी विस्मृत हो जायेंगे। पांडु बोले ऐसा नहीं हो सकता। पांडु जानता था कि माद्री इस वैभवशून्य, साधनामय सरल जीवन से प्रसन्न नहीं है। वह पांडु की भोगाग्नि को धीरे-धीरे कुरेदती रहती थी ताकि पांडु अध्यात्म, साधना और तपस्या में रम नहीं जाये। विषय भोगों का त्याग नहीं कर दे।

पांडु को अब लगने लगा राजवंश में एक ही पुत्र पर्याप्त नहीं होता है। वह जीवन में अल्पायु भी हो सकता है जैसे मेरे ताऊश्री चित्रांगद हुये थे। एक ही पुत्र राज्य के अयोग्य भी हो सकता है जैसे धृतराष्ट्र शायद उसे राज्य के प्रति अरूचि भी हो जाये जैसे पितृव्य भीष्म। मेरा मन चाहता है कि हस्तिनापुर पर मेरा ही पुत्र राज्य करे तो मुझे अधिक पुत्रों की चाह है। मैं प्रकृति से अपना अधिकार लेकर ही रहूंगा। ऐसे असाधारण वैभवशाली राजवंश में जन्म लेकर भी मैं जीवन के भोग से अतृप्त ही रहा। धिक्कार है मेरे जीवन को। प्रकृति ने मुझे नहीं दिया तो बलात उससे छीनकर ही रहूंगा। माद्री मैं तुम्हे कैसे बताऊं कि मेरे मन में सांसारिक भोगों की कितनी लालसा है पर मैं तो अभिशप्त आत्मा हूँ जैसे विधाता ने मुझे शापित करके भेजा है। मेरे सम्मुख ३६ व्यंजनों की थाली रखी है, भूख भी बडे जोरों से लगी है पर मैं उसमें से एक कौर भी नहीं खा सकता। तुम और कुन्ती जैसी सुन्दर पत्नियां मेरे पास होते हुये भी रतिक्रीडा मेरे लिये वर्जित है। पांडु स्वयं को संयत नहीं कर पा रहे। आश्रम के कुलपति ने कहा था अपनी निजता की परिधि व्यापक मत करो राजन। प्रत्येक असमर्थ की सहायता करो और उसे भी देखकर प्रसन्न हो। तुम अपने आपको आनंदित पाओगे पर पांडु तो उपलब्धि, अर्जन और भोग के सुख को ही जानता है। उसी क्षण तभी कुन्ती आयी और कहा माद्री हस्तिनापुर लौटने के लिये कह रही थी।

पांडु ने कुन्ती से कहा- प्रिये क्षत्रिय जाति सदा बलवान शक्ति प्रधान है इसलिये तुम्हारे वशीकरण मन्त्र द्वारा मुझे अभी कोई ऐसा पुत्र दो जो बलवान हो। युधिष्ठर के जन्म के अन्तराल को तो दो वर्ष बीत चुके हैं। अब पति की आज्ञा मानकर कुन्ती ने वायुदेवता का आह्वान किया। वायुदेवता अपने वाहन हरिण पर सवार होकर आये और कुन्ती की आराधना से सन्तुष्ट होकर एक भयंकर पराक्रमी अतिशय बलशाली पुत्र प्रदान किया। पर कुन्ती की जरा सी असावधानी से पांडु को जब पुत्र दे रही थी वह नवजात शिशु एक पत्थर की चट्टान पर गिर पडा। उससे वह चट्टान चूर-चूर होकर टूट गई। यह पुत्र बडा ही भयंकर बलशाली था। उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि कुन्ती तेरा यह पुत्र बलवानों में श्रेष्ठ शिरोमणि होगा, इसे कभी भी युद्ध से भय नहीं होगा इसलिये इसका नाम भीम होगा। यह महा भीमसेन के नाम से जाना जायेगा। भीमसेन के जन्म से ही इतना बल और शक्ति देखकर पांडु आश्चर्यचकित हुये। जिस दिन भीमसेन का जन्म हुआ उसी दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र बोला- गान्धारी हम अपने इस पुत्र का नाम सुयोधन रखेंगे।

हस्तिनापुर की राजसभा में धृतराष्ट्र ने सम्बोधित कर कहा कुरु वृद्धों, भरतवंशी राजाओं और सभासदों राजकुमार युधिष्ठिर राजकुमार सुयोधन से बडा है इसलिये निस्संदेह वह हस्तिनापुर का युवराज होगा। इस सन्दर्भ में कोई विवाद भी नहीं है किन्तु मैं जानना चाहता हूं कि क्या युधिष्ठिर के पश्चात सुयोधन को हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त होगा ? क्या युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के पश्चात सुयोधन का राज्याभिषेक होगा ? यह कहकर धृतराष्ट्र चुप हो गया और सभा में सन्नाटा छा गया। कैसा अनपेक्षित प्रश्न था ? सभी सभासद असहमत परस्पर विवादों में उलझे हुये थे। तब धृतराष्ट्र ने फिर से पूछा सभा की क्या मन्त्रणा है ? तब वृद्ध मन्त्री कर्णिक बोल उठा- आपका प्रश्न विचाराधीन है क्योंकि इस प्रश्न की पृष्ठभूमि स्पष्ट नहीं है।

धृतराष्ट्र ने सभा को स्पष्ट किया कि मेरे पुत्रमें तो कोई दृष्टि दोष नहीं है। मुझे राज्य नहीं दिया पर उसे तो मिलना चाहिये। मैं राज्य की भावी नीति निर्धारित करना चाहता हूं। इसलिये चाहता हूँ कि सभा आज यह निर्णय कर दे कि राज्य प्राप्ति के संदर्भ में सुयोधन की क्या स्थिति है ?

भीष्म को लगा यह धृतराष्ट्र तो पांडु के राज्य से उसके पुत्रों को वंचित करने का प्रपंच कर रहा है। वह कुरुकुल में परस्पर द्रोह और द्वेष के बीज बो रहा है। वह तो निर्लज्जापूर्वक अपने पुत्र के लिये राज्य मांग रहा था। अन्यायी हो रहा था। कुरुकुल के लिये उसके यह लक्षण अच्छे नहीं है। जब दृष्टि में सिद्धान्त नहीं, व्यक्ति होता है तो निर्णय न्याय के आधार पर नहीं बल्कि व्यक्ति की इच्छा के आधार पर होते हैं। व्यक्ति की इच्छा उसकी रूचि-अरुचि, उसकी प्रकृति, उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करती है। वह समाज के हित में ही हो यह आवश्यक नहीं है। स्वेच्छाचारिता कभी भी शुभ नहीं होती और राजा की स्वेच्छाचारिता तो किसी भी समाज के लिये विनाश का ही संकेत है। यदि धृतराष्ट्र इसी तरह सभा में करेगा तो भविष्य में तो किसी से कुछ पूछेगा भी नहीं और स्वयं ही सारे निर्णय ले लिया करेगा। तब विदुर उठकर खडा होकर विरोध कर बोला- राजन पहले तो यह निर्णय करें कि राज्य किसका हैं ? यदि राजा आप है तो युवराज सुयोधन ही होगा तब युधिष्ठिर के युवराज होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु आपने स्वयं स्वीकार किया है कि युवराज युधिष्ठिर ही है इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि हस्तिनापुर के राजा महाराज पांडु है तो फिर युवराज युधिष्ठिर के पश्चात सिंहासन का अधिकारी उसका पुत्र ही और पुत्र न होने पर उसका कोई अनुज होगा। आप सुयोधन को युधिष्ठिर का युवराज घोषित कर राजा पांडु तथा युवराज युधिष्ठर की भावी सन्तानों का अधिकार अवरुद्ध कर देना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र अब आवेश के साथ बोला किन्तु यह राज्य मेरा था। मैं दृष्टिहीन होने के कारण मुझे नहीं मिला पर अब तो मेरा पुत्र स्वस्थ और दृष्टि युक्त है। विदुर बोला- आपका यह प्रस्ताव अनुचित, अनीतिपूर्ण और राजधर्म के विरुद्ध है। मेरा मत है कि सुयोधन को राजमद, सत्ता और शासन स्त्रोत से जितना दूर रखे उतना ही अच्छा है। आप उसे सिंहासन के जितना निकट लायेंगे उतना ही राजवंश में विरोध और शत्रुता गहरायी जायेगी और परिवार में किसी भी प्रकार की परस्पर शत्रुता अन्ततः उसके नाश का ही द्योतक है। आप इस विचार को पूर्णतया त्याग दें। यह वासना आत्मघातिनी है महाराज। धृतराष्ट्र को विदुर का मत मान्य नही था, उसने ब्राह्मणों राजपुरोहितों से उनका मत जानना चाहा। सभीने उत्तर दिया हम धर्मज्ञ विदुर से सहमत है। मन्त्रियों ने भी यही कहा कि मन्त्री प्रवर विदुर ने राजवंश के लिये समुचित व्यवस्था दी है। राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा कल्याण के लिये कुमार सुयोधन को राजसभा से दूर ही रखा जाये।

भीम अब तीन वर्ष का हो गया और युधिष्ठिर ५ वर्ष का। भीम युद्धिष्ठर से २ वर्ष छोटा होकर भी युधिष्ठिर जैसा ही दीख रहा था। भीम बहुत ही गम्भीर प्रकृति का था, बडा ही उद्यमी था। दिनभर क्रीडा में व्यस्त रहता था। भागता, दौडता, गिरता उठता। न तो उसे चोट लगती न ही वह भयभीत था। सभी से बातें करते रहता था और अपनी बातों से सभी का मन भी मोह लेता था। भोजन में उसकी अत्यधिक रूचि थी। प्रत्येक क्षण उसको खाने की रुचि बनी रहती थी अभी से युद्धिष्ठर से भी अधिक भोजन करता है, कितना स्नेह करता है अपनी मां से और पिता पान्डु से।

पान्डु को अपनी सन्तानों का मोह है। सन्तान तो होती है इसके लिये। इसके बिना पांडु रह नहीं सकता। संसार से संघर्ष करने के लिये अकेला और असहाय छोड कर पान्डु भी सुख नहीं पा सकता न तो भोग में और न त्याग में। अब तो परिवार के साथ ही उसका जीवन है।

अब पांडु सोचने लगा मुझे अब एक ऐसा पुत्र चाहिये जो संसार में सर्वश्रेष्ठ हो। देवताओं मे सबसे श्रेष्ठ तो इन्द्र ही है और यदि वे किसी प्रकार सन्तुष्ट हो जाये तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हो सकती है तब पांडु एकाग्रता से पत्निसहित इन्द्र को प्रसन्न करने

के लिये तप करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र ने दर्शन दिये। पान्डु ने अपना मनोभाव इन्द्र से प्रकट किया तब इन्द्र बोले मैं तुम्हे एक विश्व विख्यात, सुहृदों का सेवक, ब्राह्मण प्रिय तथा शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला पुत्र का वर देता हूँ। पांडु ने कुन्ती से कहा, प्रिये मैंने देवराज इन्द्र से वर प्राप्त कर लिया है अब तुम पुत्र के लिये इन्द्र का आह्वान उसी वशीकरण मन्त्र से करो। तब कुन्ती ने वैसा ही किया और इन्द्र के आह्वान करने पर इन्द्र प्रकट हुये और कुन्ती को एक पुत्र प्रदत किया। तब भी आकाशवाणी हुई और कहा कुन्ती तेरा यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन और भगवान शंकर के समान पराक्रमी तथा इन्द्र के समान अपराजित होनेवाला होगा। यह सदा तुम्हे प्रसन्न रखेगा। यह बहुत सारे सामन्तो और राजाओं पर विजय प्राप्त करके अश्वमेघ यज्ञ भी करेगा। भगवान रूद्र इसे अस्त्रदान देंगे। इसे सभी दिव्य अस्त्र प्राप्त होंगे व उसे इसे धारण करने का ज्ञान होगा। भगवान नारायण इसके सखा होंगे यह नर कहलायेगा और इसका नाम अर्जुन होगा। यह आकाशवाणी सुनकर सभी मुनि, देवता और समस्त चराचर प्राणी बहुत प्रसन्न हुये। इन्द्रादि देवगण, सप्तर्षि, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरायें इत्यादि अर्जुन के जन्म का महोत्सव मनाने लगे।

इस प्रकार कुन्ती को तीन पुत्रों की प्राप्ति हो गई और कुन्ती ने पांडु से अब और सन्तान प्राप्ति के लिये स्पष्ट मना कर दिया। माद्री को यह भी खटकने लगा कि कुन्ती तीन पुत्रों की मां बन गई और वह पत्नी होते हुये भी निपुती रह गयी। माद्री को खिन्न जानकर पांडु ने कुन्ती से कहा जो मन्त्रणा तुम्हे दुर्वासा ने दी थी वही तुम माद्री को भी सिखाओं जिससे वह भी पुत्र प्राप्त कर सके। कुन्ती ने कहा जैसे आपकी इच्छा। माद्री ने कुन्ती के कहने पर अश्विनीकुमारों का चिन्तन किया। माद्री से दो जुडवा पुत्र उत्पन्न हुये उनका नाम नकुल और सहदेव हुआ। इस समय भी आकाशवाणी हुई और कहा ये दोनों बालक बल, रुप, गुण में अश्विनीकुमारों से भी बढकर होंगे। ये अपने रूप, द्रव्य, सम्पत्ति और शक्ति से जगभर में प्रसिद्ध होंगे।

शतश्रृंग पर्वत पर रहनेवाले ऋषियों ने, कुलपति ने पांडु को बधाई दी और बालकों को आशीर्वाद देकर जात कर्म किये। ऋषि और ऋषि पत्नियां इन बालकों में भी प्रीति रखते थे। राजा पांडु भी अपनी दोनों पत्नियों और पांचों बालकों के साथ बडी प्रसन्नता से रह रहे थे।

आश्रम के कुलपति ने पांडु से कहा पुत्र अब बालकों में यह संस्कार दो कि ये सदा धर्म, न्याय और नीति के मार्ग पर चले। सत्य कभी नहीं छोडे। यही तुम्हारा शाश्वत धर्म है। लोभ और भय से कभी भी सत्पथ से विचलित मत होना। विधाता ने तुम्हे दैव सम्पत्ति दी है, आसुरी सम्पत्ति एकत्रित करने का प्रयत्न मत करना। अपने स्वार्थ और सुविधा के लिये किसी के नैतिक अधिकारों को हनन करने का, कष्ट देने का प्रयत्न भी मत करना। विधाता ने जो सृष्टि कुछ नियमों के अधीन ही रची है उन नियमों का पालन करना वत्स। तुम सदाचार की नीति का कभी त्याग मत करना और बालकों को स्नेह से आशीर्वाद दिया।

यहां शतश्रृंग पर्वत के वन आश्रम में इन्द्र पुत्र अर्जुन का जन्म हुआ और मथुरा में सृष्टि के रचयिता, जो सारी दुनिया का जन्मदाता है उसने स्वयं वसुदेव-देवकी के गर्भ से मथुरा में अपने मामा दुष्ट कंस के कारावास में जन्म लिया। कृष्ण भी अर्जुन के साथ-साथ अपनी क्रीडाये करते हुये बाल चपलता कर पलने लगा और बढने लगा।

पुत्र प्राप्ति के बाद महाराज पांडु के आनन्द का पारावार नहीं रहा। अब वे ध्यान-धारणा, चिन्तन, मनन, तपस्या में लग गये और सुख से उस आश्रम में रहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। बच्चे भी बडे होने लगे और आश्रम के कुलपति के संरक्षण में शिक्षा पाने लगे। समय बीतने लगा।

एक दिन पांडु अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिये आश्रम के कुलपति के पास गये और बोले ऋषिवर यह नैतिकता क्या है? क्या पत्नी का पति को त्यागकर चले जाना नैतिकता है जैसे मेरी पितामही गंगा मेरे पितामह शान्तनु को त्यागकर चली गयी। तब ऋषि हंसकर बोले, पांडु गंगा उस समय अपने समाज की अंग थी जहां स्त्री अपनी शर्तों पर जीवन व्यतीत करती थी इसलिये

शर्त न निभाने पर उसका अपने पति को त्याग देना कुछ भी अनैतिक नहीं था। यह तो समाज भेद के कारण ऐसा है। यह तो मान्यता भेद है राजन। उत्तर कुरु प्रदेश में आज भी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पूर्णत: स्वच्छन्द है। शतश्रृंग वन के आस-पास बसने वाले हिमालय प्रदेश के जनसामान्य में बहुपतित्व की प्रजा जारी है जबकि आर्यावर्त में बहुपत्नीत्व की प्रथा है। पांचाल प्रदेश में तो नारी अधिक स्वतन्त्र है और वहां पर ब-हुपतित्व की प्रथा अभी भी प्रचलित है। ऋषि लोग अब तक कानीन पुत्र को धर्म सम्मत मानते है पर राजवंश नहीं मानते। क्षेत्रज पुत्र को आज का समाज धर्म सम्मत और कानून मानते हैं, सामाजिक विधान से उसे भी मान्यता प्राप्त है, वारिस है पर कौन जाने भविष्य का समाज उस पर भी कल आपत्ति उठा सकता है। यह सब तो समय और समाज की आवश्यकता पर निर्भर करता है। वहां की नर, मादा भी जनसंख्या पर निर्भर है। यह तो सामाजिक व्यवस्था है राजन सामाजिक व्यवस्था ही अपनी मर्यादानुसार अपने नियम बनाते है कि बहुपत्नीत्व या बहुपतित्व किस प्रकार न्यायोचित और धर्मसंगत है। यह तो मानव द्वारा बनायी हुई मानव नीति नियम है। कोई भी समाज अपने अनुभव और बुद्धि के अनुसार सामाजिक व्यवहार के लिये नियम बनाता है और अनुभव की परिपक्वता के साथ उसमें परिवर्तन करते रहते हैं। उसमें यह नहीं कह सकते यह गलत क्या है और सही क्या ? उसने गलत किया या सही किया। यह सब तो समय की मांग अनुसार और परिस्थिति अनुसार ही निश्चित हो सकता है। इसमें शास्त्रसम्मत कोई आज्ञा नहीं है।

पांडु बोले, लेकिन ऋषिवर पूरे देश और राष्ट्र के लिये एक व्यापक नीति होनी चाहिये। हमें अपना चिन्तन न तो आत्मसीमित रखना चाहिये और न ही संकीर्ण। देश, काल, तथा समाज का एक व्यापक बिम्ब होना चाहिये। जब नीति कहती है सदा सत्य बोलो यह शाश्वत नियम है। ईश्वर प्रदत्त नियम है। तो इसलिये तो नहीं कहा जाता कि सत्य बोलने से कोई आकाश से अमृत टपकने लगेगा। हम तो सत्य बोलने के लिये इसी प्रयोजन से कहते हैं कि समाज में सब सत्य बोलेंगे तो उनका परस्पर विश्वास बना रहेगा, व्यवहार में भी सुविधा होगी, जीवन के संघर्ष सरलता से पार होंगे किन्तु यदि एक व्यक्ति दूसरे से झूठ बोलेगा तो किसी को किसी के शब्द पर भी विश्वास नहीं होगा और सामाजिक व्यवहार में असुविधायें बढेगी और यह परस्पर का अविश्वास उस समाज को विनष्ट कर देगा। ऋषि बोले, व्यक्ति रूप में सुख-दु:ख पृथक विषय है किन्तु समाज में सुख वही है जिससे समाज में विकास हो। उन्नति और शक्ति वही है, जहां व्यापक सामाजिक हित को ध्यान में रखकर सब व्यवहार किया जाता है। नीति की परिभाषा तो अत्यन्त व्यापक और दूरगामी है राजन। इसमें तो सारी सृष्टि का अनन्त काल तक ध्यान रखकर किया जाता है। सारा जीव जगत, वनस्पति, जगत, नदियां, पर्वत, धरती किसी की भी सर्वथा उपेक्षा सृष्टि को सत्य नहीं है। अत: नीति कहती है कि उनसे लाभ उठाओ और उससे होनेवाली हानि से स्वयं को बचाओ किन्तु उनको क्षति मत पहुंचाओ।

पान्डु ऋषि की बातों का मनन करते रहे चुप हो गये पर उनको सन्तोष नहीं हुआ और न ही उससे सहमति। अब पांडु ने अपने तर्क का दूसरा पक्ष सोचना आरम्भ किया। पितामही सत्यवती ने विवाह के समय कदाचित अपना ही स्वार्थ देखा था। कुरुकुल की अथवा सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण की अवधारणा उनके मन में नहीं रही होगी। अन्यथा वे पितृव्य भीष्म को इस प्रकार राज्याधिकार से वंचित नहीं करती। यदि भीष्म शासन करते तो प्रजा धृतराष्ट्र के इस अन्ध शासन से अवश्य अधिक सुखी होती। प्रजा का सुख ही राजवंशों के जीवन काल की वृद्धि करता है, क्या पितामही के स्वार्थ ने कुरुओं के राजवंश और कुरु प्रदेश की प्रजा दोनों का ही अहित नहीं किया ? क्या उनकी यह अनीति नहीं है ? पांडु बोले, ऋषिवर मुझे कहने में संकोच तो यही हो रहा कि गुरुजनों के आचरण पर संशय करना क्या अनीति है ?

ऋषि हंसकर बोले, सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से यह शिष्टाचार विरुद्ध हो सकता है किन्तु सत्य पाने के लिये हमें संशय जरूर करना चाहिये। संशय से चिन्तन, मनन, विचार विनिमय करना ही पडता है। अन्तत: अपना मार्ग ढूंढने के लिये सत-असत् का विचार करना चाहिये अन्यथा तो मानव का चिन्तन सार्थ न होकर वही रूक जायेगा।

पांडु बोले, ऋषिवर मैं बहुत बार सोचता हूँ कि हम सत-असत्, उचित-अनुचित, सत्य-झूठ, धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, न्याय-अन्याय इत्यादि पर बहुत विचार करते हैं, पर संसार में अक्सर देखते हैं असत, अधर्म, असत्य पर चलनेवाला व्यक्ति, अनीति और अन्याय करनेवाला कुटिल व्यक्ति या समाज सदा सुखी और आनन्द से रह जाता है। सीधा व्यक्ति सत्, उचित, धर्म, न्याय नीति के मार्ग पर चलनेवाला सदा कष्ट, दुख, यातना और अभाव की जिन्दगी पाता है, इसीलिये लोगों की नीति विधान पर से आस्था और डर उठते जा रहा है। मेरी पितामही सत्यवती को ही देखो जो धर्मात्मा पितृव्य भीष्म को ही वंचित कर स्वयं राजमाता बन बैठी।

ऋषि मुस्कुराये और बोले, पांडु तुम क्या सत्यवती के जीवन को सुखी समझते हो वत्स ? जो विषादों से घिरी पडी है। जिसने अपनी अनीति के कारण वैधव्य पाया, जिसके अपने दो-दो पुत्र अकाल क्वलित हो गये क्या वह सुखी है ? वह तो अत्यन्त भयंकर विषाद में डूबी हुई दु:खी है।

पांडु तुम अपनी सीमित दृष्टि से ही मत देखो। तुम इसे व्यापक दृष्टिकोण से देखो। कुरुकुल के सारे दु:खों का, कष्टों का मूल तो वही है सत्यवती की महत्वाकांक्षा और उससे उभरनेवाली अनीति। उसने केवल अपने लिये ही नहीं अपनी भावी पीढी के लिये भी सर्वनाश के बीज बो दिये। पांडु ने फिर से अपना वही प्रश्न दूसरे रूप में प्रस्तुत किया। ऋषिवर पितृव्य भीष्म ने बडे उदार और धर्मवादी होकर क्या नहीं खोया ? और कितना जीवनभर का कष्ट पाया ?

ऋषिवर बोले, पांडु पाने और खोने की, उपलब्धि और वंचना का गणित प्रकृति ने कोई इतना सरल नहीं बनाया है। भीष्म स्वयं जानता है कि उदार होकर उसने मन से क्या-क्या पाया है। जहां भी वह वंचित हुआ है वहां उसकी उदारता नहीं अनीति है। पांडु बोले, ऋषि पितृत्व भीष्म की कैसी अनीति ?

ऋषिवर बोले, पांडु। पिता पुत्र के लिये कन्या लाये यह तो सभी जगह प्रचलन है और नीति भी है, समाज का युवाजन विवाह करे और सन्तान उत्पन्न करे यह तो सृष्टि का नियम है, नीति है किन्तु भीष्म ने तो ये सभी कर्म प्रकृति विपरीत किये। वानप्रस्थ के समय में अपने पिता को फिर से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करा दिया, उसके लिये पत्नी की व्यवस्था कर दी। पिता ने दो-दो पुत्र उत्पन्न कर दिये। यह सब कहां की नीति है ? यह अनीति नहीं तो क्या है ? अनेक बार उदारता के आवरण में हम कई पाप कर बैठते हैं राजन। इन सब बातों को सूक्ष्म दृष्टि से देखो और समझो। पांडु अब मैं तुम्हे एक व्यक्तिगत बात बताता हूँ कि पुत्र कामना अत्यन्त स्वाभाविक है। प्रकृति के नियमों के अनुकूल है अत: नीतिपूर्ण है। तुम्हारे पास अब पांच देव प्रदत्त पुत्र है राजन इसी में सन्तोष रखना अब और लोभ मत करना। यदि और पुत्र भी तुमने प्रकृति से मांगकर लिया तो तुम अपने उन पुत्रों के साथ न तो न्याय करोगे न ही उनका यथोचित सम्मान कर पाओगे। न ही उनमें तुम्हारा प्रेम अधिक बढेगा और तुम उनकी उपेक्षा करने लग जाओगे। अब मेरा परामर्श तुम्हे यही है कि और पुत्र की कामना छोडो। तुम्हारे पुत्र अभी छोटे है इनका पालन पोषण करो। पालन-पोषण तो इनका इस आश्रम में भी हो जायेगा किन्तु यहा इनका विकास ऋषि पुत्रों के समान ही होगा। राज पुत्रों के विकास के योग्य यह स्थान नहीं है और न ही उपयुक्त वातावरण। इस आश्रम में न तो किसी को बन्दी बनाकर रखा जाता है और न ही उसे निष्कासित किया जाता है। मैंने तो तुम्हारे पुत्रों के कल्याण के लिये विचारार्थ यह प्रस्ताव रखा है। पांडु ऋषि के साथ अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कर आश्रम से लौटकर अपनी कुटीर में आ गये। पांडु को लगा किसी भी कर्म की क्षमता का पता तो तभी चलता है जब व्यक्ति कर्म में लीन होता है।

कुन्ती पाँचों बालकों को कुटिया में भोजन परोस रही थी। माद्री ने अपने इन दोनों जुडवा पुत्रों को जन्म देकर अपना स्त्रीत्व सिद्ध कर दिया था पर माता से अधिक स्त्री ही बना रहना चाहती थी। उसके दोनों पुत्र दिन भर अपने अन्य तीन भाइयों के साथ कुन्ती के पास ही रहते थे। पान्डु ने देखा माद्री पर्वत से बहते एक जल प्रपात झरने के नीचे नहा रही है। कुछ संगीत गुन गुना

रही है। कामेच्छा से उत्तेजित है। पान्डु को इस प्रकार देखकर आंखों में आपत्ति कम थी और निमन्त्रण अधिक। माद्री कौतुक भरी दृष्टि से पांडु को देख रही थी। आज रोज जैसा तपसी पांडु नही यह तो रसिकप्रेमी पांडु है। आज तो पांडु कामदेव का उपासक बना हुआ है।

पवन में कितनी मादकता है। प्रकृति का अद्भुत सौन्दर्य। मोहकता। बसन्त ऋतु अपने यौवन पर सारे वृक्ष पुष्पों से लदे हुये। सभी प्राणी उनकी शोभा से मनमुग्ध हो रहे थे। माद्री सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये थी। युवावस्था, सुन्दर तरुणी, शरीर पर भीनी लाल रंग की साडी पूरा शरीर माद्री के आद्र होने से पारदर्शी दिख रहा था, मुखपर मनोहर मुस्कुराहट, कटीली मदहोश करनेवाले नयन, गुलाबी गाल, लाल रंग के होठ पांडु के मन में काम संचार हो गया। पांडु ने माद्री का हाथ उठाकर माद्री को अपने वक्ष से सटा लिया। आतप के स्पर्श से हिमखंड पिघल जाता है। पांडु का श्वास लेना दूभर होते गया। पांडु हांफने लगा। माद्री पांडु से छुडाने का प्रयत्न करने लगी। पांडु काम के नशे में इस प्रकार चूर था कि उसे ऋषि किन्दम के शाप का ध्यान भी नहीं रहा। दैववश पांडु मैथुन धर्म में प्रवृत हो गया। उसके अंग पीले पडने लगे। सहसा चेतना नष्ट होने लगी। पर पांडु की उन्मत वासना दावाग्नि के समान प्रचंड हो गई। सहसा पांडु के वक्ष में असह्य पीडा उठी उसने अपने हाथों से हृदय को थामा। यह था हृदयाघात और पांडु लुढक गया। पांडु परलोक सिधार गया। दूसरे ही क्षण भयानक आशंका से पीडित हो माद्री हृदय विदारक चीत्कार कर उठी और पांडु से लिपटकर आर्त स्वर से विलाप करने लगी।

युधिष्ठिर इस समय आठ वर्ष का था। कुलपति के आदेशानुसार चिता तैयार की। कुन्ती माद्री से बोली, माद्री जो होना था वो हो चुका। अब जीवन के दायित्वों को समझो अब मेरे इन तीन पुत्रों को और अपने दोनों पुत्रों को सम्भालकर पालन-पोषण करो और मैं अपने पति पांडु के साथ चित्तारोहण कर सती होऊंगी। माद्री ने कहा, दीदी यह सम्भव नहीं हो सकता। आर्यपुत्र के साथ सती मैं होऊंगी। मैं ही पान्डु की मृत्यु का कारण हूँ अब मैं अतृप्त वासना लेकर जी नहीं सकूंगी। मुझे इनके साथ दूसरे लोक तक जाना है और यदि मैं जीवित रही तो बहुत सम्भव है कि मैं अपनी दुर्बलताओं के आवेग को नहीं झेल पाऊं, न ही अपनी ममता को सन्तुलित कर पाऊं। शायद मैं इन पुत्रों में भेदभाव रख लूं। मेरा जीवन जीने योग्य नहीं होगा। मैंने तो बडी नम्रता और विकलता से आर्यपुत्र को रोकने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन वे नहीं माने। यह होनहार ही ऐसा था। वे अपने मन को वश में नहीं रख सके। अब आप बडी हैं मुझे ही इनके साथ जानेकी आज्ञा दो। मेरे पुत्रों के साथ भी अपने पुत्रों जैसा ही व्यवहार करना। माद्री ऐसा कहकर अपने पति पांडु के साथ चिता पर चढ गई और पति के साथ पतिलोक गमन किया। कुलपति के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने पिता को अग्नि दान दिया। कुन्ती फफककर रो पडी और जोरों से विलाप करने लगी।

ब्रह्म ऋषियों ने कुन्ती को समझाया कि संसार में सभी इच्छायें तो किसकी पूरी नहीं हुई है। इच्छाओं के पीछे ही महाराज पांडु ने अपने प्राण दिये है। अमुक्त काम की इच्छा लेकर ही माद्री उनके साथ सती हो गई। इन बालकों को संसार के निकट जाने दो। इन्हे भरा पूरा जीवन दो। इन्हे संसार का अर्जन, उपलब्धि, भोग और आकांक्षा का जीवन भी देखने दो। उन्हे अपना निर्णय स्वयं लेने देना कि उन्हे कैसा जीवन चाहिये ? इन्हे राजसी वैभव में पलने का पूरा अधिकार है। यहां वन में ये वंचितों का सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन्हे राजप्रसादों में युद्ध और शस्त्र परिचालन की शिक्षा प्राप्त होनी चाहिये। अपनी अल्पज्ञता की चाहत और अदूरदर्शिता से अपने पुत्रों का विकास मत अवरुद्ध करो। जीवन का अतिभोग पाप है अत: असफल होता है। जीवन का अभोग भी पाप है। वह विकार उत्पन्न करता है न ही इसका अतिव्यय करो, न अल्प और न ही अपव्यय। व्यर्थ के संशय और मोह को त्यागो। महाराज पांडु तो अपनी असमर्थता से तपस्या करने आये थे पर ये बालक थोडे ही तपस्या करने यहां आये है ? ये बालक कोई अक्षम नहीं है। अब महाराज पांडु और माद्री के अस्थि कलश के साथ तुम्हे अपने बालकों के साथ हस्तिनापुर लौटना चाहिये। वहां पर राजसी मर्यादा से महाराज पांडु के अन्तिम संस्कार किये जायें। सभी ब्रह्म ऋषि तुम्हारे

साथ जायेंगे। आप लोग हमारे पास पांडु महाराज की धरोहर हो। तुम्हारे परिजनों और सम्बन्धियों तक पहुंचाना हमारा कर्तव्य है। जब तक मृत राजा का संस्कार नहीं होगा तब तक नये राजा का राज्याभिषेक भी नहीं हो सकेगा।

माता कुन्ती अपने पुत्रों सहित ऋषियों, महर्षि बालकों, तपस्वियों सहित हस्तिनापुर के वर्धमान नगर द्वार पर आकर रूक गई। जैसे-जैसे सूचना प्रसारण हुई अनेक नर-नारी उन्हे देखने के लिये वहां पर आये। चारों वर्णों के लोग वहां आये और बडी भारी भीड एकत्रित हो गई। सूचना सेवकों द्वारा राजमहल में भी पहुंची। सभी सुनकर अत्यन्त व्याकुल हुये। भीष्म, सोमदत्त, बाहलीक, धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिका, धृतराष्ट्र कुमार सभी वहां पर आये और उन आये हुये महर्षियों को प्रणाम किया। तब ऋषियों ने उन सबको बताया कि दिव्य मन्त्रों के प्रभाव से महाराज पान्डु को जिस प्रकार इन पुत्रों की प्राप्ति हुई वह पूरा वृतान्त बताये पर अब महाराज पांडु शतश्रृंग आश्रम में परलोक सिधार गये। महारानी माद्री उनके साथ सती हो गयी। ये है दोनों का अस्थि कलश। ये पाँचों बालक भी महारानी कुन्ती सहित यहां आये हुये है। आप लोग इन बालकों की देखरेख करें। महाराज पांडु का जो भी राजोचित अन्तिम संस्कार श्राद्ध करे। कुन्ती ने भीष्म का चरण वन्दन किया। वहा पर एकदम नीरव शान्ति छा गई। सन्नाटा हो गया। भीष्म शोकातुल हुये और बोले मेरे प्रिय पांडु तूने यह क्या किया ? और विलाप करने लगे। भीष्म ने उन ऋषियों का आभार माना कि जिन्होने हस्तिनापुर की इस अनमोल धरोहर को वापिस लौटा दी। उन ऋषियों से राजमहल में चलने का अनुरोध किया पर उन महर्षियों ने भीष्म का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया और अपने आश्रम को वापिस लौट गये। अस्थि कलश लेकर पूरे राजसमाज के साथ, बालकों और कुन्ती को लेकर हस्तिनापुर के राजमहल में आये। सभी सैनिक लोग गर्दन झुकाये पांडु के अस्थि कलश को राजकीय सम्मान देते हुये राजमहल में खडे थे। द्वार पर खडे धृतराष्ट्र को कुन्ती ने नमस्कार किया तत्पश्चात गान्धारी को नमस्कार कर गांधारी के गले लगकर फूट-फूट कर रोने लगी। गांधारी ने शोक सान्त्वना दी और बोली अपने इन पुत्रों की ओर देखकर शान्त हो तथा दुख का संवरण करो। महाराज पांडु की मृत्यु का इतना बडा शोक का दहाड टूट पडा कि किसी को भी कैसे शान्ति प्राप्त हो सकती थी। राजमाता सत्यवती अत्यन्त दु:खी थी। शान्तनु महाराज के साथ विवाह के पश्चात वास्तव में माता सत्यवती को कभी आज तक सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हुई। कभी पति के लिये तो कभी पुत्रों के लिये और अब पौत्र के लिये व्याकुल हुई। भीष्म के लिये अपने हाथों से जो घटना घटी उसका विचार कर उसका परिमार्जन करने के लिये क्या जीवन भर परिमार्जन करना पडेगा ऐसा सत्यवती को लगने लगा। अब जीवन में कितने और प्रहार सहन करने पडेंगे। यह सब विचार कर कर सत्यवती अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। सभी लोग इन सिद्ध तपस्वियों का दर्शन कर अपने आपको बडे ही धन्य समझने लगे।

वहां पर राजमहल में शोक प्रकट करने विदुर कुन्ती के पास आये। कुन्ती ने अपने बालकों से कहा, काका विदुर को प्रणाम करो। सभी ने विदूर के चरणों का स्पर्श किया। विदुर कुन्ती से बोले भाभी पितृव्य भीष्म ही पर्याप्त समर्थ है और वे ही कुरुकुल की रक्षा कर रहे है और फिर भी मेरे लिये जो कुछ भी सम्भव होगा वह सब मैं करूंगा आप हस्तिनापुर में निश्चिन्त रहे। विदुर ने समझा इस समय कुन्ती को सान्त्वना की आवश्यकता है।

सत्यवती अत्यन्त दीन होकर विलाप कर रही थी। कुन्ती का भी मन भर आया इस वृद्ध राजमाता के लिये भी कुन्ती के मन में करुणा जागी। सत्यवती फफक-फफक कर रो रही थी और विधाता को कोस रही थी कि विधाता ने यह क्या कर दिया उससे भी मेरा सुख देखा नहीं जाता। जो कोई मेरा सहारा बनता है वही चला जाता है। हस्तिनापुर का यह सिंहासन बडा ही हत्यारा है इस पर जो कोई भी सम्राट बैठता है वह काल की गति पाता है। सत्यवती रो-रोकर निढाल होने जा रही थी कभी रोने लगती तो कभी चिल्लाने लगती और तो कभी अपने वक्ष और सिर पीटने लगती। कुन्ती अपना दु:ख भूल राजमाता सत्यवती के इस विक्षिप्त क्षोभ और दु:ख को शमन करने का प्रयत्न करती।

भीष्म कुन्ती के पास आये और बोले पुत्री सचमुच मैं तो बडा अभागा हूं। पिताश्री का देहान्त हुआ तो अपने आपको धैर्य कर लिया ठीक है अपनी आयु भोग कर सबको एक न एक दिन तो जाना ही है। किन्तु उसके बाद चित्रांगद और विचित्रवीर्य भी गये जो मुझसे भी आयु में छोटे थे। किसी तरह उनका भी यह आघात मन को समझा लिया था किन्तु अब बिना पांडु के यह मन कैसेमानेगा ? कभी-कभी सोचता हूँ कि विधाता ने मुझे इतनी आयु किस लिये दी ? कि मैं जीवित रहूं यह कष्ट पाऊं और यह सब देखूं ? जाने क्या विचित्र लीला है उसकी ? अच्छा है कि तुम हस्तिनापुर लौट आयी। अपने घर जैसा सुख शान्ति कहीं नहीं होती पुत्री। मैंने वेदव्यास को भी बुला लिया है ऐसे अवसरों पर माता सत्यवती को वे ही सम्भाल पाते हैं। भीष्म ने विदुर से कह दिया अब बारह दिनों के लिये राजकीय शोक घोषित कर दो। भीष्म ने युधिष्ठिर को बाहों से आलिंगन किया और मस्तिष्क पर हाथ फेरा और बोले, तुम युधिष्ठिर हो ना बडे होकर तुम हस्तिनापुर के युवराज होंगे और फिर सम्राट। जैसे-जैसे तुम समर्थ होते जाओगे तुम्हारा यह पितामह असमर्थ होते जायेगा। भीम और अर्जुन का भी भीष्म ने आलिंगन किया और बालकों को प्यार दिया।

धृतराष्ट्र के पुत्र सुयोधन और सुशासन राजकुमार राजसी वेशभूषा में थे तब भीष्म ने सुयोधन से कहा ये सब तुम्हारे भाई है इनसे मिलो। सुयोधन ने विरोध भाव से पांडु पुत्रों की ओर देखा और बोला ये सब तो मलिन और गंदे है। गान्धारी ने डांट कर कहा ऐसा नहीं बोलते ये सब दूर की यात्रा करके आये है। भाई जैसा भी हो, जिस किसी स्थिति में हो उससे सदा प्रेम करना चाहिये। तुम्हे आजीवन स्नेहपूर्वक एक साथ रहना है। जाओ इनके साथ खेलो। सुयोधन ने पूछा क्या पितामह ये लोग हस्तिनापुर में हमारे साथ ही रहेंगे क्या ? भीष्म ने कहा हां, हस्तिनापुर ही उनका घर है। जहां हम रहते है वहीं ये भी रहेंगे। भीष्म को धृतराष्ट्र बडा ही चिंतित लगा। धृतराष्ट्र किस बात से चिंतित है पांडु के निधन से या कुन्ती के वापिस हस्तिनापुर लौट आने से ?

विदुर ने भीष्म की सम्मति से गंगा के परम पवित्र तट पर पांडु की और्ध्व दैहिक क्रिया सम्पन्न करायी। कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्म ने अपने बन्धु-बान्धवों सहित महाराज पांडु की श्राद्ध विधि सम्पन्न की। ब्राह्मणों को भोजन करा पर्याप्त दान दक्षिणा, बहुत से रत्न, वस्त्र, गांव दान किये। अब बारह दिन होने पर राजकीय शोक सम्पन्न हुआ।

३०) सत्यवती का तपोवनगमन के लिये प्रस्थान

सत्यवती पांडु के निधन से दु:ख और शोक के आवेग से पागल सी हो रही थी। ऋषि व्यास को माता सत्यवती से यह कहने के लिये हस्तिनापुर आना पडा कि उससे वह सब देखा नहीं जायेगा जो हस्तिनापुर का भविष्य है। इसका मतलब है कि घटनाओं की ईटों की चिनाई जैसी हो रही है दीवाल भी वैसी ही उठेगी। इस दीवार की पहली ईंट धृतराष्ट्र है। जब पहली ही ईंट टेढी होगी तो दीवार कैसे सीधी हो सकेगी ? इस दीवार की टेढी ईटों में से एक सत्यवती की महत्वकांक्षा भी है इसीलिये ऋषि व्यास का आना एक प्रकार से ठीक है और वे सत्यवती को ले जाकर ममता का अन्तिम ऋण भी चुका देंगे।

वेदव्यास आये और माता को प्रणाम किया और बोले माता अब सुख का समय बीत गया। बडे बुरे दिन आनेवाले हैं। दिन-प्रतिदिन पाप की बढोतरी होगी। पृथ्वी का यौवन भी लुप्त होते जा रहा है। छल कपट और दोषों का बोलबाला होनेवाला है।धर्म कर्म और सदाचार भी लुप्त होते जा रहे हैं। कौरवों के अन्याय से बडा भारी संहार होनेवाला है।

सत्यवती उठकर बैठ गयी तो वेदव्यास ने कहा, माता आपको उठकर बैठने की क्या आवश्यकता है ? मां के सामने तो भगवान भी कभी-कभी छोटे पड जाते है तब सत्यवती बोली पुत्र तुम्हे आज मां की याद कैसे आई ? वेदव्यास बोले, मां की तपस्या से बडी कोई तपस्या नहीं है। वेदव्यास बोले, माता मुझे आपके प्रति मेरे अन्तिम कर्तव्य का पालन करना है। सत्यवती ने कहा कौनसा अन्तिम कर्तव्य पुत्र ? व्यास बोले, माता समय तो एक नदी की तरह बहता है और शरीर नौका समान स्थिर नहीं रहता और आत्मा एक यात्री है जो अपने घाट लक्ष्य को निरन्तर खोजते रहता है। सत्यवती बोली, यह क्या कुछ कह रहे हो पुत्र? मैं समझी नहीं। वेदव्यास बोले, आप कैसे समझोगी ? न धर्म को अपनी चेतना है और न ही मां को अपना ज्ञान। परन्तु

ममता के इस घाट पर आप कब तक टिकी रहेंगी ? अपनी पीढियों का रोना जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य तो नहीं माता। मोह के इस बन्धन से निकलने का समय आ गया है। सत्यवती बोली मैं निकल कर कहां जाऊं पुत्र ?

मेरे ही साथ ऐसा क्यों हो रहा है पुत्र कि जिसपर मैं अपने जीवन की आशायें टिकाती हूं वही आधार शून्य में विलीन हो जाता है। वेदव्यास बोले, आशायें नहीं माता। कहो ये आपकी आकांक्षाएं। सत्यवती बोली, ठीक है आकांक्षाएं ही कह लो। क्या दोष है आकांक्षाओं में ? क्या आकांक्षा करना पाप है ? वेदव्यास बोले, नहीं मां आकांक्षा पाप नहीं है। आकांक्षा दु:ख और सुख का संगम है, अशान्ति का पर्याय है। आकांक्षा और शान्ति दोनों की कामना एक साथ तो नहीं की जा सकती। प्रकृति के नियम इसकी अनुमति नहीं देते माता। आकांक्षाएं करो किन्तु तब न सुख से डरें और न दु:ख से। तब शान्ति की कामना भी न करें। शान्ति न सुख में है और न ही दु:ख में। शान्ति तो इन दोनों से निरपेक्ष होने में है। आप दु:ख नहीं चाहती हो तो सुख भी मत चाहो। सुख का अस्तित्व बिना दु:ख के सम्भव नहीं होता है। बद्ध जीव कभी सुखी नहीं होता। स्वयं को इन बन्धनों से मुक्त करो। तुम्हारी अवस्था अब बंधने की नहीं है मुक्ति के प्रयास की। प्रकृति चाहती है कि मनुष्य पहले अपने मन और शरीर का विकास करे फिर जीवन के सुख भोग की कामना करे, उसका अर्जन करे, उसका भोग करे और इससे पहले कि प्रकृति उसे दी गई भोग की क्षमतायें उससे छीनकर उसे अक्षम बना दे व्यक्ति को स्वयं ही भोग की कामना त्याग करनी चाहिये ताकि संसार त्यागते हुये, सांसारिक सुखों में उसका मोह न रह जाये। तुम्हारा समय अब जीवन से निरस्त होने का है माता। अपने मन को संसार से निर्लिप्त करो और मेरे साथ तपोवन को चलो। मार्ग खुला है माता। यहां हस्तिनापुर में आपका काम समाप्त हो गया है माता। अब तुम योगिनी बनकर यहां से चलो क्योंकि अपनी आँखों से अपने वंश का नाश होते हुये देखना उचित नहीं है तथा न ही तुम देख पाओगी। अम्बिका और अम्बालिका को भी साथ ले चलो। सत्यवती बोली, आज तुम इतने निर्दयी स्वर में क्यों बातें कर रहे हो पुत्र ? व्यास बोले, धृतराष्ट्र तो नेत्रहीन है माता वो तो देख भी नहीं सकेगा और आप से देखा नहीं जायेगा। यह बहुत अच्छा है माता गृहस्थ जीवन को भोगने वाले भाग्य लिपि पढना नहीं जानते और यह भी लिखा है जो होना है वही होगा और यह भी लिखा है कि आप अवश्य जायेंगी और यह ठीक भी है आपके लिये। क्योंकि यहां जो होनेवाला है वो आपसे देखा भी नहीं जायेगा। सत्यवती ने पूछा क्या होनेवाला है पुत्र ? वेदव्यास बोले, जो कल होनेवाला है उसे आज ही क्यों जानना चाहती हैं माता ? कभी-कभी अज्ञान ढाल बन जाता है और अज्ञान ही दु:ख का कारण। मैं तो इतना ही कहूंगा जो भविष्य मैं देख रहा हूं वो आपसे देखा नहीं जायेगा।

सत्यवती बोली, क्या कुरुकुल की कोई व्यवस्था किये बिना ही चलूं ? व्यास चकित से खडे अपनी मां को देख रहे थे उनकी मां भी कैसी स्त्री है किसी और ने यदि इस प्रकार अपने पति, पुत्रों और पौत्र की मृत्यु का दु:ख झेला होता तो संसार के सारे सुख-वैभव से उसे वितृष्णा हो गयी होती और यह अभी तक कुरुकुल की व्यवस्था के बारे में ही सोच रही है। जब काल किसी का आह्वान करता है तो वह व्यवस्था का समय नहीं देता। जो पीछे रह जाते हैं वे व्यवस्था करते रहते हैं। माता हस्तिनापुर में अब बने रहना तुम्हारे लिये सुख कर नहीं है। धृतराष्ट्र भी तुम्हारे नियन्त्रण में नहीं है तो अब धृतराष्ट्र के पुत्र तुम्हारे नियन्त्रण में रहेंगे क्या ? इसमें सन्देह ही है। परिवार में तुम अपनी सत्ता को छिन्न-भिन्न नष्ट देखोगी। नियन्त्रण स्थापन करने का प्रयत्न भी करोगी तो भी अपने अधिकार और सत्ता की धज्जियां उडते देखोगी और दिन-प्रतिदिन तुम्हे अधिक पीडा होगी। इसलिये यहां से आपका चले जाना ही उचित होगा। माता यह आपका पुत्र आपको लेने आया है।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में गान्धारी के साथ बैठा है तथा गान्धारी से बोला, सुना है ऋषि व्यास राजप्रासाद में पधारे है। गान्धारी बोली, वे पितामही से मिलने आये है। व्यास सत्यवती अम्बिका, अम्बालिका सहित धृतराष्ट्र के कक्ष में आते हैं। धृतराष्ट्र बोले, दादीश्री आपने आने का कष्ट किया मुझे बुला लिया होता और माता सत्यवती का चरण स्पर्श किया तब सत्यवती ने धृतराष्ट्र को

चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया तथा गान्धारी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया। धृतराष्ट्र बोले माते आप नंगे पांव ही। सत्यवती बोली हां पुत्र। महर्षि व्यास कहते हैं कि मेरे हस्तिनापुर में रहने के दिन अब समाप्त हो गये हैं। मैं अम्बिका और अम्बालिका को लेकर तपोवन जा रही हूं। धृतराष्ट्र बोले, क्या हमसे कोई भूल हो गई माता ? वेदव्यास बोले, नहीं अभी तक तो नहीं। धृतराष्ट्र बोले, हमारा अहोभाग्य जो आज ऋषिवर पधारे। व्यास बोले, ऐसे तुम सब की पदचाप पहचान लेते हो पुत्र। भगवान करे तुम आनेवाले कल की भी चाप पहचान सको। धृतराष्ट्र बोला- यह अभागा धृतराष्ट्र किसी की चाप क्या पहचानेगा? व्यास बोले, घटना या दुर्घटना के लिये भाग्य को आरोपित करना छोड दो पुत्र क्योंकि यदि भाग्य ही सब कुछ हो तो कर्म का कोई अर्थ ही नहीं रहा। जो कुछ होता है उसके लिये स्वयं मनुष्य उत्तरदायी है। भाग्य का अर्थ केवल भगवान जानता है कि कोई व्यक्ति आगे क्या करनेवाला है ? परन्तु वह कभी भी उसके कर्मों में हस्तक्षेप नहीं करता इसीलिये जैसे गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बांधली है वैसे तुम अपनी आत्मा की आँखों पर पट्टी मत बांधना तथा यह कदापि मत भूलना कि दुर्योधन तुम्हारा पुत्र भले ही हो किन्तु युधिष्ठिर ज्येष्ठ कुरु पुत्र है। धृतराष्ट्र बोले, तो ऋषिवर मुझे भी अपने साथ ले चलो। व्यास बोले, सन्यास अपने आप से भागने का नाम नहीं है। सन्यास अपने आप अपने अहं का सामना करने का नाम है। यदि बन सको तो गृहस्थ आश्रम का सन्यासी बनो।

धृतराष्ट्र बोले, गृहस्थ आश्रम के सन्यासी। तब व्यास बोले, इसका अर्थ है जो वस्तु तुम्हारी नहीं है वह तुम्हारी नहीं है और इसका तुम्हे ज्ञान होना चाहिये। सत्यवती धृतराष्ट्र से बोली, पुत्र मैं पांडु पुत्रों को तुम्हे सौंप रही हूं। क्षणभर भी उनकी ओर से ध्यान नहीं हटाना वे तुम्हारे अनुज पांडु की धरोहर हैं उन्हे प्यार से पालना। यदि हठ करे तो उन्हे झिडकिया मत देना, उन्हे स्नेह से समझा देना और जब वे बडे हो जाये तो उन्हे अपना अधिकार दे देना। इसका ध्यान रखना कि उन्हे अपना अधिकार मांगना नहीं पडे क्योंकि उत्तराधिकार मांगने से मनों में दरार आ जाती है। ये पाँचो पांडु महाराज के पुत्र है, दुर्योधन तुम्हारा पुत्र है। इनमें कोई भेदभाव मत करना। पुत्री गान्धारी मैं हस्तिनापुर को धृतराष्ट्र को सौंपती हूं और धृतराष्ट्र को तुम्हे। इसका ध्यान रखना और हाथ थामे रखना। अब सौभाग्यवती भव। भगवान तुम्हे न्याय करने की शक्ति दे। धृतराष्ट्र तुम यहीं रहो। गान्धारी तुम हमें हमारी सीमा तक छोडने आओ।

धृतराष्ट्र के कक्ष से बाहर निकलने पर बाहर जाते हुये राजप्रसाद में विदुर मिलता है उन्होने भी देखा राजमाता सत्यवती माता अम्बिका, अम्बालिका के साथ महर्षि व्यास के साथ तपोवन जा रही है। विदुर ने तथा अन्य सभी प्रजा व सैनिकों ने प्रणाम किया।

विदुर को अम्बिका ने आशीर्वाद दिया और विदुर से बोली, मैं अब राजमाता के साथ तपोवन जा रही हूं। मेरी अनुपस्थिति में मेरे पुत्र धृतराष्ट्र की रक्षा करना। विदुर बोले आप निश्चिन्त रहें माता। अम्बिका बोली, तुम अपने अन्तिम समय तक अपनी क्षमता भर धृतराष्ट्र की रक्षा करना। कैसी भी कठिन स्थिति आ जाये, वह कितना ही तुमसे कटु भाषण करे, तुम्हारा तिरस्कार भी कर दे किन्तु तुम उसका साथ मत छोडना, उसे मत त्यागना। तब विदुर बोले, माता यथाक्षमता उसे नीति न्याय का परामर्श दूंगा। न्याय धर्म का दूसरा नाम है। वह न्याय की रक्षा करेगा तो न्याय उसकी रक्षा कर लेगा। तब अम्बिका बोली, वह कितना भी विरोध करे किन्तु तुम उसे नीति से मत डिगने देना। कभी उसके अनुचित के लिये समर्थन मत करना। विदुर बोले, ऐसा ही होगा माता।

सत्यवती सबके साथ राजप्रासाद के मुख्य द्वार के पास आयी जहां भीष्म खडे थे। राजप्रासाद की चौखट तक गान्धारी पहुंचाने आई। सत्यवती गान्धारी से बोली, बस गान्धारी इस चौखट पर तुम्हारी हमारे साथ आने की सीमा समाप्त होती है। यह चौखट ही गृहस्थ रेखा है। कुन्ती और कुन्ती पुत्रों का ध्यान रखना। सत्यवती गान्धारी से गले मिली और आगे चली।

चौखट पर भीष्म मिले। भीष्म से सादर प्रणाम किया तब सत्यवती बोली, पुत्र अब मैं तुमसे भी विदा लेती हूं। द्वैपायन मुझे

तपोवन ले जा रहा है। भीष्म बोले, माता मैं भी आपके साथ चलूंगा माता। मुझे भी आपके साथ चलने की आज्ञा दें। सत्यवती ने कहा मैं तुम्हे कोई आज्ञा कैसे दे सकती हूं पुत्र ? तुम तो कुरु सिंहासन से बन्धे हो यही तुम्हारा सन्यास है और यही तुम्हारी तपस्या। भीष्म बोले, परन्तु कुरु सिंहासन तो चारों ओर से सुरक्षित है माते। वेदव्यास बोले, क्या तुमने भविष्य में झांककर देख लिया है गंगा पुत्र। यह न भूलो कि तुम्हे इच्छा मृत्यु वरदान मिला है न कि इच्छा जीवन जीने का। मृत्यु का वरण करने पर्यन्त बन्धे रहो इसी तरह इस कुरु सिंहासन से और जीये जाओ। ऐसा जीवन जीना अत्यन्त कठिन है पर तुमने स्वयं यह मांग कर लिया है इसलिये इसका पालन तुमको करना पडेगा।

भीष्म सत्यवती से बोले, मां पुत्र तो यह कह सकता है कि मेरे साथ, पास आओ वह यह कैसे कहेगा कि मुझसे दूर जाओ। सत्यवती बोली, पुत्र मैंने तुम्हारा बहुत दमन किया है, तुम्हे सदा वंचित ही करती रही। तुमने मेरे ही कारण ऐसी भीषण प्रतिज्ञाएं की थी। मैंने जो कुछ चाहा वही तुमने किया। मुझे मालूम है तुम्हारे पिता ने तो तुम्हे उन सब प्रतिज्ञाओं से मुक्त कर दिया था फिर भी तुम स्वयं उन प्रतिज्ञाओं से बन्धे रहे। भीष्म बोले, हां माता अवश्य क्योंकि वे प्रतिज्ञाएं मेरी थी। सत्यवती बोली, ठीक है पुत्र, प्रतिज्ञाएं तो तुम्हारी थी फिर भी तुम्हे बांधनेवाली तो मैं थी। आज मैं तुम्हारा बन्धन खोलती हूं और उन सब प्रतिज्ञाओं से मुक्त करती हूं। जब मैं स्वयं ही मुक्त होकर कृष्ण द्वैपायन व्यास के साथ जा रही हूं तो फिर तुम्हे क्यों बांध के रखूं। अब तुम मुक्त हो पुत्र। तुम्हे हस्तिनापुर में छोडकर जा रही हूं। पीछे की व्यवस्था देखते रहना। सम्पूर्ण परिवार का ध्यान रखना क्योंकि तुम ही कुरुकुल में सबसे बडे हो। तुम धार्तराष्ट्र और पांडवों के कुरुओं की इस नयी पीढी के अभिभावक हो। कुरुकुल के रक्षक हो। जैसे भी सम्भव हो कुरुकुल की रक्षा करना। भीष्म बोले, जो आज्ञा माता।

वेदव्यास बोले, आओ चलें माता। सत्यवती ने भीष्म से कहा, सुखी रहो पुत्र। भीष्म ने प्रणाम किया तो माता सत्यवती ने आयुष्मान भव, यशस्वी भव का आशीर्वाद दिया। सबको आशीर्वाद देकर बोली, सबका कल्याण हो। अब तुम सब यहीं से नगर में लौट जाओ।

भीष्म सोचता है कैसी है मनुष्य की बुद्धि कि प्रकृति के इतने कौडे खाती है फिर भी कुछ समझने के लिये तैयार नही। दुःख झेलता है, तडफता है उससे मुक्ति चाहता है किन्तु उसके कारणों से स्वयं को मुक्त कर नहीं पाता। अधिकार छोडना नहीं चाहता है। इसीसे बन्धा रहता है। जब भी मैं मुक्ति के पथ पर आगे बढा तो मुक्त नहीं हो सका। आज भी मां सत्यवती ने मुझे रोक लिया और जाते-जाते कह गई कुरुकुल की रक्षा करना। मेरे पगों को तो बद्ध कर गई पर माता के पग तो हस्तिनापुर को छोडकर जाने को उठ ही नहीं रहे थे फिर भी जबरन हस्तिनापुर के इन्द्रजाल से मुक्त हो गई और मैं स्वेच्छा से मुक्त होना चाहता था तो मुझे बांध गयी।

हस्तिनापुर से बाहर जाने के लिये भीष्म के पैर आगे नहीं बढे। वे पीछे की ओर मुड गये तथा राजभवन की ओर चले। उनके सम्मुख अन्धा धृतराष्ट्र खडा है, आँखों पर पट्टी बांधे गान्धारी खडी है और असहाय बच्चों के साथ आशंकित कुन्ती खडी है और निहार रहे है अपने आगे के भविष्य को जो प्रश्न चिन्ह के समान खडा है ? अब भीष्म अपने स्थिर पैरों से कुरुओं की इस नयी पीढी के बीच खडे हो गये आनेवाले भविष्य के समय की प्रतीक्षा में।

भीष्म खडे ऐसा देख रहा है जैसे अपनी यात्रा पूर्ण कर गन्तव्य तक पहुंचे हुये व्यक्ति को देखता है, या कोई बन्दी अपने साथी बन्दी को कारागृह से मुक्त होकर कारागार से बाहर जाते हुये देखता है और आश्चर्य करता है वाह रे नियति ?

३१) पांडु पुत्रों व धृतराष्ट्र पुत्रों का बाल्यकाल

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में अपना राजमुकुट अपने हाथों से पकडे हुये सोच-विचार कर रहे थे। इतने में गान्धारी आ जाती है तो धृतराष्ट्र बोले, गान्धारी लगता है ये राजमुकुट फिर से हाथ में से निकलते दिखाई दे रहा है। गान्धारी बोली, केवल राजमुकुट ही तो जीवन का लक्ष्य नहीं होता आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र गान्धारी से बोले यह पीडा तुम नहीं समझ सकती। यह पीडा तो वही समझ

सकता है जिसके हाथ से कोई प्रिय वस्तु छीन ली गई हो। जीवन का यह सच तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता गान्धारी कि मैं ज्येष्ठ कुरु पुत्र हूं। यह भूल जाना मेरे वश में नहीं है। क्या कुन्ती से मिल आई ?

गान्धारी बोली अभी जा रही हूं, आपसे आज्ञा लेने आयी थी। धृतराष्ट्र बोले मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता है ? तुम स्वयं पटरानी हो और राजभवन पर शासन तुम्हारा है। कुन्ती के सुख चैन का ध्यान अवश्य रखना। तुम बडी हो। वे पांचों पुत्र मेरे प्रिय अनुज की धरोहर है उन्हे सम्भाल कर रखना। उन्हें कभी यह न लगे कि वे अनाथ है। उन्हे तो दुर्योधन से बचा खुचा प्यार मिल रहा है। गान्धारी बोली, वे ऐसा क्यों सोचेंगे आर्यपुत्र। दुर्योधन के भाई तो वे है ही। धृतराष्ट्र बोले, केवल होने से ही तो कुछ नहीं होता। होने को तो मैं ज्येष्ठ कुरु पुत्र हूं लेकिन इस राज परिवार का ज्येष्ठ पुत्र अब युधिष्ठिर है। तब गान्धारी बोली मैं दुर्योधन को यही समझा रही थी आर्यपुत्र। युधिष्ठिर उसका ज्येष्ठ भ्राता है पर उसकी हठ तो आप जानते ही है। आप भी उसे समझाने का प्रयत्न कीजिये आर्यपुत्र।

धृतराष्ट्र बोला, जब मैं अपने आपको आज तक यह नहीं समझा पाया कि अनुज पांडु के राजा बन जाने से मेरे साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है क्योंकि मैं तो नेत्रहीनता के कारण राजा बनने के योग्य ही नहीं तो भला मैं दुर्योधन को कैसे समझा पाऊंगा वो तो नेत्रहीन नहीं है।

गान्धारी बोली, पर इस घाव को क्यों नहीं भर जाने देते आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र ने कहा मैं क्या करु इस घाव पर लगा मरहम तो स्वयं काल ने उखाड फेंका है। तुम स्वयं इन बातों को सोच कर देखो गान्धारी। दुर्योधन को आज तक यही बताया गया था कि मेरे मृत्यु लोक को त्यागने के बाद वही राजा होगा; मैं भी उसे यही कहता रहा। कुलगुरु भी उसे इसी दृष्टिकोण से शिक्षा दे रहे हैं। अब भला मैं स्वयं उससे यह कैसे कहूं कि वत्स युधिष्ठिर तेरा बडा भाई है इसलिये तुझे अपने कर्मों द्वारा यह सिद्ध करना पडेगा कि हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर पहला अधिकार तेरा है गान्धारी। गान्धारी बोली, तो आप ऐसा क्यों सोचते है आर्यपुत्र ? कि वो यह सिद्ध नहीं कर पायेगा। शिक्षा में तो आज पांडु पुत्रों से आगे है तो आगे ही रहेगा। धृतराष्ट्र बोले, यदि न रह पाया तो। गान्धारी बोली, जो रह न पाया तो यह सिद्ध हो जायेगा कि वह हस्तिनापुर के राजमुकुट के योग्य नहीं है। यह तो भाग्य की बात है। धृतराष्ट्र आवेश में आ गया और क्रोधित होकर बोला, भाग्य बार-बार मेरा ही मार्ग रोक कर क्यों खडा हो जाता है ? फिर वही भाग्य। गान्धारी बोली, आर्यपुत्र यह भाग्यरेखा है जो मिटाये नहीं मिटती। धृतराष्ट्र बोले, तो क्या इसका अर्थ यह है कि अपने कर्मों का मेरे ऊपर कोई दायित्व ही नहीं है। गान्धारी बोली, इसका अर्थ यह नहीं हुआ अपने कर्मों के उत्तरदायी हम स्वयं ही है। भाग्यरेखा तो मानो एक दर्पण है और दर्पण तो वही दिखाता है जो उसके सामने है। भाग्य रेखा मनुष्य को बांधनेवाली डोर नहीं। भाग्य तो मनुष्य की जीवन कथा है इसीलिये भाग्य पर अपने किये का आरोप लगाना उचित नहीं है आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, मुझे उपदेश मत दो गान्धारी। मेरा साथ दो। मेरे पास रहो। मुझे मेरी मृगतृष्णाओं की अभिलाषाओं पर अकेला मत छोडो गान्धारी। मुझे कभी-कभी स्वयं अपने आप से डर लगने लगता है गान्धारी। गान्धारी बोली- किसी भी भरतवंशी को डर शक्ति के शब्द का प्रयोग करना शोभा नहीं देता और बहुत उच्चांकाक्षी होना भी अच्छा नहीं। आप यह न सोचिये कि आप दुर्योधन के पिताश्री है। आप यह सोचिये कि आप हस्तिनापुर के नरेश हैं और न्याय करना आपका धर्म है।

कुन्ती अपने कक्ष में अपने पांचों पुत्रों के साथ बैठी बच्चों को खाना खिला रही थी और बच्चों से बोली, जल्दी-जल्दी भगवान का नाम लो और सोने का समय हो गया है सो जाओ। सभी बच्चे सो गये पर भीम तो फिर भी जाग रहा था तो युधिष्ठिर ने पूछा, क्यों भीम सेन सो नहीं रहे हो। भीम बोले, नहीं बडे भैया नींद नहीं आ रही है। कैसे सो जाऊं ? दुर्योधन के दुराचार से मेरा हृदय तिलमिला रहा है। युधिष्ठिर बोले, भीम तुम जिसको दुराचार कह रहे हो वही उसका आचरण है और माफ करना मनुष्य को भगवान

के निकट ले जाता है। क्षमा तो ऐसा अस्त्र है जिसकी कोई समानता नहीं कर सकता। तुम तो सदा खाने की ही बात सोचते रहते हो। तुम कभी नहीं सुधरोगे। खाने की बात सुनकर भीम को भूख लग गयी और वह राजमहल के रसोई घर की ओर दौड पडा। रास्ते में गान्धारी अपनी दासी को लेकर कुन्ती से मिलने कुन्ती के कक्ष में आ रही थी। भीम ने गान्धारी को प्रणाम किया और कहा प्रणाम ज्येष्ठ माताश्री। गान्धारी ने भीम से पूछा, कुन्ती कहां है पुत्र ? भीम बोला, माताश्री अपने कक्ष में है।

गांधारी को आती देखकर कुन्ती ने अपने कक्ष में से बाहर निकल कर गान्धारी को प्रणाम किया। गान्धारी बोली, यह क्या है कुन्ती ? कुन्ती बोली, दीदी बडों का आशीर्वाद लेना तो छोटों का अधिकार है। गान्धारी कुन्ती से गले लग कर मिली। कुन्ती बोली, दीदी आपने यहां आने का कष्ट क्यों किया मुझे बुला लिया होता। गान्धारी बोली मैं तो यों ही चली आयी। बहुत दिन हो गये थे। सब ठीक तो है ना। किसी भी वस्तु की कोई आवश्यकता तो नहीं तुम्हे। कोई कमी तो नहीं रह गई। कुन्ती बोली, नहीं दीदी, ये आप क्या कह रही है। मैं कोई अतिथि थोडे ही हूं मैं तो अपने घर ही में आई हूं। आइये आप यहां बैठिये, अन्दर आईये। गान्धारी बोली, बहुत दिन के पश्चात आने पर ये घर-घर सा लगता है फिर भी तुम्हे किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो दासी को आदेश देने में झिझकना मत। कुन्ती बोली, आपने मुझे यह कक्ष देकर मेरी सारी आवश्यकतायें पूरी कर दी। दीदी मैं इसी कक्ष में पहले दुल्हन बन कर आयी थी और कुन्ती जोरों से विलाप कर रोने लगी। गान्धारी बोली, सब्र करो, अब रोने का समय नहीं है तुम्हे अपने विषय में सोचकर अपने और माद्री के बच्चों को बडा करना है। मैं तो दुर्योधन के दुराचार के लिये तुमसे क्षमा मांगने आई हूं। कुन्ती बोली ऐसा मत कहो दीदी। आपके क्षमा मांगने से मुझे पाप लगेगा। गान्धारी बोली, नहीं कुन्ती उसे वो सब नहीं करना चाहिये था जो उसने किया। तुम्हारे पुत्र अपने तात के घर में आये है। तुम्हारे पुत्रों का इस राजभवन में उतना ही अधिकार है उसके भाइयों से कम तो नहीं है कुन्ती। कुन्ती बोली, मैं अधिकारों की गिनती करने नहीं आई हूं दीदी। मैं तो इस राज घराने की धरोहर इस राज घराने को सौंपने आई हूं। इनका क्या अधिकार है और क्या नहीं ये तो ज्येष्ठश्री और तातश्री भीष्म ही जानते है। दीदी आप हस्तिनापुर की पटरानी है और मैं अपने पुत्रों कोआपकी शरण में लायी हूं। गान्धारी बोली ऐसा मत कहो कुन्ती। यदि इस राजवंश पर ईश्वर कृपा रही तो तुम्हारे पुत्रों के साथ पूरा न्याय होगा। युधिष्ठिर इस राज परिवार का ज्येष्ठ पुत्र है। मैं यह नहीं कहती कि दुर्योधन के ज्येष्ठ न होने पर मेरा हृदय नहीं दुखा। अवश्य दुखा। हर मां की भांति मेरे जी ने भी चाहा कि दुर्योधन अनुज पांडु के साथ हस्तिनापुर नरेश बने। पर जी के चाहने से वास्तविकता तो नहीं बदल जाती। सत्य तो फिर भी यही है कि पुत्र युधिष्ठिर मेरे पुत्र दुर्योधन से बडा है परन्तु मुझे थोडा सा खटका अपने भ्राता शकुनि की ओर से है। उसके हृदय में कोई चोर है जो मेरी पकड में नहीं आ रहा है। मुझे लगता है दुर्योधन कहीं उसके बहकावे में न आजाये। भाइयों बीच मनमुटाव तो नहीं आना चाहिये। कुन्ती बोली, दीदी इन पांचों को तो मैं बहकने नही दूंगी। गान्धारी बोली, कुन्ती मेरे पास तुम्हारी जैसी शक्ति नही। भ्राता शकुनि के काटे का मन्त्र तो काल के पास भी नहीं है। प्रार्थना करो कुन्ती।

शकुनि दुर्योधन को लेकर धृतराष्ट्र के कक्ष में आता है और बोलता है महाराज के न्याय की ओर अन्याय की जय। उस अन्याय की जय जो भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन के साथ कर रहे हैं। महाराज का नाम तो भारतवर्ष के इतिहास में रूपहले और सुनहरे शब्दों में लिखा जायेगा परन्तु मैं अपने भान्जे (भगिने) गान्धारी पुत्र दुर्योधन के साथ यह अन्याय नहीं होने दूंगा। धृतराष्ट्र बोले, तो मैं क्या करूं ? क्या कुन्ती से यह कह दूं कि वह पान्डु पुत्रों को लेकर फिर से वन में चली जाये ? शकुनि बोले, नहीं। मैंने यह कब कहा ? छोटे भाई के अनाथ बच्चों की देख-रेख तो करनी ही पडेगी परन्तु स्वर्गीय पांडु का वह भवन उन्हे देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वो भवन उन्हें देकर आपने उनके लिये राजमहल में उच्चांक्षाओ के बीज बो दिये। इसी भवन में कुन्ती पट रानी बनकर आई थी। भ्राताश्री आपने स्नेह की गंगा के घाट पर स्नान करने की आज्ञा देने से पहले अपने आपके पुत्र दुर्योधन के विषय में तो विचार करना चाहिये था। हस्तिनापुर के भविष्य की रक्षा तो तातश्री भीष्म कर

ही रहे थे परन्तु अपने पुत्र के भविष्य की रक्षा तो आपको ही करनी पडेगी। वो तो अभी बालक है और फिर तनिक यह भी तो सोचिये कि जीजाश्री कि वे पांडु पुत्र जो हिमालय के स्वच्छ वातावरण और ऋषि मुनियों के संग में रहे है भला उनका जी राजभवन की भीड भाड में कैसे लगता ? वे तो यहां सन्तुष्ट और सुखी रह ही नहीं सकते। वन में पक्षी के जैसे उडान भरने वालों के लिये तो राजभवन पिंजरे के समान है। धृतराष्ट्र बोले, गान्धारी से तो कुन्ती ने यही कहा कि उन्हे यहाँ हर प्रकार की सुख-सुविधा है। शकुनि बोले- गान्धारी की तो आपने भली कही। उसे तो क्या करना और ऊंच-नीच देखना ही नहीं आता और महारानी कुन्ती को तो यह कहना ही चाहिये था। धृतराष्ट्र बोले, परन्तु फिर भी इस राजभवन पर पांडुओं का अधिकार दुर्योधन से कम तो नहीं है। दुर्योधन बोला, उनका कोई अधिकार नहीं है मैं सबको मार डालुंगा। भीम के साथ बैठकर तो मैं भोजन भी नहीं कर सकता और वह अर्जुन पता नहीं अपने आपको क्या समझता है ? धूल भरे वस्त्रों समेत पितामह की गोद में ही चढ गया। यह लोग राजभवन में रहने योग्य नहीं है पिताश्री। शकुनि बोला अपनी उत्तेजना को दबाओ वत्स। तुम्हारे पिताश्री के अन्याय को सहन करना सीखो। महाराज अब आप भी विश्राम कीजिये पर सोते जगते अपने राजमुकुट को कसकर पकडना मत भूलिये। चलो भान्जे यहां से चलें।

धृतराष्ट्र के सिर पर हस्तिनापुर का राजमुकुट धारण करते ही दृष्टिहीन धृतराष्ट्र के स्वभाव में परिवर्तन आ गया। शुरु में धृतराष्ट्र ने अपने भाग्य की कम नसीबी समझकर सन्तोष कर रखा था और परिस्थितियों के साथ समझौता कर लिया था। पर जब से राजा बनकर राजमुकुट सिर पर धारण कर लिया एक अलग ही तरह की चेतना धृतराष्ट्र के तन-मन पर व्याप्त हो गई। कुरुवंश का राजा मैं ही हूं और मेरे पश्चात यह राजगद्दी मेरे पुत्र को प्राप्त होगी यह बात उसने दुर्योधन के मन में बिठा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि दुर्योधन एक घमंडी, हठी, बडी आकांक्षावाला बन गया। दुर्योधन का अलग तरह का स्वभाव पांडु पुत्रों के साथ मेल नहीं खा रहा था, शकुनि की कूटनीति और धृतराष्ट्र की अपनी महत्वाकांक्षाएं धृतराष्ट्र को अधिक से अधिक स्वार्थी बनाती जा रही थी। धृतराष्ट्र के स्वभाव में यह बदलाव भीष्म देख रहे थे। धृतराष्ट्र का इस तरह का व्यवहार देखकर भीष्म अधिक चिंतित रहने लगे।

पांडव आनन्द से बचपन में दुर्योधन आदि के साथ खेलते और उनसे बढकर ही रहते। क्रीडाओं में, दौड, निशानेबाजी, खाने में, धूल उडाने में भीम धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को हरा डालते थे। अकेले भीमसेन दुर्योधन के भाइयों को पकड कर खींचते और जमीन पर घसीटते। वे एक साथ दस-दस बालकों को गोदी में भर पानी में डुबकी लगाते। जब दुर्योधन आदि बालक किसी वृक्ष पर चढ़कर फल खाते तोडते तो भीम अपने पैर की ठोकर से उस पेड को हिला देता और ऊपरसे फलों के साथ वे बालक भी गिर पडते। भीम को कुश्ती में, दौड में या किसी भी प्रकार के मल्लयुद्ध में कोई नहीं जीत पाता था। भीम होड के कारण ही ऐसा करते थे। दुर्योधन तो ईर्ष्या और बैर भाव इन पांडवों के प्रति रखता था पर भीम के मन में कोई बैर विरोध नहीं था। दुर्योधन के मन में भीम के प्रति दुर्भाव था। वह मनसे भीम में दोष ही दोष ढूंढते रहता था। वह दिन रात पांडवों का अनिष्ठ करने की सोचते रहने लगा और अवसर की ताक में रहता था।

सन्ध्या समय युधिष्ठिर अन्यमनस्क सा कक्ष में बैठा कुछ सोच रहा था। कुन्ती ने उसे देखकर पूछा युधिष्ठिर अकेले बैठे यहां क्या कर रहे हो तुम बाहर खेलने क्यों नहीं जाते। दिनभर गुरु गम्भीर जैसे बैठे हो। युधिष्ठिर बोले नहीं माता जाता हूं गुरु के पास और जिन शास्त्रों का वे अभ्यास कराते हैं, जो शस्त्र शिक्षा देते हैं उसे ग्रहण करता हूं। कुन्ती युधिष्ठिर की ओर देख रही थी। क्या था उन आँखों में ? उन आंखों में किसी प्रौढ की मूक पीडा थी, आक्रोश था, प्रतिरोध भी और अपनी असहायता की एक निरीह स्वीकृति। कुन्ती ने पूछा, क्या बात है पुत्र ? कुन्ती ने बार-बार अनेक तरह से पूछा पर फिर भी युधिष्ठिर को बडे से बडा दु:ख भी विचलित नहीं कर पाता था। कुन्ती बोली, बताओ युधिष्ठिर। सदा सत्य बताना। अप्रिय भी हो तो सत्य ही बोलना। मां को

पीडा पहुंचती हो तो भी सत्य बोलना। झूठ से समस्या का समाधान नहीं होता, उसकी उपेक्षा होती है। कपोत (कबूतर) के अपनी आंखे बंद कर लेने से तो बिल्ली का अस्तित्व नहीं मिट जाता। युधिष्ठिर बोला, दुर्योधन कहता है कि यह प्रासाद, उद्यान उसका तथा उसके भाइयों के खेलने के लिये है। उसके पिता धृतराष्ट्र ने हमे कृपापूर्वक प्रासाद में ठहरने की अनुमति दी है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम सारे प्रासाद के स्वामी हो गये कि स्वेच्छा से जहां कही घूमे-फिरे, हमें अपनी मर्यादायें जाननी चाहिये। कुन्ती सुनकर स्तम्भित रह गई कि यह बालक इतने बडे अपमान की घूंट पीकर भी चुपचाप रह गया। युधिष्ठिर बोला, अब हम अपने घर कब लौटेंगे ? यह सुनकर कुन्ती की आंख से आंसू टपक पडे। कुन्ती बोली, कौनसा घर पुत्र ? युधिष्ठिर बोले तो क्या हमारा कोई घर नहीं मां ? इससे तो अच्छा है हम लोग ऋषि श्रृंग के आश्रम में शतश्रृंग में ही थे। वहां पर हमें किसी ने यह कभी नहीं कहा कि वह आश्रम हमारा नहीं है। कुटीर हमारी नही है, कोई क्षेत्र हमारा नहीं है, सरोवर हमारा नहीं है। यहां तो हमारा जैसे कुछ भी नहीं है। सुनकर कुन्ती अवाक रह गई, हताश हो गई। युधिष्ठिर झगड कर किसी वस्तु पर अपना अधिकार करना नहीं चाहता। अधिकारों के विवाद में युधिष्ठिर कभी भी त्याग ही करेगा। इसे अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत रहना चाहिये। कुन्ती बोली, पुत्र यही हमारा घर है और हमें कही नहीं जाना है। हस्तिनापुर तुम्हारा है और तुम कुरु साम्राज्य के युवराज हो। युधिष्ठिर बोला यदि हस्तिनापुर हमारा है तो हम अपने लिये फिर एक नया प्रासाद क्यों नहीं बनवा लेते ? हम सुयोधन के प्रासाद में साथ में क्यों रहे ? ये लोग हमारे यहां रहने से असन्तुष्ट है। उन्हे हमसे असुविधा है मां। हमारे कारण उन्हे स्थान का अभाव लगता है। कुन्ती बोली, तुमने कितना विशाल हृदय पाया है और चिरायु हो आशीर्वाद दिया और बोली यह हस्तिनापुर का राजप्रासाद है और हस्तिनापुर का राजा इसीमें रहता है। तपस्या के लिये जाने के पूर्व तुम्हारे पिता भी इसी प्रासाद में रहते थे और अब अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में तुम भी इसी प्रासाद में रहोगे। हस्तिनापुर के युवराज को यहां से हटकर अन्यत्र कहीं नहीं जाना है। बात प्रासाद की नहीं है पुत्र अधिकार की है। मैं तुम्हारे मन में कोई प्रासाद का लोभ नहीं जगा रही पुत्र। मैं तो तुम्हें अपने अधिकारों के बारे में अवगत करा रही हूं। कुन्ती ने पूछा शिक्षण के समय कृपाचार्य का व्यवहार तुम्हारे साथ कैसा था ? युधिष्ठर बोले, मां ठीक है परन्तु ऋषि श्रृंग के आचार्य से भिन्न है। कुन्ती बोली, जाओ पुत्र बाहर खेलो। कुन्ती सोच रही थी कि कहीं उसपर जबरदस्ती का कोई बोझ तो नहीं डाल रही। किन्तु यदि वह बोझ नहीं डालेगी तो ये कोमल कन्धे बोझ उठाने के अभ्यस्त, काबिल कैसे होंगे ? वे दृढ कैसे होंगे? युधिष्ठर का स्वभाव वह अच्छी तरह जानती है। वह किसी से कुछ लेना नहीं चाहता देना ही चाहता है लेकिन देने के लिये अपने पास कुछ होना भी तो चाहिये।

इतने में ही दौड लगाकर भीम आ गया। कुन्ती ने उससे पूछा क्या दुर्योधन ने तुम्हे तभी उद्यान में खेलने से टोका है ? भीम हंसते हुये बोला हां, उसने मुझे कहा कि उद्यान उसका और उसके भाइयों के खेलने के लिये है, हम लोगों के लिये नहीं। तो मैंने तो कह दिया मैं तो खेलूंगा, जिसे जो करना है वह कर ले और भीम तो हंसकर पवन वेग से बाहर दौड पडा। मेरे सामने आने का तो कोई साहस करता नहीं माता। उन सबमें एक ही अच्छा है युयुत्सु जो मेरा मित्र है मेरे साथ खेलता है। मैं अकेला ही खेल सकता हूं। वृक्षों को हिलाना मेरा शौक है। भीम खेलने के लिये भागता हुआ कक्ष से बाहर निकल गया किन्तु वह कुन्ती के मन को झकझोर कर गया कि कितना बिनधास्त बालक है। दुर्योधन राजसी वैभव में पला जबकि कुन्ती के पुत्र आश्रम के सात्विक वातावरण में। यह सब देख सुनकर कुन्ती चिंतित रहने लगी कई रातों तक नींद नहीं आई। युधिष्ठिर ने तो सदा ही ज्ञान, चरित्र और वय का सम्मान करना सीखा है। धन का होना नहीं होना सुविधा और असुविधा का कारण हो सकता है पर मान-अपमान का नहीं फिर दुर्योधन यह कैसे समझ बैठा है कि यह सब उसके पिता की सम्पत्ति है। उसे यह क्यों नहीं समझाया गया कि यह कौरवों की सम्पत्ति है जिसके सम्राट पांडु थे और यह उसी पांडु का परिवार है। इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ कुरु पुत्र युधिष्ठिर है। वे लोग जिस सम्पत्ति का भोग कर रहे हैं वह वास्तविक में युधिष्ठिर की है। जिस

अधिकार का प्रयोग वे कर रहे हैं वह युधिष्ठिर का है। राजप्रसाद में बैठे भावी सम्राट से कह रहे हैं कि वह किसी की दया, कृपा पर जी रहा है। क्या धृतराष्ट्र और गान्धारी जानते है यह कि उनका पुत्र दुर्योधन सबसे क्या कह रहा है ? पर युधिष्ठर को तो वैसे ही बैर, विरोध, लडाई-झगडे में कोई रुचि नहीं। अर्जुन, नकुल-सहदेव अभी छोटे है पर भीम किस-किस से लडेगा ? भीम तो उधम मचाते ही रहता है किसी न किसी दिन कोई झंझट में फंस जायेगा।

कुन्ती ऋषि श्रृंग के आश्रम से अपने घर आई थी किन्तु यह उसका घर है क्या उसे तो अपने चारों ओर अपने विरोध ही विरोध दिखाई दे रहे है। एक सम्राट पांडु के न रहने से संसार में उसका अपना कोई नहीं रहा। यदि आज वे होते तो कुन्ती के पुत्र आज इतने असुरक्षित न होते। कुन्ती मन से कभी भी नहीं चाही कि वैमनस्य का अंकुर अपनी जड जमाये पर परिस्थिति यह सब करने लगी। युधिष्ठिर कभी भी दुर्योधन की व उसके भाइयों की शिकायत मां से नहीं करता। वह सोचते रहता है कोई चर्चा मां को विचलित या आहत कर देगी तो वह चर्चा कभी मां से करेगा ही नहीं। कुन्ती ढूंढने अर्जुन को निकली देखे कि वह क्या कर रहा है। अर्जुन एकान्त में एक वृक्ष के नीचे अकेले बैठे ऊपर की ओर देख रहा है। कुन्ती बोली, अर्जुन यहां बैठा क्या कर रहा है बाहर मित्रों के साथ क्यों नहीं खेलता? जैसे भीम सबके साथ खेल रहा है। अर्जुन बोला, मैंने कोई मित्र नहीं बनाया है मुझे कोई वे योग्य लगे नहीं। उनमें से ऐसा कोई नहीं है जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सके। जिस पर पूर्णत: अवलम्बित रहा जा सके। मझले भैया भीम का तो क्या है वो तो किसी कोभी अपना मित्र बना लेते है। बिना यह विचार किये कि परिचय और मित्रता में भेद है कभी मित्रता नहीं करनी चाहिये। अर्जुन बोला, मझले भैया कि तरह ढेरों मित्रों का करना क्या है मेरे लिये तो एक ही अच्छा मित्र मिल जाये तो बहुत है। मैं यहां पर बैठे एकाग्रता का अभ्यास कर रहा हूं माता। गुरु कहते है बाण सन्धान के लिये लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करो। इसलिये मैं एकाग्रता का पाठ पढ रहा हूं। मुझे तो धनुर्धर बनना है। बाण फेंकना और बात है और लक्ष्य साधकर धनुर्धर बनना और है। युधिष्ठर सत्य को खोजता है। अर्जुन अपने लक्ष्य भेद और एकाग्रता को। भीम भोला है उसे अपने पराये का कुछ भी भान नहीं।

भीष्म धृतराष्ट्र और दुर्योधन के पान्डुओं के साथ के व्यवहार से अत्यन्त चिंतित हो उद्यान के पास घूम रहे थे। तब उसी समय विदुर भीष्म के पास आये और प्रणाम किया और बोले मैं इधर बडे दिनों से देख रहा हूं कि आप किस सोच में डूबे रहते हैं ? कारण तातश्री। भीष्म बोले क्या सचमुच तुम इस गहरी सोच का कारण नहीं जानते विदुर ? आज हस्तिनापुर वर्तमान और भविष्य की चौखट पर खडा हुआ है। विदुर क्या तुम इन दिनों कभी गहरी सोच में नहीं डूबते ? क्या तुम शंकित नहीं हो ? क्या तुम यह नहीं देखते हो कि हमारे पूर्वजों ने जिन जीवन मूल्यों को संजोया था, पिरोया था और जिन्हे जीवन का एक शक्तिशाली आधार बनाया था वो मूल्य आज जगह-जगह से टूट रहे है ? इस धागे में गांठ पड रही है विदुर। राजनीति वहश हो रही है और राजा दूसरे के अधिकारों को भी अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है। जब स्वयं माली को अपनी कली न भा रही हो और वह सारी कलियों के भाग की धूप एक ही कली को दे देना चाहता हो तो उस वाटिका का क्या भविष्य विदुर ? और दु:ख की बात यह है कि वह एक कली भी आवश्यकता से अधिक धूप पाकर सडने लगेगी। जब कि किसान अपने ही धान के अंकुर खेत से शत्रुता कर बैठे तो खेत पर क्या बीतेगी ? आजकल ये प्रश्न मुझे बिछुओं के भांति डंक मारते है। पर मैं वर्तमान से असन्तुष्ट और भविष्य के लिये अत्यन्त चिंतित हूं विदुर।

विदुर बोले, तातश्री केवल हम अपनी सुविधा के लिये वर्तमान भविष्य पर ही बाण चलाते हैं। जो आज अतीत है वह कल का वर्तमान रह चुका है और आज जो आज का वर्तमान है वह कल का अतीत होगा। भीष्म बोले, विदुर मैं इस समय दर्शन पर बात नहीं कर रहा हूं। मैं आज के कठोर यथार्थ की बात कर रहा हूं। वर्तमान जब अतीत बन जायेगा तो हम सब इतिहास के पन्नों में होंगे विदुर। पर आज हम इस वर्तमान के जीवित पात्र है और अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे है। पर हमें अपनी

भूमिका का ज्ञान तो होना चाहिये। विदुर बोले, इस बात का ज्ञान तो मुझे आप ही से मिला है तातश्री। जीवन का सारा तत्व तथ्य बल इसीमें है कि हमें अपनी भूमिका का पूरा ज्ञान नहीं। यदि हमें भविष्य का पूरा ज्ञान हो जाये तो फिर कर्म का अर्थ ही क्या रह जाता है तातश्री ? मनुष्य ही केवल एक ऐसा जीव है जिसे कुछ करने या न करने का पूरा अधिकार मिला हुआ है।

भीष्म बोले, तो विदुर तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मैं धृतराष्ट्र को छोड दूं ? विदुर बोले, मैं यह कैसे कह सकता हूं तातश्री क्योंकि मैं यह जानता हूं कि आप अपने चुनने के अधिकार का उपयोग पहले ही कर चुके हैं। भीष्म बोले, तो फिर क्या आंखों पर पट्टी बांध लूं ? विदुर ने कहा यह प्रश्न तो आप अपने आपसे ही कीजिये और इसका उत्तर भी आप स्वयं ही दीजिये क्योंकि मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाऊंगा।

भीष्म बोले, विदुर तो कोई शुभ दिन देखकर पांडु पुत्रों को कृपाचार्य के गुरुकुल में छोड आओ। विदुर बोले, जो आज्ञा। भीष्म ने कहा अब तुम जाओ मैं कुछ देर के लिये अकेला रहना चाहता हूं। विदुर ने कहा मातुश्री के साथ। प्रणाम तातश्री।

भीष्म गंगा तट पर टहल रहे थे कि गंगा की लहरों से गंगा प्रकट हो गई। भीष्म ने प्रणाम किया। गंगा ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। भीष्म बोले, ये आशीर्वाद मत दीजियेगा माता बस पहिले से ही मै पिताश्री के वरदान की डोर से जकडा हुआ हूं। गंगा ने कहा इतने दु:खी मत होओ पुत्र। भीष्म बोले, माता दु:ख की भी तो कोई सीमा होती है। गंगा बोली, परन्तु आज इतने दु:खी क्यों हो पुत्र ? भीष्म बोले, कारण एक हो तो बताऊं माते। मैं शोक कर रहा हूँ उन जीवन मूल्यों का जिनकी मृत्यु मेरी आंखों के सामने हो रही है। मैं शोक मना रहा हूं उस उजली रेखा का जिसे हमारे पूर्वजों ने सत्य और असत्य के बीच खींची थी। मैं रो रहा हूं उस कठोर सच्चाई पर कि मैंने पिताश्री को जिस सिंहासन की रक्षा का वचन दिया था, जिस सिंहासन के प्रति निष्ठा की शपथ ली थी उसी सिंहासन को धृतराष्ट्र का पुत्र आज अपमानित कर रहा है। लोभ ने उसके विवेक की आंखों पर पट्टी बांध दी है और अभिमान उसके सिर पर चढ़कर बोल रहा है और मेरी विवशता यह है कि मैं पान्डु पुत्रों को स्नेह और आशीर्वाद के सिवा कुछ नहीं दे सकता माते कुछ नहीं दे सकता। गंगा बोली, मन को छोटा मत करो पुत्र। भीष्म बोला तो फिर क्या करूं मैं माते ? गंगा बोली, जब जी बहुत व्याकुल हो जावे तो मेरे पास चले आया करो पुत्र। तुम तो स्वयं इस समय के विन्ध्याचल के समान सबसे ऊंचे शिखर हो। तुम तो जानते ही हो कि सीढी तो एक ही होती है। उसीसे चढते भी हैं और उतरते भी हैं, परन्तु सीढी चाहे कितनी भी ऊंची क्यों न हो कहीं न कहीं जाकर वह समाप्त होती है। तो जब सभ्यता और संस्कृतियां एक सीढी से ऊपरी सीढी तक जा पहुंचती है तो उन्हे उतरना ही पडता है पुत्र और जब वे उतरने लगती है तो वे कुछ जीवन मूल्य अवश्य ले जाती है जिनके आधार पर वो ऊपर चढी थी और उनकी राह से बचने के लिये उनके हाथ में जो भी आता है वो उसे पकड लेती है। राजनीति भी इस नियम से बहक रही है अन्धी है। अब का यह युग भारतवर्ष के उतार का युग है परन्तु निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं पुत्र क्योंकि मनुष्य सीढियां बनाना जानता है। यह न भूलो पुत्र कि अमृत पाने के लिये सागर मन्थन करना पडता है और सागर मन्थन में पहले जो विष निकलता है वह किसी न किसी को पीना ही पडता है। तुमने तो वही विष पीने के लिये जन्म लिया है पुत्र। ये ही तुम्हारा कर्म है। गंगा भीष्म को आशीर्वाद देकर अन्तर्ध्यान हो गई।

कुन्ती जानती थी कि आवश्यकता होने पर हस्तिनापुर में दो ही व्यक्तियों से वह अपने मन की बात कह सकती थी। एक पितृव्य भीष्म और दूसरा देवर विदुर। पितृव्य भीष्म बडे थे। सम्बन्ध में श्वसुर और वय की दृष्टि से वरिष्ठ तथा पितामह। जीवन में ऐसा बहुत कुछ था जो कुन्ती चुपचाप पी जाती थी। बहुत कुछ गोपनीय छिपाये भी रखती थी। किन्तु अपमान का घूंट कुन्ती के लिये हलाहल विष हो रहा था। उसे निगलने से अच्छा तो है व उगल ही दे। सन्ध्या समय विदुर कुन्ती के पास आया।

विदुर ने कुन्ती और कुन्ती पुत्रों के कुशल समाचार पूछे। दुर्योधन व भीम की घटनायें सुनी और फिर कुछ सोचता रह गया और बोला भाभी मुझे लगता है राजा धृतराष्ट्र या गान्धारी ये लोग अपने व्यवहार अथवा वार्तालाप से ऐसा लगता है कि उनके

मन में शायद आपके लिये कोई सम्मान नहीं है। आप लोग उन पर बलात आरोपित है। वे नहीं चाहते कि हस्तिनापुर में आपका निवास सुविधापूर्ण और सम्मान जनक हो। मुझे तो कुछ और गहरे षड़यंत्रों का आभास मिल रहा है मैं चाहता हूं कि आप उन सबसे सावधान रहें। यदि विदुर को किसी षडयन्त्र का आभास मिला है और वह कुन्ती को इसके प्रति सावधान कर रहा है तो कुन्ती को सावधान हो जाना चाहिये।

विदुर बोला, भाभी शकुनि अपने वार्तालाप में युधिष्ठिर भीम, अर्जुन के लिये कौन्तेय शब्द का प्रयोग करता है तथा नकुल और सहदेव को वह माद्रेय कहता है और इन पांचों भाईयों को एक साथ सम्बोधन करना हो तो वह इन्हे पांडव कहता है। इनकी तुलना में वह धृतराष्ट्र के पुत्रों को धृतराष्ट्र अथवा गान्धारी के नाम पर नामकरण नहीं कर उन्हे कौरव कह कर बुलाता है। वह दुष्ट पान्डु पुत्रों को कौरव वंश के उत्तराधिकारी ही स्वीकार करना नहीं चाहता है। इतना ही नहीं वह कौन्तेयों और माद्रेयों में भी भेदभाव करा देना चाहता है।

कुन्ती सोच रही है उसके ये अबोध बालक इन धूर्तों से कैसे पूरे पडेंगे। इससे अच्छा तो था कि वे ऋषि श्रृंग के आश्रम में ही उन सात्विक ऋषियों के मध्य रहते। न बनते उसके पुत्र राजकुमार परन्तु इस प्रकार के नीच लोगों के षडयन्त्रों से दूर रहते। अपनी सुरक्षा के लिये उसे निरन्तर चिंतित तो नहीं होना पडता। शकुनि जब इस प्रकार की चर्चा धृतराष्ट्र से करता है तो धृतराष्ट्र उसे कभी नहीं टोकता। उसे हतोत्साहित करना तो दूर उल्टे उसका साथ देकर उसे प्रोत्साहित करता है। विदुर बोला, भाभी आप चिन्ता न करें धृतराष्ट्र अभी इतना शक्तिशाली नहीं हुआ है कि पितृव्य भीष्म की इच्छा के विरुद्ध हस्तिनापुर का राज्य हस्तगत कर ले। कुन्ती को अब तो पितृव्य भीष्म का ही सहारा है। विदुर अपने प्रासाद में लौट गया।

कुन्ती ने आज विदुर और पारसंवी से मिलने की सोची। हस्तिनापुर में और ऐसा कौन है जिससे कुन्ती वार्तालाप कर अपने मन के द्वन्द्व को प्रकट कर दे। आज कुन्ती को लग रहा था कि सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका का हस्तिनापुर छोडकर जाना कुन्ती के हित में नहीं था। उन सबके चले जाने पर कुन्ती को लगने लगा कदाचित कुन्ती इतनी अकेली नहीं होती। सारा हस्तिनापुर धृतराष्ट्र और गान्धारी का हो गया।

युधिष्ठिर कक्ष के एक कोने में बैठा किसी पुस्तक के पृष्ठ उलट-पलट कर पढ़ रहा था कुन्ती ने पूछा क्या कर रहा है पुत्र ? क्या खोज रहा है पुत्र ? युधिष्ठिर को मां का यह प्रश्न समझ नहीं पाया फिर भी उसने कहा मैं खोज रहा हूं कि सत्य क्या है। कुन्ती को लगा वह इतने बडे-बडे प्रश्नों में क्यों उलझा रहता है। संसार में और भी तो बहुत लोग है, किसी को सत्य सन्धान की आवश्यकता नहीं पडी। यहां तो कोई राज्य खोज रहा है, कोई अधिकार, कोई धन और तो कोई यश, कोई सुख तो कोई भोग और यह युधिष्ठिर बैठा सत्य खोज रहा है। मां ने पूछा क्या आवश्यकता आ पडी है तुझे सत्य खोजने की ? युधिष्ठिर पूरी निष्ठा से बोला माता सत्य ही धर्म का मार्ग दिखलाता है। माता ने फिर पूछा क्या करेगा धर्म का तू ? युधिष्ठिर बोला माता धर्म ही संसार को धारण करता है। अधर्म इसका क्षय करता है। मानव का जन्म सृष्टि के क्षय के लिये नहीं उसे धारण करने के लिये हुआ है। कुन्ती बोली, अच्छा पुत्र तू धर्म का सन्धान कर। तेरे पितामह भीष्म, महामुनि व्यास और तेरे काका विदुर भी सब इसी कार्य में लगे है धर्म की खोज में। मैं व्यक्तिगत धर्म को खोज रही हूँ व्यापक मानवीय धर्म को नहीं अच्छा अब मैं विदुर के घर जा रही हूँ।

विदुर अपने परिवार के साथ राजप्रासाद के परिसर में ही एक पृथक छोटे भवन में रहता था। उसके जन्म के समय उसकी माता को दासत्व से मुक्त करते हुये अम्बिका ने उसे यह आवास भीष्म से दिलवाया था। कुन्ती के आनेपर पारसंवी ने उनका स्वागत कर बैठाया। कुन्ती बोली, आज महारानी गान्धारी मेरे पास आई थी। पारसंवी मुस्कुराई और बोली, आज प्रासाद में बडी चर्चा हुई इस बात की। कितनी ही दासियां आकर मुझे यह समाचार दे गई। सुनकर कुन्ती को आश्चर्य हुआ कुन्ती बोली अच्छा क्या इतनी महत्वपूर्ण घटना है ? विदुर बोले, भाभी राजप्रासादों के महत्व का गणित बहुत विचित्र होता है। आपके भी

यहां आने की सूचना अब तक तो सारे हस्तिनापुर में प्रसारित हो गई होगी। गान्धारी भाभी का आपके पास आना यह तो राजप्रासाद की राजनीति का प्रसाद है। कुन्ती का मन जैसे एकदम बुझ गया इस सारे परिवेश में कही कुछ ऐसा था जो कुन्ती के अधिकारों का निषेध कर रहा था। विदुर बोले, भाभी अपनी अगली पीढी को अनीति का संस्कर देनेवाले अदूरदर्शी लोग यह नहीं देख पा रहे कि वे उन्हे विष पान करा रहे हैं। जिनका अवश्यम्भावी परिणाम मृत्यु ही है। युवा पीढी को यदि जीवन चाहिये तो उसे वृद्धों की अनीति का तिरस्कार करना ही चाहिये। युवक को कभी भी नीति का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। जीवन विनय से भी बडा है।

भीष्म को लगने लग गया कि धृतराष्ट्र, कुन्ती और उसके बालकों के साथ न्याय नहीं कर रहा है। धृतराष्ट्र ने कुन्ती और पांडु पुत्रों के लिये भी उन्हे राजभवन से हटाकर एक खंडहर जैसे पुराने भवन में भेज दिया। यह भीष्म ने जाना तो उन्हे अच्छा नहीं लगा। भीष्म का मन सहसा अमर्यादित और उद्विग्न हो उठा। मन में आया कि इसी समय जाकर धृतराष्ट्र को राज सिंहासन से उठा दे और कहे नराधम तू कुरुओं के इस सिंहासन पर बैठने के सर्वथा अयोग्य है। तुझे प्रजा पालन करना नहीं आता। तुझसे याय की रक्षा नहीं हो पायेगी। तू केवल अपने स्वार्थ के लिये जीवित है और ऐसा व्यक्ति नहुष, ययाति, भरत और शान्तनु के तराधिकारी के रूप में कुरुकुल के इस पवित्र सिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं है। धृतराष्ट्र तो अनीति और अत्याचार का उप रण बनते जा रहा था। विधाता ने उसे दृष्टि ही नहीं दी, बुद्धि भी नहीं दी। वह देख नहीं सकता पर विचार तो कर सकता है और फिर उसके मन्त्रणा तो करनी चाहिये इसके लिये उसके पास स्वयं भीष्म है, मन्त्रिगण है, ब्राह्मण है, आचार्य है, ऋषि मुनि है जिनसे वह सलाह कर निर्णय लेता पर धृतराष्ट्र ने ऐसा नहीं किया। कर्म करने से पहिले विचार करना चाहिये था। जो अपने कुटुम्ब अपने भाई के परिवार को पालना नहीं जानता वह प्रजा का पालन क्या करेगा ?

भीष्म अपने चिन्तन में फिर एक बार लीन हो गये। कुरुकुल का परिवेश बडी ही तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। जिस कुल में सदा त्याग का महत्व रहा है वहां ग्रहण का महत्व बढ गया। पहले वय, ज्ञान और चरित्र का महत्व था अब पद का महत्व हो गया। भीष्म ने अपना राज्याधिकार छोड दिया तो कदाचित मूर्खता की है और ये सब आज उच्च पदों पर अधिकार किये बैठे हैं। वे स्वयं को बुद्धिमान समझ रहे हैं। भीष्म ने अपने त्याग से भरतवंश के इस कुल का निर्माण किया और धृतराष्ट्र अपने भोग की प्रवृति से इसका विनाश करके रहेगा।

भीष्म ने बडे ही आवेग से राजसभा में प्रवेश किया। धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठा था। परिचारिकायें चंवर डुला रही थी। मन्त्री तथा सेनापति हाथ जोडे खडे थे। धृतराष्ट्र कुरुसम्राट बने बैठा था। भीष्म उसे अपना निर्णय या आदेश परिवर्तित करने के लिये कैसे कह सकते। उसे कैसे पूछ सकते थे कि उसने बिना मन्त्रणा किये ऐसा निर्णय क्यों लिया ? भीष्म का अधिकार तो एक कुरुकुल के वृद्ध और वरिष्ठ का अधिकार मात्र था। अधिकार तो राजा का ही था। भीष्म तो किसी भी समस्या का ध्यान राजा की ओर आकृष्ट ही कर सकते थे, उसके सम्मुख कोई प्रस्ताव रख सकते थे लेकिन धृतराष्ट्र को कोई आदेश तो नहीं दे सकते थे। भीष्म राजसभा में आकर अपने आसन पर बैठ गये और एकान्त देखकर धृतराष्ट्र से बोले, राजन तुमने कुन्ती और पांडु पुत्रों को राजभवन से निकालकर उस पुराने खंडहर जैसे भवन में भेज दिया। धृतराष्ट्र ने अपनी आंखे झपकाई और बोला, हां मैने उनको राजभवन से पृथक अलग एक आवास दे दिया। भीष्म ने पूछा इसका कारण। धृतराष्ट्र बोले, तातश्री उन्हे राजप्रासाद का स्थान पर्याप्त नहीं लग रहा था और राजमहल में हमें भी स्थान कम पड रहा था। पांडु कक्ष कोष्ठ की दुर्योधन को भी आवश्यकता थी जिसे वे लोग घेरे हुये थे। धृतराष्ट्र फिर निर्लज्ज भाव से बोला फिर राजप्रासाद में उनका क्या काम। राजप्रासाद में तो राजा और उसका परिवार ही रहना चाहिये। इतनी छोटी सी बात के लिये आपको राजसभा में आना पडा तातश्री। भीष्म अब उस धूर्त के पाखंड को अच्छी तरह पहचानने लगे।

भीष्म बोले यह उचित नहीं हुआ धृतराष्ट्र। धृतराष्ट्र मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुये कुछ और प्रखर होकर बोला या तो आप यह निर्णय ही कर दे कि हस्तिनापुर का राजा कौन है या फिर इस प्रकार मेरे राजकाज में हस्तक्षेप ना करे। यह सुनकर भीष्म मौन हो गये। आज यह बातें धृतराष्ट्र नहीं कह रहा है यह सब कहनेवाला हस्तिनापुर का सम्राट है। अब धृतराष्ट्र न केवल अधिकारों का नियन्त्रण ही कर रहा था वरना उन्हे क्रियान्वित भी करने लगा। धृतराष्ट्र फिर से भीष्म को बोला तातश्री राजा को अपने निर्णय स्वतन्त्र रूप से लेने का अधिकार है और उनके औचित्य के विषय में प्रश्न करने का अधिकार तो किसी को है ही नहीं।

भीष्म को लगा धृतराष्ट्र राजा के महत्व के विषय में कम और उनकी महत्वहीनता के विषय में अधिक बता रहा है। उनके महत्व और अधिकार को धृतराष्ट्र स्वीकार नहीं कर रहा था। कोई भी शासक अपनी स्वच्छन्दता या कदाचित अपनी स्वेच्छाचारिता पर किसी का अनुशासन पसन्द नहीं करता। भीष्म को लगने लगा कुन्ती और उसके बालकों के साथ न्याय नहीं हो रहा है। भीष्म क्या कर सकते थे ? धृतराष्ट्र राजा था सिंहासन पर बैठा था। धृतराष्ट्र के मन में कभी भी विचार नहीं आया कि भविष्य में उसे युधिष्ठिर के लिये सिंहासन खाली करना पडेगा। पांडु के पुत्र को राज्य तभी मिलेगा जब धृतराष्ट्र अपनी आयु पूरी कर लेगा। धृतराष्ट्र प्रजा का पालन नहीं कर रहा स्वयं राज्य का अधिपति बन बैठा। इस दृष्टिहीन राजा ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह पांडवों को अपने परिवार का अंग नहीं समझता उसका परिवार तो उसकी पत्नी और उसकी अपनी सन्तान तक ही सीमित है। भाई की सन्तान कुछ भी नहीं। कितना स्वार्थी सम्राट है ? भीष्म उठकर राजसभा से बाहर आगये।

विदुर पान्डु पुत्रों को कुलगुरु कृपाचार्य के गुरुकुल में लेकर आता है वहां पर कृपाचार्य धृतराष्ट्र पुत्रों को राजा, राजनीति धर्म की शिक्षा दे रहे होते हैं। कृपाचार्य बोले, राजनीति और राजधर्म दोनों अलग-अलग है। जो राजा राजधर्म की मशाल को बुझाकर राजनीति के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है उसका भटक जाना निश्चित है। वह अहम् की मृगतृष्णा की ओर जा सकता है और मनुष्य में जो भगवान का अंश है उसे यह अहं डस लेता है इसलिये राजा के लिये राजनीति का ज्ञान उतना आवश्यक नहीं है जितना कि धर्म का। अब प्रश्न यह है कि राजधर्म की परिभाषा क्या है ? पहले तुम यह समझलो कि जहां धर्म है वहां मोह आ ही नहीं सकता। इन दोनों की कभी आपस में बनती ही नहीं क्योंकि ये मोह जो है वह नेत्रहीन होता है और धर्म तो प्रकाश ही प्रकाश है।

दुर्योधन तुम धर्म का अर्थ बतलाओ। दुर्योधन उठा और बोला आचार्यवर धर्म के प्रकाशित मार्ग पर चलने के लिये किसी की सहायता की आवश्यकता है ही नहीं। धर्मानुसार इस ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये? भला और किसी सहारे की आवश्यकता ही क्या है ? आचार्य बोले, दुर्योधन इसे भूलना मत। मोह राजा का शत्रु होता है। मोह राजा को छोटा बनाता है। मोह राजा को यह भूला सकता है कि वो निधिपति नहीं प्रतिनिधि है। मेरा पिता, मेरा पुत्र, मेरा मित्र, मेरा शत्रु, यह मैं यह वो राजा के लिये कारागार बन जाता है जिससे निकलने का और कोई द्वार नहीं है। भगवान की तरह राजा का भी सभी का अधिकार होता है और जो राजा मोह के कारावास में होगा वो राजा सभी का हो ही नहीं सकता।

विदुर पाँचों पांडु पुत्रोंसहित आकर आचार्य को प्रणाम किया। कृपाचार्य ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। विदुर आचार्य से बोले तातश्री ने महाराज पांडु के पांचों पुत्रों को शिक्षा के लिये आपकी सेवा में भेजा है आचार्यवर। दुर्योधन उठ खडा हुआ और बोला हस्तिनापुर में केवल एक महाराज है, महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्र हम हैं। उसी समय भीम युधिष्ठिर से बोला, मेरे मन में आता है कि उसे उठाकर पटक दूं। युधिष्ठिर बोले, नहीं। युधिष्ठिर आगे बढकर आचार्य से बोले मैं, ज्येष्ठ महाराज धृतराष्ट्र का भतीजा युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूं। आचार्य बोले, आयुष्मान भव, विद्वान भव, यशस्वी भव। इस गुरुकुल में तुम्हारे सभी भाइयों का स्वागत है। वत्स आओ मेरे निकट आकर बैठो। दुर्योधन बोला, यहां तो मैं बैठूंगा। आचार्य बोले नहीं। हां तुम तो वहीं बैठोगे और युधिष्ठिर तुम्हारे लिये यही स्थान है। कुरुवंश के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर इसलिये वो यहां बैठेगा। यह स्थान आज तक इसीलिये रिक्त रहा। इतने में ही राजभवन से एक चर आया और सूचना दी कि आचार्यवर प्रणाम। महाराज ने आपको याद किया है। कृपाचार्य

बोले, युधिष्ठिर आश्रम को और तुम्हारे सब गुरु भाईयों को तुम्हारे निरीक्षण में सौंपे जा रहा हूं। विदुर जी चलिये मेरे साथ।

नीति रीति प्रीति विद्यय विनय द्वार सुमति के जाये, प्रीति पात्र होगा वही जिसका हृदय उदार।

शिक्षा देना तो गुरु का कर्तव्य है परन्तु शिक्षा के अनुकूल वातावरण बनाना घर के बडे-बूढों का काम है। इसीलिये शायद यह चलन हुआ कि बच्चे गुरुकुल में ही रहा करें ताकि उनपर घर या परिवार के तनाव का असर न पडे। परन्तु गुरुकुल में प्राचीन समाज में ईश्वर के बाद गुरु को ही शीश नवाता था किन्तु प्राचीन समाज में रहता तो मनुष्य था और मनुष्य में कमजोरियां तो होती ही है। यदि राजा न चाहे तो सारे विद्यार्थियों को गुरु शिक्षा न दे तो उसे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गुरु कुछ दूसरे विद्यार्थियों को क्यों शिक्षा दे ताकि वे पीछे रह जाये। वह कुलगुरु को गुरुकुल में टिकने ही नहीं देता था कभी किसी काम के बहाने से बुला लिया तो कभी किसी बहाने से। हस्तिनापुर के कुलगुरु की भी यही कहानी है। धृतराष्ट्र नहीं चाहते कि पांडु पुत्रों को भी उनसे शिक्षा लेने का अवसर मिले। यदि धृतराष्ट्र यह चाहे तो कृपाचार्य को गुरुकुल से बुलाना बडा आसान था। इससे पहले कि शिक्षा आरम्भ हो कुलगुरु बुलवा लिये गये परन्तु धृतराष्ट्र ने यह नहीं सोचा कि इसका कारण ही द्रोणाचार्य के आने की भूमिका बन सकता है। अब भी ज्येष्ठ पुत्र कुन्ती राधेय अधिरथ के घर में ही पलकर बडा हो रहा है। कुछ समय कुरुकुल में निवास करने के पश्चात युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों सहित हस्तिनापुर को वापिस लौट आये।

भीष्म पितामह कुन्ती से मिलने के लिये उसके नये पृथक आवास पर गये और देखा। इस भवन को किसी प्रकार प्रासाद तो नहीं कहा जा सकता। यह भवन तो भीष्म के शैशव काल में किसी एक वृद्ध मन्त्री का आवास स्थान था और उसकी मृत्यु के पश्चात तब से बन्द ही पडा था। मनुष्यों के रहने योग्य तो यह कदापि नहीं था। कुन्ती ने द्वार पर आकर भीष्म पितामह को प्रणाम किया और उन्हे अन्दर ले गई। भीष्म ने कुशल समाचार पूछा। भीष्म के मन में आया पांडु पुत्रों को राजभवन से हटा दिया। भीष्म प्रसन्न नहीं थे। वे चाहते थे कि उन्हे कोई अच्छा सा स्थान दिया जाये किन्तु उनके पास तो अब कोई नैतिक अधिकार भी तो नहीं है न ही शासन में और न परिवार में। भीष्म कुन्ती से बोले, यह भवन तो तुम लोगों के रहने योग्य तो नहीं है कुन्ती। कुन्ती बोली और क्या उपाय है तातश्री ? आप चिन्ता न करें मुझे और मेरे बच्चों को ऋषिकुल में रहने का पर्याप्त अभ्यास है। हम तो बिना भवन के भी रह सकते हैं। मुझे अपने पुत्रों के लिये सुख सुविधा की इतनी कामना नहीं है जितनी उनकी शिक्षा दीक्षा की। उनको उचित उपयोगी शिक्षा मिले उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास हो। वे धर्म, न्याय, नीति और सत्य के मार्ग पर चले। उनका आपस में सौहार्द्र बना रहे।

भीष्म बोले, क्या तुम्हे इस भवन में कोई कष्ट नहीं है ? कुन्ती बोली, कुछ असुविधायें अवश्य है किन्तु कष्ट कोई नहीं। भीष्म बोले, कुन्ती तुम बालकों की शिक्षा की चिन्ता मत करो, उनकी व्यवस्था मैं करूंगा। उसी समय दौडते हांफते भीम कुन्ती के पास आया और पूछा मां बताओ यह हस्तिनापुर किसका है ? युधिष्ठिर भी कभी-कभी ऐसे प्रश्न पूछ बैठता है किन्तु उसके प्रश्नों में जिज्ञासा होती है। उसके पास प्रश्न होता है इसलिये वह उत्तर चाहता है, समस्या होती है तो समाधान चाहता है। लेकिन भीम के पास न कोई द्वन्द्व है और न जिज्ञासा। उसके पास तो समाधान यही है कि यदि उसके विचारों की पुष्टि नहीं हुई तो वह संघर्ष के लिये प्रस्तुत रहता है और अर्जुन तो कभी प्रश्न पूछता ही नहीं वह तो केवल देखते रहता है और अन्दर ही अन्दर बहुत कुछ समझ जाता है, जो कुछ नहीं समझ पाता उसको समझ पाने की धैर्य से परीक्षा करता है।

कुन्ती भीम से बोली, पहले पितामह को प्रणाम करो। भीम ने भीष्म के चरण स्पर्श किये। भीष्म ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। कुरुकुल की योग्य सन्तान बनो। कुन्ती सोच रही है कि भीम जितना उग्र है उतना भोला भी। कुन्ती भीम से बोली, कल तू यह पूछेगा कि यह आकाश किसका है ? गंगा किसकी है ? भीम जिस त्वरा से उत्तेजित होता है, उसी शीघ्रता से शान्त भी हो जाता है। वह माता के इस कथन पर प्रतिकार कर बोला फिर दुर्योधन यह क्यों कहता है कि हस्तिनापुर उनका है, उसके पिता

उसके स्वामी हैं और हम उसके आश्रित हैं, कृपा पात्र हैं। जिस प्रकार उसने हमें हस्तिनापुर के राजप्रासाद से बाहर निकलवा दिया उसी प्रकार राजा बनते ही हस्तिनापुर से भी निकलवा देगा। कुन्ती को भीम की बात सुनकर दुर्योधन में भावी नीति प्रकट हुई, लगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समय आने पर वह यह करेगा। तभी कही से युधिष्ठिर उधर से आ निकला उसने भीम का प्रश्न सुन लिया था और बोला हस्तिनापुर पितामह का है। भीम बोला, यदि पितामह का है तो ठीक है। ऐसा कुछ नहीं है पितामह का जो कुछ है वह हमारा है लेकिन दुर्योधन का जो है वह हमारा नहीं है। यह सुनकर भीष्म को सन्तोष हुआ कि इन बच्चों के लिये दुर्योधन चाहे पराया हो पर भीष्म तो पराये नहीं है।

भीष्म भीम और युधिष्ठिर से बोले, पुत्र कोई भी नगर नगरवासियों का ही होता है। शासक का धर्म, प्रजा का न्यायपूर्वक पालन करना होता है इसीलिये उसे नगर अथवा राज्य का स्वामी कहा जाता है। यह सब सुनकर भीम को सन्तोष हुआ और वहां से चला गया। भीष्म भी कुन्ती से यह कहकर चले गये चिन्ता की कोई बात नहीं। बालकों की क्षमता पूर्ण विकास की सम्भाल करूंगा। दुर्योधन प्रतिदिन भीम से पराजित होता है। धावक, मल्लयुद्ध आदि की प्रतियोगिता, तैराकी अन्य क्रीडाओं में भी वह भीम के समान नहीं है और भीम से ईष्या करता है।

ऋषि श्रृंग के आश्रम शतश्रृंग से लौटकर कुन्ती अपने बच्चों के साथ हस्तिनापुर आई थी। अकस्मात आ गये अतिथि के समान उन्हे राजप्रासाद में टिकाया गया था किन्तु स्वामी के रूप में नहीं। वे लोग तो ऐसे आगन्तुक थे जिनका तिरस्कार किया नहीं जा सकता था अत: बाध्यता से उन्हे ठहरा लिया गया था। बार-बार कुन्ती के मन में आया कि क्या वह महाराज, सम्राट पांडु की पत्नी नहीं है ? वह युवराज युधिष्ठिर की माता नहीं है क्या ? क्या वह राजमाता नहीं है ? कुन्ती का मन आये दिन किसी न किसी बात को लेकर आहत हो जाता था। उसकी इच्छा होती थी कि इसी क्षण हस्तिनापुर छोडकर कहीं दूर चली जाये। जहां न कौरव वंश हो, जहां न यह राजप्रासाद हो फिर उसके मन में आता वह ऐसे कैसे जा सकती है जिस उद्देश्य से वह ऋष्य श्रृंग का आश्रम छोडकर आई थी वह हस्तिनापुर को त्याग देने से तो सिद्ध नहीं होगा ? वन के ऊपर आघात का उत्तर पलायन तो नहीं होता। कुन्ती अपनी सुरक्षा के लिये प्रतिरोध करेगी और प्रयत्नशील होगी। यह तो रणनीति है और रणनीति में उसे पीछे नहीं हटना है। राजनीति में अधिकारों का प्रश्न उठेगा ही उसे तो उस दिन की परीक्षा करनी होगी जिस दिन उसके पुत्र समर्थ हो जायेंगे। जिस दिन वे बलप्रयोग कर सकेंगे, अपने अधिकार मांगेगे न अधिकार न मिलने पर शक्ति परीक्षण कर बलप्रयोग कर उसे प्राप्त करेंगे। कुन्ती ने राज समाज को बहुत निकट से देखा है। राजनीति हिंसाओं से शून्य नहीं होती। जो राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करेगा उसे विरोधी की हिंसा का भी सामना करना ही पडेगा और कदाचित स्वयं भी हिंसा का आश्रय ग्रहण करे।

भीष्म के मन में राजकुमारों की शिक्षा की समस्या एक नये रूप में खडी हो गयी। पांडवों की देखभाल का अब दायित्व उनही का हो गया। भीष्म सोचते पांडवों की सुविधाओं, लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा। धृतराष्ट्र के मन में भातृ पुत्रों के प्रति तनिक भी स्नेह नहीं तनिक भी चिन्ता नहीं। धृतराष्ट्र सोचता होगा पांडवों के उत्थान में अपने पुत्रों का पराभव देखता होगा। ईर्ष्यालु तो धृतराष्ट्र अपनी बाल्यावस्था से ही रहा है। अपनी अक्षमता को अपना भाग्य कभी स्वीकार नहीं किया था और अब तो वह अधिकाधिक शकुनि के पांसों से हस्तिनापुर की इस गन्दी चाल की राजनीति में बहुत गहरे धंस चुका। बहुत सम्भव है हस्तिनापुर के राज्याधिकार के लिये टकराव हो। ऐसे में भीष्म को पितृहीन पांडवों की चिन्ता करनी होगी। धृतराष्ट्र को अपने सामने भविष्य के लिये हस्तिनापुर के शासन के लिये अपने पुत्र बडे होते हुये दिखाई देने लगे। भीष्म धृतराष्ट्र को अच्छी तरह से समझ गये।

सहसा भीष्म सोचने लगे लगता है कहीं न कहीं कृपाचार्य की शिक्षा में त्रुटि अवश्य है अन्यथा धृतराष्ट्र पुत्रों और पांडु पुत्रों में

कोई विभाजक रेखा होनी नहीं चाहिये। सहपाठियों में तो भाइयों से भी बढकर परस्पर में प्रेम हो जाता है। पाठशालाओं और आश्रमों में तो सारे परस्पर के मतभेद भुला दिये जाते हैं। आपस की शत्रुतायें भूलकर गुरु भाई तो एक दूसरे के मित्र बन जाते हैं। पर इस पाठशाला में तो मतभेद जोरों से पनप रहे है। दुर्योधन यह कहने लग गया कि उसके पिता ही हस्तिानापुर के स्वामी है। वह अपने भाइयों को इस भेद दृष्टि से देखने लग गया। कृपाचार्य दुर्योधन को शील और विनय की शिक्षा क्यों नहीं दे पाये?

सहसा भीष्म गुरुकुल में आये। कृपाचार्य ने भीष्म का स्वागत किया और कहा पधारे कुरुश्रेष्ठ। कोई विशेष प्रयोजन से आना हुआ ? भीष्म बोले, नहीं थोडी सी सामान्य चर्चा। जिन बालकों को तुम्हे सौंपा है वे कच्ची मिट्टी कोरी पाटी है उनपर जो चाहे लिखा जा सकता है जैसे चाहो वैसे घडे जा सकते है। मैं यह देखूंगा कि तुम उस मिट्टी को किस प्रकार का आकार दोगे। कितनी गर्मी से उन्हे पकाओगे वह ताप पर्याप्त है ना। कहीं वे कच्चे तो नहीं रह जाये या इतना अधिक ताप भी न दे कि वे जलकर भस्म ही बन जाये। कृपाचार्य बोले कुरुश्रेष्ठ यद्यपि आप क्षत्रिय हैं पर आप में गुरु होने के समस्त गुण विद्यमान हैं। बालकों की शिक्षा के निरीक्षण के लिये आप ही धर्मत: अधिकारी है। भीम, अर्जुन, दुर्योधन और दु:शासन इन सबकी शरीर क्षमता सन्तोष जनक है। ये लोग अच्छे योद्धा बन सकेंगे। अधिरथ का पुत्र वसुषेण कर्ण सूतपुत्र होते हुये भी क्षत्रियों के सभी गुणों से परिपूर्ण है। वह युद्ध कला में इन सभी में किसी प्रकार कम नहीं होगा क्योंकि उसकी भी शिक्षा इनके समान ही यहां हो रही है महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से लेकिन मैं उसे राजकुमारों के समकक्ष शिक्षा तो नहीं दे सकता। भीष्म बोले, आचार्य मुझे आश्चर्य है कि आप ही अपने शिष्यों में वर्गभेद कर रहे है। गुरु के रूप में तो तुम्हारे लिये भेदभाव नहीं होना चाहिये कि कौनसा शिष्य किस वर्ग या किस परिवार से आया है ? गुरु धर्म तो अपने शिष्य की सम्पूर्ण क्षमताओं का विकास करना होता है।

कृपाचार्य बोले, विवेकी व्यक्ति वो ही होता है जो समयानुसार आज्ञाओं का पालन करे। शुष्क काट को उतना ही जलाये जितने से चूल्हा जल जाये उससे अधिक भडकने का अवसर न दे कि वह दावाग्नि बनकर प्रलय दाह कर दे। कृपाचार्य सोचने लगे कही यह कुरुवृद्ध मेरी परीक्षा तो लेने नहीं आया है। भीष्म बोले, आचार्य आजकल इन बालकों को कौन-कौनसी विद्यायें सिखा रहे हैं ? कृपाचार्य बोले, कुरु ज्येष्ठ गदा युद्ध, मल्ल युद्ध, तलवार बाजी, खड्ग युद्ध, धर्नुयुद्ध, शक्ति, भाला, मूसल इत्यादि का प्रक्षेपण तथा अश्वारोहण, गजारोहण और रथ संचालन। भीष्म बोले- धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र का ज्ञान क्यों नहीं कराया जा रहा है ? महाराज की आज्ञा से युद्ध विज्ञान सिखाने का दायित्व मैंने स्वयं ग्रहण किया है अन्य विषयों के लिये उनका अभ्यास कराने के लिये कुछ और ब्राह्मण अध्यापक हैं। भीष्म बोले, क्या कभी उनकी क्षमता और शक्ति बढाने के लिये क्रीडाओं का आयोजन किया जाता है ?

कृपाचार्य बोले- हां आर्य। प्रतिदिन व्यायाम कराया जाता है, धावक दौड लगाई जाती है। जलतरण कराया जाता है। दल बना-बना कर विभिन्न खेल खिलाये जाते हैं। भीष्म बोले, आचार्य क्षत्रिय के लिये शस्त्र परिचालन का ज्ञान आवश्यक है पर इससे भी अधिक आवश्यक है न्याय और अन्याय का। ज्ञान, धर्म और अधर्म का निर्णय। क्षत्रिय का अस्त्र सदा केवल अन्याय के प्रतिरोध रूप में ही उठना चाहिये। क्षत्रिय यदि न्याय-अन्याय के निर्णय के बिना शस्त्र परिचालन का अभ्यस्त हो गया तो वह सैनिक नहीं, राजा नहीं, दस्यु बन जायेगा इससे वे प्रजा को शान्ति से नहीं रहने देंगे ? तुम गुरुकुल में कुमारों को क्षत्रिय बना रहे हो या दस्यु ?

भीष्म बोले, आचार्य मैं चाहता हूँ कि चाहे वे युद्ध विशारद बन जाये, चाहे क्रीडा में भाग ले, चाहे शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर ले, चाहे प्रतिस्पर्धाओं में व्यस्त रहे किन्तु इन सबके माध्यम से वे परस्पर एक दूसरे के निकट आये, आपस में स्नेह करना सीखे, दूसरे की सुख-सुविधा के लिये त्याग और बलिदान करना सीखे। उनमें स्वार्थशून्यता, और सहिष्णुता जगे। अच्छे योद्धा बनने से पहिले वे अच्छे मानव बने। मैं चाहता हूँ कि अभी ये लोग शस्त्र संचालन से अधिक समय तरह-तरह की क्रीडाओं में लगाये।

अपना मानसिक और शारीरिक विकास करे किन्तु साथ-साथ दूसरों के गुणों का भी आदर करना सीखे। उनमें बडों के प्रति, पूज्यों के प्रति आदर का भाव जाग्रत हो। उन्हे धन, सत्ता, शासन के लोभी, अहंकारी, शस्त्र ही चलानेवाले दुर्वृत मत बनाना। उन्हे प्रजा पालन की सेवा भाव व्रत सिखाना, अपना सुख भोग त्यागकर निर्बलों की रक्षा करनेवाला क्षत्रिय बनाना। कही ऐसा न हो कि इनके कारण कुरुकुल किसी भी रूप में लांछित या कलंकित हो। कृपाचार्य बोले- मैं समझ गया अब आप निश्चिन्त रहें आर्य। भीष्म वहां से चले गये।

भीष्म गुरुकुल से चले आये लेकिन उनके मन में कृपाचार्य के सम्बन्ध में कुछ धारणायें बनी रहीं। कुरुकुल ने ही इस कृप और उसकी बहिन कृपी का पालन-पोषण किया था इसलिये वह राजकुल का ऋणी तो है ही। उसी ऋण के कारण राजकुल के प्रति निष्ठावान है क्या ? अपनी क्षमता भर वह इस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न कर रहा था। क्या वह प्रकृति से गुरु होने योग्य है क्या ? वह तो शस्त्र व्यवसायी ब्राह्मण राजनीति समझता है क्या ? क्षत्रिय का धर्म क्या है जानता है क्या ? मानव में किन गुणों का विकास होना चाहिये ? क्या वह मानवता के दीर्घ इतिहास में अनन्त भविष्य के विषय में कुछ सोचता है क्या ? भीष्म का मन कह रहा है यह ब्राह्मण इस दायित्व के योग्य ही नहीं है न ही इस पद के योग्य। अधिकार भोग की कुमन्त्रणा धृतराष्ट्र से दुर्योधन को मिल रही है। अब कृपाचार्य तो उसमें वृद्धि ही करेगा। उसपर नियन्त्रण नहीं कर पायेगा। कुरुकुल के राजकुमारों के गुरु के रूप में उदात्त धरातल पर जीनेवाला सात्विक प्रकृति का कुशल गुरु चाहिये।

कृपाचार्य मन में विचार करने लगे किसलिये आये थे भीष्म। क्या वे सचमुच चाहते है कि कुरुकुल के राजकुमारों को योद्धा न बनाकर ऋषि के रूप में उनका विकास किया जाये।

हस्तिनापुर की राजसभा लगी हुई थी। कृपाचार्य विदुर के साथ राजसभा में आये। भीष्म बोले, धृतराष्ट्र सारथी अधिरथ की समस्या तो कोई समस्या ऐसी नहीं है कि उसके लिये कृपाचार्य को कष्ट दिया जाये। धृतराष्ट्र बोले, वो गुरु है इसलिये मैंने समझा कि उन्हें भी यहां बुला लिया जाये। भीष्म बोले- परन्तु पांडु पुत्रों को आज ही वहां शिक्षा के लिये भेजा गया है। वहां पर आज तो कृपाचार्य का होना आवश्यक था। धृतराष्ट्र बोले, भाइयों की देखभाल के लिये दुर्योधन तो वहां था ही तातश्री। इतने में विदुर कृपाचार्य के साथ आये। धृतराष्ट्र बोला- आओ विदुर आओ। आओ आचार्यवर आसन ग्रहण करो। धृतराष्ट्र बोले- कुलगुरु पांडु पुत्रों की शिक्षा में कोई कमी न रह जाये। कृपाचार्य बोले- आप निश्चिन्त रहें राजन। शिष्य तो उस खेत की भूमि का टुकडा होता है। अगर वह उपजाऊ है तो उसमें अंकुर अवश्य ही फूटेगा और यदि नहीं है तो इसमें बीज का क्या दोष परन्तु पान्डु पुत्रों के हृदय बहुत उपजाऊ है राजन। धृतराष्ट्र बोले- दुर्योधन आचार्य ?

कृपाचार्य ने कहा- कुमार दुर्योधन में योग्यता की कोई कमी नहीं है राजन परन्तु अश्व की भांति मन को भी लगाम लगानी पडती है। नहीं तो वो मन चाही दिशाओं की ओर भागने लगेगा। परन्तु आप चिन्ता न करें राजन। कुमार दुर्योधन का हृदय विशाल है। देने पर आजाये तो कुछ भी दे सकता है परन्तु है बहुत हठी और न देने पर आये तो सूई की नोक भर वस्तु भी नहीं दे। धृतराष्ट्र बोले- वो मन लगाकर तो सीख रहा है ना आचार्य ? कृपाचार्य बोले- हां मै मन लगाकर सीखा रहा हूँ महाराज। धृतराष्ट्र बोले- तो फिर मैं उसकी ओर से निश्चिन्त हो जाऊं। कृपाचार्य बोले- नि:सन्देह राजन।

धृतराष्ट्र बोले, तातश्री अब हम उस समस्या पर विचार करें जो अधिरथ के कारण उत्पन्न हुई है। धृतराष्ट्र ने प्रतिहार से कहा अधिरथ को बुलाओ। विदुर बोला- यह अधिरथ कौनसी समस्या खडी कर सकता है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, अभी बताता हूं। नेत्रहीन राजाओं की समस्या भी बडी विचित्र होती है विदुर। मै अनुज पांडु का राजमुकुट पहनकर हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठा तो अवश्य हूं और बैठा भी इसलिये हूं कि राज सिंहासन कभी रिक्त नहीं रह सकता, परन्तु उसका ज्ञान मुझसे अधिक किसे होगा कि नेत्रहीनता का अर्थ क्या होता है ? राज्य का भार तो तातश्री के कन्धों पर और विदुर तुम तो मेरे सहायक हो ही

और कदाचित इसीलिये हस्तिनापुर की सीमायें अभी तक सुरक्षित थी। पर मेरा अधिरथ अब हमसे विदा लेना चाहता है क्योंकि वह कहता है अब भी वो अगर मुझसे बन्धा रहा तो राधेय के पालन पोषण में बाधा पड सकती है। विदुर ने पूछा- ये राधेय कौन है ? महाराज। द्वारपाल ने सूचना दी सारथी अधिरथ आ रहे है।

धृतराष्ट्र ने कहा आओ अधिरथ। अधिरथ ने आते ही कहा प्रणाम महाराज। धृतराष्ट्र बोले- विदुर ये पूछ रहे कि ये राधेय कौन है ? तब अधिरथ ने बताना शुरू किया कि राधेय मेरे पुत्र का नाम है। विदुर बोले- तुम्हारा पुत्र ?

अधिरथ बोले- वास्तव में वो मेरा पुत्र नहीं है परन्तु मैंने उसे पुत्र से भी अधिक मानकर पाला है। भीष्म बोले- तो किसका पुत्र है वो ? अधिरथ ने कहा- राजन इसका मुझे ज्ञान नहीं है। पितामहाश्री आप जानते हैं महाराज इस सारथी का घर भागीरथी के तट पर है। एक दिन की बात है मेरी पत्नी राधा रात को गई सो सवेरे तक नहीं आई। मैं उसे खोजने के लिये उसकी सखी सुलभा के घर जाने की सोच ही रहा था कि इतने में वह आ गई। मैंने पूछा रातभर कहां रही ? बोल ? सुबह होने पर क्या तुझे मेरी सुध आई। राधा बोली- मेरी सखी सुलभा के घर पुत्र हुआ है और जोर-जोर से रोने लगी।

अधिरथ बोला- जो जिसके भाग्य में होता है तो वह उसे मिलता ही है। राधा बोली- तो मेरा ही भाग्य इतना खोटा क्यों है ? अधिरथ बोला- ऐसा नहीं कहते, जी छोटा मत करो। हो सकता है भगवान ने हमें किसी विशिष्ठ बालक के लिये बचा रखा हो। क्या तुम नहीं जानती भगवान के घर देर है पर अन्धेर नहीं। इतने में ही उन्होंने एक बच्चे के रोने की आवाज सुनी और वे भागीरथी के तट पर आये और देखा एक काष्ठ मंजूषा तैर कर तट के किनारे लग गई और उसमें से किसी बच्चे के रोने की आवाज आ रही है। अधिरथ ने वह सन्दूक खोला और उस बच्चे को गोद में उठा लिया और राधा को दिया। राधा ने उसे अपना पुत्र मानकर उसका पालन-पोषण शुरू किया। मैं आप लोगों से कुछ छुपा नहीं सकता इसलिये यह सब सच बता दिया। यह बात न उस बालक को मालूम है और न किसी और को ही। वो मेरा पुत्र नहीं है इसलिये अब मेरा कर्तव्य और भी बढ जाता है। इसीलिये महाराज मैं जाने की आज्ञा चाहता हूं।

धृतराष्ट्र बोले- वो तो ठीक है परन्तु एक स्वामी भक्त और निष्ठ सेवक सारथी के बिना एक नेत्रहीन राजा का जीवन कैसे सम्भव हो सकता है। तब अधिरथ बोला मैं एक स्वामी भक्त और स्वामी निष्ठ सारथी लेकर आया हूँ। आप उसे तनिक भी मुझसे कम नहीं पायेंगे। वो ज्ञान में भी मुझसे बहुत बडा है। भीष्म बोले- वो कौन है, जो तुम्हारी तरह निष्ठावान है अधिरथ ? अधिरथ बोले- उसका नाम संजय है महाश्री। भीष्म बोले- तो बुलाओ उसे। जो आज्ञा तातश्री अधिरथ बोले। भीष्म बोले- यदि अधिरथ को उसकी निष्ठा पर इतना विश्वास है तो मेरे विचार से उसको अपना सारथी बनाने में कोई ऐतराज और हानि नहीं है। धृतराष्ट्र बोले- कहो कृपाचार्य आप क्या कहते हैं ? कृपाचार्य बोले- मैं भीष्म से सहमत हूँ राजन। धृतराष्ट्र बोले, विदुर से भी पूछ लीजिये क्योंकि ये असहमत होते रहते हैं। विदुर बोले- मैं वही कहता हूँ जिसे मेरी बुद्धि ठीक कहती है।

अधिरथ संजय को लेकर उस राजसभा में आया। संजय बोला- हस्तिनापुर नरेश संजय का प्रणाम स्वीकार करें। भीष्म बोले- सारथी का पहला कर्तव्य क्या है संजय ? संजय ने उत्तर दिया उसका पहला कर्तव्य है कि वह अपने स्वामी के लिये जीने मरने की शपथ ले। विदुर ने पूछा और उसका दूसरा कर्तव्य ? संजय बोले- उसका दूसरा कर्तव्य यह है कि वह अपने स्वामी के क्रोध से भयभीत हुये बिना स्वामी से केवल वही कहे जो स्वामी के हित में है उससे चाहे स्वामी प्रसन्न हो या ना हो। कृपाचार्य ने पूछा और क्या संजय ? संजय बोले- माता के आंचल के भांति स्वामी पर धूल और धूप को रोकता रहे और सदा स्वामी के हित में सतर्क रहे। कृपाचार्य बोले और तब संजय बोले- स्वामी के प्राण को अपने प्राणों से भी अधिक महत्व दे। भीष्म बोले- मेरे विचार से संजय आपके सारथी होने योग्य है। धृतराष्ट्र बोले- कुलगुरु का क्या आदेश है। कृपाचार्य बोले मैं गंगा पुत्र भीष्म से सहमत हूँ राजन। धृतराष्ट्र बोले- संजय ठीक है तुम आज से हमारे सारथी हो गये। संजय ने कहा जो आज्ञा और प्रणाम कर

बाहर चला गया। अधिरथ बोले- महाराज आज मेरे दायित्व की पूर्ति हुई अब मुझे भी आज्ञा दीजिये। धृतराष्ट्र बोले- जाओ परन्तु तुम सदा मेरे ध्यान में रहोगे। अधिरथ बोले- आशीर्वाद दीजिये महाश्री ताकि मैं अपने दूसरे दायित्वों की पूर्ति करूं। भीष्म बोले- भगवान ने चाहा तो तुम्हारे आंगन की धूप सारे संसार को प्रकाशित करती रहेगी। अधिरथ भी आशीर्वाद लेकर राजसभा से निकलकर प्रणाम कर चला गया।

कर्ण धनुर्विद्या का प्रयोग करना अपने घर में सीख रहा था, अभ्यास कर रहा था। इतने में एक ब्राह्मण ऋषि भिक्षा के लिये आये। कर्ण ने उनके चरण स्पर्श किये और प्रणाम किया। ऋषि ने आशीर्वाद दिया दानवीर भव, आयुष्मान भव। क्या एक मुट्ठी भर अनाज मिलेगा ? कर्ण बोला- अवश्य महाराज। कर्ण घर के भीतर जाकर पात्र भर कर अनाज ले आया और उस ऋषि की झोली भर दी। ऋषि बोले- इस ब्राह्मण ने तो केवल एक मुट्ठी भर अनाज मांगा था। तब कर्ण बोले- मेरी मुट्ठी तो छोटी है महाराज। ऋषि बोले- मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। बालक वर मांगो। कर्ण बोला- मांगना मुझे अच्छा नहीं लगता है महाराज। ऋषि बोले- दानवीर बालक भगवान तेरी हर मनोकामना पूरी करे और इतिहास में तेरी गिनती श्रेष्ठ वीरों में हो। आयुष्मान भव।

अधिरथ अपने पुत्र कर्ण के साथ सूर्य उपासना कर रहा है। अधिरथ कर्ण से बोला- अब कल से मैं तुम्हे रथ संचालन की शिक्षा देना आरम्भ करूंगा। कर्ण बोला- मैं सारथी नहीं बनना चाहता बाबा। अधिरथ बोला- तो तुम मेरे बेटे क्या बनना चाहते हो ? कर्ण बोला मैं शस्त्र विद्या सीखना चाहता हूं बाबा। अधिरथ बोले- यह तो क्षत्रिय का काम है पुत्र। कर्ण बोले- लेकिन मैंने तो पहिले सुना था जातियां जन्म से नहीं कर्म से बना करती थी। अधिरथ बोले- हां पुत्र परन्तु पहले हम सब को अपने-अपने जन्म का बोझ उठाना ही पडता है पुत्र। कर्ण बोला- देखा जायेगा बाबा।

जीवन मरण के मध्य है जीवन कर्म प्रधान, उज्ज्वल जिसका कर्म हो जीवन वही महान।

कृपाचार्य धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुये। धृतराष्ट्र ने ससम्मान उन्हे अपने पास बुलाया। कृपाचार्य ने देखा वहां शकुनि और कर्णिक के अतिरिक्त और कोई नहीं था। धृतराष्ट्र बोले- कैसे कष्ट किया आपने ? कृपाचार्य ने भीष्म का आना और उनका कहना सब वृतान्त कह सुनाया। धैर्यपूर्वक सब कुछ सुनकर धृतराष्ट्र ने पूछा, आपका क्या मत है आचार्य ? कृपाचार्य बोले- मैं क्या कहूं महाराज मैं तो शस्त्रों का आचार्य हूं। मेरा मत है कि क्षत्रिय और शस्त्र पर्याय है। क्षत्रिय युद्ध का अभ्यास नहीं करेगा तो वह और क्या करेगा ?

शकुनि बोले- भीष्माचार्य ने कुछ भी अनुचित नहीं कहा आचार्य। राजकुमारों को शस्त्र प्रयोग कहां करना है यह जानना अत्यन्त आवश्यक है। उन्हे न्याय की रक्षा करनी है। न्याय अपने अधिकारों की रक्षा में है। कुमारों को प्रत्येक स्थिति में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये तत्पर रहना चाहिये। उन्हे दुर्धष योद्धा होना चाहिये। मन्त्री कर्णिक ने आचार्य से कहा आप राजकुमारों का विकास इस प्रकार से करें कि न वे हत्या से डरे न विनाश से। युद्ध उनपर आरोपित न हो तो वे युद्ध को आमंत्रित करते रहे। जो कोई भी युद्ध और संघर्ष से डरेगा कि युद्ध से विनाश होगा वह तो अपने अधिकारों को छोडकर भाग जाता है। आप तो राजकुमारों को ऐसा योद्धा बनाये कि लोग उनको देखकर अपने अधिकार ही छोडकर भाग जाये। क्षत्रिय के जीवन का सत्व केवल भोग है। धृतराष्ट्र बोले- आचार्य आप पितृव्य भीष्म के चिन्तन से जरा भी विचलित न हो। मैं अपने पुत्रों को वीर क्षत्रिय बनते देखना चाहता हूं न कि नपुंसक। जिसने समस्त भोगों को त्याग कर दिया हो वह व्यक्ति तो क्षत्रियों के लिये अनुकरणीय ही नहीं है।

भीष्म चाहते थे कि राजकुमारों में क्रीडा के माध्यम से परस्पर सौहार्द्र बढे तो कृपाचार्य को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी। कृपाचार्य ने गुरुकुल में क्रीडा समारोह का आयोजन किया। महाराज धृतराष्ट्र के साथ-साथ राजपरिवार के प्रत्येक सदस्य को क्रीडावलोकन के लिये आमंत्रित किया। यह कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। यह तो राजकुमारों का अभ्यास मात्र था। शिक्षा व्यक्ति की अपनी क्षमताओं के विकास के लिये है न कि अपनी जय और दूसरे की पराजय प्रमाणित कर अपने अहंकार के पोषण के

लिये। धृतराष्ट्र को इस प्रकार के आयोजन में कोई दिलचस्पी नहीं थी क्योंकि जिस व्यक्ति को कुछ दिखाई न दे वह ऐसे समारोहों में बैठकर क्यों अपना समय नष्ट करे ? वैसे भी राजा के पास इतना समय कहां होता है कि वह अपने समय का इस तरह से व्यय करे। किन्तु भीष्म आये थे।

क्रीडायें प्रारम्भ हुई। समारोह के समापन के रूप में अन्तिम क्रीडा अतिवेग से धावन क्रीडा रखी गई। इस क्रीडा में गुरुकुल का सबसे अधिक क्षमतावान धावक चुना जाता था। इस क्रीडा में न तो अवस्था भेद था और न ही कोई वर्ग भेद। सबको एकसाथ दौडना था।

भीष्म इस दौड को देख कर इस क्रीडा को जीवन से जोडकर विचार करने लगे। जब व्यक्ति जन्म लेता है तो इस क्रीडा के शुरु के समान ही एक भरे पूरे संसार में होता है। सब लोग एक ही दिशा में दौड रहे होते है, एक ही लक्ष्य की ओर। चारों ओर से सहयोग, अवसर और मार्ग मिलते चले जाते है और व्यक्ति आगे बढता है और फिर पता नहीं सहसा क्या हो जाता है कि जैसे-जैसे वह आगे बढता है वैसे वैसे अनेक लोग अपनी अपनी इच्छा से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार अपनी बाध्यताओं के बन्धन में बन्धे उसका साथ छोडते जाते है। दौडनेवाला पहले की तुलना में और अकेला महसूस करने लगता है और अपनी चरम उपलब्धि के क्षणों में वह सर्वथा एकाकी हो जाता है। उपलब्धि प्राप्त होने के बाद हर व्यक्ति चाहता है कि उसके चारों ओर उसके सुहृद और आत्मीयजन हो, उसकी उपलब्धि का समारोह मना सके, उसके सुख को बांट सके, लेकिन तब वो पाता है कि जब उसका सुख बांटनेवाले लोग थे तब उसके पास कोई उपलब्धि नहीं थी और अब उपलब्धि है तो उसे बांटनेवाला कोई नहीं है। कोई अपनी इच्छा से न किसी का साथ छोडता है। यह तो काल ही है जो निरन्तर सृष्टि में फिरते रहता है और जबरन बिछोह करा देता है। भीष्म के माता-पिता, भाई तथा अन्य कुटुम्बी जन उन्हे छोड गये या भीष्म ने उनको स्वयं छोड दिया। यह तो काल की गति या परिस्थितियों ने मजबूर कर दिया।

धावकक्रीडा में भीम पीछे रह गया और सबसे आगे था दुर्योधन। तभी भीम ने सहसा अपनी क्षमता से अपना वेग बढाया। भीम सारे धावकों को पीछे छोड दुर्योधन के समकक्ष पहुंच गया और वह उससे आगे निकलने का प्रयास करने लगा। दुर्योधन ने भी अपना संपूर्ण बल लगा दिया। वह भीम को किसी भी अवस्था में आगे बढने देना नहीं चाहता था लेकिन देखते-देखते भीम आगे निकल गया और उन दोनों का अन्तराल बढता ही गया। तभी दुर्योधन भीम से जा टकराया। दुर्योधन के धक्के से भीम तनिक लडखडाया। भीष्म देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस वेग से भागते हुये व्यक्ति का सन्तुलन यदि थोडा सा भी बिगड जाये तो वह उसके लिये घातक हो सकता है। भागते-भागते दुर्योधन ने भीम की टांग में अपनी टांग अडाकर उसे गिराने को अपनी भुजा से उसकी टांग पकड ली और भीम मुंह के बल भूमिपर गिरा। कृपाचार्य तथा अन्य सभी वहां पर पहुंचे। भीम उठकर खडा हो गया। भीष्म यह देख कर दांत पीसते ही रह गये। कृपाचार्य ने भीम को सर्वक्षमतावान धावक घोषित कर दिया।

भीष्म चिंतित थे दुर्योधन को लेकर कि इसमें दुष्टता की प्रवृति बढती जा रही है। इससे इन भाईयों में वैमनस्य बढेगा और परस्पर का विकास भी अवरोध होगा। भीष्म दुर्योधन को समझाना चाहते थे कि उसने जो किया वह उचित नहीं था। भविष्य में उसे ऐसा कुछ नहीं करना चाहिये और अपने भाइयों से तो सदा उसे प्रेम ही करना चाहिये।

दुर्योधन उठकर मुंह लटकाकर भीम के पास खडे हुये आचार्य के पास आया और झूठी शिकायत करने लगा। आचार्य भीम ने भागते हुये मुझे टांग लगा दी अन्यथा तो प्रथम मैं ही हूं। भीम को इसका दंड मिलना चाहिये। भीष्म दुर्योधन से बोले- दुर्योधन तुम मेरे साथ रथ में चलो। दुर्योधन रथ में बैठ गया तब भीष्म उसे समझाने के हेतु अत्यन्त शान्त स्वर में बोले- वत्स तुम कहाँ जा रहे हो ? दुर्योधन भीष्म का तात्पर्य नहीं समझे और बोला मुझे क्या पता। तब भीष्म ने दुर्योधन को समझाया परम

श्रेष्ठ धावक बनने के लिये तुम्हे अपनी क्षमता का विकास करना चाहिये। भीम के मार्ग में बाधा उपस्थित करने से भीम धावक बने या न बने पर तुम कभी धावक नहीं बन पाओगे। जीवन में सदा दो ही दृष्टिकोण रहे हैं एक निर्माण का और दूसरा विध्वंस का। आत्म निर्माण करनेवालों नें सदा सात्विक सुखी जीवन व्यतीत किया है। विनाश तथा विध्वंस करनेवालों ने किंचित थोडा तामसिक सुख पाया हो किन्तु वे न कभी अपना विकास कर सकते। ऐसा कोई गन्तव्य नहीं है जहां तुम नहीं पहुंच सकते इसलिये दूसरे का विध्वंस न करते हुये अपना विकास करो। दुर्योधन को भीष्म पितामह की बात में कोई रूचि नहीं थी उसने तो सन्तोष पूर्ति के लिये सिर हिला दिया हां लेकिन मन में तो प्रतिशोध की ज्वाला भभक रही थी। प्रमाण कोटि में उदक क्रीडा, जलतरण, जल केली और भीम को वहां ले जाकर कैसे बदला लूं। भीष्म बोले- दुर्योधन प्रकृति ने इतने ग्रह बनाये है वे सब अपनी-अपनी कक्षा में ही भ्रमण करते है और अपना गन्तव्य खोजते है। कोई दूसरे की कक्षा में जाकर उसे रोकने का प्रयास नहीं करता। यदि कभी कोई ग्रह अपनी कक्षा के मार्ग को छोड दे तो जानते हो सर्वनाश हो जाता है। भीष्म दुर्योधन को समझाने का अन्तिम प्रयास कर रहे थे और वे अब हस्तिनापुर अपने राजभवन में लौट आये और अपने कक्ष में विश्राम कर रहे थे।

अर्जुन और भीम दोनों झगडते हुये दौडते हुये भीष्म के कक्ष में भीष्म के पास आये। अर्जुन भीष्म की गोद में चढ गया। भीम ने पितामह भीष्म से कहा ये अर्जुन मेरी खीर खा गया है और अब आपके पास आ गया है मैं इसे मारूंगा। अर्जुन बोला- यह मेरे मालपुए खा गया पितामह। यह सदा खाते ही रहता है। माताश्री इसे हम लोगों से दुगना खाना देती है फिर भी अपना खाकर भी हमारा खाना भी खा जाता है। सारे दिन रसोई घर में ही घुसा रहता है। भीम बोले- रसोई घर में तो मैं खाना बनाना सीखने के लिये देखता रहता हूं। आज मैं तो इससे मेरी खीर लेकर ही रहूंगा। भीष्म बोले- पगले खीर तो इसने खा ली अब यह खीर तुम्हें कहां से देगा ? कल हम तेरे लिये बहुत सारी खीर बनवा देंगे। अच्छा अब तुम लोग जाओ और सो जाओ। अर्जुन बोले- नहीं पितामह इसके साथ नहीं जाऊंगा। यह जाकर मां से कह देगा तो ? भीष्म बोले- अच्छा तो समस्या गम्भीर है। अर्जुन बोला- हां पितामह क्या आज मैं आपके पास सो जाऊं। पितामह बोले- अवश्य और भीम से बोले अब तुम जाओ और माताश्री से कह देना अर्जुन मेरे पास है, जब वह सो जायेगा तो मैं स्वयं उसे माता के कक्ष में पहुंचा दूंगा।

भीष्म ने अर्जुन से पूछा तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा आरम्भ हुई ? अर्जुन बोले अभी कहां पितामह ? कुलगुरु को तो ज्येष्ठ पिताश्री ने ऐसा बुलवाया कि वो अभी तक आये ही नही, तो मैंने सोचा स्वयं ही अपनी शिक्षा आरम्भ कर लूं। गुरुकुल में हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखे हुये थे पर मुझे तो धनुष बाण ही आकर्षित कर रहे थे इसलिये मैंने धनुष बाणों की ओर ही अपना हाथ बढाया। तो ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर ने मेरा हाथ पकड लिया और कहा कि आचार्य की आज्ञा के बिना अस्त्र-शस्त्र को हाथ लगाना उचित नहीं। वह यह भी कहते हैं कि शिक्षा आरम्भ होने से पहिले शस्त्र पूजा होगी। शस्त्र क्या भगवान है जो उनकी पूजा होगी ? भीष्म बोले- शस्त्र भगवान तो नहीं है अर्जुन पूजा शस्त्र की नहीं होती है। पूजा तो भगवान की ही है। कोई भी कार्य आरम्भ करने से पहिले भगवान का नाम तो लेना ही चाहिये। क्योंकि सिखाने वाला चाहे कोई भी हो अर्जुन विद्या देनेवाला तो स्वयं भगवान ही है समझे।

विदुर कुन्ती के भवन में आता है। सामने ही युधिष्ठिर बैठा हुआ मिलता है। विदुर ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोला- आप ऐसा क्यों करते है काकाश्री। विदुर बोले- यह मैं इसलिये ऐसा करता हूं वत्स किसी भी व्यक्ति को अपना स्थान नहीं भूलना चाहिये। ग्रहों की भांति हर व्यक्ति का एक स्थान व सुनिश्चित मार्ग होता है। यदि वो अपना स्थान छोड दे या मार्ग बदल दे तो प्रलय हो जायेगा वत्स। तुम हस्तिनापुर के युवराज हो और फिर नरेश होंगे। महामन्त्री होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं तुम्हारा आदर करूं। कृपाचार्य तुम्हे प्रणाम करना नहीं सिखा सकते। यह कार्य तो इस दासी पुत्र का ही है वत्स। युधिष्ठिर बोला- यही सही युवराज ने आपका प्रणाम स्वीकार किया। तो क्या काकाश्री अपने युधिष्ठिर को आज्ञा देंगे कि चरण छूकर आशीर्वाद मांग ले क्योंकि जितनी राजनीति आपकी चरण धूलि में है उतनी राजनीति इस युग में बडे-बडे विद्वानों और ऋषियों

के पास भी नहीं है। विदुर बोले- आयुष्मान भव। इसी राजनीति के ज्ञान ने तो मुझे बडे धर्म संकट में डाल रखा है। युधिष्ठिर बोले- संकट काकाश्री कैसा संकट। विदुर बोले- हां पर तुम इन प्रश्नों के लिये अभी बहुत छोटे हो। यह जीवन किसी न किसी समय स्वयं तुमसे यह प्रश्न करेगा ?

इसीलिये मैं तुम्हे यह पूछने आया हूं कि तुम्हे इस समय गुरुकुल में होना चाहिये था। तुम इस राजभवन में क्या कर रहे हो ? युधिष्ठिर बोले- उस दिन गुरुदेव को ज्येष्ठ पिताश्री ने आपके सामने ही बुलवा लिया था और वहां से वे अपनी बहिन कृपी के घर चले गये तो मैंने भी यही उचित जाना कि उनके लौट आने तक हम यहीं रहें। आप जानते ही हैं काकाश्री कि दुर्योधन और भीम के बीच बनती नहीं और मैं भीम को समझाता भी हूं कि दुर्योधन तुम्हारा भाई है तुम्हे उसकी चपलता पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये। लेकिन काकाश्री आप तो भीम को जानते ही हैं।

विदुर आवेश में आकर अत्यन्त क्रोधित होकर बोले- यह क्यों नहीं कहते कि तुम गुरुकुल से भाग कर यहां चले आये हो ? यदि तुम गुरुकुल की चुनौती स्वीकार नहीं कर सकते तो तुम जीवन की क्या चुनौतियां स्वीकार करोगे ? राजा का धर्म तो बहुत कठोर होता है वत्स। वह व्यक्ति को परिवार, परिवार को ग्राम और ग्राम को समस्त राष्ट्र के लिये बलि वेदी पर चढाने के लिये संकोच नहीं करता और तुम भाइयों की खटपट के कारण गुरुकुल से भाग कर यहां चले आये हो। यदि तुम गुरुकुल में नहीं टिक सकते तो तुम रणभूमि में क्या करोगे ? ज्येष्ठ कुरुपुत्र होने के नाते तुम्हारे कन्धों पर कर्तव्यों का बोझ भी भारी है वत्स। भागने से आत्मा के चन्द्रमा में ग्रहण लग जाता है इसलिये तुम अपने कर्तव्यों की चुनौती को स्वीकार करो और अपने भाइयों को लेकर गुरुकुल चले जाओ। युधिष्ठिर बोले आपकी आज्ञा का पालन होगा काकाश्री। विदुर बोले धर्मराज भव। यशस्वी भव। यह भावी धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाईयों सहित गुरुकुल को वापिस लौट गये।

३२) दुर्योधन का भीम को भोजन में विष पान कराना

शकुनि राजभवन में दुर्योधन के साथ चौपड खेल रहा है और उसे पांसें फेंक कर द्यूतक्रीडा सिखा रहा है। शकुनि कहता है भांजे अच्छा खिलाडी वो ही है कि जिसका कहना पांसे माने। यदि हमे पांच की आवश्यकता है तो हमें १२ लेकर क्या करना है ? देखो तुम्हारी इस गोटी को मारने के लिये छः कि आवश्यकता है। शकुनि पांसे खेलता है। यह देखो छह आ गया और यह तुम्हारी गोटी पिट गई।

<u>खिलाडी को सदा जीतने के लिये ही खेलना चाहिये</u> और उसे इस बात का ज्ञान भी होना चाहिये कि उसे जीतने के लिये क्या चाहिये ? दुर्योधन बोला- मामाश्री परन्तु शकुनि बोला बात काटने का प्रयत्न मत करो भान्जे, अच्छी तरह सुनो। आज से कई वर्ष पहिले भीष्म ने विदुर के द्वारा तुम्हारे पिता पर एक नीति बाण चलाया और उन्हे राज्य से वंचित कर दिया। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे पिताश्री ही हस्तिनापुर के नरेश होते। आज वही भीष्म उसी विदुर द्वारा युधिष्ठिर के लिये एक नया बाण चलायेगा और वह दासी पुत्र विदुर तो अवश्य यह सिद्ध करेगा कि युधिष्ठिर ही कुरु ज्येष्ठ पुत्र है उसे ही युवराज और उसके पश्चात राज सिंहासन मिलना चाहिये। परंतु ज्येष्ठ कुरु पुत्र होने से क्या होता है ? वो तो ज्येष्ठ पांडु पुत्र है और तुम ज्येष्ठ राज पुत्र हो वत्स दुर्योधन। इसलिये राजगद्दी पर तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है यह कभी मत भूलना वत्स। तुम अब वो किये जाओ जो तुम्हारा यह मामा कहता है तो यदि काल भी चाहे तो भी हस्तिनापुर की राजगद्दी तुमसे छीन नहीं सकता। दुर्योधन बोला तो मैं क्या करूं मामाश्री।

शकुनि बोला- पांडु पांच अंगुलियां है। <u>पांच अंगुलियों से मुट्ठी बंधती है और मुट्ठी में बडी शक्ति होती है</u> वत्स। दुर्योधन बोला हम सौ भाई है मामाश्री। शकुनि ने कहा- परन्तु सौ अंगुलियों से मुट्ठी नही बन्धती दुर्योधन।

दुर्योधन बोला मैं तो उन लोगों को देखना भी नहीं चाहता। शकुनि ने कहा देखना तो मैं भी नहीं चाहता पर देखना तो पडेगा ही। तुम्हे भी और मुझे भी उन पांचों अंगुलियों को एक-एक करके काटना पडेगा। परन्तु छुरी से नही, मीठी छुरी से। उन पर अपनी मैत्री

का जाल बिछाकर। दुर्योधन बोला- मुझसे यह नहीं होगा। शकुनि बोला- अवश्य होगा भान्जे। यह समझ लो कि बुद्धि बल में तुम युधिष्ठिर का सामना नहीं कर सकते। शारीरिक बल में भीम कोई तुमसे कम नहीं है। नीति-रीति में अर्जुन और शील शान्ति में नकुल सहदेव तुमसे सबल पडते हैं। उनके पास केवल एक बल नहीं है वो है छल बल। तुम अब उसी बल का प्रयोग करो। फिर देखो हस्तिनापुर तुम्हारा है। दुर्योधन बोला- भीम तो खाने का बडा शौकीन है, वो तो पेटू है। तब शकुनि बोला तब तो वह विष भी खा लेगा। दुर्योधन तुम अपना युद्ध यहीं से आरम्भ करो। परन्तु याद रहे कि फाल्गुन को मेह गुरु और बैरी को नेह गुरु।

हस्तिनापुर में पान्डु पुत्रों के आ जाने से शकुनि चिंतित व अस्वस्थ हो गया। दुर्योधन के युवराज होने में पांडु पुत्र ही बडी अडचन हैं ऐसा शकुनि को लगा। पांचों पांडु पुत्रों की एकता पर शकुनि ने प्रहार करने की युक्ति ढूंढ निकाली। एक-एक करके इन पांचो पांडवों को कांटे की भांति निकाल देने से पांडवों की दुर्योधन के रास्ते की अडचन अपने आप दूर हो जायेगी। ऐसा विचार कर शकुनि ने भीम को अतिप्रिय भोजन खीर में विष मिला देने की युक्ति दुर्योधन को समझायी और उसको प्रयोग में लाने को कहा। दुर्योधन का मस्तिष्क गुरुकुल से थोडी दूर प्रमाण कोटि नामक स्थान में उदक क्रीडन की योजना क्रियान्वित करने में लग गया।

दुर्योधन एक बार जल विहार के लिये गंगा तट पर प्रमाणकोटि नामक स्थान पर सरोवर में जलक्रीडा हेतु पांडवों के साथ वहां पर गये और पृथक-पृथक शिबिर बनाये। उनमें सब तरह की सुख-सुविधायें जुटाई गई। साथ में वहां पर चतुर रसोइये ले लिये और रसोइयों को आज्ञा देकर बहुत सारी खाने-पीने की सामग्री बनवा ली। दुर्योधन के कहनेपर युधिष्ठिर ने प्रमाण कोटि जाने की यात्रा की स्वीकृति दी। सब मिल जुलकर रथों पर सवार होकर चले और वहां पहुंच कर वन की शोभा देखने लगे। वहां जाकर सभी राजकुमार एक दूसरे को खिलाने-पिलाने में जुट गये। प्रमाण कोटि में आकर गंगा अत्यन्त मनोहर लग रही थी। यहां पर गंगा अपने नैसर्गिक रूप से बह रही थी। ऐसा सुन्दर और आकर्षक स्थान मनोरंजन के लिये खोज निकालने के लिये सभी ने दुर्योधन की प्रशंसा की। गंगा तट पर एक बहुत सुन्दर अत्यन्त मनोरम स्थल है वहां पर एक उद्यान है जो आधा जल में है और आधा स्थल पर। वहां क्रीडाओं और स्पर्धाओं का बडा अच्छा स्थल है। पहले यह गंगा का एक साधारण सा तट मात्र था। कहीं भूमि दूर तक जल में चली गई और कहीं जल कुछ दूर तक भूमि में प्रविष्ट हो गया था। जल और थल का यह विचित्र संगम था। वह स्थान एक रम्यस्थली बन गई।

भीम ने गंगा तट पर जलसन्तरण किया और श्रान्त हो गया। उद्यान में अकेला बैठा गंगा में कंकड फेंक रहा था कि इतने में ही दुर्योधन भीम के पास आकर बैठ गया और बडे ही प्रेमभाव से बोला- मित्र भीम तुम अकेले बैठे यहां क्या कर रहे हो ? चलो अन्य बालकों के साथ क्यों नहीं खेल रहे। वहां पर सभी खेल रहे है और अपने झोले में से सेव निकालकर भीम को खिलाई। भीम के परिहास की प्रतिक्रिया दुर्योधन में सदा द्वेष के रूप में हुई। भीम मुस्कुराया। क्योंकि यह सब भीम की अपेक्षा के विपरीत हो रहा था। अब दुर्योधन का व्यवहार कुछ-कुछ मैत्रीपूर्ण होता जा रहा था। तभी तो यह उदक क्रीडा समारोह का आयोजन हो पाया। दुर्योधन बोला- मैं तो आज थक गया। भीम बोला मैं तो मान नहीं सकता कि तुम भी थक जाते हो और शायद थक भी गये तो भी तुम्हारी ऐंठ तो जाती नहीं। दुर्योधन बोला- मुझमें न तो तुम जैसा बल है न तुम जैसी ऊर्जा। चलो कुछ खालें आज तो बडी भूख लग गई। दुर्योधन के शब्दों से भीम की भी भूख जागने लग गई। भूख अब भीम की सम्पूर्ण चेतना पर व्याप्त हो हावी हो गई। रात को अर्जुन मेरी खीर खा गया और पितामह भीष्म बोले- आज वो मेरे लिये बहुत सारी खीर बनवा देंगे। मैंने भी अभी तक भोजन नहीं किया। दुर्योधन बोला- चलो मेरे शिबिर में मैंने आज तुम्हारे लिये खीर बनवा कर रखी है। अकेले चले चलो नहीं कोई सुन लेगा तो उसे भी तुम्हारी खीर खिलानी पडेगी और फिर तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं बचेगा। दुर्योधन ने विष मिश्रित मोदक के लड्डू खिला दिये और एक-एक पात्र भरकर विष मिश्रित खीर भीम को आग्रह कर कर पिला दी।

सहसा विष शरीर में अपना प्रभाव करने लगा। भीम अपने आपको थका जानकर तन्द्रा और मूर्छा के वशीभूत हो दुर्योधन से

बोला- मित्र मुझे तो बडी जोर से नींद आ रही है। मैं तो अब सोऊंगा और भीम वहीं चटाई पर लेट गया। दुर्योधन ने भीम भीम कहकर आवाज लगाई पर भीम अपनी संज्ञा में नही लौटा। चेतना विलुप्त हो गई। दुर्योधन ने उसे स्पर्श कर जगाने का प्रयत्न किया। दुर्योधन को पूर्णत: निश्चय हो गया कि भीम अब मूर्च्छित हो गया है तो अपने छोटे भाई दुशासन की सहायता से उसे चटाई समेत बांधकर गंगा तट पर ले जाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया।

जब दुर्योधन भीम को खीर खिलाने के लिये अपने शिबिर में ले जा रहा था उस समय युधिष्ठिर ने उसे देख लिया था तब युधिष्ठिर ने भीम से पूछा था कि भीम दुर्योधन के साथ कहां जा रहे हो। युधिष्ठिर को लगा आज ये सूरज पश्चिम में कहां से निकला? जो भीम और दुर्योधन एक साथ मित्रता कर साथ चल रहे हैं।

भीम पानी में डूब गया। युधिष्ठिर को यह सब दुर्योधन का षडयन्त्र मालूम नहीं था। युधिष्ठिर चिंतित हो रहे थे कि भीम अभी तक आया नहीं। वो अर्जुन से बोले- वत्स भीम को अभी तक तो आ जाना चाहिये था। मैं चिंतित इसलिये हूं कि भीम को मैंने दुर्योधन के साथ जाते देखा था। अर्जुन बोले बडे भैया आप भी तो यही चाहते थे कि भाइयों में आपस का प्रेम बढे।

दुर्योधन भीम को गंगा में फेंककर अपनी सफलता पर प्रसन्न हो रहा था और दुशासन से बोला आज पांडवों की एक अंगूली कट गई दुशासन। सब लोग भीम को ढूंढ रहे हैं। नकुल बोला मझले भैया भीम कहीं उद्यान में विश्राम कर रहे होंगे। सहदेव का अधिक समय पर्यवेक्षण में व्यतीत होता था। आधा समय तो वह आकाश के ग्रह नक्षत्रों को देखता रहता है। वायु को सूंघता रहता और दिशाओं को घूरता रहता है। उसे भीम का पता कैसे हो सकता। वह बोलता भी बहुत कम ही। कोई बात पूछो तो जवाब भी वह नपे तुले शब्दों में ही देता था। अधिकतर पूछे गये प्रश्नों का ही उत्तर देता था। स्वयं तो कुछ बतलाता या बोलता ही नहीं था। वह अपने आप में ही आत्मलीन रहता था। शान्त रहता था। वह उस कंकड के समान था जो उफान से जल में लहर उत्पन्न नहीं कर पाता था।

पांचो पांडव अपने आप में स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है। वे पांचों मिलकर ही एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करते है। वे एक ही व्यक्ति के विभिन्न आयाम हैं। अर्जुन अपने लक्ष्य भेद में निपुण था। युधिष्ठिर भीम के लिये चिंतित होते जा रहे थे कि भीम दुर्योधन के साथ गया है अकारण ही कहीं दुर्योधन से तो नहीं भिड गया क्योंकि भीम में सहिष्णुता बहुत कम है। किसी भी बात की प्रतिक्रिया उसमें दूसरे की अपेक्षा उग्रतर होती है। अपनी शारीरिक शक्ति के कारण उधम भी बहुत मचा लेता है। उसके लिये युद्ध तो कुछ है ही नहीं जैसे क्रीडा है। दुर्योधन, दुशासन, शकुनि और कर्ण की आंखों में वह खटकता भी बहुत है। युधिष्ठिर का आशंकित मन बार-बार चिंतित हो रहा था कि सहसा उसे उद्यान में विकर्ण दिखाई दिया और उससे पूछे कि विकर्ण तुम्हे भीम कही दिखाई दिया। तो विकर्ण बोले- थोडी देर पहले वह दुर्योधन के साथ जा रहा था और कह रहा था कि तैरते-तैरते बहुत थक गया और उसे जोरों से भूख लगी है।

दुर्योधन को लगा उसके जीवन की एक अभिलाषा पूरी हो गई। यह भीम ही उसके मार्ग का रोडा था आज पूरा हो गया। युधिष्ठिर न तो किसी भी प्रकार से न तो बडा योद्धा है और न ही कोई सफल राजनीतिज्ञ। उसकी हत्या कर मार देना उसमें क्या परिश्रम है ? अर्जुन तो नासमझ है और वह मुझसे छोटा है। मेरे होते हुये वह युवराज नहीं हो सकता। अब मुझे युवराज होने में कोई नहीं रोक सकता। दुर्योधन उल्लसित मन से क्रीडास्थल से लौट रहे थे। उसने युधिष्ठिर को देखा कि वह पूरी प्रमाणकोटि में भीम की खोज में घूम रहा है। सन्ध्या होने को आई। भीम नहीं आया यह कोई असाधारण बात तो नहीं हुई। युधिष्ठिर ने फिर से गंगा तट खडे लोगों से पूछा किसी ने भीम को देखा ? पर भीम कहीं नहीं मिला। इतने में ही रास्ते में दुर्योधन मिल गया और दुर्योधन ने पूछा ज्येष्ठ भ्राताश्री बडे चिंतित लग रहे हो ? युधिष्ठिर बोले चिन्ता की तो बात ही है। तुमने कहीं भीम को देखा है? दुर्योधन बोला वह मोटा तो कहीं एक स्थान पर टिक कर बैठने वालों में से नहीं है। दुर्योधन इस समय मदिरा के प्रभाव में था। दुर्योधन ने कहा कहीं ऐसा न

हो कि वह हमसे पहिले ही हस्तिनापुर लौट गया हो। युधिष्ठिर जानता था कि दुर्योधन से सुसंस्कृत व्यवहार की अपेक्षा तो नहीं की जा सकती। वह जैसे-जैसे बडा होता जा रहा था वैसे-वैसे दिन-प्रतिदिन अभद्र भी होते जा रहा था। वह अपने अन्य भाइयों को भी उसी मार्ग पर चला रहा था। जो मन में आता कह बैठता, मदान्ध हो रहा था। एकदम दुर्वृत। कदाचित भीम ही एक व्यक्ति था जो उसकी परवाह नहीं करता था। ईंट का जवाब पत्थर से देता था। पर इस समय भीम नहीं था।

भीम को न पाकर युधिष्ठिर के मन में विचार आया कि शायद भीम हमसे पहिले हस्तिनापुर लौट गया हो या कहीं तैरता तैरता दूर गंगा में निकल गया हो या कहीं सघन वन में मृगया के लिये चला गया हो। सांझ होते ही सबके शिबिर उखडने लगे और दुर्योधन के आदेश से हस्तिनापुर लौटने की तैयारी होने लगी।

युधिष्ठिर के मन में आशंकाओं पर आशंकाये उठ रही थी। सम्भावनायें तो अनेक हो सकती है। भीम वन की भूमि को सदा अपना घर ही समझता है वन में अनेक हिंस्र पशु है। कहीं कोई दुर्घटना हो गई हो।

सभी रथोंमें सवार होकर हस्तिनापुर की ओर चले पर युधिष्ठिर का मन चिंतित और व्याकुल था। दुर्योधन अपना रथ युधिष्ठिर के रथ के समकक्ष ले आया और बोला चलो आज देखें रथ संचालन में हम दोनों में कौन अधिक प्रवीण है। रथ की दौड लगाये। तुम्हारी और मेरी प्रतियोगिता हो जाये। युधिष्ठिर ने अपने सारथी चिरन्तन से कहा तुम्हे रथ भगाने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम अपनी गति से चलते रहो। दुर्योधन पुन: चिल्लाकर बोला क्यों नहीं है साहस तुममें ? दुर्योधन के वचन सुनकर युधिष्ठिर उसकी उपेक्षा कर दूसरी तरफ देखने लगा। दुर्योधन ने अट्टहास किया और रथ भगाकर आगे निकल गया। सारथी चिरन्तन युधिष्ठिर से बोला मुझे एक बार आदेश देकर तो देखे मैं इन सबकी सारी हेकटी भूला दुंगा। युधिष्ठर बोला मैं तुम्हारी योग्यता से परिचित हूं चिरन्तन। मदिरा से उन्मुक्त उस मूर्ख दुर्योधन की बातों से क्या उत्तेजित होना ?

दुर्योधन हस्तिनापुर में राजभवन में पहुंचे और मामा शकुनि के पास गये और पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। शकुनि बोले- तुमने मामा के हृदय को प्रसन्नचित्त कर दिया प्रिय। यदि तुम ऐसे ही अपने मामा का कहा मानते रहे तो फिर देखना कि तुम्हारा यह मामा तुम्हारे लिये क्या-क्या नहीं करता। मैं गान्धार छोडकर बिना कारण ही हस्तिनापुर में नहीं पडा हुआ। मेरे एक लक्ष्य ने मुझे हस्तिनापुर से बांध रखा है।

गान्धारी अपने कक्ष में धृतराष्ट्र से बोली- भीम अभी तक गुरुकुल से लौटकर नहीं आया है। धृतराष्ट्र बोला- दुर्योधन कहां है। गान्धारी बोली- दासी कह रही थी कि कुमार अपने मामाश्री के पास हैं। धृतराष्ट्र बोले- तुम सदा दुर्योधन पर ही सन्देह क्यों करती हो गान्धारी ? गान्धारी बोली पृथ्वी से उत्पन्न पौधे के गुण-अवगुण भला और कौन जान सकता है ? मैं कभी-कभी दुर्योधन के स्वभाव से डर जाती हूँ। जब भी वो कभी मेरे पास आता है तो लगता है उसके पीछे-पीछे कोई संकट की आन्धी चली आ रही है। उसके व्यक्तित्व को सुधारिये आर्य पुत्र नहीं तो कल इतिहास हमें ही उतरदायी ठहरायेगा। धृतराष्ट्र बोले- जब इतिहास अपने प्रश्न लेकर हस्तिनापुर आयेगा गान्धारी तब हम दोनों ही उस समय इतिहास की पहुंच से बहुत दूर जा चुके होंगे। मेरे पास इतिहास के विषय में सोचने के लिये समय नहीं है। गान्धारी बोली- क्या आपके पास यह सोचने का भी समय नहीं है कि भीम गुरुकुल से अभी तक लौट कर नहीं आया है।

पांडव अपने कक्ष में अपनी माता कुन्ती के पास आये। सबको देखा पर उनके बीच भीम नहीं दिखा। माता कुन्ती ने प्रश्न किया भीम कहा हैं। युधिष्ठिर ने पूछा क्या मां भीम यहां नहीं आया ? कुन्ती ने पूछा कहां छोड आये उसे। कुन्ती शंकाओं से समझ रही थी लगता है कि कुछ न कुछ अघटनीय घट गया लगता है। युधिष्ठिर ने माता को सारी स्थिति समझाई। सुनकर कुन्ती अवाक बैठी रह गई। जड हो गई। कहीं कोई स्पंदन शेष नहीं रहा। मन ही मन कहने लगी मुझ अभागिन के साथ कुछ न कुछ तो ऐसा होता ही रहता है। मेरा ऐसा भाग्य कहां कि मैं किसी भी अवस्था में कुछ दिन सुख शान्ति से व्यतीत कर सकूं।

युधिष्ठर बोले- निराश मत हो माता। भीम कोई छोटा बच्चा तो है नहीं कि मार्ग भूल जायेगा। कहीं चला गया होगा। लौटकर घर आजायेगा। कुन्ती कुछ देर तक चिंतित सी अपने पुत्रों को देखती रही। कुन्ती बोली- युधिष्ठिर मेरे मन में तो पता नहीं दुष्कल्पनायें ही जाग रही हैं। कहीं उसे दुर्योधन ने कुछ कर करा तो नहीं दिया न पुत्र ? युधिष्ठिर बोले- शंका तो मुझे भी है। लेकिन मुझे नहीं लगता कि दुर्योधन दुष्टता की इस सीमा तक जा सकता है।

अर्जुन बोला- यदि मझले भैया को कुछ हो गया तो मैं उसके शत्रुओं को इन बाणों से वेध डालूंगा। युधिष्ठिर बोले- जब तक किसी दुर्घटना का हमें निश्चित प्रमाण नहीं मिल जाये, हमें आशा नहीं त्यागनी चाहिये। सहसा कुन्ती को लगा अब उसके पुत्र बडे होते जा रहे हैं। वे मां के संरक्षण में नहीं है अब मां उनके संरक्षण में है। मां का दु:ख उन्हें पीडित करता है अपने दु:ख से भी अधिक। कुन्ती ने अपनी आंखे पौंछ ली। कुन्ती बोली- हमें भीम को खोजना चाहिये। युधिष्ठिर बोला- अवश्य माते। पर खोजने की कोई दिशा तो होनी चाहिये। प्रमाण कोटि में जितना ढूंढ पाना सम्भव था उतना तो मैं ढूंढ आया हूं। राजज्ञा से हस्तिनापुर के सैनिक भी अन्वेष्ण दस्ता बनाकर निकले। वे भी सघन वन में भीम को ढूंढ रहे थे। वे परस्पर बातें कर रहे थे कि अरे भाई कुछ पता चला ? यह तो बडे ही आश्चर्य की बात है हस्तिनापुर के वन ने हस्तिनापुर के राजकुमार को खो दिया। अभी यह गूंगे पेड पौधे क्या बोलेंगे? पांडु कुमार कहां चले गये ? एक सैनिक बोला- तुम चाहे मानो या ना मानो भीम के खो जाने में कुमार दुर्योधन का हाथ है। दूसरा सैनिक बोला- अरे भाई तनिक धीरे बोलो ऐसी बातें ऊंचे स्वर में नहीं कही जाती, अरे भाई चलो ढूंढो।

कुन्ती अपने कक्ष में अत्यन्त चिंतित होकर बैठी थी। उसी समय दुर्योधन कुन्ती के कक्ष में आया और चरण स्पर्श किया। कुन्ती ने आयुष्यमान भव का आशीर्वाद दिया और बोली दुर्योधन युधिष्ठिर कह रहा था कि भीम को तुम्हारे साथ जाते देखा वत्स। दुर्योधन बोला- भीम मेरे साथ गये अवश्य थे माताश्री। मामाश्री ने कल मुझे बहुत डांटा था कि तुम्हे लाज नहीं आती कि देखो जब दिनभर भाइयों से झगडते रहते हो तो सबसे पहले हमने भाई भीम के साथ ही प्रेम किया। थोडी देर वह हमारे साथ खेलते रहा फिर वो झटपट वहां से चला गया यह कहकर कि उन्हे ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के पास जाना है। उन्हे खेल में अपना दांव भी देना था पर मैं चुप रह गया कि कहीं फिर से झगडा शुरू न हो जाये। कुन्ती बोली- पर वो तो युधिष्ठिर के पास गया ही नहीं। दुर्योधन बोला- यही चिन्ता तो मुझे हो रही है माताश्री कि वो गया कहां ?

कुन्ती भवन में विदुर आये। प्रणाम किया और कुन्ती ने पूछा भीम का कुछ पता चला। विदुर बोले- पता नहीं ढूंढने तो सब लोग निकले हुये हैं। परन्तु अभी तक कहीं से कोई शुभ समाचार नहीं आया। कुन्ती बोली मुझे बडी चिन्ता हो रही है भीम की। विदुर बोले- चिन्ता की तो बात है परन्तु भीम तो पवन का झौंका है उसे कौन बांध सकता है। वैसे ही कहीं निकल गया होगा और वैसे ही वह लौट भी आयेगा। कुन्ती बोली- तुम अनाथ बालकों की मां की पीडा क्या जानो विदुर। विदुर बोले- तात भीष्मश्री और महाराज धृतराष्ट्र के होते हुये महाराज पांडु के पुत्र कभी अनाथ नहीं हो सकते। महारानी आप विश्वास रखें कि भीम जहां भी होगा सुरक्षित होगा। कुन्ती बोली- तुम्हे क्या लगता है विदुर क्या हुआ होगा भीम को ? विदुर बोले- अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वैसे अभी यही मानकर चलना चाहिये कि भीम स्वेच्छा से कहीं इधर-उधर चला गया होगा और जिस कार्य से भी गया होगा उसे पूर्ण कर लौट आयेगा। कुन्ती बोली- मैं बहुत दिनों से देख रही हूं कि हम लोगों का हस्तिनापुर आना ज्येष्ठश्री महाराज को अच्छा नहीं लगा विदुर। दुर्योधन और दुशासन निरन्तर हमारा अपमान करते रहते है। ये लोग हस्तिनापुर में हमें कोई अधिकार नहीं देना चाहते। भीम के सिवाय हममें से किसी ने भी उनका प्रतिरोध नहीं किया कभी। भीम ही दुर्योधन की अनुचित बात पर अड बैठता था। मेरे मन में बार-बार एक ही शंका उठ रही है कि दुर्योधन ने ही कहीं कुछ करवा न दिया हो। विदुर बोला- यह कुछ हो सकता है सम्भव है। मेरे मन में कुछ-कुछ आशंका तो उसी दिन से थी जिस दिन दुर्योधन ने प्रमाण कोटि में उदक क्रीडन के लिये तैयारी की। तुम लोगों के प्रति दुर्योधन का व्यवहार कभी भी सौहार्द्रपूर्ण नहीं रहा। जब और जैसे भी सम्भव हुआ है उसने सदा तुम लोगों

का अपमान और अवहेलना करने का ही प्रयत्न किया है। फिर भला उसने तुम लोगों के साथ मैत्री करने का स्वांग क्यों रचा ? जब कभी शत्रुभाव रखनेवाला व्यक्ति बहुत आत्मीयता बताये तो उसे शंका की दृष्टि से ही देखना चाहिये।

कुन्ती ने कहा- विदुर यदि तुम्हे किसी प्रकार की आशंका थी तो हमें तनिक सा सावधान कर देते। विदुर बोले- मेरे पास कोई प्रमाण नहीं था इसलिये मैंने उचित नहीं समझा। कुन्ती आदेशमय स्वर में बोली- हस्तिनापुर में यह कैसा राक्षसी राज है। जब देश में राक्षसी शासन होता है तो विधि विधान से सहायता की अधिक आशा नहीं करनी चाहिये। विधिविधान तो राजा की नीति है। किन्तु जब स्वयं राजा ही अनीति पर उतर जाये तो नीति का अपना क्या बल। विदुर बोले- यह समय आक्रामक होने का नहीं। अपनी सुरक्षा की अधिक चिन्ता करनी चाहिये। कुन्ती ने पूछा क्या इस घटना के बारे में तातश्री भीष्म को सूचित करना चाहिये ? विदुर बोले- उन्हे सूचना मिलते ही वे भी अधीर हो उठेंगे पर वे दुर्योधन और धृतराष्ट्र को न ताडित कर पायेंगे और न ही कोई दंड दे पायेंगे। वे विवश है न ही उन्हे राज्य से निष्कासित कर पायेंगे कुन्ती बोली इतना कुछ घट गया और तातश्री भीष्म को सूचना न दी गयी तो क्या उचित होगा विदुर ? भविष्य में जब उन्हे मालूम तो पड ही जायेगा, तो उन्हे दु:ख होगा कि हमने उनके साथ पराये जैसे का व्यवहार किया। उन्हे लगेगा कि हम अपने आपको उनसे अधिक समझदार और समर्थ समझते हैं और उनकी सहायता के बिना ही अपने पुत्रों की रक्षा कर लूंगी।

विदुर ने उनीदी आँखों और अनमने भाव से देखकर कुन्ती से कहा आकाश बहुत समर्थ होता है भाभी वह धरती को भी आच्छादित किये रहता है किन्तु न तो वह सूर्य की गर्मी से धरती की रक्षा कर सकता है और न वर्षा से ही। तब विदुर ने सभी को विस्तृत से समझाया और कहा- अकेले कही मत जाना, नि:शस्त्र बाहर मत निकलना, दुर्योधन तथा उसके मित्रों की तथा सेवकों की दी हुई कोई वस्तु मत लेना। दुर्योधन द्वारा आयोजित उत्सवों में बहुत सावधान होकर सम्मलित होना तथा दुर्योधन के आवास प्रबन्ध इत्यादि को सन्देह शंका की दृष्टि से देखना कि कोई षडयन्त्र तो नहीं है इसकी पृष्टि कर लेना। सदा सजग रहना तथा उसके सेवकों इत्यादि पर विश्वास मत करना। कुन्ती बोली- विदुर मैं तो आज तक उपेक्षा, अपमान और अवहेलना इत्यादि के प्रतिवाद के बारे में ही विचार करती थी। मैं नहीं जानती थी कि यहांपर हत्याओं के षडयन्त्र के दौर भी आरम्भ हो चुके हैं। दुर्योधन बडा ही क्रूर, क्षुद्र, लोभी और निर्लज्ज है। कहीं क्रोधवश उसने मेरे पुत्र को मार न डाला हो। विदुर बोले- तुम्हारे सभी पुत्र दीर्घायु है। भीमसेन कहीं भी हो अवश्य लौट आयेगा।

युधिष्ठिर बोला- हमें अब भीम को खोजना चाहिये। निष्क्रिय होकर घर में पडे रहना क्या यह उचित है ? शंकित हूं कि कहीं गंगा में या वन में कोई हिंसक पशु... कहीं हमसे सदा के लिये विदा ले चुका हो या सदा के लिये हमसे विलग हो गया हो। कुन्ती सुनकर सिसकियां भरने लगी। युधिष्ठिर ने माता को धैर्य, ढाढस बन्धाते हुये कहा सत्य से मुंह मोड कर तो जीवित नहीं रहा जा सकता। कुन्ती ने सोचा यदि भीम विलग हो ही गया तो धैर्यपूर्वक इस सत्य को स्वीकार कर लेना चाहिये। सभी ने निश्चय किया कि फिर से अविलम्ब भीम को खोजना चाहिये। सारथी को बुलाने का आदेश दिया। चिरन्तन सारथी अपना रथ लेकर आया और कुन्ती से बोले- मझले भैया भीम को खोजने का अभियान शीघ्र ही शुरू करें। कुन्ती बोली- इन्हें सावधानी से ले जाना तथा बीहड व जोखिम पूर्ण स्थानों में मत जाना। चिरन्तन ने कुन्ती को सूचना दी दुर्योधन का रसोइया चक्रवाक मेरी बस्ती में ही रहता है वो भी अभी तक प्रमाण कोटि से लौटा नहीं। इसलिये पूरी बस्ती में रातभर इसी बात को लेकर हडबंग चल रहा था। उसका भी कुछ पता नहीं चला। उसकी पत्नी भी सबसे पूछती रही। काफी रात बीत जाने पर दुर्योधन से पूछने गई। दुर्योधन से तो वह मिल नहीं पाई लेकिन उसके भाइयों ने उसे डांट डपट कर उसे वापिस लौटा दिया। कुन्ती ने एकाएक सोचकर सहज भाव से कह दिया अब भीम को खोजने कोई नहीं जायेगा। चिरन्तन तुम भी अपने घर जाओ। राजकुमार आज कहीं भी नहीं जायेंगे।

चिरन्तन वापिस लौट गया। हस्तिनापुर के मुख्य पथ पर एक शव पडा हुआ था। उससे थोडी दूर पर ही भीड एकत्रित थी।

युयुत्सु वहां से अपने रथ से निकल रहा था। अपना रथ रोककर भीड से पूछा कि लोग यहां क्यों एकत्रित हैं ? लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। युयुत्सु शव के पास आया और रथ से नीचे उतर शव को पहचान लिया कि यह शव तो युधिष्ठिर के साथी चिरन्तन का है। लोग आपस में बातचीत कर रहे थे और कह रहे थे कि ये अत्याचार कब तक चलेगा राजकुमार। भीड बडे ही आक्रोश में थी। युयुत्सु ने भीड से पूछा क्या मुझे लोग कुछ कहना चाहते हैं ?

युयुत्सु थोडी देर में पांडवों के पास आया। आकर कुन्ती को प्रणाम किया। कुन्ती ने कहा- कहो पुत्र कैसे आना हुआ ? युयुत्सु बोला- काकी आप में से आज कोई बाहर तो नहीं गया ? भीम का कोई समाचार मिला काकी ? युधिष्ठिर बोले- नहीं पर तुम्हे कुछ मालूम पडा। युयुस्तु बोला- भीम का तो कुछ समाचार नहीं मालूम पडा लेकिन प्रमाण कोटि से भोजन पकानेवाला दुर्योधन का रसोइया चक्रवाल घर नहीं लौटा तथा तुम्हारे सारथी चिरन्तन की हत्या कर दी गई। सुनकर कुन्ती को आश्चर्य हुआ कि चिरन्तन मार डाला गया। कुन्ती ने पूछा तुम यह कैसे जानते हो ? युयुत्सु बोला- जब मैं वहां से रथ में जा रहा था तो मैंने स्वयं उसके शव को रास्ते पर पडा देखा और वहां पर उसकी बस्ती में भीड इकट्ठी हो रही थी और बातें कर रही थी कि दुर्योधन ने उसे अपने हाथों, थप्पडों, घूसों से पीट-पीट कर मार डाला। लगता है चक्रवाल रसोइये ने ही दुर्योधन के आदेश पर भोजन में विष मिलाया होगा और वे पदार्थ दुर्योधन ने ही भीम को खिलाया होगा। विष देनेवाला रसोइया अपहरण कर विलुप्त कर दिया हो और इस भेद को जाननेवाला चिरन्तन मार दिया गया ताकि किसी को इस भेद का पता न चले। कुन्ती ने पुछा तुम तो दुर्योधन के भाई हो फिर ये सूचनायें हमें क्यों दे रहे हो ? युयुत्सु बोला- भाई तो मैं दुर्योधन का हूं। किन्तु मैं गान्धारी पुत्र नहीं हूं। मेरी मां क्षत्राणी नहीं है एक वेश्या है। वह महाराज धृतराष्ट्र की महारानियों में से नहीं है। मैं दुर्योधन के दुष्कृत्यों से सहमत नहीं हूं। मैं किसी भी प्रकार के लोभ में, उसके पापों में सहभागी नहीं हूं। मैं सत्य और न्याय के पथ पर चलने का समर्थन करता हूं तथा अपने अधिकार मांगने के लिये प्रेरित करता हूं और यह कहकर युयुत्सु चलने के लिये उठ खडा हुआ।

गंगा पुत्र भीष्म सबसे ज्येष्ठ परिवार के मुखिया उन्हे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि परिवार के सभी लडके उदक क्रीडा के लिये एक साथ प्रमाण कोटि गये है। कभी-कभी सुनकर उन्हे अच्छा नहीं लगता था कि धृतराष्ट्र पुत्रों में और पांडु पुत्रों में वैमनस्य बढ रहा है और वे अलग-अलग दलों में विभाजित हो रहे है। भीम और दुर्योधन में कोई मतभेद हो कहा सुनी हो जाये, खेल-खेल में मारपीट हो जाये, बच्चे उद्यम करते ही है ये सब तो बालकों में बचपन के खेलों में होता ही रहता है इससे वे विचलित नहीं होते थे। झगडा भले ही बच्चों का खेल में हो पर उनमें विभाजन धृतराष्ट्र और पांडु पुत्रों के आधार पर हो इसे वह आनेवाले भविष्य के लिये ठीक नहीं मानते थे। इस प्रकार के विभाजन में उन्हे कुरुक्षेत्र के सम्पूर्ण विनाश की ध्वनि सुनाई पडती थी। जब उन्हे मालूम पडा कि दुर्योधन ने प्रमाण कोटि में उदक क्रीडा का आयोजन किया है और उसमें परिवार के सारे लडके बिना किसी भेदभाव के गये है तो उन्हे बहुत अच्छा लगा। उस समय वे धृतराष्ट्र और पांडु के ही पुत्र नहीं थे वे भीष्म के पौत्र थे, भरतवंशी कौरव थे। कुरुराज घराने के बालक। भीष्म नहीं चाहते थे कि उनमें किसी भी प्रकार का विभाजन या विरोध तो होना ही नहीं चाहिये था। भीष्म को अच्छा लगा यद्यपि दुर्योधन के लिये उनके मन में सन्देह बना ही रहता था कि उनके सामने जिन आदर्शों में वह अपने को प्रकट करता था।

लडके प्रमाण कोटि का आयोजन कर लौट आये विकर्ण ने भीष्म को बता दिया हमारा रसोइया चक्रवाल प्रमाण कोटि से लौटकर नहीं आया वह कहीं खो गया है। क्या हमारा अपने सेवकों के प्रति कोई दायित्व और कर्तव्य नहीं है ? भीष्म बोले- स्वामी का अपने सेवकों, दासों सबके प्रति पूरा दायित्व होता है। तुमने ठीक कहा पुत्र जो मुझे बता दिया। मैं देखूंगा और उसे खोजने के लिये सम्भव प्रयास करवाऊंगा। यदि वह अपनी इच्छा से चला गया और किसी संकट में पड गया तो उसकी सहायता करनी चाहिये और अपनी इच्छा से बिना बताये चले गया तो उसे दंडित करना चाहिये। दुर्योधन और दुशासन इन दोनों धृतराष्ट्र पुत्रों का व्यवहार अत्यन्त अभद्र और चिन्ताजनक होते जा रहा था।

चिन्ता में डूबे हुये भीष्म कुन्ती के आवास पर आये। युधिष्ठिर ने द्वार खोला और प्रणाम किया। प्रसन्न रहो वत्स का आशीर्वाद दिया। स्वस्थ तो हो वत्स, आज कुछ प्रसन्न दिखाई नहीं दे रहे हो। युधिष्ठिर बोला- स्वस्थ तो हूं पितामह पर भीम प्रमाण कोटि से अभी तक घर पर नहीं लौटा। भीष्म सुनकर अवाक से खडे रह गये। भीष्म बोले- लौटते हुये तुम लोगों ने नहीं देखा कि भीम तुम्हारे साथ है या नहीं ? युधिष्ठिर ने कहा वह ढूंढने पर भी हमें प्रमाण कोटि में नहीं मिला। हम समझे सम्भवत: वह हमसे पहिले ही निकलकर आगे-आगे हस्तिनापुर में आकर घर पर आ गया हो। इतने में ही कुन्ती, अर्जुन, नकुल, सहदेव को लेकर पितामह को प्रणाम किया। भीष्म बोले प्रसन्न रहो पुत्री। युधिष्ठिर कह रहा है कि भीम अभी तक प्रमाण कोटि से नहीं आया है। कुन्ती बोली- हां तातश्री हम उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उपद्रवी बालक है जाने कहां रह गया ?

सब कुछ सुनकर भीष्म बैठे और बोले- आजकल ये लडके अब स्वयं को बहुत स्वतन्त्र समझने लगे। वे यह नहीं समझते कि उनके इस प्रकार के कार्यों से माता-पिता को कितनी चिन्ता होती है। बालकों का उपद्रव बालकों जैसा ही रहे तो ठीक है, वयस्कों जैसा नहीं। युधिष्ठिर तुम तो सबमें ज्येष्ठ हो। तुम्हे तो चाहिये था कि भीम जब तक मिल नहीं जाता तब तक तुम वहां से किसी को भी आने नहीं देते। युधिष्ठिर बोला पितामह भीम के न मिलने से मैं बहुत चिंतित हो गया। दुर्योधन ने कहा भीम शायद हस्तिनापुर लौट गया है और हम लोग वहीं बैठे प्रतीक्षा करते रह जायेंगे। फिर यह सारा आयोजन दुर्योधन का ही तो था। वह न तो मुझे बडा मानता है न कोई अधिकार ही उसने मुझे दिया। उसने ही प्रमाण कोटि से वापिस चलने का आदेश दिया और सब शिबिर समेटने का। फिर मैं वहां क्या करता ? भीष्म कुन्ती से यह बोले भीम अगर स्वेच्छा से कहीं गया होगा तो एक आध दिन में लौट आयेगा यदि नहीं लौटा तो इन लडकों को कहीं मत भेजना। उसे खोजने का कार्य मैं स्वयं कराऊंगा। तुम इन्हे भेज दो तो कहीं यह न हो कि इन्हें भी खोजने भटकना पडे। वृद्धअवस्था का एक यही सबसे बडा गुण है कि वह चाहे कर्म न करे, चिन्ता अवश्य करता है और बुढापे की सबसे बडी पीडा अपने अंगों के जर्जर होने की नहीं है अपने सम्बन्धों के शिथिल होने की है। अपने ही परिवार में वृद्ध व्यक्ति अनावश्यक और उपेक्षित हो जाता है जिससे उसके मन में असह्य पीडा और कटुता भर जाती है। भीष्म यह कह कर भीम की चिन्ता मत करना मैं स्वयं देख लूंगा और रथ में बैठकर चलने लगे तो कुन्ती बोली- हमें एक सूचना और मिली है कि हमारे सारथी चिरन्तन का वध हो गया है। भीष्म चौंके चिरन्तन का वध कब और कैसे हुआ ? किसने किया? भीष्म बोले अब अवश्य ही इसकी खोज करूंगा। प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा राज्य का दायित्व है, उसके हत्यारे का सन्धान और उसको दंडित करने का कर्तव्य राजा का है और प्रजा पालन के लिये करना होगा।

भीष्म पितामह चिरन्तन के घर जाकर शोक प्रकट कर राजभवन धृतराष्ट्र से मिलने चले गये। वहां धृतराष्ट्र को नहीं पाया और ज्ञात हुआ कि राजा अपने अन्त:पुर में विश्राम कक्ष में चले गये। भीष्म प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे वे सीधे राजा के विश्राम कक्ष पर चले गये और प्रतिहारी से सूचना भिजवादी कि भीष्म उनसे अभी मिलना चाहता है।

धृतराष्ट्र ने उठकर उनके स्वागत का प्रयास किया और कहा कि पितामह को इस अन्धे धृतराष्ट्र का प्रणाम। भीष्म बोले- ईश्वर तुम्हे सद्बुद्धि दे धृतराष्ट्र। व्यक्ति चाहे अन्धा हो पर राजा को तो अन्धा नहीं होना चाहिये। उसकी तो सभी आखें सभी ओर खुली होनी चाहिये। धृतराष्ट्र बोले- क्या बात है तातश्री ? आपकी आवाज में रोष प्रकट हो रहा है क्या मुझसे कोई अपराध बन गया ? भीष्म स्थिर वाणी से बोले- नहीं धृतराष्ट्र तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है किन्तु तुमसे प्रमाद अवश्य हो रहा है राजन इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूं। धृतराष्ट्र बोला- तातश्री मुझे बतायें क्या हुआ है ?

भीष्म बोले- क्या तुम्हे पता नहीं सारथी चिरन्तन का वध हस्तिनापुर के मुख्य द्वार पथ पर सैंकडों लोगों की उपस्थिति में हो गया है। धृतराष्ट्र बोला नहीं तो, मुझे तो किसी ने सूचित नहीं किया।

भीष्म बोले- क्या राजा इस प्रतीक्षा में बैठा रहेगा कि कोई आये और उसे सूचित करे कि उसके राज्य में क्या-क्या अपराध

हो रहा है ? क्या यह राजा का कर्तव्य और दायित्व नहीं कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि उसके राज्य में अपराध हो ही नहीं और अगर हो तो उसकी सूचना राजा को तत्काल मिले। सूचना मिलने पर अपराधी को गिरफ्तार कर दंडित करे। धृतराष्ट्र निर्लज्ज भाव से बोला ऐसा ही होता है तातश्री। भीष्म बोले तो फिर तुम्हे यह सूचना अभी तक क्यों नहीं मिली चिरन्तन का वध सार्वजनिक स्थल पर अनेक प्रत्यक्ष दर्शियों के सम्मुख किया गया है और उसका शव वहां मुख्य मार्ग पर ही पडा रहा ? यह किसी और का प्रमाद नहीं तुम्हारा अपना ही प्रमाद है राजन। अब मैं तुम्हे सूचना दे रहा हूँ कि चिरन्तन का वध तुम्हारे ही पुत्र दुर्योधन ने किया है। अब उसपर अभियोग प्रस्तुत करो। धृतराष्ट्र तो सुनकर जड ही हो गया और बोला इसका आपके पास क्या प्रमाण है ? भीष्म बोले- मेरे कहने के पश्चात भी तुम्हे प्रमाण की आवश्यकता है ? मेरा कहना ही क्या पर्याप्त प्रमाण नहीं है ? फिर भी यदि कहते हो तो साक्षीदार उपस्थित करूंगा। बोलो कितने साक्षी उपस्थित करूं जो इस अपराध के चश्मेदीद गवाह है।

अब धृतराष्ट्र अपने रूप का श्वांग खेलने लगा। उन्मत्त होकर अपना सिर पीटने लगा और कहने लगा सब मेरे पुत्रों के पीछे पडे हैं। मार डालो मेरे पुत्रों को। एक-एक करके सबको फांसी पर चढा दो। क्योंकि मैं अन्धा हूं ना, कुछ कर भी तो नहीं सकता। एक नीच सारथी के अपराध के कारण राजघराने के राजकुमारों का प्राण ले लो। कर दो अपने ही हाथों कुरुवंश का नाश। कोई नहीं चाहता, कोई मेरी खुशी भी नहीं देख पाता। कोई मेरे पुत्रों को सुखी भी नहीं देख सकता। यह सब धृतराष्ट्र का अपना पुत्र मोह बोल रहा था। मैं यहां इसी क्षण मर जाऊंगा यदि मेरा पुत्र और एक साधारण सा सारथी एकही समान है तो फिर क्या करना है मुझे जीकर इस राज्य और जीवन का ? अच्छा है सारथी ही जीवित रहे और राजकुमार ही मर जाये। क्या आवश्यकता है अब राजकुमारों की ?

भीष्म ने कहा- आज नहीं तो कल हस्तिनापुर तुमसे यह प्रश्न करेगा। वे खडे-खडे धृतराष्ट्र का यह प्रलाप और नाटक देखते रहे। अपने इस उन्माद से वह क्या प्रगट करना चाह रहा है ? क्या वह यह सिद्ध करना चाह रहा है कि राजा का अपनी प्रजा की सुरक्षा का कोई दायित्व नहीं है ? क्या राजा और राजकुमार सर्वोपरि है ? क्या वे स्वेच्छादी और परम स्वतन्त्र हो सकते हैं, उनपर कोई बन्धन नहीं ? उनपर देश और राज्य का कोई विधान लागू नहीं हो सकता ? नियम और विधान केवल असहाय प्रजा के लिये ही होते हैं ? धृतराष्ट्र राजा तो बना रहना चाहता है जीवन के सारे भोग वह भोगना चाहता है किन्तु अपने आपको संयित नहीं करना चाहता। अपने आपको किसी तरह नियंत्रित नहीं करना चाहता। राजा का सबसे बडा दायित्व दुष्ट दलन है। यदि राजा अपराधियों को दण्ड नहीं दे तो देश में अपराध वृत्ति पनपने लगेगी। तब न कोई न्याय रहेगा और न ही शासन व्यवस्था। यदि राजकुमार ही हत्यारे हो जायें तो देश में सुशासन की सम्भावना नहीं रहेगी। तब न तो समाज रहेगा, न देश, न राष्ट्र। फिर क्षत्रिय राजाओं के राज्य और राक्षसों की बस्ती में क्या अन्तर रह जायेगा ?

धृतराष्ट्र से कोई अपेक्षा करना ही व्यर्थ था। वह तो निश्चित रूप से अपने पुत्र के अन्धे मोह में फंसा हुआ राजा अपने पुत्र के अपराध को स्वीकार नहीं कर सकता था और न ही उसे प्रताडित या दंडित करना चाहता था। अब कुरु राज्य धर्म राज्य नहीं रह जायेगा। कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र नहीं कहलायेगा। प्रजा कुरु राजाओं के न्याय की दुहाई नहीं देगी। धनी और समर्थ लोग हस्तिनापुर को त्यागकर अन्यत्र जाना चाहेंगे। न यहां पर विद्वान रहेंगे और न ज्ञानी ही, न कलाकार और न व्यापारी वैश्य बनिये।

भीष्म अगर कुछ करना भी चाहेंगे तो फिर सत्ता उन्हे हाथ से लेनी पडेगी। यह संभव नहीं है कि राज सिंहासन पर धृतराष्ट्र बैठा हो और दुर्योधन को दंडित करने का राजसी अधिकार भीष्म को प्राप्त हो। व्यक्तिगत शौर्य के बल पर यदि वे कुछ करना चाहेंगे तो उन्हे हस्तिनापुर की राजसत्ता का विरोध करना पडेगा। सम्भव है प्रजा न्यायपक्ष में उनका साथ देना चाहे और वह राजसत्ता से विद्रोह करे। जिस भीष्म ने आजतक सारे प्रयत्न कुरुवंश के शासन की रक्षा के लिये किये अब ऐसा करने पर वे स्वयं ही उसके विनाश का कारण बनेंगे। फिर वे ये सब किसके लिये कर रहे है जब उन्होंने स्वयं को राजनीति से, शासन से पृथक कर लिया है ? प्रजा का पालन प्रजा की रक्षा यह काम सब राजा धृतराष्ट्र का है। यह उनका दायित्व है कि वह देखें अपराधी कौन

हैं और किसे दंडित करना हैं ?

किन्तु भीष्म का यह अन्तिम निर्णय नहीं हो सकता। चाहे वे राजा नहीं हैं परन्तु वे एक धर्मपरायण चिन्तनशील प्राणी हैं, वे अधर्म होते हुये नहीं देख सकते। वे एक बलवान और समर्थ व्यक्ति हैं। धर्मपरायण भीष्म का दायित्व है कि निर्बल और असहाय व्यक्ति की हत्या को रोककर निर्बल की सहायता करे और अपराधी को उसके अपराध के लिये दंडित कराये। परन्तु उसके लिये तो सत्ता और अधिकार की आवश्यकता होती है। भले ही वे चाहे राजा न हो पर कुरु ज्येष्ठ तो है ही। वे कुरुवंश के वयोवृद्ध हैं। इन बालकों के अभिभावक हैं। क्या यह उनका धर्म नहीं है कि वे अपने वंश के लडकों को अधर्म के मार्ग पर चलने से वारित करे। क्या वे दुर्योधन के अभिभावक नहीं है जो उसे दंडित नहीं कर सकते ?

भीष्म अपने सारे प्रश्नों को लेकर गंगा तट पर गंगा के पास गये। गंगा बोली- पुत्र देवव्रत तू राजसत्ता से चिपटे रहने का कोई न कोई मार्ग तो ढूंढ ही निकाल लेता है। दुर्योधन को मार्ग पर लाने का दायित्व उसके पिता धृतराष्ट्र का है। अपराधी को दंड देने का कार्य देश के राजा का है। यदि दूसरों के कार्य में हस्तक्षेप करोगे, दूसरों के दायित्वों को स्वयं वहन करोगे तो तुम भीष्म नहीं रह पाओगे। तुम न धृतराष्ट्र को बदल सकते हो और न ही दुर्योधन को। यदि हस्तिनापुर को इनसे मुक्ति चाहिये तो हस्तिनापुर को अपना राजा बदलना पडेगा। युधिष्ठिर जब बडा होगा तो सिंहासन पर बैठकर सम्पूर्ण राज सत्ता से राज्य करेगा ? अभी निराशा की कोई बात नहीं है। यह कह कर गंगा चली गई।

भीष्म को आशा की किरण दिखाई दी। अपनी मर्यादा में रहते हुये भी वे हस्तिनापुर में धर्म की स्थापना में सहायक हो सकते है। यदि युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो जाये तो दुर्योधन के अधिकार अपने आप संकुचित हो जायेंगे। युवराज के रूप में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के अधर्म के कृत्यों पर अंकुश रख सकेगा। युधिष्ठिर उसे धर्म संगत परामर्श देगा और युधिष्ठिर के वयस्क होते ही वह हस्तिनापुर का राजा होगा जो पूर्ण शक्ति सम्पन्न सर्वाधिकार प्राप्त कुरुवंश का धर्मराज राजा होगा। अब भीष्म पितामह को लगने लगा कि युधिष्ठिर की शिक्षा-दीक्षा के प्रबन्ध की ओर ध्यान देकर उसे योग्य पात्र सिद्ध करे। कृपाचार्य उसके लिये पूर्ण व उपयुक्त गुरु नहीं हो सकते। सारे राजकुमारों के लिये कोई योग्य गुरु ढूंढना है।

भीम को दुर्योधन ने गंगा तट पर गंगा जल में प्रवाहित कर दिया। गंगा में हिचकोलिया खाता हुआ वह गंगा के तट पर जाने लगा, डूबने लगा। गंगा में विषैले सर्पों ने डस लिया। सर्पों के काट लेने से भीम के शरीर का विष उतरने लगा और वे सर्प मरने लगे। दो सर्प सैनिक उसे पकडकर पाताल में से होकर नागलोक ले गये। भीम को लगने लगा जैसे अन्धकार कम हो रहा है। वह अन्धकार से प्रकाशित लोक में आ रहा है। वहांपर जो प्रकाश हो रहा था वह सर्पों की, नागों की मणियों के कारण नागलोक प्रकाशित हो रहा था। भीम की चेतना सघन होने लगी। पर वह जल में था और गतिशील था। उसका शरीर जकडा हुआ था। उसने प्रयत्नपूर्वक आंखे खोली और इधर-उधर देखा। वह सोच रहा है कि उसको किसने बांधा वह जल में कैसे उतरा ? उसको कुछ भी याद नहीं आ रहा। उसकी मूर्च्छा टूटी। वह अचेत हुआ तो कैसे ? उसे वनस्पती तन्तुओं से भलीप्रकार बांधा गया था। नागों और सर्पों के काटने से विपरीत परिणाम हो गया। भीम के शरीर का पूरा विष नागों के काटने से उन्होंने पी लिया। उन सैनिक सर्पों ने भीम को अपने राजा नागराज आर्यक के पास ले गये और बोले- यह कोई गुप्तचर लगता है। यह हमें मूर्च्छित अवस्था में गंगा में बहते हुये मृत जैसी अवस्था में मिला और इसके शरीर के बल से हमारी सुरक्षा चौकी भी इसने नष्ट कर दी है। अब इसे आपके सामने लेकर आये है जो आज्ञा इसके लिये है वो आज्ञा करें। इसने कई सर्प सैनिकों को कुचल डाला है और कईयों को मार गिराया है।

आर्यक नाग भीम के समीप आया और बोला बालक भय मत करो हम तुम्हारे शत्रु नहीं है। हम तुम्हे कोई किसी प्रकार की भी क्षति नहीं पहुंचायेंगे। तुम कौन हो यहां नदी में किसलिये बांधकर फेंके गये हो ? तुम्हारी शरीर पर भारी पत्थर बांधकर तुम्हे जल समाधि किसने दी और क्यों दी ? भीम के सामने अब सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो गई। सर्पदंश के पश्चात एक जीवित मनुष्य को

अचेत हो जाना चाहिये था और अचेत व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता लेकिन तुम्हारे साथ तो ठीक इसके विपरीत हुआ। तुम तो मृत से अचेत हो गये तथा अचेत से सचेत हो गये। इसका अर्थ है कि तुम्हारे शरीर में कोई कालकूट विष पहले से ही विद्यमान था जिसने तुम्हे अचेत कर दिया और अचेत अवस्था से तुम मृत्यु की ओर जा रहे थे। सर्पदंश ने तुम्हारे शरीर में पहले से विद्यमान विष का प्रतिकार कर डाला और तुम चेतना को प्राप्त होने लगे। तुम अब जीवित मनुष्य हो किन्तु तुम्हे यह जीवन बहुत विचित्र स्थिति में मिला है। विधाता ने तुम पर असाधारण और असामान्य कृपा की है। हम तुम्हारा उपचार करें इससे पहले हम तुम्हारा परिचय जानना चाहते है।

भीम बोला, मैं कुन्ती पुत्र भीम हूं, मैं स्वर्गीय पांडु महाराज हस्तिनापुर का पुत्र हूं। आर्यक नाग बोला अच्छा तुम कुन्ती के पुत्र हो, पृथा के पुत्र। तब तो समझो तुम अपनी ननिहाल में ही हो। भीम बोला- क्या तुम मेरी माता को जानते हो ? आर्यक नाग बोला- मैं तुम्हारे नाना का भी नाना हूं। मेरी पुत्री मारिषा शूरसेन की पत्नी। शूरसेन की पुत्री तुम्हारी माता कुन्ती है। वत्स कैसी है कुन्ती। पांडु के साथ पृथा की चर्चा भी सुनी और फिर तुम्हारे पिता पांडु का देहान्त हुआ यह भी सुना। आज मेरा दौहित्र मेरे घर आया है चलो पुत्र मेरे घर। भीम बोला- अभी नहीं फिर कभी। नागराज आर्यक बोले- क्या कुन्ती को यह सब मालूम है। क्या कुन्ती जानती है तुम यहां हो। भीम बोला- नहीं। आर्यक नाग बोला तो फिर कुंती चिंतित होगी तुम्हे शीघ्र कुन्ती के पास लौटना चाहिये। अपने राजा वासुकि से भीम का परिचय कराया। भीम के लिये यह सारा अनुभव अद्‌भुत था। जीवन के यथार्थ जैसा था ही नहीं। पुत्रों, प्रपौत्रों, पौत्रों से भेंट करा कर आर्यक ने भीम को विष का उपचार करना चाहा ताकि विष का लेश मात्र अंश भी शरीर में न रह जाये।

आर्यक ने वासुकि से पूछा हम लोग इसे उपहार में क्या दे। वासुकि ने कहा इसको बहुत सारा धन रत्न देकर भेज दो। आर्यक ने कहा नागेन्द्र यह धनरत्न लेकर क्या करेगा। यदि आप इस पर प्रसन्न हैं तो इसे नाग कुण्डों का रस पीने की आज्ञा प्रदान करे जिससे इसे सहस्त्र हाथियों का बल प्राप्त होगा। नागों ने भीम का स्वस्तिवाचन कराया और भीमसेन पवित्र हो पूर्वाभिमुख बैठ रसपान करने लगे। बलशाली भीम एक घूंट में ही एक कुंड पी जाते। इस तरह एक-एक करके सात कुंड रस पी गये।

उसे एक कटोरे में सुधा रस पान कराया और कहा वत्स एक कटोरे में दस हाथियों के बल के समान ये सुधा रस है इसे और पियो। भीम को सात कटोरे सुधा रस पान करवाया। अब भीम के शरीर में सत्तर हाथियों के बल जितनी शक्ति समाविष्ट हो गई। वह रस अत्यन्त स्वादिष्ट और स्फूर्तिदायक था। भीम उसे शीघ्रता से गटक गया। आर्यक बोला- यह एक हमारी विशिष्ट उपलब्धि है जो आज भाग्य से तुम्हे मिल रही है। भीम पात्र पर पात्र रस पीता गया और उसकी भूख मिटती गई। भीम ने पर्याप्त रस पी लिया। अब उसमें असाधारण ऊर्जा और शक्ति का संचार हो गया। कुन्ती का यह पुत्र अब अत्यन्त बलशाली हो गया और उसे वहीं निद्रा आने लगी। भीम अपने भाइयों और माता से दूर है। उन्हे उसकी कोई सूचना भी नहीं है। वे लोग उसे खोज रहे होंगे। माता अवश्य दु:खी होगी। अब भीम ने अपने घर जाने के बारे में सोचा। आर्यक नाग बोला फिर आना अतिथि के लिये सम्भव नहीं होता यह तो औपचारिकता से ही कहा जाता है कि फिर आयेंगे। मेरे पौत्र तुम्हे गंगा घाट तक पहुंचा देंगे। पर पुत्र तुम अपने उन लोगों की खोज अवश्य करना जिन्होने तुम्हे विष देकर तुम्हारी हत्या करने का प्रयास किया है और सदा उनसे सावधान रहना। बन्धु-बान्धवों की परस्पर की शत्रुता कुल के विनाश की द्योतक होती है।

यह आपने जो रस पिया है वह बडा ही बलवर्धक है। आप दस हजार हाथियों के समान बलवाले हो गये। युद्ध में अब आपसे कोई भी नहीं जीत सकेगा।

भीम तैरते हुये गंगा तट पर आ गया और जैसे नींद से उठकर आया हो अपने घर हस्तिनापुर में आ गया।

गान्धारी कुन्ती के पास आई और उसके आंसू पोछने लगी। गान्धारी बोली- कुन्ती मेरा हृदय कहता है कि भीम का कुछ भी

नहीं बिगडेगा और आज तक मेरे हृदय की कही कोई बात झूठी नहीं हुई। विदुर बोला- मैं भी तबसे इन्हें यही समझा रहा हूं महारानी। परन्तु कुन्ती जैसी माता को पुत्र के विषय में समझाना आसान नहीं है इन्हे रो लेने दीजिये। इससे हलका होने दीजिये क्योंकि ये आंसू राजकुमार के अतिरिक्त कोई नहीं पोंछ सकता।

इतने में ही भीम हस्तिनापुर लौटकर कुन्ती कक्ष में आ गया। सब बडे ही प्रसन्न हुये। भीमसेन ने अपनी माता के पास आकर, माता को और बडे भाई को प्रणाम किया। सभी प्रेमसे आनन्द मनाने लगे। माता कुन्ती बोली मेरे पुत्र तू हमको छोडकर कहां चला गया था ? भीम बोला- हुआ ऐसा कि दुर्योधन ने मुझे खीर खिलाई थी बीच ही में युधिष्ठिर ने यह सब बताने से रोक दिया। भीम बोला- मैं खीर खाकर सो गया। मैं देखता हूं कि नागलोक में पहुंच गया। वहां पर मेरे माता मह नाना रह रहे हैं। कुन्ती बोली- हां पुत्र यह बात तुम अब यहीं छोड दो और पहले ज्येष्ठ माताश्री का आशीर्वाद लो। गान्धारी के पास भीम ने जाकर चरण स्पर्श किये और कहा ज्येष्ठ माताश्री मैं भीम। गान्धारी बोली- मेरे पुत्र भीम तू कहां चला गया था। आयुष्मान भव, शक्तिमान भव। भीम बोला शक्तिमान तो मैं हो गया हूं। सुधारस के सात कटोरे पीकर आया हूं। नागराज कहते थे एक कटोरे में दस हाथियों का बल होता है। अर्जुन हास्य से बोला तब तो मझले भैया अकेले ही ७० हाथियों के बराबर का खाना खायेंगे माताजी। यह सुनकर सब हंसने लगते हैं।

दुशासन ने भागकर दुर्योधन को खबर दी। दुर्योधन अपने कक्ष में चौपड के पासे खेल रहा था। दुशासन बोला कि वह पेटू तो लौट आया, वो लौट कैसे आया भ्राताश्री ? दुर्योधन बोला- मामाश्री ने तो बताया था कि उस विष का तो सर्पराज नागराज के सिवाय तो किसी के पास भी इलाज नहीं है। दुशासन बोला- मैं नहीं जानता वह माता कुन्ती के कक्ष में बडे ही डींगे मार रहा है कि नागराज ने उसे सुधा रस पिला दिया है। अब वह अपना पूरा भांडा फोड देगा। दुर्योधन बोला- भांडा फोड कर अब वो करेगा क्या ? और फिर उसकी बात मानेगा कौन ? पिताश्री तो मेरा ही साथ देंगे। हां पर माताश्री ही टेढी खीर है। दुशासन बोला भैया खीर का नाम ना लो। खीर ने ही तो सारा कबाडा कर दिया है। अब तो मुझे भीम के सामने जाने में भी डर लगता है। दुर्योधन बोला- इसमें डरने की कौनसी बात है ? अब तुम मेरे साथ लगे रहना। हम दोनों के साथ तो वह लड नहीं सकता।

माता कुन्ती के कक्ष में भीमसेन, अर्जुन और युधिष्ठिर बैठे हुये थे। भीमसेन ने दुर्योधन की सारी करतूत कह सुनाई और यह भी बताया कि नागलोक में क्या सुख मिला। भीम बोला- मैं तो अब दुर्योधन का सिर ही तोड डालूंगा। युधिष्ठिर बोला सर तोडने फोडने के अलावा और भी कुछ बात किया करो। भीम ने कहा सुनते हो अर्जुन उसने तो मुझे खीर का झांसा देकर विष पिला दिया था और मैं जाकर उसे गले मिलूं। युधिष्ठिर बोला- अगर तुमने ऐसा किया तो तुम में और दुर्योधन में फर्क ही क्या रह जायेगा ? तुम तो गुरुदेव का आदेश ही भूल गये। मनुष्य भव अर्थात मनुष्य बनो। मनुष्य न किसी को विष पिलाता है और न ही किसी का सिर तोडता है। मत भूलो अर्जुन कि दुर्योधन हमारा छोटा भाई है। भीम बोला- ज्येष्ठ भ्राता तो क्या फिर मैं उसे जाकर धन्यवाद दे दूं और कहूं कि खीर बहुत अच्छी थी और फिर कब खिलाओगे ? युधिष्ठिर बोला- नहीं तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे। भीम बोला- अच्छा तो भैया मैं करू क्यां ? युधिष्ठिर ने कहा चुप रहो। यह हमारे घर की बात है। माताश्री और हमारे पाँचों भाइयों के अलावा किसी को भी कुछ पता नहीं चलना चाहिये कि तुम पर क्या बीती। <u>घर की बात घर से बाहर निकलते ही पराई हो जाती है</u>। यदि ज्येष्ठ माताश्री को पता चल गया तो उन्हें बहुत दु:ख होगा। अर्जुन बोला- तो क्या यह आपका आदेश है कि हम चुप रहें। युधिष्ठिर बोला- यदि तुम आदेश के बिना चुप नहीं रह सकते तो यही मेरा आदेश है। इतने में ही कुन्ती भी वहां आ गई और बोली यही मेरा भी आदेश है। दुर्योधन से झगडा करना तो दूर, तुम उससे कुछ कहोगे भी नहीं। नहीं तो मैं तुम्हारे पितामह से शिकायत कर दूंगी कि तुम मेरा कहना नहीं मानते हो। भीम ने कहा जो आज्ञा माताश्री। **माता ममता मूर्ति की, पंच पुजारी प्राण, माता की आशीश ही पुत्रों का कल्याण।**

कुन्ती ने भीम से यह कह दिया कि वो अपना मुंह बन्द रखे और किसी को भनक भी न लगने पाये कि दुर्योधन ने खीर में विष मिलाकर उसे गंगा में बहा दिया परन्तु ऐसी बातें छिपाये नहीं छिप सकती और विदुर जैसे विद्वान के सामने कोई बात कह दे और रूक भी जाये तो भी अधूरी बात का भी पूरा अर्थ निकाल सकते है। विदुर तो चेतना ही चेतना है और यह जानते है कि इतिहास में उन्हे एक ऐसी जगह ला खडा किया है कि जहां उनके सिवा सभी किसी न किसी डोरी से बन्धे हुये है। यही कारण है कि विदुर स्वयं चौकने रहते है। वो इस वक्त तैयार नहीं कि हस्तिनापुर में होनेवाली राजनीति चौसर में किसी का मोहरा बनकर पासों का आदेश मानकर आगे बढे या पिटकर, बिककर रास्तों से हटा दिये जाये। परन्तु विदुर का दर्द यह था कि अपनी दुविधायें लेकर वे जाये कहां। गंगा पुत्र भीष्म के सिवा कोई ऐसा नहीं था जिसपर पूरी तरह भरोसा किया जा सके और गंगा पुत्र भीष्म भी अपनी प्रतिज्ञा का किवाड बन्द किये बैठे थे। फिर भी भीम और दुर्योधन के तनाव की यह कहानी जो नागलोक तक चली गई है ऐसी न थी कि विदुर उसके विषय में वार्तालाप करने भीष्म के पास न जाते।

और जब भीष्म ने यह सब सुना तो उन्हे अपने सुनेपर यकीन नहीं आया। भीष्म बोले- क्या विदुर तुम्हे विश्वास है कि भीम युधिष्ठिर के कहने से कुछ कहते कहते रुक गया ? विदुर बोले- जी तातश्री। भीष्म बोले- माता सत्यवती पांडु पुत्रों को मुझे सौंप कर गयी थी विदुर, तो क्या मैं उन कर्तव्यों का पालन कर रहा हूं ? विदुर बोले- आवश्यकता तो इस बात की है कि आप दुर्योधन को बुलाकर उसे समझा दे। भीष्म बोले दुर्योधन तो धृतराष्ट्र का हस्ताक्षर है विदुर उसका तो अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। धृतराष्ट्र उसकी आँखों से सारे सपने देखना चाहता है। ये लोग मुझे चैन से मृत्यु लोक भी त्यागने नहीं देंगे विदुर और मेरी विवशता तो देखो कि मैं हस्तिनापुर राज सिंहासन से यह भी नहीं कह सकता कि जा मैं तेरे इस अन्याय का साथ नहीं दे सकता। मनुष्य को प्रतिज्ञा या शपथ लेते समय बहुत सावधान रहना चाहिये क्योंकि शपथ की गांठ न तो कभी टूट सकती है और न ही खुल सकती है। मैं यह भी तो नहीं कह सकता कि मेरे ये चौडे कन्धे मेरे ही ली हुई शपथ के बोझ से टूट रहे है। हे कालेश्वर, हे कालेश्वर और यह कह कर भीष्म रोने लगे।

विदुर भीष्म को धैर्य बन्धाते हुये बोले तातश्री यह आप क्या कह रहे हैं ? आप तो इस कुरु राज घराने के चन्द्रमा है। यदि आप ही को ग्रहण लग जाये तो इस राज घराने का क्या होगा ? यदि आप ही वास्तविकता की आंखों में आंखे डालने से घबरा जाये तो यह धरती जीने के योग्य ही नहीं रह जायेगी तातश्री। भीष्म बोले- तो मैं क्या करूं विदुर क्या करूं ? मैं वर्तमान की लम्बी होती परछाइयों से डर रहा हूं। मैं धृतराष्ट्र की उच्चाकांक्षाओं से डर रहा हूं। मैं इस सोच से डर रहा हूं कि जब ये विष वृक्ष बडा होगा तब क्या होगा ? विदुर बोला- इस विषय में राजनीति एक ही बात कहती है तातश्री कि ऐसा वृक्ष बडा होने से पहिले ही काट देना चाहिये तातश्री। भीष्म बोले- नहीं विदुर नहीं। इस पौधे के कट जाने से हस्तिनापुर राजसिंहासन भी कट जायेगा और मैं उस राजसिंहासन की रक्षा करने के लिये वचनबद्ध हूं। दुर्योधन अभी बालक है। सम्हाला जा सकता है। धृतराष्ट्र में सांठ गांठ करने की समझ नहीं है। वो अपनी आग में जलना चाहता है इसीसे जल रहा है। इसका मूल कारण शकुनि है शकुनि। जो आज भी यही चाहता है, सोचता है कि कुरुराज घरानेने नेत्रहीन धृतराष्ट्र का गान्धारी से विवाह करा कर गान्धार राजपरिवार का अपमान किया है। उसने हस्तिनापुर राजसिंहासन पर अपनी चौसर बिछा रखी है। आज मैं हस्तिनापुर राज सिंहासन के लिये जैसे डर रहा हूं वैसे तुम भी डरो विदुर क्योंकि हस्तिनापुर के लिये हमारे कर्तव्य की मांग यही है। यही है विदुर। कर्तव्य का अर्थ है राजसिंहासन का संरक्षण। घटनाओं की तीव्रता कम करने के लिये काल ही सबसे उपयुक्त औषधि है। दुर्योधन ने भीम को खीर में विष दिया इस पर काल ने ही पर्दा डाला तो भी विदुर ऐसा व्यक्ति है जो पूरे दिन रात पांचों पांडु पुत्रों की सुरक्षा करने के लिये सजग रहता है। भीष्म का भी विदुर के साथ-साथ पांडवों पर बडा ही बारीकी से सावधानी से ध्यान था। धर्मात्मा विदुर ने पांडवों को यही सलाह दी कि तुम लोग चुप रहो। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ने भीमसेन को विष से मरते न देखकर उसे तरह-तरह से मारने के प्रयत्न किये परन्तु पांडव सब कुछ

जानबूझकर विदुर की सलाह के अनुसार चुप रहे। राजा धृतराष्ट्र और भीष्म ने देखा कि सब के सब राजकुमार खेलकूद में ही लगे रहते हैं तो उन्होंने शिक्षा देने के लिये कृपाचार्य के पास भेज दिया और वे वहांपर धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

दुर्योधन और दुशासन दोनों शकुनि के पास आये। शकुनि बोला आओ आओ गान्धारी पुत्रों। दुर्योधन बोला- क्या आये, आपने जो विष दिया था वो तो भीम को खिलाकर नदी में बहा दिया था। दुशासन बोला- वो तो और भी मोटा होकर लौट आया। शकुनि बोला- नदी में बहा दिया था। लेकिन मैंने तो उसे नदी में बहाने के लिये नहीं कहा था। वहां से तो नाग लोक का मार्ग सीधा निकलता है। देखो तो मामाश्री की बात माननी हो तो पूरी तरह से माना करो। यदि मामा की समझ में अपनी आधी समझ मिलाओगे तो कार्य तो बिगडेगा ही। उसने गान्धारी को तो नहीं बताया कि तुमने उसे विष खिलाया है क्योंकि एक बार चाहे तो मैं भीष्म पर भरोसा भी कर लूं किन्तु मैं तुम्हारी माताश्री पर इन विषयों पर बिल्कुल भरोसा नहीं कर सकता। कभी कभी मुझे उसकी अच्छाई से बडा डर लगता है। दुर्योधन ने कहा अभी तक तो उसने किसी को भी कुछ नहीं बताया।

शकुनि कुछ सोचकर बोला- किसी को भी नहीं बताया तो फिर अवश्य किसी ने उसे समझाया है कि वो चुप रहे। दुर्योधन दुशासन तब तो अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि अब तो वे पत्ते खडक जाने से भी चौकने हो उठेंगे। दो-चार दिन तक दम साधे बैठे रहो। उसे पहले छेडने का अवसर दो और जैसे ही वो छेडे तुम अपने पिताश्री के पास एक-एक की सौ-सौ लगाकर कहो। दुशासन बोला- मामाश्री मैं सोचता हूं कि दो-चार दिन गुरुकुल जाऊं ही नहीं। शकुनि बोला यह भूल न करना क्योंकि वह यह दिखलाने का प्रयत्न कर रहें है जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं तो तुम भी यही खेल खेलते रहो भान्जे। शकुनि पासा फेंकता है देखो सात ये सात।

सभी बालक गुरुकुल में आते है। दुशासन और दुर्योधन वे आम्रवाटिका में आम तोडने के लिये आते हैं। भीम भी वहां पर आता है। भीम दुर्योधन से बोला- अरे दुर्योधन बहुत दिनों से तुमने खीर नहीं खिलाई। दुर्योधन बोला- मुझे तुमसे बात करने का समय नहीं है। इस वक्त हम लोग आम खाने जा रहे हैं। भीम बोला- पेड पर चढने के पहले मेरी ये पीठ खुजला दो। दुर्योधन बोला- हम कोई तेरे दास नहीं है। चलो दुशासन। आम तोडने के लिये दुर्योधन और दुशासन पेड पर चढते है। भीम खुजली मिटाने पेड के पास पीठ रख कर बैठ जाता है और पेड से अपनी पीठ रगडता है। इससे पेड जडसहित हिलने लगता है। दुर्योधन और दुशासन पेड से गिर जाते है। पेड जड सहित उखड गया। दुर्योधन बोला मैं अभी जाकर पिताश्री से कहता हूं फिर देखना।

वे सभी धृतराष्ट्र के कक्ष में आते हैं। धृतराष्ट्र ने भीम से पूछा तुमने ऐसा क्यों किया प्रिय भीम। भीम बोला- मेरी पीठ खुजला रही थी ज्येष्ठ पिताश्री। दुर्योधन बोला यह झूठ बोल रहा है पिताश्री। गान्धारी भी वहीं बैठी थी। गान्धारी ने भीम से कहा क्या तुम झूठ कह रहे हो पुत्र भीम। भीम बोला- जी माताश्री। गान्धारी बोली- परन्तु तुम झूठ क्यों बोल रहे हो पुत्र ? भीम बोला- सत्य जानकर आपको बहुत दु:ख होगा। पुत्र दुर्योधन गान्धारी बोली। दुर्योधन ने कहा जी माताश्री। गान्धारी बोली यदि भीम ने चपलता भी की थी तो तुमने अपने ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिर से क्यों नहीं कहा ? दुर्योधन बोला- पर वो तो अपने ही भाई का पक्ष लेता। गान्धारी बोली- वत्स वो तो तुम्हारे भी ज्येष्ठ भ्राता हैं। दुर्योधन ने कहा नहीं माताश्री। इस राज परिवार का ज्येष्ठ पुत्र मैं हूं और उस परिवार का युधिष्ठिर।

गान्धारी भीम से बोली- पुत्र भीम मेरे निकट आओ। भीम गान्धारी के निकट गया और चरणस्पर्श किये। गान्धारी बोली- भाइयों के मेल जोल से परिवारों की आयु बढती है वत्स। भीम बोले लेकिन वो ही मिल जुलकर नहीं रहता है और मुझे पेटू कहकर चिढाते रहता है। इससे मुझे भी क्रोध आ जाता है। एक दिन तो ऐसा हुआ कि हम आम्र वाटिका में आम तोडने गये। आम तोडकर एक झोले में इकट्ठा कर लिये। दुर्योधन बोला- देखो इन पर धूल लगी है। तुम भीम यहां पर विश्राम करो, मैं और दुशासन आम धोकर लाते है। मैंने कहा अच्छा। मैं पेड के नीचे बैठा विश्राम करने लगा। दुर्योधन आम का झोला लेकर अपने

अन्य भाइयों के साथ बैठकर वहां आम खाने लगा और गुठलियां इकट्ठी कर दुर्योधन और दुशासन मेरे पास आये और बोले लो खाओ इन्हें। जब मैंने झोला देखा तो उसमें आम की गुठलिया थी। मैंने पूछा ये आम थोडे ही है ये तो गुठलियां है। दुर्योधन बोला जब हम आम धो रहे थे तो सारा रस बह गया और ये गुठलियां रह गई। अब आप बताइये माताश्री ये क्या मेल मिलाप के लक्षण है ? गान्धारी बोली देखो तुम माता कुन्ती से इसके बारे में कुछ मत कहना पुत्र। मैं दुर्योधन को समझा दूंगी।

गान्धारी धृतराष्ट्र से बोली- सुनते हो आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला- दुर्योधन को दोषी मत ठहराओ प्रिये। ये तो मेरी छाती में दहकती अग्नि की लपटे है जो उसके हृदय तक पहुंच रही है। मैंने तो उस अपनी अग्नि को दबाये रखना सीख लिया। परन्तु वो तो अभी बालक है, उसके सामने तो वही नीति और परम्परा का राक्षस मुंह फाडे खडा है जो मेरी उच्चाकांक्षाओं को निगल चुका है। इस समय यह भाग्य मेरे पुत्र के साथ भी वही अन्याय करेगा जो मेरे साथ कर चुका है ? यह विचार मुझे रात भर बिच्छू के भांति डंक मारता रहता है। और इस बिच्छू के डंक से मैं न तो ठीक से सो सकता हूं और न ही ठीक से जाग पाता हूँ एक दिन तो हमें इस सच का सामना करना ही पडेगा गान्धारी कि हस्तिनापुर का युवराज कौन होगा ? गान्धारी बोली- आर्य पुत्र यदि ज्येष्ठता देखी जाये तो भी और योग्यता देखी जाये तो भी युवराज तो युधिष्ठिर को ही होना चाहिये।

धृतराष्ट्र बोला- तुम इतनी सरलता से यह बात कह रही। मुझे राजगद्दी इसलिये नहीं मिली कि मैं नेत्रहीन था परन्तु मेरा पुत्र दुर्योधन नेत्रहीन नहीं है और अब मैं भी देखूंगा कि विदुर अब अपनी नीति का कौनसा पृष्ठ खोलकर सुनाता है ?

हस्तिनापुर आज एक पुरानी झील की तरह है जिसमें शताब्दियों का जमा हुआ पानी है, जिसमें से अब दुर्गन्ध आने लगी है। राजनीति की दीवारों में लोहा लग चुका है। परम्पराओं के वस्त्र चिथडों में बदल चुके हैं।

३३) द्रोणाचार्य का वृतान्त और अश्वत्थामा का जन्म

जनमेजय ने पूछा वैशम्पायनजी मुझे द्रोणाचार्य के बारे में बताये वे कौन थे और कौरवों के राजगुरु कैसे हुये ? वैशम्पायन बोले- जनमेजय पहले युग में गंगा द्वार (हरिद्वार) में महर्षि भरद्वाज रहा करते थे। वे बडे ही व्रतशील और यशस्वी थे। एक बार वे यज्ञ कर रहे थे। उस दिन सबसे पहिले ही वे महर्षियों को साथ लेकर गंगा स्नान करने गये। वहां पर घृताची अप्सरा स्नान करके जल से निकली। उसे देखकर भरद्वाज ऋषि के मन में कामवासना जाग उठी। इससे उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस वीर्य को उन्होंने एक द्रोण पात्र में रख दिया। उसी में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम द्रोण रखा गया। द्रोण ने सारे वेद और वेदांग का स्वाध्याय किया। महर्षि भरद्वाज ने आग्नेय शास्त्र की शिक्षा अपने शिष्य अग्निवेश्य को दी थी। अग्निवेश्य ने ही द्रोण को आग्नेय शास्त्र की शिक्षा दी। अग्निवेश्य ही द्रोण के गुरु हुये।

पांचालों में पृषत नाम के एक राजा हुये जो भरद्वाज मुनि के मित्र थे। द्रोण की उत्पत्ति के समय ही पृषत के द्रुपद नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भी भरद्वाज आश्रम में ही द्रोण के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण कर रहा था। द्रोण से द्रुपद की गाढी मैत्री थी। कालान्तर में पृषत का देहान्त हो गया। स्वर्गवास के बाद द्रुपद उत्तर पांचाल देश के राजा हुये। भरद्वाज के ब्रह्मलीन होने के कारण द्रोण अपने आश्रम में रहकर तपस्या करने लगे। उन्होंने शरद्वान ऋषि की पुत्री कृपी, कृपाचार्य की बहन से विवाह किया। कृपी गौतमी नाम से भी जानी जाती है। कृपी के गर्भ से ही अश्वत्थामा का जन्म हुआ। उसने जन्मते ही उच्चेश्रवा अश्व के समान शब्द निकाले। इस बालक के जन्म से द्रोणाचार्य को बडा हर्ष हुआ। इस बालक का नाम अश्वत्थामा रखा और वह वहीं द्रोण के पास रहकर धनुर्वेद का अभ्यास करने लगा।

द्रोणाचार्य को मालूम हुआ कि जमदाग्नि नन्दन परशुराम ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान कर रहे हैं। द्रोणाचार्य उनसे धनुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान और दिव्य अस्त्रों की जानकारी प्राप्त करने के लिये उनके पास महेन्द्रगिरि पर गये। जाकर उन्होंने परशुराम जी को प्रणाम किया और बोले मैं महर्षि अंगिरा गौत्र में भरद्वाज पुत्र बिना योन संसर्ग से उत्पन्न हूं। मैं आपके पास अस्त्र विद्या शिक्षा

प्राप्त करने आया हूं। परशुराम जी ने कहा- मेरे पास जो कुछ भी धन रत्न आदि थे वो तो सब मैंने ब्राह्मणों को दे दिये। सारी पृथ्वी भी मैंने कश्यप को दान कर दी। अब मेरे पास अपने इस शरीर और अस्त्र के सिवा और कुछ भी नहीं रखा है। इनमें से जो तुम चाहो मांग लो। द्रोणाचार्य ने कहा- भृगुनन्दन आप मुझे प्रयोग, रहस्य उपसंहार विधि के साथ सारे अस्त्र-शस्त्र दे और उनका ज्ञान कराये। परशुराम ने तत्काल तथास्तु कह दिया और उन्हे उन सबकी शिक्षा दी। अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करके द्रोणाचार्य को बडी प्रसन्नता हुई।

इधर वासुदेव श्रीकृष्ण भी नंदगाव की बाल लीलायें पूरी कर मथुरा आ गये। मथुरा में उन्होंने अपने दुष्ट आततायी मामा उग्रसेन पुत्र कंस का वध किया और वे भी पांडवों के साथ-साथ मथुरा में बडे होने लगे। कृष्ण जब मथुरा आये थे तो उनकी उम्र ११.१/२ वर्ष थी। अब वे बडे भाई बलराम और मित्र सुदामा के साथ क्षिप्रा नदी तट पर बसी अवन्तिका नगरी वर्तमान उज्जैन में सांदीपन ऋषि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

३४) द्रोणाचार्य का हस्तिनापुर में आगमन और कौरवों के गुरु होना

कुरुक्षेत्र की रणभूमि तो अभी काफी दूर है परन्तु तैयारिया शुरू हो चुकी है। पात्र धीरे-धीरे इकट्ठा हो रहे है, परन्तु इस कथा के हर पात्र का अपना अन्दाज है अपनी कहानी है, अपने सपने हैं। एक तरफ गान्धार कुमार शकुनि गान्धार छोडकर हस्तिनापुर में टिके हुये हैं और अपनी जडे फैला रहे हैं। एक तरफ भीष्म हैं जो हस्तिनापुर राजसिंहासन के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ से बन्धे हुये हैं। एक तरफ गान्धारी है जिसने अपनी रोशन आंखों पर पट्टी बांधी हुई है। यदि गान्धारी की आंखे खुली हुई होती तो शायद वे धृतराष्ट्र का मार्गदर्शन करा पाती लेकिन अपने पति के प्रति उनकी निष्ठा और दायित्व के बोध ने आदेश दे रखा था कि आंखे बन्द करके जियो तो वे आंखे बन्द किये ही जीते चली आ रही थी। अब बची कुन्ती। वो भी अलग-अलग निष्ठाओं से जकडी हुई अकेली है और आशा निराशा के दो राहों पर खडी डूबते निकलते सूरज को देखे जा रही है। स्वयं द्रोणाचार्य के पास एक अपना निजी दर्द है। वो अपने दिल पर अपमान का एक घाव और कन्धे पर मित्रता का शव उठाये श्मशान खोजते फिर रहे हैं। परन्तु आज जिस मोड पर यह कहानी है वहां से अभी तक तो कुरुक्षेत्र दिखाई देता नहीं। अभी तो कौरव और पांडव दोनों ही शस्त्र पूजा करेंगे। दोनों ही साथ-साथ एक ही श्लोक पढेंगे और साथ-साथ ही आचार्य द्रोण से शस्त्र विद्या ग्रहण करेंगे। अभी यह कौरव न तो कुमारों को मालूम है और न ही पांडु कुमारों को कि धागे की चरखी पेचक खुल चुकी है अब धागा तो उलझता ही जायेगा। उन्हे यह भी नहीं पता कि उनके दिलों के रास्ते इसी शस्त्र पूजा से अलग-अलग होनेवाले हैं और फिर ये अलग हुये रास्ते ही कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जाकर मिलेंगे। लेकिन अभी रणभूमि की बात किसलिये करें।

हस्तिनापुर में भीम की हत्या की साजिश, चक्रवाल रसोइये का अपहरण, चिरन्तन की हत्या होनेवाले सभी अन्यायों के बारे में सभी जानते हैं और सह रहे हैं परन्तु इसके विरुद्ध आवाज कोई नहीं उठाता।

कौरवों का और पांचालों का परस्पर वैमनस्य था। परस्पर सम्बन्ध अच्छे नहीं होने से आपस में शत्रुता का भाव था। द्रोणाचार्य भी द्रुपद से अपमान का घूंट पीकर मन में प्रतिशोध की भावना लिये हस्तिनापुर आये। गंगाद्वार का उस पार का भाग पांचालों का काम्पिल्य जाना जाता है तथा इस पाट का भाग कुरुओं का हस्तिनापुर जाना जाता है।

एक समय किसी खुले क्षेत्र में पांडव पुत्र और कौरव धृतराष्ट्र पुत्र सब मिलकर गिल्ली डन्डा का खेल खेल रहे थे। सहसा उनकी वह गिल्ली गेंद की तरह उछल कर पास ही के कुए में गिर पडी। उन बालकों में आपस में विवाद खडा हो गया कि उनकी अपनी असावधानी के कारण गिल्ली कुए में गिर गई। डन्डा मारनेवाले का लक्ष्य तो केवल इतना ही होता है कि गिल्ली दूरतम दूर जाकर गिरे। उस भीड में भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, दुर्योधन, दुशासन, विकर्ण, युयुत्सु तथा अनेक और बालक थे। सभी बच्चे निकालने का प्रयत्न कर रहे थे कि यह गिल्ली कैसे निकाली जाये। उसी समय पीछे से एक ब्राह्मण आये और बोले क्या बात

है ? क्या हुआ ? क्या कोई बालक कुए में गिर गया है। सभी बालकों ने आकर उस ब्राह्मण देव को प्रणाम किया। द्रोण ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। बालकों ने कहा हमारी गिल्ली कुए में गिर गई है और इसे हम निकाल नहीं पाते हैं। द्रोण बोले- तुम राजपुत्र हो तुमसे यह साधारण सी गिल्ली की रक्षा नहीं हो सकती तो तुम लोग इस भूमंडल की रक्षा कैसे कर पाओगे? दुर्योधन ने देखा एक दुर्बल तपस्वी ब्राह्मण, केश श्वेत और क्षीण शरीर व तेज। द्रोण बोले- इसे निकालने में क्या संकट है ? दुर्योधन बोला- गिल्ली और भूमन्डल की बात में बहुत अन्तर है ? कुए में कौन उतरेगा ? क्या गिल्ली स्वयं सीढियां चढ कर ऊपर आ जायेंगे? दुर्योधन अत्यन्त अपमानजनक ढंग से बोला। अर्जुन बोला- क्या हमारी गिल्ली को कुए से निकालने में हमारी मदत करोगे ? द्रोण बोले- यदि तुम इतना भी नहीं कर सकते तो धिक्कार है तुम्हारे शस्त्र ज्ञान को, धिक्कार है तुम्हारे क्षत्रियत्व को।

युधिष्ठिर बोला- हम तो विद्यार्थी हैं। गुरु जितनी विद्या देते है उतनी हम ग्रहण करते हैं और उसका अभ्यास करते हैं। द्रोण को लगा आदर्शों पर चलकर जीवन में अपनी महत्वाकांक्षाये पूरी नहीं की जा सकती।

द्रोणाचार्य के मन में आया व्यवहार के नाम पर अधर्म को स्वीकार नहीं करना चाहिये। कृतघ्नता से बडा कोई पाप नहीं है। पतन की ओर ले जानेवाली महत्वाकांक्षाओं का त्याग करना चाहिये। गुरु का स्वांग करने से तो कोई गुरु की पूजा के योग्य नहीं हो जाता। युधिष्ठिर के चेहरे पर अब भी कोई विकार नहीं आया था। वह सहज भाव से बोला- गुरु की योग्यता परखना हमारा धर्म नहीं है, आप ज्ञानी है सम्भवत: आप हमारे गुरु से अधिक योग्य और समर्थ हो परन्तु इससे हमारे लिये न तो हमारे गुरु की महिमा कम होती है और न ही वे हमारे लिये अपूजनीय हो जाते है। दुर्योधन अत्यन्त खीज कर बोला पहले इनसे यह तो पूछ लो कि गिल्ली कुए से बाहर कैसे निकाली जायेगी, शास्त्रार्थ बाद में करते रहना।

दुर्योधन के बोलने का प्रभाव द्रोण पर अधिक पडा वे सोचने लगे देखो प्रकृति का कितना भेद है इन बालकों में। बार-बार वाग्बाण मारने पर भी युधिष्ठिर और अर्जुन विनयशील हैं, शिष्ट हैं और दूसरी तरफ दुर्योधन और दुशासन की प्रत्येक भंगिमा और प्रत्येक शब्द उदंडता और अवमानना से पूर्ण। यह तो उनका अहंकार ही बोल रहा है।

द्रोण उन बालकों को बोले- अवश्य तुम्हारी मदद करूंगा। तुम लोग पास में से कुछ सरकंडे ले आओ। अर्जुन बोला- जो आज्ञा। गिल्ली कुए के जल में तैर रही थी। बालक ने पास से सरकन्डे लाकर द्रोण को दिये। द्रोण ने एक सरकन्डे को लक्ष्य साध कर कुए में गिल्ली के उपर फेंका। वह सरकन्डा गिल्ली में जाकर खौस दिया। फिर एक-एक करके सरकन्डे द्रोण कुए में फेंकते रहे जो एक दूसरे सिरे से ऊपर जुडते आये और सरकन्डों की रस्सी जैसी लम्बाई से सरकन्डे बन गये। अब द्रोण के हाथ में सरकन्डों की बनी रस्सी हाथ में आ गई और उसे खींचकर बालकों की गिल्ली निकाल दी। बालक अत्यन्त प्रसन्न हुये। राजकुमार आश्चर्य से देख रहे थे जैसे कोई असम्भव कार्य सम्भव होने जा रहा हो। अर्जुन बोला- आप हमें यह सब सिखा देंगे। दुर्योधन बोला- अरे हमें कौनसा रोज-रोज गिल्ली कुए से निकालनी है। हमें तो युद्ध करना है और उसके लिये गदा संचालन की आवश्यकता है। द्रोण बोले- युद्ध में जो व्यक्ति जितनी दूर से आघात कर सके वह उतना ही प्रबल है। इसलिये शस्त्रों से श्रेष्ठ है अस्त्र, अस्त्रों से श्रेष्ठ है दिव्यास्त्र और दिव्यास्त्र से श्रेष्ठ है देवास्त्र। युद्ध विद्या के इतने विकास के बाद भी यदि तुम अपने पुराने तरीके के आदिम शस्त्र से युद्ध करने की बात करोगे तो विधाता भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर पायेंगे। युधिष्ठिर बोला- आर्य आप अपना परिचय दें। द्रोण बोले- जब तुम इस घटना की चर्चा तुम्हारे पितामह भीष्म से करोगे तो वे स्वयं मेरे परिचय को जान जायेंगे। द्रोण वहीं कुए के पास बैठ कर ध्यान करने लगे।

अर्जुन दौडते हुये भीष्म पितामह के पास गया पितामह पितामह कहकर चिल्लाने लगा। भीष्म बोले क्या बात है वत्स। क्या तूने फिर भीम की खीर खा ली क्या ? अर्जुन बोला- नहीं पितामह। भीष्म बोले- पहले तुम मेरी गोदी में बैठो। अर्जुन भीष्म पितामह की गोदी में चढ गया। भीष्म इन बालकों से बडा स्नेह रखते थे। भीष्म बोले- अब बताओ क्या बात है ? क्या फिर

दुर्योधन और भीम में कोई झगडा हो गया ? अर्जुन बोला हम लोग गिल्ली डन्डा खेल रहे थे। हमारी गिल्ली कुए में गिर गई। बहुत प्रयत्न किये पर कोई सफल नहीं हुआ। झगडा तो दुर्योधन और भीम का प्रायत: प्रतिदिन होता ही रहता है। पीछे से किसी ने आवाज दी क्या कोई बालक कुए में गिर गया है ? हमने पलट कर देखा श्वेत वस्त्र धारण किये एक लम्बे चौडे ब्राह्मण खडे थे। हमने कहा हमारी खेलने की गिल्ली कुए में गिर पडी है तो वे बोले राज पुत्रों से एक छोटी सी गिल्ली की रक्षा नहीं कर सके तो तुम भूमंडल की रक्षा क्या करोगे ? फिर उन्होंने सरकन्डे लाने को कहा। हमने सरकन्डे लाकर दिये। फिर उन्होने लक्ष्य साधकर सरकन्डे कुए में उस गिल्ली पर फेंका। सारे सरकन्डे जुडते गये और उन सरकंडों से बनी रस्सी जैसे खींच कर गिल्ली बाहर निकाल दी। भीष्म को ध्यान में आ गया हो न हो ये लक्ष्य संधान करनेवाले अस्त्र-शस्त्र ज्ञाता द्रोण ही होंगे जिनकी इन्हें आशा थी। वे पूछने लगे- अर्जुन वे महापुरुष है कहां ? अर्जुन बोला- हम तो उन्हें वही कुए के पास छोड आये थे। भीष्म बोले- अर्जुन, मुझे उनके पास ले चलो। भीष्म वहां द्रोण के पास आये।

भीष्म ने गुरुवर द्रोण को प्रणाम किया और बोले- आपके आने से हस्तिनापुर के भाग्य जाग उठे गुरुवर। द्रोण बोले- क्या प्रणाम केवल नरेश की ओर से है गंगा पुत्र। क्या भार्गव शिष्य भीष्म को मेरा आना ... भीष्म बोले- मेरा यह कर्तव्य था कि पहले मैं अपने नरेश की ओर से आपका स्वागत करूं। द्रोण बोले- यदि वह यह कहते कि द्रोण को हस्तिनापुर मत आने दो तब आप क्या करते गंगापुत्र भीष्म ? भीष्म बोले- इन प्रश्नों का उत्तर तो आप स्वयं जानते ही है आचार्य। द्रोण बोले- द्रोण के हृदय में आपका स्वागत है गंगापुत्र भीष्म। मेरे बहनोई कृपाचार्य कैसे हैं। भीष्म बोले- क्या आपकी उनसे भेंट नहीं हुई वो तो आपको और कृपी को दोनों को लाने के लिये ही गये हुये थे। द्रोण बोले- यहां लाने के लिये क्यों ? भीष्म ने कहा- गुरु होने के नाते उनके दायित्व और भी अधिक बढ गये है और इसी कारण से कौरव राजकुमारों की शिक्षा पर पूरा ध्यान नहीं दे पा रहे है। उन्होने ही यह प्रस्ताव दिया कि इस कार्य के लिये आपको आमंत्रित कर लिया जाये तो बहुत उचित होगा। मुझे इस बात की आशा है कि आप इन राजकुमारों का गुरुपद स्वीकार करके कुरु राज घराने का मान बढाये।

द्रोण बोले- गंगापुत्र आप मुझसे क्या चाहते हैं ? पितामह भीष्म ने कहा- अब आप अपने धनुष से डोरी उतार ही दीजिये और राजाश्रय में रहकर कुरु राजकुमारों को धनुर्वेद और अस्त्रों की शिक्षा दें। कौरवों का धन, वैभव और राज्य आपका ही है समझे। हम सब आपके आज्ञाकारी शिष्य हैं। आपका शुभ आगमन हमारे लिये अहो भाग्य है।

द्रोण बोले- गंगा पुत्र मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूं। लेकिन वर्तमान गुरुकुल राजकुमारों को युद्ध विद्या सिखाने के लिये पर्याप्त नहीं है। तो मुझे गंगा तट पर युद्ध शाला स्थापित करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। युद्ध शाला को राज्य का अनुदान मिलता रहे किन्तु मैं राज कर्मचारी नहीं जाना जाऊं। युद्ध शाला के प्रधान के रूप में सारे निर्णय लेने का स्वतन्त्र रूप से मेरा अधिकार हो। ऐसा अधिकार गुरुकुल के अधिपति का होता है। राजा को भी उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा।

भीष्म बोले- स्वतन्त्रता तो आत्मनिर्भरता का दूसरा नाम है। प्रकृति ने तो अपने विधान के अन्तर्गत सबको ही पूर्ण स्वतन्त्रता दी है। हम ही अपनी अकर्मण्यता, लोभ, भय तथा अहंकार से अपनी स्वतन्त्रता से क्रमश: वंचित हो जाते है। वैसे कौरव अपने गुरुओं का भली भांति सम्मान करना जानते हैं और हम जिनका सम्मान करते है उसे वंचित नहीं रहने देते आचार्य।

द्रोण बोले- गंगा पुत्र कि मैं अपनी सीमाओं में आत्मनिर्भर रहूंगा। संशय ग्रस्त मन सदा भीरू भी होता है और आशंकित भी। क्या महाराज धृतराष्ट्र गंगा पुत्रों के दिये गये वचनों का पालन करेंगे ? भीष्म बोले- इस विषय में दिये गये सारे वचन उन्हे मान्य होंगे। आजतक इन कुमारों की शिक्षा दीक्षा का पूरा दायित्व मेरा रहा है। धृतराष्ट्र को तो इन बातों में न तो कोई रूचि है और न ही उसके पास समय है। मेरी गुरुदक्षिणा के विषय में तो राज शक्ति कोई बीच में बाधा नहीं खडा करेगी। उस समय कोई राजनीतिक कारण तो बीच में नहीं आयेंगे न ? द्रोण ने पूछा। भीष्म बोले- नहीं आचार्य। गुरु दक्षिणा तो गुरु की इच्छा तथा शिष्य की क्षमता

पर निर्भर करेगी आचार्य। द्रोण बोले- तो आप अपने वचन को स्मरण रखे। भीष्म बोल उठे भीष्म के वचन को सारा संसार स्मरण रखता है आप निश्चिन्त रहे। द्रोण बोले- तो कल से मैं अपना कार्य आरम्भ करूंगा। द्रोण की आंखे वर्तमान को चीर कर भविष्य में झांक रही थी जहां उनके सपने अब आकार ग्रहण करने लगे। उनकी इच्छायें घटनाओं में परिणित होने लगी।

शकुनि को द्रोणाचार्य के हस्तिनापुर में आने की खबर लगी। उसे द्रोणाचार्य का आना अच्छा नहीं लगा। वह दुर्योधन को लेकर गुरु द्रोण के पास आया जहां अर्जुन, भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य बात कर रहे थे। शकुनि ने आकर द्रोणाचार्य को प्रणाम किया और बोले- आचार्य को गान्धार कुमार शकुनि का प्रणाम और यह एक तुच्छ भेंट स्वीकार करें। एक थैली में स्वर्ण मुद्रायें भरी हुई दुर्योधन के पास थी उसे आचार्य को उपहार स्वरूप भेंट देने के लिये दुर्योधन से कहा। दुर्योधन ने वह थैली उपहार में द्रोणाचार्य के चरणों में अर्पित कर दी। शकुनि बोला- इसमें कुछ स्वर्ण मुद्रायें है आचार्य वर। द्रोण ने इसे अस्वीकार कर दिया और बोले- गुरु दक्षिणा तो मैं शिक्षा के पश्चात लूंगा गान्धार कुमार। शकुनि बोला- क्षमा चाहता हूं गुरुदेव इस धृष्टता की। भीष्म पितामह को शकुनि के इस कृत्य पर क्रोध आया और वे आवेश में बोले- गान्धार कुमार शिक्षा कभी स्वर्ण मुद्राओं से नहीं तौली जाती। गुरु और शिष्य में तो भक्त और भगवान का सम्बन्ध होना चाहिये। श्रद्धा पर परस्पर विश्वास पर ही यह नाता टिका रहता है और ऐसी ही गुरु शिष्य परम्परा कुरुवंश को प्राप्त हुई है। सत्वगुण की अधिकता से ही विद्या, बुद्धि, वैभव की इस वंश में वृद्धि हुई है तब फिर ऐसी गलती भूल कभी मत करना। ऐसे शब्दों में पितामह भीष्म ने सबके सामने शकुनि से कहा। शकुनि को भी यह अपमानजनक लगा। पर वह चुपचाप सुनकर सहन करता रहा क्योंकि वह स्वयं गलती पर था।

गुरु गुरुकुल के प्रमुख विद्या में निधान, सदगुरु को ही सुलभ है सब गुण की पहचान।

कौरव और पांडु द्रोण के आश्रम में शस्त्र पूजा करने लगे। भीष्म भी वहां आये बालकों की शिक्षा दीक्षा देखने।

विदुर भीष्म के पास आये और चरणस्पर्श कर प्रणाम किया। भीष्म ने आशीर्वाद दिया और बोले- बहुत दिनों के पश्चात आये हो विदुर कैसे हो ? विदुर बोले- आपकी कृपा है तातश्री। गृहस्थ जीवन के जंजाल में फंसा हुआ हूं उसी से बन्धा हुआ हूं। भीष्म हंसे और बोले क्या गृहस्थी जंजाल है ? और भी उसीसे इतना प्यार करते हो ? जंजाल में इतनी आसक्ति कोई विवेक का लक्षण तो नहीं है विदुर। विदुर भी हंस पडे और बोले तातश्री यही तो प्रकृति की माया है। कई जंजाल उसने इतने मोहक बनाये है और हम यह जानते हुये भी कि ये जंजाल है फिर भी अपने मोह को जीत नहीं पाते। भीष्म बोले- मुझे ही देखो वत्स मैं तुम्हारे समान गृहस्थ नहीं हूं फिर भी मैं न जंजालों से मुक्त हूं और न ही अपने मोह को जीत पाया हूं। विदुर बोले- नहीं तातश्री आपको यह गृहस्थी का मोह नहीं है यह तो आपकी तपस्या है। यदि आपने अपना यह दायित्व अपनी साधना के रूप में न अपनाया होता तो न जाने इस कुरुवंश का क्या होता ? भीष्म बोले हां विदुर मैं भी यहीं सोचता हूं कि यह मेरा दायित्व है और यदि मैं इसे पूरा नहीं करूंगा तो अनर्थ हो जाने की सम्भावना है। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि मेरा दायित्व पूर्ण हो तो मैं मुक्त होकर चैन की सांस लूं। मैंने यह बात तात द्वैपायन व्यास से भी कही थी कि मुझे यह चिन्ता है कि यदि कहीं अकस्मात ही मुझे कुछ हो गया तो इन छोटे-छोटे बालकों का क्या होगा तो व्यास ने कहा क्या आप इन बालकों का पालन पोषण कर रहे हैं ? मैंने बहुत सोचा कि यदि विधाता की इच्छा न हो तो किसी के लिये कोई क्या कर सकता है। मेरे रहते हुये मेरी ही आंखों के सामने मेरे पिताश्री शान्तनु महाराज, चित्रांगद और विचित्रवीर्य, पांडु चला गया और मैं क्या कर सका ? और यदि विधाता नहीं चाहेगा तो मैं इन बालकों के लिये भी क्या कर सकूंगा ? मुझ अविवाहित को माता सत्यवती ने यह इतनी बडी गृहस्थी इसलिये नहीं सौंपी गई कि इसके सहारे से अपना जीवन यापन करूं। कदाचित मैं अब इस परिवार के लिये आवश्यक नहीं हूं। हो सकता है यह परिवार मेरे लिये आवश्यक हो गया है। देखो विधाता भी कैसी-कैसी घटनायें गढता है विदुर। मेरा अहंकार मुझे कह रहा है जैसे इन सबका पालन-पोषण मैं कर रहा हूं। परिस्थितियों से बाध्य होकर परिवार का बोझ उठा रहा हूं। व्यक्ति समझता है कि वह दूसरों के लिये इतना त्याग और श्रम कर रहा

है जबकि वास्तविकता यह है कि दूसरे लोग उसे यश देने के लिये अपना त्याग कर रहे हैं। विदुर बोला- तातश्री यह तो आपकी उदारता और महानता है। हम सबने तो आपसे वात्सल्य पाया है। आपने सब के लिये अपने सुखों का त्याग कर कष्ट उठाया है। मैंने सुना है कौरव राजकुमारों की शिक्षा के लिये आपने द्रोण को उनका आचार्य नियुक्त किया है।

भीष्म बोले- हां विदुर यह तो हमारा सौभाग्य जो द्रोण जैसा युद्ध विशारद स्वेच्छा से हस्तिनापुर में आ उपस्थित हुआ। तुम लोगों के समय तो किसी महान युद्ध विशारद गुरु की आवश्यकता नहीं पडी। तुम्हारी स्वयं तो कोई युद्ध में रूचि है ही नहीं। पांडु कठोर श्रम करने में असमर्थ था तथा धृतराष्ट्र दृष्टिहीन है। लेकिन धृतराष्ट्र और पांडु पुत्रों के लिये जब भी मैंने योग्य गुरु के बारे में सोचा तो मेरी समझ में दो ही आचार्य आये एक तो ऋषिवर सांदीपन और दूसरे गुरु द्रोणाचार्य। सान्दीपन तो यादव वंश के कुमारों की शिक्षा दीक्षा में लग गये। किसी की भी प्रवृति कौरवों की ओर नहीं थी। आचार्य द्रोण काम्पिल्य छोडकर हस्तिनापुर आ जायेंगे, वे पांचालों को त्यागकर कौरवों को स्वीकार कर लेंगे इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। तो मैंने तत्काल निर्णय लिया कि यदि आचार्य के मन में कोई दुर्भाव नहीं है तो उन्हें कौरव राजकुमारों को आचार्य के रूप में नियुक्त कर दूं। विदुर बोले- यह तो आपने उचित ही किया तातश्री फिर भी मेरे मन में आशंका है कि जिन परिस्थितियों में द्रोण हस्तिनापुर आये है उससे लगता है कि द्रुपद के प्रति अपने द्वेष और प्रतिरोध के कारण वे यहां आये है। यदि यही है तो उस व्यक्ति को अपने बालकों के आचार्य के रूप में नियुक्त करना क्या उचित है ? उसके मन में सब के लिये सद्भावना न होकर मात्र प्रतिहिंसा और प्रतिरोध है। इससे बालकों पर प्रतिकूल असर पड सकता है।

भीष्म बोले- ऐसा क्यों सोचते हो विदुर ? उस व्यक्ति के मन में किसी के प्रति बैर, विरोध और प्रतिहिंसा है वह हमारा मित्र नहीं है इसलिये उससे हमारी कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है। द्रोण युद्ध विद्या का आचार्य है और उसमें अपने शिष्यों को श्रेष्ठ योद्धा बनाने की अद्भुत क्षमता है। हमें तो उसके गुणों का लाभ उठाना है।

विदुर बोले- तातश्री मैं तो समझता हूं कि गुरु होने योग्य तो वहीं व्यक्ति है जो आकाश के समान उदार और धरती के समान सहनशील हो जिसका मन तनिक भी संकुचित न हो। जो किसी व्यक्ति, जाति अथवा राज्य के नाम पर मानवता का विभाजन न करता हो। जिसके मन में व्यक्तिगत हानि लाभ भी न आती हो। भीष्म बोले- तुम्हारा कहना ठीक है विदुर पर हमें तो द्रोण से उसकी विद्या चाहिये उसके भाव नहीं। तुम इस समय सैद्धान्तिक विचार कर रहे हो। कुरुवंश का हित इसी में है कि हमारे बालक वीर यौद्धा बने ताकि भविष्य में वे अपने शत्रुओं को पराजित कर सकें, अपनी प्रजा और अपने राज्य की रक्षा कर सकें। यदि इस समय मैं अवसर का लाभ नहीं उठाऊं और द्रोण की योग्यता का उपयोग नहीं करूं तो आनेवाली पीढी मुझे धिक्कारेगी। विदुर समझ गये की भीष्म स्वार्थ की बात सोच रहे हैं धर्म की नहीं। स्वार्थ कभी भी किसी का धर्म नहीं हो सकता। धर्म तो मानवीय न्याय का दूसरा नाम हैं। और स्वार्थ मानवीय न्याय को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। विदुर बोला- तातश्री क्या व्यापक मानवीय हित में व्यक्ति को अपना हित नहीं खोजना चाहिये ? यदि पूर्ण का हित होगा तो अंश का भी स्वत: ही हित होता है। अंशी का धर्म ही अंश का धर्म है। जब जब भी हमने अपने स्वार्थ के लिये व्यक्ति, परिवार अथवा जाति के हित की बात सोची है हमने मानवता का अहित ही किया है। मनुष्य एक व्यक्ति तो है ही किन्तु वह सृष्टि की बहुत बडी इकाई का अंग भी है। उसे व्यक्ति के धरातल पर नहीं बल्कि सृष्टि की उस इकाई के अंग के रूप में जीना चाहिये। मनुष्य को अपना विस्तार करना चाहिये न कि संकोच। भीष्म बोले- विदुर तुम तो ऋषियों जैसे उपदेश दे रहे हो, राजनीतिज्ञों जैसे नहीं। जिसने राजनीति के क्षेत्र में अवसर का लाभ नहीं उठाया वह राजनीति के क्षेत्र में सदा ही हारेगा। विदुर बोले- तातश्री मुझे लगता है कि राजनीति को हम शिक्षा से दूर ही रखें तो उचित है। यदि राजनैतिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को, सिद्धि को दृष्टि में रख कर हम गुरुओं, शिक्षक और आचार्यों की नियुक्ति करेंगे तो गुरुकुलों और शिक्षालयों में ज्ञान की उपासना स्थगित हो जायेगी। आचार्य ही यदि शिक्षण संस्थानों के

लिये अपना जीवन समर्पित करने के स्थान पर अपने स्वार्थ साधन का हित साधने के लिये माध्यम बनायेंगे तो हमारी भावी पीढियां वास्तविक शिक्षा से वंचित रह जायेगी। भीष्म बोले- तुम ठीक कहते हो विदुर मैं तुमसे पूर्णतया सहमत हूं परन्तु मैं ऐसी परिस्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं होने दूंगा कि युद्धाचार्य द्रोण वापिस पांचाल लौट जाये।

शकुनि धृतराष्ट्र के कक्ष में आया। धृतराष्ट्र बोले- इतने व्याकुल किस लिये लग रहे हो भ्राताश्री शकुनि ? शकुनि बोला- अब आपसे क्या कहूं ? आप तो देख नहीं सकते। गान्धारी ने आँखों पर पट्टी बांध रखी है। मेरे अतिरिक्त आपके और आपके परिवार के हित में विचार करनेवाला मेरे सिवा भी तो और कोई नहीं। धृतराष्ट्र बोला- परन्तु हुआ क्या ? शकुनि बोला- द्रोणाचार्य के आने ने मुझे चिन्ता में डाल दिया है। जो ब्राह्मण शस्त्रधारी हो उसपर तो कभी विश्वास करना ही नहीं चाहिये परन्तु यहां तो शस्त्रधारी ब्राह्मणों का जमघट हो गया है। पहले कृपाचार्य थे और अब द्रोणाचार्य भी आ धमके। यह चाल तो आपके तातश्री भीष्म की है कि द्रोणाचार्य के गुरु बनने पर कोई अंगुली उठा ही नहीं सकता। मुझे तो दुर्योधन की चिन्ता खाये जा रही है और एक आप है जो इस विषय पर विचार करने को तैयार नहीं है जीजाश्री। धृतराष्ट्र बोले- तुम्ही बताओ मैं क्या करूं शकुनि। मैं तो किसी के सहारे बिना चल नहीं सकता। शकुनि बोला- मैं जो हूं ना। अब से आप गान्धारी की अंगुली बिल्कुल पकड कर चलना छोड दें क्योंकि शिव भक्ति और राजनीति की डगर बिल्कुल अलग-अलग है जीजाश्री। गान्धारी मेरी सगी बहन है उसीके लिये तो मैं गान्धार की राजगद्दी छोडकर यहां पडा हुआ हूं। उसे तो अपने पराये की बिल्कुल भी समझ नहीं है। जब देखो सारे दिन कुन्ती- कुन्ती ही करती रहती है। अब यहां गान्धारी और उधर द्रोण। ना जाने अब मैं इन दोनों से दुर्योधन को कैसे बचा पाऊंगा? मेरी तो केवल एक ही चिन्ता है कि एक बार दुर्योधन का राज्याभिषेक हो जाये तो मैं गान्धार वापिस लौट जाऊंगा। धृतराष्ट्र बोला- गान्धारी महारानी है। कुन्ती और पांडु पुत्रों का ध्यान रखना उसका कर्तव्य है। शकुनि बोला- लेकिन वो एक मां भी है अपने पुत्रों के अधिकारों की रक्षा करना भी उसका कर्तव्य है जीजाश्री। धृतराष्ट्र बोले- परन्तु गान्धारी अपने पुत्रों की शत्रु तो नहीं है भ्राताश्री शकुनि। शकुनि बोला- मित्रता और शत्रुता के बीच की रेखा बडी ही पतली है। कभी-कभी मित्र भी यह नहीं जान पाता कि उसने यह रेखा कब पार कर ली। धृतराष्ट्र बोले- लेकिन द्रोणाचार्य के गुरु होने में क्या आपत्ति है ? क्या तुम यह सोचते हो कि ये एक शिष्य को कम और दूसरे को अधिक ज्ञान देंगे। शकुनि बोला- यही तो है। अर्जुन का भोलापन उन्हे अवश्य मोह लेगा। अर्जुन से बचाव का तो केवल एक ही उपाय है यदि अश्वत्थामा यहां आ जाये।

अश्वत्थामा और कृपाचार्य रथ में द्रोण के गुरुकुल में आ रहे हैं। अश्वत्थामा कृपाचार्य से कहते हैं कि मातुल आप तो कहा करते हैं पिताजी अत्यन्त शूरवीर है और सम्पूर्ण शस्त्रों के ज्ञाता है उनके समान शस्त्र ज्ञाता पूरे आर्यावर्त में नहीं है। कहीं आप उनकी प्रशंसा के लिये तो ऐसा नहीं कहते। वे कह रहे थे कि वे एक बहुत बडे आचार्य नियुक्त हुये हैं। वे साधारण क्षत्रिय कुमारों को महायोद्धा बनायेंगे। आर्यावर्त में उनकी अनुमति के बिना किसी राजा का अभिषेक नहीं हो सकेगा। कृपाचार्य बोले- बहुत महत्वाकांक्षी है तुम्हारे पिता। अश्वत्थामा बोला- वे कह रहे थे कि अब हमारे कष्ट के दिन व्यतीत हो गये। कृपाचार्य बोले- क्या तुम्हे उनकी इन बातों में सन्देह है क्या ? अश्वत्थामा बोला- सन्देह मैं न तो पिताजी की बातों में करता हूं और न ही आपकी बातों में। लेकिन पिताजी यदि इतने ही वीर हैं तो वे द्रुपद से अपमानित होकर क्यों चले आये? वहां पर अपनी धनुर्विद्या का प्रदर्शन प्रयोग क्यों नहीं किया ? कृपाचार्य बोले सम्भवत: उन्हे लगा हो वह एकांकी है। शत्रुओं से घिरे हुये हैं। फिर भी युद्ध तो अभ्यास की वस्तु है। व्यक्ति को युद्ध करना सीखना भी पडता है। तुम्हारे पिता आचार्य द्रोण संसार में किसी से भी भयभीत नहीं है। वे चाहे तो अकेले बिना किसी की सहायता के सम्पूर्ण संसार की सेनाओं को पराजित कर ध्वस्त कर सकते हैं।

अश्वत्थामा ने कृपाचार्य (अपने मामा) से पूछा एक गुरु के लिये शिष्य का अधिक महत्व होता है या पिता के लिये पुत्र का। कृपाचार्य बोले- यह तुम्हारा प्रश्न ही स्पष्ट और ठीक नहीं है वत्स। जीवन के लिये जल और वायु दोनों का भी महत्व है। न पुत्र

के बिना पिता का जीवन सम्भव होता है और न ही शिष्य का बिना गुरु के। जीवन का अर्थ कोई अर्थ ही है। सूर्य निकले और उसकी धूप लेनेवाला ही कोई न हो तो सूर्य निकलने का अर्थ ही क्या है ? उसकी क्या आवश्यकता है ? यदि वर्षा हो और धरती उसके मोती समेटने में अपना आंचल ही नहीं पसारे तो मेघ का परिश्रम अकारण ही गया। जैसे पुत्र पिता की पहचान होता है वैसे ही शिष्य गुरु की पहचान होता है। परन्तु पुत्र और शिष्य में एक अन्तर अवश्य होता है। पुत्र पिता का ही नहीं होता माता का भी होता है। उसका प्रेम और निष्ठा माता और पिता दोनों के बीच में होती है। परन्तु शिष्य केवल गुरु का होता है। परन्तु तुमने यह प्रश्न क्यों किया ? अश्वत्थामा बोला- मुझे यह निर्णय लेना है मामाश्री कि मैं पुत्र बनूं या शिष्य। कृपाचार्य बोले- ज्ञान कोई पैतृक सम्पति तो है नहीं कि पिता से पुत्र की ओर चली जाये जबकि ज्ञान तो लेना पडता है और उसे जो ले उसपर उसी का अधिकार होता है। अश्वत्थामा बोला- तब तो मैं पिताश्री का शिष्य ही बनूंगा। वे दोनों द्रोण के गुरुकुल में आते हैं। द्रोण कौरव बालकों को शिक्षा दे रहे होते हैं। उन्हे शस्त्र विद्या सिखा रहे हैं आदान, बन्धान, सन्धान और उत्साण। सर्वप्रथम द्रोणाचार्य ने राज पुत्रों को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराया। सदा गुरु के चरणों में रहो। सदा पवित्र कामना, निश्चय और सत्य न्याय का अनुसरण करो। विनम्र रहो। सहकार्य से रणभूमि में लडना यह ध्यान रखना। स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्र के हित की रक्षा करना दायित्व है। अपने विहित कर्मों से धर्माचरण का कठोरता से पालन करना। इस तरह राजकुमारों को कर्तव्य समझा कर शस्त्र पूजा करा कर गुरु द्रोणाचार्य ने राजकुमारों की शिक्षा प्रारम्भ की।

द्रोण सभी शिष्यों को लक्ष्यभेद का निशाना मारने का पाठ पढा रहे हैं। अर्जुन का लक्ष्य अमोघ था उसने निशाने पर सही तीर मारा। द्रोण ने सबसे पूछा यह बाण किसका है ? अर्जुन बोला- गुरुदेव मेरा है। द्रोणाचार्य ने पूछा क्षत्रिय धर्म की क्या परिभाषा है वत्स ? अर्जुन ने कहा अन्याय और अत्याचार से पीडित दीन दुखी की पुकार सुनते ही शस्त्र उठाना शस्त्र धर्म का उद्देश्य है। द्रोणाचार्य बोले- राजपुत्र धर्म क्या है। अर्जुन बोले- अपने प्राणों से प्रजा के अधिकारों का मूल्य चुकाना और उसकी रक्षा करना ही राजपुत्र का धर्म है गुरुदेव। द्रोण ने पूछा और तुम्हारी पहचान क्या है अर्जुन ? अर्जुन बोले- मेरी केवल एक ही पहचान है गुरुदेव की मैं आपका शिष्य हूं।

अश्वत्थामा कृपाचार्य के साथ आते हैं और द्रोणाचार्य का चरण स्पर्श करते हैं। द्रोण ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। द्रोण कृपाचार्य से बोले- इसे लाकर आपने मुझे अपना ऋणी बना दिया है। अश्वत्थामा बोला- माताश्री भी आई हैं। द्रोणाचार्य बोले- अभी कृपी से मिलने का समय नहीं आया है कृपाचार्य। मेरी छाती में व्यंग का एक त्रिशूल गडा हुआ है। मैं उसके घाव के भर जाने के पश्चात ही कृपी के पास जाऊंगा। द्रोण अश्वत्थामा को गले से लगाते हुये बोले आओ पुत्र मैं तुम्हारी शिक्षा की ओर से बहुत चिंतित हो रहा था। दुर्योधन ने देखा और बोला- यह युवक कौन है ? दुशासन बोला- आचार्य ने उसे अपनी बाहों में ले रखा है। जैसे पिताश्री आपको लेते है। हो न हो यह आचार्य का पुत्र ही है। दुर्योधन बोला- तब तो उसके साथ मित्रता करनी ही चाहिये।

कृपाचार्य अपने घर आये। अश्वत्थामा को द्रोण के आश्रम में छोड आये। कृपाचार्य कृपी से बोले- तुम्हें कुछ तो पता होगा ही आचार्य ने अश्वत्थामा से यह क्यों कहा कि अभी तुमसे मिलने का समय नहीं आया है और फिर बोले मेरी छाती में व्यंग का त्रिशूल गडा हुआ है। उनकी छाती में व्यंग का त्रिशूल किसने गाडा ? और द्रोण जैसा धनुर्धर यह घाव खाने के पश्चात फिर लौटकर कैसे आ गया ? कृपी बोली यदि यह बात मैं जानती तो ये मैं आपसे छिपाती क्यों ? कृपाचार्य बोले- सोचो कृपी किसी शूरवीर या सिंह का घायल रहना ठीक नहीं है। अश्वत्थामा तुम्हारा इकलौता पुत्र है और मैं नहीं चाहता कि वह पिता के घाव का उत्तराधिकारी बने। इसे सोचो याद करो क्योंकि कोई साधारण बाण द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का कवच नहीं हो सकता। उनकी पीडा का सारा रहस्य तो मैं भी नहीं जानती भैया कृपी बोली। पर इतना ही जानती हूं कि द्रुपद के यहां से वे सीधे हस्तिनापुर ही

आये हैं। द्रोणाचार्य में पत्नी के प्रति उनका प्रेम भी बहु संतुलित और मर्यादित है जैसा कि जीवन में किसी भी उपयोगी वस्तु के लिये होता है। पत्नी में उनकी आसक्ति नहीं है जितनी कि धनुर्वेद में है। आचार्य ने कभी आश्रम की स्थापना नहीं की। कभी सामान्य अर्थों में शिष्य स्वीकार नहीं किये। तुम्हे विश्वास भी नहीं होगा कि दूध के लिये हमारे पास कभी एक गाय भी नहीं रही। मेरे पुत्र अश्वत्थामा ने कभी दूध गो रस भी नहीं पिया। जिस समय आचार्य ब्रह्मचारी थे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उसी समय पांचाल नरेश पृषत के पुत्र द्रुपद भी आचार्य के साथ साथ धनुर्विद्या सीख रहे थे। दोनों में बडी ही गाढी मित्रता थी। शिक्षा समाप्ति के बाद द्रुपद जब विदा लेने आये तो वे बडे प्रेम से बोले कि मुझे सदा अपना ही समझना। मुझे भूला न देना। जो आज मेरे पास है वह तुम्हारा ही है और कल जो होगा वह भी तुम्हारा ही होगा। जब मैं राजा हो जाऊंगा तब तुम मेरे साथ रहना। मैं सत्य शपथ से कहता हूं मेरा राज्य, सम्पत्ति और सुख सब तुम्हारे अधीन होगा। उनकी इस प्रतिज्ञा को स्मरण कर आचार्य सदा ही प्रसन्न व प्रफुल्लित रहा करते थे उन्हे द्रुपद पर अत्यधिक विश्वास था कि द्रुपद मेरे घनिष्ठ मित्र है। यह मानकर ब्राह्मण का काम विद्यादान का है उन्होने कभी भी उसके प्रतिदान में कभी धन अथवा सम्पदा कभी स्वीकार नहीं की। वे सदा अभाव में ही जीते रहे। आचार्य तो अधिक ज्ञान अर्जित करने के लिये अपनी विद्या में और अधिक वृद्धि करने हेतु अपनी तपस्या में अधिक लीन रहकर एक से दूसरे आश्रमों में घूमते रहे और ऋषियों की सेवा करते रहे, अधिक से अधिक आत्मलीन रहने लगे। उनका विवाह मेरे साथ हुआ और उसके पश्चात सूर्य के समान यह तेजस्वी बालक अश्वत्थामा का जन्म हुआ। हम लोग निर्धन तो थे ही। मैं और मेरा पुत्र अश्वत्थामा अभाव में जी रहे थे। हमारी कठिनाइयां बढती जा रही थी। आचार्य तो स्वभाव से खुद्दार थे ही उन्होंने कभी भी किसी के आगे अपना हाथ नहीं पसारा। आचार्य मुझे समझाते रहे कि ब्राह्मण को सदैव सन्तोषी होना चाहिये उसे धन की कामना नहीं करनी चाहिये। पत्नी में उनकी आसक्ति हो या न हो परन्तु पुत्र में उनकी भरपूर आसक्ति थी।

अश्वत्थामा जब ३-४ वर्ष का था एक दिन मित्रों के बहकावे में आकर दूध पीने की हठ करने लगा। हमारे पास तो एक भी गाय नहीं थी तो मैं उसे दूध पिलाती कहां से। अश्वत्थामा को जब कभी भावना का उन्माद हो जाय तो वह आपे में नहीं रहता। मैं दूध कहां से लाती। एक आधदिन की बात होती तो मैं कहीं से न कहीं से मांग लाती। मेरा दारिद्र्य एक आध दिन में मिटने वाली स्थिति में नहीं था। मैं अपने पुत्र की इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकती थी लेकिन उसकी बालबुद्धि को भ्रमित तो कर सकती थी। मैंने एक कटोरे में जल लेकर उसमें आटा घोलकर उसे यह कह दिया ले यह है दूध और पी ले इसको। इस प्रकार दूध का कटोरा पाकर अश्वत्थामा मुस्कुरा रहा था और मेरा मन भीतर से रो रहा था कि मैं मेरे इस अबोध बालक के साथ छल कर रही हूं। वह तो उसी आटे के घोल को चख चख कर मग्न हो रहा था और प्रशंसा कर रहा था तथा अपने भाग्य पर इठला रहा था। कोई सोच भी नहीं सकता कि आचार्य द्रोण अपनी विद्या और ज्ञान के इतने धनी होते हुये भी अर्थ के इतने निर्धन। स्वेच्छा से स्वीकार की गई निर्धनता से भी अधिक निर्धन, दरिद्र और कंगाल।

आचार्य तनिक से प्रयत्न भर अपने सामर्थ्य के अहंकार को भूलकर कुछ शब्द कहने मात्र से आवश्यकता भर धन प्राप्त कर सकते थे परन्तु उन्होंने कभी ऐसा किया नहीं। जिस सरस्वती के चरणों में वे दिन रात पडे रहते है उससे प्रतिस्पर्धा रखनेवाली लक्ष्मी स्वत: चल कर नहीं आती। अश्वत्थामा बाहर खेलने गया और वही पानी में मिला आटा दूध बना मित्रों को बताने लगा कि मैं दूध पी रहा हूं। फिर बालकों ने पूछ ही लिया क्या तेरे घर में गाय है ? अश्वत्थामा बोला- नहीं गाय तो नहीं है तब मित्र बालकों ने कहा तो फिर दूध तेरे घर में किसी वृक्ष से टपकता है ? और उस पर हंसने लगे। अश्वत्थामा चिढकर रोते हुये घर में आया। मैं अपनी कुटिया में बैठी यह सब देख रही थी पर अपने पुत्र की पीडा और उसका अपमान मुझसे देखा नहीं जा रहा था। मेरे बच्चे को इस अपमान जनक स्थिति में पहुंचानेवाली माता मैं ही हूं और यह कहकर कृपी जोर जोर से रोने लगी। कृपाचार्य

ने ढाढस बन्धाया नहीं कृपी मन छोटा मत करो फिर क्या हुआ।

कृपी बोली- थोडी ही देर में आचार्य घर लौटे। उन्होंने अपने पुत्र का पीडित और अपमानित चेहरा देखा। घर में दूध था ही नहीं यह बात तो आचार्य स्वयं भी जानते थे। आचार्य अपमान का घूंट पीकर निस्तेज ही नहीं अचेत से हो रहे थे। मन में गहरा घाव लग गया। कुटिया में आकर चुपचाच बैठे चिन्ता में व्याकुल थे। उन्हे चिंतित देखकर मैं उनके पास जा बैठी और पूछा क्या सोच रहे है ? आचार्य बोले- सोच रहा हूं कि हमने तो रूखी सुखी खाकर अपनी जिन्दगी काट ली तो क्या थाली में रखा यही जीवन क्या अपने पुत्र को भी देंगे ? मैंने कहा निराश मत हो आचार्य। यदि नारायण की यही इच्छा है तो यही सही। और फिर हर पिता अपने पुत्र को राज सिंहासन तो नहीं दे सकता। उस दिन उन्होंने राजा द्रुपद के दिये वचन की बात मुझे बताई। मैंने उनसे कहा गुरुकुल में दिया वचन राजा को अब क्या याद रहेगा अब तो भूल भाल गये होंगे तो उन्होने कहा कृपी तू द्रुपद को नहीं पहचानती। वे बोले- अब से मेरा पुत्र कभी पानी में घोला हुआ आटा दूध समझ कर नहीं पियेगा कृपी और पियेगा निखालस शुद्ध दूध ही। उनके मन में क्या था पता नहीं मेरा मन कांपने लगा।

उसके पश्चात आचार्य अपने आप में गुरु हो गये जाने क्या सोचते रहे ? उनकी सारी सारी एकाग्रता नष्ट हो गई ? रात को ठीक से सो भी नहीं पाते थे। मैंने उन्हे चिंतित देख कर पूछ लिया कि आप किस बात की चिन्ता कर रहे हैं। आचार्य बोले- चिन्ता नहीं पश्चाताप कर रहा हूं। मैंने कहा मेरी दृष्टि में तो आज तक कोई पाप किया नहीं फिर कैसा पश्चाताप। आचार्य बोले- देवी तुम्हारी दृष्टि में तो यह पाप नहीं है किन्तु पाप का फल तो अपने मुख से बोल रहा है कि मेरा परिवार भूखा और कंगाल है। क्या यह मेरे पाप का फल नहीं है ? मैंने कहा इसमें पाप की क्या बात है ? आपने धनार्जन नहीं किया। आचार्य दु:खी मन से बोले मैंने लक्ष्मी का अपमान किया है। मुझे विधाता ने जो विद्या दी है उससे बहुत कम में लोग धनी, शूरवीर और चक्रवर्ती बने हुये है और मैं उस विद्या को सिर्फ संचित मात्र कर रहा हूं और नि:शुल्क वितरित कर रहा हूं मैंने उस विद्या का व्यापार भी नहीं किया। संसार में रहकर सांसारिक बना रहना नहीं चाहता तो फिर ये क्या पाप नहीं है ? यह उस विद्या का अपमान है, उस लक्ष्मी का भी। अब मैं यह पाप और नहीं करना चाहता। अपने बच्चे की यह दुर्दशा देख कर आचार्य के मन में बडा क्षोभ हुआ और कहने लगे धिक्कार है मेरे इस दरिद्र के जीवन को और उनके धैर्य का बान्ध टूट गया। मैंने पूछा क्या करेंगे आप ? आचार्य बोले- यह तो मैं स्वयं नहीं जानता किन्तु लक्ष्मी की उपेक्षा का अब और पाप नहीं करूंगा।

मैं कुछ दिन तक उनकी मन:स्थिति देखती रही। उनकी मन की पीडा देख देख कर मुझे भी बहुत कष्ट होता था किन्तु मैं कर ही क्या सकती थी ? विधाता से यहीं प्रार्थना करती रही कि किसी प्रकार उनका कष्ट दूर हो। उनकी आंखों के भाव मुझे बहुत भयानक लगने लगे उनमें झांककर देखते सर्वग्रासिनी भावों से मुझे डर लगने लगा। उनके इस भयानक चेहरे में मैं अपने पति की सौम्य आकृति ढूंढती थी पता नहीं वह कहां लुप्त हो गई ? कभी-कभी तो उनकी आकृति निरीह हो जाती थी उनके लिये मेरे दिल में दया उपजती थी और मैं भयभीत रहने लगी। पता नहीं उनके मन में क्या है, जाने वे क्या सोच रहे हैं और क्या करनेवाले हैं? कृपाचार्य बोले- तो कृपी तुम लोगों ने बहुत कष्ट सहा और मुझे सूचना तक नहीं दी।

कृपी बोली भैया सूचना करने का कोई साधन भी नहीं था और प्रश्न ही नहीं उठता अपनी विक्षिप्त अवस्था के लिये आपको भी सहभागी बनाये। चिंतित माता और विक्षिप्तावस्था पिता के निकट अश्वत्थामा के लिये भी जीवन अन्धकार मय हो रहा था। मुझे भय था कि मेरा यह पुत्र इस अवस्था में कोई अप्रिय भाव न ग्रहण कर ले।

एक दिन सन्ध्या समय आचार्य बाहर से लौटे आचार्य ने आकर अश्वत्थामा को पास बिठाया और प्यार किया और बोले सुखद समाचार है महेन्द्रगिरि पर अपने आश्रम में महर्षि परशुराम योग्य ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान कर रहे है। मैंने पूछा तो क्या आप

वहां जायेंगे ? आचार्य बोले- हां और सोचता हूं कि कल प्रात: ही अपनी यात्रा आरम्भ करूं। लम्बी यात्रा है बहुत समय भी लग सकता है। तुम दोनों को असहाय छोडे जा रहा हूं पर सोचता हूं कि जहां अब तक इतना कष्ट उठाया है तो थोडा और सही। अब हमारे कष्ट के दिन बीत रहे हैं और निर्धनता के अभिशाप का बोझ भी नहीं ढोना होगा। मैंने उनका अभिप्राय जानने के लिये पूछा क्या आप वहां भृगु श्रेष्ठ का आशीर्वाद लेने जा रहे हैं ? आचार्य बोले- अब और आशीर्वाद नहीं। बहुत बटोर लिये आशीर्वाद और प्रशस्तियों के भंडार तथा विद्या के प्रमाणपत्र। मैंने पूछा तो फिर क्या ज्ञान प्राप्त करने जाना चाहते है। आचार्य बोले- ज्ञान नहीं धन। जो आज तक नहीं मांगा अब वही मांगूंगा। मैंने चकित होकर पूछा क्या एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण से धन की याचना करेगा ? आचार्य बोले- हां मुझे धन की आवश्यकता है। पर मैं धन के लिये न तो अपने शिष्यों से शुल्क मांगता हूं, न राजाश्रय की चाहत करता हूं और न ही पुरोहित का कर्म करना चाहता हूं। आचार्य के मन में संकल्प और विकल्प का युद्ध चल रहा था शुभ और अशुभ का, हित और अहित का। महर्षि परशुराम से धन की याचना में आचार्य का अहं पीडित नहीं होता था, उनका संकल्प भी खंडित नहीं हो रहा था उस शुभ के लिये मैंने उनकी भृगृ ऋषि परशुराम के पास जाने की बात भी स्वीकार कर ली।

आचार्य बडे उल्लास और आशा से महेन्द्रगिरि पर गये। वे हमें आश्वासन देकर गये कि इसके पश्चात उन्हे कहीं भटकना नहीं पडेगा और दु:ख दरिद्रता के बादल उनके लिये छंट जायेंगे। आशा में बहुत बल होता है और हम आचार्य के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

किन्तु महेन्द्रगिरि से जब आचार्य लौटे तो उनकी स्थिति और भी विचित्र थी। वे पहले से अधिक ज्ञानवान और विद्या के धनी होकर लौटे। पर जिस धन की उन्हे आकांक्षा थी वह धन उनको नहीं मिला। परशुराम के यहां पहुंचने में उनको थोडा विलम्ब हो गया। उनके पहुंचने से पहिले ही परशुरामजी ने अपना धन ब्राह्मणों में वितरित कर दिया था। उनके पास तो अपने सिर्फ अस्त्र शस्त्र ही बचे हुये थे और उनकी संचालन की विद्या। वे केवल ब्राह्मणों को ही शस्त्र विद्या देना चाहते थे और ऐसा ब्राह्मण कोई उनके पास पहुंचा नहीं जो युद्ध विशारद होना चाहता हो। आचार्य के पास पहले भी कोई शस्त्रों का और शस्त्र विद्या का अभाव नहीं था फिर भी उन्होंने परशुरामजी की कृपाप्रसाद को मान देकर उनके शस्त्र अस्त्र ग्रहण किये उनके संचालन की विद्या ली। आचार्य की सामर्थ्य इससे और अधिक बढ गई पर इसमें उनकी निर्धनता और बढ गई। आचार्य नहीं जानते थे कि अपनी इस उपलब्धि पर उन्हे प्रसन्न होना चाहिये था या अपनी वंचना पर दु:खी। महेन्द्रगिरि तक की यात्रा उनकी उपलब्धि रही या उनकी वंचना की करूण गाथा। वे लौट आये और मुझसे बोले कृपी मैं नहीं जानता कि जीवन की यथार्थता क्या है ? मेरे जीवन की कोई सार्थकता है भी या नहीं ? लगता है जैसे विधाता ने मेरे लिये सुख का कोई क्षण बनाया ही नहीं।

मैंने उन्हे सान्त्वना दी विधाता ने मुझे आप जैसा पति दिया है वैसा पति पाना किसी भी ब्राह्मण कन्या के लिये जीवन का स्वप्न हो सकता है। आपका पुत्र भी आपके समान विद्यावान तथा गुणी बनेगा। धनुर्वेद के इतिहास में आपका नाम अमिट अमर होगा। इतना यश है मेरे पति के भाग्य में। मेरे पति के मन में उस दिन से इतनी घृणा हो गई इस सारे समाज से, सामाजिक व्यवस्था से। जब कोई गुणी व्यक्ति अर्जन लोलुप हो जाता है तो स्वार्थ के सर्प उसके मन में अपना बिल खोज लेते हैं तब वह समाज का शुभेच्छु नहीं रह जाता। समाज की जितनी हानि वह करता है उतना साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। महेन्द्रगिरि से लौट कर आचार्य बहुत दुखी हुये और बोले- एक असाधारण व्यक्ति का अभिशाप यहीं है कि वह कभी साधारण जीवन नहीं जी सकता। असाधारण व्यक्ति को यदि साधारण जीवन जीना पडे तो उसे असह्य पीडा होती है और वह पीडा उसे कभी-कभी पशु बना देती है।

मुझे लगने लगा कि उनके मन में कोई बहुत भयंकर संकल्प है। कभी-कभी मुझे उनकी आंखों में विनाश दिखाई देने लगता है। वे हस्तिनापुर आना ही नहीं चाहते थे पर आज वे जैसे-तैसे हस्तिनापुर आ गये। आचार्य आतंक के मध्य जी रहे हैं। उनका कहना था राजनीति भय शून्य नहीं होती और हस्तिनापुर में राजनीति से तटस्थ रहकर अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता।

हस्तिनापुर तो उदात्त विद्वानों का श्मशान है जहां पतन से समझौता किये बिना जीवन सम्भव नहीं है।

आचार्य एक दिन उद्विग्न होकर बोले- कृपी मैंने अपना यह स्थान द्रोणगिरि आश्रम त्यागने का निश्चय किया है सदा के लिये सपरिवार। आचार्य ने अपनी साधना स्थली कभी नहीं त्यागी और आज यह निश्चय मुझे बडा ही आश्चर्य हुआ तो मैंने पूछा तो फिर कहां जाने का निश्चय किया है ? आचार्य ने कहा- काम्पिल्य में द्रुपद के पास। द्रुपद मेरा मित्र है, सहपाठी और गुरु भाई है मेरे पिता भरद्वाज का शिष्य रहा है। मैंने कहा आजतक तो आपने कभी द्रुपद के पास जाने की इच्छा प्रकट नहीं की ? आचार्य बोले- मेरा प्राकृतिक जीवन तो मेरी इसी साधना स्थली में ही सम्भव है इससे बाहर जाकर मुझे कहां मिलनेवाला है ? इसलिये आज तक वहा जाने के लिये टालता रहा। अब तुम्हे कैसे बताऊं कि मेरा नैसर्गिक जीवन क्या है ? और मैं कैसा जीवन जीना चाहता हूं ? मेरा सारा जीवन अपने भीतर से परिचालित है। बाहर से मैं कोई निर्णय, निश्चय, कोई आदेश, कोई बाध्यता नहीं चाहा। मेरा जीवन तो एक समाधि जैसा है। अपने ऋषि होने का दंड मैं अपने पुत्र को नहीं दे सकता। उसके लिये जीवन की आवश्यक सुख-सुविधायें तो मुझे जुटानी ही पडेगी इसके लिये मुझे द्रुपद के पास जाना है।

आचार्य अपने दायित्व से बन्धे अपनी इच्छा के विरुद्ध द्रुपद के पास जा रहे हैं। अपने बाल सखा सहपाठी से मिलकर उन्हें प्रसन्नता होगी किन्तु वे याचक के रूप में राजा की सभा में नहीं जाना चाहते थे। उनका अहंकार था कि ऋषि राजा से बडा होता है वे कहते थे कि ऋषि का पुत्र स्वत: कभी ऋषि नहीं बन जाता। उसे ऋषि बनने के लिये साधना, तपस्या करनी पडती है किन्तु राजा का पुत्र स्वत: ही राजा बन जाता है। उसे न तो कोई श्रम ही करना पडता है न ही अपने आपको सिद्ध, योग्य, करना पडता न ही कुछ अर्जित करना पडता। ज्ञान शून्य होने पर भी वह ज्ञानियों से श्रेष्ठ माना जाता है। बुद्धिहीन होकर भी बुद्धिमान कहा जाता है। वीरत्व से रिक्त होकर भी वीर होने का सम्मान पाता है।

हम अश्वत्थामा और आचार्य सहित द्रुपद के पास जाने के लिये निकले। उस समय अश्वत्थामा स्वस्थ भी नहीं था और हम पदाति ही चले क्योंकि हमारे पास न तो कोई अश्व, न कोई रथ और न धन ही था। आचार्य के स्वभाव में था कि कभी कोई निश्चय को मन में ठान लेते तो शान्त नहीं रहकर कैसे भी उसे पूरा करते। ईश्वर दर्शन आशीर्वाद लेकर हमने यात्रा प्रारम्भ की। यात्रा के श्रम से अश्वत्थामा ज्वर पीडित हो गया और चलना उसके लिये कठिन होने लगा। जैसे तैसे हम गंगा तट के निकट पहुंच गये। जब हम गंगा तट पर पहुंचे तब तक सन्ध्या ढल चुकी थी। शेष यात्रा कांपल्य तक पहुंचने के लिये नौका से ही करनी थी। हम घाट पर आये पर किसी भी केवट ने हमें पार उतारने के लिये नहीं पूछा। अन्तत: आचार्य ने ही कहा हमें गंगा पार काम्पिल्य में जाना है। केवट ने कहा धर्मार्थ नौका उस पार गई हुई है जब लौट कर आयेगी तो उसमें चले जाना। हमारी इन नौकाओं में आपको शुल्क देना पडेगा। तुम्हारे पास देने के लिये कुछ दिखता नहीं है। आचार्य ने अपना साहस इकट्ठा कर संकोच त्याग कर कहा मेरे पास शुल्क देने के लिये धन नहीं है और मुझे शीघ्रता है काम्पिल्य पहुंचने की। मेरा पुत्र अस्वस्थ है अधिक रात हो गयी और हम द्रुपद तक नहीं पहुंच पाये तो रात बिताने के लिये हमारे पास कोई ठौर ठिकाना भी नहीं है। केवट बोला ठीक है तुम जैसे लोगों के लिये राजा द्रुपद ने धर्मार्थ नौकाये चला रखी है। आचार्य बोले- देखो मेरा पुत्र अस्वस्थ है क्या तुम में रंच मात्र भी मानवता नहीं है क्या ? केवट बोला- यदि हम लोगों के अस्वस्थ पुत्रों को नि:शुल्क गंगा पार कराने लगेंगे तो हमारे अपने पुत्र अस्वस्थ हो जायेंगे। अस्वस्थ लोग तो हमें दुगना शुल्क देकर गंगा पार करते हैं। हमारे मरने जीने पर पूजा पाठ करने के लिये क्या कभी किसी ब्राह्मण ने अपनी दक्षिणा छोडी है ? मैंने आचार्य को समझाया किसी व्यक्ति से तर्क करने से क्या फायदा जो साधारण पुरोहित और ऋषि में कोई अन्तर नहीं जानता। उस केवट को क्या पता कि वह आचार्य द्रोण से बात कर रहा है जिन्होने राजकुमारों को शिक्षा देते हुये भी उनसे कोई शुल्क नहीं लिया। आचार्य बोले- मैंने भी अपने जीवन में धन अर्जित नहीं किया नहीं तो स्वर्ण मुद्राओं की थैली इसके मुंह पर मारता। वे कहने लगे यदि समाज में सब कुछ यदि धन

से ही नियंत्रित हो रहा है तो मैं भी अब केवल धन ही अर्जित करूंगा। मूर्खों के समान ज्ञान अर्जित करना और यश अर्जित करना, पुण्य अर्जित करना और उसे नि:शुल्क बांटना अब धर्म नहीं रहा। अन्तत: धर्मार्थ नौका आयी और हम उसमें बैठकर गंगा तट पर कापिल्य पहुंच गये। सन्ध्या पूर्णत: ढल चुकी थी अन्धकार का क्रमश: अधिकार बढता गया और रात हो गई थी।

अब हम सीधे द्रुपद के राजभवन में ही जाना चाहते थे परन्तु वहां के व्यवस्थापकों ने हमें द्रुपद के पास जाने नहीं दिया और बोले यह महाराज से मिलने का समय नहीं है। इस समय किसी को भी महाराज से मिलने की अनुमति नहीं है। आचार्य को इसप्रकार साधारण से प्रबन्धकों द्वारा बलात रोका जाना अच्छा नहीं लगा। उस व्यक्ति के मन की स्थिति के बारे में विचार करो जो शस्त्र अस्त्रों का महान निपुण ज्ञाता जिसकी समता दूसरा कोई नहीं कर सकता। युद्ध विशारद सर्वश्रेष्ठ भूमंडल का धनुर्धर उसे साधारण प्रबन्धक इस प्रकार रोक रहे हैं। किन्तु आचार्य उनसे लड तो नहीं सकते, उन्होंने अपने उठते हुये रोष को दबा लिया। रात गहरी होती जा रही थी। अश्वत्थामा ज्वर से पीडित था और हम लोग भूखे प्यासे श्रान्त और क्लान्त थे। आचार्य ने प्रबन्धकों के मुखिया से कहा मेरा इस समय द्रुपद से मिलना बहुत आवश्यक है। मुखिया ने कहा क्या द्रुपद द्रुपद कह रहे हो ? तुम क्या हो ? सम्मान से महाराज द्रुपद कहो।

आचार्य बोले- मैं राजगुरु हूं। प्रबन्धक ने उपहास की दृष्टि से आचार्य को देखा और कहा आप कौन है इसको अधिक महत्व नहीं देते। हमारे लिये क्या है यही महत्व का है। राजगुरु तो प्रासाद में रहते हैं, राजसी वस्त्र धारण करते हैं। महाराज भी उन्हे दिन में चार बार नमस्कार करते हैं, उनके आसपास घूमते हैं आपके जैसा राजगुरु तो हमने पहली बार ही देखा है जो धूल धूसरित वस्त्र धारण किये हुये है और जिसे राजभवन में कोई कर्मचारी पहचानता भी नहीं। आचार्य बोले- मैं द्रोणाचार्य हूं। प्रबन्धकों का नायक बोला सुनो ब्राह्मण राजगुरु एक पद है हमें किसी से कुछ लेना देना नहीं है। आप कुछ भी होंगे। राजसभा में राजगुरु का एक विशिष्ट स्थान होता है। आप जैसा कोई वैरागी, सफेद बालवाला, फटे-पुराने चीथडे पहननेवाला यदि यह कहे कि मैं राजगुरु हूं तो क्या हम मान लेंगे ? हम आपके महत्व के सेवक नहीं हम महाराज के सेवक हैं।

इन प्रबन्धकों से विवाद करना व्यर्थ था उनके तो बिना सोचे समझे बुद्धि के द्वार बन्द ही थे कदाचित आदेशों का आशय समझे बिना उनका पालन कर रहे थे इससे अधिक की उनमें क्षमता भी नहीं थी न और न ही शायद इससे अधिक की अपेक्षा। उन्होंने हमारे रात्रि विश्राम का प्रबन्ध एक साधारणत: सामान्य ब्राह्मण की तरह एक नि:शुल्क धर्मशाला में कर दिया जहां सामान्य ब्राह्मण भिक्षु और तपस्वी ठहराये जाते है।

आचार्य का रोष बढता ही गया इस प्रकार का व्यवहार उनके साथ अभद्र था। वे राजा के बालसखा सहपाठी थे, आर्यावर्त के श्रेष्ठ शस्त्रविशारद। उनका स्वागत होना चाहिये था। सुनकर राजा को स्वयं उनके स्वागत के लिये आना चाहिये था। उन्हे सम्मानपूर्वक अपने साथ लेजाकर अपने प्रासाद में ठहराना चाहिये था। मनुष्य की कितनी अपेक्षायें होती है और यहां इन्हें साधारण भिक्षोपजीवी ब्राह्मण की भांति ठहरा कर प्रतीक्षा कराई जा रही है; जैसे वे राजा के दर्शनों के लिये कोई आतुर अकिंचन याचक या भिक्षुक हो जो उनसे प्रतीक्षा कराई जा रही है। एक बार तो द्रोण ने वापिस लौट जाने की इच्छा व्यक्त की। आचार्य को अपनी अवमानना पीडित कर रही थी किन्तु शासन के भी अपने नियम होते हैं, प्रत्येक स्थान की अपनी पद्धति होती है। ऋषि तो असाधारण होते हुये भी स्वयं को साधारण बनाने का प्रयत्न करता रहता है और राजा साधारण होकर भी स्वयं को असाधारण प्रमाणित करना चाहता है। ऋषि के द्वार सबके लिये खुले होते हैं जबकि राजा चयन करता है कि किसे वह अपने निकट आने दे, किसे मित्र माने और किसे अमित्र। किस पर कृपा करे और किस पर क्रोध कदाचित यदि वह अपने महत्व का यह कृत्रिम घटाटोप न बुने तो वह अपना पद ही न बनाये रख सके। आचार्य का आहत और पीडित अहंकार जैसे सागर की लहरों के समान उफन-उफन कर उमड रहा था। उन्हे अपने चारों ओर अपनी अवमानना और उपेक्षा दिखाई पड रही थी। इतने बडे आचार्य को साधारण प्रबन्धकों की इच्छानुसार चलना पड रहा

था। आचार्य के पास न तो कोई पद था और न ही महत्वपूर्ण व्यक्ति होने का कोई प्रमाण। जो कोई द्रोण के नाम के महत्व को जानता था वो तो नाम सुनते ही आचार्य के चरणों में लोट जाता था। पर जो उस नाम का महत्व नहीं जानता अथवा नहीं समझता था तो उसको समझाना बहुत कठिन था। कोई भी गुणी व्यक्ति अपना बखान अपने मुख से नहीं करना चाहता लेकिन वह यह जरूर चाहेगा कि उसका महत्व समझा जाये और स्वीकार किया जाये।

प्रात: हम लोग भी अन्य बहुत सारे लोगों के साथ राजा के दर्शनों के लिये चले। राजा से मिलने की हमारी भी बारी आई। द्रुपद की राजसभा अत्यन्त सुन्दर भव्यता सम्पन्न थी। ऊंचाई पर स्थित राजसिंहासन पर राजा द्रुपद विराजमान था। हमारी बारी आने पर राजा ने कहा भू-देवता प्रणाम करता हूं। आचार्य ने द्रुपद के व्यवहार में कोई आत्मीयता नहीं पाई। आचार्य बोले- द्रुपद मैं तुम्हारा मित्र द्रोण हूं। याद करो अपने गुरुकुल के दिन। तुम मेरे सहपाठी रहे हो। सुनकर द्रुपद की त्यौरियां चढ गई कि यह व्यक्ति राजसभा में भी महाराज या राजन न कहकर नाम से पुकार रहा है और स्वयं को उसका मित्र बता रहा है। राजा कुछ कहते उसके पहिले ही आचार्य बोले- क्या राजा बन जाने से तुम अपने बाल सखा मित्र को भूल गये हो। क्षणभर के लिये द्रुपद की आँखों में रोष झलका परन्तु राजा ने स्वयं को संयमित कर लिया और बोले आचार्य द्रोण मुझे प्रसन्नता है कि आप मेरी सभा में आये है आपका स्वागत है आचार्य। पर द्रुपद ने एक बार भी आचार्य को अपना मित्र नहीं कहा इस समय द्रुपद और आचार्य दो मित्रों के रूप में नहीं मिल रहे थे। यहां तो द्रुपद राजा था और आचार्य द्रोण एक याचक आगन्तुक। द्रोण का चेहरा रोष से उत्पन्न हो उठा। द्रोण बोले- मैं कोई याचक के समान कोई राजा की सभा में कुछ मांगने नहीं आया हूं मैं तो अपने बालमित्र सहपाठी द्रुपद के पास आया हूं। पता नहीं इतने महान बुद्धि विवेकवालों का विवेक भी अपनी भावना के वेग में कहां खो जाता है। हम लोग तो निराश्रित थे ही तो इसे राजाश्रय स्वीकार करने में क्या आपत्ति थी पर यह द्रोण के हृदय को ठोस लग रही थी। आचार्य याचना भी कर रहे थे और उसे स्वीकार भी नहीं करना चाहते थे।

द्रुपद भावनाशून्य और शुष्क स्वर में बोला **द्रोण मित्रता तो किसी समानता के धरातल पर होती है। बचपन की बात भूल जाओ द्रोण। बचपन बचपन ही होता है और आज तुम भी बचपन की सभी सीमायें पार कर चुके हो और मैं भी। क्या तुम्हारी समझ में सामाजिक जीवन का रहस्य भी समझ में नहीं आया कि मित्रता तो बराबर वालों में होती है और तुम्हारी मेरी क्या समानता ? तुम एक निर्धन याचक ब्राह्मण हो और मैं एक राजा। ब्राह्मण तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई जो तुम्हे मुझे अपना मित्र कहते हुये हिचकिचाहट नहीं हुई भला तुम्हारी और मेरी क्या दोस्ती। ब्राह्मण तुम लोक व्यवहार से अनभिज्ञ हो मित्रता का अधिकार जताये बिना कुछ भी मांग लो। तुम एक ब्राह्मण हो मैं तुम्हे निराश नही करूंगा। बचपन की बातें भूल जाओ, भूल जाओ आचार्य कि कभी तुम्हारी और मेरी दोस्ती थी। एक ब्राह्मण का मित्र एक ब्राह्मण ही हो सकता है और एक राजा का मित्र एक राजा ही।** द्रुपद के ये वचन द्रोण के हृदय में शूल के जैसे चुभ गये।

द्रुपद ने कहा भले राजाओं की गरीबों से कैसी मित्रता यदि कदाचित हो भी जाये तो समय बीतने पर मिट मिटा जाती है। अरे भाई जो मिलते है वे कभी न कभी बिछुडते है यह सृष्टि का नियम है उस समय बचपन में हम दोनों समान थे जब मित्रता थी। अब मैं धनी हूं और तुम दु:खी और निर्धन हो। तुम्हारा मित्र का दावा बिल्कुल व्यर्थ है। बचपन में हुई मित्रता कोई मित्रता नहीं होती। उस समय हम दोनों ही गुरुकुल के ब्रह्मचारी थे। एक स्थान पर रहते तथा साथ में भोजन करते थे। एक ही कक्षा में शिक्षा पाते थे। तब हमारे जीवन में कोई भिन्नता नहीं थी किन्तु जीवन कोई थमता थोडे ही है कि अब तक वहीं खडा हो। उसके पश्चात तो हम पृथक-पृथक गन्तव्यों पर पहुंच चुके हैं।

आचार्य द्रोण के लिये द्रुपद के शब्द सबसे बडा अपमान था। अपमान की घूंट पीकर द्रोण के मन में प्रतिशोध की ज्वाला

भडक उठी। वे वहां क्षणभर भी नहीं रूके और यह कह कर ठीक है द्रुपद अब मित्रता तो समता होने पर ही स्थापित होगी। अब यही देखना कि मित्रता का आधार ज्ञान होता है या राजसत्ता और द्रुपद की राजसभा से निकल गये। द्रुपद के कहे हुये वचन द्रोण को बार-बार सोते जागते स्मरण हो आते थे। वे अपने इस अपमान को जीवन भर भूल न पाये। वहां से निकल आने पर वे बोले अब इन पांचालों की धरती पर रूकना मेरे लिये पाप है कृपी। मैंने पूछा आचार्य अब कहां जायेंगे ?

आचार्य विक्षिप्त की भांति बोले मालूम नहीं ? मैंने कहा क्या वापिस आप अपने डेरे पर लौटना चाहते हैं ? मूर्खता भी कितनी दुस्साहसी होती है। आचार्य बोले- डेरे पर ऐसा क्या रखा है कि जहां पर वापिस लौटा जाये। उनके मन की व्यथा मेरे अनुमान से कहीं अधिक थी। असमर्थ पति और असमर्थ पिता की यातना अत्यन्त सघन होती है। मैंने कहा आचार्य मेरे मायके हस्तिनापुर में कृपाचार्य के पास चले या हम अपने स्थानपर वापिस लौट जाये वहां कोई राजा हमें पीडित करने तो नहीं होगा। आचार्य बोले- नहीं कृपी मैं कोई भीत कुत्ते के समान दुम दबाये वापिस अपनी गुफा में लौट जाना तो नहीं चाहता भले ही मैं कितना भी असहाय हूं। मुझे अब कर्मक्षेत्र में उतरना होगा। मैंने बहुत विश्वास करके देख लिया है मानवीय गुणों पर, मित्रों पर, समाज पर किन्तु अब मुझे किसी पर विश्वास नहीं रहा। अब तो केवल मैं अपनी स्वार्थबुद्धि पर ही चलूंगा। अब आचार्य के साथ मुझे पारिवारिक आत्मीयता की अनुभूति हुई। पता नहीं लोग धन वैभव तथा सांसारिक भौतिक सम्पदा इतना चाहते हैं जो व्यर्थ में ही परस्पर कलह का कारण बनती है। मैंने फिर से हस्तिनापुर चलने का प्रस्ताव किया और आग्रह भी। मैंने कहा आपत्ति के समय लोग आत्मीय जनों के पास ही जाते है। आचार्य तो द्रुपद से अपमान का घूंट पीकर प्रस्तर मूर्ति के समान हो गये और मेरे आग्रह को स्वीकार करते हुये बोले ठीक है पांचालों की सबसे बडी शत्रुता की हस्तिनापुर साम्राज्य कौरवों से ही है और अब द्रुपद मेरा शत्रु है और उसके शत्रु को अपना मित्र बनाऊंगा। प्रतिशोध की ज्वाला दधक उठी और आचार्य ने मेरे साथ जीविका की खोज में हस्तिनापुर आने का आग्रह स्वीकार किया और इस तरह आचार्य द्रोण का हस्तिनापुर में आगमन हुआ। यही वृतान्त आचार्य द्रोण ने भीष्म पितामह को बताया भीष्म पितामह ने कहा आचार्य द्रोण हस्तिनापुर में आपका स्वागत है। आपका शुभागमन हमारे लिये अहोभाग्य है।

कृपाचार्य बोले- कृपी मेरी इच्छा है कि तुम सब लोग यही मेरे पास रहो। विश्वास रखो कि मेरे मन में भी अश्वत्थामा के लिये पुत्र का सा ही स्नेह है। उसके लिये यहां पर कोई अभाव नहीं होगा। हस्तिनापुर के नरेश धृतराष्ट्र को भी मैं समझा दूंगा कि वे पांचालों के मित्र नहीं मेरे सम्बन्धी है। हमारे दोनों का पालन पोषण हस्तिनापुर में हुआ है। महाराज शान्तनु ने तो हमें अपनी सन्तान के समान पाला है। आर्य भीष्म का भी हमारे प्रति वात्सल्य भाव ही रहा है।

द्रोण ने कृपाचार्य के आवास को पहली बार देखा कैसा वैभवशाली भवन। राजप्रासाद का ही कोई खंड लगता था और द्रोणाचार्य आज तक तपोवनों और आश्रमों के कुटीरों के ही मोह में पडे रहे और स्वयं को तपस्वी मान कर प्रसन्न होते रहे। तपस्या से क्या मिला उन्हे ? अपमान और तिरस्कार, अभाव और असुविधायें ? द्रोण का एक विकृत चिन्तन कि कृप जैसे लोग जो राजाश्रय में कितने सुख से रह रहे हैं। न किसी प्रकार का अभाव, न ही वन्य जीवन की कोई कठिनाइयां। अपने अल्प ज्ञान और विद्या का भी भरपूर मूल्य पा रहे हैं और यहां आर्यावर्त का सबसे बडा धनुर्धर आचार्य द्रोण धूलि धूसरित असहाय है। सहसा द्रोणाचार्य का ध्यान भंग हुआ और आचार्य स्तब्ध रह गये। अब आचार्य कैसे अपना मन निकालकर दिखाये कि अब उन्हे द्रुपद के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है और अब वे हस्तिनापुर के कौरवों के मित्र हैं। कौन अपना साम्राज्य और अधिकार छोडना चाहेगा ? परम्परागत निम्नस्तरीय गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार और विकास की सम्भावना रहती है और अवसर भी।

द्रोण विचार करते है दायित्व तो कभी समाप्त नहीं हो, शायद दायित्वों के रूप बदल जाते है। दायित्व है कि मायावी निशाचरों के समान नयेनये रूप धारण कर उनको व्यस्त रख कर पुन: सम्मुख आकर खडे हो जाते है। ये कभी पूरे होते ही नहीं। ये जीवन को उसी प्रकार पकड लेते है जैसे कोई बालू अपनी मुट्ठी में भर लेता है और वह रेत मुट्ठी से निकल कर भूमि पर बिखर

जाती है तथा फिर एक नया रूप ले लेती है।

द्रोण सोचते हैं कि अपनी साधना में लगे रह कर परिवार की उपेक्षा करना श्रेयस्कर है अथवा परिवार की सुख-सुविधा के लिये साधना को तिलांजलि दे देना। अपने परिवार का भली भांति पालन पोषण करना जीवन का श्रेय है अथवा अपनी साधना में लगे रहकर जीवन में कुछ उच्चतर उपलब्धियां हस्तगत करना। क्या द्रोण अपने परिवार की दुर्दशा के लिये दोषी है ? ऐसे अनेक प्रश्न और ऊहापोह आचार्य के मन में घर कर गये। द्रोणाचार्य अब अपनी निर्धनता से भी बहुत भयभीत रहने लगे। जो व्यक्ति अपने सुखों के वंचित होने से डरता है वह जीवन के सम्मुख कभी वीरतापूर्वक नहीं ठहर सकता। द्रोणाचार्य वीर है निर्द्वद्व है, लोभ मुक्त है इसलिये वो सत्यमार्ग से कभी डिग नहीं सकता। प्रलोभन उसे न्याय से विचलित नहीं कर सकते। कृपी बोली- भैया अब समय आने पर आचार्य जीवन को न्याय की दृष्टि से नहीं हानि लाभ और व्यवसायिक दृष्टि से जीवन को तौलेगा और अपना विक्रय करने में भी संकोच नहीं करेगा। कृपाचार्य बोले- बुद्धिजीवी को भी ज्ञान की साधना करनेवाले को भी जीवन में सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकार है और उन्हे प्राप्त करने के लिये कभी-कभी जीवन में कडवे घूंट पीने पडते है। आचार्य की इच्छायें कोई अनुचित तो नहीं है, सुख सुविधाओं के अर्जित करने और उनके लिये अपना विक्रय करने में अन्तर है। कृपाचार्य ने कहा बहन मेरी ओर से तुम आश्वस्त रहो। मैंने अपने सुख-सुविधायें, महत्वकांक्षाये, मानापमान सब तुम्हे दे दिये है। मेरा भविष्य अश्वत्थामा है। मेरे जीवन की सारी रिक्तियां और शून्य तुम लोगों के आ जाने से भर गये हैं। कृपी बोली- तुम्हारे जैसा भाई भी बडे पुण्य प्रतापों से ही मिलता है। अश्वत्थामा को पिता का ज्ञान सुलभ था किन्तु उनकी संगति प्राप्त नहीं थी। अब तुम्हारी संगति से हम सबका एकाकीपन भी मिट गया और मैं तृप्त हुई।

३५) कौरव राजकुमारों की शिक्षा और परीक्षा

द्रोणाचार्य धनुर्वेद के अद्वितीय गुरु थे। धृतराष्ट्र और पांडु पुत्रों को तो वे शिक्षा दे रहे थे किन्तु और भी देशों के अनेक राजकुमार उनसे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। वैशम्पायन कहते हैं- जनमेजय द्रोणाचार्य भीष्म पितामह से सम्मानित होकर हस्तिनापुर में रहने लगे। भीष्म ने उन्हे सब सुविधा सम्पूर्ण सुन्दर भवन उनके निवास के लिये दिया और वे कौरव राजकुमारों को शिष्य रूप में स्वीकार कर धनुर्वेद की विधिपूर्वक शिक्षा देने लगे। द्रोण के लिये शायद सृष्टि का कुछ ऐसा ही विधान है कि वर्तमान को पूर्णत: दांव पर रख कर ही भविष्य की विजय का सुख प्राप्त किया जा सकता है।

इधर द्रोणाचार्य अपनी युद्धशाला में अपने पुत्र अश्वत्थामा को चक्रव्यूह भेदन क्रिया समझा रहे थे इतने में ही अधिरथ अपने पुत्र राधेय को चम्पानगरी से लेकर आया और गुरु द्रोण को प्रणाम किया और बोला आचार्यवर द्रोण को अधिरथ का प्रणाम। द्रोणाचार्य ने अधिरथ की ओर देखा- बोले तुम तो महाराज धृतराष्ट्र के सारथी हुआ करते थे ? और साथ में आये हुये बालक की तरफ देखा। वय में कदाचित सारे राजकुमारों में बडा, लम्बा, सबसे ऊंचा और छरहरा शरीर। सुनहले केश और नयन। उसमें अग्नि का अंश अर्थात सूर्य का पूर्ण तेज। लम्बी नुकीली नासिका, ऊंचा भाल। उस तरुण का तेजस्वी व्यक्तित्व और प्रखर भी। अधिरथ बोला- हां गुरुदेव, ये मेरा पुत्र राधेय है। द्रोणाचार्य बोले- राधेय क्यों ? अधिरथ बोला इसकी मां का नाम राधा है इसलिये मैंने इसका नाम राधेय रखा है। गुरु द्रोण बोले- लेकिन इसका नाम इसके मुख मंडल के तेज से मेल नहीं खाता है। इसके मुख पर तो सूर्य का सा तेज चमक रहा है इसके लिये इसका नाम कर्ण रखो। अधिरथ बोला जो आज्ञा गुरुदेव। गुरु द्रोणाचार्य बोले हां अधिरथ अब तुम्हारे आने का कारण बताओ। अधिरथ बोला, गुरुदेव मेरा यह पुत्र शस्त्र विद्या सीखने की हठ कर रहा है इसलिये इसे मैं आपकी सेवा में लेकर आया हूं। अब शस्त्रविद्या के लिये कोई भी पिता अपने पुत्र को आपके सिवा कहां ले जा सकता है। द्रोणाचार्य बोले- मैं इसे विद्या दान देकर अतिप्रसन्न होता अधिरथ। कर्ण ने गुरुदेव को प्रणाम किया और बोला क्षमा चाहता हूं मैं दान नहीं लेता गुरुवर। विद्यादान नहीं है और दान में दी भी नहीं जा सकती। द्रोणाचार्य बोले-

आयुष्मान भव, परन्तु इस गुरुकुल में राजपुत्रों और क्षत्रियों के अलावा और किसी को भी युद्ध शिक्षा नहीं देता हूं और तुम्हारा पुत्र तो सूत पुत्र है यह तो इन दोनों कसौटियों पर खडा नहीं हो सकता है। अधिरथ तुम्हे इसके लिये अन्य कोई गुरु ढूंढना पडेगा। कर्ण बोला- क्या शिक्षा दाय है गुरुवर ? क्या सरस्वती पहले पिता का नाम पूछती है और फिर जाति ? अधिरथ बोला- कर्ण अपने आपको संयत रखो। कर्ण बोला- पिताजी संसार मुझे चाहे जिस नाम से पुकारे परन्तु आप मुझे राधेय ही कहा करे। आपके मुंह से कर्ण सुनकर ऐसा लगता है जैसे मैं आपका कोई हूं ही नहीं। कर्ण बोले- गुरुदेव विद्या का देना जाति वर्ग के आधार पर नहीं परन्तु योग्यता के आधार पर होना चाहिये। ज्ञान उनकी सम्पत्ति है जो उसके ग्रहण करने की क्षमता रखता है। सरस्वती का वहन हंस करते है कौवे उसे वहन करने में असमर्थ होते हैं। विद्या के योग्य वही है जिसे उसकी आवश्यकता है। गुरु द्रोणाचार्य बोले- राजकुमारों को यौद्धा के रूप में शस्त्रास्त्रों का ज्ञान उनकी परिचालन विधि, विभिन्न शस्त्रों की काट, व्यूह रचना, व्यूह भेदन प्रवेश, व्यूह भंग इत्यादि कलाओं की शिक्षा दी जाती है। कर्ण तनिक भी निस्तेज नहीं हुआ और बोला किन्तु यदि मुझमें भी राजकुमारों के समान ही यौद्धा बनने की क्षमता हो तो ? फिर मुझे युद्ध शिक्षा क्यों नहीं दी जा सकती ? द्रोणाचार्य बोले- राजपुत्रों को योद्धा के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे युद्ध कर सके। अपने राज्य की रक्षा कर सके। अपने शत्रुओं को पराजित कर सके। सारथी पुत्र को योद्धा के रूप में किसलिये प्रशिक्षित करना चाहिये ? इसलिये कि वह राजवंशों को उलट-पलट कर सके ? क्या वे राज्य में विप्लव फैला सके। जनसाधारण को इस प्रकार की शिक्षा न देना देश के हित में होता है और शासन तन्त्र के हित में भी। द्रोणाचार्य बोले- तुम चाहो तो सैनिक बन सकते हो पर तुम्हे सेनापति नहीं बनाया जा सकता। इसके लिये तुम्हारा राजा या राजकुमार होना आवश्यक है, कम से कम किसी क्षत्रिय का वंशधर। कर्ण बोला- मैं योद्धा बनना चाहता हूं। कर्ण के स्वर में आग्रह था कर्ण ने हताशा भरी दृष्टि द्रोण पर डाली और पूछा यदि बुरा न लगे तो क्या एक प्रश्न पूछ सकता हूं ? आचार्य बोले- अवश्य। कर्ण बोले- ये आपके पास बैठा युवक कौन है ? आचार्य बोले- यह मेरा पुत्र अश्वत्थामा है। कर्ण बोले- तो अर्थात न तो यह राजपुत्र है और न ही क्षत्रिय। प्रणाम आचार्य वर यह कहकर कर्ण वहां से चल दिया और द्रोणाचार्य को असमंजस में डाल कर फिर से सोचने पर मजबूर कर दिया। अधिरथ बोला- इसके इस लडकपन को क्षमा कर दें गुरुवर। कर्ण द्रोण को एक चिन्तन की स्थिति में छोड गया। द्रोण जैसे हतप्रभ रह गये। द्रोण को स्वयं अनुभव हो रहा था कि किसी की याचना; आग्रह अथवा अनुनय विनय उन्हे विगलित नहीं कर सकी।

आचार्य राजकुमारों का राजप्रसादों के वातावरण में रहना उचित नहीं मानते थे क्योंकि वह विलासपूर्ण वातावरण है। आचार्य उन्हे शिक्षा के लिये हस्तिनापुर के आसपास के वनों में अभ्यास के लिये ले जायेंगे। शायद सृष्टि का ही कोई ऐसा विधान हो कि वर्तमान को पूर्णत: दाव पर लगाकर ही सुखद भविष्य की कल्पना का सुख प्राप्त किया जाता हो।

गुरु द्रोणाचार्य बालक राजकुमारोंको यह समझा रहे थे कि यह चक्रव्यूह है इसमें जाना भी कठिन है और निकलना भी कठिन है। बालक खेल रहे थे इतने में ही अर्जुन वहां आ गया और पूछा क्या गुरुदेव मैं आपके निकट बैठ सकता हूं। गुरु द्रोणाचार्य बोले क्या तुम्हे खेलने में आनन्द नहीं आता वत्स। अर्जुन बोला- जब गुरु शिक्षा दे रहे हो तब वह खेलने का समय नहीं हो सकता है गुरुदेव। द्रोण गुरु बोले लगता है अर्जुन तू मेरे पास कुछ भी नहीं छोडेगा और गुरुदेव ने बैठने के लिये स्वीकृति दी और कहा तुम्हे यह चक्रव्यूह भेदन सिखा दूं। इधर अर्जुन की ज्ञान लालसा दिनपर दिन बढने लगी। अर्जुन दिन रात युद्ध विद्या में धनुर्विद्या का अभ्यास करता था और विचार करता था। द्रोण को लगने लगा यह ज्ञान पिपासु शिष्य कोई भी विद्या शेष नहीं रहने देगा। अर्जुन की वृति देख कर द्रोणाचार्य ने उत्साह से धनुर्विद्या के साथ-साथ उसे भाला फेंकना, तलवार युद्ध, गदा युद्ध, मल्ल युद्ध, अश्व दौड, युद्ध के दांव पेच सभी राजकुमारों के साथ-साथ सिखाये। साथ में सभी को धर्म, नीति, न्यायशास्त्र की शिक्षा दी। गुरु द्रोणाचार्य समय-समय पर अपने शिष्यों की निपुणता की परीक्षा भांति-भांति से किया करते थे। हर समय पांडु

पुत्र ही परीक्षा में सर्वोतीर्ण रहते थे।

अर्जुन रात में भी उठकर लक्ष्य भेदन की धनुष बाण से धनुर्विद्या का अभ्यास करते रहता है। एक दिन अर्जुन देखता है कि अन्धेरे में भीम चुप चाप से बैठा खा रहा है। अर्जुन उसके पास गये और बोले- भीम भैया यह क्या ? भीम बोला- चुप रहो नहीं तो कोई आजायेगा। थोडा तुम भी खालो। अर्जुन बोला-नहीं। भीम बोला- खालो खालो पर थोडी ही खाना। अर्जुन बोला- यदि आप मुझे खिलायेंगे तो आप भूखे रह जायेंगे पर आप मुझे यह बताये यह ग्रास अन्धेरे में आपके मुंह तक कैसा पहुंचता है। भीम बोला- हमारे हाथों के पास भी आंखे होती है। मुंह तो अपने स्थान पर ही रहता है फिर हाथ क्यों चूके ? यह तो अभ्यास है अर्जुन अभ्यास। अर्जुन को भीम से अभ्यास करने की प्रेरणा मिली।

अर्जुन अब धनुर्विद्या की रात में भी लक्ष्य वेधने का अभ्यास करने लगा। एक दिन रात में अर्जुन यह अभ्यास कर रहा था कि गुरु द्रोणाचार्य की नींद खुली उन्हे राजा द्रुपद के अपमान भरे वो शब्द स्मरण हो आये और नींद उचट गई। द्रोण सो नहीं सके वे उठकर बाहर आये और देखा इतनी रात गये यह कौन है जो धनुर्विद्या का लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास कर रहा है। देखा अर्जुन है। गुरु अर्जुन के पास आये और बोले इतनी रात गये और तुम। अर्जुन बोला हा गुरुदेव। द्रोण बोले- अभी तक तो मैंने इसकी शिक्षा भी नहीं दी। अर्जुन बोले- शिक्षा तो आप ही की है गुरुदेव परन्तु प्रेरणा भैया भीम की रूचि से मिली। द्रोणाचार्य बोले- रुचि। कैसी रूचि। अर्जुन ने कहा जो रूचि उनकी खाने में है। उन्हे देखा कि वो अन्धकार में भी बैठे खाना खा रहे है और उनका हाथ सीधा मुंह में जाने के लिये एक बार भी कही नहीं चुका तो मैंने पूछा यह कैसे सम्भव है तो वे बोले हाथों में भी आंखे होती है और यदि हाथों में भी आंखे होती है तो बाण भी चला सकते है। बस इसी का प्रयास कर रहा हूं गुरुदेव। यदि मुझसे कोई भूल हो गई हो तो क्षमा करे गुरुदेव। आचार्य द्रोण बोले- नहीं वत्स नहीं। तुमने तो मेरा हृदय ही जीत लिया। तुम में तो एक अच्छे शिष्य होने के सारे लक्षण विद्यमान है। क्योंकि जब सीखनेवाला ही उद्यत न हो तो सीखानेवाला क्या सिखायेगा ? ज्ञान भी एक बीज है अर्जुन। मन की भूमि उपजाऊ होनी चाहिये। अर्जुन मैं तुम में एक महान योद्धा होने के सारे लक्षण देख रहा हूं। मैं तुम्हे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी योद्धा अवश्य बनाऊंगा और ब्रह्मास्त्र का ज्ञान भी सिखाऊंगा। स्मरण रखना योद्धा के दो शत्रु होते है काल और निद्रा और उसके दो मित्र होते हैं परिश्रम और साधन। यदि तुमने इन दोनों शत्रुओं पर विजय पा ली और दोनों मित्र मिल गये तो समझो अजय हो गये और आज तुम्हे मैं यही आशीर्वाद देता हूं।

शिष्यों की परीक्षा के लिये द्रोण सबको गंगा तीर पर उद्यान में ले जाते है। गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों से बोले गंगा में स्नान कर सूर्यदेव से नयी शक्ति का वरदान मांगता हूं। द्रोण स्नान करने के लिये नदी के जल में उतरे तब कहीं से नदी में एक घडियाल ने आकर गुरु द्रोण की टांग पकड ली। गुरु द्रोण चीत्कार करने लगे और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे बचाओ बचाओ। सारे शिष्यों में कौरव डर कर भाग गये। लेकिन अर्जुन ने जब देखा तो उसने साहस करके अपना बाण सन्धान कर उस घडियाल के मुंह में मारा जिससे उसने गुरुदेव को घडियाल के आक्रमण से छुडाया। गुरुदेव जल से बाहर आकर बोले- तुम सभी कायर हो अर्जुन ही तुम सबमें निर्भीक सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है। तुम अपनी परीक्षा में सफल हुये हो। अर्जुन बोला- परीक्षा गुरुदेव। द्रोण बोला हां, आश्चर्य की बात नहीं है। यह वास्तविक घडियाल नहीं है, यह तो बस एक कृत्रिम यन्त्र है। धृतराष्ट्र पुत्र वापिस लौटकर आये और बोले गुरुदेव हम लोग तो सहायता लेने गये थे। भीम बोला- सहायता लेने गये थे या डर कर भाग गये थे, कायर कहीं के। दुर्योधन बोला- मुझे कायर कहते हो। द्रोण बोले- दुर्योधन तुम कायर नहीं हो परन्तु तुमने अपनी घमंड की डोरी से वीरता को बांध रखा है। वीर होकर राजपुत्रों को अहंकार शोभा नहीं देता है। क्योंकि अहंकार दुर्बलता का प्रतीक है। पहले अपने अहंकार पर विजय पाने का प्रयत्न करो। राजकुमार दुर्योधन नम्र होना सीखो, क्योंकि नम्रता ही उन्नति का मार्ग है।

विदुर भीष्म पिता के पास आये और चरण स्पर्श किये। भीष्म ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। विदुर बोले- क्या सोच रहे

है तातश्री ? भीष्म बोले जब मन भटकने लगता है तो इतिहास के मार्ग पर चला जाता हूं तो मैं उससे पूछता हूं कि उसमें से निकलने का क्या उपाय है ? इतिहास तो अतीत के जीवन की कथा है। हमें अपने पूर्वजों के अनुभव से लाभ उठाते रहना चाहिये और उन भूलों से बचना चाहिये जो उन्होने कभी की। उनकी जय और पराजय दोनों से भी हमें सीखना चाहिये। विदुर बोले- परन्तु आज उसकी क्या आवश्यकता आ पडी तातश्री ? भीष्म बोले- जो मैं देख रहा हूँ वो तुम भी देख रहे हो विदुर। मैं तो वचनबद्ध हूं परन्तु तुम तो। विदुर बोला- यह दासी पुत्र अपने अधिकारों को बहुत भली भांति से जानता है तातश्री। परन्तु जिस दिन मेरे बोलने का समय आयोगा उस दिन मैं अवश्य बोलूंगा। अवश्य। भीष्म बोले क्या तुम्हारे पास शकुनि के काटे का कोई मन्त्र है ? विदुर बोले नहीं तातश्री परन्तु एक उपाय है। उपाय यह तातश्री कि उसे काटने ही नहीं दिया जाये। भीष्म बोले- विदुर मुझे अवस्थाओं से आंख मिचौली खेलना नहीं आता। मैं कहीं छिप कर खडा हो जाऊं। मैं शकुनि के हृदय में लगी हुई आग का कारण अच्छी तरह से जानता हूं। विदुर बोले- तब तो आप खडे रहकर चुपचाप यह दृश्य नहीं देख सकते। नहीं देख सकते। आप इस कुरुवंश के सबसे बडे ज्येष्ठ हैं। आप युधिष्ठिर को युवराज नियुक्त कर दे और यह खेल बन्द करवा दीजिये। उनके बडा होने की प्रतीक्षा न करे तातश्री।

भीष्म बोले- यदि मैं धृतराष्ट्र से यह कहूं तो मैं यह भी जानता हूं कि धृतराष्ट्र क्या कहेंगे ? शकुनि योग्यता का प्रश्न उठायेगा और योग्यता सिद्ध करने के लिये कुमारों का बडा होना आवश्यक है और फिर यह भी है कि युवराज के नियुक्त होने से ही तो समस्याओं का समाधान नहीं है। ये बात मुझसे अधिक और कौन जानता है विदुर ? मेरे पिता के प्रति मेरे मोह का परिणाम मेरे सामने है। इसी कारण मैं हस्तिनापुर की आंखों में आंखे डालकर देख भी नहीं सकता। विदुर बोले- तो क्या आप अब यह सोचते है कि वह भीष्म प्रतिज्ञा आपको नहीं लेनी चाहिये थी। भीष्म बोले- नहीं विदुर ऐसा तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता कभी नहीं। यदि मुझे सौ बार भी जन्म लेना पडा और सौ बार भी वही समस्या आये तो भी यही प्रतिज्ञा करूंगा। परन्तु मैंने जैसे कि तुमसे अभी अभी कहा था हमें अपने इतिहास से सीखना चाहिये कि एक पिता को, एक पुत्र को, एक व्यक्ति सबसे पहले नागरिक होता है और वह जो कुछ और है वह एक नागरिक होने के पश्चात है और जब व्यक्ति अपने नागरिक हितता को पीछे सरका देता है तो सदैव ही राष्ट्र को हानि पहुंचती है। विदुर बोले- महाराज पान्डु द्वारा किन्दम ऋषि की हत्या में कोई नागरिकता का कोई हाथ नहीं था। परन्तु कभी-कभी संयोगवश भी कुछ हो जाता है। इसका मूल्य केवल व्यक्ति को ही नहीं परन्तु समूचे राष्ट्र को चुकाना पडता है। भीष्म बोले- इसी बात से तो मैं डर रहा हूं। विदुर बोले- नहीं तातश्री। यदि सागर ही बूंदों से डरने लगे तो तब तो प्रलय ही हो जायेगा। अतीत में जो कुछ भी हो चुका है उससे हमें अवश्य सीखना चाहिये। भ्राताश्री धृतराष्ट्र तो नेत्र हीन है परन्तु महारानी गान्धारी ने तो देव की दी हुई आंखों को मूंद लिया है। भीष्म बोले- इसीलिये तो तुम उस दिन से डरो विदुर जिस दिन गान्धारी अपनी मूंदी हुई आंखे खोल लेगी पता नहीं उस दिन उसे क्या दिखाई देगा ? क्या नहीं दिखाई देगा ?

गान्धारी अपने कक्ष में जा रही थी कि उसे रास्ते में शकुनि मिल गया और बोला कहां से आ रही हो मेरी प्यारी बहन ? गान्धारी ने प्रणाम किया और बोली कुन्ती के पास चली गई थी। शकुनि बोला- तुम हस्तिनापुर की महारानी हो तुम्हे किसी के यहां जाने की क्या आवश्यकता है ? यदि किसी से मिलने की इच्छा हो तो उसे यहां बुला सकती हो। गान्धारी बोली- कुन्ती की गिनती किसी में तो नहीं हो सकती भ्राताश्री। वो तो अपनी ही है। शकुनि बोला- मैंने कब कहा कि वो अपनी नहीं है परन्तु है तो वह तुमसे छोटी। तुम पान्डु के ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र की पत्नी हो और वह धृतराष्ट्र के अनुज पांडु की विधवा। गान्धारी बोली- विधवा होने में तो उसका तो कोई दोष नहीं ? शकुनि बोला- गान्धारी गान्धारी न जाने तुम्हे कब समझ आवेगी ? तुम्हारी आंखे तब खुलेंगी जब वो कुन्ती पुत्र तुम्हारे राज्य को हडप लेंगे। गान्धारी जब कुत्ता भौंकने लगे तो सावधान हो जाना चाहिये। गान्धारी बोली- मैं कुन्ती और कुन्ती पुत्रों का बुरा नहीं सोच सकती। शकुनि बोला- तुम मूर्ख हो। गान्धारी ने कहा भ्राताश्री आप कुछ दिनों के लिये गान्धार क्यों नहीं हो आते ? शकुनि बोला अभी नहीं। जब तक मैं यह न देख लूं कि तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के

सारे अधिकार सुरक्षित है मैं हस्तिनापुर छोडकर कहीं नहीं जाऊंगा।

चन्द्र वंश पर चल रहे विषधर काले बाण, त्यागे कुमति कुरुंग को जो चाहे कल्याण।

विद्या के कोख से जो धारा निकलती है न उसका अपना कोई रंग होता है और न ही कोई स्वाद। वो तो शीतल निखरा हुआ जल है जो रंग घुला स्वीकार कर लेता है। जो स्वाद डालो वहीं उसका स्वाद हो जाता है। विष डाल दो तो विष हो जायेगा। अमृत घोल दो तो अमृत बन जायेगा। हस्तिनापुर के गुरुकुल में यह बात पूरी सिद्ध हो गई। गदा तो एक ही है परन्तु यही गदा जब दुर्योधन के हाथ में होगी तो इसका अर्थ कुछ और होगा और जब भीम के हाथ में होगी तो कुछ और। द्रोणाचार्य फिर अपनी ही इस गदा के दोराहे पर निश्चल खडे होंगे।

द्रोण राजकुमारों को शिक्षा दे रहे कि तुम सब लोग अपनी इस गदा से भली भांति परिचित हो। राजकुमारों को गदा युद्ध के बारे में समझाते हुये उन्होंने कहा जिस प्रकार धनुर्विद्या में स्वयं एकाग्रचित्त होना अत्यन्त आवश्यक है। वैसी ही इस शस्त्र के प्रयोग करने वाले को यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रहार पेट के नीचे न हो। गदा युद्ध के भी अपने कुछ नियम होते है। वो गदाधारी अच्छा नहीं माना जाता है जो इसका प्रहार पेट के नीचे करे। दुर्योधन यह लो भीम अभ्यास करो। दोनों आपस में गदायें टकराते है। युधिष्ठिर बोला- क्या गुरुदेव आपको यह नहीं लगता कि मेरा दुर्योधन संसार के समस्त गदाधारियों में सर्वश्रेष्ठ गिना जायेगा। द्रोण बोले अवश्य।

कर्ण जब युद्ध शाला से बाहर निकल रहा था तो उसकी दृष्टि पांडवों पर पडी उन्हे द्रोणाचार्य शिक्षा दे रहे थे, अभ्यास करा रहे थे। कर्ण की इच्छा हुई अब वो आचार्य द्रोण से इनके बारे में पूछे ये कहां के राजकुमार है ? ये तो पांडु की क्षेत्रज सन्तान है और अभी कोई राजकुमार भी नहीं है। नकुल और सहदेव को कुन्ती अपने आप ले आई। इन सबको अपने तथा माद्री के पुत्र बतला कर पांडु के क्षेत्रज्ञ पुत्रों की प्रतिष्ठा दिला दी थी। किन्तु उसे यह सब पूछने का अधिकार नहीं था।

धन सम्पत्ति की कर्ण को कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। जिस दिन वह धनार्जन करने निकलेगा उसे कोई अभाव नहीं होगा और फिर राजकुमारों के पास कौनसा अपार धन होता है। वे भी तो दूसरों को लूट पाट कर ही धन एकत्रित करते है। शास्त्र ज्ञान का अभाव भी उसे विचलित नहीं करता था उसकी पूर्ति तो स्वाध्याय या मनन से जब चाहे कर लेगा और वैसे भी शास्त्रों में उसकी कोई निष्ठा नहीं थी। शास्त्र को सदा ही तप, त्याग और आत्मदमन का ही पाठ पढाते है। कर्ण को लगता था कि वह पहिले से ही इतना वंचित, दमित है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व तप, त्याग का विरोध करने लगता था। उसे लगता था कि उसे शास्त्र की नहीं शस्त्र की आवश्यकता है। ये कंगले पांडव कही से आकर राजकुमार बन गये और शस्त्र ज्ञान में उससे श्रेष्ठतर हो जाये यह कर्ण को किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं था। यह अर्जुन उससे छोटा सदा चुप रहनेवाला कर्ण से श्रेष्ठतर धनुर्धर हो जाये ये कर्ण को गंवारा नहीं था।

जब तक पांडु हस्तिनापुर नहीं आये कर्ण का जीवन शान्त और सुखद था। वह अपने पिता के साथ हस्तिनापुर में राजमहल में आया जाया करता था। राजप्रासाद उसे शुरु से ही अच्छा लगता था। राजप्रासाद के ऊंचे ऊंचे द्वार, ड्योढियां, बडे-बडे कक्ष, अनुशासन बद्ध सेवक व परिचारिकायें, सुन्दर सजीली दासियां, सुन्दर स्त्री पुरुष। दुर्योधन के साथ मित्रता कर उसका अधिकांश समय दुर्योधन के साथ बीतने लगा। राजकुमारों की वेश भूषा कर्ण को अत्यन्त प्रिय थी। उसकी भी इच्छा होती थी कि वह भी वैसे ही वस्त्र धारण करे। वैसे ही आभूषण धारण करे। कहीं भी जाये तो लोग उसकी ओर आकर्षित हो। उसकी अपनी पहचान बने और उसके महत्व को स्वीकार करे। राजप्रसाद के सभी कर्मचारी यह जानते थे कि अधिरथ का यह पुत्र राजकुमार दुर्योधन का बहुत प्रिय मित्र है। पांडव जब हस्तिनापुर में आये थे तब कर्ण ने उन्हे देखा था। सब पांडव उससे छोटे हैं। सभी पांडव भीम को छोडकर दुबले पतले निरीह लगते थे। तपस्वियों जैसा वेश और शरीर पर कोई आभूषण तक नहीं। दुर्योधन ने कर्ण को बताया था कि बेचारों के पिता का देहान्त हो गया और अपने असहाय और अनाथ बच्चों को लेकर उनकी माता राजाश्रय पाने के लिये महाराज धृतराष्ट्र के

पास आई थी। ऐसे लोगों को अपना सम्बन्धी मानकर सहायता तो करनी पडती है। दान के रूप में थोडा धन देना भी पडता है किन्तु ये पांडव लोग तो एक दम ही सिर पर चढते जा रहे हैं। वे राजप्रासाद में रहना चाहते है राजकुमारों के ही भांति और उनकी माता तो यहां तक चाहने लगी कि उसका पुत्र युधिष्ठिर युवराज बना दिया जाये। कर्ण भी दुर्योधन का साथ देने के लिये बहुत अपमानजनक हंसी हंसता था और दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये व्यंग करता था। कहता था कि राह चलते भिक्षकों को भी कोई युवराज बनाता है ? कर्ण देखता रहता था कि पान्डवों का महत्व क्रमश: बढते जा रहा है जिसे वह इच्छा होते हुये भी रोक नहीं सकता था। भीम बडा ही शक्तिशाली था उसने दुर्योधन की शक्ति को निस्तेज ही नहीं निरस्त भी कर दी। दुर्योधन के दो चार भाइयों को तो वो एक साथ उठा कर पटक देता था और दुर्योधन खडा देखता रहता था और कुछ नहीं कर पाता था। ऐसे समय में कर्ण स्वयं को समझा लेता था कि शारीरिक बल में भीम उससे बडा है। शारीरिक बल तो पशु में भी अधिक होता है और भीम तो है ही पशु समान गंवार। भीम में बुद्धि तो नाम मात्र भी नहीं है। कर्ण मनुष्य है, उसमें बुद्धि है। कर्ण अपनी बुद्धि और शस्त्रों के सहारे भीम से श्रेष्ठ है पर अर्जुन शस्त्र संचालन में दक्ष हो रहा है और अपने सभी भाईयों से आगे निकल रहा है। युद्ध शाला में सभी यह जानते थे कि कुमार अर्जुन राजकुमार न होते हुये भी वह शस्त्र विद्या में सबमें श्रेष्ठ है। वही अर्जुन धनुर्वेद में कर्ण से आगे बढ रहा है। कर्ण मन ही मन अर्जुन से ईर्ष्या प्रतिस्पर्धा करने लगा उसे लगने लगा कि अर्जुन कर्ण की सारी विशिष्ठता छीन लेगा। कर्ण न तो राजकुमार था और न ही अर्जुन से श्रेष्ठ। बार-बार उसका हृदय इस व्यंग बाण पर कचोटता था कि वह सूतपुत्र है। हीन है साधारण है यह सब केवल एक अर्जुन के कारण। जैसे-जैसे अर्जुन अपना विकास करते जाता था वैसे-वैसे कर्ण और भी हीन होता जाता था। जो धनुर्वेद का ज्ञान आचार्य अर्जुन को देंगे वह कर्ण को कभी मिल नहीं सकता। कर्ण को लगने लगा अब उसका एक मात्र शत्रु है तो अर्जुन जो उसे प्रत्येक महत्व से वंचित कर रहा है, उसे निरन्तर हीन बना रहा है। अब उसे स्वयं को अर्जुन से श्रेष्ठ सिद्ध करना है नहीं तो उसकी श्रेष्ठता कभी भी सिद्ध नहीं हो पायेगी ?

द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा पर विशेष अनुराग रखते थे। उन्होंने शिष्यों को पानी लाने के लिये जो बर्तन दिये थे वे देर से भरते थे लेकिन अश्वत्थामा का बर्तन सबसे पहिले भर जाता था। इससे अश्वत्थामा सबसे पहले अपने पिता के पास पहुंच कर गुप्त रहस्य सीख लेता था। अर्जुन ने यह बात ताड ली। अब वे वारूणाशस्त्र से अपना बर्तन भर कर झटपट आचार्य के पास पहुंच जाते। इसी से उनकी शिक्षा दीक्षा गुरु पुत्र अश्वत्थामा से किसी भी अंश में कम नहीं हुई। अर्जुन ने देखा अश्वत्थामा न केवल उससे पहिले पहुंच जाता था बल्कि पहले पहुंचकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर देता था। एक ही बाण छोडने पर वह अपने विभिन्न विभिन्न लक्ष्यों को भेदन कर जाता है। अर्जुन को धनुर्विद्या की इस बहु लक्ष्य भेदन पर आश्चर्य हुआ। इस तरह की विद्या अर्जुन ने पहली बार ही देखी थी। कैसा विचित्र बाण सन्धान था कि बाण जैसे सीधी रेखा में न चलकर आदेशानुसार सीधे लक्ष्य से जा टकराते थे। अच्छा गुरु तो सौभाग्य से ही मिलता है। अर्जुन अपने गुरु से यह कैसे कह सकते थे कि आपने जो अश्वत्थामा को अभी विद्या सिखाई वो मुझे सिखाओ। फिर जैसे भी अर्जुन ने अपने आपको समझा लिया कि गुरु अपनी इच्छानुसार अपनी योजनानुसार उसे सिखायेंगे। यह निर्णय करने का अधिकार उसे नहीं है कि गुरु उसे कब क्या सिखायेंगे ? गुरुकुल तो विद्या प्राप्ति का क्षेत्र है जहां गुरु अपनी इच्छा से विद्या दान करते हैं। विक्रेता से कोई भी वस्तु मूल्य चुका कर प्राप्त की जा सकती है किन्तु दान तो मूल्य से नहीं खरीदा जा सकता। याचक तो दाता को अपनी सेवा से प्रसन्न ही कर सकता है या अपनी याचना से गुरु के मन में करुणा उपजा सकता है। गुरु शिष्य के हित के लिये अपना स्वार्थ नहीं देख सकता पर शिष्य तो अपने हित के लिये अपना स्वार्थ देखता है। विद्या लाभ अर्जन किसी व्यापारी का कार्य भी तो नहीं। वृक्ष की जितनी सेवा की जाये वह उतना ही अच्छा फल देता है, फल आ जाने पर वृक्ष उसे अपने पास नहीं रखता। यदि कोई न भी लेगा तो भी फल आ जाने पर वृक्ष स्वयं उसे त्याग देगा। कोई भी वृक्ष स्वयं के लाभ के लिये कभी फल उत्पन्न नहीं करता परन्तु यदि समय से

पहिले कोई वृक्ष से फल प्राप्त करना चाहे तो वह सम्भव नहीं है।

अर्जुन के हाथ धनुष और बाणों को ही साधते रहे। अर्जुन की दृष्टि विभिन्न बहु लक्ष्यों पर स्थिर रही पर उसका मन अवरत आचार्य जो शिक्षा अश्वत्थामा को दी उसीपर लगा रहा। अर्जुन ज्ञान के लिये हाथ पसार कर याचना करे और गुरु अपनी मुट्ठी ही बन्द कर ले तो क्या इसमें पूरा दोष गुरु का ही है हो सकता है दोष उसकी याचना में भी हो। श्रेष्ठ शिष्य कभी गुरु में दोषारोपण नहीं करते न ही उसकी निन्दा करते। गुरु के प्रति अश्रद्धा से विद्या का ऱ्हास होता है। सबसे पहले प्रतिदिन अश्वत्थामा ही जल भरने के लिये गुरुमाता से कुम्भ लेकर गंगा तट पर पहुंच जाता था। उसे चौडे मुंह का कुम्भ मिलता था जिससे उसमें जल जल्दी भर जाता था। अर्जुन भी दूसरे दिन प्रात:काल जल भरने के लिये गुरु माता के पास जल्दी से पहुंच गया। किन्तु आचार्य पत्नी ने कोई कुम्भ जल्दी से उठाकर नहीं दिया पर अर्जुन यह नहीं भूल रहा था कि उसे विलम्ब हो रहा है। अर्जुन ने अपने कुम्भ के बारे में पूछा। तब आचार्य पत्नी बोली- ढूंढ लो अपना पात्र और अपना ही जल कुम्भ लेकर जाना। कही तुम किसी और का कुम्भ ले गये तो वह बेचारा अपना कुम्भ ढूंढता ही रह जायेगा। इतने सारे कुम्भों में अपना कुम्भ खोजना अर्जुन के लिये आसान नहीं था। अर्जुन को लगा गुरु से कुछ पाने के लिये उनका शिष्य बनना ही पडता है। आदर्शों में सबसे बडा दोष यही होता है कि वह व्यक्ति की आंखे ही बन्द कर देता है। जो कुछ तुम्हारी आंखों के सामने घटित हो रहा है वह तुम्हे दिखाई ही नहीं देता और जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसी को तुम सत्य मान कर बैठ जाते हो। अर्जुन को लगा आचार्य जो कुछ चाहे वह अश्वत्थामा को सिखा सकते है क्योंकि वह उनका पुत्र है इसमें अर्जुन को बुरा मानने की आपत्ति नहीं करनी चाहिये। चाटुकारिता सुनकर तो अपनी बुद्धि की पुष्टि होती है। युधिष्ठिर ने कहा गुरु की इच्छा को ईश्वर की इच्छा ही समझो यदि गुरु तुम्हे वह विद्या नहीं देना चाहे तो तुम्हे उसको सीखने के लिये गुरु से आग्रह भी नहीं करना चाहिये। भीम बोला- यह तो प्रजा, राज्य तथा कौरवों सब के साथ गुरु का छल होगा। राज्य के धन से बना गुरुकुल, कोई संस्था किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती चाहे वह व्यक्ति कोई भी क्यों न हो ? युधिष्ठिर बोला- धन तो सदा ही प्रजा की धरोहर है उसके रक्षक क्षत्रिय राजा है। उसी प्रकार ज्ञान भी मानव समाज की धरोहर है। ज्ञान के रक्षक आचार्य होते है। जिस प्रकार राजा अपनी बुद्धि अनुसार उस धन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करता है उसी प्रकार आचार्य का कार्य है यह देखना कि मानव समाज की धरोहर किस प्रकार विकसित हो सकती है, किस प्रकार संचित हो सकती है और किस प्रकार वितरित होना चाहिये। किसी गुरु से बलात विद्या तो प्राप्त नहीं की जा सकती। अर्जुन ने कहां धनुर्विद्या को मैं उसकी पूर्णता से प्राप्त करना चाहता हूं। यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। सहदेव बोला फिर साधना करो भैया। साधना के माध्यम से ही तो हम वे शक्तियां अर्जित करते है जो प्रकृति ने सामान्यत हमें नहीं दे रखी है। जो हमें स्वत: नहीं मिले उसके लिये हमें साधना करनी पडती है।

अर्जुन को लगने लगा और सोचने लगा गुरुदेव ने उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीर्वाद दिया है पर कही कोई विरोध है, कोई अविश्वास, कोई दूरी, कोई अन्तर है। उसने अपने गुरु के मन को पूर्णत: विजय नहीं किया है। उसकी गुरु भक्ति में कहीं कोई कमी है, प्रयत्न में अपूर्णता है। कहीं न कहीं, कोई न कोई कमी तो है ही नहीं तो उसका समर्पण गुरू का मन जीत क्यों नहीं पाया ? क्या गुरु के लिये शिष्य से बढकर उसका पुत्र हो गया ? गुरु भी मनुष्य है, व्यक्ति है उनके अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध है। गुरु गुरु होते हुये भी व्यक्ति है और उस व्यक्ति का अपना एक पुत्र है। व्यक्ति को पुत्र से बढकर प्रिय और कोई नहीं होता। गुरु तो पूर्ण मानव है। मानवता का सर्वश्रेष्ठ तत्व। ज्ञान न तो किसी एक व्यक्ति की धरोहर होती है और न ही किसी एक व्यक्ति के लिये होता है। इसीलिये ज्ञान को अर्जित तथा वितरित करनेवाले व्यक्ति को अपने जीवन का लक्ष्य, भौतिक सुखों से दूर रखना पडता है। लोभ और स्वार्थ को विस्मृत करना पडता है। किन्तु अर्जुन का मन कहता है जो विद्या गुरु ने अश्वत्थामा अपने पुत्र को दी है बहु लक्ष्य भेद जब इसका प्रयोग युद्ध में किया जायेगा तो युद्ध में सैनिकों की टुकडी की टुकडी का वध हो

सकेगा और वह धनुर्धारी शक्तिशाली माना जायेगा। क्या आचार्य यह नहीं चाहते कि अर्जुन भी इतना शक्तिशाली बने। अभ्यास करने से ध्वनि पर बाण चलाया जा सकता है।

प्राय: भीम युद्धशाला में लगे हुये लौह स्तम्भों को अपनी शक्ति लगा कर मोड देता था और जब गुरु द्रोणाचार्य ने कर्ण को शस्त्र विद्या का ज्ञान देने से अस्वीकार कर दिया कर्ण रात्रि के अन्धेरे में जो वे सब गुरु द्रोणाचार्य की सिखाई हुई विद्याओं का अभ्यास करता था। भीम द्वारा मोडे गये लौह स्तम्भ रात्रि में कर्ण सीधा कर देता था। इस तरह भीम को बडा आश्चर्य होता था कि दिन में भीम उन स्तम्भों को मोड देता था और रात्रि में कोई आकर उन लौह स्तम्भों को सीधा कर देता था भीम ने छिप कर देख लिया और तभी से भीम और कर्ण के बीच भी ईर्ष्या और द्वेष के बीज बोये गये।

एक दिन गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों से बोले कौरव राजकुमारों तुम लोगों ने अब तक अपने विभिन्न गुरुओं से युद्ध शिक्षा पाई है और शस्त्रों के परिचालन का भी अभ्यास किया है किन्तु वह सारा ज्ञान पुरातन और परम्परागत है, सर्व विदित है, अत: साधारण है। ऐसा ज्ञान आर्यावर्त के प्रत्येक गुरुकुल में दिया जाता है। उस ज्ञान से तुम लोग उनके लिये तो यौद्धा हो गये परन्तु जिन्हे शस्त्र ज्ञान नहीं है वो योद्धाओं के लिये योद्धा नहीं है। आज से तुम्हे जो प्रशिक्षण मैं देने जा रहा हूं वह साधारण नहीं विशेष है, अब तक के प्राप्त ज्ञान से उच्चतर है। यह ज्ञान परम गुरु भरद्वाज, महर्षि अग्निवेश, परशुराम, विश्वामित्र तथा मेरी अपनी साधना का परिणाम है। इस ज्ञान को पाने के पश्चात तुम संसार के श्रेष्ठ योद्धाओं और विजेताओं में से होंगे और सब योद्धाओं के लिये अजेय हो जाओगे। दिग्विजय तुम्हारा विलास होगा। किन्तु उस शिक्षण के लिये आवश्यक है कि शिक्षा दान के लिये गुरु जितने आतुर है उसे ग्रहण करने के लिये शिष्य भी उससे अधिक व्यग्र हो। जो कुछ सीख रहे हो उसके महत्व को जानो और उसमें आस्था रखो। मैं तुम्हे वचन देता हूं कि इसके प्रशिक्षण में जो जितना श्रम करेगा युद्धक्षेत्र में उसका रक्त भी उतना ही कम गिरेगा। यदि तुम इस ज्ञान का सम्मान नहीं करोगे तो यह ज्ञान समय आने पर तुम्हारे काम नहीं आयेगा। तप्त लौह खंड पर घन का प्रहार उसी समय करना चाहिये। अब मैं गुरु के रूप में तुम लोगों से एक वचन चाहता हूं। मुझसे शस्त्र शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात तुम्हे मेरी इच्छा पूरी करनी होगी। मैं अपने गुणवान शिष्यों के माध्यम से अपने अभिष्ट की सिद्धि चाहता हूं। बोलो तुम लोगों को स्वीकार है।

दुर्योधन को तो आचार्य की बातपर कोई रूचि थी नहीं। दुर्योधन की रूचि धनुर्विद्या से अधिक अपने गदा युद्ध से थी। युधिष्ठिर बडे ही संकुचित भाव से उठकर खडा हुआ और बोला गुरुदेव यदि यह जाने बिना ही मैं आपको वचन दे दूं और बाद में आपके कार्य को सम्पादन करने में असमर्थ रहूं तो मेरा वचन मिथ्या हो जायेगा। गुरु को झूठा वचन देने से बडा दूसरा कोई पाप नहीं है। द्रोण समझ गये और बोले- युधिष्ठिर तुम्हारी सावधान गुरु भक्ति से मैं तृप्त नहीं हूं। गुरु के प्रति समर्पण और निष्ठा में इतने नाप तौल की आवश्यकता नहीं होती।

तभी अर्जुन उठकर अपने स्थान पर खडा हो गया और बोला गुरुदेव मैं आपके कार्य को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा करता हूं। यदि हम अपने गुरु की मनोकामना पूर्ण न कर पाये तो हमें धिक्कार है। मैं आपको वचन देता हूं कि मैं आपका कार्य पूर्ण करूंगा। द्रोण बोले- बहुत अच्छा पुत्र बहुत अच्छा। तुम्हारी गुरु भक्ति से मैं सन्तुष्ट हुआ और मैं तुम्हे संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीर्वाद देता हूं।

गुरु द्रोणाचार्य ने कर्ण को यह कह कर वापिस भेज दिया कि मैं सूत पुत्र को शिक्षा नहीं दे सकता। सन्ध्या समय दुर्योधन को कर्ण अनमनासा बैठा हुआ मिल गया। वह गुरु द्रोणाचार्य के किये गये इस अपमान के कडवे घूंट पी रहा था। दुर्योधन उसके पास जाकर बोला क्या बात है कर्ण ? आज इतने अन्यमनस्क किसलिये हो रहे हो ? दुर्योधन ने अपनी मैत्री का हाथ कर्ण की ओर बढाया। कर्ण बोला आचार्य ने मेरी वर्ण और जाति का ज्ञान करा दिया कि तुम राजपुत्र हो और मैं सारथी। मुझे यह जीवन इसलिये मिला है कि मैं युद्ध में सारथी के रूप में क्षत्रिय राजकुमारों की सेवा करू। अपनी बुद्धि और रण कौशल से अनाम, कीर्तिशून्य मृत्यु का वरण

करूं। दुर्योधन बोला- तुम यह कहो कि पहले पांडव हमारे शत्रु थे अब आचार्य द्रोण भी हमारे शत्रु हो गये। दुर्योधन फिर कर्ण से बोला- युद्धशाला में भले ही आचार्य तुम्हे न शिक्षा दे। मेरे शासन हाथ में आते ही राज्य की ओर से उन्हे समर्थन नहीं मिलेगा तो आचार्य क्या कर लेंगे ? पहले तो हम भीम से ही पीडित थे और अब यह अर्जुन लक्ष्यवेध से आचार्य का प्रिय शिष्य बना हुआ है। पता नहीं आचार्य उसे कौनसी विद्यायें सीखा रहे है ? कर्ण बोला- मित्र तुम चाहो तो मैं अभी अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध कर उसे समाप्त कर डालू ताकि तुम्हे कोई चिन्ता ही न रहे। दुर्योधन जानता था कि कर्ण ने सदा ही अर्जुन को अपना प्रतिद्वन्द्वी माना है लेकिन दुर्योधन को केवल अर्जुन से नहीं इन पांचों पांडवों से निपटना था। कर्ण की सारी उदासीनता और अनमनस्कता समाप्त हो गई। कर्ण अब जागरूक सचेत और सनद्ध हो गया। दुर्योधन बोला- द्वन्द्व युद्ध का अभी अवसर नहीं है और न ही कोई सम्भावना। हस्तिनापुर में भी तुम्हे अर्जुन के साथ द्वन्द युद्ध की कोई भी अनुमति नहीं देगा। उपयुक्त अवसर आने पर मैं तुम्हे बताऊंगा उस समय तुम तैयार रहना। अर्जुन चाहे जितना बडा धनुर्धर हो जाये पर कर्ण तुम सदा ही उसकी अपेक्षा अधिक समर्थ रहोगे। दुर्योधन के मन में आया आचार्य द्रोण का हृदय जीतने का प्रयत्न करना चाहिये और वे कर्ण से बोले अब आओ तुम मेरे साथ।

अश्वत्थामा अपने निवास के पास गंगा तट पर बैठा था। दुर्योधन ने उसे पुकार गुरु पुत्र और बोले मैं दुर्योधन हूं और यह मेरा मित्र कर्ण। हम यहां तुमसे मित्रता करने आये हैं। अश्वत्थामा के चेहरे पर उल्लास का भाव जागा। दुर्योधन ने अपने कंठ में पडा स्वर्णहार उतार कर गुरु पुत्र को भेंट में उपहार दिया और कहा आज से हम अभिन्न मित्र हुये। अश्वत्थामा उस हार को लेकर देखता रहा। उसने तो आज तक तपस्वियों का ही जीवन व्यतीत किया था। दुर्योधन ने कहा तुम्हारे यहा गोरस दूध का भी कभी अभाव नहीं होगा। इस हार को कंठ में धारण करो। दुर्योधन मन ही मन मुस्करा रहा था। अर्जुन का लक्ष्य वेध तो अभ्यास परक ही था दुर्योधन ने तो वास्तविक जीवन में लक्ष्य वेध कर लिया।

दुर्योधन अश्वत्थामा से बोला गुरु पुत्र मेरी हार्दिक इच्छा है कि अब अपने पिता के पश्चात हस्तिनापुर का राजसिंहासन मुझे मिले तब तुम भी अपने पिता के पश्चात इस युद्ध शाला के कुलपति आचार्य बनना। अश्वत्थामा बोला- मित्र मैं भी ऐसे ही चाहता हूं। मेरी तनिक भी इच्छा नहीं कि मैं वन में कुटी बनाकर तपस्या करू और मेरी सन्ताने भी अन्न और दूध के लिये तरसती रह जाये। मैं तो आचार्य बनकर अपने शिष्यों को शिक्षा देने में ही अपनी तपस्या मान लुंगा। दुर्योधन बोला- लेकिन आचार्य को तो अपने विषय में सर्वश्रेष्ठ होना ही चाहिये तभी तो आचार्य का पद सुशोभित होगा। लेकिन गुरुदेव ने तो अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ होने का आशीर्वाद दे दिया है। क्या मित्र अब कुछ किया नहीं जा सकता ? अश्वत्थामा बोला- पिताश्री ने तो उसे मात्र आशीर्वाद ही दिया है वरदान तो नहीं। मुझ में क्षमता होगी तो मैं स्वयं ही उससे भी श्रेष्ठ धनुर्धर बनूंगा। दुर्योधन बोला- मित्र यदि तुम्हारे पिताश्री कर्ण को भी अपना शिष्य बना ले तो मेरा विश्वास है कि अर्जुन कभी भी सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर नहीं बन पायेगा। कर्ण अवश्य ही अर्जुन से श्रेष्ठतर सिद्ध होगा।

अश्वत्थामा बोला शायद यह सम्भव नहीं हो पायेगा। पिताश्री अपनी नीति नहीं बदलेंगे। वे सूत पुत्र जानकर उसे धनुर्वेद की उच्च शिक्षा नहीं देंगे पर मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूं कि पिताजी जो कुछ मुझे सिखायेंगे वह सब मैं कर्ण को सिखा दुंगा।

अश्वत्थामा के मन में दुर्योधन की बात घर कर गई कि वास्तव में पिताश्री की इच्छा है कि अर्जुन उससे भी श्रेष्ठ धनुर्धर बने। क्या पिताश्री को अर्जुन अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय है ? क्या इसलिये कि अर्जुन ने गुरुदेव की इच्छा की पूर्ति करने की प्रतिज्ञा की है ? अश्वत्थामा के मन में प्रतिवाद उठने लगा और झलकने लगा।

अश्वत्थामा अपने पिता द्रोणाचार्य के पास आये। द्रोणाचार्य बोले- पुत्र तुम्हारी आखों में आज प्रतिवाद का रंग क्यों स्पष्ट दिखाई दे रहा है ? अश्वत्थामा बोले- आज कल मैं देख रहा हूं कि आपका पुत्र तो मैं हूं लेकिन आपका स्नेह दिन प्रतिदिन अर्जुन को मिल रहा है। अब अर्जुन को मुझसे भी श्रेष्ठ धनुर्धर बनाना चाहते है और मुझसे भी अधिक शिक्षा देंगे तो फिर

प्रतिसाद का तो रंग आयेगा ही। आपने उसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीर्वाद दिया है। द्रोण बोले- तुमने कहा था तुम तो मेरे शिष्य बनना चाहते हो। तुम्हे मेरा पुत्र विधाता ने बनाया है परन्तु तुम सब लोगों को अपना शिष्य मैंने स्वयं बनाया है। यह गुरुकुल है मेरे घर का आंगन नहीं। घर के आंगन पर तुम्हारा अधिकार है, तुमसे अधिक किसी का नहीं। तुम मेरे बाद मेरी सम्पत्ति के वारिस हो परन्तु गुरुकुल में उसका अधिकार अधिक होगा जो सबसे श्रेष्ठ शिष्य होगा। अर्जुन तो वह नर है जो हमें नारायण के दर्शन करायेगा। आचार्य को समाधान सुझाने में अधिक समय नहीं लगा। वे बोले पुत्र मैंने अपने शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीर्वाद दिया है तुम मेरे शिष्य ही नहीं पुत्र भी हो। पुत्र का स्थान मेरी दृष्टि में शिष्य से भिन्न है और किसी भी प्रकार से हीन नहीं है। पुत्र पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकारी होता है जबकि शिष्य को वहीं मिलता है जो गुरु उसे प्रदान करता है। अश्वत्थामा बोले तो मुझे अर्जुन से आशंकित रहने की कोई आवश्यकता नहीं ? द्रोण बोले- तनिक भी नहीं। जो कुछ सबको सिखाऊंगा तुम्हे उससे कुछ अतिरिक्त ही सिखाऊंगा। तुम्हे मैं अपना सम्पूर्ण ज्ञान दूंगा। अश्वत्थामा बोले- प्रात: उठने से लेकर रात के सोने क के समय तक आपके शिष्य आपको घेरे रहते है फिर मुझे अतिरिक्त ज्ञान की प्राप्ति कब और कैसे होगी? द्रोण हंसे और बोले- तुम्हे इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। किस शिष्य को क्या सीखाना है कब सिखाना है इसका निर्णय करने का दायित्व और अधिकार केवल गुरु का है। अश्वत्थामा अब समझ गया कि पिताश्री इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में और क्या कहेंगे ? अवश्य ही उनके मन में कोई योजना होगी। अश्वत्थामा बोले- गुरु ने परीक्षा लिये बिना ही यह निर्णय कैसे ले लिया कि अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। द्रोण बोले- ठीक है तुम्हारे सन्तोष के लिये परीक्षा ले ही लेते है। आओ मेरे साथ।

अश्वत्थामा ने अपने मामा कृपाचार्य से कहा- मामाश्री मैं पिताजी को कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। वे मुझसे अधिक प्रेम करते है या अर्जुन से ? कृपाचार्य बोले- तुम्हारे लिये जानना किसलिये आवश्यक है पुत्र ? अश्वत्थामा बोले- आवश्यक क्यों नहीं? मैं उनका पुत्र हूं एक मात्र पुत्र। शिष्यों का तो क्या वे आयेंगे और चले जायेंगे ? किन्तु पुत्र तो ऐसा नहीं होता तो फिर मैं उनके जीवन में अपनी स्थिति जानना चाहूंगा। कृपाचार्य बोले- वत्स जहां तक आचार्य को मैं समझता हूं उनके विषय में यह कहना कठिन है कि वे कब किससे प्रेम करेंगे ? क्या तुम बता सकते हो सूर्य किसके लिये तपते रहता है ? फिर भी समस्त जीव जन्तुओं को अपने प्रकाश से जीवन देता है। अश्वत्थामा बोले- मामाश्री प्रकाश देने में सूर्य तनिक सा भी प्रमाद नहीं करता और इसी कारण वह जलता है औरों को प्रकाश देने के लिये तपता है कितनी बडी साधना है उसकी। कृपाचार्य बोले- इसी तरह आचार्य के विषय में भी कुछ कहना बहुत कठिन है पुत्र। तुम्हारे विकास के लिये, तुम्हारी पूर्णता और सामर्थ्य के लिये वे सदा तत्पर होंगे। किन्तु वे अपनी साधना छोड दें और मात्र तुम्हारा निर्माण करे यह उनकी प्रकृति में न हों। तब से शायद तुम्हे बात का अर्थ स्पष्ट न हो। मैं तुम्हे उदाहरण देता हूं। अपनी कक्षा में घूमनेवाले सौर मंडल के सारे ग्रह सूर्य से ही उत्पन्न हुये हैं। अत: वे सब सूर्य की ही सन्तान हैं। उसीने इनका पालन-पोषण किया। सभी ग्रहों के पालन पोषण में सूर्य ने अपनी सुख सुविधा का तनिक भी ध्यान नहीं रखा। वह उनके विकास के लिये स्वयं भी तप कर उन्हे प्रकाश दे रहा है। क्या सूर्य आदर्श जनक पिता नहीं है ? यदि उससे यह कहा जाये कि वह अपना सम्पूर्ण प्रकाश किसी ग्रह को दे दे और स्वयं बुझ जाये तो क्या सूर्य सहमत होगा ? बस यही स्थिति आचार्य की है पुत्र। वे तुम्हे अश्वत्थामा बनाने के लिये सम्पूर्ण साधना करें और अपना द्रोणत्व तुम्हे देकर द्रोणोत्तर बना दें और स्वयं रिक्त हो जाये यह उनकी प्रकृति में नहीं हैं। यदि वे अपना सर्वस्व तुम में संचित कर दे तो भी तुम द्रोण नहीं बन सकते। कृपाचार्य ने अश्वत्थामा के मर्म को समझा और बोले- हम तो केवल सम्भावनाओं की बात करते है। सम्भव हो सकता है कि तुम अपने पिता से भी श्रेष्ठ धनुर्धर बन जाओ। किन्तु यदि वे तुम्हारे निर्माण में जुट जाये और तुम वह नहीं बन सके जो वे तुम्हे बनाना चाहते है तो वे तो दोनों ओर से जायेंगे। नदी सरिता बिना जाने अपना सरा जल सागर में उलीच देती है और उसी से सागर बनता है। दूसरी ओर समुद्र मेघों को बनाने के लिये पर्याप्त जल देता है किन्तु समुद्र स्वयं को

कभी रिक्त नहीं करता। समय आने पर तुम सब कुछ समझ जाओगे। मैं तो इस वक्त इतना ही कह सकता हूं वे तुमसे इतना प्रेम करते है कि तुम्हारी पीडा न देख सकने के कारण अपनी साधना छोडकर गंगा द्वार से यहां चले आये। वे तुमसे प्रेम करते है अर्जुन से नहीं। वे अर्जुन को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनायेंगे तो इससे तुम्हारे प्रेम में कोई कमी नहीं आयेगी। उसे वे अपने ज्ञान का वारिस बनायेंगे। इसलिये मैं तुम्हारी अप्रसन्नता का कोई कारण नहीं देखता वत्स। मैं तुम्हारे साथ ही नहीं तुम्हारे लिये ही हूं। अच्छे में, बुरे में, सुख में, दु:ख में। जीवन में तुम्हे न प्रेम का अभाव खलने दुंगा और न ही समर्पण का।

अश्वत्थामा के सन्तोष के लिये द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। उन्होने शिल्पकार से एक नकली पक्षी बनाया और उसे एक वृक्ष में टांग दिया। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को लेकर अभ्यास क्षेत्र में आये। द्रोणाचार्य को आज लग रहा था पूर्णता: का उन्माद, सफलता का उन्माद, सार्थकता का उन्माद उनके लिये परिवेश कितना सुखद था। प्रकृति का प्रत्येक तत्व आनन्द स्वरूप लग रहा था। वे चल रहे है पांव जैसे धरती पर न पडकर स्वर्ग की ओर जा रहे है। आंखे सामान्य भौतिक पदार्थ न देखकर प्रकाश ही प्रकाश देख रही है। सुगंधित वायु बह रही है। वे अभ्यास क्षेत्र में आये। आचार्य ने शिष्यों को भूमिपर सुखासन पर बैठने का आदेश दिया और बोले बालकों धनुर्वेद में उच्च प्रशिक्षण के लिये तुम्हारी यह परीक्षा है और तुम्हारी परीक्षा आरम्भ होती है। राजकुमारों इस वृक्ष के उपर एक पक्षी रूपी यन्त्र है जो तुम्हारा सबका लक्ष्य होगा। सबसे पहिले युधिष्ठिर तुम आओ और लक्ष्य साधो। युधिष्ठिर ने कहा- जी गुरुदेव और अपना बाण सन्धान किया। आचार्य ने पूछा तुम्हे क्या दिखाई दे रहा है। युधिष्ठिर बोले, मुझे आकाश, पृथ्वी, पेड इत्यादि। द्रोण बोले- नहीं युधिष्ठिर हट जाओ। आचार्य बोले- दुर्योधन तुम लक्ष्य साधो। दुर्योधन बोला- जी गुरुदेव। द्रोणाचार्य ने पूछा तुम्हे क्या दिखाई दे रहा है। दुर्योधन बोला- वृक्ष की पत्तियों में छिपा एक पक्षी गुरुदेव। द्रोण बोले- ठीक है बाण मत चलाओ। अश्वत्थामा तुम आओ और लक्ष्य साधो। अश्वत्थामा बोला- जो आज्ञा गुरुदेव। द्रोण बोले- अश्वत्थामा तुम्हे क्या दिखाई दे रहा है। अश्वत्थामा बोला- मुझे तो पक्षी का सिर दिखाई दे रहा है गुरुदेव। आचार्य बोले- ठीक है हठ जाओ। द्रोणाचार्य ने भीम को पुकारा आओ भीम और लक्ष्य साधो। भीम बोले- जो आज्ञा गुरुदेव। आचार्य ने पूछा तुम्हे क्या दिखाई दे रहा है। भीम बोले- आपके चरण, वृक्ष और उसमें छिपा हुआ पक्षी यन्त्र। द्रोण बोले- ठीक है, हट जाओ। इस प्रकार बारी-बारी से हर शिष्य को गुरुदेव ने बुलाया। दु:शासन को बुलाया और वहीं उत्तर सबने दिया। अब अर्जुन की बारी आई। गुरु ने कहा- लक्ष्य साधो अर्जुन। अर्जुन बोले- जो आज्ञा गुरुदेव। द्रोण ने पूछा- तुम्हे क्या दिखाई दे रहा है। अर्जुन बोले- गुरुदेव मुझे तो केवल पक्षी की एक आंख दिखाई दे रही है। आचार्य बोले- बिल्कुल ठीक है वत्स। एक श्रेष्ठ धनुर्धर को उसके लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देना चाहिये। विद्या अर्जुन के लिये शालीनता और विनय की अत्यन्त आवश्यकता होती है और गुरु के प्रति सम्मान और समर्पण की। दुर्योधन मन ही मन कहने लगा। मुझे धनुर्विद्या सीख कर करना ही क्या है ? मेरे लिये तो गदा ही ठीक है। दु:शासन बोला- किसी को तो बाण चलाने की आज्ञा दीजिये। बाण चलाये बिना क्या लक्ष्यवेध की परीक्षा होगी ? द्रोण बोले- अभी उसका समय नहीं आया है। समय आने पर बाण चलाने के लिये कहूंगा। शिष्य का धर्म गुरु की आज्ञा पालन करने का है न कि गुरु को उपदेश या आदेश देने का। परीक्षा किस तरह से लेनी है और क्या परखना है इन विधियों को परीक्षक ही स्वतन्त्र है अपना निर्धारण करने के लिये परीक्षार्थी नहीं। गुरु ने लक्ष्य साधने के लिये अर्जुन को आदेश दिया। अर्जुन का बाण उस यन्त्रवत पक्षी की आंख में लगा उसे भेद दिया। सबने प्रशंसा की तालियां बजायी। गुरु बोले- लक्ष्य भेदन में सूक्ष्मता की आवश्यकता होती है व्यापकता की नहीं और दृष्टि केवल लक्ष्य पर ही केन्द्रित होनी चाहिये। दृष्टि तीव्र होनी चाहिये। घनीभूत नहीं। धनुर्विद्या में ध्यान की उतनी ही आवश्यकता है जितनी की एकाग्रता की। धनुर्धारी को अपने लक्ष्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। एकाग्रता के बिना धनुष संचालन हो सकता है और शत्रु पर लक्ष्य विहीन बाण बरसा किन्तु शत्रु सेना के योद्धा विशिष्ट के शरीर

के निश्चित अंग को बाण मारना हो तो लक्ष्यवेध ही हो सकता है। इसके लिये तुम्हे चित्र की एकाग्रता के अभ्यास की आवश्यकता है। अश्वत्थामा बोला- आपका यह शिष्य क्षमा चाहता है। गुरु द्रोणाचार्य बोले- पुत्र तुम तो मेरे जीवन का प्रकाश हो परन्तु तुम्हे ईर्ष्या करना अच्छी बात नहीं है क्योंकि ईर्ष्या मनुष्य के गुणों को दीमक की भांति चाट जाती है। अब देख लिया तुमने द्रोण के उत्तराधिकारी तुम हो परन्तु द्रोणाचार्य का सर्वश्रेष्ठ शिष्य यह कुन्ती पुत्र अर्जुन है।

ज्ञान दान गुरु से लिया, दिया मान सम्मान, गुरुकुल को गौरव दिया शिष्य वही महान।

कृष्ण बलराम उज्जैन अवन्तिका नगरी में क्षिप्रा नदी के तीर पर सांदीपन ऋषि के आश्रम में शिक्षा समाप्त कर रहे हैं। गुरु माता को गुरुदक्षिणा देने के लिये उनकी पुत्र की खोज में वे सागर में गये जहा उन्होंने पांचजन्य राक्षस से हीरे जवाहरात और पांचजन्य शंख लाकर गुरुपुत्र सहित आचार्य को लाकर समर्पित किया। आचार्य ने वह पंच जन्य शंख श्रीकृष्ण को लौटा दिया और कहा कि इसकी आवश्यकता तुम्हे है लीला धर इसे फूंककर आनेवाले नये युग की घोषणा करो।

श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख को फूंका। पुराने युग की उस दिन से समाप्ति हुई।

नवयुग का आरम्भ है, पांचजन्य जय घोष सृजन परितोषप्रद दुर्जन के प्रति रोष।

३६) एकलव्य की गुरु भक्ति

मनुष्य में यह स्वाभाविक प्रवृति कमजोरी है कि जिसपर उसका ममत्व हो जाता है उसको प्रसन्न करने के लिये वह उचित अथवा अनुचित सभी प्रकार के काम कर डालता है। द्रोणाचार्य के पास कौरव, पान्डव तथा अन्धक, वृष्णि वंश के अन्यान्य बहुत से राजकुमार शिक्षा पाते थे किन्तु उनका सबसे अधिक स्नेह अर्जुन के प्रति था। अर्जुन की शूरवीरता, हस्तलाघवता, गुरु शुश्रूषा श्लांघनीय थी। गुरु द्रोण ने उसे कहा भी कि मैं तुम्हारी गुरु भक्ति से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूं। आचार्य ने यह आशीर्वाद ही नहीं दिया किन्तु उन्होने भरसक प्रयत्न भी किया। वे एकान्त में अर्जुन को धनुर्वेद शास्त्र के उन गुप्त और गूढ रहस्यों को भी समझाते थे जिन बातों को अन्य सब नहीं समझ सकते थे। अर्जुन को संसार विजयी होने के लिये द्रोणाचार्य को एक बडा ही अनुचित कार्य भी करना पडा। आचार्य ने सब राजकुमारों को हाथी, घोडों, रथ, मल्लयुद्ध, गदा युद्ध, तलवार बाजी, तोमर, प्राशशक्ति आदि के प्रयोग एवं संकीर्ण युद्ध की शिक्षा दी। यह सब सिखाने में अर्जुन की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। द्रोणाचार्य के शिक्षा कौशल की बात देश देशान्तर तक फैल गयी। विभिन्न क्षेत्रों से दूर-दूर से राजा और राजकुमार द्रोणाचार्य के पास शिक्षा ग्रहण करने आने लगे।

निषाद अधिपति हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य एक दिन द्रोणाचार्य के समीप अश्व विद्या सीखने के लिये गुरु द्रोण के पास आया और बोला गुरुदेव मैंने आपको अपना गुरु माना है आप मुझे अस्त्र विद्या दान दें। आचार्य बोले- वत्स तुम्हे सिखाने में तो कोई आपत्ति नहीं है परन्तु ये सब राजकुमार और राजपुत्र तुमसे द्वेष करने लगेंगे और दिव्य अस्त्रों के अधिकारी प्राय: कुलीन क्षत्रिय ही होते हैं। एकलव्य गुरु का यह उतर सुनकर गुरु को प्रणाम करके चुपचाप वहां से चला गया। उसकी लगन सच्ची थी, हृदय में दृढ अनुराग था और अटूट श्रद्धा थी। उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी तथा प्रस्तर से एक प्रतिमा बनाई। उसे ही द्रोणाचार्य मानकर उसकी पूजा करता रहा और उसी की आज्ञा लेकर वह जंगल में अकेला ही धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। श्रद्धा ही तो फलवती होती है। भाव ही सिद्धि में कारण है। उसकी सच्ची निष्ठा सफल हुई। वह अपनी गुरु भक्ति के कारण संसाार में अद्वितीय धनुर्धारी हुआ। उसके समान दूसरा कोई भी ठीक से लक्ष्य वेधने वाला नहीं था। द्रोणाचार्य ने यह सोच कर कि यह निषाद जाति का है, शिक्षा देना अस्वीकार कर दिया था। वह नियमित रूप से अभ्यास करने लगा और अत्यन्त निपुण हो गया।

एक बार सभी कौरव कुमार आचार्य की अनुमति से शिकार खेलने गये। राजकुमारों के साथ उनका सामान लिये एक सेवक और उनका एक पालतू कुत्ता बघैरा भी चल रहा था। जंगल में जटा बढाये मैले वस्त्र पहिने काला मृगचर्म पहने निषाद कुमार

एकलव्य बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। वह कुत्ता वन में भटक कर वहां पहुंच गया जहां एकलव्य बाणों का लक्ष्य वेधने का अभ्यास कर रहा था। कुत्ता बघैरा उसे देखकर भूंकने लग गया। एकलव्य ने उसे कहा चुप रह ओ हस्तिनापुर के कुत्ते तू यों ही चुप नहीं होगा। इस पर उसके मुख को लक्ष्य करके अनेक बाण उसके मुख में भर दिये जिससे उसका भौंकना बन्द हो गया किन्तु इससे उसके मुख की कोई क्षति नहीं हुई। कुत्ता व्याकुल होकर बाण भरे मुंह से कुमारों के पास आया। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर सभी कहने लगे उस व्यक्ति का शब्द भेद बाण और फुर्ती तो विलक्षण है चलकर देखना चाहिये। यह अद्भुत बाण कौशल किस व्यक्ति ने किया कुत्ते के साथ साथ वे उस वीर धनुर्धारी की खोज में चले।

सभी कुमार गुरु द्रोणाचार्य के पास आये और पूरा हाल सुनाया। द्रोण ने पूछा क्या बघैरा मर गया ? युधिष्ठिर बोला- नहीं गुरुदेव। कुत्ते का दुःख दूर करने के लिये हमने उसके सारे बाण मुख से निकाल दिये। उसकी कोई क्षति नही हुई। उस धनुर्धर ने बाण इस तरह मारे कि बघैरे का मुख भी बाणों से भर गया किन्तु बाण उसको जरा सी भी क्षति नहीं पहुंचाये।

द्रोणाचार्य बोले- अद्भुत। आओ चलो देखें। टोह लगाने पर वह व्याध उन्हे उसी वन में मिल गया। वह लगातार बाणों का अभ्यास कर रहा था। द्रोणाचार्य के साथ सभी कुमार एकलव्य के पास आये और पूछा- धनुर्धर अपना परिचय दो। एकलव्य बोला- व्याधराज हिरण्यधनु के पुत्र एकलव्य का प्रणाम स्वीकार करें गुरुदेव। मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूं। यहां एकान्त में बाण चलाने का अभ्यास कर रहा हूं। भील राज का यह शिष्य द्रोण को अपना गुरु कैसे बता रहा है ? अर्जुन ने मन ही मन सोचा और पूछा- गुरुदेव को तुम अपना शिष्य कैसे बता रहे हो। अर्जुन गुरु द्रोण से बोले- इतना कौशल, ऐसा हस्तलाघव इस भांति का लक्ष्य ज्ञान तो आपने मुझे नहीं दिया। एकलव्य के रहते संसार में मैं कभी भी अद्वितीय धनुर्धर नहीं हो सकता। आचार्य वर आपने तो कहा था कि मैं ही अद्वितीय शूरवीर धनुर्धर होऊंगा पर आपका शिष्य एकलव्य तो मुझसे भी बढकर है। मैं उसकी समानता कभी भी नहीं कर सकता। आपने यह बात मुझे हृदय से लगाकर बडे प्रेम से कही थी। द्रोण बोले- अर्जुन यह एकलव्य मेरा कोई शिष्य नहीं है न ही मैंने कभी इसको कुछ सिखाया है। एकलव्य ने साष्टांग प्रणाम किया विधिवत पूजा की और हीनता से बोला- गुरुवर मैं आपका शिष्य हूं और आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं ? द्रोण बोले- एकलव्य तुमने अर्जुन के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया मैंने तो तुम्हे कभी कोई शिक्षा नहीं दी। मैं तुम्हारा गुरु कैसे हुआ ? मैंने तो तुम्हे कभी भी शिष्य रूप में स्वीकार नहीं किया ? एकलव्य हाथ जोडकर बोला- चयन केवल गुरु की ओर से ही नहीं होता। कभी-कभी शिष्य भी अपना गुरु स्वयं नियुक्त कर लेता है। द्रोण बोला- पर मैंने तो तुम्हे कुछ सिखाया भी नहीं है। एकलव्य ने कहा फिर भी मैंने जो कुछ सीखा है वह आपसे ही सीखा है। द्रोण बोले- जब मैंने तुम्हे शिक्षा दी ही नहीं तो तुमने शिक्षा ली कैसे ? और कब ? तब एकलव्य बोला हर पल और हर क्षण। अब आप सब चलकर मेरे गुरुकुल में देख लीजिये। सब लोग एकलव्य के साथ चले।

एकलव्य चलता हुआ केन्द्र में स्थापित मूर्ति के पास जाकर खडा हुआ और वे पहचान गये कि यह द्रोण की प्रतिमा इसने बना रखी है। एकलव्य बोला- मैंने आपकी प्रतिमा को गुरु मान कर धनुर्विद्या पाई है। आप जो इन राजकुमारों को गुरुकुल में शिक्षा देते है वो मैं छिप छिप कर देखता था और रात में सीखने का अभ्यास करता था। मेरे पिता मगध प्रदेश के अधिपति जरासंध के सेना नायक है। दुर्योधन बोला- क्या मेरे मित्र बनोगे ? एकलव्य बोला- यदि हस्तिनापुर और मगध राज्यों के बीच मित्रता रही तो तुम्हारा दोस्त अवश्य बनूंगा। द्रोण बोले- तुम एक तेजस्वी धनुर्धर हो एकलव्य। एकलव्य ने कहा यह तो आप ही की कृपा का प्रसाद है गुरुदेव। हां और यह प्रतिमा मेरी साक्षी है। द्रोण बोले- परन्तु शिक्षा के लिये गुरु की आज्ञा आवश्यक है। एकलव्य बोला- मैने आपकी प्रतिमा से आज्ञा ले ली थी गुरुदेव आप सदा मेरे निकट हैं, मैं तो आपके ही आदेश से सोता जागता हूं। आपके आदेशानुसार ही धनुष उठाता हूं, प्रत्यन्चा चढाता हूं, बाण सन्धान करता हूं और फिर लक्ष्य वेध करता हूं। आप ही मुझे समझाते हैं विधि क्या है ? आप ही मुझे मेरे गुण दोष बताते हैं। आप मेरी कभी ताडना करते हैं तो कभी आशीष

वचन देते हैं। आपने मुझे सब कुछ दिया है गुरुदेव और यदि कुछ नहीं दिया तो वह मेरे ही समर्पण की कमी रही। एकलव्य की भक्ति और समर्पण अद्‌भुत था। उन्होने शिष्य के रूप में एकलव्य को इसलिये स्वीकार नहीं किया था कि कहीं उनसे शिक्षा पाकर वह एक असाधारण धनुर्धर न बन जाये। उनके इस असहयोग के बाद भी आज वह श्रेष्ठ धनुर्धर बन गया। यह सब तो उन्होंने अपने शिष्यों को भी नहीं सिखाया था। एकलव्य ने बहु बाण सन्धान की विद्या पर यदि अधिकार पा लिया तो सारे धनुर्वेद पर भी अधिकार पाने में उसे कठिनाई नहीं होगी। ऐसी विद्या द्रोण किसी के पास रहना नहीं देना चाहते। उन्हे तो अर्जुन को दिये गये वचन की लाज भी निभानी है। द्रोण बोले- एकलव्य तुम मेरे शिष्य हो तो अपने गुरु को गुरुदक्षिणा नहीं दोगे ? मैं आज तुमसे गुरुदक्षिणा लेने आया हूं। द्रोण के मन में आया करूणा सदा आत्मघातिनी होती है। हिंस्र शत्रुओं के प्रति करुणा कभी भी दिखाई नहीं जाती। शत्रु से प्रेम करने वाला व्यक्ति मूर्ख होता है। एकलव्य बिना कोई शिक्षा पाये ही गुरु को गुरुदक्षिणा देने का कठिन व्रत निर्वाह करने को प्रस्तुत है। ऐसे निरीह विश्वासी तथा समर्पित व्यक्ति को क्या दंडित करना चाहिये ? यह व्यक्ति कल इसी तरह कहीं और समर्पण कर बैठा तो अपना सारा ज्ञान और कौशल उसके चरणों में समर्पित कर देगा। इसकी निरीहता, विश्वास और समर्पण इसकी सरलता ही नहीं मूर्खता का भी प्रमाण है। इतने गुणी व्यक्ति की मूर्खता कभी हमारे लिये घातक भी सिद्ध हो सकती है। यदि इसकी मूर्खता दूर नहीं की जा सकती तो इसकी क्षमता को तो कम किया जा सकता है।

एकलव्य बोला- गुरुदक्षिणा नहीं दूंगा तो मेरा ज्ञान सफल कैसे होगा ? मेरे लिये यह क्या कम है कि गुरु मेरी दक्षिणा स्वीकार कर मेरे शिष्यत्व को प्रमाणित कर रहे है। आप आदेश दें, आज्ञा करें गुरुदेव। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मैं आपको न दे सकूं। यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि मेरा तन, मन, धन और सर्वस्व आपके चरणों में समर्पित है। मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूं गुरुवर। जितनी अधिक गुरुदक्षिणा दूंगा मेरी विद्या उतनी ही अधिक मूल्यवान होगी। द्रोण ने कहा- यदि तुम सत्य प्रतिज्ञ हो और वास्तव में मुझे गुरु दक्षिणा देना चाहते हो तो मुझे दक्षिणा में अपने दाहिने हाथ का अंगूठा दो। अर्जुन को लगा शायद आचार्य एकलव्य की गुरु भक्ति की परीक्षा लेना चाह रहे है।

एकलव्य के मन में क्षणभर के लिये भी यह विचार नहीं आया कि गुरु उससे अंगुठा मांग रहे हैं। उसके लिये तो गुरु की आज्ञा पालन करने से समर्पण के परीक्षण की घडी थी। एकलव्य ने विद्या भी समर्पण के बल पर ही पाई थी और दक्षिणा का यह रूप भी समर्पण ही था। उसी क्षण एकलव्य ने एक तीक्ष्ण धार वाला शस्त्र उठाकर दाये हाथ का अंगूठा काटकर जल से धोकर स्वच्छ कर गुरु को भेंट कर दिया। अंगूठा स्वीकार कर गुरु द्रोण बोले- यशस्वी भव। अखंड यश पाओ और यह आशीर्वाद देकर चले गये। सत्यवादी एकलव्य अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहा और गुरु में निष्ठा से बडी प्रसन्नता से दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर गुरु को समर्पित किया। तत्पश्चात उसके बाण चलाने का वह कौशल नहीं रहा। इससे अर्जुन की चिन्ता दूर हुई। इस प्रकार एक अनुचित कार्य करके द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य अर्जुन की इच्छा पूर्ण की। अर्जुन ने सोचा गुरु ने यह क्यों किया। एकलव्य का यह अंगूठा न कटवाते तो क्या अर्जुन संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर नहीं हो पाता ? गुरु ने क्या अपने आशीर्वाद की पूर्ति के लिये नृशंस कर्म किया। कभी अर्जुन को यह भी लगने लग गया कि एकलव्य से पराजय ही उसकी नियति है। यदि उसका अंगूठा नहीं कटता तो शायद अर्जुन उससे धनुर्विद्या में पराजित हो जाता। अंगूठा काट कर तो एकलव्य ने गुरु के प्रति जो आत्म समर्पण दिखाया उस क्षेत्र में तो उसने अर्जुन को पराजित कर ही दिया। क्या कभी आचार्य अर्जुन से उसका अंगूठा मांगते तो क्या वह समर्पण के लिये आचार्य को अपना अंगूठा दे पाता ? तभी तो गुरु ने एकलव्य को यह आशीर्वाद दिया कि अखंड यशस्वी भव। भीम ने कहा- नृशंस हुये बिना कोई महत्वकांक्षा पूरी नहीं होती। युधिष्ठिर बोला- नृशंसता जघन्य है। ऐसी महत्वकांक्षाओं की सार्थकता ही क्या जिनके लिये मनुष्य को नृशंस बनना पडे। अर्जुन बोला- यह ठीक तो नहीं हुआ स्पर्धा कभी भी अपने विकास में होना चाहिये दूसरे के ऱ्हास में नहीं।

३७) कर्ण का परशुराम जी से शस्त्र विद्या ग्रहण करना

द्रोणाचार्य ने गुरु दक्षिणा में एकलव्य के दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लिया और यह गुरु दक्षिणा देने में एकलव्य के हाथ से जो खून बहा वो वास्तव में कुरुक्षेत्र की रणभूमि के हिस्से का था परन्तु द्रोणाचार्य को अपने उस वचन की लाज रखनी थी जो उसने अर्जुन को दिया था कि वो उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बना देंगे। परन्तु एकलव्य के सिवा भी और एक धनुर्धर है जो अर्जुन को ललकारने के लिये साधना कर रहा है। ये द्रोणाचार्य को मालूम नहीं था और यदि वे जानते ही होते कि ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र परशुरामजी से शस्त्र विद्या ग्रहण कर रहा है तो भी वे क्या कर सकते थे। परन्तु समय तो यह सब अवश्य जानता है। समय तो कर्ण के बाणों से उठनेवाली आंधी की आवाज तक सुन सकता है। कर्ण धनुर्वेद की शिक्षा गुरु परशुरामजी से प्राप्त कर रहा है। ब्राह्मण बता कर।

गुरु द्रोणाचार्य के यह कहने पर कि वो सूत पुत्र है और उसे अस्त्र, शस्त्र, संचालन धनुर्वेद की शिक्षा नहीं दी जा सकती। इससे निराश हो अपमान की कडवी घूंट पीकर युद्धशाला से कर्ण घर लौटा तो वह अत्यन्त उद्विग्न था। उसकी माता राधा को लगा कि उसका कर्ण अब बडा हो गया कि वह अब उसकी गोद में नहीं समा सकता। उसके बारे में सोचने समझने की बुद्धि भी राधा की छोटी पडने लग गई। राधा तो बस इतना ही सोच सकती थी कि उसका कर्ण नीरोग रहे। गुरु से सारथी होने का ज्ञान प्राप्त कर ले। एक सुन्दर सी बहू घर में ले आये जो सुन्दर सन्तान को जन्म दे वंश वृद्धि हो पर कर्ण न जाने क्या-क्या सोचता था और न जाने क्या-क्या करना चाहता था। कर्ण मात्र आजीविका, घर पत्नी और बच्चों से ही सन्तुष्ट नहीं हो सकता, न उसका जीवन और न संसार यहीं तक सीमित था। वह कैसे बताये अपनी मां को उसके मन को पकानेवाला है यह स्वार्थी समाज, यह संसार और यह जीवन जो जी रहा है। कर्ण को लग रहा था कि सूत पुत्र कहकर बलात उसे हीन बनाया जा रहा है, लेकिन वह जो है उसे ही तो उसे स्वीकार करना पडेगा। वह इसे अपना भाग्य कैसे मान ले ? वह इसके साथ न्याय हुआ यह भी तो नहीं मान सकता। राधा ने पूछा क्या हुआ वत्स ? कर्ण बोला- मां जैसे तेरी गोद तेरे वसु के लिये छोटी पडने लग गई है वैसे ही हस्तिनापुर और हस्तिनापुर की युद्धशाला तेरे वसु के लिये छोटी पडने लगी है। राधा हंसी और बोली- तू भी क्या कोई गंगा या सूर्य है कि तेरे लिये यह हस्तिनापुर छोटा पडने लग गया। कर्ण बोला- मां जब तक गंगा सारे आर्यावर्त को अपने जल से पल्लवित न करे तब तक गंगा गंगा नहीं हो सकती और सूर्य इस सारी पृथ्वी को अपनी किरणों से उष्म और अन्धकार विहीन न कर दे तब तक वह सूर्य सूर्य नहीं रह सकता। वैसे ही तेरा वसु जब तक धनुष की टंकार से सारी पृथ्वी को प्रकम्पित न कर ले तब तक वह वसुषेण नहीं हो सकता। कभी कोई गुरू ज्ञान का दान करते हुये उसकी मात्रा नापने लगे, उसमें अपना हानि लाभ देखने लगे तो वह ज्ञान की मर्यादा को कलुषित करता है। राधा बोली- नहीं पुत्र गुरु तो गंगा के समान होता है जिसको जब जितना ज्ञान चाहिये अपनी ग्रहण क्षमता के अनुसार ले जाये। गुरु के पास न तो ज्ञान का निषेध है न अवरोध ही।

कर्ण बोला- मां अब हस्तिनापुर में मुझे और ज्ञान नहीं मिल सकता। यहां मेरे विकास के और साधन नहीं है। यहां मेरे ज्ञान की इति और विकास का विराम। मैंने हिमालय के उच्चतम शिखर के स्पर्श का संकल्प किया था, सूर्य को छू लेने की आकांक्षा की थी और गुरु यह कहते है कि रेत के टीले पर ही बसेरा कर लो। राधा बोली- अगर मेरी मानो तो इतने में ही सन्तोष कर ले। तुझे लगता है कि सन्तोष तेरे भाग्य में नहीं है पुत्र तो अपने पंखों की शक्ति तौल क्या तू उडान भर पायेगा ? गरुड का क्रीडा क्षेत्र कोई एक ग्राम नहीं होता वह तो सागर और पर्वत शिखर लांघ कर सहस्त्र योजन की उडाने भर अपने प्राप्तव्य तक पहुंच जाता है। कर्ण को लगा उसकी मां ने उसे समझा दिया है कि गरुड कल्पना की उडान नहीं पंखों की उडान भरता है। ज्ञान किसी एक व्यक्ति या किसी एक स्थान की धरोहर नहीं होती है।

रात भर कर्ण को नींद नहीं आई और वह सोचने लगा द्रोण उसे विशिष्ट ज्ञान नहीं देगा और अल्पज्ञान से उसे सन्तोष नहीं होगा। कर्ण को तो शिखर तक पहुंचना ही है। उसे अपने लिये गुरु खोजना है जो उसे ब्रह्मास्त्र तक की शिक्षा दे। अब वह अपना

गुरु किसे करे। उसके सामने आई मूर्तिया द्रोण, सांदिपन और परशुराम। द्रोण ने तो उसे अस्वीकार कर दिया, सांदिपन के आश्रम में यदुवंशी शिक्षा ले रहे हैं। वह भी द्रोण ही के समान क्षत्रियों को, राजकुमारों को ही शिक्षा दान करते है और कर्ण के पास राजकुमार होने का प्रमाण। शायद उनके गुरुकुल में भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा आचार्य द्रोण ने किया।

सहसा कर्ण का मन गुरु परशुराम के चयन के लिये उठा क्योंकि परशुराम तो स्वयं क्षत्रियों के विरोधी रहे है। पर देवव्रत भीष्म ने तो परशुराम के आश्रम में ही शिक्षा पाई थी परन्तु परशुराम ने ब्राह्मण समर्थक नीति अपनाई थी। उन्होंने अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को ही दान किया था, धन भी, शस्त्र भी और ज्ञान भी। आचार्य द्रोण भी तो उनसे ही शस्त्र तथा ज्ञान वहां से लाये थे। कर्ण क्षत्रिय भी तो नहीं है। न वह ब्राह्मण है लेकिन उसे शस्त्रज्ञान तो चाहिये ही जैसे भी हो और जहां से भी हो। सोचने लगे मुझे वर्ण नहीं दिया, वर्ग नहीं दिया तो फिर कामनायें ही मुझे क्यों दी ? सहसा उसकी अन्तरात्मा ने कहा कामनायें नहीं दी पर तुझे क्षमता तो दी है। क्षमता इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कर्ण सोचने लगा वर्ण और वर्ग तो मनुष्य की देन है। मेरे पास क्षमता है। क्षमता विधाता ने बनाई है। मनुष्य के विधान में उसका स्थान हीन हो किन्तु ईश्वरीय विधान में उसका महत्व बहुत है। मुझे महेन्द्रगिरि के आश्रम में कौन पहचानता है। कौन जानता है कि कर्ण सूत पुत्र है। यदि व्यक्ति को वेश और आवरण से ही पहचाना जाता है तो कर्ण कोई भी वेश धारण कर सकता है। फिर तो वह स्वयं को क्षत्रिय भी प्रमाणित कर सकता है और ब्राह्मण भी। किन्तु अपने को क्षत्रिय बताने के लिये उसे अपना स्थान वंश बताने होंगे और इसके प्रमाण भी देने पडेंगे। इससे तो अच्छा है कि वह ब्राह्मण का वेश धारण करे। ब्राह्मण तो कोई साधारण व्यक्ति भी हो सकता है। कोई ग्रामवासी, तपस्वी, साधक, आश्रमवासी उसके लिये न तो वंश का प्रमाण आवश्यक है न राजा होने का। ब्राह्मण के लिये शिक्षा का ही आग्रह अधिक होगा। क्या कर्ण गुरु से असत्य कहेगा ? किन्तु दूसरे क्षण कर्ण के मन में विचार उठा सारा धर्म क्या तेरे ही हिस्से में आ गया है ? गुरुओं ने भी तो अपने स्वार्थ के लिये मर्यादायें तोडी है ? वे भी तो मनुष्य को वर्ण, वर्ग, जाति पूछने लग गये है ऐसे में सत्य का हिमालय उठाने का क्या मेरा ही जिम्मा है ? वे असत्य कर्म कर रहे है और मैं असत्य क्या बोल भी नहीं सकता ? फिर कर्ण का मन बोला और असत्य कर्म क्या है ? समाज के एक बहुत बडे भाग को ज्ञान और क्षमता से हीन बनाये रखना सत्य कर्म है क्या? क्यों प्रत्येक मनुष्य को अपने विकास का पूरा अवसर नहीं दिया जाता ? क्यों किसी न किसी कारण और बहाने से उसे दलित और दमित रखा जाता है ? जो समाज आज उसे वंचित कर रहा है उसे वंचित करने में कर्ण को संकोच किसलिये? अब वह अपने स्वार्थ के लिये मिथ्या भाषण भी करेगा। गुरु को भी वंचित करेगा और सम्भव हुआ कुछ और भी करने का तो वो सब भी करेगा।

एक दिन कर्ण बिना कहे ही रातोंरात गुरु परशुराम की खोज में निकल गया। प्रात: होने पर कर्ण को घर में न पाकर राधा अत्यन्त व्याकुल हुई और सब जगह कर्ण की खोज करने लगी। कर्ण दुर्योधन का मित्र है इस अनुमान से राधा हस्तिनापुर राजमहल में खोजने गई और गान्धारी के कक्ष में गई। गान्धारी ने पूछा कौन ? राधा ने कहा मैं महारानी। राधा, वसुषेण कर्ण की माता। गान्धारी ने कहा- क्या बात है कुछ उद्विग्न लग रही हो ? राधा बोली- महारानी वसु घर छोड कर कहीं चला गया है। यहां तो नहीं आया है न ? रात को घर पर ही सोया था किन्तु प्रात: घर में नहीं था। गान्धारी चुपचाप सोचती रही फिर बोली- राधा तुम चिन्ता मत करो लगता है वह किसी नये गुरु की खोज में गया होगा अब तुम्हारा पुत्र कुछ समर्थ होकर ही लौटेगा।

अपने प्रतिस्पर्धी में जो गुण होते है वे भी मनुष्य को विचलित करते हैं। उसकी आन्तरिक अभिलाषा होती है कि वह गुण भी किसी तरह उसमें आ जाये। जिस कारण से प्रतिस्पर्धा बढती है जिस विद्या में वह निपुण है उस विद्या को अर्जित करने हेतु वह लालायित रहता है। कर्ण ने देखा अर्जुन से वह सब बातों में आगे है किन्तु जो सब अस्त्रों में श्रेष्ठ है, जो कभी विफल नहीं जाता और जिसे साधारण तेजवाला मनुष्य धारण नहीं कर सकता वह ब्रह्मास्त्र अर्जुन के पास तो है पर उसके पास नहीं है। किसी तरह ब्रह्मास्त्र भी उसे प्राप्त हो जाये तो फिर समस्त संसार भी उसे जीत नहीं पायेगा। कर्ण को इस बात का सन्देह था कि आचार्य द्रोण

तो उसे ब्रह्मास्त्र देंगे नही। कर्ण यह भी जानता था कि आचार्य का अर्जुन के प्रति अत्यधिक पक्षपात है। अर्जुन से बढकर कोई अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण हो जाये इस बात को द्रोणाचार्य चाहते भी नहीं थे। फिर भी कर्ण ने अपना मन बनाया कि उनसे प्रार्थना करके देखूं। न देंगे तो मना ही तो कर देंगे। यही सब बातें सोचकर कर्ण द्रोणाचार्य के पास एकान्त में जाकर प्रणाम कर आचार्य से बोले- मेरा आपसे निवेदन है इसे आप स्वीकार करें। गुरुवर आपके लिये तो सभी शिष्य समान है। जो योग्य शिष्य अथवा पुत्र होता है उसपर आचार्य का अथवा पिता का ममत्व अधिक होता ही है। प्रार्थना करने पर गुरुजन अपने आश्रितों की मनोकामना पूर्ण करते है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप मुझे ब्रह्मास्त्र की शिक्षा दे। इसके लिये जो भी व्रत, अनुष्ठान, तपस्या आदि आपके आज्ञानुसार करने को तैयार हूं। आपकी आज्ञा का पालन होगा और इसमें तनिक भी प्रमाद नहीं होगा।

आचार्य जानते थे कि कर्ण अर्जुन से प्रतिस्पर्धा रखता है। यह जन्मजात वीर है। संसार में इसे कोई भी परास्त नहीं कर सकता। फिर ब्रह्मास्त्र पाकर तो यह त्रिलोकी में अजेय हो जायेगा। सारा संसार मिलकर भी इसे जीत नहीं पायेगा। सब बातों का भली-भांति सोच विचार कर प्रसन्नता प्रकट करते हुये द्रोणाचार्य उससे बोले- कर्ण मेरे लिये तो सभी शिष्य समान है तुम्हारा कहना भी ठीक ही है। शूरवीर होने के कारण तुम्हारे प्रति मेरे मन में सम्मान है किन्तु ब्रह्मास्त्र सब कोई धारण नहीं कर सकते उसे तो दुर्धर्ष तेजवाले तपस्वी ही धारण कर सकते है इसलिये मैं तुम्हे यह विद्या सिखा नहीं सकता। मैं विवश हूं।

आचार्य ने जब ऐसे मर्मभेदी वचन का प्रहार किया तो कर्ण का चेहरा खिन्न हो गया। उनके सामने कर्ण कोई उत्तर नहीं दे सका और वह लज्जित होकर आचार्य को प्रणाम कर वहां से निकल गया। कर्ण को लगने लगा संसार में गुण ग्राही लोगों का अभाव है, सभी इस संसार में स्वार्थी, पक्षपाती और ईर्ष्यालु है पर फिर भी कर्ण की ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने की अभिलाषा कम नहीं हुई। उत्तरोत्तर बढती ही गई।

मनुष्य जब सब ओर से हार जाता है, जब उसे चारों ओर निराशापूर्ण अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है तब वह सत्य से विचलित हो उठता है। उस समय वह सोचने लगता है कि थोडा अनुचित कार्य करने असत्य भी बोलना पडे और कार्य सिद्ध हो जाता है तो असत्य बोलने में क्या हानि है ? पर वह यह नहीं जानता कि असत्य से उपार्जित वस्तु क्षण भर तो सुखकर प्रतीत होती है पर परिणाम में तो दुख:प्रद ही है। विजय सदा सत्य की ही होती है। कर्ण ने सोचा यदि ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने में उसका सूत पुत्र होना ही कंटक है तो यह बात वो छिपाकर रखेंगे। द्रोणाचार्य नहीं सिखाते तो न सिखायें। द्रोणाचार्य ने भी जिससे सीखा है उन्ही के गुरु परशुराम जी की शरण में जाकर उन महापराक्रमी ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर उनसे ब्रह्मास्त्र प्राप्त करूं। यही सोचकर कर्ण बिना किसी को बताये पूर्वी सागर तट पर परशुरामजी के पास चले गये और वहां जाकर परशुराम जी को साष्टांग प्रणाम किया और बहुत ही विनीत भाव से बोले। परशुरामजी ने कर्ण की ओर देखा और बोले कौन हो क्या चाहते हो। कर्ण ने कहा ज्ञान गुरुदेव, धनुर्वेद का ज्ञान। गुरु बोले क्या क्षत्रिय हो ? तुम्हारे मुख के तेज से लगता है। कर्ण को लगा यहां भी फिर वही बाधा। पता नहीं इस संसार के सारे आचार्यों ने मिल कर क्या यह निर्णय कर लिया है कि संसार का ज्ञान जाति और वर्णों के अनुसार ही दिया जायेगा। अन्तत: कोई और विकल्प न पाकर कर्ण ने असत्य बोलने का ही निश्चय किया नहीं मैं क्षत्रिय नहीं हूं। गुरु परशुराम बोले अच्छा है कि तुम क्षत्रिय नहीं हो। नहीं तो मुझे तुम्हे निराश ही करना पडता। क्योंकि हमारे आश्रम में केवल ब्राह्मण कुमारों को ही शस्त्र शिक्षा दी जाती है। मैं तो तुम्हे देखते ही समझ गया कि तुम ब्राह्मण हो। इस तरह की वेशभूषा, रंग, रूप ब्राह्मण का ही हो सकता है। विप्रवर तुम्हारा कौनसा गौत्र है। कर्ण बोले- गुरुदेव गुरु तो पिता समान होता है। गुरु का गौत्र ही शिष्य का गोत्र होता है। कोई भिन्न थोडे ही होता है। कर्ण तो किसी भी प्रकार से ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। ज्ञान ही जो सत्य है, ईश्वर है फिर उसमें क्या मिथ्या है। कर्ण ने कह दिया मेरा गौत्र भार्गव है। अपना गौत्र सुनकर ऋषि प्रसन्न हो उठे और बोले- समाज में शस्त्र विद्या के सर्वोत्तम अधिकारी ब्राह्मण ही है और ब्राह्मणों में भी सर्वश्रेष्ठ भार्गव। भार्गवों ने ही तो शस्त्रों के प्रयोग को विद्या के उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया है और युद्ध ज्ञान

को शास्त्र पद से विभूषित किया है। कर्ण से यह पूछे बिना नहीं रहा गया गुरुवर क्षत्रिय क्यों शस्त्र विद्या सीखने के अधिकारी नहीं रहे। परम्परा से तो शस्त्र विद्या क्षत्रियों का ही अधिकार रहा है। गुरु परशुराम बोले- ठीक कहते हो वत्स। क्षत्रियों ने इस विद्या को कलुषित ही कर दिया है। शस्त्रज्ञान और शस्त्र प्रयोग अब क्षत्रियों के लिये न्याय और धर्म के उपकरण नहीं रहे।

ये तो अब अत्याचार, शोषण और पीडन के साधन हो गये है। शस्त्र धारण और शस्त्र परिचालन इन दोनों का ही अधिकार केवल उन लोगों का ही है जिनका विवेक स्थिर है। क्षत्रियों का विवेक न तो स्पष्ट है और न ही उनकी दृष्टि सत्य और धर्म पर टिकी हुई है। उन्हे उन्माद हो गया है। सत्ता का मद मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता, वह उसे पशु बना देता है। इसलिये आज के क्षत्रिय कोई पशु से कम नहीं है। क्या नाम है तुम्हारा ?

कर्ण को लगा उसने अपने को मिथ्या कथन से बांध लिया है इसलिये सब कुछ गुप्त ही रखना होगा। गुरु ने पूछा, पिता का नाम क्या है ? कहां के रहनेवाले हो ? कर्ण ने उत्तर दिया मैं काशी के ब्राह्मण धर्म मित्र का पुत्र ज्ञान मित्र हूं, ऋषिवर गुरु बोले- यथा तथा उपयुक्त नाम ही रखा है तुम्हारे पिता ने। कर्ण ने मन में सोचा वह न तो आलसी है और न ही कोई साधारण बाधाओं से हताश होनेवाला जीव। वह तो उन लोगों में से है जो रूठे भाग्यों के हाथों से उपलब्धियों को बलात छीन लाते है। वह तो पुरुषार्थी है, कर्म करना उद्योग करना उसका लक्ष्य है।

कर्ण परशुरामजी से बोला आपके चरणों में रहकर मैं ब्रह्मास्त्र तथा अन्यान्य अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। यदि आप की मुझपर कृपा हो और मुझे आप इसके योग्य समझे तो मुझे यह ज्ञान दे। कर्ण के रूप, तेज, शील, सदाचार और नम्रता आदि गुणों को देखकर महर्षि परशुराम अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होने कर्ण का गौत्र, शाखा आदि जानकर अपने आश्रम में रहने की आज्ञा देदी और सब प्रकार की अस्त्र विद्या सिखाने के लिये स्वीकृति प्रदान की। कर्ण बडी सावधानी से वहां रहकर परशुरामजी की सेवा करने लगा। वह किसी भी बात में तनिक सा भी प्रमाद नहीं करता था। परशुरामजी ने भी उसे संहार, प्रयोग, उपसंहार सहित ब्रह्मास्त्र की शिक्षा दी।

अपनी बाण विद्या को दृढ करने के लिये और संसार में अद्वितीय धनुर्धर बनने के लिये वह घोर परिश्रम करने लगा। वह जंगल में बहुत दूर और एकान्त में चला जाता और वहां निरन्तर बाण विद्या का अभ्यास करता रहता। परशुराम बोले- वत्स अब तुम थक गये होगे विश्राम करो वत्स। परशुरामजी ने कर्ण को आशीर्वाद दिया श्रेष्ठ धनुर्धर भव। ये वही परशुराम है जिन्होने एक बार नहीं बार-बार अत्याचारी क्षत्रियों के विरोध में शस्त्र उठाये और भारत वर्ष को क्षत्रिय विहीन कर दिया और जीती हुई पृथ्वी को अपने गुरु कश्यप को समर्पित कर दी। प्रजापति के पुत्र सूर्य उससे सूर्य वंश और अब उस सूर्य वंश में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने जन्म लिया तब उन्हे विश्व का धनुष देकर परशुरामजी ने अवकाश ले लिया परन्तु गंगा पुत्र देवव्रत के बाद किसी क्षत्रिय को अपना शिष्य नहीं बनाया।

परशुराम कर्ण से बोले बाण में धनुर्धर के प्राण बसते हैं अर्थात धनुर्धारी का पहला कर्तव्य है कि वो अपने शस्त्रों को असत्य, अत्याचार, भ्रष्टाचार और अन्याय का साथ देकर कभी भी अपमानित नहीं करें क्योंकि यदि कोई धनुर्धर अपना यह कर्तव्य भूल जाये तो उसी क्षण उसके तूणीर के सारे बाण निष्प्रभ हो जायेंगे और यह शस्त्र विद्या उसके पास से चली जायेगी जैसे वो पहले इसके पास कभी थी ही नहीं। विस्मृत हो जायेगी। गंगा पुत्र देवव्रत के पश्चात आज तक किसी गुरु को तुम जैसा योग्य शिष्य नहीं मिला पुत्र परन्तु यदि तुमने बाणों की मर्यादा भंग की तो गुरु दक्षिणा में दी हुई अपनी सारी शिक्षा तुमसे उस समय वापिस ले लूंगा जिस समय तुम्हे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता होगी। तुम यहां से जब भी जाओगे गुरु दक्षिणा दिये बिना ही जाओगे वत्स। गुरु दक्षिणा का मेरा ऋण तुम पर रहेगा।

शिष्य सरल सत्पात्र से फलता है गुरु ज्ञान, गुरु की राखे टेक जो वही उसी की आन।

कर्ण ने परिश्रम तो यथासाध्य खूब किया। किन्तु भाग्य को कैसे बदल पाते ? दैवी विपत्ति पुरुषार्थ से नहीं मिटाई जा सकती, उसके तो भोगने से ही छुटकारा होता है। हम करना चाहते हैं कुछ और हो जाता है कुछ इसी का नाम ही भाग्य चक्र है। भाग्य चक्र पासे फेंकने के समान हैं। पासे हमारे हाथ से छूट जाते है जो दांव हम नहीं चाहते वह आ जाते हैं। जिन्हे चाहते हैं वे नहीं आते। दुख बिना बुलाये भी आते है। सुख चाहने पर भी नहीं आता है। सुख आने पर हम उसे छोडना नहीं चाहते और दुख आ जाने पर हम उसे रखना नहीं चाहते। दुख को कोई बुलाने नहीं जाता वह तो स्वत: चले आता है। कर्म करने में हम स्वतन्त्र है किन्तु भाग्य अधीन वे कुछ और के और बन जाते है। जो काम हम सुख इच्छा से करते हैं वही दु:ख का कारण बन जाता है।

विरोचन पुत्र राजा बलि कब चाहते थे कि वे तीन पैर भूमि दान करने पर बांधे जाये ? वे तो निरन्तर शुभ कर्मों में ही लगे रहते थे। उनकी इच्छा न रहने पर भी वे बांधे गये। हरिश्चन्द्र ने कोई बुरा काम नहीं किया। उनकी कोई इच्छा नहीं थी कि वे चांडाल डोम के घर नौकरी करें किन्तु यज्ञ करनेवाले, दानी, सत्यवादी, यशस्वी, चक्रवर्ती सम्राट होने पर भी उन्हे उस डोम का दासत्व स्वीकार करना पडा। नृग तो बडे ही दानी थे। वे तो अपने दान से स्वर्ग जाना चाहते थे। उनकी कब इच्छा थी कि वे गिरगिट बने ? न चाहते हुये भी उन्हे गिरगिट बनना पडा। हम रोज ही अपने जीवन में देखते हैं कि जो हम करना चाहते हैं वह नहीं होता है। जिसकी कभी सम्भावना भी नहीं होती वह अकस्मात हो जाता हैं। कई बार अनिच्छा होते हुये भी हमें भोगना पडता है इसे ही भाग्य, प्रारब्ध, दैवगति इत्यादि कहते हैं।

कर्ण एक दिन ऐसे ही अस्त्र चलाकर वन में अभ्यास कर रहे थे। उनके अनजान में देखे बिना एक ब्राह्मण की गाय का बच्चा उनके बाण से आहत होकर मर गया। कर्ण स्वभाव से बडे ही दयालु थे वे गौ, ब्राह्मण के तो अनन्य भक्त थे। उन्होने जानबूझ कर तो उस गौ बच्चे को मारा नहीं। दैवयोग से बाण उस बछडे को लग गया और प्राणान्त हो गया। यह जानकर कर्ण को बडा पश्चाताप हुआ और वे अत्यन्त दुखी हुये। जब ब्राह्मण को उस बछडे के मर जाने का पता चला तो वह अत्यन्त कुपित हो गया और उसने कर्ण को शाप दे दिया **अरे दुष्ट तुमने यह बहुत ही अनुचित कर्म कर दिया। इस अपराध का तो यही दंड है तुझे भी इसी तरह मार दिया जाये चूंकि मैं ब्राह्मण हूं और मैं धनुष बाण धारण नहीं करता परन्तू तू जिससे बैर भाव, ईर्ष्या स्पर्धा रखता है, जिसे परास्त करने के लिये तू इतना प्रयत्न करता है, जिसे तू मारना चाहता है वही तुझे रणभूमि में मार डालेगा और युद्ध करते समय पृथ्वी तेरे रथ के पहिये को निगल जायेगी। जैसे तूने असावधानी से गाय के बछडे को मार डाला है उसी भांति तेरा शत्रु भी तेरा सिर काट डालेगा। तू तो गौ हत्यारा है पराजित होने योग्य ही है इसी समय तू यहां से चले जा।**

कर्ण ने ब्राह्मण का शाप सुनकर बडी अनुनय विनय की, करोडों गायों का दान देने का प्रलोभन भी दिया, अपना समस्त धन, ऐश्वर्य, राजपाट ब्राह्मण को समर्पित करना चाहा किन्तु दैव की गति को अन्यथा करने में कौन समर्थ है ? होनहार को कौन मिटा सकता है ? कर्ण की विविध प्रकार की विनती करने पर भी वह ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं हुआ और वह ब्राह्मण बोला- चाहे तू जीवन भर इसी तरह गिडगिडाता रहे तो भी मैंने जो कुछ कह दिया है वह अन्यथा नहीं होगा। मेरा शाप कभी टल नहीं सकता वो हो के रहेगा।

कर्ण उदास मन से शाप ग्रहण कर परशुराम जी के आश्रम में लौट आया उन्हे अपने इस कर्म पर बडा पश्चाताप हुआ। उन्होने सोच लिया कि भाग्य ही बडा बलवान है। मनुष्य का सोचा ही यदि सब कुछ हो जाता तो संसार में आज कोई भी निर्धन, रोगी, दु:खी और वृद्ध नहीं होता। न चाहने पर आज ये शाप मुझे मिला, यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो क्या है ?

नीति कहती है जहां चोट लगी फिर फिर वहीं पर चोट लगती है। जब तक घर में खूब अन्न धान्य भरा रहता है तब भूख नहीं लगती। अन्न समाप्त हो जाने पर बार-बार अत्यधिक भूख लगने लगती है। विपत्ति के ऊपर विपत्ति आती है। जब दैव प्रतिकूल होता है तब सोना हाथ लगाने पर वह भी मिट्टी हो जाता है।

कर्ण के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ, उसने सोचा तो था कि वह अपनी शक्ति से अपने सम्पूर्ण शारीरिक सुखों को त्याग कर दिन-रात, सर्दी-गर्मी, सुख-दु:ख की परवाह न कर अपने गुरु को प्रसन्न करेगा। उन्होने किया भी ऐसा ही। अपने बहते हुये रक्त की भी गुरू सेवा के समय परवाह नहीं की किन्तु इसका परिणाम विपरीत ही हुआ। गुरु उनकी इस दारूण सेवा से प्रसन्न न होकर कुपित ही हुये। इन्द्र तो कर्ण के पीछे ही पड गया। इन्द्र को तो यह सहन नहीं था कि कर्ण इन्द्र पुत्र अर्जुन को युद्ध में हरा दे। इन्द्र तो सदा से ही कर्ण के छिद्रों को देखता रहता था। यदि इन्द्र अर्जुन का इतना पक्षपात नहीं करते तो संसार में कर्ण को कौन पराजित कर सकता था ? उस सूर्यपुत्र कर्ण के सामने कौन ठहरने का दावा कर सकता था ? महेन्द्रगिरि पर जो घटनायें हुई उन सब में भी इन्द्र का ही षडयन्त्र था। मायावी इन्द्र ने ब्राह्मण से कर्ण को शाप दिलाया। कर्ण के लिये इतना ही क्या कम गौरव की बात है कि इन्द्र सामने लडकर कर्ण को परास्त नहीं कर सका। उसे परास्त करने के लिये देवराज को छिपकर, वेश बदलकर माया का आश्रय लेना पडा। इससे इन्द्र की बदनामी हुई और कर्ण की ख्याति तो चारों ओर फैल गई।

कर्ण सदा परशुराम जी की सेवा में सावधान रहते। जहां-जहां वे जाते उनके साथ जाते थे। जिस काम से गुरु को सुख मिलता वे सब करते और सदा ही उनकी सेवा में तत्पर रहते। परशुरामजी का कर्ण के ऊपर अत्याधिक प्रेम हो गया। गुरु भार्गव ब्रह्मास्त्र के लक्ष्य वेध के कुछ नये प्रयोग करने हेतु एक दिन अपने शिष्यों के साथ जंगल में घूम रहे थे। उपवास से उनका शरीर दुर्बल और क्षीण हो चुका था। कर्ण उनके साथ में था। इसलिये उनकी देखभाल का पूरा दायित्व कर्ण का था। परशुरामजी को श्रम के कारण वन में विश्राम की अत्यधिक आवश्यकता थी। सहसा कर्ण ने गुरु से निवेदन किया आप श्रम से निरत होकर थोडा विश्राम कर लें। परशुराम बोले- यदि विश्राम के लिये आश्रम में लौट गये तो यह नया प्रयोग अधूरा रह जायेगा। कर्ण को लगने लगा असफल हो जाने की पीडा कोई पीडा नहीं है वास्तविक पीडा तो यह मान लेने में है कि अब अन्त आ गया है और भविष्य में सफलता की कोई आशा नहीं रही।

कर्ण बोला- आपकी सामर्थ्य ही तो हम सबकी शक्ति है। आप भी असमर्थ नहीं है सिर्फ आप क्लान्त हुये है। आपको आश्रम तक लौटने की भी आवश्यकता नहीं है। बस थोडी देर यहीं विश्राम कर लें। गुरु सेवा की भावना से पूर्णत: मग्न कर्ण अपने भाग्य की सराहना कर रहा था। उसने तत्काल एक वृक्ष की छाया में बैठकर गुरुवर को विश्राम करने के लिये प्रार्थना की और वहीं पर लेट जाने का आग्रह किया और उनके सिर को अपनी जंघा पर रखकर बैठ गया और हवा करने लगा। गुरु आंखे मूंदकर लेटे ही थे कि क्लान्त होने के कारण उन्हे त्वरित नींद आ गई। कर्ण के लिये वह अपनी अपेक्षा से भी अधिक फल पाने की स्थिति थी और जब व्यक्ति अपनी अपेक्षा से भी अधिक फल पा जाता है तो उसकी रक्षा के लिये भी वह उतना ही सक्रिय हो जाता है। गुरु का इस प्रकार गोद में सिर रखकर सोना बहुमूल्य दुर्लभ क्षण है जो विश्व के इतिहास में कभी कभार ही देखने को मिलता है। कर्ण के लिये तो कोई अपने पूर्व जन्मों का कोई पुण्य उदय हुआ हो। इतने में ही इन्द्र की प्रेरणा से एक अलर्क नाम का कीडा धीरे-धीरे आकर कर्ण की जंघा से आकर चिपट गया और शरीर में चुभनेवाले दंश से त्वचा डसने लगा। वह विषघट तीष्ण कृमि चुपचाप कर्ण का रक्त पीने लगा परन्तु जितना रक्त वह पी रहा था उससे अधिक तो वह बहा रहा था। उस कीडे के काटने से कर्ण की जांघ में असह्य वेदना होने लगी और इस दशा में स्थिर बैठना कर्ण के लिये कठिन हो रहा था। शूल चुभाने की तरह वह कीडा काटे जा रहा था। थोडा सा हिलने डुलने में गुरुदेव जाग सकते थे। कर्ण गुरुद्रोही नहीं हो सकता था। यह कर्ण के धैर्य की परीक्षा की घडी थी।

कर्ण की जंघा में असह्य वेदना हो रही थी। गुरुदेव की निद्रा में विघ्न पडे, उनकी निद्रा में आघात न हो, किसी भी तरह निद्रा भंग न हो वे समस्त वेदना को बडे साहस से सहन करते रहे। अकस्मात ही गुरु ने आंखे खोल दी वे उठकर बैठ गये और गुरु का हाथ रक्त से सन गया और उसी क्षण उनकी दृष्टि कर्ण की जंघा पर पडी। गुरु बोले- यह क्या है ज्ञानमित्र ? ब्राह्मण कभी इतना सहनशील नहीं हो सकता। तू अवश्य ही क्षत्रिय है इतने कष्ट सहने की क्षमता। यह रक्त कहां से बह रहा है ? मेरा शरीर रक्त से

अशुद्ध किसने कर दिया ? कर्ण ने कहा प्रभो यह सब इस कीडे की करतूत है और गुरु को वह अलर्क कीडा दिखाई दिया। रक्त पीकर वह कीडा मोटा हो गया। ज्यों ही क्रोधपूर्वक परशुरामजी ने क्रोध भरी दृष्टि से उस कीडे को देखा वैसे ही वह कीडा मर कर जमीन पर गिर पडा। उसी समय परशुरामजी को आकाश में एक राक्षस दिखाई पडा। पूछने पर उस राक्षस ने बताया पहिले मैं एकदंस नाम का राक्षस था आपके पितामह ऋच्चीक की पत्नी को मैंने हर लिया था। उन्ही के शाप से मुझे यह कीट योनि प्राप्त हुई। उन्होंने ही प्रसन्न कर कहा था कि हमारे ही वंश में उत्पन्न परशुराम जी द्वारा तुम इस शाप से मुक्त होंगे। यह कहकर और परशुरामजी को प्रणाम करके वह राक्षस वहां से चला गया।

कर्ण के साहस से, ऐसी गुरुभक्ति से इस प्रकार के त्याग से परशुरामजी को प्रसन्न होना चाहिये था किन्तु दैव की गति ही अलग है। वह सब तो इन्द्र की माया का जाल था। कर्ण पर तो मानो एक साथ बिजली ही टूट पडी। डर के मारे वो थर थर कांपने लगा।

गुरु के मन की स्थिति कर्ण समझ गया। एक क्षत्रिय ने मिथ्या कथन कर उन्हे भ्रम में रख उनसे उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया। कर्ण अपनी भाग्यहीनता से इतना त्रस्त हो गया कि दीन हीन होकर रूदन कर गुरु के सामने अपनी पीडा कहने लगा क्षमा करे मेरे अपराध। गुरुदेव मैं क्षत्रिय नहीं हूं। मैं हस्तिनापुर के सारथी अधिरथ का पुत्र कर्ण हूं। गुरु परशुराम वैसे ही क्रोध में थे और बोले- सूत पुत्र कर्ण तुमने मुझसे अपनी वास्तविकता क्यों छुपाई ? कर्ण बोला- यदि मैं आपको अपना वास्तविक परिचय देता तो आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार ही नहीं करते। गुरु परशुराम बोले- इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई याचना कर नहीं मिले तो तुम उसे चुरा लोगे ? कल तुम्हारी इच्छा किसी के धन, स्त्री अथवा राज्य पाने की हो जायेगी। कर्ण बोला- नहीं गुरुदेव मैं चोर नहीं हूं। विद्या तो पराया धन नहीं है। यह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। ज्ञान तो प्रकृति का वैसा ही वरदान है जैसे वायु, जल और प्रकाश है। कोई यह नियम बना कर कहदे कि अब से जल और वायु तथा प्रकाश ये सब ब्राह्मणों को ही मिलेगा तो वह न्याय तो नहीं हो सकता गुरुदेव। परशुरामजी अत्यन्त कुपित होकर बोले- तुम गुरु से तर्क कर रहे सूतपुत्र ? जल, वायु, प्रकाश किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति, समाज या राज्य इनको अपने अधीन में रख सके तो वह उसकी सम्पत्ति समझी जाती है। जल व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं किन्तु कुआ व्यक्ति की सम्पत्ति हो सकता है। घाट व्यक्ति की सम्पत्ति हो सकता है। नदियां, सागर तट तथा भूमि के ऊपर का वायुमंडल पर समाज और राज्य का नियन्त्रण होता है। उसी तरह सार्वभौम ज्ञान पर प्रत्येक प्राणी का अधिकार हो सकता है किन्तु व्यक्तिगत ज्ञान पर तो व्यक्ति का ही नियन्त्रण है। तुम उस व्यक्ति की इच्छा बिना अथवा छलपूर्वक उसे प्राप्त नहीं कर सकते। ज्ञान पिपासु उसे सदा गुरु कृपा से ही प्राप्त करता है। उस ज्ञान को छल, प्रपंच, बलप्रयोग अथवा पृष्टता के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जाता। उसकी खरीदी करना भी उसे दूषित करना है। तुमने असत्य बोलकर मुझे तो प्रवंचित किया ही है। तुम अपने स्वार्थ के लिये किसी सामाजिक विधान को स्वीकार नहीं करोगे। दूसरे समाज या व्यक्ति की इच्छा का तुम्हारे लिये कोई महत्व नहीं है। तुम अपनी इच्छापूर्ति के लिये उचित अनुचित कुछ भी कर सकते हो। तुम स्वेच्छाचारी हो सूत पुत्र।

कर्ण बोला नहीं गुरुदेव। मुझे सूत पुत्र कहकर अपमानित किया जा रहा था। मैं इस तिरस्कार को सहन नहीं कर सकता था। गुरु बोले- क्या शस्त्र बल से ? जो तुम्हे कोई सूतपुत्र कहेगा उसका वध कर दोगे। देखो कर्ण सूतपुत्र कह कर कितना तुम्हारा तिरस्कार तुम मान बैठै। विदुर दासी पुत्र होकर भी हस्तिनापुर के मन्त्री हैं। अधिरथ सूत होकर भी धृतराष्ट्र के मित्र हैं वे इसे अपना तिरस्कार नहीं मानते। उन्होंने कभी तुम्हारे समान क्षत्रिय बनने का प्रयत्न नहीं किया। विश्वामित्र ने तपस्या से अपने को क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि बनाया। तुमने स्वयं को भार्गव गौत्र का ब्राह्मण बताया पर स्वयं को ब्राह्मण बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। तुमने अपने को ब्राह्मण बनाने के लिये साधना और तपस्या का मार्ग छोडकर छल और असत्य का मार्ग अपनाया। तुम्हारी आत्मा और तुम्हारे लक्ष्य और विचार भी शुद्ध नहीं है। तुम्हे शस्त्र विद्या की आवश्यकता किसलिये है ? क्या करोगे तुम अस्त्र

बल लेकर ? और ब्रह्मास्त्र विद्या सीखने में तुम्हारी इतनी आसक्ति किस कारण से है ? कर्ण बोला- मैं कुन्ती पुत्र अर्जुन की प्रगति से पीडित हूं गुरुदेव और मैं उससे श्रेष्ठतर धनुर्धर योद्धा बनना चाहता हूं गुरुदेव।

परशुराम बोले- तुम्हारी वृति सात्विक नहीं है। तुम अपना विकास नहीं चाहते। तुम दूसरे का विनाश चाहते हो। तुम प्रतिशोध लेना चाहते हो। तुम्हारे मन में निर्माण और सृजन नहीं है तुम विध्वंस और विनाश के प्रवर्तक हो। तुम्हे यह सब अपने अहंकार की तुष्टि के लिये चाहिये। तुम्हारी ईर्ष्या और प्रतिहिंसा तुम्हे कभी भी उचित और अनुचित का विचार धर्म और अधर्म का विचार नहीं करने देगी। तुम्हारा मन कलुषित है। तुम्हारा शस्त्र बल किसी सज्जन की रक्षा के काम नहीं आ सकता। तुम अपने शस्त्र बल का दुरूपयोग करना चाहते हो इसलिये आचार्य द्रोण ने ठीक ही किया कि तुम्हे शस्त्र ज्ञान नहीं दिया। मैंने जितनी विद्या तुम्हे सिखा दी उतना ही पाप किया है। अच्छा तो होता कि मैं तुम्हारा वध कर देता परन्तु मैंने तुम्हे अपना शिष्य स्वीकार कर ज्ञान दिया है। उसके वध के लिये यह हाथ उठाना उचित नहीं है। अब तुम यहां से इसी क्षण निकल जाओ कहीं ऐसा न हो कि मेरा मन तुम्हारे प्रति और कठोर हो जाये।

कर्ण ने पुन: हाथ जोडकर दीनता से गुरु से क्षमा याचना करी कि मेरा परित्याग न करें गुरुवर। मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान दें। ब्रह्मास्त्र का ज्ञान पूरा होते ही मैं यहां से चले जाऊंगा। गुरु परशुराम बोले- असम्भव मैंने तुम्हे दंडित नहीं किया क्या यही कम नहीं है ? कर्ण ने विनती करी क्या मेरा अपराध इतना बडा है ? मैंने तो गुरु के गौत्र को अपना कुल गोत्र माना है। क्या गुरु पिता के समान नहीं होता। परशुरामजी बोले- कुतर्क मत करो कर्ण। कर्ण बोला- गुरुधर्म का पिता ही होता है इसीलिये मैंने अपने को भृगुवंशी कहा था। आप मेरे पिता तो हैं ही इतना कहकर कर्ण चुप हो गया।

गुरु परशुराम बोले- गुरु का महत्व पिता के समान होता है। गुरु का सम्बन्ध पिता का सम्बन्ध नहीं है, रंग रूप जाति, गौत्र यह सब पिता से प्राप्त होते हैं। गुरु व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करता है। मैं जानता हूं कि जीवन में कई बार अपना परिचय छिपाना भी पडता है। कई बार व्यक्ति कहीं अपना पूर्ण परिचय नहीं देना चाहता अथवा छदम् परिचय देता है लेकिन ऐसे ही हम उसे मिथ्यावादी नहीं मानते। हम यही समझते है शायद किसी परिस्थिति प्रयोजन विशेष में उसने छदम् वेश धारण किया होगा लेकिन हम विचार करते हैं कि उसका प्रयोजन धर्म रक्षा के विरूद्ध तो नहीं है या किसी को प्रवंचित करने के लिये है। कर्ण तूने मिथ्या कथन किया है। गुरु को प्रवंचित किया है, ज्ञान की चोरी की है। तुम्हारी क्षमता और शक्ति समाज के कल्याण के हित में नहीं है, यह तो अहंकार मूलक है और महत्वकांक्षाओं को पूरी करने में लगनेवाली है। इससे तो प्रतिहिंसा ही उत्पन्न होगी। हीन वृत्तियां जन्म लेगी।

उपरोक्त सभी कारणों और विचारों से तुमने एक बडा गम्भीर अपराध किया है इसलिये तुम्हे शाप देता हूं कि **ब्रह्मास्त्र का जो प्रशिक्षण तुम्हे प्राप्त हुआ है उसे भी अभ्यास के अभाव में तुम भूल जावोगे। अपने समान योद्धा से जब तू युद्ध करेगा तो तेरी मृत्यु होगी और मृत्यु अन्त समय में तुझे यह अस्त्र ज्ञान विस्मृत हो जायेगा।** मेरे यहां झूठ बोलनेवालों का काम नहीं है। अब तू इसी क्षण मेरे यहां से चले जा।

कर्ण परशुराम जी को प्रणाम कर अपने भाग्य को कोसता हुआ हस्तिनापुर चला आया। कर्ण को लगने लगा नैतिकता अपने स्थान पर होती है और आकांक्षा अपने स्थान पर। नियमों का पालन तो वे लोग करते है जो असमर्थ होते हैं। जो हाथ बढाकर वस्तु प्राप्त कर सकता है वह कभी नियम नहीं बनाता और न पालन करता है।

रात्रि का एक प्रहर ही बीता अधिरथ अपनी शैया पर सो रहा था इतने में ही द्वार खटखटाने की आवाज आई। अधिरथ ने दरवाजा खोला। अधिरथ को मन में विचार आया कि अन्धे धृतराष्ट्र के राज्य में हस्तिनापुर इतना सुरक्षित नहीं है कि आधी रात में बिना कुछ सोचे समझे अपने घर का दरवाजा खोल दे। राधा मन ही मन विचार कर रही थी कि क्या कर्ण को इसलिये पाल पोस कर इतना बडा

किया था कि बिना कुछ कहे सुने, बिना किसी सूचना के दिये चुपचाप घर छोड कर चल दिया। अपने वृद्ध माता-पिता का सहारा बनना चाहिये था। उसे तो बडा होकर घर का दायित्व सम्भालना चाहिये था। अधिरथ ने दरवाजा खोलने से पूछा कौन है ? कर्ण बोला पिताजी दरवाजा खोलिये आपका वसु। अधिरथ ने दरवाजा खोला और बोले मेरे वसुषेण होते तो मुझे इस प्रकार छोडकर नहीं चले जाते। मोह की भी तो कोई सीमा होती है। कर्ण ने भीतर प्रवेश कर माता-पिता के चरण स्पर्श किये। मन में हल्की सी ग्लानि और संकोच था तथा पीडा। अधिरथ ने पूछा कहां चले गये थे तुम ? कर्ण बोला मैं धनुर्विद्या प्राप्त करने गुरु परशुराम के आश्रम में चला गया था। अधिरथ बोला- क्या आवश्यकता आ पडी थी इसकी ? कर्ण ने उत्तर दिया जब जल की धारा का एक मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो वह दूसरा मार्ग खोज निकाल लेता है। अधिरथ ने कहा धारा बनना ही जल की एक मात्र नियति नहीं है। जल सरोवर भी बन सकता है और समुद्र भी। और एक बार वह समुद्र बन जाये तो पृथ्वी की सारी धारायें आकर उसी में मिल समा जाने को अपनी पूर्णता मानती है। कर्ण ने कभी यह बात सोची ही नहीं थी। गंगा तट पर रहते-रहते उसने धारा बनने की महत्वाकांक्षा अपने मन में पा ली किन्तु वहीं रहनेवाला उसका सारथी पिता अधिरथ सागर बनने की महत्वाकांक्षा की भी कभी कल्पना कर सकता है ? उसने कदाचित कभी भी अपने पिता को कम ही आंका। कम जाना है। उसके पिताने तो कभी जीवन की गति की कल्पना भी नहीं की। शायद सारथी जीवन की परिणिति यही हो कि दिन भर चलता रहे किन्तु गति से उसका परिचय ही न हो। कर्ण बोला- ठीक कहते हैं आप पिताजी। मैंने तो सागर खोजने की क्षमता विकसित की है सागर बनने की नहीं। यदि जल की धारा गतिमान नहीं होगी तो धरती उसे पी जायेगी। अधिरथ बोला- यदि धारा को धरती अपनी शत्रु लगती है तो उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि सागर उसका मित्र ही है। धारा का अस्तित्व अपने मूल रूप से न तो धरती पर रहता है और न ही सागर में। यदि वह सागर में अपना अस्तित्व खोकर सारे सागर को अपना मान कर सन्तुष्ट हो सकती है तो पृथ्वी की सारी हरियाली में वह अपना अस्तित्व क्यों नहीं खोजती ? क्या यही एक मार्ग है विकास का कि सागर में जा मिलना ? जल यदि धरती द्वारा सोख लिये जाने का संकट है तो सागर द्वारा लील लिये जाने का भी उतना ही संकट है। पुत्र सृष्टि के रहस्य अभेद्य है। हम उतना ही समझ पाते है जितना समझने की क्षमता हमारी बुद्धि में है। हमारी बुद्धि ही संसार का अन्तिम सत्य नहीं है। मैं तो आज तक यह समझ नहीं पाया कि पृथ्वी ने सागर को अपनी गोद में स्थान दे रखा है या सागर ने पृथ्वी को अपनी भुजाओं में उठा रखा है ? पृथ्वी सागर को सोखती है या सागर पृथ्वी को अपने में घोलते रहता है ? हम धरती की सन्तान है या सागर पुत्र ? तुमने कभी सोचा है कि जिस समुद्र को अपना मान कर धारा उसकी ओर दौडते चली जाती है वह सागर उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को लील जाता है और जिस धरती को वह पराया मान उससे दूर भागती है वही धरती उसे तट बांधकर उसके अस्तित्व की रक्षा करती है। राधा बीच ही बोल उठी कि तुमने तो पुत्र के आते ही यह दार्शनिकों का सा प्रलाप शुरू कर दिया। यह नहीं कि इतने अन्तराल के पश्चात पुत्र घर आया है तो उसका कुशल मंगल जानें। उसकी थकान मिटाकर विश्राम करने के लिये कहें। उल्टे इतनी रात गये उसे नदी और सागर तथा पृथ्वी के बारे में समझा रहे।

अधिरथ बोला- मैं तो उसे यह समझा रहा हूं कि जीवन में यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि हमारा अपना कौन है और पराया कौन है ? हमारा मंगल एक में अन्तर्निहित हो जाने में है या दूसरे में लय हो जाने में। इस संशिलष्ट सृष्टि में सन्तुलन बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। राधा बोली ये सब बातें तो मेरी समझ के बाहर है। अब रहने दो और इसे विश्राम करने दो। पुत्र यह बताओ कि तुम्हारे गुरु परशुराम का आश्रम है कहां ? कर्ण जानता था कि मां नहीं जान पायेगी कि यह आश्रम कहां है क्योंकि मां ने बहुत ही कम भ्रमण किया हुआ है। कर्ण बोला- मां वह आश्रम यहां से बहुत दूर है पूर्व की ओर पूर्व से थोडी दूर दक्षिण की ओर जाकर पृथ्वी के अन्त आ जाने तक सागर तट पर महेन्द्रगिरि के ऊपर है। राधा ने पूछा तो तुम धरती के अन्त तक चले गये। अधिरथ बोला- कौन जानता है धरती का अन्त कहां है ? कर्ण बोला- मां सत्य है कि धरती का अन्त कोई नहीं

जानता ? धरती समाप्त होती है वहीं से सागर का आरम्भ होता है। सागर का अन्त धरती का आरम्भ भी है। अधिरथ बोला- जीवन भी पृथ्वी के समान है पुत्र, यदि एक स्थान पर दु:ख का अवसान सुख में है तो दूसरे स्थान पर सुख का अवसान दु:ख में है। राधा बोली तुम्हारे लिये परिवर्तन नवीनता उत्पन्न करता है और मेरे लिये अनिश्चितता। घर में मेरे लिये सब कुछ परिचित है निश्चित है। यात्रा में तो कुछ भी निश्चित नहीं होता, कब तक चलेंगे, कहां तक चलेंगे ? कहां रूकेंगे ? कब खायेंगे ? क्या खायेंगे ? कहां ठहरेंगे ? विश्राम मिलेगा या नहीं। मार्ग में साथी होंगे या नहीं ? और होंगे तो कैसे होंगे ? गुरु परशुराम तुम्हे शिष्य के रूप में पाकर प्रसन्न हुये होंगे वत्स ? यह प्रश्न सुनकर कर्ण का चेहरा जैसा बुझ गया। अधिरथ ने भांप लिया कि असफलता की एक छाया आकर कर्ण के मुख पर पसर गई।

अधिरथ ने पूछ ही लिया क्या गुरु प्रसन्न नहीं हुये ? क्या उन्होंने तुम में एक अच्छे शिष्य के लक्षण नहीं देखे ? कर्ण बोला जिसे उन्होंने अपना शिष्य माना उससे वे अत्यन्त प्रसन्न रहे। जितना उन्होने मुझे अपना शिष्य माना उतना वे मुझ पर कृपालु बने रहे किन्तु तथ्य तो यह है कि जिसे वे अपना शिष्य मानते रहे वह मैं नहीं था, वह तो एक ब्राह्मण कुमार था। कर्ण बोला- गुरु परशुराम शस्त्र शिक्षा के लिये केवल ब्राह्मण शिष्य ही स्वीकार करते है। आचार्य द्रोण ने मुझ सूत पुत्र को राजकुमारों के साथ शस्त्र विद्या देना स्वीकार नहीं किया किन्तु गुरु परशुराम तो क्षत्रियों को भी शस्त्र विद्या नहीं देते। मैंने उन्हे अपना परिचय भार्गव गौत्र के एक ब्राह्मण कुमार के रूप में दिया। अधिरथ की आखों में रोष प्रगट हुआ और बोला- तुमने गुरु से मिथ्या भाषण कर छल कर विद्या प्राप्त की। छल किया गुरु से। कर्ण बोला- इसमें मेरा क्या दोष है ? जब सत्य बोल कर संसार में कुछ प्राप्त नहीं होता तो असत्य भाषण ही होगा। मैं क्या सत्य बोल कर प्रत्येक स्थान पर वंचित होता रहूं ? संसार में मनुष्य को कुछ व्यावहारिक भी होना पडता है। अधिरथ कुछ सोचता रहा फिर बोला- कर्ण वहीं तक सत्य का समर्थक है जहां तक उसे सत्य से लाभ होता है। कर्ण बोला उन्होने ही तो मुझे झूठ बोलने को बाध्य किया। यदि मेरा वास्तविक परिचय पाकर भी वे मुझे शस्त्र विद्या सिखाते तो मैं मिथ्या भाषण किसलिये करता? अधिरथ बोला- हां पुत्र दोष तो सदा दूसरों में ही दिखता है। मनुष्य अपने आपको कभी दोषी नहीं मानता।

कर्ण बोला- पिताजी मैं जानता हूँ कि आपको मेरी बात अच्छी नहीं लगी किन्तु आप यह तो बताइये कि विद्या का अधिकार सबको क्यों नहीं है ? विद्या दान के मध्य यह वर्ण जाति कहां से आ जाती है ? मैं शस्त्र विशारद क्यों नहीं हो सकता ? क्या कमी है मुझमें ? मानवों में वर्णभेद, वर्गभेद कर कुछ को हीन और कुछ को श्रेष्ठ मानने का क्या अर्थ है ? समाज में कुछ लोगों के लिये सुविधायें क्यों जुटाई जाती है और कुछ को वंचित क्यों किया जाता है ? किसी किसी की इतनी उपेक्षा क्यों की जाती है ? मैं सामाजिक अन्याय का विरोध कर रहा हूं पिताश्री। शिक्षा का अधिकार क्या सबको नहीं है ? शिक्षा और ज्ञान क्या केवल ब्राह्मणों और क्षत्रिय पुत्रों की बपौती है, जागीर है ?

अधिरथ शान्त स्वर में बोला- शिक्षा का अधिकार तो सबको है पुत्र क्योंकि अपने विकास का अधिकार प्रकृति ने समस्त जीवों को दिया है; शारीरिक, मानसिक और आर्थिक विकास। अपनी आजीविका अर्जित करने का, विद्या प्राप्ति का इत्यादि अधिकार सबको है। ज्ञान चेतना का शारीरिक और मानसिक कौशल के अनेक क्षेत्र है जिनका सामाजिक नेतृत्व यह तय करता है कि कौनसा व्यक्ति कौनसी विद्या ग्रहण कर समाज के लिये उपयुक्त होगा। लोहार बनने की क्षमता रखनेवाले व्यक्ति को चित्रकला सिखाने से कोई लाभ नहीं। इसमें तो विद्या और शिक्षक दोनों का ही अपव्यय है। संगीत शास्त्र में पारंगत विद्वान को मल्ल विद्या सिखाने से क्या उपयोग ? शस्त्र विद्या की शिक्षा तो किसी को भी बहुत ही सोच समझकर देनी चाहिये। शस्त्र तो सिर्फ उन लोगों के हाथ में ही देना चाहिये जो शरीर से ही नहीं मन और आत्मा से भी क्षत्रिय हो। जो केवल न्याय और सत्य की रक्षा के लिये ही शस्त्र उठाये। जो निर्बल की आततायी से रक्षा करता हो, जो अधर्म, अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरोध में अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करने को तैयार हो। कर्ण बोला- पिताजी यह सारे क्षत्रिय कोई न्याय के लिये शस्त्र नहीं धारण किये हुये है

बल्कि ये लोग शक्तिशाली होने के लिये, अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये शस्त्र धारण करते है। ये लोग हम सूतकुमारों को हीन मानते है और हमें हीन बनाये रखना चाहते है। यह तो जातीय शोषण है।

अधिरथ बोला- पुत्र आज के यह सारे शस्त्रधारी क्षत्रिय तो क्षत्रिय कहलाने योग्य ही नहीं रहे। इनमें धर्म, न्याय और विचार की मात्रा ही नहीं है। इनमें तो भोग, हिंसा और स्वार्थ की मात्रा बढती जा रही है। ये न्याय के लिये आत्मबलिदानी वाले जीव नहीं है ये भोग के लिये आतुर, अहंकार से पागल बने हुये जीव है। शस्त्र शिक्षा अत्यन्त संयमी और विचारवान व्यक्तियों को ही दी जानी चाहिये, हर किसी को नहीं। यदि किसी अपात्र या कुपात्र को कुम्भ निर्माण की शिक्षा दी गई तो वह अपनी विद्या से समाज का हित नहीं भी कर पाया तो अहित भी क्या करेगा। किन्तु कुपात्र के हाथ में शस्त्र दे दिया गया तो वह समाज का विनाश ही करेगा। सूत माता पिता के घर में मैं उत्पन्न हुआ हूं। सूतों के ही समाज में पला और बडा हुआ हूँ किन्तु कर्ण आज तुम सूत पुत्र सम्बोधन से जितने पीडित होते हो मैंने इतना पीडित हो किसी सूत को नहीं देखा। तुम तो सूत होना कलंक ही मानते हो पुत्र। तुम्हारे वश में होता तो तुम तो कब के इस कलंक को धो चुके होते। तुम इसे इतना अपमानजनक समझ रहे हो। इससे तुम अपना हीन बोध पीडित कर रहे हो। तुम्हारी महत्वाकांक्षा तुम्हारे विकास भावना से प्रेरित नहीं है यह तो प्रतिहिंसा की उपज है। तुम स्वयं ऊंचा उठने से अधिक किसी और को नीचा दिखाना चाहते हो।

कर्ण बोला- यदि मैं शस्त्र विद्या के क्षेत्र में अधिक विकास करना चाहूं तो इसमें हीन भावना और प्रतिहिंसा की बात कहां से आती है ? यदि यही बात अर्जुन धनुर्विद्या में पारंगत होना चाहता है तो उसे तो ऐसी बात कोई नहीं कहता। अधिरथ बोला- अब तेरे ही मुख से स्पष्ट हो गया कि तेरी सारी महत्वाकांक्षा इसलिये है कि तू अर्जुन को नीचा दिखा सके। यदि तू धनुर्धर ही बनना चाहता है तो जीवन में कोई ऊंची आकांक्षा को लेकर चल। तू अपनी तुलना करता है राजकुमारों से। तेरी सारी पीडा यही है कि तू राजकुमार क्यों न हुआ ? यदि तेरा विरोध क्षत्रियों से ही है तो तेरा विरोध कुमार दुर्योधन से क्यों नहीं है ? विरोध तेरा केवल अर्जुन से ही क्यों है ? तेरा तिरस्कार तो ब्राह्मणों ने किया है द्रोण और परशुराम ने फिर तू ब्राह्मणों का विरोध क्यों नहीं करता। तेरा सारा आक्रोश पांडवों पर केन्द्रित होता है, उन्होने क्या बिगाडा है तेरा ?

कर्ण बोला- क्षमा करें पिताश्री आप महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में रहते हुये पांडवों के इतने समर्थक क्यों है ? और फिर अपने मित्र और शत्रु बनाने का अधिकार हर व्यक्ति को स्वतन्त्र है। मैंने तो अपने शैशव काल से ही महाराज धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर के राजा के रूप में देखा है और मैं तो उन्ही की महत्ता स्वीकार करता हूं। युवराज होते हुये भी दुर्योधन ने सदा मुझे अपना मित्र माना है। लेकिन मैं इन कंगले पांडवों की महत्ता बढते हुये नहीं देख सकता।

अधिरथ कर्ण से बोला पुत्र यह तेरी अबोधता है। यही तो मैं तुम्हे समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं। हम राजधर सूत है। मैं हस्तिनापुर सम्राट का सारथी हूं, धृतराष्ट्र का नहीं। सम्राट बदल जाते हैं लेकिन राजतन्त्र और राजाधिकारी व कर्मचारी वहीं रहते है। हमारी निष्ठा व्यक्तियों के प्रति नहीं है। तुम इस तथ्य को पहचानो। अपने स्थान, पद और धर्म को जानो। अपनी स्थिति को समझो। राजपरिवार की राजनीति में मत पडो। तुम उनके पक्षधर और विपक्ष के प्रपंच में मत पडो। धरती यदि जलधारा को सोख सकती है तो सागर उसे लील सकता है। हम यह नहीं जानते कि कौन हमारे लिये धरती है और कौन सागर ? तुम जो हो वही बने रहो। हमारा अपना ज्ञान ही अन्तिम सत्य नहीं है। हम जिसे अपना अहित मान बैठे है सम्भव है वह हमारे हित से भी बडा हितैषी हो। कौन जाता है पांडव तुम्हारे मित्र दुर्योधन से भी बढकर तुम्हारे आत्मीय जन बन जाये। तुम अपने स्थान पर स्थिर रहो, दृढ रहो और अपना विकास करो। अपने मन में प्रतिहिंसा का विष मत पीओ और न ही उस विष के बीज बोओ। खीझ और हताशा की साकार मूर्ति अधिरथ कक्ष से बाहर निकल गया।

कर्ण भी जाकर अपनी शैया पर लेट गया पर उसे रात भर नींद नहीं आयी और उसके मन में कोई गहरी बात समाई हुई थी कि

द्रोणाचार्य द्वारा तिरस्कृत होने पर शायद कोई भी गुरु उसे शिक्षा नहीं देगा। वह तो अपने माता-पिता से ही नहीं सारे हस्तिनापुर से छिपकर भार्गव परशुराम के आश्रम में गया था। कर्ण अपने पिता के बारे में ही सोचने लगे कि वे जीवन को स्थिर और स्थायी मान बैठे है। वे तनिक से परिवर्तन की भी कल्पना नहीं कर सकते। जीवन में कभी संकट नहीं झेले उन्होने। कभी निश्चित को छोड कर अनिश्चित को पाने का प्रयत्न नहीं किया। हस्तिनापुर के राजपरिवार के संरक्षण में बहुत सुरक्षित जीवन व्यतीत किया है। किन्तु कर्ण को ऐसी सुरक्षा नहीं चाहिये जो जीवन को जड बना दे, उसका प्राण रस ही छीन ले और वे सदा पांडवों का पक्ष ही क्यों लेते है ? जब कभी कर्ण पांडवों का विरोध करता है वह उनके लिये असहनीय हो जाता है। क्या व्यक्ति के प्रति उनकी तनिक भी निष्ठा नहीं होती। सारी निष्ठा पद के प्रति ही होती है ? क्या उनकी दृष्टि सदा सही देखती है कि सम्भावित शासक कौन है ? पता नहीं उसकी अनुपस्थिति में हस्तिनापुर में क्या-क्या घटा होगा ? अब हस्तिनापुर के हाल जानने के लिये उसे प्रात: ही दुर्योधन से मिलना होगा। हस्तिनापुर में रहने के लिये हस्तिनापुर को जानना होगा। उसे जाने बिना वहां रहना सम्भव नहीं हो सकता।

३८) राजकुमारों के अस्त्र कौशल का रंगशाला में प्रदर्शन

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब सब राजकुमारों की शिक्षा समाप्त हो चुकी तब गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों का कलाकौशल दिखलाना चाहा। आचार्य के लिये इससे अधिक प्रसन्नता क्या हो सकती थी कि उनके विद्यार्थी अब युवा हो चुके हैं और सबके सामने गौरवान्वित हो और बडे लोगों के प्रशंसा के पात्र बने। द्रोणाचार्य ने राजकुमारों को अस्त्र विद्या में निपुण देखकर कृपाचार्य, सोमदत्त, बाहलीक, भीष्म, व्यास, धृतराष्ट्र और विदुर आदि के सामने कला प्रदर्शन चाहा कि उन्होंने राजकुमारों को क्या और कैसा सिखाया है इसके लिये वे एक दिन राजसभा में गये।

भीष्म पितामह और विदुर ने उठकर गुरु द्रोणाचार्य का स्वागत किया और प्रणाम कर कहा आईये आईये बैठिये। आसन ग्रहण करें। द्रोणाचार्य बोले- यह स्थान आपका है गंगा पुत्र और यह स्थान और कोई ग्रहण नहीं कर सकता। भीष्म बोले- आप यहां विराजिये ऋषिवर। मैं विदुर से अभी-अभी आपके बारे में ही बात कर रहा था। गुरुकुल के क्या समाचार है ? द्रोण बोले- शिष्यों के समाचार अच्छे है। अब समय आ गया है कि हस्तिनापुर देख ले कि उनके राजकुमारों ने क्या सीखा है और कैसा सीखा है ? विदुर बोले आचार्य द्रोण के विषय में तो यह सोचना ही अनावश्यक होगा कि उनके शिष्यों ने क्या सीखा है और कैसा सीखा है ? गुरु से उन्होंने वह सब कुछ सीख लिया होगा और अच्छा ही सीखा होगा। द्रोणाचार्य बोले- मुझसे तुम मन्त्रियों वाली भाषा मत बोला करो विदुर। विदुर बोले- क्षमा चाहता हूं गुरुवर। भीष्म बोले- तो फिर शिक्षा सम्पन्न समारोह किया जाये ऋषिवर ? द्रोण ने कहा अवश्य। विदुर बोले- महाराज धृतराष्ट्र ने गुरु दक्षिणा के लिये एक राजभवन, एक लाख स्वर्ण मुद्रायें तथा रत्नों और मणियों की एक मंजूषा आपकी सेवा में अर्पित करने का निर्णय किया है। द्रोण उठकर खडे होकर बोले महाराज के आभार तले तो मैं यूं ही दबा हुआ हूं परन्तु गुरु दक्षिणा दी नहीं जाती है विदुर यह तो ली जाती है। समय आने पर गुरु दक्षिणा मैं स्वयं मांग लूंगा। यह सुनकर भीष्म विस्मित हुये, भ्रमित हुये तब द्रोण बोले आप चिंतित न हो गंगा पुत्र। कोई गुरु अपने शिष्यों से असम्भव की मांग नहीं करता। आप महाराज से कहकर रंग भूमि सजायें और उसका निर्माण करायें। भीष्म बोले- जो आज्ञा ऋषिवर। पितामह भीष्म द्रोणाचार्य के इस प्रस्ताव को सुनकर बडे प्रसन्न हुये और उन्होने परीक्षा का दिन निश्चित किया और महाराज धृतराष्ट्र को सूचित किया। धृतराष्ट्र ने प्रसन्न होकर कहा आचार्य ने हमारा बहुत बडा उपकार किया है अब आचार्य जिस समय जहां चाहे जिस प्रकार का अस्त्र कौशल प्रदर्शन उचित समझते हैं करें और उसकी तैयारी के लिये विदुर से कहा विदुर आचार्य की आज्ञानुसार तैयारी कराओ।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में बैठा हुआ है और शकुनि धृतराष्ट्र के पास आता है और बोला- महाराज की जय हो। धृतराष्ट्र बोला- मैंने तो इस बार तुम्हारे आने की आवाज ही नहीं सुनी। शकुनि बोला- मैं दबे पांव जो आया था महाराज। चाप सुने बिना चाल

पहचानने का अभ्यास कीजिये महाराज क्योंकि आनेवाला कभी अपनी चाल बदल भी सकता है और यदि उसने अपनी चाल बदली तो चाप अवश्य बदल जायेगी। मैं तो कहता हूं कि आप सभी शेष आवाजों को भूल जावों केवल अपने पुत्र दुर्योधन के भविष्य की आहट पर कान लगाये रखें महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा उसी उलझन में तो पडा हुआ हूं मैं। पांडवों के आ जाने के पश्चात दुर्योधन के भविष्य की चाप उनके चापों में खोती जा रही है। युधिष्ठिर ज्येष्ठ तो है ही अब सुनता हूं कि वो योग्य भी है। अभी-अभी तातश्री भीष्म भी कह गये कि आचार्य द्रोण ने उनसे कहा है भी राजकुमारों की शिक्षा अब समाप्त हो चुकी है। रंग भूमि का निर्माण करवाया जाये।

शकुनि बोला- ये आचार्य द्रोण भी हर बात कहने के लिये आपके तातश्री के पास क्यों चले आते है ? क्यों वे बिना कहे ही यह कहना चाहते है कि हस्तिनापुर में केवल उन्हीं की चलती है। आचार्य द्रोण को यह बात कहने के लिये आपकी सेवा में उपस्थित होना चाहिये था। राजकुमारों का गुरु तो उन्हे आपने ही नियुक्त किया था ना फिर अब आपके पुत्र भी जवान हो चुके। जीजाश्री अब ये कडवे घूंट पीना छोड दीजिये। यदि ये रंगभूमि का निर्माण करने की प्रार्थना कर रहे हैं तो करें। होने दीजिये रंग भूमि का निर्माण। परन्तु यह निर्णय रंग भूमि नहीं लेगी कि हस्तिनापुर का युवराज कौन होगा ? यह निर्णय लेना तो आपका कार्य है। रंगभूमि में तो दुर्योधन का रंग सारा हस्तिनापुर देखेगा। युवराज आप उसी को बनायेंगे। धृतराष्ट्र बोला- पांडवों के साथ यह खुला अन्याय मैं नहीं कर सकता। शकुनि बोला- खुला अन्याय। खुला अन्याय करने की बात तो मैं भी नहीं कह रहा और यदि राजा को अन्याय करना भी पडे तो उसे खुला अन्याय तो करना ही नहीं चाहिये। परन्तु न्याय का अर्थ यह भी तो नहीं है कि अपने पुत्र के साथ अन्याय किया जाये। विधाता के कार्यों की आलोचना करने वाले हम कौन भला ? धृतराष्ट्र बोला विधाता। शकुनि ने कहा और क्या यदि विधाता दुर्योधन को राजगद्दी के योग्य नहीं समझते तो उसे हस्तिनापुर नरेश का ज्येष्ठ पुत्र बनाकर इस पृथ्वी पर भेजते ही क्यों ? क्या द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म विधाता से भी बडे हो गये जो उनकी जगह ले लेते हैं और फिर आनेवाले कल के लिये रात की जाती हुई नींद को खोना किसी नरेश को शोभा नहीं देता। रंग भूमि के निर्माण का आदेश दें महाराज।

द्रोणाचार्य ने रंगमंडप के लिये एक झाड झंखाड रहित समतल भूमि का चयन किया। जलाशयों के कारण वह भूमि और भी सुहावनी थी। शुभ मुहूर्त में पूजा करके रंगमंडप की नींव डाली गई। रंगमन्डप तैयार होने पर उसमें अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सजाये गये और राजघराने के स्त्री-पुरुषों के लिये उचित स्थान बनवाये गये। स्त्रियों और साधारण दर्शकों के स्थान अलग-अलग थे। महिनों पहिले से ही भांति-भांति की तैयारियां आरम्भ हुई। राजकुमारों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। कर्ण ने भी इसे अर्जुन को परास्त करने का अच्छा अवसर समझा। विद्या में अपने साथी विद्यार्थियों से स्वाभाविक प्रतिस्पर्धा होती ही है। पढने में जो विद्यार्थी अपने से तेज होता है, मेधावी विद्यार्थी उससे प्रतिस्पर्धा रखते ही हैं और भरसक इसी बात का प्रयत्न करते हैं कि वह हमसे आगे नहीं निकल जाये। कभी-कभी तो इस प्रतिस्पर्धा में कडवाहट आ जाती है और अन्त में यही प्रतिस्पर्धा द्वेष और शत्रुता का रूप धारण कर लेती है।

कर्ण जन्म जात वीर थे उन्हे अभ्यास की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। अर्जुन अभ्यास के बल गुरु की कृपा से वीर बने थे। अर्जुन को अपनी वीरता पर गर्व था। वे अपने आपको श्रेष्ठ धनुर्धरों की गिनती में करते थे। इससे कर्ण मन ही मन अर्जुन से प्रतिस्पर्धा रखते थे और उनको अपना प्रतिद्वन्दी मानने लगे। कर्ण की आन्तरिक अभिलाषा हो गई कि वे सबके सामने अर्जुन को परास्त करे। अपनी यह इच्छा उन्होंने कभी किसी पर प्रकट नहीं कि किन्तु जब भी वे अर्जुन को देखते तब उनके मन में यह भाव उठता और दिन रात वे इसी उधेड बुन में लगे रहते।

कौरव स्वभाव से ही पांडवों से द्वेष करते थे। उन्होंने पांडवों को मारने के लिये भांति भांति के षडयन्त्र साजिशें रची किन्तु पांडव वीर थे और दैव उनके अनुकूल था। कौरवों के सब प्रयास विफल हुये और वे पांडवों का बाल भी बांका नहीं कर पाये।

कर्ण सबके सामने अर्जुन को नीचा दिखलाना चाहते थे किन्तु दैव कभी भी उनके अनुकूल नहीं रहा। उनके इन प्रयत्नों से वे स्वयं ही लज्जित हुये और उसी दिन से बैर की नींव पड गई। भाई- भाई एक दूसरे के खून के प्यासे बन गये और यह बैर इतना बढ गया कि इसका अन्त कुरुक्षेत्र की रणभूमि में ही मरने के बाद ही हुआ।

कर्ण प्रात: उठकर दुर्योधन से मिलने युद्ध शाला की ओर चला गया। संयोग था कि दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों ही अभ्यास क्षेत्र में जाने से पूर्व ही उन्हे बाहर मिल गये। दुर्योधन ने पूछा मित्र तुम कब आये। हमें सूचना तक नहीं दी और बताकर भी नहीं गये। कर्ण बोला कल अर्ध रात्रि के समय आया और आज प्रात: तुम्हे मिलने चला आया। तीनों भी वृक्षों की घनी सी छाया देखकर बैठ गये। कर्ण ने पूछा जब तुम्हारे लोगों का शिक्षण समाप्त हो चुका तो अभी तक गुरुकुल में क्यों रह रहे हो अपने अपने घर क्यों नहीं लौट जाते ? दुर्योधन बोला आचार्य ने इतना श्रम लगाकर, समय लगाकर अपने शिष्यों को जो सिखाया है राजपरिवार तथा प्रजा के सामने उसका प्रदर्शन नहीं करेंगे तो उनकी प्रशंसा कैसे होगी ? पता कैसे चलेगा कि उनकी उपलब्धियां क्या-क्या है ? कर्ण ने पूछा यह प्रदर्शन कैसे होगा ? दुर्योधन ने कहा नगर के बाहर एक रंगशाला का निर्माण हो रहा है उसमें सहस्त्रों आमंत्रित नागरिक होंगे। राजपरिवार के सभी सदस्य होंगे। मन्त्री सभासद तथा सेना नायक भी होंगे। उन सबके सामने आचार्य अपने सभी शिष्यों को नगाडे की चोट पडते ही प्रस्तुत करेंगे और वे सब अपना-अपना कला प्रदर्शन दिखलायेंगे जो उन्होंने अपने शिष्यों को सिखाया है। अश्वत्थामा बोला यह सब प्रदर्शन होगा भूमि पर खडे होकर अश्वरोहियों से, रथारोहण तथा गजरोहण से लडना, द्वैरथ युद्ध करना, बहुलक्ष्य बाण भेदन करना, व्यूह रचना, व्यूह तोडना, शब्दभेदी बाण चलाना और भी धनुर्विद्या के सारे भेद, धनुर्वेद के सारे शस्त्रों का प्रयोग, संहार इत्यादि का प्रदर्शन। कर्ण बोला- मैं भी ज्ञान के प्रति अतुरता होने में महेन्द्रगिरि तक चलकर परशुरामजी के पास गया और जिस प्रकार शस्त्र विद्या ग्रहण की उसका पूरा वृतान्त दुर्योधन और अश्वत्थामा को बताया। दुर्योधन बोला चिन्ता की कोई बात नहीं। जो कुछ गुरु परशुरामजी से प्राप्त हो गया शेष कहीं ओर से प्राप्त हो जायेगा। मित्र तुम बहुत समय से आ गये हो। हस्तिनापुर मे रंगशाला बन रही है और सारे राजकुमार अपनी-अपनी शिक्षा का प्रदर्शन करेंगे। केवल अर्जुन ही एक ऐसा धनुर्धारी है जिसे निरस्त करने के लिये हमारे पास कोई उपयुक्त साधन नहीं था। अब तुम आ गये हो और तुम धनुर्विद्या में पारंगत हो गये हो। बस तुम रंगशाला में आकर इतना कर देना कि अर्जुन निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ वीर घोषित न हो सके। कर्ण ने सहमति से अपना सिर हिलाया और कहा ठीक है। कर्ण बोला तुम निश्चिन्त रहो मित्र। अर्जुन को यह गौरव कभी प्राप्त ही नहीं होगा जो तुम्हारे लिये अशान्ति का कारण बने।

धृतराष्ट्र का यह चाटुकारी मन्त्री कर्णिक धृतराष्ट्र के पास आया और प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने पूछा बोलो कर्णिक क्या समाचार लाये हो ? कर्णिक बोला कुमार दुर्योधन ने अपना अमूल्य कंठ हार गुरु पुत्र अश्वत्थामा को दे दिया है। धृतराष्ट्र बोला गुरु पुत्र को कंठहार दे दिया यह तो बहुत अच्छी बात है। गुरुपुत्र को नित्य कुछ न कुछ देते रहना चाहिये। कर्णिक बोला- महाराज यह कोई साधारण कंठहार नहीं है। यह राजकोष का सबसे बहुमूल्य कंठहार है जो सामान्यत: युवराज के राज्याभिषेक के समारोह में उसे पहनाया जाता है। महाराज कुमार दुर्योधन हठपूर्वक इसे पहने हुये थे और अब उन्होंने इसे गुरु पुत्र को उपहार में भेट कर दिया है। धृतराष्ट्र बोले- क्या मेरे पुत्र को इतना भी अधिकार नहीं है ? कर्णिक बोला- महाराज यह राज्य की सम्पत्ति है। उसकी रक्षा करना शासन का धर्म है। धृतराष्ट्र रोष भरे शब्दों में बोला- कर्णिक दुर्योधन मेरा पुत्र है और इस राज्य का स्वामी भी। यह तो एक कंठहार है, वह तो सम्पूर्ण साम्राज्य भी किसी को दे सकता है। तुम्हे उसके काम में अवरोध नहीं करना चाहिये। कुमार की इच्छा और आदेश को मेरी ही इच्छा और आदेश समझना चाहिये। कर्णिक ने पूछा फिर भविष्य में क्या कुमार के ऐसे कृत्यों पर दृष्टि नहीं रखी जाये? धृतराष्ट्र बोला- कुमार की सुरक्षा के लिये उसपर दृष्टि रखी जाये। कर्णिक प्रणाम कर जो आज्ञा कह कर चला गया।

धृतराष्ट्र ने सेवक भेजकर युद्धशाला से दुर्योधन को बुला भेजा। चर ने आकर सूचना दी कि महाराज युद्धशाला के कुलपति

द्रोणाचार्य ने कहा है कि युद्धशाला के शिष्य बिना गुरु की आज्ञा के कहीं नहीं जाते है। उनके माता-पिता तथा अभिभावकों की इच्छाओं और निर्देशों का सम्मान द्रोण के यहां सम्भव नहीं है। धृतराष्ट्र ने यह सुनकर कोई प्रतिक्रिया नहीं की और चुपचाप सिंहासन से उठकर अपने अन्त:पुर के कक्ष में चला आया। महारानी गान्धारी धृतराष्ट्र के समीप आकर बैठ गई और पूछ बैठी आप स्वस्थ तो है न ? क्या बात है महाराज ? आज राजसभा छोडकर असमय कैसे आ गये ? धृतराष्ट्र बोला- गान्धारी यहां का राजा मैं हूं और आदेश तातश्री भीष्म के चलते हैं। अब उन्होने लाकर एक आचार्य को मेरे सिर पर बैठा दिया है। वह कहने लगा है कि गुरुकुल में राजा की आज्ञायें मानी नहीं जायेगी। मैं ही सबका कहना मानूं क्योंकि मैं राजा हूं ना। गान्धारी बोली- राजा को तब सबकी बात माननी ही पडती है महाराज पर जैसे मैंने सुना है आचार्य द्रोण हस्तिनापुर में एक नया शक्ति केन्द्र स्थापित कर रहे है और उनकी शक्ति के स्त्रोत भीष्म पितामह है। किन्तु सम्भावना है कि वे शीघ्र ही स्वतन्त्र हो जायेंगे। धृतराष्ट्र ने पूछा तुम यह सब कैसे जानती हो ? गान्धारी बोली- महाराज मैं इसी राजभवन में रहती हूं। मेरे आसपास भी अनेक दासियां और सेवक है और यह न भूले कि शकुनि मेरा भाई है। धृतराष्ट्र बोला फिर तुम और क्या-क्या जानती हो ? गान्धारी बोली- पहिले आप बताये कि आपके साथ क्या हुआ ? धृतराष्ट्र ने अपनी सारी घटना कह सुनाई। गान्धारी बोली आप तातश्री की सत्ता और महत्ता कम करेंगे तो द्रोण स्वत: दुर्बल पड जायेंगे।

द्रोण का रथ रंगशाला की निर्माण स्थली की ओर जा रहा था और आचार्य अपने भविष्य के सपनों में खोये हुये थे। आचार्य को लग रहा था कि यह राजकुमारों के कला कौशल के प्रदर्शन की स्थली नहीं, यह तो उनके जीवन के स्वप्नों की अट्टालिका का निर्माण हो रहा है। उन्हें लगता था कि विधाता ने उनके भाग्य में केवल आकांक्षाये ही लिखी है पर उनकी पूर्ति नहीं। आचार्य को लगता था कि उनकी क्षमताओं और गुणों का कभी उचित सम्मान नहीं हुआ। जो सन्मान उन्हें मिलना चाहिये था वह उन्हे कभी नहीं मिला। विधाता की भी विचित्र लीला है जिन्हे गुण और क्षमतायें दी है उन्हे मान-सम्मान प्रतिष्ठा नहीं दी और जिन्हे सम्मान दिया और प्रतिष्ठा दी उनको गुण नहीं दिये। उन्हे ऐसा सोच-सोचकर जीवन जीने योग्य नहीं लगता था। विधाता का विधान ऐसा है यह समाज का निर्माण कि वह साधक को उसकी साधना से विचलित करके ही पुरस्कृत करता है। व्यक्ति का विकास संचय से होता है।

रंगशाला में पहुंच कर द्रोण ने वहां पर अश्वत्थामा को देखा और पूछा पुत्र तुम यहां क्या कर रहे हो ? अश्वत्थामा बोला रंगशाला का निर्माण देखने चला आया था। मुझे लगता है कि हम सबका भविष्य भी इसी रंगशाला से जुडा है। द्रोण बोले- मेरी दृष्टि में यह रंगशाला यह प्रमाणित करेगी कि मैंने अपने शिष्यों पर कितना श्रम किया है। इसमें ऐसा कुछ नहीं होने जा रहा है जिस पर भविष्य में होनेवाली हमारी सफलता या असफलता निर्भर करे। अश्वत्थामा बोला पिताजी रंगशाला में ही निर्णय होगा कि हस्तिनापुर का भावी सम्राट कौन होगा ? द्रोण ने पूछा तुमसे यह किसने कहां ? अश्वत्थामा बोला- दुर्योधन ऐसा ही मानता है। द्रोण बोले- दुर्योधन ऐसा क्यों मानता है कि इस रंगशाला में निर्णय होगा कि हस्तिनापुर का भावी सम्राट कौन होगा ? यहां तो कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है न ही कोई पारितोषिक प्रदान होनेवाला है। अश्वत्थामा ने पूछा तो फिर आप इसे सत्य नहीं मानते। द्रोण बोले- सत्य मान लेने के लिये कारण जानना चाहता हूं। अश्वत्थामा ने कहा दुर्योधन यह कहता है कि चाहे प्रतिस्पर्धा हो या न हो, चाहे रणक्षेत्र सजे या न सजे किन्तु यह निर्णय तो हो ही जायेगा कि हम सब में से श्रेष्ठ योद्धा कौन है ? और साथ-साथ यह भी निर्णय हो जायेगा कि धृतराष्ट्र के पुत्र बलशाली है या पांडव कुन्ती के पुत्र और माद्री के पुत्र। यहां तो दल है एक दल में धृतराष्ट्र के पुत्र तथा दूसरे में पांडु के पुत्र। यदि पांडव अधिक बलशाली हुये तो युधिष्ठिर युवराज बनेगा और यदि धृतराष्ट्र के पुत्र अधिक बलशाली हुये तो दुर्योधन युवराज घोषित होगा। द्रोण बोले सबमें ज्येष्ठ तो युधिष्ठिर है और राज्य भी युधिष्ठिर के पिता का है। अश्वत्थामा बोला- दुर्योधन कहता है कि राज्य उसीका है जो उसपर अधिकार कर सके। द्रोणाचार्य बोले- पुत्र बलद्वारा राज्य अधिकृत स्थायी नहीं हो सकता। राजनीति के मूल में भी नीति की आवश्यकता है। अश्वत्थामा बोला लेकिन

पिताजी दुर्योधन यह नहीं मानता है। उसका कहना है कि राजनीति बल के आधार पर ही चलती है। शासन का मूल रहस्य शक्ति है। द्रोण बोले- यह सब उसे किसने सिखाया ? अश्वत्थामा ने कहा उसके मामा शकुनि ने और कूटनीति के आचार्य उनके विश्वासु मन्त्री कर्णिक ने। द्रोण ने कहा जो भी हो मेरे लिये तो दोनों समान है। दोनों ही मेरे शिष्य है। अश्वत्थामा बोला- आपका सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन है और मेरा प्रिय मित्र दुर्योधन है। अश्वत्थामा में विचार हो न हो पर मनमें हठ अवश्य था। विचार कार्यान्वित हो या न हो हठ तो कार्यान्वित होता ही है। द्रोण बोले हम क्यों किसीका पक्ष ले क्या हम तटस्थ नहीं रह सकते। अश्वत्थामा बोला राजनीति में या तो पक्ष होता है या विपक्ष। तटस्थता तो राजनीति में होती ही नहीं। जो पक्ष में नहीं है वह तो विपक्षी ही माना जाता है। यह मन्त्री कर्णिक का विचार है। द्रोण बोले पुत्र लगता है जितना ज्ञान तुमने मुझसे ग्रहण किया है उससे कही अधिक तुमने कर्णिक और दुर्योधन से ग्रहण कर लिया है। अश्वत्थामा बोला- पिताजी आप युद्ध विद्या के आचार्य है, व्यावहारिक राजनीति को नहीं जानते। द्रोण बोले- जिस राजनीति की तुम चर्चा कर रहे वो मनुष्य की हीन वृत्ति पर टिकी हुई है अत: पशुबल को ही एकमात्र सत्य मानती है। उससे मानव का कल्याण नहीं होता है और यदि बल ही से निर्णय होना है तो मैं आज ही यह निर्णय कर देता हूं कि सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन ही प्रमाणित होगा और शक्ति की दृष्टि से भी पांडव ही अधिक शक्तिशाली है। कौरवों और कर्ण के लिये तो आचार्य ने कहा प्रवंचना से पाई गई विद्या से कोई वीर नहीं हो सकता।

इतिहास को अजीज माननेवाले उसके पन्नों को शवों की तरह कन्धों पर उठाये यह कहते सुनाई देते है कि जिस युग की यह अमर कथा है उस युग के लोग तो छालों के वस्त्र पहना करते थे। हीरे जवाहरात तो उन्होने देखे ही नहीं थे और रेशम तो तब था ही नहीं। ये बातें करते समय वो लोग यह भूल जाते है कि ये कथा जिन दिनों की बात कह रही है उन दिनों यह इतिहास तो जन्मा ही नहीं था। इतिहास तो वास्तव में महाभारत की महान काव्य रचनाओं का वंशज है। यदि उन दिनों यह जगमगाहट न रही होती तो महर्षि व्यास के ध्यान में ये चीजे आती ही नहीं। क्योंकि मनुष्य तो हाथ उठाकर इन चीजों को छूने की कोशिश मात्र कर सकता है जिन्हे या तो वो देख रहा हो या फिर जिनके बारे में बडे बूढों से सुना हो। आज के मिथ्या बुद्धि जीवी समय की आंखों में धूल नहीं झौंक सकते। समय ने इस रंग भूमि को इसी तरह जगमग करते देखा था। रत्नों की चमक सूरज के प्रकाश में आंखे मिला रही है। खम्भो और दीवारों पर सोने का यह बारीक काम और अनमोल मोतियों का सेहरा बांधे हुये यह रंगभूमि। आज तो समय हस्तिनापुर के पीछे खडा हुआ पंजों के बल उठ-उठ कर यह देखने की कोशिश कर रहा है कि सामने क्या हो रहा है। हजारो आंखे एक साथ उस द्वार पर लगी हुई है जिसमें से होकर सभी राज घराने के लोग पधारने वाले है।

आज धृतराष्ट्र पुत्र और पांडव पुत्रों की परीक्षा का दिन है। रंगमंच बहुत सी अमूल्य वस्तुओं से सजाया गया है। बहुत बडे मैदान में खूब विस्तृत और बडी जगह में अस्त्र कौशल दिखाने का पांडाल बनाया गया है। कारीगरों ने उसमें भांति-भांति की कारीगरी की है। समस्त जनता को राजकुमारों के कौशल देखने के लिये आमंत्रित किया गया है। सब लोगों के बैठने के लिये पृथक-पृथक स्थान है। दूसरी ओर रानियां और राजकुमारों के बैठने का प्रबन्ध है। पंडित और ब्राह्मणों के पृथक आसन है। साधारण जनता के लिये दूसरी ओर बाजे और शहनाई बजानेवालों का जमाव है। इस प्रकार रंगस्थली में जो जिस योग्य है सभी के बैठने का यथोचित प्रबन्ध किया गया है। चौडी-चौडी सुन्दर सडकों का निर्माण किया गया है जिनमें सुगन्धित जल का छिडकाव किया गया है। पूरा वातावरण अगर और धूप के धूम्र से सुगन्धित बना हुआ है। बन्दनवार, ध्वजा पताकाओं की शोभा से पंडाल मूर्तिमान उत्सव ही दिखाई पडता है। यथा समय लोगों की भीड राजकुमारों के कला कौशल को देखने के लिये आने लगी। सभी अपने-अपने स्थानों पर आकर बैठने लगे। वह सभा मंडप इतना विशाल था कि असंख्यों आदमियों की भीड उसमें उसी प्रकर समाती जाती थी जैसे असंख्यों नदियां समुद्र में विलीन होती जाती है। महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से महामना विदुर ने उसे इतने परिश्रम से बनवाया था कि दर्शक उसकी शोभा को देखकर मुग्ध हो रहे थे।

हस्तिनापुर की नगर प्राचीर के बाहर का यह समतल क्षेत्र था। भूमि के चुनाव से लेकर उसकी योजना और निर्माण का सारा कार्य स्वयं द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा विदुर की देखरेख में किया गया था। यदि कुछ लोग जुटकर निर्माण करने पर आये तो सत्य ही कैसी कैसी अच्छी वस्तुओं का निर्माण हो जाता है। यदि प्रतिभाशाली व्यक्ति को अपना गुण प्रदर्शित करने के लिये उचित मंच न मिले तो उसकी प्रतिभा कुंठित भी रह सकी है। प्रत्येक राजकुमार को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर मिल सके इसी प्रकार से यह रंगशाला बनाई गई। मध्य में रंग वेदी बनाई गई कि सारे अस्त्र शस्त्रों के परिचालन का प्रदर्शन हो सके। धनुधर्रों की धनुर्विद्या भी देखी जा सके और उसके लक्ष्य भेद को भी। सामूहिक प्रदर्शन के लिये भी व्यापक क्षेत्र उपलब्ध हो सके तथा खड्ग और गदा संचालन जैसे द्वन्द युद्धों के लिये स्पर्धा मंच। अश्वों और रथों को दौडने के लिये मार्गों की व्यवस्था भी की गई थी।

नियतदिन आने पर राजा धृतराष्ट्र, भीष्म एवं कृपाचार्य के साथ वहां आये। साथ ही गान्धारी एवं कुन्ती एवं राजपरिवार की बहुत सी महिलायें भी अपनी-अपनी दासियों सहित वहां पर आयी। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य सभी वर्ण के लोग आये और अपने यथास्थान पर आकर बैठ गये। वहां की भीड उमडते सागर के समान जान पड रही थी। बाजे बजने लगे। आचार्य द्रोण श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये अपने पुत्र अश्वत्थामा सहित वहां पर आये। द्रोणाचार्य ने समयानुसार देवताओं की पूजा कर वेदज्ञ ब्राह्मणों से मंगल पाठ करवाया। उपस्थित जनता के जयजयकार के कोलाहल ने आकाश गूंजा दिया। राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनों पर महाराज को प्रणाम कर आसीन हुये। द्रोणाचार्य के आते ही सब लोग उठकर खडे हो गये। आचार्य ने सबका यथोचित सम्मान किया और सबको अपने-अपने स्थानों पर बैठ जाने की अनुमति दी। राजकुमार ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर रंगशाला में आये। यदि इतिहास आज यहां होता तो समय उससे कहता कि जो दृश्य समय देखने जा रहा है वो इसे प्रसाद मानकर गांठ में बांध ले क्योंकि अब कहीं और कभी ये गुरु और ऐसे शिष्य एकत्र नहीं होंगे। ऐसे लोग आज के पहले भी कभी ऐसे एकत्रित नहीं हुये। गुरुओं में गंगा पुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य गुरु पुत्र अश्वत्थामा, शिष्यों में युधिष्ठिर, दुर्योधन, भीम, अर्जुन, दुशासन, विकर्ण, सहदेव इत्यादि वीर जिसे शस्त्र और अस्त्र सादर प्रणाम करे। तभी राजकुमारों के रथों ने रंगशाला में प्रवेश किया। उनके हाथों में धनुष बाण थे। वे रथ संचालन, लक्ष्य वेध, तथा रथारूढ़ युद्ध का प्रदर्शन कर रहे थे। भीष्म यह सोच-सोच कर आनन्दित हो रहे थे कि सारे राजकुमार जब इसी प्रकार एक साथ किसी अभियान पर निकलेंगे तो या किसी युद्ध क्षेत्र में जायेंगे तो संसार की कोई सेना उनके सामने ठहर नहीं पायेगी।

प्रतिहारी ने घोषणा की हस्तिनापुर के कुमार ज्येष्ठ पान्डु पुत्र इस रंगभूमि में प्रवेश कर रहे हैं। पूरी सभा ने युधिष्ठिर का अभिवादन किया और महाराज कुमार युधिष्ठिर की विजय हो के नारे लगाये। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र और भीष्म तथा गुरुजनों को प्रणाम किया और आयुष्मान भव का आशीर्वाद लिया। प्रतिहारी ने फिर सम्बोधन किया महाराज कुमार दुर्योधन गदाधारी पधार रहे हैं और उसी प्रकार सबको प्रणाम किया और आयुष्मान भव का आशीर्वाद पाया। प्रतिहारी ने फिर से पुकारा पवन वेगशाली गदाधारी कुन्ती पुत्र भीम आ रहे हैं। कुलभूषण अजेय पांडु कुमार अर्जुन पधार रहे हैं। धृतराष्ट्र नन्दन अमित बलशाली राजकुमार दुशासन आ रहे है। राजकुमार गान्धारी नन्दन विकर्ण पधार रहे हैं। फिर उन्होंने अश्वरोही माद्री नन्दन पांडु कुमार नकुल और सहदेव के आने की घोषणा की। इस तरह बारी-बारी से सभी राजकुमार रंगशाला में प्रवेश कर लिये। राजकुमारों को निरख हर्षित जनसमुदाय और हस्तिनापुर नगर फूला नहीं समा रहा था।

भीष्म को लगा उनके मन में क्षोभ और हताशा का उदय एक ही साथ हुआ और वे यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि उन्हे दु:ख अधिक हो रहा है या क्रोध। वे तो यह सोच रहे थे कि एक लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात आज वह दिन आया है कि एक सौ पांच कुरु कुमार अपनी शिक्षा प्रशिक्षा पूर्ण कर गुरु का आशीर्वाद पाकर हस्तिनापुर लौटेंगे। अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के

नेतृत्व में ये सब लोग हस्तिनापुर के राज्य की बागडोर सम्भालेंगे। भीष्म अपने दायित्व को पूरा होने के सपने देख रहे थे पर यहां तो वे अपनों को और गुरुओं और कुल वृद्धों को भी प्रणाम करने के लिये एक सौ पांच इकट्ठे होकर नहीं आये, वे पाचं अलग समूह में और सौ अलग समूह में आये। भीष्म पितामह को लगने लगा ये एक साथ मिलकर खडे नहीं हो सकते तो हस्तिनापुर के शत्रुओं से लडने के लिये बाणों की बौछार में वे गजों, अश्वों और रथों के अभियान के सम्मुख एक साथ कैसे खडे होंगे ? भीष्म जिनके कन्धों पर कुरु राज्य का भार रखना चाहते हैं वे कन्धे तो मिलकर एक साथ खडे ही नहीं हो रहे। कहीं ऐसा न हो कि बाहर के आक्रमणकारियों की आवश्यकता ही नहीं पडे, ये तो स्वयं ही परस्पर एक-दूसरे के शत्रु होकर हस्तिनापुर की जडें ही हिला दें। जो कुछ भीष्म ने चाहा वह उनकी इच्छानुसार नहीं हुआ। सृष्टि की इच्छा से ही अपनी इच्छा चलानी पडेगी। भीष्म ने अपना सारा जीवन जिस रंगशाला के निर्माण में लगाया था वह रंगशाला अब उन्हे रणशाला बनती दिखाई देने लगी।

दर्शकों के लिये बनाये गये इस मुख्य मंडप में धृतराष्ट्र के साथ के आसनों पर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आसीन थे। उनके साथ बाहलीक और सोमदत्त बैठे थे। धृतराष्ट्र की दूसरी ओर विदुर और तातश्री भीष्म थे। उनके पीछे शकुनि और मन्त्री कर्णिक थे।

भीष्म का पूरा मन वितृष्णा से भरा था। जिसके लिये यह सारा समारोह आयोजित किया गया था वह धृतराष्ट्र तो पूर्णत: दृष्टिहीन ही था। प्रणाम करने आये राजकुमारों में भी बार-बार वह विदुर से दुर्योधन के बारे में ही पूछ रहा था। विचित्र विडम्बना है कि हस्तिनापुर का यह सम्राट बाहर का दृश्य नहीं देख सकता और लोग इसके भीतर के दृश्य को नहीं देख पाते। धृतराष्ट्र कभी निष्कपट नहीं हो सकता। उसकी मनोवृति स्वार्थ की ओर इतनी अधिक प्रवृत है कि अब वह निष्पक्षता का ढोंग भी नहीं कर सकता। धृतराष्ट्र ने शकुनि और मन्त्री कर्णिक को अपने इतने निकट स्थान देकर अपने मुंह लगा रखा है कि किसी भी सदविचार के लिये धृतराष्ट्र के कान बहरे हो चुके हैं। आंखों से तो अन्धा है तो कुछ भी नहीं देख पाता न अच्छा न बुरा। अच्छा होता कानों से भी कुछ सुन न पाता। शकुनि और कर्णिक की तो वह पूरी बात सुन लेता था और समझ लेता था किन्तु विदुर की कोई भी बात कभी भी उसके समझ में ही नहीं आती थी। या तो वह कानों के बाहर ही रह जाती थी या फिर कानों के बिल में जा खोजती थी। गान्धारी क्या कुन्तीपुत्रों की हीनता और असमर्थता के विषय में सुनने के लिये यहां बैठी हुई है क्या ? और यह कुन्ती जाने कैसी वह अपनी सारी अवहेलना और गांधारी के अहंकार को झेलते हुये भी उसके पास बैठी। रंगशाला में घटित होनेवाली समस्त घटनाओं के विषय में बता रही है। भीष्म को कुन्ती की सहिष्णुता और सहनशीलता पर आश्चर्य हो रहा था कि जाने कितनी गम्भीर है ये नारी। कितना कडवा विष पी सकती है यह और फिर भी सर्वथा अविचलित रह सकती है।

भीष्म बोले महाराज आज्ञा हो तो समारोह आरम्भ करें। धृतराष्ट्र बोले आपको तो किसी से आज्ञा लेने की आवश्यकता ही नहीं तातश्री। यदि आप कुछ मांगेंगे तो मैं देने से इन्कार तो नहीं कर सकता। समारोह आरम्भ हो। भीष्म ने धृतराष्ट्र की बात सुनकर समारोह आरम्भ करने के लिये शंख फूंक दिया। कृपाचार्य उठकर खडे होकर बोले। चन्द्रमौली महादेव की जय। हस्तिनापुर की जय। हस्तिनापुर के निवासियों की जय। गंगा पुत्र भीष्म की जय। जय महाराज धृतराष्ट्र की, जय द्रोणाचार्य की। इससे पहले यह समारोह आरम्भ हो मैं आप सबसे निवेदन करना चाहता हूं कि यह कोई क्रीडा स्थल या लीलागृह मनोरंजन का स्थान नहीं है न हीं यहां कोई मनोरंजन के लिये कोई खेल खेला जानेवाला है। आज हस्तिनापुर अपनी आंखों से देखेगा कि उसका यह भविष्य जिन राजकुमारों के साथ खेले जाने वाला है गुरुकुल में क्या सीख कर आये है इसलिये ये समारोह नहीं ये तो हस्तिनापुर के राजकुमारों का परीक्षा का आंगन है। सबसे पहले मैं ज्येष्ठ राजकुमार युधिष्ठिर को आमंत्रित करता हूं।

अश्वत्थामा उठा और बोला प्रणाम महाराज। राजकुमार युधिष्ठिर रंग मंच पर आवें और महाराज को अपना परिचय देवे। युधिष्ठिर आये और बोले मैं ज्येष्ठ पांडु पुत्र युधिष्ठिर हूं महाराज। महाराज कुन्ती भोज मेरे नानाश्री है और स्वयं महाराज मेरे तात। अश्वत्थामा बोला- ज्येष्ठ राजकुमार युधिष्ठिर ने अपने लिये भाले का चयन किया है तो इनके सारे भ्राता इनपर चारों ओर

से आक्रमण करेंगे और ये अकेले ही उन सबका सामना करेंगे। युधिष्ठिर ने भाला फेंकने का अपना कौशल प्रदर्शन किया। कुन्ती गान्धारी से बोली दीदी आचार्य द्रोण कह रहे हैं कि युधिष्ठिर जैसा भाला चलानेवाला कोई नहीं है। गान्धारी बोली- यदि द्रोणाचार्य ऐसा कह रहे है तो यह सत्य ही होगा कुन्ती।

आचार्य की आज्ञा से सभी राजकुमार अपने-अपने कौशल दिखाने लगे। उस समय राजकुमार प्रसन्नता से परिपूर्ण थे। सभी का चेहरा आनन्द से दमक रहा था। सभी कवच कुंडल मुकुट धारण किये हुये थे और नाना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। दर्शक लोग बडे ही उल्लास के साथ एक टक उनके कौशल को देख रहे थे। सबने अपने-अपने कर्तव्य दिखाये। राजकुमारों ने पहले धनुष बाणों का कौशल दिखलाया तदनन्तर रथ, हाथी, घोडों पर सवार होकर अपनी-अपनी युद्ध चातुरी प्रकट की। उन्होंने आपस में मल्लयुद्ध किये उसके बाद ढाल और तलवार लेकर तरह-तरह के पैंतरे बदलने तथा हस्त लाघव दिखाने लगे। सब लोग उनकी फूर्ति सफाई, शोभा, स्थिरता और मुट्ठी की पकड इत्यादि देखकर प्रसन्न हुये। आचार्य द्रोण ने खड्ग प्रदर्शन के लिये सहदेव और दुशासन को पुकारा।

इस बार आचार्य ने गदा युद्ध का आह्वान किया। गदा युद्ध के प्रतिद्वन्दी निश्चित रूप से भीम और दुर्योधन ही हो सकते थे। अश्वत्थामा दुर्योधन और भीम को लेकर आये। कुन्ती बोली- दीदी ये दोनों साथ-साथ हाथ लगायें तो यह पृथ्वी को उठा लें। अश्वत्थामा बोला अपना परिचय दो गान्धारी नन्दन। दुर्योधन बोला ज्येष्ठ कुरु राजकुमार दुर्योधन महाराज को प्रणाम करता है। धृतराष्ट्र बोले- आयुष्मान भव। अश्वत्थामा भीम से बोले अपना परिचय दो कुन्तीनन्दन। भीम बोला मैं महारानी कुन्ती का द्वितीय पुत्र राजकुमार युधिष्ठिर का अनुज और द्रोणाचार्य का शिष्य भीम आपको प्रणाम करता हूं तातश्री। अश्वत्थामा बोले- इन दोनों ने गदा का चयन किया है महाराज। धृतराष्ट्र की तो भृकुटि तन गई। गदा कौशल क्रीडा आरम्भ हो। भीमसेन और दुर्योधन दोनों हाथ में गदा लेकर रंगभूमि में उतरे। वे पर्वत शिखर के समान हट्टे कट्टे लम्बी भुजाओंवाले वीर, कसी हुई कमर से शोभायमान हो रहे थे। वे मदमस्त हाथियों के समान चिंघाड चिंघाडकर पैंतरे बदलने और चक्कर काटने लगे। विदुर धृतराष्ट्र को और कुन्ती गान्धारी को सब बातें रंगशाला की बताती जाती थी। उस समय दर्शकों में भी दो दल हो गये। एक दल भीम की जय बोलता था तो कुछ लोग दुर्योधन की। दोनों की मुद्राओं पर प्रदर्शन के समय में होनेवाली सहज प्रफुल्लता नहीं थी। वे तो युद्ध करने का मन, तनाव, चिन्ताये लेकर आये थे। पहले तो थोडी देर तक एक-दूसरे को घेरने का प्रयत्न करते रहे और उसके पश्चात पहला प्रबल प्रहार दुर्योधन ने किया, किन्तु यह कला का प्रदर्शन नहीं यह तो भीम पर आक्रमण ही था। यदि समय से भीम वहां से हट नहीं जाता तो गदा का वार उसपर हड्डी पंसली तोडने के उद्देश्य से ही किया गया था और कदाचित वह उठकर फिर इस प्रदर्शन के योग्य ही नहीं रह जाता। भीम प्रहार से बच तो गया पर वह रोष में भर गया और अब उसका प्रहार भी दुर्योधन पर कम नहीं था। भीम के प्रहार अब प्रबल और भयंकर हो गये। भीम में निश्चित रूप से दुर्योधन से कहीं अधिक बल था। दुर्योधन को भीम के कई शक्तिशाली प्रहार झेलने पडे। दुर्योधन और भीम का गदा युद्ध होने लगा। खेल ही खेल में दोनों उत्तेजित हो गये और एक दूसरे का प्राण हरण करने की इच्छा से यथार्थ में युद्ध करने लगे। शकुनि दुर्योधन को प्रोत्साहित करने लगा मार भान्जे। गदाये परस्पर टकराने लगी। भाई-भाई का खेल अब लडाई बनते जा रहा है दीदी कुन्ती ने कहा। धृतराष्ट्र बोले विदुर यह तो खेल में गदाओं के टकराने की ध्वनि नहीं है। विदुर बोला- जी महाराज। द्रोण को लगा यह तो रंगशाला में गलत होने लगा तो उन्होंने अश्वत्थामा को पुकार कर कहा यह प्रतियोगिता तत्क्षण बन्द कराओ पुत्र। अश्वत्थामा दोनों के पास आया और उन्हे रोक कर बोला बन्द करो, बन्द करो। यह रणभूमि नहीं है रंगभूमि है गुरु भाइयों। धृतराष्ट्र बोले क्या हुआ विदुर। विदुर बोले आचार्य द्रोण ने यह प्रतियोगिता रूकवा दी है महाराज। धृतराष्ट्र बोला भारी कौन पड रहा था विदुर।

विदुर बोले यह तो आचार्य द्रोण जाने या तातश्री। धृतराष्ट्र बोले तुम प्रश्न का सीधा उत्तर क्यों नहीं देते विदुर। भीष्म को लगने लगा कुरुकुल में गृह युद्ध का यह श्रीगणेश था। विदुर बोला जब मैं यह देखूंगा कि प्रश्नों का उत्तर देना हस्तिनापुर के हित में है तो महाराज सीधा उत्तर भी दूंगा परन्तु जो अभी आपने प्रश्न किया यह उस प्रश्न का अवसर नहीं है। धृतराष्ट्र बोला क्या समारोह समाप्त हो गया ? विदुर बोले नहीं महाराज। अश्वत्थामा क्रोध में आये और दोनों राजकुमारों को उनके अपने स्थानों पर ले गये। युधिष्ठिर बोला- अनुज दुर्योधन। दुर्योधन बोला- जब भी कुछ होता है तो मुझे ही टोकते हो। इसको तो कुछ भी नहीं कहते। युधिष्ठिर बोला- तुम दोनों बराबर के हो इसलिये कहता हूं मैं। भाइयों के बीच स्नेह के अतिरिक्त और कुछ होना ही नहीं चाहिये। तुम्हारा हृदय बहुत बडा है दुर्योधन उसमें सभी भाइयों के लिये स्थान बनाओ। दुर्योधन बोला प्रयत्न करूंगा। कृपाचार्य बोले अब मैं कुरु पुत्र सबसे अधिक चमत्कारी कुन्ती पुत्र अर्जुन को आह्वान कर रहा हूं। वैसे तो अर्जुन अनेक शस्त्रास्त्रों में प्रवीण है किन्तु उसका सबसे प्रिय शस्त्र धनुष ही है। वह अपने शस्त्र ज्ञान तथा शस्त्र चालन की अपनी प्रवीणता का प्रदर्शन करेगा।

भीष्म का मन शान्त हुआ। अब कोई द्वन्द था ही नहीं इसलिये संघर्ष का कोई प्रश्न नहीं था। दर्शकगण अर्जुन का लाघव देखकर अपना मनोरंजन भी कर सकते थे और ज्ञान वर्धन भी। अर्जुन अपने धनुष तथा बाणों के साथ रंगशाला के केन्द्र में खडा हो गया। अर्जुन ने अत्यन्त विनीत भाव से अपने गुरु को प्रणाम किया, अपनी माता को प्रणाम किया और फिर कुल वृद्धों की ओर झुककर हाथ जोडे।

भीष्म सोच रहे थे कि अर्जुन निश्चय ही अद्भुत धनुर्धर है। अर्जुन के पश्चात कुरुकुल में अब कोई जगत प्रसिद्ध धनुर्धारी होगा ही नहीं। अर्जुन ने उनकी अपेक्षा से भी अधिक दक्षता पाई। कृपाचार्य बोले- महाराज को अपना परिचय दो कुन्तीनन्दन। अर्जुन बोला- मैं आचार्य द्रोण का शिष्य अर्जुन आपको प्रणाम करता हूं। धृतराष्ट्र बोले- क्या इसके अतिरिक्त तुम्हारा और कोई परिचय नहीं है वत्स। अर्जुन बोले- जी महाराज भक्त का परिचय स्वयं भगवान है और शिष्य का परिचय केवल गुरु। इसलिये मनुष्य को आवश्यक है कि वो एक ही पहचान रखे नहीं तो पहचान में भी टकराव हो सकता है। अर्जुन ने गुरु द्रोण को प्रणाम किया।

द्रोणाचार्य ने उठकर उच्च स्वर में भीड को सम्बोधन कर कहा अब आप अर्जुन का शस्त्र कौशल देखें। अर्जुन रंगभूमि में आये। उन्होने अपने आग्नेय शस्त्र से वर्षा उत्पन्न की। वायव्यास्त्र से आन्धी चला दी तथा वारुणास्त्र से जल पैदा किया, पर्जान्यस्त्र से बादल उत्पन्न किये। भौमास्त्र से पृथ्वी और पर्वतास्त्र से पर्वत प्रकट कर दिये। अन्तर्धानास्त्र से स्वयं को छिपा लिया। वे क्षणभर में बहुत लम्बे तथा पलक मारते ही बहुत छोटे हो जाते। अर्जुन ने भूमि पर खडे रहकर भागते हुये अश्व की पीठ पर खडे होकर, रथ संचालन के साथ-साथ युद्ध कौशल का प्रदर्शन किया और भीष्म सोच रहे थे कि अर्जुन के रहते अब हस्तिनापुर पूर्णत: सुरक्षित था। उसे किसी बाहरी शत्रु से भय नहीं था। अर्जुन की हस्तलाघवता, कार्य कुशलता और दिव्यास्त्रों की शिक्षा को देखकर सभी लोग मन्त्र मुग्ध से हो गये थे। उन्होने भांति-भांति के दिव्यास्त्रों के करतबों से जनता को आश्चर्य के सागर में निमग्न कर दिया। सभी लोग चारों ओर से धन्य धन्य और जय-जय कार करने लगे। जयकार के शब्दों से दिशायें गूंजने लगी। अर्जुन ने बडी ही फुर्ति, सफाई और खूबसूरती के साथ सुकुमार, सूक्ष्म और भारी निशानों से अपनी निपुणता प्रदर्शित की। इसके बाद उन्होने खंग युद्ध, गदा युद्ध आदि के अनेक हाथ दिखाये।

किन्तु धृतराष्ट्र और दुर्योधन बडे ही हताश वहां पर बैठै थे। उन्हे निश्चय ही अर्जुन की दक्षता अच्छी नहीं लगी। संकीर्ण बुद्धिवाले स्वार्थ व्यक्ति के साथ यही होता है कि न तो वह अपने गुण की प्रशंसा कर सकता है और न वह गुणी को अपना सकता है। यदि धृतराष्ट्र अपनी दुर्बुद्धि त्याग कर पांडु पुत्रों को भी अपने पुत्रों के समान प्रेम से अपना लेता तो वह इनकी भुजाओं से अपने आपको सुरक्षित पाता, आजीवन राज्य का सुख पाता और ये लोग उसके अपने पुत्रों से अधिक सेवा करते। पर शायद

विधाता ने उनसे भाग्य में सुख ही नहीं लिखा। इनसे प्रेम करेगा तो ईर्ष्या की आग में कैसे दग्ध होगा उसका सारा जीवन ? कुन्ती मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। हस्तिनापुर की चरम उपलब्धि के रूप में उसके अपने पांचो पुत्र अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो रहे थे। प्रसन्नता पर तो केवल उदार व्यक्ति का ही अधिकार होता है। भीष्म के विचार अब द्रोणाचार्य की ओर मुड गये कि द्रोणाचार्य भी एक अद्भुत गुरु है जिसे उसका पूर्ण श्रेय मिलना चाहिये। गुरु परशुराम महान गुरुओं की परम्परा में है। महेन्द्रगिरि पर परशुराम उज्जयनि में सांदीपन तथा हस्तिनापुर में द्रोणाचार्य। गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन को भरी सभा में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित कर दिया। गुरु द्रोणाचार्य बोले- हस्तिनापुर निवासियों आज मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं वह इसलिये नहीं कि अर्जुन मेरा सबसे प्रिय शिष्य है और मैं जो कह रहा हूं वही सत्य है कि आज अर्जुन जैसा श्रेष्ठ धनुर्धर कोई नहीं है।

३९) दुर्योधन द्वारा कर्ण को अंग देश का राजा बनाना

अपने प्रतिस्पर्धी की प्रशंसा सुनकर अब कर्ण से रहा नहीं गया। उसने रंगभूमि के द्वार पर आकर जोरों से ताल ठोकी और जोर से बोला ठहरो। आचार्य और भी है। परीक्षा लिये बिना किसी को श्रेष्ठ धनुर्धर कह देना आपको शोभा नहीं देता। अर्जुन के सभी गुणों में से केवल एक गुण मेरे पास नहीं है और वह गुण यह है कि मैं आचार्य द्रोण का शिष्य नहीं हूं। यदि मैं द्रोणाचार्य का शिष्य रहा होता तो आचार्य मेरा अंगूठा भी कटवा चुके होते। कर्ण के ऐसे भंयकर शब्द सुनकर लोग चौंक पडे। सभी ने आश्चर्य चकित दृष्टि से देखा कि धनुष बाण लिये एक विशालकाय गौर वर्ण आ रहा है उसके शरीर पर स्वाभाविक कवच था। कानों में अमृतमय दिव्य कुंडल थे, भुजायें मोटी थी। शरीर गठीला था। युवावस्था के मद में चूर था। उठता हुआ यौवन उ के चेहरे पर दिखाई दे रहा था। सिंह के समान उसकी चाल थी। चौडी छाती से वह अचल पर्वत की तरह दिखाई पड रहा था। उसके ऐसी मनमोहक स्वरूप को देखकर सभी स्तब्ध रह गये। सभी वहां पर डटकर बैठकर उसे देख रहे थे। इस युवक के चेहरे पर अहंकार के भाव स्पष्ट थे। यह युवक अर्जुन के निकट आकर अपने आप ही खडा हो गया। यह देखकर भीष्म को भी आश्चर्य हुआ कि आचार्य द्रोण ने तो कोई घोषणा भी नहीं की थी न ही उन्होने किसी का आह्वान किया फिर यह युवक कौन है और यहां कैसे आ गया ? यह कुरु राजकुमारों में से तो कोई है नहीं। द्रोणाचार्य बोले- उस अंगूठे में मुझे हस्तिनापुर की ओर चलनेवाले बाणों के अंकुर दिखाई दे रहे थे धनुर्धर कर्ण बोला- तब तो मेरा अंगूठा बच गया क्योंकि हस्तिनापुर तो मेरे लिये आदरणीय है और सदा आदरणीय रहेगा। मैं हस्तिनापुर और हस्तिनापुर नरेश महाराज धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य और आचार्य द्रोण आप सभी को प्रणाम करता हूं। कर्ण बोला उपस्थित जन ध्यानपूर्वक सुनले आपने राजकुमार अर्जुन की धनुर्विद्या देखी और उसकी प्रशंसा भी की। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि आप लोग वीरता और कला के प्रशंसक है। प्रशंसा करने के लिये हमें उदार होना चाहिये। यदि धनुर्विद्या के ज्ञान के कारण राजकुमार अर्जुन प्रशंसा का पात्र है तो उसी के समान अन्य धनुर्धारी भी आपकी प्रशंसा के अधिकारी और स्नेह के भाजन होने चाहिये। आज आपके सामने जो कुछ भी अर्जुन ने किया है मैं वह सारा चमत्कर आप लोगों को दिखा सकता हूं और यदि आप सभी अनुमति दे तो उससे श्रेष्ठतर विद्या का भी प्रदर्शन कर सकता हूं।

दर्शकों के बीच जैसे सागर की लहरों की सी गूंज उठी, दिखाओ तुम्हारा करतब दिखाओ। इन सबके बीच ऊंचा स्वर दुर्योधन का था। प्रदर्शित करो कर्ण अपनी दक्षता प्रदर्शित करो। कर्ण बोला- मैं अर्जुन से भी बढकर कौशल दिखला सकता हूं ऐसा अर्जुन सात जन्म में भी नहीं कर सकता। कर्ण ने एक लक्ष्य भेदी बाण चलाया और आसमान से एक फूलों का हार महाराज धृतराष्ट्र के गले में पहनाया। एक ही बाण से कई तीरों ने निकल कर सभी आदरजनों के चरणों का स्पर्श किया।

माता कुन्ती ने दिव्य कवच कुंडल पहिने अपने कानीन पुत्र को पहचान लिया। आज युवावस्था में इस वीर वेष में अपने लाडले पुत्र को देखकर कुन्ती का हृदय आनन्द से भर गया और उसके रोम रोम में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गई। उसे वे सब

बातें स्मरण हो आई कि जिस समय उसने लोकापवाद के भय से अपने पुत्र को पानी में प्रवाहित कर दिया था। कुन्ती की दृष्टि कर्ण के सुन्दर मुख की ओर ही लगी थी। कर्ण की इस गर्वोक्ति को सुनकर अर्जुन आश्चर्यचकित हो रहे थे। दुर्योधन की प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं था। भीड में कुतूहल छा गया।

कर्ण रंगशाला में ऐसे आया मानो कोई जीता जागता पहाड टहलता हुआ वहां आ पहुंचा। दुर्योधन ने कहा मेरा बडा सौभाग्य है जो आपका आगमन हुआ। अर्जुन अपने आपको लज्जित महसूस कर क्रोधित हो गये और अर्जुन को लगने लगा कर्ण भरी सभा में मेरा तिरस्कार कर रहा है।

यह सब देखकर भीष्म का माथा ठनका कि यह क्या हो रहा है ? यह तो कुरु राजकुमारों के प्रशिक्षण का समापन उत्सव था न कि स्पर्धाओं के लिये कोई खुला सार्वजनिक मंच जहां कोई भी राह चलता व्यक्ति अपनी क्षमता प्रदर्शित करे।

धृतराष्ट्र बोले यह धनुर्धर हो सकता है विदुर। तब विदुर ने कहा यदि यह प्रतियोगिता निश्चित हुई तो कृपाचार्य स्वयं उससे उसका परिचय पूछेंगे महाराज। कर्ण बोला क्या आप आपके इस प्रिय शिष्य को योग्य नहीं समझते जो मेरा सामना कर सके ? मैं भी आपके इस शिष्य को इसी रणभूमि में ललकार रहा हूं। इस प्रतियोगिता के पश्चात स्वयं हस्तिनापुर यह निर्णय लेगा कि सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी कौन है ? अर्जुन तिलमिला कर बोल उठे यदि आज्ञा हो तो मैं अपने बाणों से इस महाभिमानी के होठों को सी डालूं। आचार्य बोले अर्जुन। अर्जुन बोले- क्षमा चाहता हूं गुरुदेव मुझसे आवेश और ललकार सहन नहीं हो सकी।

सहसा कृपाचार्य उठ खडे हुये और बोले- कर्ण यह न कोई ऐसा सार्वजनिक स्थान है, न ही कोई सार्वजनिक रंग मंच जहां तुम अपनी इच्छानुसार अपना कला प्रदर्शन करो। इस रंगशाला में स्वयं महाराज धृतराष्ट्र विद्यमान हैं और आयोजन के नियन्तक आचार्य द्रोण हैं। उनकी अनुमति के बिना तुम्हारा प्रदर्शन अशोभनीय है इसलिये सम्भवत: हम उसका वर्जन करे। धनुर्धर यह कुरुकुल के राजकुमारों की रंगभूमि है। कर्ण बोल उठे- कुरुकुल के गुरुदेव रंग भूमि सार्वजनिक होती है। मैं रंगभूमि में सार्वजनिक घोषणा ही कर रहा हूं कि या तो मुझे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी घोषित किया जाये या फिर कुरुकुल का श्रेष्ठ धनुर्धर मेरे साथ द्वन्द कर यह सिद्ध करे कि वो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कहलाने के योग्य है।

कर्ण ने कृपाचार्य की बात को नियम के रूप में नहीं अपने विरोध के रूप में लिया। कर्ण की आखों में उदंडता थी। कर्ण बोला आचार्य यदि अपने प्रशिक्षण तथा अपने शिष्य की क्षमता में तनिक भी आस्था रखते तो मुझे अपना अस्त्र कौशल प्रदर्शित करने का अवसर और अनुमति देते।

अर्जुन के मन में भी बार-बार आशंकाये उठ रहीं थी। कहीं कर्ण और दुर्योधन को सदा के लिये डींग मारने को मिल जाये कि अर्जुन कर्ण की वीरता से और कौशल से भयभीत हो गया इससे अच्छा तो आचार्य उसे अनुमति दे दे। जब से यह कर्ण हस्तिनापुर में आया है तब से दुर्योधन से प्रोत्साहन पाकर उन पांचों भाइयों के सदा आडे आते रहता है जैसे उसे अवसर की प्रतीक्षा ही रहती है कि किसी भी प्रकार पांडवों को वह नीचा दिखा सके। अर्जुन ने कभी यह भी जानने की इच्छा नहीं कि इतने दिन यह कर्ण कहां विलीन हो गया और आज सहसा इस समय कहां से धरती फोडकर निकल आया। जब तक कर्ण हस्तिनापुर में गुरु परशुराम के आश्रम से नहीं आया था तो अर्जुन ने सोचा था पता नहीं कहां विलीन हो गया कि एक दुष्ट ग्रह टल गया पर अब जब यह आ ही गया तो अच्छा हो आचार्य उसको अनुमति दे दे तो अर्जुन प्रमाणित कर सके। एक बार इसके साथ द्वन्द युद्ध हो जाये। भीम भी अपने स्थान पर क्रोधित हो बैठा था। दुर्योधन निरन्तर इसी प्रयास में लगा कैसे वह भीम की हत्या कर दे। भीम सोचता है जब भी वह प्रहार करता है तो सब उसका हाथ थाम लेते है। दुर्योधन को कोई कुछ नहीं कहता। पता नहीं हस्तिनापुर में यह कैसा न्याय है कि जब तक घटनाये दुर्योधन के अनुकूल घटती जाये तब तक कोई आडे नहीं आता और जैसे ही कोई अवसर दुर्योधन के विरुद्ध आता है वैसे ही अनेक नियम, विधान, परम्पराये, मर्यादायें अनुशासन अपना मुंह खोलकर

उठ खडे होते है। कर्ण बोला- किसी भी वीर को अपनी वीरता का प्रदर्शित करने का अवसर नहीं देना सरासर उसके साथ अन्याय है आचार्य। दुर्योधन बोला- हस्तिनापुर में ऐसा अन्याय नहीं चलेगा। हस्तिनापुर वीरों के प्रति श्रद्धा रखता है गुरुवर।

द्रोण के मन में दुर्योधन को देखकर एक बात आई कि हस्तिनापुर के इस राजकुमार में न तो गुरुओं के प्रति कोई आदर है, सम्मान है और न ही इसे किसी मर्यादा का ध्यान है। इसके लिये तो अपनी इच्छा ही सर्वोपरि है। किसी भी प्रकार उसका पालन होना ही चाहिये। यह तो अहंकारी राजकुमार है। दूसरी ओर कितनी शान्ति से बैठा है कुरुओं का ज्येष्ठ राजकुमार युधिष्ठिर, हस्तिनापुर का भावी युवराज। उसने तो एक बार भी इस समारोह में अपनी इच्छा आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया। भीम यदि क्रोधित हो जाता तो शायद यह रंगशाला रणशाला बन जाती। यदि द्वेष और शत्रुता के कारण हिंसा भडक उठती तो भीष्म और द्रोण जैसे योद्धा भी उसे रोक नहीं सकते।

कुन्ती को कर्ण का इस प्रकार अनाहत आना पूर्णत अपशकुन सा लग रहा था यह कौन युवक है जो इस प्रकार इस समारोह के बीच उदंडता दिखा रहा है। यह आया है और अर्जुन को चुनौती दे रहा है। क्षत्रियों में किसी को चुनौती देना और बात है किन्तु वह तो हस्तिनापुर के राजपरिवार का एक पारिवारिक आयोजन है उसमें इस प्रकार बिना अनुमति के प्रवेश कर जाने का क्या अर्थ फिर यह चांडाल दुर्योधन उसे प्रोत्साहित कर रहा है। वह चाहता है कि अर्जुन के प्रतिद्वन्दी उत्पन्न हो और उसके ही मार्ग में चुनौतियां ही नहीं विघ्न बाधायें उपस्थित करे। अर्जुन का महत्व कम हो जाये। वह अपमानित और पराजित हो जाये। दुर्योधन ने अपने व्यवहार से सदा ही स्पष्ट किया है कि वह कुन्ती पुत्रों का शत्रु और शत्रुओंका मित्र है। इस कर्ण के विषय में कुन्ती ने पहले भी भीम से बहुत कुछ सुन रखा था। दुर्योधन का प्रोत्साहन पाकर वह सदा ही उसके पुत्रों को प्रताडित करता रहा है और जैसे दुर्योधन को सदा से ही भीम से वैर है वैसे ही इसे अर्जुन से अकारण द्वेष है। कर्ण अपनी सम्पूर्ण भव्यता के होते हुये भी साक्षात दुष्ट ग्रह सा प्रतीत हो रहा था जो आज उनके पुत्रों के चरम उल्लास तथा पूर्ण सफलता के दिन प्रकट हो गया। द्रोण की दृष्टि कर्म तथा व्यवहार के औचित्य और अनौचित्य पर थी। वे देखते रहते थे कि उनका कौनसा शिष्य धर्म के मार्गपर है और कौनसा अधर्म पर। कौन शालीन है और कौर उदंड तथा कौन पीडित है और कौन पीडक ? जनता भी किसी की विजय का डंका बजाती है तो किसी दिन उसकी हार होते देख तालियां भी बजाने लगती है। द्रोण को इतना सावधान तो अब हो जाना चाहिये था कि कर्ण की क्षमता कहीं अर्जुन से न्यून तो नहीं है। द्रोण ने सोच लिया कि अर्जुन का प्रतिद्वन्दी जन्म ले चुका है। कर्ण की क्षमताओं को देखते हुये अर्जुन निर्द्वन्द और निर्विवाद संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धरों में तो नहीं हो सकता।

धृतराष्ट्र की आँखों की अपारदर्शिता के बावजूद उसके चेहरे पर हर्ष का प्रपात प्रकट हो रहा था और बोला कितने गर्व का विषय है विदुर कि हस्तिनापुर की प्रजा में भी इतने दक्ष निपुण धनुर्धर है। प्रजा के गुणों का विकास करना और उसे प्रोत्साहित करना तो राजा का धर्म है। यह तो दुर्योधन ने अच्छा ही किया कि कर्ण को अपना कौशल प्रदर्शन करने के लिये प्रोत्साहित किया वरना कोई गुणी व्यक्ति अज्ञात ही रह जाता विदुर और राज्य को उसका कोई लाभ भी प्राप्त नहीं होता। इसको पाकर तो अब हस्तिनापुर और शक्तिशाली होगा। हमें चाहिये कि इसे हम शासन में कोई महत्वपूर्ण स्थान दें।

विदुर की इच्छा हुई कि इस अन्धे महत्वाकांक्षी को कह दे कि अर्जुन को देखकर तो उसके मन में कभी यह नहीं आया कि कितनी प्रसन्नता की बात है कि कुरुकुल राजकुमारों में इतनी दक्षता है। भीष्म के पश्चात अपने ही वंश में इतना दक्ष धनुर्धर देखकर हृदय गर्वित नहीं हुआ। प्रजा में धनुर्धर देखकर उन्हे जितनी प्रसन्नता और कर्ण पर गर्व हुआ। विदुर ने सोचा ही पर धृतराष्ट्र से यह सब कुछ कहा नहीं।

भीष्म के मन में आया वे धृतराष्ट्र को डांटकर कहे कि वह अपना यह अनर्गल वार्तालाप बन्द करे। धृतराष्ट्र को लग रहा था कि कर्ण के आ जाने से हस्तिनापुर और अधिक शक्तिशाली होगा। क्या धृतराष्ट्र यह नहीं देख रहा कि कर्ण के बिना आमन्त्रण

के रंगशाला में आ जाने से स्वयं हस्तिनापुर का राजपरिवार दरक रहा है। उस राजपरिवार में अब पड रही दरारें किसे दिखाई नहीं दे रही ? और यह धृतराष्ट्र मूर्ख के समान बैठा राजा होकर यहां तालियां बजा रहा है। यह कोई मूर्ख नहीं है यह तो इसकी तुच्छता और संकीर्णता है। यह तो पांडवों का बल कम करने का कोई षडयन्त्र रच रहा है। दूसरी ओर अपने लिये लोकप्रियता और प्रजावत्सल राजा होने की ख्याति अर्जित करने का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। धूर्त धृतराष्ट्र कहीं का। पता नहीं कहां ले जायेगा यह अन्धा राजा हस्तिनापुर और कुरुराज्य को क्यों बिठा दिया इसे हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर ? जिसे संसार का ज्ञान ही नहीं है, इसे तो सिर्फ अपना निकृष्ट स्वार्थ, सर्वनाशी मोह दिखता तथा हीन वृतियों के सुख के बाहर ही नहीं निकलता। इससे तो अच्छा होता कि विदुर को ही शासन की बागडोर सम्भालने को दी जाती भले ही वह दासी पुत्र हो। वह इसके जैसा मूर्ख और स्वार्थी तो नहीं है। वह भोगी और हीन वृत्तियों का दास तो नहीं है। किसने यह परम्परा बना दी कि राजपुत्र ही राजा बनना चाहिये ? जब राजपुत्रों का व्यवहार चांडालों के समान हो जाये तो क्या होगा उस राज्य का और क्या हाल होगा उस राज्य की प्रजा का ? राजा का चयन योग्यता के आधार पर होना चाहिये या वंश के क्रमानुसार आधार पर भीष्म द्वन्द में पडे सोच रहे कि योग्य पुत्र ढूंढना बहुत ही कठिन और असभ्य होता है।

अपनी समस्या लेकर भीष्म गंगा तट पर चले गये। लहरों में गंगा माता प्रकट हुई और माता गंगा हंसी और भीष्म से बोली कितना समझाया था पुत्र तुझे ? यह सारा तो प्रकृति का प्रपंच है, छल है, मायाजाल है। कोई सुख अपने आप में सुख नहीं होता। प्रकृति के प्रपंच में फंसी मनुष्य की बुद्धि अपने मोह वश उसे सुख मान लेती है। अपने क्षय को अपना विकास मान लेती है। तुमने स्वयं तो नारी सुख भी त्याग दिया और राजसुख भी पर क्या तुम इन शान्तनु के उत्तराधिकारी से कह सके कि यह नारी सुख, सुख नहीं यह तो सुख का प्रपंच है। अधिकारों का सुख वस्तुत: बुद्धि का भ्रम है। क्या यह सब कह पाये इनसे ? जो स्वयं ने नारी को प्राप्त नहीं किया उनके लिये तुम नारियों का प्रबन्ध करते रहे और अब हस्तिनापुर के राज्य की सुरक्षा में आशंका हुई तो तुम तडफ उठे पुत्र। स्वयं तो तुमने त्याग किया परन्तु अपने उत्तराधिकारियों को तो तुम त्याग की शिक्षा नहीं दे सके। तुम चाहते हो कि राज्य, धन, सुख उसका अधिकार तुम त्याग भी दो तो भी तुम्हारे ही वंश के लोगों के पास यह सुरक्षित रहे, यह त्याग उनको क्यों नहीं सिखाया तुमने ? यह कह कर माता गंगा वहां से अन्तर्ध्यान हो गई और भीष्म को सोचनेपर मजबूर कर गई।

कर्ण की इच्छा थी कि अर्जुन के साथ द्वन्द युद्ध हो। आचार्य द्रोण जानते थे युद्ध एक दायित्व होता है। न तो वह अहंकार के प्रदर्शन का साधन है और न ही अत्याचार के समर्थन का तथा न ही वह कोई क्रीडा है। भीष्म के मन में आया कि इस सारथीपुत्र को अनुशासित करना पडेगा। वह राजवंश के सम्मुख चुनौती बन कर तो हस्तिनापुर में नहीं रह सकता। धृतराष्ट्र ने कहा वीरा को अपनी वीरता प्रमाणित करने का अवसर दिया जाना चाहिये क्यों विदुर ? या तो अर्जुन अपनी पराजय स्वीकार कर ले या ि र अपनी वीरता प्रमाणित कर दे। विदुर बोले- ठीक कहते है आप महाराज। यदि दुर्योधन को भी ऐसी ही चुनौती यदि भीम दे तो अ पके यह विचार स्थिर रह पायेंगे ? धृतराष्ट्र शंकित हुआ और बोला क्यों भीम ऐसी चुनौती क्यों देगा ? कहीं भाइयों में भी ऐसे द्वन्द युद्ध होने चाहिये जिसका परिणाम मृत्यु हो। विदुर बोला- नहीं महाराज। भाई के हाथों भाई को मरवाना तो हमारी नीति नहीं है तो शत्रु के हाथों अपने पुत्र को मरवाना भी हमारी नीति नहीं हो सकती। आचार्य ने यह रंगशाला इसलिये नहीं बन ाई कि कोई भी सारथीपुत्र यहां आकर राजकुमारों का वध कर जाये। बीच ही में दुर्योधन बोल उठा- आचार्य अनुमति क्यों नहीं दे रहे ? सहसा दुर्योधन का स्वर सुनकर भीष्म फिर चिंतित हुये। राजा के रूप में यहां धृतराष्ट्र बैठा है। समारोह के नियन्ता द्रोण है फिर भी दुर्योधन का बीच बीच में बोलना शोभनीय नहीं था। धृतराष्ट्र और दुर्योधन मिलकर पांडवों को पराभूत करना चाहते है, उन्हे पराजित करे, अपमानित करे या उनका वध करवा दे। स्वयं न कर सके तो किसी अन्य से करवा दे। कहां से उग आया

यह विषवृक्ष इस वंश में ? वक्त मनुष्य को क्या से क्या बनाते रहता है ?

तभी कृपाचार्य उठ खडे हुये और बोले- कर्ण यहां कोई युद्ध नहीं हो रहा है। तुम केवल अर्जुन को पराजित कर अपने अहंकार की पुष्टि करना चाहते हो। अर्जुन के साथ-साथ तुम हमें भी उत्तेजित कर रहे हो। उत्तेजना में व्यक्ति की बुद्धि काम नहीं करती है और न ही तर्क का कोई प्रभाव होता है। कर्ण जिस धनुर्धर को तुमने ललकारा है उसका तुम्हे परिचय करवा दे। यह भरतवंश के सम्राट पांडु का पुत्र अर्जुन है। आचार्य द्रोण का परम प्रिय और योग्यतम शिष्य है। वीर महारानी कुन्ती उसकी माता है। और अब तुम बताओ धनुर्धर तुम्हारा परिचय क्या है ? बुद्धिमान क्षत्रिय केवल उसी की चुनौती स्वीकार करते है जिसकी पात्रता सिद्ध हो। इसके लिये आवश्यक है योद्धा समधरातल का हो। अर्जुन से युद्ध करने का अधिकार किसी राजा या राजकुमार को ही है। तुम अपने कुल वंश और अपने राजा होने का परिचय दो।

यह सुनकर कर्ण लज्जित हो गया। कर्ण ने कृपाचार्य के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। आचार्य कृप के प्रश्न अत्यन्त तीक्ष्णता से उसे चुभ रहे थे क्योंकि ऐसा ही प्रश्न तो गुरु परशुराम ने भी किया था तब भी उसके पास कोई उत्तर नहीं था। उसे लगा क्यों लोग बार-बार उसकी जाति और वंश के विषय में ही पूछते है ? क्यों नहीं उसकी वीरता और कौशल शस्त्र के विषय में नहीं पूछता ?

जाने सो बोले नहीं जो बोले अनजान, कर्ण स्वयं कैसे कहे क्या उसकी पहचान।

कुन्ती कर्ण को देखकर घबरा उठी और मूर्च्छित हो गई। कृपाचार्य बोले धनुर्धर चुप क्यों हो ? तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। मैंने अभी अभी अर्जुन का सारा परिचय दिया है। तो ही तुमसे तुम्हारा परिचय पूछा है वीर। तुम किस वंश और कुल से आये हो। कर्ण बोला मेरा धनुष ही मेरा परिचय है और ये बाण ही मेरी पहचान है। कृपाचार्य बोले- इतने से परिचय से रणभूमि में तो काम चल सकता है धनुर्धर परन्तु रंग भूमि में नहीं। यदि तुम सच में राजकुमार नहीं हो तो रंगभूमि में अर्जुन को नहीं ललकार सकते। इसलिये या तो अपना परिचय दो या शान्त हो जाओ।

तब सहसा तम तमाकर दुर्योधन उठ खडा हुआ और बोला युद्ध का भी अपना विधान होता है। अब दुर्योधन को भले ही मर्यादित से अमर्यादित होना पडे। किसी वीर की प्रतिभा का इस प्रकार निरादर करना कदाचित भी उचित नहीं है। गंगोत्री के आवेग रहित प्रवाह को देखकर आप गंगा का निरादर नहीं कर सकते। कर्ण का वंश उसके चेहरे पर चमकता है आचार्य उसका तेज है। उसका परिचय तो उसके बाण ही देंगे। कृपाचार्य बोले- दुर्योधन तुम्हारी इच्छा मात्र से न तो द्वन्द युद्ध का विधान बदला जा सकता है और न ही आर्यावर्त के आर्य राजकुमारों की मर्यादायें। संघर्ष करना ही हो तो बराबर वाले को ऊपर उठना ही पडेगा। दुर्योधन बोला- यह आप क्या कह रहे कुलगुरु ? सूर्य स्वयं अपनी पहचान है। चन्द्रमा स्वयं अपना परिचय है। क्या कोई हिरणी किसी सिंह को जन्म दे सकती है ? यह नि:सन्देह क्षत्रिय है और इसे किसी वीर माता ने ही जन्म दिया है। कृपाचार्य बोले मैंने यह कब कहा कि यह क्षत्रिय नहीं है? लेकिन नियम फिर भी नियम होते है। द्वन्द युद्ध के लिये कोई राजकुमार या राजा ही ललकार सकता है।

भीष्म बोले और कोई भी अपने माता-पिता का परिचय देने में किसलिये घबराये ? दुर्योधन बोला धनुर्धर मैं तुमसे तुम्हारे माता-पिता का नाम भी नहीं पुछूंगा। मैं तुमसे यह भी नहीं पुछूंगा कि तुम किस वंश के हो। मेरे लिये तो तुम्हारा इतना ही परिचय काफी है कि तुम केवल वीर ही नहीं महावीर हो। तुम किसी और परिचय के मोहताज भी नहीं हो परन्तु यदि कुलगुरु यही कह रहे है कि नियमानुसार अर्जुन को ललकारने का अधिकार तुम्हे जब ही प्राप्त हो सकता है जब तक तुम यह सिद्ध कर दो कि तुम राजा हो या राजकुमार तो यही सही। मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता कि कुलगुरु कभी वो दिन भी आ सकता है कि हस्तिनापुर अपने आंगन में खडे हुये महावीर की ओर आंखे बिछाने की जगह उसका अपमान करेगा परन्तु आज का दिन वो ही दिन है। मैं यह कभी सहन नहीं कर सकता। मैं नहीं जानता कुलगुरु यह धनुर्धर कौन है पर मैं इतना अवश्य जानता हूं कि ये वीर पुत्र है और आप सबके सन्तोष

के लिये मैं अपने उन अधिकारों का प्रयोग कर रहा हूं जो मुझे अपने पिताश्री से मिले हुये है और ये पितामह जिनके साक्षी है। क्या नाम है तुम्हारा धनुर्धर ? कर्ण बोला मेरा नाम कर्ण है। दुर्योधन बोला अंग देश का राज्य मेरे अधिकार में है कुलगुरु और मैं आज अपने मित्र कर्ण को अंग देश का राजा स्वीकार करता हूं और घोषित करता हूं कि अंग देश का राजा कर्ण है और आज से यह अंगराज कर्ण कहलायेंगे। अंगराज कर्ण की जय। अंगेश महाराज की जय। जय महाराज कर्ण की।

मनुष्य स्वभाव में जहां दया, क्षमा, प्रेम और परोपकार आदि की सद्वृत्तियां है वहां उसमें क्रूरता भी है। जिनसे अपना स्वाभाविक बैर होता है, उनका अनिष्ट हो, उनका अपमान हो तो हमें आन्तरिक प्रसन्नता होती है। इसके विपरीत अपने विपक्षी की उन्नतियां, प्रशंसा सुनकर हृदय में एक प्रकार की डाह ईर्ष्या होती है। हर मनुष्य चाहता है कि मेरी ही उन्नति हो, सब लोग मेरी ही बातें माने, मेरे ही पक्ष में रहे, मेरी ही प्रशंसा हो। जो कोई भी मेरी इस इच्छा पूर्ति में बाधक है वह मेरा शत्रु है। मनस्वी लोगों के हृदय में ये भाव स्वाभाविक होते है। वीतराग, महात्मागण इसके अपवाद भी होते है किन्तु प्राय: बहुत कम। बडे लोगों में भी ये भाव न्यूनाधिक रूप में पाये जाते है।

नीति निपुण कृपाचार्य ने कर्ण से जब यह कहा अपने माता-पिता और अपने वंश का परिचय दो तभी द्वन्द युद्ध करने या न करने का निश्चय होगा। यह सुनकर उस समय कर्ण पर मानो सौ घडा पानी पड गया। उसका शरीर कान्तिहीन श्रीहीन हो गया था और मुंह लज्जा से ढक गया था। जातीय अपमान सबसे दु:खद होता है। कुलीनता से अधिक लज्जास्पद बात दूसरों के सामने दूसरी कोई नहीं। कर्ण ने आकाश में स्थित सूर्य देव की ओर देखा और बिना कुछ उत्तर दिये हुये ही भूमि कुदेरता हुआ खडा रहा। कर्ण भाग्य की विडम्बना को कोसने लगा मैं अर्जुन को परास्त कर सकता हूं पर मैं तो देवताओं द्वारा ठगा गया। कर्ण ने अर्जुन के पिता देवराज को तो अपनी दानशीलता से परास्त कर दिया था।

भीष्म समझ गये कि दुर्योधन चाहता है कि किसी भी मूल्य पर किन्ही भी परिस्थितियों में यह युद्ध अवश्य हो। वह इस सारथी पुत्र को राजा बना रहा है केवल इसलिये कि कर्ण अर्जुन से युद्ध कर सके, अर्जुन को क्षति पहुंचा सके। दुर्योधन तो कुरुकुल के सर्वनाश का बीज रोपण कर रहा है। भीष्म बोले- दुर्योधन तुम न तो राजा हो और न ही युवराज। तुम्हे यह अधिकार किसने दिया कि तुम किसी को किसी भी देश प्रदेश का राजा स्वीकार कर लो। और वे धृतराष्ट्र से बोले राजन तुम इसे यह सब करने के लिये मना क्यों नहीं कर रहे हो ? धृतराष्ट्र भीष्म से धीरे से बोला तातश्री दुर्योधन राजा भी नहीं है युवराज भी नहीं है लेकिन वह मेरा पुत्र है और यदि कोई पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति, वस्तु को अपनी समझ कर किसी को दे दे तो इसमें पिता द्वारा अस्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं ? भीष्म बोले- बात केवल राजपुत्र की इच्छापूर्ति की ही नहीं है राजन। मैं नहीं चाहता कि कुरुकुल में आन्तरिक और पारस्परिक कलह हो किन्तु तुम्हारा यह पुत्र दुर्योधन विवाद और कलह को चरम सीमा पर ले जा रहा है। वह पांडु पुत्रों के विरुद्ध बाहरी व्यक्तियों की सहायता कर रहा है तथा शत्रुता को उत्प्रेरित कर रहा है। अर्जुन के विरुद्ध इस सारथी पुत्र का महत्व बढाकर राजकुल का ही महत्व कम नहीं कर रहा है साथ में राजकुल का अपमान भी कर रहा है। दुर्योधन यह जानता नहीं है कि उसे कब और किसके साथ युद्ध करना है। यह तो षडयन्त्र और साजिश हो रही है। धृतराष्ट्र बोले आप शान्त मन से सोचे तातश्री दुर्योधन कोई उपद्रव तो नहीं कर रहा है। वह तो वीरता का प्रशंसक है और वीरता का सम्मान प्रदर्शित कर रहा है। भीष्म यह सुनकर और खीझ गये और बोले दुर्योधन यदि वीरता का इतना ही पक्षधर है तो फिर उसने अर्जुन की वीरता का सम्मान क्यों नहीं किया ? विदुर पूरी परिस्थिति समझ गया और बोला- महाराज यह तो आपका कहना उचित है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता लेकिन महाराज अंगदेश हमारे साम्राज्य का हिस्सा ही नहीं है उसे महाराज कुमार दुर्योधन किसे दे ही कैसे सकते है ? धृतराष्ट्र बोला अंगदेश को तो अनुज पांडु ने मगध नरेश जरासंध से हस्तगत कर अपने अधीन कर लिया था। विदुर बोला- इससे वह राज्य तो हमारा नहीं हो जाता वहां अभी तक वहां का

प्रशासक बैठा है इसलिये उसे किसी को दे देने का हमारा अधिकार ही नहीं है। धृतराष्ट्र बोले- विदुर तुम इतने बुद्धिमान होकर ऐसी बातें कर रहे हो। यदि अंगदेश हमारा है तो कुमार दुर्योधन उसे कर्ण को दे ही सकता है और यदि अंगदेश हमारा नहीं है तो जो हमारा है नहीं उसे किसी को दे देने में तो हस्तिनापुर को कोई क्षति नहीं, उससे हमें फिर क्या लेना देना। जब वह अपना कुछ दे ही नहीं रहा तो फिर सबको किस बात की आपत्ति है ?

कर्ण ने दुर्योधन का सम्मान करते हुये कहा मैं तो अब से आपका दास हूं। आप मुझसे स्नेह करते है यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं आपकी कृपा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। आपका मेरे ऊपर स्नेह बना रहे यही मेरे लिये सब कुछ है। मैं यहां आपके पास किसी प्रलोभन से नहीं आया हूं। मैं तुम्हारा आभारी हूं राजकुमार। जन्म जन्मान्तर तक का कृतज्ञ। तुमने केवल मुझे आज के अपमान से बचा लिया है वरन एक नया सम्मानपूर्ण जीवन भी दिया है। मैं तुम्हारी इस कृपा से कभी उन्ऋण नहीं हो पाऊंगा। मित्र दुर्योधन तुम्हारे अनुग्रह का ऋण मैं अपने प्राणों से भी नहीं चुका सकता। मेरी निष्ठा तुम्हारे लिये है और मेरी मृत्यु भी तुम्हारे लिये ही होगी।

दुर्योधन बोला- मेरे मित्र कर्ण के राज्याभिषेक का आयोजन किया जाये कुलगुरु। दुर्योधन ने तुरन्त वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर वही रंगभूमि में सुवर्ण सिंहासन मंगाकर उसपर बैठा कर कर्ण का राज्याभिषेक कर दिया और कर्ण की जय जय कार कर दी। दुर्योधन के इस उपकार से कर्ण ऐसा दबा कि अन्त में अपने प्राण देकर ही उसने इस उपकार का प्रत्युपकार किया। गदगद कंठ से भर्राई आवाज में कर्ण बोला कुरुराज आज आपने मुझे मोल ले लिया मैं सदा के लिये आपके हाथों बिक गया। मैं अब आपका कौनसा प्रिय कार्य करू ? मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी आप का कार्य करने को प्रस्तुत हूं।

अधिरथ अपनी कुटिया में बैठा अपनी पत्नी राधा से बोला- मैं तुम्हारे पुत्र की ओर से बहुत चिंतित हूं। राधा बोली- ऐसा उसने क्या कर दिया ? अधिरथ बोला यही तो समझ नहीं आ रहा है कि वो करना क्या चाहता है ? इतने दिनों तो गुम रहा और आया भी तो लाख पूछने पर भी यह नहीं बताया कि वो कहां गया था ? और आज तो धनुषबाण लेकर कुरुकुल की रंगभूमि पर चला गया। मुझे तो उसके स्वभाव की तीव्रता से बडा डर लगता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हमारा घर और हमारे हृदय का आंगन अब उसके लिये बहुत छोटा पडने लगा है। इतने में ही काका-काका कहते हुये कर्ण का छोटा भाई अधिरथ का छोटा पुत्र शोण आया। दौड कर आने से हाँफ गया और बोला अरे पूछो मत काकी। अधिरथ ने पूछा कहां से आ रहा है ? शोण बोला यदि मेरे पास पंख रहे होते तो मैं उडकर ही आता। अरे काकी कर्ण भैया तो बीच रंगभूमि के राजकुमार अर्जुन भैया को ललकारा तब गुरु ने कहा उससे तो राजा या राजपुत्र ही लड सकता है पर यह सुनते ही राजकुमार दुर्योधन ने छाती ठोककर कहा कि यदि ऐसा ही है तो मैं अपने मित्र कर्ण को अंग देश का राजा बनाता हूं। अरे तुम यहां खडे क्या कर रहे हो और वहां कर्ण भैया का राज्याभिषेक हो रहा है। अधिरथ बोला क्या तू सच कह रहा है। शोण बोला कहो तो गंगा मैया की शपथ उठा लूं। अधिरथ बोला मेरा कर्ण अंग देश का राजा। यह सुनकर अधिरथ को बडी प्रसन्नता हुई। वह हांफता हांफता लाठी टेकता हुआ वह रंगशाला पर आया।

कर्ण तो अब दुर्योधन के खेल का पांसा बन गया। विरोध तो दुर्योधन और अर्जुन का है। यह तो गृह कलह में परिणत हो गया। इसी को तो बचाने का प्रयास कृपाचार्य, विदुर और भीष्म कर रहे हैं। इस सारे उपद्रव में सारथी पुत्र कर्ण राजा बन गया। दुर्योधन स्वयं लडने का साहस नहीं कर रहा है। उसने कर्ण को राजा इसलिये बनाया कि अर्जुन से भिड जाये। भीम बोला- यह राज्य मूलत: हमारा है, सम्राट पांडु के पुत्रों का। महाराज धृतराष्ट्र तो मात्र उसकी देखरेख के लिये राज प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किये गये है जब तक कि हम उसे सम्भालने के योग्य नहीं हो जाते। राजा होनेपर भी धृतराष्ट्र इसके स्वामी नहीं है। वे इच्छा होने पर भी इस राज्य को अथवा इसके किसी खंड या अंश को किसी को इस प्रकार दे नहीं सकते। यदि धृतराष्ट्र और दुर्योधन इस

प्रकार राज्य बांटने लगे तो हमारे ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के हाथ में आते आते सम्पूर्ण कुरु राज्य हस्तिनापुर तक ही रह जायेगा। राजा के लिये आवश्यक है धरती और प्रजापर अधिकार। यदि ऐसे ही सिंहासन पर बैठा कर अभिषेक जल छिडक देने से ही कोई राजा हो जाता तो हस्तिनापुर की प्रत्येक गली में अनेक राजा निवास कर रहे होते। क्या अंग देश की भूमि तथा प्रजा पर इस अभिषेक से कर्ण का अधिकार हो गया ? दुर्योधन तो ढपोर है मूर्ख है पर कुरूकुल के कुछ नियम तो है, परम्परा है, कुल वृद्धों की मान्यतायें है। युधिष्ठिर बोला कई बार कार्य अनियमित होते है और कई बार नियम भी ऐसे ही बदल दिये जाते है कि कोई उसे अनियमित नहीं कह सके। भीम बोला- हमें बलपूर्वक अपना अधिकार और राज्य.... बीच ही में युधिष्ठिर बोल उठा भीम सबसे बडा अधिकार नैतिक अधिकार है। जब हस्तिनापुर के सारे कुल वृद्ध दुर्योधन से पराजित हो जायेंगे तभी हम अपने बल और अधिकारों के बारे में सोचेंगे। अभी से तुम चिन्तित मत हो और न ही अपने छोटे भाइयों को उत्तेजित करो।

धृतराष्ट्र ने पूछा विदुर दुर्योधन ने अपने किस मित्र को राजा बनाया है उसका वर्णन तो करो। विदुर बोला महाराज वह कौन है यह तो कोई नहीं जानता परन्तु उसके मुख मंडल पर सूर्य का तेज अवश्य है और यह तेज उसका अपना है। धृतराष्ट्र बोला परन्तु चन्द्र के घर में सूर्य कैसे आ गया ?

कर्ण दुर्योधन से बोला मित्र यह मुकुट भी तुम्हारा है और यह मुकुट जिस शीश पर है वह शीश भी तुम्हारा है और मित्र यदि तुम आज्ञा दो तो मैं कुलगुरु कृपाचार्य को अपना परिचय दे दूं। दुर्योधन ने कहा मित्र मुझे तुम्हारी अभिन्न गाढी मित्रता चाहिये, आजीवन मैत्री और अपनी भुजायें फैलाकर कर्ण को आलिंगन किया। कर्ण बोला आज से मैं तुम्हारा मित्र हुआ। अनुगृहीत मित्र। आभारी। जो मुझसे सेवा होगी प्राण देकर तुम्हारी सेवा करूंगा मित्र।

दुर्योधन ने आचार्य कृप से पूछा अब तो कर्ण द्वन्द युद्ध का अधिकारी है कुलगुरु ? कृपाचार्य हंसे कर्ण को अंगदेश का राजा तुमने स्वीकार किया है पर तुम स्वयं तो राजा हो ही नहीं। तुम्हारी इस प्रकार की स्वीकृति कोई अर्थ नहीं रखती। क्या सामान्य प्रजा ने उसे राजा स्वीकार किया है क्योंकि प्रजा को अपना राजा मनोनीत करने का अधिकार है। दुर्योधन बोला अब वह राजा है अंग देश का महाराज अंगेश। कृपाचार्य बोले वत्स दुर्योधन कल यदि जरासंध अपने राजगृह में अपने किसी कर्मचारी का हस्तिनापुर के सम्राट के रूप में राज्याभिषेक कर देगा तो क्या वह कर्मचारी हस्तिनापुर का सम्राट हो जायेगा। अंगराज का राज्याभिषेक चम्पा अथवा मालिनी नगरी के राजप्रासाद के सिंहासन पर होगा, आज तो जो कुछ हुआ है वह तो कर्ण को तुम्हारा वचन मात्र है। दस्युवृत्ति से प्राप्त राज्याधिकार से शायद ही किसी को राज सम्मान मिला हो। पूछो अपने पितामह भीष्म से, विदुर से, आचार्य द्रोण से उनमें से कोई भी कर्ण को राजा की मान्यता देता है क्या ? अच्छा यही है कि कर्ण स्वयं को अधिकार पाने से पहले राजा का सम्मान पाने की योग्यता तो सिद्ध करे। उसे तो गुरु परशुराम ने भी अपने शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। दुर्योधन को लगा राज समाज में पहले तो कर्ण को मान्यता प्राप्त करनी होगी और दुर्योधन को इसके लिये तो क्रोध ही पर्याप्त था और क्रोधित होकर बैठ गया।

कर्ण ने अपने पिता सूर्य को साक्षी कर दुर्योधन से गाढी मैत्री निभाने की प्रतिज्ञा कर धृतराष्ट्र के पुत्रों को आनन्दित किया। अब कर्ण रंगभूमि में कृपाचार्य से गरज कर बोला कुलगुरु क्या आप अब भी गुरु द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य को ललकारने का अधिकार नहीं देंगे ? तब शकुनि बोल उठा अब आज्ञा देने में भला कुलगुरु को क्या आपत्ति हो सकती है ? कृपाचार्य बोले रंग भूमि प्रतियोगिता का स्थान है युद्ध का स्थान नहीं वीर वर कर्ण इसलिये तुम उनसे प्रतियोगिता की आज्ञा मांगो। कर्ण बोला जो आज्ञा गुरुदेव परन्तु यदि रणभूमि में मेरा और अर्जुन का कभी सामना हो जाये तो आप मेरे और अर्जुन के बीच शब्दों की ढाल नहीं रख पायेंगे गुरुदेव।

अर्जुन भी तम तमाकर बोला गुरु द्रोण का यह शिष्य भी द्वन्द युद्ध की आज्ञा मांग रहा है कुलगुरु क्योंकि हस्तिनापुर की धरती

पर उग आनेवाला यह अभिमान का विष वृक्ष अच्छा नहीं लग रहा है। इससे पहले कि यह जड पकड ले इसे काट डालना ही अच्छा है। कर्ण बोला क्या तुम्हारे पास शब्दों के ही बाण है अर्जुन ? क्या ये धनुष बाण और यह बाणों से भरा तूणीर केवल दिखावे के लिये ही है ? परन्तु याद रखना पृथा पुत्र मैं ब्रह्मास्त्र तक तुम्हारा पीछा करूंगा इसलिये वरूणास्त्र, आग्नेयास्त्र इत्यादि को अभी रहने दो। आज केवल वो बाण चलाओ जो छाती के आर पार हो जाये। अर्जुन बोला- दान में पाया हुआ राज्य किसी को क्षत्रिय नहीं बना सकता अंगराज कर्ण। मनुष्य को क्षत्रिय बनाती है उसकी घाव खाने योग्य छाती और उसके बाण चलाने योग्य भुजायें। भ्राता दुर्योधन को प्रणाम करो और अंग देश को लौट जाओ। यदि रंगभूमि अपना यह अपमान सहन कर ले तो राज करते जाओ। बिना बुलाये आने वालों को जो गति मिलती है वही गति तुम्हे आज मेरे हाथ से मरने पर मिलेगी। कर्ण बोला यह रंग मंडप तो सार्वजनिक है इस पर केवल तुम्हारा ही अधिकार नहीं है। कमजोर की तरह इस तरह क्यों आक्षेप कर रहे हो ? दुर्योधन बोला शास्त्रानुसार उच्चकुल के पुरुष, शूरवीर और सेनापति तीनों भी राजा हो सकते है। तुम मेरे मित्र का अपमान नहीं कर सकते अर्जुन। कर्ण बोला- अर्जुन तुम व्यर्थ ही बडबडा रहे हो तुम जो कुछ कह रहे हो रागद्वेष से वशीभूत होकर कह रहे हो। यह उत्सव कोई निजी नहीं है और न ही इसमें किसी को आने की मनाही ही है। यहांपर सर्व साधारण सभी को आमन्त्रित किया गया है इसलिये यह उत्सव सार्वजनिक है। मैंने कोई मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। शूरवीर बहुत बडबडाते नहीं वे तो अपना कर्म करके दिखाते है। मेरे साथ द्वन्द युद्ध करके देख फिर कौन किसको यमपुर भेजता है मालूम पडेगा। सबके सामने अभी तुझे मार कर नहीं फेक दूं तो मेरा भी नाम कर्ण नहीं। सब लोग इस भावी युद्ध से चिंतित हो रहे थे। भीम बोला- जो सत्य से अपमानित हो उसका मान ही क्या ? कर्ण बोला- अब मेरे बाण बोलने जा रहे हैं भीम। अर्जुन सावधान हो जा।

इतने में ही अधिरथ वहाँ आ गये और अपने पुत्र को राज सिंहासन पर बैठे देख अत्यन्त गदगद हो गया और बेटा बेटा कहकर पुकारने लगा। अधिरथ ने कभी अपने पुत्र को इस रूप में देखने की कल्पना भी नहीं की थी। चारों ओर अंगराज की जय हो रही थी। अपने पिता को देखकर कर्ण जल्दी से हडबडाये। अपने पिता का चरण स्पर्श किया और अधिरथ ने उसका सिर सूंघ लिया तभी सभी ने कर्ण के पिता सारथि अधिरथ की जय बोली। अधिरथ की प्रसन्नता के कारण उसकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे तभी अधिरथ का ऐसा व्यवहार देख कर पांडव समझ गये कि यह तो सूतपुत्र है। धृतराष्ट्र बोले विदुर यह क्या हो रहा है ? विदुर बोले- महाराज चरणस्पर्श हो रहा है। अंगराज कर्ण अधिरथ के चरण छूकर उनसे आशीर्वाद ले रहे हैं। धृतराष्ट्र बोले अधिरथ के चरण क्यों ? अधिरथ अपने पुत्र कर्ण से बोला मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा कि मैं क्या कहूं ? यह सूचना मिलते ही कि महाराज कुमार दुर्योधन ने मेरे पुत्र को अंगदेश का राजा बना दिया और अभिषेक हो रहा है तो मैं सुनते ही दौडा चला आया। तेरी मां तो मुझे पुकारती ही रह गई। सचमुच यह मुकुट पहन कर तो तू कोई क्षत्रिय ही दिखाई देने लगा है पुत्र।

यह सब देखकर भीम हंसा और व्यंग किया यह सूत पुत्र है दुर्योधन। इसके हाथ में कसा दो और अपना रथ हंकवाओ इससे। आजाओ अर्जुन वापिस चले आओ यह तुम्हारे हाथ से होनेवाली मृत्यु के भी योग्य नहीं है। भला कहीं कुत्ता यज्ञ के हविष्य का अधिकारी होता है ? इसकी क्या हिम्मत है जो यह क्षत्रियों से द्वन्द युद्ध करे। क्या सूअर का बच्चा हाथी के बच्चे के समान हो सकता है ? क्या वह उससे लडने योग्य हो सकता है ? क्या सियार का बच्चा सिंह के सामने खडा हो सकता है ? क्या कौआ यज्ञ का पुरोडास जूठा कर सकता है ? क्या कुत्ता कभी भेडिये का सामना कर सकता है ? इस मन्द बुद्धि नीच सूत पुत्र का ये दुस्साहस जो हमसे ही द्वन्द युद्ध मांग रहा है। कर्ण ने यह सब कुछ सुना परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। कर्ण लम्बी लम्बी सांस भरकर सूर्य की ओर देखने लगा।

दुर्योधन को ये बातें बहुत ही असह्य लगी वह अपने भाइयों के साथ अपने खेमें में बैठा था उठकर वहाँ आया और बोला भीमसेन तू ऐसी बढ बढकर बातें किस बलबूते पर कर रहा है। क्षत्रियों में बल की सर्वश्रेष्ठता सर्वमान्य है इसलिये नीच कुल के

शूरवीरों के साथ भी युद्ध करना चाहिये। ऋषियों के गौत्र, नदियों के स्त्रोत को कौन जानता है? उसी प्रकार शूरवीरों की उत्पत्ति का ज्ञान करना भी बडा कठिन है। कर्ण स्वभाव से ही कवच कुंडल धारी और सर्व लक्षण सम्पन्न है। सूर्य के समान तेजस्वी कुमार को भला कोई सूतपत्नी जन्म दे सकती है क्या ? कर्ण अपने बाहुबल और मेरी सहायता से केवल अंग देश का ही नहीं सारी पृथ्वी का शासन कर सकता है। तुम्हारी जैसे उत्पत्ति हुई है वह मैं भलीभांति जानता हूं क्यों सबके सामने मेरा मुंह खुलवा रहे हो ? भीम यह मत भूलो कि तुम सबके जन्म के विषय में भी यह प्रश्न किया जा सकता है। मैं तो सूतपुत्र नहीं हूं। कर्ण ने तो केवल अर्जुन को ललकारा था लेकिन मैं तो तुम पांचों भाइयों को ललकार रहा हूं और आओ अपना क्षत्रियत्व सिद्ध करो।

इस बात से जनता में बडा कोलाहल हो गया। सारे रंग मंडप में हाहाकार मच गया। सूर्यास्त होने लगा बात को बढती देखकर कि भाई-भाई का बैर विष उगलने लगा कृपाचार्य बोले सूर्यास्त हो चुका हैं और सूर्यास्त के पश्चात युद्ध क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है, शास्त्र सम्मत नहीं है। सभी राजकुमार अपना अस्त्र-शस्त्र कौशल भी दिखा चुके है अत: अब आज के इस उत्सव का समारोह का समापन हो ऐसी घोषणा मैं करता हूं। भीष्म उठे और शंख फूंक कर रंगशाला का समारोह समाप्त किया।

शंखनाद ने कर दिया समारोह का अन्त, अन्त कहां का, इस अन्त का कुरुक्षेत्र पर अन्त।

दुर्योधन कर्ण का हाथ पकडकर वहां से बाहर निकल गया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा भीष्म, विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारी सभी अपने अपने स्थानों से उठकर चलने लगे। सेवकों ने शाम की मशालें जला दी। भीड इधर-उधर कई भागों में बंट गई। पर कुन्ती का मन डांवाडोल हो रहा था मन ही मन खिन्न होकर विचार करने लगी और प्राय: मूर्च्छित सी हो रही थी।

कर्ण और अर्जुन दोनों ही कुन्ती के पुत्र है। किसी भी ऊंगली को काटो वेदना तो दोनों में समान ही होगी। अपने दोनों पुत्रों को शत्रु की भांति देखकर कुन्ती प्राय: बेहोश सी हो गई। वह मूर्च्छित होकर गिर पडी। विदुर की आज्ञा से दासियों ने पानी के छींटे मारे। कुन्ती किं कर्तव्यविमूढ हो गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं ? उस भरी सभा में वह सब बात भी नहीं कह सकती थी। कुन्ती की बाध्यता थी कि वह यह सब देखते बूझते हुये भी वह कुछ कर नहीं पा रही थी। सम्राट पांडु के पुत्र उपेक्षित हो रहे थे और उसी सम्राट के राज्य पर बलात आधिपत्य दोनों बाप बेटे ने कर रखा है। इतने लोग उपस्थित थे वहां भीष्म, वृद्ध बाह्लीक, सोमदत्त, विदुर, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य, कुरु वृद्ध, मन्त्री सेनापति फिर भी सब दुर्योधन की इच्छानुसार ही हो रहा है। कोई भी तो उसे रोकनेवाला नहीं है। ऐसे में कुन्ती कैसे आशा कर सकती है कि अब युधिष्ठिर को अपने पिता का राज्य सौंप देंगे क्या ? क्या युधिष्ठिर को युवराज बना देंगे ? अधिरथ का नाम सुनते ही कुन्ती चौकी। यह नाम उसने अपने पितृगृह में सुना था कि उसकी पहली कानीन सन्तान सारथि अधिरथ के घर में पल रही है। आज इतने अन्तराल के बाद वह अपने पुत्र को देख पा रही है। वह नवजात शिशु आज इतना बडा हो गया, युवक, सुन्दर, स्वस्थ और बलिष्ठ। सहसा उसका विचार प्रवाह थम गया। अब कुन्ती को निश्चय हो गया यह मेरा वही पुत्र है कुन्ती के मन में विचार आया कि वह खडी होकर यह घोषणा कर दे कि यह सारथि अधिरथ का पुत्र नहीं है। यह मेरा पुत्र है। सम्राट पांडु की महारानी कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र, युधिष्ठिर का बडा भाई है। किन्तु कुन्ती के विवेक ने उसे रोक दिया कुन्ती वह तेरा अतीत था और वर्तमान सदा अतीत से भिन्न होता है। अपने इस गोपनीय अतीत को वर्तमान पर आरोपित मत कर। यदि तू अपने इस अतीत को उस समय स्वीकार कर सकती थी तो फिर उसे त्यागने की क्या आवश्यकता थी। तूने तो इसीलिये त्यागा था ताकि अपने पिता कुन्ती भोज अथवा शूर सेन का यश धूमिल ना हो। शूरसेन का कुल कलंकित ना हो। अपने अपयश के भय से उस पुत्र की कभी खोज भी नहीं की। वर्षों उससे दूर रही। उसके विषय में एक शब्द भी जिव्हा पर कभी नहीं आया। हस्तिनापुर में आकर भी किसी से एक बार भी उसकी जिज्ञासा तक नहीं की। यदि आज वह सबके सामने कर्ण को अपना पुत्र स्वीकार कर लेती है तो क्या उसकी विश्वसनीयता समाप्त नहीं हो जायेगी ? क्या उसका अपना चरित्र लांछित नहीं हो जायेगा ? इन अपने पाचों पुत्रों के विषय में

अनेकों प्रश्न नहीं खडे होंगे ? उनके जन्म और वंश के सम्बन्ध में सन्देह, प्रश्नों, आरोपों और लांछनों की ही नहीं, आपत्तियों का उत्तर कौन देगा ? वह कही अपने एक पुत्र को सूत पुत्र के कलंक से मुक्ति दिलवाने के प्रयत्न में कहीं अपने इन पांचो पुत्रों को अनेक असह्य और असाध्य कलंकों से लांछित न कर दे। वह चाहती तो थी कि एक बार चुपके से कर्ण के कान में बता दे कि कुन्ती उसकी मां है और ये पांचो पांडव उसके भाई है इसलिये वह अर्जुन से और इन सब भाइयों से शत्रुता पूर्ण व्यवहार न कर पारिवारिक व्यवहार करे। यदि कर्ण को राज्य ही चाहिये तो वह अपनी मां के पास आ जाये। पांडव उसे अपना बडा भाई मानकर सारा कुरु साम्राज्य उसे दे देंगे। यह मूर्ख ममता जो कुन्ती के मन को बिलग कर रही थी। ममता को आश्वस्त कराने के लिये वह कहीं विवेक की हत्या तो नहीं कर रही। मन में कभी आता कि बता दे कुन्ती को लगा जैसे सारा ब्रह्मांड घूम रहा है। वैद्य बुलाया गया और उसकी देखरेख में दासियां कुन्ती को उसके भवन में ले गई।

और यदि कुरुवंश की मर्यादा ने कुन्ती की जबान न पकड ली होती और वह उनसे यह बता देती कि लोग जिसे सूतपुत्र समझते हैं वो तो वास्तव में ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र है तो यह महान गाथा न जाने किस मोडपर मुड जाती परन्तु उस समय कुन्ती बेहोश हो गई और संकट टल गया। परन्तु दुर्योधन ने कर्ण को अंगराज बनाकर इस संकट को फिर से बीच रणभूमि में ला खडा किया। परन्तु सूर्यदेव ने अस्त होकर फिर संकट टाल दिया। पर क्या संकट सचमुच टल गया ? क्योंकि यह तो संकटों की ही तो गाथा है और मानवजाति को संकटों का सामना करना ही तो सिखाती है। महाभारत में संकट अनेक फलोंवाला भाला है जिसका एक न एक फल उसके हर पात्र की छाती में उतरा हुआ है। अब तक तो धर्मराज युधिष्ठिर को भी यही विश्वास था कि अर्जुन ही संसार में अद्वितीय धनुर्धर है और आचार्य द्रोण भी बार बार यही कह रहे थे कि अर्जुन के समान कोई अन्य योद्धा नहीं है और धर्मराज इन बातों को सुन सुनकर प्रसन्न होते थे। उन्हे अपने भाई अर्जुन के बल पौरुष पर गर्व था लेकिन आज उन्हे लगा कि कर्ण भी अर्जुन से कुछ कम नहीं है। संसार में शायद कर्ण से बढकर अन्य दूसरा कोई शूरवीर शायद न हो। कर्ण स्वयं सम्राट नहीं हुआ लेकिन सम्राटों का निर्माता तो था। कर्ण एक अद्वितीय वीर है। कर्ण की वीरता के सामने मनुष्य ने ही नहीं देवताओं और देवताओं के राजा इन्द्र ने भी कर्ण से अपनी पराजय मानी क्योंकि कर्ण साक्षात सूर्यपुत्र थे। वे जन्म से ही दिव्य कवच कुंडल पहिने ही जन्मे और इन्द्र के षडयन्त्र से उन्होने अपने अमृतमय दिव्य कवच कुंडल अपना जीवन खोकर भी इन्द्र को दान कर दिये इससे कर्ण को कभी न समाप्त होनेवाले निर्मल यश की प्राप्ति हुई।

कुन्ती राजकीय वैद्य की सलाहानुसार अपने विश्राम कक्ष में लेटी हुई अशान्त मन से विचारों की उधेडबुन में खोई हुई थी। कैसे विवशता उत्पन्न हुई रंगशाला में। मर्यादा के कगार उसे बार बार पीछे अतीत में धकेल रहे थे। उसे लगा रंगशाला में कर्ण कैसा पीडित और अपमानित अनुभव कर रहा था उसका अपना पुत्र सिर्फ इसलिये कि कुन्ती उसे विवशता से अपनी पहचान नहीं दे पा रही थी। भीम ने उसे सूतपुत्र कहकर पुकारा, कृपाचार्य ने उसका वंश और माता-पिता का नाम पूछा। कैसा विधान रचा है विधाता ने। वह अपने पुत्र की माता होकर भी उसे सार्वजनिक में अपना पुत्र नहीं कह सकती। कर्ण को अपनी आवश्यकतायें पूरी करने के लिये माता कुन्ती नहीं राधा और अधिरथ है। माता पिता का दायित्व तो कभी जाति और वंश नहीं देखता। और दुर्योधन भी है उसके साथ। कहीं कुन्ती के कारण उसे मिला हुआ अंगराज्य नहीं छिन जाये। उसका भी भविष्य कहीं पांडवों की तरह अनिश्चित और अन्धकारमय न हो जाये, दिशाहीन न हो जाये। कुन्ती अपनी ओर से उसे क्या दे पायेगी ? वह देने के बजाय कहीं और अधिक वंचित तो नहीं कर देगी।

इतने में ही विदुर के साथ पांचों पांडव कुन्ती के कक्ष में कुन्ती की कुशल पूछने आये। विदुर सम्मान से बैठे और पूछा भाभी कैसा स्वास्थ्य है अब ? कुन्ती ने अपने मन को समझाया कि कर्ण ने उन परिस्थितियों में जन्म लिया है कि उसे अपना घर होते हुये भी वह उसे मिल नहीं पायेगा। विधाता ने कुछ ऐसी ही घटना घडी है। कुन्ती मुस्कराकर बोली मैं ठीक हूं मेरी समझ में नहीं

आया कि मुझे क्या हुआ ? सिर्फ एक चक्कर आया और मैं अवश होकर गिर गई पर तुम लोग तो सब मुझे इस प्रकार देख रहे हो कि मैं कोई लम्बे समय से रोगग्रस्त हूं। विदुर बोले भाभी जिसके रोग का ज्ञान होता है उसके विषय में तो इतनी चिन्ता ही नहीं होती क्योंकि उसका कारण ज्ञात होता है किन्तु किसी स्वस्थ व्यक्ति में अकारण ही रोगों के लक्षण दिखाई पडे तो अधिक चिन्ता होने लगती है कि कही कोई असाध्य रोग तो नहीं। अज्ञात को सदा ही भय होता है। कुन्ती बोली वैद्य ने मेरा नाडी परीक्षण किया था क्या उन्होने अभी तक रोग का निदान नहीं किया ? क्या राजवैद्य ने कोई असाध्य रोग बता दिया है ? विदुर बोला- असाध्य रोग नहीं, अज्ञात रोग बताया है। राजवैद्य को कोई शारीरिक रोग के लक्षण नहीं मिले है परन्तु उसका कहना है कि शारीरिक रोग का कारण न होनेपर भी शरीर रोगी हो जाये तो समझना चाहिये कि व्यक्ति के मनपर कोई असह्य बोझ है और वह उससे चिंतित और भयभीत है। कुन्ती बोली- विदुर मन पर कैसा बोझ आ पडा यह तो तुम भलीभांति जानते ही हो विदुर? विदुर बोला- जितना मैं समझता हूं कि रंगशाला में उस दिन कर्ण और दुर्योधन ने मिलकर अर्जुन के लिये जो विकट स्थिति उत्पन्न कर दी उसके कारण आपके मन पर कठोर आघात हुआ होगा किन्तु यदि उसके अतिरिक्त कोई और बात हो तो ? मुझसे आपको कुछ भी गोपनीय रखने की आवश्यकता नहीं। कुन्ती बोली तुम मेरे अत्यन्त विश्वासु हो आत्मीय हो और प्रिय हो जितने मेरे ये पुत्र हैं। मैं तातश्री भीष्म से भी अधिक तुमपर विश्वास और श्रद्धा करती हूं। मैं कभी असत्य भाषण तुमसे नहीं करती। दुराव भी मेरी प्रवृति नहीं। विदुर बोला भाभी आप मुझसे कुछ छिपा तो नहीं रही ? कुन्ती बोली- विदुर। नारी अपने पुत्र के सामने घूंघट (अवगूंठन) तो धारण नहीं करती किन्तु वह स्वयं को उसके सामने नग्न भी तो नहीं कर सकती। विदुर बोला- ठीक है भाभी आप अपने मन को सम्भाले, हम सब हस्तिनापुर की स्थितियों को सम्भालेंगे। विधाता की कृपा से सब कुछ मंगलमय ही होगा। कुन्ती अपने पुत्रों को देखकर बोली तुम लोग ऐसे ठगे से क्यों खडे हुये हो मैं थोडी सी अस्वस्थ हो गई तो तुम लोग चिंतित हो गये। मेरे अस्वस्थ हो जाने से तो सृष्टि का चक्र क्रम तो नहीं रूक जाता। बडे ही समझदार हो। कल तुम्हारी शादी होगी पत्नियां आयेगी वे सब तुम्हे क्या कहेगी ? वैसे भी किसी पत्नी को अपने पति का अपनी माता के इस प्रकार इतना प्रेम करना अच्छा नहीं लगता। यह नारी स्वभाव ही है कि नारी को नारी नहीं सुहाती चाहे भले वह माता, बहन या सास ही क्यों न हो ?

कुन्ती विदुर से बोली विदुर सारी समस्याओं का समाधान एक ही है कि राजसभा में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करवाओ। तुम इसके लिये तातश्री भीष्म और महाराज धृतराष्ट्र से आग्रह करो। विदुर बोला मैं यह सब जानता हूं कि युधिष्ठिर के राज्याभिषेक को रोकने का प्रयत्न दुर्योधन और शकुनि करेंगे वे इसे शान्तिपूर्ण ढंग से नहीं होने देंगे। कुन्ती बोली- क्यों अब तो युधिष्ठिर वयस्क भी हो चुका है, शिक्षा भी प्राप्त कर चुका है और अब वह अपने पिता का राज्य सम्भालने में पूर्णत: समर्थ, योग्य व सक्षम भी है। अब उसमें किसे क्या आपत्ति है ? अब उसे टालने या विलम्ब करने का कोई तर्क ही नहीं।

विदुर मुस्कुरा कर बोला स्वार्थ अपना तर्क स्वयं ढूंढ लेता है। जहां वास्तविक अधिकारों की उपेक्षा कर उसके अधिकारों का अपहरण करने में भी तनिक संकोच न हो तो वह स्वार्थ सिद्धि के लिये कुतर्क भी जुटाये जा सकते है। रंगभूमि में कलाकौशल का प्रदर्शन इसलिये आयोजित किया गया कि कुरु राजकुमारों में कौन व्यक्तिगत रूप से सर्वाधिक योग्य है तथा नेतृत्व की क्षमता किसमें अधिक है ? युधिष्ठिर सारे कुरु राजकुमारों में ज्येष्ठ है। ज्येष्ठता के आधार पर तो दुर्योधन को कभी भी युवराज पद नहीं मिल सकता इसलिये ये लोग योग्यता की कसौटी पर युवराज बनाना चाहेंगे वे यह सिद्ध करना चाहते है कि दुर्योधन युधिष्ठिर से कहीं अधिक सफल नेता तथा शक्तिशाली है। अत: दुर्योधन ही हस्तिनापुर का युवराज होने योग्य है। ये लोग युधिष्ठिर को युवराज पद पर सहज ही अभिषेक नहीं होने देंगे। यह कहकर विदुर चुप हो गया और बोला अच्छा अब मैं चलता हूं और चलते-चलते विदुर ने युधिष्ठिर से कहा युधिष्ठिर कहीं भी दुर्योधन कुरु राजकुमारों की सम्मिलत शक्ति का नेता दिखाई न दे क्योंकि अब परस्पर स्पर्धा शुरू हो चुकी है, अब कहीं भी कोई तुमसे प्रमाद न हो। सम्मिलत अभियान में तभी शामिल होना जब

उसका नेतृत्व तुम्हारे हाथों में हो। कहीं ऐसा न हो कि कृत्य तुम करो और उसका श्रेय दुर्योधन पा जाये। सदा यही प्रयत्न करना कि सारे सामूहिक अभियान में भी पांडु पुत्र पृथक भी दिखाई पडे और उनसे अधिक योग्य भी। युधिष्ठिर बोला ऐसा ही होगा काका। युधिष्ठिर विदुर की बात का तात्पर्य भली भांति समझ गया।

गुरु द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा से बोले सम्राट पांडु का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर ही हस्तिनापुर का युवराज होगा। अश्वत्थामा बोला नहीं पिताश्री, हस्तिनापुर में युवराज बनने के लिये ज्येष्ठ होने का कोई नियम या परम्परा है ही नहीं। शान्तनु अपने भाइयों में ज्येष्ठ नहीं थे। देवादि उनसे बडे थे। शान्तनु के पुत्रों में भीष्म सबसे बडे भीष्म थे किन्तु वे राजा नहीं हुये। अब धृतराष्ट्र और पांडु में भी धृतराष्ट्र बडे हैं परन्तु राज्य पांडु को ही मिला। द्रोणाचार्य बोले- अश्वत्थामा लगता है यह तर्क तुम्हारा नहीं है ये दलील तो तुम्हारे मित्र दुर्योधन ने ही तुमको दी है। अश्वत्थामा बोला- यह तर्क तो दुर्योधन का ही है किन्तु संगत होने से हम सबको यह मान्य है इसलिये इस पीढी में केवल ज्येष्ठ होने से तो युधिष्ठिर युवराज नहीं हो सकता। द्रोण बोले- यदि युधिष्ठिर नहीं युवराज होगा तो उसका दूसरा भाई कोई युवराज होगा पर यह दुर्योधन बीच में कैसे आ गया ? दुर्योधन तो सिर्फ असत्य के लिये युद्ध कर रहा है। अश्वत्थामा बोला यदि राजा का पुत्र ही युवराज होगा तो इस समय के राजा धृतराष्ट्र है फिर युधिष्ठिर कैसे युवराज हो सकता है ? द्रोण बोले धृतराष्ट्र राजा नहीं है राज प्रतिनिधि हैं। लेकिन वह राजा होने का उपक्रम कर रहा है। यदि दुर्योधन को युवराज होना है तो वह अपनी योग्यता प्रमाणित करे। अश्वत्थामा ने कहा क्या वह रंगशाला में सबसे योग्य नेता प्रमाणित नहीं हुआ ? द्रोण के स्वर में रोष था नहीं। न योग्यतम योद्धा और न ही योग्य नेता। उसने तो वहां पर स्वयं को सबसे बडा उपद्रवी और षडयन्त्रकारी प्रमाणित किया। अश्वत्थामा बोला क्योंकि परिस्थितियां उसके अनुकूल नहीं थी। द्रोण बोले परिस्थितियां अनुकूल हो न हो व्यक्ति को हर परिस्थिति में धैर्य धारण करना चाहिये। अब तो यही है कि सारे कुरु राजकुमार अपनी योग्यता सिद्ध करे। जाओ सारे राजकुमारों से जाकर कहो कि मैंने उनको बुलाया है और कहना कि मेरी गुरुदक्षिणा आकर दे। वो सब मिलकर पांचाल नरेश द्रुपद को बन्दी बना कर मेरे पास लाये। यही मेरी गुरुदक्षिणा होगी। गुरु द्रोण के मन में वर्षों से अटकी फांस थी जो अब निकालने का उपक्रम किया जा रहा था। जब परिस्थितियां अनुकूल न हो तो अनुकूल परिस्थितियों के लिये प्रतीक्षा ही करनी पडती है। इस बात की प्रतीक्षा मेरे साथ-साथ सारा हस्तिनापुर करेगा कि गुरुदक्षिणा कौन चुकाता है। जो गुरुदक्षिणा चुकायेगा वही शिष्य मेरी ओर से योग्यतम घोषित होगा। गुरु दक्षिणा चुकाने से पूर्व हस्तिनापुर में युवराज का राज्याभिषेक नहीं होगा यह मेरा आश्वासन है तुम्हे अश्वत्थामा। अश्वत्थामा को लगा अब उसके पिता ने उसे एक नये रूप में इच्छापूर्ति का वरदान दे दिया है।

४०) पांचाल नरेश द्रुपद का पराभव

संकट का हर फल भी उस भाले का फल है और इसलिये द्रोणाचार्य भी उस भाले का एक फल ही है वो एक और ही अग्निकुंड में जल रहे है। उनके हथेली में मान-अभिमान और प्रतिशोध की फांस चुभी हुई है और उन फांसों की घटक ने उनके रातों को लहू लुहान कर रखा है।

घाव बडा अपमान का तडफे निश दिन प्राण, मन माना प्रतिशोध ही उसका बने निदान।

बार बार द्रुपद के कहे हुये शब्द द्रोण के कानों में गूंज रहे थे। एक दिन द्रोण अपने शिबिर में सो रहे थे कि कृपाचार्य आये। द्रोण सहसा जग उठे और बोले कृपाचार्य आप और इस वक्त। कृपाचार्य ने प्रणाम किया और बोले ऋषिवर द्रोण बोले इतनी रात गये आपने यहां आने का कष्ट कैसे किया कृपाचार्य ? कृपाचार्य बोले- मैं कृपी की ओर से प्रार्थना करने आया था ऋषिवर कि अब तो घर चलें। द्रोण बोले- अभी नहीं कृपाचार्य। कृपाचार्य ने कहा परन्तु क्यों ऋषिपुत्र ? द्रोणाचार्य बोले- अभी इसका समय नहीं आया है। मैं कृपी से यह कहकर घर से निकला था कि मैं मेरे पुत्र के लिये एक गाय लेने जा रहा हूं। बिना गाय लिये मैं कैसे घर जाता। कृपाचार्य बोले भगवान की दया से आज हमारे पास बहुत सी गायें है ऋषि पुत्र। द्रोण बोले परन्तु वो गाय

नहीं है जिसे लेने मैं घर से निकला था। कृपाचार्य बोले तो क्या द्रुपद के पास एक गाय भी नहीं थी। द्रोणाचार्य बोले उसके पास गाय भी थी और अपमान भी। उसने गाय तो नहीं दी पर अपमान बहुत दिया। वो दिन आज भी मेरे सामने है, मैं अब भी देख रहा हूं जैसे द्रुपद मेरी ओर देख रहा था, जैसे बाण छाती के आर पार हो जाता है। कृपाचार्य बोले फिर वहीं पर आपने द्रुपद को उसकी असभ्यता का दंड क्यों नहीं दिया ? द्रोणाचार्य बोले यदि वो कोई शत्रु होता तो दंड अवश्य देता पर वो तो मित्र था और मित्र होते हुये भी उसने समानता की बात उठाई थी कृपाचार्य। उसने कहा ब्राह्मण होने के नाते दान में जो चाहे सो मांग लो परन्तु तुमने सोचा कैसे कि तुम मेरे मित्र भी हो सकते हो ? मित्रता तो बराबर वालों में होती है परन्तु यदि मैं उसे बराबर वाला समझता तो अवश्य उसे दंड देता। परन्तु अब दंड देने की घडी आ गई है। अब तुम जाओ कृपाचार्य, मेरे शिष्य अभी आते ही होंगे। कृपाचार्य बोले जो आज्ञा ऋषि पुत्र।

अश्वत्थामा के कहने पर सभी द्रोण शिष्य कौरव और पांडव एक साथ गुरु द्रोण के पास आये और प्रणाम कर बोले क्या आज्ञा है गुरुदेव ? द्रोण को अपने प्रशिक्षण पर बहुत विश्वास था। द्रोण अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के सफल आचार्य और प्रशिक्षक माने जाते थे फिर भी वे अपने स्वयं के पुत्र को उस मार्ग पर नहीं चला पाये जिस पर वे उसे चलाना चाहते थे। आखिर में अश्वत्थामा वही बना जो उसे बनना था। द्रोण न तो उसकी दुर्बलताओं को सबलताओं में परिवर्तित कर पाये और न ही उसकी प्रवृतियों को सुधार पाये। द्रोण का मन किसी अन्धेरी कोठरी में पडा अपमान की घूंट पिये हुये अपने प्रतिशोध की प्रतीक्षा में जल रहा बोले गुरु दक्षिणा दिये बिना शिक्षा पूरी नहीं होती राजकुमारों द्रोण निर्धनता से असुविधाओं और आशंकाओं से डरते थे। दुर्योधन ने कहा आज्ञा हो आपके चरणों में सोने चांदी के ढेर लगा दूं। द्रोण बोले- ब्राह्मण सोने चांदी के ढेर लेकर क्या करेगा गान्धारी नन्दन ? अर्जुन बोला गुरु दक्षिणा में हम अपने प्राणों की बाजी तक लगा सकते हैं गुरुदेव। द्रोण बोले प्राण तो वो मांगे कुन्तीनन्दन जिसके स्वयं प्राण न हो। अर्जुन बोला तो फिर आज्ञा गुरुदेव। द्रोणाचार्य बोले मैं चाहता हूँ कि तुम में से कोई जाकर पांचाल नरेश महाराज द्रुपद को युद्ध में हराये और बन्दी बनाकर मेरे पास ले आये। दुर्योधन बोला मैं अभी जाकर उसका वध कर देता हूं गुरुदेव। द्रोण बोले मैंने वध करने की आज्ञा नहीं दी। दुर्योधन बोला क्षमा चाहता हूं गुरुदेव। द्रोण बोले आज्ञा पालक को सुसंस्कृत होना चाहिये। आज्ञा के आगे निकल जाना भी आज्ञा का उल्लंघन ही है। दुर्योधन बोला तो फिर हमें आज्ञा दीजिये गुरुदेव। मैं इसी समय कूच करना चाहूंगा। द्रोण बोले- जाओ वत्स। दुर्योधन बोला मैं पांचाल नरेश द्रुपद को खींचता हुआ यहां आपके पास लाऊंगा और आपके चरणों में डाल दूंगा। द्रोण ने आज्ञा दी और दुर्योधन अपने भाईयों सहित शकुनि, कर्ण को लेकर द्रुपद की राजधानी काम्पिल्य के लिये प्रस्थान कर गया।

दुर्योधन के चले जाने पर लेकिन वे पांचो पांडव वहीं खडे रह गये तब द्रोण ने पूछा अर्जुन बडे खिन्न मन लग रहे हो क्या समस्या है ? अर्जुन बोला कुछ नहीं गुरुदेव। द्रोण बोले- क्या गुरू से रूठ गये हो ? अर्जुन ने कहा क्या भक्त को भगवान से और शिष्य को गुरु से रूठने का अधिकार नहीं है ? द्रोण बोले- इन्ही दोनों को रूठने का अधिकार है वत्स। जितना बडा भक्त और जितना प्रिय शिष्य होगा उतना ही बडा रूठने का अधिकार होगा परन्तु अर्जुन तुम्हारे रूठने का कारण। अर्जुन बोला मेरी धृष्टता क्षमा करें गुरुदेव। दुर्योधन न तो किसी का नेतृत्व मानता है और न ही किसी अनुशासन को। वह सेनापति होने योग्य नहीं है हम उसके सेनापतित्व में युद्ध कर पराजित हो अपमानित नहीं होना चाहते। और न अपने बल तथा वीरता द्वारा विजय प्राप्त कर श्रेय उसे देना चाहते और दुर्योधन हमारे ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को अपना वरिष्ठ नहीं मानना चाहता तो फिर हम उसे अपना नेता कैसे मान सकते हैं गुरुदेव ? और फिर ये साधारण सैनिक अभियान नहीं है गुरुदेव। आपने हमें क्यों नहीं आज्ञा दी गुरुदेव? द्रोण बोले यह समय विभाजन, असहयोग और विखंडन का समय नहीं है कौन्तेय। तुम लोग पांच नहीं एक सौं पांच भाई हो। अर्जुन बोला यदि ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर का नेतृत्व माना जाता तो हम अवश्य ही एक सौ पांच थे आचार्य परन्तु दुर्योधन के नेतृत्व में

यह सम्भव नहीं आचार्य। हमारी ओर से न किसी प्रकार का असहयोग है, न विभाजन और न ही विखंडन। यह तो मात्र दुर्योधन की दुर्नीतियों का परिणाम है। हमारे मन में तो अब भी उसके प्रति न बैर है न द्वेष और न ही कोई द्रोह। द्रोण बोले- यदि दुर्योधन ही द्रुपद को बन्दी बना लाया तो क्या तुम मुझे गुरु दक्षिणा नहीं दोगे। अर्जुन बोला यह असम्भव है आचार्य। द्रुपद उनपर भारी पडेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि दुर्योधन अपने भाइयों के साथ पराजित होकर और अपमानित होकर अभी थोडी ही देर में वापिस आजायेगा तब आपका यह प्रिय शिष्य आपकी आज्ञा और इच्छा पूरी कर आपकी गुरु दक्षिणा देगा। कारण कि दुर्योधन योजना विहीन युद्ध करने के लिये निकल पडा। द्रोण बोले- तुम सबकी तो शिक्षा अब पूर्ण हो चुकी है परन्तु दुर्योधन की शिक्षा का एक अध्याय अभी बाकी रह गया है। युधिष्ठिर बोला- वो कौनसा अध्याय है गुरुवर ? द्रोण बोले वो अध्याय है मान-अभिमान का और अभिमान और अहंकार ही पुरुष का सबसे बडा शत्रु है। परन्तु यह सीखने में गान्धारी नन्दन दुर्योधन को न जाने कितने दिन और लग जायेंगे ? कितने वर्ष लग जायेंगे ?

पांचाल नरेश द्रुपद अपनी राजसभा में बैठा था कि उसके चरोंने सूचना दी कि कुरुओं की सेना राजधानी में प्रवेश कर उत्पात मचा रही है। आक्रमण इतना आकस्मिक था कि वह नगरद्वार पर भी रोकना सम्भव नहीं हो रहा था। द्रुपद ने अपने राज्य में घोषणा करवादी कि पांचाल राजधानी काम्पिल्य पर कुरुओं ने आकस्मिक रूप से आक्रमण कर दिया है इसलिये पूरी सेना व नगरवासी अपनी सामर्थ्य के अनुसार उपलब्ध शस्त्रों से शत्रु का विरोध कर राज्य की रक्षा करें। द्रुपद ने अपने भाइयों सहित आक्रमणकारियों पर बाणों की वर्षा कर युद्ध आरम्भ किया। द्रुपद ने सोचा क्या कारण हो सकता है इस आकस्मिक आक्रमण का? न तो कोई दूत ने सूचना दी फिर यह कैसा सैनिक अभियान ? न युद्ध की कोई घोषणा। यह तो कोई कायरों का सा युद्ध है। यह तो घात लगाकर आक्रमण करने जैसा है। द्रुपद के ध्यान में आया इसका बीज द्रोण हो। द्रुपद का वेग कौरवों की सेना को आगे बढने से रोकने के लिये काफी था। कौरव सेना का सामना होते ही द्रुपद समझ गया कि उन्हे युद्ध का कोई अनुभव ही नहीं है। कौरव तो अपने सैनिकों की संख्या को भेडों के समूह रेवड की तरह भगाते हुये चले आ रहे हैं। पांचालों ने पहले ही आघात से कौरवों के पांव थाम दिये। द्रुपद और उनके भाई उनपर भारी पडने लगे। दुर्योधन के बाण द्रुपद की बाण वर्षा के सामने कुछ भी प्रभाव नहीं दिखा सके। द्रुपद का रथ वेग से दौड रहा था लगता था कि स्वयं पांचाल राज किसी चकरी या धुरे के समान घूम रहे हैं दुर्योधन गदा लेकर द्रुपद के निकट भी नहीं पहुंच पाया। द्रुपद के बाणों का वेग इतना अधिक था कि उसका रथ ही आगे नहीं बढ पा रहा था उसको रथ छोड पदाति ही आगे बढना पडा।

द्रुपद ने अपनी रक्षा के लिये अभेद्य कवच पहन रखा था। कर्ण के बाण भी उसे भेद करने के लिये निरर्थक हो रहे थे। द्रुपद के बाणों से दु:शासन, विकर्ण, युयुत्सु सभी घायल जैसे हो गये और दुम दबाकर पीछे ओर भागने लगे। पांचाल सेना ने कुरुओं की सेना को खदेड दिया। कुरु सेना पहले से ही अस्त व्यस्त थी, सैनिक मोर्चा जैसी नही थी और फिर पांचालों की सेना से टक्कर लेनेपर और तितर बितर हो गई। इससे कौरव सेना के पांव उखड गये। चारों ओर कौरव सैनिक पीछे की ओर भागते हुये दिखाई देने लगे। द्रुपद ने दुर्योधन के धनुष को काट गिराया। क्षतविक्षत कर्ण भी अपने रथ से कूद कर पीछे की ओर भागने लगा और कोई उपाय न देखकर पराजित हो कुरु सेना भागकर अपने प्राण बचाकर लौट गई।

अर्जुन ने देखा दुर्योधन और उसके साथी और उसकी सेना पूर्णत: पराजित हो चुकी है। कर्ण की इस भांति दुर्गति देखकर अर्जुन को विस्मय हुआ पर अर्जुन को लगा किसी वीर का अपमान करना उसका काम नहीं है। फिर पांचाल नरेश तो माने हुये श्रेष्ठ योद्धा हैं उनके सामने तो अच्छे अच्छे महारथी भी नहीं ठहर सकते। भीम हंसा और बोला मैंने तो सुना था पांचाल को खींचकर लेकर गुरु चरणों में डालनेवाले है। तब युधिष्ठिर बोले भीमसेन अपने भाई पर व्यंग के बाण मत चलाओ। युद्ध में किसी न किसी को हारना ही पडता है। युद्ध में तो किसी की भी यह स्थिति हो सकती है। यह तो हमारी पराजय है। अर्जुन बोला नहीं ज्येष्ठ भ्राता यह हमारी

पराजय नहीं है यह तो दुर्योधन की पराजय है। युधिष्ठिर बोला नहीं अर्जुन क्या दुर्योधन हमसे भिन्न है कोई ? अर्जुन बोले यदि वह आपको अपना नेता नहीं स्वीकार कर सकता तो वह हमसे भिन्न ही है। युधिष्ठिर बोला- फिर हस्तिनापुर के सम्मान को ठेस पहुंचेगा, कौरवों की कीर्ति को कलंक लगेगा और फिर गुरुदेव की दक्षिणा का भी तो प्रश्न है ? अर्जुन आज बहुत प्रौढ ढंग से बोला उन सबकी रक्षा की जायेगी। युद्ध के लिये हम सभी पांचों भाई जायेंगे और गुरु को गुरुदक्षिणा भी देंगे।

दुर्योधन गुरु द्रोण के पास आया और बोला मैं गुरु दक्षिणा देने में असमर्थ रहा गुरुदेव। हम पांचालों की सीमाओं को रौंदते हुये काम्पिल्य नगरी के निकट पहुंचे पर द्रुपद से पराजित होकर हमें लौटना पडा। मुझे क्षमा करें। द्रोण बोले नहीं। महत्व प्रयत्न का है, सफलता या असफलता का नहीं। तुमने अपने प्रयत्न की गुरु दक्षिणा दे दी है और मैंने गुरु दक्षिणा ले ली है। अब पांडवों से मुझे गुरु दक्षिणा लेनी है।

कौरवों का करुण क्रन्दन सुनकर पांडवों ने द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम किया और अर्जुन बोला- अब हमारे लिये क्या आदेश है गुरुदेव ? द्रोण बोले तुम पांचो भाइयों से भी वही गुरु दक्षिणा मांग रहा हूं यदि ला सको तो द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे पास ले आओ। अर्जुन बोला- जो आज्ञा गुरुदेव। द्रोण बोले- पर तुम किस ध्वज चिन्ह से जाओगे। युधिष्ठिर बोला हस्तिनापुर का ध्वज तो हम ले जा नहीं सकते गुरुदेव कारण यह कि हस्तिनापुर का ध्वज तो इस युद्ध में जा नहीं सकता क्योंकि गुरुदेव आपने गुरु दक्षिणा हस्तिनापुर से नहीं मांगी है। इसलिये हस्तिनापुर का ध्वज इस युद्ध में ले जाने का हम में से किसी को भी कोई अधिकार नहीं है। दुर्योधन बोला उसका अधिकार हमें था। भीम बोला तुमने उसका बडा मान रखा। क्षमा चाहता हूं गुरुदेव पर मुझे मन में बात रखनी नहीं आती। द्रोण बोले तब तो अच्छा ही हुआ कि तुम ज्येष्ठ कौरव पुत्र नहीं हो परन्तु युधिष्ठिर ने ठीक ही कहा है कि हस्तिनापुर से कोई मैंने गुरु दक्षिणा नहीं मांगी है। हस्तिनापुर के ध्वज पर न तो युधिष्ठिर का ही अब तक कोई अधिकार है और न ही दुर्योधन का इसलिये हस्तिनापुर का ध्वज क्यों जाये ? दुर्योधन तम तमाकर बोला आपको तो इन्ही की बात अच्छी लगती है गुरुदेव। परन्तु ये चाहे जिस ध्वज की छाया में जाये लेकिन ये युद्ध में जीत नहीं पायेंगे क्योंकि जो युद्ध मैं नहीं जीत पाया वो यह क्या जीत पायेंगे ? द्रोण बोले- दुर्योधन तुम कोई काल नहीं हो। केवल एक राजकुमार हो इसलिये भविष्य के बारे में कुछ नहीं जानते हो और न ही तुम आकाश हो कि तुम्हारी वाणी आकाश वाणी बनी रहे। युद्ध में कौन जीतेगा और कौन हारेगा यह निर्णय तो रणभूमि में ही हो सकता है। जब मनुष्य यह नहीं जानता कि उसका हित क्या है और अहित क्या है तो वह अपने मित्र और शत्रु की परख क्या करेगा ? युधिष्ठिर बोले मुझे विभाजन और विखंडन अच्छा नहीं लगता आचार्य? हम सब मिलकर क्यों नहीं रह सकते। युधिष्ठिर की निर्मलता द्रोण के हृदय को छू गई और लगा कैसा अनासक्त है यह, निर्लोभी और निराभिमानी। इसे विभाजित मानवता अच्छी नहीं लगती चाहे वह उसके अपने ही हित में क्यों न हो। वह अपने स्वार्थ के लिये भी कभी भी मानवता का अहित नहीं कर पायेगा।

अर्जुन ने गुरुदेव द्रोण को प्रणाम किया गुरु ने प्रस्थान के लिये आशीर्वाद और आज्ञा दी। विजयी भव का आशीर्वाद लेकर अर्जुन चला। सबसे आगे पदाति भीम था जो प्राय: अतिशीघ्र दौडने की गति से हाथ में गदा लिये चल रहा था। उसके वेग में आतुरता थी। उसके पीछे पीछे अर्जुन का रथ चल रहा था। अर्जुन के हाथ में धनुष तथा कन्धोंपर तूणीर टंगा था। रथ के पिछले भाग में अनेक शस्त्रास्त्र रखे हुये थे। नकुल और सहदेव अपने अपने अश्वोंपर अर्जुन के साथ-साथ उसके रथ के पिछले पहियों के रक्षक के रूप में चल रहे थे। अर्जुन अनुशासित सेनानियों के रूप में योजना बद्ध तरीके से व्यूह बनाकर युद्ध के लिये जा रहे थे। वे अलग-अलग योद्धाओं के रूप में नहीं बल्कि एक समग्र सैनिक अभियान के रूप में आगे बढ रहे थे। भीम आगे आगे अर्जुन के रथ के लिये मार्ग प्रशस्त कर रहा था। ये सब द्रुपद की राजधानी में पहुंच गये और द्रुपद को युद्ध के लिये ललकारा। द्रुपद ने देखकर बोला अब की बार केवल पांच और अपनी सेना को आक्रमण कहकर आदेश दिया और हंसने लगा।

अभी द्रुपद आदि अपने भाइयों सहित कौरवों को हरा कर हर्षनाद कर ही रहे थे कि अर्जुन का रथ सभी दिशाओं को गुंजायमान करता हुआ वहां आ पहुंचा। भीमसेन दण्डपाणि काल के समान हाथ में गदा लेकर द्रुपद की सेना के भीतर घुस गये और गदा का प्रहार करने लगे। भीम हाथी, घोडे, रथ और पैदल समस्त सेना का संहार करने लगे।

अर्जुन के बाणों का जाल ऐसा फैला कि द्रुपद के सारे बाण उसमें उलझ कर रह गये। अर्जुन का रथ क्या था जैसे यम का पाश ही था जिस ओर बढ जाता उस ओर से द्रुपद अपने यौद्धाओं को हटा लेता था। द्रुपद का छोटा भाई सत्यजित युद्ध का सामना करने आया। पांचालों की ओर से लडनेवाले अनेक योद्धा कोई प्रशिक्षित सैनिक नहीं थे। वे सामान्य प्रजाजन थे। वे अपने युद्ध ज्ञान से नहीं अपने साहस से ही पांडवों के प्रहार का सामना कर रहे थे। अर्जुन के बाणों से सत्यजित के धनुष की प्रत्यन्चा टूट गई। घोडे भी क्षत विक्षत हो गये। अर्जुन ने सत्यजित को बाण सन्धान का अवसर ही नहीं दिया। अब सत्यजित की स्थिति और भी असुरक्षित होती जा रही थी। द्रुपद के मन में पांडवों के प्रति प्रशंसा का भाव जागा। कहां ये दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुशासन और विकर्ण अपनी समस्त सेना के साथ डरे हुये चूहे के समान भाग गये और कहां ये पांचो भाई अपने बल, वीरता और रण कौशल में निपुण पांचालों के काल बने हुये। पांचाल सेना ध्वस्त होने लगी। अर्जुन के बाणों ने द्रुपद के रथ का छत्र काट डाला। अर्जुन ने द्रुपद के रथ की वल्गायें भी काट दी। द्रुपद ने रथ छोडकर गदा उठाने के लिये हाथ बढाया ही था कि अर्जुन तीव्र गति से द्रुपद के रथ पर कूद आया और बोला महाराज द्रुपद हमारा आपसे कोई बैर नहीं है। मैं आपका कोई अहित भी नहीं करना चाहता। किन्तु मैं गुरुदक्षिणा के दायित्व में बन्धा आपको बन्दी बनाने के लिये बाध्य हूं। कृपया अपनी सेना को आदेश दें कि पीछे हट जाये। अन्यथा रक्तपात न हो। मैं आपको आचार्य द्रोण के नाम पर बन्दी बनाता हूं।

द्रुपद के सामने स्थिति पूर्णतया: स्पष्ट थी। वह पराजित ही नहीं बन्दी भी हो चुका था। अर्जुन द्रुपद को बांधकर अपने गुरु द्रोण के पास ले गया। बिना न्याय प्रिय हुये, राजा लोकप्रिय नहीं हो सकता। प्रजा में भय तथा लोभ के माध्यम से उत्पन्न की गई लोकप्रियता न तो गहरी और गम्भीर होती है, न दूरगामी तथा दीर्घव्यापी। ऐसी लोकप्रियता से थोडे समय के लिये प्रसन्नता तो मिल सकती है पर प्रजा का बलिदान प्राप्त नहीं हो सकता। कटुता कई बार सत्यवादिता से उत्पन्न हो जाती है। प्रभंजन जब चलता है तो कभी क्षणभर रूक कर यह नहीं सोचता कि उसके मार्ग में कितने वृक्ष उखडे, कितनी शाखायें टूटी और कितने पत्ते नष्ट हुये ? द्रुपद का पराभव हुआ और द्रुपद बन्दी बना लिये गये।

द्रुपद का घमंड चूर चूर हो गया। द्रुपद का धन भी छीन गया। अब वे सर्वथा द्रोण के अधीन हो चुके थे। उनकी यह स्थिति देखकर द्रोण बोले मैंने अपने शिष्यों द्वारा बलपूर्वक तुम्हारे देश और नगर को जीत लिया है और अब तुम्हारा जीवन मेरे अधीन है। क्या आज मैं तुम्हे अपना मित्र कह सकता हूं ? परन्तु तुम तो मेरे शिष्यों के बराबर भी नहीं हो। फिर तुम्हारे और मेरे बीच मित्रता कैसी ? मैं तो आज भी वही ब्राह्मण हूं फिर भी तुम मेरे मित्र हो। तुमने तो अपना वचन नहीं निभाया। द्रुपद बोला अवश्य निभाऊंगा। द्रोणाचार्य बोले मेरा जो कुछ भी है वह तुम्हारा भी है इसलिये तुम्हारा आधा राज तुम्हें लौटाता हूं और आधा स्वयं लेता हूँ ताकि समानता हो जाये। तुम आज मेरे सामने खडे हो इसलिये तुम्हें दंड अवश्य दूंगा। तुम्हारी गौशाला में जितनी गायें है वे भी आधी आधी बटेंगी और उस विभाजन के पश्चात तुम्हारे हिस्से की जो गायें होगी उसमें से एक गाय मैं अवश्य लूंगा और वह एक गाय लेकर मैं अपनी कृपी के पास जाऊंगा और उससे कहूंगा लो कृपी मैं अपने मित्र द्रुपद की गौशाला से वह गाय ले आया हूं। द्रुपद तुम प्राणों से निराश मत होओ। हम तो स्वभाव से ही क्षमाशील ब्राह्मण है। बचपन में हम लोग एक साथ खेला करते थे। वह प्रेम सम्बन्ध अब भी है। राजन मैं चाहता हूं कि हम लोग फिर से वैसे ही मित्र बन जायें। तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता। इसलिये मैं तुम्हारा आधा राज्य लेकर राजा हो गया। तुम

गंगा के दक्षिण तट के राजा रहो और मैं गंगा के उत्तर तट का। द्रुपद ने कहा ब्राह्मन आप जैसे पराक्रमी उदार हृदय महात्माओं से मैं प्रसन्न हूं और आपका अनन्त प्रेम चाहता हूं। अब द्रोण ने द्रुपद को मुक्त कर दिया। द्रुपद माकन्दी प्रदेश के श्रेष्ठ नगर काम्पिल्य नगरी में रहने लगे उसे दक्षिण पांचाल कहते हैं। वहां पर चर्मण्वती नदी है। इस प्रकार द्रोण ने द्रुपद को पराजित करके भी उसकी रक्षा की परन्तु द्रुपद के मन में सन्तोष नहीं हुआ और प्रतिशोध की भावना भी मन में रह गई। द्रोण उतरी गंगा तट पर द्रोणगिरी पर अहिच्छन्ना प्रदेश अहिच्छन्ना नगरी में रहने लगे। अर्जुन के पराक्रम से ही उन्हे यह राज्य प्राप्त हुआ।

द्रोणाचार्य द्रुपद से एक गाय लेकर अश्वत्थामा के साथ अपने घर कृपी के पास लौट गये। कृपी ने द्रोण का स्वागत किया। द्रोण कृपी से बोले कृपी द्रुपद की गोशाला से तो मैं गाय ले आया हूं पर समय बहुत लग गया परन्तु समय पर मेरा वश नहीं है। कृपी बोली जब प्रतीक्षा समाप्त हो जाती है तब भला किसे याद रहता है कि प्रतीक्षा में रातें कितनी लम्बी और दिन कितने कठोर होते हैं। आज तो मानो यही लग रहा है कि आप कल ही गये थे। द्रोण अश्वत्थामा से बोले तुम अपने आपको क्षत्रिय हो गये हो मत समझो। तुम आचार्य द्रोण पुत्र हो। तुम्हारा कर्तव्य है जीवन भर सीखना और जो कुछ सीखा है उसे योग्य लोगों में बांटना। प्रधान शिक्षा नहीं होती है प्रधान योग्यता है। जिस प्रकार छोटे बर्तन में नदी नहीं उंडेली जा सकती उसी प्रकार सागर से बूंद ले लेने का भी कोई अर्थ नहीं है। क्या सोच रहे हो पुत्र ? अश्वत्थामा बोला बहुत दिनों से एक प्रश्न में उलझा हुआ हूं। द्रोण बोले तुम्हारा प्रश्न गुरु से है या पिता से ? अश्वत्थामा बोला गुरु से। आपने एकलव्य से गुरुदक्षिणा में उसका अंगूठा क्यों लिया ? क्या इसलिये कि वो क्षत्रिय नहीं था। द्रोण बोले क्षत्रिय तो तुम भी नहीं हो पुत्र। अश्वत्थामा बोला परन्तु ब्राह्मण तो हूं। द्रोण बोले पहले मनुष्य आया कि जातियां ? केवल जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिस दिन ब्राह्मण अपना कर्तव्य जान जायेगा वह ब्राह्मण नहीं रहेगा। एकलव्य का अंगूठा मैंने इसलिये नहीं लिया था कि वो उच्चजाति का नहीं। विद्या पर किसी जाति का अधिकार नहीं है और न ही हम किसीपर विद्या का द्वार बन्द कर सकते हैं। एकलव्य का अंगूठा मैंने इसलिये लिया था जो विद्या दी ही नहीं, वो चुराई थी इसलिये उस विद्या पर उसका कोई अधिकार नहीं। यदि वो कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय भी रहा होता तब भी मैं उससे उसका अंगूठा मांग लेता।

दिये बिना गुरु दक्षिणा, विद्या धन निसार, जो औरों की सम्पदा औरों का अधिकार।

४१) युधिष्ठिर का युवराज पद पर अभिषेक

वैशम्पायन कहते है जनमेजय जिस प्रकार युधिष्ठिर का जिन परिस्थितियों में युवराज पद पर अभिषेक हुआ वह कथा विस्तृत से सुनो। सहसा भीष्म का चिंतन शुरु हुआ कि तत्काल राजसत्ता धृतराष्ट्र के हाथ से लेकर युधिष्ठिर को दे देनी चाहिये। उन्हे यह निर्णय बहुत पहले लेना चाहिये था। सम्राट पान्डु का यह ज्येष्ठ पुत्र धर्मत: हस्तिनापुर के सिंहासन का अधिकारी है। वह वयस्क भी है और अपनी शिक्षा भी पूर्ण कर चुका है तथा राज सन्चालन में भी अपनी नीति से समर्थ होगा। युधिष्ठिर कुरु राजकुमारों में ज्येष्ठ भी है और सबसे योग्य और समर्थ भी। उसका युवराज पदपर राज्याभिषेक करना चाहिये। उसके राज्याभिषेक में विलम्ब का अर्थ है दुर्योधन को उसकी चांडाल दुर्नीतियों की लताओं को हस्तिनापुर के वटवृक्ष पर और अधिक फैलने का अवसर देना। हस्तिनापुर और भरत वंशियों के हित में यहीं है कि दुर्योधन के षडयन्त्रों को शान्त किया जाये। धृतराष्ट्र की इस संशय ग्रस्त अन्धी सत्ता कामना को सत्ता से दूर कर युधिष्ठिर की निर्मल, निष्कलुष और स्थायी सत्ता स्थापित की जाये।

रंगशाला में अनपेक्षित घटनाओं के होने में धृतराष्ट्र अत्यन्त बेचैन रहने लगा। धृतराष्ट्र को लग रहा था कि रंगशाला में दुर्योधन सर्व श्रेष्ठ योग्य सिद्ध होगा और राजमुकुट दुर्योधन को प्राप्त होगा। यह धृतराष्ट्र का स्वप्न था वह स्वप्न होकर ही रह गया। उसका भाग्योदय कभी नहीं होगा वह बार बार मन में दुर्योधन से भी अधिक निराश होकर दुखी रहने लगा।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में गान्धारी के पास आया और बोला गान्धारी। गान्धारी ने प्रत्युत्तर दिया आर्यपुत्र आज आपने आने में

इतना विलम्ब क्यों किया। धृतराष्ट्र बोला भ्राता शकुनि आये थे और कहने लगे कि मैं उनके साथ उनके भवन पर चलूं तो मैं उनके साथ चला गया था। गान्धारी बोली उनके साथ जाने में तो कोई हर्ज और आपत्ति ही नहीं है परन्तु कहीं ऐसा न हो कि आप वहां जाकर स्वयं अपने भीतर का मार्ग भूल जाओ। धृतराष्ट्र बोले- मेरे भीतर अब है ही क्या ? कि वहां लौट आने का मन चाहे ? मेरा हृदय तो सूखे वृक्षों का एक वन है, धूप ही धूप है, तृष्णा ही तृष्णा। आस की एक ओस भी नहीं है जिसे चाटकर मेरी अभिलाषा जीवित रह सके। मैं मन ही मन यह सोच कर प्रसन्न हो रहा था कि शिक्षा समापन समारोह में मेरा प्रिय दुर्योधन सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगा और मेरा यह मुकुट उसके द्वारा मेरे पास लौट आयेगा परन्तु आज तो मेरी आँखों में बसा हुआ अन्धकार और भी गहरा, घना होता जा रहा है। लगता है मेरे भाग्य में कोई सूर्योदय है ही नहीं। यदि कहीं मुझे मेरा भाग्य मिल जाये तो उसे मैं अपनी भुजाओं में जकडकर मार डालूं। गान्धारी बोली आर्यपुत्र आप थक गये हैं विश्राम कर लीजिये। धृतराष्ट्र बोला औरों के विषय में तो मैं कुछ कह नहीं सकता परन्तु सपने देखने से मैं कभी थकता नहीं क्योंकि सपनों के अतिरिक्त तो मैं कुछ और देख भी नहीं सकता। इसलिये जो कुछ देख सकता हूं वो मुझे देख लेने दो गान्धारी। गान्धारी बोली- ज्येष्ठ कुरु पुत्र को यह कहते हुये शोभा नहीं देता। धृतराष्ट्र बोला मत कहो मुझे ज्येष्ठ कुरु पुत्र। यह मुझे व्यंग लगता है। भाग्य ने मेरे साथ बहुत बडा अन्याय किया है गान्धारी। तुम्ही बताओ अब मैं न्याय मांगने कहा जाऊं ? गान्धारी बोली न्याय तो भगवान ही दे सकता है आर्यपुत्र ?

यादववंशी श्रीकृष्ण बलराम के साथ उज्जयिनी में गुरु सांदीपन के आश्रम में अपनी शिक्षा पूरी कर चुके और गुरु से विदा लेकर मथुरा लौटनेवाले हैं इतने में ही गुरु परशुराम सांदीपन के आश्रम में आये। श्रीकृष्ण ने परशुरामजी को प्रणाम किया और परशुरामजी ने उन्हे आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। और कहा यह सम्भालो अपना सुदर्शन चक्र। सम्भालो अपने इस युग को। मैंने तो मर्यादा पुरुषोत्तम के काल में ही अवकाश ग्रहण कर लिया था पर क्षत्रिय एक बार फिर से उत्तेजित उग्र हो गये है। क्षत्रिय होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि किसी को समाज की छाती में उतर जाने का अधिकार मिल गया हो। तुमने माखन बहुत खा लिया, बहुत मुरली बजाली। लीलायें बहुत करली वासुदेव श्रीकृष्ण। अब वो कार्य करो जिसके लिये तुम पृथ्वीपर आये हो। पहले मथुरा जाओ। इस समय जरासंध आक्रमण पर आक्रमण कर रहा है। कंस वध किया तुमने और भुगत रही है मथुरा नगरी। श्रीकृष्ण बोले जो आज्ञा गुरुदेव।

धर्म कर्म निश्चित करो, सुनकर समय की पुकार, जग में आये किसलिये उसका करो विचार।

महाभारत की यह कथा अन्धेरे से उजाले, असत्य से सत्य के साथ झूझने की कथा है। एक और श्रीकृष्ण है, सत्य और उजाले की जड भी और वृक्ष भी दूसरी ओर हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र है, असत्य और अन्धकार की जड तथा दुर्योधन है उस जड का परिणाम असत्य और अन्धकार का वृक्ष। तो वास्तव में यह श्रीकृष्ण और धृतराष्ट्र के टकराव की कथा है। क्रोध की कटार क्रोध की बुद्धि को काट सकती है। युद्ध भी तभी होना चाहिये जब अन्य सभी मार्ग बन्द हो चुके हों।

जब कृष्ण बलराम मथुरा लौटे तो मगध नरेश जरासन्ध मथुरा पर आक्रमण कर रहा था और कृष्ण बलराम ने सत्रह बार अपने सुदर्शन चक्र की सहायता से जरासन्ध को पराजित किया। कृष्ण ने महाराज उग्रसेन की सभा में सुझाव दिया कि यदि यादव अपनी सुरक्षा चाहते हैं तो उन्हे शीघ्र ही मथुरा छोड देनी चाहिये। सभी श्रीकृष्ण से सहमत हुये। श्रीकृष्ण ने देव शिल्पी विश्वकर्मा को बुलाया और आज्ञा दी पश्चिमी तट पर सागर के बीचों बीच द्वारिका नगरी का निर्माण किया जाये। मथुरा वासियों ने श्रीकृष्ण से कहा यदि हम मथुरा छोड देंगे तो जरासंध ये समझेगा कि हम डर कर युद्ध छोडकर यहां से भाग गये है तब से श्रीकृष्ण का एक नाम रणछोड दास भी हुआ। कृष्ण सब मथुरावासियों के सहित रातोंरात द्वारिका में जाकर बस गया।

देवताओं की नगरी तो समय की सीमा के पार है। शायद वहां का एक क्षण देवताओं के एक वर्ष से भी बडा होता है। क्योंकि विश्वकर्मा को द्वारिका के निर्माण में देरी नहीं लगी। द्वारिका यदुवंशियों से बस गई तो ब्रजभूमि इससे बहुत दूर लेकिन ब्रजभूमि

के एक टुकडे से चारों ओर से सुरक्षित थी। जिधर देखो चारों ओर से सागर ही सागर। हर तरफ चैन और सुख के फंवारे छूटते हुये। उग्रसेन की राजसभा सुधर्मा सभा लगी हुई। बलराम बोले आखिर तुमने चाहा और वह कर भी लिया तुमने कृष्ण और नाम भी रणछोड दास पड गया। यह मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। श्रीकृष्ण बोले दाऊ जहां शान्ति होती है वहीं रति होती है और वही पर उन्नति होती है। मैं नाम देखूं या परिणाम। इतने में ही शाल्यकुमार सात्यकि हस्तिनापुर से लौटकर महाराज उग्रसेन की सभा में आये और महाराज उग्रसेन को प्रणाम किया।

वसुदेवजी ने पूछा हस्तिनापुर से कब आये सात्यकि। सात्यकि ने उत्तर दिया कल सायंकाल महाराज। कृष्ण बोले हस्तिनापुर के क्या समाचार हैं सात्यकि ? सात्यकि बोले वैसे तो सब कुशल चल रहा है वासुदेव कृष्ण परन्तु जीवन धारा के तल के नीचे धारा धाराओं से टकरा रही है। वासुदेव बोले ऐसा क्यों सात्यकि। सात्यकि ने कहा भरतवंश की परम्परा कहती है कि राजकुमार युधिष्ठिर को युवराज होना चाहिये। जन समुदाय भी यहीं चाहता है। वसुदेव जी बोले तो फिर रूकावट क्या है ? सात्यकि ने कहा हस्तिनापुर के राज सिंहासन और महाराज धृतराष्ट्र के हृदय में खींचा तानी चल रही है। सिंहासन कहता है कि उसे युधिष्ठिर चाहिये और महाराज का हृदय कहता है कि युवराज के स्थान पर केवल राजकुमार दुर्योधन का ही अधिकार है क्योंकि वे ज्येष्ठ कुरुपुत्र धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र है। महाराज उग्रसेन बोले ये तो अच्छा नहीं हो रहा है। गंगा पुत्र भीष्म इसमें क्यों नहीं हस्तक्षेप करते ? श्रीकृष्ण बोले महाराज इस समस्या में वो विवश है। वो निर्णय ले ही नहीं सकते। वसुदेवजी बोले तो फिर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य ये सब क्यों मौन हैं ? कृष्ण ने कहा ये सबके सब विवश हैं। यदि किसी राज्य में अवस्थायें योग्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति का विवश बना दें तो समझ लेना चाहिये कि संकट उस राज्य के आस पास ही है।

हस्तिनापुर का राज सिंहासन अपने भावी युवराज की तरफ आंखे उठाकर देख रहा था। प्रजा और राज सिंहासन की मांग थी भ वी युवराज युधिष्ठिर हों परन्तु धृतराष्ट्र का मन दुर्योधन के लिये बार बार आवाज कर रहा था कि ज्येष्ठ कुरुपुत्र धृतराष्ट्र है और उसका ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन है। प्रतिज्ञाबद्ध भीष्म इस विषय में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने में असमर्थ थे। युवरा किसको बनाना है यह निर्णय हस्तिनापुर नरेश सम्राट धृतराष्ट्र का है कि युवराज किसे बनाया जाय ? एक दिन धृतराष्ट्र के महल में भीष्म पितामह आये। वहां पर शकुनि उपस्थित थे। भीष्म धृतराष्ट्र से बोले मेरी समझ में यह नहीं आता कि हस्तिनापुर को उसका युवराज देने में विलम्ब क्यों ? शकुनि बोला- यह तो कोई साधारण समस्या नहीं है जो आसानी से हल हो जाये तातश्री। भीष्म बोले यह प्रश्न मैंने महाराज से किया था गान्धार कुमार। शकुनि बोला यह उत्तर भी मैंने महाराज की ओर से ही दिया तातश्री। भीष्म बोले क्या महाराज मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते थे ? शकुनि बोला आपके प्रति शायद उनकी श्रद्धा ही उनको ऐसा करने से रोक रही है। यह भी आप भूल रहे है कि आपने आपके वचन की डोरी से हस्तिनापुर राजसिंहासन से स्वयं को बांध रखा है तातश्री। परिणाम यह है कि आप सिर्फ हस्तिनापुर नरेश का साथ दे सकते हैं लेकिन कोई प्रश्न नहीं कर सकते। भीष्म बोले मैंने दिये हुये मेरे सारे वचन मुझे याद हैं गान्धार कुमार और मुझे यह भी याद है कि मैंने कौनसा वचन कब और किसे दिया था। मुझे आपकी निष्ठा के विषय में यह ज्ञान तो नहीं है कि वो किसके प्रति है परन्तु मेरी निष्ठा हस्तिनापुर राज्य और राज सिंहासन के प्रति है और मुझे अटल विश्वास है कि महाराज को मेरी निष्ठा पर पूर्ण विश्वास है। धृतराष्ट्र बोले ये आप क्या कह रहे हैं तातश्री। आप तो आदेश करें। भीष्म बोले आदेश देना मेरा कर्म नहीं है वत्स। हस्तिनापुर के नरेश तुम हो और उसे योग्य युवराज देना तुम्हारा कर्तव्य है। यह निर्णय लेते समय इस बात को ध्यान में रखना कि राजनीति का आधार पुत्र कल्याण नहीं जन कल्याण हो और यह भी समझ लेना कि जन समुदाय की वाणी को न सुनने का परिणाम बुरा होता है। कही ऐसा न हो कि तुम्हारी अभिरूचि जन समुदाय के आक्रोश से टकरा जाये फिर भी यह निर्णय लेना तुम्हारा काम है कि हस्तिनापुर का युवराज किसे बनाया जाये और यह कहकर भीष्म चले गये।

धृतराष्ट्र बोले भ्राता शकुनि क्या तातश्री यह बतला गये कि हमने यदि दुर्योधन को युवराज बनाया तो राज्य में विद्रोह हो जायेगा। शकुनि बोला वो यह बता नहीं गये वो यही कह गये हैं। वो यह धमकी दे गये हैं महाराज। धृतराष्ट्र बोला तुम्हारी बात मैं मान ही नहीं सकता। तातश्री तो धमकी देना जानते ही नहीं। उन्होने तो हमें यही शिक्षा दी कि धमकी देना तो कायरों का काम है और यह नेत्रहीन धृतराष्ट्र इतना तो देख ही सकता है कि वो कायर नहीं। इसलिये यदि वो यह कह गये कि विद्रोह होने का डर है तो मानलो कि विद्रोह का डर अवश्य है। अपने गुप्तचरों द्वारा यह पता लगाओ कि इस डर की जडें कितनी गहरी है? शकुनि बोला जो आज्ञा महाराज।

विदुर कुन्ती के आवास पर आये। कुन्ती ने विदुर से पूछा पितृव्य भीष्म क्या कहते हैं विदुर ? क्या उन्होने भी न्याय का पक्ष छोड दिया है ? क्या उन्हे नहीं पता कि कुन्ती के पुत्रों के साथ न्याय नहीं हो रहा है ? उनके मन में तो कोई पक्षपात नहीं रहा। विदुर बोले भाभी पितृव्य भीष्म सब कुछ देख रहे हैं समझ रहे हैं उन्होंने राजसभा में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक का प्रश्न उठाया था और धृतराष्ट्र से चर्चा भी की है। कुन्ती बोली तो फिर राजा धृतराष्ट्र का क्या कहना है ? विदुर हंसकर कुन्ती से बोला राजा राजनीति का बडा ही चतुर खिलाडी है। तातश्री भीष्म की बात सुनकर बडी गम्भीरता से बोला हां युवराज का अभिषेक हो जाना चाहिये पर उसने एक बार भी यह नहीं कहा कि युवराज कौन होगा ? धृतराष्ट्र अपनी इच्छा से तो युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक कभी नहीं करेगा। वह इसे तब तक टालता रहेगा जब तक कोई अवसर या कारण न उपस्थित हो जाये ताकि वह दुर्योधन को युवराज घोषित कर सके। हमारे चारों ओर राजनीतिक उथल पुथल का युग है। सिद्धान्त के स्थान पर स्वार्थ से आपसी सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। विचित्र असहायता का परिवेश है। प्रत्येक राजा अपना पक्ष अपनी स्थिति दृढ करने के लिये अपने सहायक खोज रहा है। जरासंध ने अपने चारों ओर राजाओं का एक शक्तिशाली गुट बनाया है तथा जरासंध उग्र हो रहा है, वह प्राय: सारे राजाओं को निमन्त्रण दे रहा है परन्तु उसकी मित्रता का अर्थ है उसकी अधीनता। भीष्मक, दमघोष, शाल्व, दन्तवक्र ये सब जरासंध के साथ हैं। इसीलिये दुर्योधन सम्भवत: जरासंध की मित्रता का प्रयत्न कर रहा है। कुन्ती बोली- जरासन्ध तो कंस का श्वसुर हैं। और मेरे भतीजे श्रीकृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया है तब से यादवों और जरासंध की तो शत्रुता है। क्या दुर्योधन यादवों के शत्रु जरासंध से मित्रता करना चाहते हैं ? क्या तातश्री भीष्म को यह सब ज्ञात है ? विदुर बोला शायद नहीं। कुन्ती बोली तो फिर तुमने उन्हे बताया क्यों नहीं ? विदुर बोला- तातश्री भीष्म गुप्त सूचनायें गोपनीय नहीं रखते। वे गोपनीयता पर कभी विश्वास ही नहीं करते। भीष्म अत्यन्त सिद्धान्तवादी व्यक्ति है। उनका पालन पोषण पर्याप्त भिन्न वातावरण में हुआ था। जो सिद्धान्त व संस्कार उनको उस समय प्राप्त हुये थे उनपर उनकी आस्था रूढिवादिता की गहरी छाप है। वे मानते है कि सिद्धान्त ही धर्म की अन्तिम और चरम व्याख्या है। इसलिये वे न तो कुछ सुनने को प्रस्तुत हैं और न ही उसमें कोई परिवर्तन लाने को। वे चाहते है किसी भी परिस्थिति में पारिवारिक शान्ति बनी रहनी चाहिये। किसी भी मूल्य पर एकता बनी रहे। जैसे उन्होने अपने जीवन काल में बनाये रखी चाहे उसके लिये एक व्यक्ति अधिकारों से वंचित ही क्यों न हो जाये ? जैसे वे हुये। एक भाई को दूसरे भाई के लिये त्याग करना चाहिये जैसे उन्होने किया। इसलिये वे कभी नहीं मानते कि एक भाई दूसरे भाई का कोई अनिष्ट कर सकता है। वे यह मानते है कि व्यक्ति को अपने वचन की रक्षा प्रत्येक परिस्थिति में करनी चाहिये जैसे वे कर रहे हैं। वे यह नहीं देख रहे हैं कि उन्हे ही उनके वचन के बन्धनों में बांधकर कितनी उलझने खडी की है। वे अपने समाज द्वारा बनाये गये नियमों को ही धर्म मानते हैं। इसलिये वे समयानुसार उनपर पुनर्विचार नहीं करते। मेरी उनके लिये कोई निन्दा नहीं है। मैं उन्हे आदर्श, सिद्धातवादी, न्यायी तथा धार्मिक व्यक्ति मानता हूं परन्तु व्यवहार कुशल नहीं। धर्म की मौलिक अवधारणा उनके पास नहीं है। जब उनके धर्म का रथ चलता है तब वे यह नहीं देखते कि उनके रथ के पहिये के नीचे आकर कौन कौन दब गया है ? उनके मन में न कलुष है और न ही कोई दुर्भावना। वह व्यक्ति बहुत ही सात्विक और निर्मल होते हुये भी अपने समय के चिन्तन और

सिद्धान्तों का बन्दी है। वह अब परिवर्तित नहीं हो सकता। वह अपने समय की रूढियों को काट नहीं सकता। भीष्म पिता की नीति को स्वीकार करना हमारे लिये सम्भव नहीं हो रहा। हम उनकी सिद्धान्तवादिता का सम्मान करते है। त्याग एक उच्च मार्ग है, आदर्श है पर दुर्योधन जैसे व्यक्ति के लिये त्याग करना समाज के लिये हितकर नहीं है। हम सब भाईसे प्रेम करते हैं किन्तु दुर्योधन जैसे भाई से सावधान भी रहना पडेगा हम सब हस्तिनापुर की रक्षा करेंगे किन्तु धृतराष्ट्र और हस्तिनापुर को अलग अलग तराजू में तौलेंगे।

कुन्ती के मन का बोझ अब असह्य हो गया और बोली विदुर मैं आजतक यही समझ रही थी कि हस्तिनापुर में मैं और मेरे पुत्र अकेले हैं सिवाय तातश्री और तुम्हारे। मैं तो अपने पुत्रों को अपने आंचल की छांव में छिपाये सिर झुकाये चुपचाप बैठी थी कि इस बुरे समय की लहर हमारे सिर पर से निकल जायेगी। मेरे पुत्र समर्थ होंगे तब अपना सिर उठाकर अपना अधिकार मांगेंगे लेकिन लग रहा है कि समय के इस अन्तराल के पश्चात भी हम समर्थ और शक्तिशाली होनेपर भी असमर्थ और असहाय हो रहे है। विदुर बोला आपके पांचो पुत्र तरूण व समर्थ है इसलिये हम असमर्थ नहीं है भाभी। तातश्री का संरक्षण तो आपको पहले भी प्राप्त था और अब भी। इसलिये चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। हमारी नीति दुर्योधन की नीति से ऊपर है।

युधिष्ठिर बोला क्या हम सब भी दुर्योधन की नीति का अनुसरण करें काका ? विदुर बोला नहीं युधिष्ठिर यह मैं कभी नहीं कहूंगा यदि तुम भी दुर्योधन की ही नीति अपना लोगे तो नीति, न्याय, धर्म और मानवता हस्तिनापुर किसके पास जायेगा ? यदि अधर्म संगठित हो सकता है तो धर्म को भी संगठित होना चाहिये। अन्याय और स्वार्थ संगठित होकर न्याय तथा सर्वहित पर प्रहार करते हैं किन्तु न्याय और सर्वहित न तो कभी संगठित होते हैं और न ही किसीपर प्रहार करते हैं और न ही उसे उकसाते हैं। यह कहकर विदुर रथ पर सवार होकर वहां से चला गया।

शकुनि ने लोगों की भीड में अपना गुप्तचर भेजा यह जानने के लिये कि जनमत क्या चाहता है। बाहर रास्तों पर जन समुदाय इकट्ठा था। शकुनि का चर वहां पहुंचा। उसने लोगों को आपस में बातें करते सुना। एक ने कहा हमने तो सुना है महाराज पर बहुत बडा दबाव डाला जा रहा है कि दुर्योधन को युवराज बनाया जाय। दूसरे ने कहा यह दबाव कौन डाल रहा है ? कोई हस्तिनापुर का बहुत बडा शत्रु ही होगा। महाराज कुमार युधिष्ठिर के रहते राजकुमार दुर्योधन को कौन युवराज बनायेगा ? उनके हथेली में तो छेद है वो तो जिसे भी आशीर्वाद दे देते हैं उसकी तो झोली भर जाती है। अब तुम्ही बताओ कुमार दुर्योधन कैसे युवराज बन सकते हैं ? एक ने कहा यदि ऐसा हुआ तो पूरे राज में विद्रोह हो जायेगा। दूसरे ने कहा भैया राजकुमार के कार्यो में बोलनेवाले हम कौन ? राज उनका युवराज उनका। दूसरे ने कहा यह कैसे कहते हो भैया न राज उनका और न ही युवराज उनका। राज्य कोई चार पाई तो है नहीं जो बिछाई और उस पर बैठ गये। सारी भूमि तो गोपाल की है भैया और युवराज हम लोगों का है। महाराज कौन होते हैं किसी को युवराज बनानेवाले ? यदि वो ऐसे करेंगे तो बडा अन्याय होगा भीड में से किसी ने कहा तुम ठीक कह रहे हो भैया। किसी ने कहा निर्णय लेने में महाराज को बडी कठिनाई हो रही है भैया। युवराज किसको बनाया जाये ? एक तरफ अनुज का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर और दूसरी ओर स्वयं का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन। तब किसी ने कहा इसमें विचारने की बात ही क्या है भैया ? क्यों ? अरे भैया हम साधारण जनों को ही पता है कि युवराज होने योग्य तो केवल कुमार युधिष्ठिर ही हैं। वे ज्येष्ठ पांडु पुत्र ही नहीं ज्येष्ठ कुरुपुत्र भी हैं और योग्य भी। यदि महाराज के स्थान पर हम होते तो तुरन्त ही राजकुमार युधिष्ठिर को युवराज नियुक्त कर देते। शकुनि का चर उस जन भीड में बोला परन्तु राजकुमार दुर्योधन भी हर दृष्टि से योग्य है। भीड में से किसी ने कहा क्या कहा तुमने ? शकुनि के गुप्तचर ने उत्तर दिया कुछ नहीं कुछ नहीं। अच्छा अब हम चलते है। और दूसरी एकत्रित भीड में जा पहुंचा। उसमें से किसी ने कहा पता नहीं कहां से चले आते है लोग राजकुमार दुर्योधन को युवराज बनाने। न सोचते हैं न समझते हैं। गुप्तचर ने समझ लिया कि पूरा जन समुदाय युधिष्ठिर के युवराज बनने के पक्ष में है। वह सीधा शकुनि के भवन में गया जहां शकुनि पांसों का खेल खेल रहा था और बोला गान्धार कुमार की जय हो। शकुनि बोला- हां कहो तो क्या

समाचार लाये हो ? गुप्तचर बोला- महाराज समाचार तो शुभ नहीं है। शकुनि बोला- तो फिर क्यों आये हो ? चले जाओ। अब तुम जा सकते हो। मैं देख लूंगा अब कौनसा खेल खेलना है। यह कह कर शकुनि भी दुर्योधन के कक्ष की ओर चला।

दुर्योधन अपने कक्ष में सो रहा था। जाकर शकुनि ने उसे जगाया और बोला उठो भान्जे। जागो दुर्योधन। यह भी कोई सोने का वक्त है ? दुर्योधन उठा और बोला मामाश्री आप और इस समय। शकुनि बोला- इतनी गहरी नींद नहीं सोया करते वत्स। सर के ऊपर का आकाश और पांव के नीचे की धरती के सरक जाने का पता ही नहीं चले। दुर्योधन बोला क्या कोई दुर्घटना हो गई है ? शकुनि बोला हुई तो नहीं पर होने वाली अवश्य है। तुम्हारे पिताश्री के ऊपर दबाव डाला जा रहा है कि वो कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को ही युवराज नियुक्त करें। दुर्योधन बोला असम्भव। पिताश्री मेरे साथ यह अन्याय नहीं कर सकते। शकुनि बोला- वत्स दुर्योधन तुम यहां चैन की नींद सोते रहोगे और जब तुम्हारी आंख खुलेगी तब देखोगे कि हस्तिनापुर का राजमुकुट गंगापुत्र भीष्म के प्रिय युधिष्ठिर के सिर की शोभा बढा रहा है। दुर्योधन बोला- तो मैं क्या करूं मामाश्री ? शकुनि बोला अपने सोते हुये पिता को जगाओ। उनसे अपने अधिकारों की मांग करो। ये अधिकार तुम्हे लेने ही पडेंगे भान्जे छीन लो अधिकार।

धृतराष्ट्र के कक्ष में गान्धारी और धृतराष्ट्र बैठे हुये है। वहां पर दुर्योधन पिताश्री पिताश्री चिल्लाते हुये आता है। धृतराष्ट्र ने पूछा क्या हुआ वत्स ? दुर्योधन बोला मैं भी यही पूछने आया हूं कि बात क्या है ? यह मैं क्या सुन रहा हूं पिताश्री भ्राता युधिष्ठिर को युवराज नियुक्त करनेवाले है। और वो भी किसी दबाव में आकर। वो कौन है जो हस्तिनापुर नरेश पर दबाव डाल सकता है? धृतराष्ट्र बोला इतने उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं है पुत्र। दुर्योधन बोला उत्तेजित होने की ही तो बात है पिताश्री। क्या यह जानकर भी नरेश के ज्येष्ठ पुत्र को उत्तेजित नहीं होना चाहिये कि स्वयं उसका पिता उसका अधिकार किसी दूसरे को देने जा रहा है। नरेश का ज्येष्ठ पुत्र मैं हूं और युवराज होगा कोई और ? यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। गान्धारी बोली- भरतवंशियों में केवल ज्येष्ठ पुत्र होना ही पर्याप्त नहीं पुत्र। स्वयं महाराज भरत ने.... दुर्योधन बीच ही बोल उठा महाराज भरत की बात मत कीजिये माताश्री, वो तो शताब्दियों पुरानी बात है। यदि समय पीछे मुडकर देखता रहेगा तब तो समय आगे बढ ही नहीं पायेगा। जिस राज सिंहासन पर पिताश्री का अधिकार था वो तो विदुर ने नीति का बाण चलाकर पिताश्री का अधिकार वंचित कर दिया। नेत्रहीन पिताश्री हैं, मै तो नेत्रहीन नहीं हूं और मैं महाराज विचित्रवीर्य के ज्येष्ठ पुत्र का ज्येष्ठ पुत्र हूं और इस नाते हस्तिनापुर के राजमुकुट पर पहला अधिकार मेरा है और किसी अन्य का युवराज होना मेरा अपमान है। आपने अपने बेटे को अपमान सहना नहीं सिखाया है। धृतराष्ट्र बोला राजनीति का सबसे पहला और महत्वपूर्ण नियम यह है पुत्र कि क्रोध अपने पास नहीं आने देना चाहिये क्योंकि क्रोध तो आंखों वालों को भी अन्धा बना देता है। दुर्योधन बोला देखो मैंने भी क्या भाग्य पाया है? पिताश्री जन्म से नेत्रहीन और माताश्री कर्मसे नेत्रहीन। मैं अपमान से भरा। यदि आप मेरे अधिकारों की हत्या करके सो सकते है तो सो जाइये परन्तु याद रहे कि आज राजनीति के खेल का डांव यहीं पर समाप्त नहीं होगा। गान्धारी बोली पुत्र सुनो। दुर्योधन यह कहकर तिलमिला कर झल्ला कर वहां से चला गया।

गान्धारी धृतराष्ट्र से बोली आर्यपुत्र मेरा हाथ थाम लीजिये। आज मुझे बडा डर लग रहा है। लगता है कि हम दोनों के स्नेह ने दुर्योधन को बिगाड दिया है। धृतराष्ट्र बोला नहीं ऐसा नहीं लगता। दुर्योधन ने जो प्रश्न किया है वो प्रश्न तो ठीक ही है। यदि मैं नेत्रहीन नहीं रहा होता तो अनुज पांडु को यह राजसिंहासन क्यों मिला होता ? मेरे नेत्रहीन होने का दंड मेरा पुत्र क्यों भोगे ? देखता हूं कि विदुर का नीति ज्ञान इस प्रश्न का क्या उत्तर देगा ? गान्धारी बोली विदुर की नीति से मत घबराइये आर्य पुत्र ? अपने तातश्री की ओर देखिये, वे किसी के साथ अन्याय नहीं होने देंगे।

भीष्म धृतराष्ट्र के महल से बाहर निकल कर आये। मन में असंख्य विचार उठने लगे। अत्यन्त चिन्तातुर हो रहे थे। मन से वे अत्यन्त दु:खी और खिन्न थे भीष्म को गंगा के दर्शनों की तीव्र इच्छा हुई। भीष्म को याद आया गंगा ने कहा था जब तू

किसी उलझन में पड जाये और कोई समस्या का निदान न हो तो मुझे स्मरण कर लेना और मेरे पास आ जाना। यही सोचकर भीष्म गंगा तट पर गये और माता गंगा की वन्दना की।

सायंकाल का समय था। सूर्यास्त होने जा रहा था। भीष्म ने आंखे बन्द कर माता गंगा की प्रार्थना की उसी समय गंगा वहां पर प्रकट हो गई। भीष्म ने गंगा को प्रणाम किया और आयुष्मान भव का आशीर्वाद प्राप्त किया। भीष्म का चेहरा खिन्न और म्लान देखकर भीष्म से पूछा पुत्र तुम इतने दु:खी और चिंतित क्यों हो ? भीष्म ने कहा माता मुझे यहां से कब मुक्ति मिलेगी ? गंगा बोली जब तुम देखोगे कि हस्तिनापुर का राज सिंहासन चहुं ओर से सुरक्षित है, तब इसका तुम्हे विश्वास होगा, तुम्हारी भुजायें शक्तिशाली हैं। तब तक पुत्र अपनी प्रतिज्ञा का बोझ उठाते रहो और जीते रहो। भीष्म बोले माता पांडु के राजा बनने के पश्चात मैंने सोचा था कि हस्तिनापुर चारों ओर से सुरक्षित है परन्तु गंगा बोली तुम विधाता तो नहीं हो पुत्र। ये पृथ्वी तुम्हारी कर्मभूमि है। अपने कर्म और कर्तव्य के मार्ग पर चलते रहो। जहां तक ये मार्ग जाये वहां तक चलते रहो। भीष्म बोले- मार्ग तो मेरा स्वयं का ही चुना हुआ है माते। अपने लिये स्वयं ही तो मैंने इस मार्ग को चुना है और परन्तु जिसे माता पिता का स्नेह एक साथ नहीं प्राप्त हुआ हो वो थोडा सा लालची हो जाता है, स्नेह का लालची। तो तब मुझे स्नेह की आवश्यकता हो तो आपके अतिरिक्त मैं कहा जाऊं ? आपके दर्शन पाते ही कि मैं इस विश्वास से पृथ्वी पर अकेला नहीं हूं। सुन कर गंगा को बुरा भी लगा और आश्चर्य भी हुआ। भीष्म बोले आपसे थोडासा बल मिल जाता है। कल का दिन हस्तिनापुर पर बहुत भारी है माते। इसलिये आपके पास थोडासा ममता का प्रसाद लेने चला आया हूं। कल पिता और राजा, न्याय और अन्याय के संघर्ष का दिन है और मैं इस अन्याय का साथ देने के लिये विवश हूं क्योंकि आज हस्तिनापुर का मुकुट अन्याय के सिर पर रखा हुआ है माते। आप विधाता से कहें कि वो मेरे हस्तिनापुर के चन्द्रमा के इस ग्रहण को नष्ट कर दे। गंगा बोली- होनी कभी टलती नहीं पुत्र वो तो होकर ही रहती है। भीष्म बोले- परन्तु माते। यह कहकर गंगा वहां से अन्तर्ध्यान हो गई। भीष्म ने उन्हे प्रणाम किया। भीष्म फिर से अकेले हो गये और सोचने लगे क्या है विधि लिखित। वे अब यह दूसरे दिन राजदरबार में जाने से ही मालूम पडेगा।

राजप्रासाद में एक विशेष बैठक बुलाई गई उसमें धृतराष्ट्र, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विदुर, सेनापति तथा मन्त्री कर्णिक इत्यादि उस राजसभा में उपस्थित थे और सब मिलकर इस विषय में मन्त्रणा करने लगे कि युवराज किसे बनाया जाये ? धृतराष्ट्र बोले तातश्री आप तो कुरुवंश में सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है अब आप ही बताइये कि दुर्योधन के इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर दूं ? भीष्म बोले दुर्योधन के प्रश्न का सम्बन्ध सीधे कुरूवंश से नहीं है महाराज। न राजनीति और हस्तिनापुर के कल्याण में है। इस प्रश्न का उत्तर तो स्वयं महाराज को ही देना होगा। विदुर बोले दुर्योधन का प्रश्न तो यही है कि यदि आप नेत्रहीन नहीं होते तो इस सिंहासन पर आप विराजमान होते अर्थात इस सिंहासन पर आपका ही अधिकार होता तो फिर वो आपकी नेत्रहीनता का दंड क्यों भुगते ? धृतराष्ट्र बोला हां विदुर। और मेरे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। पर मुझे उसकी यह बात अनुचित भी नहीं लग रही है।

कृपाचार्य बोले- आपकी समस्या भी यही है राजन कि आपको राजकुमार दुर्योधन का प्रश्न उचित लग रहा है ? धृतराष्ट्र बोले- क्या वत्स दुर्योधन का यह प्रश्न अनुचित है कुलगुरु ? क्या यह सत्य नहीं है कि यह समस्या इसीलिये खडी हुई कि वो एक नेत्रहीन धृतराष्ट्र का पुत्र है। अनुज पांडु के पुत्र भी मुझे उतने ही प्रिय है जितने स्वयं मुझे अपने पुत्र। मैं यह नहीं चाहता कि यदि सिंहासन पर प्रिय युधिष्ठिर का अधिकार है तो वो अधिकार उसे ना मिले और उसका अधिकार छीन कर दुर्योधन को दे दिया जाये परन्तु मैं यह भी नहीं चाहता कि दुर्योधन का अधिकर छीनकर युधिष्ठिर को दे दिया जाये। इसी कारण यह प्रश्न मैंने आप सबके सामने रखा है। आप लोग जो भी निर्णय लेंगे वही मेरा निर्णय होगा और मुझे मान्य होगा।

धृतराष्ट्र बोले, आपका क्या विचार है आचार्य द्रोण ? आपके तो दोनों भी शिष्य है। द्रोण बोले- आप यह न सोचिये कि राजन मैं उत्तर देने से भयभीत हो रहा हूं परन्तु जैसा अभी-अभी आपने कहा कि दोनों ही मेरे शिष्य है इसलिये दोनों ही मुझे प्रिय है परन्तु

सभी यह जानते है कि अर्जुन मेरा सबसे प्रिय शिष्य है इसलिये यदि मैं कहूं कि युधिष्ठिर को युवराज होना चाहिये तो हो सकता है मेरा प्रिय शिष्य दुर्योधन यह सोचे कि मैं अर्जुन का पक्ष ले रहा हूं। सेनापति बोला यदि कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को युवराज नहीं बनाया गया महाराज तो राज्य में विद्रोह हो जायेगा और मैं स्वयं भी विद्रोहियों का ही साथ दूंगा। राज्य में विप्लव होगा।

भीष्म बोले- यदि विद्रोह के डर से राजा अन्याय करने पर उतर जाये तो सेनापति न तो वह राजा है और न ही राजा बनने योग्य। राजा को न्याय करना चाहिये और केवल राज्य कल्याण के बारे में ही सोचना चाहिये। तब मन्त्री कर्णिक ने उठकर कहा कि राज्य कल्याण को ध्यान में रखते हुये हम सभी सेनापति के विचार से सहमत है गंगापुत्र। भीष्म बोले- कहीं हस्तिनापुर नरेश को आप लोग धमकी तो नहीं दे रहे हैं ? यह न भूलिये कि आप और हस्तिनापुर नरेश के बीच गंगापुत्र भीष्म खडा है। विदुर बोला तातश्री के होते हुये हस्तिनापुर नरेश को धमकी देना तो बहुत दूर की बात है उन्हे कोई टेढी आँख से भी नहीं देख सकता परन्तु महाराज कुमार दुर्योधन का प्रश्न ही निराधार है। धृतराष्ट्र बोले वो कैसे विदुर? विदुर बोला पुत्र केवल पिता की सम्पति का उत्तराधिकारी होता है महाराज और हस्तिनापुर आपकी सम्पति नहीं है। यदि युधिष्ठिर भी योग्य न हो तो उसका सिंहासन पर अधिकार इसलिये सिद्ध नहीं हो सकता की वो स्वर्गीय महाराज पांडु का ज्येष्ठ पुत्र है। आप तो प्रतिनिधि भी नहीं है महाराज। आप तो प्रतिनिधि के प्रतिनिधि हैं। यदि राज्य पर पुत्र का अधिकार भी हो तो भी यह अधिकार युधिष्ठिर को ही जाता है। धृतराष्ट्र बोले- तो विदुर तुम यह क्यों नहीं कहते कि तुम भी यही चाहते हो कि युवराज युधिष्ठिर को ही बनाया जाये। विदुर बोले- जब मेरे कहने का समय आयेगा महाराज तो मैं अवश्य यह भी कहूंगा। धृतराष्ट्र बोला परन्तु कल की खुली राजसभा में मैं लोगों से क्या कहूंगा ? भीष्म बोले- समय जब प्रश्न करता है महाराज तब उसका उत्तर भी सामने रख देता है महाराज। कल समय आपसे भी यही प्रश्न करेगा और उसका उत्तर भी सामने रखेगा परन्तु उसको मानने या न मानने का सम्पूर्ण अधिकार आपको ही है। कल की प्रतीक्षा कीजिये महाराज और धृतराष्ट्र ने वह विशेष राजसभा विसर्जित की।

स्वार्थ और अधिकार के बीच रखी तलवार, काट फेंकती है किसे देखे उसकी धार।

स्वार्थ और अधिकार के बीच रखी तलवार का प्रश्न यह है कि ये तलवार अब किसे काटेगी इसलिये ये घडी इस तलवार की परीक्षा की घडी है। महाभारत की अमर कथा में ये पहली गम्भीर संकट की घडी है। युवराज पद के चुनाव का यह तनाव कुरुक्षेत्र का अंकुर है। जन समुदाय चाहता है कि युधिष्ठिर युवराज हो। कुलगुरु कृपाचार्य ने भी यही समर्थन किया। द्रोणाचार्य की भी यही सोच है परन्तु पिता का मन फिर भी यह नहीं मानता। निधिपति के प्रतिनिधि का प्रतिनिधि धृतराष्ट्र फिर भी यह नहीं सोचता। शायद कोई रास्ता निकल आये और वो मुकुट जो स्वयं उसे नहीं मिला उसके पुत्र दुर्योधन को मिल जाये। किन्तु धृतराष्ट्र राजनीति का चतुर खिलाडी है और उसे अपने मन की बात छिपाने की कला भी आती है। वो तो गान्धारी से भी यह नहीं कहता कि वो युधिष्ठिर का अधिकार छीन कर दुर्योधन को देना चाहता है क्योंकि वह जानता है की राजनीति का पांसा पूरी तरह शकुनि जैसे चतुर खिलाडी के वश में भी नहीं है तो वो यह खिडकी खुली रखना चाहता है कि यदि निर्णय युधिष्ठिर के पक्ष में जाये तो वो अपनी बाहें फैलाकर ज्येष्ठ पांडु पुत्र को अपने गले लगा लेगा, कलेजे से लगायेगा कि सारी हस्तिनापुर नगरी यह देख ले कि वो निरपेक्ष है परन्तु दुर्योधन राजनीति नहीं जानता। वो तो अपनी अभिलाषा और अपने अभिमान के प्याले में पडनेवाली चन्द्रमा की परछाई को चन्द्रमा ही मानकर उस पर अपने अधिकार को सिद्ध करना समझता है। और जब उसको वो प्याला ही छीनता नजर आता है तो उसके सीने में क्रोध का एक नरक दहक उठता है और इस नरक की आग को हवा देने के लिये शकुनि जैसा मामा के साथ-साथ कर्ण जैसा मित्र भी पास खडा है।

दुर्योधन अपने कक्ष में शकुनि, कर्ण, दुशासन के साथ मन्त्रणा कर रहा था। दुर्योधन बोला पता नहीं वो लोग वहां पर क्या निर्णय ले रहे होंगे ? और कल उसका क्या परिणाम होगा ? कर्ण बोला कल की प्रतीक्षा किसी भी वीर को शोभा नहीं देती। वीर

तो समय की चट्टान को काटकर कल की मूर्ति बना देते हैं। वहां जो निर्णय लिया जायेगा वो नहीं होगा मित्र। यहां जो निर्णय लिया जायेगा वो होगा। शकुनि बोला- तुम्हारा यही प्रसंग तो मुझे प्रसन्न किये रहता है अंगराज कर्ण अन्यथा हस्तिनापुर तो लटके हुये मुखडों का एक ऐसा गढ हो के रह गया है। वहां जाओ तो गान्धारी चिंतित, जीजाश्री चिंतित। यहां वत्स दुर्योधन का मुंह लटका हुआ है। दुशासन की त्यौरियां चढी हुई है। तुम्ही एक साथी हो वत्स जो हार जाते हो फिर भी हार नहीं मानते, खडे रहते हो और जूझने को तैयार। पुत्र दुर्योधन विधाता ने न जाने तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है ? तुम्हारा यह मामा भी भाग्य नीति जानता है और जब तक तुम्हारा ये मामा जी रहा है जब तक तुम्हारे सिर से हस्तिनापुर का राजमुकुट कोई नहीं छीन सकता। ना तुम्हारे पितामह और न विधाता। दुशासन बोला मामाश्री यदि पिता ने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को युवराज बना ही दिया तब क्या होगा ? शकुनि बोला यदि वो बनाना जानते है तो प्रिय दुशासन तो तुम्हारा यह मामा बिगाडना भी जानता है।

मथुरा से कृष्ण द्वारा भेजा हुआ श्वफलक पुत्र अक्रूर कुन्ती का भाई पांडवों का हाल जानने हस्तिनापुर आता है। कुन्ती के विवाह के पश्चात आज पहली बार उसके मायके से कोई उसके घर आया। वह भी उसका एक ऐसा भाई जिसके साथ कुन्तीने अपना सारा शैशव चपल क्रीडाओं में बिताया था। कुन्ती अपने पुत्रों से बोली इन्हे प्रणाम करो पुत्र ये अक्रूर है तुम्हारे मातुल। पांडवों ने अक्रूर को प्रणाम किया और युधिष्ठिर उन्हे अपने साथ अन्दर ले गया। कुन्ती ने पुछा कैसे हो भैया ? अक्रूर बोला विधाता की कृपा। तुम कैसी हो पृथा ? कुन्ती आकाश की ओर देखकर फफक कर रोने लगी और बोली हे विधाता मेरा और मेरे इन पुत्रों का क्या होगा ? मैं तो उस हरिणी के समान हूं भैया जो नृशंस भेडियों के बीच घिर गई हो। मेरे ये पितृहीन बालक आज तक अपना स्वत्व नहीं पा सके। शत्रुओं के बीच घिरी ऐसी शोकाकुल हूं किन्तु किसी से कह भी नहीं सकती कि वे लोग मेरे बन्धुजन परिजन नहीं हत्यारे है। तुम सब लोग अपने ही संकटों और मुसीबतों से पडे थे इसलिये यह सब बाते मैंने नही बताई थी। पिता कुन्ती भोज स्वयं को सर्वथा असहाय पा रहे थे इसलिये कहां जाती मैं सहायता पाने ? अक्रूर बोला कुन्ती चिन्ता मत करो बहन सब विपत्ति काल समाप्त हुआ ही जानो। मथुरा में कंसवध हुआ। यादव अब स्वतन्त्र और समर्थ हो गये। बहुत अत्याचार सहे हैं यादवों ने भी और उससे अधिक सहे तुम्हारे भाई वसुदेव और तुम्हारी भाभी देवकी ने। किन्तु अब हमारे सामने उज्ज्वल भविष्य है। कृष्ण और बलराम के नेतृत्व में मगध नरेश जरासंध भी हम लोगों से पराजित हो चुका है। मुझे कृष्ण ने ही तो तुम्हारे पास भेजा है। कृष्ण ने कहा अक्रूर काका आप पांडवों का कुशल मंगल समाचार जानने के लिये हस्तिनापुर जाइये। मैंने सुना है वहां वे सुखी नहीं है। धृतराष्ट्र स्वयं तो नेत्रहीन हैं ही और दूसरे पुत्र मोह में इतने अन्धे है कि मनोबल की भी कमी है। उनका पुत्र दुर्योधन दुष्ट है और धृतराष्ट्र अपने पुत्र के अधीन है। इसलिये आप जाकर बुआ और उनके पुत्रों की स्थिति देख आइये इसलिये पृथा मैं यहां चला आया। मुझे लगता है कृष्ण सब कुछ जानता है उससे कुछ भी छिपा नहीं।

युधिष्ठिर बोला मातुल मैं सोचता हूँ कि यादव तो स्वयं इतनी कठिनाइयों में फंसे हुये है क्या हमारी सहायता कर पायेंगे ? मथुरा में जरासंध भले ही यादवों से पराजित हो गया हो पर वह अपनी हार नहीं मानेगा। वह यादवों के विरुद्ध अपने मित्र मंडल राजाओं के संघटन एकत्रित कर रहा है। मैंने सुना है वह काल यवन म्लेच्छ राजा से भी सांठगांठ कर रहा है। बहुत सम्भव है कि अनेक लोग अपने निजी कारणों से भी जरासंध के सहायक हो जाये। दुर्योधन भी शायद उनमें से एक हो सकता है। जरासंध ने मंडल के राजाओं विदर्भ नरेश भीष्मक, चेदी नरेश दमघोष इत्यादि से मित्रता कर ली है। क्या कृष्ण के पास इतना समय है कि वह हमारी सहायता करेगा और हमारी सहायता करने पर पांचाल तथा गान्धार भी यादवों के शत्रु हो जायेंगे और शायद सिन्धु नरेश भी। अक्रूर बोला युधिष्ठिर जहां तक कृष्ण का सवाल उठता है वह उन सबकी सहायता कर सकता है जिनको उसकी सहायता की आवश्यकता है। उसके पास समय और साधनों की कोई कमी नहीं है। कृष्ण का मानना है कि संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। हमें केवल उसके अनुकूल अनुपात में कर्म करना होता है और उस कर्म का फल अवश्य मिलता है। प्रकृति में अनियमितता नहीं है। प्रकृति के अपने

नियम है। वह उन्ही नियमों पर चलती है। प्रकृति से क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। यदि कर्म का कर्म फल नहीं मिलता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रकृति अन्याय कर रही है इसका अर्थ है या तो हम प्रकृति के नियमों से अनभिज्ञ है या हमारी विश्लेषण दृष्टि में कोई भ्रम है। हमारी अकर्म में प्रीति नहीं होनी चाहिये। यदि जरासंध हमारे शत्रुओं को संगठित कर रहा है तो हम भी जरासंध के शत्रुओं को संगठित कर सकते हैं। जो मार्ग उसके लिये खुला है वो मार्ग हमारे लिये भी तो खुला हुआ है। श्रेष्ठ व्यक्ति का नेतृत्व कभी भी स्वीकार करना ही चाहिये। राज्य परिवर्तन के पश्चात अपने पद पर बने रहने वाले बहुत ही भाग्यशाली होते हैं। युधिष्ठिर अपने विरुद्ध कही गई बात को पूरे ध्यान से ही नहीं पूरे सम्मान के साथ सुननी चाहिये, उससे शायद तुम्हे अपनी भूल समझने में सहायता मिले। युधिष्ठिर ने कहा मातुल तो फिर तो कृष्ण और जरासंध में क्या अन्तर है ?

अक्रूर बोला मैं जब कंस की सभा का सभासद था तो मैं तनिक भी प्रसन्न नहीं था। वसुदेव कंस के कारागार में बन्दी था और मैं कंस की राजसभा में। वह कारागार से बाहर नहीं आ सकता था और मैं राजसभा से। वसुदेव एक प्रकार से मुझसे अधिक सुखी था। वह कंस की आज्ञाओं को पालन करने के लिये बाध्य नहीं था और मुझे वह स्वतन्त्रता नहीं थी। मुझे कंस की हर उचित अनुचित आज्ञा का पालन करना पडता था। कृष्ण ने आकर न केवल वसुदेव और देवकी के बन्धन काटे, हम सबको भी उसके चंगुल से बन्धन मुक्त किया। कंस अपने जीवित पिता महाराज उग्रसेन को बन्दी बनाकर स्वयं राजा बना और कृष्ण, कंस को (राजा) को मार कर विजेता होते हुये भी न स्वयं राजा बना और न ही उसने अपने पिता को राजा बनाया। अब तुम्हे समझ में आया जरासंध और कृष्ण का अन्तर युधिष्ठिर। अक्रूर ने फिर कहा अब दूसरी बात सुनो। जरासंध के अपने मित्रों दमघोष, भीष्मक, शाल्व, दन्तवक्र इन्हे जरासंध की इच्छाके विरुद्ध कोई भी कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं है क्योंकि जरासन्ध किसी को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं देता। वहां पर स्वतन्त्र चिन्तन का न आधार है और न ही अवकाश है वहां। वे उसके मित्र नहीं अधीनस्थ कर्मचारी है, दास है दास। अपनी इच्छा से तो वे अपने पुत्र पुत्रियों का विवाह भी नहीं कर सकते। उनके पारिवारिक सम्बन्धों में भी जरासंध का आदेश ही सर्वमान्य है। वह तो उनका सम्राट है मित्र नहीं। जबकि कृष्ण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बहुत महत्व देता है जहां तक वह स्वतन्त्रता सामाजिक हित की विरोधी नहीं हो जाती। राजा या सम्राट बनने की उसमें तनिक सी भी महत्वाकांक्षा नहीं है। कृष्ण जब स्वअर्जित राज्य का राजा नहीं बना तो फिर व अपने मित्र राजाओं का सम्राट क्या बनेगा ? वह तो चाहता है कि मानवीय उत्पीडन और अत्याचार बन्द हो और प्रकृति के साथ मेल जोल कर मनुष्य सुखी और चैन से जी सके। उसके मित्र है पांचाल नरेश द्रुपद, मत्स्य राज विराट और अब मित्र बना रहा है तुम पांडवों को, हस्तिनापुर को। कृष्ण कर्म योगी है अधिकार योगी नहीं। युधिष्ठिर बोला मातुल लेकिन मनुष्य तो अपने स्वार्थ से ही प्रेरित होकर कर्म करता है।

अक्रूर बोले- युधिष्ठिर कृष्ण का मानना है कि कर्म स्वार्थ से नहीं धर्म से प्रेरित होने चाहिये और कर्म जब धर्म से प्रेरित होगा तो हमें उसके फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। कर्म निष्काम होना चाहिये सकाम नहीं। धर्म प्रेरित कर्म के मार्ग में कोई लोभ या अन्य विघ्न नहीं मानना चाहिये। कृष्ण ने तो यही सोचकर निश्चय किया कि हस्तिनापुर में अपने धर्म भाइयों तथा बुआ को दु:खी नहीं होने देगा। अधर्म पर चलनेवाले लोग कृष्ण के मित्र नहीं हो सकते और धर्माचरण करनेवाला कोई कृष्ण का शत्रु नहीं होगा। जो सत्य है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता और जो असत्य है उसका कभी कोई अस्तित्व नहीं है इसलिये सब चिन्ता छोडकर कर्म करो। कुन्ती अपने पुत्रों से बोली अब यह चर्चा बन्द करो। मातुल लम्बी यात्रा से थककर आये हैं उन्हे अब विश्राम करने दो।

अक्रूर विदुर से मिलने उसके आवास पर गये। विदुर ने उनका स्वागत किया और पूछा आप पांडवों के सम्बन्धी के रूप में हस्तिनापुर आये या मथुरा के राज्य प्रतिनिधि राजनैतिक कारणों को लेकर। हस्तिनापुर का महामन्त्री अक्रूर का राजनीतिक महत्व जानने का प्रयत्न कर रहा था। अक्रूर बोले आया तो मथुरा के राजप्रतिनिधि के रूप में ही हूं। बस यही समझो कि हस्तिनापुर की राजसभा में यादवों की नीति के उद्घोष के लिये आया हूं। विदुर बोला वह यादवों की कौनसी नीति है जिसका

उद्घोष मथुरा में न कर आप हस्तिनापुर की राजसभा में करना चाहते है। हस्तिनापुर सार्वभौम सत्ता सम्पन्न एक स्वतन्त्र राज्य है। उसकी राजसभा में दूसरे राज्यों की नीति की घोषणायें नहीं होती।

अक्रूर बोला यादवों को साम्राज्य स्थापित करने की कोई आकांक्षा नहीं है। हम स्वतन्त्र राजाओं को अपना मांडलिक राजा बनाकर उन्हे अपमानित भी नहीं करते और न ही हम अपने पडोसियों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करना चाहते। हम नहीं चाहते हमारे पडौस के राज्यों में कोई किसी प्रकार का षडयन्त्र रचकर राजनीतिक सत्ता को अस्थिर करे या उसका विभाजन हो। जहां अनीति अपने पैर फैला लेती है वहां राजनीतिक षडयन्त्र रचे जाने लगते हैं और बाहरी शक्तियां हस्तक्षेप करती ही है। हम चाहते हैं कि स्वर्गीय पांडु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक कर कुरुओं के राज्य की भावी नीति को स्थिरता मिले ताकि हमारे शत्रु जरासंध और उसके सहयोगी हमारे पडोसी राज्यों में पैर जमा कर कोई संकट का कारण न बने। इस तथ्य को स्वीकार करते हुये हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि पांडव हमारे भगिनेय है अत: उनके अधिकारों की रक्षा के लिये हम उन्हे राजनीतिक और सामाजिक दोनों प्रकार का समर्थन देंगे।

विदुर बोले अक्रूर जी हमारे राजा पर अधिकार अनाधिकार, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित इन सारी चर्चाओं का कोई असर नहीं पडता। वे सब कुछ सुनते है, समझते है। धर्म संगत नीतियों का समर्थन भी करते रहते है किन्तु नीतियों तथा निश्चयों को कर्म रूप से परिणित करते ही नहीं है। वे निरन्तर यथा स्थिति ही बनाये रखना चाहते है। वे चाहते है कि वे राज सिंहासन पर बैठे रहे तथा युधिष्ठिर और दुर्योधन के युवराजत्व का संशय और विवाद गहराता रहे, बना रहे। वे युधिष्ठिर के युवराजत्व को अस्वीकार नहीं करते किन्तु उसे युवराज बना भी नहीं रहे। वे कहते है कार्य होना चाहिये परन्तु न कार्य करने के लिये स्वयं हाथ उठाते है और न ही किसी को वह कार्य करने का आदेश देते है। बस समर्थन करते रहेंगे उससे क्या बिगड जायेगा। हम चाहते है यह बहुत अच्छा होगा यादव उनपर दबाव डाले और महाराज अपना हाथ उठाकर यह कार्य करे नहीं कोई और यह कार्य कर देगा। अक्रूर बोले आपकी इच्छा यथा शीघ्र पूरी होगी विदुर हमारे नेता कृष्ण भी यही चाहते है। विदुर बोले- कृष्ण तुम्हारे नेता कैसे हुये क्या वे आपके राजा नहीं है। अक्रूर बोले नहीं। हमारे राजा उग्रसेन है। नेता कोई पद तो है नहीं जिसके लिये राजकीय नियुक्ति की आवश्यकता हो। संकट काल में जो भी आगे बढकर संकटों और जोखिमों के सम्मुख खडा हो जाता है वही नेता बन जाता है। जिसके पीछे लोग चले, जिसकी बातें मान लें, जिस पर विश्वास कर ले, जिससे प्रेम करे वहीं नेता है। कृष्ण के आत्मबल ने उसे नेता बना दिया है। कृष्ण के पास कोई पद नहीं प्रतिभा है। प्रतिभा को पद का क्या करना है। पद तो उसे चाहिये जिनको विधाता ने कोई क्षमता नहीं दी हो। अक्रूर ने कहा विदुर यदि राजा कंस के समान हो जो केवल अपनी दुष्ट बुद्धि से जरासंध के पाप परामर्श से चलता हो तो न तो वह किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति को धर्मसंगत कार्य करने देगा और न ही किसी की प्रतिभा को विकसित होने देगा। कंस की सभा में मैं देखता था किस प्रकार राजनीति प्रतिभा का दम घोटती थी। यदि सत्ता गलत हाथों में हो तो समाज सिवाय पाप और भ्रष्ट आचरण के किसी और क्षेत्र में विकास नहीं कर सकता। तब तो ऐसी राजसत्ता को हटाना ही प्रजा का सर्वोपरि प्राथमिक कर्म और धर्म हो जाता है। अन्यथा वह सत्ता अपने दुष्ट प्रभाव से जनहित के प्रत्येक कार्य में शिला बनकर अवरोध उत्पन्न करेगी तथा समाज में मानसिक तथा शारीरिक अपराधों को जन्म देगी। दुष्टता का विकास और प्रसार करेगी। मूर्खों और दुष्टों को ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त कर सुख सुविधायें देकर समाज के सिरपर आरोपित करेगी। इसलिये जो अयोग्य, दुष्ट तथा भ्रष्ट है उन्हे तो पदों से हटाया ही जाना चाहिये। कृष्ण को स्वयं अपने लिये सत्ता नहीं चाहिये इसीलिये वह कभी कोई पद भी नहीं लेता किन्तु कृष्ण यह चाहता है कि प्रत्येक राजा सत्य तथा धर्म का आचरण करे और प्रजा का पालन करनेवाला हो। उसके वश चलते वह किसी भी प्रजा विरोधी राजा को सत्ता में रहने देना नहीं चाहता है। कृष्ण भी यही चाहता है कि हस्तिनापुर की सत्ता प्रजापालक युधिष्ठिर के हाथ में हो, स्वार्थी धृतराष्ट्र के हाथ

में नहीं जो दुर्योधन की बुद्धि के अनुसार पुत्र मोह में अन्धा हो चलता है। विदुर ने विस्मय से पूछा यदि युधिष्ठिर कृष्ण की बुआ का पुत्र न होता तो भी कृष्ण यही चाहता क्या ? अक्रूर बोले तो भी। कृष्ण के सम्बन्ध मैत्री और प्रेम रक्त सम्बन्ध से निश्चित नहीं होते विदुर। वैसे तो शिशुपाल भी उसकी बुआ का ही पुत्र है। कंस भी उसका मामा ही था। उसके लिये ये सम्बन्ध कोई अर्थ नहीं रखते। उसके लिये तो सम्बन्ध केवल धर्म का है और न्याय का है, बहुजन, सर्वजन हिताय का है। उसको तो सामान्यजन और सामान्य मानव प्रिय है। उसे तो मानवता को बचाना है, मनुजता का धर्म स्थापित करना है। कृष्ण का कहना है कि सामान्य जन का हित केवल सत्य से हो सकता है इसलिये कृष्ण को सत्य ही प्रिय है जो कोई सत्य का आचरण करे वहीं कृष्ण का है। जिसके मन में सत्य, धर्म, न्याय है वह स्वयं को कृष्ण के उतना ही निकट पाता है। इसमें भौतिक दूरी या सामीप्य कुछ भी नहीं होता। यदि आपका मन कृष्ण के निकट है तो कृष्ण स्वयं ही आपके निकट आ जाता है। विदुर ने पूछा युवराज्याभिषेक होने तक तो हस्तिनापुर में ठहरो अक्रूर और महाराज धृतराष्ट्र से भी भेंट करो। अक्रूर बोले अवश्य उनसे भेट किये बिना कैसे लौट सकता हूं। उनसे भेंट राजप्रासाद में न होकर राजसभा में हो तो अच्छा। वह भेंट एक आत्मीय परिजन अथवा सम्बन्धी के रूप में न होकर कुरु सम्राट से एक यादव प्रतिनिधि के रूप में हो तो अच्छा हो। विदुर बोले यही अच्छा है तब तक आप तातश्री भीष्म को उनके आवास पर ही मिले।

अक्रूर भीष्म के आवास पर गये। भीष्म ने कहा इस वृद्ध कौरव के घर में तुम्हारा स्वागत है। पर यह घर वैसा नहीं है जैसे तुम अन्य दूसरे घर देख चुके हो। अक्रूर भी भीष्म के कहने का आशय समझ कर हंसकर बोले तातश्री दो घर एक जैसे नहीं होते। मैंने भी बहुत सारे घर देखे हैं। हो सकता है ऊपर से एक जैसे होते हुये भी अन्दर से उनका भेद रहता ही है। प्रत्येक घर में उसके स्वामी का प्रतिबिम्ब झलकता है। भीष्म बोले मैं आजकल इधर उधर से बहुत सारी बातें सुन रहा हूं क्या ये ठीक है ? अक्रूर बोले क्या सुन रहे हैं तातश्री। भीष्म बोले मैं क्या जानूं ? मैंने सुना कि तुम हस्तिनापुर में यादवों की शक्ति प्रदर्शन के लिये आये हो। मैंने यह भी सुना है कि दुर्योधन का मामा हस्तिनापुर की सत्ता को दुर्योधन के पक्ष में करना चाहता है और तुम युधिष्ठिर के पक्ष में सत्ता का सन्तुलन बनाने के लिये आये हो। क्या यह सच है ?

अक्रूर बोले बातों में कितना सत्य और तथ्य है तात यह तो मैं नहीं जानता किन्तु यह तो सत्य है कि मैं बहिन पृथा और उसके पुत्रों का समाचार लेने आया हूं। भीष्म बोले अक्रूर तुम्हे अपनी बहिन और उसके पुत्रों का समाचार जानने का, उनसे मिलने का और उनके हित साधन का पूरा पूरा अधिकार है। किसी भी परिजन को यह अधिकार तो होता ही है पर जब कोई यह कहता है कि कुन्ती और उसके पुत्र प्रसन्न नहीं है और उन्हे किसी प्रकार का कष्ट है तो मेरा खून खौलने लगता है। मुझे लगने लगता है कि मुझपर कोई दोषारोपण कर रहा है। मैंने पांडु परिवार के साथ न्याय नहीं किया है। यह मुझे अपने ऊपर आक्षेप लगता है। और जब कोई इसके लिये अपनी शक्ति के प्रदर्शन की बात करता है तो मेरा क्षात्र धर्म मुझे उत्तेजित करता है। तब मैं कहता हूं कि कौरवों के सम्मुख बल प्रयोग की बात मत करना, हस्तिनापुर कोई दुर्बल नहीं है। हमारे योद्धा संसार में अद्वितीय है और हम किसी की धमकी में भी नहीं आने वाले।

अक्रूर बोले क्या आपको नहीं लगता कि पृथा और उसके पुत्रों तो उनका अधिकार योग्य सुख सुविधा नहीं मिली है, जो सुविधायें दुर्योधन और उनके भाइयों को मिली हुई है तातश्री ? भीष्म बोले अक्रूर मैं जानता हूं कि कुन्ती और उसके पुत्रों के साथ न्याय नहीं हुआ है। पर तुम बताओ किस परिवार में सारे पुत्रों को एक सा व्यवहार मिला है ? परिवार का सन्तुलन बनाये रखने के लिये किसी न किसी को तो त्याग करना ही पडता है। परिवार में कुछ बच्चे दूसरों की तुलना में अधिक हठी भी होते हैं। इस परिवार में धृतराष्ट्र भी एक ऐसा ही हठी बच्चा है और फिर वह एक अस्वस्थ विकलांग बच्चा जन्मान्ध। वह किसी दूसरे बच्चे का खिलौना लेकर बैठ गया है और उसने अपनी मुट्ठी कस कर बन्द कर ली है। एक तो वह दूसरे बालक का खिलौना नहीं

दे रहा है और दूसरी ओर वह यह सोचकर व्याकुल है कि कहीं उससे वह खिलौना कोई छीन न ले। जितना उसको समझाया जाता है कि वह खिलौना उसका नहीं है उसे लौटा दे वह उतनी ही शक्ति से अपनी मुट्ठी भींच लेता है और रोने लग जाता है और मैं उस बालक की मां समान यह जानते हुये भी कि उसने दूसरे का खिलौना ले रखा है उसे व्यर्थ ही रूलाने की स्थिति में बचने के लिये उसके समझ जाने और चुप हो जाने की प्रतीक्षा करते रहता हूं।

अक्रूर बोले तो फिर आप ये मानते हैं कि दूसरे बालक के साथ अन्याय हो रहा है। भीष्म बोले मुझे मालूम है कि यह राज्य युधिष्ठिर का है और अन्ततः उसे ही मिलेगा। मैं यह खिलौना उसे ही दिलवाऊंगा जिसका यह है पर मैं नहीं चाहता कि इसके लिये परिवार में कलह हो या बाहरी हस्तक्षेप हो। मैं यह भी जानता हूं कि दुर्योधन अपने पिता के प्रश्रय में अति आचरण कर रहा है। युधिष्ठिर और उसके भाई सहिष्णु है। कुन्ती समझदार है। ये लोग कभी भी पारिवारिक कलह नहीं चाहेंगे। उपयुक्त अवसर उपस्थित होने पर युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करवाने का दायित्व मेरा है। राज्याभिषेक के पश्चात कुन्ती व उसके पुत्रों के लिये कोई अभाव भी नहीं रहेगा पर मैं नहीं चाहता कि कोई अन्य हमारी पारिवारिक समस्याओं में हस्तक्षेप करे। यह हमारे अपने परिवार की समस्या है। अक्रूर बोले मैं आश्वस्त हुआ तातश्री। इससे अधिक हमें अब और जानना भी क्या है ? आपके वचन से बडा प्रमाण हमारे लिये और क्या हो सकता है। भीष्म बोले मैं यह कभी नहीं चाहूंगा कि परिवार के एक व्यक्ति को न्याय दिलाने के नाम पर सारे परिवार को ध्वस्त कर दिया जाये। अक्रूर बोले हम भी नहीं चाहते कि कौरवों में किसी प्रकार का मतभेद अथवा कलह जन्म ले। हमारा हित भी इसी में है कि हस्तिनापुर में कौरवों का दृढ और शक्तिशाली राज्य हो। हमें उनसे सहायता और सहयोग की आशा है। हस्तिनापुर के दुर्बल होते ही हम भी दुर्बल हो जायेंगे। भीष्म बोले अक्रूर तुम तो राजदूतों की सी भाषा बोलने लगे हो। अच्छा यह बतायें कृष्ण कैसा है ? अक्रूर बोला महाराज कृष्ण का लक्ष्य है धर्म स्थापना, राजाओं को धर्म, न्याय था अनासक्ति के मार्ग पर चलना सिखाना। कृष्ण के मन में सबके लिये प्रेम है, अथाह प्रेम है। वह प्रत्येक जीव से प्रेम करता है। अपने शत्रुओं से भी प्रेम करता है। वह उनका भी हित चाहता है। उनकी पीडा का भी अनुभव करता है। भीष्म बोले वह योद्धा है या प्रेमी ? कोई अपने शत्रु तथा मित्र को समान रूप से प्रेम कैसे कर सकता है ? यदि वह कंस से भी प्रेम करता था तो फिर उसका वध क्यों किया ?

अक्रूर बोले यह आवश्यक नहीं है किसी एक से प्रेम करने के लिये दूसरे से प्रेम नहीं किया जाये। प्रेम करनेवाली माता अपने पुत्र को दंडित भी करती है और उसका उपचार भी करती है। वह उसके हित के लिये ही होता है। कंस का अहंकार मानसिक रोग बन चुका था। अहंकार अपने आपमें एक रोग ही तो है। अहंकार से स्वार्थ के कीटाणु जन्म लेते है और स्वार्थ शुद्ध मूर्खता का नाम है। व्यक्ति समझता है कि वह दूसरों का हित साध रहा है इसलिये उसे दूसरों का हित नहीं देखता है। सम्पूर्ण से पृथक कोई अंश या खंड नहीं होता है। किसी एक व्यक्ति अथवा समुदाय को अन्य से पृथक देखना और उसका हित करना अदूरदर्शिता और अज्ञान है तथा ऐसी अदूरदर्शिता सदा ही मानवता का अहित करती आई है। एक समुदाय का हित करने के लिये अन्य समुदायों का अहित नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण सृष्टि के हित में ही मनुष्य का हित है। गोपन में गोपालों का हित है तथा गोपालों के हित में ही किसानों का हित है। भीष्म बोले कृष्ण को कहना कि मैं उसके दर्शन करना चाहता हूं वह हस्तिनापुर अवश्य आवें। अक्रूर बोले कृष्ण तो प्रत्येक व्यक्ति के अपने ही भावों की प्रतिध्वनि है तात। आपने उसे पुकारा है तो वह अवश्य ही आपको पुकारेगा। कृष्ण को समझना सरल नहीं है लेकिन उसका अनुभव करने में कोई कठिनाई है। अक्रूर ने कहा तातश्री अब मैं चलू और यह कहकर उठ खडा हो गया। अच्छा अब मुझे विदा दें। भीष्म बोले अक्रूर तुम कुन्ती के भाई हमारे कुटुम्ब के ही अंग हो। मेरे व्यवहार को किसी अन्य भाव से ग्रहण मत करना। अक्रूर बोले मैं समझता हूं तातश्री आपका मन निर्मल है इसमें कोई छिपाव या दुराव नहीं है। अक्रूर ने भीष्म का चरण स्पर्श किया और बाहर चला गया।

अक्रूर कुरु राजसभा में गया। धृतराष्ट्र ने खडे होकर अक्रूर का स्वागत किया और बोले पधारिये यादव प्रतिनिधि अक्रूर।

अक्रूर ने भी हाथ जोडकर महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम किया और आसन ग्रहण किया। धृतराष्ट्र बोला अक्रूर मैंने सुना है कि तुम अपनी बहिन कुन्ती और उसके पुत्रों का समाचार जानने के लिये आये हो। अब तक तो उनके विषय में सब कुछ जान लिया होगा। क्या तुम उनकी स्थिति से सन्तुष्ट हो ? अक्रूर को लगा धृतराष्ट्र का यह प्रश्न न तो उसकी सरलता के कारण था, न अबोधता अथवा अनुभव हीनता के कारण। यह तो एक बहुत ही अनुभवी और धूर्त राजनीतिज्ञ का प्रश्न था। यदि अक्रूर इस समय यह उत्तर दे देते कि उसकी बहन और उसके पुत्रों के साथ अन्याय हो रहा है तो सम्भवत: राजसभा में ही कौटुम्बिक कलह प्रारम्भ हो जाता। पर अक्रूर ने सोच बूझकर समझदारी से उत्तर दिया। राजन मेरे भगिनियों का शिक्षा पूर्ण हो चुकी है। निकट भविष्य में युवराज्याभिषेक होनेवाला है। ऐसे में मेरे असन्तुष्ट होने का तो कोई कारण ही नहीं है। यदि मैं केवल अपने परिजनों से भेंट करने आया होता, उनके समाचार जानना चाहता तो मेरा कौरव राजसभा में उपस्थित होने का कोई औचित्य या प्रयोजन ही नहीं था महाराज। धृतराष्ट्र बोले तो फिर राजसभा में उपस्थित होने का कारण तो कोई राजनीतिक ही होना चाहिये अक्रूर।

अक्रूर बोले मथुरा में अत्याचारी कंस का वध कर यादवों ने महाराज उग्रसेन को सिंहासन पर बिठा दिया है। मथुरा में यादवों का अपना सर्वप्रिय तथा कल्याणकारी शासन स्थापित हुआ है। अब यादवों का आत्मविश्वास भी लौट आया है। वे लोग कंस की दमित, दलित तथा निरीह प्रजा न होकर मथुरा के स्वतन्त्र और समर्थ नागरिक है। वे अपने सुख, कल्याण स्वतन्त्रता तथा अधिकारों की रक्षा स्वयं करते है और अपने समाज के निर्माण में लगे है। वे फिर से पीडित और शोषित स्थिति में नहीं लौटना चाहते है। पर अपनी इच्छा से तो सृष्टि नहीं चलती महाराज। जरासंध यादवों की भूमि में मगध साम्राज्य का अंग स्थापित करना चाहता है। जरासंध और उसके सहयोगी राजा नहीं चाहते कि यादव स्वतन्त्रता, सम्पन्नता तथा सम्मान का जीवन यापन करे।

धृतराष्ट्र बोला तो क्या यादवों को जरासंध से युद्ध करने के लिये कौरवों की सहायता चाहिये ? अक्रूर बोला नहीं महाराज। यादव कभी भी व्यर्थ युद्ध कर नरसंहार करना नहीं चाहते। हमें कोई सैनिक सहायता की अपेक्षा नहीं है। इस जम्बूद्वीप में विभिन्न राजाओं की शत्रुता और मित्रता के आधार पर सन्धियां भी होगी, शक्ति सन्तुलन भी बनेंगे और बिगडेंगे तथा सेनाओं का भी आवागमन होगा। सम्भव है मागधों और पांचालों में कोई सन्धि भी हो जाये। जरासन्ध मथुरा पर आक्रमण करने के लिये अपने मित्र बटोर रहा है और द्रुपद हस्तिनापुर को अपना शत्रु समझता है वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये कोई शक्तिशाली मित्र ढूंढ रहा है। धृतराष्ट्र बोला हम पांचालों और मागधों की सम्मिलित सेना का प्रतिकार करने में समर्थ है। अक्रूर बोले मेरा अभिप्राय यह नहीं है हम तो चाहते है हस्तिनापुर दृढ और शक्तिशाली शासन हो। हस्तिनापुर के दुर्बल होने का तो प्रश्न ही नहीं है। यादव भी आपके साथ ही हैं। धृतराष्ट्र बोला यदि पांचालों और मागधों से सन्धि नहीं हुई तो ? अक्रूर बोला तो जरासंध हस्तिनापुर से मित्रता करना चाहेगा और हम यह नहीं चाहेंगे कि जरासंध मथुरा के इतने निकट हस्तिनापुर में अपनी चौकी स्थापित करे। इसलिये यादव सेना जरासंध पर आक्रमण करेगी और हम नहीं चाहते कि जरासंध और यादवों के युद्ध में हमारा मित्र हस्तिनापुर अकारण जले। और यदि हस्तिनापुर अपनी भूमि पर युद्ध आमंत्रित करता है तो यादवों की सहायता के लिये पांचाल भी आयेंगे महाराज। धृतराष्ट्र बोला यदि हस्तिनापुर जरासंध से मित्रता करेगा ही नहीं तो ? अक्रूर बोला ऐसी स्थिति में जरासंध हस्तिनापुर पर आक्रमण कर सकता है तब यादव अवश्य ही हस्तिनापुर की सहायता के लिये आयेंगे महाराज कृष्ण के नेतृत्व में। धृतराष्ट्र को लगा अक्रूर मित्रता भी जता रहा है और धमकी भी दे रहा है। धृतराष्ट्र बोले हमें प्रसन्नता है अक्रूर कि संकट की घडी में हम अकेले नहीं है। यादवों की सद्भावना के प्रति हमारे मन में प्रशंसा का भाव है कि यादवों ने मित्रता का हाथ बढाया है। विदुर राजसभा में यह सब देख सुन रहा था कि अक्रूर धृतराष्ट्र को उस मोड पर ले आया जहां से धृतराष्ट्र के लिये न तो लौटना सम्भव था और न ही आगे बढना। धृतराष्ट्र ने तो कोई आनाकानी की न ही उसके चेहरे पर कोई असमंजस का भाव था उसने कहा मैं इस विषय में सोच भी रहा हूं और तातश्री से परामर्श भी कर रहा हूं। उनका आग्रह भी है कि यह शुभ कार्य शीघ्र सम्पादित

हो जाना चाहिये। युवराज्याभिषेक के लिये शरद पूर्णिमा का दिन कैसा रहेगा अक्रूर ? आज तो धृतराष्ट्र ने युवराज्याभिषेक की सहर्ष तिथि की घोषणा कर दी। सुनकर भीष्म को प्रसन्नता हुई। अक्रूर के सम्मुख जो वचन भीष्म ने दिया वह स्वत: ही सम्पन्न हो गया। उनके मन से जैसे एक बोझ उतर गया। अक्रूर ने कहा महाराज मैं मथुरा जाकर यह सब सूचना दे देता हूं। अब मैं विदा लेता हूं महाराज और अक्रूर ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र भी उठ खडा हो अपने महल में चला गया।

शक्तियों का प्राबल्य तभी तक बना रहता है जब तक युद्ध नहीं होता। युद्ध के पश्चात तो बडी से बडी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। प्रबल वही रहता है जो युद्ध में सम्मिलित नहीं होता। कल का दिन हस्तिनापुर वासियों के लिये बहुत महत्व का है कारण भावी युवराज की घोषणा महाराज धृतराष्ट्र करनेवाले है।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में अत्यन्त खिन्न मन से चिंतित हो बार-बार सोच रहा है। जो कार्यवाही आज विशेष आयोजन सभा में हुई। उसके कानों में कृपाचार्य, द्रोण और विदुर के शब्द गूंज रहे थे।

पुत्र शत्रु है न्याय का, मित्र शत्रु है मोह, किसको अपना ले हृदय करले किससे द्रोह।

भीष्म धृतराष्ट्र को राज्यसभा में हाथ पकडकर लाते है और राज सिंहासन पर बैठाते है साथ में कुमार युधिष्ठिर और दुर्योधन भी आते है वे भी अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते है। उस राजसभा में आज का निर्णय देखने शकुनि और कर्ण भी आते है। उस राजसभा में गान्धारी भी कुन्ती के साथ आई और कुन्ती के पास बैठी। राजसभा की कारवाई शुरू होती है। महाराज आज क्या निर्णय लेंगे सबकी आंख और कान राजमंच पर ही लगे हुये थे। उस राजसभा में कुलगुरु कृपाचार्य, आचार्य द्रोण, सेनापति, मन्त्रीप्रवर कर्णिक सभी थे।

विदुर उठकर खडे होकर बोले- हस्तिनापुर वासियों आज मुझे यह कहते हुये बडी प्रसन्नता हो रही है कि कुछ ही क्षणों में महाराज उसका युवराज देने वाले हैं। प्रजा ने प्रसन्नता से महाराज धृतराष्ट्र का अभिवादन किया और जयजय कार करी कि महाराज धृतराष्ट्र की जय हो। गान्धारी बोली कुन्ती तुम्हारा हृदय क्या कह रहा है ? कुन्ती बोली मेरे तो दोनों ही पुत्र है दीदी। इतने में ही राजसैनिक चार अपराधी बेडियां डालकर बन्दी बनाकर राजसभा में ले आये। गान्धारी बोली- ऐसे शुभ अवसर पर यह क्या है ? कुन्ती बोली ऐसा ही कोई अपराध किया होगा दीदी। विदुर बोला बन्दी लाये गये हैं महाराज। धृतराष्ट्र बोला इनका अपराध ? विदुर बोले सेनापति महाराज को इनका अपराध बताया जाये। सैनिक बोला- महाराज की जय हो। इन चारों ने मिलकर एक व्यक्ति की हत्या कर दी है महाराज। धृतराष्ट्र बोला अपराधी क्या कहते है? विदुर बोला- अपराधी अपना अपराध स्वीकार करते हैं महाराज। धृतराष्ट्र बोले तो इनके इस अपराध के लिये... इसी बीच विदुर बोल उठा यदि आप आज्ञा दे तो महाराज दोनों राजकुमारों में से किसी एक को आप युवराज नियुक्त करने जा रहे है तो आज इन्ही दोनों को न्याय करने का अवसर प्रदान किया जाये महाराज। पूरा जन समुदाय भी राजकुमारों की योग्यता देख ले तातश्री। भीष्म बोले मैं विदुर से सहमत हूं महाराज परन्तु गान्धार कुमार का विचार भी जान लेना उचित होगा। विदुर बोले क्षमा चाहता हूं तातश्री। यह हस्तिनापुर की अपनी निजी समस्या है। कुरुराज सभा है। भीष्म बोले लेकिन गान्धार कुमार भी तो अब हस्तिनापुर के ही हो चुके है विदुर। विदुर बोले मैं फिर से क्षमा चाहता हूं तातश्री परन्तु हो जाने में और होने में बहुत अन्तर है तातश्री।

दुर्योधन उठ खडा हुआ और बोला मैं तो हस्तिनापुर का हूं ना काकाश्री। तो न्याय करने का पहला अवसर मुझे दिया जाये। क्योंकि महाराज का ज्येष्ठ पुत्र मैं हूं। विदुर बोले- कुमार दुर्योधन इस नाते से तो नहीं परन्तु तुम युधिष्ठिर के अनुज हो। यह पहला अवसर तुम्हे ही मिलना चाहिये। धृतराष्ट्र बोले राजकुमार दुर्योधन को न्याय करने का आदेश दिया जाता है। दुर्योधन उठा और खडा होकर बोला पिताश्री हस्तिनापुर नरेश की जय। धृतराष्ट्र बोले तुम्हारे विचार से इन चारों बन्दियों को क्या दंड दिया जाना चाहिये ? दुर्योधन बोला इसमें विचार करने की आवश्यकता ही क्या है महाराज ? शताब्दियों से हमारे यहां परम्परा

चली आ रही है कि हत्या करनेवाले को मृत्यु दंड दिया जाता है इसलिये मैं इन चारों अपराधियों को इनके अपराध के लिये इनको मृत्युदंड देता हूं। शकुनि उठकर प्रसन्नता से बोले जीते रहो भान्जे। दुर्योधन के वहां पर बैठे सभी मित्रों ने राजकुमार दुर्योधन की जयजयकार करी। धृतराष्ट्र बोले तो विदुर आदेश दिया जाता है कि इन चारों अपराधियों को... विदुर बोल उठे क्षमा चाहता हूं महाराज। धृतराष्ट्र बोले तो अब क्या हुआ विदुर ? विदुर बोला आपने ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को न्याय करने का अवसर प्रदान नहीं किया महाराज। न्याय करने का अवसर तो मिलना ही चाहिये महाराज। क्या पता राजकुमार युधिष्ठिर राजकुमार दुर्योधन के न्याय से सहमत हो न हो। धृतराष्ट्र बोले इसमें सहमत या असहमत होने का तो प्रश्न ही नहीं है। विदुर बोले यदि राजकुमार युधिष्ठिर सहमत न हो तो वे स्वयं ऐसा कहेंगे महाराज। धृतराष्ट्र बोले तो यही सही। वत्स युधिष्ठिर को आज्ञा दी जाती है की अब वो न्याय करे। युधिष्ठिर उठ खडे हुये और बोले ज्येष्ठ पिताश्री महाराज हस्तिनापुर नरेश की जय।

धृतराष्ट्र ने पूछा क्या तुम अपने अनुज दुर्योधन के न्याय से सन्तुष्ट हो वत्स ? युधिष्ठिर बोले सब कुछ जाने बिना महाराज को मैं इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सकता। धृतराष्ट्र बोले, इसमें जानना क्या है वत्स ? युधिष्ठिर बोला दंड देने से पहिले मैं अपराधियों का वर्ण व जाति जानना चाहता हूं महाराज। कर्ण उठकर आवेश में बोला न्याय का जातियों से क्या लेना देना ? युधिष्ठिर बोले है। यदि यह अवश्य न होता तो मैं यह प्रश्न ही नहीं उठाता। धृतराष्ट्र बोले अपराधी अपनी-अपनी जाति बतायें। पहला अपराधी बोला मैं शूद्र हूं महाराज। दूसरे ने कहा मैं वैश्य हूं महाराज। तीसरे ने कहा मैं क्षत्रिय हूं महाराज और चौथे ने कहा महाराज मैं ब्राह्मण हूं।

युधिष्ठिर बोले न्याय के नियमों के अनुसार शूद्र अपराधी को चार वर्ष कारागृह में बिताने का दंड दिया जाता है। वैश्य को आठ वर्ष तथा क्षत्रिय को १६ वर्ष परन्तु ब्राह्मण अपराधी को मृत्यु दंड तो दिया जा नहीं सकता इसलिये कुलगुरु कृपाचार्य ही इस दंड का निर्णय करेंगे। शकुनि उठकर व्यंग करते हुये बोला अति सुन्दर न्याय है। अपराध एक और दंड चार। युधिष्ठिर बोले अपराध एक नहीं है मामाश्री। शूद्र का अपराध एक अज्ञानी का अपराध है इसलिये केवल ४ वर्ष का कारागृह वास परन्तु वैश्य अपराधी उतना अज्ञानी नहीं है इसलिये उसका दंड दुगुना हो गया और क्षत्रिय तो समाज का रक्षक है यदि वही हत्या का अपराधी हो तो उसका दंड वैश्य की अपेक्षा दूगना होगा। ब्राह्मण तो ज्ञानी है उसने जानते बूझते मनुष्य की हत्या की है उसका अपराध सबसे भयंकर है। ब्राह्मण अपराधी बोला मैं अपने अपराध के लिये स्वेच्छा से अग्नि में प्रवेश चाहता हूं महाराज। युधिष्ठिर बोले इसका निर्णय तो कुलगुरु कृपाचार्य ही ले सकते हैं। शकुनि बोला किन्तु तुम्हारी न्याय की तुला में असमानता है वत्स। युधिष्ठिर बोले सबको एक ही तुला में तौलना न्याय नहीं अन्याय है मामाश्री। प्रजाजन समुदाय ने यह सम्बोधन कह भीड ने युवराज युधिष्ठिर की जय की घोषणा करी। विदुर बोले न्याय तो हो चुका महाराज। अब महाराज से मैं प्रार्थना करता हूं कि वो घोषित कर दे कि वो युवराज किसे नियुक्त करना चाहते है। धृतराष्ट्र असमंजस में पड गया और अपना मन मार कर बडी दुविधा से बोला मैं तातश्री से प्रार्थना करता हूं कि वो शंख बजा कर ज्येष्ठ पांडु पुत्र युधिष्ठिर को युवराज बनाने की घोषणा कर दे। कुन्ती ने मन ही मन से युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया।

विजय हुई फिर न्याय की हटा मोह का पाश, सत्यमेव जयते बना अन्तिम सत्य प्रकाश।

विदुर युधिष्ठिर से बोले आओ वत्स। युधिष्ठिर ने उठकर धृतराष्ट्र को प्रणाम किया ज्येष्ठ पिताश्री आशीर्वाद दें। भीष्म ने शंख बजाकर युवराज होने की घोषणा की। दुर्योधन अपमान से भर कर आवेश में आकर राजसभा से उठकर बाहर चला गया। अति आनन्द से युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक समारोह मनाया गया।

युधिष्ठिर के युवराज बन जाने पर राजसभा तथा प्रजा के प्रतिनिधियों के सम्मुख अपने विचार व लक्ष्यों को प्रकाशित किया ताकि प्रजा आश्वस्त हो सके। युधिष्ठिर ने कहा मेरा लक्ष्य कुरु शासित प्रदेश में धर्म राज्य की स्थापना होगा। मेरी नीति होगी आनृशंसता। हम किसी के भी प्रति नृशंस नहीं होंगे। वर्ण जाति अथवा वर्गभेद के कारण किसी के अधिकार अथवा भावनाओं

का निरादर नहीं होगा न ही किसी के मन को आघात या ठेस पहुंचेगी। मैं प्रत्येक वर्ण तथा वर्ग में से अपने लिये मंत्रियों की नियुक्ति करूंगा और उनके प्रत्येक धर्म समस्त परामर्श का पूर्ण आदर करूंगा। प्रजा को न्याय, सम्मान, सुख सुविधा तथा सुरक्षा प्रदान करना मेरा राजनीतिक दायित्व होगा। मेरे राजदंड ग्रहण करने पर भी यदि प्रजा को किसी तरह का दुख या कष्ट हो तो ईश्वर मुझे नरक भोगने का दंड दे। युधिष्ठिर के मौन होते ही प्रजा में जयजयकार गूंजा। धृतराष्ट्र ने प्रजा को सम्बोधन कर कहा राजकुमारों की शस्त्र शिक्षा पूर्ण हो चुकी है। फिर भी हस्तिनापुर में आचार्य द्रोण का अभी कार्य सम्पन्न नहीं हुआ है और न ही उनके युद्धशाला की उपयोगिता समाप्त हुई है। आचार्य द्रोण की युद्धशाला अब मात्र गुरुकुल अथवा राजकुमारों का प्रशिक्षण, शस्त्राभ्यास का ही स्थल न रहे पर साथ-साथ कुरु सेनाओं का प्रशिक्षण तथा संचालन केन्द्र बनाया जाये। मैं आज से आचार्य द्रोण को कुरु सेनाओं और सेनापतियों का संचालक नियुक्त करता हूं। राजसभा में बैठे भीष्म, विदुर, सोमदत्त, बाहलीक सभी यह सुनकर आश्चर्य चकित हुये कि यह तो आचार्य का महत्व बढाने का प्रयास किया जा रहा है या किसी का अधिकार क्षेत्र सीमित करने का। अभी तक तो कुलवृद्ध होने के नाते भीष्म ही सेनाओं और सेनापतियों का संचालन करते थे। धृतराष्ट्र का आशय था इस घोषणा और आदेश से द्रोण की शक्ति बढाकर उन्हे अपने पक्ष में करने का और भीष्म को अपेक्षाकृत निर्बल करने का या युवराज युधिष्ठिर को ही अधिकारशून्य बनाने का।

भीष्म को पूर्ण तरह से विश्वास हो गया कैसा यह चतुर राजा है दृष्टिहीन की दूर दृष्टि। यह तो आचार्य की निष्ठा क्रय की जा रही है। धृतराष्ट्र फिर बोले मुझे बडी प्रसन्नता है कि एक लम्बे अन्तराल के पश्चात हस्तिनापुर को आज युवराज मिला। आज तक हस्तिनापुर का राजा दृष्टिहीन तथा असमर्थ था। अब तक हम अपने पूर्वजों की कीर्ति पर सन्तोष किये तेजहीन से बैठे रहे। अब से हस्तिनापुर के तेज में वृद्धि होगी। राजकोष की भी समृद्धि होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि युवराज युधिष्ठिर अपने पूर्वजों के गौरव में वृद्धि करेंगे। मेरा आशीर्वाद सदैव उनके साथ है। धृतराष्ट्र ने फिर अपनी कूटनीति से भीष्म की ओर देखकर घोषणा की कोषाध्यक्ष के पद पर दुर्योधन की नियुक्ति करता हूं तथा राज सिंहासन से उठकर खडा हो गया। यह सभा विसर्जन का संकेत था। भीष्म ने धृतराष्ट्र से पूछा ऋषि कृष्ण द्वैपायन व्यास नहीं आये क्या उन्हे आमंत्रित नहीं किया गया था ? धृतराष्ट्र बोला यह कुरुराज सभा थी इसलिये उन्हे नहीं आमंत्रित किया लेकिन उन्होने युवराज को अपना आशीर्वाद भिजवाया है और कहा है कि साधना के लिये राज समारोह मेरे लिये विघ्न स्वरूप होते है। उत्सवों और समारोहों की प्रसन्नता राजाओं के लिये होती है। ऋषियों की प्रसन्नता तो सत्व की वृद्धि में है। ऋषि का सम्बन्ध तो जनकार्य से है, राजकार्य से नहीं। जनकार्य की अपेक्षा होगी तो ऋषि राजसभा में स्वत: आजायेगा और राजप्रासाद में भी वर्ना ऋषि का सुख तो अपने स्थान पर ही है।

युधिष्ठिर राजसभा से निकलकर सीधे भीष्म पितामह के कक्ष में आये पितामह के चरण स्पर्श कर प्रणाम किया और बोले मुझे आशीर्वाद दे कि मैं धर्म से कभी पीछे नहीं हटूं। भीष्म बोले युधिष्ठिर आशीर्वाद तो बहुत साधारण और छोटा सा शब्द है वत्स। इस पृथ्वी पर तुम्हे छोडकर धर्म को दूसरा स्थान है ही कहां वत्स ? आज मेरे रोम रोम से जैसे सूक्ष्म प्रेरणा निकल निकलकर तुम्हारी ओर प्रवाहित हो रही है। मेरा हृदय, मेरा धर्म, मेरी कामनायें सब तुम्हारी ओर प्रवृत है पुत्र। आज मैं कितना प्रसन्न हूं इसका अन्दाज भी तुम नहीं लगा सकते। आज मेरी वर्षों की साध पूरी हुई और मैं पूर्ण काम हुआ। मेरा दायित्व भी आज पूरा हुआ। संसार में अधिकार प्राप्त करना बहुत कठिन है। आधिपत्य जमानेवाली शक्तियां इतनी अधिक है इस संसार में कि चारों ओर केवल अधिग्रहण ही है अधिकार नहीं। तुम्हे आज अपना अधिकार मिला है यह हस्तिनापुर की प्रजा का सौभाग्य है पुत्र किन्तु इसे बनाये रखना तुम्हारे लिये बहुत कठिन है पुत्र। आधिपत्य और आधिग्रहण में भाग बांटने के लिये अनेक स्वार्थी सहायक मिल जाते है। अधिकार तो सत्य पक्ष का नाम है यह तो धर्म का ही दूसरा रूप है। उसका प्रयोग अन्याय और अत्याचार के रूप में नहीं होता इसलिये यह कर्तव्य बन जाता है। तुम अपने कर्तव्य का पालन करो वत्स। युधिष्ठिर बोले मेरा

अधिकार मुझे अपने कर्तव्य के रूप में ही स्मरण रहेगा।

भीष्म बोले मुझे संशय तुम्हारी ओर से नहीं है। मुझे संशय तो उन लोगों की ओर से है जो प्रजा को अपना ग्रास समझ कर उसका भक्षण कर जाते हैं। अधिकार और अधिग्रहण एक दूसरे के विपरीत है। अधिग्रहण की शक्तियां चाहेगी कि तुम्हारा मार्ग रोके। वे सब तुम्हारे विरुद्ध संगठित होंगे। आज तक यही देखा गया है कि अनाधिकार ही संगठित होते आया है। अधिकार तो सदा ही एकाकी रहा है। अधिकार जानता है कि वह स्वामी नहीं मात्र रक्षक है। मन के लोभ को नियंत्रित कर रक्षक तथा पालक बनना बहुत कठिन है। लोभी मन स्वामी बन जाना चाहता है ताकि वह प्रजा का भोग कर सके। युधिष्ठिर बोले मैं अधिकार का वास्तविक रूप ही ग्रहण करूंगा। मैं प्रजा का रक्षक बन उसकी समृद्धि में ही अपनी समृद्धि की पहचान प्रजा का सर्वांगीण विकास के मार्ग से बनाऊं। प्रजा को वंचित कर अपनी समृद्धि का महल निर्माण नहीं हो सकता। भीष्म बोले विधाता तुम्हारे विचारों और शब्दों को कर्म में परिणित करे। युधिष्ठिर कक्ष से निकल कर चला गया और भीष्म खडे सोचते रह गये।

सत्य की विजय हुई पर असन्तोष की आग से धुंआ उठने लगा। युधिष्ठिर की युवराज पद पर नियुक्ति होने के पश्चात सब काम कारवाई रूक जायेंगे ऐसा लग रहा था पर ऐसा नहीं हुआ। वातावरण जैसा शान्त दिख रहा था वैसा नहीं था। दुर्योधन के मन में ज्वालामुखी धधक रहा था। शकुनि अपनी कूट चालों में सफल नहीं हो सका इसलिये वह चिंतित और व्याकुल व्यग्र हो रहा था पर उसने अपनी हार नहीं मानी। युधिष्ठिर की लोकप्रियता मिट्टी में मिलाने के लिये नयी-नयी युक्तियां खोजते रहता था। राज्यकोष पर अधिकार दुर्योधन का था। इस बात का गैर फायदा शकुनि ने उठाना चाहा और दुर्योधन से बोला कोष का मुंह खोल दो और खाली कर प्रजा जनों बांटकर लोकप्रसिद्धि अर्जित करो। दुर्योधन ने भी मामा की आज्ञा शिरोधार्य कर राजकोष की सम्पति उदार हाथों से बांटनी शुरू करी। दुर्योधन सभासदों और अधिकारियों को बडे-बडे उपहार देने लगा। प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरात्मा का मूल्य स्वर्ण के तौल में होने लगा। बस फरक इतना ही था कि किसी का कम तो किसी का अधिक। स्वर्ण मुद्रायें बांटने लगा। अपनी प्रसिद्धि और जय-जयकार के लिये दुर्योधन राजकोष लुटाने लगा। धृतराष्ट्र बस यही सपने देख रहा था कि दुर्योधन ही जैसे राजसिंहासन पर बैठा है। इसमें विघ्न बाधा उपस्थित हो रहे थे सिर्फ पान्डु पुत्र। धृतराष्ट्र प्रत्यक्ष में नहीं देख पाता था लेकिन बन्द आंखों से तो सपने देख ही सकता था।

कोई कितना भी षडयन्त्र रच ले पर उसका छिद्र सुराग तो छोड ही देता है। इनका सुराग था विदुर। विदुर अपने आप में एक उत्तंग प्रतिभा है। हस्तिनापुर के महामन्त्री का पद जिस दिन से स्वीकारा तभी से विदुर सतत सावधान रहने लगे। इन सब बातों की विस्तार से विदुर को जानकारी थी। विदुर के सिवा इस शासन ने प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी बंधन से बंधा गया था।

४२) पांडवों की दिग्विजय यात्रा

विदुर को सब प्रकार से विश्वास था कि युधिष्ठिर युवराज पद पर नियुक्त हो जायेंगे तो हस्तिनापुर चारों ओर से सब प्रकार सुरक्षित हो जायेगा पर ऐसा नहीं हुआ। युधिष्ठिर के युवराज हो जाने पर धृतराष्ट्र ने राजसिंहासन को और अधिक कस कर पकड लिया। कितने ही वर्षों से गान्धार छोडकर हस्तिनापुर में जबरन बैठा शकुनि छुप छुपाकर कितने ही प्रकार के षडयन्त्रों की कार्यवाही करने लगा। इन सबकी जानकारी विदुर को पूर्ण रूप से थी।

युधिष्ठिर में धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, दयालुता, नम्रता और अविचल प्रेम आदि बहुत से लोकोत्तर गुण थे जिससे युधिष्ठिर दिनों दिन लोकप्रिय होता गया और उसकी ख्याति बढती ही गयी। युधिष्ठिर ने अपने शील, सदाचार, और विचारशीलता से प्रजा के हृदयों को जीत लिया। युधिष्ठिर सदैव धर्म की मर्यादाओं में रहता था इसलिये धर्मराज कहलाया। मर्यादा को भंग करना कठिन नहीं है पर मर्यादा का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन होता है। मर्यादाओं के निर्माण में वर्षों व्यतीत हो जाते है और भंग

करने में तो क्षण भी नहीं लगता। विधान के निर्माता अपने बनाये विधान का उल्लंघन नहीं करते। युधिष्ठिर भी कभी भी अपनी प्रतिज्ञा का भंग, दिये हुये वचन का उल्लंघन नहीं करता था। कभी भी धर्म विरोधी आचरण नहीं करता था। सदा ही मर्यादाओं के भीतर रहकर ही कोई न कोई सभी समस्याओं का मार्ग खोजते रहता था।

राजदरबार लगा। उस दिन उस सभा में मन्त्री कर्णिक, शकुनि कर्ण आदि सभी थे। धृतराष्ट्र ने कहा अनुज पांडु की मृत्यु के पश्चात मैं असमर्थ और नेत्रहीन हस्तिनापुर का सम्राट बना उस समय सभी राजकुमार बालक थे और शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। तब से आज तक हस्तिनापुर का तेज शमित ही रहा। हस्तिनापुर की सेना एक बार भी धन संचय करने के लिये किसी भी दिशा में नहीं गयी। अब हमारे युवराज युधिष्ठिर हैं। अपने अभिषेक के पश्चात प्रत्येक राजा और युवराज अपने शौर्य की प्रतिष्ठा के लिये सैनिक अभियान करता है। मैं चाहता हूं कि युधिष्ठिर भी प्रतिष्ठा के साथ साथ हस्तिनापुर का तेज पुनर्स्थापित करे। इसिलये युवराज अपने भाइयों सहित दिग्विजय के लिये जायें और पराजित राजाओं से कर रूप में धन एकत्रित कर हस्तिनापुर का रिक्त हो रहा राजकोष परिपूरित करे। यह तो दुर्योधन के मनोकुल ही धृतराष्ट्र ने कह दिया कि अब जाये ये वनों और मरूभूमियों में। युद्ध करे, मरे खपे और अपने लिये अधिक से अधिक शत्रु उत्पन्न करे। युवराज बनने से अब भोग लें हस्तिनापुर का राज्य। युधिष्ठिर बोले महाराज क्षत्रिय का कर्म मूलत: शस्त्र कर्म ही है। राजाओं के लिये दुष्ट दलन तथा आत्मरक्षा के लिये युद्ध करना आवश्यक है पर अनावश्यक हिंसा करना, लूटपाट हमारा धर्म नहीं है। मैं तो इसे नीति विरुद्ध समझता हूं। अनावश्यक हिंसा पाप है। हस्तिनापुर के राजकोश को समृद्ध करने के लिये अनेक साधन है। महाराज यदि कृषि व्यवसाय को सुविधा दें तो राज्य और अधिक सम्पन्न होगा। राजा देश में शान्ति और न्याय की स्थापना करे तो उद्योग विकसित होंगे। राज्य में अच्छे मार्गों और सडकों का निर्माण करे तो यात्री सुरक्षित यात्रा कर सकते है तथा व्यापार की भी वृद्धि होगी महाराज। जिस राज्य में उद्योग तथा व्यापार विकसित होगा वह राज्य तो स्वयं ही समृद्ध और सम्पन्न होगा। सैनिक अभियान कर अन्य राजाओं से शत्रुभाव रख राजाओं का धन छीन कर लाना धर्म नहीं बल्कि दस्युवृति होगी। पुरानी पीढियों और परम्पराओं का अनुकरण करना कोई आवश्यक नहीं होता है। युग और परिस्थितियों के बदलने के साथ साथ आज का चिन्तन और व्यवहार भी उसके अनुसार बदलता है। वर्तमान परिस्थिति में सैनिक अभियान का कोई औचित्य नहीं है। यह तो मेरा मत है। फिर भी महाराज अपनी आज्ञा में परिवर्तन नहीं चाहते है तो राजाज्ञा का पालन होगा।

धृतराष्ट्र बोले तो फिर युवराज अपने भाइयों के साथ पांचाल राज द्रुपद पर आक्रमण करने क्यों गये थे। यह तो तुम्हारी अनुमति और सहयोग से हुआ था ? युधिष्ठिर ने कहा इस विषय में मैं अपने विचार सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं करना चाहता। धृतराष्ट्र ने पूछा तो क्या सत्यवादी युधिष्ठिर गोपनीयता की आड में सत्य को छिपाने का प्रयत्न कर रहा है। युधिष्ठिर बोले नहीं महाराज सत्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं है पर मेरे मत से कहीं गुरुजनों के प्रति किसी प्रकार का अनादर का भाव मन में न हो। धृतराष्ट्र ने कहा यदि आदर और अनादर का विचार कर हम अपना सत्य स्वतन्त्र मत प्रकट नहीं करेंगे तो राजकाज न्याय ठीक से नहीं हो सकता। इसमें किसी के अनादर की बात तो है ही नहीं। यह तो मात्र विचार विमर्श है। विचार विमर्श में मतभेद तो होते ही है फिर आदर अनादर का प्रश्न ही क्यों उठे ? भीष्म भी वहीं बैठे थे यह सब देख सुनकर उन्हे शुभ नहीं लग रहा था। राजा और युवराज का इस प्रकार का मतभेद और टकराव नहीं होना चाहिये। न ही राजा को अपने युवराज के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये जैसे कोई न्यायाधीश कोई अपराधी के साथ करता है। यदि राजा और युवराज ही अपनी निर्धारित राज्य की नीतियों पर सहमत नहीं होंगे तो फिर अन्य मन्त्री और सभासद भी उच्छृंखल हो जायेंगे। युवराज युद्ध का विरोध कर रहा है। क्षत्रिय होकर भी युद्ध के लिये व्यग्र नहीं है। युधिष्ठिर तो आरम्भ से ही सत्य, न्याय और अनृशंसता की बात करता है। वह तो धर्म पर चलना चाहता है। धर्म का मार्ग सत्य की खोज में ले जाता है। सत्य के लिये न्याय आवश्यक है और न्याय के लिये समता

चाहिये। तथा समता के लिये अनृशंसता। धृतराष्ट्र तो वास्तव में युधिष्ठिर पर अकारण ही दबाव डाल रहा है।

युधिष्ठिर ने कहा पांचाल राज पर किया गया आक्रमण मेरी सहमति और इच्छा से नहीं हुआ और न ही मैं उसे उचित मानता हूं, यह तो मात्र गुरु दक्षिणा चुकाने के लिये किया गया आक्रमण था। गुरु दक्षिणा चुकाने में औचित्य और अनौचित्य का विचार नहीं किया जाता। वह तो आदेश होता है जिसका पालन किया जा सकता है। उसके औचित्य और अनौचित्य पर विचार करना गुरु का काम है शिष्य का नहीं। मैं गुरुद्रोही नहीं हूं इसलिये उस अभियान में मुझे सहयोग करना पडा। उस अभियान में मूलत: धर्म नहीं था प्रतिहिंसा थी, प्रतिशोध था। प्रतिहिंसा का जन्म नृशंसता से होता है। प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना प्रतिक्रिया की अन्तर्हीन श्रृंखला को ही जन्म देती है। जीवन में सम्बन्ध कभी भी स्थिर नहीं रहते हैं। वे बनते बिगडते हैं। उनमें उतार चढाव आते हैं उनमें सघनता और विरलता नहीं होती हैं। धृतराष्ट्र बोले दिग्विजय से शक्ति का ऱ्हास नहीं विकास होता है। बीच में ही विदुर बोला युद्ध में सेनाये थकती है और नष्ट भी हो जाती है फिर अकारण सैनिक अभियान भी तो नहीं होना चाहिये। युद्ध कभी भी लाभदायक नहीं होते है महाराज।

धृतराष्ट्र बोला विदुर मुझे सूचना मिली है कि सौवीर प्रान्त का राजा दत्तमित्रा हमारे प्रति अनादर प्रदर्शन कर रहा है। उसने पिछले करों का बकाया भी नहीं चुकाया है। गन्धर्वों से निरन्तर युद्ध कर विजयी होकर स्वयं को बहुत शक्तिशाली समझने लगा है। उसपर विजय क्यों नहीं प्राप्त की जाये ? विदुर समझ गया कि धृतराष्ट्र युद्ध के बिना नहीं मानेगा, जाने कैसी रक्त पिपासा उसके मन में उठ रही है ? विदुर बोला यह तो सत्य है महाराज। सौवीर नरेश दत्त मित्रा ने हमारे परामर्शों की अवहेलना तो की है। आप चाहे तो उसके सम्मुख शक्ति प्रदर्शन किया जा सकता है। धृतराष्ट्र बोला तो ठीक है अब शीघ्र ही इसके लिये सेना प्रयाण करे। सेना का नायक अर्जुन हो। भीम नकुल सहदेव उसकी सहायता के लिये जाये। वहां से अधिक से अधिक कर प्राप्त करें ताकि हस्तिनापुर समृद्ध हो और सौवीर नरेश का अहंकार नष्ट हो।

एक दिन द्यूतगृह में दो व्यक्ति किसी विवाद को लेकर परस्पर झगड पडे। एक दूसरे ने मिथ्या कथन और प्रवंचना के आरोप लगाये, अपशब्द कहे और अन्त में हाथा पाई हो गई। हाथा पाई हो जाने से उनके अपने अपने समर्थक भी सम्मिलित हो गये। मार पीट हुई। द्यूत ग्रह की वस्तुयें टूटी, लोगों के सिर फूटे। वे लडते लडते नगर के हाट में निकले और दो-तीन दूकानें लूटी गयी। इस प्रकरण को लेकर सारा हाट बन्द हो गया। इस तरह पूरे नगर में एक आतंक फैल गया।

राजसभा में अभियोग पेश हुआ और इस घटना पर विचार हुआ। हाट के व्यापारियों का कहना था कि उनकी धन की सुरक्षा करने में नगरपाल, कोतवाल असमर्थ रहे हैं। राज्य की ओर से लूटी गई दूकानों की क्षतिपूर्ति की जानी चाहिये। व्यापारियों का विश्वास लौटाने के लिये इस घटना के अपराधियों को सार्वजनिक रूप से कठोर दंड मिलना चाहिये तथा हाट में इतने राजकीय सैनिक नियुक्त किये जायें कि वे प्रभावशाली ढंग से नागरिकों के जान माल की सुरक्षा कर इस तरह के उपद्रवों को रोकें। धृतराष्ट्र ने हाट के व्यापारियों को समझाबूझा कर विदा कर दिया और युधिष्ठिर से पूछा यह क्या हो रहा है युवराज ? युधिष्ठिर बोला यह तो होना ही था महाराज। जब कारण उपस्थित हो तो उसका कार्य अपने आप उपस्थित हो जाता है। दुर्योधन उठकर खडा होकर बोला नगरपाल को इसके लिये दंडित किया जाये महाराज। युधिष्ठिर बोला नहीं महाराज। जिन परिस्थितियों में ऐसी घटनायें होती है उन परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाली नीतियों का निर्धारण नगरपाल नहीं करता इसलिये नगरपाल को आदेश दें कि जिन्होने झगडा किया है और लूटपाट में सम्मिलित हुये हैं उन्हे बन्दी बनाकर राजसभा में उपस्थित कर दंडित किया जाये। नीति निर्धारण करने वाले उत्तरदायी लोगों को भी बताया जाये कि उनकी बनायी हुई नीतियां प्रजा के हित में नहीं है इसलिये नीतियों में परिवर्तन करना आवश्यक है।

धृतराष्ट्र बोला तो युवराज क्या यह नीति दोष के कारण दुर्घटना हुई ? विदुर विवाद रोकने के लिये बोले महाराज अपनी

नीतियों का प्रजा पर प्रभाव देखकर राजा को उनपर पुनर्विचार करना प्रत्येक बुद्धिमान, न्यायप्रिय, तथा प्रजा वत्सल राजा का धर्म है। युधिष्ठिर बोले महाराज मैं इस घटना का कई धरातलों पर विचार करता हूं। जो सूचनायें प्राप्त हुई है उसके अनुसार दोनों व्यक्ति मदिरापान में धूत हो द्यूतक्रीडा में संलग्न हुये। मदिरापान तथा द्यूतक्रीडा का राज्य की ओर से कोई निषेध भी नहीं है। पर इससे शान्ति भंग होती है। इस निषेध से लोगों को बन्दी कर उपयुक्त दंड दिया जाना चाहिये ताकि वे पुन: अपराध की पुनरावृति न करे तथा इससे अन्य लोग भी शिक्षा प्राप्त करें। जिन व्यापारियों की दूकानें लूटी गई है उनकी क्षतिपूर्ति राज्य की ओर से की जानी चाहिये। क्योंकि राज्य उनकी रक्षा के लिये उनसे कर लेता है। कर लेकर राज्य उनकी रक्षा करने में असफल रहा है इसलिये राज्य को यह बोझ अपने ऊपर लेना ही पडेगा। जिस समय यह घटना घटी उस समय नगरपाल की व्यवस्था कैसी थी। नगरपाल के सैनिक, प्रहरी दंड धर उस समय कहां पर थे ? उन्होने झगडा शुरू होते ही क्यों नहीं रोका ? जिस समय हाट में लूटपाट हुई वे क्यों अनुपस्थित थे तथा उन सारे अपराधियों को क्यों नहीं अब तक बन्दी बनाया गया? हमें राज्य की नीतियों में भी सुधार लाना चाहिये। द्यूतगृह और मदिरालय राज्य की अनुमति से चल रहे हैं। यह सब प्रजा के आकर्षण और मनोरंजन के स्थल हैं। पर मदिरापान के पश्चात मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है। उसकी उस दुर्बुद्धि से अनेक अनर्थ होते है। द्यूत उसमें लोभ जगाता है। लोभ से विवेक पंगु होता है। ऐसे में जो व्यक्ति मदिरापान कर द्यूत क्रीडा में संलग्न होगा वह अपनी सद्वृत्तियों को नष्ट कर हीन वृतियों का आचरण करेगा। इसमें ऐसी घटनाओं की सम्भावनायें बढ जाती है इसलिये यही उचित है कि द्यूत गृह और मदिरालय खोलने की अनुमति पत्र न दिये जाये। न ये स्थान होंगे, न प्रजाजन का विवेक नाश होगा, न लोभ जगेगा और न ही दुर्घटनायें होगी।

तब धृतराष्ट्र का चाटुकारी मन्त्री कर्णिक उठ खडा हुआ और बोला महाराज युवराज की बात से स्पष्ट है मदिरालय और द्यूतगृह राज्य की आय के कितने बडे स्त्रोत है। और यदि राजकोष में धन नहीं आयेगा तो राजा अपनी प्रजा के प्रति अपना वात्सल्य कैसे प्रदर्शित कर पायेगा ? उपरोक्त स्थान प्रजा के मनोरंजन के स्थल भी है। उनका निषेध अर्थात प्रजा के मनोरंजन का निषेध है। यदि प्रजा के उचित मनोरंजन का प्रबन्ध नहीं किया गया तो प्रजा उबकर या तो द्रोह करेगी या अनियंत्रित मनोरंजन के साधन ढूंढेगी या उनकी सोच किन्ही विध्वंसकारी गतिविधियों में प्रेरित होगी। यह भी सम्भव है कि ये लोग अपने ही घरों में गुप्त रूप से बिना गुणवत्ता की मदिरा का उत्पादन करने लगेंगे और उसका व्यवसाय भी करने लगे। उसका सेवन भी करेंगे। इससे राज्य कर से वंचित होगा। मदिरा भी हल्की गुणवत्ता की अधिक बनने लगेगी। निकृष्ट कोटि की मदिरा का सेवन करने से प्रजा रोगी होगी। आरोग्य विभाग की असुविधायें बढ जायेगी क्या युवराज यह सब चाहेंगे ? द्यूतगृह बन्द हो जाने पर घर घर में द्यूतक्रीडा शुरू हो जायेगी जिससे घरों में कलह झगडे होंगे और राज्य उनकी सुरक्षा व्यवस्था नहीं कर पायेगा। उत्पात और उपद्रव बढेंगे। हो सकता है इससे वेश्यावृत्ति को भी प्रोत्साहन मिले महाराज। युवराज यह भूल गये हैं कि जब राजप्रासादों का निर्माण किया जाता है तो उसमें कूडा फेंकने का भी स्थान बनाना पडता है। यदि ये सब जानकर भी युवराज राज्य और राजवंश के लिये इन गम्भीर समस्याओं का पहाड खडा करना चाहते है तो इनको कौन रोक सकता है। किन्तु आज तो यह कठिनाइयां महाराज आपके लिये खडी होंगी पर कल वे उनके सम्मुख ही आयेगी तब उन्हे इन सबका सामना करना पडेगा। युधिष्ठिर की नीति के विरोध में यह सब कहकर कर्णिक अपने स्थान पर बैठ गये।

युधिष्ठिर बोला मैंने मन्त्री कर्णिक के विचार सुने हैं महाराज। हमें प्रजा के साथ न्याय करना है तो सत्य को देखना होगा तर्क को नहीं। न्याय, अन्याय, सहानुभूति और विवेक से हीन तर्क बुद्धि बहुत उपद्रवी होती है। मन्त्री कर्णिक की मूल धारणा है कि मदिरा और द्यूत मानव जीवन की अनिवार्यतायें है। इस दूषित धारणा पर विकृत बुद्धि द्वारा तर्क का भवन खडा किया जायेगा तो परिणाम भी दुष्नीति ही होगी। मैं भी यह भी जानता हूं कि सिर्फ हस्तिनापुर में ही नहीं बल्कि पूरे जम्बूद्वीप में मदिरा और द्यूत

मनोरंजन के प्रमुखतम साधन हैं। राजवंशों में भी इसका बहुत प्रचलन है। वे भी इसके बिना नहीं रह सकते। यदि कोई क्षत्रिय द्यूतक्रीडा या मदिरापान की ओर से उपरत है तो उसे कायर, भीरू और कापुरुष समझा जाता है। क्षत्रिय को तो वीर होना चाहिये हिंस्र नहीं पर हमारे समाज ने ये कुछ कृत्रिम लक्षण क्षत्रियत्व होने के साथ जोड दिये है और मान लिया है कि जो द्यूतक्रीडा और मदिरा सेवन नहीं करता वह तो क्षत्रिय ही नहीं है। राज्य मानव कल्याण की नीतियां बनाये तो मनुष्य को मनुष्य ही मानकर न कि उसे पशु मानकर। यदि हम दूषित वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगायेंगे और मनुष्य को सद्वृतियों की ओर प्रेरित करेंगे तो कोई कारण ही नहीं कि मानव मन का उचित विकास न हो। राजा प्रजा पर इसलिये कर लगाता है कि वह उस धन को प्रजा के कल्याण में लगाये, इसलिये नहीं कि उससे राजा का, राजवंश का या राजकोष समृद्ध हो और अपव्यय हो। यदि यह धन प्रजा को दुष्प्रेरित कर प्राप्त किया गया तो इसमें न तो प्रजा का कल्याण है न ही राज्य का और न राजा का। राजा न तो कभी स्वार्थान्ध व्यापारी होता है और न ही दस्यु। जो कोई राजा अपनी समृद्धि के लिये प्रजा के हितों की उपेक्षा करे तो वह राज धर्म नहीं निभाता है। धनोपार्जन भी धर्म के पथ के माध्यम से ही होना चाहिये। धर्म से शून्य धन केवल पाप को ही प्रोत्साहित करता है। जो पदार्थ हमारी प्रजा के मन और आत्मा के लिये घातक है उसका व्यापार कर हम अपने लिये यदि एक बडी राशि प्राप्त भी कर ली तो अन्तत: वह कल्याणकारी नहीं है। इसी बीच धृतराष्ट्र का दूसरा धूर्त मन्त्री पुरोचन उठ खडा होकर बोला लेकिन युवराज ने यह नहीं बताया कि राज्य की आय की हानि किस प्रकार पूरी करेंगें ?

युधिष्ठिर अपने पूर्ण तेज के साथ बोला राज्य की आय प्रजा कल्याण के लिये की जाती है। यदि प्रजा का अकल्याण कर राज्य की आय बढती है तो उससे अच्छा है कि राज्य की आय न बढे। द्यूतक्रीडा और मदिरालय पर लगे कर का अधिकांश भाग तो राजकर्मचारियों को भ्रष्टाचार में जाता है। शेष आय और उस पर लगे व्यय को घटाया जाय तो आय कर बहुत थोडी राशि होती है। इससे राज्य को आय तो होती नहीं बल्कि प्रजा का अहित होता जाता है। इतने में शकुनि बोल उठा वाह क्या विचार है युवराज के। क्या आप चाहते है कि मदिरालय और द्यूतगृह बन्द कर दिये जाये। उनके स्वामियों का व्यापार ही समाप्त कर दिया जाये ? वे सब सम्मानित प्रजाजन भूख से पीडित हो ? उनके यहां काम करनेवाले नौकर सेवक, भृत्य,दास दासियां आजीविका विहीन हो हस्तिनापुर की गलियों में भीख मांगे ? इस विभाग के सारे राजपुरुष निरीक्षक सेवा निवृत कर दिये जाये? क्या ये लोग महाराज की प्रजा नहीं है ? क्या इनके हित के विषय में भी सोचना आपका काम नहीं है ?

युधिष्ठिर बोला इतने लोगों की आजीविका के लिये हम अपनी सारी निरीह प्रजा को तो नारकीय भोग की बलि पर नहीं चढा सकते तथा आजीविका के साधनों का कोई अन्त नहीं। हमें कृषि और उद्योग का विकास करना चाहिये, उपयोगी और ललित कलाओं को प्रोत्साहन करना चाहिये तो अवश्य ही इतने लोगों के लिये काम उपलब्ध हो जायेगा। वे परिश्रम कर अपनी आजीविका पायेंगे तथा प्रजा का अकल्याण भी नहीं होगा। राज्य की आय प्रजा को समृद्ध कर ही बढायी जा सकती है, प्रजा का शोषण कर नहीं। राजा प्रजा का पालन करता है उसे द्यूत खिलाकर वंचित नहीं करता।

दुर्योधन बोला तुम बार-बार प्रजा कल्याण, हित की बात करते हो सुरापान तो राजप्रासादों में भी होता है। महाराज भी करते है क्या वे भी दोषी है ? क्या महाराज दुर्व्यसन से ग्रस्त है। द्यूत मैं भी खेलता हूं और मातुल शकुनि तो इस महाकला के पारंगत महापंडित है। तुम तो उन्हे भी अपमानित करना चाहते हो युवराज। भीष्म बीच ही बोल उठे राजन दुर्योधन का यह व्यवहार राजसभा की मर्यादा के अनुकूल नहीं है।

युधिष्ठिर बोले रूष्ट न हो पितामह। मैं यह भी जानता हूं कि राजकुमार दुर्योधन, मित्र अंगराज कर्ण तथा मामाश्री शकुनि द्यूत खेलते हैं, मैं यह भी जानता हूं कि ये लोग द्यूत-संगठन भी चलाते हैं। इसीलिये सम्भवत: दुर्योधन की भावनायें आहत हुई हो। उन्हे लगा मैंने उनके पिता और मामाश्री पर आक्षेप किया है पर यह बात नहीं है। महाराज और मामा शकुनि मेरे लिये उतने ही

आदरणीय है जितने वे कुमार दुर्योधन के लिये है। नीति की चर्चा करते हुये मेरे सामने व्यक्ति नहीं होता है। नामों को सामने रखकर हम नीति निर्धारित नहीं कर सकते। मैं नीति को व्यक्ति से बडा मानता हूं चाहे वह व्यक्ति अपने आपमें कितना भी बडा और महत्वपूर्ण क्यों न हो ? व्यक्ति के व्यसन या दुर्व्यसन का निषेध चाहे सम्भव न हो पाये किन्तु राज्य की नीति में प्रजा के अकल्याण का निषेध होना ही चाहिये।

धृतराष्ट्र बोला युवराज युधिष्ठिर इस समय तो केवल इतना बताओ कि हाट में जो घटना घट चुकी उसकी पुनरावृत्ति न हो उसके लिये क्या करना आवश्यक है ? बीच ही में दुर्योधन बोल उठा मेरे सोच के अनुसार व्यापारियों की सम्पत्ति की रक्षा के लिये हाट में सैनिकों की संख्या बढाई जाये और उनकी सुरक्षा के लिये जो दैनिक व्यय उन सैनिकों पर है वह व्यापारी समुदाय से लिया जाये इससे राज्य को अतिरिक्त सैनिक व्यय भार भी नहीं उठाना पडेगा और व्यापारियों की सुरक्षा भी बढ जायेगी।

युधिष्ठिर बोले मेरे विचार से हाट में अतिरिक्त सैनिक व्यवस्था तो उचित है। इससे व्यापारियों में ही नहीं सामान्यजन में भी आत्मविश्वास जगेगा। उपद्रव करनेवालों में भय का संचार होगा पर सैनिकों का व्यय व्यापारियों से लेना उचित नहीं है। यदि यह व्यय व्यापारियों से लिया गया तो यह शासन नहीं फिर तो यह व्यापार होगा। उससे तो यह नयी प्रथा आरम्भ होगी कि जो भी व्यक्ति अथवा समुदाय जब कभी भी राजकीय सैनिकों की सेवा प्राप्त करेगा उसका शुल्क देकर वह सेवा प्राप्त कर लेगा और जिस व्यक्ति अथवा समुदाय के पास शुल्क देने के लिये धन नहीं होगा वह राजकीय सैनिकों की सेवा से वंचित रह जायेगा। सैनिकों को व्यय के लिये हम प्रजा से कर लेते हैं। प्रजा नियमित रूप से कर देती है इसलिये मेरा मत है कि सुरक्षा के लिये सैनिकों की संख्या बढायी जाये। इसके साथ-साथ उन सारे लोगों को तत्काल बन्दी बनाया जाये जिन्होने हाट में उपद्रव किया है और राज्य की शान्ति भंग की है। वे दोनों व्यक्ति भी गिरफ्तार किये जाये और महाराज उन्हे दंडित करे जिन्होने द्यूतग्रह में झगडा आरम्भ किया। विलम्ब होने से प्रजा में सन्देह का संचार तथा अनुशासन भंग होगा।

दुर्योधन तमककर उठकर खडा होकर बोला मेरे विचार से यह अनुचित होगा महाराज। हमें तो इन घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकनी है। अनावश्यक रूप से अधिक से अधिक लोगों की गिरफ्तारी कर उन्हे दंडित कर राज्य के शत्रु बढाना है जो नीति संगत नहीं होगा। किस किस को बन्दी करेंगे आप ? उपद्रवों के लिये कभी किसी को अपराधी नहीं ठहराया जाता। यह तो प्राकृतिक आपदाओं के समान एक आकस्मिक और स्वत: स्फूर्त आपदा है जिसके प्रभाव में कोई भी आ सकता है, कोई भी उस सामूहिक आखेट का शिकार बन सकता है। कर्ण ने उठकर इसका समर्थन किया और कहा कि राजकुमार दुर्योधन ठीक कह रहे हैं महाराज। इस प्रकार की दुर्घटनाओं में लोगों को अपराधी ठहराने के लिये हम प्रमाण कहां से लायेंगे। उस समय तो वह सामयिक आवेश था। आवेश शान्त होते ही सब ओर शान्ति हो गई। ऐसे कृत्य न तो शत्रुता के भाव से किये जाते हैं और न ही अपराध की भावना से।

युधिष्ठिर और अधिक दृढ होकर बोले मैं इससे सहमत नहीं हूं। कोई भी सामूहिक कृत्य होने के कारण कोई अपराधक्षम्य नहीं हो जाता महाराज। अपराध तो अपराध ही है चाहे वह व्यक्ति करे, समूह करे अथवा समुदाय करे। बहुत सारे लोग सम्मिलत हो तो भी इस उपद्रव को क्षमा नहीं करना चाहिये क्योंकि अपराधी समय समय पर अपना लाभ देखते हुये उपद्रवों का आयोजन करते रहेंगे। निरपराध लोगों की हत्यायें होती रहेगी, उनकी सम्पत्ति लूट ली जायेगी। अपराधियों को तो कठोरतम दंड दिया ही जाना चाहिये न कि उनके अपराध करने के लिये कोई एक सुविधाजनक नीति का निर्माण और मार्ग बनाना चाहिये। मेरे विचार से तो शान्तिप्रिय निरपराध प्रजा को मालूम हो जाये कि उन्माद उनका न विशेषाधिकार है और न ही किसी प्रकार की ढाल जो उन्हे बचा सके जिससे वे किसी की हत्या कर दे या जान माल लूट ले, जला डाले। शान्ति प्रिय अनुशासनबद्ध प्रजा को अपने उन्माद और भावनाओं को नियन्त्रित रखना चाहिये अन्यथा अपराधी प्रजा के सिर पर ही नहीं बैठने लगेंगे बल्कि प्रजा की

भावनाओं से खेलकर उपद्रव कराते रहेंगे। इसका परिणाम होगा निरीह निरपराध शान्तिप्रिय प्रजा की हानि तथा अपराधी मनोवृति द्वारा समाज का स्थायी नेतृत्व गुंडा राज। हम युवराज से सहमत नहीं है यह कहकर सभी दुर्योधन, दुशासन, कर्ण, शकुनि, मन्त्री कर्णिक तथा वास्तु शिल्पी पुरोचन उठ खडे हुये और सभा छोडकर चले गये। धृतराष्ट्र भी यह कहकर कि मुझे लगता है युधिष्ठिर की इस नीति से राजसभा में पर्याप्त मतभेद है इसलिये इसपर फिर कभी पुनर्विचार किया जायेगा। जब तक हम इस विषय पर एकमत नहीं हो जाते तब तक इसके बारे में कोई नीति निर्धारित नहीं की जा सकती और न ही उसे क्रियान्वित। धृतराष्ट्र सिंहासन से उठ खडा हुआ और सभा विसर्जन का संकेत किया।

युधिष्ठिर सभा भवन के बाहर निकला तो सोच रहा था। क्या विचार विमर्श में भी संख्या और शारीरिक बल ही का महत्व अधिक है? क्या बुद्धि, विवेक, न्याय और तर्क का कोई महत्व नहीं है ? क्या धर्म इसलिये त्याज्य हो जायेगा कि वह कुछ महत्वपूर्ण लोगों की इच्छा के मार्ग में विघ्न उत्पन्न करता है ? तभी एकाएक विदुर पीछे से आया और युधिष्ठिर से बोला युवराज बहुत खिन्न हो रहे हो, चलो मेरे साथ। बैठो मेरे रथपर विदुर ने रथ का सारथ्य किया तथा युधिष्ठिर से बोला तुम एक विचारशील, न्यायी तथा प्रजावत्सल राजा की तरह राज्य की समस्याओं पर तर्कयुक्त विचार कर सकते हो। आपत्तियों का उत्तर दे सकते हो। विपक्ष व विरोधियों को संयत कर सकते हो। यह सब देखकर मुझे प्रसन्नता हुई पुत्र। पर तुमने देखा होगा महाराज धृतराष्ट्र तुम्हारे पक्ष में नहीं है, आचार्य द्रोण भी तुम्हारा समर्थन नहीं कर रहे थे, पितामह भीष्म मौन होकर सिर झुकाकर सब कुछ सुनते रहे। तुम्हारे विरोधी बहुत संगठित और आक्रमक हो रहे हैं तथा संख्या में भी बहुत अधिक। तुम्हारे सभी रिश्तेदार बाहलीक, सोमदत्त तथा भूरिश्रवा सभी तो तटस्थ थे। क्या तुम्हे नहीं लगा कि कुरुसभा अब सत्य बोलने का स्थान नहीं रहा ? युधिष्ठिर बोले पर काका मैं तो आज राजसभा में सत्य का विश्लेषण कर रहा था।

विदुर बोले भ्रष्ट समाज में सत्य का विवेचन किसी को रूचिकर नहीं होता है। तुम जितना सत्य, नीति, धर्म की बात करोगे राजसभा में अपने लिये तुम उतने ही विरोधी उत्पन्न करोगे और विपक्ष को सबल बनाओगे। ऐसे में लोग कभी नहीं चाहेंगे कि राज्य में न्याय हो। क्योंकि न्याय उनके स्वार्थ का विरोधी है। यहां तो स्वार्थ की परिभाषा भी बदल चुकी है। जहां प्रजा सन्तान के समान प्रिय न होकर आखेट का साधन हो वहां राजा का स्वार्थ प्रजा पालन में नहीं होता है। तुमने देखा होगा कि उपद्रवियों को दंड देने में न तो राजा का ही मन है और न ही उनके अपने पुत्रों और उनके मित्रों का। मदिरा पीकर उपद्रव करनेवाला स्वयं दुर्योधन का सारथी था। हाट से लूटी जानेवाली सभी मूल्यवान वस्तुयें मन्त्री कर्णिक और भ्रष्ट पुरोचन के घर में पहुंच गई।

युधिष्ठिर तो यह सब कुछ सुनकर स्तब्ध रह गया। युधिष्ठिर बोला ये तो दोनों मन्त्री है फिर उनके पास धन का तो कोई अभाव नहीं है। विदुर बोला वत्स धन का भाव और अभाव तो अपनी सन्तोष सीमा रेखा का नाम है। युधिष्ठिर ने पूछा तो फिर दुर्योधन उनका समर्थन क्यों कर रहा है ? क्या दुर्योधन को कोई दूसरा सारथि नहीं मिलेगा ? क्या कोई और मन्त्री नहीं मिलेंगे? विदुर बोला युधिष्ठिर यह बात नहीं है युवराज। यदि दुर्योधन अपराधियों, दुर्वृतों, अन्यायी स्वार्थियों का पालन-पोषण नहीं करेगा, अपने साथ नहीं मिलायेगा तो राज्याधिकार प्राप्त करने में उसके अन्यायपूर्ण षडयन्त्रों में उसका समर्थन कौन करेगा ? पहले तो दुर्योधन राज्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्न कर रहा था और अब तुम्हारे युवराज बन जाने के पश्चात संघर्ष कर रहा है। रथ हांकते-हांकते विदुर का घर आ गया। रथ से उतर कर दोनों घर में चले गये। विदुर पत्नी पारसंवी घर में युवराज युधिष्ठिर का स्वागत कर बोली युवराज युधिष्ठिर का इस घर में स्वागत है। युवराज भोजन तैयार है आइये। युधिष्ठिर के साथ भोजन करते करते विदुर ने बात प्रारम्भ की दुर्योधन अब प्रयत्न करते-करते संघर्ष तक तो आ पहुंचा है और सम्भव है भविष्य में कोई षडयन्त्र भी कर ले तथा युद्ध तक भी पहुंच जाये।

युधिष्ठिर बहुत ही शान्त दृष्टि से विदुर को देखकर बोले काका मेरे मन में आता है कि मैं यह राज्य ही छोड दूं। कुरुकुल की

शान्ति के लिये। हम पांचों भाई कहीं भी अपना जीवन सुखमय व्यतीत कर सकते हैं। दुर्योधन यदि राज्य के बिना नहीं जी सकता तो राज्य वहीं ले ले। विदुर बोले- नहीं युधिष्ठिर ऐसा मत सोचो। मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में यह विचार उठते होंगे। तुम्हारे पितामह भीष्म के मन में भी कुछ ऐसे ही विचार उठे और यदि उन्होंने भी यदि राज्य नहीं त्यागा होता तो आज कुरुवंश और हस्तिनापुर का स्वरूप कुछ और ही होता। उनके इस त्याग का फल हम सब आज भुगत रहे हैं। तुम्हारे पिताश्री आर्य पांडु भी अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को राज्य सौंप वन में नहीं गये होते तो सम्पूर्ण स्थिति भिन्न होती। तुम क्या समझते हो कि तुम्हारे राज्य त्याग देने से कुरुकुल में सर्वथा शान्ति हो जायेगी ? दुर्योधन क्या सन्तुष्ट और निष्क्रिय हो जायेगा ? उसे सदा यही भय सतायेगा कि तुम अपना राज्य लौटाने का प्रयत्न करोगे। वह तुम पांचों को भी जीवित नहीं रहने देने का प्रयत्न करेगा। सत्ता पूर्ण रूप से उसके हाथों में होगी तो तुम लोग अपनी मातासहित अपने प्राण बचाने के लिये इधर उधर फिरते रहोगे। यह राज्य तुम्हे अधिकार के रूप में नहीं दायित्व के रूप में सौंपा गया है। तुम अपना दायित्व छोडकर भाग नहीं सकते। तुम्हारे अपने भाई तुम्हे राज्य का त्याग नहीं करने देंगे। तुम्हारी माताश्री इसे कभी स्वीकार नहीं करेगीं। यादव वसुदेव कृष्ण भी तुम्हे यह राज्य दुर्योधन के कारण जरासंध को सौंपने नहीं देगा। और न ही प्रजा। तुम अपने कर्तव्यों से विमुख होकर कायरों के समान भाग भी नहीं पाओगे युधिष्ठिर। तुम कुरुओं के इस राज्य को अपने पूर्वजों के यश की रक्षा और प्रजा के न्यायपूर्ण पालन के लिये ग्रहण करो। तुम अपने भाइयों और माता के प्राणों की रक्षा और उनके भरण-पोषण के लिये राज्य धारण करो। राज्य भी उनके लिये ही होता है जिन्हे उसका मोह नहीं होता, जो उसके दास नहीं स्वामी होते है। युधिष्ठिर सावधान रहना तथा अपनी आंखे खुली रखो। तुम निश्चिंत होकर तो नहीं जी सकते। तुम्हारे चारों ओर भिन्न-भिन्न प्रकार के षडयन्त्र रचे जा रहे हैं। तुम्हारे चारों भाई दिग्विजय के बहाने युद्ध के लिये तुमसे दूर भेज दिये गये हैं। मथुरा में तुम्हारे फूफेरे भाई कृष्ण और यादव बहुत कठिन स्थिति में है। एक ओर से जरासंध चेदि नरेश दमघोष के साथ, आक्रमण कर रहा है दूसरी ओर से म्लेच्छ राज कालयवन। मुझे सूचना मिली है कि कृष्ण मथुरा खाली कर सागर में द्वीप बनाकर द्वारिका में चला गया है।

अब श्रीकृष्ण द्वारिका में है और हस्तिनापुर में शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और धृतराष्ट्र राजनीति की रणभूमि में लगनेवाले अपने घावों को चाट रहे है क्योंकि दुर्योधन के न चाहते हुये भी युधिष्ठिर युवराज घोषित किये जा चुके हैं और भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव विजय यात्रा पर जा चुके हैं। इसका अर्थ यह है कि जब तक शकुनि के घाव भर नहीं जाते तब तक हस्तिनापुर में भी कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होगा। यही अवसर है हस्तिनापुर और द्वारिका से निकल कर मगध नरेश जरासंध की ओर चलें। एक मार्ग तो चेदि नरेश दमघोष की ओर जाता है जहां इस महाकथा का एक महत्वपूर्ण पात्र दमघोष पुत्र शिशुपाल है और दूसरा मार्ग विदर्भ राज्य की तरफ जाता है जहां रूक्मिणी सोनजुडी की भांति जिसके व्यक्तित्व की सुगन्ध सारे भारतवर्ष में फैल हुई है। तीसरा मार्ग जरासंध की ओर जो आज भी बदले की आग में जल रहा है। वह कंसवध पर यदुवंशियों को क्षमा कर ` को बिल्कुल भी तैयार नहीं है पर अब द्वारिका से अकेले टक्कर लेना जरासंध के वश की भी बात नहीं है। तो वह यह चाहने गा है कि वो चेदिराज दमघोष के साथ सांठगांठ कर ले कि उसके चार महावीर पुत्रों को द्वारिका के विरुद्ध अपनी लडाई म अपना मोहरा बना उनका इस्तेमाल कर सके। चेदिराज दमघोष वसुदेव की बहन श्रुदर्शना को ब्याहे गये और इस नाते चेदि रेश का पुत्र शिशुपाल वासुदेव कृष्ण का फूफेरा भाई है और हस्तिनापुर में पांडवों का वह मौसेरा भाई है। यह कहानी पूरे उसी एक परिवार के इर्द गिर्द घूम रही है। तो हस्तिनापुर में शकुनि और मगध में नरेश जरासंध ये दोनों खिलाडी अपने अपने सामने राजनीति की चौपड बिछाये बैठे हैं। शकुनि का पांसा है दुर्योधन और जरासंध का पांसा है शिशुपाल। जरासंध सोचता है कि यदि विदर्भ की पुत्री रूक्मिणि का शिशुपाल से विवाह हो जाये तो यदुवंशियों की बाजी मात करने के लिये रूकमी जैसा महावीर भी पांसे की तरह उसके हाथ में आजायेगा। इसलिये ठीक यही है कि जरासंध अपनी सेनासहित विदर्भ की ओर जाने को प्रस्थान

करता है और इस चौपड पर अपना पहला पांसा फेंकता है।

जरासंध विदर्भ की ओर बढ रहा है। सेनापति ने सूचना दी कि महाराज हम विदर्भराज की सीमा में प्रवेश कर चुके है। विदर्भ में विदर्भ के महाराज भीष्मक का दरबार लगा हुआ है और सभी सभासद और मन्त्रीगण महाराज भीष्मक की जयजयकार कर रहे हैं। इतने में ही एक चर ने आकर सूचना दी कि महाराज अभी-अभी समाचार मिला है कि मगध नरेश जरासंध नगर की ओर ही पधार रहे हैं। भीष्मक बोले पुत्र रूकमी तुम आगे जाकर मेरे परम मित्र नरेश जरासंध का स्वागत कर यहां ले आओ। रूकमी बोला यदि आपकी ओर से स्वागत करूं तो मेरी ओर से क्या करूं पिताश्री। भीष्मक बोले उन्हे पिता समान मानकर प्रणाम करो और आशीर्वाद लो। मगध नरेश न केवल हमारे मित्र ही है वे भारतवर्ष के सबसे प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट भी है। यूं भी वे आदरणीय है उन्हे आदर सहित ले आओ। रूकमी बोला जो आज्ञा पिताश्री और यह कहकर रूकमी चला गया। अब भीष्मक ने अपने राज दरबार में अपने मंत्री से पूछा पहले तो मगध नरेश सूचना दिये बिना कभी नहीं आये। इसका रहस्य क्या हो सकता है ? मन्त्री बोला कोई विशेष ही कारण होगा महाराज। ये तो उनके पधारनेपर स्वयं ही पता चल जायेगा।

जरासंध के खेमे में आकर किसी चर ने सूचना दी कि युवराज रूकमी आपके स्वागत के लिये आ रहे हैं महाराज। जरासंध ने अपने सेनापति एकलव्य को आज्ञा दी कि तुम हमारी ओर से युवराज रुकमी का स्वागत करो। एकलव्य ने कहा जो आज्ञा महाराज और रुकमी के शिबिर में आ गया। रूकमी बोला एकलव्य तुम्हारी आँखों की इस कडुवाहट से लगता है कि आचार्य द्रोण ने तुम्हारे साथ बहुत बडा अन्याय किया है। एकलव्य बोला युवराज गुरु होते हुये उन्हे गुरु दक्षिणा मांगने का अधिकार था और यह दक्षिणा देने का मेरा कर्तव्य था। मेरा कटा हुआ अंगूठा गुरु का दिया हुआ वो वरदान है जो मानव जाति को विवश कर देगा कि गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुन के साथ-साथ मेरा भी नाम याद रखा जायेगा। उन दोनों के साथ मैं भी अमर हो गया युवराज। जब कभी भी इस जगत में गुरु के प्रति शिष्य की निष्ठा की बात निकलेगी तो अर्जुन से पहिले एकलव्य का नाम लिया जायेगा। रूकमी बोला जो तुम कह रहे हो वह भी सत्य है मित्र परन्तु अन्याय तो अन्याय ही है। चलो चलें। महाराज जरासंध को अधिक प्रतीक्षा नहीं करवानी चाहिये। दोनो जरासंध की ओर जाते हैं।

मगध नरेश ने कहा आओ युवराज रूकमी। रूकमी ने मगध नरेश को प्रणाम किया और चरणों का स्पर्श किया। मगध नरेश जरासंध को लेकर उनके रथ में बैठकर विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में पहुंचे। वहां राजदरबार में ले जाकर रूकमी महाराज भीष्मक के पास पहुंचे। जरासंध ने रास्ते में रूकमी से पूछा हमारे मित्र विदर्भ नरेश तुम्हारे पिता स्वस्थ तो हैं ना ? रूकमी ने उत्तर दिया महाराज मेरे पिताश्री पूर्ण तरह स्वस्थ हैं और मुझे आपके स्वागत के लिये भेजा है। आजकल वे मेरी बहिन रूक्मिणि के स्वयंवर के बारे में सोचते रहते है। जरासंध बोला तो फिर मैं ठीक समय पर ही आया हूं। रूकमी बोला वो कैसे महाराज ? जरासंध बोले वास्तव में मैं इसी समस्या का समाधान लेकर आया हूं। तुम्हारे पिताश्री तो मेरे गहरे मित्र है। इस नाते रूक्मिणि मेरी भी पुत्री हुई। उसके लग्न के विषय में मैंने भी कुछ सोच रखा है।

भीष्मक ने जरासंध का स्वागत किया और अपने पास बिठाया तथा क्षेम कुशल पूछी। जरासंध ने रूक्मिणि के लिये चेदि नरेश दमघोष के पुत्र युवराज शिशुपाल का प्रस्ताव रखा। भीष्मक बोले चेदि नरेश यदि आपके मित्र हैं तो इस नाते वो मेरे भी प्रिय मित्र हुये और यदि युवराज शिशुपाल की कथाओं से पूरा भारत वर्ष गूंज रहा है। जरासंध बोले महाराज भीष्मक मैं यह समझूं कि रूक्मिणि स्वयंवर के लिये आपने शिशुपाल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। इतने में ही वहां रुक्मणगंद दूसरा पुत्र महाराज भीष्मक का आ जाता है। और पिताश्री को प्रणाम करता है। भीष्मक अपने पुत्र को आयुष्मान भव का आशीर्वाद देते है और जरासंध से उसका परिचय कराते कि यह मेरा दूसरा पुत्र रूक्मण है। पुत्र मगध नरेश को प्रणाम करो। जरासंध ने रूकमण को आयुष्मान भव कहा। भीष्मक बोले बैठो पुत्र। तुम ठीक समय पर ही आये हो। हम पुत्री रूक्मिणि स्वयंवर के विषय में ही

वार्ता कर रहे थे। रुक्मण बोला इस विषय में मेरा भी एक निवेदन है पिताश्री। रूक्मिणि हमारी इकलौती बहन है और पांचाली के अतिरिक्त पूरे भारतवर्ष में और कोई भी राजकन्या के साथ उसकी समानता नहीं की जा सकती। न ही संस्कारों में, ना ही सौन्दर्य में। फिर उसका वर तो ऐसा होना ही चाहिये जो नरों में भी नारायण लगे। भीष्मक बोले ऐसा कौन है पुत्र ? रुक्मण ने कहा वासुदेव श्रीकृष्ण पिताश्री। रूक्मी बोला असम्भव। रूक्मण ने कहा क्यों भ्राताश्री ? रूक्मी बोला पहला कारण यह है कि तुमने उसका नाम लेकर मगध नरेश के सामने मगध नरेश का अपमान किया है। मगध नरेश हमारे पिताश्री के अतिथि है और उनका अपमान पिताश्री का अपमान है और दूसरा कारण यह है कि रूक्मणि राजकन्या है और उसका विवाह राजवंश में ही हो सकता है और तीसरा कारण यह है कि कौन जाने वह वसुदेव का पुत्र है या महाराज कंस के दास नन्द का ? क्या पता वो देवकी पुत्र है या यशोदानन्दन ? जिसके वंश वृक्ष की जडों का ज्ञान नहीं हम उसके साथ अपनी बहन का विवाह कैसे कर सकते है ? रूक्मण बोला परन्तु भ्राताश्री। रूक्मी बोला तुमने सुना नहीं हम अपनी बहिन रूक्मिणि का विवाह उस ग्वालिये के साथ नहीं कर सकते। जरासंध बोले और चेदि राज का विदर्भ से यह सम्बन्ध राजनैतिक दृष्टि से भी लाभदायक सिद्ध होगा। रूकमी बोला यदि भुजाओं में बल हो मगध नरेश शूरवीर कभी भी राजनीति को नातों का आधार नहीं बनाते। जरासंध बोले गन्धमादन के ऋषि द्रोण का शिष्य अथवा परशुरामजी से शस्त्र विद्या पाने का यौद्धा भी यह बात कह सकता हैं परन्तु जीवन केवल भुजाओं के बल पर ही नहीं है। भुजाओं से भी आगे बहुत दूर तक है और पीछे भी बहुत दूर तक है। अतीत में देखो लंकापति रावण यही भूल कर चुके है। उनकी भुजाओं में भी बडा बल था रूक्मी।

भीष्मक बोले रहने दो, यह वाद-विवाद किसलिये ? रूक्मी और शिशुपाल के एक हो जाने के पश्चात भारतवर्ष के किसी भी राज्य में राज्य के राजा की शक्ति चेदि देश की सीमा की ओर देखने का साहस भी नहीं कर पायेगी और न विदर्भ की सीमा की ओर। भीष्मक बोले मैं आपके इस प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत करता हूं। हमारी ओर से आप युवराज शिशुपाल को आमन्त्रण भेजे। रूक्मी बोला आपका आदेश सिर आँखों पर पिताश्री। शिशुपाल के जैसे यौद्धा का सम्बन्धी होना हमारे लिये गौरव का विषय है। परन्तु मगध नरेश की तर्क से मैं सहमत नहीं हूं रूकमण बोला। जरासंध ने कहा मैं कोई तर्क शास्त्री नहीं हूं परन्तु जीवन की पाठशाला में जो कुछ सीखा है वो मैंने बता दिया। हम और तुम्हारे पिताश्री वर्तमान हैं तो आज परिभाषायें हमारी है और तुम भविष्य हो इसलिये वर्तमान बनने की प्रतीक्षा करो। परन्तु शिशुपाल से यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं है तो ? रूक्मी बोला जिस सम्बन्ध का प्रस्ताव आपने दिया हो और पिताश्री ने भी स्वीकार कर लिया हो वो भला मुझे व मेरे अनुज रूक्मण को कैसे अस्वीकार हो सकता है ? यह तो और भी अच्छा है कि युवराज शिशुपाल का मेरा परिचय रणभूमि में न होकर इसी घर में होगा। आप उन्हे अवश्य आमन्त्रित करें मगध नरेश।

जरासंध ने एक पत्र लिख कर शिशुपाल को विदर्भ में आमंत्रित किया और वह पत्र शिशुपाल के पास पहुंचाने के लिये अपने सबसे विश्वासु पात्र एकलव्य को दिया और बोले यह पत्र तुम्हारे ऊपर मेरे सम्पूर्ण विश्वास का प्रतिबिम्ब है। एकलव्य बोले यह पत्र अब एकलव्य के प्राणों का प्रतिबिम्ब बन गया महाराज। यदि आपको यह सूचना मिले कि यह पत्र किसी और के पास चला गया या खो गया तो समझ लेना कि इसके साथ ही एकलव्य के प्राण भी चले गये। जरासंध बोले जब लौटकर आओगे तो मुंह मांगा पारितोष भी पाओगे। वीर पुरुष पारितोष पाने के लालच में सेवा नहीं करते महाराज एकलव्य ने कहा। पर वैसे भी अर्जुन से युद्ध के सिवा मेरी और कोई कामना भी नहीं है महाराज।

जरासंध बोले क्या एकलव्य तूने अभी तक आचार्य द्रोण को क्षमा नहीं किया है। एकलव्य बोले उनकी ओर से तो मेरे मन में मैल रहा ही नहीं। गुरु के नाते दक्षिणा मांगने का उन्हे अधिकार था तो उन्होने गुरु दक्षिणा मांगी। यह दक्षिणा देना मेरा कर्तव्य था इसलिये मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया। पर जब भी इस कटे अंगूठे को देखता हूं तो सोचता हूं कि यदि ये अंगूठा होता

तो मैं सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होता। कुन्ती पुत्र पांडव अर्जुन मेरा स्थान ग्रहण किये बैठा है परन्तु महाराज मैंने इस अंगूठे के बिना भी बाण चलाना सीख लिया है। मैं चाहता हूं कि अर्जुन से सामना हो जाये ताकि उसे पराजित करके मेरे गुरु से वो आशीर्वाद मांगू जो आजतक मुझे नहीं मिला। मैं नहीं चाहता कि मेरे गुरु पर आशीर्वाद का ऋण रह जाये। जरासंध बोले तुम धन्य हो एकलव्य और हां यह पत्र लेकर चेदि देश की ओर प्रस्थान करो। यह पुत्र युवराज शिशुपाल के अतिरिक्त किसी के हाथ में नहीं आये। एकलव्य बोला जो आज्ञा महाराज।

एकलव्य पत्र लेकर चेदि युवराज के पास आया। शिशुपाल महल में अपने कक्ष में सो रहा था। चर ने आकर जगाया और सूचना दी कि विदर्भ से महाराज जरासंध का दूत एकलव्य कुछ सन्देश लेकर आया है और आपसे मिलने की अनुमति चाहता है। शिशुपाल ने आज्ञा दी की मगध देश के दूत एकलव्य को आदर सहित लिवा लाओ। एकलव्य ने आकर शिशुपाल को प्रणाम किया। मैं महाराज के आदेश से यहां आया हूं और आपके लिये यह पत्र। शिशुपालने पत्र पढा और बोले तो क्या रूक्मिणी सम्बन्ध की तैयारियां हो चुकी है ? एकलव्य बोला आजकल विदर्भ में रूक्मिणि स्वयंवर वाद-विवाद की ऋतु सी आई हुई है। सारे भारत वर्ष के वीरों और महावीरों को आमन्त्रित किया जा रहा है युवराज। शिशुपाल बोले द्वारिकावालों को तो आमन्त्रित नहीं किया है ना? एकलव्य बोले यह तो मैं नहीं जानता युवराज। द्वारिका का तो अस्तित्व है ही नहीं तो फिर उसके आमन्त्रित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शिशुपाल ने कहा यदि उन्हे आमन्त्रित किया जाता और वासुदेव के सामने रूक्मिणि मेरे गले में माला डालती तो मेरा आनन्द दुगना हो जाता। तुम जाकर विश्राम करो और इस पत्र का उत्तर भी तुम्ही लेकर जाओ।

रूक्मी अन्त:पुर में जाकर रूक्मिणि से बोला अब जो मैं कहने जा रहा हूं वो ध्यान से सुनना प्रिय बहन। रूक्मिणि बोली मैं तो सदा ही आपकी बात ध्यान से ही सुनती हूं भ्राताश्री। रूक्मी ने कहा और जो कहने जा रहा हूं पिताश्री भी वो ही चाहते है। रूक्मिणि बोली किन्तु इतनी सारी भूमिका का कारण। रूक्मी ने कहा प्रस्ताव ही ऐसा है। रूक्मिणि बोली क्या प्रस्ताव है। रूक्मी बोला तुम्हारे अधिकारों को सीमित करने का प्रस्ताव है। रूक्मिणि बोली तो वो अधिकार कौनसा है भ्राताश्री। रूक्मी बोला पिताश्री चाहते है कि तुम्हारी वरमाला चेदि देश के युवराज शिशुपाल के गले में पडे। रूक्मिणि बोली यदि मैं उनके गले को मेरी वरमाला के योग्य न पाऊं तब भ्राताश्री। रूक्मी ने कहा तब भी। रूक्मिणि बोली यदि मैंने पहिले ही अपनी माला के लिये किसी और को मनोनीत कर रखा हो तो भ्राताश्री। रूक्मी बोला तब भी। रूक्मिणि बोली प्रश्न तो प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता भ्राताश्री यदि तब भी क्या। रूक्मी ने कहा पिताश्री यही चाहेंगे कि तुम्हारी यह वरमाला शिशुपाल के गले में ही पडे।

४३) रूक्मिणि विवाह

रूक्मिणि शिशुपाल के साथ अपना विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने यादव वासुदेव कृष्ण की कीर्ति सुन रखी थी। वह मन ही मन कृष्ण को चाहने लगी। उसने अपनी इच्छा से कृष्ण को पत्र लिखकर आमंत्रित किया। रूक्मिणि ने अपने पत्र में लिखा तुम्ही मेरे योग्य हो। कही सिंह की शिकार सियार नहीं ले जाये। और पत्र लिखकर कुल पुरोहित ब्राह्मण सुदेव को दिया और कहा कि द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण को यह पत्र दे आओ और उसे अपने साथ बुला लाओ।

श्रीकृष्ण के नाम रूक्मिणि के पत्र को समाज शास्त्र की पृष्ठ भूमि में देखे तो उसका महत्व बहुत बढ जाता है। आज का भारत यह भूल चुका है कि भारतीय संस्कृति ने वरमाला कन्या के हाथ में दी थी और इसे भारत के वर्तमान ने वरमाला से वधूमाला बना दिया है। यदि रूक्मिणि शिशुपाल से विवाह करना नहीं चाहती है तो उसका विवाह शिशुपाल से नहीं होगा और यदि आवश्यकता आ ही पडे तो स्वयं नारायण हस्तक्षेप करने पर विवश हो जायेंगे। किसी के हाथ से समाज को यह अधिकार छीन लेने का अधिकार नहीं है। रूक्मिणि के पत्र पर श्रीकृष्ण का विदर्भ में कुंडिनपुर जाना ही यह सिद्ध करता है। भारतीय समाज में नारी अधीन नहीं थी उसे अपने जीवन के विषय में निर्णय लेने का पूरा अधिकार था। इसलिये रूक्मिणि प्रणाम करने योग्य ही

है, जिसने समाज की दहलीज पर उस पत्र का दीया जलाया और कृष्ण के पास भेजा।

द्वारिका में कृष्ण को पत्र मिला। पत्र पढकर कृष्ण मन ही मन योजनाओं का ताना बाना बुन रहा था। बलराम ने पूछा क्या हुआ अनुज कृष्ण। कृष्ण बोले दाऊ मैं विदर्भ जा रहा हूं। बलराम ने कहा क्यों। कृष्ण बोले किसी की सहायता के लिये। विदर्भ राजकुमारी रूक्मिणि ने सहायता मांगी है। विदर्भ नरेश भीष्मक और युवराज शिशुपाल दोनों ही रुक्मिणि पर दबाव डाल रहे है कि वह शिशुपाल से विवाह कर ले। बलराम बोले अर्थात विदर्भ कन्या की अनुमति का कोई महत्व ही नहीं। कृष्ण ने कहा विदर्भ को क्यों दोषी ठहराते हो दाऊ ? दोष तो उस राज परिवार का है। बलराम बोले तब तो राज परिवार को भारतीय सभ्यता और संस्कृति की शिक्षा देने चलना ही पडेगा। कृष्ण बोला मैं सेना लेकर जाता हूं दाऊ। दाऊ बोला नहीं तुम अकेले नहीं मैं भी साथ चलूंगा। कृष्ण ने कहा रूक्मिणि ने तो केवल मुझे पुकारा है। बलराम बोले हठ ना किया करो। रूक्मी का क्या, क्या वह तुम्हारे लौटने का मार्ग नहीं रोकेगा। दाऊ दाऊ मत करो। यह मेरा आदेश है। कृष्ण बोले तो ठीक है मैं अभी चला जाता हूं और आप सेना लेकर आइये।

भीष्मक राजसभा में विदर्भ में घोषणा हुई कि चेदि नरेश के पुत्र शिशुपाल पधार रहे है। युवराज शिशुपाल की जय। रूक्मी ने आगे उठकर शिशुपाल का स्वागत किया। यहां रूक्मिणि कृष्ण का इन्तजार कर रही थी। कृष्ण कुंडिनपुर पहुंच गया और अम्बादेवी मन्दिर के पिछवाडे में जाकर रूक गया। शिशुपाल राजमहल में आ गया।

रूक्मिणि अम्बा की पूजा करने अम्बा मन्दिर में आई। जैसे ही रूक्मिणि अम्बा का आशीर्वाद लेकर बाहर निकली कृष्ण द्वार पर रथ लिये सामने खडा था। कृष्ण ने रूक्मिणि को रथ पर बिठाया और शंख फूंककर घोषणा करी कि वो रूक्मिणि को ले जा रहा है। कृष्ण ने रूक्मिणि को कहा जब तक तुम चलने की अनुमति नहीं दोगी तब तक मैं तुम्हे कैसे ले जा सकता हूं। तुमने मुझे बुलाया है इसलिये चलने की अनुमति तुम्हे देनी पडेगी। मैं आया तो था बिना किसी घोषणा के परन्तु अब घोषणा देकर तुम्हे ले जा रहा हूं। मैं तुम्हारा हरण नहीं कर रहा हूं। तुम्हारी चाहत और अनुमति से तुम्हे ले जा रहा हूं। कृष्ण ने शंख बजाया और रूक्मणि को लेकर चल पडा।

यहां राजमहल में शिशुपाल और रूक्मी चौपड द्यूतक्रीडा कर रहे थे कि एकाएक शंख की आवाज शिशुपाल ने सुनी और कहा कि ये शंख तो वासुदेव श्रीकृष्ण का बज रहा है क्या वह ग्वालियां यहां भी आ पहुंचा क्या? रूक्मी बोला असम्भव। इतने में ही चर ने आकर सूचना दी कि युवराज वासुदेव कृष्ण आपकी बहिन रूक्मिणि का हरण कर ले गया है। रूक्मी कृष्ण से युद्ध करने कृष्ण के रथ के पीछे पीछे भागा और युद्ध करने लगा। बलराम की सेना का चेदि नरेश की तथा मगध नरेश की सेना के साथ भयंकर युद्ध होने लगा। शिशुपाल और जरासंध की सेना यादवों की सेना से बुरी तरह पराजित हुई और भाग गई। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से रूक्मी के सभी शस्त्र काट दिये और बन्दी बना लिया तथा रूक्मी अपमानित हुआ। कृष्ण ने रूक्मिणि को द्वारिका ले जाकर उससे विधिपूर्वक विवाह किया।

४४) पांडवों की दिग्विजय

राजनीति को जब भ्रष्टाचार का जानलेवा रोग लग जाता है तो उसका खून सफेद होने लगता है। परिभाषायें भी बदलने लगती है। निष्ठा रोष के प्रति नहीं बल्कि राजा के प्रति जो हां मे हां ना मिलाये वो विरोधी है। सत्य अगर राजा के हित में न जा रहा हो तो वो सत्य नहीं है। इस वातावरण में थैलियों का महत्व बढ जाता है और राजनीति सामने आजानेवाले हर व्यक्ति को खरीद लेना चाहती है। निष्ठा, मित्रता इन जैसे सारे शब्दों का अर्थ बदल जाता है। हस्तिनापुर में भी यहीं हुआ। युधिष्ठिर के युवराज बन जाने के पश्चात शान्ति सन्नाटा नहीं हुआ। शकुनि और दुर्योधन के हृदय में तो एक नरक सुलग रहा था जिससे हर बीतनेवाला पल लकडी की भांति जल रहा था और स्वयं धृतराष्ट्र के हृदय में भी एक चिनगारी दबी हुई थी और वह शकुनि को मौका दे रहा था कि वो इस चिनगारी को हवा देता रहे और उसे जीवित रखे। शकुनि के कहने पर दुर्योधनने राजकीय कोष का मुंह ही खोल दिया। इसे हस्तिनापुर का

दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि युधिष्ठिर के युवराज बनने के पश्चात राजकीय कोष दुर्योधन के अधिकार में ही दे दिया गया। तो वो उसकी सहायता से युधिष्ठिर की लोकप्रियता को काटने का प्रयत्न कर रहा था। उन लोगों को खरीद रहा था जो लोगों का मत बदल सकते है। निष्ठायें रौंदी जा रही थी। विरोध की आंखों में स्वर्ण की धूल डाली जा रही थी। और स्वयं धृतराष्ट्र के अपने सपनों पर दुर्योधन का एक मनोवैज्ञानिक दबाव पड रहा था कि कुन्ती पुत्र ही उनकी अभिलाषाओं का कांटा है और उसकी विवशता यही कि वो दिल खोलकर यह बात किसी से कह भी नहीं सकता था। वो बहुत अकेला था।

एक दिन धृतराष्ट्र हस्तिनापुर में ही वन में घूमने निकला। अपने रथ पर सवार हो अपने सारथी संजय संहित वन विहार के लिये। धृतराष्ट्र ने संजय से कहा पवन की तो सुगन्ध ही बदल गई और चाल भी संजय। क्या हम नगर की सीमा के बाहर निकल आये हैं?

संजय बोला जी महाराज। आप अपने हरे भरे वन में आ गये हैं। धृतराष्ट्र ने कहा हरा भरा। मैं क्या जानूं हरा भरा किसे कहते हैं। मुझे भगवान यदि आंखे दे भी दे तो मैं स्वयं अपने आपको भी नहीं पहचान सकता। ये वन किसे कहते है संजय ? हरा भरा कैसा होता है ? क्या पवन का भी कोई रंग होता है ? यह सुगन्ध कैसी होती है ? संजय तुम मेरी आंखे बन जाओ।

संजय बोला यह तो मेरे लिये बडे गौरव की बात होगी महाराज। परन्तु आप यह कैसे जानेंगे कि मैं जो कुछ बता रहा हूं वो सत्य है या असत्य ? धृतराष्ट्र ने कहा सत्य और असत्य की गंध अलग-अलग होती है संजय और स्वाद महाराज संजय बोला। कोई सत्य मीठा होता है और कोई कडवा। धृतराष्ट्र बोला मैं जानता हूं। संजय ने कहा फिर क्या आज्ञा है महाराज। धृतराष्ट्र बोले मैं तुमसे सत्य के स्वाद की बात नहीं कर रहा हूं संजय केवल सत्य की बात कर रहा हूं। मुझे तुम पर पूरा विश्वास भरोसा है। संजय ने कहा तो आपका पितामह या विदुरजी इन लोगों पर भरोसा नहीं है महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा मैंने तुम्हे सत्य बोलने की आज्ञा दी है संजय। प्रश्न करने की नहीं। संजय बोला क्षमा चाहता हूं महाराज। आपके विचारों के योग्य पहला सत्य तो यह है महाराज कि ज्येष्ठ पांडु पुत्र युधिष्ठिर की लोक प्रियता इतनी बढ गई है कि यदि वो चाहे तो अपने पिताश्री का राजमुकुट आप से ले भी सकते हैं। धृतराष्ट्र ने कहा तो क्या मेरा युधिष्ठिर यही सोच रहा है ? संजय बोला नहीं महाराज। यदि वे ऐसा सोचते तो इतने लोकप्रिय हो ही नहीं सकते थे। जन समुदाय तो उन्हीं के आगे आंखे बिछायेगा जिसे जनसमुदाय राजमुकुट से अधिक प्रिय होगा। परन्तु यह निश्चित है महाराज यदि आपने उन्हे राजमुकुट नहीं पहनाया तो कदाचित जन समुदाय स्वयं राजमुकुट ज्येष्ठ पांडु पुत्र के शीश पर रख देगा। धृतराष्ट्र बोला और तुम क्या चाहते हो संजय ? संजय बोला महाराज मैं तो आपका सारथी हूं। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि आपके रथ को उन पथों पर लेकर जाऊं जो आपकी सुरक्षा को बल दे।

धृतराष्ट्र बोले अर्थात तुम भी यहीं चाहते हो कि मैं दुर्योधन का अधिकार छीनकर युधिष्ठिर को दे दूं। संजय बोला मैं कौन होता हूं चाहनेवाला और न चाहनेवाला ? मैं तो केवल आपका हितचिन्तक हूं महाराज और वही कहूंगा जो आपके हित में होगा। धृतराष्ट्र बोला तुम्हारी बात मैं सुनूंगा संजय क्योंकि तातश्री पांडवों को मेरे पुत्रों से अधिक स्नेह करते हैं तो उनका मन सदैव उनकी तरफ झुकता रहेगा। आचार्य द्रोण का सर्वश्रेष्ठ शिष्य अर्जुन वो हमारी अनुकम्पा और हमारी दया स्वीकार करते रहेंगे परन्तु उनका मन सदैव अर्जुन की ओर देखता रहेगा और उनका आशीर्वाद भी अर्जुन को ही मिलता रहेगा। परन्तु मुझे कोई यह नहीं बताता कि मेरे दुर्योधन में क्या दोष है। संजय ने कहा अभिमान किसी वीर को शोभा नहीं देता महाराज। धृतराष्ट्र बोले रथ हस्तिनापुर की ओर ले चलो संजय। संजय ने कहा जो आज्ञा महाराज।

आज चारों पांडव का रथ हस्तिनापुर में वैसे ही प्रविष्ट हुआ जैसे उसने दिग्विजय करने के लिये प्रयाण किया था। आज पांडव दिग्विजय करके हस्तिनापुर में लौट रहे थे। भीम कन्धे पर गदा रखे आगे आगे चल रहा था और हाथ में धनुष लिये रथारूढ अर्जुन और उसके पीछे पीछे नकुल और सहदेव। जाते हुये वे एक अभियान के लिये जा रहे थे जिसका परिणाम अनिश्चित था किन्तु इस समय वे लोग एक महत्वपूर्ण विजय के पश्चात लौट रहे थे। उनकी मन:स्थिति अनिश्चित नहीं थी। उनका मनोबल

बढा हुआ था और विजय का मद सबके चेहरे पर बहुत स्पष्ट था। अर्जुन के पीछे पीछे अनेक मूल्यवान वस्तुओं से भरे छकडे थे। स्वर्ण रजत तथा उनके बने आभूषण जवाहारात। गोधन, अश्वधन, ऊंट और हाथी भी। रथों में अनेक नये तथा कुछ विस्मृत पुराने मित्र भी कुरुओं की सभा में अपनी निष्ठा का प्रमाण देने के लिये साथ आये थे। भीष्म युधिष्ठिर तथा विदुर सभी ने नगर द्वार पर जाकर उनका स्वागत किया।

धृतराष्ट्र ने पूछा क्या तुम लोग सौवीर नरेश को समझा पाये कि उसे हस्तिनापुर को कर देना चाहिये ? भीम बोला हां महाराज हमने सौवीर नरेश को उसकी भूल का अहसास कराया पर वह अपनी भूल स्वीकार करना ही नहीं चाहता था तो हमें युद्ध करना पडा। युद्ध में अर्जुन के बाणों ने सौवीर नरेश विपुल के प्राण ले लिये। दत्तामित्र और सौमित्र जैसे योद्धा भी हमारे सम्मुख टिक नहीं पाये। मार्ग में पडनेवाले अनेक मित्र राज्यों ने हमारी पुरानी मैत्री को और अधिक सघन किया है, अमित्र राज्यों को मित्र बनाया है और प्रतिकूल राज्यों को ध्वस्त कर दिया है। हम उन सबसे कर प्राप्त कर छकडों में भर कर हस्तिनापुर ले आये है। हस्तिनापुर का राजकोष अब पहले से कहीं अधिक समृद्ध हो गया है। और यहां से सौवीर राज्य तक कुरुवंश का ध्वज प्रतिष्ठित हो रहा है। आज जम्बूद्वीप में हस्तिनापुर के इतने मित्र हो गये है शायद पहले कभी नहीं रहे होंगे तातश्री। सैनिकों ने बाहर से लाकर धृतराष्ट्र के सम्मुख उपहारों का ढेर रख दिया। विदुर ने धृतराष्ट्र को उपहारों के विषय में विस्तार से बताया तो उसके चेहरे पर प्रसन्नता हो गई। अर्जुन ने सैवर प्रान्त के राजा दत्तामित्र को जो बडा बली और मानी था, जिसने गन्धर्वों का उपद्रव रहते हुये भी तीन वर्ष तक लगातार यज्ञ किया था और जिसे स्वयं राजा पांडु भी जीत नहीं पाये उन्हे अर्जुन ने युद्ध में मार गिराया। इसके अतिरिक्त भीमसेन की सहायता से पूर्व दिशा और बिना किसी की सहायता के दक्षिण दिशा पर भी विजय प्राप्त कर ली। दूसरे राज्यों के धन वैभव भी कौरवों के राज्य में आने लगे। उनके राज्य की बडी वृद्धि हुई। देश-देश में पांडवों की प्रसिद्धि हो गई और सब उनकी ओर आकर्षित होने लगे।

४५) धृतराष्ट्र की चिन्ता और कर्णिक की कूटनीति की मन्त्रणा

वैशंपायन कहते हैं जनमेजय द्रुपद को जीत लेने के पश्चात युधिष्ठिर युवराज बना। युधिष्ठिर ने अपने सद्गुणों से सर्वत्र ख्याति अर्जित कर ली। भीमसेन ने बलराम से गदा युद्ध, खडग और रथयुद्ध की विशिष्ट शिक्षा प्राप्त कर ली। युद्ध की शिक्षा पूरी होने पर भीम अपने भाइयों के अनुकूल रहने लगा। विशेष अस्त्र-शस्त्र संचालन में उन दिनों अर्जुन के समान कोई योद्धा नहीं था। एकदिन कौरवों की सभा में गुरु द्रोणाचार्य ने यह घोषणा भी कर दी कि मैं महर्षि अगस्त्य के शिष्य अग्निवेश्य का शिष्य हूं और उनसे जो मैंने अस्त्र विद्या सीखी थी वो मैंने सब की सब अर्जुन को दे दी है। अर्जुन अब तुम अपने भाई बन्धुओं सहित यह प्रतिज्ञा करो कि यदि मेरा और तुम्हारा कभी किसी युद्ध में कोई सामना हो तो तुम मुझसे युद्ध करने में जरा भी संकोच नहीं करोगे। अर्जुन ने अपने गुरु द्रोणाचार्य को आश्वासन दिया और उनकी आज्ञा स्वीकार की।

सर्वत्र यह बात फैल गई कि अर्जुन के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धनुर्धारी नहीं है। सहदेव ने भी गुरु बृहस्पति से सम्पूर्ण शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। नकुल ने अश्व संचालन विद्या प्राप्त की। वे सब बडे ही विनीत और तरह-तरह के युद्धों में कुशल थे। अर्जुन ने दिग्विजय की। पांडवों की कीर्ति देख सुनकर धृतराष्ट्र के भाव और आचरण में परिवर्तन आने लगा। मन में दूषित भाव आने के कारण धृतराष्ट्र अत्यन्त चिंतित और व्याकुल रहने लगा। इसके बारे में उन्होने अपने श्रेष्ठ मन्त्री राजनीति विशारद कर्णिक को बुलाया और उससे परामर्श कर बोले कर्णिक प्रतिदिन पांडवों की कीर्ति बढती जा रही है। मेरा मन बडा ही ईर्ष्या से कुंठित हो रहा है। अत: तुम मुझे निश्चित रूप से मन्त्रणा करो कि मुझे पांडवों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ? मैं तुम्हारी नीति से सर्वथा सहमत हूं। तब कर्णिक ने कहा राजन आप मुझपर रूष्ट न हो, क्रोध न करें, मैं आपको राजनीति विषयक बात बताता हूं। राजा को सदा दंड देने के लिये तैयार रहना चाहिये और दैव के भरोसे न रहकर पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिये।

अपनी कमजोरी किसी को भी मालूम न हो और न ही अपने आपको कमजोर समझे। दूसरों की कमजोरियों का पता लगाते

रहें। यदि शत्रु का अनिष्ट करना प्रारम्भ कर दे तो उसे बीच में न छोडे जैसे कांटे की नोक भी यदि शरीर में चुभ जाये तो बहुत दिनों तक पीडा दर्द होती है। शत्रु को कभी भी कमजोर समझ कर आंखें नहीं मूंद लेनी चाहिये। शत्रु से सदा सावधान रहना चाहिये। शरणागत शत्रु पर भी कभी दया नहीं दिखानी चाहिये। शत्रु के तीन बल मन्त्र, शक्ति और उत्साह पांच साधन उपाय, देश और काल का विभाग सहायक तथा सात साम दाम दंड भेद, माया, शत्रु के गुप्त कार्य तथा ऐन्द्रजनिक प्रयोग राजाओं को नष्ट करता रहे। जब तक समय अनुकूल न हो तब तक शत्रु को कन्धे पर ढोते रहें परन्तु उचित समय आने पर मटके की तरह पटक कर उसे तोड देना चाहिये। साम दाम दान दंड भेद आदि किसी भी उपाय से शत्रु को नष्ट कर देना ही राजनीति का मूल मन्त्र है। धृतराष्ट्र ने कर्णिक से साम दाम दंड भेद इत्यादि से किस प्रकार शत्रु का नाश किया जाता है पूछा।

कर्णिक बोले राजन नीति कहती है कि जिसके विकास से आपको भय लगता है जिसकी शक्ति और क्षमता में वृद्धि होने से आपको बेचैनी होती है, रात को नींद नहीं आती हो, जिसके प्रभाव, विस्तार से आपको प्रसन्नता नहीं होती हो उसे आप अपना शत्रु ही समझें। वह कदापि आपका मित्र हो ही नहीं सकता। और जो मित्र नहीं हो सकता वह राजनीति में आपका शत्रु ही है। राजनीति में पिता, पुत्र, भाई अथवा अन्य कोई निकट रिश्तेदार सम्बन्धी भी आपका प्रतिस्पर्धी हो सकता है। वह आपकी सत्ता का ऱ्हास करे ऐसे किसी व्यक्ति का विश्वास नहीं करे न ही उनमें से किसी की ओर से निश्चिन्त हो जाना चाहिये। उनपर अपने गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये तथा उनके सारे भेद जानना चाहिये। ये भेद शस्त्र होते हैं महाराज समय आने पर उन शस्त्रों का प्रयोग कर अपने शत्रुपर प्रहार करना चाहिये। शत्रु और मित्र तो मात्र निजी स्वार्थों के कारण से बनते हैं महाराज। सन्धियां होती है और टूटती रहती है। सन्धि तो केवल इसलिये होती है कि उस समय हम विग्रह कर नहीं सकते। सन्धि तो नाम ही है समय की प्रतिकूलता और दुर्बलता का। राजनीति में प्रतिकूल को अनुकूल बनाने का एक ही मार्ग है लोभ। भय भी लोभ का ही एक रूप है। भविष्य में और अधिक पाने की इच्छा का नाम ही लोभ है और वर्तमान को छिन जाने से बचाये रखने का नाम ही भय है। इसलिये जब भी हमारा प्रतिकूल लोभी हो तो उसके लोभ का लाभ उठाकर उसे अपने अनुकूल बना लेना चाहिये। लोभ से मनुष्य अनुकूल ही नहीं बनता वह दास भी बन जाता है। जिस व्यक्ति में लोभ न हो, जो अपने लोभ के लिये धर्म का त्याग करने में असमर्थ हो वह कभी आपके अनुकूल नहीं बन सकता। ऐसे लोग जो सैद्धान्तिक धरातल पर हमारे प्रतिकूल हैं, जिनमें लोभ का संचार नहीं है, जो राजनीति में भी धर्म की बात करते हैं उनके अनुकूल होने की कोई सम्भावना नहीं है और जो अनुकूल नहीं हो सकता वह हमारा शत्रु है ऐसा ही मानना चाहिये। शत्रु पर प्रहार का अर्थ ही है कि जो परिवर्तित नहीं हो सकता तो उसे नष्ट कर देना चाहिये अर्थात उसका प्राणांत। धृतराष्ट्र की अपारदर्शी अन्धी आखों में उसके मन के भावों को बहुत कुछ छिपा रखा था फिर भी चेहरे की रेखायें बहुत कुछ व्यक्त कर रही थी। चतुर राजा डरपोक को भयभीत कर दे तथा शूरवीर के आगे विनम्र बन हाथ जोडे रहे तथा लोभी को कुछ देता रहे और बराबर तथा कमजोर को पराक्रम दिखाकर वश में कर ले। सौगन्ध शपथ से धन का लालच दे जहर या धोखे से भी शत्रु को जीत लेना चाहिये। मन से द्वेष करनेपर भी सदा मुस्कुराकर ही बात कहनी चाहिये। मारने की इच्छा रखते हुये और मारता हुआ भी मीठा ही बोले। मारकर भी कृपा करें, अफसोस प्रकट करें और बोलें ताकि शत्रु को सन्तुष्ट रखें परन्तु उसकी भूलों को गलतियों को कभी नजर अन्दाज नहीं करें। चूक होते ही उसपर वार कर बैठें। जिन पर शंका नहीं होती उनपर तो अधिक से अधिक शंका करनी चाहिये क्योंकि वैसे ही लोग अधिक धोखा देते हैं।

जो विश्वासपात्र नहीं है उनपर तो कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। जिनपर विश्वास है उनपर भी बहुत अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये। सर्वत्र पाखंडी, तपस्वी आदि के वेष में परीक्षा किये हुये भली भांति जांच किये हुये गुप्तचर नियुक्त करने चाहिये। बगीचा, घूमने फिरने, टहलने के स्थानों, मन्दिरों, सडक, तीर्थों, चौराहे, कुओं, पहाड, वन, जंगल और सभी भीडभाड के स्थानों में गुप्तचरों को अदलते बदलते रहना चाहिये। सदा विनययुक्त वाणी, हृदय की कठोरता होने पर भी, भयंकर कर्म

करते हुये भी मुस्कुराते रहना चाहिये। हाथ जोडते रहना, सौगन्ध शपथ खाना, आश्वासन देना, चरण स्पर्श करना, आशा बंधाते रहना ये सब कीर्ति तथा ऐश्वर्यवृद्धि के साधन है। जो अपने शत्रु से सन्धि कर निश्चिन्त हो जाता है उसका होश तब ठिकाने आता है जब उसका सर्वनाश हो जाता है। अपनी बातें केवल शत्रु से ही नहीं अपने मित्र से भी छिपानी चाहिये। किसी को आशा भी बहुत लम्बी अवधि की दी जानी चाहिये। कोई भी काम करने में अडचन डाल देते रहना चाहिये। कारण पर कारण गढता रहना चाहिये, कभी भी कोई काम पूर्ण नहीं कर देना चाहिये। आपको पांडु पुत्रों से अपनी रक्षा करनी चाहिये महाराज। आप कोई ऐसा उपाय करे जिससे आपको कोई भय न हो। धृतराष्ट्र अब और भी चिंतित होकर सोचने लगा।

कर्णिक की दृष्टि नेत्रहीन राजा धृतराष्ट्र को पढने लगी कि आज यह राजा है किन्तु उसका पुत्र युवराज नहीं है। आज तो सत्ता इसके हाथ में है पर कल नहीं होगी। यदि कभी युधिष्ठिर राजा बन गया तो धृतराष्ट्र को पांडवों के विरूद्ध समझाई गई सारी नीति, परामर्श कर्णिक का बहुत अनिष्ट कर सकता है। धृतराष्ट्र कभी अपनी स्वेच्छा से तो राज्य, धन, वैभव का त्याग करेगा नहीं पर विवश होकर धृतराष्ट्र को सम्राट का पद छोडना पडेगा तो क्या उसे कर्णिक की आवश्यकता नहीं पडेगी ? युधिष्ठिर हस्तिनापुर का सम्राट होगा तो निश्चित रूप से विदुर ही महामन्त्री होंगे ऐसे में कर्णिक के लिये कोई स्थान नहीं होगा। इससे अच्छा है कि वह दुर्योधन और धृतराष्ट्र का ही साथ देगा।

धृतराष्ट्र की राजसभा में भीम ने कहा महाराज हमारे मित्र राज्यों के अनेक राजा तथा राजकुमार हमारे साथ दिग्विजय करने के पश्चात हमारे साथ हस्तिनापुर पधारे हैं। वे महाराज तथा हस्तिनापुर के भावी सम्राट युधिष्ठिर के प्रति अपनी मैत्री और निष्ठा प्रकट करने के लिये राजसभा में उपस्थित होने के लिये आपकी अनुमति चाहते हैं। धृतराष्ट्र मुख से कुछ नहीं बोला पर अनिच्छा से हाथ से उन्हे बुलाने का संकेत कर दिया। विदुर बाहर जाकर आदर सहित उन्हे राजसभा में ले आये। धृतराष्ट्र मूक भाव से स्थिर बैठा रहा। उसने उनके स्वागत में कुछ भी नहीं कहा। सबका परिचय हो चुका तो धृतराष्ट्र को बैठने के लिये कहना चाहिये था पर न चाहते हुये बोला आप लोग लम्बी यात्रा कर के आये हैं, थके मांदे होंगे अब विश्राम कीजिये। किस तरह से अथितियों की उपेक्षा करी। यह धृतराष्ट्र का दूसरों के प्रति अपमानजनक व्यवहार था। जिस प्रकार उनको आदरसहित राजसभा में विदुर लेकर आये थे वैसे ही नकुल और सहदेव उन्हे राजसभा से बाहर ले गये तो अर्जुन ने कहा महाराज हमारे ये अतिथि हैं और ये सब राजा तथा राजकुमार हैं। हस्तिनापुर में इनके ठहरने का कोई समुचित राजसी प्रबन्ध होना चाहिये। यह सुनकर दुर्योधन अत्यन्त क्रोध में भरकर बोला क्यों इनका इस प्रकार स्वागत कर प्रबन्ध करना चाहिये ? ये तुम्हारे अतिथि है महाराज के नहीं। तुम इन्हे अपने साथ अपने आवास में ठहराओ। अर्जुन बोले हम हस्तिनापुर राज्य के प्रतिनिधि के रूप में दिग्विजय यात्रा करके आये हैं। इन लोगों ने हस्तिनापुर के राजा को अपना मित्र स्वीकार किया है और हस्तिनापुर को उपहार भी दिये हैं। ये हस्तिनापुर के राजा और भावी सम्राट युवराज युधिष्ठिर से मिलने व अपना सम्मान प्रकट करने आये है तो क्या वे हमारे व्यक्तिगत अतिथि हैं ? बीच ही में भीम बोल उठा यदि दुर्योधन यह समझता हैं कि वे हमारे व्यक्तिगत अतिथि है तो हमे उस योग्य राज भवन दिया जायें ताकि उसमें राजसी सम्मान योग्य व्यक्ति ठहराये जाये या ऐसे भवन के निर्माण की अनुमति दी जायें। हम जिस खंडहर आवास में रह रहे है वह न तो इस योग्य है कि उसमें हस्तिनापुर का भावी सम्राट युधिष्ठिर निवास करे और न ही राजकीय अतिथियों के लिये उचित आवास। शकुनि उठ खडा हुआ और टोक कर बोला सम्राट के अतिरिक्त किसी और व्यक्ति को सम्राट कहना उचित नहीं है इसलिये तुम युधिष्ठिर को केवल युवराज कहो। दुर्योधन बोला मानलो यदि महाराज धृतराष्ट्र तुम्हे एक अतिथि गृह बनाने की अनुमति दे भी दे तो उसके निर्माण के लिये तुम धन कहां से लाओगे ? अब भीम की आखों में ज्वाला धधकने लगी और बोला यह धन तो मेरे सामने पडा है जिसे हम भाइयों ने दिग्विजय कर प्राप्त किया है। हस्तिनापुर में इतना धन संचय कर लाने से ही हमने अर्जुन को धनंजय नाम की संज्ञा दी है। इस पर कर्ण ने आपत्ति की और बोला यह धन तो

हस्तिनापुर के राजकोष का है इसका उपयोग तुम अपने निजी कार्यों में कैसे कर सकते हो ? भीम तमक कर बोला वैसे तो ये अतिथि भी हस्तिनापुर राज्य के है जहां अतिथि जायेंगे वही ये उपहार और धन जायेगा। समझ रहे हो ना सूतपुत्र महावीर कर्ण। कर्ण पर व्यंग सुनकर दुर्योधन बोला तुम्हे इस धन के उपयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती। राज्य की ओर से युद्ध करनेवाला सैनिक या सेनापति राज्य का स्वामी नहीं हो जाता। भीम उठ खडा हुआ और अपनी गदा दिखाकर बोला स्वामी और सेवक का निर्णय तो बाद में होता रहेगा इस समय तो मैं तुम्हे आज बताऊंगा ही तुम क्या हो ? धृतराष्ट्र ने स्थिति भांप ली और बोला इस समय तुमने उन लोगों को कहां ठहराया है ? अर्जुन बोला वे नगर के बाहर राजोद्यान में सैनिक शिबिर में ठहराये गये है पर वह तो अस्थायी प्रबन्ध है। कोई उचित प्रबन्ध नहीं किया गया है।

धृतराष्ट्र बोला मैंने कई बार सोचा कि हमें हस्तिनापुर में कुरुओं के यश कीर्ति के अनुकूल, राजसी अतिथियों के सम्मान योग्य एक अतिथि भवन का निर्माण करा ही लेना चाहिये। किन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अन्धा इस विषय में कुछ नहीं कर सकता। युवराज यह कार्य तुम अवश्य कराओ। फिर भीम को सम्बोधित कर बोले पुत्र यदि आज से भी राजप्रासाद भवन बनाऊंगा तो भी अतिथियों की हस्तिनापुर में उपस्थिति तक तो भवन का निर्माण कार्य पूरा होगा नहीं इसलिये आपत धर्म के रूप में सैनिक शिबिर ही उनके ठहरने की उचित व्यवस्था है। उन्हे वहीं सब राज सम्मान व सुविधायें दो। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट भी न हो। तुम लोगों ने भी बहुत श्रम किया है अब तुम्हे भी विश्राम करना चाहिये। श्रम व्यक्ति को बहुत थका देता है। यह कहकर धृतराष्ट्र राजसभा से उठ खडा हुआ।

धृतराष्ट्र राजसभा से उठकर अपने कक्ष में गान्धारी के पास आ गया। वह विचार करने लगा कि आज राजसभा में तो गदायें उठ चुकी। वह समझ नहीं पा रहा कि वह क्या चाहता है ? पांडवों की दिग्विजय से वह प्रसन्न है कि पांडव इतना धन एकत्रित कर लाये कि भविष्य में हस्तिनापुर के अत्यन्त समृद्ध राज्य होने की पूरी सम्भावना थी। परन्तु धृतराष्ट्र इन पांडवों को हस्तिनापुर की राजसभा में देखना भी नहीं चाहता था। भीम का वह प्रतिकूल व्यवहार उसके लिये असह्य हो रहा था। भीम तो राजसभा और युद्धक्षेत्र में कोई अन्तर ही नहीं समझता। वो तो राजसभा में भी दुर्योधन की हत्या कर सकता है। हस्तिनापुर पर इनका कोई अधिकार नहीं रहे। ये कैसे भी हस्तिनापुर के बाहर ही रहें ? वे सिर्फ राज्य के मात्र सेवक बनकर रहें। गान्धारी ने पूछा आर्यपुत्र आज आप बहुत चिंतित हैं क्या बात है ? धृतराष्ट्र रूंआसा होते हुये बोला तुम क्या जानो गान्धारी मुझे लग रहा है कि मेरे हाथों से सारा जीवन फिसलते जा रहा है। अब तक कण कण जोड कर जो कुछ प्राप्त किया था वह सब कुछ मुझसे छिन जानेवाला है। मेरे पास कुछ नहीं बचेगा। मैं कंगाल हो जाऊंगा। क्या है मेरे भाग्य में ? मैं बहुत भयभीत हो रहा हूं। यदि तुम राजसभा में आज होती तो तुम भी आशंकित ही नहीं आतंकित हो उठती। जाने मनुष्य क्यों इतना मूर्ख होता है कि अपने शत्रुओं का स्वयं पालन पोषण करता है। समय रहते कुछ नहीं समझता और जब पानी सिर से ऊपर निकल जाता है तभी सचेत होता है।

गान्धारी कुछ खीजकर बोली पर हुआ क्या जो आप बिना कोई सन्दर्भ बताये शून्य में दार्शनिक जैसे वाक्य उछाल रहे हैं ? धृतराष्ट्र जैसे अपने ही प्रवाह में बहता चला गया बोला मूर्खों के समान धन, सम्पत्ति, सत्ता, शक्ति संचित करता रहा और उनका लालन-पालन, पोषण करता रहा कि बडे होकर सब कुछ वे मुझ से छीन लें। मैंने यह नहीं सोचा कि विजयी होकर धन सम्पत्ति प्राप्त कर शक्तिशाली मित्र बनाकर लौटेंगे और मेरे सामने मेरी ही राजसभा में मेरे ही पुत्र को मारने की धमकी देंगे। गान्धारी समझ गई धृतराष्ट्र के मन में विचारों का बहुत गहरा विवर बन चुका है उससे उबार कर उसे धरातल पर लाना कठिन है। गान्धारी ने पूछा किस बात से आप इतने विचलित हैं आर्यपुत्र ? धृतराष्ट्र बोला गान्धारी तुम आज देखती कि पांडव विजय यात्रा से लौटकर हस्तिनापुर आये हैं। हस्तिनापुर की प्रजा पांडवों से प्रेम करती है, हम लोग तो जैसे कुछ है ही नहीं। हम तो नागों को ही दूध पिला रहे हैं। पांडव विजय यात्रा से कितना धन लेकर आये हैं अपने साथ ? भीम को लगता है यह धन तो उसी का है उससे

वह अपने लिये राजमहल बनायेगा। वे कितने सारे मित्र बना कर लाये है अपने साथ। इससे तो लगता है कि वे अपनी स्वतन्त्र सेना ही बना रहे हैं। चारों ओर उनकी लोकप्रियता उनकी शक्ति और उनका दबदबा बढते जा रहा है। यह देखकर मुझे भय लगने लगता है। मुझे भय लगता है कि वे किसी भी क्षण मेरी बांह पकड मुझे सिंहासन से उठाकर बाहर निकाल देंगे। गान्धारी बोली ऐसा कुछ नहीं होगा आर्यपुत्र। आप व्यर्थ ही भयभीत हो रहे हैं। धृतराष्ट्र बोला मैं अन्धा होते हुये इस भय को दूर तक देख सकता हूं और तुम दोनों आँखें होते हुये भी उन पर पट्टी बांधे रहती हो। गान्धारी बोली तो चिन्ता छोडकर कोई उपाय कीजिये।

४६) पांडवों को वारणावत जाने का आदेश

वैशम्पायन कहते है जनमेजय सुनो दुर्योधन ने देखा कि भीम की शक्ति असीम है और अर्जुन का अस्त्र कौशल तथा अभ्यास विलक्षण है तो उसका हृदय जलने लगा। ईर्ष्या से मन ही मन कुढने लगा। उसने कर्ण और शकुनि से मिलकर पांडवों को मारने के लिये अनेक उपाय किये पर पांडव सदा ही विदुर की नेक सलाहों से बचते गये और यह बात उन्होंने किसी पर भी प्रकट नहीं होने दी। नागरिक और पुरवासी पांडवों के गुण देखकर भरी सभा में उनके गुणों का बखान करने लगे। प्रजा गण सभी लोग जहां कहीं इकट्ठे होते, सभाओं इत्यादि स्थलों सभी जगह यहीं बाते होती कि पांडु ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहिये। धृतराष्ट्र को तो अन्धे होने के कारण राज्य नहीं मिला अब वे राजा कैसे हो सकते हैं ? शान्तनु पुत्र भीष्म बडे ही सत्यवादी और प्रतिज्ञा परायण हैं पर वे तो पहिले ही राज्य अस्वीकार कर चुके हैं तो अब तो राज्य ग्रहण करने का कोई प्रश्न ही नहीं ? तो अब तो उचित यही है कि सत्य और करूणा के पुजारी पांडु ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राजा बनाये जाये। नि:सन्देह इसमें युधिष्ठिर के राजा होने का भीष्म और धृतराष्ट्र को भी कोई आपत्ति और असुविधा नहीं होगी।

प्रजा की इस तरह की बातें सुनकर ईर्ष्यालु दुर्योधन मन ही मन जलने लगा और वह कुढ़कर धृतराष्ट्र के पास आया और उनसे कहने लगा पिताश्री ये पांडव आपको हटाकर स्वयं राजा बनना चाहते हैं। लोगों के मुंह से बडी ही बुरी बकझक सुनने को मिल रही है। कहते हैं कि भीष्म को तो इसमें कोई आपत्ति है नहीं। हम लोगों के लिये खतरा उत्पन्न हो रहा है। पहिले ही हमसे भूल हो गई है कि पांडु को राज्य देकर और अपनी अन्धता के कारण मिला हुआ राज्य छोड दिया। यदि युधिष्ठिर को राज्य मिल गया तो फिर वह उन्ही की वंश परम्परा में चलेगा और हम कुछ नहीं कर पायेंगे। हमारी सन्तानों को दूसरों के आश्रित रहकर नरक के समान कष्ट भोगना पडेगा इसके लिये आप कोई शीघ्राति शीघ्र उपाय कीजिये। यदि पहिले ही आपने राज्य ले लिया होता तो यह सब करने की आवश्यकता ही क्यों पडती ? धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन की बात और अपने मन्त्री कर्णिक की बात सुनकर दुविधा में पड गया और चिंतित हुआ।

दुर्योधन अपने कक्ष में बैठकर शकुनि, कर्ण और दुशासन से मन्त्रणा करने लगा। शकुनि बोला- हस्तिनापुर के होनेवाले नरेश को यों आतुरता दिखलाना शोभा नहीं देता वत्स दुर्योधन। राजनीति का पहला नियम यह है कि राजा की मन की अवस्था का ज्ञान तो उसके अतिरिक्त किसी और को होना ही नहीं चाहिये और तुम्हारा मुख मंडल तो भोजपत्र की भांति कोई भी पढ सकता है भान्जे। दुर्योधन बोला मामाश्री आप जो कहते हैं वो ही तो मैं कहता हूं और करता हूं। परन्तु फलस्वरूप इसके अतिरिक्त कुछ हाथ ही नहीं लगा कि राजकोष रिक्त होने को है और युधिष्ठिर की लोकप्रियता में कोई विपक्ष दिखाई नहीं दिया। शकुनि बोला दिखाई देगा। प्राणों से प्रिय दुर्योधन दिखाई देगा। मैंने मन्त्री पुरोचन को इस शुभ कार्य में लगा दिया है। दुर्योधन बोला पुरोचन। वो बूढा तो वास्तुशिल्पी है वो क्या कर सकता है। शकुनि बोला पुरोचन जो कार्य कर सकता है वो सब पूरी सेना भी नहीं कर सकती भान्जे। वारणावत में शिव समारोह हो ही रहा है वहां। दुर्योधन ने कहा हां हां और उसमें मैं जा भी रहा हूं। शकुनि बोला नहीं भान्जे तुम नहीं। इस वर्ष वहां युवराज युधिष्ठिर ही जायेंगे। दुर्योधन बोला पहेलियां मत बुझाओ मामाश्री। शकुनि ने कहा तुम में यही दोष है कि पूरी बात सुनने का कष्ट ही नहीं करते और बीच में बोलनेवाले पर टिप्पणी करने लगते हो।

मैं वहां पर युधिष्ठिर के लिये पुरोचन से एक लाक्षा भवन बनवा रहा हूं। केवल एक चिनगारी युवराज युधिष्ठिर की कथा ही समाप्त कर देगी। दुर्योधन ने आश्चर्य किया लाक्षागृह। क्षमा चाहता हूं मामाश्री सचमुच मेरी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई जो मैंने आपकी चतुराई पर सन्देह किया। शकुनि बोला युवावस्था इसी का तो नाम है प्राणों से प्रिय भान्जे। परन्तु इस शुभ कार्य में तुम्हारा योग्यदान आवश्यक है पुत्र। दुर्योधन ने पूछा वो कैसे मामाश्री ? शकुनि बोला वो क्या है तुम्हारे पिताश्री कभी कभी ऊधर की ओर झुक जाते हैं। वो अपने अनुज पांडु के पुत्रों को हानि पहुंचाये बिना तुम्हे हस्तिनापुर नरेश बनाना चाहते हैं और यह मानने को तैयार नहीं कि यह सम्भव है ही नहीं। अब तुम्हारा कार्य है उन्हें समझाना कि इस वारणावत समारोह में तुम्हारे स्थान पर युवराज युधिष्ठिर को यदि भेज दें तो तुम प्रसन्न होंगे और यदि तुम इस कार्य में सफल हो गये भान्जे तो समझो कि तुम्हारे तलवे से युधिष्ठिर का कांटा सदा-सदा के लिये निकल गया और अवश्य ही जीत हमारी होगी। दुर्योधन बोला पिताश्री को तो मैं मना लूंगा।

शकुनि दुर्योधन दोनों मिलकर धृतराष्ट्र के पास आते हैं धृतराष्ट्र बोला प्रिय दुर्योधन क्या बात है तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो वत्स ? शकुनि बोला कहदो कहदो दुर्योधन घबराओ नहीं तुम्हारे पिताश्री से। दुर्योधन बोला पिताजी मेरा एक निवेदन सुन लीजिये। आपने अपना दिया हुआ वो वचन टूट जाने दिया कि मुझे युवराज बनायेंगे पर मैं चुप रहा। आपने युधिष्ठिर को युवराज बन जाने दिया तो मैं इस पर भी चुप रहा और मेरे कहने से मेरे और भाइयों को छोडिये पर मेरा प्रिय अनुज दुशासन भी चुप रहा परन्तु अब हमारे चुप रह जाने की सीमा यहां पर समाप्त होती है। शकुनि बोला मेरा यह दुर्योधन सत्य कह रहा है महाराज। धृतराष्ट्र बोला परन्तु तुम्हारा यह प्राणों से प्रिय दुर्योधन कह क्या रहा है भ्राताश्री ? दुर्योधन बोला मैं यह कह रहा हूं पिताश्री आप तो राजभवन से बाहर निकलते नहीं और हमने आपको बहुत कुछ इसलिये नहीं बताया क्योंकि हम आपकी चिन्ता को अधिक ओर बढाना नहीं चाहते ? धृतराष्ट्र बोला परन्तु ऐसा क्या अनर्थ हो गया है पुत्र ? शकुनि बोला अनर्थ यह हो गया जीजाश्री कि युधिष्ठिर ने सारे जन समुदाय का हृदय जीत लिया है। धृतराष्ट्र बोला यह जानकर तो सभी को प्रसन्न होना चाहिये गान्धार कुमार। शकुनि बोला यह जानकर न तो मुझे प्रसन्नता होना चाहिये जीजाश्री और न आपको। धृतराष्ट्र बोला वो क्यों? दुर्योधन ने कहा वो इसलिये पिताश्री युधिष्ठिर की लोकप्रियता का केवल एक ही अर्थ है उसकी तूणीर में अपनी लोकप्रियता का एक बाण आ गया है और नि:सन्देह वो बाण आपकी ओर चलायेगा। धृतराष्ट्र बोला परन्तु क्यों वत्स ?

शकुनि बोला वो इसलिये कि महाराज वो राजगद्दी पर बैठने को व्याकुल है। यह राजगद्दी भी अजीब वस्तु है। बडे-बडे राष्ट्रभक्तों और पितृभक्तों को तक डिगा देती है। भगवान की कृपा से आज आप स्वस्थ है। आशा है आप बहु दिनों तक जीवित रहेंगे। आपके न रहने की प्रतीक्षा करने से तो अच्छा होगा कि जनसमुदाय और राज्यसभा, आपके तातश्री सभी सम्मिलित सम्मानित राजसभा के सदस्य आप पर दबाव डालें महाराज कि आप कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पक्ष में सिंहासन खाली कर दें, सिंहासन छोडकर हट जावें। यह वैसे भी तो आप अनुज पांडु के प्रतिनिधि के रूप में राज्य कर रहे हैं। अब आपके पास तो इस तर्क का कोई काट होगा भी परन्तु मेरे पास तो नहीं है जीजाश्री। धृतराष्ट्र बोला परन्तु मेरा युधिष्ठिर कभी ऐसा नहीं करेगा। शकुनि बोला यह कार्य आपका युधिष्ठिर स्वयं थोडे ही करेगा ? यह कार्य करेंगे उसकी तरफ से हस्तिनापुर के लोग। ये कार्य करेंगे वो राजा महाराज जो स्वर्गीय पांडु के मित्र थे। क्या आपको याद नहीं जब युवराज पद का चुनाव चल रहा था तब आप ही के सेनापति ने किसका पक्ष लिया था ? दुर्योधन बोला क्या आप चाहते हैं कि मैं हस्तिनापुर छोडकर कहीं और चला जाऊं ? धृतराष्ट्र के मनपर आघात हुआ। आते ही दुर्योधन कोई न कोई ऐसी बात कह देता है। धृतराष्ट्र बोला क्यों पुत्र ? क्या हो गया जो तुम्हे हस्तिनापुर छोडने की आवश्यकता आ पडी ? दुर्योधन बोला आप सब कुछ जानते समझते बूझते हो फिर भी यह दिखाते हैं कि आप कुछ नहीं जानते तो मुझे बहुत क्रोध आता है। धृतराष्ट्र बोला पुत्र कितनी बार तुम्हे समझाया है यह क्रोध तो जौक के समान है जो स्वयं का पोषित किया हुआ है। यह अपने स्वामी का ही रक्त पीता है और उसमें यह अधिक पुष्ट और

शक्तिशाली होता है। दुर्योधन बोला यह सब आप मुझे मत समझाइये। यह सब तो विदुर से समझें। आप इस विदुर को पदच्युत क्यों नहीं कर देते ? यह भी हमारे मार्ग का रोडा है। धृतराष्ट्र बोला यह प्रश्न तो मैंने भी कई बार अपने आप से किया है ? दुर्योधन बोला तो क्या उत्तर मिला आपको ? धृतराष्ट्र बडे ही निर्विकार भाव से बोला विदुर की बडी विचित्र स्थिति है पुत्र। वह हमारा भाई भी है और दासीपुत्र भी। मुझे लगता है पितामह ने उसे मन्त्री कदाचित इसलिये बनाया कि वह कहीं सिंहासन के लिये प्रतिस्पर्धा न करे। मैं भी सोचता हूं कि अच्छा ही हुआ उसे मन्त्री बना दिया। मेरे लिये एक पांडु की प्रतियोगिता ही कम नहीं थी। दुर्योधन बोला लेकिन किसी मन्त्री को पदच्युत करने का तो राजा को पूर्ण अधिकार है। धृतराष्ट्र बोला न तो वह वैसा मन्त्री है और न मैं वैसा राजा हूं पुत्र। जैसे मैंने अधिकार में यह राज्य पाया है वैसे ही उसने भी मन्त्रीपद पाया है। मैंने अपने राज्य काल में चाहे एक अच्छे राजा की कीर्ति यश प्राप्त नहीं किया हो पर उसने एक अच्छे मन्त्री होने का यश अवश्य पाया है। प्रजा पर भी उसकी बुद्धि की धाक है। लोग भी उसके चरित्र के विषय में आश्वस्त है। यदि उसे हटाने का प्रयत्न किया गया तो शायद उसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होगी। तथा मुझे भी उसकी आवश्यकता पडती है। मैं जब व्यक्तिगत कारणों से दु:खी होता हूं तब उससे उचित परामर्श मिलने से मुझे सान्त्वना मिलती है। विदुर की बात छोडो तुम्हे किस कारण से हस्तिनापुर छोडकर जाने की आवश्यकता पड गई ? दुर्योधन बोला हस्तिनापुर आजकल इतना पांडवमय हो गया कि मेरा तो यहां दम घुटने लगा। मैं आज स्पष्ट रूप से बता रहा हूं कि मैं पांडवों के साथ इस नगर में नहीं रह सकता। या तो और कहीं चला जाऊंगा या आत्महत्या कर लूंगा। धृतराष्ट्र को दुर्योधन के शब्द वज्र के समान लगे।

धृतराष्ट्र बोले ऐसा मत कहो पुत्र। अपने भाइयों के साथ मिल जुलकर रहना सीखो। दुर्योधन बोला वे मेरे भाई नहीं शत्रु है। धृतराष्ट्र समझ गया क्या दुर्योधन चाहता है कि पांडवों को किसी अन्य नगर या देश में भेज दिया जाये जहां उसको पांडु पुत्रों का सामना नहीं करना पडे। दुर्योधन बोला और बातों की सब बात का एक ही अर्थ है पिताश्री कि मुझे युधिष्ठिर के अधीन रह कर जीना स्वीकार नहीं है। यदि शीघ्र ही आपने कोई निर्णय और उपाय नहीं किया तो मैं प्रण करता हूं कि आप मुझे जीवित नहीं पायेंगे। पिताश्री मैं आपको आदेश तो नहीं दे सकता। धृतराष्ट्र बोला तो यह बताओ कि पुत्र मैं क्या करूं ? शकुनि बोला भगवान चन्द्रमौलि शिवशंकर महादेव के महोत्सव में महाराज श्री की ओर से युवराज युधिष्ठिर को वारणावत भेजना उचित जान पडता है। बहुत सुन्दर नगरी है। जलवायु की दृष्टि में भी स्वास्थ्यवर्धक है। वहां महादेव आशुतोष का भी एक विशाल विराट मन्दिर है। वहां पर वार्षिक महोत्सव की तैयारियां भी जोरों से शुरू हो रही है। युवराज और उसके लोकप्रिय भाइयों को अपने बीच पाकर वारणावत वासी भी बहुत प्रसन्न होंगे। प्रजा की प्रसन्नता व सुखके लिये युवराज और उसके भाइयों को इतना तो करना ही चाहिये महाराज। धृतराष्ट्र बोला वारणावत परन्तु इस महोत्सव में तो सदा से मैं ही जाता रहा हूं भ्राताश्री। शकुनि बोला अब तक आप इसलिये जाते रहे कि आज तक हस्तिनापुर के पास युवराज था ही नहीं। नहीं तो सदा युवराज ही महोत्सव में जाते हैं ताकि जनसमुदाय के साथ उनका सीधा सम्पर्क बना रहे। भगवान की कृपासे आज हस्तिनापुर के पास युवराज आ गया है महाराज तो उनका वहां जाना ही उचित होगा महाराज। धृतराष्ट्र बोला परन्तु भ्राताश्री। शकुनि बीच ही में बोल उठा कभी कभार प्रश्न ना करना भी राजनीति है। आप तो जानते हैं यह शकुनि आपके और आपके परिवार के हित की ही बात करता है जीजाश्री महाराज।

धृतराष्ट्र बोला आप ही पर तो मुझे विश्वास है। मैं आपके इस प्रस्ताव पर विचार करूंगा। यह सत्य है भ्राताश्री अपने प्रिय पुत्र दुर्योधन के शीश पर राजमुकुट देखना चाहता हूं पर इसे भी सत्य मान लीजिये कि मैं प्रिय युधिष्ठिर और अन्य पांडवों के साथ जानते हुये कोई अन्याय तो नहीं कर सकता। दुर्योधन बोला तो फिर आज्ञा दीजिये महाराज कि युधिष्ठिर वारणावत समारोह में चला जाये तो सारा झगडा ही समाप्त हो जायेगा। धृतराष्ट्र को लगा दुर्योधन भी अब उसी की शैली में बोलने लगा। धृतराष्ट्र बोला यदि उसने जाना स्वीकार नहीं किया तो ? दुर्योधन बोला आप आदेश देकर तो देखिये। धृतराष्ट्र को लगा यह वारणावत

भेजने की ही चर्चा क्यों कर रहा है और वह इस प्रकार क्यों कह रहा है जैसे पांडव वापिस हस्तिनापुर लौटेंगे ही नहीं। कोई अनुचित योजना उसके मन में है क्या ? पहले भी तो उसने बाल्यावस्था में प्रमाण कोटि में भीम को मार डालने का प्रयत्न किया था। इस बार दुर्योधन ने क्या सोचा है ? परन्तु यह पूछने का साहस धृतराष्ट्र नहीं कर सका और न इच्छा। जो कुछ दुर्योधन करना चाहता है उसे करने दे। फिर भी धृतराष्ट्र ने पूछ ही लिया वारणावत ही क्यों ? दुर्योधन बोला अपने ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा युधिष्ठिर अस्वीकार तो कर ही नहीं सकता। अपने ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा की उपेक्षा कर वह धर्मराज नहीं कहला सकता और यदि ऐसा उसने कुछ किया तो सम्राट की अवज्ञा के आरोप में राजसभा में युवराज के पद से पदच्युत करने का प्रस्ताव रखा जायेगा। धृतराष्ट्र बोला राजसभा में तुम्हे इस प्रस्ताव पर कितने समर्थक मिलेंगे ? क्या बहुमत उसके साथ नहीं होगा ? दुर्योधन बोला पिताश्री इसकी आप चिन्ता मत करे। सभी कुरुवृद्ध आपके साथ होंगे क्योंकि राजा के आदेश का पालन करना सभी के लिये जीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य होता है। शेष सारे मन्त्री विदुर को छोडकर अपनी पदोन्नति के लोभ के लिये आपके साथ रहेंगे। पांडवों के वारणावत जाने से कुरुकुल की कलह भी शान्त हो जायेगी। पांडवों के हस्तिनापुर में रहने से कुरुकुल में द्वेष बढेगा। पितामह भी इसका समर्थन करेंगे। धृतराष्ट्र कुछ नहीं बोला किन्तु उसके मन की प्रतिक्रिया बढ गई। दुर्योधन ने पूछ ही लिया तो फिर क्या निश्चय किया आपने ? धृतराष्ट्र बोला ठहरो पुत्र, तनिक धैर्य से काम लो तुम्हारी कही हुई बातों पर ही विचार कर रहा हूं। दुर्योधन बोला यही तो दोष है आपमें। कार्य करेंगे भी तो इतनी धीमी चाल से कि उसका सारा आनन्द ही नष्ट हो जाये और अपने पैर पटककर रोष से भरकर कक्ष से बाहर निकल गया।

विदुर भीष्म के पास आये और बोले तातश्री इसमें तो विवेचन का अवकाश है ही नहीं कि युधिष्ठिर के राजा बनते ही हस्तिनापुर चारों ओर से सुरक्षित हो जायेगा परन्तु। भीष्म बोले तुम अपनी हर बात में परन्तु का प्रतिबन्ध क्यों लगा देते हो विदुर ? विदुर बोला यह तो परन्तु का ही युग है तातश्री। कुछ निश्चित है ही नहीं। कुछ होते होते एकदम से कुछ का कुछ और हो जाता है। यह कौन सोचता था कि भ्राता पांडु के हाथों किन्दम ऋषि की हत्या हो जायेगी ? किसने यह सोचा था कि भ्राता पांडु को इस तरह राजपाट छोडकर वन जाना पडेगा ? किसने यह सोचा था कि भ्राता धृतराष्ट्र सिंहासन इस तरह पकड कर बैठ जायेंगे ? परन्तु यह सब हुआ और कौन जानता था हमारे हस्तिनापुर के इस युग ने इस परन्तु से और अधिक नुकीले और कंटीले परन्तु छिपे हुये थे। और इस बात का भी ध्यान रखिये तातश्री कि हस्तिनापुर के भाग्य का सबसे बडा विषैला परन्तु स्वयं गान्धार कुमार शकुनि ही है। वह जो गान्धार छोडकर यहां हस्तिनापुर में पडा हुआ है। यहां होने का कोई तो कारण होगा ? भीष्म बोले तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि युवराज बनने के उपरान्त युधिष्ठिर का राजा बनना निश्चित नहीं है ? विदुर बोले उनके राजा बनने में तो मुझे कोई सन्देह नहीं है तातश्री परन्तु भीष्म बोले बोलो परन्तु बोलो। अभी मेरे मृत्युलोक त्यागने की घडी बहुत दूर है।

विदुर बोला कदाचित राजकीय कोष को दुर्योधन के अधिकार में देकर हमने बहुत बडी भूल की तातश्री। वो दोनों हाथों से राजकीय कोष लूटा कर खाली कर रहा है और निष्ठायें मोल ले रहा है। वर्तमान राजनीति में राजकीय कोष का महत्व बढ गया है और यही कारण है कि मुझे युधिष्ठिर का राज्याभिषेक बहुत निकट नहीं दिखाई पड रहा है तातश्री। भीष्म सुनकर बहुत चिंतित हुये।

ज्वालामुखी भविष्य है आशंका में राज, चिन्ताकुल है वीरता, वीर विवश है आज।
कपट भरा है कूट कर कूटनीति हो घात, किन्तु सत्य यदि साथ हो तो रहे धर्म भी साथ।

राजनीति भी दो प्रकार की होती है। एक का आधार कोष है और दूसरी का सत्यता, निष्कपटता। एक राजा के व्यक्तिगत हेतु होती है और दूसरी राष्ट्रीय हितों के लिये। एक का लक्ष्य सिंहासन पर बैठकर रहना है तो दूसरे का लक्ष्य है जन समुदाय के हृदय में घर करना। हस्तिनापुर की राजनीति से ये दोनों रास्ते निकलते हुये साफ दिखाई दे रहे है। दुर्योधन गान्धार नरेश शकुनि की अंगुली पकडे पकडे पहले रास्ते पर जा रहा है और युधिष्ठिर धर्म के पीछे पीछे दूसरे रास्ते पर। दुर्योधन के पास राजकीय कोष

है और युधिष्ठिर के पास धर्म। तो महाभारत को सब तरह से धनवान और धर्मवान के बीच होनेवाले संघर्ष की कथा भी कह सकते हैं। कथा की समाप्ति होते होते सारी मानवजाति को यह पता चल जायेगा कि राजनीति को वास्तव में इन दोनों रास्तों में से किस रास्ते पर जाना चाहिये।

गान्धारी का निर्णय तो यह है। युधिष्ठिर कुन्ती के साथ गान्धारी के पास आता है। कुन्ती बोली दीदी। गान्धारी बोली आओ कुन्ती बैठो। युधिष्ठिर बोला प्रणाम बडी मां। गान्धारी बोली युधिष्ठिर आयुष्मान भव तेजस्वी भव। आज अपनी बडी मां का ख्याल कैसे आया ? पुत्र मैं तो सुन सुनकर फूली नहीं समा रही कि मेरे युधिष्ठिर की लोकप्रियता अपने पूर्वजों से भी आगे निकल आयी है। पुत्र युधिष्ठिर यह लोकप्रियता राजा का सबसे शक्तिशाली शस्त्र है और सबसे बडा सुदृढ़ ढाल। जिस राजा के पास यह शस्त्र और ढाल हो उस राजा के भाग्य में पराजय तो हो ही नहीं सकती। युधिष्ठिर बोला मेरे लिये तो आपके आशीर्वाद से अधिक सशक्त न तो कोई शस्त्र है और न ही कोई ढाल। गान्धारी बोली आओ बैठो पुत्र। युधिष्ठिर ने कहा जो आज्ञा बडी मां। गान्धारी बोली क्या कुन्ती के आशीर्वाद तुम्हे कम पडते हैं पुत्र ? युधिष्ठिर बोले माता का आशीर्वाद मिलता है वो तो मैं अनुजों में बांट देता हूं बडी मां। गान्धारी बोली तो मैं तुम्हे आज यह आशीर्वाद देती हूं कि भगवान करे तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री की ओर से तुम्हारा मन कभी मैला न हो। युधिष्ठिर बोला यह आप क्या कह रही है बडी मां ? गान्धारी बोली मन में आया कि तुम्हे यह आशीर्वाद दे दूं तो तुम्हे यह आशीर्वाद दे दिया। युधिष्ठिर बोले ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा का पालन करना तो मेरा कर्तव्य है बडी मां और आपको यह वचन देता हूं कि मैं सदैव आपके वचनों का पालन करूंगा।

गान्धारी बोली तुम्हारे बडे भाग्य हैं कुन्ती तुम्हे ऐसे पुत्र मिले। कुन्ती बोली पुत्र ही नहीं। मेरे तो बडे भाग्य है महाराज जैसे ज्येष्ठ मिले। आप जैसी दीदी मिली और हस्तिनापुर जैसा घर मिला और मैं तो सदैव इन तीनों को प्रणाम करती रहूंगी दीदी। गान्धारी बोली परन्तु मुझे न जाने क्यों भय सा लग रहा है जिस भय का न तो कोई रंग है और न ही कोई रूप और न कोई विशेष दिशा भी नहीं है और इसीलिये कदाचित अधिक घबरा भी रहीं हूं।

दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास आया। धृतराष्ट्र बोला पुत्र मेरा अनुज पांडु बडा ही धर्मात्मा था। सभी के साथ तथा विशेष रूप से मेरे साथ भी उसका बडा ही उत्तम व्यवहार था। स्वयं अपने खाने पीने की परवाह न करते हुये सब कुछ मुझसे कहते और मेरा ही राज्य समझते थे। उनका पुत्र युधिष्ठिर भी वैसा ही धर्मात्मा, गुणवान, यशस्वी और वंश के अनुरूप है। हम लोग बलपूर्वक उसे वंश परम्परागत राज्य मे कैसे च्युत कर सकते हैं। उसके सहायक भी बहुत बडे बडे लोग है। पांडु ने मन्त्री, सेना और उनकी वंश परम्परा का खूब भरण-पोषण किया है। सारे नागरिक युधिष्ठिर से सन्तुष्ट है। दुर्योधन ने कहा पिताश्री इस भावी आपत्ति के लिये मैंने पहिले ही सोचकर प्रबन्ध कर लिया है। अर्थ और सम्मान द्वारा प्रजा को प्रसन्न कर लिया है जो मुख्यत: हमारी सहायता में मदद करेगा। खजाना और मन्त्री मेरे अधीन है। धृतराष्ट्र ने कहा मैं भी यही चाहता हूं परन्तु यह पापपूर्ण प्रस्ताव उनसे कैसे कहूं? भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर की इससे सम्मति नहीं है उन सबका कौरवों और पांडवों पर समान प्रेम है। यह विषमता उन्हे अच्छी नहीं लगेगी। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम पर उन कौरव महानुभावों और जनता का कोप होगा। दुर्योधन ने कहा आप बिना किसी शंका सन्देह के पांडवों को वारणावत भेज दीजिये तभी जाकर कहीं मेरी ईर्ष्या का अन्त होगा।

दुर्योधन ने मन्त्री वास्तुशिल्पी पुरोचन को अपने कक्ष में बुलवाया। वहां पर दुशासन, कर्ण और शकुनि उपस्थित थे। पुरोचन को आते देखकर शकुनि बोला आइये पुरोचन जी। पुरोचन बोले यह क्या किया गान्धार कुमार आपने ? आपको मेरे लिये खडे होने की क्या आवश्यकता है ? शकुनि बोला इसके दो कारण है पुरोचन जी एक तो आप हम सबसे आयु में वयोवृद्ध बडे है दूसरा यह है कि कलाकार होने के नाते आप विधाता का एक अंश हैं। भान्जे यही है पुरोचन जी जो हमारे लिये वारणावत में एक लाक्षागृह का निर्माण कर रहे हैं। सभी ने उठकर कहा भान्जो का प्रणाम स्वीकार करें। पुरोचन ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। शकुनि

बोला बैठिये पुरोचनजी। आज मैं आपको गान्धार के अनार की मदिरा पिलाता हूं। तो बताइये पुरोचनजी हमारे वारणावत भवन के क्या समाचार हैं ? पुरोचन बोला धन्यवाद। तैयार होने का ही समाचार तो लेकर आया हूं आपके पास। शकुनि ने कहा अच्छा तो क्या उसके लिये एक चिनगारी बहुत होगी ? पुरोचन बोला एक चिनगारी की बात करते हो आप। आधी ही चिनगारी बहुत होगी पूरे भवन को जलाकर राख कर देने के लिये। शकुनि बोला तो आप यह समझ लीजिये पुरोचनजी कि आपके इस भवन के साथ-साथ इतिहास सदा आपको भी याद रखेगा। दुर्योधन ने कहा और यदि आपने ऐसा किया और लाक्षागृह बना दिया जैसा कि मामाश्री चाहते है तो आपको इतना प्रतिफल प्राप्त होगा जहां तक आपकी वंश रेखा जायेगी वहां आपके उत्तराधिकारियों को किसी का भी मुंह देखना नहीं पडेगा। पुरोचन ने कहा धन्यवाद कुमार दुर्योधन। शकुनि बोला इस समय आप थक गये होंगे पुरोचनजी। थोडा विश्राम कर लीजिये। शकुनि ने संकेत से प्रतिहारी को बुलाकर कहा इन्हे अतिथि गृह में ले जाओ।

कर्ण बोला मामाश्री मैं आपके लाक्षागृह वाले प्रस्ताव से सहमत नहीं हूं। यह तो कायरों की डगर है। हम लोग पांडवों को रणभूमि में ललकार सकते हैं और हरा सकते हैं। शकुनि बोला जैसे द्रुपद को हराया था अंगराज। कर्ण बोला मैं फिर भी इस प्रस्ताव में आपका सहयोगी नहीं हूं। शकुनि ने कहा तुम तो कह रहे थे भान्जे दुर्योधन तुम्हे तो अपने मित्र अंगराज पर अटल विश्वास है। यदि तुम चाहो तो यह तुम्हारे लिये अग्निकुंड में कूदकर भी प्राण दे दे मगर यह तो राजनीति का पहला पांसा ही फेंकने को तैयार नहीं। कर्ण बोला मामाश्री मैं जुआरी नहीं हूं। मैं पांसे नहीं फेंकता बाण चलाता हूं। मेरे लिये राजनीति कोई चौसर का खेल नहीं है। शकुनि बोला तो फिर राजनीति और कौनसा खेल है अंगराज ? कर्ण बोला हर बार मुझे अंगराज कहकर मेरा अपमान मत करो। दुर्योधन से मेरी मित्रता का आधार यह मुकुट नहीं है। मैं नंगे सिर रहकर भी दुर्योधन का ही मित्र रहूंगा परन्तु हर व्यक्ति को हमारे नियमानुसार जीने का हक है मामाश्री और अपना मुकुट उतार कर हाथ में पकड लिया। दुर्योधन बोला परन्तु तुम्हे यह मुकुटउतार कर मेरा अपमान करने का अधिकार तो नहीं है कर्ण। तुम अंगराज हो इसीलिये सब तुम्हे अंगराज ही कहेंगे। मैं भी यही कहूंगा। यह मुकुट तुम्हारे शीशपर ही शोभा देता है। कर्ण बोला प्रिय मित्र यदि मुझे मित्र मानते हो तो कभी अब मुझे अंगराज मत कहना। मैं अंग का राजा रहूं या नहीं पर तुम्हारा मित्र सदा रहूंगा। शकुनि बोला मित्र तो तुम सदा ही रहोगे। कर्ण परन्तु तुम्हारा क्रोध तनिक भी मिलावट नहीं करता। सदैव आने को ही आतुर रहता है। कर्ण बोला क्षमा चाहता हूं मामाश्री। शकुनि ने कहा कोई बात नहीं। यह तुम्हारा दोष नहीं, अवस्था का दोष है। तो आओ हम लोग अब उन पांडवों को देखें। दुर्योधन सुना है कि भीम बलरामजी से गदा युद्ध भी सीख आया है। दु:शासन बोला वो तो इसके अतिरिक्त कुछ सीख ही नहीं सकता। चाहे बलराम भले ही थक हार जाये। बलराम को क्रोध तो बिना बुलाये ही आ जाता है।

कृष्ण अपने महल में रूक्मिणि के साथ बैठे हुये थे इतने में ही बलरामजी क्रोधित होकर वहां पर आये। कृष्ण ने कहा दाऊ क्या बात है ? बलराम बोले मैं यह पूछना चाहता हूं कि पांडु पुत्रों से हमारा कोई नाता है या नहीं ? कृष्ण ने कहा यह आप क्या कह रहे हो दाऊ ? बलराम बोले कृष्ण तुम मुझे यह समझाओ कि वो हमारे क्या लगते हैं ? कृष्ण बोले वो हमारी कुन्ती बुआ के पुत्र हैं। बलराम ने कहा वे सारे भारतवर्ष में मिल मिलाकर हस्तिनापुर की तरफ प्रस्थान कर रहे हैं पर उन्हे यह ध्यान नहीं आया कि द्वारिका भी उनकी ननिहाल है। हम लोग भी यहां रहते है। क्या उन्हे यहां नहीं आना चाहिये था ? कृष्ण बोले परन्तु भीमसेन तो आपके पास आये थे दाऊ। बलराम बोले वो कोई मिलने नहीं आये। वो तो गदा युद्ध सीखने आये थे फिर भी चलो मान लिया की भीम आये थे परन्तु अर्जुन, नकुल, सहदेव तो नहीं आये। क्या उन्हे हमारे आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं ? रूक्मिणि बोली परन्तु दाऊ वे तो विजय यात्रा पर गये थे। उनकी यात्रा के मार्ग में तो द्वारिका पड ही नहीं सकती। कृष्ण बोला और वे आते तो दाऊ गदा लेकर दौड पडते कि उनका यह साहस कि वो द्वारिका पर चढ आये। दाऊ उन्हे आशीर्वाद दीजिये कि वो विजयी होकर आये। बलराम बोले आशीर्वाद तो देना ही पडेगा। कृष्ण बोला परन्तु दाऊ क्रोध और आशीर्वाद का कोई मेल नहीं होता। पहले जरा मुस्कुराइये फिर

आशीर्वाद दीजिये की वो विजयी होकर लौटें। बलराम बोले विजयी होकर तो लौटना ही है।

कर्ण एकान्त में दुर्योधन के पास आया और बोला मित्र दुर्योधन। दुर्योधन ने कर्ण के गले मिलकर स्वागत किया और बोला आओ मित्र। क्या बात है ? मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रहे हो ? कर्ण ने कहा एक शुभ समाचार जो लाया हूं। दुर्योधन ने कहा तो वह शुभ समाचार हमें भी सुनाओ। कर्ण बोला शकुनि मामा जो चाहे कुछ भी कहें मित्र छल कपट यौद्धाओं को शोभा नहीं देता। निर्णय तो तभी होता है जब योद्धाओं की गदा से चिनगारियां निकलती है। जब एक का बाण दूसरे के बाण से जा टकराता है। जब एक योद्धा के घाव से निकलती हुई रक्त की धारा दूसरे योद्धा के घाव से निकलती रक्त की धारा से जा मिलती है। तुम एक महावीर हो। लाक्षागृह तुम्हे शोभा नहीं देता। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि यदि तुमने ऐसा किया तो मैं तुमसे रूठ जाऊंगा, यह तो सम्भव ही नहीं। यह तो कभी होही नहीं सकता। क्योंकि मैं तुम्हारी वो परछाई हूं जो अन्धकार में भी तुमसे अलग नहीं होगी। मेरा भाग्य तुम्हारे भाग्य से जुडा हुआ है मित्र। जब ही तो मैं तुमसे कह रहा हूं कि महावीर अपने प्रतिद्वन्दी को छल से भस्म करेगा तो फिर कभी अपनी अन्तरात्मा का सामना नहीं कर पायेगा क्योंकि अन्तरात्मा रंगभूमि नहीं है जहां से कोई भाग सके परन्तु मैं चुप हूं। मैं तो सदैव हर अवस्था में तुम्हारा ही पक्ष लूंगा। क्योंकि तुम ही वो व्यक्ति हो जिसने यह जानते हुये भी मैं एक सूतपुत्र हूं मुझे अपनी मैत्री का गौरव प्रदान किया है। दुर्योधन बोला जातियां तो केवल कायर की होती है मित्र। वीर और महावीर तो केवल एक ही जाति के होते हैं। कर्ण बोला यदि यही सत्य है तो पांडव भी हमारी जाति के हुये। उनकी वीरता में तो कोई सन्देह है ही नहीं इसलिये उन्हे रणभूमि में मारने का सम्मान तो मिलना ही चाहिये। दुर्योधन बोला तो क्या हुआ लाक्षागृह में मोर्चा नहीं बांध सकते ? कर्ण बोला नहीं। फिर भी अन्तिम युद्ध से दृष्टि नहीं हटानी चाहिये और यही शुभ समाचार लाया हूं। यदि यह हुआ तो मगध नरेश और शिशुपाल हमारी ओर होंगे। विदर्भ युवराज रूक्मी को भी हमारी ओर से युद्ध करना पडेगा क्योंकि देवी रूक्मिणि के हरण के कारण शौर्य सैन्योंसे उनका मन मैला हो चुका है।

इसी बीच शकुनि कक्ष में आ गया और बोला बधाई हो अंगराज। एक शुभ समाचार मेरे पास भी है। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा का हृदय तो वत्स दुर्योधन ने जीत लिया है और यदि वो हमारे साथ हैं तो द्रोणाचार्य भी ना चाहते हुये भी हमारा साथ देने को विवश हो जायेंगे क्योंकि वे अपने बाणों का मुंह अपने पुत्र की ओर तो नहीं कर पायेंगे। कृपाचार्य भी अपनी बहिन के मोह से मुक्त नहीं हो पायेंगे। अब बचेंगे तुम्हारे पितामह। अगर यह युद्ध होगा भी तो उन्हें महाराज की ओर से युद्ध करना पडेगा। दुर्योधन बोला तो फिर हमें लाक्षागृह की क्या आवश्यकता है ? जिस तरफ आचार्य द्रोण, पितामह, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मगध नरेश जरासंध चेदिराज के युवराज शिशुपाल तथा विदर्भ के राजकुमार रूक्मी होंगे उस सेना को भला कौन हरा सकता है? शकुनि बोला तुम्हारे भीतर जो बालक है दुर्योधन वो बडा हो जायेगा तब तुम समझोगे कि लाक्षागृह का क्या महत्व है ? बाण तो बाण ही होता है वत्स ? किसी कायर की हत्या कर सकता है और किसी की शूरमा की छाती में बैठ जाये तो फिर उसका प्राण भी ले सकता है इसीलिये मैं चाहता हूं कि यह युद्ध रणभूमि में जाने से पहिले ही लाक्षागृह में समाप्त हो जाये।

धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया। धृतराष्ट्र अपने कक्ष में चिंतित मुद्रा में बैठा हुआ है। प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि महाराज की जय हो। महामन्त्री विदुर पधार रहे हैं। विदुर ने आकर धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोला आओ विदुर। इस समय तुम्हे महाराज ने नहीं बुलवाया है। अनुज मैंने बुलाया है। तुम्हारे भ्राताश्री ने। आओ मेरे निकट बैठो। विदुर बोले- धन्यवाद महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा पितामह कैसे हैं विदुर ? विदुर बोले भगवान की कृपा है भ्राताश्री। धृतराष्ट्र ने कहा हम तीन भाई। विदुर बोले इसे दासी पुत्र कहे, भाई मत कहिये महाराज। धृतराष्ट्र बोले गंगाजल तो गंगाजल ही रहेगा विदुर। गागर सोने की हो या मिट्टी की। विदुर बोले मां गागर नहीं होती भ्राताश्री। बीज अपने आप में तो कुछ भी नहीं होता जब तक उसे भूमि का स्नेह न मिले। बीज अन्तरिक्ष में नहीं पनप सकता। यदि पृथ्वी का कोई महत्व नहीं होता तो ईश्वर ने पृथ्वी बनाई ही नहीं होती। हम

मातृ भूमिवाले लोग है भ्राताश्री। दासी होने से मेरी माता का स्थान किसी अन्य माता से नीचा तो नहीं हो जाता। परन्तु मेरी पहचान केवल मेरी माता है और मनुष्य को तो अपनी पहचान की डोर कभी छोडनी ही नहीं चाहिये। धृतराष्ट्र बोले इसी कारण तुम मुझे अतिप्रिय हो। तुम्हारी सोच बिल्कुल सीधी है। मेरे प्रिय पांडु पुत्रों का कोई समाचार।

विदुर बोले समाचार मिला है कि भीमसेन बलरामजी से गदा युद्ध सीखकर अपने भाइयों से आ मिले हैं और अब सब हस्तिनापुर की ओर ही आ रहे हैं। धृतराष्ट्र बोला तुम्हारे विचार से उनके आ जाने पर मुझे क्या करना चाहिये विदुर ? प्रिय युधिष्ठिर को राजा बनाकर वन की ओर प्रस्थान कर लेना चाहिये या उनके राज्याभिषेक के लिये प्रतीक्षा करनी चाहिये। तुम तो जानते ही हो कि दुर्योधन कितना हठीला है ? वो अभी तक ठीक से समझ ही नहीं पाया है कि युधिष्ठिर को ही युवराज होना चाहिये था। तो क्या यह उचित नहीं होगा कि उसे थोडा समय और दिया जाये। विदुर ने कहा यह निर्णय तो आप ही को लेना है भ्राताश्री और यह निर्णय आप ले चुके हैं कि कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को लौटते ही वारणावत भेज दिया जाये। धृतराष्ट्र बोले यह समाचार तुम्हे किसने दिया ? विदुर बोले यह समाचार पूरे नगर को मिल चुका है भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोले तो फिर यह बताओ विदुर कि इस विषय में तुम्हे क्या कहना है ? युधिष्ठिर को वारणावत भेजूं या ना भेजूं। विदुर बोले गान्धार नरेश शकुनि ने सुझाव दिया है तो सोच समझकर ही दिया होगा महाराज। धृतराष्ट्र बोला चन्द्रमौलि भगवान शिव का उत्सव है। अनेक अनेक जातियों के लोग इस समय केवल आते है बहुत बडी संख्या में आते हैं। तो फिर वे भी अपने युवराज के दर्शन कर लें। विदुर ने कहा परन्तु मेरे विचार से युधिष्ठिर का अकेला जाना उचित नहीं होगा। उनके अकेले जाने से लोग यह सोचना आरम्भ कर सकते है कि राज परिवार में एकता नहीं है। इसलिये युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन और दुशासन जाये ताकि प्रजा यह देख ले गान्धारी पुत्रों ने ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र को अपना युवराज मान लिया है या स्वयं भ्राताश्री उनके साथ चले जाये और प्रजा से उनका परिचय कराये। ऐसा करने से लाभ होगा। प्रजा यह सोचने लगी है कि आपने किसी दबाव में आकर युधिष्ठिर को युवराज बना दिया है और आपका मन तो दुर्योधन ही के पक्ष में है। जनता के हृदय में ऐसी शंकायें राजनीति के लिये ठीक नहीं है भ्राताश्री। जन समुदाय को राजा पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये। यदि आप साथ ले जाये तो राजनीति का वातावरण ही शुद्ध हो जायेगा। धृतराष्ट्र बोले तुम्हारा कहना विचारणीय है। मैं इसपर अवश्य विचार करूंगा।

विदुर धृतराष्ट्र के पास से लौटकर अपने भवन में आये और चिंतित होकर कुछ सोच रहे हैं। अपने कक्ष में बैठे हुये हैं इतने में ही उनकी पत्नी पारसंवी वहा आ गई और बोली समस्या क्या है ? विदुर बोले मन्त्रियों के सामने तो कोई न कोई समस्या खडी रहती है पारसंवी। पारसंवी बोली मन्त्रियों वाली समस्या तो मैं पहचानती हूं। यह वो चिन्ता नहीं है। लगता है महाराज ने कुछ ऐसा कह दिया है जिसने आपको चिन्ता में डाल दिया है। सोचने पर विवश कर दिया है। विदुर बोले यह तुमने कैसे जान लिया देवी ? पारसंवी बोली इतने वर्षों से महामन्त्री की पत्नी हूं तो क्या चिन्ता चिन्ता में अन्तर भी नहीं कर सकती ? राजभवन के आने के पश्चात ही आपको चिंतित देख रही हूं। तो यह चिन्ता वहां से आई है। यह चिन्ता ज्येष्ठश्री के कक्ष से आई है। विदुर बोला हां तुम ठीक कहती हो। मुझे तो इस बात की टोह नहीं मिल रही है कि शकुनि युधिष्ठिर को वारणावत क्यों भेजना चाहते हैं ? उन्होने राज परिवार के बारे में जो कुछ सोचा होगा निकृष्ट ही सोचा होगा। वो कभी अच्छा तो सोच ही नहीं सकते।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में दुर्योधन के साथ बैठे हैं और विचार विमर्श कर रहे हैं। धृतराष्ट्र बोले प्रिय दुर्योधन सोचता तो मैं भी वहीं हूं जो कुछ तुम सोचते हो मैं चाहता भी वहीं हूं जो तुम चाहते हो। परन्तु मैं कुछ कह नहीं सकता कि मुझे हर ओर से तातश्री, विदुर, दोनों आचार्यों, मन्त्रियों, सामन्तो और प्रजाजनों ने घेर रखा है और वे सभी के सभी युधिष्ठिर ही के पक्ष में है। इसलिये जो भी करना है वो तुम्हे और तुम्हारे मामाश्री को ही करना पडेगा। तुम लोगों ने युधिष्ठिर को वारणावत भेजने की चर्चा की थी। आज विदुर से कहा तो वे बोले युधिष्ठिर को वारणावत भेजने में तो कोई आपति नहीं परन्तु यदि उसके साथ में मैं भी जा सकूं तो बहुत अच्छा होगा और यदि मैं न जाऊं तो उनके साथ तुम्हें और दुशासन को भेज दूं। दुर्योधन बोला लेकिन यह कैसे हो सकता

है पिताश्री ? धृतराष्ट्र बोले हां वही तो मैं कह रहा हूं वत्स। इसलिये जो कुछ भी करो, सोच समझ कर बडी सावधानी से करो। दुर्योधन बोला मैं जो भी कर रहा हूं बडी सावधानी से ही कर रहा हूं। आप ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर को किसी प्रकार वारणावत भेज दीजीये। धृतराष्ट्र ने पूछा वो क्यों पुत्र ? तुम और तुम्हारे मामाश्री इस बात का बार बार इतना आग्रह क्यों कर रहे हो ? इसमें क्या रहस्य है ? दुर्योधन बोला यही कि यदि आपने यह कर दिया तो मुझे बडा आनन्द होगा और आपको राजमुकुट भी मिलेगा? धृतराष्ट्र बोला ठीक है मैं तातश्री से पूछ लेता हूं।

धृतराष्ट्र भीष्म के कक्ष में आते हैं। वहां के द्वारपालों ने पितामह की जय पुकार कर भीष्म को सूचना दी कि महाराज आपके पास आ रहे हैं। भीष्म ने पूछा कौन कौन महाराज के साथ आ रहे है ? द्वारपाल ने बताया अकेले ही आ रहे हैं। भीष्म आगे बढकर धृतराष्ट्र का हाथ पकडकर अपने कक्ष में ले आये और बोले महाराज ने आने का कष्ट क्यों किया। यदि ऐसी कोई समस्या थी कि जो सवेरा होने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी तो मुझे बुला लिया होता। धृतराष्ट्र बोले तातश्री आपका आशीर्वाद प्राप्त हो। भीष्म बोले धृतराष्ट्र तुम हस्तिनापुर नरेश हो। तुम्हे भगवान के अतिरिक्त और किसी के आगे सिर झुकाना शोभा नहीं देता। धृतराष्ट्र बोला तो क्या नरेश होने के उपरान्त मैंने वो अधिकार भी खो दिया तातश्री जो मुझे आपके स्नेह पर था। क्या मैं वह धृतराष्ट्र नहीं हूं जिसने आपके स्नेह की अंगूली थामकर चलना सीखा। भीष्म बोले आओ यहां बैठो और अब बताओ कि समस्या क्या है ? क्या कोई गोपनीय बात है? धृतराष्ट्र बोला गोपनीय तो कुछ भी नहीं तातश्री। सारी राजसभा जानती है कि भीम और दुर्योधन एक दूसरे को सहन नहीं करते है जब देखो गदायें उठ जाती है। भीष्म बोले तो तुम दुर्योधन को समझाते क्यों नहीं ? तुम्हे तो पिता और राजा दोनों के रूपों में दुर्योधन को अपने नियन्त्रण में रखना चाहिये। धृतराष्ट्र बोला आपने तो ऐसी बात कह दी जैसे सारा दोष दुर्योधन का ही है। भीष्म को लगा इसे डांट दे। यह अन्धा पिता इतना मोहान्ध हो चुका है कि आजतक यह स्वीकार नहीं कर रहा है कि सारे उत्पात की जड दुर्योधन की ईर्ष्या ही है। बस उसे तो एक ही बात याद रहती है कि वह हस्तिनापुर का राजा है। भीष्म बोले तो क्या तुम्हारी राय में भीम और दुर्योधन एक समान ही दोषी है ? धृतराष्ट्र बोला मैं कोई आरोप लेकर आपके पास नहीं आया तातश्री। मैं तो कुरुकुल के भविष्य के प्रति अपनी आशंकायें जताने आपके पास आया हूं। यदि मेरे पुत्रों और अनुज पांडु पुत्रों में इस प्रकार मतभेद, वैर विरोध चलता रहा तो कुरु वंश का क्या होगा ? आप जानते हैं कि दुर्योधन कितना हठी है। न आप भीम को आदेश दें सकते हैं कि दुर्योधन के काम में हस्तक्षेप न करे और न मैं दुर्योधन को नियन्त्रण में कर पाता। न ही हम उन दोनों में परिवर्तन ला सकते न इनका किसी व्यक्ति से विनिमय कर सकते। हम स्वयं अपना दमन कर सकते है इनका दमन तो हमसे होगा नहीं। आज की इस पीढी में विद्रोह मत मतान्तर बहुत है। मुझे शंका है कि इनमें से किसी को भी दमन करने का प्रयत्न करूं तो कहीं वह अमर्यादित होकर कुछ ऐसा न कर बैठे जो अशोभनीय व दु:खदायक हो।

भीष्म बोले तुम चाहते क्या हो धृतराष्ट्र ? धृतराष्ट्र बोला मैं क्या चाहूंगा तातश्री मेरी तो यही इच्छा है कि कुरुकुल और कुरुराज्य में शान्ति बनी रहे। कल के ये लडके कहीं हस्तिनापुर के चौराहे पर खडे सशस्त्र युद्ध करते दिखाई नहीं पडे। भीष्म को धृतराष्ट्र का शैशव याद आया कि बचपन में यह भी कोई कम हठी नहीं था। यह भी अपनी इच्छायें रो-रोकर पूरी करवाता था। आज वही स्थिति दुर्योधन की है। अब भी धृतराष्ट्र का हठ यही है कि दुर्योधन की प्रत्येक इच्छा पूरी की जाये। पिता के गुण पुत्र में आ ही जाते हैं। भीष्म बोले दुर्योधन को तो तुम रोक नहीं सकते ? और कुरु परिवार में कलह भी तुम नहीं चाहते ?

धृतराष्ट्र बोले आज आप इस प्रकार मुझसे रूष्ट क्यों है ? क्या आप भीम को रोक लेंगे और उससे कहें कि वह दुर्योधन से झगडा न किया करे ? भीष्म बोले तुम मेरी बात रहने ही दो। आजतक भीम को ही रोका है मैंने। क्या आज तक किसी भी पांडु पुत्र ने तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन किया है ? तुम्हारे अपने पुत्रों से भी अधिक सम्मान करते आये हैं तुम्हारा। तुम्हारी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते हैं तथा तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करते हैं। धृतराष्ट्र बोला मेरी इच्छा का वे इतना ही सम्मान करते है तो

तातश्री क्या मैं उनसे कह दूं कि मेरी इच्छा है कि वे दुर्योधन को हस्तिनापुर का युवराज कर दें ? क्या छोड देगा युधिष्ठिर अपना यह पद ? भीष्म को लगा क्या कह रहा है यह धृष्ट अन्धा राजा ? क्या यहीं कहने यहां आया है। क्या आजतक इसके मन में यहीं था ? यह तो कभी विचार भी नहीं करेगा कि युधिष्ठिर को राजपाट सौंपकर उसे राजा बना स्वयं उदासीन हो वन चला जाये? युधिष्ठिर को युवराज बना स्वयं आजीवन सम्राट बना बैठा है हस्तिनापुर का। अब वह युधिष्ठिर से उसका युवराज पद भी छीनना चाहता है। इसका क्या भरोसा है कि यह अपने मन की यह बात युधिष्ठिर से भी कह दे। भीष्म जानते हैं युधिष्ठिर को। धृतराष्ट्र के ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर सब कुछ छोड छाडकर कहीं चल देगा। जिस राज्य के लिये ये पिता और पुत्र दोनों अपने प्राण लगाये बैठे है उस राज्य में युधिष्ठिर का कोई मोह नहीं है वह इसे तृण के समान त्याग देगा। भीष्म बोले युधिष्ठिर तुम्हारी इच्छा का विरोध तब भी नहीं करेगा। किन्तु धृतराष्ट्र इस स्थिति का लाभ उठाने का लोभ तुम्हारे मन में न आये तो ही अच्छा है। क्योंकि यदि तुमने कभी तुम्हारी ऐसी इच्छा युधिष्ठिर से प्रकट कर दी तो बाध्य होकर मुझे अपनी यह इच्छा प्रकट करनी होगी कि हस्तिनापुर का युवराज युधिष्ठिर उसका अब सम्राट बने। मैं तुम्हारी राजाज्ञा का विरोध तो नहीं करूंगा परन्तु कुरुवृद्ध के रूप में अपनी इच्छा प्रकट करने से किसी धर्म का भी उल्लंघन नहीं होगा ऐसे में तुम्हारे लिये और संकट बढ सकता है। अब तुम स्पष्ट शब्दों में अपनी समस्या का बखान करो। तुम अपने मन में क्या लेकर मेरे पास आये हो ? धृतराष्ट्र का मन कांप गया यदि किसी दिन पांडव राज्य पर अपना अधिकार करना चाहेंगे उस दिन हस्तिनापुर की सारी प्रजा उनके साथ हो जायेगी।

धृतराष्ट्र बोला आप रूष्ट न हो तातश्री। यदि आप ही रूष्ट हो गये तो मैं अन्धा असहाय प्राणी किसके सहारे जी पाऊंगा। मैं तो इतना ही चाह रहा था कि ये कुरुकुल की कलह समाप्त किस प्रकार हो। भीष्म ने पूछा फिर ये कलह किस तरह से दूर हो ? धृतराष्ट्र बोला बहुत से लोग यह सोचते हैं कि मैं प्रिय युधिष्ठिर को राजगद्दी सौंपना नहीं चाहता। लोग सोचते है कि मैं पिता हूं इसलिये अपने पुत्र दुर्योधन के पक्ष में हूं। इस सन्देह को मिटाने के लिये भी कोई न कोई उपाय निकालूं। इन भाइयों में साथ रहकर तो प्रेम का बीज अंकुरित हुआ नहीं। उल्टे विरोध बढता ही जा रहा है इसलिये मैंने सोचा कि इससे पहले कोई दुर्घटना घटे क्यों न हम लोग उन लोगों को कुछ समय के लिये विलग कर कहीं ओर भेज दें ? आनेवाले वारणावत समारोह में हस्तिनापुर के प्रतिनिधित्व के लिये प्रिय युधिष्ठिर को भेजा जाये ताकि लोग यह जान ले कि उनका अगला होनेवाला नरेश युधिष्ठिर ही है।

भीष्म बोले तुमने बहुत सही सोचा है धृतराष्ट्र। धृतराष्ट्र बोले मैं भी यही सोच रहा हूं कि तातश्री युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन को भी भेज दूं क्योंकि किसी के हृदय में थोडासा भी सन्देह हो तो वो भी निकल जाये। लोग यह जान लें कि दुर्योधन ने भी प्रिय युधिष्ठिर को स्वीकार कर लिया है। भीष्म बोले राजा का धर्म लोगों से डरना नहीं है धृतराष्ट्र। राजा का धर्म लोगों से प्रेम करना है। लोगों की सोच से डर कर कुछ करना राजा को शोभा नहीं देता। इसलिये युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन का जाना मैं उचित नहीं समझता। पांडवों के आते ही युधिष्ठिर को वारणावत भेज दीजिये। धृतराष्ट्र बोले जो आज्ञा तातश्री। पांडु पुत्रों के आते ही मैं प्रिय युधिष्ठिर को वारणावत भेज दूंगा।

पांडव विजय यात्रा कर राजसभा में लौट रहे थे तब पूरी राजसभा पांडवों की जयजयकार कर रही थी कि पांडव राजकुमारों की जय। विदुर बोला महाराज पांडु पुत्र आपको प्रणाम कर रहे हैं। धृतराष्ट्र बोला आयुष्मान भव। विदुर ने कहा महाराज अपने साथ लाये हुये धन सम्पत्ति उपहार आपको भेंट करना चाहते है। धृतराष्ट्र बोला आज्ञा है। राजसभा में दुर्योधन पांडु पुत्रों द्वारा लाये गये धन सम्पत्ति को देखकर आश्चर्य चकित हो शकुनि से कानाफूसी कर बोला कोष लूटा देने से तो कोष कम या खाली नहीं हुआ मामाश्री। ये लोग तो और अधिक धनी होकर लौटे हैं। शकुनि बोला वत्स तुम युधिष्ठिर को नहीं जानते हो बस चुपचाप देखते रहो भान्जे। चारों ओर युवराज युधिष्ठिर की जय हो रही थी। पांडु पुत्रों ने विजय यात्रा से लाया हुआ धन महाराज धृतराष्ट्र के चरणों में रख दिया। धृतराष्ट्र बोला मैं अति प्रसन्न हुआ। यह जानकर मेरे अनुज पांडु पुत्र यात्रा से धनी होकर लौटे हैं। उनके विजयी होकर

लौटने का एक समारोह मनाया जाये। बन्दीगृहों में यदि कोई बन्दी हो तो उन्हे मुक्त कर दिया जाये ताकि वो मेरे इन बच्चों को आयुष्मान भव का आशीर्वाद दे। ब्राह्मणों को भोज दिये जायें ताकि वो इनको सफलता का वरदान प्रदान करें। गौ पान कराया जाये। गरीबों को अन्न, वस्त्र दें। भगवान करे तुम भाइयों को यह धनरास आये। युधिष्ठिर बोला महाराज आप किस धन की बात कर रहे हो ? धृतराष्ट्र बोला वही धन वत्स जो तुम्हारे भाई लेकर आये हैं। युधिष्ठिर बोला ये धन जो आपके चरणों में रखा है वो तो हस्तिनापुर का ही है तातश्री। धृतराष्ट्र बोले नहीं पुत्र। युधिष्ठिर अवश्य ही तुम्हारा हृदय बहुत बडा है फिर भी ये धन तुम्हारा है।

युधिष्ठिर बोला परन्तु हम किसके हैं तात ? हम तो आपके हैं और आप हस्तिनापुर के हैं तो इस नाते तो यह हस्तिनापुर का ही हुआ तातश्री। हमारे लिये तो पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, गुरु कृपाचार्य और आपका आशीर्वाद ही धन और सम्पत्ति है। धृतराष्ट्र बोले प्रिय युधिष्ठिर तुम हस्तिनापुर के युवराज हो और शीघ्र ही हस्तिनापुर के सम्राट भी हो जाओगे। तुम्हारी भाग्य रेखा उसी दिशा में जा रही है और कर्म रेखा भी। परन्तु अभी तो युवराज का एक कर्म और करना शेष है। वारणावत में चन्द्रमौलि भगवान शिव के उत्सव में तुम्हे हस्तिनापुर का प्रतिनिधित्व करना है। इस उत्सव में युवराज प्राचीन परम्परा से अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करते चले आ रहे है। अब तक हस्तिनापुर के पास बहुत दिनों से कोई युवराज था ही नहीं। परन्तु अब तो उसके पास तुम जैसा युवराज है। इसलिये इस वर्ष तुम इस उत्सव में जाओ और जन समुदाय से मिलो और जन समुदाय को भी यह अवसर दो कि वो अपने भावी सम्राट दें होनेवाले राजा के दर्शन कर ले। विदुर बोले मेरा सुझाव है कि युवराज को स्वयं महाराज अपने साथ ले जायें और प्रजा को उनका परिचय दे। भीष्म बोले मुझे महाराज का जाना किसी भांति भी उचित नहीं जान पडता। दुर्योधन बोला उचित ही नहीं अनुचित है काकाश्री। धृतराष्ट्र बोले मैं तातश्री से सहमत हूं मैं दुर्योधन को अवश्य इस समय युधिष्ठिर के साथ भेज देता परन्तु राजकीय कोष रिक्त पडा है उसे देखते हुये उनका हस्तिनापुर से बाहर जाना बिल्कुल भी उचित नहीं है।

दुर्योधन बोला मैंने वहां भ्राताश्री के लिये एक नवीन भवन भी बनवाया है। पुरोचन जी का कहना है कि ऐसा भवन न तो पहिले ही कभी उन्होने बनाया था और न ही कभी फिर बना सकेंगे। यह भवन वास्तुकला का एक चमत्कार है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले तब तो मैं अवश्य जाऊंगा प्रिय दुर्योधन। तातश्री का आदेश ही बहुत था परन्तु अब तो अनुज दुर्योधन को प्रसन्न करने का अवसर भी मिल गया।

अज्ञानी की लालसा, कुटिल बुद्धि ज्ञान, कूटनीति के योग से बनता प्रलय समान।

धृतराष्ट्र ने कुछ ऐसे चतुर मन्त्रियों और सेना के उपाध्यक्ष इत्यादि नियुक्त किये जो वारणावत की बारम्बार प्रशंसा कर पांडवों को वहां जाने के लिये प्रेरित करे। कोई उस सुन्दर और सम्पन्न देश की प्रशंसा करता तो कोई नगर की। कोई वहां के मेले का बखान करता। इस प्रकार वारणावत नगर की बहुत प्रशंसा सुनकर युधिष्ठिर व अन्य पांडवों का मन भी कुछ कुछ वहां जाने के लिये उत्सुक होने लगा। अवसर देखकर धृतराष्ट्र ने कहा प्यारे पुत्रों तुम लोग वहाँ जाना चाहते हो तो जाओ। आजकल वहां पर चन्द्रमौलि भगवान शिव के मेले की बडी धूम है। वहां तेजस्वी देवताओं की तरह विहार कर जब तुम्हारा जी चाहे लौट आना। युधिष्ठिर मन से धीरे-धीरे धृतराष्ट्र की यह कुटिल चाल समझने लगे। युधिष्ठिर ने कहा आपकी जैसी आज्ञा। हमें क्या आपत्ति हो सकती है ? युधिष्ठिर ने कुरुवंश के वयोवृद्ध बाहलीक, भीष्म सोमदत्त आदि द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि का सभी तपस्वी ब्राह्मणों का तथा गान्धारी आदि माताओं का चरण स्पर्श कर वन्दन कर कहा कि हम महाराज श्री की आज्ञा से वारणावत जा रहे हैं आप सभी लोग हमें प्रसन्न मन से आशीर्वाद दें कि वहां पाप हमारा स्पर्श नहीं करे। सबने आशीर्वाद दिया वहां तुम्हारा कल्याण हो। सर्वत्र मंगल हो। कोई अनिष्ट न हो। आयुष्मान भव।

४७) वारणावत में लाक्षागृह का षडयन्त्र और विदुर का गुप्त सन्देश

समय वास्तविकता को एक साथ चारों आयामों में भी देखता है। समय एक दर्पण है परन्तु लोग यह दर्पण देखना भूल गये है

यही कारण है कि उन्हे वास्तविकता स्पष्ट दिखाई देती है। इकहरी दिखाई देती है और इसीलिये लोग उसकी व्याख्या करना चाहते हैं। उसपर टिप्पणी लगाना चाहते हैं ताकि वास्तविकता को समझ सके परन्तु ऐसा करना लाभदायक नहीं है। समय महाभारत की संघर्ष कथा सुना रहा है, समझा नहीं रहा है क्योंकि यह कहानी हर व्यक्ति को अपने तौर पर अलग अलग समझनी पडेगी। समय यदि भाग्य का मार्ग होता तो सम्भवत: कुछ बताने का प्रयत्न भी होता परन्तु यह तो कर्म का मार्ग है तो फिर कर्म के बारे में बताना क्या और न बताना क्या ? गान्धार नरेश शकुनि ने पुरोचन से सांठगांठ करके एक षडयन्त्र रचा और वो सफल भी हो गया। उसने दुर्योधन और कर्ण जैसे महावीरों को भी षडयन्त्रकारी बना दिया। तो इस षडयन्त्र पर किसी अतिरिक्त टिप्पणी की आवश्यकता रही ही क्या ? समय केवल शकुनि के कर्मों का मार्ग तो है नहीं। इसी मार्ग पर दूसरे भी तो चल रहे हैं इसलिये समय से कथा सुनें और टिप्पणियों के मायाजाल से दूर रहें।

युधिष्ठिर के वारणावत जाने की बात तो पक्की हो गई परन्तु केवल युधिष्ठिर के जाने से ही तो शकुनि का काम सीधा नहीं होगा। वो तो दुर्योधन को पांडवों का पंचशूल दिखाता रहता है। तो प्रश्न यह है कि बाकी चार पांडवों को और माता कुन्ती का क्या किया जाये ? शकुनि अपने कक्ष में चौसर बिछाये हुये पांसे फेंक रहा है। दुर्योधन और दुशासन शकुनि के पास आते हैं। शकुनि बोला आओ गान्धारी पुत्रों आओ। दुशासन बोला मामाश्री मैंने आपको इस तरह दाढी खुजलाते हुये आज तक नहीं देखा। शकुनि बोला भान्जे आज तक तो इसकी आवश्यकता ही नहीं पडी थी प्रिय दुशासन। दुर्योधन बोला क्या समस्या गम्भीर है ? शकुनि ने उत्तर दिया केवल गम्भीर ही नहीं अति गम्भीर है। यदि वारणावत में युधिष्ठिर अकेले जाते है तो फल स्वरूप तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। परन्तु युधिष्ठिर के साथ उन चारों पांडवों को भेजने का उपाय सूझ नहीं रहा। यदि कुन्ती भी उनके साथ चली जाये तो बहुत अच्छा हो जायेगा। दुर्योधन बोला आप तो यूं ही चिन्ता करने लगते है मामाश्री। भ्राता युधिष्ठिर को तो भस्म हो जाने दीजिये। शेष बचे वो चार पांडव। उनको भस्म कर देने का कोई न कोई उपाय अवश्य निकाल लूंगा। शकुनि बोला नहीं नहीं। तुम विष की गांठ विदुर को नहीं जानते हो। तुरन्त ताड जायेगा और यदि वो ताड गया तो तुम्हारे पितामह के कान भरने लगेगा और तुम्हारे पितामह भागे भागे धृतराष्ट्र के पास जायेंगे और कहेंगे ऐ धृतराष्ट्र यह सब क्या हो रहा है ? सारा बना बनाया खेल ही चौपट हो जायेगा। यदि अन्धेरे में आक्रमण करना हो तो बडे ही सोच विचार कर करना चाहिये। दुर्योधन बोला तो फिर क्या मैं माताश्री से कहूं। शकुनि ने कहा तुम बडे कब होओगे दुर्योधन ? तुम्हारी माताश्री को तो इसकी भनक भी नहीं लगनी चाहिये। उसकी आंखे बन्द है तो बन्द ही रहने दो। क्योंकि उसकी बन्द आंखों से ही तो मुझे प्रेरणा मिलती है। पांसा फेंका और बोला आठ। पांसे में आठ आ गया।

गान्धारी और कुन्ती आपस में बातें कर रही थी। गान्धारी बोली मैं सच कहती हूं कुन्ती दुर्योधन की ओर से सदैव मन में एक खटक सी रहती है। वैसे उसका हृदय बहुत विशाल है। कोई मांगे तो प्राण भी दे दे परन्तु उसे मिलकर रहना नहीं आता। पर युधिष्ठिर के साथ ने उसे पिघला दिया। कुन्ती बोली नहीं दीदी। लाठी मारने से कहीं पानी अलग होता है ? और फिर आपके पुत्र और मेरे पुत्र कोई अलग-अलग थोडे ही हैं। एक ही नदी की दो धारायें हैं। कहीं न कहीं तो मिलना ही पडता है। दीदी मैं बहुत प्रसन्न हूं। दुर्योधन ने अपने बडे भाई के लिये वारणावत में इतना बडा भवन बना डाला। भगवान इन भाइयों को लम्बी आयु दे और इनका आपसी प्रेम यूं ही बढता रहे।

कृष्ण ने मुचुकन्द की सहायता से कालयवन का वध कर दिया। अब मथुरा छोडकर एक नया नगर कुशस्थली बसा दिया जिसे आज द्वारिका कहा जाता है। कुशस्थली के चारों ओर समुद्र है। यादव सेना जब भी जरासंध से युद्ध करेगी तो उनकी पीठ पर समुद्र होगा जरासंध नहीं। वैसे भी क्षत्रिय या तो विजय प्राप्त करता है या वीरगति पर वह पीछे नहीं हटता है। कृष्ण का कहना है कि जडता से कोई कार्य नहीं करना चाहिये। कृष्ण का कर्म चैतन्य है। हमें कब किस शस्त्र का प्रयोग करना है, कितनी

दूरी से करना है ? शत्रु की सेना पर आक्रमण कहां करना है, किस खंड पर प्रहार करना है ? यह सब हमें कब कहां और किस तरह यह सब शस्त्र के चुनने पर निश्चित होता है। वैसे ही हमें स्थान और समय भी चुनना चाहिये। समय और स्थान से बडा शस्त्र और कोई नहीं है। युद्ध में क्षत्रिय के लिये कायरता अधर्म है। युद्ध तो कर्म है तथा विजय या वीरगति उसके फल है। कृष्ण के प्रत्येक कर्म धर्म के विपरीत प्रतीत होंगे किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो उसके प्रत्येक कार्य मौलिक प्रमाण से है। प्रचलित लोक परम्परा उसे अवरुद्ध नहीं कर पाती। ऊपर से धर्म विरुद्ध लगनेवाले सभी कार्य वास्तविक में धर्म के अनुकूल होते हैं। साधारण व्यक्ति कृष्ण की लीला को तो समझ नहीं पाता और उसके अनेक अर्थ निकालते रहता है। कृष्ण तथा सृष्टि अभेद है। कृष्ण ही सृष्टि है और सृष्टि ही कृष्ण है। व्यक्ति एक को जान जाये तो दूसरे को अपने आप जान जाता हैं। कुछ विषय और व्यक्ति उपहास से परे होते हैं। जिनसे आप प्रेम करते हैं उनसे आप हास परिहास भी कर सकते हैं पर जिनके लिये आपके मन में श्रद्धा होती है उनकी केवल प्रशंसा की जाती है। श्रद्धा से तो सारी आत्मीयता ही समाप्त हो जाती है। युधिष्ठिर के मत से दिग्विजय से लाया गया धन प्रजा के कल्याण के लिये है न कि राजा के विलास के लिये। कुन्ती को कर्ण को सूतपुत्र कह कर पुकारने में बडी आपत्ति होती थी पर विवश थी कुछ कह नहीं पाती थी। इस प्रकार के सम्बोधन से सूतपुत्र, दासीपुत्र इत्यादि से व्यक्तियों के गुण प्रकट होने के स्थान पर गुण तिरोहित हो रहे थे। कर्ण अपने अज्ञान से ही अर्जुन से द्वेष रखता था। दुर्योधन की सारी दुष्टताओं के मूल में या तो शकुनि होता था या सूतपुत्र कर्ण। कर्ण में भी दमित महत्वाकांक्षाओं का वार था।

महत्वाकांक्षाये किसमें नहीं होती किन्तु उनकी अपूर्णता या असफलता यदि व्यक्ति झेल न पाये तो वह दुष्टता पर उतर आता है। ऐसा अपराध क्षम्य भी तो नहीं है। यही हुआ कर्ण के साथ भी। कुन्ती जानती थी कि कुछ लोग अभागे होते हैं। दुर्भाग्य से पीडित व्यक्ति को क्षमा कर देना ही उचित है। सत्संगति और भले लोगों का स्नेह सबसे बडा सौभाग्य होता है। कर्ण को अपनी जननी का स्नेह प्राप्त नहीं हुआ। कर्ण को संगति मिली भी तो दुर्योधन, दुशासन और शकुनि की। उसे उनका प्रेम प्राप्त है, उनका स्वार्थ उसे घेरे हुये है। कर्ण शायद पांडवों का मित्र होता तो उसे राज्य भी मिलता और वह इससे कहीं अधिक सुखी होता पर समय की मार और भाग्य के चक्र ने उसे हीन जीवन जीने को विवश कर दिया। ऐसे लोग क्षम्य ही नहीं दयनीय भी होते हैं। जिन्हे मिलने के लिये सुख चारों ओर से बहता चला आता है फिर भी वे लोग सुख तक नहीं पहुंच पाते।

वैशम्पायन कहते है सुनो जनमेजय अब महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों को वारणावत जाने की आज्ञा दे दी तब दुरात्मा दुर्योधन को बडी प्रसन्नता हुई और उसने अपने वास्तुशिल्पी मन्त्री पुरोचन को एकान्त में बुला कर कहा पुरोचनजी इस पृथ्वी को भोगने का जैसा अधिकार मेरा है वैसा ही आपका है। आप मेरे विश्वासपात्र सहायक भी है। जिसके साथ मैं अपने गुप्त विचार भी प्रकट कर सकता हूं। मैं आपको मेरा यह काम सौंपता हूं कि मेरे शत्रुओं को जड से उखाड फेंको। बडी सावधानी से काम होना चाहिये ताकि किसी को भी कानों कान खबर न हो। पिताश्री की आज्ञानुसार पांडव वारणावत में जाकर रहेंगे। उनसे पहिले ही तुम जाकर एक भव्य नगर द्वार के बाहर ऐसा भवन निर्माण करो जो कभी भी आग लगते ही भभक उठे। उसकी दीवालों पर तेल, घी, चर्बी, राल सर्जरस (राल), सन, मूंज, लकडी तथा विस्फोटक पदार्थों का लेप तथा मिट्टी के तेल से पुतवा देना। पांडवों को भी इस बात का पता न चले। उसमें पांडव व छोटी मां कुन्ती रहेंगी। वहां दिव्य आसन, शैय्या से सजा देना उस भवन के पीछे कोई दरवाजा मत बनाना। जब वे विश्वासपूर्वक निश्चित होकर सो रहे हों तब दरवाजे पर आग लगा देना। तब वे पांडव स्वत: ही उस घर में जल जायेंगे तो हमारी निन्दा भी नहीं होगी और कोई दोषारोपण भी नहीं होगा। पुरोचन ने वैसा करने का आश्वासन दिया। वारणावत जाकर दुर्योधन के आज्ञानुसार वैसा महल तैयार करवाया।

एक दिन सभी पांडव अपने निवास स्थान पर एकत्रित बैठे थे और आपस में युधिष्ठिर के वारणावत जाने के विषय में चर्चा कर रहे थे उनकी युधिष्ठिर को अकेले भेजने की सहमति नहीं थी। भीम बोला अब माताश्री को कौन समझाये ? दुर्योधन से हमें कभी

स्नेह प्राप्त हो ही नहीं सकता। युधिष्ठिर ने कहा भीम तुम्हे अपने भाई पर यों सन्देह शोभा नहीं देता। भीम बोला यह तो मैं भी जानता हूं परन्तु मुझे खीर में विष खिलानेवाला, विष के लड्डू देनेवाला, गंगा में बहा देनेवाला किसी और नगरी से तो नहीं आया ज्येष्ठ भ्राताश्री। अर्जुन बोला मैं तो अपने भ्राताश्री को अकेले कभी नहीं जाने दूंगा। भीम बोला आप अपने प्रिय दुर्योधन को जानते ही नहीं। युधिष्ठिर बोला उसको जानना या समझना क्या ? भीम बोला क्यों नहीं ? दुर्योधन जानता है कि अब आप ही हस्तिनापुर नरेश होंगे। राजकीय कोष भी अब उसके हाथ से निकल जायेगा। राष्ट्र की पूंजी पर दानवीर बना हुआ है परन्तु आपके राजा बन जाने पर क्या करेगा ? जानता है कि वो आपके अधीन होकर ही जीना है तो वो आपको प्रसन्न करने के लिये चालें चल रहा है। अर्जुन बोला सम्भव है इसके अतिरिक्त भी तो कोई पांसा फेंक रहा हो। मामा शकुनि और सूत पुत्र कर्ण के साथ मिलकर वो न जाने क्या-क्या षडयन्त्र रच रहे होंगे ? भ्राताश्री यदि यह उसके वश में होता तो वह कभी भी आपको राजा न बनने दे तो वो कभी आपको राजा नहीं बनाने देगा। भीम बोला परन्तु अभी राजा बने कहां ? अर्जुन बोला तभी तो कह रहा हूं कि भ्राताश्री का वहां अकेले जाना मुझे उचित नहीं लगता।

युधिष्ठिर बोला चाहता तो मैं भी यहीं हूं कि हम सब भाई साथ रहेंगे तो अधिक आनन्द मिलेगा। माताश्री से पूछलो यदि आज्ञा दे दें तो सभी चलें। भीम बोला ऐ सहदेव तू जाकर कहना माताश्री को। तुम्हारा कहना वह कभी भी नहीं टालती। सहदेव बोला मैं तो यह कहता हूं कि माताश्री को भी अपने साथ ले चलें। युधिष्ठिर बोला यदि माताश्री भी चलें तो बडा ही अच्छा होगा और अधिक आनन्द आयेगा क्योंकि यदि वो नहीं होगी तो भीम के लिये आधा भोजन कौन अलग करेगा ? भीम बोला क्या अब आपको भी मेरा खाना खटकने लगा भ्राताश्री ? युधिष्ठिर बोला नहीं अनुज। यदि खाते तुम हो पर पेट मेरा ही भरता है। परन्तु दुर्योधन की ओर से मन मैला मत करो। वो अभिमानी अवश्य है परन्तु कायर नहीं। वो लड सकता है पर षडयन्त्र नहीं कर सकता। भीम बोला भ्राताश्री <u>अभिमान भी कायर की ढाल ही है</u>।

इतने में ही गान्धारी से मिलकर राजभवन से कुन्ती आ गई। युधिष्ठिर बोला माताश्री आइये विराजिये यहां और कुन्ती को अपने पास बिठाया। कुन्ती बोली मेरे पुत्रों आज यह किस विषय पर वाद विवाद हो रहा है ? किसे कायर कह रहे हो ? कैसी ढाल? भीम बोला भूख लग रही थी। उसे टालने के लिये हम सब यूं ही कुछ न कुछ कह सुन रहे थे। युधिष्ठिर बोला सहदेव का प्रस्ताव यह है माताश्री हम सब वारणावत चलें तो कैसा रहेगा ? कुन्ती बोली तुमने तो मेरे मन की बात कहदी पुत्र। तुम्हारा अकेले जाना तो मुझे यों भी उचित नहीं लग रहा था पुत्र। परन्तु तुम लोगों के साथ मेरा जाना क्या उचित रहेगा पुत्र ? सहदेव बोला यह आप क्या कह रही हैं माताश्री ? यदि आप नहीं गई तो मैं भी नहीं जाऊंगा। और मैं नहीं गया तो कोई भी नहीं जायेगा। हां माताश्री आपको हमारे साथ चलना ही होगा। कुन्ती बोली हां मैं भी चलूंगी अवश्य।

समझ ना पाये पांडु सुत कपट चाल का जाल, प्रेम सना विष प्रेम से स्वीकारा तत्काल।

विदुर के पास विदुर का गुप्तचर आता है और प्रणाम करता है महामन्त्री को। विदुर पूछता है तुम वारणावत से कब आये। कोई विशेष समाचार ? गुप्तचर बोला मैं घर गया ही नहीं। समाचार तो है पर यह नहीं कह सकता कि यह समाचार विशेष है या साधारण। पुरोचन जी ने भवन तो ऐसा बनाया है कि देखते बनता है। बेजोड है परन्तु यह समझ में नहीं आता कि इसी बीच उन्होने मणों की तादात में भूसा, सन, लाख, मूंज, चर्बी, घी, मिट्टी का तेल क्यों खरीद लिये है। विदुर मन ही मन सोच में पड गया, मूंज, सन, लाख, चर्बी, घी, तेल, विस्फोटक और ये सब तो जलनशील पदार्थ है। विदुर बोला जाओ पर यह बात किसी और के सामने मत कहना। विदुर सोचता रहा और गुप्तचर चला गया।

धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ अपने कक्ष में बैठा हुआ है कि इतने में दुर्योधन वहाँ आता है। धृतराष्ट्र ने पूछा अच्छा तो यह बताओ प्रिय दुर्योधन कि प्रिय युधिष्ठिर का वारणावत जाने का कोई मुहूर्त निश्चित हुआ ? दुर्योधन बोला अभी तो यात्रा की

योजना बनी है पिताश्री। योजना बन जाने पर शुभ मुहूर्त भी निकल आयेगा। द्वारपाल ने आकर कहा युवराज महाराज को मिलने पधार रहे हैं। दुर्योधन बोला मैं स्वयं भ्राताश्री को लेकर आता हूं पिताश्री। गान्धारी बोली देखो हमारे दुर्योधन के स्वभाव में कितना परिवर्तन आ गया है ? पहिले तो उसे पांडवों का नाम सुनते ही कुढ आने लगती थी और आज स्वयं अपने भाई का स्वागत करने गया है। धृतराष्ट्र बोला हां इस परिवर्तन का तो मैं भी हार्दिक स्वागत करता हूं।

दुर्योधन युधिष्ठिर से आइये भ्राताश्री। यहां बैठिये। युधिष्ठिर ने आकर गान्धारी और धृतराष्ट्र के चरण स्पर्श किये और बोले प्रणाम बडी मां। प्रणाम ज्येष्ठ पिताश्री। दोनों ने युधिष्ठिर को आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। दुर्योधन ने कहा बोलिये युवराज। गान्धारी बोली पुत्र युधिष्ठिर वारणावत जाने की यात्रा कब आरम्भ कर रहे हो ? युधिष्ठिर बोला इसी विषय में तो यह प्रार्थना लेकर आया हूं बडी मां। दुर्योधन बोला क्या भ्राताश्री को वारणावत जाने में कोई संकोच, विघ्न है। यदि ऐसा है तो... बीच ही में युधिष्ठिर बोला यह तुम क्या कह रहे हो अनुज ? ज्येष्ठ पिताश्री की कोई भी आज्ञा का पालन करने में मैं भला कैसे संकोच कर सकता हूं ?

धृतराष्ट्र ने पूछा तो फिर क्या समस्या है ? युधिष्ठिर बोले समस्या तो कोई नहीं है। मैं तो केवल यह प्रार्थना लेकर आया था कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने चारों भाइयों को साथ लेकर और माताश्री को भी ले जाऊं। दुर्योधन बोला इसमें आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता है भ्राताश्री ? उन्हे आप अवश्य अपने साथ लेजाइये। मेरे अनुजों का जी भी बहल जायेगा और छोटी मां तो इसलिये जा रही होगी कि यदि वे न गई तो भ्राता भीम के खाने पीने का प्रबन्ध कौन करेगा ? गान्धारी बोली चुप। अपनी चपलता को कभी कभार रोक भी लिया करो पुत्र। अपने भ्राता के खाने को क्यों टोकते हो भला। युधिष्ठिर बोले तो मेरे लिये क्या आज्ञा है ज्येष्ठ पिताश्री ? धृतराष्ट्र बोले तुम उन सबको अपने साथ अवश्य ले जाओ पुत्र। अवश्य।

दुर्योधन के हर्ष का रहा न पारावार, स्वयं जाल में आ फंसा आज पांडु परिवार।

विदुर युधिष्ठिर से मिलने उसके आवास पर आया। कुन्ती ने आकर विदुर का स्वागत किया और बोली आओ विदुर। विदुर बोला प्रणाम भाभीश्री मैं तो यों ही युवराज से मिलने चला आया था। पर नकुल से मालूम पडा कि वो तो महाराज की सेवा में गये हुये हैं। कुन्ती बोली लेकिन विदुर आप युधिष्ठिर को युवराज क्यों कहते हैं ? वो तो आपके पुत्र के समान है। विदुर बोले मुझे उसे युवराज कहना बहुत अच्छा लगता है और महाराज कहना और भी अधिक अच्छा लगेगा। पर अब आज्ञा दीजिये भाभीश्री। मैं स्वयं उनसे मिलने फिर किसी समय आ जाऊंगा। प्रणाम। विदुर के जाने के पश्चात कुन्ती अपने पुत्रों से बोली तुम्हारे काकाश्री आज बहुत चिंतित दिखाई नहीं पड रहे ? नकुल बोला चिंतित रहना उनका स्वभाव है और यह मन्त्रियों की पहचान है माताश्री।

शकुनि अपने कक्ष में पांसे उलट उलट कर देख रहा था कि उतने में ही एक गुप्तचर ने प्रवेश किया और बोला गान्धार नरेश की जय। शकुनि ने पूछा क्या समाचार लाये हो ? गुप्तचर बोला विदुरजी अधिक समय तो अपने कार्यालय में ही बिताते रहे उसके पश्चात वो युवराज के भवन में गये। समाचार मिला कि वो युवराज से भेंट करना चाहते थे परन्तु वो महाराज की सेवा में गये हुये थे। शकुनि बोले यह तो पता नहीं चल सका होगा कि वो युवराज से भेट करने क्यों गये थे। गुप्तचर बोला नहीं। इतने में ही बडे हर्षोल्लास के साथ दुर्योधन वहां पर आया। मामाश्री की जय हो पुकारता और बोला मामाश्री आप धन्य है आज तो... शकुनि ने बीच ही में टोक दिया पुत्र राजनीति का पहला उसूल यह है कि कक्ष में आने के उपरान्त जब तक तुम यह न देख लो कि तुम बोल सकते हो या नहीं तब तक बोलना आरम्भ मत करो। दुर्योधन बोला तो मामाश्री यह तो अपना ही गुप्तचर था। शकुनि बोला गुप्तचर किसी का भी नहीं होता वो तो अपने सिवा किसी और का तो होता ही नहीं। अच्छा यह बताओ कि इतने प्रसन्न कैसे दिखाई दे रहे हो ? दुर्योधन बोला जब सुनोगे तो आप भी प्रसन्न हो जाओगे। प्रिय भ्राताश्री के साथ उनके चारों भाई भी वारणावत जाने को तैयार हो गये हैं। उनके साथ उनकी माताश्री कुन्ती भी जा रही है। शकुनि बोला अच्छा। अरे भान्जे यह चमत्कार तुमने कैसे कर दिया ? दुर्योधन बोला यह चमत्कार मैंने नहीं किया मामाश्री। यह तो

स्वयं भ्राताश्री ने किया है। मैं तो केवल हां में हां मिला रहा था। शकुनि बोला राजनीति में हां से हां मिलाने का एक बहुत बडा महत्व है भान्जे। यदि हां हमारे पक्ष में है तो फिर हम ना क्यों करे ? अब तुम बताओ भान्जे पांडव वारणावत कब जा रहे हैं। दुर्योधन बोला फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में वे प्रस्थान करने वाले हैं मामाश्री। परन्तु अब तो लगने लगा है कि मामाश्री कि भाग्य ने भी हमारा पक्ष लेना आरम्भ कर दिया है। शकुनि बोला। भाग्य हमारा पक्ष क्या लेगा? भाग्य केवल कायरों का सहारा है। अब तुम अपने मामाश्री का खेल देखते रहो भान्जे। मैं अपने पांसों को भी आज्ञा नहीं देता जो उल्टे पडें। अब देखूंगा तुम्हारे पितामह और उस दासी पुत्र विदुर को।

यह बात सुनकर शकुनि और दुर्योधन अपने षडयन्त्र से अत्यन्त प्रसन्न हो लाक्षागृह में पांडवों के भस्म हो जाने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु विदुर के गुप्तचरों ने शकुनि के कपट कामों की सूचना विदुर को दी इससे शकुनि के कपट कारनामे विदुर को समझ में आ गये और विदुर शकुनि तथा दुर्योधन की प्रसन्नता का कारण ताड गया।

युधिष्ठिर सदा ही सोचता था कि आत्मरक्षा या न्यायरक्षा के लिये किया गया युद्ध ही सर्वथा धर्मसंगत है। अपने मनोरंजन, अहंकार को पोषण करने अथवा किसी लोभ से किया गया युद्ध नृशंसता है। चौसर मात्र चौसर ही है परन्तु अब यह द्यूतक्रीडा में परिणित होने लग गयी और द्यूत तो पराये धन के हरण का उपाय और कारण है। किसी व्यक्ति के श्रम के द्वारा अर्जित धन से उसको वंचित करना, पीडित करना नृशंसता है। युधिष्ठिर के लिये न तो मन में कोई विश्राम की इच्छा थी और न ही कोई मनोरंजन की। विश्राम भी सुख के ही समान मन की एक ऐसी स्थिति है। युधिष्ठिर का विश्राम न तो मदिरा में था, ना ही किसी द्यूत में, न मृगया में और न ही गणिकाओं में जैसे राजप्रसादों में होता आया है। शकुनि इन सबका चतुर खिलाडी था और वह इन सब कपट पापपूर्ण खेलों के पांसे फेंकते रहता था। सत्संगति, अध्ययन, भजन, ध्यान और चिन्तन ही युधिष्ठिर का सुख था, विश्राम था, आनन्द था। धृतराष्ट्र के राज्य में तो धन, सम्पत्ति, राग-रंग, मदिरा के छलकते जाम, द्यूत, गणिकायें ही मनोरंजन के साधन बढते जा रहे थे।

राजभवन से निकलकर युधिष्ठिर सीधे विदुर के आवास में आये पर विदुर को तो महाराज धृतराष्ट्र ने बुला लिया था। विदुर पत्नी पारसंवी ने युधिष्ठिर का स्वागत किया और बोली आओ बैठो युवराज। युधिष्ठिर को लगा लोक कल्याण में नि:स्वार्थ बुद्धि से किया गया कार्य ही धर्म है। धर्म राज्य में न्याय पक्ष सदा सुखी होता है और अन्याय पक्ष दु:खी और पीडित।

सहसा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के यहां से जाकर अपने आवास में आये और देखा युवराज युधिष्ठिर आये हुये बैठे हैं पारसंवी से वार्तालाप कर रहे हैं। विदुर ने पूछा युवराज कब आये। युधिष्ठिर ने अपने काका के विधिवत चरण स्पर्श किये और बोले राजभवन से लौटते सोचा आपके दर्शन करते चलूं और बताया काका महाराज हम सब भाई व माता कुन्ती वारणावत जा रहे हैं महाराज श्री के आदेश से। विदुर बोले मुझे नहीं लगता कि महाराज धृतराष्ट्र ने यह प्रस्ताव कोई तुम्हारे मनोरंजन के लिये रखा है। युधिष्ठिर बोला यह प्रस्ताव तो है ही नहीं। यह तो स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष आदेश ही है काका।

विदुर बोले राजसभा को तुम उतने प्रिय नहीं हो जितने प्रजा को। प्रजा तुम्हारे लिये विद्रोह भी कर सकती है। तुम्हारी सत्यवादिता तथा जनोन्मुख दृष्टिकोण से राजसभा के सदस्यों को हानि हुई है और प्रजा को लाभ। फिर राज सभा के सदस्यों को तो खरीदा भी जा सका है पर प्रजा को तो नहीं। युधिष्ठिर बोले यदि ऐसे ही सब ओर षडयन्त्र रचे जा रहे हैं तो फिर युवराज बने रहने का अर्थ ही क्या है ? मैं स्वेच्छा से ही युवराज पद त्याग देता हूं। विदुर ने कहा नहीं पुत्र कभी नहीं। यह गलती भूलकर भी मत करना। तुम अधर्मियों की सभा में धर्म की बात कर रहे हो। विदुर ने युधिष्ठिर से कहा पुत्र युधिष्ठिर मुझे लगता था कि तुम्हारे पीछे से यहां हस्तिनापुर में कुछ भी घटित हो सकता है पर मुझे आभास हो रहा है कि यहां कुछ घटित होने के स्थान पर वारणावत में कुछ भी घटित होने की सम्भावना अधिक है। और यदि वारणावत में कुछ

घटित होना है तो वह घटना तुम्हारे साथ ही घटित होगी। युधिष्ठिर ने आश्चर्य से पूछा हमारे साथ क्या घटित हो सकता है काका ? विदुर बोले अभी क्या बता सकता हूं वत्स ? मुझे पूर्ण सूचना नहीं है। प्रयत्न कर रहा हूं। अनुमान तो यही है कि कोई न कोई दुर्घटना ही होगी इसलिये अपनी रक्षा के लिये सदा सावधान रहना पुत्र।

युधिष्ठिर बोला हम पांचो भाई एक साथ रहेंगे तो कोई हमारा कुछ भी बिगाड नहीं पायेगा। विदुर बोले जानता हूं पुत्र। तुम्हारे शत्रु तुम पर प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं करेंगे तुम्हे स्मरण होगा कि प्रमाणकोटि में दुर्योधन ने भीम को विष खिला कर गंगा में बहा दिया था। अब वह किसी भी प्रकार का कोई षडयन्त्र रचेगा तो वह अधिक जटिल, सूक्ष्म और भयंकर प्रकार का होगा। अब वह अपने पिता के साथ मिलकर तुम लोगों से अपना प्रेम जता रहा है। इन सब बातों को देखते हुये मैं तुम लोगों के लिये निश्चिन्त नहीं रह सकता। तुमसे इसीलिये तो कह रहा हूं कि अपने इस प्रवास को मनोरंजन अथवा विहार मत समझना। इसे तो अपने लिये संकट का समय ही जानना। भोजन में सदा विष के लिये सावधान रहना। स्थानीय लोगों में अपने लिये किये गये विरुद्ध प्रचार के कारण उनकी सम्भावित शत्रुता से सावधान रहना। कभी कभी सेवा के छद्म में भी अनिष्ट किया जा सकता है। भवन के भीतर रहो तो अग्नि से सावधान रहो। सरोवर अथवा सरिता के निकट जल से सावधान रहना। भवन को अग्नि सात किया जा सकता है। नौका को जल में डुबाया जा सकता है। जहां तक मेरी बुद्धि सोचती है वे लोग तुम पर शस्त्रों से आक्रमण करने का दुस्सासह नहीं करेंगे। उससे तो वे पराजित भी हो सकते हैं, उन पर हत्या की साजिश का आरोप भी प्रमाणित हो सकता है इसलिये वे दूसरे ही छद्म तरीकों का उपयोग करेंगे। विष, अग्नि तथा जल उसमें प्रमुख हो सकते है। युधिष्ठिर बोले इस प्रकार तो कब तक हम अपनी रक्षा कर पायेंगे जब इतने शक्तिशाली और समर्थ लोग हमारी हत्या करने ही पीछे पडे हैं ?

विदुर बोले हताश मत हो पुत्र। प्रकृति की व्यवस्था पर भरोसा रखो। इस सृष्टि में प्रत्येक जीव को अन्त में नष्ट तो होना ही है परन्तु अपनी आयुभर उसे जीने को मिलता है और उस पर उसका अधिकार है तथा प्रकृति ने भी उसकी रक्षा की भरपूर व्यवस्था कर रखी है। वन में सिह, शेर, जंगली हाथी, अजगर जैसे विशाल, शक्तिशाली हिंसक घातक पशुओं के रहते हुये भी क्षुद्र जीव मूषक, खरगोश, कबूतर इत्यादि सभी अल्प बलवाले जीव अपने पूर्ण समाज के साथ जीवित रहते आये हैं। जब दावाग्नि का प्रकोप होता है तो बडे-बडे वृक्ष तथा बडे-बडे बलवान पशु जलकर राख हो जाते है परन्तु अपने उद्यम से बनाये गये बिल में चूहा पूर्णत सुरक्षित रहता है। सदा सचेत और सजग रहनेवाले वन के विभिन्न मार्ग से परिचित होकर भागकर अपने आश्रय में सुरक्षित पहुंच जाते है। तुम युधिष्ठिर हो पुत्र। सदा युद्ध में स्थिर रहनेवाले। युद्ध किसी भी प्रकार का हो, संघर्ष कितना भी लम्बा क्यों न हो, उस संघर्ष का मूल्य चाहे कितना भी चुकाना पडे पर युद्ध से भागना नहीं पुत्र। यह कहकर विदुर चले गये।

विदुर के चले जाने पर कुन्ती ने पूछा विदुर क्या कह गये ? युधिष्ठिर बोले सम्भावित षडयन्त्रों से सावधान रहने के लिये कह रहे थे काका। कुन्ती ने कहा क्या विदुर को किसी सम्भावित षडयन्त्र की सूचना दें। युधिष्ठिर बोला सिर्फ उनका अनुमान है कि हमें अकारण तो वारणावत नहीं भेजा जा रहा है। भीम बीच ही में बोल पडा मैं तो पहले से ही कह रहा था कि हमें वारणावत जाना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देना चाहिये था पर मेरी तो कोई सुनता नहीं। सहदेव बोला मझले भैया अस्वीकार कर देने के लिये हमारे पास कोई आधार या कारण तो होना चाहिये। वे हमें विहार के लिये वारणावत में भेज रहे है और हम उन्हे यह कहें कि आप हमारे विरुद्ध कोई षडयन्त्र कर रहे हैं। क्या कहेंगे सब ? भीम बोला क्या लोगों की बात सुनना बस नहीं जातें हम, हमारी इच्छा। युधिष्ठिर बोला नहीं भीम ऐसा नहीं। यदि हम वारणावत नहीं जायेंगे तो षडयन्त्र कारी कोई चुप तो बैठनेवाले नहीं। वे कोई न कोई षडयन्त्र हस्तिनापुर में ही करेंगे। जब उन्हे मालूम होगा कि हमें षडयन्त्रों की आशंका अथवा उनकी सूचना है तो ऐसे वे लोग उसका प्रहार और भी गोपनीय और तीव्र होगा। अब हम सावधान होकर वारणावत जा रहे हैं। हमें मालूम है कुछ न कुछ तो होनेवाला है। काका भी खोज में लगे हुये है। हमें सूचनायें मिलती रहेगी जिससे उनका षडयन्त्रकारी रूप प्रकट भी हो जायेगा और शत्रु भी हमें

असावधान समझते रहेंगे तथा लोगों की सहानुभूति भी हमारे पक्ष में होगी। भीम भन्ना कर बोला भ्राताश्री इतना विराट षडयन्त्र चक्र कि दुर्योधन हमारी हत्या करने का प्रयत्न कर रहा है फिर हम किस प्रमाण के लिये प्रतीक्षा कर रहे है ? मेरे जी में आता है गदा मारकर उस नीच की आज ही मृत्यु कर दूं। अर्जुन बोले मझले भैया इसीलिये तो संसार पर बलवानों में नहीं बुद्धिमानों ने शासन किया है। भीम अन्यमनस्क मन से बोला हस्तिनापुर से तो अब निकाले जा रहे हो अब देखो वारणावत में क्या होगा ?

वारणावत जाने की तैयारियां होने लगी। विदुर पांडवों की यात्रा का प्रबन्ध कर उन्हे विदा करने युधिष्ठिर के आवास पर आये। शकुनि और दुर्योधन भी युधिष्ठिर के भवन में आ गये और विदुर को वहां देखकर आश्चर्य में पड गये। शकुनि बोला अरे विदुरजी प्रणाम, आयुष्मान भव। सचमुच आज भगवान से और भी कुछ मांग लेता तो वह अवश्य दे देता। अभी अभी पुत्र दुर्योधन को मैं यहीं कह रहा था कि तुम्हारे काकाश्री विदुर को मिले तो कई जन्म बीत गये। आप स्वस्थ तो है विदुरजी। विदुर बोले आपकी दुआ, कृपा। युधिष्ठिर बोला आइये मामाश्री, भ्राता दुर्योधन विराजिये। शकुनि बोला विराजने ही तो आये हैं। सुना है पुत्र युधिष्ठिर तुम लोगों की यात्रा का शुभ आरम्भ कल सूर्योदय होते ही होनेवाला है। युधिष्ठिर बोला जी मामाश्री। शकुनि ने कहा मेरी तो भगवान से यही प्रार्थना है कि तुम्हारी यह यात्रा सफल व सुखद रहे। बीच ही में विदुर बोले युवराज यह सदा ध्यान रहे यह पलाश के फूलों की ऋतु है। जब पलाश खिलता है तो ऐसा लगता है मानो वन में आग लगी हो। शकुनि बोला यह दृश्य भी अति सुन्दर मनमोहक होता है। विदुर बोले तो यह बताओ पुत्रों कि किसे वन की आग का भय नहीं होता? तुम बताओ दुर्योधन।

दुर्योधन बोला ऐसा कौन हो सकता है काकाश्री जिसे वन की आग का भय न हो। विदुर बोले तुम बताओ भीम। दुर्योधन ने कहा आग तो इन्हे बहुत प्रिय है क्योंकि उसपर खाना जो पकता है। युधिष्ठिर बोले अनुज दुर्योधन तुम मेरे भीम की ठिठोली कर उसे सताया मत करो। विदुर बोले अरे तुम्हारे लोगों के इस हंसी मजाक में तो मेरे प्रश्न का उत्तर ही रह गया कि वन की आग में कौन सुरक्षित रह सकता है। युधिष्ठिर बोले वन की आग में तो केवल चूहा ही सुरक्षित रह सकता है काकाश्री क्योंकि वो बिल में घुस जाता है। शकुनि बोला वाह, युवराज ने तो आपके प्रश्न का अति उत्तम उत्तर दिया विदुरजी।

विदुर बोले अब आप मुझे आज्ञा दीजिये। इन्हे भी कल प्रात: निकलना है। सूर्योदय होते ही तुम्हारे विदा के समय तुमसे मिलने फिर आऊंगा। युधिष्ठिर बोला जी काकाश्री और सभी ने विदुर को प्रणाम किया और वहां से चला गया।

शकुनि बोला विदुरजी के कहने का तात्पर्य है कि हमें भी अब निकल जाना चाहिये। युधिष्ठिर बोला नहीं मामाश्री। आप तो विराजिये। शकुनि बोला अच्छा यदि यही तुम्हारी इच्छा है तो विराजना पडेगा ही। चलो कल ये लोग जा रहे है तो विराज जाते है। दुर्योधन बोला तो भ्राताश्री चौसर की एक बाजी हो जाये। शकुनि ने कहा हां भान्जे। अर्जुन ने भी सहमति प्रकट की कि हो जाये और रात भर चौसर का खेल चलते रहा और दुर्योधन जी भर कर हारता रहा। कोई भी पांडव कौरव सोये नहीं।

दूसरे दिन प्रातकाल सूर्योदय से पहिले ही भीष्म पितामह पांडवों को वारणावत के लिये विदा करने आये। भीष्म बोले कब आओगे पुत्र ? युधिष्ठिर बोले- आने का प्रश्न तो तब उठेगा जब आये हों। भीष्म बोले समझा नहीं युवराज। नकुल बोला भ्राता दुर्योधन तो रात ही आ गये थे तब से हमारे संग ही हैं। अर्जुन बोला चौसर का खेल चल रहा था पितामह और दुर्योधन भैया रातभर जी भरकर हारते रहे।

इतने में कुन्ती भी तैयार होकर साथ में जाने को आई और भीष्म पितामह को देखा और उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। भीष्म ने भी कुन्ती को आशीर्वाद दिया और कहा भगवान तुम्हे तुम्हारे पुत्रों का सुख दे। दादी कहनेवाले आये। इतने में विदुर भी आ गये सबने विदुर को प्रणाम किया। भीष्म बोले आओ चले। सब उन्हे हस्तिनापुर से विदा करने चले।

पांडवों ने और कुन्ती ने बडे दीनभाव से बडे बूढों के चरणों का स्पर्श किया छोटों का आलिंगन किया। उस समय कुरुवंश के बहुत सारे वृद्धजन, विदुर और सारी प्रजा युधिष्ठिर के साथ-साथ कुछ दूर तक चलने लगी। वेदपाठी ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन

किया। ब्राह्मण परस्पर बातचीत करने लगे प्रजा में कानाफूसी होने लगी। वे कहने लगे महाराज धृतराष्ट्र की बुद्धि तो मन्द हो गयी तभी तो वे अपने पुत्र का पक्षपात कर रहे हैं। उनकी धर्म संगत दृष्टि लुप्त हो गई हैं। पांडवों ने तो किसी का कुछ नहीं बिगाडा है जो इनको हस्तिनापुर से निर्वासित कर रहे हैं। अपने पिता का ही राज्य धृतराष्ट्र उन्हे क्यों नहीं दे रहे है ? पता नहीं धर्मात्मा भीष्म यह सब अन्याय कैसे सह रहे है ? हम लोग यह सब नहीं चाहते और न ही सह सकते। हम सब लोग भी हस्तिनापुर छोडकर युधिष्ठिर के साथ ही जायेंगे और वही रहेंगे। न जाने लोग क्या-क्या बातें कर रहे थे ?

पुरवासियों की बात सुनकर तथा उनका दु:ख जानकर युधिष्ठिर ने उन्हे समझाकर कहा पुरवासियों राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता समान परम मान्य और गुरु भी हैं। वे जो कुछ भी आज्ञा देंगे, हमें उसका पालन करना है। यह हमारी प्रतिज्ञा है। यदि आप सब लोग हमारे हितैषी और मित्र हैं तो मेरी बात मानें। हमारा अभिनन्दन कर आशीर्वाद पूर्वक़ हमें विदा करें और आप लोग लौट जायें। जब हमारे काम में कोई अडचन, विघ्न बाधा होगी तब आप लोग हमारा प्रिय और हित करें। युधिष्ठिर की धर्मसंगत बात सुनकर सभी पुरवासी आशीर्वाद देते हुये नगर में लौट गये।

सब पुरवासियों के लौट जाने पर एकान्त पाकर अनेक भाषाओं के ज्ञाता विदुर ने युधिष्ठिर से सांकेतिक भाषा में कहा नीतिज्ञ पुरुष को शत्रु का मनोभाव समझकर अपनी रक्षा कर लेनी चाहिये। एक ऐसा शस्त्र है जो लोहे का नहीं बना है पर शरीर को नष्ट कर सकता है। यदि कोई शत्रु के इस दाव को समझ ले तो वह मृत्यु से बच सकता है। आग घास फूस और सारे जंगल को जला डालती है परन्तु बिल में रहनेवाले समस्त जीव उससे अपनी रक्षा कर लेते हैं। युधिष्ठिर जीवित रहने का यही उपाय है। अन्धे व्यक्ति को मार्ग और दिशाओं का ज्ञान नहीं होता है। बिना धैर्य के समझदारी नहीं आती है। शत्रुओं के दिये हुये बिना जो लोहे के हथियारों को स्वीकार करता है वह स्याही के बिल में घुसकर आग के जलने से बच जाता है। वन में घूमने फिरने से दिशाओं का ज्ञान हो जाता है। नक्षत्रों से दिशाओं का पता लग जाता है। परदेश में इन्द्रियों को वश में रखना जिससे शत्रु उसकी कुछ हानि नहीं कर सकता। नये घर में प्रवेश करते समय... इतने में ही दुर्योधन युधिष्ठिर के पास आ गये जिससे विदुर कोई गुप्त रहस्य की बात युधिष्ठिर से नहीं कर सके। विदुर बोले युवराज तुम्हे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं कि अनुजों का ध्यान रखना। कहीं आखेट में भटक नहीं जाये। माता का ध्यान रखना वत्स। युधिष्ठिर बोले जो आज्ञा काकाश्री। मैं आपकी सब बातें ध्यान में रखूंगा। सब पांडवों को विदा कर हस्तिनापुर लौट आये।

रथ ने गति पकडी और युधिष्ठिर का मन आत्मलीन हो गया। युधिष्ठिर का मन रह रह कर हस्तिनापुर की ओर ही लौट रहा था। वे विदुर की बातों के अर्थ पर विवेचन करने लगे। वे आज तक दुर्योधन को समझ नहीं पाये। जो व्यक्ति अपने भाइयों से प्रेम नहीं करता वह जीवन में किसी और से क्या प्रेम करेगा ? यदि जीवन में प्रेम ही नहीं है तो फिर जीवन का करना ही क्या है? जीवन मात्र भोग ही तो नहीं है। भोग तो आत्मक्षय है। प्रकृति चाहती है कि मनुष्य अपना क्षय तो करे इसलिये उसने भोग की प्रवृति उसमें कहीं गहरे से छिपा दी है। प्रकृति यह भी तो चाहती है कि मनुष्य अपना कुछ विकास भी करे। यह विकास किस प्रकार का होगा ? दुर्योधन के पास किसी वस्तु का अभाव तो नहीं है। उसके पास सहस्त्रों की संख्या में पशुधन है। तो भी वह उतना ही दूध पी सकता जितना वह एक गाय होने पर पियेगा। उसके पास हजारों महल है पर उसे उतना ही स्थान सोने के लिये चाहिये जितने स्थान में एक-कक्ष में सो सकता। किस तरह का मनुष्य है ? कैसा अभागा है जो प्रेम को नहीं जानता ? युधिष्ठिर को दुर्योधन पर दया आने लगी। जिस मनुष्य के जीवन में प्रेम नहीं है, स्नेह नहीं है उसके जीवन में सुख कैसे हो सकता है और जो सुखी नहीं है वह तो दया का ही पात्र है।

प्राप्ति का सुख तो युधिष्ठिर फिर भी थोडा बहुत समझता है किन्तु दूसरे को वंचित अथवा पीडित करने का सुख ? दुर्योधन के लिये कदाचित वही बडा सुख है। दूसरे को वंचित किये बिना व्यक्ति अपनी उपलब्धि के सुख का अनुभव नहीं कर सकता। हस्तिनापुर

के पास इतना धन धान्य और वैभव है कि वह दोनों कौरवों और पांडवों के लिये पर्याप्त है और यदि कुछ अर्जित करने की आवश्यकता ही है तो सभी लोग उसमें सक्षम भी है। वे लोग एक ही वंश की सन्तान हैं। परस्पर भाई-भाई हैं। उनकी सम्मिलत शक्ति सभी के लिये असह्य है। पांडवों को अलग कर या उनकी हत्या कर कौरव कभी भी सशक्त नहीं रह पायेंगे फिर भी दुर्योधन जानते हुये भी यही चाहता है। वह केवल कोई प्राप्ति नहीं चाहता, दूसरों की हानि भी चाहता है। उसे सब कुछ अपने लिये चाहिये मात्र अपने लिये। अपने सुख सुविधा के लिये ही नहीं अपने भोग और वैभव के लिये ही नहीं, अपने अहंकार की पुष्टि के लिये। प्रजापालन की दृष्टि से उसने कभी सोचा ही नहीं। उसकी भोग इच्छा की तृप्ति तो कभी भी हो जाये किन्तु उसके अहंकार की तुष्टि शायद कभी सम्भव न हो। शरीर के भोग की तो अपनी सीमा है किन्तु अहंकार की कोई सीमा नहीं है।

युधिष्ठिर बैठे बैठे यह सोच रहा था कि इतने में अर्जुन बोले भ्राताश्री क्या समस्या है जो आप इतने विचारमग्न हैं ? युधिष्ठिर बोला सोच रहा हूं क्या तुमने कभी काकाश्री को निरर्थक कहते हुये सुना है ? अर्जुन बोला काकाश्री और निरर्थक। शब्दों के विषय में तो उन जैसा प्रचंड व्यक्ति मिलना सम्भव नहीं। वे तो एक व्यापारी की भांति हर शब्द को पहिले तौलते हैं, उसकी मात्रा को नापते हैं और जब देख लेते हैं कि सन्तुलन एकदम ठीक है तब बोलते हैं भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले जो कल फिर रात्रि के समय मामाश्री ने हमें यात्रा की सफलता का आशीर्वाद दिया था तो उन्होने पलाश फलने का प्रसंग क्यों छेडा था ? उनके शब्द थे कि ध्यान रखना यह पलाश फलने की ऋतु है और जब पलाश फलता है तो लगता है कि वन में आग लगी हुई है। अर्जुन बोला परन्तु ऋतु तो यही आती है न भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले हां अर्जुन फिर भी क्या यह हम लोग नहीं जानते ? यदि किसी और ने उनके अतिरिक्त कहां होता तो मैं सोच में नहीं पडता। मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे कुछ कहकर हमें सावधान कर रहे हों। उनके शब्द याद करो अर्जुन। वन में आग लगने की बात तो हो ही चुकी थी फिर यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि वन की आग में कौन सुरक्षित रहता है ? और यह प्रश्न पहले उन्होने दुर्योधन से किया ? अर्जुन बोले अच्छा तो काकाश्री के स्वभाव की अंगुली पकडकर ही आगे चलते हैं। प्रश्न तो पहिले उन्ही से पूछा जाता है न भ्राताश्री जो सबसे छोटे हो। तो फिर उन्होने यह प्रश्न दुर्योधन से ही क्यों किया ? भीम हंसे और बोले वो मूर्ख इसका क्या उत्तर देता ? दुर्योधन का मुंह इतना सा हो गया था जब भ्राताश्री ने कहा था वन की आग में चूहा सुरक्षित रहता है क्योंकि वह बिल में रहता है और वो मामाश्री भी इस उत्तर की प्रशंसा के लिये विवश हो गये थे। युधिष्ठिर बोले हां चूहा बिल ही में तो रहता है। यही तो प्रश्न है। काकाश्री ने साधारण सी बात कहने के लिये आग का विषय क्यों छेडा ? क्या वे हमें आग से सावधान रहने को कह रहे थे ? कहीं ऐसा न हो हम रातभर सोते रह जायें और आग हमें घेर ले। आज के उपरान्त हम पांचो भाई रातभर नहीं सोयेंगे। हम में से एक न एक सदा जागते रहेगा। भीम ने व्यंग किया और बोले हम तो वन विहार के लिये जा रहे है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले हां परन्तु काकाश्री हमें आग से चौकन्ना रहने के लिये भी तो कह रहे थे। वे तो इस बात से सहमत ही नहीं है कि हम लोग वहां आनन्द विहार के लिये भेजे जा रहे हैं।

४८) वारणावत में पांडवों का लाक्षागृह में रहना और आग लगाकर भाग निकलना

वैशम्पायन कहते है जनमेजय वारणावत के नगर द्वार पर कुन्ती और उसके पुत्रों के स्वागत के लिये एक बडा जन समुदाय एकत्रित था। उनके लिये बहुत प्रसन्नता का विषय था कि स्वर्गीय महाराज पांडु का परिवार वारणावत में आया। अपार भीड में सबसे आगे हस्तिनापुर से आया हुआ दुर्योधन का चाटुकार मन्त्री शिल्पशास्त्री पुरोचन, महादेव मन्दिर का कुलपति देवदत्त, नगरपाल बुद्धिमित्र तथा सेना प्रमुख सोम। प्रजा ने महारानी कुन्ती और युवराज युधिष्ठिर की जय जयकार की। युधिष्ठिर ने सबका अभिनन्दन स्वीकार किया। प्रजा का कुशल क्षेम पूछा। सभी लोग अपने युवराज के लिये उपहार लेकर आये थे। युधिष्ठिर ने मात्र उनका स्पर्श कर स्वीकार कर औपचारिकता का निर्वाह किया और उपहार लौटा दिये और कहा राजा, राजपरिवार तथा राजकर्मचारी

प्रजा से उपहार पाने के पात्र नहीं होते है। राजा प्रजा से कर लेता है, आर्थिक दंड से धन राजकोष में आता है। पराजित शत्रुओं से भी राजा को धन प्राप्त होता है। मित्र राजाओंसे भी उपहार मिलते है। प्रजा के उपहारों के लिये सुपात्र केवल ज्ञानवान ब्राह्मण ही होता है। यदि प्रजा उन्हें उपहार देती है तो इसमें उनकी श्रद्धा है। वह कोई भय या किसी प्रकार के लोभ से नहीं देती है। राज कर्मचारी को किसी भी प्रकार के उचित या अनुचित कार्य के लिये उपहार देना उत्कोच है जो कि भ्रष्टाचार है और अनुचित है। प्रजा से उत्कोच लेनेवाला राजपुरुष या राजकर्मचारी अपराधी माना जाता है। जहां प्रजा अपने राजपुरुषों, राज कर्मचारियों का सम्मान नहीं करती हो, उनके लिये अपने मन में कोई श्रद्धा नहीं रखती हो, उनसे भयभीत हो अथवा उन्हें किसी प्रकार का लालच देकर लुब्ध करती हो वहां सत्य, न्याय और धर्म का शासन नहीं है। युधिष्ठिर ने दुर्योधन के आये हुये सेनापति और सैनिकों को अपने-अपने शिबिर में लौटा दिया। तभी पुरोचन ने आकर सभी का स्वागत किया और बोले मैंने इस भवन का नाम शिवम रखा है महारानी। कुन्ती बोली तुमने बहुत ही उचित नाम रखा है मन्त्री पुरोचन। पुरोचन बोले यहां महारानी कुन्ती, युवराज कुमार और समस्त कुमारों को सम्पूर्ण विश्राम का अवसर मिलेगा। यह आप सबको रूचिकर लगेगा। युधिष्ठिर बोले हमें इस बात पर विश्वास है कि आपने इस भवन को बनाया और फिर वह मन के अनुकूल सिद्ध न हो। यह तो हो ही नहीं सकता। विश्वकर्मा के पश्चात आपसे अच्छा भवन रचियता भला और कौन हो सकता है ? पुरोचन बोला आइये भवन में प्रवेश कीजिये और भवन को चारों ओर से घूम फिर कर दिखाया। पुरोचन ने अपनी सारी व्यवस्था के प्रबन्ध का बखान किया। नियत वासस्थान पर ठहरा कर भोजन, पलंग, आसन आदि की व्यवस्था से अवगत कराया। पुरोचन बोला मेरा कक्ष सामने आपके द्वार से सटकर ही है युवराज जिससे मैं आपकी सेवा और इस भवन की हर समय देखभाल कर सकूं। नकुल बोला परन्तु आप तो एक आदरणीय और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। सामने से भ्राताश्री के दर्शनार्थियों की भीड लगेगी। आपको तो अपना कक्ष पिछवाडे की ओर रखना चाहिये था ताकि हमारे कारण आपको कोई कष्ट ना हो। पुरोचन बोला कष्ट कैसा युवराज? आप लोगों की सेवा करना तो मेरा सौभाग्य होगा। अब मैं आज्ञा चाहता हूं। अब आप लोग विश्राम करें और यह कहकर पुरोचन चला गया।

जानो प्रथम निकास को तब करो गृहप्रवेश, सोच-समझ लो विदुर का युति युक्त सन्देश।

पांडव लोग सुखपूर्वक वहां रहने लगे। पुरवासियों की भीड प्राय: लगी ही रहती थी। युधिष्ठिर ने लाक्षागृह महल चारों ओर घूम कर देखा कि पीछे की ओर बाहर निकलने के लिये कोई दरवाजा नहीं है। लाक्षागृह के निर्माण में उपयोग में लाई हुई सामग्री भूसा, ज्वलनशील पदार्थ लाख, मांस, राल, तेल, घी, चर्बी, विस्फोटक पदार्थ, मुंज, चंपडी इत्यादि। पांडवों को उनकी हत्या करने की साजिश समझ में आ गई इसीलिये काकाश्री ने संकट आनेपर मालूम पडनेपर उससे दूर ही रहने के लिये कहा था। विदुर इसीलिये तो आग, चूहा इत्यादि का उल्लेख तो कर रहे थे। यह सब षडयन्त्र पांडवों को भली भांति समझ पड गया। इस षडयन्त्र के पीछे शकुनि मामा का हाथ है यह भी समझ आ गया। निश्चय ही पुरोचन का विचार है कि जब हम लोग बेखटके से रहने लगेंगे तब वह आग लगाकर इसे जलाकर भाग जायेगा। तभी तो विदुर ने गुप्तचरों से यह बात ताडकर पांडवों को सावधान कर दिया।

अर्जुन बोला मुझे तो वारणावत में दुर्योधन के प्रिय मन्त्री पुरोचन की उपस्थिति खलती है। मैं यह कदापि मानने के लिये तैयार नहीं हूं कि उसे दुर्योधन ने हमारी सेवा के लिये भेजा है। भीम बोला आपने ठीक कहा भ्राताश्री इस भवन के पीछे कोई द्वार है ही नहीं जिससे संकट की घडी में बाहर निकला जाये। दुर्योधन ने हमें हस्तिनापुर से निष्कासित किया है और अब वे चाहते हैं कि हम हस्तिनापुर कभी न लौटें और वारणावत में ही हमारे प्राणों का हरण कर ले। सहदेव बोला अब इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं रह गया कि उनका लक्ष्य क्या है ? अब हमें यह पता लगाना चाहिये कि यहां हमारे प्राण लेने में उन्हे क्या लाभ है ? युधिष्ठिर बोले मुख्य द्वार से सटकर पुरोचन का कक्ष होने का कोई और अर्थ तो हो ही नहीं सकता। काकाश्री हमारा ध्यान चूहे के बिल की ओर ले गये जो आग से सुरक्षित रहता है अर्थात हमें भी बिल खोदना चाहिये क्योंकि इस भवन में तो अवश्य

ही आग लगाई जायेगी। अर्जुन बोला भ्राताश्री लडना है तो लड ही ले। ऐसी दुविधा में जीना तो कोई जीना नहीं हुआ। कुन्ती बोली तो पुत्र हम यहां से कहीं और क्यों नहीं चले जाते ? जब हम जानते हैं कि हमारे साथ कुछ अघटित होनेवाला है तो फिर उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहने का क्या अर्थ ? युधिष्ठिर बोला नहीं। यदि यह उचित ना होता तो काकाश्री हमारा ध्यान चूहे के बिल की ओर न ले गये होते। काकाश्री यह चाहते हैं कि जब तक मामा शकुनि को यह विश्वास नहीं होगा कि हम मारे गये तब तक इस बात का पता नहीं चलेगा कि वास्तव में यह लोग चाहते क्या है ? और पुरोचन को तो इस बात की तनिक भी भनक नहीं लगनी चाहिये कि हमें उनकी इस दुर्रास सन्धि का पता है। उन्हे तो यह सोचकर ही आनन्द लेने दो कि हम उनके बनाये हुये लाक्षागृह में फंस चुके हैं। इसलिये रातभर चौकन्ने रहेंगे परन्तु दिन के समय सैर सपाटे, घूमने के लिये यूं निकला करेंगे कि जैसे हमें कुछ पता ही नहीं है। यदि हमारे कहीं और चले जाने से अगर यह संकट टल जाता तो मैं सबसे पहिले यही प्रस्ताव रखता किन्तु प्राण रहते दुर्योधन हस्तिनापुर का राज्य छोड नहीं सकता और हमारे जीवित रहते उसे वह राज्य मिल नहीं सकता। उसने तो अपने जीवन का तादात्म्य राज्य ही कर लिया है। वह इस उन्माद में तब तक हमारे प्राणों से खेलता रहेगा जब तक वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाता। इसलिये हम कहीं भी जाये उसके गुप्तचर, हत्यारे हमारे पीछे लगे ही रहेंगे। कुन्ती बोली यह सृष्टि बहुत बडी है पुत्र और यह कोई दुर्योधन की इच्छा से नहीं चलती है। दुर्योधन की शक्ति भी इतनी कोई बहुत बडी नहीं है जितनी तुम समझ रहे हो। युधिष्ठिर बोले माता शक्ति दुर्योधन में नहीं है उसे तो युद्ध में भीम और अर्जुन कोई भी नष्ट कर देगा पर शक्ति उसमें सत्ता और धन की है। सारी सत्ता दुर्योधन के हाथ में संचित है। सारा राजकोष उसी के पास है। कर्ण को भी नाम मात्र का राज्य देकर अपने पक्ष में खरीद लिया है। वह अपने प्राण देकर भी दुर्योधन को प्रसन्न करना चाहता है। यह तो हमारा दुर्भाग्य ही है फिर भी हमें दुर्योधन के सम्मुख इस तरह रहना है कि उसे सन्देह ही न हो कि हम उसके षडयन्त्रों के विषय में जानते हैं। अवसर आने पर अपनी रक्षा करनी है। बडी सावधानी से हमें अपने आपको छिपाकर रखना चाहिये। हमारे भावों से चेहरे से किसी को भी कोई शंका न हो। हम लोग बाहर निकलने की घात लगायें। यदि कोई भी कारण से पुरोचन को पता चल गया तो वो हमें बलपूर्वक भी जला सकता है। उसे लोकनिन्दा या अधर्म की कोई परवाह नहीं है। यदि हम डरकर यहां से भाग गये तो दुर्योधन अपने गुप्तचरों से पता लगाकर हमारे प्राणों के पीछे पडा रहेगा। इस समय वह अधिकारी बना हुआ है, उसके पास सहायक और राजकोष है। हमारे पास तो कुछ भी नहीं है। न तो अधिकार, न सहायक और न ही धन। हम लोग यहां रहकर वनों के रास्तों का पता लगा लें और सुरक्षित सुरंग बनाये तब यहां से भाग निकलेंगे और किसी को भी कानोंकान खबर भी नहीं होगी कि पांडव बच गये। भीम बोला मेरा मन तो करता है कि उस बूढे पुरोचन की खोपडी में मुक्का मार कर गाजर की तरह तोड डालूं और फेंक दूं। युधिष्ठिर बोला नहीं भीम तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे। आत्मरक्षा के लिये लडना और बात है परन्तु कोरी आशंका के आधार पर किसी की हत्या तो नहीं की जा सकती। जन सामान्य तो सदा सत्य का ही पक्षधर रहता है। प्रजा में अपनी आस्था खोकर राज्य करने का अधिकार किसी को भी नहीं है भीमसेन। राजनीति कहती है कि जब तक हमें ठीक-ठीक यह पता नहीं हो कि हमारे विरुद्ध कैसा षडयंत्र रचा गया है तब तक हमें प्रत्याक्रमण का अनुक्रम नहीं करना चाहिये। अपने विवेक और धैर्य को बनाये रखो। इन्द्रियों को संयम में रखो। आक्रमण तभी करोगे जब उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं हो। आक्रमण को बचा जाना भी युद्ध की एक कला है। शत्रु को यह समझने दो कि वह अपने बनाये हुये षडयन्त्र में सफल हो गया है। हमें उसके लिये एक अनुभवी सुरंग खोदनेवाले की आवश्यकता होगी।

कुन्ती बोली परन्तु पुत्र वारणावत में हमें भरोसेवाला अनुभवी खनिक कहां से मिलेगा ? युधिष्ठिर बोला माताश्री यदि काकाश्री को यह भय है तो हम भाइयों को इस लाक्षागृह में जैसे भस्म कर देने की योजना है तो उनका भेजा हुआ खनिक भी आता ही होगा। वारणावत में हम किसी राज पुरुष पर अधिक विश्वास न करें।

युधिष्ठिर से मिलने बहुत सारे प्रजा समुदाय इत्यादि उपहार लेकर मिलने आते हैं और अपने युवराज का अभिनन्दन करते हैं। उस प्रजा में से एक व्यक्ति एक चूहेदानी युवराज युधिष्ठिर को भेंट करता है। युधिष्ठिर ने पूछा इस चूहेदानी की क्या विशेषता है नागरिक। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया यह बिल खोदने में बेजोड है युवराज। युधिष्ठिर फिर सोचकर पूछा काकाश्री कैसे हैं ? युधिष्ठिर को केवल एक चूहा ही भेंट नहीं किया था। उसने उस चूहेदानी में छिपाकर विदुर नीति भेंट की थी कि विजय का मार्ग कभी धरती फोडकर भीतर से भी गुजरता है। छल कपट तो निश्चय ही वीरों को शोभा नहीं देता परन्तु ये आवश्यक है कि रहस्य की बातें केवल भरोसे वालों को ही बताई जाये। तो खनिकद्वारा विदुर ने यह सन्देश भेजा कि ये व्यक्ति जो सामने खडा है इसी चूहे के भांति अपने दांतों से धरती को कुतरकर पांडवों के लिये इस लाक्षागृह से निकालने का रास्ता बनायेगा। जिससे पांडु पुत्र चुपचाप निकल जाये और षडयन्त्रकारियों को यही सोचने पर विवश कर दें कि सफल हो गये। इस सफलता का नशा उन्हें सुला देगा और पांडव उनकी पहुंच से बाहर निकल सकेंगे। पांडवों की सफलता का मार्ग भी यही है इसलिये खनिक को आज्ञा दें कि वो अपना कार्य आरम्भ करे और तब तक पांडव शत्रुओं के घेरे में चैन से रहें।

खनिक बोला मुझे महामन्त्री विदुर ने भेजा है मैं सुरंग खोदने का काम करता हूं। युधिष्ठिर बोला तो क्या महामन्त्री को निश्चित प्रमाण मिल गये हैं कि दुर्योधन हमें जलाकर नष्ट करना चाहता है। खनिक बोला हां युवराज। वह आततायी है। आपका यह भवन घी, तेल, चर्बी, चपडी, राल, घास, बांस, लकडी तथा लाख से बनाया गया है। युधिष्ठिर बोला तब तो हमें सावधान रहना चाहिये। खनिक तुम्हे भूमिगत आश्रय के निर्माण में शीघ्रता करनी चाहिये। खनिक बोला मैं इस भवन के नीचे एक सुरंग का निर्माण कर दूंगा। महामन्त्री विदुर चाहते हैं कि दुर्योधन द्वारा अग्नि से भस्मसात किये जाने से पहिले ही आप इस भवन को आग लगा उस सुरंग के रास्ते से सुरक्षित स्थान पर बाहर निकल जाये। इस लाक्षागृह के जल जाने से दुर्योधन यही समझेगा कि आप लोग आग में जलकर नष्ट हो गये है तब वह आप लोगों की ओर से निश्चिन्त हो जायेगा। आप बन से होते हुये गंगा तट पर पहुंच जाये। गंगा तट पर आपको महामन्त्री का अनुचर एक चतुर नाविक मिलेगा जो आपको गंगा पार करा देगा। गंगा के उस पार आप वन में गुप्त रूप से अनिश्चित काल तक सुरक्षित रूप से निवास कर सकेंगे। तब आप दुर्योधन के भावी षडयन्त्रों से बचने की कोई और व्यवस्था भी कर पायेंगे।□यह सब षडयन्त्रों की जानकारी मिलने पर कुन्ती को लगने लगा आश्रमों का जीवन अधि

सात्विक, शान्त तथा सुखद था। राजमहलों का जीवन तो अहंकार, ईर्ष्या और संघर्ष का ही जीवन है। उसमें सुख और शान्ति हो ी ही नहीं। विधाता ने मानव मन बनाया ही कुछ ऐसा कि सब कुछ जानते हुये भी कि भोग उसके लिये हानिकारक है पर ह भोग का त्याग नहीं कर सकता। यह कहना बहुत सरल है कि मनुष्य अपनी वस्तु जब चाहे छोड दे परन्तु वास्तव में वह उसे छोड नहीं पाता है। वस्तुत: मनुष्य पदार्थ को जितना ग्रहण करता है पदार्थ उससे कहीं अधिक उसे ग्रहण कर लेता है। पदार्थ को त्याग भी दें तो पदार्थ व्यक्ति को नहीं त्यागता।

अब आज के समाज में न ज्ञान का सम्मान रहा और न ही चरित्र का। सम्मान और बल या तो धन में है या राजनीति में। आज के युवकों के लिये धन और सत्ता अधिक महत्वपूर्ण है बल्कि सम्मान के। पर क्षत्रिय को तो अपने प्राण देकर भी समाज में न्याय की रक्षा करनी है। धन सम्पत्ति तथा अधिकार के बीच रहकर भी स्वयं को लोभ से मुक्त रखना है और धन तथा ऐश्वर्य का उचित वितरण करना चाहिये। समय बदल रहा है। लोगों की धारणायें भी बदल रही हैं। जब आचार्य द्रोण जैसे ब्राह्मण अपना आश्रम छोड राजवंश के आश्रय में आ गये और राजकीय सेनाओं का अंग बनकर क्षत्रियों के समान युद्ध करने को प्रस्तुत हैं तो साधारण ब्राह्मण बालक क्या करेंगे। लगता है इस समाज ने ज्ञान में अपनी श्रद्धा ही भूला दी।

दुर्योधन का भेजा हुआ सेनापति लाक्षागृह के बाहर रात में गश्त लगा रहा है और अपने सैनिकों को बोला काले रात की चौदस तक जाग लो, वही आखिरी दिन है। उस दिन कुछ भी हो सकता है। राजकुमार दुर्योधन तुम्हारा मुंह मोतियों से भर

देंगे। यह बडा ही सावधानी का दिन है। सेनापति एक गुप्तचर से बोला जाओ गान्धार नरेश शकुनि को यह समाचार दो कि यहां सब कुछ सुरक्षित है। गुप्तचर बोला जो आज्ञा।

द्वारपाल आया और युधिष्ठिर से बोला युवराज कुछ प्रजाजन समुदाय आये हैं और आपसे मिलना चाहते हैं। युधिष्ठिर बोला उन्हे आदर सहित ले आओ। प्रजा के कुछ प्रतिनिधि आकर युवराज से मिले और प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोले यदि आप लोग राजकर्मचारी की ओर से तनिक भी असन्तुष्ट है या कोई छोटी सी भी समस्या हो तो मुझे बतायें। मैं महाराज से निवेदन करूंगा। प्रजा प्रतिनिधि बोले महाराज आपके दर्शनों से ही हमारी सभी छोटी बडी समस्यायें समाप्त हुई इतने में फिर द्वारपाल आया और बोला युवराज की जय हो। युधिष्ठिर बोले क्या बात है द्वारपाल ? द्वारपाल बोला अंगरक्षकों के सेनापति आपके दर्शनों के लिये अभिलाषी हैं और आपकी आज्ञा चाहते हैं। युधिष्ठिर बोला अब वारणावत में भला हमारे प्राणों का शत्रु कौन है जो अनुज दुर्योधन को अंगरक्षकों की पूरी की पूरी सेना भेजनी पडी। ठीक है द्वारपाल बुलाओ सेनापति को। द्वारपाल बोला जो आज्ञा युवराज।

सभी लोग सेनापति के साथ युवराज के पास आते हैं। युधिष्ठिर बोला सेनापति तुम्हे क्या कष्ट है? सेनापति बोला आपकी रक्षा मेरा दायित्व है युवराज। युधिष्ठिर ने कहा यहां पर हस्तिनापुर की सीमा में अंगरक्षकों की हमें क्या आवश्यकता है सेनापति ? सेनापति बोले मैं तो आदेश का पालन कर रहा हूं युवराज। युधिष्ठिर बोले जानता हूं तुम आदेशों का पालन किये जाओ परन्तु हर दिन मेरे सामने आकर यह जतलाने की आवश्यकता नहीं है कि युवराज अंगरक्षकों के बिना बाहर नहीं जा सकते। एकान्त हो सेवक। सेवक ने कहा जो आज्ञा महाराज। युधिष्ठिर ने पूछा क्या हमारे अनुज आखेट से लौट आये ? सेवक बोला अभी तक नहीं लौटे महाराज।

सुरंग खोदनेवाला खनिक युधिष्ठिर को आश्वासन देकर अपने काम पर डट गया और उसने घर के बीचों बीच एक बडी भारी सुरंग बनाई। पांडव अपने साथ शस्त्र रखकर बडी सावधानी से रात बिताते थे। दिनभर शिकार खेलने के बहाने से जंगलों में घूमते थे। उस खनिक के अतिरिक्त पांडवों की इस स्थिति का किसी को कुछ पता नहीं था। पांडव उस भवन में बडे नि:शंक से रह रहे थे। युधिष्ठिर बोला यह पापी पुरोचन समझ रहा है कि वे ठग लिये गये। किन्तु खनिक अपने कर्तव्य का दायित्व समझकर दिन रात सुरंग खोदने में व्यस्त था। हस्तिनापुर का भविष्य पूरे विश्वास के साथ विदुर ने उस पर सौंपा था। इस विश्वास का मान रखते हुये तनिक भी विश्राम न करते हुये उस खनिक ने देखते-देते सम्पूर्ण सुरंग खोद डाली। भीम बोला क्या मैं आपकी कुछ सहायता करूं खनिक। खनिक बोला क्या गदायुद्ध में मुझे क्या आपकी सहायता करने देंगे। भीम समझ गया जिसका जो काम है वह उसे ही करना चाहिये अन्यथा काम बिगड जाने का अन्देशा रहता है। भीम ने सोचा मुझे कहां फावडा और कुदाल चलाना आता है। भीम बोला- खनिक गुरु द्रोणाचार्य और बलराम का यह शिष्य तुम्हारे काम में अनाडी है। खनिक बोला कुदाल की एक गलत चोट मेरे किये कराये सारे काम पर पानी फेर सकती है। कुमार विदुरजी ने कहा था कि मेरे इस सुरंग खोदने के काम की सफलता पर सारे हस्तिनापुर का भविष्य निर्भर है। यदि मैं सफल हुआ तो हस्तिनापुर है और यदि मैं असफल रहा तो हस्तिनापुर नहीं है। और आपने तो मेरा कार्य देख ही लिया है। इसलिये समय नष्ट न करते हुये मुझे अपना काम करने दो। कमी है तो समय की कमी है।

धर्म कर्म कर्तव्य जो समय रहे कर जाये, समय बीतने पर, न ही मनुष्य पछतायें।

यदि उच्चाकांक्षायें उच्चाकांक्षाओं से टकराये तो यह दोष है परिवार के मुखिया का। हस्तिनापुर राज परिवार में भी यही हो रहा है। धृतराष्ट्र भाग्य की अंगुली थामे थामे यह कहकर नहीं गुजर भरते कि वो तो नेत्रहीन हैं तो वे क्या कर सकते क्योंकि हस्तिनापुर राज परिवार जिस दलदल में धंसता ही जा रहा है वो दलदल तो है स्वयं धृतराष्ट्र की उच्चाकांक्षा और यही कुरुक्षेत्र है। जिसकी तरफ यह कहानी धीरे-धीरे बढती चली जा रही है। पुरोचन का बना पांडवों का लाक्षागृह वास्तव में कुरुक्षेत्र की बाहरी सीमा है। युवराज युधिष्ठिर की प्राण रक्षा बनकर जो सेना गई है वो दुर्योधन के हाथों बिके हुये लोगों की है। और उसने

लाक्षागृह को इसलिये घेर रखा है कि जब लाक्षागृह में आग लगे और पांडव बाहर निकलना चाहे तो यह सेना उन्हे बाहर नहीं निकलने दे। तो यह दौड हो रही है काले पाख की चौदस और खनिक में।

शकुनि बोला दुर्योधन पुत्र ये दिन कैसे लग रहे हैं। दुर्योधन बोला अति आनन्द का अनुभव कर रहा हूं मामाश्री। शकुनि बोला अब तुम्हारे और हस्तिनापुर के युवराज के बीच केवल तीन दिन की दूरी रह गई है तीन दिन की। और यह तीन दिन की दूरी दूरी नहीं होती। यदि तुम चाहो तो तुम उस तीसरे दिन को हाथ बढाकर छू सकते हो जो तुम्हारे भविष्य का द्वारपाल बनने वाला है। वत्स दुर्योधन आंखे बन्द करके कल्पना करो वो लाक्षागृह धांय धांय कर जल रहा है और पांचों कुन्ती पुत्र एक चूहे के भांति इधर-उधर भागते किसी बिल को खोज रहे है परन्तु उन्हे बिल नहीं मिलेगा। क्योंकि पुरोचन ने लाक्षागृह में बिल बनाया ही नहीं। हा हा और शकुनि जोरों से हंसने लगा।

एक गुप्तचर विदुर के पास आता है और महामन्त्री को प्रणाम करता है विदुर ने कहा इतनी रात गये और तुम। गुप्तचर बोला कष्ट देने के लिये क्षमा चाहता हूं परन्तु समाचार ही ऐसा है कि शीघ्रता करनी पडी। विदुर बोले क्या समाचार है ? गुप्तचर बोले गान्धार नरेश ने कालेपाक की चौदस को लाक्षागृह में आग लगाने का निर्णय लिया है। विदुर बोले यह समाचार तुम्हे कहां से मिला ? गुप्तचर ने कहा भीलों के उस परिवार से जो पुरोचन का सहयोगी है। विदुर बोले और यह आग लगानेवाला कौन होगा? गुप्तचर बोला स्वयं पुरोचन। विदुर बोले तब तो तुम तुरन्त वारणावत चले जाओ और युवराज कुमार से कह दो कि काले पाक की चौदस अमावस की रात है और वो लोग एक रात पहिले ही उजाले का मुंह देखे। गुप्तचर बोला जो आज्ञा और यह कहकर चला गया। गुप्तचर युधिष्ठिर के पास आता है और बताता है कि उन्होने कालेपाक की चौदस को लाक्षागृह में आग लगाने का निर्णय लिया है युवराज और विदुरजी ने कहा है कि आप एक रात पहिले ही उजाले का मुंह देखे। युधिष्ठिर ने कहा ठीक है तुम जाकर हमारे सेवकों में मिल जाओ और विश्राम करो। गुप्तचर जो आज्ञा महाराज यह कहकर वहां से चला गया।

मशाल की रोशनी लिये अर्जुन खनिक के पास सुरंग पूरी होने की तैयारी देखने आता है। खनिक बोला कुमार आप आखेट के लिये जाये, अश्वरोहण करे। यह कोई घूमने फिरने का स्थान तो है नहीं। क्षमा चाहता हूं, मुझे अपना काम करने दें। अर्जुन बोले मैं भ्राताश्री युवराज युधिष्ठिर का सन्देश लेकर आया हूं। खनिक बोला तो फिर बातों में समय क्यों बिता रहे हो कुमार। सन्देश दीजिये ताकि मैं अपने कार्यों में लग जाऊं। अर्जुन ने अपने आपको अपमानित महसूस किया और बोला खनिक तुम्हे कुमारों से बात करना नहीं आता। खनिक बोला मुझे विदुरजी ने बात करने के लिये नहीं भेजा है कुमार। मैं अच्छी बात नहीं करता हूं। मैं अच्छी सुरंग खोदता हूं। अर्जुन बोले भ्राताश्री ने कहा है कि काले पाक की चौदस के एक दिन पहिले ही यह कार्य समाप्त हो जाना चाहिये। क्योंकि हम लोग एक रात पहिले ही इस लाक्षागृह में आग लगाकर निकल जाना चाहते हैं। खनिक बोला अर्थात हमारे पास अब दो दिन बचे हैं, केवल दो दिन। यदि आप कार्य समाप्त करने का अवसर प्रदान करें तो मैं यह कार्य कल रात तक समाप्त कर सकता हूं। जाकर युवराज से कह दें कि सुरंग का मुंह उनके कक्ष में खुलेगा आधी रात के उपरान्त।

युधिष्ठिर कुन्ती के साथ अपने भाइयों के साथ अपने कक्ष में है। मध्यरात्रि का समय था। युधिष्ठिर अभी तक सोच ही रहा था कि हस्तिनापुर राज्यपर उसका अधिकार है या नहीं। दूसरा पक्ष तो उसके सर्वनाश पर तुला हुआ है। कुन्ती ने बताया अधिकार का निर्णय प्रचलित सामाजिक विधान करता है, मानव की धर्म चेतना करती है और अन्ततः स्वयं प्रकृति करती है। युधिष्ठिर ने कहा सामाजिक विधान तथा प्राकृतिक विधान एक दूसरे के प्रतिकूल भी हो सकते है। कुन्ती ने कहा ऐसे में प्राकृतिक विधान सदा विजयी होता है। प्राकृतिक विधान सदा हमारे उन्ही अधिकारों का समर्थन करता है जो सृष्टि के हित में हो। सामाजिक विधान से मान्य हमारे अधिकार यदि कोई बलात हमसे छीन रहा हो तो धर्म, संघर्ष में होता है अथवा शान्ति बनाये रखने के लिये समर्पण में ? युधिष्ठिर ने पूछा। तब माता ने कहा पुत्र न्यायपूर्ण, संषर्घ, न्यायपूर्ण शान्ति से सदा महान है। यदि कोई बल से हमारे

अधिकार छीन रहा हो तो संघर्ष करना हमारा धर्म है। त्याग तो उसका होता है जो हम अर्जित कर चुके है और जो हमारे अधिकार में है। जो हमसे छिन गया, जिसे हम प्राप्त नहीं कर सके या जो हमारे पास है ही नहीं, उसका कैसा त्याग ? युधिष्ठिर ने माता से पूछा प्रतिशोध क्या हमारा धर्म है या क्षमा कर देना। कुन्ती बोली आततायी को दंड देना धर्म है और पश्चाताप करनेवाले को क्षमा। युधिष्ठिर ने कहा कोई हमारी हत्या की साजिश करे या प्रयत्न करे तो धर्म आत्मरक्षा में है या उस भावी हत्यारे का वध अनिवार्य है ? कुन्ती बोली धर्म तो आत्मरक्षा ही है पुत्र परन्तु यदि आत्मरक्षा में दूसरे का वध करना पडे तो वह भी धर्म ही है। युधिष्ठिर ने अपनी शंकाओं का समाधान करते हुये माताश्री से पूछा हत्यारे का वध करेंगे तो यह अनृशंसता नहीं होगी ? कुन्ती बोली यदि हत्यारे का वध नहीं किया गया तो वह और हत्यायें करेगा उससे तो नृशंसता की वृद्धि होगी। अत: अनृशंसता तो इसी में है कि हत्यारे का वध किया जाना चाहिये। आत्मरक्षा तो प्रत्येक परिस्थिति में धर्म है। आत्मरक्षा के मार्ग में आयी किसी भी बाधा को हटाना नृशंसता नहीं है पुत्र। भूखे रहना भी नृशंसता है। कुछ लोगों की भूख धर्म चर्चा से मिट सकती है परन्तु सामान्य जन की भूख मिटाने के लिये अन्न की आवश्यकता होती है। इसलिये पुत्र भूखे को अन्न दो, अपराधी को दंड दो और पीडित को न्याय दो। यही धर्म का सूक्ष्म स्वरूप है और यही न्याय नीति।

मध्यरात्रि तक इस प्रकार चर्चा वार्तालाप चल ही रहा था कि सहसा उनके कक्ष के बीचों बीच सुरंग का मुंह खुला। सुरंग में से खनिक बाहर निकला और महारानी कुन्ती को प्रणाम किया और बोला प्रणाम युवराज। मैंने अपना काम कर दिया। सुरंग अब पूरी तरह से तैयार है। युधिष्ठिर बोला हम आपके बडे आभारी है। खनिक ने कहा ये आप क्या कह रहे हैं युवराज। राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा केवल राजा और राजकुमारों का ही कर्तव्य नहीं हैं। मातृभूमि की रक्षा सुरक्षा का ध्यान रखना हर नागरिक का कर्तव्य है। राजा और राजकुमार भी तो नागरिक ही होते हैं और यदि वो नागरिक नहीं होते तो उन्हे नागरिक होना चाहिये। अब ये सुरंग तैयार है इसका मुंह छुपा लीजिये। और सेवक को आज्ञा कीजिये।

गान्धारी धृतराष्ट्र के साथ अपने कक्ष में शयन कर रही थी कि उसने एक बहुत दुस्वप्न देखा। सहसा गान्धारी जाग उठी और बोली आर्य पुत्र धृतराष्ट्र बोला क्या गान्धारी तुम जाग रही हो। गान्धारी ने कहा मैंने अभी एक बडा ही भयानक स्वप्न देखा है। धृतराष्ट्र ने पूछा क्या स्वप्न देखा ? गान्धारी बोली मैंने देखा कि मैं महादेव की पूजा कर रही हूं कि महादेव एकदम से उठे और तांडव नृत्य करने लगे तथा उनके सिर की तीसरी आंख खुल गई। मैं भयभीत सी खडी देखती रह गई। मैंने साहस बटोर कर पूछा हे महादेव, हे गौरी शंकर, हे भूतनाथ मेरे घर में ये तांडव नृत्य क्यों ? आर्यपुत्र उन्होने कोई उत्तर नहीं दिया। वे करुणा भरी दृष्टि से मेरी ओर निहार कर चले गये। मैं सन्नाटे से खडी रह गई कि किसी ने कहा देवी गान्धारी। मैं पल्टी मैंने देखा अग्निदेव खडे हैं। मैंने उन्हे प्रणाम किया। वे बोले हे महादेव भक्तिनि तुम्हारा यह घर संसार जलकर नष्ट होनेवाला है। मुझे वचन दो कि तुम मुझे शापित नहीं करोगी। मैंने उनसे पूछा मेरे घर संसार का दोष क्या है ? वे बोले जब स्वयं शिव शंकर ने तांडव का कारण तुम्हें नहीं बताया तो फिर मैं कैसे बताऊं और यह कहकर वो ज्वाला बन गये। तब यह भवन धू धू धाय धाय जलने लगा। मैं पागलों की भांति आपको और अपने पुत्रों को लेकर अग्निकुंड से बाहर निकलने का मार्ग खोजती रही पर मुझे कोई मार्ग नहीं मिला।

मैंने इन्द्र देव को पुकारा हे इन्द्रदेव मेरी सहायता करो। अपने बादलों को आदेश दो कि वो मेरे घर में लगी आग को बुझा दें। इन्द्र देव प्रकट भी हुये। मेरी पुकार भी सुनी परन्तु खडे देखते रहे। इतने में ही मेरी आंखे खुल गई आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला रोओ मत गान्धारी। जो आग महादेव ने नहीं बुझाई, जो आग स्वयं इन्द्र ने नहीं बुझाई वो आग भला तुम्हारे आंसुओं से थोडे ही बुझेगी। फिर यह भी तो सोचो स्वप्न तो स्वप्न ही होता है। गान्धारी बोली चाहे स्वप्न में आकर महादेव ने ही तांडव नृत्य क्यों न किया हो आर्यपुत्र। यह कोई साधारण स्वप्न नहीं है। मुझे इसका स्वप्न फल बताइये। धृतराष्ट्र बोले यदि मैं स्वप्न शास्त्री होता तो स्वयं अपने स्वप्नों का स्वप्न फल जान न लेता। इसलिये जाओ सो जाओ गान्धारी। कोई और स्वप्न देखने का

प्रयत्न करो। गान्धारी बोली इस स्वप्न के पश्चात नींद आना कठिन है आर्यपुत्र कठिन है।

आधी रात से भी अधिक व्यतीत हो गई। पुरोचन भीलों के पास आता है जहां भील परिवार अपनी मां और पांच पुत्रों सहित जश्न मना रहा है। मदिरा पान कर द्युत हो रहे थे। भीलनी बोलती है आओ आओ पुरोचन जी। बैठो पुरोचन जी और मदिरा पियो। पुरोचन बोला मैंने सोचा तुम्हारे पुत्रों के सहयोग से जो भवन बनाया है वो अब एक रात का मेहमान रह गया है। तुम लोग भी आज की रात उस भवन में निवास कर बिताकर देखलो कि भवन में कैसा लगता है ? यह कहने को आया हूं कि दिन ढलते ही तुम लोग वहां आ जाना। जितना जी चाहे मदिरा पियो और मांस का भी प्रबन्ध कर लिया है मैंने तुम लोगों के लिये। कल की रात हमारी सफलता के समारोह की रात होगी।

दुर्योधन शकुनि से बोला आज आप आनन्द के घोडे पर सवार दिखाई दे रहे हो मामाश्री। शकुनि बोला वत्स ऐसा ही है। इस आनन्द के घोडे को वश में करना बडा कठिन कार्य है और यदि यह वश में आ जाये तो हृदय आकाश गंगा में स्नान करने लगता है भान्जे। दुर्योधन बोला ऐसा कौनसा शुभ समाचार मिल गया है ? शकुनि बोला तुमने बडे लोगों से वो कहावत नहीं सुनी दुर्योधन घर का भेदी लंका ढहाये। दुर्योधन बोला हां। तो पुरोचन। शकुनि बोला उसका कार्य तो मैं पहिले ही कर चुका हूं। यह शुभ कार्य तो अंग रक्षकों का सेनापति सोम स्वयं अपने हाथों से करेगा। दुर्योधन बोला फिर भी मामाजी। शकुनि ने कहा अपने मामाश्री पर विश्वास करना सीखो दुर्योधन। तुम चिंतित ना हुआ करो। पांडु पुत्र अब वारणावत से कभी लौट कर नहीं आयेंगे। हां हस्तिनापुर में उनकी अस्थियां अवश्य आयेगी क्रिया कर्म के लिये।

कर्ण इस षडयन्त्र से प्रसन्न नहीं था। वह खिन्न मन से और क्रोधित हो फरसे और कुल्हाडी से एक पेड काट रहा था और अपना क्रोध ठंडा कर रहा था तब दुर्योधन उसके पास जाता है और देखता है कि कर्ण के हाथ पर चोट पडी है और रक्त बह रहा है यह देखकर दुर्योधन पूछता है यह क्या मित्र ? खून निकल रहा है। क्या बात है ? कर्ण बोला मित्र अभी भी समय है। लाक्षागृह में होनेवाले षडयन्त्र को रोक लो। दुर्योधन बोला तुम बार बार मुझसे यही प्रश्न कब तक करते रहोगे ? कर्ण बोला तब तक तुम यह न कह न दो कि अपने हृदय की बात मुझसे ना किया करो कर्ण तब तक मैं तुमसे यही कहता रहूंगा। दुर्घटना से पहिले भी कह रहा हूं और दुर्घटना के पश्चात भी यही कहूंगा। क्या तुम हस्तिनापुर के युवराज का पद लेकर खुश रह सकोगे ? मुझे सन्देह है। दुर्योधन बोला सन्देह तो मुझे भी है मित्र परन्तु जिन महाराज पांडु के कारण मेरे पिताश्री के सिर से हस्तिनापुर का राजमुकुट छीन लिया गया था। अब मैं उस महाराज पांडु के पुत्र के शीश पर वो राजमुकुट कदापि नहीं देख सकता। तुम कहो तो मैं तुम्हे हस्तिनापुर नरेश बना दूं परन्तु युधिष्ठिर तो कभी नहीं। कर्ण बोला यदि अवसर चांदी के थाल में रखकर सोने का यह मुकुट भी भेंट करें तब भी मैं अपने शीश के लिये उसे स्वीकार नहीं करूंगा। तुम्हे भेंट कर दूंगा। मुझसे राजमुकुटों की बात अब से कभी मत करना मित्र। तुममें से और युधिष्ठिर में से जितनी बार भी किसी एक को चुनना भी पडे तो हर बार मैं तुम्हे ही चुनूंगा मित्र क्योंकि मुझे ऋणी होना कभी अच्छा नहीं लगता और तुम्हारी मित्रता के ऋण को चुकाने के पश्चात मैं तुम्हारा ऋणी रहूंगा। पर तुम जिस डगर पर चल रहे हो वो मुझे अच्छी लगे या न लगे मैं तुम्हारे साथ चलता रहुंगा। दुर्योधन ने प्रसन्न हो कर्ण को गले लगाया।

सेनापति रात में लाक्षागृह के चारों ओर गश्त लगा रहा है। पुरोचन नशे में, मदिरा पिये हुये बोल रहा है कि आपके सहयोग से यह भवन जो बनाया है उसमें आपका स्वागत है। आज की रात राज दरबार की मदिरा सिर पर चढकर बोलने लगी। सहदेव यह सब कुछ छिप छिपकर पुरोचन के भीलों के पास सब कृत्य देख रहा था और आकर युधिष्ठिर से बोला भ्राताश्री आज मध्यरात्रि के पहिले ही हमें यहां से चले जाना चाहिये। हमारे लिये सुरंग का प्रबन्ध हो चुका है। बाहर तो हमारी हत्या का जश्न भी मनाया जा रहा है। कुन्ती बोली मैं इस षडयन्त्र के लिये गान्धार कुमार शकुनि को कभी क्षमा नहीं करूंगी। कुन्ती ने आज्ञा दी सुरंग का मुख खोलो पुत्र भीम। अर्जुन बोला ठहरो मझले भैया। इस तरह से मुंह छिपाकर भागना मुझे अच्छा नहीं लग रहा

है ज्येष्ठ भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोला हम भाग नहीं रहे हैं प्रिय अनुज। हम तो जा रहे हैं। जाने और भागने में बडा अन्तर होता है और फिर काकाश्री ने सोचकर ही तो हमसे कहा होगा कि हम यहां से चुपचाप निकल जाये और लोगों को यह समझ लेने दो कि वो अपने षडयन्त्र में सफल हो गये। सुरंग खोलो भीम और सहदेव चलो। सहदेव बोला पहले मैं नहीं। षडयन्त्र का अग्निदाह आप ही कीजिये माताश्री। भीम बोले नहीं सहदेव। तुम लोग सब चलो और भीम ने जलती उल्मूक मशाल हाथ में ली। भीम बोला हर षडयन्त्र से ऊंची है माताश्री। कुन्ती बोली सबसे पहिले मेरा पुत्र सहदेव इस सुरंग में जायेगा। चलो सहदेव। इस तरह एक एक करके उस सुरंग के रास्ते से बाहर वन में निकले।

विदुर नीति संकेत हो कृष्ण कृपा हो चाल, संकट की ज्वाला स्वयं बने मुक्ति की राह।

भीम ने सबको सुरंग में उतारकर अपने हाथ में जलती मशाल बाहर पुरोचन के कक्ष में फेंक दी। पुरोचन बेसुध नशे में पडा था। आगे बढकर उसने लाक्षागृह में जगह-जगह आग फैला दी जिससे अग्नि एकदम दहक उठी और लाक्षागृह का द्वार भी अग्नि को समर्पित हो गया। पूरा लाक्षागृह धू धू कर जलने लगा। उस भवन में पुरोचन तथा पूरा भील परिवार पूरी तरह से जलने लगा और चीख चीख कर पुकारने लगा पर बाहर किसी ने भी नहीं सुना। बाहर खडे लोग देख रहे थे। सब इकट्ठे हो गये थे। उस लाक्षागृह की दीवार, गवाक्ष सब कुछ जल कर भस्म हो रहे थे। सेनापति अपने सैनिकों सहित उस लाक्षागृह की घेरेबन्दी किये था। किसी को अन्दर जाने की अनुमति भी नहीं थी। किसी प्रकार की सहायता भी नहीं की गई। भीम को अब पूर्ण विश्वास हो गया कि अग्नि इतनी प्रचंड हो गई कि उसमें प्रात:काल तक तो कोई प्रवेश नहीं कर पायेगा। भीम अब शान्त भाव से सुरंग के अन्दर उतर गया और अपनी माता तथा भाइयों के साथ सुरंग के पहिले ही मोड पर जा मिला। सब के सब सुरक्षित बाहर निकल गये और दूर खडे उस जलते हुये लाक्षागृह को देखते रहे। सेनापति यह देखने में लग गया कि आग लगने से पहिले तो कोई बाहर तो नहीं गया।

जाको राखो साईयां मार सके न कोई, बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय।

वारणावत के सभी पुरवासी दौडकर वहां आये। उस घर की यह दुर्दशा देखकर परस्पर बातें करने लगे कि दुरात्मा दुर्योधन की प्रेरणा से ही पुरोचन ने यह जाल बिछाया होगा। हो न हो यह उसकी ही करतूत है। धृतराष्ट्र की स्वार्थपरता को धिक्कार है। उन्होने सत्यनिष्ठ पांडव परिवार को मरवा डाला। पुरोचन को अपनी करनी का फल मिल गया। वह निर्दयी भी जलकर इसी में राख का ढेर हो गया। भीम माता कुन्ती को कन्धे पर चढाकर और नकुल तथा सहदेव को गोद में उठाकर युधिष्ठिर और अर्जुन के हाथों का सहारा देकर जल्दी जल्दी सुरंग से बाहर चल पडा। आग बुझाते बुझाते सब लोगों को मालूम हो गया कि यह घर लाख का बना हुआ है और मन्त्री पुरोचन भी इसी में जलकर मर गया है। उनके मन में यह निश्चित हो गया है कि यह पापी दुर्योधन का ही षडयन्त्र है और हो न हो यह धृतराष्ट्र की सहमति से ही हुआ होगा। भीष्म विदुर और दूसरे कौरव भी धर्म का पक्ष छोड रहे हैं। अब धृतराष्ट्र का मनोरथ तो पूरा हो गया कि जिसकी करतूत से पांडव जलकर मर गये। जब सब लोग आग हटाकर देखने लगे तो पांच पुत्रों के साथ मरी भीलनी मिली। सभी ने यह समझा पांचो पांडव और कुन्ती मरी है।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय उसी समय विदुर का भेजा हुआ एक विश्वास पात्र मनुष्य पांडवों के पास आया उसने पांडवों को विदुर का बतलाया हुआ संकेत बताकर कहा मैं विदुरजी का विश्वासपात्र सेवक हूं और मैं अपने कर्तव्य को ठीक ठीक जानता हूं। आप विदुरजीके कहने अनुसार शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे। यह नौका आपको गंगा तट पार कराने के लिये तैयार है। आप नौका पर सवार होकर गंगापार हो जाईये। तब सभी पांडव अपनी माता सहित नाव पर बैठ गंगा पार की। उस नाविक ने कहा विदुरजी ने सन्देश दिया है कि आप लोग निर्विघ्न अपने मार्ग पर बढते चले। भयभीत रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह पांडवों को गंगा पार करा उनका कुशल सन्देश लेकर विदुर के पास चला गया। वह हिडिम्बन कहलाता है। वह राक्षसों का वन अवश्य कहलाता है किन्तु अज्ञातवास के लिये बहुत ही उत्तम स्थान है। वहां कोई आता-जाता भी नहीं। वहां उन्हे कोई पहचान भी नहीं पायेगा।

४९) पांडवों की मृत्यु पर धृतराष्ट्र और भीष्म का शोक

शकुनि स्वयं को संसार का सबसे बडा कूट नीतिज्ञ समझकर कूदता फिरता है। कदाचित वह दुर्योधन पर कृतज्ञता का भार लाद देगा। दुर्योधन को न्याय, सत्य और धर्म में कोई आस्था नहीं है। अब उसके मन में यह धारणा स्थिर रूप से बैठ गई है कि संसार में केवल पाप ही फलीभूत होता है। पुण्य, सत्य और धर्म की चर्चा और चिन्ता करनेवाले लोग सर्वथा मूर्ख होते हैं। उसका अहंकार और भी स्फीत होने लगा। वह अपने युवराज्याभिषेक के लिये आकांक्षित होने लगा और उन्मुक्त होकर स्वेच्छाचारी का शासन करना चाहता है। राजसभा में प्रतिदिन विदुर और उसकी टकराहट तो होनी ही है।

एक गुप्तचर वारणावत से आकर शकुनि को उसके भवन में आकर सूचना देता है कि वारणावत के लाक्षागृह में आग लग गयी। शकुनि बोला क्या यह बूढा पुरोचन पागल हो गया जो दारू के नशे में एक दिन पहिले ही आग लगा दी। कोई बचा तो नहीं ? गुप्तचर बोला बचा तो कोई नहीं महाराज। शकुनि ने पूछा पुरोचन भी। गुप्तचर ने उत्तर दिया लगता है कि वो भी आग की लपेट में आ गया। शकुनि बोला यह तो अच्छा हुआ। तुम दुर्योधन के पास जाओ और उसे यह शुभ समाचार दो और बताओ कि मामा की प्रतीक्षा करे। मैं आ रहा हूं। गुप्तचर बोला जो आज्ञा और कहकर दुर्योधन के पास आगया।

एक कक्ष में दुर्योधन, दुशासन और कर्ण बैठे हैं। आकर गुप्तचर ने सन्देश दिया। दुर्योधन बोला जब आग लगने का समाचार आ ही चुका तो मामाश्री अभी तक आये क्यों नहीं ? कर्ण बोला मामाश्री आते ही होंगे। परन्तु एक दु:ख तो अवश्य ही रह जायेगा कि वीरों को वीरों की भांति रणभूमि में मरने का सौभाग्य नहीं मिला। मैं जब तक जिऊंगा मित्र यह दुख मेरा पीछा करता रहेगा। इतने में कक्ष में शकुनि आ गया और बोला अब तुम उनके भाग्य से तो जूझ नहीं सकते अंगराज। कर्ण बोला पर यह तो आप मान ही लीजिये कि वो इससे अच्छी मृत्यु के अधिकारी थे। शकुनि बोला यदि मेरे यह मान लेने से तुम्हे कोई विशेष आनन्द मिलता है अंगराज तो चलो यही मान लेते हैं परन्तु उन्हे इससे अच्छी मृत्यु देने के लिये संजीवन दान तो नहीं दे सकता था। वो बेचारे तो अपनी मातासहित आग में भस्म हो चुकें हैं। इसलिये मैं गान्धार नरेश शकुनि हस्तिनापुर के भावी युवराज दुर्योधन को हार्दिक बधाई देते हुये सादर प्रणाम करता हूं। दुर्योधन बोला आप धन्य है मामाश्री। दुशासन बोला तनिक आप युवराज के सिंहासन पर बैठकर तो दिखाओ भ्राताश्री।

शकुनि बोला दुशासन यदि देखना ही चाहते हो तो अपने भ्राताश्री को हस्तिनापुर नरेश के सिंहासन पर ही देखो। आओ बैठो दुर्योधन इस सिंहासन पर। यह सिंहासन अब केवल तुम्हारा है। आज तुम्हारे मामाश्री का बरसों पुराना सपना साकार हुआ जो तुम्हारी बाल्यावस्था से तुम्हारे लिये देखा था। आज तुम इस सिंहासन पर विराजमान हो और रहोगे क्योंकि महाराज तो इस शोक से वनवास ले ही लेंगे। दुर्योधन बोला क्या पिताश्री को यह समाचार मिल चुका है मामाश्री ? शकुनि बोला अभी नहीं क्योंकि इस समाचार पर पहला अधिकार तुम्हारा है दुर्योधन केवल तुम्हारा। अब चलते हैं महाराज को यह समाचार देने। नहीं। मैं सोचता हूं कि मैं वहां अकेला ही जाऊं क्योंकि तुम अपने आनन्द को छिपा नहीं पाओगे। तुम यहां इसी सिंहासन पर बैठे रहो पुत्र और इसी सिंहासन पर बैठने का अभ्यास करते रहो।

शकुनि धृतराष्ट्र के महल में आता है। मध्य रात्रि का समय है। धृतराष्ट्र और गान्धारी सो रहे हैं। द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि महाराज की जय हो। गान्धार कुमार शकुनि पधारे हैं। गान्धारी बोली आर्य पुत्र भ्राताश्री का रात्रि के इस समय आना शुभ नहीं लग रहा है। धृतराष्ट्र बोला हां शुभ तो मुझे भी नहीं लग रहा है। भगवान करे मेरे सभी पांडु कुशल हों। गान्धारी बोली आप ऐसा क्यों कह रहे हो ? धृतराष्ट्र बोला पता नहीं यह बात स्वयं ही अनायास ही मुख से निकल गई। चलो भ्राता शकुनि से मिल लें उन्हे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पडे। धृतराष्ट्र गान्धारी को लेकर कक्ष के द्वार पर आता है। शकुनि वहां मुंह लटकाये सिर नीचा किये खडा है। धृतराष्ट्र बोला भ्राता शकुनि। शकुनि ने कहा महाराज की जय हो। गान्धारी बोली सब कुछ कुशल तो है ना

भ्राताश्री। शकुनि बोला यदि सब कुछ कुशल होता तो मैं महाराज का स्वप्न भंग करने इस समय क्यों आता प्रिय बहन ? धृतराष्ट्र बोले तो इस समय अब आप कौनसा अशुभ समाचार लेकर आये हैं भ्राताश्री। शकुनि बोला मैं महारानी कुन्ती और पांडु पुत्रों की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आया हूं महाराज। सुनकर धृतराष्ट्र व्याकुल हुआ और बोला नहीं नहीं। सबकी मृत्यु कहां और कैसे हुई गान्धार नरेश ? शकुनि बोला यह तो पुत्र दुर्योधन ने अपने भाई के लिये जो भवन बनवाया था उसमें आग लग गई और यह आग इतनी भयानक थी कि महाराज कोई बच नहीं सका। धृतराष्ट्र बोला इसमें दुर्योधन को मत घसीटो भ्राता शकुनि। यह भवन तो आपने बनवाया था और इसलिये बनवाया था कि वो सब इसमें जलकर भस्म हो जाये। मैं यह तो अवश्य चाहता था कि मेरा पुत्र दुर्योधन हस्तिनापुर के सिंहासन पर विराजमान हो परन्तु मैं प्रिय पांडवों के शवों पर उसका राजसिंहासन नहीं रखना चाहता था। गान्धारी बोली भाईश्री। धृतराष्ट्र बोला इस समय तुम चुप रहो गान्धारी। भ्राता शकुनि इस समय तुम मेरे कक्ष से निकल जाओ। मैं इस समय प्रिय पांडवों की मृत्यु पर रोना चाहता हूं परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आपको पता चले कि मेरी इन आंखों के पास ये आंसू भी है। शकुनि बोला जो आज्ञा और यह कहकर शकुनि वहां से चला गया।

धृतराष्ट्र बोला अनर्थ हो गया गान्धारी। मुझे यह पता नहीं है गान्धारी यह दुर्घटना है या हत्या। गान्धारी बोली यह क्या कह रहे आप आर्य पुत्र ? मेरा दुर्योधन ऐसा नहीं कर सकता। धृतराष्ट्र बोले परन्तु तुम्हारे भ्राताश्री तो कुछ भी कर सकते हैं। धृतराष्ट्र रोने लगा और बोला यदि यह हत्या है तो मैं अपने आपको कभी क्षमा नहीं कर पाऊंगा। कभी नहीं। तुम अब यह बताओ कि मैं किस मुंह से यह अशुभ समाचार लेकर तातश्री भीष्म के पास जाऊं। परन्तु जाना तो पडेगा ही चलो। धृतराष्ट्र ने बहुत दुख प्रकट किया। वे विलाप करने लगे हाय हाय। पांडवों और उनकी माता के मरने से मुझे स्वर्गीय पांडु की मृत्यु से भी बढकर दुख हो रहा है।

विदुर को खनिक से सूचना मिल गई कि पांडव जीवित है और नाविक ने सूचना दी कि वे हिडम्ब वन में चले गये हैं। विदुर ने सोचा भीष्म ये समाचार सुनकर बहुत दु:खी होंगे। उनका मन टूट जाये। विदुर को लगा उन्हे बता दे कि पांडव जीवित है पर दूसरे ही क्षण उनके मन में विचार आया कि नहीं यदि उसने यह गोपनीयता भंग कर दी तो तातश्री भीष्म अपने व्यवहार से आचरण या वार्तालाप में कहीं प्रकट नहीं कर दे नहीं तो विदुर का सारा किया कराया व्यर्थ हो जायेगा। वृद्ध लोगों में जीवन के झटके झेलने की अद्भुत क्षमता होती है। उन्होने जीवन में इतने उतार चढाव देखे होते हैं कि एक आध और शोक भी उसी में समा जाता है। वे बहुत जल्दी जीवन से समझौता कर लेते हैं। वात्सल्य में यही तो दोष है कि वह दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति से भी प्रेम कर सकता है। यदि तातश्री को पता चल भी गया कि पांडवों की हत्या दुर्योधन ने की है तब भी स्वयं को समझा लेंगे कि राजनीति में तो ऐसा ही होता है जिसमें ईर्ष्या, द्वेष के कारण हत्यायें तो होती रहती है। भीष्म तो पिछली पीढी के दृढ धारणाओं के हिमालय। अपनी सारी चारित्रिक विशेषताओं के रहते भी वे समाज को कोई उचित गति नहीं दे पाये। विदुर इस असंमजस में पड गया कि वे भीष्म को बताये या ना बताये कि पांडव अभी जीवित हैं।

धृतराष्ट्र और गान्धारी भीष्म के महल में आते हैं। धृतराष्ट्र बोला पता नहीं तातश्री के भाग्य में किस किस के लिये रोना लिखा है। द्वारपाल ने भीष्म को सूचित किया। द्वारपाल ने बोला महाराज और महारानी की जय हो। धृतराष्ट्र बोले तातश्री से कहो कि मिलने धृतराष्ट्र आया है। द्वारपाल ने पूछा क्या उन्हे जगा दूं ? धृतराष्ट्र बोले हां। हस्तिनापुर को सोनेवाली रात जाने कब मिलेगी। भीष्म जग उठे और प्रतीक्षा कक्ष में धृतराष्ट्र के पास आकर बोले आईये महाराज आईये पधारिये। और बोले क्या हुआ महाराज क्या हुआ इतनी रात आप स्वयं आये ? धृतराष्ट्र बोले यह रात मुझे महाराज कहने की रात नहीं है तातश्री। आप तो मुझे पुत्र कहिये। भीष्म बोले क्या हुआ पुत्र ? धृतराष्ट्र बोले तातश्री आज अनुज पांडु की धरोहर हमसे खो गई। हां तातश्री। वो भवन जो युधिष्ठिर के लिये बनवाया गया था जलकर भस्म हो गया। और इस जलते हुये भवन में अनुज वधू कुन्ती और उसके पांचों पुत्र पांडव जलकर भस्म हो गये। भीष्म बोला भस्म हो गये हैं और व्याकुल हो शोकाकुल हो गये। मैं अपने कक्ष में जा रहा हूं। सबसे कह देना कि मैं जब

तक इस शोक से उबर न पाऊं कोई मेरा द्वार ना खटखटायें। जब इस दुख को सहन करने की शक्ति मुझ में आ जायेगी तो मैं स्वयं ही बाहर आ जाऊंगा और यह कहकर भीष्म अपने महल में चला गया और शोक कर महल के द्वार बन्द कर दिये।

भीष्म हृदय में जल उठी लाक्षागृह की आग, बन्द किये गृहद्वार अब रैन बिताई जाय।

लाक्षागृह में शताब्दियों पहले आग लगी किन्तु समय आज भी उस आग की लपटों का अनुभव कर रहा है। राजनीति में साजिशों का इतिहास भी कितना पुराना है परन्तु लाक्षागृह की आग ने तो यह सिद्ध कर दिया है कि राजनीति जब भी मानव कल्याण की तरफ से भटक कर व्यक्तिगत उच्चाकांक्षाओं के रास्ते पर निकल जायेगी तो परिणाम सम्भव आग ही लगेगी और आग ही लगी। परन्तु उस आग का परिणाम अतीत के खंडहर पर ही भविष्य की आधार शिला रखी जाती है।

भीष्म को कुन्ती और उसके पुत्रों की मृत्यु का समाचार मिला और शोक उनके मन में कहीं बहुत गहरे उतर गया। पांडु की मृत्यु के पश्चात वो यह भूल ही गये थे कि संसार में अकाल नाम की मृत्यु की भी कभी घटना होती है। जिसे अधिकार दिलाने के लिये ये इतना प्रयत्न कर रहे थे वे नहीं जानते थे कि प्रकृति उसके अधिकार को मान्यता नहीं दे रही। अधिकार तो उसी का है जिसे मिल जाये। जाने मनुष्य अपनी किस क्षमता पर अहंकार करता है ? विधाता के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार करने के सिवाय दूसरा पर्याय ही नहीं है। सारे न्याय और अधिकार तो जीवन के लिये ही है। विधाता के विधान में कोई हस्तक्षेप तो नहीं कर सकता। हम सब तो निमित्त मात्र ही हैं।

अत्यन्त चाटुकारिता लोभी होती है परन्तु युधिष्ठिर के अतिरिक्त यह रहस्य बाकी पांडवों के चारों भाई भी नहीं समझ पाये। युधिष्ठिर भीम से बोले क्या बात है अनुज ? भीम बोला आप भली भांति जानते हैं बडे भैया क्या बात है ? मेरा तो जी चाहता है कि उस गान्धार नरेश शकुनि की खोपडी तोड दूं कि उसका सर उसकी छाती में उतार दूं। युधिष्ठिर बोले तुम जैसे महावीर को क्रोध शोभा नहीं देता भीम। अर्जुन ने कहा तो क्या इन महावीर को रातों रात लाक्षागृह से निकल जाना शोभा देता है ज्येष्ठ भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले हम भागे नहीं है अर्जुन। यह मत भूलो कि श्रीराम के वनवास से ही लंकापति रावण के विनाश का मार्ग निकला था। क्या पता जिस मार्ग पर हम निकल पडे हैं यह मार्ग हमें किसी अनमोल रत्न की ओर ले जाये। नकुल बोला लेकिन हम हस्तिनापुर को नहीं त्याग सकते बडे भैया वो नगरी हमारी मां है। सहदेव बोला नहीं वो हमारी मां नहीं। हमारी मां तो यह है। भीम बोला परन्तु हस्तिनापुर तो जाना ही पडेगा माताश्री। कुन्ती बोली क्यों जाना पडेगा ? हस्तिनापुर ने हमारी आंखों में आंसू के अतिरिक्त आज तक दिया ही क्या है ? क्या तुम लोग यह भी नहीं देख सकते कि हस्तिनापुर के राजभवन के द्वार हमारे लिये बन्द हो चुके हैं। तातश्री भीष्म ने तो अपनी आंखों पर अपनी प्रतिज्ञाओं की पट्टी बांध रखी है और विदुर बिचारा विवश है। इन दोनों के अतिरिक्त सारे लोग दुर्योधन का मुंह देखते रहते है। पुत्रों सही मायने में तो यह वन ही हमारी मां की भांति है। कडी धूप हो तो छांव देता है। पकाने के लिये ईन्धन प्राप्त होता है। भोजन ना हो तो भोजन के लिये अपने मधुर फल देते है। मैं तो इन्ही वनों में तुम्हारे पिताश्री के साथ सुख से रही थी। पुत्रों और अब तुम लोगों के साथ भी सुखी हूं। मुझे नहीं चाहिये अपने पुत्रों के लिये ऐसा राज जो अपने युवराज के रहने के लिये लाक्षागृह देता हो। अर्जुन बोला माताश्री यदि आपको यह वन अच्छा लगता है तो हमें आपकी सेवा करने इन वनों में रहना स्वीकार है परन्तु एक बार हमारा हस्तिनापुर जाना आवश्यक है माताश्री। कुन्ती ने कहा क्यों पुत्र ? अर्जुन बोला उन्हे यह जताने कि हम इन वनों में भागकर नहीं आये है। वो तो अपनी माता का आदेश मानकर उनकी इच्छा का मान रखने के लिये इन वनों में रहना स्वीकार है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोला मन छोटा न करो अनुज। हम हस्तिनापुर अवश्य जायेंगे पर अभी नहीं। भीम बोला पर अभी क्यों नहीं बडे भैया ? युधिष्ठिर बोले आचार्य द्रोण के शिष्य को यह प्रश्न शोभा नहीं देता भीम। मैं जानता हूं कि तुम अकेले ही दुर्योधन और उसकी सेना के लिये बहुत हो परन्तु यह न भूलो कि दुर्योधन के साथ-साथ अपने अपने रथ पर पितामह भी होंगे। गुरु द्रोणाचार्य भी होंगे, कुलगुरु कृपाचार्य भी

होंगे। इसलिये जब तक लडाई टाली जा सके तब तक टालते रहना चाहिये। क्या तुम पितामह के सामने गदा तानकर खडे हो सकते हो ? क्या अर्जुन द्रोणाचार्य के सामने अपने बाणों का मुंह कर सकता है ? और क्या तुम द्रुपद की भांति ज्येष्ठ पिताश्री के रथ पर चढकर उन्हे बन्दी बना सकते हो ? और क्या तुम अपने भ्राताश्री दुर्योधन और अनुज दुशासन का वध कर माता गान्धारी के सामने जा सकते हो ? नहीं जा पाओगे। इसलिये प्रतीक्षा करो भीम। तुम्हारा हृदय दुर्योधन से कहीं बडा है भीम, इसलिये वह आघात कर रहा है तो उसे करने दो। भ्राता होने के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि उसके आघात से बचाव किया जाये परन्तु स्वयं उस पर आघात मत करो। उसे यह समझाओ कि दुर्योधन को आपस में भाइयों से झगडना नहीं चाहिये। क्योंकि भाइयों के आपस की लडाई से घराने की, परिवार की मर्यादायें भंग होती हैं। भीम बोले मैं इससे सहमत नहीं हूं परन्तु आपका आदेश यही है कि हम कायरों की भांति वन-वन भटकते फिरें और वह कायर उस राजभवन में चैन करे जो हमारा है तो यही सही। और वह यह कहकर क्रोधित हो उठ वहां से चला गया।

शकुनि, कर्ण और दुर्योधन अपने कक्ष में बैठे हैं। शकुनि बोला अरे अंगराज कर्ण तुम यह जानकर प्रसन्न नहीं हुये कि तुम्हारे इकलौते मित्र दुर्योधन के मार्ग के कांटे जलकर भस्म हो गये हैं। अब तो दुर्योधन के सिंहासन का मार्ग दर्पण का मार्ग चौरस ओर स्वच्छ हो गया है अंगराज। अब तुम देखोगे कि तुम्हारा मित्र दुर्योधन पहिले युवराज था और फिर देखोगे कि मेरा दुर्योधन राजमुकुट पहिले हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर विराजमान है। हा हा। शकुनि खूब जोर से हंसा। अरे कर्ण यह तो समारोह की घडी है पुत्र। कर्ण बोला मुझे सुख भी है और दु:ख भी मामाश्री। यदि किसी शूरवीर को छल कपट से मारा जाये तो उसका दु:ख सब वीरों को मनाना चाहिये और मैं तो पांच पांच वीरों की हत्या का दु:ख मना रहा हूं। दुर्योधन बोला कर्ण की इस बात पर तो मैं भी सहमत हूं मामाश्री। गदा युद्ध में भीम को हराने की अभिलाषा तो अभिलाषा ही रह गई। भीम को युद्ध में हराने का स्वाद हस्तिनापुर के राजमुकुट पहनने के स्वाद से भी कहीं अधिक है मामाश्री। यदि मैं इसे युद्ध में गद्दा मार मार कर मार डालता तो मैं समारोह अवश्य करता। शकुनि बोला महावीरों में बस यहीं एक दोष होता है प्रिय पुत्र कि वो महामूर्ख होते है। अरे तुम्हे यह किसने कह दिया कि तुम्हारे वो प्रिय पांडव युद्ध में नहीं मारे गये। षडयन्त्र भी एक प्रकार का शस्त्र होता है और यदि इस शस्त्र का उपयोग तुम नहीं जानते तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि वो शस्त्र ही नहीं। तुम्हारे शूरवीर पांडव युद्ध में ही मारे गये इसलिये अब दु:ख मत करो। वे बडे वीर थे पर तुम्हारा यह मामा उनसे अधिक वीर निकला। कर्ण बोला परन्तु उस आग ने महारानी कुन्ती को भी भस्म कर दिया मामाश्री। शकुनि बोला तो क्या हुआ अंगराज वही पुरानी कहावत है कि गेहूं के साथ घुन भी पीस जाता है तो फिर बेचारी कुन्ती पिस गई और जोरों से हंसा। पिस गई और आनन्द की बात तो यह है कि बच्चों के पितामह हार मानकर कक्ष में जा घुसे हैं। किस मुंह से सामने आये ? हा हा और जोरों से हंसने लगा। मैं आज से पहिले इतना कभी नहीं हंसा था कभी नहीं। हा हा गंगा पुत्र भीष्म।

शोकाकुल धृतराष्ट्र विदुर के साथ भीष्म के महल में आते है। धृतराष्ट्र बोले विदुर। विदुर ने कहा जी महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा मुझे महाराज कहने की घडी नहीं है विदुर। इस समय तो मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूं। संकट की घडी दूर करने का उपाय पूछ रहा हूं। विदुर बोला संकट का अर्थ यह कभी नहीं होता कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का स्थान ही भूल जाये। इस संकट में भी आप महाराज हैं। हस्तिनापुर नरेश हैं। धृतराष्ट्र थोडा चिढ़कर बोला अच्छा अच्छा तुम मुझे महाराज ही कहो। परन्तु यह बताओ तातश्री अपने कक्ष से बाहर कब निकलेंगे ? विदुर बोला जब उनके आंसू सूख जायेंगे भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोला आंसू तो अब तक मेरे ही नहीं सूख रहे हैं विदुर। उन्हे किसी भी प्रकार अपने कक्ष से बाहर निकालो वो तो हस्तिनापुर की आत्मा है। इस सदमें से बाहर निकालना आवश्यक है। हस्तिनापुर की शक्ति है। विदुर बोला मैं तो उन्हे पुकारते पुकारते थक गया हूं महाराज। लगता है जैसे उन तक मेरी पुकार पहुंच ही नहीं रही। अब आप पुकारकर देखिये। क्या पता अब आप की पुकार सुन ही ले। धृतराष्ट्र भीष्म के कक्ष के पास जाकर दरवाजा खटखटाने लगता है और कहता है तातश्री अपने कक्ष से बाहर आईये। दरवाजा

खोलिये। आपके बाहर नहीं आने से हस्तिनापुर में न तो चन्द्रमा उदय हो रहा है और न ही सूर्य। अपने धृतराष्ट्र की पुकार तो सुन लीजिये तातश्री। मेरा त्याग तो मत कीजिये। विदुर बोला भ्राताश्री। धृतराष्ट्र ने कहा तातश्री तक मेरी पुकार भी नहीं पहुंची परन्तु विदुर तुम तो देख सकते हो। उनके कक्ष में जाकर देखो कि उनकी दशा कैसी है। विदुर बोला उनके कक्ष में तो उनकी आज्ञा के बिना तो स्वप्न भी प्रवेश नहीं कर सकता। मैं उनके कक्ष में बिना उनकी आज्ञा मिले कैसे जा सकता हूं भ्राताश्री। मेरा तो यह कहना है कि आप अपने भवन में लौट जाये और उनके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करें। इस समय उन्हे अकेला छोड दें। धृतराष्ट्र बोला ठीक है तो चलो। प्रतीक्षा ही करते हैं।

विदुर क्या चीज है ? गंगा पुत्र के कक्ष में तो आज्ञा बिना परिन्दा भी नहीं जा सकता। स्वयं यमराज भी प्रवेश नहीं पा सकते। तो इस समय गंगापुत्र भीष्म बिल्कुल अकेले हैं। उनके साथ समय भी नहीं है। परन्तु उनके कक्ष के बाहर समय अपनी गति के नियमों का पालन करता हुआ ही रहता है। दिन पर दिन बीत गये और गंगा पुत्र भीष्म के कक्ष का द्वार नहीं खुला।

प्रकृति के खेल भी अद्भुत है और प्रभु की लीला अपार है। कई बार मनुष्य के सामने सब कुछ घटित हो रहा होता है फिर भी वह असहाय खडे देखते रह जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि संसार का जनमत पाप, अधर्म, अकल्याण और विनाश के पक्ष में हो किन्तु फिर भी एक दुष्ट अल्पमत अपने बाहुबल, अपने दुस्साहस और अपनी पाप बुद्धि के सहारे पापकृत्य करते रहता है और एक विराट जनसमुदाय संख्या में बहुत अधिक होते हुये भी अपनी भीरूता, असंगठन और निरूपायता के कारण खडा देखता रह जाता है। इसके लिये न तो न्याय और धर्म को हताश होना चाहिये और न ही अन्याय और अधर्म के प्रतिशोध को त्यागने का प्रयत्न करना चाहिये। धृतराष्ट्र क्या कर रहा है और दुर्योधन युवराज बनने के लिये किस सीमा तक जा सकता है ?

वेदव्यास ने कहा था नियोग का धर्म अपने लिये सन्तान प्राप्त करना नहीं है बल्कि वह तो सन्तान का दान है। नियोग करनेवाला जानते हुये कि यह पुत्र मेरा है। सुख में है या दुख में पर उसके प्रति अपने मन में मोह विकसित नहीं कर सकता तभी तो वह दान है। वह सन्तान तो उसकी मां तथा उसके पति के वंश की ही जानी जाती है। धृतराष्ट्र और विदुर दोनों भी नियोग पुरुष व्यास की सन्तानें हैं। विदुर वंशानुक्रम से राजा या ऋषि न होकर भी धर्म का ज्ञाता है। ज्ञान में सीमाओं के अतिक्रमण की अद्भुत शक्ति होती है। यथार्थ की सहन स्वीकृति ही नीति है। इस हस्तिनापुर में तो नित्य धर्म की हत्या होती है। जिसके मन में धर्म की तनिक सी भी कल्पना है उसका तो यहां दम घुटता है।

विदुर ने महर्षि व्यास के पूछने पर बताया राजा किसी का शत्रु बन जाये तो उसकी रक्षा की जा सकती है क्योंकि शत्रु होने पर भी प्रत्येक राजा हत्यारा नहीं होता। राजा हत्यारा भी हो तो बन्धु बान्धव रक्षा कर सकते हैं किन्तु जब पिता, राजा, भाई, बन्धु सब ही हत्यारे हो जाये तो रक्षा कैसे होगी ? ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन की कोई सम्भावना नहीं है। उसके लिये केवल मृत्यु है, जीवन नहीं। उसका अस्तित्व मात्र उसके अस्तित्व में ही सम्भव है। विदुर धर्म की रक्षा कर रहा है और धर्म विदुर की। सब कुछ जानते हुये भी विदुर दर्शक की भांति मौन बना हुआ है।

जो कोई पांडवों की रक्षा करेगा वह धृतराष्ट्र और दुर्योधन के विरोध, क्रोध और शत्रुता को आमंत्रित करेगा। पांडवों की रक्षा वो ही करेगा जो धृतराष्ट्र से भयभीत नहीं होगा, जो उसका शत्रु होगा अथवा उसके साथ मित्रता का इच्छुक नहीं होगा। विश्वास अमूल्य धन है उसका त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

वेदव्यास ने कहा मेरे पुत्र विदुर मेरी इच्छा है कि पांडवों के जीवन और मृत्यु के एक-एक क्षण के विषय में, एक-एक सूत्र के सम्बन्ध में लोग जिज्ञासा करें। हमें यह जानने का अधिकार है कि पांडवों को वारणावत क्यों भेजा गया ? लाक्षागृह शिवम में आग कैसे लगी ? और क्यों लगी ? वह किस प्रकार जला ? पांडवों की मृत्यु जलने से हुई या धुएं के दम घुटने से ? क्या वे जलकर मरे ? किसी ने उन्हे जलते हुये देखा ? उनके शव किसी ने देखे ? उन शवों को किसने पहचाना ? उनको वहां से किसने

हटाया ? उनका दाह कर्म, प्रेत कर्म किसने किया ? ऐसे ही अनेक प्रश्न थे। अब विदुर इनका क्या उत्तर देता ? व्यास बोले विदुर इससे सत्य का उद्घाटन होगा। व्यास जानना चाहते हैं क्या वस्तुत: पांडवों का प्राणान्त हो गया ? यदि वे जीवित नहीं हैं तो क्या उनकी मृत्यु मात्र एक संयोग थी अथवा आकस्मिक। जब तक किसी भी बात का प्रत्यक्ष और विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिले तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये। सावधानी के होते हुये भी अनिष्टकारी घटनायें घट जाती है। विदुर ने कहा ऋषिवर हत्यारे सदा शक्तिशाली ही होते हैं। दुर्बल, निरीह और असहाय लोग तो हत्यायें करते ही नहीं हैं। वेदव्यास बोले विदुर पांडव शून्य में से भी प्रकट हो सकते है किन्तु तनिक भी असावधानी से सब कुछ नष्ट हो सकता है। व्यास फिर बोले विदुर पांडवों को समझा देना उन्हे कितनी भी बडी विजय प्राप्त हो जाये, वे स्वयं को कितना भी शक्तिशाली बना ले, उन्हे मित्र रूप से कितने भी समर्थ लोग शक्तिशाली लोग समर्थक लोग मिल जाये पर वे अपना छद्म रूप न त्यागे और न ही किसी को अपना वास्तविक परिचय दें। समय आनेपर स्वयं नारायण ही उन्हे प्रकट करेंगे। उन्हे चाहे कितनी भी बडी उपलब्धि हो जाये, सृष्टि का सम्पूर्ण धन भी उन्हे मिल जाये तो भी पांचों भाइयों की एकता अखंडता बनी रहनी चाहिये तथा सद्भावनाओं में तनिक भी दरार नहीं पडनी चाहिये। उनमें किसी भी प्रकार का परस्पर मतभेद उनके लिये अत्यन्त घातक हो सकता है। मेरा यह सन्देश उन तक पहुंचा देना। यह कह व्यास धृतराष्ट्र के साथ सहानुभूति प्रकट करने चले गये।

फिर एक दिन जब आधी रात का सन्नाटा था, समय भीष्म के कक्ष के द्वार की ओर टकटकी बांधे देख रहा था। वो द्वार धीरे धीरे खुलने लगा। भीष्म निकल कर सीधे गंगा तट पर गंगा में प्रवेश किया। कमर तक पानी में जाकर खडे रहकर गंगा की प्रार्थना कर गंगा में से अंजुलि में पानी भर पांडवों का अन्तिम संस्कार करने के लिये तिलांजली देने का प्रयत्न करने लगे। इतने में ही सहसा गंगा प्रकट हो गई। भीष्म ने माता को प्रणाम किया। गंगा बोली इस तर्पण की आवश्यकता नहीं है पुत्र। भीष्म बोले क्या मेरे प्रिय पांडु पुत्र अन्तिम संस्कार के अधिकारी नहीं है माते। गंगा बोली नहीं पुत्र। वो अन्तिम संस्कार के अधिकारी नहीं है पुत्र। कभी जीवित प्राणियों का भी अन्तिम संस्कार किया जाता है ? भीष्म ने पूछा क्या वे जीवित हैं। गंगा ने उत्तर दिया हां यह सब तुम विदुर से पूछो। गंगा ने भीष्म को आशीर्वाद दिया और अन्तर्ध्यान हो गई।

विदुर भीष्म का पीछा करते करते गंगा तट पर आये थे और यह सब देखा कि भीष्म क्या करते हैं। विदुर ने भीष्म को प्रणाम किया और बोले प्रणाम तातश्री। भीष्म बोले तुम जानते थे कि पांडव जीवित है और तुमने मुझे बताया तक नहीं और मुझे अन्धकार में रखा। विदुर बोले क्षमा चाहता हूं तातश्री परन्तु राजनीति की मांग यही थी। भीष्म बोले क्या राजनीति का महत्व भीष्म से अधिक है ? विदुर बोले यदि मैं आपसे यह कहूं कि शकुनि के बहकावे में आकर दुर्योधन पांडु पुत्रों को जीवित जलाने का षडयन्त्र रच रहा है तो आप क्या कहते ? भीष्म बोले विदुर यह तुम क्या कह रहे हो ? विदुर बोला मैं ठीक कह रहा हूं तातश्री। भीष्म ने कहा तो यह मैं अब जाकर धृतराष्ट्र से प्रश्न करूंगा ये सब क्या हो रहा है? विदुर बोला मुझे लगता है ज्येष्ठ भ्राताश्री धृतराष्ट्र को इस षडयन्त्र का पूरा ठीक ठीक पता नहीं होगा। भीष्म बोले तो मैं इसे दुर्योधन से पुछूंगा, मैं शकुनि से। विदुर बोले नहीं तातश्री। इसीलिये तो मैंने आपको पहिले नहीं बताया। राजनीति का ज्ञान तो मुझे आप ही से मिला है और आप ही ने मुझे यह बताया है कि राजनीति के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी जीभ में गांठ लगाये रखे और तभी बोले जब उसे बोलने का ठीक उचित अवसर मिले। यदि मैं आपको यह पहिले ही बता देता तो आप सीधे दुर्योधन के पास जाते। उससे षडयन्त्र तो टल जाता परन्तु हमें यह पता नहीं चलता शकुनि दुर्योधन को पांडवों के विरोध में कहां तक ले जा सकता है और हमें यह भी पता नहीं चलता स्वयं दुर्योधन पांडवों का अनिष्ट करने में कहां तक गिर सकता है? अब तो आप सब कुछ जान गये हैं भ्राताश्री। सोचो अब आपको क्या करना है? भीष्म बोले पर पांडव है कहां ? विदुर बोले वे जहां भी है सुरक्षित हैं तातश्री।

पांडवोंने सुरंग से बाहर निकलकर ब्राह्मण वेश धारण कर लिया ताकि वे कहीं पहिचान नहीं लिये जाये और पैदल-पैदल ही

वन की ओर वारणावत से बाहर चल दिये। चलते-चलते कुन्ती थक गई। युधिष्ठिर ने पूछा क्या बात है माताश्री। कुन्ती बोली थक गई हूं पुत्र थोडा विश्राम कर ले। सहदेव बोला थक तो मैं भी गया हूं थोडी देर यहीं विश्राम कर लें।

५०) हिडिम्बासुर का वध

वैशम्पायन कहते है जनमेजय इस प्रकार लगातार तीन दिनों तक भूखे प्यासे पांडव वन में अकेले पैदल पैदल चल रहे थे और सबके सब अत्यन्त क्लान्त हो चुके थे। युधिष्ठिर बोला हस्तिनापुर यहां से बहुत दूर नहीं है माते। यदि किसी आते जाते ने देख लिया तो हम लोग पहिचान लिये जायेंगे। सहदेव बोला परन्तु भैया माताश्री से अब चला नहीं जायेगा। कुन्ती बोली युधिष्ठिर मेरा पुत्र सहदेव अब थक गया है उसे थोडी देर यहां विश्राम कर लेने दो। युधिष्ठिर बोला जो आज्ञा माताश्री परन्तु वन में कहीं भी ठहरना उचित नहीं है माते। भीम बोला माताश्री मेरे कन्धे पर बैठे तथा नकुल, सहदेव मेरे गोद में चढ जाये और अर्जुन तथा युधिष्ठिर के कन्धे पर हाथ कर तीनों भाई फिर से वन की ओर तेजी से कदम बढाने लगे। कुन्ती यद्यपि पैदल नहीं चल रही थी। वह भीम के कन्धे पर बैठने के पूर्व ही अपनी क्षमता भर चल चुकी थी। पुत्र के कन्धे पर बैठकर इस प्रकार यात्रा करना कुन्ती के लिये सुविधाजनक नहीं था। वे लोग इस तरह यात्रा कर रहे थे जहां वन में एक पगडंडी भी नहीं थी। भीम लगातार कोई न कोई मार्ग बनाते हुये चल रहा था। वह कभी लपक कर चलता, कभी धीरे तो कभी उचकते हुये, कभी झुकता कभी झपटते हुये तो कभी कूद फांद करते हुये। इन लगातार धक्कों और झटकों से कुन्ती को लगता जैसे कोई उठक पटक कर रहा हो। अब भीम की पीठ पर बैठे बैठे कुन्ती थक गई और ऐसी इच्छा हो रही थी कहीं किसी समतल धरातल पर रूककर विश्राम कर ले परन्तु सुरंग से बाहर निकलने के पश्चात तो सबके मन में एक ही धुन थी किसी प्रकार वे उस स्थान से इतनी दूर निकल जाये जहां कोई उन्हे पहचानने वाला न हो और न ही कोई उनपर किसी प्रकार का कोई सन्देह कर पाये। ऐसे में वे कहीं रूके भी नहीं। भीम के प्रति कुन्ती के मन में अनुभूति जाग रही थी कि उसका यह पुत्र कितना शक्तिशाली और ऊर्जा से भरपूर है पर उसकी सामर्थ्य से अनभिज्ञ थी। भीम पवन पुत्र था। शक्तिशाली पवन वेग के समान।

माता और लघुभ्राता को चले उठाकर भीम, पवन पुत्र का वेग था पवन समाना।

चलते चलते वे हिडिम्ब वन में पहुंच गये जहां हिडिम्बासुर नामक दैत्य रहता था, नित्य प्रतिदिन वह मनुष्यों के मांस खाने की खोज में रहता था। वह राक्षस अत्यन्त भयानक, क्रूर अपनी बहिन हिडिम्बा के साथ रहता था और दिन भर सुरापान मदिरा तथा मनुष्य रक्त का पिपासा था। हिडिम्बासुर बडा ही क्रूर, पराक्रमी और मांसभक्षी था। उसका शरीर काला, आंखे पीली और बडी भयानक आकृतिवाला था। दाढी-मूंछ और सिर के बाल लाल अत्यन्त भीषण मुखवाला था।

कुन्ती बोली पुत्र भीम अब कोई हमें पहचाने या ना पहचाने अब हम यहां रूककर थोडी देर सब लोग विश्राम कर लें। यह मेरा आदेश है पुत्र। भीम बोला जो आज्ञा। भीम ने एक वटवृक्ष के नीचे कुन्ती को उतार दिया। नकुल-सहदेव भी उतर कर सब वहीं रूक गये। कुन्ती बोली आओ पुत्रों। पुत्र भीम गला सूख रहा है। जरा पानी पिला दे। भीम बोला मैं अभी लाता हूं माते। जो आज्ञा और यह कहकर वन में पानी ढूंढने के लिये चल पडा। चारों भाई और माता कुन्ती सब जोरों से थके हुये थे विश्राम के लिये लेटे थे कि लेटते ही सबकी आंख लग गई और जोरों से गहरी नींद आ गई।

भीम वन में जल लेने के लिये गये। वहां पर जल में रहनेवाले सारस पक्षियों की मधुर ध्वनि सुनने पर भीम एक जलाशय पर पहुंचे। वहां उन्होने जल पिया और अपने हाथ मुंह धोकर तरोताजा हुये और अपने दुपट्टे में जल भर कर वहां पर वटवृक्ष के पास आये। वटवृक्ष के पास पहुंच कर भीम ने देखा कि माता और सभी भाई निढाल सो रहे हैं। उन्हे जगाकर पानी पिलाना भीम ने उचित नहीं समझा। कदाचित वे लोग इतना थक चुके थे कि इस बात का विचार भी उनके मन से निकल गया कि वे लोग भूमि पर बिना कुछ बिछाये हुये ही लेट गये हैं।

भोजन की आवश्यकता अधिक है या निद्रा की। भूखे पेट को भोजन चाहिये और थके तन को विश्राम। भीम को लगा यदि ये लोग सो रहे हैं तो उन्हे जगाना उचित नहीं। अन्धकार घिर चुका था। रात भी गहरी हो गयी थी। घोर हिंसक वन था। भीम उस वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया और अपनी माता और भाइयों को सोया देखकर वहां जागकर पहरा देने लगा तथा बैठे-बैठे सोचने लगा।

जो राजमहल में रहते थे आज वो ही वन में बिना किसी बिछौने के वन में भूमि पर सोये पडे हैं। जिन्हे रेशमी बिछौनों पर भी नींद नहीं आती थी वे आज नंगी धरती की गोद में किस तरह सो रहे हैं? वाह रे भाग्य केवल उस दुष्ट दुर्योधन की दुर्नीति और चाल के कारण। वे लोग चुपचाप सब कुछ सहते जा रहे हैं। जब हम जानते हैं कि हमारे सारे कष्टों का कारण दुष्ट दुर्योधन ही है तो फिर हम लोग कायरों की भांति इस प्रकार रात के अन्धेरे में क्यों भागते फिर रहे हैं। वो भी छिपकर। हम पांचों भाई अस्त्र-शस्त्र लेकर सीधे सीधे उनसे लड क्यों नहीं लेते ? आत्मरक्षा तो कोई पाप नहीं है न ही कोई अधर्म। दुष्ट दलन कोई अपराध नहीं है। क्या हमें अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं है। मेरी माता यादव वसुदेव की बहिन और कुन्तीभोज की पुत्री हे। वे विचित्रवीर्य हस्तिनापुर सम्राट की पुत्रवधू हैं, स्वर्गीय पांडु की पत्नी और हमारे जैसे पुत्रों की माता होकर भी आज खुली धरती पर शयन कर रही है। मेरे लिये इससे बढकर दु:ख की बात और क्या हो सकती है ? जिन्हे अपने धर्मपालन के लिये तीनों लोकों का शासक होना चाहिये था वे मेरे ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर असाधारण पुरुष की भांति धरापर लेटे हुये हैं। हाय हाय। आज मैं अपनी इन आंखों से श्यामसुन्दर नर रत्न अर्जुन और देवताओं सम अश्विनीकुमारों की रूप सम्पति में मेरे भाई नकुल और सहदेव को आश्रयहीन की तरह वृक्ष के नीचे लेटे देख रहा हूं। दुरात्मा दुर्योधन ने हमें घर से निकाल दिया और लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न किया। यह तो हम लोग भाग्यवश बच गये। आज हम इस वृक्ष के नीचे हैं पता नहीं कहां जायेंगे, क्या भोगेंगे। कैसा पापी है दुर्योधन। भैया युधिष्ठिर मुझे दुर्योधन के वध की आज्ञा क्यों नहीं देते ? नहीं तो मैं आज ही उसे उसके कुटुम्बियों सहित मौत के घाट उतार दूं। अरे पापी जब युधिष्ठिर ही तुम पर क्रोध नहीं करते तो मैं क्या करूं ? भीम सोच सोच क्रोध से उन्मुक्त हो रहा था। लम्बी-लम्बी सांसे चल रही थी और मन ही मन दांत पीस रहा था फिर मन में विचार आया कि कृष्ण ने भी तो अपने मामा कंस का वध किया और यादवों को उसके अत्याचार से मुक्त करवाया। कृष्ण के पास तो कोई सेना नहीं थी वह तो सहसा अकेला ही था। वह तो अपने साहस और बल से मथुरापति कंस से जा टकराया। बिना किसी शस्त्र के उसने तो राज्य की सारी शक्ति को चुनौती दी थी। हम तो फिर भी पांच है। परन्तु इतना होने पर भी युधिष्ठिर का मन जाने कैसा है। वह अब भी दुर्योधन को अपना भाई ही मानता है। वह तो इन सबके किये हुये कृत्यों के लिये दुर्योधन को क्षमा भी कर देगा। वह तो अब भी उससे भाइयों जैसा प्रेम करते हैं। भीम को क्रोध आता है। वह युधिष्ठिर की इस उदार हृदयता, क्षमाशीलता तथा शान्तचित्तता को समझ नहीं पा रहा कि युधिष्ठिर मनुष्य है या कोई निर्जीव पाषाण ? उस पर किसी विरोध, षडयन्त्र, आघात अथवा कष्ट का कोई प्रभाव ही नहीं होता। युधिष्ठिर तो स्थिर बुद्धि है वह तो चिन्तन कर्म अपनी इच्छा और भावना के अनुसार चलता है। भीम का मस्तिष्क भी सोचते सोचते शिथिल होते जा रहा था। पलकें भारी होने लगी। उसकी चेतना स्वयं बता रही थी कि उसे भी नींद आ रही है तभी उसकी चेतना फिर लौटी कि उसकी माता और भाई वन में सर्वथा असुरक्षित सोये हुये हैं। उनके पास कोई शस्त्र भी तो नहीं था। वह सो तो नहीं सकता। चाहे कुछ भी हो उसे तो प्रहरी बनकर जागना ही है।

यहां से थोडी ही दूर पर तो वारणावत है। यहां तो बडी सावधानी से जागते रहना चाहिये। इतने में ही सहसा कुन्ती की आंख खुली और देखा भीम बैठे पहरा दे रहा है। कुन्ती बोली आओ बेटा भीम अब थोडी देर तू सो जा। भीम बोला यहां पर रीछ बहुत है पता नहीं कौन कब यहां पर आजाये ? कोई यहां वहां से आ निकले। माताश्री आप सो जायें। कुन्ती बोली यदि कोई संकट आ जाये तो तेरे भाइयों को जगा लेना। भीम बोला ऐसा क्या संकट आ जायेगा ? माताश्री जिसके लिये मुझे अपने भाइयों का विश्राम भंग करना पडे ? माताश्री जो सबके लिये संकट होगा उसके लिये तो मैं ही बहुत बडा संकट ही हूं। कुन्ती बोली ठीक है

पुत्र और कुन्ती फिर से सो गई।

हिडिम्बासुर ने गहरी अन्धेरी मध्य रात में शालवृक्ष पर बैठे बैठे उन चारों भाइयों को अपनी माता सहित लेटे देखा और मन ही मन कहने लगा आज मुझे ये पांच पांच मनुष्यों का मांस भोजन करने को मिलेगा और यह छठा तो पेड के नीचे बैठे बैठे क्या कर रहा है। उसने अपनी बहिन हिडिम्बा को आवाज दी और बोला क्या तुम देख नहीं रही हो आज हमारे इस वन में छ: छ: मनुष्य हमारे भोज के लिये आये हुये हैं। इनके पास जा और इन्हे मारकर मेरे पास ला। ऐसा लगता है कई दिन बीत गये मनुष्य रक्त पिये और मनुष्य का मांस खाये। हिडिम्बा ने जाने के लिये मना कर दिया पर फिर भी हिडिम्बासुर ने क्रोध कर उसे वहां उन मनुष्यों के पास जाने के लिये विवश किया और कहा कि मेरे लिये उनके मांस के भोजन का प्रबन्ध करो। पहले तो यह जो बैठा हुआ है इसको मार डाल फिर जो सोये हुये है उनका खात्मा कर डाल और हिडिम्बासुर ने उन सबको वृक्ष की ओट से अपनी बहिन को दिखाया। हिडिम्बा ने कहा तू क्यों नहीं जाता ? हिडिम्बा बोला मैं नहीं जाता। मैं इस वन का राजा हूं। मेरी आज्ञा का पालन करना तेरा काम है। मेरी सेवा करना भी मेरी ही आज्ञा है।

हिडिम्बा समझ गई इस क्षण उसका निस्तार नहीं है। उसे जाना तो पडेगा ही। वह अपने मन की ऊहापोह में भटकती उन मनुष्यों के निकट चली आयी। वह उस बैठे हुये मनुष्य की ओर बढी। वह एक वृक्ष के तने से टेक लगाये बैठा था। हिडिम्बा भीमसेन के निकट गई और उसे देखकर उसका मन बदल गया। वह उसपर मोहित हो गई। भीम किन्ही विचारों में लीन था। कितना मनमोहक, शरीर असाधारण रूप से हृष्ट पुष्ट, भोला भाला चेहरा। भुजायें बलिष्ठ और विशाल छाती। वह एकटक उसे निहारती रही। वह भीम को एक टक देखती रही। वह तो भूल ही गयी कि वह उसकी हत्या करने वहां पर आयी थी। उसकी हत्या करने के बजाय अपने आहत मन के लिये कुछ सान्त्वना पाने की अपेक्षा करने लगी। वह तो उसपर मुग्ध हो गई। सोचने लगी इस युवक का वर्ण श्याम है, लम्बी-लम्बी भुजाये है सिंह समान कन्धे हैं। रोम रोम में छवि छिटक रही है अवश्य ही मेरा पति होने योग्य है। मैं अब अपने भाई की क्रूरतापूर्ण आज्ञा नहीं मानूंगी क्योंकि <u>भ्रातृप्रेम से बढकर पतिप्रेम है</u> और मन ही मन उसे पति वरण करने लगी। इसको मारने से क्या लाभ इसको जीवित रखकर इसके साथ रहकर तो मैं बहुत समय तक सुख भोग सकती हूं। यह सोचकर वह अपने आप पीछे हट गई।

यह सोचकर हिडिम्बा ने मानुषी स्त्री का वेश धारण किया और अपना श्रृंगार कर भीम के पास जाकर खडी हो गई। दिव्य आभूषणों व वस्त्रों से सज्जित सुन्दरी हिडिम्बा ने मुस्कुराते हुये पूछा पुरुष शिरोमणे आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं ? और ये सोनेवाले मनुष्य कौन हैं ? यह बडी वृद्ध देवी कौन है। ये लोग इस घोर जंगल में किस तरह निशंक सो रहे हैं ? क्या इने पता नहीं कि इसमें कितने सारे बडे-बडे राक्षस यहां रहते हैं। यह तो हिडिम्ब राक्षस का ही वन है। मैं उसी की बहिन राक्षसी हिडिम्बा हूं। आप लोगों को मारकर आपका मांस खाने की इच्छा से ही उसने मुझे यहां भेजा है। मैं आपके इस देवोपम सौन्दर्य को देखकर आप पर मुग्ध हो गई हूं अब मैं आपके सिवा किसी और को अपना पति वरण नहीं कर सकती। आप धर्मज्ञ हैं जो उचित हो वह करें। आप मुझसे प्रेम करेंगे मैं आपकी इस नरभक्षी राक्षस से रक्षा करूंगी। हम दोनों साथ मिलकर इस पर्वत की गुफा में निवास करेंगे। मैं स्वेच्छानुसार आकाश में विचरण कर सकती हूं। आप मेरे साथ अतुलनीय भोग का आनन्द लें।

देख भीम के रूप को भूली अपना भान, प्रेम उदय मन में हुआ हटा न पाई ध्यान।
करे हिडिम्बा प्रार्थना अरे हृदय में पीर, महादेव वरदान दो वरे मुझे यह वीर।

भीम चौंका यह हमारा परिचय क्यों जानना चाहती है। क्या दुर्योधन के गुप्तचर हमारा पीछा करते हुये यहां तक फैले हुये हैं। इसने क्यों पूछा कि तुम कौन हो ? भूमिपर सोये हुये ये अन्य पुरुष कौन हैं ? पास में सोयी यह सौम्य नारी कौन है ? भीम बोला पहले अपना परिचय ठीक से मुझे दो। तुम कौन हो देवी और किस विपत्ति में फंसकर तुम यहां आई हो ? तुम्हारे लिये इतना ही

जान लेना काफी है कि ये सोये हुये चारों पुरुष मेरे भाई हैं और यह सौम्य नारी मेरी माता है। तुम इस भयंकर वन में क्या कर रही हो ? हिडिम्बा बोली मैं हिडिम्ब नामक नर भक्षक राक्षस की बहन हूं। वह इस क्षेत्र का स्वामी है। उसने मुझे तुम लोगों का वध करने के लिये भेजा है ताकि वह तुम लोगों का मांस भक्षण कर सके। लेकिन तुम तो कोई पेट भरने का खाद्य नहीं हो। तुम तो मेरे जीवन के स्थायी सुख हो। अब न तो मैं तुम्हारे प्राण लूंगी और न ही अपने भाई को ऐसा करने दूंगी। इससे पहिले कि हिडिम्ब मुझे ढूंढता हुआ यहां आ जाये तुम मेरे साथ चलो इस वनक्षेत्र में अनेक कन्दरायें है जहां तुम्हे कोई खोज नहीं पायेगा। अब तुम मुझे ग्रहण करो, मेरा वरण करो और मुझे भोगो।

भीम बोला सुन्दरी इच्छा होने पर भी मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता। यह सुनकर हिडिम्बा हतप्रभ सी खडी रह गई कि संसार में ऐसे पुरुष का भी अस्तित्व है जो किसी स्त्री के काम आह्वान का भी तिरस्कार कर सकता है। हिडिम्बा ने तो आज तक कुत्ते के समान लपलपाती जिव्हा वाले ही पुरुष देखे थे किन्तु यह पुरुष तो उसे कह रहा है कि वह उसे ग्रहण नहीं कर सकता। भीम ने कारण बताया कि निर्दोष बडे भाई के अविवाहित रहते परिवार में छोटे भाई का विवाह करना परिवेदन कहलाता है और यह पाप है शोभने। पता नहीं मनुष्यों ने अपने विवाह के लिये कैसे कैसे नियम बना रखे हैं। वह स्त्री और पुरुष की आवश्यकता को नहीं समझता। भीम बोला मैं मेरी सोयी हुई माता और अपने भाइयों को असुरक्षित छोडकर काम लोलुप होकर तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूं ?

हिडिम्बा बोली तुम इन सबको जगाओ। मेरा भाई हिडिम्ब बहुत देर तक यहां मेरी प्रतीक्षा नहीं करेगा। विलम्ब होने पर वह स्वयं यहां आजायेगा और तुम में से किसी एक को भी जीवित नहीं छोडेगा। अत: तुम सब लोग मेरे साथ भाग चलो। तुम्हारे सब की रक्षा का दायित्व मेरा है। भीम बोला तुम उसकी तनिक भी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे भाई से भयभीत नहीं हूं देवी तभी उसी समय वृक्षों के झुरमुट में से एक विकराल आकृति निकली। एक दीर्घाकार व्यक्ति, शरीर से हृष्टपुष्ट, शक्तिशाली, वेशभूषा से और भंगिमा से कुरुप और भयंकर लग रहा था। पेट का क्षेत्रफल भी बहुत अधिक था सिर के केश सूखे खडे थे। कंठ में अस्थियों की माला पहन रखी थी। उसे देखकर हिडिम्बा बोली मेरा भाई हिडिम्ब आ गया है भाग चलिये यहां से अब भी समय है।

वह राक्षस हिडिम्बा पर ही झपटा और बोले ठहर दुष्टा। मैं वहां आहार की प्रतीक्षा में भूखा बैठा हूं और तू यहां आखेट से ही रंगरेलियां खेल रही है हिडिम्बा बोली इसे तो मैं अपना हृदय दे चुकी हूं। प्रेम जातिका भेद नहीं मानता। भीम ने सोचा इस राक्षसी हिडिम्बा की भी रक्षा करना उसका धर्म है। नारी जाति पर हाथ उठाते लज्जा नहीं आती तुम्हे। वह स्त्री है और प्रत्येक असहाय स्त्री की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है। फिर यह तो हमारी रक्षा का प्रयत्न कर रही है। यह सुनकर हिडिम्ब घूंसा तानकर भीम की ओर झपटा तब भीम ने एक लात उसे मारी। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे से युद्ध करते गुंथ गये। लात लगने से हिडिम्ब मुंह के बल भूमि पर गिरा। हिडिम्ब अभी उठा भी नहीं था कि भीम उसे जांग से पकड घसीटता हुआ दूर तक ले गया। भीम ने अब उसे भूमिपर पटक कर जोरों से घूंसे से मारना शुरू किया। हिडिम्बा का मन इतना विह्वल हो रहा है। हिडिम्बा को लगा उसके समाज में प्रेम के नाम पर केवल अपना सुख प्राप्त करना है कभी कभी सुख का आदान प्रदान देखा था किन्तु प्रेम में दूसरे के सुख के लिये अपने प्राणों से खेलना पहली बार देखा था। हिडिम्बा का एक तरफा प्रेम और गहराता गया। हिडिम्ब लडते-लडते भीम की पकड से छूट गया और भूमिपर गिर पडा और भीम को परे धकेल कर उछल कर खडा हो गया। हिडिम्ब आक्रमण करते हुये हिंसक पशु के समान दहाडा और भीम पर कूदा। भीम ने उसे दबोच लिया। हिडिम्ब उससे छूट जाने का प्रयत्न करने लगा। इतने में ही अर्जुन बीच में लडने को तैयार हो गया। कुन्ती ने रोक दिया नहीं इसे अकेले के साथ अकेले को ही युद्ध करने दो। भीम ने हिडिम्ब की ग्रीवा अपनी भुजाओं में दबा ली। अर्जुन बोला हमें अब आगे की यात्रा करनी है अब तुम इससे अधिक क्रीडा मत करो। लडाई के कोलाहाल से कुन्ती भी जाग गई और उसके सारे पुत्र और वे यह सब देख रहे थे। भीम ने हिडिम्ब को धरती पर पटक दिया तथा उसके वक्ष पर अपना घुटना टेककर उसे दबा दिया। भीम ने उसे कई बार घूमाया और फिर भूमि पर

दे मारा। हिडिम्ब ने मुख से रक्त वमन किया और हिडिम्ब अब एक निष्क्रिय लोथ हो गया। भीम ने देखा अब उसके प्राण शेष नहीं है। हिडिम्ब के शरीर में कोई स्पन्दन नहीं है। भीम हिडिम्ब का वध कर अपनी माता और भाइयों के पास आया।

५१) हिडिम्बा का भीम से विवाह और घटोत्कच की उत्पत्ति

भीम हिडिम्बा के निकट आकर बोला जिस राक्षस ने तुम पर हाथ उठाया था उसको मैंने यमपुर भेज दिया। अब तुम निर्भय होकर विचरण कर सकती हो देवी। कुन्ती ने कहा तू ठीक तो है ना भीम। हिडिम्बा कुन्ती से बोली प्रणाम देवी यह राक्षस जो मारा गया वह मेरा भाई था। यहां मैं अपने नरभक्षी भाई के आदेश से आप लोगों का वध करने आयी थी परन्तु आपके पुत्र को देखकर कामप्रेरणा से उसकी वशवर्तिनी हो गई हूं। मैंने उसे पति रूप में वरण कर लिया है अब आप मुझे आपके इस पुत्र के लिये स्वीकार करें। हिडिम्बा की याचना सुनकर कुन्ती बोली हम तो इस वन में किसी मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। क्या भीमने भी तुम्हे स्वीकार कर लिया है? हिडिम्बा ने कहा अभी नहीं। राक्षस समाज में तो किसी भी स्त्री को अधिकार है कि वह अपने मनोनीत पुरुष को स्थायी अथवा अस्थायी रूप से अपना पति स्वीकार कर ले। कोई भी पुरुष उसकी इच्छा का विरोध नहीं करता। कुन्ती जानती थी कि भीम पर्याप्त बलशाली है पर आज पहली बार कुन्ती ने भीम को इतना शक्तिशाली और सामर्थ्यवान पाया। आज तक तो कुन्ती उसे बालक ही समझ रही थी। पर कुन्ती को अब लगा कि भीम युवा हो गया है। भीम को देखकर युवतियों के भी मन मचलने लगे थे। पर यह राक्षसी तो अशुद्ध, असंस्कारी, अनपढ़ प्रकृति पुत्री है। पर मां को भी इसी से तो मालूम हुआ कि अब उसका पुत्र युवा हो गया जैसे माली खिली हुई कली को देखकर जान जाता है कि वसन्त आया है। हिडिम्बा बोली हमारे समाज में तो प्राय: प्रत्येक पुरुष अपने बल से अपने लिये स्त्री प्राप्त करता है। स्त्री के पिता तथा भाइयों को पराजित कर उनका वध कर, स्त्री की इच्छा के विरुद्ध वह उसे बलपूर्वक उठा ले जाता है। मैं तो स्वेच्छा से अपने पतिरूप में आपके पुत्र का वरण कर रही हूं। स्त्री जिससे प्रेम करती है उसके सम्बन्धों से ही उसके रिश्ते बन जाते है उसीसे तो सभी रिश्ते निर्धारित होते है। पति के मित्र उसके मित्र और पति के शत्रु उसके शत्रु बन जाते है।

कुन्ती का असमंजस बढते जा रहा था। वह देख रही थी कि युवती शुद्ध प्रकृति निश्चल स्वभाव और सरल थी। वह अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं को सहज स्वीकार कर रही है। वह दुराव और परिष्कार नहीं जानती है। वह निश्चत रूप से भीम की अनुरागिनी हो गई है और निर्द्वद्व शब्दों में उसे स्वीकार कर रही है। वह कदाचित विभिन्न समाजों के भेदों और विभाजनों को नहीं समझती है। हिडिम्बा किसी पांडु पुत्र की धर्म पत्नी होने योग्य संस्कारों से सम्पन्न नहीं थी। वह कुरुवंश की वधू कैसे हो सकती है ? वह भीम को ऐसे ही विवाह करने की अनुमति कैसे दे दे। इस संकट काल में तो वह अपने पुत्रों के विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकती। यदि पुत्रों के साथ वधुओं की रक्षा और भरण पोषण की तो आवश्यकता भी जुड गई तो समस्या और भी गम्भीर होती जायेगी। जितनी संख्या बढती जायेगी सुरक्षा का कार्य उतना ही जटिल हो जाता है। पांडव तो अपने अस्तित्व को गुप्त रखना चाहते हैं। ऐसे में कुन्ती यदि बहुएं बनाती गई तो हस्तिनापुर वासियों को भ्रम में रखना कठिन होते जायेगा। फिर युधिष्ठिर के अविवाहित रहते वह भीम को विवाह की अनुमति कैसे प्रदान करे। अपने ही परिवार में परिवेदन की प्रथा कैसे शुरू करे ? क्या वह भीम को केवल इसलिये परिवेत्ता बन जाने दें कि एक राक्षसी उसे देखकर काम विह्वल हो गयी ? एक असंस्कारी नारी की प्राकृतिक भूख अपने परिवार तथा समाज की मर्यादायें तोड सकती है। कुन्ती समझ नहीं पा रहीं थी कि वह क्या करे ? उसके अपने पुत्रों का क्या परामर्श है उन्हे तो हस्तिनापुर की सीमाओं से कहीं दूर निकल जाना है जहां दुर्योधन उनके होने की कल्पना भी नहीं कर सके।

हिडिम्बा तो वन में रहनेवाली मृगी के समान काम विह्वल हो भीम के पीछे-पीछे चलने लगी। कुन्ती के मन में इस अबोध तरूणी के प्रति ममत्व का भाव जगा। यह सरला तो इस प्रकार काम से अभिभूत थी कि कदाचित वह यह जानती ही नहीं थी

कि वह क्या कर रही है? कुन्ती बोली पुत्री तुम हमारे साथ कहां जाओगी ? हिडिम्बा ने आँखों में अश्रू भर कहा हे देवी आप मुझे रोके नहीं। आपके पुत्र को नहीं पा सकती तो मैं जीवित नहीं रह पाऊंगी। मैंने अपने मनोनीत पति को पाने के लिये अपने भाई की बलि दी है। मैं आपकी और आपके परिवार की उनके सब की भरपूर सेवा करूंगी। सारे कामकाज करूंगी। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों का धर्मसम्मत सामाजिक विधान है विवाह।

हिडिम्बा बोली यदि आपके परिवार को किसी भी कारण से मैं स्वीकार नहीं हूं तो मैं अपने पति को लेकर अलग से आप लोगों से कहीं दूर चली जाऊंगी। कुन्ती बोली हिडिम्बा मुझे इसी बात का तो भय है कि तुम हमारे परिवार में जुडकर उसकी बुद्धि तथा विकास के स्थान पर उसे विग्रह कर दोगी। मेरे आज ये पांच पुत्र सर्वथा एक हैं संयुक्त हैं जिनमें आपस में किसी का भी किसी से रंचमात्र भेद नहीं है तुम उन सबको तिनके तिनके के समान बिखेर दोगी। हिडिम्बा बोली तो इसमें अनुचित क्या है माते ? प्रत्येक दम्पति का अपना एक घर होता है। वन के सारे पशु पक्षी भी तो इसी तरह रहते हैं। यदि कोई दम्पती अपने माता-पिता भाई बन्धुओं से दूर रहकर एकान्त वनों, पर्वतों और सरोवरों में विहार करे तो यह कोई गलत या पाप तो नहीं है ? क्या आपके समाज में यौवन का सुख भी अपराध है ? क्या काम सुख अधर्म है माते ? कुन्ती सुनकर सहम गयी और सोचने पर विवश हुई इस अबोध कन्या के प्रति कैसा विरोध और आक्रोश। इसकी बुद्धि तो सीमित है, इसका ज्ञान सीमित है। इसका संसार वन के पशु पक्षियों के समान ही परिमित है। मानव समाज के परिवार के साथ का आचार यह अभी तक नहीं जानती। यह स्वार्थ वृत्ति और भोग प्रवृति से प्रेरित है।

कुन्ती बोली सुनो हिडिम्बा मनुष्य कोई वन में बसनेवाला पशु पक्षी नहीं है। उसकी आवश्यकतायें, बुद्धि तथा मर्यादायें वन के पशु-पक्षियों से कहीं अधिक विस्तृत व्यापक तथा उदात्त है। पशुपक्षियों को प्रकृति ने बहुत सीमित बुद्धि दी है। उनका जीवन केवल अपनी दम्पती तक सीमित है, नर और मादा तक सीमित है तथा उनका लक्ष्यमात्र सन्तानोत्पत्ति है। मानव केवल दम्पती ही नहीं परिवार बनाता है, समाज बनाता है। मनुष्य को प्रकृति ने पशुपक्षियों की तुलना में कहीं अधिक बुद्धि विकसित की है। अत: उसके दायित्व का घेरा भी अधिक विस्तृत है। यहाँ हमारी आवश्यकता केवल पति अथवा पत्नि से पूर्ण नहीं होती। हमें परिवार के अन्य सदस्यों माता, पिता, बहन तथा अन्य सम्बन्धियों की भी आवश्यकता होती है। अत: उनके प्रति हमारा दायित्व भी होता है। यदि तुम मेरे इस पुत्र को लेकर अलग से विहार करती फिरोगी, भोग में ही रत रहोगी तो हमारे परिवार का विकास सम्भव नहीं होगा बल्कि उसका ऱ्हास होगा। इस पर केवल सन्तान उत्पन्न करने का ही दायित्व नहीं है जो यह तुम्हारे साथ चला जाये। इस पर अपनी माता, भाइयों के भरण-पोषण का भी दायित्व है, अन्य सम्बन्धियों का भी दायित्व है। इसे तो अपने समाज और राज्य के विषय में भी बहुत कुछ सोचना है।

सहदेव ने परिहास में कहा जोडी तो अच्छी रहेगी माताश्री। भीम बोला आपके प्यार ने इसे बहुत बिगाड दिया है। युधिष्ठिर बोला सहदेव ने तो ठीक ही कहा अनुज। भीम बोला अब आप भी भ्राताश्री। हिडिम्बा युधिष्ठिर से बोली मुझे अपने चरणों में शरण दे दीजिये। कुन्ती ने युधिष्ठिर से पूछा पुत्र इसमें कोई आपत्ति तो नहीं ? युधिष्ठिर बोला नहीं माताश्री कोई आपत्ति तो है ही नहीं। यह तो हम सभी ने देखा कि भाई भीम से युद्ध करते समय युद्ध में यह राक्षस कन्या मेरे अनुज का साथ दे रही थी तो इस कारण इसका भी भीम पर अधिकार हो जाता है परन्तु भीमसेन को हम यहां तो नहीं छोड सकते और इस राक्षस कन्या का निर्वाह हमारे साथ कठिन लगता है। हिडिम्बा बोली यदि आपके ज्येष्ठ पुत्र का यही विचार है तो हे देवी मुझे अपने चरणों में प्राण त्यागने की आज्ञा प्रदान करें परन्तु जन्म पर तो किसी का अधिकार नहीं होता। तो फिर आपके ज्येष्ठ पुत्र मुझे मेरे जन्म का दंड क्यों दे रहे है। प्रेम अवश्य मेरा है और यदि इसमें कोई खोट हो तो अवश्य मुझे दंडित करे। कुन्ती बोली हिडिम्बा मेरा पुत्र भीम सदैव ही तो तुम्हारे साथ रह नहीं सकता। हिडिम्बा बोली मैं यह जानती हूं देवी। सन्तानवती होते ही आपके पुत्र को आपके पास

लौटा दूंगी। कुन्ती बोली युधिष्ठिर धर्म क्या कहता है पुत्र ? युधिष्ठिर बोले आप जैसी माता का आदेश ही परम धर्म है। हिडिम्बा बोली आपके चरणों में सादर प्रणाम मेरी रक्षा करें।

क्या कुन्ती अब भीम को राक्षस विधि विवाह करने की सम्मति दे और हिडिम्बा से बोली हमें तुमसे न तो कोई विरोध है और न ही कोई आपत्ति। हम तुम्हे तनिक भी कष्ट नहीं देना चाहते। तुम्हारे सुख के लिये हमसे जो कुछ करना हमारे वश में है वह हम करेंगे। युधिष्ठिर के मन में भी काफी धर्मसंगत विचारों का मन्थन चल रहा था। उन्हे यहां अनिश्चित काल तक तो रहना नहीं था तब तक अपने आपको छुपाये रखना था। इस दृष्टि से भी उन्हे किसी अपरिचित व्यक्ति को अपने निकट नहीं आने देना था। वे लोग तो स्वयं ब्राह्मणों तपस्वियों का रूप धारण कर गोपनीय ढंग से रहें। कोई भी उनपर सन्देह नहीं करेगा। प्राणों की रक्षा से भी अधिक श्रेयस्कर धर्म की रक्षा है।

युधिष्ठिर हिडिम्बा से बोला तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिये राक्षस विधि से भीम से तुम्हारा विवाह हो सकता है और गर्भाधान तक की अवधि तक तुम हमारे अनुज के साथ संग रह सकती हो। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात वह तुम्हें छोडकर हमारे पास आजायेगा। किन्ही कारणों से हम अपना परिचय गुप्त रखना चाहते हैं इसलिये जब तक हम स्वयं तुम्हें बताना नहीं चाहे तुम हमारा परिचय जानने का प्रयत्न नहीं करोगी। हमारी सभी सूचनाओं को तुम गोपनीय रखोगी। हिडिम्बा बोली मुझे आपके सब नियम शर्त स्वीकार हैं। आप मेरा विश्वास करें जब भी आप लोग याद करेंगे मैं आजाऊंगी और आप जहां कहेंगे, पहुंचा दूंगी। बडी से बडी कठिनाई और आपत्ति के समय में भी आपकी सहायता करूंगी। जो आपातकाल में भी अपने धर्म की रक्षा करता है वह श्रेष्ठ धर्मात्मा है। भीम बोले जब तक पुत्र नहीं होगा तभी तक मैं इसके साथ रहूंगा। पुत्र हो जाने पर इसका त्याग कर चले जाऊंगा।

हिडिम्बा ने यह भी स्वीकार कर लिया और माता कुन्ती ने सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव का आशीर्वाद दिया तथा भीमसेन और हिडिम्बा का गन्धर्व विवाह हो गया।

नारी हो या दानवी रखा प्रेम का मान, माता कुन्ती ने उसे दिया वधु सम्मान।

कुन्ती ने आकाश की ओर देखा तथा उसके मुखपर एक वक्र मुस्कान उभरी कौन जानता था कि उसे अपनी पहली पुत्र वधू इस प्रकार मिलेगी। युधिष्ठिर अपने शेष भाइयों सहित माता कुन्ती को लेकर वन के आगे की यात्रा को प्रस्थान कर गये। यहां हिडिम्बा भीम को अपने साथ ले आकाश मार्ग से हिडिम्ब वन में विहार के लिये उड गई।

अब हिडिम्बा अत्यन्त सुन्दर मनमोहक रूप धारण कर दिव्य आभूषणों से आभूषित हो पहाडों के शिखरों पर, वनों में, तालाबों में, गुफाओं में, नगरों में और दिव्य भूमियों में विहार करने लगी। समय आने पर उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। विशाल नेत्रोंवाला, बडा मुख, नुकीले कान, भीषण शब्द करता हुआ, लाल लाल होंठ, तीखे दांत, बडी बडी भुजायें, विशाल शरीर, अपरिमित शक्ति और माया का खजाना। वह क्षणभर में ही राक्षसों के समान बडा हो गया और थोडे ही समय में युवा, सर्वास्त्र विद और वीर बन गया। राक्षसियां तुरन्त गर्भ धारण भी कर लेती है, बच्चे पैदा कर देती है और चाहे जैसा रूप धारण करने में भी समर्थ होती है। उस बालक के सिर पर बाल नहीं थे। माता-पिता ने उसका घट अर्थात सिर उत्कच यानि केश रहित देखकर गंजा है उसका नाम घटोत्कच रख दिया। घटोत्कच पांडवों के प्रति बडी ही श्रद्धा और प्रेम रखता था और ये भी अपने पुत्र के प्रति बडा स्नेह रखते थे।

हिडिम्बा ने सोचा अब भीमसेन की प्रतिज्ञा का समय पूरा हो गया है। घटोत्कच ने माता कुन्ती और पांडवों को नमस्कार किया और कहा आप लोग मेरे पूजनीय हैं। आप नि:संकोच मुझे अपनी सेवा करने का अवसर दें। कुन्ती ने कहा तू कुरुवंश में उत्पन्न हुआ है और स्वयं भीम के समान बलशाली है। इन पांचों के पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ होगा। तू समय आने पर सबकी सहायता करना। घटोत्कच बोला पितामही जब भी आप लोगों को मेरी कोई आवश्यकता हो तो मुझे स्मरण करना मैं आ जाऊंगा। अब

मैं मेरी माता के पास चलता हूं और यह कहकर उसने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। देवराज इन्द्र ने कर्ण की शक्ति का आघात सहने के लिये घटोत्कच को उत्पन्न किया था। घटोत्कच का विवाह प्राग्ज्योतिषपुर (गौहाटी) आसाम में मूर दैत्य की पुत्री मौर्वी से हुआ। कालान्तर में इसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम बबरीक था और जिसने श्रीकृष्ण कृपा से महाभारत का युद्ध प्रत्यक्ष रूप से देखा था। यही बबरीक आगे चलकर शीश दानी, नीले घोडे का सवार, श्याम खाटू के नाम से जाना गया।

आगे चलकर पांडव सिर पर जटायें रखकर ब्राह्मणों का वेश धारण कर अपनी माता के साथ विचरने लगे। एक बार वे वन में शालिहोद्र मुनि के आश्रम में स्वाध्याय में लगे हुये थे उसी समय श्री वेदव्यास उनके पास आये। व्यासजी ने कहा युधिष्ठिर मैं तुम्हारे पर आई हुई यह विपत्ति पहले से ही जानता था। मैं जानता था कि दुर्योधन आदि ने अन्याय करके तुम्हे राज्य से निर्वासित किया है। मैं तुम्हारे हित साधन के लिये यहां आया हूं। तुम लोग इस विषादमयी परिस्थिति से दुखी मत होना। यह भी बीत जायेगी। ये सब तुम्हारे सुख के लिये ही हो रहा है। मेरे लिये तुम और धृतराष्ट्र पुत्र समान ही हो फिर भी तुम लोगों की दीनता देखकर स्नेह होता है। यहां से पास ही एक बडा रमणीय नगर है वहां तुम लोग छिपकर रहो और वहां मेरे आने की प्रतीक्षा करो। पांडवों को इस प्रकार आश्वासन देकर और उन्हे वे साथ लेकर एक चक्री नगरी की ओर चल पडे। एक चक्र नगरी जलगांव जिल्हे में ऐरोन्डल नामक नगर में है। वहां पहुंचकर उन्होने कुन्ती से कहा कल्याणर तुम्हारा यह पुत्र युधिष्ठिर बडा ही धर्मात्मा है। यह धर्मानुसार सारे भूमंडल को विजय कर राज्य करेगा। तुम्हारे और माद्री पुत्र महारथी होंगे और अपने राज्य में बडे सुख शान्ति से वास करेंगे। ये लोग कई राजसूय यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ, बडे यज्ञ करेंगे तथा अपने रिश्तेदारों और मित्रों को सुखी करेंगे। अपने परम्परागत राज्य का चिरकाल तक उपभोग करेंगे। व्यासजी ने इस प्रकार कहकर कुन्ती और पांडवों को एक चक्र नगरी में एक ब्राह्मण के घर में अतिथि रूप में ठहरा दिया और मैं फिर आऊंगा यह कहकर वे वहां से चले गये। वेश और काल के अनुसार सोच समझ कर ही कोई भी कार्य करना। तुम्हे बडा आनन्द प्राप्त होगा। सबने हाथ जोड उनकी आज्ञा स्वीकार की।

५२) एक चक्र नगरी में पांडव और ब्राह्मण परिवार पर दया

हिडिम्बासुर का वध पांडवों का कोई लक्ष्य नहीं था वो तो केवल मील का एक पत्थर था जिसे पांडव भीम को हिडिम्बा के साथ छोडकर आगे निकल गये परन्तु हस्तिनापुर तो अपनी समस्याओं की डोरी से बन्धा वहीं खडा है जहां खडा था। वहां केवल विदुर हैं जहां कर्तव्य ने उसे अपना विश्वासपात्र माना है। इसलिये उसके कन्धे पर जो बोझ है वो बहुत भारी है। भीष्म विदुर के आवास में आते हैं।

आईये तातश्री आप। प्रणाम। विराजिये। भीष्म बोले मैं यहां विराजने नहीं आया हूं। इतने में ही विदुर पत्नी पारसंवी आती है और कहती है प्रणाम तातश्री। भीष्म ने आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव। भीष्म बोले तनिक अपने पति से मुझे यह पूछ कर बताओ कि यह मुझे क्यों नहीं बताता कि कुलवधू कुन्ती और मेरे वीर पांडव कहां है ? विदुर बोले यह बात तो स्वयं आप मुझसे भी पूछ सकते थे तातश्री। भीष्म बोले पूछ तो अवश्य लेता परन्तु तुम बताते जो नहीं हो। मैं यह सुनते सुनते उब चुका कि वो जहां कहीं भी है सुरक्षित हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि वो है कहां ? और तुम मुझसे राजनीति की बातें मत किया करो विदुर। राजनीति स्वयं मैंने ही तुम्हे सिखाई है। विदुर बोले परन्तु आपने तो आदर्श राजनीति सिखाई है तातश्री और यह युग आदर्शों का युग नहीं है। आदर्शों की रक्षा के लिये बहुत कुछ करना पडता है। आपने जो राजनीति सिखाई है उसमें लाक्षागृह का कोई अध्याय नहीं था। भीष्म बोले मैं हस्तिनापुर के किसी मन्त्री के घर नहीं आया हूं। मैं अपने विदुर के यहां यह पूछने आया हूं कि मेरे प्रिय पांडव कहां है? विदुर बोले वे एक चक्र नगरी में है तातश्री। पांडवों के बारे में जानने उत्सुक आये पितामह भीष्म को न चाहते हुये भी और कोई उपाय नहीं देकर पांडवों के बारे में बताना पडा। सुनकर भीष्म को सन्तोष हुआ।

भीष्म बोले परन्तु यदि मैं तुमसे यह कहूं कि तुम मेरे एक चक्र नगरी जाने का प्रबन्ध करो तो। विदुर बोले मन्त्री विदुर तो तुरन्त प्रबन्ध कर देगा तातश्री परन्तु पुत्र विदुर इसका विरोध ही करेगा। यदि यह बात अभी खुल गई कि वे कहां है तो मेरे सारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा तातश्री। भीष्म बोले तो वचन दो कि अब से उन्हे पांडवों का क्षण-क्षण का समाचार देते रहोगे। विदुर बोले जो आज्ञा तातश्री। भीष्म बोले वे एक चक्र नगरी में कर क्या रहे है विदुर ? विदुर बोले एक चक्र नगरी में चारों पांडव ब्राह्मण वेदपाठी के घर में अतिथि की भांति रह रहे हैं और घर-घर से भिक्षा मांग मांग कर अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

काल बडा बलवान है सबको नाच नचाये, पांडु पुत्र भी मांगते भिक्षा घर-घर जाये।

उस ब्राह्मण के घर चारों पांडव अपनी माता कुन्ती के साथ अतिथि की भांति रह रहे है। चारों पांडव दिन में भिक्षाटन के लिये ब्राह्मण वेश में जय नारायण जय नारायण कर निकल जाते थे। प्रत्येक घर में ये भिक्षाम् देहि भिक्षाम देहि कहकर भिक्षा एकत्रित कर लाते थे और कुन्ती उस ब्राह्मण के घर कामकाज में हाथ बंटाती रहती थी। यही उनकी दिनभर की दिनचर्या थी और समय बीत रहा था किसी प्रतीक्षा में। वह ब्राह्मण उस घर में एक छोटे बालक, अपनी पुत्री और पत्नी के साथ वहां रहता था। पांडव भिक्षा लेकर आये और बोले तो प्रतिदिन की भांति कुन्ती ने कहा आपस में बांट लो। कुन्ती खाना तैयार कर अपने सभी पुत्रों को खिलाती है। इतने में सहदेव बोला भीम भैया के बिना खाना अच्छा नहीं लगता। युधिष्ठिर बोले अब तक तो भीम को आ जाना चाहिये था। अर्जुन ने कहा भाभी मन लगाकर खिलाती होगी। युधिष्ठिर बोले सहदेव तुम उन्हे इस प्रकार मत छेडा करो। सहदेव बोला यदि वो मुझे इतना चाहते न होते तो मैं उन्हे कभी नहीं छेडता। परन्तु माताश्री अब तो यह है कि उनके बिना जी ही नहीं लगता।

भीम हिडिम्बा के साथ हिडिम्ब वन में अपने नन्हे शिशु पुत्र के साथ हिडिम्बा को बोल रहा है। हिडिम्बा अब तो जाना ही पडेगा। यह पुत्र जितना मेरा है उतना ही तुम्हारा भी है। भीम बोला पुत्र पर तो माता का अधिकार अधिक होना चाहिये। हिडिम्बा बोली तुम पुरुष होकर भी यह कह रहे हो ? भीम बोला हां कदाचित इसलिये कह रहा हूं कि मैंने अपनी मां की गोद देखी है। मैंने मां की गोद बहुत पास से देखी है। वो असीम होती है। उसमें सारा जगत समा जाता है परन्तु ऐसा नहीं लगता कि वो भर गई है। मां की गोद सागरों को अपने में समेटे हुये है पर छलकती कभी नहीं। जगत में मां से आदरणीय अधिक कोई नहीं है। स्वयं नारायण भी मानव रूप में जन्म ले तो मां की झिडकियां खाकर अपने आपको धन्य समझेंगे। बच्चे के लिये मां की गोद आवश्यक है जैसे पौधे के लिये भूमि आवश्यक है और मैं अपने लिये उस पौधे की उससे उसकी भूमि नहीं छीन सकता।

पांडव खाना खा ही रहे थे कि इतने में भीम एक चक्र नगरी में वहां पांडवों के पास आ गया। उसे आया देख सभी ने अपने-अपने खाने में से उसके लिये भाग निकालकर भीम के खाने की थाली परोस दी। कुन्ती बोली आयुष्मान भव पुत्र भीम। जा स्नान कर आ और भोजन कर ले। भीम बोला जब आप अपने हाथ से कौर खिलायेगी तो स्नान की क्या आवश्यकता है माताश्री और यह कहकर बिना स्नान किये ही भीम खाने को बैठ गया।

धर्म और न्याय दोनों अभिन्न है। अन्तत न्याय ही धर्म है। आश्रम में धर्म मिल सकता है और न्याय बोध किन्तु न्याय तो राजसभा में ही मिल पायेगा। न्याय के साथ दंड विधान भी जुडा हुआ है। न्याय के लिये दुष्ट दलन करना पडता है और धर्म के लिये आत्मदमन। न्याय मांगा जाता है और धर्म साधा जाता है। न्याय में अधिकार है धर्म में दायित्व। धर्म ऋषि देता है और न्याय राजा। राजा यदि न्याय न करे तो वह धर्म च्युत होता है और ऐसा तो उसी राजसभा में होता है जिसका सम्बन्ध आश्रम से विच्छिन्न हो चुका हो। जिस राजसभा में ऋषि का सम्मान नहीं होता वहां न तो धर्म होता है और न न्याय ही। धर्म और न्याय सहयात्री हैं किन्तु अभिन्न नहीं। युधिष्ठिर ने न्याय और धर्म के अन्तर को जाना। युधिष्ठिर का मन परिस्थितियों के अनुकूल हो चुका था। पांडव प्रत्येक स्थिति को सहज ही स्वीकार कर लेते थे, हर नये व्यक्ति को अंगीकार कर लेते थे। चाहे हिमालय क्षेत्र का कोई आश्रम हो या हस्तिनापुर का राजप्रासाद, किसी प्रासाद का खंडहर हो या वारणावत का लाक्षागृह, हिडिम्ब निर्जन वन

हो या ब्राह्मणों की एक चक्र नगरी वे इन सब स्थानों पर समान भावों से सहज और आश्वस्त थे।

हमें प्रभु ने बनाया है और इसलिये बनाया है क्योंकि हम लोग उसके लिये उपयोगी हैं। जब तक उसके लिये हमारा कोई प्रयोजन है वह हमारी रक्षा करता रहेगा और जिस दिन उसके लिये हमारा कोई उपयोग नहीं रह जायेगा उस दिन हमारी रक्षा कोई भी नहीं कर पायेगा। जब तक तुम यह मानते हो कि अपनी रक्षा के लिये तुम स्वयं उत्तरदायी हो तब तक अपनी रक्षा तुम स्वयं ही करो। ईश्वर ने प्रत्येक जीव को अपने जीवन की रक्षा की इच्छा और विभिन्न प्रकार के साधन दिये है और सब अपने अपने धर्म का निर्वाह करते है। नियम और धर्म तो सबके लिये एक ही होते है किन्तु अवस्था का परिस्थिति का अन्तर होता है। यह जीवन भी ईश्वर का दिया हुआ एक खिलौना है। ईश्वर न तो हममें पृथक है और न ही हम उसकी इच्छा और प्रेम के बाहर। वह अपनी समस्त इच्छाओं और आवश्यकताओं को मनुष्य के ही अधीन कर देता है। यह ईश्वर की बनायी हुई सृष्टि है।

मनुष्य अपने समाज के लिये स्वयं नियम बनाता है और उन्हीं पर चलकर अपना जीवन यापन करता है। उसे ईश्वर के बनाये विधान और नियमों की चिन्ता नहीं होती। जो ईश्वर के बनाये हुये नियमों पर चलता है वह न मानव समाज के नियमों की चिन्ता करता है और न ही उसके व्यवहार की। जीवन की सारी पद्धतियों में जो श्रेष्ठ है वही सब के लिये प्रचारित होनी चाहिये। ईश्वरी नियमों का जब तक स्वयं अनुभव नहीं करो तब तक मात्र दूसरे व्यक्ति के कह देने से उसका विश्वास मत करो। कुन्ती ने धर्म और न्याय की चर्चा में युधिष्ठिर की जिज्ञासा शान्त की।

प्रकृति के निर्माण की समकक्षता मनुष्य नहीं कर सकता। मनुष्य तो प्रकृति का अनुकरण करता है। मनुष्य एक-दूसरे की सहायता के लिये समाज बनाता है। जीवन को अधिक सुखकर बनाने के लिये जो ज्ञान अर्जित करता है उसे सुरक्षित रखता है या फिर उसका प्रचार-प्रसार करता है। जीवन का विकास भी करता है और प्रसार भी पर उसे संकुचित नहीं करता। सारे मनुष्यों का ही नहीं सारे जीवों का जीवन सम्बन्धी अधिकार स्वीकार करता है और प्रयत्न करता है कि जीवन की एक ऐसी पद्धति का विकास करे जिससे अधिक से अधिक प्राणी जीवित रह सकें, स्वतन्त्र, सुरक्षित तथा सुखी रह सके और विनाश करनेवाले अधर्मी दुष्टों का दलन किया जा सकें।

मनुष्य और राक्षस में यही अन्तर है कि मनुष्य प्रत्येक मनुष्य के लिये सहयोगी होता है। वह प्रेम का पात्र है। जब कोई नया व्यक्ति उसके सम्पर्क में आता है तो वह उसे अपना शत्रु मानकर मार डालने के लिये नहीं दौडता न ही उसे अपने लिये, भोज्य भक्ष्य मानकर चीरफाड कर खा जाने के प्रयत्न में रहता है बल्कि उससे सम्पर्क बढाकर यह जानने का प्रयत्न करता है कि उससे हमारा सहयोग और सम्बन्ध किस तरह स्थापित हो। मनुष्यत्व है दूसरों की सेवा करना ताकि दूसरे उसके साथ सहयोग कर सके। मनुष्य समाज में रहता है और अपने साथ साथ दूसरों के अधिकारों को भी मान्यता देता है। वह अन्य मनुष्यों को अपना भोजन नहीं मानता है बल्कि उनसे प्रेम करता है और जिनसे प्रेम करता है उनके सुख के लिये वह स्वयं कष्ट सहने को तत्पर रहता है।

राक्षस या तो समाज में कभी रहता ही नहीं। वह तो केवल अपने आपके अस्तित्व को बनाये रखने में ही रहता है। अपने से ही प्रेम करता है और अपने स्वार्थ के लिये जीता है। वह किसी दूसरे व्यक्ति के सुख, सुविधा, आवश्यकता, मान-सम्मान का कोई मूल्य या अर्थ नहीं रखता है। अपने सुख के लिये, अपनी जिव्हा के स्वाद के लिये वह दूसरों की निरीह हत्यायें कर देता है।

अपनी किसी भी प्रकार की संकीर्णता को बनाये रखना या यही प्रयत्न करते रहना कोई गौरवपूर्ण नहीं है। न ही इससे किसी व्यक्ति या जाति का विकास होता है। अपनी जीवन पद्धति के नाम पर ना कभी दूसरों से पृथक रहो और न ही उन्हे पृथक मानो। दूसरों के शत्रु मत बनो। मित्रता शत्रुता का प्रमाणपत्र नहीं है। न ही उसके आधार पर अन्य मनुष्यों का आखेट करने का अधिकार है। कोई भी नदी यदि यह चाहे कि न तो वह किसी नदी में मिलेगी, न ही अपना आत्मविसर्जन सागर में करेगी तो वह सरिता न रहकर सरोवर मात्र रह जायेगी और कदाचित उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा।

भीम अधिक खाने में बडा पेटवाला तथा मोटा हो गया इसलिये उसका एक नाम वृकोदर भी हुआ। व्यक्ति जिसे अपना मान लेता है उससे हर प्रकार का वार्तालाप करता है। वैसे ही कुन्ती ने उस ब्राह्मण देवता की सभी बातें सुनी और उसकी पीडा जानी।

युधिष्ठिर आदि पांचों भाई अपनी माता कुन्ती के साथ एक चक्र नगरी में रहकर तरह तरह के दृश्य देखने लगे और वहां पर ब्राह्मण का वेष धारण कर भिक्षुक बनकर विचरने लगे। वे भिक्षावृति से अपना जीवन निर्वाह करते थे। नगरवासी उनके गुणों से मुग्ध होकर सभी उनसे बडा प्रेम करते थे पर उन्होने अपना वास्तविक परिचय छिपा रखा था। यह जिस ब्राह्मण के घर में अतिथि बनकर रह रहे थे एक दिन वह ब्राह्मण बडे ही खिन्न, निराश और उदास मन से घर लौटा। उस ब्राह्मण की पत्नी ब्राह्मणी कुन्ती के पास बैठी थी उठकर अपने स्वामी को आया जान बोली क्या बात है ? आप इतने चिंतित क्यों हो ? ब्राह्मण बोला चलो अपने कक्ष में चलो तुम्हे बताता हूं।

सहसा ब्राह्मण के कक्ष में से जोरों से करूण क्रन्दन होने लगा। वे लोग जोरों से विलाप करते रोते जा रहे थे। उनका विलाप और क्रन्दन सुनकर कुन्ती का सौहार्द्रपूर्ण हृदय करूणा से द्रवित हो गया और मन में आया कि चलकर देखूं क्या बात है ? हम लोग इस ब्राह्मण के घर में अतिथि की भांति रहते है और यह हमारा बहुत सत्कार करता है। हमें इस ब्राह्मण का कुछ न कुछ उपकार अवश्य करना चाहिये। कृतज्ञता ही मनुष्य का जीवन है। जितना कोई उपकार करे उससे बढकर उसका करना चाहिये। अवश्य ही इस ब्राह्मण पर कोई विपदा आ गई है। यदि हम उसकी कुछ सहायता कर सके तो इसके इस ऋण से उऋण हो सकते है। ब्राह्मण के दु:ख का कारण पता लगाने ब्राह्मण के कक्ष में गयी और पूछी क्या बात है भाईश्री जो आप इतने चिंतित और उदास हैं? ब्राह्मण बोला इस भाग्यवान में यही तो एक दोष है जरासी चोट लग जाने पर रोने लग जाती है। कुन्ती बोली नहीं भाईश्री आप मुझसे कुछ छिपा रहे हो। आपके घर में हमने शरण ली है तो आपका सुख हमारा सुख और आपका दु:ख हमारा दु:ख है। ब्राह्मण बोला यह तो दु:ख नहीं दुर्भाग्य है। मैंने इसे अनेक बार समझाया है कि इस नगरी में रहना आवश्यक तो नहीं। कहीं और चले चलते हैं पर इसने एक नहीं मानी और आज वही हो गया जिसका हमें डर था।

कुन्ती बोली परन्तु हुआ क्या भाई श्री ? ब्राह्मण बोला जब भी मैं इसे कहता यह यही उत्तर देती कि यहां तुम्हारे और तुम्हारे पूर्वजों की नाल गडी है। ब्राह्मणी बोली मैं आज भी अपनी इस बात से कहां फिर रही हूं। आज भी मैं तुमसे यही कह रही हूं। मैं तुम्हे नहीं जाने दूंगी। मैं स्वयं जाऊंगी। ब्राह्मण बोला फिर वही रट लगा रखी है कि मैं जाऊंगी, मैं जाऊंगी। मैं तुम्हे जाने दूंगा तब ही तो जाओगी। अग्नि के सामने फेरे लेते समय मैंने तुमसे यह तो नहीं कहा था कि विपदा आ पडे तो मैं वे तुम्हे आगे कर दूंगा। तुमने पूरा जीवन बिताया है मेरे साथ। मेरे बच्चों को तुमने जन्म दिया और पाल पोस कर बडा किया उन्हे प्यार दिया। मैं अपने बच्चों को उनकी मां से अलग नहीं कर सकता। मैं जाऊंगा स्वयं और इस बात पर अब कोई और वाद विवाद की आवश्यकता नहीं। मेरा अपने बच्चों के प्रति और तुम्हारे लिये क्या कर्तव्य है मैं उसका पालन करूंगा।

धिक्कार है मेरे इस जीवन को। क्योंकि यह सारहीन, व्यर्थ, दु:खी और पराधीन है। जीव अकेला ही धर्म, अर्थ, और काम का भोग करना चाहता है। इन सब का वियोग होना ही उसके लिये महान दु:ख का कारण है। अवश्य ही मोक्ष सुख स्वरूप है परन्तु मेरे लिये अब उसकी कोई सम्भावना नहीं है। इस आपत्ति से छूटने का अब न तो कोई उपाय दिखता है और न मैं अपनी पत्नी और पुत्र के साथ कहीं भाग सकता हूं। तुम मेरी जितेन्द्रिय एवं धर्मात्मा सहचरी हो। देवताओं ने तुम्हें मेरा सहारा बनाया है। मैंने मन्त्रों से वैदिक विधि से तुम्हारा पाणिग्रहण किया है। तुम कुलीन, शीलवृती और मेरे बच्चों की मां हो। तुम सती साध्वी और मेरी हितैषणी हो। राक्षस से अपने जीवन की रक्षा के लिये मैं तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता।

पति की बात सुनकर ब्राह्मणी ने कहा स्वामी आप साधारण मनुष्यों के भांति शोक क्यों कर रहे हैं ? एक न एक दिन तो सभी मनुष्यों को मरना ही पडता है। फिर इस अवश्यम्भावी बात के लिये शोक क्यों ? पत्नी पुत्र तथा पुत्री सब अपने लिये ही तो होते

है। आप विवेक से चिन्ता त्याग करे। मैं स्वयं उस राक्षस के पास जाऊंगी। पत्नी के लिये सबसे बढकर यही सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्राणों को न्यौछावर कर अपने पति की भलाई करे। मेरे यह करने में आप सुखी होंगे और मुझे भी परलोक में सुख तथा इस लोक में यश प्राप्त होगा। मैं तो आपके धर्म और लाभ की बात सोचती हूं। जिस उद्देश्य से विवाह किया जाता है वह अब पूरा हो चुका। आपके एक पुत्र और पुत्री है, आप इनका पालन-पोषण करे। आपके न रहने पर मैं कैसे जीवित रह पाऊंगी? आप मेरे प्राणेश्वर मेरे जीवन सर्वस्व है। मेरे इन बच्चों की क्या दशा होगी ? मैं अनाथ और विधवा होकर इन बच्चों को कैसे पाल पाऊंगी कैसे उन दुष्ट पुरुषों से अपनी रक्षा कर पाऊंगी जो विधवा स्त्री पर भेडिये के समान झपटते है, जैसे पक्षी मांस के टुकडे पर। पुत्री को मर्यादा में रखना और पुत्र को सद्गुणी बनाना कैसे सम्भव होगा ? आपके वियोग में मैं जी भी नहीं सकूंगी।

आपके तथा मेरे बिना इन बच्चों का अनिष्ट होने की सम्भावना हो जायेगी। आपके चले जाने से तो हमारे चारों का विनाश हो जायेगा। इसलिये तर्क संगत आप मुझे ही भेज दीजिये। स्त्रियों के लिये तो यह बडे ही सौभाग्य की बात है कि वह अपने पति के सामने ही परलोक वासिनी हो जाये। मैंने सब कुछ त्याग दिया है। मेरा जीवन आपके लिये न्यौछावर है। स्त्री के लिये यज्ञ, तपस्या, नियम और दान से भी बढकर अपने पति का प्रिय और उसका हित है और मैं जो कुछ कह रही हूं वह आपके लिये और इस वंश के लिये भी हितकारी है। इस लोक में स्त्री, पुत्र, मित्र और धन आदि का संग्रह आपत्ति से रक्षा के लिये किया जाता है। आपत्ति के लिये धन की रक्षा करे तथा उसको खोकर भी पत्नी की रक्षा करे। पत्नी और धन दोनों को होकर भी आमकल्याण का सम्पादन करना चाहिये। यह भी सम्भव हो सकता है स्त्री को अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे नहीं भी मारे। पुरुष का वध निर्विवाद है और स्त्री का सन्देह ग्रस्त इसलिये मुझे ही उनके पास भेजें। अच्छे भोग भोग लिये, धर्म कर्म कर लिये। मेरे मर जाने पर आप दूसरा विवाह कर सकते हैं क्योंकि पुरुष के लिये अधिक विवाह अधर्म नहीं है और स्त्री के लिये दूसरा विवाह महान अधर्म है। यह सब सोचविचार कर मेरी बात मान लें तथा इन बच्चों की रक्षा के लिये आपका जीवित रहना श्रेयस्कर है। मुझे ही उस राक्षस के पास जाना है। यह सुनकर ब्राह्मण की आंख से आंसू गिरने लगे।

मां बाप की दु:ख भरी बात सुनकर वह ब्राह्मण कन्या उसकी पत्नी बीच ही में बोली इस घर के प्रति आप दोनों के प्रति और मेरे इस छोटे भाई के प्रति क्या मेरा कोई कर्तव्य नहीं ? तो फिर ये निर्णय आप दोनों अकेले कैसे ले सकते हैं। ब्राह्मणी बोली क्या हमने तुझे किसी राक्षस का भोज बनने के लिये पाला पोसा है ? पुत्री बोली जब आप दोनों पर कोई आपत्ति आये तो आप दोनों की ओर पीठ करके बैठ जाऊं। पुत्री होने का यह अर्थ तो नहीं पिताजी। धर्मानुसार आप दोनों मुझे एक न एक दिन मेरा त्याग कर ही देंगे। इसलिये मुझे आज ही छोडकर अपनी रक्षा कर लें। लोग सन्तान इसलिये चाहते है कि वह हमें दु:ख से बचाये। इस अवसर पर आप मेरा सदुपयोग करें। आप के परलोक वासी हो जाने पर मैं और मेरा भाई दोनों भी नहीं बचेंगे। मां-बाप और भाई की मृत्यु से वंश परम्परा का उच्छेद होता है और जब कोई नहीं रहेगा तो मैं भी नहीं रहूंगी। आप लोगों के रहने से सबका कल्याण होगा। मैं ही राक्षस के पास जाकर इस वंश की रक्षा करूंगी। ब्राह्मण बोला नहीं बेटी तुम हमारी नहीं भगवान की एक धरोहर हो जो हमें किसी को सौंपनी है। तू एक वंश कोष है। तेरी बलि देने का अर्थ तो पूरे वंश की हत्या। मैं अपने प्राण बचाने के लिये एक वंश की हत्या नहीं कर सकता पुत्री और फिर यह भी देख ले की बकासुर राक्षस तो सप्ताह में एक व्यक्ति को खाने के लिये मांगता है और तू कोई व्यक्ति या पदार्थ नहीं है। यह सुनकर पुत्री भी जोरों से बिलखने लगी।

सबको रोते देखकर वह नन्हा सा ब्राह्मण पुत्र बोला पिताश्री मैं इस राक्षस बकासुर को मार डालूंगा। बच्चे की इस बात से दु:ख की घडी में तनिक प्रसन्नता प्रस्फुटित हुई। कुन्ती यह सब कुछ देख सुन रही थी और बोली भाईश्री आपके दु:ख का कारण क्या है ? आप मुझे निसंकोच बताईये आपकी क्या आपत्ति है और यह बकासुर कौन है ? और वह चाहता क्या है आपसे ? ब्राह्मण बोला देवी आपका यह प्रश्न और बात सज्जनों के ही अनुरूप है परन्तु मेरा दु:ख किसी से मिट नहीं सकता। बकासुर एक राक्षस

है जो नगर के बाहर की कन्दरा में रहता है। आज से १३ साल पहिले यहां के राजा शीश को उसने जीत लिया। राजा डर कर भाग गया। तब से सब नगरजन बकासुर को झेलने के लिये रह गये। इसलिये बकासुर को जब भी भूख लगती तो वह इस नगर में आ जाता और यहां के नागरिकों का वध कर उन्हे खा जाता। हम सभी नागरिकों ने मिलकर उससे समझौता कर लिया कि प्रति सप्ताह हम में से एक छडका भोजन अन्न इत्यादि और एक व्यक्ति भेंट में उसे दिया करेंगे। उसने हमारी बात मान ली। हम उसे हर सप्ताह एक छकडा भोजन और एक व्यक्ति उसकी गुफा के सामने रख आते। जो मनुष्य लेकर जाता है वह उसे खा जाता है। प्रत्येक गृहस्थ को यह काम करना पडता है। आज हमारे घर की बारी है। इस अभागी एक चक्र नगरी में कोई ऐसा क्षत्रिय नहीं है जो अपने इस क्षात्रधर्म का पालन कर सके और बकासुर से हमारी रक्षा कर सके। यहां का राजा तो यहां से थोडी ही दूर पर वेत्रकीय नामक स्थान में रहने लगा और वो तो अन्यायी हो गया। हमारी इस विपत्ति से रक्षा नहीं करता। अब अपने छुटकारे का कोई उपाय न देखकर मैं अपने सारे कुटुम्ब के साथ उस राक्षस का भोज बन जाना चाहता हूं।

कुन्ती बोली भाईश्री आप न डरें और न ही आप किसी प्रकार का शोक करें। ब्राह्मण बोला जिस राज्य का राजा कायर और दुर्बल हो उस राज्य के लोगों को गृहस्थ जीवन ही त्याग देना चाहिये। उनके विवाह और वैवाहिक जीवन सामाजिक आदान-प्रदान, घरेलू सुख यह तभी सम्भव है जब राज्य करनेवाला राजा अच्छा और बलवान हो। मैं अपनी पुत्री, पत्नी और पुत्र को तो भेज ही नहीं सकता। तो बचा फिर मैं।

कुन्ती बोली आप मेरे पांचो पुत्रों को तो भूल ही गये भाईश्री। ब्राह्मण बोला असम्भव मैं अपना दु:ख आपकी झोली में नहीं डाल सकता। आप तो मेरे अतिथि हैं। कुन्ती बोली इस घर में हम रह रहे हैं भाईश्री। तो क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं कि इस घर की रक्षा को स्वयं अपने घर की रक्षा समझूं। भगवान ने मुझे पांच पुत्र दिये हैं। भगवान ना करे कि किसी एक को भी बकासुर खा जाये तब भी मेरे पास चार पुत्र बचे होंगे परन्तु घरवाले के बिना घर नहीं चल सकता भाईश्री। यह स्वयं मेरा अनुभव है। बच्चों को अनाथ होने से बचाना चाहिये। बच्चे अनाथ हो जायेंगे तो मां और बच्चों को बुरे दिनों का सामना करना पडता है। इसीलिये इन सबके जीने के लिये आपका जीवित रहना आवश्यक है भाईश्री। कल भोजन का छकडा लेकर मेरा एक पुत्र जायेगा।

ब्राह्मण ने कहा हरे हरे नहीं नहीं। मैं अपने जीवन के लिये अतिथि की बलि नहीं दे सकता। आप बडी कुलीन और धर्मात्मा हैं। तभी तो ब्राह्मण के लिये अपने पुत्र का त्याग कर सकती हैं परन्तु मुझे स्वयं अपने कल्याण के बारे में सोचना चाहिये। आत्मवध और ब्राह्मण वध के विकल्प में तो आत्मवध ही श्रेयस्कर जान पडता है। ब्रह्म हत्या का तो कोई प्रायश्चित ही नहीं है। अनजान में भी ब्रह्म हत्या करने की अपेक्षा अपने को नष्ट कर देना उत्तम है। मैं अपने आप तो मरना चाहता नहीं दूसरा कोई मुझे मार डाले तो इसका पाप मुझे लगेगा नहीं। चाहे कोई भी हो जो अपने घर में अपनी शरण में आया हो, जिस किसी ने रक्षा की याचना की उसे मरवा डालना बडी ही नृशंसता है। आपत्तिकाल में भी निंदित और क्रूर कर्म नहीं करना चाहिये। मैं स्वयं अपने परिवार के साथ मर जाऊं यह श्रेष्ठ है। परन्तु ब्राह्मण वध की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता। कुन्ती ने कहा भाईश्री मेरा भी दृढ़ निश्चय यही है कि किसी भी प्रकार ब्राह्मण की रक्षा करनी चाहिये। मैं भी अपने पुत्रों का अनिष्ट तो नहीं चाहती। परन्तु मेरे पुत्र बलवान मन्त्र सिद्ध है उनका अनिष्ट राक्षस नहीं कर सकता। वह राक्षस को भोजन पहुंचा देगा और अपने आपको उसके चंगुल से छुडा लेगा। अब तक न जाने कितने शक्तिशाली विशालकाय राक्षस उसके हाथों मारे गये। इस बात की सूचना आप किसी को भी न दें। यदि लोग जान जायेंगे तो वे मेरे पुत्रों को तंग करेंगे। कुन्ती की बात से उस ब्राह्मण परिवार को बडी प्रसन्नता हुई।

५३) बकासुर का वध

एक चक्रा नगरी में कुन्ती का यह निर्णय बहुत महत्वपूर्ण है कि बकासुर राक्षस के पास खाने का छकडा लेकर ब्राह्मण की जगह कुन्ती पुत्रों में से एक जायेगा। कुन्ती का यह निर्णय वास्तव में जीवन मूल्यों की आधार शिला है कि अतिथि जिस घर में

आतिथ्य का रस भोग रहा हो उस घर की रक्षा उसका कर्तव्य है। उस आतिथ्य से उसका दायित्व कम नहीं होता। कुन्ती के इस निर्णय ने अतिथियों को एक नई परिभाषा दी कि अतिथि भी घर का ही एक हिस्सा होता है। घर के हर व्यक्ति की तरह घर पर आये हुये हर संकट का सामना करना उसका भी कर्तव्य है और भारतवर्ष की संस्कृति का इतिहास इस निर्णय के लिये कुन्ती को सदैव सदैव प्रणाम करता रहेगा परन्तु यह बात भी उतनी ही सच्ची है कि इस प्रकार का निर्णय किसी अकेले को नहीं लेना चाहिये। वो कुन्ती जैसी मां ही क्यों न हो ?

जिस समय कुन्ती ने उस ब्राह्मण परिवार को अपने एक पुत्र को बकासुर के पास भेजने का निर्णय लिया था उस समय उसके सभी पुत्र भीम को छोडकर भिक्षाटन के लिये गये हुये थे। वे भिक्षा मांगकर घर लौटे थे कि कुन्ती ने अपना निर्णय सब को सुनाया। सुनकर युधिष्ठिर किसी सोच में पड गये ? कुन्ती ने पुछा पुत्र तू किस सोच में है ? क्या इस घर में अतिथि होने के नाते मेरा यह कर्तव्य नहीं कि उनके संकट को अपना संकट मानूं ? क्या क्षत्रिय होने के नाते मेरे पुत्रों का यह कर्तव्य नहीं समाज पर आये संकट से युद्ध करे और उस संकट से मुक्त होने में समाज की सहायता करे।

युधिष्ठिर ने कहा। आपके तो दोनों तर्क ठीक हैं माताश्री। क्षत्रिय का यह कर्तव्य है कि संकट के समय वह आतिथ्य के घर का एक व्यक्ति बन जाये और उससे कहे कि यह संकट हमारा नहीं है। यदि आतिथ्य के घर में आग लग जाये तो क्या अतिथि उस आग की लपटों से यह कहेगा कि उसे न जलाये क्योंकि वो तो केवल एक अतिथि है और क्या आग उसका यह निवेदन मान लेगी ? यदि नहीं तो आपने जो निर्णय लिया है आपको वही निर्णय लेना भी चाहिये था। क्षत्रियों के विषय में भी आपका तर्क शत् प्रतिशत ठीक है। वो क्षत्रिय नहीं जो अपने आतिथ्य को ढाल बनाकर संकट की ओर पीठ करके खडा हो जाये। आपने दूसरों के लिये अपने पुत्र को संकट में डालकर बडे साहस का काम किया है। युधिष्ठिर ने भीमसेन को जाने के लिये तैयार है देखकर कहा क्या भीमसेन की अपनी स्वतन्त्र इच्छा है या आपकी आज्ञा ? कुन्ती बोली यह तो मेरी ही आज्ञा है। तो तुम फिर क्या सोच रहे हो ? युधिष्ठिर बोला मैं यह सोच रहा हूं कि माताश्री कि इस बात का सौभाग्य आपके ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलना चाहिये। मैं अपने होते हुये अपने किसी अनुज को आपत्ति में कैसे डाल सकता हूं। इसलिये उस राक्षस का भोजन लेकर तो मुझे जाना चाहिये। परन्तु आपको इस संकट के वक्त में आपको अपना यह ज्येष्ठ पुत्र याद ही नहीं आया। मैं आपकी ममता को प्रणाम करता हूं फिर भी मन में यह खटका तो रह ही जायेगा कि संकट की घडी में आपको प्रिय भीम याद आया और आपने मन ही मन मान भी लिया कि आपके इस निर्णय से मेरा मन नहीं दुखेगा।

कुन्ती बोली पुत्र युधिष्ठिर मुझे तुम्हारी बलि देने का कोई हक नहीं बनता है क्योंकि तुम केवल मेरे पुत्र ही नहीं हो, तुम हस्तिनापुर के युवराज कुमार भी। तो मैं अपने चारों पुत्रों की बलि देकर भी तुम्हे बचाऊंगी ताकि मुझे हस्तिनापुर से लज्जित नहीं होना पडे। बीच ही में तपाक से सहदेव बोला तब तो यह सौभाग्य मुझे मिलना चाहिये क्योंकि भाइयों में सबसे छोटा मैं हूं। अर्जुन ने कहा प्रिय अनुज यह तुम क्या कह रहे हो ? जिस घर में तुम्हारे बडे भाई बैठे हो तुम्हे तो यह सोचने का अधिकार ही नहीं और फिर तुम्हारे और नकुल के जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बकासुर के भोजन का छकडा लेकर या तो मैं जाऊंगा या फिर भ्राता भीम। तुम नहीं प्रिय वत्स। भीम बोला अर्जुन मेरे और माताश्री के निर्णय के बीच तुम कहां से आ गये ? यदि माताश्री ने कहा है कि भीम जायेगा तो भीम ही जायेगा।

अर्जुन बोला माताश्री आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बकासुर के भोजन का छकडा लेकर मैं क्यों नहीं जाऊंगा ? भीम बोला आज्ञा हो तो मैं ही कुछ निवेदन करूं माताश्री। मैं इस परिवार का केवल द्वितीय पुत्र ही नहीं हूं ज्येष्ठ भ्राताश्री। जैसे आप केवल ज्येष्ठ पुत्र ही नहीं है। मैं अपने सारे भाइयों का ऋणी हूं। युधिष्ठिर बोला ऋणी। ऋण कैसा भीम ? भीम बोला जब से मैंने खाना सीखा है अपने सब भाइयों के हिस्से का आधा खाना खाता रहा हूं। यदि इस घर के आधे भोजन पर मेरा अधिकार है तो इस घर के आधे

संकट भी मेरे है और आधे मेरे दूसरे भाइयों के। आप के किसी के पास भी अगर इस तर्क की कोई काट हो तो मुझे बतायें। अभी मुझे यह बोझिल मन से बात कहनी है कि मेरे प्रिय भाई यह समझ रहे है कि भीम गया नहीं कि बकासुर ने अपनी दाढ़ गरमाई नहीं। यह तो खुला मुझपर अविश्वास है भ्राताश्री। और फिर भीम का पेट कोई भिक्षा खाकर तो नहीं भर सकता। बकासुर के लिये तो तीस मन खिचडी पकती है तो आप मेरा पेट तो भर जाने दीजिये। सभी भाई भीम की यह बात और तर्क सुनकर जोरों से हंसने लगे।

युधिष्ठिर बोला तो ठीक है भीम तुम ही जाओ और विजयी होकर लौटो। कुन्ती बोली मेरी आज्ञा है। हम लोग यहां इस ब्राह्मण के घर में रह रहे है उनसे उऋण होने का यही उपाय है। मनुष्य जीवन की सफलता इसी में है कि वह कभी किसी उपकारी के उपकार को नहीं भूले। उसके उपकार से भी बढ़कर उसका उपकार करे। भीम पर मेरा पूरा विश्वास है। मेरा निश्चय विशुद्ध धार्मिक है। इससे प्रत्युपकार भी होगा तथा धर्म भी होगा। युधिष्ठिर बोले माताश्री आपने जो कुछ समझबूझ कर किया है वह निर्णय आपका उचित है। अवश्य भीम राक्षस को मार डालने में कामयाब होगा क्योंकि ब्राह्मण की रक्षा के लिये आपके हृदय में विशुद्ध धर्मभाव है।

वैशंपायन कहते है जनमेजय रात्रि के प्रथम पहर में भीम राक्षस का भोजन लेकर बकासुर के वन में जाने को तैयार हुआ। उसी समय सभी नगरवासी उसे भोजन का छकडा देकर विदा करने को आये। युधिष्ठिर ने कहा नगर जनों नगर की सुरक्षा के लिये हमारी यह भेंट स्वीकार करो। सभी नगरवसी यह देखकर चिंतित हो शोकातुर होकर भीम को विदा किया।

भीम बकासुर के भोजन को छकडे में लादकर बकासुर की गुफा में बाहर जाकर ठहरा। बकासुर भूख से पीडित और व्याकुल हो अपनी गुफा में लेट रहा था और सोच रहा था कि कितनी देर हो चुकी है और मेरा भोजन अभी तक नहीं आया है। मैं एक चक्रा नगरी के किसी भी मनुष्य को नहीं छोडूंगा और जोर जोर से चिल्ला रहा था। भीमसेन वहां पर पहुंच कर बकासुर को जोर जोर से पुकारने लगा और बकासुर के गुफा के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगा। वह राक्षस विशालकाय, वेगवान और बलशाली था। उसकी आंखे लाल लाल दहकते अंगारे की तरह, दाढी मूंछे भी लाल, कान नुकीले विकराल रूप भयानक जिसे देखकर ही भयभीत हो जाये। भीम की आवाज सुनकर वह तमतमा उठा और भौंहे टेढी कर दांत पीसता हुआ गुफा के बाहर निकला और भीम की ओर झपटा। उस राक्षस ने देखा भीम तो यहां बैठा बैठा उसका सारा भोजन ही चटकर साफ कर गया है। यह देखकर वह क्रोध से आग बबूला हो आंखे फाड फाड कर बोला तू तो दुर्बुद्धि है जो मेरा पूरा भोजन ही निगल गया अब तुझे यमपुरी भेजूंगा। यह सुनकर भी भीम हंसता रहा और खाता रहा तथा राक्षस के कहने की उपेक्षा कर दी। राक्षस दोनों हाथ उठाकर भयंकर नाद करता हुआ भीमपर टूट पडा। भीम ने भी उस पर हाथों से, घूंसों से प्रहार किया और मारने लगा। राक्षस ने एक वृक्ष उखाड कर उसपर फेंकना चाहा कि भीम ने भी एक वृक्ष जड से उखाड कर बकासुर पर फेंका। राक्षस का फेंका हुआ पेड भीम ने बांये हाथ में पकडकर टुकडे टुकडे कर दिये। दोनों ओर से वृक्ष फेंककर घमासान लडाई लडने लगे। वन के वृक्षों का विनाश होने लगा। भीम बकासुर को पकड कर जमीन पर घसीटने लगा उसे पटक कर घुटनों से रगडने लगा तथा उसे पकड कर उसकी गर्दन मरोड दी। उसके मुंह से खून वमन होने लगा और उस राक्षस के तो प्राण पखेरू ही उड गये। बकासुर मारा गया। भीम ने बकासुर की लाश उठाकर नगर द्वार पर रख दी ताकि सभी नगरवासी देख ले कि बकासुर मारा गया। भीम ने राक्षस को मारकर घर पर जाकर धर्मराज युधिष्ठिर को सारा प्रकरण बताया।

इधर नगरवासी प्रात:काल जब उस वन के बाहर निकलते नगर द्वार पर राक्षस की लाश को देखा कि वह पहाड के आकार का राक्षस खून से लथपथ जमीनपर मरा पडा है तो सबको विश्वास हो गया कि राक्षस मारा गया। सभी नागरिक उसे देखने के लिये वहां आये और यह अलौकिक कर्म देखकर आश्चर्य करने लगे। सभी नगरवासी उन पांडवों का अभिनन्दन और स्वागत करने के लिये ब्राह्मण के घर आये। पांडवों ने नगरवासियों को देखा उन्हे लगा इस स्वागत समारोह में वे कहीं अपने परिचय से पहचान न लिये जाये। इसी डर से वे आपस में सम्मति कर वहां से चुपचाप उस घर से निकल गये और वह ब्राह्मण परिवार और

नगरवासी उन्हे ढूंढते ही रह गये।

सब भाई अपनी माता कुन्ती सहित वहां से निकल गये और वन की ओर चल पडे अपने आप को छिपाने। यदि लक्ष्य स्वयं को छिपाने का है अथवा हस्तिनापुर को भूलकर साधारण जनसामान्य के रूप में एक नया जीवन आरम्भ करना है तो कोई विशेष कठिनाई नहीं है। वे हस्तिनापुर से दूर कहीं भी जा सकते हैं। आर्यावत से कहीं भी दूर घने वनों में अज्ञात जीवन व्यतीत कर सकते है किन्तु यदि हस्तिनापुर की राजनीति पर दृष्टि रखनी है तो स्वयं को प्रकट करने का अवसर ढूंढना है। न तो वे हस्तिनापुर राज्य के भीतर जा सकते है और न उससे दूर।

५४) द्रौपदी का जन्म प्रसंग

मुनि वैशम्पायन ने कहा जनमेजय बकासुर को मारने के पश्चात समस्त पांडव ब्राह्मण वेश में अपनी माता सहित एक चक्रा नगरी छोडकर वन की ओर निकल गये। चलते चलते धूप में थक गये। सूर्य भी अस्ताचल को जा रहे थे। शाम होने लगी। कुन्ती ने कहा युधिष्ठिर हमें अपना आज का पडाव इसी वन में कहीं भी एक वृक्ष के नीचे कर लेना चाहिये। विश्राम की आवश्यकता है। युधिष्ठिर ने बात मान ली और सब वहीं रात्रि विश्राम करने के लिये ठहर गये। कुन्ती बोली नकुल तुम वन में से जाकर थोडी ईंन्धन के लिये लकडियां ले आओ ताकि मैं खाना तैयार कर सकूं। सभी मिलकर वृक्ष के नीचे खाना बनाते हैं और खाना अपनी-अपनी पत्तलों में परोस कर खाने को उद्यत हुये तो कुछ ऋषि उस वन में उनके पास से गुजर रहे थे। अतिथि स्वागत की मर्यादा रखते हुये कुन्ती ने उनको प्रणाम किया और बोली अतिथि ऋषि मंडली हमारा भोजन ग्रहण करें तो बडी कृपा होगी ऋषिवर। ऋषि बोले देवी लगता है क्षत्रियों में तुमने अपना जीवन बिताया है परन्तु तुम ब्राह्मण की भाषा भूल चुकी हो। हमें तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार है देवि। सभी ऋषि भोजन करने बैठ गये और कुन्ती ने अपने हाथों से खाना परोस कर उन ऋषियों को खिलाया। ऋषि भोजन कर रहे थे।

इधर हस्तिनापुर में गान्धारी, धृतराष्ट्र के पास उसके कक्ष में आती है और धृतराष्ट्र को कुछ सोचते देख कर पूछती है क्या सोच रहे हो आर्यपुत्र ? धृतराष्ट्र बोला मैं क्या सोच सकता हूं। माता-पिता के पास तो सोचने के लिये पुत्र विवाह से अच्छी और क्या बात हो सकती गान्धारी। मैं प्रिय दुर्योधन के विषय में सोच रहा था यदि वह पांचाल कुमारी द्रौपदी का स्वयंवर जीत ले तो पांचाल नरेश से हस्तिनापुर की मित्रता हो जाये। गान्धारी बोली यदि महादेव की कृपा रही उनकी इच्छा होगी तो अवश्य यही होगा। द्रौपदी पुत्र वधू के रूप में हस्तिनापुर की शोभा बढायेगी। धृतराष्ट्र बोला यही स्वप्न तो मैं भी देख रहा हूं। बस ऋतु बदलने की प्रतीक्षा है।

राजनीति की ऋतुयें बदलने पर आये तो पलभर में बदल जाये परन्तु वो किसी का आदेश नहीं मानती क्योंकि राजनीति की हवा की अपनी गति होती है और उसकी दिशा भी अपनी होती है परन्तु हर पात्र अपने साथ अपनी राजनीति की हवा का झौंका उसके लिये अपनी दिशा चुनता है और इसीलिये कभी कभार चारों ओर से आप ही राजनीति की हवायें कोई खुला मैदान देखकर टकरा जाती है। परन्तु अभी वो खुला मैदान दूर है इसीलिये अभी तो समय केवल यही कह सकता है कि राजनीति किसी हवा के झौंके को साथ लेकर चलती रहे और ऋतु के साथ बदलने की प्रतीक्षा करे। ऋतु के बदलने का प्रयत्न धृतराष्ट्र भी कर रहा है। सोच रहा है कि राजनीति के क्षितीज से कैसा सूर्योदय हो ? जिसकी धूप उसके जीवन के अन्धकार को हटा सके। द्रौपदी का स्वयंवर भी तो एक राजनीति का ही अंग है।

ऋषि भोजन कर चुके थे। युधिष्ठिर ने ऋषि मंडली के हाथ धुलवाये। ऋषियों ने पूछा क्या तुम भी अपने पुत्रों के साथ काम्पिल्य नगरी जा रही हो देवी ? कुन्ती ने कहा वहां ऐसा क्या हो रहा है। ऋषि बोले महाराज पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा है। सारे भारत वर्ष के राजा महाराजा उसी दिशा में जा रहे हैं। कुन्ती बोली क्या राजकुमारी पांचाल नरेश की पुत्री इतनी बडी हो गयी कि उसका स्वयंवर रचाया जा रहा है। ऋषि बोले वह वही विचित्र कन्या है। तुम्हें पता नहीं कि पांचाल नरेश के मन में एक गांठ पडी हुई है। द्रौपदी जन्म भी उसी गांठ का एक भाग ही है। आचार्य द्रोण को तो सभी जानते ही हैं। उनका नाम

तो यहां से लेकर पूरे देवलोक तक सभी जानते हैं। आचार्य द्रोण और महाराज द्रुपद की मित्रता भी पुरानी थी। गुरु कुल की मित्रता, उसकी भावनाओं से उत्तेजित होकर महाराज द्रुपद ने आचार्य द्रोण से कह दिया कि उनके आधे राज्य पाट पर उसके मित्र द्रोण का अधिकार होगा। द्रोण उसे सच मान बैठे। वे भूल गये कि ब्राह्मण को राजपाट से क्या देना लेना ?

द्रुपद जब राजा बने तो द्रोण वहां जा पहुंचे। अहंकार ब्राह्मण को शोभा नहीं देता। यही कारण है कि उसे भिक्षा मार्ग पर ही चलना पडता है पर आचार्य द्रोण ने भूल करी। उन्होने राजा से बराबरी करनी चाही। क्षत्रियों में अहंकार तो होता ही है। द्रुपद को द्रोण का यह स्वभाव कोई अच्छा नहीं लगा और वो उन्होने उनसे कह भी दिया। द्रोण अपने मन में गांठ बांधकर वहां से चले गये। भारतीय ब्राह्मण ने यह सब अपने विचारों में क्यों पक्ष लिया यह तो विधाता ही जाने परन्तु उन्होने हस्तिनापुर के राजकुमारों के प्रशिक्षण का कार्य स्वीकार किया और शिक्षा समाप्ति के उपरान्त अपने शिष्यों से गुरुदक्षिणा में पांचाल राज्य मांग लिया। गान्धारी नन्दन तो वो दक्षिणा दे नहीं सके परन्तु कुन्ती पुत्र पांडवों ने वह दक्षिणा दी। पांडवों के लिये वह कोई बडी बात नहीं थी। अर्जुन बांध लाये द्रुपद को और द्रोण के चरणों में डाल दिया। द्रोणाचार्य ने जब देखा कि उनका दम्भी सहपाठी उनके शिष्य के हाथों अन्तत: बन्दी हुआ तो दग्ध हृदय को हिम समान शीतलता मिली। अन्तत ब्राह्मणत्व के समक्ष क्षत्रियत्व कैसे पराजित हुआ ? कहां लुप्त हुआ वह दम्भपूर्ण राजत्व ? आचार्य द्रोण ने मित्रता की लाज अवश्य रखी। द्रोण ने अपमान लौटा कर कहा राजा ही सिर्फ राजा का मित्र हो सकता है लेकिन द्रुपद आज तुम्हारे पास राज्य नहीं। आज से पांचाल का उत्तरी भाग मेरा है। गंगा नदी के दक्षिण पार्श्व के राजा तुम हो। अब हम दोनों समस्कन्ध है। अब हमारी मित्रता में कोई अन्तर या बन्धक नहीं है। द्रुपद ने आधा राज्य खोकर कपट मित्रता का हाथ बढाया। पांचाल का उत्तरी राज्य ही अधिक समृद्ध था जिसे द्रोण ने अपने लिये रख लिया। उन्होने द्रुपद से कहा मित्र तुम्हारे पास जो कुछ था उसमें तुमने आधे का भागीदार नहीं बनाया परन्तु मैं यह नहीं कर सकता। इसीलिये मैं पांचाल राज्य जो आज मेरा है उसका आधा भाग तुम्हें देता हूं। ब्राह्मण तो फिर ब्राह्मण। द्रोण तो नीति में चोट खा गये राज्य में भागीदारी नहीं होती और हुआ यहीं। क्षत्रिय कभी अपमान नहीं भूलता है। भाग्य को स्वीकार कर लिया। लेकिन क्षात्र धर्म कुछ और ही होता है। द्रुपद का हृदय प्रतिशोध की अग्नि में जलने लगा। अब उनके पास जीने का केवल एक ही लक्ष्य था कि वे आचार्य द्रोण के अपमान का कोई एक उपाय सूझ जाये। द्रोण की हत्या बिना अपमान शान्त नहीं होता। द्रोण की तरफ है भीष्म, कर्ण, शल्य, जयद्रथ और कौरव फिर हस्तिनापुर की विशाल सेना। पांचालों में ऐसा कौन था जो द्रोण को मार सके। उन्होने एक ऐसे पुत्र के स्वप्न देखना प्रारम्भ किया जो द्रोण का वध कर सके। ऐसा पुत्र कोई हाट बाजार में तो मिलता नहीं। ऐसा पुत्र तो कोई यज्ञ द्वारा ही प्राप्त होता है। तो प्रतिशोध की आग में कर्म सिद्ध ऋषि की खोज में एक आश्रम से दूसरे आश्रम में घूमने लगे। वे शोकातुर होकर यहीं सोचते रहते कि मुझे श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति कैसे हो? किन्तु किसी भी प्रकार द्रोणाचार्य के प्रभाव, विनय, शिक्षा और चरित्र को नीचा दिखाने में समर्थ नहीं हुये।

लक्ष्य बने प्रतिशोध जब होता नष्ट विवेक, पुत्र रूप में भी द्रुपद शस्त्र मांगता एक।

राजा द्रुपद गंगा तट पर घूमते घूमते कल्माषी नगरी के पास एक ब्राह्मण बस्ती में गये। उस बस्ती में ऐसा कोई नहीं था जो ब्रह्मचर्य का विधिवत पालन करनेवाला न हो अथवा स्नातक न हो। वहां कश्यप गौत्र के दो ब्राह्मण याज और उपयाज दोनों भाई बडे ही शान्त तपस्वी और स्वाध्याय शील थे। द्रुपद ने छोटे भाई उपयाज के पास जाकर सेवा सुश्रूषा से उन्हे प्रसन्न किया और प्रार्थना कि ऋषिवर मेरे यहां द्रोण को मारनेवाला पुत्र उत्पन्न हो। ऋषि ने कोई आशीर्वाद नहीं दिया पर ऋषि बोले जो आशीर्वाद तुम मांग रहे हो वह तुम्हे मैं नहीं दे सकता। द्रुपद बोले मैंने तो केवल एक पुत्र का आशीर्वाद मांगा है ऋषिवर। ऋषि उपयाज बोले तुम पुत्र चाहते क्यों हो राजन ? पुत्र के रूप में तुम शस्त्र चाहते हो जिससे ब्रह्म हत्या कर सको। तुम कोई आशीर्वाद नहीं एक शाप मांग रहे हो और मैं तुम्हे यह शाप कैसे दूं। द्रुपद बोला ऋषिवर जैसे आप जानते हो कि द्रोण ने मुझे

अपमानित किया है मैं उसी नरक की आग में जल रहा हूं। ऋषि उपयाज ने कहा तुमने अपने लिये स्वयं ही यह नर्क मोल लिया है राजन। मत जलो इस नरक में। निकल जाओ इस नरक से बाहर। जीवन बडा अनमोल होता है। केवल प्रतिशोध इसका अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता। द्रुपद बोला फिर भी आप ब्राह्मण हैं और आशीर्वाद देना आपका कर्तव्य बनता है। उपयाज ने बहुत सोच-विचार कर कहा राजन मैं ऐसा नहीं कर सकता। तुम मेरे बडे भाई याज के पास जाओ। उन्हे पवित्रता और अपवित्रता का बहुत विचार नहीं है। उनके द्वारा पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवाओ। मेरे ज्येष्ठ भ्राता याज एक दिन वन में विचर रहे थे उन्होने एक ऐसी भूमि पर पडे फल को उठा लिया जिसकी शुद्धि अशुद्धि के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। मैंने देखा कि वे किसी वस्तु के ग्रहण में शुद्धि अशुद्धि का विचार नहीं करते। वे ही तुम्हारा यज्ञ करा देंगे। द्रुपद उपयाज का आशीर्वाद पाकर वन में ऋषि याज के पास चले गये। याज अपनी तपस्या में लीन थे। द्रुपद ने ऋषिवर को प्रणाम किया। याज बोले यहां कैसे आये राजन ? द्रुपद बोले मैं पुत्र कामेष्टि यज्ञ करना चाहता हूं ऋषिवर ताकि द्रोण का संहार करनेवाला पुत्र पा सकूं। इसके लिये मैं आपकी सेवा करता हूं और अरबों गायों तक का दान करने को मैं तैयार हूं। याज बोले तुम्हे यहां का मार्ग अवश्य मेरे छोटे भाई उपयाज ने ही दिखाया होगा। उसके विचार को तो मैं अवश्य स्वीकार कर लेता हूं परन्तु क्या शुभ है और क्या अशुभ इसका निर्णय कौन लेगा ? यदि तुम्हारे भाग्य में द्रोण को मारनेवाला पुत्र है तो वह पुत्र अवश्य तुम्हें प्राप्त होगा और यदि तुम्हारे भाग्य में नहीं लिखा है तो नहीं। विधाता ने ही तो तुम्हारा भाग्य लिखा है। क्या विधाता कोई अशुद्ध कार्य कर सकता है? यदि हां तो फिर मैं कभी कोई अशुद्ध कार्य क्यों नहीं कर पाया ? यदि नहीं तो हमारे भाग्य और द्रोण के दुर्भाग्य की सहायता करना अनिष्ट कर्म कैसे हो जायेगा। सोच-विचार कर ऋषि याज बोले मैं यह यज्ञ अवश्य कराऊंगा। याज ने यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया। हीन भावना ही अहंकार को जन्म देती है। द्रुपद क्षत्रिय पुत्र है। क्षत्रिय अग्नि पुत्र है और जबतक बुझ ही न जाये जलता ही रहता है, जलना तो कष्टप्रद होता ही है। जीना है तो कोई लक्ष्य लेकर जीये और उत्साहपूर्वक जिया जाये। जीवन के अपने उदात्त मूल्यों को छोडना पडेगा। दया, माया, ममता, क्षमा, त्याग, औदार्य फिर से सब निरर्थक होंगे। अधिकार, वैभव, भोग, संघर्ष, प्रतिशोध ही अब जीवन का लक्ष्य रह गया। याज ने यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। याज ने गायत्री मंत्र के जाप से यज्ञ वेदी में अग्नि प्रज्ज्वलित की और आहुतियां द्रुपद से डलवाने लगा। याज बोला राजन महारानी को बुलाइये। द्रुपद ने रनिवास से महारानी को बुलाने की आज्ञा अपने किसी सेवक को दी। सेवक ने आकर सूचना दी कि महारानी इस समय स्नान कर रही है। ऋषि याज बोले मुहूर्त किसी महारानी के लिये स्नान की प्रतीक्षा नहीं कर सकता। आहुतियां डालने पर अग्नि कुंड से एक दिव्य कुमार प्रकट हुआ। उसके शरीर का वर्ण धधकती अग्नि के समान था। सिर पर मुकुट और शरीर पर कवच था। उसके हाथ में धनुष बाण और खड्ग थी। अग्निकुंड से निकलते ही उस दिव्य कुमार ने द्रुपद को प्रणाम किया तथा महर्षि याज को प्रणाम कर चरण स्पर्श किये। सभी पांचाल वासी हर्षित होकर साधु साधु कहने लगे इतने में ही आकाशवाणी हुई कि इस पुत्र के जन्म से द्रुपद का सारा शोक मिट जायेगा और इसका जन्म द्रोण को मारने के लिये ही हुआ है। याज बोले तुम्हारा जन्म अग्निकुंड से हुआ है। तुम्हारे अस्त्र शस्त्र सब आलौकिक और दिव्य हैं। वे युद्ध में अमोघ है। तुम्हारा रथ भी अग्निकुंड से निकला है। तुम्हारा रथ न टूट सकता है। तुम्हे कोई पराजित नहीं कर सकेगा। तुम अजेय होंगे। तुम्हारे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि तुम आचार्य द्रोण का वध करोगे और उसे प्रश्रय देनेवाले कुरूवंश के विनाश में तुम सहायक होंगे और राजन अपने इस अग्निप्रदत्त पुत्र को ग्रहण करें। याज ने उसका नामकरण किया कि यह कुमार बडा धृष्ट (ढीठ) और असहिष्णु होगा। यह बल रूप, धन, कवच, कुंडल, कान्ति आदि से सम्पन्न है। इसकी उत्पत्ति भी अग्नि की द्यूति से हुई है इसलिये इसका नाम होगा धृष्टद्युम्न। उसी यज्ञ वेदी की होमाग्नि से एक नील पदम कान्त मणि सी एक रूपमय लावण्य नारी प्रकट हुई याज्ञसेनी। अतीव सुन्दरी। अद्भुत। नील कमल की पंखुडियों सी कान्ति। सागर की लहरों के समान घने और लम्बे काले केश। मनमोहक झील सी गहरी नीलकमल

सी आंखे, उज्ज्वल बुद्धि दीपा। चमकता ललाट। विश्व के श्रेष्ठ शिल्पकार के हाथों गढी गई प्रतिमा जैसी अनिन्द्य सुन्दरी, उचित अंग गठन, दीर्घ देह, लम्बी ऊंची, उन्नत पुष्ट वक्ष, क्षीण कटि, घन उरू, चम्पाकली सी हथेली की अंगूलियां रक्तिम शतदल सा करतल पाद, दाडिम जैसी चमकीली शुभ्र दन्तावली, विद्युत को कौंधने वाली हास्यरेखा, चन्द्र से नख, भ्रमर को भी पदम गन्ध से भ्रमित कर देनेवाली पदमगन्ध देह। कवियों ने उस सौन्दर्य को यति मति हरण करनेवाला बताया। शुभ्र वसना, शुभ्र मुकुट मंडिता श्वेत कमल धारण किये जब वह नीलोत्पल सी यज्ञ वेदी पर आविर्भूत हुई, पूर्ण यौवन भार से अंग अंग छलकता झलमला रहा था। उसे देखकर यज्ञवेदी के चारों ओर बैठे जितेन्द्रिय ऋषिवर भी स्तब्ध रह गये। मन्त्रोचार करते अधर कांप उठे, कंठ स्वर भी जड हो गया, कुछ युवक तो अपनी चेतना ही खो बैठे। पेडों के पत्ते भी हिलना बन्द हो गये। अग्नि शिखा निर्वाक निष्कम्प हो गई। महाकाल भी उस क्षण स्थिर हो गया। राजसभा के कवियों ने उसके रूप का वर्णन किया श्यामा, कृष्णा। उसके रूप का जितना वर्णन करो उतना ही थोडा है बहुत कुछ बाकी रह जाता है। जीवन पर काव्य लिखने पर भी इस अनुपम सौन्दर्य के लायक उपमा नहीं मिलती। कृष्णा स्वयं ही उसकी उपमा है। ईश्वर ने उसे अपूर्व लावण्यमय रूप और देह दी। प्रीतिपूर्ण हृदय प्रदान किया। उस देवी ने अपने पिता द्रुपद को प्रणाम किया और महर्षि याज को चरणस्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त किया उसी समय आकाशवाणी हुई यह कन्या द्रुपद तुम्हारे अपमान का बदला लेने के लिये ही जन्मी है। प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये आर्विभूत हुई है। इससे पृथ्वीपर धर्म की रक्षा होगी। क्षत्रियों का संहार होगा। यह कौरव नाशिनी होगी तथा सतियों में शिरोमणी होगी। याज बोला देवी तुम्हारा जन्म माता के गर्भ से नहीं यज्ञ अग्नि कुंड से हुआ है। तुम्हारी संरचना अग्नि से हुई है। तुम अग्निधर्मा हो। तुम्हारी अपनी कोई इच्छा या अनिच्छा नहीं है। तुम्हारे मन में कोई प्राकृतिक वासना भी नहीं है। तुममें कोई मानवीय दुर्बलता भी नहीं है। तुम्हारे मन में किसी के लिये भी कोई राग विराग नहीं है। अब अग्नि की ओर से मैं तुम्हे महाराज द्रुपद को सौंपता हूं। यज्ञवेदी की दूसरी ओर से उठकर द्रुपद ने अपनी भुजायें फैलाकर अग्नि पुत्री कृष्णा को पुत्री रूप में स्वीकार किया और द्रुपद की पुत्री कहलाने से इसका नाम द्रौपदी हुआ। द्रौपदी मानो कोई देवांगना ही हो इस धरा पर आई थी। उस समय वैसी सुन्दरी इस धरापर नहीं थी। आकाशवाणी ने भी कहा था कि यह रमणी रत्न कृष्णा है जो देवताओं का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये क्षत्रियों के संहार के निमित्त इसकी उत्पत्ति हुई है। इसके कारण कौरव बडे ही भयभीत होंगे। यह सुनकर पांचालवासी हर्षध्वनि करने लगे। इन दिव्य कुमार और कुमारी को देख कर द्रुपद की महारानी ऋषि याज के पास आई और अपनी भूल की क्षमा याचना कर बोली ये दोनों मेरे अतिरिक्त और किसी को भी अपनी मां कहकर नहीं पुकारे। याज ने कहा तथास्तु। यज्ञ समाप्त होनेपर द्रुपद धृष्टद्युम्न को अपने घर ले गये और उसे अस्त्र शस्त्र की शिक्षा अपने गुरू भाई द्रोण से दिलवाई। परम बुद्धिमान गुरु द्रोणाचार्य यह जानते भी थे कि प्रारब्धानुसार जो कुछ होना है वह तो होकर ही रहेगा। इसलिये उन्होने अपनी कीर्ति के अनुरूप अपने उस शत्रु को भी अस्त्र शिक्षा दी जिसके हाथों से उनकी मृत्यु निश्चित थी। ऋषियों ने कहा यह है द्रौपदी के जन्म की कथा। और अब उसी द्रौपदी का स्वयंवर होने जा रहा है जो युवती रूप में ही जन्मी। मैं तो कहता हूं कि देवी अपने पुत्रों को लेकर तुम भी जाओ। इतना दान मिलेगा कि कई पीढियों तक भिक्षा की आवश्यकता भी नहीं पडेगी। भीम बोला राजकुमारी तो अत्यन्त सुन्दर होगी। सहदेव बोला राजकुमारी कोई खाने की वस्तु थोडे ही है मझले भैया। अर्जुन बोला वो स्वयंवर तो देखने योग्य ही होगा भ्राताश्री। ऋषिवर बोले हां आजतक कभी ऐसा स्वयंवर हुआ नहीं और न ही आज के पश्चात होगा। सारे भारतवर्ष के राजा महाराजा वहां आयेंगे और द्वारिका के यादव भी वहां आयेंगे। अर्जुन बोला तब तो उनके दर्शनों के लिये हमें अवश्य चलना चाहिये माताश्री। कुन्ती बोली हां पुत्रों। परन्तु मैं भी द्रोपदी को भी देखना चाहती हूं।

ऋतुयें बदले समय पर अवसर देखें भाग्य का रखो हृदय विश्वास।

ब्राह्मण वेश में पांडव क्षत्रिय वेश छिपाये हुये अपने को प्रकट करने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। ब्राह्मण समाज में सर्वश्रेष्ठ

माना गया है। उस ब्राह्मण का धर्म है अहिंसा किन्तु उस ब्राह्मण की रक्षा के लिये समाज ने क्षत्रिय का निर्माण किया। क्षत्रिय को अस्त्र धारण करने की अनुमति है। उसे न्याय संगत हिंसा का आदेश है। दुष्टों का दलन करने और समाज में न्याय स्थापित करने के लिये क्षत्रियों का निर्माण किया गया। उन ऋषियों ने पांडवों को बताया कि यह द्रौपदी पूर्व जन्म से एक बडे महात्मा ऋषि की सुन्दरी और गुणवती कन्या थी। परन्तु रूपवती, गुणवती और सदाचारिणी होने पर भी पूर्व जन्म के बुरे कर्मों के फल स्वरूप किसी ने भी उसे पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया। इससे दु:खी होकर वह तपस्या करने लगी। उसकी उग्र तपस्या से भगवान महादेव प्रसन्न हुये उन्होने उसे वर मांगने को कहा तब उस कन्या ने कहा मैं सर्व गुण पति चाहती हूं। शंकर जी ने कहा तुम्हें अगले जन्म में पांच पति प्राप्त होंगे। वही देव रूपिणी कन्या द्रुपद की यज्ञ वेदी से आज प्रकट हुई है।

५५) पांडवों की पांचाल यात्रा और चित्ररथ गन्धर्व की पराजय

द्रुपद हस्तिनापुर से द्रोणाचार्य की जडे उखाडना चाहता है पर खेत में पौधे की जडें जब गहरी हो और उसे उखाडा न जा सके तो खेत में आग लगानी पडती है। द्रुपद अपने पुरोहित देवल के भाई धौम्य को स्वयंवर के बारे में बता रहे थे कि कृष्णा का स्वयंवर करना है पर स्वयंवर के विषय में मेरी धारणा अच्छी नहीं है। स्वयंवर में राजाओं की एक बडी संख्या में भीड इकट्ठी हो जाती है। उसमें से कुछ तो परस्पर मित्र होते हैं तो कुछ शत्रु भी होते हैं। स्वयंवरों में अधिकांशत: अपहरण और युद्ध होता है। युद्धोन्माद से मत्त उतने सारे क्षत्रिय राजाओं को नियंत्रित करना कठिन होता है। मैत्रियां टूटकर शत्रुता में परिणित हो जाती है। मैं स्वयंवर का निमन्त्रण भेज सकता हूं पर वीरों को उसमें सम्मिलत होने के लिये बाध्य नहीं कर सकता। सामान्यत: जिस वीर को मैं जामाता बनाना चाहता हूं वह उसमें आये ही नहीं और अयोग्य, दम्भी, पापी, अधर्मी राजाओं की भीड लग जायेगी। और यदि मेरी पुत्री ने उनमें से किसी का वरण नहीं किया तो मुझे उन सबका कोप भाजन बनना पडेगा। पांचालों में बहुपतित्व की प्रथा भी रही है। यद्यपि हम उसका क्रमश: त्याग करते जा रहे हैं किन्तु अभी हम उसे अधर्म नहीं मानते। आर्याव्रत के अनेक क्षत्रियों के समुदायों ने उसे सर्वथा त्याग दिया है। ऐसे क्षत्रिय शायद स्वयंवर में न आये। धौम्य ऋषि बोले राजन आप अपनी पुत्री को वीर्यशुल्का घोषित करें। वीर्यशुल्का स्वयंवर में न रीति और परम्परा का विचार होता है, न मैत्री और शत्रुता का। उसमें निमन्त्रण की अपेक्षा भी नहीं होती। उसमें न आप से कोई विरोध कर सकता है। उसमें तो प्रतियोगी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये स्वेच्छा से आयेंगे और आपको भी अपनी इच्छानुकूल जामाता प्राप्त होगा। सावधानी से सोच विचार कर नियमों और उपनियमों की घोषणा करें तो कोई संकट भी नहीं होगा। यह कोई द्यूत नहीं है राजन। यह तो कर्म है, उद्यम। इसमें संयोग का अंश अवश्य है तथा संयोग को सदा ईश्वर की अनुकम्पा के रूप में ग्रहण करना चाहिये। अपना कर्म करें और ईश्वर में पूर्ण आस्था रखें। पांडवों ने माता कुन्ती को आगे कर के पांच

ल देश की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। वे लोग निरन्तर मत्स्य, त्रिगर्त तथा पांचाल के वनों में भ्रमण कर रहे ं। प्रतिहिंसा मानव के लिये हितकर नहीं है। प्रतिशोध तो सिर्फ एक ही स्थिति में नहीं लिया जाता जब राजा किसी अपर धी को दंडित कर दे। पांडवों की नीति प्रतिरोध की है प्रतिशोध की नहीं। दंड देने का अधिकार केवल राजशक्ति को है वैसे <u>प्रतिशोध का अधिकार केवल ईश्वर को है। जैसे हिंसा नृशंसता है वैसे ही प्रतिहिंसा भी नृशंसता है। प्रि शोध का क्रम कभी समाप्त नहीं होता है। वह हिंसा तथा नृसंशता की अन्तर्हीन श्रृंखला है। जिसमें नित्य नयी नयी कडिय ं जुडती रहती है। युद्ध में शत्रु का वध न हिंसा है और न ही प्रति</u>

<u>सा। वह न अपराध है, न अधर्म और न ही नृशंसता। अपने प्रति किये गये अपराध का दंड तो प्रतिशोध है। प्रतिशोध का आधार है प्रतिहिंसा जो कि नृशंसता है। सब लोग अपनी क्षमता भर स्वयं से दुर्बल को दबाते हैं और शक्तिशाली से बचते हैं।</u>□कृष्ण आर्यावर्त म

शान्ति चाहता है। वे आर्याव्रत को प्रेम सौहार्द्र और शान्ति से विकसित करना चाहते हैं। सदा युद्ध में उलझे अथवा युद्ध की तैयारी में लगे राजा प्रजा को कभी सुखी नहीं रख सकते। प्रजा की सुख समृद्धि के लिये शान्ति अनिवार्य है। वन के पशुओं से नगर के मनुष्य अधिक भयंकर होते है। राक्षस तो कई प्रकार के होते है। कहीं कहीं तो राजाओं का मोहक वेश बनाये राजप्रासादों में रहते हैं किन्तु अपने स्वार्थ के लिये अपने ही जैसे दूसरे मनुष्यों की सुख सुविधायें छीन लेते हैं, उन्हे विभिन्न प्रकार की यातनायें भी देते हैं, उनकी हत्या तक कर देते है, उन्हे जीवित भी जला देते है। ऐसे सब लोग आततायी होते है और किसी राक्षस से कम नहीं होते। पुत्री तो वह अग्नि है जिसे न आंचल की ओट दी जा सकती और न ही घर से बाहर निकाल कर मार्ग पर फेंक सको। कैसे मनुष्य पर विश्वास करना चाहिये ? अच्छे भले मानस के मुख का चोला हटे तो पता चले कि वह तो लुच्चा लम्पट ही है। धनी, घोरी, ज्ञानी, विद्वान, ऊंचे ऊंचे पदों पर बैठे सत्ताधारी सब एक से एक बढकर है। जिसका आवरण न हटे वह तो भला आदमी है। कुँआरी कन्या की रक्षा ही कठिन है। जीवन में सबको अपनी-अपनी समस्यायें होती है। राजा हो या रंक कोई न कोई संकट सबके सामने खडा है। जिसकी कन्या होगी वह उसके लिये वर की खोज करेगा ही। पुत्र होंगे तो उनके विवाह की चर्चा भी अवश्य करेगा।

कुन्ती ने अपने पुत्रों को समझाया कि तुममें से जो भी विलग होगा, शत्रु उसे निगल जायेगा। जो स्त्री तुममें से किसी को भी अपने भाइयों से विलग करना चाहे, जो तुम्हें तुम्हारे स्थान से उखाडकर अपने स्थान पर स्थापित करना चाहे, उसे अपना शत्रु समझकर त्याग देना। इसे सदैव स्मरण रखना कोई भी स्त्री चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो कि कितनी ही प्रभावशालिनी हो, कितनी ही धनी हो और वैभवशालिनी हो वह तुम लोगों को कभी विलग नहीं कर पाये, किसी भी परिस्थिति में पृथक न कर सके। मैं सदा कोई तुम्हारे साथ नहीं रहूंगी, किसी के भी माता-पिता नहीं रहते किन्तु तुम लोग किसी भी अवस्था में, किसी भी स्थिति में एक दूसरे का संग मत छोडना।

धन की आसक्ति कभी हितकर नहीं होती। धन की इच्छा तो है ही आतंकरूपी दलदल। एक बार उसमें पैर डाल दे तो व्यक्ति उसमें धंसते ही चले जाता है। प्राप्त करने का दु:ख उठाओ और प्राप्त हो जाये तो उसकी आसक्ति में ऐसे निमज्जित हो जाओ कि उसको त्यागना सम्भव न हो। चाहे प्राण ही क्यों न चले जायें। यही तो दुर्योधन की राजनीति है। उसे प्रजा से नहीं अपने अधिकार से मोह है और अपना अधिकार वह इन आततायियों, शकुनि, दुशासन, कर्ण इत्यादि के बल पर ही बनाये हुये है। इन्ही की सहायता से वह अपने विरोधियों को कुचलता है। इसलिये अपनी प्रजा का नहीं नृशंसता का पालन पोषण कर रहा है। कैसी लीला है विधाता की कि ऐसे ऐसे पापी लोग जो राजा बनकर सिंहासनों से चिपके बैठे है और युधिष्ठिर जैसे प्रजापालक युवराज भिक्षा मांग कर अपना निर्वाह कर रहे हैं। कुन्ती ने सोचा उन्हे भी तो पापी दुर्योधन ने इसी प्रकार नष्ट कर भस्म करने का प्रयत्न किया है। उनकी किसी ने सुनी ? राजा ने, शासनाधिकारियों ने कौरव कुलवृद्धों ने ? वे लोग भी तो अपने प्राणों के भय से असहाय, निराश्रितों के समान स्वयं को छिपाये हुये यहां वहां भाग रहे है। जिन पर पडती है वह स्वयं ही अपने संकट से निबट लेता है। राक्षस और कुछ नहीं होता वे तो कुछ साधारण आततायी गुंडे ही होते हैं जो कुशासन से बल पाकर संरक्षण सहमति पाकर सिंह बने घूमते हैं। शरीर का बल है उसी का लाभ उठाते है। नियमित अपराधी हैं, हत्यायें करते हैं यही उनका व्यवसाय है। कोई उनसे लडने का साहस नहीं कर पाता। कोई भी शक्तियां धर्म कार्य के लिये होती है अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये नहीं और न ही परपीडन के लिये। युधिष्ठिर बोला एक ओर तो हम इतने वीर हैं कि स्वयं संकटों को आमंत्रित करे और दूसरी ओर इतने कायर कि न केवल अपने अधिकारों के लिये न लडें वरन अपने प्राणों के भय से भी भागते फिर रहे हैं। कुन्ती बोली संगठित राजशक्ति के षडयन्त्रों का सामना करना एक बात है और कुछ आततातियों दुर्वृत गुंडों से उलझना दूसरी। जहां तक मैं समझती हूं कि इन आततायियों के अत्याचारों का विरोध करने में तुम लोग सक्षम हो जो मात्र कुशासन की उपज है किन्तु

राजशक्ति से लडने के लिये तुम्हे भी संगठन की आवश्यकता है, सेना की आवश्यकता है जो इस वक्त तुम्हारे पास नहीं है। निर्बल, न्याय की रक्षा ही क्षत्रिय का धर्म है पुत्र।

युधिष्ठिर बोला ऐसे राजा की आवश्यकता ही क्या जो प्रजा से शक्ति से कर वसूलता है ? प्रजा के धन से विलासपूर्ण जीवन जीता है। वस्तुत: राजा ही सबसे बडा लुटेरा है। यदि वह कर लेता है और प्रजा की रक्षा नहीं करता, उसका न्याय नहीं करता तो वंचना और लूट का आरम्भ तो वहीं से हो जाता है। तभी तो प्रशासक न्यायाधिकारी, सैनिक, दंडधर सभी भ्रष्टाचार के मार्ग पर सुविधा से चलने लगते हैं। जिस कार्य को करने का वेतन दिया जाता है वह कार्य तो करते नहीं है उल्टे उस दायित्व के पद को अधिकार का पद बनाकर उसका दुरुपयोग करते है। तथा प्रजा को पीडित कर अपना स्वार्थ साधते हैं। ऐसे राज्य में न तो प्रजा सुखी रह सकती है और न ही प्रसन्न। कोई आक्रान्त राज्य पर यदि आक्रमण भी करे तो प्रजा उससे युद्ध कर अपने प्राण क्यों देगी ?

किस लोभ से व्यक्ति राक्षस बन जाता है। थोडे से धन के लोभ में किसी की हत्या कर प्राण ले लेना, अपनी पत्नी के शरीर पर स्वर्णाभूषण अधिक हो जाये उसके लिये किसी असहाय के सम्पूर्ण परिवार को नष्ट कर देना। क्या ये ही वे लोभ है जिनके कारण कोई मनुष्य राक्षस बन जाता है। पर इन सब से क्या सुख है ? कदाचित संसार में दो प्रकार के व्यक्ति हैं एक का सुख मात्र सृजन और निर्माण में है, सकारात्मकता में है जबकि दूसरे का मात्र विनाश, विध्वंस में ही है। नकारात्मक विचारों में ही तब राजा का दायित्व है कि वह विनाश में सुखी होने वालों का दमन करे किन्तु आजकल तो राजा ही विनाश में सुखी होने लगे हैं।

कुन्ती के मन में विचार आया और वह सोचने लगी तू क्षत्राणी है कुन्ती। पुत्रों को धर्म युद्ध से रोककर क्या कायर बनाना चाहती है ? उनके जीवन में तो संघर्ष ही संघर्ष है। वे अपने अधिकारों के लिये लडेंगे, न्याय के लिये लडेंगे, राज्य की रक्षा के लिये लडेंगे, प्रजा पालन के लिये लडेंगे। वे तो बडे-बडे सम्राटों की सेनाओं के विरुद्ध भी लडेंगे। यह तो तेरे पुत्रों के न्याय युद्ध का आरम्भ मात्र है। राजा के मन में दायित्व बोध भी जागना चाहिये नहीं तो निर्भिक राजा स्वयं राक्षस हो जाता है। प्रत्येक मतभेद का समाधान युद्ध ही तो नहीं होता।

युधिष्ठिर युद्ध से घृणा करता है। नृशंसता उसका धर्म नहीं है। वह तो शान्ति का उपासक है। प्रत्येक मूल्य पर शान्ति चाहता है। ईश्वर की सृष्टि शान्ति काल में ही फलती फूलती है। युद्ध तो स्रष्टा का भी शत्रु है परन्तु युद्ध अर्जुन की महत्वाकांक्षा है। बिना युद्ध के तो उसकी सारी धनुर्विद्या ही नष्ट हो जायेगी। अर्जुन चाहता है कि उसकी धनुर्विद्या न्याय की सेविका हो विनाश की नहीं। द्रुपद ने पांचाली का स्वयंवर पौष शुक्ल पक्ष एकादशी रोहिणी नक्षत्र के तिथि का निश्चित किया था।

वन से होकर काम्पिल्य नगरी जाने के लिये पांडव गंगा तट पर आये। द्वापर में काम्पिल्य छत्रवती नगरी के नाम से जानी जाती थी और यह पंजाब की राजधानी थी। आजकल काम्पिल्य नगर संयुक्त प्रान्त के फरूखाबाद जिल्हे के फतेहगढ से ४७ कि.मी. पूर्वोतर कोण पर स्थित है। द्रुपद की ओर से गंगा के घाट पर धर्मार्थ नि:शुल्क नावें लगी थी। एक नाविक से युधिष्ठिर ने कहा हमें गंगा पार कराओ। नाविक बोला इन दिनों गंगा पार करने के लिये किसी को भी शुल्क किराया नहीं चुकाना पडता। सबका शुल्क महाराज द्रुपद ही चुका रहे हैं क्योंकि इन दिनों काम्पिल्य आनेवाला हर व्यक्ति उन्ही का अतिथि होता है। गुरु लोग भी उसी स्वयंवर में चले। महाराज के अतिथि हो। जब रंगमंच में ताली बजानेवाला दर्शक ही न होगा तो अभिनय करनेवाले नट को करतब दिखाने का क्या सुख प्राप्त होगा ? आओ बैठो इस नौका में तुम्हें घाट उतार देता हूं। कुन्ती को नौका में चढाकर पांचो भाई भी नौका में आ बैठे और नाविक ने भी नौका खेने के लिये चप्पू सम्भाल लिये। कुन्ती बैठे बैठे सोच रही है पता नहीं क्या है उसके पुत्रों के भाग्य में ? सम्राट बनते बनते नगर बहिष्कृत हुये। प्राण बचाने के लिये जलते हुये वारणावत को छोडकर वन में आये तो हिडिम्ब जैसा राक्षस उनके प्राणों का ग्राहक हो गया। ऐसे लगता है कि विधाता ने उन्हे हिडिम्ब और बक वध के लिये ही लाक्षागृह की अग्नि से बचाया होगा। विधाता ने एक ओर उनके लिये कठिनाइयों का सृजन किया है तो दूसरी ओर उन्हे

सामर्थ्य सहायक भी दिये हैं। अब तो उसके पुत्र भी समर्थ होते जा रहे हैं। हिडिम्ब और बकासुर से तो भीम अपनी शक्ति के बल पर ही जीता था। नाव की यात्रा करते करते वे सोमाश्रयायण तीर्थ के निकट पहुंच गये।

अन्धेरा चारों ओर से घिर आया। शाम ढलने लगी युधिष्ठिर ने कहा अर्जुन तुम मशाल (उल्मुक) जला लो। धरती पर तो अन्धकार में भी चला जा सकता है किन्तु जल पर नहीं। हमें जल के ही निकट आज रातभर विश्राम कर लेना चाहिये। अर्जुन ने उल्मुक जला लिया और वह आगे आगे होकर चलने लगा ताकि सबको मशाल का प्रकाश मिल सके। उस तीर्थ के पास स्वच्छ एवं निर्मल एकान्त गंगाजल में गन्धर्वराज अंगार पर्ण (चित्ररथ) अपनी पत्नियों और प्रेयसियों के साथ विहार कर रहे थे। गन्धर्व राज ने पांडवों के पैरों की आहट सुनी तथा नदी की ओर आगे देख सुनकर बडा क्रोध प्रकट किया और अपने धनुष की टंकार कर पांडवों से बोला तुम कौन हो ? दिन के अन्त में जब सूर्य की लालिमामयी सन्ध्या होती है उसके बाद ४० निमेष के अतिरिक्त सारा समय गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों के लिये विहार करने का होता है। दिन का सारा समय तो मनुष्यों के लिये है। जो कोई मनुष्य लोभवश हम लोगों के समय में यहां आते है उन्हे हम और राक्षस बन्दी बना लेते है। इसीलिये रात के समय जल में प्रवेश करना निषिद्ध है। क्या तुम्हे पता नहीं कि मैं गन्धर्वराज अंगारपर्ण इस समय गंगाजल में विहार कर रहा हूं। मैं कुबेर का प्रिय सखा हूं। मेरे ही नाम से यह वन भी प्रसिद्ध है। इस समय यहां पर देवता, रुद्रगण अथवा मनुष्य कोई भी नहीं आ सकता फिर तुमने अपराध किया है। यहां क्यों आये हो ? इस अपराध के लिये मैं तुम्हे दंडित करूंगा।

तब युधिष्ठिर ने बडे शान्त स्वर में कहा आर्य हम वनवासी ब्राह्मण हैं। यात्रा से थक गये इसलिये जल पीकर विश्राम करना चाहते थे। और गंगा पर तो किसी का एकाधिकार होता नहीं। वे तो सबकी माता है आप विहार करें हम तो कोई आपको रोक नहीं रहे परन्तु हमारा यहां आना अपराध कैसे हो गया ? गन्धर्व बोला जब मैं यहां हूं तो कोई अन्य व्यक्ति इधर आने का साहस नहीं करता परन्तु तुम तो दुस्साहस कर यहां आये हो। मैं हूं गन्धर्व अंगार पर्ण और मेरे नाम से ही यह वन जाना जाता है। अब तुम लोग मुझसे अपनी रक्षा करो। अंगारपर्ण के हाथ में धनुष था और वह तूणीर में से बाण निकालने लगा।

अर्जुन ने कहा अरे मूर्ख, समुद्र, हिमालय की तराई और गंगा ये स्थान रात दिन अथवा सन्ध्या के समय भी सुरक्षित हैं। भूखे, नंगे, धनी, गरीब सभी के लिये रात दिन गंगा माता का द्वार खुला है। यहां आने के लिये समय का कोई बन्धन नहीं है। यह देव नदी गंगा कल्याण जननी एवं सबके लिये बेरोकटोक है। तुम तो इस पर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हो। कमजोर नपुंसक ही तुम्हारे इस आदेश का पालन करते हैं। हम शक्ति सम्पन्न हैं। जो तुम कह रहे हो वह सनातन धर्म के विरुद्ध है।

अर्जुन की बात सुनकर चित्ररथ गन्धर्व ने जहरीले बाण छोडने प्रारम्भ किये। अर्जुन ने झपटकर अपने हाथ में पकडी उल्मुक से उस बाणपर ऐसा प्रहार किया जैसे कोई खड्ग के वार से अपने लक्ष्य का खंडन कर दे। अंगारपर्ण बाण पर बाण चलाता गया और अर्जुन अपनी उल्मुक से उन्हे इस प्रकार झटकता चला गया जैसे वे बाण न हो वृक्ष से टूटकर डालियां गिर रही हो। अंगारपर्ण सम्भल ही नहीं पाया था कि उसके धनुष की प्रत्यंचा अर्जुन के उल्मुक से जल चुकी थी और स्वयं अंगारपर्ण को अपने जल जाने का भय हो गया। वह अपनी रक्षा के लिये सनद्ध हुआ ही था कि अर्जुन की एक भुजा और टांग कुछ ऐसी चली कि अंगारपर्ण भूमिपर जा गिरा। अगले ही क्षण अर्जुन का पांव उसकी कटि को कुचल रहा था और उसकी मुट्ठी ने अंगारपर्ण के केशों को जकड रखा था। अर्जुन ने कहा अरे गन्धर्व। अस्त्र के मर्मज्ञों के सामने धमकी बन्द कर। मैं तुझसे कोई माया युद्ध नहीं करता हूं। मैं तो दिव्य अस्त्र चलाता हूं। यह अग्नि अस्त्र बृहस्पति ने भरद्वाज को, भरद्वाज से अग्निवेश्य को तथा अग्निवेश्य से मेरे गुरु द्रोणाचार्य को और उनसे मुझे प्राप्त हुआ है। चित्ररथ का रथ जल जाने से दग्ध रथ हो गया। वह आहत होकर रथ में कूद कर मुंह के बल लुढकने लगा।

अंगारपर्ण ने अकस्मात अपने दोनों हाथ जोड दिये और बोले मुझे प्राणों की भीख दो। मैं अपनी स्त्रियों के साथ विहार करने आया था और अपने कामावेग के कारण तुम लोगों की उपस्थिति से क्रुद्ध हो उठा। मुझ से भूल हो गई क्षमा करें और अपनी

स्त्रियों के सामने लज्जित नहीं करे जिनका सम्मान पाने के लिये मैं यह सब कर रहा था।

अर्जुन बोला क्षमा तो मेरे ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर ही करेंगे। उन्ही के पास चलो। अर्जुन उन्हे घसीटते हुये युधिष्ठिर के पास ले आये। अंगारपर्ण की पत्नी कुम्भीनशी अपने पतिदेव की रक्षा के लिये युधिष्ठिर की शरण में आ गयी। उसकी शरणागति और रक्षा प्रार्थना से द्रवित होकर युधिष्ठिर ने आज्ञा दी कि अर्जुन इस यशोहीन, पराक्रम हीन, स्त्री रक्षित गन्धर्व को छोड दो। युधिष्ठिर बोलें क्षमा प्राप्ति का अधिकार उन सबका है जो अपनी भूलों का पश्चाताप करते है। काम सदा ही मनुष्य का विवेक हरण कर लेता है। अर्जुन ने गन्धर्व को छोड दिया और कहा शोक मत करो। ज्येष्ठ भ्राता ने तुम्हे अभय दिया है। गन्धर्व ने अपनी पराजय स्वीकार की। मैं प्रसन्न हूं कि मुझे दिव्य अस्त्र का मर्मज्ञ मित्र मिला। मैं अर्जुन तुम्हे गन्धर्वों की माया विद्या सिखला देता हूं। इस विद्या का नाम चाक्षुषी विद्या है। इसे मनु ने सोम को, सोम से विश्वासु को और विश्वासु से मुझे प्राप्त हुई है। इस विद्या का प्रभाव यह है कि इसके बल में जगत की कोई भी वस्तु चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हो नेत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष देख सकते है। जो छै महिने तक एक पैर पर खडा रहे वही इसका अधिकारी है परन्तु आप इसे बिना किसी नियम और शर्त के स्वीकार करे। इसी विद्या के कारण हम गन्धर्व मनुष्यों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। मैं आप सभी भाइयों को गन्धर्वों के दिव्य वेगशाली और कभी न थकने वाले सौ सौ घोडे उपहार में देता हूं। वे चाहते ही आ जाते है और चाहते ही जहां चले जाते है और चाहते ही अपना रंग भी बदल लेते है। अर्जुन बोले गन्धर्वराज मैंने मृत्यु से तुम्हे बचा लिया है अगर इसके बदले में तुम कुछ देना चाहते हो तो मुझे यह स्वीकार नहीं। गन्धर्वराज बोला जब सत्पुरुष इकट्ठा होते हैं तब उनका परस्पर प्रेम भाव बढता ही है। मैं तो आपको यह सब प्रेमवश भेंट कर रहा हूं। अर्जुन ने कहा मित्र हमारी मैत्री अनन्त समय की है हमें पाकर अब तुम्हे किसी का भय नहीं रहेगा।

अंगारपर्ण गन्धर्व बोला आप अत्यन्त दयालु हैं आर्य। वह स्वयं को कृतज्ञता के हिमालय के नीचे दबा हुआ महसूस कर रहा था और पूछा क्या मैं अपने जीवनदाता का परिचय पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूं ? अर्जुन ने कहा हम साधारण बनवासी ब्राह्मण है और पांचाल राजकुमारी द्रुपद पुत्री का स्वयंवर देखने जा रहे हैं। अंगारपर्ण बोला मुझ जैसे धनुर्धारी यौद्धा को एक साधारण प्रज्ज्वलित उल्मुक की सहायता से परास्त कर दिया वह एक साधारण वनवासी का कार्य नहीं है मित्र। शत्रु को हाथ में आ जाने के पश्चात इस तरह क्षमा कर देना किसी साधारण व्यक्ति के वश का नहीं है। आप लोगों की वीरता साधारण ब्राह्मण का लक्षण नहीं है। आप तो कोई असाधारण...। तब युधिष्ठिर ने कहा यही मान लो कि परिस्थितियों के कारण हम अभी अपना परिचय नहीं देना चाहते परन्तु अनुकूल परिस्थितियों में तुम्हे हमारा परिचय स्वत: ही मिल जायेगा।

अर्जुन ने पूछा आपने हम पर आक्रमण किस कारण से किया तो गन्धर्वराज चित्ररथ ने बताया आप लोग न तो अग्निहोत्री ब्राह्मण है और न ही प्रतिदिन स्मार्त हवन करते हैं। आपके साथ कोई ब्राह्मण भी नहीं है। इसीलिये मैंने आप पर आक्रमण किया है। आप लोगों के विशुद्ध अन्त:करण, उत्तम विचार और श्रेष्ठ संकल्प को जानकर ही मैंने आक्रमण किया। एक तो स्त्रियों के सामने कोई भी अपना अपमान नहीं सहना चाहता, दूसरा कि रात के समय हमारा बल अधिक बढ जाने से भी क्रोध अधिक आता है परन्तु आप तो श्रेष्ठ धर्म ब्रह्मचर्य के पुजारी हैं। आपके ब्रह्मचर्य के तेज के कारण ही मैं पराजित हुआ। कोई ब्रह्मचर्यहीन क्षत्रिय रात्रि में मेरा सामना करता तो अवश्य ही वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता। ब्रह्मचर्य हीन होने पर भी यदि आगे आगे ब्राह्मण चल रहे तो सारा दायित्व उन पुरोहितों पर रहता है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अभिलक्षित कल्याण की प्राप्ति के लिये अवश्य ही जितेन्द्रिय पुरोहित का वरण कर उसे कर्म में नियुक्त करें। अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा करने के लिये गुणवान पुरोहित की अत्यन्त आवश्यकता होती है। बिना पुरोहित की सहायता के केवल अपने पराक्रम अथवा पुरजन परिवार के द्वारा पृथ्वी पर विजय हासिल नहीं की जा सकती। इसलिये किसी योग्य पुरोहित का वरण कर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करना सम्भव है।

५६) ब्रह्म तेज की महिमा

महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र हुये। उनकी पत्नी अरून्धती हुई। उन्होने अपनी तपस्या के प्रभाव से देवताओं के लिये भी काम और क्रोध पर विजय प्राप्त की। उन्होने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया था इसलिये उनका नाम वशिष्ठ हुआ। विश्वामित्र को बहुत अपराध करने पर भी उन्होने उनके प्रति अपने मन में क्रोध नहीं आने दिया और उन्होने उसे क्षमा कर दिया। यद्यपि विश्वामित्र ने उनके सौ पुत्रों को मार दिया और वशिष्ठ में प्रतिशोध लेने की पूरी शक्ति भी थी फिर भी उन्होने कोई प्रतिकार नहीं किया। उन्ही को पुरोहित बनाकर इक्ष्वाकु वंश के राजाओं ने पृथ्वी पर विजय प्राप्त की और उनकी सहायता से अनेकों यज्ञ किये। इसलिये चित्ररथ गन्धर्व ने कहा था ब्राह्मणों आप भी कोई धर्मात्मा और वेदज्ञ ब्राह्मण से पुरोहित रूप में वरण करो।

कान्य कुब्ज देश में गाधि नाम के एक बहुत बडे राजा थे। वे राजर्षि कुशि के पुत्र थे। उन्ही से विश्वामित्र का जन्म हुआ। यह जाति से क्षत्रिय थे। एक बार विश्वामित्र अपने मन्त्री के साथ मरूधन्व प्रदेश में शिकार खेलते खेलते थककर वशिष्ठ के आश्रम पर आये। वशिष्ठ मुनि ने भी उनका आदरपूर्वक स्वागत सत्कार किया। वसिष्ठ के पास कामधेनु की पुत्री होम नंदिनी गाय थी जिसके प्रताप से अनेकों प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य और पेय पदार्थ उपलब्ध थे आदि के द्वारा राजा विश्वामित्र को तृप्त किया। इस प्रकार के आतिथ्य से विश्वामित्र को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उन्होने महर्षि वशिष्ठ से कहा ब्रह्मन आप मुझसे एक अरब गाय ले लें और मेरा राज्य भी ले लें परन्तु इसके बदले में मुझे यह कामधेनु पुत्री नंदिनी दे दीजिये। वशिष्ठ बोले मैंने यह गाय देवता अतिथि, पितर और यक्षों के लिये रखी हुई है। आपके पूरे वैभव ऐश्वर्य के बदले में भी यह गाय आपको नहीं दे सकता और देने से साफ मना कर दिया। विश्वामित्र बोले मैं क्षत्रिय हूं और आप ब्राह्मण। आप शान्त महात्मा है। तपस्या स्वाध्याय में रत रहनेवाले आप इसकी रक्षा कैसे करोगे ? यदि आप अपनी स्वेच्छा से नहीं देंगे तो मैं इसे बलपूर्वक ले जाऊंगा। वशिष्ठ बोले राजन आप बलवान क्षत्रिय है, जो चाहे कर सकते हैं पर यह कामधेनु मैं आपको कदापि नहीं दे सकता। तब विश्वामित्र नंदिनी को बलपूर्वक खोलकर हांक कर ले जाने लगे तब वह डकार करती हुई मुनि वशिष्ठ के पास आकर खडी हो गई। वशिष्ठ ने कहा कल्याणी मैं तुम्हारा क्रन्दन सुन रहा हूं। विश्वामित्र तुम्हे बलपूर्वक छीन कर ले जा रहा है। मैं तो क्षमाशील ब्राह्मण हूं, मैं क्या करूं, लाचार हूं। नंदिनी बोली भगवन आप मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। वशिष्ठ नंदिनी का करूण क्रन्दन सुनकर भी न क्षुब्ध हुये और न ही धैर्य से विचलित। वे बोले क्षत्रियों का बल है तेज और ब्राह्मणों का क्षमा। मेरा बल क्षमा मेरे पास है। नंदिनी ने पूछा ऋषिवर आपने तो मेरा त्याग तो नहीं किया ? यदि नहीं तो बलपूर्वक तो मुझे कोई भी नहीं ले जा सकता। वशिष्ठ बोले कल्याणी मैंने तेरा त्याग किसी भी स्थिति में नहीं किया है। यदि तुझ में स्वयं की सामर्थ्य है तो तू अपनी रक्षा कर।

वशिष्ठ की बात सुनकर नंदिनी की आंखे लाल हो गई और वह वज्र कर्कश समान ध्वनि करने लगी और सिर उठाकर जोर जोर से हुंकार करने लगी। उसका यह भीष्ण रूप देखकर विश्वामित्र के सभी सैनिक भाग चले। नंदिनी के रोम रोम से अंगारों की वर्षा होने लगी। उसके एक एक अंग से पहलव, द्रविण, शक, यवन, शबर, पौंड्र, किरात, चीन, हूण, सिंहनी, बर्बर, खस्व, यूनानी, म्लेच्छ इत्यादि प्रकट हुये तथा हथियार उठाकर विश्वामित्र के सैनिकों पर टूट पडे। चारों ओर भगदड मच गई। जब विश्वामित्र की सेना तितर बीतर होकर भाग गई तब वशिष्ठ का यह ब्रह्मतेज देखकर विश्वामित्र आश्चर्यचकित हो गये। अपने क्षत्रिय भाव से उन्हे मन में बडी ग्लानि हुई। वे शोकातुर हो कहने लगे क्षत्रिय बल को धिक्कार है। वास्तव में ब्रह्म बल ही सच्चा बल है। इन सब में तपोबल ही प्रधान है। यह सोचकर विश्वामित्र अपने विशाल राज्य को त्याग, सांसारिक भोगों को त्यागकर वन में तपस्या करने चले गये। तपस्या से सिद्धि प्राप्त करके उन्होने सारे लोकों को अपने तेज से भर दिया और ब्राह्मणत्व प्राप्त कर ब्रह्मर्षि कहलाये।

५७) कल्माषपाद की कथा

वैशम्पायन कहते है जनमेजय राजा इक्ष्वाकु वंश में कल्माषपद नाम का राजा हुआ। वह एक दिन शिकार खेलने वन में गया। वह थका मांदा भूख प्यास से विह्वल था। वापिस लौट रहा था मार्ग में उसे वशिष्ठ पुत्र शक्ति आते हुये दीख पडे। शक्ति मुनि वशिष्ठ के सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ थे। कल्माषपाद ने कहा मुनि तुम रास्ता छोडो और हट जाओ तब मुनि शक्ति बोले सनातनधर्मानुसार क्षत्रिय का कर्तव्य है कि प्रथम वह ब्राह्मण को मार्ग दे पर तुम तो मुझे ही रास्ता छोड देने के लिये कह रहे हो। इस प्रकार दोनों में कहा सुनी हो गई। न ऋषि हटे और न ही राजा। राजा ने बिना कुछ विचारे ऋषि पर प्रहार किया तो ऋषि शक्ति ने भी राजा का अन्याय जानकर उसे शाप दे दिया कि अरे नराधम तू राक्षस की तरह तपस्वी पर अन्याय कर रहा है इसलिये जा राक्षस हो जा।

राजा कल्माषपाद राक्षस भावाक्रान्त हो गया। राजा ने कहा हे मुनि तुमने मुझे अयोग्य शाप दिया है इसके लिये अब मैं राक्षस भाव ग्रण कर तुम्हे खा जाता हूं और कल्माषपाद शक्ति मुनि को मार कर खा गया।

विश्वामित्र ने भी पहले द्वेष का स्मरण कर किंकिट नाम के राक्षस को आज्ञा दी कि वह कल्माषपाद के शरीर में प्रवेश कर जाये जिसके कारण वह ऐसे नीच कर्म में प्रवृत हुआ। वशिष्ठ को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होने जाना कि इस कार्य में तो विश्वामित्र की प्रेरणा है। फिर भी उन्होने अपने पुत्र शोक को धैर्य से धारण कर लिया। उन्होने प्रतिकार की सामर्थ्य रहते भी प्रतिशोध की भावना नहीं रखी। एक बार महर्षि वशिष्ठ अपने आश्रम पर लौट रहे थे तब उन्हे आभास हुआ कि उनके पीछे-पीछे कोई तो है। सभी वेदों की ऋचाये गाते हुये उनका अध्ययन करते हुये चल रहा है। तब वशिष्ठ ने पूछा मेरे पीछे पीछे ये कौन आ रहा है ? पीछे से आवाज आयी मैं आपकी पुत्रवधू शक्ति पत्नी अदृश्यन्ती हूं। वशिष्ठ ने कहा बेटी मेरे पुत्र शक्ति के समान स्वर से सांग वेदों का अध्ययन कौन कर रहा है? अदृश्यन्ती ने कहा आपका पौत्र मेरे गर्भ में है और वही बारह वर्ष से गर्भ में ही वेदाध्ययन कर रहा है। यह जानकर मुनि वशिष्ठ को बडी प्रसन्नता हुई। वशिष्ठ को लगा अच्छा हुआ कि मेरी वंश परम्परा का उच्छेद नहीं हुआ। इस तरह सोचते वे लौट रहे थे कि उस निर्जन वन में कल्पाषपाद से उनकी भेंट हो गई। वह राक्षस भाव को तो प्राप्त हो ही गया था और राक्षस बन वशिष्ठ मुनि को खाने दौडा। इस क्रूरकर्मा राक्षस को देखकर अदृश्यन्ती डर गई और बोली भगवन देखिये यह भयंकर राक्षस मेरी ओर दौडा आ रहा है आप इससे मेरी रक्षा करे। वशिष्ठ बोले पुत्री डरो मत। यह राक्षस नहीं कल्माषपाद है और यह कहकर महर्षि वशिष्ठ ने अपनी हुंकार से उसे रोक दिया। इसके बाद वशिष्ठ ने जल हाथ में लेकर मन्त्र से अभिमन्त्रित किया और कल्माषपाद के ऊपर डाला जिससे वह तुरन्त शाप से मुक्त हो गया। कल्माषपाद का तेज बढ गया और हाथ जोडकर उसने महर्षि से कहा मैं सौदास का पुत्र कल्माषपाद आपका यजमान हूं, आज्ञा करे मैं आपकी क्या सेवा करूं ?

वशिष्ठ ने कहा जाओ अपने राज्य की देखभाल करो पर ध्यान रखना कि कभी किसी ब्राह्मण का अपमान न हो। कल्माषपाद ने कहा ऋषिवर आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। क्षमाशील महर्षि वशिष्ठ इसी पुत्रघाती राजा के साथ अयोध्या आये और अपने कृपा प्रसाद से उसे पुत्रवान बनाया। वशिष्ठ के आश्रम पर अदृश्यन्ती के गर्भ से पराशर मुनि का जन्म हुआ। स्वयं महर्षि वशिष्ठ ने उसके जात कर्म संस्कार आदि किये। पराशर वशिष्ठ मुनि को ही अपना पिता समझते थे और पिताजी पिताजी कह कर पुक रते थे तब अदृश्यन्ती ने उन्हे समझाया कि मुनि वशिष्ठ तुम्हारे पिता नहीं दादा है। और यह भी बताया कि तुम्हारे पिताश्री को कसी राक्षस ने खा डाला। यह सुनकर पराशर के मन में बडा दु:ख हुआ और उन्होने सब क्षत्रिय राजाओं पर विजय पाने का निश्चय किया। तब महर्षि वशिष्ठ ने उनको प्राचीन कथायें सुनाकर समझाया कि तुम्हारा कल्याण इसी में है इन राजाओं की जगत में आवश्यकता है। वशिष्ठ के समझाने बुझाने पर पराशर ने राजाओं को पराजित करने का निश्चय छोड दिया परन्तु राजाओं के विनाश के लिये यज्ञ प्रारम्भ किया। तब महर्षि पुलत्स्य और वशिष्ठ ने समझा कर कहा वत्स क्षमा ही परम धर्म है।

तुम्हारे सभी पूर्वज क्षमा की मूर्ति रहे हैं। मनुष्य तो यों ही किसी की मृत्यु का निमित्त बन जाता है, तुम इस भयंकर क्रोध का त्याग करो। ऋषियों के समझाने पर पराशर ने भी क्षमा स्वीकार की और यज्ञ अग्नि को हिमालय में विस्थापित कर दिया। यह आग अब भी राक्षसों, वृक्षों और पत्थरों को जलाती है।

५८) पांडवों का धौम्य मुनि को पुरोहित बना वरण करना

वैशम्पायन कहते है जनमेजय गन्धर्वराज चित्ररथ ने पुरोहित की महिमा का वर्णन किया तथा महर्षि वशिष्ठ की क्षमाशीलता का वर्णन किया तो अर्जुन ने पूछा गान्धर्वराज सब कुछ जानते हो इसलिये हमें यह बताओ कि हम लोगों के योग्य कौन पुरोहित जो वेदज्ञ हों किसे वरण करें ? गन्धर्व चित्ररथ ने कहा अर्जुन इसी वन के उत्कोचक तीर्थ में देवल के छोटे भाई धौम्य तपस्या कर रहे है। आप लोगों की यदि इच्छा हो तो उन्हे वरण कर लें। पांडव अब अपनी आगे की यात्रा के लिये भगवती भागरथी के रमणीय तट को छोडकर अपने अभिष्ट स्थान को चल पडे।

पांडवों ने उत्कोचक तीर्थ में जाकर धौम्य मुनि के आश्रम का पता लगाकर उनके पास जाकर उनसे अपने पुरोहित बनने की प्रार्थना की। धौम्य मुनि ने कन्दमूल फल से उन सबका स्वागत किया और पुरोहित बनना स्वीकार किया। इससे पांडवों को अपार प्रसन्नता हुई और उन्हे ऐसा मालूम हुआ जैसे सारी सम्पत्ति और राज्य उन्हे मिल गया हो। धौम्य ऋषि ने पांचाल कुमारी द्रौपदी के स्वयंवर की बात पांडवों को बताई और उन्हे भी मन में निश्चय हो गया कि पांचाल कुमारी उन्हे प्राप्त होगी। धौम्य मुनि को भी लगने लगा कि इन धर्मात्मा वीरों को इनकी विचारशीलता, शक्ति और उत्साह के फल स्वरूप शीघ्र ही उनको राज्य भी प्राप्ति होगी। इसके पश्चात पांडवों ने आगे की यात्रा काम्पिल्य की ओर आरम्भ की।

५९) द्रौपदी स्वयंवर

वैशम्पायन कहते है जनमेजय जब नर रत्न पांडवों अपनी माता सहित राजा द्रुपद के श्रेष्ठ देश उनकी पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर महोत्सव को देखने के लिये प्रस्थान कियें तभी उन्हे मार्ग में बहुत से वेद त्रिपाठी ब्राह्मणों के दर्शन हुये। उन ब्राह्मणों ने पांडवों से पूछा आप लोग कौन हैं और कहां जा रहे हैं ? तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया पूजनीय ब्राह्मणों हम सब भाई एक साथ रहते है और इस समय एक चक्रा नगरी से आ रहे हैं। तब ब्राह्मणों ने कहा आप आज ही पांचाल की राजधानी काम्पिल्य में चलें, वहां महाराज द्रुपद ने स्वयंवर का एक महान महोत्सव आयोजित किया हैं। हम सब भी वहीं जा रहे हैं। अब हम लोग सब साथ साथ चले। युधिष्ठिर ने उन ब्राह्मणों की बात स्वीकार कर ली।

आर्यावत ही नहीं उसके बाहर की भी बहुत अनेक महत्वपूर्ण राज शक्तियां भी वहां एकत्रित होनेवाली है। वहां आर्यावत के भावी नेताओं का भी चयन होगा। राज्य लक्ष्मी अपने लिये अश्वमेघ तथा राजसूय यज्ञों का विजेता भी निर्धारित करेगी। सन्धि विग्रह होंगे, नयी मैत्रियां और शत्रुतायें निश्चित होगी। राजशक्तियों के नये नये समीकरण बनेंगे। कुन्ती पुत्रों को भी वहीं अपने मित्र और शत्रु चुनने होंगे। पांडव वहां उपस्थित रहे तो उनके मित्र उनके निकट आ सके। वही पांडवों का आगे का भविष्य लिखा जायेगा और नया इतिहास जन्म लेगा। देखना है कि उनके भाग्य में कौनसा अद्भुत पराक्रम लिखा है।

रास्ते में बहुत सारे हरे हरे जंगल और खिले कमलों में शोभायमान सरोवर देखते हुये स्थान स्थान पर विश्राम करते वे सब लोग आगे बढने लगे। अपने साथियों को पांडवों के पवित्र चरित्र, मधुर स्वभाव, मीठी वाणी और स्वाध्याय शीलता से बहुत प्रसन्नता हुई। पांडवों ने देखा कि द्रुपद का नगर निकट आ गया है तब उन्होने वहां पर एक कुम्हार के घर जाकर आश्रय लिया और उसके घर में रहकर ब्राह्मणों के समान भिक्षावृत्ति से अपना जीवन यापन करने लगे। किसी भी नागरिक को यह मालूम नहीं पडा कि ये पांडव है।

पांडवों का भविष्य जैसे आशा की ज्योति लिये उनके बहुत निकट खडा था। मार्ग में उन्हे काम्पिल्य की ओर जाते हुये झुंड के झुंड लोग मिले थे। साधारण दर्शक, अपने चमत्कार दिखाकर धन कमानेवाले कलाकार, और कौतुकी, विद्वान ब्राह्मण तथा याचक ब्राह्मण, व्यवसायी, कर्मचारी सबके सब काम्पिल्य जा रहे थे। सबकी जिव्हा पर काम्पिल्य का ही नाम। काम्पिल्य में धन था। काम्पिल्य में वीरों का समूह था। काम्पिल्य के लोग सुन्दर, सुशिक्षित परिश्रमी और सुसंस्कृत थे। द्रुपद और द्रौपदी की प्रशंसा तो हर मुख से थी। ब्राह्मणों की चर्चा से तो लग रहा था कि वहां स्वर्ण की वर्षा हो रही है जिसे वे अपनी झोली में भरने जा रहे है।

पांडव कुम्हार के घर ठहर गये। कुम्हार का घर घेरे में बहुत बडा था। नकुल ने पूछा काका आप घर निर्माण का कार्य क्यों करते है क्यों इतना श्रम और परिश्रम करते है? आप थक जाते होंगे। कुम्भकार ने उत्तर दिया स्वर्ग में बैठे ब्रह्मा जब इतने घटों का निर्माण करते हैं तो क्या ये धनार्जन के लिये करते हैं? श्रम तो शरीर का धर्म है। विधाता ने शरीर दिया है श्रम तो करना ही पडता है और मनुष्य का तो धर्म ही है विधाता की आज्ञा का पालन करना। कुम्भकार भी अपना धर्म समझ कर तपस्वियों-सन्यासियों को अपने आवास में ठहराता था। व्यवसाय से चाहे वह कुम्भकार हो किन्तु प्रकृति से तो सन्यासी है।

कृष्णा एक बार कृष्णद्वैपायन वेदव्यास में शास्त्रों का ज्ञान सुन रही थी और उत्सुकता से पूछ बैठी जीवन क्या है ? सृष्टि के सभी ग्रन्थो में, शास्त्रों का ज्ञान पाने में यह जीवन यथेष्ट न हो तो क्या मनुष्य के लिये ? वेदव्यास हंस पडे और बोले तुम्हारा नाम कृष्णा न होकर तृष्णा होता तो अधिक उचित होता। पुत्री तृष्णा दु:ख देनेवाली होती है परन्तु ज्ञान की तृष्णा आनन्दमयी होती है। यह एक जन्म तो क्या सहस्त्रों जन्मों में नहीं मिटती। जल पान से तृषा दूर होती है। ज्ञानपान करने पर वह तृष्णा और अधिक बलवती हो जाती है। तृष्णा मिटने पर ज्ञान का मार्ग रूक जाता है। अनन्त समय की बेला भूमि में ज्ञान की रंग विरंगी सीप समेटते समय जीवन चुक जाये यही तो सार्थक जीवन है।

राजा द्रुपद के मन में बडी लालसा थी कि उनकी पुत्री द्रौपदी का वरण आर्यावत के परमवीर श्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन के साथ हो परन्तु उन्होने अपना यह विचार किसी पर प्रकट नहीं किया। एक बार कृष्ण द्वारिका से द्रुपद के यहां आये थे तो उन्होने द्रौपदी के लिये कृष्ण के साथ का प्रस्ताव रखा था। द्रौपदी भी अपने जीवन के सपनों में खोयी थी। साथी के विचारों में रत्न जडित पलंग पर भी नींद नहीं आती और जब नींद ठीक से न आये तो आदमी सपने ही देखता है। कृष्ण ने कहा राजा द्रुपद देवी कृष्णा कोई साधारण नारी नहीं है। उनके लिये तो स्वयंवर का आयोजन करे। आर्यावत का श्रेष्ठ वीर ही कृष्णा के लिये योग्यतम पुरुष होगा। द्रौपदी के लिये जो स्वयं को योग्यतम सिद्ध कर सके वही कृष्णा का पाणिग्रहण कर सकेगा। महाराज द्रुपद ने कहा हे कृष्ण आर्याव्रत में आपके अलावा और श्रेष्ठ वीर कौन होगा। कृष्ण जहां मनोमत पुरुष है वहां स्वयंवर के आयोजन की क्या आवश्यकता ? आपके रहते स्वयंवर में कृष्णा को जीतने की किसमें सामर्थ्य है ? कृष्ण मन्द-मन्द मुस्कुराकर कह उठे है। मेरे अलावा भी एक और है। अत: स्वयंवर के बिना कृष्णा के पाणिग्रहण का अधिकार किसी को भी नहीं। महाराज द्रुपद ने प्रश्न किया ऐसा कौन वीर है और क्या है उसका परिचय ? कृष्ण के अलावा कौन है मेरी पुत्री कृष्णा के योग्य ? कृष्ण ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा हरि, हर, ब्रह्मा और इन्द्र की शक्ति लेकर पृथ्वीतल पर एक महान व्यक्ति का नर के रूप में जन्म हुआ है वह है पांडव अर्जुन मेरा बुआ पुत्र भाई। मेरा और अर्जुन का पितृवंश एक है। अर्जुन मेरी ही कला से जन्मा है। चन्द्र वंशी राजा ययाति के औरस से शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के गर्भ से महाराज यदु मेरे पितृ पुरुष है। ययाति की द्वितीय पत्नी वृषपर्वा की पुत्री शमिष्ठा के गर्भ से पुरु का जन्म हुआ। पुरु ही कौरवों और पांडवों के पितृ पुरुष हुये। राजन अर्जुन का वीरत्व आपसे छिपा नहीं है और उसके रहते कृष्णा के योग्य दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। अर्जुन मेरा अन्तरंग सखा है मेरा फूफेरा भाई है। हमारी देह अवश्य भिन्न है परन्तु आत्मा अभिन्न। अर्जुन जैसे त्रिभुवन सुन्दर को अपना दामाद बना आप यशस्वी होंगे। फिर कृष्णा को तो मैं अपनी सखी, बहिन समझता हूं।

द्रुपद प्रफुल्लित हो उठे। जिस वीर ने कभी द्रोण के आदेश पर द्रुपद को बन्दी बनाया था वही होगा उसका जामाता। अब उसके बल से द्रोण का दर्प चूर होगा। दामाद के हाथों अपने अपमान का बदला लूंगा। द्रोण का सर्वश्रेष्ठ शिष्य मेरा दामाद बनेगा। अब मेरा जामाता द्रोण को परास्त कर सकता है अब द्रोण को मेरे शरणापन्न होकर रहना होगा। द्रुपद इन्ही विचारों में खोये रह गये। द्रोण का प्रतिरोध करनेवाला उचित दामाद अगर अर्जुन है तो फिर इसमें आपत्ति ही क्या ?

द्रौपदी की कोई इच्छा नहीं, कोई कामना नहीं, आकांक्षा नहीं क्योंकि वह तो यज्ञ होम से जन्मी याज्ञ सेनी है। उसका जन्म, जीवन और मरण किसी और के निर्देश से संचालित है। वह क्यों आयी है, क्यों जीवित है, कैसे मरेगी ? उसका क्या उद्देश्य है वह कुछ भी तो नहीं जानती। अज्ञान ही उसका सम्बल है। कृष्ण ने द्रौपदी से कहा देवी द्रौपदी अपने पिता के शत्रु का नाश करने के लिये ही तुम्हारा जन्म हुआ है। पिता के शत्रु ही नहीं, इस पृथ्वी के दुराचारियों का विनाश करने के लिये जन्मी हो। तुम कामना, वासना, मन, हृदय और बौद्धिक विचारों को धर्म की स्थापना के लिये उत्सर्ग करो। जो महता स्वार्थ के लिये क्षुद्र स्वार्थ की आहुति देता है वही जीवन की महानता प्रतिपादित करता है। द्रौपदी समझ गई कृष्ण ही धर्म प्रवर्तक है। द्रौपदी के लिये शैशव की कोमल, सरल, निष्पाप अज्ञता इतनी सुखकर थी। कृष्णा ने निश्चित मन से कृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन को हृदय में स्थान दिया और मन ही मन अर्जुन को चाहने लगी। कृष्ण तो प्रेम पागल है स्नेह का भूखा है। द्रौपदी अर्जुन के बारे में सोच विचारों में खो गई। अर्जुन के नाम फाल्गुनी, विजय, भारत, विष्णु, किरीटी, श्वेतवाहक, वीभत्सु, सव्यसांची, धनंजय, पान्डव, पृथा नन्दन, कौन्तेय, गुडाकेश क्या द्रौपदी इन सब का स्मरण कर सकेगी ? अर्जुन कृष्ण की कला लेकर जन्मा है अब द्रौपदी ने हृदय में जिस कृष्ण को स्थान दिया था वही स्थान अब इस सव्यसांची को देगी और उसे विश्वास हो गया कि अर्जुन ही पृथ्वी का श्रेष्ठ वीर है और उसके लिये उपयुक्त पुरुष। बाल्यकाल से ही अर्जुन की वीरता उजागर हुई। गुरु द्रोण के सर्वश्रेष्ठ शिष्य की अद्भुत परीक्षा में अर्जुन जयी हुआ। आठ हजार आठ सौ अठाईस कोस की दूरी पर एक पर्वत है। पर्वत पर एक दुर्ग और उस पर एक सींक। उस पर्वत की सींक की श्रृंग पर एक सरसों का दाना रखा। गुरु का निर्देश था कि अपनी धनुर्विद्या से उस सरसों के दाने को दो समान भागों में खंड करो। कितनी अद्भुत थी यह परीक्षा ? भला इसमें कोई उत्तीर्ण हो सकता है इस परीक्षा में उतीर्ण हुआ वह कृष्ण सखा अर्जुन इसके अलावा यह असाध्य कार्य कौन कर सकता है। अर्जुन को वश में कर लेने पर कृष्ण भी वश में हो जायेंगे और कृष्ण जिसके वश में हो उसे कैसा दु:ख ? दु:ख बिना भी कहीं जीवन होता है ? कृष्ण तो दु:ख बन्धु है। दु:ख आने पर ही कृष्ण स्वयं आ जाता है उसे बुलाना नहीं पडता।

पौष मास का शुक्ल पक्ष एकादशी और रोहिणी नक्षत्र। इस पुण्यबेला में पांचाल राज्य जगमगा उठा। समूचे आर्याव्रत से अधिक प्रभावशाली राजा पांचाल नरेश महाराज द्रुपद की अपूर्व सुन्दरी विधि, नीति, धर्म, दर्शन एवं तर्कशास्त्र में निपुण एकमात्र पुत्री का स्वयंवर था। युवराज्ञी के सद्गुण की ख्याति कस्तूरी सुगन्ध सी सुदूर देशों तक फैली हुई थी। अत: स्वयंवर में आनेवाले बडे बडे नृपों, राजा महाराजाओं की भीड लगी थी। कितने राजा लोग सपने संजोकर आये थे ऐसी अमूल्य कन्या की वरमाला उन्हे ही वरण करेगी। अर्जुन की वीरता और शौर्य को कौन नहीं जानता था। द्रुपद तो बहुत पहले ही अर्जुन से परास्त हो चुका था। ऐसे अद्भुत स्वयंवर के आयोजन के पीछे पिता द्रुपद का उद्देश्य था कि अर्जुन जैसा कोई दूसरा स्वयंवर की शर्त पर नहीं उतर सकेगा फलत: अर्जुन ही पांचाल नरेश का जामाता हो। दूसरे अतीत में अर्जुन से द्रुपद का पराभव हुआ तो वे पांचाल देशवासियों के सम्मुख प्रशमित कर सकें।

स्वयंवर की शर्त में स्वयंवर के लिये जो धनुष बना था वह इतना कठोर और भारी था कि उसे झुकाकर उस पर प्रत्यन्चा चढाना भी अत्यन्त कठिन था। स्वयंवर के लिये एक सुन्दर मंच बना। मंच पर ऊंचा एक दंड उस पर घूमता हुआ चक्र। तेजी से घूमते चक्र के साथ लक्ष्य मछली उसका प्रतिबिम्बित होगा नीचे रखे कडाई में उबलता गर्म द्रव्य। उस कडाई में घूमती हुई

मछली की आकृति को देख कर धनुष उठाकर प्रत्यन्चा चढा जो मछली की आंख में लक्ष्य भेद करे इसके लिये पांच शर बाण रखे हुये जो लक्ष्य भेदन करे वही द्रौपदी के स्वयंवर के उपयुक्त वर होगा। शायद द्रुपद चाहते थे जैसे कृष्ण सखा अर्जुन की धनुर्विद्या और शरसन्धान की ख्याति सुनी हुई थी वे अर्जुन के अलावा द्रौपदी किसी और को मिले यह नहीं चाहते थे इसलिये ऐसी शर्त रखी कि सव्यसाची के अतिरिक्त कोई दूसरा यह पूरी कर ही नहीं सके।

आयोजन की तैयारिया हो रही हैं। समूचे पांचाल में स्वयंवर से पहिले एक महिने में उत्सव मनाया जा रहा है। देश में चारों ओर आनन्द की वसंत ऋतु फैली हुई है। धनी, निर्धन सभी उत्सव में भाग ले रहे हैं। सब घरों में लिपाई पुताई हो रही है। मांडने चित्र अंकित हो रहे हैं। लगता है जैसे सारा देश नया देश बनाया जा रहा हो। सब के द्वार पर आम्र बेल डाल के तोरण, पूर्ण कुम्भ शुभ संकेत के रूप में रखे गये। सभी राज्यवासियों को राजकीय कोष से धन व्यय पर नूतन वस्त्र प्रदान किये गये। पुरवासी नर नारी नूतन वस्त्रालंकार धारण कर राज्य की शोभा बढा रहे थे। समूची राजधानी आलोक माला हो रही थी। रात जगमगा उठी। स्थान स्थान पर नृत्य, वाद्य, गीत अतिशबाजी से हर्षोल्लास रात दिन मनाया जा रहा था। स्वयंवर का सभागृह सजाने के लिये प्रसिद्ध चित्रकार और शिल्पी आये। इन्द्रपुरी जिन्होने नहीं देखी आज वे इस स्वयंवर की साज सज्जा देखकर आलोक दिव्य दीपों की रोशनी और आडम्बर देखकर स्वयं को खूब भाग्यशाली मान रहे। इन सबके लिये सुनियोजित योजनायें बनी। ऊपर चांदी का चन्दोबा ताने हुये उसमें सुनहले तारे। सुवासित पुष्प कुंड, सभामंडप, स्वयंवर मंडप और अतिथियों के प्रवेश मार्ग से लेकर बैठने के स्थान तक रखे हुये। समूचा सभा स्थल रंग मंडप महक रहा था। दीन दरिद्र से लेकर आये हुये सभी अतिथियों के लिये भांति भांति के मेवा मिष्ठान पकवान तैयार हो रहे थे। कोई कोई तो सोच रहा था कि राजकुमारी का यह स्वयंवर अगर वर्षों चलता तो जीवन आनन्द मुखर हो जाता। उन्हे लगता था कि जैसे स्वर्ग के किसी कोने में आ गये हो। वह विशाल रत्न मंडप कठोर परिश्रम से चतुर विश्वकर्मा ने निर्मित किया हो जैसा। असंख्य मणियां झिलमिला रही थी। तोरण बन्दनवारों से, झालरों, कंगूरों की शोभा अद्भुत थी। विशाल मणि स्तम्भ और दीप शिखा। विराट द्वार। सुदीर्घ दीपाधार यूप। अगरू चन्दन, धूप तथा पुष्प मालाओं से परिपूर्ण था स्वयंवर मंडप स्थान-स्थान पर चौक पुराये गये। सौभाग्यवती नारियां वस्त्राभूषणों से अलंकृत मांगलिक गीत गा रही थी। न जाने कहां कहां के राजा महाराजा अपने देश की विविध वेशभूषा झिलमिलाते किरीटों से सुसज्जित बैठे अपने भाग्योदय की प्रतीक्षा में रत थे। कौशेय वस्त्र, मणि मालायें कंठहार विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित उन सबके भावों को छिपाने में असमर्थ थे।

राजपथ के किनारे किनारे वृक्ष लगाये गये। नूतन पत्ते, पुष्प एवं फल भार से वृक्ष अलंकार मंडित अवगुंठन भरी पुर नारी की तरह शोभित। शुक सारिका कोकिला आदि को पुर में होनेवाले उत्सव का संकेत। मधुर काकली का स्वर जन-मन हर लेता है। उत्सव के संगीत में स्वकीय स्वर मिला कर मानो वे भी अपना कर्तव्य निभा रहे है। अतिथि भवन के सामने स्वच्छ जलाशयों में किलोल करते राजहंस तैर रहे हैं। आये हुये अतिथिगण देखकर मुग्ध हो रहे हैं। आकाश मेघ रहित है। फिर भी स्थान-स्थान पर मयूर नृत्य का नृत्य गीत में अपना योग दे रहे हैं मानो वे नर्तकियों के साथ प्रतियोगिता में लीन है।

इस पृथ्वी पर मनुष्य ही सर्वाधिक दु:ख पाता है क्योंकि सुख में डूबकर भी वह दु:ख आने की, विपत्ति, आपदा आने की आशंका करते रहता है। दु:ख में लीन रहते समय भी कुछ लोग सुख की कल्पना करते रहते है। दु:ख में भी सुख अन्तर्निहित रहता है। अत: जीवन में अश्रु का भी मूल्य है। जो घटित होनेवाला है वह तो घटित होगा ही। अत: सुख के क्षणों में आनन्द का उपभोग न कर आशंकित दु:ख की कल्पना में रोना दु:ख आने के पहिले किसलिये ?

हंसती व उल्लसित प्रतिक्षारत युवराज्ञी याज्ञसेनी पांचाली का सुख विधाता को स्वीकार नहीं था। तडित वेग से यह समाचार फैला कि चारों पांडुनन्दन माता कुन्ती सहित दुर्योधन की दुर्वृतियों से वारणावत में लाक्षागृह में भस्म हो गये। सुनकर महाराज द्रुपद भी स्तम्भित हो गये। द्रुपद पर यह वज्रपात। सुदूर राज्यों के राजपुरुषों को निमंत्रित किया जा चुका था। स्वयंवर की

तैयारियां जोरोंपर थी। नगर में हर्षोल्लास मनाया जा रहा था, पांडु पुत्र काल कवलित हो गये सुनकर द्रुपद सिहर उठे। द्रुपद का हृदय उद्विग्न हो गया। उनकी समस्त आशायें तिरोहित हो गई। कौन अब भूतल पर उनकी सुयोग्य पुत्री का वर होगा ?

द्रौपदी भी सुनकर निस्पन्द बैठी रही। द्रौपदी तो पहिले ही मन ही मन अर्जुन को वरण कर चुकी थी। अब उसके मन की क्या दशा होगी। द्रौपदी यह भी जानती थी कि अर्जुन के अलावा दूसरा कोई स्वयंवर की शर्त पूरी नहीं कर सकता। स्वयंवर को लेकर द्रौपदी के मन में सारा आवेग, स्वप्न, कल्पना, कामना, उत्कंठा ठंडा पड गया। उस स्वप्न पुरुष का अकाल दारुण वियोग रह रह कर जाग उठ रहा था। अनजाने नेत्रों में अश्रु भर आये, हृदय में व्यथा भर गई। स्वर्ण निर्मित मंचपर प्रतियोगी राजा आसन ग्रहण कर चुके है। समग्र सभा स्थल भांति-भांति के चंदोंवों से सुशोभित है। सोने और चांदी के तारों से खचित झालर चमक रही है। प्रतियोगी प्रत्याशी राजा महाराजा खूब सजे धजे हुये आने लगे है। सब कृष्णा के स्वयं को योग्य समझकर आह्लादित हो रहे है। पंडित और विद्वान विशिष्ठ आसनों पर विराजमान हैं। ब्राह्मणों के लिये स्वतन्त्र व्यवस्था एक पृथक कोष्ठ बना हुआ है। नगर के दर्शकों और पुरनारियों के बैठने की एक और व्यवस्था हुई है। उनका मंच इस प्रकार निर्मित है कि वे सभा स्थल को पूरी तरह से देख सकें पर उन्हे कोई सामान्य दृष्टि से न दे सके। प्रत्याशी गणों में दुर्योधन उनके सब भाई, कर्ण, शकुनि, अश्वत्थामा, जयद्रथ, शल्य, शाल्व, कृतवर्मा, सात्यकि, जरासंध, शिशुपाल इत्यादि प्रत्याशी व अतिथि गण आ चुके हैं। अंग बंग कलिंग, चोल, पांड्य, मगध, कोसल, हस्तिनापुर, मद्र, कम्बोज, गान्धार आदि सभी राज्यों के विद्वान पंडित और प्रतिनिधि पहुं गये है।

उसी समय राज मंडप में फिर एक बार हलचल मच गई। फिर कोई नया अतिथि आया था। आगन्तुक कदाचित बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति था। सारा मंडप जैसे एक तीव्र उत्तेजना से ग्रस्त हो उठा था। कुछ लोग उठ कर स्वागत के लिये बाहर भागे थे कुछ अपने स्थान पर ही खडे रह गये। इस बार मंडप में प्रवेश करने वाले महत्वपूर्ण अतिथियों में थे वासुदेव कृष्ण और बलराम उनके साथ में थे अक्रूर, उद्धव और कृतवर्मा तथा अन्य यादव यौद्धा। सबने अपना अपना आसन ग्रहण किया। महाराज द्रुपद ने सबको प्रमाण किया और कहा आइये विराजिये कृष्ण।

द्रुपद ने धृष्टद्युम्न को पुकारा और आज्ञा दी कि स्वयंवर की कार्यवाही शुरू करे। यह स्वयंवर मैंने अर्जुन को ध्यान में रखकर स्वयंवर शर्त रखी पर मुझे डर है कि द्रौपदी की वरमाला कहीं उसके हाथ में ही न रह जाये। धृष्टद्युम्न ने कहा पिताजी आप ऐसा क्यों सोचते है ? आज इस मंडप में भारत के सभी वीर यौद्धाओं का जमघट है और फिर स्वयं गुरु द्रोणाचार्य के दूसरे शिष्य भी यहां उपस्थित है। द्रुपद बोले जाओ पुत्र तुम्हारी बहिन द्रौपदी को ले आओ। धृष्टद्युम्न ने कहा जो आज्ञा पिताश्री और यह कहकर वह द्रौपदी को लाने चला गया।

दुर्योधन गुरु पुत्र अश्वत्थामा को देखकर बोला गुरुपुत्र क्या तुम भी प्रतियोगिता में भाग लेने आये हो ? अश्वत्थामा बोले नहीं। मैं कैसे प्रतियोगिता में भाग ले सकता हूं। द्रौपदी तो मेरी गुरु बहन है। दुर्योधन बोला तब तो द्रौपदी हम सभी की गुरु बहिन हुई। अश्वत्थामा बोला ना, सिर्फ मेरी क्योंकि काम्पिल्य नरेश द्रुपद मेरे पिता के गुरु अग्निवैश्य के गुरुभाई है। इस नाते से मैं तो घराती हूं और यदि तुमने यह स्वयंवर जीता तो मैं तुम्हारा स्वागत करूंगा। दुर्योधन बोला मेरे स्वयंवर जीतने के बारे में तो कोई शंका तो हो ही नहीं सकती गुरुपुत्र। स्वयंवर तो मैं ही जीतूंगा।

सखियों ने द्रौपदी को विविध भांति से सजाया था। शुभ्र वसन और शुभ्र पुष्पों से समग्र देह मंडित थी। हीरक अलंकारों से सज्जित थी श्याम वर्णा अत्यन्त कमनीय थी। मांगलिक वाद्य बजने लगे। पांचाल सैनिक मंडप में प्रवेश कर रहे थे। सुन्दर उत्सवी वेश में सजी सलोनी सभी दासियां मंगल कुम्भों से पुष्प बरसाती हुई धीरे-धीरे सभा मंडप में प्रवेश कर रही थी। सारी रंगशाला उन्माद में उठ खडी हुई। भाटों ने उद्घोषित किया पांचाल नरेश महाराज द्रुपद की पुत्री राजकुमारी पांचाली द्रौपदी

स्वयंवर मंडप में पधार रही है। हाथ में वरमाला लिये अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ मंद गति से चलती हुई द्रौपदी रंग मंडप में आई। द्रुपद ने सबको बैठने का संकेत किया। द्रौपदी ने आकर महाराज द्रुपद को प्रणाम किया। द्रौपदी ने अपने सखा कृष्ण को प्रणाम किया। द्रौपदी की उपस्थिति मात्र से ही सम्पूर्ण सभास्थल में मधुर गुंजारण हो गया। युवक, वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, स्त्री-पुरुष सब स्तब्ध होकर द्रौपदी के श्यामल सौन्दर्य को निहारने लगे। इतने सारे जन समुदाय की लोलुप दृष्टि से वह लज्जित हो रही थी। सभा स्थल पर स्वयंवर नारी का रूप दर्शन कितना कष्टप्रद और पीडादायक है यह स्वयं नारी ही जानती है। विद्वान और पंडितगण भी इस बात का अनुभव नहीं कर सकते।

द्रौपदी का अपूर्व श्रृंगार था उसका सौन्दर्य पूर्ण चन्द्र के समान था परन्तु उसके पीछे छिपी हुई झलकती हुई उसकी मनोव्यथा। कोमल मुख मंडल कुम्हलाया हुआ था सतत अश्रु पात से। सूने सजल नेत्रों में व्याकुल दृष्टि छिपे छिपे उस सभा मंडप में किसे ढूंढ रही थी और फिर निराश होकर हताश होकर हताप हो, शिथिल सी लौट आ रही थी। उसके मन का मीत क्या जीवित है तो यहां आया होता।

जाने क्या ढूंढती रहती है ये आखें, राख के ढेर में एक शोला है या शबनम।

आमन्त्रित सभी राजा उस रूप राशि की खान को लालायित दृष्टि से निहारते और जीभ लपलपाने लगी। दूसरी ओर उस कठोर लक्ष्य वेध की ओर देखकर मस्तक पर पसीने के कण छलछलाने लगते। धृष्टद्युम्न आगे बढकर उद्घोषक मंच पर आया और घोषणा करने लगा। अभ्यागत राजजन्य समाज तथा उपस्थित जन समाज सुने। अपने पिता पांचाल राज द्रुपद की आज्ञा और उनकी अनुमति से मैं यह घोषणा कर रहा हूं कि काम्पिल्य नगरी के लिये यह बडे गौरव की बात है। मैं आज अपने पिताश्री की ओर से आप सब वीरों का अभिनन्दन करता हूं। भारतवर्ष का हर वीर, महावीर इस समय यहां पर उपस्थित है। और जो अनुपस्थित है वह नि:सन्देह ही वीर नहीं हो सकता। हे समवेत उच्चकुल सम्भूत राजमंडली यह मेरी बहिन पांचाल राजकुमारी द्रुपद पुत्री वरवर्णिनी कृष्णा इस स्वयंवर में अपने उपयुक्त वर का चयन कर उसे वरण करेगी। आपने शरीर के सौन्दर्य का अवलोकन किया। ये केवल आर्यावत की श्रेष्ठसुन्दरी ही नहीं है, ये सर्वगुण सम्पन्न है। स्वल्पभाषिणी होते हुये भी विद्यावान, विचारशीला, विदुषी है, शास्त्रज्ञ, संगीत निपुणा है, बुद्धिमत्ती है और दिव्य दर्शिनी है, पृथ्वी पर सत्य की प्रतिष्ठा और धर्मरक्षा इनके जीवन का मूलमन्त्र है। आज वह आप में से योग्यतम के निर्वाचन के लिये यहां उपस्थित है। स्वयंवर की शर्त से तो आप सब परिचित है ही। हे समवेत वीर गण आप सब द्रौपदी के विवाह हेतु उत्सुक होकर पधारे हैं। राजकुमारी वीर्य शुल्का है इसलिये यह चयन स्वयंवर की प्रतिज्ञा के अधीन होगा। उत्तम कुल, सुन्दर रूप और श्रेष्ठ बल से सम्पन्न जो वीर प्रतिज्ञा पूरी करेगा मेरी बहन द्रौपदी उसी का वरण करेगी।

जब धृष्टद्युम्न घोषणा कर रहा था उसी समय पांचो पांडव भी ब्राह्मण वेश में वहा आये और जन साधारण ब्राह्मण प्रकोष्ट में जाकर स्वयंवर देखने खडे हो गये हैं। श्रीकृष्ण ने इन सब भाइयों को आते हुये देख लिया। अर्जुन श्रीकृष्ण को देखकर प्रणाम करता है। बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कृष्ण यह दूसरा ब्राह्मण तो बहुत खूब खाया पिया दीख रहा है। कृष्ण बोले वो ब्राह्मण पुत्र तो है ही नहीं दाऊ। बलराम बोले इस ब्राह्मण पुत्र ने तुम्हें क्यों प्रणाम किया। कृष्ण बोले यह तो वो ही जाने दाऊ। बलराम ने कहा तुम प्रश्न का सीधा उत्तर क्यों नहीं देते ? कृष्ण ने कहा क्योंकि आपका कोई प्रश्न कभी सीधा होता ही नहीं। बलराम बोले तो क्या तुम उस ब्राह्मण को जानते हो ? कृष्ण बोले उसे तो आप भी जानते हो दाऊ। जो आगे था वो युधिष्ठिर है और दूसरा बडे खाया पीया वाला ब्राह्मण वास्तव में भीम है। बलराम बोले फिर अर्जुन है, फिर नकुल है और फिर सहदेव है। कृष्ण बोले मैं यही तो कहने जा रहा था दाऊ। बलराम बोले तो पांडवों के अतिरिक्त तुम्हे और कुछ कोई दिखाई नहीं देता। वो बेचारे तो वारणावत में जलकर भस्म हो चुके हैं। मुझे तुम धृष्टद्युम्न की बात सुनने दो।

धृष्टद्युम्न बोला हमारे पिताश्री ने हमारे सब वीरों को स्वयंवर में आमंत्रित किया है। यह रहा आपका लक्ष्य और सामने रखे हैं ५ धनुष बाण। इन पांचों बाणों में जो चक्र स्थित मत्स्य की आंख धनुषपर प्रत्यन्चा चढाकर बेधन कर देगा उसे ही मेरी बहिन द्रौपदी प्राप्त होगी उस वीर का उच्चकुल सम्भूत होना आवश्यक है। उसका कुल उत्तम, रूप सुन्दर और श्रेष्ठ बल से सम्पन्न हो यह घोषणा करने के अनन्तर धृष्टद्युम्न द्रौपदी की ओर देखकर प्रत्येक प्रतियोगी का परिचय देते गये। देखो ये धृतराष्ट्र के बलवान पुत्र दुर्योधन, दुर्बिह, दुर्मुख, पुष्पघर्षण, विविशति, विकर्ण, दुशासन, युयुत्सु, वीरवर कर्ण आदि। बडे-बडे यशस्वी और कुलीन नरपति शकुनि, वृषक, वृहदल आदि प्रधान भी स्वयंवर में तुम्हे पाने के लिये आये हैं। अश्वत्थामा, भोज, मणिमान, सहदेव, जयत्सेन, राजा विराट, सुशर्मा, चेकितान, पौण्ड्रव, वासुदेव, भगदत, शल्य, शिशुपाल, जरासन्ध और बहुत से सुप्रसिद्ध राजा महाराजा यहाँ उपस्थित हैं। जिस समय धृष्टद्युम्न सबका परिचय दे रहा था उस समय वहां रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, मरूदगण, यमराज और कुबेर आदि देवता भी अपने-अपने विमानों द्वारा आकाश में स्थित हो देख रहे थे। दैत्य, गरुड, नाग, देवर्षि और मुख्य मुख्य गन्धर्व भी उपस्थित हुये। वासुदेव श्रीकृष्ण बलराम प्रधान यदुवंशी और अन्य बहुत से महानुभाव भी स्वयंवर महोत्सव देखने के लिये वहां आये थे। किन्तु लज्जावश द्रौपदी की दृष्टि नहीं उठी। उस परिचय पत्र में उसके अभिष्ट पुरुष का नाम कहीं नहीं था। अब मैं आप सबको आमंत्रित करता हूं कि अपना-अपना प्रयास आरम्भ करें।

भीम तो सदा ही उग्र प्रवृत्ति का रहा है उसने दुर्योधन, कर्ण, शकुनि इत्यादि को उस स्वयंवर राजसभा में देखा कि वे सब तो सम्मानित अतिथि की तरह यहां बैठे हुये हैं। यह हत्यारा जिसने दो बार भीम को मारने का प्रयत्न किया। उनकी माता और उनके भाईयों की षडयन्त्र से हत्या करना चाहा उनका राज्याधिकार छीन लिया उनके वैभव का हरण कर लिया। वह नीच हत्यारा पापी, दम्भी पशु सदृश अभी इसे मार डालूं पर भीम विवश था। युधिष्ठिर ने भी दुर्योधन को अपने साथियों सहित मंडप में बैठे देखा उसके मन में भी यहीं विचार चल रहे थे कि यह आततायी यहां पर है। उसे किसी ने कोई दंड नहीं दिया न विधाता ने, न राजा ने और न ही समाज ने। यहां तो वह सम्माननीय बना बैठा हुआ है। यदि हत्यारों को राजाओं का अधिकार और सम्मान मिल जायेगा तो प्रजा का क्या होगा ? वहीं पर एक ब्राह्मण बैठा अपने साथी को किसी संदर्भ में समझा रहा था कि पुत्र जो कुछ सामने दिखाई देता है वही सत्य नहीं है। कई बार देखा गया है कि मलिन आत्मा को छिपाने के लिये चमकीला और भडकीला वेश भी धारण करना पडता है और मलिन वेश में कभी एक से एक उज्ज्वल महान, द्युतिमान आत्मायें भी मिल जाती हैं, भीम ने सुनकर कहा ठीक कह रहे हो बाबा। ये जो स्वर्णमुकुट पहिने, उज्ज्वल वस्त्रों में उस मंडप में जो उच्चासनों पर बैठे हैं वे क्या चरित्रवान लोग हैं ? जाने इन्होने कितने लोगों के अधिकार छीने, कितने लोगों के वैभव का हरण किया और कितने ही लोगों की हत्यायें कर दी। तब भी इन्हे ये सम्मान के आसन मिले हुये हैं। वह वृद्ध बोला कोई ऐसा सागर नहीं है जो सरिताओं का जल लिये बिना इतना विराट हो गया हो। सरितायें सागर को परिपूरित करती है और सागर अपना जल बरसा कर उनका पालन पोषण करता है। उनके जीवन की रक्षा करता हैं। यह तो आदर्श की बात है पर व्यवहार में कुछ तो और ही हैं। इन्हे अधिकार इसलिये दिये गये हैं कि वे प्रजा का पालन करे, उसका रक्षण करे पर उनमें से अधिकांश तो प्रजा का भक्षण ही कर रहे हैं। वे अधिकार अपने कर्तव्य के लिये नहीं अपने भोग के लिये चाहते हैं। वे एक व्यापक हित को भूलकर अपने सीमित स्वार्थ को साधने लगते हैं। तभी से उनकी जडों का विनाश प्रारम्भ हो जाता हैं। प्रजा पालन बडा ही कठिन काम है। आज कल का राज समाज तो आततायियों का समाज बन चुका। उन कौरवों को ही देख लो षडयन्त्रों से अपने भाइयों की जलाकर हत्यायें कर दी और किरीट धारण कर बडे भले लोग बने बैठे हैं।

सारी सृष्टि में पुरुष के लिये नारी से बढकर सुन्दर, आकर्षक तथा मनमोहक और कुछ है ही नहीं और वह भी उसी पूंजीभूत नारी सौन्दर्य पांचाली कृष्णा का। शंख ध्वनि, हुलूध्वनि, वेदपाठ, हवन, घंटा ध्वनि मंगल महुवरि आदि वाद्यों के मध्य वीर

प्रार्थी आने लगे। एक-एक हास्यजनक स्थिति उत्पन्न कर पराजित होते गये। कोई कोई तो धनुष हिला भी नहीं सका। कोई तो शरसंयोजन भी नहीं कर पाया। कोई धनु उत्तोलन में भी असमर्थ रहा। आहत और विस्मित विषादग्रस्त हो एक के बाद एक वीर लौटते गये। एक के बाद एक भूपति उठते। उनके स्वागत में करतल ध्वनियां होती, उनका उत्साह बढाया जाता किन्तु उनके छोडे बाण विभिन्न दिशाओं में जाते और अट्ठहास मंडप में गूंजने लगता। राजा लोग अपने भालपर से पसीने के कण पोंछते और निराश होकर बैठ जाते। जरासन्ध, शिशुपाल, शल्य, चित्रसेन, कुंडक आदि सभी महावीर महारथी असफल हो चुके। प्रत्येक बार दुर्भाग्य दुर्भाग्य जनसमूह के मुख से निकल रहा था और एक नैराश्यपूर्ण सामूहिक विश्वास।

दुर्योधन भी प्रत्याशी के रूप में उठा और धनुष हिलाने का प्रयत्न किया पर धनुष इतना कठोर था कि वह धनुष को नहीं हिला सका और उसकी अंगूली धनुष के नीचे दब जाने से उसपर चोट आईं। बलराम दुर्योधन को देखकर बोले इसकी आन बान तो देखो। कृष्ण बोले हां देख रहा हूं। शकुनि बोला उठाओ भान्जे। भीम यह सब देखकर खडा मुस्कुराता रहा। कृष्ण बोला दाऊ आपने अपने शिष्य को यह नहीं सिखाया कि वीर पुरुष को अभिमान शोभा नहीं देता। दुर्योधन असफल हो गया और लज्जित होकर बैठ गया।

सभी राजा राजकुमारों ने अपने बल, शिक्षा, गुण और क्रम के अनुसार धनुष को झुकाकर प्रत्यन्चा चढाने का प्रयत्न किया परन्तु उन्हे ऐसा धक्का लगता था कि वे धम्म धम्म पृथ्वी पर गिर पडते। बेहोशी से उनका उत्साह टूटने लगा। द्रौपदी को पाने की आशा छोडकर वे अपने अपने स्थान पर जा बैठे। दुर्योधन को निराश देकर शकुनि बोला अब यह मुंह लटकाये क्यों बैठे हो? हस्तिनापुर की तो नाक ही कट गई भान्जे। कर्ण बोला मामाश्री कर्ण के होते हुये हस्तिनापुर की नाक कभी नहीं कट सकती। दुर्योधन बोला उठो मित्र कर्ण। लक्ष्य वेध कर पांचाल नरेश की अनिन्द्य सुन्दरी कन्या का वरण करो। इस पृथ्वीपर तुम्हारे समकक्ष दूसरा कोई लक्ष्य वेधन में समर्थ नहीं है। तुम्ही राजकन्या के योग्य हो।

सारी निराशा के बीच नवोदित सूर्य के समान तेजस्वी और अस्त सूर्य सम कान्ति युक्त स्वर्ण कुंडल कवच विभूषित एक वीर पुरुष महाराज द्रुपद को प्रणाम कर लक्ष्यभेद स्थल के निकट आकर उपस्थित हुआ। उस पर सौन्दर्यवत वीर पुरुष के रूप और आभा को सब विमोहित हो देख रहे थे। कुछ तो पाने की लालसा ही भूल गये। सबको लगने लगा यह कामदेव सदृश वीर युवक जयी होगा। कर्ण उठा। उस वीर युवक ने कमनीय ढंग से धनुष धारण किया। शर संयोजन के लिये प्रस्तुत होने जा रहे था कि सभा स्थल हर्ष और करतल ध्वनि से निनादित हो उठा। अंगराज कर्ण की जय हो नारे उद्घोष होने लगे। युवक और उत्साहित हो गया। शर सन्धान से पूर्व उसने सूर्यदेव को नमस्कार किया। कर्ण ने धनुष को उठाकर अपनी भुजाओं से तौला और प्रत्यन्चा भी चढा ली और बाण उठाने के लिये हाथ बढा ही रहा था। कृष्ण ने द्रौपदी को आँखों के संकेत से समझाया। राजकन्या द्रौपदी पर तो जैसे बिजली गिरी। पूर्वाग्रह एवं घृणा का सघन मेघ उसके मुख मंडल पर छा गया। अचानक नारी स्वर विद्युत सा कौंध गया और द्रौपदी बोल उठी ठहरो मैं किसी सूत पुत्र को वरण नहीं करूंगी।

कर्ण ने अपना अपमान समझ कर धनुष से प्रत्यन्चा उतार दी और धनुष उठा कर अपने स्थान पर रख दिया। कर्ण बोला यदि ऐसा है तो तुम्हारी वर माला प्रतीक्षा करते करते सूख जायेगी राजकुमारी। सुन्दर द्रव्य की ओर हर मनुष्य आकृष्ट होता है। उसे अपना बनाने का स्वप्न देखता है। उचित मार्ग से न पाकर अनुचित मार्ग से उसे अपने अधीनस्थ करने का प्रयत्न करता है। लोभातर मनुष्य तब तक नहीं समझ पाता कि वह सुन्दर वस्तु प्राप्त करने की शक्ति और सामर्थ्य उसमें है भी या नहीं। सारे प्रयत्नों के बाद वह विफल हो जाता है और वह दु:खी हो जाता है। आज लाखों राजा महाराजाओं के दु:ख का कारण द्रौपदी है। वीर कर्ण मस्तक झुकाये धीरे-धीरे लौट रहा है। सभा स्थल पर कर्ण को और भी कुछ लोग अपमानित करने लगे। किसी ने कहा ये अंगेश है। कौरव बन्धु अंगराज कर्ण। वीर अर्जुन के समकक्ष एक मात्र यौद्धा पर पितृ परिचय से वंचित। सारथी

अधिरथ भी तो इसके वास्तविक पिता नहीं है। सुना हैं यह सारथी अधिरथ का पालित पुत्र है अर्थात वीर कर्ण अवैध सन्तान है क्या? अन्यथा और क्या हो सकता है ? जिसका कोई पितृ परिचय नहीं वंश परिचय नहीं। कर्ण यह सब सुन सुनकर निर्विकार भाव से ग्रहण कर मौन हो गये और अपने स्थान पर चले गये। मान अपमान की धधकती ज्वाला में जल रहा था। अपना कोई लाभ न होते हुये भी कुछ लोग औरों को दु:ख देने में सुख का अनुभव करते हैं। कर्ण अपमानित होकर लौटने का दृश्य अधिकांश को आनन्द दे रहा था। जन्म मृत्यु तो विधि निर्धारित है तो फिर उसके लिये कोई व्यक्ति लांछित क्यों ?

दुर्योधन तम तमा कर उठ खडा हुआ वह दर्प से तडफ उठा। क्रोध में मुखमंडल खींच कर विकृत हो उठा। इस कन्या का यह दुस्साहस। यह न तो मेरे हाथ आयी और कर्ण के हाथ आते आते वहां से भी रह गई। अपने वक्ष को तानकर बोला ब्राह्मणों, राजा जनों एवं उपस्थित जनों ऋषियों, नदियों और वीरों का कोई गौत्र नहीं पूछा जाता महाराज द्रुपद। आपकी सभा में मेरे मित्र कर्ण का अपमान हुआ है। यदि आपके स्वयंवर में यह प्रतिबन्ध था तो स्वयंवर के शुभ आरम्भ से पहिले ही यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये थी। कर्ण किसी भी क्षत्रिय राजा से कम नहीं है क्योंकि मैं इसे पहिले ही अंगदेश का राजा घोषित कर चुका हूं। अत: वे इस प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये सर्वथा सुयोग्य पात्र हैं।

दुर्योधन के उत्तर में द्रौपदी बोली। सभी पूज्य गण, विद्वान व राज्यगण। एक सूत पुत्र राजसिंहासन पाकर भी सूतपुत्र ही कहलायेगा और मैं सूतपुत्र का वरण नहीं कर सकती। मात्र सिंहासन पाने से ही क्या किसी में राजोचित एवं क्षत्रियोचित संस्कारों का जन्म हो सकता है ? क्या वंश, परिवार, माता-पिता एवं उत्तराधिकार से राजा का निर्माण नहीं होता ? क्या प्राचीन वंश परम्परा और उच्च कुलों का कोई महत्व नहीं ? मैं अत्यन्त विनम्रता पूर्वक मेरे वृद्ध पितामहों, विद्वज्जनों, वरिष्ठजनों, ऋषि-मुनियों इत्यादि से पूछती हूं कि एक सूत पुत्र को क्या एक पुरातन उच्च वंश के क्षत्रिय राजपुत्र के समकक्ष रखा जा सकता है ? क्या यह न्याय संगत होगा ? क्या यह धर्मोचित होगा ? क्या उच्चकुल की कन्या का निम्न कुल के तरुण को वरण करना शास्त्र सम्मत होगा ? समाज विस्मित हुआ और चकित भी। राजसभा में सभी ने कोलाहल किया और समर्थन में कहा सूत पुत्र तो सूतपुत्र ही रहेगा। राजकन्या की आपत्ति उचित है। राजकन्या शास्त्र पारंगत है, बुद्धिमती है, धन्य है राजपुत्री। दुर्योधन सुन कर तिलमिला गया। आघात खाये सर्प की तरह फूफकार करता दीर्घ श्वास छोडता यह जानकर कि इस सारे बिगडते खेल के मूल में यह राजपुत्री ही है। यह कर्ण का नहीं मेरा अपमान है वह दहाडकर जोर से गूंजानेवाली आवाज में बोला। भरी सभा में मेरा अपमान करनेवाली मूर्खा राजकन्या जानती है तू अपने पिता के उद्धार में ही बाधा बन रही है। द्रुपद राजा पांचाल नरेश यह कन्या बडी ही वाचाल है अब यह अविवाहित ही रहेगी क्योंकि अंगराज कर्ण के समान धनुर्विद्या में पारंगत कोई इस पृथ्वी पर जीवित नहीं है।

क्षुब्ध कर्ण अपमान का घूंट पीकर रह गया। कर्ण बोला मित्र यह कन्या बडी वाचाल हो रही है। भरी राजसभा में इसने मुझे बार बार सूतपुत्र कहकर अपमानित किया है। अब यह पत्नी चाहे जिसकी भी बने किन्तु अपने इस अपमान का प्रतिशोध इससे मैं अवश्य लूंगा और वह भी भरी राजसभा में। दुर्योधन बोला मैं भी देख लूंगा कौन वीर ऐसा बचा है जो लक्ष्य वेध कर इस वाचाल और उदंड कन्या का उद्धार करे और कौन करेगा इसके पिता राजा द्रुपद का ? जिस पर अविवाहित कन्या का भार जीवनपर्यन्त बना रहेगा। धृष्टद्युम्न सबको शान्त करते हुये बोला हस्तिनापुर के युवराज को इतने ऊंचे स्वर में बोलकर आतिथ्य का अपमान नहीं करना चाहिये था। अंगराज कर्ण हमारे अतिथि हैं परन्तु उनको स्वयंवर की परम्परा का तो ज्ञान होना चाहिये था और द्रोण शिष्य दुर्योधन से अधिक कौन जान सकता है कि मित्रता की तरह नाता भी अपने बराबर वालों के साथ होना चाहिये और मेरी बहिन दिव्य जन्मा द्रौपदी उसके हाथ में वरमाला है वह किसी सूतपुत्र के साथ विवाह नहीं करना चाहती तो उसका विवाह किसी सूतपुत्र के साथ नहीं होगा। राधा पुत्र कर्ण इस स्पर्धा में प्रतियोगी नहीं हो सकते और जाते जाते अंगराज लगता है ठीक कह गये। मैं तो सोच रहा था कि इस स्वयंवर में युवराज दुर्योधन, दुशासन, सात्यकि, महाराज जयद्रथ और

मगध नरेश जरासंध जैसे यौद्धा बैठे हैं वहां भला इस लक्ष्य वेधन में क्या कठिनाई हो सकती, कोई न कोई वीर महावीर मेरी बहिन की वरमाला से धन्य हो ही जायेगा परन्तु लगता है कि कुन्तीपुत्र अर्जुन के साथ धनुर्विद्या भी उसी लाक्षागृह में जलकर भस्म हो गई। क्या इस स्वयंवर में कोई भी महावीर नहीं है जो लक्ष्य वेधन कर सके ? भारत की धनुर्विद्या का मान रख सके ? अब क्या कोई और है जो प्रयास करने का इच्छुक हो ? जब इस प्रकार बडे बडे प्रभावशाली राजा महाराज लक्ष्य वेधन नहीं कर सके तो सारा समाज सहम उठा उस समय ब्राह्मण वेश में अर्जुन के मन में यह संकल्प उठा कि उसे चलकर लक्ष्य वेधन करना चाहिये।

अर्जुन सोच रहा था कि अनेक छोटे बडे राजाओं और राजकुमारों ने अपना भाग्य परीक्षण किया पर इनमें से कोई भी धुनष उठाकर अपनी भुजा में सम्भाल कर प्रत्यन्चा नहीं चढा पायेगा और यदि कोई प्रत्यन्चा चढा भी लेगा तो वह इन पांच बाणों से धनुष परिचालन कर लक्ष्य वेधन नहीं कर पायेगा। ब्राह्मणों के समाज में अर्जुन उठ खडे हो गये। परम वीर अर्जुन को धनुष चढाने के लिये तैयार देख कर पूरा ब्राह्मण समुदाय चकित रह गया कोई कोई तो सोचने लगा कहीं यह हमारी हंसी न करा दे। कहीं राजा लोग इसी के कारण ब्राह्मणों से द्वेष न करने लगे। कोई कोई कहने लगे कि यह उत्साही वीर है इसका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। सिंह के सदृश बलवान है, गजराज के समान इसकी चाल है। यह सब कुछ करने में समर्थ है। यदि इसमें शक्ति नहीं होती तो यह ऐसी हिम्मत कर ही कैसे सकता ? तपस्वी और दृढ़ निश्चयी ब्राह्मण के लिये असाध्य ही क्या है ? ब्राह्मण अपनी शक्ति से छोटे बडे सभी तरह के काम कर सकता है। परशुराम ने क्षत्रियों को जीत लिया था। अगत्स्य मुनि ने समुद्र तो पीकर सोख लिया था। इसे सब ब्राह्मण आशीर्वाद दें कि यह लक्ष्यवेध कर सके और ब्राह्मण आशीर्वादों की वर्षा करने लगे।

द्रौपदी की आंखे उस स्वयंवर में अर्जुन को ढूंढ रही थी। धृष्टद्युम्न द्रुपद और गुरुजन भविष्य की चिन्ता में विषादपूर्ण हृदय से बैठे थे। द्रौपदी को पता नहीं विश्वास नहीं हो रहा था उसका हृदय कह रहा था कि अर्जुन जीवित होगा। कृष्ण ने आंखों से अर्जुन को संकेत किया कि वह लक्ष्य वेधन करे। तभी एक तेजोदीप्त ब्राह्मण युवक प्रार्थी के रूप में उपस्थित होने की अनुमति मांग रहा था। राजन्य वर्ग एवं दर्शक सभी ब्राहमण के स्थूल स्कन्ध, दीर्घ बाहु, प्रशान्त वदन, सौन्दर्य युक्त अंग सौष्ठव, उदित हुये सूर्य सम उज्ज्वल, कमल चक्षु की दीप्ति में कृतित्व के स्पष्ट चिन्ह देख रहे थे। अर्जुन ने पूछा क्या मुझे इसके लिये अवसर दिया जायेगा ?

निराश सभागार में आशा का संचार हुआ और उत्साह की लहर दौड चली स्वीकृति में पांचाल नरेश ने सिर हिला दिया। धृष्टद्युम्न ने कहा स्वागत है अवश्य आप भी प्रयत्न कर देखें। अर्जुन ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया। पांचाल ने अपने सखा कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने द्रौपदी को संकेत से स्वीकृति प्रदान की। दुर्योधन उस ब्राह्मण अर्जुन को देखकर बोला यह धनुष ना तो शब्दों का बना हुआ है ब्राह्मण और ना ही यह स्वयंवर लक्ष्य। इस धनुष पर यहां आये सारे उपस्थित क्षत्रिय वीर प्रत्यन्चा नहीं चढा सके। उस पर प्रत्यन्चा चढाना किसी ब्राह्मण के वश की बात नहीं। यह सुनकर भीम उचक गया। युधिष्ठिर ने उसे संकेत से रोका। दुशासन बोला चाल से तो यह ब्राह्मण नहीं लगता है। उसका शरीर देखो। हाथी की सूंड जैसा बलवान। लम्बी भुजायें, बलिष्ठ कन्धे। विजयी होने के लक्षण लगते है।

अर्जुन ने धनुष्य का भली प्रकार निरीक्षण किया। अज्ञात वश कुछेक ने प्रतिवाद का स्तर उठाया। उपहास पूर्ण स्वर में कहा जहां समर कुशल यौद्धा क्षत्रिय वीर हार मान कर बैठे वहां यह एक भिक्षुक ब्राह्मण सफलता की आशा लेकर खडा हुआ है। कुछेक ने क्रुद्ध स्वर में भी कहा इस भिक्षुक ब्राह्मण को प्रतियोगिता में सम्मिलित करने से क्षत्रिय कुल का घोर अपमान होगा। ऐसे वाद विवादों के बीच बैठे विद्वानों और पंडितों ने कहा क्षत्रियगण युद्ध करने के अभ्यस्त हैं वैसे ही ब्राह्मण मंत्र विद्या पाठ में अभ्यस्त हैं अत: वे शास्त्रज्ञ होते हैं और उच्चारण शुद्धि प्राप्त करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं होता कि कोई क्षत्रिय अभ्यास करे तो शुद्ध मन्त्रोचारण नहीं कर सकेगा और ब्राह्मण धनुर्विद्या में पारंगत नहीं हो सकता। ब्राह्मण परशुराम ने क्षत्रियों को परास्त कर पृथ्वी जीती तो फिर आज यह युवक ब्राह्मण स्वयंवर में क्यों नहीं प्रत्याशी होकर विजयी हो सकता ? जन्म से नहीं कर्म और

साधन ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। अत: यह उच्चाभिलाषी ब्राह्मण युवक निर्द्वद्व प्रतियोगिता में भाग लेने का अधिकारी है। पंडित और विद्वजनों की तर्क से अनुमति प्राप्त कर ब्राह्मण युवक लक्ष्यभेद के मंडप के निकट आकर खडा हो गया। उसने आकर पृथ्वी और धर्म देव को प्रणाम किया। किन्तु तभी तडफकर दुर्योधन उठा।

दुर्योधन बोला रूको विप्रवर। उपस्थित विद्वज्जन। मैं पूछना चाहता हूं कि इस राज समाज में जब अंगराज कर्ण को स्थान नहीं मिला तो एक निर्धन ब्राह्मण को कैसे राज समाज के लिये आयोजित प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये अधिकार दिया जा रहा है ? यह तो सरासर न्यायाकुल नहीं है। इसलिये यह ब्राह्मण इस क्षत्रियोचित प्रतिस्पर्धा में भाग लेने योग्य नहीं है। दामिनी थिरकती सी दुर्योधन के शीश पर से निकल गई। तभी धृष्टद्युम्न ने कहा क्यों नहीं राजन ? इतिहास और पुराण इस तथ्य के साक्षी हैं कि कितने ही राजाओं ने अपनी स्वेच्छा से अपनी कन्यायें ब्राह्मण ऋषियों को समर्पित की है। ब्राह्मण पूज्य हैं वे श्रेष्ठ वर्ण हैं। वे गुरु हैं। ब्राह्मण गुरुओं ने तो यहां उपस्थित कितने क्षत्रिय राजपुत्रों को धनुर्विद्या एवं लक्ष्य वेधन की शिक्षा दी है। कन्या उच्च वर्ण में विवाहित की जा सकती है परन्तु अपने से निम्न में नहीं। अनुलोभ विधि शास्त्र सम्मत है प्रतिलोम नहीं। विद्वजनों ने कहा राजकन्या धन्य है। विप्रवर की जय हो। विप्रवर लक्ष्य साधो।

कर्ण के मुखपर विषाद छा गया और दुर्योधन से कहने लगा मित्र दुर्योधन विचलित मत हो यह तो दीनहीन दरिद्र ब्राह्मण है। लक्ष्य वेधने में तो संसार में तो केवल अर्जुन समर्थ था, वो तो अब रहा नहीं यह बेचारा ब्राह्मण क्या जाने लक्ष्यवेध क्या होता है ? व्यर्थ विवाद में ना पडे। यह अवश्य निश्चित है कि यह ढीठ राजकन्या अब आजीवन कुँआरी रह जायेगी। इसकी वाकतीक्ष्णता का यही पुरस्कार इसे मिलेगा।

द्रौपदी का हृदय उत्तेजना और आवेश में हिचकोले खा रहा था किन्तु ऊपर से वह धैर्य और तेज की मूर्ति बनी हुई थी। घोर झंझा से जूझनेवाली दीप शिखा की भांति मन कांप रहा था कि भाग्य का निर्णय होनेवाला है। आज कहीं मेरे साथ अघटित न घट जाये। यह सब झंझटों से तो अर्जुन के बिना अविवाहित रह जाना ही अच्छा है।

जिस समय यह बातें हो रही थी उसी समय वह ब्राह्मण युवक अर्जुन धनुष के पास पहुंच गया और उसने धनुष की प्रदक्षिणा की, भगवान शंकर को सिर नवा मन ही मन प्रणाम किया और धनुष को उठा लिया। ब्राह्मण कुमार की जयजय कार होने लगी। जिस धनुष को बडे बडे वीर नहीं उठा सके उसी धनुष को अर्जुन ने बिना परिश्रम उठा लिया और प्रत्यन्चा चढा दी। अर्जुन ने पांच बाण उठाये लक्ष्य साधा और वह यन्त्र के छिद्र से होकर पृथ्वी पर गिर पडा। चारों तरफ कोलाहल और आनन्द छा गया। अर्जुन को देखकर द्रुपद की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उन्होने मन ही मन निश्चय कर लिया कि आवश्यकता पडने पर मैं अपनी सम्पूर्ण सेना सहित इस वीर की सहायता करूंगा। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव वहां से निकल कर अपने निवास स्थान पर चले गये और भीम को कह गये अर्जुन का ध्यान रखना और इसे साथ में लेकर आना। ब्राह्मणों ने अर्जुन का सत्कार किया।

अवसर परखे वीर को, वीर परखे बाण, भाग्य लक्ष्य पर पार्थ की, करे मत्स्य सन्धान।

यदि तीर कमान पर लग चुका और यदि अर्जुन जैसा धनुर्धर है, धनुष का चिदा खींच चुका था तो तीर को चल जाना ही चाहिये था लेकिन पांचाल नरेश द्रुपद का तो द्रोण की तरफ से मन साफ नहीं है और अर्जुन द्रोण का सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। जिसके निशाने चूक जाने का तो सवाल ही नहीं उठता पर हवा अब किस ओर बहेगी। स्वयंवर में कर्ण का अपमान हो चुका जिसे सहन करने न कर्ण तैयार होगा और न ही दुर्योधन। तो फिर कमान में जो तीर लगा हुआ है उसके चलने का परिणाम क्या होगा ? यह प्रश्नचिन्ह बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर भी इस कथा का महत्वपूर्ण अंग है। मगध नरेश जरासंध ने कहा पांचाल नरेश आपने इस ब्राह्मण को इस स्वयंवर धनुष को हाथ लगाने की आज्ञा देकर राज समाज का अपमान किया है। द्रुपद ने कहा राज समाज में लक्ष्य भेदन न करके स्वयं का अपमान किया है मगध नरेश। शिशुपाल बोला पांचाल नरेश क्या आपने

यह लक्ष्य हम क्षत्रियों का अपमान करने के लिये बनाया था ? क्षत्रिय राजकुमारियों का स्वयंवर इसलिये नहीं होता कि कंगले भूखे ब्राह्मण उनको प्राप्त करे। क्षत्रियों के इस स्वयंवर में ब्राह्मणों के आने का अर्थ ही क्या है ? चलो इस ब्राह्मण का वध कर बलात द्रौपदी को छीन लो। साथ में द्रुपद का भी वध कर डालो। अन्य नृपगण भी उच्च स्वर में उग्र हो बोलने लगे। आप लोगों ने हमारा अपमान किया है पांचाल नरेश।

जब राजाओं ने देखा कि महाराज द्रुपद अपनी कन्या पांचाली का विवाह एक ब्राह्मण के साथ करना चाहते है तब वे बहुत क्रोधित हुये और आपस में कहने लगे राजा द्रुपद हम लोगों को तिनके की तरह तुच्छ समझ कर अपनी श्रेष्ठ कन्या का विवाह एक ब्राह्मण के साथ कर देना चाहते हैं। हम लोगों को बुलाकर ऐसा तिरस्कार तो नहीं करना चाहिये। इस राजद्वेषी दुरात्मा को ऐसे ही नहीं छोडना चाहिये। क्या हम लोगों में से ऐसा कोई नहीं जिसे यह अपनी पुत्री को विवाह दे। स्वयंवर क्षत्रियों के लिये था उसने ब्राह्मणों का तो आने का कोई अधिकार ही नहीं था। यदि यह कन्या हमें वरण नहीं करती तो इसे आग में डालकर जला दो। ब्राह्मण ने चपलता वश हम लोगों का अप्रिय किया है पर उसे तो ब्राह्मण समझ कर छोड देना उचित है। राजाओं ने ऐसा निश्चय करके अपने अपने शस्त्र उठा लिये। द्रुपद को भयभीत और राजाओं को आक्रमण करते देख भीम और अर्जुन उनके बीच में आ गये। राजाओं ने उनपर धावा बोल दिया। अर्जुन धनुष चढाकर भीम के साथ पर्वत के समान अविचल भाव से खडा हो गया। मदोन्मत वीरों के सामने वे उनपर टूट पडे। अर्जुन और कर्ण का सामना हुआ। कर्ण युद्धभूमि में अचेत सा हो गया। जरासंघ बोला स्वयंवर में राज समाज के सदस्यों के अतिरिक्त किसी को भी भाग लेने का अधिकार नहीं है। कृष्ण बोला यह कौन कहता है मगध नरेश ? जरासंध बोला मैं ग्वालों से वाद विवाद करके अपना अपमान नहीं करना चाहता। बलराम बोले यह कहकर आपने द्वारिका नगरी का अपमान किया है मगध नरेश। वो दिन भूल गये आप जब हम दोनों भाइयों ने आपको सेना समेत मथुरा से खदेड दिया था। कृष्ण बोले नाते में यह हमारे नाना लगते हैं दाऊ इनका आदर करना तो हमारा कर्तव्य है। और फिर क्रोध की पुंजी लूटाने के लिये नहीं होती। यह तो देख लीजिये की सामनेवाला आपके क्रोध के योग्य है भी या नहीं। वो आशीर्वाद हो या शाप बहुत सोच समझ कर ही देना चाहिये। शिशुपाल बोला मैंने ऐसा सभ्य बोलने वाला नहीं देखा। शल्य और भीम आपस में जोरों से भिड गये। शकुनि बोला प्रश्न यहां पर यह नहीं है कि वासुदेव का मगध नरेश से क्या रिश्ता है ? प्रश्न यहां यह है कि पांचाल नरेश ने एक ब्राह्मण को स्वयंवर में भाग लेने की अनुमति देकर राज समाज का अपमान किया है और इन्हे किये हुये अपराध का दंड मिलना ही चाहिये। कृष्ण बोले किस अपराध का दंड मगध नरेश ? पांचाल नरेश ने एक ब्राह्मण कुमार को स्वयंवर में भाग लेने दिया है इसे आप अपराध कैसे कह सकते है ? क्षत्रियों का यह राजसम्मान तो स्वयं ही एक ब्राह्मण की देन है। दुर्योधन बोला हम कोई आपकी बातों में आनेवाले नहीं है वासुदेव कृष्ण। कृष्ण बोले यह मैं भली भांति जानता हूं गान्धारी नन्दन। भीम युधिष्ठिर से बोला कहो तो उठा कर पटक दूं। युधिष्ठिर बोला क्रोध में तो तुम बलरामजी से कम नहीं हो। शान्त रहने से बडा न कोई अस्त्र है और न ही कोई शस्त्र। कृष्ण ने अर्जुन और भीम को इशारा कर दिया कि अब यहां से निकल जाओ। जरासंध बोला अब तो एक ही उपाय है या तो यह अपनी पुत्री को आदेश दे कि इनमें से किसी एक को अपना वर चुन ले या फिर हम उसे उसी अग्निकुंड में फेंक देंगे जिसमें से वह उत्पन्न हुई थी। सभी राजाओं ने इसका समर्थन किया।

अर्जुन बोला नहीं युवराज धृष्टद्युम्न, पांचाली अब मेरा उत्तरदायित्व है। अर्जुन पांचाली के पास गया और बोला यदि तुम्हारी इस वरमाला पर मैंने अपना अधिकार सिद्ध कर दिया हो तो इस वरमाला से मुझे धन्य करो राजकुमारी। द्रौपदी ने अर्जुन को वरमाला से ब्राह्मण कुमार समझकर वरण कर लिया।

कर्ण अर्जुन से बोला सावधान। अर्जुन ने कर्ण के धनुष की डोरी तोड दी और कस कसकर शर चलाये। कर्ण बोला गुरु परशुराम द्रोणाचार्य इन्द्र और अर्जुन के अतिरिक्त कर्ण का धनुष कोई तोड नहीं सकता था। मैं तुम्हारे गुरु को प्रणाम करता हूं वीरवर ब्राह्मण

कुमार और कर्ण राज सभा छोडकर चला गया। कृष्ण बलराम से बोला अब तो आप मान लें कि ये पांडव ही हो सकते है। बलराम बोले मैं बुआ कुन्ती के पुत्रों को जीवित देखकर अति प्रसन्न हूं। तो फिर ये मेरा शिष्य भीम है। कृष्ण बोले और जो हारा है वह आपका प्रिय कुमार दुर्योधन है। बलराम बोले ठीक है ठीक है अभी यह संघर्ष बन्द करवाओ। कृष्ण ने कहा जो आज्ञा दाऊ।

कृष्ण बोला सुनो राजाओं राज समाज के सदस्यों, यदुवंशियों की ओर से पांचाल नरेश को द्रौपदी स्वयंवर की सफलता के लिये हार्दिक बधाई देता हूं। इस नवयुवक ने भरे स्वयंवर में द्रौपदी की वरमाला पर अपना अधिकार सिद्ध कर दिया है और द्रौपदी ने भी उसे वरमाला पहना दी है तो राज समाज को क्रोधित होने का कोई कारण ही नहीं रह जाता राज समाज को तो लज्जित होना चाहिये। द्रुपद ने अर्जुन और द्रौपदी को आशीर्वाद दिया चिरंजीवी भव, सौभाग्यवती भव। कृष्ण बोले अब द्रौपदी को अपने घर ले जाओ ब्राह्मण।

स्वयंवर की प्रतिज्ञा पूरी की अर्जुन ने और द्रौपदी थी उसके कर्म की उपलब्धि कर्म फल। अर्जुन को याद आया कृष्ण कहता है जब कर्म निष्काम हो तो फल कर्ता का बन्धन बन जाता है और द्रौपदी ने उसे बांध लिया। संसार की अद्वितीय सुन्दरी यह कामिनी उसे उसकी धनुर्विद्या के पुरस्कार के रूप में मिली। गुरु द्रोण की शस्त्र शाला में वर्षों अभ्यास करते हुये उसने कभी यह नहीं सोचा था कि वह यह सारा अभ्यास पांचाली कृष्णा के लिये कर रहा है। कृष्ण कहता है निष्काम कर्म करो उसका फल तो तुम्हारे हाथ में ही नहीं है। उसका फल तो तुम्हे प्रकृति स्वयं देगी। व्यक्ति की दृष्टि तो सीमित है। वह अपनी सीमित दृष्टि से ही तो फल की कामना कर सकता है। प्रकृति अनन्त है। उसकी दृष्टि मनुष्य की तुलना में बहुत दूर तक फैली हुई है दूर तक देखती है। अर्जुन ने अपनी धनुर्विद्या की चरम उपलब्धि के रूप में भी द्रौपदी की कल्पना नहीं की थी। किन्तु प्रकृति ने द्रौपदी को अर्जुन की भुजाओं में थमा दिया।

सर्व सम्मति से युद्ध बन्द कर दिया। श्रीकृष्ण के समझाने बुझाने पर तथा भीम के पराक्रम से विस्मित होकर सब राजा लोग युद्ध बन्द करके अपने अपने निवास स्थान पर लौट आये। भीम और अर्जुन द्रौपदी को लेकर अपने निवास स्थान की ओर चले।

कर्ण इस राजसभा में द्रौपदी द्वारा अपने आपको बहुत अपमानित और लज्जित महसूस करने लगा। यह बात उसके लिये असह्य होने लगी। सब विधान ही ऐसे ही बनते गये। कर्ण को तो महाभारत का कारण बनना पडा। सभी ने उसे पग पग पर अपमानित किया। अपमान से ही मनुष्य के गुणों का प्रकाश होता है। अपमान न होता तो आज कर्ण केवल संसार विजयी शूरवीर ही प्रसिद्ध होते। अपमान ने कर्ण का स्थान अत्यन्त ऊंचा कर दिया।

बाण का घाव समयान्तर में भर जाता है। अस्त्रशस्त्रों का घाव भी समय से अच्छा हो जाता है। परन्तु वाणी से वचनों से किया घाव कभी भरता नहीं, वह सदा स्मरण बना रहता है। अपने समान पुरुषों से अपमानित होना सबसे बडा दु:ख है। वे वीतरागी, संसार त्यागी, राग द्वेष से शून्य महात्मा धन्य है जिन्हे न मान की इच्छा है और न अपमान की चिन्ता, मानापमान में जो समान है किन्तु सभी तो महात्मा नहीं हो सकते। संसारी लोगों के लिये तो मान ही सबसे श्रेष्ठ धन है। मानो हि महंता धनम्। कृष्ण ने कहा कृष्णा तुम दूरदर्शिनी हो आगे देखकर रास्ता चलना तुम्हारा धर्म है। संघर्ष बिना जीवन नहीं।

६०) द्रौपदी का पांचों पांडवों से विवाह

यज्ञानल से जो जन्मी है वह आवश्यकता पडने पर धर्म की रक्षा करने अनल में भी प्रवेश कर सकती है। द्रौपदी अपने दु:ख से माता-पिता, भाई को दु:खी नहीं करना चाहती थी। माता-पिता की आकांक्षा होती है कि कन्या सदा सुखी रहे, श्रेष्ठ पुरुष के साथ उसका विवाह हो परन्तु हर माता-पिता की कन्या श्रेष्ठ पुरुष का ही हाथ नहीं थामती और अगर मिले तो भी पूर्ण सुख पाने की कोई निश्चिन्तता तो नहीं होती। जिस दु:ख का कोई समाधान हो नहीं, माता-पिता के वश की बात ही नहीं उसे उनके सामने बखान करने से क्या लाभ ? द्रौपदी ने पिता को प्रणाम किया आप चाहते हैं कि आर्यावत का श्रेष्ठ वीर आपका जामाता बने और

वही हुआ। इससे सब आनंदित है। अब आपका आशीर्वाद। पिता ने बडे ही शान्त स्वर में कहा धैर्य रखकर कर्तव्य पालन करना ही मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म है पुत्री। तुम्हे आशीर्वाद देता हूं तुम यशस्विनी बनो। द्रौपदी क्या जानती थी कि उसकी भूमिका यों पल पल पर परिवर्तित होती जायेगी और बार बार उसे रूपान्तरित भूमिका में विषम कर्तव्य का पालन करना पडेगा। व्यक्ति को कभी भी स्वयं अपने रहस्य को नहीं उगलना चाहिये।

दोनों भाई अर्जुन और भीम द्रौपदी को लेकर अपने निवास स्थान कुम्भकार गृह की ओर जा रहे हैं। भीम बोला समझ में नही आता भगवान को भी पता नहीं हमारे ही जीवन में इतनी रूचि क्यों है ? वह सारे संसार का पालन छोडकर हमारे ही जीवन के लिये इतनी सारी योजनायें क्यों बनाते रहता है ? द्रौपदी ने भी सुनकर सोचा भगवान क्या इन्ही के जीवन में कुछ अद्भुत घटनायें घटित करते रहता है ? इन्हे क्या पता कि द्रौपदी के जीवन में क्या-क्या घटित हुआ है ? अर्जुन बोला जहां आवश्यकतायें होती है वहीं भगवान योजनायें रचते हैं हमारी समझ में उसकी कृति नहीं आ सकती।

भिक्षा लेकर लौटने का समय हो गया। माता कुन्ती अपने पुत्रों के समय से न लौटने से तरह-तरह की आशंकाओं और चिन्ताओं में घिरी रसोई घर में खाना पका रही थी। वह बार-बार सोच रही थी कि दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र पुत्रों ने कहीं कोई अनिष्ट तो नहीं कर दिया। उसी समय तीसरे पहर भीमसेन और अर्जुन द्रौपदी को साथ लिये कुम्हार के घर अपने निवास पर आये। अर्जुन बोला हम वनवासियों ब्राह्मणों का यही आवास है तुम्हे कोई असुविधा तो नहीं। द्रौपदी असाधारण आत्मबल से स्वयं को नियंत्रित कर बोली प्रधान तो व्यक्ति होता है उसका आवास नहीं। आवास तो परिवर्तनशील है। राज प्रासादों में रहनेवाले कुटीरों में आश्रय पाते हैं और कुटीर राजप्रासादों में परिणत हो जाते हैं।

द्रौपदी अर्जुन के बारे में मन ही मन सोचने लगी कामदेव से भी सुन्दर, किस तरह का गठीला बदन। दीर्घ और पुष्ट देह। प्रशस्त वक्ष:स्थल। निर्मल कमल नेत्र। पाद हस्त करतल आदि सब मनोरम। विशिष्ट सौन्दर्य से परिपूर्ण। प्रथम दर्शन में ही द्रौपदी को लगा हृदय स्वच्छ और विशाल। उदारता एवं सहिष्णुता में पृथ्वी पर अनुपम। द्रौपदी अर्जुन को पति रूप में पाकर धन्य हो रही थी। नारी के काम्य पुरुष का शौर्य, सौन्दर्य वीरत्व, ज्ञान और धन, ऐश्वर्य सब कुछ पाचुकी पर सिर्फ रह गया ऐश्वर्य। पुरुष के जो गुण होते हैं वे सब अर्जुन में विद्यमान थे। जो विधि का निर्देश है वही सत्य है। जो हो गया उसी के लिये आनंदित होने में सार्थकता है। अरण्य पथ पर द्रौपदी के पैर लडखडाने लगे। कंटकित पावों से रक्त बहने लगा पर कितना भी कष्ट मार्ग में हुआ उसे अर्जुन को नहीं बताया। द्रौपदी चली जा रही थी। अर्जुन मन्द मन्द मुस्कुराते हुये कोमलता से हाथ स्पर्श कर बोले सुना था कि राजकुमारी शास्त्र निपुण है। शुक सारिका की तरह शास्त्र कंठस्थ है। पर लगता है तुमने शास्त्र कंठस्थ ही नहीं किये आत्मस्थ भी किये है। तुम विद्यावती होने के साथ-साथ ज्ञानवती भी हो। मन करता है कि अरण्य में हम दोनों कहीं खो जाये। हमें कोई ढूंढ ना पाये। निर्जनता का सुख कोई रोक ना पाये। द्रौपदी ने कहा आज्ञातवास में रोमान्च है परन्तु पृथ्वी से मुंह छिपाकर जीने से यश क्षय होगा। दुष्ट संहार वीर के जन्म का धर्म है। अर्जुन ने कहा अरण्य में अज्ञातवास करने पर कदम कदम पर दुष्ट संहार करना ही पडता है। हिंस्र जन्तुओं का संहार किये बिना अरण्य में जीवित रहना सम्भव नहीं। द्रौपदी ने शान्त स्वर में कहा अरण्य के दुष्ट पशुओं से मनुष्य के बीच दुष्ट व्यक्ति अधिक भयंकर होता है। अपने प्राणों को बचाने के लिये पशु जीव हत्या करता है पर अहंकार सिद्ध करने के लिये मनुष्य मनुष्य की भी हत्या कर देता है। इस पृथ्वी पर धर्म की रक्षा करने हेतु ही वीर का जन्म होता है। मातृभूमि वीर प्रसूत होने में गर्व अनुभव करती है। द्रौपदी रास्ते में अर्जुन को धर्म रक्षा की प्रेरणा देती रही।

धूल धूसरित कंटकमय पगडंडी पथ, चारों ओर झाडझंखाड, ऊंची नीची धरती पर पांचाल राजकुमारी द्रौपदी के अनभ्यस्त चरण ठिठकते सकुचाते पड रहे। बहुमूल्य वस्त्राभरणों से सजी उसकी कोमल कमनीय देह हृदय में उमडते हर्ष से ज्वार से पैर डगमगा रहे। कष्टमय मार्ग पर कंटकों से बचती बचाती वह प्रसन्नता और लाज से चल रही। आगे आगे सिंह की चाल से गौरव

पुरुष पांडुनन्दन अर्जुन एक दरिद्र ब्राह्मण के रूप में उसके साथ चल रहे। अर्जुन को पति रूप में पाने का उसका सपना पूरा हुआ। वह धन्य हो गई। मार्ग का कष्ट उसे कष्ट नहीं लग रहा था। यह तो मात्र समय भर का कष्ट है। उसके पश्चात तो केवल सुख ही सुख है। वह नववधू क्या जानती कि आजीवन उसका पथ ऐसा ही धूल धूसरित कांटों से भरा, कष्टपूर्ण, विडम्बनाओं से परिपूर्ण और उत्थान पथनवाला होगा जिसे उसे पग पग पर विभीषिकाओं, भय, चुनौतियों का अपमान, और लांछनों का सामना करना पडेगा। वह तो आगे आगे चल रहे पुरुष सिंह के पद चिन्हों का अनुसरण कर रही थी। वह क्या जाने कि शीघ्र ही उसे पांच युगल चरणों का अनुसरण करना होगा। वह तो पांडु पुत्र अर्जुन को जीवन का कल्पवृक्ष मानकर उसकी शीतल सघन स्वप्न छाया में चली जा रही थी निश्चिन्त बिना जाने कि आगे शीघ्र ही दुरुह हिम सम कठिनाइयों के मार्ग पर उसे बढना है। वह विमोहित हो रही थी अपने भाग्य पर कि वह तो सृष्टि की सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी नारी है वह गर्विता हो रही थी उस क्षण। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिसके नाम की दुंदुभी बज रही है।

द्रौपदी कंटक भरे पथ से चली जा रही थी कि रास्ते में उसके पैरों में कांटा चुभ गया। विश्वविख्यात अजेय सव्यसाची अर्जुन उसके चरणों में से जैसे ही कांटा निकालने झुका द्रौपदी चौंक कर पीछे हट गई और बोली आर्यपुत्र आप नहीं। इतने वीर पराक्रमी विजेता पांडुनन्दन के योग्य नहीं और उसने अर्जुन के हाथ को अपने चरणों पर से बलात हटा दिया और बोली ईश्वर न करे आर्यपुत्र जीवन में आपको किसी के सामने झुकना पडे। मेरी सामर्थ्य रहते तो मैं कभी आपको किसी के सामने झुकने न दूंगी। अर्जुन सुनकर आकंठ गदगद हो गये।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय भीमसेन और अर्जुन द्रौपदी को लेकर कुम्भकार के घर में प्रवेश करते हैं जिसमें पांडव आजकल निवास करते हैं। अर्जुन द्रौपदी से बोला मेरी परम स्नेहशीला मां हमारी प्रतीक्षा कर रही होगी। द्रौपदी ने कहा आर्या की चरण रज आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य करूंगी। कब से उनकी ख्याति सुन रखी है। अर्जुन ने कहा द्रौपदी तुम हमारे परिवार की केन्द्रबिन्दु हो। माता तुम्हे देखकर आश्चर्यचकित और प्रसन्न होगी। तुम सबके सम्मान और स्नेह की भाजन हो। अर्जुन ने जाकर द्वार खटखटाया और बोला मां मैं आज बडी ही अद्भुत अनोखी भिक्षा लाया हूं। कुन्ती ने बिना अपने पुत्रों और भिक्षा देखे ही कह दिया पांचों भाइयों में बराबर बराबर बांट लो। यह सुनकर द्रौपदी तो सहम गई।

द्रौपदी की मन की कल्पना और वास्तविकता में कितना अन्तर है। कहां हस्तिनापुर का राजप्रासाद और कहां यह कुम्भकार का गृह। द्रौपदी लज्जा और विस्मय से अप्रतिम बनी खडी रह गई। द्रौपदी ने कुन्ती को देखा स्नेहमयी, करुणामयी, सौन्दर्यमयी जननी। मां अन्नपूर्णा की तरह परिपूर्णा और धरा सी सर्व सह्य मूर्ति, स्तब्ध, विस्मितख अनुतप्त मुग्ध दृष्टि से द्रौपदी को देखती रही। कुन्ती यह देखकर बोली यह देवी कौन है ? अचानक ही पराक्रमी अर्जुन पर जैसे विचित्र दुर्बलता उतर आई पाँवों में कम्पन सिहर उठी। वज्र का शरीर शिथिल पड गया उसने दीवाल का सहारा ले बोला यह काम्पिल्य की राजकुमारी द्रौपदी है। मैंने इसे स्वयंवर में जीता है। द्रौपदी ने आगे बढकर कुन्ती के चरण स्पर्श किये। कुन्ती ने अखंड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। मेरे व्यवहार से तनिक भी आशंकित और विचलित मत होना।

अर्जुन का हृदय विदीर्ण हो गया, विचलित हो गया। कैसा धर्म संकट उपस्थित हुआ। यह क्या हो गया उसके साथ। ईश्वर उसे बल दे। राजपुत्री द्रौपदी ने जब सुना तीनों लोक द्रुतगति से घूम गये। अन्धकार निपट अन्धकार। राजकन्या लडखडाती स्वयं को सम्भालने का प्रयास करने लगी। कंठ अवरुद्ध हो गया। अर्जुन ने कहा आपने इनके विभाजन का आदेश दिया है माताश्री। कुन्ती बोली इसके विभाजन का आदेश क्या मेरी मति खराब हुई जो मैं पुत्रवधू के विभाजन का आदेश दूं। तुमने तो मुझे भिक्षा कही थी। क्या तुमने द्रौपदी को भिक्षा बताया। पत्नी को भिक्षा कहा तुमने ? मां से झूठ बोला अर्जुन। अब बाँटो उसे और बांट कर दिखाओ मुझे। कुन्ती को बडा पश्चाताप हुआ, हाय हाय मैंने यह क्या कह दिया ? हे भगवन यह क्या हुआ

मुझसे? अब क्या होगा ? यदि मेरी आज्ञा का पालन नहीं होगा तो मेरे वचन मिथ्या होंगे, मेरा घोर अपमान होगा। जननी के वचन अन्यथा करने पर सन्तान पर कष्ट आता है, धर्म द्रोही बनती है। माता का वचन पालन करे तो द्रौपदी से विवाह करने पर द्रौपदी का अपमान होता है उसकी लज्जा की सीमा नहीं रह जाती। अब क्या करें जिससे वचन भी रहे और धर्म की भी रक्षा हो तथा द्रौपदी के सम्मान पर भी आंच न आये।

युधिष्ठिर वहीं खडा था बोला क्या समस्या है माताश्री ? कुन्ती बोली यह तो तुम अपने अनुजों से ही पूछो युधिष्ठिर। जो पत्नी को भिक्षा मानते हैं, वस्तु समझते हैं। क्या घर लक्ष्मी की यही मर्यादा है ? तुम तो साक्षात धर्म हो। तुम्ही बताओ युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोला नारी तो शक्ति है माताश्री। नारी के बिना नर सम्पूर्ण नहीं हो सकता। नारी चाहे माता के रूप में हो, चाहे पत्नी के रूप में हो, चाहे पुत्री के रूप में। नारी सदैव आदरणीय व वन्दनीय है। भीम और अर्जुन ने नारी को भिक्षा कहकर नारी का अपमान किया है। माता परम गुरु भी है और उसका कोई भी आदेश अस्वीकारणीय हो ही नहीं सकता। भीम बोला यह क्या कह रहे है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले माताश्री के मुख से तो कोई आज तक अस्वीकारणीय बात निकली ही नहीं तो फिर माताश्री के अनजाने में दिये हुये आदेश में कोई न कोई रहस्य अवश्य रहेगा। वर्तमान में जो कुछ भी घट रहा है अतीत से उसका कोई न कोई अंकुर अवश्य होगा। कुन्ती बोली तो तुम क्या यह कह रहे हो कि द्रौपदी को पांचो भाइयों में समान रूप में बांट दिया जाये? युधिष्ठिर बोला यह मैंने नहीं कहा माते। यह तो आपने कहा है। यह तो आपका आदेश है। कुन्ती बोली मैंने तो यह भिक्षा के लिये कहा था पुत्र। युधिष्ठिर बोला यह तो आप अपनी जाने परन्तु सोच लीजिये माताश्री भविष्य में जो कुछ होना है उसे न तो आप जानती है और न मैं ही। हो सकता है कि आपकी जीभ पर बैठकर स्वयं काल ने ही यह निर्णय लिया हो। इसमें कुछ अधर्म अथवा उचित नहीं है। इतिहास में ऐसा हो चुका है। पुराण ग्रन्थों में दृष्टान्त मिलते हैं। पूर्वकाल में गौतम गोत्र में जटिला कन्या का विवाह सात ऋषियों से हुआ था। कन्दु पुत्री वार्क्षी का विवाह दस प्रचेता पुत्रों के साथ हुआ था। कभी कभी धर्म की रक्षा हेतु अपवाद होते हैं। माता की आज्ञा का पालन सर्वश्रेष्ठ आदर्श है, श्रेष्ठ धर्म है। मातृ आज्ञा पालने से किसी प्रकार का पाप नहीं लगेगा। बल्कि मां की आज्ञा का पालन नहीं करने से अर्जुन घोर पाप के भागी हो सकते हैं। नकुल बोला क्या विवाह और विभाजन में कोई अन्तर नहीं भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोला वास्तविकता के इस चक्कर में निकलने के मार्ग का ज्ञान मुझे नहीं है नकुल। युधिष्ठिर ने क्षणभर विचार करके माता कुन्ती को ऐसा ही करने का आश्वासन दिया और बोले अर्जुन तुमने मर्यादा के अनुसार द्रौपदी को जय किया है अब विधिपूर्वक उसके साथ पाणिग्रहण करो। अर्जुन बोले भ्राताश्री आप मुझे अधर्म का भागी मत बनाये। सत्पुरुषों ने भी कभी ऐसा आचरण नहीं किया है। पहले आप फिर भैया भीम तदनन्तर मैं विवाह करूंगा। तत्पश्चात नकुल और सहदेव। आप अपनी बुद्धि, धर्म, यश और हित में जैसा करना हो उचित समझे वैसी आज्ञा दें। हम सभी आपके आज्ञाकारी हैं।

अर्जुन का प्रेम और ममतासे भरा वचन सुनकर सभी द्रौपदी की ओर देखने लगे। द्रौपदी के सौन्दर्य, माधुर्य और सौशील्य से पांचों भाई मुग्ध हो गये। उन सबके मन में द्रौपदी बस गई। तब युधिष्ठिर ने कहा अच्छा है कि द्रौपदी हम सब भाइयों की पत्नी हो। इससे सभी भाइयों को बडी प्रसन्नता हुई। वे अपने मन में भांति-भांति के विचार करने लगे।

सिर झुकाये, मौन और निष्क्रिय द्रौपदी यह सब सुन रही थी। अर्जुन के दो बडे भाई अविवाहित हैं। अर्जुन की इस उपलब्धि से सारा परिवार प्रसन्न होते हुये भी धर्म संकट में पड गया। माता धर्मानुसार चलना चाह रही थी। द्रौपदी के मन में भी परिवेदन की शास्त्रों की अनेक उक्तियां गूंजने लगी। सभी ने परिवेदन को पाप माना था। गौतम ने, आपस्तम्भ ने, वशिष्ठ ने, मनु ने, याज्ञवल्क्य ने, बौधयान धर्म सूत्र ने तथा विष्णु धर्म सूत्र के अनुसार तो बडे भाई के अविवाहित रहते छोटा भाई विवाह कर ले यह धर्म सम्मत नहीं है, छोटे भाई से विवाह करनेवाली कन्या, विवाह करानेवाला अभिभावक तथा सम्बन्धित पुरोहित ये सब के सब नरकगामी होते हैं माता का कथन ठीक ही है राजकन्या का स्वयंवर अर्जुन ने जीता है तो फिर ? विचार करते करते द्रौपदी

का मन अवसाद में घिर गया। लक्ष्यवेध करनेवाले वीर अर्जुन में उसका मन अनुरक्त हुआ था, क्या वह उसे प्राप्त नहीं होगा ? द्रौपदी के पिता पांचाल राज द्रुपद के संकल्प का क्या होगा ? गुरु द्रोण से अपने अपमान का प्रतिशोध ? यदि धनुर्धर से उसका विवाह नहीं हुआ तो उस अपमान का प्रतिशोध कौन लेगा ? क्या द्रौपदी के पिता इस प्रस्ताव को मान लेंगे कि उसका विवाह धनुर्धर में नहीं उसके ज्येष्ठ भाइयों के साथ भी होगा ? द्रौपदी का मन अटक गया। क्या उसके पिता इस प्रस्ताव से सहमत होंगे? कन्या का दान किसी एक भाई को नहीं भाइयों के सारे कुटुम्ब को किया जाता है।

कुन्ती ने अपने पुत्रों से कहा तुम्हे केवल अपने लिये कुछ नहीं सोचना है तुममे से किसी को भी स्वार्थी नहीं होना है। तुम मेरे लिये पांच नहीं, पांचों मिलकर एक पुत्र हो, एक अस्तित्व हो। प्राणों से बडी उपलब्धि कोई नहीं होती है। तुम्हारे पिता के देहान्त के पश्चात तुम्हारे बडे भाई युधिष्ठिर ने जो स्वयं छोटासा था अपनी अक्षमताओं में भी एक पिता के समान तुम लोगों को सम्हाले रखा है। यह मत सोचो आज धनुर्धर को एक सफलता मिली है तो वह हमसे पृथक होकर केवल अपना स्वार्थ और सुख सोचे। युधिष्ठिर बोले मां पांचाली वीर्य शुल्का घोषित हुई और उसका स्वयंवर धनुर्धर ने ही जीता है। किन्तु कर्तव्य और वासना में से तो अर्जुन अपने कर्म कर्तव्य को ही चुनेगा। वासना मोहक होती है अत्यन्त आकर्षक भी। वह मनुष्य की शिराओं में अग्नि बनकर बहती है। उसके आलिंगन में निष्क्रिय होकर धर्म को विस्मृत कर प्रवाहित होना अस्वीकार किया जाये तो वह अग्नि शरीर को इस प्रकार तपाने लगती है मानो वह उसे भस्म कर देती है। जीवन का कोई सुख धर्म से बडा नहीं है। धर्म की अवहेलना किसी भी बडे से बडे कष्ट से बडा कष्ट है। धर्म वासना से बडा है, शक्तिशाली है, समर्थ है, धर्म ही धारण करता है, सृष्टि को, मनुष्य को, मनुष्य के शरीर को। वासना किसी को धारण नहीं करती, वह तो क्षयमात्र करती है, जीवन के भोग के विरुद्ध नहीं। जीवन धर्मानुकूल होना चाहिये तथा भोग भी धर्मानुकूल होना चाहिये। अधर्म के मार्ग पर चल कर तो कोई सुख प्राप्त होता नहीं। अर्जुन भोग का त्याग करेगा पर धर्म का नहीं। युधिष्ठिर किसी भी स्थिति में अर्जुन को वंचित नहीं करना चाहता। युधिष्ठिर और माता कुन्ती सोचती है कि कही पांचाली उन भाइयों में विग्रह का कारण तो न बन जाये। कही ऐसा न हो कि पांचाली उनके परिवार में सुख, प्रसन्नता और उल्लास लाने के स्थान पर ईर्ष्या, द्वेष और विभाजन लाये। कही पांचाली उनकी उपलब्धि के स्थान पर वंचना न बन जाये। यह उनके अभ्युदय का क्षण न रहकर पतन का द्वार न बन जाये। कही वह उनके लिये विष वृक्ष न बन जाये।

युधिष्ठिर के चरित्र में ग्रहण की तुलना में त्याग कहीं अधिक है। द्रौपदी को उनका यह संकट बढाना नहीं है, उसे टालना है। उन्हे धर्म से डिगाना नहीं, धर्म पर चलाना है। उन्हे वियुक्त नहीं करना है, उन्हे संयुक्त रखना है। अपने धर्म के नष्ट होने के भय से जो अपनी पत्नी को निर्विकार चित्त से अन्य पुरुष को दान कर सकता है वह पृथ्वी का श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष तो हो सकता है पर कभी किसी विचारवान स्त्री का योग्य पति नहीं बन सकता। द्रौपदी क्षोभ से अन्दर ही अन्दर जलती रही पर मुंह पर भाषा नहीं थी। राजकुमारी द्रौपदी ज्ञानी है, बुद्धिमती है, शास्त्र विशारद है। ऐसे विषम संकट स्थितिमें उसका समाधान वह स्वयं करे बलात उस पर किसी का मत तो प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। इसलिये स्वयं वह अपना निर्णय ले। पृथ्वीपर चाहे प्रलय हो जाये, कुन्ती पुत्र माता के वचनों का लंघन नहीं करेंगे। जो होना था हो चुका अब अनुशोचना करने से कथित वचन प्रत्यावर्तित नहीं हो सकते। अत: राजकुमारी कृष्णा पर ही सारी बातें न्यस्त कर दी जाये। पति निर्वाचन की स्वाधीनता आर्य कन्या को प्राप्त है।

इस पृथ्वी पर कोई भी अपने उपर दोष को स्वीकारता नहीं बल्कि उसका दोष दायित्व दूसरे पर ढाल कर दोष मुक्त होना चाहता है। एक नारी के पांच पति करने से स्त्री जाति का यश नहीं बढेगा। भविष्य के लिये द्रौपदी निंदित, लांछित घृण्य व्यक्तित्व की नारी बनकर पृथ्वी के इतिहास में रह जायेगी। यहां तक कि कलियुग में अनेक पुरुषोंवाली भ्रष्टा नारियों को इस युग की द्रौपदी की संज्ञा देकर पुकारेंगे और उनका उपहास करेंगे ? वे क्या समझेंगे कि द्रौपदी ने किन परिस्थितियों में पांच पुरुषों की पत्नी बनने का समझौता किया है। औरों का धर्म तथा सत्य रखने में वह निंदित क्यों बनी ? द्रौपदी सोच रही है हर मां चाहती

है उसकी पुत्रवधू रूपवती हो, ज्ञानवान, विद्या-बुद्धि से सम्पन्न हो, चरित्रवान हो, सती साध्वी हो पर यहां कैसी विपरीत बात है कि अपने वचन की रक्षा के लिये कैसे अपनी पुत्रवधू को पंच पति वरण का संकेत दे रही है। शायद बात इतनी सरल भी नहीं है। इसके पीछे कोई न कोई गूढ रहस्य अवश्य हो। कोई महत्तर उद्देश्य हो। द्रौपदी स्वयं में समझ नहीं पा रही कि उसके लिये क्या करना उचित होगा। अपना स्त्री धर्म उसके लिये बडा है या मां का वचन, पति और उनके भाइयों की धर्मरक्षा उसके लिये बडी है। स्वयं को औरों के धर्म की रक्षा के लिये बलि देना क्या उसका कर्तव्य है या अपना आत्मसम्मान और आनन्द पाने के लिये एक पति वरण उसका कर्त्तव्य है। द्रौपदी अपने द्वन्दों में उलझी हुई थी। नि:स्वार्थ प्रेम की वेदी पर उसने अपने जीवन की आहूति दी। धर्मराज युधिष्ठिर अभी तक अविवाहित क्यों है ? उनके अविवाहित रहने में क्या द्रौपदी उत्तरदायी है ? पांचो पतियों की एक पत्नी। हत भागा द्रौपदी तू जन्म लेते ही मर क्यों न गई ? विधाता ने ऐसा क्रूर खेल खेला द्रौपदी के साथ। ऐसा तो कभी इतिहास में भी नहीं हुआ, ऐसा कहीं विश्व में नहीं हुआ। लोक क्या कहेगा ?

अर्जुन शिथिल स्वर में समझाते हुये द्रौपदी से बोले कल्याणी इतना विचलित होना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम अगर लोक से भयभीत होगी तो माता की आज्ञा का पालन किस सीमा तक हो पायेगा ? याज्ञसेनी तुम तो कोई साधारण नारी नहीं। स्वयंवर सभा में तुमने शास्त्रों की व्याख्या करके सबको निरुत्तर कर दिया। तुम्हारे साहसपूर्ण तर्कों से ही तो मुझे साहस मिला था तुम यदि शिथिल पड जाती तो मैं क्या लक्ष्यवेध के लिये उठता। तुम अजेय सव्यसाची अर्जुन की पत्नी हो। तुमने तो मुझे कहीं झुकने नहीं देने का वचन दिया है किसी के भी समक्ष और किसी भी स्थिति में पर जब तुम स्वयं टूटोगी, झुक जावोगी तब मैं कैसे खडे रह पाऊंगा ? याज्ञसेनी अकस्मात यह माता की आज्ञा का वज्रपात मुझ पर हो गया है, हम दोनों पर हुआ है अब अपना अवलम्ब दो मुझे। कभी कभी धर्म की रक्षा हेतु अपवाद भी होते हैं। यज्ञकुंड से प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा सी याज्ञसेनी उठ खडी हुई। ओज, तेज और प्रखरता से प्रदीप्त हो बोली यह बात कहना अत्यन्त सहज है आर्यपुत्र आपके लिये पर इतना बडा अन्याय किसी के साथ करना वह भी एक नारी के साथ आपको शोभा देता है? एक निरीह असहाय निर्दोष अबला को सत्पथ से भ्रष्ट कर उस पर अन्याय थोपना क्या आप जैसे वीर पुरुष को शोभा देता है ? कहां गया आपका क्षात्रधर्म ? कहां आपकी वीरोचित मान्यतायें ? पराकाष्ठा अन्याय की, अधर्म की, पाप की पराकाष्ठा। याज्ञसेनी क्रूद्ध सर्पिणि की भांति फुफकार रही थी। मेरे स्थान पर यदि कोई दूसरी नारी होती तो इसी समय वह अपने प्राण त्याग देती। क्यों भगवान ने मुझे इतनी सहनशक्ति दी है ? किसके लिये ? क्यों मेरे प्राण नहीं निकल रहे? पांच पतियों की एक सामान्य पत्नी कितना कुत्सित विचार यह कहते आपकी जिव्हा लडखडायी क्यों नहीं ? स्त्री स्वभाव से एकनिष्ठ होती है आर्यपुत्र। आप पुरुष हैं। आपके सम्बन्ध पता नहीं कितनी ही स्त्रियों से रहे होंगे, भविष्य में भी रहेंगे किन्तु एक साध्वी स्त्री के मन को आप समझो। लोक मेरी ही मानसिक दृष्टि को दोषी व उत्तरदायी ठहरायेगा। लोक, समाज के उपहास की पात्र बनकर जीने से तो अच्छा है प्राणान्त हो जाये। कैसी परीक्षा ले रहा है भगवान भी? द्रौपदी ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप लिया। कुछ पल सन्नाटा रहा। पांचाली में अब शक्ति नहीं रहीं बोलने की। दोनों आंखों से अविरल अश्रूधारा बहने लगी। वह बोली सह लूंगी सब सह लूंगी।

अर्जुन में भी बोलने का साहस नहीं रहा। अर्जुन चौंक पडे। द्रौपदी का यह क्रन्दन रूदन सुन रहे थे। द्रौपदी फफकते फफकते रूदन भरे स्वर में बोल रही थी हां आर्यपुत्र सब कुछ सह लूंगी मैं पत्नी मात्र जो हूं, जिसका अपना कुछ नहीं होता। पति की आज्ञा पालन ही जिसके लिये सर्वोच्च धर्म बताया गया है। आप माता की आज्ञा पालन करने में अपनी पत्नी पर घोर अत्याचार कर गये पर मैं पति की आज्ञा पालन करने में किसी अन्य पर अत्याचार नहीं करूंगी। मैं स्वयंपर ही अत्याचार करूंगी। अपनी इच्छाओं, महत्वकांक्षाओं को ही शमन दमन करूंगी ताकि आर्य अपनी माता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। मेरा यही उद्देश्य होगा, यही प्रयत्न भी ताकि आर्य आपका धर्म बना रहे। धर्म तो पुरुष का होता है। आपके धर्म को अक्षुण्ण बनाये रखूं। मेरा धर्म क्या है ? पतित और भ्रष्ट का भी कोई धर्म। आप मां के प्रति अपना कर्तव्य निभाये यही मेरी

कामना है। पत्नी के प्रति कैसा कर्तव्य ? मेरी यही महान उपलब्धि होगी। मैं इसी में सन्तुष्ट रह लूंगी। जिसकी प्राण प्रतिष्ठा मन मन्दिर में की है उस आराध्य के लिये फिर बडे से बडा त्याग क्यों नहीं ? अपनी इच्छाओं की आहूति आपके सुख के लिये दूंगी। ईश्वर मुझे शक्ति दे मेरी अपनी कोई इच्छा न रहे, कोई सुख की कामना भी नहीं रहे। अपना सुख दुख मैं आपकी कर्तव्य गंगा में प्रवाहित कर दूं। अन्तर में बैठी साध्वी नारी का दमन कर दूं।

द्रौपदी का एक एक शब्द अर्जुन के धैर्य का खंड खंड किये जा रहा था। अर्जुन धीरज की मूर्ति बना खडा था। द्रौपदी की ओर देखने का उसमें साहस नहीं था। कर्तव्य शिला पर खडा अर्जुन बोला देखो पांचाली तुम्हारे दु:ख का कारण मैं ही हूं। मैं भी अपने आपको सान्त्वना अथवा शान्ति नहीं दे पा रहा, क्या करूं ? कुछ नहीं हो सकता अब। मैं तुमसे कुछ कम आहत नहीं राजपुत्री तुम कहीं इस भ्रान्ति में मत रहना। तुम्हे स्वयंवर में जीत लेना मेरे जीवन का एक बडा उद्देश्य था। कितने उल्लास और हर्ष से तुम्हे मैं साथ लाया। सोच रहा था मेरे प्रेम में तुम्हे सरोबार कर दूंगा। मेरे पास राजपाट, धन, वैभव कुछ भी नहीं है किन्तु हृदय में तुम्हारे लिये असीम छलकता प्रेम विशाल हृदय मेरे पास है। यही मेरी सम्पन्नता है। अपनी इस एक मात्र सम्पत्ति, निधि कोष तुम पर सम्पूर्णत: उंडेल देना चाहता हूं। तुम्हे कोई कष्ट न हो, कभी किसी अनुताप का कोई कारण नहीं बनूं। कभी कोई कठोर कटु शब्द से तुम्हे पीडित नहीं करूं किन्तु न चाहते हुये भी यह सब हो रहा है। दैव इच्छा ही सर्वोपरि है। गृहद्वार पर आते ही इतना कठोर निर्णय मुझे लेना पडा। यह कैसा काल संयोग आया कि इस निर्मम निर्णय से तुम्हारा कोमल हृदय मुझे ही आहत और विदीर्ण करना पडा। मेरा हृदय विदीर्ण है पांचाल कुमारी। यह मत सोचो कि तुम दु:खी हो और मैं सुखी। मेरे कष्ट का अनुमान लगाने का तो प्रयत्न करो। मैं अपनी ही पीडा को झेल नहीं पा रहा हूं उस पर से तुम्हारा यह दारुण दु:ख मुझे तोड डाले जा रहा है देवी। हम दोनों के दु:खों का भार ढो लूंगा, झेलूंगा। मेरा हृदय तो दुगना पाषाण है किन्तु पांचाली मेरे विषय में कोई भ्रम मत पाल लेना। मेरे इस पत्थर हृदय में भी प्रेम का मानसरोवर है जिसमें तुम कमल सी विराजमान हो। तुम मेरे राजमहल की राजरानी हो पांचाली। अब संयम से काम लो। यह सुनकर पांचाली ने अपना सिर अर्जुन के कन्धे पर रख दिया। अर्जुन ने अपनी माता के बारे में सोचा। लीलामय की भी कितनी अद्भुत लीला है जिस पांडु पत्नी कुन्ती से कभी अनुचित घटित नहीं हुआ वे ही इस अनहोनी घटना की निमित्त बनी।

श्रीकृष्ण ने स्वयंवर में ही पांडवों को पहचान लिया था अब वे अपने बडे भाई बलराम के साथ उस कुंभकार के यहां पांडवों को खोजते खोजते पांडवों के निवास स्थानपर आये। आकर दरवाजे पर दस्तक दी। माता कुन्ती ने द्वार खोला। उन्होने अपनी बुआ कुन्ती को चरण स्पर्श किये और प्रणाम किया। कुन्ती ने युगों युगों जीने का आशीर्वाद दिया। उस समय राजकुमार धृष्टद्युम्न भी छिप छिप कर उनकी कुटिया के पीछे से यह सब कुछ देख रहा था। कुन्ती ने पूछा द्वारिका में तो सब कुशल से है न ? कृष्ण बोला आप की कृपा से तो वहां सब कुछ कुशल है परन्तु इस समय मुझे कुछ यहां कुशल दिखाई नहीं दे रहा है बुआ। सभी पांडवों ने कृष्ण और बलराम का प्रेम से स्वागत किया फिर युधिष्ठिर ने पूछा हम लोग तो यहां छिपकर रह रहे हैं आपने हमें कैसे पहचान लिया ? श्रीकृष्ण ने हंसते हुये कहा क्या लोग छिपी हुई आग को नहीं ढूंढ निकालते? आज भीम और अर्जुन ने जिस पराक्रम का परिचय दिया है वह पांडवों के अतिरिक्त और किसमें सम्भव है ? यह बडे सौभाग्य और आनन्द की बात है कि दुर्योधन और उसके मन्त्री पुरोचन की अभिलाषा पूरी नहीं हुई और आप लोग लाक्षाभवन की आग से बच निकले। आपके संकल्प पूर्ण हों और आपका निश्चय पूरा हो, सार्थक हो।

कुन्ती ने कहा गोविन्द तुम्हारी अशेष दूरदर्शिता के कारण हम दुर्योधन के उस षडयन्त्र से बच निकले। राजकुमारी कृष्णा भी प्राप्त हुई। अब इस कृष्णा को लेकर विषम परिस्थिति है और विकट समस्या भी। किस प्रकार सबका धर्म रहे तुम्ही हमें मार्ग सुझाओ कृष्ण। पांडव कुल की नवीनतम समस्या एवं उस पर लिये गये निर्णय पर वे सब परस्पर चर्चा लीन हुये। हम एक धर्म संकट में पड गये है वत्स। भीम और अर्जुन द्रौपदी को लेकर आये और मुझसे कहा माते आज हम एक बहुत अच्छी भिक्षा

लेकर आये हैं। मैंने देखे बिना ही कह दिया कि सारे भाई आपस में बांट लो। अब द्रौपदी कोई वस्तु थोडे ही है जिसका विभाजन किया जा सके। कृष्ण बोला यह तो आप द्रौपदी से ही पूछिये। कुन्ती बोली ये बेचारी क्या बतायेगी वत्स ? कृष्ण बोला यही तो सब बतायेगी। वरवर्णिनी कृष्णा की ओर कौन पुरुष आकृष्ट नहीं होगा ? जो आकृष्ट नहीं होगा वह या तो पुरुष नहीं या नपुंसक कलीव है या जड। द्रौपदी के लिये तो अब पूरा भारत घोर विवाद का सूत्रपात है। अर्जुन कृष्णा को प्राप्त कर चुका है। अत: अन्य समस्त राजन्य वर्ग असहिष्णु हो उठा है। ईर्ष्या एवं विफलता की ग्लानि में वे विद्रोह का सूत्र खोज रहे हें। इसमें उनका दोष भी क्या है ? कृष्णा को एक बार भी जिस किसी ने देखा है वह उसे पायें बिना शान्ति कैसे पा सकता है ? इन पांचो पांडवों में भी भ्रातृविवाद भविष्य में उपजने की सम्भावना हो सकती है इसीलिये आपके मुंह से अनायास ही ऐसा कोई वाक्य निकल गया वह सबके लिये मंगल प्रद ही होगा। युधिष्ठिर ने इन सारी बातों का विचार कर सबके धर्म का पालन हो और पृथ्वी पर धर्म स्थापना के लिये ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई। वास्तव में पांचों पांडवों में एकता नहीं होगी तो दुष्ट दुराचारी शत कौरवों का दमन करना सम्भव नहीं होगा। एकता ही सफलता और संगठन का मूलमन्त्र है। स्त्रियों को लेकर परिवार की एकता कभी नष्ट न हो। अत: युधिष्ठिर ने पांचो पांडवों के बीच एकता बनी रहे इसके लिये पांचाली को सबकी अर्धांगिनी बनने की यह बात सोची है, ताकि वह परिवार का दायित्व पूरी तरह से निभा सके।

कृष्ण द्रौपदी से सम्बोधित हुआ और बोला पांचाली तुम सर्वथा उपयुक्त स्थान पर आ गई हो। चिंतित मत होना और न ही संभ्रमित। जो प्रत्यक्ष दिख रहा है वह माया का प्रपंच है। सत्य तो अभी आवृत है और सत्य सदा ही कल्याणकारी होता है। जो प्रत्यक्ष है वह सत्य नहीं और जो सत्य है वह अनावृत है। असत्य का अस्तित्व नहीं होता और सत्य का कभी नाश नहीं होता। सत्य अपने आप सामने आयेगा। कुन्ती ने पूछा क्या कृष्ण हमारा दुष्काल समाप्त हुआ ? कृष्ण ने उत्तर दिया महाराज द्रुपद का कल्याण हुआ। आप पूर्ण तरह आश्वस्त रहे। सभी यादव महारथी आपकी सुरक्षा के लिये अपने अस्त्रों सहित सन्नध खडे हैं बुआ। द्रौपदी अपने नये परिवार के दायित्व को सम्भालो। तुम्ही ने तो पूर्वजन्म में भगवान महादेव से वर मांगे थे उस समय यह नहीं सोचा था कि गागर में समाई कितनी है ? और सागर का वरदान मांग लिया और जब वे बोले यह सम्भव नहीं है तो द्रौपदी उस समय बोली ईश्वर के लिये क्या असम्भव हो सकता है ? परन्तु महादेव को भी नदी को सागर का वरदान देना सम्भव नहीं है द्रौपदी। कुन्ती बोली द्रौपदी ने भी ऐसा क्या मांग लिया था ? कृष्ण बोले यह तुम बताओगी द्रौपदी या यह भी मुझे ही बताना पडेगा।

द्रौपदी ने एक ही वरदान में लपेट कर महादेव से पांच वरदान मांग लिये थे बुआ। उसने एक ऐसा पति मांगा था जो धर्म का चिन्ह प्रतीक हो, सत्य का संकेताक्षर हो, जो हनुमान के सदृश बलवान भी हो, श्रीराम जैसा धनुर्धर हो, सुन्दर हो ऐसा कि कामदेव के समान हो जिसे लोग देखते रह जाये और सहनशीलता में कोई उसका सानी न हो। क्या तुमने ऐसा नहीं मांगा था पांचाली और क्या महादेव ने तुम्हे यह नहीं कहा था द्रौपदी सारी श्रेष्ठतायें एकत्र तो हो नहीं सकती। कुछ मांगने से पहिले तुम्हे सोच लेना चाहिये था कि जो मांग रही हो वह तुम्हारे हाथ उसकी क्षमता है कि नहीं। महादेव से हठ करके तुमने वरदान तो ले लिये। अब बुआ के मुख से स्वयं महादेव ही बोल रहे हैं कि अभी संसार में युधिष्ठिर ही धर्म का चिन्ह है यह है महादेव का पहिला वरदान। अब इस संसार में भीम से शक्तिशाली और कोई नहीं यह है महादेव का दूसरा वरदान। इस संसार का सबसे बडा और श्रेष्ठ धनुर्धर है अर्जुन, यह है तुम्हारा तीसरा वरदान। इस संसार में नकुल सा सुन्दर कामदेव के समान दूसरा कोई नहीं यह चौथा वरदान। सहदेव सहनशीलता में सर्वोतम है यह है तुम्हारा पांचवा वरदान। यह सारे वरदान न लेकर यदि तुम महादेव का अपमान न करना चाहो तो यह तुमपर निर्भर है द्रौपदी। आप लोग सब द्रौपदी की ओर क्यों देख रहे है ? तुमने स्वयंवर अवश्य जीता है पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि जीती जागती द्रौपदी को भिक्षा हो गई समझ लो। माता परम गुरु होती है। अर्थात परम गुरु से तुमने झूठ बोला है और बुआ मां हो जाने का अर्थ यह भी नहीं कि आप देखे बिना, सोचे बिना, समझे बिना कोई आदेश कर दे कि सब में बांट लो। आपने ममता

की मर्यादा का उल्लंघन किया है तो आज से यह जीवन आपकी तपस्या भी है और प्रायश्चित भी।

पूर्वजन्म में थे दिये शिव ने जो वरदान, वरे पांच वर द्रौपदी, पांचो गुणी महान।

द्रौपदी सोच रही है कि यही वासुदेव श्रीकृष्ण है जिसके विषय में इतनी दन्तकथायें एवं किवंदतियां प्रचलित है। यही वह यादव शिरोमणि है क्या ? तो फिर ये ही हैं वीर द्वय जिन्होने आततायी शासक कंस का वध कर शौरसेन राज्य को मुक्त किया। यही वह कृष्ण है जिसने मात्र सात वर्ष की आयु में कालिया नाग का दमन कर उसके फन पर नृत्य किया। जिसने मगध सम्राट जरासंध के जामाता और अपने मामा कंस का वध कर सम्राट का अपरिमित रोष अर्जन किया। जिसने १८ हजार यदुवंशियों के बल पर उस महापराक्रमी जरासंध की विराट सेनाओं के सत्रह बार दांत खट्टे कर दिये। अपनी संगठन शक्ति और दूरदर्शिता का अद्‌भुत परिचय देकर समस्त यदुवंशियों को सुदूर पश्चिमी समुद्र तट पर सकुशल निकाल ले गया। जिसने द्वारावती पुरी और दुसहतम दुर्ग खडा कर दिया। यह वही कृष्ण है जिसके चरणों में विदर्भकुमारी रूक्मिणि अपना सर्वस्व न्यौछावर करती है। कितना तरुण, वयस्क और निर्भीक व्यक्तित्व मनोहारी कि वृंदावन की विपिन बालायें इसकी मधुर वंशी की तान से बावली होकर महारास में नृत्यरत रहती थी। और यही वह है जो वेणु बजाकर गोपाल रूप में अनिंद्य रूपमती वृषभानुजा राधा के प्रति सम्पूर्ण समर्पित था। राजपुत्री द्रौपदी के हृदय में न जाने कैसी विचित्र हृदय तरंगे उठ रही थी ? लोग कहते है कि वह सबके मन की बात जान लेता है, उससे कुछ छिपा नहीं रहता। वह चमत्कारिक प्रतिभाओं से युक्त सिद्ध पुरुष है। वह भविष्य वेत्ता है। अपने व दूसरों के समस्त पूर्वजन्मोंका लेखा प्रस्तुत कर देता है। विलक्षण अन्तर्दृष्टि है कृष्ण की। कितना परिचित, कैसा आत्मीय, जैसे युगों से, जन्म-जन्मान्तरोंसे उसे जानता हो। कितनी सहानुभूति, करुणा और ममता थी उस वृष्णि वीर की निश्चल दृष्टि में। अहो मधुसुदन जो कुछ तुम्हारे बारे में सुनती आयी वह तो नितान्त सत्य ही है।

कृष्ण बोले हम यहां अधिक देर और नहीं रूक सकते। हमारे यहां आने का कारण अन्य राजाओं को भी ज्ञात नहीं हो जाये कि आप लोग यहां है। अच्छा हम चलते है। कृष्ण और बलराम द्वार की ओर बढे। आंधी चल रही थी। वायु अभी प्रबल थी। बलराम ने हाथ बढा द्वार खोल कर हटाया ही था कि श्रीकृष्ण ने चौखट पर हाथ रखा और प्रबल वायु वेग से किवाड तत्क्षण बन्द हो गये। श्रीकृष्ण की कनिष्ठ अंगूली दब गई और दबकर रक्त प्रवाहित होने लगा। पांडु पत्नी कुन्ती विकल हो उठी कि कहीं चलते समय यह कोई अपशकुन तो नहीं। और तभी संकोच से दबी सिमटी नववधू लोक लाज छोड वासुदेव के निकट आ खडी हुई। और अपना नया विवाहित लाल जोडे का आंचल पलक झपकते ही चीर डाला। यह क्या ? वैवाहिक मांगलिक वस्त्र ? देखकर कुन्ती व्याकुल हो उठी। जब तक कोई यह स्थिति समझता तब तक तो द्रौपदी ने वह बहुमूल्य चीर वासुदेव कृष्ण की कनिष्ठा अंगूली में रक्तस्राव को रोकने के लिये बांध दिया। सब अभिभूत हो उठे। कुन्ती गदगद होकर बोली धन्य है तू वत्से। कुल की लाज रख ली तूने। हम तो देखते ही रह गये। तूने तो आये हुये अतिथि का कष्ट हरण कर लिया। उच्च कुल की कन्या का यही तो लक्षण है। तूने तो आते ही पांडव कुल को उपकृत कर दिया। अपनी पुत्रवधू की कर्त्तव्यनिष्ठा और कुशलता पर प्रसन्न हो उठी कुन्ती। वासुदेव मुस्कुरा उठे और बोले यह तो कृष्णा ही है जो कृष्ण के आघात को समझ सके। तुझे मालूम है याज्ञसेनी स्वयं पीडित होते हुये भी दूसरे की पीडा के लिये अपनी पीडा भूला दे, जो दूसरे की पीडा से पीडित हो उठे वह केवल मित्र होता है, सखा। आज से तू मेरी सखी हुई। श्रीकृष्ण ने स्मित हास्य से अपना चीर बन्धा हाथ राजकन्या द्रौपदी के शीश पर रख दिया। द्रौपदी बोली आज मैं कृतार्थ हुई, आप मेरे अग्रज हैं। नयनों में अश्रू भर आये हर्ष से, रोमांच से, कृतज्ञता से, विह्वलता से।

कृष्ण बोले कृष्णे तूने अपना यह मांगलिक वैवाहिक वस्त्र मेरे उपचार हेतु चीर डाला उसके लिये तो मैं मूल्यवान से मूल्यवान रेशमी वस्त्रों का ढेर भी लगा दूं तो भी तेरे इस ऋण से कभी उन्ऋण नहीं हो पाऊंगा। तूने यह उपकार कर मुझे सदा सदा के लिये बांध लिया है। नवविवाहिता के शुभ आवरण का जो महत्व था तेरे लिये, तूने मेरी छोटी सी चोट के लिये उसे पलभर में त्याग

दिया। मेरी कनिष्ठ अंगूली पर बन्धा यह चीर अमूल्य है और तुझे इसके बदले अक्षय चीर भी दे डालूं तब भी वह तेरी भावना के समक्ष छोटा पडेगा। तू मेरी सखी है और सदैव मैं तेरे कष्टों का ध्यान रखूंगा। जब कभी संकट आ जाये तो नि:संकोच मुझे स्मरण कर लेना। मैं कहीं भी रहूं तेरी पुकार मुझ तक अवश्य पहुंच जायेगी और मैं तेरी सहायता के लिये आ जाऊंगा। यह कहते कहते श्रीकृष्ण का कंठ भावुक हो गया। अर्जुन को आज केवल बन्धु ही नहीं, सखा और मित्र मिला। एक ही बार में उसे सहायक, आश्रय, अवलम्ब, पथप्रदर्शक और अग्रज मिल गया। अर्जुन को आज दो दो महान उपलब्धियां हुई द्रुपद सुता सी पत्नी और वासुदेव से परम मित्र। बृहत्तर स्वार्थ के लिये क्षुद्रतर स्वार्थ की बलि देनी पडती है। कृष्ण और बलराम जिस आकस्मिकता से आये थे उसी आकस्मिकता से लौट गये। अब द्रौपदी ने अपने मन में अनुमान लगा लिया कि ये लोग कोई साधारण जन नहीं है। द्रौपदी ने इस परिवार में जो कुछ देखा उससे उसके मन में शान्ति व्याप्त हो गयी।

द्रौपदी इस परिवार के शील व्यवहार को देख कर मुग्ध हो रही थी। ये लोग असाधारण होते हुये भी अपने शील में, आचरण में, चिन्तन में और व्यवहार में, निर्लोभी निस्पृह है। कितना उच्च चरित्र। द्वार-द्वार ब्राह्मण रूप में भिक्षा की याचना करते उन्हे तनिक भी असुविधा नहीं होती। वे अपने आपको कभी अपमानित नहीं महसूस करते। मान अपमान की भावना से कही ऊपर उठ चुके हैं, स्थितप्रज्ञ हैं। अब ये महाराज द्रुपद के सम्बन्धी होकर भी उन्ही की राजधानी में गली गली भिक्षा मांग रहे है। सचमुच ही यह परिवार अद्भुत है संयमी, निरहंकारी, निर्लोभी, प्रशंसा और निन्दा से उदासीन, स्थितप्रज्ञ।

कृष्ण और बलराम द्रुपद के अतिथि थे अपने अतिथिगृह में महाराज द्रुपद के यहां चले गये। धृष्टद्युम्न पीछे से छिपकर कुम्भकार शिबिर में सब कुछ देख रहा था और उनकी बातों को सुन रहा था। वहां की सब बात देख सुनकर वह अपने पिता को सूचित करने गया। द्रुपद उस समय कुछ विचलित हो रहे थे। धृष्टद्युम्न की बात सुनकर द्रुपद बोले इसका अर्थ यह हुआ कि लाक्षागृह में पांडु पुत्र जलकर भस्म नहीं हुये और स्वयं ब्राह्मण के वेश में पांडव ही पधारे थे और इसका अर्थ यह भी हुआ कि वह लक्ष्य भेदन स्वयं अर्जुन ने ही किया। तभी तो मैं कहूं जो लक्ष्य मैंने अर्जुन को सोचकर बनाया था उसे एक साधारण ब्राह्मण ने कैसे वेध दिया। क्या तुम यह जानकर प्रसन्न नहीं हो पुत्र कि तुम्हारी बहिन का विवाह अर्जुन से हुआ है। धृष्टद्युम्न बोला महारानी कुन्ती हमारी बहिन का विवाह अपने पांचो पुत्रों से करने जा रही है। द्रुपद सुनकर असमंजस में पड गया और बोला क्या कह रहे धृष्टद्युम्न। धृष्टद्युम्न बोले जी पिताश्री। द्रुपद बोले क्या राजरानी कुन्ती यह भी नहीं जानती कि मेरी पुत्री कोई वस्तु नहीं जो जो अपने पांचो पुत्रों में बांट देगी। यदि वो ऐसा सोच रही है तो फिर मैं द्रौपदी से कहूंगा कि वो अर्जुन के गले से अपनी वरमाला उतार दे। धृष्टद्युम्न बोला और वासुदेव भी वहां गये थे उन्होने हमारी बहिन से यह भी कहा कि यह विवाह उसके लिये तपस्या भी है और प्रायश्चित भी पिताश्री।

द्रुपद बोले क्या तुमने कृष्ण को वहां देखा लगता है वह उनसे परिचित है। कृष्ण वहां छिप कर गया था लगता है तुमने उसे इसकी इच्छा के विरुद्ध उसे देख लिया या कृष्ण स्वयं यह चाहता होगा उसने तुम्हे अवसर दिया कि तुम उसे वहां जाते हुये देखो। यदि कृष्ण यह न चाहता कि तुम उनसे मिलते हुये उसे देखो तो तुम कभी उसे देख नहीं पाते। सामान्यत: कोई घटनायें कृष्ण की इच्छा के विरुद्ध नहीं घटती। कृष्ण की इच्छायें ही घटनाओं को आकार देती है। अच्छा बताओ और तुमने वहां पर क्या देखा और क्या जाना ? धृष्टद्युम्न बोला ये पांच भाई है और एक उनकी माता है। जिस समय वह वीर ब्राह्मण द्रौपदी को लेकर ब्राह्मणों और राजाओं के बीच से निकला उस समय उसके मुख पर किसी प्रकार का संकोच भाव नहीं था। उसकी ढिठाई देख कर अन्य राजा लोग ईर्ष्या और क्रोध से जल उठे और उसपर आक्रमण करने लगे। उसके साथी पुरुष जो अत्यन्त बलशाली था उसने युद्ध कर राजाओं का संहार करना प्रारम्भ किया। कोई राजा उसका बाल भी बांका नहीं कर सका। वे दोनों मेरी बहिन को लेकर उस कुम्भकार के घर गये। वहां पर अग्नि के समान तेजस्विनी एक नारी थी अवश्य ही वह उनकी माता होगी। उसके चारों पुत्र अपनी माता को प्रणाम कर अपनी माता की आज्ञा से भिक्षाटन के लिये निकल पडे। सभी ने दिनभर में

लाई भिक्षा अपनी माता के पास रख दी। माता ने द्रौपदी से कहा पहिले तुम इस भिक्षा में से देवताओं का अंश निकालो, ब्राह्मणों व साधुओं को भिक्षा दो, अपने आश्रितों को भिक्षा का अंश बांटो। बचे हुये अन्न का आधा भाग मझले भाई के लिये निकालो। आधे में हम सब लोग खायेंगे। साध्वी द्रौपदी ने अपनी सास की आज्ञा मानकर प्रसन्नता से उसका पालन किया। भोजन के पश्चात उसने कुशासन बिछाया। सबने अपने अपने मृगचर्म बिछाये और धरती पर ही सो रहे। द्रौपदी कुन्ती के पैरों की ओर सोयी। द्रौपदी के चेहरे पर अप्रसन्नता का कोई भाव नहीं था। मुझे तो वह पूर्णतया उस परिवार से सन्तुष्ट लगी। लगता है कि भोजन के पश्चात वह अत्यन्त तृप्ति और निश्चिंतता के साथ सो गयी। द्रुपद ने पूछा जब वे परस्पर बातें कर रहे थे तो चर्चा का क्या विषय था ? धृष्टद्युम्न बोला वे लोग आपस में युद्ध और सैनिकों की ही बातें कर रहे थे। उनकी बातें ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों जैसी नहीं थी। वे क्षत्रिय जैसी बातें कर रहे थे और कुलीन क्षत्रिय लग रहे थे। वे तो चक्रव्यूह और दिव्यास्त्रों की बातें कर रहे थे वह धनुर्धर जिसने स्वयंवर जीता वह तो अस्त्र शस्त्र विद्या की चर्चा कर रहा था। वे लोग रथों, अश्वों, सारथियों तथा शस्त्रास्त्रों की इस प्रकार बातें कर रहे थे जैसे युद्ध रत क्षत्रिय ही हो। लगता है हमारी मनोकामना पूर्ण हुई। धृष्टद्युम्न की बात से राजा द्रुपद को बडी प्रसन्नता हुई। द्रुपद ने पांडवों को अपने यहां बुलाने के लिये तुरन्त अपने राज पुरोहित को भेजा।

कृष्ण ने द्रुपद को समझाया पांडवों की हत्या का प्रयास किया गया था महाराज। किन्तु वे अपने कौशल और मित्रों की सहायता से बच निकले। तब से वे अपने हत्यारों और शत्रुओं से बचने के लिये छदम् वेश में वन वन नगर नगर घूम रहे है। अब वे आपको अपना मित्र मानते हैं और यह समझते है कि वे आपके संरक्षण में सुरक्षित रहेंगे। धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, पुरोचन तथा मन्त्री कर्णिक की योजना थी। आचार्य द्रोण तथा पुत्र अश्वत्थामा का मौन समर्थन तथा निष्क्रिय सहयोग था और मन्त्री पुरोचन का यह जघन्य कृत्य। अर्जुन का आपके साथ युद्ध तो मात्र गुरु दक्षिणा चुकाने की आज्ञा थी। युवराज बनकर युधिष्ठिर ने तो सारी सभा में इस कृत्य की निन्दा भी की थी। शत्रुता और मित्रता का कोई स्थायी सम्बन्ध तो होता नहीं है। इसके तो राजनीति, परिस्थिति और समयानुसार समीकरण बदलते रहते हैं। अर्जुन कल द्रोण शिष्य रूप में गुरु दक्षिणा चुका रहा था आप उसे शत्रु समझने लगे। वही अर्जुन आज आपके जामाता रूप में आपके शत्रु का संहार करनेवाला होगा, वह आपका सुहृद मित्र हो गया आपने जैसा जामाता चाहा वैसा ही जामाता आपको मिल गया। अर्जुन आर्याव्रत का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर। अर्जुन अन्याय और अधर्म के विरुद्ध युद्ध करेगा न्याय और धर्म सम्बन्धों को नहीं सत्य को देखते है। कुरुवंश का नाश तो आपकी प्रतिज्ञा नहीं है महाराज। आपकी प्रतिज्ञा तो है अपने अपमान का प्रतिशोध और आपकी प्रतिज्ञा पूरी होगी। मेरी बुद्धि कहती है कि युद्ध हो या न हो आपकी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होगी महाराज। युद्ध नहीं भी हुआ तो हस्तिनापुर की सत्ता पांडवों के हाथ में होगी तब द्रौपदी अपनी बुद्धि और ज्ञान से अपने ससुराल पक्ष पर शासन करेगी। तब द्रोण जैसे राजाश्रित आचार्य के लिये कोई स्थान नहीं होगा और यदि पांडवों को सत्ता नहीं मिली तो धृतराष्ट्र पुत्रों से पांडवों का युद्ध होगा। अर्जुन और आचार्य द्रोण विरोधी पक्ष बनकर लडेंगे उस समय अर्जुन के सबसे बडे सहायक के रूप में होंगे आप तथा आपके मित्र मत्स्य राज। द्रुपद कृष्ण की ओर देखते रह गये। कृष्ण के किसी भी तर्क का उत्तर भी नहीं दे सके और बोले कृष्ण तुम बहुत चतुर हो। मेरी कृष्णा बडी ही सौभाग्यशालिनी है जिसे तुम जैसा सखा प्राप्त हुआ।

द्रुपद ने राज पुरोहित द्वारा पांडवों को द्रुपद के पास आने का निमन्त्रण भेजा। युधिष्ठिर मन में सोच रहे थे कि उन्हे यह निमन्त्रण स्वीकार करना चाहिये या नहीं। द्रुपद राजप्रासाद में उनका कोई अनिष्ट तो नहीं होगा ? अन्तत: युधिष्ठिर ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वे पांचालों से मैत्री सम्बन्ध जोडने आये थे। राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर महाराज द्रुपद ने उनका स्वागत किया। उन पांचो ब्राह्मण कुमारों तथा कुन्ती को ब्राह्मणी रूप से सम्बोधित किया। वे प्रतीक्षा कक्ष में ले जाये गये। वे उस कक्ष में रखे हुये शस्त्रों का निरीक्षण करने लगे। कुन्ती और द्रौपदी दासियों के साथ द्रुपद के अन्त:पुर में चली गयी। द्रुपद ने अवसर

देखकर पूछा ज्येष्ठ विप्रवर मैं यह जानने को उत्सुक हूं कि आप लोगों ने शस्त्रास्त्रों का ज्ञान कैसे प्राप्त किया ? ब्राह्मण कुमार अपना वास्तविक परिचय दो। क्या तुम ब्राह्मण हो ? तब युधिष्ठिर बोला महाराज हम किन्ही विपत्तियों से घिर छद्म वेश धारण किये हुये है किन्तु आपके संरक्षण में हम अपना छदम् वेश त्याग देंगे। अत: हम आपके सम्मुख अपना सत्य रूप ही प्रकट करेंगे। मैं हस्तिनापुर के स्वर्गीय नरेश महाराज पांडु का ज्येष्ठ पुत्र कौन्तेय युधिष्ठिर हूं। यह मेरा छोटा भाई भीम तथा वह धनुर्धर अर्जुन और ये दोनों मेरे अनुज माद्रीनन्दन नकुल तथा सहदेव हैं। हमारी माता कुन्ती पांचाली के साथ अन्त:पुर में गयी है।

द्रुपद सुनकर प्रसन्न हुये और बोले अब तुम्हे छदम् वेश की न तो कोई आवश्यकता है और न ही इधर उधर भटककर छिपने फिरने की। तुम लोग अपने वास्तविक रूप में वास्तविक परिचय के साथ प्रकट करो। काम्पिल्य में रहकर यहीं से हस्तिनापुर जाओगे। धृतराष्ट्र को तुम्हारा अधिकार देना ही पडेगा। राज्यप्राप्ति के लिये मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। हम सब तुम्हारे साथ है सारे सोमवंशी राजा, पांचाल साम्राज्य, पांचाल सेनायें, मत्स्य नरेश तथा द्रुपद की सम्पूर्ण शक्ति। अब ब्राह्मण वेश त्यागकर और कर्म करो, स्नान इत्यादि कर क्षत्रियों का वेश धारण करो। राजमहल की स्त्रियों ने कुन्ती का बडा आदर सत्कार किया, अगवानी कर सम्मान किया। द्रुपद ने कहा अब तुम अर्जुन को आज्ञा दो कि वे विधिपूर्वक द्रौपदी का पाणिग्रहण करे।

युधिष्ठिर ने कहा राजन विवाह तो मुझे भी करना पडेगा। द्रुपद बोले तुम्ही मेरी कन्या का विधिपूर्वक ग्रहण कर विवाह करो। युधिष्ठिर बोले आपकी राजकुमारी हम सबकी पटरानी होगी। हमारी माताश्री की यही आज्ञा है इसलिये आप आज्ञा करें कि हम सभी क्रमश: द्रौपदी के साथ उसका पाणिग्रहण करे। राजा द्रुपद बोले कुरुकुल भूषण यह तुम कैसी बात कर रहे हो ? एक राजा के बहुत सी रानियां हो सकती है परन्तु एक स्त्री के बहुत से पति हो ऐसा सुनने में तो कभी नहीं आया। तुम तो धर्म के मर्मज्ञ और पवित्र हो, तुम्हे लोकमर्यादा और धर्म विपरीत ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिये। युधिष्ठिर ने कहा धर्म की गति बडी ही अत्यन्त सूक्ष्म है। मनुष्य तो उसे ठीक से समझ भी नहीं सकता। हम सब तो उसी मार्ग पर चल रहे है जिस पर पहले लोग चलते आये है। मेरी वाणी कभी असत्य नहीं बोलती तथा मेरा मन कभी अधर्म की ओर नहीं जाता। मेरी माताश्री की भी ऐसी ही आज्ञा है तथा मेरा मन भी पूर्ण सहमति से इसे स्वीकार करता है।

इन तर्कों पर सभी विचार कर रहे थे कि महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास वहां अचानक पधारे। सब लोगों ने उठकर उनका स्वागत अभिनन्दन किया और प्रणाम किया। कुशल मंगल समाचार निवेदन होने के पश्चात महर्षि बोले राजन अत्यन्त हर्ष हुआ यह जानकर कि पांडवों का सम्बन्ध तुमसे हुआ। लगता है तुम दोनों को ही परस्पर एक दूसरे की आवश्यकता है। तुम दोनों भी एक दूसरे की सहायता से मनोवांछित फल पा सकते हो। द्रुपद बोले हां ऋषिवर। अब पांडवों को असुरक्षित अवस्था में हस्तिनापुर नहीं भेजा जायेगा। पांचालों, यादवों तथा मत्स्यों की सैन्य शक्ति पांडवों के साथ जायेगी। उनके लिये तो हम योजना बद्ध कार्य करेंगे हम सब कृष्णा के विवाह के विषय में चर्चा कर रहे थे। युधिष्ठिर बोले हमारे परिवार की असाधारण परिस्थितियों में यह बात कह रहा हूं तात आप जानते है कि देश काल की भिन्नता से प्रथा और प्रचलन का भी भेद होता है। प्रथायें निरन्तर बदलती भी रहती है और हम उन में संशोधन भी करते रहते है किन्तु कभी कभी ऐसे अवसर भी आ जाते है जब किन्ही परिस्थितियों वश इन अर्वाचीन परिवर्तनों को स्वीकार नहीं कर पाते। यद्यपि स्वयंवर में पांचाली को अर्जुन ने जीता है किन्तु उसका विवाह इस समय परिवेदन है। इस समय इस विवाह के कारण मेरी माता तथा द्रौपदी के अभिभावक आप दोनों ही इस दोष से पाप के भागीदार होंगे। ऋषियों के सनातन धर्मानुसार पांचाली हम पांचों भाइयों की पटरानी हो। उसका विवाह धर्मत: हम पांचों भाइयों से हो। बडे भाइयों के अविवाहित रहते अर्जुन का विवाह परिवेदन है और पाप है। घटनाओं ने कुछ ऐसा ही मोड ले लिया है। पांचाली में हम पांचो भाइयों की आसक्ति भी है इसलिये वह किसी एक की पत्नी भी नहीं हो सकती। वह किसी एक की पत्नी बनकर हममें किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न हो। हम नहीं चाहते हमारी एकता किसी भी परिस्थिति में खंडित हो। यदि हमें

अपना उत्तराधिकार मिल गया तो हम चाहेंगे कि पांचाली हस्तिनापुर राज्य की साम्राज्ञी हो और केवल अर्जुन की पत्नी होने से वह साम्राज्ञी नहीं होगी। अब बात केवल परिवेदन की ही नहीं धर्म की भी है और मैं धर्म का त्याग कर किसी को वंचित नहीं कर सकता। स्वार्थ का त्याग ही धर्म है। माता की भी यही आज्ञा है। द्रुपद बोले पांचाल का राज परिवार बहुपतित्व की प्रथा बहुत पहिले छोड चुका है और इस प्रथा को लौटा लाने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। महर्षि एक ही स्त्री अनेक पुरुषों की धर्मपत्नी किस प्रकार हो सकती है? ऐसा करने में संकरता का दोष भी होगा। आप कृपा करके हमें इस धर्म संकट से उबारे।

द्रौपदी का मन किसी दिशा हीन पक्षी के समान दसों दिशाओं में उडने का प्रयत्न कर रहा था। उसके आसपास जो कुछ घटित हो रहा था वह उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह स्वयं क्या चाहती है ? उसके मन में भी स्पष्ट नहीं था। क्या उचित है और क्या अनुचित, क्या धर्म है और क्या अधर्म ? द्रौपदी की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा। अर्जुन ने उसे स्वयंवर में जीता। वह उसके पिता द्वारा वीर्य शुल्का घोषित की गई और अर्जुन ने उसके पिता की घोषित प्रतिज्ञा पूरी की लेकिन अब पांच भाइयों की पत्नी बनना स्वीकार करना।

यद्यपि उत्तरी पांचाल के पहाडी क्षेत्रों में यह प्रथा आज भी विद्यमान है किन्तु आर्याव्रत में अब यह प्रचलन प्राय: नहीं रह गया। उस प्राचीन धर्म को मानव समाज ने अपने अनुभव और व्यवहार के आधार पर असुविधाजनक पाया। कदाचित स्त्री के सन्दर्भ में पुरुष कभी भी इतना सहिष्णु नहीं रहा तभी तो बहुपतित्व प्रथा का विरोध किया गया। उसमें व्यावहारिक कठिनाइयां भी रही। मातृ सत्तात्मक समाज में बहुपतित्व बहुत अव्यवहारिक नहीं रहा होगा, किन्तु मातृ सत्ता अब बहुत पीछे छूट गयी थी। आर्यों का समाज अब पूर्णत: पितृ सत्तात्मक था। अब पुरुष स्वामी है। वह नारी पर लुब्ध हो सकता है, उससे प्रेम कर सकता है, उसका आदर सम्मान कर सकता है, उसकी पूजा भी कर सकता है किन्तु स्वामी तो वही है। बहुपतित्व का अर्थ है एक नारी के अनेक स्वामी। उन स्वामियों में परस्पर मतभेद भी हो सकता है। उन सबकी इच्छायें और रूचियां भिन्न भी हो सकती है। उन भिन्न भिन्न आदेशों, इच्छाओं और रूचियों को एक अकेली स्त्री कैसे सन्तुष्ट कर पायेगी ? क्या युधिष्ठिर को यह पता नहीं है कि एक पत्नी के पांच पतियों में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और कलह का जन्म हो सकता है। क्या इन पांचों भाइयों में परस्पर सहिष्णुता त्याग तथा ममत्व इतना सघन है कि पांचो की एक पटरानी उनके लिये असुविधा का कारण नहीं बनेगी ? या पांडवों के मन में स्त्री का कोई सम्मान नहीं ? क्या वे स्त्री को आदान प्रदान की वस्तु समझते हैं ? इस परिवार में जाकर क्या सम्मान रह जायेगा द्रौपदी का ? सम्मान तो उसका वही होगा जो उस परिवार में नारी का होता आया है। क्या फर्क पडेगा चाहे वह पत्नी अर्जुन की हो या युधिष्ठिर की ? द्रौपदी युधिष्ठिर के बारे में सोच कर मन से तर्क करने लगी जो पुरुष कंचन और कामिनी का त्याग कर सकता है उसे किसी भी प्रकार का मोह बांध नहीं सकता। कैसा उदार हृदय है इस पुरुष का। इसके मन में तनिक भी पुरुष सुलभ ईर्ष्या नहीं है, आसक्ति नहीं है, आधिपत्य की भावना नहीं है। क्यों उसमें मानवीय दुर्बलतायें है ही नहीं ? वह मनुष्य की सीमाओं का अतिक्रमण कर चुका है ? क्या वह महामानव है या उदासीन ? दूसरे ही क्षण द्रौपदी के मतिष्क में जैसे सहस्त्रों दीपक जगमगा उठे कि पांडव कोई साधारण पुरुष नहीं है। न तो वे इच्छाओं के दास है और न ही सांसारिक पुरुष। इच्छायें तो उनके भी मन में साधारण मनुष्यों के ही समान है किन्तु उनका विवेक कहीं अधिक जागृत है। समग्र हित के लिये, परमार्थ के लिये वे अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का त्याग कर सकते है। उनका आत्म नियन्त्रण और आत्मसंयम असाधारण और अद्वितीय है। युधिष्ठिर इसमें कैसा धर्म देख रहे हैं। कृष्ण भी बैठे देख रहे है पर वे भी इसका विरोध क्यों नहीं कर रहे है ? क्या कृष्ण भी इसे धर्म मान रहा है? क्या संसार में वही धर्म है जो युधिष्ठिर कह रहे है? उसके धर्म को सारे धर्म धुरन्धर स्वीकार कर रहे है मुनि धौम्य, महर्षि वेद व्यास और वासुदेव कृष्ण भी।

सहसा द्रौपदी का मन अपने विचार पर अटक गया। एक पत्नी अपने एकाधिक पतियों को बांधकर एक साथ रख सकती है।

कृष्ण ने कहा था आर्याव्रत में धर्मराज्य स्थापित करने के लिये पांडवों की शक्ति आवश्यक है। उन्हे किसी भी रूप में, परिस्थिति में दुर्बल नहीं होना चाहिये। द्रौपदी जानती है कि एकता में शक्ति होती है, अखंडता ही बल है। पांडवों के अलग-अलग होते ही उनकी शक्ति भी बिखर जायेगी। वे दुर्बल पड जायेंगे और किसी को भी पृथक विलग करने का उपकरण नारी से बढकर कोई नहीं हो सकता। देवरानियों, जेठानियों की कलह पांडवों को क्या एक रहने देगी ? द्रौपदी ने तो उन्हे एक इकाई के रूप में देखा है। यदि उन सबकी पत्नी ही एक होगी तो वे पृथक कैसे होंगे ? सोचकर द्रौपदी का मन भी कांपने लगा।

पांचाली की तो बात ही और है। पांचाली सुन्दर ही नहीं, नारीत्व की सम्पूर्ण पहचान है, साक्षात पूर्ण नारी, पुरुष हृदय को मथने की अद्भुत क्षमता। किसी पुरुष के पास यदि युवा हृदय हो और वह पांचाली को देख कर प्रभावित हुये बिना रह जाये यह असम्भव है। फिर भी वैराग्य का प्रभाव कम नहीं है इस पांडव परिवार में। आसक्ति में भी मर्यादा का ध्यान रखना पडता है। कुन्ती पुत्रों में संयम और विवेक है। वे वासना के हाथों पशु नहीं है। लोभ उन्हे धर्म के मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। फिर भी नारी का आकर्षण कम नहीं होता और नारी भी यदि द्रौपदी जैसी हो, पांचो भाई उसमें आसक्त हैं। यह आकर्षण उनको बांधे रखे तो अच्छा है यदि कही विभाजित करने पर उतर आया तो सर्वनाश कर देगा।

किन्तु पांचाली के लिये जो पांच पतियों की व्यवस्था कर दी है क्या यह कुछ अनुचित हुआ ? कुन्ती ने पांडु के साथ जिन वनों और प्रदेशों में समय बिताया था वहां तो बहुपतित्व तनिक भी असामान्य नहीं था। उत्तर कुरु में तो विवाह की मर्यादा ही नहीं थी। वहां तो आज भी नारी पुरुष सम्बन्ध स्वच्छंद है जैसे पशुओं में। आर्येतर जातियों में आज भी बहुपतित्व प्रचलित है और पांचालों में भी तो बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित थी। उत्तर पांचाल से लगते हिमालय क्षेत्र में आज भी बहुपतित्व पूर्णत: मान्य है। द्रविडों में भी तो यह प्रथा प्रचलित है। इसमें अप्राकृतिक तो कुछ भी नहीं घट रहा। जिन परम्पराओं और प्रथाओं के हम अभ्यस्त होते है उनके विरुद्ध हमारा मन विद्रोह नहीं करता। यदि बहुपत्नीत्व को मन ने सहज स्वीकार कर लिया है तो इच्छा होने पर क्या पुरुष बहुपतित्व को स्वीकार नहीं कर सकता ? अनेक बार सबके हित की बात सर्वमान्य नहीं होती। अपने स्वार्थ से दृष्टिभेद से या किन्ही और कारणों से वह अमान्य भी हो सकती है।

महर्षि व्यास ने कहा राजन एक एक स्त्री के अनेक पति हो यह लोकाचार और वेद के विरुद्ध है। इस समाज में यह प्रचलित भी नहीं है। द्रुपद बोले ऐसा करना मैं तो अधर्म समझता हूं। लोकाचार, वेदाचार और सदाचार के विपरीत होने के कारण एक स्त्री बहु पुरुषों की पत्नी नहीं हो सकती। यह तो अधर्म है। व्यास बोले देखो पुत्र प्रकृति ने तो नारी और पुरुष ही बनाया है उनके बीच राग तत्व बनाया है और नारी में आकर्षण। उसकी तीव्रता रूचि भेद, वय भेद और परिस्थिति भेद से न्यूनाधिक होती है। प्रकृति ने किसी एक स्त्री को किसी एक पुरुष और किसी एक पुरुष को किसी एक स्त्री के लिये नहीं बनाया यह तो उनकी क्षमता पर निर्भर है। उसने तो केवल नर और मादा ही बनाये हैं। मर्यादित बहुपतित्व अथवा बहुपत्नित्व में कोई प्राकृतिक नियम नहीं टूट जाता, सामाजिक मान्यतायें भले ही भंग हो जाये। पति-पत्नी यह सामाजिक मर्यादायें व सामाजिक व्यवस्थायें ही है। ये सब तो मनुष्य के अपने जीने के ढंग के बनाये हुये विधान और नियम है। ये कोई प्राकृतिक नियम नहीं है।

धृष्टद्युम्न बोला आपका प्रकृति का यह सिद्धान्त मुझे सर्वथा अमान्य है। इस दृष्टि से तो मनुष्य सदा पशु ही बना रहेगा। इससे तो वह जब चाहे किसी भी स्त्री से सहवास सम्भोग कर लेगा। कोई भी सदाचारी पुरुष अपने भाई की पत्नी के साथ कैसे सहवास कर सकता है ? महर्षि व्यास बोले पुत्र प्रकृति ने मनुष्य को बहुत कुछ ऐसा दिया है कि उसे यदि मनुष्य वैसा का वैसा उपभोग करे तो वह वास्तव में पशु ही है और उसका अतिरेक करे तो वह पशु से भी पतित होते जायेगा। जैसे लोभ, मोह, आलस्य, द्वेष, हिंसा यह सब मनुष्य की इच्छा पर है कि वह उनका नियन्त्रण करता है, नियमन करता है, उदात्तीकरण करता है अथवा उन्हे पूर्णत: त्याग देता है। इसमें भी व्यक्ति और समाज का भेद है पुत्र ? व्यक्ति इनमें से अनेक भावों को सर्वथा त्यागने का प्रयत्न

करता है और कभी कभी त्याग भी देता है किन्तु कोई समाज, राज्य अथवा राष्ट्र इन दुर्गुणों को सर्वथा त्याग नहीं सकता। इसलिये समाज उनका नियमन करता है, उदात्तीकरण करता है। जब उन्मुक्त समाज था तो किसी भी स्त्री की इच्छा कोई भी पुरुष कर सकता था और किसी भी पुरुष की कामना कोई भी स्त्री कर सकती थी। तब परस्पर विरोध भी होते थे और स्त्री के लिये संघर्ष और उस समय हिंसा के कारण मानव समाज की क्षति होती थी। इसलिये समाज ने इसको संशोधित रूप देकर नियमन किया। मातृ सत्तात्मक समाज में एक पत्नी को अनेक पति रखने का अधिकार दिया गया और पितृसत्तात्मक समाज में एक पुरुष को अनेक पत्नियां रखने का अधिकार मिला। अब समाज यह चाहता है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष इसी व्यवस्था के भीतर अपने मनोभावों का नियमन करे। यदि एक स्त्री को अनेक पति रखने की अनुमति समाज दे रहा है तो वे पुरुष उस एक पत्नी को ही नारी भाव से देखेंगे, शेष स्त्रियां उनके लिये कुछ भी और हो सकती है किन्तु उनको वे नारी भाव से नहीं देखेंगे। यही स्थिति बहुपत्नीत्व वाले समाज में भी है। एक पुरुष अनेक विवाह कर सकता है किन्तु जिस स्त्री को उसने समाज के नियमों के अन्तर्गत पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं किया है, उसे वह नारी भाव से नहीं देखेगा। नारी पुरुष सम्बन्धों की समस्या केवल तुम्हारी पुत्री की ही समस्या नहीं है द्रुपद। न यह व्यभिचार की परिकल्पना मात्र आर्याव्रत के क्षत्रिय राजकुलों तक ही सीमित है। यह तो सम्पूर्ण मानव समाज की समस्या है और प्रत्येक मानव समाज ने अपनी सुविधानुसार अपने नियम बना लिये हैं। यदि द्रौपदी किसी एक भाई की पत्नी होगी तो राजन स्त्री के लिये मन में वैमनस्य उत्पन्न होगा और वह भी अन्य साधारण पत्नियों की तरह चाहेगी कि उसका पति उसमें अधिक से अधिक अनुरक्त हो और अपने भाइयों में और कुटुम्ब में सबसे श्रेष्ठ और गुणवान, अर्जित करनेवाला हो। यदि वह उन पांचो की पत्नी होगी तो भाई परस्पर लड भी पडे तो भी कृष्णा न उनमें बैर विरोध होने देगी और न ही उन्हे पृथक विलग होने देगी। वैसे भी युधिष्ठिर राज तत्वों में अधिक तापस तत्व है। मैं अपनी माता सत्यवती का कानीन पुत्र हूं। राज समाज में यह अपमान जनक स्थिति समझी जाती है आपत्तिजनक है जब कि ऋषि कुल इसे उतना ही गौरवपूर्ण समझता है जितना औरस पुत्र को। वे राज समाज द्वारा परित्यक्त प्रथा को आज भी धर्म मानते है। ऋषि तो समाज का त्याग कर चुके हैं अत: वे तो मुक्त होकर उदात्त ही सोचते हैं। उनके लिये तो प्रत्येक सन्तान ईश्वर की ही सृष्टि है, चाहे कानीन हो, औरस हो, क्षेत्रज हो या नियोग प्रदत्त, या वैधानिक या नाजायज। इसीलिये युधिष्ठिर अपनी इस तापस वृत्ति के कारण व्यक्ति की संकुचित परिधि में नहीं सोचता। धृष्टद्युम्न बोले महर्षि एक मान्यता के अनुसार एक स्त्री दो पुरुषों से सम्बन्ध रखे तो वह व्यभिचारिणी है और दूसरी ओर पांच पुरुषों की पत्नी को आप धर्मसंगत बता रहे हैं तो फिर व्यभिचार किसे कहेंगे ? व्यास बोले एक मान्यता यह भी है कि पुरुष भी एक पत्नीव्रत पर चले। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने इसी धर्म की प्रतिष्ठा की थी। और यदि इस मान्यता के अनुसार चलें तो दो स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष भी व्यभिचारी होगा। श्रीराम के पिता महाराज दशरथ के अनेक रानियां थी। क्षत्रिय, राजपूत अनेक पत्नियां रखते थे। जटिला और वार्शी ने अनेक पतियों का वरण किया। आपद् काल स्थिति में अनेक पत्नी और पति रखने का विधान शास्त्रों ने किया है। जैसे कोई स्त्री सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हो (बांझ) हो तो समाज ने इस व्यवस्था को मान्यता दी है कि पुरुष अन्य स्त्री से विवाह कर सन्तानोत्पत्ति करे वैसे ही स्त्री के सम्बन्ध में यदि वह परित्यक्ता है, पुरुष नपुंसक है, अल्प वय में विधवा है, तलाक शुदा है तो वह किसी अन्य पुरुष से विवाह कर सकती है। तो फिर यह क्या बहुपतित्व और बहुपत्नित्व नहीं है क्या ? यह सब आवश्यकता अनुसार बनाये गये समाज के विधान हैं जिन्हे ग्रन्थों और वेदों की सहायता से ऋषियों ने प्रतिपादित किया है। व्यभिचार का स्वरूप तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं से निर्धारित होता है। समाज के नियमों के अनुसार स्त्री पुरुष लिंगों के जनसंख्या अनुपात में भी एक पुरुष कितनी पत्नी का भोग करे या एक स्त्री के पीछे उसे कितने पति प्राप्त हो सकते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में मान्य शरीर सम्बन्ध व्यभिचार नहीं है और अमान्य शरीर सम्बन्ध व्यभिचार है। व्यभिचार की कसौटी तो अमानित मात्र शरीर सम्बन्ध ही है। सामाजिक मान्यताओं के अनुसार तो

यही है किन्तु समाज के नियम और विचार तो स्थूल होते हैं इसलिये ये इसकी गहराई और सूक्ष्मता नहीं जान पाते।

व्यास बोले सिद्धान्तों की व्याख्या संकीर्ण परिधियों में की जाये तो उनमें भ्रम उत्पन्न होता है। इसलिये सिद्धान्तों, परिकल्पनाओं और अब धारणाओं को सदा व्यापक परिवेश में समझने का प्रयत्न करो। प्रेम, नारी पुरुष, यौन सम्बन्ध व्यभिचार इत्यादि के वास्तविक स्वरूप को समझना हो तो पहले राग तत्व को समझो। राग के रूप में प्रकृति ने मनुष्य को एक विराट शक्ति दी है। मनुष्य चाहे तो उसे वह मात्र रति कर्म का पर्याय बना ले किन्तु यह तो उसका मात्र स्थूल रूप होगा। रति कर्म तो राग के अभाव में भी हो सकता है और राग से संम्पृत होकर भी। एक स्थिति ऐसी भी है जहां राग है किन्तु रति नहीं यह उसके सूक्ष्म धरातल है जिसे सामान्यत: लोग प्रेम कहते हैं। वह राग तत्व एक संयोजित रूप है। किसी स्त्री या पुरुष के गुण के प्रति प्रंशसा, सम्मान और समर्थन का भाव ही प्रेम होता है। उसके लिये अपने प्रिय से मिलना, उससे सम्पर्क करना, साक्षात्कार करना एकदम आवश्यक नहीं है। प्रेम राग तत्व का एक संयोजित रूप है। जब राग को मनुष्य स्थूल धरातल पर लाना चाहता है तो वह उस प्रेम पात्र के निकट जाना चाहता है, उसके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आना चाहता है और उस पर आधिपत्य जमाना चाहता है। ऐसे आधिपत्य में समाज की मान्यता प्राप्त करना आवश्यक है। जहां सामाजिक मान्यता के अभाव में अपना आधिपत्य स्थापित किया जाता है, ऐसे आधिपत्य को हम व्यभिचार मानते है। कृष्ण को ही देख लो उसने भी तो कई विवाह किये हैं। विवाह तो उसने रूक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती इत्यादि से किया किन्तु प्रेम तो उसने गोपियों से भी किया। प्रेम तो वासुदेव तुम्हारी बहन कृष्णा से भी करता है राजकुमार धृष्टद्युम्न। पर वह प्रेम सखा का, मित्र का प्रेम है। फिर वह प्रेम तुम्हे अनुचित, अनैतिक अथवा असामाजिक क्यों नहीं लग रहा ? क्यों नहीं तुम उसे गलत समझते हो ? यही तो है कृष्ण वासुदेव की उदात्तता, महत्ता। वह गोपियों से भी प्रेम कर सकता है, कृष्णा से भी करता है किन्तु कहीं भी अपनी पत्नियों के प्रति उनके प्रेम में न्यूनता नहीं आने दी। कभी उसने समाज के नियमों की कहीं मर्यादा भंग नहीं की। क्योंकि वह उनपर अपना किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं मानता था। वह तो सिर्फ प्रेम को ही अपना अधिकार मानता था। कहीं उसने अपनी आत्मा का हनन नहीं किया क्योंकि उसकी आत्मा प्रेम का एक अजस्र स्रोत है। वह दान धर्मा प्रेम है याचक प्रेम नहीं। उसने तो आततायी भौमासुर के बन्दीगृह से मुक्त करायी गई असंख्य स्त्रियों को सामाजिक मर्यादा दिलाने के लिये उन्हे अपनी पत्नियों के रूप में ग्रहण किया। जिन अभागिनों को उनके अपने पति, पिता और बन्धु स्वीकार नहीं कर रहे थे। क्योंकि कृष्ण का प्रेम संकुचित नहीं है, सीमित नहीं है, वह असीम है, अनन्त है। कोई भी जीव उसकी करूणा से परे नहीं है। व्यासजी ने उदाहरण से द्रुपद को समझाया किसी परिवार के आंगन में एक कुआं खुदा हुआ है वह उसका निजी कुआं है। वह साफ और स्वच्छ पवित्र होता है। उसका जल पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है पर केवल उसी परिवार को तृप्त करने के उपयोग में आता है। उसकी क्षमता अत्यन्त सीमित होती है। उसमें से यदि चार और परिवार जल प्राप्त करने लग जाये तो वह कुआं सूख जायेगा उसमें से कीचड निकलने लगेगा। उसका जल गंदा व अपवित्र और अपौष्टिक हो जायेगा। कीचड के जल से दुर्गन्ध भी आने लगेगी। अब दूसरी ओर विचार करो, गंगा सहस्त्रों योजन तक लोगों की प्यास बुझाती है उससे खेतों की सिंचाई होती है, उसमें लोग नहाते भी हैं, कपडे धोते हैं, नौकायें चलती है, सहस्त्रों जीव जन्तु उसमें पडे रहते हैं फिर भी उसमें न जल की कमी होती है, न वह किसी को वंचित करती है। वैसे ही कृष्ण तो गंगा हैं पवित्र गंगा। उसकी गति और विस्तार को कुएं की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता उसे तो पूरी तरह देखने के लिये हिमालय के समान उपर उठना पडेगा। साधारण मनुष्य की अविकसित बुद्धि और संकुचित बुद्धि तो कृष्ण के चरित्र में विकार ही दे पायेगी राजन। कृष्ण में न काम है, न स्वार्थ है और न लोभ। कृष्ण कोई मनुष्य नहीं है वह तो महामानव है। और तुम्हारी पुत्री को भी कम मत आंको वह भी कृष्ण की तरह ही है। इतनी कम अवस्था में ही उसकी धर्मबुद्धि का विकास जो हुआ है वह सामान्यजन को भ्रमित कर देता है। द्रुपद व्यास से सहमत हुये।

युधिष्ठिर ने भी सब कुछ सुनकर कहा शास्त्रों ने गुरुजनों के वचनों को ही धर्म माना है और माता गुरुजनों में सर्वश्रेष्ठ है। माता ने भी हमें यह आज्ञा दी है कि तुम अब मिल जुलकर पांचाली का उपभोग करो। मेरी दृष्टि में वैसा करना धर्मसंगत ही है। तब वेदव्यास बोले पांडु पत्नी कुन्ती इसमें सन्देह नहीं कि सत्य सदा अटल रहेगा। असत्य से तुम्हारी रक्षा होगी। राजा युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा है वह धर्मविरुद्ध नहीं धर्मानुसार है और भी राजन द्रौपदी के रहस्य की बात मैं एकान्त में तुम्हे स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

व्यासजी ने द्रुपद को एकान्त में ले जाकर द्रौपदी के पूर्वजन्म की कथा सुनायी और बताया कि भगवान शंकर के वरदान स्वरूप ये पांचों ही द्रौपदी के पति होंगे। इसके बाद उन्होने कहा राजन मैं तुम्हे दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूं उसके द्वारा तुम इन पांडवों के पूर्वजन्म को देख सकोगे। द्रुपद ने भगवान वेदव्यास के कृपा प्रासाद से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर देखा कि पांचो पांडव दिव्य रूप धारण किये हुये आभूषणों से सज्जित वक्ष:स्थल पर दिव्य वस्त्र चमक रहे हैं। वे ऐसा जान पडते है मानो स्वयं भगवान शिव, आदित्य अथवा वसु ही विराजमान है। उन्होने यह भी देखा कि उनकी पुत्री द्रौपदी दिव्य रूप से चन्द्रकला, अग्निकला, सूर्यप्रभा के समान दैदिप्यमान हो रही है। मानो उनके रूप में भगवान की दिव्य माया ही प्रकाशित हो रही है। वह रूप, तेज और कान्ति के कारण पांडवों के सर्वथा अनुरूप दीख रही थी। यह झांकी देखकर द्रुपद को बडी प्रसन्नता हुई। वह झांकी तुरन्त तिरोहित हो गई। द्रुपद व्यासजी के चरण पकड बोले मैं धन्य हो गया ऋषिवर आपकी कृपा से मेरा विचलित मन शान्त हुआ। मैंने आपके मुख से जबतक अपनी कन्या के पूर्वजन्म की बात नहीं जानी और वह विचित्र झांकी नहीं देखी तभी तक मैं युधिष्ठिर की बात का विरोध कर रहा था। अब मेरी समस्या का समाधान हो गया। विधाता का ऐसा ही विधान है तो उसे कौन टाल सकता है ? आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही किया जायेगा। भगवान शंकर ने ऐसा वर दिया है चाहे वह धर्म हो या अधर्म अब वैसा ही होगा। इससे मेरा कोई अपराध नहीं माना जायेगा। इसलिये पांचो पांडव प्रसन्नता से द्रौपदी का पाणिग्रहण करें। द्रुपद सहमत हो गये।

द्रुपद और वेदव्यास का सम्वाद सुनकर उनकी तर्कोंपर विचार करती हुई द्रौपदी ने मन में विचार किया मेरी महनीयता, ज्ञान, विचार, बुद्धि और सतीत्व इन सबकी पराकाष्ठा परखने के लिये मेरे सामने एक आह्वान उपस्थित हुआ है। कैसी विषम परिस्थिति हो गई ? मैं आनन्द में भरी थी कि अर्जुन को ही पति रूप में प्राप्त कर लिया है परन्तु विचलित भी थी कि अर्जुन के साथ मुझे पंचपति का वरण करना होगा। पांडव पांच भाई के बीच ऐक्य का सामंजस्य बनाये रखने के लिये मुझे बनना होगा सबकी पत्नी। पृथ्वीपर धर्म स्थापना करेंगे पांडव यदि वे एक न हुये तो पृथ्वी पर धर्म की पराजय निश्चित है अत: मेरी भूमिका स्पष्ट होती गई। मुझे बृहतर स्वार्थ के लिये क्षुद्रतर स्वार्थ की बलि चढना होगा। मैं यदि पंचपति वरण नहीं करती हूं तो क्या सती रूप में मेरी यश वृद्धि नहीं होगी पर इससे तो माता के वचन की रक्षा नहीं हुई। पांडव सत्य की रक्षा नहीं कर पायेंगे। पृथ्वी पर धर्म स्थापना में विघ्न होगा अत: मुझे स्वयं की बलि देनी है।

मैं याज्ञसेनी, धर्मरक्षा के लिये ही मेरा जन्म हुआ है। इस नश्वर देह के लिये लोभातुर हो पांडव जैसे वीर पुरुष माता के पास सत्य वचन बद्ध हो चुके हैं तो उनके धर्मयज्ञ में यह देह आहूति बने। वास्तव में यह देह क्या है, कहां से आती है, कहां जाती है ? यह देह तो मैं नहीं। मेरे हाथ पांव, अंग प्रत्यंग कृष्णा नहीं तो फिर इस शरीर को प्राप्त कर सभी भाई सुखी हो। ऐक्यबद्ध हो। मेरी कोई बाधा नहीं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच तत्वों से निर्मित यह देह को पंच पतियों के प्रति उत्सर्ग के बाद भी मैं सती ही रहूंगी। सती की परिभाषा क्या है ? मैं जानती हूं कि पति के प्रति विश्वस्त बनकर रहना ही सतीत्व है। तो मुझे पंचपति को वरण कर उनके पास विश्वस्त बनकर रहना होगा। स्वयं को एक के पास समर्पित करते समय पूर्णत: समर्पण करना होगा; यदि ऐसा नहीं करूंगी तो असती हो जाऊंगी। आदमी का मन इतना अविश्वासी और रहस्यपूर्ण होता है कि वह पूर्णत: किसी के पास समर्पित हो पाता है या नहीं, यह तो वह स्वयं भी जान नहीं पाता। अपने आपको सहमत कर स्थिर स्वर में द्रौपदी

ने कहा मैं पंच पांडवों को पति रूप में ग्रहण करने को प्रस्तुत हूं। इस प्रकार द्रौपदी ने अपनी स्वीकृति दी। यह सुनकर माता कुन्ती का मुख उज्ज्वल हो उठा उसने आशीर्वाद दिया यशस्विनी भव अब मेरे जीवन के शेष क्षण पंच भूमिका में उतरना होगा। पंचपति के व्यक्तित्व और रूचि के अनुसार अपना यह पंचतत्व निर्मित शरीर और मन प्रस्तुत करना होगा।

महर्षि वेदव्यास ने कहा आज ही विवाह के लिये शुभ दिन और मुहूर्त है इसलिये तुम द्रौपदी का पाणिग्रहण करो। आज ही विवाह कार्य सम्पन्न होगा। यह निर्णय सुनकर धृष्टद्युम्न और द्रुपद आदि ने विवाह के आवश्यक प्रबन्ध किये। समय होनेपर द्रौपदी मंडप में आई। द्रुपद राजपरिवार के इष्ट मित्र, मन्त्री ब्राह्मण सभी नर-नारी परिजन विवाह देखने के लिये अपने उपयुक्त स्थान पर बैठे। स्नान और स्वस्त्ययन के पश्चात पांचो पांडव भी वस्त्रालंकारों से सज्जित हो मंडप में आये। तेजस्वी धौम्य मुनि ने वेदी पर अग्नि प्रज्वलित की। युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक द्रौपदी का पाणिग्रहण किया हवन हुआ और अन्त में अग्नि की प्रदक्षिणा कर फेरे लिये और इस तरह विवाह कर्म सम्पन्न किया। इसी प्रकार शेष भाइयों ने भी क्रमश: एक एक दिन के उपरान्त द्रौपदी का पाणिग्रहण किया। इस अवसर पर देवर्षि नारद पधारे और उनके कथनानुसार द्रौपदी पुन: प्रतिदिन कौमार्य भाव को प्राप्त हो जाती थी। विवाह के अनन्तर महाराज द्रुपद ने बहुत से यातुक दहेज में रन्त, धन राशि और उपहार भेंट किये। अनेक दास-दासियां, हाथी, घोडे, रथ प्रत्येक दामाद को दिये। इस प्रकार पांडव अपार सम्पत्ति और स्त्री रत्न द्रौपदी को प्राप्त कर राजा द्रुपद के यहां रहने लगे। द्रुपद की रानियों ने भी कुन्ती का अत्यन्त सत्कार किया। द्रौपदी ने भी अपनी सास कुन्ती को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया। कुन्ती ने बडे प्रेम से अपनी शीलवती पुत्रवधू द्रौपदी को आशीर्वाद देकर कहा जैसे इन्द्राणी ने इन्द्र से, स्वाहा ने अग्नि से, रोहिणी ने चन्द्रमा से, दमयन्ती ने नल से, अरून्धती ने वशिष्ठ से और लक्ष्मी ने भगवान नारायण से प्रेम निभाया है वैसे ही तुम अपने पतियों से निभाना। तुम आयुष्मती, वीर प्रसविनी, सौभाग्यवती और पतिव्रता होकर सुख भोगो। अतिथि, अभ्यागत, साधु, बूढे और बालकों की आवभगत तथा पालन-पोषण में ही तुम्हारा जीवन व्यतीत हो। तुम अपने सम्राट पतियों की चहेती पटरानी बनो। जगत के सारे सुख तुम्हें प्राप्त हो और लम्बी उम्र भर तुम उनको भोगो।

विवाह का समाचार त्वरित गति से विभिन्न राज्यों, नगरों, जनपदों में फैल गया। अनिन्द्य सुन्दरी द्रुपद कन्या को जीतनेवाला ब्राह्मण युवक अर्जुन था। याज्ञसेनी का पांचो पांडवों से विवाह एक अत्यन्त रोचक चर्चा का विषय बन गया। सब आश्चर्यचकित थे। द्रौपदी कौन से पातिव्रत धर्म का पालन करेगी ? पतिव्रत धर्म में तो स्त्री का एकनिष्ठ होना परम आवश्यक है। इस सिद्धान्त का उल्लंघन हो गया। पुरुष वर्ग भी चुटकियां लेता पांडव भी क्या पुरुष हुये कि पांचो में केवल एक पत्नी ? क्या एक से अधिक पत्नी उन्हे मिली नहीं ? बडे भाई की पत्नी वही अनुज की पत्नी इत्यादि। पांडु कुल में नीति अनीति का तो भेद ही नहीं रहा। सदाचार और कदाचार में विभेद कैसे हो सकेगा ? पांडुकुल में तो धर्म-अधर्म, नीति-अनीति का भेद ही मिट गया। ये सब तो पातकी है। निश्चित रूप से द्रुपद सुता नरकगामिनी होगी। ये सब चर्चायें पांचाली तक पहुंचती गई पर वह तो हृदय कठोर बनाये बैठी रही कि यही भाग्य है तो अविचलित भाव से इसे सहना है। रहरह कर द्रुपद सुता विक्षुब्ध हो उठती। लज्जा एवं ग्लानि के कारण उसकी वाकपटुता प्राय: लुप्त हो चुकी थी। वह मूक बनी रहती गुमसुम।

द्रौपदी के पंचपति द्रुपद के अतिथि भवन में ठहरे थे। द्रौपदी की प्रथम रात्रि युधिष्ठिर के साथ थी। द्रौपदी ने भक्ति अर्पित की। नारी देह में इतना रूप और यौवन भरा और पुरुष की दृष्टि में भरी सौन्दर्य पिपासा। द्रौपदी ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोला तुम्हारे मन में कोई दु:ख तो नहीं द्रुपद सुता ? द्रौपदी ने कहा आप धर्मराज हैं जो करते हैं उसके पीछे धर्म ही हेतु है। मैंने धर्म के यज्ञकुंड से जन्म लिया है अत: धर्म के प्रति मेरी प्रगाढ़ अनुरक्ति है। युधिष्ठिर बोला याज्ञसेनी तुम्हारा जन्म वृतान्त सुनकर मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट हुआ। मैं जानता हूं कि तुम्हारे बिना धर्म की रक्षा सम्भव नहीं। अग्नि की साक्षी में तुमने मुझसे विवाह किया है अत: इससे मां के वचन भी अन्यथा नहीं होंगे। हम पांचो भाइयों की पांच प्रकार की रूचि और पच्चीस

प्रवृत्तियां है। मैं जो पसन्द करता हूं शायद अन्य सब उसे पसन्द नहीं करे। मैं कहूंगा मन्दिर चलो भीम कहेगा पाकशाला में जाओ। अर्जुन कहेगा मृगया करने चलो। नकुल कहेगा वनविहार के लिये चलो तो सहदेव कहेगा एकान्त में घर के आंगन में बैठकर आकाश नक्षत्रों को निहारो तब क्या करोगी ? द्रौपदी बोली आप जैसी आज्ञा देंगे वही करूंगी। युधिष्ठिर ने कहा याज्ञसेनी बात इतनी सहज नहीं है जितनी तुम समझती हो। पुरुष की प्रकृति से तुम अनभिज्ञ हो। अपने प्रिय पदार्थ पर किसी अन्य का अधिकार किसी को भी सहन नहीं होता। तुम तो सबकी प्रियतमा हो। हम में से तुम पलभर भी अपने निकट से दूर रही तो तुम्हारी जरा सी भी उपेक्षा सहन नहीं होगी। द्रौपदी ने कहा आप किसी को भी कोई कष्ट नहीं होगा। मैं विश्वास दिलाती हूं कि आप सब मुझे सम्पूर्ण रूप में पायेंगे। युधिष्ठिर बोले याज्ञसेनी तुम दिनभर से थकी हो क्लान्त हो रही हो जाओ सोजाओ विश्राम करो। द्रौपदी बोली आप क्या करोगे ? युधिष्ठिर ने कहा मैंने अपने जीवन से सदा ही द्यूत खेला है और आज भी द्यूतक्रीडा ही करूंगा। सभी खेलते हैं। तुम मैं, पृथ्वी के सभी नरनारी, कीट पतंग। हम सब स्वयं तो नहीं खेलते कोई हमें अन्त:करण से निर्देश देता है तो हम खेलते हैं। इस पृथ्वी पर सब अपना अपना जीवन बिताते हैं और अपने लिये जीते हैं। समय अपने पासे फेंकता है। याज्ञसेनी आज प्रथम मिलन रात्रि में मैं अपने जीवन की सबसे बडी दुर्बलता तुम्हारे सामने प्रकट कर रहा हूं। यह द्यूतक्रीडा ही मेरी सबसे बडी दुर्बलता है। हर क्षेत्र में संयम रख सकता हूं पर द्यूतक्रीडा छोडकर।

द्रौपदी जिज्ञासु दृष्टि से देखती रही सोचा द्यूतक्रीडा एक राजसी विलासपूर्ण आमोद प्रमोद का साधन है और राजाओं को इसमें आनन्द मिलता है पर यह राजा के लिये दुर्बलता क्यों ? राज्य जय, शत्रुक्षय, मृगया, धन रत्न प्राप्ति, सुरा सुन्दरी के प्रति राजाओं में दुर्बलता रहती है किन्तु द्यूतक्रीडा के प्रति धर्मराज में कैसी दुर्बलता। शायद कोई बचपन का ही शौक रहा हो। बाल्यकाल में युधिष्ठिर कौरवों के साथ द्यूतक्रीडा खेलते थे और सदा हार जाते थे। दुबारा फिर आमन्त्रण पर खेलने लग जाते थे। सुनकर द्रौपदी को लगा कि हर मनुष्य में कुछ न कुछ जिद्द, हठ, दुर्बलता का बद अभ्यास होता है। किसे पता यही द्यूतक्रीडा आनेवाले भविष्य का आधार बनेगी ?

द्वितीय रात्रि द्रौपदी की उसके दूसरे पति विशालकाय भीम के साथ थी। उसे व्यक्तित्व तो परिवर्तन करना पडा, रूपांतरित होना पडा। भीम युधिष्ठिर से सर्वथा भिन्न है। रूप, गुण, व्यक्तित्व, आचार, व्यवहार और वार्तालाप में विशेष है। कक्ष में आते ही भीम ने पोशाक और अलंकार उतार दिये और बोला मेरा उदर देखो बस तुम इसका ध्यान रखना। मैं बहुत भोजनप्रिय हूं यही मेरी दुर्बलता है। तुम सुन्दर हो, धीरमति हो, स्थिर चित्त हो अब तुम सुपाक के रूप में प्रसिद्ध हो जाओ। तुम्हारे हाथ के स्पर्श से सामान्य भोज भी अमृत सम स्वाद हो जाता है। सब भाइयों से अधिक मैं ही खाता हूं इससे मेरा भाग अधिक है। आदमी में जितनी क्षुधायें होती है वह सब मेरे में प्रबल है अब उन्हे शान्त करने का दायित्व तुम्हारा है और फिर भीम हंसने लगा। भीम फिर बोला देखो द्रौपदी मैं क्रोधी भी कुछ अधिक ही हूं। किसी का गुस्सा गुमान मुझे सहन नहीं होता। मुझ में प्रतिशोध की आग भी भभकती रहती है। मेरे पास क्षमा नाम का कोई प्रश्न ही नहीं है। न मैं कोई बात चिरकाल तक स्मरण रखता हूं। जो मन में आता है कह डालता हूं। मैं जानता हूं कि तुम अत्यन्त चारूशील, विदुषी, धीरा स्वभाव की हो और स्त्रियों को वैसा होना भी चाहिये। स्त्री यदि सर्व सहन करने योग्य न हो तो परिवार का बन्धन शिथिल पड जाता है। विदुषी नारी स्वल्पभाषी कही गई है पर मेरी स्त्री को विदुषी होने की आवश्यकता नहीं। द्रौपदी सोच रही कि कैसा द्वन्द है युधिष्ठिर को चाहिये विदुषी पत्नी जो धर्म-अधर्म का विचार करे। धर्म के लिये जीवन की श्रेष्ठ वस्तु का उत्सर्ग कर सके। शास्त्र पुराण वेदों की आज्ञा का पालन करे और भीम की रूचि तो अन्य दिशा में है।

द्वन्द का अवसान कभी नहीं होता पर रात्रि का तो सुबह आ जाने से हो ही जाता है।

भीमसेन का पराक्रम उसे प्रभावित किये हुये था। उनका क्षात्र स्वभाव उसके स्वयं के स्वभाव से मिलता था। किन्तु वह विद्या

बुद्धि का धनी नहीं था जितनी वह स्वयं थी। शारीरिक एवं मानसिक बल का उनमें सन्तुलन नहीं था। निरी शक्ति थी उसके पास शारीरिक शक्ति। कोमलता, सुकुमारता, सूक्ष्मता, कलात्मकता एवं सुरूचि आदि का उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था। भीम परिष्कृत अथवा सुसंस्कृत भी न था। वेद महाबली था। वह उनके वीरोचित गुणों का सम्मान करती थी किन्तु इससे अधिक कुछ नहीं।

द्रौपदी की तृतीय रात्रि अर्जुन से मिलन की रात्रि थी। हर रात्रि की प्रभात होती है। गहन संयम और अन्तर्द्वन्द मन में। आज की रात्रि एक विशिष्ट रात्रि। परिस्थिति के दबाव में आकर आदमी अनचाहा कार्य भी कर बैठता है। देश के लिये, समाज के लिये, जाति के लिये, धर्म रक्षा के लिये मनुष्य अपनी इच्छा के विरुद्ध अनेक न करने योग्य, अनेक रोमांचक कार्य भी कर जाता है इससे उसका सम्मान बढता है। आदर प्रतिष्ठा भी पाता है पता नहीं कि उसकी आत्मा को भी शान्ति मिलती है या नहीं। पर जहां आत्मा का अनुमोदन होता है उस कार्य से आत्मा भी तृप्त होती है। अर्जुन बोले पांचाली सामंजस्य ही जीवन है। परिस्थितियों से तो समझौता करना ही पडता है। द्रौपदी बोली आपके यह दार्शनिक उपदेश आप क्या समझेंगे नारी की व्यथा और द्रौपदी की आखों में आंसू छलक आये। अर्जुन बोले नहीं पांचाली यह उचित नहीं। किसी को इसका आभास हो गया तो। द्रौपदी बोली सत्य से क्या भय ? मैंने तो आर्य अर्जुन को ही पति रूप में चाहा था। मेरे मन का स्वामी तो सव्यसाची ही है किन्तु मुझे कितने अभिनय, अदाकारी करनी पडती है और यह कहकर पांचाली फूट पडी। अर्जुन भी द्रवित हुये द्रौपदी के रूदन का स्वर भी तीव्र और ऊंचा होता जा रहा था। उन्हे भय था कहीं यह रूदन स्वर बाहर तक न पहुंचे पर द्रौपदी का हृदय उमड पडा दबी हुई पीडा छलछलाती हुई सहस्र धाराओं में बह निकली। प्लावन रोके नहीं रूक रहा था। सारे तटबन्ध, सारे प्रतिबन्ध, सारी मर्यादायें शिथिल पडते जा रहे थे। बांध टूटे जा रहा था। उसकी व्यथा का कोई पारावार नहीं था। अर्जुन ने व्यथित स्वर में कहा कृष्णा तुम साधारण रूपसी राजकन्या ही नहीं हो। विद्या और ज्ञान में विशिष्ट हो। कवयित्री हो। जीवन में अश्रू का बहुत मोल है, प्रयोजन है। ऐसा भी समय कभी कभी आता है। अत: बात बात में अश्रुओं का अपमान उचित नहीं। जीवन में दुर्दिन के साथी ही है श्रेष्ठ साथी और वे है अश्रू। उनका अपव्यय मत करो। अर्जुन भी पश्चाताप, ग्लानि और विवशता से हताश थे। अर्जुन बोला बस करो याज्ञसेनी। कोई भी परम्परा टूटती है तो उसकी आलोचना तो होती ही है।

अर्जुन बोला बस करो पांचाली अब और कुछ मत कहो। पिछली बातों को स्मरण कर पश्चाताप नहीं किया जाता। मैं ही उत्तरदायी हूं तुम्हारे क्लेशों के लिये। क्या आजीवन मैं और तुम दोनों इस कष्ट की ज्वाला में सुलगते रहेंगे ? मैं इस आरोप से तो मुक्त नहीं हो सकता किन्तु क्या प्रतिदिन मुझे सतत यह आक्षेप सुनना पडेगा ? पांचाली क्या किया जा सकता है ? यह क्रूरता, निर्ममता और अपराध जो मुझसे बन गया है। अर्जुन विगलित हीन स्वर में गिडगिडाने लगा। द्रौपदी बोली मुझे क्षमा करें नाथ अब इसके आगे आपको कुछ नही कहूंगी। जो कुछ मेरे भाग्य में है मैं सह लूंगी। मेरे अन्तर में दो नारियों को उत्पन्न कर उन्हे पा लूंगी। मेरी यही दुर्बलता है आप। अर्जुन बोला रानी विचलित मत हो। समय सब कुछ धीरे धीरे ठीक कर देगा। मैं हर कष्ट और दु:ख में तुम्हारे साथ हूं। पांचाली मैं तो मनुष्य हूं और मनुष्योचित दुर्बलताओं से परे मैं भी नहीं। मैं भी उन सबसे ग्रस्त हूं। यह जानकर मुझे शान्ति मिली कि मैं इतना भाग्यशाली हूं कि मेरा स्थान तुम्हारे मन में अक्षुण्ण है। पांचाली मैं तुम्हारी वेदना अच्छी तरह समझता हूं। हम दोनों ही पीडित हैं। दोनों पर ही विधि का प्रकोप हुआ है तो अब मिलकर दोनों ही साथ झेलेंगे याज्ञसेनी। मैं पुरुष हूं, क्षत्रिय हूं, अपने मनोभावों को कैसे प्रदर्शित कर सकता था ? मैं भी तो अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का दमन कर रहा हूं। यदि विधि को यही स्वीकार है तो यही। तुम्हारे उद्‌गार मेरे पथ प्रदर्शक होंगे। मुझे बल प्रदान करेंगे, सम्बल देंगे। कांटों से भी तो पुष्प खिलते हैं। जो कुछ प्रारब्ध में है उसमें ये श्रेष्ठ तत्व अवश्य मिलेंगे। द्रौपदी बोली मेरा जीवन दीप उतना ही जलेगा जितना आर्यपुत्र उसमें तैल डाल सकेंगे। मैं तो बाती हूं जलना मेरा धर्म है। किन्तु यदि आपके स्नेह तैल से वंचित रह गई तो सूखी कपास व कपूर की भांति फर फर जल जाऊंगी और यदि आपके स्नेह सतत से सरोबार रही तो प्रदीप्त दीप शिखा भी जलती आलोक बिखेरती धीरे-धीरे अपनी

यशोगाथा आपके चरणों में ही समाप्त करूंगी और वह अर्जुन को पकड कर उसके कंठ में झूल गई।

अर्जुन द्रौपदी के तन मन का स्वामी था। वह उसके मन का चित्तचोर था। अर्जुन स्वयं पांचाली पर मुग्ध था। पांचाली के विलक्षण गुणों का अनुगायक था। वह भावुक था, संवेदनशील था। कोमलता, सुकुमारता एवं कलात्मकता का पारखी एवं सुरुचिसम्पन्न सुसंस्कृत एवं परिष्कृत व्यक्तित्व का धनी। वीर तो वो था ही। पांचाली की रुचियां व अरुचियों का सदा ध्यान रखता था। अपनी सारी समस्याओं, प्रश्नो और शंकाओं को समेटे रहता और जैसे पांचाली के साथ एकान्त मिलता पांचाली से चर्चा, मन्त्रणा करता। पांचाली भी बुद्धिमत्ता से उसे परामर्श देती और स्वयं को गर्वित महसूस करती कि धनंजय उसे कितना महत्व देता है जीवन में। अर्जुन पांचाली का कष्ट व व्यथा भलीभांति समझता था। पांचाली के अन्तर्द्वन्द को समझता था। वह द्रौपदी की सहिष्णुता व सहनशक्ति का सम्मान करता था, उसकी समझदारी का आदर करता था। उसके प्रति अर्जुन का मृदुल स्वभाव था। सुकुमार प्रिया का दु:खी हृदय अन्य किसी प्रकार को ठेस न पाये यही उसका प्रयास रहता था। वह जानता था कि पांचाल नंदिनी द्रौपदी उसे कितना चाहती है और इसी दुर्बलता से वह स्वयं अर्जुन के लिये कितनी बेचैन, आतंकित और त्रस्त रहती है। आलोचन और निन्दा की प्रखर धूप से पांचाली को बचाते हुये वह उसपर सघन वटवृक्ष की भांति उस पर छाया किया रहता। इन सब गुणों से पांचाली अर्जुन पर रीझ गई और उसका मन अर्जुन में ही रम गया।

द्रौपदी की चतुर्थ रात्रि नकुल के साथ तथा पांचवी रात सहदेव के साथ बीती। नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारों के यमजपुत्र है। दोनों ही पूर्ण वदन की तरह कामदेव के समान सुन्दर हैं। स्निग्ध प्रशान्त दृष्टि। युधिष्ठिर के आज्ञाकारी। माता के साथ साथ चलनेवाले। लज्जाशील, नम्र, विनयी और शिष्ट। द्रौपदी को पत्नी रूप में पाकर दोनों भी आल्हादित थे। नकुल बहुत अधिक सुन्दर था। सुकुमारता और लालित्य अधिक था। शिशु की तरह प्रफुल्ल नम्रता का स्पर्श, सुन्दर चेहरा मन को आकर्षित करता था। उन्मुक्त हृदय अश्वारोहण व अश्वदौण प्रतियोगिता में निपुण। नकुल ने कहा द्रौपदी मैंने सुना है कि तुम जीव जन्तुओं, पशुपक्षियों को बहुत स्नेह और आदर देती हो। तुम्हारे महल में एक सुन्दर अभयारण्य है। तुम पशुपक्षियों की भाषा संकेत पढने में निपुण हो। मस्त हाथी तो तुम्हे देखते ही शान्त हो जाता है। हिंस्र विषधर सर्प तुम्हारे पदाघात से आहत होकर भी प्रतिघात करना भूल जाता है। मेरे अश्वों की भी तुम्ही देखभाल करना। नकुल की बाल सुलभ चपलता द्रौपदी को आनंदित कर रही थी। नकुल ने पूछा मैं तुम्हे पसन्द हूँ द्रौपदी। द्रौपदी नकुल के कहने का तात्पर्य समझ गयी कि कदाचित नकुल यह कहना चाहते हो तुम्हारे पंच पतियों में वे रूप की दृष्टि से श्रेष्ठ है। द्रौपदी ने कहा आपके रूप व सौन्दर्य के सम्मुख तो मैं निष्प्रभ हो गई। नकुल का सरल और अकलुषित स्वभाव द्रौपदी के मन को अच्छा लग रहा था। नकुल बोला कब हमारे भाग्य के दिन पलट जायेंगे और यह दिन चले जायेंगे तुम चिन्ता मत करो। द्रौपदी ने कहा परिस्थितियों को सहन करो, परिस्थितियां कभी एक सी नहीं रहती आर्य।

सहदेव भी नकुल की तरह लज्जाशील और नम्र है पर है मितभाषी। उसकी दृष्टि में सपने घने होकर अभिसार रच रहे हैं। गहन भावों में अविरत मग्न होकर द्रौपदी की ओर देखकर बोले कृष्णा पृथ्वीपर मनुष्य ही मृत्यु सचेतन है, भविष्य सचेतन है। अत: वह भय करता है दुश्चिन्ता करता है। स्वप्न देखता है, भविष्य की कल्पना करता है और उनमें खो जाता है। दु:ख भी भोगता है। पर पशु को भविष्य की कोई चिन्ता नहीं होती। वर्तमान ही उसके सर्वश्रेष्ठ गुण है। पशु से मनुष्य में यहीं अन्तर है कि मनुष्य भविष्य की योजना में पाप करता है, पुण्य भी करता है। भविष्य के सम्बन्ध में मनुष्य मन में आदिम युग से अदम्य कौतूहल और उद्वेग भरा है। तुम्हारा भविष्य मेरी आँखों के सामने चित्रित है इतना रोमान्चक। हम हस्तिनापुर के राजकुमार हैं देवी और घोर परीक्षा का सामना कर रहे हैं पर तुम हमारे जीवन पथ की उपयुक्त सहयात्री हो। मेरे मन में तुम्हे पाने की अदम्य लालसा थी वह अब पूर्ण हो गई। मां माद्री की हम यमज सन्तान है। नकुल मुझसे सुन्दर और चपल है और शक्तिशाली भी। बचपन में पिता

हमको छोडकर चले गये। वह स्थान लिया और दायित्व पूरा किया माता कुन्ती ने। मैं तो बचपन से ही मौन स्वभाव का रहा हूं और जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट हूं। तुम मेरी पत्नी हो, अपना कर्तव्य यथोचित प्रकार से करती रहो। सहदेव में सहिष्णुता अत्यधिक थी। द्रौपदी चुपचाप बैठी सुन रही थी और सोच रही थी कि ईश्वर ने इतने सारे गुण उसे दिये जिनके कारण पांचो भाई अपनी अपनी रूचि और पसन्द द्रौपदी से पा गये। क्या द्रौपदी सबको पूर्णत: सन्तुष्ट कर पायेगी ? क्या कोई सबको सन्तुष्ट कर सकता है ? यहां तक कि ईश्वर भी सबको सन्तुष्ट नहीं कर पाता। सबको सन्तुष्ट करने के प्रयत्न करने में कोई न कोई तो असन्तुष्ट रहता ही है। अपना मन स्वयं ही भार से आक्रान्त हो जाता है। मन अपने आप पर से विश्वास खो देता है। विपन्नता और असहाय सा लगा मन में। मुझे देखकर सहदेव ने पूछा क्या कोई स्वप्न देख रही हो ? क्या कोई दुस्वप्न? द्रौपदी बोली नहीं आर्य। स्वप्न तो मनोहारी था किन्तु बीच ही में टूट जाने से चौंक पडी। सहदेव ने कहा तुम स्वस्थ तो हो पांचाली। द्रौपदी ने कहा चिन्ता न करे मैं पूर्णत: स्वस्थ हूं, आप विश्राम करें आर्य।

पांच दिन तक विवाह उत्सव चलता रहा। वाद्य, नृत्य, गीत, रोशनी दान, भोजन विपुलमात्रा से पांचाल राजधानी इन्द्र भुवन की तरह आनन्द मुखर हो उठी। विवाह कार्य सम्पन्न हो गये। द्रौपदी ने अब अपने पतियों को भली भांति आंक लिया। नकुल और सहदेव का तो अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है और न ही अपना व्यक्तित्व। उनमें बौद्धिक परिपक्वता का भी अभाव था और न ही वे पराक्रमी थे। पांचाली की प्रखर बुद्धि के समक्ष वे बालवृद्धि प्रतीत होते थे। वे दोनों स्वयं पांचाली के प्रखर व्यक्तित्व से दबे, सहमे और आक्रान्त से लगते और द्रौपदी उन सुन्दर बाल सम सुकुमार पतियों को मात्र करूण दृष्टि से देखती रह जाती। धर्मराज युधिष्ठिर का भी व्यक्तित्व द्रौपदी को प्रभावित नहीं कर पाया। युधिष्ठिर दुर्बल व्यक्तित्व तथा निर्णय शक्ति का निरन्तर अभाव। महाबली महाराज पांडु के युवराज को किसी नरेश ने अब तक अपनी पुत्री क्यों नहीं दी और फिर क्षत्रिय कुलभूषण होते हुये युधिष्ठिर अपने शौर्य से किसी रमणी का हृदय क्यों नहीं आकृष्ट कर पाये ? पांचाली कभी यह बात विस्मृत नहीं कर सकी न ही मन से निकाल पाई कि अनुज के शौर्य से प्राप्त रमणी को उन्होने धर्म का दाखला प्रस्तुत कर अपने लिये उपलब्ध कर लिया। धर्मराज युधिष्ठिर की निरीहता एवं अबोध पन पर उसमें केवल करुणा ही उमडती थी। द्रौपदी युधिष्ठिर की सेवा भरपूर करती थी। युधिष्ठिर को भी लगने लगा द्रौपदी के हृदय में उसका स्थान तीसरे क्रम पर है और यह बात सदा उन्हें उद्वेलित करती रहती। द्रौपदी अर्जुन के शौर्य और वीरता पर मुग्ध थी और जान न्यौछावर करती थी। वह भीम के वीरोचित गुणों से प्रभावित थी कि भीम महाबली है निर्भिक है।

एक दिन माता कुन्ती ने अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर से पूछ ही लिया कि इतने वैभव में पत्नी द्रुपद सुता हमारी दुर्भाग्यपूर्ण दरिद्रता की अवस्था से क्षुब्ध तो नहीं रहती ना ? उसका व्यवहार तुम्हारे प्रति सन्तोषजनक है ना ? युधिष्ठिर थोडे संकुचित हुये और बोले दरिद्रता के कष्टों के लिये तो वह कभी कुछ नहीं कहती। उसका व्यवहार भी उत्तम और शिष्ट है, विनम्र है किन्तु सबके साथ समान नहीं। वह तुम्हारे पराक्रमी पुत्र के प्रति विशेष आकर्षित है और उस पर कृपालु है। पांडुपत्नी कुन्ती समझ गई और बोली नहीं पुत्र वह तो अपने सदव्यवहार से सबको प्रसन्न रखने का सतत प्रयास करती है। कुन्ती बोली तुम्हारा तात्पर्य है कि राजकुमारी पांचाली परमवीर धनंजय के प्रति विशेष अनुरक्त है। युधिष्ठिर ने कहा हां माता। यह सही है कि अर्जुन की यशोगाथा दिगदिगान्त में फैली हुई है और यह भी सही है कि स्वयंवर में दूरुह लक्ष्य का भेदन अर्जुन ने ही किया। यह भी सही है कि द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन को ही पहनाई फिर भी उसने यदि पांचो पति वरण कर लिये हैं तो उसे समान रूप से अनुरक्त होना चाहिये और पक्षपात तथा भेदभाव को मन से पूर्णत: निकाल देना चाहिये। माता कुन्ती सोचने लगी कितना स्वाभाविक है पांचाली का अर्जुन के प्रति प्रेम। आजकल तो एक पति को प्रसन्न करना कठिन होता है और यह बेचारी तो पांचो पतियों की सेवा में रात दिन जुटी हुई है। वह पत्नी तो अर्जुन की ही थी, उसी का तो उसने वरण किया था। यह तो मात्र मेरी भूल थी कि सारी परिस्थिति विषम हो गई नहीं तो प्रसन्नता से अर्जुन

की जीवन सहचरी बनकर सुखी रही होती। इसमें तो उस बेचारी का क्या दोष ? कुन्ती ने पांचाली को बुलाकर अपने पास बिठाया और बोली तू बडी सुशीला और बुद्धिमती है। तभी तो तुम अपने पांचो पतियों को समान रूप से प्रसन्न रख पाती है। ईश्वर करे वे पांचो भी तुझ में समान रूप से अनुरक्त हो और तू भी उनकी सेवा में समान भाव से रत रहे। अखंड सौभाग्यवती हो।

कुन्ती अर्जुन से बोली वत्स मुझे आजीवन पश्चाताप रहेगा कि इस कोमल मन के प्रति मैंने अज्ञानवश इतना बडा अन्याय कर दिया। इस सुकुमारी बालिका का दोष भी क्या है ? यह कितना स्वाभाविक है एक नारी के लिये कहीं कोई साध्वी, एक निष्ठ नारी पांच पांच पुरुषों में अनुरक्त हो सकती है ? पुत्र वह तो अल्प वयस है, भोली है, अबोध और निर्दोष है। वह तो महाराज द्रुपद का राजपाट वैभव सब कुछ त्याग कर तेरे पदचिन्हों का अनुसरण कर तेरे पीछे पीछे चली आयी। तेरे पराक्रम से अभिभूत और सम्मोहित होकर। पर वह नयी परिस्थिति को धीरे-धीरे ही साध पायेगी। उस पर भरपूर अपना स्नेह उंडेल और उसका सदैव ध्यान रखना। उसका मन कभी न तोडना नहीं तो उसके आन्तरिक मनोभाव बाहर निकल आयेंगे। यदि तू उसे सन्तुष्ट कर सका तो वह प्रसन्न रहेगी और अपने कर्तव्यों का समुचित रूप से पालन कर सकेगी। यदि तूने उसके स्नेह में तनिक भी अभाव कर दिया तो वह तिल तिल जलती रहेगी और तब शायद उसका स्वभाव, शुष्क, तिक्त एवं उग्र हो उठे। तू ही उसे प्रेम से साध सकता है। अपने नेह से आप्लवित कर दे। उसके दोष व त्रुटियों को कभी बाहर मत आने देना। उसकी विचित्र स्थिति और दारुण कष्ट देखकर मुझे अथाह वेदना होती है। यदि वह पांचों पतियों की समान भाव से सेवा नहीं कर सकती तो गृह कलह अवश्यम्भावी है और उसका उत्तरदायित्व मुझपर होगा। जब जब कोई उसपर आरोप लगेगा मैं अपराधिनी सिद्ध दूंगी वत्स। यह सब मेरा किया हुआ है हालांकि ईश्वर जानता है मुझे स्वप्न में यह ज्ञान न था कि क्या का क्या हो जायेगा। बस यहीं मैं कहना चाहती थी पार्थ कि उसके प्रति तेरे मन में अगाध प्रेम हो और उसे प्रेम से जीत। उसका ध्यान रख। तू उसे लाया है, उसे प्रसन्न रखना प्रमुख रूप से तेरा दायित्व है। मेरे कारण ही यह विषम स्थिति उत्पन्न हुई है। कालान्तर में यह सब सामान्य हो जायेगा। अर्जुन बोला जैसा कह रही हो वैसा ही होगा और विचलित अर्जुन ने मां को विश्वास दिलाया।

६१) पांडवों का काम्पिल्य से हस्तिनापुर लौटना

काम्पिल्य से दूत आया और विदुर के आवास पर गया और उसने विदुर को सूचना दी कि पांडव जीवित है वे अपनी माता सहित काम्पिल्य में है। अर्जुन ने स्वयंवर जीता है। द्रुपद सुता पांचाली ने पांडवों का वरण किया है और अब वे महाराज द्रुपद के अतिथि हैं सुनकर विदुर का मन हर्ष और आनन्द से उछलने लगा कि पांडव सुरक्षित है। पांडवों की सुरक्षा, विदुर के जीवन की अंतरिम साध थी। पांडव जीवित हैं तो धर्म के जीवित रहने की आशा की जा सकती है। पांडव कृष्ण की सहमति से आर्याव्रत में न्याय स्थापित करेंगे। किन्तु विदुर फिर भी इतना निश्चित नहीं हो सका। दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और अश्वत्थामा सभी तो यह चांडाल चौकडी काम्पिल्य में ही बैठी हुई है कौन जाने कौनसा षडयन्त्र रच रही होगी? और हस्तिनापुर में बैठा है गिद्ध जैसा धृतराष्ट्र। वारणावत में पांडवों के जल जाने के समाचार के प्रसारित होते ही धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को युवराज घोषित कर उसका युवराज्याभिषेक कर दिया। दुर्योधन ने प्रशासन में, सेना में, प्रजा में, सब स्थानों पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। दूत समाचार देकर काम्पिल्य लौट गया।

विदुर अन्त:पुर में आया और अपनी पत्नी पारसंवी से बोला अत्यन्त सुखद समाचार है। कुन्ती भाभी और उसके सभी पुत्र जीवित हैं। अब वे लोग काम्पिल्य में हैं। अर्जुन ने द्रौपदी का स्वयंवर जीता है। मैं जा रहा हूं महाराज धृतराष्ट्र को यह समाचार देने। <u>नृशंस को तडफते देखकर प्रसन्न होना नृशंसता नहीं है</u>। इस सुखद समाचार को प्रसारित करने में विदुर को कितनी प्रसन्नता हो रही थी।

धृतराष्ट्र अपने संगीत कक्ष में बैठा हुआ था। विदुर आया और महराज धृतराष्ट्र को प्रणाम किया धृतराष्ट्र बोले आओ विदुर। आज

तुम्हारी वाणी मन्दिर की घंटियोंसी क्यों बज रही है विदुर ? विदुर बोले बात ही कुछ ऐसी है। काम्पिल्य से समाचार आया है महाराज। धृतराष्ट्र बोला क्या मेरे पुत्र दुर्योधन ने द्रौपदी स्वयंवर जीत लिया ? विदुर बोला दुर्योधन ने तो नहीं जीता महाराज। धृतराष्ट्र बोला तो फिर प्रिय दुशासन ने जीता होगा। वो भी तो पराक्रमी है, जयी है। यह तो तुम बडा ही शुभ समाचार लाये हो विदुर। विदुर बोले क्षमा चाहता हूं महाराज। स्वयंवर तो दुशासन ने भी नहीं जीता। धृतराष्ट्र बोला तो फिर तुम कौनसा शुभ समाचार लाये हो ? विदुर बोला शुभ समाचार तो यह है कि महाराज आपके अनुज पांडु के प्रिय पुत्र अर्जुन ने स्वयंवर जीता है और पांचाली ने पांडवों का वरण किया है। पहले तो धृतराष्ट्र के चेहरे पर ऐसे भाव आये जैसे किसी ने उसके सिर पर वज्र का प्रहार कर दिया और उसकी चेतना लुप्त होने जा रही थी अगले ही क्षण वह विदुर की बातें ठीक से समझ गया। धृतराष्ट्र बोला अर्जुन परन्तु पांडव तो पांचो भाई लाक्षागृह में.... विदुर बोला स्वयंवर जीतने से पहिले शुभ समाचार तो यह है कि आपके प्रिय पांचों पांडव जीवित हैं। धृतराष्ट्र बोला अहोभाग्य विदुर तुम तो बडा ही आनन्द का समाचार लाये हो। मैं अपने पूर्वजों के सामने लज्जित होने से बच गया। पांडु पुत्रों में और मेरे पुत्रों में अन्तर ही क्या है ? वे भी तो मेरे ही पुत्र हैं। उनका अभ्युदय भी तो कुरुकुल का ही अभ्युदय है। धृतराष्ट्र का यह स्वर अत्यन्त खोखला था। जो जितनी अधिक शोर, आवाज करता है उतना ही वह अपने आपको अन्दर से खाली है प्रमाणित करता है। विदुर के मन में आया धूर्त कहीं का। विदुर बोला पूर्वजों में लज्जित होने का तो अब प्रश्न ही नहीं उठता महाराज क्योंकि लाक्षागृह षडयन्त्र में आपका कोई हाथ नहीं था परन्तु जन समुदाय के मुख से विधाता ही बोलता है और जन समुदाय का कहना है कि आपके मुख मंडल पर लाक्षागृह की राख पुती हुई है। आप इस अवसर का लाभ उठाइये महाराज। आप पुत्रवधू के हार्दिक स्वागत के गंगा जल से अपने मुख मंडल पर लगी हुई कालिख को धो डालिये। अब आप आदेश दें कि तुरन्त किसी दूत को काम्पिल्य भेजे और वहां जाकर यह बता दें कि आप पांडवों के जीवित होने का समाचार पाकर कितने प्रसन्न हुये और यह भी उनसे मिलने के लिये, आशीर्वाद देने के लिये और पुत्र वधू का स्वागत करने के लिये कितने व्याकुल हैं ? इसलिये वे तुरन्त ही हस्तिनापुर नगरी के लिये प्रस्थान करे। पांचाली के लिये बहुमूल्य उपहार भेजें। कुरुकुल की वधू पहली बार हस्तिनापुर आ रही है तो उसके मन में यह भाव न आये कि हस्तिनापुर में उसका स्वागत नहीं हुआ।

धृतराष्ट्र बोला परन्तु उन्हे यह विश्वास तो होगा न विदुर कि उस लाक्षागृह की आग में मेरा कोई हाथ नहीं था। विदुर बोले युधिष्ठिर को तो हो जायेगा महाराज और बाकी के चार भाई भी उसके कहे के बाहर नहीं निकल सकते है। पर विदुर यह बताओ तुम्हे यह समाचार कैसे ज्ञात हुआ ? विदुर बोला यह तो सार्वजनिक समाचार है महाराज। यह घटना काम्पिल्य में घटी जहां आर्याव्रत और उसके बाहर के अनेक राज्यों के लोग उपस्थित थे। विदुर बोला अब यह तो उचित नहीं है कि अपना घर होते हुये पांडव काम्पिल्य में द्रुपद के यहां रहे और न ही यह शोभनीय है कि वे काम्पिल्य से यहां आ जाये और उनके स्वागत के लिये हस्तिनापुर प्रस्तुत ही न हो। धृतराष्ट्र बोला तो फिर खडे क्यों हो ? जाओ और कुलवधू कुन्ती और मेरे प्रिय अनुज पांडु पुत्रों को बताओ कि धृतराष्ट्र उनसे मिलने के लिये कितना व्याकुल है। तुम तो मानते हो विदुर उनके जीवित होने का समाचार पाकर मैं कितना प्रसन्न हूं। तुम्हारा यह अभागा महाराज अभागा भाई प्रसन्नता का स्वाद ही भूल गया था। मेरे प्रिय पांडु पुत्रों की मृत्यु सुनने के पश्चात आज पहली बार आनन्द का स्वाद मिला है। जाओ विदुर तुरन्त जाओ। विदुर बोला जो आज्ञा महाराज। मैं चाहता हूं कि आयु भर सदैव आपकी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे।

विदुर भीष्म के पास आता है। भीष्म अपने बाणों की धार तेज कर रहे होते हैं उन्हे छील रहे होते हैं। विदुर ने आकर भीष्म को प्रणाम किया। भीष्म ने कहा आयुष्मान भव, आओ बैठो। कहां से आ रहे हो विदुर ? विदुर बोला महाराज के पास से चला आ रहा हूं तातश्री परन्तु आप इस समय यह.... भीष्म बोले धनुर्धर को बाणों के स्वास्थ्य का खयाल रखना ही चाहिये विदुर। क्या पता कल इसकी आवश्यकता आ पडे। यह तूणीर भी तो हस्तिनापुर राज सिंहासन से बन्धा पडा

है विदुर। विदुर बोले आप इतने निराश क्यों है तातश्री ?

भीष्म बोले यह निराशा का ही युग है विदुर। निराशा का। जीवन मूल्य वो नहीं रहा जो हमारे समाज की आधारशिला है। रेत के घरौंदे की भांति एक एक करके हमारे सामने टूटते जा रहे है और हम लोग उनकी रक्षा नहीं कर पा रहे है। हस्तिनापुर राज सिंहासन आज एक ज्वालामुखी के मुख पर खडा है। क्या पता कब विस्फोट हो जाये ? और यदि हम लोग इस विस्फोट को नहीं रोक पाये तो कुछ नहीं बचेगा विदुर न यह जीवन और न जीवन के मूल्य। लगता है हमारा समाज सुधार की सभी सीमायें पार कर चुका है। अब यह टूटेगा और उसके खंडहर पर एक नये समाज का निर्माण होगा। पिताश्री का वरदान मेरे लिये एक श्राप बन गया है विदुर। श्राप से मैं माता सत्यवती के साथ वन की ओर भी न जा पाया और वो जाते जाते अपने दु:खों का बोझ मेरे ही कन्धों पर छोड गई। विदुर बोला परन्तु तातश्री। भीष्म बोले मुझे यह समाचार मिल चुका है विदुर कि महाराज तुम्हे काम्पिल्य भेज रहे है। इसी समाचार के पश्चात ही मैंने तूणीर निकाला। विदुर बोले तातश्री। भीष्म बोले तुमने कभी क्या यह नहीं सोचा कि एक राज्य में दो युवराज नहीं हो सकते। विदुर बोले यह मैंने अवश्य सोचा था तातश्री किन्तु मैंने यह भी सोचा कि महाराज चाहे कुछ भी चाहते हो परन्तु वो जनमत का दबाव नहीं सह सकते और जनमत युधिष्ठिर के पक्ष में है। भीष्म बोले लडकपन की बातें मत करो विदुर। पुत्र मोह ने धृतराष्ट्र की नेत्रहीनता को और बढा दिया है। मेरा हाथ थामने की बजाये वो शकुनि की अंगुली पकडकर चलने में अपने को अधिक सुरक्षित समझता है। विदुर बोले तो फिर आप क्या यह चाहते है कि मैं पांडवों को यहां आने से रोक दूं। भीष्म बोले नहीं परन्तु परिस्थिति की नदी में जो बाढ़ आयी है विदुर उसे न तुम रोक सकते हो और न मैं। विदुर बोले दुर्भाग्य से। भीष्म बोले दुर्भाग्य नहीं विदुर। जो कुछ होनेवाला होता है वह पिछली घटनाओं का परिणाम होता है। वर्तमान भाग्य की कोख से जन्म नहीं लेता। वर्तमान अतीत की कोख से जन्म लेता है और हस्तिनापुर के इस वर्तमान का अतीत मैं हूं विदुर। विदुर बोले तो फिर मेरे लिये क्या आदेश है तातश्री ? भीष्म बोले काम्पिल्य जाओ और पांडु पुत्रों को घर ले आओ। हां परन्तु युधिष्ठिर को समझाना कि हस्तिनापुर की राजनैतिक ऋतु अभी अनुकूल नहीं है।

दुर्योधन, कर्ण और दुशासन अपने कक्ष में बैठे हंसी मजाक कर रहे थे कि शकुनि दुर्योधन के पास आता है। शकुनि बोला प्रिय दुर्योधन तुम जैसा मूर्ख अब शायद ही कदाचित इस दुनिया में जन्म ले। दुर्योधन बोला परन्तु मैंने किया क्या है मामाश्री ? शकुनि बोला अरे वत्स जो रोने के अवसर पर हंसे उसे मूर्ख न कहूं तो फिर क्या कहूं ? अरे अंगराज कर्ण और दु:शासन का कुछ नहीं खोयेगा। हां दुशासन तो राजकुमार है और वो राजकुमार रहेगा और कर्ण से कोई अंग का राज्य थोडे ही छीन लेंगे ? कर्ण बोला कौन मामाश्री ? शकुनि ने कहा अंगराज कर्ण पांडव। दुशासन बोला परन्तु वो तो शकुनि ने कहा न तो वो जीवित ही है और सुरक्षित भी और तुम्हारे पिताश्री यह समाचार सुनकर अति प्रसन्न हो रहे है कि द्रौपदी स्वयंवर उसके अनुज पुत्र अर्जुन ने जीता। कर्ण बोला अर्जुन। शकुनि ने कहा अर्जुन। वही अर्जुन जिस पर उन्हीं भाइयों पर क्षत्रियों की भांति आक्रमण करने का सुझाव दे रहे थे अंगराज। दुर्योधन बोला यदि वो बच गये है तो बच जाने दीजिये मामाश्री। वो मेरा क्या बिगाड सकते ? मैं तो हस्तिनापुर का युवराज बन चुका हूं। शकुनि बोला यही तो तुम अपने पिताश्री को अभी तक समझ नहीं पाये। वो विदुर की नीति और तुम्हारे पितामह की बनावटी निष्ठा का सामना नहीं कर सकते। हां इसलिये यह हंसने की घडी नहीं है, सोचने की घडी है। कर्ण बोला इसमें सोचना क्या मामाश्री ? शकुनि ने कहा जिसे सोचने में कष्ट होता है वह यही कहता है। मेरे आदरणीय जीजाश्री ने तो यह आदेश भी दे दिया है कि वे पांडु पुत्रों को पुत्रवधू समेत हस्तिनापुर ले आयें ताकि स्वयं वो और मेरी प्यारी बहिन गान्धारी उन्हें आशीर्वाद के साथ-साथ हस्तिनापुर का राजमुकुट भी दे सके। दुर्योधन बोला असम्भव। मेरे जीते जी यह कभी नहीं हो सकता। शकुनि बोला यदि यहां बैठे बैठे ही ठहाका मारते रहोगे दुर्योधन तो यह सब सम्भव हो जायेगा। कर्ण बोला मैं कुछ कहूं। दुर्योधन ने कहा अवश्य। शकुनि बोला मैं जानता हूं कि तुम क्या कहोगे ? कर्ण बोला मैं तो केवल इतना ही कहूंगा

कि शत्रु के यहां आने से पहिले ही सेना लेकर उन्हे मार डालना चाहिये।

शकुनि बोला द्रौपदी स्वयंवर में उनमें से एक ने तुम्हारा धनुष तोडा था अंगराज और तुम उसे सादर प्रणाम करके वहां से चले आये थे। कर्ण बोला तब मैं तैयार नहीं था मामाश्री और तब मैं सावधान भी नहीं था। एक साधारण ब्राह्मण से क्या सावधान होना। आप दुर्योधन को लेकर यहां बैठिये मैं उन्हें रोकने जाता हूं। शकुनि बोला बैठो अंगराज। बैठ जाओ और मुझे सोचने दो। कर्ण बोला मेरी सफलता याद दिलाने से पहिले आपको यह सोच लेना चाहिये था कि पांडवों के बालपन से आप असफल होते आ रहे हैं। आपने भीम को विष खिलवाया क्या परिणाम निकला ? वो और बलवान होकर लौटा। आपने बडे छल किसे कि युधिष्ठिर कभी युवराज न हो क्या परिणाम निकला ? पर वो युवराज बन गया। आपने लाक्षागृह में सब पांडवों को मातासहित भस्म कर देने का षडयन्त्र रचा, क्या परिणाम निकला ? उन्हे द्रुपद जैसे शक्तिशाली नरेश का साथ मिल गया। इसीलिये मैं यही कहूंगा कि क्षत्रियों की मर्यादानुसार हमें परिस्थितियों का सामना करना चाहिये। युद्ध में हारनेवाले जीतनेवालों से कम नहीं होते क्योंकि कायर हारते नहीं कायर तो भाग जाते हैं मामाश्री। शकुनि बोला परन्तु मैं तुम लोगों की परीक्षा नहीं लेना चाहता क्या पता कि..... कर्ण बोला मामाश्री सूर्य की सौगन्ध यदि यह व्यंग किसी और ने मेरे साथ किया होता तो उसकी जिव्हा अपने बाणों से भेद देता परन्तु..... शकुनि बोला हां यदि यह परन्तु है तो खडे क्यों हो, बैठ जाओ अंगराज और अपनों से बडों के वचन सुनना सीखो। अपने मन से यह बात निकाल डालो कि गान्धार नरेश शकुनि कायर है। मेरे पास दिव्य शस्त्र नहीं है परन्तु मुझे युद्ध करने की कला अच्छी तरह से आती है। दुर्योधन बोला मामाश्री मैं कर्ण की ओर से आपसे क्षमा चाहता हूं। शकुनि बोला फिर अपने इस मित्र से कहो कि बैठ जाये और बात सुने। दुर्योधन बोला मित्र कर्ण यह मेरे भविष्य का प्रश्न है बैठ जाओ। कर्ण बैठ गया और बोला बतलाइये अब इस परिस्थिति में क्या करना चाहिये ? शकुनि बोला हां परिस्थिति तो बडी गम्भीर है। हां द्रौपदी को पासा बनाकर सब भाइयों में मतभेद करा सकते हैं। दुर्योधन बोला वो तो आप भी जानते है मामाश्री कि आप कब से यही प्रयत्न कर रहे है। उन पांच शरीरों में आत्मा एक ही है। वो आपस में कभी नहीं लड सकते। चाहे उनके बीच में द्रौपदी जैसी सुन्दरी ही क्यों न हो। शकुनि बोला द्रुपद की ओर राजकोष का मुंह खोल कर मिलाने का प्रयत्न कर सकते हैं। दुशासन बोला वो जामाता को छोडकर हमारे हाथों क्यों बिकेगा मामाश्री? आप भी बूढे हो चले। दुर्योधन बोला यह सौदा हमें महंगा भी पड सकता है। शकुनि बोला वो कैसे भान्जे ? कर्ण बोला वो ऐसे मामाश्री कि पांचाल नरेश द्रुपद को पाने के लिये हमें आचार्य द्रोण को खोना पडे जिसने यज्ञद्वारा द्रोण को मारनेवाला पुत्र पाया हो वो भला वहां कैसे रह सकता है जहां द्रोण है, उसकी ओर से मेरा भी मन मैला है। परन्तु द्रुपद को पाने के लिये मैं द्रोणाचार्य का त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि द्रुपद की सेवा के लिये द्रोण शिष्य अर्जुन ही बहुत था इसलिये हमारी सेना के लिये द्रोण आवश्यक है और आप चाहे कुछ भी कहो मामाश्री युद्ध तो होगा। शकुनि बोला तब तो एक ही उपाय है बाल हठ दुर्योधन अब पांसा तुम्हारे हाथ है बाल हठ अपने पिताश्री के पास।

छल का बल जब विपुल हो छली विकल हो आर्त, जब उल्टा पांसा पडे वह भी लगता शाप।

समय तो एक नदी के समान है जो इसमें डूबना चाहे वह डूब जाये और जो तैरना चाहे वो तैर जाये। न समय किसी को डूबने से रोक सकता है और न किसी को तैर कर पार उतर जाने के लिये खुश ही हो सकता है क्योंकि सुख और दु:ख उसके दो किनारे हैं। वो दोनों हर समय में स्नान करते है परन्तु हैं उससे अलग। शकुनि को ही लो वह कर्मभूमि को चौसर को बिछात मानता है और जीवन को जुआ। तो वो जी नहीं रहा है जुआ खेल रहा है और दुर्योधन उसकी अंगूली पकड कर जीवन यात्रा कर रहा है। यदि वो अपने अभिमान के आकाश में उतरकर वास्तविकता की भूमि पर पांव धर लेता तो वह यह अवश्य देख लेता कि वो हस्तिनापुर नरेश न भी बने तब भी अपनी महानता के लिये सदैव याद रखे जाने योग्य है परन्तु उसे यह बताये कौन ? समय उसे बता नहीं सकता और शकुनि के सिवा वो किसी और की सुनने को तैयार नहीं है। यदि वो कहता कि मेरे बाल हठ करने का

मौसम है तो वो बाल हठ करने के लिये अपने पिता की ओर चल पडता है।

धृतराष्ट्र बैठे अपने कक्ष में चिन्ता मग्न था। धृतराष्ट्र की चिन्ता का तो कोई अन्त ही नहीं था। यह सब एकाएक क्या हो गया? कहां उसने सोचा था कि पांडव अब जीवित नहीं है। उन्हे राज्य सत्ता मांगने का अधिकार ही नहीं है। दुर्योधन युवराज बन चुका था। पांडु और उसके पुत्रों के जीवित न रहने पर राज्य पर अधिकार और था ही किसका ? पर पता नहीं अब ये प्रेत न जाने कहां से उठकर आ गये ? उनके जीवित बच जाने का क्या रहस्य ? और जीवित बच भी गये तो प्रकट रूप से हस्तिनापुर लौट कर क्यों नहीं आये ? इतने दिनों तक कहां छिपे रहे ? क्यों छिपे रहे ? क्या उन्हे सन्देह हुआ कि वारणावत में उनके वध का प्रयत्न किया गया ? क्या वे जानते हैं कि यह प्रयत्न और चाल किसकी है? द्वारपाल ने इतने में ही कक्ष में प्रवेश कर कहा युवराज दुर्योधन पधार रहे हैं। धृतराष्ट्र ने द्वारपाल को आज्ञा दी युवराज को सम्मानसहित ले आओ। दुर्योधन आया।

दुर्योधन बोला यह मैं क्या सुन रहा हूं पिताश्री ? धृतराष्ट्र बोला यह तो तुम ही बताओ पुत्र। दुर्योधन बोला अपने काका विदुर को यह आदेश दिया है कि वो शीघ्र ही काम्पिल्य जाये और पांडवों को यहां ले आये। धृतराष्ट्र बोला और मैं क्या करता पुत्र ? यदि तुम लोगों ने मुझे लाक्षागृह के विषय में पूछा होता तो मैं अवश्य तुम लोगों को रोक देता और तुम उसमें भी सफल नहीं हुये। तो अब मैं यह सुनने के पश्चात कि वो जीवित है तो मैं इसके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता हूं ? कि उनके जीवित होने के समाचार पर आनन्द प्रकट करूं और उन्हें यहां बुलाऊं। यदि मुझे यह विश्वास नहीं होता कि तुम वहां नहीं जाओगे तो मैं विदुर के स्थान पर तुम्हे काम्पिल्य भेजता। दुर्योधन बोला लेकिन आप उनसे इतना डरते क्यों है ? धृतराष्ट्र बोला मैं उनसे नहीं डरता पुत्र। मैं डरता हूं जनसमुदाय से। चाहता तो मैं भी वही जो तुम चाहते हो। मेरे कान सुनने को तरस रहे है कि तुम्हे हस्तिनापुर नरेश कहा जाये, महारथी, परमवीर श्रेष्ठ गदाधर हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन। दुर्योधन बोला यदि आप यह चाहते होते तो फिर आप विदुर को आदेश ही क्यों देते ? कि राजसभा में अपनी नीति का नाटक खेलकर युधिष्ठिर को युवराज बना दे। दुर्योधन ने अपने दांत पीसे उसे तो सब कुछ ज्ञात रहता ही है लगता है जैसे उस अकेले के गुप्तचर सम्पूर्ण कुरु साम्राज्य की गुप्तचर व्यवस्था से अधिक समर्थ है। धृतराष्ट्र बोला विदुर का नाम आदर से लिया करो पुत्र। जो नीति का ज्ञान तो उसकी झोली में है उसका आधा ज्ञान भी इस समूचे संसार के पास नहीं है। उसे अपने साथ मिलाकर रखो। उसके दो टूक वाक्यों को सहन करना सीखो। क्योंकि वो कभी कोई बात निराधार नहीं कहता। उसकी सुनने के पश्चात ही उसकी नीति को काटने का प्रयत्न करो। कल उसने असहाय अनाथ युधिष्ठिर को युवराज बना ही दिया। वो युधिष्ठिर आज तो अब असहाय भी नहीं है। पांचाल नरेश, द्रुपद उसके साथ है। द्वारका की यादव शक्ति भी उसके साथ है। इसलिये पांडवों का स्वागत करो पुत्र। यदि तुमने मेरा कहा माना होता और बालपन से ही अपने शत्रु भाव को छिपाने में सफल हुये होते तो आज स्थिति कुछ और ही होती। अपने स्वप्नों को सबसे छिपाये रखना ही राजनीति का पहला अध्याय है पुत्र। दुर्योधन बोला तो मैं यह अपमान कभी सहन नहीं कर सकता पिताश्री कि युधिष्ठिर के आ जाने के उपरान्त युवराज का स्थान रिक्त कर दूं। यह असम्भव है। मैं तो अपना स्थान कभी स्वयं नारायण के लिये भी रिक्त नहीं कर सकता और यदि आपने आदेश दिया तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। धृतराष्ट्र बोला नहीं पुत्र नहीं। तुम्हारा यह नेत्रहीन पिता इतना विवश नहीं है जितना तुम समझ रहे हो। जिस सिंहासन पर आज मैं हूं उसपर तुम्हारा अधिकार है और तुम्हे तुम्हारा अधिकार मिले। मैं तुम्हे यह बता देता हूं कि जीभ भी अश्व की भांति ही होती है। उसे भी अश्व की भांति ही लगाम देनी पडती है। उत्तम अश्वरोही वही है जो अश्व को अपने नियन्त्रण में रखे। स्वयं उसके वश में न हो जाये। उन्हे यह ज्ञात है कि लाक्षागृह के षडयन्त्र में तुम्हारा हाथ था। तो हो सकता है कि उस षडयन्त्र में मेरा भी हाथ देख ले। इसलिये बहुत सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि आज उन्हे भडकाने वाले भी बहुत है। दुर्योधन बोला वारणावत में यदि वो जीवित बच भी गये है तो अब उनकी प्रत्यक्ष हत्या का प्रबन्ध करे। आप चाहे तो किसी को काम्पिल्य भेजकर उनकी हत्या करवायी जा

सकती है। यदि यह सम्भव न हो तो सेना सज्जित कर काम्पिल्य पर आक्रमण किया जाये या फिर कुरु साम्राज्य के मार्ग में ही उनका वध करवा दिया जाये। हस्तिनापुर की रक्षा व्यवस्था ऐसी कर दी जाये कि नगर में प्रवेश करते ही उनका वध हो जाये। धृतराष्ट्र बोला वे मेरे अनुज के पुत्र है और मुझे वे अपने पुत्रों के समान प्रिय है। मैं उनके वध का आदेश कैसे दे सकता हूं ? यह उचित नहीं है। दुर्योधन आवेश में बोला लेकिन अब मैं और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। हस्तिनापुर में उनके प्रवेश करते ही परिस्थितियां वे नहीं रहेगी जो हम चाहते है। धृतराष्ट्र बोला मैं राजसभा में जन प्रतिनिधियों को क्या उत्तर दूंगा। दुर्योधन बोला राजसभा में किसी को उत्तर मांगने का अधिकार ही क्या है ? क्या राजा की इच्छा सर्वोपरि नहीं है ? धृतराष्ट्र बोला नहीं पुत्र। यद्यपि प्रत्येक राजा चाहता यही है कि राजा की इच्छा सर्वोपरि हो पर जन समुदाय की इच्छा के साथ ही उसे अपनी इच्छा मिलानी पडती है। दुर्योधन बोला आप जनसमुदाय से स्पष्ट शब्दों में यह क्यों नहीं कह सकते कि आप कुरु साम्राज्य के सम्राट हैं और मैं युवराज। कुन्ती के पुत्र हमारे शत्रु हैं, वे हमसे राज्य छीनना चाहते हैं ऐसे में क्या हमारा अधिकार नहीं बनता कि हम अपने शत्रुओं का वध करें। धृतराष्ट्र बोला स्थिति इतनी सरल नहीं है पुत्र जितनी तुम समझ रहे हो। मैं पांडु के स्थान पर उसका प्रतिनिधि बन राजा बना और तुम युवराज इसलिये बनाये गये क्योंकि यह मान लिया गया कि पांडव अब जीवित नहीं है। अब जब कि पांडव जीवित है तो सभा में यह प्रश्न उठेगा कि शासन का वास्तविक अधिकार किसका है ? दुर्योधन बोला हमें सर्वाधिकार सम्पन्न पूर्णत: स्वतन्त्र राजा बनना है जिसे स्वेच्छा से कोई भी निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और पूरी सभा का कार्य मात्र राजा का अनुमोदन करना हो। दुर्योधन के हाथ में आये अधिकार, धन सम्पत्ति राज्य और सेना को मैं कोई सरलता सुविधा से छोड देने वाला नहीं। मेरे मार्ग में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को उसका मूल्य चुकाना पडेगा। अब मैं देखता हूं कि कौन क्या करता है ? न मैं अब अपनी इच्छाओं का दमन करूंगा और न ही उन्हे छिपाने का प्रयत्न। सब लोग यह भी जान ले कि मैं अपनी आकांक्षा पूरी करने के लिये कोई कसर उठा नहीं रखूंगा। यह कह कर बाल हठ से दुर्योधन आवेश में आकर चला गया।

धृतराष्ट्र जानता था कि दुर्योधन की क्या इच्छा है। उसकी अपनी इच्छा भी दुर्योधन से तनिक भी भिन्न नहीं थी किन्तु धृतराष्ट्र को लग रहा था कि शकुनि के साथ रहकर भी दुर्योधन ने तनिक भी राजनीति नहीं सीखी। राजा के लिये आवश्यक है कि उसका प्रत्येक कृत्य, आदेश, संकल्प और सिद्धान्त न्याय संगत प्रतीत हो। उसकी स्वेच्छा और स्वार्थ का भी कहीं हल्का सा आभास भी न हो। वह धर्म तथा न्याय की औचित्य साक्षात प्रतिमा दिखाई पडे तभी तो जन समुदाय, सैनिकों और बुद्धि जीविकों का समर्थन उसे प्राप्त होगा। अपनी यह छवि बनाये रखने के लिये उसे सभाओं, मन्त्रीपरिषद, ऋषियों व सन्तो की सभाओं इत्यादि का आयोजन करते रहना चाहिये। किन्तु दुर्योधन कदाचित नये युग का राजनीतिज्ञ है उसकी राजनीति मात्र लोभ और भय पर चलती है किन्तु वह यह नहीं जानता कि ये दोनों तत्व निकृष्ट और सामान्य प्रकृति के लोगों के उपकरण है। सात्विक और श्रेष्ठ पुरुष इनसे प्रभावित नहीं होते। लोभ और भय का उनको समर्थन नहीं मिलता। सात्विक प्रवृति के लोग तो उनके पास भी नहीं जाते। ऐसे में राजनीति निर्वस्त्र हो जाती है सर्वथा नग्न। उसे समाज का बहुमत नहीं मिलता। दुर्वृतों का संगठन बनता है और देश में मात्र दमन चक्र और शोषण की चक्की चलती है उससे राजा शान्त चित्त से राज्य के भोगों को भोग नहीं पाता। स्वर्ण के आभूषण शरीर पर धारण कर हम सुखी न हों तो और सदा चोर, डाकुओं से उसका छीन जाने का भय बना रहे तो उस स्वर्ण से क्या लाभ ? दुर्योधन अपने हठ के आगे यह सब कुछ सोचता नहीं है। धृतराष्ट्र उसे इस प्रकार सारे देश से अन्धे की तरह टक्कर नहीं मारने देगा जिससे उसे दुर्योधन का हित दिखाई न दे।

कर्ण अपने कक्ष में निराश और उदासीन झुंझलाया सा बैठा हुआ है उसी समय दुर्योधन उसके कक्ष में आता है। कर्ण बोला इस समय मित्र ? दुर्योधन बोला पूछ क्यों रहे हो मित्र ? यदि मैं तुम्हें नहीं कहीं मिला तो तुम्हारे हृदय में अवश्य मिलूंगा। कर्ण बोला तो सुनलो मित्र मेरा हृदय तुम्हारे राज्य का वो भाग है जिसे तुम कभी हार नहीं सकते। दुर्योधन बोला हार जीत की बात

किसलिये कर रहे हो मित्र ? तुम्हारे जैसे मित्र के होते इस सीमा का सूई की नोक जितना भाग भी कोई नहीं ले सकता। परन्तु तुम्हारे मुख मंडल पर क्रोध की लकीरों से जो कुछ भी लिखा है वो मुझसे पढा नहीं जा रहा है। कर्ण बोला मैं गान्धार नरेश शकुनि से क्रोधित हूं। दुशासन बोला क्यों किसलिये ? मामाश्री ने क्या किया ? कर्ण ने कहा उन्होने हमें पांडवों से आंख मिलाने योग्य भी नहीं छोडा। संसार को चाहे पता चले या ना चले पर पांडवों को यह अवश्य पता चल गया कि वारणावत में उन्हे जलाने का षडयन्त्र रचा गया था। वे कोई मूर्ख नहीं है जो यह नहीं समझ सकते कि वो सामने से आघात करने पर हां नही कहेंगे। पर तुम फिर उनके कहने में आकर कायरों जैसा कार्य करने में हां कर दोगे। मित्र दुर्योधन तुम महावीर हो, परमवीर हो, श्रेष्ठ गदाधारी हो परन्तु तुम्हें अपनी भुजाओं के बल और अपनी गदा से अधिक भरोसा है अपने मामाश्री के षडयन्त्रों पर। दुर्योधन बोला जब तुम यह सब कहते हो तो यह ठीक लगता है किन्तु जब मामाश्री बोलना आरम्भ करते है तो लगता है वो जो कुछ कह कहते है उसके अतिरिक्त तो कुछ और हो ही नहीं सकता तब मैं विवश हो जाता हूं। दुशासन बोला परन्तु हमें इस पर विचार और गौर करना चाहिये कि पांचो भाई व छोटी मां कुन्ती समेत वो बच कैसे गये ? दुर्योधन बोला क्योंकि भूतपूर्व सेनापति का अंगरक्षक मामाश्री के भरोसे का था। कर्ण बोला निष्ठा और अनिष्ठा को अलग करनेवाली रेखा तो बहुत पतली होती है मित्र बिक गया होगा अनिष्ठा के हाथ। दुर्योधन बोला नहीं मामाश्री बिकनेवालों के ऊपर तो भरोसा नहीं करते परन्तु दुशासन का यह प्रश्न उत्तर की मांग अवश्य करता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि मामाश्री का ध्यान अब तक इस प्रश्न पर आया क्यों नहीं।

शकुनि अपने कक्ष में बैठा चौसर पर पांसें फेंक रहा है और विचार रहा है इतने में ही लाक्षागृह पर नियुक्त अंगरक्षक सेनापति आता है आकर उसने गान्धार नरेश शकुनि को प्रणाम किया। शकुनि बोला आओ भक्त तुमने मेरी बडी सेवा की है और सबसे बडी सेवा तो यह कि मेरे ही कारण गान्धार त्याग कर हस्तिनापुर में पडे हो। सेनापति बोला आपकी सेवा में ही मेरा सौभाग्य है नरेश। जहां आप हो वहीं मेरे लिये गान्धार। शकुनि बोला परन्तु मैं सोचता हूं कि तुम यहां बहुत दिन रह लिये। अंगरक्षक सेनापति बोला जो आज्ञा नरेश। मैं कल ही गान्धार के लिये प्रस्थान कर जाऊंगा। शकुनि बोला नहीं भक्त कल नहीं। आज और इसी वक्त परन्तु गान्धार की ओर नहीं। लाक्षागृह की आग से निकलने वाले सात पंजर किसके थे ? सेनापति बोला वो पांचो पांडव और महारानी कुन्ती तथा... शकुनि बोला महारानी कुन्ती समेत पांचो पांडव काम्पिल्य में है। वो जीवित भी हैं और स्वस्थ भी। तुम्हे झूठ नहीं बोलना चाहिये भक्त पता है राजनीति में एक भी झूठ पकडा जाये तो सारा बना बनाया खेल बिगड जाता है। तुम्हे क्या दंड मिलना चाहिये भक्त ? अंगरक्षक बोला इस अपराध का तो एक ही दंड है वह है मृत्युदंड। शकुनि ने कहा मेरे भी ध्यान में यही था। शकुनि ने दासी को आज्ञा दी कि सोमरस ले आओ। दासी एक कटोरे में रस लेकर आयी और शकुनि ने अपने जेब में से जहर निकाल कर उसमें मिलाया और अंग रक्षक से कहा इसे पीओ। यदि तुम मेरे इतने प्रिय नहीं होते तो मैं तुम्हारे लिये इतनी आसान मृत्यु सोचता भी नहीं। यह सहज मृत्यु तुम्हारी निष्ठा के लिये मेरी ओर से तुम्हे उपहार है भक्त हां और यदि यमलोक में तुम्हारी भेट कदाचित मेरे पिताश्री से हो जाये तो उन्हे यह कहना मत भूलना गान्धारी पर हो जानेवाले अन्याय के लिये शकुनि ने हस्तिनापुर को क्षमा नहीं किया। अब यमलोक की ओर प्रस्थान करो भक्त। अंगरक्षक बोला जो आज्ञा नरेश। और उसने वह विष मिश्रित रस पी लिया। उसे चक्कर आने लगे पेट में जोरों का दर्द उठने लगा उसने पूछा बैठने की आज्ञा दें नरेश। शकुनि बोला अवश्य यह तो तुम्हारा अधिकार है भक्त और मैं तुम्हें तुम्हारे किसी भी अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता। अधिकार तो सिर्फ युधिष्ठिर को नहीं मिलेगा। अंगरक्षक सेनापति मर जाता है।

द्रुपद की राजसभा लगी हुई है उसमें धृष्टद्युम्न, द्रुपद, शिखंडी, बलराम व श्रीकृष्ण तथा पांचो पांडव बैठे हुये हैं विचार विमर्श किया जा रहा है। श्रीकृष्ण ने पूछा तो फिर क्या निर्णय लिया युवराज युधिष्ठिर। युधिष्ठिर ने कहा युद्ध मैं नहीं चाहता। कृष्ण बोले युद्ध तो मैं भी नहीं चाहता और न ही मैं युद्ध का प्रश्न उठा रहा हूं। मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि जब समाचार फैल चुका

है कि आप लोग जीवित हैं इसलिये आवश्यक है वो अपना अधिकार मांगे। अपना अधिकार मांगना मनुष्य का कर्तव्य है और यदि आप लोगों ने ऐसा नहीं किया तो एक ओर आपति भी खडी हो सकती है। दुर्योधन यह कह सकता है कि हस्तिनापुर न आने के कारण आप लोगों ने अपने सारे अधिकार खो दिये। बलराम बोले परन्तु दुर्योधन एक वीर पुरुष है और वो ऐसा क्यों करेगा? कृष्ण बोले स्वार्थ दाऊ केवल स्वार्थ। द्रुपद बोले वासुदेव ठीक कह रहे है युधिष्ठिर। राजमुकुट वस्तु ही ऐसी है। द्रोण जैसे आचार्य के आदि शक्ति के पांव भी जिसके लिये डिग जाते है। न तो केवल पांचालों की सेनायें बल्कि मित्रों की सेनायें भी तुम्हारे साथ है पांडवराज। तुम जब चाहो तुम्हारे ध्वज के नीचे ये सेनायें हस्तिनापुर चलने को प्रस्तुत रहेगी। कृष्ण बोला नहीं पांचाल नरेश नहीं। अधिकार मांगने के लिये सेना से अधिक आत्मविश्वास की आवश्यकता है सेनाओं की यात्रा की उडनेवाली धूल अधिकारों के प्रश्न को ढक लेगी। लोग कहेंगे कि युधिष्ठिर ने अपने ज्येष्ठ तातश्री पर आक्रमण किया और उन्हे भी अपनी रक्षा और हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये रणभूमि में आना पडा। अभी सत्य पांडवों के पक्ष में है। पांडवों के शिबिर में सत्य के ध्वज को लहराने दीजिये क्योंकि अन्त में विजय सत्य की ही होती है। यदि रणभूमि में आना ही है तो वे लोग आये। पांडवों पर आक्रमण करने का आरोप नहीं। धृष्टद्युम्न बोला युद्ध नीति तो यह नहीं कहती। वो तो कहती है वार पहले करना चाहिये। कृष्ण बोला ठीक कह रहे हो परन्तु मैं तो युद्ध की बात ही नहीं कर रहा हूं। मैं तो शान्ति की बात कर रहा हूं युवराज। धृष्टद्युम्न बोला यदि आज आप युवराज के स्थान पर रहे होते तो और आपके चारों भाई और आपकी माता सहित लाक्षागृह में जलाकर भस्म कर देने का षडयन्त्र रचा गया होता तो आप क्या करते ? कृष्ण बोला तुम मुझसे चार भाइयों की बात कह रहे हो युवराज मेरे तो छ: भाइयों की हत्या कर दी गई थी। मेरे माता-पिता तो कारागार के अन्धकार में वर्षों तक की गिनती भूल गये थे फिर भी उन्होने मामा कंस पर आक्रमण नहीं किया। जब उन्होने मुझे बुलवाया तब मैं नन्दगांव से मथुरा गया। इतने में भीम बोल उठा तो क्या हम लोग बैठे बेठे निमन्त्रण की प्रतीक्षा करते रहें ? कृष्ण ने उत्तर दिया तो आप ही बताइये फिर आप लोग चाहते क्या हैं ? भीम बोला पहिले तो मैं उस दुर्योधन को पटक पटक कर मारूंगा। बलराम बोला यह मझला तो सदा वीरों की भाषा ही बोलता है। इतने में द्वारपाल ने आकर सूचना दी महाराज की जय हो। हस्तिनापुर नरेश के दूत बनकर महामन्त्री विदुर पधारे हैं। वो आपके दर्शनों के अभिलाषी है। द्रुपद बोले पुत्र धृष्टद्युम्न महामन्त्री विदुर को हमारे विशेष अतिथि गृह में ठहराओ और उनसे कहो पहिले यात्रा की थकान दूर करे। कल अवश्य भेंट होगी। धृष्टद्युम्न बोला जी पिताश्री। बलराम बोले क्या तुम जानते थे कि विदुर आनेवाले है ? कृष्ण बोला यह तो आप भी जानते होंगे दाऊ। क्योंकि इसके अतिरिक्त महाराज धृतराष्ट्र और कर भी क्या सकते थे ? उन्होने तो दुर्योधन को भेजना चाहा होगा परन्तु उसके पास अभिमान अधिक है और समझ कम। युधिष्ठिर बोला आज्ञा हो तो हम काकाश्री को प्रणाम कर आवे। कृष्ण बोला नहीं। आज वे काकाश्री नहीं है। आज वे हस्तिनापुर नरेश के दूत हैं इसलिये यही उचित होगा की सबके सामने मिला जाये ताकि जो कुछ सब सुन सके कि उन्होने क्या कहा और तुमने क्या उत्तर दिया। यह कुधारणाओं से बचने के दिन हैं युवराज।

पांचो भाई और द्रौपदी सब लोग आपस में बैठे चर्चा कर रहे हैं। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा क्या आप समझते है कि दुर्योधन हस्तिनापुर का राज्य आपको थाली में सजाकर देनेवाला है आर्यपुत्र ? युधिष्ठिर ने कहा उससे ऐसी अपेक्षा तो नहीं की जा सकती कल्याणी। द्रौपदी बोली तो फिर स्वेच्छा से तो वह आपको अपना अधिकार देगा नहीं और उसके लिये आप युद्ध करना नहीं चाहते तो फिर आप राज्य कैसे प्राप्त करेंगे ? आप क्षत्रिय होकर युद्ध से मुंहमोड रहे है ? युधिष्ठिर ने अपने को संयमचित्त कर कहा नहीं देवी मैं युद्ध से मुंह नहीं मोड रहा हूं। मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि मैं स्वजनों से युद्ध नहीं करना चाहता। भीम हंसकर बोला स्वजन कौन हैं? जिन्होने हमारा सर्वस्व छीन लिया, हमारी हत्या का प्रयत्न किया और अब हमारा राज्य छीनकर बैठे हैं वे ही हमारे स्वजन है तो फिर हम शत्रु किसे कहेंगे ? युधिष्ठिर बोला भीम। क्या पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, अश्वत्थामा, तातश्री धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र हमारे स्वजन नहीं है। द्रौपदी बोली स्वजन तथा पर जन की परिभाषा

इतनी कठिन तो नहीं है आर्यपुत्र। रक्त सम्बन्ध से स्वजन तो लोग अवश्य होते हैं परन्तु क्या अपने व्यवहार से पर जन नहीं हो जाते ? जो लोग आपका स्वत्व छीन लेते है उनसे युद्ध तो करना ही होता है। वासुदेव कृष्ण से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी उनसे बढकर हमारा आत्मीय और स्वजन कोई दूसरा नहीं है। युधिष्ठिर बोला ठीक है पांचाली किंतु राज्य कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं जिसके लिये रक्त पात किया जाये और वह भी अपने रिश्ते नाते सम्बधियों से। मानव जीवन का लक्ष्य कोई राज्य पाना तो नहीं है ? भीम बोला मानव जीवन का लक्ष्य मात्र राज्य नहीं है परन्तु अपने अधिकारों की रक्षा करना तो उसका धर्म है। क्या आप अपने धर्म पथपर नहीं चलेंगे धर्मराज ? युधिष्ठिर बोला ठीक है भीम। हमें अपने अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये परन्तु यदि इस समय दुर्योधन अपनी दुर्बुधि से हठ पर अडा हुआ है तो क्या हम थोडा धैर्य नहीं रख सकते ? उसकी दुर्बुद्धि के कारण सम्पूर्ण कौरव वंश का नाश तो नहीं कर सकते ? द्रौपदी ने कहा नहीं। कौरववंश का नाश क्यों करे ? दुर्योधन की दुर्बुधि के लिये तो उसे पुरस्कृत करें। उसे अपना कुरुओं का साम्राज्य दे दें क्योंकि वह तो विवेक, धर्म और न्याय कुछ भी नहीं समझता। आप तो धर्म के बहुत बडे प्रकांड विद्वान और अच्छे व्याख्याता हैं महाराज। अर्जुन द्रौपदी के इस व्यंग को समझकर पहली बार बोला कृष्णा धर्म, न्याय और अधिकारों की बात ठीक ही है किन्तु ज्येष्ठ भ्राताश्री की भावनाओं को समझने का प्रयत्न करो। द्रौपदी बोली भावना दोष नहीं है, भावुकता दोष है जो विवेक को आच्छादित कर दे और व्यक्ति को कर्म से विचलित कर दे। वह दोष है। अर्जुन बोला रजोगुण के तराजू पर सतोगुण मूर्खता का पर्याय ही सिद्ध होता है किन्तु मनुष्य में कुछ दैवीय गुण भी होते है जो सांसारिक राग द्वेष के कारण विचलित नहीं होते। धर्मराज के चरित्र में भी उन दैवीय गुणों को समझने का प्रयत्न करो। उनके स्तर से ऊपर उठकर देखोगी तो तुम्हे धर्मराज का चरित्र कुछ और ही दिखाई देगा। उनका द्वन्द समझकर ही कोई समस्या का समाधान हो सकता है। मझले भैया के साथ मिलकर उनका परिहास करोगी तो समस्या सुलझेगी नहीं। द्रौपदी ने कहा धर्मराज का द्वन्द अपने स्थान पर है सव्यसाची किन्तु द्वन्द तो हम सबके है। अर्जुन शान्त स्वर में बोला इसीलिये तो वे धैर्यपूर्वक, विवेक से उसका समाधान खोज रहे है पांचाली। युद्ध से तो हम सभी घृणा करते हैं किन्तु युद्ध ही हमारा व्यवसाय, धर्म और बल भी है। धर्मराज अभी तक युद्ध की अनिवार्यता से सहमत नहीं है। अनुशासन की प्रतिक्रिया में प्राय: विद्रोह जागता है। युधिष्ठिर बोला अच्छा तुम लोग बैठो मैं माता को मिलकर आता हूं। द्रौपदी बोली क्या आर्यपुत्र मुझसे रूष्ट होकर जा रहे हैं? युधिष्ठिर मुस्कुराकर बोला नहीं प्रिये जो कभी दुर्योधन से रूष्ट नहीं हुआ वो भला तुमसे कैसे रूष्ट होगा ? युधिष्ठिर विचार विमर्श करने के लिये माता कुन्ती के पास चला गया।

युधिष्ठिर के कथन में कभी असत्य तो होता ही नहीं। युधिष्ठिर का वचन तो सत्य का पर्याय है। द्रौपदी के मन में युधिष्ठिर का स्थान और सम्मान बढ गया। द्रुपद ने अपनी सन्तानों को यही सिखलाया था कि कष्ट, दु:ख, समस्या, संकट, द्वन्द इत्यादि को टालने के लिये कभी असत्य का अवलम्ब मत लेना। सत्य का सामना करो। सत्य से व्यक्ति दुर्बल नहीं होता वह तो सत्य से पुष्ट होता है। सत्य उसे बल देता है तथा बल संकट का मुंह मोड सकता है और उसे सहन करने की क्षमता भी देता है।

युधिष्ठिर माता के कक्ष में आया और माता का चरण वन्दन किया। माता बोली आओ बैठो पुत्र। मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रही थी। युधिष्ठिर बोला क्या तुम जानती थी कि मैं तुम्हारे पास आऊंगा। कुन्ती बोली अभी तुम्हारा मन मेरे लिये अबूझ नहीं है पुत्र। द्वन्द की स्थिति में अभी तुम्हें अपनी पत्नी के पास जाने का अभ्यास नहीं है पुत्र तो तुम माता के पास ही आओगे। तुम लोगों ने तो अब तक माता को ही जाना है पुत्र नारी को नहीं। तुमने विवाह अभी किया है अभी तुम्हारा नारी से सम्पर्क हुआ है इसलिये धीरे धीरे क्रमश: ही नारी को जान पाओगे। किन्तु इतना बता देना चाहती हूं पुत्र कि नारी को कभी मां समझने की भूल मत करना। युधिष्ठिर बोला नारी ही तो मां होती है। कुन्ती बोली ना पुत्र। एक शरीर में रहते हुये भी नारी मां नहीं होती। मां की दृष्टि में क्षमा होती है, मन में पुत्र के प्रति वात्सल्य होता है और दान से हाथ ऊपर उठा होता है जब कि वही मां नारी रूप में उसकी दृष्टि में निषेध और आलोचना होती है। मन में कामना होती है और हाथ याचना से फैला होता है। मां समर्पण का

सात्विक जीवन जीती है, वह अल्प सन्तोषी है, सीधी सादी और सरल जब कि नारी समर्पित होती नहीं, समर्पण मांगती है। वह कभी सन्तुष्ट नहीं होती। सरलता का कोई तत्व उसके निर्माण में होता ही नहीं। नारी सृष्टा की एक बहुत ही जटिल रचना है उसकी थाह पाना अत्यन्त कठिन है। कुन्ती मुस्कुरायी और बोली मैं तुम्हारी माता हूं। मैंने तुम लोगों को पुत्र के रूप में देखा है पुरुष के रूप में नहीं। तुम्हारे पिता को मैने पुरुष रूप में देखा था उसके प्रति मैं भी ऐसी नहीं थी नारी रूप में थी। इसीलिये कह रही हूं कि पुत्र नारी को समझने का प्रयत्न करो। और पांचाली को प्रसन्न रखो। युधिष्ठिर बोला तो पांचाली को प्रसन्न रखने के लिये हमें क्या करना होगा ? कुन्ती बोली राज्य अर्जित करो पुत्र। जीवन से जुझो अपना पौरुष दिखाओ। नारी को अपने पुरुष का मात्र अर्जन प्रिय होता है विसर्जन नहीं। नारी को जीवन से जूझता पुरुष सदा ही कमनीय लगता है। उसे भयभीत होता पुरुष या उसकी उपेक्षा करने वाला पुरुष कभी नहीं। मां अपने असमर्थ, पराजित और दुर्बल पुत्र को भी आगे बढकर अपने आंचल में समेट लेती है और कभी उसका विरोध नहीं करती किन्तु नारी अपने पुरुष को न असमर्थ देखना चाहती है, न पराजित और न ही दुर्बल। मैंने भी तो तुम्हारे पिताश्री द्वारा संसार त्यागने का समर्थन नहीं किया था और उनकी तपस्या को साधना में परिवर्तित किया था ताकि वे अपनी सांसारिक इच्छाओं की सिद्धि कर सके। नारी को ठीक से समझना पुत्र कि उसे क्या चाहिये? पांचाली को तुम्हारी समृद्धि और गौरव से प्रसन्नता होगी। पुरुष का गौरव बढने पर दुर्बलता विधाता ने उसमें बनाई है। युधिष्ठिर बोला लेकिन मैंने तो कभी ऐसी पत्नी की कामना नहीं की थी। कुन्ती बोली तुम्हारी इच्छा कोई सर्वोपरि नहीं होती। तुम्हारी इच्छा अथवा अनिच्छा से प्रकृति के नियम तो नहीं बदल जाते पुत्र। युधिष्ठिर बोला तो फिर पांचाली के मन में क्या इतनी सब चीजों का लोभ है? कुन्ती बोली मैं पांचाली की बात नहीं कर रही हूं मैं तो हर नारी मात्र की बात कर रही हूं। उसमें से पांचाली कोई अपवाद तो नहीं हो सकती और न स्वयं मैं तुम्हारी मां कुन्ती। युधिष्ठिर ने पूछा लोभ होना तो कोई सद्गुण नहीं है। कुन्ती बोली ठीक कहते हो पुत्र लोभ होना कोई सद्गुण नहीं किन्तु नारी जीवन की सुख समृद्धि के प्रति ललक लोभ नहीं है वह तो नारी प्रकृति में लालसा रहती ही है। नारी जीवन में रूप और गन्ध का जो महत्व है उसके लिये नारी दोषी नहीं है यही तो नारी को प्रकृति की देन है। वैसी भी नारी प्रकृति का रूप है। वह जीवन में पुष्पित और पल्लवित होना चाहती है। हर नारी के जीवन में रूप, रस, गन्ध सब के लिये ललक होती है। जैसे प्रकृति मदमाती और इठलाती है वैसे ही नारी भी होती है। उसके शरीर की संरचना पुरुष में भिन्न होती है। वैसे ही नारी मन की संरचना पुरुष मन से मेल नहीं खाती। युधिष्ठिर ने पूछा क्या नारी कभी सन्तुष्ट नहीं होती ? क्या उसका मन जीवन की भोग से तृप्त नहीं होता ? कुन्ती बोली नहीं पुत्र। शरीर की बाध्यता ही यदि उसे असमर्थ कर दे तो कर दे किन्तु उसकी कामना कभी पूर्ण नहीं होती। चाहे उसके पास आभूषणों के कितने ही भंडार भरे पडे हो तो भी उसे एक और आभूषण या नया वस्त्र दोगे तो वह इतने आल्हाद से खिल उठती है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बदले में वह इतना प्रेम उंडेल देगी जिसकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। नारी स्वर्ण तथा बहुमूल्य मणिमाणिक्य रत्नों से लदी होगी फिर भी उसे लाकर एक और स्वर्ण कंगन मिल जाये यह कामना उसे अतृप्त बनाये रखती है। यह नारी का सहजरूप है यह नारी का दोष नहीं है। युधिष्ठिर बोला परन्तु मां पांचाली विदुषी है, शास्त्राज्ञा है, बौद्धिक क्षेत्र में उसकी गति है। वह जीवन के अर्थ को समझती है तो क्या फिर भी उसके मन में वस्त्राभूषण की कामना बनी रहेगी ? कुन्ती बोली जीवन के स्वाद के प्रति नारी के मन में ग्लानि का भाव कभी नहीं है पुत्र जैसा कि बौद्धिक पुरुष में होता है। इसलिये चाहे द्रौपदी कितनी भी शास्त्रज्ञा, तत्वज्ञानी हो उसके नारी गुणों को कभी नष्ट नहीं कर सकता। तुम उसे भौतिक, शारीरिक समृद्धि से प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। तुम उसे त्यागपूर्ण उदात्त जीवन की परिकल्पनाओं से समझाने का प्रयत्न मत करो पुत्र। युधिष्ठिर ने पूछा क्या नारी अपने पुरुष के लिये माता समान नहीं हो सकती। कुन्ती ने कहा केवल क्षणिक रूप में कुछ समय के लिये पर स्थायी रूप से कभी सम्भव नहीं। पुरुष की दृष्टि पडते ही वह नारी बन जाती है। न पुरुष उसके लिये कभी पुत्र हो पायेगा और न नारी

ही कभी उसके लिये मां की अदाकारी कर पायेगी। मां का उत्तर सुनकर युधिष्ठिर मौन हो गया जैसे उसके सारे प्रश्न समाप्त हो गये। फिर भी युधिष्ठिर का मन शान्त और सन्तोष नहीं हुआ।

कुन्ती पुन: बोली पुत्र तुम्हे एक बात और बताती हूं तुम्हे मैंने धर्मराज माना है। धर्म का दूसरा नाम है यम। यम का अर्थ मृत्यु फिर तू इतना कोमल क्यों है ? तेरा हृदय करूणा से इस प्रकार विगलित क्यों हो जाता है? तू यम के समान कठोर नहीं बनेगा तो धर्म का पालन कैसे कर पायेगा। अधर्म का निष्कासन नहीं होगा। अधर्म के लिये तू कराल काल भी नहीं बनना चाहता, दुष्टों का संहार भी नहीं करेगा तो फिर संसार में धर्म की स्थापना कैसे होगी ? मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि तुम लोग समर्थ हो जाओ और अपने पिता के अधिकारों को वंचित करनेवाले दुष्टों का दलन करो। आततायियों को उनके पाप का दंड दो और जब अवसर आया है तो तुम कह रहे हो कि मैं युद्ध नहीं करना चाहता क्योंकि वे स्वजन है। जब तक भाइयों का साथ होता है वह सबसे समर्थ सम्बल होता है और जैसे ही वह भाई भाई से पृथक होता है तो भाई के समान प्रबल कोई शत्रु नहीं होता है। अपने शत्रुओं को पहचानो पुत्र और अपनी पत्नी, अपने भाइयों और अपनी माता का पालन करो। अपने अधिकारों के लिये युद्ध करना वीरता का लक्षण है कोई नृशंसता का प्रमाण नहीं। आज तक विश्व में जितने भी युद्ध लडे गये है वह धन सम्पति, और नारी को केन्द्रित कर ही हुये है। युधिष्ठिर बोला तुम ठीक कहती हो मां मैं समझ गया मुझे अब पुरुष बनना पडेगा।

काम्पिल्य में गंगा तट पर एक सुन्दर स्थल पर महर्षि वेदव्यास ने अपना अस्थायी आश्रम स्थापित किया था। युधिष्ठिर महर्षि वेदव्यास के पास आये चरण स्पर्श कर प्रणाम कर उनके पास बैठ गये। वेदव्यास ने पूछा क्या बात है युधिष्ठिर कुछ उद्विग्न से दिख रहे हो ? युधिष्ठिर बोला पूज्यवर मैं बहुत संकट में हूं ? महर्षि बोले नहीं पुत्र यह तुम्हारा पुत्र है। ये दिन तो अब तुम्हारे संकट कटने के है, होने के नहीं। युधिष्ठिर ने कहा भौतिक संकट कट गये परन्तु मानसिक संकट बढा है। महर्षि बोले तुम्हे संकट नहीं असंमजस है, द्वन्द है, और असंमजस से बडा संकट किसी चिन्तनशील प्राणी के क्या हो सकता है? युधिष्ठिर बोला मैं इस असमंजस में हूं कि अधिकार के लिये लडना श्रेयस्कर है या उसका त्याग ? वेद व्यास बोले अधिकार के लिये लडना सदा श्रेयस्कर है, त्याग देने के पश्चात तो अधिकार रह ही नहीं जाता। युधिष्ठिर ने अधिक स्पष्ट कर कहा पितामह भीष्म ने राज्य का त्याग किया और दुर्योधन ने उसी राज्य के ग्रहण के लिये संसार के समस्त कुकर्म करने को कोई कसर नहीं छोडी। मैं उस राज्य के लिये स्वजनों का रक्त बहाना नहीं चाहता फिर मेरे लिये कौनसा मार्ग श्रेयस्कर है ? महर्षि हंसकर बोले तो पौत्र अब पितामह के मार्ग पर चलना चाहता है। युधिष्ठिर जब तक केंचुली सर्प के शरीर पर होती है तब तक सर्प की उसमें पूर्ण आसक्ति होती है और जब वह उसे त्याग देता है तब वह पलट कर भी उसकी ओर नहीं देखता। यदि सर्प केंचुली को अपने शरीर पर ढोते रहेगा और उसकी रक्षा नहीं करेगा तो कष्ट पायेगा और उस केंचुली का त्याग कर उसकी रक्षा का प्रयत्न करेगा तो व्यर्थ मूढता करेगा। यदि केंचुली शरीर पर है तो उसकी रक्षा के लिये आवश्यकता पडने पर वह दूसरों को डंक भी मारता है। यदि दूसरों को दंशित नहीं करना चाहते हो तो फिर केंचुली को शरीर पर से त्यागना ही होगा। आसक्ति के रहते संघर्ष छोड देना या तो कायरता है अथवा असामर्थ्य। आसक्ति के रहते हुये त्याग का भ्रम पालना अपने अहंकार को स्फीत करना है। कामना से बडा शत्रु है अहंकार। कामना तो सहज मानवीय भावना है वह संयत रहे तो सुख भी देती है परन्तु अहंकार तो विषैला नाग है वह अपने विष से न जाने कितने लोगों को पीडित और आहत करता है। यदि तुम्हारे मन में राज्य की कामना है तो वत्स कर्म करो। कर्म का स्वरूप प्रयत्नमय भी हो सकता है और संघर्षपूर्ण भी। सिर्फ याचक बनकर तुम राज्य की अपनी कामना पूर्ण नहीं कर सकते। तुम्हारे मन में राज्य की कामना है और त्यागी होने का भ्रम पाल रहे हो तो सिवाय अपने अहंकार को पुष्ट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे हो। जीवन की अनिवार्य हिंसा नृशंसता की कोटि में नहीं आती। युधिष्ठिर बोला यदि मैं भी संघर्ष करू तो मुझ में और दुर्योधन में फिर क्या अन्तर रहा ?

महर्षि व्यास बोले दुर्योधन ने दस्यु वृत्ति अपनायी है। वह दूसरों की सम्पत्ति छीनने के लिये उनका वध कर रहा है और तुम अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये उससे अनिवार्य संघर्ष करने में भी संकोच कर रहे हो। मनुष्य के रक्त से अधिक तो कुछ मूल्यवान इस संसार में कुछ है ही नहीं। इसलिये उसकी रक्षा के लिये संघर्ष आवश्यक है। यदि तुम संघर्ष नहीं करोगे तो सम्भव है कि कहीं और अधिक मानव रक्त बहे जितना बहाने से तुम भयभीत हो रहे हो। तुम्हारा संघर्ष न करना दुर्योधन की नृशंसता की वृद्धि करेगा। प्रतिरोध न होनेपर वह अधिक रक्त बहाने की क्षमता रखता है।

व्यास बोले भीष्म जैसा त्याग तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है। तुम मात्र अपनी ओर से त्याग कर सकते हो जैसा भीष्म ने किया था किन्तु यह संघर्ष सिर्फ तुम्हारे अकेले का नहीं है, पांडवों का है। तुम्हे क्या अधिकार है कि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के जीवन का सुख स्वप्न दांव पर लगा दो, उनकी सम्पत्ति दुर्योधन को दे दो और अपने भाइयों तथा माता कुन्ती को दुर्योधन के हाथों मरने को असुरक्षित छोड दो। तुम विवाहित हो तुम्हारी पत्नी है और भविष्य में संतान होगी। हस्तिनापुर राज्य में उन सबका अधिकार है। तुम उन सबकी ओर से राज्य का त्याग कैसे कर सकते हो ? क्या तुमने द्रौपदी से विवाह इसलिये किया था कि उसे यह कह सको कि अब तुम्हारे पास कुछ नहीं है तो अब वनवास करोगे। नहीं युधिष्ठिर तुम अपने पितामह भीष्म के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते। तुमने गृहस्थ बसा लिया है। तुम्हे अपने भाइयों, माता और पत्नी के लिये भरण पोषण का दायित्व निभाना है। तुम त्याग के मार्ग पर नहीं चल सकते। इसलिये परिस्थितियों से बाध्य होकर तुम्हे संघर्ष करना ही होगा। युधिष्ठिर के मन का द्वन्द मिटा और बोले महर्षि वही होगा जो अनिवार्य है।

व्यास बोले युधिष्ठिर यह संघर्ष युधिष्ठिर और दुर्योधन का नहीं है। यह तो सत और असत् वृत्तियां लड रही है। यदि सद्वृत्तियां थक हारकर बैठ गई तो असद्वृत्तियां आर्यावत पर शासन करेगी। संसार में जहां कहीं कोई न्याय के पक्ष में हाथ उठाता है तो वह सम्पूर्ण सृष्टि को सात्विकता को बल देता है और संसार में व्याप्त पाप दुराचार, अनाचार के प्रतिरोध में सक्रिय योगदान करता है। जो अपने स्वार्थ से निरपेक्ष यह संघर्ष करता है वह महान है। जो अपने व्यक्तिगत कारणों से भी अन्याय का विरोध करता है वह कम सार्थक नहीं है। जब तुम राज्य प्राप्ति के लिये संघर्ष करोगे तो आर्याव्रत में प्रचलित राक्षसी तन्त्र का विरोध करोगे और प्रजा को दुर्योधन के आततायी और अत्याचारी चंगुल से बचा पाओगे। तुम्हे अपनी ओर से नहीं सद्वृत्तियों की ओर से लडना है अत: मन की ग्लानि दूर करो और संघर्ष के लिये तत्पर हो जाओ। युधिष्ठिर बोला महर्षि आपकी आज्ञा का पालन होगा।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में उद्विग्न मन से बैठा चिंतित हो सोच रहा है इतने में ही गान्धारी वहां आ जाती है और कहती है आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला इतने दबे पांव क्यों आई हो प्रिये कि मैं तुम्हारे आने की आहट भी नहीं सुन सका। गान्धारी बोली मैं तो दबे पांव नहीं आयी आर्य पुत्र परन्तु कई दिनों से अनुभव कर रही हूं कि आपका पदचाप की ओर ध्यान ही नहीं जा रहा है। पहिले तो आप अपनी हर चिन्ता मुझे बता दिया करते थे। धृतराष्ट्र बोला पर मैं चिंतित हूं। तो अपनी चिन्ता अपने आपको भी बताते हुये घबराता हूं। गान्धारी बोली छोडिये उन चिन्ताओं को। बरसों के बाद हस्तिनापुर और कुरु परिवार को एक शुभ समाचार मिला है कि प्रिय पांडवों के जीवित होने का समाचार अनेक चिन्ताओं को दूर कर देता है। धृतराष्ट्र ने कहा मेरी यह चिन्ता इस शुभ समाचार के कोख से ही जन्मी है गान्धारी। गान्धारी बोली यह आपने क्या कहा आर्यपुत्र ? क्या आप यह जानकर प्रसन्न नहीं हुये कि पांडव जीवित है ? धृतराष्ट्र बोला हां अति प्रसन्न हुआ पर चिंतित भी हूं। गान्धारी बोली फिर चिन्ता का क्या कारण ? धृतराष्ट्र बोला मेरी समस्या यही है कि गान्धारी मैं देख नहीं सकता। इसलिये मैं यह नहीं जानता कि कौन मुझसे सच बोल रहा है और कौन झूठ ? तुम अपनी आंखों की पट्टी खोल दो गान्धारी।

गान्धारी बोली नहीं आर्यपुत्र। मेरी तपस्या को भंग मत होने दीजिये। अपनी चिन्ता का कारण बताइये। धृतराष्ट्र बोला, चिन्ता का कारण है मेरा पुत्र मोह। मैं चाहता हूं कि पांडवों के साथ कहीं कोई अन्याय न हो। गान्धारी बोली अन्याय क्यों होगा

उनके साथ ? जब आपने दुर्योधन को युवराज नियुक्त किया था तब आप यही जानते थे कि पांडव अब इस संसार में नहीं है। ईश्वर की कृपा से यह समाचार असत्य निकला तो युधिष्ठिर के होते हुये दुर्योधन के युवराज होने का प्रश्न ही कहां उठता है आर्यपुत्र ? धृतराष्ट्र बोला यही है चिन्ता गान्धारी। तुम भी दुर्योधन को जानती हो और मैं भी। वो युधिष्ठिर के लिये कभी अपना स्थान रिक्त नहीं करेगा। गान्धारी बोली परन्तु वो तो उसका स्थान है ही नहीं आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला स्थान उसका है कैसे नहीं गान्धारी ? वो मेरा ज्येष्ठ पुत्र है गान्धारी। गान्धारी बोली आप अपनी मृगतृष्णा से निकल क्यों नहीं आते आर्यपुत्र ? धृतराष्ट्र बोला अब इस मृगतृष्णा से निकलने को जी नहीं चाहता गान्धारी। परन्तु अब इसके बीच का कोई मार्ग तो निकालना ही पडेगा। यदि दो युवराज चौसर के पांसे होते तो मैं भ्राता शकुनि को देकर कहता कि ये मेरे पांसे मेरी उच्चाकांक्षा की विजय के लिये फेंको गान्धार नरेश परन्तु यह परिस्थिति तो उनके भी वश का रोग नहीं है।

शकुनि अपने कक्ष में चौसर बिछाये हाथ में लिये पांसे फेककर खेल खेल रहा होता है। दुर्योधन वहाँ आता है और पूछता है क्या बात है मामाश्री। आप कुछ खोये खोये से लग रहे हो ? शकुनि बोला तुम्हारे पिताश्री का खेल तो मेरी समझ में भी नहीं आ रहा है। अरे यदि पांडवों को बुलाना ही था तो मुझे भेज देते। हां मैं कोई ऐसा उपाय सोचता कि वो यहां आते ही नहीं। परन्तु भेजा तो किसको विदुर को जिसकी नीति पहले पांडु के प्रति हुआ करती थी। अब पांडु पुत्रों के पक्ष में बोलती है। उसकी निष्ठा तो तुम्हारे लिये है ही नहीं परन्तु जीजाश्री को समझाये कौन ? दुर्योधन बोला काकाश्री विदुर पर तो पक्षपात का आरोप मैं भी नहीं लगा सकता मामाश्री। उसकी नीति ने सदा ही हमें हानि पहुंचायी है फिर भी पक्षपात मैं नहीं मान सकता। शकुनि बोला इस कुरु परिवार का सबसे बडा दोष यही है कि वो उस बात को कभी नहीं मानते जो उसके लिये लाभदायक हो। आदमी स्वयं ही अपना सबसे बडा शत्रु है। दुर्योधन भान्जे ना तो तुम नेत्रहीन हो और न ही तुमने आंखों पर पट्टी बांध रखी है इसलिये देखने का प्रयत्न करो भान्जे देखने का। पता नहीं वो दासी पुत्र काम्पिल्य में कैसे कैसे जाल फैला रहा होगा ?

विदुर द्रुपद के अतिथिगृह में है। कुन्ती विदुर से मिलने आती है। कुन्ती बोली विदुर। विदुर बोले भाभीश्री आप और प्रणाम किया। कुन्ती ने पूछा विदुर कैसे हो ? विदुर बोला यह कहना तो कठिन है भाभीश्री। हस्तिनापुर का वातावरण अनुकूल नहीं है भाभीश्री। भ्राताश्री का पुत्र मोह और राज्य की आकांक्षा हस्तिनापुर की आधार शिला को चाटते जा रहा है। दुर्योधन का अभिमान आकाश में छेद कर रहा है और भ्राताश्री पर गान्धार नरेश शकुनि की पकड दिन प्रतिदिन गहरी होती चली जा रही है। कुन्ती बोली तो फिर तुम हस्तिनापुर का निमन्त्रण लेकर क्यों मेरे पुत्रों के पास आ गये ? क्या तुम्हें उनसे प्रेम नहीं है ? विदुर बोला हस्तिनापुर में प्रेम करने योग्य है कौन ? किन्तु मेरी समस्या यह है भाभीश्री की इस दासी पुत्र को हस्तिनापुर से भी बहुत प्रेम है। आपके पुत्र तो हस्तिनापुर की आत्मा हैं। उनका जाना आवश्यक है। कुन्ती बोली मैं तुम्हारी ऋणी हूं विदुर। यदि ठीक समय पर तुमने सूचना न दी होती कि लाक्षागृह में क्या होने जा रहा है तो पांडु परिवार का तो अन्त हो गया होता और अब तुम मेरे पुत्रों को उसी बाम्बी में लौट आने को कह रहे हो जिसका नाम कुरु पूर्वजों ने हस्तिनापुर रखा है। विदुर बोला भाभीश्री आप की ममता तो ऐसी है सिंहनी के दांतों समान जो अपने शावकों को दांतों से पकडती तो है किन्तु चुभने नहीं देती। यदि आपको मुझपर पूरा भरोसा विश्वास है तो भ्राताश्री का निमन्त्रण स्वीकार कर लीजिये। हस्तिनापुर का सिंहासन तो युधिष्ठिर का ही है और आज नहीं तो कल उसी को मिलेगा। कुन्ती बोली तुम कहते हो तो मान लेती हूं विदुर। विदुर बोला तो आप मुझे आज्ञा दें कि महाराज द्रुपद से मिल आऊं। कुन्ती बोली जाओ विदुर विजयी हो।

राजा द्रुपद का दरबार लगा हुआ है द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, कृष्ण बलराम और पांचो पांडव वहां पर उपस्थित हैं। दरबार में आकर सूचना दी कि महाबुद्धिमान महा नीतिवान महाराज धृतराष्ट्र के अनुज हस्तिनापुर राज्य के महामन्त्री विदुरजी महाराज के दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं। विदुर जी राजसभा में प्रवेश करते हैं। धृष्टद्युम्न खडा होकर उन्हे प्रणाम करता है और कहता है

अहोभाग्य मेरा प्रणाम स्वीकार करें। विदुर कहते है यह तो मेरा अधिकार है युवराज। धृष्टद्युम्न बोला आप मुझे अपने आशीर्वाद से वंचित मत कीजिये आप जैसे बुद्धिजीवियों का आशीर्वाद तो बडे भाग्य से मिलता है। विदुर बोले सभी लोग अपने आतिथ्य का कहना नहीं टालते युवराज इसलिये आशीर्वाद अवश्य दूंगा। परन्तु तुम्हारे पास क्या नहीं है युवराज जिसका कि मैं तुम्हे आशीर्वाद दूं ? भगवान ने तुम्हे पांचाल नरेश जैसा पिता और द्रौपदी जैसी बुद्धिमता दिव्य जन्मा बहन, कुरु राज घराने जैसे शक्तिशाली और आदरणीय राज घराने की मित्रता मिली है तो फिर मैं क्या दूं ? धृष्टद्युम्न बोला मुझे आप जीवन लक्ष्य में सफल होने का आशीर्वाद दीजिये। विदुर बोला विधाता की योजनाओं में हस्तक्षेप करनेवाला भला मैं कौन होता हूं ? यदि यही होना है तो यही होगा और यदि यह नहीं होना है तो वह कभी नहीं होगा। द्रुपद बोला तुम इन्हे नहीं जीत सकते हो पुत्र।

आइये विदुरजी आईये। द्रुपद के भवन में आपका स्वागत है। विदुर बोला मैं हस्तिनापुर नरेश कुरु राज दरबार की ओर से शुभ कामनाओं का उपहार लाया हूं महाराज। मैं कुरुओं का एक साधारण राजदूत हूं। इस समय महाराज धृतराष्ट्र की ओर से सन्देश लेकर आया हूं। उन्होने कहलवाया है कि उन्हे पांडव पुत्र अपने पुत्रों से कम प्रिय नहीं है। उन्हे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि जिन पांडवों को वे मृत समझ चुके थे, वे अभी तक जीवित हैं। द्रुपद बोला इस उपहार ने जो मेरा सम्मान बढाया है उसका मैं आभार प्रकट करता हूं। विदुर बोला महाराज धृतराष्ट्र ने अपने आशीर्वाद के साथ साथ कुल वधू द्रौपदी के लिये उपहार भी भेजे है। कुलवधू द्रौपदी के लिये भेंट स्वरूप अनेक बहुमूल्य वस्त्राभूषण भेजे है और उन्हे स्वीकार करने की प्रार्थना की है। उन्होने कहा है कि आपके साथ इस सम्बन्ध के हो जाने से वे स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। यदि आज्ञा हो आपकी सेवा में वो उपहार उपस्थित किये जाये। द्रुपद ने स्वीकृति दी। कृपया द्वारपालों को आदेश दे कि वे मेरे अनुचरों को उपहारों के साथ यहां उपस्थित हो। हस्तिनापुर से आये अनुचरों ने उपहार लाकर प्रस्तुत किये और विदुर ने अपने हाथों उसे प्रत्येक योग्य व्यक्ति को भेंट किया।

द्रुपद बोले आप विराजिये विदुरजी। विदुर बोले अभी मेरा कार्य समाप्त नहीं हुआ महाराज। हस्तिनापुर नरेश ने अपनी कुलवधू को हस्तिनापुर आने के लिये आमंत्रित किया है। यदि आप आज्ञा दे तो मैं पांडु पुत्रों और गृहलक्ष्मी द्रौपदी को हस्तिनापुर लेकर जाऊं। महाराज धृतराष्ट्र ने कहा है कि देवी कुन्ती तथा उनके पुत्रों का काम्पिल्य निवास पर्याप्त दीर्घ काल का हो चुका है। अब उन्हे हस्तिनापुर लौटने की अनुमति दें। उनके बन्धु बांधव सभी प्रजाजन उनके जीवित बच जाने का समाचार पाकर उनसे मिलने के लिये उत्कंठित है। और वैसे भी अपने ससुराल में इतने दिनों तक निवास करना कुरुवंशियों को शोभा नहीं देता। उन्हे अपने घर लौट आना चाहिये। महाराज भी अपने अनुज पुत्रों के शीश पर उन्हे आशीर्वाद का हाथ रखने के लिये उत्सुक हैं। गांगपुत्र भीष्म कुरुवंश और पांचाल राजवंश में होनेवाले इस नाते पर अति प्रसन्न हैं। भरद्वाज पुत्र और आपके परम मित्र द्रोणाचार्य ने आपके लिये अपना स्नेह भेजा है और यह कहलवाया है कि वो निर्णय नहीं ले पा रहे है कि वो पांडु पुत्रों को अपना दामाद माने या पुत्र ? और द्रौपदी को पुत्री माने या पुत्रवधू। तो हे नरेश कुरु राजवंश इस नाते के हो जाने से इतना प्रसन्न है कि किसी बडे राज्य की सीमा को हस्तिनापुर की सीमा में मिलाने का आनन्द भी इस आनन्द की समानता नहीं कर सकता। हे नरेश इस नये मिलाप नयी मित्रता दो महान राष्ट्रों की मैत्री की प्रतीक द्रौपदी को हस्तिनापुर ले जाने की आज्ञा दें ताकि वो नगरी भी उसके शुभागमन से धन्य हो जाये। द्रुपद बोले द्रौपदी तो हस्तिनापुर की हो ही चुकी। उसे तो आप जब चाहे ले जाये किन्तु पांडु पुत्रों को तो मैं यह नहीं कह सकता। वो केवल अतिथि भी होते तो भी मैं उन्हे जाने के लिये नहीं कहता, किन्तु वो तो अतिथि होने के साथ-साथ मेरे दामाद भी हैं फिर भला मैं उन्हे जाने के लिये कैसे कह सकता हूं। द्रुपद बोले विदुरजी आपसे अधिक पांडवों का शुभ चिन्तक और कोई नहीं है इसलिये पूछता हूं कि क्या इस समय पांडवों का हस्तिनापुर लौटना उनके हित में होगा ? विदुर बोला राजन आपकी बात का तात्पर्य मैं समझता हूं फिर भी हस्तिनापुर गये बिना तो पांडवों को उनका राज्य मिल भी नहीं सकता। युद्ध से जीतना तो अन्तिम उपाय है महाराज। द्रुपद बोले विदुरजी क्या अन्तिम उपाय युद्ध का प्रयोग

करने का समय नहीं आ गया ? क्या धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों ने पांडवों को उनकी माता सहित जीवित जला देने का षडयन्त्र नहीं किया ? यदि आपने रक्षा न की होती तो पांडव जीवित बचे होते क्या ? और कौन प्रतिज्ञापूर्वक कह सकता है कि अब पुन: पांडवों की हत्या का प्रयास नहीं किया जायेगा ? विदुर बोले राजन अभी युद्ध की स्थिति नहीं आयी है।

कृष्ण बोला महाराज मेरे विचार से पांडु पुत्रों को अपने घर अवश्य जाना चाहिये। यदि वृक्ष ही अपनी जड से अलग हो जायेगा तो उसका सूख जाना निश्चित है और यदि महाराज आज्ञा दें तो अपनी बुआ की ससुराल का सैर करने का और उनके ससुरालवालों से मिलने का मेरा भी बहुत जी चाहता है और दाऊ का भी। क्यों दाऊ ? बलराम ने कहा मेरा दिल भी कुछ अधिक ही व्याकुल हो रहा है। द्रुपद बोला पुत्र धृष्टद्युम्न द्रौपदी के हस्तिनापुर जाने का प्रबन्ध किया जाये और साथ में एक हजार हाथी, जिसके हौदे सोने के अंकुश भी और चार घोडों वाले दस हजार रथ, पांच हजार दासियां, दस हजार गायें। सोने और चांदी के बर्तन आदि आदि ताकि लोग यह न कह सके महाराज द्रुपद को अपनी पुत्री को विदा करना नहीं आता। धृष्टद्युम्न ने कहा जो आज्ञा पिताश्री।

द्वारिका के अधीश्वर श्रीकृष्ण ने भी अनेक उपहार भेजे थे। उनमें नीलकान्त मणि जटित एक मुद्रिका थी और साथ में माया नाम की एक परिचारिका। कृष्ण ने कहा द्रौपदी ये दो मेरी प्रिय वस्तु है। नीलकान्त खचित मुद्रिका तुम्हे आशीर्वाद स्वरूप दे रहा हूं। यह मुझे सर्वाधिक प्रिय मुद्रिका है। स्वयं इसे व्यवहार करता रहा। इसमें एक विशेष गुण है। एकाग्र चित्त इसमें खचित केन्द्र स्थल की ओर कुछ देने पर मन की अनेक दुविधाओं का समाधान हो जाता है। उस दासी माया की संकेत कर कृष्ण ने कहा बाल्यकाल से यह अब तक मेरे पास रही। यह सब मेरी सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखती थी। यह मुझे इतना चाहती है कि यह मेरे सिवाय किसी अन्य को अपने सिवा स्वामी नहीं मानती। पर जो कोई उसे हृदय में स्थान देता है वह उसे अपने प्रेम से इतना आच्छन्न कर लेती है कि उसे कुछ और दिखाई नहीं देता। मेरी माया दु:ख का कारण बनती है वैसे ही यह दु:ख का हरण भी कर देती है। इससे मेरे कई काम साधित हो जाते है। यह न हो तो द्वारिका, हस्तिनापुर और इन पांडवों की विविध समस्याओं का समाधान करना मुश्किल हो जाता।

भगवान श्रीकृष्ण ने पांडवों का विवाह हो जाने पर भेंट के रूप में वैदर्य आदि माणिक्य मणियों से जडे हुयें स्वर्णालंकार, कीमती कपडे, देश-विदेश के बहुमूल्य कम्बल, दुशाले, घोडे-हाथी, रथ, करोडों मोहरे और छकडे भर कर स्वर्ण उपहार में दिया और युधिष्ठिर ने कृष्ण की प्रसन्नता व मान रखने के लिये बडे हर्ष से स्वीकार कर लिया।

भीष्म धृतराष्ट्र के कक्ष में आये वहां पर धृतराष्ट्र नहीं थे। गान्धारी वहां मिली और गान्धारी ने भीष्म को प्रणाम किया। भीष्म ने गान्धारी को अखंड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। गान्धारी बोली आज तो आपके स्वर में घंटियां सी बज रही है तातश्री। भीष्म बोला ऐसा शुभ समाचार भी तो लाया हूं पुत्री। धृतराष्ट्र कहां है। गान्धारी बोली भ्राता शकुनि के साथ भोजन के लिये गये हुये है। भीष्म बोले तुम नहीं गई आज ? गान्धारी बोली पूछा तो मुझे भी था परन्तु मेरा जी न चाहा। आप विराजिये तातश्री। भीष्म बोला नहीं पुत्री बस। शुभ समाचार सुन लो फिर मैं चलूं। स्वागत की तैयारियां भी तो करनी है। गान्धारी बोली स्वागत किसका ? भीष्म बोले अभी अभी विदुर ने सन्देश भिजवाया है कि महाराज द्रुपद ने प्रिय पांडवों को यहां आने की आज्ञा दे दी है। वो कुलवधू द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान करनेवाले ही हैं।

अतिथि बनकर कोई कब तक रह सकता है? यदि पांडव द्रुपद के पास ही रहने लगे तो द्रौपदी के पतियों का गौरव क्षुण्ण होने लगेगा और कुछ समय बाद वहां के लोग भी उन्हे हेय दृष्टि से देखने लगेंगे। यही तो संसार का नियम है। पिता के राज्य में द्रौपदी के पतियों पर रंच भर भी आंच न आये यह देखना अब द्रौपदी का काम है। पिता के घर पर रहते समय द्रौपदी ने अपना पुत्री धर्म निभा दिया। अब समय है जब उसे स्त्री धर्म का पालन करना है। द्रौपदी के पंचपति अपना राज्य खोकर अभी निर्धन है, वास शून्य हैं पर उनके शौर्य, वीरत्व और व्यक्तित्व में तो कोई संकट नहीं। द्रौपदी इनको पाकर अत्यन्त गर्वित थी। धनवान

होना पौरुष एवं गौरव की बात हो सकती है पर अन्यायपूर्वक धनवान होने को पौरुष नहीं कहा जा सकता। कौरव अभी पांडवों को अन्याय से उनके राज्य से वंचित कर अब विशाल हस्तिनापुर राज्य के अधिकारी बन बैठे। परन्तु इससे उनका पौरूष पांडवों से महनीय सिद्ध नहीं होता। अब वे सारे आर्याव्रत में निंदित हो गये। निर्धन पांडव पांचो भाई धर्मात्मा हैं अत: सर्वत्र आर्याव्रत में उनका जय जयकार होने लगा। द्रौपदी इन पंच पतियों को पाकर गर्वित हुई। पति के शौर्य से गर्वित होना एक बात है और पति को लेकर सुखी होना दूसरी बात। पति को सुखी रखना जटिल कार्य है। इस प्रकार सलाह करके पांडव राजा द्रुपद से विदा लेकर हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किये साथ में कृष्ण बलराम विदुर कुन्ती तथा द्रुपद सुता पांचाली।

कन्या है धन धूप का तपना जिसका काम, सुबह पिता के द्वार है दिवस पिया के धाम,
अग्निसुता यह द्रौपदी धर्म कर्म के साथ पांडु सुतों संग जा रही लाने नया प्रभात।
बेटी चली पराये देश, छोड बाबुल का घर मोहे पी के नगर आज जाना पडा
बाबुल की दुआयें लेती जा तुझको सुखी संसार मिले,
महलों का राजा मिला...
बाबुल के घर बेटी का ठिकाना है...

६२) पांडवों का द्रौपदीसहित हस्तिनापुर लौटना

इस तरह द्रौपदी की काम्पिल्य से हस्तिनापुर के लिये विदाई हुई। हस्तिनापुर तो रास्तों पर अपनी आंखे बिछाये महारानी कुन्ती उनके पुत्रों और कुरुकुल वधू द्रौपदी की प्रतीक्षा कर रहा है। हर दीये की लौ गर्दन उठा उठाकर क्षितीज की ओर देख रही है। रास्ते अपनी मर्यादा तोडकर स्वागत के लिये आगे निकल जाना चाहते हैं। परन्तु राजभवन की नींद उडी हुई है। दुर्योधन गुस्से में तिलमिला रहा है। गान्धार नरेश शकुनि किसी नये चाल की सोच में जाग रहे हैं। गान्धारी इसलिये जाग रही है कि धृतराष्ट्र की नींद उडी हुई है लेकिन वो गान्धारी को इसका कारण नहीं बता रहा है। राजभवन के लिये यह संकट की बेला है परन्तु पितामह भीष्म के लिये प्रतीक्षा के ये दिन और रातें कुछ अधिक ही भारी हैं क्योंकि वो तो तुला की दंडी की भांति है। यदि वो किसी ओर की तरफ झुकाना भी चाहे तो भी नहीं झुका सकते। हर शाम तटपर जाकर मां की प्रतीक्षा करते हैं पर मां गंगा प्रगट नहीं होती है।

वे गंगा तट पर बैठे हुये बडी देर तक गंगा की लहरों को देख ही नही रहे मात्र अपने अस्तित्व में ही वे अपने मन की व्यथा गंगा के सम्मुख निवेदित कर रहे थे। अपनी उद्विग्नता के क्षणों में भीष्म हर बार ऐसे ही गंगा तट पर आते रहे। उनका यहां उपस्थित होना मात्र ही पर्याप्त था। उनके और मां गंगा के बीच शब्दों का होना आवश्यक नहीं था। किन्तु आज भीष्म को लग रहा था कि उनके हृदय में वर्षों से संजोया एक कोमल सुन्दर स्वप्न किसी ने अपनी कठोर हथेलियों में दबाकर तोड दिया है। उस सपने के छोटे छोटे टुकडे जैसे टूटे हुये शीशे के समान नुकीले और आहत करने वाले हैं। उन टूटे हुये टुकडों की नोक भीष्म के हृदय में चुभ रही थी और उनकी धार आरे की भांति हृदय को चीर रही थी। वर्षों से कौरवों ने इस साम्राज्य की रक्षा के लिये अपना रक्त बहाया था कि कुछ मूर्ख और उदंड लोग अपने स्वार्थ के लिये उसको टुकडों टुकडों में विभाजित कर दें। वे लोग राजा भरत को, पुरु को, ययाति को, शान्तनु को भी बांट डालेंगे इसकी परम्परा को खंडित कर देंगे, इसके इतिहास के टुकडे कर देंगे।

भीष्म बोले माते इस संकट की इस बेला में आपने ही मुझे त्याग दिया। इस संकट की घडी में मैं क्या करूं। धृतराष्ट्र फिर मुझसे कोई न कोई अन्याय करवा ही लेगा। एक वन में दो सिंह, एक म्यान में दो तलवारें और एक राज्य में दो युवराज तो नहीं हो सकते ना मां। दोनों ही तलवारें मेरी है। दोनों पर कुरु वंश का पानी चढा हुआ है। मैं किसी एक तलवार को टूटते नहीं देख सकता माते। मैं नहीं चाहता माते कि रणभूमि सज जाये और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर में किसी एक के पक्ष में युद्ध करने का निर्णय मुझे लेना पडे। मेरा मार्गदर्शन करो माते। मेरी सहायता करो माते। पिछले दिनों की भांति मुझे आज निराश न लौटाइये माते।

भीष्म की विनती सुनकर गंगा प्रकट हो गयी। भीष्म ने कहा प्रणाम माते। भीष्म बोले क्या मुझसे कुछ भूल हुई माते ? गंगा बोली इतने दु:खी क्यों हो पुत्र। यह राज्य क्या तुम्हारा था ? तुमने राज्य का त्याग किया था किन्तु उसका मोह अभी तक नहीं त्यागा। राजा तो दु:खी नहीं है जिसका राज्य बंटेगा।

भीष्म गंगा की ओर देखते हुये बोले ठीक कहती हो माते। यह राज्य मेरा नहीं है। पिताश्री को वचन देकर त्याग न किया होता तो वह सब कही मैंने पाया होता माते, जो आज मेरे पास है। राजा का तो वही होता है जो उसके शासन के अधीन है किन्तु प्रजा का तो सारा देश होता है। अपनत्व शासन और अधिपत्य से तो नहीं पनपता माते, अपने समर्पण से पनपता है। मैं तुम्हारी सम्पत्ति हूं। उसी प्रकार मैं देश की सम्पत्ति हूं। मेरा और इसका सम्बन्ध भावनात्मक है माते। मैं इसके एक कण का भी स्वामी नहीं हूं, किन्तु इसका सारा भूगोल मेरा है, इसका सारा इतिहास मेरा है। राजा तो अपने लिये नया इतिहास लिखवा लेगा, अपने देश को बांट लेगा और प्रसन्न होगा। वह तो अपने लाभ और स्वार्थ की ही सोचेगा माते वह देश का हित कहां सोचेगा? गंगा बोली तुम्हें युधिष्ठिर और दुर्योधन पर भरोसा नहीं पुत्र ? क्या वे अपनी प्रजा का पालन नहीं करेंगे ?

भीष्म बोले मैं आज तुम्हारे सामने अपनी असफलता, अपनी पराजय स्वीकार करता हूं माते। धृतराष्ट्र और पांडु का भी पालन-पोषण मैंने ही किया था। युधिष्ठिर और दुर्योधन का भी। किन्तु मैं अपने प्रयास में सर्वथा असफल रहा। धृतराष्ट्र राष्ट्र को धारण नहीं कर रहा बल्कि उसे निरन्तर क्षय कर रहा है और दुर्योधन भी यही कर रहा है। युधिष्ठिर और उसके भाइयों के बारे में क्या कहूं। ज्येष्ठ कुरु पुत्र होते हुये उन्होंने कौनसा सुख पाया है मेरे हाथों ? वे बेचारे तो जन्म से ही जन्मे ही ऋषि आश्रमों में। वे तो शिक्षा पाने के लिये हस्तिनापुर में आये। मैं उनका पितामह होते हुये उन्हे मैंने वारणावत भेज दिया केवल इसके लिये कि कुरुकुल अपनी आंतरिक कलह से बच जाये। किन्तु मुझे क्या पता था कि वहां अग्निदेव कोप करेंगे ? मैं तो आज तक इस अग्निकांड के चरित्र को भी नहीं समझ पाया ? कहीं इसमें भी तो इस दुर्योधन का षडयन्त्र तो नहीं ? गंगा बोली यदि साम्राज्य को सुरक्षित रखना है तो किसी एक को तो तुम्हे वंचित करना पडेगा। यदि साम्राज्य युधिष्ठिर को दोगे तो दुर्योधन वंचित होगा और दुर्योधन को राज्य दोगे तो युधिष्ठिर वंचित होगा। भीष्म बोला इससे साम्राज्य तो अखंड रहेगा माते किन्तु न्याय और नीति खंडित हो जायेगी। दुर्योधन को राज्य नहीं मिला तो वह वंचित नहीं होगा क्योंकि वह उसका स्वत्व ही नहीं है किन्तु युधिष्ठिर को उसके स्वत्व से वंचित करना न्याय नहीं होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं यदि युधिष्ठिर से कहूं कि राज्य त्यागकर वन को चला जाये तो वह एक क्षण में राज्य त्याग देगा। किन्तु उसकी इस सज्जनता का दंड तो उसे नहीं मिलना चाहिये माते। अगर मैं उनका स्वत्न उन्हे दिला नहीं सकता तो उनको वंचित करने का कारण भी नहीं बनूं ? किसी एक को राज्य दे देना बहुत बडा मूल्य चुकाना पडेगा राज्य की अखंडता के लिये। पशुता को सर्वाधिकार दे देना, उनका न्याय पक्ष स्वीकार करना, उसके सम्मुख विरोध विहीन पूर्ण आत्म समर्पण करना बहुत बडा मूल्य चुकाना होगा। गंगा बोली यदि साम्राज्य अखंड नहीं रह सकता तो साम्राज्य का विभाजन हो जाने दो। भीष्म बोले अपने हृदय पर पत्थर रखकर यह भी स्वीकार कर लेता पर कदाचित मुझे विश्वास हो जाता कि उससे कलह मिट जायेगी और शान्ति हो जायेगी। पर ऐसा हो नहीं पायेगा।

भीष्म बोला माता ऐसे सारे विभाजन विनाश के ही अग्रदूत होते हैं। वे शत्रुता, द्वेष और विरोध की नींव पर खडे राज्य संगठन हैं। मनुष्य के शरीर का अंग कटता है तो घाव भर जाता है किन्तु जब किसी राज्य का कोई अंग कटता है तो वह सदा ही रिसते रहता है वह शान्ति का सन्देश नहीं देता बल्कि परस्पर शत्रुता बनाये रखने का कारण बनता है। गंगा बोली फिर विभाजन को रोको। यदि अन्याय से थोडा समझौता करना भी पडे तो पांडवों को समझाओ। भीष्म हताश हो रहे थे और बोले यही सोच रहा हूं माते। आज की शान्ति पाने के लिये यदि मैंने अन्याय से समझौता कर लिया तो भी यह प्रक्रिया यहां ही समाप्त नहीं होगी। संसार तो घटनाओं का श्रृंखला चक्र है। परिणाम स्वरूप में जन्मी घटना अगली घटना होने का कारण बनती है। न्याय के

मूल्यपर खरीदी गयी शान्ति कभी स्थायी नहीं होती। अन्याय निरन्तर प्रसारित होता रहेगा और शान्ति संकुचित होती जायेगी। अन्याय से समझौता कर छोटे युद्ध को टालना बडे संहार की भूमिका है। गंगा बोली तो फिर पुत्र अन्याय से समझौता मत करो तुम असमर्थ भी नहीं हो और असहाय भी नहीं हो। सामर्थ्यवान होकर तुम्हे इतना दीन हीन शोभा नहीं देता। तो फिर दुर्योधन का ही दमन करो और न्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाओ। भीष्म अपने पौत्रों को शत्रु के समान दंडित भी तो नहीं कर सकते। जो किसी से नहीं हारता वो अपनी ही पीढ़ी से हार मान लेता है। युवा तो स्वयं अपने आपको वृद्धों के अनुसार ढालते नहीं तो वृद्धों को ही युवाओं के मनोरूप आचरण करना पडता है। मैं अपनी कौटुम्बिक शान्ति के लिये स्वयं ही तो अपने कुटुम्ब का काल नहीं बन सकता माते। कभी कोई अपने वंश की धारा को कुंठित किया है और फिर मैंने पिताश्री को वचन भी तो दिया है माते। गंगा बोली तुम कायरों की भांति हर घडी मेरे पास क्यों चले आते हो पुत्र। जो प्रतिज्ञा तुमने की वो तुमने मुझसे पूछे बिना की। अपने पिता और हस्तिनापुर को जो वचन तुमने दिया वो भी तुमने मुझसे पूछे बिना दिया तो अपनी प्रतिज्ञा और अपने वचनों के परिणाम का अब सामना भी करो पुत्र। भीष्म बोले जो आज्ञा माते। अब कभी मैं नहीं आऊंगा माते। अब स्वयं आपको ही आना होगा यह कहकर प्रणाम कर भीष्म अपने द्वन्द में रहकर वहां से चला गया और गंगा भी अन्तर्ध्यान हो गई।

विदुर काम्पिल्य से हस्तिनापुर आते समय गंगा तट पर महर्षि वेदव्यास से मिलने उनके अस्थायी आश्रम में गये और महर्षि को प्रणाम किया। महर्षि ने कहा आओ वत्स। गुप्त रूप से निवास करते हुये पांडव जो तुमने मुझे सौंपे थे वे आज सुरक्षित रूप में लौटा दिये हैं। विदुर ने महर्षि के चरणों में सिर रख कहा पूज्यवर आपने पांडवों की रक्षा कर धर्म की रक्षा की है अन्यथा तो यह मूढ़ दुर्योधन कौरव साम्राज्य की दुर्गति ही कर देता। व्यास बोले तुम पांडवों को हस्तिनापुर ले जा रहे हो विदुर किन्तु क्या वहां तुम उनकी रक्षा कर सकोगे ? पांडवों की रक्षा के लिये तुम्हे अधिक तत्पर और सतर्क रहना पडेगा विदुर। विदुर बोले वैसे पहले की अपेक्षा भीष्म भी अधिक सतर्क हैं। महामुनि व्यास बोले मुझे उनकी सद्वृत्तियों और क्षमता पर पूर्ण भरोसा है विदुर फिर भी मेरे मन में उनके लिये अनेक संशय और आशंकायें है। उनकी न्याय बुद्धि भी अत्यन्त विश्वसनीय है। विदुर ने पूछा तातश्री के बारे में कैसी आशंकाये है मुनिवर आपको ?

महामुनि व्यास बोले भीष्म बहुत ही सात्विक और उदात्त चरित्रवाले व्यक्ति हैं कि बहुत सुविधा और सरलता से वे सत्ता और शासन के साथ तादाम्यता कर लेते हैं। भीष्म में सत्ता का वेग बहुत अधिक है। उस वेग से टकरा कर दूसरे व्यक्ति की गति क्या होगी उसकी चिन्ता उन्हे नहीं है। अपने नाना दासराज को वचन दिये उस समय उन्होने यह भी नहीं सोचा कि उनकी अपनी गति क्या होगी। राज परिवार पर उसका क्या प्रभाव होगा ? शासन और प्रजा किस प्रकार प्रभावित होंगे ? कुरुकुल के ज्येष्ठ और वरिष्ठ और संरक्षक, अभिभावक तथा कर्ता होने के नाते उन्हे ज्ञात होना चाहिये था कि उनके परिवार में क्या हो रहा है पर वो तो आत्मलीन गृहस्थ हैं। दुर्योधन ने भीम को विष दिया उसकी कोई सूचना उन्हे नहीं थी। वारणावत में इतना बडा षडयन्त्र हुआ उन्हे इसका कुछ भी पता नहीं था कि वहां क्या घटित हो रहा है। दुर्योधन ने रंगशाला में उनके सामने ही कर्ण को अंगदेश का राजा बना दिया वे यह भी नहीं पूछ सके कि दुर्योधन को इसका क्या अधिकार था ? विदुर बोला आप ठीक कह रहे हैं गुरुवर पर कदाचित यह सब इसलिये भी हो कि वे कुरुकुल के रक्षक हैं और वे नहीं चाहते कि कुरुकुल में किसी का अहित हो, उसपर कोई आंच आये अथवा परिवार के भीतर कोई क्लेश कलह न उठ खडा हो।

महर्षि व्यास बोले यह उनका धर्म है किन्तु उनके लिये व्यापक मानवीय धर्म की परिभाषा की तो अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। यह धर्म का नहीं धर्म की रूढ़ि का पालन है। इससे परिवार का हित नहीं होगा। परिवार की रक्षा करनी हो तो धर्म की रक्षा की जानी चाहिये। धर्म स्वत: ही परिवार को धारण करेगा। धारण करने का कार्य केवल धर्म ही करता है। अधर्म तो उसका क्षय ही करेगा। कुरुकुल के प्रति मोह मुझे भी है किन्तु दुर्योधन के नीच कृत्यों के कारण मुझे दुर्योधन से न सहानुभूति है और

न ही धृतराष्ट्र से। न मेरे मन में कौरवों को बचाये रखने का विशेष कोई आग्रह है। मेरा तो सत्य पक्ष को बचाये रखने का आग्रह है। भीष्म ने बहुत कुछ त्याग किया है किन्तु वंश और साम्राज्य की रक्षा का भार और मोह का त्याग नहीं कर सके इसलिये उन्हे अधर्म और असत्य से सन्धि करनी पडी है। इसीलिये वे क्रमश: अधर्म को स्वीकार करते गये हैं। कदाचित वे नहीं जानते कि मन में पांडवों के साथ होते हुये भी कर्मत: कौरवों के ही साथ हैं। भीष्म अब सन्धिवादी होते जा रहे हैं और निष्क्रिय भी। कहीं ऐसा न हो कि वे अन्त में कौरवों के ही पितामह रह जायें और पांडवों के कुछ भी नहीं। इसलिये विदुर पांडवों को लेकर हस्तिनापुर जाओ और सावधान रहना। विदुर उठ खडे हुये और बोले ऋषिवर आपकी आज्ञा का पूर्णत: पालन होगा।

भीष्म गंगा का दर्शन कर बहुत रात बीत गई राजमहल में आये और अपने कक्ष में जा रहे थे कि सामने से शकुनि आता हुआ दिखाई दिया। शकुनि ने भीष्म को प्रणाम किया तातश्री। भीष्म ने उसे आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। शकुनि ने पूछा इतनी रात गये कहां से आ रहे हैं तातश्री। भीष्म बोला यही बात मैं आपसे पूछनेवाला था गान्धार नरेश इतनी रात गये आप यहां क्या कर रहे थे और इस वक्त आप कहां से आ रहे ? शकुनि सुनकर सकपका गया और बोला मैं तो बस यों ही वत्स दुर्योधन को समझा रहा था कि युधिष्ठिर तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता है उनकी ओर से भला मन क्यों मैला रखना ? परन्तु आप तो जानते हैं ना तातश्री की भीतर से तो दुर्योधन एक बालक समान ही है। भीष्म बोले जब बालक को बडा नहीं होने दिया जायेगा गान्धार नरेश तो वो बडा होगा कैसे? दुर्योधन तो वर्षाऋतु है। यदि कोई घर ढह जाता है तो उसमें उस घर की दुर्बलता होती है क्योंकि केवल यह यदि ऋतु का दोष होता तब तो सारी धरती ढह जाती ना गान्धार नरेश। मैं दुर्योधन की ओर से बहुत चिंतित हूं क्योंकि हस्तिनापुर का वर्तमान वो ही है। शकुनि बोला और भविष्य तातश्री। भीष्म बोले यह प्रश्न लेकर या तो विधाता के पास जाओ या कर्म के पास। यह आकाश से पूछो जिसके पास भविष्य का वीज है या फिर धरती से पूछो जिसमें उसका अंकुर फूटेगा। मैं तो केवल शून्य हूं। अकेला हूं तो मेरा कोई अर्थ नहीं। शकुनि बोला यदि मेरी चली तो तुम जीवन भर अकेले ही रहोगे गंगा पुत्र भीष्म।

दुर्योधन, दुशासन और कर्ण अपने कक्ष में बैठे बातें कर रहे थे। दुर्योधन बोला मामाश्री जो कुछ भी कहें पर मैं यह कभी सहन नहीं कर सकता कर्ण। इतने में ही भीष्म दुर्योधन के कक्ष में आ गये और बोले तुम्हारे मामाश्री क्या कह रहे हैं। दुर्योधन बोला पितामह आप यहां और इस समय। प्रणाम पितामह। भीष्म ने आशीर्वाद देकर कहा आयुष्मान भव। क्या कह रहे हैं तुम्हारे मामाश्री ? कर्ण बोला अपनी बहिन के घर में रह जानेवाले क्षत्रिय के कुछ कहने या नहीं कहने का क्या महत्व श्री भीष्म ? परन्तु आपके कहने का तो महत्व अवश्य है। आपका कहा न तो महाराज से टाला जा सकता है और न ही हस्तिनापुर से। आपकी आज्ञा का पालन ये कौरव भी करेंगे और वे पांडु पुत्र भी। भीष्म बोले यह हमारे घर परिवार की समस्या है अंगराज कर्ण। कर्ण बोला मैं समझ गया। मैं क्षमा चाहता हूं। और यह कहकर वह दुर्योधन के कक्ष से बाहर निकल गया। भीष्म बोले मुझे स्थान ग्रहण करने के लिये नहीं कहोगे पुत्र। दुर्योधन बोला क्षमा चाहता हूं पितामह। विराजिये। भीष्म बोले तुम अब तक जाग क्यों रहे हो वत्स ? दुर्योधन बोला जागूं नहीं तो क्या करूं पितामह। मैंने तो पिताश्री से यह नहीं कहा था कि वो मुझे बालपन से यहीं जताते रहें कि आगे चलकर मैं ही हस्तिनापुर नरेश बननेवाला हूं। युधिष्ठिर तो मुझसे बडे है किन्तु स्वयं आपने भी मुझसे कभी यह नहीं कहा कि इस सिंहासन पर तो युधिष्ठिर का अधिकार है। भीष्म बोले कुरुवंश की यह परम्परा नहीं है वत्स। केवल ज्येष्ठ पुत्र हो जाने से कुछ नहीं होता इसमें योग्यता प्रधान है। यदि तुमने युधिष्ठिर को अपना बडा भाई मान लिया होता तो यह समस्या ही नहीं खडी होती परन्तु तुमने तो उसे अपना प्रतिद्वन्दी माना। दुर्योधन बोला प्रतिद्वन्दी तो वह है ही पितामह और क्या? क्षत्रिय होने के नाते मेरा यह कर्तव्य है कि मैं अपने अधिकारों की रक्षा करूं। भीष्म बोले अवश्य परन्तु आज तुम्हारे अधिकारों की रक्षा करना महाराज का कर्तव्य है। इस परिवार का सबसे वरिष्ठ होने के नाते मेरा कर्तव्य है और मैं तुम्हे आज यह वचन देता हूं वत्स मेरे जीतेजी तुम्हारे अधिकारों का न तो कोई उल्लंघन होगा और न हनन ही। परन्तु अपने अधिकारों की परिभाषा ठीक रखना

तुम्हारा भी कर्तव्य है। दुर्योधन बोला तो क्या मैं आज हस्तिनापुर युवराज नहीं हूं ? मेरे युवराज होने के साक्षी तो आप ही हैं पितामह। भीष्म बोले हां परन्तु मैं युधिष्ठिर के भी युवराज होने का साक्षी हूं। दुर्योधन बोला तो फिर यह मैं आपसे पूछता हूं कि पितामह आज की परिस्थिति में युवराज कौन है ? महाराज धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन या पांडु पुत्र युधिष्ठिर और मैं भी आपको वचन देता हूं पितामह कि आप जो भी निर्णय लेंगे उसे मैं स्वीकार अवश्य करूंगा। भीष्म बोले इसी प्रश्न ने तो मेरी नींद उडा रखी है पुत्र क्योंकि यह अनहोनी ही तो आज की वास्तविकता है कि तुम भी युवराज हो और युधिष्ठिर भी युवराज है। युधिष्ठिर के आ जाने के पहिले इस प्रश्न का निर्णय हो जाना आवश्यक है कि कौन युवराज रहेगा और कौन नहीं ? परन्तु यह बात सदैव ही ध्यान में रखना पुत्र कि हस्तिनापुर दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों से ही अधिक महत्वपूर्ण है। जब तुम दोनों नहीं थे तब भी हस्तिनापुर था और जब तुम दोनों नहीं रहोगे तब भी हस्तिनापुर रहेगा और यह कहकर भीष्म दुर्योधन के कक्ष से चले गये।

धृतराष्ट्र ने कुरू परिवार के साथ बैठकर निर्देश दिये। कुलगुरु कृपाचार्य और आचार्य द्रोण के साथ भवन के द्वार पर अनुज पुत्रों का और कुलवधू द्रौपदी का स्वागत करें और उन्हे सम्मान सहित हमारे कक्ष में ले आयें। भीष्म ने पूछा दुशासन इस समय दुर्योधन कहां है ? दुशासन बोला उन्होने कहा है कि जब तक इस बात का निर्णय नहीं हो जाता कि युवराज कौन है तब तक वो राजसभा में नहीं आयेंगे। भीष्म बोले दुर्योधन को ऐसा नहीं करना चाहिये था। भगवान हस्तिनापुर की रक्षा करें।

हस्तिनापुर का मुख्य द्वार **वर्धमान** आज फिर सजाया गया। भीष्म इस द्वार को देखते तो कितनी स्मृतियां उनके मन में जाग उठती थी। यह द्वार मात्र एक द्वार ही नहीं था यह द्वार मानो कुरुकुल का इतिहास रहा था। कुरुओं की अनेक पीढियों को यह विजय यात्राओं के लिये विदा करते आया और उनके विजयी होकर लौटने पर उनका स्वागत करता रहा। विवाहों के अवसर पर कुरु वधुओं का स्वागत भी इसी द्वार से हुआ और इसी द्वार से होकर कुरूवीर वृद्ध यम प्रदेश गये। यह तो पहली बार ही हुआ कि यम प्रदेश गये हुये कुरु जन आज इस द्वार से वापिस लौट रहे हैं। यम प्रदेश जाकर भी कभी कोई लौटा है क्या ? किन्तु पांडु पुत्र माता कुन्ती सहित आज लौट रहे हैं।

धृतराष्ट्र ने पांडवों के प्रति स्नेह प्रदर्शन तो बहुत किया है परन्तु हस्तिनापुर पर युधिष्ठिर का अधिकार स्वीकार करने में उसे असमंजस बहुत रहा है। वह तो कुरुओं का राज्य अपने पुत्र के लिये प्राप्त कर लेना चाहता है चाहे अधिकार किसी का भी हो। अपने स्वार्थ के लिये धृतराष्ट्र को न्याय अन्याय कुछ भी नहीं सूझता या पुत्र मोह से उसकी बुद्धि आच्छादित है। बिच्छू तो डंक मारेगा ही चाहे हथेली शत्रु की हो अथवा संरक्षक की। वीर पांडव हस्तिनापुर लौट रहे हैं तो धृतराष्ट्र ने उनकी अगवानी के लिये विकर्ण, चित्रसेन और अन्यान्य कौरवों को भेजा। साथ में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी गये। पांडवों का हस्तिनापुर लौटना ऐसा था जैसे कोई सम्राट यात्रा कर आ रहा हो।

पांडवों के रथ और शिबिका हस्तिनापुर के मार्गों और वीथियों से होते हुये राजभवन की ओर बढ रहे थे। सारा नगर उनकी झलक देखने के लिये सागर की तरह उमड पडा। पांडव द्रुपद सुता को जय करके लाये थे। वे आज यम प्रदेश से लौटकर आ रहे थे। दुर्योधन तो मन से चाह रहा था कि पांडवों को हस्तिनापुर पहुंचते ही उपेक्षा और ताडना मिले, विरोध और अवहेलना मिले किन्तु राजकीय उपेक्षा होते हुये भी नगरवासियों ने उनका ऐसा अद्भुत स्वागत किया जो सारी सत्ता हासिल किये बैठे दुर्योधन का कभी नहीं हुआ।

कर्ण ने दुर्योधन को सान्त्वना दी। तुम चिन्ता मत करो मित्र। नगरवासी तो उत्सव और कौतुक प्रिय होते हैं। नगरवासियों की सुख सुविधा का कितना भी ध्यान क्यों न रखा जाये, वे किसी के नहीं होते। पांडव आज बहुत दिनों के पश्चात नगर में आ रहे हैं। लोग अपनी उत्सुकता शान्त कर लें। यह आवश्यक तो नहीं कि पांडवों के प्रति उनका प्रेम हो। दुर्योधन कुढकर बोला वे लोग जब तक नगर में रहेंगे मेरा एक क्षण भी शान्ति से व्यतीत नहीं होगा। मेरी अपनी पत्नी महामूर्खा भानुमति भी द्वारपर द्रौपदी

के स्वागत के लिये भाग रही है।

भीष्म मन में उद्विग्नता से सोच रहे थे इन सबको उन्होने वारणावत भेज दिया था पर भीष्म थोडे ही जानते थे वहां कोई ऐसी दुर्घटना हो जायेगी। दुर्घटना तो कहीं भी हो सकती। हस्तिनापुर में शान्ति बनाये रखने के लिये, कुरुकुल की मर्यादा बनाये रखने के लिये। भीष्म को कुरुकुल की मर्यादा और हस्तिनापुर की शान्ति अधिक प्रिय थी। दुर्योधन और उसके अन्य भाइयों को क्यों नहीं वारणावत भेज दिया ? इसलिये कि दुर्योधन का पिता हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर अपना अधिकार जमाये बैठा है। कलह रोकने के लिये उन्होने भी तो पांडवों को ही दबाया। पांडवों की सज्जनता का ही तो लाभ उठाया भीष्म ने। भीष्म का मन अपने आपको धिक्कार कर रो पडा पर वे कर भी क्या सकते थे ? उन्होने तो सदा वात्सल्यपूर्ण पितामह के रूप में यही चाहा कि सारा परिवार सुखी रहे। दुष्ट दुर्योधन को भी पुत्र के समान ही प्रेम किया। पांडवों को ही समझाया जाता था क्योंकि झुकता तो बांस ही है, वट वृक्ष को झुकाया नहीं जा सकता। परिवार का मुखिया सदा ही समझदार बच्चे को समझा लेता है कि तू ही मान जा।

सब नगरवासियों से घिर कर पांडव हस्तिनापुर पहुंचे। नगरवासियों ने पांडवों की जय जय कार की। पांडवों की जय, युवराज युधिष्ठिर की जय, महारानी कुन्ती की जय। पांडवों के दर्शन के लिये प्रजा का शोक और दु:ख दूर हुआ। प्रजा आपस में पांडवों की प्रशंसा करने लगी। लोग कहने लगे यदि हमने कोई दान, तप, यज्ञ कुछ भी किया हो उसके फल स्वरूप पांडव चिरकाल तक इसी हस्तिनापुर राज्य में रहे। कुन्ती और युधिष्ठिर उतरे साथ में द्रौपदी। आगे बढकर भीष्म ने उनका स्वागत किया। युधिष्ठिर ने भीष्म के चरण स्पर्श कर आयुष्मान भव का आशीर्वाद प्राप्त किया। कुन्ती ने पितामह भीष्म को तातश्री कह प्रणाम किया और भीष्म ने सुखी रहो का आशीर्वाद दिया। कुन्ती बोली द्रौपदी ज्येष्ठ कुरु वर भीष्म पितामह से आशीर्वाद ले लो। द्रौपदी ने पितामह भीष्म के चरण स्पर्श किये। भीष्म ने भी अखंड सौभाग्यवती हो का आशीर्वाद दिया। कुन्ती ने द्रोणाचार्य को गुरुवर प्रणाम किया और बोली द्रौपदी ये तो आपका दोहरा नाता है यदि पुत्री मानो तो भी आपके आशीर्वाद की अधिकारिणी है और पुत्र वधू मानो तब भी। द्रौपदी ने गुरु द्रोणाचार्य के चरण स्पर्श किये। द्रोण बोले पुत्री यह भाग्य मेरे वश में नहीं है और न ही सौभाग्य। द्रोण के पास तो शस्त्र और अस्त्रों के सिवा कुछ भी तो नहीं है। जो शस्त्र और अस्त्र चाहो ले लो। कुन्ती बोली ना आचार्यवर अस्त्र शस्त्र लेकर कोई यह युद्ध करने थोडे ही आई है ? दुशासन ने कुन्ती के चरण स्पर्श कर प्रणाम छोटी मां कहा। कुन्ती ने कहा जुग जुग जीयो। मेरा प्रिय पुत्र दुर्योधन कहां है ? दीख नहीं रहा है ? दुशासन बोला वे व्यस्त हैं। कुन्ती बोली कोई बात नहीं तुम्ही उनकी ओर से अपनी प्रिय भाभीका स्वागत कर लो। दुशासन ने कहा प्रणाम भाभीश्री। कुन्ती बोली द्रौपदी यह तुम्हारा देवर दुशासन है। दुशासन बोला मुझे ठीक से देख लीजिये भाभीश्री। इतने में ही पीछे पीछे कृष्ण और बलराम आ रहे थे। भीष्म ने स्वागत कर कहा आइये वासुदेव कृष्ण। कृष्ण भीष्म के चरण स्पर्श करने झुके तो भीष्म ने उन्हे अपने हाथों से उठा लिया। कृष्ण बोले क्या आपके आशीर्वाद पर मेरा कोई अधिकार नहीं ? भीष्म बोले मेरे पास तुम्हारे योग्य कोई आशीर्वाद है नहीं वासुदेव कृष्ण। कृष्ण बोला यह तो कंजूसी है पितामह। कृपाचार्य बोले बूंद समुद्र को कुछ देने का प्रयत्न करे तो यह छोटा मुंह बडी बात हो जायेगी वासुदेव। कृष्ण बोला वाद विवाद में किसी ब्राह्मण से जीतना सहज कार्य नहीं है कृपाचार्यजी। तो फिर बिना आशीर्वाद के ही चलते हैं। चलिये दाऊ। जब मुझे आशीर्वाद नहीं मिला तो आपको भी नहीं देंगे। भीष्म हंसकर बोला आइये पधारिये राजभवन के अन्त:पुर में चलिये। कृष्ण ने द्रोणाचार्य को प्रणाम किया। सभी ने पितामह और आचार्यजनों को प्रणाम कर राजमहल के भीतर प्रवेश किया। भीष्म ने अर्जुन को गले लगाया।

धन्य हस्तिनापुर हुआ, धन्य राज गृह द्वार, दीप आरती के जले हो स्वागत सत्कार,
राजलक्ष्मी गृहलक्ष्मी नव वधू मंगलाचार, पांडु सुतों संग द्रौपदी सब ने की स्वीकार।

कुन्ती द्रौपदी को लेकर राजभवन में धृतराष्ट्र के कक्ष में आयी जहां धृतराष्ट्र और गान्धारी बैठे थे। गान्धारी भानुमति से बोली बहू

अपनी छोटी मां और जेठानी द्रौपदी का स्वागत करो। कुन्ती बोली स्वागत की क्या आवश्यकता है दीदी और गान्धारी से गले मिलकर प्रणाम किया तथा धृतराष्ट्र के चरणस्पर्श किये। गान्धारी बोली वारणावत की दुर्घटना के पश्चात मुझे ऐसा लगा था कि सारी हस्तिनापुर नगरी ही उजड गई हो पर आज तुम मेरे प्रिय पांडवों को लेकर आई हो तो ऐसा लगने लगा हस्तिनापुर में एक नया जीवन आ गया है। नये जीवन का अभिनन्दन है कुन्ती। कुन्ती बोली जैसी आपकी इच्छा दीदी। गान्धारी बोली जब तुम नहीं थी तब दुर्योधन के विवाह पर मेरा मन भटकता रहा कि तुम होती तो मेरे स्थानपर सब कुछ देखभाल करती और मैं अनुभव करती जैसे कुछ स्वयं मैं ही कर रही हूं। कुन्ती ये है तुम्हारी पुत्रवधू काशी की राजकुमारी काशिका अपनी छोटी मां को प्रणाम करो। काशिका ने चरण स्पर्श किये और कुन्ती ने अखंड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। काशिका ने सबकी आरती उतारी और आने का स्वागत किया। कुन्ती ने काशिका को जुग जुग जीओ सदा सुखी रहो और जीवन सुहाग का आनन्द भोगो का आशीर्वाद दिया।

कुन्ती बोली दीदी अपनी पुत्र वधू द्रौपदी से मिलो। द्रौपदी ने गान्धारी को चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। गान्धारी ने भी सौभाग्यवती भव। तुम्हारी गोद पुत्रों से और मांग सिन्दूर से भरी रहे का आशीर्वाद दिया। कुन्ती बोली चलो द्रौपदी अब ज्येष्ठ पिताश्री का आशीर्वाद ले लो। कुन्ती ने कहा ज्येष्ठ पिताश्री अपनी कुलवधू द्रौपदी का चरण स्पर्श स्वीकार करें। धृतराष्ट्र ने सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया और बोला अपनी नेत्रहीनता का दुख सदैव से ज्यादा है। यदि आंखें होती तो अपनी ओर से भी देखता और अनुज पांडु की ओर से भी। तुम्हारे सौभाग्य ने मुझे मेरे अनुज पुत्रों से मिलवाया है। इसलिये मैं तुम्हारा ऋणी भी हूं और आभारी भी। कहां है मेरे अनुज पुत्र ? यदि मैं उन्हे देख सकता तो मैं उनके पास स्वयं चलकर जाता और उन्हे अपनी छाती से लगा लेता। युधिष्ठिर ने आगे बढकर प्रणाम किया, चरण स्पर्श कर बोला हम तो आपके चरणों में है तातश्री। धृतराष्ट्र बोला चक्रवर्ती भव पुत्र। तुम लोग न मेरे सुख का अनुभव कर सकते हो और न मेरे दु:ख का जो तुम्हे खोकर हुआ। और न ही उस सुख का जो तुम्हे पाकर हुआ। मैं तुम लोगों से लज्जित हूं पर हो सके तो द्रौपदी के शुभागमन पर इस नेत्रहीन तात राजा को क्षमा कर देना। युधिष्ठिर बोला यह आप क्या कह रहे हैं तातश्री। दुर्घटना तो जीवन का अंश है उसके लिये तो आप उत्तरदायी नहीं हो सकते धृतराष्ट्र बोला सुखी रहो पुत्र। गान्धारी बोली अब उनसे मिलने का मुझे तो अवसर ही नहीं देंगे क्या आर्यपुत्र ? धृतराष्ट्र बोला नेत्रों हीनों में सबसे बडा दोष यही होता है गान्धारी। यदि वे किसी वस्तु या व्यक्ति को जब पकड लेते है तो वे उसे छोडना ही नहीं चाहते। क्या पता फिर वो कभी हाथ में आये ना आये ? आंखों वाले तो दूरी नाप सकते हैं ना परन्तु हम जैसे की वास्तविकता तो यही है कि जो पास में है वही है पर इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं जाओ पुत्रों अपनी बडी मां के पास जाओ।

गान्धारी बोली अरे तुम पुत्रवधू लायी तनिक अपनी आँखों से मुझे आपकी पुत्रवधू का मुखडा तो दिखलाओ। कुन्ती बोली दीदी रंग तो इसका अग्नि जैसा है तो पूजनीय है, आंखे बडी कमल की जैसी। गान्धारी बोली यह पुत्रवधू है या कोई पूजा की थाली। भगवान तुम्हारे भाग्य के सारे दु:ख मुझे दे दे और मेरे भाग्य के सारे सुख तुम्हे। कृष्ण बोला मेरे लिये कुछ भी नहीं बचाया आपने। धृतराष्ट्र बोला अनुजवधू ये कौन बोल रहा है ? कुन्ती ने कहा ये मेरे भ्राता वसुदेव का पुत्र कृष्ण हम लोगों के साथ आपको प्रणाम करने चला आया था। बलराम बोला मुझे तो भूल ही गई बुआ। कृष्ण का ज्येष्ठ भ्राता बलराम भी आपको प्रणाम करने आया है महाराज। कृष्ण बोला कोई भले ही आपको भूल जाये पर मैं तो आपको भूल ही नहीं सकता दाऊ। आप भूलने देते ही नहीं। गान्धारी बोली अपने अनुज पुत्रों को मेरे पास लाओ कुन्ती। बलराम बोला यह बात है तो अनुज पुत्र तो मैं भी हूं। तो शायद महारानी जी ने ज्येष्ठ पुत्र को अपने पास लाने का आदेश दिया होगा। गान्धारी बोली अच्छा तो दोनों को ले आओ। कृष्ण बलराम दोनों धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करते हैं। गान्धारी बोली तुम दोनों में से गिरधर कौन है ? बलराम बोले गिरधर तो मेरा अनुज ही है महारानी। गान्धारी बोली तुम इतने रूठे हुये से क्यों लग रहे हो पुत्र। कृष्ण बोला इनके भोजन का समय हो गया महारानी। गान्धारी बोली मेरे भीम को भी भोजन की बडी रुचि है। भीम बोला देख लिया हम लोग वर्षों के

पश्चात आये है फिर भी बडी मां मुझे बिल्कुल नहीं भूली। सहदेव बोला बडी मां आपके भोजन को नहीं भूली है मंझले भैया। गान्धारी बोली भीम मैंने तुम्हारे लिये अलग से खीर बनवाई है। कृष्ण बोला तो मैं कहता हूं कि दाऊ आपके हृदय में भीमसेन के लिये इतना स्नेह क्यों है? इस प्रकार पांचो पांडु पुत्र माता कुन्ती और द्रौपदी सहित हस्तिनापुर में आ गये।

६३) हस्तिनापुर का बंटवारा और पांडवों का खांडव प्रस्थ को प्रस्थान

कृष्ण बलराम अपनी बुआ के यहां हस्तिनापुर में ठहरे हुये हैं। वे अपने कक्ष में विश्राम कर रहे हैं। देर रात तक बैठे कृष्ण और अर्जुन आपस में बातचीत कर रहे हैं। अर्जुन बोला कृष्ण तुम्हारे किस गुण पर अधिक मुग्ध होऊं या किस रूप को सराहूं। कृष्ण बोला क्या बात है बडी चाटुकारिता कर रहे हो परन्तु अर्जुन तुम्हे इसकी क्या आवश्यकता आ पडी। अर्जुन बोला नहीं वासुदेव मैं चाटुकारिता नहीं कर रहा हूं ये तो मेरे मन के उद्‌गार है लगता है मेरी ही अभिव्यक्ति में कोई कमी रह गई होगी। अर्जुन ने कहा वह प्राणी ही कैसा जो भावनाशून्य हो जाये, पत्थर बन जाये और न सुख का अनुभव करे और न दुख का। कृष्ण बोला अच्छा अर्जुन बताओ एक रोगी का परीक्षण, निदान करनेवाला वैद्य श्रेष्ठ है या उसका निकट रिश्ते नातेदार जो रोगी के शारीरिक लक्षणों को देखकर विचलित हो सिर पकड बैठ जाये और अपनी सहानुभूति प्रकट करे ऐसा सम्बन्धी। अर्जुन ने कहा निश्चित रूप से तो वैद्य ही श्रेष्ठ है। कृष्ण बोला तो फिर तुम रोगी के वैद्य बनना चाहोगे या निकटतम सम्बन्धी। अर्जुन ने कहा वैद्य।

कृष्ण बोला उस सम्बन्धी की तुलना में वेदवैद्य ही श्रेष्ठ है अधिक संवेदन शील है। वह रोग तथा रोगी की स्थिति को समझता है। रोगी के लिये उसके मन में सहानुभूति भी है और ममता भी किन्तु वह रोता नहीं और न ही अश्रू बहाता। वह उसका उपचार करता है। उसका कष्ट पीडा कम करने का प्रयत्न करता है। उसे मृत्यु के मुख से बचाने का प्रयास करता है। और यदि बचा नहीं पाता तो मृत्यु का साक्षाकार करता है उसे स्वीकार करता है। वह मानता है कि जीवन का दूसरा छोर मृत्यु ही है। जन्म तथा मृत्यु दोनों ही सृष्टि में समान्तर चलते है। सृष्टि में एक ओर सृजनशील शक्तियां है तो दूसरी ओर क्षयोन्मुखी भी। नीरोगता है तो रोग भी है। रोग तो जीवन की ही एक स्थिति है और उसकी परिणति मृत्यु है। अर्जुन हर व्यक्ति को उसके भावात्मक और ऋणात्मक दोनों पक्षों को स्वीकार करना पडता है। जो पर्वतारोहण करता है उसे ऊपर चढने के बाद नीचे भी उतरना है। इसलिये वह चढने से न तो विचलित होता है और न उतरने से। इसलिये दु:ख से छुटकारा पाने के लिये सुख नहीं चाहते हुए सुखों को छोडना होगा या फिर सुख के साथ दु:ख भी स्वीकार करना होगा। अर्जुन बोला यह तो वैद्य और रोगी के लिये हुआ पर जब कभी वैद्य के अपने पिता, माता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, स्वजन, सम्बन्धी रूग्ण हो जाये तो क्या वह भी सामान्य जन के समान विचलित नहीं होता कृष्ण। यदि वे मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो वह क्या सामान्यजन के समान सिर धुन धुन कर नहीं रोयेगा ?

कृष्ण बोला तुम ठीक कहते हो अर्जुन सामान्यत: तो ऐसा ही होता है क्योंकि वैद्य की बुद्धि सामान्य रोगियों के संदर्भ में ही ठीक रहती है अपने सम्बन्धियों के विषय में नहीं। उसकी स्थिरता बुद्धि तक ही सीमित होती है, विवेक तक नहीं। वह स्थिर मति है स्थितप्रज्ञ नहीं। परन्तु योगी तो स्थितप्रज्ञ होता है क्योंकि वह प्रकृति को भलीभांति जानता भी है और उसे स्वीकार भी करता है। उसके लिये जीवन और मृत्यु दोनों भी समान रूप से आत्मीय है। वह यदि मनोरमता पर मुग्ध हो सकता है तो भयंकरता पर भी। ऐसा व्यक्ति तो कोई ईश्वर की ही विभूति हो सकता है। प्रकृति जन्म दें ही मृत्यु की प्रक्रिया भी आरम्भ कर देती है। जन्म मृत्यु, निर्माण और क्षय ये तो प्रकृति के श्वास और निश्वास हैं। खंड बुद्धि जीवन का सौन्दर्य किसी एक पक्ष में देखती है इसलिये विचलित हो जाती है। आसक्ति, ममत्व, घृणा और वितृष्णा ये सब मनुष्य के विवेक को आच्छादित कर उसे अनासक्त नहीं रहने देते। यह अभ्यास से ही वश में किये जाते हैं। योगी अपना विकास और विस्तार करता है ताकि सृष्टि के दोनों पक्षों से ऊपर उठकर समदृष्टि से देख सके। सुख-दु:ख, मान-अपमान, हानि-लाभ, जीवन-मृत्यु समान हो। योगी को तो सुख दु:ख के महासागर में डुबाना तो दूर उसे भिगो भी नहीं सकते। क्योंकि वह प्रकृति को पूर्ण रूप में स्वीकार किये रहता है। न तो वह उसका

विरोध करता है और न ही उसे टकराता है। धर्म के मार्ग में चलनेवालों के लिये आसक्ति के लिये कोई स्थान नहीं हे। अनासक्त विवेक ही हमें धर्म के मार्ग पर चला सकता है।

बलराम बोले सो क्यों नहीं रहे हो कृष्ण? और करवट बदल कर फिर सो गये। कृष्ण उठकर जाने की तैयारी करने लगे तो अर्जुन ने पूछा आप को इतनी जल्दी जाने की क्या पडी है कृष्ण ? कृष्ण बोला जाना तो पडेगा ही अर्जुन। पिताश्री और माताश्री को समझाना इतना कठिन नहीं है परन्तु छोटी बहन सुभद्रा बडी ही टेढी खीर है। जाने में जितनी देर लगाऊंगा उतने ही अधिक प्रश्न करेगी। दाऊ को तो डर के मारे कोई प्रश्न करता नहीं। बच जाता हूं मैं और वैसे भी छोटी बहिन के अधिकार यों भी कुछ अधिक ही होते हैं। अर्जुन बोला लगता है कि सुभद्रा से कुछ अधिक ही स्नेह है आपको। कृष्ण बोला उससे तो सभी को अधिक स्नेह है। दाऊ तो हर दूसरे दिन मुझसे लडते रहते है उसके लिये। देखो कृष्ण मैं ज्येष्ठ भ्राता हूं कि सुभद्रा की देखभाल के लिये तुम्हारे अधिकारों से अधिक मेरा अधिकार होना ही चाहिये। बलराम उनकी बातें सुनकर उठ गया बलराम की नींद टूट गई और बोला कृष्ण अब तो सो जाओ। कृष्ण बोला दाऊ अर्जुन को मैं यह बता रहा था कि आप स्वयं इस बातको मानते है सुभद्रा की देखभाल के लिये आपका अधिकार मुझसे अधिक है। बलराम ने कहा यह मैंने कब कहा ? दाऊ मैं हूं या तुम। कृष्ण बोला दाऊ तो आप ही हैं परन्तु मैं भी कुछ तो अवश्य हूं। बलराम बोले मैंने कब कहा कि तुम कुछ भी नहीं हो। मैं अभी से कह देता हूं कि अर्जुन तुम साक्षी हो नहीं तो यह महाशय कह कर भी मुकुर जायेंगे कि ऐसा आपने कब कहा था ? सुभद्रा के जीवन के विषय के सारे निर्णय मैं ही लूंगा। कृष्ण बोला देख लीजिये। अर्जुन अब कोई इससे कुछ कह सकता है परन्तु दाऊ अभी तो सो जाइये। आपके जागते रहने से कुरु राज घराने के स्वादिष्ट भोजन का अपमान है और फिर सुभद्रा के जीवन के विषय में निर्णय लेने का प्रश्न अभी थोडे खडा है। बलराम बोला तो तुम स्वयं क्यों जाग रहे हो ? कृष्ण ने कहा आप तो जानते हो दाऊ जब मैं सोया हुआ दिखाई देता हूं तब भी जागता ही रहता हूं। कान लगाकर सुनिये दाऊ आज तो स्वयं रात भी जाग रही है। तुला की डंडी गंगा पुत्र भीष्म की छाती में गडी हुई है। तुम चिन्ता मत करो अर्जुन यदि लाठी मारने से पानी को अलग होना है तो लाठी खाकर वह अवश्य अलग हो जायेगा। यह जीवन सागर अडचन की घडी है और अमृत को विष से अलग हो ही जाना चाहिये।

धृतराष्ट्र ने राजभवन में पारिवारिक सभा जोडी जिसमें परिवार के सभी सदस्य दुर्योधन, भीष्म पितामह, शकुनि, कर्ण इत्यादि थे। तथा आपस में विचार विमर्श करने लगे। भीष्म ने कहा मुझे पांडवों के साथ बैर विरोध करना पसन्द नहीं है। मेरे लिये पांडु पुत्र और धृतराष्ट्र के पुत्र दोनों एक समान है। जैसे मेरा धर्म बनता है पांडवों की रक्षा करना वैसे ही तुम लोगों का भी है। मैं पांडवों से द्वेष व झगडा करने का समर्थन नहीं कर सकता। तुम सब उनके साथ मेल मिलाप से रहो। जैसे तुम यह राज्य अपने बाप दादाओं का अपने अधिकार का समझते हो वैसा ही यह राज्य उनका भी है दुर्योधन। यदि यह राज्य पांडवों को नहीं मिलेगा तो तुम या भरतवंशी कोई भी पुरुष अपने को उस राज्य का स्वत्वाधिकारी नहीं कह पायेगा ? तुम तो अभी राजा बन बैठे हो जो कि धर्म के विपरीत है। तुमसे पहले राज्य के वे अधिकारी हैं। तुम्हे हंसी खुशी में उनका राज्य लौटा देना चाहिये। इसीमें नीति है, धर्म है और तुम सब लोगों का भला है। मैंने सुना था कि कुन्ती और वे पांचों भाई वारणावत में जलकर भस्म हो गये तब से मेरी आंखों के सामने अन्धेरा सा छा गया था। उनके जल जाने का दोष नगरवासी तुम पर लगा रहे है उतना पुरोचन पर नहीं। अब पांडवों के जीवित होने से और उनको राज्य दे देने से तुम्हारी अपकीर्ति मिटायी जा सकती है। पांडवों के जीवित रहते स्वयं इन्द्र भी उन्हे उनके राज्य से वंचित नहीं कर सकते। वे बुद्धिमान और धर्मात्मा हैं। आपस में मेल जोल भी बहुत अच्छा है। तुमने अभी तक तो उन्हे राज्य से दूर रखने का प्रयत्न किया है यह अधर्म है। धृतराष्ट्र यदि तुम्हे रत्ती भर भी धर्म से प्रेम है और मेरा प्रिय और अपना कल्याण चाहते हो तो शीघ्राति शीघ्र पांडवों को उनका राज्य दे दो। भीष्म ने दुर्योधन को हर प्रकार से

समझाया। द्रोणाचार्य बोले धृतराष्ट्र मित्रों का भी यही धर्म है कि जब उनके कोई सम्मति पूछी जाये तो वे धर्म, अर्थ और यश की वृद्धि करने वाली सम्मति दे। मैं महात्मा भीष्म का समर्थन करता हूं। इसी में आपका हित और आपके वंश की भलाई है।

कर्ण भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य की बात सुनकर जल भुन गया और उठकर बोला महाराज पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण आप द्वारा सम्मानित और सुसंस्कृत है। आप प्राय: उनसे ही अपने हित की सलाह लेते हैं। यदि विधाता ने आपके भाग्य में राज्य लिखा है तो सारा संसार शत्रु भी हो जाये तो वह आपके हाथ से कोई नहीं छीन सकता। यदि कोई अपने हृदय के भाव छिपाकर बुरे इरादे से अमंगल को मंगल बतावे तो समझदार पुरुष को उसका कहा नहीं मानना चाहिये। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। मन्त्रियों की सलाह नेक है या बुरी इसका निर्णय स्वयं लीजिये क्योंकि अपना हित और अहित आप भली भांति समझते हैं। मेरे विचार से राज्य पर किसी प्रकार का संकट नहीं आना चाहिये न बाह्य और न आन्तरिक। न कोई शत्रुओं से और न ही कोई निकट सम्बन्धियों रिश्तेदारों से। राज्य की सुरक्षा सर्वोपरि है। उससे महत्वपूर्ण कोई सग्गा सम्बन्धी नहीं होता। कई बार देखा गया है जिन्हे हम अपना शत्रु नहीं मानते, जिनसे कभी हमारी कोई हानि या क्षति नहीं हुई होती वे ही राज्य के सबसे बडे शत्रु होते देखे गये है। इसलिये मैं तो यही कहूंगा कि कोई भी सम्बन्ध, पद अथवा स्थिति राज्य की सुरक्षा से अधिक प्रिय, पवित्र अथवा महत्वपूर्ण नहीं होती है। जिस किसी के कारण राज्य की सुरक्षा और दृढ़ता पर संकट आ जाये वह तो हमारा शत्रु है। आज हम सब ऐसे ही एक द्वन्द में फंसे हुये हैं। कुरुओं का शासन सुचारु रुप से चल रहा है। प्रजा प्रसन्न और सम्पन्न है। हमारे शत्रु भी हमसे भयभीत है। न हमारा कोई आन्तरिक शत्रु है और न बाह्य। फिर हम किससे क्यों डर कर उन्हे हमारा राज्य दे ?

द्रोणाचार्य बोले अरे कर्ण मैं तेरी दुष्टता समझ रहा हूं। तेरा हृदय दुर्भाव से परिपूर्ण है। तू पांडवों का अनिष्ट कर हमारी सलाह को अनिष्टकारिणी बता रहा है। मैंने तो कुरुवंश के रक्षा की और हित की बात कहीं है। यदि हमारी सम्मति से कुरुवंश का अहित दीख पडता है तो तुझे जिसमें हित दिखे वह बात कह। हमारी सलाह न मानने से तो शीघ्र ही कौरव वंश का विनाश हो सकता है। धृतराष्ट्र ने बडी शान्तता से विदुर को पूछा विदुर तुम क्या कहते हो ?

विदुर बोला शत्रु और मित्र को पहचानना सबके वश की बात नहीं है महाराज। विशेष कर जब द्वेष और प्रतिहिंसा के धुयें से व्यक्ति के विवेक का दम घुट चुका हो। हम सब जानते हैं युधिष्ठिर युवराज है और हस्तिनापुर के साम्राज्य का वास्तविक अधिकारी। वह न हमारा शत्रु है और न कुरु साम्राज्य का। उचित यही है कि हम धर्म के मार्ग का अनुसरण करें और राज्य के वास्तविक अधिकारी को उसका राज्य दे दें। कर्ण जैसे प्रच्छन्न शत्रुओं को कौरवों की पारिवारिक इस सभा में आने का निषेध करें।

दुर्योधन तम तमा कर उठ खडा हुआ और बोला यह राजनीति का प्रथम सत्य है कि कुरु श्रेष्ठ महाराज धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के राजा हैं और मैं यहां का युवराज। हमारा यह अधिकार हमसे कोई नहीं छीन सकता। भीष्म बोले दुर्योधन हस्तिनापुर पर तुम्हारा आधिपत्य तुमने अवश्य कर रखा है परन्तु उसपर तुम्हारा अधिकार है यह तो अभी तक किसी ने स्वीकार नहीं किया है। दुर्योधन उच्च स्वर में क्रोधित हो बोला तो पितामह भी सुन लें। आप यह अधिकार मानो या ना मानो किन्तु युवराज मैं हूं और अपना अधिकार किसी भी मूल्य पर नहीं छोडूंगा। युधिष्ठिर और मैं हस्तिनापुर के दो युवराज नहीं हो सकते। इसलिये हस्तिनापुर में मैं और युधिष्ठिर दोनों एक साथ नहीं रह सकते। इसलिये बहुत सम्भव है उसके और मेरे बीच युद्ध हो और हस्तिनापुर की गली गली में रक्तपात हो। द्रोणाचार्य बोले हस्तिनापुर के सिंहासन पर दुर्योधन का अधिकार है या नहीं इसमें दो मत हो सकते है किन्तु युधिष्ठिर को लेकर कोई द्वन्द नहीं हो सकता। दुर्योधन का तो आधिपत्य है। मन्त्रीवर विदुर आप राजनीति के आचार्य माने जाते हैं किन्तु आप कदाचित यह नहीं जानते कि राजनीति में अधिकार से अधिक महत्व आधिपत्य का होता है। शासन अधिकार से नहीं आधिपत्य से संचालित होता है। किसी का अधिकार विवादास्पद हो सकता है किन्तु आधिपत्य स्वयं अपने आप में ही प्रमाण है, स्वयं सिद्ध है।

कर्ण उठ खडा हुआ और बोला जब आधिपत्य का इतना महत्व है तो फिर हम महाराज धृतराष्ट्र को राजा और राजकुमार दुर्योधन को युवराज क्यों स्वीकार नहीं कर लेते ? और किसी भी शासक को यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने किसी शत्रु के लिये सिंहासन खाली कर दे ? आक्रमणकारी से युद्ध करना ही चाहिये और उससे अपने राज्य की रक्षा की जानी चाहिये और न कि उसके युवराज होने के विषय में व्यर्थ वाद विवाद करना चाहिये। जिस राजा का हम अन्न खाते है उसकी सेवा भी करनी चाहिये न कि मतभेद। विदुर उग्र हो उठा और बोला अभी तुम्हारी समझ ही परिपूर्ण नहीं है कि सारथी और मन्त्री का भी भेद नहीं जानते हो। राजा का अन्न खानेवाला सारथी उसकी सेवा कर उसका हित करता है और मन्त्री उसका विरोध करके भी उसके हितों की रक्षा करता है। मन्त्री का धर्म है राजा का कल्याण और सारथी का धर्म है सिर्फ राजा का रथ हांकना। दुर्योधन बोला मैं स्पष्ट रूप से कह देता हूं कि मैं अपना राज्य किसी को नहीं दूंगा।

विदुर बोला महाराज हितैषी बन्धु बान्धवों का कर्तव्य है कि नि:संकोच होकर वे आपके हित की बात कहे परन्तु आप किसी की बात सुनना ही नहीं चाहते और न ही किसी की बात को हृदय में स्थान देते। तातश्री भीष्म और आचार्य द्रोण ने आपको बहुत ही प्रिय और हितकर बात कही तो भी आपने अभी तक उसे स्वीकार नहीं किया। भीष्म और द्रोण से बढकर आपका कोई हितैषी नहीं है। वे दोनों महापुरुष अवस्था, बुद्धि और शास्त्रज्ञान में परिपक्व है। उनके हृदय में आपके और पांडु पुत्रों के प्रति सम्मान स्नेह भाव है। बायें हाथ से बाण चलानेवाला भव्य साची अर्जुन जिसे स्वयं इन्द्र भी युद्ध में नहीं जीत सकते, महाबाहु भीम जिसकी भुजाओं में दस हजार हाथियों का बल है उसको देव लोक भी युद्ध में जीत नहीं पाता। रण बांकुरे नकुल और सहदेव वे धैर्य दया और क्षमा। सत्य और पराक्रम की साक्षात मूर्ति धर्मराज युधिष्ठिर। सब आपको ज्ञात होना चाहिये कि पांडवों के पक्ष में स्वयं बलराम, श्रीकृष्ण और यादव सात्यकि हैं। असंख्य यदुवंशी उनके लिये प्राणों की बाजी लगाने के लिये तत्पर हैं। यदि परस्पर युद्ध हुआ तो विजय श्री पांडवों की होगी। मैं यह नहीं कहता कि आपका पक्ष निर्बल है फिर भी जो काम मेल मिलाप शान्ति से हो सकता है उसके लिये झगडा बखेडा युद्ध करना कहां की बुद्धिमानी है? जब से प्रजा जान गयी है कि पांडव जीवित है तभी से सभी उनके पक्ष में उत्सुक है। इस समय पांडवों के विरुद्ध में कोई काम करने से राज्य विप्लव हो जाने की सम्भावना है। पहिले अपनी प्रजा को प्रसन्नकर उसका पालन करें। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि अधर्मी और दिन प्रतिदिन नीच होते जा रहे हैं इनकी समझ मूर्खतापूर्ण है। इनकी बातों को टालिये। दुर्योधन के अपराधों से सारी प्रजा का विनाश हो जायेगा। आप अभी भी विचार कीजिये और पांडवों को उनका राज्य लौटा दीजिये। भीष्म कक्ष के द्वार की ओर चल पडे और बाहर निकल गये।

अश्वत्थामा ने द्रोण के कक्ष में प्रवेश किया और अपने पिता को किसी चिंतित मुद्रा में देखा। द्रोण ने पूछा क्या बात है पुत्र बडे उद्विग्न दिखाई दे रहे हो। अश्वत्थामा बोला आज राज परिवार सभा में आपने मित्र कर्ण का पक्ष क्यों नहीं लिया। द्रोण बोले कर्ण का पक्ष लेने का क्या अर्थ। कर्ण के प्रति मेरे मन में कोई राग नहीं है। न मेरे लिये उसकी उदंडता सह्य है, वह तो निरा मूर्ख है। अश्वत्थामा बोला कर्ण दुर्योधन का मित्र है और दुर्योधन मेरा मित्र है और फिर न्यायत: वह राज्य दुर्योधन का ही तो है। आपके मन में कोई संशय है क्या ? लगता है कि अर्जुन के प्रति आपका प्रेम आपको दुर्योधन के पक्ष में नहीं आने देता। द्रोण बोले कहीं पक्षपात और न्याय भी एक साथ हुये हैं ? अश्वत्थामा बोला तो क्या आप यह नहीं मानते कि हस्तिनापुर का राज्य न्यायत: दुर्योधन का है? द्रोण बोले नहीं पुत्र। दुर्योधन जबरन उसपर अपना अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। छीनना न्याय नहीं होता है पुत्र। पुरुष बाहर का स्वामी हो तो हो घर की स्वामिनी तो स्त्री ही होगी। जिस आगन्तुक का स्वागत स्त्री न करे तो उसका सत्कार उस घर में नहीं हो सकता। द्रौपदी अर्जुन की पत्नी है। अर्जुन अब उसका ही पक्ष लेगा और मैं द्रुपद का शत्रु। अभी तक इस शत्रुता बैर भाव का भाव द्रुपद के मन से निकला नहीं है। इसलिये द्रौपदी कभी वहां मेरा सत्कार नहीं कर पायेगी। इसलिये मुझे न चाहते हुये भी अर्जुन का पक्ष छोडना पडेगा और दुर्योधन के पक्ष में रहना होगा। अश्वत्थामा अपने

पिता के बारे में सोचने लगा। द्रोण जीवन का मात्र जोड और घटाव ही नहीं जानता है वह तो जीवन का गुणा और भाग भी जानता है। जीवन का गणित बहुत भलीभांति समझ चुका किन्तु अश्वत्थामा गणितज्ञ नहीं था। अश्वत्थामा बोला दुर्योधन मेरा मित्र है पिताश्री। द्रोण बोले वह तुम्हारा मित्र नहीं है तुम उसके मित्र हो। मित्रता में निरपेक्ष आत्म समर्पण होता है। वह तुमने किया है दुर्योधन ने नहीं। अश्वत्थामा बोला उसने मुझे क्या नहीं दिया। द्रोण बोले उसने जो कुछ तुम्हें दिया है वह उसके लिये निवेश किया है। समायोजन का दान कभी दान नहीं होता पुत्र। वह तो विनिमय होता है। अश्वत्थामा ने पूछा तो फिर राज परिवार की सभा का अन्तिम निर्णय क्या रहा। द्रोण बोले अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया क्योंकि भीष्म विचलित होकर चले गये। भीष्म की अनुपस्थिति में धृतराष्ट्र आज कोई निर्णय नहीं ले पाया जिससे कोई युद्ध का संकट खडा हो जाये। धृतराष्ट्र अभी दुर्योधन के समान निर्लज्ज नहीं हुआ है। लोक लाज का विचार करता है। दुर्योधन दुष्ट अवश्य है पर अपने पिता के समान धूर्त और न ही उच्च कोटि का राजनीति का खिलाडी और न ही अपने मामा की चालबाजी और षडयन्त्रों को पहचाननेवाला। शायद निर्णय कल हो।

धृतराष्ट्र ने आज राजसभा बुलाई। भीष्म राजसभा की ओर चले तो उन्हे लगा कि हस्तिनापुर अपनी सामान्य गति से नहीं चल रहा है भीष्म वहां पहुचें तो लगा कि सब लोग उनकी प्रतीक्षा में है। पूरी राजसभा को तो आमंत्रित नहीं किया गया था किन्तु सारे आत्मीय जन और सारे महत्वपूर्ण लोग वहां उपस्थित थे। सारी अडचनें तो दुर्योधन के युवराज्याभिषेक से ही तो उत्पन्न हुई थी और अब वह अपना पद रिक्त नहीं करना चाहता और दो दो युवराज किसी साम्राज्य के हो नहीं सकते।

शकुनि धृतराष्ट्र को लेकर राज दरबार में आता है और हाथ पकड कर सिंहासन पर बैठता है कि महाराज यहां बैठिये। धृतराष्ट्र के संकेत से सब अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। शकुनि बोला कुरु परिवार की इस बैठक में मैं भाग लेने का अधिकारी नहीं हूं इसलिये महाराज आज्ञा दे तो मैं चला जाऊं। भीष्म बोले यह अतिथि सत्कार की परम्पराओं का अपमान होगा गान्धार नरेश। विराजिये। शकुनि बोला जो आज्ञा तातश्री। धृतराष्ट्र बोला आज मैंने आप सब लोगों को यहां आने का कष्ट इसलिये दिया कि मैं एक धर्म संकट में फंसा हुआ हूं और मुझे आप सबकी सहायता की आवश्यकता है। भीष्म उठकर बोले धर्म संकट क्या है महाराज ? धृतराष्ट्र बोला धर्म संकट तो यह है तातश्री हस्तिनापुर के पास आज दो युवराज हो गये हैं और यह तो स्पष्ट है कि राज्य के पास दो युवराज नहीं हो सकते। मन्त्री कर्णिक बोला युवराज युधिष्ठिर के आ जाने के पश्चात निर्णय तो यही लेना चाहिये महाराज कि राजकुमार दुर्योधन को वो स्थान रिक्त कर देना चाहिये। शकुनि उठा और बोला इस समस्या का और कोई समाधान तो हो ही नहीं सकता महाराज। मेरे प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं है कि मैंने दुर्योधन का पक्ष लेना छोड दिया है। वत्स दुर्योधन में तो मेरे प्राण रचे बसे पडे हैं। मैं तो सदैव यही चाहता हँू कि पहले वो युवराज हो और फिर महाराज बने। किन्तु आज यह सोच हस्तिनापुर के हित में नहीं है और फिर मैं यह कैसे भूल सकता हूं कि मेरी बहिन गान्धारी आज हस्तिनापुर की पटरानी है इसलिये हस्तिनापुर का हित मेरी बहन का हित है। आगे आप लोगों की जैसी इच्छा। दुर्योधन उठ खडा होकर बोला मैं अब और शान्त नहीं रह सकता पिताश्री। यह राज्य मेरा है। भीष्म बोले यह राज्य तुम्हारा कैसे हो गया पुत्र ? यह तो स्वर्गीय सम्राट पांडु का राज्य उनके पुत्रों का है। दुर्योधन बोला स्वर्गीय सम्राट पांडु के कोई सन्तान नहीं थी क्योंकि वे शापग्रस्त थे और इन कुन्ती पुत्रों का हस्तिनापुर पर कोई अधिकार नहीं है। भीष्म बोले तुम युधिष्ठिर के अधिकार को चुनौती नहीं दे सकते। विवाद इस विषय में हो सकता है कि भ्रमवश पांडवों को मृत मान लेने से तुम्हें युवराज बना दिया गया तो अब तुम्हारी क्षतिपूर्ति कैसे की जाये। यह हमारी पारिवारिक समस्या है। यादव भी कोई हमारे शत्रु नहीं है हमारे मित्र है। कृष्ण भी हमारे परिवार का एक सदस्य ही है। जो सम्बन्ध हमारा कुन्ती के कारण यादवों का है वैसे ही द्रौपदी के कारण हमारा सम्बन्ध पांचालों से है और यह राज्य कब से तुम्हारा हो गया दुर्योधन ? दुर्योधन बोला यह राज्य तो आरम्भ से ही मेरे पिताश्री का है।

भीष्म को लगा क्या अधिकार है भीष्म को इस परिवार का कर्त्ता कहलाने का ? क्या अधिकार है उन्हे कुल का संरक्षक कहलाने

का ? उन्होने शान्ति की खोज में सदा ही दुर्योधन का पक्ष लिया और पांडवों का दमन किया। धिक्कार तुम्हें धिक्कार तुमने उन्ही को पीडित किया जो पहिले से ही वंचित थे। दुर्योधन ने तो पांडवों की हत्या कर दी होती। आज यदि पांडव जीवित है तो अपने भाग्य के कारण या अपने पुरुषार्थ से।

विदुर बोले यह समस्या इतनी आसान नहीं है गान्धार नरेश कि इतनी सरलता से इसका समाधान हो जाये। द्रोण बोले क्या आप यह नहीं मानते मन्त्री विदुर कि राजकुमार युधिष्ठिर ही युवराज हैं। भीष्म बोले युवराज तो युधिष्ठिर ही है द्रोणाचार्य जी परन्तु हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पांडवों के देहान्त का समाचार मिलने पर हम सभी ने बैठक में इसी कक्ष में निर्णय लिया था कि दुर्योधन को युवराज बना दिया जाये। शकुनि बोला मेरा दुर्योधन भी इस विषय में कोई प्रार्थना पत्र लेकर कभी आपके पास नहीं आया था, कम से कम मुझे तो याद नहीं। क्यों विदुर जी। विदुर बोला राजनीति के विषय में प्रार्थना पत्रों पर निर्णय भी नहीं लिये जाते गान्धार नरेश। वैसे मैं उस समय उस राजसभा में उपस्थित भी नहीं था। धृतराष्ट्र बोला होते तो क्या कहते विदुर ? विदुर बोले कदाचित मैं यह प्रस्ताव रखता कि ऐसे निर्णय लेने में शीघ्रता दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं जो कि यह पहिले ही सिद्ध हो चुका है की दुर्योधन इस योग्य ही नहीं। भीष्म बोले अब यह प्रश्न क्यों उठा रहे हो विदुर क्योंकि जो कुछ हो चुका है उसे तुम अनहुआतो नहीं कह सकते। राजनीति का यह अध्याय फिर से पढो विदुर कि राष्ट्रीय महत्व की किसी की सूचना पर केवल तुम्हारा अधिकार नहीं हो सकता। धृतराष्ट्र बोला तुमने हमसे कौनसी सूचना छिपाई है विदुर ? भीष्म बोले आपसे नहीं महाराज मुझसे। परन्तु अब इस सूचना पर विवाद करना व्यर्थ है इसमें कोई लाभ नहीं होनेवाला। क्योंकि विदुर के जैसा विद्वान भी काल के प्रवाह को पीछे लौटा कर नहीं ला सकता इसलिये हमें वर्तमान का सामना करना चाहिये। कृपाचार्य बोले यह तुम हम घूम फिर कर उसी बिन्दु पर आ गये। समस्या तो वहीं की वहीं खडी रह गयी। निर्णय तो अब यह लेना है है कि दो युवराजों में से किसे पद से हटाया जाय और किसे पदपर रखें। धृतराष्ट्र ने पूछा आपके विचार से अब हस्तिनापुर को क्या करना चाहिये कुलगुरु ? कृपाचार्य बोले आप जिसे भी पद पर से हटायेंगे तो उसके साथ अन्याय होगा महाराज। धृतराष्ट्र बोला परन्तु मैं तो अन्याय की बात ही नहीं करना चाहता। आचार्य द्रोण इस विषय में आपके क्या विचार हैं ? मुझे क्या करना चाहिये। शकुनि बोला आप आचार्य द्रोण को ख्वामख्वा धर्मसंकट में क्यों डाल रहे है महाराज ? बृहस्पति शिष्य ज्येष्ठ कुरु गंगा पुत्र भीष्म पर ही यह निर्णय क्यों न छोड दिया जाये। धृतराष्ट्र बोला यही ठीक होगा। तातश्री पर तो कोई पक्षपात का आरोप भी लगा ही नहीं सकता क्यों विदुर ? विदुर बोला जी महाराज। नहीं तो कहीं लोग यह न कहने लगे की महाराज को यह निर्णय लेना चाहिये था वो उन्होने तातश्री पर डाल दिया। हम सब तो आपके सहयोगी है महाराज। निर्णय लेना तो आपका कर्तव्य है। धृतराष्ट्र बोला असाधारण परिस्थितियों से नहीं और यह भी नहीं भूले विदुर कि हस्तिनापुर सिंहासन पर पहिला अधिकार तातश्री का ही है। तातश्री हमें इस संकट में से उबारे और मार्गदर्शन करें।

भीष्म बडे दु:खित हो रहे थे बडे ही दु:ख से बोले धृतराष्ट्र तुम्हारा पुत्र इस योग्य नहीं है कि वह अपने भाइयों के साथ रह सके। कौरववंश संयुक्त न रहे पर सुरक्षित रहे। मैं कुरुवंश और कुरु राज्य की एकता और अखंडता को आदर्श और स्वप्नों को छाती से लगाये बैठा था परन्तु तुम्हारे इस पुत्र के होते हुये यह सम्भव नहीं है। न्यायत: यह राज्य युधिष्ठिर का है पर अपने लिये कुछ लिये बिना दुर्योधन यह राज्य उसे देने नहीं देगा, तो न्याय की यही मांग है महाराज कि किसी के साथ अन्याय नहीं हो इसलिये आज मैं बडे दु:खद हृदय से हस्तिनापुर के विभाजन का प्रस्ताव रखता हूं। भाइयों को चीरने की बजाय तो अच्छा है कि राज्य को ही चीर डालो। भीष्म का प्रस्ताव सुनकर सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे। भीष्म बोले राजनीति जब भी ठोकर खायेगी महाराज तो उसका दंड तो देश को भुगतना ही पडेगा ना महाराज। हस्तिनापुर राज्य को आप दोनों युवराजों में आधा आधा बांट दीजिये और अब मुझे आज्ञा दीजिये कि हस्तिनापुर इस दुर्भाग्य पर एकान्त में रो सकूं। भीष्म राजसभा को प्रणाम कर मौन होकर सिर

झुकाकर राज दरबार छोडकर अपने कक्ष में चले गये। पितामह भीष्म का यह निर्णय किसी को भी अपेक्षित नहीं था।

भीष्म अपने कक्ष में आ गये। मन में अनेक बवंडर उठ रहे थे। उन्हे इस राज्य से क्या करना है ? क्यों वे इसकी सुरक्षा, एकता और अखंडता के लिये इतने चिंतित और व्याकुल हो रहे हैं ? एक ही विचार बार बार उनके मन में उथल पुथल मचा रहा था कि उन्होने आज कुरुओं के शताब्दियों से चले आ रहे अखंड राज्य को दो भागों में बांट दिया। इस विभाजन से उत्पन्न विष की मात्रा का अनुमान था उन्हे। इसके प्रभावों और परिणामों की भी वे कल्पना कर सकते थे। उन्होने एक परिवार को दो स्थायी शत्रुओं में परिणित हो जाने की अनुमति दे दी थी। अब वे दो शत्रु राज्य होंगे। राजाओं की शत्रुता के कारण एक राज्य की प्रजा को मानना पडेगा कि दूसरे राज्य की प्रजा उसकी शत्रु है।

भीष्म के मन में प्रेरणा जगी। अधखुली निद्रा में स्वप्न देखा कि गंगा के तट भीष्म खडे हैं और मां गंगा प्रकट हो गई। भीष्म का मन दु:खी था। भीष्म गंगा से बोले मैं न्याय नहीं कर सका माते। मैं साम्राज्य की अखंडता की रक्षा भी नहीं कर सका। किन्तु यदि मैं विभाजन स्वीकार नहीं करता तो बहुत सम्भव था कि धृतराष्ट्रों के पुत्र और पांडवों में कदाचित आज ही युद्ध आरम्भ हो जाता, कुरुवंश का नाश हो जाता। भाई भाई के युद्ध के कारण यह युद्ध और यह रक्तपान मैं सहन नहीं कर पाऊंगा। गंगा बोली भीष्म जो समाधान स्वीकार कर लिया वो कर लिया अब चिन्ता किस बात की है पुत्र ? भीष्म बोले माते चिन्ता। एकता पराजित हो गई और विभाजन विजयी हो गया। स्नेह दमित हुआ और द्वेष का आधिपत्य हो गया। मैं प्रयत्न करता रहा इन दोनों के हृदय उदार हो पर वे पहिले से भी अधिक संकीर्ण हो गये। गंगा बोली वत्स तुमने पदार्थ तो त्याग दिये पर आसक्ति नहीं छोडी। भीष्म बोले हां माते। आसक्ति नहीं त्याग पा रहा हूं। कुरुवंश का मोह नहीं त्यागा जा रहा मुझसे। पांडव तो पांडव ही है मुझसे तो उस पापी दुर्योधन के प्रति भी अपना मोह नहीं त्यागा जाता। गंगा ने कहा तू ठीक कह रहा है पुत्र तू परिवार और राज्य में ऐसा फंसा हुआ है कि सत्य भी तेरी पकड से फिसलता जा रहा है। भीष्म बोले सत्य का मोह कहां छोडा है मैंने ? गंगा ने कहा सत्य का सौदागर सन्धियां नहीं करता। तुझे शान्ति बहुत प्रिय है न पुत्र किन्तु सत्य सदा शान्ति में नहीं होता। कभी कभी सत्य युद्ध के पक्ष में खडा हो जाता है। भीष्म बोले मुझे लगता है कि पांडवों को दुर्योधन से दूर ही रहना चाहिये। दुर्योधन कोई पता नहीं वह कब घात लगाकर वार करे। युधिष्ठिर हस्तिनापुर का राजा बनकर भी कदापि दुर्योधन के षडयन्त्रों से अपनी रक्षा न कर पाता। वह अपने सीधे सरल स्वभाव से मारा जाता। अच्छा है कि माते वे दूर दूर रहें।

भीष्म के मन का तर्क वितर्क वाद विवाद समाप्त हुआ। स्वप्न टूटा तन्द्रा से भीष्म जगे। भीष्म की अन्तरात्मा सन्तुष्ट हुई। व्यक्ति को पूर्णत: अनासक्त होना चाहिये। उसका चिन्तन और जीवन मात्र सत्य में, न्याय में स्थित होना चाहिये। इस समय न्याय शान्ति के पक्ष में नहीं युद्ध के पक्ष में खडा है।

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने कक्ष में बुलवाया। युधिष्ठिर ने आकर प्रणाम किया और बोला प्रणाम ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव, चक्रवर्ती भव। आओ पुत्र यहां मेरे निकट बैठो। मैं एक धर्म संकट में हूं पुत्र। यदि मैं यह नहीं जानता होता कि तुम मेरी सहायता अवश्य करोगे तो मैं आत्महत्या कर लेता। युधिष्ठिर बोला आप आदेश करें ज्येष्ठ पिताश्री। छोटे बडों की सहायता नहीं करते वे तो बडों का आदेश मानते हैं। आज्ञा पालन करते हैं। धृतराष्ट्र बोला मेरी बातें ध्यान से सुनो पुत्र। तुम पांचों भाई उस अनुज पांडु के उत्तराधिकारी हो जिसने लगभग सारी पृथ्वी ही जीत ली थी। जयश्री उसके अधीन थी परन्तु जब तक मैंने उसे यह नहीं कहा कि सिंहासन ग्रहण करे तब तक उसने सिंहासन ग्रहण नहीं किया। जब कि इस सिंहासन पर उसका अधिकार भी था। युधिष्ठिर बोला आप बिना किसी भूमिका के भी मुझे आदेश दे सकते हैं ज्येष्ठ पिताश्री।

धृतराष्ट्र बोला यह भूमिका बतलाना आवश्यक है पुत्र। यह सिंहासन मेरा नहीं है। मैं तो अनुज पांडु का प्रतिनिधि हूं, केवल प्रतिनिधि और मैं जो भी निर्णय लेता हूं अनुज पांडु की ओर से ही लेता हूं। युधिष्ठिर बोला ज्येठ पिताश्री आपका स्वर इतना उदास

क्यों है ? धृतराष्ट्र ने कहा प्रश्न मत करो पुत्र। अपने ज्येष्ठ पिता को बोलने दो क्योंकि यह सब मैं दुर्योधन से नहीं कह सकता। उसका अभिमान मेरे और उसके बीच की दीवार है। उसका अभिमान आडे आता है। मेरी समस्या यही है कि पुत्र मैं हस्तिनापुर को कोई संकट के द्वार पर नहीं छोड सकता। पूर्वजों को मुंह दिखाने योग्य जाना चाहता हूं। यदि राज्य तुम्हे दे देता हूं तो तुम्हारे साथ अन्याय होता है। यह भी पारिवारिक जीवन का एक सत्य है पुत्र जहां बहुत से बर्तन होंगे वहां बर्तनों का टकराव भी होगा इसलिये उन्हे अलग ही कर देना चाहिये। इसलिये यह निर्णय लिया कि हस्तिनापुर साम्राज्य का विभाजन कर दिया जाये।

युधिष्ठिर बोला देश का विभाजन ज्येष्ठ पिताश्री। आप मेरे हिस्से का आधा राज्य भी अनुज दुर्योधन को ही दे दें परन्तु देश का विभाजन मत कीजिये ज्येष्ठ पिताश्री। न कीजिये विभाजन। धृतराष्ट्र बोला नहीं पुत्र। मैं तुम्हारे साथ अन्याय नहीं कर सकता परन्तु मैं तुम्हे हस्तिनापुर ही देता और दुर्योधन को महाराज ययाति की राजधानी देकर कहता कि तुम युधिष्ठिर के अनुज जाओ और खांडव प्रस्थ को बसाओ परन्तु वो हठ करता और कहता कि मैं भी उसके साथ जाऊं। मैं तो हस्तिनापुर की परछाई हूं। मैं इसे छोडकर कहां जाऊं ? इसलिये मैं चाहता हूं कि पुत्र तुम खांडव प्रस्थ को बसाओ। मेरे कहे की लाज रख लो पुत्र। युधिष्ठिर बोला आपकी आज्ञा का पालन होगा ज्येष्ठ पिताश्री।

सज्जनता फिर झुक गई देखा बेबस रूप, पांडु सुतों के हित बनी फिर वही काली धूप।

समय तो निरपेक्ष है इसलिये शब्दों को चबाये बिना कह सकता है किसी भी ढक्कन से ज्वालामुखी का मुंह बन्द नहीं किया जा सकता। परन्तु हस्तिनापुर में राज्य का विभाजन बनाकर एक ज्वालामुखी के बन्द करने का प्रयत्न किया जा रहा है और युधिष्ठिर ने शायद शान्ति की खोज में यह सौदा कर भी लिया लेकिन समय होने के नाते समय जो कुछ जानता है वह बताता है। धृतराष्ट्र का यह निर्णय सीधा सादा झगडों से बचने वाला निर्णय नहीं है। धृतराष्ट्र ने भले ही इतना न सोचा हो परन्तु शकुनि ने बहुत सोच समझकर यह योजना बनाई थी। खांडव प्रस्थ यमुना के पश्चिमी तटपर पथरीली भूमि का एक उबड खाबड क्षेत्र था। जहां नाग वंशी और क्रूर जाति के लोग रहते थे। यही करण था कि यमुना के इस पार बसे हुये हस्तिनापुर को राजधानी बना दिया गया तो खांडव प्रस्थ हस्तिनापुर राज्य का एक हिस्सा होने के बाद भी लगभग हस्तिनापुर में नहीं था तो खेल यह खेला जा रहा था कि आधा राज्य पांडवों को अवश्य दिया जाये कि धृतराष्ट्र पर अन्याय का आरोप न लगे परन्तु वास्तव में एक शून्य के सिवा पांडवों को कुछ भी नहीं दिया जा रहा था और इसीलिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को ये विभाजन का प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा।

पांडवों को राज्य के रूप में खांडव प्रस्थ मिला था जहां न कृपी है और न व्यापार और उद्योग। सम्पूर्ण क्षेत्र बंजर भूमि और अराजकता फैली हुई है। अपराधियों और महाशक्तियों की वाहिनियां अपने षडयन्त्रों में लगी हुई है और उसका कवच है खांडव बन जिसकी रक्षा स्वयं इन्द्र कर रहा है। युधिष्ठिर के सम्मुख धर्मसंकट है वह नृशंस होना नहीं चाहता किन्तु अनृशंसता से प्रजा की रक्षा नहीं हो सकती। पांडवों के पास इतने साधन भी नहीं है कि वे इन्द्र रक्षित खांडव वन को दंडित कर सके।

पांचो भाई माता कुन्ती के पास बैठे हुये साथ में कृष्ण और बलराम भी वहां उपस्थित थे। भीम बोला ज्येष्ठ पिताश्री के मीठे बोलों की मृगतृष्णा बडी भयानक है बडे भैया उनके सुझाव पर तो मुझे आश्चर्य नहीं। उन्होने पूरा नहीं तो आधा राज्य तो दुर्योधन के लिये हथिया ही लिया। युधिष्ठिर बोला वो हमारे बडे हैं भीम। अपने से बडों के लिये ऐसे तीखे शब्दों का प्रयोग तुम्हे शोभा नहीं देता। सहदेव बोला परन्तु वो भी तो कोई बडप्पन दिखाये। कुन्ती सहदेव को डांटकर बोली सहदेव क्या ज्येष्ठ भ्राता से बात करने की यही मर्यादा है ? सहदेव बोला क्षमा चाहता हूं माताश्री परन्तु... अर्जुन बीच ही में बोला अपनी मां के साथ परन्तु जैसे शब्द नहीं बोले जाते हैं सहदेव। सहदेव बोला तो मैं बिना किसी परन्तु शब्द के पूछता हूं भैया कि ज्येष्ठ पिताश्री को यह अधिकार किसने दिया कि वो हमारी अनुमति लिये बिना राज्य के विभाजन का निर्णय ले लें। कुन्ती बोली युधिष्ठिर ने जो निर्णय लिया है वो यदि तुम्हे स्वीकर नहीं है तो मैं... इतने में ही कृष्ण बोला क्रोध में कही हुई बात पर पछताना भी पड सकता

है बुआ। कुन्ती बोली तुम्ही बताओ वासुदेव क्या बडे भाई से इस प्रकार बात करना शोभा देता है ? अर्जुन बोला बडे भैया के निर्णय को अस्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण बोला परन्तु मैंने देखा है बुआ कि खुलकर बात करने से परिवार में एकता, पारदर्शिता बनी रहती है संशयों को जन्म नहीं मिलता। नकुल तुम बोलो। बोलो तुम क्या कह रहे हो। नकुल बोला मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हस्तिनापुर राज्य पर हमारा अधिकार सिद्ध है। बडे भैया युवराज नियुक्त किये जा चुके थे फिर ज्येठ पिताश्री ने हमारे राज्य को बीच में से काट कर भ्राता दुर्योधन को क्यों दे दिया ? कुन्ती बोली सुन लिया वासुदेव इसलिये केवल कह रहा है। केवल यानि यदि केवल है तो इसके बिना क्या कहता। अरे पुत्र नकुल यदि तुम्हारे पितामह इस निर्णय के रचयिता हैं तो निर्णय ठीक है। तुम्हे यह समझ में क्यों नहीं आता कि सारा संसार तुम्हारा विरोधी हो जाये परन्तु तातश्री भीष्म कभी तुम्हारे विरोधी नहीं हो सकते। अर्जुन बोला मान लिया पितामह का आशीर्वाद सदैव हमारे लिये है, उन्होने कुछ सोचकर ही राज्य के विभाजन का प्रस्ताव रखा होगा परन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं कि यह प्रस्ताव भी उनका है कि दुर्योधन को हस्तिनापुर दे दिया जाये और हमें पत्थरों का वो वन जिसका नाम खांडव प्रस्थ है। हम विभाजन स्वीकार कर लेते हैं परन्तु हम हस्तिनापुर क्यों छोडे ? वो छोटे है उन्हे खांडव प्रस्थ क्यों नहीं दिया जाता ? देश निकाला सदा हमारे लिये ही क्यों माताश्री? यदि आप आज्ञा दे तो पितामह से यह तो पूछ सकते हैं ना। हमारे ही देश का विभाजन हो गया परन्तु हमें मिला क्या? भीम बोला क्या मिला हमें ? कृष्ण ने कहा इस प्रश्न का उत्तर तो मैं भी दे सकता हूं। भीम बोला अगर दे सकते हो तो फिर देते क्यों नहीं ? कृष्ण बोला महाराज धृतराष्ट्र ने आपको कर्म भूमि दी है। कर्मभूमि।

कर्म करे किस्मत बने जीवन का है मर्म, प्राणी तेरे हाथ में तेरा अपना कर्म।

युधिष्ठिर ने देखा उसके अन्य चारों भाई इस बंटवारे से प्रसन्न नहीं हुये है और उनके मन में कुछ दुविधायें और द्वन्द रह ही गये है तो उसने अपने चारों भाइयों को एकान्त में बिना माता के ही अपने कक्ष में बुलाया। चारों भाई आते हैं। युधिष्ठिर बोला आओ बैठो मेरे पास। सब भाइयों ने आकर युधिष्ठिर को प्रणाम किया। अर्जुन बोला क्या आप कोई ऐसी बात बताना चाहते है जो माताश्री के सामने नहीं की जा सके ? युधिष्ठिर ने कहा ऐसा क्यों कहा तुमने ? भीम बोला क्योंकि आज आप पहली बार हमें अपने कक्ष में बुलाया है। युधिष्ठिर बोला हां बात यह है कि मैं नहीं चाहता कि माताश्री को इस बात का पता चले कि मेरे प्रिय अनुज मुझसे रूठे हुये है। उन्हे यह जान कर दु:ख होगा। सहदेव बोला हम आपसे रूठे हुये नहीं है परन्तु दु:खी अवश्य हैं कि ज्येष्ठ पिता ने आपका आधा राज्य भ्राता दुर्योधन के लिये ले लिया। युधिष्ठिर बोला भ्राता दुर्योधन भी कह रहे हो और ज्येष्ठ पिताश्री भी पर यह आरोप भी लगा रहे हो कि उन्होने आधा राज्य ले लिया। दुर्योधन भी तो हमारा अपना ही है। नकुल बोला लाक्षागृह के षडयन्त्र के उपरान्त भी आप यही कहते हैं ? युधिष्ठिर बोला भ्राता दुर्योधन है। नकुल बोला यदि वो हमारे है तो वो कौन है जो आपका नहीं है? हस्तिनापुर हमारे पिताश्री की राजधानी रह चुका है और इसी नगरी को हमारी राजधानी बनने का अधिकार है। युधिष्ठिर बोला अधिकार। अधिकार शब्द का अर्थ इतना साधारण अर्थ नहीं है अनुज। अधिकारों का मूल्य चुकाना पडता है। एक अधिकार के साथ अनेक कर्तव्यों का पालन करना पडता है। राजा का पहिला कर्तव्य है कि वो जनसमुदाय को सुख और शान्ति का जीवन दे सके। यदि हम खांडव प्रस्थ न चले तो हस्तिनापुर के भाग्य में सुख और शान्ति की भाग्य रेखायें ही मिट जायेगी। मैंने तो हस्तिनापुर के हित में हस्तिनापुर छोडने का निर्णय ले लिया है।

अर्जुन बोला तो क्या इसका अर्थ यह नहीं हुआ बडे भैया कि आपके राज्याषिभेक के उपरान्त हस्तिनापुर से हमारा नाता ही टूट जायेगा ? युधिष्ठिर बोला हमारा नाता क्यों टूट जायेगा प्रिय अर्जुन ? क्या नाल कट जाने से सन्तान का नाता माँ से टूट जाता है? रिश्ते नातों को जीवित रखने के लिये कभी कभार अलगाव के मार्ग पर भी जाना पडता है अर्जुन। भीम बोला पर हममें से किसी ने आपके इस निर्णय का विरोध तो नहीं किया बडे भैय्या ? युधिष्ठिर बोला मेरे भाई मेरा विरोध तो कभी करते ही नहीं।

प्रश्न हमारे विरोध का नहीं है। प्रश्न है तुम्हारे सहयोग का। हमे खांडव प्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ बनाना है। यह इन्द्रप्रस्थ वर्तमान का दिल्ली नगर है। क्या वासुदेव कृष्ण ने नहीं कहा था कि ज्येष्ठ पिताश्री ने हमें कर्मभूमि दी है। यदि सफल होंगे तो हम और असफल होंगे तब भी हम। परन्तु मैं अकेला तो यह कार्य नहीं कर सकता। क्योंकि तुम चारों भाई मेरे हाथ पांव हो। मेरी आंखे और मेरे कान भी तुम ही हो। यदि तुम लोग मेरे साथ नहीं रहे तो मैं चल भी नहीं सकता क्योंकि भीम मेरा पांव है। मैं अपने दायित्व का बोझ नहीं उठा सकता क्योंकि अर्जुन मेरा हाथ है और कुछ देख नहीं सकता क्योंकि नकुल और सहदेव मेरी आंखे है। मुझे हस्तिनापुर का राज सिंहासन नहीं चाहिये। मुझे मेरे अपने भाई चाहिये। यदि तुम लोग मेरे साथ रहे तो हम उस खांडव प्रस्थ की उबड खाबड पथरीली भूमि को स्वर्ग बना देंगे कि इस में स्वयं इन्द्र भी स्वर्ग को छोडकर हमारी नगरी में आ बसे और माताश्री तो हस्तिनापुर में रहना भी नहीं चाहती। फिर भी यदि तुम लोग मेरे इस निर्णय से सहमत नहीं हो तो मैं अभी जाकर ज्येष्ठ पिताश्री से यह कह देता हूं कि मेरे भाइयों को शान्ति नहीं हस्तिनापुर चाहिये यह कभी मत सोचना कि मैं डर कर विभाजन स्वीकार कर रहा हूं परन्तु मैं जब तक टाला जा सके इस युद्ध को टालना चाहता हूं। यदि युद्ध हुआ तो गंगाजी के साथ साथ लहू की एक नदी और बहने लगेगी और लहू की इस नदी का पाट गंगाजी के पाट से कही अधिक बडा और चौडा होगा। यहां तो हमारा समय मामाश्री गान्धार नरेश शकुनि के षडयन्त्रों की सूझबूझ में कट ही जायेगा। यहां युद्ध है वहां शान्ति। यहां विनाश है वहां सृजन, प्रगति, निर्माण। यहां की राजभवन की आधारशिला पर लौना लग चुका है। वहां हम सब एक नये नगर एक नये राजभवन का निर्माण करेंगे। शान्ति की खोज में यदि चक्रधारी कृष्ण मथुरा छोडकर द्वारिका बसा सकते है तो हम लोग हस्तिनापुर छोडकर खांडव प्रस्थ क्यों नहीं जा सकते ? सच पूछो तो मुझे यह चिन्ता है कि वहां भी मामाश्री गान्धार नरेश शकुनि सुख चैन से रहने देंगे या नहीं ?

कुरुकुल को ऐसा डसा अभिशापों का सांप, किया विभाजन राष्ट्र का गया आत्मबल काम।

धृतराष्ट्र की नींद उडी हुई है वह अपने शयन कक्ष में इतनी रात गई तो भी इधर उधर टहल रहा है। मन उद्विग्न और उदास है। धृतराष्ट्र सोच रहा है और गान्धारी की सोते सोते नींद उचट गई और उठ बैठी।

गान्धारी बोली कि आप कब तक जागते रहोगे आर्यपुत्र। अब तो आपने राज्य के विभाजन का निर्णय भी ले लिया। अब तो सोजाइये। धृतराष्ट्र बोला नींद मेरी दासी नहीं है गान्धारी की मैं आदेश दूं और वह दौडी दौडी आ जाये और पूछे क्या आज्ञा है महाराज ? वो तो एक ऐसा पक्षी है कि जब उसका जी चाहता है तभी आता है और आकर पलकों के झुंड में बसेरा कर लेता है। नींद तो एक वैरागिनी है जिसे राजाओं और नरेशों के राजभवन यों भी नहीं भाते और मेरी आंखों की काली गुफाओं में तो उसने आना ही छोड दिया। गान्धारी बोली वो ही तो पूछ रही हूं कि अब क्या कारण है ? आपने काव्य सुना दिया परन्तु मेरे एक साधारण से प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। धृतराष्ट्र बोला यदि मेरे पास इस असाधारण से प्रश्न का उत्तर होता तो मैं अवश्य देता परन्तु मेरे पास तो जैसे किसी प्रश्न का उत्तर है ही नहीं। इसलिये मैं स्वयं एक प्रश्न हूं और उत्तर की खोज में भटक रहा हूं। मैं ही रणभूमि हूं और मैं ही अपना प्रतिद्वन्दी भी। अपने स्वयं से मेरा युद्ध चल रहा है और मैं नहीं जानता की युद्ध में कौन जीतेगा? गान्धारी बोली इन वाक्यों का अर्थ यही है कि आप मुझसे कुछ छिपा रहे हैं आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला हां और बहुत सी बातें ऐसी है जिसे मैं अपने आपसे भी छिपाना चाहता हूं। तुम्हे हस्तिनापुर में अन्धेरे के अतिरिक्त और मिला भी क्या है ? तो फिर मैं तुम्हे अपने अन्धेरे की भागीदारनी क्यों बनाऊ ? गान्धारी बोली यह तो आप मेरे साथ बडा अन्याय कर रहे हैं? धृतराष्ट्र बोला कदाचित। तुम हस्तिनापुर के राज्य विभाजन के लिये प्रसन्न हो। गान्धारी बोली नहीं। धृतराष्ट्र बोला देखा न तुम्हे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये पल भर भी नहीं सोचना पडा और मैं अपने पूर्वजों के राज्य का विभाजन करने के पश्चात भी यह नहीं समझ सकता कि मैं प्रसन्न हूं या नहीं। गान्धारी क्योंकि दुर्योधन के अभिमान ने आप.... धृतराष्ट्र बोला दुर्योधन का अभिमान मेरी

उच्चाकांक्षाओं का फल है गान्धारी। यह बात कभी नहीं भूल ना गान्धारी वो उत्तराधिकारी है मेरी उच्चाकांक्षाओं का। मैं उसके द्वारा वो सब कुछ पा लेना चाहता हूं जिस पर मेरा सहज अधिकार था परन्तु यही मैं पा नहीं सका। यह सारा राज्य दुर्योधन का है परन्तु ये सारा राज्य युधिष्ठिर का भी है तो मैंने युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों के साथ अन्याय किया है।

शकुनि अपने कक्ष में चौसर बिछाये पांसे फेंक रहा है। उसी समय दुर्योधन और दुशासन वहाँ आते है। दुशासन बोला माथे पर अब ये चिन्ता की लकीरें क्यों मामाश्री ? अब तो हमारी छाती से पांडवों का पंचशूल भी निकल गया। शकुनि बोला किन्तु इस पंच में लिपटकर हस्तिनापुर का आधा राज्य भी तो हमारे हाथ से निकल गया ना। दुर्योधन बोला यह अच्छा तो मुझे भी नहीं लग रहा मामाश्री परन्तु मैं करता क्या ? पिताश्री की निष्ठा बीच से कटी हुई है। वो मेरे तो है ही पर दु:ख की बात यह है कि वो पांडवों के भी है। छोटी मां के सामने आ जाते ही वो कुछ कह नहीं पाते इसलिये उस आधे राज्य को जाने दीजिये मामाश्री। यह पृथ्वी जो पडी है और मैं इस राज्य की सीमायें स्वयं बढा सकता हूं। शकुनि बोला इसमें तो मुझे सन्देह ही नहीं प्रिय दुर्योधन परन्तु हस्तिनापुर राज्य का एक टुकडा तो हाथ से निकल ही गया ना और जब तक यह टुकडा फिर से हस्तिनापुर में नहीं मिल जायेगा मेरे हृदय में कांटा खटकते रहेगा। इस समस्या पर विचार करना आरम्भ कर दो भान्जे। दुशासन बोला मामाश्री अभी तो भ्राताश्री युधिष्ठिर का राज्याभिषेक भी नहीं हुआ और आपने अपने व्यूह की रेखायें खींचना भी आरम्भ कर दिया। शकुनि बोला यदि कल का कार्य आज हो जाये तो कल का दिन विश्राम का दिन हो जायेगा दुशासन। दुर्योधन बोला हंसो मत। शकुनि बोला विचार करो विचार। यदुवंशियों को वश में करना अति आवश्यक है। दुशासन बोला यह यदुवंशी बीच ही में कहां से आ गये? शकुनि बोला द्वारिका से आये हैं पुत्र द्वारिका से। वासुदेव कृष्ण तो नहीं फंसेगा क्योंकि वो भी स्वयं तो एक बडा खिलाडी है परन्तु बलराम को प्रणाम करो पुत्रों। उन्हे उत्तम भोजन खिलाओ और सोम पान कराओ। उनके चरणों को दोनों हाथों से कसकर पकड लो। दुर्योधन बोला चरण। मुझसे तो आपके व पिताश्री के चरणों को हाथ लगाने में भी कष्ट होता है मामाश्री। शकुनि बोला मैं जानता हूं कि बलराम न तुम्हारे मामा है और न पिता। अरे हम लोगों के चरणों को तू हाथ लगाये या न लगाये दुर्योधन हमारे लोगों के आशीर्वाद सदैव तुम्हारे हैं। बालपन की सीमायें पार करके बडे हो जाओ दुर्योधन। यहां पर हर किसी न किसी को चरण चुम्बन करना ही पडता है। यदि जीवन में सफल होना चाहते हो तो किसी का चरण पकडना सीखो। अगर तुमसे यह नहीं हो सकता तो मैं चला गान्धार। दुर्योधन बोला नहीं मामाश्री। आज तक कभी ऐसा हुआ है। आपने जो कुछ भी कहा हो उसे मानने में कभी आनाकानी की हो। बलराम तो बलराम ही सही। शकुनि बोला शाबास बच्चे।

भीष्म अपने भवन में टहल रहे थे कि विदुर आये। भीष्म ने कहा आओ विदुर बैठो। विदुर ने प्रणाम किया। भीष्म ने पूछा राजभवन का और कोई नया समाचार। विदुर बोला विभाजन हुआ। महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों को हस्तिनापुर छोडकर यमुना के उस पार का क्षेत्र खांडव प्रस्थ का राज्य दिया है। भीष्म बोले विदुर क्या यह विभाजन हुआ ? धृतराष्ट्र ने पांडवों को राज्य दिया है या मृत्यु दंड ? यमुना के पार वाला क्षेत्र। यम की बहिन यमुना जहां धृतराष्ट्र के अपने यौद्धा सैनिक भी नहीं जाते उनकी अपनी सेनायें अस्थायी रूप से जाते हुये भी डरती है। वह खांडवप्रस्थ उसने पांडवों को स्थायी निवास के लिये दिया है। पर प्रजा के रूप में क्या दिया है ? ये वन के भयंकर वृक्ष, हिंसक जीव जन्तु, हत्याओं के षडयन्त्रों में लगे अनेक जातियों के उपद्रवी, दस्यु, राक्षसों का स्थायी त्रास और आतंक। क्या युधिष्ठिर ने इसे स्वीकार कर लिया विदुर ? विदुर बोले हां तातश्री। यह समझौता महाराज धृतराष्ट्र और युवराज युधिष्ठिर के बीच हुआ। कृष्ण ने भी उन भाइयों को समझाया कि अच्छा ही हुआ। अब तुम लोग भी एक नयी द्वारिका का निर्माण कर पाओगे। भीष्म बोले यह तो युधिष्ठिर के साथ न्याय नहीं हुआ विदुर। इस बार धृतराष्ट्र ने उन्हे वारणावत से भी भयंकर स्थान पर भेजा है।

विदुर बोले हां तातश्री। युधिष्ठिर अपने राज्य अथवा राज्याधिकारों के लिये भ्राता धृतराष्ट्र तथा उसके पुत्रों के साथ संघर्ष नहीं

करना चाहता है। वह इतने से ही सन्तुष्ट है। वह कहता है उसके वास्तविक साम्राज्य तो उसके भाई हैं। उसके लिये तो इतना ही पर्याप्त है। युधिष्ठिर सन्तोषी है। भीष्म बोला युधिष्ठिर सदा से ही कुरुकुल को सर्वनाश से बचाते आया है। वह कुरुकुल और कुरु प्रजा का शुभ चिन्तक है। विदुर बोले राज्यसभा में दुर्योधन ने कहा कि पांडवों को अब अपना राज्य दिया जा चुका है। उसके सम्बन्धी, मित्र तथा उनके शुभ चिन्तकों के लिये उचित यही है कि वे हस्तिनापुर छोडकर पांडवों के साथ उनके राज्य में चले जाये। भीष्म झलाकर बोले यह विभाजन नहीं है विदुर यह तो निष्कासन है। पांडवों के निष्कासन के साथ प्रजा का निष्कासन नहीं हो सकता। यदि यह विभाजन होता तो निर्णय में समय ही नहीं लगता। जिस साधन विहीन स्थिति में पांडवों को निष्कासित किया गया है उसमें उनके साथ कुलवृद्धों को भेजकर दुर्योधन उनकी कठिनाइयों में वृद्धि कर रहा है। यदि मैं वहां होता तो यह नहीं होने देता। मैंने सोचा नहीं था और आवेश और भाव में आकर मैं राजसभा छोडकर चला आया। अब मैं एक और संकल्प कर रहा हूं आज विदुर। आज के पश्चात राजसभा में कितना भी जघन्य कर्म क्यों न हो रहा हो, कितनी भी घृणित चर्चा का विषय हो, कितने भी अन्याय या पापपूर्ण कृत किये जाये अब कभी भीष्म राजसभा के दरबार से उठकर नहीं जायेगा चाहे उसका प्रतिकार कर पाये या नहीं। जो कुछ कहना, सुनना, देखना होगा वहीं यह सब देखता सुनता रहूंगा। सह्य-असह्य सब का साक्षी रहूंगा। लेकिन मेरा तुम्हे आदेश है विदुर तुम हस्तिनापुर छोडकर नहीं जाओगे। दुर्योधन की राजसभा में नीति का पाठ खोलनेवाला कोई तो होना चाहिये। अब सिंहासन पर चाहे धृतराष्ट्र बैठे या शासन दुर्योधन की इच्छा से संचालित हो। दुर्योधन के परामर्श दाता होंगे शकुनि और कर्ण। पता नहीं स्वार्थपरता के लिये अब राजसभा में कैसे कैसे षडयन्त्र रचे जायेंगे। उनके प्रतिरोध स्वरूप तुम्हें तो यहीं रहना चाहिये। और मैं भी विवश हूं हस्तिनापुर में रहने के लिये अपनी प्रतिज्ञा से तथा फिर मेरी माता गंगा यही है। मुझे अपनी जन्मभूमि गंगा माता के निकट रहने का पूर्ण अधिकार है। विदुर तुम्हारा यहाँ ही रहना आवश्यक है इसलिये कि दुर्योधन से तुम न्याय दिलवा सको इसकी भी आशा नहीं की जा सकती फिर भी अपने प्रयत्न से किसी भी अन्याय की तीव्रता कम कर पाओगे। विदुर प्रणाम कर चला गया। भीष्म अपने मन में सोचते रह गये। भीष्म का मन भावुक हो गया। उनका सारा अतीत उनकी आंखों के सामने घूमने लगा। पुत्र युधिष्ठिर मैं तुम्हे कभी तुम्हारा अधिकार तो नहीं दिलवा सका। तुम्हे कभी हस्तिनापुर में न्याय नहीं मिला। जाने से पहिले कुन्ती, द्रौपदी और पांडव उनसे विदा लेने आयेंगे तो वे उनका सामना कैसे कर पायेंगे।

बलराम और कृष्ण अपने कक्ष में बैठे हुये है बातें कर रहे है। बलराम ने कहा यह क्या है कृष्ण। कृष्ण बोला सुभद्रा ने सन्देश भेजा है दाऊ। बलराम ने पूछा लिखा क्या है ? कृष्ण बोले कुछ नहीं बस सब कुशल मंगल है। इतने में ही सेवक ने आकर सूचना दी कि युवराज आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं। कृष्ण बोला युधिष्ठिरजी आये होंगे। दाऊ मैं उन्हे लेकर आता हूं। सेवक बोला मैं तो युवराज दुर्योधन के आने की सूचना लेकर आया था। कृष्ण बोला हां याद आया कि युधिष्ठिर अब युवराज नहीं है क्योंकि वो तो ज्येष्ठ पांडु पुत्र हैं तो वे खांडव प्रस्थ नरेश कहे जायेंगे। बुलाओ युवराज दुर्योधन को। सेवक ने कहा जो आज्ञा। सेवक दुर्योधन को बुलाने बाहर चला गया। कृष्ण बोला परन्तु दाऊ क्या दुर्योधन केवल आपके दर्शनों का ही अभिलाषी है ? मैं किसी योग्य नहीं ? बलराम बोले क्या तुम्हारी गिनती में होने का अर्थ यह है कि मुझसे मिलने कोई आ ही नहीं सकता। लोग तो बडों से ही मिलने को आते हैं ना। छोटों से कोई मिला थोडे ही जाता है। उन्हे तो बस आशीर्वाद ही दिया जा सकता है। कृष्ण बोला नि:सन्देह दाऊ नि:सन्देह। दुर्योधन आता है आकर बलराम को प्रणाम करता है। बलराम बोला आओ दुर्योधन मेरे निकट बैठो। ये कृष्ण है इससे परिचय है या नहीं ? कृष्ण बोला कहां दाऊ इनसे परिचय का तो सौभाग्य आज प्राप्त हुआ है और होता भी कैसे दाऊ। यह तो अपने प्रिय अनुजों के स्वागत सम्मान और उनके यहां आने के आनन्द से ही लीन रहे होंगे। प्रणाम भ्राता दुर्योधन। दुर्योधन बोला मेरा भी प्रणाम वासुदेव। मैं भी आपसे मिलने के लिये बहुत उत्सुक था वासुदेव। जब यह समाचार मिला कि छोटी मां के साथ तुम भी आ रहे हो तो सोचा कि जी भर तुमसे बन्सी सुनूंगा। कृष्ण बोला अर्थात अपना ही

जी भरने की सोची दुर्योधन परन्तु वो बन्सी तो मैं नन्दगांव में छोड आया। दुर्योधन बोला तब तो नन्दगांव के बाहर रहनेवालों के साथ बहुत अन्याय किया तुमने क्यों दाऊ ? बलराम बोला हां भाई। इसकी बात तो यही जाने कि कब किसे पकड ले और कब छोड दे। इसका तो कोई ठिकाना ही नहीं। बडा ही निर्मोही है। कृष्ण बोला पर आपको तो नहीं छोडा न दाऊ। बलराम बोला मैं छोडने दूंगा तब तुम छोडेगे। दुर्योधन बोला चलो दाऊ आपको हस्तिनापुर भ्रमण करा लाऊं। हमारी यह नगरी द्वारिका जैसी तो नहीं है फिर भी देखने योग्य अवश्य है। कृष्ण बोला हां दाऊ अवश्य जाओ। बलराम बोला क्या तुम नहीं चलोगे कृष्ण? कृष्ण बोले नहीं दाऊ। मैं तनिक भर के लिये पहिले विदुरजी के घर जाऊंगा फिर द्रोणाचार्य के और फिर पितामह भीष्म के दर्शन करूंगा। यही वो लोग हैं युवराज जिनके होने के कारण आज हस्तिनापुर आदरणीय है। बलराम बोला अच्छा तो ठीक है तुम उन लोगों से मिल आओ मैं तो जा रहा हूं दुर्योधन के साथ।

कृष्ण विदुर के घर आता है। विदुर कृष्ण का बडा ही आदर सत्कार करते हैं। कृष्ण विदुर के घर भोजन करते हैं। कृष्ण बोला सरसों का इतना स्वादिष्ट साग तो मैंने पहिले कभी खाया ही नहीं था और यह मक्कई की रोटी खाकर काकीश्री मैं तो धन्य हो गया। विदुर बोला सुन रही हो तुम्हारे पकाये भाग को खाकर कौन धन्य हो रहा है ? कृष्ण बोला सच कह रहा हूं काकाश्री राजभवन के पकवान खा खा कर मन ऊब गया था और कभी हस्तिनापुर आना हुआ तो आप ही का अतिथि बनूंगा। विदुर बोला तब तो इस घर के भाग्य ही खुलेंगे वासुदेव। पारसंवी विदुर पत्नी बोली कहीं ये वचन भूल तो नहीं जाइयेगा वासुदेव। विदुर बोले भाग्यवान इन्हे भूलना ही तो नहीं आता।

अधिपति तीनों लोक का खाये विदुर घर साग, स्वाद भरा था प्रेम का साग बना अनुराग।

विदुर बोला एक प्रश्न करूं वासुदेव। कृष्ण बोले क्यों नहीं काकाश्री। अवश्य करो। प्रश्नों के उत्तर देने के लिये ही तो यहां आया हूं। विदुर बोले काम्पिल्य के मार्ग में हस्तिनापुर तो नही आता है या आता है ? कृष्ण बोला आज के भारतवर्ष का मार्ग हस्तिनापुर से टकरा कर नहीं जा सकता विदुरजी। पर आप स्वयं इस रहस्य को जानते हैं। जो हो रहा है उसे होने दीजिये और हो जोनेवाला है उसकी प्रतीक्षा कीजिये। विदुर पत्नी पारसंवी बोली मेरे हस्तिनापुर के कैसे बुरे दिन चल रहे हैं वासुदेव ? यदि ऐसा न होता तो युधिष्ठिर जैसे योग्य राजकुमार को ऐसा घर निकाला मिलता। कृष्ण बोला दिन तो शुभ या अशुभ होते ही नहीं काकीश्री। शुभ या अशुभ होते है कर्म केवल कर्म।

वासुदेव द्रोणाचार्य के पास आते हैं। द्रोणाचार्य बोला यदि नियम यह है वासुदेव फिर युधिष्ठिर को उसके शुभ कर्मों का दंड क्यों मिल रहा है। कृष्ण बोला इसे आप दंड मानते ही क्यों है ? गुरुवर क्या किसी नये नगर के निर्माण का अवसर मिलना दुर्भाग्य है ? क्या राजकुमार दुर्योधन आपके विचार में इस कसौटी पर खरे उतर सकते थे ? और यदि नहीं तो फिर जो हो रहा है वह होना भी चाहिये। राजकुमार युधिष्ठिर अपने अनुजों को लेकर प्रगति पथ पर अपनी यात्रा आरम्भ करने वाले हैं परन्तु दुर्योधन तो विवश है। वे यह यात्रा नहीं कर सकते। द्रोणाचार्य बोले ऐसा क्यों ? कृष्ण बोला ऐसा इसलिये आचार्य की दुर्योधन अपने आप में कुछ है ही नहीं। वे महाराज धृतराष्ट्र के वृक्ष की एक टहनी है और वृक्ष धरती की टुकडों से अपनी जडों से बन्धे हुये होते हैं। न तो वो आगे जा सकते हैं और ना ही पीछे हट सकते हैं। वे केवल टूटकर गिर सकते हैं। आचार्य या फिर परिस्थितियों के ईन्धन बनाये जाने के लिये काटे जा सकते हैं। द्रोण बोले वासुदेव। कृष्ण बोले आचार्य यदि प्रश्न करना ही हो तो उसके उत्तर से नहीं घबराना चाहिये। आप तो स्वयं ही अपने आपसे जूझ रहे है आचार्य क्योंकि दुर्योधन भी आप ही हैं और अर्जुन भी आप ही परन्तु आप अपना यह वाक्य सदैव याद रखिये आचार्य कि अर्जुन वो नर है जो नारायण के दर्शन करायेगा।

पितामह भीष्म के निर्णय से भावी युवराज का प्रतिवाद यद्यपि मिट गया फिर भी हस्तिनापुर के मनपर सदा के लिये एक विभाजन की रेखा खींच गयी। इस विभाजन का दु:ख भीष्म की अपेक्षा अधिक किसको हो सकता ? गंगा, सत्यवती तथा

हस्तिनापुर ऐसी तीन माताओं का पुत्र भीष्म की दशा इस विभाजन से अधिक ही विकट हो गई पर युद्ध के प्रसंग को टालने के लिये, जहां तक हो सके युद्ध न हो इसी विचार से यह करना भी अत्यन्त आवश्यक था।

अपने ऊपर हुये अन्याय से अर्जुन ने अपना सम्पूर्ण क्रोध हस्तिनापुर के राजभवन के पास एक वृक्ष पर उतारा। अर्जुन एक के बाद एक क्रमश: तीर छोडकर उस पेड को काटने लगा। अर्जुन ने देखा कि हौले से भीष्म पितामह उसके पीछे आकर खडे यह सब देख रहे है। अर्जुन का ध्यान भीष्म पिता की ओर गया। अर्जुन को क्रोधित देखकर भीष्म ने पूछा क्या वत्स यह वृक्ष तुम्हारा कोई शत्रु है ? क्रोध का सबसे बडा अवगुण यही है पुत्र कि वो दोषी और निर्दोषी में कोई अन्तर नहीं कर सकता। तुम धृतराष्ट्र के अन्याय का क्रोध इस विवश वृक्ष पर उतार रहे हो जो अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता। जब की क्षत्रिय का पहिला कर्तव्य है कि वो विवश की सहायता करे। अर्जुन बाला यदि यह आप जानते थे कि पितामह ज्येष्ठ पिताश्री ने हमारे साथ अन्याय किया है तो फिर आपने इस अन्याय का विरोध क्यों नहीं किया। केवल अन्याय को जानते हुये भी न्याय का चुप रह जाना अन्याय को सहयोग देने के बराबर है पितामह। भीष्म बोला है पुत्र अवश्य है परन्तु हस्तिनापुर को विनाश से बचाने का और कोई मार्ग भी तो दिखाई नहीं दे रहा। अर्जुन बोला यदि ज्येष्ठ पिताश्री मेरे मार्ग के बीच से हट जाये तो मेरा यह धनुष इस समस्या का समाधान बन सकता है पितामह। भीष्म बोला और कदाचित वैसे भी चौकों मत पुत्र। बूढ़ा हो चुका हूं। तुमसे तीन पीढ़ी पीछे का व्यक्ति हूं। आंखे मेरी धुंधला गई है। आनेवाली रात के उस पार जो दिन है वहां का नतीजा मुझे ठीक से दिखाई भी नहीं देता। मुझे पूरा विश्वास है कि कुन्ती ने तुम लोगों को यह नहीं बतलाया होगा कि मैं नहीं चाहता था कि धृतराष्ट्र ही हस्तिनापुर नरशे बने। ऐसा नहीं है कि मैं यह नहीं जानता कि किसी नेत्र हीन का राज सिंहासन पर कोई अधिकार नहीं होता। मैंने धृतराष्ट्र को केवल इसलिये राजा नहीं बनाना चाहा था कि वो ज्येष्ठ पुत्र है परन्तु वो मेरा शिष्य भी है और मैं जानता था भी कि वो राजा नहीं बना तो यही सोचने लगेगा कि उसके साथ बहुत बडा अन्याय हो गया है और उसकी यही सोच उसे यह जटिल व्यक्तित्ववाला व्यक्ति बना देगी जो हस्तिनापुर के हित में नहीं होगा। परन्तु उस समय विदुर अपना नया नया नीति ज्ञान लेकर मेरे सामने आ गया और मैं कुछ नहीं कर सका। मुझे चुप रह जाना पडा। यदि उस दिन माता सत्यवती ने पांडु को हस्तिनापुर नरेश न घोषित किया होता तो आज यह सब समस्या ही नहीं होती पुत्र क्योंकि तब तक धृतराष्ट्र की प्यास बुझ चुकी होती और वह यह सोचने लगता कि राज करने योग्य केवल युधिष्ठिर ही है। परन्तु जो कुछ नहीं हुआ उस पर रोने से क्या लाभ? भविष्य की ओर देखना चाहिये। शान्ति की ओर देखना चाहिये। अर्जुन बोला तो ठीक है पितामह तो फिर आप हमारे साथ चलें। हम राज त्याग सकते हैं परन्तु आप हमसे नहीं त्यागे जायेंगे और यह कहकर अर्जुन सिसकियां भरने लगा। भीष्म भी रो पडे और अर्जुन को छाती से लगा कर बोले तुम्हारे साथ चलना भी मेरे वश में नहीं है पुत्र नहीं है। जैसे गाय अपने खूंटे से बन्धी होती है वैसे ही मैं हस्तिनापुर राज सिंहासन से बन्धा हुआ हूं।

भीष्म पितामह राज दरबार में आये और बोले कि महाराज का आदेश है कि युधिष्ठिर के राज्याभिषेक में सारे प्रसिद्ध आचार्य और शास्त्री आमंत्रित किये जाये और एक हजार आठ ब्राह्मण महावत एक पुरोहित की देखरेख में हाथियों पर गंगा जल लाने के लिये नियुक्त किये जाये और युधिष्ठिर के लिये स्वयं महाराज की सवारी का हाथी सजाया जाये। इन हाथी के पीछे पीछे सारे ब्राह्मण और नागरिक मंगल गान करते हुये चलेंगे। इस राज्याभिषेक में सभी प्रमुख को आमंत्रित किया जाये। आप सब चलिये और राज्याभिषेक की तैयारियां कीजिये।

विदुर भीष्म के पास आता है और प्रणाम करता है। भीष्म ने भी आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया और पूछा कोई समाचार विदुर। विदुर बोला दुर्योधन बलरामजी को हस्तिनापुर की सैर कराने ले गया है। भीष्म बोले और अब वह क्या चाहता है ? विदुर बोला वह राज्य के विभाजन से प्रसन्न तो नहीं है तातश्री। वो सदैव यही चाहता होगा कि उसके हाथ से निकल जाने वाला

आधा राज्य फिर उसके हाथ में लौट आये। भीष्म बोले अभी भी उसके पास कौनसा राज्य है जो वो सीमा का विस्तार के सपने देख रहा है। विदुर भ्राता धृतराष्ट्र दुर्योधन की आँखों से ही सपने देखा करते हैं तातश्री। भीष्म बोले हे भगवान ईर्ष्या की यह आग क्या कभी बुझेगी नहीं।

कृष्ण भीष्म के कक्ष में आया और प्रणाम किया पितामह। भीष्म बोले आओ देवकीनन्दन और मेरा प्रणाम स्वीकार करो। कृष्ण बोले बडे अपने छोटों को कब से प्रणाम करने लगे पितामह। भीष्म बोले यह कौनसे गणित के नियम ने मुझे तुमसे बडा बना दिया है देवकी नन्दन। कृष्ण बोला आयु पितामह। भीष्म ने कहा तुम अतिथि हो वासुदेव। तुम्हे झूठला नहीं सकता स्थान ग्रहण करो। कृष्ण बोला पहिले आप पितामह। विदुर बोले यहाँ विराजिये तातश्री और आप यहां। तीनों बैठ गये। भीष्म ने कृष्ण से पूछा राज्याभिषेक के उपरान्त क्या संकल्प है वासुदेव। कृष्ण बोला मैं तो पांडवों के साथ खांडव प्रस्थ जाने की सोच रहा हूं पितामह। भीष्म बोले तो क्या बलराम साथ नहीं जायेंगे। कृष्ण ने कहा अपनी तो वो ही जाने। इस समय तो दुर्योधन उन्हे घूमाने ले गये। लगता है घूमा दिया। अभी तक लौटकर नहीं आये है। सम्भव है कि वो यहां पर कुछ दिन और ठहर जाये। बडे भाई है ना मैं तो कुछ कह भी नहीं सका।

दुर्योधन और दुशासन दोनों बलरामजी को अपने राजभवन में आग्रह कर कर के भोजन करा रहे हैं। दुर्योधन बोला अरे दाऊ तुमने तो कुछ खाया नहीं। बलराम बोले और कितना खाऊं। दुर्योधन बोला दुशासन थोडी और खीर परोस दो। बलराम बोले बस बस अब बन्द करता हूं। दुशासन बोला अच्छा अच्छा। दाऊ आपके विचार से सबसे उत्तम शस्त्र कौनसा है ? बलराम बोले भई मेरे लिये तो मेरा हल धर शस्त्रों में सबसे उत्तम है गदा और तुम लोग तो आदरणीय आचार्य द्रोण के शिष्य हो और यह समझ लो की उनका शिष्य होना भी बडे सौभाग्य की बात है। दुर्योधन बोला आपका शिष्य होना भी कोई कम सौभाग्य की बात नहीं है दाऊ। बलराम बोला अरे नहीं हम कहां के गुरु हो गये ? हां बस गदा धारण कर लेते हैं। दुर्योधन बोला परन्तु आपने तो भीम को शिक्षा दी थी दाऊ। दुशासन बोल उठा आप भीम की भांति दाऊ की सग्गी बुआ के पुत्र थोडे ही हो। घी तो खिचडी में ही जायेगा ना। बलराम बोले यह तुम क्या कह रहे हो ? मेरे लिये तो जैसा भीम है वैसा ही दुर्योधन। ठीक है ठीक है। खांडवप्रस्थ से कृष्ण को द्वारका भेज दूंगा और फिर मैं यहां चला आऊंगा कुछ दिन के लिये। दुर्योधन बोला कुछ दिनों से काम नहीं चलेगा दाऊ। मैं तो जी भरकर गदा युद्ध सीखूंगा। बलराम बोला अच्छा जी भर कर सीख लेना और मैं जी भर के सिखाऊंगा पर पहले राज्याभिषेक तो हो जाने दो।

हौले से मीठी बात कर किया वश बलराम, दुर्योधन की चाल ने फंसा लिया कर घात।

६४) युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ पर राज्याभिषेक

राज्याभिषेक पर ही समस्यायें समाप्त नहीं होती, आरम्भ होती है। किसी व्यक्ति का राजा बन जाना एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। यदि राजा सावधान न रहे तो यह दुर्घटना में भी बदल सकती है और युधिष्ठिर को जो राज्य मिल रहा है उसकी तो सीमा रेखा ही विभाजन रेखा है लेकिन इसी मीठी घडी में कडवी बातें किसलिये ? वास्तविकता तो यह है कि श्रीकृष्ण ने खांडव प्रस्थ को पांडवों की कर्म भूमि कह दिया है तो उसे पांडवों की कर्म भूमि बनना ही होगा और इसके लिये युधिष्ठिर का राज्याभिषेक आवश्यक है।

कुन्ती और द्रौपदी राजभवन में युधिष्ठिर के पास आती हैं। दासियां परिचायक और सेवक युधिष्ठिर को वस्त्राभूषणों से सज्जित कर तैयार कर रहे हैं। सभी कुन्ती को प्रणाम करते हैं। कुन्ती कहती है घर में बहू आ जाने के पश्चात घर में अधिकार मां और बहू के बीच में बंट जाना चाहिये। मर्यादाओं की कुछ रेखायें खींच जानी चाहिये। सास बन जाने के पश्चात रेखायें पार नहीं करनी चाहिये। मां की यही रेखायें तो आधारशिला होती है जीवन की। द्रौपदी आरती करो और युधिष्ठिर को तिलक करो। कुन्ती

युधिष्ठिर से बोली पुत्र राजा होने के पश्चात द्रौपदी की रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है युधिष्ठिर। द्रौपदी का दायित्व तुम पर तुम्हारे भाईयों से अधिक होगा। युधिष्ठिर बोला आप केवल पांचाली की बात क्यों कर रही है माताश्री। क्या आपका, मेरे अनुजों का, यह सारा जनसमुदाय मेरा दायित्व नहीं है। कुन्ती बोली नहीं पुत्र युधिष्ठिर मैं तुम्हारा दायित्व नहीं हूं। भगवान ज्येष्ठ भ्राताश्री को लम्बी आयु दे। मैं तो उनका दायित्व हूं। तुम पुत्रों को मैने आज द्रौपदी को दे दिया। अब मेरे इन पुत्रों को सम्भालो पांचाली परन्तु मेरे सहदेव का विशेष ध्यान रखना क्योंकि वो सबसे छोटा है। द्रौपदी बोली ये आपके पुत्र हैं माताश्री और इनपर आपका अधिकार सदैव मेरे अधिकार से अधिक रहेगा। मैं इस परिवार और परम्परा से भली भांति परिचित भी नहीं हूं। आपकी सहायता के बिना मैं आपकी इस धरोहर को कैसे सम्भाल पाऊंगी माताश्री ? कुन्ती बोली पुत्र भीम अपने भ्राताश्री युधिष्ठिर को राज्यसभा की ओर ले चलो। भीम बोला जो आज्ञा माताश्री।

द्रौपदी बोली आप नहीं चलेंगी माताश्री। कुन्ती बोली नहीं पुत्री तुम जाओ। मैंने तो राज्यसभा देखी ही नहीं। जब मैं यहां पहली बार आई थी तो मेरे महाराज पांडु विजय यात्रा के लिये निकल गये थे और वहां से लौटे तो तुरन्त ही विश्राम वाटिका भेज दिये गये। फिर वहीं किन्दम ऋषि वाली दुर्घटना हो गई और मेरे महाराज ने बनवास ले लिया। जो राज्यसभा मैंने महारानी होकर नहीं देखी अब उसे राजमाता होकर क्या देखूंगी ? तुम जाओ पुत्री आज का दिन तुम्हारा दिन है। मेरा हृदय तो केवल मेरा तपोवन है। मैं वहीं बैठी बैठी तुम सबको आशीर्वाद देती रहूंगी।

अपने अधिकार सौंपे पुत्र वधू को वृक्ष बढे परिवार का दुख ना करे प्रकोप।

युधिष्ठिर द्रौपदीसहित भीष्म और अपने अन्य भाइयों सहित राजसभा में आये। वहां पर भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृष्ण, बलराम, सात्यकि, कर्ण, शकुनि, दुशासन, गान्धारी, धृतराष्ट्र इत्यादि मन्त्रियों और सामान्य जनगण उपस्थित थे। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होने जा रहा है। ऋषियों आचार्य और ब्राह्मणों ने, पंडितों ने स्वस्तिवाचन पाठ किया। कर्ण बोला आज तो दुर्योधन को अवश्य आना चाहिये था। शकुनि बोला समझा तो आया हूं पर आधा राज्य हाथ से निकल जाने का दु:ख तो होता है ना। कर्ण बोला आधा राज्य निकला नहीं आधा राज्य मिला है। शकुनि बोला यह तो दृष्टि का मतभेद हुआ ना अंगराज। कृपाचार्य बोले यदि महाराज की आज्ञा हो तो ज्येष्ठ कुरु पुत्र युधिष्ठिर उपस्थित हो। धृतराष्ट्र बोला शुभ मुहूर्त किसी राजा के आदेश की प्रतीक्षा नहीं करता है कुलगुरु। युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ अपने भाइयों सहित आये और धृतराष्ट्र को प्रणाम किया प्रणाम महाराज। धृतराष्ट्र ने भी आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। आओ वत्स। विदुर ने युधिष्ठिर को विराजने को कहा और उचित आसनों पर दोनों को बिठाया। विदुर धृतराष्ट्र से बोला महाराज अब आप घोषणा कर दीजिये। धृतराष्ट्र बोला मैं सबसे पहिले ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रणाम करता हूं कि उन्ही की कृपा से हस्तिनापुर का जनसमुदाय सुखी है और राजा न्याय करने का प्रयत्न करता है। फिर मैं तातश्री ऋषि भार्गव और बृहस्पति के शिष्य गंगा पुत्र भीष्म को प्रणाम करता हूं कि वो एक राज घराने के धर्म ध्वज की भांति इनकी कृपाछाया में हस्तिनापुर राज्य फल फूल रहा है। फिर मैं सादर प्रणाम करता हूं चन्द्रवंश के पूर्वजों को जिसका उत्तराधिकारी होने के अतिरिक्त मुझ में और कोई गुण बडाई नहीं। फिर मैं सादर प्रणाम करता हूं हस्तिनापुर के नागरिकों को जिन्होने मेरी नेत्र हीनता को अपना दुर्भाग्य नहीं माना और मुझे अपना पूरा सहयोग दिया। आज इन सबको साक्षी मान कर आज मैं एक घोषणा करता हूं। हस्तिनापुर राज्य पर जन्म से मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं अपने प्रिय अनुज पांडु के प्रतिनिधि के रूप में राज कर रहा हूं। इसलिये मेरा यह निर्णय वास्तव में पांडु का निर्णय है। तो मैं अनुज पांडु की ओर से यह घोषणा करता हूं कि हमारे पिताश्री का यह राज्य दो हिस्सो में बराबर बराबर बांट दिया जाये। इसका एक भाग अनुज पांडु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को मिले और दूसरा भाग मेरे उपरान्त मेरे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को मिले। इसलिये आज अपने पूर्वज महाराज ययाति का राज खांडव प्रस्थ युधिष्ठिर को दिया जाता है और बच जानेवाला हस्तिनापुर का दूसरा भाग मेरे पास

रहे। तातश्री भीष्म, महामन्त्री विदुर और इस राज्य के अन्य सदस्य इस निर्णय से सहमत हैं। पांडु पुत्रों की ननिहाल यदुवंशियों ने भी इसका स्वागत किया है। मेरी यह प्रार्थना है कि युधिष्ठिर और उसके यश में खांडव प्रस्थ स्वर्ग बन जायेगा। मेरी यह कामना है कि पुत्र युधिष्ठिर मेरे जीवन काल में राजसूय यज्ञ भी कर सकेगा। मुझे विश्वास है कि युधिष्ठिर धर्मकाल में और उसके राज्य में उसके मित्र सुरक्षित रहेंगे और जीवन का हर प्रकार का सुख भोगेंगे।

गंगा पुत्र भीष्म पितामह उठकर बोले यदि महाराज की आज्ञा हो राज्याभिषेक का कार्य आरम्भ किया जाये। धृतराष्ट्र बोला आज्ञा तो आप देंगे तातश्री। उसी समय द्वारपाल ने आकर सूचना दी महर्षि वेदव्यास पधार रहे हैं। सभी ने उठ उठ कर महर्षि का स्वागत किया तथा व्यासजी ने भी सबको आयुष्मान भव, यशस्वी भव तथा चिरंजीवी भव का आशीर्वाद दिया। शकुनि बोला यह अंगराज कर्ण हैं ऋषिवर। वेदव्यास बोले त्रिलोक में जो कुछ भी ज्ञान रखता है वह इस महान योद्धा को जानता भी है और पहचानता भी है। तुम तो भाग्यशाली हो शकुनि तुमने इस महान यौद्धा के युग में जन्म लिया है। कृष्ण ने उठकर महर्षि वेदव्यास को प्रणाम किया प्रणाम ऋषिवर। व्यास बोले प्रणाम नहीं देवकीनन्दन परिणाम कहो। आयुष्मान भव। भीष्म ने प्रणाम किया। विदुर ने गान्धारी को बताया भाभीश्री ऋषिवर तो गान्धारी ने भी व्यास को प्रणाम किया। व्यास ने अखंड सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया। अब युधिष्ठिर ने द्रौपदी सहित महर्षि की चरण वन्दना कर प्रणाम किया। व्यास बोले अपना अधिकार पाओ पुत्र। जीवन एक सागर है पुत्र और इसको मथना तुम्हारा कर्तव्य है परन्तु ध्यान रहे मन्थन से प्राप्त होनेवाले अमृत के साथ-साथ विष के अधिकारी भी तुम ही होंगे। युधिष्ठिर बोले ऋषिवर आपने पांचाली को कोई आशीर्वाद नहीं दिया। व्यास बोले इसकी आत्मशक्ति को किसी आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं है। अपने केशों का ध्यान रखना पुत्री। इनको सदैव बांधे रखना नारी धर्म की मर्यादा है। अब व्यास धृतराष्ट्र की ओर मुडे। धृतराष्ट्र ने वेदव्यास को प्रणाम किया। व्यास बोले तुम अपना स्थान मत छोडो राजन। धृतराष्ट्र ने कहा बैठिये। महर्षि ने कहा मैं तो केवल यहां युधिष्ठिर का राज्याभिषेक देखने आया हूं। भीष्म बोले तो फिर यह कार्य आप ही के हाथों ही सम्पन्न हो ऋषिवर व्यास ने उत्तर दिया नहीं गंगा पुत्र मुकुट पहनाना या उतारना मेरा काम नहीं है। यह कार्य तो कुलगुरु का है। धृतराष्ट्र फिर बोला परन्तु आप अपना स्थान तो ग्रहण कीजिये। व्यास बोले नहीं राजन। मेरे लिये यहां कोई स्थान नहीं है। शुभ कार्य में विलम्ब क्यों है आचार्य ? खांडवप्रस्थ बडे उतावलेपन से युधिष्ठिर की प्रतीक्षा कर रहा है। व्यास के कहने पर कुलगुरु कृपाचार्य ने युधिष्ठिर को राजमुकुट पहिनाया और युधिष्ठिर अब राजा हो गया। सारी प्रजा युधिष्ठिर की जय जय कार करने लगी महाराज युधिष्ठिर की जय।

युधिष्ठिर बोला चलो द्रौपदी और सर्वप्रथम महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम किया धृतराष्ट्र बोला यशस्वी भव, सक्षम भव, न्यायकारी भव। तुम अपने भाइयों को लेकर खांडव प्रस्थ अवश्य जा रहे हो पुत्र परन्तु एक बात सदैव ध्यान में रखना खांडव प्रस्थ भी मेरे हृदय सीमा के भीतर ही है। युधिष्ठिर ने गान्धाारी को प्रणाम किया प्रणाम ज्येष्ठ माताश्री। गान्धारी बोली मैं भगवन चन्द्रमौलि शंकर से केवल एक ही वर मांगती हूं पुत्र कि इस राज्य का विभाजन भले ही हो गया हो परन्तु इस राज परिवार का विभाजन कभी ना हो। युधिष्ठिर बोला ज्येष्ठ माताश्री मैं अपनी तरफ से पूरा प्रयत्न करूंगा और यदि आपके आशीर्वाद का हाथ मेरे शीशपर रहा तो मैं इस परिवार काविभाजन कभी नहीं होने दूंगा। गान्धारी बोली भगवान करे तुम्हारे जीवन की हर रात पूर्णिमा की रात हो और तुम्हारे भाग्य की अमावास की सारी रातें मुझे मिल जाये क्योंकि मैंने तो अन्धकार में जीना सीख लिया है। युधिष्ठिर महर्षि व्यास के पास आये और चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया। व्यास बोले मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है राजन क्योंकि मेरा आशीर्वाद तुम्हारे लिये न होता तो मैं यहां आता ही क्यों ? व्यास ने आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर भीष्म के पास आये और प्रणाम किया पितामह। भीष्म बोले इस राज्य के साथ मेरा विभाजन भी हो गया पुत्र। जन समुदाय के अधिकारों और उसके जीवन और उनके आत्मसम्मान की रक्षा करने का प्रयत्न करना पुत्र कि आने वाले कल का इतिहास तुम पर गर्व कर सके।

तुम हमारे गौरवशाली अतीत की धरोहर हो और उत्तराधिकारी भी। एक क्षत्रिय की भांति उसकी रक्षा करना। क्षत्रिय का जीवन जीने के लिये नहीं होता। क्षत्रिय का जीवन मानव अधिकारों की रक्षा करने में मर जाने के लिये होता है। भीष्म ने आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य को गुरुवर प्रणाम किया। द्रोणाचार्य बोले तुम पांचो भाई गुरु का गौरव हो इसलिये महाराज युधिष्ठिर शिक्षा का आज अन्तिम पाठ पढाता हूं। क्षत्रिय को रणभूमि की ओर तभी देखना चाहिये जब कोई और मार्ग खुला हुआ दिखाई नहीं दे रहा हो। केवल विजय ही क्षत्रिय का धर्म नहीं है। युद्ध के बल जीवन मूल्यों और शान्ति की रक्षा के लिये ही करना चाहिये। मुझे विश्वास है कि तुम कभी क्षत्रिय धर्म का उल्लंघन नहीं करोगे।

युधिष्ठिर बोला मैं आपको वचन देता हूं गुरुवर कि मैं सदैव क्षत्रिय धर्म का पालन करूंगा। द्रोण बोले तो फिर प्रगति और उन्नति के मार्ग पर अपनी यात्रा आरम्भ करो वत्स। युधिष्ठिर द्रौपदी सहित कृपाचार्य के पास आये और प्रणाम किया। कुलगुरु ने भी आशीर्वाद दिया यशस्वी भव और द्रौपदी को अखंड सौभाग्यवती भव होने का आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर अब विदा होने विदुर के पास आये और प्रणाम कर आशीर्वाद के लिये झुके। यह दृश्य देखकर विदुर की आंख में आंसू आ गये। युधिष्ठिर बोले क्या आप आशीर्वाद नहीं देंगे मुझे काकाश्री। विदुर बोला यहां इस समय इस राज्य सभा में मैं आपका काकाश्री नहीं हूं महाराज। मैं हस्तिनापुर का महामन्त्री हूं और इस नाते से केवल अपनी शुभ कामनायें भेट कर सकता हूं। युधिष्ठिर बोले आपका आशीर्वाद लिये बिना तो मैं जा नहीं सकता काकाश्री। तो फिर मैं आशीर्वाद लेने वहां आऊंगा जहां आप हस्तिनापुर के महामन्त्री नहीं होंगे बल्कि हमारे काकाश्री होंगे। युधिष्ठिर और सभी ने प्रणाम किया और चले।

युधिष्ठिर ने पूरे राजदरबार को सम्बोधित कर कहा मैं तीन मां ओं का पुत्र हूं मेरी पहिला माँ महारानी कुन्ती, दूसरी मां महारानी गान्धारी और तीसरी मां हस्तिनापुर को प्रणाम करके आशीर्वाद मांग रहा हूं। मैं खांडवप्रस्थ का राजा अवश्य हो गया हूं परन्तु पुत्र तो मैं हस्तिनापुर का ही हूं। सभी ने महाराज युधिष्ठिर की जय जय कार करी आरैर युधिष्ठिर ने द्रौपदी अपने भाइयोंसहित माता कुन्तीसहित खांडवप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया।

६५) खांडव वन को इन्द्रप्रस्थ बनाकर पांडवों की अपने राज्य की स्थापना

यह कथा अब पांडवों की कर्मभूमि खांडव प्रस्थ की ओर जा रही है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के जत्थे भी साथ हैं क्योंकि वे जानते हैं कि युधिष्ठिर के साथ हस्तिनापुर की आत्मा भी खांडवप्रस्थ जा रही है। श्रीकृष्ण और हलधर बलराम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, गंगा पुत्र भीष्म भी भूमिपूजन के लिये जा रहे हैं। महर्षि व्यास तो साथ में है ही कि यदि वो ही नहीं होंगे तो भूमिपूजन करवायेगा कौन ? इन सबके साथ साथ समय भी दबे पांव उसी ओर जा रहा था कि यह देखने श्रीकृष्ण ने खांडवप्रस्थ को पांडवों की कर्मभूमि को बताया क्यों ? क्योंकि वो तो यूं ही कोई बात कहते नहीं और इसका केवल यह अर्थ है कि वहां अवश्य ही कोई चमत्कार होनेवाला है। श्रम और प्रकृति का यह संघर्ष देखने योग्य होगा। अरावली की मिट्टी व पहाडियाँ, तलवों को चाटनेवाले किंकर के वन, बांझ भूमि इस उजडी हुई बांझ और निर्दयी भूमि को देखकर स्वयं इन्द्र भी चकरा जाये। मेघदूत भला इस जलती तपती भूमि के लिये क्या सन्देशा ला सकते हैं ? परन्तु देवलोक के बाकी परिश्रम क्या जाने ? यह तो केवल मनुष्य का विशेषाधिकार है और प्रकृति यह बात जानती है इसलिये खांडव प्रस्थ की हर चट्टान में जैसे आंखे उग आई हो। हर पेड वैसे बाहें फैलाये आनेवालों की प्रतीक्षा कर रहा है। गर्म हवा उनके स्वागत के लिये बगुलों को आगे भेज रही है। नागवंशी और असुर जाति के दस्युगण अपने तीर कमान सम्भाले ताक मे बेठे हैं क्योंकि वे अपने क्षेत्र में किसी को अपने पांव जमाने नहीं देंगे।

युधिष्ठिर का काफिला खांडवप्रस्थ में आकर रूका। भीम ने माता कुन्ती को रथ से उतारकर युधिष्ठिर से पूछा यदि आपकी आज्ञा हो तो शिबिर यहीं स्थापित करें। नकुल बोला वैसे भी यहां देखने को है ही क्या ? चारों ओर वन ही वन है। जहां वन नहीं

है वहां पथरीली पहाडियां है जिनपर घास भी नहीं उगती। युधिष्ठिर बोले यह कौरवों की प्राचीन राजधानी रही है। महाराज ययाति, नहुष, आयुष पुरवरा ने यहीं से शासन किया था। यह खांडव प्रस्थ है जहां हमारी प्रजा निवास करेगी। भीम बोला मुझे तो यहां कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है।

खांडवप्रस्थ के ग्रामवासी इकट्ठे होकर आपस में बाते कर रहे थे मैं तो यह पूछ रहा हूं कि महाराज ने अनुज पुत्रों को श्राप दिया या आशीर्वाद। दूसरे ने कहा खडे खडे देखते जाओ भैया। और एक ने कहा देखते नहीं भीष्म जैसे सिर झुकाये खडे है उनकी तो पूछो ही मत। उनके गले में तो प्रतिज्ञा का फन्दा पडा है। पूजनीय तो है पांडु कुमार। ज्येष्ठ पिताश्री ने जो दे दिया वो स्वीकार कर लिया। देख लो है किसी के माथे पर चिन्ता की रेखायें ? कृष्ण ने पूछा कैसी लगी अपनी कर्मभूमि? अर्जुन बोला यही कर्मभूमि भी हमारी अब पूज्य भूमि भी है केशव। अब रहा ये प्रश्न कैसी लगी ? तो एक दिन की बात सुनो जब हम सब छोटे छोटे थे। गुरुदेव ने हम सब की परीक्षा के लिये एक यन्त्र पक्षी को हमारा लक्ष्य ठहराया। सबसे पूछा उन्हे क्या दिखाई दे रहा है? हम सभी ने गुरुवर के इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने भी दिया। मुझे उस पक्षी की एक आंख के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था और केशव आज भी वैसा ही है। यह सब बंजर भूमि किंकर के वृक्षों और पहाडियों की बातें कर रहा है और मैं बडे आश्चर्य में हूं। कहां है यहां पहाडियां ? कहां है किंकर वृक्ष ? कौनसी बंजर धरती ? मुझे तो आपके आशीर्वाद के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता है केशव। कुछ भी तो नहीं। कृष्ण बोला हे पार्थ इन्द्र देव को सादर प्रणाम कर अपना कार्य आरम्भ करो। अर्जुन बोला जो आज्ञा वासुदेव। अब नगर नहीं है तो बसाना है। अब रहना तो यहीं है। महाराज धृतराष्ट्र ने हमें जो राज्य और राजधानी दी है उसका हम अपमान तो नहीं कर सकते। कृष्ण ने अर्जुन से कहा किसी एक का स्वभाव ही तो मानव का धर्म नहीं है। साधारण मनुष्य प्रकृति के नियमों का दास होता है परन्तु असाधारण व्यक्ति का सारा उपक्रम उन नियमों का स्वामी बनने के प्रयत्न में होता है। अब तुम यहां अपना शिबिर स्थापित कर दो। यह क्षेत्र चाहे कौरवों के राज्य के अन्तर्गत माना जाता है किन्तु है यमुना के तट पर, गंगा तट पर नहीं और यमुना हमारी नदी है। मथुरा, वृन्दावन और गोकुल ये सब तो हमारे हैं और ये कुछ भी तो यहां से दूर नहीं है। वे सब उस क्षेत्र में कृष्ण के साथ साथ देखते हुये चल रहे थे। झाडियों के बीच बनी धुंधली पगडन्डी पर कृष्ण के पैर बढते जा रहे थे। यह तो स्पष्ट था कि मनुष्य यहां से इन मार्गों से आते जाते रहते थे। यदि ऐसा न होता तो इन पगडंडियों का अस्तित्व ही नहीं होता किन्तु इस निर्जन वन में न तो कोई पथ था और न ही कोई राजपथ। यहां पर रथों का आवागमन सम्भव नहीं था। यदि पांडवों को यहीं रहना है तो उन्हे पथ और राजपथों का, सडकों का निर्माण करना होगा। भवनों, हवेलियों और राजभवनों का निर्माण करना होगा। जब यह बस्तियां बस जायेगी, मनुष्य रहने लग जायेंगे तो उनकी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिये हर सुविधा जुटानी पडेगी। यादवों ने भी तो द्वारका जैसे वैभवशाली नगर का निर्माण किया। प्रत्येक नगर को कोई न कोई राजा ही तो बसाता है तो फिर पांडव अपने लिये एक नये नगर व राज्य का निर्माण कर क्यों नहीं बसा सकते ?

उन्नति और विकास का अधिकार तो सबको होता है। निर्धन तपस्वी कभी-कभी समृद्ध राज्य का स्वामी भी हो जाता है जैसे द्रोणाचार्य हो गये। कृष्ण ने कहा महाराज युधिष्ठिर अब चारों ओर से अपने नगर को निहार कर प्रजा से नगर तथा नगरवासियों को जान लें सुरक्षा की दृष्टि से। युधिष्ठिर बोले हम चाहते हैं प्रजा हमारे अनुकूल रहे तो हमें भी प्रजा के मन के जैसा करना चाहिये। वैसे भी हम क्षत्रिय हैं। प्रजा का पालन पोषण करना हमारा धर्म है। हमारे मन में प्रजा की उपेक्षा का जरा सा भी भाव नहीं रहना चाहिये। कृष्ण और बलराम आगे आगे चल रहे थे और वे सभी भाई भी उनके साथ साथ अरावली पर्वत की श्रृंखला के दूसरी ओर नीचे उतरे वहां पर मनुष्यों के कुछ आवास थे। उस बस्ती का क्षेत्रफल तथा मकानों की संख्या पांडवों के लिये निराशाजनक थी। कहां तो हस्तिनापुर जैसा विशाल, विस्तृत समृद्ध तथा सघन नगर और कहां वनवासियों के दस पांच घरों जैसा आवासीय क्षेत्र। यह उनके पूर्वजों की कीर्ति कहनेवाली एक साम्राज्य की राजधानी थी। ये लोग बस्ती के निकट पहुंचते ही घरों से

कुछ घबराये हुये स्त्री-पुरुष बाहर निकले। भीम आगे बढकर इनसे बोला पांडु पुत्र महाराज युधिष्ठिर अपने प्रजाजन को अभय दान देते हैं। वे अपनी प्रजा से मिलने तथा उनकी कुशल क्षेम जानने आये हैं। आप लोगों को कोई असुविधा हो, कोई भी तरह के व्यवहार में अनुचित बर्ताव हो राजकर्मचारियों का वो अपने महाराज से कहे। वे तुम्हारी समस्याओं का निदान करेंगे।

यह सुनकर उस बस्ती में से एक वृद्ध आगे आया और हताश भाव से बोला पर महाराज यहां तो न कोई शासन है और न ही कोई राजकर्मचारी। यह तो मैं पहली बार सुन रहा हूं जीवन में कि हम किसी राजा की प्रजा है। मैंने अपने पूर्वजों पितामहों से सुना था यहां कभी कौरवों का राज्य हुआ करता था परन्तु मैंने तो यहां ये सब नहीं देखे। यहां तो मैंने दस्यु, चोर, लुटेरे ही देखे है। कोई राज पुरुष तो कभी यहां आया ही नहीं। यहां तो दस्यु ही आते हैं। जहां न कृषि हो, न व्यापार, न कोई उद्योग और न ही किसी प्रकार की आजीविका तो वहां प्रजा से कर उगाने के लिये कोई राज कर्मचारी भी आयेगा तो वह दस्यु की भांति ही तो व्यवहार करता है। जो कोई भी इस ग्रामवस्ती में आता है, चाहे वह राजपुरुष हो, दस्यु हो, तपस्वी हो, यात्री हो, चाहे कोई भी हो उसके ठहरने की और खाने पीने की व्यवस्था तो ग्रामवासियों को करनी ही पडती है। इतना भी नहीं करो तो कोई शाप देता है तो कोई कोढे बरसाता है तो कोई लूट पाट करने लगता है, उनका प्रतिकार करो तो वह छुरे तलवार निकालता है और अन्त में यदि कुछ न भी मिला तो स्त्री धन और गो धन ही हांक ले जाता है। वृद्ध की बात में बहुत बडा व्यंग था। अर्जुन ने जिज्ञासासे पूछा तो फिर लोग यहां कैसे रहते है ? उस वृद्ध ने उत्तर दिया यहां रहते ही कितने लोग है ? एक एक करके सब लोग खांडव प्रस्थ छोडकर जो जा रहे हैं। कोई नया घर तो बसता ही नहीं बस पुराने घर उजड रहे है। भीम ने पूछा तो घर छोडकर लोग कहां जाते है। उस वृद्ध ने कहा जिसके पैर जिधर की ओर उठ जाते है वह उधर ही चल पडता है। कोई तो दस्युओं से बचने के लिये वन में भाग जाता है तो कोई दस्यु बनने के लिये वन में चला गया। नकुल ने पूछा पर लोग कोई काम क्यों नहीं करते ? यहां तो यमुना का तट भी है, जल का भी अभाव नहीं है। अच्छी खेती भी हो सकती है। जल परिवहन का विकास हो सकता है। यदि यात्रियों के लिये सुविधायें जुटाई जाये तो व्यापार भी हो सकता है और यहां काफी कुछ विकास होने की सम्भावना है। वृद्ध ने समर्थन की ओट में विरोध किया और बोला आप ठीक कहते है कुमार पर जहां सुशासन नहीं होता वहां उर्वर भूमि भी बंजर हो जाती है और विशाल से विशाल नदी का भी जल सूख जाता है। कहते है इन्द्र वर्षा करता है, सूर्य की अग्नि अन्न पकाती है, वायु नदी के जल को वेग देता है पर ये सब भी कोई कुछ नहीं करते। जो कुछ करता है सुशासन ही करता है। यदि देश में सुशासन न हो तो न तो समय से राज्य में वर्षा होगी, न धूप में प्रखरता होगी और न ही नदी का जल बहेगा और न उसपर नौका तैर सकेगी।

कृष्ण ने उस वृद्ध का समर्थन किया। सुशासन न हो तो वर्षा का जल बहकर बाढ बन जायेगा। गोरस (दूध) बच्चों के पेट में जाने के स्थान पर रानियों और उच्च लोगों के स्नान सरोवर में बहेगा। अन्न पक कर प्रजा का खाद्य बनने के स्थान पर पकने से पहिले ही पशुओं का चारा बन जायेगा। इसीलिये ये महाराज युधिष्ठिर और पांडव कुमार सभी भाई यहां आये है। वे यहां की अराजकता दूर कर सुशासन स्थापित करेंगे। अब इस क्षेत्र में धर्म राज्य स्थापित होगा। अब आप सब इन्हे अपना सहयोग दे। युधिष्ठिर बोले भद्र प्रजा जन की रक्षा का दायित्व अब हमारा है। हम प्रजा का पालन करेंगे। जो कोई कृषि करना चाहेगा उसकी भूमि तथा उपज की रक्षा की जायेगी। पशुपालकों के गोधन की रक्षा होगी। व्यापारियों को निष्कंटक मार्ग पथ किये जायेंगे। श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक दिया जायेगा। धन का विनिमय ठीक सही ढंग से किया जायेगा। अराजकता से जनसामान्य कितना कष्ट उठाता है उस वृद्ध ने कहा यह सब आप कैसे कर पायेंगे ? इन सब कार्यों को करनेवाले दस्युओं को किसी एकाध को आप पकडकर बुला लेंगे तो वह या तो स्वयं किसी बडे आदमी के कुल गौत्र का व्यक्ति होगा, या फिर उसकी रक्षा के लिये कोई राजा, महापुरुष, सेनापति, मन्त्री अथवा देवता आ खडा होगा। हर अपराधी को किसी न किसी महापुरुष का संरक्षण प्राप्त है। समर्थ लोगों ने तो अपने अपने दस्यु, अत्याचारी, अपराधी पाल रखे हैं। हमारा यह नगर तो अपराधी सेनाओं की छावनी

हो गया है। इन सबसे कैसे निपटेंगे महाराज ? यह सब हो रहा है उस क्षेत्र में जिसे कौरवों का साम्राज्य कहा जाता है। सुनकर युधिष्ठिर का मन पीडित हुआ। धृतराष्ट्र ने पांडवों को यह निष्कासन न दिया होता तो वे कैसे जान पाते कि इस नगर में क्या क्या हो रहा है ? युधिष्ठिर बोले आप निश्चिन्त रहें आर्य। यहां धर्म राज्य स्थापित होगा और दुष्टों का दलन होगा। दुष्ट दलन क्षत्रिय राजा का प्रथम कर्तव्य है। वृद्ध बोला वो तो ठीक है महाराज पर वे दुष्ट कोई साधारण व्यक्ति तो है नहीं वे तो सब बडे बडे लोग है। वृद्ध ने आगे कुछ नहीं बताया और हाथ जोडकर चला गया। युधिष्ठिर समझ नहीं पाये। उनकी आंखे वृद्ध का पीछा करती रही किन्तु वृद्ध ने एक बार भी पलट कर नहीं देखा और ग्राम के अन्य लोगों के साथ ओझल हो गया। कृष्ण बोला चलिये महाराज अब। अब आप समझ ही गये होंगे कि महाराज धृतराष्ट्र ने आपको कौरवों की कैसी प्राचीन राजधानी आपके हिस्से में दी। अर्जुन बोला तो फिर जब आपको यह मालूम था तो फिर आपने इसका विरोध क्यों नहीं किया ? कृष्ण बोला यहां की प्रजा के हित के लिये। यदि पांडव यहाँ न आते तो इन लोगों का हित कैसे होता ? अर्जुन सिंहासन पर बैठे बैठे कोई राजा प्रजा का हित नहीं साध सकता उसके लिये राजा को प्रजा के दु:ख सुख में उसके साथ जीना और मरना पडता है तथा यह सब नहीं होता तो तुम लोगों का पुरुषार्थ और कर्म कैसे प्रकट होगा ?

युधिष्ठिर के मन में बार बार यह बात कौंध रही थी कि वे लोग सदा के लिये हस्तिनापुर छोड आये है। शब्दों में किसी ने भी अभिव्यक्त नहीं किया कि राज्य का ही बंटवारा नहीं हुआ था, परिवार का भी बंटवारा हो गया था। इस बंटवारे में परिवार के सारे वृद्धजन दुर्योधन के हिस्से में आये थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी को तो दुर्योधन के पास रहना ही था किन्तु पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, विदुर काका, कुलगुरु कृपाचार्य, बाहलीक, सोमदत्त सब लोग हस्तिनापुर के होकर रह गये। वैसे भी वे लोग इस बीहड़ वन में आकर क्या करते ? अपने स्नेहवश या युधिष्ठिर के आग्रहवश यदि उनमें से कोई पांडवों के साथ आ भी जाता तो युधिष्ठिर उनके रहने के लिये कौनसी सुख सुविधायें जुटा पाता? उनके पास था ही क्या ? क्या उनके सम्बन्ध प्रेम के नहीं सुख सुविधा के है ? जिसके पास सुख सुविधायें नहीं होती है तो परिवार का कोई व्यक्ति उनसे सम्बन्ध कम ही रखना चाहता है। पांडवों के साथ तो उनकी मां थी। युधिष्ठिर का अस्थायी शिबिर स्थापित हो चुका था जिसमें मकडी, छिपकली, चूहे और चमगादड ने भी अपना बसेरा कर रखा था तो फिर उनके यह कुलवृद्ध कहां ठहरते थे? स्वयं की मां का भाव तो कुछ और ही था वो तो स्वयं उनसे पृथक थी ही नहीं। कुन्ती तो सदा से उनके साथ रही। पर्वतों पर, वनों में, हस्तिनापुर के उस पुरातन खंडहर राज निवास में, वारणावत में लाक्षागृह में, हिडिम्ब वन में, एक चक्री नगरी में ब्राह्मण के घर में, काम्पिल्य में कुम्हार के घर में। उस मां को तो उनके साथ ही रहना है वे जहां चाहे रहे और जैसे भी रहे।

उसी समय महर्षि वेदव्यास वहां पर आये। युधिष्ठिर ने उन्हे भी उस खंडहर शिबिर में ठहरा लिया। युधिष्ठिर ने महर्षि से पूछा हस्तिनापुर से आ रहे हैं, हस्तिनापुर में सब कुछ कुशलपूर्वक है न ? महर्षि वेदव्यास मुस्कुरा पडे और बोले जिस प्रकार बुद्धि और विवेक को निष्कासित कर कोई व्यक्ति तथा धर्म और सत्य को निष्कासित कर कोई समाज, नीति और न्याय को निष्कासित कर कोई राजा सुखी नहीं हो सकता उसी प्रकार तुम्हे हस्तिनापुर से निष्कासित कर कोई परिवार, समाज और राज्य सकुशल नहीं रह सकता युधिष्ठिर।

बीच ही में भीम बोल उठा पितामह यह सब उपरोक्त बातें मात्र बौद्धिक विलास लगता है। हमें हस्तिनापुर से निष्कासित कर दुर्योधन की क्या हानि हुई ? उसे तो उल्टे राज्य मिला, धन सम्पत्ति मिली, सुख, भोग, वैभव विलास मिला। और सुख क्या इससे कोई अलग थोडे ही होता है ? कभी कभी तो लगता है व्यक्ति पाप से ही सुखी हो सकता है क्योंकि जीवन की सफलता तथा धन सम्पत्ति अधर्मपूर्वक अधिक सरलता से प्राप्त की जा सकती है और सुख तथा सफलता का सम्बन्ध धन सम्पत्ति से ही है। महर्षि बोले अधिकांश लोग तो तुम्हारे समान ही सोचते हैं भीम। सामान्य मानव की सोचने की स्वाभाविक पद्धति यही होती

है। भीम ने पूछा तो फिर इसमें अनुचित क्या है ? महर्षि ने कहा इसमें अनुचित कुछ भी नहीं है। यह मात्र भ्रम है जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देख कर बालक समझता है कि चन्द्रमा जल में है। यह भ्रम तो बालक का सत्य है पर वास्तव में स्थिति तो कुछ और ही अलग है। जब तक उसका भ्रम मात्र टूटता नहीं तब तक वहीं उसका सत्य है।

व्यासजी ने भीम को समझाते हुये पूछा भीम जीवन में अधिक सफल मैं हूं या दुर्योधन ? दुर्योधन से अधिक विकास मेरा हुआ है ? भीम बोला ऋषिवर आपका। व्यास ने फिर पूछा अधिक सुखी मैं हूं या दुर्योधन ? भीम बोला आप ही। तब व्यास बोले न तो मेरे पास कोई धन सम्पत्ति है, न ही वैभव विलास, न राज्य है और न ही कोई सेना ? जीवन में प्राप्त करने योग्य केवल है मन की शुद्धता, आत्मा का भौतिक बन्धनों से मुक्ति, आसक्ति, राग का त्याग तब सारा विकास, सारा सुख और सारी उपलब्धियां इसीमें है। दुर्योधन ने अभी तक जो कुछ किया है उससे क्या उसका मन अधिक शुद्ध हुआ है ? क्या वह सांसारिक बन्धनों में और अधिक नहीं बन्धा है ? क्या उसे सुख और शान्ति प्राप्त हो गई ? क्या उसकी तुष्टी हो गई ? क्या वह सन्तोष की चरम सीमा पर पहुंच गया ? भीम प्रकृति के नियम बडे विचित्र है। प्रकृति भ्रम को प्रोत्साहित करती है और उसे बढाती है तथा माया का प्रपंच रचती है। मनुष्य सोचता है कि वह अपने लिये सुख संचित कर रहा है जब कि वह अपने लिये अनन्त यातना का सृजन कर रहा होता है। भीम उदाहरण के लिये आकाश में वर्षा के रूप में जो जल टपकता है वह जल का शुद्धतम रूप है। वहीं इस पृथ्वी पर गिरने से पृथ्वी के मलों को अपने में मिश्रित कर लेता है अर्थात वह अत्यन्त समृद्ध, सम्पत्ति एकत्रित कर लेता है पर जल यह नहीं जानता कि उसे फिर आकाश में लौटना है और यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक वह पुन: अपने उसे मौलिक शुद्ध रूप को प्राप्त न कर ले अर्थात जब तक वह अपने भीतर के समाये मल के अन्तिम कण तक अपने में ये निष्कासित न कर ले। तब वही जल सूर्य की किरणों से तप कर बाष्प बनकर फिर आकाश में लौट जाता है। यहीं स्थिति आत्मा की है इसे भी शुद्ध कर अपने अंशी स्वरूप में मिलाना होता है। सांसारिक आसक्ति यह राज्य, धन, वैभव, भोग विलास ये सबसे तो अधर्म की वृद्धि होती है और अर्जन तथा विकास से आसक्ति बढती है। उपलब्धियों से अहंकार की वृद्धि होती है। अधर्म, आसक्ति, अहंकार ये सब तो कभी भी सुख के साधन हो नहीं सकते क्योंकि ये सब शान्ति और सन्तोष नहीं दे सकते। इन सब से तो और की चाह बनी रहती है। युधिष्ठिर तुम सुखी हो क्योंकि तुमने अधर्म का पक्ष नहीं लिया, तुम सुखी हो क्योंकि तुम में आसक्ति नहीं है ? तुम्हारा मन निर्मल और शान्त है क्योंकि उसमें अहंकार का ताप नहीं है। इसलिये कभी यह मत सोचो कि दुर्योधन अधर्म करके भी सुखी है। मनुष्य विकास की ओट में और अधिकाधिक उलझते जाता है। यह एक ऐसा चक्रव्यूह है जिसमें एक बार प्रवेश कर लिया तो बाहर निकलना मुश्किल होता है। यह सांसारिक भोगों की लालसा मनुष्यों को विकास के नाम पर इस चक्रव्यूह का वरण करने के लिये बाध्य करती है। दुर्योधन ने अपने लिये न जाने कितने यातनामय एवं पश्चातापपूर्ण भावी जन्मों का निर्माण रच लिया है तथा इस जीवन में हस्तिनापुर क्या सारी पृथ्वी की सम्पत्ति लेकर भी सुखी नहीं होगा। तृष्टि से दूर ही रहेगा। तुम्हारी उन्नति को देख देख कर ईष्याग्नि में अपने आपको होम करता रहेगा। यह गुण प्राय: स्त्रियों में प्रकृति ने दिया है। दुर्योधन की स्थिति उस व्यक्ति के जैसी है जिसके सामने उसके लिये थाल भरा भोजन रखा है उसे तो वह खाता नहीं और तृप्त होता नहीं पर दूसरे व्यक्ति को भोजन करते देख सोच सोचकर मन में पीडित होते रहता है कि इस व्यक्ति को क्यों भोजन मिला? वत्स सुख अर्जन, विकास में नहीं है, वास्तविक सुख विसर्जन और त्याग में है। भोग में सुख नहीं है, वैराग्य में सुख है। सुख विनाश में नहीं निर्माण में है, उत्पत्ति में है। तुम यहां पहले एक नगरी का निर्माण कर उसे बसाओ जो तुम्हारी राजधानी होगी। तुम धर्म की रक्षा करो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। इस नगरी का नाम इन्द्रप्रस्थ रख इन्द्र को समर्पित कर देना। युधिष्ठिर बोले जैसे आपकी आज्ञा पितामह। महर्षि बोले और जीवन में कभी ऐसा नहीं सोचना जो कभी अतीत में काम नहीं आया वह भविष्य में भी कभी काम नहीं आयेगा। जो तुम्हारा मित्र नहीं वो तुम्हारा कभी मित्र ही नहीं होगा। ऐसा सोच लेना बडी भूल होगी। फिर गोविन्द तुम्हारे

साथ है तो चिन्ता किस बात की ? यह कहकर महर्षि चले गये।

युधिष्ठिर के मन में आया मनुष्य को विधाता ने उच्चस्तर चेतना दी है। श्रम मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। श्रम कर धर्मपूर्वक आजीविका कमाना उसकी प्रकृति के अधिक अनुकूल है जब कि पशु इस चेतना से वंचित है फिर भी मनुष्य कर्मशील होते हुये भी पशु धरातल पर क्यों जीना चाहता है ? खांडव प्रस्थ में मनुष्य से पशु बनाने का अपराधी स्वयं शासन है। अपने रहस्य को छिपाकर रखने के लिये मिथ्या भाषण तो करना ही पडता है। युधिष्ठिर इस असमंजस में थे कि जब तक हम अधर्म को जीवन की अनिवार्यतायें मानते रहेंगे तब तक हमें उनसे मुक्ति नहीं मिलेगी तो फिर युधिष्ठिर अधर्म से मिली कोई भी सुख सुविधा स्वीकार नहीं करेगा।

कृपाचार्य बोले इन्द्र तुम्हारी सहायता करे। सूर्यदेव तुम्हें आशीर्वाद दे। भूमिपूजन के पश्चात कर्म आरम्भ करो। अर्जुन ने भीष्म के चरणों का स्पर्श किया। सभी पांडवों ने एक अच्छी सी समतल भूमि देखकर अपने वयोवृद्धों के साथ भूमिपूजन किया। भीष्म ने भी सभी को आशीर्वाद दिया तुम्हारा यश बढे पुत्र और यह कहकर अर्जुन को गले लगाया।

कृपा कृष्ण की हलधर का हल चला भूमिपर पार्थ के बाण प्रखर कर्म भूमि पर नुतन हलचल।

भीम ने कुदाली फावडे उठाये और भूमि का खनन आरम्भ किया। वहां के साथ में कुछ श्रमिकों को लेकर खांडव प्रस्थ भूमि के पेड पौधों को कांट छांटकर भूमि समतल बनाई। सब भाइयों ने मिल जुल कर उस बंजर वन में हरितक्रान्ति लादी। वह वन हरा भरा अनुपम उद्यान बन गया। यमुना नदी का तट। यमुना जल से सरोवर बन गये। खांडव बन वीराने में बसा नगर अपने जैसे महल मिले। जीवन में नयी अमरावती बसी इस भूतल पर। परिश्रम सफल हुआ हरित हुआ भूमंडल श्रम मनुष्य की सहज एवं नैसर्गिक वृत्ति है और आजीविका उसका अधिकार। जब तक शान्ति के लिये कोई भी मार्ग खुला हो तब तक युद्ध की बात सोचनी भी नहीं चाहिये। इन्द्र खांडव वन से अपना आधिपत्य छोडना नहीं चाहता था वह तक्षक की मदद में तत्पर था। बिना इन्द्र को परास्त किये खांडव वन को बसाना मुश्किल था। इन्द्र नहीं चाहता था कि खांडव वन उसके हाथ से निकल जाये। अर्जुन अपने बाणों से इन्द्र को परास्त कर सकता था। अर्जुन इन्द्र पुत्र भी है। कृष्ण ने समझाया शान्ति वार्ता के असफल होने पर युद्ध करना अपमानजनक नहीं है किन्तु युद्ध में पराजित होकर सन्धि का प्रस्ताव भेजना अपमान जनक होता है।

कृष्ण ने देव शिल्पी विश्वकर्मा को स्मरण किया उसी समय विश्वकर्मा आये। युधिष्ठिर बोले आइये विश्वकर्मा देव। आपका स्वागत है। हमें एक ऐसा राजप्रासाद चाहिये। राजप्रासाद सिर्फ राजा का निवास ही नहीं है, वह राज व्यवस्था का केन्द्र भी है इसलिये उसे राजा के गौरव के अनुकूल भी होना चाहिये। देवराज इन्द्र ने आपको भेजकर हम पर कृपा की है। हम आपके भी और उनके भी आभारी है। अब आप हमारे लिये उपयुक्त प्रासाद, सैनिकों नागरिकों के लिये सुन्दर, सुरक्षित और सुविधाजनक नगर का निर्माण करो। युधिष्ठिर बोले सत्य सदा ही छदम् से अधिक स्पृहणीय है चाहे वह कितना ही अनलंकृत क्यों न हो। विश्वकर्मा बोले महाराज युधिष्ठिर इन्द्र ने आदेश दिया है कि खांडव वन को है जैसा रहने दे। अपने नगर की सीमायें खांडवप्रस्थ से दूर ही रखें। आपके पूर्वज भी यही करते आये है। युधिष्ठिर ने कहा खांडव वन को ध्वस्त करने से हमें कोई लाभ नहीं है। नगर के निकट वन रहेगा तो हमें लकडी, पत्तों तथा फलों व अन्य वस्तुओं की सुख सुविधा भी रहेगी। पर्यावरण भी शुद्ध रहेगा। अच्छी वर्षा होगी। पशुओं के लिये गोचर भूमि तथा वनस्पति की सुविधा रहेगी।

विश्वकर्मा ने नगर का निर्माण आरम्भ किया। सबसे पहले विश्वकर्मा ने राजप्रासाद का निर्माण किया। बाद में अन्य भवन, पथमार्ग, वाटिकाओं, जल सरोवर तडागो का निर्माण किया। खांडव प्रस्थ नगर बसा कर युधिष्ठिर ने उसका नाम इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) रखा। विश्वकर्मा ने राजप्रसाद में क्रीडा भवन भी बनाया। वन क्रीडा की भी व्यवस्था की। विश्वकर्मा के विचार से यमुना तट का लाभ भी इन्द्रप्रस्थ के नागरिकों को मिलना चाहिये। वैसे भी यदि सरिता तट का अपने मनोकूल विकास न कर

लिया जाये तो प्रगति या अवांछनीय लोग अनियंत्रित तथा अव्यवस्थित रूप में यहां वहां बस जाते है। इससे नगरवासियों को न तो पर्याप्त मात्रा में पेय जल मिलता है न उनके स्नान आदि के लिये उचित घाट आदि की व्यवस्था होती है फिर विहार भूमि और क्रीडा स्थल के लिये तो स्थान बचता ही नहीं। विश्वकर्मा ने धौम्य मुनि के लिये एक एकान्त स्थान में गुरुकुल तथा उनके रहने के लिये आश्रम और तपोभूमि की व्यवस्था करी जिससे भावी पीढ़ियों का विकास सुनिश्चित रूप में हो सके। तपोभूमि के अभाव में इन्द्रप्रस्थ कहीं भोग भूमि ही न हो जाये।

धन के अभाव में यदि कार्य रूकता है तो श्रमिकों का भी उत्साह भंग होता है। कृष्ण का वचन लक्ष्मीपति विष्णु से किसी भी प्रकार कम विश्वसनीय नहीं है।

सन्ध्याकाल महर्षि वेदव्यास युधिष्ठिर के पास बैठे हुये थे। वे युधिष्ठिर से बोले तुम्हारे जीवन का लक्ष्य नगर निर्माण नहीं है, तुम्हे तो धर्मराज्य स्थापन करना है पुत्र। यह नगरी तुम्हारी या पांडवों की राजधानी नहीं बल्कि पूरे भारतवर्ष की धर्मराज्य राजधानी है। धर्म वहीं है जहां न्याय है। न्याय का अर्थ है प्रत्येक मनुष्य को अपने विकास के लिये पूर्ण अवसर का प्राप्त होना। आगे बढने का मार्ग तो सबके लिये प्रशस्त हो परन्तु किसी को भी अन्य लोगों का मार्ग रोक कर अपने लिये कुछ अधिक प्राप्त करने का विशेषाधिकार न हो। प्रजा के किसी भी व्यक्ति को यह न लगे कि क्षमता होने पर भी वह जीवन में आगे नहीं बढ सका। उसको कभी यह भी नहीं लगे कि उससे कम क्षमतावान व्यक्ति उसके प्रति अन्याय कर जीवन में उससे आगे बढ गया। इसका यही तात्पर्य है कि अपने शासन का विधान अत्यन्त सोच समझ कर बनाया जाय और उस विधान को उसकी भावना सहित पूर्ण रूप से बिना किसी अपवाद के प्रजा पर लागू किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रकृति और स्वभाव के अनुकूल कार्य मिले जो उसकी जीविका का साधन हो। किसी को भी अपना अपना कार्य बोझ नहीं लगे। वेदव्यास ने वर्ण व्यवस्था की उन्होने कहा ब्राह्मण के बिना आचरण पर ध्यान दिये उससे ब्राह्मण कर्म करवाने से व सम्मान, लोभ में ब्राह्मण का वेश धारण कर ब्राह्मण की दिनचर्या का पाखंड करेगा जिससे उसकी आत्मा का विकास नहीं होगा और न ही वह प्रजा का कोई हित कर पायेगा। अनाधिकारी का सम्मान और अधिकारी की अवमानना दोनों ही समान कोटि के पाप हैं। क्षुद्र बातों से मन हटा उदात्ततर विषयों का चिन्तन कर सामाजिक हित को अपने स्वार्थ से श्रेष्ठतर माननेवाला ही सच्चा ब्राह्मण है। क्षत्रिय वही होगा जो शस्त्र धारण का अधिकार रखता हो और अपने दायित्व के रूप में न्याय को अपना धर्म मानता हो तथा न्याय के पक्ष में असहाय और दुर्बल लोगों की रक्षा कर अपने प्राण दे यही उसके जीवन की चरम उपलब्धि है। उन लोगों को क्षत्रियों का अधिकार कभी मत देना जो प्रजा के धन से पालित पोषित हो तथा जीवन के सारे भोग भोग कर न्याय और युद्ध के समय उनके अपने प्राण ही प्रिय हो जाये। वे अन्य लोगों के लिये समय पर अपने प्राणों का बलिदान नहीं करे। जिन्हे अपने प्राणों का मोह होता है अथवा जिन्हे न्याय से अपना स्वार्थ अधिक प्रिय होता है वे क्षत्रिय नहीं होते है चाहे वे किसी परमवीर क्षत्रिय की सन्तान ही क्यों न हो। अन्यायी तथा स्वार्थी लोगों का क्षत्रियत्व मात्र राक्षसत्व होता है। उनके हाथों में शस्त्र देकर तो अपने राज्य में शत्रुओं का निर्माण करना है।

जिनकी जन्मजात वृत्ति धर्मपूर्वक धन अर्जित करने की है वे वैश्य हैं। वे उत्पादन करते है चाहे कृषि का हो या उद्योग। वे व्यापार और व्यवहार करते हैं, मुद्रा का विनिमय करते हैं। धर्म का त्याग कर, न्याय की उपेक्षा कर, प्रजा को धोखा देकर या किसी प्रकार का षडयन्त्र रच कर अन्य लोगों का अहित कर जो धन एकत्रित करता है वो वैश्य नहीं दस्यु है। व्यवसाय के नाम पर जन विरोधी द्रव्यों का उत्पादन तथा व्यापार व्यवसाय नहीं है। विषम परिस्थितियों में किसी की बाध्यता का लाभ उठाकर उसे लूटना भी व्यवसाय नहीं है जिसके उत्पादन, उद्योग तथा व्यवसाय से धर्म की हानि किये बिना समाज में समृद्धि आती है वह वैश्य है। समाज को वंचित कर अपने लिये धन संचित करनेवाला व्यक्ति वैश्य नहीं अपराधी है। राजा के लिये उचित है उसे दंडित करे।

जिसकी अपनी किसी वृति, योग्यता तथा क्षमता का विकास नहीं हुआ है, दूसरों के निर्देशानुसार वह क्षुद्र कार्य करनेवाला व्यक्ति शूद्र माना जाना चाहिये यह मनुष्य की अविकसित स्थिति है। इसमें व्यक्ति कदाचित अपने लिये तथा अपने समाज के लिये चिन्तन नहीं करता केवल अपने शरीर श्रम के आधार पर समाज के लिये उपयोगी हो सकता है। राजा के रूप में किसी भी वर्ण की उपेक्षा मत करो और न ही किसी व्यक्ति का शोषण हो। राजा की सभा में इन सारे वर्णों का, वर्गों का, श्रेणियों का प्रतिनिधित्व हो। सबके परामर्श से सुशासन करो। प्रजा का समस्त अनासक्त बुद्धि वैभव समाज के लिये चिन्तन करें। समस्त न्याय स्फूर्त, शौर्य दुष्ट दलन कर प्रजा की बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करें। समस्त भौतिक ज्ञान और सांसारिक बुद्धि, समाज हित में उत्पादन और अर्जन करें और समस्त शरीर श्रम निर्लोभ मन से निर्माण कार्य में लगे। इन सबके कार्य समाज के लिये उपयोगी है। संकीर्ण स्वार्थ के कारण लोग उनका महत्व कम और अधिक आंक सकते है। अनुपात में भी अन्तर हो सकता है। किसी के पास इतना भी कम ना हो कि वह अपमान और भूख का जीवन, अभाव का जीवन जिये अथवा मृत्यु को वरण करने के लिये बाध्य हो जाये। और किसी के पास इतना अधिक भी न हो कि उसकी समृद्धि समाज के लिये दुष्ट शक्ति के रूप में स्थापित हो जाये। ईश्वर अपने विधान के अनुसार किसी को कम और किसी को अधिक क्षमता देता है। वह पूर्ण न्यायी तथा समदर्शी है। उसके न्याय पर कोई सन्देह नहीं हो सकता। युधिष्ठिर किसी पूज्य का पूजन करते हुये किसी को उसकी दुर्बलता, अक्षमता अथवा अज्ञान के लिये अपमानित मत करना। तुम्हारा नगर भोग और अत्याचार का केन्द्र न बने। वह न्याय और सौहार्द्र की राजधानी हो। इस तरह वेदव्यास मुनि ने युधिष्ठिर को राजनीति धर्म का उपदेश दिया।

इन्द्रप्रस्थ में वास्तु कला की शिक्षा देव, शिल्पी विश्वकर्मा ने दी और आचरण की शुद्धता धौम्य मुनि ने। थोडे ही दिनों में विश्वकर्मा ने इन्द्रप्रस्थ का निर्माण कर दिया। यह नगर अब भूतल पर अमरावती के समान दिखने लगा। नगर के चारों ओर समुद्र के समान गहरी खाई और आकाश को छूनेवाली चहारदीवारी प्राचीर बनायी गई। बडे बडे फाटक ऊंचे ऊंचे प्रासाद और उनके गोपूर गवाक्ष दूर से ही दिखाई देने लगते थे। अस्त्र शाला, गोशाला, अखाडे, सुरक्षा का कडा प्रबन्ध था। बर्छी, भाले, तोप बन्दूके और अन्य युद्ध सम्बन्धी अस्त्र शस्त्र स्थान स्थान पर उपलब्ध थे। सडके विथीयां, राजमार्ग स्वच्छ, चौडी और सीधी थी। नागरिक बसाये गये। विभिन्न भाषाओं के जानकार, वेदपाठी ब्राह्मण, सेठ, साहूकार, कलाकार और गुणीजन आ आकर बसने लगे। बडे बडे उद्यान, उपवन, सरोवर, तडाग, फलों से लदे परिपूर्ण वृक्ष इत्यादि भी कहीं मयूर नृत्य कर रहे थे तो कहीं कोकिला कुहू कुहू का स्वर कूक रही थी। चारों ओर पक्षियों का कलरव निराला ही था। विभिन्न प्रकार के शीश महल, चित्रशालायें, कृत्रिम झरने, बरसने वाले बादल, बावडियां स्थान स्थान पर बनाये गये थे। सरोवरों में सफेद लाल, नील, पीले कमल विकसित हो रहे थे। नगर की बनावट और प्रजा की उत्तमता से पांडवों को बडी प्रसन्नता हुई। इस तरह से इन्द्रप्रस्थ नगर बस गया। दिनों दिन उसकी प्रगति होने लगी।

कृष्ण के साथ पांडवों ने नये बने राजभवन में प्रवेश किया। अब विश्वकर्मा ने युधिष्ठिर से विदा की आज्ञा मांगी। युधिष्ठिर ने कहा अभी आपको आज्ञा कैसे दे सकते है ? अभी तो हमने आपके प्रति अपना आभार भी प्रकट नहीं किया देव शिल्पी। विश्वकर्मा बोले मैंने तो अपने कर्तव्य का पालन किया है धर्मराज और कर्तव्य पालन आभार का अधिकारी नहीं होता है राजन। सबने देव शिल्पी को प्रणाम किया और प्रणाम कर देव शिल्पी विश्वकर्मा अन्तर्ध्यान हो गये।

कृष्ण बोले आइये महाराज युधिष्ठिर। आपको अपनी यह कर्मभूमि कैसी लगी ? युधिष्ठिर बोले मेरी कर्मभूमि तो आपकी कृपा है वासुदेव। कृष्ण ने कहा नहीं महाराज किसी की कृपा किसी की कर्मभूमि नहीं हो सकती। अपनी कर्मभूमि के पत्थर तो मनुष्य को स्वयं ही तोडने पडते है फिर उसमें अपने श्रम की खाद डालनी पडती है और फिर उसमें अपने सपनों के बीज डालने पडते है। आपने राज्य तो स्थापित कर लिया है महाराज। अभी इस राज्य की रक्षा के विषय में सोचना आरम्भ कीजिये। सहदेव

बोला तो क्या वे लोग हमें यहां भी चैन की सांस नहीं लेने देंगे ? बलराम बोला क्यों नहीं लेने देंगे ? मैं तो हस्तिनापुर जा ही रहा हूं। वहां पर दुर्योधन को समझा दूंगा। वो तो बडे ही सुशील स्वभाव का है। कृष्ण ने पूछा क्या दाऊ आप द्वारका नहीं चलेंगे? बलराम बोले अब तुम बडे हो चुके हो कृष्ण। मेरी अंगूली पकड कर चलना छोड दो। मैं तो बुआ से आज्ञा भी ले चुका हूं। कृष्ण बोले आज्ञा ले चुके तो अवश्य जाइये। बलराम बोले मैं तो कहता हूं कि भीम भी मेरे साथ चले। दुर्योधन की रसोई का भोजन तो बडा ही स्वादिष्ट बनता है। भीम बोला मैं तो यहीं ठीक हूं दाऊ। कृष्ण बोला भोजन के समय हम लोगों को याद करना मत भूलियेगा। बलराम बोले मुझे क्या अपनी भूख मारनी है जो याद करूंगा।

अर्जुन और कृष्ण रात में राजभवन के बाहर टहल रहे थे। अर्जुन पूछा माधव आपने राज्य की रक्षा की बात क्यों छेडी ? कृष्ण ने कहा राजनीति का एक अध्याय यही है अर्जुन कि आसपास के राज्यों से मैत्री सम्बन्ध बढाने चाहिये परन्तु यदि कोई राजा मैत्री स्वीकार नहीं कर रहा हो तो उसके पिछले द्वार खटखटाने के लिये कोई मित्र बना लिया जाये क्योंकि उसकी दोनों सीमायें असुरक्षित रहे। अर्जुन बोला मुझे क्या करना है ? कृष्ण ने कहा दीवारों की गांठ बहुत ही बलिष्ठ और सुरक्षित होती है परन्तु यह भी आवश्यक है कि गान्धार नरेश शकुनि को तुम्हारी योजना का पता न चले। इसलिये अकेले निकलने का प्रयत्न करो क्योंकि सेना लेकर निकलोगे तो यह बात छिपी नहीं रहेगी। ये इन्द्रप्रस्थ तुम लोगों की कथा का अन्त नहीं है यह तो केवल एक अध्याय समाप्त हुआ है। परन्तु इस शान्ति में धोखा मत खाओ पार्थ। यह सन्नाटे के उस पार जो आन्धी बह रही है उसकी आहट सुनो। अर्जुन बोला आन्धी कैसी आंधी ? कृष्ण बोला हां। दुर्योधन के घायल अभिमान की आंधी।

अपमानित होकर रहे शत्रु जहां चुपचाप, वही मौन तूफान की पहली पदचाप,
राज्य न जीतो, जीत लो अपने हित को मीत, मीत बढेंगे प्रित से वही है सही जीत।

कुछ ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ का ऐश्वर्य, सौन्दर्य और नवनिर्मित नगरी की शोभा हस्तिनापुर को पार कर गई।

६६) द्रौपदी का दाम्पत्य जीवन, नियम और नारद का इन्द्रप्रस्थ में आगमन

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा द्रौपदी पांडवों की धर्मपत्नी होकर वह अपने पतियों से कैसे व्यवहार करती थी ? वे एक पत्नी में आसक्त होनेपर भी पारस्परिक वैमनस्य और विरोध से कैसे बचे रहे ? आप कृपा करके यह वृतान्त सुनाये तब वैशम्पायनजी ने जनमेजय को विस्तार से बताया।

थोडे ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ नगरी सर्वांग पूर्ण हो गयी। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी जो उस नगर में नहीं मिलती हो। सभी प्रकार के लोग आकर उसमें बसने लगे। पांडव भी अपने हिस्से का आधा राज्य ग्रहण कर वहां सुखपूर्वक निवास करने लगे। सभी लोग चाहते तो यही है कि उनके जीवन में किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहे, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त रहे परन्तु ऐसी स्थिति प्राप्त करने का साधन लोगों की समझ में सुगमता से नहीं आता। सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति का कारण उसके साथ बन्ध जाना है। जीवन को सब बन्धनों से छुडा लेने का साधन उसे किसी नियम से बांध देना है। जीवन को किसी नियम के अधीन कर देना आलस्य पर विजय पाना है। जीवन को नियम के अधीन कर देना प्रमाद को सदा के लिये विदा कर देना है। नियमित हो जाना प्रपंच के अनेको झंझटों से छूट जाना है। नियम जीवन की सब बुराइयों को पीसकर, गलाकर, नष्ट कर एक ऐसे सांचे में ढाल देता है कि वे आमूल परिवर्तित होकर भलाइयों के रूप में बन जाये। जिनके जीवन में कोई नियम नहीं, उसका जीवन श्रृंखलाहीन है। वह कोई भी बडा काम नहीं कर सकता, वह भयभीत रहता है, चिंतित रहता है, तथा अपने कर्म की सफलता में संदिग्ध रहता है। जीवन को, परिवार को, जाति को, समाज को और राष्ट्र को नियंत्रित रखने से ही सच्चे सुख और शान्ति के दर्शन होते है।

देवलोक के विधान के अनुसार एक पुरुष चाहे कितनी ही स्त्रियां ग्रहण कर ले पर एक स्त्री एकाधिक पति वरण करने पर पापिनी, कुलटा, व्यभिचारिणी कहलाती है। यह विधान किसने बनाया ? स्त्री पुरुष के बीच पाप-पुण्यों का अन्तर किसलिये ?

धनी, दरिद्र, ऊंच, नीच, ब्राह्मण चांडाल स्त्री पुरुष आदि का अन्तर कर समाज में जितने नीति नियम बने है, पाप पुण्य का विचार कर जो घोर विषमता खडी की गई है उसके विरुद्ध जीवन भर संघर्ष चलता रहेगा। वास्तव में पांच पति वरण समग्र नारी जाति के लिये एक आह्वान था। एक साथ अनेक पुरुष वरण कर भी किसी नारी के चरित्र की शुद्धता अमलिन रह सकती है ? यही तो प्रमाणित करने का एक स्वर्ण अवसर है।

पर पुरुष का मुंह देखने का अवसर न पानेवाली अन्तपुरवासिनी कोई नारी अगर पतिव्रता होती है, उसके सतीत्व के सम्बन्ध में सन्देह की सम्भावना रह जाती है। किन्तु बहुपुरुषों का संग प्राप्त कर भी यदि वह पतिव्रता बनी रह सकती है तो उसे सती कह सकते हैं। तारा, मन्दोदरी ने भी एकाधिक पति वरण किये थे फिर भी वे सती हैं, प्रात: स्मरणीय हैं। लक्ष्मण पत्नी उर्मिला चौदह वर्ष तक अन्त:पुर में बन्दिनी का जीवन व्यतीत करती रही पति की प्रतीक्षा में। लेकिन कभी भी उर्मिला का सती कहकर जय जय कार नहीं हुआ। देवी सीता रावण द्वारा अपहृत होकर अशोक वाटिका में बन्दिनी बनकर रही। वह दैत्य राज रावण और अनेक दैत्यों के बीच रही फिर भी वे पति की प्रतिक्षा एकाग्रचित्त से करती रही अत: वे सती कहलायी। उर्मिला लोक लोचन के अन्तराल में रह गई। मूल्यों को जकडे रहने के सिवा और कोई चारा न हो ऐसे में कोई आदमी मूल्यों को लेकर चलता रहे तो इसमें कोई वीरता बहादुरी नहीं। हां विपरीत परिस्थिति में जो मूल्यों पर टिका रहे उसी की वीरता है। पाप-पुण्य वाली इस दुनिया में पापों को छोडकर पुण्य का महत्व नहीं समझा जा सकता। पाप के बिना पुण्य की प्रतिष्ठा कैसे होगी। अधर्म न हो तो धर्म का संस्थापन कैसा ? अन्धकार न हो तो प्रकाश को कैसे समझ पावें ? दुष्टों के कारण ही तो इस धरापर बार बार ईश्वर अवतार ग्रहण करता है। पाप ने ही तो पुण्य को महान बनाया है। दुष्टों के कारण ही संत महामानव बने हैं। साधारण किसी राजकुमारी से द्रौपदी की विचारधारा में अन्तर है।

द्रौपदी देखती आयी है और सोचती समझती है कि हर राजा के अन्त:पुर में अनेक अधिकाधिक रानियां होती है और उसकी प्रतीक्षारत रहती है जबकि राजा को कभी शौक हुआ तो किसी रानी के अन्तपुर में चला गया। यदि इसके विपरीत हुआ होता तो कैसा रहता ? एक रानी होती और हजारों होते राजा। रात रात प्रतीक्षा में बिताते राजा गण। रानी जिसे सर्वाधिक प्रेम करती वही उसे पट्ट महाराज बनाती। एक नारी अनेक पुरुषों को ग्रहण करे। द्रौपदी स्वयं विवेचन कर रही है सती नारी और असती नारी। इसी तरह शास्त्रों में सत्पुरुष और असत् पुरुष क्यों नहीं विवरण दिया। पुरुष का हृदय क्या स्वर्ण निर्मित और बहुमूल्य है ? क्या उसे कभी पाप स्पर्श कर मलिन नहीं होता जब कि क्या सिर्फ नारी के लिये पाप की सूची तैयार की गई है ? नारी तो सर्व सह्य धरित्रि है। उसकी जैसी सहनशीलता पुरुष में कहां ? पुरुष की निन्दा करने का साहस कोई नहीं करता। निन्दा, अपवाद और कुत्सा के बीच अपनी चारित्रिक दृढ़ता बनाये रखना नारी का ही स्वरूप है। पुरुष के अहंकर के सामने असहाय हो जाती है नारी। पाप-पुण्य का विचार नारी पुरुष के लिये समान होता तो सामाजिक अत्याचार में नारी जगति उत्पीडित नहीं होती। नारी एकाधिक पति ग्रहण कर भी विश्वस्त, अनुगत, सती हो सकती है। द्रौपदी का अदृष्ट द्रौपदी के साथ आंख मिचौली खेल रहा है।

द्रौपदी का वास्तविक दाम्पत्य जीवन अब प्रारम्भ हो रहा है। नारी पुरुष को समान कह देना भी तो पूर्णत: स्पष्ट नहीं है। नारी का मन भी तो पुरुष के मन से भिन्न होता है। अत: उसके लिये युग युग में समाज भिन्न भिन्न नियम बनाते आया है। पुरुष एकाधिक पत्नी ग्रहण करे तो पत्नियां उसका मन जीतने का प्रयत्न करती है। वह अपनी इच्छा से जिसे चाहे उसे अधिक चाहना कर सकता है और उसकी तरफ आकर्षित होता है पर नारी यदि बहुपतित्व वरण कर ले तो उसका जीवन दुरुह हो उठता है। उसे अपने सब पतियों की पसन्द रूचि का खयाल रखना, सबका मन जीतना पडता है। द्रौपदी की भी अब वही स्थिति है। युधिष्ठिर ने द्रौपदी को अपने कक्ष में बुलाया शायद द्यूतक्रीडा की व्यवस्था के लिये। भीम शयन कक्ष में द्रौपदी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विश्राम के समय द्रौपदी का साहचर्य आवश्यक है। द्रौपदी क्या करे किस किस का आदेश पालन करे। अर्जुन पाठागार

में द्रौपदी को बुलाना चाहते हैं। नकुल ने द्रौपदी की उपस्थिति अश्वशाला में चाही। सहदेव जानता है कि द्रौपदी दिव्य दर्शी है उसने द्रौपदी को अपने पास आने का बुलावा भेजा। यही से विडम्बित जीवन शुरु हुआ। अब द्रौपदी को पंच पतियों के निर्देश मानने हैं। सब के साथ यथा विधि सम्मान और प्रेम प्रदर्शित करना है। किसी की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती। द्रौपदी द्वन्द में पड गई कि पहले किसके पास जाये ? न्याय और नियम को पकड कर दाम्पत्य जीवन में मिलन, विरह, रागद्वेष नहीं चलता। मन्दिर में, विद्यालय में, सभा मंडप में, युद्ध क्षेत्र में, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म की चर्चा होती है उसे मानना पडता है परन्तु प्रेम में यह सब नहीं चल सकता। कभी कभी सीधे रास्ते से हटकर टेढे मेढे, बांका तिरछा चलना पडता है। दाम्पत्य जीवन कोई भाइयोंवाला बंटवारा तो है नही जो बडे भाई, छोटे भाई के अनुपात में अपना स्नेह, ममता, प्रेम और मान का बंटवारा कर दे भाइयों को एकता के सूत्र में बांधने के लिये पांचाली को पंचपति वरण के हेतु बाध्य किया गया था पर अब लगता है द्रौपदी को लेकर पांचो के बीच प्रतियोगिता, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, मतमतान्तर और फिर बंटवारा होगा। प्रतिदिन द्रौपदी की सेवा, साहचर्य, सानिध्य और संसर्ग पांचो भाई चाहने लगे। इसमें अस्वाभाविक भी क्या है। शायद इसी से पांचो की एकता नष्ट होने की सम्भावना बन सकती है।

शौर्य, वीर्य, ऐश्वर्य, रूप गुण से परिपूर्ण पुरुष नारी का काम्य होता है परन्तु उनमें से जो नारी के मन की बात को समझ लेता है वह सिर्फ काम्य ही नहीं उसका ध्येय, लक्ष्य, केन्द्र हो जाता है। नारी उसी पर मर मिटती है पर नारी का मन समझने वाले ऐसे कितने पुरुष होते है ?

एक दिन की बात है सभी पांडव इन्द्रप्रस्थ में अपनी राज्यसभा में बैठे हुये राज काज कर रहे थे उसी समय स्वेच्छा से विचरण करते हुये देवर्षि नारद वहां पर आये। युधिष्ठिर ने उनका आर्घ्य पाद्य से स्वागत किया और यथोचित आसन दिया। युधिष्ठिर ने बडे सम्मान से उन्हे अपने राज्य की सब बातें बतायी। नारदजी ने भी उनके सम्मानार्थ पूजा स्वीकार करी। शीलवती द्रौपदी भी बडी पवित्रता और सावधानी से देवर्षि नारद को प्रणाम कर मर्यादा से हाथ जोडकर खडी हो गयी। देवर्षि नारद ने उसे आशीर्वाद देकर द्रौपदी को अन्त:पुर रनिवास में जाने की आज्ञा दी। द्रौपदी ने आज्ञा पालन किया। नारद ने कहा हमारे मोह तो इतने जल्दी छूटते नहीं। जिसे हम नवीन कहते है वह प्राय: प्राचीन का ही नव सृजन होता है। देवर्षि जब से इन्द्रप्रस्थ आये है पांडव उन्हे अपना नगर दिखा रहे है नगर भ्रमण करा रहे हैं। पर देवर्षि को न तो इन्द्रप्रस्थ के निर्माण कार्य व सुन्दर घाटों में, प्रकृति के प्रपंचों में आकर्षण और रूचि थी। प्रकृति के सौन्दर्य की स्पर्धा मनुष्य का निर्माण तो कर नहीं सकता। यद्यपि पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ को सायास प्रकृति को यथा सम्भव बनाये रखा था। जो कुछ दिखाया वह तो मनुष्य मात्र की रचना कृत्रिम प्रकृति का स्वरूप ही था।

सहदेव ने नारदजी को नगर भ्रमण करा दिया। नारद ने पूछा सहदेव यह बताओ तुम्हारे इस नगर का किस किस दिशा में विकास हुआ ? सहदेव ने उत्तर दिया देवर्षि हां विकास तो बहुत हुआ है। जनसंख्या बढी है। व्यापार में वृद्धि हुई है। आजीविका की खोज में प्रतिदिन अनेक श्रमिक, सैनिक, वृषक, कलाकार, व्यापारी, उद्यमी और भी बहुत प्रकार के लोग आते रहते है। उनके लिये निरन्तर भवन और मार्ग बने है। हाट और आगार बन रहे है। गतिविधि का क्रम तेजी से बढ रहा है। युधिष्ठिर ने पूछा नगर भ्रमण कर आये देवर्षि ? नारद बोले विश्वकर्मा ने बडी ही सुन्दर नगरी बनायी है। युधिष्ठिर ने पूछा कैसी लगी हमारी नगरी? कोई दोष हो तो बताइये ? नारद बोले युधिष्ठिर तुम्हारा नगर बहुत सुन्दर बना है किन्तु मेरे लिये सदा से ही नगरों की अपेक्षा मानवीय सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। मेरा मन मानवीय सम्बन्धों पर अधिक मुग्ध होता है। मैं सहदेव से तुम्हारे पारिवारिक विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करते रहा। युधिष्ठिर बोले यह तो हमारा बडा ही सौभाग्य है देवर्षि आपने हमारे परिवार और परिवार जनों के पारस्परिक सम्बन्धों में रूचि दिखाई। आपकी हमारे लिये आत्मीयता है। नारद बोले जहां तक मैं जानता हूं युधिष्ठिर दुर्योधन में कितने भी अवगुण है किन्तु वह अपने पिता की आज्ञा की अवज्ञा नहीं करता। उस

परिवार में सहस्त्रों त्रुटियां होगी किन्तु दुर्योधन के भाई कभी दुर्योधन का विरोध नहीं करते। वे सब एक हैं और संगठन उनकी शक्ति है। क्या तुम भी अपने भाइयों के विषय में यह बात कह सकते हो ?

युधिष्ठिर बोले देवर्षि मैं तो अपने भाइयों के परस्पर मतभेद के बारे में कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। मुझे तो याद भी नहीं आता कि हम में आपस में कभी विरोध हुआ हो। छोटे मोटे मतभेद तो होते रहते हैं वे तो हम परस्पर चर्चा कर सर्व सम्मति से निर्णय कर लेते हैं। मेरे अनुज अपने बडे भाई की इच्छा का सम्मान कर सहमत हो जाते हैं। नारद बोले युधिष्ठिर मेरी बात को अन्यथा मत लेना। मानव मन दुर्गम ही नहीं अगम भी होता है। जिन लोगों में असाधारण प्रेम होता है वे ही लोग कारण अकारण एक दूसरे से टूटे हैं, आपस में विकट शत्रु हो गये हैं। मेरे मन में कभी कभी तुम लोगों के विषय में यह चिन्ता जन्म लेती है कि कहीं तुम्हारी एकता में कोई किसी प्रकार का कोई विघ्न नहीं खडा हो जाये। तुम्हारी सबसे बडी शक्ति तुम्हारी एकता ही है। युधिष्ठिर निश्चल मन से बोले मैं तो ऐसा कोई कारण नहीं देखता देवर्षि। आप अपनी आशंका का कारण बताये। नारद बोले मैंने तुम लोगों के व्यवहार में ऐसा कुछ नहीं पाया जिससे मुझे कोई आशंका हो। संसार में धन, धरती तथा नारी को लेकर अत्यन्त प्रेम करनेवाले भाइयों में अनेक मतभेद ही शत्रुता तक पाल ली गई और संघर्ष के कारण बने। मानव मन अत्यन्त जटिल होता है इसलिये मन के विषय में कभी भी बहुत निश्चिन्त होकर मत रहना। युधिष्ठिर बोले धरती और धन में ऐसा कुछ नहीं है जो मेरे भाइयों को लुभा सके और एक दूसरे के विरोध में खडा कर दे। मेरे भाइयों के मन में लोभ तो है ही नहीं और वे अन्याय और अधर्म से कोई वस्तु अपने लिये प्राप्त करना भी नहीं चाहते। उनकी वृति भोग की नहीं है। यदि जीवन में किन्ही परिस्थितियों में किसी के मन में इन सबकी आकांक्षा जागी भी तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि अन्य भाई उसका त्याग करने में क्षणभर भी नहीं लगायेंगे। नारी के विषय में इस प्रकार निश्चिन्त होकर तो कहने में कठिनाई हो सकती हे। इसकी आशंका हमारी माता के मन में जागी थी। सम्भवत: इसीलिये उन्होने यह चाहा था कि पांचाली को लेकर कहीं हम एक दूसरे से अलग न हो जाये। इस समस्या के समाधान के रूप में हम पांचो का विवाह पांचाली से हुआ। नारद बोले प्रकृति बडी ही मायाविनी है पुत्र। इस माया की सृष्टि में जो जैसा दिखाई देता है वह वैसा होता नहीं। प्रकृति ने सब कुछ द्वन्द मय बनाया है। तुम्हारी माता ने तुम पांचो को परस्पर एक साथ बांधे रखने के लिये जिस युक्ति का आविष्कार किया है, मेरे मन में उसी की आशंका है कि कहीं वही युक्ति तुम्हारे विनाश का कारण कहीं न बन जाये। युधिष्ठिर बोले देवर्षि वैसे तो हम पूर्ण आश्वस्ति से यह भी कह सकते है कि मनुष्य के मन में काम का वेग कितना भी दुर्निवार क्यों न हो, हम पांचो भाई पर नारी की कामना कर ही नहीं सकते। हमारा संयम व्यभिचार को कभी सुखकर नहीं मान सकता। नारद बोले पांचाली का विवाह तुम पांचो से हुआ ताकि तुम में से उसको लेकर कोई मतभेद नहीं उभरे। किन्तु यही तथ्य कभी तुम्हारे लिये संकट का कारण भी बन सकता है। पांचाली तुम पांचो भाइयों की पत्नी है इसलिये उसकी कामना में तुम पांचो के लिये कोई अनौचित्य नहीं है और इस दृष्टि से वह तुम्हारे लिये पर नारी भी नहीं है। जिसकी कामना तुम सब कर सकते हो वही तुम में विरोध के अंकुर भी उपजा सकती है। तुम्हारे इस प्रेम को सुरक्षित रखने के लिये कोई तरह का अनुशासित नियम बनाना आवश्यक है। स्त्री के कारण ही कई बार बडे बडे प्रेमियों में भी परस्पर कलह, मतभेद, झगडे हो जाते है। इस विषय में तुम्हे मैं एक आख्यान सुनाता हूं।

प्राचीन समय की बात है दैत्यराज हिरण्य कश्यप के वंश में निकुम्भ नामक दैत्य के पुत्र सुन्द और उपसुन्द बडे ही बलवान थे। उनका अभिप्राय उद्देश्य सुख-दु:ख और काम एक ही था। आपस में बडी घनिष्टता थी। एक के बिना दूसरा न कही जाता था और न कुछ खाता पीता था। दोनों आपस में बडी ही मधुर चर्चा किया करते थे। वे एक प्राण, दो देह जान पडते थे। एक बार उनके मन में इच्छा हुई कि त्रिलोकी पर विजय प्राप्त की जाये। वे दोनों तपस्या करने लगे। भूख, प्यास सहन करके जटा वल्कल धारण किये हुये केवल हवा पीकर रहते थे। अंगूठों के बल खडे रहते और सूर्य की ओर एक टक देखते रहते और अपने

शरीर से मांस काट काट कर हवन करते। उनकी तपस्या के प्रभाव से विन्ध्याचल तपने लगा उससे धुआं निकलने लगा। देवताओ को भय हो गया। उन्होंने विघ्न डालने के अनेकों उपाय किये। रत्नों का प्रलोभन दिया गया। सुन्दर स्त्रियों को भेजकर उन्हे लुभाने की चेष्टा की गयी। माता, बहिन, स्त्री और अन्यान्य बन्धु बान्धवों का वेश धारण करके उनके सामने आर्तनाद किया गया, मुझे बचाओ मुझे बचाओ। परन्तु उनकी तपस्या अडिग थी। इससे वे तनिक भी विचलित नहीं हुये।

वरदान देने के लिये स्वयं ब्रह्मा उनके पास गये। उन दोनों ने हाथ जोडकर एक स्वर से कहा कि हम दोनों मायावी अस्त्रों के जानकार इच्छानुकूल रूप धारण करने वाले बलवान और अमर हो जाये। ब्रह्मा ने कहा बस, आखिरी बात अमर होना छोडकर और सब कुछ तुम्हे प्राप्त होगा। अमर होना देवताओं की विशेषता है। इसके अतिरिक्त तुम्हारी तपस्या का उद्देश्य त्रिलोकी पर विजय प्राप्त करना था, अमर होना नहीं। इसलिये यह वरदान तुम्हे नहीं मिल सकता। दोनों दैत्यों ने कहा अच्छा तो फिर हमें एक यह वर दीजिये कि हम दोनों त्रिलोकी के किसी भी प्राणी से ही नहीं बल्कि किसी पदार्थ से भी न मरे और यदि कभी मरना ही हो तो हम दोनों एक दूसरे के हाथ से ही मरे। ब्रह्माजी ने उसी समय एवमस्तु कह दिया अर्थात ऐसा ही हो। वे दोनों प्रसन्न होकर घर लौट आये और खुशियां मनाने लगे। अब उनके सामने कौन टिक सकता। बात की बात में दिग्विजय हो गयी। देवता लोग अपने अपने लोक छोडकर भाग गये।

ब्राह्मण और तपस्वियों की बारी आयी। सबके आश्रम नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये। यज्ञशालायें जला दी गई। वे गुफाओं में जा जाकर दुर्गम स्थानों में ढूंढ ढूंढ कर जानवरों का रूप धारण कर एकान्तवासी तपस्वियों का संहार करने लगे। ऐसा मालूम हुआ कि अब प्रलय होनेवाला है। देवर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, परमर्षि और राजर्षि यह सब मिलकर देवताओं के साथ ब्रह्मा के पास गये। सबने ब्रह्माजी से विनती की। हे प्रभो क्या अभी प्रलय हो जायेगा ? ब्रह्मा चिन्ता में पड गये और उन्होने विश्वकर्मा का स्मरण किया। उन्होने विश्वकर्मा को आदेश दिया कि वह एक ऐसी सुन्दरी नारी की रचना करे जिसके शरीर में तिल भर भी ऐसा स्थान न हो जिसमें देखनेवालों की आंखे गड न जाये। विश्वकर्मा ने ऐसी स्त्री का निर्माण कर दिया और उसका नाम रखा गया तिलोत्तमा। ब्रह्मा ने उससे कहा जाओ तुम उन दैत्यों के पास जाओ जिससे उनमें फूट पड जाये ऐसा प्रयत्न करो। उसने देवताओं और ऋषियों की परिक्रमा की और धरा पर आई।

उस समय दोनों भाई मदिरा पिये हुये थे। उनकी आंखे लाल लाल हो रही थी। तिलोत्तमा को देखते ही दोनों कामवश हो गये। सुन्द ने उसका दाहिना हाथ पकडा और उपसुन्द ने बायां। तिलोत्तमा के एक नयन बाण के कटाक्ष से दोनों आपस में लड पडे और अन्त में दोनों परस्पर की गदा की चोट खाकर निर्जीव होकर भूमिपर गिर पडे। उन दोनों वीरों का जो एक हृदय एक प्राण था एक स्त्री के कारण इस प्रकार विनाश हो गया युधिष्ठिर। मैं बडे प्रेम, अनुराग और ममता के कारण तुम्हे कहता हूं कि तुम लोग भी ऐसा कोई नियम बना लो जिसमें तुम लोगों के सामने ऐसा कोई अवसर ही न आये। पांडवों ने देवर्षि की सम्मति से नियम बना लिया और उसी के अनुरूप रहने भी लगे। नारद चले गये। सती द्रौपदी सभी को प्रसन्न रखती थी। उसके मद मान से पांडवों में पारस्परिक प्रेम की और भी अभिवृद्धि हुई। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा पांचाली हम सब भाइयों के प्रत्येक के घर में एक एक वर्ष निवास करेगी और उस काल में वह अन्य भाइयों के लिये वह पर स्त्री ही रहेगी। हम में से कोई भी इस नियम का उल्लंघन नहीं करेगा। फिर भी मर्यादानुसार हम इसे अनुशासन के रूप में स्वीकार कर लें उस काल में यदि कोई दूसरा भाई उनके एकान्त में अतिक्रमण करेगा तो निन्दनीय कर्म माना जायेगा अत: इस खलल पडने स्वरूप उसे प्रायश्चित स्वरूप बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्य पूर्ण बनवास स्वीकार करना पडेगा। तत्काल अन्य सभी भाई सहमत हो गये। वैशम्पायन बोले जनमेजय यही कारण है कि पांडवों में द्रौपदी को लेकर कभी किसी प्रकार की फूट परिवार में नहीं पडी।

जो अग्नि से जन्मी है वह भला आग से क्या भय करेगी। जो बिल्ली दिन रात ठठेरे के पास बैठी रहती है वह क्या उसकी

ठोकपीट की आवाज से डरेगी ? एक समय में एकाधिक पति की पत्नी की भूमिका में उतरना अत्यन्त पीडादायक और निन्दनीय है। अब पांचाली को बारी बारी से एक वर्ष तक एक पांडव की पत्नी की भूमिका ग्रहण करना है। नारी होती ही है जननी, जाया और भगिनी। जननी और भगिनी के स्वरूप में हर समय सभी पांडवों के पास कर्तव्य सम्पादित करे। पर पत्नी के रूप में सब के पास एक एक वर्ष रहना। पांडव पांचों भाई पांच स्वभाव के हैं। वर्ष भर में एक की प्रकृति से मेल बिठाकर चलने के लिये मानसिक प्रस्तुति का अवसर मिल जायेगा। पांडवों ने नियम और शर्त स्वीकार की। ऐसी शर्त उनके दाम्पत्य जीवन को श्रुंखलित और सुखद कर सकेगी। द्रौपदी अब सब भाइयों के स्वभावानुसार उनकी जिद्द, अडचन, रागद्वेष, आपति अभियोग, मान-विराग, लाड चाप का प्रत्युतर सहज में देने लगी। उपस्थित सुख को पाने के लिये वह भविष्य के विकट इंगित को अग्राह्य कर चरम दुर्दशा को स्वयं ही बुला लेता है। बन्धु पत्नी के अनुरोध के आगे पत्नी का मोह युग युग से तुच्छ माना गया है। नारद जाते जाते यह भी कह गये यद्यपि काम का वेग मनुष्य के नियन्त्रण से स्वतन्त्र है फिरभी नियन्त्रण में रहना। धर्मराज युधिष्ठिर के साथ सिंहासन पर बैठने की अधिकारिणी केवल पांचाली ही होगी।

उसी समय कुन्ती भी वहां आ गई थी और पांचाली भी। कुन्ती ने द्रौपदी से कहा महर्षि नारद तुम लोगों के लिये बहुत ही सुन्दर व्यवस्था कर गये हैं। नियम पालन करने में जो व्यावहारिक कठिनाइयां आती है उन्हे दूर करना भी तो हमारा ही कर्तव्य है। यदि किसी एक को किसी एक क्षेत्र से निष्कासित कर दिया जाये तो उसके ठहरने के लिये उसे कोई अन्य क्षेत्र की सुविधा बनानी पडती है अन्यथा वह व्यक्ति बाध्य होकर नियम भंग करेगा और निषिद्ध क्षेत्र में अतिक्रमण करने का प्रयत्न करेगा। पांचाली तुम पांचो भाइयों की पत्नी अवश्य है परन्तु इस व्यवस्था के अन्तर्गत वह एक वर्ष तक तुम में से किसी एक भाई की ही पत्नी बनेगी और उस अवधि के लिये शेष चार भाई पत्नी विहीन जीवन जियेंगे। सिर्फ एक पांडव ही एक वर्ष के लिये सपत्नीक होगा और वह अगले चार वर्षों के लिये पत्नी विहीन जीवन व्यतीत करेगा। इसलिये क्या तुम पांचो एक भरा पूरा दाम्पत्य जीवन पा सकोगे। दाम्पत्य अपेक्षाओं को पूर्णत: तृप्त कर पावोगे ? ऐसे में मेरी सम्मति से तो यही अच्छा होगा कि हर भाई एक एक अतिरिक्त विवाह करे। युधिष्ठिर इसके लिये अपने छोटे भाइयों को प्रेरित करो। द्रौपदी कहीं तुम्हे यह तो नहीं लगेगा कि मैं तुम्हारे साथ कोई अन्याय या तुम्हारे विरुद्ध कोई षडयन्त्र रच रही हूं। द्रौपदी बोली नहीं माताश्री। यदि उनके विवाह में मैं कोई प्रतिरोध करूं तो मैं उनके साथ अन्याय करूंगी। यह तो आपका ही अपने पुत्रों की असुविधा जाननेवाला जागरूक मन है नहीं तो मैं पांडवों को विवाहित मान अविवाहित का सा जीवन व्यतीत करने को मजबूर करती और उनकी पीडा को भी कभी समझ नहीं पाती। कुन्ती की आंखों में स्नेह था। कुन्ती बोली तू बहुत करूणामयी है पुत्री। तेरा मन उदार और ईर्ष्याशून्य है, नहीं तो कौनसी स्त्री सपत्नी शब्द से विचलित नहीं होती।

कुन्ती ने कहा काशी की राजकुमारी बलन्धरा का स्वयंवर हो रहा है युधिष्ठिर सम्भव हो तो भीम को वहां भेजो और उसे बलन्धरा को प्राप्त करने दो। द्रौपदी ने भी मन से स्वीकृति दी कि जिस माता के पांच पुत्र हो उसके लिये एक पुत्र वधू पर्याप्त नहीं होती। तुम्हे अपराध बोध से मुक्त करती हूं और भीम जाओ बलन्धरा को प्राप्त करो। मेरी न्याय बुद्धि का भी यही निश्चय है।

६७) अर्जुन का बनवास और उलूपी तथा चित्रांगदा के साथ विवाह

वैशम्पायन कहते है जनमेजय पांडव ऐसा नियम बना कर सुखपूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होने अपने शारीरिक बल और अस्त्र कौशल से एक एक करके निकट के सभी राजाओं को वश में कर लिया। द्रौपदी सभी के अनुकूल रहती थी। पांडव भी उसे पाकर बहुत सन्तुष्ट और सुखी हुये। वे धर्मानुसार प्रजा का पालन करते। उनकी धार्मिकता के कारण से कुरुवंशियों के दोषों का प्रभाव भी मिटने लगा। कुन्ती भी श्रीकृष्ण से सहमत थी परन्तु द्रौपदी इन मित्रों की मित्रता का अर्थ जानती थी इसलिये उसके हृदय में किसी आशंका का अंकुर तो अवश्य फूटा फिर भी वो चुप रह गई।

शायद उसका सन्देह आधारहीन निकले तो प्रश्न अब केवल यह था यदि पांडव कुमारों में से एक किसी यात्रा पर निकलता भी है तो यह समाचार हस्तिनापुरवालों से कैसे छिपाया जायेगा क्योंकि वो तो इसकी काट करने का प्रयत्न अवश्य करेंगे। परन्तु इसी बीच घटनेवाली घटना ने रास्ता साफ कर दिया।

एक दिन की बात है कुछ लुटेरों चोर ने किसी ब्राह्मण की गायें हांक कर खांडव वन की ओर ले चले। ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधित हुआ और वह इन्द्रप्रस्थ में आकर पांडवों के सामने करूण क्रन्दन करने लगा। ब्राह्मण ने कहा पांडव कुमार तुम्हारे राज्य में दुष्टात्मा और क्षुद्र लूटेरे ने मेरी गायें बलपूर्वक छीन कर उन्हे हांककर लिये जा रहे हैं। तुम दौडकर उन्हें बचाओ। जो राजा प्रजा से कर लेकर भी उसकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं करता वह तो नि:सन्देह पापी है। मैं ब्राह्मण हूं और गायों का इस प्रकार छिन जाना मेरे धर्म का नाश है। इसलिये तुम्हारे लिये यह उचित है तुम पूरी शक्ति भर मेरी गायों की रक्षा करो। अर्जुन ने ब्राह्मण का करुण क्रन्दन सुन कर उसे ढाढस बन्धाया। अर्जुन ने ब्राह्मण की बात सुनी और कहा डरो मत मैं अभी तुम्हारी गायों को दुष्टों के चंगुल से मुक्त करा दुंगा। अर्जुन ने यह कह तो दिया पर उसके अस्त्र-शस्त्र, धनुष सब द्रौपदी के शयन कक्ष में थे जहां महाराज युधिष्ठिर एकान्तवास में द्रौपदी के साथ बैठे सहवास कर रहे थे। नियमानुसार अर्जुन अब उस घर में नहीं जा सकते थे। एक ओर पारिवारिक नियम और दूसरी ओर ब्राह्मण की करुण पुकार। अर्जुन बडे असमंजस में पडे। अर्जुन ने साचा कि ब्राह्मण की रक्षा करना उसका गोधन लौटाकर उसके आंसू पोंछना उसका निश्चित कर्तव्य है। इसकी उपेक्षा करने से राजा अधर्म का भागी होगा और लोग मुझे क्षत्रिय धर्म से च्युत कहेंगे। हम लोगों की निन्दा होगी और हमें पाप लगेगा। यदि मैं राजा की अवज्ञा करके उस कक्ष में प्रवेश करता हूं तो नियम भंग का पाप लगता है और वन जाना पडता है। पर उस पाप का तो प्रायश्चित किया जा सकता है। चाहे प्राण भी क्यों न चले जाये पर इस दीन ब्राह्मण गोधन की रक्षा करना मेरा धर्म है और यह कर्म मेरे अपने जीवन की रक्षा से भी श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। मुझे वनवास सहना पडे तो यह भी सह लूंगा। ऐसा निश्चय कर नि:संकोच अर्जुन राजा युधिष्ठिर के कक्ष में चले गये जहां द्रौपदी और महाराज युधिष्ठिर एकान्त वास में थे। राजा युधिष्ठिर को पूरा वृतान्त सुना उनसे अनुमति ले अपना धनुष उठाया और आकर ब्राह्मण से बोले ब्राह्मण देवता अब जल्दी में चलो। चोर लोग बहुत दूर नहीं गये थे। उन्हे पकड कर थोडी ही देर में गोधन का उद्धार कर दिया। अर्जुन ने बाणों की बौछार से लूटेरों को मारकर गायें ब्राह्मण को सौंप दी। नागरिकों ने अर्जुन की बडी प्रशंसा की और कुरुवंशियों ने उसका अभिनन्दन किया। चारों ओर अर्जुन का यश गाने लगे। राजा की धर्म परायणता तो उसके अपने तथा उसके कर्मचारियों के आचरण से सिद्ध होती है, शासन तन्त्र की सक्रियता से सिद्ध होती है।

युधिष्ठिर एकान्त में द्रौपदी के साथ विहार कर रहे थे। मुग्ध नेत्रों से पांचाली को निहार रहे थे। युधिष्ठिर की दृष्टि ने पांचाली को नारी सौन्दर्य की अद्भुत प्रतिमा होने का गौरव तो दिया था किन्तु स्वयं पुरुष होते हुये भी उसे मर्यादा से वंचित कर कामिनी अथवा भोग्या होने का अहसास नहीं दिया। युधिष्ठिर का काम व्यवहार भी दिव्य ही था। उसमें न तो अधिग्रहण था ना ही भोग। वह तो जैसे सहयोग तथा आनन्द का उत्सव था। युधिष्ठिर ने पांचाली से कहा तुम्हारे माध्यम से प्रकृति मेरे मन में निराशा, विषाद, अवसाद, कुंठा, अभाव, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि के भावों को निरस्त कर देती है। तुम शान्ति, सन्तोष, उपलब्धि, और प्राप्ति जैसे भावों की द्योतक हो। जीवन जैसे प्रकृति का सुन्दरतम उद्यान बन जाता है जिसमें दिव्य रस, रंग तथा गन्ध है। यह लोक किसी दिव्य लोक में परिणित हो जाता है। द्रौपदी अपने प्रेम वार्तालाप में बोली आप अपने शब्दों का मायाजाल मत रचिये। कहना तो आप यही चाहते हैं कि मेरा रूप, काम की सृष्टि करता है। आपको दिव्यता के आसन से पतित कर लौकिकता और भोग के धरातल पर उतारता है। युधिष्ठिर प्रणय प्रसंग से बोले नहीं देवी तुम तो मेरे मन का काम रति बनकर शमन करती हो। नारी का रूप मेरे मन में रंच मात्र भी विकार उत्पन्न नहीं कर पायेगा। तुम तो मेरी वासना को भी दिव्य रूप प्रदान करती हो। तुम तो श्रद्धा स्वरूपा हो, वासना रूपी नहीं। तुम मेरे मन को सौन्दर्य के भव्य धरातल पर स्थिर रखती हो। द्रौपदी बोली हां

महाराज मैं लौकिकता और भोग को प्रेरित नहीं करती। मैं नारी हूं और नारी के लिये तो पुरुष हमेशा यही कहता है। युधिष्ठिर बोले नारी तो तुम हो ही इसलिये वासना का रूप धारण अवश्य करोगी तो आसक्ति और भोग की सृष्टि भी करोगी। यदि प्रेरणा बनकर रहोगी तो वासना और आसक्ति नहीं जागेगी। नारी की हीन वृत्तियों को धारण करोगी तो प्रकृति का पार्थिव और स्थूल रूप प्रकट होगा। यदि उदात्त वृत्तियों को प्रेरित करोगी तो दिव्य और उदात्त जीवन की सृष्टि निर्माण करोगी। नारी का एकरूप वह है जो पुरुष को निरन्तर भोगासक्ति में स्नान कराते रहता है और दूसरा रूप वह है जो पुरुष के कदम हीनता की ओर उठते ही उन्हे रोक देता है। नारी पुरुष का नरक भी है और स्वर्ग भी। युधिष्ठिर बोले पांचाली सृष्टि को चलाये रखने के लिये सन्तान को जन्म देने के लिये यह शरीर आवश्यक है। इस दायित्व को पूर्ण करने के पश्चात यह शरीर है दिव्य कर्मों के लिये, अपनी आत्मा को शुद्ध करने के लिये। इस शरीर को तपस्या और साधना में लगाया जाता है, स्वच्छ जीवन जिया जाता है। लोभ, मोह, क्रोध, काम, घृणा तथा द्वेष से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया जाता है। प्रकृति मायामयी है। कर हम वो ही रहे हैं जो प्रकृति चाहती है और हमें लगता है कि हम अपनी इच्छा से, अपने सुख के लिये स्वतन्त्र रूप से कार्य सम्पादन कर रहे हैं। संसार में देवों का बनाया हुआ अस्त्र तो मनुष्य का शरीर ही है दिव्यास्त्र और देवास्त्र वे शस्त्रास्त्र हैं जिनका निर्माण कर मनुष्य अन्य मनुष्यों का विनाश करता है। यदि निष्क्रिय होकर जन्म और मृत्यु के चक्र में पडा रहे तो यन्त्र ही है। यन्त्र में जो यान्त्रिकता है वह मनुष्य में नहीं होती इसलिये उसे अस्त्र का महत्व दे दिया।

दूसरे दिन प्रात: अर्जुन युधिष्ठिर के पास गये और बोले मैंने आपके एकान्तवास में विघ्न उपस्थित किया, व्यवधान किया और अपनी प्रतिज्ञा नियम भंग किया इसलिये प्रायश्चित के लिये मुझे बारह वर्ष तक वनवास जाने की आज्ञा दीजिये। एकाएक अर्जुन से ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिर गदगद और व्याकुल हो कहने लगे क्या हुआ ? तुम वन में किसलिये जाओगे ? तुमने तो कोई अपराध किया ही नहीं ? बडा भाई यदि एकान्त में हो तो छोटे भाई के वहां जाने में कोई आपत्ति नहीं है पर यदि छोटा भाई एकान्त वास में हो बडे भाई को वहां नहीं जाना चाहिये, यही धर्म की मर्यादा है। तुम अपने मन में कोई विचार मत रखो और यदि तुम्हे लग रहा है कक्ष के भीतर प्रवेश कर तुमने मेरा अप्रिय किया है तो तुम्हे प्रसन्न करने के लिये मैं तुम्हे क्षमा करता हूं। मेरे अन्त:करण में तनिक भी क्रोध नहीं है। तुम कहीं नहीं जाओ तथा मेरे पास रहो। अत: तुम वनवास का विचार छोड दो। न तो तुमसे कोई धर्म का लोप हुआ और न ही मेरा अपमान। अर्जुन बोले आपका मुझपर बडा स्नेह है। इस प्रेम के कारण ही आप ऐसा कह रहे हैं। चाहे जो हो, नियम तो नियम ही है, उसका उल्लंघन तो हो गया चाहे बडा भाई करे या छोटा करे। धर्म पालन में बहाने से किसी भी प्रकार की प्रमादता नहीं करनी चाहिये और मैं अपने सत्य की प्रतिज्ञा और नियम भंग नहीं करूंगा। किसी प्रकार का बहाना बनाकर यदि नियम भंग कर दिया तो वह नियम बार बार टूटेगा। नियम पालन में कभी भी शिथिलता नहीं आनी चाहिये। एक बार नियम टूटता है तो उसकी पूरी नींव हिल जाती है। मुझे दृढ़ता के साथ उसका प्रायश्चित करने दीजिये। युधिष्ठिर ने अनुमति दी। अर्जुन ने वन यात्रा की दीक्षा ली और बारह वर्ष तक वनवास काल के लिये चल पडे।

वैशम्पायन बोले जनमेजय इस प्रसंग में नियम की आवश्यकता, नियम की महिमा, नियम पर दृढ़ता और नियम भंग होने पर प्रायश्चित की कर्तव्यता का वर्णन हुआ। यद्यपि पांडव एक ही थे फिर भी नियम के कारण पांडवों के जीवन में बडा सुख रहा, बडी शान्ति रही। द्रौपदी के जीवन में इस बात की कभी प्रतीति ही नहीं होती कि वह अनेक पुरुषों की धर्मपत्नी है। इस नियम ने इतना नियमित कर दिया उसके जीवन को कि वह सर्वदा एक के ही साथ रहती है और उस एक के साथ रहकर भी सबको प्रसन्न रखती है। द्रौपदी उन पंच कन्याओं में से एक है जो प्रात: स्मरणीय है, नित्य कुमारी है। वह जब तक जिस पति के साथ रहती है तब तक उसकी पत्नी है। दूसरे पति के पास जाते ही पहले के साथ उसका वैसा सम्बन्ध नहीं रह जाता। यह बात स्वयं नारद और परमर्षि व्यास ने कही यह केवल द्रौपदी की ही विशेषता थी।

अब अर्जुन के लिये प्रायश्चित यात्रा पर जाना आवश्यक हो गया। यानि सांप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी लेकिन जब किसी एक दिन किसी गुप्तचर द्वारा यही सूचना मिली कि अर्जुन चतुर्दिशा की यात्रा पर निकला हुआ है तो गान्धार नरेश शकुनि के कान तुरन्त खडे हो गये। अर्जुन के साथ बहुत से वेद वेदांग के मर्मज्ञ: अध्यात्म चिन्तक भगवद भक्त, त्यागी ब्राह्मण, कथा वाचक, वानप्रस्थ और भीक्षा जीवी भी चले। स्थान स्थान पर कथायें भी होती। उन्होने सैकडों वन, सरोवर, नदी, पुण्य तीर्थ, देश एवं समुद्र के दर्शन किये। थोडे दिनों में वे हरिद्वार पहुंच कर वहां पर ठहर गये। ब्राह्मणों ने स्थान स्थान पर अग्निहोत्र की स्थापना की। स्वाहा स्वाहा की ध्वनि से पूरा क्षेत्र गूंज उठा।

आज काफी अन्तराल के पश्चात हरिद्वार में गंगाजल को अंजुलि में लिया अर्जुन ने और अंजुली से गंगा जल का आचमन किया, मन सिहर हो उठा शरीर में रोमान्च हो आया। गंगा जल पान किया। हरिद्वार यह स्थान गंगा द्वार कहलाता है। माना जाता है कि गंगा यहीं से पर्वत श्रेणियों को त्यागकर समतल भूमि में प्रवेश करती है इसलिये यह गंगा द्वार है। यहीं पर महादेव शिव ने गंगा को लोक कल्याण के लिये अपनी जटाओं में धारण किया था इसलिये यह हरद्वार कहलाता है। इस क्षेत्र में महादेव शिव का बहुत महत्व है। शिव के प्राचीन मन्दिर केदारनाथ के लिये मार्ग यहीं से जाता है। प्रजापति दक्ष की राजधानी कनखल में है जो यहां से थोडी ही दूरी पर है। दक्ष की पुत्री सती उमा का विवाह महादेव शिव से हुआ था। दक्ष ने यहीं कनखल में महायज्ञ किया था। सती ने अपने पति शिव की उपेक्षा और निरादर देखकर उसी यज्ञकुंड में कूदकर आत्मदाह किया था। यहीं पर शिव के गण वीरभद्र का मन्दिर है। यह सारा क्षेत्र भी वीरभद्र के नाम से ही जाना जाता है। यही से हिमालय क्षेत्र श्रृंखला आरम्भ होती है। इसी क्षेत्र में राजा हिमवान की पुत्री पार्वती ने पुन: जन्म ग्रहण किया था और गौरीकुंड क्षेत्र में तपस्या कर पुन: महादेव को अपने पति रूप में प्राप्त किया था। इसी हिमालय की एक ऊंची चोटी कैलाश को महादेव का स्थान माना जाता है। मानसरोवर से निकलने वाली अलकनन्दा ही गंगा की मुख्य धारा है जो इस क्षेत्र से जिसे महादेव शिव की जटा कहा जाता है। बद्रिकाश्रम जाने के लिये भी रूद्रप्रयाग से ही मार्ग जाता है। यह स्थान हरि क्षेत्र में जाने के लिये हरिद्वार कहलाता है। गंगा की उत्पत्ति विष्णु के चरणों से मानी जाती है इसलिये इसे गंगा द्वार भी कहते है। यह क्षेत्र पवित्र है, महातीर्थ है। यह भूमि अध्यात्म की जननी है। यह नागों की भूमि भी है। अर्जुन ने कुछ दिनों के लिये हरिद्वार में विश्राम किया। यदि किसी दुर्भाग्यवश राजा किसी व्यक्ति को कारागृह मे बन्दी बना डाल दे तो वह उस अवधि को अपने शत्रुओं तथा भाग्य को कोसने से कहीं अधिक अच्छा है कि उस समय व्यक्ति अपनी आत्मा का विकास का प्रयत्न करे। उसे अपनी साधना और तपस्या का सुअवसर और संयोग बना ले। यदि विधाता ने उसे एक विशिष्ट अवधि तक अपने तथा अपने परिवार के लिये सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त कर दिया है तो वह उसका लाभ उठा कर ब्रह्म चिन्तन करे जिसके लिये उसे संसार में अवकाश नहीं मिल रहा था।

अर्जुन ने शुद्धता, स्वच्छता व निमन्जन के लिये, स्नान हेतु गंगा की धारा में प्रवेश किया। जल की प्रवृति अद्भुत थी। शरीर में एक प्रकार की सिहरन हुई। मन कृतज्ञता से विह्वल हो गया। मां गंगा को प्रणाम किया। आनन्द से आंखों में आंसू भर आये। गंगा की धारा में अपने आपको समर्पित करते हुये अर्जुन के मन ने पुकारा मां। हाँ प्रकृति मां ही तो थी। उस ब्रह्म की आदि शक्ति, उसकी माया, उसका प्रकट रूप। उसी में तो मनुष्य जन्म ग्रहण करता है। वही तो उसके शरीर का निर्माण और पोषण होता है और फिर यह शरीर उसी में समर्पित हो जाता है। मां स्नेहमयी है, करुणामयी है, महिमामयी है, वैभवमयी है। मां कितनी क़ठोर तथा कराला भी होती है इसका सन्तान को ज्ञान नहीं होता। सन्तान यह नहीं जानती कि क्या उसके हित में है और क्या नहीं उसके हित में ? लेकिन मां जानती है कि कब उसे दुलारना है, कब और क्या खिलाना है ? कब बहलाना है और कब उसे ताडना है ? वह इस शरीर का निर्माण भी करती है, पोषण भी करती है और उसे क्षीण भी करती है और फिर उसका क्षय कर उसे पंच तत्वों में भी परिणत भी करती है। जिस मां ने उसे जन्म दिया है, उसका पोषण किया है वह इतनी निर्मम भी हो जाती है

किन्तु मां जानती है कि वह शरीर क्षीण और असमर्थ हो चुका है, यदि वह उसका क्षय नहीं करेगी तो प्राणी नया शरीर कैसे धारण करेगा। उस निर्ममता में भी उसकी ममता है। अर्जुन ने गंगा को प्रणाम कर कहा तुम्हारी जय हो गंगा मैया। वे गंगा में स्नान कर तर्पण करने हवन करने के लिये बाहर निकलने वाले ही थे कि नाग कन्या उलूपी अर्जुन पर कामासक्त होकर उन्हे जल के भीतर खींच ले जाकर अपने पिता कौरव्य नाग के प्रासाद में ले गई।

अर्जुन ने वहां पर देखा यज्ञीय अग्नि प्रज्वलित हो रही है। उन्होंने वहां पर यज्ञ हवन किया और अग्निदेव को प्रसन्न करके नागदेवी उलूपी से पूछा सुन्दरी तुम कौन हो ? तुम ऐसा साहस कर मुझे यहां कहां ले आई हो ? उलूपी ने कहा मैं एरावत वंश के कौरव्य नाग की पुत्री उलूपी हूं। मैं आप पर मुग्ध हो आप में आसक्त हो आपसे प्रेम करने लगी हूं। आपके अतिरिक्त अब मेरी दूसरी कोई गति नहीं है। काम याचना करने लगी। मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। मुझे स्वीकार करें। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा से बंधा वह कामना का दमन कर रहा था। कामना होनेपर ब्रह्मचर्य नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य में तो काम का भाव मन में उत्पन्न होना ही नहीं चाहिये। वैराग्य वह होता है जहां अनुराग हो ही नहीं। अनुराग का दमन कभी वैराग्य नहीं होता।

अर्जुन ने कहा देवी मैंने धर्मराज युधिष्ठिर मेरे ज्येष्ठ भ्राताश्री की आज्ञा से बारह वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत का नियम ले रखा है। मैं स्वाधीन नहीं हूं। मैं तुम्हे प्रसन्न करना भी चाहता तो हूं परन्तु मैंने अब तक कोई असत्य भाषण नहीं किया है इसलिये मुझे असत्य का पाप नहीं लगे, मेरे धर्म का किसी प्रकार लोप न हो। उलूपी ने कहा मैं तुम्हारा धर्म संकट जानती हूं और न ही तुम्हारा धर्म नष्ट करना चाहती हूं। पर धर्म का मर्म उसके शब्दों के अन्धानुकरण में नहीं है बल्कि उसकी आत्मा को पहचानकर उसके अनुकूल आचरण करने में। उलूपी अपनी काम पीडा की दुहाई देकर बोली किसी कामातुर नारी की कामयाचना को ठुकराना भी अधर्म है वीरवर। कामातुर नारी को कामदान कर उसे सन्तुष्ट करना भी धर्म का पालन करना ही है। अर्जुन ने कहा तुम सुन्दरी हो, युवती हो, तरुणी हो, अविवाहिता हो और तुम कामातुर हो। तुम्हारा तिरस्कार करना मेरा धर्म नहीं है फिर भी तुम न तो मुझे जानती हो। तुम्हारा यह व्यवहार मेरे प्रति तुम्हारे पिता के लिये आपत्तिजनक होगा। उलूपी बोली मैं तुम्हे जानती हूं कि तुम पांडु पुत्र कौन्तेय अर्जुन हो। इन्द्रप्रस्थ के महाराज धर्मराज युधिष्ठिर के अनुज हो। जहां तक मेरा प्रश्न है मैं प्रेम विवाह, प्रणय सम्बन्धों के विषयों में पूर्ण स्वतन्त्र हूं। नाग जाति में ऐसी स्वतन्त्रता है। इसलिये मैं तुम्हारी कामना कर सकती हूं। मेरे पिता कौरव्य नागराज को इससे क्या आपत्ति हो सकती है ? अर्जुन ने कहा देवी महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से बारह वर्ष के ब्रह्मचर्य का नियम कैसे निभा पाऊंगा ?

उलूपी बोली तुम वीर क्षत्रिय हो। असहाय और पीडित व्यक्ति की सहायता करना तुम्हारा धर्म है। मुझे पता नहीं कि क्षत्रिय भी अब अपने धर्म से च्युत हो रहे हैं। अर्जुन बोला देवि इस श्रृंगार रस के प्रसंग में क्षत्रिय की वीरता कहां से आ गई ? इस प्रेम निवेदन में क्षत्रिय धर्म को ललकार रही हो। उलूपी बोली फिर और नहीं तो क्या। तुम बार बार अपनी प्रतिज्ञा की रट लगा रहे हो। दो धर्मों में ये कौनसा धर्म इस समय आवश्यक है। यह तो तुम्हे समयानुसार ही निश्चित करना चाहिये कि समय की मांग क्या है ? दयापूर्वक किसी के प्राणों की रक्षा कर अपनी प्रतिज्ञा पालन का अहंकार। क्या प्राप्त कर लोगे यह बार बार प्रतिज्ञा पालन की दुहाई देकर ? स्वयं को तपाओगे, जलाओगे और तडफाओगे और फिर सबसे कहोगे कि मैंने प्रतिज्ञा पालन किया। उलूपी की ओर देखकर अर्जुन का मन दहल गया कितनी यातना थी उसके नयनों में। काले काले सुन्दर नयन और उसके तीखे कटाक्ष के बाण के प्रहार। उसका सौन्दर्य यातना के सान पर चढता ही गया। नयनों में चुम्बकीय आकर्षण कि मनुष्य खिंचता ही चला जाये नारी की आँखों में। अब अर्जुन को लगने लगा उसका मन इस असाधारण सुन्दरी के लिये करुणा और सहानुभूति से भर गया। अर्जुन को लगा वह क्षत्रिय धर्म की रक्षा करेगा या काम यातना धर्म की। काम यातना धर्म का मर्म अर्जुन की समझ में आया। उलूपी बोली तुम अपने धर्म को ठीक से पहचानने का प्रयत्न करो वीरवर। तुम पांचो भाइयों की प्रतिज्ञा तुम्हें सुख से वंचित करने के लिये नहीं बल्कि द्रौपदी की रक्षा के लिये की गयी है। यह मात्र व्यवस्था है। यह प्रतिज्ञा तुम्हारी कोई साधना

नहीं है। यह तो तुम पांचों की अपेक्षाओं को मर्यादित कर द्रौपदी को सम्भावित कठिनाइयों से बचाना है वीरवर और उस मर्यादा की रक्षा के लिये उसके अतिक्रमण को अपराध माना गया है। अपने इस अपराध के दंड स्वरूप तुम बारह वर्ष तक पांचाली के साहचर्य सुख से वंचित रहोगे इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि तुम किसी अन्य नारी के साथ स्त्री प्रसंग नहीं कर सकते। प्रतिज्ञा का अर्थ तो स्पष्ट है कि प्रायश्चित स्वरूप तुम बारह वर्षों तक द्रौपदी के प्रति ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करोगे। उससे बारह वर्षों तक काम सुख की अपेक्षा नहीं करोगे। तुम्हारे बनवास मात्र से उस प्रतिज्ञा का मर्म पूरा होता है। तुम्हें इन्द्र प्रस्थ से दूर रख, द्रौपदी के प्रेम सुख से वंचित कर प्रतिज्ञा का लक्ष्य पूरा होता है। तुम इन्द्रप्रस्थ से दूर रहो, फिर चाहे वन में रहो या और कहीं रहो उससे तुम्हारे भाइयों और पांचाली में क्या अन्तर पडता है ? प्रतिज्ञा कहती है कि तुम बारह वर्षों तक पांचाली का स्मरण भी मत करो और मैं भी तो तुम्हे उसे विस्मृत करने में सहायक हूं प्रियतम। जितने समय तक तुम मुझ में अनुरक्त रहोगे उससे तुम विरक्त ही रहोगे तो अपनी प्रतिज्ञा को वास्तविक रूप में पूर्ण कर पाओगे। अर्जुन बोला प्रतिज्ञायें इसलिये भी तो नहीं होती कि किसी तर्क अथवा कुतर्क का सहारा या आड लेकर उसके बन्धनों से छुटकारा पा लिया जाये। उलूपी बोली प्रतिज्ञायें इसलिये भी नहीं होती कि मूर्खों के समान उन शब्दों को अनावश्यक महत्व देकर स्वयं को व्यर्थ कष्ट दिया जाये और उसे जीवन भर कन्धों पर ढोया रखें।

उलूपी बोली मेरा मन तो कामातुर हो रहा है प्रिय। मुझे किसी प्रकार का कोई भ्रम या संशय नहीं है। मैं तुम्हारा धर्म नष्ट करना नहीं चाहती किन्तु अपना प्राप्तव्य भी छोड नहीं सकती। तुम चाहे इसे कुतर्क भले ही कहो पर समय के धर्म की मांग यही है। उलूपी के तर्कों ने अर्जुन की प्रतिज्ञा के सारे बन्धन काट दिये। अब अर्जुन बन्धा हुआ नहीं स्वतन्त्र था। अब अर्जुन का मन प्रतिज्ञा के उसी अर्थ को स्वीकार करने लगा जिसकी विवेचना उलूपी ने की थी। अर्जुन उलूपी के नयन भवरों में उलझता गया वह इन भंवरों से बच नहीं पाया। उलूपी के नयन अद्भुत और आकर्षक थे। वे अर्जुन को सम्मोहित कर रहे थे। उलूपी की ओर देखते ही अर्जुन का मन विलोडित होने लगा। अर्जुन ने कामदेव की दुंदभि सुनकर उलूपी का आलिंगन कर लिया। उलूपी नारी नहीं कामिनी है। नारी की काम याचना एक अदृश्य शक्ति इतनी प्रबल। अर्जुन के मन में यदि काम न जागा होता तो उलूपी किसे प्रेरित करती ? यह तो सहज नैसर्गिक समर्पण था अपना परम और चरम सुख। भविष्य की कोई चिन्ता नहीं करता है काम प्रेरणा। अर्जुन की भुजाओं ने उलूपी को अपने आलिंगन में थाम लिया। अर्जुन ने उलूपी को काम दान धर्म मानकर उसकी इच्छा पूर्ण की उसके साथ विवाह किया। श्वसुर के घर में जामाता अतिथि ही होता है, वह वहां का स्थायी निवासी नहीं हो सकता। दूसरे दिन अर्जुन वहां से विदा हुआ। विदा होते समय नागकन्या उलूपी ने अर्जुन को वर दिया कि तुम्हे कभी किसी भी जलचर प्राणी से भय नहीं होगा। सब जलचर आपके अधीन रहेंगे। अर्जुन से उलूपी को एक पुत्र हुआ जिसका नाम ईडावान था। तदनन्तर अर्जुन हरिद्वार से हिमालय की तराई में चले गये। अगत्स्यवर, वशिष्ठ पर्वत, भृगुतुंग आदि पुण्यतीर्थों में स्नान करते, ऋषियों के दर्शन करते विचरण करने लगे। उन्होने बहुत सी गाये दान करी तथा अंग, बंग और कलिंग आदि देशों के तीर्थ दर्शन किये। जो कुछ ब्राह्मण अर्जुन के साथ रह गये थे वे भी कलिंग देश की सीमा से अर्जुन की अनुमति लेकर लौट पडे। अर्जुन महेन्द्र पर्वत पर होकर समुद्र किनारे चलते चलते मणिपुर (आसाम) क्षेत्र में पहुंचे।

व्यक्ति का जो व्यवसाय होता है वह उसी श्रेणी का अंग होता है। युवा होने पर उसका वर्ण उसके जन्म और कर्म से निश्चित हो जाता है। अध्यात्म की दृष्टि में सब जीव समान हैं। परमात्मा प्रत्येक जीव में आत्मा के रूप में विद्यमान है। यह सारा वर्ग और वर्ण विभाजन समाज ने अपनी सुविधा के लिये किया है। वर्ण का सम्बन्ध वस्तुत: व्यक्ति के स्वभाव और उसकी क्षमता से है। गुणों का सम्बन्ध आनुवंशिकता से होता है इसलिये समाज में जन्म से वर्ण का निर्धारण भी होता है। जिस परिवार में बालक पलता है, वहां का शिक्षण भी उसकी रुचियां, अरुचियां, क्षमताओं, अक्षमताओं का निर्धारण करता है इसलिये परिवार

तथा गुरुकुल के शिक्षण का महत्व है। यदि पुत्र अपने पिता के उत्तराधिकार में वे ही रुचियां तथा वृतियां ग्रहण करता है वैसी ही क्षमता भी पाता है और वैसा ही आचरण भी करता है तथा अपने पिता के ही व्यवसाय तथा जीवन दर्शन को स्वीकार करता है तो किसी पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं रह जाती। जन्म, वृति, कर्म अथवा व्यवसाय से किसी एक वर्ण से सम्बद्ध होने पर कहीं कोई द्वन्द नहीं जागता। प्रकृति की लीला बडी ही विचित्र है। अनेक बार पुत्र अपने पिता के सर्वथा विपरीत चलता है। या तो उसका रूचि भेद हो जाता है या क्षमता भेद। वह ब्राह्मण पिता का पुत्र होकर भी उतना न तो ज्ञान अर्जित कर सकता है और न वैसी तपस्या कर सकता है तथा न वैसा आचरण ही कर पाता है। किन्तु वह ब्राह्मण का ही व्यवसाय करना चाहता है। ब्राह्मणों की श्रेणी छोडना नहीं चाहता और न ही किसी अन्य वर्ण को स्वीकार करना चाहता है। संकट वहीं उत्पन्न होता है।

व्यक्ति जन्म तो ब्राह्मण कुल में ले, वृति से वह क्षत्रिय है और कर्म वह चांडाल का करे ऐसे में उसका वर्ण निर्णय कैसे होगा ? सन्यासी का तो कोई वर्ण नहीं होता क्योंकि न तो उसका कोई व्यवसाय है और न उसे किसी के साथ अपनी कोई सम्पत्ति बांटनी है, न उसे किसी समाज या श्रेणी का अंग बनकर रहना है। वर्ण की आवश्यकता वहीं होती है जहां व्यवसाय का प्रश्न आ खडा होता है। जहां इस बात का निर्णय करना है कि उस व्यक्ति की वृत्ति शिक्षा, क्षमता और आचरण उस व्यवसाय के दायित्वों के अनुकूल है या नहीं। वर्ण का निर्णय विकास से असम्भव है। धौम्य मुनि ने स्पष्टीकरण किया था पांडवों को कि जिस व्यक्ति का शरीर मात्र एक उपकरण, यन्त्र की भांति है, वह कुछ सोच समझ नहीं सकता, स्वयं निर्णय नहीं ले पाता, दूसरों का अनुकरण और सेवा ही कर सकता है वह शूद्र है। वही व्यक्ति विकास प्रक्रिया में स्वतन्त्र रूप से उत्पादन व्यवसाय अथवा उद्यम, उद्योग से धर्मपूर्वक धनोपार्जन के योग्य होकर समाज को समृद्ध करने लगता है तो वह वैश्य हो जाता है। अपना और अधिक विकास कर वह समाज के संगठन, रक्षण तथा पालन के समर्थ हो जाता है तो वह क्षत्रिय हो जाता है और वह अपने स्वार्थ तथा भोग की इच्छा छोड ज्ञान के अर्जन, ग्रहण वितरण विकास तथा समाज हित में शास्त्र का चिन्तन, मनन करने लगता है तो वह ब्राह्मण हो जाता है। व्यक्ति स्वयं अपनी वृत्ति और स्वभाव को जानता है तो वह उसके अनुसार अपना कर्म और व्यवसाय चुन सकता है।

कन्या के विवाह के समय उसका परिवार ससुराल में उसके लिये सुख-सुविधा और सम्मान की अपेक्षा आकांक्षा तो करता ही है किन्तु साथ साथ वह यह भी चाहता है कि उसे श्वसुर कुल में अपने मायके के अनुकूल ही जीवन पद्धति और वैचारिक परिवेश मिले ताकि उसे नये जीवन की चुनौती इतनी बडी व कठोर न लगे कि वह उसके लिये कष्टकर हो। कम विकसित व्यक्तित्ववाली कन्या जब अधिक विकसित परिवार में जाती है तो वह अनुलोम विवाह है अत: शास्त्र सम्मत है क्योंकि वहां नारी के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध नहीं होता। किन्तु स्त्री जब किसी ऐसे परिवार में जाती है जहां परिवार उसके व्यक्तित्व की अपेक्षा अल्पविकसित है तथा उस परिवेश में उसके व्यक्तित्व का और अधिक विकास सम्भव नहीं है तो वह प्रतिलोम विवाह है। शास्त्र द्वारा इसका निषेध है। इसमें स्त्री का दमन होता है। दम घुट जाता है। विकास का तात्पर्य है बौद्धिक मानसिक तथा आत्मिक विकास। यह आर्थिक विकास नहीं है और न ही कला का विकास, न शिल्प का विकास इनके समतुल्य है। अधिकांशत: आर्थिक समृद्धि के साथ साथ आत्मिक पतन आता है इसीलिये ब्राह्मण कन्या ब्राह्मण संस्कारों में पली समृद्ध वैश्य परिवार में न तो अपना विकास कर सकती है न ही वह वहां प्रसन्न रह सकती है। इसीलिये वैवाहिक सम्बन्ध समाज, कुल और वर्ण में ही करना चाहिये। निर्णय तो मनुष्य को स्वयं करना पडता है। धर्मशास्त्र तो केवल मार्ग निर्देश करते हैं, मर्यादा निर्धारित करते हैं कन्या से विवाह का निर्णय तभी करना चाहिये जब तुम्हारा वर्तमान ही नहीं वह तुम्हारा अतीत भी स्वीकार कर ले और यह भी देखना चाहिये कि कन्या प्रतिभा और परिश्रम की पारखी है या केवल रूप, यौवन और धन पर ही तो मुग्ध होनेवाली नहीं हैं। यदि कन्या तुम्हारा अतीत जानकर तुमसे विवाह करती है तो वह तुम्हारी प्रतिभा और श्रम का सन्मान करती है। ऐसी स्थिति में

भविष्य में भी वह तुम्हे धन से आसक्त करने का प्रयत्न नहीं करेगी और यदि वह तुम्हारे रूप एवं यौवन पर मुग्ध है और तुम्हे पर्याप्त धनी मानती है तो वह तुम्हारा अतीत जान तुमसे दूर हट जायेगी। जो अतीत मे कंगाल था, यह तो आवश्यक नहीं की वह भविष्य में भी कंगाल हो जायेगा। विकास तो तभी सम्भव है जब धन से अनासक्ति हो और धन विसर्जन हो। आदर्शों पर चलने का प्रयत्न केवल विक्षिप्त लोग ही करते है। समय निष्ठा चरित्र का गुण हैं। समय निश्चित करके न आना, मिथ्या भाषण ही नहीं वचन भंग भी है। यह चरित्र का दूषण है।

गंगाद्वार से चलकर अर्जुन मणिपुर पहुंचे। व्यक्ति चाहे नगर में रहे अथवा वन में, गृहस्थों के साथ रहे अथवा सन्यासियों के साथ वह एक प्रकार से सामाजिक जीवन ही जीता है। बस समाज का रूप बदल जाता है। व्यक्ति उस समाज की सामाजिकता में उलझता जाता है और उसी में अपना विकास चाहता है। बाहर की घटनायें तब भी प्रमुख रहती है जिनमें व्यस्त रह वह अपनी आत्मा की पुकार नहीं सुन पाता। तब भी वह छोटे मोटे सांसारिक प्रश्नों से परेशान रहता है। छोटी मोटी व्यवस्थाओं की व्यस्तताओं में स्वयं को खो देता है। सहस्त्रों तथ्यों की अनुभूति पशु पक्षी नहीं कर सकते जब कि मनुष्य कर सकता है। मनुष्य उनसे श्रेष्ठतर प्राणी है, उनसे अधिक क्षमतावान है परन्तु मनुष्य की क्षमता की भी परिकाष्ठा होती है। यदि वह एक निश्चित दूरी से आगे नहीं देख सकता, वह एक निश्चित दूरी के परे की ध्वनियां नहीं सुन सकता, सृष्टि की अनेक जटिल संरचनाओं को नहीं जान पाता उनका विश्लेषण नहीं कर सकता। संसार में कोमल और दुर्बल लोग आत्मसम्मान और अधिकारों के साथ जीवित नहीं रह पाते। यदि हम स्वयं से अधिक समर्थ और सबल व्यक्ति से प्रतिशोध नहीं ले सकते तो फिर स्वयं से दुर्बल और असहाय प्राणियों की हत्या भी नहीं करनी चाहिये।

मणिपुर के राजा चित्रवाहन बडे ही धर्मात्मा थे। उनके एक सर्वांगसुन्दरी कन्या चित्रांगदा थी। अर्जुन की दृष्टि उस पर पडी। अर्जुन ने जान लिया कि वह यहां की राजकुमारी है तब अर्जुन ने राजा चित्रवाहन के पास जाकर उनकी कन्या चित्रांगदा के लिये याचना की और राजा चित्रवाहन से कहा राजन मैं कुलीन क्षत्रिय हूं। आप मुझे अपनी कन्या प्रदान कर मुझसे उसका विवाह करे। मैं पांडु पुत्र अर्जुन हूं और इन्द्रप्रस्थ के महाराजा धर्मराज युधिष्ठिर का अनुज हूं। तब चित्रवाहन ने कहा वीरवर मेरे पूर्वजों में प्रभंजन नाम के राजा हुये उन्होने सन्तान न होनेपर उग्र तपस्या कर देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न किया। महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हे वर दिया कि तुम्हारे वंश में सबके एक एक सन्तान होगी तब से हमारे वंश में वैसा ही होता आया है। मेरे यही एक कन्या है इसे ही मैं पुत्र मान कर चलता हूं। मेरे राज्य की रक्षा कारभार व्यवहार की यह कन्या ही देखरेख करती है। इसका मैं पुत्रिका धर्म के अनुसार विवाह करूंगा जिससे इसका पहिला पुत्र मेरा दत्तक पुत्र होगा और मेरा वंश प्रवर्तक होगा। अर्जुन ने राजा की यह शर्त मान ली। चित्रांगदा का विधिपूर्वक अर्जुन से विवाह हुआ। पुत्र उत्पन्न होने पर अर्जुन राजा से अनुमति लेकर आगे की तीर्थ यात्रा के लिये चल पडा।

प्रत्येक समस्या का समाधान बल और हिंसा नहीं है। राजनीति हिंसा का नहीं, न्याय और धर्म का पर्याय होनी चाहिये अन्यथा एक आततायी दस्यु और प्रजा में कोई अन्तर ही नहीं रह जायेगा। जब कोई राजा नदी पर सेतु बांधता है तो उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि पुल बांधने से चींटियों के कितने घरौंदे उजड गये। पांडवों में अर्जुन प्रायश्चित यात्रा पर चला गया था और भीम काशी नरेश के यहां बलन्धरा के स्वयंवर में। युधिष्ठिर अकेले ही नकुल और सहदेव के साथ इन्द्रप्रस्थ का शासन कर रहे थे। इन्द्रप्रस्थ में तक्षक ने अपना डेरा खांडव वन में कर रखा था। वहां की प्रजा उससे भयभीत थी। इन्द्र द्वारा तक्षक को संरक्षण प्राप्त था। युधिष्ठिर भी चिंतित रहने लगे। वे नकुल से बोले कुछ ऐसा ही लग रहा है नकुल कि यह संसार बडा विचित्र है। कोई शान्तिपूर्वक रहना चाहे तो लोग उसे रहने नहीं देते। लोग तुम्हारा रक्त बहाने को तैयार रहते हैं। तुम किसी को अपना मित्र मान लो तो वह तुम्हारे ही विरुद्ध षडयन्त्र करने लगता है। मेरी तो कई बार इच्छा होती है कि मैं सब कुछ छोड

छाडकर तपस्या करने के लिये हिमालय क्षेत्र में चला जाऊं। मैंने राजा का दायित्व इसलिये स्वीकार किया कि मैं न्यायपूर्वक अपनी प्रजा का पालन कर सकूं, एक पिता के समान। धर्मपूर्वक शासन मेरा लक्ष्य है किन्तु राजा बने रहने के लिये यदि मुझे विश्वासघात, क्रूरता तथा षडयन्त्रों का सहारा लेना पडा तो मैं अपने धर्म की रक्षा कैसे कर पाऊंगा और मुझे धर्म से अधिक प्रिय कुछ भी नहीं है। यदि यह ऐसा ही रहा इन्द्रप्रस्थ में निरन्तर दस्युओं आदि का भय बना रहा हो मैं राजा तो क्या एक मनुष्य भी नहीं रह पाऊंगा। नकुल ने कहा इसका निर्णय तो आप करें महाराज। आपको दुष्ट दलन तो करना ही होगा। धर्म की सीमाओं का अतिक्रमण न करते हुये आप यह सब कैसे करेंगे। हम सब तो आपकी आज्ञा के अधीन हैं। नकुल और सहदेव की बात सुनकर युधिष्ठिर आत्मलीन होते गये।

बलन्धरा की सुन्दरता और आकर्षण सुनकर भीम काशी नरेश के आयोजित स्वयंवर में चला गया। जहां धन सत्ता सुख-सुविधायें सब कुछ असफल हो जाता है, नारी का रूप वहां भी चमत्कार दिखा जाता है। ईश्वर की माया का साक्षात रूप है नारी। राजकुमारी बलन्धरा कितनी सुन्दर है। नारी का सही परीक्षण तो सन्तान के जन्म के पश्चात ही होता है। पहले तो उसे पति ही प्रिय होता है। पति ही नारी का सुख और हर्ष ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता है। उसके और उसके प्रिय के बीच कोई तीसरा नहीं होता है किन्तु मां बनते ही नारी का दृष्टिकोण बदलने लगता है। सन्तान की इच्छा और प्रसन्नता ही उसके लिये सब कुछ हो जाती है। पुत्र अपने पिता का प्रतिद्वन्दी नहीं होता किन्तु नारी ही उसे प्रतिद्वन्दी बना देती है। नन्हे से असमर्थ, असहाय और पूर्णत: परावलम्बी पुत्र से पिता की क्या प्रतिद्वन्दता ? वह तो स्वयं ही अपना सब कुछ उसको देने के लिये तैयार तत्पर रहता है किन्तु उसके कारण पत्नी द्वारा अपनी उपेक्षा उसे सहन नहीं होती। वह यह भी जानता है कि उस उपेक्षा का कर्ता पुत्र नहीं है किन्तु पत्नी की असन्तुलित बुद्धि के कारण निमित्त तो वह बन ही जाता है। शायद पुरुष की यही असहायता उसे विचलित कर पाती है कि उसकी पत्नी उसकी अपनी प्रिय सन्तान की आड में उसकी उपेक्षा कर रही है। प्रतिस्पर्धी समान हो तो उसका प्रतिकार भी किया जा सकता है। यहां तो प्रतिस्पर्धी उसे बना दिया जाता है जिसका प्रतिकार करते हुये पुरुष को अपने पौरुष पर ही लज्जित होना पडे। भविष्य की आशंकाओं से वर्तमान का सुख कभी नहीं छोडना चाहिये। वर्तमान तो निश्चित है परन्तु भविष्य तो अनिश्चित ही रहता है फिर भी ग्रहण हो या त्याग योजनाबद्ध ढंग से ही करना चाहिये।

पुत्र हो जाने के पश्चात भी जो स्त्री पति का संग निर्वाह करती है वही सती है। जिसे पुत्र पति से अधिक प्रिय हो वह सती नहीं होती। इसलिये नहीं कि वात्सल्य कोई हीन भाव या पाप है। कामभाव को ऋषियों ने देवत्व की संज्ञा प्रदान की है पर पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल शरीर भोग तक ही सीमित नहीं है। पति-पत्नी के रूप में वे धर्मपूर्वक काम तथा अर्थ का भोग करते हुये मोक्ष को प्राप्त करें। जीवन धर्म के लिये होता है। सारा सुख उस धर्म के निर्वाह में ही है। अपने सुख के लिये जीना तो कोई जीना नहीं होता। जो लोग जीवन में सुख खोजते हैं वे कभी सुखी नहीं हो पाते। सुख उन्ही को मिलता है जो धर्म को जानते हैं, धर्म पर चलना चाहते हैं, धर्म के लिये कष्ट सहन करने को तैयार रहते हैं। भीम बलन्धरा को प्राप्त कर लौट आये और सुखपूर्वक रहने लगे।

वीरवर अर्जुन वहां से चलकर समुद्र के किनारे किनारे अगत्स्य तीर्थ, सौभद्र तीर्थ, पौलोम तीर्थ, करान्धमतीर्थ और भरद्वाज तीर्थ गये। उन तीर्थों के आस-पास ऋषि मुनि उनमें स्नान नहीं करते थे। वहां पूछताछ करने पर अर्जुन को ज्ञात हुआ कि वहां के तीर्थों के जल में बडे बडे ग्राह रहते हैं जो ऋषियों को समूचे के समूचे निगल जाते हैं। तपस्वियों के मना करने पर भी अर्जुन ने सौभद्र तीर्थ में जाकर स्नान किया। जब वहां पर मगर ने अर्जुन का पैर पकड लिया तब वे उसे उठाकर ऊपर ले आये। परन्तु उस समय बडी विचित्र घटना हुई कि वह मगर तत्क्षण एक सुन्दरी अप्सरा के रूप में परिणित हो गया। उस अप्सरा ने बतलाया कि वह कुबेर की प्रेयसीवर्गा नाम की अप्सरा है। एक बार वह अपनी चार सखियों सहित कुबेर के पास जा रही थी। रास्ते में एक तपस्वी के तप में उन्होने विघ्न डालना चाहा पर तपस्वी के चित्त में काम का उदय नहीं हुआ। तपस्वी ने क्रोध वश उनको शाप

दे दिया कि तुम पांचो की पांचो मगरी बन सौ वर्षतक पानी में रहकर जियो। देवर्षि नारद ने यह जानकर कि पांडव अर्जुन यहां आकर थोडे दिनों में उन मगरों का उद्धार कर देंगे। तब से वे सब इन तीर्थों में मगर होकर रह रही है। प्रेयसीवर्गा के कहने पर अर्जुन ने उसकी अन्य चार सखियों का भी उद्धार कर दिया। उलूपी के वरदान के कारण अर्जुन को कोई भी जलचरोंसे भय तो था नहीं। इस प्रकार अर्जुन ने उन सब अप्सराओं का उद्धार कर दिया और उनके प्रयत्न से वहां के सब तीर्थ बाधाहीन भी हो गये।

वहां से लौटकर अर्जुन फिर एक बार मणिपुर गये। चित्रांगदा के गर्भ से जो पुत्र हुआ उसका नाम वीर बभ्रुवाहन रखा गया। अर्जुन ने राजा चित्रवाहन से कहा कि आप इस पुत्र को लीजिये जिससे आपकी शर्त पूरी हो जाये। चित्रवाहन राजा ने चित्रांगदा को भी बभ्रुवाहन के पालन पोषण के लिये वहां रहने की आवश्यकता बतलाई। अर्जुन ने उन्हे राजसूय यज्ञ में अपने पिता के साथ इन्द्रप्रस्थ आने का निमन्त्रण दे चित्रांगदा को उस समय वहां आने के लिये कहा। चित्रांगदा से विदा हो अर्जुन फिर तीर्थयात्रा के लिये गोकर्ण क्षेत्र चले गये। दक्षिणी समुद्र के उत्तर तटवर्ती तीर्थों की यात्रा कर अर्जुन पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती तीर्थों की यात्रा करने लगे।

६८) अर्जुन का सुभद्रा हरण

शकुनि और कर्ण, दुर्योधन दुशासन सभी दुर्योधन के कक्ष में द्यूतक्रीडा कर रहे थे। शकुनि बोला ये अर्जुन की यह प्रायश्चित यात्रा मेरी तो बिल्कुल भी समझ में नहीं आ रही। कर्ण बोला क्यों मामाश्री ऐसी भी क्या बात है? शकुनि ने कहा यह प्रायश्चित यात्रा विवाह करने के लिये नहीं होती अंगराज और उसने तो एक विवाह हमारे मित्र मगध नरेश जरासंध के पिछवाडे में ही किया है। पांडव घेरा डाल रहे हैं घेरा। दुर्योधन बोला मामाश्री आपको तो ये पांडव घुन की भांति चाट रहे है। दिनभर उन्ही के नाम का जाप करते रहते हो। शकुनि बोला देखो पुत्र दुर्योधन मूर्खों की भांति सोचे समझे बिना हंसा मत करो। तुम्ही बताओ की अर्जुन का धनुष भला द्रौपदी के कक्ष में क्या कर रहा था ? ये सब पूर्व निर्धारित लगता है। वासुदेव कृष्ण ने कोई लम्बा खेल खेला दिखता है। दुशासन बोला मामाश्री का कहना ठीक ही लग रहा है भ्राताश्री। कर्ण ने कहा मैं तो सदा से ही कहता हूं कि क्षत्रियों को क्षत्रियों जैसी चाल चलनी चाहिये अर्थात सीधे रणभूमि की ओर चलना चाहिये। शकुनि बोला तुम रणभूमि के अतिरिक्त और कुछ भी सोच लिया करो अंगराज कर्ण। रणभूमि तो क्षत्रिय की ससुराल होती है और अपनी ससुराल में पूरी तैयारी करके ही जाना चाहिये। इसलिये इस रणभूमि के रण के लिये पूरी तैयारियां आरम्भ कर दो मेरे पुत्रों। अर्जुन अब भारत के पश्चिमी तट पर पहुंच चुका है अर्थात वो अपनी यात्रा द्वारका में ही समाप्त करेगा। कर्ण बोला तो द्वारिका हमारा क्या बिगाड लेगी मामाश्री? शकुनि बोला नहीं कर्ण नहीं। द्वारिका को अपनी मुट्ठी में रखना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। हमारे एक ओर मणिपुर है तो दूसरी ओर द्वारिका। यदि वसुदेव की पुत्री सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से हो जाये तो समझ लो कि यह उनके विवाह रचाने का मुंह तोड उत्तर होगा। दुशासन बोला विवाह रचाने से। शकुनि ने कहा हां पुत्र हां। विवाह रचाने से। जो घराना अपनी पुत्री देगा वो विरोध में तो नहीं खडा होगा। यह तो तुम देखते हो प्राचीन काल और आधुनिक काल में राजाओं और महाराजाओं के राजभवन रानियों और पट्टरानियों से भरे हुये है। केवल उनकी कामुकता सन्तुष्ट करने के लिये नहीं है। ये विवाह हैं मैत्री व्यूह विवाह। इसमें निकलने का तो कोई मार्ग ही नहीं। दुर्योधन बोला तो फिर मामाश्री मुझे क्या करना चाहिये ? शकुनि बोला तुम्हे भी विवाह करना चाहिये भान्जे दुर्योधन। कर्ण बोला परन्तु किससे मामाश्री। शकुनि बोला वसुदेव की पुत्री सुभद्रा से।

बलराम हस्तिनापुर में दुर्योधन को गदा युद्ध सिखाता है। बलराम ने कहा शिष्य दुर्योधन युद्ध में कभी क्रोधित नहीं होना चाहिये। इससे मनुष्य अपना सन्तुलन खो बैठता है। दुर्योधन बोला क्यों दाऊ कैसी रही ? बलराम बोले प्रिय शिष्य दुर्योधन तुम आज हस्तिनापुर के सर्वश्रेष्ठ गदाधर हो। हम तुमसे प्रसन्न है। जो पुरस्कार मांगना है मांग लो। दुर्योधन बोला तो मैं मांगू दाऊ। बलराम ने कहा हां अनुज दुर्योधन। दुर्योधन बोला तो मैं तुम्हारी बहन सुभद्रा का हाथ मांगता हूं दाऊ। बलराम बोला यदि मेरा हाथ मांगा होता तो मैं तुरन्त दे देता परन्तु सुभद्रा का हाथ तो सुभद्रा के पास है ना और इस विषय में मुझे पिताश्री से

बात करनी पडेगी परन्तु पिताश्री मेरी बात टाल थोडे ही सकते है। इसलिये समझ लो कि सुभद्रा तुम्हारी हो गई।

अर्जुन अपनी प्रायश्चित यात्रा में घूमते घूमते पश्चिमी समुद्र तट प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। श्रीकृष्ण को अर्जुन का आने का समाचार मिला था तो कृष्ण उसी समुद्र तटपर प्रभास में थे। कृष्ण ने अर्जुन को पुकारा। अर्जुन कृष्ण की आवाज सुनकर चौंका। अर्जुन ने पूछा मधुसूदन यहां कैसे और अगले ही क्षण आलिंगन कर कृष्ण की भुजाओं में समा गया। कृष्ण बोले यह प्रभास क्षेत्र हमारा क्षेत्र है। अर्जुन बोला मुझे कुछ कुछ तो अनुमान था कि मैं द्वारिका के निकट हूं पर ठीक से यह नहीं जानता हूं कि कितनी दूर हूं। केशव तुम्हे मेरे यहां आने के बारे में सूचना कहां से प्राप्त हुई ? कृष्ण बोला अपने इस क्षेत्र में आने जानेवाले व्यक्ति की खोज खबर नहीं रखेंगे तो यादव अपना शासन कैसे चलायेंगे अर्जुन ? अर्जुन चकित हो बोला तो क्या यहां हर आने जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सूचना तुम्हे रहती है ? कृष्ण बोले नहीं पार्थ। प्रत्येक व्यक्ति की नहीं है किन्तु यहां की गति विधि की सूचना तो रखनी ही पडती है। तीर्थ स्थलों की शान्ति बनी रहे और वहाँ आनेजाने वाले यात्री कष्ट ना पाये, इसके लिये शासन को सजग तो रहना ही चाहिये। इसलिये जब कोई विशिष्ट व्यक्ति आ जाये तो हमें उसकी सूचना भी मिल जाती है और अभी तो चारों ओर हमारे विरोधी फैले हुये है, उनसे अपनी रक्षा के लिये भी अपनी आंखे खुली रखनी पडती है और अपने तटों पर निरन्तर प्रहरी के समान सजग रहना पडता है। अर्जुन बोले पर मुझे तो यहां कोई प्रहरी दिखाई नहीं देता। यहां प्रहरी है कहां? कृष्ण बोले अर्जुन जो दिखाई पडे वे प्रहरी नहीं होते क्योंकि शत्रुओं और अपराधियों को यह मालूम रहता है कि उन्हे किससे बचना है और किसको अपने प्रभाव से शिथिल करना है, उसे कर्तव्याच्युत करना है। कृष्ण बोले शासन भी ईश्वर के समान सर्वव्यापी और अदृश्य होना चाहिये। जो प्रकट है वह बल है। शासन तो अदृश्य होता है। अकारण बल प्रदर्शन भी नहीं करना चाहिये। कृष्ण ने कहा आओ हमारा सागर तट बहुत विशाल और सुन्दर तट है, चलकर कहीं बैठे।

अर्जुन ने खडे होकर उस सागर की ओर देखा वास्तव में बहुत ही बडा सुन्दर स्थल था। अपनी इस यात्रा में अर्जुन ने सहस्त्रों योजनों तक फैला सागर तट देखा था। अनन्त सागर कहीं बहुत संकीर्ण भी दिखाई दे रहा था, कहीं अत्यन्त उद्दाम तो कहीं बहुत प्रचंड। कहीं कहीं चट्टानों के सम्मुख वह अवश, अक्षम और निरीह भी था। उसका यह असीम सौन्दर्य जल का था और जल सब कहीं था फिर भी उसका कोई रूप मनमोहक था कोई नहीं। लहरे तो सब एक जैसी थी फिर भी जैसे प्रत्येक लहर, दूसरी लहर से भिन्न थी और पर्याप्त नवीनता लिये हुये थी। अर्जुन ने कहा इन्द्रप्रस्थ छोडे मुझे वर्षों हो गये और तुम्हे मेरे इन्द्रप्रस्थ छोडने का कारण ज्ञात है ? कृष्ण ने कहा कारण भी जानता हूं। तुम तो ऐसे पूछ रहे हो अर्जुन जैसे इन्द्रप्रस्थ से हमारा कोई सम्बन्ध सम्पर्क ही न हो। अर्जुन बोले मैंने इन्द्रप्रस्थ छोडकर कुछ अनुचित तो नहीं किया ? कृष्ण बोले यहां प्रश्न उचित अनुचित का नहीं है पार्थ। तुम इन्द्र प्रस्थ से चले आये इसलिये इन्द्रप्रस्थ का विकास नहीं हुआ।

इन्द्रप्रस्थ का विकास जैसे थम गया किन्तु तुमने इतनी लम्बी यात्रा कर इतने नये सम्बन्ध बनाये, नयी-नयी परिस्थितियों से जूझे तो तुम्हारा अपना विकास हुआ। अब इसका समाधान कौनसा गणित करेगा कि लाभप्रद था या हानिप्रद, उचित था या अनुचित ? अर्जुन बोला अपने पारिवारिक सन्तुलन को बनाये रखने को मेरे लिये यह आवश्यक था कि कोई इस प्रकार का विधान बनाया जाये उसी के अनुसार मुझे प्रायश्चित यात्रा पर निकलना पडा। अब यह तो मात्र संयोग ही बना कि मुझे ही एकान्त में बैठे धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदी के दर्शन करने पडे अत: उसका दंड तो मुझे स्वीकार की इन्द्रप्रस्थ छोडना पडा। कृष्ण ने पूछा दंड का विधान क्या था अर्जुन ? अर्जुन बोला दंड के अनुसार मुझे बारह वर्ष इन्द्रप्रस्थ तथा अपने भाइयों से दूर रहना था। किन्तु नीति यह भी थी कि जो इस दंड के अधीन इन्द्रप्रस्थ तथा अपने परिवार से दूर रहकर बनवास करे तथा ब्रह्मचर्य का पालन करे ताकि बाध्य होकर इस वनवास में कुछ साधना व तपस्या कर अपना विकास कर सके। किन्तु परिस्थितियों ने तो मुझे न तो पूर्ण रूप से बनवास करने दिया और न ही ब्रह्मचर्य का पालन हो सका। कृष्ण बोले तुम्हारी सूचना मिलती रहती थी

कि कब तुम कहां हो। यह तो अच्छा है कि तुम उलूपी और चित्रांगदा के महलों में रह आये नहीं तो तुम द्वारका तक यात्रा कर नहीं आते। तुम्हारी प्रगति का कुछ न कुछ अनुमान आभास होता रहा इसीलिये तो मुझे तुम्हारी प्रतीक्षा भी हो रही थी। अर्जुन ने पूछा तो माधव इन्द्रप्रस्थ के समाचार ? कृष्ण ने कहा इन्द्रप्रस्थ में प्राय: सब कुछ ठीक ठाक ही है किन्तु मेरी दृष्टि में उसका विकास अवरुद्ध है। धर्मराज युधिष्ठिर से जो लाभ आर्यावर्त को होना चाहिये था वह अभी तक हो नहीं पाया। उनके चारों ओर विरोधी शक्तियां सक्रिय है और वे उनका दमन नहीं कर रहे हैं। अर्जुन ने कहा क्या दमन करना नहीं चाहते या दमन करने में असमर्थ हैं। कृष्ण बोले सामर्थ्य शारीरिक भी होती है और मानसिक भी। इस समय इन्द्रप्रस्थ में दोनों का ही अभाव है। कुछ शत्रु तो ऐसे हैं जिनका दमन करने के साधन पांडवों के पास नहीं है और कुछ शत्रु भी ऐसे हैं जिनके दमन में समर्थ होते हुये भी धर्मराज युधिष्ठिर अपनी वृति की कोमलता के कारण कुछ करते नहीं है। राजा को क्रूर नहीं होना चाहिये। दया मानवता के उच्चतम आदर्शों में से एक है परन्तु दया और आत्मघात में अन्तर है। शत्रुओं और अत्याचारियों के दमन के लिये कठोर तो होना ही पडेगा। यदि वह अपनी ही रक्षा नहीं करेगा तो प्रजा की रक्षा कैसे होगी ?

अर्जुन बोला ठीक कहते हैं आप माधव परन्तु धर्मराज की प्रकृति प्रवृति तो नहीं बदली जा सकती। कृष्ण बोले प्रकृति तो किसी की भी नहीं बदली जा सकती पार्थ। प्रकृति को बदलने की आवश्यकता भी क्या है ? मात्र नीति बदलनी है। अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिये कठोरता धारण करनी है। इससे न तो कोई अपने सिद्धान्तों से पतित होता है और न ही मानवता शून्य। धर्म परायण होने का अर्थ मूर्ख होना तो नहीं है। हमें अपने भ्रमों से मुक्त होना है, न्याय अन्याय के बोध से नहीं। हमें अपना अहंकार और मोह त्यागना है। अब चलो उठो द्वारका चलें। तुम भी तो यादवों की राजधानी देखो। अर्जुन तपस्वी, ब्राह्मण के वेश में यात्रा कर रहा था। कृष्ण बोले पहिले हम रैवत पर्वत पर चलेंगे तब द्वारिका चलेंगे रैवतक यादवों की राजधानी का एक ही अंग था। यह पर्वत यादवों के दैनिक जीवन का अंग न होकर उनके जीवन का समारोह था। यह पर्वत उनके अपने उत्सवों के लिये सजा रखा था। कोई सामाजिक उत्सव हो, कोई धार्मिक समारोह हो उसके लिये द्वारका के लोग यहां आते। इस पर्वत की सबसे ऊंची चोटी पर महादेव का एक विशाल मन्दिर है और उसके आसपास अत्यन्त मनोरम उद्यान। पर्वत के चारों तरफ परिक्रमा मार्ग। परिक्रमा का यह मार्ग लौकिक और आलौकिक सुखों की सीमा रेखा थी। लौकिक सुख, समारोह, आयोजन, भोग और वैभव प्रदर्शन ये सब उस पथ के नीचे ही रह जाते हैं। ऊपर के क्षेत्र में केवल धार्मिक आयोजन होते थे। नीचे ही वैभवशाली यादवों के अपने प्रासाद थे जिनका उपयोग एकान्तवास के लिये, उत्सवों और विहार के लिये होता था। सार्वजनिक उत्सवों, मेलों और समाजों, सभाओं के लिये विस्तृत क्रीडा भूमि और विलास भवनों का निर्माण किया हुआ था। रैवतक क्षेत्र में कृष्ण का भी अपना पृथक से भवन था। अर्जुन का व्यवहार अत्यन्त सहज और सामान्य था। कृष्ण अपने इस अतिथि भवन में अर्जुन के साथ आये। द्वारका से बाहर कृष्ण का यह गुप्त स्थान था। गुप्तचर उनसे यहीं भेट करते थे। अपनी दार्शनिक विषयों की चर्चा के लिये विद्वानों, ऋषि मुनियों, चिन्तकों, बुद्धिजीवियों तथा साधकों के लिये भी कृष्ण का यही स्थान उचित था यह उपयुक्त स्थान नगर से दूर, पर्वत के उपर, सामने सागर का दृश्य और सागर का गर्जन सुनाई पडे। द्वारिका का सारा वैभव, विलास, सुख और उन्माद यही एकत्रित था। अर्जुन ने कहा यमुना के सरिता तटपर कौरवों ने भी क्रीडा स्थल बनाये है क्योंकि उनके पास सागर तट नहीं है। किन्तु दुर्भाग्य हमारा कि उन क्रीडा स्थलों को हमारे लिये मृत्यु स्थलों में परिवर्तित कर दिया।

कृष्ण बोले पार्थ वे तुम्हारे क्रीडास्थल थे ही नहीं वे तो दुर्योधन की दुष्टता के क्रीडास्थल है। दुष्टों की क्रीडा भी दुष्टतापूर्ण होती है। सज्जन पुरुष की क्रीडा जीवन को प्रोत्साहित तथा जिजिविषा में वृद्धि करने में है और दुर्योधन की क्रीडा मृत्यु का तांडव करने में होती है। प्रकृति तो है ही क्रीडामयी और ये दोनों उसी के स्वरूप हैं। अभी तक न तो पूर्ण रूप से पांडवों का राज्य ही स्थापित हुआ है और न इन्द्रप्रस्थ का निर्माण पुरा हुआ है। तुम अब खांडव वन से कुछ और भूमि प्राप्त कर यमुना तट पर अपने

और अपनी प्रजा के लिये एक सुन्दर और विस्तृत क्रीडा स्थल का निर्माण करना।

कृष्ण अर्जुन को लेकर द्वारिका में आये। द्वारका अर्जुन के लिये सुसज्जित करी गई थी। द्वारिका में यह समाचार पर्याप्त प्रचार पा चुका था कि पांचाल की राजधानी काम्पिल्य में धनुर्विद्या की कठोर प्रतिज्ञा को पूर्ण कर महाराज द्रुपद की पुत्री पांचाली कृष्णा को जय करनेवाला संसार का प्रसिद्ध धनुर्धारी वासुदेव की बहिन का कुन्ती पुत्र अर्जुन द्वारका आ रहा है। उसके स्वागत में नगर सजाया गया। स्थान-स्थान पर तोरण और बन्दनवार लगाये गये। प्राय: सारे मार्ग में रंग बिरंगे ध्वज लहरा रहे थे। मार्ग के दोनों ओर नर नारी स्वागत के लिये खडे थे। भवनों की अटारियां भी लोगों से अर्जुन को देखने आकंठ भरी हुई थी। अर्जुन को यह सब देखकर आश्चर्य हो रहा था। सारे नगर के लोग उसके स्वागत के लिये इतने उत्सुक क्यों है ? यह कृष्ण का स्वागत है या अर्जुन का ? नहीं यह तो सारा कृष्ण का ही प्रेम है अपने सखा के लिये जिसने यह रूप धारण कर लिया। कृष्ण तो चमत्कारी पुरुष है। उसके कहने मात्र से ही नगर सज सकते हैं। उसकी इच्छा जानकर राज्य पलट सकते है, राजवंश मिट सकते हैं, सिंहासन बदल जाते हैं। अर्जुन ने मन में सोचा उसे तो कृष्ण का कृतज्ञ होना चाहिये। रथ चलता हुआ आया और सीधा कृष्ण भवन में आकर रुका। रूक्मिणि, सत्यभामा, जाम्बवती आदि सभी रानियों ने अर्जुन का स्वागत किया और सत्कार पूर्वक भवन के भीतर ले गई। कृष्ण की पत्नियों से अर्जुन की यह पहिली भेंट ही थी।

रुक्मिणि ने मुस्कुराकर कहा आप पांचाली कृष्णा को अपने साथ नहीं ला सकते थे तो उलूपी या चित्रांगदा को ही साथ ले आते पार्थ। आप एक ऐसे सुदर्शन युवा ब्रह्मचारियों के समान अकेले द्वारिका में आये तो द्वारका के नर नारी किसके दर्शन करेंगे? कृष्ण बोल उठे ऐसा मत परिहास करो वैदर्भी। बेचारा पहली बार तो तुम से मिला है। कही संकोच के मारे कुछ खा पी भी नहीं रहा तो तुम्हारे वे बनाये सारे व्यंजन कहीं निरर्थक न जाये। अर्जुन कुछ कहता उसके पहिले ही सत्यभामा बीच में बोल उठी यह तो कोई वीर पुरुषों की रीति नहीं है कि अपने साथ सुन्दरी पत्नी लाओ और नगर के पुरुषों की दृष्टि को परितृप्त करो। वीर पुरुष तो एकाकी ही आते हैं और नगर की सुन्दरियों को अवसर देते है कि वे अपना भाग्य परीक्षण कर लें। आपने ध्यान नहीं दिया दीदी ये तो जिस नगर में जाते है वहीं से अपने लिये एक पत्नी प्राप्त कर लेते हैं। यदि ये अपने साथ उलूपी और चित्रांगदा को साथ ले आते तो फिर द्वारका को वह सौभाग्य कहां मिलता जो गंगाद्वार और मणिपुर को मिला ? यहां तो लगता है कि पार्थ का ही स्वयंवर होगा। उन्हे प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील सुन्दरियां स्वयं ही आकर्षित होकर परस्पर निर्णय करेगी। अर्जुन बोला क्षमा करें देवी, मैं कोई अपने लिये पत्नियां बटोरने के लिये नहीं निकला हूं जिसका स्वयंवर रचाकर आप सुन्दरियों का परस्पर युद्ध करना देखना चाहती है मैं तो वचन भंग के अपराध में राज्य निष्कासित दंडित मनुष्य हूं। मैं तो यहां कृष्ण के मोह से नगर में चला आया और आप सब मेरा मजाक कर मेरे लिये स्वयंवर रचाने की बात कह रहे हैं। सत्यभामा बोली इसमें चिंतित व नाराज होने की क्या बात है ? तुम्हे कुछ नहीं करना है। हमें तो तुम्हारी प्रदर्शनी लगानी है फिर देखना कि द्वारिका की सुन्दरियां अपने आप आकर तुम्हारा वरण कर लेगी। कृष्ण ने कहा बेचारे अर्जुन की इतनी खिल्ली मत करो यह संकोचवश कुछ कह नहीं पाता। इस तरह सब परस्पर हास परिहास कर द्वारिका में आनन्द से रहे। शाम ढल गयी थी। रात में गन्धर्वों का एक दल आया जो गाना बजाना व नृत्य कर रहा था।

सामने से एक रथ असाधारण वेग से आ रहा था। अर्जुन का ध्यान शायद उसकी ओर न जाता परन्तु उसका वेग इतना अनियंत्रित और असावधान था। अर्जुन ने देखा उस रथ का सारथ्य एक तरुण कन्या कर रही थी। यद्यपि क्षत्रियों में सामान्यत: स्त्रियां भी पुरुषों के ही समान स्वावलम्बी थी परन्तु युद्ध या सारथ्य जैसे विषयों में उनकी रुचि नहीं देखी गई। इतनी कुशल प्रशिक्षण सारथी थी। इतना तो क्षत्रियों में भी कोई दक्ष योद्धा भी कुशल सारथी नहीं होता किन्तु यह तरुणी तो सचमुच अद्भुत थी। उसका सारथ्य कौशल ही नहीं उसका रूप भी आकर्षक था। उसका तेज अधिक मनोरम था। उसका नैसर्गिक रूप ही इतना

मोहक था कि वनवासी अर्जुन का मन भी नियन्त्रण में नहीं रहा।

अर्जुन श्रीकृष्ण से बोला केशव मेरे भीतर दो विरोधी विचार धारायें निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। जब मैं किसी देवालय या तीर्थ स्थल, वन में जाता हूं वहां पहुंचने पर मेरा मन आरोहण की स्थिति में आ जाता है। जीवन के ये छोटे मोटे साधारण सुख और भोग अत्यन्त तुच्छ, नगण्य लगते है और मन में कहीं उनका लेशमात्र भी नहीं होता। मन व्याकुल होने लगा है कि किसी प्रकार संसार के इन सारे प्रपंचों को तोडकर मैं उस सत्य के दर्शन करूं जो शाश्वत है, सृष्टि का आधार है, जो मूल अस्तित्व है, जो सत् चित् और आनन्द है। उस समय सारी कामनायें, सारी वासनायें, सारे सुख और भोग, सारी की सारी सांसारिक उपलब्धियां मलिन दीखने लगती है। उनसे वितृष्णा होने लगती है। मन उन्हे त्यागने को आतुर होने लगता है। उस त्याग में कितना सुख मिलता है केशव। और कभी सहसा मैं बदल जाता हूं। मेरा मन बदल जाता है मन में कामनायें उठने लगती है। भोग और सुख आकर्षक लगने लगते है न उनमें मुझे कोई दोष दिखाई देता है और न उन्हे ग्रहण करने की आतुरता बुरी लगती है। लगता है ईश्वर ने यह सृष्टि सुख भोग त्यागने के लिये तो नहीं की। कामनाओं का प्रवाह कुछ इतना वेगवान हो जाता है कि मैं थम नहीं पाता हूं और उनके साथ बहने लगता हूं। कृष्ण बोले योगी न तो वे होते हैं अर्जुन जो बहुत खाते हैं और न वे जो बहुत कम खाते है। अर्जुन बोले मेरी समस्या खाने पीने की नहीं है। कृष्ण मुस्कुराये और बोले मैं जानता हूं पार्थ तुम्हारी समस्या भोग और त्याग की है। इसीलिये तो मैं भोग को बहुत अधिक खाना और त्याग को बहुत कम खाना कह रहा हूं। व्यक्ति को सहज होकर जीना चाहिये। स्वयं को तपाना और व्यर्थ कष्ट देना निरर्थक होता है जैसे तुम्हारे साथ हो रहा है। तुमने अपनी इन्द्रियों का दमन किया और विषयों से उनको दूर रखा। उन्हे अतृप्त रखा। कोई कारणों से वह संयम ढीला पडा कि वे इन्द्रियां दुगुने वेग से प्रहार करेगी। इसीलिये सहज रूप से जीवन यापन करो। न इन्द्रियों का दमन करो, न विषयों को छोडकर वन में भटको। संसार के बीच रहो।

अर्जुन बोला हे मधुसूदन यह तो भोग का दर्शन है। भोग से तृष्णा की अग्नि और अधिक प्रज्ज्वलित होती है। तृष्णा मनुष्य को अधर्म की ओर प्रेरित करती है फिर न तो संयम रहेगा, न नियन्त्रण और न अनुशासन ही। कृष्ण बोले न तो मैं तुम्हे इन्द्रियों को तृप्त करने को कह रहा हूं और न ही उन्हे अतृप्त रखने को। भोग से मुक्ति पाने को बहुत व्यग्र हो फाल्गुनी तो फिर मन को अनासक्त करो। तुम्हें न तो विषयों को जीतना है और न ही उनका दमन करना है। परिस्थिति वश जो भी सामने आ जाये उसे स्वीकार करना है। जीतना है तो अपनी आसक्ति को अपने द्वन्द को। स्थितप्रज्ञबनों हर परिस्थिति में समान रहना है। अनासक्त होकर विषयों के बीच रहो वे तुम्हे तनिक भी बांध नहीं पायेंगे। अर्जुन विचार कर रहा है कि ठीक ही कह रहे हैं कृष्ण। काम नारी में नहीं है स्वयं के मन में होता है। अपने मन के इस काम को जय किये बिना वह चाहे वन पर्वतों पर चाहे जितना भटक ले उससे कोई लाभ नहीं, वह कभी भी भटक सकता है। एक बार काम से अनासक्त हो जाये तो इन्द्रलोक की अप्सरायें भी उसे विचलित नहीं कर सकती। कृष्ण बोले सहज होकर जीओ और व्यक्ति सहज होता है केवल अपनी स्वाभाविक स्थिति में ही इसलिये अपने स्वभाव को अनुकूल बनाओ, अपनी प्रकृति को जानो। तुम्हारा अपना स्वभाव ही तुम्हारा स्वधर्म है पार्थ उसे पहचानो। तुम क्षत्रिय हो वंशानुक्रम से, प्रशिक्षण और कर्म से नहीं। तुम तपस्वी भाव के अनुकरण से क्षत्रिय भाव को त्यागने का प्रयत्न करोगे तो सफल नहीं हो पावोगे। क्षत्रिय होकर भोग भोगना और अपने स्वधर्म में युद्ध क्षेत्र में प्राण त्यागना ही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर होगा। भिक्षा मांग कर जीवनयापन करना अथवा सन्यासी होकर एकान्तवास करना नहीं। प्रयत्न करोगे तो भी असफल रहोगे। मुनि विश्वामित्र को ही देख लो वे क्षत्रिय थे उन्होने भोगों को त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया और अप्सरा मेनका ने उन्हे लुभाकर विषयों के जाल में उलझाकर उनकी तपस्या से विचलित कर दिया। इसलिये हे पार्थ तुम्हे अपना स्वधर्म परिवर्तित नहीं करना है, उसका त्याग भी नहीं करना है। तुम्हे तो उसका और अधिकाधिक विकास करना है, परिष्कार करना है। तुम्हे अपने स्वार्थ में आसक्त होकर उसका दमन और अपहरण नहीं करना है। तुम्हे तो अनासक्त रहकर अपने शस्त्र कौशल से आर्त दीन

दुखियों का त्राण करना है। समाज को अनुशासित करना है। धर्म राज्य की स्थापना करनी है।

अर्जुन बोले कृष्ण तुम तो मुझे योगी बनने के लिये कह रहे हो क्या संसार का त्याग किये बिना कोई योगी हो सकता है। कृष्ण बोले कोई भी विषय तन से मत त्यागो, मन से त्यागो। विषयों के बीच रहकर भी उनके होकर मत रहो। कृष्ण की वाणी में कैसा संगीत गूंज रहा था। कर्म करते हुये भी उसमें लिप्त न होना योग कहलाता है। लेखनी से तो लिखो किन्तु दवात और स्याही से तुम्हारे हाथ काले न हो। कर्म कौशल ही तो योग है। विषयों से दूर रहने के लिये संसार का त्याग करोगे और सन्यास ग्रहण करोगे तो कर्म से भी भाग रहे हो। ऐसे में तुम विषयों का त्याग नहीं कर्म का त्याग कर रहे हो। किसी भी नाम से किया जाये कर्म का त्याग अनिष्टकारी होता है। अकर्म में प्रीति नहीं होनी चाहिये अर्जुन। वह तुम्हे तमोगुण के अन्धकार में फंसा देगा। कर्म तो करना ही पडता है इसके सिवा कोई छुटकारा नहीं। कर्म किये बिना मनुष्य जीवित भी नहीं रह सकता। कर्म के अभाव में सृष्टि का अस्तित्व भी नहीं होगा। अर्जुन बोले कर्म करेंगे तो कर्म बन्धन भी तो हमें ही बान्धेगा माधव। हमने इन्द्रप्रस्थ का निर्माण किया तो उसकी रक्षा भी हमें करनी ही पडेगी, उसका पालन पोषण भी करना होगा। फिर तो हम बन्ध गये उसी नगर से। कृष्ण ने कहा पार्थ बन्धन कर्म का नहीं होता उसकी आसक्ति का होता है। तुम्हे इन्द्रप्रस्थ में आसक्ति होती तो उसे छोड बारह वर्षों के लिये भटकने नहीं निकलते। तुम्हे किये हुये कर्म फल में आसक्ति होती तो ब्राह्मण के गोधन की रक्षा कर तुम उससे अपने शुल्क के रूप में पशु या कर वसूल कर रहे होते और वही कहीं गोओं का पालन-पोषण कर रहे होते। यदि कर्मफल में आसक्ति न हो तो कर्म तुम्हारा बन्धन नहीं हो सकता। मैंने कंस का वध किया, यादवों को मुक्त किया और यादवों ने द्वारिका का निर्माण किया किन्तु न तो हमें द्वारका बांध सकी और न ही द्वारका का राजसिंहासन। वह अनासक्त कर्म था। निष्काम कर्म बन्धन नहीं होता। वह घोर कर्म के बीच भी अकर्म की स्थिति उत्पन्न करता है। कृष्ण तो अर्जुन के समवयस्क सखा है परन्तु उसे लगा वे उससे कहीं अधिक बडे है। उन्होने तो जैसे जीवन के सत्य का साक्षात्कार कर लिया है। अर्जुन का कृष्ण के प्रति उसका स्नेह जैसे स्नेह न रहकर श्रद्धा में परिणित हो रहा है। कृष्ण उसके सखा ही नहीं गुरु थे, पथ प्रदर्शक। अर्जुन को बस ऐसे ही गुरु की आवश्यकता थी जो उसे शास्त्र वचन उद्धृत न कर उन सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारकर के दिखाये। अर्जुन को अमूर्त धर्म वाक्यों से क्या लेना उसे तो ऐसा मार्गदर्शक चाहिये जो समस्याओं में से उसका हाथ पकडकर उसे निकाल ले जाये। जिसके हाथ का सहारा साक्षात उपलब्ध हो, जिसकी शरण में अर्जुन को किसी वृक्ष की सी छाया का अनुभव हो। अर्जुन बोला क्या इस संसार में रहकर अनासक्ति सम्भव है ? कृष्ण ने उत्तर दिया क्यों नहीं ? मिट्टी का साधारण सा खिलौना टूट जाने पर एक छोटा बालक गला फाड फाड कर रोता है पर क्या तुमने कोई वयस्क को खिलौना टूट जाने पर रोते देखा है ? वह इसलिये नहीं रोता कि उसका परिपक्व और प्रौढ मन अपने चिन्तन, मनन, ज्ञान तथा अनुभव से यह मान चुका है कि मिट्टी का खिलौना इतना कीमती नहीं है कि उसके लिये रोया जाये।

रात को भी सोते समय उस तरुणी का बिम्ब आंखों के सामने आ खडा हुआ जो उस शाम रथ संचालन कर घोडी की वल्गा थामे हुये थी। अर्जुन का मन नियन्त्रण में नहीं था। कृष्ण ने सायास पूछ ही लिया क्या अर्जुन नींद नहीं आ रही है ? अर्जुन बोला नहीं ऐसी कोई बात नहीं ? मन में जिज्ञासा उठी कि प्रात: जिस तरुणी को रथ का सारथ्य करते देखा वह कौन थी? कृष्ण बोले क्या तुम उसे नहीं जानते ? वह मेरे पिता वसुदेव की लाडली पुत्री और मेरी चाहेती बहिन, सारण की सहोदरा सुभद्रा है। अर्जुन ने देखा तो यह है सुभद्रा परम स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर। स्वयं निर्णय करनेवाली। अर्जुन ने कृष्ण से ही सुना था कि सुभद्रा ने अश्वारोहण में दक्षता प्राप्त कर ली है। खड्ग चलाना जानती है। धनुष बाण उसके प्रिय सहचर हैं। सारथ्य कर्म उसने स्वयं कृष्ण से ही सीखा। तो यह थी सुभद्रा वह अर्जुन के मन को भा गई।

आजकल कृष्ण के परिवार में सुभद्रा के विवाह की बडी ही चर्चा थी। वसुदेव चाहते थे कि अब सुभद्रा सयानी हो गई है उसका विवाह हो जाये। उसकी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हो चुकी थी और विवाह के लिये वह उपयुक्त आयु भी प्राप्त कर चुकी थी।

माता रोहिणी और देवकी भी यही चाहती थी कि सुभद्रा अब अपने ससुराल जाये। बलराम भी उसके लिये चिंतित थे। चारों ओर से उसके लिये रिश्ते-सम्बन्ध आ रहे थे और स्थिति जटिल होती जा रही थी। किसी भी महत्वपूर्ण विषय में निर्णय लेना बडा कठिन और समयापेक्षी होता है। यदि विधाता ही किसी बात का निर्णय कर दे, मनुष्य के लिये कोई विकल्प ही न रखे तो मनुष्य चाहे शिकायत करता रहे कि उसे निर्णय करने का अवसर ही नहीं मिला किन्तु निर्णय तत्काल होता है। जब स्थिति यह हो कि चुनाव के सारे रास्ते खुले हों और प्रत्येक विकल्प सुन्दर और आकर्षक हो साथ ही निर्णय करने का अधिकार अनेक लोगों को हो तो निर्णय करना कठिन होता जाता है। फिर सुभद्रा स्वयं भी तो अपने वर का चयन कर सकती है। सुभद्रा परिवार में सबसे छोटी है। इसलिये माता-पिता के अतिरिक्त भाई बलराम और कृष्ण भी उसके अभिभावक ही हैं और वे सब लोग विभिन्न प्रत्याशियों के विषय में अपनी अपनी स्वतन्त्र धारणायें बनाये हुये हैं। इस संदर्भ में सुभद्रा को किसी का भी निर्णय स्वीकार नहीं है। वह अपना निर्णय स्वयं करेगी।

दूसरे दिन प्रात: सुभद्रा वर्षा की फुहारों में उद्यान में सखियों संग उन्मत्त हो झूला झूल रही थी खेल रही थी। आनन्द लेकर नृत्य कर रही थी, गा रही थी, उल्लसित हो रही थी। अर्जुन तपस्वी ब्राह्मण के वेश में उस उद्यान में आया और उसे इस भांति देख रहा था। दोनों की नजरे आपस में टकराती है। अर्जुन को देखकर सुभद्रा ने पूछा कौन हैं आप ? अर्जुन ने कहा यात्री हूं। सुभद्रा ने कहा कहां की यात्रा की ? अर्जुन बोला सारे भारत वर्षा की यात्रा करके आज यहां पहुंचा हूं। सुभद्रा बोली इतनी लम्बी यात्रा में आपने कभी अर्जुन को देखा ? अर्जुन बोला कौन अर्जुन ? सुभद्रा बोली कैसे यात्री हो ब्राह्मण ? जो अर्जुन को नहीं जानते ? द्रोण शिष्य अर्जुन की बात कह रही हूं। अर्जुन बोला अच्छा अच्छा तुम कुन्ती पुत्र अर्जुन की बात कह रही हो राजकुमारी। उन्हे तो अवश्य देखा है और बहुत निकट से देखा है। सुभद्रा बोली देखने में कैसे हैं ? क्योंकि सुभद्रा मन ही मन अर्जुन की यश कीर्ति सुनकर उसे चाहने लगी थी। अर्जुन बोला कोई विशेष गुण तो दिखाई नहीं दिये। सुभद्रा बोली क्या कहा तुमने ? द्रोण शिष्य, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर पांडु पुत्र अर्जुन में तुम्हे कोई विशेषता दिखाई नहीं दी ? यदि तुम ब्राह्मण नहीं होते तो महादेव की सौगन्ध यह कहने पर मैं तुम्हारी जीभ काट लेती।

उसी समय कृष्ण वहां सायास पहुंच गये और बोले अरे सुभद्रा इस परदेसी ब्राह्मण पर इतना क्रोध किसलिये कर रही हो। सुभद्रा बोली ये ब्राह्मण क्रोध दिलानेवाली बात ही कर रहा है। कह रहा है कि पांडु पुत्र अर्जुन में कोई विशेष गुण दिखाई नहीं दिया। कृष्ण बोले यह तो इसकी आंखों का दोष हुआ ना। उसकी आंखों के दोष का दंड यह बेचारा क्यों भुगते ? कहीं ऐसा तो नहीं सुभद्रा कि तुम अर्जुन से इतनी प्रभावित हो चुकी हो कि उसे देखे बिना ही तुम्हें उससे अनुराग हो गया हो। सुभद्रा बोली भ्राताश्री ऐसे कहियेगा तो मेरी आपसे नहीं बनेगी। आपसे बात भी नहीं करूंगी। कृष्ण बोले देखा ब्राह्मण तुम्हारे कारण मेरी बहिन मुझसे रूठ गई। अरे तुमने इस वैरागी से पूछा ही क्यों ? अर्जुन के विषय में जो भी पूछना हो मुझसे पूछो। यह ब्राह्मण तुम्हें क्या बतायेगा अर्जुन के विषय में ? सुनो वह लम्बे कदवाला, चम्पई रंग, आंखे ऐसी जो सबको देखे और सब केवल उसे ही देखते रह जावे। कन्धे पर धनुष तो ऐसे सजता है सुभद्रा बोली आप तो कविता पाठ करने लगे भाईश्री। कृष्ण बोले काव्य की परिभाषा ही है सुभद्रा। तुम्हे जो सुने कह उठे की यही सत्य है और जो तुम्हे मुझपर विश्वास न हो तो खुद ही देखकर बताओ। सुभद्रा बोली वो यहां है कहां जो बताऊं। कृष्ण बोले चलो मैं अभी तुम्हारा परिचय करवाता हूं अर्जुन से। सुभद्रा बोली परिचय करवाइयेगा। कृष्ण बोला कल करे सो आज कर और आज करे सो अब। यह है सुभद्रा मेरी चहेती बहिन पार्थ। सुभद्रा वहां देख सुनकर शरमा कर वहां से भाग गई।

कृष्ण अर्जुन से बोले तो क्या मैं तुम्हारे और सुभद्रा के बारे में पिताश्री से बातचीत करूं ? अर्जुन बोले हां पर सुभद्रा की अनुमति के बिना नहीं। कृष्ण बोला तो चलो राजभवन चलो। सुभद्रा बाग में भ्रमण कर रही होती है। अर्जुन वहां उसे मिला। अर्जुन बोला यदि स्वीकार हो तो प्रणाम करने का साहस करूं। सुभद्रा बोली नहीं मैं आपका प्रणाम स्वीकार नहीं करती। अर्जुन

बोला मेरा अपराध तो बताया नहीं कि उसके लिये मुझे इतना बडा दंड दिया जा रहा है। सुभद्रा बोली तुमने यह क्यों नहीं कहा कि तुम अर्जुन हो। अर्जुन बोला यह तो तुमने पूछा ही नहीं। तुमने तो बस पूछा था कि क्या तुमने अर्जुन को देखा है ? और मैंने कह दिया कि हां देखा है। सुभद्रा बोली पर यह नहीं कहा था कि उसमें कोई विशेष गुण नहीं है। अर्जुन बोला हां। मेरे विचार में तो नहीं। यदि हो तो बताओ। यह तो बताया नहीं और सीधे कटार निकाल ली सुभद्रा और अर्जुन में चुहल बाजी होने लगी और प्रेम अभिनय शुरू हुआ कि इतने में ही कृष्ण उद्यान में आ गया। कृष्ण बोला यह मेरी चहेती बहन कहां भाग रही है? समझ गया तुम्हारे भागने का अर्थ। यदि कोई कन्या बीर बहुटी सी भाग रही हो तो इसका एक ही अर्थ होता है कि उसके भागने के विषय में पिताश्री से बात करनी चाहिये। तुम बोलो तो मैं अभी पिताश्री की ओर लपक जाऊं। सुभद्रा बोली भैया और शरमा कर वहां से भाग गई। यह अर्जुन के साथ विवाह करने की सुभद्रा की सम्मति थी। स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरता की जितनी शिक्षा सुभद्रा को दी गई है स्वावलम्बन वह इतना जानती है उसके अपने निर्णय है।

वसुदेव और देवकी अपने कक्ष में बैठे हुये बातचीत कर रहे हैं। देवकी बोली कृष्ण के स्नेह में आप अपने दूसरे दायित्व भी भूल गये क्या ? वसुदेव बोले तुम मुझपर यह आरोप तो नहीं लगा रही हो ना कि मैं तुम्हे भूल गया हूं। क्योंकि भूलने और याद करने की सीमायें तो तुम कब की पार कर चुकी हो ? तो फिर अपनी सांसों को कोई कैसे भूल सकता है ? और कैसे याद रख सकता है ? देवकी बोली बस बस कविता पाठ की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम दोनों ही अपने जीवनयात्रा में कविता पाठ के मोड को पार कर चुके हैं। मैं अपनी बात नहीं कह रही। वसुदेव बोले तो फिर तुम किसकी बात कर रही हो ? मैंने अपना कौनसा दायित्व नहीं निभाया ? देवकी बोली आपने सुभद्रा के विषय में कुछ सोचा ? वासुदेव बोले क्या हुआ सुभद्रा को ? देवकी बोली वो अब सयानी हो गई है। वसुदेव बोले हर माता में यहीं तो दोष होता है कि जब भी वह अपनी पुत्री की ओर देखती है वो उसे सयानी ही दीखती है। देवकी बोली और पिताओं में सबसे बडा दोष यही होता है कि उन्हे अपनी पुत्री बच्ची ही दिखाई देती है। वसुदेव बोले किन्तु सुभद्रा तो अभी बच्ची ही है। देवकी बोली न तुम्हारी किन्तु न परन्तु। कल स्वयं अपनी आंखों से मैंने देखा है कि वो दर्पण के सामने बैठी मुस्कुरा रही थी और यदि कन्या दर्पण देखकर मुस्कुराने लगे तो उस मुस्कान को वर्षा ऋतु की पहली सौदामिनी समझना चाहिये। वसुदेव बोले देवकी सुभद्रा कोई साधारण कन्या नहीं है वो तो। देवकी बोली पुरुषों में दूसरा दोष यह भी होता है कि उन्हे अपनी कन्या कभी साधारण दिखाई नहीं देती। चलो मान लिया की वो विशेष कन्या है तो क्या भारतवर्ष में विशेष युवकों का अभाव है ? और तनिक मुझे भी तो उसकी विशेषतायें बताये। वसुदेव बोले सबसे बडी विशेषता तो उसकी यह है कि वो कृष्ण की चहेती बहन है।

इतने में कक्ष में बलराम ने प्रवेश किया और माता पिता को प्रणाम किया और उनसे आयुष्मान होने का आशीर्वाद प्राप्त किया। वसुदेव बोले बैठो पुत्र। हस्तिनापुर से कब आना हुआ ? बलराम बोले अभी चला आ रहा हूं पिताश्री। आप दोनों के चरण स्पर्श करने के लिये व्याकुल था और एक विशेष बात भी करनी थी। वसुदेव बोले क्या इतनी विशेष थी पुत्र कि यात्रा के तनिक विश्राम के लिये भी नहीं रूक सकते थे। बलराम बोले यदि रूक सकता तो मैं स्नान और विश्राम कर के ही आपके पास आता। वसुदेव बोले तो कहो क्या बात है? देवकी बोली नहीं पहिले ये बताओ तुम्हारी बुआ कैसी है ? बलराम बोला बुआ तो स्वस्थ है माताश्री। युधिष्ठिर के नाम का डंका बज रहा है। वसुदेव बोले यह सब बातें तो तुम अर्जुन से पूछ चुकी हो। बलराम बोले क्या अर्जुन वो यहां है? देवकी बोली हां। वो कृष्ण के भवन में ठहरा हुआ है। बलराम बोले कृष्ण ने तो उसका कोई प्रस्ताव तो नहीं रखा ? वसुदेव बोले प्रस्ताव कैसा प्रस्ताव। बलराम बोले तब तो ठीक है देवकी ने कहा क्या ठीक है। बलराम बोले देखिये माताश्री मैं हस्तिनापुर में लगातार सुभद्रा के विषय में सोच रहा था और डर रहा था कि मेरे आने से पहिले कहीं उसके विवाह की बात पक्की नहीं कर दे। देवकी बोली तो क्या कोई विशेष वर देखा है तुमने ? बलराम बोले विशेष जैसा ही

विशेष है। वो तो ऐसा है माताश्री कि आज सारा भारतवर्ष उसकी ओर देख रहा है। वसुदेव बोले ऐसा कौन है ? बलराम बोले वो तो एक ही पिताश्री हस्तिनापुर का युवराज महारथी दुर्योधन, मेरा शिष्य भी है और स्वयं उसी ने मुझसे विनती करी है। देवकी बोली परन्तु क्या कुन्ती दीदी को यह अच्छा लगेगा ? बलराम बोला भला बुरा क्यों लगेगा ? देखिये देश के विभाजन के पश्चात तो अब कोई झगडा रह ही नहीं गया माताश्री। वसुदेव बोले परन्तु विभाजन तो कोई समस्या का समाधान नहीं है पुत्र कि विभाजन ने तो दोनों की सीमाओं को छोटा कर दिया है और सीमायें घटने से कोई सन्तुष्ट नहीं होता। बलराम बोले परन्तु मैं तो दुर्योधन को लगभग वचन दे चुका पिताश्री। वसुदेव बोले अब तुमने वचन दे दिया है तो।

इतने में ही कृष्ण वहां आया और बोला लगता है दुर्योधन ने बडे ही जी लगाकर सेवा की है। कृष्ण ने अपने पिताश्री वसुदेव को प्रणाम किया और वसुदेव ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। देवकी बोली एक शुभ समाचार सुनो पुत्र। बलराम ने तुम्हारी चहेती सुभद्रा के लिये बहुत ही अच्छा वर खोज लिया है। बलराम बोला हां कृष्ण बधाई हो। कृष्ण बोला हां मैं जानता था कि पिताश्री। दाऊ इतने दिनों के पश्चात आये हो तो ये सभी के लिये कोई न कोई उपहार तो अवश्य लायेंगे। मेरे लिये आप क्या लाये दाऊ ? बलराम बोला देखा पिताश्री बात चल रही थी सुभद्रा के विवाह की और यह अपने को बीच में घसीट लाया। इतना लोभ नहीं करना चाहिये कृष्ण। कृष्ण बोला अपने दाऊ से कुछ मांगने में लोभ का क्या प्रश्न है ? इसे लोभ नहीं कहते दाऊ इसे स्नेह कहते है। बलराम बोले देखो कृष्ण बातों में मत फंसाओ। तुम्हारे आने से पहिले हम लोग एक गम्भीर विषय में बात कर रहे थे। कृष्ण बोले यह तो मैं तभी जान गया कि किसी ने बताया रथ से उतरते ही सीधे आप पिताश्री के कक्ष की ओर चले आये तो लपका चला आया हूं। बलराम ने कहा मैं माताश्री और पिताश्री को बता रहा था कि मैंने दुर्योधन से सुभद्रा का विवाह लगभग निश्चित कर दिया है। कृष्ण बोला अपने घर के चन्द्रमा को जाना तो चन्द्रवंशियों के घर में ही। बलराम बोले लीजिये पिताश्री अब तो कृष्ण भी मान गया। अब आपके हां कहने में क्या आपत्ति है। कृष्ण बोला लेकिन यह निर्णय तो उगते सूर्य के साथ लेना चाहिये दाऊ कि सुभद्रा के जीवन में सदैव धूप छिटकती रहे। देवकी बोली यह भी ठीक है, कल निर्णय लेंगे पुत्र। बलराम बोला देखो कृष्ण तुमने कोई गडबड की तो। कृष्ण बोला भला मैं क्या गडबड करूंगा दाऊ और वो भी सुभद्रा के जीवन में। यह आपने सोचा ही कैसे ? और आप भी कोई उसका बुरा थोडे ही चाहेंगे ? वसुदेव बोले कृष्ण ठीक कहता है बलराम और यह समझ लो की ना तो हम करनेवाले नहीं है। हां कल सबेरे कहेंगे। तुम जाकर विश्राम करो।

अर्जुन कृष्ण के महल में अतिथिगृह में सो रहा था कृष्ण ने जाकर अर्जुन को जगाया। अर्जुन उठा और बोला केशव आप। कृष्ण बोले मेरे अतिरिक्त तुम्हे और कौन जगायेगा। बडी ही आपात स्थिति का सामना है पार्थ। अर्जुन धनुष उठाने की तैयारी कर रहा था। कृष्ण बोले तो क्या दाऊ पर बाण चलाओगे ? अर्जुन बोला दाऊ पर। कृष्ण बोला सब बताता हूं परन्तु पहले स्थान ग्रहण करने के लिये तो कहो। अर्जुन बोला आप कब से किसी के कहने की प्रतीक्षा करने लगे केशव ? मैं आपका, यह भवन आपका, ये संसार आपका। कृष्ण बोले बस बस। आपात स्थिति में बातें करनी चाहिये कम और सुननी चाहिये अधिक। यदि परिवार में सब बडे, वृद्ध एकमत हो जाते तो फिर कोई संकट नहीं रहता। मूल समस्या तो यह है कि सुभद्रा के सभी अभिभावक भी तो एकमत नहीं है। मुझे शंका है कि सुभद्रा बलराम भैया के दबाव में आकर कही उनकी बात न मान ले। अर्जुन बोले क्या बलराम भैया ने कोई और वर चुन रखा है ? मैं तो यही समझता था कि परिवार की ऐसी समस्याओं में वे कभी कोई दिलचस्पी नहीं लेते। कृष्ण बोले बलराम भैया तो बस बलराम भैया ही है। न दिखाये तो बडी से बडी बात में अपनी कभी कोई रूचि न दिखाये। चाहे युद्ध हो जाये, राज्य बने और बिगड जाये, चाहे राजवंशों के भाग्य का निबटारा हो जाये पर वे किसी से एक प्रश्न भी नहीं पूछेंगे। आपके मन में जो आये वो कर लीजिये। पर यदि उनके मन में कोई बात आगई तो उसका जितना विरोध होगा, वे उसपर उतना ही अडते चले जायेंगे। आप उन्हे समझाने का चाहे जितना प्रयत्न कर लें उनका मस्तिष्क तर्क की ओर से अपने कान उतने ही बंद करते चला जायेगा। कभी तो

अपने कृष्ण की एक बात पर अपने प्राण न्यौछावर करने को आतुर दिखाई पडेगा और कभी इस बात पर भी धरना देकर बैठ जायेगा कि सारी बातें कृष्ण की ही क्यों मानी जाये ? कृष्ण बहुत बुद्धिमान है तो क्या बलराम मूर्ख है ? बस अडते जायेंगे तो अडते ही चले जायेंगे। बच्चों की सी हठ पकड लेंगे और किसी की भी नहीं सुनेंगे। संक्षेप में कहूं तो स्थिति यह है कि दाऊ चाहते हैं सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से हो जाये। अर्जुन बोला दुर्योधन से। फिर मेरे लिये क्या आदेश है केशव ? क्या बलराम भैया नहीं जानते कि दुर्योधन कितना अधर्मी है ? कृष्ण बोले जानते क्यों नहीं अर्जुन। क्या तुम्हारे पितामह भीष्म नहीं जानते कि दुर्योधन और धृतराष्ट्र कैसे मनुष्य है किन्तु फिर भी वे क्या उनका त्याग कर पाये ? क्या वे उन्हे अपना आत्मीय नहीं मानते ? बलराम भैया भी रिश्ते नातों के सम्बन्ध की दृष्टि से धृतराष्ट्र के परिवार को पराया नहीं मानते। बलराम को दुर्योधन भीम से कुछ अधिक योग्य शिष्य लगता है। अपने शिष्य की योग्यता के लिये उनके मन में पर्याप्त आकर्षण है। अर्जुन बोला परन्तु उस पापी, अधर्मी और आततायी के साथ सुभद्रा कैसे रह पायेगी ? अर्जुन बोले बलरामजी यदि सम्बन्धों को इतना महत्व देते है तो उन्हे यह क्यों स्मरण नहीं रहता कि पांडव उनकी सगी बुआ के पुत्र हुै और दुर्योधन पांडवों का घोर शत्रु है फिर ऐसे में उन्हे दुर्योधन से इतनी सहानुभूति क्यों है ? क्या बलराम भैया धर्म के विषय में कभी नहीं सोचते ? कृष्ण तो दिनरात धर्म के विषय में ही चिंतित रहता है। कृष्ण का कहना है यदि हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा।

कृष्ण बोले अर्जुन आदेश का क्या प्रश्न है ? क्षत्रिय धर्म का पालन करो। यदि विवाह की अभिलाषा हो और यदि कन्या भी वही चाहती हो। क्या तुम सुभद्रा से विवाह करना चाहोगे ? प्रात: से अब तुम उसके बारे में ही सोच रहे हो। अर्जुन बोला यदि देवी सुभद्रा मेरी पत्नी बन सके तो मेरा इससे बडा सौभाग्य और क्या होगा ? कृष्ण बोले यह तो तुम्हारी आकांक्षा की तीव्रता पर निर्भर है पर सुभद्रा इतनी सरलता से तो नहीं प्राप्त होगी पार्थ। मेरा विचार है कि तुम सुभद्रा के साथ सदा सुखी रहोगे। सुभद्रा के लिये भी तुमसे श्रेष्ठतर पति दूसरा कोई नहीं हो सकता। तुम्हारी पत्नी के रूप में वह हम दोनों के कुलों को गौरवान्वित करेगी। किन्तु अब तय यह करता है कि यह विवाह किस प्रकार हो। पिताश्री वसुदेवजी से बात करने का तुम्हारे लिये सुभद्रा को प्राप्त करने का निश्चर्य मार्ग नहीं हो सकता।

अर्जुन ने पूछा क्यों ? कृष्ण बोले क्योंकि यह सुभद्रा के लिये आये सम्बन्ध प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव और होगा। पिताश्री जैसे अन्य प्रस्तावों पर विचार कर रहे हैं वैसे ही इस पर भी करेंगे। अर्जुन मेरे पिता तुम्हारे मामा है। मामा के रूप में वे तुमसे बहुत प्रेम करते हैं किन्तु कन्या के पिता के रूप में जब वे सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार करेंगे तो उस समय वे तुम्हारे मामा नहीं होगे। उस समय वे यह आपत्ति भी कर सकते हैं कि सुभद्रा की तुलना में तुम्हारी उम्र भी अधिक है। वे शायद यह भी कह सकते हैं कि तुम किसी राज्य के कोई राजा भी नहीं हो, न ही युवराज। तुमसे विवाह कर सुभद्रा अपने जीवन में कभी रानी, महारानी, पट्टमहिषी नहीं बन सकती जबकि दुर्योधन, शिशुपाल अथवा ऐसे ही किसी अन्य राजा या युवराज से विवाह होने पर वह निश्चित रूप से राजरानी महारानी बनेगी। कदाचित वे ये भी कह सकते हैं कि पांडवों का अपना राज्य बहुत छोटा है मात्र इन्द्रप्रस्थ नगर तक सीमित है। बहुत समृद्ध भी नहीं है। यादवों की सहायता न मिली होती तो शायद तुम लोग इन्द्रप्रस्थ निर्माण भी नहीं कर पाते। वर का चयन करते समय किसी भी कन्या का पिता ऐसा विचार करता है इसीलिये कहता हूं सुभद्रा प्राप्ति का यह निश्चित मार्ग नहीं है तो फिर इस अनिश्चित मार्ग पर क्यों चला जाये ? अर्जुन ने पूछा तो फिर मेरे लिये श्रेयस्कर कौनसा मार्ग है ? कृष्ण बोले यदि विवाह के रास्ते में कोई अडचन, बाधा आती हो तो क्षत्रिय धर्म यह कहता है कि कन्या का हरण कर लो। क्योंकि यह कन्या का हरण नहीं वरण है। अर्जुन बोला क्या आप यह कह रहे है कि मैं सुभद्रा का हरण कर लूं ? द्वारका के यादवों के आतिथ्य, सम्मान और सत्कार का इस प्रकार तिरस्कार करूं ? कृष्ण बोले मैं यह कहनेवाला कौन पार्थ ? मैं तो बस क्षत्रिय धर्म के विषय में बतला रहा था। इसके लिये तुम्हे शारीरिक संकट भी झेलना पडेगा और असफल होने पर तिरस्कार और अपमान का जोखिम भी उठाना पडेगा और यदि सफल हो

गये तो सुभद्रा तुम्हारी होगी हमारे सम्बन्ध पहले से भी अधिक दृढ़ और मधुर होंगे। द्वारिका में तुम्हारा सम्मान बडेगा और कोई भी यादव अपने को अपमानित अनुभव नहीं करेगा। अर्जुन ने कहा जो आज्ञा आपकी।

कृष्ण सुभद्रा के पास आये और बोले मैंने सुना है सुभद्रा कल पूजा के लिये रैवतक पर्वत पर जा रही हो। सुभद्रा बोली नहीं तो। यह आपको किसने कह दिया ? नहीं मैं कल सवेरे पूजा के लिये नहीं जा रही हूं भ्राताश्री। कृष्ण बोले अच्छा तो फिर मैने यह सुना होगा कि तुम दुर्योधन की वधू बनकर हस्तिनापुर जा रही हो। सुभद्रा बोली यह आप क्या कह रहे हैं भ्राताश्री ? कृष्ण बोले वहीं तो कह रहा हूं जो मैंने सुना है। सुभद्रा ने कहा किससे सुना है आपने ? कृष्ण बोले दाऊ से। और यह तो तुम जानती ही हो कि वे केवल गरजते ही नहीं बरसते भी है। उन्होने पिताश्री और माताश्री को लगभग मना भी लिया है। वो तो मेरे ठीक समय पर वहां पहुंच जाने पर उन्हे कल तक के लिये टाल दिया है। सुभद्रा बोली परन्तु मैं तो दुर्योधन से कभी विवाह नहीं करूंगी। कृष्ण बोले यदि तुम्हारा यह निश्चय अटल है तो कल सबेरे पूजा के लिये जाओ। सुभद्रा बोली जो आज्ञा भ्राताश्री। कृष्ण बोले अपने जीवन के विषय में आज्ञा पालन नहीं किया जाता सुभद्रा। निर्णय लिया जाता है। यदि तुम कल सवेरे पूजा के लिये जाओगी तो अर्जुन अवश्य तुम्हारा हरण कर लेगा।

दूसरे दिन वृष्णि, भोज और अन्धक वंशों के यादवों ने रैवतक पर्वत पर बहुत बडे उत्सव का आयोजन किया। इस अवसर पर ब्राह्मणों को हजारों रत्न और अपार धन राशि सम्पत्ति का दान किया गया। यदुवंशी बालक सजधज कर टहल रहे थे। अक्रूर, सारण, गद, बभ्रू, विदूरथ, निशठ, चारुवेष्ण, पृथु, सत्यक, सात्यकि, हार्दिक्य, उद्धव, बलराम तथा सभी प्रधान प्रधान यदुवंशी अपनी अपनी पत्नियों के साथ उस महोत्सव में आये थे। गन्धर्व और बन्दी जन उन सबका विरद बखान कर रहे थे। सुभद्रा शिव पूजन के लिये जा रही है साथ में चार रक्षक और सखियां चल रही थी। सुभद्रा अर्जुन की मधुर स्मृतियों की कल्पना में खोई हुई थी।

अर्जुन बरालम के पास आये उस समय बलराम अपने कक्ष में व्यायाम कर रहे थे। अर्जुन ने बलराम को प्रणाम किया प्रणाम दाऊ। बलराम बोले सुखी रहो। अर्जुन को शिकारी के वेश में देखकर बोले क्या कहीं युद्ध में जा रहे हो ? अर्जुन बोले नहीं। आखेट के लिये जा रहा हूं। बलराम बोले अच्छा। अर्जुन ने कहा सुना आप हस्तिनापुर से लौट आये हैं तो मैंने सोचा जाने से पहिले आपके चरण स्पर्श कर लूं। बलराम बोले तुम भाइयों के सेवा भाव से तो मैं अत्यधिक प्रसन्न हूं अर्जुन। जाओ विजयी हो।

अर्जुन कृष्ण के पास आकर प्रणाम केशव करता है। कृष्ण बोले पार्थ दाऊ से मिल आये। अर्जुन ने कहा हां कृष्ण। कृष्ण बोले उनका आशीर्वाद लेना बहुत ही आवश्यक था। अब जाओ परन्तु ध्यान रखना कि द्रौपदी अग्नि से उत्पन्न हुई है। उसके स्वयंवर में वहीं आँच है। सुभद्रा हरण से कहीं कठिन लक्ष्य है सुभद्रा का द्रौपदी से मिलना। इसका पूर्ण प्रयत्न करना सुभद्रा के आने से द्रौपदी का मन कहीं मैला न हो अर्जुन। वह तुम पांचों भाइयों की पत्नी अवश्य है परन्तु स्वयंवर तुम्ही ने जीता था धनंजय। अर्जुन बोला परन्तु यह तो निश्चय ही है कि वो सुभद्रा का स्वागत तो नहीं करेगी। कृष्ण बोले स्वागत भी करेगी यदि तुम यह ध्यान में रखोगे कि सुभद्रा तो मेरी बहिन है ही परन्तु द्रौपदी भी मेरी बहिन समान ही है तथा मुझे बहुत प्रिय भी है। यदि सुभद्रा का तुम्हारे साथ जाना आवश्यक ना होता तो मैं तुम्हे सुभद्रा हरण का सुझाव भी नहीं देता। सुभद्रा तुम्हारे चन्द्रवंशियों की धरोहर है जाओ पार्थ मेरा रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। हां एक और बात ध्यान रखना इस यात्रा में सारथी सुभद्रा को ही बनाना। यह यात्रा तुम्हारी नहीं है उसकी है। रथ में एक बडे युद्ध के लिये पर्याप्त शस्त्रास्त्र हैं। सुभद्रा रैवतक पर्वत पर देव दर्शन व पूजा के लिये जायेगी। सुभद्रा का अपहरण कर तुम उसे रथ में बिठाना। रक्षकों के प्रतिरोध करने पर भी तुम रथ लेकर निकल जाना। यदि तुम वहां से सफलतापूर्वक निकल गये और सुभद्रा को अपने साथ ले जा सके तो विश्वास रखो कि यादव सेना तुम्हारा पीछा नहीं कर पायेगी और सुभद्रा तुम्हारी होगी। इच्छा हो या कामना वह स्वयं सिद्ध तो नहीं होती उसका औचित्य सिद्ध करना पडता है। अर्जुन चाहता है किसी तरह इस हरण के बारे में इन्द्र प्रस्थ में सूचित किया जाये।

अर्जुन के मन में सोच विचार आता है कि द्वारका आकर ही उसने अनुभव किया है कि कृष्ण की मित्रता, स्नेह और सौहार्द्र के होते हुये भी उनके सहायक यादव पांडवों को अपने समान योग्य भी नहीं मानते कि वे अर्जुन को अपनी कन्या के योग्य वर स्वीकार कर लें। पांडव तो उनकी दया के पात्र है, स्पृहा के नहीं। इन्द्रप्रस्थ उनके लिये बहुत छोटा सा राज्य है, महत्वहीन और समृद्धिशून्य। यदि पांडवों को राजाओं और राजवंशों की बिरादरी और मर्यादाओं में सिर उठा कर सम्मानपूर्वक समानता के आधार पर जीना है तो उन्हे अपने राज्य का विस्तार करना होगा। धन धान्य और सम्पन्नता की दृष्टि से समृद्ध होना होगा। यादवों के योग्य समर्थ और सक्षम सम्बन्धी बनना होगा। यादवों की दृष्टि में भी हस्तिनापुर का राज्य इन्द्रप्रस्थ से इतना अधिक समृद्धिशाली और महत्वपूर्ण है कि वे पापी अधर्मी और आततायी दुर्योधन से अपनी कन्या का सम्बन्ध करने का न केवल विचार कर सकते हैं बल्कि स्वयं इसका प्रस्ताव पहल कर हस्तिनापुर भेज रहे हैं। कृष्ण की मैत्री के बावजूद भी वे अर्जुन के प्रस्ताव को मान्यता न देकर उसका तिरस्कार कर सकते हैं। तो फिर पांडव किस आधार पर आश्वस्त होकर बैठे हैं ? यदि सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो जाता है तो मामा वसुदेव, बलराम और अन्य यादव भी वैसे ही आतुरता से आकर अर्जुन के पक्ष में होंगे।

युधिष्ठिर को सुभद्रा हरण के विषय का सन्देश मिल गया। कृष्ण के परिवार को युधिष्ठिर ने सदा अपना ही परिवार समझा था फिर अपने ही परिवार की कन्या का हरण, क्या यह उचित है ? ऐसे में कौन किसका विश्वास करेगा ? अर्जुन को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे यादव अपने आपको अपमानित महसूस करे और यादवों को भी पांडवों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। युधिष्ठिर तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि यादव उन्हे इतना हीन समझते होंगे कि अर्जुन जैसे व्यक्ति से अपनी कन्या के सम्बन्ध में आनाकानी करेंगे और फिर स्वयं अपने मामाश्री के ही घर में। युधिष्ठिर ने सब बातें माता कुन्ती को बता दी। कुन्ती ने कहा अर्जुन को बता दो वह निर्भय होकर सुभद्रा को ले आये। मुझे सुभद्रा को पुत्र वधू मानने में न कोई आपत्ति है और न ही उसके हरण में। यदि सुभद्रा को अर्जुन अपने पति के रूप में स्वीकार्य है तो मेरे भाई वसुदेव की इच्छा अनिच्छा का कोई महत्व ही नहीं रह जाता। <u>पराक्रम से सम्मान बढता है कम नहीं होता</u>।

युधिष्ठिर ने पांचाली को भी यह सब अवगत कराया और पूछा इसके बारे में तुम क्या कहती हो। द्रौपदी व्यंग से बोली लोग अपनी पत्नियों से पूछकर राजकुमारियों का हरण नहीं करते। युधिष्ठिर ने फिर से कुदेर कर पूछा यदि अर्जुन अपने साथ सुभद्रा जैसी पत्नी लायेगा तो तुम्हे कैसा लगेगा ? द्रौपदी बोली बडी विचित्र स्थिति होती है <u>क्षत्रिय पत्नी की सपत्नी या सौत का कोई स्त्री स्वागत नहीं करती है किन्तु वीर पत्नी अपने पति के पराक्रम में कभी बाधा नहीं डालती</u>। मैं स्वयं भी तो पांच पतियों की पत्नी हूं। मैं किसी पर भी एकाधिकार की कल्पना कैसे कर सकती हूं ? द्रौपदी को भी तो अपने आपसे बहुत कुछ पूछना शेष था। सुभद्रा आ जाने के पश्चात वह उसके पति को उससे छीन लेगी। वह उसके प्रति अर्जुन का प्रेम क्षीण नहीं तो कम अवश्य कर देगी। फिर ये जो आयेगी वह कोई साधारण राजकुमारी नहीं बल्कि कृष्ण की चंचला व चहेती बहिन। सुन्दर यादव कन्या, बुद्धिमती, सुशिक्षित और रण कुशल। अर्जुन को तो मुग्ध कर ही देगी बहुत सम्भव है पूरे परिवार की लाडली बन जाये परन्तु द्रौपदी का उससे क्या विरोध ? वह तो उसके सखा की बहिन, छोटी बहिन के समान। द्रौपदी तो पांचो भाइयों की ऐसी ऐसी रानियों की महारानी होगी। उसका अपना ही साम्राज्य समृद्ध हो रहा है। द्रौपदी का भला सुभद्रा से क्या विरोध हो सकता है ? कृष्ण बोले जाओ मित्र। सफल होकर मिलना चिन्ता मत करना, पराक्रम करना। अर्जुन ने कहा जैसी आपकी आज्ञा। यह कहकर चला गया।

सुभद्रा ने रैवतक पर्वत पर देवपूजा कर पर्वत की प्रदक्षिणा की। ब्राह्मणों ने मंगल पठन किया। सुभद्रा वहां से आ रही थी। अर्जुन वहां पर अपना रथ लेकर आता है सुभद्रा का रूप अर्जुन को एक सीमा तक बडा ही मोहक और आकर्षक लग रहा था। अर्जुन ने रथ आगे बढाया और रथ लाकर ठीक सुभद्रा के सामने खडा कर दिया और तभी अर्जुन ने झुककर सुभद्रा को अपनी भुजाओं से उठाया और रथ में बिठाया और सुभद्रा हरण कर वहां से अतिशीघ्र रथ को दौडा कर भाग गया। यह कार्य इतना शीघ्र हुआ कि अर्जुन ने घोडों की रास सुभद्रा के हाथ थमा दी। रथ का सारथ्य सुभद्रा ने किया। रक्षक कुछ समझ नहीं पाये कि उनकी

आंखों के सामने यह क्या घटित हो रहा है। अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया या सुभद्रा ने अर्जुन का हरण किया। रक्षकों के लिये अर्जुन को रोक पाना सम्भव नहीं था।

सैनिकों से बलराम को मालूम पडता है कि अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया है वह क्रोधित हो सुधर्मा राजसभा में आता है और जोरों से बोलता है। इधर रथ वायु वेग से दौड रहा था और अर्जुन का मन उससे कहीं अधिक वेगवान हो गया था। वह सहस्त्र कल्पनाओं में खोया था, असंख्य सम्भावनाओं पर विचार कर रहा था। अनेक जटिल परिस्थितियों की समस्याओं का समाधान कर रहा था। अर्जुन का स्पर्श सुभद्रा को कैसा कमनीय था ? पुरुष के एक स्पर्श मात्र से नारी के भीतर की नारी को चैतन्य कर देता है। नारी के चैतन्य होते ही उसकी लज्जा और आत्मप्रेम की भावनायें भी सजग हो उठती है। सुभद्रा स्वयं असावधान नहीं थी। सुभद्रा अब युवती हो गई थी। पुरुष मन उसकी ओर आकृष्ट हो रहा है। अर्जुन जैसा यौद्धा जिसने काम्पिल्य में प्रतिज्ञा पूरी कर द्रौपदी जैसी नारी को प्राप्त किया था वही स्वयं आज उसका हरण कर रहा है। उसने सुभद्रा को इस योग्य तो समझा और उसके लिये अपने प्राणों की बाजी लगा रहा है। यादवों की नगरी में वह वसुदेव की पुत्री तथा कृष्ण और बलराम की लाडली बहन का हरण कर रहा था।

चारों ओर सारे नगर में कोलाहल मच गया। प्रहरी, रक्षक, दंडधर सैनिक, रथी, महारथी, सबके सब सुधर्मा की ओर भागने लगे। निश्चित रूप से कोई ऐसी आकस्मिक घटना घट गई जिसके प्रतिकार स्वरूप तात्कालिक अभियान की आवश्यकता आ पडी। प्रमुख प्रमुख यादव गण भी सुधर्मा में पहुंच गये। प्रत्येक कार्य के लिये उपयुक्त समय होता है, उसी को हम शुभ मुहूर्त कहते हैं। उतावली करना तो श्रेष्ठ पुरुषों का गुण नहीं है। बलराम का क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर था। चेहरा तमतमाया हुआ, आंखे जैसे चिनगारियां बरसा रही थी। उन्हे अपने भवन में ही सुभद्रा के हरण की सारी घटना की सूचना मिल गई थी। बलराम जोरों से फट पडे और बोले कौन्तेय अर्जुन ने अतिथि मर्यादा का उल्लंघन कर सुभद्रा का हरण किया है। यदि उसका पीछा करते हुये हमें इन्द्रप्रस्थ जाना पडा तो हम इन्द्रप्रस्थ जायेंगे। हम लोग इस प्रकार खडे हुये यहां किस बात की प्रतीक्षा कर रहे है ? कृतवर्मा भी उत्तेजित हो उच्च स्वर में बोले इन्द्रप्रस्थ पहुंच भी जाये तो क्या ? क्या इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश कर जाने मात्र से अर्जुन हमारे प्रतिशोध से तो बच नहीं पायेगा ? बलराम बोले मैं तो यह पूछ रहा हूं कि हम लोग इस तरह निठ्ठले से क्यों खडे है ? क्या मैं यह मान लूं कि अपहरण मेरी बहिन का हुआ है, यादवों की पुत्री का नहीं, इसलिये उस विश्वासघाती अर्जुन से सुभद्रा को मुक्त कराने का दायित्व मुझ अकेले पर ही है। शेष लोग क्या रास्तों में खडे केवल चर्चा ही करते रहेंगे ? नगर कोटपाल बोला नहीं ऐसा कुछ नहीं है आर्य बलभद्र। बलराम क्रोध में थे और वे क्रोध को ही अभिव्यक्त कर रहे थे। बलराम बोले अर्जुन ने यादवों का अपमान किया है। हमें इसका प्रतिशोध लेना है। इस अपमान का बदला लेने के लिये जिनकी इच्छा हो वो चले मेरे साथ। अर्जुन अभी बहुत दूर नहीं गया होगा। हम उसे बांधकर लायेंगे। उसे यह तो मालूम पडे कि यादवों का अपमान करने का क्या अर्थ ? सभा में उठकर अक्रूर बोले मैं तो सुनकर चकित हूं कुन्ती पुत्र इस प्रकार का कार्य करने का साहस कैसे कर सकता है ? कृतवर्मा ने कहा यह सब कृष्ण के प्रेम का ही परिणाम है। अर्जुन समझता है कि वह कृष्ण का अन्तरंग सखा और प्यारा है तो कोई उससे कुछ नहीं कहेगा। सात्यकि भी वहीं बैठे यह सब देख सुन रहे थे। सात्यकि को लगा बलराम मर्यादा तोडकर कुछ अधिक ही उत्तेजित हो रहे है। बलराम द्वारा अर्जुन का विरोध भी उन्हे अच्छा नहीं लग रहा था। इसमें तो एक प्रकार की कृष्ण की ही अवमानना हो रही थी। आक्रोश में बलराम कई बार अनकहनी बात कह जाया करते है परन्तु उनके मन में कृष्ण के प्रति कोई विरोध नहीं होता पर आज तो स्थिति कुछ अधिक ही बदली हुई है। वे आज सारे प्रमुख यादवों के सम्मुख कह रहे है। सात्यकि बोले बहुत सम्भव है कि इसमें सुभद्रा की भी अपनी इच्छा रही हो और यदि सुभद्रा अपनी अच्छा से अर्जुन के साथ गई हो तो फिर अर्जुन के प्रति रोष का कोई कारण ही नहीं रह जाता। बलराम ने क्रोधित हो अपनी आंखे सात्यकि की ओर फेरी और बोले सुभद्रा अभी बच्ची है उसे अपने भले बुरे का ज्ञान नहीं है इसलिये उसकी इच्छा या अनिच्छा

का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

कृतवर्मा बोला सात्यकि से जरा पूछो तो सही। कन्यायें अपनी इच्छा से ही भले जब हरणकर्ता के साथ चली जाती है तो क्या वह हरण हरण नहीं होता ? क्या हरणकर्ता दोषी नहीं होता ? उससे क्या कन्या पक्ष आहत और अपमानित नहीं होता ? रूक्मिणि तो अपनी इच्छा से कृष्ण के साथ आई थी। आना तो अलग, उसने तो ब्राह्मण दूत के साथ पत्र भेजकर कृष्ण को बुलाया था। तो भी उसके पिता भीष्मक ने विरोध किया था। रूक्मी के नेतृत्व में विदर्भ की सेनायें लडने आई थी। यादव क्या विदर्भों से भी गये बीते है कि वो अपने अपमान का प्रतिशोध लेने का प्रयत्न भी नहीं करेंगे ? बलराम पूर्णत: उन्माद की स्थिति में थे और बोले यादव कन्या का अपहरण करनेवाला मनुष्य जीवित नहीं बच सकता। यादवों का अपमान करना इतना सरल नहीं है। हम अर्जुन के पीछे उसे पकडने जायेंगे यदि रास्ते में नहीं मिला तो इन्द्रप्रस्थ तक जायेंगे। इन्द्र प्रस्थ का निर्माण भी तो हमने ही अपने हाथों से किया है उसे अपने उन्ही हाथों से नष्ट भी कर देंगे। तभी सात्यकि चिन्तन करने लगा क्या इतना ही सरल है अर्जुन को बांध लाना ? यदि ऐसा ही होता तो अर्जुन क्या इस प्रकार दुस्साहस करता ? कृष्ण ने सात्यकि को अर्जुन से ही धनुर्विद्या सीखने का परामर्श क्यों दिया था ? सात्यकि अर्जुन को अपना गुरु मानता था। कृतवर्मा जानबूझ कर बलराम को उत्तेजित कर रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं वह कृष्ण और बलराम को परस्पर में एक-दूसरे के विरुद्ध उलझा देना चाहता हो। कृतवर्मा का कोई भरोसा भी नहीं। कभी तो वह कृष्ण का भक्त प्रतीत होने लगता है तो कभी उनका शत्रु। पता नहीं वह कब किसका मित्र है और किसका शत्रु। वह स्वयं भी इस बात को समझता है या नहीं वह कभी किसी बात पर अड जाता है तो अड ही जाता है परिणाम चाहे कुछ भी हो। बलराम बोला जिस जिसको यादवों का सम्मान प्रिय हो वो लोग मेरे साथ चले। सभापाल बोला आर्य बलभद्र आप महाराज उग्रसेन के आने तक तो रूक जायें तब तक कृष्ण भी आ जायेंगे। बलराम गुस्से में आकर बोला यह घटना सुनकर भी वे अभी तक क्यों नहीं आये ? मैं उनके आने की प्रतीक्षा नहीं कर सकता। किसी राज्य अथवा समाज का नेतृत्व प्रमाद तथा आलस्य से विकसित नहीं होता। मैं उन आलसियों के लिये रूकना नहीं चाहता। मनुष्य अपने आचरण के लिये स्वयं उत्तरदायी होता है अन्य दूसरा कोई नहीं। इतने में ही द्वारपाल ने महाराज उग्रसेन के साथ वसुदेव जी के आने की सूचना दी। उनके पीछे पीछे कृष्ण और उद्धव भी आ पहुंचे।

बलराम पर उग्रसेनजी और पिता वसुदेव की उपस्थिति का प्रभाव पडा। उनकी उग्रता कुछ मर्यादित हुई पर बलराम अधिक धैर्य नहीं रख सका। महाराज उग्रसेन जैसे ही आसन पर विराजमान हुये बलराम उच्च स्वर में बोले महाराज अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण कर लिया है। यह यादवों का घोर अपमान है। यादवों को तत्काल रण सज्जित होकर अर्जुन का पीछा कर उसे बन्दी बनाने और उसे दंडित करने का आदेश करें। लगता है कृष्ण हम से सहमत नहीं है। इस विषय में कृष्ण का मत जान लेना भी आवश्यक है। इतना बुद्धिमान होकर भी वह इस समय तनिक भी सक्रिय नहीं लग रहा है। एक तो इतनी देर से आया है और आकर शान्ति से एक ओर बैठ गया है। उग्रसेन बोले वासुदेव क्या विचार है तुम्हारा ? क्या हमें अर्जुन अथवा युधिष्ठिर से सम्पर्क कर कोई वार्ता करनी चाहिये या उस पर तत्काल आक्रमण कर देना चाहिये ? कृष्ण बोला मैंने तो कुछ भी नहीं कहा दाऊ। बलराम बोले तुम्हारे ना कुछ कहने से तो ही मैं घबराता हूं क्या तुम्हे याद नहीं जब तुमने रूक्मिणि का हरण किया था तो उसके भाई रूक्मी ने तुम्हारा रास्ता रोक लिया था। कृष्ण बोला मैंने रूक्मिणि का हरण नहीं किया था दाऊ। आप तो जानते है उसके बुलावे पर मैं गया था दाऊ। वे लोग उसकी इच्छा के विरुद्ध शिशुपाल से उसका विवाह कर रहे थे। मैंने तो उसकी सहायता की थी दाऊ। बलराम बोले यह तुम क्या कह रहे हो ? कृष्ण बोला मैं वहीं कह रहा हूं जो आप सुन रहे हो। कहीं ऐसा तो नहीं दाऊ कि सुभद्रा की इच्छा के बिना उसका विवाह दुर्योधन से करने की योजना बना रहे थे और उसे पता चल गया हो और फिर उसने अर्जुन से सहायता मांगी हो। बलराम बोले सुभद्रा को यह किसने बताया कि मैं दुर्योधन से उसके विवाह का विचार कर रहा हूं और तुम्हे किसने बताया कि वो दुर्योधन से विवाह नहीं करना चाहती। कृष्ण बोला स्वयं सुभद्रा ने बताया

दाऊ। वो दुर्योधन से विवाह नहीं करना चाहती। बलराम बोले और यह उसे किसने बताया। कृष्ण बोले मैंने। जब यह सुखद समाचार मैंने सुना तो मैंने सोचा यह समाचार सुभद्रा को तो बता ही देना चाहिये। मैंने जगाकर उसे बताया। बलराम बोले तो अच्छा तो जगाकर बताया। कृष्ण ने कहा जी दाऊ। बलराम बोले फिर उसने तुमसे सहायता क्यो नहीं मांगी। कृष्ण बोले मैंने तो उसे साफ कह दिया था कि दाऊ ने दुर्योधन को वचन दे दिया है इसलिये अब मैं कुछ नहीं कर सकता। बलराम बोले तो फिर उसने अर्जुन से कब सहायता मांगी ? उसका सन्देशा लेकर अर्जुन के पास कौन गया ? अर्जुन को किसने बताया कि वो पूजा के लिये जा रही है ? कृष्ण बोला इन सब प्रश्नों के उत्तर तो स्वयं सुभद्रा ही दे सकती है दाऊ। परन्तु यह सब तो मुझे उसके अंग रक्षकों ने बताया कि जब अर्जुन ने उसे अपने रथ पर उठा लिया था तो उसने अपनी सहायता के लिये अंगरक्षकों को भी नहीं पुकारा और एक ने तो यहां तक कहा था दाऊ कि वही स्वयं अर्जुन के रथ की सारथी भी थी। तो क्या इसका अर्थ यह नहीं हुआ दाऊ कि यदि हरण हुआ है तो अर्जुन ने सुभद्रा का हरण नहीं किया बल्कि सुभद्रा ने अर्जुन का हरण किया है। यदि अर्जुन ने यादवों का अपमान किया है तो उसे अवश्य दंडित करना चाहिये। हमें पूर्ण गम्भीरता से इस तथ्य का विश्लेषण करना चाहिये कि क्या वास्तव में ही अर्जुन के इस कार्य से यादवों का अपमान हुआ है ? क्या अर्जुन ने सचमुच अधर्मरत हो मर्यादा का खंडन किया है ? कृतवर्मा बोला अर्जुन ने जिस थाली में खाया है उसी में छेद किया है। उसने हमारे आतिथ्य का अपमान किया है। सुभद्रा के अपहरण से यादवों का अपमान हुआ है। अपनी कन्या को छुडाना और हरणकर्ता को दंडित करना हमारा धर्म नहीं है क्या ? कृष्ण मैं यह सहन नहीं कर सकता और उसने तलवार निकाल ली।

कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुये और बोले क्षत्रियों में विवाह के लिये हरण का प्रचलन नहीं है क्या ? आप पहिले यह निर्णय करें कि वह हरण है या अपहरण ? यदि वह हरण है और अर्जुन सुभद्रा से विवाह करना चाहता है तो इसमें यादवों का सम्मान है या अपमान। बलराम ने कहा उसने तो अपनी मृत्यु को आमंत्रित किया है। हम अपने इस अपमान को कैसे सहन करेंगे। इसमें हमारा कैसा सम्मान ? कृष्ण बोला मैं आपके साथ हूं। परन्तु पहिले दाऊ मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें कि रुक्मिणि हरण में इन्होने आप सब लोगों ने मेरा साथ क्यों दिया ? स्वयं दाऊ जिन पांडवों की सेवा भावना का बखान करते नहीं थकते क्या उनमें से कोई भला अपनी बुआ के घर का अपमान कर सकता है। सच पूछिये तो अर्जुन ने हमारा मान बढाया है। द्रौपदी स्वयंवर में कर्ण भी मत्स्य का वेध कर सकता था तो फिर ऐसे स्वयंवरों का अर्थ ही क्या रह जाता है ? पुत्री कोई पशु नहीं है जो पुरस्कार बनाकर किसी को भी दे दी जाये। वो कोई वस्तु नहीं है जो हारी या जीती जाये। अर्जुन ने हमारे विवाह प्रथा का यह दोष देखा और सुभद्रा हरण द्वारा हमारे मान की रक्षा की। हमें तो उसका ऋणी होना चाहिये फिर इस सम्बन्ध में खोट ही क्या है ? पार्थ पांडु पुत्र द्रोण शिष्य है। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है। यौद्धाओं की इस भीड में कोई ऐसा है जो अर्जुन की मित्रता न चाहता हो? वो भारत है, महाराजा शान्तनु का पौत्र है तथा कुन्ती भोज का दोहित्र है। त्रिलोक में मुझे तो सुभद्रा के लिये इससे अच्छा और कोई वर दिखाई नहीं देता। महादेव कहते हैं कौन है जो उसे रणभूमि में हराने की चुनौती दे सके ? पांचाल राज द्रुपद का जामाता, विश्व के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन ने यादवों को इतना सम्मानित, प्रतिष्ठित तथा अपना सम्बन्धी होने के योग्य माना है तभी तो उसने यादवों की कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया है। कृतवर्मा बोला है क्या पांडवों के पास ? चारो ओर से अपने शत्रुओं से घिरा हुआ धन धान्य से शून्य इन्द्रप्रस्थ का एक छोटा सा राज्य ? उनकी हैसियत ही क्या है ? कि वे यादवों को इस समृद्ध और शक्तिशाली वंश से सम्बन्ध जोडने के योग्य समझे और कह रहे हो वो हमें सम्मानित कर रहा है, गौरवान्वित कर रहा है। न तो उनके पास यादवों जैसी कोई धन सम्पत्ति, न वैभव और न ही वैसा राज्य और सेना। कृष्ण बोला मैं जानता हूं कि यादवों के पास समृद्धि का बहुत बडा बल है। हम राज्य और राजवंशों के समाज में श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त हैं इसलिये हमें उस स्थिति का लाभ होना चाहिये। हमें सुभद्रा के लिये श्रेष्ठ वर चुनने का श्रेय और अवसर मिलना चाहिये। बलराम बोले हमारी स्थिति तो वह है कृष्ण इसीलिये तो हम सुभद्रा के लिये श्रेष्ठतम वर चुनना चाहते हैं।

कृष्ण के स्वर में तेज था कृष्ण बोला आप सिर्फ कहते हैं पर आप श्रेष्ठतम वर नहीं चुनना चाहते हैं। आप केवल धनी वर ही चुनना चाहते हैं। आप अपने सामर्थ्य का लाभ उठाने के स्थान पर हानि उठाने को तैयार है। आप धनी हैं इसलिये धन के दुर्गुणों से युक्त पापी, आततायी, अधार्मिक और अन्यायी वर का चयन भी कर सकते हैं अपनी बहन के लिये। सारी सभा हतप्रभ होकर कृष्ण की ओर देख रही थी। कृष्ण ने फिर कहा आप धनी है, शक्तिशाली है, स्वतन्त्र है, समर्थ है इसलिये आपको अपनी बहन के लिये ऐसा वर चुनना चाहिये जो धर्म के मार्ग पर चलता हो, स्वच्छ जीवन व्यतीत करता हो तथा दुर्योधन जैसा पापी नहीं हो। जिसने पर सम्पत्ति और पर नारी पर दृष्टि गडाये रखी हो, जो षडयन्त्र कर अपने सत्वगुणी भाइयों की हत्याये करवाता हो, जो अपने लोभ, अहंकार, ईर्ष्या और धन, सत्ता, शक्ति के मद में मामा कंस के समान राक्षस हो गया हो। अक्रूर बोले अवसर आने पर अर्जुन भी वैसा ही आततायी नहीं हो जायेगा, इसका क्या प्रमाण है ?

कृष्ण बोले प्रमाण तो यह है कि समर्थ होने पर भी भीम ने अपनी हत्या का प्रयत्न करनेवाले दुर्योधन का वध नहीं किया। युवराज बन जाने पर भी युधिष्ठिर ने महाराज धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन और उसके साथियों को अपदस्थ कर उनकी हत्या या वध तो दूर की बात, उन्हे तनिक सी हानि पहुंचाने का भी प्रयत्न नहीं किया। द्रुपद को पराजित कर भी पांडवों ने उनका राज्य छीनने या उनसे किसी प्रकार का लाभ उठाने की कोई कोशिश नहीं की। वारणावत जाने के संकट को जानते हुये भी अपने तातश्री ज्येष्ठ पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। काम्पिल्य और हस्तिनापुर में अवसर मिलने पर भी वारणावत कांड का प्रतिशोध लेने की चेष्टा नहीं की। कुरुराज्य के बंटवारे के नाम पर खांडव प्रस्थ पाकर भी न विरोध किया, न ही किसी प्रकार का लोभ दिखाया। द्रौपदी जैसी स्त्री पाकर भी अर्जुन का धर्म विरुद्ध काम नहीं जागृत हुआ। राजा और भाई के क्षमा करने पर भी अपनी प्रतिज्ञानुसार बारह वर्षों के लिये इन्द्रप्रस्थ छोड आया। अब कितने और प्रमाण चाहिये आपको ? कृतवर्मा बोला हो सकता है यह पांडवों की कायरता हो। कृष्ण पुन: बोले कायरता तो धर्म से डिग जाने में होती है, धर्म पर स्थिर रहने में नहीं। इतनी विकट विरोधी परिस्थितियों में प्राणों का भय होनेपर भी जिन्होने अपना धर्म नहीं छोडा वे कायर नहीं हो सकते। बलराम बडे ही कठोर शब्द में बोले तो वह यदि इतना ही वीर था तो सुभद्रा का अपहरण कर क्यों भाग गया ? सामने खडा हो चुनौती देता तब देखता उसकी वीरता और वैसे भी अभी क्या बिगडा है हम सभी उसके पीछे जाते हैं और देखते हैं कि वह कितना वीर है ?

कृष्ण बोला अवश्य जाइये। मैं न तो किसी को अर्जुन के पीछे जाने से रोक रहा हूं और न ही किसी को उससे युद्ध करने से हतोत्साहित कर रहा हूं। उसके पास मेरा रथ है और उसका अपना युद्ध कौशल एवं पराक्रम है। जिसमें साहस हो वह युद्ध कर ले और उसे हरा कर सुभद्रा को लौटा लाये। बलराम ने पूछा तो फिर क्या तुम साथ नहीं चलोगे ? कृष्ण बोले मैं अधर्म में किसी का भी साथ नहीं दे सकता, यादवों का भी नहीं। बलराम बोले क्या अपने अपमान का प्रतिशोध अधर्म है ? कृष्ण बोले नहीं। किन्तु अपने अहंकार के मद में उचित अनुचित की सूक्ष्म रेखा को मिटा देना अधर्म है। कहीं आप अपने अहंकार का तो पोषण नहीं कर रहे है अथवा अपमान का प्रतिशोध ले रहे हैं ? वसुदेव बोले कृष्ण मेरा तुमसे कोई विरोध नहीं है किन्तु तुम मुझे यह बताओ कि यदि अर्जुन सुभद्रा के योग्य वर है भी, और पांडव भी हमारे कुल के योग्य समान प्रतिष्ठा सम्पन्न है तो सुभद्रा की कामना में कोई अनौचित्य भी नहीं है तो फिर अर्जुन ने मुझसे सुभद्रा की याचना क्यों नहीं की ? उसने मुझसे क्यों नहीं कहा कि वो सुभद्रा से विवाह करना चाहता है ? उसने सुभद्रा का हरण क्यों किया ?

कृष्ण बोले धन के विपर्यय में कन्या प्रदान करना श्रेष्ठ पुरुषों की प्रवृति नहीं होती है। यादवों में कन्या विक्रय सर्वथा अशोभनीय माना जाता है। दान के रूप में कन्या को ग्रहण करना पौरुषहीनता है। जिसमें सामर्थ्य हो वो क्या बैठकर अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करेगा कि कब उस कन्या के अभिभावक उसे कृपा कर कन्या दान करेंगे ? क्षत्रियों के लिये एक मार्ग है स्वयंवर और दूसरा हरण। स्वयंवर सर्वदा अनिश्चित होता है। स्वयंवर में सुभद्रा जाने किसका चयन कर लेती। अर्जुन ने अनिश्चित मार्ग को छोड निश्चित मार्ग को स्वीकार किया। वसुदेव ने पुछा तुम क्या कहते हो बलराम ? बलराम बोले मुझे लगता है जब

कृष्ण आ गया तो कोई न कोई ऐसी बात अवश्य कह देगा जिससे सबका उत्साह क्षीण हो जायेगा। बीच ही में महाराज उग्रसेन बोल उठे क्या तुम कृष्ण से सहमत नहीं हो ? बलराम बोले मुझे इस तरह अर्जुन का सुभद्रा को हरण करना अच्छा तो नहीं लग रहा है किन्तु कृष्ण की तर्क के सामने मैं अर्जुन को अपराधी नहीं मान रहा हूं और मैं निरुत्तर हो गया हूं। कृष्ण बोले हमारे लिये अब दो ही रास्ते है या तो हम सेना लेकर जाये और अर्जुन से युद्ध करे या फिर अपना समाज लेकर जाये और उसे सम्मान सहित द्वारका ले आये तथा सुभद्रा से उसका विवाह कर प्रेमपूर्वक दोनों को विदा करे। आप इन दोनों में से कुछ भी करने के स्वतन्त्र है किन्तु परिणाम दोनों का एक ही होगा। बलराम खींझकर बोले तुम इस प्रकार पहेलियां मत बुझाओ। किसीसे युद्ध कर उसे दंडित करना और किसी को ससम्मान आमंत्रित कर लाने का परिणाम एक कैसे हो सकता है ? कृष्ण बोले परिणाम तो एक ही होगा। एक में परिस्थितियां आपके लिये सुखद होगी और दूसरे में त्रासद भरी अब यह आपकी इच्छा पर निर्भर है कि आप उन दोनों में से कौनसी का चुनाव करते है? हमारे जो योद्धा युद्ध करने जायेंगे वे निश्चित रूप से अर्जुन से पराजित होंगे। ऐसे में अर्जुन सुभद्रा को इन्द्रप्रस्थ ले जा सकेगा। वहां उन दोनों का विवाह होगा और यदि आप सत्कारपूर्वक अर्जुन को द्वारका में लौटा लायेंगे तो भी अर्जुन और सुभद्रा का विवाह होगा। दोनों भी स्थितियों में परिणाम तो एक ही हुआ। किन्तु पहली परिस्थिति में हम सुभद्रा से यह पूछ भी नहीं पायेंगे कि क्या वह अर्जुन से विवाह करना चाहती है ? क्या वह उसे पति रूप में पाकर प्रसन्न है ? हम उसके विवाह में सम्मिलत भी नहीं हो पायेंगे। हमारे लिये सुभद्रा का विवाह अनन्त काल तक एक यादव कन्या का अपमानजनक हरण का विषय बना रह जायेगा। पांडवों से हमारे सम्बन्ध सुधर नहीं पायेंगे और वे धर्म प्राण यौद्धा सदा के लिये हमसे पृथक हो जायेंगे परन्तु दूसरी स्थिति में हम जान पायेंगे कि सुभद्रा अर्जुन को पाकर प्रसन्न है या नहीं। यदि वह प्रसन्न है तो हम उसके विवाह में सम्मलित होंगे। हम उस समारोह में भागी होंगे। यह प्रसंग हमारे लिये अपहरण का अपमान लिये हुये नहीं होगा, उत्सव और समारोह का अवसर होगा। पांडवों से हमारे सम्बन्ध बिगडेंगे नहीं और अधिक घनिष्ठ होंगे। परिणाम यह होगा कि जम्बू द्वीप में धर्म राज्य की स्थापना करने में वे हमारे सबसे बडे सहायक होंगे।

उग्रसेन बोले यह सब सुनकर मुझे लगता है कि हम अर्जुन को जामाता के रूप में स्वीकार करें इसी में सुभद्रा का हित है और यादवों का कल्याण। कृष्ण बोले मैं तो कहता हूं कि आप लोग जाइये और उसे मान सम्मान के साथ द्वारिका ले आइये। यदि आप लोगों को वह हरा कर इन्द्रप्रस्थ पहुंच गया तो सारे संसार के लिये द्वारिका हंसने का विषय बन जायेगा। यदि आप लोग यही चाहते है कि अपने अपने धनुष और तूणीर उठायें जाइये। बलराम ने कहा महाराज का विचार तो ठीक है किन्तु हम स्वयं को दुर्बल पाकर एक अत्याचारी के अधर्मपूर्ण कृत्य को स्वीकृति नहीं दे रहे न ? जिन यादवों ने कंस, जरासंध तथा काल यवन जैसे अत्याचारियों के आगे सिर नहीं झुकाया वे अर्जुन की उदंडता को इसलिये स्वीकार कर लें कि वह अपनी धर्म विद्या के बल पर हम पर भारी पडता है। अक्रूर बोला हम स्वयं को दुर्बल पाकर अधर्म के तो नतमस्तक नहीं हो रहे है ना ? कृष्ण बोले कभी नहीं। मैंने अर्जुन से युद्ध करना इसलिये अस्वीकार नहीं किया कि मैं उससे अक्षम हूं। मैं युद्ध से इसलिये विमुख हुआ कि युद्ध मात्र हमारा अहंकार होगा। धर्म अर्जुन की ओर है इसलिये मैं उससे युद्ध करना नहीं चाहता। मैं धर्म के विरुद्ध लडना नहीं चाहता क्योंकि जहां धर्म है वही जय भी है। वसुदेव बोले कृष्ण से अधिक धर्म के मर्म को कोई नहीं जानता इसलिये मैं कृष्ण के वचन को प्रमाण मानकर यह स्वीकार करता हूं कि अर्जुन का कृत्य पापपूर्ण नहीं है। उसने कोई अधर्म नहीं किया है इसलिये हमें उसके विरुद्ध शस्त्र उठाने की कोई आवश्यकता नहीं। उग्रसेन ने अपना निर्णय दिया तो ठीक है। हमारे यौद्धा तीव्रगामी अश्वों को लेकर अर्जुन के पीछे जायें और अर्जुन तथा सुभद्रा को ससम्मान द्वारका ले आयें। द्वारका में उनका विवाह हो। विवाह के पश्चात वे लोग द्वारका में जितना दिन रहना चाहे रहें और जब अर्जुन सुभद्रा को लेकर इन्द्रप्रस्थ पहुंचे तो यादव वीर उनके सम्मान के योग्य उपहार इन्द्रप्रस्थ ले जाये और इस सम्बन्ध को और अधिक पुष्ट करें। सभी ने अपने अपने अस्त्र डाल दिये।

बलराम बोला मैं जानता था कि यदि कृष्ण को बोलने का अवसर मिला तो यह हम सबको चुप करा देगा। अब आप लोग जाइये और दामाद को बहला कर ले आइये।

बिगडी बात संवारना, सांवरिया की रीत, पार्थ सुभद्रा मिल गये हुई प्रेम की जीत।

जब श्रीकृष्ण को दाऊ ने कह दिया जवाई राज को लिवा लावो तो झगडा ही समाप्त हो गया। गदा रख दिये गये। कन्धों से धनुष और तूणीर उतार दिये गये। वहां का वातावरण का सारा तनाव समाप्त हो गया और वसुदेव के घर सुभद्रा के हांथ पांव मे महावार लग गई और वातावरण सुहाग की सुगन्ध से दमक गया। सुभद्रा के माथे पर चांद का टीका लग गया और कलाइयों में चूडियां खनकने लगी और श्रीकृष्ण की मुस्कुराहट की छवि। सुभद्रा वर माला लेकर अर्जुन की तरफ चल पडी। द्वारिका में अर्जुन और सुभद्रा का विधिवत धूम धाम से विवाह हुआ। अर्जुन द्वारिका में अपने कक्ष के गवाक्ष में खडे सागर की लहरों को देख रहा था। कैसा विचित्र आकर्षण था इन लहरों में कि एक बार मनुष्य इन्हे देखना आरम्भ करता है तो बस उसे देखते ही रहता है न जाने कहां से इस अनन्त सागर के किस छोर से यह लहरें उठती है और फिर तट पर उसी में विलीन हो जाती है। सागर की ये लहरें भी समय के समान ही थी। जाने हमारा भविष्य कहां उगता है और अनंत काल की कितनी ही यात्रा करके हमारे सामने तभी प्रगट होता है जब वह हमारा वर्तमान बन जाता है और फिर अतीत बनते बनते उसी महाकाल में जाने कहां समा जाता है। कैसा संयोग था कि अर्जुन द्वारिका आया और वहां सुभद्रा भी उसे मिल गई। कैसे अर्जुन का मन सुभद्रा पर मुग्ध हो उठा। यह सब तो कृष्ण की ही योजना थी। ना जाने कृष्ण किसी के जीवन की योजनायें कब बनाते है और कैसे बनाते है? काल को उनकी आज्ञा का पालन करना पडता है।

कृष्ण और रुक्मिणि अर्जुन से मिलने उसके कक्ष में आये। अर्जुन बोला अब बहुत दिन हो गये मुझे अब आगे की यात्रा के लिये चल पडना चाहिये केशव। कृष्ण बोले अभी तो इन्द्रप्रस्थ से तुम्हारे निष्कासन का समय भी पूरा नहीं हुआ। तुम्हे निष्कासन का शेष समय कहीं न कहीं तो व्यतीत करना ही है तो फिर द्वारका में रहना क्या बुरा है ? अधिकांश समय तुमने तपस्या और तीर्थों में बिताया है। किन्तु अब तुम कोई अकेले नहीं हो। तुम्हारे साथ सुभद्रा भी है। हम लोग नहीं चाहेंगे कि तुम वन वन भटकते रहो और किसी एक स्थान पर एकान्त में समाधि लगाकर बैठ जाओ और सुभद्रा पत्थरों और वृक्षों से अपना सिर फोडती रहे। जितना समय उचित समझो द्वारका में व्यतीत करो फिर यदि तुम जाना ही चाहो तो यहां से पुष्कर चले जाओ और फिर इस प्रायश्चित यात्रा का बचा हुआ समय वहीं पुष्कर में व्यतीत करो ताकि तुम्हारी साधना भी होती रहेगी और सुभद्रा को भी अधिक कष्ट नहीं उठाना पडेगा। अर्जुन बोला हां कृष्ण ठीक है। कृष्ण बोले किन्तु मेरी बात पर भी गौर करना। अब इन्द्रप्रस्थ का राज्य इतना नगण्य और महत्वहीन भी नहीं रहना चाहिये कि उनके अपने सग्गे सम्बन्धी पांचालों और यादवों को भी उन्हे अपना सम्बन्धी मानने में संकोच हो। धर्मराज के राजा बनने का लाभ प्रजा को मिले। सारे जम्बूद्वीप में अन्याय समाप्त करके धर्मराज्य की स्थापना की प्रेरणा इन्द्रप्रस्थ से मिले इसके लिये इन्द्रप्रस्थ को शक्तिशाली और समृद्ध बनाओ। द्वारका को ही देखो। यादव अब किसी से भयभीत भी नहीं है। अब वे साधारण कृषक या पशुपालक भी नहीं है। अब वे स्वतन्त्र हैं। महाराज उग्रसेन का शासन तो उनपर नाममात्र का ही हैं। इन किसानों के पास विशाल भूखंड हैं। भूमि उपजाऊ है तथा जल का भी कोई अभाव नहीं हैं। वे स्वेच्छा से मनमानी फसले उपजा सकते हैं। बाडों में पर्याप्त पशुधन है। असंख्य गोधन है। योजनों तक फैली गोचर भूमि है। तरह तरह के उद्योग है। उद्योगों की कोई कमी नहीं हैं। प्रत्येक घर में कोई न कोई उद्योग हो रहा है। सागर तट पर बसे होने से विभिन्न देशों के व्यापारियों से व्यापार कर लेते हैं। सागर में उनकी बडी बडी नौकायें और जलपोत यात्री और माल वाहक चलते हैं। द्वारका में अपार सैन्य शक्ति है। वे भयभीत नहीं है। यही एक समृद्धिशाली देश की आवश्यकता होती है। समृद्धि ही तो सौभाग्य बनता है। अर्जुन बोला यह सब तुम्हारे अकलान्त प्रयत्नों का परिणाम है। कृष्ण बोले अर्जुन यही तो सृष्टि का रहस्य है। आततायी के भय से मुक्त होकर मनुष्य स्वयं ही आततायी बनने की प्रक्रिया आरम्भ कर देता है। अपने कष्टों से

मुक्त होकर वह दूसरों के कष्टों के प्रति असंवेदनशील हो जाता है। दूसरों के शासन से मुक्त होकर वह स्वयं दूसरों पर शासन करने की आकांक्षा करने लगता है। यादवों को भी अब धर्म के स्थान पर धन दिखाई देने लगा है। वे सभी अब तपस्या से अधिक महत्व भोग को देने लगे है। अब मेरे ही परिवार में अर्जुन और दुर्योधन समान कसौटी पर तुलने लगे हैं। वैभव के आधिक्य के कारण दुर्योधन अधिक वरण योग्य लगता है। अर्जुन बोले इसमें उनका क्या दोष है मधुसूदन। कन्या का विवाह करने से पहिले परिवार जन वर की धन सम्पत्ति के विषय में विचार तो करते ही हैं ?

कृष्ण बोले मैंने यह तो नहीं कहा कि वे विचार न करें। विचार करना चाहिये वर की योग्यता पर, उसके कुल शील पर, सभ्यता और संस्कृति के घराने पर, उसके चरित्र और आचरण पर, उसकी शिक्षा दीक्षा और कौशल पर और यह भी देख ले कि उसकी कन्या को पतिगृह में धर्म का मार्ग मिलेगा या अधर्म की राह पर चलना पडेगा। मैं दूसरों पर शासन करने का समर्थक नहीं हूं अर्जुन परन्तु स्वयं दूसरों के शासन से मुक्त होने की इच्छा तो सत्त्वगुणी है। स्वशासन तो सांसारिक इच्छा नहीं है। धर्म का राज्य होगा तो प्रत्येक व्यक्ति स्वशासित होगा। जिन्हे राज्य में आसक्ति होगी वस्तुत: वे धर्म शासन कर ही नहीं सकते। वे अपना स्वार्थ देखेंगे, भोग देखेंगे। यादवों में स्वतन्त्रता भी है और प्रतिद्वन्दता भी। यदि द्वारिका के राज्य का विस्तार हुआ तो साम्राज्य का विस्तार होगा, धर्म राज्य का नहीं। वह राज्य दूसरों के अधिकार हनन के लिये होगा, धर्म की स्थापना के लिये नहीं। मुझे सबसे प्रेम है किन्तु आसक्ति किसी में भी नहीं है। मेरी आसक्ति केवल धर्म में है। यदि यादवों ने अब और अधिक ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया तो अब उसमें उनका हित नहीं है और न ही वे धर्म पालन कर पायेंगे। प्रेम को इतना संकीर्ण मत समझो कि वह मोह अथवा आसक्ति का पर्याय बन जाये। शासन का अधिकार केवल उसे ही है जिसे शासन में आसक्ति नहीं हो, जो भोग के लिये वैभव विलास के लिये अपने अधिकार और अहंकार के लिये शासन नहीं करता। शासन करता है तो केवल धर्म स्थापना के लिये और धर्म के लिये क्षणभर में सम्पूर्ण संसार का साम्राज्य त्याग सकता है और इस दायित्व के लिये धर्मराज युधिष्ठिर से अधिक उपयुक्त और कोई व्यक्ति नहीं है।

विवाह के पश्चात कुछ दिनों तक द्वारिका में कृष्ण के साथ रहकर अर्जुन सुभद्रा को लेकर शेष समय पुष्कर तीर्थ में बिता कर बारह वर्ष पूरा होने पर इन्द्रप्रस्थ में आये। कुन्ती के चरण स्पर्श किये सुभद्रा ने। सर्वांग सुन्दरी पुत्र वधू को देखकर कुन्ती ने आशीर्वाद दिया। कुन्ती की आंखों में उमडी हुई अथाह ममता को पहिचाना सुभद्रा ने। वहां तो स्वीकृति ही स्वीकृति थी। अस्वीकार तो था ही नहीं। कुन्ती बोली इस घर में तुम्हारा स्वागत है बहू। सम्बन्ध तो हमारा पहिले भी था किन्तु अब तो वह और प्रगाढ़ हो गया। तुम मेरे भाई वसुदेव की पुत्री हो। मैं मेरे भाई को स्नेह के प्रमाण स्वरूप कुछ दे न सकी परन्तु उसने तो सदा भाई के धर्म का निर्वाह किया। तुम उस कृष्ण की बहन हो जो सदा से हमारा सहायक रहा। हमारे राज्य का ही नहीं हमारे जीवन का भी आधार है। मेरे घर में एक से एक सुन्दर पुत्र वधू आई हैं किन्तु तुम तो तुम ही हो। तुम्हारे समान दूसरी कोई नहीं है। आज से इस घर को अपना मानकर यहां अधिकार पूर्वक रहो और अपने धर्म का निर्वाह करो। बडों का आदर करो, छोटों को स्नेह दो। तुम भी पाओगी कि वे सब तुमसे कितना प्रेम करते हैं। युधिष्ठिर यहाँ का राजा है क्योंकि वह सब में बडा है किन्तु अधिकार का भोग सारे भाई समान रूप से ही करते हैं। मेरे सारे पुत्र अपने अपने गुणों के कारण महत्वपूर्ण है किन्तु फिर भी अर्जुन उनमें विशिष्ट है। तुम उसकी पत्नी हो अत: तुम्हारा भी यहां विशेष महत्व है। तुम हमारे कुल की सौभाग्य हो अत: इस कुल से कभी रुष्ट मत होना। कोई भी किसी भी प्रकार की असुविधा हो तो अपने पति को अवगत कराना। और फिर भी यदि असुविधा दूर न हो तो नि:संकोच मेरे पास आना और मुझे बताना। यद्यपि मेरे पास कोई अधिकार तो नहीं है किन्तु मेरे सब पुत्र मेरे प्रति अपने स्नेह के कारण मेरा कहना कभी नहीं टालते। कुन्ती ने सुभद्रा का माथा चूमा और अपने वक्ष से लगा लिया। अर्जुन बोला माते यदि सारा वात्सल्य बहूपर ही उडेंल देगी तो फिर मेरे लिये क्या बचेगा ? मैं भी तो यहीं खडा हूं तुम्हारे आशीर्वाद के लिये। कुन्ती मुस्कुराकर बोली वात्सल्य की कोई निश्चित मात्रा तो होती नहीं और फिर यह तेरी ही पत्नी है। इसे

दिया गया वात्सल्य भी तुम्हारे लिये ही है। पति-पत्नी में तो किसी प्रकार का विभाजन होता ही नहीं। स्वयं को पत्नी को समग्रता से सौपेंगे तो ही पत्नी की सम्पूर्णता पाओगे। अर्जुन ने कुन्ती के चरण स्पर्श किये। कुन्ती ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद देकर कहा जा अपने भाइयों से मिलकर पांचाली से मिल।

सुभद्रा का हरण आसान था परन्तु द्रौपदी से उसका परिचय करवाना जान लेवा काम है और सुभद्रा, उलूपी या चित्रागंदा नहीं थी कि जो द्वारिका में छोड आता। सुभद्रा तो एक मान पत्र की भांति थी जिसे द्वारिका में छोडकर यदुवंशियों का अपमान अर्जुन नहीं कर सकता था। जाहिर है कि ये वो बातें नववधू को नहीं बता सकता था। उसने सोच लिया कि यह समस्या इन्द्रप्रस्थ पहुंचने पर स्वयं अपना समाधान खोज लेगी तो अर्जुन ने युधिष्ठिर के चरण स्पर्श किये, भीम से भी आशीर्वाद पाया। नकुल और सहदेव को गले लगाया। परन्तु इन भाइयों ने इस विषय में सहायता करने से साफ इन्कार कर दिया।

पांचो भाई अपने भवन की बैठक में बैठे है और आपस में चर्चा कर रहे है। युधिष्ठिर ने कहा तुम्हारी समस्या गम्भीर है प्रिय अर्जुन परन्तु मैं बीच में नहीं पड सकता। भीम बोला यही तो मैं भी सोच रहा हूं। नकुल ने कहा हम आपकी सहायता कर भी क्या सकते है ? सहदेव बोला पितामह की सहायता लीजिये। युधिष्ठिर बोले उन्होने तो आजीवन ब्रह्मचर्य की शपथ ले रखी है तो वे भला वैवाहिक जीवन की समस्याओं में क्या सहायता करेंगे ? मेरे विचार में तो प्रिय अर्जुन तुम अकेले ही जाओ द्रौपदी के पास कदाचित कोई उसकी बात से ही कोई उपाय निकल आये।

द्रौपदी को अपने कक्ष में लेटे लेटे सारी सूचनायें मिल रही थी। अर्जुन और सुभद्रा द्वारिका से चलकर पुष्कर में पहुंचे हैं। पुष्कर से प्रयाण कर वे इन्द्रप्रस्थ में पांडव भवन में आ गये है किन्तु द्रौपदी का मन बोझिल होते जा रहा था। उसमें एक बार भी उत्साह नहीं जगा कि बारह वर्षों के बाद आज अर्जुन लौटा है तो उसका स्वागत करे। वह अर्जुन से रूष्ट हो रही थी किन्तु उससे विरक्त नहीं। इस रोष का आधार तो अर्जुन के प्रति द्रौपदी की अपनी आसक्ति थी। आसक्ति उसे अर्जुन से दूर नहीं जाने देती और रोष उसे उसके निकट नहीं आने देता। वह इतनी रूष्ट क्यों हो रही है अर्जुन से ? उसके स्वयं के भी तो पांच पति है फिर इन्ही सारे अन्य भाइयों ने भी तो और विवाह किये है। पर द्रौपदी का विवेक जानता था कि उसे अर्जुन से रूष्ट होने का कोई अधिकार नहीं है। अर्जुन दोषी नहीं है। उसने तो बारह वर्ष तक निष्कासन स्वीकार किया था और आज लौटा है। वह अर्जुन को किसी के साथ बांट तो नहीं सकती। दासी ने सूचना दी महारानी राजकुमार धनंजय आ रहे हैं। अर्जुन ने द्रौपदी के कक्ष में प्रवेश किया। द्रौपदी बोली आपने यहां आने का कष्ट कैसे उठाया। जाइये। द्रौपदी के आक्रोश का वेग नहीं रूका और बोली क्या करने आये हो आप यहां ? अपनी उस नई नवेली के पास क्यों नहीं जाते ? अर्जुन को भी द्रौपदी के रोष की आशंका तो थी परन्तु अपने इस प्रकार के उपेक्षित स्वागत की नहीं। अर्जुन बोला मेरी बात तो सुनो पांचाली। द्रौपदी बोली मुझे पता है तुम्हे यह प्रायश्चित यात्रा बहुत रास आई है। जिस किसी नगर में गये हो वहां एक एक पत्नी बनाकर छोड आये हो और अब सुभद्रा को साथ ही लिवा लाये हो। अर्जुन बोला कृष्णा यह तुम्हारी उपेक्षा नहीं है। तुम अब भी मेरी हृदयेश्वरी हो। चाहे कितनी भी नई नवेलियाँ आ जाये परन्तु तुम्हारा स्थान कोई ले ले, सम्भव ही नहीं है। फिर भी यदि तुम मुझे अपराधी मानती हो तो मैं क्षमा प्रार्थी हूं। सोचो तुमसे वियुक्त होने पर ही उलूपी मुझे लुभा सकी पर वह साथ नहीं आई। मेरी स्थिति को तो समझो। चित्रागंदा के लिये मेरे मन में चीत्कार किया पर उसने भी साथ नहीं निभाया। सुभद्रा ने लुब्ध किया। तुम्हारे अभाव की पूर्ति करता रहा किन्तु तुम्हारा स्थान किसी को नहीं दिया। द्रौपदी अत्यन्त कठोर हो बोली आर्यपुत्र पहली गांठ चाहे कितनी भी मजबूत क्यों न हो जब उसके ऊपर दूसरी गांठ पड जाती है तो पहली गांठ किसी न किसी मात्रा में शिथिल हो जाती है। ओह कुन्ती पुत्र यदि तुम्हारा हृदय सारा का सारा मेरा ही है और उसमें तनिक भी स्थान सुभद्रा के लिये नहीं है तो फिर उससे विवाह किया ही क्यों? क्यों किया उसका हरण ? क्यों लाये उसे इन्द्रप्रस्थ में ? वह कृष्ण की बहन है तो क्या वह मेरी सौत हो गयी ? मेरे समकक्ष होकर मेरी समता करेगी? मेरी सपत्नी होकर रहेगी वह यादव कन्या। क्या वह तुम्हे मेरे साथ बांटने आई है ? अर्जुन बोला कृष्णा मैं

अपनी भूल समझ रहा हूं। उसके लिये लज्जित भी हूं। आशा है मुझे क्षमा करोगी। तुम्हे रूठने का पूरा अधिकार है पांचाली और तुम्हे मनाना मेरा कर्तव्य भी है परन्तु। द्रौपदी बोली पति और पत्नी के बीच परन्तु जैसे शब्दों के लिये कोई स्थान नहीं होता कुन्ती पुत्र। अभी जाइये क्योंकि अपमान का विष जो आपने मुझे पिलाया है उसने मेरे हृदय पर कडवाहट की एक रेखा खींच दी। जब मेरी जीभ से विष का स्वाद चला जायेगा तब कदाचित मैं अपने कक्ष में आपका स्वागत करने योग्य हो जाऊंगी। अर्जुन परन्तु पांचाली। द्रौपदी ने अर्जुन को हाथ जोड दिये और कक्ष से निकल जाने का संकेत किया और स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अर्जुन वहां से धीरे-धीरे द्वार की ओर चल कर कक्ष से बाहर निकल गया।

अर्जुन सुभद्रा के कक्ष में आया सुभद्रा के पास। सुभद्रा अर्जुन से बोली मैं कब से बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही हूं। मुझे दीदी से कब मिलवाइयेगा ? अर्जुन बोला यही तो सोच रहा हूं कि कब ले चलूं ? कृष्ण का कहा याद आता है। ग्वालिन के वस्त्र धारण करो और द्रौपदी के पास तुम स्वयं जाओ। प्रिये वही हुआ जिसकी आशंका मेरे मन में थी। पांचाली अभी तक रूष्ट है उसे मनाना होगा। सुभद्रा बोली मैं किसी से स्पर्धा करने नहीं आई हूं और न ही किसी की प्रसन्नता छीनने। वे बडी है, हर प्रकार योग्य है, सुन्दर है, गुणवती है। वे आपके प्रति निष्ठावान है। मैं प्रतिमा की पूजा करती हूं और वरिष्ठता का सम्मान। सुभद्रा ने घाघरा चोली पहनकर ग्वालिन का वेश बनाया और नि:संकोच द्रौपदी के कक्ष की ओर चली।

सेविका ने आकर सूचना दी कि यशोदा नन्दन कृष्ण की बहिन सुभद्रा आपके दर्शनों की अभिलाषी है। द्रौपदी बोली यह क्यों नहीं कहा तुमने रानी सुभद्रा आना चाहती है ? क्या तुम यह नहीं जानती वो कौन है ? दासी बोली जानती हूं महारानी परन्तु उन्होने अपना यही परिचय देने को कहा है। द्रौपदी ने कहा बुलाओ ? दासी बोली जो आज्ञा। सुभद्रा द्रौपदी के कक्ष में आई और चरणस्पर्श कर बोली वासुदेव कृष्ण की छोटी बहिन सुभद्रा आपको प्रणाम करती है दीदी। द्रौपदी ने उसे पकड कर उठा लिया। द्रौपदी ने उस ग्वालिन का असाधारण सुन्दर रूप देखा। उसके मुखमंडल पर दीप्त तेज था। द्रौपदी ने पूछा क्या चाहती हो ? सुभद्रा ने कहा आपका आश्रय। द्रौपदी बोली क्यों ? मेरा आश्रय क्यों चाहती हो ? क्या तुम्हारा पति तुम्हे आश्रय देने में असमर्थ है ? सुभद्रा बोली जो स्वयं आपके द्वार का याचक हो महारानी वो भला मुझे क्या आश्रय देगा। द्रौपदी को रोमान्च हो आया और भावना से आंखे भीग गई। उसने सुभद्रा को अपनी भुजाओं में भर लिया और बोली वासुदेव की बहिन मेरी सौत नहीं हो सकती। मेरे भवन और मेरे हृदय में तुम्हारा स्वागत है चन्द्रमुखी। सुभद्रा बोली मुझे न तो आपके महल में रहना है और न ही आपके हृदय में। आपके हृदय में तो यों ही बहुत भीड भाड है मैं तो आपके चरणों में स्थान पाना चाहती हूं। द्रौपदी बोली कृष्ण की बहिन मेरी बहिन है और उसका स्थान मेरे चरणों में नहीं सदैव सदैव मेरे हृदय में होगा। तुम सुखी रहो। सुभद्रा बोली अपना घर छोड कर तुम्हारे भरोसे यहां आई हूं जीजी। निराश मत करना मुझे दीदी।

गंगा यमुना से मिली धारा एक अनमोल, द्रवित हो उठी द्रौपदी सुनकर मीठे बोल।

यहां से वो समस्या ही समाप्त हो गई और अग्निदेव ने प्रसन्न होकर वरूण से प्रार्थना की कि वे अर्जुन को पुरस्कृत करें और उनकी प्रार्थना सुनकर वरुण देव ने अर्जुन पर कृपा की।

युधिष्ठिर के पास सूचना आई कि द्वारिका से कृष्ण, बलराम, सारण, साह्यकि, अक्रूर, कृतवर्मा तथा अन्य लोग सुभद्रा के लिये अनेक उपहार लेकर आ रहे हैं। उनके स्वागत की तैयारियां भी शुरू हो गई। सारा परिवेश कन्या पक्ष और वर पक्ष के समारोहों का होगा। यादवों के शुभ आगमन का समाचार जानकर युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव को अगवानी करने के लिये भेज दिया। सारा इन्द्रप्रस्थ ध्वजाओं और झंडियों से सजाया गया। सडकों पर पानी का छिडकाव किया गया। चन्दन और अगरू की सुगन्ध चारों ओर फैल गई। सभी यादवोंने श्रीकृष्ण और बलराम के साथ पहुंच कर राजभवन में प्रणाम आशीर्वाद आदि उचित व्यवहार किये। सबकी यथायोग्य भाव भगत हुई। श्रीकृष्ण बलराम ने सुभद्रा के विवाह के उपलक्ष में बहुत सारा यौतुक (दहेज) आदि दिया। चार घोडों से युक्त चतुर सारथि सहित सुवर्णजटित एक हजार रथ, मथुरा देश की दुधार एवं पवित्र दस हजार गायें,

एक हजार सुवर्ण भूषित सफेद रंग की घोडी, एक हजार बढया खच्चरियां, सब प्रकार से योग्य हजारों दास दासियां, एक लाख घोडे, मूल्यवान वस्त्राभूषण तथा कम्बल आदि। दस भार स्वर्ण और एक हजार मौलिक मणि से युक्त मदमत्त हाथी दिये। युधिष्ठिर की तो सम्पत्ति बढ गई। सब लोग राजभवन में रहकर आमोद प्रमोद करने लगे। पांडवों के आनन्द का पारावार नहीं रहा। पांडवों का परिवार बढता गया। समय आने पर सुभद्रा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अभिमन्यु रखा गया। उसके जन्म के शुभ अवसर पर युधिष्ठिर ने दस हजार गायें, बहुत सारा सोना और रत्न, धन आदि का दान किया।

अभिमन्यु पांडवों को, श्रीकृष्ण को और पुरवासियों को बहुत प्यारे लगते थे। वेदाध्ययन के बाद उन्होने अर्जुन से ही धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की, चक्रव्यूह भेदन की रीति जानी। अभिमन्यु का अस्त्र कौशल देखकर अर्जुन को बडी प्रसन्नता हुई। वे बहुत से गुणों में तो श्रीकृष्ण के तुल्य थे। अभिमन्यु की शिक्षा कृष्ण की देखरेख में द्वारिका में हुई।

धर्मराज युधिष्ठिर ने शिबि के पौरव नरेश गोवासन की पुत्री देविका से विवाह किया। यह पत्नी उन्हे स्वयंवर से प्राप्त हुई इसे पौरवी भी कहते है इससे यौद्धेय नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। युधिष्ठिर को द्रौपदी से भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम प्रतिविन्ध्य था। ब्राह्मणों ने भविष्य वाणी की थी धर्मराज आपका यह पुत्र शत्रुओं का प्रहार सहन करने में विन्ध्याचल के समान होगा इसलिये इसका नाम प्रतिविन्ध्य होगा। एक-एक वर्ष के अन्तर में द्रौपदी के अन्य ४ भाइयों से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुये। भीमसेन ने एक हजार सोमयाग करके पुत्र उत्पन्न किया इसके लिये द्रौपदी के उस पुत्र का नाम सुतसोम हुआ। अर्जुन से बहुत से शुभ कर्म करने पश्चात लौटकर द्रौपदी से पुत्र उत्पन्न किया इसलिये उस बालक का नाम श्रुतकर्मा रखा गया। द्रौपदी से नकुल द्वारा एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम कुरुवंश के पूर्व राजा शतानीक के नाम पर रखा। द्रौपदी से सहदेव का एक पुत्र कृतिका नक्षत्र से हुआ इसलिये उसका नाम श्रुतसेन रखा। धौम्य मुनि ने इन बालकों के संस्कार विधिपूर्वक कराये। बालकों ने वेदपाठ समाप्त करके अर्जुन से दिव्य और धनुर्विद्या की अस्त्र शिक्षा प्राप्त की। इन सबसे पांडवों को बडी प्रसन्नता हुई।

महाबली भीम ने काशी की राजकुमारी बलन्धरा से विवाह किया उससे भीम को सर्वग नाम से एक पुत्र हुआ। नकुल की पत्नी है करेणुमती। यह शिशुपाल की पुत्री तथा धृष्टकेतु की बहन है उससे एक पुत्र नकुल को उत्पन्न हुआ। जिसका नाम था निरामित्र। शिशुपाल ने यह नकुल से विवाह कुछ तो नकुल के गुणोंपर रीझ कर और कुछ कृष्ण से शत्रुता निभाने के लिये किया था। धर्म के प्रति निष्ठा किसी भी व्यक्ति के प्रति निष्ठा से महान है। मनुष्य भूल कर करके ही आगे बढता है इसलिये भूल सुधार का अवसर उसे अवश्य मिलना चाहिये।

कृष्ण सात्यकि से बोले मुझे भय है कि तुम्हारा और कृतवर्मा का पारस्परिक विरोध कहीं आगे चलकर यादवों का विभाजन न कर दे। इन्द्रप्रस्थ में यादवों का आशातीत स्वागत हुआ। धौम्य मुनि ने मन्त्रोचारण कर सबकी अगवानी की अक्रूर ने युधिष्ठिर से पूछा क्या पृथा नहीं आई ? युधिष्ठिर बोले वे आपके आतिथ्य का प्रबन्ध अपने भवन में कर आपकी प्रतीक्षा कर रही है। कृष्ण बोले वैसे तो हमें ही अपनी बुआ के पास जाना चाहिये सुभद्रा और अर्जुन भी वहीं मिलेंगे। नकुल ने कहा आप लोग आइये चलने के लिये रथ तैयार है। युधिष्ठिर बोले यह सब तो कृष्ण की ही कृपा है जो इनकी सहायता नहीं होती तो न हमारा यह नगर बसता और न मैं यहां का राजा होता। उद्धव बोले यह तो आपकी उदारता और महानता है धर्मराज। हमारे लिये तो ऐसा सोचना भी पाप है। कुन्ती के भवन द्वार पर सबका स्वागत स्वयं सुभद्रा और अर्जुन ने किया। कृष्ण ने अर्जुन को अपनी भुजाओं में भर लिया। प्रद्युम्न, साम्व और चारुदेषण सब दौडकर अपनी बुआ सुभद्रा से चिपट गये। कुन्ती अक्रूर से मिली गले लगी। अक्रूर बोला पृथा अब तो तुम हमारी समधन हो गयी। कुन्ती बोली तो क्या अब मैं तुम्हारी बहन नहीं रही ? मैंने तो समझा अब हमारा सम्बन्ध और प्रगाढ होगा भैया और तुम यह क्या कहने लगे ? अक्रूर बोले इस घर में हमारी बहिन भी है, बेटी भी है। कुन्ती ने अपने भाई भतीजों से अपनी बहुओं का परिचय कराया। कुन्ती बोली इस द्रौपदी को तो तुम सब जानते ही हो। यह जो इन्दीवर के

समान श्याम वर्णवाली राजमहिला है यह काशी की राजकुमारी भीम की पत्नी बलन्धरा है। यह चम्पा के समान गौर वर्णवाली सुन्दरी महाराज द्युतिमान की पुत्री विजया है, यह सहदेव की पत्नी है। यह जो नीलकमल के समान श्याम वर्ण वाली कमलनयनी शिशुपाल की पुत्री करेणुमती है, यह नकुल की पत्नी है। कुन्ती ने सब वधुओं को कृष्ण का परिचय करवाया बोली इनसे तुम लोग नहीं मिले यह मेरा भतीजा कृष्ण है और बडा बलराम है। अच्छा बलभद्र भैया वसुदेव भाभी देवकी क्यों नहीं आये ? क्या उन्हें अपनी बहिन की याद नहीं आती ? कृष्ण ने उत्तर दिया वैसे तो आजकल वे कही भी आते जाते नहीं। वे आज भी बुआ तुम्हे अपनी बहिन के रूप में ही याद करते है इसलिये आज वे सुभद्रा की सास को उपहार देने वे नहीं आये। हम लोगों को जो भेज दिया।

अर्जुन और कृष्ण बैठे इन्द्रप्रस्थ में परस्पर चर्चा कर रहे थे। कृष्ण बोले निराकरण तो प्रत्येक समस्या का है। धर्म पर चलना परमपिता की आज्ञा पर चलना ही है पार्थ और आत्मरक्षा परम धर्म है। जिसे हम प्रेम कहते है कई बार वह मात्र हमारा मोह होता है। तपस्या का भी तो एक अहंकार होता है। कृष्ण बोले मेरी इच्छा है कि युयुधान, सात्यकि, प्रद्युम्न, साम्ब और चारुदेष्ण आदि इन्द्रप्रस्थ में रहकर तुम्हे अपना गुरु मानकर तुमसे धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करे। अर्जुन बोलो जैसी आपकी इच्छा। दूसरे दिन शेष सभी यादव कृष्ण के अतिरिक्त द्वारिका लौट गये। सिर्फ कृष्ण इन्द्रप्रस्थ में रहा। कृष्ण ने अर्जुन से कहा गोपनीयता, आकस्मिकता तथा त्वरित कर्म ये ही सफलता की कुंजी है। समझदार राजा वही होता है जो अपने शत्रु को भविष्य में कभी उठने योग्य ही न छोडे।

६९) खांडव वन का दाह

वैशम्पायन कहते है जनमेजय जैसे जीव शुभ लक्षणों और पवित्र कर्मों से युक्त मानवशरीर को प्राप्त कर सुख से रहता है और अपनी उन्नति करता है वैसे ही प्रजा धर्मराज युधिष्ठिर को राजा के रूप में पाकर सुख और शान्ति के साथ उन्नति करने लगी। उनके राज्यकाल में सामन्त राजाओं की राज्य लक्ष्मी अविचल हो गयी। प्रजा की वृद्धि अन्तर्मुखी हो गई, चारों ओर धर्म का बोलबाला हो गया। जैसे पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा को देखकर लोगों के मन और नेत्र शीतल हो गये। वैसे ही सम्पूर्ण प्रजा राजा युधिष्ठिर के दर्शन से आनंदित हो उठी। प्रजा युधिष्ठिर को केवल राजा मानकर ही आनंदित नहीं होती थी बल्कि वे कार्य भी ऐसे करते थे जो प्रजा को अभिष्ट थे। धर्मराज कभी अनुचित, असत्य अथवा अप्रिय वाणी नहीं बोलते थे। वे सदा प्रजा की भलाई चाहते थे। इसप्रकार पांडव अपने तेज से समस्त राजाओं को सतृप्त करते हुये आनन्द से रहते थे।

एक दिन अर्जुन की प्रेरणा से श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर यमुना के पावन पुलिन पर जल विहार करने के लिये गये। वहां उन लोगों की सुख सुविधा के लिये विहार भूमि सुसज्जित कर दी। उस समृद्धि सम्पन्न वन्य प्रदेश और उसके विश्राम भवन में वीणा, मृदंग आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि हो रही थी। कृष्ण और अर्जुन ने वहां बडी प्रसन्नता के साथ आनन्दोत्सव मनाया। दोनों मित्र पास ही पास बहुमूल्य आसनों पर बैठे हुये थे। उसी समय एक लम्बे डीलडौल के ब्राह्मण वहां उपस्थित हुये। उनका शरीर मानो तपाया हुआ स्वर्ण समान था। सिरपर पिंगल वर्ण की जटायें, दाढी मूंछ और शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण किये था। इस तेजस्वी ब्राह्मण को देखकर कृष्ण और अर्जुन उठ खडे हुये। ब्राह्मण को प्रणाम कर अर्जुन ने पूछा ब्राह्मण देवता आपने कैसे कष्ट किया ? ब्राह्मण बोला आप दोनों संसार के श्रेष्ठ वीर और महापुरुष हैं। मैं एक बहुभोजी ब्राह्मण हूं। भूखा हूं। भोजन चाहता हूं तृप्त कर पाओगे ?

कृष्ण और अर्जुन ने पूछा कि आपकी तृप्ति किस प्रकार के अन्न से होगी ? ब्राह्मण ने कहा मैं अग्नि हूं मुझे साधारण अन्न की आवश्यकता नहीं है। आप मुझे वहीं हविष्य दीजिये जो मेरे योग्य है। यह खांडव वन पहले किसी समय अत्यन्त भयंकर राक्षसों तथा दैत्यों का घोर आश्रम स्थल था। मैंने इस वन को जलाकर इस स्थान को उनसे खाली कराया था। किन्तु मेरे प्रति अपने विरोध के कारण इन्द्र ने पुन: यह वन स्थापित कर लिया। लोगों को यहां बसने की सुविधा प्रदान की और आज फिर यह खांडव वन षडयन्त्रों और अपराधों की भूमि है। यहां तो प्रत्येक कण से भी सावधान रहना चाहिये।

मैं खांडव वन को जला डालना चाहता हूं परन्तु इस वन में तक्षक नाग अपने परिवार और मित्रों के साथ रहता है और वह इन्द्र का मित्र है। इसलिये इन्द्र सदैव इस वन की रक्षा में तत्पर रहते हैं। जब जब मैं इस वन को जलाने का प्रयत्न करता हूं तब तब वह अपने बादलों को आज्ञा देकर जल की धाराओं से मुझपर वर्षा कर देते हैं जिससे मेरी लालसा पूरी नहीं हो पाती। आप दोनों अस्त्र विद्या के पारदर्शी है। इसलिये आप लोगों की सहायता से मैं इसे जला सकता हूं। मैं आप लोगों से यही याचना करने आया हूं। वैशम्पायन ने कहा जनमेजय प्राचीन समय की बात है एक बडा ही शक्तिशाली और पराक्रमी श्वेतकि नाम के प्रसिद्ध राजा हुये। उन दिनों वैसा यज्ञप्रेमी दानवीर और बुद्धिमान कोई राजा नहीं था। उसने कई बडे बडे यज्ञ किये। उसके यज्ञ करते करते सभी ऋतिज गण थक गये, ऊब गये और कभी कभी तो अस्वीकार कर के भी चले जाते परन्तु राजा का यज्ञ तो चलता ही रहता। वह अनुनय विनय करके और दान दक्षिणा दे देकर ब्राह्मणों को प्रसन्न रखता था। अन्त में जब सभी ब्राह्मण यज्ञ करते करते हार थक गये तब राजा ने तपस्या के द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न किया और उनकी आज्ञा से दुर्वासा ऋषि के द्वारा महान यज्ञ करवाया। पहिले बारह वर्ष और फिर सौ वर्ष के महायज्ञ में पर्याप्त दक्षिणा दे देकर राजा ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। दुर्वासा प्रसन्न हुये। राजा श्वेतकि अपने सदस्यों और ऋत्विजों के साथ स्वर्ग सिधारे। उस यज्ञ में बारह वर्ष तब अग्नि देव ने घी की अखंड धारायें पान की। इससे अग्नि की पाचन शक्ति क्षीण हो गई और अग्नि का रंग फीका पड गया तथा प्रकाश भी मन्द हो गया। अग्नि को अजीर्ण हो गया जिससे अंग अंग ढीला हो गया। तब अग्नि ने ब्रह्मा के पास जाकर प्रार्थना की कि कोई आप ऐसा उपाय करे जिससे मैं पहले की तरह स्वस्थ हो जाऊं। ब्रह्मा ने कहा अग्निदेव तुम पीलिये के रोग से ग्रसित हो। यदि तुम खांडव वन को जला दो तो तुम्हारी रूचि और अजीर्ण दूर हो जायेंगे और तुम्हारी ग्लानि भी मिट जायेगी। वहां से आकर अग्निदेव ने सात बार खांडव वन को जलाने का प्रयत्न किया पर वे सफल नहीं हो सके। अब अग्नि निराश हो दुबारा ब्रह्मा के पास गये तब उन्होने कृष्ण और अर्जुन की सहायता से खांडव वन जलाने का उपाय बतलाया और अग्निदेव ने भी यमुना तट पर आकर कृष्ण और अर्जुन को पूर्वोक्त बातें कहीं।

अर्जुन ने कहा इन्द्र हमारे मित्र हैं। आप जानते होंगे कि इन्द्रप्रस्थ के निर्माण में इन्द्र ने हमारी पर्याप्त सहायता की थी। उन्होने देवशिल्पी विश्वकर्मा को इस कार्य के लिये भेजा था नहीं तो कदाचित इन्द्रप्रस्थ का निर्माण ही नहीं हो पाता। आप यह भी जानते होंगे हमने इन्द्र के इस उपकार को स्वीकारने के लिये ही अपने नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा है। अग्नि ने कहा किन्तु तुम क्या यह जानते हो कि तुम्हारे इन सम्बन्धों के बावजूद इन्द्र ने तुम्हारे शत्रु तक्षक को यहां खांडव वन में शरण दे रखी है और लगातार वह उसकी सहायता कर रहा है। मैंने सात बार खांडव वन को दाह करने का प्रयत्न किया पर असफल रहा। इन्द्र से बार बार पराजित होकर मैं तेजहीन और निष्क्रिय हो गया हूं। देव कुल का इन्द्र होकर भी मुझसे शत्रु जैसा व्यवहार करता है और तक्षक नाग की सहायता करता है। तक्षक जैसे दुष्ट तथा दुस्साहसी को इस प्रकार संरक्षण देने का क्या अर्थ ? इसमें क्या प्रयोजन है इन्द्र का ? इस वन में आश्रय पाये हुये अन्य दैत्य, निशाचर, राक्षस और यातुधान सभी निम्न कोटि के अपराध कर्मी और अधर्मी हैं। उन लोगों के आसपास योजनों तक धर्म का अंकुर नहीं उपज सकता। फिर भी इन्द्र उनकी रक्षा कर रहा है। उनका पोषण कर रहा है क्यों ? वह किसके विरुद्ध उनका उपयोग करना चाहता है ? क्यों करना चाहता है ? मेरी चिन्ता छोड दो। अपनी और अपनी प्रजा के हित के बारे में सोचो। यदि ये क्रूरपापी तुम्हारे पडोस में बसेंगे तो क्या तुम्हारी प्रजा सुखी रह सकेगी ?

कृष्ण ने अग्नि से कहा महाशक्तियों का छल छन्द किसी से भी छिपा नहीं है। वे कितनी भी सहायता करे, कितने भी प्रेम और सौहार्द्र का प्रदर्शन करे परन्तु उनका कोई भी कार्य नि:स्वार्थ नहीं होता। आप इन्द्र के विरुद्ध हमारी सहायता करेंगे तो इन्द्र के बल को तोडने के पश्चात आप अपना शक्तिशाली स्कन्धावर करेंगे फिर इन्द्र के समान अपने किन्ही भयंकर गणों को यहां बसाना चाहेंगे तो हमारा क्या हित होगा ? आधिपत्य चाहे इन्द्र का हो या आपका हो तो भी हमारी सत्ता और स्वतन्त्रता उतनी ही

बाधित होगी और कौन जाने आप अपने जिन गणों को हम पर आरोपित करे, शायद वे इन दुष्टों से भी अधिक भयंकर हो। अग्नि बोला देव शक्तियों से तुम यह अपेक्षा नहीं कर सकते किन्तु कभी यदि ऐसा हुआ तो तुम पुन: इन्द्र की सहायता से मेरे विरुद्ध अभियान कर सकने को स्वतन्त्र हो। अब इससे न तो कोई इन्द्र समाप्त हो जायेगा, न उसकी सत्ता और न ही उसकी अधिकार लिप्सा। खांडव वन न तो मेरा शत्रु है और न तुम्हारा। वह तो एक अत्यन्त लाभकारी वन था। हमारे लिये यह हानिकारक तब बना जब वह मानवता के शत्रु इन अपराधियों का गढ बना। यदि इन्द्र उन्हे इस वन से सुरक्षित निकाल ले गया तो खांडव वन तो व्यर्थ ही जल जायेगा। हमारा लक्ष्य तो इन अपराधियों का विनाश है, खांडव दाह नहीं। बोलो क्या मेरी सहायता करोगे पार्थ? अर्जुन ने अग्नि से कहा मैं समझता हूं कि इतने बडे अभियान के लिये हमारे पास उपयुक्त शस्त्र अस्त्र नहीं है। अग्नि ने कहा समझदार राजा वो होता है जो अपने शत्रु को भविष्य में कभी उठने योग्य ही नहीं रखे। विलम्ब किसी का भी सहायक नहीं होता। अर्जुन बोला इस अभियान के लिये जिस प्रकार के रथ की आवश्यकता है वह हमारे पास नहीं है। मुझे एक शक्तिशाली और वेगवान रथ की आवश्यकता है। मेरे पास दिव्य और उत्तम अस्त्र है परन्तु उनके संधान के लिये मेरे बाहुबल को सह सकनेवाला धनुष नहीं है। कृष्ण के पास भी उनके बल पराक्रम के अनुसार कोई उपयुक्त आयुध नहीं है। हे देव अग्नि पुरुषार्थ से जो कार्य हो सकते है उसके लिये हम प्रस्तुत है किन्तु साधनों का अभाव... ?

अग्नि ने कहा मैं तुम्हें गांडीव धनुष देता हूँ अर्जुन जो सर्वश्रेष्ठ धनुष है और धनुषों में रत्न है। यह धनुष मुझे तुम्हारे लिये वरुण से प्राप्त हुआ है। वरुण भी इन्द्र के शोषण से अत्यन्त पीडित है। असहाय होने से वह कुछ नहीं कर सकता किन्तु मन से पूर्ण रूपेण वह हमारा सहायक है। मुझे अकेला मत समझो। मैं तुम्हारे लिये दिव्य अश्वों से जुडा रथ भी लाया हूं। अग्नि का संकेत पाते ही उसके अनुचर एक विशाल रथ लाए उसमें जुते हुये घोडों का वर्ण ज्योत्स्ना के समान धवल उज्ज्वल था। उनकी कान्ति धवल मेघों समान थी। रथ का आकार अत्यन्त विशाल था और उसमें विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों का भंडार था। उससे कभी न समाप्त होनेवाला अक्षय तूणीर था। रथ का ध्वजदंड सुवर्णमय तथा सुन्दर था। ध्वज पर सिंह और व्याघ्र के समान भयंकर आकृति वाले एक दिव्य वानर हनुमान का जीवन्त चित्र था। वरुण की दी हुई कौमोदकी गदा अग्नि ने कृष्ण को प्रदान की। कृष्ण बोले हम प्रस्तुत हैं हे हव्य वाहन। गांडीव धनुष की महिमा अद्‌भुत है। वह किसी भी शस्त्र से कट नहीं सकता और सभी शस्त्रों को काट सकता है। उससे योद्धा का यश, कान्ति और बल बढता है। वह अकेले ही असंख्य धनुषों के समान, क्षतरहित और तीनों लोकों में पूजित तथा प्रशंसित है। समस्त सामग्रियों से युक्त सबके लिये अजेय, सूर्य के समान दैदीप्यमान और रत्नजटित रथ अर्जुन को दिया। उस रथ में मन और पवन वेग से चलने वाले गन्धर्व देश के घोडे जुते हुये थे। जिस समय अर्जुन ने रथारूढ़ हो गांडीव धनुष की टंकार की उसकी आवाज सुनकर लोगों के हृदय विदीर्ण हो उठे। अग्नि ने कृष्ण से कहा इस आग्नेयास्त्र से आप जिसे चाहेंगे उसे मार डालेंगे। इस शस्त्र के सामने समस्त देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्यों की शक्ति कुछ भी नहीं है। आपका यह चक्र हर बार चलाने पर भी शत्रु का नाश कर फिर आपके पास लौट आया करेगा। श्रीकृष्ण की सेवा में दैत्यनाशिनी एवं वज्राध्वनि वाली शत्रुओं का दिल दहलाने वाली कौमदकी गदा वरुण ने अर्पित की। श्रीकृष्ण ने खांडव वन को जलाने की अनुमति दी।

कृष्ण और अर्जुन की अनुमति पाकर अग्निदेव ने तेजोमय दावानलका प्रदीप्त रूप धारण किया और अपनी सातों ज्वालाओं से खांडव वन को घेरकर प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर दिया तथा उसे भस्मसात करना आरम्भ किया। उस वन में रहनेवाले सैकडों हजारों प्राणी हा हा कार मचाते चिल्ला पुकार कर इधर-उधर भागने लगे। किसी किसी के एक एक अंग जल गये। कोई कोई लपटों से झुलस गया। कितनों की आंखे फूटी। किन्ही के शरीर पर फफोले पड गये। बहुत से अपने सम्बन्धियों के स्नेह बन्धन में पडकर भाग नहीं सके और एक-दूसरे से लिपटकर भस्म हो गये। खांडव वन धू धू सांय सांय कर जलने लगा। खांडव

वन की आग इस प्रकार धधकने और दहकने लगी कि उसकी ऊंची ऊंची लपटें आकाश तक पहुंच गयी। देवताओं के हृदय में कंपकंपी होने लगी। आग की गर्मी से सन्तप्त होकर सभी देवता देवराज इन्द्र के पास गये और कहने लगे देवेन्द्र क्या यह आग समस्त प्राणियों का संहार कर डालेगी ? क्या प्रलय का समय उपस्थित हो गया है। देवताओं की घबराहट और प्रार्थना से प्रभावित हो और अग्नि की यह भयानक करतूत से स्वयं इन्द्र खांडव वन को अग्नि से बचाने के लिये तैयार हुये। उनकी आज्ञा से मेघों के दल के दल खांडव वन पर जल की मोटी मोटी धारायें बरसाने लगे। अर्जुन ने अपने अस्त्र कौशल से बाणों के द्वारा जाल बिछाकर जल की बौछारें रोक दी। सारा आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। कोई भी प्राणी खांडव वन से बाहर निकलकर नहीं जा सका। उस समय नागराज तक्षक खांडव वन में नहीं थे। वे कुरु क्षेत्र में गये हुये थे। परन्तु उसका पुत्र अश्वसेन वहीं था और बचने का बहुत प्रयत्न करने पर भी अर्जुन के बाणों के घेरे से बाहर नहीं निकल पाया। अश्वसेन की माता ने उसे निगलकर बचाने का प्रयत्न किया। परन्तु अग्नि का प्रकोप बढ जाने से वह भागने लगी। अर्जुन ने ऐसा बाण सन्धान किया कि उसका फन ही कट गया। इन्द्र ने अश्वसेन को बचाने के लिये ऐसी आंधी चलायी और पानी के बूंदों की बौछार डाली कि अर्जुन कुछ देख नहीं पाये और अश्वसेन वहां से निकल भागा। इन्द्र के इस धोखे से अर्जुन तिलमिलाकर क्रोधित हो उठा और तीखे तथा पैने तेज बाणों से आकाश को ढककर इन्द्र से युद्ध करने लगे। इन्द्र ने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रों की वर्षा से अर्जुन के बाणों का उत्तर दिया। प्रचंड पवन भयंकर गर्जना के साथ सागर को क्षुब्ध करने लगा। आकाश जल बरसाने वाले बादलों से भर गया, बिजली चमकने लगी। वज्र की कडक से लोगों का दिल दहलने लगा। तब अर्जुन ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया जिससे इन्द्र का वज्र कमजोर पड गया। बादल तितर बितर हो बिखर गये। सब बिखर गये। जल धारायें सूख गई। दामिनी की चमक चपलता लापता हो गयी। अन्धेरा मिट गया। अर्जुन का यह अस्त्र कौशल देखकर देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प कोलाहल करने लगे। वे तरह तरह के अस्त्रों शस्त्रों से कृष्ण और अर्जुन पर प्रहार करने लगे। कृष्ण और अर्जुन ने अपनी तीखे बाणों और चक्र द्वारा सबको तहस नहस कर संहार कर दिया।

यह सब कुछ देख सुनकर देवराज इन्द्र के क्रोध की सीमा नहीं रही। वे श्वेत वर्णवाले ऐरावत पर आरूढ़ हो कृष्ण और अर्जुन की ओर दौडे। उन्होने शीघ्रता से अपने वज्र का प्रहार किया और देवताओं को पुकार कर बोले अभी अभी दोनों मारे जायेंगे। सभी देवताओं ने अपने अपने अस्त्र उठाये। यमराज ने काल दंड, कुबेर ने गदा, वरुण ने पाश और विचित्र वज्र। तब कृष्ण और अर्जुन ने भी अपने धनुष चढाये और निर्भयता से खडे हो गये। इन दोनों की बाण वर्षा के सामने इन्द्रादि देवताओं की एक न चली। इन्द्र ने मन्दराचल का शिखर उठाकर अर्जुन पर दे मारने का प्रयत्न किया परन्तु उसके पहिले ही दिव्य बाणों की चोट से उस पर्वत शिखर के हजारों टुकडे टुकडे हो गये। उसके टुकडों से प्रस्तर वर्षा होने लगी जिससे खांडव वन के दानव, राक्षस, नाग, वाघ, रीछ, हाथी, सिंह, मृग, भैंसे तथा अन्यान्य वन पशु और पक्षी घायल एवं भयभीत होकर भागने लगे। एक ओर से आग सब को जला रही थी दूसरी ओर से कृष्ण और अर्जुन की बाण वर्षा। कोई वहां से भाग नहीं सका। समस्त प्राणियों के काल श्रीकृष्ण ने अपना काल रूप प्रकट कर दिया। देवता और दानव भी उनके पौरूष को देखकर आश्चर्यचकित हो गये।

उसी समय इन्द्र को सम्बोधन कर आकाशवाणी हुई हे इन्द्र तुम्हारा मित्र तक्षक कुरुक्षेत्र जाने के कारण इस भयंकर अग्निकांड में जला नहीं है बच गया है। तुम युद्ध में कृष्ण और अर्जुन को किसी प्रकार जीत नहीं पाओगे। ये तुम्हारे चिर परिचित नर नारायण है। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये सबके लिये अजेय है। देवता, असुर यक्ष राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य तथा सर्प आदि सबके लिये पूजनीय है। तुम देवताओं को लेकर यहां से चले जाओ इसी में तुम्हारा श्रेय है। इस अवसर पर खांडव वन का दाह दैव रचित है। आकाशवाणी सुनकर देवराज इन्द्र क्रोध और ईर्ष्यारहित हो अपने स्वर्ग में लौट गये।

देवताओं ने भी अपनी सेना के साथ उनका अनुगमन किया। देवताओं को समर भूमि से विमुख हुआ देख कृष्ण और अर्जुन ने हर्ष ध्वनि की। खांडव वन अनाथ की तरह धकधक जलने लगा। लपटें जोरों से ऊपर उठने लगी। मय दानव एकाएक तक्षक के निवास स्थान से निकलकर भाग रहा था और मूर्तिमान अग्निदेव उसको जलाने के लिये उसका पीछा कर रहे थे। यह कृष्ण ने देख लिया। उन्होंने मय दानव का वध करने के लिये अपना चक्र उठाया। मय दानव ने भयभीत होकर अर्जुन को पुकारा मैं तुम्हारी शरण में हूं। इससे तुम ही केवल मेरी रक्षा कर सकते हो। अर्जुन ने उसे अभय दिया। अर्जुन से अभय प्राप्त देखकर कृष्ण ने अपना चक्र रोक लिया और अग्नि ने भी उसे जलाया नहीं।

कृष्ण ने अर्जुन से पूछा पार्थ उस दानव पर इतनी दया आने का क्या कारण ? इतना बडा खांडव वन जल गया पर किसी को क्षमा नहीं किया गया तो फिर इस मय दानव पर यह कैसी कृपा। अर्जुन बोला मेरे मन में असमय यह बात आई मय दानव जैसा वास्तु शिल्पी बनाने में काल को कितने युग लग जायेंगे जबकि उसको नष्ट करने में तो एक क्षण भी नहीं लगेगा। वस्तुत: मैंने मय दानव को नहीं उसकी कला को, वास्तु शिल्प को अभय दिया है। कृष्ण बोले मय दानव असुर होने पर भी सृजन कर्ता कलाकार है। वह ध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है। उसके पास दुर्गों, नये प्रसादों, मन्दिरों अथवा उद्यानों की योजनायें है। अर्जुन बोला कलाकार तो निर्माण ही कर सकता है। कलाकार अपनी प्रेरणा से जो भी निर्माण करता है वह किसी के अहित के लिये नहीं होता। मय दानव का निर्माण उसका व्यवसाय है, निर्माण उसका धर्म है। निर्माण उसका जीवन है। द्वन्द के मूल में अहंकार होता है। कर्ता का अहंकार। अहंकार के मूल में आसक्ति। अनासक्त हो जाने पर न अहंकार रहता है और न द्वन्द। वह खांडव वन पन्द्रह दिनों तक जलता रहा। इस अग्निकांड में केवल छ: प्राणी बच सके अश्वसेन नाग, मय दानव और चार शारंग पक्षी।

शारंग पक्षियों के पिता मन्दपाल ने और उन पक्षियों में सबसे बडे जरितारिने अग्निदेवता की स्तुति कर अपनी रक्षा का वचन ले लिया था। जब खांडव वन जल गया तब अग्निदेव ब्राह्मण के रूप में अर्जुन और कृष्ण के सामने प्रकट हुये। उसी समय देवराज इन्द्र भी देवताओं के साथ वहां अन्तरिक्ष से उतरे। इन्द्र ने कहा आप लोगों ने यह ऐसा दुष्कर कार्य किया है जो देवताओं के लिये भी असाध्य है। मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूं। आप दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी मुझसे मांग सकते हो। अर्जुन ने कहा आप सब प्रकार के अस्त्र मुझे दें। इन्द्र बोले अर्जुन जिस समय देवाधिदेव महादेव तुम पर प्रसन्न होंगे उस समय तुम्हारे तप के प्रभाव से तुम्हे अपने सारे अस्त्र दूंगा। मैं यह भी जानता हूं कि वह समय कब आयेगा ? कृष्ण ने कहा देवराज आप मुझे यह वर दें कि मेरी और अर्जुन की मित्रता क्षण क्षण बढती जाये और वो कभी न टूटे। इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर दिया एवमस्तु। देवताओं के चले जाने के बाद अग्नि कृष्ण और अर्जुन का अभिनन्दन करके चले गये।

कृष्ण बोले धर्मराज के नेतृत्व में पांडव धर्म साम्राज्य की स्थापना करे। उसके लिये एक राजसूय यज्ञ करने की आवश्यकता है और खांडव वन उस यज्ञ की सबसे पहिली आहूति है। अब हमें उस यज्ञ को शान्त नहीं होने देना चाहिये। मय दानव से अब ऐसा कोई प्रासाद या भवन बनवाना चाहिये कि उस प्रासाद से धर्मराज युधिष्ठिर के चक्रवर्ती होने की घोषणा की जाये तथा उसी प्रासाद से पांडवों की सेनायें राज सूय यज्ञ के लिये प्रेरित हो। खांडव वन में अब तक अनेक राजाओं का विरोध जल गया होगा। अनेक का साहस और अनेक की दुष्टता। लोहा इस समय गर्म है और इसके ठंडा होने के पूर्व ही पांडवों को उस पर प्रहार कर देना चाहिये। श्रीकृष्ण और अर्जुन मय दानव के साथ यमुना के पावन पुल पर आकर बैठ गये।

इति आदि पर्व

सभा पर्व

१) मय दानव द्वारा पांडवों के लिये दिव्य सभा का निर्माण ५३३

२) श्रीकृष्ण का द्वारका गमन और

देवर्षि नारद का इन्द्रप्रस्थ में प्रवचन ५३५

३) युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की प्रेरणा ५४१

४) जरासंध के जन्म का वृतान्त और जरासंध वध ५४६

५) बन्दी राजाओं की मुक्ति और पांडवों की दिग्विजय ५५१

६) राजसूय यज्ञ और शिशुपाल का वध ५५५

७) राजसूय यज्ञ की समाप्ति, अतिथियों की विदाई और

महर्षि व्यास का भविष्य कथन ५७३

८) वैर का बीज द्रौपदी की कूट हंसी और व्यंग बाण ५८०

९) शकुनि की पांडवों के साथ कपट द्यूत क्रीडा ५८४

१०) द्रौपदी का चीर हरण व कृष्ण का वस्त्रावतार ६०४

११) शकुनि को पांडवों के साथ जबरन दुबारा कपट द्यूत ६२०

१२) पांडवों का वनगमन ६२७

सभा पर्व

१) मय दानव द्वारा पांडवों के लिये दिव्य सभा का निर्माण

मयासुर अर्जुन से बोला आप धन्य हैं धनंजय यदि आपने मेरी रक्षा न की होती तो आपके यह सखा अपने चक्र से मुझे मार ही डालते। इनके अस्त और संकल्प के सम्मुख तो कोई शक्ति टिकती ही नहीं। आपने अपनी उदारता से इस असुर पर भी कृपा की। अब आप मुझे अपनी कोई सेवा बताकर कृतार्थ करें। अर्जुन बोले दानवेन्द्र आपने मुझे गौरव दिया मैं अनुग्रहित हुआ। आप कल्याण के भागी हों। हम दोनों आप पर प्रसन्न है। हम आपकी मैत्री से सन्तुष्ट हैं। मय दानव ने कहा कौन्तेय आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष के उपयुक्त ही आपके वचन है। मैं दानव विश्वकर्मा शिल्पी हूं। सुरों का विश्वकर्मा शिल्प में मेरी समानता नहीं कर सकता। मैं आपकी सेवा करना चाहता हूं, मेरी सेवा स्वीकार करो। अर्जुन बोले दानवराज उपकृत से सेवा लेना तो अनुचित है, ऐसी अवस्था में मैं आपकी कोई सेवा कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। आपको निराश भी नहीं करना चाहता हूं अत: आप इन वासुदेव की ही कोई सेवा कर दें। इससे बढकर मेरे लिये कोई दूसरी सेवा नहीं हो सकती। मयासुर ने कृष्ण से प्रार्थना की मधुसूदन आपकी सेवा तो महामुनीन्द्रो के लिये भी दुर्लभ है फिर मैं असुर कैसे साहस कर सकता हूँ ? फिर भी आपसे सेवा करने की प्रार्थना कर रहा हूं। आप तो भक्त वत्सल हैं आपके प्रिय सखा कुन्ती पुत्र अर्जुन ने मुझे प्रार्थना करने का अधिकार दिया है कि अब आप मुझे आपकी सेवा करने का कोई अवसर देकर धन्य करे।

कृष्ण ने मयासुर की बात पर गौर किया कि उसने कौनसा काम लेना चाहिये। उन्होने मन ही मन निश्चय कर कहा कि दानवेन्द्र तुम शिल्पियों में सर्वश्रेष्ठ हो। आप भगवान चन्द्रमौलि शंकर के परमप्रिय भक्त हो। जो कोई भी उन गंगाधर का प्रिय है वह मुझे अतिशय प्रिय है। आप जैसा शिल्पी त्रिभुवन में दूसरा कोई नहीं। विश्वकर्मा ने महाराज युधिष्ठिर के लिये राजधानी तथा नगर निर्माण का कार्य किया परन्तु राजसभा नहीं बनायी, तब उसके लिये उपयुक्त स्थान नहीं था। अब खांडव वन भस्मसात् हो जाने से इतना विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध हो गया है। यदि तुम धर्मराज युधिष्ठिर का प्रिय कार्य करना चाहते हो तो अपनी रूचि, इच्छानुसार अपने कौशल से उनके लिये एक राजसभा का निर्माण कर दो। वह सभा ऐसी बने कि चतुर शिल्पी भी उसे देखकर आश्चर्य करे और उसके स्वरूप नकल नहीं कर पाये। उसमें देवता, मनुष्य, एवं असुरों की सम्पूर्ण कला कौशल का प्रविष्ट हो। चतुरतम शिल्पी भी उसकी अनुकृति न कर पाये। वह अद्वितीय हो। मय दानव बोले जनार्दन आपने मुझे अनुगृहित किया। मैं अपनी बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्यानुसार यह सेवा करूंगा।

इसके पश्चात कृष्ण और अर्जुन मय दानव को लेकर अनुमति प्राप्त करने युधिष्ठिर के पास गये और मय दानव का परिचय कराया। युधिष्ठिर ने मय का यथा योग्य सत्कार किया। मयासुर ने धर्मराज युधिष्ठिर को दैत्यों के रोचक व विचित्र प्रसंग सुनाये। कुछ दिन वहां ठहर कर कृष्ण और अर्जुन की सलाह से राजसभा बनाने के लिये विचार विमर्श किया और फिर शुभ मुहूर्त में मंगल, अनुष्ठान, ब्रह्म भोज एवं दान आदि करके सर्वगुण सम्पन्न एवं दिव्य सभा का निर्माण करने की रूपरेखा बनायी और उस पर सबकी सम्मति प्राप्त की। स्थान के विषय में परामर्श करते समय दानवेन्द्र ने कहा यह सभागृह विशाल होनेपर भी स्वेच्छानुसार स्थानान्तरित किया जा सकेगा। इस सर्वगुण सम्पन्न एवं दिव्य सभा का निर्माण करने के लिये मय दानव ने दस हजार चौडी भूमि नाप ली। वास्तव में उस सभा भवन को स्थानान्तरित करने की सुविधा की आवश्यकता रही होगी। तभी तो दानवेन्द्र मय ने भी अनुमान कर लिया हो कि महाभारत युद्ध के पश्चात पांडव अपने राज्य को राजधानी इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर ले जायेंगे तो वह राजसभा भी वहां स्थानान्तरित करनी पडेगी और पांडवों के स्वर्गारोहण के पश्चात तो उसके रक्षक राक्षस उसे कहां ले जाएंगे कुछ पता नहीं। द्यूत सभा में पांडवों के पराजित होकर वन में चले जाने पर भी वह सभा कौरवों के लिये अदृश्य

हो गयी थी। उसके रक्षक उसे वहां से कहीं अगम्य स्थानपर ले गये थे।

ब्राह्मणों ने स्वस्ति पाठ आरम्भ किया। सभा निर्माण का स्थान रेखांकित हो जाने पर उसका शिलान्यास किया। कृष्ण और धर्मराज की अनुमति से भूमिपूजन हुआ। कृष्ण ने धर्मराज से द्वारिका लौट जाने की अनुमति ली और द्वारिका के लिये प्रस्थान किया। वैशम्पायन कहते है जनमेजय मय दानव ने अर्जुन से कहकर कैलास पर्वत के उत्तर की ओर प्रस्थान किया वे मैनाक पर्वत पर जाना चाहते थे। वहां बिन्दु सरोवर के समीप दैत्यों ने एक यज्ञ किया था। जब मैनाक पर्वत समुद्र में चला गया। इन्द्र के वज्र के भय से वहां पर्वतों के मध्य बहुत विस्तृत प्रशस्त भूमि बन गई थी। वह भगवान शंकर के आराधकों की आराधना भूमि बन गई। नारायण, ब्रह्मा, यमराज, स्वयं कृष्ण की भी वह यज्ञभूमि है। जब एक हजार चतुर्युग बीत जाते है तो ब्रह्मा के दिन की सन्ध्या काल में यह सब लोग वहां यज्ञ करते है। दैत्यराज वृषपर्वा ने वहां यज्ञ किया था कभी। वहां उसकी सामग्री तथा यज्ञ मंडप मय दानव ने ही निर्मित किया था उस समय। वहां से युधिष्ठिर की राजसभा निर्माण हेतु उपयुक्त सामग्री मय को लानी थी। वहां एक मणिमय पात्र दैत्यराज वृषपर्वा की सभा में रखा गया था। वहां एक बडी विचित्र रत्नमंडित सुखद एवं मजबूत विशाल गदा भी थी। उस पर सोने के तारे जडे हुये थे। वृषपर्वा ने शत्रुओं का संहार करनेवाली गदाओं की चोट सहने वाली भारी गदा वही रख रखी थी। उस गदा की तुलना नहीं है। वह लाखों गदाओं की तुलना में अद्वितीय थी। वह गांडीव धनुष के समान ही भीम के योग्य थी। देवदत्त नाम का शंख भी वहीं था जिसे लाकर मय ने अर्जुन को भेट किया। मयासुर ने ईशान कोण की यात्रा की ओर विन्दुसर पर पहुंच गया। राजा भगीरथ ने गंगा के अवतरण के लिये वहीं पर तपस्या की थी। प्रजापति ब्रह्मा ने उसी स्थान पर सौ यज्ञ किये थे। देवराज इन्द्र ने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। वहीं सहस्त्रों प्राणी भगवान शंकर की उपासना आराधना करते है। यही सभी यज्ञ करके सुवर्ण मंडित, यज्ञस्तम्भों और वेदियों का दान करते है। मयासुर ने वहां जाकर सभा बनाने की सारी सामग्री, वह गदा, देवदत्त शंख और अपरिमित धन अपने अधिकार में कर वहां से लौटकर युधिष्ठिर के लिये विश्व विश्रुत मणिमय दिव्य सभा भवन का निर्माण किया। वह श्रेष्ठ गदा भीम को तथा देवदत्त शंख अर्जुन को उपहार में दिये। उस शंख की गम्भीर ध्वनि से तीनों लोक कांप उठते थे।

मय ने जो राजसभा निर्मित की वह त्रिभुवन में अद्वितीय थी। उसमें स्वर्णिम वृक्षलतायें लहराती थी। वह सभा दस हजार हाथ लम्बी चौडी थी। वह ऐसी जान पडती थी कि मानो सूर्य, अग्नि अथवा चन्द्रमा की सभा हो। उसकी अलौकिक चमक-दमक के सामने सूर्य की प्रभा भी फीकी लगने लगती थी। वह सभा त्रिभुवन में भी अद्वितीय थी। आठ हजार किंकर राक्षस उस दिव्य सभा की रखवाली और देखरेख करते थे। उस सभा भवन में एक दिव्य सरोवर था। वह अनेक प्रकार के मणि माणक्य की सीढियों में शोभायमान कमल कुसुमों से उल्लसित और सुगंधित वायु से तरंगमान था। कितने ही बडे बडे राजागंण उसके जल को थल समझकर धोखा खा जाते थे। उसके चारों ओर गगनचुम्बी वृक्षों के हरे हरे पत्तों की छाया रहती थी। सभा के चारों ओर दिव्य सौरभ के उद्यान थे। छोटी-छोटी बावडियां थी जिनमें हंस, सारस, चकवा, चकवी किलोल करते रहते थे। जल और स्थल की कमल पंक्तियां अपनी सुगन्ध से लोगों को मोहित करती थी। मयासुर ने केवल १४ महिने में इस सभा का निर्माण कर दिया था। वृक्षों की छाया उस सरोवर में प्रतिबिम्बित होने से वह उत्तम बिछौने से आच्छादित भूमि जान पडती थी। उस सभा भवन में द्वार पहचानना भी कठिन था। दीवारें द्वार जान पडती थी। पारदर्शी होने के कारण जहाँ द्वार थे वहां उनके पीछे की भीति ऐसी दिखती थी कि वहाँ भीति है। किसी भी देव सभा से वह कहीं अधिक दिव्य और भव्य थी। छोटी छोटी जल पुष्पों से सुशोभित वादियां, पुष्पोद्यान, सघन सुन्दर वृक्षावली। हंस, सारस, कोकिल, मयूर मंडित उद्यान। दानवेन्द्र मय ने सोपान मणिमय बनाया तथा उस सभा भवन का बहिर्भाग भी सुशोभित भली प्रकार सजाया था। यह सब दानवेन्द्र मय की अपनी कला

का वैशिष्ट्य था। उसका दानव स्वभाव इन्ही कूतुहलों से सन्तुष्ट होता था। भले ही किसी को कष्ट हो उसकी निर्णय शक्ति कुंठित होकर थकित हो जाये। वह दीवार से टकरा जाये या सरोवर में गिर कर भीग जाये इसमें आनन्द मानता था। यह कौतुक वृत्ति दानवेन्द्र की कला का भूषण मानी गई जितनी मूल्यवान और कलापूर्ण वस्तु हो उसकी उतनी ही अधिक सुरक्षा का प्रबन्ध करना पडता है। स्वच्छता तथा सम्भाल की उसे अपेक्षा रहती है।

धर्मराज युधिष्ठिर ने शुभ मुहूर्त का समय आनेपर दस हजार ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हे भोजन कराया। उन्हे फल, मूल, कन्द, खीर आदि तरह-तरह के व्यंजन खिलाये। उन्हे दक्षिणा में अस्त्र, छोटी बडी सामग्री आदि से तृप्त करके प्रत्येक ब्राह्मण को एक एक हजार गोओं का दान किया। इसके बाद के सभागृह में प्रवेश करने लगे तब ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन किया। गाजे बाजों सहित देवताओं का पूजन किया गया। बडे ही उत्साह में धूम धाम से वास्तु शान्ति समारोह मनाया गया। मल्ल-भल्ल (पहलवान और लठैत) नट, वैतालिक और बन्दीजनों ने धर्मराज युधिष्ठिर को अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन किया। वे अपने भाइयों के साथ देवराज इन्द्र के तुल्य उस सभा में विराजमान हुये। साथ-साथ सभा मंडप में अनेकों ऋषि मुनि तथा राजा महाराजाओं ने भी प्रवेश किया। ऋषियों में मुख्यत: देवल, असित, कृष्ण, द्वैपायन व्यास, जैमिनी, याज्ञवल्क्य आदि वेद वेदांग के पारदर्शी धर्मज्ञ, संयमी एवं प्रवचनकार बैठे हुये थे। राजाओं में कक्ष सेन, क्षेमक, कमठ, कम्पन, मद्राधिकापति, जटासुर, पुलिन्द, अंग, बंग, पुंड्रक, अन्धक, पांडव व चोल वंश, कलिंग, उत्कल आदि देशों के अधिपति महाराज युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित थे। अर्जुन से अस्त्र विद्या सीखनेवाले राजकुमार और यदुवंशी प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि आदि भी उपस्थित थे। तुम्बरू, चित्ररथ आदि गन्धर्व, एवं अप्सरायें भी धर्मराज को प्रसन्न करने हेतु वहां आकर नृत्य गान करती थी। उस समय युधिष्ठिर की ऐसी शोभा हो रही थी मानो महर्षियों और राजाओं से घिरे स्वयं ब्रह्मा अपनी सभा में विराजमान हो।

२) श्रीकृष्ण का द्वारिका गमन और देवर्षि नारद का इन्द्रप्रस्थ में प्रवचन

पार्थक्य किसी से भी बहुत ही पीडादायक होता है किन्तु परिस्थिति सदा साथ भी तो नहीं देती। प्राणी के पास इस विवशता का कोई उपाय ही नहीं। अत्यन्त अभिष्ट सुहृदों से बिछुडना तो पडता ही है। श्रीकृष्ण पांडवों के लिये परम पूजनीय रहे। पांडवों ने श्रीकृष्ण का बडे ही प्रेमपूर्वक सत्कार किया और वे कुछ दिनोंतक इन्द्रप्रस्थ में बडे सुख से रहे। उन्हे अपने माता-पिता के दर्शनों के लिये द्वारिका जाना था और इसके लिये उन्होने धर्मराज युधिष्ठिर से अनुमति प्राप्त की। विश्ववन्द्य कृष्ण ने अपनी बुआ कुन्ती के चरणों में सिर नवा प्रणाम किया और विदा होने के लिये आज्ञा मांगी। कुन्ती ने भी उन्हे उठाकर हृदय से लगा लिया इसके बाद कृष्ण अपनी चहेती बहिन सुभद्रा से मिले और थोडे ही समय में सत्य, प्रयोजनपूर्ण, हितकारी युक्तियुक्त एवं अकाट्य वचनों से अपने लौटने की आवश्यकता समझा दी। सुभद्रा के नेत्रों में आंसू छल छला आये। सौभाग्यवती सुभद्रा ने भी माता-पिता आदि से कहने के लिये कृष्ण को सन्देश दिये और कृष्ण का सत्कार कर प्रणाम किया। कृष्ण ने भी सुभद्रा से जाने की अनुमति ली और फिर पुरोहित धौम्य के पास गये। श्रीकृष्ण ने धौम्य मुनि को नमस्कार कर द्रौपदी को ढाढस बन्धाया और उससे विदा हो पांडवों के पास आये। अपने फूफेरे भाइयों के साथ कृष्ण उनसे मिले।

कृष्ण ने द्वारिका की यात्रा को लिये किये जानेवाले कर्मों की तैयारी प्रारम्भ की। उन्होने शौचादि व स्नानादि से निवृत हो वस्त्राभूण धारणकर देवताओं को नमस्कार कर ब्राह्मणों की पूजा की। जब सब कार्य पूर्ण हो चुके तब वे बाहर दरवाजे पर आये। ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन किया और दधि, अक्षत, फल, पात्र एवं द्रव्यादि के द्वारा उनकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और अपने रथ पर सवार हुये। उनका वह शीघ्रगामी रथ गरुड चिन्हों से चिन्हित, ध्वजा, गदा चक्र, तलवार, शार्ग धनुष आदि आयुधों से युक्त था उसमें शैव्य, सुग्रीव आदि नाम के घोडे जुते हुये थे और प्रस्थान के समय तिथि, नत्रक्ष आदि भी मंगलमय हो रहे थे। रथ के हांकने के पहिले ही राजा युधिष्ठिर प्रेम से उस पर चढ गये और भगवान के श्रेष्ठ सारथि दारूक को हटाकर उन्होने स्वयं

घोडों की रास अपने हाथ में थाम ली। अर्जुन भी रथ पर सवार हो गया और अपने हाथ से चंवर डुलाने लगा। भीम, नकुल, सहदेव, ऋत्विज एवं पुरवासियों के साथ रथ के पीछे पीछे चलने लगे। ऐसे लग रहा था कि अपने शिष्यों के साथ स्वयं गुरुदेव यात्रा कर रहे हो। अर्जुन कृष्ण के बिछोह से बडे ही व्यथित हो रहे थे। कृष्ण ने उनको हृदय से लगाकर जाने की अनुमति दी। युधिष्ठिर और भीम का सम्मान किया। नकुल सहदेव ने कृष्ण के चरणों में नमस्कार किया। थोडी दूर रथ के चलने पर कृष्ण ने युधिष्ठिर को लौट जाने का आग्रह किया और धर्मानुसार युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श कर नमस्कार किया और उन्हे जाने की अनुमति दी। कृष्ण ने पुन: वापस लौटने का आश्वासन दिया और फिर आगे की द्वारिका की यात्रा शुरु की। जहां तक कृष्ण का रथ दीखता रहा पांडवों के नेत्र उन्ही की ओर देखते रहे और वे मन ही मन उनके पीछे चलने लगे। अभी पांडवों का प्रेमपूर्ण मन अतृप्त ही था। उनके नयनों के तारे जीवन सर्वस्व कृष्ण उनकी आंखों से ओझल हो गये। पांडवों के मन में कोई स्वार्थ नहीं था फिर भी उनके मन की समस्त वृतियां कृष्ण की ओर ही जा रही थी। उनके चले जाने पर वे चुपचाप लौटकर अपनी नगरी में आ गये। कृष्ण का गरुड के समान रथ तीव्र गति से द्वारिका की ओर बढने लगा। उनके साथ उनका सारथि दारुक के अतिरिक्त यदुवंशी वीर सात्यकि भी थे। थोडे ही समय में कृष्ण बडे आनन्द से द्वारिका पहुंच गये। उग्रसेन आदि यदुवंशियों ने नगर के बाहर कृष्ण का सम्मान किया। कृष्ण ने महाराजा उग्रसेन अपने माता-पिता और बडे भाई बलराम को क्रमश: नमस्कार किया। उनके अपने पुत्र, प्रपौत्र प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण, अनिरुद्ध आदि को हृदय से लगा गुरुजनों की आज्ञा से रुक्मिणि भवन में गये।

वैशम्पायन बोले जनमेजय एक दिन महात्मा पांडव और गन्धर्व आदि उस मय निर्मित दिव्यसभा में आनन्द से बैठे हुये थे। उसी समय देवर्षि नारद और भी अनेक ऋषियों के साथ वहां उपस्थित हुये। देवर्षि की महिमा अपार है। वे वेद और उपनिषदों के पारदर्शी विद्वान हैं। बडे बडे देवता उनकी पूजा आराधना करते हैं। इतिहास, पुराण, प्राचीन कल्प और पूर्वोत्तर मीमांसा की विद्वता में बेजोड है। वे वेदों के छ: अंग व्याकरण, कल्प, शिक्षा आदि को तो जानते ही हैं पर धर्म के भी पूरे मर्मज्ञ हैं। वे वेद के परस्पर विरुद्ध वचनों की एक वाक्यता, एक में मिले हुये वचनों का कर्म के अनुसार पृथक्करण और यज्ञ के अनेक कर्मों के एक साथ उपस्थित होने पर उनके सम्पादन में अत्यन्त निपुण हैं। वे प्रगल्भ, वक्ता, स्मृतियुक्त, मेधावी, नीति कुशल एवं सहृदय कवि हैं। वे कर्म और ज्ञान के विभाजन में समर्थ हैं। वे प्रत्यक्ष अनुमान एवं आप्त वचन के द्वारा सब विषयों के ठीक ठीक निश्चय करते है और प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, उपनय एवं निगमन इन पांच अंगों से युक्त वाक्यों के गुण-दोष खूब समझते हैं। बृहस्पति के साथ बातचीत होने पर भी वे उत्तर-प्रत्युत्तर करने में विशारद है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों के सम्बन्ध में उनका निश्चय सर्वथा सुसंगत हैं। नारद ने चौदह भवनों को ऊपर नीचे आडे, टेढे प्रत्यक्ष देख लिया है। सांख्य और योग दोनों ही मार्गों को वे जानते हैं और देवताओं तथा असुरों के प्रत्येक विचार की टोह रखते हैं। मेल जोल और वैर बिगाड के तत्व को भली-भांति जानते हैं और शत्रु तथा मित्र की शक्ति का रती रती ज्ञान रखते है। सुलह, बिगाड, चढाई, फूट, कलह आदि राजनीति और कूटनीति का भी उन्हें पूर्णत: ज्ञान है और तो क्या वे सारे शास्त्र के निपुण विद्वान हैं। वे युद्ध और संगीत के भी प्रेमी हैं। उन्हे कहीं भी जाने-आने में रूकावट नहीं है। उनमें ऐसे ऐसे गुण है। वे दिन में लोक लोकान्तर में घूमते-फिरते, पारिजात, पर्वत, सुमुख आदि ऋषियों के साथ पांडवों से मिलने के लिये उनकी सभा में पहुंचे। उन्होने मन के वेग समान वहां आकर प्रेम से धर्मराज को आशीर्वाद दिया जय हो। जय हो।

सब धर्मों के मर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर ने देवर्षि नारद को आया देखकर भाइयों के साथ शीघ्रता से उठकर नम्रता से झुककर प्रेम से प्रणाम किया और विधिपूर्वक योग्य आसन दिया तथा मधुपर्व आदि के द्वारा उनकी सविधि पूजा कर सत्कार किया। देवर्षि नारद पांडवों के सत्कार से बहुत प्रसन्न हुये और कुशल प्रश्न के बहाने उन्हे धर्म, अर्थ तथा काम का उपदेश करने लगे।

नारदजी ने कहा धर्मराज आपके धन का ठीक ठीक उपयोग होता है ना ? आपका मन धर्म कार्यों में लगता है ना ? आप सुखी होंगे। आपके मन में कभी बुरे विचार नहीं आते होंगे ? आपके पिता तथा पितामह ने जिस सदाचार का पालन किया उसी धर्म और अर्थ के अनुकूल उदार नीति का आश्रय आपने भी लिया होगा। आपकी अर्थप्रियता, धर्म की, धर्म प्रियता अर्थ की, काम प्रियता अर्थ और धर्म की बाधक तो नहीं होती होगी। आप तो समय का रहस्य जानते हैं। अर्थ, धर्म और काम सेवन के लिये अलग-अलग समय निश्चित कर लिया है न ? राजा में छ: गुण होने चाहिये। व्याख्यान शक्ति, वीरता, मेधावी पन, परिणाम दर्शिता, नीति निपुणता और कर्तव्या कर्तव्य विवेक। सात उपाय हैं मन्त्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दाम, दंड और भेद। पूर्वोक्त गुणों के द्वारा इन उपायों का निरीक्षण करना चाहिये और अपने १४ दोषों पर दृष्टि रखनी चाहिये। वे चौदह दोष हैं नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घ सूत्रता, ज्ञानियों का संग न करना, आलस्य, इन्द्रिय, परवशता, केवल अर्थ का ही चिन्तन, मूर्खों के साथ सलाह मशवरा, निश्चित कार्य में टालमटोल, सलाह को गुप्त न रखना, समय पर उत्सव आदि न करना और एक साथ ही कई शत्रुओं पर चढाई कर देना। इन दोषों से बचकर आप अपनी शक्ति और शत्रु शक्ति का ठीक ठीक ज्ञान रखते हैं ना ? अपनी शक्ति और शत्रु शक्ति के अनुसार सन्धि या विग्रह करके आप अपनी खेती, बारी, व्यापार, किला, पुल, हाथी, हीरा, सोना आदि की खाने, कर की वसूली, उजाड प्रान्तों में लोगों का बसाना आदि कार्यों की देखरेख ठीक रखते हैं न? युधिष्ठिर आपके राज्य के सातों अंग, स्वामी, मन्त्री, मित्र, खजाना, राष्ट्र, दुर्ग और पुरवासी शत्रुओं से तो मिले हुये नहीं है। धनी लोग बुरे व्यसनों से बचे तो हैं ? आपके प्रति उनकी प्रेम दृष्टि तो हैं न ? कहीं आपके शत्रु के गुप्तचर अपना विश्वास जमा कर आपसे या आपके मन्त्रियों से आपका सलाह मश्विरा जान तो नहीं लेते ? आप अपने मित्र, शत्रु, उदासीन लोगों के सम्बन्ध में यह ज्ञान तो रखते है न कि वे क्या करना चाहते हैं ? आप मेल मिलाप अथवा बैर विरोध समय के अनुसार ही करते है न? उदासीनों के प्रति विषम दृष्टि तो नहीं रखते ? आपके मन्त्री आपके ही समान ज्ञान वृद्ध, पुण्यात्मा, समझदार, कुलीन और प्रेमी तो हैं न ?

युधिष्ठिर विचारों का मूल है, अपने विचारों की गुप्ति। आपके शास्त्रज्ञ मन्त्री आपके विचारों और संकल्पों को सुरक्षित रखते हैं न ? इसी प्रकार से आपके देश की रक्षा होती है। शत्रु कहीं आपकी मन्त्रणा व योजना का पता तो नहीं लगा लेता ? आप असमय ही निद्रा के वश तो नहीं हो जाते ? ठीक समय पर जाग तो जाते हो ना युधिष्ठिर ? रात्रि के पिछले भाग में जाग कर आप अपने अर्थ के सम्बन्ध में विचार तो करते हैं न ? कहीं आप अकेले या बहुतों के साथ तो मन्त्रणा नहीं करते है ? आपकी सलाह कहीं शत्रु तक तो नहीं पहुंचती है ना ? थोडे प्रयत्न से बडे बडे कार्य सिद्ध हो जाये ऐसा सोच कर कार्य प्रारम्भ करते हैं न ? कहीं ऐसे कार्यों में आलस्य तो नहीं करते ? कहीं किसानों के काम आपके अन्जाने तो नहीं रहते ? उनपर आपका विश्वास तो है न? कहीं उनकी ओर से उदासनी तो नहीं है? उनका प्रेम ही राज्य की उन्नति का कारण है। किसानों का काम विश्वसनीय, निर्लोभ और कुलीनों से ही करवाना चाहिये। आपके कार्यों की सूचना सिद्धि प्राप्त होने के पहले ही तो लोगों को नहीं मिल जाती ?

आपके आचार्य धर्मज्ञ एवं सर्व शास्त्रों में निपुण होकर कुमारों को ठीक से युद्ध शिक्षा देते हैं न ? आप हजारों मूर्खों के बदले किसी एक विद्वान का संग्रह तो करते है? <u>विद्वान ही विपत्ति के समय रक्षा कर सकता है</u>। आपके सब किलो में धन धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र, कारीगर और सैनिकों का ठीक ठीक प्रबन्ध है न ? यदि एक भी मन्त्री मेधावी, संयमी और चतुर हो तो राजा या राजकुमारों को विपुल सम्पत्ति का स्वामी बना देता है। आप शत्रु पक्ष के मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, कारागाराध्यक्ष, खजांची के कार्य कृत्या कृत्य का निर्णय, प्रवेष्टा, नगराधिपति (कोतवाल), कार्य निर्माण कर्ता धर्माध्यक्ष, सभापति, दंडपाल, दुर्गपाल, सीमापाल और वन विभाग के अधिकारों पर तीन-तीन अज्ञात गुप्तचर रखते है न? पहले तीनों को छोडकर अपने पक्ष के शेष अधिकारियों पर भी तीन-तीन छिपे गुप्तचर रखने चाहिये। अगर आप स्वयं सावधान रहकर आप अपनी बात शत्रुओं से छिपाये और उनके काम का पता लगावे। यह तो बताये कि आपका पुरोहित, कुलीन, विजयी एवं विद्वान

तो है न ? वह कहीं किंकर्तव्य विमूढ एवं निन्दक तो नहीं है ? आप उसका ठीक से सत्कार करते हैं? आपने बुद्धिमान, सरल एवं विधि विधान का ज्ञाता, ऋत्विज नियुक्त कर रखा है न ? वह हवन की हुई और की जानेवाली सामग्री का निवेदन करता है न ? आपका ज्योतिषी शास्त्र के सारे अंगों का विशेषज्ञ, नक्षत्रों की गति, वक्रता आदि का ज्ञाता एवं उत्पात आदि का प्रभाव जान लेने में तो निपुण है ना ? आपने अपने कर्मचारियों को ऊंचे नीचे कार्यों में, अयोग्य काम में लगाकर व्यस्त तो नहीं कर रखा है ना ? आप अपने निश्छल, कुलक्रमागत और सदाचारी मन्त्रियों को बराबर कार्यों का निर्देशन तो करते रहते है न ? आपके मन्त्री कहीं शील सौजन्य और प्रेम को तिलांजलि देकर प्रजा पर कठोर शासन तो नहीं करते ? जैसे पवित्र याज्ञित पतित यजमान का और स्त्रियां व्यभिचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती है वैसे ही कहीं प्रजा अधिक कर लेने के कारण आपका अनादर तो नहीं करती?

आपका सेनापति तेजस्वी, वीर, बुद्धिमान, धैर्यशाली, पवित्र, कुलीन स्वामी भक्त और चतुर तो है न ? आपकी सेना के सब दलपति सब प्रकार के युद्धों में चतुर, निष्कपट, शूरवीर और आपके द्वारा सम्मानित तो है न ? आप अपनी सेना के भोजन और वेतन का उचित समय पर प्रबन्ध ठीक से कर पाते है न ? कहीं देर और कमी तो नहीं करते ? भोजन और वेतन ठीक समय पर न मिलने से सैनिकों को कष्ट होता है और वे अपने स्वामी के ही विरोधी बन बैठते हैं। आपके कुलीन कर्मचारी क्या आपके प्रति ऐसा प्रेम करते हैं कि आवश्यकता पडने पर आपके लिये अपने प्राणों की भी बाजी लगा दे ? कोई यह प्रयत्न तो नहीं करता कि सारी सेना उसकी इच्छानुसार चलने लगे और आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दे ? जब कोई कर्मचारी बहादुरी का काम करता है तब आप उसका विशेष सम्मान करके उसका भोजन और वेतन बढा देते है न ? आप विद्या, विनयी, ज्ञानी एवं गुणी पुरुषों की यथा योग्य दान के द्वारा सेवा करते हैं न ? जो लोग आपकी रक्षा के लिये मर मिटते है या अपने को संकट में डाल देते है, उनके बाल बच्चों की रक्षा तो आप करते हैं न? जब निर्बल शत्रु युद्ध में पराजित होकर आपकी शरण में आता है तब आप पुत्र के समान उसकी रक्षा करते है क्या ? सारी प्रजा आपको निष्पक्ष, हितकारी एवं माता-पिता के समान समझती है न ? पहले अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर तब इन्द्रियों के अधीन शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती है। शत्रुओं को वश में करने के लिये साम, दाम, दंड आदि सभी उपायों का उपयोग करना चाहिये। अपने राज्य की रक्षा की व्यवस्था करके शत्रु पर चढाई करनी चाहिये और उसे जीत कर फिर उसी राज्य पर स्थापित कर देना चाहिये।

आप अपने कुटुम्बी, गुरुजन, वृद्ध, व्यापारी, कारीगर आश्रित और दरिद्रों का धन धान्य से सदा सर्वदा भरण पोषण करते हैं न ? जो लोग आमदनी और उसके व्यय के काम में नियुक्त हैं वे प्रतिदिन आपके सामने अपने हिसाब का ब्यौरा पेश करते हैं ना? कभी किसी होनहार एवं हितैषी कर्मचारी को बिना अपराध के ही पदच्युत नहीं करते हैं न ? कहीं किसी काम में लोभी, चोर, शत्रु या अनुभवहीन की नियुक्ति तो नहीं की गयी है न? कहीं चोर, लालची, राजकुमार, रानियां या स्वयं आप ही देशवासियों को दु:ख तो नहीं देते ? किसानों को सदैव प्रसन्न रखते है न ? आपके राज्य में जल से भरे सरोवर लबालब जल से भरे तालाब तथा जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है ना ? कहीं खेती वर्षा के अभाव में सूखाग्रस्त तो नहीं है न ? किसान का वीज और भोजन कभी नष्ट नहीं होना चाहिये। आवश्यकता पडने पर बहुत थोडे से व्याज पर उन्हे धन ऋण के रूप में देना चाहिये। आपके राज्य में खेती, गोरक्षा और व्यापार सम्बन्धी व्यवहार ईमानदारी से होते है न ? धर्मानुकूल व्यापार से ही प्रजा सुखी होती है। आपके राज्य में न्यायाधीश, सरपंच, तहसीलदार, पेशकार, न्याजिम और गवाह ये सभी प्रजा के हित में तत्पर और बुद्धिमानी से कार्यरत हैं न ? नगर की रक्षा के लिये गाँवों की रक्षा का भी उतना ही महत्व है। प्रान्तों की रक्षा भी ग्राम रक्षा के समान ही होनी चाहिये। सब स्थानों के समाचार तो निश्चित समय पर प्राप्त होते रहते हैं न ? राजन आपके राज्य में चोर, अपराधी, ऊंचे-नीचे लुक छिप कर गाँवों को लूटने वाले तो नहीं है ? आप स्त्रियों की और बालकों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करते हैं न ? आप स्त्रियों को

सन्तुष्ट तो रखते होंगे कहीं आप स्त्रियों पर विश्वास कर उन्हे अपनी गुप्त बात तो नहीं बता देते ? आप कहीं भोग विलास में लिप्त होकर विपत्ति की उपेक्षा तो नहीं कर बैठते ? आप अपराधियों के लिये यमराज और पूजनीयों के लिये धर्मराज तो है न ? आप प्रिय एवं अप्रिय व्यक्तियों की भली भांति परीक्षा करके ही तो व्यवहार करते हैं न ? शरीर की पीडा मिटती है नियमों के पालन और औषध के सेवन से तथा मन की पीडा मिटती है ज्ञानी पुरुषों के सत्संग से। क्या आप यथायोग्य सेवन व आयोजन करते है ?

आपके वैद्य अष्टांग-चिकित्सा में निपुण, हितैषी, प्रेमी एवं शरीर शरीर की देखरेख रखनेवाले हैं न ? कहीं आप लोग मोह या अभिमान से अर्थी एवं प्रत्यर्थियों (विरोधी) की उपेक्षा तो नहीं कर देते ? आप लोभ, मोह, विश्वास अथवा प्रेम से अपने आश्रित जनों की जीविका में बाधा तो नहीं डालते ? आपके पुरवासी देशवासी शत्रुओं से रिश्वत लेकर और मिल जुलकर अन्दर ही अन्दर आपका विरोध तो नहीं करते ? प्रधान प्रधान राजा प्रेम परवश होकर आपके लिये प्राणों की बलि देने के लिये तैयार रहते है या नहीं ? आपकी विद्वता और गुणों के कारण ब्राह्मण और साधु आपकी कल्याणकारिणी प्रशंसा करते हैं या नहीं, आप उन्हे दक्षिणा देते हैं या नहीं ? ऐसा करना आपके लिये स्वर्ग और मोक्ष का हेतु है। आपके पूर्वजों ने जिस वैदिक सदाचार का पालन किया था उसका ठीक ठीक पालन करते हैं न? आपके महल में आपकी आंखों के सामने गुणवान, ब्राह्मण स्वादिष्ट और स्वास्थ्य कर भोजन करके दक्षिणा तो पाते हैं ना ? आप पूरे संयम और एकाग्र मन से समय समय पर यज्ञ याग आदि तो करते ही होंगे। जाति भाई, गुरु बूढे, देवता, तपस्वी, देवस्थान, मन्दिर देवरा, शुभवृक्ष और ब्राह्मणों का नमस्कार, अभिवादन, पूजन तो करते हैं न ? आप किसी के मन में शोक या क्रोध तो नहीं उभाडते ? कोई मनुष्य अपने हाथ में मंगल सामग्री लेकर आपके पास सर्वदा रहता है न ? आपकी यह मंगलमयी धर्मानुकूल प्रवृति सदा सर्वदा एक सी तो रहती है ना ? ऐसी वृति आयु और यश को बढानेवाले एवं धर्म, अर्थ, एवं काम को पूर्ण करनेवाली है। जो ऐसी वृति रखता है उसका देश कभी संकट ग्रस्त नहीं होता है। सारी पृथ्वी उसके वश में हो जाती है। वह सुखी हो जाता है।

धर्मराज। कहीं आपके शास्त्र कुशलमन्त्री अज्ञानवश किसी श्रेष्ठ पवित्र निरपराध पुरुष को चोर चांई समझ कर सताते तो नहीं है? कहीं आपके कर्मचारी उत्कोच लेकर प्रमाणित चोर को बिना दंडित किये ही छोड तो नहीं देते ? कभी धनी एवं दरिद्र के विवाद में आपके कर्मचारी धन के लोभ से दरिद्रों के साथ अन्याय तो नहीं कर बैठते ? जो पहले दोषों का वर्णन हुआ उनसे आपको अवश्य बचना चाहिये। वेद की सफलता यज्ञ से, धन की सफलता दान और भोग से, पत्नी की सफलता आनन्द और सन्तान से एवं शास्त्र की सफलता शील तथा सदाचार से होती है।

दूर दूर से व्यापार करनेवाले वैश्यों से उचित कर आकार कर लेते हैं न? राजधानी एवं देश में व्यापारियों का ठीक से सम्मान होता है न ? वे कहीं धोखाधडी में फंसकर ठगे तो नहीं जाते हैं न ? आप क्या गुरुजनों से प्रतिदिन धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्र का श्रवण करते हैं? खेती बाडी से उत्पन्न होनेवाले कृषि उत्पादन अन्न, फल, गोरस, मधु घृत आदि पदार्थ धर्म बुद्धि से ब्राह्मणों को दिये जाते हैं ना ? आप अपने कारीगरों को उचित सामग्री, वेतन और काम देते हैं ना ? भलाई करनेवालों के प्रति भरी सभा में कृतज्ञता ज्ञापन और आदर सत्कार का भाव दिखलाते हैं ना? आप सभी प्रकार के सूत्र ग्रन्थ जैसे हस्तिसूत्र, रथ सूत्र, अश्वसूत्र, अस्त्र सूत्र, यन्त्र सूत्र और नागरिक सूत्र का अध्ययन अभ्यास तो करते हैं न ? आप सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र मारण प्रयोग, औषधियों के बिषैले योग अवश्य जानते होंगे ? आप अग्नि, हिंस्र जन्तु, रोग एवं राक्षसों से पूरे राष्ट्र की रक्षा करते होंगे ? अन्धे, गूंगे, लंगडे, लूले, अनाथ एवं साधु सन्यासियों के धर्मत: रक्षक आप ही हैं। महाराज राजा के लिये छ: दोष अनर्थकारी है निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, मृदुता और दीर्घ सूचना। इस प्रकार नारद ने युधिष्ठिर के राज्य की व्यवस्था के बारे में पूछा और राजनीति से राज्य का प्रबन्ध किस तरह चलाया जाये उसका प्रवचन किया।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय देवर्षि नारद की वाणी सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये और देवर्षि के चरणों का स्पर्श कर

कहा देवर्षि ऋषिवर मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा और जो मार्गदर्शन आपने किया और सुझाव बताये उसके अनुसार राजकाज सम्भालूंगा। आज मेरी बुद्धि में विस्तार हुआ, वृहद हुई। तब नारद ने कहा जो राजा इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करता है वह इस लोक में तो सुखी होता ही है और परलोक में भी सुख पाता है। देवर्षि नारद का उपदेश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उनका बहुत ही स्वागत सत्कार किया। विश्राम के पश्चात फिर उनके पास उपस्थित होकर धर्मराज ने यह प्रश्न किया देवर्षि आप सदा सर्वदा मन के समान पर्यटन करते रहते हैं तथा ब्रह्मा के बनाये विभिन्न लोकों में विचरण करते रहते है। आपने कहीं ऐसी या इससे बेहतर राज भवन सभा मंडप देखा है ?

युधिष्ठिर का यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने मुस्कुराकर अपनी मधुर वाणी से कहा धर्मराज मनुष्य लोक में ऐसी मणिमयी सभा मैंने न देखी है और न सुनी है। मैं आपको यमराज, वरुण, इन्द्र, कुबेर एवं ब्रह्मा की सभाओं के बारे में बताता हूं। वे सब लौकिक तथा अलौकिक कला कौशलों से युक्त है। सूक्ष्म तत्वों से बनी होने के कारण एक-एक सभा अनेक-अनेक रूपों में दिखती है। देवता, पितर, याज्ञिक, वेद, यज्ञ, ऋषि-मुनि आदि उनमें मूर्तिमान होकर निवास करते है। देवर्षि नारद की बात सुनकर पांचो पांडव और उपस्थित ब्राह्मण मंडली उन सभाओं का वर्णन सुनने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो गये। उन्होने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि आप अवश्य उन सभाओं का वर्णन करें। हम सब बडे प्रेम से सुनना चाहते है। वे सभायें किनकिन वस्तुओं से कितनी लम्बी चौडी बनी है ? उनके सभासद कौन हैं ? और भी उनमें क्या-क्या विशेषतायें हैं ? धर्मराज का यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारद ने देवराज इन्द्र, सूर्य पुत्र यम, वरुण यमराज कुबेर और लोक पितामह ब्रह्माजी की अलौकिक दिव्य सभाओं का विस्तार से वर्णन किया।

दिव्य सभाओं का वर्णन सुनकर युधिष्ठिर ने नारद से कहा देवर्षि आपने यमराज की सभा में प्राय: सभी राजाओं की उपस्थिति का वर्णन किया। वरुण की सभा में नाग, दैत्यराज, नदी और समुद्रों की स्थिति बतलायी। कुबेर की सभा में यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, गुह्यक, और रुद्र देव की उपस्थिति के बारे में बताया। आपने यह बतलाया कि ब्रह्मा की सभा में ऋषि मुनि, देवता और शास्त्र पुराण निवास करते हैं। आपने देवराज इन्द्र की सभा में देवता, गन्धर्व और ऋषि मुनियों की गणना भी कर दी। वहां राजर्षियों में केवल हरिश्चन्द्र ही रहते हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने ऐसा कौनसा सत्कर्म, तपस्या अथवा व्रत किया जिसके फलस्वरूप वे इन्द्र के समकक्ष हो गये ? आपने पितृ लोक में मेरे पिताश्री पांडु को किस प्रकार देखा ? उन्होने मेरे लिये क्या सन्देश दिया है ? मुझे सब उनके बारे में बताये। देवर्षि नारद ने कहा राजन मैं आपको राजर्षि हरिश्चन्द्र की महिमा के बारे में बताता हूं वे धीर और वीर एक छत्र सम्राट थे। पृथ्वी के सभी नरपति उनसे झुककर प्रणाम करते थे। वे सब पर विजय प्राप्त कर दिग्विजय हुये और राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। सब राजाओं ने उन्हे कर दिया और उनके यज्ञ में उपस्थित हुये तथा उनका आधिपत्य स्वीकार किया। याचकों को अपार धन राशि प्रदान की। उन्होने ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्राभूषण, हीरे जवाहरात अन्य वस्तुयें विपुल मात्रा में प्रदान कर उन्हे प्रसन्न किया। देश देश में उनके बडप्पन की घोषणा होने लगी। यज्ञ के फलस्वरूप एवं ब्राह्मणों के आशीर्वाद रूप हरिश्चन्द्र सम्राट पदपर अभिषिक्त हुये। जो राजा राजसूय यज्ञ करता है, संग्राम में पीठ दिखाये बिना मर मिटता है और तीव्र तपस्या के द्वारा शरीर का परित्याग करता है वह देवराज इन्द्र की सभा में सर्वोच्च स्थान पाता है।

युधिष्ठिर आपके पिता महाराज पांडु स्वर्गीय हरिश्चन्द्र का ऐश्वर्य देखकर विस्मित हुये। जब उन्होने यह देखा कि मैं मनुष्य लोक में जा रहा हूं तो उन्होने आपके लिये यह सन्देशा भेजा कि युधिष्ठिर तुम्हारे सब भाई तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे अधीन हैं, तुम्हारी आज्ञा में है। इसलिये तुम सारी पृथ्वी जीतने में समर्थ हो। मेरे लिये तुम्हे महान राजसूय यज्ञ करना चाहिये। तुम मेरे पुत्र हो। यदि तुम राजसूय यज्ञ करोगे तो मैं भी देवराज इन्द्र की सभा में हरिश्चन्द्र के समान चिरकाल पर्यन्त आनन्द भोगूंगा। धर्मराज

आपके पिता के सामने मैंने यह स्वीकार कर लिया था कि आपको यह सन्देश पहुंचा दूंगा। राजन अब आप अपने पिता का संकल्प और मनोरथ पूर्ण करें। इस यज्ञ के फलस्वरूप केवल आपके पिता को ही नहीं स्वयं आपको भी वही स्थान प्राप्त होगा। इस यज्ञ में बडे बडे विघ्न उपस्थित होते हैं और वज्रदेही ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में भी रहते हैं। थोडासा निमित्त मिल जाने पर बडा भयंकर क्षत्रिय कुलान्तक युद्ध हो जाता है जिससे एक प्रकार से पृथ्वी का प्रलय ही उपस्थित हो जाता है। धर्मराज यह सब सोच विचार कर अपने लिये जो श्रेयस्कर हो वही कीजिये। सावधान रहकर चारों वर्णों की रक्षा करते हुये उन्नति और आनन्द प्राप्त कीजिये तथा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कीजिये। मैंने आपके प्रश्न का उतर दे दिया अब मुझे जाने की आज्ञा दें। जनमेजय देवर्षि नारद इतना कहकर अपने साथी संगी ऋषियों के सहित वहां से चले गये और धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ की चिन्ता में व्यस्त हुये। युधिष्ठिर ने अपने सभासदों का सत्कार किया तथा वे स्वयं उनके द्वारा सत्कृत हुये। उन्होने अपने धर्म का विचार किया और जिस प्रकार प्रजा की भलाई हो वही करने लगे। वे किसी का भी पक्षपात नहीं करते थे। क्रोध और अभिमान पर विजय प्राप्त की। सारी पृथ्वी में युधिष्ठिर की जय जय कार होने लगी। युधिष्ठिर के साधु व्यवहार से प्रजा उन पर पिता के समान विश्वास करने लगी। उनकी किसी के साथ शत्रुता नहीं रही इसीलिये वे अजात शत्रु कहलाने लगे। युधिष्ठिर ने सबको अपना लिया। भीमसेन सबकी रक्षा में और अर्जुन शत्रुओं के संहार में तत्पर रहते थे। सहदेव धर्मानुसार शासन करते और नकुल स्वभाव से ही विनम्र थे। उनकी प्रजा में वैर विरोध भय, अधर्म बिल्कुल भी नहीं था। सभी अपने-अपने कर्तव्यों में संलग्न थे। समय पर वर्षा होती थी तथा सभी जन सुखी थे।

३) युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ की प्रेरणा

पांडव राजसूय यज्ञ का सपना देखने लगे। युधिष्ठिर के राज्य में यज्ञ की शक्ति, गोरक्षा, खेती और व्यापार की उन्नति चरम शिखर पर पहुंच गई। प्रजा पर कोई कर शेष नहीं रहता था। कर भी अधिक बढाया नहीं जाता था जिससे कर की चोरी हो। न कडाई से वसूल किया जाता था। रोग, अग्नि या मूर्च्छा का किसी को भय नहीं था। लूटेरे, ठग और मुंह लगे प्रजापर किसी भी प्रकार का अत्याचार या उनके साथ झूठा व्यवहार नहीं कर पाते। देश-विदेश के सभी सामन्त राजा विभिन्न देशों के वैश्यों के साथ आकर धर्मराज की भलाई, सेवा कर दान और सन्धि विग्रह आदि में सहयोग देते थे। धर्मात्मा युधिष्ठिर जिस राज्य पर अधिकार कर लेते वहां के ब्राह्मण, ग्वाले और सारी प्रजा उनसे प्रेम करने लगती थी।

कृष्ण आये और युधिष्ठिर से बोले। युधिष्ठिर अपनी राजसभा में बैठे थे कृष्ण ने कहा आप किस सोच में पडे हैं महाराज ? युधिष्ठिर बोले मुझे महाराज नहीं भाई कहिये वासुदेव। मेरे और आपके बीच राजमुकुट दीवार नहीं बने और यदि बन सकता है तो मुझे यह राजमुकुट नहीं चाहिये जो मुझे मेरे भाई से अलग कर दे। कृष्ण बोले मैंने अपनी भूल मानी भ्राताश्री परन्तु आपकी राजनीति शुद्ध है। आपके भाई कभी आपसे विलग नहीं होंगे। अब तो बताइये कि आप किस सोच में डूबे हुये हैं ? युधिष्ठिर बोले मैं यह सोच रहा था कि नारदजी तो पिताश्री का सन्देश सुना गये कि मुझे राजसूय यज्ञ करना चाहिये परन्तु क्या ज्येष्ठ पिताश्री के जीवन काल में मेरे लिये राजसूय यज्ञ करना उचित होगा। कृष्ण बोला उचित क्यों नहीं होगा ? आप स्वयं तो अलग हुये नहीं हो। आपको तो अलग किया गया है। स्वयं महाराज धृतराष्ट्र ने तो आपका राज्याभिषेक भी करवाया था। अब आप हस्तिनापुर के अधीन नहीं है। इन्द्रप्रस्थ एक स्वतन्त्र और अलग राज्य है। उसके राजा का राजसूय यज्ञ करने का पूरा अधिकार है। आपके राज्य में कोठार अनाज से भरे हुये हैं। जन समुदाय रात्रि के प्रहर में अपने दरवाजे बन्द नहीं करते क्योंकि उन्हे चोरों से खटका नहीं है। चोरी तो तब होती है भ्राताश्री जब किसी के पास सब कुछ हो और किसी के पास कुछ भी न हो और आपके न्याय ने आपके राज्य में यह नहीं होने दिया। यात्री बेखटके से यात्रा पर जाते हैं क्योंकि राज्य में सारे मार्ग दर्पण की भांति स्वच्छ है उनपर ढेरों की धूलि नहीं पडती। राजकीय कर न्याय की मर्यादा भंग नहीं करते। चारों ओर आपके राज्य

में अमन चैन फैला हुआ है। जरा भी अराजकता नहीं है तो फिर आज आपके अतिरिक्त राजसूय यज्ञ करने का अधिकार किसको है ? सम्राट कहलाने का अधिकार तो केवल आपको है भ्राताश्री इसीलिये राजसूय यज्ञ अवश्य कीजिये।

धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने मंत्री और भाइयों को बुलाकर कहा राजसूय यज्ञ के सम्बन्ध में आप लोगों की क्या सम्मति है? सभासदों और मन्त्रियों ने कहा राजसूय यज्ञ के अभिषेक से राजा सारी पृथ्वी का एकछत्र सम्राट हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जल के एक छत्र स्वामी वरुण हैं। आप सम्राट होने योग्य हैं। राजसूय यज्ञ करने का यही उपयुक्त अवसर भी है। जो बलवान है वही उस यज्ञ का अधिकारी है। इसलिये आप अवश्य यह यज्ञ कीजिये। इसमें विचार या शंका करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मन्त्रियों की बात सुनकर धर्मराज ने अपने भाई, ऋत्विज, धौम्य मुनि आदि से व्यासजी से सभी से परामर्श किया। सबकी मन्त्रण यही रही कि आप राजसूय महायज्ञ करने के लिये सर्वथा योग्य है। सबकी सम्मति जानकर धर्मराज युधिष्ठिर ने सबके कल्याण हेतु मन ही मन विचार किया। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह अपनी शक्ति, साधन, देशकाल, आय और व्यय पर भलीभांति विचार कर ले तब कुछ निर्णय करे। ऐसा करने से विपत्ति की सम्भावना नहीं रहती। केवल मेरे अपने निश्चय से तो यज्ञ नहीं हो सकता। युधिष्ठिर कृष्ण से बोले आप स्वार्थ से परे हैं। आप में राग और द्वेष लेशमात्र भी नहीं है। क्या मैं राजसूय यज्ञ करने में समर्थ हूं या नहीं। यह बात आप ही ठीक ठीक निर्णय करके बताये। कृष्ण बोले परन्तु.... अर्जुन बोले परन्तु क्या केशव ? कृष्ण बोले सिंह के जबडों में फंसे हुये मृगशावक को किसी अन्य सिंह अथवा व्याघ्र का भय नहीं होता किन्तु उसका अर्थ यह तो नहीं होता कि वह सुरक्षित है। उसके प्राण संकट में तो है ही। यदि प्रकृति के चमत्कार वश वह सिंह मर जाये या मृग शावक उसके दांतों से फिसल कर गिर जाये तो उसे सिंह से ही नहीं सियारों से भी डर लगने लगता है। मगध नरेश गिरिव्रज में जरासंध बैठा है। आज जितने भी राजवंश चल रहे हैं वो या तो ययाति के वंशज है या राजा भोज के। उसने ८६ राजाओं को पशुबल से हराकर अपने बन्दी गृह में डाल रखा है। आधुनिक काल के सारे राज घराने मगध नरेश को उपहार भेंट करते है और यह भी एक आधुनिक सत्य है कि आज जरासंध से अधिक शक्तिशाली कोई राजा नहीं। वो तो स्वयं चक्रवर्ती होने के सपने देख रहा है। चेदि नरेश दमघोष का पुत्र शिशुपाल उसका सेनापति होना अपना गौरव मानता है। और उसके सामने हाथ बांधे खडा रहता है औरों को छोडो भ्राताश्री तुम्हारे पिताश्री के परम मित्र भगदत तक जरासंध के आगे सिर नवाये खडे रहते हैं। वह कहता है कि रुद्र यज्ञ में वह उन राजाओं की बलि देकर शिव को प्रसन्न करेगा। किसी भी देवता की पूजा के लिये मनुष्यों का वध कभी नहीं देखा गया फिर भी वह कल्याणकारी शिव की पूजा मनुष्यों के रक्त से करना चाह रहा है। ऐसे राजा की प्रजा की क्या स्थिति होती होगी। जरासंध की पशु शक्ति से सभी व्यक्ति प्रभावित है। युधिष्ठिर बोले राजाओं का प्रिय कार्य होना चाहिये पर ऐसा नहीं है। जरासंध के व्यवहार से हम परिचित ही हैं। ये राजा प्रजा का पालन नहीं करते प्रजा का शोषण करते है। शिशुपाल को जरासंध बहुत प्रिय है इसलिये वह उसका सेनापति भी हो गया। स्वयं विदर्भ के भीष्मक जरासंध के आज्ञाकारी सेवक के धर्म का निर्वाह कर रहे है। दन्त वक्र तो जरासंध के पालतू कुत्ते केसमान व्यवहार कर रहा है। करम और मेधवान उसके परम मित्र हैं। पौंड्रक उसका विश्वस्त सेवक है। भगदत्त आपके होते हुये भी जरासंध के भय से आपकी सहायता नहीं कर पायेंगे। दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, रूक्मी, एकलव्य, द्रुम, श्वेत, शैव्य शकुनि ये सब आपके मित्र कोई नहीं है बल्कि दुर्योधन के साथ है। संयोग मिलते ही ये सब जरासंध के मित्र हो जायेंगे क्योंकि प्राकृत नियम है कि शक्तिशाली का हर कोई मित्र बनना चाहता है। ऐसे में क्या करेंगे पांडव ? क्या कर पायेंगे द्रुपद और विराट ? क्या आपको नहीं लगता युधिष्ठिर कि पांडवों को इस समय साहस कर जरासंध और उसके मित्रों को इस अधर्म की आन्धी को गिरिव्रज में ही बन्दी कर डालें। भीम बोला तो क्या आप हमें मगध नरेश जरासंध से डराने का प्रयत्न कर रहे हैं वासुदेव ? कृष्ण बोले नहीं भीम। मैं तो केवल तुम्हें वास्तविकता बताने का प्रयत्न कर रहा हूं कि अपने मामाश्री पुरूजित के अतिरिक्त आज तुम किसीपर पूर्ण

विश्वास नहीं कर सकते अर्थात तुम्हारे राजसूय यज्ञ में केवल एक रुकावट है जरासंध और यह रुकावट कोई साधारण रुकावट नहीं है। जरासंध को अपने रास्ते से हटाये बिना महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर ही नहीं सकते। वो सौ राजाओं की बलि चढा कर शक्ति प्राप्त करने की सोच रहा है कि वो अजेय हो जाये और यह भी मत भूलो कि उसपर महादेव की कृपा भी है। यदि इन्द्रप्रस्थ नरेश राजसूय यज्ञ करना ही चाहते हैं तो उनके लिये यह आवश्यक है कि वे जरासंध वध करे और जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं को मुक्ति दिलवाये। और यदि आप यह नहीं कर सकते महाराज तो आप राजसूय यज्ञ भी नहीं कर सकते। धर्मराज अच्छा है कि आप सोचते हैं और अनुभव करते है कि पृथ्वी जरासंध की नहीं है। आप यह भी जानते हैं कि प्रजा के प्राणों और सुख-दु:ख का स्वामी जरासंध नहीं है फिर भी वह स्वामी बनने का प्रयत्न कर रहा है। युधिष्ठिर बोले आप जानते हो कृष्ण राजसत्ता में जरासंध के समान मेरी आसक्ति नहीं है। कृष्ण बोले राजसत्ता में आपकी आसक्ति नहीं है इसलिये तो आप कर्म के उपयुक्त पात्र है आप यह कह सकते है कि जिसकी सृष्टि है जिसने इसके पालन का दायित्व उठाया है वह ईश्वर स्वयं ही इसकी रक्षा करेगा। किसी को कष्ट में देखकर आप इसलिये तो उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते कि वह दंड उसे ईश्वर ने दिया है इसलिये उसकी सहायता भी नहीं करेगा। ईश्वर ने मनुष्य को कर्म का अधिकार दिया है। फल ईश्वर के नियमों के अधीन है। फल तो वही देगा किन्तु कर्म तो मनुष्य को ही करना पडेगा। कर्म न कर, मनुष्य अकर्म का दोषी होगा और तब वह ईश्वर द्वारा दंडित भी होगा। मैं तो सिर्फ इतना चाहता हूं कि धर्मराज बस आप अपने धर्म का पालन करें। दुष्ट और अत्याचारी राजाओ पैरों तले कुचली हुई असहाय प्रजा की चीत्कार सुने। उनकी सहायता करें और उन उच्छृंखल राजाओं का नियमन करें।

भीम बोला तो आप हमें मगध पर आक्रमण करने के लिये कह रहे है। कृष्ण बोले रणभूमि में तो जरासंध को घेर लेना सम्भव नहीं है भीम। यदि उसकी सेना को पर्वत की उपमा दूं तो आपकी सेना उस पर्वत पर चींटी की भांति दिखाई देगी। हर राजा चक्रवर्ती बनना चाहता है परन्तु हर राजा चक्रवर्ती हो तो नहीं सकता। अर्जुन बोला तो क्या हम इसके योग्य नहीं है केशव ? कृष्ण बोले मैं मित्र हूं। मेरी प्रशंसा से कुछ नहीं होता है। योग्यता तो तब ही सिद्ध होती है पार्थ जब शत्रु प्रशंसा करने लगे। करुष देश का अधिपति जो महाबली और माया युद्ध में कुशल है, शिष्य के समान जरासन्ध की सेवा करता है। पश्चिम के अतुल पराक्रमी मूर और नरक देश के शासक यवन अधिपति ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। बंग, पौंड्र और किरात देश का स्वामी उसने भी इस समय जरासन्ध का आश्रय ले रखा है। उत्तर दिशा के अधिपति १८ भोज परिवार जरासंध से भयभीत होकर पश्चिम की ओर भाग गये है। शूरसेन, भद्रकार, शाल्व, योध, पटच्चर, सुस्थल, सुक्कुट, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्वायन, आदि राजा, दक्षिण पांचाल एवं पूर्व कौसल और मत्स्य, संन्यस्तपाद आदि उत्तर देशों के राजा जरासंध के भय से अपना अपना राज्य छोडकर पश्चिम और दक्षिण की ओर भाग गये है। दानवराज कंस अपने जाति भाइयों को बहुत सताकर राजा बन बैठा था। उसकी अनीति और अधर्म बढ जाने से मैंने सबके कल्याण हेतु भैया बलराम की सहायता से उसका वध किया था पर ऐसा करने से कंस का श्वसुर जरासन्ध और भी प्रबल हो गया। हम लोग अस्त्रों शस्त्रों द्वारा तीन सौ वर्षोंतक लगातार उनका संहार करते रहे तब भी उसका सर्वथा सफाया नहीं हो पाया। वह अपनी शक्ति से जीतकर राजाओं को अपने पहाडी किले में बन्द कर देता है। इसलिये और राजाओं पर विजय प्राप्त करने की चिन्ता छोडकर सबसे पहले उन कैदी राजाओं को मुक्त कराना चाहिये। धर्म राज यदि आप राजसूय यज्ञ करना ही चाहते तो सर्वप्रथम कर्तव्य है कैदी राजाओं की मुक्ति और जरासंध का वध। यज्ञ के सम्बन्ध में मेरी तो यही सम्मति है। अब आप सब बातों को सोच विचार कर स्वयं निश्चित कीजिये।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा परमज्ञान सम्पन्न श्रीकृष्ण आपने जैसी सम्मति मुझे दी है वैसी और कोई नहीं दे सकता। आपके समान संशय मिटानेवाला भला इस पृथ्वीपर कौन है ? आजकल तो घर घर में राजा है। सभी अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे है, परन्तु वे सम्राट नहीं है। मैं जानता हूं यह पद भी बडी कठिनाई से मिलता है। जरासंध से तो हमें भी शंका है। वह बडा

दुष्ट है। हम तो आपके बल से ही अपने को बलवान मानते है। जब आप ही उससे शंकित है फिर हम लोगों की तो बात ही क्या। क्या राजसूय यज्ञ करने के लिये हमारे पास उपयुक्त साधन हैं ? एक ओर तो कृष्ण तुम हमें शक्तिशाली राजाओं की सूची गिना रहे हो और दूसरी ओर इन्द्रप्रस्थ जैसे एक छोटे से राज्य के राजा से राजसूय यज्ञ की अपेक्षा करते हो। कृष्ण बोले यदि आप पहले सहमत हों तो फिर यज्ञ के साधनों के लिये विचार किया जाये। युधिष्ठिर कुछ आत्मलीन होकर बोले तुम्ही बताओ हमें क्या करना चाहिये केशव ? हमें पहली सीढी चढकर ही दूसरी सीढी पर चढने की बात करनी चाहिये और हम वास्तव में पहली सीढी भी नहीं चढ पाये। राजसूय यज्ञ के लिये शास्त्र की व्यवस्था के विषय में मैं जानता हूं। हमारे शास्त्रकारों ने छोटे छोटे संकीर्ण राज्यों की असुविधाओं तथा निर्मम, अधर्मी एवं स्वार्थी राजाओं के अत्याचारों और उत्पीडन से प्रजा को बचाये रखने के लिये यज्ञ की व्यवस्था की है। परम स्वतन्त्र राजाओं की निर्मम इच्छाओं का नियमन कर प्रजा की रक्षा की जाये। जम्बूद्वीप में चाहे शासन एकाधिक हो किन्तु वह सदा एक राष्ट्र रहे। प्रत्येक नागरिक सम्पूर्ण तथा समग्र जम्बूद्वीप को न केवल अखंड देश माने वरन उसे अपना उससे प्रेम भी करे। राजा चाहे अपनी सीमाओं के लिये एक दूसरे से लडते रहे किन्तु प्रजा के लिये सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में कहीं कोई सीमा न हो। कृष्ण बोले देश में यदि चक्रवर्ती सम्राट नहीं होगा और एक एक योजन की दूरी पर कोई स्वतन्त्र राजा होगा तो आपस में उनमें हिंसा अधिक होगी। वे परस्पर युद्ध करेंगे। उनकी सीमाओं पर नित्य प्रति टकराहट होगी। उन राजाओं को यदि स्वतन्त्र छोड दिया गया तो जितनी हिंसा वे प्रतिदिन के पारस्परिक युद्ध में करेंगे वह एक धर्मप्राण राजा के राजसूय यज्ञ में होनेवाली हिंसा और रक्तपात से कहीं अधिक होगी। राजसूय यज्ञ करनेवाला राजा छोटे छोटे उन सभी राजाओं के द्वारा होनेवाली उस भारी हिंसा को रोक देता है। युधिष्ठिर बोले पर केशव कहीं ऐसा तो नहीं कि बहुजन हिताय कहा जानेवाला यह धर्म युद्ध वस्तुत: महत्वाकांक्षी राजाओं की युद्ध लिप्सा की आड न हो। कहीं ऐसा तो नहीं मेरे मन का लोभ ही मुझे ढग रहा हो ? उसने अपना रूप बदल लिया हो और मैं उसके बहकावे में उच्च सिद्धान्तों का उच्चारण करता हुआ निकृष्ट कार्य करने में लग जाऊ ? कृष्ण बोले इसे स्वयं आपसे अधिक कौन जान सकता है ? किन्तु जरासन्ध का वध कर उसके कारागार के बन्धन में पडे उन ८६ राजाओं को मुक्त करा दें तो यह अनावश्यक हिंसा नहीं होगी और न ही आपके मन को लोभ। युधिष्ठिर ने कहा अत्याचारी से निरीह लोगों को मुक्त कराना तो क्षत्रिय का धर्म है ? कृष्ण बोले मैं आपको वही धर्म करने के लिये तो कह रहा हूं। युधिष्ठिर बोले माधव क्या तुम, या बलराम भैया, अर्जुन में से कोई भी जरासन्ध का वध नहीं कर सकता ?

भीम धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर बोले यदि हम रणभूमि में जाने से पहिले यह मान लें कि शत्रु हमसे बलवान है तो हमें विजयश्री के दर्शन हो चुके। यदि वासुदेव हमारे साथ हो तो मैं और अर्जुन किसी भी राजा का अभिमान चूर चूर कर सकते है। <u>जो राजा उद्योग नहीं करता, दुर्बल होने पर भी बलवान से भिड जाता है, युक्ति से काम नहीं लेता अन्त में वह हार जाता है। सावधान, उद्योगी और नीति निपुण राजा कम शक्ति होनेपर भी बलवान शत्रु को जीत लेता है</u> भ्राताश्री। श्रीकृष्ण में नीति है, मुझ में बल है और अर्जुन में विजय पाने की योग्यता है। इसलिये हम तीनों मिलकर जरासन्ध का वध करे। कृष्ण बोले राजन शत्रु की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आपमें शत्रु विजय, प्रजा पालन, तपस्या शक्ति और समृद्धि आदि सभी गुण है। जरासंध में तो केवल एक गुण है वह है बल। जो कोई लोग उसकी सेवा में लगे हुये है वे भी उससे सन्तुष्ट नहीं है क्योंकि वह उनके साथ बार-बार अन्याय करता है। उसने योग्य पुरुषों को अयोग्य काम में लगाकर अपना शत्रु बना लिया है। हम लोग उसे युद्ध के लिये बाध्य कर जीत सकते हैं। छियासी राजाओं को कैद कर चुका है, शेष चौदह बाकी है। फिर वह उन सबका एक साथ वध करना चाहता है। जो कोई इसके क्रूर कर्म को रोक पायेगा वह बडा यशस्वी होगा और जो जरासंध पर विजय प्राप्त करेगा निश्चय ही वह सम्राट होगा। भीम ने कहा हम इन्द्र से तो लड सकते है तो फिर क्या जरासंध से नहीं लड सकते ? युधिष्ठिर बोले वो सारी स्थिति और थी भीम। कृष्ण और अर्जुन ने अग्नि और वरुण से प्राप्त शस्त्रों से अग्नि की सहायता के लिये इन्द्र को रोके रखा। इसे

इन्द्र को पराजित करना नहीं करा जा सकता। देवलोक यहां से बहुत दूर है फिर भी तक्षक तथा अश्वसेन के बच जाने के पश्चात युद्ध की कोई सार्थकता ही नहीं रही और युद्ध स्वत: ही बन्द हो गया। इसे पराजित होना तो नहीं कहा जा सकता प्रिय भीम। यदि इन्द्र सचमुच में पराजित हुआ होता तो वह पांडवों का बन्दी होता या उनके अधीनस्थ राजा। वैसी भी युद्ध समाप्त कर उसने दीन होकर अर्जुन से शरण नहीं ली। विजेता कभी याचक नहीं होता। अर्जुन ने विजेता होकर भी इन्द्र से ऐन्द्रास्त्र की याचना की थी। कृष्ण मैं चक्रवर्ती सम्राट होने के स्वार्थ से साहस करके आपको या भीम अर्जुन को वहां कैसे भेज दूं ? भीम और अर्जुन ये दोनों ही मेरी आंखे है। आप मेरे मन है। मैं अपने नेत्र और मन खोकर कैसे जीवित रह सकता हूं ? इसलिये विचार कर यज्ञ का संकल्प छोड देना चाहिये ? अर्जुन बोले हे गोविन्द तो फिर चलिये यदि आप हमारे साथ है तो फिर हमें किसी भी सेना की आवश्यकता नहीं। कृष्ण बोले मैं तो आप लोगों के साथ ही हूं और सदैव साथ ही रहूंगा। चलने से पहिले पांच विषयों पर विचार कर लो पार्थ। जरासन्ध का अभिमान वो राक्षस है जो राजमुकुट खाकर अपना पेट भरता है। वह मल्ल युद्ध में अनुपम है। उसके बन्दी गृह में ८६ राजा पशु की भांति बन्द है और वह महादेव पर उनकी बलि चढानेवाला है। अब केवल १४ राजाओं की कमी रह गई है और यदि उसने यह १४ राजा भी जुटा लिये तो उसकी पराजय असम्भव हो जाये। जो कोई उसे यह बलि देने से रोकेगा तो स्वयं महादेव उसके ऋणी हो जायेंगे और मानव इतिहास सदैव उसका नाम आदर से लेता रहेगा। कुछ भूल जाने पर मनुष्य का वश नहीं है महाराज। अर्जुन बोला भ्राताश्री यदि हम राजसूय यज्ञ के विषय में सोचकर चुप रह जाये तो मानव इतिहास यही कहता रहेगा कि चक्रवर्ती महाराज पांडु के वशं में पांच कायरों ने जन्म लिया था। पराजय के भय से डर कर बैठने से तो कहीं अच्छा है कि क्षत्रिय की भांति मृत्यु का वरण करे। बाकी तो आपका आदेश। राजसूय यज्ञ उन सबका सामूहिक यज्ञ है। युधिष्ठिर का सम्राट बनना याने उन सबका सम्राट बनना है। शस्त्राशस्त्र, पराक्रम, श्रेष्ठ सहायक, यश और बल की ये सब बातें बडी कठिनाई से प्राप्त होती है किन्तु अर्जुन को तो ये सभी दुर्लभ वस्तुये अपनी इच्छानुसार प्राप्त हुई। शत्रुओं को जीतने में जिसकी प्रवृति हो वही सब प्रकार से श्रेष्ठ क्षत्रिय है। बलवान पुरुष सब गुणों से हीन हो तो भी वह शत्रुओं के संकट से पार हो सकता है। जो निर्बल है वह सर्वगुण सम्पन्न होकर भी क्या करेगा। सिद्धि और प्रारब्ध के अनुकूल पुरुषार्थ ही विजय का हेतु है। कोई बल से युक्त होकर भी प्रमाद करे और कर्तव्य में मन न लगाये तो वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। प्रमाद दोष के कारण बलवान से बलवान योद्धा भी मारा जाता है। इस समय तक अर्जुन गांडीव धनुष अक्षय तूणीर, दिव्य रथ, ध्वजा था सुधर्मा सभा सभी तो प्राप्त कर चुके थे। इसमें उनका उत्साह बढ रहा था। लोग कुलीनता की प्रशंसा करते है। अर्जुन बोले भ्राताश्री मुझे तो क्षत्रियों का बल और वीरता ही प्रशंसनीय जान पडती है। यदि हम लोग राजसूय यज्ञ को निमित बनाकर जरासंध का वध और बन्दी राजाओं को मुक्त कर सके तो इससे श्रेयस्कर और क्या होगा ?

कृष्ण ने कहा धर्मराज युधिष्ठिर भरतवंश शिरोमणि कुन्तीनन्दन अर्जुन में जैसी बुद्धि होनी चाहिये वह प्रत्यक्ष दीख रही है। हमारी मृत्यु चाहे दिन में हो या रात में, इससे कुछ भी अन्तर नहीं है। न ही हम उसकी परवाह करते है अब तक अपने को युद्ध से बचाकर कोई अमर भी तो नहीं हुआ है। इसलिये वीर पुरुष का कर्तव्य है कि वह अपने सन्तोष के लिये विधि और नीति के अनुसार शत्रु पर आक्रमण कर विजय के लिये प्रयत्न करे। सफलता में लोक और विफलता में परलोक दोनों ही अवस्थाओं में अपना काम तो बनता ही है। कृष्ण बोले यदि किसी प्रकार हम जरासंध को पराजित कर सकें तो न केवल जरासंध के मित्र हमसे भयभीत हो जायेंगे वरन उसके द्वारा बन्दी किये गये वे सभी राजा और उनके सम्बन्धी सब हमारे हितैषी और मित्र बन जायेंगे उसके पश्चात सम्राट युधिष्ठिर का सम्राट बनना कोई कठिन काम नहीं रह जायेगा। नकुल ने विस्मय से कहा गोविन्द हमारे पास जरासंध को पराजित करने के लिये उपयुक्त साधन भी नहीं है, दूसरी ओर आप उसको पराजित करने के परिणामों के विषय में चर्चा कर रहे हो। युद्ध नीति तो यही कहती है कि शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। रहा जरासंध की शक्ति का

विषय तो भ्राताश्री आपने ही सिखाया है कि युद्ध में किसी न किसी को तो हारना ही पडता है। इस युद्ध का परिणाम हम जानते है। यह मगध नरेश हारेंगे या मगध नरेश जीतेंगे क्योंकि हम दोनों के बीच में दोनों की हार या दोनों की जीत सम्भव नहीं है।

युधिष्ठिर के मन में अब भी उत्साह नहीं जाग रहा था। वे अपने सबसे प्रिय तीनों को अपने सबसे बडे शत्रु तथा अपने युग के सबसे क्रूर तथा अत्यन्त बलवान राजा के घर में कैसे नि:शस्त्र भेज दें ? इतना तो युधिष्ठिर के मन में स्पष्ट हो गया कि वे अपने सम्राट पद के लिये इन तीनों को संकट में नहीं डाल सकते। वे तीनों स्वयं अपनी इच्छा से, उत्साहपूर्वक जरासंध का नाश करने के लिये जाना चाहते थे। युधिष्ठिर को भी लगने लग गया कि राजसूय यज्ञ अथवा सम्राटपद तो उनकी कोई समस्या ही नहीं है। पापी जरासंध का जीवित रहना ही उनके लिये चुनौती था। वे तो अधर्म से लडने के लिये जाना चाहते थे। धर्म स्थापना करना चाहते थे। जरासंध के कारागृह में पडे असहाय तथा निर्बल राजाओं को स्वतन्त्र कराना, अन्य राजाओं को जरासंध के शोषण से छुटकारा दिलाना ही उनका लक्ष्य था। ऐसे में युधिष्ठिर उन्हे कैसे रोक पाते ? उनके प्रति युधिष्ठिर के उत्साह से परिचालित नहीं थे। वे अपने साहस और उत्साह के भरोसे जाना चाहते थे।

कृष्ण को समझना इतना सरल नहीं है। कृष्ण में न तो साहस की कमी है और न ही त्याग की। उसका दृष्टिकोण भी संकीर्ण नहीं है। कृष्ण स्वार्थी भी नहीं है, दूरदर्शी है। कृष्ण के सिवाय पांडवों का हितैषी और कौन है ? पांडवों की इच्छा से कृष्ण चलता है या कृष्ण की इच्छा से पांडव ? इच्छा तो हर परिस्थिति में गोविन्द की ही चलती है। आततायी अपने पाप से मारा जाता है किसी की इच्छा से नहीं। प्रकृति के शाश्वत सत्यों को कृष्ण जितनी सहजता से समझता है और अभिव्यक्त करता है अन्य कोई नहीं। व्यक्ति किसी की इच्छा से नहीं मरता है, वह मरता है अपने कर्मों से। अपने पापों से। व्यक्ति कितने ही पुण्य प्राप्त कर ले पर इस मानव शरीर को तो प्रकृति द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन हो नष्ट तो होना ही है। मनुष्य अपने कर्म बन्धनों में बंधा जाता है और उन्ही में बंधा चला जाता है। सारे मनुष्य आततायी ही तो नहीं होते। उनमें पुण्यात्मा भी होते है, महात्मा भी होते है। कुछ लोग पुण्य क्षीण होने से शरीर त्यागते है और कुछ अपनी कामनाओं के पूरी हो जाने के कारण। कामना मुक्त होकर कोई शरीर धारण नहीं करता। मरना तो प्रत्येक व्यक्ति को है। दुर्बल राजा के राज्य में चारों ओर अराजकता फैल जाती है। विभिन्न राजा उच्छृंखल और अत्याचारी हो जाते है तो प्रजा पीडित होती है। मित्र को न भी जानो तो कोई हानि नहीं, किन्तु शत्रु को जानना परम आवश्यक है। कृष्ण बोले जरासंध अहंकारी है। हम छदम वेश में जायेंगे और तब तक स्वयं को प्रकट नहीं करेंगे जब तक सारी परिस्थितियां हमारे अनुकूल नहीं हो जाती। आपको यदि तनिक भी विश्वास हो तो भीम और अर्जुन को मेरे साथ भेजे। मैं आपको आश्वस्त करता हूं कि आपके इन दोनों छोटे भाइयों का कोई किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा ?

४) जरासंध के जन्म का वृतान्त और जरासंध वध

वैशम्पायन बोले जनमेजय धर्मराज युधिष्ठिर ने कृष्ण की बात सुनकर कहा मैं कायर नहीं हूं परन्तु मैं राजा भी हूं और राजा को कोई भी कार्य करने से पहिले दो बार अवश्य सोचना चाहिये। कृष्ण यह जरासंध कौन है ? इसे इतनी शक्ति और पराक्रम कैसे प्राप्त हुआ ? कृष्ण बोले यह बडी ही अद्‌भुत कथा है धर्मराज। मैं तुम्हें इसके जन्म की कथा और इसके बल वीर्य पराक्रम के बारे में बताता हूं। कुछ समय पहले मगध देश में वृहद्रथ नाम के राजा हुये। वे तीन अक्षौहिणी सेना के स्वामी, वीरमानी, रूपवान, धनवान एवं शक्ति सम्पन्न एवं याज्ञिक थे। वे तेजस्वी, क्षमाशील, ऐश्वर्यशाली थे। उन्होने काशीराज की दो सुन्दर कन्याओं से विवाह किया और उनसे प्रतिज्ञा कि मैं तुम्हारे दोनों के साथ समान प्रेम रखूंगा। इस प्रकार विषय सेवन करते करते यौवन बीत गया परन्तु मंगलमय यज्ञ, होम, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि करने पर भी उनके कोई सन्तान नहीं हुई। एक दिन उन्होने सुना कि गौतम पुत्र महात्मा चंड कौशिक तपस्या से उपराम होकर मगध के वन में पधारे है और एक वृक्ष के नीचे अपना डेरा जमाये हुये है। राजा बृहद्रथ अपनी दोनों रानियों सहित कौशिक की सेवा में उपस्थित हुये। मुनि को रत्नादि भेंट कर उन्हें सन्तुष्ट किया। सत्यवादी

चंड कौशिक ऋषि ने राजा बृहद्रथ से कहा राजन मैं तुमसे सन्तुष्ट हूं और जो चाहे सो वर मांग लो। राजा बृहद्रथ ने कहा मुनिवर मैं अभागा व सन्तानहीन हूंकी। राज्य छोडकर तपोवन में आपके पास आया हूं। अब आप मुझे सन्तान दे। राजा की कातर वाणी सुनकर चंड कौशिक ऋषि कृपा वश एक आम का फल उनकी गोद में गिरा। वह फल बडा ही सरस था। महर्षि ने वह आम उठाकर अभिमंत्रित किया ओर राजा को दे दिया। वास्तव में वह फल राजा को पुत्र प्राप्ति कराने हेतु ही गिरा था। महात्मा ने राजा से कहा यह अपनी रानी को खिला देना। जिससे उसे सन्तान प्राप्त होगी और घर लौट जाओ। महर्षि को प्रणाम करने के पश्चात बृहद्रथ अपनी राजधानी में लौट आये और शुभ मुहूर्त देखकर वह आम फल दोनों रानियों में आधा आधा बांट कर खिला दिया। संयोग से महर्षि के सत्यवादिता के प्रभाव से दोनों रानियों को गर्भ रह गया, राजा बृहद्रथ के आनन्द की सीमा नहीं रही। समय आनेपर दोनों रानियों ने आधे आधे बच्चे जन्मे। सिर से पांव तक आधे आधे। प्रत्येक में एक आंख, एक हाथ, एक पैर, आधा पेट, आधा मुंह और आधी कमर। उन्हे देकर दोनों रानियां भय से कांप उठी। और फिर उन्होने अपनी दासियों को देकर दोनों बच्चे फिंकवा दिये। राजन वहां जरा नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह खून पीनेवाली और मांस भक्षण करती थी। उसने उन दोनों बालकों को पडे देखा। उसने उन टुकडों को उठाया और संयोगवश सुविधा से उन्हे खाने के लिये उठा लिया। जब कि दोनों भाग में वजन नहीं था उसने उन दोनों को एक ही हाथ में रखा तो संयोग से दोनों टुकडे जुड गये। जुडते ही बच्चे ने अपनी मुट्ठी मुंह में रखकर जोरों से रोना शुरू किया। दोनों टुकडे मिलकर एक महाबली और परम पराक्रमी राजकुमार बन गया। जरा उस वज्र कर्क शरीर के बालक को उठा न सकी। मेघ की गर्जना के समान बालक के रोने की आवाज सुनकर जरा राक्षसी तो वहां से भाग गई पर राजमहल में रानियों के दूध उतर आया, यद्यपि रानियां पुत्र की ओर से निराश हो चुकी थी। जरा राक्षसी राज परिवार की स्थिति, ममता, लालसा और व्याकुलता से परिचित थी। जरा ने सोचा मैं इस राजा के देश में रहती हूं। इसे सन्तान की बडी अभिलाषा है। साथ ही यह राजा बडा ही धार्मिक और महात्मा है। इसलिये इस नवजात शिशु कुमार को नष्ट करना उचित नहीं है। अब यह मनुष्य रूप धारण कर बालक को लिये राजा के पास आकर बोली राजन यह लीजिये आपका पुत्र। उस राक्षसी के कहने से रानियों ने उसे अपने गोद में लेकर स्तनपान करा दिया। राजा ने उस राक्षसी से पूछा मुझे यह पुत्र देनेवाली तुम कौन हो ? जरा ने कहा राजन मैं जरा नाम की राक्षसी हूं। बाहर से उठाकर ये दोनों टुकडे मेरे से जुड गये और यह आपका बच्चा तैयार हो गया इससे इसका नाम जरासन्ध हुआ। जरा राक्षसी तो यह कह कर वहां से चली गयी और बृहद्रथ बच्चे को लेकर अपने महल में आये। बालक के जात कर्म संस्कार आदि किये। बृहद्रथ ने अपने पुत्र का नामकरण करते हुये कहा कि इस बालक को जरा ने सन्धित किया (जोडा) है। इसलिये इसका नाम जरासन्ध होगा। जरासन्ध आकार और बल में दिनों दिन बढने लगा तथा अपने माता-पिता को आनन्दित करने लगा। राजा बृहद्रथ ने जरासन्ध का राज्याभिषेक किया और स्वयं वे रानियों सहित वानप्रस्थ में चले गये। यह है जरासन्ध की कहानी। वो एक नहीं दो है इसलिये यम भी उसका कुछ नहीं बिगाड पाते। भीम, अर्जुन और मैं हम तीन अग्निकुंड की ज्वालायें बनकर जरासंध को भस्म कर सकते हैं परन्तु अकेले न भीम, न अर्जुन और न मैं। युधिष्ठिर बोले तब तो ...। कृष्ण ने कहा आपकी द्विविधा ठीक है भ्राताश्री जरासन्ध को युद्ध में हराना सम्भव नहीं है परन्तु द्वन्द युद्ध तो कुछ और ही होता है। मेरा प्रस्ताव यह है कि भीम भैया और अर्जुन वेश बदलकर मेरे साथ चले और कोई उपाय से भीम उसे द्वन्द युद्ध के लिये ललकारे। भीम बोले तो फिर हम खडे क्यों है चले? कृष्ण बोले तो वेश क्या बदले ? स्नातक ब्राह्मणों का वेष कैसा रहेगा ? वे तीनों स्नातक ब्राह्मणों का वेश लगाकर जरासन्ध के देश गिरिव्रज में आये।

युधिष्ठिर की अनुमति प्राप्त करके तीनों मगध में आये। पद्यमसर, कालकूट, गंडकी महाशोण, सदा नीरा, गंगा, चर्मण्वती आदि पर्वतों को पार करते हुये वे मगध देश में जा पहुंचे। उस समय वे लोग वल्कल वस्त्र धारण किये हुये थे। कुछ ही समय में व श्रेष्ठ पर्वत गोरथ पर पहुंच गये। उस पर बडे बडे सुन्दर सुन्दर वृक्ष एवं जलाशय थे। गोओं के लिये तो वह मुख्य क्षेत्र था।

वहां पहुंचते ही उन लोगों ने सबसे पहिले राजधानी की पुरानी बुर्ज नहस तहस कर दी। तदनन्तर मगधपुरी में प्रवेश किया। इन दिनों वहां बडे अपशकुन हो रहे थे। ब्राह्मणों ने जरासन्ध को निवेदन किया कि अरिष्ट की शान्ति की जाय इसके लिये जरासन्ध को हाथी पर चढाकर अग्नि की प्रदक्षिणा करवायी। स्वयं मगध नरेश ने अरिष्ट शान्ति के लिये बहुत से नियमों का पालन करते हुये व्रत उपवास किये। कृष्ण, भीम और अर्जुन अस्त्र शस्त्रों का परित्याग कर स्नातक ब्राह्मण वेश में जरासन्ध के महल में आये। जरासन्ध ने उन्हे देखते ही अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क आदि से उनका सत्कार किया। उस समय शिशुपाल भी जरासन्ध के पास आया और बोला महाराज की जय हो। महाराज आपके माथे पर चिन्ता की रेखायें अच्छी नहीं लगती। जरासन्ध बोला मैं क्या बताऊं चेदि नरेश। मेरे हृदय में तो वासुदेव की फांस खटक रही है। राजाओं की बलि के पश्चात मैं अन्तिम बार द्वारिका पर चढाई करूंगा। या तो फिर वो नहीं या फिर मैं नहीं। शिशुपाल बोला आपके हारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता महाराज।

जरासंध बोला आप ब्राह्मणों को प्रणाम। आपको एक सौ गाये भेंट करता हूं यदि और कोई सेवा हो तो बतायें। कृष्ण बोले मेरे ये दोनों मित्रों का मौन व्रत है। आधी रात के उपरान्त ही ये बोलेंगे। जरासन्ध ने कहा ठीक है तो आधी रात के पश्चात ही भेंट होगी और अपने मन्त्रियों से बोला इन ब्राह्मणों के विश्राम का प्रबन्ध करो। मन्त्री बोला जो आज्ञा महाराज। जरासंध बोला आधी रात के पश्चात मैं स्वयं तुम्हारी इच्छा पूरी करने आऊंगा। नमस्कार कर चला गया। तीनों जरासन्ध के विश्राम भवन में विश्राम कर रहे होते है। भीम बोला क्या वो आयेगा वासुदेव ? कृष्ण ने कहा वो अवश्य आयेगा वो जैसा भी हो, वो ब्राह्मणों का आदर करता है और दानवीर भी है। जो मांगोगे वही पाओगे। भीम बोला परन्तु। कृष्ण ने कहा आधी रात तो हो जाने दो भैया। इतने में ही प्रहरी ने सूचना दी कि वीरों में महावीर, महारथियों के महारथी, दानवीर मगध सम्राट जरासन्ध पधार रहे हैं। जरासन्ध आया और बोला स्थान ग्रहण कीजिये और प्रणाम किया।

जरासन्ध बोला स्नातक ब्राह्मण चन्दन का लेप नहीं लगाते और तुम कहते हो कि तुम ब्राह्मण हो। फिा तुममें तो क्षत्रिय के लक्षण हैं ? कौन हो तुम लोग ? मेरे पास किसलिये आये हो ? कृष्ण बोला समझदार लोग शत्रु के घर सामने के द्वार से नहीं आते क्योंकि सामने के द्वार से तो मित्र के घर जाया जाता है। जरासन्ध बोले मैं तुम्हारा मित्र तो नहीं पर मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने तुम्हें कभी किसी प्रकार की हानि पहुंचाई हो फिर तुम लोग मुझे अपना शत्रु क्यों मान रहे हो ? कृष्ण बोला शत्रु तो तुम हो ही। तुम्हे शत्रु कैसे नहीं समझे ? यदि अन्धकार को अन्धकार नहीं समझे तो और क्या समझे ? राजन तुम धर्म की डगर से भटक चुके हो इसलिये हमारे शत्रु हो। तुम अन्यायी हो इसलिये हमारे शत्रु हो। जरासन्ध बोला क्या सत्पुरुषों के लिये यही उचित है ? मैं अपने धर्म में तत्पर हूं। प्रजा का अपकार नहीं करता फिर मुझे शत्रु मानने का कारण। कहीं आप उन्माद वश तो ऐसा नहीं कर रहे ? कृष्ण बोला हम आपके यहां अतिथि होकर आये है कुछ कामना लेकर। सुना है कि आप उदार है, अतिथि की आकांक्षाये पूरी करते है अत: हमें जो चाहिये हमें प्रदान करे। तितिक्ष पुरुष के लिये कुछ भी असह्य नहीं। दुष्ट के लिये दुष्कर्म कठिन नहीं और उदार पुरुष क्या नहीं कर सकता? जो समर्थ होने पर भी इस अनित्य शरीर से सज्जनों के समाज में गाया जानेवाला नित्य यश उपार्जित नहीं कर लेता वही शोचनीय है और उसने अपने आप को ही ठगा है। हरिश्चन्द्र, रन्ति देव, शिबि, बलि ही नहीं कपोत और व्याघ तक अनित्य शरीर के द्वारा नित्य यश को प्राप्त कर चुके है। फिर आप तो महान होकर ऐसा दुर्व्यवहार करते है। अहंकार ने जरासन्ध को उकसाया। दैत्य राज बलि ने घर आने पर जान बूझकर अपने शत्रु विष्णु को अपने आचार्य के मना करने पर भी सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी। इसीसे तो उनका यश अमर है अन्यथा उन्हे कौन जानता ? शरीर तो कभी न कभी मरेगा ही अत: इसके द्वारा महान यश क्यों न उपार्जित किया जाये। ब्राह्मणों के लिये क्षत्रिय का जीवन न लगे तो फिर उसका प्रयोजन भी क्या ?

श्रीकृष्ण बोले राजन तुमने क्षत्रियों का बलिदान करने का निश्चय किया है। क्या यह क्रूर कर्म अपराध नहीं है ? तुम सर्वश्रेष्ठ राजा होकर भी निरपराध राजाओं की हिंसा करना कैसे उचित समझते हो। हम दुखियों की सहायता करने के लिये है और तुम

क्षत्रिय जाति का नाश करना चाहते हो ? हम जातिकी अभिवृद्धि के लिये तुम्हारे वध का निश्चय करके यहां आये है। तुम जो अहंकार में फूले फले फिर रहे हो कि तुम्हारे समान क्षत्रिय यौद्धा कोई नहीं है, यह मात्र तुम्हारा भ्रम है। इस विशाल पृथ्वीपर तुमसे भी अधिक वीर है। हमारे लिये तुम्हारा यह अहंकार असह्य है। अपनी समानतावालों से यह अहंकार छोड दो वरना तुम्हे अपने मन्त्री, पुत्र और सेना सहित यमपुरी में जाना पडेगा। तुम कोई वीर नहीं हो। जरासन्ध बोला तो अब क्या चाहते हो और तुम कौन हो ? क्या मैं धर्म से हट गया हूं ? मैं कोई तुम लोगों से भयभीत नहीं हूं ? कृष्ण बोले नि:सन्देह तुम धर्म की राह पर नहीं चल रहे हो। जरासन्ध बोले क्या मैं अन्यायी हूं ? कृष्ण फिर बोले नि:सन्देह राजन। उन ८६ राजाओं ने तुम्हारा क्या बिगाडा है जिन्हे तुमने पशुओं की भांति कैदखाने में बन्द कर रखा है। क्या उन्हे जीवन तुमने दिया है ? और यदि नहीं तो उनका जीवन लेने वाले तुम कौन ? तुम समझते हो कि तुम्हारी बलि रुद्र स्वीकार करेंगे ? कभी नहीं। इसलिये हे राजन अधर्म की डगर को छोडो और धर्म के मार्ग पर आजाओ। क्योंकि यही मोक्ष का मार्ग है। फिर यह न भूलो कि जीवन में मृत्यु से बडी अटल वास्तविकता कोई है ही नहीं। और यदि तुम यह कहते हो कि तुमने मृत्यु को जीत लिया तो तुम मूर्ख हो। भाग्य भी व्यक्ति को उसके कर्म की तुला पर तौलता है राजन। क्षत्रियों के लिये युद्ध भी एक यज्ञ है और इस यज्ञ के हवन कुंड में अपने प्राणों की भी आहूति दे सकता है।

जरासन्ध बोला ब्राह्मण भिक्षा मांगो भिक्षा और इससे पहले मैं भूल जाऊ कि तुम ब्राह्मण हो यहां से चले जाओ। क्या चाहते हो तुम ? कृष्ण बोले हम क्षत्रिय हैं इसलिये हमें धन या आहार नहीं चाहिये हम आपसे द्वन्द युद्ध मांगते है। यदि आप में साहस हो तो इसे स्वीकार करे। जरासन्ध बोला द्वन्द युद्ध चाहते हो। कृष्ण ने कहा हां राजन हम तीनों में से किसी एक को चुन लो। जरासंध बोला तुम दोनों तो बहुत सूखे हो। तुमसे जूझना तो मेरा अपमान है। हां यही ठीक रहेगा। फिर भी द्वन्द युद्ध से पहिले से अपना परिचय दो क्योंकि तुम ब्राह्मण तो हो नहीं। कृष्ण बोले यह कुन्ती पुत्र अर्जुन है और यह कुन्ती पुत्र भीमसेन और मैं देवकी नन्दन वासुदेव कृष्ण हूं। जरासंध बोला वासुदेव मैं किसी भी राजा के बिना जीता नहीं गया हूं। कोई ऐसा है जिसे मैंने जीता न हो ? जो मेरा सामना कर सकता हो ? क्या मैं तुमसे डरकर इन राजाओं को छोड दूं ? यह नहीं हो सकता। मैं तुम में से किसी एक के साथ या तीनों से भी लड सकता हूं। जरासन्ध ने हंसकर कहा मैं तुमसे तो भयभीत भी नहीं हूं। तुम ही कायरों के समान मथुरा छोडकर भाग गये थे। आज तुम चोर की तरह छिपकर मेरे घर में घुस आये हो। तुम तो मुझसे डरकर समुद्र में जा छिपे थे। जो एकबार भाग खडा हुआ अपने सामने उससे युद्ध करना तो शोभापद नहीं है। चींटी को पैरों तले रौंद कर हाथी यशस्वी नहीं होता। अर्जुन से भी मैं युद्ध नहीं करूंगा यह शास्त्रज्ञ चाहे जैसा हो पर द्वन्द युद्ध के लिये निर्बल है। भीमसेन अवश्य मेरे समकक्ष है अत: मैं भीम से अवश्य द्वन्द युद्ध करूंगा। हम दोनों का प्रिय शस्त्र भी गदा है। कृष्ण बोले बीसियों राजाओं की क्रूर सेनाओं को एकत्रित कर मथुरा निरीह प्रजा को नष्ट करना वीरता है तो तुम अवश्य वीर हो। हजारों सैनिकों द्वारा दो क्षत्रिय वीरों को घेर कर आग लगा उन्हे जीवित जला देने का प्रयत्न करना वीरता है तो तुम अवश्य वीर हो। तुम्हारी सारी सुरक्षा व्यवस्था को अंगूठा दिखा तुम्हारे घर में घुस आना प्रवंचना है तो मैं प्रवंचक हूं और जहां तक वीरता का सवाल है। हम अपनी वीरता की परीक्षा भी देंगे और तुम्हारी वीरता भी परखेंगे। जरासंध बोला यदि मुझे पहिले से भी ज्ञान होता कि तुम कृष्ण हो तो भी मैं द्वन्द युद्ध के लिये भीम को ही चुनता क्योंकि युद्ध तो बराबर वालों में ही होना चाहिये। कृष्ण ने आकाशवाणी के अनुसार यदुवंशियों के हाथ से जरासन्ध का वध नहीं होना चाहिये इसलिये उन्होने जरासन्ध को स्वयं न मारकर भीम के हाथों मरवाने का निश्चय किया।

अभिमानी के द्वार पर, आये दीन दयाल, स्वयं चुन लिया अहमी ने अपने हाथों काल।

मर्यादा के भी अपने नियम होते हैं। मगध नरेश जरासन्ध पराक्रमी था, महावीर था। वो चाहता तो मल्ल युद्ध के लिये अर्जुन

को भी चुन सकता था और यदि उसका मल्लयुद्ध अर्जुन से हुआ होता तो अर्जुन को उसको हराना असम्भव था और यदि अर्जुन उसे न हरा पाता तो युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ भी यों ही धरा रह जाता और यदि राजसूय यज्ञ नहीं होता तो यह महाभारत की जयकथा इन्द्रप्रस्थ में ही रूक गई होती लेकिन वीरता की मर्यादा ने जरासन्ध को मजबूर कर दिया कि वो मल्लयुद्ध करे।

मगध प्रान्त के गिरिव्रज के अखाडे में दोनों वीर जरासन्ध और भीमसेन आये। गिरिव्रज पांच पर्वतों से घिरा हुआ विपुल, वराह, वृषभ, मातंग और चैत्य। जरासन्ध का न्याय तो ऐसा है कि उसकी इच्छा के अनुसार चलो तो सुख पाओ और जीवन के आनन्द को भोग लो। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करो तो कष्ट झेलो और अपने प्राण गंवाओ। जरासन्ध का विधान कठोर ही नहीं बहुत ही क्रूर और अन्यायपूर्ण है। बडा ही धार्मिक और दानी राजा है दिखावे के लिये। एक-एक कण दान के साथ सहस्त्रों कामनायें जुडी हुई है। राक्षसों के नगर में समृद्धि की क्या कमी जहां वहां का सारा व्यापार ही पराये धन पर चलता है। राजसूय यज्ञ और अश्वमेघ यज्ञ प्रजा को एक सुरक्षित तथा विशाल धर्मराज्य देने के लिये सम्पन्न किये जाते हैं। अत्याचार, पीडन तथा शोषण बढाने था अधर्म को बल देने के लिये नहीं। क्या लक्ष्य है जरासन्ध का ? क्या उसने सोचा है कभी कि प्रजा के लिये समता, सुरक्षा, सम्मान और समृद्धि का क्या अर्थ है ? उसके आचरण में कहीं तनिक सी सात्विकता, दया, प्रेम तथा स्वार्थहीनता आई है क्या ? क्या उसने अपने अहंकार के पोषण के सिवा किसी अन्य का पालन पोषण किया है ? किसी का धन छीनने के लिये उसकी हत्या करने और हत्यारे को दंडित करने के लिये उसका वध करने में बहुत अन्तर है। पाप को मिटाने के लिये धर्म कर्म करना और पाप कर्म को ही धर्म का नाम देना दोनों एक नहीं है।

जरासंध बोला कृष्ण तुम ही इस युद्ध के निर्णायक बन जाओ। जय पराजय का तुम्हारा निर्णय मुझे मान्य होगा। कृष्ण बोले मगध नरेश मैं न तो यहां न्यायाधीश बनकर आया हूं और न ही निर्णायक। यह तुम्हारा युद्ध मरणान्तक है। इसमें क्या न्याय और क्या निर्णय ? क्षत्रिय धर्म के अनुसार दोनों ने बख्तर पहना, मुकुट उतारा। जरासन्ध ने कहा भीमसेन आओ बलवान के साथ लड कर हारने पर भी यश ही मिलता है। बलवान भीम कृष्ण से परामर्श लेकर ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करा जरासन्ध से भिडने के लिये अखाडे में उतर गये। दोनों ही अपनी अपनी विजय चाहते थे। दोनों ही अपनी भुजाओं से मल्लयुद्ध करने लगे। दोनोंने एक दूसरे से हाथ मिलाया। तदनन्तर खस और ताल ठोककर पैंतरे बदलने लगे। परस्पर गुंथ गये। वे तृणपीड, पूर्णयोग, समुष्टिक आदि अनेकों दांव पेच करने लगे। उनका मल्लयुद्ध अपूर्व था। उनका मल्लयुद्ध देखने के लिये हजारों पुरवासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, स्त्री एवं वृद्ध इकट्ठे हो गये। उनके प्रहार और छीना झपटी से बडी ही कर्कश ध्वनि होने लगी। वे कभी हाथों से एक-दूसरे को ढकेल देते, गर्दन पकड पकड कर घूमा देते, एक-दूसरे को खदेडते, खींचते, घसीटते, घुटनों से चोट करते और हुंकार करते हुये घूसों का प्रहार करते। वे जिधर जाते उधर की जनता भाग खडी होती। दोनों हट्टे कट्टे, चौडी छाती और लम्बी भुजावाले पहलवान अपनी भुजाओं से इस प्रकार लड रहे थे मानों लोहे के बेलन टकरा रहे हो।

दोनों प्रचंड पराक्रमी, दोनों भी वज्रकाय और दोनों का भी पौरूष अपार। दोनों ने गदायें उठायी और लगे घूमाने। गदाओं की टकराने से चिनगारियां निकलने लगी। गदाओं का भरपूर आघात शरीर पर होता था किन्तु दोनों में से कोई भी विचलित नहीं होता था। अनेक दांव पेच गदाओं के चले। शरीर पसीने से लथपथ हो गया। यह देखकर अर्जुन उत्तेजित हो उठा और बीच में पडने वाला था पर कृष्ण ने हाथ के संकेत से मना कर दिया। यह युद्ध दिनभर चलता रहा। कार्तिक वदी प्रतिपदा से यह युद्ध प्रारम्भ हुआ। बिना खाये पिये दिनभर युद्ध होता था। सायंकाल दोनों गदा छोडकर हाथ मिलाते और साथ ही उष्णोदर की धारा में गिरिव्रज में स्नान करते थे। एक साथ आहार करते थे। रात्रि होने पर मगध नरेश वहीं मल्लशाला में समान आसन पर शयन करते थे। वे लोग रात्रि में मित्रों के समान रहते थे। जरासन्ध खुलकर भीम के पौरुष की प्रशंसा करता था। भीम भी मगधराज के बल का विशेष गान करते थे। जरासन्ध कहता था कि जीवन में मुझे प्रथम बार युद्ध का वास्तविक आनन्द मिला है। यह अद्भुत

युद्ध २७ दिनों तक चला। एक दिन भीम कृष्ण से बोले लगता है कृष्ण यह युद्ध मैं जीत नहीं सकूंगा। मैं थक गया हूं। जरासन्ध की गदा से मेरे अंग अंग ढीले हो गये है किन्तु वह तनिक भी शिथिल नहीं हुआ। कृष्ण का स्वभाव है जब प्राणी अपने बल का आश्रय त्यागकर उनसे सहायता के लिये याचना करता है तब उनकी शक्ति सक्रिय होती है।

भीम को लगा श्रान्ति से रहित हो स्फूर्ति तथा शक्ति का भंडार बन गया। श्रीकृष्ण ने भीम से कहा मेरे संकेत को समझने का प्रयत्न करो। तुम में दैवबल और वायुबल दोनों ही विद्यमान है। श्रीकृष्ण ने दाहिने हाथ एक तृण भूमि में उठाकर उसे बीच में से चीर कर फेंक दिया। भीम के लिये इतना संकेत पर्याप्त था। भीम ने जरासन्ध को उठाकर बडे जोर से आकाश में सौ बार घूमा कर उसे जमीन पर पटका। भीम ने हाथ की गदा पूरे वेग से घूमाकर उस दिशा में फेंक दी जहां कूडे के ढेर के पास जरा राक्षसी बैठी थी। भीम सेना की गदा के प्रहार से जरा मर गयी। जरासन्ध को पृथ्वी पर पडते ही उसके एक पैर को दबाकर दोनों हाथों से दूसरा पैर पकड घसीट लिया और उसके शरीर को दो आधे आधे खंडों में चीर डाला जैसे दातून के सरकंडे को चीर डालते हैं। जरासन्ध की इस दुर्दशा और भीम की गर्जना से वहां की प्रजा भयभीत हो गयी। सब लोग चकित और विस्मित हो गये कि कहीं हिमालय तो नहीं टूट पडा। दोनों सांडों और बैलों की भांति लडने लगे थे। बिजली जोरों से कडक कर गर्जना करने लगी। बादल घूमड आये, बिजली की चमक बादलों की घडघडाहट, सांय सांय करती काली रात भय उत्पन्न कर रही थी कि भीमसेन ने जरासंध के शरीर को बीच में से फाड डाला और उसके दो टुकडे हो गये। जरासन्ध का वध हो गया। कृष्ण ने भीम को आशीर्वाद दिया।

५) बन्दी राजाओं की मुक्ति और पांडवों की दिग्विजय

बन्दी राजाओं की मुक्ति में एक क्षण का भी विलम्ब अकारण था जो कृष्ण सहन नहीं कर सकता था। वे तीनों तत्काल वहां से निकले। कृष्ण जरासन्ध के ध्वजमंडित दिव्य रथ को जोत कर बन्दी राजाओं के पहाड की गुफा के बाहर पहुंचे। उस रथ का नाम सौंदर्यवान था। उस रथ की विशेषता यह थी कि उस पर एक साथ बैठकर दो महारथी युद्ध कर सकते थे। उसी रथ पर बैठ कर इन्द्र ने निन्यानवे बार दानवों का संहार किया था। उस रथ पर एक दिव्य ध्वजा थी। जो बिना किसी आधार के ही लहराती थी। वह इन्द्रधनुष के समान चमकती और एक योजन दूर से ही दीख जाती थी। यह रथ इन्द्र से वसु राजा को, वसु से बृहद्रथ को और बृहद्रथ से जरासन्ध को प्राप्त हुआ था। उस महावेग रथ का पीछा करने का कोई भी साधन गिरिव्रज में किसी के पास नहीं था। वे ८६ नरेश विभिन्न राज्यों के थे। विभिन्न समयों पर मगध राज उन्हे पराजित करके पकड लाया था। लाकर गिरिव्रज की पर्वतीय खोह के कारागार में रखता था। वहां पहुंचकर सबकी समान अवस्था हो गई थी अत: वे परस्पर सब के सब मित्र बन गये। उनके सिर के बाल और दाढी मूंछें बढ गई थी। नख भी बढे हुये थे। वस्त्र और शरीर मलिन था। सब बहुत कृश तथा कान्तिहीन हो गये थे। वे जानते थे कि जरासन्ध उनके सौ होने की संख्या की प्रतीक्षा कर रहा है। जैसे ही सौ पूरे हुये उनकी बलि महादेव को चढनेवाली है। वे सभी तो जीवन में निराश मृत्यु की घडी गिननेवाले लोग थे। उनका शरीर प्राय: कंकाल मात्र था। आंखों के चारों ओर गाढी कालिमा थी। उन्हे तो सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दीख रहा था।

बन्दी नरेशों ने कृष्ण को देखा और एक साथ भूमि पर दंडवत हो प्रणाम किया। उन पूर्ण पुरुष ने सबको बाहों का आलिंगन देकर गले लगाया। उन राजाओं को कारागृह से मुक्त कराकर कृष्ण बोले मैं वासुदेव कृष्ण और यह भीम, पांडु पुत्र अर्जुन हम सभी नरेशों को प्रणाम करते हैं और यह शुभ समाचार सुनाते है कि आज से आप सब लोग धूप और चांदनी देखने के लिये मुक्त हैं। जरासन्ध का वध करनेवाले कौन्तेय भीम आप सबको अपना राज्य भी लौटाते हैं। सभी राजाओं ने वासुदेव कृष्ण की जयजय कार करी और नतमस्तक होकर कृष्ण की स्तुति करी। हे सर्व शक्तिमान, आपने भीम और अर्जुन के साथ हमें छुडाकर धर्म की रक्षा की है। हम जरासन्ध के विशाल ताप के दु:ख दल दल में फंसे पडे थे। इससे बाहर निकालकर आपने हमारा उद्धार

किया है। हे सर्वव्यापी यदुनन्दन हम आज दु:ख से मुक्त हुये। आपने उज्ज्वल कीर्ति की स्थापना की। हे स्वामी हम तो भटक रहे थे आपकी माया से मोहित हुये। हमें अपने धन, वैभव, राज्य के प्रभाव का बडा अहंकार था। हमें कहां पता था कि आप कालस्वरूप के सामने यह सब कितना तुच्छ है। आपके इस अनुग्रह से हमारा मोह उतरा और हम जागे। हमें अपनी शक्ति की तुच्छता ज्ञात हुई। आप श्री के चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ। आपका दर्शन अमोघ है और आप यह वरदान दें कि आप श्री के इन पाद चरणों की विस्मृति न हो।

अन्धकार बढते जा रहा था। उन सब बन्दी राजाओं को लेकर कृष्ण उस पर्वतीय गुफा कारागृह से निकलकर बाहर विस्तृत मैदान में आये। सभी राजाओं ने मिलकर कृष्ण से कहा वासुदेव कृष्ण आप हमें कुछ सेवा की आज्ञा करें। कृष्ण ने सबको आश्वासन देते हुये कहा आप सब अपने राज्यों में जाकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करें। नित्य मेरा स्मरण करते रहना। धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करनेवाले हैं उसमें आप सबको उपस्थित रहकर उनकी सेवा सहायता करनी है। राजाओं की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उन्होने हृदय से कृष्ण के प्रस्ताव का स्वागत किया और स्वीकार किया। पिता की मृत्यु का कोई शोक नहीं न ही उसके लिये कोई प्रतिक्रिया। पिता केशव का क्या होगा यह भी नहीं सोचा और पुत्र सहदेव ब्राह्मणों को साथ लेकर अर्पण के लिये मगध के राजकोष के दुर्लभतम रत्नोपहार साथ ले सेवकों की जलती मशालों को लेकर सहदेव चल पडे कृष्ण का स्वागत करने। वासुदेव कृष्ण की जय हो। द्वारकाधीश की जय हो। सहदेव कृष्ण के निकट आये और उपहार राशि अर्पित करने का सेवकों को संकेत किया और स्वयं भूमिपर प्रणत हो बोले जरासन्ध पुत्र सहदेव परम पुरुष पुरुषोत्तम के श्री चरणों में प्रणिपात करता है। कृष्ण ने सहदेव को उठाया और हृदय से लगाया और सहदेव को अभय देकर उसकी पीठ और सिर सहलाते रहे। सहदेव बोला हे केशव, देवकीनन्दन, हे गिरधर मगध आज धन्य हो गया और धन्य कर दिया आपने मगधेश्वर को। आपने पुत्र कहकर मुझे कृतार्थ कर दिया। अब आप श्री मगध के राज सदन को श्री चरणों से पवित्र करे और अपनी आज्ञा पालन का सौभाग्य मुझे प्रदान करें। राजपुत्रों के पास अपने पिता की मृत्यु पर अश्रू बहाने का समय नहीं होता। यदि उस समय वे शोकाकुल होकर अश्रू बहाने बैठ जाये तो फिर सारा जीवन अश्रू ही बहाते रहेंगे। प्रतिशोध का कोई प्रतिशोध नहीं होता है वह तो दुराग्रह ही होगा। राज्य धन सम्पत्ति और अधिकारों के लिये यह मनुष्य कैसे कैसे पाप करता है? व्यक्ति कैसा क्रूर और निर्दयी बन जाता है ? ऐसे राजा का जीवन नरक हो जाता है। सहदेव बोले मेरे पिता जरासन्ध ने जो भी अपराध किये हैं उन सबके लिये मैं आपसे क्षमा मांगता हूं किन्तु मुझे मेरे पिताश्री की अन्त्येष्टि करने की आज्ञा प्रदान करे। कृष्ण बोले हे मगध नरेश सहदेव तुम्हे अपने पिताश्री के अन्तिम संस्कार के लिये किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। हम तो अपने कर्त्तव्य का पालन करने आये थे, तुम्हारे कर्त्तव्य के मार्ग में बाधा डालने नहीं। एक अच्छे पुत्र के रूप में तुम अपने पिता के मृतक कर्म करो। तुम्हारे पिता ने धर्म की जितनी क्षति की है तुम उसकी क्षतिपूर्ति करोगे। तुम प्रजा के स्वामी नहीं सेवक हो। दुष्टों का दलन करोगे तथा सात्विक लोगों का पालन पोषण करते रहोगे और निर्बल तथा असहाय लोगों की रक्षा करोगे। तुम योग्य हो और मगध के राजमुकुट पर तुम्हारा अधिकार सिद्ध है। यशस्वी भव।

छोड दिये बन्दी सभी किया उन्हे स्वाधीन, जीत पांडवों को मिली हुये प्रीत में लीन।

कृष्ण अपने दोनों फूफेरों भाइयों सहित धन रत्नों से लदे रथों पर शोभायमान हो इन्द्रप्रस्थ पहुंचे। उन्हे देखकर धर्मराज युधिष्ठिर के आनन्द का पारावार नहीं रहा। कृष्ण बोले राजन यह बडे सौभाग्य की बात है कि वीरवर भीमसेन ने जरासन्ध का वध किया तथा बन्दी राजाओं को मुक्त कर सुयश प्राप्त किया। इससे बढकर और क्या आनन्द होगा कि भीम और अर्जुन कार्य सिद्ध कर सकुशल निर्विघ्न लौट आये। युधिष्ठिर ने बडी प्रसन्नता से कृष्ण का आदर सत्कार किया। वैशम्पायन बोले जनमेजय इस ऐतिहासिक विजय एवं राजाओं को मुक्त कराकर पांडवों का यश दिग-दिगन्त तक फैल गया। धर्मराज युधिष्ठिर समयानुसार

धर्मपर दृढ रहकर प्रजा पालन करने लगे। धर्म, काम, लोभ अर्थ तीनों ही पुरुषार्थ उनकी सेवा में संलग्न रहते थे।

जरासंध का कांटा निकल जाने के पश्चात राजसूय यज्ञ करने का रास्ता ही साफ हो गया और युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ में छोडकर चारों भाई विजय यात्रा पर निकल गये। भीम पूर्व की तरफ गया, अर्जुन उत्तर की तरफ, नकुल और सहदेव ने पश्चिम और दक्षिण दिशा को सम्भाला। अर्जुन ने उत्तर दिशा की विजय का भार सम्हाला था। उन्होने अपने परिश्रम से आनर्त, कालकूट और कुलिन्द देशों पर विजय प्राप्त कर सेनासहित राजा सुमंडल को जीत लिया। सुमंडल को साथी बनाकर शाकल द्वीप और प्रतिविन्ध्य पर्वत के राजाओं पर विजय प्राप्त की। सात द्वीप के राजाओं में से शाकलद्वीप वालों ने बडा घमासान युद्ध किया, परन्तु अर्जुन के बाणों के सामने उन्हे हारना पडा। उनकी सहायता से अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर (गौहाटी) पर चढाई की। वहां के प्रतापी राजा भगदत्त तथा उसके सहायक किरात्त, चीन आदि बहुत से समुद्री देशों के लोग भी थे। आठ दिन तक भयंकर युद्ध होने के बाद भी अर्जुन का पूर्ववत उत्साह देख कर भगदत्त ने कहा महाबाहु अर्जुन तुम्हारा पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। तुम देवराज इन्द्र के पुत्र हो। इन्द्र से मेरी मित्रता है। इसलिये मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सका। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। क्या चाहते हो ? अर्जुन ने कहा राजन कुरुवंश शिरोमणि सत्य प्रतिज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। वे चक्रवर्ती सम्राट होंगे और मैं यह चाहता हूं कि आप उन्हे कर दें, आप उन्हे प्रेमभाव से भेट दें। भगदत्त ने कहा अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर भी तुम्हारे ही समान मेरे प्रिय है। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। अर्जुन ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके आगे की यात्रा प्रारम्भ की।

अर्जुन ने कुबेर के द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशा में बढकर पर्वतों के भीतर, बाहर और आसपास के सब स्थानों पर अधिकार कर लिया। उलूक देश के राजा बृहन्त ने घोर युद्ध करके हार मानी और वह अर्जुन की शरण में आया। अर्जुन ने बृहन्त का राज्य उसी को सौंपकर उसकी सहायता से सेना बिन्दु के देशपर धावा बोलकर उसे राज्यच्युत कर दिया। क्रमश: मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल और उत्तर उलूक देश के राजाओं को वश में करके पंचगणों को अपने वश में किया। उन्होने पौरव नाम के राजा को तथा पहाडी लुटेरों और म्लेच्छों को, जो सात प्रकार के थे जीता। कश्मीर के वीर क्षत्रिय और दस मंडलों का अध्यक्ष राजा लोहित भी उनके अधीन हो गये। त्रिगर्त, दास और कोकनद के नरपति स्वयं शरणागत हुये। अर्जुन ने अभिसारी पर अधिकार कर उरग देश के राजा रोचमान को हराया और बाहलीक वीरों को अपने अधीन कर लिया। दरद, कम्बौज और ऋषिक देशों को अपने अधीन कर लिया। ऋषिक देश में हरे रंग के आठ घोडे लिये। निकूट और पूरे हिमालय पर विजय वैजन्ती फहरा कर धवलगिरि पर अपनी सेना का पडाव डाला। अर्जुन क्रमश: किम्पुरुष वर्ष के अधिपति द्रुमपुत्र और हाटक देश के रक्षक गृहयकों को हराकर मान सरोवर पहुंचे और वहां ऋषियों के पवित्र आश्रमों के दर्शन हुये। वहां से हाटक देश के आस पास बसे प्रान्तों पर भी अधिकार कर लिया। तदनन्तर अर्जुन ने उत्तरी हरि वर्ष पर विजय प्राप्त करनी चाही। परन्तु वहां प्रवेश करते करते न करते बडे वीर और विशाल काय द्वारपालों ने आकर कहां अवश्य ही आप कोई असाधारण पुरुष है क्योंकि यहां तक पहुंचना सबके लिये सुगम नहीं है। आप यहां आ गये है यही विजय है। यहां की कोई भी वस्तु मनुष्य शरीर से नहीं देखी जा सकती। इसलिये दिग्विजय की तो कोई बात ही नहीं। हम लोग आप पर प्रसन्न हैं। आपका कोई काम हो तो कर सकते है। अर्जुन ने हंसते हुये कहा। मैं अपने बडे भाई धर्मराज युधिष्ठिर को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिये दिग्विजय कर रहा हूं। यदि तुम्हारे इस देश में मनुष्यों का आना जाना निषिद्ध है तो मैं इसमें प्रवेश नहीं करूंगा। तुम लोग कुछ कर दे दो। हरिवर्ष के लोगों ने अर्जुन को कर रूप से अनेकों दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और मृगचर्म इत्यादि दिये। इस प्रकार उत्तर दिशा पर विजय प्राप्त कर वीरवर अर्जुन महान चतुरंगिणी सेना के साथ बडी प्रसन्नता से इन्द्रप्रस्थ लौट आये और सारा धन एवं सारे वाहन धर्मराज को सौंप दिये।

अर्जुन के साथ ही भमसेन भी धर्मराज युधिष्ठिर की अनुमति से एक बहुत बडी सेना लेकर पूर्व दिशा के लिये चल पडे। दर्शाण देश के राजा सुधर्मा ने बिना किसी शस्त्र के भीम के साथ बाहुयुद्ध किया। भीम ने उसे परास्त कर उसकी वीरता से प्रसन्न

हो उसे अपना सेनापति बना लिया। उन्होने क्रमश: अश्वमेध, पुलिन्द नगर आदि अधिकांश प्राप्य राजाओं पर अधिकार कर लिया। चेदि देश के नरेश शिशुपाल से उन्हे युद्ध नहीं करना पडा। उसके मौसेरे भाई होने से धर्मराज के सन्दे मात्र से ही कर देना स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात भीम ने कुमार देश के राजा श्रेणिमान को, कोसल देश के स्वामी बृहदबल और अयोध्यापति धर्मात्मा दीर्घयज्ञ को अनायास ही वश में कर लिया। तत्पश्चात उत्तर कोसल, मल्ल देश और हिमालय तटवर्ती जलोद्भवदेश के प्रान्त अपने अधीन कर लिये। काशिराज सुबाहु, सुपार्श्व, राजेश्वर ऋथ, मत्स्य एवं मत्स्य देश के वीरों एवं वसुभूमि को भी अपने अधिकार में कर लिया। पूर्वोत्तर देशों के मदधार सोमधेष एवं वत्स देश को भी उन्होने अपने कब्जे में किया। भर्ग देश के स्वामी निषाद राज और मणिमान पर विजय प्राप्त कर दक्षिण मल्ल और भोगवान पर्वत पर भी उन्होने कब्जा कर लिया। शर्मक और वर्मक पर विजय प्राप्त करने के पश्चात मिथिलाधीश को अपने अधीन किया। और वहां से किरात राजाओं को भी अपने वश में कर लिया। सुह्म, प्रसुह्म, दण्ड, दंडाधर आदि नरपति अनायास ही परास्त हो गये। गिरिव्रज से जरासंध पुत्र सहदेव के साथ लेकर मोदाचल के राजा का संहार किया। पौंड्रक वासुदेव और कौशिक नदी के द्वीप में रहनेवाला राजा भी पराजित हो गया। बंग देश के राजा समुद्रसेन, चन्द्रसेन, कर्वटाधिपति, ताम्रलिप्त और सभी समुद्रतटवर्ती म्लेच्छ भी उनके अधीन हो गये। इस प्रकार अनेक देशों पर विजय प्राप्त करके वीर भीम लौहित्य के पास आये। समुद्र तट और समुद्र के टापुओं में रहनेवाले म्लेच्छों से बिना युद्ध के ही उन्हे तरह तरह के हीरे, मोती, मणि, माणिक्य, सोना, चांदी, जवाहरात, ऊनी वस्त्र आदि दिये। उन्होने धन से भीम को सन्तुष्ट किया। भीम सब धन लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट आये और बडे प्रेम से सारे का सारा धन महाराज युधिष्ठिर को सौंप दिया।

उसी समय सहदेव ने भी बहुत बडी सेना के साथ दिग्विजय के लिये दक्षिण को प्रस्थान किया था। उन्होने क्रमश: मत्स्य प्रदेश और अधिराज के अधिकारियों को वश में करके करद सामन्त बना लिया। राजा सुकुमार और सुमित्र के बाद द्वितीय मत्स्य और पटच्चरों को जीता तथा बलपूर्वक निषाद भूमि, गोश्रंग पर्वत और श्रेणिमान राजा को वश में कर लिया। नरराष्ट्र पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद कुन्ति भोज पर आक्रमण किया और उन्होने सहर्ष धर्मराज का शासन स्वीकार कर लिया। इसके बाद सहदेव नर्मका की ओर बढे। उधर उज्जैन के प्रसिद्ध वीर विन्द और अनुविन्द को हराकर वश में कर लिया। नाटकेय और हेरम्ब को परास्त कर मारुध तथा मुञ्जग्राम पर अधिकार कर लिया। उन्होने क्रमश: अर्बुद, वातराज और पुलिन्दों को हरा कर पांडयन नरेश पर विजय प्राप्त की और किष्किन्धा के मैद एवं द्विविद को जीता तथा माहिष्मती पर धावा बोल दिया। भयंकर युद्ध के बाद महाराज नील उनके करद सामन्त बन गये। आगे बढकर त्रिपुर रक्षक और पौरवेश्वर को वश में किया। सुराष्ट्र देश के स्वामी कौशिकाचार्य आकृति पर विजय प्राप्त करके भोजकर के रूक्मी और निषद के भीष्मक के पास दूत भेजा। उन लोगों ने कृष्ण के सम्बन्ध के कारण बडे प्रेम से सहदेव की आज्ञा को मान दिया। वहां से चलकर शूपरिक, तालाकट, दंडक और समुद्री टापुओं को अपने अधीन करते हुये म्लेच्छ, निषाद, पुरुषाद, कर्ण प्रवरण एवं कालमुख संज्ञक मनुष्य तथा राक्षसों पर विजय प्राप्त की। कोल्लाचल, सुरभि पट्टन, ताम्रद्वीप और राम पर्वत उनके वश में हो गये। राजा तिमिंगल, जंगली केरल, एक पैरवाले पुरुष तथा सन्जयन्ती नगरी उनकी हो गयी। पाषण्ड और कट हाटक भी अलग नहीं रह गये। पांड्य, द्रविड, उण्ड्र, केरल, आन्ध्र, तालवन, कलिंग, उष्ट्रकर्णिक, आटवीपुरी और आक्रमणकारी यवनों की राजधानियां भी उनके वश में हो गयी। सहदेव ने दूत के द्वारा लंकाधिपति विभिषण के पास सन्देश भेजा और उन्होने बडे प्रेम से उसे स्वीकार कर लिया। सहदेव ने इसे कृष्ण की महिमा समझी। सभी स्थानों से उन्हे अनेकों प्रकार की वस्तुयें उपहार के स्वरूप प्राप्त हुई। वे सब कुछ लेकर सबको सामन्त बनाकर बडी शीघ्रता से इन्द्रप्रस्थ लौट आये और सारी वस्तुयें धर्मराज युधिष्ठिर को सौंपकर सुखपूर्वक इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे।

नकुल ने भी बडी भारी सेना लेकर पश्चिम की दिशा की विजय के लिये प्रस्थान किया था। स्वामी कार्तिक के प्यारे धन,

धान्य, गोधन आदि से परिपूर्ण रोहितक देश में वहां के मत्तमयुर शासकों के साथ उनका घोर संग्राम हुआ। अन्त में नकुल ने मरूभूमि, शैरीबक और अन्न के भंडार महेत्थ देश पर पूर्ण अधिकार कर लिया। राजर्षि आक्रोश को वश में करके दर्शाण, शिबि, विगर्त, अम्बष्ट, मालव, पंचकर्मट, मध्यमक, वाटधान और द्विजों को जीत लिया। वहां से लौटकर पुष्कर वन के निवासी उत्सव संकेतों को वश में कर लिया। सम्पूर्ण पंचनद, अमरपर्वत, उत्तर ज्योतिष, दिव्य कर नगर और द्वारपाल उनके अधिकार में आ गया। पश्चिम के रामठ, हार और हूण आदि राजा नकुल की आज्ञा मात्र से उनके अधीन हो गये। द्वारकावासी यदुवंशी और कृष्ण ने बडे प्रेम से नकुल का शासन स्वीकार किया। नकुल के मामा शल्य भी प्रेम से उनके अधीन हो गये। सबसे धन रत्न की भेंट लेकर नकुल ने समुद्र के टापुसीं में रहनेवाले भयंकर म्लेच्छ, पल्हव, बर्बर, किरात, भवन और शकराजों को वश में किया। सभी से सुन्दर सुन्दर वस्तओं की भेंट लेकर वे खांडवप्रस्थ लौट आये। नकुल ने कर और उपहार में जो धनराशि प्राप्त की थी उसे इन्द्रप्रस्थ में लाकर वारुण द्वारा सुरक्षित और कृष्ण द्वारा अधिकृत पश्चिम दिशा को जीतकर महाराज युधिष्ठिर को सौंप दिया।

६) राजसूय यज्ञ और शिशुपाल का वध

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय धर्मराज युधिष्ठिर की सत्य निष्ठा प्रजापालन में अनुराग और शत्रु संहार देखकर सारी प्रजा अपने आप अपने अपने धर्म का पालन करने लगी। शास्त्रानुसार कर वसूली और धर्मपूर्वक शासन करने से समय पर मनचाही वर्षा होने लगी। राष्ट्र, सुख, समृद्धि से पूर्ण हो गया। राजा के पुण्य प्रभावों से कृषि, व्यापार, उद्योग और गोरक्षा भी ठीक से होने लगी। प्रजा में परस्पर की धोखेबाजी, चोरी लूट का नाम भी नहीं था। राजकर्मचारी झूठ नहीं बोलते थे। धर्मराज के धर्माचरण से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, अग्नि आदि का भय नहीं रहा। लोग उनके भेंट देने या प्रिय कार्य करने के लिये ही आते, युद्ध आदि के लिये नहीं। धर्मानुकूल धन की आमदनी में कोष भरा पूरा एवं अक्षय रहता था। जब धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा कि मेरे अन्न, वस्त्र, शस्त्रागार, रत्न आदि के भंडार सर्वथा पूर्ण हैं तब उन्होने यज्ञ करने का संकल्प किया। मित्रों ने भी उनसे अलग-अलग और इकट्ठे होकर भी आग्रह किया कि अब यज्ञ आरम्भ कर देना चाहिये। यही यज्ञ करने का शुभ मुहूर्त है। जिन दिनों लोगों का आग्रह सीमा पर पहुंच गया था। जिन राजाओं ने ध्वज झुका दिये उनसे मैत्री सम्बन्ध बनाये गये और जिन राजाओं ने अपने ध्वज नहीं झुकाये वो ध्वज काट दिये गये और तब से चारों भाई विजय यात्रा करके वापिस आये और राजसूय यज्ञ की तैयारी आरम्भ कर दी गई।

जनमेजय। कृष्ण स्वयं नारायण हैं, वे ही वेद स्वरूप हैं और बडे बडे ज्ञानियों के ध्यान में आनेवाले हैं। जड चेतन मय जगत में वे सबसे श्रेष्ठ एवं विश्वब्रह्मांड के उद्गम स्थान तथा प्रलय स्थान हैं। वे भूत, भविष्य, वर्तमान के स्वामी, दैत्यनाशक, भक्त वत्सल एवं आपत्काल में शरण देनेवाले हैं। कृष्ण अपने प्रिय युधिष्ठिर पर कृपा करने के लिये असंख्य धन, अक्षय रत्नराशि और अपनी सेना लेकर इन्द्रप्रस्थ पहुंच गये। सबने उनकी अगवानी कर उनका यथोचित सत्कार कर उन्हें योग्य निवास स्थान भवन दिया। युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्य, महर्षि वेदव्यास तथा अन्य ऋषियों को साथ लेकर कृष्ण के पास आये। द्वारकाधीश ने भी उठकर सबको यथायोग्य प्रणाम किया। सबके आसन ग्रहण कर लेनेपर युधिष्ठिर ने कहा जनार्दन आपने मुझे सब कुछ दिया। इस समय पांडवों के पास सब कुछ है। आपकी कृपा से मेरे चारों भाई चारों दिशाओं से दिग्विजयी हो उपहारों के स्वरूप में विपुल मात्रा में धन धान्य लेकर लौटे हैं अब हमें अनुमति दो कि हम यज्ञ की तैयारियां करे। आप श्री यज्ञ की दीक्षा लें। वासुदेव तुम्हारे यज्ञ करने से हम सब पाप रहित होंगे। इस प्राप्त सम्पत्ति से आप यज्ञ पुरुष का पूजन हो और ब्राह्मणों तथा अन्य सभी प्राणियों का सत्कार किया जाये। ये ऋषिगण उपयुक्त मुहूर्त भी बतला रहे हैं। अत: गोविन्द आप इसे स्वीकार करें। आप ही हमारे सर्वस्व हैं। आप यज्ञ करेंगे तो अपने पूर्वजों के साथ हम निष्पाप हो जायेंगे। आपकी जो आज्ञा होगी उसी के अनुसार कार्य होगा। कृष्ण बोले नहीं धर्मराज। सम्राट होने के लिये पांच गुणों का होना अति आवश्यक है। शत्रु

विजय, प्रजापालन, तप शक्ति, धन, समृद्धि तथा उत्तम नीति। शत्रुओं को जीतकर माधान्ता ने सम्राट का पद प्राप्त किया था, भगीरथ ने प्रजापालन करके, कार्तवीर्य ने तपोबल से, राजा मरुत ने अपनी समृद्धि से तथा राजा भरत अपने नीति और बल से सम्राट बने थे। आप में तो ये पांचो गुण एक साथ विद्यमान है। सम्राट तो आपको ही होना है। आप अपने इस अभिष्ट यज्ञ को आरम्भ करें। मैं आपके कल्याण हित अपने परिवारजनों और सेना सहित आया हूं। मुझे तो आप आवश्यक कार्यों में लगाये। मैं आपकी सब आज्ञाओं का पालन करूंगा। वासुदेव कृष्ण, यादव महारथियों के साथ यज्ञ में भाग लेने के लिये इन्द्रप्रस्थ आये थे। उनके साथ आये बलराम, सारण, गद, कंक, उल्मूक, निशद, अंगावह, प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण और उद्धव इत्यादि। सात्यकि तो पहले से ही इन्द्रप्रस्थ में था। राजसूय यज्ञ की तैयारियां लगभग पूरी हो चुकी थी। युधिष्ठिर ने अतिथियों के लिये जितना व्यापक प्रबन्ध किया था उसके पीछे इन्द्रप्रस्थ की सम्पन्नता दिखाई दे रही थी। युधिष्ठिर बोले कृष्ण पांडवों के राजकोष में अथाह धन एकत्रित हो गया है। उसका तत्काल धर्मयुक्त वितरण होना आवश्यक है नहीं तो यह कोष अनर्थ को जन्म देगा। यह संचय प्रजा के पालन के लिये है, दुष्टों के दलन के लिये है। ब्राह्मणों तथा विद्वानों के सम्मान के लिये है, कृषि के विकास के लिये है, व्यापार के संरक्षण के लिये है, कलाओं के गौरव को स्थापित करने के लिये है। यह धन पांडवों के भोग के लिये नहीं है जनार्दन। इससे पहले कि यह धन पांडवों को लुब्ध कर दिग्भ्रमित कर दे, मैं चाहता हूं कि राजसूय यज्ञ के माध्यम से इसका वितरण हो जाये ताकि यह अपने उपयोग के उपयुक्त स्थान पर लौट जाये। अब आप आ गये इतने से ही मेरा संकल्प सिद्ध हो गया। अब यह यज्ञ होने में कोई सन्देह ही नहीं रहा। कृष्ण ने कहा धर्मराज आप ही योग्य सम्राट है और आपको ही यह महायज्ञ करना चाहिये। आप ही इस यज्ञ की दीक्षा लें। युधिष्ठिर बोले निखिल लोक महेश्वर आपकी आज्ञा का पालन करते हैं और अपना सौभाग्य मानते है वासुदेव मुझे तो आपकी आज्ञा का पालन करना ही है। इस आयोजन के द्वारा मुझे तो आपकी ही पूजा करनी है।

सभी राजाओं को निमंत्रण पत्र भेजे गये लेकिन युधिष्ठिर ने यही उचित जाना कि हस्तिनापुर स्वयं अपने किसी भाई को भेजें तो सहदेव हस्तिनापुर भेजा गया। भीष्म ने सहदेव का मस्तिक सूंघा। कृपाचार्य और द्रोण ने आशीर्वाद दिये। शकुनि ने तो मीठे बोलों का कोष ही खोल दिया। वे बोले यह तो बडा ही शुभ समाचार है कि प्रिय युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे है। दुर्योधन मामा के इस रवैये पर हैरान रह गया। दुर्योधन पांडवों की कीर्ति सुन सुन कर ईर्ष्या से जल रहा है। दुर्योधन क्रोधित हो किसी पेड के नीचे खडा हुआ है और वहीं पर कर्ण आ जाता है। दुर्योधन बोला मैं यह पूछता हूं मामाश्री को इतना आनन्द दिखाने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा लग रहा था कि वे इस शुभ समाचार की हमेशा से बाट निहार रहे हो कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समाचार सुनते ही नंगे पांव ही इन्द्रप्रस्थ दौड जाये। कर्ण बोला परन्तु तुम यह पूछ किससे रहे हो ? गान्धार नरेश तो यहां है नहीं और मैं उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं दे सकता। क्योंकि मुझे तो सदैव से उनकी सोच गहरी लगती है।

दुर्योधन बोला मामा तो मामा यहां पिताश्री का आनन्द भी गागर की तरह छलक रहा था। कर्ण ने कहा उनका आनन्द तो बनावटी भी था। दुर्योधन बोला क्या तो मामाश्री का आनन्द बनावटी था ? कर्ण बोला उनकी झोली में बनावट छल दल के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं मित्र। इतने में शकुनि आता है और कहता है यह कविता किसके लिये है अंगराज ? यदि जीना चाहते हो तो बनावट सीखो अंगराज कर्ण। बनावट। जरासन्ध के वध के उपरान्त सारा भारतवर्ष पांडवों से भयभीत है परन्तु यह कभी नहीं भूल जाना चाहिये कि शकुनि के तूणीर में अभी भी बहुत सारे अचूक बाण है और तुम भान्जे दुर्योधन। यदि तुममें इतनी भी समझ नहीं तो तुम बडों की समझ से लाभ उठाओ। यदि पांडवों ने राजसूय यज्ञ कर लिया और तुम यहां मुंह लटकाये बैठे रहे तो सारा देश यही कहेगा की दुर्योधन का हृदय बहुत छोटा है और वैसे भी खांडवप्रस्थ को स्वर्ग बनाकर सारे जनसमुदाय का हृदय जीत लिया है ? तो क्या अब वे हस्तिनापुर को भी जीत लें। दुर्योधन ने कहा मामाश्री ? कर्ण बोला हस्तिनापुर कोई खीर की थाली नहीं है मामाश्री कि वे आयेंगे और चाट जायेंगे। शकुनि बोला काव्य और राजनीति में यही तो अन्तर है अंगराज

कर्ण। राजनीति में उपमा के लिये कोई स्थान ही नहीं। जो है सो है और जो नहीं है सो नहीं है। कर्ण तो बोला मैं तो कहता हूं कि... शकुनि बोला तुम में यदि यह दोष न होता अंगराज कर्ण तो तुम बडे ही उपयोगी व्यक्ति होते। तुम बोलते बहुत अधिक हो परन्तु सुनते कुछ भी नहीं। बिल्ली की तरह अपनी गर्दन को छिपाये रखना सीखो अंगराज कर्ण। और मेरे विचार से यदि तुम्हे वहां आमंत्रित किया गया है तो तुम्हे वहां अवश्य जाना चाहिये और यदि तुम्हारी गांठ में मुस्कुराहट नहीं है कर्ण तो मुझसे ले जाओ और जीवन का यह नियम सदा याद रखना कि जलो अवश्य परन्तु जिससे जलो उसे अपनी जलन का आभास बिल्कुल भी मत होने दो। यही शकुनि नीति है और यदि तुम इस नीति को अपनाओगे तो रातों को चैन से सो सकोगे।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में चिंतित हो घूम रहा है। रात गहरी होती जा रही है। गान्धारी आती है और कहती है अब सोजाइये आर्य पुत्र। धृतराष्ट्र बोला सोना तो मैं भी चाहता हूं परन्तु क्या करूं नींद हीं नहीं आती, सभी राजवैद्य भी हार गये। गान्धारी बोली आपको याद नहीं आर्यपुत्र एक दिन विदुर ने यह कहा था कि नींद न आने का रोग केवल तीन प्रकार के लोगों को होता है। जिसका बलवान से विरोध हो या फिर जिसका सब कुछ हर लिया गया हो या फिर जो चोर हो। धृतराष्ट्र बोला हां गान्धारी। मुझ में कदाचित ये तीनों ही दोष है प्रिये। मेरी शक्तिशाली उच्चाकांक्षाओं से मेरा विरोध हो गया है और वो मुझे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समाचार मिलने पर आनन्द अनुभव नहीं करने दे रही और मैं दुर्बल व्यक्ति तो हूं ही जिसका सब कुछ विदुर के नीति ज्ञान ने हर लिया और कदाचित मैं चोर भी हूं क्योंकि या तो दुर्योधन का आधा राज्य चुराकर पांडवों को दे दिया या फिर उनका आधा राज्य चुरा कर दुर्योधन को। और मेरी विवशता भी देखो गान्धारी कि मैं विदुर को दोषी भी नहीं ठहरा सकता क्योंकि वो तो धर्म और नीति के ज्ञान में निपुण है। गान्धारी बोली तो फिर आप अपने जीवन की वास्तविकता के साथ क्यों नहीं जीना सीख लेते आर्य पुत्र ? धृतराष्ट्र ने कहा सीखना तो बहुत चाहता हूं प्रिये परन्तु क्या करूं ? यह सीखने में मन नहीं लगता। मैं तो वो सूखी हुई लकडी हूं प्रिये जो जाडे की रात में स्वयं अपने आप को जलाकर जाडे से लड रही है परन्तु जब मैं तुमसे यह कहूं तो मेरी यह बात मान लो कि मैं अनुज पुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समाचार सुनकर बहुत सुखी हूं।

भारत वर्ष में यह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की ऋतु है। हर रास्ता इन्द्रप्रस्थ की तरफ ही जाता है। अपने अपने रथों पर अपने अपने ध्वज लहराते हुये सारे मुकुट धारी इन्द्रप्रस्थ की ओर ही जा रहे हैं। जो ध्वजमित्र है वो भी और जो ध्वज मित्र नहीं है वो भी। हस्तिनापुर पूरी आन बान से आया। धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, महात्मा विदुर, दुर्योधन, दुशासन, विकर्ण, अंगराज कर्ण और मामा शकुनि भी, सिन्धु नरेश जयद्रथ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने सहदेव और मन्त्रियों को आज्ञा दी कि ब्राह्मणों एवं पुरोहित धौम्य के अनुसार यज्ञ की सारी सामग्री शीघ्र ही मंगवायी जाये। सहदेव ने नम्रता से निवेदन कर कहा ज्येष्ठश्री आपकी आज्ञा से पहिले ही यह काम हो चुका है। इसी समय महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास तेजस्वी, तपस्वी और वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ आये। महर्षि वेदव्यास ने यज्ञ में ब्रह्मापद स्वीकार किया। सामवेदीय महर्षि सुमान्त उदगाता हुये। ब्रह्मज्ञानियों में अग्रण्य महर्षि याज्ञवल्क्य ने अध्वर्यु पद को विभूषित किया। महर्षि पैल और धौम्य होता हुये। इन ऋषियों के पुत्र, शिष्य तथा अन्य ऋषिगण सदस्पति हुये। स्वस्ति वाचन, पूर्वक, विधिविधान से उस स्वर्ण निर्मित, रत्न मंडित विशाल यज्ञ शाला का पूजन हुआ। अब शिल्पकार यज्ञशाला के आसपास बहुत से देव मन्दिरों के समान, भवनों का निर्माण करने में लग गये। इनमें गणपति, ग्रह, योगिनी, दिकपालादि देवताओं की स्थापना हुई। सामग्रियों के लिये तथा आचार्यादि के आवास हेतु समीप ही भवन बनाये गये। देश के समस्त ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को दूत भेजकर आमंत्रित किया गया। ये दूत अपने साथ ही वैश्यों को तथा सम्मानित शूद्रों को लेकर आये। असंख्य ब्राह्मण, क्षत्रिय सपरिवार आये। पांडवों तथा यादवों के सम्बन्धी, सुहृद, सहायक भी अपने पूरे परिवार तथा सेवकों सहित आये। वेदस्वरूप दैत्य नाशक भूत, भविष्य, वर्तमान के स्वामी कृष्ण ने युधिष्ठिर के साथ यज्ञशाला में प्रवेश किया।

सभी आगत लोग अपनी शक्ति तथा सम्मान के अनुसार बहुमूल्य अधिकतम भेंट, उपहार लेकर आये थे। सभी सामन्तों को आदरपूर्वक उनके समाज के साथ पृथक पृथक स्थानों पर ठहराया गया था। पूरा खांडवप्रस्थ उस समय एक विशाल महानगर बन गया। युधिष्ठिर ने प्रत्येक गुरुजन, सम्बन्धी से विनम्रता से कहा आप सब मेरी इस यज्ञ में सहायता करें। इस विशाल धनागार को अपना ही समझ कर इसका उपयोग कर यज्ञ का कार्य सुचारू रूप से नियमतन कर सम्पन्न करायें। धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह आदि की सम्मति से सभी आगत सम्बन्धियों को एक एक कार्य का संचालन, निरीक्षण सौंपा गया।

गान्धार देश के राजा सुबल, अचल, बृहक, शल्य, बाहलीक, सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा, शल, अश्वत्थामा, भगदत इत्यादि पर्वतीय प्रदेश के नरपति, वृहदल, पौंड्रक, वासुदेव, कुन्तिभोज, कलिंगाधिपति, बंग, आकर्ण, कुन्तल, मालव, आन्ध्र, द्रविड, सिंहल, कैकर्य आदि देशों के राजा, गौर वाहन, राजा विराट और उनके पुत्र, मावेल्ल, चेदि नरेश शिशुपाल सब के सब उस यज्ञ में सम्मिलत हुये। यज्ञ में समागत राजा और राजकुमारों की गणना कठिन है।

दुर्योधन को राजाओं व अतिथियों से भेंट व उपहार प्राप्त करने का जिम्मा सौंपा गया। महादानी कर्ण दान करने के लिये नियुक्त किये गये। दुशासन को भोजन के लिये पदार्थ मंगाने व सम्हालने की व्यवस्था सौपी गई। द्रौपदी ने रसोईघर की अध्यक्षता सम्हाली तथा भीमसेन को परोसने का कार्य सौंपा गया। अश्वत्थामा और कृष्ण ब्राह्मणों की सेवा सुश्रूषा में लगे। आगन्तुक राजाओं का स्वागत सत्कार संजय करता था। भीष्म, द्रोणाचार्य और महाराज धृतराष्ट्र पूरे आयोजन के नियन्ता व सूत्रधार बने थे। कृपाचार्य को सोने चांदी, हीरे, जवाहारात, रत्नों की देखभाल तथा ब्राह्मणों को पर्याप्त दान दक्षिणा का कार्य सौंपा गया। इसी प्रकार सब के एक एक काम जिम्मे सौंपे गये। कृष्ण ने स्वयं होकर कहा कि मैं आगत विप्रों का पाद प्रक्षालन करूंगा। यह सुनकर धर्मराज भाव विह्वल हो गये। अनेक प्रदेशों के भाषा भाषी ब्राह्मण यहां सम्मिलत होंगे। वे देव वाणी अवश्य बोलेंगे किन्तु उन्हे अपनी भाषा में उनका स्वागत अधिक प्रिय होगा और उन्ही की रूचि अनुसार उनके आवास-निवास आहार की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। युधिष्ठिर बोले कृष्ण आप ही यह कार्य ठीक सुचारू रूप से कर सकते हो अत: आगत ब्राह्मणों से प्रथम मिलन आपका ही उचित है। कृष्ण ने कहा और मैं ही उन ब्राह्मणों की उच्छिष्ट पत्तले भी उठाऊंगा। जो सबके स्वामी है, सबके आराध्य है, सबके द्वारा सम्मान पाने योग्य है जिनकी ही इस यज्ञ में सर्वप्रथम पूजा होती है उन निखिल लोक महेश्वर, सर्वात्मा, सर्वरूप, सर्वाधार के लिये कोई भी कार्य हेय अथवा अपमान का हेतु हो नहीं सकता था। यह ब्राह्मणों का पाद प्रक्षालन और उनका उच्छिष्ट उठाना कृष्ण की महानता तथा सूक्ष्म दृष्टि का ही परिचायक था। वे नहीं चाहते थे कि युधिष्ठिर के यज्ञ में आये एक ब्राह्मण भी किसी किंचित भी उपेक्षा अथवा उसकी रुचि अनुसार आहार प्राप्ति में संकोच करना पडे। जाहं सर्व समर्थ सर्वज्ञ सर्वेश्वर कृष्ण इतने सतर्क और सन्नद्ध हो वहां यज्ञ की शोभा, सम्पन्नता, निर्विघ्न पूर्णता में तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। आगत नरेशों और वैश्यों में तो जैसे स्पर्धा लगी थी। उनमें से प्रत्येक यह चाहता था कि उसी के धन से यज्ञ सम्पन्न हो। प्रत्येक अपने सर्वस्व को अर्पण करने को उत्सुक था और पूरा प्रयत्नशील था कि अधिकाधिक उसे अवसर मिले। दुर्योधन उपहार लेते लेते थक गया। सेना के व्यूह, विचित्र विमानों की पंक्तियां, रत्नों की राशि, लोकपालों के विमान, ब्राह्मणों के स्थान और राजाओं की भीड से महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की शोभा बढ गई। धर्मराज युधिष्ठिर का वैभव, ऐश्वर्य, लोकपाल वरुण के समकक्ष था।

युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर वालों को परिवार का अंग हिस्सा समझकर आमंत्रित किया पर यह भीम को अच्छा नहीं लगा। वह नहीं चाहता था कि हस्तिनापुर वालों को आमंत्रित किया जाये। युधिष्ठिर ने भीम को समझाया। चाहे कुछ भी हो दुर्योधन हमारा भाई है और फिर बहुत कुछ हमारे व्यवहार पर भी निर्भर है। यदि हम उसे आत्मीय परिजन के रूप में स्वीकार करते हैं तो वह क्यों परायापन दिखायेगा ? स्नेह में इतनी शक्ति है प्रिय भीम वह पशु तक को सुधार देता है। भीम बोला यही बात तो बार बार

मैं कहता हूं कि पशु को तो हम सुधार सकते हैं क्योंकि पशु को हमसें ईर्ष्या नहीं होती, कोई स्पर्धा नहीं होती। वह तो केवल आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है। पशु तो केवल पशु होता है। वह कभी नीच और उच्च प्रकृति का नहीं होता। यदि पशु को सुधारणा हो तो हम उसके गले में रस्सी डालकर खूंटे में बांध दे। वह उत्पात करे तो उसे दंड दें पर दुर्योधन तो पशु से भी बढकर है उसे सुधारने का तो एक ही मार्ग है भ्राताश्री और वह है सिर्फ मेरे पास जिसकी आप अनुमति नहीं देते। युधिष्ठिर बोले मुझे यही भय है कि कहीं अपनी आशंकाओं से पीडित होकर भीम दुर्योधन को आहत न कर दे। कृष्ण बोले किसी प्रकार शंकित मत हो यज्ञ को अनुशासित रखने का दायित्व मेरा होगा। कृष्ण और वेदव्यास ने भीम को समझाया और हस्तिनापुर वालों को निमन्त्रण देनेके लिये राजी कर लिया।

यज्ञभूमि का पूजन कर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की दीक्षा ली। यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित हुई और मन्त्रोच्चार से सारे परिवेश में दिव्यता का संचरण होने लगा। यज्ञ तो देवताओं का आह्वान था, पूजन था। ईश्वर की आराधना से अधिक पांडवों के लिये अधिक महत्वपूर्ण और क्या हो सकता है ?

कृष्ण वेदव्यास के निकट बैठे पूछ रहे थे कि साधक को किस रूप में ईश्वर की आराधना करनी चाहिये गुरुदेव। महर्षि व्यास बोले सब कुछ जानते हुये भी अज्ञानी बनकर तुम मुझसे पूछ रहे हो। मुझ पर कृपा की है जो मुझे गौरव प्रदान कर रहे हो। यह भी किन्ही जन्मों का ही पुण्य होता है कृष्ण कि तुम मुझसे शिष्य बनकर अपना गुरु मुझे मानकर पूछ रहे हो। ईश्वर योग्य पुत्र के रूप में पिता को तथा योग्य शिष्य के रूप में गौरव देता है। ईश्वर तुम्हारे अन्दर ही करुणा के रूप में विद्यमान रहता है। ईश्वर असीम है इसलिये उसका कोई रूप नहीं होता। इसीलिये उसकी कल्पना भी सीमित है। वह उसी के भीतर ईश्वर के रूप की कल्पना करेगा परन्तु कल्पना भी तो ईश्वर की दी हुई है। कल्पना अपने आप में ईश्वर का तत्व है। मनुष्य उससे बन्धा है इसलिये उससे बाहर नहीं जा सकता पर ईश्वर के लिये ऐसी कोई बाध्यता नहीं है। उसकी असीमता देखनी हो तो संसार के विभिन्न जीव जन्तुओं, प्राणियों को देखो। इन सारे रूपों में भी वह स्वयं ही तो प्रकट हुआ है। जब सत्य केवल वही है तो फिर उसके बाहर किसी वस्तु का अस्तित्व हो ही कैसे सकता है। इसलिये सामने या कल्पना में जितने भी स्वरूप, रूप, आकार है सब उसी के रूप है। जिस रूप की आराधना, साधना करोगे वह उसी की पूजा होगी। वासुदेव तुम जिस सरलता से सभी जीवों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकते हो वह अद्भुत है। उनमें तुम ईश्वर देखते हो तो अपने भीतर भी ईश्वर को देख सकते हो। यदि आत्मा में स्थित होकर आत्मस्थ होकर देखोगे तो प्रत्येक जीव में वही दिखाई देगा तुम्हे और वह कोई तुमसे भिन्न नहीं होगा। यह सृष्टि भी उसी का विराट स्वरूप है। सारा उसी का प्रबन्ध है। वह हमारे भीतर है और हम उसके भीतर है। सूचना जब संवेदना बनती है तो अपने आप अनुभूति होती है। वास्तविक आस्था तो केवल अनुभूति के बाद ही उत्पन्न होती है। कृष्ण व्यास का उत्तर सुनकर मुस्कुराने लगे और बोले धन्य ऋषिवर।

यज्ञशाला में भगवान हव्यवाह को हस्ति शुंडाकार अखंड घृताहूति प्राप्त हो रही थी और हविष्य, शाकुल की राशि आहूति मिल रही थी। युधिष्ठिर ने यज्ञकुंड में छ: अग्नियों की स्थापना की थी। पूरी पूरी दक्षिणा अर्पित कर यज्ञ के द्वारा भगवान का यजन पूर्ण किया। अतिथियों अभ्यागतों को मुंह मांगी अभिष्ट वस्तुयें देकर सन्तुष्ट किया। चारों ओर गगन तथा दिशायें सुगन्धित धूम्र से ढक गयी थी। मन्त्र पाठ का उच्चारण ध्वनि तथा जन कोलाहल के कारण परस्पर की बात सुनाई नहीं पड रही थी। सभी देवता मूर्तिमान होकर अपने आसनों पर आसीन थे। वे अपना भाग स्वयं स्वीकार कर रहे थे। धर्मराज के यज्ञ में सोमपान करके सुर भी आकंठ तृप्त हो रहे थे। उस उत्सव समारोह में जिधर देखो उधर ही हीरे मोतियों के उपहारों की धूम मची थी। महर्षि एवं मन्त्र कुशल ब्राह्मणों ने उत्तम नीति से घृत, तिल साकल्य स्त्रुवा आदि की आहूति देकर यज्ञ पुरुष का यजन किया और देवता निहाल हुये। दक्षिणा में बहुत सा धन पाकर ब्राह्मण भी सभी सन्तुष्ट हुये। पत्नियों के साथ पांडवों ने ऋषि आदि

पूजन से लेकर बर्हिहवन तक यज्ञ की सम्पूर्ण विधि पूरी श्रद्धा से सांगोपांग सम्पन्न की। इतने विशाल यज्ञ हुये परन्तु यह सम्पूर्णता अपूर्व व अद्‌भुत थी। यह कृष्ण के सान्निध्य का ही स्वरूप है।

समय की दिलचस्पी आज चेदि नरेश शिशुपाल में अधिक है। इस कथा के रास्ते में इस पात्र से हम कई बार मिल चुके हैं। यह कृष्ण की दूसरी बुआ का बेटा शिशुपाल है। यह अपनी मौसी के पुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने के लिये इन्द्रप्रस्थ आयें है लेकिन वहां पहुंचने से पहिले इसकी कहानी सुन लेना आवश्यक है क्योंकि इसकी कहानी यह है कि जिस दिन शुरू हुई थी उसी दिन उसका अन्त भी निश्चित हो गया था। यह कृष्ण का फूफेरा भाई और पांडवों का मौसेरा भाई है और आज वो उसी कहानी के अन्त की तरफ जा रहा है। यह इसके जीवन की अन्तिम यात्रा है इसलिये उसके जीवन की पहिली यात्रा को भी देख लेना चाहिये क्योंकि भविष्य का अंकुर सदा ही अतीत की भूमि से फूटता है तो अतीत की तरफ मुडकर देखिये। समय आपको वहीं लौटा लायेगा क्योंकि समय वो कभी रास्ता नहीं भूलता। समय चेदि राज दमघोष के भवन में ले चलता है वहां यह बच्चा शिशुपाल जन्मा था। जो शिशुपाल नाम से है तो आज उस कहानी को इसके जन्म दिन से पकडकर चलते हैं।

चेदि नरेश दमघोष की पत्नी राजरानी श्रुतश्रवा ने एक पुत्र को जन्म दिया उस दिन घनी अन्धेरी रात थी। जोरों से आंधी तूफान चल रहे थे। बिजली कडकडाहट से चमक रही थी। अनेक उत्पातों की सूचना मिल रही थी। दासी ने आकर सूचना की महारानी ने कुमार की जगह किसी राक्षस को जन्म दिया है। बच्चा जोरों से गर्दभ स्वर में रैंकने लगा। दासी ने पूछा महारानी मेरे लिये क्या आदेश है। इस बालक को फिकवां दे तो ही अच्छा है। सभी ने एक मत हो कहा हां हां इसे फिंकवा दीजिये। चेदि नरेश की महारानी श्रुतश्रवा बोली ऐ भगवान यह मेरी कैसी परीक्षा है ? इतने में ही आकाशवाणी हुई कि इसे मत फेंको, यह बालक परमवीर होगा। यह भविष्य की धरोहर है। महारानी ने पूछा कृपया यह भी बता दीजिये भगवान कि जिस बालक का जन्म ऐसा हुआ है उसकी मृत्यु कैसे होगी ? इस बालक के दो भुजा (हाथ) और एक नेत्र अतिरिक्त हुये। आकाशवाणी ने फिर कहा इस बालक के दो अतिरिक्त हाथ और अतिरिक्त एक आंख जिस किसी की गोद में झड जायेंगे वो ही उसका वध करेगा। चेदिराज के इस अद्‌भुत शिशु को देखने दूर दूर के राजा लोग आने लगे। राजा दमघोष स्वयं भी प्रसिद्ध वीरों को, राजाओं को आमंत्रित करने लगे जो भी आते थे उनकी गोद में वे अपने इस पुत्र को रख देते थे। इसी क्रम में जरासन्ध ने तो उस शिशु को अपना धर्मपुत्र बना लिया था। इसी बालक का नाम शिशुपाल रखा गया। एक दिन किशोर अवस्था में कृष्ण और बलराम अपनी छोटी बुआ से मिलने उसके घर आये। बुआ ने भी उन्हे आग्रहपूर्वक बुलाया था। कृष्ण बोला लल्ला को मेरी गोद में दो बुआ। बलराम बोला तेरी गोद में पहिले कैसे देगी मैं बडा हूं। कृष्ण बोला बडे तो आप ही हैं दाऊ। स्वागत सत्कार के बाद बुआ ने जैसे ही बलराम को शिशु को देने के पश्चात श्रीकृष्ण की गोद में लिया तो उस बालक के अतिरिक्त दोनों हाथ व तीसरा नेत्र झड गये। महारानी श्रुतश्रुवा ने कातर हो कहा। कृष्ण मैं बहुत डर गयी हूं। तुम तो आर्तों को अभय देनेवाले और दुखियों का दु:ख हरण करनेवाला हो। यह बालक ऐसा कौनसा अपराध करनेवाला है जिसके कारण कृष्ण जैसे भाई को इसका वध करना पडेगा ? मेरा कृष्ण तो कभी ऐसा कर नहीं सकता। मैं उसे ऐसा करने भी नहीं दूंगी। तू चैन से सोजा। बालक सो गया।

कृष्ण महारानी श्रुतश्रवा के महल में शयन कर रहे थे उसी समय महारानी वहां आती है। अपनी बुआ को देखकर कृष्ण चौंक उठा और जग गया और बोला क्या हुआ बुआ ? महारानी ने कहा क्या तुम मेरे पुत्र का वध करोगे देवकी नन्दन ? कृष्ण बोला यह आप मुझसे क्यों पूछ रही है बुआ ? महारानी श्रुतश्रवा बोली आकाशवाणी हुई थी वत्स जिस किसी की गोद में जाते ही इस बालक के दो हाथ और तीसरा नेत्र झड जायेगा वही उसका वध करनेवाला होगा। कृष्ण बोला यह आकाशवाणी हुई थी बुआ या आपके प्रश्न का उत्तर मिला था ? महारानी बोली वत्स मेरे प्रश्न का उत्तर मिला था। कृष्ण बोला परन्तु मां होकर अपने पुत्र की मृत्यु के विषय में यह प्रश्न ही क्यों किया बुआ ? जीवन के इस रहस्य को आप नहीं जानती तो अच्छा होता बुआ। महारानी

बोली तो क्या तू सचमुच उसका वध करेगा ? कृष्ण बोला यदि करना ही पडा तो करना पडेगा ही ना बुआ और आकाशवाणी कभी झूठ तो नहीं बोलती। महारानी श्रुतश्रवा ने कहा कठोर ना बनो कृष्ण यह तुम्हारा भाई है। क्या तुम्हे उस पर दया भी नहीं आयेगी। कृष्ण बोला दया आयेगी और दया ही तो करुंगा। महारानी बोली यह तो कोई दया नहीं है वत्स। कृष्ण बोला इसे मोक्ष कहते हैं बुआ। महारानी ने कहा यह सब मैं नहीं जानती। मैं तो केवल इतना जानती हूं कि वो मेरा इकलौता पुत्र है और तुम्हारे हाथों उसका वध होनेवाला है। मुझे वचन दो मैं तुम्हारे आगे हाथ जोडती हूं। कृष्ण बोला ऐसा मत कीजिये, मैं विवश हूं। महारानी ने कहा जब तक तुम यह वर नहीं दोगे तुम्हारी बुआ के हाथ इसी तरह जुडे रहेंगे। कृष्ण बोला क्या वर मांग रही हैं आप ? महारानी ने कहा जब भी मेरा पुत्र कोई अपराध करे तो मेरी ओर देखते हुये उसे क्षमा कर दिया करना। कृष्ण बोले ऐसे असीमित वर तो केवल महादेव ही दे सकते हैं बुआ परन्तु तुम्हे मैं यह वचन अवश्य देता हूं कि उसे ऐसे सौ अपराधों पर भी क्षमा कर दूंगा, जिसमें हर अपराध मृत्यु दंड का अधिकारी है।

सौ अपराधों तक कर दी क्षमा प्रदान, वचन दिया श्रीकृष्ण ने दिया मोक्ष वरदान।

वही बच्चा बडा होकर शिशुपाल बना और अपने विनाश की ओर जा रहा है। कृष्ण और बलराम भी कुन्ती के कक्ष में आते हैं। कुन्ती ने युग युग जीओ का आशीर्वाद दिया और पूछा कृष्ण द्वारिका में तो सब कुशल मंगल है ना। इसी बीच द्रौपदी और सुभद्रा भी वहां आ जाती हैं। कृष्ण बोला आपके आशीर्वाद से द्वारिका में सभी कुशल मंगल है परन्तु पूरी यात्रा में मैं यही सोचता रहा हूं कि मेरी बहिन सुभद्रा ने आपको कोई कष्ट तो नहीं दिया। लो अरे आ गई मेरी बहिन। बलराम बोला देख लिया बुआ बडा भाई हूं मैं और बहन का स्नेह पा रहा है यह छोटा भाई। कृष्ण बोला यह तो आपने बडा भाई बनने से पहिले सोच लेना चाहिये था ना दाऊ । बलराम बोले अब आप ही मेरा और उसका न्याय कीजिये बुआ। कुन्ती बोली मान सम्मान पर पहिला अधिकार बडे भाई का होता है परन्तु बलराम स्नेह पर पहिला अधिकार छोटे भाई का होता है। कृष्ण बोले सुन लिया दाऊ। अब कृपया मुझे अपनी छोटी बहिन से बात करने दीजिये। यह तो कोई पूछने का अर्थ ही नहीं कि तुम यहां सुखी हो या नहीं। बुआ के घर में होगी तो सुखी कैसे नहीं होगी ? कुन्ती बोली ना कृष्ण अब ये घर मेरा नहीं है। पुत्र वधुओं के आजाने के पश्चात घर पुत्र वधुओं का हो जाता है। कृष्ण बोले मैं तुमसे पूछता हूं बहिन कि तुम्हारे घर में मेरी बुआ को तो कोई कष्ट नहीं है। सुभद्रा बोली यह घर मेरा थोडे ही है भैया। यह घर तो दीदी का है। मैं तो दीदी की दासी हूं। द्रौपदी बोली माताश्री सुन रही हैं न आप। अपने भाई को लगाकर कह रही है कि मैंने इसे दासी बना कर रखा है। यह भी पूछ लो अपनी बहिन से मैंने उसे सताया तो नहीं। कृष्ण बोला तुम तो इसे मेरी बहिन ऐसे कह रही हो द्रौपदी जैसे तुम मेरी बहिन लगती ही नहीं। तुम तो इससे भी कहीं अधिक पुरानी बहिन हो। बलराम बोले इससे तो मैं भी कृष्ण से सहमत हो गया हूं। कृष्ण बोला क्या कहा आपके मुख से सहमत होनेवाली बात तो मैं पहली बार सुन रहा हूं दाऊ।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ऋषि समुदाय के साथ इन्द्रप्रस्थ के राजभवन में प्रवेश कर रहे हैं। कृष्ण ने व्यासजी को प्रणाम किया और बोले विराजिये ऋषिवर। कृष्ण और युधिष्ठिर ऋषि व्यास आदि के चरण पखार कर अर्ध्य आदि दे रहे हैं।

बड पाहुन को पग धो रहे हरि, पीताम्बर से पौंछ रहे, जो हरि चरण बसे मन मांही, ऋषिचरण पखार रहे हैं।
जो नाथ है तीनों लोकन के वे लोग के अब दास बने हैं।
हरि उपकारी कर रहे आज अतिथि सत्कार, धन्य करे आतिथ्य को धन्य करे व्यवहार।
हरि उपकारी करे उपकार तो पतझड भी मधुमास बने।

ऋषियों के आजाने के बाद वातावरण में धूप की सुगन्ध और मन्त्र जाप चादर ओढ ली। वो क्षण आ गया जिसकी प्रतीक्षा स्वयं समय कर रहा था। ऋत्विज यज्ञ कुंड में अग्नि स्थापित कर यज्ञ करा रहे थे। द्रौपदी, युधिष्ठिर तथा कृपाचार्य, गुरुदेव

द्रोण, कृष्ण, व्यास, धौम्य सभी यज्ञ करवा रहे थे। यज्ञ सभा में हस्तिनापुर नरेश कुलकुरु शिरोमणि महाराज धृतराष्ट्र विदुर के साथ पधारे। अर्जुन और भीम ने उठकर उनका स्वागत किया। सबने धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। शकुनि ने दुर्योधन से कहा चलो भान्जे। दुर्योधन युधिष्ठिर का वैभव देखकर ईर्ष्याग्नि से जल उठा। अंगराज महारथी दानवीर कर्ण भी यज्ञ से पधारे थे। कुन्ती ऊपर से चिक उठाकर देख रही थी। शकुनि बोला आओ अंगराज कर्ण दुयोधन बोला आओ मित्र विराजो। सिन्धु नरेश महारथी पराक्रमी जयद्रथ आया। पांचाल नरेश द्रुपद, धृष्टद्युम्न के साथ पधारे। कुलगुरु कृपाचार्य और गुरु द्रोण सभी आये और सभी ने अपने अपने आसन ग्रहण किये। यज्ञशाला में युधिष्ठिर द्रौपदी सहित माता कुन्ती को लेकर राजरानी सुभद्रा और भीष्म पितामह पधारे। चारण, बन्दीजन और भाट विरुदावली गाते हैं।

है धर्मराज राज तुम्हारा, आज हमारी पृथ्वी सारी, हे राजाओं के राजा सारे हैं आज तेरे पुजारी।
हे भरत वंश के हंस तुम्हारी उडे कीर्ति पताका चारों ओर सारी।

युधिष्ठिर ने पूरी राजसभा को सम्बोधन करते हुये कहा मैं पांडु पुत्र कौन्तेय युधिष्ठिर सबसे पहले महर्षि व्यास, व अन्य ऋषियों को सादर प्रणाम करता हूं, जो मुझे आशीर्वाद देने यहां पधारे है। ये इन्द्रप्रस्थ नगरी उनके आने से धन्य हो गई। फिर मैं पूज्य पितामह भीष्म को प्रणाम करता हूं जिनके स्नेह की छांव ने सदैव कडी धूप से हमें बचाने का प्रयत्न किया। फिर मैं ज्येष्ठ पिताश्री हस्तिनापुर नरेश महाराजाधिराज धृतराष्ट्र को प्रणाम करता हूं जो मुझे आशीर्वाद देने यहां आये है और यदि वे नहीं आते तो पांडु परिवार का आनन्द अधूरा रह जाता। फिर मैं महात्मा विदुर के चरण स्पर्श करता हूं इनके ज्ञान की दीपमाला मेरे गले में पडी हुई है। इसके उपरान्त मैं अपने कुल गुरुजनों कृपाचार्य और आचार्य द्रोण के चरण स्पर्श करता हूं जिन्होने मुझे शिक्षा दीक्षा देकर इस योग्य बनाया और अब मैं अपने अनुजों दुर्योधन, दुशासन, विकर्ण और सुकर्ण आदि को अपना स्नेह भेंट करता हूं। और फिर एक बार भारत के हर कोने कोने से आये हुये नरेशों एवं महारथियों को प्रणाम करता हूं। कुन्ती कर्ण को देखती है उसने मन ही मन कहा युधिष्ठिर अपने ज्येष्ठ भ्राता कर्ण को भी प्रणाम करो। कुन्ती की आंखे भर आई।

नारद आदि महात्मा राजर्षियों के साथ बडे ही शोभायमान हो रहे थे। धर्मराज की राज्य लक्ष्मी देखकर देवर्षि नारद को बडी प्रसन्नता हुई। नारद युधिष्ठिर की यज्ञविधि से भी अत्यन्त प्रसन्न थे। क्षत्रियों का समूह देखकर नारद को याद आया जो भगवान के अवतार के सम्बन्ध में ब्रह्मलोक में हुई थी। राजाओं का यह समागम ऐसा जान पडने लगा माने इन रूपों में देवता ही इकट्ठे हुये है। उन्होने मन ही मन कृष्ण का स्मरण किया। धन्य है सर्व व्यापक, असुर विनाशक अन्तर्यामी, नारायण ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये क्षत्रियों में अवतार ग्रहण किया है वही कृष्ण आज यदुवंश में अवतीर्ण हुये है। देवराज इन्द्र आदि समस्त महान पुरुष जिनके बाहुबल की उपासना करते है वही प्रभु यहां मनुष्य के समान बैठे हुये है। स्वयं प्रकाश महाविष्णु इस बलशाली अहंकारी क्षत्रिय वंश का अवश्य ही संहार करेंगे। कृष्ण ही समस्त यज्ञों के द्वारा आराध्य, सर्वशक्तिमान व अन्तर्यामी है। उसी समय पितामह भीष्म उठकर खडे हो बोले युधिष्ठिर राजन अब तुम समागत राजाओं का यथायोग्य स्वागत सत्कार करो। आचार्य, ऋत्विज सम्बन्धी, स्नातक, राजा और प्रिय व्यक्ति यदि ये सब एक वर्ग के भीतर अपने यहां आये हो तो उन्हे विशेष पूजा अर्ध्य अभ्यर्थना करनी चाहिये। आज राजसूय यज्ञ का अभिषेचनीय कर्म दिवस है। इस सभा में उपस्थित सभी महानुभाव यहां दीर्घकाल के पश्चात पधारे हैं इसलिये हे राजन तुम उन सभी को अर्ध्य प्रदान करो और इन सब में जो श्रेष्ठ और शक्तिशाली हो उसी को सबसे पहिले अग्रपूजा का सम्मान मिले।

सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के चुने हुये सहस्त्रों की संख्या में महामानव यहां आये हुये थे। राजा, महाराजा, यौद्धा, मल्ल, विद्वान, ऋषि, मुनि, चिन्तक, दार्शनिक, सिद्ध, साधक, तपस्वी, व्यापारी, कलाकार, गायक, चित्रकार, सर्जक, साहित्यकार, कथा वाचक, एक से एक बढकर जैसे प्रकृति ने जितने भी रत्न, मणि, माणिक्य उत्पन्न किये है वे सब ही एक स्थान पर एकत्रित हो गये है।

युधिष्ठिर ने कहा पितामह आर्यावर्त ही नहीं सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की समस्त विभूतियां यहां विद्यमान है। अब आप आदेश दें कि सबसे पहिले अग्रपूजा के लिये कौन योग्य व सम्माननीय है ? मैं पहिले महर्षि व्यास की पूजा करूं या आपकी ?

भीष्म बोले राजन आप बडे भाग्यवान हैं। आपके आमन्त्रण पर भारतवर्ष का पूरा क्षत्रिय समाज आपको बधाई देने आपके राज्याभिषेक में सम्मलित होने यहां एकत्रित हुआ है। मैंने अपनी लम्बी जीवन यात्रा में ऋषियों का ऐसा समूह कभी नहीं देखा। इनकी यहां की उपस्थिति ही इस बात को सिद्ध करती है कि इस राज्य में और सभा में सदा ही ईश्वर कृपा की वर्षा हो रही है। राजन ना ही महर्षि व्यास की और ना ही मेरी। आप स्वयं धर्म के प्रतिबिम्ब है।

आये हुये सभी सदस्यों में मतभेद उत्पन्न हो गया। कोई किसी महर्षि की अग्रपूजा के पक्ष में थे और कोई किसी राजर्षि की। किसी-किसी ने प्रश्न को विवाद से बचाने के लिये देवराज इन्द्र की अग्रपूजा का प्रस्ताव रखा लेकिन किसी की भी सम्मति निर्विरोध नहीं थी। कोई कहता कोई सम्राट ही प्रथम सत्कृत होने योग्य है क्योंकि राजाओं की इस सभा में किसी राजा को ही यह सम्मान मिलना चाहिये। देवता और ब्राह्मण तो सदा सर्वदा पूजा के योग्य है ही यहां इस समय उनकी पूजा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भीष्म भी मन में विचार कर रहे है। जब भीष्म ही अपनी इस परिपक्व आयु में इसका निर्णय नहीं कर पा रहे है तो भला युवक युधिष्ठिर इसका निर्णय कैसे कर पायेगा ? सब अपना अपना महत्व समझते है, दूसरों का महत्व कोई नहीं जानता या जानना नहीं चाहता। अपना महत्व और दूसरों के दोष जानना कितना सरल है किन्तु अपना दोष तो किसी को भी दिखाई नहीं देता और न दूसरे का गुण ही। अतिथियों की पूजा करना गृहस्थ धर्म है किन्तु इन सबकी इच्छा पूरी तो नहीं की जा सकती। पूजा व्यक्ति की नहीं होगी, पूजा तो उसके गुणों की होती है। जिसकी पूजा होगी उसके चिन्तन को, आचरण को समाज में प्रतिष्ठा मिलेगी। जनसामान्य के सम्मुख उसे एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जायेगा। उसके कृत्यों को धर्म माना जायेगा। और अयोग्य व्यक्ति की पूजा का अर्थ है योग्यता पर अयोग्यता का आधिपत्य, सत्य पर असत्य का वर्चस्व, सदाचार पर दुराचार की प्रतिष्ठा, धर्म पर अधर्म का आरोपण। योग्य लोगों पर अयोग्य व्यक्ति को स्थापित कर दिया जाये तो मेधा, प्रतिभा और योग्यता का असत्य के उस वातावरण में दम घुटने लगता है। स्थापित अन्याय सदा भय से थरथराता रहता है। घास की छाया में वटवृक्ष के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक छोटी भी भूल कितने बडे विनाश का कारण बन सकती। यह राजसूय यज्ञ तो जम्बूद्वीप की भावी राजनीति का नेतृत्व करेगा। अग्र पूजा भी उसी व्यक्ति की होनी चाहिये जो धर्म को जानता हो राजसूय यज्ञ का संकल्प भी धर्मराज्य स्थापित करना है। जो धर्म को समझता हो और धर्म पर चलनेवाला हो। धर्म का मर्म अत्यन्त सूक्ष्म है और उसे समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

यदि धर्म को जाननेवाले की ही पूजा करनी है तो किसी ऋषि की पूजा करनी चाहिये। ऋषि तो अनेक आये हुये है, नारद, वेदव्यास, धौम्य, सुभामा, अंगीरस तथा दुर्वासा ये सब तो धर्म को जाननेवाले है परन्तु इन्होने तो समाज को ही त्याग दिया। वे धर्म का नहीं तापस धर्म का पालन कर रहे है। उनकी अग्रपूजा करवा कर तो सन्यास धर्म की स्थापना का महत्व बढेगा। यह तो गृहस्थ धर्म की हीनता होगी। भीष्म सोच रहे है फिर कोई राजा। पर ये राजा और धर्म। ये सब तो अहंकारी और विलासी है। अहंकार और विलास के सानिध्य में कोई धर्म नहीं टिक पाता।

भीष्म की दृष्टि बार-बार घूम फिरकर आकर कृष्ण पर ही ठहर जाती। कृष्ण राजा नहीं है परन्तु आर्याव्रत में जितनी पैठ कृष्ण की है और किसी की भी नहीं है। कृष्ण ने कंस और कालयवन को ही नहीं अपने प्रतिद्वन्दी जरासंध को भी धूल चटा दी। कृष्ण पर आक्रमण करके जरासंध भी कुछ नहीं कर सका। भीष्मक, रूक्मी, शिशुपाल, दन्तावक्र, शाल्व सारे के सारे दुष्ट क्षत्रिय कृष्ण के आतंक से भयभीत हो शान्त बैठे रहे। यदि कृष्ण इतना चतुर सक्रिय और समर्थ न होता तो इन पापी राजाओं ने पूरे आर्याव्रत में से न्याय, धर्म और ज्ञान की ज्योति ही पूर्ण रूप से बुझा दी होती। यहां पाप, अज्ञान और अन्याय तथा अधर्म का अन्धकार

इतना गहरा होता कि मानवता तक दिखाई ही नहीं पडती। ये सब राजा अपने को क्षत्रिय कहते हैं परन्तु उनके आचरण राक्षसों और निशाचरों के से है। कंस का वध करके भी कृष्ण ने राज्य ग्रहण नहीं किया। कुशस्थली को जीता, द्वारका का निर्माण किया, यादवों का नेतृत्व किया पर राजा के रूप में महाराज उग्रसेन को ही सिंहासीन किया। कहीं भी तनिक सी भी इच्छा कृष्ण के मन में राजा बनने की नहीं जागी और यदि मन में इच्छा कर लेता तो कदाचित सबसे विशाल साम्राज्य कृष्ण का ही होता। कृष्ण धन नहीं खोजता, अधिकार नहीं खोजता वह तो धर्म को खोज रहा है। कृष्ण ऋषि नहीं है, सन्यासी नहीं है न ही किसी समाज से पलायन किया है, नहीं वह समस्याओं से और न ही कर्म से दूर हुआ है। अपने देश की राजनीति में, यादवों के प्रशासन में, अपनी पारिवारिक समस्याओं में पूरा पूरा उतरा हुआ है। फिर भी अनासक्त है। जिस किसी के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाकर काम करता है उससे कुछ पाने की अपेक्षा भी नहीं करता है। सृष्टि को कुछ देने के लिये ही उसका जन्म हुआ है। भीष्म की चिन्तन प्रक्रिया सतत चल रही थी। भीष्म के मन में कृष्ण के लिये स्नेह, सम्मान और श्रद्धा की भक्ति उमड आई और वे बोले महाराज युधिष्ठिर आपकी आंखों को तो यह देख लेना चाहिये था कि इस सभा में ही नहीं पूरी त्रिलोकी में यदुवंशी शिरोमणि वासुदेव के अतिरिक्त और किसी की अग्रपूजा हो ही नहीं सकती। मैं इसलिये यह नहीं कह रहा हूं कि वो मुझे प्रिय है। मैं यह इसलिये भी नहीं कह रहा हूं कि मैं उनका भक्त हूं। मैं पर्याप्त चिन्तन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इस सारे समाज में अग्रपूजा के योग्य वे ही हैं। वे अहंकार शून्य हैं। अपने तेज, बल और पराक्रम से देदीप्यमान है। निर्भिकता तथा धर्मनिष्ठा में असाधारण हैं। वीरता, ज्ञान तथा त्याग में आलौकिक हैं। उनमें भव्यता, दिव्यता और सात्विकता है। उनका स्थान मनुष्यों के समान में ही नहीं, गृह नक्षत्रों के समान में सूर्य समान है। मेरा प्रस्ताव है कि चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर आप कृष्ण की ही अग्र पूजा करें। ये पूरे भारतवर्ष के जगमगाते मुख्यों के बीच में से प्रतीत हो रहे है मानो तारों के समूह में चन्द्रमा और जब चन्द्रमा के दर्शन हो रहे हो तो तारों की ओर कौन देखता है ? जेसे अन्धकार की चादर ओढकर सोयी हुई धरती सूर्य के शुभागमन से जाग उठती है और वायु के स्थान वायु का स्पर्श होते ही पुलकित हो उठता है और सांस लेने लगता है। ऐसे ही देवकीनन्दन के इस राज्यसभा में होने से यह राज्यसभा जगमगा रही है और सांस भी ले रही है। तो क्या फिर इनके होते हुये स्वयं महर्षि व्यास अग्रपूजा के लिये आगे बढ सकते है ? कभी नहीं कभी नहीं। श्रेष्ठत्व प्राप्त करने योग्य, सात्वत्ता के स्वामी कृष्ण ही है। ये सर्व देवमय है। देश, काल, वस्तु सब तो उनका ही स्वरूप है। यह विश्व जिनमें व्याप्त है, यज्ञ जिसकी आत्ममूर्ति है, अग्नि आहुतियां, मन्त्र अर्थात सम्पूर्ण कर्मयोग, सांख्य तथा योग जिनकी प्राप्ति के साधन है जो अद्वितीय है, विश्वरूप है, इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण है। जिनकी दृष्टि इक्षण ही माय है जो कि अनेक प्रकार के कर्म एवं कर्मफल उत्पन्न करती है। धर्मादि श्रेय के समस्त साधन जिनकी कृपा से सम्पूर्ण होते है उन महत्तम अच्युत्त की यह परम पूजा, अग्र पूजा अर्पित करें। ऐसा करने से यह सम्पूर्ण प्राणियों की पूजा हो जायेगी। सर्वभूतात्मा सबको अपने से अभिन्न देखनेवाले, शान्त, परिपूर्ण कृष्ण की ही अग्रपूजा करें जो अनन्त फलदायी है। कृष्ण यहां है और इनके होते हुये दूसरा कोई और पूजनीय हो ही नहीं सकता यदि किसी को कोई आपत्ति हो तो वह अवश्य बोले।

कृष्ण चुपचाप बैठा सब कुछ सुन रहा था देख रहा था। उसके मन में कोई कामना न थी। कामना तो याचना है, वंचना है। कामना नहीं होने से ही मनुष्य परिपूर्ण होता है। पाने की इच्छा ही खाली होने की प्रतिक्रिया है। उपलब्धि ही अभाव का मूल है। उपलब्धि और अनुपलब्धि एक ही अस्तित्व के दो पक्ष है। अपने को देना ही दूसरों को पाना है और दूसरों से लेना ही स्वयं को बन्धक बनाना है।

विरोधी पक्ष कितना प्रबल होता है। सत्य और न्याय के साथ सदा से यही होता आया है। सत्य सदा कोमल स्वर में बोलता है और असत्य अपनी कर्कशता में ही स्वयं को सत्य और सत्य को असत्य बना देता है। एक साथ सहस्त्र कंठों से आवाज आई

साधु साधु। कृष्ण ही अग्रपूजा के योग्य है। वहा उपस्थित सभी महर्षियों ने, मुनियों ने, ब्राह्मणों ने तथा बहुत सारे राजाओं ने इसका अनुमोदन किया। कृष्ण इस सभा के प्राण हैं। वे जगत के जीवनदाता हैं। यह सभी सभासदों की इच्छा का प्रतीक प्रस्ताव बन गया। महाराज युधिष्ठिर की भी आन्तरिक अभिलाषा तो यही थी कि राजसूय यज्ञ के पूरे आयोजन का कर्णाधार कृष्ण ने ही किया था तो इन्ही का अर्चन किया जाये। भीष्म पितामह कृष्ण से बोले अपना स्थान ग्रहण करें वासुदेव। कृष्ण अग्रपूजा के आसन पर आकर बैठे। युधिष्ठिर अपने सिंहासन पर से उठे। उनके उठते ही वाद्यों का तुमूल निनाद गूंजने लगा। शंख ध्वनि होने लगी। सभी ऋषि मुनि एवं ब्राह्मण सस्वर पुरुषसूक्त से स्तवन करने लगे।

जब अग्रिम पूजा के हित माने भीष्म पितामह माधव को,
सब धन्य कहे, सब धन्य हुये, सब धन्य करे मानव सब को।
अब निश्चय ही निश्चिन्त हुये कर पूजा, अर्पण चन्दन को,
सब मान गये यह आज कहे बस केशव को, बस केशव को।

युधिष्ठिर की आज्ञा मिलते ही सहदेव ने जल की झारी उठाई और कृष्ण के चरण पखार कर अर्ध्य दिया। युधिष्ठिर ने चरण पखारे और द्रौपदी ने अपने आंचल से कृष्ण के चरण पौंछे।

युधिष्ठिर के पश्चात भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन सबने सपत्नीक आगे बढकर मधुसूदन का अर्चन पूजन किया। उनको लगा कि आज वे कृतकृत्य हो गये। जीवन की सम्पूर्ण सफलता उन्हे आज प्राप्त हुई। वाद्यों की ध्वनि से गगन गूंज उठा। पुष्प वर्षा होने लगी लोग हर्षोन्मत होकर जयनाद करने लगे और सहस्त्र शंख एक साथ बजने लगे। विप्रों का मन्त्र पाठ, मुनियों का स्तवन सब जयध्वनि या स्तुति कर रहे थे। धरा के साथ गगन में भी वाद्य, ध्वनि, तथा जय जय ध्वनि गूंज रही थी। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हुई, उनका जयघोष एवं स्तवन होने लगा। इससे सब प्रसन्न थे परन्तु चेदि नरेश शिशुपाल क्रोधित हो मन ही मन जला जा रहा था। शैशव से ही शिशुपाल के हृदय में कृष्ण के प्रति द्वेष जमकर बैठा था। उसके द्वेष से वह शुरु से ही कृष्ण की निन्दा करता था। उसके द्वेष की अग्नि से संयोग ने सदा आहूति ही दी। वह कुंडिनपुर रूक्मिणि से विवाह करने गया था किन्तु कृष्ण ने रूक्मिणि का हरण कर लिया और शिशुपाल को निराश लौटना पडा। जिस जरासन्ध ने उसे धर्मपुत्र बनाया था, जिसे शिशुपाल पिता के समान मानता था कृष्ण ने उसे छलपूर्वक भीम से मरवा दिया। उस समय भी शिशुपाल अपना मन मार कर रह गया।

जरासंध शिशुपाल के लिये एक वटवृक्ष के समान था जिसकी छाया उस पर पडती रहती थी। शिशुपाल को लगता था कि कंस की मृत्यु के पश्चात जरासन्ध ने यदि किसी से प्रेम किया तो शिशुपाल से ही। अपने पुत्र सहदेव से भी उसने शायद ही उतना प्रेम किया हो। जरासंध से सम्बन्ध रखनेवाले प्राय: सभी लोग जानते है कि जरासन्ध ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने पुत्र सहदेव को कभी महत्व नहीं दिया जो उसने शिशुपाल को दिया।

शिशुपाल कृष्ण की भयंकरता को नहीं समझ पाया वह उसे साधारण ग्वाला ही मानता था। कृष्ण वन में पला और पशुओं के मध्य खेला। वटवृक्ष अपनी छत्र छाया में पलनेवाले पेड पौधों को लू नहीं लगने देता और न ही उनका पूर्ण विकास होने देता। कृष्ण कभी राजा बनना नहीं चाहता पर शिशुपाल को इस पर कभी विश्वास नहीं हुआ वह तो यही सोचता था कि संसार में ऐसा कौनसा व्यक्ति है जो बन सकता हो और फिर भी राजा न बनना चाहता हो। वह तो इसे कृष्ण की बाध्यता ही मानता रहा। शिशुपाल को लगा कृष्ण को ये मूर्ख पांडव लोग मिल गये हैं जो उसे भगवान के समान पूज रहे हैं। शिशुपाल ने अपनी पुत्री करेणुमती का विवाह नकुल से किया था। वो नकुल की उम्र से काफी छोटी थी। राज परिवारों में जब सम्बन्ध करने की राजनीतिक इच्छा प्रबल होती है तो वर की अवस्था नहीं देखी जाती। पांडव शिशुपाल की मौसी के पुत्र थे। करेला कम कडवा

तो हो सकता है परन्तु मीठा नहीं हो सकता।

शिशुपाल को मालुम हुआ कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे हैं इसके पीछे कारण यही है कि आजकल इस भारतवर्ष में घर घर में राजा है और सब अपनी अपनी मनमानी कर रहे है। किसी भी प्रजा की सुविधा असुविधा की चिन्ता नहीं। सारे जम्बूद्वीप को एक चक्रवर्ती सम्राट के राज्य के अन्तर्गत लाने का अर्थ है दैनन्दिन होनेवाले छोटे-छोटे स्वार्थपूर्ण युद्धों से मुक्ति, सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में सुख शान्ति तथा निर्विघ्न यात्राओं की सुविधा। व्यापार की समृद्धि और शिक्षा का प्रसार। लोगों को भ्रमण और तीर्थ यात्राओं के लिये सुरक्षित वातावरण। वर्षों से इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में न राजसूय यज्ञ हुआ है, न क्षत्रिय एक स्थान पर जुटे हैं न उनमें कभी विचारविमर्श हुआ है। विद्वान कूप मंडूक हो गये हैं और उन्हें अपनी संकीर्णता के बोध का अहंकार स्फीत किये बैठा है। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में देश भरके विद्वानों, पंडितों, ऋषियों, मुनियों साधकों का सम्मेलन होगा, ज्ञानचर्चा होगी, ज्ञान का आदान प्रदान होगा, जडतायें टूटेगी। ज्ञान के बन्द क्षेत्र में प्रेरणादायक अभिनव ज्ञान का झौंका आयेगा। ऊंट पर्वत के नीचे आयेगा और उसे अपनी उच्चता का ठीक ज्ञान होगा। ज्ञानी लोगों की पूजा होगी और पाखन्डी अपना भ्रम टूटने के भय से भाग जायेंगे। साधकों को भारी दक्षिणा मिलेगी और सारे चिन्तक, कलाकार, दार्शनिक, सृजक, वैज्ञानिक अपने अपने स्थान पर बैठे अपनी साधना सफलतापूर्वक करेंगे। शिशुपाल को लगता था कि इससे तो राजा लोग दुर्बल होंगे। उनके भोग के साधन उनसे छिन जायेंगे वे अधिकारों से वंचित होंगे। शिशुपाल स्वर्ग और नरक के अस्तित्व को नहीं मानता था। उसका कहना था कि स्वर्ग तो किसी ने देखा नहीं है फिर जो निश्चित है उसे छोडकर अनिश्चित की ओर भागना मूर्खता है। संसार के प्रत्यक्ष भोगों को छोडकर किसी काल्पनिक लोक के काल्पनिक सुखों के पीछे भागना कहां की बुद्धिमत्ता है ? इन्द्रिय गम्य भोगों के साथ-साथ अधिकार सुख की मादकता का आनन्द लेना चाहिये स्नेह देने से स्नेह मिलता है वैसे ही महत्व देने से महत्व भी मिलता है। आप जिसको जितना महत्व देंगे और जैसा महत्व देंगे वैसा ही महत्व वह आपको देगा। शिशुपाल का कहना था कि विवाद को टालने के लिये अथवा किसी का मन रखने के लिये अयोग्य लोगों को मुंह नहीं लगाना चाहिये। शिशुपाल कृष्ण को ईर्ष्यावश कोई महत्व देना नहीं चाहता था उसकी समझ यही थी कि किसी में प्रतिभा तो वही होती है जो पद को प्राप्त करे। प्रतिभा कारण है और पद उसका कार्य। पद नहीं है तो समझ लो उसमें प्रतिभा भी नहीं है। वह तो पाखंड ही पाखंड है। पर पांडव तो यही समझते है कि प्रतिभा पद की मुखापेक्षी नहीं होती। पद पर बैठा व्यक्ति बस उसी समय तक महत्वपूर्ण होता है, जब तक वह पद पर है और उन्ही के लिये महत्वपूर्ण होता है जिन्हे उससे कोई काम लेना है। प्रतिभा इन सबसे स्वतन्त्र है। न वह पद पर विराजती है, न पद उसे किसी की मान्यता की आवश्यकता होती है। किसी को भी तुम कणभर प्रतिभा नहीं दे सकते और न ही किसी की प्रतिभा छीन सकते हो। पद तो सांसारिक स्थिति है। प्रतिभा ईश्वर का दिया हुआ वरदान है। शिशुपाल बोला नकुल यह तुम लोग किसकी अग्रपूजा कर रहे हो। युधिष्ठिर बोला प्रिय शिशुपाल.... शिशुपाल बोला तुम चुप रहो युधिष्ठिर और तुम यह भी मत समझना कि ये राजे महाराजे, ये महारथियों का समुदाय तुमसे डरकर तुम्हारे राजसूय यज्ञ में आया हुआ है। हम यहां तो यह सोचकर आये थे धर्म का अर्थ तुम हम सबसे अधिक जानते हो इसलिये तुम्हें सम्राट बन जाने दे परन्तु तुमने इस ग्वाले की अग्रपूजा करके सारे राज समाज को अपमानित किया है। कृष्ण एक साधारण मनुष्य का पुत्र है। मेरे या तुम्हारे समान राजपुत्र भी नहीं है। पशुओं को चरानेवाला ग्वाला है। राजनीति भी पढा हुआ नहीं है। गोप बालकों में और गोपियों के बीच पला हुआ, खेला हुआ है उसे राजसी संस्कार मिलेंगे तो भी कहां से ? तुम लोग समझते होंगे उसमें बडी प्रतिभा है। यदि प्रतिभा होती तो मथुरा का राजा नहीं हो गया होता।

भीम और अर्जुन उत्तेजित होकर ललकार बोले शिशुपाल तुम नहीं जानते तुम क्या बोल रहे हो। अब एक शब्द भी मुंह से निकाला तो जान से मार डालूंगा। कृष्ण को राज्य नहीं धर्म प्रिय है। वह तो राजाओं का राज है राजराजेन्द्र। तुम उसके महत्व

को नहीं समझते। उसने जीवन में कोई भी काम अपने सुख और स्वार्थ के लिये नहीं किया। शिशुपाल बोला रूक्मिणि का हरण किसके लिये किया वह तो परनारी दूसरे पुरुष की वाग्दत्ता थी ? भीम बोला किसी भी राक्षस से आतंकित हो कोई भी पिता या स्वार्थी भाई यदि किसी कन्या का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात किसी पुरुष से करना चाहे तो क्या उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपने मन भावन को प्राप्त करने का उद्यम करे ? कृष्ण ने भी रुक्मिणि को वही अधिकार दिया। विप्र, नारी, गाय, वृद्ध तथा बालक की रक्षा करना प्रत्येक क्षत्रिय का धर्म है और वही कृष्ण ने किया। शिशुपाल का मुख विकृत हो जा रहा था वह बोला और वे सोलह हजार रानियां ? कितनी रानियां है कृष्ण के अन्त:पुर में ? भीम बोला भौमासुर के अवरोध से मुक्त की गई स्त्रियां न तो उस अर्थ में कृष्ण की पत्नियां है, न वे उसके अन्त:पुर में रहती है जिन स्त्रियों को कलंकिनी मानकर उनके पति, पुत्र, पिता या भाई स्वीकार नहीं कर रहे थे उन सोलह हजार स्त्रियों का कलंक अपने सिर धारण किया। उन्हे सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने अपना नाम दिया है। इसमें क्या पाप किया कृष्ण ने ? शिशुपाल बोला तुम लोगोंपर जादू कर रखा है उस कृष्ण ने। तुम सबको एक दिन ले डूबेगा। मेरी बात का मर्म तुम अभी भी नहीं समझ रहे हो। शिशुपाल कृष्ण के प्रति जितना विरोध प्रदर्शित करना चाहता था उतना कर लिया भीम तो बैल है इसमें तो केवल शरीर का बल है। बुद्धि तो इसमें है ही नहीं। शिशुपाल को जरासन्ध के पुत्र पर भी बहुत भरोसा था। नाग का पुत्र कभी केंचुआ नहीं हो सकता। उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा के बाद वह अपनी क्षमता दिखायेगा।

युधिष्ठिर बोला भीम, अर्जुन ये क्या ? अनुज शिशुपाल हमारे अतिथि हैं। कृष्ण ने कहा महाराज युधिष्ठिर ठीक कह रहे हैं भीम भैया। प्रिय अर्जुन अतिथि की मर्यादा का उल्लंघन मत करो। तुम बोलते रहो शिशुपाल क्योंकि यह तुम्हारे ही बोलने का दिन है। शिशुपाल बोला अरे बोलूंगा क्यों नहीं ? क्या मैं तुमसे डरता हूं ? मैं तो यह भी नहीं मानता कि तू मेरे मामा वसुदेव का पुत्र है और तुम तो यह स्थान ग्रहण करने का अधिकारी ही नहीं है। यह स्थान तो महर्षि वेदव्यास ग्रहण करें या फिर हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र। स्वर्गीय महाराज कंस के दास नन्द के पुत्र का मुख्य अतिथि के स्थान पर बैठना सारे राज्य समाज का घोर अपमान है। शिशुपाल इस तरह तिलमिलाकर जोर जोर से बोलने लगा जैसे किसी बिच्छू ने डंक मारा हो और तमतमाये चेहरे से क्रोधसहित बोला भीष्म के बुढापे ने इसे कोई समझबूझ दी होगी पर यह तो पूर्णत: सठिया गया है। यह मूर्ख तो अपनी जवानी में ही था परन्तु अब तो पूर्णत: विक्षिप्त हो गया है। कृष्ण एक कंगला पशुपालक जिसके पास न कोई धन है और न ही सैन्य बल और कृष्ण की अग्रपूजा का आदेश दे दिया। अग्रपूजा चाहे वह अपनी भले ही करवा ले परन्तु आवश्यकता पडने पर वह इस यज्ञ की रक्षा भी नहीं कर पायेगा ? शिशुपाल क्रोध से असाधारण रूप से प्रखर हो रहा था जैसे अग्नि सूखे काठ को जलाकर प्रकाशमान बना देती है। अग्नि ताप तो फिर भी किसी को दे दे किन्तु प्रकाश किसी को भी नहीं देती। उसका ताप ही विचित्र होता है जो किसी को फलता है और किसी को नहीं। स्वर्ण को तपाकर कुन्दन बना देती है परन्तु काठ ताप में जलकर कोयला बन जाता है। कोयला तपेगा तो राख बन जायेगा। शिशुपाल काठ से अधिक कुछ नहीं है। बलराम उठ खडे हुये और बोले शिशुपाल। उसी समय कृष्ण ने बलराम को आँखों के संकेत से समझाया, नहीं। बैठ जाओ।

शिशुपाल फिर बोला पांडवों ने कृष्ण की अग्रपूजा करके योग्य काम नहीं किया और इस बूढे भीष्म की बुद्धि भी इस उम्र में सठिया गई है। इनके जैसा धर्मात्मा भी जब मनमाना काम करने लगे तो जगत में अपमानित ही होंगे। कृष्ण कोई राजा नहीं है। अत: राज सभा में सम्मान का पात्र भी नहीं हो सकता। आयु में भी वह सबसे वृद्ध नहीं है इसके तो पिता वसुदेव और पितामह शूरसेन भी जीवित हैं। यदि तुम लोगों ने इसे अपना हितैषी और मित्र माना है तो क्या यह महाराज द्रुपद से भी बढकर तुम्हारा हितैषी है ? भीष्म की दृष्टि न तो दीर्घ दर्शिनी है और न ही दूर दृष्टि।

युधिष्ठिर शिशुपाल के निकट आये और बोले चेदि राज शिशुपाल। शिशुपाल बोला यदि हमारा अपमान ही करना था तो

प्रकट शत्रुता दिखाते। सौजन्य, मैत्री और सम्बन्धों की दुहाई देकर हमें यहां बुला लिया और एक पदविहीन, उदंड, उच्छृंखल और चरित्रहीन ग्वाले को इस सारे क्षत्रिय राज समाज के मस्तक पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहे हो। युधिष्ठिर शिशुपाल को सतत शान्त करने का प्रयास कर रहे थे। और बोले भाई शिशुपाल इस तरह किसी का अपमान करना उचित है क्या ? राजन आपका इस प्रकार कहना उचित नहीं है। कर्कशवाणी कहना निरर्थक तो है ही अधर्म भी है। हमारे पितामह भीष्म धर्म का पूरा पूरा रहस्य जानते हैं। आप व्यर्थ ही उनकी बुद्धि और वय का तिरस्कार कर रहे हैं। यहां आपसे भी विद्या में वयोवृद्ध बहुत से राजा उपस्थित हैं। उन किसी को तो कृष्ण की अग्रपूजा बुरी नहीं लग रही। आपको भी उन्ही की तरह पितामह के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना चाहिये। चेदिराज पितामह भीष्म ही कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। कृष्ण के सम्बन्ध में उनके जैसा तत्वज्ञान आपको नहीं है। यह सुनकर शिशुपाल उठ खडा हुआ और कुछ अपने समर्थक राजाओं को लेकर वहां से बाहर निकल जाने को उद्यत हुआ। शिशुपाल के साथ सुनीथ, दन्तवक्र, यूपकेतू, लोहित, शाल्भ, विदर्भ नरेश भीष्मक इत्यादि बाहर निकलने लगे। युधिष्ठिर शिशुपाल को मनाने गए व उसकी बाहों को पकडकर शिशुपाल भीतर ले आये। वे उन्हे स्नेह और सौहार्द की शक्ति से बांध लाये थे। भीष्म की दृष्टि अन्ततः दुर्योधन की मुखाकृति पर जा पडी। कैसा प्रसन्न हो रहा था दुर्योधन जैसे उसके जीवन की सबसे बडी लालसा आज पूर्ण हो रही हो। भीष्म ने सोचा इस मूर्ख ने भी अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य पांडव विरोध निश्चित कर लिया है इसलिये पांडवों के प्रत्येक मित्र दुर्योधन को अपने शत्रु लगते है और उनके प्रत्येक शत्रु अपना मित्र। यह मूर्ख अपनी अन्धी धारणा के हाथों विनाश को प्राप्त होगा। युधिष्ठिर तो समझदार है। शिशुपाल युधिष्ठिर की सग्गी मौसी का पुत्र मौसेरा भाई है। युधिष्ठिर में सबको साथ ले चलने का गुण है। वैसे कृष्ण का भी सम्बन्धी है शिशुपाल कृष्ण का जो सम्बन्ध पांडवों से है वही शिशुपाल के साथ भी है पर मात्र ईर्ष्या के कारण वह कृष्ण का विरोधी हो गया। राजा होकर भी शिशुपाल वो महत्व प्राप्त नहीं कर सका जो कृष्ण को साधारणजन बनकर भी प्राप्त हुआ। युधिष्ठिर ने सभी राजाओं को सम्बोधित कर कहा सभी भद्र जन सुनें चेदि नरेश शिशुपाल हमारे यहां की कार्य पद्धति से कुछ असन्तुष्ट हैं। हमने यज्ञ का आरम्भ स्वयं को अपने बन्धु बान्धवों, राजाओं का स्वामी सिद्ध करने के लिये नहीं किया है बल्कि धर्म की स्थापना के लिये किया है। हमारा जो कोई भी निर्णय हम लें वह सर्मसम्मति से ही है। शिशुपाल फिर से बोल उठा तुम्हारी इच्छा से तुम इस प्रपंची कृष्ण को अपना पूज्य मानकर, आराध्य मानकर अग्रपूजा कर रहे हो परन्तु हम तुम्हारा यह अपराध सहन नहीं करेंगे। परन्तु जिस समाज में सौजन्य का महत्व नहीं वहां उसके प्रदर्शन का क्या लाभ ? हमसे तुम्हारा यह पाखंड सहन नहीं होगा। जिसे राजाओं की सभा में प्रवेश का अधिकार भी नहीं उसे सबसे पहले अग्र पूजा का स्थान क्यों दिया तुमने ? भीष्म ने न अपना वय देखा और न अपनी अवस्था और स्वयं अपने मुख से कृष्ण का नाम उच्चारित कर दिया। क्या अवस्था है इस कृष्ण की और क्या स्थिति है उसकी ? अग्रपूजा ही करनी थी तो अपने मामा इसके पिता वसुदेव को द्वारिका से बुलाकर उनकी पूजा करता। पिता के जीवित रहते पुत्र की कैसी अग्रपूजा ? यदि तुम लोग इस यदुनन्दन को आचार्य मानते हो तो फिर द्रोणाचार्य की उपस्थिति में इसकी पूजा सर्वथा अनुचित है। ऋत्विज की दृष्टि से भी सबसे पहिले विद्या वयोवृद्ध महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास की अग्रपूजा होनी चाहिये थी युधिष्ठिर। इच्छामृत्यु पुरु श्रेष्ठ भीष्म के रहते तुमने इस ग्वाले का पूजन कैसे किया ? शास्त्र पारदर्शी वीर अश्वत्थामा के रहते कृष्ण की पूजा भला किस दृष्टि से उचित हुई ? राजाधिराज दुर्योधन, भरतवंश के कुलगुरु महात्मा कृप, किम्पुरुषों के आचार्य द्रुम तथा पांडु के समान माननीय सर्वगुण सम्पन्न महाराज भीष्मक विदर्भ नरेश को छोडकर उनकी उपस्थिति में तुमने कृष्ण की अग्रपूजा कर यह अनर्थ क्यों कर डाला ? यह कृष्ण न तो कोई ऋत्विज है, न राजा है और न ही कोई आचार्य फिर तुम लोगों ने किस कामना से इसकी पूजा की ? तुम इस गुणहीन कृष्ण की पूजा कर अचानक ही धर्मात्मा के रूप में प्रख्यात हो रहे हो तभी तो तुम इस धर्मच्युत की पूजा कर अपनी बुद्धि के अभाव का परिचय दे रहे हो।

युधिष्ठिर बोला वयोवृद्धता की पूजा केवल उन शूद्रों में होती है जहां गुणों का निर्णय नहीं होता। इसलिये न पितामह भीष्म का प्रस्ताव अनुचित है और न ही कृष्ण की अग्रपूजा सहसा भीष्म उठकर बोले क्षत्रियों में वीरता की पूजा होती है। यदि किसी को भी वासुदेव कृष्ण को महावीर मानने में आपत्ति हो तो वह युद्ध में उसे प्रमाणित करे। मुझे तो राजाओं के इस समुदाय में एक भी कोई राजा ऐसा दिखाई नहीं देता जो युद्ध में देवकीनन्दन कृष्ण के तेज से परास्त नहीं हुआ हो। शिशुपाल क्रोधित हो उठा और बोला भीष्म हमें युद्ध का भय मत दिखाओ। कृष्ण से हम डरते नहीं है। वृष्णि वंश को क्षत्रिय मानता ही कौन है ? अपने स्वामी अन्नदाता कंस का कृष्ण ने वध कर डाला और युद्ध के लिये सम्राट जरासन्ध को धोखे प्रपंच में डालकर कायरों के समान भाग खडा हुआ उसे तुम वीर कहते हो ? तुम्हारे जैसे का पुरुष डरपोक ही उसे वीर मानेंगे जिसने विरोध के भय से अपना राज्य ही त्याग दिया। भीम अब उग्र और व्यग्र हो उठा और बोला हम क्यों चाहते है जिसे गाली दी जाये वही उसका विरोध करे। शेष समाज इसका विरोध क्यों नहीं कर रहा ? भद्र समाज किसलिये चुप बैठा है ? भीष्म बोले हां भीम तुम ठीक कह रहे हो इस प्रकार के सार्वजनिक अभद्र व्यवहार का प्रतिवाद सार्वजनिक रूप से ही होना चाहिये। यदि सार्वजनिक विरोध नहीं होगा तो प्रत्येक सबल व्यक्ति निर्बलों को अपमानित करता रहेगा। प्रतिरोध तो सार्वजनिक और सामूहिक ही होना चाहिये किन्तु इस समय विवाद को बढाना उचित नहीं है भीम। तुम आवेश में मत आओ इससे सभा में मतभेद बढ सकता है। तर्क का उत्तर तर्क से देना चाहिये बाहुबल से नहीं।

शिशुपाल ने कृष्ण की ओर मुख करके कहा कृष्ण मैं मान लेता हूं कि पांडव बेचारे डरपोक और तपस्वी हैं। इन्होने यदि ठीक ठीक नहीं समझा तो तुम तो उन्हें बता देते कि तुम किस पूजा के अधिकारी हो ? यदि कायरता और मूर्खतावश इन्होंने तुम्हारी पूजा कर भी ली तो तुमने अयोग्य होकर उसे स्वीकार क्यों किया ? जैसे कुत्ता लुक छिप कर घी चाटने लगे और अपने को धन्य धन्य मानने लगे वैसे ही तुम यह अयोग्य पूजा स्वीकार कर अपने को बडा मान रहे हो। तुम्हारी इस अनुचित्त पूजा से हम राजाओं का कोई अपमान नहीं होता बल्कि ये पांडव तो स्पष्ट रूप से तुम्हारा ही तिरस्कार कर रहे हैं। नपुसंक का ब्याह कर देना, अन्धे को दर्पण दिखाना, राज्यहीन को राजाओं में बिठा देना जिस प्रकार अपमान है वैसे ही तुम्हारी यह पूजा भी। अब युधिष्ठिर का स्वर कुछ कठोर हुआ और बोला अनर्गल प्रलाप मत करो शिशुपाल। वासुदेव कृष्ण की अग्रपूजा के विरुद्ध कोई तर्क संगत आपत्ति हो तो बताओ ? शिशुपाल बोला जहां इतने किरीटधारी राजा उपस्थित हो, जहां हस्तिनापुर के युवराज दुर्योधन उपस्थित हो वहां यदि ऐसे व्यक्ति को अर्घ्य दिया गया जो एक अधीनस्थ मांडलिक राजा भी नहीं है। जिसके पास न तो किरीट है और न ही दंड, छत्र सिंहासन।

भीष्म पितामह बोले तो मूल आपत्ति पद की है। यहां उपस्थित अनेक व्यक्तियों के पास राजा का पद है, वासुदेव कृष्ण के पास नहीं है। जिस प्रकार शिशुपाल तुमने दुर्योधन की संस्तुति की है राजा का पद तो उसके पास भी नहीं है क्योंकि अभी तो हस्तिनापुर के महाराज धृतराष्ट्र ही है। मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि चेदि राज व्यक्ति अपने पद से महान होता है या प्रतिभा से ? समाज में क्या सबसे महत्वपूर्ण पूज्य राजा ही होता है ? क्या राजनीतिक सत्ता हमारे जीवन में इतनी महत्वपूर्ण हो गई है? क्या राजसत्ता मनुष्य की सारी दुर्बललाओं को धोकर उसे इतना महान बना देती है क्या ? क्या राजाओं का चरित्र पूजनीय होता है ? शिशुपाल बोला तुम्हें तो राजसत्ता ने त्याग दिया तो राजसत्ता का महत्व तुम्हारे लिये कैसे रह जायेगा ? देवर्षि नारद भी वहीं बैठे थे। उनकी सर्वज्ञता प्रसिद्ध है। वे उठकर खडे हो बोले भीम का प्रश्न सर्वथा उचित और धर्मसंगत है। जीव राज सत्ता या धन पाकर महान नहीं हो जाता। मैंने तो अपने जीवनकाल में कई नीच से नीच राजा और धनी भी देखे हैं। न ही व्यक्ति ज्ञान से महान हो जाता है। व्यक्ति महान होता है अपने आचरण से, अपने सदाचार से जिसका तुममें नितान्त अभाव है शिशुपाल।

भीष्म बोले कृष्ण त्रिलोकी में सर्वश्रेष्ठ हैं जो कोई उनकी पूजा को स्वीकार नहीं करता उससे किसी प्रकार की अनुनय विनय

करना अनुचित है। क्षत्रिय धर्म के अनुसार जो जिसे युद्ध में जीत लेता है वह उससे श्रेष्ठ माना जाता है। कृष्ण सिर्फ हमारे ही पूज्य हो ऐसी बात नहीं। सारा जगत उनकी उपासना करता है। कृष्ण ने सब पर विजय प्राप्त की है। सम्पूर्ण जगत सर्वात्मना इन्ही के आधार पर स्थित है। मैं मानता हूं कि यहां पर बहुत से गुरुजन और पूज्य जन उपस्थित हैं फिर भी कृष्ण की अग्रपूजा करने को निषेध करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। मैंने अपने इस लम्बे जीवन के दौरान अनेक ज्ञानियों का सत्संग किया है और सबकी सर्वश्रेष्ठ धारणा सरल गुणों के आधार कृष्ण के लिये ही रही है। कृष्ण ने अपने जन्म से लेकर अब तक जितने कर्म किये है वो मैंने सब श्रेष्ठ पुरुषों से सुने है।

शिशुपाल हम लोग केवल स्वार्थवश सम्बन्ध के कारण अथवा उपकारी होने से ही कृष्ण की पूजा नहीं कर रहे। कृष्ण जगत के समस्त प्राणियों के लिये सुखकारी और समस्त श्रेष्ठ पुरुष उनकी पूजा करते हैं। यश, शूरता और विजय में कोई भी उनके समान नहीं है। ज्ञान और बल दोनों ही दृष्टि से उनसे बढकर कोई भी नहीं है। दान, कौशल, शास्त्रज्ञान, शूरता, संकोच, कीर्ति, बुद्धि विनय, लक्ष्मी, धैर्य, तुष्टि और पुष्टि सभी गुण कृष्ण में नित्य निरन्तर निवास करते हैं। परमज्ञानी कृष्ण हमारे आचार्य, पिता और गुरु हैं। वे हमारे ऋत्विज, स्नातक, राजा, प्रिय, सखा सब कुछ हैं इन्ही सब कारणों से हमने उनकी अग्रपूजा की है। कृष्ण ही सम्पूर्ण जगत के चराचर स्वामी है। वे ही इस जगत की उत्पत्ति और प्रलय के कारण है। उनकी क्रीडा के लिये ही सारा जड चेतन जगत है। वे ही अव्यक्त प्रकृति है और वे ही सनातन कर्ता है। जन्म मरण से परे है इसलिये सबसे बढकर पूजनीय है। बुद्धि, मन, महत्तत्व, वायु, तेज, जल, आकाश, पृथ्वी और चारों प्रकार के सब प्राणी कृष्ण के आधार पर ही स्थित है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिशा, विदिशा सब के सब श्रीकृष्ण में ही स्थित है। जैसे वेदों में अग्निहोत्र, छन्दों में गायत्री, मनुष्यों में राजा, जल में समुद्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ज्योतिष्चक्र में सूर्य, पर्वतों में मेरू और पक्षियों में गरुड श्रेष्ठ है वैसे ही पूरी त्रिलोकी की ऊर्ध्व, मध्यम और अधोलोक रूप विविध गतियों में कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ है। शिशुपाल तुम तो अभी तक कल के अबोध बालक हो तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि कृष्ण सदा सर्वदा, सर्वत्र सब रूपों में विद्यमान है। इसीलिये ऐसा कह रहे हो। जो सदाचारी और बुद्धिमान पुरुष धर्म का मर्म जानना चाहता है उसे जैसा धर्म का तत्व ज्ञान होता है वैसा शिशुपाल तुम्हें नहीं है। तुम्हें तो कभी सच्ची जिज्ञासा भी नहीं हुई है। यहां जितने छोटे बडे राजर्षि, महर्षि उपस्थित हुये हैं उनमें कौन ऐसा है जो कृष्ण को पूज्य नहीं मानता। युधिष्ठिर कृष्ण की निन्दा करनेवालों से बोलना भी व्यर्थ और अधर्म है अत: शिशुपाल के साथी और वो जो करना चाहे वे करें। वे तो उपेक्षणीय है उनसे कुछ कहना बेकार है।

पांडु पुत्रों को कृष्ण के प्रति अपशब्द असह्य हो उठते है। पितामह भीष्म के चुप होते ही माद्री सुत सहदेव उठ खडा हुआ। उसके नेत्र अंगार हो उठे और होठ फडकने लगे। वह क्रोधपूर्वक गर्जना कर के बोला कृष्ण हमारे और समस्त जगत के आराध्य हैं। वे सर्वश्रेष्ठ है अत: हमने उनकी प्रथम अग्र पूजा की है। जिस किसी को यह बात सहन नहीं हो रही हो उनके सिरपर मैं अपना यह बायां पैर रखता हूं। जिसको कोई विरोध या आपत्ति हो वह बोले मैं उसके साथ युद्ध कर उसका वध करूंगा। सब बुद्धिमान और श्रेष्ठजन कृष्ण की अग्रपूजा का समर्थन करे। यह सुनकर सब लोग स्तब्ध रह गये। शिशुपाल के समर्थकों में किसी एक ने भी कोई एक शब्द तक बोलने का साहस नहीं किया। सहदेव के सिर पर आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। देवताओं ने साधु साधु कह कर पुकारा और बोले तुम्हारा साहस और व्यवहार श्लांध्य है। देवर्षि नारद भी बोले जो श्रीकृष्ण की पूजा नहीं करते उनको तो जीवित होते हुये भी मृत ही समझना चाहिये। सहदेव ने यथाक्रम कृष्ण की पूजा की और शिशुपाल के कहने की उपेक्षा कर दी जैसे वह वहां नगण्य हो अथवा वहां उपस्थित ही नहीं हो। पांडवों ने सब राजाओं का सत्कार किया।

कृष्ण की पूजा से शिशुपाल क्रोध के मारे आग बबूला हो गया और उसकी आंखे खून उगलने लगी। उसने राजाओं को पुकार कर कहा आइये हम लोग यादवों और पांडवों की सम्मिलित सेना से युद्ध करें। इस प्रकार शिशुपाल यज्ञ में विघ्न डालने के लिये

अन्य राजाओं को उत्साहित करने लगा। जो लोग शिशुपाल के समर्थक थे वे क्रोध से तिलमिला रहे थे कि कृष्ण की पूजा और युधिष्ठिर का यज्ञान्त अभिषेक शान्तिपूर्वक न होने पाये। युधिष्ठिर ने देखा बहुत सारे लोग क्षुब्ध सागर की भांति उमडकर युद्ध करना चाहते थे। तब युधिष्ठिर ने भीष्म के पास जाकर कहा पितामह अब मुझे क्या करना चाहिये ? जिससे यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो और प्रजा के हित का उपाय बतलाइये। भीष्म ने कहा युधिष्ठिर तुम्हें भय, चिन्ता की कोई बात नहीं। क्या कभी कुत्ता सिंह को मार सकता है ? जैसे सिंह के सो जाने पर कुत्ते भौंकते है वैसे ही कृष्ण भी चुप रहने से ही ये लोग चिल्ला रहे है। मूर्ख शिशुपाल अनजाने में ही इन राजाओं को यमपुरी में भेजना चाह रहा है। नि:सन्देह शिशुपाल की कृष्ण के तेज के आकर्षण से उसकी बुद्धि ऐसी कर दी है। तुम निश्चित रहो वे सारे जगत के मूल कारण और प्रलय स्थान है।

शिशुपाल ने भीष्म की बात सुनी और चिढकर गरज कर बोला तुम्हें सब राजाओं को धमकाते शरम नहीं आती। वृद्ध होकर तुम कुरुकुल के कलंक हो। मूर्ख भी जिसकी निन्दा करते है उसी ग्वाले की तुम ज्ञानी होकर भी स्तुति कर रहे हो ? मूर्ख और अहंकारी कृष्ण की प्रशंसा करते तुम्हारी जीभ के टुकडे क्यों नहीं हो जाते ? इसने बचपन से कोई पक्षी बकासुर, घोडे (केशी) या बैल (वृषभासुर, धेनुकासुर) का वध कर दिया तो क्या यह वीर हो गया ? ये सब पशु पक्षी कोई युद्ध के उस्ताद तो नहीं है। यदि इसने चेतनाहीन छकडे (शकटासुर) को पैर मार कर उलट दिया तो क्या चमत्कार कर दिया ? यदि इसने गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक गोप बालकों की सहायता से उठा लिया तो कौन सी अलौकिक घटना घट गई ? जिस महाबली कंस का अन्न खाकर यह पला है उसी को इसने मार डाला। देखो इसकी कृतघ्नता की हद। कितना नमक हरामी है ? हे धर्मज्ञानी जी अब आप ही देखे धर्मानुसार स्त्री, गो, ब्राह्मण और जिसका अन्न खाये, जिसके आश्रय में रहे उसे अपने स्वामी को नहीं मारना चाहिये। जिसने जन्मते ही स्त्री (पूतना) का वध कर दिया उसे ही तुम जगतपति कह रहे हो। तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी है। ओ धर्मध्वजी तुमने अपने स्वभाव की नीचता के कारण पांडवों को भी ऐसा बना दिया है। तुमने धर्म की आड में जो जो दुष्कर्म किये हैं वे क्या कभी किसी ज्ञानी के द्वारा किये जा सकते है ? काशी नरेश की कन्या अम्बा शाल्व नरेश सौभ को अपना पति मान चुकी थी परन्तु तुम उसे बलपूर्वक छीन कर हर ले आये। यह कौनसा धर्म हुआ ? तुम्हारा ब्रह्मचार्य ढोंग है, व्यर्थ है, पाखंड है। तुम नपुसंक हो अपनी मूर्खता के कारण यह हठ पकड रखा है। तुम्हारे आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा भी ढोंग ही है। यह सुनकर दुर्योधन और कर्ण तो प्रसन्नता से खडे हो गये। शिशुपाल बोला यदि यह प्रतिज्ञा नहीं भी करता तो यह वीर्य हीन, निसहाय, नपुसंक ब्रह्मचारी ही रहता। अब तक इसने कौनसी उन्नति सम्पादन की ? धर्म की बातें तो बडी ही बढ बढ कर कर रहा है। सभी लोग जरासन्ध का आदर करते थे। जरासन्ध ने कृष्ण को दास समझकर उसका वध नहीं किया। जरासन्ध की हत्या करने में इस कृष्ण ने भीम और अर्जुन के साथ मिलकर छल कपट कर उसका वध किया उसे कौन धर्म ध्वजी ठीक मानता है ? आश्चर्य तो यह है कि तुम्हारी बातों में आकर बेचारे ये पांडव भी कर्तव्याच्युत हो रहे हैं। तुम्हारे जैसे नपुंसक, पुरुषार्थहीन और बूढे जब सम्मति देनेवाले हो जाये तब ऐसा ही हो सकता है।

शिशुपाल की रूखी और कठोर बातें सुनकर भीष्म क्रोध से तिलमिला उठे और प्रलयकालीन मेघ के समान दांत पीसने लगे। इतना सब होने पर भी शिशुपाल टस से मस नहीं हुआ। वह वहां डटा ही रहा। भीष्म शेर की सी गर्जना करके उठे और बोले शिशुपाल। महादेव की सौगन्ध यदि यह मेरे प्रिय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समारोह नहीं हुआ होता तो मैं तेरी जीभ काट लेता। कृष्ण बोले इसे बोलने दीजिये पितामह। यह आपका अपमान नहीं कर रहा है पितामह यह मेरा अपमान कर रहा है। शिशुपाल बोला मुझे बोलने के लिये तेरी आज्ञा नहीं चाहिये। इस नपुंसक ने प्रस्ताव रखा और इन पांडु पुत्रों ने झट से बिना विचारे स्वीकार कर लिया और यह उच्चककर उस स्थान पर जाकर बैठ गया। जिस पर बैठने का साहस कोई भी दास पुत्र नहीं कर सकता। तो फिर इस नन्दगांव के गायों के दूध दुहनेवाले इस ग्वाले की अग्रिम पूजा के योग्य कैसे मान लिया। कृष्ण मन ही

मन बोला सुन रही हो न बुआ अब मैं क्या करूं ?

भीष्म पितामह बोले भला कौन से राजाओं की हिम्मत है जो इस प्रकार मेरा अपमान कर सके। यह कुल कलंक अब काल के गाल में जानेवाला है। इस समय यह मूर्ख हम लोगों को कुछ भी नहीं समझकर व्यर्थ ही सिंह के समान दहाड रहा है परन्तु इसे पता नहीं कि कुछ ही क्षणों में कृष्ण इसके तेज को हर लेंगे। भीष्म की बात शिशुपाल से सही नहीं गई। वह क्रोधित हो जल भुनकर कहने लगा। भीष्म तुम भाट के समान बार बार इस ग्वाले का गुणगान कर रहे हो वह अपना प्रभाव मुझपर क्यों नहीं दिखाता। क्यों अभी तक चुप चाप बैठा है ? हम तो निश्चय ही उससे द्वेष, बैरभाव रखते हैं। यदि तुम्हारी आदत ही किसी की प्रशंसा, स्तुति करने की है तो दूसरों की प्रशंसा क्यों नहीं करते। इस नन्दपुत्र की भाट के समान प्रशंसा छोडकर औरों की प्रशंसा करो। दरदराज बाहलीक की स्तुति करो। जिसके जन्मते ही पृथ्वी कांप उठी थी। अंगराज कर्ण, महारथी द्रोण और अश्वत्थामा इनकी जी भरकर स्तुति करो। क्या तुम्हे प्रसन्नता करने के लिये कोई मिलता नहीं क्या तुम अपने मन से ही भोजपति कंसके चरवाहे इस दुरात्मा कृष्ण को ही सब कुछ मानकर इसकी स्तुति कर रहे हो। वास्तव में तो तुम इन सब राजाओं की दया से ही जी रहे हो। ये अगर चाहें तो अभी तुम्हारे प्राण ले लें। भीष्म पितामह बोले शिशुपाल तू कह रहा है कि मैं इन राजाओं की दया से जीवित हूं परन्तु मैं इन राजाओं को तिनके के समान भी नहीं गिनता। हमने जिस कृष्ण की पूजा की है वे सबके सामने ही बैठे है। जो कोई भी मरने के लिये उतावले हो रहे हो वे चक्र गदा धारी कृष्ण को युद्ध के लिये ललकारता क्यों नहीं ? उनको ललकारनेवाला रणभूमि में धराशायी होगा। शिशुपाल बोला कृष्ण मैं तुम्हे युद्ध के लिये ललकारता हूँ। अब तुम्हारा वध करना ही उचित है।

बलराम क्रोधित हो बोले शिशुपाल यदि अब भी तू चुप नहीं हुआ तो तेरी जीभ खींच लूंगा। कृष्ण बोले इसे बोलने दीजिये दाऊ। आप भूल गये कि मैंने बुआ को क्या वचन दे रखा है। इसके सौ अपराधों तक मैं इसे अवश्य क्षमा करूंगा। बलराम बोले कृष्ण तुम्हें क्षमा करना हो तो अवश्य क्षमा करो परन्तु मैं नहीं कर सकता। इसने पितामह भीष्म का अपमान किया है। इसने बुआ कुन्ती का अपमान किया है। इसने तुम्हारा अपमान किया है और तुम अभी तक बैठे मुस्कुरा रहे हो। कृष्ण बोले दाऊ मुस्कुरा नहीं रहा हूं बस गिन रहा हूँ। यदि तुम्हे कुछ और कहना है शिशुपाल तो कह डालो क्योंकि तुम अभी तक तीन अपराध और कर सकते हो। राजाओं शिशुपाल हम लोगों का सम्बन्धी है फिर भी हमसे बडा द्वेष रखता है। इसने हम यदुवंशियों का सत्यानाश करने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी। इस दुरात्मा ने मेरे प्राग्ज्योतिषपुर चले जाने पर बिना किसी अपराध के ही द्वारिका भस्म कर देने का प्रयत्न किया। जिस समय भोज राज रैवतक पर्वत पर विहार के लिये गये हुये थे इसने उनके सभी साथियों को मार डाला। कइयों को बांधकर अपनी राजधानी में ले गया। जिस समय मेरे पिता अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे तब इस पापात्मा ने उसमें विघ्न प्रस्तुत करने हेतु यज्ञीय अश्व को पकड लिया। यदुवंशी तपस्वी बभ्रू की पत्नी जिस समय सौवीर देश के लिये जा रही थी उसे देखकर उसपर मोहित हो बलपूर्वक हर ले गया। इसकी ममेरी बहिन भद्रा करूषराज के लिये तपस्या कर रही थी उसे छलपूर्वक अपना रूप बदलकर हर ले गया। यह सब देख सुनकर मुझे बडा कष्ट हुआ परन्तु अपनी बुआ से वचन बद्ध हो मैं अब तक सब कुछ सहता रहा। आज यह पापी दुष्ट आप लोगों के सामने ही विद्यमान है। यहां इसने भरी सभा में मेरे प्रति जैसा व्यवहार किया है वह आप सब लोग देख ही रहे हो। इससे आप लोग समझ सकते हो कि आप लोगों की अनुपस्थिति में इस पिशाच ने क्या नहीं किया होगा ? आज इसने अपने अहंकार वश राजसमाज के बीच में जो दुर्व्यवहार किया है उसे मैं कदापि सहन नहीं कर सकता। यह सुनकर शिशुपाल ठठा ठठा कर हंसकर खडा हो कहने लगा अरे तू मुझे क्या डराता है मायावी और तू तीन अपराधों की बात करता है मैं तो यहां खडे खडे तीन सौ बार तेरा अपमान करूंगा और तू मेरा कुछ भी नहीं बिगाड पायेगा। अरे तेरा मान ही क्या है ? कि तुझे अपमानित किया जाये? यदि तुझे सौ बार गरज हो तो तो बात सुन और सह। न

गरज हो तो जो तेरे मन में आये जो चाहे सो कर लेना। मैं तेरे क्रोध या प्रसन्नता से कोई डरनेवाला नहीं। न तो तेरी प्रसन्नता से मुझे कोई लाभ है और न ही मुझे तेरे क्रोध से कोई हानि। ये रहा मेरा अठानवा अपराध कि तू एक तुच्छ चोर है। यह हुआ निनानवा अपराध कि तूने महाराज कंस का नमक खाया और उसी का वध करवा डाला। यह हुआ पूरा सौ कि तू कृतिगति है अब बोल क्या कहता है तूं। कृष्ण बोले बस अब रूक जाओ शिशुपाल। शिशुपाल बोला तू तो एक बहुरूपिया है, जो राजाओं के वस्त्र पहनकर इस सभा में आ बैठा है। उसी समय भगवान श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और उनके हाथ में वह चक्र चमकने लगा। श्रीकृष्ण ने कहा नरपतियों मैंने इसे अब तक तो क्षमा किया था पर अब आप लोगों के सामने ही इसका सिर धड से अलग कर देता हूं। कृष्ण ने यह कहकर बिना विलम्ब उस चक्र से शिशुपाल का सिर काट धड से अलग किया और उसका वध हो गया। वह पर्वत के समान धराशायी हो गिर पडा। उस समय सभी राजाओं ने देखा कि शिशुपाल के शरीर से सूर्य के समान एक प्रकाशमान श्रेष्ठ ज्योति निकली उसने कृष्ण को प्रणाम किया और लोगों के देखते देखते कृष्ण में ही समा गई। सभी पांडवों ने शिशुपाल की अन्त्येष्टि क्रिया की और सभी राजाओं की उपस्थिति में शिशुपाल के पुत्र ब्रृष्टकेतु का चेदि राज्य पर अभिषेक कर दिया। इस चक्र से कृष्ण की अंगूली कट गई। द्रौपदी ने अपने चीरका छोर फाड कर कृष्ण की रक्त बहती अंगूली में बांध दिया। कृष्ण बोला मैं आज से तुम्हारा ऋणी हो गया द्रौपदी। समय आने पर तुम्हारा एक एक धागे का ऋण उतारुंगा।

दिया दंड कृष्ण ने किया खंड अभिमान, आंचल चीरे द्रौपदी बांध रही भगवान,
प्रेम के आंचल में बन्ध गये दिया वचन फिर आप, ऋण के इस भुगतान को जगत सकेगा नहीं माप।

७) राजसूय यज्ञ की समाप्ति, अतिथियों की विदाई और महर्षि व्यास का भविष्य कथन

समय की तरह कहानी की भी अपनी गति होती है जो न किसी के कहने से बढाई जा सकती है और न ही घटाई जा सकती है। परन्तु कहानी समय की तरह अनन्त नहीं। यह एक बिन्दु से आरम्भ होती है और एक बिन्दु पर समाप्त। इन्ही दोनों बिन्दुओं के बीच की भूमि उसकी कर्मभूमि होती है। परन्तु हर कहानी अपने समाज के बदल जाने के नाप पर काटी जाती है और यही कारण है कि यदि वर्तमान किसी पुरानी कहानी को पहनना चाहे तो उसे वर्तमान के नाप के हिसाब से काटना छांटना पडता है। समय इस कथा में यही करने का प्रयत्न कर रहा है परन्तु कहानी की गति नहीं बदल रहा है। बदलेगा भी नहीं जो आज के लिये आवश्यक नहीं वो बातें टालते जा रहा है। जैसे समय वेदव्यास से यह नहीं कहला रहा कि आनेवाले १३ वर्ष पांडवों पर भारी है क्योंकि यह कहलाने से कहानी खुल जाती है और वर्तमान अपनी कहानियों को औढाये पहनाये रखता है। फिर यही है कि मद्य का रस अलग है और अभिषेक का अलग। वेदव्यास की तरह समय को दो रसों को आपस में मिलाने की कला नहीं आती। इसीलिये समय को शिशुपाल के वध पर कथन रोक दिया था और अब समय उसी सभागृह में ले चलता है जहां चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर का अभिषेक बस अब होने ही वाला है। युधिष्ठिर का सम्राट पद पर अभिषेक हो रहा है। वेदव्यास ने अभिषेक किया। पितामह भीष्म ने मुकुट पहनाया। प्रजा ने चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर की जय की।

युधिष्ठिर ने सम्बोधित किया मैं महर्षि व्यास, अन्य ऋषियों, ब्राह्मण समुदाय, पितामह भीष्म, ज्येष्ठ पिताश्री हस्तिनापुर नरेश, धृतराष्ट्र और गुरु द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, काकाश्री विदुर, ज्येष्ठ भ्राता बलराम, अनुजों, उपस्थित महाराजाओं, यौद्धाओं, धरती, आकाश और वासुदेव कृष्ण को साक्षी मानकर यह वचन देता हूं कि भरतवंश की मर्यादा का आदर भी करूंगा और उसकी रक्षा भी। इसलिये जय पांडु पुत्र युधिष्ठिर की नहीं जय मातृभूमि की, जय हस्तिनापुर की, जय हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र की। अपने अभिषेक के अवसर पर मैं यह घोषित करता हूं कि इन्द्रप्रस्थ को सीमाओं के विस्तार की लालसा नहीं है। वो अपनी सीमाओं से सन्तुष्ट है इसलिये किसी भी छोटे से छोटे राज्य को भी इन्द्रप्रस्थ से भय नहीं होना चाहिये। इन्द्रप्रस्थ आपकी सीमाओं का अभिलाषी नहीं है। इसे आपके स्नेह और मित्रता की अभिलाषा है। इसी सन्दर्भ में मैं घोषित करता हूं कि शिशुपाल

वध का यह अर्थ नहीं निकाला जाये कि चेदि राज्य अब इन्द्रप्रस्थ राज्य का एक भाग हो गया है। चेदि राज्य एक स्वतन्त्र राज्य था और आगे भी स्वतन्त्र राज्य ही रहेगा क्योंकि आज से उस राज्य पर शिशुपाल पुत्र महिपाल धृष्टकेतु आसीन होगा और उसका राज्याभिषेक यहीं इन्द्रप्रस्थ में होगा और अनुज पुत्र महिपाल धृष्टकेतु यहीं से चेदि नरेश बनकर अपने राज्य में वापिस जायेगा। स्वागत समारोह युधिष्ठिर के राजभवन में हुआ। सभी राजाओं का स्वागत समारोह हुआ।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय परम प्रतापी युधिष्ठिर का यज्ञ समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण था। उसे देखकर उत्साही वीरों को बडी प्रसन्नता हुई। उसमें होनेवाले विघ्न सब अपने आप शान्त हो गये। सारे कार्य सुखपूर्वक हुये। धन सम्पत्ति उपहार में आवश्यकता से अधिक आयी। असंख्य मनुष्यों और प्राणियों ने भरपूर भोजन करने के पश्चात भी अन्न, धन-धान्य से गोदाम भरे पूरे थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने बडी प्रसन्नता से यज्ञ पूर्ण किया जब तक यज्ञ पूरा नहीं हुआ तब तक सर्व शक्तिमान शाडर्ग चक्रधारी गदाधारी कृष्ण उसकी रक्षा में तत्पर रहे। राजसूय यज्ञ कई दिन तक चला एक ओर मन्त्रोचार के साथ अग्नि में आहुतियां दी जा रही थी तो दूसरी ओर विद्वानों के सत्कार और दान दक्षिणा का उपक्रम चलता रहा। श्रोतियों ने श्रुति सम्बन्धी विचार विमर्श किये और ज्ञान का परस्पर आदान प्रदान हुआ। कलाविंदों ने अपनी कलाओं का प्रदर्शन किया और कथा वाचकों ने कथाओं का आख्यान। अन्ततः यज्ञ की पूर्णाहुति समर्पित की गई। महाराज युधिष्ठिर ने व्यास, धौम्य, नारद, समन्तु, जैमिनी, पैल, वैशम्पायन, याज्ञवल्क्य, कठ तथा कलाप का पूर्ण मनोयोग से पूजन किया और यज्ञ समाप्ति की घोषणा करते हुये कृष्ण बलराम तथा भीष्म की विधिवत पूजा की। द्रौपदी और युधिष्ठिर ने अवभृत स्नान किया। सभी अतिथि नृपगण समारोह में भाग लेने आये और अपने अपने आसन ग्रहण किये।

उसी समय विदुर आये और युधिष्ठिर बोले काकाश्री आप भी तो स्थान ग्रहण कीजिये। विदुर ने कहा मेरा स्थान तो यही है महाराज। भीष्म बोले विदुर जो कहता है उसे कर लेने दो पुत्र। नहीं तो वह फिर किसी परन्तु का बाण चला देगा और उसके बाण का तोड न मेरे पास है और न ही अर्जुन के पास। उसी समय वहां पर वेदव्यास आये। वेदव्यास को देखकर उनके सम्मान के लिये सब उठ खडे हुये और सभी ने उन्हे प्रणाम किया महर्षि ने भी चिरंजीवी हो, आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। व्यास बोले मैं तो केवल तुम सभी को एक साथ देखकर आनन्द का अनुभव करने आ गया था। कोई नहीं जानता तुम अब कहां कैसे वातावरण में एकत्रित होंगे ? भीष्म ने महर्षि से पूछा मुनिवर आपने ऐसा क्यों कहां ? वेदव्यास बोले यह मत पूछिये गंगापुत्र। न मैं कह कर प्रसन्न होऊंगा और न ही आप सुनकर। इतना अवश्य कहे जाता हूं कि सूर्य का महत्व अपने स्थान पर है और दीपक का अपने स्थान पर। कोई किसी का स्थान नहीं ले सकता। और यदि लेने का प्रयत्न करेगा तो पराजय स्वयं अपने हाथ से उसकी भाग्यरेखा खींच देंगी। अच्छा वत्स अब मैं प्रस्थान करता हूं। व्यास चले गये। धृतराष्ट्र बोले तातश्री ऋषिवर की बात समझ नहीं आई। दुर्योधन बोला साधारण सी बात तो थी। भला सूर्य और दीपक का अन्तर कौन नहीं जानता ? कृष्ण बोले मैं कहूं कि मैं नहीं जानता तो तुम मुझे सूर्य और दीपक का अन्तर समझा दोगे गान्धारी नन्दन। दुर्योधन बोला इसमें समझना और समझाना क्या है वासुदेव ? सूर्य तो सूर्य है और दीपक दीपक है। धृतराष्ट्र बोले मेरे लिये तो दोनों में से न तो कोई किसी का अर्थ है और न ही महत्व। यदि मुझसे कोई पूछे कि प्रकाश क्या है ? तो यह महावीर तातश्री का यह शिष्य इस साधारण से प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। मैं जो इस त्रिलोक व्यापी अन्धकार से लिप्त हूं स्वयं अन्धकार की परिभाषा नहीं जानता। इसलिये ऋषिवर के कथन वाक्य पर विचार करना चाहिये पुत्र। विदुर बोले विचार करना राजा का कर्तव्य है युवराज दुर्योधन। कुन्ती वहां बैठी थी बोली मैं तो बस यहीं चाहती हूं कि आप सब मेरे पुत्र युधिष्ठिर को आशीर्वाद दें कि भरतवंशी की परम्परानुसार वो एक अच्छा गुणवान राजा सिद्ध हो और आनेवाला युग इसका नाम आदर सहित ले। पुत्र युधिष्ठिर जाओ सबसे आशीर्वाद ग्रहण करो। युधिष्ठिर बोले जो आज्ञा माताश्री। युधिष्ठिर कृष्ण की ओर देखता है। कृष्ण बोले मेरी ओर मत देखिये ज्येष्ठ भ्राताश्री यह कोई

राज्य सभा नहीं है, यह परिवार सभा है। यहां सबसे पहिले आशीर्वाद पितामह गंगापुत्र भीष्म से लीजिये। युधिष्ठिर पितामह भीष्म से आशीर्वाद लेता है और बोला पितामह मुझे यह आशीर्वाद दीजिये कि मैं हस्तिनापुर को सदैव आदरणीय मानता रहूं। भीष्म बोले आयुष्मान भव। यह भी तुम मुझी से मांग लोगे तो अपने ज्येष्ठ पिताश्री से क्या मांगोगे ? जाओ उनके पास। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के पास आता है और बोलता है मुझे आशीर्वाद दें ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला आयुष्मान भव। तुम किसी का अनादर कर ही नहीं सकते पुत्र। तो फिर यह आशीर्वाद क्यों मांग रहे हो ? इन्द्रप्रस्थ बसा लेने का यह अर्थ नहीं है पुत्र कि हस्तिनापुर से तुम्हारा नाता ही टूट गया। वो भी तुम्हारा ही है। दुर्योधन बोला साथ साथ यह भी कहिये पिताश्री कि इन्द्रप्रस्थ भी मेरा है। युधिष्ठिर बोले ज्येष्ठ पिताश्री से यह क्यों कहलवाना चाहते हो प्रिय अनुज दुर्योधन ? इन्द्रप्रस्थ तो तुम्हारा है ही। मुझे नीति ज्ञान दीजिये पिताश्री। भीष्म बोले यह तो विदुर का क्षेत्र है। यह तो तुम अपने काकाश्री से मांगो पुत्र। धृतराष्ट्र बोले पुत्र इस ज्ञान के लिये तो मुझे भी बार बार विदुर को ही पुकारना पडता है। युधिष्ठिर बोले जो आज्ञा पिताश्री।

युधिष्ठिर विदुर के पास आता है और विदुर से कहता है कि मुझे आशीर्वाद दें काकाश्री। विदुर बोला धर्मराज भव। हे राजन आप तो इस युग में धर्म की प्रतिमूर्ति हैं। मैं आपको नीति के विषय के अतिरिक्त और क्या बताऊं ? अपने शत्रुओं पर तो हर कोई दृष्टि रखता है परन्तु राजा को अपने मन्त्रियों, सेवकों और अंग रक्षकों पर भी दृष्टि रखनी चाहिये। हे राजन काम का वेग और भूख की ज्वाला ही हर पाप की जड है तो अपने काम को अपने अधीन रखो और जनसमुदाय के पेट में भूख की आग को कभी भडकने मत दो। युधिष्ठिर बोला काकाश्री इन गुणों से मेरी प्यास नहीं बुझी। आप धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हैं। मुझे कुछ और नीति ज्ञान दीजिये। विदुर बोला एक मात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। हर युद्ध सदैव क्षमा पर ही शान्त होता है। शक्तिशाली होनेपर भी जो क्षमा करता है वह स्वर्ग से भी ऊंचा स्थान पाता है। हे राजन जैसे माली फूल तो अवश्य तोडता है परन्तु पौधे की जड को कभी नहीं काटता। उसी प्रकार कर लगाते समय राजा का यह कर्त्तव्य है कि वो यह देखे कि वह प्रजा के आय के पौधे की जड तो नहीं काट रहा और यदि वो ऐसा करेगा तो प्रजा अपनी सुरक्षा के लिये मिथ्याचारी होने पर विवश हो जायेगी। एक बात और ध्यान में रखने योग्य है राजन कि न्याय में स्थित राजा अपने पूर्वजों से धरोहर में पाया हुआ राज्य भी अपने कर्मों से ही भ्रष्ट कर देता है जैसे पवन बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है। हे राजन जो धर्म को छोडकर अधर्म का आश्रय लेता है उसका राज्य भूमि कांच में रखे हुये धर्म की भांति प्रतिदिन सिकुडता जाता है और दूसरों के धन ध्रुव, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सम्मान और वैभवों से जलता है। उसका यह असहाय रोग है।

विदुर धर्म से कह रे दुर्योधन को देख, नेकी कैसी चाहिये राजा कैसा नेक।

यह कथा ऐसी विचित्र है कि कभी कभी समय को भी उलझा देती है और समय को भी ऐसा लगने लगता है कि स्वयं समय को अपने आप पर पक्षपात का आरोप लगाना पडता है लेकिन यह समय की मर्यादा के विरुद्ध है और समय प्रयत्न करके अपने आपको मर्यादा उल्लंघन से बचाता रहता है। ये भी एक ऐसी ही घडी है। ये तो ठीक है कोई एक राजा किसी दूसरे राजा के राजसूय यज्ञ से खुश नहीं हो सकता क्योंकि इस यज्ञ का सपना तो हर राजा देखता है चाहे उसकी आंखे छोटी हो या बडी लेकिन अंगराज कर्ण की आंखों में ये सपना भी नहीं है। उसकी आंखे खाली है और शायद कोई सपना ढूंढ रही है।

कर्ण चिंतित हो इन्द्रप्रस्थ में अपने कक्ष में इधर से उधर घूम रहा है कि इतने में ही मामा शकुनि वहां आते हैं। शकुनि बोला अरे अंगराज कर्ण आज अकेले हो पुत्र। कर्ण बोला आइये मामाश्री, आइये विराजिये। शकुनि बोला तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। कर्ण ने कहा जहां परिवार वाले एकत्रित हों वहां मेरा क्या स्थान ? मैं तो बाहरवाला हूं। शकुनि बोला बाहर वाला तो मैं भी पुत्र कर्ण। कर्ण बोला न मैं कुरु हूं और न आप ही और ऐसे ही निर्दयी क्षणों में मैं जब सोचने लगता हूँ कि किसी परिवार का सदस्य होने से आत्मा को रीढ़ की हड्डी मिल जाती है। इस संसार में अकेला होने से बडा और कोई दंड नहीं और दंड तो मैं

झेल लूंगा मामाश्री परन्तु मुझे कोई ये तो बताये कि मुझे किस अपराध का ये दंड है ? अकेलेपन के इस क्षण को मैं महारथी महावीर शिशुपाल का शोक मनाने में बिता रहा हूं। यह कितने आश्चर्य की बात है कि महारथियों से भरी हुई इस राज्यसभा में किसी ने विरोध का एक शब्द तक नहीं कहा, चूं तक नहीं की। शकुनि बोला अरे वहां तुम भी तो थे। हम सभी चुप थे पर तुम भी तो चुप थे और हमारे सब के चुप हो जाने का कारण केवल एक ही था कि हम में से किसी के पास भी उस मायावी कृष्ण की कोई काट नहीं है। तुम एक महान यौद्धा हो अंगराज परन्तु महान यौद्धा को भी कभी कभार विचार अवश्य कर लेना चाहिये। इसलिये सोचो महारथी कर्ण। उस मायावी कृष्ण की कोई काट सोचो। इतने में ही दुर्योधन वहां आ जाता है। शकुनि बोला अरे भान्जे दुर्योधन। दुर्योधन बोला मामाश्री मैंने आपकी बातें बहुत सुन ली है। अब मैं आपके हाथों में रहनेवाला पांसा नहीं हूं। मैं दुर्योधन हूं दुर्योधन। आज तक आपने जितनी भी चालें चली वो सब की सब उल्टी पडी। आप युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का युवराज नहीं बनना देना चाहते थे ना। मामाश्री युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ कर लिया है और हमें उसके राजसूय यज्ञ में आना भी पडा और यह भी जतलाना पडा कि हम वहां प्रसन्न हैं। शकुनि बोला धीरज से काम लो भान्जे। दुर्योधन बोला मुझे धीरज से काम लेना नहीं आता मामाश्री और आप यह भी सुन लें कि इन्द्रप्रस्थ पाकर वे सन्तुष्ट नहीं हुये है। उनकी आंख हस्तिनापुर पर है। कर्ण बोला मैं उनका मित्र नहीं हूं दुर्योधन परन्तु में यह नहीं मान सकता की उनकी आंख हस्तिनापुर पर है। दुर्योधन बोला यदि ऐसा नहीं है तो अभिषेक के पश्चात युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर की जय क्यों चाही ? अभी अभी उन्होने पिताश्री से यहीं आशीर्वाद मांगा कि उनके हृदय में सदैव ही हस्तिनापुर आदरणीय रहे। शकुनि बोला हस्तिनापुर तो सदैव आदरणीय रहेगा पुत्र। उसका आदर युधिष्ठिर की चाल के अधीन नहीं है। मुझे रती भर भी पांडवों की चिन्ता नहीं है। हां तुम्हारे विषय में अवश्य चिंतित रहता हूं क्योंकि तुम्हें स्वयं यह पता नहीं रहता कि कब कहां क्या कहो, क्या कर डालो ? कुछ दिन उन्हे प्रसन्न हो लेने दो पुत्र। ठहरे हुये जल से धोखा न खाओ। इस ठहरे हुये जल के नीचे बडा प्रकम्पन चल रहा है, धारायें भी एक दूसरे को काट रही है और यह समझ लो दुर्योधन कि मैंने इसी खेल को सिद्ध किया है, जो हो रहा है वो उसे तुम केवल चुपचाप देखते रहो।

सभी राजा लोग युधिष्ठिर के पास आकर बोले धर्मज्ञ सम्राट यह बडे सौभाग्य की बात है कि आपका यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। आपने सम्राट पद प्राप्त कर अजमीढ़ वंशी राजाओं का यश उज्ज्वल किया। राजेन्द्र इस यज्ञ के द्वारा महान धर्मानुष्ठान सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ में हम लोगों का भी सब प्रकार से आतिथ्य सत्कार हुआ है। इसमें किसी भी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं हुई। अब हमें जाने की आज्ञा दीजिये। हम सब अपनी अपनी राजधानी लौट जायें।

सम्राट युधिष्ठिर ने ऋषियों, ब्राह्मणों, सूत, मागध, बन्दी, प्रभृति, कला जीवियों, शिल्पकारों और सेवकों को सादर वस्त्राभूषण, गो, गज, अश्व, रथ, स्वर्ण, रत्नादि देकर सन्तुष्ट कर विदा किया। राजाओं तथा उनके परिवार तथा सेवकों को इतने उपहार दिये कि उनको स्वयं संकुचित होना पडा। सब कोई युधिष्ठिर की उदारता की, शील की, सम्पतियों की प्रशंसा करते विदा हुये। सम्पूर्ण देश में एक ही चर्चा हो रही थी कि कृष्ण के अनुग्रह भाजन पांडु पुत्रों का यह अभ्युदय उचित ही है। युधिष्ठिर ने भी आग्रह करके सम्बन्धियों को, सुहृदों को रोकना चाहा और उनसे बोले अभी तो यज्ञीय व्यवस्था से मुझे अवकाश ही नहीं मिला कि मैं आप सबसे भली प्रकार से मिल पाता। मुझे अपना जानकर आप सब सेवा में ही व्यस्त रहे। अब मुझे भी तो आपके सामीप्य का, सेवा का सौभाग्य मिलना चाहिये। जिस समारोह से अतिथियों का स्वागत हुआ था उसी समारोह में उन्हे विदा भी किया गया। महत्वपूर्ण राजाओं को विदा करने के लिये पांडवों में से कोई न कोई भाई दूर तक उनके साथ गया। लोगों ने अपने परिवार तथा सेवकों का सहायकों का अधिकांश भाग विदा कर दिया। कृष्ण ने भी अपने पुत्रों को, भाइयों को, सेना को द्वारिका लौटा दिया किन्तु उनकी महारानियों को साम्रज्ञी द्रौपदी ने रोक लिया। मुख्य मुख्य सम्बन्धी, सुहृद सम्राट युधिष्ठिर के आग्रह से रुके रहे। इस यज्ञ में सबसे अधिक असन्तोष दुर्योधन को रहा। वह पांडवों की लोकप्रियता, शक्ति, सम्पत्ति से बचपन से ही

ईर्ष्या करता था। पांडवों को नष्ट कर देने के लिये सदा से ही कुटिल प्रयत्न करता रहा फिर भी वे सम्राट बन गये। युधिष्ठिर का धन, वैभव, सम्मान, यश देखकर दुर्योधन की ईर्ष्या भभकने लगी। सर्वत्र युधिष्ठिर की जयजयकार, प्रशंसा हो रही थी। जो स्वप्न दुर्योधन ने अपने लिये देखा था वह उसके अपने प्रतिद्वन्दी के लिये साकार हो रहा था इसे वह कैसे बर्दास्त कर पाता ? और इससे अधिक दु:खद उसके लिये और क्या हो सकता था ? कुरु राज दुर्योधन के हृदय में एक और भयानक शूल चुभ रहा था। उसका मन पांचाली द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहा था और वह अयोनिजा सौन्दर्य मूर्ति उसे देवर समझ कर भी उसकी ओर देखती तक नहीं थी। परन्तु द्रौपदी ने उसे कहीं से तनिक भी प्रोत्साहन नहीं दिया इससे दुर्योधन की मानसिक पीडा बढी हुई थी। दुष्ट एवं ईर्ष्या परायण लोगों को अपना ऐश्वर्य दिखाना विद्वान, विज्ञ पुरुषों का काम नहीं हे। इससे शत्रुता ही बढती है। उत्सव आनन्द के लिये किये जाते है। ईर्ष्या या दु:ख जतलाने के लिये नहीं।

पितामह भीष्म ने भी विदा होने की इच्छा युधिष्ठिर से प्रकट की तो युधिष्ठिर बोले नहीं पितामह आप पहली बार इन्द्रप्रस्थ आये हैं। आपको जाने में इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। भीष्म बोले इन्द्रप्रस्थ में कोई कष्ट नहीं होने दिया किन्तु पुत्र तुम तो समझते हो कुलवृद्ध के रूप में मैं जितना स्वतन्त्र दिखता हूं, उतना स्वतन्त्र हूं नहीं। मैं तो उस स्थिति में हूं जहां हर कोई की आंख मेरे हर छोटे छोटे कृत्यों पर आलोचक की दृष्टि से देखती है और उसका मनमाना अभिप्राय अर्थ लगाती है। इसलिये हर वक्त मुझे सावधान रहना पडता हैं कि मैं कुछ ऐसा न कर बैठूं जिससे मेरे परिवार में किसी तरह का वैमनस्य बढे। समझ रहे हो ना मेरी स्थिति कितनी कठिन है ? तुम लोग जब हस्तिनापुर आये थे तो उस समय इतने छोटे बालक थे तो तुम्हे मैं अपने मन की पीडा कैसे समझाता ? अब जब कुछ समझने योग्य हुये तो धृतराष्ट्र ने तुम्हें वारणावत भेज दिया यद्यपि इसमें मेरी सहमति नहीं थी परन्तु मैं मौन रहा। सोचता था राजाज्ञा में हस्तक्षेप नहीं करूं। मैं यह क्या जानता था कि वह तुम्हे अग्नि दहन के लिये भेज रहा है ? जब तुम लौटकर आये तो कुरुकुल का विभाजन हो गया। तुम्हारी सुरक्षा के लिये मैंने इस विभाजन को भी स्वीकार कर लिया। मेरा मन न कुरु राज्य का विभाजन देखने को प्रस्तुत था और न ही कुरु परिवार का। जब तुम लोग हस्तिनापुर छोडकर जा रहे थे तो तुम्हे पता नहीं मेरा मन कितना रोया ? यदि उस समय मैं तुम्हारे साथ यहा खांडव प्रस्थ चला आता तो कौरवों का अन्तिम दृढ़ विभाजन हो जाता। मैं हस्तिनापुर में रहकर भी तुम्हारा पितामह हूं और तुम सब मेरे प्रिय पौत्र हो। मेरे लिये तुम विभाजित नहीं हुये हो। भौतिक दूरी ही हुई है किन्तु भावनामक और मानसिक दूरी नहीं है। पर तुम यह भी समझते होंगे कि इन्द्रप्रस्थ में रहकर मैं दुर्योधन का पितामह नहीं रह सकता। डबडबाई आंखों से पितामह भीष्म बोले मेरी व्यथा को समझने का प्रयत्न करो पुत्र युधिष्ठिर। मैं अपने किसी भी पौत्र का त्याग नहीं कर सकता चाहे वह हजारों दुर्गुणों से युक्त दुर्योधन ही क्यों न हो। मैं नहीं चाहता कि कौरव वंश बिखर जाये। न मैं चाहता हूं कि कुरुवंशी एक दूसरे का विरोध कर रण सज्जित हो जाये। मैं कुरु परिवार को एक अविभाजित सम्मिलत परिवार देखना चाहता हूं। इसे तुम चाहे मेरा अहंकार समझो, मूर्खता समझो, अव्यावहारिकता समझो परन्तु मेरी भावना को वास्तविक रूप में देखो। तुम्हारे साथ धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने जो व्यवहार किया उसे केवल तुम ही क्षमा कर सकते थे। तुमने उन्हे केवल न क्षमा किया पर उन्हे सबसे अधिक महत्व भी दिया। वह लोभी दुर्योधन जिसने तुम्हारी एक एक कौडी भी छीन लेने प्रयत्न किया उसी को तुमने बहुमूल्य उपहारों को ग्रहण करने का दायित्व सौंपा। किसके पास इतना बडा हृदय है ? अब मुझे विश्वास है अपने परिवार में विभाजन से बचाने के लिये एक तुम ही पूर्ण रूप से सक्षम हो कुरुवंश में आई सारी दरारें तुम मिटा पाओगे और यह वंश सदा के लिये अविभाज्य हो जायेगा। युधिष्ठिर बोला आप आश्वस्त रहें पितामह मुझे कभी कोई विभाजन प्रिय नहीं रहा। विभाजन से अहंकारी जीव का जन्म होता है और समग्रता में ब्रह्म के दर्शन होते है। ईश्वर और लक्ष्मी भी संयुक्त परिवार में ही वास करते हैं। भीष्म बोले और द्रौपदी ने तो अपने पितृकुल और श्वसुर कुल में सन्तुलन बनाये रखा। अर्जुन ने पूछा पितामह हमें किसके सहारे छोडे जा रहे हो ? भीष्म बोले तुम समर्थ हो

पुत्र। तुम्हारे लिये युधिष्ठिर का सहारा ही पर्याप्त है और फिर तुम्हारे साथ वासुदेव कृष्ण भी तो हैं। जिसके साथ कृष्ण है उन्हे किसी भीष्म या द्रोण की क्या आवश्यकता है ? युधिष्ठिर अब मुझे हस्तिनापुर लौट जाने की अनुमति दो। चारों ओर यात्रा की तैयारियां हो रही थी। कौरवों के सेवक अपना और अपने स्वामियों का सामान बांध रहे थे। मार्ग में आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त संग्रह कर रहे थे। पितामह, धृतराष्ट्र, बाहलीक, सोमदत्त, द्रोण आदि विदा होने से पहले सब लोगों से मिल भेट रहे थे।

बलराम अपने भतीजों सहित कुछ दिनों के लिये हस्तिनापुर जा रहा था। कृष्ण भी द्वारिका जाने के लिये सबसे मिल भेट रहे थे। कृपाचार्य मिल जाते हैं। कृष्ण बोले कुलगुरु मैं आपके पास ही आ रहा था मैं द्वारका जा रहा था सोचा आपसे भी विदा ले लूं। कृपाचार्य बोले मेरे लिये क्या आदेश है वासुदेव ? कृष्ण बोला आप तो कुरुवंश के कुलगुरु है कृपाचार्यजी। भला आपको कौन क्या आदेश दे सकता है ?

द्रुपद और पुत्र धृष्टद्युम्न गुरु द्रोणाचार्य के कक्ष में आते हैं। द्रोणाचार्य ने उठकर स्वागत किया और बोले आओ मित्र आओ, स्थान ग्रहण करो। कैसे हो मित्र ? द्रुपद बोले अच्छा हूं। मैं आज काम्पिल्य लौट रहा था सोचा अपने पुत्र को तुम्हारा आशीर्वाद दिलाता चलूं और यह है मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न। चरण स्पर्श करो पुत्र। धृष्टद्युम्न ने द्रोण के चरण स्पर्श किये। गुरु द्रोणाचार्य ने भी आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। द्रुपद बोले यह आशीर्वाद तो मैं इसे देते ही रहता हूं मित्र। इसे आशीर्वाद देना ही चाहते हो तो लक्ष्य की प्राप्ति का आशीर्वाद दो। द्रोण बोले हवन कुंड से उत्पन्न होनेवाले तुम्हारे इस पुत्र के लक्ष्य के मार्ग में भला क्या रुकावट हो सकती है द्रुपद बोले अर्थात तुम आशीर्वाद नहीं देना चाहते। द्रोण बोले अवश्य दूंगा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो। उसी समय कृष्ण भी वहां आ गया। द्रोण ने उठकर कृष्ण का स्वागत किया। कृष्ण द्रुपद से बोला अच्छा हुआ आपसे यहीं भेंट हो गई महाराज। आप काम्पिल्य जा रहे है और मैं द्वारिका। द्रुपद बोले द्रौपदी से मिल लिये ? कृष्ण ने कहा अभी तो मैं द्रोणाचार्य से आज्ञा लेने आया हूं। द्रुपद बोले तो फिर हम चलते हैं। अच्छा मित्र। द्रुपद बोले देखते हैं अब कब और कहां मिलना होता है ? द्रुपद वहां से प्रणाम करके चले गये। द्रोण बोले बैठो देवकी नन्दन बैठो। दोनों बैठ जाते हैं। द्रोण ने पूछा कब जा रहे हो ? कृष्ण बोले हां आचार्य आज ही। द्रोण बोले जो मैं देख रहा हूं गोवर्धनधारी वो तुम तो अवश्य देख रहे होंगे। कृष्ण बोले आप क्या देख रहे हैं आचार्य ? द्रोण बोले एक तो मैं उस संकट को देख रहा हूं जिसका सामना मेरे और भीष्म के लिये अनिवार्य है। दुर्योधन जिस ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि में जल रहा है उसमें हम सब भस्म हो जानेवाले हैं। तुम्ही रक्षा करो तो करो। कृष्ण बोले नहीं आचार्य <u>व्यक्ति को अपनी रक्षा स्वयं ही करनी पडती है</u>। आप हुये, गंगा पुत्र भीष्म हुये, कृपाचार्य हुये। आप लोग तो नक्षत्रों की भांति है। यदि आप लोग ही अपना मार्ग बदल देंगे तो भूमंडल की उथल पुथल होने से कौन क्या कर सकता है ? द्रोणाचार्य बोले अर्थात। कृष्ण ने कहा अर्थात यह है आचार्य कि <u>व्यक्ति को सदैव सत्य का ही पक्ष लेना चाहिये</u>।

कृष्ण विदा होने के लिये भीष्म के कक्ष में आता है। भीष्म बोला हस्तिनापुर के साथ साथ पूरे भारतवर्ष को तुम ही बचा सकते हो वासुदेव कृष्ण। कृष्ण बोले नहीं पितामह। इस विषय में मैं भी विवश हूं क्योंकि जो होनेवाला है उसमें भागीदार सभी है। कोई कम और कोई अधिक। परन्तु आप इस कुरुराज परिवार में सबसे बडे है तो आपका उत्तरदायित्व भी सबसे अधिक है। भीष्म बोले दुर्योधन नहीं मानता कृष्ण। कृष्ण बोले वो आपकी समस्या है पितामह इसलिये इस बीच जो समय है उस पर विचार कीजिये। क्या आपकी प्रतिज्ञा आपको आपके उत्तरदायित्व से मुक्त कर देती है ? यदि हां तो चिन्ता का कोई कारण ही नहीं और यदि नहीं तो पितामह प्रश्नों का उत्तर सोचिये जो भविष्य आप से करनेवाला है ?

कृष्ण धृतराष्ट्र के कक्ष में उनसे मिलने आता है। धृतराष्ट्र बोला इस नेत्रहीन से भला कोई क्या प्रश्न कर सकता है मधुसूदन ? कृष्ण बोला नेत्र हीनता की इस ढाल को सामने से हटाइये महाराज और अपनी वास्तविकता का सामना कीजिये। आपने राज्य का विभाजन तो कर दिया परन्तु आपकी उच्चाकांक्षाओं का तो विभाजन नहीं हो सकता था ना महाराज। ये आज दुर्योधन और

पांडवों की आनेवाली पीढी की धरोहर है। इतिहास तो आप ही को उत्तरदायी ठहरायेगा महाराज। मैं तो आज द्वारिका जा रहा हूं परन्तु मेरा मन सदैव आप ही लोगों में लागे रहेगा। मेरा तो बस यहीं निवेदन है महाराज जो होनेवाला है उसे मत होने दीजिये।

अब कृष्ण पांडवों के पास उनके राजभवन में आये और महाराज युधिष्ठिर से बोले राजेन्द्र बडे सौभाग्य की बात है कि आपका राजसूय यज्ञ सकुशल समाप्त हुआ। अब मैं द्वारिका जाने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूं। अर्जुन ने पूछा केशव क्या मैं आपके जाने की शीघ्रता का कारण पूछ सकता हूं ? कृष्ण बोले आज नहीं जाऊंगा तो कल जाऊंगा पार्थ, तो एक दिन तो जाना ही है पार्थ। अर्जुन बोला ऐसा भी नहीं लगता कि हमको छोडकर जाने में बहुत दु:ख है आपको। कृष्ण बोले न तो मैं तुम्हे आज छोडकर जा रहा हूं पार्थ और न कभी छोड सकूंगा। युधिष्ठिर बोले अर्थात हमें छोड सकते है। कृष्ण ने कहा आप अपने को अर्जुन से अलग समझते है बडे भैय्या। मैं तो यह समझता हूं कि शरीर पांच अवश्य है परन्तु सबमें आत्मा एक ही है और यदि नहीं तो आपको उन चारों पर आपको इतना अधिकार क्यों होता जो आज है ? जीवन कोई जुआ नहीं है बडे भैय्या। जीवन चेतना है। राजनीति भी चेतना ही है। ऐसा नही पांसा पड गया सो पड गया और यदि नहीं पडा तो नहीं पडा। आप जो है वो केवल इसलिये है कि आप एक नहीं पांच है और पांच होते हुये भी पांच नही एक ही है। भीम बोला पर जाओगे अवश्य। बलराम बोले मैं रूकने जा रहा हूं ना। इसलिये इन महाशय का जाना बहुत आवश्यक हो गया है। अरे कृष्ण कुछ दिन और रूक जाओ। बुआ कुन्ती का दिल से आशीर्वाद लो। कृष्ण बोले यदि जाना आवश्यक ना होता दाऊ तो मैं जाने का नाम ही क्यों लेता और अभी हम बुआ के घर थोडे ही आये हैं। बलराम बोले तो फिर कहां आये है? कृष्ण बोले इस समय हम इन्द्रप्रस्थ नरेश महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने आये हैं दाऊ और इसमें भाग लेनेवाले सारे या तो जा चुके हैं या जानेवाले हैं। यह तो बडे भैया से पूछ लीजिये कितने लोग रह गये हैं ? युधिष्ठिर बोला ज्येष्ठ पिताश्री कल जा रहे हैं। बस गान्धार नरेश शकुनि और दुर्योधन रूक रहे हैं कुछ दिनों के लिये। दुर्योधन को तो राजसभागृह ने मोहित कर लिया है। सहदेव बोले परन्तु मामाश्री को किसने मोहित कर लिया ? कृष्ण बोले मामाश्री को तो इन्द्रप्रस्थ ने ही मोहित कर लिया है। धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा आनन्द कंद गोविन्द यह यज्ञ तो केवल आपके अनुग्रह से ही पूरा हुआ है। यह आप की ही कृपा का प्रत्यक्ष फल है कि सब राजाओं ने मेरी अधीनता स्वीकार कर ली और स्वयं इस यज्ञ में उपस्थित हुये। सच्चिदानन्द कृष्ण अब मेरी वाणी आपको जाने के लिये कैसे कह सकती है ? आपके बिना मुझे एक क्षण के लिये भी आनन्द नहीं मिलता। मैं जानता हूं आपको द्वारिका तो जाना ही पडेगा। तदनन्तर कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर को लेकर अपनी बुआ कुन्ती के पास आये और बडी प्रसन्नता से बोले बुआ आपके पुत्रों ने सम्राट पद प्राप्त कर लिया है। उनका मनोरथ पूरा हो गया। धन सम्पत्ति भी अधिक बढ गई। अब आप प्रसन्नता से रहें। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर द्वारिका को प्रस्थान करना चाहता हूं।

कृष्ण बलराम सुभद्रा सब मिलकर द्रौपदी के पास आते हैं। कृष्ण बोला मैं तुमसे यहीं कहने आया था कि सुभद्रा को देखकर मुस्कुराती रहना। तुम तो मेरे कहे बिना ही मुस्कुरा दी। मैंने इसे लाख कहा कि द्रौपदी तुम्हें बहुत चाहती है परन्तु यह घबराई जा रही थी। सुभद्रा बोली भैया तनिक भगवान से भी डरा करो। कृष्ण बोला किससे ? उस ओह भगवान से। तू कहती है तो डर लेता हूं परन्तु तू मत घबरा। द्रौपदी तो तुझे बहुत प्यार देगी। सुभद्रा बोली मैं कब घबरा रही थी ? दीदी से झगडा करवाना चाहते हैं आप। द्रौपदी बोली सुभद्रा तुम भी किस की बातों में आ रही हो ? बलराम बोला द्रौपदी ठीक कह रही है। इसे तो लडने का चसका है। नन्दगांव में खेल में गडबड करता और फिर यशोदा मैया को जाकर लगा देता कि मैया मोहे दाऊ बहु झिझायो और मैया मुझे डांटने लगती। द्रौपदी बोली आप चिन्ता मत करें दाऊ मैं इन्हे कोई आज की थोडी जानती हूं पर देखिये देवकी नन्दन आप मेरा और सुभद्रा से झगडा नहीं करवा सकते। यह कोई मेरी सौत नहीं आपकी छोटी बहिन है। मेरे पास आपकी धरोहर है। सुभद्रा की चिन्ता मैं करूंगी। आप जाकर शेष संसार की चिन्ता

कीजिये। कृष्ण बोला तो मैं चला शेष संसार की चिन्ता करने। चलिये दाऊ।

इस प्रकार सुभद्रा और द्रौपदी को प्रसन्न कर कृष्ण महल से बाहर आये। सारथी दारुक मेघ के समान श्याम वर्णवाले रथ को ले आया। कृष्ण गरुड ध्वज रथ की प्रदक्षिणा कर उस पर सवार हुये। धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उनको विदा करने रथ के पीछे पीछे चलने लगे। कृष्ण ने कहा राजेन्द्र जैसे मेघ समस्त प्राणियों की रक्षा करता है। जैसे विशाल वृक्ष सभी पक्षियों को आश्रय देता है वैसे ही आप प्रजा पालन कीजिये। अब आप लौट जाइये।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय जब महायज्ञ राजसूय जो अत्यन्त दुर्लभ है समाप्त हो चुका। उसी समय कृष्ण द्वैपायन व्यास अपने शिष्यों के साथ धर्मराज युधिष्ठिर के पास आये। व्यासजी ने कहा कुन्तीनन्दन तुमने परम दुर्लभ सम्राटपद प्राप्त करके इस देश की बडी उन्नति की है। यह बडे ही सौभाग्य की बात है तुम्हारे जैसे सत्पुत्र से कुरुवंश की कीर्ति बढ गयी। अब मैं जाने की अनुमति चाहता हूं। धर्मराज युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा मुझे संशय है वो आप ही दूर कर सकते हैं। देवर्षि नारद ने कहा था कि वज्रपात, आदि दैविक, धूमकेतु आदि अन्तरिक्ष और भूकम्प आदि पार्थिव उत्पात हो रहे हैं। शिशुपाल की मृत्यु के साथ उनकी समाप्ति हो गई या वे अभी भी शेष है। व्यास बोले राजन इन उत्पातों का फल तेरह वर्ष बाद होगा और वह होगा समस्त क्षत्रियों का संहार। उस समय दुर्योधन के अपराध से तुम ही निमित्त बनोगे और सब क्षत्रिय एकत्रित होकर भीम और अर्जुन के बल से विनाश को प्राप्त होगे। व्यासजी तो यह कहकर अपने शिष्यों के साथ कैलाश चले गये। यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर चिन्ता और शोक से विह्वल हुये। वे अपने भाइयों से कहने लगे अब मैं तेरह वर्ष जीकर क्या करूंगा ? यदि जीना ही है तो मैं आज से किसी से भी कठोर बात नहीं कहूंगा। भाई बन्धुओं की इच्छानुसार उनके कथनानुसार कार्य करूंगा। अपने पुत्र और शत्रु के साथ एकसा बर्ताव करूंगा और मुझसे कोई भेदभाव नहीं होगा। यह भेदभाव ही लडाई की जड है। युधिष्ठिर नियम से पितरों का तर्पण कर देवताओं की पूजा करते। सबके चले जानेपर दुर्योधन और शकुनि धर्मराज युधिष्ठिर के पास इन्द्रप्रस्थ में रहे।

८) वैर का बीज द्रौपदी की कूट हंसी और व्यंग बाण

इन्द्रप्रस्थ में दुर्योधन शकुनि से कहता है मुझे एक तो कारण बताइये मामाश्री अब हम यहां किस अपमान की प्रतीक्षा में रुके हैं ? कर्ण बोला मामाश्री चाहे तो रुक जाये और दुर्योधन तुम्हारा भी जी चाहे तो तुम भी रूक सकते हो परन्तु मैं महाराज के साथ जा रहा हूं। दुशासन बोला जी तो मेरा भी नहीं लग रहा है यहां पर। शकुनि बोला तो फिर तुम सब चले जाओ परन्तु मैं अभी नहीं जाऊंगा। अब हम किसी कोई अपमान की प्रतीक्षा नहीं कर रहे है प्रिय दुर्योधन। मैं तो केवल कृष्ण के जाने की प्रतीक्षा कर रहा हूं। कर्ण बोला कृष्ण की किसलिये ? शकुनि ने कहा हां कर्ण कृष्ण की। कर्ण ने फिर पूछा कृष्ण के जाने से हमें क्या लेना देना? शकुनि बोला कृष्ण के आने जाने से ही तो हमें सब कुछ लेना देना है अंगराज कर्ण क्योंकि वासुदेव कृष्ण के अतिरिक्त शकुनि के कांटे का मन्त्र कोई नहीं जानता। दुर्योधन बोला लो अब तो वासुदेव भी चले गये। और पितामह के साथ पिताश्री भी। अब बताइये। शकुनि बोला बताऊंगा नहीं भान्जे। अब तो मेरा अन्तिम खेल प्रारम्भ होनेवाला है। तुम चुपचाप बैठ जाओ और देखते रहो। अब मेरी और सम्राट युधिष्ठिर की चौसर जमेगी। सम्राट युधिष्ठिर। दुर्योधन बोला चौसर मामाश्री। क्या आप यहां चौसर खेलने के लिये रूके हैं। शकुनि बोला चौसर का नाम इतने अनादर से मत लिया करो प्रिय दुर्योधन। यह तो मेरे जीवन भर की साधना है पुत्र। यह जो पांसे है देख रहे हो ना ये पांसे नहीं मेरी सेना है और इतना याद रहे कि तुम्हारे मामा की सेना आज तक हारी नहीं। कभी नहीं। शकुनि के पांसे कपट के पांसे थे। हस्तिनापुरवालों ने गान्धार नरेश सुबल और उनके पुत्र शकुनि को बन्दीगृह में डाल दिया था तब राजा सुबल ने अपने पुत्र शकुनि से कहा था मेरे मरने के पश्चात मेरी अस्थियों का विसर्जन मत करना और उनके चौसर के पांसे बना डालना। वह तुम्हारे विजयश्री के लिये सदा उपयोगी होंगे। इन्ही अस्थियों के बने पांसों से शकुनि कपट द्यूत क्रीडा करता था।

इन्द्रप्रस्थ में मनोरंजन के लिये चौसर का खेल शुरु होता है। शकुनि, दुर्योधन और कर्ण एक तरफ बैठे हैं तो दूसरी ओर

युधिष्ठिर, अर्जुन और सहदेव बैठे हुये हैं। युधिष्ठिर को भी पांसे खेलने का बहुत शौक था। खेल में युधिष्ठिर जीत रहा है। अर्जुन बोला मामाश्री हमने तो सुना था खेल में पांसे आपका कहा मानते हैं। शकुनि बोला सुनो प्रिय अर्जुन सियार के पहाड तले आ जानेवाली कहावत तो सुनी होगी। आज यह सियार इस पहाड के तले आ ही गया। युधिष्ठिर बोला अब दांव पर क्या लगाइयेगा मामाश्री ? शकुनि बोला गान्धार का राज्य लगा देता हूं। युधिष्ठिर बोला नहीं मामाश्री राज्य रणभूमि में हारे या जीते जाते है, चौसर की भूमि पर नहीं। शकुनि बोला तो फिर यह रही एक हजार स्वर्णमुद्राओं का दांव। अब तुम पांसा फेंको और मैं इन्हे आदेश दूंगा। युधिष्ठिर बोला नहीं मामाश्री। पांसे भी आप ही फेंकिये ताकि यह कहने को ना रहे पांसे खेलने का अवसर नहीं मिला इसलिये हार गये। शकुनि बोला यह कहकर के तो तुम बहुत बडी भूल कर रहे हो सम्राट युधिष्ठिर। तुम्हे पता होना चाहिये कि पांसे तो मेरा सदा से ही कहना मानते आ रहे हैं। अब देखो तुम्हारी यह गोटी पिटने के लिये सात की आवश्यकता है सात ही आयेगा। शकुनि पांसे खेलता है। युधिष्ठिर बोलता है सात नहीं आया मामाश्री। सब लोग हंसते है। दुर्योधन अपनी हार से क्रोध में उठकर वहां से अपने कक्ष में चला जाता है। शकुनि बोला यौद्धा को तो हारना भी सीखना चाहिये परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि द्रोण ने अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन को न जीतना सिखाया और न ही हारना परन्तु इतना अवश्य कहुंगा प्रिय युधिष्ठिर से शकुनि को द्यूत में हराने का अर्थ है कि तुम द्यूत के भी सम्राट हो। आज तो तुम्हारे जुए का राजसूय यज्ञ हो गया। शकुनि हंसता है और कहता है तुम महान हो युधिष्ठिर।

जानबूझकर हारना भी शकुनि की चाल, हार बुनेगी अब यही कपट द्यूत का जाल।

दुर्योधन क्रोध से उठकर राजभवन में अपने कक्ष में बैठा प्रतीक्षा कर रहा है कि शकुनि आता है। दुर्योधन बोलता है आईये मामाश्री स्वागतम्। विराजिये। स्थान ग्रहण करें। तो आपकी और सम्राट युधिष्ठिर की चौसर जम गई मामाश्री और आपके पांसो की सेना जो कभी हारना जानती ही नहीं मैंने उनका जीतना भी देख लिया मामाश्री। मैं तो क्षमा चाहता हूं मामाश्री। आज सबेरे आपके चौसर का नाम बडे अनादर से लिया क्योंकि चौसर तो आपके जीवन भर की साधना है। रणभूमि है। शकुनि बोला युद्धनीति कहती है पुत्र कि कभी कभी जीतने के लिये हारना भी आवश्यक है। और यही हार हमें जीतने का मार्ग दिखायेगी। आज सबेरे मैंने तुमसे यह नहीं कहा था कि मैं दांव खेलने जा रहा हूं। मैंने तो वास्तव में तुमसे यह कहा था कि अब मेरा अन्तिम खेल आरम्भ होनेवाला है और तुम चुप चाप बैठो और देखते रहो परन्तु तुम्हे तो चुप रहना आता ही नहीं पुत्र। बीच में ही बोल पडते हो। मुझे सोचने भी नहीं देते पुत्र दुर्योधन। मुझे तनिक विचार करना है। अब तुम जाओ और मय दानव का बनाया हुआ राजसभा गृह देख आओ। बडा अद्भुत भवन है बडा ही अद्भुत। दुर्योधन बोला जी हां मामाश्री। आप केवल विचार ही करते रहियेगा मैं चला। शकुनि कहता है प्रिय दुर्योधन...

दुर्योधन मय दानव निमित्त सभागृह देखने निकला रास्ते में सोचता है इस बंजर खांडव प्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ बना डाला और इन्द्रप्रस्थ में यह मायावी महल। सचमुच अद्भुत है, उस मय दानव का चमत्कार, आश्चर्य है। पांडवों के चरणों में बहती चली आती लक्ष्मी को देख देख कर दिन रात मन ही मन ईर्ष्यावश जलता रहा। दुर्योधन के सम्मुख अपने वैभव के प्रदर्शन का इससे श्रेष्ठतर और शालीन मार्ग कौनसा ? दुर्योधन ने मय दानव का कला कौशल देखा उसने देखा स्थान स्थान पर दास दासियों के दल नियुक्त किये हुये हैं। उस भवन में प्रवेश करने के पश्चात उसे सामने एक द्वार दिखाई दिया जिससे वह प्रविष्ट होकर निकलना चाहता था वहां से निकलने का प्रयत्न किया तो उसका सिर जा टकराया और वह भूमिपर गिर पडा। शीघ्रता से उठ खडा हो उसने देखा जिसे द्वार देखकर भ्रम हुआ वह तो मात्र स्फटिक की पारदर्शी दीवार है। दुर्योधन ने हथेली से उसे टटोला और फिर महसूस किया अरे यहां तो दीवार है द्वार तो है ही नहीं जिसके आर पार से देखा जा सकता था। भ्रम उत्पन्न करने के लिये उसके दोनों ओर किवाड लगाये हुये खुले हुये थे। खुले किवाडों को देखकर लगता था कि वहां द्वार है। दीवार

पारदर्शी थी इसलिये दोनों ओर आर पार दिखाई दे रहा था और खुले द्वार का बडा ही जीवन्त दृष्य बन रहा था। उस सभा में एक स्थल पर बडे बडे किवाड देखकर धक्का देकर खोलने का प्रयत्न करने लगा तो फिर गिरने जैसा हुआ। उसे बार बार भ्रम होने लगा। एक जगह उसे जलती हुई आग दिखाई दे रही थी वह स्थल चमकता हुआ स्फटिक मणि का था वहां कोई आग न थी। एक जल का सरोवर स्थल आभास हो रहा था तो दुर्योधन अपने वस्त्र को ऊपर उठाकर चला वहां जल न था जमीन थी। दासी ने सूचित किया युवराज यह स्फटिक मणि का स्थल है। आगे चला तो उसे एक स्फटिक मणि का स्थल का फर्श था उसने जैसे ही पग कदम आगे बढाया द्वारपाल ने सूचना दी सावधान पर इतने में वह स्थल समझकर चलना चाह रहा था कि भ्रमवश व जल के उस सरोवर में गिर गया और वस्त्रोंसहित भीग गया। उसे उस स्थान पर जल होने की जगह फर्श का भ्रम हुआ। उपर द्रौपदी झरोखें में खडी देख रही थी वह दुर्योधन को जल में गिरते देखकर जोर जोर से खिलखिला कर हंस पडी और बोल उठी अन्धे का पुत्र अन्धा। द्रौपदी की इस हंसी से और इस व्यंग बाण से दुर्योधन ने अपना भयंकार अपमान समझा और मन ही मन प्रतिशोध की भयंकर ज्वाला भडकी। अत्यन्त क्रोधित हो वह दास और द्वारपालों से मारपीट करने लगा। द्रौपदी की यह हंसी और उसका व्यंग बाण महाभारत होने का एक कारण बना। यदि द्रौपदी चुप रह जाती उस समय तो शायद महाभारत नहीं होता परन्तु अब तो जो होना था सो हो चुका। होनी अत्यन्त ही बलवान है। यह अद्भुत वास्तु देखकर दुर्योधन के मन में अपमान की ज्वाला, अत्यधिक पीडा देने लगी और वह वहां उपस्थित सेवकों के साथ मारपीट करने लगा। उसी समय कर्ण वहाँ आया और मारपीट करते दुर्योधन को वहां से अलग कर बोला क्रोध कोई वस्त्र नहीं है जो उतारकर दास-दासियों पर फेंका जाये। क्रोध तो उसी पर उतारा जाये जो क्रोध का कारण हो। मुझे बताओ मित्र बात क्या है? यह कहकर कर्ण दुर्योधन को अलग स्थान पर ले गया।

दुर्योधन बोला क्या बताऊं मित्र एक नागिन मुझे डस कर उतर गई है। जिसका विष मेरी रगों में उतर कर रिस रहा है। कर्ण बोला यह तुम क्या कह रहे हो मित्र ? कैसी नागिन ? कैसा विष ? दुर्योधन बोला मैं अपमान की अग्नि में जल रहा हूं मित्र और यह जलन मुझसे सही नहीं जा रही है। यह अग्नि मेरे भीतर ही भीतर धधक रही है और यदि यह अग्नि मुझे भस्म नहीं कर सकी तो इससे बचने के लिये मैं स्वयं अग्निकुंड में कूद पडूंगा। अपमान का यह कलंक मेरे सिर पर किसी वृक्ष की भांति आ रहा है जो हरेक क्षण के साथ बढते ही जा रहा है और मुझे बचाव का कोई मार्ग भी दिखाई नहीं दे रहा। कर्ण बोला यदि अपमान कोई वृक्ष हो तो तुम्हारा यह मित्र उसे जड से उखाड देने की क्षमता रखता है। यह अपमान अग्नि का कोई सागर है तो तुम्हारा यह मित्र अपने बाणों की वर्षा करके उस अग्नि के सागर को ठंडा कर देगा। यदि और... दुर्योधन बोला मुझे तुम्हारी मित्रता पर गर्व है। मैं जानता हूं आवश्यकता पडेगी तो तुम मेरा जीवनकाल बढाने के लिये स्वयं अपना जीवन दे दोगे। यदि सामने मेरी मृत्यु खडी होती तो तुम उसे मेरे स्थान पर मरने के लिये भी तैयार हो जाओगे परन्तु नहीं यह अपमान का क्षेत्र है। यदि अपमान का बदला स्वयं नहीं लिया गया तो घाव भरने की जगह घाव गहरा हो जाता है। कर्ण बोला मेरी तो समझ में नहीं आता कि पृथ्वी पर कौन ऐसा है जो तुम्हारा अपमान करने का साहस कर सके ? महावीर महारथी सर्वश्रेष्ठ गदाधर दुर्योधन का अपमान स्वयं इन्द्र भी नहीं कर सकता। दुर्योधन बोला मेरा अपमान किया है उस पांच पतियोंवाली द्रौपदी ने और मैं उससे अपने अपमान का बदला अवश्य ले कर रहूंगा मित्र। उसका वह बाण मेरे हृदय में अटका हुआ है जो उसने अपने स्वयंवर में तुम्हारी ओर चलाया था। कर्ण बोला उसने मेरा अपमान नहीं किया था मित्र बल्कि उसने तो मुझे राज्यसभा में मेरा स्थान स्मरण कराया था। तुम्हारी कृपा से अंगराज होने के पश्चात ही। सूतपुत्र तो मैं हूं ही और तब तक सूत पुत्र ही रहूंगा जब तक स्वयं मेरी माता आगे बढकर जगत को मेरा परिचय न करवा दे। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक तुम्हारा यह मित्र एक डूबा हुआ सूर्य है और एक डूबा हुआ सूर्य ही रहेगा। अपने अन्धेरे की गुफा का बन्दी। इसलिये मेरे मान अपमान की बात मत करो परन्तु द्रौपदी को तुम्हारे अपमान का दंड अवश्य ही मिलना चाहिये। मुझे आदेश दो कि मैं तुम्हारे घाव पर लगाने के लिये इन्द्रप्रस्थ का भस्म ले आऊं और यदि

स्वयं बदला लेना चाहते हो तो सेना लेकर चलते हैं और इन्द्रप्रस्थ की ईंट बजा दे। शकुनि बोला तुम दिन रात रणभूमि में मत खडे रहा करो अंगराज। यौद्धा होने का यह अर्थ नहीं है कि न दिन देखो न रात और धनुष पर बाण लगाये खडे रहो। कर्ण बोला फिर अपमान का बदला कैसे लिया जाता है मामाश्री ? शकुनि बोला बुद्धि से। बुद्धि से बढकर न कोई शस्त्र होता है और न ही कोई अस्त्र। अरे मैं तो यहीं कहूंगा कि जीजाश्री के अनुज पुत्रों ने राजसूय यज्ञ कर ही लिया है। हस्तिनापुर को भी चाहिये कि उनके सम्मान में एक भव्य समारोह आयोजित करे। जब समारोह हो जाये तो चौसर तो जमेगी ही। सम्राट युधिष्ठिर से मैं एक बार हार ही चुका हूं। मुझे एक अवसर और देना चाहिये। मैं तुम्हे वचन देता हूं प्रिय दुर्योधन की अबकी बार द्यूत में सम्राट युधिष्ठिर को कंगाल न बना दिया तो वनवास ले लूंगा। अरे इन्द्रप्रस्थ में मैं बेकारण ही नहीं हारा हूं। इसी हार से तो तुम्हारी जीत का मार्ग खुलेगा। कर्ण बोला मुझे तो आज्ञा दो मित्र। शकुनि बोला हां तुम्हे तो चले जाना ही चाहिये अंगराज। यही समझदारी की बातें है जो तुम्हारी समझ में कभी नहीं आती। कर्ण बोला मेरे शब्द कोष में षडयन्त्र का अर्थ समझदारी नहीं है। प्रणाम दुर्योधन। शकुनि बोला तुम्हारा यह मित्र है बडा मूर्ख। मैं तो इसे इसलिये झेलता हूं पुत्र कि तुम्हारे प्रति उसकी निष्ठा का मुझे पूरा विश्वास है। हां राजनीति में ऐसे ही मूर्खों का एक अपना अलग ही स्थान होता है। जब चाहो इन्हे बाण बनाकर किसी की ओर की तरफ चला दो और फिर चौसर की गोटी बनाकर पिटवा डालो। तो मैं यह कह रहा था पुत्र कि मेरी इन्द्रप्रस्थ की हार से ही तुम्हारी जीत का मार्ग निकलनेवाला है और तुम यह भी देख लोगे कि यह मेरे पांसे केवल पांसे नहीं है, यह मेरी सेना है। इन्होने हारना तो कभी सीखा ही नहीं। दुर्योधन बोला नहीं मामाश्री वे इतने मूर्ख नहीं है। वे चौसर खेलने कभी नहीं आयेंगे। शकुनि बोला वे अवश्य आयेंगे भान्जे क्योंकि कोई भी क्षत्रिय युद्ध और द्यूत के आमन्त्रण को अस्वीकार कर ही नहीं सकता। यह तो क्षत्रिय मर्यादा है भांजे और पांडव तो मर्यादा भंग कर ही नहीं सकते और फिर यह आमन्त्रण तो ज्येष्ठ पिताश्री की ओर से जायेगा। पांडव यहीं से इन्द्रप्रस्थ लेकर गये थे भान्जे और पांडव यहीं पर इन्द्रप्रस्थ देकर जायेंगे।

शकुनि अपने भान्जे की विकलता ताडकर बोला पर दुर्योधन तुम्हारी सांसे इतनी लम्बी लम्बी जोरों से क्यों चल रही है ? दुर्योधन ने कहा मामाश्री धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन के शस्त्र कौशल से सारा भूमंडल अपने अधीन कर लिया है और उन्होने इन्द्र के समान निर्विघ्न राजसूय यज्ञ सम्पन्न कर लिया है। उनका यह ऐश्वर्य देखकर मेरा यह शरीर रातदिन प्रतिशोध के लिये ईष्याग्नि में धधकता रहता है। कृष्ण ने सबके सामने शिशुपाल का वध कर दिया परन्तु किसी भी राजा की चूं तक करने की हिम्मत तक नहीं हुई। मेरी मुश्किल तो यह है कि मैं अकेला उनकी राज्य लक्ष्मी को प्राप्त कर नहीं सकता और मुझे मेरा अपना सहायक कोई नहीं लगता। युधिष्ठिर का महान ऐश्वर्य देखकर मेरे मन में यहीं विचार आता है कि निश्चय प्रारब्ध ही प्रधान है और पुरुषार्थ व्यर्थ। हमने पहले पांडवों के विनाश का प्रयत्न किया था परन्तु वे सभी विपत्तियों से बच निकले और दिनों दिन उन्नत होते जा रहे हैं। यही तो दैव की प्रधानता है और पुरुषार्थ की निरर्थकता है। दैव की अनुकूलता उनपर है इसीसे उनका उत्थान हो रहा है। मैं क्रोध की आग में झुलसते जा रहा हूं। मन हो रहा है कि अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूं। शकुनि बोला दुर्योधन अपने भाग्यानुसार पांडव अपने प्राप्त भोगों को भोग रहे हैं उसमें तुम कुछ भी नहीं कर पाओगे भान्जे फिर भी हमारा अपना खेल है। तुम्हारा यह समझना ठीक नहीं है कि तुम्हारा कोई सहायक नहीं है। तुम्हारे सभी भाई तुम्हारे अधीन एवं अनुयायी है। महाधनुर्धर द्रोण, अश्वत्थामा, सूत पुत्र कर्ण, महारथी कृपाचार्य, राजा सोमदत्त तथा उसके सब भाई तुम्हारे ही पक्ष के है। तुम इनकी सहायता से सारा भूमंडल जीत सकते हो। दुर्योधन बोला आपके कहने पर तो मैं अन्य राजाओं को साथ लेकर पांडवों को जीत लूंगा और भूमंडल मेरा हो सकता है पर उस द्रौपदी का क्या जिसने मुझे अपमान का घाव दिया। शकुनि बोला दुर्योधन कृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, द्रुपद और धृष्टद्युम्न आदि को तो युद्ध में जीतना बडे बडे देवताओं की सामर्थ्य नहीं है। ये सब महारथी, श्रेष्ठ धनुर्धर अस्त्र विद्या में कुशल और उत्तम यौद्धा हैं। युधिष्ठिर को द्यूत का बडा

शौक है पर वह खेलने में कोई निपुण नहीं है और मेरे समान जुआ खेलने में इस पृथ्वी पर तो क्या त्रिलोकी में भी कोई नहीं है क्योंकि पांसे भी मेरी आज्ञानुसार चलते हैं। मैं युधिष्ठिर का सारा राज्य और वैभव जीत कर दे दूंगा। ये सब बातें तुम अपने पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र से जाकर कहो उनकी आज्ञा मिलने पर द्यूत क्रीडा में मैं उन्हे अवश्य जीत लूंगा। दुर्योधन बोला परन्तु पिताश्री से अनुमति मिलना बहुत कठिन है। शकुनि ने कहा तब तो तुम अपने पिताश्री के पुत्र मोह को भली भांति जानते ही नहीं। यदि तुम कुछ चाहो या मांगो और वे तुम्हे ना दें, यह तो कभी हो ही नहीं सकता भान्जे और यह भी मत भूलो कि उनके हृदय में इन्द्रप्रस्थ का चोर कहीं न कहीं अवश्य बैठा है। वे इन्द्रप्रस्थ गये अवश्य थे पर वे वहां से प्रसन्न मन से नहीं लौटे। सम्राट युधिष्ठिर ने उनसे उनका एक स्वप्न छीन लिया है। वो तो सदैव यही चाहते थे कि तुम्हारा राजसूय यज्ञ हो। दुर्योधन बोला तो क्या वो मान जायेंगे। शकुनि बोला तुम कह कर देख लो पुत्र हाथ कंगन को आरसी क्या ? तुम चिन्ता ना करो पुत्र दुर्योधन हम अभी महाराज के पास चलेंगे।

दुर्योधन शकुनि सभी युधिष्ठिर से अनुमति लेकर हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान कर गये। दुर्योधन का मन संकल्पों से भर गया। पांडवों की प्रसन्नता, राजाओं की अधीनता और आबाल वृद्धों की उनके प्रति सहानुभूति देखकर दुर्योधन के चित्त में ईर्ष्या ने घर कर लिया और उसके शरीर और चेहरे की कान्ति भी फीकी पड गई। जो काम शक्ति से नहीं होता वही काम छल, बल वह नीति बुद्धि से सहज सिद्ध हो सकता है।

९) शकुनि की पांडवों के साथ कपट द्यूत क्रीडा

सम्राट युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में अपने भवन में बैठे चिंतित मुद्रा में सोच रहे हैं दुर्योधन चला गया। अतिथि अपमानित होकर गया है। उन्हे वेदव्यास के कहे हुये शब्द फिर से स्मरण हो उभर आये। उनके शब्द थे पुत्र यह युग ही उत्पात का युग है जहां शान्ति दुर्लभ है। अधर्म स्वयं को निर्बल पाकर निष्क्रिय पडा रहनेवाला नहीं है। संगठन से अधर्म का दमन करना होगा। धर्म की प्रतिक्रिया के साथ-साथ अधर्म भी संगठित होता है। ईर्ष्या, द्वेष भडकते है और आहत अहंकार अनर्थ करने को तत्पर होता है। व्यासजी ने प्रकृति की प्रक्रिया व सम्भावनाओं के बारे में बताया था। जिस यज्ञ भवन में धर्म की स्थापना हो रही थी, संकल्प हो रहे थे वहीं भयभीत अधर्म का भी पोषण हो रहा था। शिशुपाल वध उसी का प्रमाण है। उसके संगी साथी, मित्र तथा सुहृद ही नहीं पांडवों के सभी शत्रु तथा कथित विरोधी संगठित होंगे। व्यासजीने कहा था दस्यु उसी को लूटता है जिसके पास धन होता है, निर्धन को लूट कर क्या ले लेगा। इसलिये राजाओं के संगठन सम्राटों के विरुद्ध ही बनते है इसलिये सावधान रहना। तुम्हारा यह राज्य, तुम्हारा धन वैभव, तुम्हारा अधिकार ये सब किसी को चुभे नहीं। तुम अपनी ओर से अपना व्यवहार कभी भी उग्र और आकमण मत होने देना। अपनी ओर से सदैव शान्ति बनाये रखना। यह मेरा आभास ही है और आभास का कोई प्रमाण नहीं होता। मेरा अनुमान है कि तुम्हारे इस यज्ञ तथा स्नेह सौहार्द्र से दुर्योधन अप्रसन्न है। दुर्योधन उन लोगों में से है जो या तो भय के कारण प्रेम करते हैं या लोभवश। तुमसे उसे कोई भय नहीं है इसलिये वह तुमसे प्रेम नहीं करता। उसके मन में तुमसे कोई लोभ भी नहीं है। वह तो सदा ही कृष्ण से भयभीत है। धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना और अपने राज्य में शान्ति बनाये रखना बार बार व्यासजी के शब्दों की ध्वनि युधिष्ठिर के कानों में टकरा रही थी और युधिष्ठिर चिन्तन, मनन करते हुये अपने कक्ष में टहल रहे थे इतने में ही पांचाली द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर के पास राजभवन कक्ष में आई और बोली यदि हस्तिनापुर वालों के चले जाने का इतना ही दु:ख है, मन को पीडा हो रही है तो कुछ दिनों के लिये हस्तिनापुर चले चलते हैं। ज्येष्ठ माताश्री के भी दर्शन कर लेंगे। युधिष्ठिर बोला समस्या उनसे मिलने या बिछुडने की नहीं है पांचाली। द्रौपदी बोली तो फिर समस्या क्या है बताइये आर्य पुत्र ? द्रौपदी को इसका पता नहीं था कि उसकी एक हंसी भारत देश, भरत वंश व उसके इतिहास, उसकी मर्यादा उसके वर्तमान और उसके भविष्य को कितनी महंगी पडनेवाली है ? लेकिन अब तो वह हंस चुकी है और जैसे कमान से निकला

तीर वापिस नहीं लिया जा सकता उसी तरह द्रौपदी अगर चाहे भी तो उस हंसी को वापिस नहीं लौटा सकती। उसी हंसी ने युधिष्ठिर को परेशान कर रखा था। द्रौपदी के पूछने पर युधिष्ठिर ने पूछा जब दुर्योधन माया महल के जल कुंड में गिरा था तो क्या तुमने हंसकर यह कहा था कि अन्धे का पुत्र अन्धा होता है ? द्रौपदी बोली हां महाराज कहा तो था और कहने के पश्चात यह ध्यान भी आया कि मुझे यह नहीं करना चाहिये था। दुर्योधन आपके अनुज हैं और यह कहकर मैंने आपके ज्येष्ठ पिताश्री का भी अपमान कर दिया। मुझे उचित दंड अवश्य दें पर इतने दु:खी मत होईये। युधिष्ठिर बोला ऐसे अपराधों के लिये दंड नहीं दिया जाता पांचाली। ऐसे अपराधों के लिये तो प्रायश्चित करना पडता है। दुर्योधन उस समय हमारा अतिथि था चाहे वह हमारा कितना भी वैरी रहा हो और अतिथि तो भगवान का स्वरूप होता है। द्रौपदी बोली अपना दोष तो मान लिया है मैंने। युधिष्ठिर ने कहा मैं जानता हूं कि तुम अपना दोष स्वीकार कर रही हो परन्तु मेरी समस्या यह है कि क्या तुम्हारे दोष मान लेने से यह समस्या समाप्त हो जायेगी। क्या इस समस्या का समाधान यही है कि तुमने अपना दोष मान लिया है। दुर्योधन को तुमने उसके अभिमान के शिखर से गिराया है। नि:सन्देह उसे बहुत चोट आई होगी। अनुज दुर्योधन उन लोगों में से है जो उन घावों को कभी याद नहीं करते जो उन्होने दूसरों को दिये है और उन घावों को कभी नहीं भूलते जो दूसरों ने उनको दिये हैं। हो सकता है कि तुम्हारी यही एक हंसी इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर दोनों को ही बहुत महंगी पड जाये।

बोल अमोलक बोल हैं, बोल सके तो बोल, पहले भीतर तौलकर फिर मुख बाहर खोल।

धृतराष्ट्र अपने भवन में अपने कक्ष में लेटे हुये हैं। शकुनि वहाँ आता है। शकुनि को देखकर धृतराष्ट्र उठ बैठकर शकुनिसे कहता है आइये भ्राताश्री गान्धार नरेश विराजिये। शकुनि ने प्रणाम किया और बोले मेरी समझ में यह नहीं आता महाराज कि आप सबकी चालें पहचान लेते है परन्तु स्वयं अपनी चाल नहीं पहचान पाते ? धृतराष्ट्र बोला मैं समझा नहीं आपका अभिप्राय भ्राताश्री शकुनि। शकुनि बोला जो आप समझना चाहते हो आप बिना किसी के कहे ही समझ जाते हैं महाराज और जो आप नहीं समझना चाहते उसके लिये कोई कुछ भी कर ले आप उसे नहीं समझते फिर भी यह बतलाना मेरा कर्तव्य है कि दुर्योधन की मनोदशा अच्छी नहीं है। वह दिनोंदिन दुर्बल हो रहा है और पीला पड रहा है। आप उसके शत्रु जनित शोक, चिन्ता और हार्दिक सन्ताप का पता लगाइये। नेत्रहीन होना धृतराष्ट्र के लिये सदा ही असुविधाजनक रहा किन्तु जब जब उसे अन्य लोगों से यह सूचना मिली कि युवराज दुर्योधन उद्विग्न, उदास अथवा अशान्त है तो धृतराष्ट्र को सचमुच में वंचित होने का अनुभव हुआ। धृतराष्ट्र ने शकुनि से पूछा क्या हुआ मेरे पुत्र को ? शकुनि बोला यह तो आप भली भांति जानते है कि उसे क्या हुआ है? उसे इन्द्रप्रस्थ का रोग हो गया है और इस रोग का उपचार भी इन्द्रप्रस्थ ही है। आप उसके पिता हैं। आप उसके हार्दिक सन्ताप का पता क्यों नहीं लगाते जीजा महाराज ? हो सकता है कि उसके रोग को पहचानने में मुझसे कोई भूल हो गई हो। धृतराष्ट्र बोला मैं कैसे पता लगाऊं भ्राता शकुनि ? इन्द्रप्रस्थ से लौटने के बाद तो वो मेरे पास कोई एकाध बार ही आया है। आजकल उसकी ओर से गान्धारी भी बहुत चिंतित है। शकुनि बोला केवल चिंतित होने से कुछ नहीं होता जीजाश्री महाराज। धृतराष्ट्र बोला अब मैं उसे इन्द्रप्रस्थ तो दे नहीं सकता। शकुनि बोला वो तो उसके लिये संजीवनी बूटी है। धृतराष्ट्र ने कहा नहीं भ्राताश्री शकुनि। यह पांडवों के साथ अन्याय है वो मैं करना नहीं चाहता और यदि यह अन्याय मैं करना चाहूं भी तो भी यह सम्भव नहीं है। अनुज पुत्र बहुत शक्तिशाली हो चुके हैं। शकुनि बोला ये तो आप ठीक कह रहे हैं फिर भी हम दुर्योधन को यों इस प्रकार घुलने तो नहीं दे सकते ना। वो मेरी बहिन का ज्येष्ठ पुत्र है उसके मन बहलाव का कोई प्रयत्न अथवा प्रबन्ध तो कर सकते हैं। धृतराष्ट्र बोले अवश्य भ्राता शकुनि।

इतने में ही दुर्योधन वहां आता है। धृतराष्ट्र बोला मन बहलाव के लिये आप जो कुछ कहेंगे वो मैं करने के लिये तैयार हूं।

शकुनि बोला लो दुर्योधन भी आ गया। अब तो यह आप स्वयं दुर्योधन से ही पूछ लीजिये जीजा महाराज। धृतराष्ट्र बोला आओ पुत्र दुर्योधन। दुर्योधन ने कहा प्रणाम पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला आयुष्मान भव। आज कितने दिनों के पश्चात पिता के पास आये हो। क्या तुम यह नहीं जानते कि जिस दिन तुम मेरे पास नहीं आते हो और मैं तुम्हारी वाणी नहीं सुनता हूं तो ऐसा लगता है कि वो दिन अकारण गया। दुर्योधन बोला मैं क्षमा चाहता हूं पिताश्री पर बात ही कुछ ऐसी है। धृतराष्ट्र बोला तुम्हारे मामाश्री कह रहे थे कि तुम्हारा स्वास्थ्य और मन अच्छा नहीं है। क्या तुमने राजवैद्य को अपनी नाडी दिखाई ? दुर्योधन बोला मेरे रोग का उपचार राजवैद्य के पास नहीं है पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला परन्तु हुआ क्या है पुत्र ? दुर्योधन बोला मेरा अपमान हुआ है पिताश्री और इस अपमान ने मेरी रातों की नींद छीन ली है। मेरा जी घबराने लगता है। शकुनि बोला तो तुम्हारे मन बहलाव का प्रबन्ध कर देते हैं पुत्र दुर्योधन। मैं तो यह चाहता हूं कि जीजाश्री आपके अनुज पुत्रों ने राजसूय यज्ञ किया है तो क्या हस्तिनापुर का जी यह नहीं चाहता कि अपने सम्राट पुत्र का अभिनन्दन करे। आप उन्हे अवश्य आमंत्रित करें महाराज। दुर्योधन बोला जी हां पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला मैंने तो तुम्हें ध्यान में रखते हुये आमंत्रित नहीं किया था पुत्र। दुर्योधन बोला मैं किसी तरह खा पीकर अपना समय काट रहा हूं। मैं अपने शत्रुओं का वैभव देख कर आया हूं। जिन्हे मैं कंगाल समझता था, जिन्हे भीख मांगने के लिये हस्तिनापुर से निर्वासित कर दिया था वे आज सम्राट हो गये। मैं ईर्ष्या से जल रहा हूं। मुझे कोई भोग आकृष्ट नहीं करता। मेरे हृदय में द्वेष की आग धधक रही है। जिस दिन से मैंने युधिष्ठिर की राज्यलक्ष्मी देखी है मैं दीन दुर्बल हो रहा हूं। जब हम मान चुके थे कि कुरुवंश का सम्पूर्ण साम्राज्य हमारा है, उसका समग्र धन राज्य हमारा है उसमें कोई अन्य भागीदार नहीं है। तब ये पांचों भाई हिमालय से उतर कर आ गये राज्य के स्वामी। हमारे भागीदार ही नहीं सम्पूर्ण राज्य के स्वामी बनकर। मैंने उन्हे देखा था कंगले, भिखमंगे जैसे वन्य पशुओं के चर्म लपेटे हुये। इनकी अवस्था आप तो नेत्रहीन होने के कारण देख नहीं पाये थे पर मैंने देखा। न तो वे सुसंस्कृत थे। उन्होने कभी नगर देखा था न नागरिक, न प्रासाद, न रथ और न सिंहासन न किरीट। कुछ भी तो नहीं जानते थे पहचानते थे सिवाय वृक्षों और वन्य पशुओं के। सभ्यता से दूर के तपस्वियों के आश्रमों में रहे कुछ सूत्रों का ज्ञान था उन्हे। राज संस्कृति से अनभिज्ञ दूर, कोई साधारण परिस्थिति व्यक्ति के जीवन को भी इन्होने नहीं जाना था। वे ही कंगले आज अब असम्भव ऐश्वर्य के स्वामी हो गये। राजसूय यज्ञ कर चक्रवर्ती सम्राट हो गये। धृतराष्ट्र बोला तुम हस्तिनापुर के युवराज हो। धन धान्य, ऐश्वर्य, विलास, सत्ता आदि किसी की भी तो कमी तुम्हें नहीं है। तुम भी उसका सुखपूर्वक भोग करो। कौनसा भोग तुम्हें उपलब्ध नहीं है तुम्हें ? दुर्योधन बोला आप सुख की बात करते हैं। कल जो हमारे द्वार पर हाथ पसारे भीख मांगते आये थे, जो कभी मेरे पैर की धूल के बराबर नहीं थे वे आज चक्रवर्ती हो गये। युधिष्ठिर के यज्ञ में राजाओं ने इतना धन रत्न दिया कि मैंने उसके पहले उतना न देखा न सुना। अपने शत्रु की अतुल धनराशि देखकर मैं बेचैन हो गया हूं। कृष्ण ने बहुमूल्य सामग्रियों से युधिष्ठिर का अभिषेक किया जिसकी जलन आज भी मेरे हृदय में बैठी हुई है पिताश्री।

अर्जुन उत्तर दिशा से दिग्विजय कर अपार धनराशि ले आया। लाखों ब्राह्मणों के भोजन करने पर जो शंख ध्वनि गूंजती थी उसे सुन सुनकर मेरे तो रोंगटे खडे हो जाते थे। युधिष्ठिर के ऐश्वर्य के समान इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर का भी ऐश्वर्य नहीं है। उनकी राज्यलक्ष्मी देखकर मैं अशान्त हो रहा हूं। शकुनि बोला महाराज आप अपने अनुज पुत्रों को यहां आमंत्रित करो निश्चय ही मैं कपट द्यूतक्रीडा से उनको जीत कर उनकी सारी दिव्य सम्पत्ति हर लूंगा। दुर्योधन बोला उन लोगों के आ जाने से मेरा मन भी अवश्य बहल जायेगा पिताश्री। कभी आखेट पर चले जाया करेंगे और कभी चौसर खेल लिया करेंगे। धृतराष्ट्र बोला यदि तुम यह चाहते हो तो मैं उन्हे आमंत्रित कर लेता हूं। हस्तिनापुर निवासी भी यह देख ले कि अनुज पुत्रों को खांडवप्रस्थ देकर मैंने उनके साथ कोई अन्याय नहीं किया था। शकुनि बोला- द्यूत से बढकर मन बहलाव का और कोई साधन है ही नहीं। धृतराष्ट्र

बोला तो यह कहिये भ्राता शकुनि कि इन्द्रप्रस्थ में आपकी हुई हार का बदला लेना चाहते हैं। शकुनि बोला ऐसा चाहने में हानि ही क्या है जीजा महाराज ? धृतराष्ट्र बोला तो ठीक है मैं इस विषय में विदुर से परामर्श कर लेता हूं। दुर्योधन बोला हर विषय में काकाश्री से परामर्श करने की क्या आवश्यकता है पिताश्री ? लगता है काकाश्री से परामर्श किये बिना हम लोग श्वास तक नहीं ले सकते। परन्तु आप चाहे माने या ना माने पिताश्री वे अवश्य ही पांडुओं से मिले हुये है और यदि आप उन्हे आमंत्रित करना नहीं चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण कर सकूं। शकुनि बोला अरे भान्जे ऐसे युद्ध से क्या लाभ जिसमें हार निश्चित हो। दुर्योधन बोला ऐसे युद्ध में लड जाने से यौद्धाओं का मान बढता है मामाश्री। शकुनि बोला प्रिय भान्जे तुम हर बात पर अग्नि की भांति भभक क्यों पडते हो ? यदि महाराज महात्मा विदुर से कोई परामर्श करना चाहते हैं तो कर लेने दो। विदुर नीति भी अपने अनुजों को आमंत्रित करने का विरोध थोडे ही कर सकती है। यह कहकर शकुनि तो वहां से चला गया।

दुर्योधन के दु:ख को सह न सका धृतराष्ट्र, शकुनि ने उल्टा दिये नीतिधर्म के शास्त्र।

जुये को अनेक अनर्थों की जड जानकर धृतराष्ट्र ने विदुर से परामर्श करने का निश्चय कर विदुर को बुलाने के लिये सेवक को भेज दिया। चर के आते ही बुद्धिमान विदुर ने समझ लिया कि अब कलियुग अर्थात कलह का युग प्रारम्भ होने वाला है। विनाश की जडें जम रही है। वे शीघ्रता से धृतराष्ट्र के पास पहुंचे उन्होने बडे भाई धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम निवेदन किया और बोले महाराज की जय हो। धृतराष्ट्र ने कहा आओ प्रिय विदुर बैठो। विदुर बोले जो आज्ञा महाराज। आज महाराज कुछ चिंतित लग रहे है। धृतराष्ट्र बोले दुर्योधन हठ पकड कर बैठा है कि अनुज पुत्र पांडवों को यहां आने के लिये आमंत्रित किया जाये। विदुर बोले यह तो चिन्ता का कोई कारण नहीं हो सकता महाराज। धृतराष्ट्र बोले विदुर तुम अपनी वाणी को सदैव छुरी की धार की भांति धार क्यों बनाये रखते हो ? विदुर बोले मुझे बोलने का और कोई ढंग आता ही नहीं है महाराज अपनी वाणी की धार को छुपाने का प्रयत्न तो वे लोग करते हैं महाराज जिनका कोई निहित स्वार्थ होता है। मेरा निहित स्वार्थ तो हस्तिनापुर की प्रगति और उन्नति में है और कुरु परिवार के मान और सम्मान में है तो फिर मैं आपसे अपनी वाणी की धार क्यों छिपाऊं ? धृतराष्ट्र बोले प्रश्नों के उत्तर तो तुम्हारे वाणी की नोक पर धरे रहते हैं विदुर। विदुर बोले यदि उत्तर का ज्ञान हो महाराज तो उसे तुरन्त दे देना चाहिये क्योंकि समस्या कोई मूल्यवान वस्तु तो होती नहीं इसलिये तुरन्त अपनी उलझन मुझे बताकर सेवा करने का अवसर प्रदान करें महाराज। वैसे दुर्योधन चाहता क्या है ? धृतराष्ट्र बोला वो युधिष्ठिर के साथ चौसर खेलना चाहता है। विदुर बोले राजन मैं तो उसे उचित नहीं मानता। मैं तो जुए के उद्योग को बहुत ही अशुभ लक्षणवाला मानता हूं। कहीं जुए के कारण आपके पुत्र और भतीजों में परस्पर बैर विरोध न हो। धृतराष्ट्र बोला यदि दैव हमारे अनुकूल हुआ तो पुत्र और भतीजों में मेल बना रहेगा और किसी प्रकार का कलह नहीं होगा। पितामह भीष्म, द्रोण एवं मेरी और तुम्हारी उपस्थिति में किसी प्रकार की अनीति भी नहीं हो सकती। विदुर बोले जुआ हारनेवाले की बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है महाराज। वो हारी हुई वस्तुओं को फिर से जीतने के लिये बार बार दांव पर दांव लगाता है। शराबी और जुआरी कभी सच नहीं बोलते और न ही उनकी बात का कभी विश्वास करना चाहिये। वे यह भी सोच नहीं पाते कि खेल को कहां समाप्त किया जाना चाहिये। जीतने वाले के साथ भी यही होता है महाराज। जीत की ललक में वो यह सब भूल जाता है कि खेल को कहां समाप्त करे? दोनों द्यूत की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं महाराज। वैसे तो भाइयों के बीच में चौसर तो कभी बिछने देना ही नहीं चाहिये महाराज। इसीलिये मैं इसे उचित नहीं समझता। फिर जो आपकी आज्ञा। धृतराष्ट्र बोले मैं यह चाहता हूं कि विदुर तुम दूत बनकर स्वयं इन्द्रप्रस्थ जाओ और प्रिय युधिष्ठिर को यहां आकर चौसर खेलने के लिये आमंत्रित करो। विदुर बोले यदि आपने कुरु परिवार के इतिहास के अन्तिम अध्याय को लिखने का निर्णय ले ही लिया है तो महाराज यह सेवक

आपकी आज्ञा का पालन करते हुये इन्द्रप्रस्थ अवश्य जायेगा। धृतराष्ट्र बोला जाओ और उनके यहां आने का शुभ समाचार लेकर आओ। विदुर ने कहा जो आज्ञा और यह कहकर विदुर वहां से चला गया।

विदुर के चले जाने के बाद धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को एकान्त में समझाया और बोले पुत्र विदुर नीति निपुण और ज्ञानी है। वे हमें सही सम्मति ही देंगे। जब वे जुए को अशुभ बतलाते हैं तो तुम मामा शकुनि के द्वारा जुआ कराने का संकल्प छोड दो। विदुर की बात परम हितकारी है। बृहस्पति ने देवराज इन्द्र को जिस नीति शास्त्र का उपदेश किया था, विदुर उसके मर्मज्ञ है। यादवों में जैसे उद्धव वैसे ही कौरवों में विदुर। मुझे भी जुए में विरोध ही विरोध दीख रहा है। जुआ परस्पर की फूट का मूल कारण है। माता-पिता का काम होता है हित अहित की बात समझा देना। तुम्हे वंश परम्परागत राज्य प्राप्त हो गया है। फिर द्यूत में क्या रखा है? इस बखेडे को छोडो। समझने का प्रयत्न करो दुर्योधन। तुम यदि और कितना भी वैभव प्राप्त कर लो, पांडवों की सारी की सारी सम्पदा तुम्हें प्राप्त हो जाये तो भी संसार में तुमसे धनी लोग रहेंगे ही। तुम्हारी सम्पदा इन्द्र, कुबेर की समता तो नहीं कर सकती पुत्र ? तुलना से कोई लाभ नहीं। सुख तो भोग में है। अधिक वैभवशाली लोगों से तुलना करते रहोगे तो अपनी सम्पदा के भोग का भी सुख नहीं पाओगे। दुर्योधन जोरों से फूट पडा और बोला न मैं सन्तोष कर सकता हूं और न पांडवों के उस वैभव को सहन कर सकता हूं। न मेरी कोई इन्द्र और कुबेर से स्पर्धा है और न ही किसी से शत्रुता। उनके पास असीम सम्पदा भी मुझे कष्ट नहीं देगी किन्तु पांडवों को मैं चैन की रोटी खाते भी नहीं देख सकता। मेरे सुख के लिये उन्हे तडफना ही होगा। मेरे मन में उनकी हिमालय से आये भूखे, बिलबिलाते, कंगालों की छवि है, मैं उन्हे वैसे ही देखना चाहता हूं। मेरी धन सम्पत्ति तो बहुत साधारण है। इसमें मैं सन्तोष प्राप्त नहीं कर रहा हूं। मैं युधिष्ठिर की सौभाग्य लक्ष्मी और उसके अधीन सारी पृथ्वी देखकर बेचैन हो रहा हूं। मेरा कलेजा फट रहा है। मेरा कलेजा पत्थर हो रहा है। तभी तो इतनी बातें सह रहा हूं। युधिष्ठिर के यहां नीप, चित्रक, कौकुर कारस्कार और लोहजंघ आदि राजा दासों के समान विनीत भाव से सुश्रूषा टहल कर रहे है। समुद्र के अनेक द्वीपों, रत्नों की खानों और हिमालय के राजा देरी से आये तो उनकी भेंटे अस्वीकार कर दी गयी। हीरों रत्नों और जवाहरात की इतनी राशि एकत्रित हो गई कि उसके ओर छोर का पता तक नहीं चला। मय दानव बिन्दु सरोवर से अनेकों रत्नों को ले आया था और स्फटिक शिलायें बिछाकर बावडी बना दी थी। जिस समय मैंने बावडी को स्फटिक का गलीचा समझकर पैर रखा तो जल में गिर गया उस समय अन्त:पुर की बहुत सी स्त्रियां भी मुझपर हंसने लगी। इससे मेरे चित्त को बडी चोट लगी है। जिन रत्नों के मैंने कभी नाम नहीं सुने थे वे सब पांडवों के पास थे।

समुद्र पार या समुद्र तट के वनों में रहनेवाले बैराम, पारद, आमीर और कितव जाति के लोग जो वर्षा के जल में उत्पन्न अन्न पर जीवन यापन करते है वे अनेकों रत्नों, बकरे, मेढे, गौ, सुवर्ण, खच्चर, ऊंट और तरह-तरह के कम्बल लिये भेंट देने को उत्सुक थे। म्लेच्छाधिपति, प्राग्ज्योतिष नरेश भगदत्त बहुत से अच्छी व ऊंची नस्ल के घोडे उपहार में लेकर आये थे। चीन, शक, हूण, जंगली बर्बर, काले काले हाट, पहाडी नीप एवं अनूप देश के राजा द्वार पर खडे प्रतीक्षा कर रहे थे। कितने ही लोग धावा बोलने वाले हाथी, अरबों घोडों, पद्मों के मूल्यों का सोना उपहार में लेकर आये थे। मेरू और मन्दराचल के बीच में शैलोदा नाम की नदी है उसके दोनों तटों पर बांसों की घनी छाया में खस, एकासन, अर्ह, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिंग, तडंग, परतडंग आदि जातियां बसती है। उन सब के राजा डोलियों में भरभर कर स्वर्ण राशि भेंट करने आये थे। उदयाचल निवासी करूष राज और ब्रह्मपुत्र नद के उभय तट निवासी किरात जो केवल चर्म धारण कर शस्त्र रखते है और कच्चा फल मूल खाते है असंख्य उपहार लेकर आये थे। कितने ही राजा लोग खडे खडे भीतर प्रवेश पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे और द्वारपाल उन्हे यज्ञ के अन्त में आने को कह रहे थे। वृष्णि वंशी श्रीकृष्ण ने अर्जुनका मान रखने के लिये चौदह हजार हाथी दिये। अर्जुन श्रीकृष्ण की आत्मा है और कृष्ण अर्जुन की आत्मा है। जो भी काम अर्जुन को कृष्ण कहते हैं वह उसे तत्काल पूरा कर देता है। अर्जुन

के लिये कृष्ण स्वर्ग का त्याग कर सकते हैं और अर्जुन भी कृष्ण के लिये प्राण न्यौछावर कर सकता है। चारों प्रकार के वर्णों के दिये हुये प्रेमोपहार विजातियों की उपस्थिति और उनके द्वारा मान-सम्मान देखकर मेरा हृदय जल उठता है। राजा युधिष्ठिर कच्चे और पक्के अन्न से जिन लोगों का भरण-पोषण कर रहे हैं उनमें तीन पदम् दस हजार हाथी घोडों के सवार, एक अरब रथी और असंख्य पैदल है। चारों वर्णों में ऐसा कोई नहीं था जिसने भोजन, पान, अलंकार और सत्कार ग्रहण नहीं किया हो। युधिष्ठिर अठ्ठहासी हजार गृहस्थ स्नातकों का भरण-पोषण करते हैं। दस हजार उर्ध्वरिता मुनिगण सुवर्ण पात्रों में प्रतिदिन भोजन करते हैं। मन्त्री व सेवक इत्यादि द्रौपदी के अधीन रहते हैं और वह स्वयं भोजन करने के पूर्व इस बात की जांच पडताल कर लेती है कि कोई अपंग, अपाहिज, काना कुबडा, बौना, लूला लंगडा बिना भोजन किये तो नहीं रह गया न।

पांचालों के साथ पांडवों का सम्बन्ध है और अन्धक तथा वृष्णिवंशी उनके सखा हैं। बाकी सभी राज्य कर देनेवाले सामन्त हैं। बडे बडे सत्य प्रतिज्ञ, विद्वान, व्रती, वक्ता, याज्ञिक, धैर्यशाली धर्मात्मा एवं यशस्वी राजा भी युधिष्ठिर की सेवा में संलग्न रहते हैं। युधिष्ठिर के अभिषेक के समय राजा बाहलिक स्वर्ण मंडित रथ ले आये थे। राजा सुदक्षिणा ने उसमें कम्बोज देश के सफेद घोडे जोते। महाबली सुनीथ ने रास लगायी और शिशुपाल ने ध्वजा दक्षिण देश के राजा ने कवच, मगधराज ने पगडी, वसुदान ने साठ वर्ष का हाथी, एकलव्य ने जूते, अवन्तिराज ने अभिषेक के लिये अनेक तीर्थों का जल लाकर दिया। शल्य ने सुन्दर मूठ की तलवार और स्वर्ण जटित पेटी, चेकिस्तान ने तरकस और काशीराज ने धनुष दिया। पुरोहित धौम्य और महर्षि व्यास ने नारद, असित और देवल मुनि के साथ युधिष्ठिर का अभिषेक किया। उस अभिषेक में महर्षि परशुराम के साथ बहुत से वेद पारदर्शी ऋषि महर्षि सम्मिलित हुये। उस समय युधिष्ठिर देवराज इन्द्र के समान शोभायमान हो रहे थे। अभिषेक के समय सात्यकि ने राजा युधिष्ठिर का छत्र, अर्जुन और भीम ने व्यंजन तथा नकुल सहदेव ने चंवर ढुलाये। वरुण देवता का कालशोधि शंख जिसे ब्रह्मा ने इन्द्र को दिया था और सहस्त्र छिद्रोंवाला अभिषेक पात्र जिसे विश्वकर्मा ने अभिषेक के लिये तैयार किया था उसे श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को दिया और उसी से युधिष्ठिर का अभिषेक हुआ। पिताश्री यह सब देखकर मैं बहुत दु:खी हुआ। अर्जुन ने बडी प्रसन्नता से पांच सौ बैलों की जोडी ब्राह्मणों को दी जिनके सींग सोने से मढे थे। राजसूय यज्ञ के समय युधिष्ठिर की जैसी सौभाग्य लक्ष्मी चमक रही थी वैसी रन्ति देव, माधान्ता, मनु, पृथु, भगीरथ, ययाति और नहुष की भी नहीं रही होगी। इन्ही सब कारणों से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। मुझे चैन नहीं है और मैं दिनों दिन असम्भव हो शोक समुद्र में गोते खा रहा हूं।

दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले पुत्र तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो, पांडवों से द्वेष करना ठीक नहीं है। द्वेषी को मृत्यु तुल्य कष्ट भोगना पडता है। जब वे तुमसे द्वेष नहीं करते तब तुम मोहवश उनसे द्वेष करके क्यो अशान्त हो रहे हो ? उनकी सम्पत्ति किसलिये चाहते हो ? यदि तुम्हे भी उनके समान यज्ञ वैभव की चाह हो तो ऋत्विजों से राजसूय महायज्ञ कराओ। तुम्हे भी राजा लोग अमूल्य उपहार देंगे। दूसरों का धन चाहना तो लुटेरों का काम है। जो अपने धन से सन्तुष्ट रहकर धर्म में स्थित रहता है वही सुखी होता है। दूसरों का धन मत चाहो वत्स। अपने कर्तव्य कर्म में लगे रहो और जो कुछ तुम्हारे पास है उसकी रक्षा करो। यही वास्तव में वैभव का लक्षण है। जो विपत्ति से दबता नहीं, घबराता नहीं वह कुशलता से अपने काम करता है और चाहता है सबकी उन्नति जो सावधान और विजयी है उसे सर्वदा मंगल के ही दर्शन होते है। अरे पुत्र पांडव तो तेरी रक्षा भुजायें है उन्हे काटो मत। उनका धन भी तुम्हारा ही धन है। इस गृह कलह में सदा अधर्म ही अधर्म है। उनके और तुम्हारे पितामह एक हैं। तुम क्यों व्यर्थ में अनर्थ का बीज बो रहे हो ? दुर्योधन ने कहा पिताश्री आप तो बडे अनुभवी हैं। आपने जितेन्द्रिय रह गुरुसेवा की है फिर भी आप मेरे कार्य साधन में बाधा क्यों डाल रहे हो ? क्षत्रियों का प्रधान कर्म है शत्रु पर विजय। फिर इस स्वकर्म में धर्म अधर्म की शंका उठाने में क्या हर्ज ? गुप्त या प्रकार उपाय से शत्रुओं को दबाने का साधन ही शस्त्र है। केवल

मारकाट के साधनों को ही तो शस्त्र नहीं कहते। असन्तोष से ही राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसलिये मैं तो असन्तोष से ही प्रेम करता हूं। सम्पत्ति रहने पर भी उसकी बुद्धि के लिय प्रयत्न करना नीति निपुणता है। जो असावधानता वश शत्रु की उन्नति की ओर से उदासीन रहता है वह उसके हाथों अपना सर्वस्व खो बैठता है। वृक्ष की जड में लगे दीमक अपने आश्रय वृक्ष को ही खा डालते हैं। वैसे ही साधारण शत्रु भी बलवीर्य से अभिवृद्ध होकर बडे बडों का संहार कर डालते हैं। शत्रु की लक्ष्मी को देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिये। हर समय न्याय को सिर पर चढाये रखना भी भार ही है। धन बढाने की अभिलाषा उन्नति का बीज है। पांडवों की राज्य लक्ष्मी पाये बिना मैं निश्चिन्त नहीं हो सकता। मेरो लिये अब मार्ग यही है या तो पांडवों की सम्पति ले लेना अथवा आत्मवध। मेरी वर्तमान परिस्थिति से तो मेरी मृत्यु ही श्रेष्ठ है।

धृतराष्ट्र ने कहा पुत्र मैं तो शक्तिशाली के साथ विरोध करना किसी प्रकार उचित नहीं समझता क्योंकि बैर विरोध से झगडा बखेडा खडा हो जाता है और यह कुल नाश के लिये होगा। दुर्योधन ने कहा पिताश्री पुराने लोग भी द्यूतक्रीडा किया करते थे। उनके न तो कभी झगडा बखेडा होता था और न युद्ध। इसलिये आप मामाश्री की बात मान शीघ्र ही सभा मंडप बनाने की आज्ञा दें। धृतराष्ट्र ने कहा पुत्र मुझे तुम्हारी बात तो ठीक नहीं लगती। तुम मौज से रहो पर देखो कहीं तुम्हें पीछे पछताना नहीं पडे क्योंकि तुम धर्म के विपरीत जा रहे हो। महात्मा विदुर ने अपनी विद्या और बुद्धि के प्रभाव से सारी बातें पहिले ही जान ली। संयोग ही ऐसा है लाचारी है। क्षत्रियों के क्षय का महान भयंकर समय निकट आता दीख रहा है। राजा धृतराष्ट्र ने सोचा कि दैव प्रतिकूल हो रहा है। वह अत्यन्त दुस्तर है। दैव के प्रताप से वे अपने विचार भूल गये। पुत्र मोह से पुत्र की बात मान कर धृतराष्ट्र ने सेवकों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्रता से तोरण सभागृह स्फटिक से बनी हो निर्माण कराओ। उसमें १००० हजार स्वर्ण जटित स्तम्भ तथा वैदूर्य मणि से जडित दरवाजे हो उसकी लम्बाई चौडाई दो दो मील हो। राज आज्ञानुसार कारीगरों ने ऐसी सभा का निर्माण किया।

धृतराष्ट्र दुर्योधन को अच्छी तरह से जानता है। उसकी महत्वाकांक्षायें ही नहीं उसके राग द्वेष भी किसी से छिपे नहीं है। जहां वह पहुंच चुका है वहां से उसे लौटाना सम्भव नहीं है। आज तो वह युवक है, युवराज है, वीर और सक्षम है। जब वह बालक था तब भी उसने ईर्ष्या के वशीभूत होकर भीम को विष खिलाया था और अचेत भीम को बांध कर जल में डुबो दिया था। उसने वारणावत के लाक्षागृह में पांचो पांडवों को कुन्ती समेत अग्निसात करने की योजना बनाई थी और फिर उन्हे मरने के लिये खांडव वन में भेज दिया। धृतराष्ट्र ने अपनी ममता के विरुद्ध कभी न्याय का पक्ष नहीं लिया। वह सदा पिता ही बना रहा, राजा कभी नहीं बन सका। पर उन सारी योजनाओं से दुर्योधन की कोई क्षतित नहीं पर पांडव सदा बचते रहे। पांडवों ने भी अपने पिता के समान ही आचरण किया। खांडव प्रस्थ के खंडहर और वन प्रान्त लेकर ही सन्तुष्ट हो गये और धृतराष्ट्र का पुत्र सारा हस्तिनापुर साम्राज्य और धन वैभव पाकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह इस वैभव के विस्तार की बातें सोचता है जब कि धृतराष्ट्र का मन जितना है उसके भी छीन जाने की जाने की साशंका से भयभीत है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति बढाना चाहता है और सम्पत्ति बढती भी ऐसे ही है। एक की सम्पत्ति दूसरे के पास चली जाती है। लक्ष्मी तो है ही चंचला। जो अपनी लक्ष्मी की रक्षा नहीं कर सकता वह उसे छोड कर चली जाती है। फिर युधिष्ठिर से कुछ बलात तो छीन नहीं रहे है यद्यपि क्षत्रियों से बलात छीनने में भी शूरता ही कहलाती है।

भीष्म विदुर के घर आते हैं। विदुर महाराज धृतराष्ट्र के पास से अभी तक लौटे नहीं है। भीष्म की भेट विदुर पत्नी पारसंवी से होती है और भीष्म पूछते हैं यहां सब कुशल तो है ? इतने में ही विदुर घर पहुंच जाते हैं और भीष्म को देखकर पूछते है आप यहां तातश्री ? आपने यह कैसे जान लिया इस समय मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता पडी है। भीष्म बोले मैं अकेले बैठा हुआ था। मुझे लगा कि माताश्री सामने खडी है और कह रही है पुत्र विदुर के पास जाओ। यहां आया तो पता चला कि तुम्हें धृतराष्ट्र

ने बुला भेजा है। विदुर बोले विदुर होने के कारण आज मैं अपने आपको इतना विवश पा रहा हूं उतना विवश मैंने अपने आपको पहिले कभी नहीं पाया। पारसंवी बोली ऐसा क्या कह दिया ज्येष्ठ श्री ने ? विदुर बोला मैं तुम्हे कितनी बार कहूं कि उन्हे ज्येष्ठश्री नहीं महाराज कहो। भीष्म बोले क्यों ? धृतराष्ट्र तुम्हारा ज्येष्ठ है उसे यही कहा करो और अब इसके प्रश्न का उत्तर दीजिये। ऐसा क्या कर दिया इसके ज्येष्ठ श्री ने ? विदुर बोला महाराज ने मुझे आदेश दिया है कि मैं उनका दूत बनू। दूत बनकर हस्तिनापुर के विनाश को आमंत्रित करने इन्द्रप्रस्थ चला जाऊं। भीष्म बोला तो क्या शकुनि ने फिर से कोई चाल चल दी? विदुर बोला यह अन्तिम चाल है तातश्री और मेरे पास या मेरी नीति के पास उसकी चाल की कोई काट नहीं है क्योंकि मैं किसी क्षत्रिय को द्यूत का आमन्त्रण स्वीकार करने से रोक तो नहीं सकता। भीष्म बोले इसका अर्थ यह हुआ कि नीतियों के आधार बदलने के दिन आ गये। विदुर बोला व्यक्ति की भांति नीति की भी एक आयु होती है और यह ज्ञान तो मुझे आज मिला। भीष्म बोले परन्तु क्या प्रतिज्ञा की भी कोई आयु होती है विदुर ? विदुर बोले होती है तातश्री। प्रतिज्ञा की आयु वो ही होती है जो प्रतिज्ञा करनेवाले की होती है भीष्म बोले मैंने हस्तिनापुर सिंहासन की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करी है विदुर। विदुर बोले नहीं तातश्री। आपने हस्तिनापुर को साक्षी मानकर यह भी कहा था कि हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर जो कोई भी बैठेगा उसमें आप अपने ही पिताश्री की छवि देखेंगे। भीष्म बोले हां मैंने यहीं कहा था परन्तु तुम्हारे कन्धों पर तो विदुर किसी प्रतिज्ञा का बोझ नहीं है। तुम धृतराष्ट्र का सन्देश युधिष्ठिर के पास ले जाकर यों कहना, कहना नहीं आदेश देना कि वो द्यूत के इस आमन्त्रण को अस्वीकार कर दे। विदुर बोले मैं हस्तिनापुर का दूत बनकर जा रहा हूं और मैं मन्त्री की मर्यादा को भंग नहीं कर सकता तातश्री। भीष्म बोले हस्तिनापुर का दुर्भाग्य यही है विदुर जो उसके शुभ चिन्तक है, उससे प्रेम करते है, उसकी पूजा करते है वो सभी किसी न किसी की मर्यादा की डोर से बन्धे हुये है और विवश है। समझ में नहीं आता कि संकट की घडी में यह नगरी सहायता के लिये किसकी ओर देखेगी? अब समझ में आ रहा है कि माताश्री ने मुझे तुम्हारे पास क्यों भेजा है ? वो यह चाहती थी की मैं यह देखलूं कि तुम्हारे जैसा खरा बोल बोलनेवाला विदुर भी विवश हो सकता है। लगता है कि हम होनी को अनहोनी नहीं कर पायेंगे विदुर और मेरा दुर्भाग्य यह है कि यदि युद्ध हुआ तो मैं शकुनि के साथ खडा हुआ दिखाई दूंगा। भगवान क्या मेरे भाग्य में यह अपमान भी लिखा हुआ है ? यह कहकर भीष्म वहां से निकल कर चले जाता है। पारसंवी विदुर के पास आती है। विदुर कहते हैं तुमने आज भारतवर्ष के सबसे घने और छतनार वृक्ष को धराशायी होते हुये देखा है प्रिये और यह वृक्ष टूटकर मेरे ही हृदय पर गिरा है। वासुदेव कृष्ण भी अभी युद्ध में फंसे हुये हैं वरना उन्हीं से कहता।

इस संसार में कोई स्वतन्त्र नहीं है सब दैव के अधीन है। विदुर की इच्छा न होने पर भी धृतराष्ट्र की आज्ञा से विवश हो शीघ्र ही वे इन्द्रप्रस्थ आये। वहां की जनता ने हस्तिनापुर का महामन्त्री जानकर स्वागत पूर्वक धर्मराज युधिष्ठिर के ऐश्वर्यपूर्ण राजभवन में पहुंचाया। द्रौपदी और युधिष्ठिर राजभवन में बैठे हुये हैं इतने में ही चर ने आकर सूचना दी कि हस्तिनापुर के महामन्त्री विदुर पधार रहे हैं। राजा युधिष्ठिर ने उनसे बडे प्रेम से गले लगकर उनका स्वागत सत्कार किया और बोले आप काकाश्री... विदुर ने कहा नहीं सम्राट। नरेश को किसी दूसरे राज्य के राजदूत के चरण स्पर्श नहीं करने चाहिये। युधिष्ठिर बोला आप किसी और राज्य के दूत नहीं है काकाश्री। विदुर बोले यदि मैं राजदूत नहीं होता तो आपको रोकता ही क्यों ? द्रौपदी बोली राजदूत होंगे आप नरेश के लिये, मेरे लिये तो आप काकाश्री ही हैं। आपके चरण स्पर्श अवश्य करूंगी और सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद भी लूंगी। विदुर बोले सौभाग्यवती भव। युधिष्ठिर को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिरने कहा आप विराजिये काकाश्री। अब आप यह बताये काकाश्री आपने आपको दूसरे राज्य का दूत क्यों कहा ? विदुर बोला हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ ये दो अलग अलग स्वतन्त्र राज्य है नरेश और मैं हस्तिनापुर का महामन्त्री हूं। द्रौपदी ने पूछा वहां सब कुशल तो है ना ? विदुर बोले कुशल कहने का तो एक अमोघ शब्द है और स्वयं में कोई परम मूल्य नहीं है। कुशलता को

तो केवल वस्तु की तुला पर ही तौला जा सकता है तो वहां सब लोग कुशल हैं भी और नहीं भी हैं। युधिष्ठिर बोले क्या मेरे अनुज आपका कहा नहीं मानते काकाश्री ? और विस्मय से देखने लगे। विदुर बोले नरेश को किसी राजदूत से ऐसे प्रश्न करना शोभा नहीं देता तो भी आपने पूछ लिया तो उत्तर देना मेरा कर्तव्य हो जाता है। दैव धर्म की दृष्टि से तो वहां कुशल ही है। महाराज का स्नेह तो मेरे लिये आशीर्वाद है। कोई कुमार मेरा विरोध भी नहीं करता और मैं स्वयं भी महाराज की आज्ञा का पालन करता हूं। उन्होने ही मुझे आपकी कुशलता जानने के लिये यहां भेजा है और आप लोगों को हस्तिनापुर में युवराज दुर्योधन के साथ द्यूतक्रीडा करने के लिये आमंत्रित किया है। द्रौपदी ने विदुर की ओर वक्र दृष्टि से देखा और बोली आपसे अधिक किसको यह ज्ञान हो सकता है काकाश्री कि द्यूतक्रीडा से अधिक विनाशकारी कोई रोग नहीं। द्यूत तो वो लाठी है जो पानी को भी अलग कर देती है फिर भी क्या आप उसे उचित समझेंगे ? विदुर बोले जुआ तो विनाश की जड है महारानी। द्रौपदी बोली तो क्या आपने ज्येष्ठ पिताश्री को यह नहीं समझाया? विदुर बोले आपके ज्येष्ठ पिताश्री तो स्वयं ही महाज्ञानी है महारानी। युधिष्ठिर बोले जुआ अवश्य विनाश की जड है पांचाली परन्तु मित्रवत खेले जानेवाला द्यूत जुए की गिनती में थोडे ही आता है काकाश्री और कि मामाश्री शकुनि को भी यह दिखलाना है कि मैं यहां इन्द्रप्रस्थ में केवल संयोग से नहीं जीता था बल्कि इसलिये जीता था कि मैं उत्तम खिलाडी हूं। विदुर बोले जुए में उत्तम खिलाडी नहीं होता नरेश। उत्तम होता है पांसे। सम्राट जुआ सारे अनर्थों का मूल है मैंने इसे रोकने के लिये बहुत प्रयत्न किया परन्तु सफलता नहीं मिली मैं धृतराष्ट्र की आज्ञा से विवश होकर आया हूं। द्रौपदी बोली काकाश्री ठीक कह रहे है। युधिष्ठिर ने पूछा हे महात्मा क्या वहां ज्येष्ठ पिताश्री के पुत्रों दुर्योधन, दुशासन आदि के सिवा और भी कोई खिलाडी आये है। विदुर ने कहा गान्धार नरेश शकुनि पांसे बनाने और फेंकने में निपुण खिलाडी हैं और उनके अतिरिक्त विविशति, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय आदि भी आमंत्रित किये गये है। युधिष्ठिर बोले काकाश्री तब तो इस समय वहां बडे बडे खिलाडियों का जमघट लगा है। यदि ज्येष्ठ पिताश्री मुझे न बुलाते तो द्यूतक्रीडा के लिये कदाचित ही आता। काकाश्री सदैव ठीक कहते है पांचाली परन्तु मैं क्षत्रिय होने के नाते युद्ध की ललकार और द्यूत के निमन्त्रण को कभी अस्वीकार नहीं कर सकता। आप ज्येष्ठ पिताश्री को कह दीजियेगा काकाश्री कि हम उनकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और इसी बहाने पांचाली का हृदय भी नहीं दुखाऊंगा। यदि वो चौसर खेलना चाहता है तो चौसर खेलने में अवश्य हस्तिनापुर आऊंगा। यह कहकर विदुर वहां से वापिस हस्तिनापुर लौट गया।

शकुनि अपने कक्ष में चौसर बिछाये बैठा है और पूजा कर कह रहा है ऐ मेरे पांसो, ओ मेरी सेना इस द्यूतक्रीडा के उपरान्त मैं तुमसे कभी कोई ओर सेवा नहीं लूंगा। मैं तुम्हें अपनी हथेलियों के बन्दीगृह से मुक्त कर दूंगा। यह तो मेरे प्रतिशोध की चरम सीमा है। पांडव अपनी वनवास यात्रा पर इसी द्यूत से निकलेंगे। ओ मेरी सेना। बस एक बार अपने इस शकुनि को दांव में जिता दो बस एक बार। उसी समय दुर्योधन वहाँ आता है और बोलता है मामाश्री ये आप क्या कर रहे है ? शकुनि ने कहा मैं अपनी सेना का उत्साह बढा रहा हूं भान्जे। इन्ही पर तो मेरी यह हार और जीत निर्भर है। दुर्योधन बोला तो द्यूत पांसो पर निर्भर है मामाश्री? शकुनि बोला ऐसा तो केवल हारेनवाले कहते हैं। निपुण खिलाडी तो वो है जो जानता है कि पांसे कैसे गिरेंगे ? निपुण खिलाडी तो अपने प्रतिद्वन्दी के सारे मार्ग बन्द कर देता है और जुआ तो केवल जीतने के लिये खेला जाता है और यह भी मत भूलो भान्जे महत्व केवल लक्ष्य तक पहुंचने का है, मार्ग का नहीं। न्याय और अन्याय जैसे शब्द अर्थहीन है। क्या भरतवंशियों की मर्यादा ने तुम्हारे पिताश्री के साथ न्याय किया था ? गंगा पुत्र भीष्म भी चुपचाप बैठे विदुर नीति का अन्याय देखते रह गये थे। फिर यही अन्याय तुम्हारे साथ हुआ। इस बार गंगा पुत्र भीष्म का मौन पांडवों के पक्ष में रहा और तुम्हारे पूर्वजों के दिये हुये राज्य का आधा भाग तुम्हारे हाथ में से निकल गया जैसे सन्ध्या के हाथ से धूप निकल जाती है। विदुर भी नीति के अच्छे पांसे खेलता है परन्तु तुम्हारे मामाश्री के आगे उसकी नीति नहीं टिकेगी। ये मेरे पांसे है इन्हे सम्हाल कर रखो भान्जे। ये तुम्हारी विजय

के पांसे है। जब द्यूत आरम्भ हो जाये तो इन्हे मेरे हाथ में देकर कहना कि मेरी ओर से मामाश्री खेलेंगे और विदुर इन्ही पांसो से नहीं खेलने देगा भान्जे। नहीं खेलने देगा, परन्तु तुम चिन्ता बिल्कुल मत करना क्योंकि अब तुम्हे रातों में जगानेवाले दिन सदा के लिये समाप्त होनेवाले हैं। इसलिये जाओ और चैन की नींद सो जाओ भान्जे। अब पांडवों और उनके शुभ चिन्तकों की नींद उडने की ऋतु आ गई है। अब देखें सम्राट युधिष्ठिर।

छल ही छल का देवता, छल ही छल का पाप, डर ही डर को पूजता, डरकर अपने आप।

भीष्म के कक्ष में भीष्म के पास विदुर आता है। भीष्म ने कहा विदुर। विदुर बोले आप तातश्री। भीष्म बोले हो आये और तुम सुनकर चुप चाप चले आये परन्तु तुम यह नहीं जानते कि शकुनि द्यूत को क्रीडा नहीं मानता युद्ध मानता है और युद्ध को जीतना भी जानता है। विदुर बोला चौसर तो दुर्योधन खेलेगा तातश्री। भीष्म बोले हां। जुआ दुर्योधन खेलेगा और पांसे शकुनि फेकेंगा। विदुर बोले परन्तु तातश्री। भीष्म बोले बन्द करो अपने परन्तुओं को। युद्ध राजाओं के बीच होता है परन्तु न सेनायें है इसलिये द्यूत सभा में यह प्रश्न उठाने की यह भूल मत करना। यह माना कि तुम धृतराष्ट्र के दूत बनकर गये थे। यदि यह भी माना कि तुम द्यूत की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे परन्तु तुमने यह तो सोचा होता विदुर कि तुम हस्तिनापुर के केवल महामन्त्री ही नहीं हो तुम कौरवों और पांडवों के काकाश्री भी हो। क्या हस्तिनापुर के प्रति तुम्हारी निष्ठा नहीं। तुमने यह नहीं बताया युधिष्ठिर को सावधान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पुत्र विदुर तुम हस्तिनापुर के हो या धृतराष्ट्र के ? विदुर बोले प्रश्न निष्ठाओं का नहीं है। भीष्म बोले तो फिर प्रश्न क्या है ? मैंने राज्य का विभाजन तक स्वीकार कर लिया ताकि आपसी तनाव, कलह समाप्त हो जाये। फिर मैंने पांडवों के साथ यह अन्याय भी हो जाने दिया कि नेत्रहीन धृतराष्ट्र के हृदय में केवल यही एक सपना है कि हस्तिनापुर का राज सिंहासन उसके बाद उसके पुत्र दुर्योधन को मिले परन्तु दुर्योधन अपनी उच्चाक्षांओं का हाथ बढाकर इन्द्रप्रस्थ को भी छू लेना चाहता है। क्या तुमने यह नहीं देखा कि अग्निकुंड में वहां एक अग्नि दहक रही थी तो दूसरी दुर्योधन के हृदय में। विदुर बोले देखा था तातश्री। भीष्म बोले फिर देखकर भी तुम द्यूत का निमन्त्रण देकर चले आये। तुमने आज पहली बार मुझे निराश किया है पुत्र विदुर। मेरे कन्धों में हस्तिनापुर का शव ढोने की शक्ति नहीं है विदुर। मेरे कन्धों में यह शक्ति नहीं है। द्यूत क्रीडा में जीत चाहे किसी की भी हो परन्तु हारेगा मेरा हस्तिनापुर ही।

भीष्म पितामह धृतराष्ट्र के भवन में आते है। वहां गान्धारी अपने कक्ष में बैठी हुई है। गान्धारी बोली प्रणाम तातश्री। भीष्म बोले सौभाग्यवती भव। गान्धारी ने कहा विराजिये तातश्री। भीष्म बोले मेरे विराजने के दिन समाप्त हो रहे हैं पुत्री। लगता है अंग अंग में निराशा ओढे हुये भारी थकान ने डेरा डाल दिया है। कोई शैय्या मिले तो लेट जाऊं। गान्धारी बोली तातश्री क्या हुआ ? भीष्म बोले मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है पुत्री कि मैं क्या करूं। तुम हस्तिनापुर की महारानी हो। सहायता करो उसकी। गान्धारी बोली आदेश दीजिये तातश्री। भीष्म बोले यदि मैं आदेश दे सकता तो धृतराष्ट्र को नहीं देता ? मैं तो केवल विनती कर सकता हूँ पुत्री कि हस्तिनापुर, धृतराष्ट्र और कुरु राज परिवार की सहायता करे। दुर्योधन से कहो की द्यूतक्रीडा के लिये भेजा हुआ अपना निमन्त्रण लौटा ले। यदि यह द्यूत हुआ तो मैं भी अपना सब कुछ हार जाऊंगा और तुम्हारे पास भी कुछ नहीं बचेगा। कुछ भी नहीं। गान्धारी बोली मैंने तो आर्य पुत्र से बहुत कहा था तातश्री परन्तु अब इस राजभवन में मेरी कोई नहीं सुनता। मैं तो स्वयं डरी सहमी सी बैठी हूं। भगवान से प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती हूं ? आर्य पुत्र और दुर्योधन दोनों भी अपनी अपनी उच्चांक्षाओं के ऊंचे शिखर पर पहुंच चुके हैं तातश्री कि वहां तक न तो मेरे हाथ पहुंच पा रहे है और न मेरी बाहें। आप ज्येष्ठ कुरु है, आप उन्हे आदेश दीजिये। वो आपका कहना कभी नहीं टालेंगे तातश्री। भीष्म बोले जब परछाई शरीर से लम्बी होने लगे तो समझ लेना चाहिये कि पुत्री सूर्य के अस्त होने में अब अधिक समय नहीं रहा है। मैं तो उस क्षण से डर रहा हूं कि धृतराष्ट्र प्रणाम करेगा और मेरे ये हाथ इस सोच में पड जायेंगे कि आशीर्वाद के लिये उठे या ना

उठे। गान्धारी बोली आप बैठ जाइये तातश्री। खडे खडे आप थक गये होंगे। भीष्म बैठ जाते हैं और बोले मैं जीते जी थक गया हूं। मैं वो सब कुछ नहीं देखना चाहता जो मुझे लग रहा है कि वो देखना ही पडेगा। मुझे तो तुम्हारे पुत्र भी प्रिय है और कुन्ती पुत्र भी गान्धारी। मैं नहीं चाहता कि कल इतिहास मुझे इनमें से किसी एक के पक्ष में खडा देखे इसीलिये मैं चाहता था कि यथा स्थिति बनी रहे। इसी कारण से तो मैंने हस्तिनापुर का राज्य विभाजन भी स्वीकार कर लिया था। कहीं ऐसा तो नहीं कि भाग्य ने हमें कर्म की भूल भूलैया में छोड दिया हो कि वहां खो जाओ। गान्धारी बोली आप निराश मत होइये तातश्री मैं प्रार्थना करूंगी कि द्यूतक्रीडा में मेरे प्रिय युधिष्ठिर की ही विजय हो। यदि दुर्योधन की जीत में हस्तिनापुर की हार है तातश्री तो मैं नहीं चाहती कि दुर्योधन की जीत हो। दुर्योधन मेरा ज्येष्ठ पुत्र है परन्तु कोई पुत्र राज्य से अधिक मूल्यवान नहीं हो सकता तातश्री और अब आप आदेश दें तो मैं श्राप दे दूं दुर्योधन को। भीष्म बोले नहीं नहीं पुत्री। श्राप को बचाये रखो क्या पता कब तुम्हें इसकी आवश्यकता आ पडे। मां के मुख से सदैव आशीर्वाद ही अच्छा लगता है तो पुत्र दुर्याधन को यह आशीर्वाद दो कि उसमें समझ आये।

शकुनि की कुमन्त्रणा सफल हो गई। धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की सम्मति के समर्थक बन गये। धर्मराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के संकोच में अक्ष क्रीडा का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी सहित हस्तिनापुर के लिये रवाना हुये। होनी बडी बलवान है। जानते बूझते सब कुछ लूटा देना मूर्खता है। धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म होती है उसे समझना सरल नहीं है। उस पर चलना तो और भी कठिन है। नीच प्रकृति का व्यक्ति कभी प्रसन्न रह ही नहीं सकता। दूसरों की उन्नति देखकर द्वेष करेगा, ईर्ष्या से जलेगा। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के लिये एक महासमर में जूझ रहा है। किसी तरह के प्रदर्शन से यदि देखनेवाले के मन में हीनता या ईर्ष्या उत्पन्न हो तो उससे स्नेह के स्थान पर द्वेष की वृद्धि होती है तो वैसा प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। उस श्रृंगार का क्या लाभ जिससे दूसरे के मन में प्रसन्नता के स्थान पर ईर्ष्या जन्म ले। नारी सदा से ही प्रकृति धर्मा रही है। उसे आप कभी श्रृंगार से नहीं रोक सकते, न प्रदर्शन से और न ही आत्म मुग्धता से। वसन्त आते ही सारी प्रकृति श्रृंगार कर उठती है चाहे कोई देखे या ना देखे और नारी तो अपने यौवन में हीं नही बल्कि प्रत्येक अवस्था में श्रृंगार प्रिय रही है। न ही सारी नारी जाति का स्वभाव परिवर्तित किया जा सकता है। जिस प्रकार किसी विद्वान को अपने ज्ञान का विकास करने से, वीर को अपने राजनीतिक प्रभाव के प्रसार से तथा व्यापारी को अपने धन वृद्धि करने से रोका नहीं जा सकता वैसे ही नारी को भी श्रृंगार करने से अपने सौन्दर्य को धार देने से रोका नहीं जा सकता। द्रौपदी अपने आप का श्रृंगार कर हस्तिनापुर चलने को तैयार हुई।

हस्तिनापुर के द्वार पर पहुंचते ही पांडवों का असाधारण स्वागत हुआ। दुर्योधन और दुशासन ने आगे बढकर उनका स्वागत किया और गले मिले। दुर्योधन बोला हस्तिनापुर में आपका स्वागत है ज्येष्ठ भ्राताश्री। आज मैं सनाथ हुआ कि आप यहाँ इस उत्सव में पधारे। आप आ गये सम्राट तो आज हमारी तोरण सभा धन्य हो गई जो स्फटिक से नव निर्मित है। हीरे का मूल्य तो जौहरी ही लगा सकता है। युधिष्ठिर बोले धन्य तो मैं हुआ दुर्योधन जो तुम्हारे मन में हमारे प्रति स्नेह जागा। मैं तो कब से इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था। दुर्योधन बोला आप बडे हैं मेरी भूलों को क्षमा करें। यह तो मुझे राजसूय यज्ञ इन्द्रप्रस्थ में ही समझ में आया कि हम भाई हैं, एक ही परिवार है हमारा और सिर्फ प्रशासन की सुविधा के लिये हमने दो राजधानियां बना ली है किन्तु हम अविभाजित नहीं है। आप सम्राट हैं, आपके बडप्पन से ही हम आपके सारे छोटे भाई बडप्पन पाते हैं। दुर्योधन का यह अत्यन्त कृत्रिम और कपटी व्यवहार देखकर युधिष्ठिर को विस्मय हो रहा था। सब ने एक दूसरे को प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोले आज अनुज ऐसा लग रहा है कि लम्बी यात्रा के पश्चात घर आ गया हूं। दुर्योधन बोला यह घर भी तो आप ही का है भ्राताश्री। अर्जुन बोला हां भगवान की दया से यह लाक्षागृह भी नहीं है। प्रणाम युवराज कहूं या प्रणाम भ्राता दुर्योधन। दुर्योधन बोला जो हो चुका है उसे भूल जाओ अनुज। मैं भी उस दुर्घटना के लिये लज्जित हूं। अतीत को भूल जाओ अनुज। मैं भी उस दुर्घटना के लिये लज्जित हूं। अतीत को भूल जाना ही श्रेयस्कर होता है अन्यथा वह भविष्य में अधिक पीडा देता है। भीम बोला हम

लोग तो उस समय परलोक सिधार गये होते। दुर्योधन बोला तब तो मैंने आत्महत्या कर ली होती। भीम बोला लाक्षागृह के पश्चात इतने वर्षों तक तो आपने आत्महत्या की नहीं। नकुल बोला आप तो अवसर का लाभ उठाकर तुरन्त ही युवराज बन गये थे दुर्योधन भैया। युधिष्ठिर बोले यह तुम लोग कैसी बातें करने लग गये हो। भाइयों के बीच ऐसी बातें शोभा नहीं देती। तुम मन मैला न करो प्रिय दुर्योधन। ये सब तो अभी तक नासमझ हैं। दुर्योधन बोला परन्तु इन सब बातों का तो यही अर्थ निकला न भ्राताश्री कि मेरे प्रिय अनुजों का मन मेरी ओर मैला है।

युधिष्ठिर बोले यदि तुम्हारी तरफ से हमारे मन मैले होते तो हम आते ही क्यों ? और यह समझ लो प्रिय अनुज की द्यूतक्रीडा के लिये आये हैं, तुम्हारा मन जीतकर ही जायेंगे। दुर्योधन बोला आपके स्नेह ने तो मेरा हृदय कभी का जीत लिया है भ्राताश्री। दुशासन बोला मुझे भी तो इनकी सेवा करने का अवसर प्रदान कीजिये भ्राताश्री। दुर्योधन बोला प्रिय दुशासन ले जाओ इन्हे और अच्छी तरह इनका स्वागत देखभाल करो।

मन में जलती आग थी, मुख में मीठी बात, खेल खेल में लूट ले, दुष्ट लगा कर घात।

शकुनि कर्ण के पास आता है और कहता है बधाई हो कर्ण बधाई हो। कर्ण बोला काहे की बधाई मामाश्री। शकुनि ने कहा चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर अपने अनुजों और द्रौपदी सहित हस्तिनापुर में कंगाल होने के लिये आ गये हैं। कर्ण बोला मुझे इस द्यूतक्रीडा में कोई दिलचस्पी नहीं है मामाश्री क्योंकि मैं कोई जुआरी नहीं हूं। मुझे युद्ध में सब कुछ हार जाना स्वीकार है परन्तु जुए में कुछ भी जीतना स्वीकार नहीं है। शकुनि बोला परन्तु तुम्हारे मित्र के आनन्द के भागीदार बनना सीखो अंगराज कर्ण। मैं कोई अपने लिये थोडे ही इस द्यूतक्रीडा को जीतने जा रहा हूं। मैं तो जीतने जा रहा हूं तुम्हारे मित्र दुर्योधन के लिये। कर्ण बोला ये सूतपुत्र अपनी गिनती जुआरियों में नहीं बल्कि योद्धाओं में करवाना चाहता है मामाश्री। शकुनि बोला तुम्हे प्रसन्न होना भी आता है क्या अंगराज कर्ण ? कर्ण बोला दुर्योधन कहां है ? शकुनि बोला हम दोनों ही बाहर वाले थे तो बाहर ही रह गये। सारा कुरु परिवार जीजाश्री के कक्ष में है।

द्रौपदी अन्त:पुर के कक्ष में विश्राम कर रही थी कि दासी ने आकर कहा महारानी की जय हो। महारानी गान्धारी अपने कक्ष में आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। द्रौपदी बोली ज्येष्ठ माताश्री को मेरा प्रणाम कहना। कहना मैं इस वक्त रजस्वला हूं। स्नान किये बिना उनकी सेवा में नहीं आ सकती। दासी बोली जो आज्ञा। युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित दुर्योधन और दुशासन के साथ राजभवन में पधार रहे हैं। दुर्योधन बोला आइये भ्राताश्री माताश्री प्रतीक्षा कर रही हैं और धृतराष्ट्र से जाकर बोला पिताश्री ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ हस्तिनापुर पधारे हैं। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम किया। प्रणाम ज्येष्ठ पिताश्री। प्रणाम बडी मां। सभी ने प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोले आयुष्मान भव, प्रिय द्रौपदी की चाप सुनाई नहीं दी। गान्धारी बोली वो तीन दिनों के पश्चात आयेगी आपको प्रणाम करने आर्य पुत्र। धृतराष्ट्र बोले पुत्र युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोले आज्ञा ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र ने कहा आज मैं अपना शेष जीवन देकर एक ऐसा क्षण मोल लेने के लिये तैयार हूं, जिसमें मेरी आंखे देख सके। मैं तुम सब लोगों को एक साथ देखना चाहता हूँ। तुम्हारी मुस्कुराहटों का रंग देखना चाहता हूं। आज यहां समस्त कुरु परिवार एकत्र है और स्नेह की भाषा बोल रहा है। अर्जुन बोला आप अपने आपको नेत्रहीन क्यों कह रहे है ज्येष्ठ पिताश्री ? आपके पास तो १०५ आंखे हैं। हम सब आपकी आंखे ही तो हैं। आप इस संसार को हमारे द्वारा देखें ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला आयुष्मान भव अर्जुन। मेरे प्रिय अनुज पुत्रों पर भरत वंश सदैव गौरव और गर्व करेगा। आज तो इस कक्ष में तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री तुम्हारा अभिनन्दन कर रहे हैं। कल हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र अपनी राज्यसभा में अपने चक्रवर्ती पुत्र का स्वागत करेंगे।

हस्तिनापुर की राज्यसभा में सभी प्रजाजन चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर की जय जय कार कर रहे थे। युधिष्ठिर सब भाइयों सहित

राजसभा में प्रवेश करते हैं। युधिष्ठिर बोले अपने पुत्र और अपने सेवक युधिष्ठिर का प्रणाम स्वीकार कीजिये महाराज। धृतराष्ट्र बोले मैं अपने चक्रवर्ती पुत्र को सौभाग्य और लम्बी आयु का आशीर्वाद देता हूं। आओ पुत्र मेरे पास का स्थान ग्रहण करो। युधिष्ठिर पितामह भीष्म के पास आकर बैठ जाते हैं। धृतराष्ट्र बोले मुझे आज तक जीवित रखने को मैं भगवान को सादर प्रणाम करता हूं। मेरे लिये इससे बढकर सौभाग्य की और क्या बात हो सकती है कि मैं अपने पूर्वजों की राजधानी हस्तिनापुर में अपने ज्येष्ठ अनुज पुत्र चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर का स्वागत कर रहा हूं। मेरी आंखों की भांति हस्तिनापुर की आंखे भी गर्व और आनन्द के आंसुओं से भीगी जा रही है। आप सबको साक्षी मानकर मैं इस बात को कहने व्याकुल हो रहा हूं कि चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर की जय। भगवान करे भरतवंश का ध्वज बनकर सदैव तुम्हारा ध्वज लहराता रहे और भगवान करे तुम्हारी छत्रछाया में धर्म और न्याय का पोषण हो और अर्थ में प्रगति हो। आज तक मेरे पास कोई अपनी बडाई नहीं थी परन्तु आज मैं बडे गर्व से कह सकता हूं कि मैं चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर का ज्येष्ठ पिताश्री हूं पर जिस वंश में छोटे अपने बडों की पहचान बनने योग्य हो जाते हैं वो वंश सदैव आदरणीय रहेगा। तो मैं आज तुम्हे भरतवंश की ओर से आशीर्वाद देता हूं तथा हस्तिनापुर राज्य की ओर से प्रणाम करता हूं और अब मैं आप सबसे निवेदन करता हूं कि आप सब नव निर्मित स्फटिक तोरण द्यूतक्रीडा गृह की ओर प्रस्थान करें। जहां दुर्योधन द्यूतक्रीडा में अपने ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर का सामना करेगा।

कपट शून्यता का करे, कपट पूर्ण सम्मान, स्वार्थ कीच में नीच की नियत रूके न जान।

यह बडी अद्‌भुत स्थिति है कि गंगा पुत्र भीष्म, गुरुवर द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य और महामन्त्री विदुर जानते है कि होनेवाले द्यूत का परिणाम क्या होनेवाला है और यह जानकर भी सभी चुपचाप हैं। इन सबके मुंह पर मौन का ताला लगा हुआ है। भीष्म प्रतिज्ञाबद्ध है तो द्रोण और कृपाचार्य के होठों को धृतराष्ट्र के नमक ने सी रखा है। अन्य लोग न जाने कितनी मर्यादाओं में जकडे हुये हैं। द्यूतरथ में राजाओं और महाराजाओं का आना देख रहे हैं। चौसर बिछी हुई है। द्यूतक्रीडा भवन के सभी खिलाडी उपस्थित हुये। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर आये और सबने अपने-अपने आसन ग्रहण किये। दुर्योधन, शकुनि और कर्ण, दुशासन ये सभी भी द्यूतक्रीडा भवन में आये। चक्रवर्ती धर्मराज युधिष्ठिर भी अपने अनुजों सहित वहां पधारे। आकर युधिष्ठिर ने सभी को प्रणाम किया। जूए के खिलाडियों ने वहाँ सबका सहर्ष स्वागत किया। स्वागत सत्कार हो जाने के बाद सब लोग अपने-अपने योग्य आसन पर बैठ गये। युधिष्ठिर ने दुर्योधन को विजयी भव का आशीर्वाद दिया। शकुनि बोला सम्राट युधिष्ठिर यह क्या किया आपने ? दुर्योधन को विजय श्री का आशीर्वाद देकर तो आप पहिले ही हार गये। युधिष्ठिर बोला दुर्योधन मेरा अनुज है। उसकी विजय भी मेरी विजय है। भरतवंशी हस्तिनापुर नरेश महाराज धृतराष्ट्र भी वहां आये और सामने बैठ गये। शकुनि ने कहा द्यूत पटल चौसर बिछी हुई है। द्यूत के ये पांसे आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब पांसे खेलकर द्यूत आरम्भ करो। युधिष्ठिर बोले जुआ खेलना तो छल रूप और पाप का मूल है। इसमें न तो क्षत्रियोचित वीरता के प्रदर्शन का अवसर है और न तो इसकी कोई निश्चित नीति ही है। जगत का कोई भी भला आदमी जुआरियों के कपट पूर्ण आचरण की प्रशंसा नहीं करता। यह निर्दय पुरुषों के समान कुमार्ग से पराजित करने का साधन है। द्यूत क्षत्रियों के लिये अत्यन्त हानिकारक है अत: मैं द्यूत के पक्ष में नहीं हूं। शकुनि ने कहा राजन बलवान और शस्त्र कुशल पुरुष दुर्बल एवं शस्त्रहीन के ऊपर प्रहार करते है ऐसा सिद्धान्त तो सभी जगह है। जो पांसे फेकने में चतुर व निपुण है और यदि वह अपने कौशल से अनजान को जीत ले तो वह धूर्त नहीं होता। दुर्योधन बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री घातक तो युद्ध भी होता है पर क्षत्रिय क्या उसे छोड देते ?

धृतराष्ट्र ने आदेश दिया द्यूतक्रीडा आरम्भ हो। शकुनि बोला पहले नियम तो बना लो पुत्र। युधिष्ठिर बोले भाइयों के बीच में नियम कैसा ? दुर्योधन बोला क्रीडा तो क्रीडा ही है ज्येष्ठ भ्राताश्री इसलिये खेल के शुभ आरम्भ में पहिले नियम तो बना ही लेना चाहिये ताकि खेल के उपरान्त कोई कपट का आरोप न लगा सके। युधिष्ठिर बोले मेरी ओर से तो कोई विशेष नियम नहीं है। हां

अनुज तुम बताओ। दुर्योधन बोला मैं तो केवल यह कहना चाहता हूं भ्राताश्री दांव तो मैं ही लगाऊंगा। धन राशि, रत्न मेरी ही लगेगी परन्तु मेरी ओर से पांसे फेकेंगे मामाश्री। यह सुनकर भीष्म और विदुर चौंके और एक दूसरे की ओर विस्मय से देखने लगे। अर्जुन बोल उठा वो क्यों ? क्या आपको पांसे फेंकना नहीं आता भ्राता दुर्योधन तो फिर हमें द्यूत के लिये आमंत्रित ही क्यों किया ? कर्ण बोला इन्द्रप्रस्थ नरेश मामाश्री के साथ खेलने में घबराते हैं ? अर्जुन बोला घबराने न घबराने का तो प्रश्न ही नहीं रहता सूत पुत्र अंगराज। प्रश्न तो यह है भ्राता दुर्योधन कि द्यूत या युद्ध में प्रति पुरुष को आगे नहीं किया जाता। विदुर बोले अर्जुन ठीक कह रहे हैं महाराज। दुर्योधन बोला आपके लिये तो अर्जुन सदैव ही ठीक कहते हैं काकाश्री। यदि ज्येष्ठ भ्राताश्री नहीं खेलना चाहते तो ठीक पर यदि द्यूतक्रीडा होगी तो पांसे मेरी ओर से मेरे पूज्य मामाश्री ही फेकेंगे। भीष्म बोले क्रीडा में हारना अपमान नहीं होता पुत्र। दुर्योधन बोला मैं आज अपमान की बात नहीं कर रहा हूं पितामह परन्तु मेरी ओर से पांसे तो मेरे पूज्य मामाश्री ही खेलेंगे नहीं तो यह द्यूतक्रीडा नहीं होगी। धृतराष्ट्र बोला पुत्र कोई एक कारण तो बताओ कि ऐसा क्यों होगा ? दुर्योधन बोला ऐसा इसलिये होगा पिताश्री क्योंकि ऐसा होने के लिये मैं कह रहा हूं। यदि ज्येष्ठ भ्राताश्री को यह स्वीकार नहीं तो उठाओ ये चौसर, मैं जा रहा हूं। यह कहकर दुर्योधन उठ खडा हुआ।

युधिष्ठिर बोले यदि प्रिय अनुज तुम चाहते हो कि तुम्हारे पांसे मामाश्री फेंके तो यही होगा। तुम बैठ जाओ। शकुनि बोला इतने क्रोधित मत हो भान्जे। बैठ जाओ। बोलो सम्राट क्या दांव पर लगाते हो ? युधिष्ठिर बोला सागरावर्त में उत्पन्न, सुवर्ण के सर्वश्रेष्ठ आभूषणों से यह मणि युक्त कंठहार मैं दांव पर लगाता हूं। दुर्योधन बोला मेरे पास भी बहुत सी मणियां और धन है। यह धन मेरी ओर से। अब पांसे खेलें मामाश्री। शकुनि बोले अवश्य और पांसे फेंकता है। विदुर बोले ठहरिये। सैनिक और शस्त्र राजा देता है गान्धार नरेश और इस समय आप दुर्योधन के सैनिक है इसलिये आप दुर्योधन के दिये पांसो से खेले। शकुनि बोला ठीक है पुत्र दुर्योधन के पांसों से ही खेल लेते है। शकुनि भी तो मन से यही चाहता था। कुरु परिवार का तो दोष ही है वो किसी पर भरोसा विश्वास करना ही भूल गया है। लाओ भान्जे अपने पांसे दो। ये लीजिये विदुरजी अब तो सन्तुष्ट हैं ना आप। युधिष्ठिर बोले नहीं मामाश्री आप चाहे तो आप अपने पांसों से खेले। इन्द्रप्रस्थ में भी तो आप अपने पांसों से ही खेले थे। शकुनि बोला नहीं युधिष्ठिर अब तो मैं दुर्योधन के दिये पांसों से ही खेलूंगा। तुम आरम्भ करो। युधिष्ठिर बोला नहीं मामाश्री। आप दुर्योधन की ओर से खेल रहे है और दुर्योधन मेरा प्रिय अनुज है तो क्रीडा भी उसकी ओर से ही प्रारम्भ होगी। शकुनि बोला जैसी आपकी आज्ञा सम्राट। क्यों भान्जे दुर्योधन ? दुर्योधन बोला मामाश्री छ: आना चाहिये। शकुनि बोला तुम्हारा कहना तो मैं टाल ही नहीं सकता अब देखा आजा मेरे छ:। दांव लग जाने पर पांसों के विशेषज्ञ शकुनि ने पांसे हाथ में उठाये और बोला यह दांव मेरा और लो ये छ: आ गया। अब देखना मेरा चमत्कार। अब आ गया आठ और आठ आ जाता है। दुर्योधन कहता है मामाश्री मुझे पौबारह चाहिये और शकुनि कहता है लो यह आगया पौबारह, प्रिय युधिष्ठिर तुम तो तरस जाओगे पांसे फेंकने के लिये। दुर्योधन बोला मामाश्री मुझे नौ की आवश्यकता है। शकुनि बोला यह कंठहार तो तुम पहिन ही लो युधिष्ठिर। यह रहा नौ। दुर्योधन बोला अब यह हार तो हमें दो अर्जुन। अर्जुन ने युधिष्ठिर का दांव पर लगाया हुआ नौलखा हार दुर्योधन को दिया। शकुनि बोला भान्जे यह तुम्हारी पहिली जीत है। युधिष्ठिर समझ गये कि वे छल के कीच में फंसते जा रहे है। शकुनि न केवल द्यूत विद्या का आचार्य है वरन भयंकर धूर्त भी है। एक बार बैठकर धन का शेष रहते द्यूत से उठना क्षत्रिय की मर्यादा नहीं है। यह छल है शकुनि। भीष्म उठ बोले मेरा सुझाव है महाराज कि दुर्योधन का हठ भी पूरा हो गया है। उसके निमन्त्रण का मान भी रख लिया गया है। युधिष्ठिर हार गये हैं। दुर्योधन जीत गया है तो अब इस द्यूत को यहीं समाप्त कर देना चाहिये। दुर्योधन उत्तेजित हो उठा और बोला पितामह यह कैसे हो सकता है? क्या सारा संसार हमारी हंसी नहीं करेगा कि युवराज दुर्योधन ने सम्राट युधिष्ठिर को जीतने का अवसर ही नहीं दिया ? क्या इसमें हस्तिनापुर का अपमान नहीं है पितामह ? धृतराष्ट्र बोला यह

तो ठीक कह रहा है कोई द्यूत बीच में थोडे ही रूकता है। यह तो धन के शेष न रहने पर ही खिलाडी उठता और द्यूत समाप्त होता है। इससे समय का भी तो प्रतिबन्ध नहीं होता है। भीम युधिष्ठिर को संकेत करते हुये बोले बडे भैया पितामह की बात मान लीजिये। युधिष्ठिर बोला मैं दांव से उठकर हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ का अपमान नहीं कर सकता प्रिय भीम। युधिष्ठिर के मन में बहुत स्पष्ट था कि धृतराष्ट्र की इच्छा नहीं थी कि द्यूत बन्द हो। धृतराष्ट्र चाहता था कि युधिष्ठिर हारे और पांडवों की सम्पत्ति दुर्योधन को प्राप्त हो जाये। द्यूत सभा में झगडे उसी क्षण से होने लग जाते हैं जिस क्षण दोनों में से कोई एक खिलाडी खेल के बीच में से उठकर जाना चाहता है। शकुनि कर्कश हंसी में बोला क्या सोच रहे हो महाराज युधिष्ठिर। धन का मोह क्या इतना प्रबल हो उठा? दूसरों को उपदेश देना सरल है महाराज परन्तु अपने धन का मोह त्यागना कठिन होता है। अब क्या दांव पर लगा रहे हो ?

युधिष्ठिर बोला अब मैं एक लाख अठारह हजार स्वर्णमुद्रायें और अक्षय धन भंडार दांव पर लगाता हूं। शकुनि बोला अब मैं तुम्हारी इस दांव पर लगायी हुयी सारी सम्पत्ति को जीत लेता हूं प्रिय युधिष्ठिर। दुर्योधन बोला मामाश्री इसे जीतने के लिये पौ बारह चाहिये। शकुनि बोला यह लो पौबारह। यह है मेरी आज्ञाकारी सेना भान्जे। विदुर बोले पांडवों के धन को नहीं पांडवों के मन को जीतने का प्रयास करो युवराज दुर्योधन। दुर्योधन बोला आप तो काकाश्री इन्द्रप्रस्थ नरेश की दिग्विजय चाहते हैं। मेरे ज्येष्ठ भ्राताश्री से कहिये कि यदि वे द्यूत में हारने से डरते हों तो उठ जायें। मैंने उन्हे द्यूतक्रीडा में आमंत्रित किया है काकाश्री और मैं जीतने के उपरान्त द्यूत समाप्त करके उनका अपमान नहीं कर सकता। यह दांव भी युधिष्ठिर हार गया और सारी सम्पत्ति धन दांव पर लगा हुआ धन दुर्योधन को मिल गया। इस प्रकार भयंकर जुआ उत्तरोत्तर बढने लगा।

युधिष्ठिर बोला मैं अपना जैत्र नामक पुण्यमय राजरथ दांव पर लगाता हूं जिसे हम इन्द्रप्रस्थ से लाये थे। यह मेरा धन है जिसे दांव पर लगाकर मैं द्यूत खेल रहा हूं। शकुनि बोला युवराज यदि आज्ञा हो तो महाराज का रथ ही जीत लूं। दुर्योधन बोला आज्ञा है मामाश्री। मुझे आठ की आवश्यकता है। शकुनि बोला अवश्य भान्जे और यह लो आठ आ गया। दुर्योधन बोला भ्राताश्री अब यह रथ हमारा हुआ अब तो आपको पैदल ही चलना पडेगा। कर्ण और दुशासन युधिष्ठिर की हार पर उसे मूर्ख समझ जोरों से हंसते है। शकुनि बोला प्रिय युधिष्ठिर लो रथ भी गया। अब क्या लगायेंगे दांव पर सम्राट युधिष्ठिर बोलिये ? युधिष्ठिर की दृष्टि उठी और उन्होने पितामह भीष्म को देखा। भीष्म की गर्दन झुकी हुई, नेत्र मूंदे हुये किसी चिन्ता में लीन दिखाई दे रहे थे। मन से वे प्रसन्न नहीं थे। वे युधिष्ठिर को जुआरी समझ लज्जित हुये बैठे थे। वे समझते थे युधिष्ठिर तो व्यसनी है। विदुर भीष्म से कुछ कह रहे थे। अनुनय विनय कर कह रहे थे तातश्री अब यह द्यूत समाप्त कराइये नहीं तो बहुत बडा अनर्थ हो जायेगा। युधिष्ठिर बोला मैं मांगलिक स्वर्णालंकारों से भूषित अपनी दासियों को दांव पर लगाता हूं। शकुनि बोला युवराज दुर्योधन के पास दासियों की तो कोई कमी नहीं है। यदि तुम उन्हे हारना ही चाहते हो तो यह ही सही। क्या तुम इन दासियों के स्वामी हो? क्या ये तुम्हारा धन है ? क्या तुम इन्हे दांव पर रखकर द्यूत खेल सकते हो ? धर्मराज युधिष्ठिर बोले कौन अपने दास-दासियों का स्वामी नहीं होता मामाश्री दुर्योधन बोला तुम ऐसी छोटी छोटी बातों के लिये धर्मराज युधिष्ठिर पर शंका मत किया करो। सन्देह करने का तुम्हें दुष्ट रोग लगा हुआ है। धर्मराज सदा सत्य बोलते हैं। मामाश्री पांसे फेंको। शकुनि बोला ओ मेरी सेना मुझे छ: की आवश्यकता है। यह लो छ:। छ: आ गया दुर्योधन। यह दांव भी हमने जीता। सम्राट युधिष्ठिर बोलो अब क्या लगाओगे। ये सारा धन सम्पत्ति, अधिकार, सत्ता, भोग के ये साधन ये सभी तो झगडे कलह के कारण हैं। इन्ही के कारण तो सम्राट युधिष्ठिर को हस्तिनापुर में इन विकृत बुद्धि, धर्मशून्य राजाओं के समाज में आना पडा। यदि उनके पास यह सम्पत्ति नहीं होती तो कौन उन्हे आमंत्रित करता। यह सम्पत्ति ही तो वह दोष है जिसके कारण उन्हे इस सभा में आना पडा। अच्छा तो यही हो कि वे अति शीघ्रतिशीघ्र यहां से निकल जाये और धर्म के परिवेश में सांस ले। इस सारे छल छन्द में उनका दम घुटने लगा।

युधिष्ठिर बोले मैं स्वर्ण के हौदे वाले एक हजार हाथी दांव पर लगाता हूं। अर्जुन चिंतित दृष्टि से बैठे भीम, नकुल, सहदेव की

ओर देख रहे थे। अर्जुन ने द्रोणाचार्य की ओर कृपाचार्य की ओर देखा पर वे प्रसन्न दिखाई नहीं दे रहे थे। काकाश्री पीडित ही नहीं अशान्त भी लग रहे थे कर्ण बडी प्रसन्नता से हंस रहा था। अर्जुन को लगा पता नहीं यह कर्ण किस जन्म का बैर ले रहा है? इसे पांडवों की प्रत्येक विपत्ति से असीम प्रसन्नता होती है। दुर्योधन बोला चलिये दांव मामाश्री मुझे सात की आवश्यकता है। शकुनि बोला सात अवश्य आयेगा। शकुनि ने पासा फेंका और बोला यह लो सात। सात आ गया। अब से यह एक हजार हाथी भी मेरे हुये। दुर्योधन बोला घबराइये मत भ्राताश्री लगाइये। कुछ और है लगाने के लिये आपके पास ? भीम बोला इन्हें क्षत्रियों के व्यसन बहुत प्रिय हैं तो शत्रुओं के समान युद्ध क्षेत्र में क्यों नहीं आ जाते हैं ? क्यों द्यूत का निमन्त्रण भेजते हैं ? युधिष्ठिर बोला तीतर के समान सफेद वर्णवाले गन्धर्व देश के मेरे घोडे इस दांव पर लगाता हूं। शकुनि बोला सम्राट क्या यह तुम छोटे छोटे दांव लगाकर खेल खेल रहे हो ? इससे तो तुम्हारा हारा हुआ धन भी वापिस नहीं लौट पायेगा। शकुनि ने पांसे फेंके और बोला लो मैं जीत गया। युधिष्ठिर बोले तांबे और लोहे की चारसौ संदूकें जिनमें सुवर्ण से भरे हुई सिक्के, मुद्रायें मेरा निधि कोष है उसे दांव पर लगा रहा हूं। शकुनि ने पांसे फेंके और इसे भी जीत लिया। युधिष्ठिर यह कपट द्यूतक्रीडा देखकर अवाक रह गये।

विदुर उठ खडे होकर बोले महाराज मरणासन्न रोगी को दवा अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार आपको मेरा यह शास्त्र सम्मत परामर्श अच्छा नहीं लगेगा। धृतराष्ट्र बोले क्या विदुर ? तुम क्रीडा के समय भी शान्त नहीं रह सकते। सबके मनोरंजन में बाधा पहुंचा रहे हो ? दुर्योधन बोला काकाश्री क्षत्रियों का मनोरंजन तो ऐसा ही होता है। युद्ध में वे शत्रु के प्राण लेते हैं आखेट में आहत पशु की पीडा से मृत्यु और द्यूत में विपक्षी का सर्वस्व हरण ही क्षत्रिय का मनोरंजन है। विदुर बोले तुम भूल कर रहे हो दुर्योधन राज्य सभाओं में विद्वानों से जीवन तत्व सम्बन्धी वार्ताओं को सुना जाता है। अपने भाइयों को बुलाकर उनका आखेट नहीं किया जाता। व्यसनियों का जमघट नहीं लगाया जाता। महाराज शुक्राचार्य के उस कथन को याद करें कि मधु बेचनेवाला किसी ऊंचे वृक्षपर मधु का छत्ता देखकर मधु पीकर उन्मत होने की कल्पना करता है। मधुमत्त होकर वृक्ष से नीचे गिर कर होने वाली अपनी मृत्यु को नहीं देखता। वैसे ही यह द्यूत भी मद है। आपका यह पुत्र दुर्योधन भी द्यूत के मद में अपने ऊपर आमंत्रित संकट को भूला चुका है। कपट से पांडवों को उनके धर्म संकट में डालकर उनका सर्वस्व हरण कर रहा है और उन्हे अपना शत्रु बना रहा है। उसका परिणाम यह नहीं जानता। ऐसी द्यूत सभाओं में जो व्यसन तृप्त होता है वह अन्त में रण में परिवर्तित होता है। जिस दुर्योधन को आप अपना पुत्र समझ रहे हैं महाराज वह आपके वंश का काल है। इसे उसी प्रकार त्याग दीजिये जिस प्रकार ऋषियों, अन्धकों और भोज वंशियों ने कंस को त्याग दिया था अन्यथा आपका अपना सारा वंश ही समाप्त हो जायेगा। आप यह देखकर बार बार प्रसन्न हो रहे हैं कि इस द्यूत में दुर्योधन जीत रहा है किन्तु आज आपका यह असाधारण सुख कभी भी क्षत्रियों के दूसरे व्यसन युद्ध में परिणित होगा और उस समय आप अपने प्रियजनों को युद्ध में नहीं बचा पायेंगे महाराज। धृतराष्ट्र बोले तुम ऐसा क्यों कह रहे हो विदुर, क्या क्षत्रियों में कहीं द्यूत नहीं खेला जाता क्या ? विदुर अत्यन्त क्रोधित और उत्तेजित स्वर में बोले हां महाराज। जहां कहीं भी खेला जाता है वहां कलह ही जन्म लेता है। एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहां द्यूत खेला गया हो और सर्वस्व हरण नहीं हुआ हो और द्यूत के पश्चात वहां सुख शान्ति रही हो। इसलिये कहता हूं कि महाराज द्यूत को रोक लीजिये। आपके ही आदेश से द्यूत आरम्भ हुआ और अब आपके ही आदेश से समाप्त कर दीजिये। द्यूत की मर्यादा के नाम पर जो छल, छन्द, कपट हो रहा है उसे सब जान रहे हैं। यदि आपको धन ही की तृष्णा है तो द्यूत की आवश्यकता नहीं। यदि आपने युधिष्ठिर से एक बार भी कहा होता तो वह अपनी सारी कि सारी राज्य लक्ष्मी धन वैभव आपके चरणों में डाल देता। मैं अब भी आपको यही परामर्श देता हूं महाराज कुन्ती पुत्र ये स्वयं ही धन स्वरूप हैं इनको अपनाइये। इन्हे नष्ट करने का प्रयत्न मत कीजिये। यह पर्वतीय गान्धार नरेश शकुनि द्यूत की सारी कपट विद्या में निपुण है, यदि दुर्योधन को नहीं त्याग सकते तो इस शकुनि का ही त्याग कर दीजिये यह कह कर कि यह जहां से आया है वहीं लौट जाये महाराज। पूरे

कुरू वंश का नाश करनेवाली यह आग शकुनि है। यह पापी दुर्योधन जिस दिन गर्भ से बाहर आया था, उसी समय गीदड के समान रेंकने लगा था तभी मैंने कहा था कि यह कुलक्षणी कुरुवंश के नाश का कारण बनेगा। यह कुरु कलंक आपके पास आपके ही घर में रहता है परन्तु पुत्र मोहवश आप यह समझने को तैयार नहीं है न ही उसे त्यागना स्वीकार कर पाते हैं। दुर्योधन द्यूत के नशे में इतना उन्मत्त हो रहा है कि उसे इस बात का पता ही नहीं कि पांडवों से बैर विरोध करने का परिणाम उसकी घोर दुर्दशा होगी। दुर्योधन को दंड मिलने पर ही कुरुवंशी सैंकडों वर्षों तक सुखी रह सकेंगे। कौए या गीदड के समान यह दुर्योधन इसका त्याग करिये महाराज और मयूर अथवा सिंह के समान पांडवों को अपनाइये। दुर्योधन आपकी कांख में छुपा बैठा सांप है पता नहीं कब किस प्रकार आपको डस लेगा ? इसलिये इसका शोक न कर उसे त्याग दीजिये। शास्त्रों में कहा गया है कि कुल की रक्षा के लिये एक व्यक्ति को, गांव की रक्षा के लिये किसी एक कुल या परिवार को, देश की रक्षा के लिये एक गांव को और आत्मा की रक्षा के लिये अपने देश को छोडना पडे तो उसका त्याग कर दें। सर्वज्ञ महर्षि शुक्राचार्य ने जम्भ दैत्य के परित्याग के समय यह आख्यान सुनाया था वो मैं आपको बताता हूं महाराज। किसी वन में बहुत सारे पक्षी रहा करते थे वे सब के सब सोना उगला करते थे। उस देश का राजा बडा ही लोभी और मूर्ख था। उसने लोभवश अन्धे होकर एक साथ ही बहुत सा स्वर्ण पाने के लिये उन पक्षियों का वध करवा डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि पक्षियों के मर जानेपर उनके शरीर में से सोना तो नहीं मिला और आगे का भी स्वर्ण प्राप्ति का मार्ग बन्द हो गया। इसीलिये कहता हूं कि पांडवों के साथ द्रोह मत कीजिये। नहीं तो उस लोभान्ध राजा के समान आपको भी पछताना पडेगा। आप भरतवंशी राजा हैं स्वयं समझदार हैं। पांडवों का तो रणभूमि में इन्द्र भी मुकाबला नहीं कर सकता। आपके सेवकों, मन्त्री और पुत्रों को यमराज का अतिथि न बनाये। जुआ खेलना कलह का मूल है। जुए में परस्पर का प्रेम भाव नष्ट होता है महाराज। बडे ही डर और उत्पात के बनाव, लक्षण बन जाते हैं। दुर्योधन इस समय उसी विपत्ति को बुलाने में संलग्न हो रहा है। इसके अपराध से प्रतीप, शान्तनु और बाहलीक के वंशज घोर संकट में पड जायेंगे। जैसे उन्मत्त बैल अपने ही सींगों से अपने आपको घायल कर लेता है वैसे ही दुर्योधन उन्माद वश अपने राज्य से शुभ का बहिष्कार कर रहा है। पुत्र मोह वश अपने उचित विचार और निर्णय का तिरस्कार मत कीजिये महाराज। आप बातों से तो जुए का विरोध प्रकट करते हैं परन्तु अन्त:करण से तो आप स्वयं उसे चाहते हैं। यह आपकी विचारहीनता है विचारों का दिशा भ्रम है। पांडवों का विरोध कोई बडे अनर्थ का कारण होगा। प्रतीप और शान्तनु के वंशजों, इस अज्ञानी दुर्योधन के अनुयायी बनकर इस धधकती आग में मत कूदो। आप लोग तो जुए के पहिले भी कोई दरिद्र नहीं है फिर इस कपट के धन से क्या समृद्धि होगी। मदिरा, द्यूत, कपट, वैश्यालय, हिंसा आदि कर्म से प्राप्त किये गये धन से कभी सुख शान्ति, धैर्य प्राप्त नहीं होता। न ही वह गुणकारी धन है। ऐसा धन घर में रखना विनाश को आमन्त्रण देता है। यह कहकर विदुर चुप हो गये।

धृतराष्ट्र के कुछ कहने से पहिले ही दुर्योधन उत्तेजित हो आवेश में उठ खडा और बोला काकाश्री मैं तुम्हारी कटुता की जितना उपेक्षा करता हूं तुम उतने ही और अधिक कठोर होते जाते हो। तुम खाते तो हमारा हो और भला विचारते हो हमारे विरोधियों का। पानी सदैव ही ऊपर उठकर नीचे ही गिरता है। तुम्हारी यही नीच प्रवृति है। हमने यदि द्यूत में अपने शत्रुओं का सर्वस्व हरण कर भी लिया तो क्या अनुचित किया। वो लोग भी तो अन्य राजाओं के धन का हरण कर ही तो सम्राट बने हैं। तुम्हें मेरी उन्नति अच्छी नहीं लगती। जो शत्रु का पक्षपाती हो और जो हमसे द्वेष रखता हो, हमारा अहित करनेवाला हो ऐसे दुर्जन मनुष्य को घर में नहीं रहने देना चाहिये। अत: आप निकल जाओ और तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ। कुलटा स्त्री को मधुर वचनों से कितना ही रिझाया जाये, कितना ही प्रेम क्यों न किया जाये फिर भी वह अपने पति को छोडकर जार पुरुष के साथ चली जाती है। काकाश्री तुम तो सदा से ही पांडवों की प्रशंसा करते हो और हम लोगों के लिये बुरी निन्दा करते हो। तुम तो हमारी गोदी में बैठे सांप के समान हो। तुम कडवी बातें बोल बोल कर मेरा घोर अपमान कर रहे हो। अब सहने की सरहद पार हो चुकी है। मैं

तुमसे कब अपने हित की बात पूछता हूं। बिन मांगी सलाह किसी को भी देना सुहाती नहीं है। मेरे काम में हस्तक्षेप मत किया करो। प्रज्वलित अग्नि को मत उकसाओ नहीं तो ढूंढने पर तुम्हारी राख भी नहीं मिलेगी। तुम्हारे जैसे मनुष्य को तो पिताश्री ने अपने पास भी नहीं रखना चाहिये। अब यहां तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं रही।

विदुर बोले दुर्योधन तुम अच्छे बुरे सभी कार्यों में मीठी मधुर बातें ही सुनना चाहते हो तब तुम्हे मूर्खों और स्त्रियों से ही बातें करनी चाहिये जो सही सलाह न देकर तुम्हारी प्रशंसा करती रहे। इस जगत में चापलूस लोग चिकनी चुपडी बातें करनेवालों की कोई कमी नहीं है परन्तु वैसे लोग बहुत दुर्लभ मिलते हैं जो अप्रिय किन्तु हितकारी बातें कहें सुनें। जो अपने स्वामी के प्रिय अप्रिय का विचार न कर धर्म पर अटल रहता है और अप्रिय होनेपर भी हितकारी वचन कहता है वही राजा का सच्चा सहायक होता है। क्रोध एक तीखी तलवार है। जिसकी धार जलन बिना रोग का रोग है, कीर्ति नाशक और घोर दुर्गन्धयुक्त है इसे सत्पुरुष ही शमन कर सकते है, दुर्जन नहीं। तुम इस विष को पी जाओ और शान्त हो जाओ। मैं सदा से सर्वदा महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के धन और यश की वृद्धि में रहा हूं। यह कहकर विदुर तनिक भी हतप्रभ नहीं हुये। महाराज धृतराष्ट्र और कुरुवंश का हित इससे नहीं है कि विदुर हस्तिनापुर छोडकर कहीं चले जाये। सबका हित तो इसी में है कि दुर्योधन और शकुनि को दंडित कर त्याग देना चाहिये पर पुत्र मोह ऐसा करने नहीं देता।

शकुनि अपने अधरों पर कुटिल मुस्कान से बोला सम्राट युधिष्ठिर पांडव अब बहुत सारा धन हार चुके। अब यदि कोई गुप्त या परोक्ष धन शेष रहा हो तो उसे भी दांव पर लगाओ। युधिष्ठिर बोला मैं अपना शेष धन दांव पर लगाकर तुम्हारे साथ खेलता हूं। मेरे पास असंख्य धन है। मेरे पास अयुत, प्रयुत, पद्म, अर्बुद, खर्व, शंख, निखर्व, महापद्म, कोटि, मध्यम और परार्ध तथा इससे भी अधिक धन मेरे पास है वो सब मैं दांव पर लगाता हूं। सब पांडव सुनकर युधिष्ठिर की ओर वक्र दृष्टि से देखने लगे। शकुनि बोला तुमने धन लगाया और सम्राट मैंने जीत लिया। भान्जे देखो। दुर्योधन बोला अब हमें आठ की आवश्यकता है मामाश्री। शकुनि बोला आठ आना ही चाहिये भान्जे और यह रहा आठ। यह सब धन भी अब तुम्हारा हुआ भान्जे दुर्योधन। यह देखकर युधिष्ठिर को तो पसीना छूट गया और आंखों में से आंसू बहने लगे। दुशासन और कर्ण जोरों से हंसने लगे। दुर्योधन बोला अब भी कुछ बाकी रह गया हो भ्राताश्री तो वो भी लगा दीजिये। शकुनि बोला सम्राट सोचिये, सोचिये प्रिय युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोला सिन्धु नदी के पूर्वी तट से लेकर पर्णशा नदी के किनारे तक बैल, गाय, घोडे, भेड बकरी इत्यादि पशु धन है वो सब मेरा धन है। सिवाय उन ग्रामों के जो ब्राह्मणों को जीविका स्वरूप दान में दे दिये गये, शेष ग्राम, नगर और जनपद मेरा धन है और राज्य है वह उन सबको दांव पर लगाकर तुम्हारे साथ खेलता हूं। सुनकर शकुनि की तो बाछें खिल गई और दुर्योधन की ओर देख कर बोला देखा मैंने कहा था न कि मैं बिना युद्ध किये ही महाराज युधिष्ठिर का धन और राज्य तुम्हारे चरणों में डाल दूंगा। ओ मेरी सेना तुम भी तो इसी प्रतीक्षा में हो। इस बार तुम्हें जीतना है। पौ बारह भान्जे। यह लो पौबारह शकुनि यह दांव भी जीत गया। दुर्योधन बोला भ्राताश्री अबसे इन्द्रप्रस्थ भी हमारा हो गया। यह देख देख कर भीष्म चिंतित हो रहे हैं। शकुनि बोला अब तो आप सब कुछ हार गये सम्राट। महाराज अब क्या दांव पर लगायेंगे ? दुर्योधन बोला अब काहे के सम्राट और कहां के महाराज मामाश्री। शकुनि बोले युधिष्ठिर तो इन्द्रप्रस्थ भी हार चुके। अब उनके पास लगाने के लिये रह ही क्या गया भान्जे ? युधिष्ठिर संकोच मत करो। जीतने का अवसर तो अभी भी है।

भीष्म धृतराष्ट्र को किसी प्रकार का आदेश तो नहीं दे सकते सिर्फ मन्त्रणा दी जा सकती थी किन्तु महामन्त्री ने अपनी मन्त्रणा देकर परिणाम देख लिया। उसका धर्म था कि राजा की इच्छा के विरुद्ध भी मन्त्रणा देना। जब विदुर की बात सुनकर धृतराष्ट्र के कान में जूं तक नहीं रेंगी तो फिर भीष्म की वह क्या सुनेगा ? यदि घर होता, परिवार होता तो भीष्म कुल वृद्ध होने के नाते अपने अधिकार का प्रयोग कर सकते थे किन्तु, राज्यसभा में कैसे ? भीष्म ने तो वर्षों पहिले ही प्रतिज्ञा कर राज्य का अधिकार छोड

दिया था तो आज वो इसे फिर से किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं ? वे यह देख देखकर पीडित हो रहे थे कि धृतराष्ट्र अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है। उसके अधिकारों के मूल में न तो न्याय है न ही समदृष्टि। उस अधिकार के मूल में है एक षडयन्त्र पांडवों को वंचित करने। भीष्म युधिष्ठिर के बारे में सोच रहे थे और इस पर मुग्ध हो रहे थे कि युधिष्ठिर के मन में न लोभ, न मोह, न भय, न किसी प्रकार की आशंका, न घृणा, न द्रोह और कितना प्रबल विश्वास और निर्भरता ईश्वर पर। तभी तो शान्ति से बैठा एक पर एक दांव लगाते जा रहा है। भविष्य की आनेवाली कठिनाइयों से पूर्णत: आशंका विहीन अनभिज्ञ था वो अपना धन लूटा रहा है और एक ओर उसी के ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र छल कपट में उसे दोनों हाथों से लूट रहा। धर्म की रक्षा के लिये परिवार में शान्ति बनाये रखने के लिये त्याग का सुख अत्यन्त महान है। संसार का सारा वैभव हस्तगत करके भी दुर्योधन उस सुख का एक अंश मात्र भी प्राप्त नहीं कर पायेगा।

युधिष्ठिर बोला अब मैं श्यामवर्ण, तरुण, लाल नेत्रों और सिंह के समान बलिष्ठ कन्धोंवाले महाबाहु मेरे प्रिय अनुज माद्रीनन्दन नकुल को दांव पर लगाता हूं। भीष्म उठ कर खडा हो बोले अब क्या एक भाई दूसरे भाई का दास होगा ? महाराज आप इस द्यूत को किस सीमा तक ले जायेंगे ? भगवान के लिये अब इस द्यूतक्रीडा को यहीं समाप्त कर दीजिये महाराज। शकुनि बोला जो दांव लग चुका है वो हाथ तो हो जाने दीजिये गंगापुत्र। अपने पांसे फेंकूं प्रिय युधिष्ठिर। धृतराष्ट्र बोला युधिष्ठिर का धन नकुल है तो वह उसे अपनी इच्छानुसार दांव पर लगा रहा है फिर इसमें हर्ज ही क्या ? भीष्म बोले आप अग्नि से खिलवाड कर रहे हैं महाराज। इसे रोक दीजिये यहीं। युधिष्ठिर बोला हां मामाश्री पांसे चलिये। शकुनि बोला घबराओ नहीं प्रिय युधिष्ठिर। अच्छा क्षत्रिय वो ही होता है जो द्यूत और रण से कभी नहीं घबराता। अब और क्या चाहिये प्रिय दुर्योधन ? दुर्योधन बोला मुझे नौ की आवश्यकता है। शकुनि बोला नौ तो अवश्य आयेगा पुत्र। यह लो नौ अब से नकुल भी तुम्हारा दास हुआ भान्जे। अब क्या लगाओगे प्रिय युधिष्ठिर ? शकुनि बोला पुत्र पिता का और छोटा भाई बडे भाई का धन होता है। क्या युधिष्ठिर तुम अपने छोटे भाइयों के स्वामी नहीं हो ? युधिष्ठिर बोला मामाश्री धन तो वे अवश्य होते हैं पर उन्हे कोई द्यूत के दांव पर नहीं लगाता क्योंकि वे भी जीव हैं, प्राणी हैं, मनुष्य हैं। शकुनि ने कुछ प्रखर हो कहा दास-दासियां भी तो जीव हैं, प्राणी तथा मनुष्य हैं। उन्हे दांव पर लगाते समय तो तुम्हे संकोच नहीं हुआ। युधिष्ठिर बोला दास-दासियों का क्रय विक्रय होता है उन्हे भेंट स्वरूप भी दिया जाता है। उन्हे द्यूत में दांव पर भी लगाया जाता है। किन्तु धन होते हुये भी अपनी सन्तान तथा छोटे भाइयों को न कोई भेट में किसी को देता है और न ही उनके स्वामित्व का परिवर्तन होता है। मामाश्री कोई भी अपनी पुत्री और बहन को द्यूत में दांव पर नहीं लगाता। पत्नी को भी अपना धन मानते हुये भी कोई पति न तो उसे किसी और को भेंट में देता है, न बेचता है और न ही द्यूत में हारता है। युधिष्ठिर बोला फिर भी सहदेव मुझे अत्यन्त प्रिय है। यद्यपि वह दांव पर लगाने योग्य नहीं है परन्तु अप्रिय कृत्य की भांति में उसे दांव पर लगा रहा हूं और युधिष्ठिर को पसीना आने लगा। शकुनि बोला मेरी सेना तैयार है भान्जे दुर्योधन बोलो क्या चाहिये ? दुर्योधन बोला मामाश्री मुझे फिर से अब छ: की आवश्यकता है। शकुनि ने पासें फेंक दिये और बोला ये लो छ:। यह दांव भी हम जीत गये। दास हुआ सहदेव। दुर्योधन बोला अब क्या है दांव लगाने को भ्राताश्री ? युधिष्ठिर बोले अर्जुन। युद्ध रूपी समुद्र में हमारे त्राण के लिये जो नौका के समान है और जिसने शत्रुओं पर सदा ही विजय पाई है। अर्जुन प्रतापी वीर और संग्राम विजयी है। यह दांव पर लगाने योग्य नहीं है फिर मैं अर्जुन को दांव पर लगाता हूं। दुर्योधन बोला दांव पर लगाने से पहिले अपने भ्राताओं से तो पूछ लीजिये ज्येष्ठ भ्राताश्री कि वे दांव पर लगना चाहते भी है या नहीं ? युधिष्ठिर बोले मुझे अपने अनुजों से पूछने की आवश्यकता नहीं है आप पांसे फेंकिये गान्धार नरेश। शकुनि बोला अरे भान्जे अर्जुन। दुर्योधन बोला मुझे आठ चाहिये मामाश्री। शकुनि बोला अवश्य। प्रिय अर्जुन के लिये तो आठ भी आयेगा। यह लो आठ। दुर्योधन बोला वीर अर्जुन अबसे तुम मेरे दास हुये। शकुनि बोला हा हा वीर अर्जुन तुम्हारा दास।

दुर्योधन ने पूछा भ्राताश्री अब तुम्हारे पास क्या रहा दांव लगाने के लिये ? युधिष्ठिर बोले युद्ध में हमारे सेनापति विशाल हृदय और कन्धे सिंह समान चौडे बल में जिनकी समानता कोई नहीं कर सकता, गदाधारियों में अग्रण्य, शत्रुओं का काल ऐसे मैं मेरे भाई भीम को दांव पर लगाता हूं। शकुनि बोला भान्जे बलवान भीम। दुर्योधन बोला मामाश्री पौबारह। शकुनि ने पांसे उछाल दिये और बोले यह लो पौबारह। अब प्रिय भीम भी दास हुआ। दुर्योधन बोला भीम अब से तुम मेरे दास हो। शकुनि बोला युधिष्ठिर अब तुम्हारे पास बिना हारा हुआ कौनसा धन शेष रहा ? युधिष्ठिर बोले मैं अपने भाइयों में सबसे बडा हूं। मैं स्वयं अपने आपको दांव पर लगाता हूं। शकुनि बोला महाराज युधिष्ठिर दांव पर। भान्जे दुर्योधन यदि महाराज युधिष्ठिर को जीत लिया तो सारा विश्व तुम्हारी मुट्ठी में। मेरी सेना को यह दांव जीतना ही पडेगा। दुर्योधन बोला मामाश्री यह पांसा मुझे चाहिये ही चाहिये और मुझे नौ की आवश्यकता है। शकुनि बोला अवश्य और यह लो नौ। शकुनि ने पांसे खेले और नौ आगया। दुर्योधन बोला युधिष्ठिर अब तुम मेरे दास हो। शकुनि बोला शाबास मेरी सेना। युधिष्ठिर पूरे राज पाट के साथ अपने आप को हार गया। युधिष्ठिर बोला तो अब तो यह युद्ध यहां समाप्त करना ही पडेगा क्योंकि अब मेरे पास में दांव पर लगाने के लिये कुछ भी नहीं बचा। कर्ण बोला है कैसे नहीं महाराज ? बिना हारा हुआ धन शेष रहते स्वयं अपने आप को हार जाना महान पाप है। अभी तो तुम्हारे पास दांव पर लगाने के लिये है तुम्हारी प्रियतमा। अभिमानी मृगनयनी पांचाल कुमारी द्रौपदी जो है आपके पास। यह सुनकर बाकी सब पांडव आवेश में उठकर मारने को उद्यत हुये तो दुर्योधन क्रोधित हो बोला अब तुम सब मेरे दास हो चुके हो। चुपचाप से बैठ जाओ। यह देखकर भीष्म रोने लगे और विदुर उठ खडे होकर जोरों से बोलने लगे महाराज आपकी पुत्रवधू का नाम इस अनादर से लिया गया और आप यह सुनकर भी चुप रह गये। अपने इस पुत्र दुर्योधन को त्यागने का साहस कीजिये महाराज नहीं तो ये किसी दिन कुरु राज घराने पर कालिख मलेगा फिर किसी नदी का सारा जल भी इस कालिख को धोने के लिये कम पड जायेगा। इस अभिमानी काले कौए को इस राजघराने में से हटा दीजिये महाराज और मयूर को आमंत्रित कीजिये कि वे आये और इस राज घराने को फिर से मान सम्मान सहित आबाद करे। यह शुभकार्य करने में विलम्ब मत कीजिये महाराज। विलम्ब न कीजिये नहीं तो कुरु राज घराने का इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। कभी नहीं। रोकिये इन्हे महाराज रोकिये। यह अनर्थ मत होने दीजिये। न्याय अन्याय, धर्म-अधर्म का विचार न करनेवाला बुद्धिजीवी कभी राजभक्त नहीं हो सकता। दुर्योधन अत्यन्त उत्तेजित हो बोला मामाश्री। हस्तिनापुर नरेश को इतिहास से क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इतिहास भी वीरों और महावीरों का दास होता है। यदि आप केवल महामन्त्री होते तो पिताश्री के चरणों की सौगन्ध मैं आपके शीश को गर्दन से उठाकर अलग कर दिया होता जैसे माली किसी बाग की अनचाही घास को काटकर फेंक देता है परन्तु आप जैसे भी हैं काकाश्री हैं। आप तो उस बिल्ली की भांति है जो उसी पर पंजा मारती है जो उसे अपनी गोद में बिठाकर खिलाता है। आप यह न समझिये काकाश्री कि हमें यह ज्ञान ही नहीं कि आपकी नीति ने सदैव हमारा ही विरोध किया है। या तो आप पितामह, गुरु द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की भांति चुपचाप अपने स्थान पर बैठ जाइये नहीं तो फिर इस सभा से निकल जाइये। विदुर बोले तुम यदि मान और अपमान का अर्थ जानते होते तो दुर्योधन तुम बीच में बोलकर अपने पिताश्री का यों अपमान नहीं करते। ये सभा अभी भी महाराज धृतराष्ट्र की है और यदि यहां पर न किसी को निकालने का अधिकार है और न सभा में बुलाने का। महाराज इस सभा में विनाश का नाग अपना फन फाड़े बैठा है, उससे खेलिये मत। अपने परिवार पर दया कीजिये महाराज दया और इस विनाश के नाग को इस सभा से निकल जाने का मार्ग दीजिये। द्यूतक्रीडा सभा की समाप्ति की घोषणा कीजिये महाराज। दुर्योधन बोला काकाश्री द्यूत का निमन्त्रण मैंने भेजा था और उसकी समाप्ति की भी घोषणा केवल मैं ही कर सकता हूं। केवल मैं। बोलो भ्राताश्री लगा रहे हैं द्रौपदी को दांव पर। शकुनि बोले प्रिय युधिष्ठिर बोलो। युधिष्ठिर बोला द्रौपदी सुशीलता, अनुकूलता और प्रियवादिता आदि गुणों से परिपूर्ण है मैं उसी सर्वांग सुन्दरी, लावण्यमयी द्रौपदी को दांव पर

लगाता हूं। चारों ओर से धिक्कार होने लगा। सारी सभा क्षुब्ध हो उठी। सभ्य राजा शोकाकुल हो उठे। भीष्म द्रोण, कृपाचार्य आदि के आसन डोलने लगे। उन्हे चक्कर आने लगे। विदुर अपना सिर पकडकर बैठ गया। दुशासन, कर्ण आदि की दुष्ट मंडली प्रसन्न हो हंसने लगी। सभी सभासदों के नेत्रों से आंसू झर रहे थे। दुर्योधन बोला उठाओ पांसे मामा मुझे द्रौपदी चाहिये। शकुनि बोला मेरे पांसे मेरा आदेश अवश्य मानेंगे भान्जे। दुर्योधन बोला मुझे नौ की आवश्यकता है। शकुनि ने कहा अवश्य पुत्र दुर्योधन और यह लो नौ। बस एक बार और मेरे पांसो। नौ आ गया। महारानी द्रौपदी अब तुम्हारी दासी हुई पुत्र दुर्योधन। युधिष्ठिर द्रौपदी को हार गया। दुर्योधन बोला द्रौपदी आज से मेरी दासी है युधिष्ठिर। दुरात्मा शकुनि ने विजयोन्माद से मत्त होकर छल से पांसे फेंककर अपनी विजय घोषित कर दी।

१०) द्रौपदी का चीर हरण व कृष्ण का वस्त्रावतार

यह ऐसा प्रसंग है जिसे सुनकर ही हृदय में उथल पुथल मच जाती है। द्रौपदी के जीवन की यह सबसे करुण घटना है। इस प्रकार की असहाय अवस्था में द्रौपदी और कहीं नहीं देखी गयी। ऐसी करुणा जिसने द्वारिका से भगवान कृष्ण को खींच लिया। ऐसी करुणा जिसे देखने से भी अस्वीकार कर दिया भीष्म, द्रोण और विदुर की आंखों ने। ऐसी करुणाजनक घटना जो संसार के इतिहास में भरी सभा में इस प्रकार कभी नहीं घटी। ऐसी ही यह घटना घट गई और लोगों ने उसे देखा, उसमें सम्मिलित होकर भाग लिया मानो सबने अपने हृदय की निष्ठुरता व्यक्त कर संसार के आगे रख दी हो। आश्रय हीन द्रौपदी भी आश्रयहीन नहीं है। जगत का आश्रय छूटते ही उसे सर्वाश्रय का आश्रय मिल जाता है। भगवान निराश्रय के आश्रय हैं, अशरण के शरण हैं, निर्बल के बल हैं, दु:खों के त्राता हैं, दीन जनों के अपने हैं। वे सच्चे हृदय से पुकारने पर दौडे आते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय भरी सभा में पुकार कर चिल्लाकर दुर्योधन ने कहा काकाश्री विदुर जाइये और अन्तपुर से द्रौपदी को लेकर आइये। आज से वो मेरी दासी है और उसका स्थान राजभवन में नहीं वो मेरी अन्य दासियों के साथ रहेगी। विदुर क्रोधित हो उठे और बोले अरे महामूर्ख मत यमराज को आमंत्रित कर। कोई भी मनुष्य ऐसी बात मुंह से नहीं निकालता। तेरी मृत्यु तेरे सिर पर नाच रही है। मर्यादा मत भंग कर। इन सिंहों को मत छेड, इन विषैले सर्पों से मत खेल। सौ जन्म लेने पर भी द्रौपदी तेरी दासी नहीं हो सकती। मत अपने आपको यम के फन्दे में डाल। युधिष्ठिर ने अनाधिकार से उसे दांव पर लगाया है। जब बांस का नाश होने आता है तभी उसमें फल लगते हैं। तूने जड से नष्ट होने के लिये ही जुए के खेल में घोर बैर और महाभय की सृष्टि की है। मरणासन्न पुरुष को कभी हिताहित का ज्ञान नहीं होता। किसी को भी मर्मभेदी पीडा नहीं पहुंचानी चाहिये। कठोर और उद्वेगकारी वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। धृतराष्ट्र बडे भयंकर और विकट संकट में फंस गया। यह सब अध:पतन के लक्षण हैं। कडवी बात जिसके लिये कही जाती है वह उसके मर्मस्थान को भेद रात दिन विह्वल कर पीडा पहुंचाती है। चाहे तुम्बा जल में डूब जाये, पत्थर पानी पर तैरने लगे परन्तु यह मूर्ख दुर्योधन मेरी हितकारी बात नहीं मानेगा। यह कभी भी अपने मित्रों की श्रेष्ठ और हितभरी बात नहीं सुनता। इसका लोभ दिनोंदिन बढते जा रहा है। यह शीघ्र ही कौरवों के सर्वनाश का हेतु भयंकर विध्वंस करनेवाला होगा। दुर्योधन पांडवों के साथ अन्याय नहीं बल्कि स्वयं अन्याय कर अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात कर रहा है। उसे यह पता नहीं है कि ये जुए का खेल नहीं महासंहार का आह्वान है। दुर्योधन सभी को हीन समझ अपने विनाश पर उतारू हो गया। अब कुरु वंश का संहार बहुत ही निकट है। उसके साथ पृथ्वी के क्षत्रियों का भी संहार होगा। यह सब कुछ समझकर दुर्योधन को इस अनुचित कृत्य से रोकें। परन्तु दुर्योधन को रोकने का साहस किस में ?

दुर्योधन डांटते हुये बोला यह काका विदुर तो कायर है। खाता हमारा है और सेवा किसी और की करता है। राजसेवक होते हुये राजाज्ञा का पालन नहीं करता। महामन्त्री विदुर तुमने मेरा आदेश नहीं मानकर अच्छा नहीं किया और विदुर को धिक्कार कर अपने द्वारपाल प्रतिकामी से कहा तुम अन्त:पुर में जाकर इसी समय द्रौपदी को यहां ले आओ और पांचाली को सूचना दो

कि पांडव उसे जुए में हार चुके है और अब वो मेरी दासी है। वह जहां भी हो जिस अवस्था में हो उसे तत्काल इस सभा में यहां आने को कहो। विदुर सोचने लगे द्यूत हस्तिनापुर का शासन रहा है और राजा नहीं खेल रहा था। जब कोई राजा या राजतन्त्र किसी क्रीडा स्थल या क्रीडा भवन का निर्माण करता है तो उसका लक्ष्य प्रजा का मनोरंजन होता है। राजा न कोई पक्ष और न ही कोई पक्षधर होता है वह तो मात्र अधर्म और अन्याय का विरोध करने के लिये साक्षात या प्रतीक के रूप में वर्तमान होता है। पर धृतराष्ट्र जैसे राजा से न्याय और धर्म की क्या अपेक्षा की जा सकती थी। सभी पांडव उस सभा में चेतना लुप्त हो दीन हीन स्थिति में चुपचाप सिर झुकाये बैठे थे। विदुर बोले दुर्योधन की आज्ञा को मैं राजाज्ञा नहीं मानता।

द्वारपाल प्रतिकामी बोला जो आज्ञा युवराज। दुर्योधन की आज्ञानुसार प्रतिकामी अन्त:पुर में चला गया। द्रौपदी रजस्वला अवस्था में अपने कक्ष में लेटी हुई थी। प्रतिहारी ने आकर सूचना की कि राजभवन से दूत आया है। द्रौपदी ने उसे अपने समक्ष बुलाने की आज्ञा दी। प्रतिकामी आकर बोला महारानी की जय हो। द्रौपदी बोली बोलो द्वारपाल क्या बात है ? प्रतिकामी रोकर सिसकियां भरने लगा। गला अवरोध हो गया और वह बोल नहीं पा रहा था। प्रतिकामी ने कहा हे महारानी जो शब्द लेकर मैं यहां भेजा गया हूं उनको कहते हुये मेरी जीभ डर रही है। द्रौपदी बोली तुम्हे ऐसे शब्द लेकर किसने भेजा है ? प्रतिकामी बोला युवराज दुर्योधन ने। द्रौपदी बोली तुम्हे देवरजी ने भेजा है और वो भी असभ्य शब्दों के साथ तो तुम वो असभ्य शब्द बोलो द्वारपाल। तुम तो इस समय युवराज के कंठ हो। बोलो द्वारपाल क्या हस्तिनापुर के द्वारपाल अपने महाराज की पुत्रवधू के आदेश का पालन नहीं करते ? बोलो क्या कहलवाया है तुम्हारे युवराज ने ? प्रतिकामी बोला द्यूतक्रीडा में महाराज युधिष्ठिर अपना राजमुकुट हार गये हैं महारानीजी। द्रौपदी बोली क्या ? महाराज अपना राज्य हार गये ? लगता है तुम्हे कुछ और भी कहना है? वो भी कह डालो द्वारपाल। प्रतिकामी बोला महाराज अपने चारों भाइयों को भी हार गये है महारानीजी। द्रौपदी बोली नहीं प्रतिकामी ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारे सुनने में अवश्य कोई भूल हुई होगी। भाई की गिनती सम्पति में थोडे ही होती है कि महाराज उन्हे भी हार गये। प्रतिकामी बोला वे तो आपको भी हार गये महारानीजी। द्रौपदी बोली लगता है तुम्हारे असभ्य शब्द अभी तक समाप्त नहीं हुये। प्रतिकामी रोने लगा। रोओ मत द्वारपाल वो भी कह डालो। प्रतिकामी बोला युवराज ने आपको द्यूतक्रीडा भवन में आने का सन्देश दिया है। द्रौपदी बोली आदेश क्या मैं उनकी दासी हूं जो मुझे आदेश देने लगे ? आर्य पुत्र तो धर्मराज है। अपनी पत्नी को तो कोई अधर्मी भी दांव पर नहीं लगाता। क्या वो मदिरा पीकर खेल रहे थे ? प्रतिकामी बोला नहीं बहूरानी उन्होने मदिरा नहीं पी। द्रौपदी बोली वो अपने भाइयों को और मुझे जानते बूझते हार गये। तुम लौट जाओ द्वारपाल और मुझे हार जानेवाले उस जुआरी से यह पूछो कि वो पहले अपने आप को हारा था या मुझे ? इस प्रश्न का उत्तर जाने बिना मैं वहां नहीं आ सकती। मेरे प्रश्न का पहले उत्तर लेकर आओ और फिर मुझे ले चलो। प्रतिकामी बोला जो आज्ञा बहूरानी।

राज पाट सब हार कर, हारे भाई चार, दास बने, दासी बनी पांचाली सी नार,
जुआ बुरा है खेलना, करे बुद्धि का नाश, धर्मराज का धर्म भी बन्धा जुए के पाश।

आज महाभारत की यह कथा एक लज्जा जनक मोड पर है। मर्यादा की रेखा के इस पार आज द्रौपदी के अतिरिक्त कोई नहीं और मर्यादा की रेखा के उस पार सभी हैं। गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य और पांडव भाइयोंसहित सभी इस रेखा के उस पार हैं। ये रूक कर सोचने की जगह है क्योंकि यह निर्णय वर्तमान और भविष्य के हर व्यक्ति को लेना पडेगा कि स्वयं वो इस मर्यादा रेखा के इस पार है या उसपार। हर व्यक्ति को इस दुर्घटना में प्रवेश करना पडेगा।

द्रौपदी ने प्रतिकामी से कहा था अवश्य विधाता का विधान यही है। बालक वृद्ध सभी पर सुख-दु:ख तो आते ही हैं। जगत में धर्म सबसे बडी वस्तु है। यदि दृढ़ता से धर्म की राहपर दुशस्त रहे तो धर्म भी उसकी रक्षा करता है। इस अचानक आ पडे

अवसर पर द्रौपदी का क्या कर्त्तव्य बनता है यह उस सभा के धर्मात्मा सभासदों से पूछकर बताओ क्योंकि द्रौपदी धर्मराज की पत्नी धर्म का उल्लंघन नहीं करना चाहती थी। द्रौपदी की बात सुनकर प्रतिकामी सभा में वापिस लौट आया। कृपाचार्य बोले कुलगुरु होने के नाते यह मेरा कर्त्तव्य है कि भोग विलास, मृगया और द्यूत के अंकुर व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों को नाश कर देते है। दुर्योधन बोला कुलगुरु यदि मैं हारा होता तो ये स्वर्ण शब्द तुम्हें कभी याद भी नहीं आते। यह तो वो ही बात हुई जिस थाली में खाया उसी में छेद दिया। बैठ जाइये कुलगुरु बहुत हो चुका बस आपका। भीष्म बोला जब बांस का अन्त होता है महाराज तभी उसमें फल आ जाते है। दुर्योधन भी हस्तिनापुर की राजनीति का ही एक फल है महाराज। फिर भी यदि आप सोच सकते हैं तो सोचिये। द्रौपदी एक कुलवधू है। उसका अपमान कुल का अपमान है। दुर्योधन उत्तेजित हो बोल उठा द्रौपदी अब कुलवधू नहीं रही वो आज से मेरी दासी है दासी पितामह। और वो भवन में दूसरी दासियों के साथ रहेगी और उन्ही के समान कामकाज करेगी। भीष्म बोले मेरी निष्ठा हस्तिनापुर के राज सिंहासन के प्रति है महाराज, दुर्योधन के हठों के प्रति नहीं। दुर्योधन बोला और इस सिंहासन पर मेरे पिताश्री विराजमान हैं तातश्री।

विकर्ण उठा और बोला मैं तातश्री से सहमत हूं। भाभीश्री का अपमान सारे भरत वंश का अपमान है। दुर्योधन बोला विकर्ण मैं तुमसे मान सम्मान के विषय में कुछ नहीं सुनना चाहता जाओ बैठ जाओ और मुझे अपने दासों के सिर पर ये मुकुट अच्छे नहीं लगते। अपने अपने ये मुकुट उतारकर मेरे चरणों में रख दो। सबसे पहिले युधिष्ठिर ने अपना मुकुट उतारा और फिर उसे देख अन्य चारों भाइयों ने भी अपना मुकुट उतारकर रख दिया। जैसे ही प्रतिकामी उस सभा में आया सबकी दृष्टि प्रतिकामी की ओर लगी हुई थी। सब इसलिये उत्सुक हो रहे थे कि द्रौपदी साथ नहीं आई तो फिर द्रौपदी ने क्या कहा। दुर्योधन अपने क्रोध में भयंकर हो उठा और बोला तू अकेला ही चला आया मूर्ख ? और क्रोध से एक हाथ उसके गाल पर चांटा जड दिया। प्रतिकामी कांप रहा था बोला युवराज इतने में ही दुशासन डपटकर बोला बोलता क्यों नहीं बेवकूफ पांचाली सभा में क्यों नहीं आई ? प्रतिकामी बडी कठिनाई से बोला राजकुमार द्रुपद कुमारी ने पूछा है कि मैं उनके पति धर्मराज युधिष्ठिर से पूछ कर बताऊं कि पहले वे स्वयं को दूत में हारे या पांचाली को पहले दांव में लगाकर हारे ? स्वयं स्वतन्त्र रहते हुये अपनी इच्छानुसार द्यूत व्यसन में अपनी पत्नी को दांव पर लगाया। दुर्योधन ने रोषपूर्वक बोला तू मेरे आदेश का पालन करने गया था या उस दासी से आदेश प्राप्त करने ? जो उसकी बात सुनकर लौट आया। जाकर कह दे उस दासी से जो कुछ पूछना हो यहां आकर पूछे और सबके सामने उत्तर सुने। उसे यह भी कह देना दासियों का काम आज्ञा पालन करने का होता है प्रश्न करने का नहीं ? सभी सभासद अपना अपना मुंह नीचे किये बैठे थे। महात्मा पांडव बडी दीन हीन अवस्था में खिन्न उदास हो बैठे थे। वे सत्य और धर्म से बन्धे होने के कारण कुछ कर भी नहीं पा रहे थे। कर्ण प्रतिकामी से बोला तू इस एक मामूली दास को महाराज कहकर यहां पर उपस्थित राजाओं और महाराजाओं का अपमान कर रहा है। द्वारपाल प्रतिकामी जो आज्ञा कहकर फिर से द्रौपदी के पास भवन के अन्त:पुर में गया। प्रतिकामी द्रौपदी के क्रोध से डरता था। इस बार प्रतिकामी को द्रौपदी के पास जाने में बडा कष्ट हुआ उसने हाथ जोडकर बडे ही करुण स्वर में कहा बहूरानी जी। द्रौपदी अपने कक्ष में थी प्रतिकामी आया जानकर उसने पूछा बोलो द्वारपाल क्या उत्तर लाये हो मेरे प्रश्न का ? प्रतिकामी बोला महाराज तो चुप रहे पर युवराज ने कहा बहूरानी आप स्वयं वहां पधारकर महाराज से प्रश्न कर लें। सभ्य कहलानेवाले ये लोग आपको सभा में बुला रहे हैं। द्रौपदी बोली विधाता के विधान को कोई नहीं टाल सकता। सभी प्राणी अपने भाग्य के चक्रानुसार सुख-दु:ख पाते है मैं नहीं चाहती कि कौरव धर्म से पराडमुख हो। प्रतिकामी अब मेरे लिये एक और कष्ट उठाओ। वहां जाओ और उनसे कहों कि द्रौपदी केवल अपने बडों के आदेश का पालन करेगी। यदि पितामह यही चाहते हों कि कुरुराज घराने की लाज द्यूतक्रीडा भवन में आये तो मैं अवश्य चलूंगी। यदि ज्येष्ठ पिताश्री की भी यह आज्ञा हो तो मैं इस आज्ञा का पालन करूंगी। यदि काकाश्री विदुर भी इसे उचित समझते हो तो मैं वहां

अवश्य आऊंगी परन्तु यदि वे लोग यह नहीं चाहते हों तो मैं वहां नहीं चलूंगी। प्रतिकामी बोला युवराज मुझे फिर लौटायेंगे बहुरानी। द्रौपदी बोली तो क्या तुम अपनी बहूरानी के लिये इतना कष्ट भी नहीं उठा सकते ? प्रतिकामी बोला जो आज्ञा बहूरानी और यह कहकर प्रतिकामी वहां से चला गया।

प्रतिकामी सभा में जाने के लिये साहस एकत्रित कर रहा था और दुर्योधन को आकर बताया। दुर्योधन बोला वो कौन होती है ज्येष्ठ कुरुओं से पूछनेवाली ? उसे मैंने जीता है और उसे मेरे आदेश मानने पडेंगे। उसे यहां आना ही पडेगा। भीष्म बोले भगवान के लिये इस द्यूतक्रीडा को यहां समाप्त कीजिये महाराज। दुर्योधन अत्यन्त क्रोधित हो बोला पिताश्री मेरे साथ यह अन्याय नहीं कर सकते पितामह। युधिष्ठिर ने स्वयं द्रौपदी को दांव पर लगाया था। द्रौपदी को दांव पर लगाने से पहिले आप लोगों ने युधिष्ठिर से क्यों नहीं कहा कि द्रौपदी राज घराने की लाज है और वो भरत वंश की लाज को दांव पर नहीं लगाये। यह सारे प्रश्न अब क्यों उठ रहे हैं ? जब दांव मैं जीत चुका हूं, मेरे प्रश्न का उत्तर है किसी के पास ? सब के सब स्तब्ध हो सिर नीचा किये बैठे हैं। दुर्योधन ने प्रतिकामी की ओर कठोर दृष्टि से देखकर दुशासन से बोला प्रिय दुशासन यह मूर्ख प्रतिकामी नीच जन्मा होने से हमारे दास पांडवों से डर रहा है। अब तुम स्वयं जाओ और उस पांच पतियोंवाली द्रौपदी को बालों से पकडकर घसीट यहां ले आओ। ये हारे हुये पांडव तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड सकते। दुशासन बोला जो आज्ञा भ्राताश्री। मैं अभी उस नीच और उदंड दासी को लाकर आपके चरणों में डाल दूंगा। दुशासन अपना उत्तरीय सम्भालकर लाल लाल नेत्र कर राजभवन के अन्त:पुर में द्रौपदी के पास आया और बोला चल हमने तुझे जीत लिया है। द्रौपदी बोली नारी की मर्यादा का आदर करना सीखो गान्धारी नन्दन दुशासन। उसकी कोख को अपमानित मत करो। दुशासन उत्तेजित हो बोला उपदेश देने की जरूरत नहीं है। सीधे से चलती है या घसीट कर ले चलूं। अब लज्जा छोड और दुर्योधन की ओर देख। अब वो तुम्हारा स्वामी है और चलकर उसकी सेवा कर। दुशासन की बात सुनकर द्रौपदी का हृदय दु:ख से भर आया और मुख मलिन हो गया। द्रौपदी बोली नहीं मुझे इस दशा में वहां मत ले चलो दुशासन। मैं कुलवधू हूं और कुलवधुओं की मर्यादा का खयाल करो छोटे देवर। वह आर्त भाव से मुंह ढापे महाराज धृतराष्ट्र के अन्त:पुर की ओर भागी। पापी दुशासन ने क्रोध में भर उसे डांटा और पीछे से दौडकर द्रौपदी के काले अति घुंघराले लम्बे केशों को पकड कर खींचते हुये बोला तू दासी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। द्रौपदी बोली ये भी सोचो कि मैंने अभी तक ऋतु स्नान नहीं किया है। मैं रजस्वला हूं। रूक जाओ दुशासन रूक जाओ। मैं ऐसी दशा में बडों के सामने कैसे जा सकती हूं ? मैं तो ज्येष्ठ पिताश्री को प्रणाम करने तक नहीं गई फिर तुम मुझे इस तरह घसीटते हुये सभागृह में क्यों ले जा रहे हो ? जो मुझे पहचानते है वो मुझे पहिचान जायेंगे। जो नहीं जानते उन्हे क्या बताओगे ? क्या बात हुई कि मैं तुम्हारे पिताश्री के अनुज महाराज पांडु की पुत्रवधू हूं और यदि बीच में ही ज्येष्ठ माताश्री गान्धारी मिल गई वो तुमसे पूछे कि तुम इसे क्यों घसीटे ले जा रहे हो तो क्या कहोगे उन्हे ? दुशासन बोला चुपचाप चल। राजकुमारों से बातें करना सीखो दासी। द्रौपदी बोली मेरे इस अपमान पर पांडव तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेंगे और वो चाहे तो भी मैं उन्हे क्षमा करने नहीं दुंगी। और मैं उनका मान नहीं अपमान का घाव हूं दुशासन। दुरात्मा पापी दुशासन पांडवों का तिरस्कार कर आज द्रौपदी को बालों से पकड बलपूर्वक द्रौपदी को अनाथ की भांति घसीटता हुआ राजसभा की ओर चले आ रहा है।

द्रौपदी का रोम रोम कांप रहा था। वह खिंची जा रही थी। द्रौपदी ने फिर दुशासन से कहा अरे मूढात्मा दुशासन मैं एक वस्त्र में हूं ऐसी अवस्था में मुझे वहां ले चलना उचित नहीं समझो। पर दुशासन ने उसकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उसके केशों को जोर से पकडकर बोला द्रुपद पुत्री तू चाहे एक वस्त्रा हो या नंगी हो इससे हमें क्या। हमने तो तुझे जुए में जीता है। तू हमारी दासी है और दुशासन द्रौपदी को भरी राजसभा में घसीट लाया और द्रौपदी के केश बिखर गये खुल गये। उस मदमस्त दुशासन को क्या पता कि यही वे बाल हैं जो युद्धभूमि में एक दिन भीम के द्वारा उसके अपने ही रक्त से धोये जायेंगे।

बाल पकड लेने से द्रौपदी भी अनाथ, असहाय सी हो गई थी। लज्जा और क्रोध के मारे द्रौपदी का हृदय जल रहा था। द्रौपदी फिर से बोली दुशासन इन गुरुजनों के सामने मैं इस वेश में कैसे रह सकती ? तुम अनार्य की भांति ऐसा आचरण मत करो। पांडव कभी भी धर्म से च्युत नहीं हो सकते। मैं चित्त और मन में उनके दोष के बारे में कभी सोच ही नहीं सकती। इस समय तुम अधर्म कर रहे हो गान्धारी नन्दन। इस सभा में सभी शास्त्र के ज्ञाता, क्रियावान, इन्द्र के समान प्रतिष्ठित मेरे गुरुजन बैठे हैं अरे दुराचारी मैं इनके समक्ष कैसे जा सकती हूं। इस नीच कर्म से क्या तुझे तनिक भी डर नहीं ? अगर इन्द्र सहित सारे देवता भी तेरी सहायता को आजाये तो पांडवों के हाथ से तेरा छुटकारा नहीं होगा। ये सभा में बैठे हुये सारे कुलवृद्ध कौरव अपनी आंखों से कुरु मर्यादा का नाश देख रहे थे। मेरा अपमान करते हुये सब चुपचाप बैठे हैं तुम्हे कोई मना भी क्यों नहीं करता। धिक्कार है धिक्कार है इन मूक समर्थकों को। यहां पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य और काकाश्री महात्मा विदुर जैसे धर्म ध्वजक बैठे हैं वे भी तुम्हे रोक नहीं रहे हैं।

द्रौपदी वहां पर अपनी इच्छा से तो नहीं आई थी उसे दुशासन बलात घसीटकर खींच कर ले आया था, खुले केशों को मुट्ठी बांधकर। सभा में पहुंचकर दुशासन ने केशों की मुट्ठी खोल दी। उठकर द्रौपदी भूमि पर बैठ गई और सम्भलकर दृष्टि उठाकर चारों ओर देखा। आंखे डबडबा आई। मुख पर आक्रोश, असहायता, विवशता झलक रही थी। उसके दमित तेज में पीडा थी और आक्रमकता। हाथों से मुंह ढापे अधिक देर तक वहां बैठे नहीं रह सकी और उठकर जोरों से क्रोध से लाल होकर बोलने लगी। कहां गया द्रोण, भीष्म, इन सबका आत्मबल ? बडे-बूढे आंखे होते हुये भी इस अधर्म को क्यों देख रहे हैं ? द्रौपदी ने यह कटाक्ष कुटिल आंखों से पांडवों की ओर देखकर किया। पांडवों के शरीर में दहकती क्रोधाग्नि को और भी धधका दी। पांडवों की दशा और भी बुरी होती जा रही थी। द्रौपदी के इन शब्दों में मानो क्रोधाग्नि में ओर आहूति डाल दी हो। पांडवों को धन सम्पत्ति और साम्राज्य के छिन जाने से इतना कष्ट नहीं हुआ था जितना अब द्रौपदी के कहे वाक्यों से। दुशासन, कर्ण, शकुंनि ठहाका मार मार कर हंस रहे थे। इन तीनों के अतिरिक्त सभी वहां बैठे हुये यह क्रूर कर्म देखकर अत्यन्त दुःखी हुये। द्रौपदी ने अपने पतियों की ओर देखा वे सभा के एक कोने में दीन हीन और मलिन सी स्थिति में बैठे हुये थे। उनके सिर झुके हुये थे। द्रौपदी को यह समझते देर नहीं लगी कि धर्मराज द्यूत में सब कुछ हारे हुये इस दशा में बैठे हैं। यदि उसके पति पराजित नहीं हुये होते तो, इस तरह दुर्योधन के पास चुपचाप बैठनेवाले नहीं। दुशासन उनके सामने द्रौपदी के केशों को पकडकर खींचने का दुस्साहस नहीं कर पाता और इस समय तक जीवित भी नहीं बचता। हाय रे इन्सान की मजबूरियां। धर्मराज ने आंखों की दृष्टि से द्रौपदी को समझाया मैं धर्म के बन्धन में बन्धा हूं देवि। मैं द्यूत में सर्वस्व हार चुका हूं। पहले स्वयं को फिर तुम्हें भी।

पार कर गया पाप की हर सीमा को नीच, कुल मर्यादा को खींचता भरी सभा के बीच।

दुशासन बोला यह रही पांच पांच पतियोंवाली द्रौपदी भ्राताश्री। दुर्योधन बोला क्या कहा था तूने अन्धे का पुत्र अन्धा होता है। दुशासन इस दासी को मेरी इस जंघापर बिठा दो। यह देखकर भीम उत्तेजित हो उठा और बोला दुर्योधन तेरे अपमान करने के लिये मैंने तेरी इस जंघा को नहीं तोडी तो सात जन्मों तक तेरा दास बनना स्वीकार करूंगा। दुर्योधन बोला क्षत्रियों की भाषा भूलने का प्रयत्न करो दास। कर्ण बोला चिन्ता मत करो मित्र। कुछ भूल जाने में और कुछ सीखने में कुछ समय तो लगता ही है। ये सब वो धीरे-धीरे दास बनकर जीना सीख ही लेंगे। देखना यह है कि उस दिन भरी सभा में इसने मुझे सूतपुत्र कहकर अपमानित करनेवाली यह अभिमानी द्रौपदी अपने पुत्र को दासपुत्र कहना सीख पाती है।

द्रौपदी ललकार कर बोली इन छली पापात्माओं ने धूर्तता से धर्मराज को जुआ खेलने के लिये तैयार कर लिया और कपट से उन्हे और उनके सर्वस्व को जीत लिया। उन्होने पहिले अपने को तब अपने को हारकर मुझे दांव पर लगाया है। मैं यह जानना

चाहती हूं कि अब उन्हे मुझे दांव पर लगाने का धर्म के अनुसार अधिकार था या नहीं। यहां सभा में अकेले ज्येष्ठ व धर्म ध्वज कुरुवंशी बैठे हुये है। मेरा यह प्रश्न उन सबसे है कृपया ठीक ठीक विचार कर उत्तर दें। इसका उत्तर न देने पर नरकगामी होना पडेगा। पितामह भीष्म, ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र और काकाश्री महामति विदुर इस विषय में परामर्श कर उचित निर्णय क्यों नहीं दे रहे हैं? आचार्य द्रोण और कृपाचार्य क्यों मौन हैं ? ये राजा लोग राग द्वेष भूलकर क्यों नहीं इस प्रश्न का उत्तर दे रहे ? आप लोग इस पतिव्रता द्रौपदी के इस प्रश्न पर विचार कर अपना मत प्रकट करें।

दुशासन से झटके से हाथ छुडाकर भीष्म पितामह से सम्बोधित हो द्रौपदी बोली। आंखे झुकाकर मौन बैठे रहना इस समस्या का समाधान नहीं है पितामह। मैं आपकी कुलवधू द्रौपदी एक वस्त्र में लिपटी हुई ऋतुस्नान किये बिना इस भरी कुरु सभा में प्रणाम करती हूं और यह कहती हूं कि आज क्या आशीर्वाद देंगे ? आप तो ज्येष्ठ कुरु हैं, महावीर हैं, विश्व विद्वान हैं। बताइये क्या आपने हस्तिनापुर के राजसिंहासन की रक्षा का वचन लिया था ? क्या कुरु मर्यादा का कोई तात्पर्य नहीं ? आप जैसे महापुरुष शूरवीर को इस तरह मुंह छिपाना शोभा नहीं देता पितामह। मेरी ओर देखिये। मैं कुरु मर्यादा के आगे लगा हुआ एक प्रश्न चिन्ह हूं। देखिये मेरी ओर। देखिये आपकी कुलवधू किस तरह भूमिपर बलात खींचकर यहां लाई गई है और मुझसे कहिये कि क्या भरतवंशियों की यही परम्परा है ? आपके मुंह से यह सुनकर मैं चुप हो जाऊंगी। मैं जिस वंश की हूं उस वंश की परम्परा कुछ और है। उस वंश में लोग अपनी कुलवधू के मान-सम्मान की रक्षा के लिये मर मिटते हैं परन्तु हर परिवार की अपनी अपनी परम्परा होती है। कृपया मुझे भरतवंश की परम्परा बतायें। मेरी ओर देखिये पितामह। जब मैंने पहली बार आपके चरण स्पर्श किये तो आपने मुझे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया था। अब आप अपने उस आशीर्वाद की दशा देखिये। आपके सामने यह अधर्म हुआ और आपने सहन किया। तो क्या यह इसका अर्थ नहीं है ? क्या आपने मन से इस अन्याय और अधर्म को स्वीकार किया ? क्या आप भी मेरे इस अपमान के भागीदार नहीं है ? यदि नहीं है तो उठाइये अपना धनुष और छेद दीजिये उस कुरु को जिसने आपकी कुलवधू को दासी कहने का अपराध किया है। आप पाप के वृक्ष की छांव तले बैठे हैं। उठ जाइये। आपको शास्त्रों का ज्ञान है पितामह। मुझे बताइये जो व्यक्ति स्वयं अपने आपको जुए में हार चुका हो वो कौन होता है कि किसी और की स्वतन्त्रता को दांव पर लगा दे ? मैं अपने प्रश्न का उत्तर मांग रही हूं पितामह आपसे ? आपका यह मौन मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता। किन्तु यह प्रश्न केवल द्रौपदी ही नहीं कर रही है। यह प्रश्न कर रही है नारी जाति। यह प्रश्न कर रही है पृथ्वी जो हर प्राणी की मां है। यह प्रश्न कर रहा है इतिहास ? यह प्रश्न कर रहा है इस देश का भविष्य जिसे आपके चक्रवर्ती महाराज भरत से उसका नाम मिला है। मुझे मार्गदर्शन कराये गंगा पुत्र भीष्म। भीष्म बोले पुत्री। द्रौपदी ने कहा नहीं। इस समय मैं आपसे अपने नातों की बात नहीं कर रही हूं पितामह। मैं उस अपमान की बात कर रही हूं जो पिघलकर आंसू बन कर मेरी आंखों से छलक रहा है। यदि पत्नी अपने पति की सम्पत्ति होती है तो फिर मेरे पति जब हारे तो मुझे भी अपने साथ हार गये तो फिर मैं दांव पर कैसे लगी ? यदि पत्नी पति की सम्पत्ति नहीं होती तो मैं यह पूछती हूं कि मेरे पति मेरी स्वीकृति लिये बिना मुझे दांव पर कैसे लगाये ? इस वंश की मर्यादा इस दशा में क्या कहती है ? कृपया इस समय मुझे पुत्री कह सम्बोधित मत कीजिये। यदि मैं भरतवंश की पुत्री रही होती तो मेरा यह अपमान कभी चुपचाप बर्दाश्त नहीं किया होता। मुझे कुलवधू कहिये क्योंकि मैं देखना चाहती हूं कि इस सभा में इस द्रौपदी को कुलवधू कहते हुये आपकी जीभ लडखडाती है या नहीं। अर्जुन बोला पांचाली के प्रश्नों का उत्तर दीजिये पितामह। द्रौपदी बोली पितामह क्या उत्तर देंगे ? वे तो स्वयं में एक प्रश्न हैं।

भीष्म बोले कल्याणी धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है इसी से तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक नहीं दिया जा सकता। जो स्वयं हार गया है वह स्वामी न होने के कारण किसी वस्तु को दांव पर नहीं लगा सकता और स्त्री सर्वदा अपने पति के अधीन

होती है। इन्ही दोनों कारणों से तुम्हारे प्रश्न की ठीक ठीक मीमांसा नहीं हो पाती। युधिष्ठिर पृथ्वी के साम्राज्य को सहज भाव से छोड सकते हैं परन्तु धर्म नहीं छोड सकते। यही मेरा विश्वास है। उन्होने अपने मुख से तुम्हें हार जाना स्वीकार किया है और अब तुम्हारा प्रश्न कि उन्हे तुम्हें हारने का अधिकार है या नहीं ? मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हो रहा हूं। द्रौपदी बोली दुष्ट, कपटी और किमार बाज लोगों ने जुए में अनभिज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर के साथ कपट किया है। मेरे धार्मिक पति न जुआ खेलते, न खेलना जानते और न तो इसके लिये उन्होने कोई उद्योग ही किया है। धर्मराज का हृदय सरल है। वे भोले भाले, निश्छल, सत्यवादी हैं और वे दूसरों को भी अपने समान ही समझते है। वे इन दुष्टों के प्रपंच जाल में फंस गये है ऐसी स्थिति में उनका हारना हारना स्वीकार भी नहीं किया जा सकता। भीम यह सब देखकर असह्य हो रहे थे। वे क्रोधित हो बार बार युधिष्ठिर को भला बुरा व्यंग करने लगे तो अर्जुन ने भीम को समझाया नहीं भ्राताश्री आप धर्म को मत भूलिये और इस तरह ज्येष्ठ भ्राताश्री का अपमान मत करें। इसमें शत्रुओं का मनोरथ पूर्ण होने में सहायक मत बनिये। ईश्वर अवश्य ठीक करेंगे। सम्भव ही नहीं निश्चित जानो यह अपमान ही हमारे अभ्युदय का कारण होगा। अर्जुन का कहा सुनकर भीम शान्त हो गये।

द्रौपदी धृतराष्ट्र के चरण स्पर्श कर कहती है आपके अनुज पांडु की पुत्रवधू द्रौपदी आपको प्रणाम करती है ज्येष्ठ पिताश्री। आप बडे भाग्यवान हैं जो नेत्रहीन जन्मे। नहीं तो आज अपनी सभा में अपनी पुत्रवधू की दुर्दशा देखकर अवश्य ही नेत्रहीन हो गये होते। धृतराष्ट्र बोला कुछ न कहो पुत्री। न तो युधिष्ठिर ने मुझसे तुमको हारने की आज्ञा ली थी और न ही दुर्योधन ने द्यूत में तुम्हे जीतने की। अपना यह प्रश्न लेकर युधिष्ठिर के पास जाओ जिसने तुम्हे दांव पर लगाकर भरतवंश की मर्यादा को भंग किया है। धृतराष्ट्र के उत्तर से द्रौपदी स्तब्ध हो गई। उसके सम्मुख जो व्यक्ति राज सिंहासन पर बैठा है वह न तो उसका श्वसुर था, न कुरुकुल वृद्ध, न वह राजा था और न ही न्यायकर्ता। न वह अपनी प्रजा को पहचानता था और न धर्म को। वहां तो अन्धा शासक था जो केवल पशुबल को पहचानता था। वो तो सिर्फ पुत्र मोह में अन्धा था और ऊंची ऊंची महत्वाकांक्षाओं का महल खडा करेनवाला।

द्रौपदी बोली जो आज्ञा ज्येष्ठ पिताश्री परन्तु उनके पास यह प्रश्न ले जाने के पहिले मैं अपने पिता के मित्र द्रोणाचार्य को प्रणाम करना चाहती हूं जिनके लिये भी मेरे पास एक प्रश्न है। आपने काकाश्री विदुर द्वारा एक सन्देश भेजा था ना कि द्रुपद पुत्री होने से तो आज इस सभा में पुत्री के नाते गुरुवर आपका चरण स्पर्श करुं या पुत्र वधू के नाते ? द्रोणाचार्य भी सिर झुकाये रहे कोई उत्तर नहीं दिया। द्रौपदी बोली लगता है आपने भी अपने होठों पर मौन का ताला लगा लिया। द्रौपदी ने कृपाचार्य से भी प्रश्न किया पर वे भी मौन रहे। कुछ न बोल सके। अब द्रौपदी अपना प्रश्न लेकर महात्मा महामति काकाश्री विदुर के पास गई और पूछी महात्मन इस विषय में विदुर नीति क्या कहती है ? आप तो कडवे सत्य बोलने के लिये प्रसिद्ध हैं। आप तो चुप मत रहिये। क्या किसी पति को अधिकार है कि वह अपनी पत्नी को जुए में हार जाये ? क्या किसी दास को यह अधिकार है कि किसी और की स्वाधीनता को दांव पर लगा दे ? विदुर भी चुपचाच सुनते रहे।

दुर्योधन का एक और छोटा भाई था विकर्ण वह फिर से सभा में उठ खडा हुआ और बोला सभासदों भाभीश्री ठीक कह रही है। दुर्योधन ने आंखे दिखाई और बोला विकर्ण। शकुनि ने कहा जो बोलता है उसे बोल लेने दो भान्जे। जो होना था सो तो हो ही गया। प्रिय युधिष्ठि तो द्रौपदी को हार ही चुके हैं। द्रौपदी बोली यह होते कौन हैं मुझे हारनेवाले ? यदि अपनी पत्नी को हारने का अधिकार हो तो भी मैं केवल एक इन्हीकी पत्नी तो नहीं हूं। मैं पांचो पांडवों की पत्नी हूं और मुझपर केवल इनका ही अधिकार नहीं है। क्या मुझे दांव पर लगाने के पहिले नकुल तुमसे पूछा था क्या कि तुम्हारी पत्नी को ये दांवपर लगा सकते है या नहीं ? सहदेव क्या तुमसे इन्होने पूछा था ? सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर मीन भेदन कर मेरा स्वयंवर विजेता वीर अर्जुन तुम बताओ ? क्या तुमने मेरा स्वयंवर इसलिये

जीता था कि ज्येष्ठ कुरु कुन्ती पुत्र मुझे दांव पर लगा दे। इससे पहिले भी इतने अनेक जुआरी हो चुके है पर किसी ने भी अपनी रखैल तक को भी दांव पर लगाया था क्या ? और तुम लोग तो अपनी ब्याहता पत्नी को दांव पर लग जाना देखते रह गये। धिक्कार है तुम लोगों की वीरता पर धिक्कार। भीम बोला आप सब पांचाली के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते भ्राताश्री। आप तो स्वयं इस धरती पर धर्म का चिन्ह है। महादेव की सौगन्ध यदि आप आप ना रहे होते तो मैं पांचाली को दांवपर लगानेवाले हाथों को वृक्ष की तरह जड से उखाड फेंकता। शकुनि बोला भान्जे आज जाकर मेरी अभिलाषा पूरी हुई। अब पांडवों में फूट पड ही गई।

विकर्ण को कौरवों की ये बातें और करतूत बहुत बुरी लगी वह सहन नहीं कर सका और बोला तुम उत्तर दो या ना दो। मैं जो न्याय संगत और शास्त्र सम्मत है वह कह रहा हूं। शास्त्रों ने द्यूत को राजाओं का दुर्व्यसन माना है। राजाओं के ये चार व्यसन शराब, शिकार, जुआ और स्त्री प्रसंग विनाशकारक माने गये हैं। इसमे संलग्न होने पर मनुष्य का पतन होता है। इन जुआरियों के आमन्त्रण पर महाराज युधिष्ठिर ने जुए की आसक्ति वश भाभीश्री द्रौपदी को दांव पर लगा दिया। भाभी द्रौपदी केवल महाराज युधिष्ठिर की ही पत्नी ही नहीं बल्कि उस पर अन्य चार पांडवों का भी समान अधिकार है जुए में आसक्त मनुष्य धर्म से च्युत हो जाता है इससे उसका किया हुआ कृत्य प्रामाणिक नहीं माना जाता है। युधिष्ठिर ने अपने आपको हारकर द्रौपदी को दांव पर लगाया है। युधिष्ठिर ने भी स्वेच्छा से नहीं बल्कि मामाश्री शकुनि के उकसाने पर द्रौपदी की बाजी लगायी है। युधिष्ठिर को यह अधिकार नहीं था कि वो द्रौपदी को दांव पर लगाये। इन सब कारणों से मेरा मत है कि द्रौपदी धर्म के अनुसार जीती नहीं गई है और उसके साथ अन्याय किया जा रहा है। विकर्ण की बात सुनकर वहां सभी उपस्थित उसकी प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे। विकर्ण बोला जैसे बडे बडे वृक्षों को दीमक चाट जाती है। जैसे रोग शरीर को खा जाता है, भाभीश्री के अपमान का रोग भी दीमक की भांति कुरु के वृक्ष को नष्ट कर देगा और हम लोग जिस गरिमा की छांव में जी रहे है यह उस गरिमा को भी नष्ट कर देगा। भीष्म पितामह, पिताश्री, काकाश्री, गुरुवर द्रोणाचार्य और कुलगुरु कृपाचार्य, अंगराज कर्ण भाभीश्री के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दे रहे है ? क्योंकि आपका इस प्रश्न का उत्तर ही आगे चलकर हस्तिनापुर के भाग्य और दुर्भाग्य का द्वार खोलेगा। और यदि आज भी आपने भाभीश्री के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो यह प्रश्न का उत्तर देने के लिये आपको बार बार जन्म लेना पडेगा। द्रौपदी का यह ज्वलन्त प्रश्न आज भी वैसा ही खडा है प्रश्न यह है कि क्या एक पति को यह अधिकार है कि वह अपनी पत्नी को जुए में दांव पर लगा सकता है ?

भीष्म बोले युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर लगाकर अच्छा तो नहीं किया परन्तु पत्नी पर पति का अधिकार तो स्वयं सिद्ध है। द्रौपदी बोली क्या यह धर्म है ? पितामह वह सभा नहीं है जिसमें सत्य न हो और वह सत्य नहीं है जो छल कपट से युक्त हो। धर्म के बारे में आपसे अधिक और कौन जान सकता है। आप बताये क्या धर्मराज को जुए में मुझे दांव पर लगाने का क्या अधिकार था ? यह भी बताये कि मैं कुरुकुल की कुलवधू हूं तथा पांडवों की पत्नी हूं या जुए में जीती गई दुर्योधन की दासी। भीष्म बोले इस विषय में मैं कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा। द्रौपदी बोली अधिकार पितामह। अधिकार की परिभाषा क्या है? क्या यह सच नहीं है पितामह पत्नी के सम्मान की रक्षा करना पति का परम कर्त्तव्य है।

विकर्ण के धर्मानुमोदित न्याय संगत वचन और तर्क सुनकर सभा में बडा कोलाहल हुआ। शान्त होने पर कर्ण ने क्रोध में भर कहा विकर्ण तू विपरीत विपक्षी बातें क्यों कर रहा है लगता है तू अरणि से उत्पन्न अग्नि के समान अपने वंश का ही विनाश करने पर उतारू हो गया है। द्रौपदी के बार बार प्रश्न करने पर जब कोई उत्तर नहीं दे रहा है तो इसका अर्थ तो यहीं होता है कि द्रौपदी धर्म के अनुसार जीती गई है। तुम क्यों अपना धैर्य खोकर बडे बूढों की सी बातें कर रहे हो ? एक तो तुम दुर्योधन के छोटे भाई हो और फिर तुम धर्म से अनभिज्ञ हो फिर तेरी अपनी बुद्धि और मत का महत्व ही क्या ? पुत्र, दास, तथा सदा आश्रित रहनेवाली पत्नी का अपना तो कोई स्वतन्त्र अधिकार होता ही नहीं। युधिष्ठिर पांचाली को दांव पर नहीं लगाते तो भी युधिष्ठिर

के दास हो जाने से वह स्वयं ही दुर्योधन की दासी हो चुकी। जब युधिष्ठिर ने अपना सब कुछ दांव पर हार दिया तब द्रौपदी बिना जीती कैसे रही ? द्रौपदी भी तो सर्वस्व के अन्तर्गत ही है।

द्रौपदी यह सुनकर तनिक भी हतप्रभ नहीं हुई। द्रौपदी ने कर्ण की ओर ध्यान नहीं दिया और इस तर्क का उत्तर धृतराष्ट्र की ओर मुंह करके बोली। धर्मराज मेरे पति हैं और उन्हे मुझपर यदि पूर्ण अधिकार है, मैं उनकी धन सम्पति हूं, मुझ पर स्वामीत्व है ऐसी स्थिति में जब वे स्वयं को हार चुके है और इस दुर्योधन के दास हो गये तो मुझे दांव पर लगाने की क्या आवश्यकता पडी। द्रौपदी का स्वर आत्मबल से परिपूर्ण था। मुझे दांव पर लगा कर जीता गया इसका अर्थ यह है कि इस सभा ने द्यूत की मर्यादा के अन्तर्गत धन के रूप में पत्नी को हस्तगत करने का अधिकार विजयी पक्ष को नहीं है। यदि दास पांडवों की पत्नी के रूप में मैं दुर्योधन की दासी हो गई तो फिर मुझे दांव पर अलग से क्यों लगाया गया ? जीते हुये धन को कोई कैसे दुबारा दांव पर लगा सकता है ? यदि ऐसा है तो धर्मराज अपने हारे हुये धन की प्रत्येक वस्तु पुन: दांव पर लगा सकते है तो फिर द्यूत समाप्ति की घोषणा क्यों कर दी गयी। दुहाई है कुरुकुल के सम्मान की। दुर्योधन कृत्रिम हंसी से हंसा और बोला इस दासी का साहस तो देखो। अपने मान-सम्मान से कुरुकुल के मान अपमान को तौल रही है। दुर्योधन भीतर से बहुत भयभीत हो रहा था। द्रौपदी के तर्कों ने दुर्योधन को पर्याप्त शिथिल कर दिया था। यदि इस सभा में द्रौपदी को तनिक सा भी समर्थन मिल गया तो वह उसके हाथों से निकल जायेगी। कर्ण बोला ये पांच तो तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाये इसलिये आकर मेरे मित्र दुर्योधन की गोद में बैठ जाओ। पांच पतियोंवाली तो तुम पहिले से ही हो तो फिर छठे का भी हाथ पकड लेने में हर्ज ही क्या ? अर्जुन अत्यन्त क्रोधित हो उत्तेजित हो उठ बैठा और बोला एक दिन मैं तुम्हे इस अपमान का दंड अवश्य दूंगा कर्ण। अवश्य दूंगा। दुर्योधन बोला अरे चुप रह दास। मेरे मित्र से बात करने का साहस करता है। तेरी जीभ कांट लूंगा। कर्ण बोला इसे बोलने दो मित्र। नया नया दास बना है, धीरे धीरे सीख जायेगा। जो स्त्री पांच पांच पतियों के साथ रहती है वो पत्नी नहीं वेश्या है और वेश्या का मान क्या और अपमान क्या ? यह यहां पर नग्न भी लाई जाती तब भी अनुचित नहीं होता।

यह सुनकर सबके सब पांडव भाई उत्तेजित हो उठे। दुर्योधन बोला चुप चाप बैठ जाओ कुछ बोलने की जरूरत नहीं। मेरा मित्र बिल्कुल ठीक कह रहा है। इस वेश्या दासी का मान क्या अपमान क्या ? दुशासन मेरी इस दासी को नंगा कर दो। देखूं तो सही जिस दासी को मैंने जीता है वो लगती कैसी है? भीम अपने आपे में नहीं रह सका और क्रोधित हो उठा और बोला दुशासन यदि तुमने पांचाली के वस्त्र को हाथ भी लगाया तो क्षत्रिय गरिमा की सौगन्ध तेरे हाथ ही तोड डालूंगा। दुशासन बोला तो फिर अपने पांच पतियोंवाली पत्नी से कहो कि अपने वस्त्र स्वयं उतार दे और यदि उसने ऐसा नहीं किया तो फिर मुझे जबरन हाथ लगाना ही पडेगा। दुर्योधन बोला दासी को उसका मूल्य समझा दो।

दुशासन अपने स्थान से उठा और द्रौपदी के निकट जाकर उसके केश पकड उसे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करने लगा। द्रौपदी ने अपनी साडी का एक छोर जोर से दांतों के बीच खींचा और दूसरा छोर पकड दुशासन खींचने लगा। द्रौपदी को अब तक अपने पतियों, पितामह, ज्येष्ठ पिताश्री, गुरुजनों का भरोसा था। वह समझती रही कौरव ऐसा क्रूर कृत्य उनके सामने नहीं कर पायेंगे परन्तु उसने उन सबको मौन धारण किये देखा, अपने पतियों को नतमस्तक देखा, आगे पीछे किसी को भी सहायक नहीं देखा। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर असहाय हो अपने सखा शरण अशरण भगवान कृष्ण का स्मरण किया। छोड दिया उसने अपने वस्त्र को और हाथ जोड आंखे बन्द कर ली और पुकारने लगी हे गोविन्द, हे द्वारिकाधीश, हे गोपीजन वल्लभ क्या तुम्हे मालूम नहीं कि ये कौरव मेरी इज्जत लूट रहे हैं। आपकी इस सखी का अपमान हो रहा है। हे केशव, हे नाथ, हे रमानाथ, हे ब्रज के स्वामी हे आर्तनाशन मेरी ओर देख। कौरवों के भयंकर समुद्र में मैं डूब

रही हूं। हे जनार्दन मेरी रक्षा करो, मुझे बचाओ, हे कृष्ण, हे श्याम सुन्दर, हे महायोगेश्वर, हे विश्वात्मा हे विश्वभावन मैं कौरवों के बीच में असहाय हूं। मैं तुम्हारी शरण हूं मेरी रक्षा करो। उसी समय कृष्ण वस्त्रावतार में प्रकट हुये। इस प्रकार कृष्ण का स्मरण कर अपना मुंह ढापकर द्रौपदी रोने लगी। द्रौपदी ने कृष्ण की स्तुति की।

आ कृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरि: गोविन्द द्वारका वासिन कृष्ण गोपी जन प्रिय।
कौरवे: परिभूतां मा कि न जानासि केशव। हे नाथ रमानाथ ब्रजानाथर्तिनाशम्
कौरवार्णम ग्नां मामुदृस्व जनार्दन। कृष्ण कृष्ण महायोगिन विश्वात्मन विश्वभावन
प्रप नां पाहिं गोविन्द कुरु मध्ये अवसीदतम्। इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम
प्रासादम् दु:खिता राजन मुखयाच्छाद्य भामिनी। व्यक्तवा शय्यासनं पदभयां कृपालु: कृपयाभ्यगात्।

द्रौपदी की आर्त पुकार कृष्ण तक पहुंची कि मेरा ऐसा अपमान जैसा कभी किसी साधारण दासी का भी नहीं हुआ होगा। मेरे सखा मधुसूदन कृष्ण कहाँ हो तुम ? मेरे पति भी मेरी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। समर्थ होकर भी वे धर्म के रूप में अधर्म के बन्धन में बन्धे हैं। स्वयं अपनी मर्यादा से बन्धे असमर्थ हैं। तुम समर्थ हो कृष्ण। तुम धर्म के मर्मज्ञ हो। तुम जानते हो यह धर्म नहीं है। इनका नाश कर मेरी रक्षा करो।

द्रौपदी की आर्त पुकार सुन कृष्ण का हृदय करुणा से भर आया। भक्त वत्सल प्रभु प्रेम परवश होकर द्वारिका की सेज, सुख भोजन और लक्ष्मी सबको छोड द्रौपदी के पास दौडे दौडे गये। उस समय द्रौपदी अपनी रक्षा के लिये पुकार रही थी हे कृष्ण, हे विष्णो, हे हरे और छटपटा रही थी। धर्म स्वरूप कृष्ण ने अदृश्य रूप से वहां वस्त्रावतार में आकर द्रौपदी को सुरक्षित कर दिया। श्रीकृष्ण अन्तर्यामी है। वे सर्वत्र हैं। दुशासन द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करने लगा और द्रौपदी की साडी का छोर पकडकर खींचने लगा। जैसे जैसे दुर्योधन साडी को खींचता जा रहा था वैसे ही साडी बदनपर और और लिपटी जा रही थी और वस्त्र बढने लगा। दुशासन के बलिष्ठ हाथ खींचते खींचते थक गये परन्तु उस साडी का कहीं दूसरा छोर नहीं मिला। चीर बढता ही गया। द्रौपदी बार बार कृष्ण कृष्ण कहकर पुकार रही थी। कर्ण बोल रहा था खींच दुशासन। धर्म की महिमा भी अद्‌भुत है। कृष्ण कृपा अनिर्वचनीय है। उस समय भीम के दोनों होठ क्रोध से कांप रहे थे। भीम बोला देश देशान्तरों के राजाओं, इस संसार के सारे क्षत्रियों सुने और वो क्षत्रिय भी सुने जो इस संसार में नहीं है और वो क्षत्रिय भी जो इस संसार में आने वाले है मैं पांडु पुत्र भीम यह प्रतिज्ञा करता हूं कि **जब तक रणभूमि में इस दुष्ट दुशासन की छाती फाडकर उसका लहूं नहीं पी लुंगा मैं अपने पूर्वजों को अपना मुंह नहीं दिखाऊंगा।** भीम की भीषण प्रतिज्ञा सुन कर सभी के रौंगटे खडे हो गये। सभी दुशासन की निन्दा करने लगे। सभी दुर्योधन और दुशासन को धिकारने लगे।

अब धर्म के धर्मज्ञ विदुर उठ खडे हुये और बोले हे तातश्री, हे महाराज, हे गुरु द्रोण, हे कुलगुरू कृपाचार्य जो नहीं देखना था वो भी देख चुके। अब द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर तो दीजिये। एक घायल आत्मा इस राजघराने की घायल मर्यादा आपके पास में एक प्रश्न लेकर आई है और इस समय भरी सभा में अपने हाथों से अपना मुंह छिपाये रो रही है। कृपया उसके प्रश्नों का उत्तर दीजिये महाराज। आप सभी धर्म के मर्मज्ञ है। परन्तु द्रौपदी के प्रश्नों के सम्बन्ध धर्म ही से तो है। द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर न देना अधर्म है। आर्त पुरुष दुखाग्नि से जलकर किसी सभा या पंचायत की शरण लेता है। आपको चाहिये कि सत्य और धर्म का आश्रय लेकर उसे सान्तवना दे। श्रेष्ठ पुरुषों को सत्य के अनुसार धर्म सम्बन्धी प्रश्नों की मीमांसा अवश्य करनी चाहिये। आप लोग रागद्वेष के वेग से रहित हो द्रौपदी के प्रश्नों का उचित उत्तर दे। जो धर्मज्ञ पुरु सभा में जाकर किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देता उसको आधा झूठ बोलने का पाप लगता है। जो झूठ बोल जाता है फिर तो वह अपने विनाश को ही आमंत्रित करता है। धर्म के प्रश्न का उत्तर जानते

हुये भी चुप रहना झूठ बोलने के बराबर है और फिर ठीक उत्तर नहीं देना तो झूठ है ही। ये तो बताइये आप अपने सिर पर झूठ बोलने का आरोप लेंगे या पूरे झूठ का क्योंकि पूरा सच बोलने का साहस आपमें से किसी को भी नहीं है फिर भी हम चुप तो नहीं रह सकते। हमें द्रौपदी से इतना तो कहना ही पडेगा ऐ बिलखती रोती द्रौपदी अब अपने आंसुओं और अपने अपमान को समेट कर किसी और सभा में जा क्योंकि यह तो मृतक और नपुंसक लोगों की है। विदुर ने इस सम्बन्ध में इतिहास का एक प्रसंग इस प्रकार से बताया।

प्राचीन समय में अंगिरा ऋषि के पुत्र सुधन्वा और प्रह्लाद के पुत्र विरोचन दोनों में एक सुन्दरी स्त्री के लिये विवाद खडा हो गया कि कौन श्रेष्ठ है। दोनों ही अपने अपने को श्रेष्ठ बतला रहे थे। आपस में प्राणों की बाजी लग गयी। जो श्रेष्ठ हो वही जीते। और जो हार जाये वो प्राण त्याग करे। इस विवाद के निर्णय के लिये वे दोनों प्रह्लाद के पास गये। दोनों की बातें सुनकर प्रह्लाद बडे असमंजस में पड गये। प्रह्लाद न तो अधर्म चाहते थे और न दोनों में से किसी की मृत्यु हो। उन्हे इस द्वन्द में देखकर सुधन्वा बोला दैत्यराज यदि तुम पुत्र स्नेह के कारण झूठ बोलेंगे या कुछ भी उतर नहीं दोगे तो इन्द्र वज्र प्रहार से तुम्हारे सिर के टुकडे-टुकडे कर देगा। प्रह्लाद महात्मा कश्यप के पास गये और उनसे पूछा कि आप ही ठीक ठीक बतलाइये जो कोई प्रश्न का उत्तर नहीं देता या जानबूझकर झूठ बोलता है उसे मरने पर कौन से लोकों की प्राप्ति होती है। कश्यप ने कहा जो क्रोध या भय के कारण जानबुझकर प्रश्नों का उत्तर नहीं देता अथवा झूठ बोलता है उसे मृत्यु के पश्चात वरुण के पाश में बन्धना पडता है और स्पष्ट सत्य न कहकर उसे घूमा फिरा कर कहनेवाला जो दोनों पक्षों को रखना चाहता है उसकी भी वही गति होती है। जिस सभा में अधर्म से धर्म दबा दिया जाता है और सभ्य लोग धर्म का पक्ष न लेकर मौन ग्रहण कर लेते है उस सभा के सभ्यों को भी अधर्म होता है। जहां निन्दा करने योग्य कर्म की निन्दा नहीं होती वहां पर सबसे श्रेष्ठ पुरुष को अधर्म का आधा पाप लगता है। आधे का आधा पाप कर्म करनेवाले को और शेष उपस्थित सभासदों को। जहां निन्दनीय पापकर्म की निन्दा की जाती है वहां औरों को पाप नहीं लगता केवल करनेवाले को ही लगता है। प्रश्न का अन्यथा उत्तर देने पर उसके पुण्य तो नष्ट हो ही जाते है साथ ही सात पीढी अगली और पिछली सात पीढी के लोग नरक में जाते हैं। कश्यप के उपदेश को सुनकर प्रह्लाद ने अपने पुत्र से कहा विरोचन तुम्हारी माता से सुधन्वा की माता श्रेष्ठ है। तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ है। अब ये सुधन्वा तुम्हारे प्राणों के स्वामी हैं। प्रल्हाद का निर्णय सुनकर सुधन्वा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला दैत्यराज तुमने अपने पुत्र के प्राणों की भी परवाह नहीं कर धर्म की रक्षा की है इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूं और यह नहीं चाहता कि तुम्हारे पुत्र की मृत्यु हो। यह सौ वर्षों तक जीवित रहे और सुख भोगे। धर्मनिष्ठा के कारण प्रह्लाद ने अपने पुत्र की रक्षा की। इस इतिहास के प्रसंग से सभ्यों के धर्म का ज्ञान होता है अत: द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर दो। राजन अब भी समय है चाहो तो कुरुकुल को बचा लो। यह अधर्म हो रहा है। यदि हस्तिनापुर की राज्यसभा धर्म की रक्षा नहीं करेगी तो धर्म भी उसकी रक्षा नहीं कर पायेगा ? यह कहकर विदुर अपने स्थान पर बैठ गये।

द्रौपदी रोकर उठकर बोली हस्तिनापुर नरेश महाराज धृतराष्ट्र आपकी सभा में एक नारी का अपमान हुआ है। इस नारी के शरीर को कभी पवन ने भी स्पर्श नहीं किया, कभी सूर्य के प्रकाश ने न देखा। उसके स्वयं अपने ही घर में पितामह, ज्येष्ठ पिताश्री, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य के सामने उस नारी के वस्त्रहरण का प्रयत्न किया गया है। कुरु जीवन प्रणाली में यह खोट कहां से आ गया ? कि वो चुपचाप बैठे अपनी कुलवधू के चीर हरण का यह भयानक दृश्य देखते रह गये। आप सब सुने कि इस निर्लज्ज और कायरों से भरी हुई सभा में मैं द्रौपदी पांचाल नरेश कि पुत्री, इन्द्रप्रस्थ नरेश की पत्नी और हस्तिनापुर नरेश की पुत्रवधू आप सबको श्राप देती है। द्रौपदी श्राप देनेवाली ही होती है कि इतने में गान्धारी वहा आ जाती है और कहती है नहीं नहीं पुत्री।

गूंज उठी आकाश में नारी की आवाज, सन्नाटा सा छा गया बीच सभा में आज,
जो भी नारी जाति का करता यों अपमान, उसका नाश अवश्य ही कर देता भगवान।

धृतराष्ट्र की यज्ञशाला में बहुत से गीदड इकठ्ठे होकर हुआं हुआं करने लगे और गधे रेंकने लगे तथा गीध पक्षी उडउड कर चिल्लाने लगे। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य स्वस्ति स्वस्ति की ध्वनि करने लगे। विदुर ने इन उत्पातों की राजा धृतराष्ट्र को सूचना दी। विदुर ने फिर से समझाया महाराज शकुनि की बात में आकर धर्म का नाश मत करो। आज का यह प्रसंग जो हो रहा है वह अवश्य ही अनर्थ का मूल है। यह जुए का खेल अन्याय से भरा है। तुम सब लोग अपना मंगल खो रहे हो। तुम सबकी मति गति दुष्कर्मों में लगी रहती है। द्रौपदी को तुमने जीत लिया यह तुम्हारा मिथ्या अहंकार और सपना है। महाराज इस जलती अग्नि को हाथ में मत पकडो। यदि द्रौपदी ने शाप दे दिया तो पूरा कुरुवंश उजड जायेगा। दीन हीन नारी के मुंह से निकली हाय विश्व को सन्तप्त करने में समर्थ है।

समय निष्पक्ष अवश्य है किन्तु निष्पक्षता का यह अर्थ नहीं कि वह आंखे मूंद ले। यद्यपि यह स्थल और प्रसंग आंखे मूंद लेने का की है। जिस देश में शक्ति पूजनीय हो उसी देश में शक्ति का वस्त्राहरण हो रहा है। समय इस नारी अपमान का साक्षी है किन्तु भारत की नारी अपमान को चुप चाप सहन करने के लिये जन्म नहीं लेती इसलिये वो द्रौपदी वाक्य फिर सुन ले जो आज भी समय के गलियारों में गूंज रहा है और सदैव गूंजता रहेगा।

राजभवन में गान्धारी अपनी दासी से बोली मुझे अपनी पुत्रवधू द्रौपदी के पास ले चलो और राज सभा में आकर बोली द्रौपदी। द्रौपदी बोली मैं ऋतु स्नान किये बिना आपका चरण स्पर्श नहीं कर सकती ज्येष्ठ माताश्री। यह सुनकर कि गान्धारी यहां आई धृतराष्ट्र एकदम चौंका गान्धारी यहां क्यों आई। धृतराष्ट्र ने पूछा क्या बात है गान्धारी ? गान्धारी बोली मुझे मालूम हुआ कि मेरा पुत्र दुशासन एक वस्त्रा द्रौपदी को केशों से पकडकर बलात घसीट कर इस सभा में लाया है और उसे मेरे पास आने नहीं दिया। वह अपनी रक्षा के लिये अन्त:पुर में मेरे कक्ष की ओर भागी थी। क्या कुरुकुल की वधुयें इस प्रकार राजसभा में घसीटकर लायी जाती है ? धृतराष्ट्र बोला दुर्योधन अपनी कुटिलता छोडने के लिये मान नहीं रहा है। गान्धारी बोली आपके पुत्र आपके नियन्त्रण में रहने चाहिये। यदि दुर्योधन आपका कहना नहीं माने तो उसका त्याग कीजिये। वह अपने शत्रुओं से युद्ध करे, राजनीति के षडयन्त्र रचे परन्तु मुझे ऐसा पुत्र नहीं चाहिये जो नारी के सम्मान की रक्षा न कर सके। दुर्योधन अपने पिता का निष्प्राण सा चेहरा देखकर सहम गया। क्या हो गया पिताश्री को। वे इतने भयभीत और डरपोक तो कभी दिखाई नहीं दिये। दुर्योधन को लगने लगा कि उसका यह अन्धा वृद्ध और अदूरदर्शी पिता उसकी सारी उपलब्धियों पर पानी फेर देगा।

गान्धारी द्रौपदी को गले मिलकर सान्त्वना देने लगी और बोली पुत्री रोओ मत और बोली दुर्योधन। भाभी का वस्त्रहरण तो करवा चुका अब दुशासन से कह कि वह अब तेरी मां गान्धारी का वस्त्रहरण करे। चुप क्यों है निर्लज्ज बोल ? कह दे अपने भाई को। भ्राता शकुनि कहिये अपने प्रिय भान्जे से कि मां का एक कहना तो मान ले। तेरे जन्म पर विदुर जी ने ठीक ही कहा था कि तुझे मार डालने में ही हस्तिनापुर की भलाई है पर पुत्र मोह ने तेरे पिताश्री के हाथ पकड लिये थे। यदि उस दिन हमने विदुर का कहा मान लिया होता तो तेरे कारण यह भरतवंश आज अपमानित नहीं हुआ होता। भरतवंश के पूर्वजों आपकी यह कुलवधू गान्धारी आप से हाथ जोडकर क्षमा मांगती है कि भरतवंश के अपमान का अंकुर मेरे ही कोख से फूटा है। जिस वंश में आज तक किसी का हाथ किसी दासी के वस्त्र तक नहीं पहुंचा हो उस कुरु राजवंश में भरत के उत्तराधिकारी का हाथ आपकी पुत्रवधू के वस्त्र तक पहुंच गया और आपने कुछ नहीं कहा। आपको सती के शाप का डर भी नहीं लगा आर्यपुत्र। यदि द्रौपदी कह दे तो भूमि आपको अनाज देने से, चांद अपनी चांदनी देने से, नदी आपको पानी देने से और सूरज आपको धूप व रोशनी देने से इन्कार कर दे। आपकी सेना भी इस सती के श्राप को रोक नहीं पायेगी। हे द्रौपदी तेरी बडी मां तेरे आगे हाथ जोडती है की श्राप मत देना पुत्री। इस वंश को श्राप मत देना ये लोग जैसे भी है तेरे हैं पुत्री। अपने पितामह भीष्म, काकाश्री विदुर, ज्येष्ठ पिताश्री,

कुलगुरु कृपाचार्य और द्रोणाचार्य को भी क्षमा कर दे पुत्री। क्षमा कर दे।

द्रौपदी बोली मैं और तो सबको क्षमा कर दूंगी परन्तु दुर्योधन, दुशासन, अंगराज कर्ण और गान्धार नरेश शकुनि को कभी क्षमा नहीं करूंगी। गान्धारी बोली मैं समझती हूं पुत्री। मैं तेरा दु:ख समझती हूं पुत्री परन्तु दुर्योधन और दुशासन ये पुत्र हैं। वो जैसे भी हों पुत्र तो मेरे ही हैं। मैं तुमसे विनती करती हूं कि उन्हे श्राप ना दे। आप तो कुछ कहिये आर्यपुत्र। मैं मानती हूं कि आप देख नहीं सकते, परन्तु सुन तो सकते है, सोच तो सकते है। द्यूत के नियम यह कभी नहीं कहते कि स्त्री भरी सभा में लाई जाये। धृतराष्ट्र बोला मैं दुर्योधन को भी दु:खी नहीं देख सकता इसलिये उसकी बात मान जाता हूं। पर मुझे अपने कुल की रक्षा भी करनी है। पांडवों को द्यूत में हराकर उनसे धन ले लेने में तो हस्तिनापुर की समृद्धि थी, कुरुकुल का नाश नहीं। इसलिये धृतराष्ट्र सहमत हो गया था किन्तु पांडवों और द्रौपदी को दास बनाकर पीडित करने से सारा कौरव वंश नष्ट हो जाने की सम्भावना है। भीम की प्रतिज्ञायें भी धृतराष्ट्र ने सुन ली। दुर्योधन की इच्छायें अपनी सीमा नहीं जानती जब कि सीमा तो सागर की भी होती है, जहा सागर की लहरें रेत बालू में अपना अस्तित्व खो देती है या चट्टानों से टकराकर वापिस लौट जाती है।

धृतराष्ट्र बोले हां गान्धारी ठीक कह रही है। मैं देख तो नहीं सकता परन्तु सुन तो सकता हूं। सोच तो सकता हूं। अपने पूर्वजों, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य को, अपने प्रिय पांडवों को और कुलवधू द्रौपदी को साक्षी मानकर यह कह रहा हूं कि मैं इसी योग्य हूं कि इस देश का वर्तमान और भविष्य मुझे कभी क्षमा न करे। पुत्री द्रौपदी मेरे निकट आओ तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो मेरे पास भी नहीं है। द्रौपदी दासी है या नहीं इसका निर्णय धर्म करे पर यदि द्यूत के नियमों के अधीन वह दासी हुई है तो भी कुल धर्म का निर्वाह करते हुये मैं घोषित करता हूं कि वो मेरी कुलवधू है। कुरुकुल के पुत्र दास नहीं रह सकते। गान्धारी द्रौपदी को लेकर धृतराष्ट्र के निकट ले जाती है। धृतराष्ट्र बोले तुम्हारी धर्म में अविचल श्रद्धा है। तुम परम पतिव्रता तथा कुरुकुल की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ हो। यदि तुमने अपने ज्येष्ठ पिताश्री को क्षमा कर दिया हो तो मैं तुम्हारे सदाचार से प्रसन्न हूं तो कुछ वरदान मांगो पुत्री। तुम्हारी जो इच्छा हो सो मांग लो पुत्री। गान्धारी बोली जो चाहे सो मांग ले पुत्री।

द्रौपदी बोली यदि ज्येष्ठ पिताश्री मुझे कुछ देना ही चाहते है तो मैं सम्राट धर्मराज युधिष्ठिर के लिये दासत्व से मुक्ति मांगती हूं कि मेरे पुत्र दास पुत्र नहीं कहलाये जाये। धृतराष्ट्र बोले तथास्तु मैंने प्रिय युधिष्ठिर को दासत्व से मुक्त किया कल्याणी। अब तुम कुछ और मांग लो पुत्री मैं उसे भी बडी प्रसन्नता से दुंगा। द्रौपदी बोली मैं अब शेष पांडवों के लिये भी यही मांगती हूं और मुक्ति के साथ-साथ उनके अस्त्र-शस्त्र और रथ भी। धृतराष्ट्र बोले यह भी दिया कल्याणी परन्तु इतने से भी मेरा जी नहीं भरा तुम कुछ और मांगो। द्रौपदी बोली अधिक लोभ से धर्म का नाश होता है। लोभ और धर्म में आग और पानी जैसा मेल है। क्षत्रिय नारी को दो से अधिक वरदान मांगने का अधिकार भी नहीं होता है महाराज। शास्त्र के अनुसार वैश्य को एक, क्षत्रिय को दो और ब्राह्मण को सौ वरदान लेने का अधिकार है। इस समय मेरे पति दासत्व से छूट गये है अब वे स्वयं सत्कर्म और पुरुषार्थ कर लेंगे। धृतराष्ट्र बोला परन्तु ज्येष्ठ पिता को देने का अधिकार तो होता है पुत्री। प्रिय युधिष्ठिर आज की द्यूतक्रीडा में जो कुछ भी हारा है वो सब कुछ वापिस लौटाता हूं। द्रौपदी बोली यह तो आप अपने पुत्रों से ही कहिये कि वो अपना हारा हुआ राज्य यों ही लेना चाहते है या नहीं।

कर्ण बोला महादेव की सौगन्ध मामाश्री मैंने बहुत सारी सुन्दर-सुन्दर नारियां देखी परन्तु इस जैसी धार किसी में नहीं। अर्जुन आवेश में बोला चुप रह अब हम दुर्योधन के दास नहीं है। मैं तुम्हारे मन से पांचाली की प्रशंसा भी नहीं सुनना चाहता। भीम बोला यदि अब चुप नहीं हुआ तो पटक पटक कर मारूंगा। युधिष्ठिर बोला यहाँ ऊंचे शब्दों में बोलकर ज्येष्ठ पिताश्री का अपमान मत करो। सबने हाथ जोडकर धृतराष्ट्र से पूछा अब हमारे लिये क्या आज्ञा है ज्येष्ठ पिताश्री ? धृतराष्ट्र बोला अजात

शत्रु युधिष्ठिर तुम अपना सब धन लेकर अपने राज्य इन्द्रप्रस्थ लौट जाओ और अपने राज्य का धर्मपूर्वक पालन करो। बस यहीं मेरा आदेश है। जाते जाते इस बूढे की एक बात सुनते जाओ वत्स कुल्हाडी पत्थर को नहीं काटती वो केवल लकडी को ही काटती है इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो प्रतिशोध की अग्नि में न जले। कौरवों के दुर्भावों को भूलकर शान्ति से अपना राज्य करो। युधिष्ठिर तुम बुद्धिमान, धर्म मर्मज्ञ, विनम्र और वृद्धों के सेवक हो। बुद्धि और क्षमा का आपस में मेल है। उत्तम पुरुष किसी से बैर नहीं करते। दोषों की ओर न देखकर गुणों को देखते हैं और विरोध तो वे किसी से करते ही नहीं। सत् पुरुषों की दृष्टि सत्कर्मों पर ही रहती है। वे सदा शत्रु की भलाई करते हैं और प्रतिशोध का उद्योग नहीं करते। नीच पुरुष तो साधारण बात से भी कडवी बात कह जाते है। मध्यम श्रेणी के पुरुष कठोर वचन सुनकर कठोर वाणी का प्रयोग करते हैं परन्तु उत्तम पुरुष किसी भी स्थिति में कठोर वचन का प्रयोग नहीं करते। सत्पुरुष बुरी से बुरी स्थिति में भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। उन को देख कर सब लोग प्रसन्न होते हैं। इसलिये जो कुछ भी आज हुआ है उसे भूल जाना ही ठीक है वत्स। इस समय तुमने बडे ही सौजन्य का व्यवहार किया है। तुम्हारे जैसा शासक और विदुर जैसा महामन्त्री पाकर कुरुवंश धन्य हो गया है। तुम में धर्म है, अर्जुन में वीरता है, भीम में पराक्रम और नकुल-सहदेव में विशुद्ध गुरुसेवा का गुण है। जब कभी तुम्हे आज का यह दिन याद आये और प्रतिशोध की ज्वाला भडक उठे तो तुम सब लोग अपने इस ज्येष्ठ नेत्रहीन पिता को याद कर लेना। अपनी बडी मां गान्धारी को याद रखना। यदि तुमने ऐसा किया तो यह याद तुम्हारी प्रतिशोध की अग्नि को शमन करने में मदद करेगी। इसलिये तुम क्षमा करो। धर्मराज तुम्हारा कल्याण हो।

कुन्ती द्रौपदी के पास उसके कक्ष में आती है। द्रौपदी चुपचाप अकेली बैठी अन्त:पुर में सिसकिया ले रही है। कुन्ती बोली रो मत द्रौपदी मत रो क्योंकि हस्तिनापुर मान अपमान की भाषा भूल चुका है और मैं हस्तिनापुर को क्या कहूं जब स्वयं मेरे ही पुत्रों ने मेरा सिर झुका दिया। उन जुआरियों की माता तुमसे क्षमा चाहती है द्रौपदी। बडा अभिमान था मुझे अपने पुत्रों पर कि इस संसार में कोई भी माता मेरे पुत्रों जैसे पुत्रों को जन्म नहीं दे सकती परन्तु द्यूतक्रीडा भवन में मेरा वो अभिमान चकना चूर हो गया। मैं यह सोच भी नहीं सकती कि वो द्यूत में तुम्हें दांव पर लगा कर मेरे दूध और मेरी ममता का यों अपमान करेंगे। रोना तो मैं भी चाहती हूं पुत्री परन्तु मैं रोऊंगी नहीं क्योंकि मैं नहीं चाहती कि गान्धारी पुत्र यह जान भी सके कि कुन्ती की आंखे रोना भी जानती है। इसलिये अपने आँसुओं को पोंछ दो द्रौपदी। स्वयं अपने हाथ से पौंछो द्रौपदी और अपना सिर उठाओ क्योंकि वास्तव में अपमान तुम्हारा नहीं हुआ है द्रौपदी। अपमान हुआ है धर्मराज युधिष्ठिर का, अपमान हुआ है सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम का, अपमान हुआ है द्रोणाचार्य शिष्य अर्जुन का, अपमान हुआ है गंगा पुत्र भीष्म का, अपमान हुआ है इस हस्तिनापुर का, अपमान हुआ है भाभीश्री गान्धारी का। द्रौपदी तुम इन सबके अपमान को समेटे इस अन्धेरे कक्ष में बैठे अकेले क्यों रो रही हो ? द्रौपदी कुन्ती के गले लग कर भर भरा कर रोई और बोली मां।

गान्धारी अपने कक्ष में बैठी हुई है। दासी ने आकर सूचित किया कि महामन्त्री विदुर आने की आज्ञा चाहते हैं। गान्धारी ने कहा आने दो। दासी जाकर विदुर से बोली आइये महामन्त्रीजी। विदुर ने आकर गान्धारी को प्रणाम किया और बोला महारानी की जय हो। गान्धारी बोली क्या इस राज्य की महारानी अब जय के योग्य है जिसकी पुत्रवधू का भरी सभा में चीर हरण किया गया हो ? और वह वस्त्र हरण युवराज के आदेश पर किया गया हो और उस राज्य के बडे बूढ़ों ने कुछ नहीं कहा। उस राज्य की महारानी होना कोई गौरव की बात नहीं है विदुरजी। तातश्री भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य और स्वयं आप सभी चुपचाप देखते रह गये। विदुर बोला यदि आंखे खुली हो तो मनुष्य देखने के लिये विवश हो जाता है महारानी। गान्धारी ने कहा क्या आंखे केवल देखने के लिये होती है ? क्या आत्मा के आंगन में आंखों की कोई खिडकी नहीं खुलती ? यदि खुलती तो फिर

तातश्री क्यों नहीं बोले ? जिस राज सिंहासन के प्रति उनकी निष्ठा है उस राज सिंहासन का अपमान उन्होने कैसे सहन किया ? दुर्योधन तो आचार्य द्रोण का शिष्य है क्या उन्होने उसे यही शिक्षा दी है ? यदि नहीं तो उन्होने अपनी शिक्षा का अपमान कैसे सहन कर लिया ? कृपाचार्य तो कुलगुरु हैं उन्होने कुलवधू के वस्त्र हरण का दृश्य किन आंखों से देखा विदुरजी ? विदुर बोले अपने कर्मों के लिये व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी होता है महारानी। तातश्री, आचार्य, कुलगुरु ये सभी सभ्य और शिक्षित हैं। अपने कर्मों के लिये तर्कों का कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेते हैं। मैं तो आपसे केवल इतना कहने के लिये आया हूं महारानी कुरुवंश को सर्वनाश से बचा लीजिये। गान्धारी बोली क्रीडा भवन में मेरा आत्मविश्वास ऐसा डिगा कि मैं अब तक सम्भल नहीं पाई हूं। क्या होगा ? क्या न होगा ? कौन बचेगा ? कौन नहीं बचेगा ? आप तो देख सकते है विदुरजी कि मैंने अपनी आंखों पर स्वयं ही पट्टी बांध रखी है। आप अपनी यह प्रार्थना लेकर अपने भ्राताश्री महाराज के पास जाइये। अपने तातश्री के पास जाइये। इस समय मेरे चैतन्य के इस कोमल शरीर पर प्रश्नों के हजार हजार कीडे रेंग रहे हैं। मैं तो उस कायर की भांति हूं जो कि अपने जलते हुये घर के आंगन में मर्यादा के खूंटे से बंधी हुई अपनी ओर लपकती हुई ज्वाला को देख रही है और विवश है कुछ नहीं कर पाने को। भरतवंश की मर्यादा का दर्पण तडक गया है विदुरजी। आइये इसका शोक मनाये। विदुर बोला शोक समस्याओं का समाधान नहीं है महारानी।

गान्धारी बोली जब से आये हो मुझे महारानी कह रहे हो विदुर। क्या तुम यह भूल गये कि मैं तुम्हारी भाभी भी लगती हूं। विदुर बोले जब दुर्योधन ने भरी सभा में मुझसे यह कहा कि मैं सभा से निकल जाऊं तो महाराज ने दुर्योधन से यह कहना उचित नहीं समझा कि उसे अपने काकाश्री से ऐसे असभ्य शब्द नहीं कहने चाहिये ? तो अब मैं आपको भाभीश्री किस मुंह से कहूं ? परन्तु मेरी विवशता यह है कि हस्तिनापुर मेरी कर्मभूमि है। गान्धारी बोली कर्मभूमि है ना विदुर कारागृह तो नहीं कि जिसके निर्दयी द्वार तुम खोल नहीं सकते ? विदुर बोला यह दासी पुत्र अपने स्वामियों के घर को छोड भी तो नहीं सकता महारानी। इसलिये जब तक यह पीडा सही जायेगी सहन करता रहूंगा और आज मैं उस दिन के विषय में सोचना भी नहीं चाहता जिस दिन यह पीडा मेरी सहनशक्ति की सीमा को पार कर जायेगी। अब आज्ञा चाहता हूं महारानी। गान्धारी ने पूछा कहां जाओगे विदुर? विदुर बोला हस्तिनापुर में ज्ञान के जितने द्वार हैं मैं जाकर उन सबको खटखटाऊंगा। प्रणाम भाभीश्री। गान्धारी बोली भगवान तुम्हे शान्ति दे। विदुर बोला शान्ति तो आज केवल श्मसान में होती है। मुझे शान्ति नहीं अपने प्रश्नों के उत्तर चाहिये और ये वो प्रश्न है जो भरतवंश की आत्मा अपने आपसे पहली बार कर रही है कि मर्यादा की परिभाषा क्या है ? पत्नी वस्तु है कि व्यक्ति ? यदि द्रौपदी को धर्मानुसार दांव पर लगाना ठीक था तो फिर अधर्म क्या है ? ऐसे और भी कई प्रश्न हैं भाभीश्री। गान्धारी बोली यदि कहीं इन प्रश्नों के उत्तर मिल जाये तो मुझे भी बता जाना। विदुर बोला जो आज्ञा और प्रणाम करके वहां से चला गया।

भीष्म अपने कक्ष में बैठे कुछ सोच में हैं इतने में द्रोणाचार्य भीष्म के कक्ष में आते हैं और कहते हैं गंगापुत्र। भीष्म भी द्रोणाचार्य को अपने यहां आये देखकर चौंक गये। भीष्म किन्ही प्रश्नों के उत्तर में उलझे हुये थे उठकर उन्होने आचार्य द्रोण को प्रणाम किया और कहा आइये विराजिये आचार्य। द्रोणाचार्य बोले मुझे अब हस्तिनापुर के स्थानों से भय लगने लगा है गंगापुत्र। क्या इन स्थानों से मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं है ? यह जीवन है गंगापुत्र या किसी जन्म के अपराध का दंड ? और यदि यह दंड नहीं है तो फिर द्यूत क्रीडागृह में द्रौपदी और द्रौपदी के साथ समूची नारी जाति का अपमान देखकर चुप कैसे रह गये ? और यदि चुपचाप रह गये तो अब और क्या करने या देखने के लिये जीवित हैं। मैं अपने इन प्रश्नों से भागकर आपके पास आया हूं गंगापुत्र। भीष्म बोले आप जैसे लोग भागना क्या जाने ? यदि भागना जानते होते तो आत्महत्या न कर लेते ? विराजिये आचार्य। द्रोण और भीष्म बैठ जाते हैं। द्रोण बोले क्या इस तरह के प्रश्न आपको घायल नहीं करते है गंगापुत्र ? भीष्म बोले मेरे घावों की ना पूछिये आचार्यवर। मुझे तो लगता है कि मैंने घायल होने के लिये ही जन्म लिया है और जो घाव

लगता है वो पिछले सभी घावों से गहरा होता है। द्रौपदी ने भरी सभा में मुझसे यह प्रश्न किया था आचार्यवर कि यदि वो मेरी पुत्री रही होती तब भी मैंने क्या चुपचाप उसका अपमान सहन कर लिया होता ? उसी क्षण से मैं इस प्रश्न में उलझा हुआ हूं आचार्यवर। कान लगाकर सुनिये आचर्य एक बहुत प्राचीन घर की दीवार के सरकने की आवाजें आ रही हैं। हमारे पूर्वजों ने जिस समाज का निर्माण किया था, हमने द्यूतक्रीडा भवन में उसी समाज के वस्त्रहरण का दृश्य देखा। द्रोणाचार्य बोले हम सबसे तो अच्छे महात्मा विदुर ही निकले जिन्होने अपने मन की बात तो कह ली गंगापुत्र। मौन का विष तो नहीं पिया। भीष्म बोले और परिणाम क्या हुआ ? क्या धृतराष्ट्र ने कुछ सुना ? क्या दुर्योधन एक क्षण भी सोचने के लिये मजबूर हुआ ? हस्तिनापुर के मुखपर यह जो कालिख लगी है आचार्यवर इसके लिये थोडे थोडे या अधिक हम सभी उत्तरदायी हैं। सभी और इस कालिख को पौंछने के लिये हम सभी को अपना लहू देना होगा। लहू आचार्यवर। हम पर हस्तिनापुर का एक ऋण है आचार्य और यह ऋण इसी जन्म में उतर जाये तो अच्छा है इसलिये हस्तिनापुर को त्यागने का विचार मत कीजिये आचार्यवर। भविष्य के द्वार पर बलि देने का अधिकार केवल हस्तिनापुर को ही है। द्रोणाचार्य बोले आप ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं गंगापुत्र ? महाराज ने चाहे देर से हस्तक्षेप किया हो किन्तु हस्तक्षेप तो उन्होने किया। क्या आप यह सोच रहे है कि पांडव अपने अपमान के प्रतिशोध के लिये हस्तिनापुर पर आक्रमण करेंगे ? भीष्म बोले यदि वासुदेव उनके साथ न होते तो कदाचित आक्रमण कर देते परन्तु कृष्ण उन्हे केवल प्रतिशोध के लिये आक्रमण करने नहीं देंगे। युद्ध तो अभी क्षितिज के उस पार है परन्तु युद्ध तो निश्चित है। युद्ध तो होगा ही। द्रोणाचार्य परन्तु गंगा पुत्र... भीष्म बोले गान्धार नरेश शकुनि का तूणीर अभी रिक्त नहीं हुआ। यह शकुनि हस्तिनापुर के लिये एक शाप है आचार्य। आज हमारी विवशता तो देखो हम सब उसका खेल जानते हैं पर कुछ नहीं कर सकते।

इतने में अर्जुन भीष्म के कक्ष में आता है और सब कुछ सुन रहा होता है। भीष्म कहते जा रहे थे पता नहीं कि वह शकुनि की तूणीर से कब कौनसा बाण चला दे ? द्रोण बोले आपसे मैं सहमत हूं गंगापुत्र भीष्म। अर्जुन ने कहा प्रणाम पितामह, प्रणाम गुरुवर। भीष्म और आचार्य ने अर्जुन को आयुष्मान भव, विजयी भव का आशीर्वाद दिया और बोले आओ अर्जुन बैठो। अर्जुन बोला मैं तो आपके चरणस्पर्श करने आया था पितामह और यह कहने आया था कि आज हम लोग हस्तिनापुर छोडकर इन्द्रप्रस्थ जा रहे हैं। द्रोणाचार्य बोले तो फिर अकेले क्यों आये हो अर्जुन ? क्या तुम्हारे भाइयों को गंगा पुत्र भीष्म के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं रही ? अर्जुन बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री ने मुझे भी यहां आने के लिये रोका था क्योंकि बडे बूढों को लज्जित नहीं करना चाहिये और यदि हम सारे भाई यहां आ जाते तो द्रौपदी भी हठ करती यहां आने की। भीष्म बोले तो फिर तुम क्यों आये वत्स ? अर्जुन बोला मैं आपके दर्शन किये बिना तो कहीं जा ही नहीं सकता था पितामह और फिर आपसे न जाने कब, कहां और किस स्वरूप में भेंट हो ? परन्तु आपसे मुझे यह भी पूछना था पितामह कि प्रतिशोध की ज्वाला जो मेरे मन में भभक रही है उस अग्नि का क्या करूं मैं पितामह ? भीष्म बोले अब काहे का प्रतिशोध कुन्तीपुत्र। युधिष्ठिर ने जो कुछ भी द्यूत में हारा है वह महाराज ने सब कुछ तो वापिस लौटा दिया है। अर्जुन बोला सब कुछ तो नहीं लौटाया पितामह। द्रौपदी का मान नहीं लौटाया। उस हाथ को दंड नहीं दिया जो पहले उसके केशों तक फिर उसके वस्त्र तक पहुंच गये थे। उस जंघा को दंड नहीं दिया जिसे पीटकर दुर्योधन ने दुशासन को आदेश दिया कि उसको वहां बैठा दिया जाये। उस जीभ को दंड नहीं दिया पितामह जिसने भरी सभा में उस दिव्य जन्मा द्रौपदी को वेश्या कहा था। हस्तिनापुर पर यह ऋण तो है पितामह और यह ऋण तभी उतरेगा जब हस्तिनापुर हमें दुर्योधन, कर्ण, दुशासन और गान्धार नरेश शकुनि के शव देगा पितामह। भीष्म बोले इन शवों के साथ तुम्हे और कई शव स्वीकार करने पडेंगे वत्स। अर्जुन बोला पितामह... द्रोणाचार्य ने कहा हां प्रिय शिष्य अर्जुन हां। उन शवों के साथ तुम्हे मेरा शव भी स्वीकार करना होगा। अर्जुन बोले गुरुवर इस... भीष्म ने कहा हां और मेरा भी। इतने घबरा क्यों

गये हो वत्स? क्या तुम मेरी छाती की ओर अपना बाण चलाने का साहस नहीं कर सकते ? मैं हस्तिनापुर राज्य का द्वारपाल हूं वत्स। यदि कोई शत्रुता का भाव लेकर इसमें प्रवेश करना चाहेगा तो उसे मेरा शव अवश्य पार करना होगा। अर्जुन बोला क्या आप यह कहना चाहते हैं कि पितामह इस अपमान के विष को हम चुपचाप पी जाये ? भीष्म बोले मैं कौन होता हूं यह सब कहनेवाला ? इन विषयों पर तो स्वयं अपना ही निर्णाय लेना पडता है वत्स परन्तु जो बात मैं जानना चाहता हूं कि वो यह है वत्स जिस अपमान की बातें तुम कर रहे हो उसका दायित्व किस पर है ? क्या कुलवधू द्रौपदी को दुर्योधन ने दांव पर लगाया था ? तब दुर्योधन, दुशासन, कर्ण और शकुनि ने तुम लोगों से यह कहा था कि इसका विरोध न करो। यदि नहीं तो जो अपमान हुआ है उसका दायित्व स्वयं तुम लोगों पर है। अर्जुन बोला तो क्या हम भ्राताश्री का विरोध कर सकते थे पितामह ? भीष्म बोले तो क्या युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर तुम मुझे युद्ध की धमकी देने आये हो वत्स ? अरे वत्स अर्जुन घायल तो मैं हुआ हूं। अपमान तो मेरा हुआ है, मेरे पूर्वजों का हुआ और इन अपमानों की भीड में तुम्हे केवल अपना अपमान दिखाई दिया ? अरे वत्स जाओ इन्द्रप्रस्थ जाओ और बैठ कर सोचो कि ये जो कुछ हुआ है वो क्यों हुआ ? आरोपों की इस मृगमरीचिका में मत भटको। प्रतिशोध किसी समस्या का समाधान नहीं होता। भूल कहीं न कहीं तुम्हारे बडों से हुई है किन्तु दु:ख तो इस बात का है कि पुत्र ये सब बातें मैं दुर्योधन से नहीं कह सकता क्योंकि वो एक उल्टी गागर है। जल के लिये स्थान तो बहुत है परन्तु जल जाने का मार्ग बन्द है।

एक ओर प्रतिशोध है एक ओर अपमान, भीष्म पडे हैं बीच में गहरी नदी समान।
नारी के अपमान से गिरी सभ्यता आज, हार जीत के खेल में गई वंश की लाज।

११) शकुनि को पांडवों के साथ जबरन दुबारा कपट द्यूत

जो होनेवाला होता है वह होकर ही रहता है। ईश्वर इच्छा, जीवों का प्रारब्ध और प्रकृति की अनुल्लंघनीय धारा का किसी प्रकार उल्लंघन नहीं किया जा सकता। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, शीत-उष्ण और पाप-पुण्य का किसी प्रकार मेल नहीं हो सकता। इसके विरुद्ध जो प्रयत्न करते हैं वे कभी सफल नहीं हो पाते। पांडवों का कौरवों के साथ सन्धि कराने के लिये बडे बडे लोगों ने बार बार प्रयत्न किये परन्तु वे भी सफल नहीं हो सके। दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का समन्वय कभी हो ही नहीं सकता। यदि कभी होता हुआ यह दीखता तो वह क्षणिक होता है। धृतराष्ट्र ने धर्मराज युधिष्ठिर की सारी सम्पत्ति लौटा दी और पांडव अब दासत्व से मुक्त हुये। पर यह बात यही समाप्त नहीं हुई।

जुआ हो गया, दुर्योधन जीत गया। हस्तिनापुर हार गया। जीत गई दुर्योधन की ईर्ष्या। वे सारे जीवन मूल्य हार गये। जिनपर भरतवंशियों को गर्व था जो उनके जीवन और राजनीतियों के आधार थे। हो सकता है धृतराष्ट्र द्रौपदी के श्राप से डर गया हो किन्तु यह भी हो सकता है कि वो अपने पुत्र मोह और अपनी महत्वाकांक्षा के परिणाम से डर गया हो पर वह डरा अवश्य। हां यह और बात है कि उसका यह डर गान्धार नरेश शकुनि का खेल और दुर्योधन के सपने अवश्य बिगाड रहा था। इसके लिये न गान्धार नरेश तैयार थे और न ही दुर्योधन। द्रौपदी ने जब अपने तेज का पांसा फेंका तो शकुनि जैसे निपुण खिलाडी की बाजी भी मात हो गई। उन्होने जो कुछ जीता था वो केवल एक क्षण में उनके हाथ से निकल गया और वो कुछ ना कर पाये।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय अब धृतराष्ट्र ने पांडवों को उनकी हारी हुई धन सम्पत्ति को वापिस लौटा दिया तो दुर्योधन अत्यन्त हतप्रभ हो गया और चिंतित हो रहने लगा। दुर्योधन अपने कक्ष में बैठा हुआ था। दुशासन बडे आवेश में आया। दुर्योधन ने पूछा तुम इतने चिंतित किसलिये लग रहे हो प्रिय दुशासन ? दुशासन बोला पांडव कल इन्द्रप्रस्थ लौटनेवाले है भ्राताश्री। दुर्योधन बोला जाने दो दुशासन उन्हें। मैं भी जब उन्हे देखता हूं तभी मेरी कनपटियों के नीचे एक आग भी सुलग

उठती है और मुझे यह लगता है यह आग बुझे जो मेरे व्यक्तित्व को, मेरे आत्मसम्मान को चाट जायेगी। उनका यहां से जाना तो प्रसन्न होने की बात है। दुशासन बोला पर मैं यह सब देखकर कैसे प्रसन्न हो सकता हूं ? भ्राताश्री हमारे मामाश्री ने जो कुछ जीता पांडव वो सब लेकर इन्द्रप्रस्थ लौटनेवाले हैं। पिताश्री को अब मैं क्या कहूं। इतने में शकुनि आया और बोला इन्हे नेत्रहीन कहने से कुछ नहीं होता। वो तो नेत्रहीन हैं ही। वे मूर्ख हैं। उन्हे मूर्ख कहो प्रिय दुशासन मूर्ख। सारे मानव इतिहास में श्री श्री धृतराष्ट्र जैसा पिता कदाचित ही निकले जो अपना जीवन अपने पुत्र के अधिकार को किसी और को दे देने में बिता रहा हो। कर्ण बोला आपके होते हुये मामाश्री भला इन्हे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता हो सकती है ? आपके तूणीर में अभी भी षडयन्त्रों के बहुत से बाण होंगे। शकुनि बोला सत्य कभी व्यंग का आधार नहीं बन सकता अंगराज कर्ण। हां यह तुमने ठीक कहा मेरे तूणीर में अभी बाण रिक्त नहीं हुये। कर्ण बोला तब तो मुझे आज्ञा दो मित्र। शकुनि ने कहा ठहरो अंगराज। जाते जाते यह तो बताते जाओ तुम्हे दुर्योधन अधिक प्रिय है या स्वयं तुम्हारा अपना शौर्य बोलो अंगराज। मेरी दोनों सेनाओं ने दांव मार ही लिया था परन्तु द्रौपदी ने आकर बना बनाया खेल बिगाड दिया। तुम भी तो वहां उपस्थित थे और तुम स्वयं साक्षी हो कि मेरी इन दोनों सेनाओं ने युद्ध जीत लिया था। द्रौपदी किसी दिव्यास्त्र की भांति आई और जीजाश्री डर गये। और इसी डर के कारण जीजाश्री ने द्रौपदी के साथ सन्धि कर ली। दुर्योधन बोला तो अब क्या किया जाये मामाश्री। शकुनि ने कहा यदि एक हाथ और द्यूत खेलने का अवसर मिल जाये भान्जे तो सबकुछ फिर से समेट लूं। दुर्योधन बोला यह असम्भव है मामाश्री। पिताश्री अब फिर से द्यूत की आज्ञा कभी नहीं देंगे। कर्ण बोला तब तो तुमने महाराज के पुत्र मोह को जाना ही नहीं मित्र। तुम जो कुछ मांगोगे महाराज तुम्हे वह सब देने का प्रयत्न अवश्य करेंगे। इसलिये उनकी ओर से तो चिन्ता करो ही मत। प्रश्न है उन दोनो आचार्यों का, गंगा पुत्र भीष्म का। शकुनि बोला वे तो तीनों के तीनों राज सिंहासन के पायें से बन्धे हुये सिंह है। उनकी ओर से तो चिन्ता ही मत करो भान्जों यदि चिन्ता करनी है तो उस दासी पुत्र विदुर की करो। चिन्ता करनी है तो मेरी बहिन गान्धारी की करो। अब मुझे यह सोचने दो कि तुम उनसे क्या जाकर कहोगे ? कर्ण बोला पांडव इस अपमान को चुपचाप सहन तो नहीं करेंगे मामाश्री। यदि उनके स्थान पर मैं रहा होता तो इन्द्रप्रस्थ पहुंचते ही सेना लेकर हस्तिनापुर की ओर पलट जाता। दुर्योधन बोला कदाचित वे भी यही करेंगे तो फिर हमें क्या करना चाहिये ? कर्ण बोला उनके आक्रमण से पहिले स्वयं हमें उन पर आक्रमण कर देना चाहिये। शकुनि हां आक्रमण। पहली बार तुम्हारे मुंह से निकला हुआ यह शब्द मुझे अच्छा लग रहा है अंगराज। आक्रमण। पुत्र दुर्योधन पहला आक्रमण तुम करोगे गंगा पुत्र भीष्म पर। यदि उन्हे चित कर लिया तो ना रहेगा बांस और ना रहेगी बांसुरी। और यह आक्रमण तुम्हे अभी करना होगा। इसी समय पुत्र दुर्योधन। हां भान्जे जाओ पुत्र इसी समय।

द्रोणाचार्य और भीष्म अपने कक्ष में बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। द्रोणाचार्य बोले क्या आप युधिष्ठिर से मिले गंगापुत्र ? भीष्म बोले किस मुंह से जाता उसके पास? जाकर क्या कहूं उससे ? वे सब बडे सभ्य है। द्यूतक्रीडा की बात भी नहीं निकालेंगे परन्तु उनकी आंखों में प्रतिवाद का रंग तो होगा ही। इतने में आकर चर ने सूचना दी युवराज पितामह के दर्शन के अभिलाषी हैं। भीष्म चौंके और बोले इस समय। आने दो। दुर्योधन भीष्म पितामह के पास आता है और कहता है प्रणाम पितामह और प्रणाम गुरुदेव। भीष्म बोले आओ वत्स, आयुष्मान भव। यह तो इतनी रात गये अपने पितामह की याद कैसे आ गई ? दुर्योधन बोला मेरे पास केवल दो विकल्प है पितामह। मैं आपसे यह पूछने आया हूं कि कौनसा विकल्प उचित होगा ? द्रोणाचार्य बोले कैसे विकल्प प्रिय दुर्योधन ? दुर्योधन बोला द्यूतक्रीडा भवन में जो कुछ हुआ मैं उसके लिये लज्जित नहीं हूं गुरुवर। द्रौपदी मेरी दासी हो चुकी थी और उसके स्वामी होने के नाते उसपर मेरे अधिकारों की कोई सीमा नहीं है। यदि लज्जित ही हो तो स्वयं भ्राता युधिष्ठिर जिन्होने अपनी पत्नी को दांव पर लगाया था और इस विषय में आप लोगों से मेरा

मतभेद है। यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। द्रोणाचार्य बोले विकल्पों की बात करो दुर्योधन। दुर्योधन बोला विकल्पों की बात के लिये यह भूमिका आवश्यक थी गुरुवर। भीष्म बोले ठीक है यदि भूमिका समाप्त हो गई हो तो विकल्पों की बात करो। दुर्योधन बोला जो आज्ञा पितामह। जैसे एक वन में दो सिंह नहीं रह सकते, उसी तरह एक ही क्षेत्र में कुरु और पांडव भी एक साथ नहीं रह सकते। ऐसी स्थिति में केवल दो ही विकल्प रह जाते है। पहला विकल्प यह है पितामह कि आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण करूं और यह निर्णय रणभूमि में हो कि इस क्षेत्र में वो रहेंगे या मैं रहूंगा? दूसरा विकल्प यह है पितामह कि एक बार फिर से द्यूत हो जाने दीजिये। यदि द्यूत में मैं जीत जाऊं तो पांडव बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञात वास स्वीकारें और यदि वे जीते तो बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास मेरे लिये। द्रोणाचार्य बोले द्यूत कोई विकल्प नहीं है दुर्योधन। भीष्म बोले हां और यह समस्या इतनी सरल और साधारण भी नहीं है पुत्र। दुर्योधन बोला क्षमा चाहता हूं पितामह। मैं आप पर या गुरुवर पर पक्षपात का दोषारोपण नहीं करना चाहता हूं क्योंकि स्वयं आप दोनों जानते है कि आप सब उन्ही के पक्ष में है। मैं तो केवल यह जानना चाहता हूं कि इन दोनों विकल्पों में से कौनसा विकल्प उचित रहेगा ? भीष्म बोले युद्ध या द्यूत? इस प्रश्न का उत्तर तो केवल महाराज ही दे सकते हैं दुर्योधन। दुर्योधन बोला जो आज्ञा पितामह तो फिर चलिये मेरे साथ पिताश्री के पास।

धृतराष्ट्र और गान्धारी अपने कक्ष में बैठे हुये है धृतराष्ट्र चिंतित है। कई प्रश्नों की उत्तर की समस्या में उलझा हुआ सोच रहा है। गान्धारी बोली इस प्रश्न का उत्तर तो आपको कभी न कभी स्वयं को देना ही पडेगा आर्यपुत्र कि आपने अपनी कुलवधू द्रौपदी और कुरुवंश का इतना बडा अपमान कैसे हो जाने दिया ? जब तक आप स्वयं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देंगे तब तक नींद आपकी अपनी आंखों से दूर भागती रहेगी आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला कदाचित उन क्षणों के लिये मेरी आत्मा भी नेत्रहीन हो गयी थी गान्धारी। कदाचित मैं दुर्योधन से डर गया था। आज पहली बार अपनी नेत्र हीनता का आनन्द अनुभव कर रहा हूं कि मैं तो अपनी पुत्रवधू को देख ही नहीं सकता। यदि देख सकता तो कैसे देखता उसकी आंखों में ? यह जिसमें मेरे लिये घृणा के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। इतने में दासी ने आकर सूचना दी कि महाराज की जय हो। गंगा पुत्र भीष्म और युवराज दुर्योधन महाराज के दर्शनों के लिये पधार रहे हैं। धृतराष्ट्र गान्धारी से बोला तातश्री दुर्योधन के साथ क्यों आ रहे है गान्धारी ? गान्धारी बोली ये तो वे स्वयं ही बतायेंगे आर्यपुत्र।

दुर्योधन और भीष्म पितामह कक्ष में आते हैं। धृतराष्ट्र और गान्धारी ने प्रणाम किया तातश्री। भीष्म ने भी आयुष्मान भव, सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। धृतराष्ट्र बोले विराजिये तातश्री। आपने स्वयं यहां आने का कष्ट क्यों किया, मुझे बुलवा लिया होता तातश्री। भीष्म बोले- इस समय मैं अपने पुत्र धृतराष्ट्र के यहां नहीं आया हूं। मैं अपने महाराज के पास मिलने आया हूं। तुम्हें जो कुछ कहना है दुर्योधन कह दो महाराज से। दुर्योधन बोला पिताश्री जिस तरह दो बाघ एक वन में नहीं रह सकते उसी तरह कुरू और पांडव भी एक ही क्षेत्र में नहीं रह सकते। गान्धारी बोली यह तुम क्या कह रहे हो पुत्र ? वो तुम्हारे भाई हैं। दुर्योधन बोला मानव इतिहास में हम पहिले ऐसे भाई नहीं है माताश्री जो इकट्ठे नहीं रह सकते और वे चाहे तो मेरे साथ रह सकते परन्तु मैं उनके साथ कदापि नहीं रह सकता। पिताश्री ने तो राज्य का विभाजन करके भी देख लिया और उस विभाजन ने मेरे हृदय की अग्नि को ठंडा नहीं किया बल्कि और भडका दिया है माताश्री। और अब जब द्यूत में मैंने सब कुछ जीत लिया था। जो मैं चाहता था तो पिताश्री ने मेरे साथ अन्याय करके वो सब कुछ वापिस लौटा दिया। यह मैं कभी सहन नहीं कर सकता माताश्री। गान्धारी बोली तातश्री आप ही अब इसे समझाइये कि ये जानता ही नहीं ये क्या कह रहा है ? दुर्योधन बोला पितामह बीच में नहीं बोलेंगे माताश्री। दुर्योधन ने अपनी मां को घुडकी दी। कृपया आप मेरी बात ध्यानपूर्वक सुन लें। मेरे पास इसके

लिये केवल दो ही विकल्प हैं। या तो मैं इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण कर उसे जीत लूं या उसे जीतने के लिये युद्ध करता हुआ रणभूमि में मारा जाऊं या फिर चौसर का खेल एक बार फिर से हो जाये ताकि मैं उन्हे चौसर में हराकर उन्हे जीत लूं। यदि वे जीत गये तो बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास मैं स्वीकार करूंगा और यदि मैं जीता तो वे बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार करेंगे और यदि इस अज्ञातवास में कहीं खोज लिये गये या पहचान लिये गये तो फिर से बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास फिर से स्वीकारेंगे। गान्धारी बोली परन्तु पुत्र... दुर्योधन बीच ही में बोल उठा आप मेरी बात समझने का प्रयत्न क्यों नहीं कर रही माताश्री। मुझे सोते, जागते, उठते-बैठते चारों ओर अनुज अर्जुन ही अर्जुन दिखाई देता है। मुझे **अ** अक्षर से ही घृणा हो गई है क्योंकि यह अर्जुन के नाम का पहिला अक्षर है और यह संसार हम दोनों के लिये बहुत छोटा है पिताश्री और हम दोनों इस संसार में नहीं रह सकते।

गान्धारी बोली क्या कोई तीसरा विकल्प नहीं पुत्र ? दुर्योधन बोला है तीसरा विकल्प भी माताश्री कि मैं आत्महत्या कर लूं। यह विकल्प मैंने आप लोगों को इसलिये नहीं बताया क्योंकि कदाचित आप लोग इस विकल्प को स्वीकार नहीं करते। तो पिताश्री या तो आप मुझे युद्ध की आज्ञा दीजिये या फिर द्यूत की। गान्धारी बोली तातश्री आप... भीष्म बोले मेरे लिये तो दोनों ही विकल्प अस्वीकार्य हैं। मैं युद्ध की आज्ञा तो नहीं दे सकता महाराज। धृतराष्ट्र बोला मैं अपने पुत्र को आत्महत्या करने की आज्ञा भी तो नहीं दे सकता तातश्री। भीष्म बोले क्या महाराज को पुत्र मोह ने इतना विवश कर दिया है कि वो राजनीति और राजधर्म के सारे अध्याय भूल गये हैं। धृतराष्ट्र ने कहा आप यह बात इसलिये कह पा रहे हैं तातश्री कि आपको पुत्र मोह का अनुभव ही नहीं है। पेड़ फल के लिये जीता है और पिता अपने पुत्र के लिये। भीष्म बोले मैं एक पिता के पास नहीं आया हूं। अपने राजा के पास आया हूं। यदि दो ही विकल्प सामने हों युद्ध और द्यूत तो राजा को युद्ध का चुनाव करना चाहिये क्योंकि क्षत्रिय का धर्म यही है। पुत्र दुर्योधन तुम कायर नहीं हो, महावीर हो और मैं तुम्हारे साथ हूं। आचार्य द्रोण, अंगराज कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ये सब भी तुम्हारे साथ है। भूल जाओ द्यूत को और बजाओ शंख युद्ध का। धृतराष्ट्र बोले नहीं तातश्री। मैं युद्ध की आज्ञा नहीं दूंगा। पुत्र दुर्योधन बस एक दांव और लगेगा बस एक दांव। मुझे वचन दो कि बस एक दांव। गान्धारी बोली आर्यपुत्र भरत वंश के विनाश को आमंत्रित तो मत कीजिये। पांडु पुत्रों और अपने पुत्रों के बीच हमने जो सेतु बनाया है उसे न तोडिये। क्योंकि उस सेतु के नीचे अन्धकार का अथाह सागर है। धृतराष्ट्र बोले यदि यह भरतवंश अपने सर्वनाश के मार्गपर चल पडा है गान्धारी तो हमारे रोके यह रूकनेवाला भी नहीं। कदाचित इस देश के भाग्य में यही लिखा है। भीष्म बोले अपने पुत्र मोह के लिये विधाता को उत्तरदायी मत ठहराइये महाराज। यदि भरतवंश सर्वनाश के मार्ग पर चल पडा है तो उसने अपनी यह यात्रा विधाता के नहीं आपके नेतृत्व में शुरू की है महाराज। आपके नेतृत्व में। भीष्म धृतराष्ट्र को प्रणाम कर वहां से चले जाते हैं।

युधिष्ठिर अपने कक्ष में अपने भाइयों सहित बैठे हुये हैं। चिंतित हो अपने भाइयों से लौट जाने के विषय में बातचीत कर रहे थे कि इतने में ही खुले केशों में पांचाली वहां आ गई। युधिष्ठिर बोले तुमने अपने ये केश खुले क्यों छोड दिये पांचाली ? द्रौपदी बोली अब ये अपमानित केश खुले ही रहेंगे। तुम लोग जब इन खुले केशों को देखोगे तो तुम्हें याद आ जायगा कि दुशासन ने भरी सभा में इनका कैसा अपमान किया था। इन्हे फिर से देखो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन। इन्हे ठीक से देखो सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम। ये केश तब तक खुले रहेंगे जब तक तुम में से कोई अपनी अंजली भर दुशासन की छाती का लहू लाकर मुझसे यह कहेगा पांचाली लो यह दुशासन की छाती का लहू और इससे अपने केशों का अपमान धो डालो। युधिष्ठिर बोला वो अनुज है पांचाली अनुज। उसे क्षमा कर दो। द्रौपदी बोली क्षमा। अरे आप तो धर्म के प्रतीक हैं। आप चाहे दुर्योधन और दुशासन को भले ही

क्षमा कर दे परन्तु मैं नारी जाति के स्वाभिमान की प्रतीक हूं। मैं उन्हे कभी क्षमा नहीं करूंगी। युधिष्ठिर बोला प्रिय भीम तुम तनिक समझाओ पांचाली को। भीम बोला मैं स्वयं अपने आपको नहीं समझा पाया भ्राताश्री तो पांचाली को क्या समझाऊंगा? अर्जुन बोला और समझाने के लिये है भी क्या भ्राताश्री ? हममे से कौन पांचाली से यह कहने का साहस कर सकता है कि जो कुछ हुआ है उसे भूल जाओ। यह भूल जाओ कि दुशासन तुम्हे बालों से पकड कर घसीटता हुआ भरी सभा में लाया था। यह भूल जाओ कि वो सूत पुत्र कर्ण ने इसे वेश्या कहा था। यह भूल जाओ कि दुर्योधन के कहने से दुशासन ने तुम्हारा चीरहरण किया था। क्षमा की बात और है भ्राताश्री परन्तु स्वयं क्या आप भूल सकते हैं? भीम बोला भ्राताश्री के सामने ऊंचे स्वर में बोलने की यह शिक्षा किसने दी तुम्हें ? तुम इतने योग्य कब से हो गये कि भ्राताश्री से प्रश्न करने लगे। महावीर की पहिचान तो यह है कि उसमें सहन शक्ति अधिक होती है। द्रौपदी बोली कृपया मेरे सामने अपनी वीरता का प्रदर्शन भी मत करो। मैं तुममें से किसी को कायर तो नहीं कह सकती पर तुमको अपनी वीरता सिद्ध करनी होगी। मेरे ये खुले हुये केश देखो और अपनी आंखे झुका लो या अंजलि भर दुशासन की छाती का लहू ले आओ और कृपया अब मुझे हस्तिनापुर से ले चलिये। यहां की हवा में मुझसे सांस नहीं ली जा रही है। जब सांस लेती हूं तो मेरे आत्मसम्मान के जीवित जलाये जाने की दुर्गन्ध आती है। युधिष्ठिर बोला चलो पांचाली चलें।

इतने में ही महाराज की भेजी हुई प्रतिहारी आकर कहती है कि महाराज द्यूतक्रीडा भवन में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सब सुन कर बडे ही आश्चर्य से वे एक दूसरे को देखने लगे। द्रौपदी बोली क्षत्रिय धर्म का पालन करने अब तो आपको द्यूतक्रीडा भवन में जाना ही पडेगा। युधिष्ठिर बोला ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा का पालन करने के लिये वहां जाना ही होगा पांचाली। अर्जुन बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री यदि वहां आपको जाना ही है तो आप एक वचन दीजिये कि आप वहां चौसर नहीं खेलेंगे। युधिष्ठिर बोले क्या मैं इसे प्रतिबन्ध मानूं प्रिय अर्जुन ? अर्जुन बोला प्रतिबन्ध नहीं बडे भैया, यह तो प्रार्थना। युधिष्ठिर बोले मैं यह वचन नहीं दे सकता क्योंकि ज्येष्ठ पिताश्री ने आज्ञा दी तो मुझे वहां खेलना ही होगा। द्रौपदी बोली क्या आप यह वचन दे सकते है कि अब आप अपने भाइयों के अस्त्र शस्त्र दांव पर नहीं लगायेंगे ? युधिष्ठिर बोला हां मैं यह वचन देता हूं। द्रौपदी फिर से बोली क्या आप यह वचन दे सकते हैं कि आप उनकी स्वाधीनता को दांव पर नहीं लगायेंगे ? युधिष्ठिर बोला हां मैं यह वचन भी देता हूं। द्रौपदी ने फिर पूछा क्या आप यह वचन भी दे सकते है कि द्यूत हुआ तो मुझे दांव पर नहीं लगाओगे। युधिष्ठिर बोला पांचाली... अर्जुन बोला पांचाली यह वचन लेकर तुम भ्राताश्री का अपमान मत करो। युधिष्ठिर बोले श्रीराम यह जानते थे पांचाली कि मृग स्वर्ण का नहीं होता फिर भी वो उसकी मृगया पर चले गये। तो क्या वो केवल लोभ था ? क्या स्वयं जनक दुलारी सीता नहीं जानती थी कि स्वर्ण मृग जैसा कोई पशु नहीं होता ? तो फिर क्या जानते बूझते श्रीराम को उन्होने आपत्ति के मार्ग पर भेज दिया था ? जो होनहार है, जो कुछ होनेवाला होता है पांचाली वो हमारे कर्मों का परिणाम होता है। उसे न तुम रोक सकती हो और न ही मैं। उसे न भीम की गदा रोक पा सकती है और न अर्जुन के बाण। जैसा होना होता है वैसे वैसे आसार स्वयं बन जाते है। इसलिये चलो ज्येष्ठ पिताश्री को प्रतीक्षा करवाना सभ्यता का उल्लंघन है।

दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुशासन सभी द्यूत सभागृह में बैठे हुये हैं। भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य महाराज धृतराष्ट्र भी द्यूतक्रीडा भवन में उपस्थित हैं। वहां पर अन्य कौरव सोमदत्त, बाहलीक, युयुत्सु, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, जयद्रथ और विकर्ण सभी उपस्थित थे। भीष्म और विकर्ण सभी ने एक स्वर में कहा अभी जुए का यह उद्योग मत करो, शान्ति धारण करो। परन्तु पुत्र मोह वश धृतराष्ट्र ने अपने सभी दूरदर्शी मित्रों की सलाह को ठुकरा दिया और पांडवों को द्यूत क्रीडा के लिये बुलवाया। धर्म परायणा गान्धारी शोक सन्तप्त हो अत्यन्त कातर हो अपने पति धृतराष्ट्र से बोली आर्यपुत्र दुर्योधन जन्मते ही गीदड के समान रोने चिल्लाने लगा था। उसी समय परम ज्ञानी महात्मा विदुर ने कहा था कि इस पुत्र का परित्याग कर दीजिये, यह कुरुवंश का नाश

कर देगा। आप अपने दोष से सब को विपत्ति के सागर में तो मत डुबोये। इस ढीठ मूर्ख की हां में हां मत मिलाइये। इस वंश का नाश होने से बचाइये। बन्धे हुये सेतु को नष्ट मत कीजिये। बुझी हुई आग फिर से कहीं धधक न उठे ? पांडव शान्त और वैर भाव से विमुख है। उनको अब और क्रोधित मत कीजिये। दुर्बुद्धि पुरुष के चित्त पर शास्त्र के उपदेश का भला बुरा कुछ भी प्रभाव नहीं पडता। इस समय आप अपने अनुज पांडु पुत्रों को स्नेह से अपने वश में करें आर्यपुत्र। कहीं दु:खी होकर वो आपसे भी अलग न हो जाये। इस समय इस कुल कलंक दुर्योधन को त्यागना ही श्रेयस्कर है। उस समय हमने विदुर की बात नहीं मानी थी, यह सब उसीका फल है। शान्ति, धर्म और मन्त्रियों की सम्मति से अपनी विचार शक्ति को सुरक्षित रखे। प्रमाद मत करें। बिना विचारे कोई काम करना आपको बडा दु:ख देगा। राज्यलक्ष्मी क्रूर हाथों में पडकर उसी का सत्यानाश सर्वनाश कर देती है। सीधे सादे सरल पुरुष के पास रहकर ही वह पीढी दर पीढी चलती है। धृतराष्ट्र बोला गान्धारी अब तो वही होगा जो दुर्योधन और दुशासन चाहे। मेरे पुत्र फिर से पांडवों के साथ द्यूतक्रीडा करेंगे। युधिष्ठिर द्रौपदी और अपने भाइयोंसहित वहां द्यूतक्रीडा भवन में आये और महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। विदुर बोला महाराज युधिष्ठिरअपने प्रिय अनुजोंसहित और आपकी पुत्रवधूसहित आपको प्रणाम कर रहे हैं। धृतराष्ट्र बोले सुखी रहो। युधिष्ठिर बोला आपके आशीर्वाद की छाया सदैव ही दु:खों से दूर रखती है। मेरे लिये क्या आज्ञा है ज्येष्ठ पिताश्री ? धृतराष्ट्र बोले जो आज्ञा मैं तुम्हे देने जा रहा हूं पुत्र उसे देकर मैं भी स्वयं प्रसन्न नहीं हूं परन्तु प्राचीन परिवारों की जीवन यात्रा में ऐसे मोड भी आ जाते है जहां बडों को अनचाहे आदेश दे देने पडते हैं। मैं हस्तिनापुर राज्य के विभाजन से प्रसन्न नहीं था परन्तु मैंने राज्य का विभाजन किया। तुम लोग और मेरे पुत्र अलग अलग सुखी रहने का प्रयत्न करो परन्तु मैं अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं हुआ। अपने पूर्वजों के इस राज्य का विभाजन मेरे हृदय का एक ऐसा घाव है जो कदाचित कभी नहीं भरेगा। पुत्र युधिष्ठिर तुम कुरु परिवार के ज्येष्ठ पुत्र हो इसलिये तुम्हारा दायित्व दूसरे भाइयों से अधिक है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो कभी, तुम अपने अनुजों को यह समझा पावोगे कि एक ही तूणीर में बहुत से बाण रह सकते है परन्तु एक ही वन में दो सिंह एक साथ नहीं रह सकते। एक ही घर में दो उच्चाकांक्षायें नहीं रह सकती। किसी एक को दूसरे में मिल जाना ही पडता है। मेरा पुत्र दुर्योधन तुम लोगों में मिल जाने या तुम लोगों को अपने में मिलाने के लिये तैयार नहीं है। इसलिये वो तुमसे एक और दांव खेलना चाहता है। दांव पर बारह वर्ष का बनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास। यदि तुम जीते तो दुर्योधन को बारह वर्ष का वनवास और तेरहवे वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार करना होगा और यदि वो जीता तो यही तुम्हें स्वीकार करना होगा।

धर्मराज युधिष्ठिर बोले सभी प्राणी दैव के अधीन है, उसी के अनुसार शुभ अशुभ फल भोगते हैं उस पर किसी का वश नहीं होता ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा से फिर जूआ खेलना पडेगा तो ऐसा ही सही पर ऐसा करने से वंश का नाश हो जायेगा। युधिष्ठिर ने अपने ज्येष्ठ पिताश्री से पूछा क्या दुर्योधन की ओर से मामाश्री ही पांसे खेलेंगे। धृतराष्ट्र बोला इस प्रश्न का उत्तर तो दुर्योधन ही दे सकता है।

शकुनि छली है यह बात जानकर फिर भी उसके साथ जुआ खेलने को युधिष्ठिर तैयार हो गये और धृतराष्ट्र से बोले मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र ने पूछा तो क्या तुम इस दांव के लिये तैयार हो, अपनी स्वीकृति दे रहे हो पुत्र? युधिष्ठिर बोला यदि यह आपका आदेश है तो मेरी स्वीकृति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आपकी आज्ञा का पालन होगा ज्येष्ठ पिताश्री। सबने प्रणाम किया। इस बार जुए का क्या परिणाम होगा कि कौरवों के विनाश का आमन्त्रण है यह बात जानकर युधिष्ठिर ने जुआ खेलने की स्वीकृति दी।

चौसर बिछी हुई है, दुर्योधन, दुशासन, कर्ण और शकुनि बैठे हुये है। पांचों पांडव द्रौपदी सहित द्यूत स्थल पर आये और

सबने एक दूसरे को प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोले प्रणाम मामाश्री। शकुनि बोला आयुष्मान भव। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और बोला क्या आप भी यहां रहोगी भाभीश्री ? द्रौपदी ने उत्तर दिया जिस दांव पर मैं भी लगी थी वो दांव मुझे देखना तो चाहिये देवरजी। यदि अंगराज कर्ण को कोई आपत्ति न हो तो मैं अपने पांचो पतियों के साथ यहीं बैठ जाऊं ? कर्ण बोला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? अवश्य बैठिये। द्रौपदी ने धन्यवाद कहा और वहां बैठ गई। दुर्योधन बोला पिताश्री यह बताना भूल गये है कि यदि उस तेरहवें अज्ञातवास में पहिचान लिये गये तो फिर से बारह वर्ष का बनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास स्वीकारना होगा। मैं नहीं चाहता कि आज के उपरान्त हम फिर कभी एकत्र हो। भीम बोला इसी में तुम्हारी भलाई भी है क्योंकि आज के उपरान्त जब कभी मेरा तुम्हारा सामना होगा तो मैं पांचाली के केशों के लिये तुम्हारा और दुशासन की छाती का लहू अवश्य ले जाऊंगा। इसलिये पांचाली के इन खुले केशों को देखो और खेल आरम्भ करो। अर्जुन बोला और यह भी ध्यान रहे भ्राता दुर्योधन कि इस खेल का परिणाम हम जानते हैं फिर भी हम खेल रहे है। द्रौपदी बोली तुम लोग चुप रहो। तुम्हारे भ्राताश्री को ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती। शकुनि बोला तो क्रीडा आरम्भ करें सम्राट। युधिष्ठिर बोला यदि मैं आपके साथ खेल रहा होता तो खेल में पहल मैं अवश्य करता। खेल में पहल का मेरा अधिकार होता परन्तु मैं दुर्योधन से खेल रहा हूं और वो मेरा अनुज है तो खेल भी उसी की ओर से आरम्भ होगा। शकुनि बोला जैसी आपकी इच्छा सम्राट और शकुनि ने पांसे खेलने शुरू किये।

शकुनि बोला भान्जे दुर्योधन क्या चाहिये ? दुर्योधन बोला पौबारह मामाश्री। शकुनि ने कहा यह लो अभी आयेगा भान्जे। पौबारह। दुर्योधन बोला अब मुझे छ: की आवश्यकता है। शकुनि ने कहा छ: भान्जे और पांसे फेके। दुर्योधन बोला यह क्या मामाश्री यह तो आठ है। कोई बात नहीं गोटियां चलो। पांसे युधिष्ठिर को दिये। युधिष्ठिर बोला नकुल क्या चाहिये ? नकुल बोला पौबारह। नकुल बोला अब इनकी गोटी मारने के लिये हमे छ: की आवश्यकता है। छ: नहीं आया इसलिये पांसे फिर से शकुनि को दिये। दुर्योधन बोला इस समय आठ चाहिये पांडवों को हराने। शकुनि ने पांसे फेकें मगर आठ नहीं आया। पांसे युधिष्ठिर के पास आये और नकुल बोला सात चाहिये भ्राताश्री। सात आगया। पांडव अत्यन्त प्रसन्न हुये। नकुल बोला अब आठ चाहिये। युधिष्ठिर ने पांसे फेंके और आठ आ गया और दुर्योधन की गोटी पिट गई। नकुल बोला अब चार चाहिये और पांसे फेंकने पर सात आ गया। पांसे शकुनि के हाथ में आये। दुर्योधन बोला मामाश्री मुझे नौ की आवश्यकता है। शकुनि बोला अवश्य आयेगा भान्जे। यौद्धा है जीतेंगे। शकुनि ने पांसे खेले और नौ आ गया। दुर्योधन बोला मुझे पौबारह की आवश्यकता है फिर से पर पौबारह नहीं आया। युधिष्ठिर बोला हमें सात चाहिये और लो यह सात। अर्जुन बोला यह रही तुम्हारी दूसरी गोटी दुर्योधन। दुर्योधन बोला आठ चाहिये मामाश्री। शकुनि ने खेल खेला पर आठ नहीं आया। युधिष्ठिर ने पांसे खेले और बोले आठ यह रही आपकी तीसरी गोटी भ्राता दुर्योधन। नकुल बोला भ्राताश्री अब और पांसे फेंको आपकी फिर से बारी है अब कि बार छ: आना चाहिये भ्राताश्री। युधिष्ठिर ने पांसे खेले और पांच आये। पांसे शकुनि के पास आ गये। दुर्योधन बोला मुझे छ: चाहिये मामाश्री पांडवों की गोटी को मात देने। पांडव जीत रहे है। शकुनि ने पांसे खेले और छ: आ गया। पांडवों की गोटी पिट गई। दुर्योधन बोला मामा पांसे खेलो मुझे सात की आवश्यकता है। युधिष्ठिर बोला सात नहीं आया मामाश्री। अब फिर से पांसे युधिष्ठिर खेल रहा है। इस तरह काफी समय तक यह द्यूत क्रीडा चलती रही। पांसे अब शकुनि खेलनेवाला है। दुर्योधन बोला मुझे ग्यारह की आवश्यकता है और मैं हारना नहीं चाहता मामाश्री मुझे केवल ११ चाहिये। महादेव की सौगन्ध यदि अब इस बार ११ नहीं आया तो यही पर मार डालूंगा मामाश्री और शकुनि का गला पकड लिया दुर्योधन ने। शकुनि बोला इतने व्याकुल मत हो भान्जे। तुम्हारा मामा तुम्हें बनवास नहीं होने देगा। ओ मेरी सेना इन पर भरोसा रखो भान्जे दुर्योधन। अवश्य आयेगा ११। कर्ण बोला ११ मामाश्री बस ११ अन्तिम बार तुमसे कह रहा हूं ओ मेरी सेना। मेरी लाज रख लो। और बोला यह लो ग्यारह और पांसे खेल दिये। ११ आ गया। दुर्योधन जीत गया और पांडव हार गये। विदुर बोला हां महाराज दुर्योधन जीत गया

पर हस्तिनापुर हार गया।

लेख विधाता का ना टले, करलो लाख उपाय, धर्मराज ने आज फिर सब कुछ दिया लूटाय।

इस कथा का अन्तिम अध्याय तो लहू से लिखा जायेगा परन्तु जो अध्याय इस समय आपको सुनाया जा रहा है वो समय ने अपने आंसुओं से लिखा है क्योंकि यह पांडवों के वनवास की विदाई की घडी है। ये सभ्यता और राजनीति दोनों ही के लज्जित होने की घडी है। देवी देवताओं की भूमि भारतवर्ष क्षणभर के लिये अपनी आंखे बन्द कर ले क्योंकि क्षत्राणियों की क्षत्राणि कुन्ती अपने पुत्रों और पुत्रवधू द्रौपदी को लेकर कुरु राज्य सभा गंगा पुत्र भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य, आचार्य द्रोण और अपने ज्येष्ठ श्री हस्तिनापुर नरेश, महाराज धृतराष्ट्र से वन की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा मांगने आनेवाली है। यदि कुन्ती चाहती तो राजसभा में आये बिना भी जा सकती थी। परन्तु वो राज्य सभा में जानबूझ कर आ रही है कि उसे यह बताने की उसका परिवार अपमानित नहीं हुआ है। अपमानित तो हुआ है हस्तिनापुर का राज सिंहासन। अपमानित तो हुये हैं गंगा पुत्र भीष्म, अपमानित हुये हैं कुलगुरु कृपाचार्य, अपमानित हुये हैं आचार्य द्रोण और अपमानित तो हुई है कुरुवंश की मर्यादा। इसलिये अपनी आंखे झुकाकर कुन्ती के आने की प्रतीक्षा कर रहा है हस्तिनापुर। राजसभा में कुन्ती आती है। वहां सभी बैठे हुये है।

आज भूमि पर चल पडे भूपति दीन समान, छोड चले रे घर, नगर, समय बडा बलवान।

१२) पांडवों का वनगमन

युधिष्ठिर अपनी माता व पांडवों सहित वनवासी तपस्वी वें में राजसभा में वन जाने के लिये आज्ञा लेने आये। कुन्ती धृतराष्ट्र से सम्बधित हो बोली ज्येष्ठश्री भरतवंश परम्परा रक्षक महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में उनकी अनुज वधू कुन्ती का प्रणाम। धृतराष्ट्र बोला विदुर। विदुर बोले जी महाराज। धृतराष्ट्र ने कहा क्या यह कुन्ती है, तो यह यहां क्यों आई है ? विदुर बोले मैं नहीं जानता महाराज। धृतराष्ट्र बोले नहीं जानते हो तो पूछो उससे पूछो। विदुर बोले महाराज यह जानना चाहते हैं भाभीश्री आपने इस सभा में आने का कष्ट क्यों किया ? कुन्ती बोली मैं इस राजसभा की भूमि को प्रणाम किये बिना और इसकी आज्ञा लिये बिना तो नहीं जा सकती थी महामन्त्री विदुर ? धृतराष्ट्र ने पूछा तुम कहां जा रही हो ? कुन्ती बोली मैं अपने पुत्रों सहित वन में जा रही हूं। धृतराष्ट्र बोले परन्तु तुम क्यों जा रही हो ? तुम हमारे भवन में रहो। यह तुम्हारा घर है। बच्चों के झगडे फसाद में हम क्यों पडे? कुन्ती बोली क्षमा चाहती हूं ज्येष्ठश्री। पर जो राजभवन चुपचाप अपनी कुलवधू के चीर हरण का दृश्य देखता रह गया क्या उस राजभवन में किसी क्षत्राणी को रहना शोभा देगा? वह भीष्म से बोली हमें जाने की आज्ञा दीजिये तातश्री। आप से अधिक मर्यादाओं की भाषा कौन समझ सकता है ? आप तो स्वयं मर्यादा के प्रतीक हैं ताताश्री। भीष्म ने अपना सिर झुका लिया। विदुर बोले युधिष्ठिर भाभीश्री कुन्ती कोमल शरीर और वृद्धा है। वे सर्वथा आराम करने योग्य हैं इसलिये उनका वन में जाना उचित नहीं है। इस नगर में मेरी भी एक कुटिया है। भाभीश्री यदि उसे आप सम्मानित करें तो मैं इसे अपना सौभाग्य मानूंगा। कुन्ती बोली लेकिन विदुर... विदुर बोले निर्णय लेने में इतनी शीघ्रता मत दिखलाइये भाभीश्री। विदुर युधिष्ठिर से बोले ज्येष्ठ पांडु पुत्र भाभीश्री की आयु का विचार करो और उनकी दुर्बलता को देखो। क्या तुम इनका वन में जाना स्वयं भाभीश्री और हम सब लोगों के लिये उचित समझते हो ? इनका जीवन तो दांव पर नहीं लगा था। विनती करो पुत्र। हाथ जोडकर उनसे कहो कि वन में नहीं जाये। क्योंकि इनके यहां रहनेपर कदाचित दुर्योधन को भी कोई आपत्ति नहीं होगी। दुशासन बोला यदि छोटी मां चाहे तो वे मेरे भवन में भी रह सकती है। भीम अत्यन्त उत्तेजित हो बोला कदापि नहीं दुशासन यदि माताश्री तेरे भवन में रह गयी तो हम तेरे आभारी हो जायेंगे और यदि हम तेरे आभारी हो गये तो पांचाली के खुले केशों के लिये अंजली भर तेरी छाती का लहू लेना कठिन हो जायेगा। मैं गदा से दुर्योधन की जंघा तोडकर उसके सिर पर अपना पैर रखूंगा। इतने में अर्जुन भी बोल उठा भाई भीम आपकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये यह अर्जुन प्रतिज्ञा करा है कि **वह संग्राम में कर्ण**

और उसके साथियों का वध करेगा और अपने साथ युद्ध करनेवाले मूर्खों का भी वध करेगा। हिमालय भले ही अपने स्थान से डिग जाये, सूर्य में अन्धकार छा जाये, चन्द्रमा शीतलता की बजाय धधकती आग बन जाये परन्तु मेरी बात कभी असत्य नहीं होगी। यदि १४ वें वर्ष आरम्भ होनेपर दुर्योधन ने हमारा राज्य आदर सत्कारपूर्वक वापिस नहीं लौटाया तो मेरी वाणी अवश्य ही सत्य होकर रहेगी। सहदेव ने कहा अरे गान्धार के कुल कलंक मामा शकुनि जिन्हे तू पांसे समझ रहा है वे तेरे विनाश के लिये ही तीखे बाण है मैं तेरा और तेरे रिश्तेदारों का अपने हाथ से वध करूंगा। बस तू रणभूमि में क्षत्रियों के भांति युद्ध में डरकर रहना, मुंह मत चुराना।

युधिष्ठिर बोला हे हस्तिनापुर राज्य के पूर्वजों, हे पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य, हे ज्येष्ठ पिताश्री, सोमदत्त, बालीक, आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा, काकाश्री विदुर, दुर्योधन आदि मेरे अनुज, युयुत्सु, संजय अन्य सभी राजाओं व सभासदों यह ज्येष्ठ पांडु पुत्र युधिष्ठिर अपने अनुजों और द्रौपदी सहित आप सबको प्रणाम करता है और वन प्रस्थान के लिये आप सबका आशीर्वाद चाहता है। वहां से लौटने के पश्चात आप सभी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होगा। उस समय किसी ने कुछ नहीं कहा और लज्जा के कारण सबका सिर झुक गया। सब मन ही मन धर्मराज युधिष्ठिर का कल्याण चाहने लगे। कुन्ती बोली पुत्र तुमने मेरी ओर से तो नमस्कार किया ही नहीं। युधिष्ठिर बोला नहीं माताश्री। काकाश्री विदुर ठीक कह रहे हैं। मैंने आपका जीवन दांव पर नहीं लगाया था इसलिये अब आप काकाश्री के घर पर रहकर हमारे लौटने की प्रतीक्षा कीजिये। यह सुनकर कुन्ती राजसभा में ही फफक फफक रोने लगती है। महात्मा विदुर हम सब आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। हम सदैव आपके आश्रित हैं। विदुर बोले युधिष्ठिर तुम धर्म के मर्मज्ञ हो, अर्जुन विनयशील है, भीम बलवान व शत्रुनाशक है, नकुल धन संग्रह कुशल है तथा सहदेव शत्रुओं को वश में रखनेवाला है। धौम्य ऋषि वेदज्ञ है, पतिव्रता द्रौपदी धर्म और अर्थ के संग्रह में निपुण है। आप सभी परस्पर प्रेम भाव से रहते हैं। शत्रु भी आपके चित्त में भेदभाव की सृष्टि नहीं कर सकता। आप बडे ही निर्मल और सन्तोषी स्वभाव वाले हैं। विश्व के सभी लोग आपको चाहते हैं और आपके दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं। हिमालय पर मेरु सार्वणी, वारणावत में व्यास, भृगुतुंग पर्वत पर परशुराम और दृष्टद्वती नदी के तट पर महादेव शंकर आपको धर्मोपदेश कर चुके हैं। अञ्जन पर्वत पर आपने महर्षि असित से और कल्माषी नदी के तट पर भृगु मुनि से ज्ञान प्राप्त किया है। देवर्षि नारद सदा आपकी देखरेख रखते है। धौम्य मुनि तो आपके पुरोहित हैं ही। विषम परिस्थितियों में युद्ध के अवसर पर उन ऋषि महात्माओं का उपदेश मत भूल जाना। पांडव श्रेष्ठ आप पुरुवरा से भी अधिक बुद्धिमान हैं। कोई भी राजा शक्ति में आपकी समता नहीं कर सकता। आप धर्माचरण में ऋषियों से भी आगे हैं। शत्रुओं को अपने अधीन करने में आप वरुण के समकक्ष हैं। आप जल के समान निर्मल और निश्छल हैं। अपना जीवन दान करके भी दूसरों का हित करते हैं। मेरा आपको आशीर्वाद है आप पृथ्वी से क्षमा, सूर्य से तेज, वायु से बल और समस्त प्राणियों से आत्मधन प्राप्त करें। आपका शरीर सदा स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहे। कोई भी काम करना हो तो उस पहले ठीक ठीक विचार कर लें। मुझे स्मरण नहीं आता कि आपने कोई गलत काम या कोई पाप किया हो। आप अवश्य ही कृतार्थ होकर आनन्दपूर्वक वापिस लौटेंगे। आपका कल्याण हो।

अर्जुन बोला हम वचन देते हैं माताश्री कि तेरह वर्ष के उपरान्त हम लौट कर आपसे मिलेंगे। आप चिन्ता मत कीजिये और हमें आशीर्वाद दीजिये। कुन्ती बोली मैं तुम लोगों के बिना कैसे जीऊंगी। उठो पुत्री द्रौपदी। शोक मत करो। दुखों को केवल मुस्कान का बाण ही भेद सकता है। इसलिये मुस्कुराओ पुत्री। माता कुन्ती ने शोकाकुल वाणी से अत्यन्त कातर हो कहा पुत्री तुम तो नारी धर्म को भलीभांति जानती हो। तुम स्वयं शील और सदाचार सम्पन्न हो। इसलिये तुम्हे अपने पतियों के प्रति तुम्हारे कर्तव्य के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम स्वयं परम साध्वी, गुणवती और दोनों कुलों की भूषण हो। तुमने कौरवों को शाप देकर भस्म नहीं किया यह उनका सौभाग्य और तुम्हारा सौजन्य है। तुम्हारा सुहाग अखंड और अचल रहे। कुलीन स्त्रियां अचानक दु:ख आ जाने पर घबराती नहीं है। तुम्हारा पातिव्रत धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा वह तुम्हारा पथ निष्कंटक

होगा। सब प्रकार तुम्हारा मंगल हो। एक विशेष बात तुमसे कहती हूं कि मेरा पुत्र सहदेव सबसे छोटा है उसका विशेष ध्यान रखना उसको वन में किसी प्रकार का कष्ट न हो। अपने पुत्रों में वो मुझे अत्यन्त प्रिय है पुत्री। माता कुन्ती ने अपने पुत्र पांडवों से कहा तुम लोग धर्मपरायण सदाचारी, भगवद्भक्त, पापरहित हो फिर भी तुम पर यह कैसा संकट आ गया ? अवश्य ही यह प्रारब्ध का ही दोष है। तुम लोगों ने तो कोई अपराध किया ही नहीं। यह अवश्य मेरे भाग्य का दोष रहा होगा जो तुम लोगों ने मेरी कोख से जन्म लिया। अवश्य ही तुम लोगों के दु:ख और संकट का यही कारण रहा होगा। कृष्ण को स्मरण कर कुन्ती बोली हे द्वारकाधीश हे प्रभो आप मेरे इस भयानक कष्ट से मेरी और मेरे महात्मा पुत्रों की रक्षा करे। आप तो अनादि और अनन्त हैं। मेरे पुत्र धार्मिक, गम्भीर, यशस्वी और पराक्रमी है फिर उनके ऊपर ऐसा संकट, कष्ट का आना उचित नहीं। भगवन इन पर दया करो। हाय रे दैव नीति और व्यवहार में कुशल तातश्री भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य, आचार्य द्रोण आदि कुरुकुल के नायकों की उपस्थिति में ऐसे विपत्ति इन पर कैसे आ पडी ? माता कुन्ती अधीर हो विलाप करने लगी। उनके खिन्न होने पर करुण क्रन्दन से पांडवों ने उन्हे प्रणाम किया। विदुर ने कुन्ती को दैव की प्रबलता समझा कर शान्त किया और स्वयं आर्त चित्त से कुन्ती को अपने घर ले गये। कौरव कुल की स्त्रियां द्यूत सभा में द्रौपदी के इस अपमान को देखकर बाल पकडकर घसीट कर ले जाने आदि अत्याचार को देखकर दुर्योधन की निन्दा करने लगी। राजा युधिष्ठिर भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को प्रणाम कर उन सबका आशीर्वाद ले बन की ओर चल पडे।

सब दिन होत न एक समान, पांचों पांडव वन वन भटके संग द्रौपदी नार, साधो समय बडा बलवान,
राजमहल में रहनेवाले रेशम पर चलनेवाले अपने हाथों आज कुटी बनाते, कर्मों की गति को टाल नहीं पाते।
क्या क्या लेख लिखे विधाता ने सब दिन होत न एक समान, साधो समय बडा बलवान।
क्या सोचा और क्या हो जाता, राज ताज सब खो जाता, कांटो पर क्या चल पाते ?
गिर कर वो ही सम्भल पाते है। यही है जीवन की पहिचान,
सब दिन जगत न एक समान, साधो समय है बडा बलवान।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय धृतराष्ट्र अपने पुत्रों का अन्याय देखते देखते उद्वीग्न हो उठे। उन्हे एक क्षण भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही थी। उन्होने दूत भेजकर विदुर को बुलाया और विदुर से पूछा विदुर पांचो भाई पांडव, पुरोहित धौम्य और यशस्विनी द्रौपदी ये सब किस प्रकार वन में गये। वे क्या कर रहे हैं ? उनका सब ठीक ठीक वृतान्त मुझे बताओ। विदुर बोले महाराज यह तो आपको भली भांति मालूम ही है कि आपके पुत्रों ने छल कपट से धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य और वैभव छीन लिया फिर भी विचारशील धर्मराज युधिष्ठिर की बुद्धि धर्म से विचलित नहीं हुई। वे कपटपूर्वक राज्य से वंचित किये जानेपर भी आपके पुत्रों पर स्नेह और दया का भाव रखते हैं। वे अपने क्रोधपूर्ण नेत्रों को बन्द कर रखे है। कहीं उनकी अंगारे सी चमकती लाल लाल आंखों के सामने पड कर कौरव भस्म न हो जाये। इसी से धर्मराज युधिष्ठिर मुंह ढके चले जा रहे है। महाराज भीम को अपने बाहुबल का बडा गर्व है। वह अपने को बेजोड समझता है। कुन्तीनन्दन अर्जुन धर्मराज के पीछे पीछे धूल उडाते चल रहे है ताकि लोग देखे कि युद्ध के समय भीम अपने बाहुबल का जौहर प्रदर्शन करेंगे और अर्जुन शत्रुओं पर तरह तरह की बाण वर्षा करेंगे। नकुल ने तो अपने शरीर में धूल मल रखी है इसका कारण कि नकुल का सहज सुन्दर रूप देखकर रास्ते की स्त्रियां भटक कर उसपर मोहित न हो जाये। द्रौपदी इस समय रजस्वला है और वो कह रही थी जिनके कारण मेरी यह दुर्दशा हुई है उनकी स्त्रियां भी आज के १४ वर्ष बाद अपने स्वजनों की मृत्यु से दु:खित होकर हस्तिनापुर आयेगी। धौम्य मुनि पुरोहित हो मन्त्रोचारण करते हुये आगे आगे चल रहे है।

पांडवों की वन यात्रा से विकल हो सभी नागरिक कह रहे थे हमारे प्रिय सम्राट का इस प्रकार वन में जाना भावी विनाश का सूचक है। कुरुकुल के वृद्ध जनों की तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई, उनकी मूर्खता को धिक्कार है। वे लोभवश धर्मात्मा पांडवों को देश निकाला दे रहे है। हम तो पांडवों के बिना अनाथ हो जायेंगे। इन अन्यायी कौरवों के प्रति हमारी कोई सहानुभूति नहीं है।

पांडवों के बनवास के लिये प्रस्थान करते ही आकाश में बिना बादल ही बिजली चमकने लगी। पृथ्वी थरथराने लगी। बिना अमावस्या के ही सूर्य ग्रहण हो गया। उल्कापात हो गया। गीध गीदड और कौए आदि मांस भक्षी जीव मन्दिरों, बुर्जों, किलों और अट्टारियों पर दूषित पदार्थों की वर्षा करने लगे। इन उत्पातों का फल हुआ भरतवंश का सत्यनाश, यह सब आपकी दुर्मति का फल है महाराज। जिस समय विदुर धृतराष्ट्र से सब इस प्रकार कह रहे थे उसी समय बहुत से ऋषियों के साथ देवर्षि नारद वहां आ पहुंचे और बोले राजन दुर्योधन के अपराध के फलस्वरूप आज के १४ वर्ष में भीम और अर्जुन द्वारा कुरुवंश का विनाश होगा। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ने द्रोणाचार्य को अपना प्रधान आश्रय जान पांडवों का सारा राज्य अस्थायी रूप से उन्हे संचालन के लिये सौंप दिया। द्रोणाचार्य ने कहा भरतवंशियों पांडव देवताओं के पुत्र है, वे अमर हैं उन्हे कोई मार नहीं सकता फिर भी धृतराष्ट्र पुत्रों ने मेरी शरण ली है। इसलिये इनके सहायक राजाओं के साथ मैं अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार उनकी पूरी पूरी सहायता करूंगा। मैं कभी शरणागत का त्याग नहीं कर सकता। इच्छा न रहनेपर मुझे यह करना पडेगा क्योंकि प्रारब्ध ही पुरुषार्थ से बलवान है। कौरवों पांडवों को वन भेज देने से ही तुम्हारा काम पूरा नहीं हो गया अब तुम्हे अपने कल्याण का मार्ग खोजना चाहिये। तुम्हारा राज्य स्थायी नहीं है। यह तो चार दिनों वाली खुशी है, दो घडी का खिलवाड है। इसलिये बडे बडे यज्ञ करो, ब्राह्मणों को दान दो। चौदहवां वर्ष तुम लोगों के लिये बडा कष्टकारी हो सकता है।

महाराज के सारथी संजय ने धृतराष्ट्र से कहा महाराज आपने पांडवों को राज्यच्युत कर बनवासी बना दिया, यह आपने अच्छा नहीं किया। उनका धन वैभव और भूमि छीन ली फिर अब ये शोक किसलिये कर रहे हैं ? अब यह निश्चित है कि आपके कुल का तो नाश होगा ही बेचारी निरीह प्रजा भी नहीं बचेगी। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, और महात्मा विदुरजी ने आपके दुरात्मा पुत्र दुर्योधन को बहुत रोका टोका फिर भी उस निर्लज्ज ने पांडवों की प्रिय पटरानी द्रौपदी को जो धर्मपरायणा है सभा में बुलवाकर अपमानित किया। विनाश काल आने पर बुद्धि मलिन हो अधर्म में लग जाती है। अन्याय भी न्याय के समान दिखने लगता है। मनुष्य अनर्थ को स्वार्थ और स्वार्थ को अनर्थ देखने लगता है। तथा मर मिटता है। काल डंडा मारकर किसी का सिर नहीं तोडता। उसका तो बल ही इतना है महाराज कि वह बुद्धि को विपरीत कर भले को बुरा और बुरे को भला दिखलाने लगता है। आपके पुत्रों ने अयोनिजा, पतिव्रता, अग्नि तनया उस सुन्दर महारानी द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया है इसका फल स्वरूप यह युद्ध का निमन्त्रण ही समझे। ऐसा निन्दनीय क्रूर कर्म तो कोई दुष्ट व्यक्ति भी नहीं करेगा।

धृतराष्ट्र बोले संजय द्रौपदी की आर्त दृष्टि से शाप निकल कर सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है। हमारे पुत्रों में कोई सामर्थ्य नहीं जो उसको रोक सके। धर्म चारिणी द्रौपदी को सभा में अपमानित होते देखकर भरतवंश की सभी स्त्रियां महारानी गान्धारी के पास आ करुण क्रन्दन करने लगी थी। जिस समय द्रौपदी का चीर हरण हुआ उस समय जोरों से आन्धी चलने लगी। तूफान आ गया और बिजली गिरी, उल्का पात हुआ। सारी प्रजा भी भयभीत हो गई। मन्दिरों की ध्वजायें गिर गई। चारों तरफ अग्नि लग गई। यज्ञशाला में गीदड रोने लगे। गधे रेंकने लगे, कुत्ते भौंकने लगे। इन अपशकुनों को देख कुरु वयोवृद्ध सभा छोडकर उठकर चले गये। द्रौपदी दैव से उत्पन्न एक अनुपम लक्ष्मी है जो पांडवों के पीछे पीछे चलती है। ये महान अपमान और क्लेश पांडव, यदुवंशी तथा पांचाल नहीं सहेंगे क्योंकि इनके रक्षक और सहायक वासुदेव श्रीकृष्ण है। विदुर ने बहुत ही धर्मानुकुल सम्मति दी थी कि महाराज पांडवों से सन्धि कर लीजिये पर पुत्र मोह वश होकर विदुर के कहे हुये की उपेक्षा कर दी। द्रौपदी की क्रोध पूर्ण दृष्टि से सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है। वास्तव में सतियों में ऐसी ही शक्ति होती है। सतियों के अपमान से रावण और कौरवों जैसों का भी सत्यानाश हो जाता है फिर औरों की तो बात ही क्या ?

इति सभा पर्व

HHH(६३०)HHH

वन पर्व

१) पांडवों का काम्यक वन में वास ६३२

२) युधिष्ठिर की वन में सूर्योपासना और अक्षय पात्र की प्राप्ति ६३७

३) धृतराष्ट्र से अपमानित हो विदुर का पांडवों के पास काम्यक वन में आना ६३९

४) धृतराष्ट्र का संजय को भेजकर विदुर को वापिस बुलाना ६४२

५) महर्षि व्यास और मैत्रेय मुनि का आना तथा दुर्योधन को समझाना ६४८

६) किर्मीर राक्षस वध ६५२

७) दुर्योधन का काम्यक वन में गन्धर्वों से युद्ध और दुर्योधन की पराजय ६५२

८) श्रीकृष्ण का काम्यक वन में पांडवों के पास आना ६६०

९) द्वैतवन में पांडवों का निवास, मार्कण्डेय मुनि और दाल्भ्य का उपदेश ६७०

१०) युधिष्ठिर और द्रौपदी का सम्वाद, क्षमा, निष्काम धर्म और क्रोध की व्याख्या ६७१

११) युधिष्ठिर और भीम का कर्तव्य विषय में सम्वाद ६७७

१२) युधिष्ठिर को महर्षि व्यास का उपदेश ६८१

१३) अर्जुन की तपस्या और शंकर के साथ युद्ध, पशुपातास्त्र की प्राप्ति ६८३

१४) नल-दमयन्ती का वृतान्त ६९०

१५) नारदजी तथा धौम्यद्वारा तीर्थयात्रा की महिमा का वर्णन ७०४

१६) लोमश मुनि का आगमन, तथा व्यास आदि ऋषियों सहित पांडवों की तीर्थयात्रा ७०८

१७) पांडवों की नैमिषारण्य, प्रयाग, गया की तीर्थयात्रा तथा अगत्स्य-लोपमुद्रा की कथा ७०९

१८) वृतासुर वध और अगस्त्य मुनि का समुद्र शोषण का वृतान्त ७१३

१९) सगर पुत्रों का उद्धार और गंगावतरण की कथा ७१५

२०) श्रृंग ऋषि का चरित्र ७१७

२१) परशुराम चरित्र ७२०

२२) अन्य तीर्थों का वर्णन और राजा शिबि की कथा ७२२

२३) अष्टावक्र मुनि का वृतान्त ७२७

२४) कर्ण का विजय यात्रार से हस्तिनापुर लौटना ७३०

२५) स्वर्ग में अर्जुन को अस्त्र एवं नृत्य शिक्षा तथा उर्वशी का श्राप ७३०

वन पर्व

१) पांडवों का काम्यक वन में वास

जनमेजय ने पूछा महर्षि दुरात्मा दुर्योधन दुशासन आदि ने अपने मित्रों की सहायता से कपट द्यूत में मेरे पूर्वजों पांडवों को जीत लिया तत्पश्चात मेरे पूर्वज पांडवों ने इस विपत्ति में पडकर किस प्रकार अपना संकट झेला उनके साथ वन में कौन कौन गया। वे प्रजा के साथ बन में कैसा बर्ताव करते थे ? क्या भोजन आहार करते थे और कहां किस प्रकार रहते थे ? वन में उनके बारह वर्ष किस प्रकार व्यतीत हुये ? सौभाग्यवती सत्यवादिनी राजकुमारी द्रौपदी ने किस प्रकार वन के दु:खों को सहा ? मुझे यह सब बताकर मेरी उत्कंठा शान्त कीजिये। वैशम्पायन बोले जनमेजय पांडव दुरात्मा दुर्योधन के व्यवहार से दुखित और क्रोधित होकर अपने अस्त्रों शस्त्रों और रानी द्रौपदी सहित हस्तिनापुर के वर्धमान द्वार से निकल कर उत्तर दिशा की ओर चले गये। जब हस्तिनापुर की प्रजा को यह मालूम पडा तो उसके दु:ख का पारावार नहीं रहा। सब लोग शोक से व्याकुल हो एक साथ एकत्र हो निर्भयता से भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण आदि की निन्दा करने लगे। वे कहने लगे दुरात्मा दुर्योधन शकुनि की सहायता से राज्य करना चाहता है। इसके राज्य में हम लोग, हमारा वंश, प्राचीन सदाचार और परम्पराये, घर द्वार सुरक्षित नहीं है। जब राजा स्वयं पापी हो और उसके सभासद, मन्त्रीगण और सहायक भी पापी हो तो कुल मर्यादा, आचार, धर्म और अर्थ कैसे रह सकते है ? और उनके न रहने पर तो सुख के रहने की आशा ही व्यर्थ है। दुर्योधन गुरुजनों से भी द्वेष करता है। दूसरे वंश की मर्यादाओं और अपने सुहृदय सम्बन्धियों का भी त्याग कर चुका है। ऐसे अर्थ लोलूप, अहंकारी, मदान्ध और क्रूर के शासन में इस पृथ्वी का सर्वनाश निश्चित है। हम महात्मा पांडवों के साथ चलकर वही उनके साथ रहेंगे। पांडव दयालु, जितेन्द्रिय, यशस्वी और धर्मनिष्ठ है। हस्तिनापुर की प्रजा परस्पर इस प्रकार विचार कर पांडवों से कहने लगी। हे भरतवंशी कुलश्रेष्ठ पांडव आप लोग हमें दु:ख कष्ट भोगने के लिये हस्तिनापुर में छोडकर स्वयं कहां जा रहे हो ? जहा आप जायेंगे वहां हम भी आपके साथ चलेंगे। जब से दुर्योधन आदि लोगों ने बडी निर्दयता से आप लोगों को कपट द्यूत में हराकर आप लोगों को वनवासी बना दिया है तब से हम लोग बहुत भयभीत और चिंतित है। हम आपके सेवक और प्रेमी है। आपके हितैषी है। कहीं इस दुष्ट दुरात्मा दुर्योधन के राज्य में हमारा सर्वनाश न हो जाये। आपको भली भांति विदित है कि मनुष्यों की दुष्ट पुरुषों की संगति में कितनी हानि है और सत्पुरुषों के संग रहने में क्या क्या लाभ है ? जैसे सुगन्धित पुष्पों के संसर्ग जल, तिल और स्थान भी सुगन्धित हो जाते है वैसे ही मनुष्य भी भले बुरे के संग के अनुसार भला बुरा हो जाता है। दुष्टों के संग में मोह की वृद्धि होती है और सत्पुरुषों के संग से धर्म की। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि ज्ञानी, वृद्ध, दयालु शान्त, जितेन्द्रिय और तपस्वी पुरुषों का ही संग करे। कुलीन, विद्वान एवं धर्म परायण पुरुषों की सेवा और उनका सत्संग शास्त्रों के स्वाध्याय से भी बढकर है। पापी पुरुषों के दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप करने से तथा उनके साथ बैठने से धर्म और सदाचार का नाश हो जाता है तथा उन्नति के स्थान पर अवनति होती है। नीचों के संग से मनुष्य की बुद्धि नष्ट होती है और सत्पुरुषों के संग से वह उन्नत हो जाती है। जगत के गुप्त से गुप्त और श्रेष्ठ महात्माओं ने मनुष्य के अभ्युदय और श्रेयस के लिये जिन गुणों की आवश्यकता बतायी है, लोक व्यवहार में जिन वेदोक्त आचरणों की आवश्यकता है, वे सबके सब आप लोगों में विद्यमान है। इसलिये आप जैसे सत्पुरुषों के साथ ही हम रहना चाहते है।

प्रजा की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले मेरे पूजनीय आदरणीय प्रजाजन और आदरणीय विप्र वर्ग आप लोग स्नेहवश और दया के वश हो हममें गुण देख रहे है यह आप लोगों की महानता है और हमारा सौभाग्य है। आप हमारी इस बात पर गौर कर स्वीकार करें। इस समय हस्तिनापुर में भीष्म पितामह, ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र, महात्मा काकाश्री विदुर तथा हमारी माता कुन्ती और ज्येष्ठ माताश्री गान्धारी और हमारे सगे सम्बन्धी सुहृद हस्तिनापुर में निवास कर रहे हैं। जिस प्रकार आप लोग हमारे लिये

दु:खी हो रहे वैसे ही उनके हृदय में भी बडा शोक और वेदना है। आप सभी लोग हमारी खातिर वापिस हस्तिनापुर लौट जाये। आप लोग बहुत दूरतक हमारे पीछे पीछे आ गये हैं, अब और आगे न चलें। मेरे वो सग्गे सम्बन्धी आप लोगों के पास धरोहर है उन सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें। उन लोगों की रक्षा करना ही मेरा सबसे बडा काम है। यदि आप लोग मेरे कहे अनुसार वैसा करेंगे तो मुझे बडा सन्तोष होगा और उसे मैं अपना सत्कार समझूंगा। तब सभी प्रजाजन हाय हाय कह पुकार उठे। पांडवों के गुण स्वभाव आदि का विचार कर उनकी आकुलता की सीमा हो नहीं रही और वे अनिच्छा से पांडवों में विभिन्न प्रकार की चर्चायें की।

धर्मराज युधिष्ठिर ने विप्रवर्ग से कहा हे महात्माओं इस समय हमारा राज्य, लक्ष्मी और सर्वस्व छीन गया है। हम वन में फलों का आहार करते है और वन में कुटिया बनाकर निवास करते है। वन में बडे बडे विघ्न और बाधाये है। इससे आप लोगों को बडा कष्ट होगा। ब्राह्मणों ने कहा राजन प्रेमवश हम लोग आपके साथ रहना चाहते है। हमे आपके साथ रहने की आज्ञा दे। हमारे पालन-पोषण के बारे में आप तनिक भी चिन्ता न करे। हम स्वयं अपने भोजन आहार का प्रबन्ध कर लेगे। आपके साथ वन में रहकर अपने इष्टा का ध्यान करते, उपासना, आराधना व तपस्या करेंगे। वन में बहुत सी प्राचीन सुन्दर सुन्दर कथायें आपको सुनाकर वनमें विचरेंगे जिससे आपका कल्याण होगा धर्मराज। युधिष्ठिर बोले मैं सर्वदा विप्रो, महात्माओं में ही रहना चाहता हूं परन्तु इस समय मेरे पास धन नहीं है, मेरी मजबूरी है। मेरे कारण आप लोगों को कितना कष्ट सहना पडेगा ? धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार कहकर उदास हो पृथ्वीपर बैठ गये। तब आत्मज्ञानी शौनक ऋषि ने कहा राजन अज्ञानी पुरुषों के सामने प्रतिदिन हजारों, सैकडों शोक तथा भय के अवसर आते है पर ज्ञानियों के समक्ष नहीं। आप जैसे ऐसे सत्पुरुष कर्म बन्धन में नहीं पडते। वे तो सदा सर्वदा मुक्त ही रहते है, आपकी चित्त वृति, यम, नियम आदि अष्टांग योग से परिपुष्ट है। श्रुति और स्मृति के ज्ञान से सम्पन्न है। आपके जैसी अटल बुद्धि जिसे प्राप्त है वह सम्पत्ति के नाश, अन्न वस्त्र की प्राप्ति नहीं होने पर, घोर से घोर विपत्ति के समय भी दु:खी नहीं होता और न ही विचलित होता। कोई भी मानसिक अथवा शारीरिक पीडा उसे प्रभावित नहीं कर सकती। महात्मा जनक ने संसार को शारीरिक और मानसिक दु:खों से पीडित देखकर यह ज्ञान दिया था कि शरीर दु:ख के चार कारण होते हैं। रोग, दु:खद वस्तु का स्पर्श, अधिक परिश्रम और अभिष्ट की प्राप्ति नहीं होना। इन निमित्तों से मन चिन्ताग्रस्त हो जाता है और यह मानसिक दु:ख ही शारीरिक दु:ख का रूप धारण कर लेता है। लोह खंड का गरम गोला यदि शीत जल के पात्र में डाल दिया जाये तो जल भी उष्ण हो उठेगा। वैसे ही मानसिक पीडा होनेपर शरीर भी व्यथित हो जाता है।

जैसे जल द्वारा अग्नि को शान्त किया जा सकता है वैसे ही ज्ञान के द्वारा मन को शान्त रखना चाहिये राजन। मन का दु:ख मिट जाने पर शरीर का दु:ख भी मिट जाता है। मन के दु:खी होने का कारण है स्नेह और आसक्ति। स्नेह के कारण ही मनुष्य विषयों में फंस जाता है और अनेकों प्रकार के दु:ख भोगने लगता है। इस आसक्ति और स्नेह के कारण ही दु:ख, भय, शोक आदि विकारों की प्राप्ति होती है। स्नेह के कारण ही विषयों की सत्ता का अनुभव होता है। विषयों के चिन्तन और राग से बढकर स्नेह है। जिस प्रकार खोडर की आग सारे वृक्ष को जला देती है वैसे ही थोडा सा राग भी धर्म और अर्थ को सर्वनाश कर देता है। विषयों की प्राप्ति न होनेपर अपने को त्यागी बताता है वह वास्तव में त्यागी नहीं है। वास्तव में सच्चा त्यागी तो वह है जो विषयों के प्राप्त होने पर भी उसमें दोष दृष्टि रखता है और उनसे उपराम रहता है। उनसे विरत हुआ पुरुष ही द्वेष रहित होता है इससे उसे कभी कर्मबन्धन नहीं बाधते राजन।

जगत में मित्रों और धन का संग्रह तो करना चाहिये परन्तु उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। बुद्धि और विचार से प्रयत्न से आसक्ति का त्याग सम्भव है। जैसे कमल के पत्ते पर जल नहीं ठहर सकता वैसे ही विवेकी भगवद्भक्त और आत्मज्ञानी पुरुष के चित्त में स्नेह नहीं टिक सकता। विषयों से मनुष्य की उसमें रमणीय बुद्धि हो जाती है तब प्रियता मालूम होने लगती है। इसी

प्रियता से उसे वह प्राप्त करने की कामना करने लगता है। प्राप्त हो जाने पर उसकी इच्छा उसमें पूर्ण नहीं होती। बार बार उसे भोगने की तृष्णा होती है। यह तृष्णा ही समस्त पापों की मूल जननी है। उद्वेग की जड है। यह अधर्म से पूर्ण और भयंकर है। मूर्ख इसका त्याग कर पाने में असमर्थ होते है। मनुष्य के बूढे होने पर भी यह तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती। यह तो शरीर के साथ ही मिटनेवाला रोग है। इसके त्याग करने से ही सच्चे सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है।

आशा, तृष्णा, ना मिटे मर मर जाये शरीर। प्राणियों के हृदय में यदि एक बार तृष्णा प्रवेश कर जाये तो वह उसका नाश कर ही छोडती है पर स्वयं कभी नहीं मिटती। ईन्धन अपनी ही आग से भस्म हो जाता है वैसे ही लोभी पुरुष स्वाभाविक लोभ से ही अपना विनाश कर लेता है। जैसे प्राणियों के सिर पर मृत्यु का भय सर्वदा मंडराते रहता है वैसे ही सभी पुरुषों को राजा, जल, अग्नि, चोर और परिवार का भय बना रहता है। जैसे मांस को आकाश में पक्षी, भूमिपर हिंसक जीव और जल में मगरमच्छ भक्षण कर जाते हैं वैसे ही धनी व्यक्ति के धन को भी सब दीमक की तरह चाट जाते हैं। बडे बडे बुद्धिमान व्यक्तियों के लिये भी धन अनर्थ का कारण है। वे धन प्राप्ति के लिये कर्म करने लगते हैं और अपना परम कल्याण करने में असमर्थ हो जाते हैं। ये कर्म सभी प्रकार के लोभ, मोह, कृपणता, अहंकार, अभिमान, गर्व, भय और उद्वेग को बढानेवाले होते है। धन की उत्पत्ति करने में, फिर उसकी रक्षा करने में और फिर उसका व्यय करने में भी बडा दु:ख सहना पडता है। धन के लिये तो लोग एक दूसरे का प्राण तक ले लेते है। धन के लिये तो कोई रिश्ते, नाते, सम्बन्ध भी नहीं टिकते और टूट जाते है। भाई भाई भी धन के लिये मर मिटने को तैयार हो जाते है। ये धन ही परिवार की कलह का कारण बनता है राजन। धन एकत्रित हो जाये तो यह पाले हुये शत्रु के समान होता है। उसको छोडना भी कठिन हो जाता है। धन की चिन्ता ही अपने सर्वनाश का कारण बनती है। धन से अज्ञानी सदा असन्तुष्ट रहता है। धन से कभी प्यास नहीं बुझती। धन की ओर से मुंह मोड लेना ही परम सुख की प्राप्ति है। सच्चा सन्तोष ही परम सुख और शान्ति है धर्मराज। यौवन, सौन्दर्य, रत्नराशि, ऐश्वर्य, जीवन और प्रिय वस्तु तथा व्यक्तियों का समागम ये सभी अनित्य है, नाशवान है, कभी भी स्थिर नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति उन्हे कभी नहीं चाहता। इसलिये उचित यही है कि सब प्रकार के संग्रह-परिग्रह का परित्याग कर दे। त्याग करने के कारण जो कुछ भी कष्ट उठाना पडे उसे बडी प्रसन्नता से सहन करे। अब तक तो जगत में कोई भी संग्रह करनेवाला सुखी होते देखा नहीं गया इसलिये धर्मात्मा पुरुष उसी की प्रशंसा करते है जो प्रारब्ध से प्राप्त वस्तु में ही सन्तुष्ट है। धर्म करने के लिये भी धन कमाने की अपेक्षा धन न कमाना अच्छा है। जब कीचड को अन्त में धोना ही पडता है तो फिर उसे छुआ ही क्यों जाये ? इसलिये आप सब किसी भी वस्तु की कामना न कीजिये। यदि आप अपने धर्म पर अटल रहना चाहते है तो धन की कामना सर्वथा त्याग दे।

युधिष्ठिर बोले सुविधाओं से सुख नहीं प्राप्त होता, सुख तो मन की अनुकूलता में है परन्तु मूलभूत सुविधाओं के अभाव में भी जीवन सम्भव नहीं है और उन सुविधाओं के लिये धन की आवश्यकता होती है। मैं इसलिये धन नहीं चाहता था कि उसका उपयोग स्वयं करूं। मुझे तो धन ब्राह्मणों का भरण-पोषण करने के लिये चाहिये हे विप्रवर। मेरे चित्त में धन का तनिक भी लोभ नहीं है महात्मन। मैं गृहस्थ हूं। धन के अभाव में अनुयायियों का पालन पोषण नहीं हो सकता। गृहस्थ के भोजन में सभी प्राणी हिस्सेदार हैं। गृहस्थधर्म है कि जो लोग अन्न आदि नहीं पकाते जैसे साधु सन्यासी उन सबको भोजन करावे। सत्पुरुषों के घर में दर्भासान, जल और मधुर वाणी का कभी अभाव नहीं होता। पीडित को शैय्या, थके मांदे को आसन, प्यासे को पानी और भूखों को भोजन देना यही सनातन धर्म है। जो अपने पास आवे उसे प्रेम भरी दृष्टि से देख उसका स्वागत करें उसके प्रति मन से सद्भाव रखे। मधुर वाणी से बोल बैठने को आसन दें। अतिथि सत्कार करें। जो गृहस्थ अग्निहोत्र, गौ, गौत्र, जाति, अतिथि, परिवार के भाई बन्धु, स्त्री पुरुष और सेवकों का सत्कार नहीं करता उसे नर्क की गति प्राप्त होती है। गृहस्थ ही देवता तथा पितरों के लिये भी अन्नादि, भोजन बनाते है। देवताओं को भोजन अर्पण किये बिना अपने उपभोग में नहीं लाना चाहिये। कुत्ते,

चांडाल और पक्षियों के लिये भी भोजन का अंश निकालना चाहिये। यह बलिवैश्व देव कर्म है। बलिवैश्वदेव कर अन्य लोगों को खिलाकर खाना ही अमृत भोजन है। अतिथि को प्रेम से देते हुये उसका भला चाहें तथा सत्य और मीठी वाणी से उसकी सेवा सुश्रूषा करें। और उसके पीछे पीछे चलकर जाने के समय उसे विदा करें। इसका नाम पंच दक्षिण यज्ञ है। जो पुरुष गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसा व्यवहार करता है वह अपने धर्म का पालन करता है।

शौनक जी ने कहा धर्मराज आप जैसे सत्पुरुष दूसरों को खिलाये बिना स्वयं खाने पीने में संकोच करते हैं। दुष्ट लोग तो अपना पेट भरने के लिये दूसरों का हक भी खा जाते है। इन्द्रियां बडी बलवान है। मनुष्य उनके जाल में फंसकर ऐसा मूर्ख बन जाता है कि उसे मार्ग कुमार्ग का ज्ञान नहीं रहता। जिस समय इन्द्रियों और विषयों का संयोग होता है उस समय पूर्व संस्कार मन के रूप जाग्रत हो जाते है। मन जिस इन्द्रिय के विषय के पास जाता है वह उसी को भोगने के लिये तत्पर उत्सुक हो जाता है और उसके प्रयत्न में भी लग जाता है। संकल्प से कामना उत्पन्न होती है और विषयों का संयोग होता है। इन दोनों से पुरुष विवश हो रूप और तेज के लोभ से पतंगे के समान आग में गिर पडता है। वह अपनी वासना अनुसार रसेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के भोगों में इस प्रकार घुल मिल जाता है कि उसे अपने आपकी भी खबर नहीं रहती। अज्ञान के कारण कामनायें, कामना पूर्ति होने पर तृष्णा और तृष्णा होने पर अनेक प्रकार के उचित-अनुचित कर्म वो करने लगता है। फिर उसे कर्मानुसार अनेक योनियों में भटकना पडता है। ब्रह्मा से लेकर चींटी तक, सभी जलचर, थलचर, नभचर प्राणियों को इस संसार के चक्रव्यूह में आना पडता है। यह गति तो बुद्धिहीन विषयासक्त प्राणियों की होती है। जो लोग इस सांसारिक प्रपंच से मुक्त होना चाहते हैं उन्हे कर्म करने चाहिये पर उसके फल का त्याग कर देना चाहिये यही वेदाज्ञा है। कर्म करने और न करने में प्रवृति और निवृति का आग्रह अपनी बुद्धि के अभिमान से निर्णय नहीं करना चाहिये। धर्म के आठ मार्ग है। यज्ञ, अध्ययन, दान, तपस्या, सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह और निर्लोभता ये सब मन के भाव है। जो लोग संसार पर विजय प्राप्त करना चाहते है उन्हे शुद्ध संकल्प, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, गुरुसेवा, सत शास्त्रों का स्वाध्याय, शुद्ध भोजन इत्यादि कर्मफल का परित्याग कर चित निरोध करना चाहिये। बडे-बडे देवता लोग भी इन नियमों का पालन करते है। राजन आप भी ऐसे नियमों और तपस्या के द्वारा सिद्धि अर्जित करें जिससे ब्राह्मणों की भरण-पोषण की शक्ति आपको प्राप्त हो। इस प्रकार ब्राह्मणों ने और शौनक जी ने युधिष्ठिर को गृहस्थ धर्म का उपदेश किया। पांडव वन में कुटिया बनाकर रहने लगे।

भीष्म अपने कक्ष में चिंतित हो लेटे हुये हैं और महात्मा विदुर भीष्म के पास आते हैं। विदुर बोले ये अन्धकार क्यों है तातश्री आपके कक्ष में ? भीष्म बोले आओ विदुर आओ। विदुर ने भीष्म को प्रणाम किया। भीष्म बोले क्या इस युग में लम्बी आयु का आशीर्वाद लेना चाहोगे पुत्र ? विदुर बोले बडों से आशीर्वाद मिले या शाप प्रणाम करके उसे स्वीकार करना छोटों का कर्तव्य है। किन्तु आपके कक्ष में अन्धकार क्यों है तातश्री ? भीष्म बोले यह मेरे भीतर का अन्धकार है पुत्र जो बाहर छलक आया है। मेरे निकट न आया करो पुत्र नहीं तो मेरा यह काला अन्धकार तुम्हारे श्वेत विचारों को भी काला कर देगा। तुम हस्तिनापुर के वर्तमान के रखवाले हो विदुर, उसकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। सहायता करो उसकी। विदुर बोला जिस वर्तमान का सूर्य अस्त होनेवाला हो तातश्री उसकी रक्षा, उसकी सहायता। भीष्म बोले तुम इन शब्दों का प्रयोग मत करो पुत्र। इस सूर्य को डूबने से रोको। विदुर ने कहा जिस सूर्य को तैरना न आता हो तातश्री वो इतने गहरे पानी में उतरा ही क्यों ? मैंने तो उसे अन्धकार के इस अथाह सागर में उतरने से रोकने के लिये कई बार प्रयत्न किये किन्तु... भीष्म बोले मैं तुम्हारे प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं कि पुत्र तुमने अपनी बात अधूरी छोड दी। तुम यह कहते कहते रूक गये थे कि तुम ने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया किन्तु मैं ही पिछड गया पर कभी कभी व्यक्ति अपनी विवशता को भी अपना कर्त्तव्य समझने लगता है। तुम्हारे दृष्टिकोण में मेरी भूल यही है कि यह आधासत्य है। सत्य तो यह है कि उस द्यूतक्रीडा में मैं भी दांव पर दांव लगाते जा रहा था। मेरी आशा दांव

पर लगी हुई थी कि कदाचित युधिष्ठिर अगला दांव जीत ही ले। मैं जानता था कि शकुनि धूर्त है फिर भी युधिष्ठिर वो दांव जीत लेता तो हस्तिनापुर के सिर से शकुनि का शाप सदा सदा के लिये हट जाता। तुम्हारे अतिरिक्त थोडा सा या बहुत दोष सभी का है। इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं विदुर कि हस्तिनापुर को बचालो पुत्र। भरतवंश आज जिस लहू के सागर तट पर खडा हुआ है वह सागर बहुत गहरा है, अथाह है। हमारे अपने सारे जीवन मूल्य, हमारी सारी परम्परायें टूट जायेंगी इस लहू के सागर के गड्ढे में। इसे बचाने का प्रयत्न करो पुत्र क्योंकि तुम भी उस परम्परा के एक अंश हो। जाओ और धृतराष्ट्र से कहो कि पांडवों के बनवास का कल तेरहवां दिन है और शास्त्रों के अनुसार तेरहवां दिन किसी विशेष परिस्थिति में तेरहवें वर्ष के बराबर गिना जाता है। जाओ और यदि वह सोया हुआ हो तो उसे उठाओ और उसे कहो कि पांडवों को वापिस बुला ले। विदुर बोले परन्तु दुर्योधन आपकी बात न माने तो ? भीष्म बोले मेरी निष्ठा युवराज के प्रति नहीं है विदुर। मेरी निष्ठा महाराज के प्रति है। यदि उसने महाराज के आदेश का पालन नहीं किया तो मैं उसे राजद्रोह मानूंगा और उसे कडा से कडा दंड दूंगा। मैं बडा हूं। धृतराष्ट्र के साथ हठ भी नहीं कर सकता परन्तु तुम तो छोटे हो, तुम्हे तो हठ करने का अधिकार मिला हुआ है। इसलिये जाओ पुत्र और जाकर धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयत्न करो।

विदुर धृतराष्ट्र के पास आता है। गान्धारी भी वहां बैठी हुई है। धृतराष्ट्र बोला आओ विदुर। आकर विदुर ने धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोला लगता है कि तुम सूर्योदय होने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। इतने सबेरे आने का कोई कारण अवश्य होगा अनुज। विदुर बोला आपका दर्शन तो स्वयं ही एक कारण है महाराज। धृतराष्ट्र बोला इसका अर्थ तो यह है कि तुम स्वयं ही कोई ऐसी बात कहनेवाले हो जो कदाचित मुझे अच्छी नहीं लगनेवाली है। गान्धारी बोली किन्तु विदुर जब भी कुछ कहते हैं आर्यपुत्र वो आपके हित में ही होता है। धृतराष्ट्र बोले हां जानता हूं किन्तु कडवा वाक्य तो कडवा ही होता है और ये कडवाहट अभी तक मेरे गले में अटकी हुई है कि भरतवंश की मर्यादा कुन्ती ने राजभवन में रहना स्वीकार नहीं किया है। उसे मुझसे अधिक विदुर पर भरोसा है। गान्धारी बोली जिस राजभवन में उसकी पुत्रवधू का इतना बडा अपमान किया गया हो उसमें वो कैसे रह सकती थी आर्यपुत्र ? मैं तो यही नहीं समझ पा रही कि मैं स्वयं इस राजभवन में कैसे रहते चली आ रही हूं ? द्रौपदी का वस्त्र मेरे वस्त्र का भाग था। भरतवंश की मर्यादा का भाग था। कुन्ती ने जो कुछ किया वो ठीक ही किया। उसके स्थान पर यदि मैं होती तो मैं भी यही करती आर्य पुत्र। धृतराष्ट्र बोला इन बातों का तो तात्पर्य तो यही है ना कि मैं अकेला रह गया। मैं यह नहीं चाहता कि मेरे पुत्रों और अनुज पुत्रों के बीच युद्ध हो परन्तु युद्ध में जीतता तो कोई एक ही पक्ष और मैं यह नहीं चाहता कि मेरे और अनुज पांडु के पुत्रों के बीच में से कोई हारे। इसीलिये मैंने राज्य का विभाजन भी कर दिया और वो सीमा रेखायें एक कटार की नौक से मेरे हृदय पर खींची हुई है गान्धारी। मेरी इस पीडा को समझने का प्रयत्न करो। तुम कुन्ती को समझाओ कि उसका विदुर के घर ठहरना उचित नहीं। वो चाहे तो यहां आजाये या फिर अपने पुत्रों के पास चली जाये। विदुर बोले महाराज... धृतराष्ट्र बोले यदि वो तुम्हारे घर में रहेगी विदुर तो हस्तिनापुर यह कभी नहीं भूल पायेगा कि पांडव वनों में भटक रहे हैं और हस्तिनापुर के लिये यह भूल जाना ही उचित है। विदुर बोला इस समय मैं इसी समस्या का समाधान लेकर आपके पास आया हूं महाराज। धृतराष्ट्र बोले क्या कुन्ती ने वन में जाने का निर्णय ले लिया है विदुर। विदुर बोले नहीं महाराज। भाभीश्री बहुत ही दुर्बल है और बूढी हो चुकी हैं। वनवास की कठिनाइयां उनसे नहीं झेली जा सकेगी। धृतराष्ट्र बोले तब तो तुम क्या समाधान लेकर आये हो ? गान्धारी बोली किन्तु विदुर को अपनी बात कहने का अवसर तो दीजिये आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र ने कहा ठीक है तुम्ही कहो विदुर। बताओ क्या समाधान लेकर आये हो ? विदुर बोला पांडव वनवास के आज तेरह दिन पूरे हो गये है महाराज। शास्त्रों के अनुसार विशेष स्थिति में १३ दिन १३ वर्ष के समान माने जाते हैं। इसलिये महाराज यदि अपने दूत को वहां भेजकर उन्हे यहां वापिस बुला ले तो सब ठीक हो जायेगा महाराज। धृतराष्ट्र बोला उन्हे यहां बुला लूं और दुर्योधन को

आत्महत्या कर लेने दूं। तुम तो सदैव ही पांडु और पांडु पुत्रों का पक्ष लेते आये हो। यदि तुम्हे वो इतने ही अच्छे लगते है तो जाओ उनके पास चले जाओ। गान्धारी बोली आर्यपुत्र यह आप क्या कह रहे हैं? धृतराष्ट्र बोला इससे पूछो कि ये मेरा महामन्त्री है या उनका ? अब जब कि मैंने युद्ध को १३ वर्ष पीछे ढकेल दिया है तो यह चाहता है कि मैं पांडु पुत्रों को वापिस बुला लूं। युद्ध मेरे हृदय के द्वार दिन रात खटखटाते रहता है परन्तु ऐसा नहीं होगा। विदुर ऐसा नहीं होगा।

विदुर ने देखा धृतराष्ट्र के चेहरे पर किसी प्रकार का कोई द्वन्द नहीं। संकोच, लज्जा और मर्यादा का कोई लक्षण नहीं। उसने आक्रोश से कहा तुम्हें बुद्धिमान और व्यवहार कुशल समझकर तुमसे यह अपेक्षा थी कि तुम पांडवों को यह समझाओगे कि लोग धर्मत: द्यूत में अपना सब कुछ स्वयं हारे है। उनके साथ कोई अधर्म अथवा अन्याय नहीं हुआ है इसलिये वे प्रतिशोध अथवा प्रतिकार के भाव मन से निकालकर इसे नियति, दैव इच्छा मानकर स्वीकार कर ले। परन्तु तुम तो उनसे भी बढकर हो कि मुझे और मेरे पुत्रों को पापी घोषित कर रहे हो। भूल मेरी ही है कि जो मैंने तुमसे न्याय की अपेक्षा की। तुमने तो आजतक पांडवों का पक्ष ग्रहण किया है। तुम तो वह व्यक्ति हो विदुर जिसने कभी नहीं चाहा कि हस्तिनापुर का राज्य मुझे मिले। तुम तो दुर्योधन को अन्यायी और अत्याचारी कह रहे हो। तुम्हारा वश चले तो तुम जाने कब से मुझे और मेरे पुत्रों को हस्तिनापुर से निष्कासित कर देते। अब मैं इसे और सहन नहीं कर सकता। मैं तुम्हारा त्याग करता हूं। अब से मेरा और तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। अब तुम चाहो तो हस्तिनापुर में रहो या छोडकर जाओ। विदुर के लिये यह जितना आकस्मिक था उतना ही अपमानजनक भी। हस्तिनापुर में कौन नहीं जानता था कि द्यूत सभा के पश्चात धृतराष्ट्र ही नहीं सारा कुरुवंश अनिष्ट की शंका से कांप रहा था। प्रत्येक व्यक्ति किसी समाधान की खोज में था।

विदुर का मन जैसे चीत्कार कर उठा यही वह धृतराष्ट्र है। विदुर अपमानित होकर वहां से चला गया। धृतराष्ट्र, विदुर, विदुर पुकारते रह गया। धृतराष्ट्र बोला अरे आज्ञा लिये बिना ही चला गया। गान्धारी बोली जो निकाल दिया गया हो वो जाने की आज्ञा नहीं मांगता आर्य पुत्र। धृतराष्ट्र बोला वो अवश्य ही पांडु पुत्रों के पास गया होगा। जाने दो, मैं उसके भरोसे पर राजकाज नहीं चला रहा हूं और यह भी सुन लो गान्धारी कि विदुर चाहे उन्हे लाख समझा ले परन्तु मेरा प्रिय युधिष्ठिर विदुर की बहकावे की बातों में आकर शास्त्रों की आड नहीं लेगा। वो अपने वनवास को दिनों से नहीं नापेगा। वो बारह वर्ष का वनवास भी पूरा करेगा और तेरह वर्ष का अज्ञातवास भी। युधिष्ठिर मेरा प्रिय है और मेरा बडा ही आज्ञाकारी है।

२) युधिष्ठिर की वन में सूर्योपासना और अक्षय पात्र की प्राप्ति

वैशम्पायन बोले जनमेजय पांडव काम्यक वन में कुटिया बनाकर निवास करने लगे। युधिष्ठिर गृहस्थ धर्म का उपदेश सुनकर अपने पुरोहित धौम्य से कहने लगे। हे आचार्य वेदों के बडे बडे मर्मज्ञ और पारदर्शी ब्राह्मण मेरे साथ साथ इस वन यात्रा में चल रहे है और उनके पालन-पोषण की मुझमें सामर्थ्य नहीं रही क्योंकि मैं राज्य लक्ष्मी से वंचित हूं, इसी कारण से मुझे ग्लानि बोध हो रहा है और मैं बहुत दु:खी महसूस कर रहा हूं। न तो मैं उनका भरण-पोषण कर पा रहा हूं और न हीं उन्हे छोड सकता हूं। ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना योग्य है ? तब पुरोहित धौम्य मुनि युधिष्ठिर से बोले हे धर्मराज सृष्टि के आरम्भ में जब सभी प्राणी भूख से व्याकुल हो रहे थे तब भगवान सूर्य ने दया पिता के समान अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी का रस जल कर्षण किया। और दक्षिणायन के समय उसमें प्रवेश किया। जब इस प्रकार क्षेत्र तैयार हो गया तो चन्द्रमा ने उसमें औषधियों का बीज डाला। उसी के फल स्वरूप अन्न की उत्पत्ति हुई। उसी विभिन्न प्रकार के अन्न से प्राणियों की भूख मिटी। इसलिये सूर्य की कृपा से ही अन्न उत्पन्न होता है। सूर्य ही समस्त प्राणियों की रक्षा करता है। इसलिये तुम सूर्य को भगवान मान उनको आश्रय मान उनके कृपाप्रसाद से ब्राह्मणों का भरण-पोषण करो। मैं तुम्हे सूर्य की आराधना उपासना व विधि बतलाता हूं उसी प्रकार सूर्य की उपासना करो। रही स्थान की बात सो राजन स्थान का अभाव राजा की नगरी में हो सकता है, माता पृथ्वी की गोद इतनी

संकुचित नहीं है। पुरोहित धौम्य मुनि ने सूर्य के एक सौ आठ नाम बताये और सूर्य उपासना का मन्त्र बतलाया। सूर्य के नाम इस प्रकार है, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मंगल, इन्द्र, विवस्वान, दीप्तांशु, शुचि, सौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, यम, वैद्युत अग्निपिंड, जठरा अग्नि, ऐंधन अग्नि, तेजस्पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदांगे, वेद वाहन, सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि, कला, काष्ठ, मुहूर्त, क्षपा, याम, क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभासु, शाश्वत पुरुष, योगी, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन पुरुष, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण, सागर, अंशुमाली, जीमृत, जीवन, अरिहा, भूताश्रेय, भूतपति, सर्वमान्य नमस्कृत, सृष्टग, संवर्तक, वाहिल, सर्वादि, अलोलुप, अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, शय, विशाल, वरद, सर्वधातु, निषेचिता, मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, धन्वन्तरि, प्राण धारक, प्राण रक्षक, धूमकेतु, आदि देव, आदित्य, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, विविष्टप, देह कर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सुक्षात्मा, मैत्रेय और करुणान्विता।

धौम्य पुरहित बोले धर्मराज अमित तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य ये सूर्य के १०८ नाम मैंने तुम्हे बताये। स्वयं ब्रह्मा ने इनका वर्णन किया है। इन नामों का उच्चारण कर सूर्य को नमस्कार करो। समस्त देवता, पितर और यक्ष जिनकी सेवाश्रुषा करते है असुर, राक्षस और सिद्धगण जिनकी वन्दना करते है, तपाये हुये स्वर्ण और अग्नि के समान जिनकी कान्ति है उन भगवान भास्कर को अपने हित के लिये प्रणाम करो। जो मनुष्य सूर्योदय के समय एकाग्र चित्त हो इस मंत्र का पाठ करता है उसे स्त्री, पुत्र, धन-धान्य, रत्नों की राशि, पूर्व स्मृति, धैर्य और श्रेष्ठ बुद्धि की प्राप्ति होती है। जो प्राणी शुद्ध आचरण शुद्ध होकर पवित्रता से एकाग्र मन से भगवान सूर्य की स्तुति पाठ करता है वह शोक से व्याप्त नहीं होता है और उसे अभिष्ट मनोवांछित फल प्राप्त होते है।

पुरोहित धौम्य की बात मानकर धर्मराज युधिष्ठिर ने शास्त्रोक्त, वेदोक्त, पुराणोक्त विधि से, सामग्रियों द्वारा भगवान सूर्य की आराधना उपासना और तपस्या की। वे स्नान कर सूर्य के सामने खडे हो, आचमन कर, प्राणायाम कर सूर्य की स्तुति करने लगे।

युधिष्ठिर ने जो स्तुति की वो इस प्रकार है। हे सूर्यदेव आप सारे जगत की आंखे है। समस्त प्राणियों के मूल कारण और कर्मनिष्ठों के सदाचार है। सांख्य निष्ठा और योग निष्ठा के उपासक अन्त में आपको ही प्राप्त होते हैं। आप मोक्ष के खुले द्वार है। आप मुमुक्षुओं के परम आश्रय है। आप ही समस्त लोकों को धारण कर प्रकाशित करते है। पवित्र करते है तथा बिना किसी स्वार्थ के पालन करते है। अब तक बडे बडे ऋषियों ने आपकी पूजा की है। वेदज्ञ ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त मन्त्रों से समय पर आपका उपस्थान करते है। सिद्ध चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक और पन्नग आपसे वर प्राप्त करने की अभिलाषा से आपके पीछे पीछे चलते है। आदि तैतीस देवता, विश्वेदेव, आदि देवगण, उपेन्द्र और महेन्द्र भी आपकी आराधना से ही सिद्ध हुये है। विद्याधर कल्प वृक्षों के पुष्पों से, आपकी पूजा कर मनोवांछित फल पाते है। गुह्यक, पितर, देवता, मनुष्य सभी आपकी पूजा कर गोरवान्वित होते हैं। आठ वसु, उन्चास मरूद्गण, ग्यारह रुद्र, १० साध्यगण और ६० हजार बालखिल्य आदि सभी आपकी आराधना से श्रेष्ठता को प्राप्त हुये हैं। ब्रह्मलोक से लेकर इस पृथ्वी पर्यन्त समस्त लोकों में ऐसा एक भी प्राणी नहीं है जो आप से बढकर हो। यो तों बहुत बडे बडे दिग्गज, शक्तिशाली इस जगत में निवास करते है परन्तु आपके प्रभाव और कान्ति के सामने वे नहीं ठहर सकते। जितने भी ज्योतिर्मय पदार्थ है वे सब आपके अन्तर्गत है। समस्त ज्योतियां आपके अधीन है और आप उन सबके स्वामी हो। सत्य, सत्व और सभी सात्विक भाव आप में ही प्रतिष्ठित है। भगवान विष्णु जिस अपने चक्रद्वारा असुरों का अभिमान चूर्ण करते है वह चक्र आपके ही तेजों अंश से बना है। आप ग्रीष्म ऋतु में अपनी किरणों से समस्त औषधि, रस और प्राणियों का तेज कर्षित कर लेते है और वर्षा ऋतु आनेपर उसे लौटा देते हो। वर्षा ऋतु में आपकी ही बहुत सी किरणे, तपती है, जलाती है और गर्जती है। वे ही दामिनी बनकर चमकती है और बादलों से वर्षा बनकर बरसती भी है। सर्दी में ठिठुरते हुये पुरुष को अग्नि से, ओढनी से और कम्बलों से वैसा आराम नहीं मिलता जैसा आपकी किरणों से मिलता है। हे सूर्यदेव आप अपनी

रश्मियों से इस तरह द्वीपोंवाली पृथ्वी को प्रकाशित हैं। आप बिना किसी की सहायता के, बिना किसी अपेक्षा के तीनों लोकों के हित में लगे रहते है। यदि अपका उदय न हो तो सारा जगत अन्धकार मय हो जाये, धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कर्मों में किसी की भी प्रवृत्ति न हो। ब्राह्मणादि द्विजाति संस्कार, यज्ञ, मन्त्र तपस्या और वर्णाश्रमोचित कर्म आपकी कृपा से ही सम्भव है। ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युगी का होता है उस दिन की आदि अन्त के विधाता आप ही है। मनु, मनुपुत्र, यह जगत, मनुष्य, मन्वन्तर और ब्रह्मादि समर्थों के स्वामी भी आप ही है। प्रलय के समय पर आपके क्रोध में संवर्तक अग्नि प्रकट होती है और तीनो लोकों को भस्म कर आप में स्थित होती है। आपकी किरणों से ही रंग बिरंगे बादल और बिजलियां उत्पन्न होती है तथा प्रलय का रूप धारण करती है। आपके ही बारह रूप द्वादश आदित्यों के नाम से प्रसिद्ध हुये है। प्रलय के समय सारे समुद्र का जल आप अपनी किरणों से सुखाते है। इन्द्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु, शाश्वत ब्रह्म आदि के ही नाम है। आप ही हंस, सविता, भानु, अंशुमाली, वृषाकपि, विवस्वान, मिहिर, पूषा, मित्र, तथा धर्म है। आप ही सहस्त्र रश्मि, आदित्य, तपन, गोपति, मार्तण्ड, अर्क, रवि, सूर्य, शरण्य एवं दिनकर है। आप ही दिवाकर, सप्तसप्ति, धाम केशी, विरोचन, आशुगामी, तमोहल और हरिताश्व कहलाते है। जो सप्तमी अथवा अष्टमी के दिन प्रसन्नता और भक्ति से आपकी उपासना इस मन्त्र से करता है तथा अपने आप में अहंकार रति हो जाता है तो उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो अनन्यचित्त से आपकी पूजा कर आपको नमस्कार करते है उन्हे आधि, व्याधि, तथा आपतियां नहीं सताती। आपके भक्त समस्त रोगों से रहित, पापों से मुक्त, सुखी और चिरंजीवी होते है। हे अन्नपते मैं श्रद्धापूर्वक सबको अन्न देना और सब का आतिथ्य करना चाहता हूं। मुझे अन्न की कामना है। आप कृपया मेरी अभिलाषा पूरी करें। आपके चरणों में रहनेवाले माठर, अरुण, दंड आदि उन अनुचरों को मैं प्रणाम करता हूं जो वज्र, बिजली आदि के प्रवर्तक है। क्षुभा, मैत्री आदि अन्य भूतात्माओं को भी मैं प्रणाम करता हूं वे सब मुझ शरणागत की रक्षा करे।

जब धर्मराज युधिष्ठिर ने भुवन भास्कर भगवान अंशुमाली की इस प्रकार स्तुति प्रार्थना की तो सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर मूर्तिमान हो अपने अग्नि के समान देदीप्यमान श्री विग्रह से उनको दर्शन दिया और बोले युधिष्ठिर तुम्हारी अभिलाषापूर्ण हो। मैं बारह वर्षों तक तुम्हे अन्न प्रदान करता रहूंगा। यह एक ताम्र पात्र है जो अक्षय है। तुम्हारी पाकशाला में जो कुछ फल, मूल, कन्द, शाक, तरकारी आदि चारों प्रकार के भोजन सामग्री इस बटलोई में तैयार करोगे वह तब तक अक्षय रहेगी जब तक यह अग्नि तनया द्रौपदी तुम्हारी पटरानी चाहे जितने जनों को परोसती रहेगी और अन्त में जब स्वयं भोजन कर लेगी तो इसकी सामग्री समाप्त होगी। आज के १४ वर्ष बाद तुम्हे अपना राज्य वापिस मिल जायेगा। इतना कहकर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये।

जो पुरुष संयम और एकाग्रता से किसी अभिलाषा से सूर्य स्त्रोत का मन्त्र पाठ करता है, भगवान सूर्य उसकी मनोकामना पूर्ण करते है और मनोवांछित फल देते है। जो इसे बार बार पढता है या श्रवण करता है उसे उसकी अभिलाषा के अनुसार पुत्र, धन, विद्या आदि की प्राप्ति होती है। स्त्री, पुरुष कोई भी इसका दोनों समय पाठ करे तो व घोर से घोर संकटों से भी छूट जाता है। यह स्तुति ब्रह्मा से इन्द्र को, इन्द्र से नारद को, नारद से धौम्य मुनि को और धौम्य से युधिष्ठिर को प्राप्त हुई। इससे युधिष्ठिर की सारे अभिलाषायें पूर्ण हो गई। इस स्त्रोत के पाठ से युद्ध में विजय और धन की प्राप्ति होती है। जनमेजय इस प्रकार युधिष्ठिर ने भगवान सूर्य से अक्षय पात्र की प्राप्ति की। युधिष्ठिर ने वह पात्र द्रौपदी को दिया। धर्मराज युधिष्ठिर सबसे पहले ब्राह्मणों को भोजन कराते तत्पश्चात भाइयों के साथ बैठकर खाते तदनन्तर पांचाली स्वयं खाती और पात्र को धोकर भोजन कर रख देती। तब जाकर उस पात्र में अन्न समाप्त होता।

३) धृतराष्ट्र से अपमानित हो विदुर का पांडवों के पास काम्यक वन में आना

वैशम्पायन कहते है जनमेजय पांडव काम्यक वन में कुटिया बनाकर रहने लगे। तब नेत्रहीन धृतराष्ट्र के चित्त में बडी उद्विग्नता रहने लगी। युधिष्ठिर अपनी कुटिया में ओम नम: शिवाय, ओम नम: शिवाय का जप कर रहे थे कि उसी समय अन्य चारों भाई

वनवासी भेष बदलकर युद्ध का भेष धारण कर अस्त्रों-शस्त्रों से लैश होकर भ्राता युधिष्ठिर के पास आये और प्रणाम कर भीम बोला चलिये भ्राताश्री चले। युधिष्ठिर यह सब देखकर चकित हो बोले कहां चलूं प्रिय अनुज ? भीम बोला हस्तिनापुर पर आक्रमण करने। मुझसे पांचाली के ये खुले केश नहीं देखे जाते। युधिष्ठिर बोले पांचाली के खुले केश तो स्वयं मुझसे भी नहीं देखे जाते प्रिय अनुज परन्तु इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि दुर्योधन के अपराधों का दंड देने का तुम्हें अधिकार मिल गया है। पांचाली समेत तुम सबको मैंने दांव पर लगाया था। द्रौपदी के अपमान का कारण तो मैं हूं। भीम बोला क्या हममें से किसी ने भी इसका उलाहना दिया आपको ? युधिष्ठिर बोला यह गदा, यह कवच, यह उलाहना नही है तो क्या ? अनुज फिर तुम यह कैसे भूल गये हो कि हमें १२ वर्ष का वनवास और १ वर्ष का अज्ञातवास पूरा करना है। भीम बोला वो १३ वर्ष तो अब आज पूरे हो गये भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले नहीं भीम। शास्त्र तो केवल मार्गदर्शन के लिये होते है, उन्हे अपने हित में तोडना या मरोडना तुम्हे शोभा नहीं देता। तेरह दिन में तेरह वर्ष कोई विशिष्ट परिस्थिति में मिलते है और यह वो कोई विशेष स्थिति नहीं है जब मैंने यह दांव स्वीकार किया था उस समय १३ वर्ष ही था। उसी समय द्रौपदी बोली तुम्हारे भ्राताश्री ठीक कह रहे है। शास्त्र तोडने मरोडने के लिये नहीं होते। वो तो केवल विशेष स्थिति में ही तरोडे मरोडे जा सकते है, जैसे द्यूत में और कुछ दांव पर लगाने के लिये नहीं रह गया तो पत्नी पर पति के अधिकारों की सीमा बढाई और पत्नी के अधिकारों की सीमा घटाई जा सकती है। पति को यह अधिकार है कि पत्नी को सम्पत्ति मानकर दांव पर लगा दे। अपने भ्राताश्री से धर्म का वाद-विवाद मत करो भीम। अपमानों को चुपचाप सहन करना सीखो। युधिष्ठिर बोला मैंने अपनी भूल तो स्वीकार कर ली है पांचाली इसलिये प्रायश्चित करना आवश्यक हो गया है। मैं प्रायश्चित किये बिना शस्त्र नहीं उठा सकता और तुम लोग मेरे अपराध के बन्दी भी नहीं हो। तुम्हे मेरे साथ आने की भी आवश्यकता नहीं थी। इसलिये तुम लोग दिन क्यों गिन रहे हो ? यदि तुम लोग चाहो तो मुझे छोडकर जा सकते हो परन्तु मैं १२ वर्ष के वनवास और १ वर्ष के अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने के बाद ही यह सोचूंगा कि मुझे आगे क्या करना चाहिये ? अर्जुन बोला भ्राताश्री आप यह भली भांति जानते है कि हम आपको छोड नहीं सकते। इतने में ही वन में रथ पर सवार घोडों की आवाज टपटप सुनाई देने लगी जैसे कोई शीघ्रगामी वन में आ रहा हो। युधिष्ठिर बोले सहदेव देखो तो सही कौन आ रहा है ? सहदेव जो आज्ञा भ्राताश्री कह कर उठकर बाहर देखने चला गया। अर्जुन बोला यह तो रथों के आने की गडगडाहट है। लगता है कदाचित हमारे वनवास से दुर्योधन का जी नहीं भरा। आप हमें बचाव के लिये शस्त्र उठाने की आज्ञा तो देंगे भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोला तुम मामाश्री शकुनि को नहीं जानते प्रिय अर्जुन। अर्जुन बोला उन्हे क्या पडी है हम पर मुस्कराने की ? वो तो १३ वे वर्ष पर आंख लगाये बैठे है ताकि वो हमें खोज निकाले और हमें फिर से एक बार १२ वर्ष का वनवास और १३ वे वर्ष का अज्ञातवास मिल जाये। वो दुर्योधन को कभी जोखिम में नहीं डालेंगे। युधिष्ठिर बोला और यदि यह सेना कोई आक्रमण के लिये आई होती तो फिर उसके रथ क्यों थम गये होते ? अवश्य ही यह किसी मित्र की सेना हो। अर्जुन बोला क्या अब भी हमारा कोई मित्र बाकी है भ्राताश्री ? नकुल बोला तो फिर कौन इतनी बडी सेना लेकर आसकता है ज्येष्ठ भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोला सेना मित्र या शत्रु नहीं होती। मित्र तो होता है सेनापति।

धुष्टद्युम्न सहदेव के साथ आते हैं और आकर युधिष्ठिर को प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोले प्रणाम युवराज। द्रौपदी ने धुष्टद्युम्न के चरण स्पर्श किये और धुष्टद्युम्न ने भी सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया और युधिष्ठिर ने कहा विराजिये युवराज। धुष्टद्युम्न बोले मेरे पिताश्री ने मुझको बैठने की आज्ञा नहीं दी महाराज। अर्जुन बोले क्या बैठने की आज्ञा नहीं दी। धुष्टद्युम्न बोला जी हां। मेरे लिये आदेश है कि मैं यहां पहुंचते ही आपको सूचित कर दूं कि हमारी सेनायें हस्तिनापुर पर आक्रमण करने के लिये तैयार है। यह युद्ध आपके ध्वज के नीचे होगा। एक विशेष आदेश यह भी है कि मैं विजय के पश्चात ही अपना कवच और शस्त्र उतारुं। युधिष्ठिर बोले यदि हम युद्ध चाहते युवराज तो हम पांचो भाई ही हस्तिनापुर की सेना के लिये बहुत थे परन्तु

मैं यह नहीं चाहता। धुष्टद्युम्न बोले युद्ध चाहते नहीं। क्या ये वाक्य महाराज भरत के उत्तराधिकारी चक्रवर्ती महाराज पांडु के ज्येष्ठ पुत्र सम्राट युधिष्ठिर के हैं ? युद्ध चाहते नहीं। परन्तु युद्ध मैं चाहता हूं मैं क्योंकि आप भले ही यह भूल गये होंगे कि उस द्यूतक्रीडा भवन में जिस देवी का अपमान हुआ था वह कौन है ? वो मेरी बहिन है राजन मैं उसका अपमान कदापि नहीं भूल सकता। आज्ञा दीजिये राजन। युधिष्ठिर बोले आपका क्रोध निराधार नहीं है युवराज इसलिये मैं आपको रोक नहीं सकता। यदि पांचाली यह समझती हो कि उनका मान या अपमान हमारे मान या अपमान से अलग है और पांचाली यदि यह चाहती हो कि उसके व्यक्तिगत अपमान का प्रतिशोध आपका दायित्व है तो आप अवश्य हस्तिनापुर पर आक्रमण कीजिये। द्रौपदी बोली पिताश्री से यह निवेदन है भ्राताश्री कि अब मेरा भाग्य दुर्भाग्य इन भाइयों के भाग्य का एक भाग है। लाठी मारने से चाहे पानी अलग भी हो जाये परन्तु अपमान की कोई भी लाठी मेरे मान और अपमान को इनके मान और अपमान से अलग नहीं कर सकते। आप काम्पिल्य लौट जाइये भ्राताश्री। धुष्टद्युम्न बोला नहीं। द्रौपदी बोली क्या आप अपनी रणभूमि से भाग सकते है भ्राताश्री ? धुष्टद्युम्न बोला मैं ज्वालापुत्र धरती से बन्धा हुआ रूक तो सकता हूं पर भाग नहीं सकता। पर यह प्रश्न तुमने किया क्यों ? मेरे पिताश्री तो पहिले से ही जानते थे कि पांडवों की आस्था युद्ध की आज्ञा नहीं देगी। ठीक है पर आप जब भी युद्ध का निर्णय लेंगे तो आपको काम्पिल्य की सेना आपके ध्वज तले लडने के लिये सदैव तैयार मिलेगी। युधिष्ठिर बोले इसका तो मुझे विश्वास है युवराज। धुष्टद्युम्न बोला यदि आप आज्ञा दें तो द्रौपदी को इन १३ वर्षों के लिये काम्पिल्य ले जाऊं। द्रौपदी बोली मैंने आपसे यह प्रश्न इसीलिये किया था भ्राताश्री कि यदि आप रणभूमि छोडकर भाग नहीं सकते तो आपकी यह बहिन भला रणभूमि छोडकर कैसे भाग सकती है ? धुष्टद्युम्न बोला रणभूमि। द्रौपदी बोली यह बनवास मेरे लिये रणभूमि है और ये मेरे खुले केश मेरे शस्त्र है। धुष्टद्युम्न प्रणाम कर वहां से चला गया।

धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा था कि विदुर तुम परमज्ञान सम्पन्न धर्मात्मा हो और तुम्हारी बुद्धि महात्मा शुक्राचार्य के समान शुद्ध तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म श्रेष्ठ धर्म को समझनेवाली हैं। कौरव और पांडव दोनों भी तुम्हारा सम्मान करते है क्योंकि दोनों के प्रति तुम्हारी दृष्टि समान है। अब पांडवों के वन चले जाने पर धृतराष्ट्र का क्या कर्त्तव्य बनता है ? प्रजा किस प्रकार से अब कुरुवंश के वर्तमान राजाओं से प्रेम करे ? पांडव भी क्रोधित हुये होंगे और वे उन्हे किसी प्रकार की हानि न पहुंचाये। तब विदुर ने धृतराष्ट्र को भलीभांति समझाया था कि राजन धर्म, अर्थ और काम ये तीनों की प्राप्ति धर्म से ही होती है ? और राज्य की जड है धर्म। आप धर्म में स्थित होकर अपनी और पांडव पुत्रों की रक्षा करे। आपके पुत्रों ने गान्धार नरेश शकुनि के परामर्श से भरी राजसभा में पांडवों का तिरस्कार किया है क्योंकि सत्य निष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर को कपट द्यूत में हराकर उनका सर्वस्व छीन लेने से बडा अधर्म हुआ है। इस अधर्म के निवारण का उपाय करने से दुर्योधन पाप और कलंक से मुक्त हो प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। राजा का परम धर्म यह है कि वह अपने अधिकार में ही सन्तुष्ट रहे और दूसरे किसी के हक की चाहना न करें। आपके लिये सबसे बढकर है कि आप पांडवों को सन्तुष्ट करे जिससे भाई भाई में फूट नहीं पडेगी, कलह नहीं होगा और न अधर्म ही होगा। यदि पुत्र मोहवश आप ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंश के नाश हो जाने की सम्भावना है। यदि पुत्र दुर्योधन प्रसन्नता से विरोध त्यागकर पांडवों के साथ रहना स्वीकार कर लेता है तब तो सब ठीक है वरना परिवार और प्रजा के सुख और हित में उस कुल कलंक दुरात्मा का त्यागना ही श्रेयस्कर होगा। युधिष्ठिर के चित्त में किसी के प्रति राग द्वेष नहीं है इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वी का शासन करे। दुशासन भरी सभा में भीम और द्रौपदी से क्षमा याचना करे। आप युधिष्ठिर को सान्त्वना देकर राज सिंहासन पर आसीन करें। इतना करने से आप कृत-कृत्य हो जायेंगे। तब धृतराष्ट्र ने विदुर को डांट कर कहा था कि यह तुम क्या कह रहे हो विदुर ? तुम तो पांडवों का हित चाहते हो और मेरे पुत्रों का अहित। तुम बार बार मुझे पांडवों के पक्ष की बातें कर रहे हो। मैं अपने पुत्रों को कैसे त्याग सकता हूं ? तुम्हे जहां इच्छा हो चले जाओ। विदुर अपने को अपमानित महसूस कर धृतराष्ट्र का

राज दरबार छोडकर वहां से चला गया।

यों तो विदुर के चित्त में सर्वदा ही पांडवों से मिलने की लालसा बनी रहती थी परन्तु उस दिन धृतराष्ट्र के इस अपमान जनक व्यवहार ने उन्हे इस लालसा को और तीव्र बना दिया और उन्होने अपने रथ पर सवार हो काम्यक बन की यात्रा की। उनके शीघ्रगामी घोडों ने थोडे ही समय में उन्हे वहां पहुंचा दिया जहां धर्मात्मा युधिष्ठिर अपनी कुटिया में विप्रवर्ग, अपने सभी भाइयों और द्रौपदीसहित बैठे बातचीत कर रहे थे। पांडवों ने दूर से ही पहिचान लिया कि काकाश्री महात्मा विदुर आये हैं। युधिष्ठिर ने भाइयों सहित उठकर विदुर का स्वागत सत्कार किया और प्रणाम आदि कर अपने समीप बिठाया। तदनन्तर कुशल क्षेम हो जानेपर विदुर बोले बस तुम्ही लोगों का ध्यान लगा रहा। युधिष्ठिर ने पूछा वहां हस्तिनापुर में तो सब प्रकार से कुशल तो है काकाश्री ? विदुर बोले यह कहना तो बिल्कुल कठिन है पुत्र ? अर्जुन बोले ज्येष्ठ पिताश्री कैसे हैं ? विदुर बोले बहुत घायल है। तभी द्रौपदी भी आई और आकर प्रणाम किया। विदुर बोले सौभाग्यवती भव। तुम तो पांडु पुत्रों की रीढ की हड्डी हो पुत्री। तुम मेरे आशीर्वाद के बिना ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती हो। तुम लोग यह मत समझना कि भाभीश्री कुन्ती अपने बुढापे के कारण तुम लोगों के साथ वन में नहीं आई। वो कभी इतनी दुर्बल नहीं हो सकती कि अपने कर्तव्यों से डर जाये किन्तु वो भी पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण अथवा ज्येष्ठ भ्राता महाराज धृतराष्ट्र के भांति ही हस्तिनापुर का अतीत है। तुम लोग तो वर्तमान हो पुत्र। इसलिये अपने आपको सम्भालो और सोचो उस भविष्य के विषय में जिसका निर्माण वर्तमान को करना है। यह कर्मभूमि तो तुम लोगों की ही है पुत्र। हमें दीये की भांति जलाये रखना चाहो तो जलाये रखो और बुझाना चाहो तो बुझा दो। अर्जुन बोला यह आप क्या कह रहे हैं काकाश्री ? विदुर बोले अब राजनीति की दीवारें अपनी जगह से सरक चुकी हैं और वो गिरनेवाली ही है तो वो व्यक्ति बडा ही मूर्ख होता है पुत्र जो दीवारों के गिरने की प्रतीक्षा करते रहता है और उसी की छावों में बैठा रहता हैं। इन दीवारों की सीमा से बाहर निकल जाओ। इसमें ही भला है। इससे पहिले कि इन दीवारों का ठूंठ तुम्हे निगल जावे। इन दीवारों को गिराकर कोई नई दीवार बनाने का कार्य आरम्भ करो पुत्र।

विदुर ने धर्मराज युधिष्ठिर को उपदेश किया कि जो मनुष्य शत्रुओं के दु:ख देने पर भी क्षमा कर देता है और अपनी उन्नति का मार्ग तथा अवसर खोजते रहता है साथ ही अपनी शक्ति और सहायकों का संग्रह करते रहता है वही पृथ्वी का राजा होता है। जो अपने भाइयों को साथ लेकर चलता है उसके ऊपर कभी विपत्ति भी पड जाये तो सब लोग मिल जुलकर उसे सहन करते है और उसका प्रतिकार भी। इसलिये भाइयों को कभी भी अलग नहीं करना चाहिये। भाइयों के साथ सदैव सच्चा व्यवहार और महत्वपूर्ण बात ही करनी चाहिये जिससे किसी को कोई शंका न हो। जो स्वयं खाये वही अपने भाइयों को खिलाये। अपने आराम के जीवन के पहिले उनके सुख-सुविधा आराम की व्यवस्था करे। यही कल्याणकारी मार्ग है युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोले और भी आप हमारे लिये जो कुछ हमारी इस अवस्था के उपयुक्त समझते हो वो बताये हम सब आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। विदुर बोले मुझे इस बात का दु:ख नहीं है कि भ्राताश्री ने मुझे निकाल दिया है। दु:ख तो मुझे अब इस बात का है पुत्र कि अब वो बिल्कुल अकेले है। उनके पास अब ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो उनसे कडवे सत्य बोल सके। युधिष्ठिर बोले काकाश्री। विदुर की आंखों में पानी आ गया और बोले हां पुत्रं। महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन की अंगुलियों पर नाच रहे हैं।

४) धृतराष्ट्र का संजय को भेजकर विदुर को वापिस बुलाना

धृतराष्ट्र ने अपने लिये जिस सुख की कल्पना की थी वह सुख उसे कहीं नहीं मिला। वह समझ नहीं पा रहा था कि जिन पांडवों के अपने निकट होते हुये उसे किसी प्रकार का भय नहीं था, उन्ही पांडवों के दूर वन में चले जाने के कारण वह इतना भयभीत किसलिये ? ऐसा क्या था कि जो पांडव सम्मुख उपस्थित होकर उसे तनिक भी भयभीत नहीं करते थे, वे ही उनकी अनुपस्थिति में उसके लिये मृत्यु के समान भयंकर हो गये थे। धृतराष्ट्र की रातों की नींद उड गई थी और नींद आ जाये तो भयंकर स्वप्न

दिखाई पडते थे। धृतराष्ट्र रातों की नींद में दु:स्वप्न से उबर नहीं पाता था वो स्वप्न में देखता था कि दुशासन युद्ध क्षेत्र में धराशायी हो गया है। दुशासन की छाती जैसे फट गयी है और भीम अंजुलि भरभर उसका लहू पी रहा है। धृतराष्ट्र के मस्तिष्क में ये विचार, दृश्य और आकृतियां उसके मन में, मस्तिष्क पर चिपक कर बैठ गई। उसने अपनी नेत्र हीनता के कारण न कभी दुर्योधन को, न दुशासन को कभी प्रत्यक्ष में देखा था और न ही कभी भीम को। उसे कभी कभी द्रौपदी की चीत्कार सुनाई पडने लगती थी कि पितामह धर्म क्या है ? उसको लगता था कि उसके चारों ओर उसके अन्धत्व का अन्धकार नहीं है बल्कि ये तो द्रौपदी के खुले केश हैं। धृतराष्ट्र को रह रह कर द्रौपदी की प्रतिज्ञा याद आती थी कि ये केश तब तक खुले रहेंगे जब तक वह दुशासन की छाती के लहू से अपने केश धोयेंगी नहीं। बैठे बैठे सहसा धृतराष्ट्र को लगने लगता था कि उस दिन द्यूतक्रीडा भवन में द्यूत नहीं खेला गया पर उसके पुत्रों का मृत्यु पत्र लिखा गया। अब पांडवों के पास कुछ भी तो नहीं बचा। उनके पास न धन है, न सम्पत्ति, न राज्य, न सेना। क्या कर लेंगे वे अकेले पांच पांडव ? पांडव भी भली भांति जानते थे कि उनके वध के प्रयत्न बार बार हुये हैं, वे सब उनसे राज्य छीनने के लिये ही तो हुये थे फिर भी पांडवों ने किसी प्रकार के प्रतिशोध के प्रयत्न नहीं किये। द्रौपदी का ऐसा विकराल रूप पहले तो कभी सुनने में, देखने में नहीं आया। उसने पहिले तो अपने केश कभी इस तरह खुले रख नहीं छोडे थे भीम तो द्रौपदी की हर इच्छा पूरी करने के लिये पूरी सृष्टि को ध्वस्त कर सकता है। धृतराष्ट्र का कोई तर्क, विचारों की उधेड बुन उसे आश्वस्त नहीं कर पा रही थी। हृदय का स्पन्दन चरम सीमा पर पहुंच गया था। वह इस प्रकार के दु:स्वप्नों में जीवित नहीं रह सकता था। कुन्ती का हस्तिनापुर में वो भी विदुर के घर में। कोई षडयन्त्र तो नहीं खेल रहे पांडव। धृतराष्ट्र तो कुन्ती के नाम से भयभीत होने लगता था। विदुर ने कुन्ती को अपने घर ठहराया, क्या उसे विदुर पर इतना भरोसा है। विदुर के पास न सत्ता है, न ही आवश्यक धन, न राज्य फिर विदुर के पास अच्छी बातें और नीति के सिवाय क्या है ? जब पांडव अपनी मां को विदुर के संरक्षण में छोडकर आश्वस्त हैं तो फिर धृतराष्ट्र क्यों नहीं विदुर का चिन्तन, विदुर की तर्क से आश्वस्त नहीं हो पाते। विदुर उसका भाई भी है और सेवक। कक्ष में पूर्ण मौन तथा निस्तब्धता थी। पर धृतराष्ट्र के मन में भयंकर कोलाहल मच रहा था। अकेले बैठे न जाने क्या-क्या सोच रहा था ? धृतराष्ट्र के मन में केवल अशान्ति ही नहीं थी, भय का सागर भी गर्जन तर्जन कर रहा था। उसे लगने लग गया था उसका सब कुछ नष्ट हो जायेगा उसके पुत्र, उसका परिवार, उसका राज्य, उसकी सत्ता। जब वह स्वयं ही नहीं रहेगा तो फिर राज्य रहे या न रहे, पुत्र रहे या नहीं रहे वह फिर वापिस कौनसा लौटनेवाला है और आकर देखनेवाला है। यदि वह जीवित रह गया तो ही उसे यह सब देखना पडेगा। धृतराष्ट्र मृत्यु से भी भयभीत है। वह मरना नहीं चाहता। वह कष्टों और विपतियों से घबराता है, निर्धनता से डरता है, पराधीनता से डरता है।

द्यूत सभा में जो कुछ हुआ वह अच्छा नहीं हुआ। सदा कहीं कुछ अशुभ होने की आशंका मन में बनी रहने लगी। पांडव दु:खी थे और क्रुद्ध भी पर उन्होने कभी अपना रोष प्रत्यक्ष रूप में प्रकट नहीं होने दिया। वे अपने क्षोभ में कहीं कोई अनर्थ नहीं कर बैठें ? युधिष्ठिर कभी भी अपने वचन से नहीं डिगेगा वह यदि हस्तिनापुर लौटेगा तो तेरह वर्ष के पश्चात ही। धृतराष्ट्र कितना स्वार्थी और अन्यायी है यह सारे हस्तिनापुर के लोग जानते थे। अपने पुत्रों को होनेवाले कष्टों की कल्पना भी सहन नहीं कर सकता था और अपने अनुज पुत्रों की हत्या होने तक में तनिक भी संकोच नहीं। अपने आपको ऐसा दिखा रहा कि वह कितना व्याकुल और दु:खी है जैसे संसार में इतना दु:खी और पीडित दूसरा कोई भी नहीं। जो कुछ हुआ उस राजसभा में वो अन्याय, अत्याचार, क्रूरता और अमानवीयता की पराकाष्ठा थी।

धृतराष्ट्र को बार बार विदुर के कहे हुये शब्द कानों में गूंज रहे थे कि मेरे लिये आपके और पांडु पुत्र एक समान है। आप में और मुझ में यही अन्तर है कि आप केवल सम्बन्ध देखते हैं और विदुर की दृष्टि उन सबके आचरणों पर रहती है। आप युधिष्ठिर और दुर्योधन में से सदा दुर्योधन को चुनेंगे जब की विदुर कुरुवंश की हित और रक्षा के लिये, धर्म और न्याय की रक्षा के लिये सदा

युधिष्ठिर को ही। दुर्योधन को उसकी क्रूरता के लिये दंडित किया जायेगा या फिर उसका त्याग। दुर्योधन आपका प्रिय पुत्र न होकर वह आपका अपरोक्ष रूप में शत्रु है। आपको अपने जीवन में सुख के जितने क्षण मिले है ये सब पांडु और उसके पुत्रों के कारण मिले हैं और जितने दु:ख, कष्ट, क्लेश, अपमान और यातना प्राप्त हुई है वे सब दुर्योधन और उसके सहयोगियों के कारण हुई है। यदि आप नीति को तनिक भी समझने का प्रयास करें तो आप यह समझ सकते हैं कि भविष्य में दुर्योधन जितना समर्थ होता जायेगा आप उतने ही पीडित होते जायेंगे। यदि आज आप युधिष्ठिर के पास वन में चले भी जाये तो वह अपने दु:खों की परवाह न कर आपके लिये हर सम्भव सुख-सुविधा जुटाने का प्रयत्न करेगा। आज तो आप राजा हैं किन्तु यदि आप राजा न भी रहे तो भी युधिष्ठिर वह सब कुछ करेगा। वह अपने पिता के रूप में पालन-पोषण करेगा। दुर्योधन अपने हाथों में अधिकार पाते ही आपकी उपेक्षा आरम्भ कर देगा। आप उसके आश्रित होते ही याचक हो जायेंगे और याचक भी कैसे जिसे याचना के पश्चात भिक्षा भी न मिले।

यही वह धृतराष्ट्र है वह एक नेत्रहीन, असहाय और भाग्यहीन राजा है जिसमें न स्नेह है, न ही कृतज्ञता, घोर स्वार्थी और नीच है। यहां असहाय और अन्धा बन बैठा हुआ अपने पुत्र के माध्यम से संसार भर के षडयन्त्र रच रहा है। दुर्योधन, शकुनि, दुशासन और कर्ण बनकर स्वयं पांडवों के राज्य को छीन रहा है। क्या है दुर्योधन ? यदि धृतराष्ट्र नहीं चाहता, तो क्या दुर्योधन वह सब कुछ कर सकता था जो कुछ वह कर रहा है। ये धृतराष्ट्र के ही विभिन्न रूप थे। सब स्थानों पर धृतराष्ट्र ही विद्यमान था कहीं उसका नाम दुर्योधन था, कहीं दुशासन, तो कहीं शकुनि और कहीं कर्ण।

भीष्म को जब मालूम पडा कि विदुर हस्तिनापुर छोड चला गया है तो भीष्म अत्यन्त क्रोधित और उत्तेजित हो धृतराष्ट्र के कक्ष में आये भीष्म पितामह को क्रोधित जान धृतराष्ट्र ने पूछा तातश्री इस क्रोध का कारण ? भीष्म उत्तेजित हो अत्यन्त दृढ स्वर में बोले धृतराष्ट्र क्या तुमने यह निर्णय ले लिया है कि हस्तिनापुर का विनाश किये बिना नहीं रहोगे ? अरे पुत्र तुम जिस सिंहासन पर बैठे हो उसके नीचे आग तो मत जलाओ। हस्तिनापुर जल जायेगा फिर ये सिंहासन... धृतराष्ट्र बोला मेरी भूल तो बताइये तातश्री ? भीष्म बोले भूल। यदि तुम यह नहीं जानते कि तुमसे क्या भूल हुई है तो तुम राजा बनने के योग्य भी नहीं हो। जो एक व्यक्ति तुम्हारे सामने सिर उठाकर सच बोल सकता था उस व्यक्ति को तुमने निकाल दिया। अरे मूर्ख सत्य चाहे कितना ही कडवा क्यों न हो ? सत्य फिर भी सत्य होता है। सत्य को स्वीकार करने का साहस करो। भेजो किसी को विदुर के पास और वापिस बुला लो उसे। यदि वो वापिस नहीं आया तो हस्तिनापुर में फिर सूर्य कभी उदय नहीं होगा और ये राजभवन तुम्हारे समेत अन्धकार के गर्त में डूब जायेगा। डूब जायेगा इसके साथ हस्तिनापुर भी। डूब जायेगा हां और भीष्म वहां से क्रोधित होकर चले गये।

इधर विदुर के हस्तिनापुर से निष्कासन हो जाने पर वे पांडवों के पास काम्यक वन में चले गये तब राजा धृतराष्ट्र को अपनी भूल पर बडा पश्चाताप हुआ। वे विदुर का प्रभाव, नीति और सन्धि विग्रह की कुशलता का स्मरण करते रहते और सोचते कि पांडवों की तो बन गयी और उनकी बढोत्तरी होगी। इसी से महाराज धृतराष्ट्र व्याकुल रहने लगे। विदुर के जाने के पश्चात धृतराष्ट्र ने स्वयं को सन्तुलित करने का प्रयत्न किया। वर्षों से स्वयं को साधा है धृतराष्ट्र ने। मन में चाहे कुछ भी हो सामान्यत वह अपना क्रोध ही नहीं रोष भी प्रकट होने नहीं देता किन्तु आज उसका संयम स्खलित हो गया था। शैशव से साथ रहे थे दोनो किन्तु न धृतराष्ट्र विदुर को बदल पाया और न विदुर ही धृतराष्ट्र में कुछ परिवर्तन ला सका।

दुर्योधन ने कितनी ही बार कहा था कि विदुर तथा उसके परिवार को कौरवों की राजसभा से ही नहीं हस्तिनापुर से भी निष्कासित कर देना चाहिये। दुर्योधन की सारी शक्ति उसकी व्यवस्थाओं, षडयन्त्रों और सम्पर्कों के होते हुये भी धृतराष्ट्र के मन में से पांडवों का भय नहीं निकला। पांडव कितने भी असहाय क्यों न हो किन्तु उनके जीवित रहते उनकी विजय की सम्भावना

बनी रहनेवाली है। और यदि एक बार भी पांडव युद्ध में जीत गये तो पांडवों के क्रोध से धृतराष्ट्र के प्राणों की रक्षा कौन करेगा। पांडवों से अपने प्राणों की रक्षा के लिये उसका अन्तिम शस्त्र विदुर ही है। धृतराष्ट्र जानता है कि विदुर उसका कितना भी विरोध क्यों न करे परन्तु विदुर उससे घृणा नहीं करता। विदुर के मन में उसके लिये स्नेह है। विदुर उसका हित चाहता है। विदुर की संरक्षा वेदव्यास ने कर रखी है। सागर लहराता तो रहता है किन्तु भूमि पर चढ नहीं दौडता, विद्युत कडकती रहती है किन्तु पृथ्वी को क्षार नहीं करती, पृथ्वी में समा जाती है। वैसे ही वेदव्यास जैसे लोग शक्ति के पुंज की भांति वे अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करते। यदि कहीं विदुर का अहित हुआ तो सागर अपनी मर्यादा को त्यागकर भूमि पर चढ दौडेगा। विद्युत आकाश का अपना स्थान छोड भूमिपर उतर आयेगी। वेदव्यास क्रोधित हो जायेंगे। सहसा धृतराष्ट्र को लगने लगा कि उसने विदुर के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। विदुर को बुरा लगा होगा। वह आहत हुआ होगा। विदुर तो सम्बन्ध तोडता नहीं वो तो जोडता है। जो स्वयं भयभीत होता है वह दूसरों को भी आतंकित करता फिरता है। दुर्योधन का सुख तो पांडवों को पीडित करने में है। उसे तो केवल यह विश्वास हो जाये कि उसके किसी कृत्य से पांडवों को पीडा होगी, पांडवों का अहित होगा तो वह कुछ भी करने के लिये तत्पर हो जायेगा। उसके जीवन का लक्ष्य अपना सुख नहीं, पांडवों की पीडा है।

युधिष्ठिर के द्यूत खेलने से कुन्ती तनिक भी प्रसन्न नहीं थी। उसके पराजित होने से वह और भी दु:खी हो गई। और सबसे अधिक आहत और पीडित कुन्ती हुई अपने पुत्रवधू के अपमान से। युधिष्ठिर ने उस अपमान का विरोध नहीं किया और न ही अपने भाइयों को करने दिया। युधिष्ठिर ने इसका प्रतिशोध लेने का प्रयत्न ही नहीं किया। तेरह वर्षों के पश्चात उनका वनवास समाप्त होने पर यदि धृतराष्ट्र ने उनका राज्य लौटा दिया तो वह अपना और अपने भाइयों का तथा द्रौपदी का अपमान भूल जायेगा। कुन्ती को अपनी सुरक्षा की कोई चिन्ता नहीं थी। कुन्ती चिंतित थी उस प्रतिशोध की जो पांडवों को लेना है, चिंतित थी उस राज्य के लिये जो पांडवों का है। इसीलिये कुन्ती हस्तिनापुर में रुकी हुई है। दुर्योधन की दृष्टि के सम्मुख निरन्तर रहने से उसे स्मरण कराती रहे कि दुष्ट दुर्योधन ने कुन्ती के पुत्रों का राज्य अधर्म से छीना है ताकि क्रोध में आकर घृणा से भर दुर्योधन या उसका कोई सहायक कुन्ती के विनाश की ओर बढे। कुन्ती के अपमान की उपेक्षा तो युधिष्ठिर भी नहीं करेगा। वह अपना अपमान तो विस्तृत कर दे, अपने भाइयों और अपनी पत्नी का अपमान भी कदाचित क्षमा कर दे परन्तु अपनी माता कुन्ती का अपमान कभी सहन नहीं करेगा और न ही उसे क्षमा करेगा। और युधिष्ठिर इस सीमा तक भी कायर हो जाये कि अपनी मां के अपमान करनेवाले को भी क्षमा कर दे तो सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम और सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे।

जब मनुष्य का स्नेह आहत होता है तो उसका आत्मविश्वास भी डोलने लगता है। मनुष्य का जीवन मरण विधाता के हाथ में है। दुर्योधन या धृतराष्ट्र के हाथ में नहीं। यदि कहीं यह दुर्योधन या धृतराष्ट्र के हाथ में होता तो पांडवों का आज तक जीवित रहना कभी सम्भव ही नहीं था और कदाचित यह भीम के हाथ में होता तो दुर्योधन कभी इस संसार में नहीं होता। पांडवों के सिर पर मृत्यु का साया सदा मंडराते रहता है फिर भी वे आश्वस्त, स्वस्थ और संतुलित हैं। विदुर अधर्म का साथ नहीं दे सकता, अन्याय का समर्थन नहीं कर सकता और अत्याचार के सम्मुख मौन नहीं रह सकता।

दुर्योधन धृतराष्ट्र के कक्ष में आता है और पिताश्री को प्रणाम कर धृतराष्ट्र के निकट बैठ गया। धृतराष्ट्र ने अपनी ज्योतिहीन आंखे उठा कर उससे पूछा सुना है विदुर हस्तिनापुर छोडकर चला गया है। कहां गया है ? दुर्योधन जोरों से हंसकर बोला मेरे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि वह उन्ही कंगले पांडवों के पास गया है। पांडवों ने उसे रहने के लिये उनके पास ही एक कुटिया बना दी है, जिसमें रहता है और वन के कन्दमूल घासफूस का आहर करता है और दिनरात उस धौम्य पुरोहित से ज्ञान चर्चा करते रहता है। धृतराष्ट्र ने फिर पूछा पांडव इस समय कहां है और वे क्या कर रहे हैं। दुर्योधन बोला पिताश्री वे काम्यक वन में है और

वे भिखारियों की सेना इकट्ठी कर रहे हैं। उनके पास है ही क्या जो सैनिक संग्रह करेंगे। कन्दमूल खाकर तो कोई सैनिक यौद्धा नहीं बन सकता और न ही युद्ध कर सकता। दुर्योधन के इस व्यंग से धृतराष्ट्र प्रसन्न नहीं लग रहे थे। दुर्योधन ने पूछा क्या हुआ महाराज आप विदुर को राज्य से निष्कासित कर प्रसन्न नहीं लग रहे ? दुर्योधन के कहने पर धृतराष्ट्र ने कुछ नहीं कहा। इस दुर्योधन के कुछ कहने से भी क्या लाभ जो आज तक यह नहीं समझ पाया कि नीति में कितना बल होता है। वह विदुर का महत्व नहीं जानता और न ही समझता। दुर्योधन तो विदुर को किसी भी मूल्य पर निकाल देना चाहता है चाहता है चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। विदुर कही भी जायें, किसी के पास भी जाये। दुर्योधन न विदुर का महत्व समझता है, न महर्षि व्यास का और न ही वासुदेव कृष्ण का उसकी स्थूल बुद्धि शारीरिक बल देखती है शस्त्र बल।

दुर्योधन ने अपने पिता की ओर देखकर पूछा पिताश्री आप कहीं उस आस्तिन के सांप विदुर को वापिस बुलाने की बात तो नहीं सोच रहे है ना ? इतनी कठिनाई से तो उससे हमारा पीछा छूटा है। यदि लौट आया तो फिर कभी नहीं जायेगा। दुर्योधन मन ही मन सोचता है कि इस वृद्ध की बुद्धि तो विक्षिप्त है जो कभी अपना हित भी नहीं समझता। दुर्योधन बोला भले वह आपका भाई है पर आप यह क्यों भूल जाते है कि व्यवहार और चिन्तन में वह आपका शत्रु है।

धृतराष्ट्र के मन में आया कि विदुर को हस्तिनापुर में बनाये रखकर उसे पांडवों से दूर रखना चाहिये ताकि उसका नीति बल पांडवों को न मिले इसलिये विदुर को वापस बुला ले परन्तु विदुर को बुलाने कौन जायेगा। कोई ऐसा व्यक्ति जो विदुर की दृष्टि में भी सज्जन हो जिसकी प्रसिद्धि सन्त समान हो। धृतराष्ट्र का ध्यान बार बार अपने सारथी संजय की ओर गया। गवल्गण सूत पुत्र संजय। हस्तिनापुर की प्रजा गवल्गण को मुनि के समान ज्ञानी और ईश्वर भक्त मानती है उसी का पुत्र संजय है। संजय एक अनासक्त, स्वार्थहीन, न्यायप्रिय, सत्यवादी और सात्विक मंत्री समान ही है। न तो संजय की भोगों में प्रवृति थी न ही दुर्योधन से कुछ भौतिक लाभ की अपेक्षा वाला था। संजय का व्यक्तित्व बहुत कुछ विदुर के समान ही था। धृतराष्ट्र के मन में यह धारणा बनी हुई थी कि विदुर पांडवों का मित्र और दुर्योधन का विरोधी था पर संजय के विषय में धृतराष्ट्र के मन में ऐसी कोई धारणा नहीं थी। व्यक्ति का मन कैसा भी हो, कृत्य कैसे भी हो फिर भी उसकी संगति और उसका वेश तो साधुओं जैसा होना चाहिये। धृतराष्ट्र ने दासी को बुलाकर कहा किसी को गवल्गण पुत्र संजय को बुलाने भेजो।

संजय को बुलाने पर उसने तनिक भी विलम्ब नहीं किया और वह तुरन्त चला आया। आकर उसने महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम किया और बोला महाराज आज्ञा। धृतराष्ट्र बोला बैठो संजय। मैं जन्म से ही अन्धा हूं। संजय बोला ऐसा क्यों कहते हो महाराज ? आपने आर्याव्रत के प्रसिद्ध राजवंश में जन्म पाया है, बलिष्ठ और स्वस्थ देह पाई है। आदर्श पत्नी और बहुसंख्य पुत्र पाये हैं, कौरवों का प्रसिद्ध राज्य पाया है। भोग के सारे उपकरण आपके सामने है। ईश्वर ने क्या नहीं दिया आपको। एक दृष्टि ही तो नहीं दी किन्तु संसार में किसी को भी वो सब कुछ नहीं मिलता जो वह चाहता है। आपको स्वयं को अभागा नहीं कहना चाहिये महाराज। कृतघ्नता अपराध है। हमें तो ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिये। धृतराष्ट्र बोला तुम ठीक कह रहे हो संजय मैं इसीलिये तो अभागा हूं कि ईश्वर ने मुझे तुम्हारे समान सद्बुद्धि नहीं दी। जो कुछ मेरे पास है वह मुझे दिखाई नहीं देता और जिससे वंचित हूं वह मन में शूल के समान चुभते रहता है। नेत्रहीन से अपूर्ण मनुष्य हूं। इस अपूर्णता ने ही तो मुझे विकृत कर रखा है। ईश्वर ने जो जो मुझे दिया है उसकी बात तो मैं कभी सोचता ही नहीं कि मेरे पास क्या क्या है पर जो नहीं है उसी का चिन्तन करते रहता हूं और उसी का अभाव मुझे बार बार सालते रहता है, खलते रहता है। देखो संजय तुम मेरे निकट हो विदुर मेरा भाई है और मैंने उसे रुष्ट कर दिया है। वो रोष के कारण मेरा त्याग कर चला गया है। उसके वियोग में मैं तडफते रहता हूं। मुझे रातों में नींद भी नहीं आती। करवटे बदलता रहता हूं। तुम किसी

प्रकार विदुर को समझा बुझाकर वापिस ले आओ। उसे किसी प्रकार मना कर हस्तिनापुर में ले आओ।

संजय को पांडवों का पता लगाने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। हस्तिनापुर में रहकर संजय को पांडवों के चरित्र व कृत्यों के विषय में इतनी सूचनायें नहीं मिली थी जितनी उसे मार्ग में अपरिचित लोगों से अनायास ही मिलती गई। सात्विक वृत्ति का कौन व्यक्ति पांडवों से प्रेम नहीं करेगा किन्तु धृतराष्ट्र का विदुर के प्रति प्रेम देख संजय को आश्चर्य हो रहा था कि जो व्यक्ति विदुर से प्रेम करता है वह दुर्योधन का पक्ष कैसे ले सकता है और जो दुर्योधन का पक्ष लेगा वह विदुर से कैसे प्रेम करेगा ? और धृतराष्ट्र को तो दुर्योधन के समान दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है न तो धर्म, न न्याय और न नीति हीन, न कर्त्तव्य, न भगवान और न ही कोई व्यक्ति। संजय रथ लेकर काम्यक वन में पांडवों की कुटिया में आया। संजय को वहां का वातावरण एक ऋषि कुल जैसा लगा। ब्राह्मणों का एक बडा समुदाय महाराज युधिष्ठिर को घेरकर बैठा हुआ अध्यात्म की ज्ञान चर्चा कर रहा है। वहीं पास में विदुर का कुटीर था। बाहर युधिष्ठिर का सारथी इन्द्रसेन खडा था उसने संजय का रथ पहिचान लिया और संजय से रथ लेकर सम्भाल लिया। बाहर ही संजय को भीम मिल गया। संजय ने भीम को प्रणाम किया। भीम बोला प्रणाम संजय और पांडवों की इस कुटिया में आपका स्वागत है। काकाश्री विदुर के पास आये होंगे। संजय बोला मैं आया नहीं हूं कुन्ती पुत्र भेजा गया हूं। आइये बैठिये संजय बोला मैं महामन्त्री विदुर के लिये महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश लेकर आया हूं। संजय ने हाथ जोडकर कहा महाराज युधिष्ठिर की जय हो और प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोला जिस युधिष्ठिर के पास आज न कोई राज्य है, न कोष, न धन, न सेना और जो वन में कुटिया बनाकर रह रहा है वो महाराज कहलाने का अधिकारी कैसे हो सकता है ? संजय बोला मुझे क्षमा करें धर्मराज। परिवार के पारस्परिक कारणों से यदि आज आप परिस्थिति वश वन में रह रहे हैं तो कोई कैसे यह भूल सकता है कि आप कुरु सम्राट युधिष्ठिर हैं। आप अपने वर्तमान को नकार नहीं रहे। मनुष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण तो उसका वर्तमान ही होता है परन्तु राजन सिंह वन में रहे चाहे नगर में वो सिंह ही रहता है। आप धर्म निर्वाह करने के लिये वन में रह रहे हो तो इससे तो कोई आप वनवासी नहीं हो सकते। राजा थोडी देर अपने आभूषण उतारकर रख दे तो उससे तो वह निर्धन तो नहीं हो जाता। संजय की बात सुनकर भीम अत्यन्त प्रसन्न हुआ और संजय को गले से लगा लिया।

संजय ने युधिष्ठिर से पूछा मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूं धर्मराज कि धर्म की वह कौनसी स्थिति है जिसमें क्षत्रिय राजा अपने राज्य को प्राप्त करने के लिये शस्त्र नहीं उठा सकता। युधिष्ठिर बोले क्षत्रिय धर्म की रक्षा के लिये शस्त्र धारण करता है संजय। लोभ स्वार्थ, अन्याय तथा अत्याचार के लिये शस्त्र धारण करना राक्षसी कृत्य है। संजय बोला किन्तु अपने अधिकारों के लिये तो शस्त्र धारण करना तो क्षत्रिय धर्म है महाराज। युधिष्ठिर बोला अपने अधिकार तो हम अपने वचन पर हार आये हैं। अब शस्त्र धारण करना लोभ और स्वार्थ है। संजय ने पूछा तो क्या आप मानते हैं कि दुर्योधन ने आपका यह राज्य धर्मत: जीता है ? यदि नहीं तो फिर आप प्रतिशोध क्यों नहीं ले रहे ? इसे चुपचाप सहन कर रहे हो स्वीकार कर रहे हो। युधिष्ठिर बोला नहीं उसने धर्म से नहीं जीता। मुझे अपने धर्म की रक्षा करनी है; दुर्योधन के धर्म की नहीं। मैंने महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन किया है उनकी प्रतिज्ञा पर द्यूत खेला है। भले ही उन्होने द्यूत के धर्म का पालन नहीं किया हो किन्तु मैं अपने धर्म का पालन अवश्य करूंगा।

विदुर ने संजय से पूछा हस्तिनापुर में क्या हो रहा है ? संजय ने उत्तर दिया महामन्त्री दुर्योधन तो प्रसन्न है कि आपने हस्तिनापुर का त्याग कर दिया परन्तु महाराज धृतराष्ट्र आपके इस प्रकार चले जाने से अत्यन्त व्यथित और व्याकुल हैं। वे आपको स्मरण करते रहते है। महाराज पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हैं और अपने व्यवहार से बहुत लज्जित हैं। उन्होने मुझसे कहा है कि मैं आपको लौटा कर हस्तिनापुर ले चलूं। वे आपके बिना नहीं रह पाते। विदुर ने पूछा संजय क्या महाराज के सम्मुख कोई गम्भीर समस्या उपस्थित है ? क्या महाराज किसी प्रकार के मानसिक संकट से घिरे हैं ? क्या उनका दुर्योधन से किसी प्रकार

का मतभेद हो रहा है ? महाराज के पास राज्य, सत्ता, धन, सम्पत्ति, पत्नियां, उपपत्नियां, दासियां, सेविकायें, पुत्र-पौत्र, मदिरायें, कौनसे भोग क्या नहीं है उनके पास, ऐसे में उन्हे मेरी स्मृति किस समय किस सन्दर्भ में आती है संजय ? मेरे वहां न रहने से उनका कौनसा काम रूक जाता है ? यह तो बडे आश्चर्य की बात है संजय पहिले तो महाराज ने मुझे निकाल दिया और अब फिर तुम्हे मेरे पीछे लपका दिया मुझे मनाकर ले जाने के लिये। संजय बोला महामन्त्री यह तो महाराज ही जाने। मुझे तो नहीं लगता कि महाराज किसी समस्या या संकट से घिरे हो आपके विषय में लेकर पिता पुत्र के बीच नीति भेद तो होते रहता है। दुर्योधन आपको वापिस बुलाने के पक्ष में नहीं है किन्तु महाराज आपके बिना नहीं रह सकते । आप जानते ही हैं कि जितने सारे पदार्थ आपने कहे वे सब पदार्थ और सम्बन्ध उपभोग के है। आपका सम्बन्ध तो मात्र भावनात्मक और प्रेम का है। ये सारे भोग पदार्थ और सम्बन्ध किसी को भी किस सीमा तक अच्छे लग सकते हैं। पर सुना था गंगापुत्र भीष्म गये थे महाराज के पास। क्या बात हुई यह तो मैं नहीं जानता। उनके जाने के पश्चात ही महाराज ने मुझे आदेश दिया कि जाओ और मेरे अनुज को मेरी ओर से मनाकर लाओ। यदि मनाने पर भी न माने तो कहना कि महाराज का आदेश है। विदुर बोले प्रेम के मूल में स्वार्थ भी हो सकता है संजय। संजय बोला जहां स्वार्थ है वहां प्रेम कैसा महामन्त्री ? विदुर हंसने लगा और बोला संसार में कामना को भी प्रेम कहते है। वह कामना उपयोगिता के कारण भी हो सकती है और त्याग के लिये भी हो सकती है, आधिपत्य के कारण भी हो सकती है। कामी पुरुष वेश्या के प्रति अपने भाव को प्रेम मान बैठता है। पिता अपने पुत्र की उपयोगिता के कारण उससे प्रेम करता है और अधिकांश राजाओं का प्रेम प्रजापर आधिपत्य के भाव से होता है किन्तु वस्तुत: ये वास्तव में कोई प्रेम नहीं है। विदुर आत्मलीन हो गये। उनका लक्ष्य संजय को प्रेम के स्वरूप का परिचय देना नहीं था वे तो धृतराष्ट्र के मन में क्या है यह लक्ष्य जानना चाहते थे। व्यर्थ ही ऐसे विवादों से इस समय क्या लाभ ? विदुर बोला अब तो महाराज की आज्ञा का पालन करना होगा। युधिष्ठिर बोले अब फिर आपसे कब भेंट होगी काकाश्री? विदुर बोले पुत्र पता नहीं पर अपनी माताश्री की ओर से चिंतित मत होना। अर्जुन बोला भ्राता दुर्योधन से यह अवश्य कहना कि इतने में ही भीम बीच में बोल उठा नहीं अर्जुन दुर्योधन के पास सन्देश मैं भेजूंगा। उससे यह अवश्य कहना १३ वर्ष उपरान्त आनेवाले दिन की प्रतीक्षा करे क्योंकि १३ वे वर्ष के समाप्त होते ही मैं दुर्योधन की जंघा तोडने और दुशासन की छाती का लहू लेने अवश्य आऊंगा। पांडवों से अनुमति लेकर विदुर हस्तिनापुर लौट आये।

५) महर्षि व्यास और मैत्रेय मुनि का आना तथा दुर्योधन को समझाना

दुर्योधन अपने कक्ष में शकुनि के साथ बैठा हुआ है। वहीं पर कर्ण और दुशासन भी उपस्थित हैं। दुर्योधन बोला यह गुत्थी तो मुझसे सुलझ नहीं रही है। यदि तुम लोग सुलझा सको तो सुलझाओ इसे। जब पिताश्री ने काकाश्री को निकाल दिया था तो संजय को भेजकर उन्हे यहां बुलाने की क्या आवश्यकता थी ? कर्ण बोला मुझे तो ऐसा लगता है कि विदुर का आना ठीक ही है। दुशासन बोला कैसे मित्र ? कर्ण ने कहा वो ऐसे विदुर की सोच तो एक दर्पण है जिसमें गंगा पुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य के सोच की छवि देखी जा सकते हैं। विदुर के न होने से हमारा घाटा था। शकुनि बोला अरे अंगराज तुम तो राजनीतिज्ञों की भांति बातें करने लगे हो। दुर्योधन बोला काकाश्री के लौट आने का परिणाम तो यही होगा न मामाश्री कि वो पांडवों को यहां बुलाने के लिये पिताश्री को मना लेंगे और यदि पिताश्री ने ऐसा किया तो मैं खाना पीना छोडकर भूखा ही मर जाऊंगा या विष खाकर आत्महत्या कर लूंगा या फिर जल समाधि ले लूंगा या अपनी ही छाती पर अपनी गदा उतार दूंगा। आप सोच लीजिये मामाश्री यदि ऐसा हुआ हो तो आप मुझे जीवित नहीं पायेंगे। शकुनि बोला भान्जे तुम सदा यह प्राण त्यागने के लिये क्यों तैयार रहते हो ? पांडवों से मेरी घृणा तुम्हारी घृणा से कम नहीं है परन्तु मेरी घृणा ने मेरी आंखों में धूल नहीं झौंक रखी।

तुम्हे मैंने कई बार समझाया है कि युद्ध का पहिला नियम यह है कि अपने शत्रु को पहचानो और यह भी समझने का प्रयत्न करो कि वो कौनसी स्थिति में क्या करेगा ? और यह भी जान लेना बहुत आवश्यक है उसका सबसे अधिक शक्तिशाली शस्त्र कौनसा है ? क्या तुम पांडवों के विषय में यह जानते हो यदि जानते हो तो यह बताओ वो उन्हे अपने कौनसे शस्त्र पर सबसे अधिक भरोसा है ? दुर्योधन बोला भीम का तो सबसे प्रिय शस्त्र गदा है। कर्ण बोला और अर्जुन को तो अपने गांडीव पर भरोसा है। दुशासन बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री को अपने भाले पर। शकुनि बोला एक बार नहीं, हजार बार नहीं। उनका सबसे अधिक बलिष्ठ अस्त्र शस्त्र है धर्म। और वो यह समझते हैं यह शस्त्र अचूक है। इसलिये वो महाराज के बुलाने पर भी नहीं आयेंगे क्योंकि वे १२ वर्ष का वनवास और १३ वें वर्ष का अज्ञातवास दांव में हार गये है। वो तो खेल की मर्यादा का उल्लंघन कर ही नहीं सकते भान्जे अर्थात अब हमारे पास अब १३ वर्ष हैं तो फिर चिन्ता क्यों करे हम ? अरे तेरह वर्ष बहुत होते है भान्जे।

कपटी अपने कपट को देख ना पाता आज, एक-एक दिन नाश का गिनता उसका पाप।

मनुष्य भी बडा ही विचित्र प्राणी है। वही सुनता है जो सुनना चाहता है इसलिये घटजानेवाली हर दुर्घटना को होनी कह करके अपने दायित्व को नकारने का प्रयत्न करता है परन्तु होनी अपने आप में कुछ नहीं होती। होता वही है जो व्यक्ति स्वयं चाहता है और करता है। वो होनी या भाग्य को ढाल बनाकर अपने कार्यों का दायित्व विधाता के नाम पर सरका देता है। परन्तु यदि भाग्यरेखा ही कर्त्तव्य रेखा है तब तो सब ठीक है। फिर पाप क्या और पुण्य क्या ? स्वर्ग क्या और नरक क्या ? धृतराष्ट्र भी यह जानता है किन्तु उसके कानों में उसकी महत्वाकांक्षा ने अंगूली दे रखी है। वो तो महर्षि वेदव्यास की आवाज भी ठीक से नहीं सुन पायेगा।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब दुरात्मा दुर्योधन को यह समाचार मिला की विदुर जी पांडवों के पास से वापिस हस्तिनापुर लौट आये हैं तो उसे अत्यन्त दु:ख हुआ और वह अपने मामा शकुनि, कर्ण और दुशासन सबके साथ मिलकर उनकी हत्या की योजना बनाने लगा। वे सभी रथों पर तैयार होकर पांडवों को मारने के लिये वन की ओर चलने की तैयारी करने लगे। महर्षि व्यास बडे ही शुद्ध अन्त:करण के पुरुष है। उनकी सामर्थ्य अनिर्वचनीय है। जिस समय ये कौरव पांडवों का अनिष्ट करने के लिये वन के लिये जाना चाहते थे उसी समय महर्षि व्यास धृतराष्ट्र के राजभवन में आ पहुंचे। उन्हे अपने दिव्य दृष्टि से दुर्योधन की दुर्बुद्धि का पता लग गया था। उन्होने स्पष्ट रूपसे आज्ञा देकर कौरवों को वैसा करने से रोक दिया। तदनन्तर वे धृतराष्ट्र के पास गये। धृतराष्ट्र और गान्धारी ने चरण स्पर्श किये और महर्षि व्यास का आशीर्वाद लिया। धृतराष्ट्र बोला आपके चरणों में स्थान पाकर मैं धन्य हो गया ऋषिवर। व्यास बोले ऋषिपर अपने शब्दों का जाल मत फेंको राजन। जो कहने जा रहा हूं वो ध्यान से सुनो। तुम्हारे होते तुम्हारे अनुज पुत्रों के साथ जो कुछ हुआ ठीक नहीं हुआ। वो किसी भी दृष्टिकोण से ठीक नहीं था। उनके साथ होनेवाले अन्याय का दायित्व तुमपर है क्योंकि तुम राजा हो और कदाचित इस अन्याय का भुगतान भी तुम्ही को करना पडेगा। दुर्योधन ने पांडवों को अधर्मपूर्वक अपनी राज्यलक्ष्मी से वंचित किया है फिर भी वन में वे तुम्हारी आज्ञा का पालन कर धर्म का निवार्ह कर रहे हैं परन्तु दुर्योधन उनका सर्वस्व हरण करके भी शान्त नहीं है। वह उपद्रव करना चाहता है। वह अपने मित्रों से दूर बैठे असहाय पांडवों को घेरकर मार डालना चाहता है। यदि दुर्योधन पांडवों पर आक्रमण करेगा तो पांडवों का कोई अनिष्ट हो या ना हो परन्तु दुर्योधन स्वयं जीवित नहीं बचेगा। पांडव स्वयं भी उसे पूर्णत: नष्ट करने में समर्थ है। यदि पांडव ऐसा न चाहे या ना कर पाये तो वासुदेव श्रीकृष्ण दुर्योधन का अनिष्ट किये बिना नहीं छोडेंगे।

धृतराष्ट्र बोला ऐसा न कहिये ऋषिवर। व्यास बोले ऐसा क्यों न कहूं ? कैसे नहीं कहूं ऐसा ? यह समझ लो राजन १३ वर्ष १३ वर्ष में समाप्त हो जायेंगे। इसलिये उस दिन को आज से ध्यान में लाना आरम्भ करो जो १३ वर्ष का अन्तिम दिन होगा। क्या तुम यह समझते हो पांडव १३ वर्ष में अपना अपमान और अपने होनेवाले अन्याय को भूल जायेंगे ? इसी में भला है राजन कि

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, पांडवों से प्रेमपूर्वक मिल कर शान्तिपूर्वक रहे। वह अपने मित्रों कर्ण, शकुनि और दुशासन का त्याग करे। धृतराष्ट्र बोला दुर्योधन मेरी बात नहीं मानता ऋषिवर। आप उसे समझाये महर्षि। मैं क्या करूं ? व्यास तेज स्वर से बोले उसे तुम स्वयं समझाओ अन्यथा उसे यमराज समझाना जानते हैं। मैं तुम्हे समझा रहा हूं धृतराष्ट्र। यदि वो तुम्हारा पुत्र नहीं होता तो तुम क्या करते ? तुम्हारे राज्य में राजा की आज्ञा पालन न करने वाले को क्या दंड दिया जाता है राजन ? धृतराष्ट्र बोले वो मेरा पुत्र है ऋषिवर। व्यास बोले पुत्र भी एक नागरिक होता है राजन। विधि रिश्ते नातों, सम्बन्धों को नहीं देखती। उसे समझाओ की राजा तुम हो। उसे समझाओ कि कुरुपुत्र के ज्येष्ठश्री गंगा पुत्र भीष्म है और तुम दोनों के जीवन काल में राजनीति या राज्य पर कोई अधिकार नहीं है और यदि न समझे तो उसे आदेश दो कि वो पांडवों से सन्धि कर ले और फिर भी यदि वो तुम्हारी आज्ञा का पालन नहीं करे तो उसे दंडित करो क्योंकि राजा होने के नाते यही तुम्हारा परम कर्तव्य है। अहंकार के वृक्ष पर विनाश का फल आता है राजन। यदि दुर्योधन आज जीवित है तो युधिष्ठिर के कारण। युधिष्ठिर ही वह व्यक्ति है जो अपने भाइयों, यादवों, पांचालों और मत्स्यों को तुमपर आक्रमण करने से रोक रहा है। यदि युधिष्ठिर बीच में नहीं पडता तो उसके भाई दुर्योधन को जीवित नहीं छोडते। इसलिये इसे समझो राजन और दुर्योधन को समझाओ अब भी समय है। ऋषि मैत्रेय काम्यक वन में पांडवों से मिलने गये हैं वे तुम्हे भी समझायेंगे और दुर्योधन को भी। धृतराष्ट्र ने आशंकित मन से पूछा क्या वे दुर्योधन के लिये पांडवों का कोई सन्देश ला रहे है ? महर्षि व्यास बोले नहीं राजन वे पांडवों के कोई दूत नहीं है। वे तो अपने भ्रमण पर निकले हुये है और काम्यक वन में उनकी भेट पांडवों से हुई है। वे मुझसे मिलने मेरे आश्रम पर आये। अब वे तुम्हें आशीर्वाद देने आ रहे है। राजन मैं चलता हूं।

धृतराष्ट्र मन ही मन सोचता रह गया कि महर्षि यह कैसी चेतावनी दे गये हैं। धृतराष्ट्र इन तपस्वियों के आ जाने से कैसा आशंकित हो जाता है? धृतराष्ट्र को लगने लगता है कि ये लोग उससे उसका सारा सुख भोग, धन, वैभव छीन लेने के लिये आ जाते हैं। ये ऋषि लोग चाहते हैं कि वह भी अपना राजप्रासाद त्यागकर इस संसार से उपराम हो अपने सुखों और भोगों को तिलांजलि दे उनके समान ही त्यागी तपस्वी विरक्त हो जाये। त्याग का विचार ही धृतराष्ट्र को कंपा देने लगता था। वह अपने भोगों को छोडकर अध्यात्म के सुख में जाना नहीं चाहता था। उसे तो अपने वर्तमान भौतिक सुखों के साथ अतिरिक्त रूप में अध्यात्म या मानसिक सुख चाहिये था और फिर उसे अध्यात्म का सुख भी नहीं चाहिये। वह अपने सांसारिक सुखों भोगों की वृद्धि और उनकी रक्षा के लिये आध्यात्मिक शक्तियों की सहायता चाहता था। या फिर उनकी सहायता से अगले लोकों में भी अपने लिये सुख और भोग आरक्षित हो जाये ये कल्पना करते रहता था। धृतराष्ट्र को लगता था कि इन तपस्वियों के आ जाने से वह सुखी भी होता है और दु:खी भी। उसका कष्ट तब अधिक बढ जाता था जब पांडवों के पक्ष को लेकर दुर्योधन का विरोध करते थे, यह स्वार्थवंश अपने हित की बात नहीं मानता था।

चिंतित धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों सहित महर्षि मैत्रेय के स्वागत की पूरी व्यवस्था करी। दुर्योधन की मैत्रेय मुनि से भेंट करने की कोई इच्छा नहीं थी। किन्तु धृतराष्ट्र की इच्छा को देखते हुये उसे वहां उपस्थित रहना पडा। मैत्रेय मुनि आये और धृतराष्ट्र को आशीर्वाद दिया राजन तुम्हारे राज्य में शान्ति रहे। ईश्वर तुम्हारे वंश की रक्षा करे। धृतराष्ट्र बोले आपने मुझे समृद्धि, वैभव का आशीर्वाद नहीं दिया, राज्य में शान्ति ही तो पर्याप्त नहीं होती ऋषिवर। मैत्रेय मुनि ने कहा समृद्धि की तृष्णा ही तो पतन का मूल है राजन तुमने मुझसे धर्म मांगा होता तो मैं तुम्हारी आकांक्षा की प्रशंसा करता। धृतराष्ट्र बोला मैं क्षत्रिय राजा हूं इसलिये राज्य का विस्तार और प्रजा की समृद्धि की कामना तो चाहूंगा ही। मैत्रेय मुनि का तेज प्रखर हो उठा और बोले प्रजा की समृद्धि राजा के धर्म से होती है राजन। मैंने तुम्हारे कुल की रक्षा की कामना की है ताकि तुम

वर्तमान समृद्धि का भोग कर सको। बीच ही में दुर्योधन बोल उठा क्यों हमारे कुल पर कौनसी विपत्ति आ रही है ? अभद्र स्वर में दुर्योधन बोला हममें इतना सामर्थ्य है कि हम अपने शत्रुओं का सिर कुचल डाले। मैत्रेय मुनि बोले देहधारी की मृत्यु उसके शत्रु के हाथ में नहीं, उसके अपने शरीर में निवास करती है। तुम्हारे कुल का विनाश भी तुम्हारे अपने वंश के भीतर ही स्थित है। यदि तुम अपने कुल की रक्षा करोगे तो अपने विनाश से भी लड सकोगे।

दुर्योधन बोला क्या हम लोग अपने कुल की रक्षा नहीं कर रहे। मैत्रेय मुनि बोले नहीं। तुम केवल अपने अहंकार की रक्षा कर रहे हो अपने लोभ का विस्तार कर रहे हो और भौतिक सुखों की चाह में ईश्वर की सृष्टि का विनाश करना चाहते हो। धृतराष्ट्र ने पूछा ऋषिवर आप कुरु जांगल देश से यहां तक आये मेरे अनुज पुत्र पांडव तो सकुशल हैं ना ? वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते है ? कौरवों और पांडवों में मेल मिलाप हो सकेगा क्या ? मैत्रेय मुनि बोले राजन मैं तीर्थयात्रा करते करते कुरु जांगल प्रदेश गया था वहाँ संयोगवश काम्यक वन में धर्मराज युधिष्ठिर से भेंट हो गई। वे तपस्वी बन काम्यक वन में निवास कर रहे हैं। मैंने सुना है कि तुम्हारे पुत्रों ने जान बूझकर कपट जुआ खेलकर उनके साथ अन्याय किया है इसलिये तुम लोगों के लिये बडा ही भयावना समय और परिस्थिति है। वहां से चलकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। तुम पर सदा ही मेरा स्नेह और प्रेम रहा है राजन परन्तु राजन यह उचित नहीं है कि तुम्हारे और गंगा पुत्र भीष्म के जीवित रहते तुम्हारे पुत्र तुम्हारे अनुज पुत्रों से विरोध करे। तुम तो सबको अन्याय करने से रोकने सजा आदि देने में भली-भांति समर्थ हो फिर इस घोर अन्याय की उपेक्षा किसलिये कर रहे हो ? तुम्हारी सभा में तुम्हारे ही सामने डाकुओं सदृश जो अन्याय कर्म हुआ है उसकी ऋषि मुनियों के समाज में तुम्हारी बडी निन्दा हुई है। दुर्योधन मुंह बना कर चिढकर बोला आप सब लोग पांडवों का इतना पक्षपात क्यों कर रहे हो ? क्या पांडव ही ईश्वर की सृष्टि है। पांडव ही आपको इतने प्रिय क्यों है ? मैत्रेय अब आवेश पूर्ण शब्द में बोले हमें पांडव प्रिय नहीं है। हमें धर्म प्रिय है और हमें धर्म की रक्षा करनी है। पांडव धर्म की साक्षात मूर्ति है। तुम यह नहीं जानते कि पांडवों का विनाश तुम सरलता से नहीं कर सकते। तुम विध्वंस की कल्पना छोड दो ताकि यह पृथ्वी हरी भरी रहे जीव सन्तुष्ट हो जिससे धर्म का विकास हो। अत: तुम पांडवों से द्रोह मत करो। वे सब के सब वीर, योद्धा, बलवान एवं नर रत्न है। वे बडे ही सत्य प्रतिज्ञ, आत्माभिमानी और अन्यायी के शत्रु है। वे चाहें जब जैसा रूप धारण करने में समर्थ है। विजय श्री उनके साथ है बडे-बडे राक्षस, बकासुर, हिडिम्ब, और किर्मीर जैसों का वध उन्होने ही किया है। श्रीकृष्ण उनके सम्बन्धी है। द्रुपद उनके श्वसुर है। इस समय पांडवों से युद्ध में टक्कर लेनेवाला कोई नहीं है। इसलिये क्रोध के वश होकर अनर्थ मत करो उनके साथ सन्धि कर लो। जिस समय महर्षि मैत्रेय दुर्योधन से इस प्रकार कह रहे थे उस समय दुर्योधन मुस्कुराकर अपनी जांघ पर हाथ से ताल ढोकने लगा। दुर्योधन की इस प्रकार की उदंडता देखकर मैत्रेय मुनि को बुरा लगा और उन्होने अपना अपमान समझा। किसी का क्या वश जब विधाता की इच्छा ही ऐसी हो। उन्होने धृतराष्ट्र की ओर देखा। वह अपने अन्धेरे शून्य में कुछ देखने का प्रयास कर रहा था किन्तु वह देख नहीं पाया कि दुर्योधन ने क्या किया। मैत्रेय क्रोधित हुये, अपने को रोक नहीं पाये और जल का स्पर्श कर दुरात्मा दुर्योधन को शाप दे ही डाला **ऐ मूर्ख दुर्योधन तू मेरा तिरस्कार कर रहा है और मेरी बात नहीं मानता। तेरे द्रोह के कारण कौरवों और पांडवों में घोर घमासान युद्ध होगा उसमें भीम तेरी इसी जंघा को अपनी गदा से तोडेगा।** महर्षि मैत्रेय के ऐसा शाप दे देने पर धृतराष्ट्र महर्षि के चरणों पर गिरकर अनुनय विनय करने लगा इस प्रकार शाप न दें ऋषिवर। मैत्रैय उठ खडे हुये और बोले राजन यदि तुम्हारा यह पुत्र पांडवों से मेल कर लेगा तो इसे मेरा शाप नहीं लगेगा। पांडवों का मन जीतने का प्रयत्न करो नही तो मेरा शाप अन्यथा नहीं होगा। इतना कहकर मैत्रेय मुनि ने वहां से प्रस्थान किया।

६) किर्मीर राक्षस वध

वैशम्पायन कहते हैं जमनेजय मैत्रेय मुनि के चले जाने पर धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा विदुर भीम से किर्मीर राक्षस कहां मिला और उसका वध किस प्रकार क्यों हुआ ? तब विदुर ने कहा महाराज पांडवों के तो सभी कृत्य अलौकिक हैं। राजन जिस समय पांडव सभी भाई द्यूत में हारकर हस्तिनापुर से काम्यक वन की ओर जा रहे थे उस मार्ग में ही मध्य रात्रि के समय वह किर्मीर उनका रास्ता रोक कर खडा हो गया। हाथ में जलती हुई एक लुकारी (मशाल) लिये था। उस राक्षस की भुजायें लम्बी-लम्बी थी और दाढे भयंकर लाल लाल आंखे। सिर के खडे बाल मानो जलती आग की लपटे हों। वह कभी तो अपनी माया फैलाता तो कभी बादलों की तरह गरजता। ऐसा भयंकर रूप वाला वह राक्षस। उसकी गर्जना से सारे वन पशु भयभीत होने लगे। आंधी चलने लगी। धूल से आकाश आच्छादित हो गया। उस राक्षस की यह चाल देखकर धौम्य पुरोहित ने रक्षा मन्त्र के पाठ का उच्चारण किया जिससे राक्षसी माया नष्ट हो। उसी समय किर्मीर राक्षस बडे ही भयावने वेश में पांडवों के सामने आकर खडा हो गया। पांडवों का परिचय पाकर किर्मीर बोला मैं बकासुर का भाई और हिडिम्ब का मित्र हूं। इसी भीम ने उनको मारा है इसलिये आज मुझे अवसर मिला है कि मैं इस भीम का वध किये देता हूं। तभी भीम भी बडे क्रोधित हो वायु वेग के समान वन के पेड उखाड उखाड कर एक दूसरे पर फेंकने लगे जिससे आसपास के बहुत सारे वृक्ष नष्ट हो गये। भीम ने हाथी के समान झपट कर उसे बाहों में भर बांध लिया और जमीन पर पटक दिया। उसकी कमर घुटनों से दबाकर उसका गला घौंट दिया। राक्षस का शरीर ढीला पड गया और आंखे बाहर निकल आई। इस प्रकार किर्मीर राक्षस का वध हुआ और पांडवों को बडी प्रसन्नता हुई। फिर पांडवों ने काम्यक वन में प्रवेश किया।

७) दुर्योधन का काम्यक वन में गन्धर्वों से युद्ध और दुर्योधन की पराजय

दुर्योधन अपने कक्ष में है और शकुनि वहां आता है। शकुनि बोला इस अज्ञातवास में हम अपने गुप्तचरों को उनके पीछे लगा देते हैं वत्स। दुर्योधन बोला आइये मामाश्री विराजिये। कर्ण बोला इस लम्बी-लम्बी सांस का कारण गान्धार नरेश। शकुनि बोला महाराज बहुत दु:खी है भान्जे। महर्षि व्यास आकर उनके आत्मविश्वास की जडे हिला गये है भांजे दुर्योधन। दुर्योधन बोला इन महर्षियों को और तो कोई काम है नहीं। बस निराधार हितों को विष देते रहते हैं। मेरा बस चले तो मैं इनके आने पर ही रोक लगा दूं। शकुनि बोला नहीं। मूर्खों जैसी भूल कभी न करना दुर्योधन। ऋषि की सेवा करो, ये बडे सीधे लोग होते हैं। उनका आदर करना सीखो। उनकी सुनो परन्तु उनका कहा मानना आवश्यक थोडे ही है। दुशासन बोला परन्तु पिताश्री को वे ऐसा क्या कह गये है ? शकुनि बोला मेरे गुप्तचरों ने यह बता दिया और मैंने सुन लिया किन्तु तुम लोगों से यह नहीं सुना जायेगा और यदि सुन भी लिया तो सहा नहीं जायेगा और मेरा यह भान्जा दुर्योधन तो अपनी गदा ही उठाकर महर्षि व्यास की ओर दौड पडेगा। संक्षेप में कहूं तो सत्य यही है कि महर्षि व्यास भी पांडवों के पक्ष में ही हैं।

कर्ण बोला यह तो शुभ समाचार नहीं है। शकुनि बोला यही तो मैं भी कह रहा हूं। वो तो महाराज को सर्वनाश की सूचना दे गये हैं। कर्ण बोला किसके सर्वनाश की ? शकुनि बोला तुम्हारे सर्वनाश की अंगराज, पुत्र दुर्योधन के सर्वनाश की, दुशासन के सर्वनाश की और मेरे सर्वनाश की। कर्ण बोला हे भरत नन्दन अपने पराक्रम की ओर से मन मैला मत करो। महर्षि को कहने दो। यह पृथ्वी तुम्हारी है और इसे तुम ऐसे ही भोगोगे जैसे इन्द्र स्वर्ग का राज्य भोग रहा है। अपने बाहुबल का आदर करो जिसके कारण चारों दिशायें तुम्हारे ध्वज को सादर प्रणाम कर रही है। जो कल तक राज लक्ष्मी पांडवों की सेवा में थी वो तुम्हारी सेवा में है। महर्षि व्यास से गणित में कुछ भूल चुक हो गयी होगी या फिर पांडवों के स्थान पर उन्होने गलती से तुम्हारा नाम ले लिया होगा। दुर्योधन सर्वनाश तो उनका होगा। बल्कि सर्वनाश तो उनका हो चुका है। कहां है अब वो मय दानव का बनाया

हुआ राजभवन ? जिसमें द्रौपदी ने तुम्हारा अपमान किया था? कहां है वो इन्द्रप्रस्थ का राजमुकुट जो महाराज युधिष्ठिर के सिर पर शोभायमान था ? कहां है वो अर्जुन का गांडीव जिस पर उसे अभिमान था ? कहां है भीम का वो बाहुबल ? वनों में भटक रहे है पांचाली को लेकर। दुर्योधन को इस तरह उदास होना शोभा नहीं देता। यदि तुम कहो तो मैं अपने बाणों से तुम्हारी ओर आती हुई पवन का रुख मोड दूं और यदि तुम कहो तो तुम्हारे सम्मान की ओर लपकती हुई ज्वाला को यो चबा जाऊं जैसे नेवला सर्प के सिर को चबा जाता है। मित्र यदि तुम्हे अपने इस मित्र की निष्ठा पर विश्वास है तो यो उदास होकर मेरा अपमान न करो। शकुनि बोला तुम तो भाषण देने की कला में प्रवीण हो गये अंगराज। सीधी सीधी बात करो। वन में आखेट के लिये जाओ और पांडवों की दशा देखकर ठहाका लगाओ। उनके आत्म बल पर व्यंग के बाण चलाओ और हिरणों के बदले उनके आत्म सम्मान का शिकार करके आओ। दुर्योधन बोला परन्तु पितामह। शकुनि ने कहा उनकी तो चिन्ता ही मत करो भान्जे। गंगापुत्र भीष्म तो सिंहासन से बन्धे है।

कृपाचार्य भीष्म के कक्ष में आते हैं। भीष्म ने उठकर कुलगुरु कृपाचार्य को प्रणाम किया और बोले स्थान ग्रहण करो आचार्य। मेरे लिये कोई आदेश कुलगुरु ? कृपाचार्य बोले गंगा पुत्र भीष्म को काल के अतिरिक्त भला और कौन आदेश दे सकता है ? भीष्म बोले तो इतनी रात गये आपके यहां आने का कारण जान सकता हूं। कृपाचार्य बोले जो हस्तिनापुर के शुभ चिन्तक है उन्हे अब नींद कहां आती है गंगापुत्र। वो सब तो अपनी निष्ठाओं के बन्दीगृह में जाग रहे हैं और डर रहे हैं। भीष्म बोले किससे डर रहे है ? कृपाचार्य बोले भविष्य से। भीष्म ने कहा किसके भविष्य से आचार्य ? कृपाचार्य बोले मैं आपके भविष्य के लिये चिंतित हूं गंगापुत्र और आप मेरे। आचार्य द्रोण की भी यही दशा है। हमने न जाने पिछले जन्म में ऐसा क्या किया होगा जिसका दंड हमें मिल रहा है कि हम दुर्योधन की हां में हां मिलाने को विवश है। भीष्म बोला क्या इतिहास हमारी यह विवशता देख पायेगा कुलगुरु ? कृपाचार्य बोले यह तो मैं नहीं जानता गंगापुत्र किन्तु यह मैं अवश्य जानता हूं कि कपट द्वारा पांडवों का सब कुछ जीत लेने के बाद भी गान्धार नरेश शकुनि का जी नहीं भरा। उनकी ओर अपमान के बाण पर बाण चलाये जा रहा है। भीष्म बोले अब क्या कर दिया है उन्होने ? कृपाचार्य ने कहा उन्होने दुर्योधन को आखेट के लिये वन में भेज दिया है। साथ ही यह भी कहा है कि वे पांडवों के पास ही अपना शिबिर बनाकर पडाव डाले। मुझे युधिष्ठिर की तो कोई चिन्ता नहीं है। न ही अर्जुन अपने भाई के कहने से बाहर जायेगा पर भीम, वह तो पवन की तरह है, यदि चल पडा तो फिर उसे कोई रोक नहीं सकता।

शकुनि के उकसाने पर दुर्योधन, कर्ण और दुशासन के साथ काम्यक वन में आखेट के लिये गया साथ में बहुत सारी मनोरंजन और विलास की सामग्रिया ले गया। उन्होने अपना पडाव पांडवों की कुटिया के समीप ही डाला। उनके पास ही थोडी दूर पर वहां शिबिर बना कर रहने लगे। अर्जुन अपनी कुटिया में अपने बाण सान पर चढा रहा था इतने में ही भीम वन से लकडियां काट कर अत्यन्त क्रोध से भरा हुआ कुटिया में आया। अर्जुन ने पूछा आपका इतना क्रोध किस पर है भ्राताश्री ? भीम बोला अपने आप पर। अर्जुन ने पूछा क्यों ? किसलिये ? आपने क्या किया ? भीम बोला मैंने सहन किया। मुझे तो बडे भैय्या की पीठ करके द्यूतभवन में दुर्योधन की गर्दन मरोड देनी चाहिये थी। अर्जुन बोला लगता है तो आपने भी उनका पडाव देख लिया। भीम बोला देखता कैसे नहीं ? यदि आंखे मूंद भी लूं तो उन अश्लील ठहाकों का क्या करूं ? यदि नाक, कान बन्द कर लूं तो उसके अश्लील व्यक्तित्व में भी सांस लेना दुर्लभ है। वो हमें यहां वन में भी चैन की सांस लेने नहीं देगा। सूंघो उन भुनते हुये मृग की गन्ध जैसे हमने कभी अच्छा भोजन किया ही नहीं। वहीं पर उनके पच्चीस पच्चीस दास दासियां झूंठी थालिया और बर्तन साफ कर रहे थे। मैं वहीं पर अपने झूंठे बर्तन फेंक आया। उसी

समय युधिष्ठिर वहां आ गये और बोले तो यह ईर्ष्या क्यों प्रिय अनुज ? अर्जुन बोला ईर्ष्या ? हमें उनसे ईर्ष्या क्यों होने लगी भ्राताश्री ? किन्तु दुर्योधन के असभ्य होने पर झल्लाहट तो होगी ही ना क्योंकि वो हमारे ज्येष्ठ पिताश्री का ज्येष्ठपुत्र है। क्या यह वो जानता नहीं कि १३ वर्ष के उपरान्त हम अपनी एक-एक वस्तु गिन-गिन कर वापिस लेंगे। युधिष्ठिर बोला १३ वर्ष के पश्चात वो स्वयं ही सब कुछ लौटा देगा। भीम बोला बडे भैया आप तो यही सोचते हैं कि वो सब कुछ वापिस लौटा देगा। अरे बडे भैया हमें तो अपने भाग का कौर भी उसके मुंह में अंगूली डालकर निकालना पडेगा और यदि समय वृक्ष होता तो मैं उसकी तेरह टहनियों को काटकर अभी उसके पडाव में घुस जाता। युधिष्ठिर बोला समय कोई वृक्ष नहीं है अनुज उसे तो कोई काट नहीं सकता। वो तो स्वयं कटता है और उसके कटने की भी एक गति होती है।

दुर्योधन अपने वन पडाव के शिखर में दुशासन और कर्ण के साथ बैठा है और बातचीत कर रहे हैं। कर्ण बोला अरे मित्र दुर्योधन यह तो बताओ कि इस समय ये पांचो वनवासी पांडव कर क्या रहे हैं ? दुशासन बोला मैं बताता हूं अर्जुन तो जंगल में लकडियां काटने गया होगा। दुर्योधन बोला भीम तो घास फूस इकट्ठी कर रहा होगा। कर्ण बोला धर्मराज युधिष्ठिर कोने में मुंह लटकाये प्रायश्चित कर रहे होंगे। दुर्योधन बोला और वो दिव्य जन्मा द्रौपदी चूल्हा फूंक रही होगी। सब के सब व्यंगपूर्ण हंसी में हंसते है। दुर्योधन बोला अरे दुशासन वो बचा खुचा भोजन पांडवों की कुटिया में भेजा की नहीं। दुशासन बोला चिन्ता मत कीजिये भ्राताश्री पहिले हमारे पालतू कुत्ते तो खा ले उसे।

दुर्योधन पांडवों की प्रतिक्रिया जानने उस गन्धर्व काम्यक वन में अकेला घूम रहा था कि रास्ते में उसे एक गन्धर्व राजकुमारी मिली। दुर्योधन ने उसे देखा और दुर्योधन की नियत बदल गई। दुर्योधन ने वन में उसका रास्ता रोक कर उसे पकड लिया। उस कन्या ने कहा हट जाओ मेरे रास्ते से। जानते हो मैं कौन हूं ? मैं गन्धर्व राजकुमारी हूं। दुर्योधन बोला शायद तुम यह नहीं जानती कि हम कौन हैं ? मैं युवराज दुर्योधन हूं। अपने आपको सौभाग्यशाली समझो कि आज रात्रि हम तुम्हें अपने शिबिर में बुला रहे हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा। दुर्योधन उस कन्या के हाथ से कुल्हाडी छीनकर फेंक देता है। वह कन्या भागकर उस वन के पास के अपने गांव में गई और रो-रोकर अपनी यह दुर्दशा अपने भाई और गांववालों को बताई।

गांव की चौपाल में ग्रामवासी एकत्रित हुये और आपस में बातें करने लगे। एक बोला समझ में नहीं आता मुखिया जी कि पांडव अपने अधिकारों के लिये क्यों नहीं लडे ? उन्होने यह अपमान सहन कैसे कर लिया ? गन्धर्वों का मुखिया बोला युधिष्ठिर धर्मराज है और उन्होने जो कुछ भी किया सोच समझकर ही किया होगा। भ्राताश्री भ्राताश्री पुकारते वो कन्या रोते रोते वहां आई और बोली उस दुष्ट दुर्योधन ने मेरे साथ अशिष्टता का व्यवहार किया है। उस कन्या के भाई ने कहा दुर्योधन।

रात्रि में दुर्योधन के शिबिर में मादक नृत्य हो रहे थे। दुर्योधन और कर्ण मदिरा चसक रहे थे। सभी वनवासी लोग तैनात होकर दुर्योधन के शिबिर के पास आये। दुर्योधन उन्मत होकर मदिरापान कर रहा था। द्वार पर अंग रक्षक खडे थे। उसी समय उन वनवासी गांववालों ने बाण मारकर उन द्वार पालों को मार गिराया। कर्ण भी उन्मुक्त होकर मदिरा पान कर द्यूत हो रहा था। नशे में धुत्त था। उन वनवासी ग्रामीणों ने उस गन्धर्व कन्या के अपमान के कारण दुर्योधन के शिबिर पर आक्रमण कर दिया और भीतर घुस गये जहां दुर्योधन भोग विलास में रमणियों के साथ रमण कर रहा था। जाकर उन ग्रामीणों ने दुर्योधन को अपना बन्दी बना लिया और गांव की पंचायत की सभा बैठी। दुर्योधन को एक पेड से बांध दिया। दुशासन और कर्ण गांववालों के आक्रमण से भयभीत हो वहां से पलायन कर गये। उस पंचायत में कन्या के युवक भाई ने कहा हमारी जाति इतनी असभ्य नहीं। हमारी पंचायत यह निर्णय लेगी कि मेरी बहिन के अपमान का इसे क्या दंड दिया जाये ?

दुर्योधन का अंगरक्षक दौडकर पांडवों की कुटिया में युधिष्ठिर के पास आता है और प्रणाम करता है। युधिष्ठिर ने कहा आइये

और बैठिये। अंगरक्षक सेनापति बोला मेरे पास बैठने का समय नहीं है। युवराज दुर्योधन को गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया है। युधिष्ठिर बोला गन्धर्वों का यह साहस कि वो हस्तिनापुर की सीमा के भीतर युवराज को बन्दी बना ले। तुम, भीम और अर्जुन जाकर अनुज दुर्योधन की सहायता करो। भीम बोला हमें भोजन के लिये सूखी लकडियां लानी है और सोने के लिये सूखी घास इकट्ठी करनी है बडे भैया। अर्जुन बोला फिर ये तो बताइये भ्राताश्री कि हम दुर्योधन की सहायता करने क्यों जाये ? गन्धर्वों से ऐसे भी हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। भीम बोला फिर यों भी दुर्योधन के लिये हमारे हृदय में कोई विशेष स्थान भी नहीं है तो फिर उसकी सहायता के लिये गन्धर्वों से झगडा हम क्यों मोल ले ? युधिष्ठिर बोला मैं झगडा मोल लेने के लिये नहीं कह रहा हूं। मैं तो दुर्योधन की सहायता की बात कर रहा हूं। अर्जुन बोला आप ऐसी बातें करते क्यों है भ्राताश्री ? युधिष्ठिर बोला क्योंकि दुर्योधन हमारा भाई है। भीम बोला भाई, कैसा भाई, आप उसको भाई मानते है। वो ऐसा भाई है जिसने आपको कपट से द्यूत में हराया। ऐसा भाई जिसने पांचाली के साथ भरी सभा में दुर्व्यवहार किया और उसे आप भाई कहते है। युधिठिर बोले हां। वो फिर भी हमारा भाई है और उसकी सहायता करना हमारा कर्तव्य है। यदि संकट के अवसर पर हम उसकी सहायता नहीं करेंगे तो फिर उसके और हमारे में अन्तर ही क्या रह जायेगा ? क्या इस समय उसकी सहायता न करने के उपरान्त तुम लोग ज्येष्ठ पिताश्री, ज्येष्ठ माताश्री का सामना कर पाओगे ? क्या तुम उनसे यह कह सकोगे कि तुम उनके आशीर्वाद के योग्य हो ? अनुज दुर्योधन से हमारा आपसी झगडा है, एक घरेलू झगडा है। हम आपस में निबटते रहेंगे एक दूसरे से परन्तु इस आपसी झगडे का अर्थ यह तो नहीं कि बाहरवाले कोई लाभ उठाये इसलिये यह आवश्यक है कि इस आपत्ति की घडी में हम उसकी सहायता करें। ठीक है तुम लोग सूखी घास इकट्ठा करो। दुर्योधन की सहायता के लिये मैं चलता हूं तुम्हारे साथ।

कर्ण अपना धनुष बाण लेकर तैयार होकर आता है आक्रमण करने के लिये। गांववालों ने दुर्योधन को बन्दी बना खम्भे से बांध दिया। पंचायत बैठी। गांव का मुखिया चौधरी बोलता है राजकुमार दुर्योधन तुमने केवल एक कन्या का अपमान नहीं किया है। तुमने केवल गन्धर्वों का अपमान ही नहीं किया है, तुमने अपमान किया है समूची मानव जाति का। क्षत्रिय समाज का, मानव मर्यादा का। हस्तिनापुर जैसे शक्तिशाली राज्य का। युवराज होने का अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारे हाथ इतने लम्बे हो सकते हैं कि जिन वस्त्रों पर तुम्हे अधिकार ही नहीं कि उन वस्त्रों पर पहुंच जाये। महारानी द्रौपदी का अपमान करके तुमने यह समझ लिया कि भारतवर्ष की हर नारी अनाथ है। हममें से कोई धर्मराज युधिष्ठिर नहीं है। हम में से कोई भीम की भांति सर्वश्रेष्ठ गदाधर या अर्जुन की भांति सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर भी नहीं है। न हम द्रोणाचार्य है और न कृपाचार्य और न ही हममें से कोई गंगा पुत्र भीष्म हो सकता है। ये लोग महामानव हैं, महारणवीर हैं इन्हे अपमान का विष पीना आता है परन्तु हम साधारण लोग है। इस अपमान के विष को पचा नहीं सकते। युवराज तुम्हे अपने बचाव में कुछ कहना है। दुर्योधन बोला अरे चुप। तू क्या समझता है कि मैं अकेला हूं। मेरा मित्र कर्ण आता ही होगा। गांव का मुखिया चौधरी बोला मैं कर्ण की बात नहीं कर रहा हूं। मैं बात कर रहा हूं मान-अपमान की। मैं बात कर रहा हूं तुम्हारे अपराध की और तुम्हें मिलनेवाले दंड की। मैं जानता हूं कि तुम अनाथ नहीं हो। मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हे दंड मिलने के पश्चात हस्तिनापुर की सैन्य शक्ति हमें जीने नहीं देगी। परन्तु मैं उस मृत्यु का स्वागत करूंगा जो आत्मसम्मान की रक्षा के मार्ग में आयेगी। उस गन्धर्व कन्या का भाई गन्धर्व युवक बोला आप तो अपना निर्णय सुनाइये मुखियाजी। इसने मेरी बहिन का अपमान किया है। दुर्योधन बोला अरे तेरी बहिन का मान ही क्या जो मैं अपमान करूंगा। गन्धर्व युवक बोला दुर्योधन अपमान के इस पेड को मैं काट डालूंगा। गन्धर्वों का चौधरी बोला शान्त हो युवक। न्याय की मांग तो यही है और मैं महाराज धृतराष्ट्र भी नहीं हूं जो अपने हित में न्याय की परिभाषा ही बदल लूं। इसलिये युवराज दुर्योधन यह पंचायत तुम्हे मृत्युदंड देने का निर्णय लेती है।

उसी समय वहां पर दुर्योधन का सेनापति, भीम और अर्जुन सहायता के लिये आ जाते है और ग्राम के उस मुखिया सरपंच को प्रणाम करते हैं। तब गन्धर्वों का वह चौधरी बोला कुन्ती पुत्र भीम तुम। भीम बोला इसने चाहे जो भी अपराध किया हो हम उसके लिये आपसे क्षमा चाहते हैं। वह गन्धर्व युवक बोला इसने मेरी बहिन को छूने का अपराध किया है महारथी भीम और क्या आपके क्षमा मांग लेने से अपमान का घाव भर जायेगा। अर्जुन बोला नहीं युवक। तुम्हारी बहिन मेरी बहिन जैसी है। सुनिये इसके हाथों के बदले मेरे हाथ काट लो बहिन। इसकी आंखों की असभ्यता का दंड मेरी आंखों को दे दो बहिन किन्तु इसे क्षमा कर दो। हम दोनों ही तुमसे क्षमा चाहते हैं युवक। क्षमा करना बहिन। भीम बोला यदि क्षमा प्रार्थना के उपरान्त भी आपने इसे क्षमा नहीं किया और इसके बन्धन नहीं खोले तो फिर आपको हमसे युद्ध करना होगा क्योंकि यही महाराज युधिष्ठिर का आदेश है। मुखिया चौधरी बोले कुन्ती पुत्र भीम तुम किसकी सुरक्षा कर रहे हो ? इस दुर्योधन ने भरी सभा में महारानी द्रौपदी के वस्त्रहरण करने का पाप किया है। उसने कपट से तुम्हारा राजपाट जीत लिया है और फिर भी तुम... अर्जुन बीच में बोल उठा हमारे ज्येष्ठ भ्राताश्री का कहना है कि दुर्योधन फिर भी हमारा भाई है। हम आपसे युद्ध नहीं करना चाहते इसलिये हमारी सुनो और इसे क्षमा कर दो। गन्धर्व युवक बोला हम अपनी मर्यादा के लिये मरने से नहीं डरते कुन्ती पुत्र अर्जुन। तुम भले चाहे अपनी पत्नी का अपमान सहन कर लो परन्तु मैं अपनी बहिन का अपमान सहन नहीं कर सकता। मैं यह भी जानता हूं कि मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता फिर भी मैं तुमसे युद्ध करूंगा क्योंकि यही एक भाई की मर्यादा है।

दुर्योधन वहां पर भीम और अर्जुन को देखकर अपमान से लज्जा और संकोच से गडा जा रहा था। ईर्ष्या से क्रोधित हो रहा था कि ये यहां यह सब देखने क्यों आ गये ? किसने उनको यहां सहायता के लिये बुलवाया। भीम दुर्योधन से सम्बधित हो बोला सुन लिया तुमने। तुम्हारे कारण भरतवंशियों को क्या क्या सुनना पड रहा है ? फिर भी भ्राताश्री का आदेश है कि तुम्हे मुक्त करा कर ही जायेंगे। भीम गन्धर्वों के उस सरपंच से हाथ जोडकर बोला आप मुझसे आयु में बडे हैं। कृपया मुझे यह बताइये कि इसे दंड देने का अधिकार किसे है ? हमें या आपको ? यदि आपने इसे मृत्यु दंड दे दिया तो मेरी उस प्रतिज्ञा का क्या होगा जो मैंने इसके विषय में कर रखी है बताइये ? सरपंच बोला तुम ठीक कह रहे हो इसकी मृत्यु पर तुम्हारा अधिकार हमसे अधिक है। इस दुष्ट की रस्सियां तुम खोल दो। गन्धर्व युवक बोला जो आज्ञा। भीम बोला धन्यवाद गन्धर्वों ने दुर्योधन की रस्सियां खोल उसे मुक्त किया। भीम ने कहा अब हमें आज्ञा दीजिये। भीम और अर्जुन वहां से चले गये। कर्ण और दुशासन शिबिर के सामने अपनी सेना लेकर आये। भीम को वहां से निकलते देख कर दोनों आश्चर्यचकित हो गये। दुर्योधन भी अपमानित होकर सिर झुका कर चुपचाप वहां से चला गया और दिन रात अपमान की ग्लानि से जलने लगा।

हस्तिनापुर वापिस लौट दुर्योधन ने उस सेनापति को अपने कक्ष में बुला कर उस सेनापति से पूछा तुम सहायता मांगने युधिष्ठिर के पास क्यों गये थे ? सेनापति बोला मैं आपका अंगरक्षक हूं। आपकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। दुर्योधन बोला मेरा अपमान करके मेरे प्राणों की रक्षा करोगे तुम। मुझे पांडवों का आभारी बनाकर मेरे प्राणों की रक्षा करोगे तुम। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई और रहा होता तो कुरुवंश के आत्मसम्मान की सौगन्ध मैंने तुम्हारी गर्दन तोड दी होती परन्तु तुम एक सैनिक हो और मैं तुम्हे ऐसी ही मृत्यु देना चाहता हूं जो सैनिक को शोभा देती है। अपना मन चाहा शस्त्र चुन लो। अंगरक्षक- यदि मैंने वहां जाकर कोई अपराध किया हो तो क्षमा चाहता हूं। दुर्योधन बोला **यदि** अपने अपराध से पहले यदि बोलोगे तुम ? तुमने अपराध किया है और मैं तुम्हे तुम्हारे अपराध के लिये क्षमा नहीं करूंगा। कायरों की भांति मरना चाहते हो तो ऐसा कहो। यदि क्षत्रिय की भांति मरना चाहते हो तो शस्त्र उठाओ। अंगरक्षक बोला यह तो आप भलीभांति जानते है युवराज कि मैं कायर नहीं हूं। दोनों ने अस्त्रों में से तलवार उठा ली और अंगरक्षक ने जय माता भवानी कहकर दुर्योधन के साथ तलवार से युद्ध करने लगा। दोनों आपस में पैतरे बदल-बदल कर

युद्ध करने लगे। तलवारें परस्पर टकराने लगी। दुर्योधन की तलवार अंगरक्षक के खून की प्यासी हो रही थी। दुर्योधन ने अंगरक्षक का हाथ काट दिया और क्रोधित हो तलवार छाती में भौंक दी और उसका वध कर दिया।

दुर्योधन क्रोध में आकर विचलित हो आत्मग्लानि से जल रहा था और अपना यह अपमान न सह सकने के कारण आत्महत्या के विचार से वह अपनी तलवार अपनी छाती में भौंकनेवाला ही था कि इतने में कर्ण आया और पीछे से धक्का देकर उसे पकडकर दुर्योधन की जान बचाई। कर्ण बोला नहीं मित्र यह क्या कर रहे हो ? यह क्या ? दुर्योधन बोला हट जाओ मित्र मैं जीवित नहीं रहना चाहता। कर्ण बोला क्यों नहीं जीवित रहना चाहते तुम ? क्या तुम यह सोच रहे हो कि मैं लौटकर तुम्हारी सहायता के लिये नहीं आया था। दुर्योधन बोला यह तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता परन्तु इस कायर के कारण मेरा अपमान हुआ है उसके उपरान्त तो मुझे जीवित रहने का अधिकार ही नहीं है जानते हो यह मेरी सहायता के लिये रस्सियां कटवाने के लिये किसे लेकर आया था। भीम और अर्जुन को लेकर आया था। यह मेरे शत्रुओं को लेकर आया था यह। इस अपमान के साथ मैं जीवित नहीं रह सकता। कर्ण बोला परन्तु अपमान हुआ कहां ? यदि भीम और अर्जुन ने तुम्हारी सहायता की तो यह उनका कर्त्तव्य था। दुर्योधन बोला कर्तव्य। कर्ण ने कहा **अवश्य** । अपने राजा या युवराज की सहायता करना प्रजा का कर्त्तव्य ही तो है। यदि उन दोनों ने तुम्हारी सहायता की तो ऐसा करके उन लोगों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। इसलिये अपमान का तो प्रश्न नही उठता और आज तुम मेरी एक बात पूरे ध्यान से सुनलो मित्र कि आत्महत्या केवल कायर किया करते हैं और तुम कायर नहीं हो, महावीर हो तुम, महारथी हो तुम। आत्महत्या तो पांडव भी नहीं करेंगे क्योंकि वे भी कायर नहीं है इसलिये एक न एक दिन किसी न किसी रणभूमि में हमारा और उनका सामना अवश्य होगा। मैं तो जी रहा हूं उस दिन की प्रतीक्षा में क्योंकि उसी दिन द्रोणाचार्य को यह पता चलेगा कि सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर उसका प्रिय शिष्य अर्जुन नहीं है। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है यह सूतपुत्र।

धृतराष्ट्र अपने राजभवन में बैठा हुआ है, वहीं पर भीष्म और द्रोणाचार्य आते हैं। धृतराष्ट्र उठकर प्रणाम करता है और बोलता है विराजिये तातश्री। विराजिये आचार्य वर। क्या आचार्य का आपके साथ आने का अर्थ यह है तातश्री कि विषय बहुत गम्भीर है। भीष्म बोले कोई विषय गम्भीर नहीं होता महाराज। परिस्थितियां गम्भीर होती है और अगर परिस्थिति यह हो कि गन्धर्वों की एक टोली हस्तिनापुर के युवराज को बन्दी बना ले तो हस्तिनापुर के भविष्य का विषय बहुत गम्भीर हो जाता है महाराज। उसी समय कर्ण, दुर्योधन और दुशासन उस राजसभा में आते हैं। दुर्योधन बोला यदि भेडों का कोई जत्था यदि किसी स्वर्ण सिंह को पलभर के लिये विवश कर भी ले तब भी सिंह सिंह ही रहता है। भीष्म बोले तुम सभ्यता का पहिला अध्याय भी भूल गये हो वत्स कि बडों की सभा में आते ही पहिले उनको प्रणाम करते हैं। दुर्योधन बोला क्षमा चाहता हूं प्रणाम पितामह, प्रणाम गुरुवर। प्रणाम पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला अच्छा हुआ कि तुम आ गये पुत्र। अभी अभी तातश्री और आचार्य तुम्हारे ही विषय में बात कर रहे थे। भीष्म बोले महाराज मैं हस्तिनापुर के विषय में बात कर रहा था। यदि मुझे अपने वत्स दुर्योधन के विषय में बात करनी होती तो मैं अपने पुत्र धृतराष्ट्र को अपने कक्ष में बुला लिया होता। मैं महाराज के पास युवराज के विषय में बात करने आया हूं।

दुर्योधन बोला मुझे भी यही सूचना मिली थी पितामह इसीलिये मैं स्वयं आ गया। भीष्म बोले सूचना मिली थी। सूचना। दुर्योधन बोला अपने और पराये के विषय में सूचना तो रखनी ही चाहिये न पितामह। आप मुझसे बडे है इसलिये आप मेरे विषय में चिंतित रहते है और मैं आपसे छोटा हूं इसलिये मैं भी आपके विषय में चिंतित रहता हूं। कृपया मुझे यह बताइये कि अब मैंने किया क्या है ? द्रोणाचार्य बोले युवराज का गन्धर्वों के हाथ पड जाना राष्ट्र के लिये शुभ समाचार नहीं है। और यह

तो और भी चिन्ता की स्थिति है कि युवराज के परम मित्र अंगराज भी आपको अकेला छोडकर भाग गये थे। कर्ण बोला सूर्य की सौगन्ध यदि यह महाराज का कक्ष न होता और आप आचार्य न होते तो मुझपर भागने का आरोप लगाने के उपरान्त आप एक और सांस लेने के लिये जीवित नहीं रहते। कर्ण तिलमिला गया। द्रोण बोले अंगराज कर्ण तुम अपनी सीमाओं का उल्लंघन मत करो। यह मत भूलो कि तुम आचार्य द्रोण से बात कर रहे हो। असहाय पांडु पुत्रों से नहीं। मैं तुम्हारे एक-एक शब्द का उत्तर अपने बाणों से दे सकता हूं। भीष्म बोले क्रोधित ना हों आचार्यवर। अपने क्रोध की अग्नि पर अपनी लज्जा का पानी डालना सीखो अंगराज कर्ण। यही वीर पुरुष की पहिचान है। तुम भागे या नहीं यह तो तुम जानते हो परन्तु अब यह इतिहास है जब गन्धर्वों ने दुर्योधन को विवश कर दिया था तो तुम और दुशासन दोनों वहां से जा चुके थे। ये कहां की वीरता है ? कहां की मित्रता है ? और तुम भी यह मत भूलो दुर्योधन यदि भीम और अर्जुन वहां न आये होते तो हस्तिनापुर के युवराज पद का स्थान रिक्त हो गया होता। अर्जुन के तूणीर और भीम की गदा का आभार मानो वत्स और जाकर अपने भाइयों को मनाकर वापिस ले आओ। इसी में तुम्हारी और हस्तिनापुर की भलाई है वत्स। अंगराज कर्ण नि:सन्देह वीर है परन्तु अर्जुन फिर भी अर्जुन है। हस्तिनापुर की छाती उसके बाणों को नहीं झेल सकती वत्स। नहीं झेल सकती। कर्ण बोला हस्तिनापुर की छाती और द्रोण शिष्य अर्जुन के बाणों के बीच यह परशुराम शिष्य कर्ण खडा होगा गंगा पुत्र भीष्म। द्रोणाचार्य बोले तुमने अभी तक अर्जुन के बाणों का स्वाद नहीं चखा है अंगराज। कर्ण बोला आचार्य आपको अहंकार शोभा नहीं देता परन्तु यदि आप प्रदर्शन ही चाहते है तो मैं महाराज के चरणों में राज मुकुटों का ढेर लगा सकता हूं और उसके लिये मुझे दिव्यास्त्रों की आवश्यकता भी नहीं है। वीर युद्ध करते हैं आचार्य, तपस्या नहीं। प्रणाम यह कहकर कर्ण वहां से चला गया।

आग न बुझती द्वेष की चाहे बरसे मेघ महान, भीष्म द्रोण दोनों थके दे पाये नहीं ज्ञान।

विदुर हस्तिनापुर लौट आया। कुन्ती को हर समाचार मालूम था। दुर्योधन तो सार्वजनिक रूप से भी कहता था कि पांडव उसके भाई नहीं शत्रु है और शत्रुओं का दमन करना क्षत्रिय राजाओं का धर्म है। कुन्ती अपने जीवन की कडी साधना कर रही थी। साधक अपने सारे बाहरी कर्मों को रोक कर मन में गहरे उतर कर ही कोई महत्वपूर्ण कर्म करता है। ऊपर से वह सर्वथा निष्क्रिय दिखाई देता है परन्तु तल के नीचे अथाह गतिविधि चल रही होती है। वह बाहरी कार्यों को स्थगित कर अपनी शक्ति का संचय करता है। सारे साधनों को एकाग्र कर उन्हें सिद्ध करता है। तपस्वी क्या करता है वो आंखे मूंदकर पालथी मारे बैठे रहता है। कवि अपने भावों को प्रगट करने के लिये शब्दों का चयन करता है। धनुर्धर क्या करता है? एक स्थान पर खडा एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर बाण सन्धान कर रहा होता है। यही तो हर कर्म की साधना है जो दिखाई नहीं देती। पांडव कितने समर्थ, सतर्क और आश्वस्त हैं। युधिष्ठिर परिवार का मुखिया है चिन्तनशील है। वह अपनी सीमाओं को जानता है। तथा वह शत्रुओं को भी कभी कम नहीं आंकता किन्तु शेष चारों पांडव सिंह के समान निर्भीक है। धृतराष्ट्र मूलत: अक्षम और भीरू है। वह छिपकर वार कर सकता है पर सम्मुख युद्ध का साहस नहीं कर सकता। दुर्योधन में तो धृतराष्ट्र के प्राण बसते हैं। वह तो पुत्र मोह में अन्धा है। दुर्योधन कितना भी उदंड क्यों न हो पर वह खुलकर पांडवों पर आक्रमण बिना धृतराष्ट्र की आज्ञा और सहमति से नहीं करेगा। उसको तो बस यह अंगराज कर्ण ही कुछ न कुछ विपरीत दिशा में जाने का परामर्श देते रहता है कि कोई आवश्यक नहीं कि पिता की प्रत्येक आज्ञा का पालन ही किया जाये। कर्ण की अधर्म की ओर अद्भुत प्रवृत्ति है उसमें क्रूरता का तत्व दुर्योधन से तनिक भी कम नहीं है। कर्ण के मन में कहीं बहुत गहरे ये बात घर कर रखी है कि संसार में उसके साथ अत्याचार हुआ है। प्रतिक्रिया उसमें पर पीडन बहुत अधिक हो गई है। दूसरों को पीडा देकर, उन्हे तडफता देखकर कर्ण को बहुत सुख मिलता है। कर्ण गंगा की मां के रूप में पूजा करता है और सूर्यदेव की पिता के रूप में उपासना। दान भी बहुत करता है पर है अहंकारी और

खुद्दार। जहां अहंकार होता है वहां धर्म नहीं रह सकता। ऐसा वह कर्ण क्या धर्म और ईश्वर के निकट जा सकता है जिसके मन में तनिक भी करुणा नहीं वह धार्मिक तो क्या होगा वह वीर भी नहीं हो सकता। मनुष्य वह होता है जो किसी असहाय नारी की लज्जा ढकने का प्रयत्न करे और आवश्यक होने पर अपनी त्वचा भी उधेडकर उसे आवरण दे, वह नहीं जो राक्षसी कृत्य करे। वह धर्मात्मा तो क्या मनुष्य मानने योग्य भी नहीं है। कर्ण लोभी है, स्वार्थी है, क्रूर है, मानसिक रोगी है। कर्ण की पीडा यह है कि उसका कुल अज्ञात है। वह एक द्यूत के घर पला और ईश्वर कृपा से राज सभा तक पहुंच गया। जब कोई अपनी वास्तविकता को नकारने का प्रयत्न करता है तो वह अपने लिये विविध प्रकार के संकट और मनोरोग उत्पन्न कर लेता है।

कुन्ती जानती थी पर अपने पितृकुल और श्वसुर कुल की लाज की रक्षा करने कर्ण उसका पुत्र है किसी को बताया नहीं पर किसी ने भी कुन्ती की व्यथा और पीडा को नहीं जाना। अब वह अपने पुत्र को इस संसार की और नारकीय यातनायें नहीं देना चाहती जिसे वह सहन नहीं कर पाता और मानसिक पीडा से व्याकुल होकर पशु बनते जा रहा है। कुन्ती की कल्पना नई उडाने भरने लगी। वह कर्ण के पास जायेगी और उसे बतायेगी कि वो उसकी मां है। वो कोई सूत पुत्र नहीं, क्षत्रिय कुल जन्मा उसका कानीन पुत्र है। वह देवप्रदत्त पुत्र है। वह सम्राट पांडु का क्षेत्रज पुत्र है। वह कुरुवंशी है इससे कर्ण के मन में उठती ज्वाला शान्त हो जायेगी। वह पांडवों के प्रति शत्रु भाव त्याग देगा और दुर्योधन से विरक्त हो पांडवों से मिल जाये। अन्याय का शिबिर छोडकर धर्म का आंचल थाम ले।

कुन्ती के मन में तरह-तरह की कल्पनायें उठ रही थी कि कुन्ती तुझे कोई अधिकार नहीं है कि पांडवों का राज्य उनसे छीनकर पैरों तले रौंदने के लिये कर्ण को दे दे। कर्ण भले ही शरीर से तेरा पुत्र हो किन्तु मन से तो वह दुर्योधन का ही मित्र है। वह कभी पांडवों का मित्र और तेरा पुत्र नहीं बनेगा। कर्ण तेरा भूतकाल है कुन्ती। भूत को वर्तमान बनाने का प्रयत्न मत कर कुन्ती। कोई नहीं जानता कि कर्ण तेरा पुत्र है किन्तु पांचों पांडव तो तेरे अपने ही पुत्र है। जो तेरा नहीं है उसे अपना बनाने के प्रयत्न में उन सबका सर्वनाश मत कर। एक की उपलब्धि के लिये पांच को दांव पर मत लगा। यह द्यूत मत खेल कुन्ती। एक पुत्र के उद्धार में तू अपने शेष पांच पुत्रों की दासता का अनुबन्ध पत्र तैयार मत कर। कुन्ती की संवेदन शक्ति जैसे समाप्त होने जा रही थी। व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी काल को एक ही बार जी सकता है। जिये हुये काल खंड को फिर से अपने ढंग से जीना कभी सम्भव नहीं होता। जिस कर्ण को कुन्ती ने एक बार त्याग दिया था उसे अब एक नवजात शिशु की भांति अपनी भुजाओं में लेकर वक्ष से लगाना तो कदाचित सम्भव नहीं था। कर्ण अब प्रौढ हो गया है। उसका अपना जीवन है, उसके अपने सम्बन्ध और सम्पर्क हैं। अपनी पसन्द और ना पसन्द है। कर्ण तो राधा का पुत्र है और वह तो वहीं रहना चाहेगा राधेय। काल कभी लौटकर नहीं आता।

जब धुष्टद्युम्न पांडवों से मिला तो उसका अभिमान आहत हुआ था कि इतनी बडी घटना हो गई और पांडवों ने काम्पिल्य में कोई सूचना तक नहीं दी। उसे कुछ क्रोध भी आया कि कष्ट की ऐसी घडी में भी पांडव काम्पिल्य की ओर नहीं मुडे, जैसे पांचालों के साथ उनका कोई सम्बन्ध हीं नहीं हो। उन्हे तो सीधे हस्तिनापुर से काम्पिल्य आ जाना चाहिये था। नहीं जाते वन को तो क्या बिगड जाता ? ऐसे किसी के कह देने भर से कोई अपना राज्य त्यागता है ? चार पांसे फेंके और इन्द्रप्रस्थ का राज्य कौरवों को समर्पित किया तथा स्वयं वन की ओर चले गये। द्रुपद जानते थे कि पांडवों का स्वाभिमान सबसे अधिक मूल्यवान और अडिग है, वे उसपर अटल हैं। युधिष्ठिर ने अगर वनवास का वचन दिया है तो वह अवश्य वन ही जायेगा। धुष्टद्युम्न स्वयं को रोक नहीं पाया और द्रौपदी से बोला क्या तुम्हे अपने इन महावीर पतियों पर तनिक भी क्रोध नहीं आता वे अपना अपमान सहकर भी नपुंसको के समान चुपचाप हस्तिनापुर से चले आये और अब तपस्वी मुनियों के समान बडी शान्तिपूर्वक बैठे जैसे साधना कर

रहे है। द्रौपदी बोली मैंने अपने भाई को यह अधिकार नहीं दे रखा है कि वह मेरे सम्मुख मेरे ही पतियों की निन्दा करे। वे सब कोई साधारण लोग नहीं हैं, वे अपने धर्म पर अटल हैं और मैं अपने धर्मपर दृढ़ हूं। मैं अपने भाई या पिता के द्वारा अपने पतियों का अपमान सहन नहीं कर सकती। धुष्टद्युम्न समझ गया कि द्रौपदी केवल उसकी बहिन ही नहीं पांडवों की पत्नी भी है। पति से अधिक घनिष्ठ और विश्वसनीय और कोई व्यक्ति नहीं होता है यहां तक भाई भी नहीं।

धुष्टद्युम्न ने द्रौपदी को बताया था कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर वन में भी शान्तिपूर्वक रहना चाहें और वन में तपस्वी का जीवन बिताना चाहे तो भी वह दुष्ट दुर्योधन तुम लोगों को वैसे नहीं करने देगा। तुम लोग यहां तनिक भी सुरक्षित नहीं हो। तब द्रौपदी ने कहा था जब तक दुर्योधन जीवित है तब तक ये पांडव कहीं भी सुरक्षित नहीं है। धर्मराज प्रतिशोध के विरुद्ध तो हैं किन्तु प्रतिकार उन्हे अप्रिय नहीं है। धुष्टद्युम्न को पांडव लोग तनिक भी उत्तेजित और युद्ध तत्पर नहीं लगे। उत्तेजना दुर्बलता का लक्षण है। पांडवों का आत्मविश्वास ही उनको शान्त रखता है। धुष्टद्युम्न ने पूछा था कि पांडवों की आगे भविष्य के लिये क्या योजना है ? उसी समय द्रौपदी ने कहा था कि पांडव वासुदेव श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वासुदेव की प्रतीक्षा करना ही श्रेयस्कर और उचित है। अपने उद्यम पर आक्रोश की स्थिति में कोई असावधान कर्म करने से तो अच्छा है कि अपने सुख-दु:ख कृष्ण को समर्पित कर उनके निर्णय की प्रतीक्षा की जाये।

वर्तमान को एक अच्छे माली की तरह अतीत की देखरेख करनी चाहिये। जो पत्तियां हरी हो, जिनकी टहनियों में जान हो उन्हे तो रहने देना चाहिये। बेजान टहनियों को खाद देने से कोई फायदा नहीं। अतीत आदरणीय अवश्य है किन्तु जैसे का तैसे स्वीकारणीय नहीं है। वर्तमान के लिये अतीत का मूल्यांकन आवश्यक है। द्रौपदी को दृष्टान्त मान कर आज पांच भाई एक ही कन्या से विवाह नहीं कर सकते। युधिष्ठिर को दृष्टान्त मान कर आज कोई अपने भाइयों और पत्नी को दांव पर नहीं लगा सकता। अतीत के कोष से कुछ निकालना बडी जोखिम और जिम्मेदारी का काम है। इसीलिये अतीत की बातें ध्यान से सुन ले और भविष्य के लिये मार्ग का चुनाव कर लें।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब भोज, वृष्णि, अन्धक आदि वंशों के यादव, पांचाल युवराज, चेदिकेश नरेश धृष्टकेतु एवं अन्य देश के सगे सम्बधि पांडव को मिलने काम्यक वन में आये वे कौरवों से अत्यन्त चिढकर क्रोध से कौरवों की निन्दा कर अपना कर्तव्य निश्चय करने गये। पांडवों ने यथा अवसर सबका स्वागत सत्कार किया।

८) श्रीकृष्ण का काम्यक वन में पांडवों के पास आना

कृष्ण पांडवों को मिलने वन में उनके शिबिर में आते हैं। अर्जुन बोला वासुदेव आप यहां। कृष्ण बोले इतना दु:खी होने का कोई कारण नहीं है पार्थ। कृष्ण ने युधिष्ठिर को नमस्कार कर बडी खिन्नता से कहा अब यह बात निश्चित हो गई है कि पृथ्वी दुरात्मा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुशासन का खून पीने के लिये प्यासी है। यह सनातन धर्म है कि जो मनुष्य किसी को धोखा देकर सुख भोग कर रहा हो उसे तो मार ही देना चाहिये। अब वे दिन दूर नहीं है जब ये दुष्ट अपने अनुचरों सहित अपने बन्धु-बान्धवों के साथ रणभूमि में मारे जायेंगे और धर्मराज युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठेंगे।

अर्जुन ने देखा कि हमारा अपमान होने से वासुदेव कृष्ण क्रोधित हो गये हैं और अपने काल स्वरूप प्रकट कर तीनों लोगों को भस्म कर देंगे। तब अर्जुन ने उन लोक महेश्वर सनातन पुरुष श्रीकृष्ण को शान्त करने के लिये उनकी स्तुति की। अर्जुन ने कहा तुम लोक संचालन के एक मात्र कारण हो, सब क्षेत्रों में एकमात्र क्षेत्रज्ञ तुम्ही हो। तुम सभी तत्वों और प्राणियों के आदि तथा अन्त हो। तुम तपस्या के आधार नित्य यज्ञ स्वरूप हो। तुम्ही ने इन्द्र को इन्द्र बनाया है। तुम्ही नारायण हो और तुम्ही सब नामों, रूपों, दिशाओं, कालों और वस्तुओं के रूप में प्रकट हो रहे हो। तुम्ही ने सूर्य को प्रकाशित किया है। आप समस्त

प्राणियों के हृदय में विराजमान अन्तर्यामी आत्मा हैं। सारा जगत आप ही से प्रकट होता है और अन्ततः आप ही में विलीन हो जाता है। समस्त तपस्याओं की अन्तिम गति आप ही हैं। आपने जगत में मनुष्यों के उद्धार के लिये ही अवतार ग्रहण किया है। आप ब्रह्मा, सोम, सूर्य, धर्म, धाता, यमराज, अग्नि, वासु, कुबेर, रुद्र काल, आकाश, पृथ्वी और दिशा स्वरूप है। पुरुषोत्तम। आप स्वयं अजन्मा और चराचर जगत के सृष्टा है। आपने विभिन्न प्रकार के सहस्त्रों अवतार ग्रहण करके धर्म विरोधी असुरों का संहार किया हैं। आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं। आप में क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, असत्यता और क्रूरता जरा भी नहीं है फिर कुटिलता तो भले हो ही कैसे सकती है ? सब ऋषि मुनि आपको अपने हृदय में विराजमान दिव्य ज्योति के रूप में जानकर आपकी शरण ग्रहण करते और मोक्ष की याचना करते हैं। प्रलय के समय आप स्वतन्त्रता से समस्त प्राणियों को अपने स्वरूप में लीन कर लेते और सृष्टि के समय समस्त जगत के रूप में प्रकट हो जाते। ब्रह्मा और शंकर दोनों भी आप ही से प्रकट हुये हैं। तुम्ही हम लोगों के रक्षक हो। हमें तुम्हारा ही आश्रय है। हम आपकी शरण हैं। इतना कहते-कहते अर्जुन का कंठ गदगद होकर अवरुद्ध हो गया और आंखों से आंसू बहने लगे। वे आगे कुछ बोल नहीं सके।

इस प्रकार अर्जुन स्तुति कर चुप हो गये तब श्रीकृष्ण बोले अर्जुन तुम एक मात्र मेरे हो और मैं एकमात्र तुम्हारा। जो मेरे है वो सब तुम्हारे है और जो तुम्हारे है वे सब मेरे। जो तुम्हारा प्रेमी है वो मेरा प्रेमी है। तुम नर हो और मैं नारायण। हम दोनों ने निश्चित समय पर अवतार ग्रहण किया है। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे। हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है। हम दोनों एक ही स्वरूप हैं।

कृष्ण बोले द्रौपदी वस्त्राहरण सभ्यता का वस्त्राहरण था, संस्कृति का वस्त्राहरण था, मर्यादाओं का वस्त्रहरण था इसलिये यह दु:ख अकेले तुम्हारा या पांडवों के पांच भाइयों का ही नहीं है। यह दु:ख तो है भूत, वर्तमान और भविष्य का, सारी मानव जाति का। मानव जाति के समुद्र में तुम तो केवल एक बूंद हो पार्थ केवल एक बूंद और कोई बूंद सागर के दायित्व का बोझ तो नहीं उठा सकती। वो चाहे दु:ख हो या सुख। अपने भाग से अधिक नहीं लेना चाहिये पार्थ। अर्जुन बोला इस भयंकर अपमान में मेरा जो भाग है वासुदेव वो भी इतना भारी है कि यदि किसी पर्वत पर रख दूं तो उसके टुकडे हो जाये और आप कहते है कि उसका कोई कारण ही नहीं। इस अपमान का कांटा मेरे हृदय में अटका हुआ हैं वासुदेव जो मुझे न सोने देता है न जगने देता है और बडे भैया युद्ध की आज्ञा भी नहीं देते। वो प्रायश्चित कर रहे हैं वासुदेव। कृष्ण बोले उन्हे प्रायश्चित करना भी चाहिये। ज्येष्ठ भ्राता होने का अर्थ क्या यह है कि वे तुम सबको दांव पर लगा दे। उन्होने जो कुछ भी दांव पर लगाया, उसमें से कुछ भी केवल उनका नहीं था। राज्याभिषेक नि:सन्देह उनका हुआ किन्तु खांडव प्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ बनाने में तुम्हारे सबका हाथ है। राजसूय यज्ञ नि:सन्देह उन्होने किया परन्तु उस यज्ञ का हवन कुंड तुम चारों हो। इसलिये उस राजमुकुट को दांव पर लगाने का उनको कोई अधिकार नहीं था, अब बची द्रौपदी। वो यदि अकेले उनकी पत्नी रही होती तब भी उन्हे उसे दांव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं था। पत्नी सम्पत्ति नहीं होती पार्थ। वह तो जीवन की भागीदारनी होती है। इसलिये उन्हे प्रायश्चित तो करना ही चाहिये और तुम सबको भी युद्ध के लिये व्याकुल होने का अधिकार नहीं क्योंकि ज्येष्ठ भ्राताश्री युधिष्ठिर मर्यादा का उल्लंघन कर रहे थे तो तुम सबका यह कर्तव्य था कि उनका विरोध करते परन्तु यह विरोध द्रौपदी के अतिरिक्त किसी ने नहीं किया। इसलिये अपमान के इस विष को पीते रहो यही तुम्हारा प्रायश्चित है। अर्जुन बोला कोई तो सीमा होगी वासुदेव जिसके आगे यह विष नहीं पीना पडेगा ? मैंने कर्ण को मृत्युदंड देने की प्रतिज्ञा की है। मझले भैया ने दुर्योधन की जंघा तोडने की और दुशासन के लहू से पांचाली के खुले हुये केश धोने की प्रतिज्ञा की है। इन प्रतिज्ञाओं का क्या होगा वासुदेव ? क्या इतिहास प्रतिज्ञा पूरी न करनेवाले कायरों की भीड में खडा करेगा ? बोलो वासुदेव बोलो। कृष्ण बोले अभी भविष्य की चिन्ता मत करो। अभी केवल

अपने वर्तमान के विषय में सोचो। दुर्योधन, दुशासन, शकुनि और कर्ण के लहू पर धरती का अधिकार सिद्ध है पार्थ। ये सब धरती के ऋणी है, वो इनका लहू अवश्य पियेगी। परन्तु मैं यह नहीं चाहता पार्थ कि कल इतिहास तुम पर आक्रमणकारी होने का आरोप लगाये। उन्हे ही पहल करने दो। यह युद्ध तो केवल तब होगा जब शान्ति के सारे मार्ग बन्द हो चुके होंगे ? सारे मार्ग। यह न भूलो पार्थ मैं तुम में हूं और तुम मुझमें। जो कुछ मेरा है वह सब कुछ तुम्हारा भी है। तुम्हारा शत्रु मेरा शत्रु और तुम्हारा मित्र मेरा मित्र। तुम नर हो पार्थ और मैं नारायण और इसीलिये पलट-पलट कर पीछे देखना न तुम्हे शोभा देता है और न मुझे। यदि तुम चाहो भी द्रौपदी का वस्त्राहरण ना हो तो तब भी तुम इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकते पार्थ क्योंकि घटना तो घट चुकी है। अपने इस अपमान के इस विष को मथ डालो पार्थ और भविष्य के लिये इस विष के कलश से अमृत निकालो। अर्जुन बोला तो क्या केवल प्रतीक्षा करूं वासुदेव ? कृष्ण बोले नहीं पार्थ, तैयारी करो। दिव्यास्त्र इकट्ठे करो पार्थ। महादेव को प्रसन्न करो।

उसी समय पांडवों की राजरानी द्रौपदी शरणागत वत्सल कृष्ण की शरण ग्रहण कर उनके पास आकर कहने लगी और मैं क्या करूं? कृष्ण बोले आओ द्रौपदी। द्रौपदी ने वासुदेव कृष्ण को प्रणाम किया। कृष्ण बोले तुम तो स्वयं अग्नि से उत्पन्न हो याज्ञसेनी फिर तुम्हें और किसी अग्नि की क्या आवश्यकता है ? अपमान तुम्हारा नहीं हुआ द्रौपदी। अपमान हुआ है मानवता का, अपमान तो हुआ है स्वयं मेरा। कीचड को छू लेने से धूप तो मैली नहीं हो जाती। तुम तो जीवन की धूप हो। जल, पर्वत, अग्नि, आकाश और धरती का अपमान भला कौन कर सकता है ? तुम सदैव मानव जाति के लिये आदरणीय रहोगी। द्रौपदी बोली हे भक्त वत्सल, हे पुरुषोत्तम तुम दया भी हो और दयालु भी। तुम्ही सत्य हो, शाश्वत अंकुर हो जो संसार की कोख से फूटता रहता है। तुम मार्ग भी हो और लक्ष्य भी। सूर्य तुम्ही से निकलता है और तुम्ही में डूब जाता है।

मैंने असित और देवल मुनि से सुना है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आपने अकेले ही बिना किसी की सहायता के समस्त लोकों का निर्माण किया। महर्षि परशुराम ने भी यही कहा था कि आप अपराजित विष्णु हैं। आप ही यज्ञ, यजमान और यजनीय भी हैं पुरुषोत्तम। सभी ऋषि आपको क्षमा स्वरूप कहते हैं। आप पंचभूत स्वरूप हैं और इनसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञ स्वरूप भी हैं। कश्यप जी ने कहा था आप समस्त देवताओं के स्वामी, सब प्रकार के कल्याणों के सम्पादक, सृष्टि कर्ता और महेश्वर हैं। यह बात नारदजी ने भी कहीं थी। जिस प्रकार बालक अपने खिलौनों के साथ खेलता है वैसे ही आप शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ क्रीडा करते हैं। स्वर्ग आपके सिर से, पृथ्वी आपके चरणों से और सारे लोक आपके उदर से व्याप्त है। आप सनातन पुरुष हैं। वेदाभ्यासी एवं तपस्वी, ब्रह्मचारी, अतिथि गृहस्थ, शुद्धान्त:करण वानप्रस्थ और आत्मदर्शी सन्यासियों के हृदय में सत्य स्वरूप ब्रह्म के रूप में स्फुरित होनेवाले आप ही है। आप युद्ध में पीठ न दिखानेवाले पुण्यात्मा राजर्षियों के एवं समस्त धार्मिकों की परम गति है। आप सबके प्रभु है, विभु है, सर्वात्मा है और आपकी शक्ति से ही सब कर्म करने में समर्थ हो रहे है। लोक, लोकपाल, नक्षत्र मंडल, तारागण, दशों दिशायें, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य ये सभी आप ही में प्रतिष्ठित है। प्राणियों की मृत्यु, देवताओं की अमरता और संसार के समस्त कार्य आप में ही प्रतिष्ठित है। आप समस्त प्राणियों के ईश्वर है। इसलिये मैं आपसे मेरा प्रेम से यह निवेदन प्रस्तुत कर रही हूं। मैं पांडवों की पत्नी, पांचाल युवराज की द्युष्टद्युम्न की बहिन इन्द्रप्रस्थ की पटरानी और आपकी सखी कृष्णा आपसे कह रही हूं।

इसलिये अब मेरी सुनो मैं तुम्हारी सखी कृष्णा हूं और दुशासन मुझे तुम्हारी इस सखी को बालों से पकडकर घसीटता हुआ भरी सभा में ले गया और वहां एकत्रित राजाओं के सामने दुर्योधन ने मुझे दासी और उस सूतपुत्र कर्ण ने मुझे वेश्या कहा। गंगा पुत्र भीष्म की कुलवधू का यह अपमान वो भी ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र के सामने और मैं उन महावीरों को क्या कहूं जिनमें से कोई सर्वश्रेष्ठ गदाधर है और कोई सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है और जिन्होने चुपचाप अपनी पत्नी का यह अपमान सहन किया। धिक्कार है

अर्जुन के गांडीव पर, धिक्कार है भीम की गदा पर जिनके होते हुये कौरवों की सभा में मेरा अपमान हुआ और उन महारथियों ने न कुछ कहा और न ही कुछ किया। सबकी सहायता के लिये खडे हो जानेवाले इन पांडवों में से मेरी सहायता करने के लिये कोई भी नहीं उठा। कौरवों ने बेईमानी से हमारा राज्य छीन लिया और पांडवों को दास बना लिया। मुझ जैसी गौरवशाली एक क्षत्राणी नारी का इस तरह अपमान किया। कितने दु:ख का विषय है। यह कहकर द्रौपदी जोरों से फफक फफक कर रोने लगी।

मैं स्त्री हूं यह सत्य है परन्तु पुरुषों के लिये यह नियम है कि स्त्री पर कोई आपत्ति विपत्ति आ जाये तो वह चाहे कितना भी निर्बल क्यों न हो, प्राणपण से उसकी रक्षा करे। स्त्री के सुरक्षित रहने से ही सुन्दर सन्तान प्राप्ति हो सकती है। स्त्री की रक्षा के बिना पुरुष अरक्षित है। यह वही दुर्योधन है जिसने अजात शत्रु स्वच्छ निश्छल मन पांडवों को उनकी माता सहित हस्तिनापुर से निष्कासित कर कर दिया। इसी ने भीम को विष देकर मार डालने का प्रयत्न किया। भीम की आयु शेष होने के कारण भीम उस विष को पचा गया और दुर्योधन उसे मृत्यु तक नहीं पहुंचा सका। जिस समय मेरी सास कुन्ती अपने पांचों पुत्रों के साथ वारणावत में थी उस लाक्षागृह में आग लगाकर मार डालने की साजिश रची। ऐसा नीच कर्म भला और कौन मनुष्य करेगा? यह सब कहकर द्रौपदी के आंखों से अश्रू धारा बह चली और वह अपना मुंह ढक कर रोने लगी। मैं अब और नहीं सह सकती केशव। सब कुछ मेरे लिये असहनीय हो रहा है। द्रौपदी हिचकियाँ भर कर बोली जिसका कोई न हो उस अनाथ का भी कभी इतना अपमान नहीं होता। हे कृष्ण तुम भी मुझसे उदासीन हो यदि ऐसा न होता तो क्या तुम लोग मेरा यह अपमान सहन कर सकते ? वह दु:ख अब भी मेरी छाती जला रहा है जो कर्ण को उस समय हंसते हुये देखकर हुआ था। कृष्ण तुम्हे चार कारणों से मेरी सदा रक्षा करनी चाहिये। एक तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, दूसरी मैं अग्निकुंड से उत्पन्न हुई हूं इसलिये तुम मेरे सखा हो तुम्हारी गौरवशालिनी सखी हूं। तीसरे तुम्हारी सच्ची प्रेमिका भक्त हूं और चौथे तुम प्रभु हो तुम्हारे पर मेरा पूरा अधिकार है तुम मेरी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो। अब तुम मेरी उपेक्षा नहीं कर सकते।

नैव में पतय: सन्ति न पुत्रा न च बान्धवा, न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन
ये मा विप्रकृतां क्षुद्रैरूपेक्षध्वं विशोकवत, न च मे शाम्यते दु:ख कर्णो यत प्राहसत्रदा
चतुर्भि कारणे: कृष्ण त्वया रक्षयास्मि नियत्श: सम्बन्धाद्वौरवात् सख्यात् प्रभुत्वे नैव केशव।

कृष्ण बोला कल्याणी मैं सब समझता हूं, जिन लोगों ने तुम्हारा अपमान किया है सखी उन सबकी पत्नियां उनके शवों पर इसी तरह जोरों का विलाप करेगी। निश्चय ही कौरव इस पाप का भीषण दंड पायेंगे। धर्म भी कभी उनको क्षमा नहीं करेगा। अर्जुन के बाणों से उनके पतियों का सिर कट जायेगा वे खून से लथपथ हो भूमि पर सो जायेंगे जो कुछ पांडवों के अनुरूप होगा वही मैं करूंगा। तुम शोक मत करो कल्याणी। मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा कर कहता हूं कि तुम राज रानी बनोगी। द्रौपदी चाहे स्वर्गलोक नीचे गिर जाये, हिमालय फट जाये, पृथ्वी के टुकडे-टुकडे हो जाये, समुद्र सूख जाये पर मेरी बात कभी असत्य नहीं होगी कृष्णे। कृष्ण की बात सुनकर द्रौपदी ने टेढ़ी नजर से अर्जुन को देखा तब अर्जुन ने कहा रोओ मत प्रिये। कृष्ण ने जो कुछ कहा है वैसा ही होगा। उसे कोई टाल नहीं सकता।

द्युष्टद्युम्न बोला तुम दु:खी मत हो बहिन। मैं द्रोण का वध करूंगा। भ्राताश्री शिखंडी पितामह भीष्म का वध करेंगे। दुर्योधन का वध भीमसेन के हाथों होगा और प्रिय अर्जुन कर्ण को मृत्यु शैय्या देंगे। बलराम और कृष्ण के आश्रय से हम युद्ध में अजेय है। इन्द्र भी हमारा बाल बांका नहीं कर सकता। धृतराष्ट्र पुत्रों में तो है ही क्या ? इससे द्रौपदी कुछ आश्वस्त हुई उसे लगने लगा मानो कौरवों का संहार हो चुका। द्रौपदी बोली मत नाम लो धर्म का उसके लिये तो धर्मराज युधिष्ठिर ही बहुत हैं। धार्तराष्ट्रों के प्रति मेरे मन में क्या है यह कहने की बात नहीं। द्रौपदी आवेश में आकर बोली धिक्कार है मेरे इन पांच पतियों को, इनके

क्षत्रियत्व को, धिक्कार है इनके शौर्य और युद्ध कौशल को, धिक्कार है अर्जुन के दिव्यास्त्रों को। द्रौपदी अग्नि शिखा सी जल रही थी। ये लोग द्यूतसभा में सिर झुकाये धर्म चिन्तन करते रहे। क्या करूं उस धर्मराज के धर्म का, भीम के बल का और धनंजय के गांडीव का, सहदेव की खड्ग का तथा नकुल की अश्व संचालन क्षमताओं का ? ये सब मिल कर भी अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सके। एक साधारण सा अपंग पुरुष भी अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा के लिये दहाडता है और चिंघाडता है। मेरे उपर हुआ यह अत्याचार मैं कैसे भूल जाऊं केशव ?

कृष्ण बोले तुम भूल भी जाओ तो क्या मैं तो नहीं भूलूंगा। धर्म इसे नहीं भूलेगा, प्रकृति इसे नहीं भूलेगी। प्रकृति कुछ भूलती नहीं है। कौरवों को उनके कृत्यों का फल अवश्य मिलेगा। कौरव दंडित होंगे। द्रौपदी की वाणी फिर से उग्र हो उठी और बोली वासुदेव फिर वही धर्म। धर्म की चर्चा मुझसे मत करो। धर्म के नाम पर ही मुझे चिढ और घृणा जैसी हो गई है। हस्तिनापुर की राजसभा में जो कुछ घटित हुआ वह धर्म के नाम पर ही हुआ। अन्य लोगों का धर्म तो मैं नहीं जानती पर मुझे तो अपना धर्म दिखाई दे रहा है विनाश। युधिष्ठिर बोले केशव यह वितृष्णा धर्म के प्रति नहीं मेरे प्रति है। पांचाली अपने मुख से कहे या ना कहे किन्तु मन से यही मानती है कि अपने और अपने परिवार के सारे कष्टों का कारण मैं ही हूं। सम्भव है मेरे भाई भी यही मान रहे हों कि मैं एक मूर्ख और अविवेकी जुआरी हूं। मेरे भाई अपने धर्म के कारण न मुझे त्याग रहे हैं और न ही मुझे दंडित करते हैं। ज्वालामुखी की गोद में भी निर्मल जल की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो सकती है। अपनी इच्छा, सुख सुविधा पर चलने का नाम धर्म नहीं है। असफल और निराश व्यक्ति अपनी भूल और सीमा को समझने के प्रयत्न करने के स्थान पर धर्म को दोष देने लगता है। नकुल बोला धृतराष्ट्र पुत्रों से यह तय हुआ है कि वे हमें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष के अज्ञात वास में खोज निकालेंगे तो हम पुन: बारह वर्षों के लिये वन चले जायेंगे। यदि वे हमें खोज नहीं पाये तो वे हमें इन्द्रप्रस्थ लौटायेंगे पर मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि लौटने पर या तो इन्द्रप्रस्थ लौटायेंगे ही नहीं या फिर महाराज ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र ज्येष्ठ भ्राता को पुन: द्यूत खेलने का आदेश देंगे। पांचाली और हम सब फिर दांव पर लगेंगे। पांचाली पुन: अपमानित होगी। हम फिर से निर्वासित होंगे। यह धर्म का कौनसा रूप है वासुदेव ?

कृष्ण मधुर स्वर से बोले धर्मराज द्यूत आपका व्यसन तो नहीं है न ही आप द्यूत में इतने आसक्त हैं कि निमंत्रित होने पर आप स्वयं को नियन्त्रित न कर सको और उस समय सत-असत्, धर्म-अधर्म का विवेक ही आपको न रहे। युधिष्ठिर बोला क्या आपने मुझे कभी इन्द्रप्रस्थ में चौपड बिछाये देखा ? मुझे व्यसन ही होता तो इन्द्रप्रस्थ में द्यूतक्रीडा विकसित करने के लिये मुझे कौन रोक रहा था ? बात द्यूतासक्ति की नहीं है बात धर्म की है। धृतराष्ट्र हमारे ज्येष्ठ पिताश्री हैं और उनकी आज्ञा पालन करना हमारा धर्म है।

कृष्ण बोले मेरे मामा कंस और तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र में क्या अन्तर है। कंस ने मेरे पिता के सारे अधिकार और धन सम्पत्ति छीन कर उन्हें कारागृह में डाल दिया। धृतराष्ट्र ने युक्तियों से आपके पिताश्री को हस्तिनापुर से बाहर ही बाहर रखा और उनका राज्य हथिया लिया। कंस ने मेरे भाइयों को जन्म लेते ही मार डाला और धृतराष्ट्र ने आप लोगों को मार डालने के भरसक प्रयत्न कर लिये। यह तो आप लोगों का सौभाग्य था कि आप लोग बार बार बच गये। आपको धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर आने के लिये आमंत्रित किया और आप गये। कंस के निमन्त्रण पर मैं भी मथुरा गया था। धृतराष्ट्र के आदेशानुसार आप द्यूतक्रीडा में सम्मिलत हुये और अपना सर्वस्व हार गये। मैंने भी कंस के आदेशानुसार उसके मल्लों के साथ मल्ल युद्ध किया और मैंने उनका ही नहीं कंस का भी संहार कर दिया तो क्या यह मैंने अधर्म किया ? युधिष्ठिर बोले नहीं नहीं तुम तो अधर्म कर ही नहीं सकते वासुदेव। आपने तो आत्म रक्षा की अपने माता-पिता की रक्षा की, प्रजा की रक्षा की। प्रजा को कंस के अत्याचारों से बचाया। अधर्म तो आपके पास फटकने का साहस ही नहीं कर सकता। कृष्ण बोले धृतराष्ट्र ने मनमाने नियमों से बांधकर आपका सर्वस्व

हरण कर लिया और द्रौपदी का सार्वजनिक रूप से अपमान किया। आप यह सब देखते रहे और समझते रहे कि आप धर्म की रक्षा कर रहे हैं अत: धर्म आपकी रक्षा करेगा। धर्मराज आप क्या कर रहे हैं। यह कोई धर्म नहीं है। इस प्रकार अपमानित होना और वंचित होना धर्म नहीं है। यदि मैं वहां उपस्थित होता तो मैं द्यूत को रोक देता। युधिष्ठिर ने पूछा तो फिर धर्म क्या है वासुदेव? कृष्ण बोले सम्राट आपने धर्म के स्थूल रूप को स्वीकार किया है पर धर्म का मर्म अत्यन्त सूक्ष्म है जिसे आपने अभी तक जाना नहीं है। आप घर को पकडे बैठे है किन्तु उसके भीतर के जल को कभी झांक कर भी नहीं देखा कि वह जल स्वच्छ भी है या नहीं। वह पीने योग्य है या नहीं। किसी विशेष सन्दर्भ में मानवों के किसी समाज विशेष के द्वारा अपनी रक्षा और कल्याण के लिये बनाये गये नियम प्रकृति का धर्म नहीं है। मानव निर्मित जड नियम सृष्टि का सत्य नहीं है। अपने परिवार और उनके हितों की रक्षा करना धर्म है या नहीं ? अपनी पत्नी की रक्षा करना धर्म है या नहीं ? अपनी निर्दोष पौत्र वधू के सम्मान की रक्षा करना पितामह भीष्म का धर्म था या नहीं ? किन्तु आप दोनों ने ही धर्म के स्वरूप को नहीं पहिचाना। आप और पितामह दोनों ही देखते रहे कि आपके विरुद्ध षडयन्त्र रचे जा रहे हैं। किन्तु आप दोनों ही व्यक्तिगत धर्म को अपनी छाती से लगाये होते हुये अन्याय को खुली आंखों से देखते रहे और उसे ही न्याय और धर्म मानते रहे। नारी के अपमान में कैसा धर्म हो सकता है? किसी के सर्वस्व के अपहरण में, किसी को वंचित करने में धर्म कैसे हो सकता है। आप लोग धर्म के बन्धन में बन्धे रहे जबकि धर्म किसी को बांधता नहीं बल्कि मुक्त करता है और जो बांधता है वह मोह है, धर्म नहीं। भीष्म धर्म को सबसे अधिक जानते हैं और वे ही सबसे अधिक बद्ध जीव है वे सदा अपनी इसी धर्म बुद्धि के कारण सदा पाप और अन्याय में प्रवृत होते चले गये। पितामह भीष्म पाप के उपकरण इसलिये हैं जिस समय निसर्ग नियम से उन्हे स्वयं अपना विवाह करना चाहिये था उस समय उन्होने तरूणी युवती सत्यवती से अपने वृद्ध पिता का विवाह करवा दिया। उसी क्षण से कुरुकुल में सब अस्त व्यस्त हो गया। उन्होने पितृ भक्ति की तपस्या को अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया। यह जीवन का एकांगी सत्य था। जीवन का समग्र सत्य नहीं। वह उनके व्यक्तिगत उत्थान के लिये साधना हो सकती है किन्तु समाज का सम्यक धर्म नहीं। एकांगी धर्म समग्र धर्म नहीं होता। एकांगी धर्म अनेक बार अधर्म और पाप का उत्स बन जाता है। पितामह भीष्म ने अपनी व्यक्तिगत साधना के सम्मुख लोक धर्म तथा राज धर्म की सर्वथा अवहेलना की। अपने जीवन के आश्रम धर्म की अवहेलना की। यदि उन्हे आश्रम धर्म के अनुसार अपना जीवन यापन नहीं करना था तो सन्यास ग्रहण वनवास करते तो भी शाायद जन सामान्य की इतनी क्षति नहीं होती। क्या नीति रही उनकी कि परिवार में रहेंगे, शासन के केन्द्र में रहेंगे और शासन सूत्र अपने हाथ में नहीं लेंगे। शासन तन्त्र अधर्म करेगा तो उसका प्रतिवाद नहीं करेंगे ? शासन में हस्तक्षेप न करने की उन्होने प्रतिज्ञा की है। उनका सारा प्रयत्न शासन तन्त्र की रक्षा के लिये होगा। उसके लिये अपने प्राण तक न्यौछावर कर देंगे चाहे शासन तन्त्र कितना ही अत्याचारी क्यों न हो। दुर्योधन के हाथ में शासन है इसलिये दुर्योधन को भी उनका संरक्षण मिल रहा है। आज दुर्योधन के सबसे बडे संरक्षक कर्ण, द्रोण और धृतराष्ट्र ही नहीं स्वयं भीष्म हैं। वे सभा में न आते तो स्थिति कुछ और ही होती। वे सभा में उपस्थित भी रहेंगे और देखेंगे कि कौरव पांचाली का अपमान किस भांति कर रहे हैं और चुप रहेंगे फिर ये क्या पाप और अधर्म नहीं है ? व्यवस्था के भीतर रहकर ही नहीं कभी व्यवस्था का अतिक्रमण करके भी सोचना चाहिये था।

भीष्म दो पीढी पुराने व्यक्ति हैं जिन मान्यताओं को उन्होने एक बार अपने धर्म के रूप में ग्रहण कर लिया है वे उन्ही को जीवन का सत्य और धर्म मानेंगे। न भीष्म को बदला जा सकता है और न ही उनकी मान्यताओं को किन्तु उनकी मान्यताओं के फल स्वरूप ही रहे अधर्म को देखते हुये यही कह सकते कि भीष्म स्वयं चाहे कितने ही धर्मात्मा क्यों न हो किन्तु उनके इस धर्म पालने के कारण अब पाप का पोषण होने लगा। मतभेद का अर्थ कभी अनादर और अवज्ञा नहीं होता। युधिष्ठिर के लिये कोई आवश्यक नहीं था

कि वे धृतराष्ट्र की अनुचित आज्ञाओं का पालन करें। किसी भी धर्म को किसी पर बलात आरोपित करने से यद्यपि धर्म सद्भावना और सदिच्छा से पूर्ण होते हुये भी अधर्म को ही जन्म देता। नारी अपने आप में स्वत: सम्पूर्ण स्वतन्त्र प्राणी है उसकी इच्छा का भी उतना ही महत्व है जितना किसी पुरुष की इच्छा का। स्त्री और पुरुष में भेद केवल शरीर का है आत्मा का नहीं। नारी का मनोवांछित पुरुष ही उसका पति हो सकता है। मनोकूलता के कारण नारी पुरुष सम्बन्ध अपार्थिव प्रेम को जन्म देता है और मन की प्रतिकूलता से यह सम्बन्ध पाप में परिणित हो जाता है। धर्म तो यह है कि दो प्राणियों का प्रेम अलौकिक सत्य है।

अर्जुन ने पूछा मधुसूदन धर्मावतार कर्ण के विषय में आपका क्या विचार है कुछ लोगों की दृष्टि में वह भी धर्म का एक स्तम्भ है। कृष्ण बोले अर्जुन शाश्वत धर्म तो एक ही है प्रकृति और मानवता को बचाना। बाकी सब तो व्यवस्थायें समाज के लिये व व्यक्तिगत है। धर्म कोई वस्तु तो होती नहीं। ये तो ढोंग और दिखावा है। कर्ण प्रतिदिन गंगा में खडे होकर सूर्य उपासना करता है और याचक को दान देने को संसार का सबसे बडा धर्म मानता है। वह कुलवधुओं के अपमान का समर्थन करता है। दुर्योधन और शकुनि जैसे पापियों की संगति में उठ बैठ उनकी सलाह मशवरा से अपना जीवन यापन करता है। भला ऐसा पाप समर्थक व्यक्ति क्या कभी धर्म के मर्म को क्या जानेगा। वह तो केवल धार्मिक होने का स्वांग करता है और अपने मन से यही समझता है कि वही सच्चा धार्मिक है।

तब युधिष्ठिर बोले मैं अभी तक धर्म का अर्थ नहीं जान पाया केशव ? मुझे धर्म का मर्म समझाओ। कृष्ण बोले धर्मराज। अनासक्त विवेक ही धर्म है। अनासक्ति की आवश्यकता। मोह का पूर्ण त्याग। मोह तो किसी के प्रति होना ही नहीं चाहिये, न जाति के प्रति, न सम्बन्धों के प्रति, न सिद्धान्त के प्रति और न ही किसी व्यक्ति के प्रति। धर्म सदेच्छा और सद् परिणाम है। यदि परिणाम शुभ नहीं है तो व्यक्ति को अत्यन्त निर्भय होकर अपनी धर्म व्यवस्था, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था और परिवार व्यवस्था का ठीक से निरीक्षण, परीक्षण, करना चाहिये। आपने अपने धर्म पालन के भयंकर परिणामों को देखकर भी आपने उसकी सत्यता में सन्देह नहीं किया। आप देखते रहे कौरव आपका सर्वस्व हरण कर रहे हैं, आपको निरीह, एवं अपमानित करने के षडयन्त्र रच रहे हैं फिर भी आप उनके साथ द्यूत खेलने बैठ गये क्योंकि आप ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा पालन करना अपना धर्म मानते हैं। आप जानते है कि यदि फिर कभी ऐसी स्थिति आई तो धृतराष्ट्र पुन: आपको आदेश देगा और आप फिर द्यूतक्रीडा में शामिल होंगे। धृतराष्ट्र की अनुचित आज्ञाओं का विरोध करना या उन्हे न पालना कोई अधर्म नहीं है। युधिष्ठिर बोले मैं महाराज के आदेश का तिरस्कार कैसे कर सकता हूं ? वे हमारे ज्येष्ठ पिताश्री हैं। हमारे पिता पांडु की मृत्यु के पश्चात उन्होने ही हमें संरक्षण दिया है।

कृष्ण बोले यदि फिर कभी ऐसा हुआ तो सर्वनाश हो जायेगा। आपके ये भाई स्वार्थवश आपके साथ नहीं है। वे धर्मत: आपके साथ हैं धर्मराज। आपका धर्म उनकी रक्षा करना है, उन्हे द्यूत में हारना नहीं। हम सबने मिलकर इन्द्रप्रस्थ को एक धर्म राज्य मानकर स्थापना की जो मानव कल्याण को अपना लक्ष्य मानता था। आपने अपने मोह से उसे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानकर द्यूत के दांव पर लगा दिया। व्यक्तिगत सम्पति त्याग कर कष्ट पाना किसी के लिये व्यक्तिगत साधना हो सकती है परन्तु किसी के साझे की संपत्ति, कारोबार, राज्य, जनन्यास, जनसम्पत्ति इत्यादि ये सब न तो व्यक्तिगत भोग के लिये होते है और न ही त्याग के लिये। वह राज्य जनहित के लिये था और आप तो केवल उसके संरक्षक मात्र थे। मानव कल्याण के लिये स्थापित वह धर्मराज्य आपने इतनी सुविधा से दुर्योधन को समर्पित कर दिया जो घोषित पापी है, आततायी है। बिना किसी की सम्मति के, बिना किसी से पूछे दांव पर लगवा दिया। वह राज्य आपका व्यक्तिगत तो नहीं था।

विवेकी पुरुष अपने बन्धनों को ज्ञान से काटता है। आप अपने पिताश्री पांडु की मृत्यु के पश्चात अपने छोटे भाइयों और

माता सहित अपने आप को अनाथ मानकर हिमालय क्षेत्र से हस्तिनापुर आये थे तब आपकी समझ बहुत छोटी थी और उसी अपरिपक्व बुद्धि से स्वयं को अत्यन्त तुच्छ, अकिंचन, असहाय और असुरक्षित मान बैठे थे। आपको हस्तिनापुर राज्य के अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं था। उस समय आपने धृतराष्ट्र को देखा वे अवस्था में आपसे बडे थे। सम्बन्ध की दृष्टि से आपके ज्येष्ठ पिताश्री, समर्थ, सम्पन्न राजसी वैभव और गौरवान्वित थे। आप उनको ही अपना आश्रय दाता मान बैठे। उनके आश्रित होने से उनके लिये मन में सम्मान हुआ। उनसे आतंक भी हुआ। आपने मान लिया कि धृतराष्ट्र की प्रसन्नता से ही आप सुरक्षित हैं। उसकी अप्रसन्नता आपके लिये हानिकारक हो सकती है। आपके बाल पन के मन की ये मोहग्रस्त धारणायें आपके हृदय में घर कर गई और इसी से आप धृतराष्ट्र की हर उचित-अनुचित आज्ञा का पालन करना अपना धर्म मान बैठे। आप बडे हुये, समर्थ हुये, स्वतन्त्र सम्राट बन गये, राजसूय यज्ञ कर चक्रवर्ती सम्राट बने फिर भी आपके मन से वे बन्धन ढीले नहीं पडे उन्ही बन्धनों को आप धर्म मान रहे है जिसका परिणाम भुगत रहे है। दुर्योधन के प्रति धृतराष्ट्र का मोह कोई सीमा नहीं जानता। धृतराष्ट्र यह जानते हुये भी कि दुर्योधन दुष्ट, पापी, अन्यायी, स्वार्थी और अधर्मी है उसको रोकना तो दूर उसे अप्रसन्न करने का साहस भी धृतराष्ट्र नहीं करते। धृतराष्ट्र न्यायी और स्वतन्त्र राजा नहीं है वह अपने पुत्र की इच्छाओं के संकेत पर नृत्य करनेवाली कठपुतली है। ऐसे में क्या आपका धर्म उनके स्वार्थपूर्ण वंचना युक्त अनुचित आदेशों का पालन करना है या उनके षडयन्त्रों से अपने और अपने परिवार के भाइयों, पत्नी, माता और अपनी सन्तानों की रक्षा करना? ऐसा न हो कि धर्मराज आपका धर्म पालन के नाम का यह भ्रम न टूटे और आपके भाइयों अथवा आपकी पत्नी को अपनी मर्यादायें तोडनी पडे। तपस्या व्यक्तिगत सत्य है किन्तु धर्म तो सामूहिक सत्य ही होगा। युधिष्ठिर का विवेक जागृत हुआ और वे स्तब्ध से बैठे रहे। कृष्ण ने विस्तार से धर्म की व्याख्या समझायी।

युधिष्ठिर ने पूछा केशव कितना अच्छा होता कहीं आप पहिले आ गये होते। कृष्ण बोले राजन आ सका होता तो अवश्य आ जाता। मेरे सम्मुख भी द्वन्द्व था। शाल्व ने द्वारिका पर आक्रमण कर दिया था और उसी समय यह प्रकरण तुम्हारे साथ हुआ। मैं जानता था कि तुम लोग उस कष्ट को सहकर भी जीवित रह सकोगे और दुर्योधन को उसके किये हुये अत्याचारों के लिये दंडित करोगे और अपना राज्य पुन: प्राप्त कर लोगे। किन्तु उस समय यदि द्वारिका की रक्षा न की होती तो शाल्व द्वारिका को और यादवों को जलाकर क्षार कर देता। उनका पुनर्जीवन, पुर्नवास कठिन था। जब मैं शाल्व का वध कर द्वारिका पहुंचा तो मुझे मालूम पडा कि हस्तिनापुर में कौरवों ने कपट द्यूत में आप लोगों को जीतकर वन के लिये निर्वासित कर दिया है। यदि उस समय मैं द्वारिका में होता तो आपको इतना दु:ख नहीं उठाना पडता। यदि कुरुवंशी मुझे द्यूत में नहीं बुलाते तो तब भी मैं द्यूत के लिये वहां आता और धृतराष्ट्र को इससे होने वाले बहुत सारे दोष समझाता और इस अनर्थ को होने का रोकने का प्रयत्न करता। मैं भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य तथा धृतराष्ट्र को समझा कर कहता राजन अपने पुत्रों को द्यूत मत खेलने दो। द्यूत के दोष से राजा नल को कितनी विपत्ति झेलनी पडी। धर्मराज उसी जुए के कारण तो आप भी आज राज्यच्युत हुये हैं। जुए से बिना समय ही धन सम्पत्ति का नाश हो जाता है। बार-बार पांसे फेकने का ऐसा व्यसन सवार हो जाता है कि जुआरी वहां से उठना ही नहीं चाहता। स्त्रियों से हेलमेल, जुआ खेलना, शिकार का शौक और मद्यपान ये चारों व्यसन हैं दु:ख के कारण हैं। इससे मनुष्य लक्ष्मी से, धन वैभव से भ्रष्ट हो जाता है। जुआ इन सबमें सबसे हानिकारक और सर्वनाशी है। जुए से एक ही दिन में सारी सम्पत्ति चली जाती है। मनुष्य बुरी बुरी आदतों में फंस जाता है। धर्म अर्थ आदि का विना भोगे ही नाश हो जाता है। परस्पर गाली गलौज होने लगती है। मित्रों से सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं। मैं महाराज धृतराष्ट्र को जुए से होनेवाले और बहुत सारे परिणामों से अवगत कराता और वे मेरी बात मानकर द्यूत क्रीडा रूकवा देते जिससे

कुरुवंश का कल्याण होता और धर्म की रक्षा होती। यदि वे मेरी इन हितैषीपूर्ण बातों को नहीं सुनते तो मैं बलपूर्वक उन्हे दंड देकर स्वीकार करा लेता। अब आप अपने ही वचनों के बन्धनों में पड गये हैं। अब कुछ दिनों तक यह कष्ट भोगना ही पडेगा। द्रौपदी तुमने अपने पुत्रों को धुष्टद्युम्न के साथ काम्पिल्य भेजकर अच्छा ही किया। मैं भी सुभद्रा को द्वारिका ले जाऊंगा कि आनेवाले युद्ध को ध्यान में रखते हुये उसके पुत्र अभिमन्यु का पालन-पोषण किया जा सके।

द्रौपदी ने पूछा कृष्ण से पर यह युद्ध होगा ना वासुदेव। कृष्ण बोले मैं चाहता तो नहीं पर फिर भी युद्ध तो होगा। युधिष्ठिर बोले यदि आप नहीं चाहते वासुदेव तो यह युद्ध भला कैसे हो सकता है ? कृष्ण बोले क्या मैंने द्रौपदी का वस्त्राहरण चाहा था बडे भैया ? यही तो कठिनाई कि संसार में सब कुछ मेरे चाहने के अनुसार नहीं होता। यों ही यह युद्ध भी होगा क्योंकि इस युद्ध का निर्णय द्रौपदी के खुले हुये केश ले चुके हैं। इस युद्ध का निर्णय दुर्योधन की ईर्ष्या ले चुकी है। इस युद्ध का निर्णय आपके ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र की उच्चाकांक्षायें ले चुकी है। इसलिये इस युद्ध की तैयारी कीजिये और यह न सोचिये कि आपका सामना केवल दुर्योधन की ईर्ष्या या ज्येष्ठ पिताश्री की उच्चाकांक्षाओं से होगा। यह युद्ध कोई इतना साधारण युद्ध नहीं होगा। सामने की सेना में अपने-अपने रथों पर खडे होंगे गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, रुक्मि, जयद्रथ जैसे महान यौद्धा और स्वयं दुर्योधन भी। यौद्धाओं की इस भीड में दो तो तुम्हारे गुरु है पार्थ और इस आयु में गंगापुत्र भीष्म के बाणों का उत्तर आधुनिक संसार में किसी के पास नहीं है। इसलिये दिव्य अस्त्रों की खोज में निकलो। इन्द्र की तो तुम पर यों भी कृपा है और सारे दिव्य अस्त्र इन्द्र के पास रखे हुये है। तुम्हारे अतिरिक्त वे दिव्य अस्त्र इन्द्र किसी को भी नहीं देंगे। जब तक तुम्हारे पास यह दिव्य अस्त्र नहीं होंगे तब तक तुम्हारी विजय सम्भव नहीं। युद्ध के इन अस्त्रों का प्रयोग हो या ना हो किन्तु तुम्हारे पास इन अस्त्रों का होना आवश्यक है। तुम अपनी तैयारी आरम्भ करो। यह मत समझना कि दुर्योधन चुपचाप बैठा हुआ है वो भी तैयारी कर रहा है।

युधिष्ठिर बोले हे केशव हम १३ वर्ष बाद ही तो युद्ध का निश्चय कर सकेंगे। मैं अपने भाइयों में ज्येष्ठ अवश्य हूं पर वे भी सब बडे हो गये है। उनकी मानसिक और शारीरिक क्षमताओं का विकास हो चुका है। अब उन्हे मेरी इच्छा और आदेश मानने की आवश्यकता नहीं। हम सब स्नेह और समता के आधार पर परस्पर विचार विमर्श कर अपने सामूहिक धर्म का निर्णय करेंगे। कृष्ण बोले धर्मराज आगामी होनेवाले युद्ध में आपने आज पांडवों की विजय निश्चित कर दी।

द्रौपदी ने अपने पांचो पुत्र प्रतिविन्ध, सुतसोम, श्रुतसेन, श्रुतकर्मा और शतानीक इनको धुष्टद्युम्न के साथ काम्पिल्य भेज दिये। नकुल ने अपनी पत्नी करेणुमति को अपने पुत्र निरमित्र को द्युष्टकेतु के साथ शुक्ति मति भेज दिया। भीम ने अपनी पत्नी बलंधरा को अपने पुत्र सर्वंग के साथ काशीराज के यहां काशी भेज दिया।

इस सृष्टि में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसमें कार्यकारण सम्बन्ध हैं। यहां कुछ भी अनर्गल अथवा नियमरहित नहीं हैं। यह पूरी व्यवस्था अत्यन्त सूक्ष्म धरातल पर कार्यकारण के नियम में बंधी हैं। इसके नियम सृष्टा के बनाये हुये हैं जो प्रकृति के आचरण के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होते है। क्रिया की प्रतिक्रिया व्यक्ति की इच्छा के अधीन नहीं स्रष्टा के नियमों के अधीन होती है। धर्म का परिणाम तो शुभ ही होता है। प्रकृति अत्यन्त विराट है। यह मानव बुद्धि के समान सीमित नहीं है। उसकी अपनी काल गणना है। धर्म का फल व्यक्ति की चाह के अनुसार नहीं प्राप्त होता है वह तो उस अवधि में मिलेगा जो प्रकृति ने निर्धारित कर रखी है। माली ने बीज आज बोया और चाहने लगे कि कल तक वृक्ष में परिणित हो जाये तो वो प्रकृति को स्वीकार नहीं। वृक्ष तो प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने समय से ही विकसित होगा। प्रकृति की योजना अत्यन्त विराट है। कई बार मनुष्य की बुद्धि उसे उचित परिप्रेक्ष्य में नहीं देख पाती। प्रकृति कर्म को उसकी समग्रता में देखती है जब कि मनुष्य उस कर्म के एक खंड को कार्यान्वित कर उससे समग्र कार्य का फल चाहता है। तुमने बीज बोया और प्रकृति ने उसे अंकुरित कर दिया। अब

यदि तुम उस अंकुर को जल से नहीं सींचोगे तो वह पल्लवित नहीं होगा मुरझा जायेगा तो फिर तुम यह नहीं कह सकते कि प्रकृति ने तुम्हें उसका फल नहीं दिया। उस अंकुर को सींचने से ही उसका विकास होगा। विकास हो जाने पर यदि तुम उसकी रक्षा न करो और कोई पशु उसे चारा समझकर खा जाये तो आप यह कहने के अधिकारी नहीं हो कि प्रकृति ने तुम्हें तुम्हारे कर्म का फल नहीं दिया। वह पौधा बढकर वृक्ष बन जाये और उसमें फल भी आ जाये और तुम चोरों से उन फलों की रक्षा न कर पाओ तो प्रकृति को दोष नहीं दे सकते कि उसने तुम्हारे श्रम का फल नहीं दिया। कर्म तो निरन्तर सक्रियता का नाम है इसलिये फल की कामना नहीं करो वह तो प्रकृति स्वयं देगी परन्तु मनुष्य भाग्य के भरोसे बैठकर अकर्म में भी प्राचीति न हो अन्यथा प्रकृति उसके लिये दंडित भी करेगी। यदि किसी बीज को उपजाऊ भूमि में बोओगे तो उसका परिणाम भिन्न होगा और पथरीली भूमि में बोओगे तो भिन्न। जैसे एक गेंद को ठोस दीवार पर मारोगे तो वह लौटकर तुम्हारे पास आ जायेगी। वही गेंद यदि रेत के ढेर में मारोगे तो वह वहीं धंस जायेगी और वही गेंद यदि कीचड में मारोगे तो तुमपर कीचड उछलेगा। इसलिये कर्म की प्रतिक्रिया भी अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग होती है। व्यक्ति का लक्ष्य कर्म होना चाहिये कामना नहीं।

कृष्ण वहां पर बैठे सभी लोगों से बोले धर्मराज ऐसे लोग किसी भी प्रकार के शरीर निर्वाह से सन्तुष्ट रहते है। वे वन और राजप्रासाद में एक समान शान्त चित्त होकर रह सकते है। उनमें न ममता है, न अनुरक्ति। वे स्थिर बुद्धि भी भक्तिमान पुरुष हैं। जो व्यक्ति सर्वथा स्वार्थरहित और द्वेष शून्य है, सबसे प्रेम करता है, निस्वार्थ रूप से दयालु है, ममता और अहंकार से रहित है तथा सुख-दु:ख में समान रूप से शान्त रहकर अपना अपराध करनेवालों को भी अभय देता है। कोई भी अभय देता है उससे बडा भक्त और कौन हो सकता है ? धर्मराज न कभी उद्विग्न होते हैं, न किसी को उद्विग्न करते हैं भक्त तो वही है जो सृष्टि के साथ यम हो गया। वह हर्ष और अमर्ष दोनों से रहित है उसके स्वभाव में भय नहीं है। वे न तो भय को ग्रहण करते है और न ही प्रेरित। ऐसे भक्त हैं धर्मराज युधिष्ठिर। उनमें न कोई आकांक्षा है और न ही किसी प्रकार का उद्योग उद्यम। धर्मराज सांसारिक आकांक्षाओं से सर्वथा मुक्त हैं, उनका अन्त:बाह्य शुद्ध व सात्विक है। उनकी प्रज्ञा स्थिर हो चुकी, वे शत्रु और मित्र में भेद नहीं करते। उनके लिये मान और अपमान में कोई अन्तर नहीं है। सुख-दु:ख, हिम-ताप शीत-उष्ण जैसे द्वन्द उन्हे पीडित नहीं करते। उन्होने अनुरक्ति को त्याग दिया तो ये प्रकृति जन्य द्वन्द उनके मन में उद्वेग कैसे उत्पन्न कर सकते ? धर्मराज अपने भाइयों से प्रेम करते हैं किन्तु उनके ममत्व का इतना विस्तार हो चुका है कि वे अपने शत्रुओं से भी प्रेम करते हैं, वे उन्हे अपना शत्रु भी नहीं मानते। इतना अपमान सहकर भी उन्हें दुर्योधन पर क्रोध नहीं आता। युधिष्ठिर में आसक्ति है वंश के प्रति। त्याग का तो आरम्भ ही अहंकार त्याग से होता है। युधिष्ठिर में अहंकार लेशमात्र भी नहीं है।

भीष्म श्रेष्ठ योद्धा हो सकता है किन्तु श्रेष्ठ मानव तो युधिष्ठिर ही हैं। युधिष्ठिर ने आज तक कौरवों के इस महानाश को टाला है। भीष्म दर्प की मूर्ति है और युधिष्ठिर में दर्प नाम का भी नहीं। युधिष्ठिर विनीत है, करुणायुक्त है। युधिष्ठिर सात्विक है, धार्मिक है, न्याय उनके पक्ष में है, शक्तिशाली है।

कृष्णने युधिष्ठिर आदि को समझाकर सबसे यथायोग्य मिलकर द्वारिका के लिये हस्तिनापुर से विदा ली। कृष्ण के वियोग से द्रौपदी को बडा दु:ख हुआ। सभी सगे सम्बन्धी चले गये। द्रौपदी के साथ पांडव वहां पर निवास करने लगे। जिनका धर्म से प्रेम है वे कैसी भी परिस्थिति आ जाये धर्म उनका साथ नहीं छोडता। वे स्वयं आश्रयहीन होने पर भी दूसरों के आश्रय देते है। वे स्वयं उपकार के पात्र होने पर भी दूसरों का उपकार करेंगे। जो सर्वदा दूसरों को देते चले आये है वे अपने पास कुछ न रहने पर भी दूसरों को कुछ न कुछ देते ही है। इसके ठीक विपरीत जो अधर्म से प्रेम करते हैं और अन्याय को प्रश्रय देते हैं, परपीडन में उत्साह रखते है वे चाहे कितनी ही अच्छी परिस्थिति में पहुंच जाये वे अपनी दुष्टता कभी नहीं छोडते।

९) द्वैतवन में पांडवों का निवास, मार्कण्डेय मुनि और दाल्भ्य का उपदेश

पांडव वन में निवास कर रहे थे फिर भी उनका जीवन तपस्वियों का सा तपस्या पूर्ण शुल्क तथा नीरस नहीं था। धुष्टद्युम्न, कृष्ण इन सबके आ जाने से वन में भी समारोह सा हो गया था। वहां इतने लोग थे इतना आवागमन था निरन्तर विचार विमर्श चल रहा था। विविध प्रकार की गतिविधियां थी तथा नित्य नूतन कार्यक्रम चलते रहते थे ऐसे में पांडवों का जीवन तपस्या और साधना का जीवन कैसे हो सकता था किन्तु अब जैसे उस समारोह का अवसान हो गया हो। धौम्य मुनि अपनी तपस्या में लग गये और पांडव अन्तर्मुखी हो अपने अपने भीतर झांक कर आत्म विश्लेषण करने का प्रयत्न करने लगे। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय कृष्ण के द्वारिका चले जाने के पश्चात वेद वेदांग वेत्ता पांडवों ने ब्राह्मणों को बहुत सा दान देकर अगले वन के लिये प्रस्थान किया। उस वन के सभी नागरिक धर्मराज युधिष्ठिर के पास आये। उस समय राजा और प्रजा दोनों ही आपस में पिता पुत्र के समान व्यवहार कर रहे थे। सारी प्रजा बोली हे धर्मराज आप हम लोगों को अनाथ क्यों छोडे जा रहे हो ? आप कुरुवंशियों में श्रेष्ठ और हमारे स्वामी हैं। आप इस देश तथा देशवासियों को छोडकर कहां जा रहे हैं ? क्या पिता अपनी सन्तान को कभी इस भांति अनाथ करता है? उन क्रूरबुद्धि कौरवों दुर्योधन, शकुनि और कर्ण को धिक्कार है जिन्होने आप जैसे महात्मा महापुरुष को कपट द्यूत में छलपूर्वक हराकर दु:खी किया। आप अपने ऐश्वर्य पूर्ण इन्द्रप्रस्थ को छोडकर वन में आये। तब अर्जुन ने कहा उपस्थित सज्जनों हम वन में निवास करने के पश्चात इन्द्रप्रस्थ वापिस चले जायेंगे। तुम लोग अपने धर्मानुसार सत्पुरुषों की सेवा कर उन्हे प्रसन्न रखना और उन्हे अपने घर लौट जाने के लिये कहा। लोगों ने अर्जुन की बात स्वीकार की और लौट गये।

प्रजा के चले जाने पर सत्यप्रतिज्ञ धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा हमें १२ वर्ष तक निर्जन वन में रहना है इसलिये जहां कन्दमूल फल अधिक हो, रमणीय स्थल और सुखदायक हो, जहां ऋषियों के पवित्र आश्रम हो ऐसे वन में जाना चाहिये। तब अर्जुन बोले आपने बडे-बडे ऋषि मुनियों की सेवा की है मनुष्य लोक की कोई भी वस्तु आपके लिये अज्ञात नहीं है इसलिये आप जैसी आज्ञा दें वहीं निवास करेंगे। अब इसके आगे जो वन पडेगा उसका नाम द्वैतवन है। उसमें पवित्र जल से भरा सरोवर है। रंग बिरंगे फूल खिल रहे हैं और पर्याप्त मात्रा में कन्दमूल फल भी हैं। वह वन पक्षियों के कलरव से दिन रात परिपूर्ण है। युधिष्ठिर बोले अर्जुन मेरी भी यही सम्मति है कि हम लोग द्वैतवन में चलकर निवास करें।

परस्पर निश्चय हो जाने के पश्चात पांडवों ने अग्निहोत्र सन्यासी स्वाध्याय शील भिक्षुक, वानप्रस्थ तपस्वी, व्रती महात्मा ब्राह्मणों के साथ द्वैतवन में प्रवेश किया। वहां धर्मात्मा तपस्वी एवं पवित्र गुणों से युक्त आश्रमवासी धर्मराज के पास आये। धर्मराज ने भी सबका यथा योग्य सत्कार किया। वहां रहकर धर्मराज समस्त अतिथि अभ्यागत ऋषि मुनि और ब्राह्मणों को तृप्त कर बडी-बडी इष्ट सिद्धियां, श्राद्ध कर्म, शान्ति पौष्टिक क्रियायें धौम्य मुनि के निर्देशानुसार करने लगे। समृद्धि शाली पांडव अब द्वैतवन में निवास करने लगे। इन्ही दिनों परम तेजस्वी महामुनि मार्कण्डेय पांडवों के आश्रम पर पधारे। धर्मराज ने उनका विधिपूर्वक स्वागत सत्कार किया। मार्कण्डेय मुनि पांडवों की यह दशा देखकर मुस्कुरा रहे थे तो युधिष्ठिर ने पूछा ऋषिवर मुझे इस दशा में देखकर अन्य ऋषिगण संकोच के मारे मुझे कुछ नहीं कह रहे हैं और आप मुझे देखकर मुस्कुरा रहे हैं इसका क्या अभिप्राय है। तब मार्कण्डेय मुनि बोले नहीं युधिष्ठिर मैं तुम्हे इस दशा में देखकर मुस्कुरा नहीं रहा हूं बल्कि प्रसन्न हो रहा हूं। तुम लोगों को इस दशा में देखकर मुझे भगवान श्रीराम का चरित्र स्मरण हो आया कि उन्होने अपने पिताश्री महाराज दशरथ की आज्ञा से एक धनुष बाण लेकर सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास किया था। मैंने उन्हे ऋष्यमूक पर्वत पर देखा था। श्रीराम इन्द्र से भी अधिक शक्तिशाली, यमराज को भी दंड देने की क्षमता रखनेवाले महामनस्वी और निर्दोष थे फिर भी पिता की आज्ञा स्वीकार कर वनवासी हुये और अपने धर्म का पालन किया। इससे लगता है मनुष्य को कभी भी यह नहीं सोचना चाहिये कि मैं बडा बलवान हूं और ऐसा समझकर कभी भी अधर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। भारतवर्ष में बडे-बडे राजा महाराजा जैसे राजा

नाभाग, भगीरथ आदि ने सत्य के बल पर ही पृथ्वी का शासन किया था धर्मराज। इस समय जगत में तुम्हारा यश और तेज दैदीप्यमान हो रहा है। तुम्हारी धार्मिकता, सत्यनिष्ठा, सद्व्यवहार सभी उससे प्रसन्न है। यह सत्य है कि तुम्हारी वनवास तपस्या की अवधि के पश्चात तुम अपनी राज्य लक्ष्मी पुन: प्राप्त करोगे। इस प्रकार महामुनि मार्कण्डेय पांडवों से और धौम्य मुनि से अनुमति लेकर उत्तर दिशा की ओर चले गये।

उस वन में चारों ओर वेद ध्वनि गूंजती थी जिससे वह वन ब्रह्मलोक जैसा प्रतीत होता था। एक दिन दाल्भ्यबक मुनि ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा इस समय सायंकाल में द्वैतावन के आश्रमों में सब ओर तपस्वी, ब्राह्मणों की यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो रही है। महर्षि भृगु, अंगिरा वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य और अत्रि सभी उत्तम उत्तम तपस्वी ऋषि मुनि, ब्राह्मण इस पवित्र वन में इकट्ठे हुये हैं और तुम्हारे संरक्षण में सुख-सुविधा से अपने-अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। अब मैं तुम्हें बताता हूं कि हे राजन जब ब्राह्मण और क्षत्रिय मिल जुलकर काम करते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं तब उनकी उन्नति और अभिवृद्धि होती है। वे मिलजुलकर अग्नि और पवन के समान शत्रुओं के वन के वन झुडों का विनाश कर डालते है। बिना ब्राह्मणों का आश्रय लिये बहुत समय तक प्रयत्न करने पर भी किसीको इस लोक और परलोक की प्राप्ति नहीं होती। धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के ज्ञान से ब्राह्मणों का साथ लेकर ही राजा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। राजा बलि का भी अभ्युदय ब्राह्मणों की सहायता से ही हुआ। ब्राह्मण की अनुपम दृष्टि होती है और क्षत्रिय में अनुपम बल। ये दोनों जब मिल जाते है तब जगत में सुख समृद्धि की अभिवृद्धि होती है। इसलिये विद्वान पुरुष को चाहिये कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की वृद्धि के लिये ब्राह्मणों की सेवा कर उनसे ज्ञान प्राप्त करे। राजन तुम तो सदा सर्वदा ब्राह्मणों के हित में उत्तम व्यवहार करते हो इसीलिये तुम लोक में यशस्वी हो। धर्मराज युधिष्ठिर ने भी बडी प्रसन्नता के साथ दाल्भ्यबक मुनि के उपदेश का अभिनन्दन किया तब महात्मा वेदव्यास, नारद, परशुराम, पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न, भालुकि, हारित, अग्निवैश्य आदि बहुत से परमर्षियों ने दाल्भ्यबक और धर्मराज युधिष्ठिर का सम्मान किया।

१०) युधिष्ठिर और द्रौपदी का सम्वाद, क्षमा, निष्काम धर्म और क्रोध की व्याख्या

एक दिन सन्ध्या के समय द्रौपदी अत्यन्त खिन्न मन शोक ग्रस्त हो पांडवों को खाना परोस रही थी। युधिष्ठिर ने पूछा उदासी का क्या कारण है पांचाली ? पांचाली बोली अचानक हस्तिनापुर से वनवास के लिये निकलने का दृश्य याद आ गया। उस दिन हस्तिनापुर में केवल चार आंखे ही ऐसी थी जो भीगी हुई नहीं थी। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और विषैला दुशासन। नकुल बोला वो आश्चर्य क्यों ? वो आंखे तो भीगना जानती नहीं। उनके हृदय तो वज्र के हैं। सहदेव ने कहा वो तो यह सोच सोचकर आनन्द ले रहे होंगे कि हम पत्तल पर खाते हैं और पुआल पर सोते हैं। द्रौपदी बोली तुम लोगों की यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती। युधिष्ठिर बोले चाहे देखी जाये या ना देखी जाये किन्तु यह दशा तो है और यह दशा १३ वर्ष रहनेवाली है। यदि तुम्हारी आंखे अभी से दुखने लगी हो तो काम्पिल्य चली जाओ। इन १३ वर्षों के बीते ही हम तुम्हें वापिस बुला लेंगे। द्रौपदी बोली मैं अपने जाने की बात नहीं कर रही धर्मराज। मैं तो केवल शोक मना रही थी उस क्रूर अग्नि का जो तुम लोगों के भीतर बुझ चुकी हैं। दुर्योधन बडा ही क्रूर और दुरात्मा है। हम लोगों को दु:खी देखकर तनिक भी दु:खी नहीं हुआ। अवश्य ही उसका हृदय फौलाद का बना हुआ है जिसने हम लोगों को तपस्वी बनाकर वन में भेज दिया परन्तु उसे रत्ति भर भी पश्चाताप नहीं हुआ। एक तो उसने कपट द्यूत में जीत लिया फिर आप जैसे सरल और धर्मात्मा पुरुष को भरी राजसभा में कठोर वचन कहे। वह तो अपने मित्रों के साथ बडे मजे और मौज उडा रहा होगा। जब मैं देखती हूं कि आप कुश की शैय्या पर सो रहे हैं तो मुझे आपका सोने का हाथीदांत का सिंहासन याद आ जाता है और यह देखकर मेरी आंखों से आंसू निकलने लगते है। आज आप इस घोर जंगल में भटक रहे हैं। मुझे भला कैसे शान्ति मिल सकती है। आपके महलों में प्रतिदिन हजारों ब्राह्मणों को इच्छानुसार भोजन कराया जाता था और आज आप लोग फल मूल खाकर अपना जीवन निर्वाह कर रहे है। मेरे प्रिय पति भीम वनवासी

और दु:खी है। यह सब देखकर भी आपके चित्त में क्रोध क्यों नहीं उमड रहा है? मैंने तुम लोगों को कभी आपस में युद्ध की बातें करते नहीं सुना। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता ये तो हिम की एक शिला है जो अपनी पत्नी के अपमान से भी न पिघलते है और न ही अपने अनुजों की दुर्दशा से। भीम तो अकेले ही रणभूमि में सब कौरवों का संहार करने का उत्साह रखते हैं। परन्तु धर्मराज का रूख न देखकर अपना मन मसोस कर रह जाते हैं। गांडीव धारी अर्जुन की दो भुजायें हजार भुजाओं वाले कार्तवीर्य अर्जुन की भांति बलशाली हैं इन्ही के अस्त्र-शस्त्र कौशल से आश्चर्यचकित होकर बडे-बडे राजा महाराजा शूरवीर, यौद्धा आप श्री के चरणों में प्रणाम करते है और ब्राह्मणों की तथा यज्ञ में सेवा करते हैं। वही देवताओं और दानवों के पूजनीय शार्दूल अर्जुन आज बनवासी बने है। आप लोगों के चित्त में क्रोध क्यों नहीं उदय होता?

कहां गया तुम लोगों का क्रोध जो क्षत्रिय की पहचान है ? सांवला रंग, विशाल शरीर, हाथों में ढाल तलवार और वीरता में अप्रतिम ऐसे नकुल और सहदेव को वनवासी देखकर आप सब क्यों चुप हो रहे हैं ? राजा द्रुपद की पुत्री, महात्मा पांडु की पुत्र वधू, धुष्टद्युम्न की बहिन, पांडवों की पतिव्रता पत्नी, इन्द्रप्रस्थ की पटरानी मैं आज वन-वन भटक रही हूं इसलिये आपकी सहनशक्ति को ही धन्य है कि आप में क्रोध समा ही नहीं गया। जिसमें क्रोध और तेज न हो वह कैसा क्षत्रिय। जो समय आनेपर अपना तेज और साहस नहीं प्रकट करे उसका तो सभी प्राणी तिरस्कार करते है। शत्रुओं से तो क्षमा नहीं अपने प्रताप के अनुरूप व्यवहार करना चाहिये। दुष्टों के लिये क्रोधित होना भी धर्म है। द्रौपदी ने कहा राजन पूर्वकाल में राजा बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा था कि पितामह क्षमा उत्तम है या क्रोध तब प्रह्लाद ने कहा था क्षमा और क्रोध दोनों की एक ही व्यवस्था है। न सर्वदा क्रोध उचित है और न ही क्षमा। जो पुरुष सर्वदा क्षमा करते जाते है उनके सेवक, पुत्र, दास और उदासीन वृति के पुरुष भी कटु वचन कहकर तिरस्कार करने लगते है, अवज्ञा करने लगते है। धूर्त पुरुष क्षमाशील व्यक्ति को दबाकर उसकी स्त्री को बलात हडपना चाहते है। स्त्रियां भी स्वेच्छानुसार बर्ताव करने लगती है और पतिव्रत धर्म से भ्रष्ट होकर अपने पति का अपकार अपमान करने लगती है। इसके अतिरिक्त जो पुरुष कभी क्षमा नहीं करता, हमेशा क्रोधित ही रहता है वह क्रोध के आवेश में आकर बिना सोचे विचारे सब को रुष्ट कर देता है। वह मित्रों का विरोधी और कुटुम्ब का शत्रु बन जाता है। सब ओर से अपमानित होने लगता है और उसके धन की हानि होने लगती है। चारों तरफ से दुत्कार मिलने लगती है। क्रोधी व्यक्ति के मन में सन्ताप, ईर्ष्या और द्वेष बढने लगते है। इससे उसके शत्रुओं की वृद्धि होती है। वह क्रोध वश किसी को भी अन्यायपूर्वक दंड दे देता है, उसके फल स्वरूप ऐश्वर्य, स्वजन और अपने प्राणों से भी उसे हाथ धोना पडता है। जो सबसे रोब दाब से मिलता है लोग उससे डरने लगते है। उसकी भलाई नहीं करते लोग और उसमें दोष देख कर चारों ओर निन्दा करते है। इसलिये न तो हमेशा उग्रता का बर्ताव करें राजन और न ही हमेशा सरलता का। समय के अनुसार उग्र और सरल बन जाना चाहिये। जो समय के अनुसार सरलता और उग्रता को धारण करता है उसे इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिर बोला क्रोध की भी अपनी मर्यादा होती है पांचाली। क्रोध कोई नेत्रहीन के हाथ से चलनेवाला वो पत्थर नहीं है जिसकी दिशा नियुक्त नहीं होती। क्रोध को अनाडी के धनुष बाण नहीं होना चाहिये। उसे तो अर्जुन का बाण होना चाहिये कि धनुष से निकले तो लक्ष्य को भेद कर दे। क्रोध को सभ्य होना चाहिये। व्यक्ति को अन्धा कर देने वाला क्रोध न तो ढाल बन सकता है और न तलवार। अनुज दुर्योधन को ईर्ष्या ने अन्धा कर दिया है। क्या तुम यह चाहोगी कि हम अपनी आंखों में क्रोध की धूल झौंककर अन्धे हो जाये। कभी-कभी जल की भांति क्रोध को पी जाना ही उचित होता है पांचाली। अब तुम्हे मैं क्षमा करने का अवसर बतलाता हूं। यदि किसी मनुष्य ने पहले उपकार किया हो फिर उससे कोई बडा अपराध बन जाये तो पहिले के उपकार को देखकर उसे क्षमा कर दे। यदि कोई मनुष्य मूर्खता वश भी अपराध कर दे तो उसे भी क्षमा कर देना चाहिये। क्योंकि सभी लोग सब कामों में चतुर नहीं होते। जो लोग जान बुझकर अपराध करते है तो उन्हे थोडा अपराध करने पर भी पूरा दंड देना

चाहिये। कुटिल व्यक्तियों को कभी क्षमा नहीं करना चाहिये। पहली बार का अपराध तो चाहे किसी का भी हो क्षमा कर देना चाहिये परन्तु दूसरी बार दंड अवश्य देना चाहिये। मृदुलता से उग्र और कोमल दोनों प्रकार के पुरुष वश में किये जा सकते है। मृदुल पुरुष के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है इसलिये मृदुलता ही श्रेष्ठ साधन है। अत: देश काल, सामर्थ्य और निर्बलों पर पूरी तरह से विचार कर मृदुलता और उग्रता का व्यवहार करना चाहिये। कभी-कभी तो भय से भी क्षमा करनी पडती है। जो इस प्रकार कही बातों के प्रतिकूल बर्ताव व व्यवहार करता है तो उसे क्षमा न करके क्रोध से काम लेना चाहिये। द्रौपदी ने कहा राजन धृतराष्ट्र के पुत्र अपराध पर अपराध करते जा रहे हैं। उनका लालच असीम है। अब उनपर क्रोध करने का समय आ गया है, आप उन्हे क्षमा न करके उनपर क्रोध कीजिये।

युधिष्ठिर बोले कल्याणी मनुष्य को क्रोध के वश में न होकर क्रोध को अपने वश में करना चाहिये। जिसने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली वह तो कल्याण भाजन हो गया। क्रोध के कारण मनुष्यों का नाश प्रत्यक्ष होता दिखता है। मैं अवनीति के हेतु क्रोध के वशीभूत कैसे हो सकता हूं ? क्रोधी व्यक्ति पाप करता है यहां तक कि गुरुजनों का भी वध कर डालता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों और कल्याणकारक पुरुषों का भी तिरस्कार कर देता है उसके फल स्वरूप स्वयं विपत्ति में आ पडता है। क्रोधी मनुष्य क्रोध के आवेग में यह नहीं समझता कि उसे क्या कहना चाहिये और क्या नहीं ? जो मन में आया बक डाला, जो चाहे कर डाला। वह मार डालने योग्य की पूजा मान सम्मान करने लगता है। कभी-कभी तो क्रोध के आवेश में अपन आत्महत्या कर अपने आपको नरक में डाल देता है। क्रोध दोषों का घर है। बुद्धिमान पुरुषों ने अपनी लौकिक उन्नति, पारलौकिक सुख और मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्रोध पर विजय प्राप्त की है। क्रोध के दोष गिने नहीं जा सकते। यह सब सोचने विचारने से मेरे चित्त में क्रोध नहीं आता। जो मनुष्य क्रोध करनेवाले पर भी क्रोध नहीं करता, क्षमा करता है, वह अपनी और क्रोध करनेवाले की महासंकट से रक्षा करता है। वह तो दोनों का रोग दूर करनेवाला चिकित्सक है। झूठ बोलने की अपेक्षा सच बोलना श्रेयस्कर है। क्रूरता की अपेक्षा मृदुलता उत्तम है। क्रोध की अपेक्षा क्षमा श्रेष्ठ है। यदि दुर्योधन मेरा वध भी कर दे तो भी मैं अनेक दोषों से भरे और महात्माओं से परित्यक्त क्रोध को कैसे अपना सकता हूं। जिसे तेजस्वी कहते हैं उन तत्वदर्शी पुरुष में क्रोध होता ही नहीं। जो कोई अपने क्रोध को ज्ञान दृष्टि से शान्त कर देते है उन्हे ही तेजस्वी समझना चाहिये। क्रोधी मनुष्य जब अपने कर्त्तव्य को ही भूल जाता है तब उसे कर्त्तव्य अथवा मर्यादा का ध्यान कैसे रह सकता है ? क्रोधी पुरुष अवध्य प्राणियों को मार डालता है, गुरुजनों को मर्मभेदी वचन कहता है। इसलिये अपने में तेज हो तो पहिले क्रोध को अपने वश में करना चाहिये। काम करने का कौशल, शत्रुपर विजय प्राप्त करने के उपाय का विचार, विजय प्राप्त करने की शक्ति और स्फूर्ति तेजस्वी व्यक्ति के गुण है। ये गुण क्रोधी मनुष्य में नहीं रह सकते। क्रोध के त्याग से ही इनकी प्राप्ति होती है। क्रोध तो मनुयों की मृत्यु ही है, इसलिये क्रोध छोडकर शान्त रहना चाहिये। एक बार अपने धर्म से भी च्युत हो जाना अच्छा है परन्तु क्रोध करना अच्छा नहीं। समझदार व्यक्ति कभी भी क्षमा को नहीं त्याग सकता। मनुष्यों में यदि क्षमाशीलता न हो तो सब लोग आपस में लड झगडकर मर मिट जाये। एक दु:खी दूसरे को दु:ख दे। दंड देनेवाले गुरुजनों पर भी प्रहार करने को उद्यत हो तब तो कहीं धर्म रहे ही नहीं, प्राणियों का नाश हो जाये ऐसी अवस्था में क्या होगा ? गाली के बदले में गाली, मार के बदले में मार, तिरस्कार के बदले में तिरस्कार। पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, पति पत्नी को और पत्नी पति नष्ट करेगी। तब कोई मर्यादा, कोई व्यवस्था, कोई सौहार्द न रहे। जो गाली देने पर भी, मारने पर भी क्षमा करता है, क्रोध को वश में करता है, वह उत्तम विद्वान है। क्रोधी मूर्ख है, नरक का भागी है। महात्मा कश्यप ने कहा है कि क्षमा ही धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा ही स्वाध्याय है। जो व्यक्ति क्षमा के इस सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को जानता है वह सब कुछ क्षमा कर सकता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही भूत और भविष्य है। क्षमा तप है, क्षमा पवित्रता है। क्षमा ने ही इस जगत को धारण कर रखा है। याज्ञिकों को जो लोक प्राप्त होते हैं उनसे भी ऊपर के लोक क्षमावानों को मिलते है।

वेदज्ञों को, तपस्वियों को और कर्मनिष्ठों को दूसरे दूसरे लोक मिलते है। क्षमा तेजस्वियों का तेज है, तपस्वियों का ब्रह्म है और सत्यवानों का सत्य है। क्षमा ही लोकोपकार, क्षमा ही शान्ति है। क्षमा में ही सारे लोक, लोकोपकारक यज्ञ, सत्य और ब्रह्म प्रतिष्ठित है। ऐसी क्षमा को भला मैं कैसे त्याग सकता हूं। ज्ञानी पुरुष को सदा क्षमा ही करनी चाहिये जब वह सब कुछ क्षमा कर देता है तब वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। क्षमावानों को यह लोक और परलोक दोनों प्राप्त होते है। इस लोक में सम्मान और परलोक में परम शुभ गति प्राप्त होती है। जिन्होने क्षमा के द्वारा क्रोध को जीत लिया उन्हे परम गति प्राप्त हुई। इस प्रकार महात्मा कश्यप ने क्षमा की महिमा गायी है। इसे सुनकर पांचाली तुम अपने क्रोध का त्याग करो और क्षमा का अवलम्बन करो। कृष्ण, पितामह भीष्म, आचार्य धौम्य, महात्मा विदुर और ऋषिवर व्यास भी क्षमा की प्रशंसा करते है। क्षमा और दया ही ज्ञानियों का सदाचार है और यही सनातन धर्म है। मैं तो क्षमा और दया का साथ कभी नहीं छोडूंगा और उनका पालन करूंगा। मेरे लिये क्षमा सर्वोपरि है। क्षमा शक्तिशाली का बल है। इसलिये मैं क्षमा के मार्ग को त्याग नहीं सकता देवि।

जनमेजय को वैशम्पायन बोले कि धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रौपदी बोली धर्मराज इस जगत में धर्माचरण, दया भाव, क्षमा सरलता के व्यवहार से तथा लोक निन्दा के भय से राज्यलक्ष्मी नहीं मिलती। आप में तथा आपके सभी भाइयों में प्रजा पालन योग्य सभी गुण है। आप लोग दु:ख भोगने योग्य नहीं है फिर भी आपको यह कष्ट सहना पड रहा है। आपके सब भाई राज्य के समय तो धर्मपर प्रेम रखते थे अब इस दीन हीन दशा में भी धर्म से बढकर और किसीसे भी प्रेम नहीं करते। वे धर्म को अपने प्राणों से भी श्रेष्ठ मानते है। यह बात सभी आचार्य, गुरु, ब्राह्मण यहां तक कि देवता भी जानते है कि आपका राज्य धर्म के लिये, आपका जीवन धर्म के लिये है। आप तो धर्म के लिये अपने भाइयों और मुझे भी त्याग सकते हो। कोई यदि धर्म की रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता है। परन्तु मुझे लगने लगा है कि धर्म भी आपकी रक्षा नहीं कर रहा है। जैसे मनुष्य के पीछे उसकी छाया चला करती है वैसी ही आपकी बुद्धि सर्वदा धर्म के पीछे चला करती है। आप जब सारी पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट हो गये थे, उस समय भी आपने छोटे छोटे राजाओं का भी अपमान नहीं किया था फिर बडों की तो बात ही क्या ? आपके राज प्रासादों में देवताओं के लिये स्वाहा और पितरों के लिये स्वधा की ध्वनि गूंजती रहती थी। तब भी और अब भी ब्राह्मणों की सेवा होती है। आपने साधु, सन्यासी और गृहस्थों की सारी आवश्यकतायें पूर्ण कर उन्हे तृप्त किया है। उस समय आपके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो ब्राह्मणों को नहीं दी जा सके। अब तो आपके यहां पंच दोषों की शान्ति के लिये बलि वैश्वदेव यज्ञ किया जाता है तथा उसके पश्चात अतिथियों तथा अन्य प्राणियों को खिलाकर शेष बचे हुये अन्न से अपना जीवन निर्वाह करते है। पर आपकी बुद्धि तो ऐसी विपरीत हो गई कि आपने राज्य, भाइयों, धन और मुझ तक सब कुछ आपने जुए में हार दिया। आपकी इस आपति विपत्ति को देखकर मेरे मन में बडी वेदना हो रही है। मनुष्य ईश्वर के अधीन है। क्या उसकी स्वाधीनता कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही प्राणियों के पूर्वजन्मानुसार कर्म फल सुख-दु:ख तथा प्रिय अप्रिय की प्राप्ति कराता है। जैसे कठपुतली सुत्रधार के अनुसार नाचती है, उसी प्रकार सारी प्रजा ईश्वरेच्छानुसार संसार में नाचती है। ईश्वर सबके बाहर और अन्त:करण में व्याप्त रहता है वही सबको कर्म करने में प्रेरित करता है और साक्षी रूप में देखता रहता है। जीव एक कठपुतली की भांति है। वह स्वतन्त्र नहीं, ईश्वराधीन है। जैसे सूत में गुथी हुई मणियां, नकेल से बन्धे बैल और जलधारा में पडे हुये वृक्ष पराधीन होते हैं वैसे ही जीव भी ईश्वर के अधीन हैं। पराधीन को कभी स्वप्न में भी सुख नहीं है। जो वस्तु जिसमें लीन होती है, वह तत्स्वरूप ही होती है। मिट्टी से उत्पन्न घडा आदि, मध्य और अन्त में भी मिट्टी ही रहता है। वैसे ही जीव अपने जीवन से आदि, मध्य और अन्त में ईश्वर के ही अधीन रहता है। जीव को किसी भी बात का ठीक ठीक ज्ञान नहीं है। इसलिये वह सुख पाने या दु:ख हटाने में असमर्थ है। वह ईश्वर की ही प्रेरणा से स्वर्ग या नरक में जाता है। जैसे नन्हे नन्हे तिनके वायु के अधीन हो इधर-उधर बिखर जाते हैं वैसे ही सभी प्राणी ईश्वर के अधीन है। जिस

प्रकार बच्चा खिलौनों से खेल कर उन्हे छोड देता है वैसे ही ईश्वर भी जगत में जीवों के संयोग-वियोग की लीला रचते रहता है। हे धर्मराज मैं तो ऐसा समझती हूं कि ईश्वर प्राणियों के साथ माता-पिता सदृश दया का बर्ताव नहीं करता। वे तो जैसे कोई साधारण व्यक्ति क्रोध से क्रूरता का व्यवहार करता है वैसा ही करता है। मैं देखती हूं कि आप जैसा शील सदाचार सम्पन्न आर्य पुरुष भली-भांति जीवन निर्वाह नहीं कर पाता और चिन्ता ग्रस्त रहता है और अनार्य पुरुष सुख व भोगों की प्राप्ति कर लेता है तब मुझे बडा सन्ताप होता है। इसलिये आपकी यह विपत्ति और दुर्योधन की सम्पत्ति देख कर मैं ईश्वर की निन्दा करती हूं। ईश्वर विषम दृष्टि से बर्ताव करता है। यदि कर्म का फल कर्ता को मिलता है, अन्य किसी को नहीं तो यह विषम दृष्टि रखने का फल अवश्य ही ईश्वर को मिलेगा। यदि कर्म का फल कर्ता को नहीं मिलता तब तो अपनी उन्नति का कारण लौकिक बल ही है। मुझे निर्बल पुरुषों के लिये बडा शोक हो रहा है।

युधिष्ठिर बोले हे प्रिये मैंने तुम्हारे मधुर सुन्दर और आश्चर्य भरे वचन सुने। तुम इस समय नास्तिकता की बात कर रही हो। में कर्म का फल प्राप्त करने के लिये कर्म नहीं करता। मैं दान इसलिये देता हूं कि दान देना धर्म है। यज्ञ करना चाहिये इसलिये यज्ञ करता हूं। फल मिले या नहीं मनुष्य को तो अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। इसलिये मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूं। हे सुन्दरी मैं धर्म फल के लिये धर्म नहीं करता। वेदों की ऐसी आज्ञा है धर्मपालन करना चाहिये और सन्तों ने उसका पालन किया है। मैंने स्वभाव से ही अपने मन को धर्म में लगा दिया है। किसी भी धर्मज्ञ पुरुष के लिये धर्म के साथ मोल तोल करना बहुत ही निन्दनीय है। जो धर्म को दूहना चाहता है उसे धर्म का फल नहीं मिलता। जो धर्म करके नास्तिकतावश उस पर शंका करता है वह तो पापी है। मैं दृढता से कहता हूं कि धर्मपर कभी शंका नहीं करनी चाहिये। धर्म पर शंका करनेवालों की अधोगति होती है। जो दुर्बल हृदय पुरुष धर्म और ऋषियों के वचनों पर शंका करता है वह मोक्ष से दूर हो जाता है। वेदपाठी, धर्मात्मा और कुलीन पुरुष को ही बुद्ध कहा जाता है। वह पापी तो चोरों के समान है जो मूर्खतावश शास्त्रों का उल्लंघन कर धर्म पर शंका करता है। मार्कण्डेय ऋषि धर्म के प्रभाव से ही चिरंजीवी हैं। व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश, शुक आदि सभी ऋषि धर्म पालने से ही ज्ञान सम्पन्न हुये हैं। ये लोग दिव्य भोग से युक्त हैं, शाप वरदान देने में समर्थ हैं और देवों से भी बडे हैं। इन लोगों ने अपनी अद्भुत शक्ति से वेद और धर्म का साक्षात्कार किया हैं। वे लोग दिन प्रतिदिन धर्म की ही महिमा का वर्णन करते हैं। हे महारानी तुम अपने इस मूढ मन से ईश्वर और धर्म पर आक्षेप मत करो। न ही कोई शंका करो। धर्म पर शंका करनेवाला मूर्ख होता है। और बडे बडे विचारशील एवं स्थित प्रज्ञों को पागल समझता है। वह बडे-बडे महापुरुषों और महात्माओं की बात प्रामाणिकता से स्वीकार न करने के कारण असहाय है। वह अभिमानी स्वयं अपने हाथों अपने कल्याण का तिरस्कार करता है और केवल उन लौकिक वस्तुओं को ही सत्य मानता है जिनसे उसे इन्द्रिय सुख प्राप्त होता है। वह लोकोत्तर वस्तुओं के सम्बन्ध में सर्वथा अज्ञात है। जो कोई धर्म पर शंका करता है उसके लिये इस लोक में कोई प्रायश्चित नहीं है। वह मूर्ख चाहने पर भी लौकिक और पारलौकिक उत्थान नहीं कर सकता। वह प्रमाण से मुंह मोडकर वेद और शास्त्रों की निन्दा करने लगता है। कामपूर्ति और लोभ के मार्ग में चलने लगता है जिससे उसे नरकों की प्राप्ति होती है। जो कोई दृढ़ निश्चय से निशंक होकर धर्म का ही पालन करता है उसे तो अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। जो ऋषि मुनियों, महात्माओं की बात नहीं मानता, धर्म का पालन नहीं करता, शास्त्र आज्ञा का उल्लंघन करता है वह एक जन्म तो क्या अनेक जन्मों में भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ऋषियों ने सनातन धर्म का वर्णन किया है और सत्पुरुषों ने उसका आचरण किया है। उसमें भला शंका करने का अवसर ही कहां ? जैसे समुद्र पार करने के लिये जहाज ही आश्रय है वैसे ही पारलौकिक सुख प्राप्ति के इच्छुकों के लिये एक मात्र धर्म ही जहाज है।

हे सुन्दरी यदि धर्मात्माओं के द्वारा किया हुआ धर्म पालन निष्फल हो जाये तो यह सारा जगत अज्ञान के घोर अन्धकार में डूब जायेगा। यदि तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्वाध्याय, दान और सरलता निष्फल हो जाये तो किसी को मोक्ष भी न मिले। कोई

विद्या न पढे, किसी को धन न मिले, सब लोग पशु समान हो जाये। यदि ऐसा ही था तो फिर सत्पुरुष धर्म का आचरण क्यों करते ? सम्पूर्ण धर्मशास्त्र एक प्रपंच व धोखा होता। बडे-बडे ऋषि देवता, गन्धर्व, सामर्थ्यवान होने पर भी धर्म का पालन क्यों करते ? उन्होने यह समझकर कि ईश्वर धर्म का फल अवश्य देता है इसलिये धर्म का पालन किया है और वास्तव में वही परम कल्याण है। धर्म और अधर्म दोनों ही कभी निष्फल नहीं होते। विद्या और तप का फल तो प्रत्यक्ष ही है। मैं तुम्हे वेद की प्रामाणिकता स्थापित कर धर्म पर श्रद्धा रखने को कह रहा हूं। तुम्हारा अपना अनुभव भी तो धर्म की महिमा को प्रकट करता है। तुम्हारा और तुम्हारे भ्राता धुष्टद्युम्न की उत्पत्ति इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि धर्म का फल अवश्य मिलता है। धर्मात्मा पुरुष सन्तोषी होते हैं परन्तु बुद्धिहीन व्यक्ति बहुत फल प्राप्त होने पर भी कभी सन्तुष्ट नहीं होता है। पाप और पुण्यों के उदय होने का फल, कर्मोत्पत्ति का हेतु, सबका कारण अविद्या और उसका नाश करनेवाली विद्या इन सब बातों को ईश्वर ने गुप्त रखा है। साधारण पुरुष इन गूढ बातों का रहस्य नहीं समझ सकता। तुम तो पांचाली विदुषी हो। जो तत्त्ववेत्ता इसका रहस्य समझ जाते हैं वे फल के लिये कर्मानुष्ठान नहीं करते किन्तु ज्ञान में स्थित होकर कर्म करते रहते हैं। वास्तव में तो यह विषय देवताओं के लिये भी गोपनीय है तथापि विरक्त, मितभोजी, जितेन्द्रिय एवं तपस्वी योगी शुद्ध चित्त से ध्यान धर पूर्वोक्त कर्मों का स्वरूप जान लेते है। धर्माचरण करने पर भी यदि उसका फल न प्राप्त हो तो भी धर्म पर सन्देह नहीं करना चाहिये और भी उद्योग करके यज्ञ करना चाहिये। ईर्ष्या का त्याग करके दान करना चाहिये। कश्यप ने कहा था कि कर्म का फल अवश्य मिलता है और धर्म सनातन है प्रिये। धर्म के सम्बन्ध में तुम्हारा सन्देह कुहरे की भांति नष्ट हो जाये इसलिये तुम नास्तिकता का त्याग कर दो और धर्म पर, ईश्वर पर आक्षेप मत करो। इसे जानो और उन्हे नमस्कार करो। जिनकी कृपा से भक्त पुरुष मृत्युशील से अमर हो जाते हैं उन सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का कभी तिरस्कार मत करना।

तब द्रौपदी बोली धर्मराज मैं धर्म अथवा ईश्वर की अवमानना और तिरस्कार कभी नहीं करती। मैं इस समय विपत्ति में हूं इसलिये यह प्रलाप कर रही हूं। मनुष्य को कर्म तो अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि बिना कर्म किये केवल जड पदार्थ ही रह सकते हैं, चेतन प्राणी नहीं। गाय का बछडा जन्मते ही दूध के लिये गाय का थन पीने लगता है और धूप लगने पर छाँव में जा बैठता है। अवश्य ही इस क्रिया में पूर्वजन्म के संस्कार काम करते हैं। सभी प्राणी अपने कर्मों का फल भोगते हैं। इसलिये कर्म करना आवश्यक है। कर्म से मनुष्य सुखी रह सकता है। सहस्रों मनुष्यों में भी कोई एक कर्म करने की विधि ठीक से जानता है। यदि हिमालय जैसा पहाड भी प्रतिदिन क्षीण हो और उसमें वृद्धि न हो तो वह भी समाप्त हो जाता है। इसलिये धन की रक्षा और वृद्धि करने के लिये कर्म करने की तो आवश्यकता है ही धर्मराज। प्रजा यदि कर्म न करे तो विनष्ट हो जाये। यदि उसका कर्म निष्फल हो जाये तो उसकी प्रगति रूक जाये। यदि कर्म को निष्फल माना जाय तो भी कर्म तो करना ही पडेगा। क्योंकि कर्म किये बिना किसी प्रकार जीविका नहीं चल सकती। जो भाग्य के ऊपर भरोसा करके हाथ पांव धरे बैठे रहते हैं, हठवादी हैं, स्वयं ही वस्तुओं की प्राप्ति मानते हैं, वे पूर्वजन्मों के कर्मों को स्वीकार नहीं करते। जो कर्म न करके आलस्यमय जीवन व्यतीत करते हैं वे पानी में कच्चे घडे की तरह नाश को प्राप्त होते है। जो काम करने की शक्ति रहते हुये भी उससे हठ वश अलग रहते हैं वे चिरकाल तक जीवन धारण भी नहीं कर सकते। जो इस शंका में रहते हैं कि मुझे अमुक कर्म का फल मिलेगा या नहीं उन्हे कर्म का कुछ भी फल नहीं मिलता। जो शंका रहित होते है वे अपने कर्म में लगे रहते है और फल प्राप्ति में कभी आकांक्षा नहीं करते परन्तु इस श्रेणी के मनुष्य होते है बहुत थोडे। किसान खेत जोतकर बीज बो देता है और सन्तोष के साथ अंकुर आने की प्रतीक्षा करता है। इसके बाद बोये हुये बीज को पानी से सींचकर अंकुरित होने की प्रतीक्षा करता है। यदि मेघ किसान पर अनुग्रह न करे और जल न बरसाये तो इसमें किसान का क्या दोष ? तब किसान यही तो सोचता है कि सब लोगों ने काम किया वही मैंने भी किया। अब बादल बरसे या न बरसे, फल मिले या ना मिले मैं तो निर्दोष हूं। वैसी ही धीर पुरुष भी अपनी बुद्धि से, देश के

अनुसार, काल शक्ति और उपायों का ठीक ठीक विचार कर अपने कर्म करे। इसलिये आप विचार करके अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय कीजिये। हे ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र तनिक मेरी विवशता तो देखो कि मैं तुम्हे कायर भी नहीं कह सकती क्योंकि मैं जानती हूं कि तुम कायर नहीं हो। परन्तु तुम स्वयं धर्म हो इसलिये तुम अधर्म को कभी क्षमा नहीं कर सकते और दुर्योधन अधर्म का एक और नाम है। युधिष्ठिर बोला अपने क्रोध की अग्नि को तनिक धीमी करो पांचाली। भीम बोला क्यों धीमी करे ? बडे भैया। यदि पांचाली इस अग्नि को धीमा कर भी ले पर मुझसे इस क्रोध की अग्नि को धीमा नहीं किया जायेगा। मेरी आंखे चाहे खुली हो या बन्द वो तो सोते जागते एक ही दृश्य देख रही है कि दुशासन ने पांचाली के केशों को पकडकर भरी सभा में घसीटा था और दुर्योधन अपनी जंघा पीट रहा है और हमारा सारा कुरुवंश चुपचाप देख रहा है। यह अग्नि कभी धीमी नहीं हो सकती बडे भैया। भीम और भी क्रोधित हो उठा।

क्रोध और अपमान की बुझ ना सकेगी ज्वाल, शौर्य न धीरज धर सका खडा हुआ तत्काल।

११) युधिष्ठिर और भीम का कर्त्तव्य विषय में सम्वाद

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय द्रौपदी की बातें सुनकर अमर्ष में भरे भीम क्रोधित हो युधिष्ठिर के पास आये और बोले भ्राताश्री श्रेष्ठ पुरुषों के लिये उचित और धर्म के अनुकूल जो राज्य प्राप्ति का मार्ग हो उसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम इन तीनों से वंचित होकर इस तपोवन में हमारा कौनसा प्रयोजन सिद्ध होगा ? दुर्योधन ने कोई हमारा राज्य धैर्य, सरलता और बल से प्राप्त नहीं किया है। उसने तो कपटपूर्वक छल से द्यूत का आश्रय लेकर हमारे राज्य का हरण किया है। हम कौरवों के अपराध को जितना जितना क्षमा करते है उतना उतना वे हमें असमर्थ मान कर दु:ख देते जा रहे हैं। इससे तो अच्छा है कि व्यर्थ की टालमटोल छोडकर युद्ध छेड दें। निष्कपट हो युद्ध कर यदि हम मृत्यु को प्राप्त हो भी जाये तो श्रेयस्कर है क्योंकि इसमें स्वर्ग लोक की प्राप्ति होगी यदि हम कौरवों का वध कर उन्हे युद्ध में जीत ले तो पृथ्वी के राजा हो जाये तो भी हमारा कल्याण है। बचे हुये अन्न को खाने वाले दुर्बल गीदड जैसे अत्यन्त बलवान सिंहों का भोजन हर ले उसी प्रकार दुर्योधन ने हमारा राज्य छीन लिया है। गांडीव धारी अर्जुन द्वारा रक्षित हमारा राज्य इन्द्र भी नहीं छीन सकता वही हमारा राज्य आपकी असावधानी से हमारे देखते देखते छीन गया। हम अपने धर्म में स्थित है। हमारा यश प्रसिद्ध है फिर भी हम लोग ऐसे महान संकट में पड गये है। हे भरतकुल भूषण आपके शासन से अपने आपको नियन्त्रण में रखकर हम लोग अपने मित्रों को दु:खी और शत्रुओं को सुखी बना रहे हैं। आपके शासन को मानकर हम लोगों ने शत्रुओं को उसी समय मार डालना चाहिये था। वह दुष्कर्म हमें आज भी सन्ताप दे रहा है। मृगों के समान अपनी इस दिनचर्या पर दृष्टि डालकर देखें। दुर्बल मनुष्य ही इस प्रकार वन में रहकर समय बिताते है। बलवान मनुष्य वन का सेवन नहीं करते। श्रीकृष्ण, अर्जुन, अभिमन्यु, नकुल और सहदेव कोई भी इस वन जीवन को पसन्द नहीं करते। यह धर्म है धर्म है ऐसे व्रतों का पालन कर कष्ठ उठा रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप वैराग्य के कारण साहस शून्य हो नपुसंको का सा जीवन यापन करने लगे हैं। अपनी खोयी हुई राज्यलक्ष्मी का उद्धार करने में असमर्थ दुर्बल मनुष्य ही निष्फल और स्वार्थनाशक वैराग्य का आश्रय ग्रहण करते है और उसे ही प्रिय मानते है। आप तो समझदार, दूरदर्शी और शक्तिशाली हैं। हमारे पुरुषार्थ से भली भांति विज्ञ है तो फिर इस प्रकार दया को अपनाने से इससे होनेवाले अनर्थ की कल्पना नहीं कर पा रहें। हम शत्रुओं के अपराधों को क्षमा करते जा रहे हैं। समर्थ होते हुये भी दुर्योधन हमें निर्बल समझ रहा है यही हमारे दु:ख का कारण है। युद्ध में मारा जाना हमारे लिये कोई दु:ख नहीं है। अत: हमारे लिये सब प्रकार से युद्ध करना उचित है। <u>जो धर्म अपने तथा मित्रों के लिये क्लेश उत्पन्न करे वह तो संकट ही है। वह धर्म नहीं कुधर्म है</u>। भ्राताश्री जैसे मृतक को दु:ख और सुख दोनों नहीं होते उसी प्रकार जो सर्वथा सर्वदा अधर्म में ही तत्पर रहता है उसे धर्म और अर्थ दोनों त्याग देते हैं।

जिसका धर्म केवल धर्म के लिये ही होता है वह धर्म के नाम पर केवल क्लेश उठानेवाला मनुष्य बुद्धिमान नहीं हैं। जैसे अन्धा सूर्य के प्रकाश को नहीं जानता वैसे ही वह धर्म के अर्थ को नहीं समझता है। जिसका धन केवल धन के लिये ही है, दान आदि के लिये नहीं है वह तो धन के तत्व को जानता ही नहीं है। जैसे ग्वाला वन में गायों की रक्षा करता है उसी प्रकार वह भी उस धन का दूसरे के लिये रक्षा करता है।

जो कोई केवल अर्थ के संग्रह की इच्छा रखनेवाला है तथा धर्म और काम का अनुष्ठान नहीं करता है वह तो ब्रह्म हत्यारे के समान घृणा का पात्र है और सभी प्राणियों के लिये वध करने योग्य है। इसी प्रकार जो निरन्तर काम की अभिलाषा रखकर धर्म और अर्थ का सम्पादन नहीं करता उसके मित्र नष्ट हो जाते हैं और वह धर्म तथा अर्थ दोनों से वंचित हो जाता है। जैसे पानी के सूख जाने पर मछलियों का जीवन दूभर है उसी प्रकार धर्म और अर्थ से हीन होकर जो केवल काम (विषय भोगों) में ही रमण करता है वह भी उन भोगों के समाप्त होते ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अर्थ का कारण है धर्म और धर्म सिद्ध होता है अर्थसंग्रह से। जैसे मेघ से समुद्र की पूर्ति होती है और समुद्र से मेघ की पूर्ति। इस तरह धर्म और अर्थ एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री आदि द्रव्यों के स्पर्श और स्वर्ण आदि धन की प्राप्ति से जो प्रसन्नता होती है, उसके लिये जो चित्त में संकल्प उठता है उसी का नाम काम है। वह काम शरीर नहीं देखता इसलिये उसका नाम अनंग है। धन की इच्छा रखनेवाला पुरुष धर्म की अभिलाषा रखता है और कामार्थी मनुष्य धन चाहता है। धर्म से धन और धन से काम की इच्छा करता है। उस काम से वह किसी दूसरी वस्तु की इच्छा नहीं करता। एक बार फल प्राप्त हो जाने के बाद उससे दूसरा फल प्राप्त नहीं होता है जिस प्रकार काठ के जल जाने पर वह राख बन जाता है परन्तु उस राख से दूसरा कोई पदार्थ नहीं बनता इसी तरह बुद्धिमान व्यक्ति एक काम से किसी दूसरे काम की सिद्धि प्राप्त नहीं करते क्योंकि वह साधन नहीं फल होता है। राजन जैसे पक्षियों का हिंसक व्याध अधर्म का स्वरूप है और सबके लिये वध्य है। वैसे ही बुद्धिहीन मनुष्य काम और लोभ के वशीभूत हो धर्म के स्वरूप को नहीं जानता है वह इहलोक और परलोक में भी वध्य होता है। धन से ही विषय भोग सामग्री का संग्रह होता है। धन के द्वारा बहुत से कार्य भी सिद्ध होते हैं। उस धन का अभाव होने पर अथवा प्राप्त हुये धन का नाश हो जाने पर या स्त्री आदि धन के जरा जीर्ण एवं मृत्यु ग्रस्त होने पर मनुष्य की जो दशा होती है उसी को लोग अनर्थ मानते हैं वही हम लोगों को प्राप्त हुआ है।

पांचो ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि से अपने विषयों में प्रवृत होने की प्रीति ही काम है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को पृथक-पृथक जानकर सदा इनका सेवन करना चाहिये। इस विषय में शास्त्र सम्मत है कि दिन के पूर्व भाग में धर्म, मध्य में अर्थ और दिन के अन्तिम भाग में काम का सेवन करे। इसी प्रकार अवस्था क्रम में शास्त्र का विधान है आयु का पूर्व भाग युवावस्था में काम, आयु का मध्य भाग अर्थात प्रौढावस्था में धन (अर्थ) तथा अन्तिम भाग वृद्धावस्था में धर्म का पालन करे। काल का ज्ञान रखनेवाला विद्वान धर्म, अर्थ, काम तीनों का ठीक ठीक विभाग करके उपयुक्त समय पर इनका सेवन करे। हे कुरुनन्दन निरन्तर सुख की इच्छा रखनेवाले मुमुक्षुओं के लिये यह मोक्ष ही परम कल्याण कारक है। इस प्रकार लौकिक इच्छा वालों के लिये धर्म, अर्थ, काम ये तीनों परम श्रेय हैं। अत: भक्ति और योग से ज्ञान का आश्रय लेकर शीघ्र ही अपने मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो इन दोनों के बीच में रहता है उसका जीवन तो आर्त मनुष्य की भांति कष्टमय दुखों से भरा होता है। आपने सदा धर्म का आचरण किया है इसलिये आपके हितैषी, सगे-सम्बन्धी आपको धर्मयुक्त कर्म एवं पुरुषार्थ के लिये ही प्रेरित करते हैं। तीनो लोकों में भी दान, यज्ञ, सन्तों का आदर वेदों का स्वाध्याय और सरलता इत्यादि उत्तम एवं प्रबल धर्म माने गये है। यद्यपि मनुष्य में दूसरे सभी गुण विद्यमान हो तो भी वह यश आदि रूप धर्म हीन, धन हीन पुरुष द्वारा सम्पादित नहीं किये जा सकते। इस जगत का मूल स्वरूप और कारण धर्म ही है। इस संसार में धर्म से बढकर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं। उस धर्म का अनुष्ठान भी महान धन से ही हो सकता है। भीख मांगने से, सदा कायर बने रहने से, अथवा केवल धर्म में ही लगे रहने से धन

की प्राप्ति कदापि नहीं होती इसलिये धन अर्जन करने के लिये उद्योग, पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है। अत: हे नरश्रेष्ठ ब्राह्मण किसी याचना के द्वारा कार्य सिद्धि कर लेता है वह तो आप नहीं कर सकते क्योंकि आप क्षत्रिय है और याचना क्षत्रिय के लिये निषेध है। अत: आप अपने तेज बल से धन प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये। क्षत्रिय के लिये तो न भीख मांगने का विधान है और न वैश्य और शूद्र की जीविका करने का। क्षत्रिय के लिये तो बल और उत्साह ही विशेष धर्म है। उसके लिये तो युद्ध ही श्रेयस्कर है। क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुये अपने शत्रुओं का संहार कीजिये। मेरी और अर्जुन की सहायता से धृतराष्ट्र पुत्रों का वध करें। आपको इस दयनीय अवस्था में नहीं रहना चाहिये। महाराज आप सनातन धर्म को जाननेवाले कठोर कर्म करने में समर्थ क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुये जिससे सब लोग आपसे भयभीत रहते है अत: अपने स्वरूप और कर्तव्य को पहिचानिये। विधाता ने आप जैसे क्षत्रिय के लिये यही सनातन धर्म नियत किया है। क्षत्रिय धर्म से हीन होनेपर तो संसार में आप उपहास के पात्र बन जायेंगे। मनुष्य को कभी भी अपने वर्णाश्रम धर्म से भ्रष्ट नहीं होना चाहिये। अपने हृदय को क्षत्रियोचित उत्साह से भरकर मन की शिथिलता को दूर कर पराक्रम से एक धुरन्धर वीर की भांति युद्ध का भार वहन कीजिये। राजन केवल धर्म में ही रहकर आज तक किसी नरेश ने विजय नहीं पाई है और न ही ऐश्वर्य और लक्ष्मी को प्राप्त किया है। मनुष्यों का अपने धर्म से डिगना अच्छा नहीं माना जाता है। इस समय अर्जुन के समान कोई धनुर्धारी नही है और मेरे समान कोई गदाधर नहीं है तथा न ही निकट भविष्य में होने की कोई सम्भावना है। बलवान अपने भरोसे युद्ध करता है, सैनिकों के संख्या बल पर नहीं। आप अपने बल का आश्रय लीजिये। यद्यपि शहद की मक्खियां निर्बल होती है फिर भी वे सब मिलकर शहद निकालनेवाले के प्राण हर ले सकती है। वैसे ही निर्बल व्यक्ति भी इकट्ठे होकर बलवान शत्रु का विनाश कर सकते है। यह निर्बल से बलवान की लडाई होती है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का रस ग्रहण करता है वैसे ही आप दुर्योधन से राज्य छीन कर प्रजा पालन करें। नीतिज्ञ राजा साम, दाम, दंड भेद से शत्रुओं के प्रति कूटनीति अपना कर उनसे राज्य प्राप्त कर लेते हैं। असुर देवताओं के बडे भाई है और उनसे पहिले उत्पन्न हुये है तथा सब प्रकार से समृद्धिशाली हैं तो भी देवताओं ने उन्हे छल में जीत लिया। इसलिये हे महाबाहो बलवान का ही सब पर अधिकार होता है जैसे जिसकी लाठी उसकी भैंस। आप भी कूटनीति का आश्रय लेकर अपने शत्रुओं को जीत लीजिये। जो मनुष्य अल्प धर्म का परित्याग कर महान धर्म की प्राप्ति करता है वह निश्चय ही बुद्धिमान है।

हमारे पूर्वजों ने, पिता, पितामहों ने शास्त्रोक्त विधि से प्रजा पालन किया है। प्रजा पालन हमारा सनातन धर्म है। एक क्षत्रिय युद्ध में विजय प्राप्त कर अथवा प्राणों का उत्सर्ग कर जो गति प्राप्त करता है वह तपस्या के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। ब्राह्मण और कुरुवंशी इकट्ठे होकर आपकी प्रशंसा करते हैं। आप में लोभ, कृपणता, मोह, भय, काम आदि के वशीभूत हो कभी झूठ नहीं बोला। आप को पृथ्वी प्राप्त करने के लिये राजाओं के विनाश का डर हो तो वह बडी बडी दक्षिणावाले यज्ञ कर के दूर हो जाते है। आप ब्राह्मणों को हजारों गाये और ग्राम दान देकर उस पाप से छूट जायेंगे। आप अब युद्ध के लिये ब्राह्मणों को धनादि देकर शीघ्रता से युद्ध के लिये प्रस्तुत हो शत्रुपर चढाई कर दें। आज ही शुभ दिन और मुहूर्त है। ब्राह्मणों से अपना स्वस्तिवाचन करा अपने अस्त्र विद्या कुशल शूरवीर भाइयों के साथ हस्तिनापुर पर आक्रमण कर दीजिये। कुत्ते की चमडे से बनी हुई कुप्पी में रखा हुआ दूध, शूद्र के मुंह से वेद, चोरों में सत्य और नारी में स्थित बल अनुचित है उसी प्रकार उस दुष्ट दुर्योधन के पास हमारी राज्य लक्ष्मी का रहना अनुचित है। इसलिये हे राजन सुञ्जयवंश के राजा, कैकर्यवंश के राजा और वृष्णि कुलभूषण कृष्ण हमारे साथ हैं तो फिर क्या हम युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे ? हम अपने सहायको और शक्ति के द्वारा अपने राज्य को क्यों नहीं हस्तगत करते।

युधिष्ठिर बोले प्रिय भीम मनुष्य, पुरुषार्थ, अभिमान और वीरता से युक्त होकर भी अपने मन को वश में नहीं कर सकता। मैं तुम्हारी बात का आदर करता हूं। मैं समझता हूं कि मेरे भाग्य में ऐसा ही है। जिस समय हम द्यूत सभा में जुआ खेलने आये उस समय दुर्योधन ने भरतवंशी राजाओं के सामने यह दांव लगाया था और कहा था कि यदि हम जुए में हार जायेंगे तो हम भाइयों

सहित १२ वर्ष तक वनवास और १३ वें वर्ष का अज्ञातवास करेंगे और यदि इस अज्ञातवास के समय वे हमे ढूंढ निकालेंगे तो फिर से १२ वर्ष का वनवास स्वीकारना पडेगा। यदि उस जुए में वे हार गये तो उसी नियम के अनुसार अपना ऐश्वर्य छोडकर वनवास और अज्ञातवास करेंगे। मैंने दुर्योधन की बात मानकर वैसी ही प्रतिज्ञा कर दांव लगाया। इस समय वह अधर्म मय जुआ खेला गया और हम लोग हार गये। यह बात तुम्हें और अर्जुन को भली भांति मालूम है। उस नियमानुसार अब हम बनवास कर रहे है। सत्पुरुषों के सामने एक बार प्रतिज्ञा करके फिर राज्य के लिये उसे भंग करना उचित नहीं है। एक कुलीन मनुष्य यदि राज्य के लिये अपनी प्रतिज्ञा भंग करके वह राज्य प्राप्त भी करले तो वह मृत्यु से भी अधिक दु:खदायक है। मैंने कुरुवंशियों के बीच यह प्रतिज्ञा दृढपूर्वक कही है उससे मैं टल नहीं सकता। जैसे किसान बीज बोकर पकने तक उसके फल की आशा करता है वैसे ही तुम्हे भी अपनी उन्नति के समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये। समय आये बिना कुछ भी नहीं होता। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है प्रिय भीम कि मैं देवत्व की प्राप्ति तथा इस लोक में जीवित रहने की अपेक्षा भी धर्म से अधिक प्रेम करता हूं। राज्य, पुत्र, कीर्ति और धन में सब मिलकर सत्य धर्म के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं है।

भीम बोला भ्राताश्री मनुष्य की आयु भी पल पल बीतते जा रही है ऐसी स्थिति में क्या मनुष्य को समय की प्रतीक्षा करते हुये बैठे रहना चाहिये। जिसे अपनी लम्बी आयु का पता हो, अपने अन्त समय का ज्ञान हो, जो भूत-भविष्य आदि सब वस्तुओं को प्रत्यक्ष देख पाता हो केवल उसी को समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये। मृत्यु सदा सिर पर सवार रहती है इसलिये उसे प्राप्त होने के पहिले ही हमें अपने राज्य को वापिस प्राप्त करने के प्रयत्न कर लेने चाहिये। आप बुद्धिमान, पराक्रमी, शास्त्रज्ञ और सम्मानित वंश के हैं। आप धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रों को क्षमा किसलिये कर रहे हैं ? चुपचाप बैठकर विलम्ब क्यों कर रहे हैं? हम लोग अज्ञातवास में छिपे कैसे रह सकेंगे ? यह तो ऐसे होगा जैसे कोई घास के पूले से हिमालय को ढकना चाहे। सूर्य आकाश में छिपकर नहीं रह सकता। आप इस भूमंडल में चारों ओर विख्यात है। लगता नहीं कि आप भी कहीं छिपे रह सकोगे और अज्ञातवास का नियम पूरा कर पाओगे। अर्जुन गांडीवधारी है उसका छिपना भी असम्भव हैं। ये दोनों भाई नकुल और सहदेव सिंह के समान पराक्रमी हैं वे दोनों छिपकर कैसे विचर सकेंगे यह विश्वविन्द्य अनिन्द्य सुन्दरी वीर जननी पवित्र कीर्ति राजकुमारी पांचाली सारे जगत में विख्यात है भला यह अज्ञातवास के नियमों का कैसे पालन करेगी और क्या अपने को छिपा पायेगी ? मुझे तो हर बच्चा बच्चा बूढा सभी पहचानते हैं। जैसे मेरू पर्वत को छिपाना असम्भव है उसी तरह मुझे अपनी अज्ञातवास की चर्या सम्भव नहीं दिख रही। हम लोग अब तक वन में १३ महिने बिता चुके हैं। वेद की आज्ञानुसार, मनीषियों की गिनती अनुसार आप इन्हे ही तेरह वर्ष मान लीजिये। महीने वर्ष के प्रतिनिधि हैं। इसलिये १३ महिनों को १३ वर्ष मान लीजिये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई ऐसा मानकर आप शत्रुओं का वध करने का निश्चय कीजिये। क्षत्रियों के लिये युद्ध के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म नहीं है।

भीम का कथन सुनकर युधिष्ठिर मन ही मन विचार करने लगे कि राजाओं के धर्म एवं वर्णों के सिद्धान्त भी जानता हूं परन्तु जो भविष्य और वर्तमान दोनों पर दृष्टि रखता है वही यथार्थदर्शी है। धर्म की श्रेष्ठ गति अत्यन्त दुर्बोध है अत: उसे जानते हुये उस धर्म का मर्दन कैसे करूं ? इस प्रकार विचार कर युधिष्ठिर भीम से बोले प्रिय भीम तुम जैसा कह रहे हो वह ठीक है फिर भी जो महान पापमय कर्म केवल साहस के भरोसे आरम्भ किये जा सकते हैं वे सभी कष्टदायक होते हैं। अच्छी तरह से सोच विचार कर किया गया पराक्रम और कर्म दैव अनुकूल भी होता है और सफल भी होता है। बल एवं घमंड से उन्मत्त होकर बाल सुलभ चपलता से तुम जिस काम को आरम्भ करना चाहते हो उसके विषय में मेरा मत सुनो। भूरिश्रवा, शल, पराक्रमी जलसन्ध, भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, सूत पुत्र कर्ण, अश्वत्थामा तथा आततायी दुर्योधन ये सब दुर्धर्ष धृतराष्ट्र पुत्र सभी अस्त्र विद्या के ज्ञाता युद्ध विद्या में कुशल और हम पर आक्रमण करने के लिये तैयार हैं। पहले हम लोगों ने जिन राजा महाराजाओं को बलपूर्वक कष्ट

पहुंचाया, दबाया था वे अब सब जाकर दुर्योधन से मिल गये है। वे दुर्योधन के हित में संलग्न होंगे। हम लोगों के साथ उनका सद्भाव नहीं हो सकता। वे सैनिक शक्ति से भी सम्पन्न हैं और युद्ध होने पर हमारे विरुद्ध ही लडेंगे। दुर्योधन ने कौरव सेना के सब वीरों, सेनापतियों और मन्त्रियों को तथा उनके परिवारवालों को भी उत्तम-उत्तम वस्तुयें तथा भोग सामग्री देकर अपने पक्ष में कर लिया है। अत: वे उसके लिये हंसते-हंसते अपने प्राण भी युद्ध में निछावर कर देंगे। यद्यपि पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य का आन्तरिक स्नेह हमारे और धृतराष्ट्र के पुत्रों पर समान है फिर भी वे राजा, दुर्योधन का दिया हुआ आहार अन्न खाते हैं अत: उसका ऋण अवश्य चुकायेंगे और युद्ध छिडने पर वे दुर्योधन के पक्ष में ही लडेंगे और अपने दुस्त्यज प्राणों का भी परित्याग करने में संकोच नहीं करेंगे। वे सब के सब दिव्यास्त्रों के ज्ञाता है और धर्म परायण है। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी उन्हे परास्त नहीं कर सकते। इस पक्ष में महारथी कर्ण भी है जो सदैव हमारे प्रति क्रोध और अमर्ष से भरा रहता है। वह सब अस्त्रों का ज्ञाता, अजेय, उत्साह और प्रवीणता में अपूर्व है। इन समस्त वीर पुरुषों को युद्ध में प्रशस्त किये बिना अकेले दुर्योधन को मारना सम्भव नहीं होगा। भीम सूतपुत्र कर्ण के हाथों में बडी फूर्ति समस्त धनुर्धारियों से अधिक है। युधिष्ठिर का यह वचन सुनकर भीम उदास और शंका युद्ध हो गये। फिर भीम चुप हो गये दोनों भाई इस प्रकार बात कर रहे थे कि इतने में महायोगी महर्षि सत्यवती नन्दन वेद व्यास वहां आ पहुंचे।

१२) युधिष्ठिर को महर्षि व्यास का उपदेश

पांडवों ने आगे बढकर वेद व्यासजी का स्वागत किया। वेदव्यास बोले प्रिय युधिष्ठिर मैं तुम्हारे मनोभावों को भली-भांति जानता हूं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूं। तुम्हारे हृदय में भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधन आदि का भय है उसका मैं तुम्हे शास्त्रोक्त पद्धति से निवारण का उपाय बताऊंगा। इससे तुम्हारे मन का सन्ताप मिट जायेगा। युधिष्ठिर बोले वासुदेव के चले जाने के पश्चात से ही हम सब निष्प्राण जैसे हो रहे हैं। जीवन का सहज हर्षोल्लास कृष्ण के साथ ही चला गया ऋषिवर। महर्षि बोले वासुदेव तो हैं ही सभी के प्राण। वे तो ऊर्जा के स्त्रोत और आनन्द के सागर हैं। कृष्ण तो हर जगह उपस्थित हैं। वे तो वहां भी वर्तमान होते है जहां वे उपस्थित नहीं होते। द्रौपदी से बढकर इस बात को कौन जानता है ? द्रौपदी बोली हां ऋषिवर आपका कथन पूर्णत: सत्य है। मुझ में आक्रोश के रूप में विद्यमान है, भीम के मन में कर्म तत्परता के रूप में और युधिष्ठिर के मन में धर्म रूप से। इसलिये हमारे मन में आनन्द न जागकर आशंकाये जागती है। धर्मराज इस संकल्प पर अडिग हैं कि वे वन में १३ वर्ष व्यतीत होने के बाद ही अपने राज्य के विषय में सोचेंगे। व्यास बोले युधिष्ठिर को तुम एक गम्भीर नदी ही समझो पांचाली। समतल प्रदेश की धीर गम्भीर नदी तथा पर्वत की कुल्या में यह अन्तर है कि चाहे एक में महासागर का सम्पूर्ण जल प्रवाहित हो जाये किन्तु उसकी गति परिलक्षित नहीं होती और दूसरी ओर जल की मात्रा चाहे कुछ भी न हो किन्तु उसका निनाद सारे परिवेश को गूंजाते रहता है। पांचाली तुम्हें तो धर्म नहीं प्रतिशोध चाहिये और प्रतिशोध का समर्थन धर्म नहीं करता। युधिष्ठिर मन में भय हो तो व्यक्ति लडने का साहस नहीं कर सकता और यदि लडेगा तो अनावश्यक रूप में हिंस्र होगा। मैं युद्ध नहीं चाहता किन्तु अन्याय और अधर्म भी नहीं चाहता। जब तक दुर्योधन को उससे भी कोई बडी शक्ति, बल प्रयोग अथवा बल प्रदर्शन से बाध्य नहीं करेगी तब तक वह तुम्हारा राज्य नहीं लौटायेगा। इस लिये पुत्र तुम्हें शक्तिशाली तो होना होगा और तुम्हारे मन का यह भय भी दूर होना चाहिये। यदि तुम्हें शस्त्रों का भय है उनसे तो तुम भी शस्त्र संग्रह करो। जिन साधनों से तुम्हारे मन का सामर्थ्य जगे उन साधनों का संचय करो। युधिष्ठिर बोले यहां वन में तो धर्म का ही संचय हो सकता है इसलिये मैं यह तेरह वर्ष धर्म संग्रह में ही व्यतीत करना चाहता हूं। व्यास बोले धर्म संचय तो तुम्हें करना ही है। तपस्या से शक्ति भी अर्जित की जाती है। अर्जुन को शस्त्र संग्रह करने के लिये इन्द्र के पास देवलोक भेजो कि वह इन्द्र से

दिव्यास्त्र प्राप्त करे। युधिष्ठिर के मन में उल्लास जागा कि यह तो अद्भुत प्रस्ताव है अर्जुन साधना करे धर्म अर्जित करे इससे आध्यात्मिक उत्कर्ष भी हो शस्त्र बल भी। यही तो कृष्ण ने भी कहा था। अर्जुन तपस्या तथा पराक्रम के द्वारा देवताओं के दर्शन की योग्यता रखता है। वह नारायण का सहचर महातपस्वी नर है। व्यास बोले तुम अर्जुन को देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम के पास भेजो यह उनसे अस्त्र शस्त्र प्राप्त करके बडे पराक्रम करेगा। द्रौपदी मुस्कुरा कर बोली वह तो ठीक है किन्तु यह न हो जैसे पिछले वनवास के समय जब अर्जुन वापिस लौटा तो मालूम पडा कि न तो साधना हुई और न शस्त्र वृद्धि पर पत्नियों की संख्या में अवश्य वृद्धि हुई। अर्जुन बोले आर्य पितामह अब न तो वह उम्र ही रही और न वह दृष्टि ही। जीवन के प्रति, जीवन के भोग के प्रति मेरी दृष्टि बहुत बदल गई है। घोषित रूप से तो मैं नहीं कह सकता कि मैंने काम को जीत लिया है किन्तु उसे संयत तो अवश्य कर लिया है उसमें स्थिरता और धीरता अवश्य आई है। चांचल्य भी एक सीमा तक विदा हो गया है। अब काम मेरे सुख का कारण नहीं है। वह मेरी सीमा हो सकती है, बाध्यता हो सकती है, प्रकृति का बन्धन हो सकता है। इस शरीर की अनिवार्य वृति भी हो सकती है पर काम अब काम्य नहीं रहा। तपस्या की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी। नये काम सम्बन्ध अब आकर्षण तो क्या होगे, कलंक हो सकते हैं। प्रत्येक वय के अपने आर्षकण और अपनी मर्यादायें होती है। ऐसा कहकर युधिष्ठिर से अनुमति लेकर वहां से अन्तर्धान हो गये। युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों के साथ सरस्वती नदी के तट पर द्वैतवन से काम्यकवन में पूर्ववत आ गये और वहीं पर निवास करने लगे।

धर्मराज ने व्यास की आज्ञानुसार अर्जुन को बुलाया और बोले अर्जुन हमारे पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा आदि अस्त्र-शस्त्रों के बडे मर्मज्ञ हैं। हमें अब तुमसे ही केवल आशा है। महर्षि व्यास ने मुझे प्रतिस्मृति विद्या का उपदेश दिया है उसका उपयोग करने से सम्पूर्ण जगत भलीभांति दिखने लगता है। तुम मुझसे यह मन्त्र विद्या सीख लो। इसके लिये तुम दृढ़ ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करो। धनुष, बाण, तरकस, तलवार लेकर साधुओं की तरह गुप्त रूप में उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करो। वहां पर तुम उग्र तपस्या कर मन को परमात्मा में लीन कर देवताओं की कृपा प्राप्त करना। वृतासुर से भयभीत होकर देवताओं ने अपना सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र बल इन्द्र को सौंप दिया था। इसलिये अब सारे दिव्य अस्त्र शस्त्र इन्द्र के पास है। तुम इन्द्र की शरण में जाओ और उन्हे प्रसन्न करो। वे तुम्हे सब अस्त्र शस्त्र देंगे। तुम आज ही मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करके स्वर्ग लोक में इन्द्र के पास जाओ। धर्मराज युधिष्ठिर ने संयमी अर्जुन को शास्त्रविधि के अनुसार गुप्त मन्त्र की दीक्षा दिला दी और तपस्या के लिये उत्तर दिशा में इन्द्रकील जाने की आज्ञा दी। अर्जुन गांडीव धनुष, अक्षय तरकस और कवच से सुसज्जित होकर प्रस्थान के लिये तैयार हो गया।

उस समय द्रौपदी अर्जुन के पास आकर बोली हे वीर पापी दुर्योधन ने भरी सभा में मुझे बहुत सी अनुचित बातें कह मेरा अपमान किया था। इससे मुझे बडा दु:ख हुआ फिर भी तुम्हारे वियोग का कष्ट, दु:ख तो उससे भी कहीं बडा है परन्तु हमारे सुख-दु:ख के एक मात्र सहारे तुम ही हो। आपके चले जाने पर हमारा मन न तो भोगों में प्रवृत होगा और न ही किसी धन वैभव में। इस जीवन में भी फिर कोई रस नहीं रह जायेगा। हम लोगों का जीना मरना, राज्य और ऐश्वर्य पाना तुम्हारे ही पुरुषार्थ पर अवलम्बित है। इसलिये मैं तुम्हे जाने की सम्मति देती हूं। आप वहां अपने से बलवानों से विरोध न करे यह मेरा अनुरोध है। विघ्न बाधाओं से रहित हो विजय प्राप्ति के लिये शीघ्र प्रस्थान करें। धाता और विधाता को नमस्कार कर कुशल और स्वस्थतापूर्वक प्रस्थान करें। हे धनंजय मार्ग में ही, श्री, कीर्ति, द्यूति, पुष्टि, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती ये सब देवियां आपकी रक्षा करे। मैं आपकी शान्ति के लिये और कल्याण के लिये भगवान तथा समस्त देवी देवताओं से वसु, रुद्र, आदित्य, मरुदगण विश्वेदेव तथा साध्यगणों से कल्याण के लिये प्रार्थना करती हूं। हे भारत मार्ग में विघ्न डालनेवाले प्राणी, भौम, आन्तरिक्ष तथा दिव्य भूतों से और दूसरे भी जो मार्ग में अवरोधक हैं उन सबसे आपका कल्याण हो ऐसी मंगल कामना करके यशस्विनी द्रौपदी चुप हो गई।

दुर्योधन अपने कक्ष में आवेश में बैठा हुआ था इतने में शकुनि वहां पर आया। शकुनि बोला भान्जे दुर्योधन यह मैं क्या

सुन रहा हूं ? दुर्योधन बोला यह मैं कैसे बता सकता हूं मामाश्री की आप क्या सुन रहे है ? शकुनि बोला अपने मित्र राजाओं की निष्ठा को क्यों आमंत्रित कर रहे हो ? क्या आवश्यकता आ पडी उसकी ? दुर्योधन बोला पर इसमें आपत्ति भी क्या है मामाश्री ? शकुनि बोला अरे पुत्र पांडव तो अज्ञातवास के जाल में ऐसे फसेंगे जैसे मछली किसी मछेरे के जाल में फंस जाती है। अरे पांडवों के भाग्य में तो हस्तिनापुर लौटकर आना लिखा ही नहीं भान्जे। दुर्योधन बोला यदि आप विधाता होते मामाश्री तब तो मुझे चिन्ता ही नहीं होती परन्तु आप लक्ष्य भेदन में कई कई बार असफल हो चुके है इसलिये मैंने सोचा कि अज्ञातवास... शकुनि बोला तुम कब से सोचने लगे प्रिय भान्जे दुर्योधन ? दुर्योधन बोला अरे मामाश्री आप मुझे इस तरह रूठे हुये अच्छे नहीं लगते। किन्तु आप यह तो सोचिये की अज्ञातवास में हम उन्हे पहिचान नहीं पाये तो क्या होगा ? तब तो हमें युद्ध करना ही पडेगा फिर क्यों न हम यह वर्ष युद्ध की तैयारी में लगा दे और क्षत्रिय को तो सदैव युद्ध की तैयारी में रहना ही पडता है। यह तो आप भी जानते हैं मामाश्री कि वे पांडव चुप बैठने वालों में से नहीं है। अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये इन्द्रकील पर्वत पर इन्द्र की घोर तपस्या के लिये गया हुआ है। अर्जुन ने अपने भाइयों तथा धौम्य मुनि से विदा ले उत्तर दिशा की यात्रा प्रारम्भ की। अर्जुन इतने तेज चले जा रहे थे कि वे चलते-चले देव सेवित हिमालय क्षेत्र में जा पहुंचे वहां से उन्हे गन्ध मादन पर्वत और वह पार कर इन्द्रकील पर पहुंचना है।

१३) अर्जुन की तपस्या और शंकर के साथ युद्ध, पशुपातास्त्र की प्राप्ति

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय अर्जुन जैसे जैसे हिमालय की उच्चतर चोटियों की ओर बढते जा रहा था शीत और हिम का प्रकोप बढते जा रहा था। जनसंख्या विरल होती जा रही थी। कन्द फल भी अनुपलब्ध होते जा रहे थे। मानव सम्पर्क से मुक्त हो वह शुद्ध प्रकृति के सम्पर्क में आता जा रहा था। चलते-चलते कई दिन बीत गये। क्यों अपने आप उसका मन ईश्वरोन्मुखी होते जा रहा था। वह सारी प्रकृति तृण रहित हिम आच्छादित पर्वत, वहां हरे भरे देवदास के वृक्ष, कल कल की ध्वनि करती जलधारायें झरने, अचल निर्वाक चट्टाने, सुगंधित घाटियां, मेघों का क्रीडा क्षेत्र, स्तब्ध नीला आकाश। यह सृष्टि स्वयं सृष्टा ने उन्माद से लीला में विभिन्न रूप धारण कर लिये है। सृष्टा कोई उनके पीछे नहीं छिपा है वह तो इन्ही के रूप से प्रकट हुआ है। यह प्रकृति स्वयं ही ईश्वर है। इसीलिये तो मनुष्य को इस सुन्दर और स्वच्छ प्रकृति में अपनी जननी का रूप दिखाई देता है। माता प्रकृति ही तो मनुष्य को जन्म देती है वही उसका पालन-पोषण करती है और उसका विकास करती है और जब मनुष्य अपने शरीर से असमर्थ हो जाता है तो उसे अपनी गोद में समेट कर पुन: नये शरीर की रचना कर देती हैं। जब ईश्वर प्रकृति के रूप में मां बनकर जीव के इतना निकट रहता है और विधाता बन कर अदृश्य डोरों से उसका नियन्त्रण करता है, उसके कृत्यों को कोई नहीं जान पाता, उसके विधान से अनभिज्ञ है तो फिर मनुष्य व्यर्थ ही मोह में पडा इतने अनर्थ किस लिये कर रहा है। मनुष्य की आवश्यकतायें बहुत थोडी है परन्तु वह संग्रह बहुत अधिक करता है। वह संग्रह उसके किसी काम का नहीं। कभी तो उसकी आयु पूर्ण हो जाती है और कभी तो जीवित रहते हुये भी वह उसको भोग नहीं पाता। भावना के रूप में मनुष्य अपने और पराये का विभाजन करता है और जिन्हें वह अपना मानता है उनके लिये वह भोग का प्रबन्ध करता है कहीं ममत्व का भोग तो कहीं उनपर अधिकार कर अपने वश में करना, कहीं अहंकार का भाव और वह इसी भोग की उधेडबुन में और गहरा धंसते चले जाता है। अर्जुन के पग जितनी ऊंचाई नाप रहे थे उतना ही अर्जुन का मन सीढिओं ऊपर चढते जा रहा था। वह यथार्थ के पीछे छिपे सत्य का अनुभव कर रहा था। सत्य कदाचित दिखाई नहीं पडता उसका तो अनुभव ही किया जा सकता है। जो दिखाई पडता है वो तो माया का प्रपंच है और जो अनुभव होता है वह सत्य का सूक्ष्म शरीर है।

गन्धमादन पार किये अर्जुन को कई दिन व्यतीत हो गये वह चलते ही जा रहा था। फलों के अभाव में सूखे पत्ते ही खाकर, वायु पीकर जी रहा था। शरीर की आवश्यकताओं को तो पूर्ण करना आवश्यक है। रसना का स्वाद भी लुप्त हो

गया। जीभ का स्वाद चले जाने के पश्चात न मन में लोभ जागता है और न ही पेट की भूख व्याकुल करती है। मन का लोभ भी समाप्त हो गया। शरीर में न ऊर्जा की कमी थी और न शक्ति की। चारों ओर स्वच्छ शुद्ध वायु पर्याप्त ऊर्जादायिनी थी और जब कभी प्यास लगी तो किसी उत्स या जल स्त्रोत से कुछ घूंट पानी पी लेना पर्याप्त था। वह जल नहीं पर जल के समान अमृत ही था। जिसे पीकर प्राणों में ऐसी स्फूर्ति आ जाती थी कि सारे शरीर में ऊर्जा का संचार होने लगता था। अर्जुन का मन आकाश में उडने लगता था।

अर्जुन चलते चलते इन्द्रकील के समीप पहुंच गया वहां एक वृक्ष के समीप से आवाज आई ठहरो खडे हो जाओ। इधर-उधर देखने पर मालूम हुआ कि एक वृक्ष की छाया में कोई तपस्वी बैठा हुआ है। तपस्वी का चेहरा ब्रह्म तेज से चमक रहा था। तपस्वी ने पूछा कहां जाना चाहते हो युवक ? अर्जुन ने उत्तर दिया इन्द्रकील पर्वत पर। तपस्वी ने कहा तुम इस समय इन्द्रकील पर्वत पर पहुंच चुके हो किन्तु शायद तुम नहीं जानते कि यह उन तपस्वियों का प्रदेश है जिन्होने अपने मन के भय, शोक, लोभ, अहंकार को जीत लिया है। यहां कोई भी शस्त्र लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये तुम्हे अपने अस्त्र यहीं त्याग देने चाहिये यदि तुम स्वेच्छा से शस्त्र त्याग नहीं करोगे तो तुम इन्द्रकील पर्वत पर आगे बढ भी नहीं पाओगे। क्षमा सदैव ही प्रतिशोध से श्रेष्ठतर नीति है। तपस्वी के बार बार कहने पर भी अर्जुन ने शस्त्र न त्यागने का निश्चय कर लिया। अर्जुन उस तपस्वी से बोला इन्द्र से कहिये वे अपने वज्र का त्याग कर दें। महादेव शिव से कहिये वे त्रिशूल धारण करना छोड दे। कुछ लोग अपने शस्त्रों से ही धर्म की रक्षा करते है। मैं भी उनमें से एक हूं इसलिये मैं शस्त्र का त्याग नहीं कर सकता। तब तपस्वी दृढ़ स्वर में बोला तब तो तुम्हें वैजयन्त (इन्द्र) के दर्शन नहीं हो सकते। सृष्टि ईश्वर के बनाये विधान के अनुसार चलती है, तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार नहीं। अर्जुन को अविचल भाव में स्थिर देखकर वह तपस्वी बोला मैं ही इन्द्र हूं तुम्हारी इच्छा पूरी हुई। मांगो अर्जुन क्या चाहिये तुम्हे ?

अर्जुन ने दोनों हाथ जोडकर इन्द्र को प्रणाम किया और बोले हे देव मैं सम्पूर्ण अस्त्र विद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं। मुझे सम्पूर्ण शस्त्र-अस्त्र का ज्ञान तथा दिव्यास्त्रों एवं देवास्त्रों की आवश्यकता है। हमलोग पृथ्वी पर हो रहे अधर्म को नष्ट कर देना चाहते है किन्तु अधर्म भयंकर रूप से संगठित और अत्यन्त बलशाली हो रहा है। अर्जुन बोले शस्त्र तो क्षत्रिय की आत्मा होती है तो क्या आत्मा बिना तपस्या सफल है ? इन्द्र बोले किन्तु तपस्या की अपनी मर्यादा होती है अर्जुन। अर्जुन बोला तो क्षत्रिय की क्या अपनी मर्यादा नहीं होती भगवन। राजर्षि विश्वामित्र ने बिना शस्त्रों के अपनी तपस्या भी की थी। अर्जुन बोले राजर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बनना चाहते थे। उनकी आंख कामधेनु पुत्री नंदिनी पर थी। मेरी दृष्टि दिव्यास्त्रों पर है और जो शस्त्र मांगने निकला हो वो बिना शस्त्रों के कैसा लगेगा ? इन्द्र बोले दिव्यास्त्र पाने के लिये तुम्हें महादेव शंकर को प्रसन्न करना होगा। इसलिये तुम कुछ और मांग लो। जो जीवन में तुम्हारे लिये सर्वाधिक मूल्यवान हो, अमूल्य हो, जो कभी किसी मानव को न मिला हो। तुम नहीं जानते कि देवलोक कितना सुन्दर है। वहां की रमणियां कितनी मोहक और आकर्षक है। वहां की सुरा में कैसा मद है यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हे वहां का स्थायी निवास दे दूं। धन, सम्पदा, भोग विलास, अधिकार और सत्ता जो चाहो मुझसे ले लो। फिर क्या करोगे दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों का ? तुम्हे युद्ध की आवश्यकता ही नहीं पडेगी। इस तरह अर्जुन की परीक्षा लेने वैजयन्त ने उसे अनेकों प्रलोभन दिये परन्तु अर्जुन अपने निश्चय पर दृढ था और बोला मुझे कुछ और नहीं चाहिये केवल दिव्यास्त्र तथा देवास्त्र ही चाहिये। इन्द्र बोले अर्जुन देव शक्तियां अपने शस्त्र-अस्त्र का दुरुपयोग नहीं करती। हम चाहते है कि शस्त्र का प्रयोग केवल अधर्म के नाश के लिये ही होना चाहिये। किसी के भी द्वारा उसका दुरुपयोग न हो। इसलिये दिव्यास्त्र और देवास्त्र देने से पूर्व हमें इस बात का पूरा विश्वास हो कि वह मानव लोभ, स्वार्थ अथवा भय की चरम स्थिति में भी धर्म से विचलित नहीं होगा। अब तुम जाकर महादेव की तपस्या कर उन्हे प्रसन्न करो। तपस्या से अशिव का नाश होगा और

शिव के दर्शन होंगे। इसी स्थान पर शिव की तपस्या करो। शिव प्रसन्न होकर तुम्हे दर्शन देंगे और पाशुपतास्त्र प्रदान करेंगे। शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त कर तुम मेरे पास इन्द्रपुरी चले आना वहीं पर तुम्हे अपनी इच्छानुसार दिव्यास्त्र और देवास्त्र प्राप्त होंगे। यह कहकर इन्द्र अन्तर्ध्यान हो गया।

दुर्योधन अपने कक्ष में चिंतित बैठा है और अर्जुन के वध करने की योजना बना रहा है कि अर्जुन का वध किस प्रकार किया जाये इतने में ही अट्टहास करता हुआ एक राक्षस दुर्योधन के कक्ष में आता है। दुर्योधन कहता है दुर्योधन के कक्ष में तुम्हारा स्वागत है। यह सारे जितने मनुष्य कारागृह में है वो सब तुम्हारे भोजन के लिये है। यदि तुमने मेरा यह कार्य कर किया तो मैं तुम्हारे लिये कारागार के द्वार खोल दूंगा जो राजद्रोहियों से भरा हुआ है। राक्षस बोला ये सब स्वस्थ है। इनके लिये तो मैं कुछ भी कर सकता हूं युवराज। आप आज्ञा तो दीजिये। दुर्योधन बोला कार्य तनिक कठिन है। कुन्ती पुत्र अर्जुन का वध। दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये वह हिमालय पर घोर तपस्या कर रहा है इसलिये उसका वध आवश्यक है।

वैशम्पायन ने कहा जनमेजय महारथी अर्जुन शिव तपस्या के लिये दृढ निश्चय कर हिमालय लांघकर एक बडे करीले जंगल इन्द्रकील से परे पहुंचे। उसकी शोभा अपूर्व थी। उसे देखकर अर्जुन के मन में बडी प्रसन्नता हुई। अर्जुन कुश के वस्त्र, दंड, मृगछाला इत्यादि धारण कर वहां तपस्या करने लगे। पहिले कुछ दिन पेडों से गिरे हुये सूखे पत्ते चबाये। फिर अंगूठे की नोक के बल खडे होकर केवल वायु पीकर ही तपस्या करने लगे। इस तरह इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करते हुये अर्जुन को कई वर्ष बीत गये। आरम्भ में वहां के शीत वातावरण से उसे असुविधा का अनुभव हुआ। तब अर्जुन ने जाना कि मनुष्य के मन और शरीर में अनुकूलन तथा प्रतिरोधक कष्ट सहन करने की अनन्त शक्ति है। शरीर को कठोर बनाने का सतत् प्रयत्न, मन का संकल्प और भोग विधियां उसके शरीर को ऐसा बना देती है जिस पर शीत का कोई प्रतिकूल प्रभाव न पडे। जहां लोग कम खाते हैं वे स्वस्थ रहते हैं। जहां खान पान की बहुलता हो वहां रोग भी अधिक होते है। अर्थात जो कुछ हम शक्ति संचित करने के लिये खाते है वही भोजन हमारे शरीर में रोग को उत्पन्न करता है। इसलिये देहधारी की मृत्यु सदा उसके शरीर में ही निवास करती है। मृत्यु को जीतना ही तो शरीर की तृष्णा को जीतना है, मन की वासना को जीतना। अर्जुन को लगने लगा यदि मन को नियंत्रित किया जाये तो शरीर की आवश्यकतायें इतनी कम हो जाती है कि प्रकृति स्वयं ही उन्हे पूर्ण करने के लिये बाध्य हो जाती है। वायु, जल, धूप और मिट्टी ये सब ही तो मनुष्य की आवश्यकतायें है जो प्रकृति पूरी कर देती है। ये सब तत्व शरीर और प्राण की रक्षा तो कर लेंगे परन्तु लोभ, तृष्णा और वासना का पोषण ये तत्व नहीं करते, न ही इनकी कोई सीमा है। तभी तो हस्तिनापुर की सारी सम्पत्ति का स्वामी होकर भी दुर्योधन को सन्तोष नहीं हुआ। लोभ, तृष्णा, भोग और वासना ये सब तो मनुष्य को पाप और पतन की तरफ धकेलते हैं। इन्ही का नाश करना चाहिये। नाश नहीं कर सकते तो इन्हे नियंत्रित अवश्य करना चाहिये। मनुष्य जब मृत्यु से अपनी रक्षा तो कर नहीं सकता फिर क्यों वह अपने धन धान्य और राजपाट की रक्षा की चिन्ता करते रहता है ?

तपस्या करते-करते अर्जुन की पैनी दृष्टि घूम गई और एक स्थान पर स्थिर हो गई। अर्जुन ने देखा घने वृक्षों के झुंड के बीच एक श्वेत वनैला शूकर खडा था ऐसे लग रहा था मानो कोई हिमखंड हो। वह जीता जागता शूकर क्रोधित मुद्रा में सम्भव था कि अर्जुन का आखेट करने के लिये तैयार था। अर्जुन के अधरों पर मुस्कुराहट उभरी और सोचने लगा देखो प्रकृति कैसी माया है। कोई जीव समय से पहले यह समझ नहीं पाता कि वह आखेट करने जा रहा है या आखेट होने। सबको अपनी शक्ति का ज्ञान तो होता है किन्तु सामने खडे दूसरे के अस्तित्व की क्षमता का पता नहीं होता।

बडे बडे ऋषि मुनियों ने भगवान शंकर के पास जाकर प्रार्थना की और बोले भगवन अर्जुन की तपस्या के तेज से चारों ओर की दिशायें धूमिल हो गई हैं। शंकर बोले मैं आज अर्जुन की इच्छा पूरी करूंगा। ऋषियों के चले जाने पर शंकर भगवान ने सोने सा चमकता हुआ किरात भील का स्वरूप ग्रहण किया और पार्वती सहित वहां आये जहां बैठा अर्जुन तपस्या कर रहा था। बहुत

से भूत पिशाच भी वेष बदलकर भील भीलनियां बनकर शंकर जी के साथ आये। किरात वेश शंकर ने देखा कि वह दुर्योधन का मूक दानव जंगली शूकर का वेष धारण कर तपस्वी अर्जुन को मार डालने की घात लगा रहा है। तभी अर्जुन ने अपने तूणीर से बाण निकाल लक्ष्य साधकर उस शूकर को मार गिराया। उसी क्षण शूकर को एक बाण नहीं दो बाण लगे थे। एक बाण तो अर्जुन ने मारा था और फिर ये दूसरा किसने ? तभी वह अदृश्य धनुर्धारी किरात सामने आया जिसने उसी क्षण दूसरा बाण शूकर को मारा था। वह किरात भी क्रोध से तमतमा रहा था और आकर बोला तुमने मेरे आखेट पर बाण क्यों चलाया ? क्या तुम्हें तुम्हारे प्राण प्यारे है या नहीं ? अर्जुन ने उस किरात भील की ओर देखकर पूछा तू कौन है ? इस मंडली के साथ स्त्रियों के साथ इस निर्जन वन में क्या करने आया है ? आखेटक यह शिकार मेरा है। किरात भील बोला नहीं यह शिकार भी मेरा है और यह बाण भी मेरा है। तुम अपना बाण लेकर यहां से चले जाओ नवयुवक। अर्जुन बोला लगता है जीने में तुम्हारा जी भर गया है। जाओ उठाओ अपना बाण और उसे तूणीर में डालो इससे पहिले की मेरा हाथ मेरे कन्धे के तूणीर तक पहुंचे, चले जाओ यहां से। भील किरात बोला चले कैसे जाऊं यहां से ? मैं तो अपना शिकार लेकर ही जाऊंगा। अर्जुन बोला हे किरात जब अर्जुन बाण चलाता है तब शिकार उसके बाण से पहिले किसी का बाण पहुंच ही नहीं सकता आखेटक। किरात बोला कौन अर्जुन ? अर्जुन बोला द्रोण शिष्य अर्जुन। आखेटक फिर बोला कौन द्रोण ? अर्जुन बोला आचार्य द्रोण और मैं आचार्य द्रोण का शिष्य और कुन्ती पुत्र अर्जुन हूं। आखेटक बोला यह अहंकार अपने गुरु के कारण है या अपने वंश के या अपने धनुर्धर होने पर ? यदि गुरुपर है तो मैं उन्हे प्रणाम करता हूं और यदि भरतवंश के उत्तराधिकारी के रूप में है तो फिर तुम्हारी इसमें अपनी क्या विशेषता है ? और यदि घमंड है तुम्हे अपने धनुर्धारी होने का तो मुझे भी अपने बाणों का चमत्कार दिखाओ।

अर्जुन बोला मैं अभिमान नहीं कर रहा था आखेटक, मैं तो केवल अपना परिचय दे रहा था। आखेटक बोला इसे अभिमान ही कहते हैं नवयुवक। अर्जुन बोला सावधान आखेटक। इतने में ही आखेटक ने भी बाण चलाकर अर्जुन को बन्दी बना लिया। दोनों ओर से बाण वर्षा जोरों में होने लगी। अर्जुन कुछ कुछ कर बाण छोडता और वह किरात उसे हाथों से पकड लेते। भील ने अर्जुन का गांडीव धनुष भी छीन लिया। अर्जुन ने तलवार का प्रहार किया तो वह भी दो टुकडे होकर गिर गई। अर्जुन ने पत्थरों और वृक्षों से प्रहार करना चाहा तो भील ने प्रहार करने के पहिले ही छीन लिया। थोडी देर बाद अर्जुन को होश आया वो मिट्टी की शिव प्रतिमा की पिंडी बनाकर ओम नम: शिवाय का स्त्रोत करने लगे। अर्जुन बोला तुम्हारा साहस कैसे हुआ आखेटक जिस पर मेरा अधिकार है तब वह आखेटक बोला अच्छा अब बात अधिकार और साहस की होने लगी। मनपर नियन्त्रण न हो और मनुष्य को असाधारण बल प्राप्त हो जाये तो वह अमर्यादित हो ईश्वर की सृष्टि का अनावश्यक विनाश करने लगता है। आखेट मनुष्य का शोक इसी का स्वरूप है। अर्जुन बोला हे आखेटक भगवान शंकर, इन्द्र देव, पितामह भीष्म और गुरु द्रोण के अतिरिक्त कोई मेरी यह दशा नहीं कर सकता। पितामह आप है नहीं, गुरु द्रोण भी आप नहीं है इसलिये आप तो स्वयं शंकर भगवान ही हैं। अर्जुन हाथ जोडकर पुन: बोला। तब आखेटक बोला- इन्द्र क्यों नहीं ? अर्जुन बोला हे भगवन तपस्या तो मैं आपके लिये कर रहा था।

तब शिव अपने वास्तविक रूप में प्रगट हुये और अर्जुन को दर्शन दिये और बोले मैं तुम पर प्रसन्न हूं अर्जुन। वर मांगो पुत्र। क्या चाहिये तुम्हें ? तेरी कामना पूर्ण करना चाहता हूं। अहंकारी पर मेरी कृपा कभी नहीं होती किस कामना को लेकर तपस्या कर रहा है तू ? अर्जुन बोला प्रभो आप मुझे पाशुपतास्त्र प्रदान करे ताकि मैं युद्ध में अपने शत्रुओं को पराजित कर सकूं। भगवन आप तो सब कुछ जानते हैं। मुझे मान और आत्मसम्मान तथा पांडवों की रक्षा के लिये आपका यह अस्त्र चाहिये। शिव बोले लगता है इन्द्र ने तुम्हें बहुत सीखा पढाकर भेजा है। अर्जुन बोला उन्होने तो केवल यह कहा था जब तक आप प्रसन्न नहीं होंगे तब तक मैं दिव्यास्त्र प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हूं। शिव बोले- वासुदेव कृष्ण ने भी तुम्हें कुछ कहा था। अर्जुन बोला हां कहा था

दिव्यास्त्रों की खोज के लिये निकलो पार्थ। शिव बोले इसके अतिरिक्त और भी कुछ कहा था। अर्जुन बोले हां उन्होने यह भी कहा था कि युद्ध अवश्य होगा। तुम यह न भूलो पार्थ कि मैं तुम में हूं और तुम मुझ में। जो कुछ मेरा है वह तुम्हारा भी है। तुम्हारा शत्रु मेरा शत्रु है और तुम्हारा मित्र मेरा मित्र है। शिव बोले बस अब तुम्ही सोचो यदि तुम मुझसे कुछ मांगोगे तो मैं उसे कैसे अस्वीकार कर सकता हूं ? जो वासुदेव का मित्र है कुन्ती पुत्र अर्जुन वो हमारा भी मित्र है।

लो मेरा यह पशुपतास्त्र और स्वर्ग की ओर प्रस्थान करो और भगवान शंकर ने अर्जुन को पशुपतास्त्र प्रदान किया और बोले स्वर्ग में इन्द्र की कृपा से तुम्हें सारे दिव्यास्त्र प्राप्त होंगे। मेरा यह पाशुपतास्त्र बाहरी शत्रुओं से ही नहीं बल्कि अपने आन्तरिक विकारों से युद्ध करने के लिये भी है। इसमें अपने मन के विकारों से लड तुझे पशु होकर नहीं पशुपति होकर जीना है इसलिये अपने क्रोध से लड, अपने मन के पशु को बाहर निकाल, अपने अहंकार से लड, अपने काम से लड, अपने राग द्वेष से लड। इससे तुझे दिव्य जीवन का अनुभव होगा। यदि तूने अपने भीतर के शत्रुओं का दमन कर लिया, विकारों को जीत लिया तो बाहर भी तेरे शत्रु नहीं होंगे। अर्जुन ने तत्क्षण ही भगवान गौरी शंकर को प्रणाम कर उनकी स्तुति की। अर्जुन बोले प्रभो आप सभी देवताओं के स्वामी महादेव हैं। जिन्होने समुद्र मंथन के समय अमृत पान किया वे देव कहलाये और आपने समुद्र मंथन से निकला विष पिया तो आप महादेव कहलाये। इसीलिये आप के कंठ में नीला रंग है। इससे आप नीलकंठ भी जाने जाते है। आप कारणों के भी परम कारण हैं त्रिनेत्री हैं व्यापक हैं। आप देवताओं के आश्रय एवं जगत के मूल कारण हैं। आपको कोई जीत नहीं सकता। आप अजय हैं। आप ही शिव और आप ही विष्णु हैं। मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूं। आप हरिहर स्वरूप है। आप सर्वस्व, भक्त वत्सल, त्रिशूलधारी एवं पिनाक पाणि है। आप सूर्य स्वरूप, शुद्धमति एवं सृष्टि के विधाता हैं। आप सर्व भूत महेश्वर, कल्याणकारी, परम कारण, स्थूल सूक्ष्म स्वरूप हैं। मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं। मैं आपके दर्शनों की लालसा से यहां आया था। मैंने अपने अज्ञान से आपसे युद्ध करने का साहस किया इसे मेरा अपराध न मानकर अपने इस शरणागत को क्षमा करें। अर्जुन की स्तुति सुनकर शंकर ने हंसकर प्रसन्न होकर अर्जुन को क्षमा किया और बोले अर्जुन तुम नारायण के नित्य सखा नर हो। इन्द्र के अभिषेक के समय तुमने और कृष्ण ने धनुष उठाकर दानवों का दमन किया था। आज मैंने माया से किरात रूप धारण कर तुम्हारा गांडीव धनुष और बाण छीन लिये थे वह तुम्हें अब लौटा रहा हूं। मैं तुम्हें अपना पाशुपतास्त्र दे रहा हूं क्योंकि तुम इसके धारण, संचालन, प्रयोग और उपसंहार के अधिकारी हो। इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और वायु ये सभी लोकपाल भी उस अस्त्र के धारण करने में, प्रयोग और उपसंहार में इतने कुशल और निपुण नहीं है। अल्प शक्ति मनुष्य के ऊपर इसका प्रयोग मत करना नहीं तो यह जगत का नाश कर डालेगा। यदि मात्र संकल्प, वाणी और दृष्टि से किसी भी प्रकार शत्रु पर इसका प्रयोग किया जाये तो वह उसका नाश कर देगा। अर्जुन ने शिव से पाशुपतास्त्र के प्रयोग की विधि भगवान शिव से जानकर उसे ग्रहण किया। भगवान शंकर अर्जुन के सामने ही आकाश मार्ग से जाकर अन्तर्ध्यान हो गये।

अर्जुन की मानसिक स्थिति बडी विलक्षण हो रही थी कि आज भगवान गौरीशंकर ने उन्हें दर्शन दिये। अर्जुन तो धन्य हो गये। उनकी यह कामना पूर्ण हो गई। अर्जुन को वहां पर लग रहा था उसका शरीर नहीं है उसके पैरों के नीचे पृथ्वी नहीं थी। पृथ्वी तो नीचे छूट गई थी बहुत दूर। आसपास कहीं आकाश भी नहीं था। अन्तरिक्ष भी कहीं पीछे छूट गया था। अब वह बीच ही में जैसे कहीं लटक रहा था। अब वह ऐसे लोक में पहुंच गया जहां न सूर्य का प्रकाश था, न चन्द्रमा का। वहां अग्नि का ताप भी नहीं था। जो कुछ भी था वह स्वत: अपने प्रकाश से प्रकाशित था। ग्रह नक्षत्रों के अधिष्ठाता अपने प्रकाश से आलोकित अपने अपने लोकों में प्रतिष्ठित हो रहे थे। अर्जुन अब मुक्त था, स्वतन्त्र उसका वास्तविक स्वरूप। सहसा अनेक जल जन्तुओं सहित जल के अधिष्ठाता देवता वरुण अर्जुन को लेकर आये। दूसरी ओर दिशा से यक्षाधिपति कुबेर आये वे पिंगल वर्ण अपने यक्षों के साथ वहां आये उसके पश्चात सूर्यपुत्र यम जिनके साथ अनेक पितृगण आये। यम के हाथ में दंड था। अन्त में ऐरावत

पर बैठकर इन्द्र आये। यम ने अपना स्नेह प्रकट करते हुये कहा फाल्गुनी हम सब लोकपाल तुम्हारे लिये आये हैं। तुम आज हमारे दर्शनों के अधिकारी हो गये हो। संसार में तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी। मैं तुम्हे अपना दंड देता हूं इसे ग्रहण करो। वरुण ने कहा मैं तुम्हे अपना वरुण पाश दे रहा हूं। यह युद्ध में कभी निष्फल नहीं होता। और उसे प्रयोग करने की विधि की जानकारी दी। तुम उसके द्वारा चाहे जिसे बान्ध सकते हो। कुबेर ने उसे अपना अन्तर्धान नामक अस्त्र दिया। कुबेर ने कहा तुम भगवान के नर रूप हो। धनाधीश कुबेर बोले पहले कल्प में तुमने हमारे साथ बडा परिश्रम किया है इसलिये तुम मेरा यह अस्त्र ग्रहण करो। यह पराक्रम एवं तेज देनेवाला अस्त्र है। भगवान शंकर ने त्रिपुरासुर का वध करते समय इसका प्रयोग कर असुरों को भस्म कर दिया था। देवराज इन्द्र बोले तुम यहां से चलकर उत्तर दिशा में देवताओं की अमरपुरी अमरावती में आओ वहां पर तुम्हे दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों की प्राप्ति होगी तथा उन शस्त्रास्त्रों का प्रशिक्षण होगा। यह कहकर सब लोकपाल अपनी अपनी दिशा में चले गये। कामना और तृष्णा किसी अनुशासन और नियम को नहीं मानती।

समय ने दुर्योधन और धृतराष्ट्र को अनेक अवसर दिये है कि वे लोग पांडवों को यदि पूर्ण न्याय न कर सके तो अंश न्याय करे। खंड न्याय करे। महाराज पांडु का पूरा राज्य उनके पुत्रों को न दें तो उसका कोई खंड ही दे दे। पांडव तो खांडव प्रस्थ लेकर ही सन्तुष्ट हो गये थे। सर्वत्र धर्म का राज्य न हो तो अधर्म के साम्राज्य में धर्म को जीवित रहने के लिये कोई सीमित क्षेत्र ही मिल जाये। दोनों का सह अस्तित्व ही सही। किन्तु दुर्योधन तो धर्म को श्वास भी नहीं लेने देना चाहता। वह चाहता है कि केवल अधर्म ही जिये इसका अर्थ हुआ कि सह-अस्तित्व भी सम्भव नहीं है। एक के होते दूसरा जीवित नहीं रह पायेगा। अधर्म रहेगा तो धर्म का कोई अस्तित्व नहीं होगा और धर्म को तो जीवित रहना ही है। संसार टिका हुआ ही धर्म के स्तम्भ पर, आधार पर है। अत: अपने अस्तित्व के लिये धर्म को लडना होगा और अधर्म को मिटाना होगा। धर्मराज तो चाहेंगे कि पांडवों के साथ-साथ धृतराष्ट्र परिवार भी न केवल जीवित रहे वरन सुखी भी रहे किन्तु दुर्योधन कभी भी अपने जीते जी पांडवों को जीवित नहीं रहने देना चाहेगा। इसलिये पांडवों को जीवित रखने के लिये दुर्योधन को मरना ही होगा। भीम दुर्योधन को जीवित नहीं छोडेगा। अधर्म यह क्यों नहीं समझने को तैयार कि उसके अपने अस्तित्व के लिये आवश्यक है कि धर्म को भी जीवित रखने के लिये कहीं न कहीं स्थान मिले। अधर्म ने जब जब धर्म को पूर्णत: नष्ट कर देना चाहा तब तब अधर्म को स्वयं नष्ट होना पडा।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय महाराज धृतराष्ट्र को अर्जुन के स्वर्ग में निवास करने का समाचार महर्षि व्यास से ज्ञात हुआ तब धृतराष्ट्र ने अपने सारथी संजय से कहा मैंने अर्जुन का सब समाचार पूर्ण रूप से जान लिया है। मेरा पुत्र दुर्योधन बुरे कामों में और विषय भोगों में ही प्रवृत्त रहता है। इससे वह धीरे-धीरे सम्पूर्ण राज्य का विनाश कर डालेगा। युधिष्ठिर सत्यवादी है उनके पास अर्जुन सा वीर यौद्धा है। संजय बोला अर्जुन ने अपने धनुष बल से भगवान शिव को प्रसन्न कर लिया है। भगवान शंकर ने भील का वेश धारण कर अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये उसके साथ युद्ध किया और उससे प्रसन्न हो उसे अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किया हैं। अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर सभी लोकपालों ने उसे दर्शन दिये। अर्जुन का बल अपार है और उसकी शक्ति अपरिमित है। अर्जुन बडा ही भाग्यशाली है। धृतराष्ट्र बोले पांडवों की शक्ति बढते जा रही है। मैंने दुर्योधन की बातों में आकर अपने हितैषी पुरुषों की हित भरी बातों की उपेक्षा कर दी। संजय ने कहा महाराज आप सब कुछ कर सकते थे परन्तु स्नेहवश आपने अपने पुत्र को बुरे कामों के करने से रोका नहीं। उसी का भयंकर फल आपको प्राप्त हो सकता है। जिस समय पांडव कपट द्यूत क्रीडा में हारकर काम्यक वन गये थे उस समय श्रीकृष्ण ने वहां उन्हे आश्वासन दिया था। पांडव राज्य के नाश और अर्जुन के वियोग से बडे ही दु:खी हो रहे है।

एक दिन भीम और युधिष्ठिर द्रौपदी सहित वन में बैठे आपस में बाते कर रहे थे भीम ने कहा भ्राताश्री अर्जुन हमारे प्राणों का आधार है। हम सब लोगों का भार उस पर है। शत्रु हमसे हार जायेंगे और पूरी पृथ्वी हम अपने अधीन कर सकते है। श्रीकृष्ण

हमारे सहायक और रक्षक है। मेरे मन में बार-बार दुर्योधन को मार डालने की उत्तेजना उठती है परन्तु मैं क्रोध पीकर रह जाता हूं। दुर्योधन इस पृथ्वी को जीत ले उसके पहिले ही हम उसे और उसके सहयोगियों को मार डालें। कपटी पुरुष को कपट कर्म करके भी मार डालने में कोई अधर्म नहीं है। इसलिये यदि आप आज्ञा दें तो मैं आग की तरह भभक कर दुर्योधन का नाश कर डालूं। भीम की बात सुनकर युधिष्ठिर ने भीम को शान्त कर बोले नहीं प्रिय भीम। अपनी प्रतिज्ञानुसार पहिले १३ वर्ष पूरे हो जाने दो फिर तुम और अर्जुन दोनों मिलकर अपने पराक्रम से दुर्योधन को जीत लेना। जब तुम बिना कपट ही दुर्योधन और उसके साथियों का नाश कर सकते हो तो फिर कपट करने की क्या आवश्यकता ? जब भीम और युधिष्ठिर आपस में बातें कर रहे थे कि इतने में ही महर्षि बृहदश्व युधिष्ठिर के आश्रम में आ गये।

महर्षि बृहदश्व के आने पर युधिष्ठिर ने शास्त्र विधि से महर्षि को आर्घ्य पाद्य देकर स्वागत किया और तब युधिष्ठिर बोले ऋषिवर कौरवों ने कपट बुद्धि से मुझे जुए में छल से हराया। मेरा सर्वस्व छीन लिया और उन्होने मेरी भार्या द्रौपदी को भरी सभा में केश पकडकर घसीटकर अपमानित किया और अब हम यहां तपस्वी वेश में वन भोग रहे हैं। अब आप ही बतलाइये मेरे जैसा इस पृथ्वी पर भाग्यहीन राजा और कौन है ? तब महर्षि बृहदाश्व बोले युधिष्ठिर तुमने धर्म के लिये राज्य का त्याग किया। अपना तथा अपने भाइयों और पत्नी का अपमान सहन किया। पर लगता है तुम्हारा मन शान्त नहीं है। युधिष्ठिर बोले इस भौतिक शरीर के रहते कभी चिन्ताओं का अन्त हो सकता है जो चित्त को शान्ति मिले ? यह सुनकर ऋषि हंस पडे और बोले चिन्ता तो एक मानसिक स्थिति है युधिष्ठिर। शरीर में प्राण है तो शरीर की कुछ आवश्यकतायें भी होती ही है। यह शरीर जिस परिवेश में रहेगा उसमें किसी न किसी प्रकार का संघर्ष तो चलता ही रहेगा। फिर उन संघर्षों और आवश्यकताओं से क्यों चिंतित रहना। चिन्ता तो एक प्रकार के भय का बाह्य रूप है। यदि तुम चिंतित हो तो तुम भयभीत भी हो। भयभीत रहकर जीवन नहीं चल सकता पुत्र। सूर्यास्त हो जाने पर यदि जीव यह सोचकर भयभीत हो जाये कि न जाने कल सूर्योदय होगा या नहीं तो वह क्या जीवित रह सकता है ? मनुष्य तो जीवित तभी रह सकता है जब वह यह मानकर चले कि सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों भी प्रकृति का नियम है। वह ईश्वर के निर्देशन पर होता है। उसका दायित्व मनुष्य पर नहीं। इसलिये वह जितना प्रकृति के नियमों को स्वीकार करेगा उतना ही वह ईश्वर को स्वीकार करने लगेगा और जितना वह ईश्वर को स्वीकार करने लगेगा उतना ही उसका भय भी कम होने लगेगा। और जब भय कम होगा तो चिन्ता भी स्वत: कम होने लगेगी। तुम्हारे इतने योग्य और समर्थ भाई हैं ऐसे सती पतिव्रता नारी तुम्हारी पत्नी है। वासुदेव कृष्ण तुम्हारे सम्बन्धी और तुमपर इतने कृपालु है फिर तुम चिन्ता किस बात की कर रहे हो पुत्र ? द्यूत विद्या और अश्व विद्या का मेरा ज्ञान संसार में अद्वितीय है। तुम चाहो तो इन दोनों विद्याओं का सम्पूर्ण ज्ञान मुझसे ग्रहण करो फिर तुम्हे द्यूत में शकुनि से कभी भय नहीं होगा। मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है फिर भी मैं तुम्हे सावधान करना चाहूंगा कि न तो इसे अपना व्यसन बनने देना और न ही इससे लाभ पाने के लिये किसी को पीडित कर धन एकत्रित करना। न इसे अपना कभी व्यवसाय बनाना। कुछ लोगों का ज्ञान किसी लाभ अथवा स्वार्थ हेतु होता है और कुछ लोग ज्ञान को मात्र ज्ञान के लिये प्राप्त करते है। धर्मराज आपका यह कहना उचित नहीं है कि आप जैसा दुखी राजा और कोई नहीं हुआ और आप भाग्यहीन हैं। मैं तुमसे भी अधिक दु:खी और मन्द भाग्य राजा नल का वृतान्त सुनाता हूं। तुम्हे थोडे दिनों में तुम्हारा राज्य प्राप्त हो जायेगा। राजा नल ने द्यूत खेलकर बडा भारी अनर्थ मोल ले लिया और उसे अकेले ही दु:ख भोगना पडा परन्तु तुम्हारे साथ तो तुम्हारे भाई और तुम्हारी पत्नी द्रौपदी तथा बडे-बडे ऋषि महर्षि, विद्वान और सदाचारी ब्राह्मण हैं। ऐसी दशा में तुम्हारे लिये शोक करने का तो कोई कारण ही नहीं है। संसार की स्थितियां सर्वदा एकसी नहीं रहती। यह विचार कर आपको अभिवृद्धि और ऱ्हास की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। राजा नल और दमयन्ती का वृतान्त सुनने से कलियुग के पापों का नाश होता है राजन और दु:खी मनुष्य को धैर्य मिलता है।

१४) नल-दमयन्ती का वृतान्त

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, महर्षि बृहदाश्व ने युधिष्ठिर के आग्रह पर नल दमयन्ती का वृतान्त कहना प्रारम्भ किया। धर्म राज निषध देश में वीरसेन के पुत्र नल नाम के राजा हुये। वे बडे ही गुणवान, परम सुन्दर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सर्वप्रिय, वेदज्ञ एवं ब्राह्मण भक्त थे। उनका सेना बल बहुत बडा था। वे स्वयं अस्त्र विद्या में निपुण थे। वे वीर यौद्धा, उदार और प्रबल पराक्रमी थे। उन्हे थोडा थोडा जुआ खेलने का भी शौक था। उन्ही दिनों विदर्भ देश में भीमक नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे भी नल के ही समान सर्वगुणी और पराक्रमी थे। उन्होने दमन नामक ऋषि को प्रसन्न कर चार सन्तानें प्राप्त की। उनके तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। तीन पुत्र दम, दान्त और दमन तथा पुत्री का नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मी के समान रूप वाली गुणी सुन्दर कन्या थी। उसके नेत्र विशाल और गोल गोल चेहरा सर्वांग सुन्दर थी। देवताओं और यक्षों में भी वैसी सुन्दर कन्या कहीं देखने सुनने में नहीं आई। वह अद्वितीय सुन्दरी थी। कितने ही लोग विदर्भ से आते और महाराज नल के पास उसके सौन्दर्य का गुण बखान करते। निषध देश से भी कई लोग जाकर दमयन्ती के सामने राजा नल के ऐश्वर्य, रूप गुण चरित्र का बखान करते। इस तरह दोनों के हृदय में अनुराग के अंकुर उत्पन्न हो गये।

एक दिन राजा नल के उद्यान में कुछ हंस विचर रहे थे। राजा नल ने उसमें से एक हंस को पकड लिया। उस हंस ने कहा राजन आप मुझे छोड दीजिये। हम लोग दमयन्ती के पास जाकर आपके गुणों का ऐसा बखान करेंगे कि वह आपको अवश्य वरण कर लेगी। नल ने उन हंसों को छोड दिया तब वे सब उडकर विदर्भ देश चले गये। दमयन्ती उन हंसों को अपने पास देख कर बहुत प्रसन्न हुई और उनको पकडने के लिये दौडी। वह जिस हंस को पकडने दौडती वहीं हंस बोलने लगता अरी दमयन्ती। निषध देश में एक नल नाम का राजा रहता है वह अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान कोई सुन्दर नहीं है। वह तो मूर्तिमान कामदेव ही है। यदि तुम उसकी पत्नी हो जावो तो तुम्हारा तो जीवन सफल हो जायेगा। हमारी समझ से तो देवता, गन्धर्व, मनुष्यों, सर्प और राक्षसों से तो उसके समान सुन्दर पुरुष किसी भी लोक में देखने में नहीं आया। जैसे तुम स्त्रियों में नारी रत्न हो वैसे ही नल भी पुरुषों में भूषण है। तुम दोनों की जोडी बहुत सुन्दर जमेगी।

हंसो की बात सुनकर दमयन्ती बोली। हे हंसों तुम जाकर नल से भी ऐसी ही बात करना। हंसो ने भी निषध देश लौटकर नल से दमयन्ती का सन्देश कह दिया। दमयन्ती हंसों से राजा नल की प्रशंसा सुनकर मन ही मन नल से प्रेम करने लगी और नल को चाहने लगी। नल में वह इतनी अनुरक्त हो गई कि वह रात दिन उसी का ध्यान करने लगी। दासियों ने दमयन्ती का मनोभाव जानकर विदर्भराज भीमक से निवेदन किया कि आपकी पुत्री अस्वस्थ है। यह सुनकर विदर्भराज ने अपनी पुत्री के सम्बन्ध में बडा विचार किया और सोचकर निर्णय किया कि अब वो बडी हो गयी है, सयानी हो गई है विवाह योग्य है इसलिये अब इसका स्वयंवर कर देना चाहिये। उन्होने सब राजाओं को स्वयंवर का निमन्त्रण पत्र भेज दिये। देश देश के राजा महाराज सज धजकर विदर्भ पहुंचे वहां पर भीमक ने उनका स्वागत सत्कार किया।

सभी देवताओं और बडे-बडे ऋषियों को भी दमयन्ती स्वयंवर का समाचार मिल गया। इन्द्र आदि सभी देवता अपने-अपने वाहनों सहित विदर्भ पहुंचे। राजा नल का चित्त पहले से ही दमयन्ती पर आसक्त था। वे भी दमयन्ती के स्वयंवर में सम्मिलत होने के लिये आये। देवताओं ने स्वर्ग से उतरते समय नल को दमयन्ती के स्वयंवर के लिये जाते देख लिया था। नल का सूर्य के सदृश कान्ति, रूप और ओजस्व को देखकर देवता भी चकित हो गये। वे सभी नल के पास आये और बोले राजेन्द्र नल आप बडे सत्यवान हैं। हमारी सहायता करने के लिये आप हमारे दूत बन जाइये। नल ने पूछा आप लोग कौन हैं और दूत बनाकर मुझसे क्या काम लेना चाहते हैं ? इन्द्र ने कहा हम लोग देवता है। मैं इन्द्र हूं और ये अग्नि,

वरुण और यम है। हम लोग दमयन्ती के स्वयंवर में आये हैं। आप हमारे दूत बनकर दमयन्ती के पास जायें और उससे कहिये कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम देवता तुमसे विवाह करना चाहते हैं। इनमें से तुम जिसे चाहे उसे पति रूप में वरण कर लो। नल ने हाथ जोडकर कहा हे देवराज। दमयन्ती के पास आपका और मेरे जाने का एक ही प्रयोजन है इसलिये आप मुझे वहां दूत बनाकर भेजें यह ठीक नहीं होगा क्योंकि जिसे किसी स्त्री के पाने की कामना हो वह भला उसे कैसे छोड सकता है और उसके पास जाकर ऐसी बात कैसे कह सकता है ? इसलिये आप मुझे क्षमा करें। देवताओं ने कहा नल तुम हम लोगों से प्रतिज्ञा कर चुके हो कि तुम हमारा काम करोगे। अत: अब अपनी प्रतिज्ञा वचन भंग मत करो। अविलम्ब वहां चले जाओ। इन्द्र की आज्ञा से नल ने राजमहल में बेरोक टोक प्रवेश किया और दमयन्ती को देखा। दमयन्ती भी नल को देखकर अवाक सी रह गयी। इस अनुपम सुन्दर पुरुष को देखकर मुग्ध हो गई।

दमयन्ती नल से बोली वीर तुम देखने में बडे सुन्दर और निर्दोष जान पडते हो। अपना परिचय दो युवक। तुम यहां किस उद्देश्य से आये हो। नल ने कहा कल्याणी मैं नल हूं। लोकपालों का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूं सुन्दरी। इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण ये चारों देवता तुमसे विवाह करना चाहते है। तुम इनमें से किसी एक देवता को जिसे तुम चाहो अपने पति रूप में वरण कर लो। यही संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। मैंने देवताओं का सन्देश तुम्हें दे दिया। अब जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। दमयन्ती मुस्कुराते हुये नल से बोली नरेन्द्र आप मुझे प्रेम दृष्टि से देखे और आज्ञा करें कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? मैंने मन ही मन आपको मेरा स्वामी मान लिया है। मैंने अपना सर्वस्व आपके चरणों में सौप दिया है। आप मुझपर विश्वास कर प्रेम करे। जिस दिन से मैंने हंसों के मुख से आपके विषय में सुना उसी दिन से मैं आपको चाहने लगी हूं। इसलिये यदि आप मुझ दासी की प्रार्थना अस्वीकार कर देंगे तो मैं विष खाकर, अग्नि में जलकर या पानी में डूबकर, फांसी लगाकर आत्महत्या कर लूंगी।

राजा नल दमयन्ती से बोले जब बडे बडे लोग तुम्हारे साथ विवाह करने प्रार्थी है तब तुम मुझे क्यों चाह रही हो ? उन ऐश्वर्यशाली देवताओं के तो चरणों की धूल के समान भी मैं नहीं हूं। तुम अपना मन उन्ही में लगाओ। देवताओं का अप्रिय करने से मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है। इसलिये मेरी रक्षा करो और उनमें से किसी भी एक देवता का वरण करो। नल की बात सुनकर दमयन्ती घबरा उठी, आंखों में आंसू भर बोली मैं सब देवताओं को नमस्कार कर आपको ही पतिरूप में वरण कर रही हूं। यह कहकर दमयन्ती का शरीर कांपने लगा। तब राजा नल बोले अच्छा तुम ऐसा ही करो। परन्तु मुझे यह बताओ कि मैं यहांपर उनका दूत बनकर उनका संदेश लेकर आया हूं। यदि इस समय मैं अपना स्वार्थ साधने लगूंगा तो यह धर्म विरुद्ध होगा। तुम्हे भी ऐसा नहीं करना चाहिये। दमयन्ती गदगद कंठ से बोली हे नरेश्वर मैं जैसा बताती हूं वैसा करने से आपको कोई दोष नहीं लगेगा। आप स्वयं लोकपालों के साथ स्वयंवर मंडप में आये। मैं उन सबके सामने आपको वरण कर लूंगी। यह सुनकर नल अब देवताओं के पास आये।

देवताओं के पूछने पर नल ने बताया मैं आप लोगों की आज्ञा से दमयन्ती के पास गया और दमयन्ती से आप की आज्ञा का वर्णन किया। परन्तु वह आपको न चाहकर मुझे ही वरण करना चाह रही है। उसने कहा कि मैं भी सब देवताओं के साथ स्वयंवर मंडप में आऊं और वह सबके सामने ही मुझे वरण कर लेगी। इससे मुझे दोष भी नहीं लगेगा। मैंने तो जो बात हुई वह कह दी। अब अन्तिम प्रमाण आप लोग हैं।

राजा भीमक ने शुभ मुहूर्त में स्वयंवर का आयोजन किया। सब दूर दूर के राजा स्वयंवर मंडप में आये और यथा स्थान बैठ गये। पूरा मंडप राजाओं महाराजाओं से भर गया। तब सुन्दरी दमयन्ती वरमाला लेकर रंग मंडप में आयी। राजाओं का परिचय

दिया जाने लगा। दमयन्ती भी एक-एक को देखकर आगे बढती गई। नल के समान आकार और वेशभूषा में पांच व्यक्ति एक जैसे इकट्ठे बैठे थे। दमयन्ती को उन्हे देख सन्देह हो चुका पर उनमें से नल कौनसा है पहिचान नहीं सकी। वह उन पांचों में जिसको देखती वही नल दिखता था इससे उसे बडा दु:ख हुआ कि राजा नल कौनसा है इसे वह कैसा जाने ? अत: दमयन्ती ने हाथ जोड नमस्कार कर देवताओं की स्तुति की हे देवताओं मैंने तो हंसों के मुंह से नल की ख्याति सुनकर उसे पति रूप में वरण कर लिया है। मैं मन, वाणी से नल के अतिरिक्त और किसी को नहीं चाहती। इसलिये मेरे इस सत्यव्रत के कारण आप मुझे मेरे पति नल जिसे मैं स्वीकार कर चुकी हूं दिखला दें। ऐश्वर्यशाली लोकपालों आप लोग अपना अपना रूप प्रकट करे जिससे मैं पुण्यात्मा राजा नल को पहचान सकूं। देवताओं ने दमयन्ती का यह आर्त विलाप सुना।

दमयन्ती के दृढ निश्चय, सच्चा प्रेम, आत्म शुद्धि, बुद्धि, भक्ति और लगन को देखकर देवताओं ने उसे ऐसी शक्ति दी जिससे वह देवताओं को पहिचान सकी। दमयन्ती ने देखा देवताओं के शरीर पर पसीना नहीं आता है। उनके निमेष नहीं गिरते। शरीर मैला नहीं होता। उनके पैर धरती का स्पर्श नहीं करते और उनके शरीर की परछाई नहीं पडती। उनमें से नल के शरीर की छाया पड रही थी। नल के कंठ में पडी माला कुम्हला गयी थी। शरीर भी मलिन हो रहा था तथा स्वेद से लथपथ था। पलकें भी बराबर गिर रही थी और पैर धरती का स्पर्श कर रहे थे। दमयन्ती ने इन लक्षणों को देखकर नल को पहिचान लिया और धर्मानुसार नल को वरण कर लिया। दमयन्ती ने नल के गले में वरमाला डाल दी। सभी देवता और महर्षि साधु साधु कहने लगे। राजा नल ने आनन्द से दमयन्ती का अभिनन्दन किया और बोले कल्याणी तुमने देवताओं को छोडकर मेरा वरण किया है इसलिये मैं तुम्हारी बात मानूंगा और तुम भी मुझे अपना प्रेम परायण पति समझो। जब तक शरीर में प्राण रहेंगे मैं तुमसे सतत प्रेम करूंगा और दोनों ने फिर देवताओं की शरण ली। देवता भी बहुत प्रसन्न हुये। उन चारों देवताओं ने मिलकर यथा समय नल को आठ वर दिये। इन्द्र बोला नल तुम्हें यज्ञ में मेरा दर्शन होगा और तुम्हे उत्तम गति प्राप्त होगी। अग्नि ने कहा जहां तुम मेरा स्मरण करोगे, वहीं मैं प्रकट हो जाऊंगा और मेरे ही समान प्रकाशमय लोक तुम्हें प्राप्त होंगे। यम ने कहा तुम्हारी बनायी हुई रसोई बहुत मधुर व स्वादिष्ट होगी और तुम अपने धर्म पर दृढ रहोगे। वरुण बोले नल तुम चाहोगे वहां जल प्रकट हो जायेगा और तुम्हारी माला उत्तम सुगन्ध वाली होगी। इस प्रकार प्रत्येक देवता दो दो वर नल को देकर अपने-अपने लोकों में चले गये। आये हुये राजा लोग भी विदा हो गये। भीमक ने प्रसन्न मन से दमयन्ती का नल के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। राजा नल कुछ दिन तक विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में रहे फिर अपनी पत्नी दमयन्ती के साथ अपने राज्य निषद में लौट आये और धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करने लगे। उन्होने बहुत सारे अश्वमेघ यज्ञ कर राजा नाम सार्थक किया। समय आनेपर दमयन्ती के गर्भ से इन्द्रसेन नाम का पुत्र और इन्द्रसेना नाम की पुत्री का जन्म हुआ।

महर्षि बृहदाश्व कहते हैं युधिष्ठिर जिस समय दमयन्ती के स्वयंवर से लौट कर इन्द्रादि लोकपाल अपने अपने लोकों में लौट रहे थे उस समय मार्ग में कलियुग और द्वापर की भेंट हो गई। इन्द्र ने कलियुग से पूछा क्यों कहां जा रहे हो ? कलियुग बोला दमयन्ती से विवाह करने के लिये उसके स्वयंवर में जा रहा हूं। इन्द्र बोला वह स्वयंवर तो कभी का पूरा हो चुका। दमयन्ती ने राजा नल को वरण कर लिया। कलियुग क्रोधित हो बोला बडा अनर्थ हो गया उसने देवताओं की उपेक्षा कर मनुष्य को अपनाया इसलिये उसको दंड देना चाहिये। देवता बोले दमयन्ती ने हमसे आज्ञा प्राप्त कर नल को वरण किया है। वास्तव में नल सर्वगुणों से युक्त और उसके योग्य है। नल समस्त धर्मों का मर्मज्ञ और सदाचारी है। नल ने सम्पूर्ण इतिहास पुराणों का अध्ययन किया है। वह वेदज्ञ है। धर्मानुसार यज्ञ में देवताओं को तृप्त करनेवाला, कभी किसी को सताता नहीं सत्य निष्ठ और दृढ़ निश्चयी है। उनकी चतुरता, धैर्य, ज्ञान, तपस्या, पतिव्रता, दया, दम और शम लोकपालों के समान है। उसको शाप देना

तो नरक की धधकती आग में गिरने के समान है। यह कहकर देवता तो वहां से चले गये।

अब कलियुग द्वापर से बोला मैं अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता इस कारण अब मैं नल के शरीर में निवास करूंगा और उसे धर्म से च्युत कर राज्यच्युत भी करूंगा तब वह दमयन्ती के साथ नहीं रह सकेगा। तुम द्यूतकाल के हो इसलिये तुम भी जुए के पांसों में प्रवेश कर मेरी सहायता करो। द्वापर ने कलियुग की बात मान ली और दोनों नल की राजधानी निषध में आ गये। बारह वर्ष तक वे प्रतीक्षा करते रहे की नल में कोई दोष ढूंढ ले। एक दिन राजा नल सायंकल के समय लघुशंका से निवृत्त हो बिना हाथ पैर धोये ही सन्ध्यावंदन करने बैठ गये। उसे इस अपवित्र अवस्था में देखकर कलियुग नल के शरीर में प्रवेश कर गया और अपने दूसरे रूप में नल के भाई पुष्कर के पास गया और उससे बोला तुम नल के साथ जुआ खेलो। मेरी सहायता से जुए में राजा नल को जीतकर निषध देश का राज्य प्राप्त कर लो। पुष्कर कलियुग की बात मानकर नल के पास गया। द्वापर भी पांसों का वेश धारण कर उनके साथ हो गया। जब पुष्कर ने नल को बार बार जुआ खेलने का आग्रह किया तब राजा नल दमयन्ती के सामने भाई पुष्कर की बार बार की ललकार को सह न सके और उन्होने उसके साथ पांसे खेलने का निश्चय कर लिया। उस समय नल के शरीर में कलियुग का प्रवेश हुआ था इसलिये नल दांव में सोना, चांदी, रथ, वाहन, धन आदि जो कुछ भी लगाते वो सब हार जाते। प्रजा और मन्त्रियों ने व्याकुल हो राजा नल को द्यूत से वारित करना चाहा और दमयन्ती को प्रेरित किया कि आप महाराज से निवेदन करें कि आप धर्म और अर्थ के तत्वज्ञ है। आपकी प्रजा आपका दु:ख सह्य न होने के कारण आपकी प्रतीक्षा में है। दमयन्ती ने नल से इसी प्रकार निवेदन कर कहा परन्तु नल कलियुग के आवेश और प्रभाव के कारण कुछ भी नहीं बोले। मंत्री और प्रजा के लोग शोक ग्रस्त हो व निराश होकर लौट गये। पुष्कर और नल में कई महिनों तक जुआ चलता रहा तथा राजा नल बार बार हारने लगा।

राजा नल जुए में जब पांसे फेंकते थे वे सदा ही उनके प्रतिकूल पडते इससे वे सारा धन हार गये। जब दमयन्ती को इस बात का पता चला कि वे अपना सर्वस्व धन सम्पत्ति हार चुके हैं तब दमयन्ती ने अपनी धाय बृहत्सेना द्वारा नल के सारथी वार्ष्णेय को बुलाया और कहा सारथी तुम राजा नल के विश्वासु और प्रेम पात्र हो। इस समय महाराज बडे संकट में पडे हुये है। इसलिये तुम रथ में मेरे दोनों बच्चों इन्द्र सेन और इन्द्रसेना को कुंडिनपुर में मेरे पिता के पास ले जाओ। तुम रथ को वहीं छोड देना। तुम्हारी इच्छा हो तो वहां रहना नहीं तो कहीं अन्यत्र चले जाना। सारथी ने दमयन्ती की आज्ञानुसार दोनों बच्चों को कुंडिनपुर पहुंचा दिया तथा रथ और घोडे भी वहीं छोड दिये। स्वयं वहां से चलकर अयोध्या नरेश ऋतुपूर्ण के पास आकर सारथी का काम करने लग गया।

पुष्कर ने पांसों के खेल में राजा नल का राज्य और धन जीत लिया। उसने नल से कहा क्या अब और जुआ खेलना चाहते हो ? परन्तु तुम्हारे पास तो दांव पर लगाने के लिये कुछ भी नहीं है। नल का हृदय फटने लगा। वे पुष्कर से कुछ नहीं बोले। उन्होने अपने शरीर के सभी वस्त्राभूषण उतार कर दांव खेल दिया और हार गये। केवल एक वस्त्र पहिने नगर से बाहर निकले। दमयन्ती ने भी केवल एक साडी पहिनकर अपने पति का अनुगमन किया। इससे नल के सग्गे सम्बधियों व मित्रों को बडा शोक हुआ। नल और दमयन्ती तीन रात तक नगर के बाहर रहे। पुष्कर ने नगर में घोषणा करवा दी जो कोई मनुष्य नल के प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा उसको फांसी दे दी जायेगी। भय से लोग अपने राजा नल का सत्कार नहीं कर सके। राजा नल दिन रात भूखे, प्यासे रहे। चौथे दिन भूख लगने पर कन्द मूल खाकर वहां से आगे चले गये।

एक दिन राजा नल ने देखा कि बहुत से पक्षी उनके पास ही बैठे मंडरा रहे थे उनके पंख सोने के समान चमक रहे थे। नल के मन में लोभ आया कि इनके पंखों से कुछ धन प्राप्त हो जायेगा। ऐसा सोचकर उन पक्षियों को पकडने के लिये नल ने उन पर

अपने पहनने का वस्त्र डाल दिया। पक्षी नल का वस्त्र लेकर उड गये। अब नल नंगे होकर बडी दीनता से शर्म से गडे मुंह नीचे किये खडा रहे तब पक्षियों ने कहा ऐ दुर्बुद्धि तू नगर से एक वस्त्र पहन कर निकला था उसे देखकर हमें बडा दु:ख हुआ। पर अब हम तेरा वह वस्त्र भी लिये जा रहे है। हम पक्षी नहीं उस जुए के पांसे है।

नल ने दमयन्ती से कहा प्रिये तुम सब कुछ देख रही हो। यहां बहुत से मार्ग है उनमें से एक मार्ग अवन्ति को जाता है दूसरा ऋक्षवान पर्वत पर होकर दक्षिण देश को। सामने विन्ध्याचल पर्वत है। यह पयोष्णी नदी सागर में जाकर मिलती है। ये महर्षियों के आश्रम हैं। सामने का मार्ग विदर्भ देश का मार्ग है। हम जहां पर है वह कौशल देश का मार्ग है। इस प्रकार राजा नल ने दु:खी होकर शोकापूर्ण दमयन्ती को भिन्न भिन्न मार्ग और आश्रम बतलाये दमयन्ती की आंखों से आंसू बहने लगे और बोली स्वामी आप क्यों सोच कर रहे हैं ? मेरा हृदय उद्विग्न हो रहा है। आपका राज्य गया, धन गया, आपके पास कोई वस्त्र नहीं रहा। आप भूखे प्यासे थके हुये हैं मैं आपको निर्जन वन में अकेला कैसे छोड कर जा सकती हूं। मैं आपके साथ रहकर दु:ख दूर करूंगी। दु:ख के अवसरों पर पत्नी पुरुष के लिये औषध होती है। वह धैर्य बन्धाकर पति के दु:ख को कम करती है। नल ने कहा प्रिये तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है। पत्नी मित्र है, पत्नी ही औषध है। मैं भी तुम्हारा त्याग नहीं करना चाहता। दमयन्ती बोली जब आप मुझे छोडना नहीं चाहते तो फिर मुझे विदर्भ का मार्ग क्यों बतला रहे है ? इस समय आपका मन विचलित हो रहा है इसीलिये मेरे मन में ऐसी शंका हुई। आपका मुझे विदर्भ का मार्ग बताने से मेरा मन दु:खा। आप यदि मुझे अपने माता-पिता या किसी सम्बन्धी के यहां भेजना भी चाहते है तो हम दोनों साथ-साथ ही चलेंगे। मेरे पिता आपका सत्कार करेंगे आप वहां सुख से रहना। नल बोले प्रिये तुम्हारे पिता राजा है और मैं भी कभी राजा था पर इस समय संकट में पडा मैं उनके पास नहीं जाऊंगा। तब नल और दमयन्ती दोनों दमयन्ती के एक ही वस्त्र से शरीर ढककर वन में विचर इधर-उधर घूमने लगे। भूख प्यास से व्याकुल हो वो एक अतिथि धर्मशाला में जाकर ठहर गये।

बृहदश्व मुनि बोले युधिष्ठिर राजा नल के शरीर पर वस्त्र नहीं थे बिछाने के लिये चटाई भी नहीं थी। शरीर धूल धूसरित हो रहा था। भूख प्यास की पीडा से त्रस्त थे। राजा नल जमीन पर ही सो गये। दमयन्ती के जीवन में कभी ऐसी परिस्थिति नहीं आई थी। दमयन्ती भी वहीं पर धरती पर सो गयी। जिस समय दमयन्ती सो रही थी उसी समय राजा नल की नींद टूटी। वे दु:ख और शोक की अधिकता से सुख की नींद सो भी नहीं सकते थे। जग जाने के पश्चात उनकी आंखों केसामने राज्य के छिन जाने, रिश्ते नातेदारों के छूटने और पक्षियों के वस्त्र लेकर उड जाने वाले दृश्य एक-एक करके सामने आने लगे। वे सोचने लगे कि दमयन्ती मुझसे अत्यन्त प्रेम करती है। प्रेम के कारण ही वह इतना दु:ख भोग रही है। यदि मैं इसे छोडकर चला जाऊं तो वह अपने पिता के घर चली जायेगी। मेरे साथ तो इसे दु:ख ही दु:ख भोगना पडेगा। सम्भवत: मेरे छोडकर चले जाने के बाद इसे सुख प्राप्त हो। राजा नल ने निश्चय किया कि दमयन्ती को छोडकर चला जाना ही श्रेयस्कर होगा। दमयन्ती मन क्रम से पतिव्रता है और कोई भी इसके सतीत्व को भंग नहीं कर सकता। इस प्रकार नल ने विचार किया कि मैं नंगा हूं और दमयन्ती के शरीर पर केवल एक ही वस्त्र है इसलिये इसी का आधा वस्त्र फाडकर लेना ही मेरे लिये उत्तम होगा। वे धर्मशाला में इधर उधर घूम रहे थे कि उनकी दृष्टि एक तलवार पर पडी। राजा नल ने उसे उठा लिया और धीरे से दमयन्ती का आधा वस्त्र फाडकर अपना शरीर ढक लिया। दमयन्ती नींद में थी। राजा नल उसे छोडकर निकल पडे। थोडी देर में जब उनका हृदय शान्त चित्त और स्थिर हुआ तो वे फिर धर्मशाला में लौट आये और दमयन्ती की दशा देख रोने लगे। वे सोचने लगे कि अब तक मेरी प्राणप्रिया अन्त:पुर के परदे में रहती थी इसे कोई छू भी नहीं सकता था। आज यह अनाथ के सामन धूल धूसरित धरती पर सो रही है। यह मेरे बिना वन में कैसे रहेगी, दु:खी होगी। हे प्रिये तू धर्मात्मा है इसलिये १२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र,

२ अश्विनीकुमार और वायु देव तेरी रक्षा करे। उस समय राजा नल का हृदय टुकडे-टुकडे हुआ जा रहा था। वे बार-बार धर्मशाला से निकलते और फिर लौट आते। शरीर में कलियुग का प्रवेश होने से नल की बुद्धि नष्ट हो गयी। अन्ततः नल अपनी प्राणप्रिया पत्नी को वन में अकेली छोडकर वहां से चले गये।

जब दमयन्ती की नींद टूटी तब दमयन्ती ने देखा कि राजा नल वहां नहीं है। वह आशंका से भरकर पुकारने लगी कि महाराज मेरे स्वामी। मेरे सर्वस्व मुझे छोडकर आप कहां चले गये ? मैं अकेले यहां डर रही हूं। मुझे अधिक क्यों डरा रहे है। ऐ मेरे स्वामी मेरे प्रति कठोर क्यों हो रहे है ? शीघ्र दर्शन दें। लताओं की आड में कहां छिपकर मुझे इतना घोर कष्ट दे रहे हैं। मैं दुःखी होकर इतना विलाप कर रही हूं और आप मेरे पास आकर मुझे धैर्य भी नहीं देते ? हे स्वामी मुझे अपना या किसी और का जरा भी शोक नहीं है। मुझे केवल आप ही की चिन्ता है कि आप इस घोर वन में अकेले किस तरह रह पायेंगे ? हा नाथ आप निर्मल चित्तवाले आपकी जिस पुरुष ने यह दशा की है वह आपसे भी अधिक दुर्दशा को प्राप्त होकर निरन्तर दुःखी जीवन बितावेगा। दमयन्ती इस प्रकार शोक विलाप करती हुई इधर-उधर दौडने लगी। वह उन्मत्त सी होकर इधर-उधर घूम रही थी वहां एक अजगर आ पहुंचा। शोक ग्रस्त होने के कारण उसे इस बात का पता भी नहीं चला। अजगर दमयन्ती को निगलने लगा तो दमयन्ती चिल्ला चिल्ला कर रोकर बोली हे स्वामी मुझे अनाथ की भांति ये अजगर निगल रहा है। आप मुझे छुडाने के लिये क्यों नहीं दौडकर आते ? उसी समय एक व्याध इधर-उधर घूम रहा था। दमयन्ती की पुकार उसके कानों में पडी। वह वहां दौडकर आया और यह देखकर कि एक अजगर दमयन्ती को निगल रहा है अपने तेज शस्त्र से अजगर को चीर डाला। उसने दमयन्ती को अजगर के चंगुल से छुडाया और आश्वस्त कर भोजन खिला पिला कर शान्त किया। उस व्याध ने पूछा सुन्दरी तुम कौन हो ? और किस कष्ट में पडकर किस उद्देश्य से यहां आई हो ? दमयन्ती ने व्याध से अपनी पूरी कष्ट कहानी कह सुनायी। दमयन्ती का सौन्दर्य, बोल चाल और मनोहरता देखकर वह व्याध काम मोहित हो गया। वह अपनी मधुर वाणी से दमयन्ती को अपने वश में करने का प्रयत्न करने लगा। दमयन्ती दुरात्मा व्याध का मनोभाव जान गयी और क्रोध में प्रज्ज्वलित हो उठी। दमयन्ती ने व्याध के बलात्कार के प्रयत्न को बहुत रोकना चाहा परन्तु जब वह किसी प्रकार न माना तब उसने शाप दे दिया **यदि मैंने निषध नरेश राजा नल के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का मन से भी मैंने चिन्तन नहीं किया हो तो यह पापी क्षुद्र व्याध मर जाये।** दमयन्ती के मुंह से ऐसी बात निकलते ही व्याध के प्राण पखेरु उड गये और वह जले हुये ठूंठ की भांति पृथ्वी पर गिर पडा।

व्याध के मर जाने पर दमयन्ती राजा नल को ढूंढती हुई एक निर्जन और भयंकर वन में पहुंची। वहां बहुत से पर्वत, नद, नदी, जंगली हिंस्र पशु, पिशाच आदि को देखती हुई विरह वियोग के उन्माद में उन सबसे राजा नल का पता पूछती हुई उत्तर दिशा की ओर बढने लगी। वह लगातार तीन दिन तीन रात तक चलती रही। दमयन्ती ने देखा कि सामने एक बडा ही सुन्दर तपोवन है। उस आश्रम में वशिष्ठ, भृगु और अत्रि ऋषि के समान मितभोजी, पवित्र, संयमी, जितेन्द्रिय और तपस्वी निवास कर रहे थे। वे वृक्षों की छाला, मृगछाला धारण किये हुये थे। इससे दमयन्ती को कुछ धैर्य प्राप्त हुआ। दमयन्ती ने आश्रम में जाकर बडी नम्रता से उन तपस्वी ऋषियों को प्रणाम किया और हाथ जोडकर खडी हो गयी। ऋषियों ने स्वागत है इस आश्रम में कह कर दमयन्ती का सत्कार किया और बोले बैठ जाओ। हम तुम्हारा क्या प्रिय कर सकते हैं ? दमयन्ती ने भद्र महिला के समान कहा ऋषिवर आप लोगों की तपस्या, अग्नि, धर्म और आश्रम के सभी प्राणी, पशु-पक्षी तो सकुशल है न ? आपके धर्माचरण में तो कोई विघ्न नहीं है न ? तब ऋषियों ने कहा कल्याणी हम तो सब प्रकार से सकुशल हैं पर तुम कौन हो ? किस उद्देश्य से यहां आयी हो ? हम तो आश्चर्य चकित हैं। क्या तुम कोई वन देवता, पर्वत नदी की अधिष्ठात्री देवी देवता हो ? दमयन्ती बोली

महात्माओं मैं कोई देवी देवता नहीं हूं। एक मानवी स्त्री हूं। मैं विदर्भ नरेश भीमक की पुत्री हूं। बुद्धिमान, यशस्वी वीर विजयी निषध नरेश महाराज नल की भार्या हूं। कपट द्यूत के विशेषज्ञ एवं दुरात्मा पुरुषों ने मेरे धर्मात्मा पति को जुआ खेलने के लिये प्रोत्साहित कर उनका राज्य और धन ले लिया हैं। मैं उन्ही की पत्नी दमयन्ती हूं। मेरे पति संयोगवश मुझसे बिछुड गये हैं। मैं मेरे रणवीर शस्त्र विद्या कुशल पति को ढूंढने के लिये वन वन भटक रही हूं। उनके बिना मेरा जीवन निष्फल है। उनके बिना मैं जी न सकूंगी। वियोग का दु:ख कब तक सहूंगी ? तपस्वियों ने कहा कल्याणी हम अपने तपोबल से देख रहे है कि तुम्हें आगे बहुत सुख प्राप्त होगा और थोडे ही दिनों में तुम राजा नल को पा सकोगी। धर्मात्मा निषध नरेश थोडे ही दिनों में समस्त दु:खों से छुटकारा पा जायेंगे। उनके शत्रु भयभीत होंगे, मित्र सुखी होंगे और कुटुम्बी आनन्दित होंगे। यह कहकर वे सब तपस्वी तो वहां से अन्तर्धान हो गये। यह देखकर दमयन्ती आश्चर्यचकित हुई और वह सोचने लगी कि क्या मैंने स्वप्न देखा ? यह क्या घटना घटी ? वे सब तपस्वी, आश्रम, पवित्र सलिला नदी, वो हरे-भरे फलों से लदे वृक्ष कहां गये ? दमयन्ती फिर उदास हो गयी। दमयन्ती की आंखों से आंसू झरझरने लगे।

वहां से वह विलाप करती हुई वन में एक अशोक वृक्ष के पास पहुंची और बोली हे शोक रहित अशोक तू मेरा शोक मिटा दे। क्या तूने कहीं राजा नल को देखा है ? तू अपने शोक नाशक नाम को सार्थक कर। वह अशोक वृक्ष की प्रदक्षिणा कर आगे चली। उस भयंकर वन में अनेकों वृक्ष, गुफा, पर्वतों के शिखर और नदियों के इर्द-गिर्द अपने पति को ढूंढती हुई बहुत दूर निकल गई। वहां उसने बहुत से हाथी, घोडों और रथों सहित एक व्यापारियों के समूह को जो आगे बढ रहा था देखा। उसने व्यापारियों के प्रधान से बातचीत कर यह जाना कि ये व्यापारी राजा सुबाहु के राज्य चेदि देश जा रहे हैं। दमयन्ती भी उनके साथ-साथ हो गयी। वह अपने पति को ढूंढने की लालसा में चली जा रही थी। इस तरह कई दिनों तक चलने के पश्चात व्यापारी मंडल एक वन में पहुंचा। वहां पर एक बडा ही सुन्दर सरोवर था। लम्बी यात्रा कर सब लोग थक गये थे। इसलिये उन सबने विश्राम के लिये वहीं पडाव डाल दिया। दैव प्रतिकूल था रात के समय जंगली हाथियों ने उन व्यापारियों के हाथियों पर आक्रमण कर दिया। इस भगदड में सब व्यापारी प्राय: नष्ट भ्रष्ट हो गये। इस भागम भाग और कोलाहल से दमयन्ती जग गई और यह महासंहार का दृश्य देखकर वह वहां से डरकर भाग निकली और बचे हुये मनुष्यों के साथ जो महासंहार से बच गये थे आगे बढी। उनमें से कुछ वेदपाठी और संयमी ब्राह्मण थे। दमयन्ती शरीर पर आधा ही वस्त्र धारण किये सायंकल के समय राजा सुबाहु की राजधानी चेदि पहुंची।

राजधानी के राजपथ से चलते चलते राजमहल के पास से गुजर रहे थे उस समय चेदि राज्य की राजमाता राजमहल की खिडकी से बाहर देख रही थी। राजमाता ने अपनी दासी से कहा देख यह स्त्री बडी दुखिया मालूम हो कोई आश्रम खोज रही है। तू इसके पास जा और इसे मेरे पास ले आ। यह तो इतनी सुन्दर है कि अपने सौन्दर्य के प्रकाश से मेरे महल को भी प्रकाशित कर देगी। दासी आज्ञा पालन कर दमयन्ती को राज महल में राजमाता के पास बुला लाई। राजमाता ने उस सुन्दरी दमयन्ती को देखकर पूछा देखने से तो तुम दुखिया लग रही हो फिर भी तुम्हारा यह शरीर तेजस्वी कैसे है ? तुम कौन हो और किसकी पत्नी हो ? इस असहाय और अकेली अवस्था में तुम डर भी नहीं रही हो। तब दमयन्ती ने कहा मैं एक पतिव्रता नारी हूं कुलीन हूं और दैवयोग से दासी का काम करती हूं। मैं अन्त:पुर और कहीं भी रह सकती हूं। कन्दमूल खाकर जीवन बिता रही हूं। मेरे पति बडे गुणशाली हैं और वे मुझसे अत्यन्त प्रेम करते है। मेरा दुर्भाग्य कि मेरे कोई अपराध बिना ही रात के समय मुझे सोती छोडकर न जाने कहां चले गये ? अब मैं उनको ढूंढ रही हूं और उनके वियोग में जल रही हूं और यह कहकर वह नल के लिये विलाप करने लगी। दमयन्ती के दु:खभरे विलाप को सुनकर राजमाता का जी भर आया और वे बोली कल्याणी मेरा तुम पर स्वाभाविक प्रेम

हो रहा है। तुम चाहो तो मेरे पास रह सकती हो। मैं तुम्हारे पति को ढूंढने का प्रबन्ध कराऊंगी। जब वे आ जाये तब तुम उनसे मिल लेना। दमयन्ती ने कहा माता मैं तैयार हूं पर मेरी एक शर्त आपको माननी पडेगी। न तो मैं कभी जूठन खाऊंगी और न ही पैर पखारने का काम करूंगी। मैं न किसी पर पुरुष के साथ कोई वार्तालाप करूंगी। यदि कोई पुरुष मेरे साथ दुष्चेष्टा करने का प्रयत्न करेगा तो उसे आपको दंडित करना होगा। मैं अपने पति को ढूंढने हेतु ब्राह्मणों से बातचीत करती रहूंगी। यदि आप मेरी यह शर्त स्वीकार करें तो मैं आपके पास रह सकती हूं अन्यथा नहीं। राजमाता दमयन्ती की शर्त सुनकर प्रसन्न हुई और कहा कि ऐसा ही होगा। तद्नन्तर राजमाता ने अपनी पुत्री सुनन्दा को बुलाकर कहा देखो पुत्री इस दासी को देवी समझना। यह अवस्था में तुम्हारे समान की है इसलिये इसे अपनी सखी समझकर अपने पास राजमहल में रखो। सुनन्दा भी प्रसन्न हो दमयन्ती को अपने साथ महल में ले गयी और दमयन्ती भी अपनी शर्तों का पालन कर राजमहल में रहने लगी।

बृहदाश्व मुनि बोले युधिष्ठिर जिस समय राजा नल दमयन्ती को सोती छोडकर वन में चले गये उस समय वन में दावाग्नि लग गई। यह देखकर नल ठिठक गये कि उनके कानों में आवाज आई राजा नल शीघ्र दौडो और मुझे बचाओ। नल ने कहा डरो मत और वे दौडकर जलती दावानल में घुस गये और देखा कि नागराज कर्कोटक कुंडली मार कर वहां पडा हुआ है। कर्कोट विनयपूर्वक नल से बोला राजन मैं कर्कोटक नाम का सर्प हूं। मैंने नारद ऋषि को धोखा दिया था तब उन्होने मुझे शाप दिया कि जब तक राजा नल तुम्हे नहीं उठावेंगे तब तक तू यहीं पडा रहेगा। उनके उठाने पर ही तू मेरे शाप से मुक्त होगा। नारद जी के शाप के कारण ही मैं यहां से एक पैर भी न हटा और न बढा अत: अब तुम मेरी उस शाप से रक्षा करो राजा नल। मैं तुम्हें तुम्हारे कल्याण की बात बताऊंगा और तुम्हारा मित्र बन जाऊंगा। मेरे भार को देखकर डरो मत। मैं अभी हल्का हो जाता हूं। यह कहकर कर्कोट अंगूठे के बराबर हो गया। अब नल उसे उठाकर दावानल से बाहर ले आये और उसे बचाया। कर्कोट बोला राजन तुम अभी मुझे पृथ्वी पर मत डालो और कुछ पगों की गिनती करते हुये चलो। राजा नल ज्यों ही गिनती कर पग चल रहे थे और दसवां पग गिना और बोले दस वैसे ही उस कर्कोटक सर्प ने नल को डस लिया। कर्कोटक का नियम था कि जब कोई दस अर्थात डस बोले तभी वह डसता था अन्यथा नहीं। कर्कोट के डसने से नल का पहिला रूप बदल गया और कर्कोटक अपने पहिले रूप में हो गया। नल भी बडे ही आश्चर्य चकित हुये। कर्कोटक नल से बोला राजन तुम्हे कोई पहिचान नहीं सके इसलिये मैंने तुम्हारा रूप बदल दिया है। कलियुग ने तुम्हे बहुत दु:ख दिया है। अब मेरे विष से तुम्हारे शरीर में विद्यामन है वह बहुत दु:खी हो जायेगा। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हे कोई हिंसक पशु, पक्षी शत्रु, और ब्रह्म वेताओं के शाप आदि से भी कोई भय नहीं होगा। अब तुम पर किसी भी विष का प्रभाव नहीं होगा और युद्ध में सर्वदा तुम्हारी जीत होगी। तुम अपना नाम बाहुक रख लो और द्यूतक्रीडा में निपुण द्यूत कुशल राजा ऋतुपर्ण की नगरी अयोध्या चले जाओ और तुम उस राजा को घोडों की विद्या सिखाना और वह तुम्हें द्यूत का रहस्य समझा देंगे तथा तुम्हारे मित्र भी बन जायेंगे। जुए का रहस्य जान लेने पर तुम्हे तुम्हारी पत्नी, पुत्री, पुत्र, राज्य और धन सब कुछ मिल जायेगा। जब तुम अपना पहिला रूप धारण करना चाहो उस समय मुझे स्मरण कर लेना और मेरे दिये हुये वस्त्र धारण कर लेना। यह कहकर कर्कोटक ने दो दिव्य वस्त्र दिये और वहां से अन्तर्ध्यान हो गया।

राजा नल वहां से चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में पहुंच गये। उन्होने राजदरबार में जाकर निवेदन किया कि मेरा नाम बाहुक है और मैं अश्व संचालन विद्या में निपुण हूं। इस अश्व विद्या में इस समय पृथ्वी पर मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। अर्थ सम्बन्धी तथा अन्य गम्भीर समस्याओं पर भी मैं अच्छी सम्मति देता हूं। अच्छी रसोई बनाने में भी मैं कुशल कारीगर हूं एवं हस्त कौशल के सभी काम तथा दूसरे भी सभी कठिन कार्य मैं कर सकता हूं। आप मेरी आजीविका निश्चित कर मुझे अपने पास रख लीजिये। राजा ऋतुपर्ण बोले बाहुक तुमने जैसा कहा वैसे सभी काम तुम करोगे। मैं शीघ्रगामी सवारी पसन्द

करता हूं इसलिये तुम कोई ऐसा उद्योग करो कि मेरे घोडे तेज चाल के हो जाये। मैं तुम्हे अश्वशाला का अध्यक्ष नियुक्त करता हूं। तुम्हें प्रतिमाह सोने की दस हजार मोहरे मिलेगी इसके अतिरिक्त हमारा सारथी वार्ष्णेय और जीवल तुम्हारे अधीन होंगे अब से तुम आनन्द से मेरे राज्य में रहो। राजा ऋतुपर्ण से सत्कार पाकर राजा नल बाहुक बनकर वार्ष्णेय और जीवल के साथ अयोध्या में रहने लगा। राजा नल प्रतिदिन रात में दमयन्ती का स्मरण करते और कहते कि तपस्विनी दमयन्ती भूख प्यास से पीडित हो थकी मांदी इस मूर्ख नल का स्मरण करती होगी और न जाने कहां सोती होगी ? भला वह अपना जीवन निर्वाह किस प्रकार करती होगी ? इसी प्रकार नल अनेक बातें सोचते हुये ऋतुपर्ण के पास रहते थे ताकि कोई उन्हे पहिचान भी न सके।

जब भीमक विदर्भ राज को यह समाचार मिला कि उनके दामाद नल राज्याच्युत होकर उनकी पुत्री दमयन्ती सहित वन को चले गये हैं तब उन्होने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हे बहुत सा धन देकर कहा कि आप लोग पृथ्वीपर सर्वत्र विचरकर नल दमयन्ती का पता लगाओ और उन्हे ढूंढकर लाओ। जो कोई ब्राह्मण यह काम पूरा करेगा उसे एक हजार गौ और जागीर दी जायेगी और सिर्फ पता लगाने पर दस हजार गायें दी जायेगी। वहां के ब्राह्मण लोग बडी प्रसन्नता से नल दमयन्ती का पता लगाने के लिये निकल पडे। अयोध्या का ब्राह्मण सुदेव नल दमयन्ती का पता लगाने चेदि देश में आया।

सुदेव ब्राह्मण ने एक दिन राजमहल में दमयन्ती को देख लिया। उस समय राजा के महल में पुण्यवाचन हो रहा था। दमयन्ती और राजमाता पुत्री सुनन्दा एक साथ बैठकर वह मंगल कृत्य देख रही थी। सुदेव ब्राह्मण ने दमयन्ती को देख कर सोचा कि वास्तव में यहीं भीमक पुत्री दयमन्ती है। इसका रूप पहिले की तरह ही है। इसे देख लेने से मेरी यात्रा सफल हो गई। सुदेव दमयन्ती के पास जाकर बोला हे विदर्भनन्दिनी मैं तुम्हारे भाई का मित्र सुदेव ब्राह्मण हूं। राजा भीमक की आज्ञा से तुम्हे ढूंढने के लिये यहां आया हूं। तुम्हारे माता-पिता और भाई सानन्द कुशल हैं। तुम्हारे पुत्र और पुत्री दोनों भी विदर्भ देश में सकुशल हैं। तुम्हारे बिछोह से तुम्हारे परिवारवाले प्राण हीन हो रहे है। तुम्हे ढूंढने के लिये सैकडों ब्राह्मण पृथ्वीपर घूम रहे हैं। दमयन्ती ने ब्राह्मण को पहिचान लिया। सुनन्दा ने दमयन्ती को ब्राह्मण से बातें करते देखकर अपनी माता के पास जाकर सब बात बतायी। राजमाता तुरन्त अन्त:पुर से बाहर निकलकर उस ब्राह्मण से पूछी यह किसकी पुत्री है? किसकी पत्नी है ? अपने घर वालों से कैसे बिछुड गयी ? तुमने इसे कैसे पहचाना ? तब सुदेव ब्राह्मण ने नल दमयन्ती का पूरा चरित्र बताया। जैसे राख में दबी हुई चिनगारी आग पहचान लेती है वैसे ही इस देवी के सुन्दर रूप और चेहरे से इसे पहचान लिया। इसके ललाट पर एक तिल है। ललाट का वह तिल देखकर सुनन्दा और राजमाता दोनों रोने लगी। उन्होने दमयन्ती को अपनी छाती से लगाया और बोली दमयन्ती मैंने इस तिल से तुम्हें पहिचान लिया कि तुम तो मेरी बहिन की पुत्री हो। तुम्हारी मां मेरी सग्गी बहिन है। हम दोनों दर्शाण देश के राजा सुदामा की पुत्री हैं। तुम्हारा जन्म तो मेरे पिता के घर में ही हुआ था उस समय मैंने तुम्हे देखा था। जैसा तुम्हारे लिये तुम्हारे पिता का घर है वैसे ही यह घर भी तुम्हारा ही है। यह मेरी सम्पत्ति भी तुम्हारी ही है पुत्री। दमयन्ती बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपनी मौसी राजमाता को प्रणाम कर कहा आपने उस समय मुझे नहीं पहिचाना तो क्या हुआ ? मैं तो आपके पास पुत्री जैसी ही रही। आपने मेरी सभी अभिलाषायें पूर्ण की तथा मेरी रक्षा की। नि:सन्देह मैं यहां सुख से रहूंगी परन्तु मैं बहुत दिनों से इधर उधर घूम रही हूं। मेरे दोनों छोटे बच्चे पिताजी के घर में है। वे हमारे वियोग से दु:खी हो रहे होंगे। न जाने वे किस दशा में है ? आप यदि मेरा हित ही करना चाहे तो मुझे विदर्भ देश भेजकर मेरी इच्छा पूर्ण करे। यह सुनकर राजमाता अत्यन्त प्रसन्न हुई। उन्होने अपने पुत्र सुबाहु से कहकर पालकी मंगाकर भोजन, वस्त्र और बहुत सी वस्तुयें देकर सैन्य संरक्षण के साथ दमयन्ती को विदर्भ के लिये विदा किया। विदर्भ देश पहुंचने पर दमयन्ती का बडा सत्कार हुआ। दमयन्ती अपने माता-पिता, भाई, अपने बच्चों से और अपनी सखियों से मिली। उसने देवता, ब्राह्मणों की सेवा की। राजा भीमक को अपनी पुत्री के मिल

जाने से बडी प्रसन्नता हुई। उन्होने सुदेव ब्राह्मण को एक हजार गायें, गांव तथा बहुत सा धन देकर सन्तुष्ट किया।

वृहदाश्व मुनि बोले युधिष्ठिर अपने पिता के घर पहुंचने पर वहां विश्राम करने के पश्चात दमयन्ती अपनी माता से बोली माताजी मैं आपसे सत्य कह रही हूं कि यदि आप मुझे जीवित रखना चाहती हैं तो मेरे पति को ढूंढने का उद्योग करे। दमयन्ती की माता ने अपने पति राजा भीमक से कहा स्वामी दमयन्ती अपने पति के लिये व्याकुल है इसलिये उसे ढूंढवाने का प्रयत्न करे। राजा ने अपने राज्यों के ब्राह्मणों को बुलवाया और नल को ढूंढने के लिये उन्हे नियुक्त किया। ब्राह्मणों ने दमयन्ती से कहा हम राजा नल का पता लगाने जा रहे हैं। दमयन्ती ब्राह्मणों से बोली आप लोग जिस राज्य में भी जाये वहां मनुष्य की भीड में यह बात अवश्य कहना कि मेरे प्यारे छलिया तुम मेरी साडी से आधी फाडकर मुझ दासी को वन में सोती छोडकर कहां चले गये? तुम्हारी वह दासी अब भी उसी अवस्था में आधी साडी पहने तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रही है और तुम्हारे वियोग के दु:ख से दु:खी हो रही है। उनके सामने मेरी दशा का वर्णन करें और ऐसी बात कहे जिससे वे प्रसन्न हो और मुझपर कृपा करे। मेरी बात कहने पर यदि आप लोगों को कोई उत्तर दे तो वो कौन है, कहां रहता है इन बातों का पता लगा लेना और उसका उत्तर याद रखकर मुझे बताना। आप लोग यह बात मेरी आज्ञा से कह रहे है यह उसे मालूम नहीं पडना चाहिये। ब्राह्मण गण दमयन्ती के निर्देशानुसार राजा नल को ढूंढने के लिये निकल पडे।

बहुत दिनों तक ढूंढने के पश्चात पर्णाद नामक ब्राह्मण ने आकर दमयन्ती से कहा राजकुमारी मैं आपके निर्देशानुसार निषध नरेश का पता लगाता हुआ अयोध्या गया। वहां के राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर भरी सभा में तुम्हारी बात कही परन्तु वहां किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब मैं चलने लगा तो राजा के बाहुक नामक सारथी ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा। देवी वह सारथी राजा ऋतुपर्ण के घोडों को शिक्षा देता है, स्वादिष्ट भोजन बनाता है परन्तु उसके हाथ छोटे और शरीर कुरूप है। उस सारथि बाहुक ने लम्बी सांसे लेकर रोते हुये मुझसे कहा कि कुलीन स्त्रियां घोर कष्ट पाने पर भी वे अपने शील की रक्षा करती है और अपने सतीत्व के बल पर स्वर्ग जीत लेती है। कभी उनका पति त्याग भी दे तो वे क्रोध नहीं करती, अपने सदाचार की रक्षा करती है। त्यागनेवाला पुरुष विपत्ति में पडने के कारण दु:खी और अचेत हो रहा था इसलिये उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। मान लिया कि पति ने अपनी पत्नी का योग्य सत्कार नहीं किया। परन्तु वह उस समय राज्यलक्ष्मी से च्युत, क्षुधातुर, दु:खी और दुर्दशाग्रस्त था। ऐसी अवस्था में उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। जब वह अपनी प्राण रक्षा के लिये जीविका चाह रहा था तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड गये। उस समय उसके हृदय की पीडा असह्य थी। बाहुक ने जो बात कही वो मैंने तुम्हे सुना दी अब चाहे तो यह बात महाराज से भी कह दो। ब्राह्मण की बात सुनकर दमयन्ती की आंखों में आंसू आये और उसने अपनी माता से कहा मैं सुदेव ब्राह्मण को इस काम के लिये नियुक्त करती हूं जैसे सुदेव ने शुभ मुहूर्त में मुझे यहां पहुंचाया था। वह शुभ मुहूर्त देखकर अयोध्या जाये और पति नल को लाने की युक्ति करे। इसके बाद दमयन्ती ने पर्णाद ब्राह्मण का सत्कार कर उसे विदा किया।

दमयन्ती ने सुदेव ब्राह्मण को बुलाया और उससे कहा आप बडी शीघ्रता से अयोध्या नगरी जायें और वहां के राजा ऋतुपर्ण से यह बात कहें कि भीमक पुत्री दमयन्ती फिर से स्वयंवर में स्वेच्छानुसार पति वरण करना चाहती है। बडे-बडे राजा और राजकुमार इस स्वयंवर में आ रहे है इसलिये आप चाहें तो विदर्भ पहुंच जाये। स्वयंवर की तिथि कल ही है। नल के जीने अथवा मरने का किसी को पता नहीं है। कल सूर्योदय के समय दमयन्ती दूसरा पति वरण करेगी। दमयन्ती की बात सुनकर सुदेव अयोध्या गया और उन्होने राजा ऋतुपर्ण से सब बातें कह दी जैसे दमयन्ती ने सिखाकर भेजा था। राजा ऋतुपर्ण सुदेव ने ब्राह्मण की बात सुनकर अपने सारथी बाहुक को बुलाया और बोले बाहुक कल दमयन्ती का विदर्भ में स्वयंवर है। मैं वहां एक

ही दिन में आज ही वहां पहुंचना चाहता हूं। मुझे वहां अतिशीघ्र पहुंचाने का प्रबन्ध सम्भव करो। ऋतुपर्ण की बात सुनकर नल का हृदय विदिर्ण होने लगा और नल ने अपने मन में सोचा कि दमयन्ती ने दु:ख से पीडित और अचेत होकर ही ऐसा कहा होगा। सम्भव है वह ऐसा करना भी चाहती हो। कहीं उसने मेरी प्राप्ति के लिये तो यह युक्ति की होगी। वह पतिव्रता, तपस्विनी और दीन दुखिया है। मैंने अपनी दुर्बुद्धिता वश उसे त्यागकर बडी क्रूरता की है। इसमें अपराध तो मेरा ही है परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकती। पता नहीं अब सत्य क्या है और असत्य क्या है ? यह बात तो अब वहां जाने पर ही मालूम होगी। मुझे ऋतुपर्ण की इच्छा पूरी करनी चाहिये इसमें मेरा स्वार्थ है। बाहुक ने हाथ जोडकर कहा राजन आपके कहने के अनुसार मैं अश्वशाला में से शीघ्र घोडों सहित आपके साथ वहां जाऊंगा। बाहुक अश्वशाला में जाकर श्रेष्ठ घोडों का चयन करने लगे। नल ने अच्छी नस्ल के चार शीघ्रगामी घोडे रथ में जोत लिये और राजा ऋतुपर्ण को लेकर अयोध्या के लिये प्रस्थान कर दिया।

जैसे आकाशचारी पक्षी आकाश में उडते है वैसे ही बाहुक का रथ थोडे ही समय में नदी, पर्वत और वनों को लांघने लगा। रथ के हवा वेग से चलते चलते एक स्थान पर राजा ऋतुपर्ण का दुपट्टा नीचे गिर गया। राजा ऋतुपर्ण ने बाहुक से कहा रथ रोको और बार्ष्णेय से उठवा कर मेरा दुपट्टा मंगवाओ। नल ने कहा महाराज आपका वस्त्र तो अभी गिरा है परन्तु हम अब उस स्थान से एक योजन आगे निकल आये हैं। अब वह कैसे मिल सकता है ? ऋतुपर्ण ने कहा बाहुक तुम गणित विद्या के ज्ञान को देखो। सामने के वृक्ष में जितने फल और पत्ते दीख रहे है उनकी अपेक्षा भूमिपर गिरे हुये फल और पत्ते एक सौ एक गुने अधिक है। इस वृक्ष की दोनों शाखाओं और टहनियों पर पांच करोड पत्ते है और दो हजार पचानवे फल है। तुम चाहो तो इसे गिन सकते हो ? बाहुक ने रथ वहीं खडा कर दिया और कहा कि मैं इस वृक्ष को काटकर इसके फलों और पत्तों को ठीक ठीक गिनूंगा। बाहुक ने वैसा ही किया। गिनती में फल और पत्ते उतने ही निकले जितने राजा ने बताये थे। इससे नल आश्चर्य चकित हो गये और बाहुक बोला राजन आपकी गणित विद्या अद्‌भुत है। मुझे अपनी यह विद्या सीखला दीजिये। ऋतुपर्ण ने कहा गणित विद्या की तरह में पांसों की वशीकरण विद्या में भी निपुण हूं। बाहुक ने कहा महाराज यह विद्या मुझे आप सिखा दे और घोडों की विद्या मैं आपको सिखा दूंगा। ऋतुपर्ण को विदर्भ पहुंचने की त्वरा थी और अश्व विद्या सीखने का लोभ भी। ऋतुपर्ण ने अपनी पांसों की विद्या नल को सीखा दी और कहा अश्व विद्या तुम मुझे बाद में सिखा देना। मैंने उस विद्या को तुम्हारे पास धरोहर रख दिया है। जिस समय राजा नल ने पांसों की विद्या सीखी उसी समय कलियुग कर्कोटक नाग के विष को उगलकर नल के शरीर से बाहर आ गया। कलियुग के बाहर निकल आनेपर नल को बडा क्रोध आया और नल ने कलि को शाप देना चाहा। कलियुग हाथ जोडकर बोला आप अपना क्रोध शान्त करें राजन। मैं आपको यशस्वी बनाऊंगा। आपने जिस समय दमयन्ती का त्याग किया था उसी समय दमयन्ती ने मुझे शापित कर दिया था। मैं बडे दु:ख से कर्कोटक नाग के विष से जलता हुआ आपके शरीर में रह रहा था। अब मैं आपकी शरण में हूं। मेरी प्रार्थना सुने और मुझे शाप न दे। जो कोई आपके इस परम पावन चरित्र का श्रवण व गान करेंगे उन्हे कलियुग का भय नहीं होगा। राजा नल का क्रोध शान्त हुआ। कलियुग भयभीत हो उस वृक्ष में घुस गया जिसे नल ने गिना था। यह संवाद कलियुग और नल के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। कलियुग के प्रवेश कर जाने से वह वृक्ष ठूंठ सा खडा रह गया।

इस प्रकार कलियुग ने राजा नल का पीछा छोड दिया परन्तु राजा नल का रूप अभी नहीं बदला था। उन्होने अपने रथ को जोरों से हांककर सायंकल होने के पहिले ही विदर्भ देश पहुंचा दिया और राजा भीमक के पास समाचार भेज दिया। भीमक ने ऋतुपर्ण को अपने यहां बुला लिया। ऋतुपर्ण के रथ की झंकार से दिशायें गूंज उठी। विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में राजा नल के घोडे भी रहते थे जो नल के बच्चों को लेकर वहां आये थे। रथ की घबराहट से घोडों ने राजा नल को पहिचान लिया और वे पूर्ववत प्रसन्न हो गये। दमयन्ती को भी वह आवाज वैसी ही जान पडी। इस रथ की घरघराहट

दमयन्ती के चित्त में उल्लास पैदा करने लगी। अवश्य ही इस रथ को हांकने वाला दमयन्ती का पति होना चाहिये। दमयन्ती सोचने लगी यदि आज वो मेरे पास नहीं आयेंगे तो मैं धधकती आग में कूद जाऊंगी। मैंने कभी हंसी खेल में भी असत्य भाषण नहीं किया। न ही कोई मैंने कोई अपकार किया हो और न ही कोई प्रतिज्ञा कर उसे भंग करी। मेरे पति शक्तिशाली, क्षमावान, दाता और एक पत्नीव्रती है। उनके वियोग से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। दमयन्ती राज महल की छत पर चढकर रथ का आना और उस पर से सारथी का उतरना देखने लगी।

वृहदाश्व मुनि बोले युधिष्ठिर विदर्भ नरेश भीमक ने अयोध्यापति ऋतुपर्ण का खूब स्वागत सत्कार किया। उन्हे अच्छे भव्य स्थान पर ठहरा दिया। ऋतुपर्ण को विदर्भ में स्वयंवर का कोई चिन्ह दिखाई नहीं पडा। भीमक को भी इस बात का मालूम नहीं था कि राजा ऋतुपर्ण मेरी पुत्री दमयन्ती के स्वयंवर का निमन्त्रण पाकर विदर्भ आये हैं। भीमक ने ऋतुपर्ण को कुशल मंगल पूछकर पूछा कि राजन आपके आने का उद्देश्य ? ऋतुपर्ण ने भी वहां स्वयंवर की कोई तैयारी न देखकर निमन्त्रण की बात दबा दी और बोले मैं तो केवल यों ही आपको प्रणाम करने चला आया। भीमक भी सोचने लगे कि सौ योजन से भी अधिक दूर से कोई भी केवल प्रणाम करने के लिये तो नहीं आता। हो सकता है आगे चलकर कोई बात हो तो मालूम पड जायेगी। भीमक ने बडे स्वागत सत्कार से आग्रह कर ऋतुपर्ण को अपने साथ रख लिया। बाहुक भी वार्ष्णेय के साथ अश्वशाला में ठहर गया और घोडों की सेवा में संलग्न हो गया।

दमयन्ती आकुल होकर सोचने लगी कि रथ की ध्वनि तो मेरे पति के रथ के ही समान जान पडती थी परन्तु वे कहीं दीख नहीं रहे। हो न हो बार्ष्णेय ने उनसे रथ संचालन विद्या सीख ली होगी। सम्भव है ऋतुपर्ण को भी यह विद्या मालूम हो। दमयन्ती ने अपनी दासी केशिनी को बुलाकर कहा तू अश्वशाला में जा और इस बात का पता लगा कि ये कुरुप पुरुष कौन है ? सम्भव है यही मेरे पति हो। मैंने ब्राह्मणों द्वारा जो सन्देश भेजा था वही फिर जाकर उसे बतलाना और उसका उत्तर मुझे बताना। केशिनी ने जाकर बाहुक से बातें की। बाहुक ने राजा ऋतुपर्ण का आने का कारण बताया और संक्षेप में वार्ष्णेय तथा अपनी अश्वविद्या एवं भोजन बनाने के कौशल का परिचय दिया। केशिनी ने पूछा बाहुक राजा नल कहां है ? क्या तुम राजा नल को जानते हो ? बाहुक ने कहा केशिनी वार्ष्णेय राजा नल के बच्चों को यहां छोडकर चला गया था। उसे उनके सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं है। इस समय नल का रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हे या तो स्वयं वे ही पहचान सकते है या उनकी पत्नी दमयन्ती। क्योंकि वे अपने गुप्त चिन्हों को दूसरे के सामने प्रकट करना नहीं चाहते केशिनी। राजा नल विपत्ति में पड गये थे। इसी कारण उन्होने अपनी पत्नी का त्याग किया था। दमयन्ती को अपने पति पर क्रोध नहीं करना चाहिये। जिस समय वे भोजन की चिन्ता में थे पक्षी उनके वस्त्र ही लेकर उड गये। उनका हृदय पीडा से जर्जरित था। यह सही है कि उन्होने अपनी पत्नी के साथ उचित व्यवहार नहीं किया फिर भी दमयन्ती को राजा नल की दुरवस्था पर विचार कर क्रोध नहीं करना चाहिये। यह कहते नल का हृदय खिन्न हो गया और आंखों से आंसू बहने लगे, वे रोने लगे। केशिनी ने दमयन्ती के पास आकर वहां की बात और करुणा से उनका कैसे मन भर आया सब बात कहीं।

अब दमयन्ती की आशंका और भी दृढ हो गयी कि यही राजा नल है उसने दासी से कहा कि केशिनी तुम फिर बाहुक के पास जाओ और बिना कुछ बोले जाकर उसके पास जाकर खडी रहो और उसकी की हुई चेष्टाओं को देखो कि वह क्या करता है। वह आग मांगे तो आग मत देना। जल मांगे तो देर कर देना। उसकी एक-एक बात आकर मुझे बताओ। दमयन्ती के कहने पर केशिनी फिर बाहुक के पास गयी और वहां उसके देवताओं एवं मनुष्य के समान बहुत से चरित्रों को देख कर लौट आई और दमयन्ती से बोली राजकुमारी बाहुक ने तो जल, थल और अग्नि पर सब तरह से विजय प्राप्त कर ली है। मैंने आज तक ऐसा

पुरुष न कहीं देखा है और न सुना ही है। यदि कहीं नीचा द्वार आ जाता है तो वह झुकता नहीं बल्कि उसे देखकर स्वत: ही द्वार ऊंचा हो जाता है। वह बिना झुके ही उसमें से चले जाता है। छोटे से छोटा छेद भी उसके लिये गुफा बन जाता है। वहां पर जल के जो घडे रखे थे उन पर उसकी दृष्टि पडते ही जल से भर गये। उसने घास फूस की भरौटी लेकर सूर्य की ओर किया तो वह जलने लगी। इसके अतिरिक्त वह अग्नि का स्पर्श भी करता है तो जलता नहीं है। पानी उसकी इच्छानुसार बहता है। इन अद्भुत लक्षणों को देख कर मैं तो आश्चर्य चकित रह गयी और शीघ्रता से यहां आपके पास चली आयी। दमयन्ती ने बाहुक के कर्म और उनकी क्रियाओं को जानकर मन में निश्चित रूप से जान लिया कि यही मेरे पति राजा नल है। उसने केशिनी के साथ अपने दोनो बच्चों को नल के पास भेज दिया। बाहुक इन्द्र सेना और इन्द्रसेन को पहचानकर उनके पास आ गया उन दोनों बालकों को छाती से लगाकर गोद में बैठा लिया। बाहुक ने अपनी संतानों से मिलकर भाव विभोर हो गया। उसके मुख पर पिता के समान स्नेह के भाव प्रकट होने लगे। तत्पश्चात बाहुक अपने दोनों बच्चे केशिनी को दे दिये और बोला ये दोनों बच्चे मेरे बच्चों के ही समान है इसीलिये मैं उन्हे देखकर रो पडा। केशिनी तुम बार बार मेरे पास चली आती हो लोग न जाने हमारे बारे में क्या सोचने लगेंगे। इसलिये तुम्हारा मेरे पास बार बार आना उचित नहीं है। तुम जाओ। केशिनी ने दमयन्ती के पास आकर वहां की सारी बातें बतायी।

अब दमयन्ती अपनी माता के पास जाकर बोली मैंने राजा नल समझकर बार-बार बाहुक की परीक्षा करवायी है। अब सिर्फ मुझे केवल उनके रूप के बारे में ही सन्देह रह गया है। अब मैं स्वयं उसकी परीक्षा करना चाहती हूं। इसलिये आप या तो बाहुक को मेरे महल में आने की आज्ञा दें या उसके पास जाने की मुझे अनुमति दें। आपकी इच्छा हो तो यह बात पिताश्री को बतला दें या मत बताये। विदर्भ राजरानी ने अपने पति भीमक से आज्ञा ली और बाहुक को रनिवास में बुला भेजा। दमयन्ती के देखते ही नल का हृदय शोक और दु:ख से भर आया। बाहुक की आकुलता देखकर दमयन्ती भी शोकग्रस्त हो गयी। दमयन्ती भी उस समय गेरूये वस्त्र पहिने हुई थी, शरीर मलिन था। दमयन्ती ने कहा बाहुक पहले एक मर्मज्ञ पुरुष अपनी पत्नी को वन में सोती छोडकर चला गया था। क्या तुमने उसे कहीं देखा है ? उस समय वह स्त्री थकी मांदी थी, नींद से अचेत थी, ऐसी निरपराध स्त्री को पुण्यश्लोक निषधराज के सिवा और कौन पुरुष निर्जन वन में छोड सकता है ? मैंने जीवन भर जीवन में कोई अपराध नहीं किया है फिर भी वे मुझे वन में सोती छोडकर चले गये। यह कहकर दमयन्ती रोने लगी। दमयन्ती की आंखों में आंसू बहते देख कर नल से नहीं रहा गया और वे बोले प्रिये मैंने जान बूझकर न तो राज्य का विनाश किया और न ही तुम्हें त्यागा है। यह तो कलियुग की करतूत व प्रभाव था। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जब से तुम बिछुडी हो तब से रात दिन मेरा ही स्मरण चिन्तन करती हो। कलियुग मेरे शरीर में रहकर तुम्हारे शाप के कारण जलता रहता था। मैंने अपने श्रम और तपस्या के बल से उसपर विजय पा ली है और अब हमारे दु:खों का अन्त आ गया है। कलियुग अब मुझे छोडकर चला गया है। मैं एक मात्र तुम्हारे लिये ही यहां आया हूं। तुमने मेरे जैसे प्रेमी और अनुकूल पति को छोडकर किस प्रकार दूसरे पति को वरण करना चाहा ? क्या कोई अन्य स्त्री ऐसा कर सकती है ? तुम्हारे स्वयंवर का समाचार सुनकर ही तो राजा ऋतुपर्ण इतनी शीघ्रता से यहां आये हैं।

तब दमयन्ती बोली आर्य पुत्र मुझ पर इस तरह दोष लगाना उचित नहीं। आप जानते हैं कि मैंने अपने सामने प्रकट देवताओं को छोडकर आपका वरण किया है। मैंने आपको खोजने के लिये बहुत से ब्राह्मणों को भेजा था और वे मेरी कही बात दुहराते हुये चारों ओर घूम रहे थे। पर्णाद नामक ब्राह्मण अयोध्या में आपके पास पहुंचा था। उसने आपको मेरी सारी बात सुनायी थी और आपने उसका यथोचित उत्तर भी दिया था। वह समाचार पाकर मैंने आपको बुलाने के लिये यह युक्ति की थी। मैं यह भी जानती

हूं कि आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मनुष्य नहीं है जो एक दिन में घोडों के रथ से सौ योजन पहुंच जाये। मैं आपके चरणों में स्पर्श कर शपथ पूर्वक सत्य कह रही हूं कि मैंने कभी मन से भी पर पुरुष का चिन्तन नहीं किया है। यदि मैंने कभी मन से भी पाप कर्म किया हो तो वासुदेव, भगवान सूर्य और मन के देवता चन्द्रमा मेरे प्राण हर ले। ये तीनों देवता पूरे भूमंडल में विचरते हैं। वे सच्ची बात बतला दें और यदि मैं पापिनी होऊ तो मुझे त्याग दें। उसी समय वायु ने अन्तरिक्ष में स्थित हो कहा राजन यह सत्य है कि दमयन्ती ने कोई पाप नहीं किया है। इसने तीन वर्षों तक अपने उज्ज्वल शीलव्रत की रक्षा की है। हमलोग इसके रक्षक रहे हैं और इसकी पतिव्रता के साक्षी हैं। इसने स्वयंवर की यह मिथ्या सूचना तो तुम्हें ढूंढने के लिये दी थी। वास्तव में दमयन्ती तुम्हारे ही योग्य है। इसलिये कोई शंका मत करो और इसे स्वीकार करो। जिस समय वायु देवता यह बात कह रहे थे उस समय आकाश से पुष्प वृष्टि हुई। देवताओं की दुदुभियां बजने लगी। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर राजा नल ने अपना सन्देह छोड दिया और नागराज कार्कोटक का दिया हुआ वह दिव्य वस्त्र ओढकर कार्कोटक का स्मरण किया। उनका शरीर तुरन्त पूर्ववत हो गया। दमयन्ती राजा नल को पहिले रूप में देखकर उनसे लिपट गयी और रोने लगी। राजा नल ने भी प्रेम सहित दमयन्ती को गले लगाया और दोनों बच्चों को छाती से चिपकाकर प्यार करने लगे। नल की सारी रात दमयन्ती के साथ बातचीत करने में ही व्यतीत हो गयी।

सुबह होने पर स्नान आदि से निवृत हो सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण कर दमयन्ती और नल राजा भीमक के पास आये और उनके चरणों में प्रणाम किया। भीमक ने भी बडे आनन्द से उनका सत्कार किया। पुरुष को प्राप्त होने वाले सभी विषय सदा अस्थिर एवं विनाशशील है। इसलिये उनके मिलने या नष्ट होने पर तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जब दैव प्रतिकूल हो जाता है और सब पुरुषार्थ निष्फल हो जाते है उस समय भी सत्वगुण का आश्रय लेनेवाले पुरुष कभी अपने मन में शोक नहीं करते। बात की बात में यह समाचार सब जगह पहुंच गया। नगर के नर नारी सभी मिलकर उत्सव मनाने लगे। देवताओं की पूजा आराधना हुई। जब राजा ऋतुपर्ण को यह बात मालूम हुई कि बाहुक के रूप में राजा नल ही उनके पास में थे। यहां आकर वे अपनी पत्नी से मिल गये तब उन्हे बडा आनन्द हुआ और उन्होने नल को अपने पास बुलाकर क्षमा मांगी। राजा नल ने भी ऋतुपर्ण के व्यवहार को उत्तम बताया और प्रशंसा की। ऋतुपर्ण का सत्कार किया और उन्हे अश्व विद्या की शिक्षा दी। राजा ऋतुपर्ण किसी दूसरे सारथी को लेकर अपने नगर अयोध्या लौट गये।

राजा नल एक महिने तक कुंडिनपुर विदर्भ देश में रहे तदनन्तर अपने श्वसुर की आज्ञा से निषध देशके लिये रवाना हुये। राजा भीमक ने एक श्वेत रथ, सौलह हाथी, पच्चास घोडे और छै: सौ पदाति सैनिक राजा नल के साथ भेज दिये। नल अपने नगर में लौट कर अपने भाई पुष्कर से मिले और बोले कि या तो तुम कपट भरे द्यूत का खेल फिर मेरे साथ खेलो या मेरे साथ युद्ध कर मेरा राज्य मुझे वापिस लौटा दो। पुष्कर हंसकर बोला अच्छी बात है तुम्हे दांव पर लगाने के लिये धन मिल गया। अबकी बार द्यूत में तुम्हारे धन और दमयन्ती को भी जीत लूंगा। राजा नल बोले अरे भाई जुआ खेल लो। बकते क्यों हो। जानते हो हार जाओगे तो तुम्हारी क्या दशा होगी ? दोनों ने जुआ खेला। राजा नल ने पहिले ही दांव में पुष्कर के राज्य, धन, रत्नों के भंडार और उसके प्राणों को भी जीत लिया। वे पुष्कर से बोले अब से यह राज्य मेरा हो गया अब तुम दमयन्ती की ओर आंख उठाकर भी मत देखना। तुम दमयन्ती के सेवक हो। अरे मूढ पहली बार भी तूने मुझे नहीं जीता था। वह काम कलियुग का था तुम्हें इस बात का पता नहीं है। मैं कलियुग के दोष को तुम्हारे सिर नहीं मढना चाहता। तुम अपना जीवन सुख से बिताओ। मैं तुम्हें छोड देता हूं। तुम पर मेरा प्रेम पहिले के ही समान है। तुम मेरे भाई हो। मैं कभी तुमसे नाराज नहीं होऊंगा। तुम सौ वर्ष तक जीओ। राजा नल ने इस प्रकार कहकर पुष्कर को धैर्य

दिया और उसे अपने हृदय से लगाकर जाने की आज्ञा दी। पुष्कर ने भी हाथ जोड कर राजा नल को प्रणाम किया और बोला जगत में आपकी कीर्ति अक्षुण्ण बनी रहे। आप दस हजार वर्ष तक सुख से जीवन व्यतीत करें। आप तो मेरे अन्नदाता और प्राणदाता हैं। पुष्कर बडे सत्कार और सम्मान के साथ एक महिने तक राजा नल के नगर में रहा तत्पश्चात सेना, सैनिक, सेवक और कुटुम्बियों सहित चला गया। राजा नल ने भी अपने भाई पुष्कर को विदा किया।

सभी नागरिक, तथा मन्त्रीगण राजा नल को पाकर अति प्रसन्न हुये। उन्होने रोमांचित हो राजा नल से निवेदन किया राजन आज हम लोग दु:ख से छुटकारा पाकर सुखी हुये। जैसे देवता इन्द्र की सेवा करते है वैसे ही हम सब आपकी सेवा करेंगे। घर-घर आनन्द मनाया जाने लगा। चारों ओर शान्ति का राज्य हो गया। बडे बडे उत्सव होने लगे। राजा नल ने सेना भेजकर दमयन्ती को बुलवा लिया। राजा भीमक ने अपनी पुत्री दमयन्ती को बहुत से उपहार देकर अपने ससुराल में भेज दिया। दमयन्ती भी अपनी दोनों सन्तानों को लेकर अपने पतिगृह नल के राजमहल में आ गयी। श्रेष्ठ नारियां अपने पति से परित्यक्त होनेपर भी कभी क्रोध नहीं करती। वे सदा ही सदाचार रूपी आवृत से प्राणों को धारण करती है। उत्तम कुल की स्त्रियां बडे भारी संकट में पडकर भी स्वयं अपनी रक्षा करती है। ऐसा करके वे स्वर्ग और सत्य दोनों पर विजय पाती है इसमें जरा भी संशय नहीं। राजा नल बडे आनन्द के साथ समय बिताने लगे। राजा नल की ख्याति दूर दूर तक फैल गई। वे धर्म बुद्धि में प्रजा का पालन करने लगे। उन्होने बडे बडे यज्ञ करके भगवान की आराधना की। नागराज कर्कोटक, नल दमयन्ती, ऋतुपर्ण की कथा श्रवण कथन से कलियुग के पापों का नाश होता है और दु:खी मनुष्य को धैर्य प्राप्त होता है। सब लोग सभी बातें नहीं जानते। संसार में कोई भी सर्वज्ञ नहीं है तथा एक ही पुरुष में सम्पूर्ण ज्ञान की प्रतिष्ठा नहीं है।

१५) नारदजी तथा धौम्यद्वारा तीर्थयात्रा की महिमा का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय महर्षि वृहदाश्व के प्रेरित करने पर धर्मराज युधिष्ठिर को द्यूत के पांसो की विद्या व अश्व विद्या सीखला कर चले गये। युधिष्ठिर ऋषि मुनियों से अर्जुन की तपस्या के बारे में बातचीत करने लगे। जब अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये तपस्या के लिये चले गये तो शेष पांडवों ने अर्जुन के वियोग में बडी उदासी के साथ अपने दिन बताये। वे दु:ख और शोक में डूबे रहते थे। उन्हीं दिनों परम तेजस्वी देवर्षि नारद उनके आश्रम पर पधारे। धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हे आर्घ्य पाद्य देकर उनका स्वागत सत्कार किया। युधिष्ठिर ने उन्हे प्रणाम कर पूछा कृपया हमें बतायें कि जो तीर्थों का सेवन करता हुआ इस भूलोक पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है उसे उसका क्या फल मिलता है ? मनुष्य क्यों तीर्थों का भ्रमण करता है ? नारद बोले राजन एक बार तुम्हारे पितामह भीष्म ने हरिद्वार से ऋषि, देवताओं, एवं पितरों की तृप्ति के लिये कोई अनुष्ठान किया था वहीं एक दिन पुलत्स्य मुनि आये। भीष्म ने भी उनसे यही प्रश्न किया। पुलत्स्य मुनि ने जो उत्तर तुम्हारे पितामह को दिया वही तुम्हें सुनाता हूं।

पुलत्स्य मुनि ने कहा भीष्म तीर्थों में प्राय: बडे बडे ऋषि मुनि रहते हैं। उन तीर्थों के सेवन से जो फल प्राप्त होता है वह सुनो। जिसके हाथ दान देने लेने और बुरे कर्मों से अपवित्र नहीं है, जिसके पैर नियमपूर्वक धरती पर पडते हैं अर्थात जो जीव जन्तुओं की हिंसा न कर दूसरों को सुख पहुंचाने के लिये जीते हैं, जिनका मन दूसरों के अनिष्ट का चिन्तन नहीं करता। जिनकी विद्या मारण मोह वशीकरण आदि से विवादग्रस्त नहीं है, जिसकी तपस्या अन्त:करण की शुद्धि और जग कल्याण के लिये हो, जिसकी कृति और कीर्ति निष्कलंक हो, उसे तीर्थों का वह फल जो शास्त्रों में वर्णित है प्राप्त होता है। जो किसी प्रकार का दान नहीं लेता, जो कुछ मिल जाये उसी में सन्तुष्ट रहता है, अहंकार नहीं करता जो दम्भ व कामना रहित है, अल्प आहार करनेवाला इन्द्रियों को संयम में रखनेवाला, समस्त पाप कर्मों से बचा रहनेवाला, जो किसी पर क्रोधित नहीं होता, स्वभाव से ही सत्य का पालन करनेवाला, दृढता से अपने नियमों में संलग्न रहता है और समस्त प्राणियों के सुख-दु:ख को समान समझता है उसे तीर्थफल की

प्राप्ति अवश्य होती है। तीर्थ यात्रा के द्वारा निर्धन मनुष्य भी बडे बडे यज्ञों का फल प्राप्त कर सकता है।

इस पृथ्वी पर भगवान का पुष्कर तीर्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। पुष्कर में करोडों तीर्थों का वास है। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुदगण, गन्धर्व, अप्सरायें, सर्वदा वहां रहते हैं। बडे बडे देवता, दैत्य और ब्रह्मर्षियों ने तपस्या कर के वहां सिद्धि प्राप्त की है। जो उदार पुरुष मन से भी पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है उसके सारे पाप ताप नष्ट हो जाते है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वयं ब्रह्मा पुष्कर तीर्थ में विराजते हैं। इस तीर्थ में जो स्नान करता है और देवता तथा पितरों को सन्तुष्ट करता है उसे अश्वमेघ यज्ञ का दस गुना फल मिलता है। जो पुष्कर अरण्य में एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है उसे इस लोक और परलोक में सुख मिलता है। मनुष्य एवं शाक, कन्दमूल, फल आदि जिस किसी वस्तु से अपना निर्वाह करता है उसी वस्तु के द्वारा श्रद्धासहित ब्राह्मण को भोजन करावें। किसी से भी कोई ईर्ष्या नहीं करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस पवित्र तीर्थ में स्नान करते है उन्हे फिर जन्म ग्रहण नहीं करना पडता। कार्तिक मास में पुष्कर तीर्थ में वास और स्नान का बहुत महत्व है उन्हे अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है। जिस स्त्री-पुरुष ने अपनी उम्रभर में जो पाप किया है यह सब पुष्कर तीर्थ के सेवन करने से नष्ट हो जाता है। जैसे देवताओं में प्रधान भगवान विष्णु है वैसे ही तीर्थों में पुष्कर्रराज प्रधान है। यह तीर्थ राजस्थान प्रान्त के अजमेर में है। इसी प्रकार अन्य तीर्थों का वर्णन करते हुये पुलत्स्य मुनि ने कहा तीर्थराज प्रयाग की महिमा भी बडी है वहां भी अवश्य जाना चाहिये। उसमें ब्रह्मा, सभी देवता, दसों दिशाये, चारों लोकपाल, साध्यगण, पितर, सनतकुमार आदि परमर्षि, अंगिरा आदि निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, नदी, समुद्र, गन्धर्व, दिकपाल, अप्सरायें आदि सभी वास करते है। ब्रह्मा के साथ स्वयं भगवान विष्णु भी वहां रहते है।

प्रयाग क्षेत्र में अग्नि के तीन कुंडों के बीचों बीच से गंगा प्रवाहित होती है। तीर्थ शिरोमणि यमुना वहीं आकर गंगा से मिलती है। वही लोक पावनी गंगा के साथ यमुना का संगम होता है। गंगा और यमुना संगम के मध्य भाग पृथ्वी की जांघ है। प्रयाग तीर्थ पृथ्वी का जननेन्द्रिय है। प्रयाग प्रतिष्ठान (झूसी), कम्बल एवं अश्वतर नाग, भोगवती तीर्थ ये प्रजापति की वेदी है। इनमें वेद और यज्ञ मूर्तिमान होकर रहते है। बडे बडे तपस्वी ऋषि, प्रजापति की उपासना एवं चक्रवर्ती राजा यज्ञों के द्वारा देवताओं का यतन करते है। इन्ही सब कारणों से यह स्थान परम पवित्र है। ऋषि कहते है कि प्रयाग सब तीर्थों में श्रेष्ठ है। प्रयाग की यात्रा से, प्रयाग के नाम संकीर्तन से व प्रयाग की मिट्टी के स्पर्श से सारे पापों का नाश हो जाता है। जो विश्व विख्यात गंगा यमुना के त्रिवेणी संगम में स्नान कर लेता है उसे राजसूय यज्ञ एवं अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यह देवताओं की यज्ञ भूमि है। यहां थोडा सा भी दान करने से बहुत बडे दान का फल प्राप्त होता है। यद्यपि वेद और लोक व्यवहार में जान बूझकर की गई मृत्यु को निन्दनीय कहा गया है फिर भी प्रयाग की मृत्यु के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। प्रयाग में सदा सर्वदा साठ करोड दस हजार तीर्थों का सान्निध्य रहता है। चारों विद्याओं के अध्ययन और सत्य भाषण का जो पुण्य प्राप्त होता है वह गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से होता है। वासुकि नाग को भोगवती तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है। विश्व विख्यात हंस प्रपतन तीर्थ एवं गंगा दशाश्वमेधिक तीर्थ भी वहीं है। देव नदी गंगा जहां भी हो वहीं स्नान करने से कुरुक्षेत्र यात्रा का फल मिलता है। गंगा स्नान में कनखल तीर्थं का विशेष महात्म्य है। प्रयाग तो उससे भी बढकर है। यह प्रयाग वर्तमान में इलाहाबाद (अलाहबाद) शहर ही है।

जिसने सैकडों पाप किये हो वो एक बार गंगा जल अपने ऊ पर डाल ले तो उसके सारे पाप उसी तरह भस्म हो जाते है जैसे अग्नि सूखी लकडी को भस्म कर देती है। सतयुग में सभी तीर्थ पुण्यदायक होते है। त्रेता और द्वापर को कुरुक्षेत्र की विशेष महिमा है। कलियुग में तो एक मात्र गंगा का तीर्थ सेवन ही सर्वश्रेष्ठ है। पुष्कर में तपस्या, महालय तीर्थ में दान, मलयाचल पर

शरीर दाह और भृगु तुंग क्षेत्र पर अनशन करना श्रेष्ठ है। परन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गंगा एवं मगध देश में स्नान मात्र से ही सात सात पीढियां तर जाती है। गंगा नामोच्चारण मात्र से पापों को धो डालती है और दर्शन मात्र से ही कल्याण हो जाता है तथा स्नान और आचमन से सात पीढियों को पवित्र कर देती है। जब तक मनुष्य की हड्डी गंगा जल में रहती है तब तक जीव को स्वर्ग में सम्मान प्राप्त होता है। जो पुण्य तीर्थों एवं पुण्य क्षेत्रों का सेवन करते हैं वे पुण्य उपार्जन करके स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। ब्रह्मा ने कहा है गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, भगवान विष्णु से बढकर कोई देवता नहीं और ब्राह्मणों से बढकर कोई प्राणी श्रेष्ठ नहीं जहां गंगा है वही पवित्र देश है वहीं पवित्र तपोवन है। गंगा तट का स्थान सिद्धि क्षेत्र है।

पुलत्स्य मुनि बोले भीष्म मैंने जो तीर्थों का वर्णन किया है वह सत्य है इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सत्पुरुष, मित्र, पुत्र, शिष्य और सेवकों के लिये सब के लिये अमूल्य निधि है। तीर्थों के महात्म्य से अनेक फलों की प्राप्ति होती है। इसके श्रवण से बुद्धि शुद्ध होती है। इससे चारों वर्णों के लोगों की इच्छा पूरी होती है। मैंने जिन तीर्थों का वर्णन किया है यदि उनसे जाना सम्भव न भी हो तो वहां की मानसिक यात्रा अवश्य करनी चाहिये। उसमें बडे बडे ऋषियों और देवताओं ने स्नान किया है। भीष्म तुम श्रद्धापूर्वक शास्त्र विधि से इन्द्रियों को शुद्ध रखते हुये उन सब तीर्थों की यात्रा करो और अपने पुण्य में वृद्धि करो। शास्त्रदर्शी पुरुष ही इन तीर्थों को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। नियमहीन, असंयमी, अपवित्र एवं चोर इन तीर्थों की उपलब्धि नहीं कर सकते। तुम धर्म के मर्मज्ञ हो, तुम्हारे धर्म पालन के प्रताप से सभी तृप्त हो रहे हैं। तुमने देवता, पितर, ऋषि आदि सभी को तीर्थ स्नान करा दिया है। तुम्हें श्रेष्ठ लोक और महान कीर्ति की प्राप्ति होगी।

नारद बोले युधिष्ठिर इतना कह कर पुलत्स्य ऋषि तो वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। भीष्म पितामह ने विधिपूर्वक तीर्थ यात्रा की। जो इस विधिनुसार पृथ्वी की परिक्रमा करता है उसे सौ अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। तुम तो अकेले ही नहीं तुम्हारे साथ ये जो ऋषि मुनि आये है इन्हे भी साथ ले जाओ इससे तुम्हें आठ गुना फल प्राप्त होगा। बहुत से तीर्थों को राक्षसों ने रोक रखा है। वहां केवल तुम्ही लोग जा सकते हो। तीर्थों में बाल्मीकि, कश्यप, दत्तात्रेय, कुंजहर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय गालव, भरद्वाज, वशिष्ठ, उद्दालक, शौनक, व्यास, शुकदेव, दुर्वासा, जाबालि आदि बडे-बडे तपस्वी ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा में है। परम तेजस्वी ऋषि लोमश भी तुम्हे मिलेंगे उन्हे भी साथ लेकर यात्रा करना। तुम ययाति और पुरुरवा के वंशज यशस्वी और धर्मात्मा हो। तुम राजा भगीरथ और लोकपुरुष राम के समान समस्त राजाओं में श्रेष्ठ हो। मनु इच्छवाकु, पुरु, पृथु और इन्द्र के समान यशस्वी तथा प्रजापालक हो। तुम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर प्रजापालन करोगे और धर्मानुसार पृथ्वी का साम्राज्य भोगते हुये कार्तवीर्य अर्जुन के समान कीर्तिवान होवोगे। ऐसा कहकर देवर्षि नारद वहां से अन्तर्धान हो गये। धर्मराज युधिष्ठिर सब तीर्थों के विषय में सोचने लगे।

युधिष्ठिर देवर्षि नारद से तीर्थों का महात्म्य सुनकर अपने पुरोहित धौम्य मुनि से बोले ऋषिवर मेरा भ्राता अर्जुन बडा ही पराक्रमी, धीरवीर पुरुष है। मैंने अपने उद्योगी, साहसी शक्तिशाली एवं तपोधन प्रिय अनुज अर्जुन को दिव्यास्त्र की प्राप्ति के लिये भेजा है। मैं तो समझता हूं कि अर्जुन और कृष्ण नर और नारायण ही है जैसा कि महर्षि वेदव्यास ने कहा है। इन दोनों में समग्र ऐश्वर्य, ज्ञान, कीर्ति, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म ये छः गुण नित्य निवास करते हैं इसलिये इन्हे भगवान कहते है। अर्जुन की शक्ति और अधिकारी समझकर ही मैंने उन्हे देवराज इन्द्र के पास दिव्यास्त्र ग्रहण करने के लिये भेजा है। भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, अश्वत्थामा ये सभी दुर्जय वीर है। दुर्योधन ने पहिले से ही इन्हे अपनी ओर से लडने के लिये वचन ले लिया है। सूत पुत्र कर्ण भी महारथी है। मेरा विश्वास है कृष्ण की सहायता से धनंजय इन्द्र से दिव्यास्त्र की विद्या प्राप्त कर इन सब लोगों के लिये अकेला ही युद्ध में सक्षम होगा। अर्जुन के अतिरिक्त हमारा और कोई सहारा नहीं है। हम लोग अर्जुन

की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम सभी अर्जुन के लिये चलायमान हो रहे है। हमें अर्जुन की प्रतीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये।

तब धौम्य पुरोहित ने कहा धर्मराज युधिष्ठिर मैं तुम्हे पवित्र आश्रम, तीर्थ और पर्वतों का वर्णन सुनाना हूं। इस आख्यान को सुनने से तुम्हारे और द्रौपदी के मन की उदासी दूर हो जायेगी। तीर्थों का महात्म्य सुनने से पुण्य होता है। तीर्थों की यात्रा करने से सौगुना अधिक पुण्य होता है। पूर्व दिशा में नेमिषारण्य नाम का तीर्थ है। वह तीर्थ परम पवित्र, पुण्य प्रद एवं रमणीय गोमती नदी के तट पर उत्तर प्रदेश में स्थित है। यह देवताओं की यज्ञ भूमि है और बडे बडे देवर्षि, ऋषि मुनि उसका सेवन करते हैं। गया तीर्थ के बारे में शास्त्रज्ञों ने कहा है जिसके बहुत से पुत्र हो तो अच्छा होता है क्योंकि यदि उनमें से कोई एक भी गया जाकर पूर्वजों का, पितरों का पिंड दान कर दे, अश्वमेघ यज्ञ कर दे तो उससे पहिले की, पीछे की दस दस पीढियों का उद्धार हो जाता है। गया क्षेत्र में एक महानदी और गर्याशर नाम का तीर्थ स्थान है। यह महानदी फल्गु है। एक अक्षयवट नाम का महावट है, जहां पर पिंडदान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। विश्वामित्र की तपस्थली कौशिकी नदी पर सिद्धाश्रम जहां उन्होने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था वो पूर्व दिशा में ही है। पुण्य सलिला भगवती भागीरथी की मनोरम विशालधारा भी पूर्व दिशा में ही है। उसके तट पर बडी-बडी दक्षिणावाले यज्ञ राजा भगीरथ ने किये थे। गंगा और यमुना का विश्वविख्यात संगम प्रयाग जो परम पवित्र और पुण्यप्रद है तथा बडे-बडे ऋषियों द्वारा सेवित है उसी ओर है। सर्वात्मा ब्रह्मा ने भी वहां बहुत से यज्ञ-याग किये है। इसीलिये उसका नाम प्रयाग पडा। अगत्स्य मुनि का आश्रम और भी बडे-बडे तपस्वियों से परिपूर्ण तपोवन भी पूर्व दिशा में ही है। कालांजर पर्वत पर हिरण्यबिन्दु का आश्रम है। अगत्स्य पर्वत बडा रमणीय, पवित्र एवं कल्याण साधना के उपयुक्त है। परशुरामजी का तपस्या क्षेत्र महेन्द्र पर्वत पर जिस पर ब्रह्मा ने भी यज्ञ किया था उधर ही है। बहुदा और नन्दा नाम की नदियां भी वहीं है।

दक्षिण दिशा में पवित्र गोदावरी नदी बहती है। उस नदी का जल मंगलमय और पवित्र है तथा तपस्वियों के द्वारा सेवित है। उसके तट पर बडे-बडे ऋषियों के आश्रम है। वेणा और भागीरथी नदियों के जल भी बडे पवित्र हैं। वहीं पर राजा नृग की पयोष्णी नदी भी है। पयोष्णी नदी का जल यदि शरीर का स्पर्श कर ले तो मनुष्य के जीवन भरके किये हुये सब पाप ताप नष्ट हो जाते है। एक ओर गंगा आदि नदी और दूसरी ओर परम पवित्र पयोष्णी नदी तो पर्याष्णी नदी ही सबसे बढकर होगी। द्रविण देश के पाण्डय देश में अगत्स्य तीर्थ, वरुण तीर्थ और कुमारी तीर्थ है। ताम्रपर्णी नदी, गोकर्ण तीर्थ, अगत्स्य ऋषि आश्रम आदि भी बहुत ही पुण्यप्रद और रक्षणीय है।

सौराष्ट्र देश में बडे ही महिमामय आश्रम, देव मन्दिर, नदियां और सरोवर हैं। सौराष्ट्र देश के चमसोदेक का वन और प्रयास क्षेत्र तो विश्वविश्रुत है। पिंडारक तीर्थ एवं उज्जयन्त पर्वत भी है। सौराष्ट्र प्रदेश में ही द्वारिका है जिसमें पुराण पुरुषोत्तम स्वयं कृष्ण विराजमान हैं। कृष्ण तो सनातन धर्म की मूर्ति हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण ही वास्तव में कृष्ण का वास्तविक रूप जानते है। कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण पवित्रों में पवित्र, मंगलों के मंगल और देवों के भी देव है। वे क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम सब कुछ है। उनका स्वरूप अचिन्त्य एवं अनिर्वाचनीय है। पश्चिम दिशा में आनर्त देश के अन्तर्गत बहुत से पवित्र और पुण्य प्रद देवमन्दिर तथा तीर्थ हें। वहां पुण्य सलिला नर्मदा नदी है वह पश्चिम की ओर बहती है। तीनों लोकों के पवित्र तीर्थ, देव मन्दिर, नदी, वन पर्वत, ब्रह्मादि देवता, ऋषि महर्षि, सिद्ध चारण और बडे-बडे पुण्यात्मा प्रतिदिन नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करने के लिये आते है। नर्मदा के तटपर ही पुलत्स्य मुनि के पुत्र विश्रवा मुनि का आश्रम है जहां पर कुबेर का जन्म हुआ था। उधर ही वैदूर्य शिखर नामक पर्वत भी है। वहां पर केतुमाला, मेहया नदी, एक पवित्र वन भी है उसमें तपस्वी ब्राह्मण रहते है। ब्रह्मा का पुण्य दायक पुष्कर सरोवर भी बहुत प्रसिद्ध है। वह कर्म मार्ग को त्यागकर ज्ञान मार्ग पर आरूढ होनेवाले ऋषियों का पवित्र आश्रम है। ब्रह्माजी ने भी कहा है जो मनस्वी पुरुष मन से भी पुष्कर तीर्थ की यात्रा की इच्छा कर लेगा उसके सारे पाप ताप नष्ट

होंगे और अन्त में उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

उत्तर दिशा में परम पवित्र सरस्वती नदी के तट पर बहुत सारे तीर्थ है। यमुना नदी का उद्गम यमनोत्री भी उत्तर दिशा में ही है। पलाक्षावतरण नाम के मंगलमय तीर्थ में यज्ञ करके सरस्वती नदी में अवमृथ स्नान किया जाता है फिर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अग्निशर तीर्थ भी वहीं है। सरस्वती नदी के तटपर बाल खिल्य ऋषियों ने यज्ञ किया था। दृषद्वती नदी, न्यग्रोध, पांचाल्य, दालभ्य घोष और दालभ्य नाम के आश्रम भी वहीं पर है। उत्तर के पर्वतों में से एक पर्वत को फोडकर गंगा निकली है उसी का नाम गंगाद्वार है। उसे गंगोत्री तीर्थ भी कहते है। उस पवित्र तीर्थ स्थान में बडे-बडे ब्रह्मर्षि निवास करते है। गंगाद्वार (हरिद्वार) में कनखल है। कनखल में सतनकुमारों का निवास स्थान है। वहीं पर प्रजापति दक्ष ने यज्ञ किया था। पुरु पर्वत भी वहीं है। भृगु मुनि की तपस्या का स्थान भृगु तुंग महापर्वत भी उसी ओर है।

भगवान नारायण की विशाला नाम की नगरी गन्धमादन पर्वत पर बदरिकाश्रम के नाम से है। विशाला नगरी तीनो लोकों में परम पवित्र और प्रसिद्ध है। वह स्थान बदरी विशाल के नाम से भी जाना जाता है। बद्रिकाश्रम के पास ठंडे एवं उष्ण जल की धारा के स्त्रोत है वह देव नदी अलक नन्दा के नाम से जानी जाती है। वहां पर सोने जैसी रेत चमकती है। बडे-बडे ऋषि मुनि, देवी देवता भगवान नारायण की आराधना करने के लिये वहां जाते हैं। स्वयं परमात्मा का निवास स्थान होने के कारण उस तीर्थ में जगत के सम्पूर्ण तीर्थ और देव मन्दिर निवास करते हैं। वह पुण्य क्षेत्र, तीर्थ एवं तपोवन, पर ब्रह्म स्वरूप है। परमात्मा के परम स्वरूप को जान पहचान लेता है उसे किसी प्रकार का शोक भय नहीं रहता है। उसी बदरिकाश्रम बदरी विशाल में बडे बडे देवर्षि, सिद्ध और तपस्वी निवास करते है। अन्य तीर्थों में अवश्य इस तीर्थ की महानता सर्वाधिक है। यह परम पवित्र तीर्थ है। धर्मराज तुम श्रेष्ठ ब्राह्मणों और भाइयों सहित इन तीर्थों की यात्रा करो। जिससे तुम्हारे और द्रौपदी का मन का सन्ताप दु:ख मिटेगा और अभिलाषा पूर्ण होगी। पुरोहित धौम्य इस प्रकार से पांडवों से कह रहे थे कि इतने में ही परम तेजस्वी लोमश ऋषि वहां आ गये।

१६) लोमश मुनि का आगमन, तथा व्यास आदि ऋषियों सहित पांडवों की तीर्थयात्रा

लोमश ऋषि को पांडवों के पास पहुंचने में बहुत समय नहीं लगा। पांडवों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। युधिष्ठिर ब्राह्मण, सेवक आदि सभी लोग मुनि की आवभगत में जुट गये। धौम्य मुनि ने भी उन्हें उचित सम्मान दिया। सेवा सत्कार हो जाने के पश्चात युधिष्ठिर ने पूछा किस उद्देश्य से आपका आगमन हुआ ऋषिवर ? लोशम मुनि बोले पांडुनन्दन युधिष्ठिर मैं स्वच्छन्दता से स्वेच्छा अनुसार सब लोकों में विचरता रहता हूं। एक बार मैं इन्द्रलोक जा पहुंचा वहां पर मैंने देखा कि देवसभा में देवराज इन्द्र के आधे सिंहासन पर तुम्हारा अनुज अर्जुन बैठा है। मुझे उसे देखकर बडा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने वहां पर तुम्हारी अनुमति से दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिये हैं। भगवान चन्द्रमौलि को प्रसन्न कर लिया है। अर्जुन ने स्वर्ग में दिव्यास्त्रों की प्रयोग व प्रत्यावर्तन की विद्या भी सीख ली है। महाशक्तिशाली अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों के साथ ही यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र से भी दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं। अर्जुन ने बहुत साधना की है, तपस्या की है और फलस्वरूप बहुत कुछ उपलब्ध किया है। दिव्यास्त्र की प्राप्ति एक लौकिक कामना थी, इससे भौतिक शक्ति की प्राप्ति, प्रहारक ऊर्जा की प्राप्ति तथा शत्रुओं के नाश का सामर्थ्य प्राप्त कर लिया। इस लौकिक उपलब्धि के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक प्रगति भी हुई है। यदि प्रहारक शक्ति के साथ उसमें उसका आत्मिक विकास न होता तो प्रहारक शक्ति के साथ-साथ उसमें अहंकार की बुद्धि होती। अहंकारी के पास शक्ति हो तो वह राक्षस बन जाता है। परन्तु अर्जुन के साथ वह नहीं हुआ। उसने लौकिक उपलब्धियों के साथ-साथ उसकी निरर्थकता का भी भाव पाया है। उसने पशु बनने के बजाय पशुपति बनने का मन्त्र पाया है। इसलिये अर्जुन को लौकिक शक्ति से ईश्वर की बनी सृष्टि को कोई भय नहीं है। ऋषि बोले जिसके लिये भोग सामग्री इकट्ठी की जाये और उसकी भोग में से आसक्ति ही उठ जाये वह भोग सामग्री व्यर्थ हो जाती है। ईश्वर की लीला बडी विचित्र है। वह मनुष्य

के विकास के साथ साथ उसे मोहग्रस्त करने के लिये उसके पास ढेर सारी भोग सामग्रियां भी उपलब्ध करा देता है। यदि व्यक्ति मोहग्रस्त हो जाता है तो उस भोग सामग्री को ही अपनी उपलब्धि मानकर उसका भोग करने लगता है और फिर पतन की ओर अग्रसर होने लगता है। अर्जुन अपने उच्च लक्ष्यों से स्वखलित नहीं होगा।

युधिष्ठिर तुम लोगों के लिये इन्द्र ने सन्देश भेजा है कि तुम्हारा भाई अर्जुन अस्त्र विद्या में निपुण हो गया है और अब उसे वहां निवात कवचों नामक असुरों को मारना है। इसके पश्चात अर्जुन तुम्हारे पास लौट आयेगा। अब तुम अपने भाइयों के साथ तपस्या करके आत्मबल का उपार्जन करो। तपसे बढकर कोई वस्तु नहीं है। तपसे ही मनुष्य को मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है। धर्मराज भव आपका काम काम्यक वन में समाप्त हो गया है अब यहां रूके रहने का कोई विशेष कारण नहीं है। एक ही स्थान पर इतने लोगों को एक साथ रहना वस्तुत: न तो वनवास है, न साधना, न तपस्या। ऐसे तो व्यक्ति वन में ही एक नया संसार बसा लेता है। तुम लोगों को अब तीर्थों का भ्रमण करना चाहिये। तीर्थों की यात्रा कर धर्म की पूंजी इकट्ठी करो और अपने पुण्यों की वृद्धि करो। युधिष्ठिर मैं तुम्हे मेरे साथ तीर्थयात्रा पर ले जाऊंगा। तुम्हारी स्वभाव से ही धर्म में रुचि है। तुम धर्म के मर्मज्ञ एवं सत्य प्रतिज्ञ हो। तुम तीर्थयात्रा के प्रभाव से समस्त आसक्तियों से छूट कर मुक्त हो जाओगे। जैसे राजा भगीरथ, गय और ययाति जगत में यशस्वी और विजयी हो गये है वैसे ही तुम भी विजयी हो जाओगे।

बीच ही में सहदेव ने मुनि से पूछा मुनिवर वो कौनसा ऐसा स्थान है जहां जाकर हमें रहना चाहिये। लोमश ऋषि बोले पांडवों जिस स्थान को देखकर ईश्वर का स्मरण हो वह तीर्थ है। किन्तु जिस किसी स्थान पर पवित्र से पवित्र स्थान पर तुम निरन्तर रहते चलोगे, उसमें परिचित होते चलोगे वह तुम्हारे लिये सामान्य हो जायेगा और तीर्थ स्थान के बदले निवास स्थान बन जायेगा। उसकी पवित्रता का कोई भान तुम्हारे लिये नहीं होगा। इसलिये अनेक बार तीर्थों के स्थानीय निवासियों में उसके प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं रह जाती। अत: किसी भी एक स्थान पर लम्बे समय तक रूके नहीं रहना चाहिये। अत: तुम्हे चलते रहना चाहिये। नये से नये स्थान पर जाना चाहिये।

युधिष्ठिर बोले महर्षि आपकी बात सुनकर बडा ही सुख प्राप्त हुआ। देवराज इन्द्र जिसका स्मरण करे उससे अधिक भाग्यशाली कौन होगा। युधिष्ठिर ने तीर्थयात्रा की तैयारी प्रारम्भ की तब उस समय वनवासी ब्राह्मण युधिष्ठिर के पास आकर बोले महाराज आप लोमश मुनि और भाइयों सहित पवित्र तीर्थों की यात्रा के लिये जा रहे है। आप हमें भी अपने साथ ले चलिये क्योंकि आप लोगों के बिना हम तीर्थ करने में असमर्थ है। हिंसक पशु-पक्षियों, व काटों भरे रास्ते वहां होने से साधारण मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते। आप शूरवीरों के संरक्षण में हम लोग अनायास ही यह तीर्थयात्रा कर लेंगे। आपका ब्राह्मणों पर तो स्वाभाविक प्रेम है इसलिये हम आपके साथ प्रयाग तीर्थ, महेन्द्रगिरी, गंगा एवं अक्षय वट का दर्शन कर कृतार्थ होंगे। युधिष्ठिर बोले बहुत अच्छा आप लोग भी हमारे साथ चलिये। जब धर्मराज युधिष्ठिर ने लोमश मुनि और आचार्य धौम्य के परामर्श से भाइयों और द्रौपदीसहित तीर्थयात्रा आरम्भ करने का विचार किया तो उसी समय महर्षि वेदव्यास, देव ऋषि नारद, एवं पर्वत मुनि पांडवों के पास काम्यक वन में आ गये और बोले युधिष्ठिर शारीरिक और मानसिक शुद्धि दोनों की ही आवश्यकता है। मन की शुद्धि ही पूर्ण शुद्धि है। इसलिये द्वेष बुद्धि छोडकर सबके प्रति मित्र बुद्धि रखो जिससे तुम्हारी मानसिक शुद्धि हो जायेगी तब तीर्थ यात्रा करो। ऋषियों की बात सुनकर पांडवों ने द्रौपदी सहित यह प्रतिज्ञा करी कि ऋषिवर हम ऐसा ही करेंगे। मार्गशीर्ष पूर्णिमा पुण्य नक्षत्र में पुरोहित धौम्य व अन्य ऋषियों मुनियों, वनवासी ब्राह्मणों के साथ पांडवों ने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की।

१७) पांडवों की नैमिषारण्य, प्रयाग, गया की तीर्थयात्रा तथा अगत्स्य-लोपमुद्रा की कथा

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, पांडव अपने साथियोंसहित तीर्थयात्रा में स्थान स्थान पर विचरते हुये नैमिषारण्य क्षेत्र में जो सीतापुर के पास है वहां पहुंचे। वहां गोमती में स्नान कर उन्होने वहां पर बहुत सा धन और गायें दान दी। फिर देवता, पितर

और ब्राह्मणों को तृप्त कर कन्यातीर्थ, अश्वतीर्थ, गोतीर्थ काल कोटि और विषप्रस्थ पर्वत पर निवास कर बाहुदा नदी में स्नान किया। फिर वहां से चलकर वे देवताओं की यज्ञ भूमि प्रयाग में पहुंचे। यहां पर पांडवों ने गंगा यमुना के संगम में स्नान कर ब्राह्मणों को बहुत सा दान धर्म किया। इसके पश्चात वे प्रजापति ब्रह्मा की वेदी पर गये। यहां बहुत से सिद्ध और तपस्वी निवास करते थे। इस स्थान पर कुछ दिन रहकर पांडवों ने तपस्या की थी। वहाँ ब्राह्मणों को कन्द मूल फलों से तृप्त कर पांडवों ने तपस्या की थी और वहां से गया (धर्मारण्य) चले गये। यहां गया में गयसिर नाम का पर्वत और बेंत के वन से घिरी हुई अति रमणीय महानदी है। वहां पर ऋषियों द्वारा सेवित पवित्र शिखरोंवाला धरणीधर नाम का पर्वत है। उस पर्वत पर ब्रह्म सरनाम का बडा ही पवित्र तीर्थ है जहां सनातन धर्मराज स्वयं निवास करते है। एक समय अगत्स्य मुनि भी वहां सूर्यपुत्र यमराज से मिलने आये थे। भगवान आसुतोष शिव का भी इस तीर्थ स्थान में नित्य निवास हैं। अनेकों मुनिजन यहां निवास करते हैं। इस देश के सहस्त्रों ब्राह्मण तपोधन महाराज युधिष्ठिर के पास आये। उन्होने गया में चतुर्मास यज्ञ कराने के लिये कहा। युधिष्ठिर ने चतुर्मास वहीं पर किया और चातुर्मास यज्ञ किया। वे सब विप्रवर वेद वेदांग की पारगामी तथा विद्या और तप में निपुण थे। उन्होने विभिन्न प्रकार की शास्त्र चर्चायें भी की।

उस सभा में शमठ नाम के एक विद्वान और संयमी ब्रह्मचारी थे। उन्होने अमूर्तरथा के पुत्र राजर्षि गय का चरित्र सुनाया। उन्होने बताया यहां पर महाराज गय ने अनेक पुण्य कर्मों का अनुष्ठान किया था। उनके यज्ञ में अन्न, मिष्ठान्न और दक्षिणा का बाहुल्य था। अन्न के सैकडों हजारों पर्वत लग गये थे। घृत की सैकडों नहरें तथा दूध दही की तो नदियां बह रही थी। उत्तम व्यंजनों का तांता लगा हुआ था। याचकों को नित्य प्रतिदिन खुले हाथों दान दिया जाता था। जिस प्रकार संसार में बालू के कण, आकाश के तारे और बरसते हुये मेघ की धाराओं को कोई नहीं गिन सकता उसी प्रकार गय के यज्ञ में दी हुई दक्षिणा भी नहीं गिनी जा सकती। कुरुनन्दन युधिष्ठिर, राजर्षि गय के ऐसे ही अनेकों यज्ञ इस सरोवर के समीप हुये है।

इस प्रकार गयसिर क्षेत्र में चातुर्मास्य यज्ञ कर ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणा देकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर अगस्त्याश्रम में आये। लोमश ऋषि ने बताया युधिष्ठिर यहां पर एक बार अगस्त्य मुनि ने एक गड्ढे में अपने पितरों को उलटे सिर लटकते हुये देखा तब उनसे पूछा कि आप लोग इस प्रकार नीचे की ओर सिर करके क्यों लटक रहे हो ? तब उन वेद वादियों ने कहा हम तुम्हारे ही पितर गण है और पुत्र होने की आशा में इस गड्ढे में लटके पडे है। पुत्र अगस्त्य यदि तुम्हारे एक पुत्र हो जाये तो इस नरक से हमारा छुटकारा हो सकता है। तुम्हे भी इससे सद्गति प्राप्त होगी। अगस्त्य मुनि बडे ही तेजस्वी और सत्यनिष्ठ थे। उन्होने पितरों से कहा हे पितृगण आप निश्चिन्त रहें। मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूंगा।

पितरों को इस प्रकार आश्वासन देकर अगस्त्य मुनि ने विचार किया कि वंश परम्परा का उच्छेद भी न हो इसलिये शास्त्र सम्मत विवाह करना आवश्यक है परन्तु उन्हे कोई भी स्त्री अपने अनुरूप नहीं जान पडी। उन्होने एक दिन विदर्भ देश के राजा के पास जाकर कहा राजन मुझे सन्तान की चाहत है इसके लिये विवाह करने का मेरा विचार है। मैं आपसे आपकी पुत्री लोपमुद्रा को मांगता हूं। आप मेरे साथ उसका विवाह कर दे। अगस्त्य मुनि का प्रस्ताव सुनकर विदर्भ राज के तो होश ही उड गये। वे न तो अस्वीकार कर सके और न कन्या देने का साहस। उन्होने अपनी महारानी को जाकर सारा वृतान्त सुनाया। प्रिये महर्षि अगस्त्य बडे ही तेजस्वी है और भयंकर क्रोध से हमें भस्म करने में समर्थ हैं। तुम बताओ इस विषय में तुम्हारा क्या मत है? राजा और रानी अत्यन्त दु:खी हो रहे थे तब राजकन्या लोपमुद्रा ने पास आकर कहा पिताश्री आप मेरे कारण क्यों खेद कर रहे हैं ? मुझे अगस्त्य मुनि को सौंपकर आप अपनी रक्षा करे। पुत्री की यह बात सुनकर राजा ने शास्त्रोक्त विधि से अगस्त्य मुनि के साथ अपनी पुत्री लोपमुद्रा का विवाह कर दिया। पत्नी मिल जाने पर अगत्स्य मुनि ने कहा देवी तुम इन बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का त्याग करो। तब लोपमुद्रा ने अपने बहुमूल्य और महीन रेशम के वस्त्रों को उतार दिया तथा चीर, पेड की छाल के वस्त्र,

वल्कल मृगचर्म धारण कर अपने पति के समान ही व्रत और नियमों का पालन करने लगी। तत्पश्चात अगत्स्य मुनि अपनी भार्यासहित हरिद्वार क्षेत्र में आकर तपस्या करने लगे। लोपमुद्रा बडे ही प्रेम और तत्परता से अपने पति की सेवा करती थी। अगत्स्य भी अपनी पत्नी के साथ बडे प्रेम का बर्ताव करते थे।

राजन जब इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये तो एक दिन मुनि अगस्त्य ने ऋतु स्नान से निवृत हुई लोपमुद्रा को देखा। उस समय तप के प्रभाव से उसकी कान्ति बहुत बढी हुई थी। उसकी सेवा, पतिव्रता, संयम कान्ति और रूप माधुर्य ने भी उन्हे मुग्ध कर दिया था। अत: उन्होने प्रसन्न होकर समागम के लिये आह्वान किया तो कल्याणी लोप मुद्रा कुछ सकुचाई और बोली मुनिवर इसमें सन्देह नहीं कि पति सन्तान के लिये ही पत्नी को स्वीकार करता है। मेरे प्रति आपकी जो प्रीति है उसे भी सार्थक करना आवश्यक है। मेरी इच्छा है कि मैं मेरे पिता के महलों में जिस प्रकार से सुन्दर वेशभूषा से विभूषित रहती थी वैसे ही यहां रहूं और तब मेरा आपके पास समागम हो। आप भी अपने को अमूल्य आभूषणों और हार से विभूषित करें। इन वस्त्रों को धारण कर तो मैं आपके साथ समागम नहीं करूंगी। यह तप का बाना बडा पवित्र है इसे किसी भी प्रकार सम्भोग आदि से अपवित्र नहीं कर सकती। अगस्त्य मुनि बोले लोपमुद्रे तुम्हारे पिताश्री के घर में जो धन था अब वह न तो तुम्हारे पास है और न ही मेरे पास है फिर ऐसे कैसे हो सकता है ? लोपमुद्रा बोली तपोधन इस जीवलोक में जितना धन है उस सबको आप अपने तप के प्रभाव से एक क्षण में ही प्राप्त कर सकते है। अगस्त्य बोले प्रिय तुम जो कहती हो सो तो ठीक है किन्तु ऐसा करने से तप का क्षय होगा। कोई ऐसा उपाय करो जिससे तप का नाश नहीं हो। लोपमुद्रा बोली हे तपोधन मैं आपके तप को भी नष्ट नहीं करना चाहती इसलिये आप उसकी रक्षा करते हुये अपनी कामना पूर्ण करे। अगस्त्य मुनि बोले सुभगे यदि तुमने अपने मन में ऐश्वर्य भोगने की इच्छा कर ली है तो तुम यहां रहकर इच्छानुसार धर्म का आचरण करो और मैं तुम्हारे लिये धन उपार्जन के लिये बाहर जाता हूं। लोपमुद्रा से ऐसे कहकर अगस्त्य मुनि धन मांगने के लिये राजा श्रुतर्वा के पास गये। राजा श्रुतर्वा महर्षि के आगमन को जानकर अपने राज्य की सीमा से बाहर आकर मुनि को लिवा ले गये और विधिवत अपने राज्य में उनका स्वागत सत्कार कर विनयपूर्वक मुनि के आने का कारण पूछा तब अगस्त्य मुनि बोले राजन मैं धन की इच्छा से आपके पास आया हूं। अत: आपके पास का धन जो दूसरों को बिना कष्ट पहुंचाये हुये प्राप्त हुआ उसमें से यथा शक्ति मुझे दे। अगस्त्य मुनि की बात सुनकर राजा श्रुतर्वा ने आय व्यय का हिसाब उनके सामने रख बोले मुनिवर इसमें से जो आप उचित समझे वह ले ले। अगस्त्य मुनि ने देखा कि उस हिसाब में आय व्यय का लेखा जोखा बराबर था इसलिये यह सोचकर इसमें से थोडा सा भी धन लेने से अन्य प्राणियों को कष्ट होगा अत: उन्होने उसमें से कुछ भी नहीं लिया।

फिर वे श्रुतर्वा को साथ लेकर बृध्नश्व के पास गये। बृध्नश्व ने भी अपने राज्य की सीमा पर आकर उन दोनों का विधिवत स्वागत सत्कार किया। तथा उनके आने का प्रयोजन पूछा। अगस्त्य मुनि बोले राजन हम दोनों आपके पास धनप्राप्ति की इच्छा से आये है। दूसरों को पीडा पहुंचाये बिना प्राप्त किये हुये धन में से हमें यथासम्भव कुछ भाग दे। तब बृध्नश्व ने मुनि की बात सुनकर उन्होने अपने आप व्यय का हिसाब दिखा दिया और कहा कि इसमें ये जो धन अधिक हो वह आप ले ले। अगस्य मुनि ने यहां भी आय व्यय का लेखा बराबर देख कर विचार किया कि इसमें से कुछ भी लेने से प्राणियों को दु:ख ही होगा इसलिये वहां से धन लेने का संकल्प छोडकर वे तीनों पुरुकुत्स के पुत्र महान धनवान राजा त्रसदस्यु के पास गये। इच्छवाकु कुलभूषण महाराज त्रसदस्यु ने भी उसी प्रकार स्वागत सत्कार कर आय व्यय का समान लेखा बताया उसे देखकर उन तीनों ने भी त्रसदस्यु से कोई धन नहीं लिया।

तब उन सबों ने आपस में विचार कर कहा मुनिवर इस समय संसार में इल्वल नाम का एक दैत्य बडा धनवान है। उसके सिवा हम सब लोग तो धन की अभिलाषा व आसक्ति रखनेवाले लोग हैं। तब वे सब मिलकर इल्वल के पास गये। इल्वल दैत्य को जब

मालूम पडा कि महर्षि अगस्त्य उस क्षेत्र के राजाओं को साथ लिये उसके यहां आ रहे है तो उसने अपने सभी मंत्रियों सहित राज्य की सीमा पर जाकर उनका सबका स्वागत सत्कार किया फिर बोला आपने इधर आने की कैसे कृपा की? मैं आपकी क्या सेवा करू? तब अगस्त्य मुनि हंसकर बोले दैत्यराज हम आपको बडा सामर्थ्यवान और धन कुबेर समझते हैं। मेरे साथ जो राजा लोग है ये तो कोई विशेष धनी नही है और इस समय मुझे धन की आवश्यकता है। अत: दूसरों को कष्ट पहुंचाये बिना जो न्याय युक्त धन आपको मिला हो उस धन में से कुछ भाग यथाशक्ति हमें दे। यह सुन इल्वल मुनि को प्रणाम कर बोले मुनिवर मैं मन से जितना धन देना चाहता हूं तो यदि आप मेरे उस मनोभाव को बता दे तो मैं आपको उस धन को दे दूंगा। मुनि बोले असुरराज तुम प्रत्येक राजा को दस हजार गायें और इतनी ही स्वर्ण मुद्रायें देना चाहते हो तथा मुझे इससे दोगुनी गायें और स्वर्ण मुद्राये, इसके अलावा एक सोने का रथ, और मन के समान दौडनेवाले दो घोडे देने का तुम्हारा मनोभाव और इच्छा है बोलो यह ठीक है न तुम्हारे मन में। दैत्य बोला हां मुनिवर आपने बिल्कुल ठीक ठीक बताया। उस दैत्य ने बहुत सा धन दिया। रथ में जुते हुये विराम और सुराव नाम के घोडे उस स्वर्ण रथ में जोड कर धन दिया। यह सब धन लेकर अगस्त्य मुनि अपने आश्रम पर आये और उन सभी राजाओं को अपने अपने देशों में विदा किया। अगस्त्य मुनि ने लोपमुद्रा की समस्त कामनायें पूर्ण की।

लोपमुद्रा बोली मुनिवर अब आप मेरे गर्भ से एक सुन्दर पराक्रमी बालक उत्पन्न करें। अगस्त्य मुनि बोले सुन्दरी मैं तुम्हारे सदाचार से अति प्रसन्न हूं। इसलिये तुम्हारे सन्तति के बारे में मेरा विचार है कि तुम सहस्त्र पुत्र की जननी हो या सहस्त्र पुत्रों के समान ही सौ पुत्र हो अथवा सौ सौ पुत्र के समान दस पुत्र हो। या फिर सहस्त्रों को परास्त कर देनेवाला एक ही पुत्र हो। लोपमुद्रा बोली तपोधन मुझे तो सहस्त्र पुत्रों की समानता करनेवाला एक ही पुत्र प्रदान करे। बहुत से अयोग्य पुत्रों से तो एक ही योग्य और विद्वान पुत्र भला है।

मुनि अगस्त्य ने बहुत अच्छा कह ऋतु स्नान होने पर अपनी सहधर्मणी के साथ समागम किया। गर्भाधान के पश्चात वे वन में चले गये। उनके वन में चले जाने के पश्चात लोपमुद्रा सात वर्ष तक यह गर्भ धारण किये रही। जब सात वर्ष पूरे होने लगे तो लोपमुद्रा के गर्भ से दृढ़स्यु नाम का एक बडा ही बुद्धिमान और तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। वह परम तपस्वी तथा सांगोपांग वेद और उपनिषदों का ज्ञाता था। उस बालक का जन्म होनेपर मुनि अगस्त्य के पितरों को उनके अभिष्ट लोक की प्राप्ति हुई। तभी से पृथ्वी पर यह स्थान अगस्त्याश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजन यह आश्रम अनेकों रमणीय गुणों में सम्पन्न है। इसके समीप यह परम पवित्र भागीरथी प्रवाहित हो रही है। बडे-बडे देवता और गन्धर्व भी इसका सेवन करते है। यह भुगू तीर्थ तीनो लोकों में प्रसिद्ध है। इसी स्थान पर भगवान श्रीराम ने जमदाग्नि पुत्र परशुराम के तेज को कुंठित कर दिया था। इस समय तुम्हारा तेज भी दुर्योधन ने हर लिया है। तुम इस तीर्थ में स्नान कर अपने क्षीण तेज को पुन: प्राप्त करो। महर्षि लोमश की यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और द्रौपदी सहित उस तीर्थ में स्नान कर अपने पितर और देवताओं को सन्तुष्ट किया उस तीर्थ में स्नान करने से उनका शरीर तेजस्वी और भी कान्तिमान प्रतीत होने लगा और वे शत्रुओं के लिये दुर्जय हो गये। युधिष्ठिर ने लोमश मुनि से पूछा ऋषिवर यह बताने की कृपा करें परशुराम जी के शरीर का तेज क्यों क्षीण हो गया और वह उन्हे फिर किस प्रकार प्राप्त हुआ ?

लोमश ऋषि बोले महाराज दशरथ के यहां पुत्र रूप में स्वयं विष्णु ने ही रावण वध के लिये रामावतार धारण किया था। भगवान श्रीराम ने बाल्यकाल में ही अनेकों अद्भुत पराक्रम किये थे। उनका सुयश सुनकर रेणुका नन्दन जमदाग्नि पुत्र परशुराम जी को बडा कुतूहल हुआ और वे क्षत्रियों का संहार करनेवाला अपना दिव्य धनुष ले श्रीराम के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये अयोध्या आ गये। जब महाराज दशरथ ने उनके अयोध्या आने का समाचार सुना तो उन्होने कुमार राम को अपने राज्य की

सीमा पर भेजा। राम को प्रसन्न और शस्त्रों से सुसज्जित देखकर परशुराम बोले राजकुमार मेरा यह धनुष काल के समान विकराल है। यदि तुम में बल हो तो इसे चढाओ। तब श्रीराम ने महर्षि परशुराम के हाथ से वह दिव्य धनुष लेकर उसे चढा दिया और उसकी प्रत्यन्चा का टंकार किया। उस धनुष की टंकार से समस्त प्राणी भयभीत हो गये मानो उनपर वज्र टूट पडा। वे परशुरामजी से बोले आपकी आज्ञा से मैंने धनुष तो चढा दिया और अब आपकी क्या सेवा करूं ? भृगुनन्दन लगता है आप बडे अभिमानी है। आपने अपने पितामह ऋचीक की कृपा से ही क्षत्रियों को हराकर यह तेज प्राप्त किया है इसलिये आप मेरा भी तिरस्कार कर रहे है। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूं उससे आप मेरे स्वरूप को देखो। परशुरामजी ने राम के बढे हुये शरीर में देखा आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुदगण, पितर, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदियां, तीर्थ, बाल खिल्य आदि ब्रह्मसूत सनातन मुनिवर, देवर्षि तथा सम्पूर्ण समुद्र और पर्वतों को देखा। इसके सिवा उन्हे उसमें उपनिषदों सहित वेद, वषटकार और यज्ञ यज्ञादि सहित सजीव साम श्रुतियां और धनुर्वेद तथा मेघ, वर्षा और विद्युत भी दिखाई दिये। फिर श्रीराम ने जब वह बाण छोडा तो बडी-बडी लपटों सहित सूखा वज्रपात होने लगा। सारा भूमंडल धूल वर्षा और मेघ वर्षा से छा गया। पृथ्वी कांपने लगी तथा सर्वत्र भीषण आघात और भयंकर शब्द होने लगे। वह बाण परशुरामजी का तेज हर कर फिर श्रीराम के पास लौट आया। तब परशुराम जी ने भगवान श्रीराम को प्रणाम किया और श्रीराम की आज्ञा पाकर वे महेन्द्रगिरि पर चले गये और बडे श्रान्त एवं लज्जित होकर वहां रहने लगे। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर पितृगण ने देखा कि परशुरामजी बडे ही निस्तेज हो रहे है, उनका मद चूर चूर हो गया है तथा वे अत्यन्त दु:खी है। तब वे बोले वत्स तुमने साक्षात विष्णु के साथ जैसा बर्ताव किया वह ठीक नहीं था। वे तो तीनो लोकों में सदा सर्वदा ही पूजनीय और माननीय है। अब तुम जाकर वृतासुर कृता नाम की पवित्र नदी में स्नान करो। सतयुग में तुम्हारे प्रपितामह भृगु ऋषि ने दीक्षोद नामक तीर्थ में बडी तपस्या की की, उसमें स्नान करने से तुम्हारा यह शरीर पुन: तेजस्वी हो जायेगा। पितरों के इस प्रकार कहने से परशुरामजी ने इस तीर्थ में स्नान किया और ऐसा करने से उन्हे पुन: अपना खोया हुआ तेज प्राप्त कर लिया।

१८) वृतासुर वध और अगस्त्य मुनि का समुद्र शोषण का वृतान्त

लोमश ऋषि युधिष्ठिर से बोले राजन मैं परम तेजस्वी अगस्त्य मुनि की दिव्य अद्भुत और अलौकिक गाथा बताता हूं। सतयुग में कालकेय नाम के बडे भयंकर और रणवीर दैत्यगण थे। वे वृतासुर के नेतृत्व में इन्द्रादि आदि देवताओं पर आक्रमण करते रहते थे। सब देवताओं ने मिलकर वृतासुर का वध करना चाहिये ऐसा विचार कर इन्द्र को लेकर ब्रह्मा के पास आये और अपना कष्ट प्रकट किया। ब्रह्मा ने कहा मैं तुम्हे वृतासुर के वध का उपाय बताता हूं। पृथ्वी लोक में दधीचि नाम के एक बडे ही उदार हृदय महर्षि है तुम लोग उनसे जाकर याचना करो कि तीनो लोकों के हित को वे आपको अपनी हड्डिया दान दे दे। जब वे देह त्याग कर अपनी हड्डिया तुम्हे दे दे तब तुम उनकी हड्डियों से छ: आरेवाला एक सुदृढ़ वज्र बनाना और उस वज्र से वृतासुर का वध कर देना। ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर और ब्रह्मा से आज्ञा ले सभी देवता सरस्वती के तटपर दधीचि ऋषि के आश्रम में आये। दधीचि ऋषि वहां पर तपस्या कर रहे थे, दधीचि की पत्नी गभस्थिनि जल लाने नदी तट पर गई हुई थी। देवता लोग उचित समय जानकर महर्षि दधीचि के पास आये और प्रणाम कर वर प्रदान के लिये प्रार्थना की। तब दधीचि ऋषि प्रसन्न हो बोले देवगण तुम्हारा जिस में हित हो वैसा ही करुंगा। तुम लोगों के लिये मैं अपने शरीर को भी न्यौछावर कर देता हूं। देवताओं की उनके शरीर की अस्थि याचना करने पर मन और इन्द्रियों को वश में कर दधीचि ने सहसा अपने प्राण त्याग दिये। देवताओं ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार दधीचि की हड्डिया ले विश्वकर्मा के पास जाकर एक भयंकर वज्र का निर्माण करवाया। विश्वकर्मा बोले देवराज इस वज्र से आप अपने शत्रु उग्रकर्मा वृतासुर का वध करें।

देवराज इन्द्र वज्र लेकर देवताओं को साथ ले वृतासुर के पास आये और आक्रमण कर दिया। उस समय पर्वत समान विशाल काय कालकेय दैत्यों से युद्ध किया जो वृतासुर की रक्षा कर रहे थे। देवता और ऋषियों के तेज से सम्पन्न इन्द्र का बल बढा हुआ था। वृतासुर की गर्जना और सिंहनाद से पृथ्वी, आकाश समस्त दिशायें और पर्वत डगमगाने लगे। इससे इन्द्र भी भयभीत होने लगा। इन्द्र ने वृतासुर पर अपना वज्र छोडा उस वज्र के प्रहार से महादैत्य वृतासुर प्राणहीन हो पृथ्वी पर गिर पडा। इस प्रकार वृतासुर का वध हुआ। वृतासुर के मारे जाने पर सभी देवता और महर्षि प्रसन्न हुये। वृतासुर वध के पश्चात देवताओं ने कालकेय आदि समस्त दैत्यों को मारना आरम्भ किया। तब वे सब दैत्य भयभीत होकर भाग गये और जाकर बडे-बडे मगरमच्छ, मक्र और घडियालों से भरे अगाध समुद्र में जाकर छिप गये। वहां जाकर सब ने मिलकर विचार किया कि समस्त लोकों की रक्षा तप बल से होती है अत: सबसे पहिले तप का ही नाश करना चाहिये। पृथ्वी में जो भी तपस्वी, धर्मात्मा और ज्ञान निष्ठ पुरुष है उनके संहार का यत्न करना चाहिये। उनका नाश होने से सारा संसार स्वयं नष्ट हो जायेगा। ऐसा विचारकर वे कालकेय दैत्य समुद्र में रहते हुये त्रिलोकी का नाश करने में तत्पर हो गये। वे क्रोध में भर गये और नित्य प्रति रात्रि समुद्र से बाहर निकल कर तपस्वियों के आश्रम और तीर्थादि में रहनेवाले मुनियों को खा जाते और दिन में समुद्र में जा छिपे रहते। उनका अत्याचार इतना बढा कि सारी पृथ्वी पर ऋषि मुनियों की हड्डियां ही बिखरी हुई दिखाई देने लगी।

जब इस प्रकार सृष्टि का संहार होने लगा तथा यज्ञ यज्ञादि नष्ट होने लगे तो देवता लोग दु:खी होकर इन्द्र से परामर्श कर शरणागत वत्सल श्रीमन्नारायण के पास गये और उन्हे प्रणाम कर स्तुति की। हे प्रभो आप सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं। हे कमल नयन पूर्वकाल में जब पृथ्वी जल में डूब गयी थी तब आप ही ने वाराह रूप धारण इसका उद्धार किया था। हे पुरुषोत्तम आप ही ने नृसिंह रूप धारण कर महाबलि दैत्य हिरण्यकश्यपु का वध किया था। वामन रूप धारण कर दैत्यराज बलि से त्रिलोकी दान में ली थी। महान धनुर्धर जम्भ बडा ही क्रूर यज्ञ यज्ञादि का विध्वंस करनेवाला था, उसका वध भी आपही ने किया था। आप ही दुष्टों के दलन करनेवाले है। आपके तो अगणित पराक्रम है। भयभीतों के तो एक मात्र आप ही आश्रय है। अत: हे देवदेवेश्वर त्रिलोकी के कल्याण हेतु हम आपसे प्रार्थना करते है कि इस उत्पन्न महान भय से सम्पूर्ण लोक, देवताओं और इन्द्र की रक्षा करे। रात में आकर पता नहीं कौन ब्राह्मणों, तपस्वियों और ऋषि-मुनियों को आकर मार डालता है। ब्राह्मणों का विनाश होनेपर सारी पृथ्वी का नाश हो जायेगा तत्पश्चात स्वर्ग का भी नाश हो जायेगा अत: हे जगत्पते कृपा कर इन लोकों के संहार होने में रक्षा करे। देवताओं की प्रार्थना सुन कर भगवान विष्णु बोले हे देवगण यह वृतान्त मैं पूरी तरह से जानता हूं। कालकेय नाम के दैत्यों का एक बडा समूह है जो सारे संसार को पीडित कर रहे है। वे दिन में तो समुद्र में छिपे रहते है और रात्रि को बाहर निकलकर पृथ्वी पर विचरण कर संसार का उच्छेद करने ब्राह्मणों का वध करते हैं। समुद्र में रहने के कारण तुम उन दैत्यों का वध नहीं कर सकते इसलिये सबसे पहिले समुद्र शोषण का उपाय करना चाहिये। समुद्र को पी जाने में महामुनि अगस्त्य के सिवा और कोई सामर्थ्यवान नहीं है और समुद्र का शोषण किये बिना उन दैत्यों का पराभव नहीं हो सकता अत: तुम लोग किसी प्रकार महामुनि अगस्त्य को प्रसन्न कर इसके लिये उन्हे तैयार करो।

भगवान विष्णु की बात मानकर देवता लोग ब्रह्मा की आज्ञा से अगस्त्य मुनि के आश्रम में आये। मित्र वरूण पुत्र महामना मुनि अगस्त्य अपने आश्रम में तपस्वियों से घिरे बैठे है। देवता उनके पास जाकर उनके अलौकिक कर्मों का बखान कर बोले। राजा नहुष को उसके ऐश्वर्य से गिराने में आप ही सामर्थ्यवान थे। पर्वत राज विन्ध्याचल की अभिमान गर्व को आप ही ने चूर किया था। हे भगवन इस समय हम भयभीत होकर आपकी शरण में आये है। आप सबकी इच्छायें पूर्ण करने में समर्थ है अत: हमारी रक्षा करे। इतने में ही युधिष्ठिर ने बीच ही में लोमश ऋषि से पूछ लिया महामुनि अगस्त्य ने विन्ध्याचल का गर्व किस प्रकार चूर किया था और क्यों ?

लोमश ऋषि बोले युधिष्ठिर सूर्य उदय और अस्त होने में पर्वत राज सुवर्ण गिरि की परिक्रमा करते हैं। यह देखकर विन्ध्याचल ने सूर्य से कहा हे आदित्य जिस प्रकार तुम सुमेरू के पास जाकर नित्यप्रति उसकी परिक्रमा करते हो वैसे ही मेरी भी किया करो। तब भगवान भास्कर बोले मैं स्वेच्छा से सुमेरू गिरि की परिक्रमा नहीं करता बल्कि जिन्होने इस सृष्टि का निर्माण किया है उन्होने ही मेरे लिये यह मार्ग निर्दिष्ट किया हुआ है। सूर्य के इस उत्तर को सुनकर विन्ध्याचल गिरि क्रोध में भर गया और सूर्य व चन्द्र का मार्ग अवरोध करने के विचार से अकस्मात बढने लगा जिससे सृष्टि में अन्धकार फैलने लगा तब सभी देवता मिलकर विन्ध्यागिरि के पास आये और उसे बढने से रोकने का उपाय करने लगे किन्तु विन्ध्यागिरि ने देवताओं की एक नहीं सुनी। तब सभी देवता ऋषि मुनि तपोमूर्ति महात्मा, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, अद्भुत पराक्रमी मुनि अगस्त्य के पास आये और अपने आने का प्रयोजन सादर निवेदन किया और बोले मुनिवर आपका शिष्य विन्ध्यागिरि क्रोध के वशीभूत हो सूर्य और चन्द्रमा के परिक्रमा मार्ग तथा नक्षत्रों की गति में अवरोध हो रहा है। आपके सिवा इस कृत्य से उसे रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। अत: आप उसे रोकने की कृपा करें।

देवताओं की विनती सुनकर अगस्त्य मुनि अपनी पत्नी सहित विन्ध्यागिरि के पास आये और बोले पर्वत प्रवर मैं किसी कार्यवश दक्षिण दिशा की ओर जा रहा हूं। तब विन्ध्यागिरि ने अपने गुरु को लेटकर साष्टांग प्रणाम किया और मुनि को जाने का मार्ग दिया। विन्ध्यागिरि लेट जाने से ऊंचाई से कम हो गया और चारों ओर फैल गया। मुनि ने कहा जब तक मैं लौटकर वहां से वापिस नहीं आऊं तब तक तुम ऐसे ही रहना। अपने शिष्य विन्ध्याचल से यह कहकर अगस्त्य मुनि दक्षिण दिशा में चले गये और आज तक वहां से नहीं लौटे। अपने गुरु के आदेशानुसार विन्ध्यागिरि का ऊपर उठना रूका हुआ है और साष्टांग मुद्रा से लेटा हुआ है। युधिष्ठिर तुम्हारे पूछने पर मैंने विन्ध्यागिरि का गर्व हरण करने का वृतान्त सुनाया।

देवताओं की प्रार्थना पर अगस्त्य मुनि तप सिद्ध ऋषियों और देवताओं को साथ ले समुद्र तट पर पहुंचे और समस्त देवताओं के हित के लिये अंजलि भर भर समुद्र का पान कर उसका शोषण कर लिया। जब समुद्र जल में खाली हो गया तब उसमें छिपे हुये कालकेय प्रत्यक्ष रूप में दिखने लगे। तब देवताओं ने प्रसन्न हो अपने दिव्यास्त्रों से कालकेयों का संहार किया। किसी प्रकार देवताओं के संहार से बचे हुये कालकेय पृथ्वी फोडकर पाताल में घुस गये। इस प्रकार दानवों का नाश कर देवताओं ने महामुनि अगस्त्य की वन्दना की और बोले अब आपने जो सागर का जल पान कर समुद्र को रिक्त कर दिया है उस जल को आपके उदर से निकालकर फिर से समुद्र को भर दीजिये। तब मुनि अगस्त्य बोले नहीं देवताओं वह जल तो मेरे उदर में पच गया। अब समुद्र को भरने का और कोई उपाय सोचो। फिर देवता लोग मुनि अगस्त्य की बात सुनकर उन्हे प्रणाम कर वहां से चले गये और ब्रह्माजी के पास आये और उन्हे समुद्र को फिर से भरने के लिये प्रार्थना की। ब्रह्मा बोले सुनो देवगण तुम लोग अपने-अपने स्थान पर लौट जाओ। बहुत समय बाद राजा सगर के वंश में राजा भगीरथ होंगे वे अपने पूर्वजों और पितरों के उद्धार के लिये गंगा का अवतरण इस पृथ्वी पर होने का उद्योग करेंगे तब उससे यह खाली समुद्र जल से परिपूर्ण हो जायेगा। ब्रह्मा की बात सुनकर देवता अपने-अपने स्थान पर लौट गये और समय की प्रतीक्षा करने लगे। तब युधिष्ठिर ने लोमश ऋषि से पूछा ऋषिवर भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये क्या प्रयत्न किया ? ये समुद्र कैसे भरा ? और गंगावतरण इस धरती पर किस प्रकार हुआ ? ये सब प्रसंग मुझे विस्तार पूर्वक बताये।

१९) सगर पुत्रों का उद्धार और गंगावतरण की कथा

लोमश ऋषि बोले युधिष्ठिर इच्छवाकु वंश में बाहुक के पुत्र सगर नाम के राजा हुये थे। यह गर (अर्थात विषसहित) जन्मे थे इसलिये इनका नाम सगर हुआ। सगर बडे ही रूपवान, बलवान प्रतापी राजा हुये थे उनके दो रानियां थी उन्हे लेकर विहार के लिये वे कैलास पर्वत पर गये। कुछ काल तपस्या के पश्चात उन्हे भगवान पिनाक पाणि के दर्शन हुये। भगवान चन्द्रमौलि की कृपा से उन्हे एक रानी से एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम असमंजस था और दूसरी रानी से साठ हजार पुत्र हुये वो अत्यन्त

गर्वीले और शूरवीर थे। ये बडी घोर प्रकृति के क्रूर कर्म करनेवाले थे तथा आकाश में उडकर चलते थे। संख्या में बहुत होने के कारण वे देवताओं सहित सम्पूर्ण लोकों का तिरस्कार किया करते थे।

एक बार राजा सगर ने अश्वमेघ यज्ञ करने के विचार से अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा ली। उस यज्ञ में यज्ञ अश्व छोडा गया और वह घोडा पृथ्वीपर विचरने लगा। घूमता घूमता वह घोडा जलहीन समुद्र के पास पहुंचा। वहां इन्द्र ने अपने पद लोलुप के भय से उसे चुरा लिया और वह घोडा वहां से अदृश्य हो गया। जब वह घोडा कहीं नहीं मिला और वापिस नहीं आया तो राजा सगर ने उसे ढूंढने के लिये अपने साठ हजार पुत्रों को भेजा। वे सब जगह ढूंढ कर आये, समुद्र, द्वीप, पर्वत, वन, नदी, नद कन्दराये सभी छान डाली परन्तु घोडा कहीं नहीं मिला और न ही उसको चुरानेवाला मिला। बिना यज्ञ पशु के सगर पुत्रों का वापिस लौटना मुश्किल था। इसलिये सगर पुत्र पूरी पृथ्वी को खोदकर घोडे की खोज करने लगे। खोजते खोजते सगर पुत्रों ने एक जगह पूर्व दिशा में पृथ्वी का विवर देखा जहां धरती फटी हुई थी। तब वे कुदाल और अन्य हथियारों से उस विवर को खोदने लगे। उन्होने उस छिद्र को ईशान कोण में उसे पाताल तक खोद डाला। वहां उन्होने अपने घोडे को देखा तथा उसके पास ही अतुलित तेजो राशि महात्मा कपिल तपस्या से संलग्न दिखाई पडे। घोडे को देखकर सगर पुत्र हर्ष में रोमाचिन्त हो गये परन्तु काल अधीन हो कपिल मुनि को ही घोडे को चुरानेवाला चोर समझकर वे क्रोध से भर गये और उनका तिरस्कार कर घोडे को लेने के लिये आगे बढे। अपशब्द सुनने से महामुनि कपिल को भी क्रोध आ गया उन्होने अपनी भृकुटि और दृष्टि से तेज चढाकर सगर पुत्रों पर छोड दिया और उन मन्द बुद्धि साठ हजार सगर पुत्रों को भस्म कर दिया। उन्हे भस्मी भूत हुये देखकर नारद मुनि राजा सगर के पास आये और आकर उन्हें पूरा वृत्तान्त सुनाया। तब राजा सगर ने अपने पौत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान को बुलाया और उदास मन से बोले मेरे अतुलित तेजस्वी साठ हजार पुत्र महामुनि कपिल के तेज के कारण नष्ट हो गये हैं। पूर्वकाल में मैंने तुम्हारे पिता असमंजस का त्याग कर दिया था। वह गांव के बालकों के रोने चिल्लाने पर भी उनका गला पकड नदी में फेंक देता था। इससे सब नगर और ग्रामवासी भय से और शोक से व्याकुल रहने लगे और एक दिन वो मेरे पास आये और बोले महाराज आपका यह पुत्र असमंजस बडा ही अनर्थकारी और भय उपस्थित करनेवाला है इससे हमारी रक्षा करें। यह हमारे निरपराध बालकों को पानी में फेंक देता है। तब मन्त्रियों की सलाह से मैंने मेरे पुत्र असमंजस को देश निकाला दे दिया। तुम्हारे पिता को मैंने अपने पास से निकाल दिया और मेरे साठ हजार पुत्र तुम्हारे चाचा सबके सब भस्म हो गये हैं तथा यज्ञ का घोडा भी नहीं मिला है, इसलिये मेरे मन में बडा खेद हो रहा है। अब तुम किसी प्रकार घोडा ढूंढकर लाओ जिससे मैं यज्ञ पूरा कर सकूं।

राजा सगर की बात सुनकर पौत्र अंशुमान को बडा दु:ख हुआ और वे उसी स्थान पर आये जहां पृथ्वी खोदी हुई थी और कपिल मुनि थे। उन्होने वहाँ कपिल मुनि और घोडे को देखा। अंशुमन ने तेजोनिधि परमर्षि कपिल को दर्शन कर प्रणाम किया और अपने आने का प्रयोजन निवेदन किया। अंशुमान की बात सुनकर कपिल बहुत प्रसन्न हुये और बोले वत्स यह तुम्हारा घोडा है तुम चाहो तो इसे ले जा सकते हो। अंशुमान ने कहा मुनिवर मेरे पूर्वज काका इनको पवित्र करो उनपर कृपा दृष्टि करो जो यहां भस्म होकर पडे हैं। तब कपिल मुनि बोले हे निष्पाप तुम्हारा कल्याण हो। तुम में क्षमा, दया, धर्म और सत्य प्रतिष्ठित है। तुमने पुत्र होकर अपने पिता का जीवन सफल किया है। तुम्हारे प्रभाव से ये सगर पुत्र स्वर्ग प्राप्त करेंगे। तुम्हारा पौत्र भगीरथ इन सगर पुत्रों का उद्धार करेगा। महादेव शंकर को प्रसन्नकर ब्रह्मलोक से गंगा को लाओ। अपना यह यज्ञीय अश्व तुम प्रसन्नता से ले जाओ और अपना यज्ञ पूरा करो।

कपिल मुनि के इस प्रकार कहने पर अंशुमान घोडा लेकर राजा सगर की यज्ञशाला में पहुंचा और सगर बडा प्रसन्न हुआ तथा अपना अधूरा यज्ञ पूरा कर लिया। इसके पश्चात बहुत दिनों तक राजा सगर अपनी प्रजा का सुखपूर्वक पालन करते रहे। अन्त में अपने पौत्र अंशुमान पर राज्य का भार छोडकर स्वर्ग सिधार गये। महात्मा अंशुमान ने भी अपने पितामह के समान ही भूमंडल

का पालन किया। उनके दिलीप नाम का एक धर्मात्मा पुत्र हुआ, उसे राज्य सौंपकर अंशुमान भी परलोकवासी हुये। दिलीप अपने पूर्वजों के उद्धार का उपाय सोचने लगे और गंगा को धरा पर लाने के लिये उद्योग करने लगे। परन्तु प्रयत्न करने पर भी वे सफल नहीं हो सके। दिलीप के परम ऐश्वर्यशाली और धर्म परायण भगीरथ नाम का पुत्र हुआ। उसे राज्य पर अभिषिक्त कर दिलीप वन में चले गये और वहां काल वश तपस्या के प्रभाव से स्वर्गवासी हो गये।

राजा भगीरथ महान धनुर्धर, चक्रवर्ती और महारथी थे। उनके दर्शन मात्रा से सब लोकों के मन और नयन शीतल हो जाते थे। जब भगीरथ को मालूम हुआ कि कपिल के कोप भाजन हो उनके पितृगण भस्म हो गये हैं और उन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति नहीं हुई है तो वे बडे दु:खी हुये और अपना राज्य अपने मन्त्रियों को सौंपकर तपस्या करने हिमालय पर चले गये। वहां उन्होने कन्दमूल का जल का आहार कर एक हजार वर्षों तक घोर तपस्या की। एक हजार दिव्य वर्ष बीत जाने पर महानदी गंगा ने मूर्तिमान होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया तब राजा भगीरथ ने कहा हे वरदायिनी मेरे पितृगण महाराज सगर के साठ हजार पुत्र अश्वमेघ यज्ञ का घोडा ढूंढने निकले थे। उन्हें महामुनि कपिल ने भस्म करके यमलोक भेज दिया है। जब तक आप अपने जल से उन्हे पल्लवित नहीं करेगी तब तक उनको सद्गति प्राप्त नहीं होगी। उनके उद्धार के लिये ही मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं। राजा भगीरथ की बात सुनकर गंगा बोली राजन मैं तुम्हारे कथन अनुसार चलूंगी पर जिस समय मैं आकाश से पृथ्वी पर गिरूंगी उस समय मेरा वेग असह्य होगा। तीनो लोकों में ऐसा कोई नहीं है जो मुझे धारण कर सके। एक देवाधिदेव नीलकंठ भगवान महादेव अवश्य मुझे धारण करने में समर्थ हैं। अत: हे महाबाहो तुम तप करके भगवान शंकर को प्रसन्न करो। जब मैं पृथ्वी पर गिरूं तो वे मुझे अपने शीश पर धारण कर लें। तुम्हारे पूर्वजों का हित करने के लिये अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।

गंगा से सुनकर भगीरथ कैलास पर गये और कुछ समय तक तीव्र तपस्या कर महादेव को प्रसन्न किया तथा अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्ति के उद्देश्य से गंगा को शीश पर धारण करने के लिये वर प्राप्त कर लिया। तब भगवान शंकर भगीरथ से बोले अब तुम पर्वतराज पुत्री गंगा से प्रार्थना करो मैं उसे स्वर्ग से गिरने पर अपने मस्तक पर धारण कर लूंगा। भगीरथ ने गंगा का ध्यान किया। गंगा का स्मरण करते ही पवित्र सलिला गंगा आकाश से गिरने लगी। गंगा को गिरते देखकर देवता, महर्षि, गन्धर्व, नाग और यज्ञ लोग दर्शनों की अभिलाषा से वहां एकत्रित हो गये। गंगा भगवान शिव के मस्तक पर गिरी और भगवान शंकर ने उसे अपनी जटाओं में धारण कर लिया। गंगा भगीरथ से बोली राजन मैं तुम्हारे लिये ही ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर उतरी हूं। अत: बतलाओ मुझे अब किस मार्ग से और कहां जाना है ? तब राजा भगीरथ उसे उस स्थान पर ले गये जहां उनके पूर्वज भस्म हुये पडे थे। उस गंगा के पानी से खाली समुद्र भर गया। राजा भगीरथ ने गंगा को अपनी पुत्री मान लिया। राजा भगीरथ ने गंगा जल से अपने पूर्वजों पितरों को जलांजली दी और अपने पितरों का उद्धार किया। पूर्व दिशा में जहां कपिलमुनि का आश्रम है वहां का सागर और गंगा आपस में मिले है, संगम हुआ है और वह स्थान आज भी **गंगा सागर** नाम से जाना जाता है। इस तरह से गंगा अवतरण का वृतान्त तुम्हें सुनाया युधिष्ठिर।

२०) श्रृंग ऋषि का चरित्र

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय फिर युधिष्ठिर वन में तीर्थयात्रा करते हुये नन्दा और अपरनन्दा नदियों पर गये जो सब प्रकार से पाप और भय को हरनेवाली है। वहां हेमकूट पर्वत पर गये। वहां वेदाध्ययन का शब्द सुनाई पडता है परन्तु स्वाध्याय करनेवाला दिखाई नहीं देता। लोमश ऋषि युधिष्ठिर से बोले कुरुवर यहां नन्दा नदी में स्नान करने से प्राणी तत्काल पापमुक्त हो जाता है। तब युधिष्ठिर ने भाइयों सहित नन्दा नदी में स्नान किया। फिर शीतल जलवाली अत्यन्त रमणीक पवित्र कौशिकी नदी पर गये। इसके तट पर विश्वामित्र मुनि का रमणीक आश्रम है। यहीं महात्मा कश्यप विभांडक मुनि का आश्रम है। इसे पुण्याश्रम भी कहते है। इन्ही विभांडक मुनि के पुत्र श्रृंग ऋषि हुये है जो बडे ही तपस्वी और संयतेन्द्रिय थे। एक बार अनावृष्टि

होने पर उन्होने अपने तप के प्रभाव से वर्षा कर दी थी। वे परम तेजस्वी और समर्थ एक मृगी से उत्पन्न हुये थे।

युधिष्ठिर ने पूछा ऋषिवर मनुष्य का पशुजाति के साथ योनि संसर्ग होना तो शास्त्र और लोकविरुद्ध ही है। ऋषि श्रृंग ने मृगी की योनि से कैसे जन्म लिया ? तथा अनावृष्टि होने पर इन्द्र ने किस भय से वृष्टि की ? लोमश ऋषि बोले युधिष्ठिर ब्रह्मर्षि विभांडक बडे ही परम तेजस्वी थे। उनका वीर्य अमोघ था और तपस्या के प्रभाव से अन्त:करण शुद्ध था। एक बार वे एक सरोवर पर स्नान करने के लिये गये। वहां उर्वशी अप्सरा को देखकर सरोवर के जल में उनका वीर्य स्खलित हो गया। इतने में ही वहां एक प्यासी हरिणी आई और जल के साथ उस वीर्य को पी गई। इससे उस मृगी के गर्भ रह गया। वास्तव में वह मृगी कोई देवकन्या थी। पूर्वकाल में उसे ब्रह्मा का शाप था कि मृगजाति में जन्म लेगी और एक मुनि कुमार को उत्पन्न करेगी तब शाप से मुक्त हो जायेगी। विधि का विधान अटल है। इस प्रकार ऋषि श्रृंग मृगी पुत्र हुये। वे बडे ही तपोनिष्ठ थे और सदा ही वन में रहते थे। उन्होने वन की बाहर की दुनिया देखी ही नहीं थी। उनके सिर पर एक सींग था इसी से वे ऋषि श्रृंग के नाम से जाने जाते थे। उन्होने पिता के सिवा किसी अन्य मनुष्य को भी नहीं देखा था इसलिये उनका मन सर्वदा ब्रह्मचर्य में स्थित था।

अंगदेश के महाराजा लोमपाद महाराज दशरथ के मित्र थे। महाराज लोमपाद ने किसी ब्राह्मण को कुछ देने की प्रतिज्ञा की थी पर पीछे न देकर उसे निराश कर दिया था। इसी कारण अंग देश में वर्षा होनी बन्द हो गई। १२ वर्ष से अंग देश में वर्षा के अभाव से अकाल रहा और प्रजा पीडित हो गयी। राजा लोमपाद ने तपस्वी और मनस्वी ब्राह्मणों से पूछा हे ब्राह्मण देवता मेरे राज्य में वर्षा किस प्रकार हो ? इसका कोई ठीक ठीक उपाय बताओ। सब अपना-अपना उपाय मत प्रकट करने लगे। उनमें से एक वेदपाठी ब्राह्मण बोला राजन। कोई ब्राह्मण आप पर कुपित है जिसका आपको प्रायश्चित करना चाहिये। ऋषि श्रृंग नाम के मुनिकुमार हैं जो वन में रहते हैं जो बडे ही शुद्ध एवं सरल हैं। स्त्री जाति के साथ अभी तक उनका कोई संसर्ग हुआ ही नहीं और उन्हे स्त्री जाति का कोई पता नहीं है। उन्हे आप अपने राज्य में बुला ले। यदि वे यहां आ गये तो तुरन्त उनके प्रभाव से वृष्टि हो जायेगी। यह सुनकर राजा लोमपाद ने ब्राह्मणों के पास जाकर अपने अपराध का प्रायश्चित किया और अपने मंत्रियों को बुलाकर ऋषि श्रृंग को लाने का आदेश दिया उनसे परामर्श करके राज्य की प्रधान प्रधान गणिकाओं को बुलाकर कहा हे सुन्दरियों तुम किसी भी प्रकार से मोहित कर अपने में विश्वास उत्पन्न कर उस मुनिकुमार श्रृंग को मेरे राज्य में लाओ। उसमें से एक वृद्धा अनुभवी वेश्या ने कहा राजन मैं तपोधन ऋषि श्रृंग को लाने का प्रयत्न करूंगी परन्तु मुझे इसके लिये जो जो भोग सामग्री की आवश्यकता है वे सब प्रदान करें।

तब राजा का आदेश पाकर उस वृद्धा ने अपनी बुद्धि अनुसार एक नौका में मुनि आश्रम तैयार करा कर उस में बहुत सी सुखदायक ऐसा बिछौने व अपार फल और वृक्ष, झाडियों और लताओं से तैयार किया। वह नौकाश्रम बडा ही रमणीय और मनको लुभानेवाला था। उस नौका को नदी में विभांडक मुनि के आश्रम से थोडी दूर पर लाकर खडा कर दिया। तथा पता लगा लिया कि विभाडक मुनि कहीं बाहर वन में गये हुये है। उनकी अनुपस्थिति में वह अपनी युवा पुत्री को लेकर समझाकर ऋषि श्रृंग के पास गई। उस वेश्या ने ऋषि कुमार श्रृंग के पास जाकर प्रणाम किया और एक मुनि की भांति ही पूछा कि मुनिवर यहां आपकी तपस्या तो आनन्द से हैं न ? आप सर्व प्रकार कुशल हैं न ? आपका वेदाध्ययन तो अच्छे से हो रहा हैं न ? ऋषिश्रृंग ने उस वेश्या को कोई मुनि ही समझा और बोले आपकी कान्ति के कारण अब तेज पुंज के समान प्रकाशमान हो रहे है तथा मुनि धर्म के अनुसार फल और जल अर्पित किये। तथा मृगचर्म और कुश के आसन पर उसे बिठाया और पूछा कहां से आये है आप मुनि और आपका आश्रम कहां है ? आप किस नाम से प्रसिद्ध है ?

तब वह वेश्या बोली हे कश्यप नन्दन मेरा आश्रम इस पर्वत से थोडी ही दूरी पर है और उस वेश्या ने अपने साथ लाये हुये स्वादिष्ट फल और मिठाई जो बडे ही रसीले, रूचिवर्धक स्वादिष्ट पदार्थ दिये। चमकीले वस्त्र इत्यादि बढिया बढिया रस और पेय

अर्पण किये। उन्हे पाकर ऋषिश्रृंग बडे प्रसन्न हुये और परस्पर हंसी खेल में प्रवृत हो गये। इस प्रकार मुनि के मन में विकार का अंकुर फूटने लगा। वेश्या भी उन्हे तरह-तरह के हावभावों से लुभाने लगी। फिर यज्ञ इत्यादि का बहाना करके वापिस दूसरे दिन फिर से आने के लिये वहां से चली गई। इसी तरह वह वेश्या दिन में कई बार आने लगी। कई बार वह उस मुनि का गाढ आलिंगन करने लगी और नेत्रों से कटाक्ष करती। थोडी देर पश्चात विभांडक मुनि वहां आये उन्होने देखा कि ऋषिश्रृंग अकेले ध्यान लगाये वहां बैठे है। उनके चित्त की स्थिति सर्वथा विपरीत हो गई है। मुनि की दीन दशा देख कर विभांडक ने पूछा पुत्र आज सायंकल के अग्निहोत्र के लिये तुमने समिधायें ठीक नहीं करी ? क्या तुम अग्निहोत्र से निवृत्त हो चुके हो ? आज तुम ओर दिनों की भांति प्रसन्न चित्त भी नहीं लग रहे हो ? कहीं खोये हुये, चिन्ताग्रस्त, अचेत से जान पड रहे हो। बताओ पुत्र ऐसा क्यों? कोई यहां आज आया तो नहीं ?

ऋषिश्रृंग बोले पिताश्री यहा आश्रम में एक जटाधारी ब्रह्मचारी मुनिकुमार आये थे वे सुवर्ण उज्ज्वल थे। नेत्र उनके विशाल कमल समान थे। वे बडे ही रूपवान तेजस्वी गौरवर्ण थे। सिरपर बडी ही लम्बी-लम्बी जटाये थी। आकाश में जैसे बिजली चमकती है वैसे ही उनके गले के आभूषण चमक रहे थे। जिस समय वे चलते थे उनके पैरों से बडी ही अद्भुत झनकार होती थी। हाथों में सोने की लडिया बन्धी हुई थी। उनका मुख भी बडा ही विचित्र और दर्शनीय था। उनसे बातचीत कर मेरे हृदय में आनन्द की लहर दौड गई। उनकी वाणी कोमल की सी सुरीली थी। उसके सुनने से मेरे हृदय में हूक सी उठने लगी। वह मुनिकुमार कोई देव पुत्र ही लग रहा था। मुनिकुमार को देखकर मेरे मन में उसके प्रति बहुत सी प्रीति और आसक्ति हो गई। उसने मुझे नये-नये तरह के फल दिये। मैंने अब तक जिस प्रकार के फल खाये है उनमें से किसी में भी ऐसा रस नहीं था। उसमें न तो वैसे छिलके ही है और न उसके समान गुदा। उस रूपवान मुनि ने मुझे बडा ही स्वादिष्ट जल पीने को दिया। उसे पीते ही मुझे अत्यधिक आनन्द का अनुभव हुआ और पृथ्वी घूमती हुई सी दिखने लगी। वह देदीप्यमान मुनि अब अपने आश्रम की ओर चला गया। उसके चले जाने से मैं अचेत सा हो रहा हूं। मैं चाहता हूं वो जल्दी आ जाये और सदा मेरे साथ रहे। उसके बिना मैं व्याकुल हुआ जा रहा हूं।

विभांडक मुनि बोले पुत्र ऐसे लोग तो राक्षस हैं। वे ऐसे ही विचित्र और मनोहर दर्शनीय रूप में वन में विचरते हैं। वे बडे ही पराक्रमी होते है और ऐसे ऐसे सुन्दर सुन्दर रूप धारण कर सदा तपस्या में विघ्न डालते रहते है। जिस जितेन्द्रिय मुनि को उत्तम लोकों में जाने की इच्छा हो उन्हे उनका साथ नहीं करना चाहिये। वे बडे पापी होते है और तपस्वियों को कष्ट पहुंचाकर प्रसन्न होते है। तपस्वी व मुनियों को तो उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखना चाहिये। ये राक्षस है ऐसा कहकर विभांडक मुनि ने अपने पुत्र को उस वेश्या को ढूंढने से रोक कर स्वयं उसे राक्षस समझ ढूंढने आश्रम से निकले। तब विभांडक मुनि की अनुपस्थिति में वेश्या फिर आ गई। उसे देखते ही ऋषिश्रृंग बडे प्रसन्न हुये और हर्षित होकर हडबडा कर उससे लिपट गये और बोले देखो मेरे पिता के आने के पहिले ही हम यहां से तुम्हारे आश्रम में चले। वेश्या तो यह चाहती ही थी। हे राजन इस युक्ति से विभांडक मुनि के एकमात्र पुत्र ऋषिश्रृंग को उन मां बेटी ने नाव पर चढा लिया और तरह-तरह के उपायों से उसे आनन्दित करने लगी और इस तरह उसे लुभा कर अंगराज लोमपाद के पास ले आयी। अंगदेश में श्रृंग ऋषि के आते ही वृष्टि होने लगी। और सब जगह जल ही जल हो गया। अंगदेश का अकाल मिट गया। इस प्रकार अपनी मनोकामना पूर्ण होनेपर राजा लोमपाद ने अपनी दत्तक पुत्री शान्ता का विवाह ऋषिश्रृंग से कर दिया।

इधर जब विभांडक मुनि अपने आश्रम में लौटे तो बहुत ढूंढने पर भी उन्हे अपना पुत्र नहीं मिला इससे उन्हे बडा क्षोभ हुआ और क्रोध आया। उन्हे ऐसी आशंका हुई कि यह सारा षडयन्त्र अंगराज लोमपाद का ही रचा हुआ है। अत: वे क्रोधित हो उनके राज्य को भस्म कर नष्ट करने के विचार से चम्पापुरी की ओर चले। उन्होने रास्ते भर अपने पुत्र की पवित्र कीर्ति वहां के

नगरवासियों और ग्रामवासियों से सुनी तब उनका उग्र कोप शान्त हो गया और प्रसन्न चित्त से राजा लोमपाद के पास पहुंचे। विभांडक मुनि ने देखा जैसे देवलोक में देवराज इन्द्र रहते है वैसे ही उनका पुत्र श्रृंग रह रहा है और विद्युत समान चमकने वाली अपनी पुत्रवधू शान्ता को देखा। यह सब देखकर विभांडक मुनि का सारा क्रोध जाता रहा फिर तो जिसमें राजा लोमपाद की प्रसन्नता और इच्छा थी वही काम उन्होने किया। और अपने पुत्र श्रृंग को वही राजा लोमपाद के पास छोडकर अपने पुत्र से बोले जब तुम्हे पुत्र उत्पन्न हो जाये तो राजा को सब प्रकार से समझाकर उनका मन रखकर फिर से तपस्या के लिये वन में चले आना। ऋषिश्रृंग ने पिता की आज्ञा का पालन किया। शान्ता भी पति के अनुकूल आचरण करनेवाली थी। दोनों पति-पत्नी वन में रहकर वह श्रृंग मुनि की सेवा करने लगी। जिस प्रकार अरून्धती वशिष्ठ मुनि की, सौभाग्यवती लोपामुद्रा अगस्त्य की और दमयन्ती राजा नल की सेवा करती थी। यह पवित्र कीर्तिशाली आश्रम ऋषि श्रृंग का है। इसमें इस समीपवर्ती विशाल सरोवर में स्नान कर कृतकृत्य और शुद्ध हो जाओ फिर आगे दूसरे तीर्थों की यात्रा करो। उस सरोवर में स्नान करके युधिष्ठिर ने कौशिकी नदी के किनारे होते हुये सभी तीर्थ स्थान किये। फिर वहां से वे समुद्र तट पर पहुंचकर गंगा के संगम स्थान पर गंगा सागर में पांच सौ नदियों की सम्मलित धारा में स्नान किया। इसके पश्चात वे समुद्र किनारे किनारे अपने भाइयों सहित कलिंग देश आये। लोमश ऋषि बोले कुन्तीनन्दन यह कलिंग देश है। यहाँ वैतरणी नदी बहती है। उस स्थान पर देवताओं का आश्रय लेकर स्वयं यमराज ने यज्ञ किया था। तद्नन्तर द्रौपदी सहित सभी पांडवों ने वैतरणी नदी में स्नान कर पितृ तर्पण किया।

२१) परशुराम चरित्र

युधिष्ठिर लोमश ऋषि से बोले ऋषिवर इस नदी में आचमन कर अपने तप के प्रभाव से मैं मानवी विषयों से मुक्त हो गया हूं। आपकी कृपा से मुझे सारे लोक दिखाई दे रहे है देखो मुझे वेद पाठन करते हुये वानप्रस्थी महात्माओं के शब्द सुनाई दे रहे हैं तब लोमश ऋषि बोले नहीं राजन ये ध्वनि तो तुम्हें तीस हजार योजन दूर से सुनायी दे रही है। इसके पश्चात युधिष्ठिर महेन्द्र पर्वत पर गये और वहां एक रात्रि निवास किया। वैशम्पायन बोले जनमेजय वहां के रहनेवाले तपस्वियों ने उनका बडा ही स्वागत सत्कार किया। लोमश मुनि ने भृगु, अंगिरा, वशिष्ठ और कश्यप वंशीय ऋषियों का परिचय दिया। फिर राजर्षि युधिष्ठिर ने उन्हे प्रणाम किया। परशुरामजी के सेवक अकृतवर्ण से पूछा भगवान परशुराम इन तपस्वियों को कब दर्शन देंगे ? इनके साथ ही मैं भी उनके दर्शन करना चाहता हूं। अकृतव्रण ने कहा भगवान परशुराम तो सबके हृदय की बात जाननेवाले अन्तर्यामी है। आपके आने का तो उन्हे पता चल ही गया होगा। आपके प्रति उनका प्रेम भी है इसलिये वे शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे। तपस्वियों को उनका दर्शन चतुर्दशी और अष्टमी को होता है। आज त्रयोदशी है। आज की रात बीतने पर कल चतुर्दशी होगी तब आप भी उनका दर्शन करें। युधिष्ठिर अकृतव्रण से बोले आप जमदाग्निनन्दन परशुरामजी के सेवक हैं। उन्होने अपने जीवन काल में जो जो महान कृत्य किये है वे सब आपके प्रत्यक्ष रूप में देखे हुये हैं। अत: जिस प्रकार और जिस निमित्त उन्होने क्षत्रियों को परास्त कर उनका संहार किया वह कृपा करके मुझे बतायें।

तब अकृतव्रण बोले राजन मैं आपको भृगुवंशी जमदाग्नि पुत्र रेणुकानन्दन देवतुल्य भगवान परशुरामजी का चरित्र सुनाता हूं। यह महा क्रोधी ऋषि हैं। उन्होने हैहर्य वंश में उत्पन्न हुये कार्तवीर्य अर्जुन का वध किया था जिसके एक सहस्त्र भुजायें थी उसका नाम सहस्त्र बाहु भी था। दत्तात्रेय की कृपासे उसे एक सोने का विमान भी मिला हुआ था तथा पृथ्वी के सभी प्राणियों पर उसका प्रभुत्व था। उसकी रथ की गति को कोई रोकने में समर्थ नहीं था। वह वरदान के प्रभाव में देवता, यक्ष, और ऋषियों का तिरस्कार कर कुचल देता था। इस प्रकार उससें सब जगह सभी प्राणी पीडित थे।

कान्यकुब्ज (कन्नौज) नामक नगर में गाधि नाम के एक क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उनके एक कन्या उत्पन्न हुई जो अप्सरा के समान सुन्दर थी उसका नाम सत्यवती था। उसके लिये भृगुनुन्दन ऋषि ऋचीक ने राजा गाधि के पास जाकर

याचना की। राजा गाधि ने अपनी पुत्री सत्यवती ऋचीक मुनि के साथ ब्याह दी। विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने पर महर्षि भृगु आये और अपने पुत्र को सपत्नीक देखकर बडे प्रसन्न हुये। सत्यवती ने अपने श्वसुर को प्रसन्न जानकर याचना करी कि मेरे कोई भाई नहीं है। मेरी माता को एक पुत्र हो जाये तब भृगु मुनि ने कहा तुम और तुम्हारी माता ऋतुस्नान के पश्चात पुत्रोत्पत्ति की कामना से मेरे द्वारा तैयार किये गये ये दो चरू अलग-अलग खा लेना। मुनि ने कहा यह तुम्हारे लिये है और दूसरा चरू तुम्हारी माता के लिये है और चरू देकर यह कहकर भृगु मुनि तो वहां से अन्तर्धान हो गये। मां पुत्री ने वे चरू आपस में बदलकर खा लिये। जो चरू मां के लिये था वो पुत्री ने खा लिया और जो चरू पुत्री के लिये था वो मां ने खा लिया। इससे उलटफेर से दोनों को ही विपरित फल मिला।

महर्षि भृगु ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह बात जान ली। भृगु ऋषि सत्यवती से बोले तेरे साथ धोखा हो गया है। तेरी माता ने तेरा चरु बदलकर स्वयं खा लिया है और अपना चरू तुझे खिला दिया है। अब तूने जो चरू खाया है उसके प्रभाव से तेरा पुत्र ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रियों के से आचरण वाला होगा तथा तेरी माता का पुत्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणों के से आचरणवाला होगा। तब सत्यवती ने भृगु ऋषि से बहुत अनुनय विनंती कि मेरा पुत्र ऐसा न हो। भृगु बोले तेरा पुत्र नहीं पर तेरा पौत्र ऐसे स्वभाववाला होगा और अपनी पुत्रवधू का अभिनन्दन कर चले गये। यथा समय सत्यवती के गर्भ से जमदाग्नि ऋषि का जन्म हुआ। वे बडे ही तेजस्वी और तपस्वी थे। महातपस्वी जमदाग्नि ने वेदाभ्यास किया और नियमानुसार स्वाध्याय करते थे। उन्होने राजा प्रसेनजित की कन्या रेणुका के साथ विवाह किया। वे रेणुका के साथ रहकर अपने ही आश्रम में तपस्या करने लगे। उनके चार पुत्र हुये। इसके पश्चात परशुरामजी की उत्पत्ति हुई। ये पांचवे पुत्र थे। भाइयों में सबसे छोटे होने पर भी ये गुणों में सबसे बढे चढे थे। एक दिन रेणुका जल लेने स्नान करने वन में आश्रम से एक सरोवर पर गई। जिस समय वह स्नान कर आश्रम में लौट रही थी उसने राजा चित्ररथ को जल में रतिक्रीडा करते देखा। उस सम्पत्ति शाली राजा को जलविहार करते देखकर रेणुका का चित्त भी चलायमान हो गया और चित्त में विकार आ गया। वह इस मानसिक विकार से अचेत, दीन हीन अवस्था में त्रस्त होकर अपने आश्रम में आयी। महातेजस्वी जमदाग्नि ने अपने तपोबल से सब बातें जान ली और उसे अधीर हुई एवं ब्रह्मतेज से च्युत हुई देखकर बहुत धिक्कारा। इतने में ही जमदाग्नि के पुत्र रूकम्वान, भुषेण, वसु और विश्वासु भी आ गये। मुनि ने क्रमश: उन सभी से कहा कि अपनी मां का तुरन्त वध कर डालो किन्तु वे मोहवश अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं कर सके। तब मुनि ने क्रोधित हो उन्हे शाप दिया जिससे उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गई और वे सब मृग एवं पक्षियों की भांति जड बुद्धि हो गये। उसके पश्चात शत्रुओं का दमन करनेवाले परशुराम हाथ में फरसा उठाये वहां आये। उनसे भी जमदाग्नि ऋषि ने वही बात कही पुत्र अपनी इस पापिन माता को मार डालो इसने मानसिक व्यभिचार किया है। इसके लिये मन में किसी प्रकार का भी खेद मत करना। यह सुनकर परशुरामजी ने अपनी पिता की आज्ञा का पालन कर उसी क्षण फरसे से अपनी माता का सिर काट लिया और उसका वध कर दिया।

इससे जमदाग्नि का क्रोध सर्वथा शान्त हो गया और वे प्रसन्न हो अपने पुत्र से बोले पुत्र तुमने मेरे कहने से वह काम कर दिया जिसे करना बडा ही कठिन है इसलिये तुम्हारी जो जो कामनाये हैं वह मुझसे वर स्वरूप मांग लो। तब परशुराम बोले पिताश्री मेरी माता जीवित हो जाये, उन्हे मेरे द्वारा उनका वध किया जाना स्मरण न रहे, उनके मानस पाप का नाश हो, मेरे चारों भाई स्वस्थ हो जाये। युद्ध में मेरा सामना करनेवाला कोई न हो। मैं लम्बी आयु प्राप्त कर लूं। परम तेजस्वी जगदाग्नि ने वरदान देकर सभी कामनाओं को पूर्ण कर दिया।

एक बार इसी तरह जमदाग्नि के सभी पुत्र बाहर गये हुये थे उसी समय अनूप देश का राजा कार्तवीर्य अर्जुन उधर आ निकला। जिस समय वह आश्रम में पहुंचा मुनि पत्नी रेणुका ने उसका आतिथ्य सत्कार कर दिया। कार्तवीर्य अर्जुन युद्ध के मद

उन्मत्त था। उसने सत्कार की कुछ भी परवाह न करते हुये आश्रम की होम धेनु गाय के डकराते रहने पर भी उसके बछडे को हर लिया और आश्रम के वृक्ष तहस नहस कर दिये। जब परशुराम आश्रम में आये तो स्वयं जमदाग्नि ने सब बातें परशुराम को बतायी। परशुरामजी ने होम धेनु गाय को रोते देखा इससे वे बडे ही कुपित हुये और काल के वशीभूत हो सहस्त्रार्जुन के पास आये और परशुरामजी ने अपना धनुष बाण ले उसके साथ बडी वीरता से युद्ध किया और बाणों से उसकी हजारों भुजाओं को काट दिया और परास्त कर काल के गाल पहुंचा दिया। इससे सहस्त्रार्जुन के पुत्रों को बडा क्रोध आया और उन्होने एक दिन परशुरामजी की अनुपस्थिति में आश्रम में बैठे जमदाग्नि ऋषिपर आक्रमण कर दिया। परम तेजस्वी जमदाग्नि तो तपस्वी ब्राह्मण थे उन्होने प्रतिकार में कोई युद्ध नहीं किया तो भी उन्हे मार डाला। वे अनाथ की भांति हे राम, हे राम चिल्लाते रहे। सहस्त्रबाहु के पुत्र जमदाग्नि की हत्या कर आश्रम से चले गये तो परशुरामजी उस समय समाधि लेकर आश्रम में आये वहाँ अपने पिता को इस प्रकार दुर्दशापूर्वक भरे देखकर उन्हे बडा दु:ख हुआ और वे फूट फूट कर रोने लगे। कुछ समय तक परशुरामजी विलाप करते रहे फिर उन्होने अपने पिता के सब प्रेत कर्म किये और अग्नि संस्कार कर सम्पूर्ण क्षत्रियों का संहार करने की प्रतिज्ञा की।

महाबली भृगुनन्दन क्रोध के आवेश में साक्षात काल के समान हो गये और उन्होने अकेले ही कार्तवीर्य के सब पुत्रों को मार डाला। उस समय जिन जिन क्षत्रियों ने उनका पक्ष लिया उन सबका भी उन्होने सफाया कर दिया। इस प्रकार २१ बार भगवान परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया और उनके रक्त से समान्तपंचक क्षेत्र में पांच सरोवर भर दिये। इसी समय महर्षि ऋच्चीक ने साक्षात प्रकट होकर उन्हे उस घोर कर्म करने से रोका। तब परशुरामजी ने क्षत्रियों का संहार करना बन्द किया और सारी पृथ्वी अपने गुरु ब्राह्मण कश्यप को दान कर दी और वे महेन्द्र पर्वत पर निवास करने लगे।

२२) अन्य तीर्थों का वर्णन और राजा शिबि की कथा

चतुर्दशी के दिन अपने नियमानुसार महामना परशुरामजी ने समस्त ब्राह्मणों और पांडवों को दर्शन दिये। फिर पांडव परशुरामजी की आज्ञा से उस रात महेन्द्रपर्वत पर ही निवास कर दूसरे दिन दक्षिण की ओर चले। युधिष्ठिर समुद्र तट के सब तीर्थों के दर्शन करते हुये आगे बढे। सभी तीर्थों में स्नान, आचमन करते हुये वे प्रशस्ता नदी पर पहुंचे वहां तर्पण कर ब्राह्मणों को दान धन दिया। तत्पश्चात वे गोदावरी नदी पर आये। उसमें स्नान आदि कर निष्पाप हो द्रविड देश में समुद्र तट पर अगस्त्य तीर्थ और नारी तीर्थ के दर्शन किये। फिर वे वहां से शूपरिक क्षेत्र में पहुंचे। वहां से वे एक वन में आये वहां उन्होने परशुराम जी की वेदी देखी। तत्पश्चात उन्होने वसु, मरुदगण, अश्विनी कुमार, आदित्य कुबेर, इन्द्र, विष्णु, सविता, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, वरूण, साध्यगण, ब्रह्मा, पितृगण, गणों सहित रुद्र, सरस्वती, सिद्ध और अन्यान्य देवताओं के परम पवित्र और मनोहर मन्दिरों के दर्शन किये। उन तीर्थों में उन्होने स्नान व उपवास आदि किये तथा विद्वान ब्राह्मणों को बहुमूल्य रत्नादि दान दिये। इस तरह समुद्र तीर वर्ती क्षेत्रों में भ्रमण करते हुये वे प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। वहां उन्होने स्नान और तर्पण आदि कर देवताओं और पितरों को तृप्त किया।

जब कृष्ण और बलराम को मालूम पडा युधिष्ठिर प्रभास क्षेत्र में तपस्या कर रहे हैं तो वे अपने परिवार सहित पांडवों से मिलने आये। युधिष्ठिर ने बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, सांब, सात्यकि, अनिरुद्ध तथा और भी सभी वृष्णिवंशियों का आदर सत्कार किया। फिर सभी युधिष्ठिर के चारों ओर बैठ गये। तब बलराम बोले देखो कृष्ण धर्मराज तपस्वी वेद में दर दर भटक कर तरह तरह के कष्ट भोग रहे हैं और पापात्मा दुर्योधन पृथ्वी का शासन कर रहा है। इससे तो अल्पबुद्धि वाले लोग तो यही समझेंगे कि धर्माचरण करने की अपेक्षा पाप करना ही अच्छा है। युधिष्ठिर साक्षात धर्म के पुत्र है। धर्म ही इनका आधार है और वे धर्म से कभी डिगते नहीं। इनका राज्य और सुख भले ही नष्ट हो जाये पर वे धर्म को कभी नहीं छोडेंगे। पापी धृतराष्ट्र ने अपने निर्दोष भातृ पुत्रों को राज्य से निकाल दिया बडा अनर्थ किया है। अब वे परलोक में अपने पितृगणों से कैसे कहेंगे कि मैंने उनके साथ उचित व्यवहार

किया है। वे यह नहीं सोचते कि वे पृथ्वी पर किस प्रकार नेत्र हीन आंखों से लाचार होकर क्यो उत्पन्न हुये है? और अब पांडवों को राज्याच्युत कर देने पर क्या गति होगी ? वे पांडवों का सामना नहीं कर पायेंगे। महाबाहु भीम को शत्रु सेना को पराजित करने के लिये शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है ? इसके तो नाम से ही सैनिक भयभीत हो जाते हैं। पूर्व दिशा में जब भीम दिग्विजय के लिये गया था तो इसने अकेले ही वहां के राजाओं को उनके अनुचरों सहित परास्त किया था। सहदेव भी अत्यन्त पराक्रमी और बलशाली है। यह द्रौपदी तो परम पतिव्रता और सब प्रकार सुख भोगने योग्य है। यह महाराज द्रुपद की अयोनिजा पुत्री है जिसका यज्ञ वेदी से प्रादुर्भाव हुआ है। यह वनवास का दु:ख क्यों सह रही है ? दुर्योधन ने कपट द्यूतक्रीडा में जीतकर धर्मराज युधिष्ठिर को इनके भाई, स्त्री और अनुचरों सहित राज्य से बाहर निकालकर उचित नहीं किया है। यह देखकर भी पर्वत माला मंडिता वसुन्धरा को खेद क्यों नहीं हो रहा ? क्यों नहीं यह धरती फट जाती।

तब बलराम की बातें सुनकर सात्यकि बोले इस समय व्यर्थ पश्चाताप करने से क्या ? महाराज युधिष्ठिर यदि इस समय कुछ नहीं बोल रहे है तो भी अब जो हमारा कर्तव्य हो वह करना चाहिये। हम सब आप कृष्ण, प्रद्युम्न और साम्व चुप चाप कैसे बैठे हुये है ? हम तीनों लोकों की रक्षा करनेवाले फिर हमारे ये पांडव लोग वन में रहे। क्यों नहीं आज ही अस्त्र-शस्त्र से सज्जित हो यादव सेना हस्तिनापुर के लिये कूच करे और दुर्योधन को पराजित कर उसके भाइयों सहित यमपुरी भेज दिया जाय ? बलराम भैया आप तो अकेले ही आपके कोप मात्र से इस पृथ्वी का नाश करने में समर्थ है। मैं अपने बाणों से उसके सिर को छिन्न-भिन्न कर दूंगा। सब कौरवों सहित उसका नाश कर दूंगा। जिस समय वीर प्रद्युम्न प्रधान प्रधान कौरवों का संहार करेंगे वे ऐसे मरेंगे जैसे तिनके के ढेर आग में भस्म हो जाते है। कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, कर्ण और विकर्ण भी प्रद्युम्न के बाणों को नहीं झेल पायेंगे। अभिमन्यु भी बडे ही पराक्रमी है और रणभूमि में प्रद्युम्न के ही समान है। साम्व अपने बाहुबल से रथसहित दुशासन को कुचल डालने में समर्थ है। साम्व बडा ही रणवीर है। कृष्ण के विषय में तो कुछ ही नहीं कह सकते वे जब अपना चक्र धारण करते है उस समय तो पृथ्वी का कोई भी वीर उनके सामने नहीं टिक सकता। इन सम्पूर्ण लोकों में इनके लिये कौनसा काम कठिन है ? इस समय अनिरुद्ध, गद, उल्मुक, बाहुक, भानु, नील, और कुमार निशर तथा सारण और चारुदेष्ण सभी को अपना अपना कुलोचित पुरुषार्थ दिखाना चाहिये। वृष्णि, भोज और अन्धक वंशों के सभी यौद्धा रणभूमि में धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करे।

सात्यकि की बात सुनकर कृष्ण बोले सात्यकि तुम्हारी बात नि:सन्देह ठीक है परन्तु कुरु श्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने से बिना जीती हुई पृथ्वी को कभी ग्रहण नहीं करेंगे। युधिष्ठिर किसी इच्छा, भय, या लोभ से स्वधर्म का त्याग नहीं करेंगे। इसी तरह ये सब भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी भी काम, लोभ या भय से अपना धर्म नहीं त्यागेंगे। पृथ्वी पर ऐसा कोई वीर नहीं है जो युद्ध में इनका सामना कर सके। तब धर्मराज युधिष्ठिर बोले हे माधव आप जो कह रहे है वह ठीक ही है। हमारे स्वभाव को ठीक से आप ही जानते है। आपके स्वरूप को यथार्थ कीर्ति से मैं जानता हूं। जब श्रीकृष्ण स्वयं पराक्रम दिखाने का अवसर समझेंगे तब सब यादव दुर्योधन पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। अब सब यादव वीर अपने अपने घर लौट जाये। आप सब लोग मुझसे मिलने आये हैं इसलिये मैं आप सब लोगों का कृतज्ञ हूं। इस समय मुझे अपने धर्म का पालन करने दें। इसके पश्चात सभी यादव वीर अपने अपने घरों को लौट गये और पांडवों ने तीर्थयात्रा के लिये आगे प्रस्थान किया।

इस प्रकार कृष्ण, बलराम और यादव वीरों को विदा कर युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी सहित धौम्य मुनि तथा लोमशजी को लेकर परम पवित्र पयोष्णी नदी पर पहुंचे। इस नदी तट पर अमूर्त्तरया के पुत्र राजा गय ने सात अश्वमेघ किये थे और इन्द्र को तृप्त किया था। वैशम्पायन बोले जनमेजय पयोष्णी नदी में स्नान कर युधिष्ठिर वैदूर्य पर्वत और नर्मदा नदी में तीट पर आये। वहां के सब तीर्थस्थानों का लोमशजीने परिचय दिया। लोमश युधिष्ठिर से बोले देखो ये महाराज शर्याति का यज्ञ स्थान है। यहां कौशिक मुनि ने अश्विनी कुमारों को सोमपान कराया था। इसी स्थान पर च्यवन

मुनि ने क्रोधित हो इन्द्र को स्तम्भित कर दिया था तथा यहीं उन्हे पत्नी स्वरूप शर्याति की पुत्री राजकुमारी सुकन्या प्राप्त हुई थी। युधिष्ठिर को महर्षि च्यवन का चरित्र सुनने की जिज्ञासा हुई।

लोमश मुनि बोले महर्षि भृगु के एक पुत्र च्यवन मुनि के नाम से बडे ही तेजस्वी हुये है। वे इस सरोवर के तटपर कठोर तपस्या करते थे। बहुत समय तक एक ही स्थान पर बैठे बैठे तपस्या करते रहने पर सारा शरीर मिट्ठी, लताओं, तृण से ढक गया और रेत के टीले समान दिखने लगा। उस पर चीटियां घूमने लगी। ऋषि का शरीर दीमक की बांबी के समान दिखने लगा सिर्फ उनकी दोनों आंखे जुगनू के समान चमकती बाहर दिखाई दे रही थी। शरीर तो केवल मिट्ठी का पिंड जान पडता था। एक दिन राजा शर्याति शिकार खेलने के लिये अपनी पुत्री राजकुमारी सुकन्या सहित उस वन में पहुंचे। सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ वहां विचर रही थी और उसने वह दीमक की बांबी समान उस रेत के टीले को देखा तथा उन जुगनू समान चमकती आंखों को देखा। उसने कुतूहल वश कांटे के एक शूल को उठाकर उन आंखों में चुभो दिया। जिससे मुनि च्यवन की आंखों से फूटकर खून बहने लगा। आंखे फूट जाने से च्यवन को बडा कष्ट हुआ और क्रोधित हो उन्होने शर्याति की पूरी सेना सहित वहां पर आये हुए सभी का मल मूत्र बन्द कर दिया। च्यवन बडे ही क्रोधी महात्मा है यह जानकर शर्याति उनके पास गये और सबसे पूछने लगे कि मुनि का किसने अपकार किया है वह तुरन्त बता दे। जब सुकन्या को सब बातें मालूम हुई तो उसने अपना अपराध स्वीकार किया। शर्याति ने च्यवन मुनि से हाथ जोड प्रार्थना करी कि मुनिवर मेरी पुत्री सुकन्या के हाथ से भूल से यह अपराध हो गया है और इसे क्षमा करे। तब च्यवन राजा से बोले इस गर्वीली लडकी ने मेरा अपमान किया है और मेरी आंखे फोड दी है। अब तो मैं इसे पाकर ही इसे क्षमा करूंगा। तब राजा शर्याति ने बिना कोई शर्त किये च्यवन मुनि को अपनी कन्या ब्याह दी। उस कन्या को पाकर च्यवन मुनि बडे प्रसन्न हुये। सुकन्या भी अपने तप आदि नियमों का पालन करती हुई अपने तपस्वी पति की सेवा सुश्रूषा करने लगी।

एक दिन अश्विनीकुमार भ्रमण करते हुये मुनि च्यवन के आश्रम पर आये और च्यवन से बोले हम देवताओं के वैद्य हैं और मुनिवर हम आपको रूपवान और युवा बना सकते है। तब मुनि ने अपनी स्वीकृति दे दी। तब अश्विनीकुमारों ने मुनि को एक सरोवर में प्रवेश कराया। फिर कुछ समय बीतने पर वे तीनों सरोवर से बाहर निकले। अब च्यवन मुनि दिव्य रूप धारी, युवा हो गये। इस प्रकार अपनी पत्नीसहित मनमाना रूप एवं यौवन पाकर च्यवन मुनि बहुत प्रसन्न हुये तब वे अश्विनीकुमारों से बोले मैं वृद्ध था तुम से ही मुझे रूप और यौवन प्राप्त हुआ है इसलिये बदले में तुम्हे देवताओं से सोमपान का अधिकार दिलाऊंगा।

जब राजा शर्याति को मालूम हुआ कि च्यवन मुनि युवा हो गये है तो उन्हे बडी प्रसन्नता हुई। वे च्यवन मुनि के आश्रम में आये। राजा ने देखा च्यवन मुनि और उनकी कन्या सुकन्या देव दम्पति से जान पडते है। इससे राजा और रानी अत्यन्त हर्षित हुये। च्यवन मुनि राजा शर्याति से बोले राजन मैं आपसे यज्ञ कराऊंगा जो आपकी सभी कामनाओं को पूर्ण करेगा। राजा इसके लिये तैयार हो गये। महर्षि च्यवन ने राजा के यज्ञानुष्ठान कराने का आयोजन किया। उस यज्ञ में जिस समय अश्विनीकुमारों का यज्ञ का भाग निकाला उसी समय इन्द्र ने आकर मना किया और बोले मुनि ये दोनों अश्विनीकुमार यज्ञ के भाग के अधिकारी नहीं है। तब च्यवन बोले क्यों ये दूसरे देवताओं के समान सोमपान के अधिकारी नहीं है ? इन्द्र बोले मुनि ये चिकित्सा वैद्य का कार्य करते है और मनमाना रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरते रहते है। इसलिये इन्हे सोमपान का अधिकार कैसे हो सकता है ? यदि तुम हमारे सोम रस को दूसरों को देने लगोगे तो तुम पर मैं अपने वज्र का भयंकर प्रहार करूंगा। इन्द्र के मना करने पर भी च्यवन मुनि ने अश्विनीकुमारों के लिये सोम रस का भाग निकाला तो इन्द्र कुपित हो वज्र का प्रहार करने उद्यत हुये और अपना हाथ उठाया च्यवन ने अपने तेज के प्रभाव से इन्द्र की भुजा को ही वहीं पर स्तम्भित कर दिया। इससे इन्द्र को बडी व्यथा होने लगी उन्होने उसी समय स्वीकार किया और पुकार कर कहा आज ये अश्विनीकुमार सोमपान के अधिकारी हुये। हे मुनिवर अब

आप मेरे पर कृपा करें। आप जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा। इन्द्र के ऐसे कहने पर महर्षि च्यवन का कोप शान्त हुआ और उन्होने उसी समय इन्द्र को कष्ट से मुक्त किया।

लोमश बोले युधिष्ठिर यह झिलमिलाता हुआ द्विजसन्तुष्ट नाम का सरोवर उन्ही मुनि च्यवन का है। तुम इस सरोवर में देवता और पितरों का तर्पण करो। यहा भगवान शंकर के मन्त्रों को जप करने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। यहां त्रेता और द्वापर की सन्धि का काल रहता है। इस तीर्थ में स्नान करने वालों को कलियुग का स्पर्श नहीं होता है। इसलिये इसमें स्नान करो। इसके भाग आर्चीक पर्वत है। इस पर अनेक देवस्थान हैं। यह चन्द्रमा का तीर्थ है। यहां पर बाल खिल्य तेजस्वी और वायु भक्षी वान प्रस्थी रहते है। यहां पर तीन शिखर और तीन झरने है जो बडे ही पवित्र है। तुम इनकी प्रदक्षिणा कर क्रमश: इन सभी में यथेच्छा स्नान करो। इसके पास ही यमुना नदी बह रही है। स्वयं कृष्ण ने भी यहीं तपस्या की है। इसी जगह युवानश्व पुत्र मान्धाता ने भी यज्ञ किया था।

युवानश्व नाम के इच्छवाकुवंश में उनके एक राजा हुये थे। उन्होने एक हजार अश्वमेघ यज्ञ और बडी बडी दक्षिणावाले यज्ञ किये थे। एक बार महर्षि भृगु के पुत्र ने उन्हे सन्तान प्राप्ति के हेतु पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवाया। युवानश्व ने यज्ञ दीक्षा ले रखी थी। रात्रि के समय उन्हे प्यास लगी उसको यज्ञ आश्रम में कहीं भी जल नहीं मिला। महर्षि ने मन्त्र पूज जल का पात्र यज्ञ वेदी के पास रखा था वह मन्त्र से अभिपूरित था। राजा ने वही जल पी लिया और अपनी प्यास बुझाई। प्रात: भृगुपुत्र सहित अन्य मुनि जन जागे तो उन सभी ने उस कलश पात्र को रिक्त पाया। सभी ने मिलकर पूछा कि यह किसका काम है। किसने इसमें का जल पी लिया। तब युवानश्व ने सच सच बता दिया कि वह जल प्यास लगने पर रात्रि के समय मैंने पी लिया। तब भृगुपुत्र बोले राजन यह काम अच्छा नहीं है। अब तुम्हारे एक महान बलवान और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा। तुमने अभिमन्त्रित जल पी लिया है। अब जो हो गया वो तो पलटा नहीं जा सकता। जो कुछ हुआ है वह दैव प्रेरणा से ही हुआ है। यह कहकर सब मुनि यज्ञ सम्पन्न कराकर अपने अपने स्थान पर चले गये।

सौ वर्ष बीत जाने पर राजा के उदर में सूर्य के समान तेजस्वी बालक ने जन्म लिया। इस बालक को देखने के लिये स्वयं इन्द्र वहां पर आये। देवताओं ने इन्द्र से पूछा अब यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? क्योंकि दूध पिलाने वाली इसकी कोई माता तो है नहीं। तब इन्द्र ने उसके मुख से अपनी तर्जनी अंगुली देकर कहां मां धाता अर्थात यह मेरी अंगुली पियेगा। इसी से देवताओं ने उसका नाम माधांता रखा। वह बालक बडा होकर बडा ही शूर वीर हुआ सभी अस्त्रों का ज्ञानी हो गया। स्वयं इन्द्र ने उसका राज्याभिषेक किया।

राजा माधान्ता सूर्य के समान तेजस्वी हुये। इसी परम पवित्र कुरु क्षेत्र में यह उसी का यज्ञ करने का स्थान है। इस क्षेत्र में पहले प्रजापति ने एक हजार वर्ष में पूर्ण होनेवाला इष्टाकृत यज्ञ किया था। यहीं पर नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीश ने यमुना तट पर यज्ञ कर दस पदम् गौये दान की थी और यज्ञ तथा तपस्या से अनेक सिद्धियां प्राप्त की थी। यह देश नहुष पुत्र राजा ययाति का है। इसी स्थान पर दुष्यन्त पुत्र महाराज भरत ने भी अश्वमेघ यज्ञ करके अपना अश्व छोडा था। राजा मरूत ने भी संवर्तक के निर्देशन में यही यज्ञ किया था। जो कोई पुरुष इस तीर्थ में आचमन करता है उसे सम्पूर्ण लोकों का दर्शन प्राप्त होता है इसलिये तुम यहां आचमन करो। तुम निष्पाप हो जावोगे। महर्षि लोमश के कहनेपर सभी पांडवों ने वहां पर स्नान किया। स्नान करने पर युधिष्ठिर बोले ऋषिवर इस तप के प्रभाव से मैं सभी लोकों को देख रहा हूं। लोमश बोले तुम्हारा कथन ठीक है। महर्षिगण इसी प्रकार स्वर्ग का दर्शन करते है। यह परम पवित्र सरस्वती नदी है। इसमें स्नान करने से पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है। यहां प्रजापति ब्रह्मा की वेदी है। यही महात्मा कुरु का क्षेत्र है जो कुरु क्षेत्र नाम से विख्यात हुआ है। यह विनशन तीर्थ है। यहां सरस्वती नदी अदृश्य हो जाती है। यह स्थान निषाद देश का द्वार है।

निषाद लोग सरस्वती को नहीं देखें इसी विचार से सरस्वती भूमि में समा गयी। इसके आगे चमयोद्भव नाम का स्थान है। जहां सरस्वती फिर प्रकट हो जाती है। यह सिन्धु नदी का बहुत बडा तीर्थ स्थान है। इसी स्थान पर अगस्त्य जी का लोपमुद्रा से समागम हुआ था और लोपमुद्रा ने अगस्त्य ऋषि को पति रूप में वरण किया था। यह विष्णु पद नाम का पवित्र तीर्थ है और यह विपाशा नाम की परम पवित्र नदी है। यह काश्मीर मंडल है जहां अनेकों महर्षि निवास करते हैं। यह मानसरोवर का द्वार दिखाई दे रहा है। इस मानसरोवर तीर्थ का आश्चर्य यह है कि जब एक युग पूरा होता है तब पार्वती जी अपने पाषर्दों सहित अपनी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भगवान भोले शंकर के दर्शन देते हैं। जितेन्द्रिय और श्रद्धावान याचक लोग अपने परिवार की हित की कामना से इस सरोवर पर चैत्रमास में स्नान करते है।

यह सामने उज्जानक तीर्थ है। इसके पास ही यह कुशवान सरोवर है। अब तुम आगे भृगुतुंग पर्वत को देखो। इस वितस्ता नदी के दर्शन करो जो समस्त पापों को नष्ट कर देती है। ये यमुना की ओर से आनेवाली जला और उपजला नाम की नदियां है। इन्ही के तट पर राजा उशीनर (शिबि) यज्ञ कर इन्द्र से बडे हो गये थे। लोमश मुनि बोले युधिष्ठिर एक बार इन्द्र और अग्नि राजा शिबि की परीक्षा लेने आये। इन्द्र ने बाज का और अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया और राजा उशीनर (शिबि) के पास पहुंचे। बाज के भय से डरकर कबूतर अपनी रक्षा के लिये राजा शिबि की गोद में जाकर छिप गया। तब बाज उडते उडते आकर राजा के पास आया और आकर बोला राजन सब लोग आपको धर्मात्मा बताते है पर यह आप अधर्म पूर्वक कर्म क्यों कर रहे है ? मैं भूख से व्याकुल और पीडित हो रहा हूं। यह कबूतर जो आपकी गोद में छिपा बैठा है वो मेरा शिकार है, मेरा आहार है। इसलिये आप इसकी रक्षा न करें और मुझे अपना शिकार दे दें। राजा शिबि बोले हे महापक्षी यह पक्षी तुमसे भयभीत होकर मेरे पास अपने प्राणों की रक्षा के लिये मेरी शरण में आया है। इसने अभय पाने के लिये ही मेरा आश्रय लिया है। देखो यह घबराहट से कैसे कांप रहा है। ऐसी स्थिति में इसे त्यागना मेरे लिये धर्म नहीं है। जो कोई ब्राह्मण की हत्या करता है, जगन्माता गाय का वध करता है और शरणागत को त्यागता है इन तीनों को समान पाप लगता है।

बाज बोला राजन सब प्राणी आहार से ही उत्पन्न होते हैं और उनका पोषण भी आहार से होता है तब वे जीवित रहते है। जिस धन को त्यागना अत्यन्त कठिन माना जाता है उसके बिना भी मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु आहार का त्याग कर तो कोई भी अधिक समय तक नहीं जी सकता। आज आपने मुझे आहार से वंचित कर दिया है इसलिये मेरा जीना दूभर हो गया है। इससे मैं मर जाऊंगा तो मेरा परिवार नष्ट हो जायेगा। इस कबूतर को बचा कर आप कई प्राणियों की जान चले जाने के भागी होंगे। जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक हो वह धर्म नहीं, कुधर्म है। धर्म तो वही है जिसमे किसी दूसरे धर्म का विरोध ना हो। जहां दो धर्मों में विरोध हो वहां छोटे बडों का विचार कर जिसका किसी से विरोध न हो उसी धर्म का आचरण करना चाहिये। अत: राजन आप भी धर्म और अधर्म के विषय के निर्णय में गौरव लाघव पर दृष्टि रख कर जिसमें विशेष पुण्य प्राप्त हो उसी धर्म के आचरण का स्वयं निर्णय करे।

राजा शिबि बोले पक्षी प्रवर आप बहुत अच्छी बात कह रहे है। क्या आप पक्षीराज गरुड है ? आप धर्म के मर्म को भलीभांति जानते है ? आपकी बातें बडी ही विचित्र और धर्मसम्मत है। किन्तु शरणार्थियों के त्याग को आप कैसे अच्छा मानते है ? आपका यह सारा प्रयत्न आहार के लिये ही जान पडता है। आपको इससे अधिक आहार भी दिया जा सकता है। मैं आपको शिबि प्रदेश का समृद्धिशाली राज्य दे देता हूं। आपको और भी कोई वस्तु की इच्छा हो तो वह मैं भेंट दे सकता हूं। किन्तु इस शरण में आये हुये पक्षी को नहीं त्याग सकता। जिस किसी प्रकार आप इस पक्षी को छोड सके वह उपाय बताये। मैं वह सब करने को तैयार हूं पर इस कबूतर को नहीं दूंगा। बाज बोला राजन यदि आपका इस कबूतर पर इतना ही स्नेह है तो इस कबूतर के बराबर अपना मांस काटकर तराजू में तौल दीजिये। जब वह तौल में बराबर हो जाये तो वह मुझे दे दीजिये। जिससे मेरी तृप्ति हो जायेगी।

लोमश बोले युधिष्ठिर फिर परम धर्मज्ञ राजा शिबि ने अपना मांस काट कर तुला में तौलना आरम्भ किया। दूसरे पलडे में रखा हुआ कबूतर उनके मांस से भारी निकला। तो राजा फिर बार बार मांस काटकाट कर रखने लगे। इस प्रकार कई बार करने पर भी जब मांस कबूतर के बराबर नहीं हुआ तो राजा स्वयं तराजू में बैठ गया। यह देखकर बाज बोला हे धर्मज्ञ मैं इन्द्र हूं और ये कबूतर अग्निदेव है। हम आपकी परीक्षा लेने के हेतु ही आपकी यज्ञशाला में आये थे। जब तक संसार को आप का स्मरण रहेगा तब तक आपका सुयश निश्चल रहेगा और आप पुण्य लोकों का भोग करेंगे। ऐसा कहकर वे दोनों देवलोक चले गये। यह पवित्र आश्रम उसी राजा उशीनर का है। यह बडा ही पवित्र और पापों का नाश करनेवाला है।

२३) अष्टावक्र मुनि का वृतान्त

लोमश मुनि ने युधिष्ठिर से कहा उदालक मुनि के पुत्र श्वेतकेतु इस पृथ्वी में मन्त्र शास्त्र में पारंगत समझे जाते थे। यह आश्रम उन्ही श्वेतकेतु का है। इसी आश्रम में श्वेतकेतु को मानवी के रूप में साक्षात सरस्वती के दर्शन हुये थे। उदालक मुनि का कहोड नाम का एक प्रसिद्ध शिष्य हुआ। कहोड ने अपने गुरुदेव की बडी सेवा की। उद्दालक मुनि ने प्रसन्न होकर शीघ्र ही अपने शिष्य कहोड को सब वेदों का अध्ययन करा दिया और अपनी कन्या सुजाता भी उससे ब्याह दी। कुछ काल बीत जाने पर सुजाता गर्भवती हुई। वह गर्भ अग्नि के समान तेजस्वी था। एक दिन कहोड ऋषि वेदपाठ कर रहे थे उस समय वह गर्भ में से ही बोला आप रातभर वेदपाठ कर रहे है किन्तु यह ठीक ठीक नहीं होता। शिष्यों के बीच में ही इस प्रकार आक्षेप करने से पिता कहोड को क्रोध हुआ और उन्होने उस गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि तू पेट में ही ऐसी टेढी मेढी बातें करता है इसलिये आठ जगह से टेढा उत्पन्न होगा। जब वो बालक पेट में बढने लगा तो सुजाता को बडी पीडा हुई। सुजाता ने अपने धन हीन पति को धन लाने की प्रार्थना की। कहोड धन लेने के लिये राजा जनक के पास गये। राजा जनक के पास बन्दी नाम का शास्त्रार्थ करनेवाला एक ज्ञानी विद्वान था। कहोड को राजा जनक से धन प्राप्त करने के लिये बन्दी से शास्त्रार्थ करना पडा और बन्दी ने उसे शास्त्रार्थ में हरा दिया तथा बन्दी के नियमानुसार वह हारनेवाले को जल में डुबो दिया करता था। वैसे ही उसने कडोह को जल में डुबो दिया। जब उद्दालक मुनि को यह समाचार मिला कि कडोह पानी में डुबो दिया गया है तो उन्होने सुजाता के पास जाकर पूरी बात बता दी और बोले तू तेरे पुत्र अष्टवक्र से इस विषय में कुछ न कहना। अष्टावक्र के उत्पन्न होने से उसे इस बात का पता ही नहीं लगा। अष्टावक्र उद्दालक मुनि को ही अपना पिता मानते थे और श्वेतकेतु को अपना बडा भाई।

एक दिन जब अष्टावक्र की आयु १२ वर्ष की थी वे उद्दालक की गोद में बैठे थे। उस समय वहां श्वेतकेतु आये और उन्हे पिता की गोद में खीचकर बोले यह गोदी तेरे पिता की नहीं है। श्वेतकेतु की इस कटूक्ति से अष्टावक्र के चित्त पर गहरी चोट लगी और उन्होने घर जाकर अपनी माता से पूछा कि मेरे पिता कहां है ? इससे माता सुजाता घबरा गई और उसने भय से पूरी बात बता दी। यह सब बात सुनकर अष्टावक्र ने श्वेतकेतु से परामर्श किया कि हम दोनों राजा जनक के यज्ञ में चले। वहां हम ब्राह्मणों के शास्त्रार्थ सुनेंगे। इस प्रकार दोनों श्वेतकेतु और अष्टवक्र राजा जनक के समृद्धिसम्पन्न यज्ञ में गये।

यज्ञशाला में पहुंचकर जब वे भीतर जाने लगे तो द्वारपाल ने रोक कर कहा इस यज्ञशाला में बालकों को जाने की आज्ञा नहीं है। केवल वृद्ध और विद्वान ब्राह्मणों के लिये ही इसमें प्रवेश की आज्ञा है। तब अष्टावक्र बोले द्वारपाल मनुष्य अधिक वर्षों की उम्र हो जाने से, बाल सफेद हो जाने से, धन से; बडा कुटुम्ब हो जाने से ही बडा नहीं माना जाता। ब्राह्मणों में तो बडा वो ही है जो वेदों का ज्ञाता हो। मैं इस राजसभा में शास्त्रार्थ पारंगत बन्दी से मिलना चाहता हूं। आप यह सूचना महाराज जनक को दो। मैं शास्त्रार्थ में बन्दी को परास्त करूंगा। द्वारपाल बोला अच्छा मैं किसी उपाय से आपको सभा में जाने का उपाय करता हूं। किसी तरह द्वारपाल उन्हे राजा जनक के पास ले आया। अष्टावक्र जनक से बोले राजन आप जनक वंश में प्रधान है और चक्रवर्ती राजा है। आपके यहां बन्दी नाम का विद्वान है। वह ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त कर देता है और फिर परास्त होनेवाला जल में डुबो दिया जाता है। अब

मैं उनके साथ अद्वैत ब्रह्म विषय पर शास्त्रार्थ करने आया हूं। मैं उस बन्दी से मिलना चाहता हूं।

राजा जनक बोले बन्दी का प्रभाव बहुत से वेद वेता ब्राह्मण जानते है। तुम ना समझी में ही उसे जीतने की आशा कर रहे हो। पहिले कितने ही ब्राह्मण आये परन्तु जैसे सूर्य के आगे तारे फीके पड जाते है उसी तरह जो शास्त्रार्थ करने आया वो सभी बन्दी के आगे हतप्रभ हो गये। अष्टावक्र बोले उसे अभी तक मेरे जैसों से पाला नहीं पडा राजन इसीलिये आप ऐसी बातें कह रहे है परन्तु वह अब मुझसे परास्त होकर उसी भांति मूक हो जायेगा जैसे रास्ते में टूटा हुआ रथ जहां तहां पडा रहता है। तब राजा जनक ने ही परीक्षा करने के विचार से अष्टावक्र से पूछ लिया जो पुरुष तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरोंवाले पदार्थ को जानता है वह बडा विद्वान है। यह सुनकर अष्टावक्र बोले जिसमें पक्ष रूप चौबीस पर्व, ऋतुरूप छ: नाभि, मास रूप बारह अंश और दिन रूप तीनसौ आठ आरे है वह निरन्तर घूमनेवाला संवत्सर रूप काल चक्र है। ऐसा यथार्थ उत्तर पाकर राजा ने फिर अष्टावक्र से प्रश्न किया। सोते समय आंखे कौन बन्द नहीं करता ? जन्म लेने के बाद किसमें गति नहीं होती ? हृदय किस में नहीं है ? वेग से कौन बढता है ? तब अष्टावक्र बोले महाराज मछली सोते समय आंखे नहीं मूंदती। अंडा उत्पन्न होने पर पडा रहता है स्वयं कोई प्रयत्न नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं होता और नदी सतत वेग से आगे बढती है।

अष्टवक्र के उत्तर सुनकर राजा जनक बोले आप तो देवताओं के समान प्रभावशाली है। मैं आपको मनुष्य नहीं समझता। आप कोई बालक भी नहीं है मैं तो आपको अनुभवी वृद्ध ही मानता हूं। वाद-विवाद करने में आपके समान कोई दूसरा नहीं है। इसलिये आप मंडप में जाइये जहां वह बन्दी है। अष्टवक्र यज्ञ मंडप में गये और बन्दी से बोले अपने को अतिवादी माननेवाले बन्दी। तुमने हारनेवालों को जल में डुबोने का नियम बना रखा है पर मेरे सामने तुम टिक नहीं पाओगे। प्रलयकालीन अग्नि के निकट नदी का प्रवाह सूख जाता है उसी प्रकार मेरे सामने तुम्हारी वाद शक्ति नष्ट हो जायेगी। अब तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और मैं तुम्हारी बातों का। बन्दी बोला अष्टवक्र एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रकाशित होती है। एक सूर्य सारे जगत को प्रकाशित करता है। शत्रु दमन देवराज इन्द्र भी एक ही वीर है तथा पितरों का ईश्वर यमराज भी एक ही है।

अष्टवक्र बोले इन्द्र और अग्नि ये दो देवता है, नारद और पर्वत ये देवर्षि भी दो ही है। दो ही अश्विनीकुमार है। रथ के पहिये भी दो ही होते है। विधाता ने पति और पत्नी ये सहचर भी दो ही बनाये है।

बन्दी बोले यह सम्पूर्ण प्रजा कर्मवश तीन प्रकार से जन्म धारण करती है। सब कर्मों का प्रतिपादन भी तीन वेद ही करते है। अध्वर्यु भी प्रात: मध्यान्ह और सायं इन तीनों समय यज्ञ का अनुष्ठान करते है। कर्मानुसार प्राप्त होनेवाले भोगों के लिये स्वर्ग, नरक, मृत्यु ये लोक भी तीन ही है तथा वेद में कर्म जन्य ज्योतियां भी तीन प्रकार की है।

अष्टावक्र बोले ब्राह्मणों के लिये आश्रम चार है। वर्ण भी चार ही यज्ञोंद्वारा अपना अपना निर्वाह करते हैं। मुख्य दिशायें भी चार ही है। ऊंकार के अकार, मकार, उकार और अर्धमात्रा ये चार ही वर्ण है तथा वाणी भी परा, मध्यमा, पश्यन्ती और बैखरी चार प्रकार की कही गयी है।

बन्दी बोला यज्ञ की अग्नियां पंच अग्नि है (गार्हपत्स्य, दक्षिणाग्नि, आहवानीय, सभ्य और आवसभ्य)। पंक्ति छन्द भी पांच पदोंवाला है। यज्ञ भी (अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और सोम) पांच ही प्रकार के है। इन्द्रियां पांच होती है। वेद में पंच शिखावाली अप्सरायें भी पांच है तथा संसार में पंच नदी जो पवित्र है वे भी पांच ही है।

अष्टावक्र बोले अग्नि का आधान करते समय दक्षिणा में गौयें छ: देनी चाहिये। कालचक्र में ऋतुयें भी छ: होती है। मनसहित ज्ञानेन्द्रियां भी छ: ही है। कृतिकाये छ: है तथा समस्त वेदों में साधस्क यज्ञ भी छ: ही कहे गये है।

बन्दी बोला ग्राम्य पशु सात है तथा वन्य पशु भी सात है। यज्ञ को पूर्ण करनेवाले छन्द भी सात है। ऋषि भी सात है जो सप्तर्षि कहलाते हैं। मान देने के प्रकार भी सात है और वीणा के तार भी सात ही प्रसिद्ध है और स्वर भी सात ही होते है।

अष्टावक्र बोले सैकडों वस्तुओं का तौल करने वाले बाट आठ होते है। सिंह का नाश करनेवाले शरभ के चरण भी आठ ही होते है। देबवताओं में वसु आठ होते है सब यज्ञों में यज्ञ स्तम्भ के कोण भी अष्ट होते है।

बन्दी बोले पितृयज्ञ में समिधा आहुति डालने के नौ मन्त्र कहे गये है। सृष्टि में प्रकृति के विभाग भी नौ है। बृहती छन्द के अक्षर भी नौ है। जिस अंक से अनेकों प्रकार की संख्यायें उत्पन्न होती है ऐसे एक से लेकर अंक भी नौ ही है।

अष्टावक्र बोले संसार में दिशायें दस है, सहस्त्र की संख्या भी सौ को दस बार गिनने से होती है। गर्भवती स्त्री भी गर्भ धारण दस मास करती है। तप का उपदेश करनेवाले भी दस है तथा पूजने योग्य भी दस है।

बन्दी बोले पशुओं के शरीर में ११ विकारोंवाली इन्द्रियां ११ होती है। यश के स्तम्भ ११ होते है। प्राणियों के विकार भी ग्यारह है तथा रूद्र भी ग्यारह ही कहे गये है। व्रतों में सर्वश्रेष्ठ एकादशी का है।

अष्टावक्र बोले एक वर्ष में १२ महिने होते है। जगती छन्द के चरणों में भी बारह ही अक्षर होते है। प्राकृत यज्ञ और शोक भी बारह दिन का होता है। धीर पुरुषों ने आदित्य भी बारह कहे है।

बन्दी बोले तिथियों में त्रयोदशी उत्तम है और पृथ्वी भी तेरह द्वीपोंवाली है। इस प्रकार बन्दी के आधा श्लोक ही कहकर चुप हो जाने पर अष्टावक्र ने शेष आधा श्लोक पूरा करते हुये बोले अग्नि, वायु और सूर्य ये तीनों देवता तेरह दिनों के यज्ञों में व्यापक हैं और वेदों में भी तेरह आदि अक्षरोंवाला अति छन्द कहा है। इतना सुनते ही बन्दी का मुख नीचा हो गया। अष्टावक्र के मुख में वाणी की झडी लगी रही। यह देखकर सभा के ब्राह्मण हर्ष ध्वनि करते हुये अष्टावक्र का सम्मान करने लगे।

अष्टावक्र बोले राजा जनक यह बन्दी शास्त्रार्थ में अनेक विद्वान ब्राह्मणों को परास्त कर जल में डुबा चुका है। अब इसको भी तुरन्त वही गति मिलनी चाहिये। बन्दी बोले महाराज मैं जलाधीश वरूण का पुत्र हूं। मेरे पिता के यहां भी आप ही की तरह बारह वर्षों में पूर्ण होनेवाला यज्ञ हो रहा है। उसी के लिये मैंने जल में डुबाने के बहाने चुने हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणों को वरुण लोक भेज दिया है। वे सभी अभी लौट आयेंगे। अष्टावक्र मेरे पूजनीय है। इनकी कृपा से जल में डूबकर मैं भी अपने पिता वरुण के पास शीघ्र मिलने का सौभाग्य प्राप्त करूंगा। राजा को बन्दी की बातों में फंसते देखकर अष्टावक्र बोले राजन मैं बार बार कह चुका हूं फिर भी आप मतवाले हाथी के समान मेरी बात नहीं सुन रहे। इससे मालूम होता है कि लसौडे के पत्तों पर भोजन करने से आपकी मति भ्रष्ट हो गयी है। या फिर आप इस चापलूस की बातों में आ गये हो। जनक बोले देव मैं आपकी दिव्य वाणी सुन रहा हूं। आप साक्षात दिव्य पुरुष है। आपने शास्त्रार्थ में बन्दी को परास्त किया है। मैं अभी आपकी इच्छानुसार उसके दंड की व्यवस्था करता हूं। बन्दी बोले वरुण का पुत्र होने से मुझे डूबने का कुछ भी यह नहीं है। ये अष्टावक्र भी बहुत दिनों से डूबे हुये अपने पिता कहोड का दर्शन करेंगे।

लोमश बोले युधिष्ठिर बन्दी जब सभा में इस प्रकार बोल ही रहे थे कि समुद्र में डूबायें हुये सभी ब्राह्मण वरुण देव से सम्मानित होकर जल से बाहर निकल आये और राजा जनक की सभा में जा पहुंचे। उनमें से कडोह भी बाहर निकला और बोला मनुष्य ऐसे ही कामों के लिये पुत्र की चाहत करता है। जिस काम को मैं नहीं कर सका, वही मेरे पुत्र ने कर दिखाया राजन। कभी कभी दुर्बल मनुष्य के भी बलवान और मूर्ख के विद्वान पुत्र उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात बन्दी भी राजा जनक की आज्ञा लेकर समुद्र में कूद गया। तदनन्तर ब्राह्मणों ने अष्टावक्र की पूजा की और अष्टावक्र ने अपने पिता का पूजन किया। तब अष्टावक्र और उसके पिता अपने आश्रम में चले गये। वहां पहुंच कर कडोह अपने पुत्र अष्टावक्र से बोले तुम इस समंगा नदी में प्रवेश करो। अष्टावक्र ने जैसे ही उस नदी में डुबकी लगाई कि उनके सारे अंग सीधे हो गये और कहोड का दिया हुआ शाप छूट गया। उनके संसर्ग से यह नदी भी पवित्र हो गई। जो पुरुष इस नदी में स्नान करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। इसलिये युधिष्ठिर तुम भी द्रौपदी और अपने भाइयों सहित इस नदी में स्नान और आचमन करो।

२४) कर्ण का विजय यात्रा से हस्तिनापुर लौटना

कर्ण राज विजय यात्रा कर हस्तिनापुर की राजसभा में आया। प्रहरियों ने आवाज दी सावधान अंगराज कर्ण विजयी होकर पधार रहे हैं। भीष्म और दुर्योधन सभा में बैठे परस्पर बातें कर रहे हैं। दुर्योधन बोला यह देखिये पितामह। सबने अंगराज कर्ण की जय की। दुर्योधन कर्ण को गले लगाकर मिला कर्ण ने आकर धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोले विजय यात्रा की सफलता पर हार्दिक बधाई हो अंगराज कर्ण। कर्ण बोला मैं महाराज के चरणों में राजमुकुटों के कुछ पुष्प अर्पित करने की अनुमति चाहता हूं। धृतराष्ट्र बोले आज्ञा है। कर्ण बोला महाराज आप और युवराज के मित्र तथा सम्बन्धियों के अतिरिक्त आज सारे भारत वंश में किसी और शीश पर राजमुकुट नहीं है। धृतराष्ट्र बोले देखा तातश्री अंगराज ने आपके उस रातवाले प्रश्न का उत्तर तो दे दिया कि दुर्योधन अंगराज की मित्रता तले सुरक्षित है। भीष्म बोले नहीं महाराज मैं अब भी यहीं कहता हूं कि पांडवों के साथ सन्धि कर लेने में ही हस्तिनापुर और युवराज दुर्योधन की भलाई है। क्योंकि आज भी मेरा यही विश्वास है कि दिग्विजय के पश्चात भी कर्ण अर्जुन के चौथाई अंश के बराबर भी नहीं है। दुर्योधन बोला नहीं पितामह कदापि नहीं। आज अर्जुन मेरे मित्र कर्ण के १६ वे अंश के भी बराबर नहीं है और यदि अर्जुन दिव्यास्त्र की खोज में गया है तो उसे जाने दीजिये क्योंकि मेरे लिये मेरा दिव्यास्त्र मेरा मित्र कर्ण है। कर्ण ने उत्तर दिशा में जाकर सब राजाओं को परास्त किया है। महाराज भगदत्त को जीतकर वह शत्रुओं से लडता हुआ हिमालय पर चढ गया। इस प्रकार वहां के राजाओं को जीतकर उसने नेपाल देश के राजाओं को परास्त किया। फिर पूर्व दिशा में विजय प्राप्त की। उस ओर के अंग, बंग, कलिंग, शुंडिक, मिथिला, मगध, कर्क खंड, आवशीर, योद्ध और अहिक्षत्र इत्यादि राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। फिर केवला, मृतिकावती, प्रयाग, मोहन पत्तन, त्रिपुरी और कोसला आदि पुरियों को जीतकर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। वहां भी अनेकों महारथियों को परास्त कर रूक्मी के साथ घोर युद्ध किया। फिर उसने पांड्य और श्रीशैल पर विजय प्राप्त करी। वहां से केरल, नील और वेणुदारिसुत आदि अनेकों राजाओं से कर लेकर फिर शिशुपाल के पुत्र को परास्त किया। इसके पश्चात कर्ण ने अवन्ति के राजाओं को जीतकर वृष्णिवंशियों को जीतकर अपने पक्ष में किया और फिर पश्चिम दिशा को जीतना प्रारम्भ किया। वहां पर उसने यवन और बर्बर राजाओं को जीता। इस प्रकार कर्ण ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण सभी दिशाओं में सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ली। अब धनुर्धर वीर कर्ण हस्तिनापुर में आया है पितामह। अब दुर्योधन ने भी पांडवों की तरह वैष्णव यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की।

२५) स्वर्ग में अर्जुन को अस्त्र एवं नृत्य शिक्षा तथा उर्वशी का श्राप

महादेव का आशीर्वाद पाने के बाद अर्जुन देवराज इन्द्र का आशीर्वाद लेने स्वर्ग की ओर चला गया वहां उसे बहुत दिन लगे क्योंकि वहां तो उसे दिव्यास्त्रों की प्राप्ति करनी थी और वहीं पर उसे उर्वशी अप्सरा का शाप भी मिला। अर्जुन मातलि इन्द्र के सारथी के साथ स्वर्ग में गया। क्षणभर में ही वह रथ मन्दराचल से उठकर वहां के तपस्वी मुनियों की दृष्टि से ओझल हो गया। अर्जुन जहां पहुंचा उसने देखा वहां सूर्य का, चन्द्रमा का, अथवा अग्नि का प्रकाश नहीं था। हजारों विमान वहां अद्भुत रूप से चमक रहे थे। वे पृथ्वी से तारों के रूप में दीपक के समान दिख रहे थे। वे तारे पुण्यात्मा पुरुषों के निवास स्थान है। वह रथ सिद्ध पुरुषों का मार्ग लांघकर राजर्षियों के पुण्य लोकों में होकर इन्द्र की दिव्य पुरी अमरावती में पहुंचा।

इन्द्रपुरी अमरावती पहुंचने पर अर्जुन ने स्वर्ग के दर्शन किये। स्वर्ग की शोभा, सुगन्ध, दिव्यता, अभिजन और दृश्य अनूठा ही था। यह लोक बडे-बडे पुण्यात्मा पुरुषों को प्राप्त होता है। जिसने तप नहीं किया, अग्निहोत्र नहीं किया, जो युद्ध से पीठ दिखाकर भाग गया वह इस लोक का दर्शन नहीं कर सकता। जो यज्ञ नहीं करते, व्रत नहीं करते, वेद मन्त्र नहीं जानते, तीर्थों में

स्नान नहीं करते। यज्ञ और दानों से बचे रहते है। यज्ञ में विघ्न डालते रहते हैं, क्षुद्र है, शराबी, गुरु स्त्री गामी, अमिषहारी और दुरात्मा है उन्हे किसी भी प्रकार स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जब अप्सराओं और गन्धर्वों ने देखा कि अर्जुन स्वर्ग में आ गये हैं तब वे सब के सब अर्जुन की स्तुति सेवा सुश्रूषा करने लगे। देवता गन्धर्व, सिंह और महर्षि प्रसन्न होकर उदार चरित अर्जुन की पूजा करने लगे। वाद्य बजने लगे। अर्जुन ने क्रमश: साध्य देव, विश्वेदेवा, वायु, अश्विनीकुमार, आदित्य, वसु, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, तुम्बरू, नारद, चित्रसेन, तथा हाहा हूहू आदि गन्धर्वों के दर्शन किये। उन सब से मिलकर आगे जाने के बाद अर्जुन को देवराज इन्द्र के दर्शन हुये। अर्जुन ने सिर झुकाकर, इन्द्र के चरणों में प्रणाम किया। इन्द्र ने अपने हाथों से अर्जुन को ऊपर उठाकर अपने पवित्रासन पर बिठाया। संगीत विद्या और सामगान के कुशल गायक तुम्बरू आदि गन्धर्व प्रेम सहित मनोहर गाथायें गाने लगे।

अन्त:करण और मन को लुभानेवाली बहुत सी असंख्य अप्सरायें घृताची, मेनका, रम्भा, पूर्वचित्ति, स्वयं प्रभा, उर्वशी, मिश्रकेशी, दंडगौरी, वरुथिनी, गोपाली, सहजन्या, कुम्भयोनि, प्रजागिरा, चित्रसेना, चित्रलेखा, सहा, मधुस्वरा: आदि अप्सरायें नृत्य करने लगी। इन्द्र को अतिथि जानकर देवता और गन्धर्वों ने भी उत्तम आर्घ्य पाद्य से अर्जुन का स्वागत सत्कार किया। तदनन्तर अर्जुन इन्द्रभवन में आये और वहां उनका निवास बनाया। वहां पर अर्जुन ने अस्त्रों का प्रयोग और उपसंहार का अभ्यास किया। वे इन्द्र के वज्र का भी अभ्यास करने लगे। दिव्यास्त्रों में अचानक मेघ छा जाने, गर्जना तथा बिजली चमकनेवाले शस्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त कर लिये। स्वर्ग में रहते रहते अर्जुन को बहुत दिन बीत गये। अर्जुन अब अपने वनवासी भाइयों का स्मरण करने लगे और स्वर्ग से पृथ्वी लोक में आना चाहते थे परन्तु इन्द्र की आज्ञा से वे और पांच वर्ष रहे।

एक दिन इन्द्र की सभा में उर्वशी अप्सरा का नृत्य चल रहा था। उसी समय वहां पर अर्जुन आये। गन्धर्व राग अलाप रहे थे। इन्द्र बोले आओ कुन्ती नन्दन। अर्जुन बोले प्रणाम देवराज। इन्द्र बोले आयुष्मान भव। तुम्हें दिव्यास्त्र प्राप्त हुये कुन्ती पुत्र ? अर्जुन बोला आपकी और सब देवताओं की कृपा से मुझे केवल शस्त्र ही प्राप्त न हुये बल्कि मैंने उनका प्रयोग सन्धान और उपसंहार भी सीख लिया है। अब मुझे पृथ्वीपर लौटने की आज्ञा दें। इन्द्र बोले अभी तुम्हे गन्धर्व अस्त्र कहां प्राप्त हुये कुन्ती पुत्र? चित्रसेन गान्धर्व से गान्धर्व शस्त्र की शिक्षा पाना तुम्हारे लिये अत्यन्त आवश्यक है वत्स। अर्जुन बोला प्रभो मैं यहां अन्तिम युद्ध के लिये दिव्यास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से आया था। संगीत और नृत्य से एक यौद्धा का क्या प्रयोजन ? इन्द्र बोले अर्जुन कला तो सभी दिव्यास्त्रों में सबसे अधिक प्रबल शस्त्र अस्त्र है। जीवन का रस है। अर्जुन बोला यदि ऐसा है तो अन्तिम युद्ध के पश्चात यह भी प्राप्त कर लूंगा। इन्द्र बोले युद्ध के उपरान्त अस्त्रों का क्या करोगे कुन्तीनन्दन ? और यह मत भूलो कि तुम्हें एक वर्ष अज्ञातवास में भी बिताना है। भला तुम्हारा यह रूप कैसे छिप सकता है ? सूर्य और चन्द्रमा, धरती और आकाश, पृथ्वी और जल की तरह तुम्हारे लिये अज्ञातवास असम्भव है। इसलिये चित्रसेन गन्धर्व को प्रणाम करो और अपनी शिक्षा आरम्भ करो। अर्जुन बोले जो आज्ञा भगवान।

अर्जुन ने जाकर चित्रसेन गन्धर्व को प्रणाम किया और चित्रसेन भी इन्द्र की आज्ञा से अर्जुन को वाद्य यन्त्र, गायन व नाचने का अभ्यास कराने लगे। अर्जुन इस विद्या में प्रवीण हो गया। अर्जुन इन्द्रपुरी में सुरक्षित सम्मानित और सुखपूर्ण जीवन ही नहीं बिता रहा था वह नृत्य और संगीत में मग्न था। स्वर्ग के लोगों के तो जैसे प्राण भोग और विलास में ही रहते है। उन्हे दु:ख नाम की कोई अशंका नहीं, भविष्य की कोई चिन्ता नहीं। उन्हे तो बस यही लगता था कि ईश्वर ने जो जीवन दिया है वह क्षण-क्षण भोग के लिये ही है। तभी तो अमरावती पुरी में सुख भोग विलास को न हेय दृष्टि से देखा जाता है और न ही कोई उससे बचने का प्रयास किया जाता है। काम और भोग बहुत सहजता से स्वीकृत है अत: उनके पूर्णता तक का प्रयास किया जाता है। उसे और आकर्षक तथा कामोत्तेजक बनाये जाने का अनवरत प्रयत्न किया जाता है इसीलिये अप्सरायें भी रमण करने के लिये व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग हैं। युवा तो युवा, प्रौढ स्त्री पुरुषों को भी उसमें तनिक भी संकोच नहीं है।

नृत्य और संगीत से ही तो आशिकी का माहौल बनता है। आरम्भिक यौवन का भोग तो नासमझी का भोग होता है। उस काल में मनुष्य प्रकृति के प्रबल आवेगों के सम्मुख इतना अवश और विवश हो जाता है कि वह उनका अनुचर बन जाता है। पृथ्वी लोक में यह मानवी आयु १६ वर्ष से आरम्भ होती है। वह इन भोगों पर नियन्त्रण कर उनका स्वामी नहीं बन सकता। उसे यह सब करने उसकी इन्द्रियां बाध्य करती है। प्रौढ होने पर ही उसे समझ आता है कि प्रकृति के सृजन धर्मा खिलौने के रूप में नहीं बल्कि स्वतन्त्र स्वामी के रूप में स्वेच्छा से किये गये विलास और कामक्रीडा के सुख का रस क्या होता है ? नारी के सम्पर्क में आते ही मनुष्य कुछ का कुछ और हो जाता है, परिवर्तित हो जाता है।

न जाने अर्जुन के मन में काम प्रसंग एक कुत्सा सी उत्पन्न कर रहे थे। इन्द्रसभा में इतने दिनों तक सम्मिलित रहने पर भी उसका मन न काम की ओर आकृष्ट हो पाया, न ही अप्सराओं का सौन्दर्य उसे लुभा पाया, न नृत्य और संगीत ही उसे आत्म विस्मृति का सुख दे पाये। एक दिन अर्जुन निनिमेष नेत्रों से उर्वशी की ओर देख रहा था। यह इन्द्र ने देख लिया। उर्वशी भी अर्जुन पर मोहित हो रही थी और वह भी उसे मन ही मन चाहने लगी। इन्द्र बोला यह क्या उवर्शी ? उर्वशी बोली प्रभुवर प्रणाम। इन्द्र ने कहा कोई समस्या ? उर्वशी बोली मन भटक रहा है प्रभुवर। इन्द्र बोला अप्सराओं का मन का भटकना इन्द्रलोक के लिये शुभ समाचार नहीं है। तुम तो किसी का मन भटकाने के लिये हो उर्वशी। अपने मन को भटकने से रोकने का कोई उपाय करो उर्वशी। कोई उपचार सोचो। उर्वशी बोली क्या उपाय करूं प्रभु ? इन्द्र बोले मन का कहा मानकर देखो। अर्जुन उर्वशी के साथ नृत्य का अभ्यास कर रहा है और उर्वशी उसे नृत्य सिखा रही है। उर्वशी का अमरावती में अपना महत्व अलग ही था। वह इन्द्र की श्रेष्ठ अप्सराओं में थी। स्वयं इन्द्र उसकी कृपा की आकांक्षा करते रहते थे। संगीत और नृत्य दोनों में ही असाधारण थी। अमरावती में महत्वपूर्ण होने के लिये इससे अधिक और क्या चाहिये ? उर्वशी का रूप आज अद्‌भुत था। लगता था किसी विशेष अभियान के लिये उसने असाधारण श्रृंगार कर रखा था। प्रकृति की ओर से उसे समृद्ध सौन्दर्य और शरीर सौष्ठव मिला हुआ था। शरीर की गठन मादक थी। नारी शरीर का कदाचित वह सुन्दर तम प्रारूप थी। श्रृंगार से वह और भी सानपर चढ आया था। नशीला रूप था। श्रृंगार और प्रसाधनों के सारे प्रयत्न के बाद भी विदा होते हुये यौवन पर प्रौढावस्था की छाया पडने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। उर्वशी के मुखपर मादकता और उत्तेजकता थी। वस्त्र इतने कम और झीने थे कि पूरे शरीर के सौन्दर्य का पारदर्शी प्रदर्शन हो रहा था।

इन्द्र ने चित्रसेन से कहा तुम उर्वशी के पास जाकर मेरा सन्देश कहो कि वह अर्जुन के पास जाये। चित्रसेन ने उस परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी को जाकर कहा मैं देवराज वैजयन्त (इन्द्र) की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूं। अर्जुन सौन्दर्य, स्वभाव, रूप, व्रत में जितेन्द्रिय है। स्वाभाविक गुणों से देवताओं और मनुष्यों में प्रतिष्ठित व बलवान तथा प्रतिभा सम्पन्न है। विद्या, ऐश्वर्य, तेज, प्रताप, क्षमा, मात्सर्य हीनता, वेद वेदांग ज्ञान तथा अन्य शास्त्रों के अभ्यास में बडा निपुण है। आठ प्रकार की गुरुसेवा और आठ प्रकार के गुणोंवाली बुद्धि को खूब अच्छी तरह जानते हैं। वह इस समय ब्रह्मचारी और उत्साही हैं। मातृकुल और पितृकुल से शुद्ध है वे तरुण अवस्था का भी है। जैसे इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करते है वैसे ही वह पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ है। वह अपनी नहीं दूसरों की प्रशंसा करता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्या को भी स्थूल की भांति जान लेते है। उनकी वाणी बडी मधुर, ओजस्वी है। मित्रता बडी बखूबी से निभाते है। अर्जुन सत्य प्रेमी, अहंकार रहित, प्रेम पात्र और दृढ प्रतिज्ञ है। वे अपने सेवकों पर दृढ़ प्रेम रखता है तथा गुणों में इन्द्र के समकक्ष है। वे तुम्हारी सेवा से स्वर्ग का सुख प्राप्त करेंगे इसके लिये तुम अर्जुन के पास जाओ और उसके साथ विहार और रमण करो। उर्वशी ने चित्रसेन का सत्कार किया और प्रसन्न मन से बोली गन्धर्वराज तुमने अर्जुन के जिन प्रधान प्रधान गुणों का वर्णन किया है उन्हे मैं पहिले से ही जानती हूं। मैं स्वयं भी उन्हे मन से चाहती हूं। मैं उनपर आसक्त हूं। मैं अर्जुन से प्रेम करती हूं पर मेरा यह प्रेम एक तरफा प्रेम है। अब देवराज की आज्ञा और तुम्हारे इस सन्देश से अर्जुन के प्रति मेरा आकर्षण और भी बढ गया है। मैं अर्जुन की सेवा के लिये जाऊंगी।

चित्रसेन के चले जाने के बाद अर्जुन की सेवा करने की लालसा से उर्वशी मुस्कुराती हुई पूरी तरह सज धजकर पवन और मन की तेज गति समान क्षणभर में अर्जुन के पास पहुंची। अर्जुन बोला पधारो देवी। इतनी रात कोई विशेष प्रयोजन देवी ? उर्वशी के नयनों से कटाक्ष बरस रहे थे बोली ओ फाल्गुनी। अर्जुन बोला आपका शुभागमन मेरे लिये सम्मान का विषय है किन्तु यह समय...। उर्वशी बोली तुम्हें यह समय विकट लग रहा है किन्तु अप्सराओं के लिये यही तो विहार का समय है। अर्जुन को लगा कि उर्वशी पहिले से ही सुरान्मत्त है। यह मेरे सोने का वक्त है विहार का नहीं। उर्वशी बोली बडे निष्ठुर हो फाल्गुन। रात्रि के इस एकान्त में मुझे अपने द्वार पर आया देखकर इन्द्र भी हर्ष से उन्मत्त हो उठता और एक तुम हो कि तनिक सा भी उत्साह नहीं दिखाते। तुम तो नृत्य कला में प्रवीण हो गये हो। चित्रसेन को भी निचोड लिया तुमने। अर्जुन बोला नहीं देवी कोई शिष्य अपने गुरु को कैसे निचोड सकता है? वो तो केवल इतना ही करता है कि झोली पसारे अपने गुरु के आगे खडा रहता है। देनेवाला तो गुरु ही है परन्तु यदि आप मेरे इस नृत्य से प्रसन्न हुई है तो इसका अर्थ यह हुआ मेरे कारण मेरे गुरु को लज्जित नहीं होना पडेगा। उर्वशी फिर नयनों से कटाक्ष कर बोली यदि तुम अप्सरा रहे होते तो त्रिलोकी की मेनका और उर्वशी के दीये बुझ गये होते। यौद्धा की भुजा में नृत्य का लोच तुमने तो असम्भव को सम्भव कर दिया। अर्जुन बोला असम्भव तो कुछ होता ही नहीं देवी। उर्वशी बोली मेरा नाम उर्वशी है तुम मुझे बार बार आप आप देवी देवी क्यों कह रहे हो ? मुझे मेरे नाम से क्यों नहीं पुकारते ? अर्जुन बोला मेरे लिये यह सम्भव नहीं। उर्वशी बोली क्यों नहीं ? अभी तो तुम कह रहे थे कि असम्भव तो कुछ होता ही नहीं। अर्जुन बोले मर्यादित पुरुषों के लिये मर्यादा का उल्लंघन अवश्य असम्भव होता है। उर्वशी बोली कभी मन भटका है तुम्हारा ? अर्जुन बोला मन तो भटकने के लिये ही होता है। उर्वशी बोली हम इन्द्र लोकवालों का इसका अनुभव नही कि इस भटकन का उपचार क्या है कुन्ती पुत्र अर्जुन ? अर्जुन बोला भटकने का अर्थ तो यह है कि मन की दशा ठीक नहीं और दशा को ठीक करना ही उसका उपचार है। उर्वशी बोली यदि मन कुछ पाने के लिये व्याकुल हो तो? अर्जुन बोला तो इसे मन का भटकना नहीं कहते। यदि मन कुछ पाना चाहता है तो लक्ष्यतक एक लक्ष्य की निवृति हो गई। लक्ष्य तक पहुंचना ही जीवन मूल्य है। वो ही तो जीवन को एक नई दिशा और अर्थ देता है। उर्वशी बोली अर्थात अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये ना। अर्जुन बोला अवश्य।

उर्वशी काम विह्वल हो अर्जुन के गले में अपने बाहें डाल कुछ प्रखर कटाक्ष नेत्रों से करती हुई बोली मेरा लक्ष्य तो तुम हो अर्जुन। मैं जब से तुम्हे पाने का प्रयत्न कर रही हूं। अर्जुन बोला यह सम्भव नहीं देवी। उर्वशी बोली क्यों नहीं ? कभी तो तुम यह कहते हो कि सम्भव तो कुछ होता ही नहीं और कभी यह कहते हो कि वो सम्भव नहीं, यह सम्भव नहीं। मेरी समझ के बाहर तुम्हारी पहेलियां है। क्या मैं सुन्दर नहीं हू ? अर्जुन बोला नहीं देवी ऐसी बात नहीं है। आपका सौन्दर्य तो वो सौन्दर्य है जो ऋषियों और तपस्वियों की तपस्या भंग कर दे। उर्वशी बोली तो फिर तुम्हे मेरा यह सौन्दर्य क्यों नहीं आकर्षित कर रहा है। अर्जुन। अर्जुन बोला क्योंकि मैं ऋषि नहीं हूं। उर्वशी बोली वाद-विवाद में समय मत बिताओ अर्जुन। मेरी बाहों में समा जाओ और यह कह उर्वशी कामात्तुर हो अर्जुन से लिपट गई और आंखे मटकाती हुई बोली तुम भी बार-बार क्या समय की चर्चा कर रहे हो। यही तो समय होता है। मैं काम विह्वल हो तुमसे रतिदान की कामना से तुम्हारे पास आई हूं। नारी जब भी काम विह्वल हो तडफती हो और काम याचना करती है तो पुरुष का उसे रति दान देना आवश्यक होता है और फिर इसमें कोई पाप नहीं है और न ही यह प्रकृति विरूद्ध है। नारी की काम वासना की पिपासा को शान्त करना मनुष्य का धर्म है अर्जुन। यदि नारी की काम वासना शान्त नहीं हुई या वह सन्तुष्ट नहीं हुई तो वह क्रोधित हो, कुंठित हो अनर्थ करने पर उतारू हो जाती है। वासना में यदि प्रेम की आंच नहीं हो तो काम याचना भी पाश्विक होती है घृणित और अपकर्षणमयी। चित्रसेन गन्धर्व इन्द्र का सन्देश मेरे पास लेकर आया था और आकर आपके गुणों का मेरे पास वर्णन किया और मुझे आपके पास आने के लिये प्रेरित किया। इसलिये कामवश हो आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूं। जब से मैंने आपके गुणों को सुना है जाना है तभी से मेरा मन आपमें अनुरक्त हो

गया है। मैं काम के अधीन हूं अर्जुन। बहुत दिनों से मैं आपको पाने की लालसा कर रही थी। अब मुझे स्वीकार करो अर्जुन। तुम इतने सुन्दर हो अर्जुन की स्वर्ग की अप्सरायें भी तुम्हे पाकर स्वयं को धन्य मानेगी। मुझसे तो स्वर्ग के सभी पुरुष काम भिक्षा मांगते है और एक मैं जो स्वेच्छा से तुम्हारे द्वार पर आई हूं। अपने शरीर की अनेक आकर्षक मुद्राओं का प्रदर्शन करती हुई अर्जुन के निकट आ खडी थी।

अर्जुन यह देख सुनकर स्तब्ध सा खडा रह गया। कितनी स्पष्ट थी उर्वशी की काम याचना ? उर्वशी का आग्रह उस पर न लज्जा का आवरण न मर्यादा का बन्धन। अर्जुन समझ नहीं पा रहा था वह उर्वशी से क्या कहे। इस वेशभूषा और सौन्दर्य प्रसाधन, रूप सज्जा का क्या अर्थ ? उसका रूप इतना उत्तेजक और शरीर इतना निर्वस्त्र। झीने परिधान से आवृत। पर अर्जुन का मन अब तक पर्याप्त संयत हो चुका था। अर्जुन ने उर्वशी की भुजाओं को अपने कंठ से कोमलता से परे हटा दिया और धीरे से बोला तुमने मुझसे कामयाचना कर मर्यादा का उल्लंघन किया है। तुम्हे इस प्रकार के सम्बन्ध के विषय में सोचना भी मेरे लिये पाप है। रुद्ध काम की परिणिति सिर्फ क्रोध में ही होती है। उर्वशी के हृदय पर भीषण आघात हुआ। आज तक किसी रूक्ष से रूक्ष, शुष्क से शुष्क तपस्वी ने भी उर्वशी के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया। आहत काम तिरस्कृत हो क्रोध में परिणत हो गया। उर्वशी बोली इतना दुस्साहस तुम्हारा अर्जुन। तुम अपनी पत्नी द्रौपदी या सुभद्रा से भयभीत हो जो मर्यादाओं की बातें कर रहे हो ? मैं जानती हूं कि तुम द्रौपदी और सुभद्रा की निजी सम्पत्ति हो। उर्वशी का क्रोध अब भी अमर्यादित होने के लिये मचल रहा था। सत्य क्या है तुम्हारे मन में यह तो ईश्वर ही जानता है पर कभी कोई नारी स्वयं स्वच्छन्दता से किसे चाहे तो उसका भोग अवश्य करना चाहिये। नारी तो होती ही है भोग्या। अर्जुन तुम जिसे पत्नी पत्नी की मर्यादा कह रहे हो वह भी तुम्हे इस अमरावती का सुख नहीं दे पायेगी जो तुम मेरे साथ रमण और विहार कर पाओगे। प्रेयसी के साथ विहार का आनन्द अलग ही होता है अर्जुन। तुम अभी तक यह नहीं जानते कि हम अप्सरायें किसी की पत्नी नहीं होती। हम तो रमणी हैं। स्वर्ग में विहार करती हैं। उर्वशी ने अर्जुन को पत्नी, धर्मपत्नी, उपपत्नी, प्रेयसी, सहचरी, रमणी और वेश्या का विवेचन कर बताया। उर्वशी बोली अर्जुन तुम कामात्तुर नारी की पीडा नहीं जानते हो। नारी तो होती ही है भोग्या। प्रकृति भी तो नारी ही है और उसे तो सभी भोगते हैं। इसीलिये तो यह रस और आनन्द बना है। तुम इस रस से वंचित हो शून्य में अपना जीवन मत बिताओ। पत्नी तो वो होती है जिसे वैधानिक रूप से पति को उसको भोगने का अधिकार मिला होता है। वह अपनी पति के संसर्ग से जाया सन्तान उत्पन्न करती है। पत्नी के द्वारा पुत्र के रूप में स्वयं पति का जन्म होता है इसलिये विद्वानों ने उसे जाया की संज्ञा दी है। पत्नी उसे कहते है जो घर के काम काज में कुशल हो, सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो। पति को प्राणों समान प्यार करती हो। पत्नी द्वारा धन, अर्थ, काम की सिद्धि होती है। पत्नी पति को कर्मों में व्यस्त रखती है। गृहस्थी बन कुटुम्ब का पालन कर पति को सुख देती है। पत्नी मधुरभाषी हो। इस लोक में पत्नी जैसा सहायक नहीं। रोग और मानसिक विकारों से ग्रसित पुरुष पत्नी को देखकर ही आल्हादित हो उठता है। प्रेम और प्रसन्नता पत्नी से ही होता है। पत्नी हर समय पति को अपने में आकर्षित करती रहती है और भोग विलास में ही पति को रखती है। नित नये वस्त्राभरण आभूषण को धारण करने की चाह रखती है तथा रूप सज्जा में ही अपना यौवन व्यतीत करती है और दिन रात अपने पति को भोगों में प्रवृत्त करती है। वह सदा अपने पति से उपहारों, नये-नये वस्त्रों और आभूषणों की अपेक्षा करती है और विषय सुखों की मांग करती है।

धन की चाहत से पति को उचित अनुचित कर्मों में लगाकर उसे पतन की ओर ले जाती है। उसे ईश्वर, अध्यात्म, धर्म इत्यादि विषयों में कोई रूचि नहीं होती। उसका पति के प्रति प्रेम का प्रदर्शन चरम सीमा तक होता है। धर्मपत्नी वह है अर्जुन जो पति की ऊपर कहीं गई आवश्यकतायें पूरी करती है। वह पति को परमेश्वर मानकर उसमें सम्बन्ध जोडे रखती है। पति ही उसका ईश्वर है पति ही उसका गुरु है। धर्म कार्यों में विश्वास रखनेवाली पति को धर्म की ओर प्रवृत करती है। उसकी रूचि ईश्वर, अध्यात्म दान, परोपकार, यज्ञ हवन, इत्यादि में रहती है और पति को भी उस ओर अग्रसर करती है। धर्मानुसार सन्तति

उत्पन्न करती है। आवश्यक भोगों में ही सन्तुष्ट रहती है। अधिक की इच्छा और चाह नहीं रखती है। उसका अपने पति से सच्चा प्रेम होता है। सदा अपने पति का कुशल मंगल चाहती है। घर परिवार का दायित्व निभाती है। पति के लिये पतिव्रता का धर्म निभाती है। पति और सन्तान तथा परिवार की कुशल कामना के लिये व्रत, उपवास, जप, अनुष्ठान करती है। पति के साथ श्रेष्ठ कर्म करती है। पति को धर्म और मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर करती है। उचित और अनुचित का परामर्श देती है। धर्म कार्य में और दु:ख में माता-पिता और मित्र के समान होती है। पति के साथ सती हो जाती है। उनके लिये बिना पति जीवन जीना दुश्वार हो जाता है। ऐसी विधवा स्त्री का स्वरूप परम पवित्र स्वरूप है। घोर विपत्ति के समय और पति की मृत्यु पर पत्नी ही पति का सह अनुगमन करती है। पति सुख के लिये धर्मपत्नी सती हो जाती है और स्वर्ग में पहिले पहुंच कर पति का स्वागत करती है। उपपत्नी और सहचरी यह भी आवश्यकता पडने पर पुरुष की सभी आवश्यकतायें पूरी करती है। ये पति से विवाहित नहीं होती इसलिये ये वैधानिक रूप से पत्नी नहीं कहलाती और न ही जायज सन्तानों की उत्पत्ति करती है। यह पुरुष की सहचरी होती है साथ-साथ फिरती है। पुरुष के व्यवसाय, उद्योग की देखरेख में निपुण होती है। ये वेतन भोगी होती है। ये धन लोलुप होती है और पुरुष के सारे कार्यों में हाथ बंटाती है तथा पुरुष की दिनचर्या से भिज्ञ रहती है और पुरुष को व्यस्त रखती है। उनके मनोरंजन का साधन बन जाती है। हंसी चुहल करती है। पुरुष के लिये प्रेयसी का अभिनय भी अदा करती है। पुरुष की दिनचर्या इस पर बहुत निर्भर रहती है परन्तु बहुत विश्वास योग्य ये नहीं होती।

पुरुष के साथ-साथ रहती है। यह अन्य पुरुषों द्वारा नहीं भोगी जाती। ये जिसकी उपपत्नी होती है वह पुरुष इस उपपत्नी की स्वत: की इच्छा से ही उसका उपभोग कर सकता है। अन्य पुरुष इसे नहीं भोग सकता। ये अपने स्वामी के लिये ही उपभोग में रत रहती है। रमणी और प्रेयसी ये पुरुष से विवाहित नहीं होती पर यह पुरुष को विहार, रमण करने के लिये दूरस्थ स्थानों पर उपलब्ध होती है। जहां जाकर पुरुष स्वच्छन्दता से उनके साथ रमण कर सकता है इसलिये वे रमणी कहलाती है। पुरुष उनका उपभोग करता है। ये भी मन से उस व्यक्ति को चाहती है। ये पुरुष की अभिन्न मित्र बन जाती है। इनके संसर्ग में पुरुष आल्हादित महसूस करता है। यहां भी उपहारों का आदान-प्रदान होता है। प्रेम की सन्तुष्टि होती है। उन्हे वहीं भोग सकता है जिसे वे चाहती है। जैसे स्वर्ग लोक में अप्सरायें होती है जिन्हे देवता लोग भोगते है पर वे किसी की पत्नी नहीं होती और न ही सन्तान उत्पन्न करती है। इनकी सन्तान कानीन सन्तान होती है। ये सिर्फ रमण करने के लिये ही होती है। इन्हे घर परिवार में नहीं लाया जा सकता। वेश्या और रखैल यह पुरुष की वासना मिटाती है इसीलिये ये वेश्या कहलाती है। यह धन देकर पैसे में खरीदी जा सकती है और उपभोग में लायी जाती है। उनके लिये पति और धर्म नाम की कोई संज्ञा नहीं होती। वे किसी भी जार पुरुष के लिये उपलब्ध होती है। वे किसी के साथ भी भोग कर लेती है। इनकी सन्तानें अवैध सन्तान कहलाती है। कोई भी बलिष्ठ पुरुष अथवा सामर्थ्यवान पुरुष इसे अपने घर के बाहर या घर में भोगता है। वह पुरुष विवाहित होते हुये भी इस नारी को भोगता है। अपनी वासना शान्त करने के लिये इसे भोगता है। इसके जीवन निर्वाह का दायित्व भी उस भोगनेवाले पुरुष का होता है। इनकी सन्तानें नाजायज सन्तानें कहलाती है।

उर्वशी की बात सुनकर अर्जुन बोला नि:सन्देह तुम मेरी गुरुपत्नी समान हो। मेरे मन में कोई बुरा भाव भी नहीं उठ रहा। अपने स्वाभिमान की रक्षा का अधिकार हर मनुष्य का है। मैंने आप में इस उर्वशी को देखा था जो हमारे पूर्वज पुरुरवा की प्रेयसी थी, जिससे हमारे वंश की वृद्धि हुई। मेरी दृष्टि में तो आपके लिये पूज्य मातृभाव है। मेरे सम्बन्ध में तो तुम्हे काम भाव की दृष्टि रखनी ही नहीं चाहिये। आप तो मेरे पूर्वजों की भी जननी है। आप की बाहों में समाना तो माता की बाहों में समाने समान है। एक पुत्र के लिये इससे बढकर और क्या सौभाग्य प्राप्त होगा ? उर्वशी बोली **माता**। तुमने मुझे माता कहा। अर्जुन बोला माता को यदि माता नहीं कहूं तो और क्या कहूं। याद कीजिये मेरे पूर्वज महाराज पुरु आपके सौन्दर्य पर मुग्ध हुये थे और आप भी उनकी पत्नी बनकर उनके साथ रही थी इसलिये मैं तो आप में माता कुन्ती और माता माद्री का ही रूप देख सकता हूं। उर्वशी बोली अर्जुन

हम अप्सराओं का किसी के साथ विवाह नहीं होता। हम स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होती है। आप मुझपर प्रसन्न हो और मुझ कामपीडिता, कामक्षुधातर मिटाइये। मेरा त्याग मत करें। मैं कामवेग से सन्तप्त हो रही हूं। अप्सरायें तो केवल सौन्दर्य की प्रतिमायें होती है अर्जुन। इसलिये इस सौन्दर्य की प्रतिमा को आदर से स्वीकार करो। तुम्हारे जैसा तो मैंने कोई नहीं देखा जो एक अप्सरा को कामदृष्टि से नहीं मातृदृष्टि से देखता है। मेरा यौवन और सौन्दर्य तुम्हारे पौरुष को नहीं ललकार सकते बल्कि तुम्हारे मन में वात्सल्य का भाव जगा रहे। तुम पुरुष नहीं हो। कोई नपुंसक हो, पुंसत्वहीन बर्ताव है तुम्हारा। तुम पुरुष नहीं बन सकते। धिक्कार है तुमपर जाओ नपुंसक हो जाओ। तुम मेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर सके। अब तुम्हे स्त्रियों में नर्तक होकर रहना पडेगा। अर्जुन बोला क्रोधित ना हो देवी। माता के रूप में तो मैंने स्वीकार कर लिया। माता और पुत्र के बीच तो और कोई सम्बन्ध तो हो ही नहीं सकता। मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। मैं आपके लिये केवल एक पुत्र हो सकता हूं पुरुष नहीं। उर्वशी बोली मेरा श्राप तुम्हे लग चुका है कि तुम सदा पुत्र ही बने रहो पुरुष कभी नहीं। आज से एक नपुंसक का जीवन व्यतीत करो। यह कहकर उर्वशी बाहर निकलकर अपने स्थान पर चली गयी।

भडक उठी जब वासना दिया क्रोध में श्राप, रोक न पाई उर्वशी वेग काम का आज।

अर्जुन उर्वशी का श्राप सुन स्तम्भित सा खडा रह गया और विचार करने लगा क्या कह गई उर्वशी उसे ? किस किस को स्पष्टीकरण देता रहेगा अर्जुन ? किस किस को बतायेगा वह कि उसे उर्वशी में माता कुन्ती और माता शचि दिखाई पडी। कौन इस बात को स्वीकारेगा। जहां पौरुष का अर्थ केवल सम्भोग सामर्थ्य ही है, नारी केवल अप्सरा है, प्रेम केवल वासना का ही नाम है उस इन्द्रपुरी में अप्सरा को माता के समान पूज्य दृष्टि से कौन देख सकता है और कौन समझ सकता है। अमरावती में केवल अर्जन है विजर्सन नहीं, ग्रहण है त्याग नहीं। भोग है तपस्या नहीं। अब अर्जुन के लिये यहां ठहरने का स्थान नहीं है। अर्जुन को लगने लगा उसके भीतर निवास करनेवाले अनंग कामदेव शरीर से निकल गये है। अब अर्जुन को काम प्रसंग में तनिक भी आकर्षण प्रतीत नहीं होता। कदाचित उनके लिये स्त्री पुरुष में अभेद हो गया है। रति प्रसंग अर्जुन को गर्हित और घृणित लगता है। अब वह किसी स्त्री को कामयुक्त दृष्टि से नहीं देख सकता। इन सबका क्या अर्थ है पर अर्जुन के साथ ऐसा ही कुछ हुआ है। विधाता से अच्छी कथा तो कोई सुना ही नहीं सकता। अब संसार सोच में पड गया सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर द्रोण शिष्य अर्जुन को उर्वशी यह कैसा श्राप दे गई ? भला अर्जुन जैसा महावीर कलीव बनकर कैसा लगेगा जैसे हाथी के कान में लटकता हुआ अंकुश उसे बेचैन रखता है। वैसे ही इस श्राप का अंकुर सभी को बेचैन रखेगा जब तक इस श्राप की गांठ नहीं खुलेगी।

अर्जुन इन्द्र की सभा में आये। अर्जुन ने उर्वशी के साथ कल रात जो घटना और सम्वाद हुआ वो सब बताया। इन्द्र बोला उसने तुम्हारा अपमान नहीं किया उर्वशी। यदि अप्सरा किसी की मां या पत्नी नहीं हो सकती तो वह कुछ भी चाह नहीं सकती। वो न प्रेम कर सकती है और न क्रोध। तुमने अप्सरा की मर्यादा का उल्लंघन किया है। उर्वशी बोली क्षमा चाहती हूं देवराज परन्तु मैं उसे श्राप दे चुकी हूं। श्राप को वापिस तो नहीं ले सकती। इन्द्र बोले तुम उसकी अवधि अवश्य कम कर सकती हो। अपने श्राप की आयु घटाकर एक वर्ष कर दो। उर्वशी बोली जो आज्ञा। अर्जुन ने आकर इन्द्र को प्रणाम किया। इन्द्र बोले आयुष्मान भव। अर्जुन बोला यह वरदान मत दीजिये प्रभो। अब ये नपुंसक जीकर क्या करेगा ? इन्द्र बोला उर्वशी का यह श्राप भी तुम्हारे लिये एक वरदान ही है कुन्ती पुत्र जो तुम्हें तुम्हारे अज्ञात वाश में काम आयेगा। अब तुम भूलोक की यात्रा आरम्भ करो। अर्जुन बोला जो आज्ञा किन्तु एक वर्ष के अज्ञातवास के लिये इतना बडा श्राप। इन्द्र बोला उर्वशी ने स्वयं ही श्राप की आयु घटा दी है। अब तुम्हे केवल एक वर्ष ही नपुंसक बनकर जीना होगा और उस वर्ष का चुनाव भी तुम स्वयं करोगे। अर्जुन प्रणाम कह कर स्वर्ग से धरा पर लौट आया। वैशम्पायन बोले जनमेजय अर्जुन जैसा पुत्र पाकर कुन्ती सचमुच धन्य हो गयी। अर्जुन और उर्वशी का यह चरित्र इतना पवित्र है जो कोई इसे प्रतिदिन श्रवण करेगा उसके मन में कभी पाप करने की इच्छा नहीं जगेगी।

क्रमश: भाग २